Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R

विषय संख्या ८०
पुस्तक संख्या प्र ८ ६ स
आगत पंजिका संख्या भा० ६३

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। 353

112913

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

112913

CHECKED 1973

जनवरी १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा धार्मिक साहित्य

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

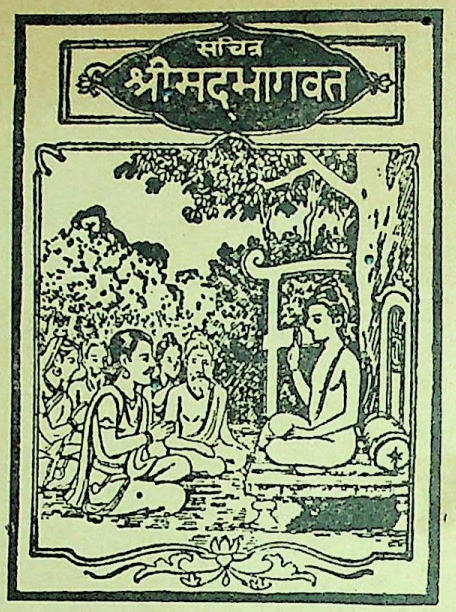

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

विनय पत्रिका

गोस्वामी तुलसीदास की इ रचना के विनय पदों का मर्म में पं० रामेश्वर भट्ट की टी सहायता करती है। बड़े आ सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र

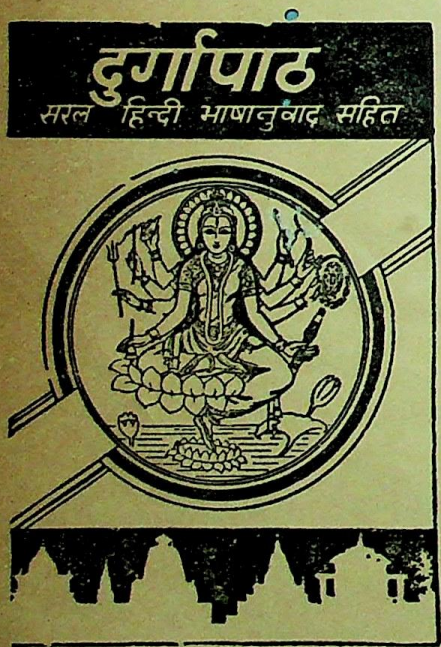

राय साहब श्री राधामोहन लाल बी० ए० रिटायर्ड जज चीफकोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मू० १२)

इसमें महाभारत के पर्वों की कथा बहुत ही सर में लिखी गई है। इसके लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं और सजिल्द ग्रन्थ का मू

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1२९13

३५३

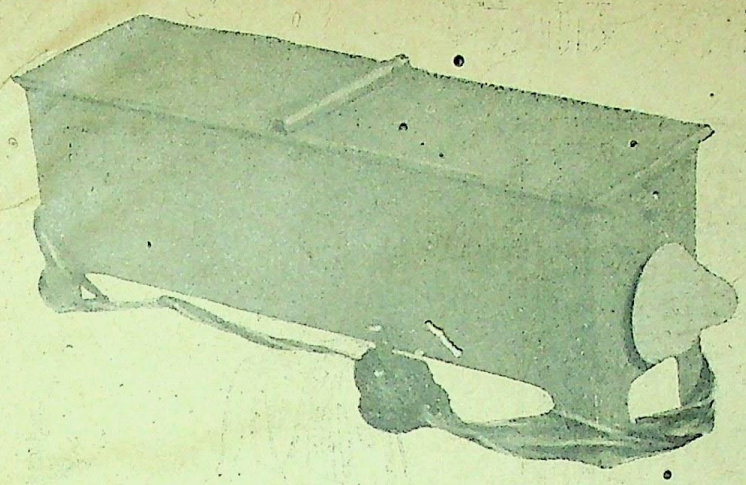

पाराफिन इमबोडिंग टेबुल

साइण्टिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

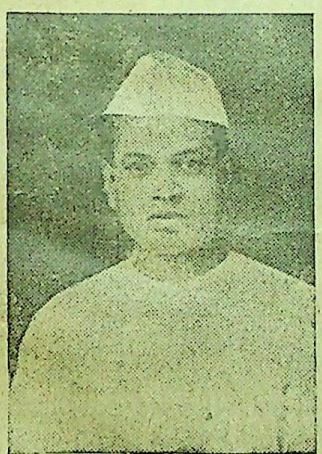

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

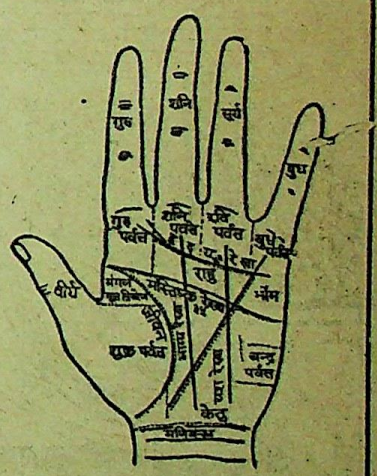

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:—

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। यह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ चुने हुए उपन्यास

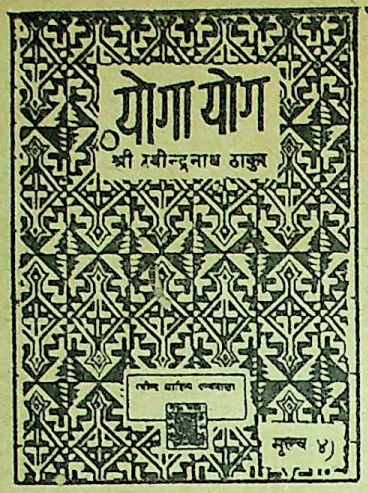

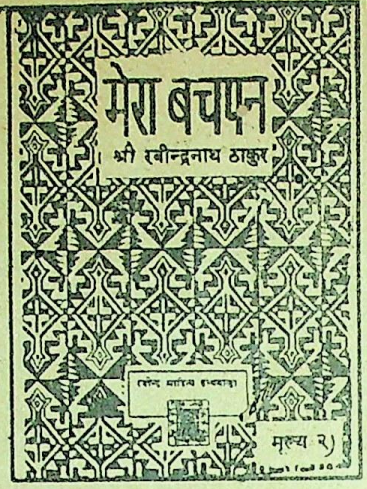

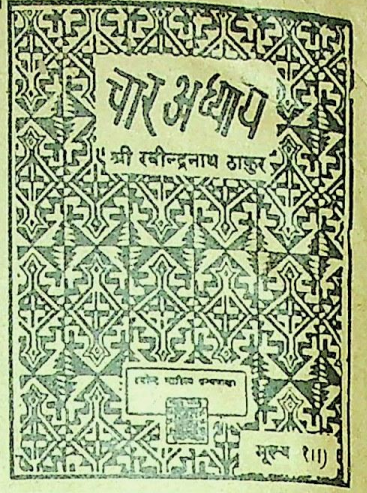

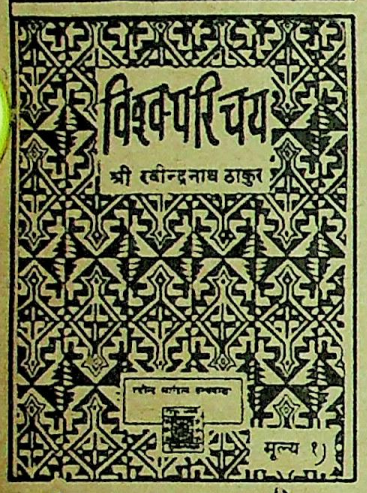

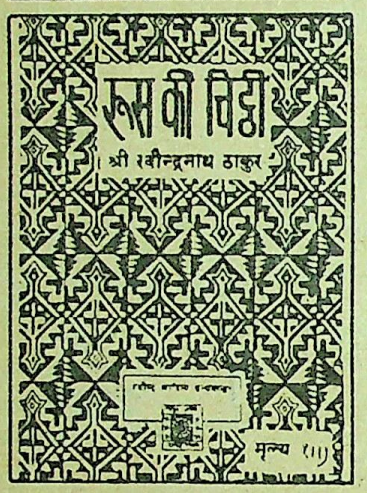

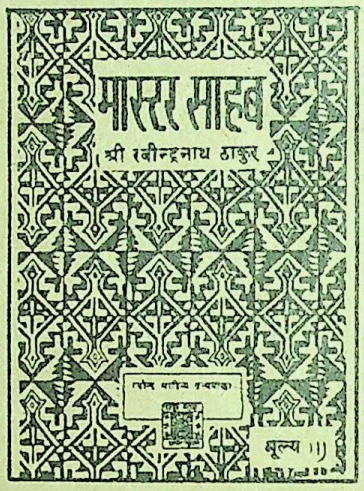

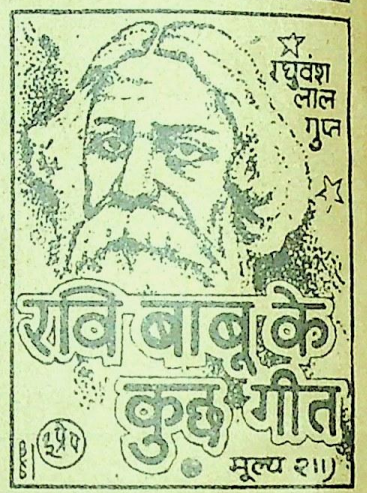

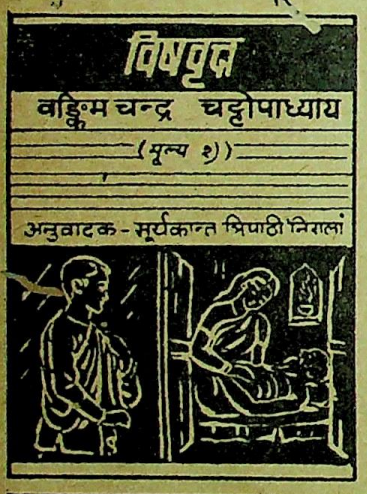

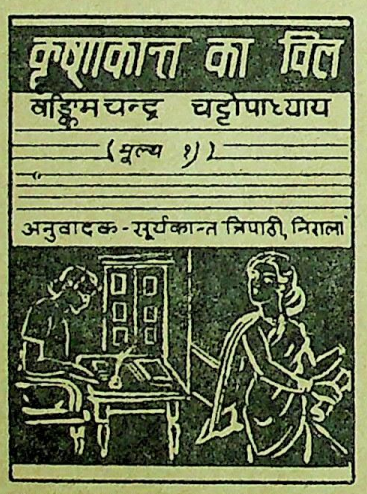

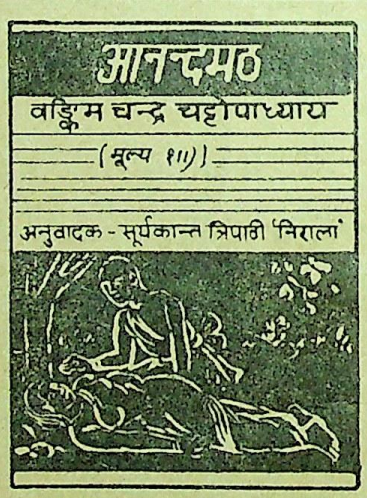

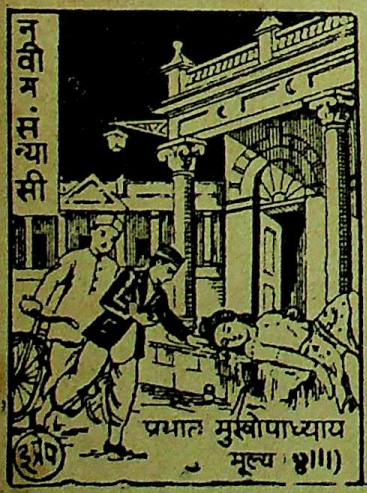

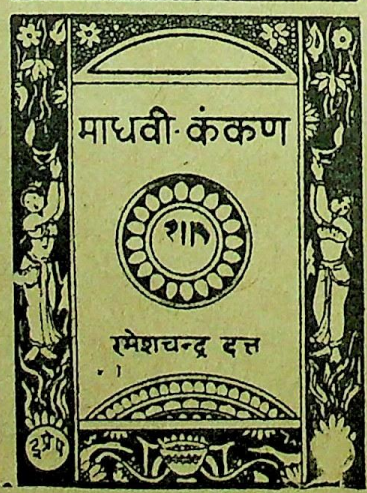

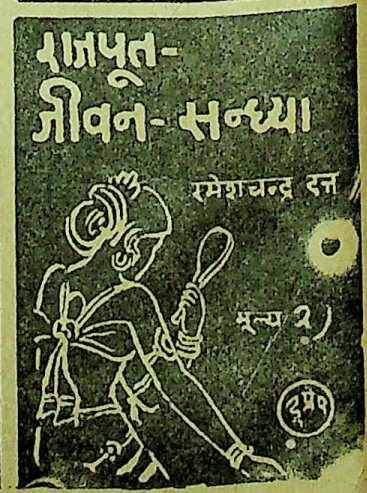

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श लिवर टानिक

ओ० आर० सि० एल का

कुमारेश

लीवर व पेट की पीड़ा की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ० आर० सि० एल० लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

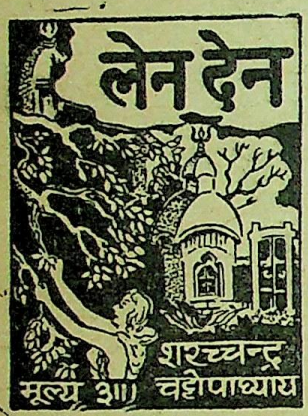

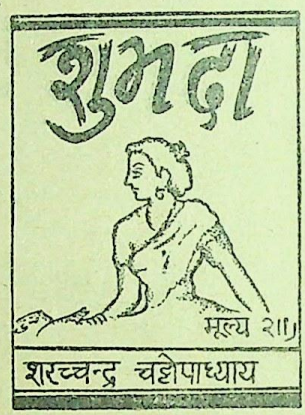

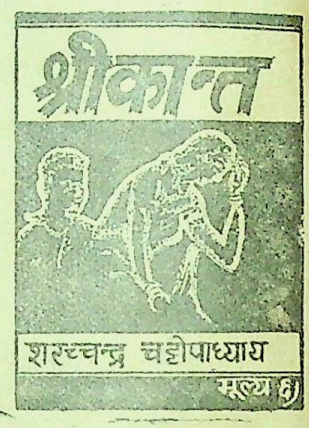

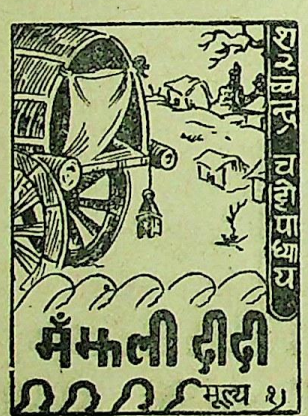

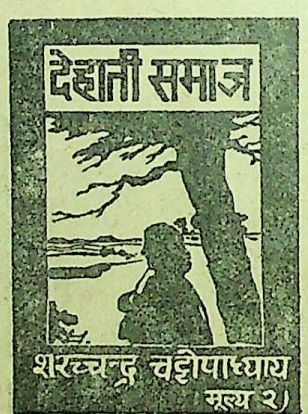

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकोमल चमकदार केशराशि के लिये

कैन्थाराइडिन

केश तैल

केश विन्यास के अपरिहार्य अंग के हैसियत से, सौन्दर्यप्रिय महिलाएँ कैन्थराइडिन केश तैल पसन्द करती हैं।

बंगाल केमिकल

कलकत्ता . बम्बई . कानपुर

नया प्रकाशन :

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

विवेकानन्दजी के सान्निध्य में सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य ६० नये पैसे। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विभिन्न विषयों पर स्वामी विवेकानन्दजी के उद्‌बोधक तथा स्फूर्तिदायक सम्भाषणों का संकलन।

देववाणी : सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य २·७५ नये पैसे। अमरीकी शिष्यों को आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्दजी के अमृततुल्य उपदेश।

भारत में विवेकानन्द : स्वामीजी द्वारा भारत में दिये गये समग्र व्याख्यान ५);
विवेकानन्दजी के संग में : (वार्तालाप), शरच्चन्द्र चक्रवर्ती कृत, महान् शिक्षाप्रद संग्रह ५·२५;
चन्तनीय बातें १·००;
विविध प्रसंग १·१२;
जाति, संस्कृति और समाजवाद १·२५;
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १·१५
विवेकानन्दजी की कथायें १·६०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १·२५;
पत्रावली (प्रथम भाग) ५·२५
,, (द्वितीय भाग) ४·२५;
कर्मयोग १·४०; भक्तियोग १·५०;
राजयोग ३·००; ज्ञानयोग ३·००;
प्रेमयोग १·३७; सरल राजयोग ०·५०;
हिन्दू धर्म १·५०; धर्मरहस्य १·२५;
धर्मविज्ञान १·६२; परिव्राजक १·२५;
भारतीय नारी ०·७५; शिक्षा ०·६२;
कवितावली ०·६२; मेरे गुरुदेव ०·६२;
मन की शक्तियाँ ·४०; हमारा भारत ०·५०;
विवेकानन्द-चरित : सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत, तृतीय संस्करण, ६·००

पॉकेट साईज पुस्तकें :

विवेकानन्दजी के उद्‌गार ०·६५;
शक्तिदायी विचार ०·६२;
मेरी समर नीति ०·६२;

श्रीरामकृष्ण-साहित्य

श्रीरामकृष्णलीलामृत : विस्तृत जीवन-चरित्र, गांधीजी द्वारा भूमिका सहित, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मू० ५);
श्रीरामकृष्णवचनामृत : 'म' कृत, 'निराला' द्वारा अनुवादित, श्रीरामकृष्ण देव के अमृतमय उपदेशों का अपूर्व संग्रह, तीन भागों में, पूर्ण, प्र० भा० ६), द्वि० भा० ६), तृ० भा० ७);
श्रीरामकृष्ण उपदेश : स्वामी ब्रह्मानन्द कृत, पॉकेट साइज, आकर्षक जैकेट सहित, ७५ न० पै०
मां सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीला-सहधर्मिणी का पावन जीवन-चरित्र, नयनाभिराम जैकेट सहित, ४·५०;
धर्म प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी शिष्य द्वारा धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर वार्तालाप; दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २·७५;
परमार्थ प्रसंग : स्वामी विरजानन्दकृत, आर्ट पेपर पर छपी हुई, मूल्य ३·२५

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :— श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्र-प्रतिभा पुष्प

कवीन्द्र रवीन्द्र की शताब्दी न केवल बंगाल या भारत में धूमधाम से मनाई गई बल्कि योरप, रूस और अमरीका तक में इसका अपूर्व आयोजन हुआ और कवीन्द्र की प्रतिभा की विजय-दुन्दुभि निनादित हुई। उन्हीं कवीन्द्र के कुछ ग्रन्थ यहाँ विज्ञापित हैं। कवीन्द्र का मुख्य क्षेत्र कविता था; पर उन्होंने कहानियाँ, छोटे-बड़े उपन्यास, देश-भ्रमण, साहित्य आदि विविध अंगों पर ऐसी विचित्र रचनाएँ की हैं कि संसार शतमुख से उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाता। उनकी विख्यात रचनाओं का अध्ययन और मनन करके पाठक समझेंगे कि रवीन्द्रनाथ का संसारव्यापी इतना आदर-वन्दना क्यों है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस का चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अंगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, तापेया मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

ऐसे बोगस रजिस्टर्ड लिखनेवालों से सावधान

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

आधुनिक छपाई

श्री कृष्णप्रसाद दर

इस पुस्तक की सहायता से सर्वथा अनजान व्यक्ति भी आसानी से छपाई का काम चला सकता है।

पृष्ठ ३८८; मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

अपने हृदय का ध्यान रखें

ल्यूबंडुप ही हृदय का वास्तविक संगीत है

सविराम नाड़ी
मूर्च्छा की भावना
भार एवं पीड़ा की अनुभूति
श्वास की न्यूनता
मलिन आकृति
वाम बाहु में पीड़ा
पैरों में शोथ

हृदय की धड़कन एवं शीतपूर्ण अवयव हृद्रोग के निश्चित चिह्न हैं

पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत रूप से या पत्रद्वारा परामर्श करें

कविराज
पं० दुर्गादत्त शर्मा
वैद्य-वाचस्पति

नवरत्न-कल्प फार्मेसी,
जालन्धर सिटी, इंडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ चुने हुए उपन्यास तथा नाटक-प्रहसन

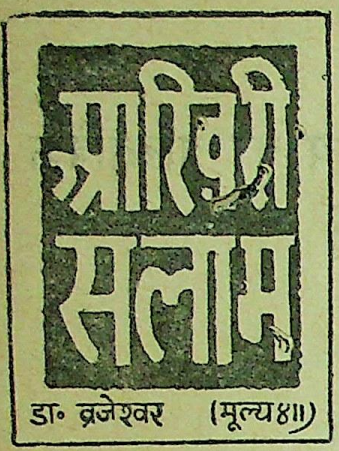

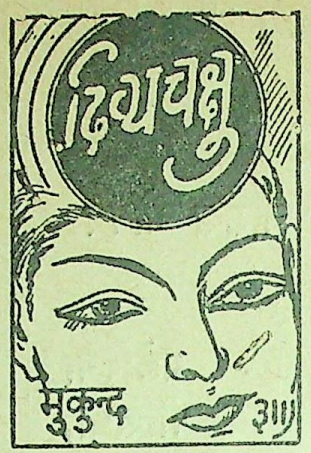

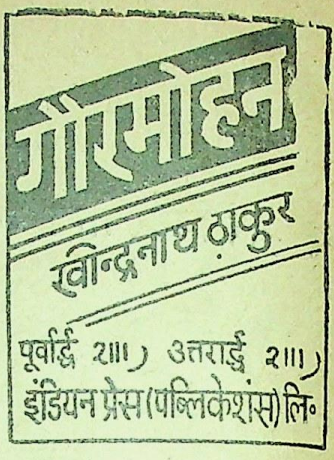

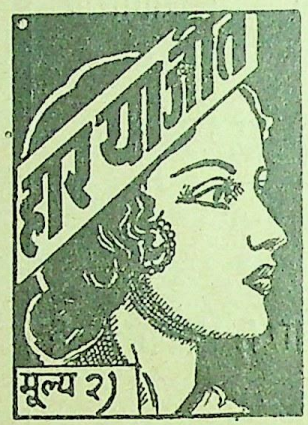

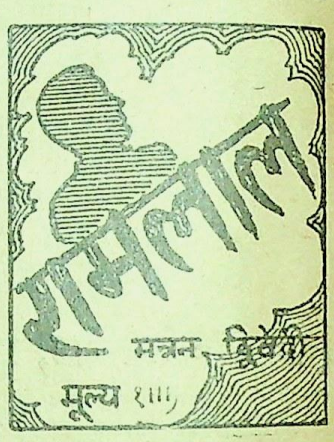

नाटक प्रहसन

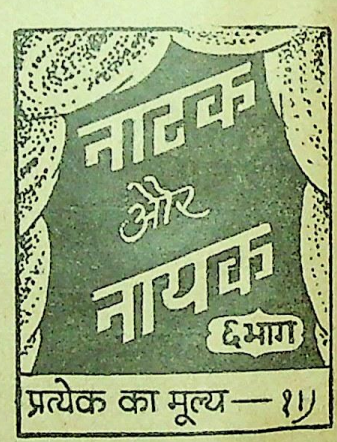

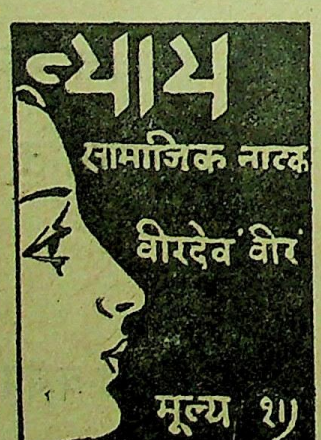

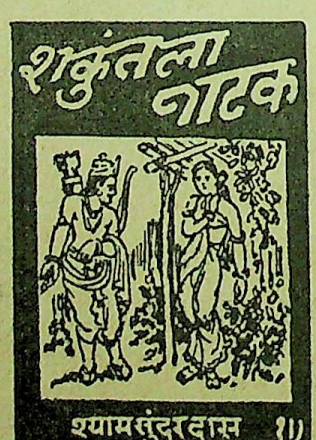

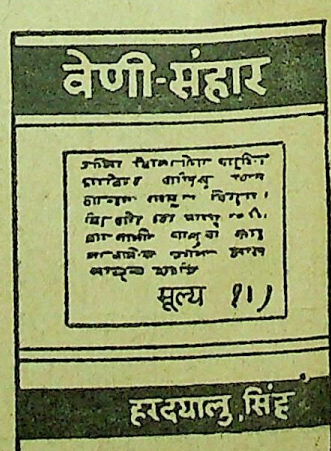

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

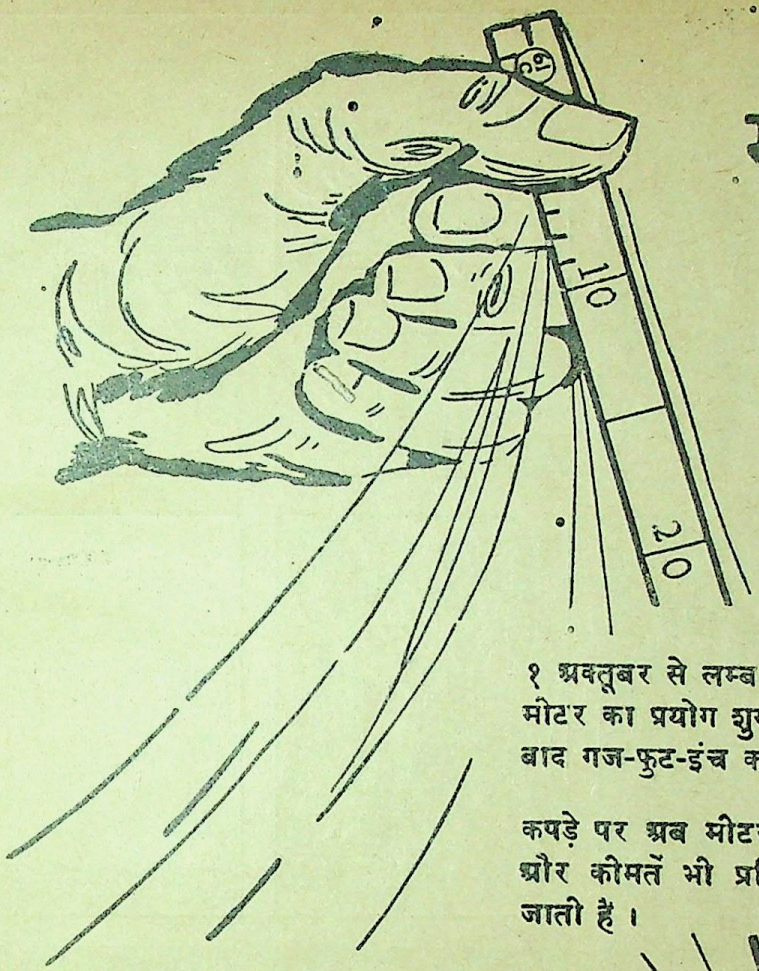

मीटर नाप को अपनाइये

१ अक्तूबर से लम्बाई नापने के पैमाने के रूप में मीटर का प्रयोग शुरू हो चुका है। एक साल के बाद गज-फुट-इंच का प्रयोग कानूनी नहीं रहेगा।

कपड़े पर अब मीटर के निशान लगाये जाते हैं और कीमतें भी प्रति मीटर के अनुसार बताई जाती हैं।

मीटर, गज से ३½ इंच अधिक लंबा होता है

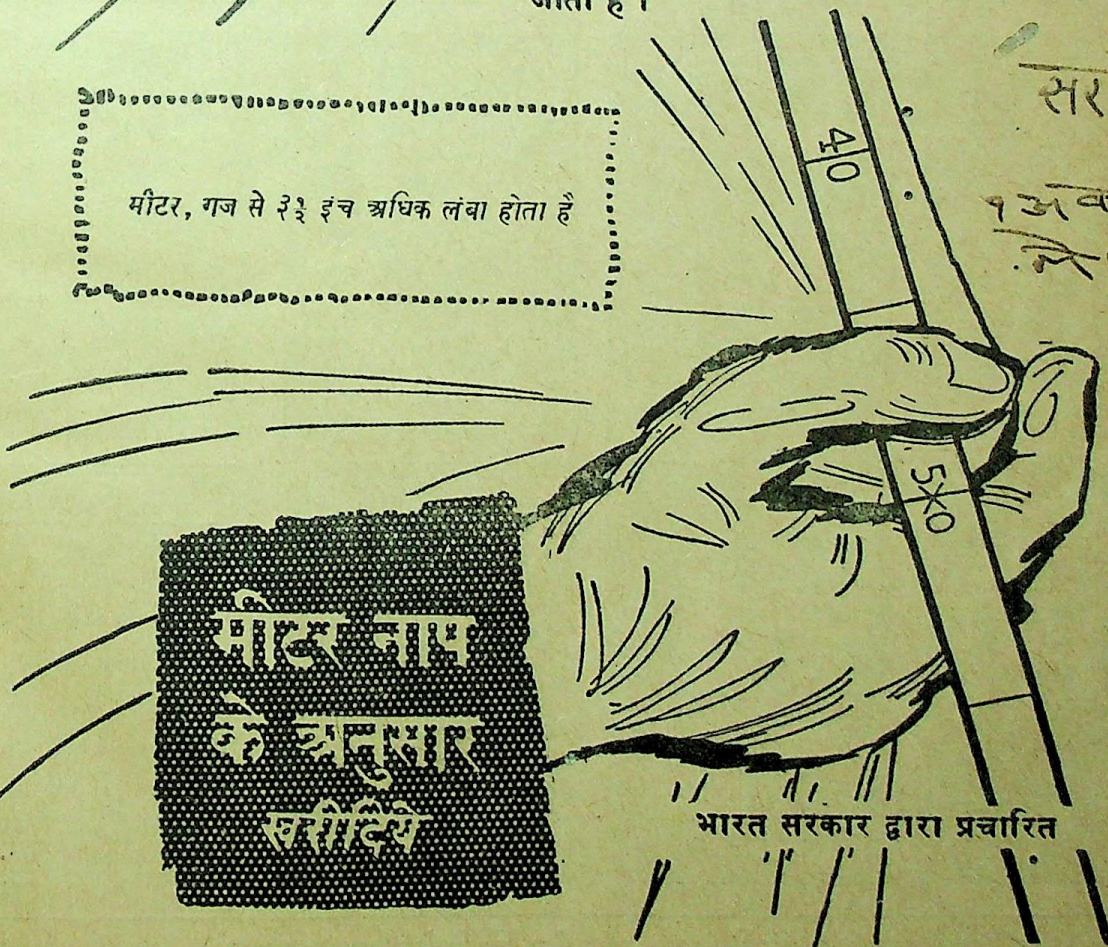

मीटर नाप
को अपनाइए

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

डी ए ६१/५२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

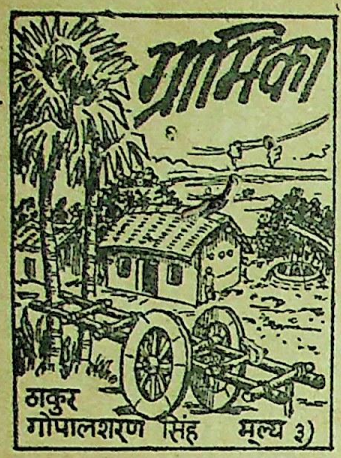

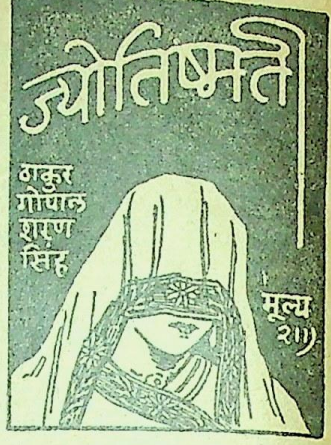

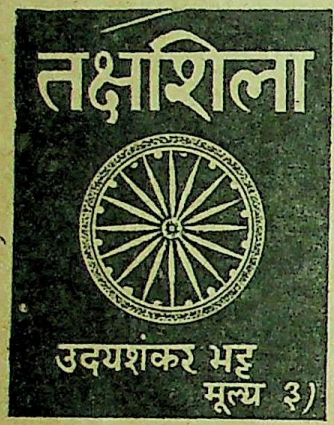

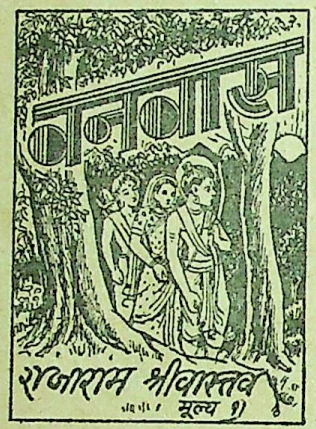

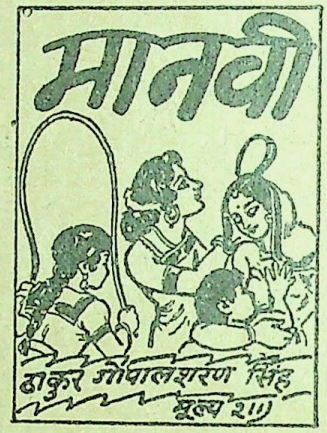

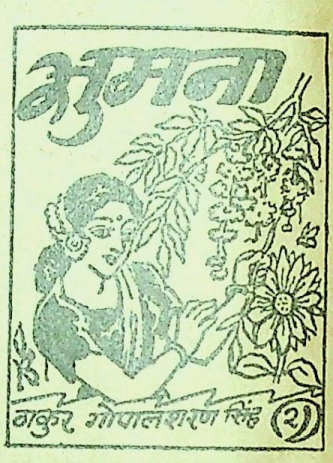

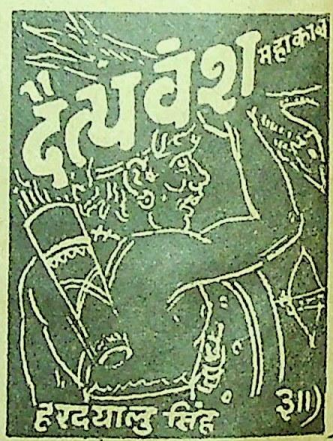

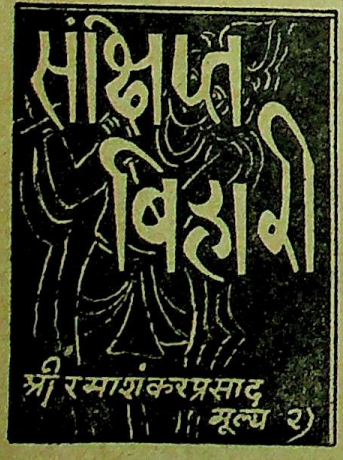

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खांसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, घाव, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्रे आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खांसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरीनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आंखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना। डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बनसुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं खाना हजम करती है पेट साफ रखती है। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का फी १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी आमदनी बढ़ायें

आवश्यकता है अधिकृत एजेंटों की,

(१) १२ वर्षीय राष्ट्रीय योजना बचत प्रमाणपत्रों
(२) १० वर्षीय ट्रेज़री बचत डिपाज़िट प्रमाणपत्रों
(३) १५ वर्षीय वार्षिक प्रमाणपत्रों की बिक्री के लिये,

उक्त सभी भारत सरकार की सुरक्षित पूँजी है

कमीशन की दर पहले पर १½ प्रतिशत और दूसरे तथा तीसरे पर ½ प्रतिशत है।

सम्पूर्ण प्रदेश में प्रचार एवं प्रसार की अनुमति है

अपने जिले के जिलाधीश अथवा सब डिवीज़नल आफिसर या तहसीलदार को आवेदन-पत्र भेजें।

विशेष विवरण के लिये निम्न अधिकारी से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है :—

(१) क्षेत्रीय राष्ट्रीय बचत अधिकारी, उत्तर प्रदेश, हलवासिया कोर्ट, हजरतगंज, लखनऊ, फोन नं० ४८७६ अथवा

(२) अपने जिले के जिला बचत व्यवस्थापक

इस प्रकार पंचवर्षीय योजना के लिये धन संग्रह करने में सहायता करें

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

सरस्वती में

देकर लाभ उठाइए

श्री रामलालसिंह एम० ए०, साहित्यरत्न की पुस्तकें

समीक्षा-दर्शन भाग १, २

ये पुस्तकें गंभीर अध्ययनकर्ताओं के अतिरिक्त सामान्य समीक्षा के पाठकों के लिए भी बहुत उपयोगी हैं। प्रथम भाग पृ० ३८१, मूल्य ४), द्वितीय भाग पृ० २९३ मूल्य ६) छः रुपये।

कामायनी-अनुशीलन

'प्रसाद' जी की 'कामायनी' के ऐतिहासिक, साहित्यिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक आदि पक्षों की मार्मिक ढंग से इस पुस्तक में प्रामाणिक विवेचना की गई है। पृष्ठ ३१६, मूल्य ४) चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये वर्ष के उपलक्ष्य में अनुपम अनुवाद साहित्य

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

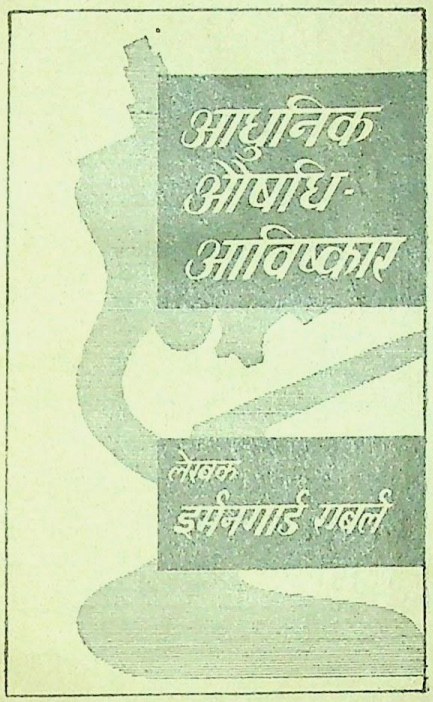

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

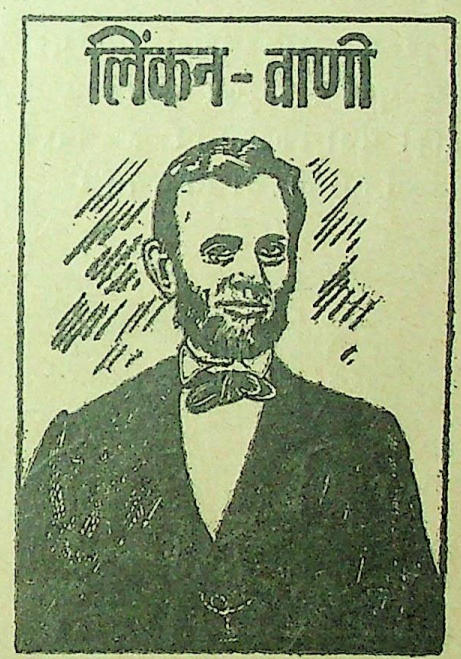

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन
अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करने वाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

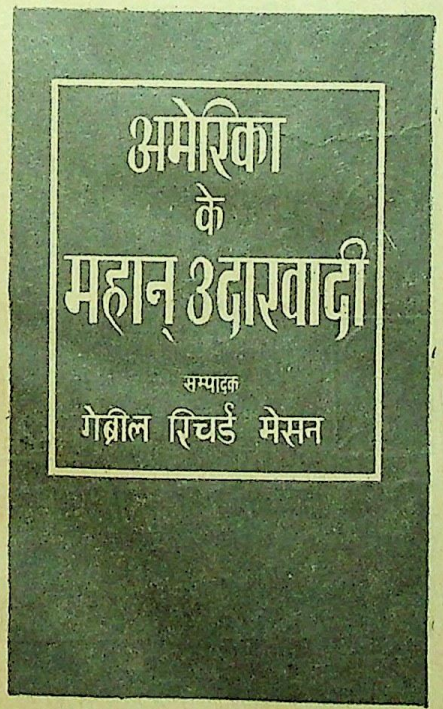

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

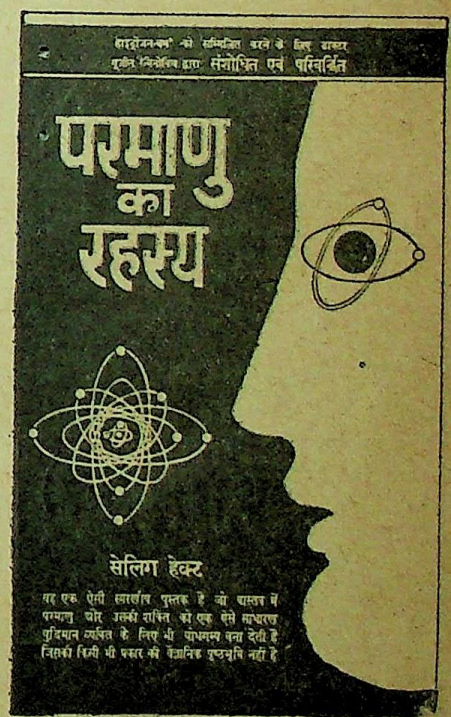

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप नष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

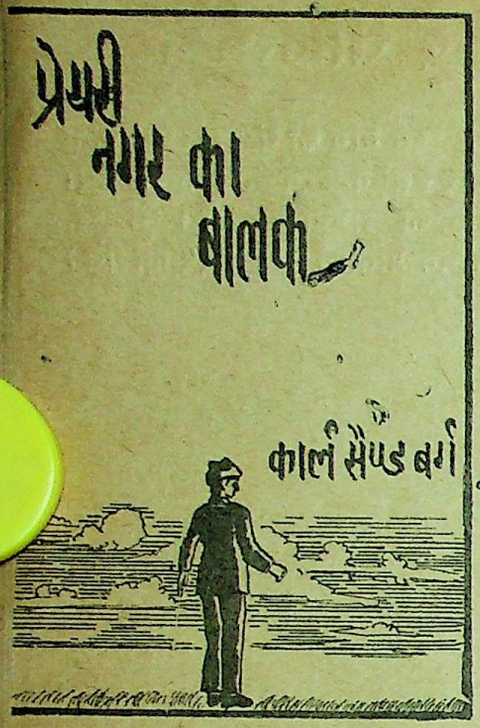

अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे
लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सण्डबर्ग
का बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन।

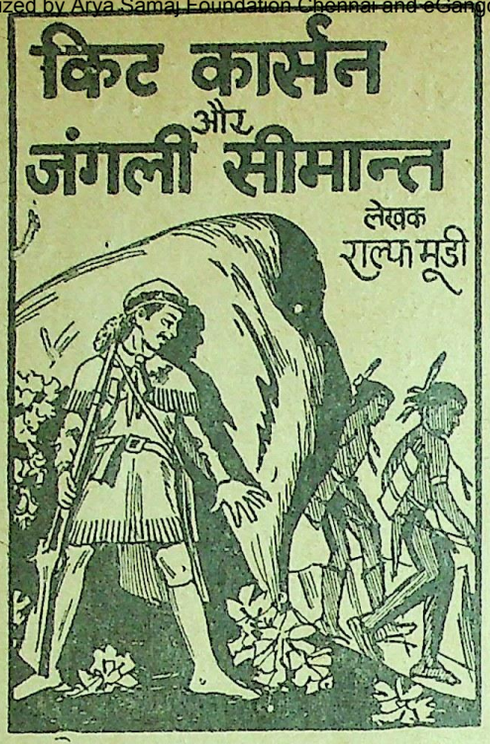

अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क
जीवन का ललित वर्णन।

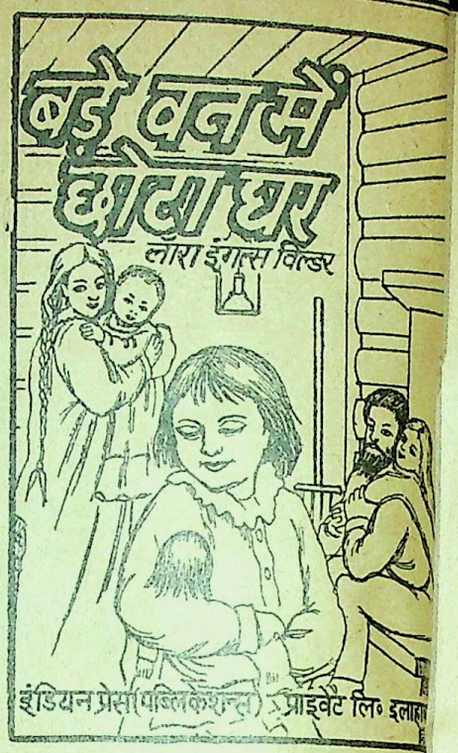

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लेखिका के बाल्यजीवन की सुन्द
कहानी में उस समय के सामा
जिक जीवन का दिग्दर्शन।

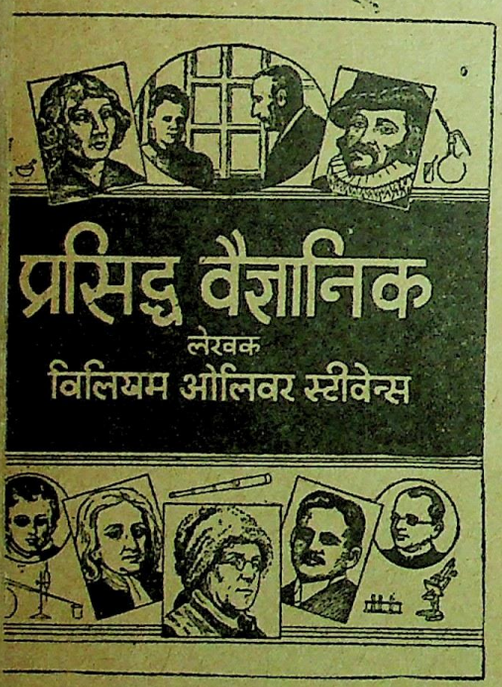

अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों
का सजीव चित्रण उनके जीवन-
चरित्रों सहित।

अनु०—एम० पी० लखेड़ा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली
एन सलिवाँ और उनकी शिष्या
हैलन कैलर की कहानी।

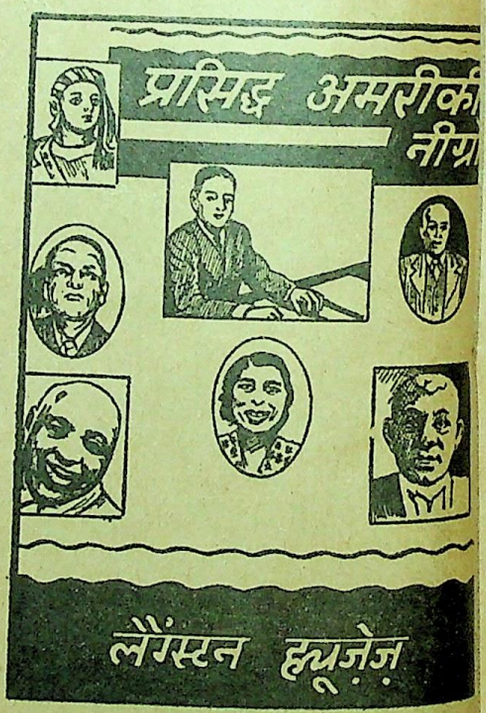

अनु०—रामअौतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की
जीवन-कथाएँ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

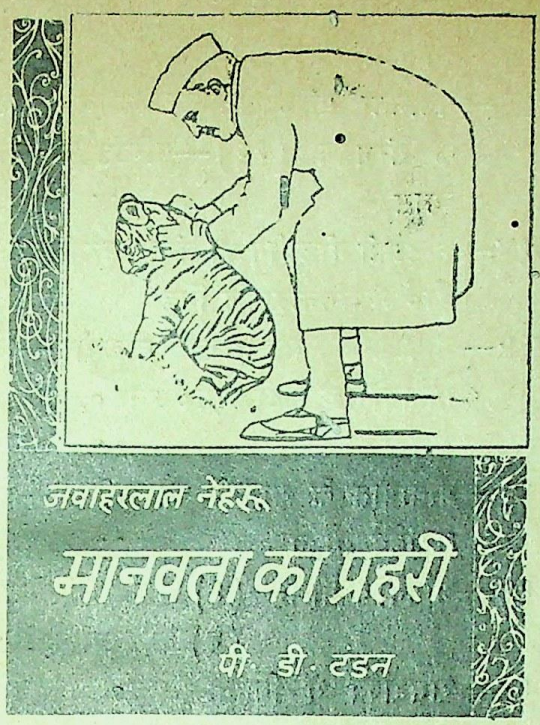

हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

जवाहरलाल नेहरू

मानवता का प्रहरी

लेखक

पी० डी० टंडन, पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १॥) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सम्पादकीय १
२—महामहिम राष्ट्रपतिजी को सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का समर्पण .. ७
३—हमारा मस्तक नत कर दो (कविता)—स्व० पं० लोचनप्रसाद पांडेय .. १२
४—कवीन्द्र रवीन्द्र की दो कविताएँ (कविता)—अनु० श्री रामधारीसिंह दिनकर .. १३
५—रवि बाबू—श्री अमृतलाल नागर .. १४
६—इंडियन प्रेस और कवि रवीन्द्रनाथ—श्री नयनचन्द्र मुखोपाध्याय १७
७—गुरुदेव और राष्ट्रीयता—श्री श्रीपाद शास्त्री २०
८—गुरुदेव और हास्य-रस—श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव २४
९—जब सोवियत जनता ने टैगोर का स्वागत किया—श्री उदयनारायणसिंह .. २९
१०—अमृत-पुत्र रवीन्द्र—कु० सुशीला सिंह .. ३२
११—गांधी, टालस्टाय और रवीन्द्रनाथ का शिल्प-बोध—अनु० श्रीनारायण पाण्डेय .. ३४
१२—तुमसे जितनी मिली प्रेरणा (कविता)—श्री रामचन्द्र शर्मा 'किशोर' .. ४०
१३—महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (११)—पण्डित व्रजमोहन व्यास ४१
१४—अष्टग्रही गोलयोग का संसार पर प्रभाव—प्रो० प्रद्युम्ननारायण सिंह .. ४७
१५—आकाशीय महाभारत गोलयोग—प्रो० मदनगोपाल राठी, एम० काम०, साहित्य-रत्न ५२
१६—यातायात के साधनों का भविष्य—डा० अरविंद मोहन ५५
१७—आँगनों के बीच—(१) चल ही दीं औफिस? ५८
(२) बड़ी सर्दी है! .. ६०
१८—रामराज्य में विद्रोह—अनु० गुलाबचन्द्र विश्वकर्मा ६३
१९—देखा-सुना (८)—श्री मनमोहन गुप्त .. ६७
२०—मनोरंजक संस्मरण ७२

चित्र : २ रंगीन, २० सादे।

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

दुर्गापाठ

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर-एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। पृष्ठ में एक ओर मूल है और उसके सामने हिन्दी रूपान्तर। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रकाशक का वक्तव्य, प्रस्तावना, प्रारम्भिक वक्तव्य, भूमिका, मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि है। फिर देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

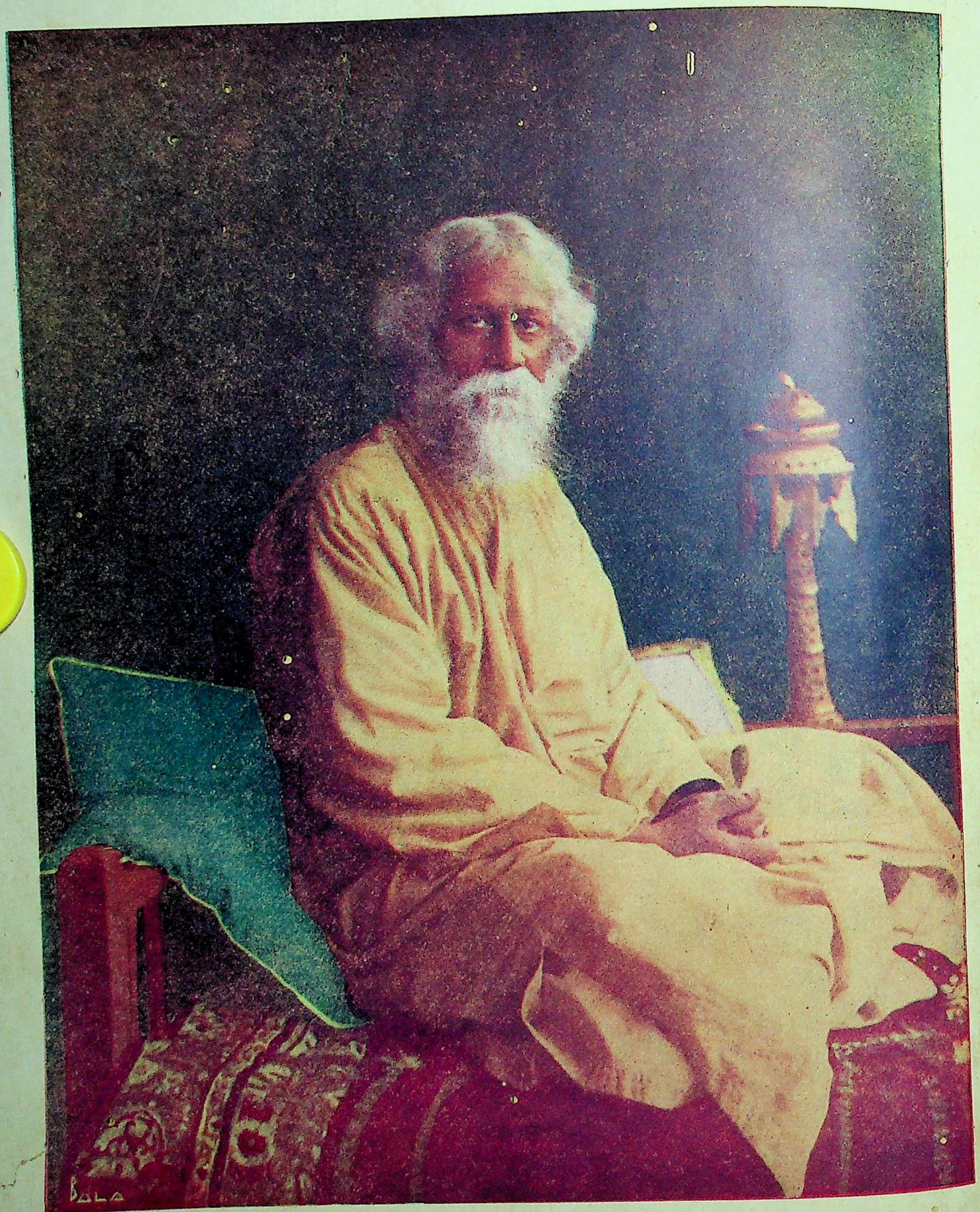

महाकवि रवीन्द्रनाथ टागोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—सीता शर्मा

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७४५
इलाहाबाद : जनवरी १९६२ : पौष २०१८
खण्ड १
संख्या १

सम्पादकीय

गोआ की मुक्ति——भगवान् रामचंद्र ने लंका पर चढ़ाई की। रामेश्वर में शिवजी की पूजा कर वे आगे बढ़े किंतु रास्ते में समुद्र पड़ता था। तीन दिन तक वे उससे रास्ता देने को विनय करते रहे किंतु समुद्र ने रास्ता नहीं दिया। तब भगवान् रामचंद्रजी को क्रोध हो आया। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है——

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति।

लक्ष्मण बाणसरासन आनू। सोखउँ वारिधि विशिखकृषानू।
शठ सन विनय, कुटिल सन प्रीती। सहज कृपण सन सुंदर नीती।
ममतारत सन ज्ञान-कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी।
क्रोधिहिं सम, कामिहिं हरिकथा। ऊसर बीज बये फल यथा।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लक्ष्मण के मन भावा।
सन्धानेउ प्रभु विशिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।
मकर, उरग, झख-गण अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने।
कनकथार भरि मणिगण नाना। विप्ररूप आये तजि माना।

काटेहि पै कदली फलै, कोटि जतन करि सींच।
विनय न मान खगेश सुनु, डाँटेहि पै नव नीच।

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुण मेरे।
गगन समीर अनल जल धरनी। इनकी नाथ सहज जड़ करनी
प्रभु भल कीन्ह मोहिं सिख दीनी। मर्यादा पुनि तुम्हरिय कीनी।
ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।

गोआ में इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। चार सौ वर्ष हुए, पुर्तगाली वास्को डि गामा भारत आया और कालीकट के राजा ने उसके साथ मित्रता का बर्ताव किया। किंतु इन धोखेबाज पुर्तगालियों के पास बंदूक, तोप और आधुनिक अस्त्र-शस्त्र थे, जबकि भारतवासियों के पास उस समय केवल पुराने ढंग के तीर-कमान, भाले और तलवारें थीं। उन्होंने भारतीय मित्रता का बदला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वासघात से दिया। अपने सैनिक और नाविक बल का दुरुपयोग करके उन्होंने हमारी धरती पर अधिकार कर लिया। उनके साथ ईसाई पादरी आये। उन्होंने अपने धर्म-प्रचार में जो बर्बरता की, उसका वर्णन करना आज अनावश्यक है। किंतु वह भुलायी नहीं जा सकती। पुर्तगाल ने केवल भारत में ही नहीं, दक्षिण और मध्य अमरीका में भी इसी प्रकार की धोखेबाजी, नृशंसता और बर्बरता से राज्य स्थापित किये। उपनिवेशवाद के लज्जाजनक इतिहास में पुर्तगालियों के कारनामे सबसे अधिक लज्जाजनक हैं। जब भारत स्वतंत्रता का आंदोलन करने लगा तब शक्तिशाली, किंतु बुद्धिमान् अँगरेजों ने बदली हुई परिस्थिति में देखा कि अब उपनिवेशवाद नहीं चल सकता। उन्होंने बड़ी खूबसूरती से भारत छोड़ दिया। फ़्रांसीसियों के पास भी भारत के कुछ छोटे-मोटे भाग थे। उन्होंने भी उनका अनुसरण किया। आशा थी कि पुर्तगाली भी इन दो महान् राष्ट्रों का अनुकरण करके अपने चार सौ वर्ष के अन्याय का प्रायश्चित्त करेंगे। भारत पंद्रह वर्ष उसी प्रकार पुर्तगाल से विनयपूर्वक गोआ आदि छोड़ने को कहता रहा जिस प्रकार भगवान् राम ने समुद्र से विनय की थी। किंतु अंत में हमारे कर्णधारों ने इस बात का अनुभव किया कि पुर्तगाली बातों से माननेवाले देवता नहीं हैं। कहा जाता है कि हमारे प्रधान मंत्री को सारी रामायण में से केवल एक ही चौपाई याद है--'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।' वे इससे सहमत नहीं हैं और जब कभी उसका विरोध करने को उसका उद्धरण दिया करते हैं। किंतु मालूम होता है कि इस अवसर पर उन्होंने भी इस चौपाई की सत्यता का अनुभव किया कि गँवार और पशु पुर्तगाली 'ताड़ना के अधिकारी हैं'। और उसके अनुसार उन्होंने उनकी ताड़ना करने का निश्चय किया। किंतु पुर्तगाल की जड़ता सिंधु की जड़ता से भी अधिक है। सिंधु ने बाद में तो अपनी भूल समझी और उसने पश्चात्ताप किया, किंतु सालाजार के पुर्तगाल में इतना जड़त्व है कि वह अब भी अपनी मूर्खता का अनुभव नहीं करता। पंजिम में भारतीय सेना के पहुँचते ही पुर्तगाली सेनापति ने, प्रायः बिना लड़े, आत्मसमर्पण कर दिया, और इस प्रकार भारत की पवित्रभूमि से अंतिम विदेशी सत्ता सदा के लिए निकाल बाहर कर दी गयी। जो काम पंद्रह वर्ष पहिले होना चाहिए था, वह हमारी उदार नीति के कारण इतने दिनों रुका रहा। किंतु हमने पुर्तगालियों को अँगरेजों और फ़्रांसीसियों की तरह ही बुद्धिमान् और उदार समझा था। यह हमारी भूल थी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी तुलसीदास का अनुमोदन करते हुए ठीक ही कहा है:

अधम खल जनों को साधुओं के समान
विफल सकल जाता श्रेष्ठ बर्ताव दान,
जब तक उनको तो ताड़ना दी न जाती
तब तक उनकी धी है ठिकाने न आती।

तनिक-सी ताड़ना से पुर्तगालियों की अक्ल ठिकाने आ गयी। पुर्तगाली साम्राज्य भारत में समाप्त हो गया। आज भारत का प्रत्येक भाग स्वतंत्र है। स्वतंत्रता-प्राप्ति का जो यज्ञ पंद्रह वर्ष पहिले आरंभ हुआ था, आज उसकी पूर्णाहुति हुई।

और अब ?--गोआ को मुक्तकर हमने देश के एक भाग को विदेशी अधिकार से छुड़ाने का बड़ा काम कर लिया, किंतु मातृभूमि से विदेशियों को संपूर्णतः निकालने का काम अभी पूरा नहीं हुआ। गोआ का लेना आवश्यक था क्योंकि वह हमारे अत्यंत मर्मस्थल पर स्थित है, और जब तक वह एक विदेशी और विरोधी उपनिवेशी राष्ट्र के अधिकार में था तब तक हम उस ओर की सुरक्षा से निश्चिन्त नहीं हो सकते थे। वह खतरा दूर हो गया। पुर्तगाल किसी समय महान् शक्तिशाली राष्ट्र था, किंतु आज वह योरोप के कमजोर राष्ट्रों में है। गोआ में बहुत प्रयत्न करने पर भी वह लगभग तीन हजार से अधिक सेना नहीं जमा कर सका। उसकी वायुसेना भी बड़ी कमजोर है और उसकी नौसेना भारत की नौसेना से छोटी है। पुर्तगाल के पास एक भी क्रूजर नहीं है। हमारे पास दो क्रूजर हैं। हमारे पास एक वायुयानवाहक है। पुर्तगाल के पास एक भी नहीं। अतएव गोआ से पुर्तगाल का निकालना अपेक्षाकृत बड़ा सरल काम था। अभी तक हमने सौजन्यवश ही उसे नहीं निकाला था। यह काम आवश्यक था, और देर से ही सही, अंत में कर दिया गया। किंतु उत्तर में हमारी मातृभूमि के कई हजार वर्गमील का क्षेत्र चीनियों ने दबा रखा है। कश्मीर के बहुत से भाग पर पाकिस्तान ने जबर्दस्ती अधिकार कर लिया है। पुर्तगालियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा इनके पास हमारे देश का अधिक भूभाग है। पुर्तगाल को देखते हुए ये दोनों देश कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। गोआ में सफलता आने की खुशी में हमें यह न भूलना चाहिए कि अभी हमारी मातृभूमि का काफी बड़ा भाग विदेशियों के अधिकार में है। जब तक भारत के ये भाग लौटकर फिर भारत में नहीं मिलते तब तक हम संतुष्ट या प्रसन्न नहीं हो सकते। मातृभूमि को संपूर्णरूप से विदेशी पंजों से मुक्त करने का हमारा ध्येय अब भी अपूर्ण है। प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है कि वह इसके लिए अपने को आत्मार्पण करे और इस संबंध में भारत सरकार जो भी कार्यवाही उचित समझे, उसका तन, मन, धन से समर्थन करे।

रवींद्र जयंती––प्रायः एक वर्ष से इस देश में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की जयंती मनाई जा रही है। महामना की जयन्ती भी प्रायः एक महीने मनायी गयी। हम इन जयन्तियों के इतनी लंबी अवधि तक मनाने की सार्थकता नहीं समझ सके। इतनी लंबी अवधि में लोगों के प्रयत्न और अवधानता घनीभूत तथा केंद्रस्थ न होकर विरल हो जाते हैं और जनता का जितना घनीभूत ध्यान उसकी ओर आकर्षित होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। कार्यकर्ता भी इतने लंबे समय में क्लान्त हो जाते हैं। हाँ, यह अवश्य होता है कि नायकों का नाम बार-बार जनता के कर्ण-कुहरों में पड़ता रहता है। किंतु गुरुदेव और महामना भारतीय जनता के इतने सुपरिचित हैं कि उसे उनकी याद दिलाने के लिए इस प्रकार के प्रचार की आवश्यकता नहीं है। फिर भी इतने दिनों ये जयंतियाँ मनायी गयीं, और अब भी मनायी जा रही हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इन दोनों महापुरुषों ने भारतीय जनता के हृदय में कितना गहरा स्थान बना लिया है। विश्वकवि का क्षेत्र साहित्य (विशेषकर कविता) तथा उसकी बहिन शिक्षा रहा है। दोनों ही में उनकी मौलिकता की छाप है। दोनों ही उनके आदर्शों से ओत-प्रोत हैं और उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को साकार करने के प्रयास हैं। "सत्य, शिव और सुंदर" का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किंतु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। संकुचित दृष्टिकोण उनके पास नहीं फटक सकता था, और अपने विशाल दृष्टिकोण के ही कारण वे मानवतावादी थे। मानवतावाद भी इस देश में पुराना था। मनुस्मृति का नाम 'मानवधर्मसार' भी है। इस देश के मनीषियों ने सदैव मानवता के दृष्टिकोण से संसार की और अपनी समस्याओं को देखा। किंतु वह 'वसुधैव कुटुम्ब' का आदर्श भुला दिया गया था क्योंकि हम 'उदार-चरित्र' न रह गये थे। कवीन्द्र ने हमें उसका पुनः परिचय कराया। आज के संदर्भ में, जब यातायात के साधनों की उन्नति के कारण संसार इतना छोटा हो गया है, उनके मानवतावाद में संसार को एक विशेष सार्थकता दिखायी दी। उसमें युग की समस्या का समाधान दीख पड़ा। वे युगद्रष्टा थे। वे कवि की परिभाषा के अनुसार 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू' थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो वे कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतम कड़ी थे, तो दूसरी ओर वे नवीन भारत में आधुनिकता के पुरोहित भी थे। पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन के अद्भुत समन्वय थे वे। उनकी जन्मशती के अवसर पर सरस्वती उनकी स्मृति में विनम्र भाव से नत है।

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का स्वर्गवास––हमें अत्यंत खेद के साथ अपने पाठकों को यह सूचित करना पड़ता है कि गत मास स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का स्वर्गवास हो गया। यद्यपि उनकी अवस्था अस्सी वर्ष से भी कुछ अधिक थी, और वर्षों से उनकी दृष्टि जाती रही थी, तथापि उनका साधारण स्वास्थ्य (उनकी अवस्था देखते हुए) काफी अच्छा था। कुसंयोग से उनका पैर फिसल गया और वे गिर पड़े। इससे उनके सिर में भीतरी चोट आ गयी और वे अचेत हो गये। लोग उन्हें गुरुकुल विश्वविद्यालय के चिकित्सालय में ले गये जहाँ उनकी बड़ी लगन से चिकित्सा की गयी, किंतु वे बचाये न जा सके। स्वामी सत्यदेव का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। उनकी वाणी में ओज था, और वे लेखनी के भी धनी थे। हिंदी संसार को उनका परिचय 'सरस्वती' ने कराया। जब वे अमरीका गये तो वहाँसे उन्होंने बीसों लेख लिखकर सरस्वती में भेजे जो उन दिनों बड़े चाव से पढ़े जाते थे। उनके लेखों ने कितने ही नवयुवकों को अनुप्राणित किया। उन्होंने विवाह नहीं किया और वे आजन्म परिव्राजक रहे। उन्होंने कई बार विदेश-यात्रा की, और अपने अनुभवों को पुस्तकाकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपाया। उनमें बड़ी उग्र राष्ट्रीयता थी, और साथ ही हिंदू होने का भी उनमें अभिमान था। राष्ट्रीयता ही में नहीं, वे स्वभाव से भी कुछ उग्र थे, इसलिए वे उन लोगों को सदैव संतुष्ट नहीं कर सके जिनकी सहायता से उन्हें भौतिक सफलता मिल सकती थी। लेखन से तथा भाषणों से उन्होंने कुछ रुपया अवश्य कमाया और अंत में हरिद्वार में उन्होंने धर्म-ज्ञान-निकेतन नामक एक आश्रम बनाया जिसमें वे कई वर्षों से रह रहे थे। उनके निधन से हिंदी ने एक पुराना और क्रांतिकारी लेखक खो दिया। हमें उनके निधन के समाचार से हार्दिक दुःख हुआ।

हिंदू विश्वविद्यालय और मालवीयजी का नाम—हमें यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ कि कुछ कांग्रेसी नेता हिंदू विश्वविद्यालय का नाम बदलकर उसका नाम 'मालवीय विश्वविद्यालय' रखना चाहते हैं। काशी हिंदू विश्व-विद्यालय से 'हिंदू' शब्द निकाल देने का असफल प्रयत्न बहुत दिनों से हो रहा है, और अब मालवीयजी की जन्मशती-जयंती के अवसर का लाभ उठाकर मालवीयजी के नाम की आड़ में हिंदू शब्द निकालने का यह बड़ा चतुर प्रयास है। किंतु इस प्रयत्न के पीछे जो मनोवृत्ति है उसे जनता समझती है। इसलिए उसका समर्थन नहीं हुआ। चाहे मालवीयजी का नाम उसके साथ लगाया जाय या नहीं, हिंदू विश्वविद्यालय मालवीयजी का सदैव सजीव स्मारक रहेगा। किंतु जो मालवीयजी 'हिंदू' नेता माने जाते थे, जिनकी प्रत्येक श्वास-प्रश्वास से 'हिंदू' शब्द निकलता था, जो 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्थान' मंत्र के सबसे बड़े गुरु थे, क्या उन मालवीयजी की आत्मा को इस कृत्य से शांति मिलेगी? क्या मालवीयजी स्वप्न में भी इस बात के लिए राजी हो सकते थे कि उनके विश्वविद्यालय से 'हिंदू' शब्द निकाल दिया जाय? जो लोग ऐसा प्रस्ताव करते हैं वे मालवीयजी को या तो समझे ही नहीं, या समझकर भी इस बात की परवाह नहीं करते कि जिन मालवीयजी की वे मौखिक प्रशंसा कर रहे हैं उन्हीं मालवीयजी को उनके इस प्रयास से कितनी चोट पहुँचती। वे इस जन्मशती-जयन्ती के अवसर पर भी राजनीतिक दाँवपेंच खेलने में नहीं हिचकते और ऐसे काम में उसका दुरुपयोग करने को तयार हैं जिसे सुनकर ही मालवीयजी शायद मूर्च्छित हो जाते। यदि उन्हें मालवीयजी के प्रति वास्तविक श्रद्धा होती तो वे ऐसा प्रस्ताव कभी न करते जो मालवीयजी के सारे जीवन-आदर्श पर हरताल फेर देता और उनकी कोमलतम भावनाओं को मर्माहत कर देता। "हिंदू" शब्द रहना चाहिए या नहीं, यह दूसरा प्रश्न है। किंतु मालवीयजी के हिंदू विश्व-विद्यालय से (जिसके लिए उन्होंने 'हिंदू' नाम के बल पर धन एकत्र किया) यह शब्द निकाल देना उन्हींके प्रति नहीं, किंतु उन असंख्य दानियों के प्रति नैतिक अपराध है जिन्होंने उसे 'हिंदू' संस्था समझकर धन दिया था। यदि इन लोगों को मालवीयजी के प्रति इतनी श्रद्धा है कि वे किसी बड़ी संस्था को उनका स्मारक बनाना चाहते हैं, तो उन्हें रुपया एकत्र कर, या अपनी सरकार से रुपया देकर, कोई नया और बड़ा स्मारक बनवाना चाहिए।

संस्थाओं के नामों के बदलने की जो प्रथा हमारे देश में चल पड़ी है, उसे हम शुभ लक्षण नहीं समझते। मालवीयजी ने प्रयाग में एक हिंदू होस्टल बनवाया था, और उसका नाम 'मैकडॉनैल हिंदू बोर्डिंग हाउस' रखा था। सर एंटनी मैकडानैल उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे। प्रायः आधी शती तक सरकार से हिंदी को मान्यता दिलाने और कचहरियों में उसके प्रवेश कराने का आंदोलन चलता रहा। कितने ही छोटे लाट इस प्रान्त में आये और चले गये। किसीने हिंदी की आवाज नहीं सुनी। सर एंटनी मैकडॉनैल ने इस माँग की न्यायसंगतता को समझा और हिंदी (देवनागरी) को कचहरियों और शासन में स्थान दिया। मालवीयजी जानते थे कि सर एण्टनी ने हमारा कितना उपकार और कितनी सेवा की। वे उन खुशामदियों में नहीं थे कि 'साहब' को खुश करने के लिए किसी संस्था का नाम 'साहब' के नाम पर रख दें। मालवीयजी ने सार्वजनिक कृतज्ञता के रूप में उस बोर्डिंग हाउस के साथ मैकडॉनैल का नाम जोड़ा था। किंतु मालवीयजी के स्वर्गवास के बाद 'मैकडानैल' का नाम हटाकर 'मालवीय' नाम रख दिया गया! यह है हमारी राष्ट्रीय कृतज्ञता की भावना! हमारे नेता चाहते हैं कि जनता को संतुष्ट करने के लिए स्वर्गीय नेताओं के स्मारक बनें, किंतु उनके बनाने में परिश्रम और धन लगता है। एक प्रस्ताव पारित किया, चार-आठ आने में साइनबोर्ड के कुछ अक्षर बदलवा दिये, बस, बन गया स्मारक उन नेताओं का जिनके नाम की माला हम प्रतिदिन जपा करते हैं। किंतु आज जो कार्य हम कर रहे हैं, उसका अनुसरण हमारे उत्तराधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कर सकते हैं। वे भी हमारे लिखे और लगाए नामों को बदलकर अपने समय के नेताओं के नाम इसी सस्ते ढंग से अमर करने का प्रयत्न कर सकते हैं, और हमारा ही अनुसरण करने के लिए हम उनके कार्य की निंदा भी नहीं कर सकेंगे। हम मानते हैं कि ऐसे विदेशी लोगों के नाम हटा देने चाहिए जो हमारे राष्ट्र के द्रोही थे। किंतु जिन विदेशियों ने हमारा उपकार किया, जो सदाशय थे उनका नाम केवल इसलिए मिटा दिया जाय कि वे विदेशी थे, हमें तर्कसंगत नहीं मालूम होता। विचारकों और देश के नेताओं को इस समस्या पर विचार करना चाहिए।

यह मानसिक दासता——न तो ईसवी सन् हमारा संवत् है, न १ जनवरी हमारे नये वर्ष का प्रथम दिन है, और न हम तथा हमारे बहुत से मित्र ईसाई ही हैं, फिर भी प्रतिवर्ष दिसंबर के अंत और जनवरी के आरंभ में हमारे पास अनेक 'अभिनंदन और शुभकामनाओं' के कार्ड आ जाया करते हैं। इनमें से किसी-किसी में केवल नववर्ष की शुभ कामनाएँ होती हैं, और किसी-किसी में "क्रिसमस" की भी। भेजनेवाले सभी अईसाई होते हैं। किंतु एक बात हमें बड़ी विचित्र मालूम होती है। आज की डाक से हमें एक साथ चार 'शुभ कामनाओं' के कार्ड मिले। इनमें से तीन के भेजनेवाले हिंदू (२ ब्राह्मण और एक वैश्य) थे। तीनों ही अँगरेजी में थे। चौथा कार्ड रूस से, ——'सोवियत-नारी' के सम्पादकीय कार्यालय से, आया था। वह हिंदी में था। उसके आवरण पर हिंदी में छपा था "नववर्ष पर हमारी शुभकामनाएँ!" और भीतर छपा था—— "प्रिय मित्र! सन् १९६२ की बधाइयाँ! सुख और शांति की हमारी शुभ कामनाएँ!" तीन शुभ कामनाएँ भारत से और तीनों हिंदीभाषी भारतवासियों से—— और तीनों ही अँगरेजी में! इन अँगरेजी शिक्षितों की अँगरेजी-परस्ती या उनकी मानसिक दासता के किसी और प्रमाण की आवश्यकता है? जब हमने इन तीन भारतीय-अँगरेजों के अँगरेजी में लिखे कार्डों और रूस के हिंदी कार्ड को एक साथ देखा——जो कि विशुद्ध संयोग था——तो हमारा मस्तक लज्जा से झुक गया। पिछले डेढ़ सौ वर्षों की जिस अँगरेजी शिक्षा ने हमें इतना राष्ट्रीय-चेतनाहीन बना दिया है, हमारे नेता उसी अँगरेजी को जीवित रखना चाहते हैं। उसे फिर कक्षा ३ से पढ़ाना चाहते हैं। मानसिक गुलामी से मुक्त होने को हमारी भावी संतान भी स्वतंत्र न होगी। अँगरेजी साहित्य और अँगरेजी उपन्यास पढ़कर हम इंग्लिस्तान और अमरीका को अपना आदर्श बनाये रखेंगे।

केशव! कहि न जाय, का कहिए?
देखत यह रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिए!

हिंदू विश्वविद्यालय के कार्यक्रमों की भाषा——मालवीय शती-समारोह की अधिकांश (कुछ लोगों के मतानुसार प्रायः सारी) कार्यवाही अँगरेजी में हुई। इस प्रकार मालवीयजी के विश्वविद्यालय के कर्णधारों ने गीता और भागवतपाठी तथा हिंदी के उन्नायक ब्राह्मण का श्राद्ध अँगरेजी में किया। मालवीय भवन की भी कार्यवाही अँगरेजी में हुई, किंतु कश्मीर-नरेश महाराज कर्णसिंहजी ने ललित और सुमधुर हिंदी में भाषण देकर विश्वविद्यालय के अँगरेजीपरस्त अधिकारियों तथा अनेक आगत अँगरेजी-भक्तों के रंग में भंग कर दिया। आज हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी की दशा हीन है। इसलिए हम महाराज कर्णसिंह के अत्यंत आभारी हैं कि उन्होंने हिंदी में भाषण देकर महामना की संतप्त आत्मा को शांति पहुँचायी। उनका भाषण अत्यंत प्रांजल भाषा में था, और कहीं-कहीं तो उसमें काव्य की झलक आ जाती थी। उदाहरण के लिए वाराणसी के सम्बंध में उन्होंने कहा——"इस वसुंधरा में कुछ ऐसे पुण्यस्थल हैं जो ऐतिहासिक अथवा अन्य कारणों से युगों युगों से लोक-श्रद्धा के पावन केंद्र बने हुए हैं। पुण्य-सलिला भागीरथी के तट पर सुशोभित यह वाराणसी भी ऐसी ही एक प्रशस्त पुण्यस्थली है, जिसे आज भी भारतवर्ष की तीर्थमाला में कौस्तुभ मणि का गौरवमय स्थान प्राप्त है।" महाराज कर्णसिंहजी अहिंदी प्रदेश के हैं। यदि हिंदू विश्वविद्यालय के अहिंदीभाषी अधिकारी अपनी हिंदी की उपेक्षा करने की नीति भुला सकें तो वे भी महाराज कर्णसिंहजी की तरह हिंदी में लिख और बोल सकते हैं। किंतु.....

भारत में हिंदी की उपेक्षा की विदेशों पर प्रतिक्रिया——कहा जाता है कि जिसका आदर घरवाले ही नहीं करते, उसे बाहर के लोग भी दुरदुराते हैं। अँगरेजी और अमरीकन तो इस देश में अँगरेजी बनाये रखना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कभी हिंदी को विशेष प्रोत्साहन नहीं दिया। हिंदी उनके स्वार्थ में बाधक है। इसलिए हिंदी के प्रति जो उनका रुख है, उसे हम समझ सकते हैं। वे करोड़ों रुपये की पुस्तकें, पत्रिकाएँ और समाचारपत्र, प्रतिवर्ष हमारे देश में बेचते हैं। उनका साहित्य, उनके उपन्यास और उनकी पत्र-पत्रिकाएँ बराबर पढ़ते-पढ़ते पाठकों के अवचेतन में अमरीका और इँगलैंड के प्रति एक विशेष प्रकार की कोमलता उत्पन्न हो जाती है। हम अपना पैसा देकर स्वेच्छा से उनके इस "आंग्लीकरण" या 'अमरीकीकरण' के प्रचार के शिकार बनते हैं। अतएव हिंदी की उन्नति उनके स्वार्थों के लिए घातक है। वे उतना ही काम हिंदी में करते हैं जितना यहाँकी अँगरेजी-अभिज्ञ जनता से संपर्क स्थापित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। वे हिंदी संस्थाओं और हिंदी पत्रों से संपर्क भी वाजिब ही वाजिब रखते हैं। इनके दूतावासों में अच्छी हिंदी बोलनेवाले व्यक्ति कम ही मिलेंगे। इनके विपरीत रूस हिंदी-प्रचार के पक्ष में मालूम होता है। वह उसे यहाँकी राजभाषा मानता है और उसमें बहुत रुचि लेता है। उसके दूतावास में कितने ही लोग अच्छी हिंदी बोलनेवाले मिलेंगे, और वे हिंदी जगत् में काफी रुचि भी लेते हैं। वे उत्तर भारत में पत्रकारों से--विशेषकर हिंदी पत्रकारों से--हिंदी ही में पत्र-व्यवहार करते हैं। किंतु ऐसा मालूम पड़ता है कि अब उन्होंने भी समझ लिया है कि हिंदी केवल कागजी राजभाषा है। वास्तविक राजभाषा अँगरेजी है जो शीघ्र ही 'छोटी रानी' बनायी जानेवाली है, किंतु जिसका मान 'पटरानी' से अधिक अभी भी है। रूसियों के रुख के इस परिवर्तन की चर्चा करते हुए एक हिंदी पत्र ने लिखा है—"रूसी दूतावास ने इस बार सामग्री केवल अँगरेजी में ही भेजी और हिंदी पत्रकारों को भी अँगरेजी में पत्र लिखा है।" सहयोगी लिखता है--"इससे उस समाजवादी राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ती नहीं है।" हम इसमें उसकी प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा की कोई बात नहीं देखते। जब हमारा 'समाजवादी' राष्ट्र अँगरेजी को प्रधानता देता और हिंदी की उपेक्षा करता है, तब हमें यह शोभा नहीं देता कि हिंदी की उपेक्षा करने, या अँगरेजी में काम करने के लिए दूसरे किसी राष्ट्र के 'समाजवादीपन' की दुहाई दें। ये हिंदी के पत्र अपनी समाजवादी सरकार पर हिंदी के उपयोग के लिए कितना दबाव डालते हैं? जो काम आप अपनी सरकार से ही नहीं करा सकते, उसे करने की अपेक्षा दूसरे राष्ट्रों से क्यों करते हैं? यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का सम्मान दूसरे देश करें, तो पहिले अपने देश में उसका सम्मान कराइए।

राहुलजी का स्वास्थ्य--सरस्वती के पाठकों को यह जानकर खेद होगा कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन का स्वास्थ्य चिंताजनक हो गया है। दार्जिलिंग में वे कई बार अचेत हो गये थे, किन्तु फिर कुछ स्वास्थ्य सुधर गया था। दिसंबर में वे कलकत्ते आये और वहाँ उनका स्वास्थ्य एकाएक बिगड़ गया। उन्हें अस्पताल पहुँचा दिया गया। उनकी स्मृति नष्टप्राय हो गयी है। वे गिनती और वर्णमाला भी भूल गये हैं। लोगों को पहिचान भी नहीं सकते। डाक्टरों को संदेह है कि उनके मस्तिष्क में एक गुल्म (ट्युमर) हो गया है। वह मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा से ही निकाला जा सकता है। किन्तु भारत में अभी मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा बहुत कम होती है और उसके करनेवाले शल्य-चिकित्सक भी इने-गिने ही हैं। सर्वोत्तम तो यही हो कि उन्हें तुरंत ही किसी ऐसे देश में भेजा जाय जहाँ मस्तिष्क की अच्छी शल्य-चिकित्सा उपलब्ध हो। चाहे देश में की जाय या विदेश में, यह चिकित्सा बहुत महँगी है। राहुलजी ने अपनी सारी प्रतिभा देश की सांस्कृतिक और साहित्यिक सेवा में लगायी। उन्होंने कभी रुपया एकत्र करने की ओर ध्यान नहीं दिया। इधर जब उन्हें जीवन-यापन के लिए कष्ट होने लगा तो उन्होंने श्रीलंका में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। हमारा यह दुर्भाग्य है, और हमारे लिए यह लज्जा का विषय है कि हम राहुलजी के समान विद्वानों का भी उपयोग नहीं कर सकते और न उन्हें उनके योग्य जीविका के साधन ही दे सकते हैं। भौतिक उन्नति पर ध्यान देना आवश्यक है, किंतु आज हम जिस प्रकार और सब चीजों को भुलाकर केवल उसीको अपने उद्धार का एकमात्र साधन समझ रहे हैं, उससे राष्ट्र एकांगी हो रहा है और उन अभौतिक वस्तुओं की उपेक्षा हो रही हैं जिनका परिणाम न तो प्रत्यक्ष होता है और न आँकड़ों या रुपया आना पाई में आँका जा सकता है। राहुलजी को देश न छोड़ना पड़ता यदि हम वास्तव में विद्या और विद्वानों का मूल्य समझते। इस समय आवश्यकता यह है कि हमारा राज्य, जो अपने को कल्याणकारी घोषित करता है, राहुलजी की समुचित चिकित्सा का प्रबंध तुरंत करे। विलम्ब घातक होगा। राहुलजी का जीवन कुछ हजार रुपयों से कहीं अधिक मूल्यवान् है।

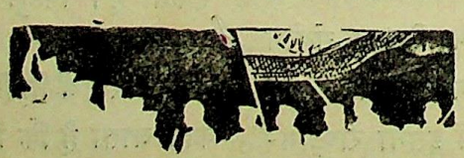

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

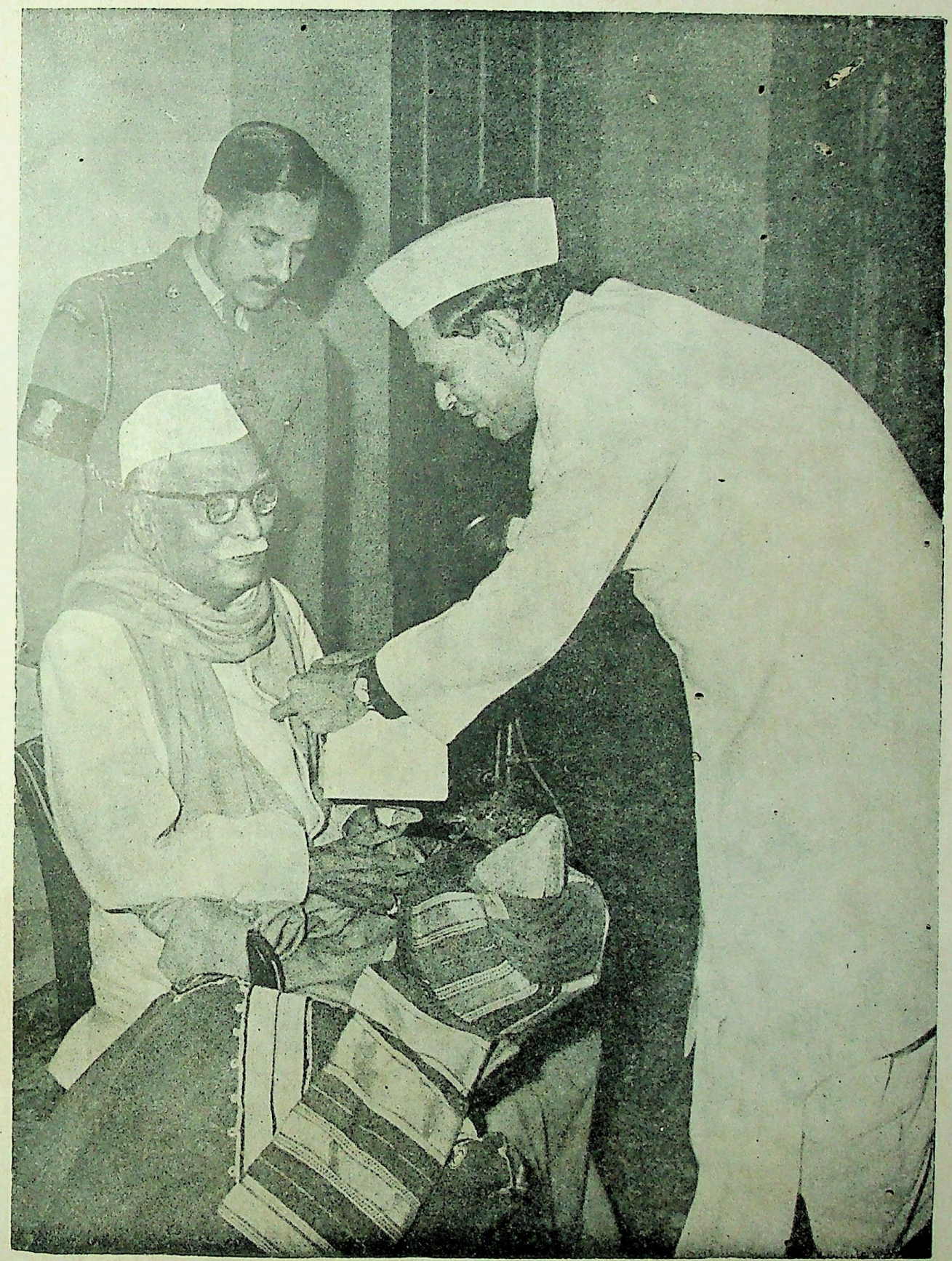

समारोह के अध्यक्ष श्री दिनकरजी महामहिम राष्ट्रपति के कोट में जयंती का स्वर्ण प्रतीक लगा रहे हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

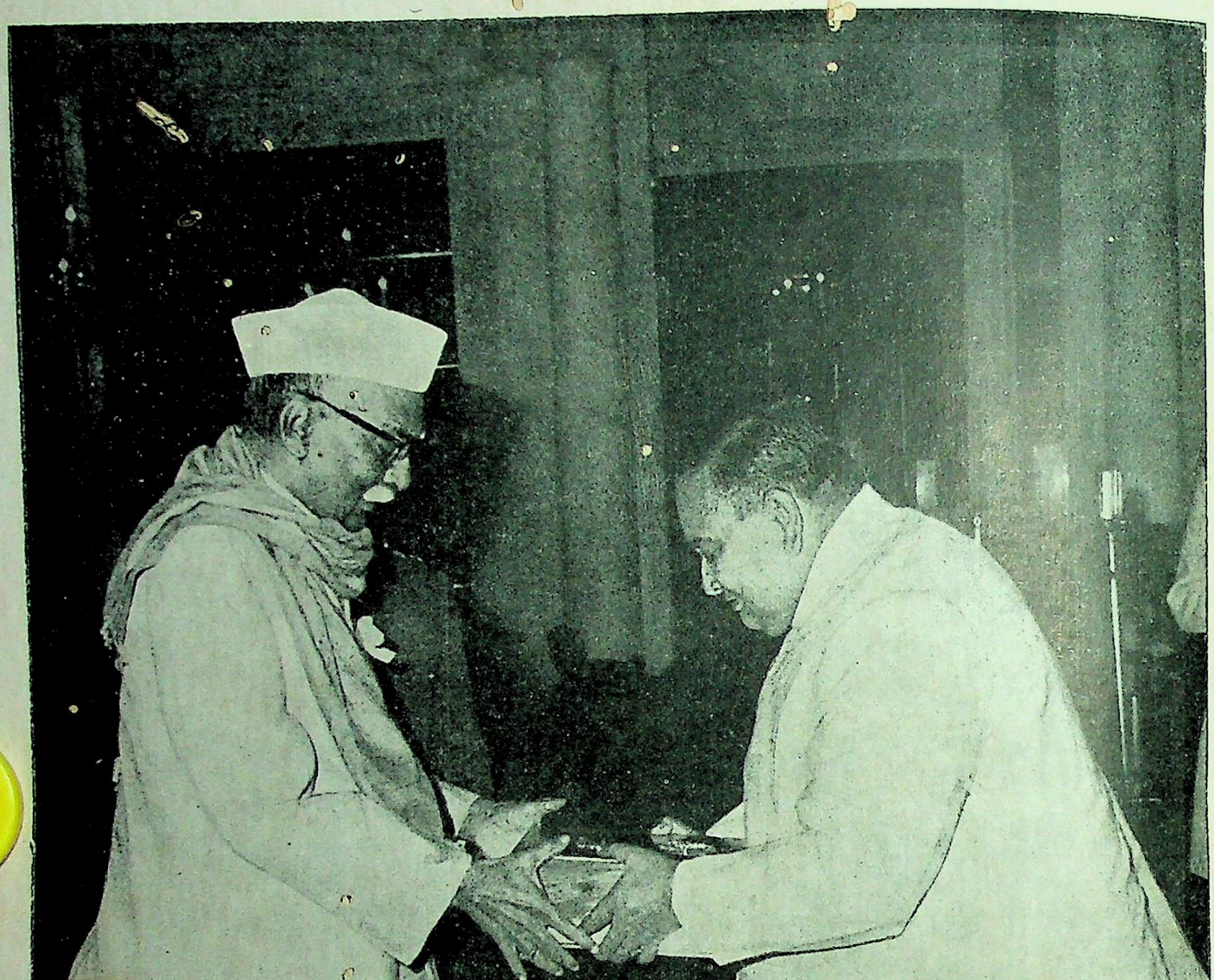

महामहिम राष्ट्रपति सरस्वती हीरक जयंती अंक की भेंट श्री घोष से स्वीकार कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामहिम राष्ट्रपतिजी को सरस्वती हीरक जयंती विशेषाङ्क का समर्पण

सरस्वती हीरक जयंती समारोह का प्रथम उत्सव रविवार ३१ दिसंबर १९६१ को राष्ट्रपतिभवन के विशाल अशोक हॉल में सम्पन्न हुआ, जिसमें सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक उन्हें समर्पित किया गया। यह समारोह हीरक जयन्ती समिति ने, महामहिम राष्ट्रपति की अनुमति से, राष्ट्रपति भवन में किया। महामहिम राष्ट्रपति ने कृपावंत होकर इलाहाबाद में आकर सरस्वती जयंती समारोह का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया था। किंतु उनकी लंबी अस्वस्थता तथा उसके बाद की निर्बलता के कारण वे यात्रा करने में असमर्थ थे। अतएव उनकी आज्ञा से समारोह को आगे टालना ठीक नहीं समझा गया और वह समारोह १२ जनवरी को इलाहाबाद में होगा। किंतु हीरकजयंती विशेषांक महामहिम राष्ट्रपतिजी को समर्पित किया गया था और वह इलाहाबाद के समारोह में उन्हें भेंट किया जानेवाला था। वे इलाहाबाद पधार नहीं सकते थे, इसलिए दिल्ली में ही उसे उन्हें समर्पित करना अनिवार्य हो गया। समिति वहाँ एक उत्सव करके, उसमें उन्हें वह समर्पित करना चाहती थी। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने बड़ी उदारता से उस उत्सव को राष्ट्रपति भवन के अशोक हॉल में करने की अनुमति दे दी। अतएव वह उत्सव वहाँ किया गया।

इस उत्सव का प्रबंध करने के लिए नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन, साप्ताहिक हिंदुस्तान के सम्पादक श्री बाँकेबिहारी भटनागर, 'आज' के दिल्ली स्थित विशेष प्रतिनिधि श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, संसदीय हिंदी परिषद् के मंत्री और संसद सदस्य श्री मन्नूलाल द्विवेदी, तथा दैनिक हिंदुस्तान के उपसम्पादक श्री गोपाल प्रसाद व्यास की एक समिति बना दी गयी थी जिसके संयोजक व्यास जी थे। इस समिति ने स्थानीय प्रबंध किया।

३१ जनवरी को ठीक साढ़े तीन बजे उत्सव आरंभ हुआ। प्रायः सात सौ महिलाएँ और सज्जन इस उत्सव में उपस्थित थे। आगत लोगों में दिल्ली के प्रायः सभी साहित्यकार, पत्रकार, हिंदी-प्रेमी तथा अनेक उच्च अधिकारी थे। दिल्ली के हिंदी साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों और हिंदी-प्रेमियों का यह अपूर्व जमाव था जो दिल्ली में भी यदा-कदा ही देखने में आता है। समिति के उपाध्यक्ष श्री रामधारीसिंह दिनकर इस उत्सव की अध्यक्षता कर रहे थे।

महामहिम राष्ट्रपति ने ठीक साढ़े तीन बजे अशोक हाल में प्रवेश किया। सारी सभा उनके सम्मानार्थ उठ खड़ी हुई। समारोह समिति के सदस्यों ने, श्री दिनकरजी के नेतृत्व में, द्वार पर उनका स्वागत किया। उनके बैठने पर श्री दिनकरजी ने महामहिम राष्ट्रपति के कोट में सरस्वती जयंती समिति का स्वर्ण प्रतीक लगाया। कार्यारंभ सरस्वती-वंदना से आरंभ हुआ जो सनातनधर्म कालिज कानपुर के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० श्री सत्यनारायण पांडे ने की। उनके सुमधुर कंठ और स्पष्ट उच्चारण से संस्कृत के श्लोकों और हिंदी के छंदों ने एक मधुर और पवित्र वातावरण बना दिया जिसने उपस्थित श्रोताओं को आनंद-विभोर कर दिया। इसके बाद कुमारी सरोज ने अपने वीणा-विनिंदित स्वरों में महाकवि निराला का प्रसिद्ध गीत, "वीणावादिनि ! वर दे" गाया जिसने श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। तदनंतर समारोह समिति के मंत्री और सरस्वती के वर्तमान सम्पादक ने अपने भाषण में 'सरस्वती' का संक्षिप्त इतिहास, उसकी विशेषताएँ तथा हीरक जयंती विशेषांक का विवरण उपस्थित किया। उनके बाद श्री वियोगी हरिजी ने एक संक्षिप्त भाषण में सरस्वती के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। उन्होंने कहा—

अभी उत्सव समिति के मंत्री महोदय ने सरस्वती पत्रिका का जो विवरण विस्तार से सुनाया उसके एक-एक शब्द का मैं समर्थन या अनुमोदन कर दूं तो मेरा भाषण हो जाता है, एक मिनिट भी न लगे। परन्तु थोड़ी कुछ कहना भी है। इलाहाबाद के साथ मेरा सम्बन्ध आठ वर्ष के लगभग रहा और आज भी वह सम्बन्ध बना हुआ है, दूर रहते हुए भी। सरस्वती पत्रिका को बहुत बड़े चाव से मैं विद्यार्थी अवस्था से ही पढ़ा करता था और सोचता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि क्या कभी इसमें कुछ लिखने लायक मैं बन सकूँगा या नहीं। बहुत संकोच और डर लगता था। एक बहुत बड़े विद्वान्, जो आज आचार्य भी माने जाते हैं, मैं नाम नहीं लूँगा, उन्होंने अपना एक लेख सरस्वती में भेजा। आचार्य द्विवेदीजी ने उसे वापिस कर दिया और लिखा उस पर, 'अभी थोड़े दिन और कलम माँजिये।' तो मैं देखने लगा उनकी तरफ कि इनको शायद कुछ बुरा लगा हो, परन्तु उनको आनन्द हुआ। मैंने कहा क्या बात है? बोले, इतना तो लिखा है द्विवेदीजी ने मुझे, मैं तो समझता था कि शायद इतना भी नहीं लिखेंगे और वापिस कर देंगे। तो उस समय द्विवेदीजी जितना परिश्रम करते थे सरस्वती पत्रिका के सम्पादन में, वह पुरानी फाइलों को देखने से पता लगता है। हम सबको उससे बहुत पाठ मिल सकता है।

श्रद्धेय चिन्तामणि घोष ने जो काम सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन कर के किया उसके लिए हिन्दी संसार उनका चिरकृतज्ञ रहेगा। आज हमको यह कहना पड़ता है कि बंगालियों ने, गुजरातियों ने, अमुक अमुक प्रदेश के बड़े बड़े विद्वानों ने उसका समर्थन किया था--हिन्दी का। यह कहने की आवश्यकता नहीं है, बड़े सहज रूप से उन्होंने किया था। यह कहना उसी तरह है जिस तरह यह कहा जाय कि कबीरदासजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बहुत बड़ा काम किया था। यह कहना असंगत सा मालूम होता है। तो इन लोगों ने, अमृतलाल चक्रवर्ती ने, शारदा-चरण मित्र ने, चिन्तामणि घोष ने और भी कितने ही हमारे बंगाली विद्वानों ने, दूसरे प्रदेशों के विद्वानों ने, हिन्दी की सेवा की, उत्तेजन दिया हिन्दी-भाषियों को। उससे हिंदी को प्रोत्साहन मिला, इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। बहुत बड़ा काम सरस्वती के द्वारा हुआ। आज यह उत्सव जो मनाया गया है, ये कुछ विलम्ब से शायद मनाया गया, एक ही जयन्ती इसकी मनायी गयी। तो विलम्ब से ही सही, यह उत्सव तो हुआ। इसीकी हमें प्रसन्नता है। हमें आशा है कि आगे भी हम सी प्रकार की कृतज्ञता प्रकाश करेंगे और सरस्वती से जो हमने सीखा है उसको कभी हम भुलायेंगे नहीं।

श्री वियोगी हरिजी के भाषण के बाद पं० सोहनलाल द्विवेदी ने एक कविता पढ़ी जिसमें उन्होंने सरस्वती की महत्ता बतलाते हुए इस विशेषांक को स्वीकार करने की राष्ट्रपतिजी से काव्यमय प्रार्थना की। बाद में उत्सव के अध्यक्ष श्री दिनकरजी ने अपना भाषण देते हुए राष्ट्रपतिजी के स्वास्थ्य लाभ पर हिंदी संसार और देश की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा--

महामहिम महामान्य राष्ट्रपतिजी,

सबसे पहले हम भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि उनकी असीम कृपा से आपका खोया हुआ स्वास्थ्य वापिस हुआ। सारा देश इस बात के लिए प्रार्थी है कि भगवान् आपके स्वास्थ्य को सुदृढ़ करें, आपको दीर्घायु बनावें क्योंकि आपके अस्तित्व मात्र से एक प्रकाश छिटकता है जिससे इस देश में आशा, आत्म-विश्वास और भविष्य के प्रति आस्था का संचार होता है।

श्रीमन्! आज का यह समारोह दो एक दृष्टियों से काफी महत्त्वपूर्ण है। इसका पहला महत्त्व यह है कि संतों, लेखकों, कवियों और राजनेताओं की जयन्तियाँ मनाने के अवसर हमें अक्सर प्राप्त होते हैं, किन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, आज हम पहली बार किसी पत्रिका की जयन्ती मनाने को एकत्र हुए हैं। पत्र-पत्रिकाएँ निकालना आसान है, उनको कायम रखना बहुत ही कठिन सिद्ध हुआ है। समाचारपत्रों के लिए अब थोड़ी अनुकूलता उत्पन्न हो गयी है, लेकिन मासिक पत्र अभी भी निश्चिन्त नहीं हैं; बल्कि जिन पत्रों का झुकाव बौद्धिक होने की ओर है, वे आज भी कठिनाई में उगते और डूबते रहते हैं। इस दृष्टि से सरस्वती ने साठ वर्ष पार कर लिये, वह साठ वर्ष जी गयी, इतनी ही बात उसकी बहुत बड़ी सफलता का द्योतन करती है। भगवान् करें, सरस्वती तब तक कायम रहे जब तक संसार में हिन्दी भाषा का अस्तित्व है, और अतीत में जैसे वह देश के विभिन्न कोनों में बसनेवाले मनीषियों के विचारों और भावों की अभिव्यक्ति और प्रचार का साधन रही, वैसे ही, आगे के युगों में भारत-वर्ष के महा संदेश को वह विश्व के कोने-कोने में विकीर्ण कर सके।

श्रीमन्! इस समारोह की दूसरी विशेषता वह है जिसकी ओर वियोगी हरिजी ने इशारा किया है और जिसका संबंध भारत की एकता से पड़ता है। सरस्वती का नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत गौरव से लिया जाता है। सरस्वती ने आधुनिक हिन्दी को माँजने, सँवारने में बड़ा काम किया, उसने बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामहिम राष्ट्रपति सरस्वती के संचालक श्री घोष का नमस्कार स्वीकार कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामहिम राष्ट्रपति हीरक जयंती अंक समर्पण समारोह में भाषण देते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लेखक और कवि उत्पन्न किये, उसने हिन्दी को आधुनिक बनाने में बहुत बड़ा अंश दान दिया। साहित्य के भीतर आधुनिक भावों और शैलियों के प्रचार में भी सरस्वती ने जो सहायता पहुँचायी वह उल्लेखनीय बात है। ये सारी बातें हैं, लेकिन इससे भी महत्त्व की बात यह है कि सरस्वती भारतीय एकता की कीर्ति-पताका रही है। आज के भाषा विषयक द्वंद्वों के घमासान में इस बात के स्मरणमात्र से भारत के भविष्य के बारे में आस्था बँधती है कि जिस हिंदी पत्रिका की हम जयंती मना रहे हैं, उसका आरंभ एक बंगाली सज्जन ने किया था। उन्हींके उत्तराधिकारी उसे अब भी चला रहे हैं।

श्रीमन्! आधुनिक भारत का जन्म बंगाल में हुआ था और बंगाल के ही महान् नेताओं को पहले पहल यह बात सूझी थी कि हिन्दी का विकास अन्तःप्रान्तीय भाषा के रूप में करना चाहिए, जिससे किसी समय हिन्दी अँगरेजी का स्थान ग्रहण कर सके।

स्वामी दयानन्द को सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखने की प्रेरणा केशवचन्द्र सेन ने दी थी, और बिहार में हिन्दी को कचहरियों में स्थान दिलानेवाले आन्दोलन का नेतृत्व भूदेव मुकर्जी ने किया था। हिन्दी के दो बड़े प्रतापी मासिक पत्र एक तो सरस्वती, दूसरा विशाल भारत, इन दोनों का प्रकाशन बंगाल के दो महापुरुषों ने किया। चिन्तामणि बाबू तो प्रयाग में रहते थे, लेकिन रामानन्द चटर्जी ने विशाल भारत निकाल कर वही काम किया जो एक समय सरस्वती को निकाल कर चिन्तामणि घोष ने किया था। दूसरी स्थिति हो नहीं सकती थी। उस समय के भारतवासी बड़े आदमी थे, सचमुच बड़े आदमी थे, भाषा की क्षुद्रता उनमें नहीं थी। अपनी भाषा को वे दूसरों की भाषा से श्रेष्ठ कहकर दूसरों का जी नहीं दुखाते थे। सभी भाषाओं के प्रति उनका समान भाव था। मुख्य बात यह थी कि देशप्रेम उनमें प्रधान था, भाषाप्रेम गौण था। इसलिए भाषा की समस्या देश की एकता में बाधक नहीं हुई। आज उस भाव को जोर से अपनाने की जरूरत है।

कितने आनन्द की बात है कि जब कलकत्ते में हिन्दी का गढ़ बन रहा था। सन् १९०२ ईसवी में, हिन्दी प्रान्तों से बाहर कलकत्ता एकमात्र नगर था जहाँ हिन्दी का काम सबसे जोर से होता था। १९०२ ईसवी में पंजाब, मध्यप्रदेश और बम्बई, इन तीन प्रान्तों में प्रकाशित हिन्दी पुस्तक की संख्या १३७ थी, जबकि बंगाल में १३६ पुस्तकें छपीं थीं, और यही अनुपात बाद के दिनों में भी रहा।

जिस प्रकार कलकत्ता हिंदी का केंद्र था, उसी प्रकार प्रयाग बंगला का केंद्र बन गया था। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ की पुस्तकों का आरम्भिक प्रकाशन इलाहाबाद में हुआ। क्योंकि जब तक रवि बाबू ने अपनी पुस्तकों का अधिकार विश्वभारती को नहीं दे दिया था तब तक ये सारी पुस्तकें इलाहाबाद से, इंडियन प्रेस से, निकलती थीं। खैर, वे दिन चले गये, मगर उनकी याद से आज हमको भी प्रेरणा मिलती है। मुझे बड़ी खुशी है यह आयोजन सम्भव हो सका।

सरस्वती का सम्पादन इधर कई वर्षों से पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदीजी 'श्रीवर' कर रहे हैं। लेखक और कवि होने के सिवा उनकी संपादन-योजना योग्यता भी बहुत ही उच्चकोटि की है। सरस्वती की हीरक जयन्ती मनायी जाये, यह विचार पहले पहल उन्हींके मन में उठा था, और उन्हींकी कार्यदक्षता में आदि से अन्त तक यह सारा कार्य पूर्ण हुआ। जब हम लोगों ने यह सुना कि आप सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक को स्वीकार करेंगे तब हम लोगों को उत्साह दूना हो गया। हम अपना परम सौभाग्य मानते हैं कि आपके समक्ष यह उत्सव सम्पन्न हो सका।

अब मैं घोष महोदय से अनुरोध करता हूँ कि वे ग्रन्थ आपको अर्पित करें, और आपसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इस क्षुद्र भेंट को स्वीकार करके इस आयोजन को गौरव प्रदान करें।

दिनकरजी ने अपना भाषण समाप्त करके सरस्वती के प्रकाशक श्री हरिप्रसन्न घोष से विशेषांक को महामहिम राष्ट्रपति की सेवा में प्रस्तुत करने को कहा। श्री घोष उठे, और स्वेत रेशम से परिवेष्ठित तथा एक सुंदर कलापूर्ण मंजूषा में रखे हुए सरस्वती के हीरक जयंती विशेषांक को उन्होंने महामहिम राष्ट्रपतिजी को निवेदित किया जिसे उन्होंने उठकर और कृपावंत होकर स्वीकार किया। विशेषांक स्वीकार करने के बाद महामहिम राष्ट्रपतिजी ने सभा को इस प्रकार सम्बोधित किया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभापति महोदय, देवियो और सज्जनो,

मुझे सबसे पहले आप लोगों से इस शिकायत के लिए माफी माँगनी है कि आपको यह समारोह दिल्ली में आकर करना पड़ा जब कि मुझे प्रयाग जाकर इसमें सम्मिलित होना चाहिए था। मगर इसका कारण आप जानते हैं और इसका मुझे भरोसा है कि आप ने मेरे माँगने के पहले ही मुझे क्षमा कर दिया होगा।

यह शताब्दी आरम्भ से आज तक एक बड़ी क्रान्तिकारी शताब्दी भारतवर्ष के लिए रही है। वह केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, साहित्यिक क्षेत्र में भी थी, विशेष करके हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी। और उसका ही यह एक सुफल है कि "सरस्वती" जैसी पत्रिका का जन्म इसके आरम्भ में हुआ और उसका काम आज तक ठीक तरह से खूबी से चलता आया है।

इस राष्ट्रपति भवन में एक सुन्दर उद्यान है। इसमें बहुत से सुन्दर मौलसिरी और बकुल के पेड़ लगे हैं। अगर कोई देखे तो वह जल्द पहचान नहीं सकता कि ये बकुल के पेड़ हैं, और वे जैसे सुन्दर हैं, और वैसे सुन्दर कैसे बने हैं, और उनकी जो दूसरी खूबियाँ हैं उनको तो और भी किसी अनजान पुरुष के लिए जानना कठिन है।

मैं सोच रहा था कि 'सरस्वती' का भी वही रूप है। जिसने इसको जन्म दिया, जिन लोगों ने आरम्भ में इसके पौधे को लगाया, वह तो ठीक उसी तरह का पौधा रहा होगा जैसा इस मौलसिरी के वृक्ष का पौधा हुआ होगा। मगर आहिस्ता आहिस्ता जैसे यह पौधा बढ़ता गया और इसको काट-छाँट कर ऐसा सुन्दर बना दिया गया कि वह अर्धगोलाकार देखने में आता है, और सिर्फ यही नहीं कि इसमें सुन्दर पत्ते लगे हुए हैं, जब समय आता है तो इसमें बहुत सुन्दर फूल भी निकलते हैं और वे फूल दूसरे फूलों जैसे नहीं होते जिनकी सुगन्ध थोड़े ही दिनों में खतम हो जाती है, बल्कि इन फूलों की सुगन्ध उनके सूख जाने के बाद भी ज्यों की त्यों बनी रहती है। जब फूल फल में परिणत हो जाते हैं तो फल भी वैसे ही सुन्दर देखने में होते हैं और विशेष करके पक्षियों के खाने के लिए बहुत ही मीठे होते हैं। इन पेड़ों को अगर आप दिन में जाकर देखें तो आपको कहीं भी पता नहीं लगेगा कि इन मौलसिरी के गाछों में काई रहता भी है। और ५ बजे शाम के करीब आप देखें तो चिड़ियों की चहचहाहट ऐसी सुन्दर मालूम होती है कि मन सुनकर मुग्ध हो जाता है।

मैं सोचता हूँ कि 'सरस्वती' का जन्म देने में जिन लोगों ने मदद की, जिन लोगों ने इसके लिए साधन और सामान जुटाये उन्होंने इसी तरह का काम किया जिस तरह से सीढ़ियों के जरिये से और कैंचियों से काट-कर माली इनको सजने-सजाने का काम करते रहते हैं। इसके अनेक सम्पादक रहे हैं मगर इसका श्रेय जिन्होंने इसको मुख्य रूप दिया उनको ही है, और उन्हें भी जिन्होंने इसको गोलाकार रूप दिया, इसको औरों ने भी सुन्दर बनाया, सजाया और आज भी बनाते जा रहे हैं उन सब को है।

जिस तरह से मौलसिरी के पेड़ के फल बहुतेरे जीवों को सहायता देते हैं और उनके फूल अपनी सुगन्धि चारों तरफ फैलाते हैं उसी तरह से जिनके लेख इस पत्रिका में छपे, प्रकाशित हुए, उनसे इनके लिखनेवालों, पढ़नेवालों, दोनों को, हर तरह से फायदा पहुँचा; और जिस तरह से इस बगीचे के मौलसिरी के पेड़ों में न मालूम कितनी चिड़ियाँ पलती हैं, इस सरस्वती को न मालूम कितने लेखकों ने पढ़ा, पढ़ाया।

तो मैं यह सोचता था कि जिस तरह से मौलसिरी के गाछ बहुत दीर्घजीवी हुआ करते हैं और काटने पर उनका काठ भी बहुत जबर्दस्त हुआ करता है, उसी तरह से 'सरस्वती' का जो सुन्दर वृक्ष इतने परिश्रम से बनाया गया है, पैदा किया गया है, वह दीर्घजीवी रहेगा और अन्त में भी यह इतना जबर्दस्त और मजबूत काम कर जायगा कि बहुत दिनों तक भारतवर्ष में इसकी याद रखी जायगी।

इसके लिए सबसे पहले श्री चिन्तामणि घोष को हमें धन्यवाद देना है या उनकी याद रखनी है। उसके बाद श्री द्विवेदीजी, उनसे भी पहले श्यामसुंदरदासजी और जितने लोगों ने आज तक इसकी सेवा की है, जितने लोगों ने इस पत्रिका में कविताओं, लेखों, कहानियों द्वारा जनता की सेवा की, वे सब हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

मुझे इस बात की खुशी है कि आपने सोचा कि सरस्वती की हीरक जयन्ती मनायी जाय। जैसा आपसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हीरक जयंती अंक समर्पण समारोह के दर्शकों का एक भाग

प्रथम पंक्ति में (दाहिने से बायीं ओर) श्री रणछोड़प्रसाद (अतिरिक्त केंद्रीय गृहसचिव) श्री बी० ए० झा (अध्यक्ष संघीय सेवा आयोग) सम्पादक, श्री वियोगी हरि, श्री दिनकरजी, श्री मनमोहन गुप्त, श्री हरिप्रसन्न घोष, डा० सत्यनारायण पांडे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

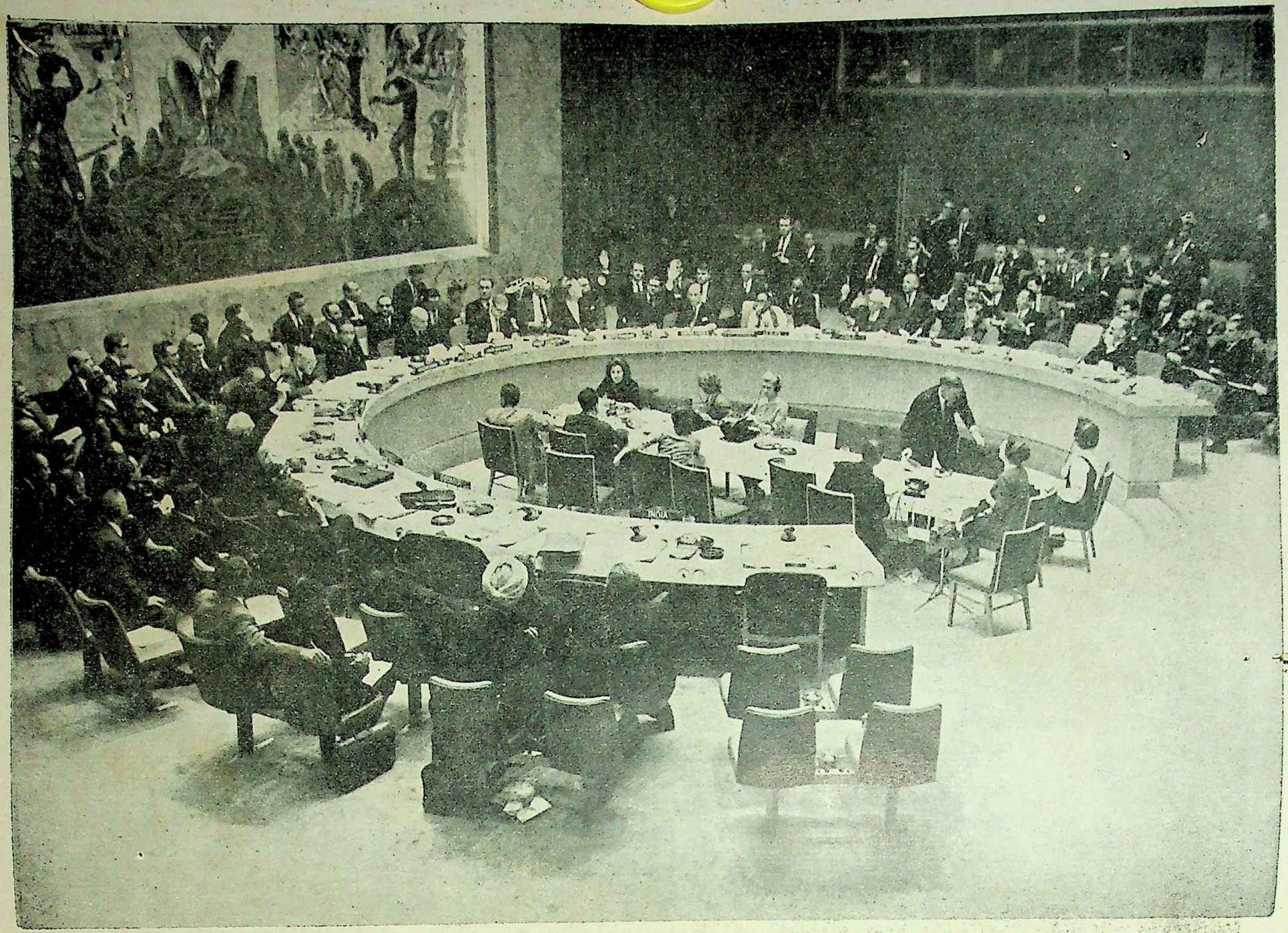

सुरक्षापरिषद् में गोआ संबंधी प्रस्ताव पर विचार हुआ। इस चित्र में कार्रवाई समाप्त करने के पक्ष में हाथ उठाकर मतदान किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा गया, यह एक नयी चीज है। मनुष्यों की हीरक जयन्ती मनायी जाती है मगर इस पत्रिका की हीरक जयन्ती मनायी गयी, यह बड़ी बात है। इससे आशा होती है कि न केवल लिखनेवालों की बल्कि उनकी कृतियों की जयन्ती मनायी जायगी। हमारे देश में जिस तरह से 'सरस्वती' ने एक नयी परिपाटी कायम कर दी, हिन्दी भाषा को एक रूप दे दिया और जिस प्रकार से न केवल लेखों का लिखना लिखवाना ही, बल्कि हिन्दी साहित्य में आलोचनात्मक लेखों को एक प्रकार से 'सरस्वती' ने जन्म दिया, उस सबके लिए हम उसके आभारी हैं और हमेशा आभारी रहेंगे।

आपने बड़ी कृपा की कि इतना कष्ट उठाकर आप यहाँ आये। जैसा मैंने कहा, मुझे प्रयाग जाना चाहिए था और यहाँ आकर और भी विशेष कृपा मेरे ऊपर आपने यह की कि आपने मुझे एक सुन्दर ग्रन्थ भेंट किया। मैं आप सबको दिल से धन्यवाद देना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि भारतवर्ष में हिन्दी का प्रचार हर तरह से पहले, जैसा आपने बताया, अहिन्दी भाषियों के द्वारा अधिक हुआ, हिन्दी भाषियों में भी अहिन्दी भाषियों के द्वारा हिन्दी का प्रचार हुआ, उसी तरह से अब राजनीतिक झगड़ों को भूल भुलाकर हम लोग हिन्दी भाषा का प्रचार एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में, सारे देश को एक साथ बाँधने के सूत्र के रूप में हिन्दी भाषी तो करेंगे ही, मगर इससे भी ज्यादा अहिन्दी भाषी इस काम को खूबी से करेंगे, और तब जो स्वतन्त्रता हमने पायी है वह पूरी हो सकेगी। जब तक विदेशी भाषा की आवश्यकता हमें रहेगी तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारी बौद्धिक उन्नति ठीक प्रकार से हुई। क्योंकि विदेशी भाषा हमने अपने यहाँ नहीं पायी है, उसको हमें कहीं विदेश से लाना पड़ा। उस चीज़ के भरोसे हम अपनी बौद्धिक उन्नति, हम अपना बौद्धिक विकास कैसे और कहाँ तक कर सकेंगे, यह समझने की बात है।

मुझे पूरी आशा है कि हिन्दी बोलनेवाले, जो हिन्दी प्रदेशों के रहनेवाले हैं, भारतवर्ष के दूसरे हिस्से के लोगों की देश के प्रति जो आस्था और प्रेम है उसपर विश्वास करके यह उनपर छोड़ दें कि वे हिन्दी को अपना लें और हिन्दी की जो प्रतिष्ठा होनी चाहिए वह उसे अपनी खुशी से दें, और वह सारे देश की एक भाषा हो जाये। धन्यवाद।

महामहिम राष्ट्रपतिजी के भाषण के बाद दिल्ली के गंधर्व संगीत विद्यालय की छात्राओं ने 'जन गण मन' गाया। सारी सभा खड़ी हो गयी, और कितने ही लोगों ने उसके साथ अपना स्वर मिलाया। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने अंत में सभा का अभिवादन करके विदा ली। उन्होंने कृपावंत होकर अपने कक्ष में विशेषांक की दो प्रतियों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये--एक प्रति सरस्वती के सम्पादक और दूसरी उसके प्रकाशक के लिये।

उत्सव की समाप्ति पर महामहिम राष्ट्रपतिजी की ओर से उपस्थित महिलाओं और सज्जनों को बहुत सुंदर जलपान कराकर उन्हें सम्मानित किया गया।

यह उत्सव अपनी भव्यता, गरिमा और सादगी में अभूतपूर्व था। 'सरस्वती' के इतिहास में यह दिन स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने सरस्वती के प्रति जो भाव और शुभकामनाएं प्रकट की हैं, तथा उसके लिये जो कर्त्तव्यकर्म बतलाएँ हैं, वे सदैव उसकी अमूल्य निधि रहेंगे, और देश तथा हिंदी की सेवा में उसका सतत मार्गप्रदर्शन करते रहेंगे।

सुरक्षापरिषद् में गोआ संबंधी प्रस्ताव पर विचार हुआ। इस चित्र में कार्रवाई समाप्त करने के पक्ष में हाथ उठाकर मतदान किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

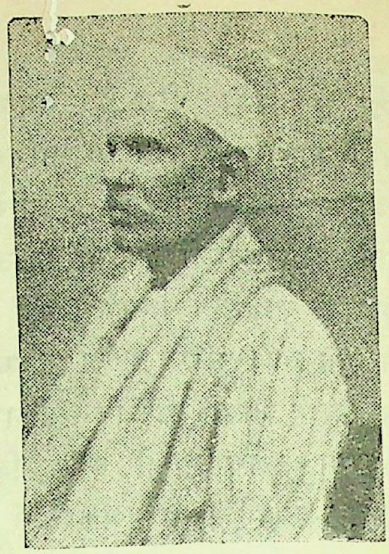

हमारा मस्तक नत कर दो

कवींद्र रवींद्र के एक गीत का रूपान्तर

स्वर्गीय पं० लोचनप्रसाद पांडेय

तुम्हारे चरण-धूल-तल पर
हमारा मस्तक नत कर दो।
हृदय में तव पद-धारण हेतु
अलौकिक विश्वप्रेम भर दो॥

डुबा कर अहंकार-मम सर्व
नयन सागर में हे देव!
कपट, ईर्ष्या, हिंसा का कलुष
दूर कर समता सुखकर दो॥

सदा करता हूँ गौरवदान
स्वयं अपने ही को मैं मूढ़;
किन्तु पाता उससे अपमान
—मूर्खता यह मेरी हर लो।

निरत हूँ मैं अपने लाभार्थ
मान, धन, यश, वैभव के हेतु;
स्वार्थपरता का पंक मलीन
मिटाकर हृदय स्वच्छ करदो॥

तुम्हारी ही इच्छा हो पूर्ण
देव! मेरे इस जीवन में।
मुझे निज कृति-प्रचार से हटा
मनुज-सेवा का शुभ वर दो॥

स्वयं की चरम शान्ति कर दान
प्राण में दिव्य कान्ति भर दो,
तुम्हीं उतरो ले मेरी आड़
मुझे हे नाथ! अभय कर दो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

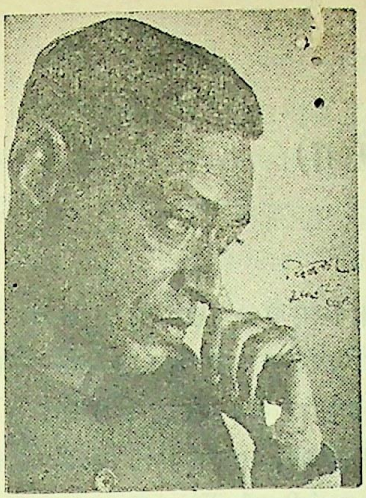

कवीन्द्र रवीन्द्र की दो कविताएँ

मूल—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक—श्री रामधारीसिंह दिनकर

विहंग के जाने का समय हो गया

विहंग के जाने का समय हो गया
घोंसला अभी खाली हो जायगा।
अरण्य-आन्दोलन से टूटा हुआ नीड़
गान बन्द कर धूल में आ गिरेगा।
सूखे पत्तों और जीर्ण फूलों के साथ
रात-दिन उस शून्य में उड़ता हुआ,
जिस पर राहों के कोई निशान नहीं हैं,
मैं अस्तोदधि के उस पार चला जाऊँगा।
इस पृथ्वी ने कितने समय तक आतिथ्य दिया?
कभी तो मैंने फाल्गुन की औदार्य-मधुर पुकार सुनी है,
जिसमें आम्र-मंजरियों की गन्ध भरी थी।
कभी अशोक की मंजरी ने, इशारों से,
मेरे स्वर की कामना की है।
और मैंने प्रीति-रस में भर कर
अपना स्वर उसे दिया है।
कभी बैसाख के झंझावात में
तप्त धूलि के मारे मेरा कंठ रुद्ध हो गया;
मेरे डैने असमर्थ हो गये।
किन्तु, हृदय के सम्मान के कारण
मैं अपने को धन्य मानता हूँ।
इस पार की श्रान्त यात्रा के रुक जाने पर
मैं क्षण भर पीछे की ओर मुड़ कर
नम्र नमस्कार के साथ इस जीवन के
अधिदेवता की वन्दना कर जाऊँगा।

प्रहरान्त के आलोक से रंजित

प्रहरान्त के आलोक से रंजित
उस दिन चैत का महीना था,
जब तुम्हारी आँखों में
मैंने अपना सर्वनाश देखा था।

इस संसार में नित्य क्रीड़ाएँ चलती हैं,
प्रतिदिन नाना प्राणियों का समागम होता है।
घाट-बाट में हजारों लोगों का
हास-परिहास चलता है।
उन सबके बीच तुम्हारी आँखों में
मेरा सर्वनाश चमकता है।

आम के वन में वायु का झोंका आता है,
मंजरियाँ झर पड़ती हैं।
जिसे बहुत दिनों से जानता हूँ,
वही गन्ध हवा में भर उठती है।

मंजरित डाल-डाल में,
मधु-मक्खियों के पंख-पंख पर
मधु ऋतु का दिवस
क्षण-क्षण निःश्वास फेंकता है,
उन सबके बीच तुम्हारी आँखों में
मेरा सर्वनाश चमकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवि बाबू

(जीवन और व्यक्तित्व की रूपरेखा)

श्री अमृतलाल नागर

सर रोपर लेथब्रिज के० सी० आई० ई० द्वारा लिखित 'द गोल्डेन बुक ऑफ़ इंडिया' ग्रंथ सन् १८९३ ई० में लन्दन की मैकमिलन कंपनी ने प्रकाशित किया था। उक्त ग्रंथ में ब्रिटिश साम्राज्य के खिताब प्राप्त राजे-महाराजों तथा भारत, बर्मा और लंका के पदवीधारी प्रमुख पुरुषों के वंश परम्परागत इतिहास और जीवन-चरित लिखे गये हैं। पुस्तक के ५२५ संख्या के पृष्ठ पर 'टैगोर, महाराजा सर जोतीन्द्रोमोहन, बहादुर, के० सी० एस० आई०' के विवरण में ठाकुरवंश का इतिहास दिया गया है।

ईस्वी सन् ९९४ में बंगाल के राजा आदिशूर के आमंत्रण पर उनके श्वसुर कान्यकुब्ज महाराज वीरसिंह ने अपने यहाँसे पाँच ब्राह्मण और पाँच कायस्थ बंगाल भेजे थे। उन कनौजिया ब्राह्मणों के मुखिया पण्डितवर भट्टनारायण ही बंगाल के विश्ववंद्य ठाकुर या टैगोर वंश के आदि पुरखे थे। भट्टनारायण के सोलह पुत्र हुए उनमें नृसिंह उर्फ नानू शुद्ध श्रोत्रिय थे। नानू पंडित ने बड़ी जागीर पायी। नानू की आठवीं पीढ़ी में मनुस्मृति के टीकाकार धरणीधर ने भी अच्छी ख्याति अर्जित की। धरणीधर के पौत्र धनञ्जय बंगनरेश बल्लाल सेन के न्यायाध्यक्ष थे। उन्होंने यह व्यवस्था दी कि कन्नौज से आने-वाले ब्राह्मणों एवं कायस्थ कुलों के वंशज ही बंगाल में कुलीन माने जायँ। धनञ्जय पुत्र हलायुध राजा लक्ष्मण सेन के मंत्री थे। हलायुध की सातवीं पीढ़ी में पंडितराज जगन्नाथ और आठवीं में पुरुषोत्तम हुए। पुरुषोत्तम की छठी पीढ़ी में पंचानन हुए। संभवतः इस वंश में पंचानन ही सर्वप्रथम 'ठाकुर' की पदवी से विभूषित हुए थे। पंचा-नन ठाकुर ने हुगली नदी के तट पर गोविन्दपुर ग्राम में अपनी हवेली बनवायी। नवाब सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ता पर आक्रमण किये जाने के समय पंचानन के पुत्र जयराम चौबीस परगना के अमीन थे। सिराजुद्दौला को पराजित करने के बाद अँगरेज सरकार ने एक किला बनवाने के उद्देश्य से गोविन्दपुर ग्राम को भी अपने अधिकार में ले लिया। जयराम ठाकुर पथरियाघट्टा चले आये। वहाँ उन्होंने अपने निवास के लिए एक महल और एक घाट बनवाया। सन् १७६२ में जयराम चार पुत्र छोड़कर स्वर्ग सिधारे। उनके पुत्रों में दर्पनारायण और नीलमणि के वंशधरों में अनेक नामांकित व्यक्ति हुए। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के पितामह 'द आनरेबिल' प्रिंस द्वारकानाथ तथा उनके भाई महाराजा रमानाथ नीलमणि ठाकुर ही के पौत्र थे। प्रिंस द्वारकानाथ ने अनेक बार योरोप-यात्रा की। इँगलैंड की महारानी विक्टोरिया और उनके पति द्वारकानाथ को अपना मित्र मानते थे। उनका सर्वत्र बड़ा मान-सम्मान था। अँगरेजी तौर-तरीके और पोशाक उनपर खूब फबती थी। उन्हींके नाम के साथ जुड़कर 'ठाकुर' शब्द का अँगरेजी उच्चारण 'टैगोर' हो गया।

द्वारकानाथ के तीन पुत्रों में देवेन्द्रनाथ ज्येष्ठ थे। वे बड़े मनीषी, परम तत्त्वसाधक और ब्रह्मसमाज के वरेण्य नेता थे। लोग उन्हें आदरपूर्वक महर्षि कहकर सम्बोधित किया करते थे। रवीन्द्रनाथ इन्हीं महर्षि के छठे पुत्र थे। नामकरण करते हुए महर्षि ने कहा था : "यह बालक अपनी उज्ज्वल प्रतिभा के प्रकाश से जगत् को उद्भासित करेगा और पवित्र धूप से सुगंधित इस कमरे की भाँति संसार भी इसके यशसौरभ से सुरभित हो जायगा।" अपने पुत्र के संबंध में पिता की यह भविष्यवाणी आगे चलकर सत्य सिद्ध हुई।

कलकत्ता के जोड़ासाँको मुहल्ले की ठाकुरबाड़ी उन दिनों बंगाल के नवजागरण का प्रमुख केन्द्र थी। ठाकुर वंश के लड़के तेजस्वी और ऊँचे विचारों के थे; कोई बँगला भाषा के साहित्यिक विकास में अभिरुचि रखता तो कोई नाटकों में। किसी कमरे में साहित्यिकों का जमघट लगता तो कहीं ड्रामा के रिहर्सल होते; कहीं बड़े-बड़े दार्शनिकों और विचारकों की गंभीर बातें होतीं तो किसी कमरे में संगीत की साधना होती थी। उस महल में लक्ष्मी का चमत्कार और सरस्वती की महिमा चारों ओर व्याप्त थी। घर में छोटों में छोटे थे रवीन्द्रनाथ। धाय-नौकरों की निगरानी में अकेला बालक बैठा-बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही मन से खेला करता। अपनी 'छेलेबेला' और 'जीवनस्मृति' नामक पुस्तकों में रवीन्द्रनाथ ने अपने बाल्य-जीवन का बड़ा ही मार्मिक चित्र आँका है।

ठाकुरबाड़ी में बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मुँहअँधेरे बच्चे बिस्तर से उठा दिये जाते थे। महल के पीछेवाले भाग में अखाड़ा बना था। एक काना पहलवान बच्चों को व्यायाम कराने के लिए आता था। कसरत-जोर करके रवीन्द्रनाथ अखाड़े की मिट्टी लपेटे बाहर आते, देह पोंछकर ठीक तरह से वस्त्र भी न पहन पाते थे कि मेडिकल कालेज का एक छात्र बच्चों को शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य शिक्षा देने के लिए आ पहुँचता था। एक कमरे में एक अस्थिकंकाल टँगा था, उसमें दिखा-दिखाकर बच्चों को हड्डियों के नाम याद कराये जाते थे। तब तक ड्योढ़ी पर घड़ियाल के घण्टे टन-टन सात बजाते और नीलकमल मास्टर घड़ी की सुई साधकर पहुँच जाते थे। नौ बजे उनसे छुट्टी मिलती तो नौकर फौरन नहलाने के लिए ले जाता, फिर भोजन और स्कूल-गमन। सायंकाल साढ़े चार बजे घर आते, तभी एक मास्टर जिम्नास्टिक सिखलाने के लिए पहुँच जाते फिर ड्राइंगमास्टर आते; फिर अँगरेजी के शिक्षक अघोर बाबू आ धमकते। पढ़ते-पढ़ते रात हो जाती। खा-पीकर लेटते तो नौकर या कोई बड़ी-बूढ़ी कहानियाँ सुनाती। ऐसा समुचित प्रबन्ध होने पर भी रवीन्द्रनाथ अपने गुरुओं से कुछ सीख न पाये। घर के बड़े लोग कहते कि लड़का भले ही बी० ए० या एम० ए० पास न करे, पर चार भद्रजनों के बीच में अँगरेजी बोलने लायक योग्यता तो होनी ही चाहिए। यह सोचकर डिक्रूज साहब के अँगरेजी स्कूल 'बंगाल एकेडेमी' में भरती कराया गया। वहाँ भी ये जस के तस ही रहे। एक बार इनके लैटिन भाषा के शिक्षक ने डिक्रूज साहब से इनकी शिकायत की। वे हँसकर बोले कि अरे वह यहाँ पढ़ने थोड़े ही आता है, हर महीने फीस की रकम अदा करने के लिए आता है।

स्कूल के गुरुओं ने इनकी चिंता करना ही छोड़ दिया पर घर के शिक्षक ज्ञानचन्द्र भट्टाचार्य महाशय ने इनके लिए एक उपाय खोज निकाला। स्कूली शिक्षा के बजाय वे इनकी साहित्यिक शिक्षा की व्यवस्था में लगे। महाकवि कालिदास का 'कुमारसम्भव' जैसे-तैसे पूरा रटा दिया। शेक्सपियर के 'मैकबेथ' का बँगला अनुवाद इनसे कराया। पंडित रामसर्वस्व ने इन्हें 'शकुंतला' नाटक समझाकर पढ़ा दिया।

बड़े घर के बेटे होने के कारण रवीन्द्रनाथ बाहर कहीं खेलने-कूदने के लिए न जा पाते थे। वे अपने ही मन से खेला करते थे। फर्राशखाने में दादी के समय की पुरानी पालकी में छिपकर बैठ जाते और कल्पना करते कि उनकी पालकी दूर देशों में जा रही है। बच्चे को कहीं परियाँ मिलती हैं, मीठी-मीठी बातें करती हैं फिर कहीं अँधेरे में कल्पनालोक के पेड़ से झमाझम कूदकर नक्की सुरों में बोलते उल्टे पैरोंवाले भूतप्रेत आ जाते। बालक को पहले तो अपनी ही कल्पना से भय लगता है फिर वह छूमंतर की फूँक मारकर भूतों को उड़ा भी देता है। दादी की पुरानी पालकी में बैठा शिशु रवीन्द्र मन ही मन में कभी जंगल के शेरों से लड़ता है तो कभी नदी के विकराल मगर से। ऐसे भोलेपन में दिन बीतते चले, बच्चे की कल्पना-शक्ति बढ़ती चली। कभी सड़क पड़ती बरामदे की छत से घण्टों बाहर के दृश्य देखा करते। रवि ठाकुर इस छत को 'छुट्टी का देश' कहा करते थे। सामने के घरों में लोगों को काम-काज करते देखते, सड़क पर फेरीवालों का आना-जाना निरखते, फिर भालू-बंदर के नाच दिखानेवाले मदारी आ जाते, उन्हें देखकर बाल रवि का मनमयूर नाच उठता था। रवि बाबू भाइयों में सबसे छोटे थे, सब भाभियों के देवर। वे इन्हें छेड़तीं, इनसे सुपारियाँ कटवातीं, बड़ा मजा आता था। इनके घर में अच्छे-अच्छे गवैयों का गाना अक्सर ही हुआ करता था। रवीन्द्रनाथ का कण्ठ बड़ा ही सुरीला और मीठा था। एक दो बार कोई राग सुनते तो चट से याद कर लेते थे। अपने चाचा और बड़े भाइयों द्वारा अभिनीत नाटक देखते-देखते इनके मन में नाटक खेलने की इच्छा होने लगी। किशोर रवीन्द्रनाथ अपने छोटे भतीजे-भतीजियों, भांजे-भांजियों की मण्डली जुटाकर घर के एक गोल कमरे में फूल-पत्तियों से रंगमंच सजाकर नाटक खेलते। इस प्रकार खेल ही खेल में इन्होंने अनेक कलाओं का अभ्यास कर लिया। महर्षि पिता यों तो प्रायः बाहर ही रहते थे परंतु जब घर पर रहते तो अक्सर इन्हें अपने पास बैठाकर सरल भाषा में गायत्री उपनिषदों का मर्म सरल भाषा में समझाया करते थे। इसका रवि ठाकुर पर गहरा प्रभाव पड़ा। बारह वर्ष की आयु से ही उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-रचना आरम्भ हो गयी। चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने 'वाल्मीकि-प्रतिभा' नामक एक गीतिनाट्य की रचना की। वह नाटक रवि की किशोर-मण्डली ने खेला भी था। घर के लोगों के अतिरिक्त बाहर से भी कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति नाटक देखने के लिए बुलाये गये थे। कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सर गुरुदास बनर्जी भी नाटक देखने के लिए आये थे। वे बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने एक कविता लिखकर रवीन्द्रनाथ को आशीर्वाद दिया। इनका ये हाल देखकर घरवालों ने निश्चय किया कि इन्हें विलायत में शिक्षा दिलाई जाय। इनके मँझले भाई उन दिनों अहमदाबाद में जज थे। विलायत जाने से पूर्व विलायती वातावरण समझने के लिए उन्हें वहीं भेज दिया गया। इनके भाई ने इन्हें एक नई रोशनीवाले महाराष्ट्रीय परिवार में रहने के लिए भेज दिया। वहाँ एक लड़की थी, वह इन्हें कवि कहकर सम्बोधित करती थी, बँगला भाषा न समझते हुए भी वह इनके सुरीले कण्ठ पर मुग्ध थी। एक दिन उसने इनसे कहा "कवि, तुम दाढ़ी रखकर कभी अपने सुन्दर चेहरे का आकर्षण मत कम करना।" दुनिया जानती है कि रवि बाबू अपने जीवन में आई हुई प्रथम प्रणयिनी की इस प्रार्थना को आगे चलकर स्वीकार न कर पाये।

रवि बाबू लन्दन विश्वविद्यालय की कोई परीक्षा भी विधिवत पास न कर पाये। "हाँ, वहाँके अनेक विद्वान् प्रोफेसरों ने इन्हें अवश्य प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त पूर्वी और पश्चिमी जगत् का दर्शन कर लेने के कारण मानवता के प्रति युवक रवीन्द्रनाथ की श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

रवीन्द्रनाथ के जीवन से शांतिनिकेतन को अलग रखकर देखा ही नहीं जा सकता। सन् १८६१ ई० में, जिस साल रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ उसी साल शांतिनिकेतन की स्थापना भी हुई। महर्षि देवेन्द्रनाथ जमींदार भुवन-मोहनसिंह के घर पर एक ब्राह्म-प्रार्थना सभा में सम्मिलित होने के लिए रायपुर ग्राम गये थे। महर्षि को भुवन बाबू की जमींदारी का एक स्थान बहुत ही पसन्द आया। उन्होंने स्थायी लीज पर बीस बीघा भूमि ले ली। महर्षि ने वहाँ एकमंजिला मारत बनवायी, देवदारु, आँवला साल आदि के वृक्ष लगवाये और अक्सर अपनी एकांत साधना के लिए वहाँ जाने लगे।

महर्षि ईश्वर के सौंदर्यरूप के उपासक थे। रवीन्द्रनाथ को वही उपासना पद्धति पिता से विरासत के रूप में मिली थी। बचपन ही से वे प्रायः शांतिनिकेतन जाया करते थे। सन् १८८८ ई० में महर्षि ने शांतिनिकेतन आश्रम ट्रस्ट की स्थापना की। प्रतिवर्ष वहाँ आदि ब्राह्म-समाज के अधिवेशन होते। उत्तर भारत के एक संस्कृत के उद्भट विद्वान् स्वामी अच्युतानंद वहाँ स्थायी रूप से रहते थे। किन्तु ब्राह्म-समाज की विशिष्ट शाखाओं के साधकों की आस्था शांतिनिकेतन के प्रति क्रमशः क्षीण होने लगी। महर्षि वृद्ध हो गये थे, वे वहाँ जा नहीं पाते थे, इसलिए शांतिनिकेतन का आध्यात्मिक वैभव क्रमशः नष्ट हो चला।

सन् १८८५ ई० में रवीन्द्रनाथ का विवाह भवतारिणी नाम की एक कन्या से हुआ। रवीन्द्रनाथ को वह नाम पसन्द नहीं आया उन्होंने अपनी पत्नी को मृणालिनीदेवी कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया। पति-पत्नी में बड़ा प्रेमभाव था। उन्होंने अपनी पत्नी को अच्छी शिक्षा भी दिलायी थी। साधक रवीन्द्रनाथ के जीवन में उनकी सहधर्मिणी ने बड़ा सहयोग दिया। शिलाइदह में जमींदारी का काम सम्हालते हुए रवि ठाकुर साहित्य-साधना भी बराबर करते रहते थे। जमींदारी का काम उनसे सम्हल न सका। वे ऋणग्रस्त भी हो गये। उनकी पुत्रियाँ बड़ी हो गयी थीं। रवीन्द्रनाथ को शिलाइदह छोड़ना पड़ा। बेटियों के विवाह किये पर उसके बाद वे कलकत्ता में न रह सके। शांतिनिकेतन में सन्नाटा था। घरवाले शांतिनिकेतन की निष्क्रियता के कारण चिंतित थे। इधर कविवर भी ऋण-भार के कारण सस्ते में निर्वाह करना चाहते थे। शिलाइदह में उन्होंने अपने बच्चों के लिए एक निजी स्कूल खोला था। उसी परिपाटी पर उन्होंने शांतिनिकेतन में भी एक विद्यालय की स्थापना की और सन् १९०१ ई० से वे बराबर वहीं रहने लगे। शांतिनिकेतन संस्था रवि बाबू द्वारा रचित महाकाव्य है।

सन् १९१३ में उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला। रवि बाबू की ख्याति चतुर्दिक फैल गयी। सन् १९१५ ई० में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'सर' का खिताब दिया। किन्तु जलियाँवाला बाग के गोलीकांड के विरोध में उन्होंने वह खिताब लौटा दिया।

[शेष पृ० २३ पर देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडियन प्रेस और कवि रवीन्द्रनाथ

श्री नयनचन्द्र मुखोपाध्याय

प्रयाग के इंडियन प्रेस से सम्पर्क स्थापित होने से पहले रवीन्द्रनाथ की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। उन पुस्तकों में से कुछ के नाम हैं--पंचभूतों की डायरी, कणिका, कथा, कहानी, कल्पना, क्षणिका और नैवेद्य प्रभृति। यह नैवेद्य जिस समय प्रकाशित हुआ उस समय कवि ४० वर्ष के थे। कवि का पहला काव्य 'काव्य-काहिनी' (बंगाब्द १२८६ में) प्रकाशित हुआ जब वे १७ वर्ष के थे। अतः १७ वर्ष की अवस्था से ४० वर्ष के होने तक अर्थात् २३ वर्ष के भीतर उनकी कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, उसका हिसाब लगा लीजिए।

× × ×

कई वर्ष बीत गये। कवि का हाथ इतना जम गया कि उसका क्या कहना। कवि की इतनी अधिक रचनाएँ एकत्र हो गयीं कि उनको पुस्तकाकार प्रकाशित करना उनके बूते का न रहा। उनके लिए एक उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता हुई। उन दिनों की मजूमदार लाइब्रेरी के परिचालक श्रीशचन्द्र मजूमदार ने चेष्टा करके कवि के कई काव्यग्रंथों को प्रकाशित कर दिया सही; परन्तु इतनी बहुत-सी रचनाओं को साफ करके छापेखाने में छपवाकर प्रकाशित करना उनके लिए भी कठिन हो रहा था। विशेषतः उस जमाने के जिन छापेखानों में कवि की पुस्तकें छपाई जाती थीं उनमें प्रूफ-संशोधन की बढ़िया व्यवस्था न थी--यह सारा कार्य स्वयं कवि को ही करना पड़ता था। छापेखाने के कम्पोजिटर कम्पोज करने के पश्चात् प्रूफ उठाकर कवि के पास भेज देते थे। कवि को प्रूफ पढ़कर शुद्ध करना पड़ता था--पहला प्रूफ, दूसरा प्रूफ और तीसरा प्रूफ भी वही शुद्ध करते थे। तीसरी बार के पढ़े हुए प्रूफ के अनुसार संशोधन करके छापेखाने के मालिक उसे छापते थे। इतने पर भी बहुत-सी भूलें रह जाती थीं। इससे कवि को बड़ी हैरानी थी। छपी पुस्तक की भूलें उन्हें शूल-सी चुभती थीं। एक और मुश्किल थी। जिन छापेखानों में उनकी पुस्तकें छपती थीं उनमें से किसीके पास इतना टाइप न था कि ३।४ फार्मों का प्रूफ एक साथ तैयार हो सके। वे अधिक से अधिक ३२ पेजों का प्रूफ कवि के पास भेज सकते थे। इतना प्रूफ जब तीन बार पढ़ लिया जाता तब छप जाने पर फिर ३२ पेज तैयार होते। इस कारण कवि की एक पुस्तक के छपकर तैयार होने में एक वर्ष से भी अधिक समय लग जाता था। इससे कवि को बड़ी चिन्ता रहती। ऐसे ही समय कवि को एक सुअवसर मिल गया।

जिन्हें छापाखानों का नाम याद था वे जानते थे कि इलाहाबाद में एक संवर्द्धमान छापाखाना इंडियन प्रेस है। उसके स्वत्वाधिकारी स्वनामख्यात चिन्तामणि घोष हैं। उत्तर प्रदेश में उनका कारबार है। उस समय उनका बंगाल के साथ अधिक सम्पर्क न था। उसी समय कायस्थ पाठशाला के प्रिंसपल होकर रामानन्द चट्टोपाध्याय इलाहाबाद में आये। थोड़े ही दिनों में उनका परिचय चिन्तामणि बाबू से हो गया। रामानन्द बाबू के कहने से चिन्तामणि बाबू ने बँगला के टाइप मँगाये और दो-चार बंगाली लड़कों को बँगला तथा अँगरेजी में कम्पोज करना सिखलाया। और कलकत्ते से एक ऐसे कुशल कम्पोजिटर को बुलवा लिया जो बँगला और अँगरेजी में अच्छा कम्पोज कर सकता था। अब थोड़ा बहुत काम शुरू कर दिया गया। इससे रामानन्द बाबू ने सोचा कि प्रवास (बंगाल के बाहर) से एक बंगाली मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय। नाम रक्खा गया 'प्रवासी'। रामानन्द बाबू ने इस 'प्रवासी' को इंडियन प्रेस से निकाला। (१९०१ ई०--पहिला वैशाख, १३०८ बंगाब्द) इसके बाद इंडियन प्रेस से बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दास का 'चरित्रगठन' बँगला भाषा में उसी साल प्रकाशित हुआ। इस 'चरित्रगठन' की समालोचना करते हुए 'संजीवनी' के संपादक कृष्णकुमार बाबू ने लिखा था :—

'बंगाल के बाहर इतनी बढ़िया छपाई हो सकती है यह देखकर विस्मय हुआ।' जान पड़ता है, यह बात कवि के कान तक पहुँच गई थी। 'प्रवासी' के प्रकाशित होने से उनको मालूम हो गया था कि इंडियन प्रेस में बहुत सुन्दर, शुद्ध बँगला की छपाई होती है। इस 'प्रवासी' की प्रथम संख्या में कवि की एक कविता प्रकाशित हुई--

सब ठाईं मोर घर आछे
आमी सेई घर मरि खूंजिया।
देशे देशे मोर देश आछे-आमी सेई देश नेबो खूंजिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह देखकर इलाहाबाद के इंडियन प्रेस की ओर कवि की दृष्टि आकृष्ट हुई।

इसी समय चिन्तामणि बाबू ने बंगाल के प्रकाशन-जगत् में स्थान पाने के लिए कलकत्ते की सुकिया स्ट्रीट में (वर्तमान कैलाश बोस स्ट्रीट में) इंडियन पब्लिशिंग हाउस* नाम से बँगला का प्रकाशन विभाग खोला (१९०८ ई०)।

प्रकाशन विभाग में पहला काम आरंभ हुआ था श्री ज्ञानेन्द्रमोहन दास के सम्पादकत्व में 'बँगला भाषार अभिधान का संकलन। तीन-चार संस्कृतज्ञ पंडित ज्ञानेन्द्र बाबू के सहकारी थे और चिन्तामणि बाबू के एक जाति-भाई बाबू हीरालाल घोष हिसाब-किताब लिखते थे। यह काम होने लगा। इसके बाद पुस्तक-प्रकाशन आरंभ हुआ। पहले पहल बाबू दीनेशचन्द्र सेन के 'बंग भाषा ओ साहित्य' नामक पुस्तक का तृतीय संस्करण इंडियन प्रेस, इलाहाबाद में छापा गया। इसके बाद बाबू चंडीचरण बन्द्योपाध्याय के 'विद्यासागरचरित' का तृतीय संस्करण छपा। अभी तक कलकत्ते में प्रेस नहीं खोला गया था।

इंडियन प्रेस में 'प्रवासी' छापा जाता था। इसके अलावा रामानन्द बाबू इंडियन प्रेस से ही 'माडर्न रिव्यू' नामक एक अँगरेजी मासिक पत्र निकालने लगे। नामी साहित्यिक बाबू चारुचंद्र बन्द्योपाध्याय रामानन्द बाबू के सहकारी होकर इलाहाबाद आ गये। इन चारु बाबू और इलाहाबाद के एंग्लो बंगाली स्कूल (अब कालेज) के अवसरप्राप्त प्रधान शिक्षक बाबू नेपालचन्द्र राय की चेष्टा से कवि की प्रकाशित और अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का प्रकाशक हो गया इंडियन प्रेस और इंडियन पब्लिशिंग हाउस। चिन्तामणि बाबू के साथ कवि के शर्तनामे की रजिस्ट्री हो गयी। इंडियन प्रेस से कवि की सभी पुस्तकों के छापे जाने की व्यवस्था हो गयी। इससे कवि की पुस्तकें धड़ाधड़ छापाखाने में छपने लगीं। प्रूफ पढ़ने के लिए इंडियन प्रेस ने एक पंडित को नियुक्त कर लिया। अब कवि को पहला और दूसरा प्रूफ नहीं पढ़ना पड़ता था। उनके पास केवल अंतिम प्रूफ भेजा जाता था। ऐसे प्रूफ को पाकर कवि बहुत प्रसन्न होते थे। एक बार कवि ने चिन्तामणि बाबू को लिखा था—"मेरे पास पुस्तक का प्रूफ भेजकर व्यर्थ देरी करने की आवश्यकता नहीं दिखती। आपके पंडित को छापने की आज्ञा देने का भार देता हूँ।" इस प्रबन्ध से कवि की लगभग आठ-दस पुस्तकें वर्ष के भीतर छप जाने लगीं।

इस प्रकार दो-तीन वर्ष तक काम होने पर सन् १९१२ ई० में कवि की 'गीतांजलि' पुस्तक छापी गयी।

× × ×

यह सिलसिला कुछ दिनों चलने के बाद 'पायोनियर' में समाचार छपा—कवि रवीन्द्रनाथ..... ता० को इलाहाबाद आ रहे हैं। वे इलाहाबाद के जार्जटाउन मुहल्ले में हाईकोर्ट के एडवोकेट प्यारेलाल बन्द्योपाध्याय के घर ठहरेंगे। चिन्तामणि बाबू पायोनियर को नियमित रूप से पढ़ते थे। उन्होंने अगले दिन प्रातःकाल मुझे बुलाकर कहा—"पंडितजी! आज मेल से कवि इलाहाबाद आ रहे हैं। आपने सुना है?" मैंने कहा—"सुना है कल शाम से पहले।" यह सुनकर चिन्तामणि बाबू ने कहा—"तो आप कल शाम को ४ बजे के बाद एक बार प्यारेलाल बाबू (कवि के निकट संबंधी) के बँगले पर जाकर कवि से अनुरोध कर आइए कि इंडियन प्रेस में पधारने की कृपा करें। तदनुसार मैं उसी समय बनर्जी बाबू के बँगले पर गया। वहाँ बगीचे में एक पक्के चबूतरे पर बैठे कुछ लोग गपशप कर रहे थे। नवागत महापुरुष को देखते ही मैंने समझ लिया कि यही कवि रवीन्द्रनाथ हैं। मैं अनेक स्थानों पर कवि के अनेक चित्र देख चुका था। ज्यों ही मैं चबूतरे के समीप जाकर नमस्कार करके खड़ा हुआ, कवि ने पूछा—'आप कौन हैं?' प्यारेलाल बाबू ने ही उत्तर दिया—'ये इंडियन प्रेस के पंडितजी हैं।' सुनते ही कवि बोले—"अच्छा, मैंने इनका नाम नेपाल बाबू के मुँह से सुना है और बीच बीच में मेरा इनसे पत्र-व्यवहार भी हुआ है। इनको देखकर बड़ी खुशी हुई। फिर मेरी ओर देखकर कहा—'कहिए, क्या खबर है?' मैंने यथोचित उत्तर देकर कहा—'चिन्तामणि बाबू ने आपसे इंडियन प्रेस में पधारने का अनुरोध मेरे द्वारा किया है।' कवि ने मेरी ओर ताकते हुए कहा—"मैं इलाहाबाद में चिन्तामणि बाबू से ही भेंट करने के लिए आया हूँ। आप उनसे कहिए कि मैं कल प्रातःकाल ८ बजे प्रेस में आऊँगा।"

मैंने वापस आकर चिन्तामणि बाबू को सब समाचार सुनाया। चिन्तामणि बाबू ने प्रातःकाल उठते ही प्रेस की बरसाती को साफ कराया। आवश्यक सजावट भी हो

*आजकल यह इंडियन पब्लिशिंग हाउस २२।१ कार्नवालिस स्ट्रीट में अवस्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। ७ बजते ही मैं वहाँ पहुँचा। सभी लोग कवि के आने की प्रतीक्षा करने लगे। ८ बजे दो घोड़ों की बग्घी में कवि आ गये। चिन्तामणि बाबू कवि को अभिवादन करके सादर अपनी बैठक में ले गये। बहुत सी बातचीत के बाद कवि ने कहा--"चिन्तामणि बाबू, मेरा एक अनुरोध है। मेरी २०० पृष्ठों की एक कविता-पुस्तक है। उसकी पाण्डु-लिपि मैं लाया हूँ। मैं इलाहाबाद में ७ दिन रहूँगा। इस अवधि के भीतर पुस्तक छाप दीजिए।" "चिन्तामणि बाबू ने स्वीकृति दे दी।

प्रेस-सम्बन्धी बहुत-सी बातें होने के अन्त में कवि ने कहा--"मैं कल ८ बजे पाण्डुलिपि दे जाऊँगा।" इतना कहकर वे प्रेस से विदा हो गये। अगले दिन प्रातःकाल कवि ठीक समय पर पाण्डुलिपि लेकर आ गये, और चिन्तामणि बाबू को सौंपकर आवश्यक बातें करके अपने स्थान को लौट गये। चिन्तामणि बाबू ने कम्पोज करनेवालों को सुबह से आधी रात तक काम पर लगा दिया। उन लोगों के खाने-पीने आदि का बढ़िया प्रबन्ध कर दिया। इससे ३ दिन में ही पूरी पुस्तक कम्पोज कर ली गयी और शाम को कवि के पास संशोधन के लिए प्रूफ पहुँच गया। इस काम की फुर्ती से कवि को बड़ा अचम्भा हुआ। यह तो हथेली पर सरसों जमाना था।

प्रूफ बहुत ही साफ था। देखकर कवि प्रसन्न हुए और दूसरे दिन शुद्ध किया हुआ प्रूफ देने स्वयं प्रेस आये। ७ मशीनें छापने के लिए दी गयीं। छप जाने पर कई प्रकार की जिल्दों में बढ़िया पुस्तक तैयार कर दी गयी। यह सुंदर व्यवस्था देखकर रवि बाबू ने प्रेस और चिन्तामणि बाबू की अधिक से अधिक प्रशंसा की।

अगले दिन दो पहर को कवि इंडियन प्रेस फिर आये। वहाँ स्वागत-सत्कार के बाद बातचीत होने लगी। अन्त में चिन्तामणि बाबू ने उनसे कहा--मैंने आपके बनाये गीतों का गाना कई लोगों से सुना है। एक ही गीत को कोई किसी तरह गाता है, कोई किसी तरह। मेरी एक इच्छा है। 'गीतांजलि' का पहला गीत आपके मुख से सुन लूँ तो क्या कहना।

कवि बोले--मैं पहले तो खुशी से गाता था। वह लोगों को पसंद भी बहुत आता था। लेकिन अब वैसा नहीं गा सकता। फिर भी आपकी बात नहीं टालूँगा। अपनी बैठक में चलिए।

बैठक में जाकर रवि बाबू ने अपने बैठने के लिए एक आसन बिछवाया। उस पर बैठकर कवि ने आँखें मूँद लीं और दोनों हाथ जोड़कर गाना शुरू कर दिया। उनका एक साथी बहुत मन्द स्वर में पियानो बजाने लगा। उस समय कवि के चेहरे पर अनुपम शान्ति की छटा थी। गीत में परमात्मा की प्रार्थना है। इस कारण भाव में कवि की आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे।

कवि के मुख से ऐसा संगीत सुनने का अवसर जिन-जिन को मिला उनके भाग्य की प्रशंसा किये बिना संतोष नहीं होता।

× × ×

कवि की समस्त पुस्तकों को छापने और बेचने का अधिकार रजिस्टर्ड शर्तनामे के अनुसार इंडियन प्रेस को प्राप्त था। हर छमाही पर, जनवरी और जुलाई में, पुस्तकों की बिक्री पर २५% के हिसाब से कवि को रायल्टी दी जाती थी। कुछ दिनों बाद कवि ने अपनी समस्त पुस्तकों की आय शान्तिनिकेतन को दान कर दी। इसलिए अब रायल्टी की आय हर छमाही पर शान्तिनिकेतन भेजी जाने लगी। परन्तु इसमें एक नयी कठिनाई सामने आयी। शान्तिनिकेतन के शिक्षकों को हर महीने वेतन दिया जाता था इसलिए वहाँसे यह माँग की गयी कि रायल्टी की रकम हर महीने मिलने से हमको सुबीता होगा। इसके अनुसार नयी व्यवस्था की गयी।

कुछ दिनों यही सिलसिला चला। अब कवि के शान्ति-निकेतन ने विश्वभारती का रूप धारण कर लिया। इससे व्यय बढ़ गया और व्यय को पूरा करने का एकमात्र साधन कवि की रायल्टी थी। शान्तिनिकेतन के अधि-कारियों ने रायल्टी का रेट ३०% करने का प्रस्ताव किया जो प्रकाशक के लिए सम्भव नहीं था। इस कारण अंत में यह निर्णय हुआ कि विश्वभारती के अधिकारी कवि की पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार स्वयं ले लें और सत्तासी हजार की छपी पुस्तकों का, गोदाम में मौजूद, स्टाक मूल्य का तृतीयांश नकद देकर उठा ले जायँ। विश्वभारती के अधिकारियों ने यही किया।

कवि ने अपनी समस्त पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करने और छापने तथा पुस्तकों के प्रचार का अधिकार इंडियन प्रेस को दिया था, तदनुसार इंडियन प्रेस ने उनकी पुस्तकों का अनुवाद कर हिन्दी में प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदेव और राष्ट्रीयता

श्री श्रीपाद शास्त्री

"The people which loves freedom prepetuates slavery in a large portion of the world with the comfortable feeling of pride of having done its duty"

——रवीन्द्रनाथ ठाकुर (Nationalism)

काल की सीमाएँ थीं, कवीन्द्र रवीन्द्र को परिबद्ध नहीं कर सकीं। उनकी कीर्ति देश एवं भाषा की सीमाएँ लाँघकर समस्त विश्व में व्याप्त हुई है। गुरुदेव ने अपनी रचनाओं में विश्वबन्धुत्व की कल्पना की प्राण-प्रतिष्ठा की एवं विश्वमानवता को सम्भाव्य बनाया। उन्हें अपनी भारतीयता का गौरव था किन्तु उनकी दृष्टि भारत ही तक सीमित नहीं थी। विश्वैक्य की भावना से प्रेरित होकर गुरुदेव ने "विश्वभारती" की स्थापना की। आज विश्व के सभी भागों से यहाँ विद्यार्थी आते हैं और भारत की संस्कृति एवं सभ्यता के महत्तत्त्वों को आदर से ग्रहण करते हैं। गुरुदेव कहा करते थे कि अन्यों में जो कुछ उत्कृष्ट हैं, श्रेष्ठ हैं, अनुकरणीय एवं शाश्वत हैं, वह हमें ग्रहण करना चाहिए। वे वास्तविक स्वतंत्रता के पुरस्कर्ता थे अतः 'केवल भारत के लिए हम' इस प्रकार संकीर्ण मनोवृत्ति से दूर रहा करते थे। पंजाब में जो नृशंस अत्याचार (१९१९) हुए थे उसके विरोध में गुरुदेव ने अपनी उपाधि त्याग दी थी और उसी प्रकार उन्होंने हिजली गोलीकाण्ड की (१९३१) तीव्र भर्त्सना की थी। देश की स्वतंत्रता उन्हें प्रिय थी ही, साथ ही देश की संस्कृति विश्ववन्द्य हो, इस प्रकार की वे अहर्निश कामना करते थे। स्वाभिमान, स्वावलम्बन तथा आत्मोन्नति की उत्कट अभिलाषा उनके ग्रन्थों में पद पद पर प्रकट हुई है।

विश्वमानवता की स्थापना के लिए उन्होंने विश्व को "वन्दे मातरम्" का सन्देश दिया। उनके स्वदेशप्रेम एवं विश्वमानवता के प्रेम में पूर्णतः अविरोध है। इस सम्बन्ध में वे एक स्थान पर कहते हैं——

राष्ट्रीयता की भावना भारतीयों के रक्त में नहीं रही क्योंकि वह संकीर्णता को जन्म देती है। हम परमात्मा एवं निखिल मानव जाति की अपेक्षा 'राष्ट्रीयता' को श्रेष्ठ नहीं मानते। और वास्तव में अखिल मानवता के कल्याण से बढ़कर देश कोई वस्तु नहीं है। भारत में अनेक जातियाँ एवं पन्थ हैं किन्तु फिर भी यहाँ आध्यात्मिक एकता है। नानक, तुलसीदास, कबीर तथा तुकाराम आदि सन्तों ने हमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" का दिव्य सन्देश दिया जिससे सहज में ही भारत में आध्यात्मिक एकता का निर्माण हो सका। और आध्यात्मिक एकता की भावना राष्ट्रीयता की संकीर्णता से श्रेष्ठ मानी गयी है इसलिए आज हमें राजनीतिक एकता की अपेक्षा सामाजिक एवं आध्यात्मिक एकता की अधिक आवश्यकता है। इससे न केवल भारत का अपितु समस्त संसार का कल्याण होगा।

राष्ट्र की व्याख्या करते समय गुरुदेव कहते हैं कि आर्थिक एवं राजनीतिक हितों के आधार पर निर्मित एवं परिबद्ध राष्ट्र 'राष्ट्र' संज्ञा के योग्य नहीं हैं। राजनीति समाज का अन्तीय ध्येय कदापि नहीं हो सकता तथापि समाज को अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह प्रपंच करना पड़ता है। मानव जाति की पूर्णता राष्ट्र का वास्तविक ध्येय होना चाहिए। राष्ट्र उच्च सामाजिक जीवन का आदर्श होना चाहिए। राजसत्ता एवं व्यापार के लोभ के कारण राष्ट्र निखिल मानव जाति की अवनति का कारण हो जाता है किन्तु आज पश्चिम में व्यापार एवं राजसत्ता ही मूलभूत ध्येय बन गये हैं, वे सामाजिक सहकारिता आदि को गौण मानते हैं। उन्होंने धीरे-धीरे सत्ता हस्तगत की, ऐसा करते समय वे सदा ही आध्यात्मिक मूल्यों की अवहेलना करते रहे। वस्तुतः आध्यात्म की आधार-शिला पर ही राजसत्ता का भवन खड़ा होना चाहिए था। हमारी समस्याएँ मूलतः सामाजिक स्वरूप की हैं न कि राजनीतिक। भूतदया से परमात्मा को श्रेष्ठ कहनेवाली शिक्षा का हमें विरोध करना चाहिए क्योंकि मानवता की रक्षा राष्ट्र से बढ़कर अधिक महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्र की समस्याओं के विषय में गुरुदेव कहते हैं कि हमारी समस्याओं का हल युद्ध नहीं है। बारूद, सेनाएँ तथा युद्धों से विश्व का विनाश हो रहा है, यदि विश्व को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि ९ वर्ष की अवस्था में

महाकवि १२ वर्ष की अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

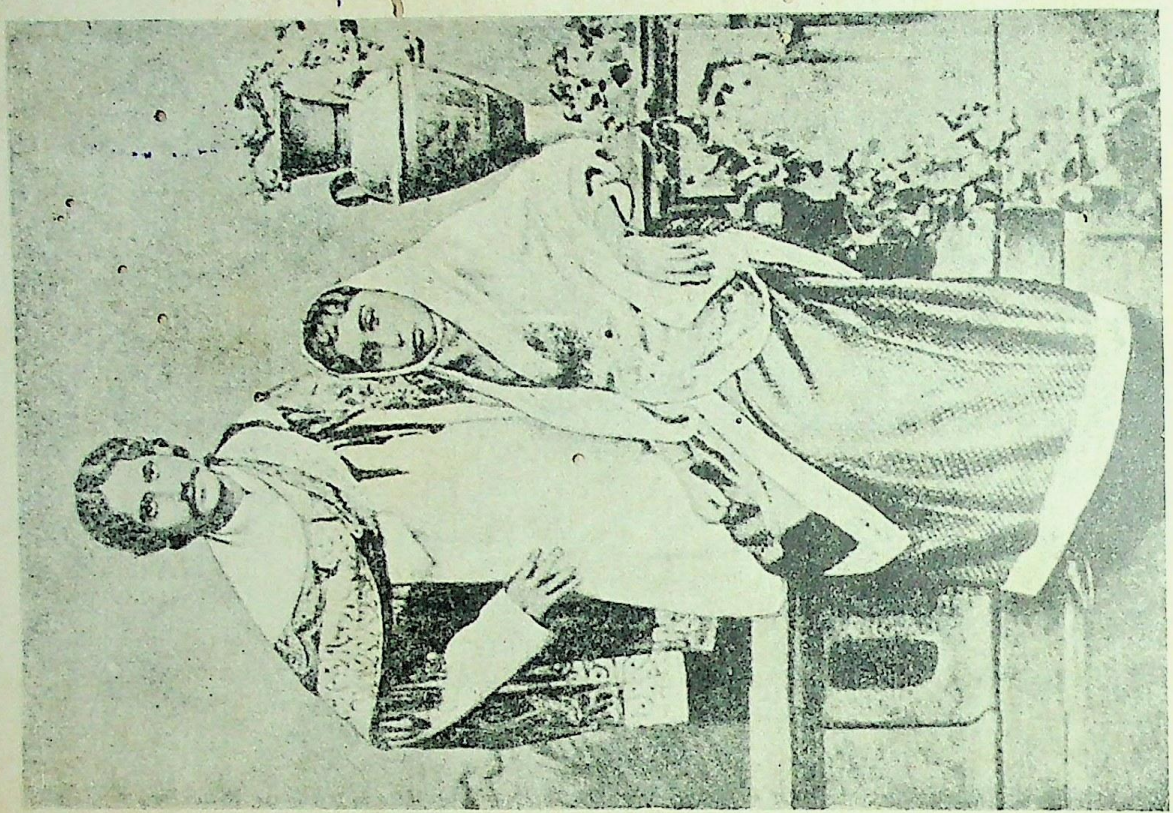

महाकवि विवाह के समय पत्नी के साथ

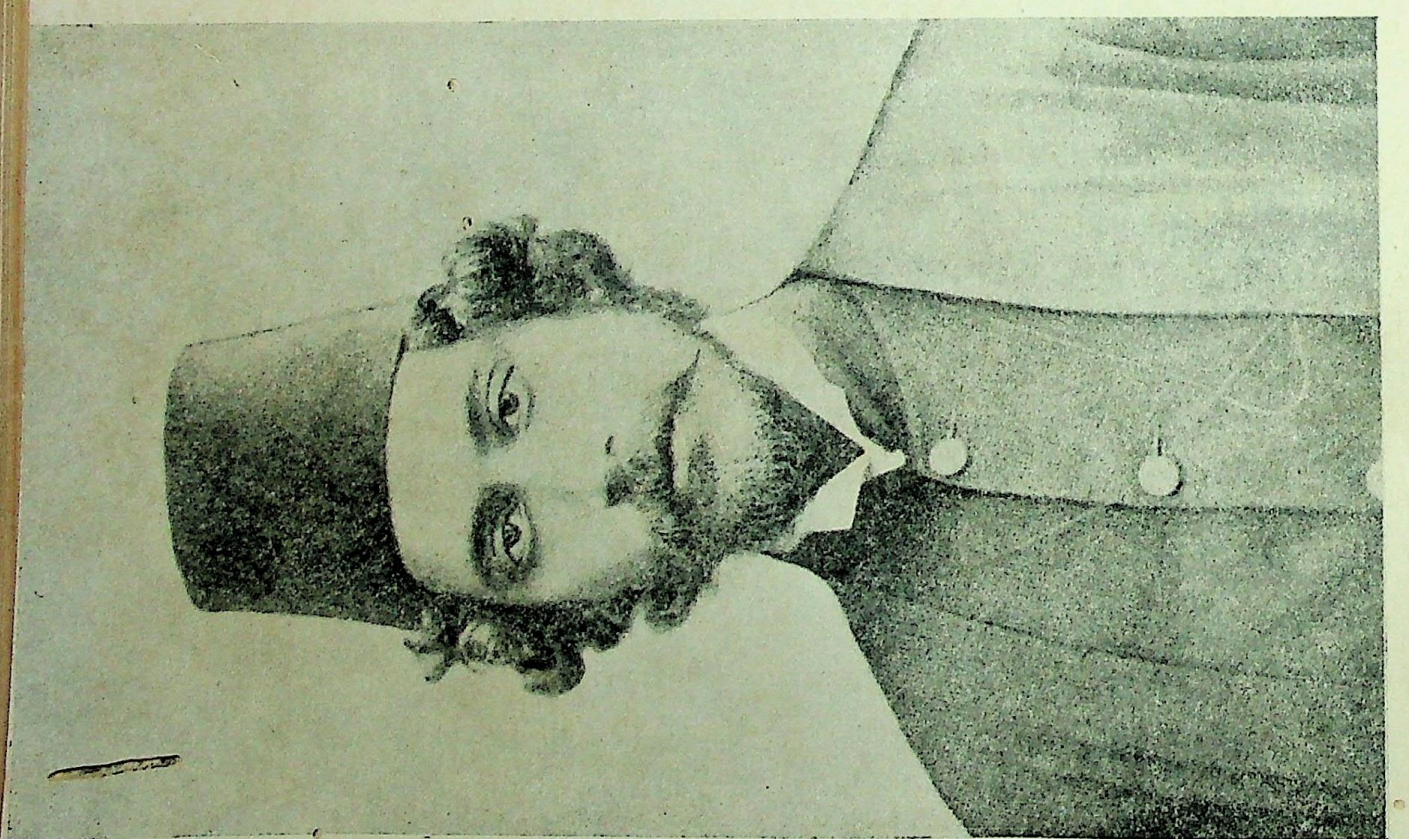

इंगलैंड में महाकवि विद्यार्थी के रूप में (२२ वर्ष की अवस्था)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112913

विनाश से बचाना है तो हमें शान्ति, प्रेम एवं सद्भावना की स्थापना करनी होगी।

इसके लिए सभी राष्ट्रों की संस्कृतियों एवं सुधारों में सामंजस्य निर्माण करना होगा। जिससे हमारी आत्मिक शक्तियाँ विकसित हो जायेंगी। पश्चिमी राष्ट्रों ने आधिभौतिक विषयों में बहुत उन्नति की है किन्तु वह हमारे लिए निष्प्रयोजन है। उनसे स्पर्द्धा करना अथवा उनका अन्धानुकरण करना हमारे लिए आत्मघातक है। जहाँ ये पश्चिमी सुधार क्षण भर अपनी शोभा-सुषमा से विमोहित करनेवाले गुबारों के समान अल्पजीवी हैं वहाँ हमारी संस्कृति शान्त-मन्द्र प्रदीप्त अखण्ड दीप के समान है यद्यपि उसमें आँखों में चकाचौंध निर्माण करनेवाला प्रकाश नहीं है फिर भी वह अपनी पवित्रता एवं शाश्वत दिव्यता से हमारे हृदय को आलोकित कर रही है।

राजनीतिक उपलब्धियों के विषय में गुरुदेव ने एक स्थान पर कहा था कि केवल राजनीतिक उपलब्धियों के लिए "एकराष्ट्रीयता" की भावना का निर्माण करने में हमारे सम्पूर्ण सामर्थ्य का व्यय करना हानिकारक सिद्ध होगा क्योंकि उसके बाद आध्यात्मिक एवं आत्मिक उन्नति के लिए हमारे पास कोई साधन शेष नहीं रहेंगे। इँगलैंड की नौ दल सेना पर विजय पाने के लिए स्विट्जरलैण्ड ने अपनी समस्त शक्ति लगाकर एक दल तैयार किया था किन्तु उससे कुछ न बन पड़ा और अन्त में उन्हें अपने सर्वस्व से हाथ धोने पड़े।

गुरुदेव आशावादी दृष्टिकोण रखते थे, देश की विपन्नावस्था देखकर वे कहते थे आज यद्यपि हमारे दुर्दिन हैं तथापि हमारा भविष्य उज्ज्वल है। नैतिक बल के सम्मुख साधन सामग्री की प्रचुरता कुछ भी नहीं है, अन्ततोगत्वा नैतिक शक्तियाँ ही विजयी होती हैं। फलाकांक्षा से रहित होकर, निष्काम भाव से मनुष्य को स्वकर्म करना चाहिए।

भारत के प्राचीन गौरव के विषय में कहते हुए गुरुदेव लिखते हैं कि हमारी संस्कृति इतनी समृद्धिशालिनी है कि हमें किसीके सामने हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत पश्चिमी राष्ट्रों को ही हमारे सम्मुख याचना करनी होगी। पश्चिमी देशों एवं भारत का सम्बन्ध केवल दैववश हुआ है। हमने कभी उनके सम्मुख याचना नहीं की, न ही हम दरिद्री थे, किन्तु आज उनके संसर्ग से अवश्य हम दरिद्री हो गये हैं। अपनी जन्मजात व्यवसायी वृत्ति के कारण भारत में जो कुछ भी था उसे लूटकर ले जाने में इन विदेशियों को जरा भी लज्जा-ग्लानि नहीं हुई। फिर भी हमने इन पश्चिमियों की अवहेलना नहीं की क्योंकि स्वतंत्रता से एकाकी रहना हमारी प्रकृति के विपरीत था और है। आज भी हम भारत एवं पश्चिमी देशों की मित्रता की कामना करते हैं। पृथ्वी पर सभी दूर मानव-स्वभाव एक सा है इसलिए हमें निराश नहीं होना चाहिए। जब ये पश्चिमी स्वोत्कर्ष के लिए अन्यों पर प्रहार करने के लिए उद्यत होते हैं तब उन्हें इस बात का स्मरण नहीं रहता कि वे अपने ही हाथों से अपनी कबर खोद रहे हैं।

राष्ट्र की परिभाषा करते समय उन्होंने एक स्थान पर लिखा है--बहुजन समाज की संगठित शक्ति को हम राष्ट्र कहते हैं। अपने बल एवं कार्यक्षमता के क्षय के निरोध में राष्ट्र प्रयत्नशील रहते हैं जिससे कि मानव की एक बहुत बड़ी शक्ति का अपव्यय होता रहता है। वे अपने उच्च ध्येयों से विमुख होकर अशाश्वत-पार्थिव भौतिक वस्तुओं की उपलब्धि में अपनी शक्तियाँ गँवाते हैं। राष्ट्र-सेवकों को वृथा भ्रम हो जाता है कि वे देश-सेवा कर कोई उच्च कार्य कर रहे हैं। यही उनकी इतिकर्तव्यता है, वस्तुतः इस भ्रान्त धारणा से मानवजाति की बड़ी हानि हुई है--हो रही है। हमें यह जान लेना चाहिए की राष्ट्र एक निर्जीव यन्त्रमात्र है। इस यंत्र की उपासना की व्यर्थता एवं निष्प्रयोजना का ज्ञान हो जाने पर हम जान पायेंगे कि वास्तव में मनुष्य की आत्मिक शक्ति एवं बौद्धिक सामर्थ्य में बहुत बड़ा अन्तर है, जहाँ आत्मशक्ति से मनुष्य पूर्णता की ओर अग्रसर होता है वहाँ बौद्धिक सामर्थ्य के अभिमान से उसका अधःपात होता है। राष्ट्रयंत्र का निर्माण बौद्धिक सामर्थ्य पर आधारित है जिससे उसकी क्षुद्रता का सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। ये राष्ट्र-सेवक स्वतः को बड़ा ईमानदार एवं सत्शील समझते हैं किन्तु दूसरों के अधिकारों का अपहरण अथवा अवहेलना करने में उन्हें किंचित् भी संकोच नहीं होता। और वे जो स्वतः की स्वतंत्रता का आदर करते हैं वे दूसरों को परतंत्रता में रखने में स्वतः को धन्य समझते हैं।

"राष्ट्रीयता" की वृत्ति के विषय में गुरुदेव ने एक स्थान पर कहा है कि व्यक्ति के रूप में जो लोग स्वभाव

पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महाकवि विवाह के समय पत्नी के साथ
इंग्लैंड में महाकवि विद्यार्थी के रूप में (२२ वर्ष की अवस्था)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बुरे नहीं होते, सत्ता एवं सम्पत्ति के लिए संगठित हो जाने पर पूर्णतः व्यवसायी एवं तानाशाह बन जाते हैं और ऐसे कृष्णकृत्य कर सकते हैं जो कि उनके पूर्व जीवन में कदापि सम्भव नहीं थे। सामान्य व्यक्ति का व्यवसायी हो जाने पर यह हाल हो जाता है तब सम्पूर्ण राष्ट्र में राष्ट्रीयता का संचार हो जाने पर क्या होगा? आज राष्ट्रीयता राष्ट्रों का व्यवसाय सा हो गया है, और व्यवसाय में छल, कपट, झूठ सभी का प्रश्रय लिया जाता है। व्यापारी के सत्ताधीश हो जाने पर उसके गुण शतगुणिङ्ग हो जाते हैं।

राजकीय दृष्टि से शासन करनेवाली नौकरशाही ने हमारे हृदय में राष्ट्रीयता की भावना का संचार कराया है जिससे हमारी बड़ी हानि हुई है और देश की वास्तविक प्रगति में व्यवधान निर्माण हो गया है। आज हमारे देश में अनेक संस्थाएँ राजकीय स्वायत्तता मात्र की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रही हैं। इसमें हमें अनेक आपदाएँ सहनी होंगी, निराशा, छल तथा पराजय से संघर्ष करना होगा; अतः हमें सत्य के लिए तन मन धन से अपने सम्पूर्ण नैतिक बल से प्रयत्न करना चाहिए। हमें कष्ट सहने का अभ्यास करना होगा। अपने नैतिक बल के आधार से ही हम विदेशियों को भारत के बाहर कर सकेंगे। पुरातन-वृद्ध-जरा-जीर्ण रूढ़ियों एवं जातिभेदों की समाप्ति के बिना देश का उद्धार सम्भव नहीं है।

यूरोप में अनेक देश दिखते हैं किन्तु वास्तव में यूरोप एक बड़ा देश है। इसके विपरीत हमारे यहाँ अनेक देश एक में ठूँस दिये हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा यूरोप में वहाँ के मूल निवासियों को या तो निर्वासित कर दिया था या निःशेष कर दिया था जिससे कि वहाँ आज दो संस्कृतियों में युद्ध नहीं है किन्तु इसके विपरीत हमारे यहाँ अनेक जातियाँ धर्म एवं संस्कृतियाँ हैं जिससे कि हम एक-जीव नहीं हो सके। हमारे यहाँ जो भी आये उन्हें आश्रय मिला। हम अतिथि-सत्कार के लिए यों ही प्रसिद्ध नहीं हैं। सभी स्वतन्त्र थे इसलिए एकता में बाधा-निर्माण होना स्वाभाविक था। यदि यह कहा जाये कि हमारी तटस्थता एवं निष्क्रिय प्रतिरोध के कारण ही जातिभेद ने सिर उठाया तो अत्युक्ति नहीं होगी। इन्हीं जातिभेदों के कारण वास्तविक जीवन लुप्तप्राय हो गया और जनता में संकीर्ण मनोवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। जीर्ण मान्यताएँ, वृद्ध रूढ़ियाँ तथा संकीर्ण विचार इन सभी को हमने बड़े जतन से अपने हृदय से लगाया जिससे हमारी बड़ी हानि हुई है। जातियों को व्यवसाय सौंप दिये गये थे जिससे स्पर्द्धा एवं ईर्षा की भावनाएँ प्रबल हो उठीं और हम परस्पर के विषय में निर्भय हो गये। यदि अन्तर्मुख होकर विचार किया जाये इस जातिवाद की भयानकता स्पष्ट हो जायेगी।

समाज के विषय में गुरुदेव ने एक स्थान पर लिखा है—"Society is the expression of those moral and spiritual aspirations of man which belong to his higher nature." इसी के आगे वे कहते हैं कि वासनाओं एवं विचारों की परिपूर्ति के लिए एकत्र मानव-समुदाय को समाज नहीं कहा जा सकता क्योंकि मानव-जीवन सामान्य पशुजीवन की अपेक्षा उच्च होता है, वह आध्यात्मिक एवं नैतिक बन्धनों से बद्ध होता है। जब हम राष्ट्रीयता की दुहाई देते हैं तब वह निम्न श्रेणी का हो जाता है। यदि हमारे सामाजिक उद्देश्य महान् हैं तो मानवता का कल्याण निश्चित है। जब तक हमारी चित्त-प्रवृत्तियाँ स्वतंत्रता की ओर नहीं हैं तब तक हम वास्तविक स्वातंत्र्य का आस्वाद नहीं ले पायेंगे। जहाँ मनुष्य की वृत्ति परावलम्बी है और मन दासता की कल्पना से कुण्ठित है वहाँ स्वतंत्रता होना अथवा न होना एक-सा ही है। इसलिए स्वतंत्र मनःप्रवृत्ति का मूल्य राष्ट्रीयता से कई गुना अधिक है।

राजकीय स्वतंत्रता पा जाने पर मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है यह गलत है, वह केवल सत्ताधारी हो जाता है। जब तक मनोविकार अनियंत्रित हैं, स्वैर हैं—अनिर्बन्ध हैं तब तक दासता से मुक्ति असम्भव है। जिनके जीवन का लक्ष्य पैसा है, जो लक्ष्मी की आराधना में स्वतः को धन्य समझते हैं वे श्रीमानों के तथा धन-सम्पन्न देश के गुलाम बनकर रहा करते हैं और दूसरों पर स्वतः की सत्ता स्थापित करने के लिए अपनी मानवता एवं स्वतंत्रता खो बैठते हैं। स्वतंत्र कहे जानेवाले राष्ट्रों में भी बहुजनसमाज वास्तविक स्वतंत्रता से वंचित है क्योंकि मुट्ठी भर सत्ताधारी उन्हें भेड़ों की तरह हाँकते हैं किन्तु बहुजन समाज समझता है कि वे आन्दोलन करने के लिए स्वतंत्र हैं क्योंकि उनका देश स्वतंत्र है इसी बात से वे प्रसन्न रहते हैं।

हमारे राजनीतिक नेता समझते हैं कि हम पुरातन काल से ही सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से परिपूर्ण हैं और अब जरूरत है तो केवल राजकीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता की। वस्तुतः यह उनका भ्रम है। वे अपनी आज की विपन्न दशा को दृष्टि से ओट कर भूतकाल की समृद्धि एवं वैभव के गीत गाते हैं यह प्रवृत्ति बड़ी हानि-कारक है।

सामाजिक विषमताओं की ओर निर्देश कर गुरुदेव कहते हैं--हमारी दुःसह सामाजिक दशा राजनीतिक स्वतंत्रता के मार्ग में रोड़ा बनी हुई है। समाज के तथा-कथित शुद्र घटकों के प्रति सहानुभूति एवं समानता की भावना न रखना अन्याय है। हम समय के पूर्व ही समझ जायें तो उत्तम होगा। सामाजिक व्यवहारों में अपनी स्थिति एवं परंपरा का ध्यान रखनेवालों को "राष्ट्रीयता" क्या है, इसका भी ज्ञान नहीं होता है। जहाँ मनुष्य मनुष्य को पशु-पक्षियों से भी तुच्छ मानकर व्यवहार करते हैं और जहाँ अनेक जातियों का "संकर" होने पर भी लोग परस्पर भोजन-विवाह व्यवहार नहीं करते, जहाँ पारस्परिक स्नेह, सहानुभूति एवं दया की भावना नाममात्र के लिए भी नहीं है, वहाँके लोग उदात्त ध्येयों के लिए क्या आत्मसमर्पण करेंगे ? गुरुदेव भारत को स्वतंत्रता के उस स्वर्ग में देखना चाहते थे "जहाँ चित्त निर्भय है, जहाँ भाल उन्नत है, जहाँ ज्ञान मुक्त है, जहाँ विश्व संकीर्णताओं की भित्तियों से विखण्डित नहीं हुआ है, जहाँ वाणी सत्य के अन्तःस्थल से उद्गीर्ण होती है, जहाँ अविश्रान्त परिश्रम से कार्य की पूर्णता होती है और जहाँ क्षुद्र पुरातन रूढ़ियों की मरुभूमि में ज्ञान की पीयूषधारा लुप्त नहीं हुई है।" गुरुदेव का स्वप्न कब तक साकार हो जायेगा।

रविबाबू

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

रवि बाबू का प्रथम कविता-संग्रह 'संध्यासंगीत' सन् १८८१ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उनके पचास से कुछ अधिक कविता-संग्रह तथा गीत-संग्रह प्रकाशित हुए। उन्होंने लगभग बारह छोटे-बड़े उपन्यास, सौ से अधिक कहानियाँ और बीस नाटक लिखे। इसके अतिरिक्त साहित्य, स्वदेश, धर्म, लोकसाहित्य, भाषा-विज्ञान आदि विषयों पर उन्होंने निबंध लिखे, यात्रा-विवरण लिखे, पत्र लिखे और यही नहीं बच्चों के लिए वर्णमाला की पोथी तक रची। लगभग बारह वर्ष की आयु से कलम चलाना आरम्भ करके जीवन के अंत तक अविराम गति से लिखते ही रहे।

रवि ठाकुर पुरातन और नूतन के अद्भुत समन्वय थे। एक ओर जहाँ वे उपनिषद् पुराण दर्शन धर्मशास्त्रों के ज्ञाता थे वहाँ ही दूसरी ओर उन्हें विज्ञान, इतिहास, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि आधुनिक विषयों में भी गहरी रुचि थी। विश्व की बढ़ती हुई राजनीतिक गतिविधियों से वे एक क्षण के लिए भी गाफिल नहीं रहे। बीसवीं सदी के आरम्भ से ही उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की भावना प्रतिष्ठित होने लगी थी। उन्होंने केवल स्वदेश की जनता पर होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध ही आवाज नहीं उठायी बल्कि दुनिया भर की शोषित जनता का साथ दिया। वे अनन्त सौंदर्य के उपासक थे, उन्हें जहाँ कहीं जो कुछ भी अशिव, असुन्दर दिखलायी देता था उसका वे तड़पकर विरोध करते थे। बीसवीं शताब्दी के लगभग चार प्रारंभिक दशकों तक उन्होंने भारतीय साहित्य को अत्य-धिक प्रभावित किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदेव और हास्य-रस

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

तुलसी-जयंती के अवसर पर एक बार डॉ० गंगानाथ झा ने कहा था : गोस्वामीजी पर इतना पढ़ा-लिखा जा चुका है कि अब कोई नई बात कह सकना बहुत कठिन है। यही बात, बड़ी हद तक, गुरुदेव पर भी लागू होती है। सभी प्रधान भाषाओं में उनके ग्रंथ प्राप्य हैं। सभी देशों में वे भ्रमण कर चुके थे और अपना संदेश दे चुके थे। सभी विद्वान् उन्हें अपनी चर्चा का विषय बना चुके थे; और विशेष रूप से, इस शताब्दि-जयंती के अवसर पर संसार का कोई कोना नहीं रह गया, जहाँ गुरुदेव की वन्दना न हो रही हो। तब, मुझसे साधारण जन के लिए, उन पर कोई नया प्रकाश डालना असंभव ही है; तथापि, जिसके पास कुछ नहीं होता, वह पत्र-पुष्प से ही पूजा की साध पूरी कर लेता है।

विद्वानों ने कहा है कि महात्माजी सादगी के माध्यम से ईश्वर तक पहुँचना चाहते थे, और गुरुदेव सुन्दरता के। सादगी क्या है और सुन्दरता क्या है ? विद्वानों ने कहा है--सत्यं शिवम् सुन्दरम्। जो सत्य है वह कल्याण-कारी भी है और वह सुन्दर भी है। तीनों एक हैं। इनमें कोई भेद नहीं है, जब तक कि भेद बनाया न जाय।

धर्म कहता है---मैं सत्य हूँ, मेरे पास आओ। मुसीबत यह है कि Christ attracts but the church repels--ईसामसीह तो पास बुलाते हैं, पर पंडा-पुजारी दूर ढकेल देते हैं--। महाकवि रहीम का भी कुछ ऐसा ही हाल हुआ था :--

प्रभु, रहीम, ऐसी करी, ज्यों कमान शर-पूर।
खैंचि आपनी ओर को, फेंकि दियो पुनि दूर॥

धर्म के पोपपंथी-विभाग ने इस संसार पर क्या-क्या अत्याचार नहीं किये ? इतिहास उन अत्याचारों से भरा हुआ है। उधर शक्ति या सत्ता; चाहे वह राजा हो या तानाशाह या जनतंत्र या साम्यवाद; कहती है--मैं कल्याणकारी हूँ, मेरे पास आओ। कानून पर कानून और योजना पर योजना बनाकर, मैं तुम्हारा कल्याण कर दूँगी। देख तो लिया जाकर। आज देश-देश में राजनीतिक शक्ति की जो तूती बोल रही है, वह केवल एटम और हाइड्रोजन बम की सौगात देने के लिए जनता को अपने पास बुला रही है।

इन दोनों, दिखाऊ सत्य तथा दिखाऊ शिव, के बीच है गुरुदेव का सौंदर्य और महात्माजी की सादगी। जैसे यथार्थ में सत्य और शिव एक हैं, वैसे ही महात्माजी और गुरुदेव एक हैं और उनकी सादगी और सौंदर्य भी एक है। जो सादगी है, वही सौंदर्य है और जो सौंदर्य है, वही सादगी है। एक ही शैर में क्या खूब कह दिया है :

तुम्हारा हुस्न आराइश, तुम्हारी सादगी जेवर।
तुम्हें कोई जरूरत ही नहीं बनने सँवरने की॥

यह जो तुम्हारा सौंदर्य है, यही तो तुम्हारा शृंगार भी है। और यह जो तुम्हारी सादगी है, यही तो तुम्हारा आभूषण भी है। फेंको पाउडर, लिपस्टिक घूरे में। तुम्हें इस सब सिंगार-पटार की जरूरत ही नहीं।

आज सबमें बड़ी जरूरत मेल की है। धर्म नहीं करा सका, शक्ति नहीं करा सकी। इन दोनों की कारस्तानी अपने नगर, जबलपुर, में भी देखते रहते हैं। इन दोनों के बीच एक कड़ी है सौंदर्य की। उसका आश्रय लें तो संभव है कि मेल हो जाय। पर वह सौंदर्य है कहाँ ? आकाश में ? जल में ? थल में ? हैं तो ये बड़े सुन्दर। पर जब आकाश वज्र गिराता है, समुद्र उफनता है और पृथ्वी पेट फाड़कर आग उगलती है--तब ? प्रश्न फिर उपस्थित होता है कि आखिर वह सौंदर्य है कहाँ ? कबीरदासजी उत्तर देते हैं :--

मैं तो तेरे पास रे।
मुझको कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास रे।
ना मैं मंदिर, ना मैं मस्जिद, काबा ना कैलास रे॥।
मैं तो तेरे पास रे।

अच्छा; है। हमारे ही भीतर है, पर उसको लेकर ओढ़ें या बिछायें ? उसको लेकर आनन्द कीजिए, आनन्द; जो जीवन का सार है और जो जड़ तथा चेतन तक में मेल करानेवाला है। उसको लेकर खूब आनन्द से हँसिए और रोइए। जी हाँ; रोइए भी। यदि गोपियों को कृष्ण-विरह में रोने का आनन्द न मिलता, तो गोपियाँ न होकर वे भठियारिनें होतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोना और हँसना सबके हिस्से में है, पर सचमुच बड़े वे हैं जो अच्छा हँसना और अच्छा रोना जानते हैं; जिनमें rich sense of humour और natural sense of pathos है। महात्माजी सार्वजनिक जीवन में एकदम गंभीर थे, व्यक्तिगत जीवन में बहुत हँसमुख। सरदार पटेल के कान खींचकर हँसते थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू तो बड़ी तेज-तर्रार थीं। एक बार प्रयाग में उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू का परिचय दिया--आप प्रयाग-निवासियों को नेहरूजी का परिचय क्या दूँ? आप तो स्वयं जानते हैं कि यह बिगड़ा हुआ नवयुवक था। अब मैं केवल इतना ही जोड़ सकती हूँ कि यह बिगड़ा हुआ बुजुर्ग है। जब लोग हँसने लगे तब कहा--पर ऐसा बिगड़ैल नवयुवक कहाँ पायेंगे, जो राष्ट्रीयता के लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार था। और ऐसा बिगड़ैल बुजुर्ग भी कहाँ पायेंगे जो अब अंतर्राष्ट्रीयता के लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार है।

इसी प्रकार सरोजिनी देवी ने महात्माजी को छेड़ा--महात्माजी, आपको गरीबी में रखने के लिए बहुत पसे की आवश्यकता तो पड़ती है। उस समय महात्माजी ने अपना संक्रामक अटूट हास्य किया। और कुछ उत्तर नहीं दिया।

हास्य कई तरह के होते हैं; मुस्कराहट, मन्दहास, अट्टहास आदि। वैसे ही रोना भी; सुबुकना, सिसकना, चीखना आदि। पंडित-शास्त्री ये सब भेद-प्रभेद जानते हैं; सिर्फ ठीक हँसना और ठीक रोना नहीं जानते; जब कि महात्माजी का हास संक्रामक था; सबको आनंदित कर देता था।

दूसरी बार सरोजिनी देवी ने एक करोड़ का, तिलक-स्वराज्य-फंड का चेक पेश करते हुए कहा--महात्माजी, यदि यह चेक लेकर मैं भाग खड़ी होऊँ तो? महात्माजी ने इस बार खाने भर को दिया--मैं जानता हूँ कि तुम भाग खड़ी होने में पूर्ण समर्थ हो।

महात्माजी के द्वितीय राउण्ड-टेबल कान्फ्रेन्स के चुटकुले बहुत प्रसिद्ध हैं। अपनी लँगोटी के बारे में कहा--आप प्लस-फोर्स पसन्द करते हैं, मैं माइनस-फोर्स। प्लस-फोर्स घुटने के नीचे बटनवाला पतलून होता है। महात्माजी घुटने के ऊपर तक धोती पहिनते थे। फोर्स में श्लेष है। फोर्स का अर्थ बल भी है। अर्थात् आप बल का प्रयोग पसन्द करते हैं, मैं अहिंसा का। फिर कहा--आप भोजन के लिए कपड़े पहिनते हैं, मैं भोजन के लिए कपड़े उतारता हूँ। पत्रकारों से कहा--आप लोगों को देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। समुद्र-यात्रा में आपके भाइयों ने मुझे ऐसा दुह लिया है, जैसे मेरी बकरी दुही जा चुकी है। चुंगीवालों से कहा--मुझसे क्या ले लोगे? मेरे पास तो कुल मिलाकर जेल के बर्तन हैं और मेरी ख्याति, जो कौड़ी-मोल की नहीं।

इसी यात्रा में, अनभिज्ञता की सादगी से भी, एक हँसी की बौछार आ गयी। प्रसिद्ध हँसोड़, चार्ल्स चैप्लेन महात्माजी से मिलने आये। जो जगत् को हँसा सके उसे यश और धन की क्या कमी? (एक मैं ही अभागा हूँ कि मेरा हास्य-रस सुनकर श्रोता रोने लगते हैं।) चैप्लेन साहब का यश महात्माजी तक नहीं पहुँचा था। लोगों ने जब आने की खबर दी तब महात्माजी ने कहा--मैं उनसे मिलूँगा अवश्य, पर यह तो बता दो कि मि० चार्ल्स चैप्लेन हैं कौन? 'इस सादगी पे कौन न मर जाय, या खुदा!'

गुरुदेव तो सब ललित कलाओं के स्वामी थे; गद्य, पद्य, संगीत, चित्रकारी, अभिनय आदि आदि। उन्होंने जिस मिट्टी को छू दिया, सोना हो गया। उन्होंने कहा है--मैंने अपने जीवन में इतना लिखा है कि लेखनी मेरी आज्ञा की दासी हो गयी है। ऐसा कहना गुरुदेव का ही हक है। पर वे सर्वसाधारण की भाषा लिखते थे, जब कि महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त आदि कालिदास से होड़ लेते थे और उन्हींके समान उपमा-अलंकारों के पुल बाँधते चलते थे। तत्कालीन बंगीय साहित्यिक गुरुदेव की इस सादगी से असंतुष्ट थे। जब उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला, तब सबकी आँखें खुलीं। इस प्रसंग में गुरुदेव ने जो व्यंग किया, वह ऐतिहासिक है।

वे अटारी पर खिड़की के पास बैठे थे। देखा कि नीचे सड़क पर बड़े-बड़े विद्वान् चले जा रहे हैं। पूछा--यह बंगाल का विद्वद्-समाज आज कहाँ जा रहा है? उत्तर मिला--आपही के पास आ रहा है। कहा--बड़ी कृपा; पर इस अकिंचन पर इतना आभार क्यों? उत्तर मिला--आपको नोबेल पुरस्कार मिला है; उसी की बधाई देने आ रहे हैं। तब गुरुदेव ने हँसकर कहा--महाराज, जिन्होंने पुरस्कार दिया है, वे बधाई भी दे लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी तो मुझ पर पहले ही की-सी कृपादृष्टि बनी रहे। व्यंग्य का आनन्द समाप्त हुआ। गुरुदेव ने फिर उन सबकी खूब खातिर-तवज्जह की।

हाजिरजवाबी हास्य का एक अंग है। उसके एक-दो उदाहरण लीजिए। एक विद्यार्थी ने पूछा--गुरुदेव, आपने कोई महाकाव्य तो लिखा नहीं, तब सब लोग आपको महाकवि कैसे कहते हैं? (महाकाव्य के जो शास्त्रीय लक्षण हैं, उनकी पूर्ति गुरुदेव ने नहीं की)। गुरुदेव ने तत्काल उत्तर दिया--मैंने महाकाव्य लिखा तो था, पर वह माँ भारती की नूपरों से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गया और छोटे-छोटे गीतों के रूप में संसार के कोने-कोने में फैल गया।

एक विद्यार्थी ने पहले कभी लिखी एक कविता का अर्थ पूछा, तब कहा--भाई, जिस चिड़िया ने वह कल्पना दी थी, वह तो कब की उड़ गयी। अब मैं क्या अर्थ बतलाऊँ? इसमें भी कैसा आनन्द है कि चिड़िया की कल्पना को पकड़ने के लिए वे कुछ दिन वृक्ष पर घोसला बनवाकर, उसमें रहते थे। उसका नाम रखा था 'कोबीर नीड़' अर्थात् कवि का घोसला। नारी की कोमल भावना को प्राप्त करने के लिए कुछ दिन परमहंस रामकृष्ण भी नारियों के समान घूँघट काढ़कर व चूड़ियाँ पहनकर रहते थे।

ये तो साधारण संभाषण की बातें हुईं। उनकी गद्य-पद्य की रचनाओं में हास्य-रस भरा पड़ा है। एक जगह ईश्वर से व्यंग किया है--what an eternal waste of time my Master is--मेरे प्रभु अनंतकाल से कितना समय बर्बाद कर रहे हैं--अर्थात् मुझको या समस्त जीवों को जल्दी अपने पास क्यों बुला नहीं लेते? एक बार यह कबाड़ी की दूकान समेट लें और फिर अच्छी दूकान लगावें। उनके लिए यह कौन बड़ी बात है?

नाटक में कला के सभी अंग रहते हैं, तब हास्य कैसे छूट सकता है? गुरुदेव के नाटकों में विदूषक भी हैं, जैसे 'राजा-रानी' में 'देवदत्त'। उपन्यास जीवन के दृश्य हैं। जीवन के साथ हँसना और रोना तो रहेगा ही। सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोरा' में चरित नायक गोरा का कट्टर हिन्दू बनने का प्रयास बहुत हास्योत्पादक है, क्योंकि यथार्थ में गोरा एक स्काच बच्चा था। एक उपन्यास है 'योगायोग' या 'कुमुदिनी'। उसमें आदि से अंत तक कुमुदिनी की बड़ी करुण कथा है। इस करुणा में हास्य और व्यंग्य के जो चित्र खींचे गये हैं, वह कैला गुरुदेव के समान 'मेस्ट्रो' के ही बस की बात है। दूसरा कोई इतनी रोती-पीटती करुणा में इतना हँसता-खेलता हास्य नहीं ला सकता। गुरुदेव के सब ग्रन्थों की चर्चा और उनसे उदाहरण देना थोड़े में संभव नहीं। उनके मनन के द्वारा ही पूरा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि सूर, तुलसी, कबीर, मीरा और इस युग में प्रेमचन्द हास्य-रस के बड़े जबरदस्त प्रणेता थे; यद्यपि वे विशुद्ध हास्य-रस के लेखक नहीं थे। एक कृष्णभक्त स्वामीजी ने मीरा से भेंट करना इसलिए अस्वीकृत कर दिया कि वे किसी स्त्री से भेंट नहीं करते थे। मीरा ने क्या करारा व्यंग्य किया--स्वामीजी से कह दो कि मीरा तो यह समझती थी कि व्रज में एकमात्र कृष्ण ही पुरुष हैं; अन्य सब गोपियाँ ही गोपियाँ हैं। अब मैंने जाना कि स्वामीजी भी पुरुष हैं। उनसे तनिक पूछो तो कि पुरुष रूप में कृष्ण की भक्ति कैसे कर लेते हैं? कहने की आवश्यकता नहीं कि क्षमा-प्रार्थना करते हुए तुरंत स्वामीजी बाहर निकल आये।

सूर के कृष्ण के समान रसिक कौन होगा? पर कृष्ण भगवान् खेल में बेईमानी बहुत करते थे, जिसके लिए देहाती शब्द 'रोन्टाई' है। एक बार श्रीदामा ने कहा--खेल में कभी-कभी बेईमानी हो जाती है, और वह क्षम्य भी है। पर क्यों रे कृष्ण, तुझे क्या हो गया है कि तू बिना बेईमानी किये खेल ही नहीं सकता? श्रीदामाजी को क्या पता था कि परमयोगेश्वर भविष्य जीवन में तथा विशेष रूप से महाभारत के खेल में बहुत-कुछ उल्टा-सीधा खेलने का अभ्यास कर रहे हैं।

कुब्जा ने ऊधव के द्वारा गोपियों को जो व्यंग्यपूर्ण संदेश भेजा था, उसमें भी बहुत आनन्द है। कहा--तब तो थोड़ा-सा दूध-दही चुरा लिया, दो पैसे की मटकी फोड़ दी या लाख की सस्ती चूड़ियाँ तोड़ दीं, तो दौड़ती थीं नन्द-यशोदा के पास शिकायत करने, पिटवाने। अब मैं अपने मोहन को बड़े लाड़-दुलार से रखती हूँ और वे तुम्हें भूल गये हैं। तो रोती क्यों हो? और रोती हो तो रोओ, मेरी बला से; पर मुझ पर जलती क्यों हो? तेरी अकल चरने चली गयी थी?

इन्हीं महापुरुषों के समान, गुरुदेव के साहित्य में अन्य रसों के अतिरिक्त हास्य-रस भी भरा पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस और राग तो सब सुन्दर, सब आनन्द देनेवाले हैं--- बीभत्स और भैरव भी---गुणी चाहिए। शब्द तो सब नग हैं, जड़िया चाहिए। पर गुरुदेव ने विशुद्ध हास्य-रस पर भी दो पुस्तकें लिखी हैं---'हास्य कौतुक' तथा 'व्यंग्य-कौतुक।' संभव है अन्य रचनाएँ भी हों, जिन्हें देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। 'व्यंग्य कौतुक' से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :---

एक स्थान पर लिखते हैं कि भूख के मारे पेट में ऐसी आग लगी थी, ऐसी आग लगी थी कि धोती जलने लगी।

फिर कहते हैं---मेरा यह लेख शीघ्र ही पुस्तकाकार छपेगा, मूल्य ५।।।) मात्र; किन्तु जो लोग डाक-महसूल-स्वरूप ५।।।) अग्रिम भेजने की कृपा करेंगे, उन्हें ग्रंथ, बिना मूल्य, उपहार में भेजा जावेगा।

अब मीमांसा करते हैं, कार्य और कारण की। मुकुन्द घोष नामक एक पड़ोसी बंशी बजाता है; सबेरे, शाम, दोपहर। मैं सुनता हूँ, रोता हूँ और कभी-कभी घर छोड़कर निकल जाता हूँ। सोचता हूँ कि क्या कभी पहले भी ऐसा हुआ था। हाँ, हुआ था। तब राधा ने अपनी सखी को पुकारकर कातर स्वर से कहा था :---

सखी, जरा कह दे कन्हैया से जा कर।
बंशी न बजाए, मेरा जिया न जराये॥

और चंडीदास ने कहा था :---

जहाँ बाँस का नाम नहिं, वहाँ करूँ मैं बास।
नास करूँ जब बाँस का, तब हिय होय हुलास॥

यद्यपि मैं कुलवधू नहीं हूँ, पुरुष हूँ, पर अब बात समझ में आ रही है। मेरे घर के पास एक कान्सर्ट की पार्टी है। उसमें एक लड़का, मुकुन्द घोष, बाँसुरी बजाना सीखता है। भोर से आधी रात तक स, रे, ग, म निकालता है। पहले की अपेक्षा उसे अब बहुत-कुछ अभ्यास हो गया है, फिर भी प्रत्येक स्वर में आधी या चौथाई कसर रह गई है। उस बेसुरेपन से मेरा मन ऊब उठा है; घर में जी नहीं लगता। अब समझ रहा हूँ। राधा ने सखी से कन्हैया को बंशी न बजाने के लिए क्यों कहा था। जान पड़ता है कन्हैया तब नया-नया स, रे, ग, म सीख रहे थे। चंडीदास, न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी क्यों करना चाहते थे ? उनके पड़ोस में कान्सर्ट पार्टी का कोई अड्डा जरूर रहा होगा।

फिर एक विरहिणी को देखते हैं---उसे कमल-पत्र के पंखे की ठंडी हवा अच्छी नहीं लगती। चन्दन के लेप से दाह बढ़ता है। शरद् ऋतु की पूर्णिमा कष्ट दुगना बढ़ा देती है। इससे रात में बेचैनी बढ़ जाती है।

सोचते हैं ऐसा क्यों होता है। तब तर्क-बुद्धि उत्तर देती है कि उस स्त्री को वायु-रोग हो गया है। पहले, किसी समय, राधा को भी यही रोग हो गया था और ये सब कष्ट होते थे। पर राधा के समय में अच्छे डॉक्टर नहीं थे। अब उस स्त्री को किसी अच्छे डॉक्टर से इलाज करवाना चाहिए।

तनिक पुराने देवताओं पर नयी आफत का हाल सुनिए। सभा में प्रायः सभी देवता, एक साथ, अपने-अपने काम से इस्तीफा देने को उद्यत हुए। सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने कहा---मेरी बात अलग है। मैंने तो संसार की सृष्टि और वेद-रचना समाप्त करके स्वयं पेंशन ले ली। इसलिए कोई मेरी पूजा तो नहीं करता, पर आजकल वेद की कटु आलोचना होने लगी है। आलोचकों से मेरा निवेदन है कि बाबू, यह मेरी प्रथम रचना है। भला पहली ही रचना में लेखनी कैसे मँज सकती है ? फिर उस समय विश्वविद्यालय, पुस्तकालय आदि भी तो नहीं थे। बाबू, एकदम सभी कुछ अपने मन से बनाना पड़ा था। उसके पूर्व यदि तुम जैसे सुशिक्षित लोग जन्म ले लेते, तो तुम्हारी समालोचना पढ़-सुनकर, बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त करता। मेरे दुर्भाग्य से तुम बहुत विलंब से उत्पन्न हुए। हाँ, अब दूसरा संस्करण करूँगा तो तुम्हारी बात अवश्य याद रक्खूंगा।

आगे ब्रह्माजी ने कहा---यह तो हुई मेरे अनुताप की बात। अब हे देवताओ, तुम लोग किस मनोदुःख से मर्त्यलोक पर असंतुष्ट होकर, अपने बहुत पुराने पद छोड़ने के लिए प्रवृत्त हुए हो,---यह बतलाओ। इस युग में मिनिस्ट्री तो कोई छोड़ता नहीं।

देव-गुरु बृहस्पतिजी ने कहा---महाराज, हम मनुष्यों के हृदय-मंदिर में रहते थे, पर अब साइन्स नामक राक्षस ने हमें वहाँसे निकाल-निकाल प्रयोगशालाओं और एवोल्यूशन की थ्योरियों में रखना शुरू किया है, जहाँ मेरा तो दम घुटता है। इसलिए मुझ नालायक को तो 'डिसमिस' ही कर दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी ब्रह्माजी सोच ही रहे थे कि प्रजापति और कामदेव ने कहा--भगवन्! हम बिना कुछ लिये-दिये मनुष्य के विवाह-संस्कार करा देते थे, पर अब रुपया नामक एक चक्रकार देवता पैदा हुआ है, जिसने हमारा सब काम छीन लिया है। अब विवाह-संस्कार केवल रौप्य देवता की कृपा से होते हैं। हम 'विदाउट पे' तो थे ही। इसलिए हमारा तो विभाग ही तोड़ दीजिए।

तब यमराज ने उठकर कहा--मर्त्यलोक में अब तक मैं ही सबसे बढ़कर भय का कारण था, किन्तु वहाँ अब मेरी अपेक्षा अधिक भय उपजानेवाले जीव का जन्म हुआ है। इसलिए पुलिस दारोगा के हाथ में अपना यम-दण्ड देकर, मैं आज से आधी नहीं, तो चौथाई ही पेंशन पर जाना चाहता हूँ।

कार्त्तिकेयजी ने कहा--मैं देव-सेनापति हूँ, पर अब मुझसे देवताओं की रक्षा नहीं हो सकती। संसार में एक सर्वशक्तिमान् जीव उत्पन्न हुआ है, जिसे पत्र का सम्पादक कहते हैं। अब मेरी 'ड्यूटी' उसीसे हो सकेगी। मैं उसे अपना मयूर भी दे दूँगा, जिससे उसके विज्ञापन का बहुत-कुछ काम चलेगा।

वरुण देव ने आँखों में जल भर कर कहा--अब बोतल-वासिनी के सामने जल तो कोई पीता ही नहीं। इसलिए मेरा इस्तीफा मंजूर हो। इस पर अन्य देवताओं ने आपत्ति की कि अब भी कुछ दुर्बल मनुष्य वारुणी में सोडा-पानी मिलाते हैं। अतएव, जब-तक उन्हें विशुद्ध वारुणी पान करने का अभ्यास न हो जाय, तब तक इनका इस्तीफा मंजूर नहीं करना चाहिए।

ब्रह्माजी फैसला दें, इसके पहले ही बम भोलानाथ शंकरजी ने, आधे नयन नशे के कारण मूँदे हुए ही कहा--मुझसे भी बढ़कर भँगेड़ियों-गँजेड़ियों की अब संसार में कमी नहीं है। उन्हें प्रलय-कार्य का भार देकर, मैं निश्चिंत हो इष्टदेव का भजन करना चाहता हूँ। और तुरंत समाधिस्थ हो गये। तब कौन उनसे क्या कहे?

सबके बाद देवी सरस्वती ने अपना हाल इतने करुण स्वरों में कहना आरंभ किया कि भगवान् इंद्र के पूरे एक हजार नेत्रों से आँसू बरसने लगे। उन्होंने कहा--मैं स्त्री की जाति हूँ। मेरा हृदय बहुत कोमल है। मुझ माता के मन में बच्चों पर कुछ दया-मया है। उनके पढ़ने के लिए आजकल जो पुस्तकें चुनी गयी हैं, उन्हें मैं नहीं पढ़ा सकूँगी। पढ़ाते समय मेरी छाती फटती है और बालकों की बोध-शक्ति नष्ट होती है, तथा उत्साह भग्न हो जाता है। यह कठोर कार्य किसी बलिष्ट पुरुष को सौंप देना अच्छा है। यमराज देव का इस्तीफा 'पेन्डिंग' में है ही। पुराने विभाग से मुक्त करके शिक्षा-विभाग उन्हें सौंप देना चाहिए।

यमराजजी ने तुरंत उठकर प्रतिवाद किया कि मेरी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि आचार्य, अध्यापक, इन्सपेक्टर आदि तो हैं ही। उनकी कठोरता की बराबरी भला मैं क्या खाकर करूँगा?

अन्त में यह तुच्छ लेखक कहना चाहता है कि अंतिम निर्णयों का मुझे पता नहीं। संभव है देवता भी, विधान-सभाइयों के समान, दूसरों का व्याख्यान न सुन, कैन्टीन में चाय-पानी या सोमरस के लिए खिसक गये हों। इस कारण कोरम गड़बड़ हो गया हो, और सभा स्थगित हो गयी हो। इस निर्णय से मैं सहमत हूँ कि अभी कई दुर्बल लोग वारुणी में सोडा-पानी मिलाते हैं, अतएव वरुणदेव को बराबर 'ड्यूटी' देनी चाहिए।

शिक्षा-विभाग से मेरा भी पुराना संबंध है। मेरा नम्र निवेदन तो यह है कि आजकल शिक्षा प्रदान करने के लिए आचार्य, अध्यापक, इंस्पेक्टर, लेखक, प्रकाशक मुद्रक, विक्रेता किसीकी तनिक भी आवश्यकता नहीं। अब तो विज्ञान की कृपा से बटन दबाने से बम भी बरसने लगेंगे, और वेद-पाठ भी होने लगेगा। बटन दबाकर जैसे फिल्मी गीत सुनते हैं, वैसे ही गणित आदि कठिन विषयों के प्रश्नों का हल भी सुन लिया करेंगे। जब मात्र बटन दबाने से सब काम होता है, तब मनन, चिन्तन, अध्ययन या चुटैया बाँध-बाँधकर रटन-घोखन की क्या जरूरत है? बुश शर्ट और पुश बटन का तो यह युग ही है।

इसलिए शिक्षा के समान बेकाम चीज को बुश शर्ट और पुश बटन के हवाले छोड़कर, हमें अपनी परमपूज्या नगड़दादी, मैडम सरस्वती को बुढ़ापे में गंगावास का अवसर दे देना चाहिए। यह अवश्य है कि वे 'पद्मासने संस्थिताम' रहती थीं। इसलिए 'रिटायर' करते-करते, उन्हें 'पद्मभूषणा' की उपाधि भी दे देनी चाहिए।

गुरुदेव के साहित्य में हास्य-रस का सौंदर्य अगाध है। ये तो कुछ बूँदें मात्र हैं, मेरे टूटे-फूटे शब्दों में। अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए मैं मानता हूँ कि मेरे पास कुछ नहीं था, इसलिए पत्र-पुष्प से ही गुरुदेव की पूजा की साध पूरी कर ली। गुरुदेव की जय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

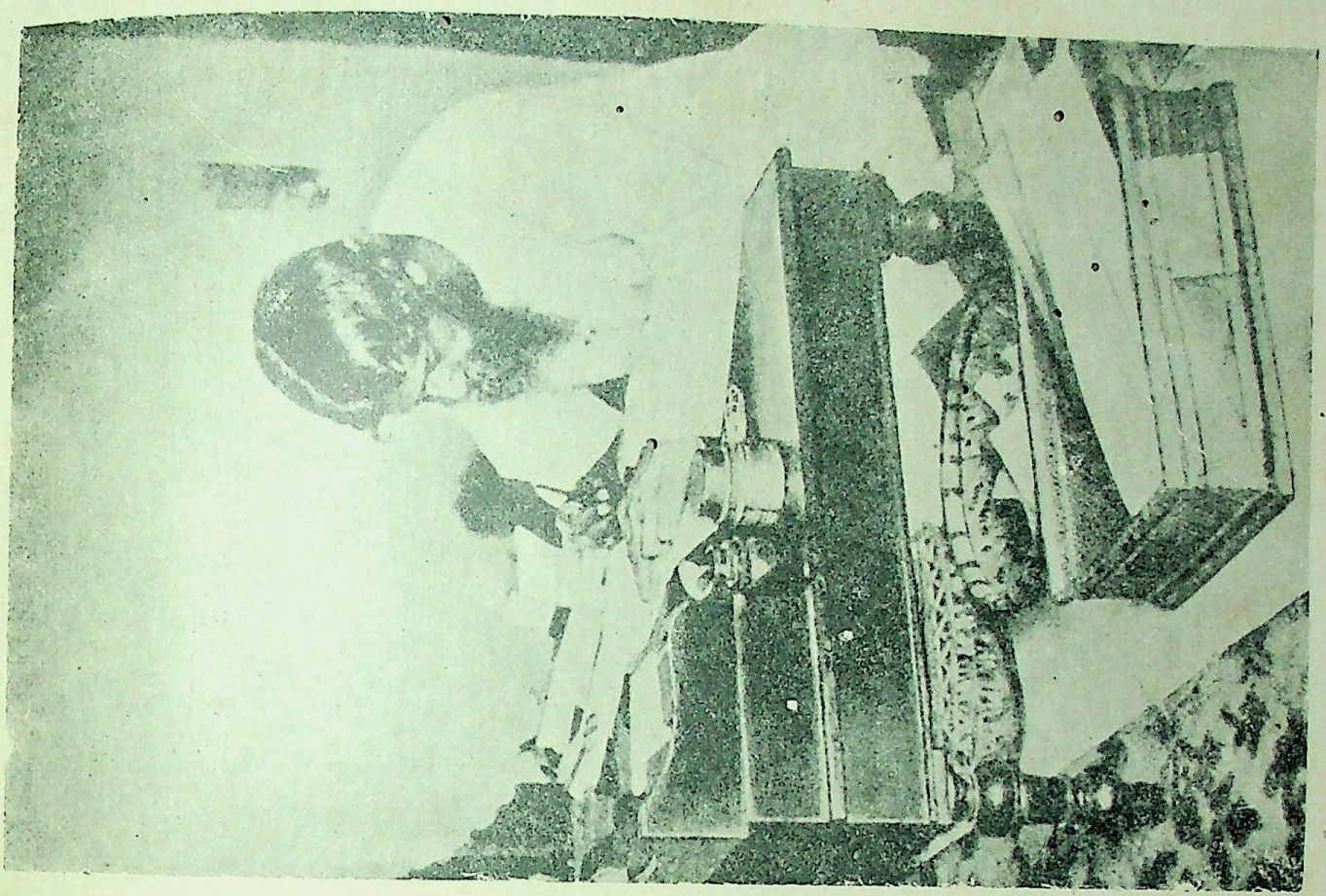

महाकवि युवावस्था में (लेखन-रत)

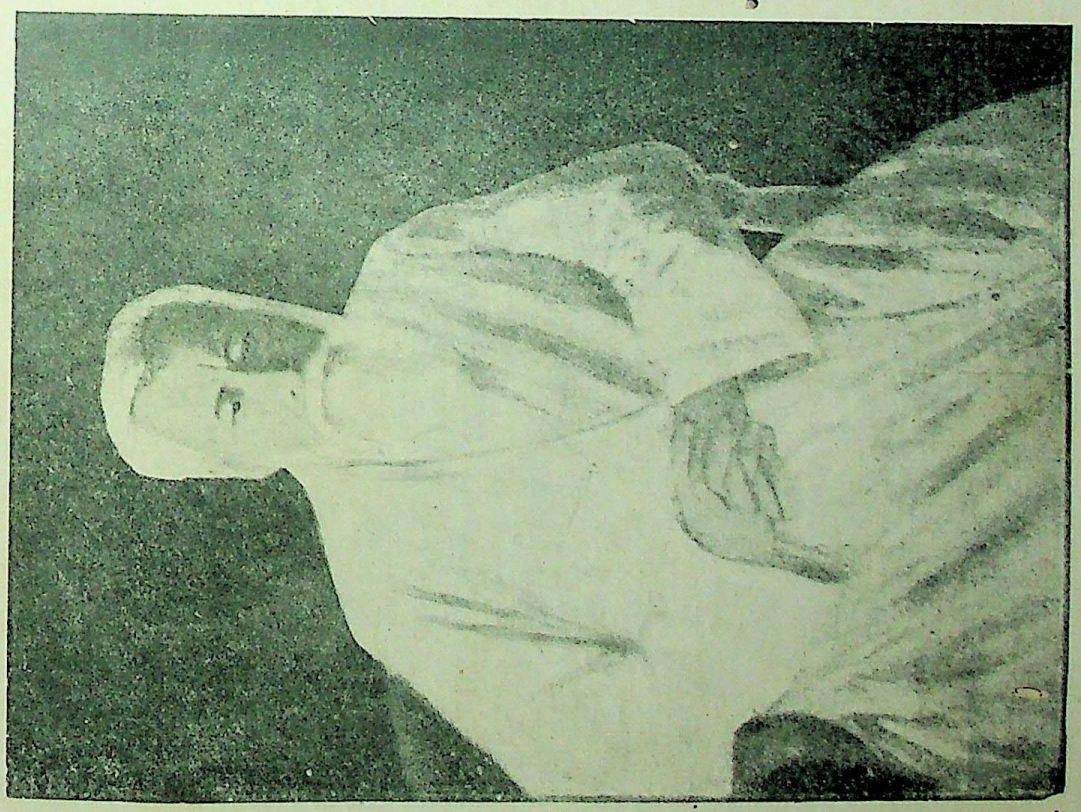

महर्षि देवेन्द्रनाथ टागोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

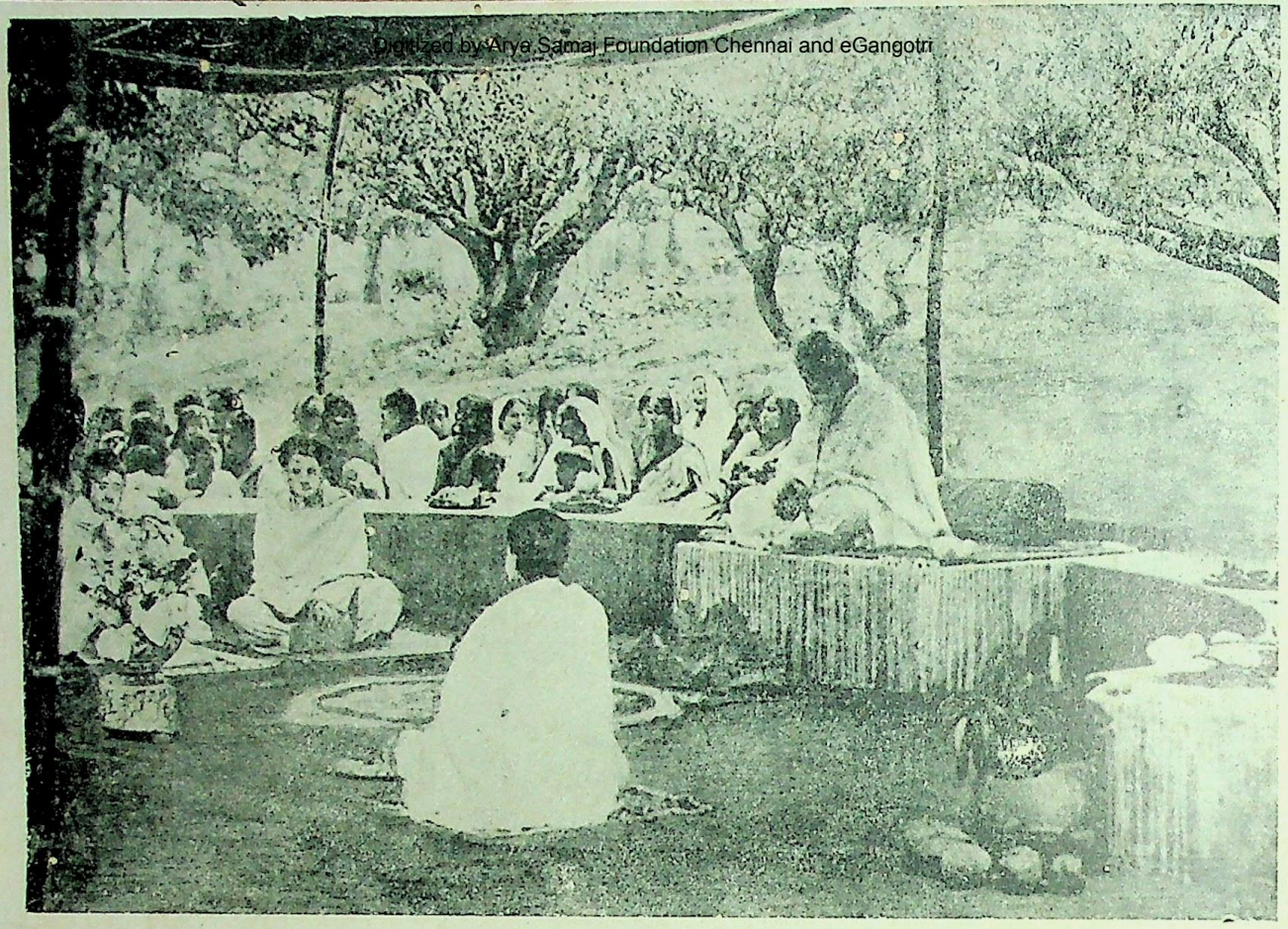

शांतिनिकेतन में प्रार्थना करते हुए महाकवि

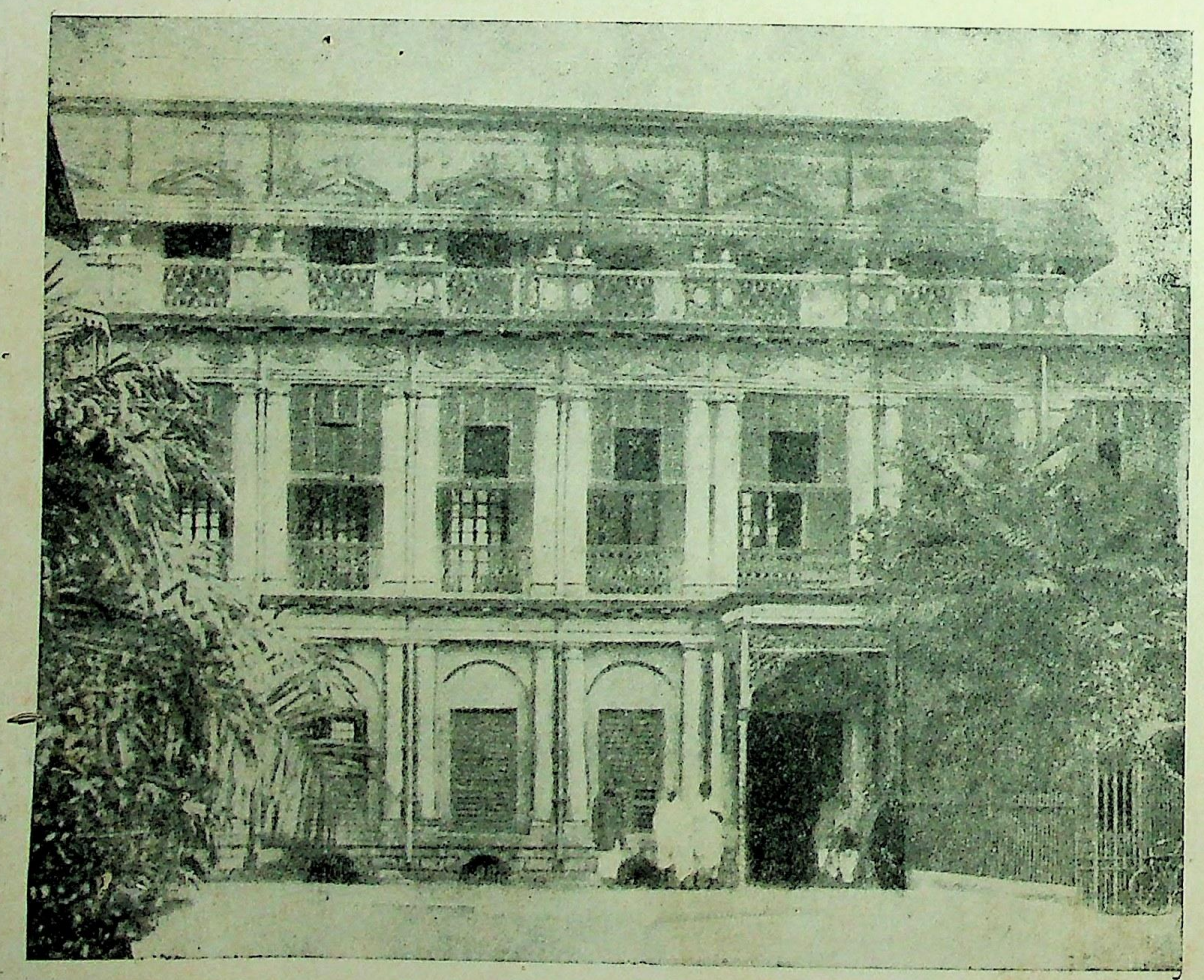

जोड़ासाँकू, कलकत्ते में महाकवि का जन्मस्थान जो अब रवीन्द्रभारती का भवन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब सोवियत जनता ने टैगोर का स्वागत किया

श्री उदयनारायणसिंह

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत के उन चोटी के साहित्यकारों में से हैं जिनकी रचनाओं ने न केवल भारतीय जनता का वरन् संसार के प्रायः सभी देशों की जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। सोवियत संघ के महान् दार्शनिक एवं मानवतावादी लियो ताल्स्ताय के समान आपने भी अपने जीवन-काल में ही अपनी कृतियों, सत्कार्यों एवं विचारों द्वारा विश्व-ख्याति प्राप्त कर ली। आप सच्चे अर्थ में आधुनिक भारत के प्रथम अंतर्राष्ट्रीयतावादी कहे जा सकते हैं जिन्होंने विदेशों में जाकर वहाँकी जनता के प्रति भारतीय जनता के मैत्री एवं सद्भावना के संदेश को उस समय प्रकट किया जब कि ब्रिटिश शासनसत्ता के दमन एवं अत्याचार से भारतीय जनता के नेताओं एवं साहित्यकारों का विदेशों में जा सकना यदि असंभव न था तो अत्यधिक दुरूह अवश्य था। टैगोर ने चीन, जापान, बर्मा, श्रीलंका, इन्डोनेशिया, सोवियत संघ, ब्रिटेन, ईरान, फ्रांस, अमरीका आदि देशों की यात्रा कर वहाँकी जनता के प्रति भारतीय जनता के मैत्री एवं सद्भाव को व्यक्त किया था। टैगोर ने भारतीय इतिहास के एक ऐसे युग में विदेशों में देश की प्रतिष्ठा एवं सम्मान को बढ़ाया जब कि विदेशों में ब्रिटिश उपनिवेशवादी भारत-विरोधी तरह-तरह का प्रचार कर रहे थे। टैगोर ने इन स्थानों में जाकर वहाँकी जनता को न केवल भारत की वास्तविक स्थिति से अवगत किया वरन् भारतीय जनता के पक्ष में उपयुक्त वातावरण भी पैदा किया।

रूस का निमंत्रण

सितम्बर १९२६ में अपनी यूरोप-यात्रा के समय रवीन्द्रनाथ टैगोर को सोवियत सांस्कृतिक सम्पर्क संघ से सोवियत संघ की यात्रा करने का निमंत्रण प्राप्त हुआ। निमंत्रण-पत्र में कहा गया था कि "वर्तमान समय में संसार में सोवियत संघ ही एक ऐसा देश है जहाँ एक ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण हो रहा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति खुशहाल रह सके और कोई भी व्यक्ति उपेक्षित न किया जाय। हम अब भी अपने आदर्शों की पूर्ति में काफी दूर हैं लेकिन उस दिशा में हमने प्रथम तथा अत्यधिक कठिन कदम उठाया है। हम लोगों को इस दिशा में कुछ सफलताएँ भी मिली हैं। यद्यपि हमारे समक्ष अविश्वसनीय कठिनाइयाँ हैं लेकिन हम न केवल एक नवीन अर्थ-व्यवस्था तथा एक नवीन नीति का निर्माण कर रहे हैं वरन् एक नवीन संस्कृति तथा एक नव-साहित्य का भी सृजन कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि आप इस निर्माणकार्य की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने में अभिरुचि रखते होंगे।" इस निमंत्रण-पत्र को प्राप्त कर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने उत्तर में लिखा कि "जिस समय मैंने रूस के समृद्ध साहित्य का अध्ययन किया था उसी समय से रूस की सराहना करने लगा। रूस के इस निमंत्रण को प्राप्त कर मेरा हृदय रूस की यात्रा करने के लिए उत्सुक है।" लेकिन स्वास्थ्य की गड़बड़ी से आपकी यह इच्छा शीघ्र पूरी न हो सकी। रवि बाबू की सोवियत संघ की यात्रा करने की इच्छा बराबर बनी रही जो २७ अप्रैल १९२८ को अपने भतीजे के नाम लिखे गये एक पत्र से प्रकट होती है। रवि बाबू ने लिखा था कि "रूस की व्यक्तिगत यात्रा पर जाने तथा यह देखने की मेरी उत्कट इच्छा है कि किस प्रकार वहाँकी जनता गाँवों को उन्नतशील तथा सहकारी आन्दोलन को कार्यान्वित कर रही है।" रवि बाबू ने यह भी लिखा था कि "मैं किसी भी दशा में मरने से पूर्व सोवियत संघ में क्या हो रहा है, देखना चाहता हूँ। यदि मेरे स्वास्थ्य ने गँवारा किया तो मैं शीघ्र ही प्रस्थान करूँगा।"

अंत में रवीन्द्रनाथ टैगोर की रूस जाने की इच्छा ११ सितम्बर सन् १९३० में सफल हो सकी जब कि वे मास्को पहुँचे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ उनके भतीजे सौमेन्द्रनाथ टैगोर, रवि बाबू के दो निजी सचिव आर्यम् विलियम्स तथा अमिय चक्रवर्ती, उनके डाक्टर हैरी टिम्बर और सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइनस्टाइन की पुत्री मार्गो आइनस्टाइन भी थीं। आपने सोवियत संघ में अपना दो सप्ताह का समय व्यतीत किया और विभिन्न स्थानों की यात्रा कर रूसी किसानों, मजदूरों, लेखकों, वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, अभिनेताओं एवं छात्रों से भेंट की। १२ सितम्बर १९३० को सोवियत लेखक संघ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास्को क्लब में भाषण करते हुए रवि बाबू ने कहा था कि "मुझे रूसी संस्कृति के प्रतिनिधियों से भेंट कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई तथा मैं सोवियत संघ यह जानने के लिए आया हूँ कि यहाँ संस्कृति सम्बन्धी समस्याओं को कैसे हल किया गया और कैसे हल किया जा रहा है।" आपने यह भी कहा था कि "मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई है कि प्रथम बार आपने समस्त जनता को शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग दिया है और स्कूलों, नाट्यशालाओं और संग्रहालयों के द्वार उनके लिए पूरी तरह खोल दिये हैं। मैं श्रम के साथ जुड़े हुए स्वतंत्र मानव की सृष्टि का स्वप्न देखता हूँ। आज की सभ्यता रोगों और अस्वाभाविकताओं से पीड़ित है। उसके उपचार की जरूरत है। मेरा पक्का विश्वास है कि आपका विचार मेरे स्वप्न से बहुत मिलता-जुलता है।....सृजनात्मक व्यक्तित्व का निर्माण करते हुए आप वह काम कर रहे हैं जो मैं व्यक्ति के रूप में नहीं कर सका। यह मानवता के प्रति आपकी अकूत सेवा है।" लेखक संघ की ओर से सोवियत सांस्कृतिक सम्पर्क संघ के अध्यक्ष प्रोफेसर एफ० एन० पेन्नोव ने कहा कि "हम अपने बीच महान् लेखक एवं दार्शनिक रवीन्द्रनाथ टैगोर का स्वागत करने में प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। सोवियत संघ में टैगोर न केवल एक लेखक एवं दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध हैं वरन् वे अपने देश में सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवा करनेवाले के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।"

मास्को में १३ सितम्बर सन् १९३० को रवि बाबू के चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित की गयी थी। चित्रों को देखकर एक सोवियत आलोचक ने वह विचार प्रकट किया था कि "आपकी कृति में जो असाधारण वस्तु है वह चित्रों में सन्निहित जिन्दादिली की भावना है। यदि आपका कार्य-क्षेत्र चित्रकला भी होता तो इसमें आपको प्रसिद्धि प्राप्त हुई होती।....आप उच्च कोटि के कलाकार हैं।" प्रदर्शनी में टैगोर के २०० चित्र प्रदर्शित किये गये थे जो अत्यधिक सफल रहे। प्रतिदिन १००० से अधिक व्यक्ति प्रदर्शनी देखने के लिए प्रदर्शनी-भवन में आया करते थे। सोवियत कलाकारों ने अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के रूप में रवीन्द्रनाथ टैगोर को उस समय लियो तालस्ताय की संगमरमर की एक मूर्ति उपहार में दी थी।

टैगोर की रूस-यात्रा का वहाँके प्रत्येक वर्ग के लोगों, साहित्यकारों, चित्रकारों, राजनेताओं, श्रमिकों आदि ने स्वागत किया था। मास्को के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र "इजवेस्ता" ने १६ सितम्बर १९३० को टैगोर की प्रशंसा में ये शब्द लिखे थे :—"सोवियत संघ की जनता आज अपने सम्मानित अतिथि ७०वर्षीय भारतीय लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर का स्वागत करती है। .... सुदूर देश से हमारी भूमि में आये इस अद्भुत अतिथि को जो अधिक उम्र एवं कमजोर स्वास्थ्य तथा लम्बी दूरी तय करने में उत्पन्न होनेवाली परेशानी के बावजूद निर्भयता है, अपनी आँखों से उन नयी परिस्थितियों में, जो अभी तक संसार को मालूम नहीं है, नवीन व्यक्ति की प्रगति की जानकारी प्राप्त करने की उत्कट इच्छा है।" रवि बाबू ने २६ सितम्बर १९३० को सोवियत भूमि से बिदा ली और अपनी सुखद स्मृति को वे लाखों सोवियत जनता के बीच छोड़ गये।

सोवियत संघ की यात्रा कर रवि बाबू वहाँकी प्रगति से अत्यधिक प्रभावित हुए। रूस की प्रगति का उल्लेख करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि "रूस के ९९ फी सदी किसानों ने पहले आधुनिक हल यंत्र अपनी आँखों से नहीं देखा था। वे तब हिन्दुस्तानी किसानों की तरह एकदम निःसहाय थे, मूक थे। आज देखते-देखते इनके खेतों में हजारों की संख्या में हल यंत्र काम कर रहे हैं। पहले ये लोग थे बेचारे—गरीब, आज ये हैं बलराम।" (रूस की चिट्ठी—रवीन्द्रनाथ टैगोर)। सोवियत संघ की यात्रा से बिदा लेते समय रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मास्को-वासियों को जो संदेश दिया था वह सोवियत संघ तथा भारतीय जनता की दृढ़ मैत्री का प्रतीक है। अपने संदेश में रवि बाबू ने कहा था कि "मुझे यह कहना चाहिए कि मास्को में मैंने जो कुछ देखा और सीखा उससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। पिछले चन्द सालों में आप जो कुछ हासिल कर सकने में समर्थ हो सके हैं उससे तो आपसे अत्यधिक ईर्ष्या करने लगा हूँ। यह वस्तुतः आश्चर्यजनक बात है कि इतने कम समय में आपने जनता के आत्मिक गुण को परिवर्तित कर दिया है। जीवन की तमाम सांस्कृतिक सुविधाओं से साधारण जन को लाभ उठाते देखकर मुझे जो आनन्द मिल रहा है, उसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हो रही है कि आपने पराधीन जनगण को स्वतंत्र करने की कामना को—ऐसी कामना को जिसे मैं जीवन भर सँजोये रहा हूँ—चरितार्थ कर दिया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत जनता को रवि बाबू की कृतियों का सर्व-प्रथम ज्ञान उस समय हुआ जब कि सन् १९१७ में उनकी कृति "गार्डेनर" प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् "गीतां-जलि" एवं "नैवेद्य" कविताओं का संग्रह सन् १९१८ में रूसी में प्रकाशित हुआ। इनकी ये कृतियाँ सोवियत संघ की अक्टूबर क्रांति के ठीक बाद प्रकाशित हुई थीं। सोवियत संघ में रवि बाबू की कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन भी इसके बाद प्रारम्भ हो गया। सन् १९२३ में सोवियत संघ के सुप्रसिद्ध साहित्य-आलोचक ए० वी० लूनाचार्स्की ने रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के बारे में लिखा था कि "... रवीन्द्रनाथ की कृतियाँ वर्णविचित्रता, सूक्ष्म आत्मिक भाव-वेग और यथार्थतः उदात्त विचारों से ऐसी ओत-प्रोत हैं कि वे विश्व संस्कृति-भंडार का अंग बन गयी हैं।" रवि बाबू की प्रत्यावर्त्तन, उत्तराधिकार, पोस्टमास्टर, अनावृत्त रहस्य, शुभ रात्रि आदि कतिपय चुनी हुई कहानियों के वृहद् रूसी संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। रोमां-रोल्यां की महत्त्वपूर्ण भूमिका सहित आपकी "चतुरंग" नामक कृति सोवियत भाषा में प्रकाशित हुई है जो काफी लोकप्रिय है। रवि ठाकुर के राजा, राजर्षि, विसर्जन, राजा-रानी, चित्रा तथा अन्य नाटक सोवियत भाषाओं में छप चुके हैं। इनमें से "चित्रा" का कई बार अभिनय भी हो चुका है जिसे सोवियत जनता ने बड़ी रुचि के साथ देखा है। टैगोर का प्रसिद्ध उपन्यास "नौका डूबी" का रूसी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। रवि बाबू के लेख एवं पत्र उनकी विख्यात "जीवन-स्मृति" तथा "मेरा जीवन" आदि कृतियाँ रूसी में प्रकाशित हो गयी हैं। मूल बँगला से अनूदित रवि बाबू की कहानियों का एक संग्रह भी रूसी में प्रकाशित हुआ है जिसमें उनकी हिसाब-निकास, प्रत्यावर्तन, मुक्ति, उत्तराधिकार, प्रायश्चित्त तथा काबुलीवाला आदि कहानियाँ हैं। सोवियत जनता में रवि बाबू की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए रूसी कथा-साहित्य का राज्यीय प्रकाशनगृह रवि बाबू की संकलित कृतियों को आठ खंडों में प्रकाशित कर रहा है। इन पुस्तकों में संकलित कृतियाँ सीधे बँगला से अनूदित हो रही हैं ताकि अनुवाद मूल के अधिक निकट हो सके। इन पुस्तकों का सम्पादन वी० नौवीकोव कर रहे हैं। रूसी विद्वान् वाई० चेलीशेव ने भी रवि बाबू की कृतियों का अध्ययन किया है। सोवियत जातियों की १५ भाषाओं में आपकी अधिकांश कृतियों का अनुवाद हो चुका है।

सोवियत जनता की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ टैगोर पूर्व के एक महान् लेखक हैं जिन्होंने अपने देश की जनता की संस्कृति एवं कला के विकास में तथा उनमें० नवचेतना का विकास करने में महान् योग दिया है। सोवियत भारतविद् वाई० चेलीशेव ने टैगोर की कृतियों के बारे में लिखा है कि "टैगोर की साहित्यिक विरासत उनकी सुन्दर पौराणिक कविताएँ एवं उनकी कृतियाँ भारतीय सामाजिक जीवन का "विश्व-कोश" है। इसमें भारत के हाल के इतिहास के अवि-स्मरणीय दृश्य अंकित हैं जिसमें राष्ट्रीय नवचेतना तथा औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध देशव्यापी राष्ट्रीय युक्ति आन्दोलन का विकास प्रस्तुत किया गया है।... टैगोर हम लोगों के लिए इसलिए प्रिय हैं क्योंकि उनमें अपनी मातृभूमि के लिए अगाध प्रेम है जो पृथ्वी की समस्त जनता के प्रति सम्मान तथा आदर-भाव से दृढ़ता के साथ आबद्ध है। यह सोवियत जनता के लिए भी एक बहुत बड़ी बात है क्योंकि सोवियत समाज व्यवस्था के विकास में अंतर्रा-ष्ट्रीयतावाद एवं राष्ट्रीयतावाद का समन्वय एक प्रमुख शक्ति है।"

इस प्रकार इस महान् भारतीय लेखक और सोवियत संघ के मित्र ने अपनी उत्कृष्ट कृतियों से सोवियत जनता को विमोहित कर लिया है। इस लेखक को सोवियत संघ की यात्रा पर गये लगभग ३० वर्ष हो चुके हैं और उस समय से लेकर आज तक भारत तथा सोवियत संघ दोनों ही में महान् परिवर्तन हो चुके हैं लेकिन इसने स्वदेशवासियों एवं समस्त संसार के समक्ष आज से ३० वर्ष पूर्व जिस सत्य का उद्घाटन किया था वह दोनों देशों की जनता के बीच की मैत्री की एक अविस्मरणीय कड़ी है। टैगोर उन लोगों में से थे जिन्होंने भारतीय और सोवियत जनगण की मित्रता और एक दूसरे को समझने की भावना की आधारशिला रखी थी। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि भारतीय स्वाधीनता के बाद दोनों देशों में बढ़ते हुए आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से भारत एवं सोवियत जनता की दृढ़ मैत्री से संबं-धित महाकवि का वह स्वप्न साकार हो रहा है जिसे उसने आज से ३० वर्ष पूर्व अपनी सोवियत यात्रा के समय देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-पुत्र रवीन्द्र

कु० सुशीला सिंह

मेघों का मधुर-मन्द्र-मनोहर मल्लार, चंचला चपला की चारु-चटुल चित्त चुरानेवाली चितवन एवं सरस-सावन की सुघड़-सलोनी सुहावनी सुरम्य रिमझिम--ऐसी थी वह मादक बेला जब आज से बीस वर्ष पूर्व गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अस्सी-वर्षीया जीवन-'स्वर्णतरी' ने मृत्यु-सलिल की चंचल लहरों को पार कर स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर एवं अमरावती से भी अधिक मनोहर अपने चिर-कांक्षित 'विश्व-चित्त-लोक' में प्रवेश किया था। कितना सुन्दर है वह 'विश्व-चित्त-लोक' इसकी कल्पना गुरुदेव के ही शब्दों से कीजिए--"उस विश्व-चित्त-लोक में अनन्त की सुगंभीर वीणा बज रही है, जिसकी शब्द-हीन संगीत-धारा से ग्रह, सूर्य, चन्द्र, ताराओं में रूप की वन्या छूटती है।"

यही 'विश्व-चित्त-लोक' तो कवि का स्वर्ग है जहाँ वह जीवन-यात्रा के पथ को पार कर पहुँचा है--

"कवि कहता है कि मैं यात्री हूँ, रात्रि के निमंत्रण पर चलूँगा--जहाँ चिरंतन दीपावली का उत्सव है। मृत्यु-दूत मेरे आनन्द-दीपों को ले गया जहाँ मेरे जीवन के प्रत्यूष की सुगंधि-शिउली इन्द्राणी के स्वयंवर वर-माल्य के साथ अनन्त के अंगद-कुण्डल में माला होकर गुँथी हुई है।"

महापुरुषों का जन्म हमारी मुक्ति के लिए होता है। उनके समीप जन्म-मृत्यु विरोधी अथवा विच्छिन्न नहीं, वर समान हैं। जीवन-मरण का चक्र चिरंतन है। कवीन्द्र-रवीन्द्र की कल्पना तो देखिए जब वे कहते हैं--"जीवन एवं मरण माता के दो स्तनों के समान हैं। बालक एक स्तन का दूध पीकर फिर दूसरे का पीने लगता है, ठीक उसी प्रकार मृत्यु दूसरे स्तन से दूध पीने के समान है--अर्थात् उतनी ही शक्ति देनेवाली है जितना कि जीवन।"

इसी भाव को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है--"एक स्तन से दूध की समाप्ति होने पर विश्व-जननी शिशु को जब दूसरे स्तन पर लगाती है तो वह रो पड़ता है, परंतु क्षण भर के पश्चात् ही दूसरे स्तन का दूध पाने पर शिशु फिर पूर्ववत् शांत होकर दुग्ध-पान करने लगता है। ठीक उसी प्रकार जीवन के पश्चात् मरण आने पर मनुष्य डरता है, दुःखी होता है, पर क्षण भर पश्चात् ही फिर उसे पूर्ववत् सुख प्राप्त हो जाता है। जीवन और मृत्यु विश्व-जननी की दाहिनी और बाईं गोद हैं। स्नेहमयी जननी ही यदि आवश्यकतानुसार शिशु को इस गोद से उस गोद में करे तो आपत्ति कैसी ?"

मृत्यु की इतनी सुन्दर कल्पना विश्व के किसी अन्य साहित्य में शायद ही मिले।

सन् १८९९ ई० में अपनी ३८ वर्ष की आयु में ही रवीन्द्र ने लिखा था--"दिनांत का मुख चूमकर रात्रि उससे धीरे से कहती है कि मैं मृत्यु तुम्हारी माता हूँ। मेरा भय मत कर। मैं नव-नव जन्म-दान द्वारा तुम्हारे पुरातन दिनों को प्रतिदिन नवीन कर दूँगी।"

एक अन्य भाव का अवलोकन कीजिए--"इस वसुधा के मृत्तिका के पात्रों को बारंबार भरकर तुम्हारा अमृत नाना-वर्ण गन्धमय अविरत ढाल दूँगा।"

कवि के लिए मृत्यु का आगमन परमात्मा के दूत का शुभागमन है--अतः वह उसके स्वागतार्थ बढ़ता है--रजनी है--घोर अंधकार है--फिर भी हाथ में दीप लेकर द्वार खोलकर वह उसका स्वागत करेगा।

जिस प्रकार जीवन सत्य है उसी प्रकार मृत्यु भी सत्य है, जिस प्रकार आनन्द सत्य है, उसी प्रकार वेदना भी सत्य है। कवि आघात और वेदना में अपने को पहचानता है।

रवीन्द्र ने मृत्यु को न केवल माता के रूप में देखा है बल्कि नये-नये प्रेम के जीवन-संगी के रूप में भी उसका चित्र अंकित किया है। "भानु सिंहेर-पदावली" में कवि ने लिखा है--

"मरण रे, तुहुँ मम श्याम समान।
मेघ बरन तुझ, मेघ जटा-जुट
रक्त-कमल कर, रक्त अधर पुट,
ताप-विमोचन करुण कोर तव,
मृत्यु अमृत करे दान।
तुहुँ मम श्याम समान।"

कवि जब इस संसार में आया था तो उसे खेलने की एक वंशी मिली थी पर इसीपर उसने वह स्वर-साधना की कि उसके रंध्रों से निकले हुए आशा के स्वरों ने मृत्यु को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी जीत लिया। अपनी 'संकल्प' शीर्षक कविता में कवि ने लिखा था--"माँ, तूने मुझे सिर्फ यह खेलने की वंशी क्यों पकड़ाई ? जिस दिन मैं संसार में चला आया था। इसीलिए तो उसे बजाता हुआ अपने स्वर से विमुग्ध होकर दीर्घ दिन और दीर्घ रात्रि लगातार मैं चलता ही गया और संसार की सीमा छोड़कर एकांत में बहुत दूर निकल गया। उस वंशी से जो स्वर मैंने सीखा है उसीके उच्छ्वास से यदि गीत-शून्य इस अवसाद-पुरी को प्रतिध्वनित करके मैं जगा सका--मृत्यु को जीतनेवाले आशा संगीतों से यदि एक मुहूर्त के लिए भी कर्म-हीन जीवन के एक प्रांत को मैं तरंगित कर सका तो मेरा गान धन्य हो जायेगा--सैकड़ों असंतोषों को महागीत के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति हो जायेगी।"

निस्संदेह रवीन्द्र के महागीत निर्वाण के सर्व-सुलभ एवं सुगम साधन हैं।

कवीन्द्र रवीन्द्र एक विश्व-द्रष्टा, मानव-धर्मी कवि थे। ऋषि-कवि ने अपने 'आत्म-परिचय' में लिखा है--"मैं जगत् से प्रेम करता हूँ; मैं महत् को प्रणाम करता हूँ; मैं मुक्ति की कामना करता हूँ, जो मुक्ति परम पुरुष के निकट आत्म-निवेदन करने में है। मेरा यह विश्वास है कि मनुष्य का सत्य उन महा-मानव के मध्य है जो सदा 'जनानां हृदये सन्निविष्टः' हैं।"

इस मुक्ति का पुण्य-पथ प्रशस्त करने के लिए अमृत-पुत्र रवीन्द्र ने 'महामानव भारत के सागर-तीर पर' वेदान्त की अमृत-वाणी में भैरवी की सुमधुर तान छेड़कर हमें जगाया था--

"इस मृत्यु का उच्छेद करना होगा, इस माया-जाल को काटना होगा, इस एकत्रित जड़ता की राशि मृत-निस्सार पदार्थ को दूर करना होगा, अरे, इस उज्ज्वल प्रभात के समय, इस जाग्रत् संसार में इस कर्म-भूमि में तुझे जागना ही होगा।....हे महामनीषी! तुम कौन हो? एक समय इस भारत के किस अरण्य की छाया में, किस आनन्द के उच्छ्वास में आकर तुमने उच्च-स्वर में यह उच्चारण किया था :--

हे विश्व के मनुष्यो, हे दिव्य-धामवासी अमृत-पुत्र देवताओ, सुनो। उस महापुरुष को हमने जान लिया है; वे ज्योतिर्मय पुरुष अंधकार के उस पार रहते हैं, उन्हें जानकर, उनकी ओर दृष्टि कर तुम मृत्यु की सीमा को पार कर सकते हो। और दूसरा मार्ग नहीं है।"

अमृत-पुत्र रवीन्द्र का जन्म-शताब्दी-समारोह आज न केवल भारतवर्ष में वरन् सम्पूर्ण विश्व में धूम-धाम से मनाया जा रहा है। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं, परन्तु उनकी अमर वाणी--उनका अमर सन्देश--युग-युग तक हममें आशा एवं नवजीवन का संचार करते रहेंगे। इस पुनीत अवसर पर उनके श्रीचरणों में सादर मस्तक नवाकर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हींके शब्दों में उनसे नम्र निवेदन है कि--

"आमार माथा नत करे दाओ,
हे तोमार चरण-धूलार तले।
सकल अहंकार हे आमार,
डुबाओ चोखेर जले॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी, टालस्टाय और रवीन्द्रनाथ का शिल्प-बोध

ले०--डॉ० शशिभूषण दास गुप्त

अनु०--श्रीनारायण पाण्डेय

साहित्य एवं अन्यान्य शिल्प-कलाओं के आदर्श के सम्बन्ध में गांधीजी एवं टालस्टाय के विचारों में मौलिक मेल है। हम लोगों में साधारणतः मनुष्य के जीवन को गुण कर्म के अनुसार भाग करके देखने की झोंक और एक प्रथा प्रचलित है। यह झोंक साहित्य और शिल्प के क्षेत्र में और भी दिखाई पड़ती है, क्योंकि साहित्य और साधारण शिल्पकला के साथ हम लोगों का आधिकारिक संस्कार जुड़ा हुआ है, फलस्वरूप एक ऐसा विश्वास एवं मत आसानी से हम लोगों के मन में बन जाता है कि साहित्यिक एवं अन्यान्य शिल्पियों को वृहत्तर समाज-जीवन से इच्छानुसार दूर हट जाने का विशेषाधिकार है।

गांधीजी जीवन के किसी भी क्षेत्र को इस तरह भाग एवं अलग करके देखने के घोर विरोधी थे। अनेक समय हम लोग ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य के जीवन में बहुत से ऐसे कर्म हैं जिसे हम लोगों के इस वृहत्तर कर्म जीवन के डाँवाडोल से जितना दूर हटाकर रखा जा सके उतनी ही उसके विशुद्धि की रक्षा की जा सकती है। इस तरह के मनोभाव से हम लोग उस व्यक्ति को विशुद्ध धार्मिक कहेंगे जो समाज जीवन से पूर्णरूपेण सम्बन्ध त्याग कर एकदम आत्मानन्द होकर बैठे हुए हैं। मगर गांधीजी कहेंगे, समग्र जीवन के लिए ही तो धर्म है; जीवन की समग्रता को जो पकड़ के रखेगा वही तो धर्म है, जीवन के वृहत्तर क्षेत्र में जिस योग व अनुभूति को प्रयोग नहीं किया जा सका वह भी एक तरह का आडम्बर एवं प्रथापालन मात्र है। हम लोग साधु-संतों को साधारणतः समाज-वहिर्भूत एक विशेष प्रकार की मनुष्य श्रेणी का जीव समझते हैं। अतएव धर्म-कर्म के सम्बन्ध में एक इसी तरह का मनोभाव बन जाता है कि यह हमारे सामाजिक जीवन का दैनन्दिन अवश्यकरणीय कर्म नहीं; यह बहुत कुछ उपरफट्टू काम है--करें तो अच्छा--न करने से भी समाज-जीवन का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। साहित्य-कर्म के सम्बन्ध में भी हम लोगों के बीच इसी तरह की धारणा प्रचलित है कि यह समाज-जीवन का उपरफट्टू काम है, एक सामाजिक प्राणी रूप में विकसित होने के लिए जैसे इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है--यह समाज जीवन के उपरफट्टू आनन्द-रूप में दिखाई पड़ता है। साहित्य व आर्ट के सम्बन्ध में हम लोगों का इस तरह का दृष्टिकोण गांधी के मूल जीवन दर्शन का विरोधी है। गांधी के मत से हम लोगों का जो महत्कर्म है वह एक गम्भीर संगति व समन्वय के बीच से हम लोगों की सारी मानवता को अग्रगति के पथ पर बढ़ा देगा, सारे महत् कर्म को व्यक्ति के 'सर्वोदय' एवं व्यक्ति के 'सर्वोदय' के साथ-साथ मानव के 'सर्वोदय' के साथ युक्त होना पड़ेगा। आर्ट को भी इसीलिए मनुष्य के इस सर्वोदय के आदर्श से विच्युत होना नहीं होगा, सर्वोदय के पूर्ण आदर्श से मनुष्य का जो कर्म विच्युत होगा वह किसी भी हालत में महत् कर्म नहीं हो सकता। सर्वोदय के आदर्श से जो साहित्य व शिल्पकला विच्युत है वह निम्नस्तर के आनन्द-व्यसन में ही पर्यवसित होती है।

इसी सर्वोदय के आदर्श को जीवन का मूल आदर्श स्वीकार करने के कारण गांधीजी शिल्प को विशेष विदग्ध-महल या रसिक महल तक ही सीमाबद्ध रखने के पक्ष में नहीं थे। जो शिल्प एकमात्र विशेषज्ञों की वस्तु हो--उनके द्वारा ही उसकी सृष्टि भी सम्भव है--समादर भी सम्भव है--इस तरह के शिल्प के प्रति गांधीजी का कोई आकर्षण नहीं था। वे उसी प्रकार के शिल्प को प्यार करते थे जिसे लाख-लाख नर-नारियों तक आसानी से पहुँचाया जा सके, और वहाँ पहुँचकर वह उनके जीवन में नवीन जागरण ला सके। दिलीपकुमार राय के साथ आलोचना करते हुए एक बार गांधीजी ने कहा था--"……मैं उसे महान् शिल्प नहीं कहता जिसकी कद्र केवल विशेषज्ञों के बीच है--अर्थात् टेकनिक की विशेषताओं को न जाने बिना जिसके आदि अंत का कोई पता नहीं लगे। हमारी मान्यता है कि महत् शिल्प का आवेदन ठीक प्रकृति शिल्प की ही तरह विश्वजनीन है। बाल की खाल निकालने की नीति लेकर माथापच्ची करने का नाम ही शिल्प-बोध है यह मैं सोच ही नहीं पाता। खाँटी रस बोध के साथ समझदाराना का कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका वेश सरल होगा--उसकी अभिव्यक्ति आसान होगी--यही जो कहा ठीक प्रकृति की प्रांजल भाषा की तरह।" (तीर्थंकर पृ० ६१ देश पत्रिका में १३५५, १६ मध्य मन्मथनाथ सान्याल के "गांधीजी की शिल्प-दृष्टि नामक प्रबन्ध में उद्धृत")

इस तरह की बात गांधीजी ने और भी स्थानों पर कही है। एक जगह उन्होंने कहा है, "अन्यान्य सभी क्षेत्रों की ही तरह यहाँ भी (शिल्प-साहित्य के क्षेत्र में) हमको लाख लाख लोगों की वाणी में ही सब सोचना पड़ेगा!" और जगह कहाँ है "मैं संगीत एवं अन्यान्य सुकुमार शिल्प को प्यार करता हूँ किन्तु इन सबको साधारणतः जितना मूल्य दिया जाता है मैं उतना नहीं दे पाता। जिन सृष्टि कर्मों को समझने के लिए पारिभाषिक ज्ञान की आवश्यकता है उनका मूल्य मैं स्वीकार नहीं कर पाता।"

गांधीजी की इन उक्तियों के बीच साहित्य व अन्यान्य शिल्प अपना यथायथ मूल्य पा सके हैं ऐसी बात नहीं कह सकता। असल में गांधीजी का मन साधारण मनुष्य की कल्याण-चिन्ता में इतना मग्न था एवं उनका श्रेय बोध इसी जनसाधारण के कल्याण की ओर इतना केन्द्रीभूत था कि जो इस सर्वभूत हित के साथ प्रत्यक्ष व घनिष्ठ रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से युक्त नहीं है उसको जीवन में वे उच्च मूल्य देने में उत्साह का अनुभव नहीं करते थे।

साहित्य एवं अन्यान्य शिल्पकलाओं के क्षेत्र में गांधीजी प्रयोजनवादी थे। यह प्रयोजन सर्वत्र आसु प्रयोजन नहीं है; गांधीजी के मत से यह प्रयोजन आत्मिक प्रयोजन है। आर्ट के स्वरूप के सम्बन्ध में 'यंग इण्डिया' पत्र में उन्होंने कहा है:—

"हर वस्तु के दो पहलू हैं एक बाहरी और एक भीतरी। कौन सा बाहरी और कौन सा भीतरी है वह इस पर निर्भर करता है कि हम किस पर जोर देते हैं। बाहरी पहलू भीतर की अभिव्यक्ति में सहायता करता है—इसके अलावा उसका और कोई मूल्य नहीं है। सचमुच में आर्ट मात्र ही इसीसे आत्मा की अभिव्यक्ति है। मनुष्य की भीतर की अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति कहकर ही बाह्य रूप का सब कुछ मूल्य है। इसी तरह का आर्ट हमें सबसे अधिक अपील करता है। मगर मैं जानता हूँ—बहुत से लोग अपने को आर्टिस्ट कहते हैं, और उसी रूप में उनकी स्वीकृति भी उनको मिली रहती है, मगर उनके शिल्प-कृतियों में आत्मा की ऊर्द्धगामिता अथवा महत्त्व के लिए अस्थिरता का आभास भी नहीं मिलता।

सभी सच्चे आर्ट को मनुष्य की अन्तर सत्ता को उपलब्ध करने में सहायता करना पड़ेगा..... मनुष्य का बनाया जितने भी प्रकार का आर्ट है उसका केवल उतना ही मूल्य है जितना वह आत्मानुभूति की ओर से मनुष्य की आत्मा को सहायता करता है।"

गांधीजी के मत से जो सत्य है वही सुन्दर है। मनुष्य का जो भाव सत्य है वही सुन्दर है, जो मुँह सत्य है—अर्थात् जिसमें कपटता की छाया भी नहीं है—वही मुँह सुन्दर है, जो चित्र जो गीत शिल्पी के सत्य जीवन वाणी को अभिव्यक्त करते हैं वही सुन्दर हैं। इस प्रकार मनुष्य जब जीवन के सत्य के बीच सुन्दर का आविष्कार करता है तभी मनुष्य के बीच वास्तविक आर्ट का उद्‌भव होता है। जहाँ पर मनुष्य की सम्यक् अनुभूति है वहीं पर वह सुन्दर की सृष्टि कर पाता है। ऐसा शुभ क्षण हम लोगों के जीवन में दुर्लभ है, एवं हमारे आर्ट में भी दुर्लभ है।

"वास्तविक आर्ट केवल रूप को ही लेकर व्यस्त नहीं रहता—इस रूप के पीछे जिसका आभास है उसकी ओर भी दृष्टि रखता है। एक तरह का आर्ट है जो मनुष्य को मार डालता है—और एक दूसरी तरह का आर्ट है जो मनुष्य को जीवन-दान करता है। खाँटी आर्ट शिल्पी के सुख सन्तोष व पवित्रता का ही संदेश बहन करता है।"

सत्य और मंगल को शिल्प में सबसे बड़ी बात स्वीकार किये थे इसीसे गांधी जी समझते थे कि शिल्प की विषय-वस्तु होने के लिए किसी वस्तु को बाहर से सुन्दर होना ही होगा ऐसी कोई बात नहीं। बाहरी रूप की दृष्टि से बहुत ही कुरूप चीजें भी आन्तरिक महिमा के कारण हम लोगों के सामने सुन्दर कहकर प्रसिद्ध हैं। इसीलिए गांधीजी ने कहा है—"हमने पहले ही कहा है कि सत्य को छोड़कर कहीं कोई सौन्दर्य नहीं है। बल्कि सत्य अपने इसी रूप में भी अभिव्यक्त कर सकता है जो बाहर से एकदम भी सुन्दर न हो। हम लोग जानते हैं कि सुकरात अपने समय के सबसे सत्यवान व्यक्ति थे—मगर उनका चेहरा सारे ग्रीस में सबसे अधिक कुरूप था। हमारे लिए वे सुन्दर थे क्योंकि उनका सारा जीवन ही सत्य के पथ पर बढ़ते जाने की चेष्टा में बीता है। यह भी स्मरणीय है कि उनके इस बाह्य कुत्सित रूप ने फिडियास को सुकरात के भीतर जो सत्य का सौन्दर्य था उसके मूल्यांकन में बाधा नहीं पैदा की गोकि फिडियास बाहरी रूप-सौन्दर्य देखने के अभ्यस्त थे।"

शिल्प के सम्बन्ध में गांधीजी के मत को उन्हींकी भाषा में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कहा जा सकता है—"जो कुछ हम लोगों के आत्मा के विकास में बाधक है वही मिथ्या एवं छलना का जाल है।" 'हरिजन' पत्रिका में गांधीजी ने एक जगह कहा है—

जिस भी तरह क्यों न हो, हम लोग एक इस तरह के विश्वास के अभ्यस्त हो गये हैं कि आर्ट व्यक्ति-जीवन की पवित्रता से निरपेक्ष कोई वस्तु है। हम अपनी सारी अभिज्ञता के बल पर कह सकते हैं कि इससे बढ़कर असत्य और कुछ नहीं हो सकता। हम अपने इस पार्थिव जीवन के अन्तिम समय में आ के पहुँचे हैं; अब हम कह सकते हैं कि हृदय की पवित्रता ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वपेक्षा खाँटी आर्ट है। स्वर की साधना करके अच्छे गाने का अभ्यास बहुत से लोग कर सकते हैं, किन्तु उसी संगीत को पवित्र जीवन की सुषमा के बीच जाग्रत करने की क्षमता कम लोग ही हासिल कर पाते हैं।"

गांधीजी के साहित्य एवं अन्यान्य शिल्प-सम्बन्धी धारणा में एक बात पर और गौर करना होगा। गांधीजी ने शिल्प को आत्मिक प्रयोजन कहा है; मगर व्यावहारिक प्रयोजन के स्पर्श से शिल्प एकदम क्षुण्ण हो जाता है इसे भी गांधीजी नहीं मानते थे। बल्कि तथाकथित उच्चांग शिल्प के सम्बन्ध में उनकी यह धारणा बनी थी कि, यह जनसाधारण के छूत से बचने के लिए जनसाधारण के दैनन्दिन के वास्तव जीवन से इस प्रकार विच्युत हो दूर हो गया है कि यह वृहत् समाज के कल्याण की वस्तु न होकर मुट्ठी भर के आनन्द-विलास की वस्तु बन गया है। एक समय गांधीजी से पूछा गया था कि—

"क्या आप मनुष्य से यह नहीं कहेंगे, जमीन के एक छोटे से टुकड़े पर फूल की खेती करो, वा देह के लिए जिस प्रकार खाद्य जरूरी है आत्मा के लिए उसी प्रकार रंग और सौन्दर्य की जरूरत है।" इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा था—

"नहीं—मैं यह नहीं कहूँगा। साग-सब्जी में भी रंग का सौन्दर्य है इसे तुम लोग देख क्यों नहीं पाते; उसके अलावा मेघहीन आकाश में भी तो सौन्दर्य है। किन्तु उससे तुम लोगों का नहीं चलेगा—तुम लोग इन्द्रधनुषी रंग चाहते हो—जो कि दृष्टि भ्रम मात्र है। हम लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह के विश्वास की ही शिक्षा पाते आये हैं कि जो सुन्दर है उसको प्रयोजनीय होने की आवश्यकता नहीं, और जो प्रयोजनीय है वह किसी भी हालत में सुन्दर नहीं हो सकता। हम दिखाना चाहते हैं कि जो प्रयोजनीय है वह भी सुन्दर हो सकता है।"

मोटे तौर पर देख रहे हैं कि हर तरह के आर्ट को सर्वोदय के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहना पड़ेगा; और यह सर्वोदय का आदर्श या सर्वस्तर के मनुष्य के परम मंगल का आदर्श आर्ट के साथ तभी युक्त हो सकता है जब कि वह मनुष्य की आत्मा को ऊर्द्धगामिता के पथ पर जाग्रत व स्पन्दित करे। आर्ट मनुष्य के बीच इसी परम श्रेय बोध को जागृत कर देगा।

साहित्य और शिल्पी के सम्बन्ध में हम लोगों के बीच जो एक तरह की धारणा बन गयी है कि ये मनुष्य में एक विशेष जाति के मनुष्य हैं, टालस्टाय इसके घोर विरोधी हो गये थे। आरम्भिक व मध्य के जीवन में उन्होंने जिस साहित्य को लिखा था अन्तिम दिनों में उसे खाँटी साहित्य स्वीकार नहीं कर सके थे। परिणत उम्र में आर्ट के सम्बन्ध में उनकी एक धारणा बनी थी; अपनी पुस्तक 'आर्ट क्या है?' उसमें उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस पुस्तक को उन्होंने १५ वर्षों में पूरी की थी, इस लम्बे अरसे में उन्होंने इस विषय में केवल सोचा था और सोच-सोचकर अपनी अनुभूति व विचार को एक सुस्पष्ट रूप देने की कोशिश की थी। इन सबसे टालस्टाय को लगा है कि 'आर्ट के लिए ही आर्ट' समाज-द्रोही कथन है। आर्ट के स्वरूप एवं समाज जीवन में उसका काम व प्रयोजन के सम्बन्ध में एक गलत धारणा से ऐसे मत की उत्पत्ति हुई है। हर तरह के आर्ट की मूल बात है कि यह एक मानवीय कर्म है--अर्थात् यह एक सामाजिक कर्म है। आर्ट के माध्यम से व्यक्ति-मानस के साथ समाज मानस का जो अच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित होता है वही मौलिक ऐक्य बोध ही मानवता बोध की बुनियाद है। इसी समाजबोध एवं ऐक्य को लेकर सभी तरह के शिल्पियों को इसी विचार सारणी पर दृढ़ होना पड़ेगा कि उसका शिल्प-कर्म उनके सामाजिक कर्म में ही अन्तर्मुक्त है। समाज के लिए जिस प्रकार दस व्यक्तियों के विभिन्न प्रकार का कर्मों द्वारा समाज तथा बृहत्तर मानवता की सेवा अवश्यकरणीय है, यह भी ठीक उसी प्रकार है। समाज जीवन में शिल्पी का एक विशिष्ट स्थान है एवं आवश्यकता है--उसी प्रयोजन की पूर्ति उसकी समाज सेवा है--उसकी मानवता की सेवा है। किसान के खेती न करने से जिस प्रकार समाज जीवन अचल हो जाता है, कारखाने के मिस्त्री के काम न करने से जिस प्रकार समाज जीवन अचल हो जाता है--एक शिल्पी भी अगर अपने अवश्यकरणीय कार्य को ठीक से समझ लेकर उसे पूरा न करे तो समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति व अग्रगति सम्भव नहीं। समाज को सामने के पथ पर अग्रसर कर देने की प्रेरणा आर्ट के भीतर से आयेगी। कौन आर्ट सार्थक हो उठा है, कौन आर्ट असार्थक हो गया है। उसका विचार मुख्यतः इसी आधार पर होगा कि इस आर्ट ने मानवता को उसके मंगल-यात्रा के पथ पर कितनी दूर अग्रसर किया है।

टालस्टाय के मत से आर्ट का सबसे बड़ा काम 'संक्रमण' है। एक व्यक्ति ने अपनी अनन्य साधारण संवेदनशील चित्त से जिस जीवन सत्य को गहराई से अनुभव किया है उसी आनन्दमय सत्यानुभूति को विश्व के सभी व्यक्तियों के चित्त में संक्रामित करके उसी सत्य से सबको उद्बोधित करना पड़ेगा। यह केवल उनके मर्जी की बात नहीं है--यह समाज जीवन के विशेष अंशीदार रूप में उनका अवश्यकरणीय कर्त्तव्य है--यह उनके जीवन का व्रत है। वास्तव जीवन की प्रेरक बुद्धि ही, आनन्दमय हृदयानुभूति है, जीवन सत्य के सम्बन्ध में इसी आनन्दमय हृदयानुभूति को जाग्रत कर शिल्प उसी मंगलमय सत्य की ओर हम लोगों के मन को एवं कर्म को प्रेरित करता है।

आर्ट का काम क्या है इस प्रश्न के उत्तर में हम लोगों के मन में एक धारणा बनी है कि आर्ट हम लोगों को आनन्द प्रदान करता है--और वह आनन्द भी किसी प्रयोजन सिद्धि से उत्पन्न आनन्द नहीं है--वह विशुद्ध अप्रयोजन का आनन्द है। आर्ट हम लोगों को आनन्द प्रदान करेगा इस तरह की धारणा से हम लोगों के बीच साधारणतया एक ऐसी धारणा चालू हो गयी है कि जो कर्म हम लोगों को आनन्द देता है वही आर्ट हुआ। टालस्टाय आर्ट के क्षेत्र में सौन्दर्य और आनन्द के घोर विरोधी हो गये थे। आखिरी दिनों उनके मन में यह धारणा दृढ़ हो गयी थी कि आर्ट के क्षेत्र में सौन्दर्य व आनन्द की इतनी आमदनी होने का कारण विकृति रुचि व तथाकथित उच्च व अभिजात वर्ग का कार्य है। आनन्दवाद के विरोध में उन्होंने एक उदाहरण दिया है, वह है भोजन का उदाहरण। खाने में मनुष्य को आनन्द मिलता है, इससे अगर हम यह कह बैठें कि आनन्द ही भोजन का उद्देश्य है तब तो केवल गलत रास्ते पर ही नहीं गये, एकदम सत्यानाश के रास्ते पर चले गये। भोजन का जो आनन्द है वह है भोजन कर्म का आनुसंगिक लाभ; जीवन में भोजन का और भी गहरा प्रयोजन व तात्पर्य है। ठीक उसी तरह आर्ट आनन्द तो देगा ही, आनन्द न देने पर वह सर्वसाधारण के हृदय को किस प्रकार आकृष्ट एवं आलोड़ित करेगा? मगर इस आनन्दमय दयानुभूति के उद्बोधन द्वारा आर्ट मानवता की यात्रा को जो नित्य श्रेय के पथ पर--उन्नति के पथ पर खींच ले जायगा इस बात को भूल जाने से तो एकदम असल ही समाप्त हो गया, हम आर्ट के मूल तात्पर्य को ही खो बैठे।

नदी जब चलती है तो चलने के वेग में ही एक दिशा ठीक कर लेती है, यह दिशा ही उसके गन्तव्य की निर्देशक है। मानव-जीवन में भी यही बात है। एक विशेष मानव समाज अगर मृत न हो--जीवन्त हो--तो वह चलेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही। इसके चलने के भीतर से ही एक भविष्यत् गति निर्देशक श्रेयबोध जाग्रत हो उठता है। यही श्रेयबोध ही मनुष्य का यथार्थ धर्मबोध है। युग-जीवन का यह जो भविष्यत् गति निर्देशक धर्मबोध है प्रकृति शिल्पी को इसी-को अपने हृदय में पहले धारण करना पड़ेगा, उसके बाद उसके सारे शिल्प कर्म द्वारा युगधर्म को समाज के सभी व्यक्तियों के हृदय में उद्‌बुद्ध कर देना पड़ेगा। शिल्पी का जो कर्म है समाज के अन्यान्य कर्मियों के काम से उसका पार्थक्य यहीं पर है कि शिल्पी अपने कर्म द्वारा मनुष्य के हृदय को जिस प्रकार आनन्द स्पन्दन से उद्‌बुद्ध कर सकते हैं, और उसे नहीं कर पाते। समाज कर्मी की हैसियत से यहीं पर शिल्पी का वैशिष्ट्य है।

साधारण दृष्टि से देखने या शिल्प के सम्बन्ध में गांधीजी एवं टालस्टाय का यह जो दृष्टिकोण है इस विषय में रवीन्द्रनाथ का दृष्टिकोण सम्पूर्ण विपरीत है। रवीन्द्रनाथ अपने गीत, कविता, नाटक, आलोचना में शिल्प के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो कुछ कह गये हैं उसका मूल यह है कि शिल्प मनुष्य का विशुद्ध अप्रयोजनीय आनन्द है। जगह-जगह पर यह भी लगता है कि सब तरह का प्रयोजन-साहित्य ही शिल्प के विशुद्धि का मापदण्ड है। उन्होंने शिल्प को ऊँची आवाज से बेकार का काम एवं आलस्य का संग्रह घोषित किया है, काम के जगत् एवं शिल्प के जगत् को नदी का इस पार और उस पार कहकर घोषित किया है, शिल्प के दीपक को जलाकर किसीके किसी अन्धकार घर को उजाला करने के प्रस्ताव पर असम्मति प्रकट की है। हृदयगति उस दीपक को कास बन में शून्य नदी के तट पर निःस्तब्ध सन्ध्या में अकेले-अकेले अकारण बहा देने की इच्छा प्रकट की है। उन्होंने संसार के मानव को 'कल का मनुष्य' कहकर बहुत जगहों पर उपहास के स्वर में सम्बोधित किया है, शिल्पी को सृष्टि का अतिरिक्त 'व्यर्थ' मनुष्य कहकर प्रच्छन्न गर्व का अनुभव किया है। अपने मन के आनन्द में अपने ही सुर पर मुग्ध होकर घाट मैदान में अकारण बंशी बजा-कर समय काटने के काम की ओर प्रेरित हुए हैं, बंशी के सुर को किसी भी प्रकार प्रयोजन-सिद्धि के काम में लगाने की अपचेष्टा किसीको करना उचित नहीं, यह बात भी उन्होंने घुमा-फिराकर न कही हो, ऐसा नहीं।

शिल्पसृष्टि के क्षेत्र में शिल्पी का व्यक्ति जीवन जो बृहत् समाज जीवन के साथ अंगांगिरूप से युक्त है इसी-लिए शिल्प कर्म भी अन्यान्य सामाजिक कर्मों के साथ अच्छेद्य रूप से युक्त है, रवीन्द्रनाथ ने इस बात को सब जगह स्वीकार करना नहीं चाहा है, बल्कि इस बात को अस्वीकार करने की झोंक ही अधिकतर देखी गयी है। समय-समय पर रवीन्द्रनाथ को इस बात को जोरों के साथ कहते हम लोगों ने देखा है कि शिल्प प्रतिमा समस्त समाज व इतिहास-विवर्तन निरपेक्ष शिल्पी का सम्पूर्ण निज-स्वधर्म है। "जो सृष्टि करता है, उसको सृष्टि का उपकरण कुछ तो इतिहास देता है और कुछ उसका सामाजिक परिपार्श्व, किन्तु ये उपकरण उसको बनाते नहीं।" व्यक्ति को पूर्णरूपेण उसका आत्मधर्म तैयार करता है। शिल्प-सृष्टि शिल्पी के उसी विशेष आत्मधर्म की अभिव्यक्ति है और उसीके बीच से शिल्पी के भीतर के 'मैं' की सानन्द उपलब्धि होती है—इसीमें शिल्प की चरम सार्थकता है। इसीसे शिल्पी है असंग—सम्पूर्ण एकाकी—और केवल। "कारण कि सृष्टिकर्ता अपनी रचनाशाला में अकेले काम करते हैं। वह विश्वकर्म्मा की ही तरह अपने को ही लेकर रचना करते हैं।"

शिल्प रचना के क्षेत्र में शिल्पी की निजस्वसत्ता के ऊपर इतना विश्वास होने से ही रवीन्द्रनाथ को एक और विश्वास हो गया था। शिल्प की सार्थकता के क्षेत्र में भी उन्होंने आत्मानन्द पर ही ज्यादा जोर दिया है। पहले तो देखता हूँ कि—शिल्प पूर्णरूपेण अप्रयोजनीय आनन्द है, दूसरे यह अप्रयोजनीय आनन्द मुख्य रूप से शिल्पी के आत्मोपलब्धि का आनन्द है। उनके मत से इस शिल्पसृष्टि की प्रेरणा वृहत्तर मानव समाज की कल्याण कामना से नहीं आती, सभी प्रेरणाओं का उत्स आत्मप्रसाद में ही छिपा हुआ है। परोक्षरूप में अगर किसी तरह का समाज कल्याण हो जाय तो उसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं, अगर उसीको पकड़कर सचमुच कोई शिल्प-प्रेरणा जाग्रत हो सकती है। रवीन्द्रनाथ आसानी से इसपर विश्वास करने को तैयार नहीं थे। इसके बारे में रवीन्द्रनाथ के विचार खूब परिचित हैं अथवा उनको उद्धरणों से समझाने की आवश्यकता नहीं।

किन्तु रवीन्द्रनाथ की समस्त शिल्पसृष्टि को देखने पर शिल्पबोध के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ के यही विचार हैं ऐसा स्वीकार नहीं कर पाता। गीत, कविता आलोचना में इस तरह की बात रवीन्द्रनाथ ने कही है इसे भी अस्वीकार नहीं कर रहा हूँ। ऐसी बातों को रवीन्द्रनाथ ने बार-बार क्यों कहा है इसपर विचार करने पर यही कहना पड़ता है कि, रवीन्द्रनाथ ने जीवन के प्रथम क्षण से कवि-परिचय को अपना असली परिचय कहकर अनुभव किया है। और सारे जीवन में शिल्प-सृष्टि के लिए उत्सर्गित इसी एकबोध ने भी उनके और सभी बोधों में प्रधानता प्राप्त की है 'कला के लिए कला है।' जब इस बात को कहा जाता है तब असल में यही बात कही जाती है कि 'शिल्प के लिए ही सारा जीवन है।' रवीन्द्रनाथ की समग्र सत्ता में शिल्पी-उपादान ने ही ऐसी प्रधानता प्राप्त की है कि उसके भीतर एक तरह की ऐसी अनुभूति का क्षण-क्षण में जाग उठना खूब स्वाभाविक है साहित्य, संगीत, चित्र—ये सभी शिल्प सृष्टियाँ ही उसके जीवन का काम है—यहाँ तक कि एक-मात्र काम। इस तरह की एक अनुभूति कवि के मन में जब घनीभूत हो उठी तभी उन्होंने सोचा कि, शिल्प जीवन में वे असंग हैं तथा उनका जो शिल्प कर्म है शिल्पानन्द में ही उसकी चरम सार्थकता है—समाज जीवन के किसी प्रयोजन-अप्रयोजन के साथ उसका कोई सम्पर्क नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी चेतना का यह शिल्पबोध जब घनीभूत हो उठा है तब कवि में भी इस सत्य को शिल्पी-जीवन में साधारणीकरण करने की ओर झोंक दिखाई पड़ी है। रवीन्द्रनाथ की शिल्प आलोचना में बहुत समय लगता है यही मनोवृत्ति ही सक्रिय हो उठी है।

किन्तु गौर करने पर साफ-साफ दिखाई पड़ता है कि साथ-साथ ही कवि के मन में प्रतिक्रिया दिखाई पड़ी है—अपने विरुद्ध ही अपनी प्रतिक्रिया। जीवन के किसी एक स्तर-विशेष में पहुँचने पर यह प्रतिक्रिया नहीं पैदा हुई है बल्कि जीवन के आरम्भ से आखिर तक दिखाई पड़ी है। 'प्रभात संगीत' में ही देख पाता हूँ कि कवि धर्म को अवलम्बन करके कवि के अन्दर आत्मकेन्द्रिकता की एक संकीर्ण प्राचीर चारों ओर तैयार हो गयी है तब के उसी अपरिणत कवि मन में उसने अस्पष्ट वेदना पैदा कर दी है; स्वप्न-भंग निर्झर की तरह जिस दिन कवि ने अपने चारों ओर के बंधन तोड़कर जगत् को प्लावित कर पागल की तरह आकुल होकर बिखर जाने की इच्छा का अनुभव किया है वहींपर उन्होंने अस्फुट मुक्ति के आनन्द में अपनी नयी शक्ति एवं अनन्त की सम्भावना की उपलब्धि की है। कवि ने 'कड़ि व कोमल' में अपने आत्मकेन्द्रिक कवि धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया का अनुभव किया है—

आमि गाँथि आपनार चारिदिक घिरे
सूक्ष्म रेशमेर जाल कीटेर मतन।
मग्न थाकि आपनार मधुर तिमिरे,
देखि ना रइ जगतेर प्रकाण्ड जीवन।
केनो आमि आपनार अन्तराले थाकि
मुद्रित पातार माझे काँदे अन्ध आँखि।

इस आत्मप्रतिक्रिया ने ही रवीन्द्रनाथ की कविता 'एबार फिराओ मोरे' में तीव्र आत्मप्रतिवाद का रूप ग्रहण किया है, आलसी कल्पना को लेकर पलायनवादी जीवन के विरुद्ध क्षुब्ध होकर रवीन्द्रनाथ ने जो इस 'सम्मुख है कष्ट का संसार (सम्मुखे ते कष्टेर संसार') की ओर दृष्टि घुमाना चाहा वह कोई सामयिक प्रतिक्रिया मात्र नहीं थी। रवीन्द्रनाथ ने इस कविता में अपने शिल्पी जीवन की सार्थकता को ही हम लोगों के सामने विस्तृत रूप में पेश किया—

से बाँशिते शिखेछि ये सुर
ताहारि उल्लासे यदि गीतशून्य अवसाद पूर
ध्वनिया तूलितें पारि, मृत्युंजयी-आशार संगीत
कर्महीन जीवनेर एक प्रान्त पारि तरंगिते
शुधू मुहूर्तेर तरे, दुःख यदि
पाय तारा भाषा,
सुप्ति ह'ते जेगे ओठे अन्तरेर
गंभीर पिपासा,
स्वर्गेर अमृत लागि—तबे धन्य
होबे मोर गान....

थोड़ा सा गौर करने पर देख पायेंगे कि, कवि जीवन के इसी आदर्श व उद्देश्य को उन्होंने अपने दीर्घ जीवन में चरितार्थ किया है, और इस काम को वे जितना कर सके हैं आज उनके जन्म के १०० वर्ष बाद हम अपने समग्र मानव-जीवन में उनको उतनी श्रद्धा अर्पित कर रहे हैं। उन्होंने सारे जीवन में जो कुछ किया है उसमें टालस्टाय का कहा हुआ युग जीवन का परमश्रेय बोध ही प्रकट हुआ है, और इस परमश्रेय बोध ने ही भविष्य की मानव जाति का दिशा निर्देश कर दिया है। इस मानवता के परम आदर्श को उन्होंने केवल बुद्धिग्राह्य करके हम लोगों के सामने नहीं रखा है, उन्होंने उस परम आदर्श को आनन्द मान हृदयानुभूति के द्वारा मनुष्य के अन्तस्तल में पहुँचा दिया है। कर्मों के हिसाब से भी यहीं पर उनकी असाधारणता है। वे अपने नाटक, गीत, कविता, कहानी में मनुष्य के भीतर के सुन्दर, मधुर, श्रेय को—महत् को—जिस प्रकार जागृत कर मानव के इतिहास को अग्रसर कर पाये हैं मनुष्यों में बहुत कम लोग वैसा कर पाये हैं। यहीं पर उनके शिल्पी जीवन की सामयिक सार्थकता है।

रवीन्द्रनाथ ने शिल्प के साथ प्रयोजन के सम्बन्ध को विभिन्न तरह से अस्वीकार किया है, मगर शिल्प के साथ मंगल को नहीं अस्वीकार किये हैं, बल्कि सुन्दर अपनी पराकाष्ठा पर मंगल के पास पहुँचा देता है, इस तरह का विचार उन्होंने अपने साहित्य में बहुत जगह प्रकट किया है 'काल की यात्रा' नामक नाट्य कविता में उन्होंने कहा है कि वे कालिदास के दल के कवि हैं; कालिदास शैव थे, शैव धर्म ही कवि धर्म है। यहाँ पर शैव शब्द का अर्थ है मंगल का उपासक। कालिदास ने अपनी सम्पूर्ण सौन्दर्योपासना के भीतर मंगल की उपासना की है। इसने रवीन्द्र नाथ को गांधी के प्रति काफी श्रद्धावान् कर दिया था; उसी सौन्दर्य की उपासना के भीतर ही मंगल की उपासना के आदर्श को ही रवीन्द्रनाथ ने श्रेष्ठ शिल्पादर्श स्वीकार किया है।

यहाँ पर अवश्य प्रश्न उठेगा कि, मनुष्य का मंगल क्या मनुष्य के हर तरह के प्रयोजन से निरपेक्ष होगा? अगर ऐसा नहीं है तो मंगल के आदर्श से युक्त शिल्प पूर्णरूपेण प्रयोजन-निरपेक्ष कैसे होगा? असल में रवीन्द्रनाथ जहाँ पर शिल्प के सम्बन्ध में प्रयोजन की बात कहते, वहाँ पर उनके सामने स्थूल प्रयोजन ही रहता था। उस स्थूल प्रयोजन बोध को नगद मूल्य से दूर रखकर शिल्प को वे और भी मूल्य देना चाहते थे। गांधीजी निश्चय ही प्रयोजन के बीच इस स्थूल-सूक्ष्म के विभाजन को कृत्रिम समझते थे; मनुष्य के सामयिक मंगल के साथ उसके तथाकथित स्थूल सूक्ष्म सभी प्रयोजन युक्त है, वे इसीसे शिल्प को स्थूल सूक्ष्म सभी प्रयोजनों में युक्त कर लेने के पक्षपाती थे। इसीलिए वे और टालस्टाय शिल्प को किसी अनुशीलित-चित्त गोष्ठी-विशेष के बीच ही सीमाबद्ध न रख जहाँ तक सम्भव हो अधिक से अधिक जन साधारण के बीच पहुँचा देने के पक्षपाती थे। रवीन्द्रनाथ ने उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटि के लिए निम्न कोटि के लिए या सभी कोटियों के लिए रचना करें ऐसा कोई मनोभाव लेकर रचना नहीं की थी, मगर जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने स्वयं अनुभव किया था कि उनकी जीवनानुभूति बहुगामी होकर भी सर्वगामी नहीं हो सकी है; यह जो उनकी अपूर्णता है इसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।

चाषी खेते चलाईछे हाल,
ताँती बोसे ताँत बोने, जेले फेले जाल:—
बहु दूर प्रसारित एदेर विचित्र कर्मभार,
तारि परे भर दिये चोलिते छे
समस्त संसार।
अति क्षुद्र अंशे तार सम्मानेर
चिर निर्वासनेर
समाजेर उच्च मंच बोसेछि संकीर्ण
वातायने।
माझे माझे गेछि आमि ओ पाड़ार,
प्रांगणेर धारे,
भीतरे प्रवेश करि से शक्ति छिलो ना
एकेबारे।
जीवने जीवन योग करा,
ना होले, कृतिमपन्ने व्यर्थ हाय
गानेर पसरा।
ताइ आमि मेने निइ से निन्दार कथा—
आमार सुरेर अपूर्णता
आमार कविता जानि आमि,
गेलेउ विचित्र पथे होय नाइ से सर्वत्र गामी।

यहाँ पर कवि ने अपने जीवन के एक सत्य को निश्छल भाव से स्वीकार किया है, सर्वसाधारण के साथ अपने हार्दिक सम्बन्ध को उन्होंने सहजभाव से अनुभव नहीं किया। उन्होंने सर्वसाधारण की बात अपने लेखन में अनेक बार कही है, मगर बहुत से क्षेत्रों में वह 'अरेस्ट्रोक्रेट' चिन्ता है, और कहीं पर वह परिशोधित आदर्श मात्र है। सम्बन्ध जहाँ पर सहज सम्बन्ध नहीं है, उस सम्बन्ध को जोर लगाकर लाने से एक तरह की कृत्रिमता ही आती। उसमें हृदय का संबंध नहीं बन पाता। कविता, गीत के द्वारा महामानव की सेवा कवि के जीवन में पूरी नहीं हो सकी, मनुष्य के आस-पास रहना जितना उचित था, उतने पास वे जो नहीं रह पाये, यह आत्म-चेतना क्षण-क्षण पर कवि के मन में काँटे की तरह चुभती थी। इसीलिए 'पत्रपुट' की १२वीं कविता में व्यथित चित्त से कवि ने कहा है—

गान जे मानुष गाय, दियेछे से धरा,
आमार अन्तरे;
ये मानुष देय प्राण, देखा मेले निताए।

१९३९ में मृत्यु के दो वर्ष कुछ पहले भी कवि ने अपने को धिक्कारा है—

मानुषेर असम्मान दुर्विषहे दुखे,
उठेछे पुंजित हये चोखेर सम्मुखे,
छूटि नि करिते प्रतिकार—
चिरलग्न आछे प्राणे धिक्कार ताहार।

शिल्पधर्म को लेकर रवीन्द्रनाथ के मन में एक तरह का अन्तर्द्वन्द्व था। जीवन के आरम्भिक दिनों में प्रकृति के बीचसौन्दर्यमुग्धता ने उनको जैसे बहुत कुछ मानव विमुख करके वृहत् जीवन क्षेत्र से पलायनवादी कर रही थी। अथच निखिल मानव के साथ निविड़ रूप से युक्त होने की एक आकांक्षा भी उनके मन में आरम्भिक जीवन से ही एक सहजात वासनारूप में दिखाई पड़ी है। वास्तविक जीवन में पहले कवि इन दोनों रुझानों में समन्वय नहीं कर पा रहे थे, फलतः मानवता बोध उनके भीतर एक आदर्शमात्र रहकर व्यावहारिक जीवन में सौन्दर्य-मुग्धता ही उनके पास बड़ी हो उठ रही थी। किन्तु परिपूर्ण जीवन प्राप्त करने के लिए इन दोनों वासनाओं के वास्तविक क्षेत्र में समन्वय कर लेना होगा; इसी समन्वय की अन्तरतागीद से ही धीरे-धीरे कवि का शान्ति-निकेतन तैयार हुआ है—वही शान्ति-निकेतन फिर धीरे-धीरे विश्व-भारती में परिणत हुआ है। कवि में भी प्रकृति की विपुल सौन्दर्यस्पृहा दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी; और मनुष्य के प्रति असीम प्रेम घनीभूत हो रहा था। कवि में इस अन्तहीन सौन्दर्यस्पृहा एवं असीम प्रेम में संगीत की आवश्यकता थी—शान्ति-निकेतन की योजना की नींव एवं उत्तरोत्तर क्रमविकास के भीतर से ही कवि के अन्दर यह समन्वय आया है, यहीं पर सुन्दर की उपासना के साथ कवि महामानव की सेवा को निविड़ रूप से मिला ले पाये हैं।

रवीन्द्रनाथ के यहाँ महामानव की सेवा का अर्थ क्या है? रवीन्द्रनाथ की धारणा थी, कि प्रत्येक व्यक्ति मानव एक एक जीवन-कमल है; बहुत काल से यह जीवन-कमल जन्म-जन्मान्तर के भीतर से अखंड धारा में विकसित हो रहा है, इसी तरह अनन्त जीवन-कमल भी विकास करना चाहता है, एक परमपुरुष के 'मानव सरोवर में'। हम लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जन्म-कर्म के भीतर जीवन-कमल की पंखुड़ियाँ एक-एक करके खोलकर हम लोग निरन्तर पूर्ण प्रकाश की ओर चल रहे हैं। प्रत्येक मानव का यह जीवन विकास को लेकर विश्व-जीवन विकसित हो रहा है--एवं महामानव का इतिहास आवर्तित हो रहा है। इसीको रवीन्द्रनाथ ने ब्रह्मकमल कहा है। अखंड मानवता का विकास ही इस निखिल देशकाल परिव्याप्त होकर ब्रह्मकमल का विकास हुआ। इस ब्रह्मकमल को जहाँ तक हो सके और भी विकसित किया जाय, यही महामानव की सेवा है। विकास में ही मानव की मुक्ति है--पूर्णता के आदर्श की ओर का अग्रसरण ही मुक्तिपथ का अग्रसरण है।

शान्ति-निकेतन की स्थापना एवं विश्वभारती के धीरे-धीरे तैयार होने के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ के मन में यह चेतना घनीभूत होने लगी कि जीवन की जितनी शिल्पसृष्टि है उनके भीतर से उन्होंने महामानव के विकास को ही जितना कर सके हैं अपनी तरह करके आगे बढ़ा दिया है। अनुभूति से, मन से, बात, सुर, रंग, रेखा, मानव-आत्मा जो कुछ सुन्दर मधुर है--जो कुछ विराट् और महत् है उसीको उन्होंने जागृत कर देना चाहा है। इस निखिल मानवता के क्रमविकास में एक 'महान् पुरुष' जग उठ रहे हैं, मानवता की सेवा उस 'महान् पुरुष' की ही सेवा है। अपनी सारी सौन्दर्यस्पृहा, मानवतावाद, अध्यात्म-विकास --सबको मिलाकर परिणत उम्र में रवीन्द्रनाथ ने यही जीवन-सार्थकता को अनुभव करने की चेष्टा की है, इस विश्व-जीवन के क्षेत्र में महामानव के बीच वे भी उपस्थित थे, उनके सकल ध्यानधारणी, कर्म नर्म सबके बीच यह जो अखण्ड मनुष्य है--शाश्वत मनुष्य है--उसको परिपूर्ण रूप से विकास के पथ पर बढ़ा देने की उन्होंने चेष्टा की है।

रवीन्द्रनाथ के परिणत उम्र की यह जो शिल्प अनुभूति है उसे ही गांधीजी एवं टालस्टाय दोनों यथार्थ शिल्प-अनुभूति कहकर स्वीकार करेंगे। रवीन्द्रनाथ के इस आन्तरिक शिल्पी को ही गांधीजी ने गुरुदेव कहकर स्वीकार कर लिया था--यह शिल्पी ही जो केवल भारतवर्ष में ही नहीं, विश्ववासियों के मन में एक तरह के उर्ध्वायन का स्पन्दन जगा दे पाये हैं, इसी सत्य ने गांधीजी को कवि के प्रति इतना श्रद्धान्वित कर रखा था।

तुमसे जितनी मिली प्रेरणा....

श्री रामचन्द्र शर्मा 'किशोर'

तुमसे जितनी मिली प्रेरणा
वह साभार तुम्हें देता हूँ।

तुम जब दीप जलाते नभ के
मैं धरती का दीप जलाता;
तुम जब राका संग विचरते
मैं मन-ही-मन में मुसकाता;
मन-से-मन का तिमिर भेद कर
वह संसार तुम्हें देता हूँ।

पता न जाने किस जड़ता के
तुम बनते चेतन अविनाशी;
तुम तो अचल अमर बन बैठे
मैं फिरता वन-वन संन्यासी;
अग्नि-परीक्षा की घड़ियों में
मैं विश्वास तुम्हें देता हूँ।

कितनी बार पुकारा तुमको
दुःख न क्यों तुम सुन पाते हो;
रहते हो तुम यहीं कहीं पर
फिर भी पास नहीं आते हो;
पास न आओ भले कभी तुम,
मैं सम्मान तुम्हें देता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (११)

पण्डित व्रजमोहन व्यास

मालवीयजी के परिवार का वातावरण--

इसे पूर्ण रीति से समझने के लिए आप एक बार फिर याद कर लें कि उनका परिवार एक परम भागवत परिवार था और यह भगवान् में निष्ठा उस परिवार की कई पीढ़ियों की पैतृक सम्पत्ति थी जिसके बल पर वहाँ सुख और शान्ति सदा बनी रहती थी। संस्कृत साहित्य बताता है कि

शुक्लाः पारावता यत्र गृहिणी यत्र चोज्ज्वला।
अकलहा वसतिर्यत्र तत्र कृष्ण वसाम्यहम्॥

लक्ष्मी (सुख-सम्पत्ति) कहती हैं कि हे कृष्ण! जिस परिवार में सफेद कबूतर रहते हैं, जहाँ घर की मलकिन प्रसन्न-वदना रहती है और जहाँ कलह, दाँता-किटकिट नहीं होती, वहाँ मैं निवास करती हूँ।

और मालवीयजी भी पाली सुत्तनिपात के धनिय गोप की भाँति विघ्न-बाधाओं से विचलित न होते हुए सुखपूर्वक जीवन-यापन करते थे। धनिय नाम का एक पवित्र परिवारवाला कर्मठ गोप था। घनघोर वृष्टि हो रही है। धनिय नाम का गोप गार्हस्थ्य जीवन के सरल सुखों की प्राप्ति के कारण, अपनी बखरी में निश्चिन्त बैठा हुआ, देवराज इन्द्र को चुनौती दे रहा है :--

पक्कोदनो दुद्धखीरोऽहमस्मि
अनुतीरे महिया समानवासो।
छन्नाकुटि अहितोगिनि
अथ चे पत्थयसी पबस्स देव॥

मेरा यहाँ दूध, खीर और पका हुआ भोजन यथेष्ट है। नदी किनारे मैं अपने परिवार के साथ, एक सी बनी हुई कुटियों में रहता हूँ। मेरी कुटी खूब छाई हुई है, और उसमें अग्नि प्रज्वलित है। हे देव! तुम जितना चाहो बरसो। तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

अन्धक मकसा न विज्जिरे
कच्छे रुलह तिणे चरन्ति गावो।
वुट्ठिंपि सहेयु मागतं
अथ चे पत्थयसी पबस्स देव॥

मेरे यहाँ न मक्खियाँ हैं न मच्छर। मेरे कछार में गायों के लिए हरी-हरी घास लहलहा रही है। वहाँ चरती हुई मेरी तगड़ी गायें वर्षा का वेग सहने में समर्थ हैं। देव! तुम जितना चाहो बरस लो।

गोपी मम अस्सवा अलोला
दीघरत्तं संवासिया मनापा।
तस्सा न सुणामि किंचि पापं
अथ चे पत्थयसी पबस्स देव॥

मेरी गोपी सुन्दर है। उसका मन शुद्ध है। वह बहुत दिनों से मेरी सहधर्मिणी है और मुझमें अनुरक्त है। उसके विषय में मैंने कभी कोई अनुचित बात नहीं सुनी। हे देव! तुम जितना चाहो बरसो।

वेतनभतोऽहमस्मि
पुत्ता च मे समानिया अरोगा।
तेसं न सुणामि किंचि पापं
अथ चे पत्थयसी पबस्स देव॥

मैं अपनी कमाई से अपना भरण-पोषण करता हूँ अर्थात् हलाल का खाता हूँ, हराम का नहीं। मेरे पुत्र और पुत्रियाँ स्वस्थ एवं नीरोग हैं। उनके सम्बन्ध में भी मैंने कभी कोई अनुचित बात नहीं सुनी। देव! तुम जितना चाहो बरसो।

अत्थिवसा, अत्थि धेनुपा
गोधरणियो पवेनियो च अत्थि।
उसभो पि गवम्पती च अत्थि
अथ चे पत्थयसी पबस्स देव॥

मेरा गोंठ बछड़े-बछियों से भरा है। गाभिन गायें भी उसमें हैं। उसमें साँड़ भी हैं। देव! तुम जितना चाहो बरस लो।

खिला निखाता असम्पवेधी
दामा मुंजमया नवा सुसंठाना।
नहि सिक्खिन्ति धेनुपापि छेत्तुं
अथ चे पत्थयसी पबस्स देव॥

गायों के खूँटे दृढ़ता से गड़े हुए हैं। मूँज की खूब बटी हुई रस्सियाँ नई और पोढ़ी हैं। साँड़ भी उन्हें नहीं तोड़ सकते। देव! तुम जितना चाहो बरस लो।

यद्यपि इस संस्मरण के लिए उपर्युक्त एक ही दो श्लोक पर्याप्त थे पर यह प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार चलते हुए, एक सुखी एवं सन्तुष्ट ग्रामीण परिवार की इतनी सुन्दर झाँकी है और फिर मालवीयजी के सुखी परिवार से उसका इतना साम्य है कि मैं उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० लक्ष्मीधर मालवीय, महामनाजी के पौत्र

पूरे का पूरा उद्धरण करने का लोभ नहीं संवरण कर सका। पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

मालवीयजी की एक सगी बड़ी बहिन थीं। उनका नाम सुभद्रा था। सम्पूर्ण परिवार उन्हें आदर से 'बिट्टी बुआ' कहता था। परिवार के बाहर के लोग भी उन्हें बिट्टी बुआ के नाम से ही पुकारते थे। मैं भी उन्हें बिट्टी बुआ ही कहता था और बहुत दिनों तक नहीं जानता था कि वे मालवीयजी की सगी बहिन हैं। यह तो जब संस्मरण लिखने बैठा तो मैंने अपनी बहिन सौभाग्यवती विद्या से खरियाया। बिट्टी बुआ मिर्जापुर में ब्याही थीं और बाल-विधवा थीं। विधवा होते ही, उनके पिता पं० व्रज-नाथजी उन्हें अपने घर लिवा लाये और अपने इष्टदेव, राधा-कृष्ण की जोड़ी के सामने खड़ी कर कहा कि "बेटी ! अब तुम्हारे यही पति हैं और यही तुम्हारे पुत्र हैं।" निर्बोध बच्ची भौचक्की सी सूखे नेत्रों खड़ी रही जैसे कह रही हो--

शक न कर मेरी खुश्क आँखों पर।
यूँ भी आँसू बहाये जाते हैं॥

और उसने अपने देवतुल्य पिता के आदेश को अपने आँचल के छोर में बाँधकर जीवन-पर्यन्त निभाया। ८९ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया। वैधव्य की इस लम्बी और दुर्लंघ्य अवधि में बिट्टी बुआ ने अपने व्यवहार एवं आचरण से कभी कोई ऐसी बात नहीं की जिससे परिवार का मस्तक नत हो।

उनके देहान्त के थोड़े ही पहिले की दो-एक छोटी-छोटी घटनायें हैं। उनसे परिवार के स्निग्ध वातावरण पर प्रकाश पड़ता है अतः उन्हें लिखता हूँ। मेरी बहिन, सौभाग्यवती विद्या को वे बहुत प्यार करती थीं। विद्या के केवल दो सन्तान थीं और वे दोनों कन्यायें थीं। मालवीय-जी की बड़ी इच्छा थी कि विद्या के भी एक पुत्र हो जाय जैसे उनके अन्य पुत्रों के थे। सम्भवतः उनका यह ख्याल रहा हो कि पुत्र न होने से सौ० विद्या का जी छोटा रहता हो। परन्तु

पं० लक्ष्मीधर मालवीय की धर्मपत्नी सौभाग्यवती इन्दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

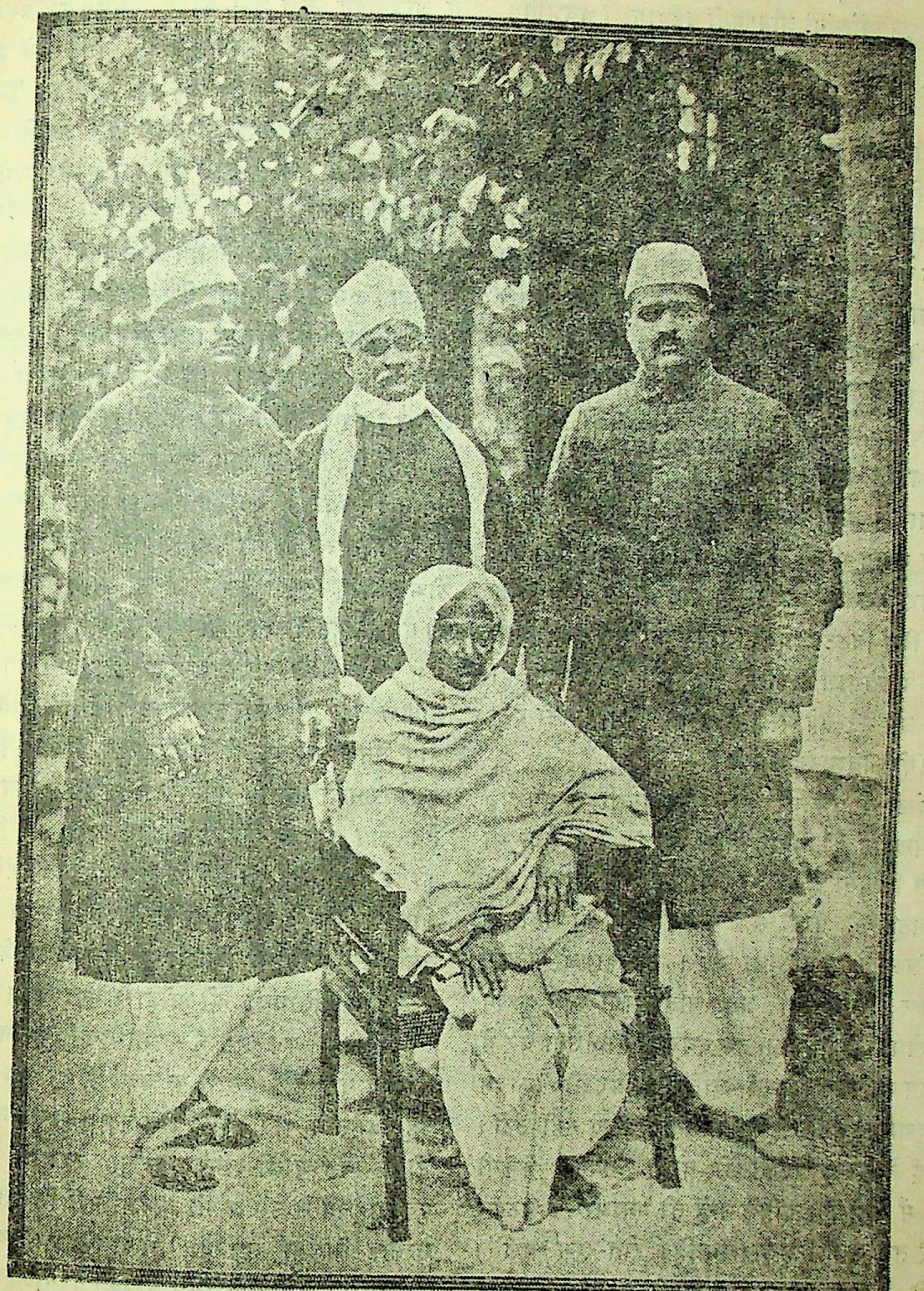

पूज्य मालवीयजी की धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवी बीच में कुर्सी पर बैठी हैं। पीछे उनके तीन पुत्र (बाईं ओर से) मुकुन्द, रमाकान्त और गोविन्द खड़े हैं। राधाकान्त इसमें नहीं हैं।

पौत्र की प्रतीक्षा करते मालवीयजी को बीस वर्ष बीत गये। एक्कीसवें वर्ष वह अवसर आ ही तो गया। घर की सभी स्त्रियाँ चुपके-चुपके इसकी चर्चा करने लगीं। बिट्टी बुआ के पेट में बात नहीं पचती थी। उन्होंने मालवीयजी से कहा "नाहक ये लोग चुप-चुप बात करती हैं। कहीं गुदड़ी में लाल छिपता है।" मालवीयजी बड़े प्रसन्न हुए, यद्यपि भीतर से जी धुक-धुक करता था। बिट्टी बुआ से इस शुभ समाचार को सुनकर धीरे से बोले जैसे अपने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कहते हों "पुत्रपूर्वोत्संगां आयुष्मतीं द्रक्ष्यामः (भवभूति) आयुष्मती (विद्या) की गोद में पुत्र से भरी देखूंगा।" उनके मुँह से निकली बात पूरी उतरी। समय से लक्ष्मीधर का जन्म हुआ। तब तक बिट्टी बुआ बहुत लट गयी थीं। दिन-रात राधिकाजी के पुराने कपड़ों की गठरी सर के नीचे और उनके गहने सिरहाने रखे 'बेनिया' नौकर को पुकारती रहती थीं कि वह राधिकाजी के कपड़ों को धो दे और गहनों को चमचमा दे। राधिकाजी को रच-रच कर मेंहदी लगाना, उनके कपड़ों को धोना और गहनों को लपालप रखना उनका अस्सी वर्ष से नित्य का काम था। परन्तु अब वे चारपायी से लग गयी थीं। इन कामों के लिए उन्हें दूसरे का मुँह जोहना पड़ता था। लक्ष्मीधर जब बारह दिन का हुआ तो उन्होंने कहा "बहू! अब जल्दी 'पथावाँ' चढ़ा दो और गवाय भी दो"। पथावाँ (मिष्टान्न वितरण) तो हो गया पर जिस दिन गायन-समारोह की तिथि निश्चित हुई थी उस दिन बिट्टी बुआ राधिकाजी के पैर के सहारे उनके हृदय में जा बसीं। चि० लक्ष्मीधर का विवाह हो गया है और उसे मेरे सगे भाई की पौत्री सौभाग्यवती इन्दु एम० ए० संगीत-विशारद ब्याही है।

एक छोटी-सी घटना जो मालवीयजी के पुत्र पं० गोविन्द मालवीय के विवाह से सम्बन्धित है, याद आ गयी। उसे लिखता हूँ। चि० गोविन्द का विवाह पं० बालकृष्ण भट्ट की पौत्री से, मालवीयजी की पत्नी के मर्जी के खिलाफ, तय हुआ था। मालवीयजी ने उसे स्वीकार कर लिया था अतः पतिवर्त्मगा सौ० कुन्दन देवी ने विरोध नहीं किया। जब नववधू सौ० उषा घर में आई तो सास को परछन करना चाहिए था पर सौ० कुन्दन देवी सर झुकाकर बैठी रहीं। परछन के लिए नहीं उठीं। एक भौजाई ने तुरन्त चुटकी ली, बोली "मदन! केकयी कोप-भवन में बैठी हैं। पहिले उन्हें तो मनाओ कि उठकर परछन करें तब आगे टिहुला (वैवाहिक रीत-रस्म) चलै"। मालवीयजी ने ईषत्- हास्य से कहा तो हाँ, हाँ, पर अपनी पत्नी से कुछ नहीं कहा और वे 'चित्रार्पितारम्भ' सर झुकाये बैठी रहीं। भौजाई ने उठकर परछन कर दिया। सौ० कुन्दन देवी की बात रह गयी। क्रमशः सौ० उषा ने उन्हें अपनी सेवा से इतना मोह लिया कि वे अपनी पतोहुओं में सबसे अधिक उसे प्यार करने लगीं।

मालवीयजी जब कभी प्रयाग से बाहर जाते थे—और वे आये दिन जाते थे—तो वे सर्वप्रथम वस्त्र बदलकर परिवार के इष्टदेव राधाकृष्ण के मन्दिर में जाकर नत-मस्तक होते थे। तदनन्तर वे अपनी बहिन 'बिट्टी बुआ' से थोड़ी देर बातें करते थे और फिर अपनी धर्मपत्नी के पास थोड़ी देर उन्हें दुलारते थे। इस कार्यक्रम में कभी फर्क नहीं पड़ा।

अभी कल ही की बात है। मैंने अपनी बहिन सौ० विद्या से कहा कि मैं मालवीयजी के संस्मरणों में तुम्हारी सास की 'शवीह' शब्दों में खींचूंगा। बोली "भैया! तुम्हें तो उनसे कभी काम नहीं पड़ा। तुम उन्हें कैसे समझ सकते हो? उनका चित्रण करना सहज काम नहीं है। वह तुम्हारे बूते का नहीं है।" मैंने कहा, तुमसे हम सब पूछ लेंगे। बोली "भैया, सिखये पूत दरबार नहीं जाते। दुस्साहस न करो। हमें तो इसीमें सन्देह है कि बाबूजी (मालवीयजी) उनका ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सके।" पर जब उसने मुझे कटि-बद्ध देखा तो मुझसे बहुत देर बातें कीं और मैं सन्तुष्ट होकर घर लौटा।

संस्मरण के कुछ पात्र ऐसे ढीठ होते हैं कि बार-बार आपकी राह में, अनाहूत आकर खड़े हो जाते हैं। यद्यपि आप उनके सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत लिख चुके हैं; परन्तु इससे उनको सन्तोष नहीं होता। इसमें दोष उनका नहीं है। दोष संस्मरण-लेखक का है। यदि आप किसी अतिथि को पेट भर भोजन न देंगे तो चाहे वह थोड़ी देर के लिए चला जाय पर वह फिर आपका दरवाजा पीटेगा और आपको उसके लिए दरवाजा खोलना पड़ेगा, चाहे उसके कारण अन्य सम्भ्रान्त अतिथियों को थोड़ा रुकना पड़े।

ऐसी ही एक पात्र हैं सौभाग्यवती कुन्दन देवी। उनके सम्बन्ध में पहिले कुछ लिख चुका हूँ, पर अब देखता हूँ कि वह पर्याप्त न था। जिस पात्र का संस्मरण नायक के साथ जीवन-पर्यंत चोली-दामन का सा रहा हो, जिसके सौख्य एवं साहचर्य से उसे अपनी कर्मभूमि में निरन्तर प्रेरणा और उत्साह मिलता रहा हो, जो उसके गार्हस्थ्य जीवन का सहारा रहा हो, उसके लिए आपको दरवाजा खोलना पड़ेगा चाहे जितनी बार और जिस समय वह आवे।

सौभाग्यवती कुन्दन देवी में पुरुष की सी शासन-शक्ति थी, स्त्री का सा मार्दव था, माता का वात्सल्य था, 'ओहि झाऊ बरै और सीधी सास लड़ै' का अभाव था। जिसने ४० वर्ष बिना किसी नागे के गंगास्नान करके अपने शरीर एवं आत्मा को परिष्कृत किया हो और सर्वोपरि पति क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंह जोहना जिसका परम धर्म हो ऐसी रूप-गुणान्विता पत्नी पाकर मालवीयजी उन्हें दुलारते थे तो इसमें क्या आश्चर्य था।

कुन्दन देवी अपनी गृहस्थी पर इस प्रकार हावी थी जैसे सूर्य

समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम्।
अधितिष्ठति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः॥

सूर्य जिसकी रश्मियाँ साधारणतया, प्रातः एवं सायंकाल में सुखद होती हैं पर मध्याह्न में उन्हें कोई सहन नहीं कर सकता।

मालवीयजी और स्त्रीशिक्षा

स्त्रियों की शिक्षा की ओर उनका क्या दृष्टिकोण था, इसको विचार करने में यह न भूलना चाहिए कि जो कुछ काम वे करते हैं, जो कुछ विचार उनके मन में आते थे, चाहे वे शिक्षा-सम्बन्धी हों, अथवा सामाजिक या राजनीतिक उन सबको वे धर्म की कसौटी पर कसते थे और जब वे उस पर खरे उतरते थे तभी उसके अनुसार वे काम करते थे। स्त्रियों और बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण की परिधि बड़ी विस्तृत थी। केवल स्कूल और कालिजों के भीतर सीमित नहीं थी। लड़कियों के चरित्र-निर्माण पर वे विशेष जोर देते थे। जब कभी कोई लड़का या लड़की, 'आटोग्राफ बुक' पर मालवीयजी से हस्ताक्षर करने के लिए कहता था तो लड़कों के 'आटोग्राफ बुक' में यह लिखकर हस्ताक्षर करते थे :—

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

(सत्य से, ब्रह्मचर्य से, व्यायाम से, विद्या से, देशभक्ति से, और आत्मत्याग से सर्वदा सम्मान के योग्य बनो।) और बालिकाओं के 'आटोग्राफ बुक' पर लिखते थे :—

जो पै पुत्री होय तो सीता सती समान।
अथवा सावित्री सरिस रूप-शील-गुन-खान॥

ये दोनों पद्य मालवीयजी ही के बनाये थे। इसीसे स्पष्ट है कि वे बालिकाओं के चरित्र-निर्माण पर कितना जोर देते थे।

मालवीयजी के इस 'रूप-शील-गुन-खान' पर एक घटना याद आ गयी। एक बार माघ मेले के अवसर पर वे गंगास्नान करने गये थे। साथ में ईश्वरशरणजी थे और मैं था। बाँध के नीचे हम लोग पैदल चल रहे थे। ईश्वरशरणजी भीड़ के कारण कुछ पीछे पड़ गये थे। हम दोनों से थोड़ी ही दूर पर एक अतीव सुन्दरी, लम्बी-लहकारी पंजाबी लड़की आँखें नीचे किये हुए, विष्णुसहस्रनाम का कण्ठस्थ पाठ करते, मन्दगति से चली जा रही थी। जैसे ही उस लड़की के पाठ की मधुर ध्वनि मालवीयजी के कानों में पड़ी, मालवीयजी ने उसकी ओर देखा और तुरन्त मुड़कर बोले "ईश्वरशरण! जल्दी आओ। देखो उस लड़की को। कब हमारी बहुएँ और बेटियाँ ऐसी होंगी।" मालवीयजी की परिभाषा में उस लड़की का सौंदर्य उसकी शालीनता, उसका लम्बा छरहरा कद, उसकी नीची निगाहें, उसका स्वास्थ्य, उसकी मधुर कण्ठ-ध्वनि से विष्णु सहस्रनाम का पाठ, सभी स्त्री-शिक्षा के आवश्यक अंग थे। वे सहसा बोल उठे :—

यथा जन्मान्तराभ्यासात् कण्ठे कस्यापि रक्तता।
तथैव पाठसौंदर्यं नैकजन्मविनिर्मितम्॥

—राजशेखर

जैसे पूर्व जन्म के संस्कार से किसीका गला सुरीला होता है, उसी तरह काव्य-पाठ का सौंदर्य अनेक जन्मों के अभ्यास से होता है।

सन् १९३५ की बात है। एक दिन गीता-प्रवचन के अवसर पर उन्होंने छात्र-छात्राओं एवं अध्यापकों को उपदेश देते हुए कहा था "इस विद्यालय में केवल विद्या ही पढ़ना नहीं है, इसीके साथ-साथ चरित्र बनाना है। ज्ञान और चरित्र दोनों का मेल कर देने से संसार में मान होगा तथा गौरव प्राप्त होगा।" एक दूसरे अवसर पर उन्होंने छात्रावास के निवासी, बालकों और बालिकाओं से अपने भाषण में कहा था—"विश्वविद्यालय में निवास करने का पहिला कर्तव्य यह है कि व्यायाम करके शरीर बनावे। पहिले स्वास्थ्य सुधारे, फिर विद्या पढ़े। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करे तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं। नित्य सबेरे-शाम नियम से व्यायाम करे। शाम को खेले। मैदान में विचरे। जल्दी भोजन करे और नियम से नित्य अध्ययन करे। धार्मिक उत्सवों, एकादशी-कथा, गीता-प्रवचन आदि में उपस्थित रहे और विद्वानों का उपदेश ले। उनका अनुभव ग्रहण करे और आशीर्वाद ले। अपनी रक्षा आप करे। समय की पाबन्दी रखे। व्यर्थ समय नष्ट न करे। माता पूज्य हैं। हम माता से शिक्षा लें और उनके उपदेश सुनें।" ऐसे मालूम नहीं, कितने उपदेश उन्होंने छात्रों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्राओं को समय-समय पर दिये हैं जिनसे स्त्री-शिक्षा की ओर मालवीयजी की पवित्र भावना का पता चलता है। एक स्थान पर आप लिखते हैं :--

"शास्त्र बतलाता है कि 'धर्मार्थ काममोक्षाणां आरोग्यं मूलकारणम्' (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों के साधन का मूल कारण आरोग्य है।) आरोग्य--नीरोगता, तन्दुरुस्ती के बिना इनमें से एक का भी साधन नहीं हो सकता। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को उचित है कि किसी न किसी प्रकार का व्यायाम नित्य करे जिसमें धर्म के साधन, अर्थ के कमाने, सुख के भोगने और अन्त में परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उसकी कार्या प्रबल और मन निर्मल बना रहे।

दूध पियो, कसरत करो, नित्य जपो हरि नाम।
हिम्मत से कारज करो पूरेंगे सब काम॥

समस्त हिन्दू सन्तान के लिए शास्त्र के अनुसार मैंने संक्षेप में हिन्दू धर्म का कुछ उपदेश लिख दिया है। जो प्राणी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस उपदेश को बर्तेगा वह इस लोक में सुख और मान पावेगा और परलोक में परम पद को पहुँचेगा।"

मालवीयजी के इस उपदेश को कि 'माता पूज्य हैं। हम माता से शिक्षा लें और उनके उपदेश सुने' पढ़कर मुझे Victor Hugo (विक्टर ह्यूगो) का यह वाक्य सहसा याद आ गया। "To form the mind of a young girl, all the nuns in the world are not equal to one mother (कन्या के मन को ढालने के लिए दुनिया के कानवेंट की सब भिक्षुणियाँ मिलकर एक माँ के बराबर नहीं हैं।)

महामनाजी स्त्रियों को पुरुषों से गौण स्थान नहीं देते थे, जो शिक्षा वे पुरुषों के लिए उपयोगी समझते थे उन सबको वे स्त्रियों एवं बालिकाओं के लिए उचित समझते थे। वे चाहते थे कि लड़कियाँ और स्त्रियाँ सीता और अरुन्धती के समान पवित्र हों। वे चाहते थे कि आजकल की लड़कियों पर भी उनके पिता को वैसा ही गर्व हो जैसा महर्षि जनक को था और जो सीता की अग्नि-परिशुद्धि का हाल सुनकर क्रोध से गरज उठे थे--"आह! कोऽयमग्निर्नाम अस्मत्प्रसूतिपरिशोधने" (ओह! अग्नि की क्या मजाल है कि वह हमारी सन्तान की परिशुद्धि करे।) और तब अरुन्धती ने उनका क्रोध यह कहकर शान्त किया था :--
'सत्यमेतत्। वत्सां प्रति अग्निरिति प्रतिलघून्यक्षराणि। सीतेत्येव पर्याप्तम्। (भवभूति)

(आप सच कहते हैं। सीता के सामने पवित्रता में अग्नि बहुत हलकी है। सीता कह देना ही पवित्रता कह देना है।)

मालवीयजी कहा करते थे कि उनकी लड़कियाँ गार्गी और आत्रेयी की तरह विदुषी हों, जो वाल्मीकि के आश्रम को छोड़कर अगस्त्य के विद्यालय में वेद पढ़ने के लिए आ गयी थीं। क्योंकि वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश के लालन-पालन में महर्षि के व्यस्त रहने से विद्याध्ययन में अड़चन पड़ती है। आत्रेयी स्वयं कहती है :--

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि॥

भवभूति

आत्रेयी वनदेवता से कहती है कि इस अगस्त्य के विद्यालय में बहुत से उद्गीथ जाननेवाले ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त विद्या पढ़ने के लिए मैं महर्षि वाल्मीकि के पास से यहाँ आ रही हूँ। (क्योंकि वहाँ अध्ययन में बड़ी अड़चन पड़ रही है।)

मालवीयजी तो इस प्रकार की ऊँची एवं पवित्र स्त्री-शिक्षा की कल्पना कर रहे थे। अतः उन्होंने काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में स्त्रियों और लड़कियों के लिए एक स्वतंत्र कालिज की स्थापना की जहाँ हर विषय में ऊँची से ऊँची शिक्षा के साथ सब छात्राओं को धर्म की शिक्षा दी जाती है।

एक समय किसी अधिवेशन में वहाँकी प्रधानाचार्या ने अपने भाषण में कहा था--"मालवीयजी छात्रों को पुत्रवत् और छात्राओं को अपनी पुत्री के समान मानते थे और उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा चरित्र-संगठन पर पढ़ाई से अधिक जोर देते थे। वे कहते थे कि वही तो स्त्री-शिक्षा का पावन स्रोत है। स्रोत कलुषित होने से शिक्षा विकृत होकर हानि पहुँचाती है। छात्राओं के शिक्षण और चरित्र-संगठन का उत्तरदायित्व वे अध्यापकों पर रखते थे, और उन्हें बहुत ठोंक-बजाकर चुनते थे। थोड़े में यह कहना काफी होगा कि महामनाजी एक धर्मनिष्ठ, सदा जागरूक शिक्षाशास्त्री थे जो स्त्रियों और बालिकाओं का सर्वांगीण अभ्युदय चाहते थे और उसके लिए अथक परिश्रम और प्रयत्न करते थे।"

सन् १९०४ में मालवीयजी ने स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के सहयोग से प्रयाग में गौरी पाठशाला की स्थापना की जो आजकल उच्चतर माध्यमिक कालेज हो गया है और उसमें लगभग १००० लड़कियाँ पढ़ती हैं। --क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टग्रही गोलयोग का संसार पर प्रभाव

प्रो० प्रद्युम्ननारायणसिंह

अष्टग्रही गोलयोग ३ फरवरी सन् १९६२ को ४ बजकर ४४ मि० सायंकाल से आरम्भ होकर ५ फरवरी सन् १९६२ को ६ बजकर २९ मि० सायंकाल तक रहता है, इसके प्रभाव से संसार में क्या-क्या घटनाएँ घट सकती हैं और इसका प्रभाव संसार में क्या-क्या और कैसे-कैसे पड़ सकता है, इस संबन्ध में मैं यहाँ कुछ प्रकाश डाल रहा हूँ तथा अपने विचार व्यक्त कर रहा हूँ। वस्तुतः उपर्युक्त विषय बहुत ही गम्भीर है जिसे लेख रूप में व्यक्त करना कठिन हो रहा है फिर भी मैं भरसक प्रयत्न करूँगा कि साधारणतः सभी बातों का विवरण संक्षेप में दे दूँ।

सर्वप्रथम मैं ज्योतिष द्वारा ग्रहों के विषय में कुछ परिचय देना उचित समझता हूँ। भारतीय ज्योतिष के अनुसार ७ ग्रह हैं और २ उपग्रह हैं इस प्रकार कुल ९ ग्रह हैं। आकाश को अथवा समस्त भूमण्डल को १२ भागों में विभाजित करने से १२ राशियाँ मानी गयी हैं एवं २७ नक्षत्र माने गये हैं। ग्रह--सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि प्रधान ग्रह हैं और राहु तथा केतु छाया ग्रह अर्थात् उपग्रह हैं, इस प्रकार कुल ९ ग्रह है। राशियाँ १२ हैं--मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। इन्हीं नवों ग्रह और बारहों राशियों का समस्त संसार पर आधिपत्य है। सूर्य से ताप, शक्ति, राज्य; चन्द्रमा से मन तथा मस्तिष्क का विकास, सोचने की शक्ति, कल्पना; मंगल से लड़ाई-झगड़े में प्रवेश होना, अचानक घटना, संघर्ष; बुध से विचार, विवेक, कर्मादि का उदय, विद्या और बोलने की शक्ति; बृहस्पति से प्रज्ञा बुद्धि, चेतना, शक्ति, आध्यात्मिक ज्ञान; गुरुत्व कर्म; शुक्र से सांसारिक भौतिक सुख, भोग-विलास, लक्ष्मी आदि की विशेष याचना; शनि से नाश, दुख और मृत्यु; राहु तथा केतु से पाप बुद्धि, पाप कर्म, अशान्ति, बुद्धि विक्षिप्त, मन में विशाक्त आदि बातों का आभास होता है। मेष, सिंह और धनु ये अग्निसूचक राशियाँ हैं, वृष, कन्या और मकर पृथ्वीसूचक; मिथुन, तुला और कुम्भ ये वायुसूचक; कर्क, वृश्चिक और मीन ये जलसूचक राशियाँ हैं, परन्तु मकर को पृथ्वी और जल दोनों में प्रधानता दी गयी है। इसी प्रकार ग्रहों की भी अग्नि, पृथ्वी आदि की संज्ञाएँ दी गयी है।

समस्त ग्रहों का समागम मकर राशि पर जो कि जल और पृथ्वी अर्थात् भौतिक सुख प्रधान राशि हैं ३ फरवरी सन् १९६२ को ४ बजकर ४४ मि० सायंकाल हो रहा है। ६ ग्रहों का समागम मकर राशि पर १७ जनवरी सन् १९६२ से आरम्भ हो जाता है वे सूर्य, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और केतु हैं। इन ६ ग्रहों के एकत्रित होने से इसी समय से जगत् में अशुभ घटनाओं का आरम्भ होने का योग पाया जा रहा है। रवि के कारण राजाओं में विग्रह, बुध और बृहस्पति के कारण बड़े-बड़े विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों की मति भ्रष्ट एवं शनि तथा केतु के कारण विनाशकारी लीला की ओर प्रविष्टि होना संभव है। मंगल भी इनके साथ २४ जनवरी सन् १९६२ को १ बजे रात में आ जाता है। इस ग्रह के समागम से बड़े-बड़े राष्ट्रों में अनायास विशेष मतभेद तथा कोई अन्य आश्चर्यजनक घटना का आभास हो रहा है। विशेषरूप से यू० के०, फ्रांस और जर्मनी पर आपत्ति होने का योग पाया जाता है। यह सात ग्रह बराबर ३ फरवरी सन् १९६२ तक बने रहते हैं और मकर राशि पर पुनः चन्द्रमा भी ३ फरवरी सन् १९६२ को ४ बजकर ४४ मि० सायंकाल को आ जाता है, यह आठवाँ ग्रह हो जाता है। बड़े-बड़े आचार्यों एवं ऋषियों का कथन है कि गोलयोग अष्टग्रही का फल बड़ा ही दूषित, दुखद, संघर्षमय, विनाशकारी, दैवी घटना द्वारा अथवा अन्य किसी कारण से होता है। महाभारत में सात ग्रहों का समागम एक साथ सिंह राशि में हुआ था और पुराण में कहा जाता है कि लड़ाई कुल १८ दिन हुई थी तथा उस १८ दिन में संसार के कोने-कोने में विनाशकारी घटनाएँ हुईं और १८ अक्षौणी सेना का विनाश हुआ। मजे की बात यह थी कि अर्जुन जो महायोद्धा थे उनका यह दावा था कि वे एक बाण में सारी सृष्टि का विनाश कर सकते हैं उस बाण का नाम पाशुपत बाण बताया जाता है। इसी प्रकार कर्ण ३ बाण में, द्रोणाचार्य ५ बाण में, भीष्म पितामह ४ बाण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अर्थात् अर्जुन जो महारथी थे वे एक ही बाण में विनाश की शक्ति रखते थे। इस प्रकार उनका आतंक और श्रीकृष्ण भगवान् ऐसे सलाहकार के होते हुए भी ग्रहों के प्रभाव से उन्हें संघर्ष करना पड़ा तथा संसार का विनाश हो गया जिससे आर्य संस्कृति को जाननेवाले भली भाँति महाभारत के नाम से परिचिद्ध हैं और उसमें कितना विनाश हुआ इसे भी वे भली भाँति जानते हैं। कहा जाता है कि महाभारत में संसार के कोने-कोने से महारथी आये और समस्त संसार में विनाश हुआ। एक कथा है कि जब दुर्योधन ने पाण्डवों के गुप्त वास के बाद श्रीकृष्ण से कहा कि--"सूची अग्रं न दातव्यं बिना युद्धेन केशव"--अर्थात् हे केशव, बिना युद्ध के सूई के नोक के बराबर भी पृथ्वी देने को सहमत नहीं हूँ। लाचार होकर पाण्डवों को युद्ध की घोषणा करनी पड़ी। उस समय सभी अपने-अपने बाहुबल पर उत्साहित हो रहे थे। श्रीकृष्णजी को यह मालूम हुआ कि पाताल-पुरी अमेरिका के एक महान् योद्धा बब्रुवाहन हैं वह जिस तरफ रहेंगे उसी तरफ अंत में विजय होगी। दोनों पक्ष के लोग उनके पास गये। इसपर उस महान् योद्धा ने कहा कि जो संग्राम में हारेगा मैं उसीका पक्ष लूँगा। इस पर श्रीकृष्ण भगवान् ने ब्राह्मण बनकर दान माँगा और जब वह दान देने को तत्पर हो गया तो उसका सर याचना में चाहा। इसपर उस योद्धा ने कहा कि यह संभव नहीं हो सकता क्योंकि मैंने प्रण कर लिया है कि मैं महाभारत का युद्ध देखूंगा अतएव यदि मुझे महायुद्ध दिखा सकते हो तो मैं अपना सिर दे सकता हूँ। श्रीकृष्णजी उनकी इस बात से सहमत हो गये और उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें अपने शक्ति बल से जीवित रखूंगा और तुम्हारे सिर को युद्धस्थल के मध्य में गाड़ दूंगा, इस प्रकार तुम सब युद्ध लीला देखोगे। श्रीकृष्ण महाराज ने उसका सिर लेकर युद्धस्थल के मध्य में एक लम्बे पोल में लगाकर गाड़ दिया और वह युद्ध को देखता रहा परन्तु जब पाण्डव जीतने लगते तो वह उसी तरफ मुख करके बड़े जोरों से कहकहाकर हँस पड़ता था और उसका प्रभाव यह होता था कि जीतती हुई सारी सेना का पराजय होने लगता था। इस स्थिति को देखकर भगवान् श्रीकृष्णजी ने जब उसके सिर में एक सूजा डालकर कौरवों की तरफ उसका मुख करके स्थित कर दिया तब पाण्डव जीतने में समर्थ हुए। महायुद्ध समाप्त होने पर कहा जाता है कि वे ही लोग बचे जो वृद्ध होने के कारण चल नहीं सकते थे अथवा वे बच्चे जो घुटने के बल चलते थे। कहने का तात्पर्य यह कि अत्यन्त विनाशकारी युग-परिवर्तन का वह समय था उसके पश्चात् कलियुग जिसमें हम लोग आजकल चल रहे हैं इस युग का पदार्पण हुआ और सारी संस्कृति, विज्ञान और सभ्यता का क्षय हो जाने से पुनः मानव जाति धीरे-धीरे आज के विज्ञानमय वैभवशाली समय को प्राप्त कर सका। आज की स्थिति पुनः महाभारत ऐसी दिखायी पड़ रही है। बड़े-बड़े राष्ट्र रूश, अमेरिका तथा इँगलैण्ड अपने सामने किसी अन्य को प्रतिभाशाली समझते ही नहीं और विनाश के लिए अपने को परस्पर प्रबल समझ रहे हैं तथा विनाश लीला देखने को तत्पर हैं। सभी राष्ट्र से भली भाँति जानते हैं और समझते भी हैं कि यदि युद्ध हुआ तो संसार का विनाश निश्चित है फिर भी एक-दूसरे से वे दबने को तैयार नहीं हैं और न सहयोग-सहायता पर भी तत्पर हैं। इसका मुख्य कारण उक्त ग्रहों का प्रभाव ही दिखाई दे रहा है।

जब सात ग्रहों का समागम ता० २४ जनवरी सन् १९६२ को १ बजे रात से होता है उसी समय से मेरी दृष्टि में विनाशकारी दृश्य किसी न किसी रूप में दृष्टिगत होने लगते हैं। उन सात ग्रहों में जो परम रक्षाकारक ग्रह बृहस्पति और शुक्र माने जाते हैं वे भी असहाय हो रहे हैं क्योंकि बृहस्पति अपने नीच राशि में होकर सिंह नवांश में होता हुआ मकर राशि में बैठा है जिसके कारण बड़े-बड़े महारथियों का गुरुत्व कर्म करनेवाले अर्थात् पथ-प्रदर्शन करनेवाले पुरुषों की भी मति भ्रष्ट हो जाती है और शान्ति स्थापना के बजाय संघर्ष की ओर बढ़ने लगते हैं। इसी प्रकार शुक्र भी मकर राशि का होकर सिंह नवांश में बैठा है जिसके कारण महान् वैभवशाली देश आनन्द में रहनेवाले पुरुष भी जनसाधारण की परवाह न कर उन्मत्त हो उठते हैं और संहार के लिए तैयार हो जाते हैं। रवि जो मकर राशि में बैठा है और कर्क नवांश का है--ऐसा लगता है कि दैवी उपद्रव, समुद्रादि से उपद्रव, जलादि द्वारा विशेष चिन्ता और हानियाँ होने का योग पाया जाता है। बुध भी मकर राशि में होकर सिंह नवांश में बैठा है जिसके कारण पुनः मनुष्य आधिपत्य की बात सोचकर स्वाभिमान के कारण बुद्धि भ्रष्ट कर बैठता है। शनि मकर में अवश्य है और स्वक्षेत्री भी है परन्तु शनि का मंगल से पूर्ण सम्बन्ध हो रहा है और मंगल तथा शनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों ही मीन के नवांश में हो रहे हैं जिसके कारण जल-विशाक्त हो जाता है, अशान्ति बढ़ती हैं और बुद्धि का विनाश हो जाता है। यह सभी परिणाम सूक्ष्म दृष्टि से देखने से जन-साधारण के लिए उत्तम नहीं कहा जा सकता है।

सारे ग्रहों का समागम मकर राशि में हो रहा है अतः मकर से चौथी, आठवीं और बारहवीं राशियाँ भी अधिक प्रभावित होंगी अर्थात् मकर से चौथा मेष, आठवाँ सिंह और बारहवाँ धनु होता है। यहाँ मैं मकर राशि का पूरा परिचय देना उचित समझ रहा हूँ। मकर राशि चर है जिसके कारण युद्धस्थल सम्भवतः कोई एक हो परन्तु उसका प्रभाव विभिन्न स्थानों में युद्ध का पाया जा रहा है। मकर स्त्री जाति है अतः उसमें स्त्रियों का भी विशेष रूप से विनाश अथवा उनपर विशेष दुर्घटनाएँ होती हैं। मकर पृथ्वी तत्त्व है अर्थात् भौतिक सुख समृद्धि का स्वामी होता है। जिसके कारण समृद्धवान देशों में विशेष रूप से विनाशकारी दृश्य देखने को आयेगा। मकर पूर्ण जलराशि भी है और वायु प्रकृति भी है अतः दैवी उपद्रव, उपलवृष्टि तथा वायु विशाक्त हो जाने से अथवा वायुमार्ग से अनेक प्रकार की घटनाएँ घटने का योग पाया जा रहा है। शनि मकर का स्वामी है जिसके कारण नाश, दुख और मृत्यु समस्त जगत् में होने का योग पाया जाता है। मकर अफ़्रीका, अरब, मिस्र, यूनान तथा पुर्त्तगाल का स्वामी है। भारत में उत्तरी प्रदेश पर इसका प्रभाव है। मकर से चतुर्थ भाव मेष होता है। मेष क्रूर और पुरुष ग्रह अग्नि तत्त्व है जिससे यह स्पष्ट होता है कि क्रूरता अग्नितत्त्व की अधिकता होने से पुरुषों का विनाश होता है तथा मेष मस्तिष्क का बोध कराता है जिससे अनेक विज्ञान की कृतियों द्वारा अनेक प्रकार की हानियों का योग पाया जाता है। उसका स्वामी मंगल है जो ब्रिटेन, जर्मनी, फ़्रांस, आयरलैण्ड, हालैण्ड का अधिपति माना जाता है। भारत में इसका प्रभाव पाटल प्रदेश अर्थात् बिहार प्रान्त में पाया जाता है। मकर से अष्टम स्थान सिंह होता है यह स्थिर है। क्रूर पुरुष अग्नितत्व पीत वर्ण और पित्त प्रकृति का माना जाता है अतः इसके प्रभाव से क्रूर महापुरुषों के प्रभाव से विनाशकारी अनेक अस्त्र-शस्त्रों द्वारा जगत् को पीड़ा होती है और पुरुष विशेषरूप से विनाश का भागी होता है। दैवी घटनाओं से भी विनाश होते हैं। इसका प्रभाव अमेरिका तथा जापान पर विशेषरूप से पाया जाता है और भारत में त्रिचनापल्ली, मदुरा, तंजोर, विजिगापट्टम आदि प्रदेशों पर पड़ता है। मकर से द्वादश राशि धनु होती है यह क्रूर स्वभाव अग्नि-तत्त्व, कांचन वर्ण, लम्बे-तड़ंगे शरीरवाले, पित्त प्रकृति का है अत्यन्त क्रूर होने के कारण पुनः निस्पृह पुरुषों और बड़े-बड़े महान् और विज्ञानवेत्ताओं के कारण पुरुषों के क्षय होने का योग पाया जाता है। इसका प्रभाव रूस, मंगोलिया, प्रायः हिमालय से उत्तर चीन आदि पर भी विशेषरूप से पड़ता है और भारत में दिल्ली, बम्बई, पूरा पाकिस्तान, कश्मीर इस प्रभाव में आते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि अष्टग्रही का विशेषरूप से दूषित फल उपर्युक्त वर्णित स्थानों में अर्थात् अफ़्रीका, अरब, मिस्र, यूनान, पुर्त्तगाल, ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी, आयरलैण्ड, हालैण्ड, अमेरिका, जापान, रूस, मंगोलिया तथा हिमालय से उत्तर चीन और भारत में उत्तरी मध्यप्रदेश, पाटल अर्थात् बिहार प्रान्त तथा बंगाल, त्रिचनापल्ली, मदुरा, तंजोर, विजिगापट्टम, दिल्ली, बम्बई, पूरा पाकिस्तान, कश्मीर आदि स्थानों में पाया जाता है।

उपर्युक्त अष्टग्रहियों में रवि, बुध, गुरु, शुक्र, केतु तथा चन्द्रमा ये ६ ग्रह एक दूसरे के बहुत ही समीप होते हैं अर्थात् गणित से रवि २१ अंश है और बुध २४ अंश, बृहस्पति २६ अंश, शुक्र २७ अंश तथा केतु २४ अंश पर बैठे हैं अर्थात् चार-पाँच अंश के अन्तर्गत सभी ग्रह होते हैं। ज्योतिष में कालांशा के अन्तर्गत अर्थात् ७ अंश के अन्तर्गत यदि ग्रह हों तो उनका परस्पर प्रबल सम्बन्ध माना जाता है। चूँकि यह सम्बन्ध अत्यन्त दूषित है और संसार के लिए हानिप्रद है अतः इस प्रकार विशेष सम्बन्ध का होना किसी विशेष घटना के कारण विशेष क्षति होने का योग पाया जाता है। मंगल और शनि इन ६ ग्रहों के कालांशा से परे हैं इसी कारण यह भी सम्भव हो सकता है कि विनाश समस्त भूमण्डल का न हो सके परन्तु मंगल, शनिका पूर्ण सम्बन्ध हो रहा है क्योंकि मंगल का ८ अंश है और शनि का भी ८ अंश है अर्थात् दोनों ग्रह जो विनाश में प्रबल माने जाते हैं उनमें आपस में संघर्ष हो रहा है। ऐसी स्थिति में यह कहना बिलकुल ही गलत होगा कि संसार में उपर्युक्त ग्रहों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। नवांश चक्र के विचार से विशेष ग्रह सिंह नवांश में बैठ रहे हैं जो अमेरिका की राशि है अतः अमेरिका को बाध्य होकर ऐसा कर्म करना पड़ेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके कारण बड़ी दुखित घटनाएँ हो जायेंगी। सबसे बुरा दिन ५ फरवरी सन् १९६२ को प्रातः ३ बजे से सायंकाल ६ बजकर २९ मि० तक का होता है जब कि रवि भी बुध, गुरु, शुक्र और केतु के साथ सिंह नवांश में आ जाता है। इस समय ऐसी-ऐसी आकस्मिक घटनाओं का योग पाया जाता है जिसका सोचना-समझना मनुष्य के लिए असम्भव-सा लगता है। महीधर संहिता में उल्लेख है कि यदि सात ग्रह किसी राशि पर एक साथ आ पड़ें तो उसका प्रभाव संसार के लिए बड़ा ही भयंकर होता है। फलस्वरूप बड़े-बड़े राजाओं एवं राष्ट्रों में विग्रह, अनेक दैवी दुर्घटनाएँ, भूकम्पादि, उपलवृष्टि और समुद्र का स्थान-त्याग होता है और संसार की एक चौथाई जनसंख्या का विनाश होता है। ऐसी स्थिति महाभारत में आ चुकी है अर्थात् सात ग्रहों का समागम कालांशा के अन्तर्गत हुआ और विनाश भी अत्यधिक हुआ परन्तु उन्होंने आठ ग्रहों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति विशेष रूप से न कर इतना ही उल्लेख किया है कि जब सात ग्रहों का प्रभाव ऐसा है तो आठ ग्रहों का प्रभाव कितना भयंकर हो सकता है—यह ईश्वर ही जानें। इसी शब्दावली के आधार पर कुछ ज्योतिषवेत्ताओं का यह भी कथन है कि इस समयान्तर में कोई भी अशुभ घटनाएँ नहीं घटेंगी क्योंकि आठवाँ ग्रह आकर समस्त दूषित दोषों को दूर कर देता है परन्तु मेरी दृष्टि में यह उनका समझना भूल है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मृत्यु और विनाश को देनेवाला मंगल और शनि ग्रह युद्ध भवन में बैठे हैं और मीन राशि में नवांशगत हैं, अतः दैवी घटनाओं द्वारा तथा बड़े-बड़े राष्ट्रों में कुछ ऐसी विषम स्थिति आ उपस्थित होती है जिसके कारण वे परस्पर शत्रु बन बैठते हैं परन्तु शनि स्वक्षेत्री है और नवांश में भी शुभ क्षेत्रगत है। इसी प्रकार मंगल भी अपने उच्च राशि का है और नवांश में भी शुभग्रह गुरु के घर में बैठा है तथा मंगल और शनि दोनों ही सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र और केतु के कालांशा के अन्तर्गत नहीं आ रहे हैं अर्थात् सबों के अंश से मंगल और शनि के अंश में १२ अंश से अधिक का अन्तर पड़ रहा है जिससे प्रबल विनाश में बचाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में विनाश तो अवश्य होता है परन्तु अष्टग्रही योग के कारण जितना विनाश होना चाहिए था उसमें सुधार के लक्षण परिलक्षित होते हैं। दैवी घटनाओं से विनाश की सूरत विशेषरूप से उक्त कारणों से प्रतीत हो रही है। पुनः यह समझना बहुत ही जरूरी है कि विनाश करनेवाले जो प्रबल मंगल और शनि ग्रह माने जाते हैं यद्यपि इन दोनों ग्रहों का आपस में कालांशा के अन्तर्गत होने से मकर राशि में पूर्ण सम्बन्ध पाया जा रहा है जिससे बड़े-बड़े राष्ट्रों में आपस में संघर्ष, विनाश की अद्भुत लीला और अस्त्र-शस्त्र द्वारा ऐसी-ऐसी दुर्घटनाओं का योग पाया जा रहा है जिससे अधिक क्षय होती है तथापि शनि को स्वक्षेत्री और मंगल को उच्चस्थ होने से यदि कोई महापुरुष जो जगत् में कर्क राशि का हो अथवा तुला राशि का हो और उसके ग्रह बहुत प्रबल हों तो वह महापुरुष विनाश को रोकने में समर्थ हो सकता है। इस स्थान में यहाँ इतना कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हमारे प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर-लाल नेहरूजी की कर्क लग्न और कर्क राशि है और उनकी कुंडली में इस समय राहु की महादशा में बुध का अन्तर ११ जुलाई सन् १९६० ई० से २९ जनवरी १९६३ ई० तक रहता है। बुध और शुक्र दोनों ही सुख भवन में बैठे हैं और शुक्र पंचमहापुरुषान्तर्गत मालव्य राजयोगप्रद होता हुआ बैठा है तथा बुध दशानाथ राहु से पंचम भवन में बैठा है, पंचम भवन राजनीति का होता है और बुध वाणी, जिह्वा का मालिक है तथा बुद्धि में विकास उत्पन्न करता है। ऐसी सूरत में यदि हमारे प्रधानमंत्री जी चाहेंगे और मेरा अनुमान है कि उन्हें चाहना पड़ेगा क्योंकि ग्रहों की स्थिति से उन्हें यश और कीर्ति का विस्तार पाया जाता है तो विश्वयुद्ध जो अत्यन्त विनाशकारी होने वाला है, रुक सकता है। संक्षेप में इतना और कहना आवश्यक है कि अन्य बड़े राष्ट्रों के अधिष्ठाता राष्ट्रपति केनेडी, प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव, प्रधानमंत्री मेकमिलन की कुण्डली में इतना बल नहीं प्राप्त हो रहा है। अपितु इसका बुरा प्रभाव श्री मेकमिलन की कुण्डली से उन पर पड़ने का योग पाया जा रहा है और प्रेसीडेण्ट केनेडी को भी कष्ट तथा इसी प्रकार ख्रुश्चेव को भी कष्ट होने का योग पाया जा रहा है। पण्डितजी के लिए यह अवश्य है कि २९ जनवरी सन् १९६३ से १७ फरवरी सन् १९६४ के अन्तर्गत जब कि राहु की महादशा में केतु का अन्तर रहता है, विशेष कष्ट पाने का योग पाया जाता है और यह कहना मेरे लिए सम्भव नहीं है कि यह कष्ट कितना विकट रूप धारण कर सकता है क्योंकि मैंने इस पर पूर्णरूपेण विचार नहीं किया है। इन समस्त ग्रहों की स्थिति को पूरी तरह निरीक्षण करने से मुझे ऐसा प्रतीत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है कि यदि किसी प्रकार महायुद्ध टल भी जाय और हमारे प्रधानमंत्रीजी के कारण अथवा अन्य महापुरुष के कारण सहयोग सहायता आपस में हो जाय परन्तु एक बात निश्चित है कि दैवी उपद्रवों और दुर्घटनाओं से बचना कठिन है तथा जल के कारण विशेष क्षति, धनहानि, जनसमूह का विनाश और अनेक प्रकार के ऐसे-ऐसे रोगों का फैलना संभव है जिनका निदान असम्भव हो जाता है। जनसमूह को विशेष पीड़ा तथा क्षति होने का योग पाया जा रहा है साथ ही यह भी ध्रुव है कि संसार में आर्थिक आपदा अर्थात् भावों में इतनी गिरावट आ सकती है जिसके कारण बड़ी परेशानी और संसार के बड़े-बड़े कार्य रुकते दिखायी देंगे और अकाल, महामारी, दुर्भिक्ष भी होने का योग पाया जाता है। इनका समय बड़े-बड़े ऋषियों के मत के अनुसार गोलयोग से ६ मास पूर्व और गोलयोग के एक वर्ष पश्चात् तक बना रहता है अर्थात् जुलाई सन् '६१ से ५ फरवरी १९६३ तक समस्त दुष्ट फलों की प्राप्ति होती है। इस समयान्तर में जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है दुर्भिक्ष, महामारी, अकाल आदि के योग पाये जा रहे हैं अतः यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ३ फरवरी से ५ फरवरी सन् १९६२ तक के इस योग का दुष्ट फल कम से कम एक वर्ष बाद भी बराबर बना रहेगा।

यहाँ मैं अष्टग्रही गोलयोग का प्रत्येक राशियों के सुख-दुखादि का वर्णन करना उत्तम समझ रहा हूँ। यों तो इसका प्रभाव प्रत्येक राशि पर, हर व्यक्ति पर, हर जाति पर और हर राष्ट्र पर कुछ न कुछ अशुभ रूप में पड़ ही सकता है पर इसका अत्यन्त दुष्ट प्रभाव मेष, सिंह और धनु राशिवाले व्यक्तियों पर पड़ता है। मकर राशिवाले व्यक्ति भी इसी प्रकार पीड़ित होते हैं। मेष राशिवाले व्यक्तियों पर अशान्ति, अचानक दुर्घटना, सिर में पीड़ा और उन्निद्र रोग से बेचैनी होती है। सिंह राशिवाले व्यक्तियों पर अचानक ऐसी बीमारी पैदा होती है जिसके कारण उनके सुख का ह्रास हो जाता है। धनु राशिवाले व्यक्तियों के भ्रान्ति धन का विशेष अपव्यय होता है और उन्हें अपयश भी मिलना सम्भाव्य है। मकर राशिवाले व्यक्तियों पर क्या-क्या हो सकता है, क्या क्या दुर्घटनाएं घट सकती हैं यह कहना सम्भव नहीं है। मीन, मिथुन, तुला और वृश्चिक राशिवाले व्यक्ति सुखी रहेंगे भले ही उन्हें न्यूनाधिक रूप में कष्ट हो जाय साथ ही उन्हें धनागम, लाभ मान की वृद्धि होती है तथा कर्मादि का भी उदय होता है। कुम्भ, वृष और कन्या राशिवाले व्यक्ति पर इसका प्रभाव साधारणरूप से ही पड़ता है और विशेष चिन्ता उनको नहीं होती है। कर्क राशिवाले पुरुष सांसारिक विषयों के कारण बड़े चिन्तित रहते हैं और यदि कर्क राशिवाले पुरुष की कुण्डली में अच्छे ग्रह हों और वह महापुरुष भी हो तो मेरा अनुमान है कि इस महायुद्ध में वह अनुदान कर सकता है जिसके कारण महायुद्ध टल सकता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू की कर्क राशि और कर्क लग्न है तथा उनकी कुण्डली में इस समय ग्रहों का अन्तर्काल उत्तम चल रहा है साथ ही उन्हें प्रबल राजयोग भी है अतः मेरी दृष्टि में वही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके कारण संसार का कल्याण सम्भाव्य है।

अन्त में यह भी कहना आवश्यक है कि प्रयाग मकर राशि का पुण्यक्षेत्र है और वह स्थान सभी उपद्रवों से सुरक्षित है अतः २४ जनवरी १९६२ से ६ फरवरी १९६२ तक प्रत्येक मनुष्यों को कल्याणार्थ प्रयाग में निवास कर महातीर्थ का उपभोग सुखकर एवं लाभकर है।

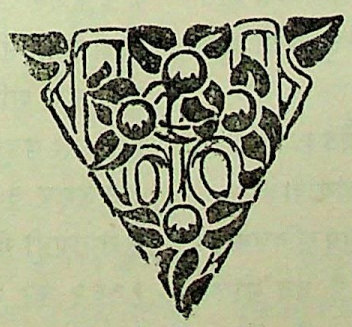

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाशीय महाभारत गोलयोग

प्रो० मदनगोपाल राठी, एम० काम०, साहित्य-रत्न

सन् १९६२ के फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में खगोल में आठ ग्रहों की युति हो रही है। इस अष्टग्रही संयोग पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ज्योतिष-विशारदों के लेख प्रकाशित हुए हैं। इस बहु चर्चीय विषय पर विद्वानों के अपने-अपने विभिन्न मत हैं। तृतीय विश्व-युद्ध, महापुरुष का अवतार, विज्ञान के क्षेत्र में नवीन अनुसंधान, प्राकृतिक प्रकोप, राजनैतिक उथल-पुथल, संघर्ष, आन्दोलन इत्यादि अनेक विषयों पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। एक दैवज्ञ ने अष्टग्रही के इस संयोग को आकाशीय महाभारत की संज्ञा दी है। उनके अनुसार सुरदेव बृहस्पति = भीष्म; असुरों के देव शुक्र = द्रोणाचार्य; केतु = दुर्योधन; राहु = शकुनि; दिवानाथ सूर्य = श्रीकृष्ण; बुध = अर्जुन और भूमिसुत मंगल = सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और सूर्यपुत्र शनि को भीम की संज्ञा दी गयी है। राहु के अतिरिक्त समस्त आठ ग्रह कालपुरुष की दसवीं राशि मकर में एकत्रित हो रहे हैं। मकर राशि को कुरुक्षेत्र का युद्धस्थल बताया गया है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार इस संयोग को गोलयोग या कालकूट योग कहते हैं। जब समस्त ग्रह राहु और केतु के मध्य स्थित होते हैं, तब उसे कालसर्प योग कहते है। इस योग के संबंध में शास्त्रकारों के निम्न मत हैं :—

रविचन्द्रकुजा जीवमंदचन्द्रसुतादयः।
समाश्रिता ह्येकराशिं तदा पृथ्वी भयाकुला॥
राज्ञां नाशो व्याधिभयं प्रजानां संक्षयो भयात्॥

(मयूरचित्रक)

रवि, चंद्र, मंगल, गुरु, शनि और बुध की एक राशि में स्थिति हो तो पृथ्वी भय से व्याकुल हो उठे, राजाओं का नाश हो, बीमारियों का भय रहे तथा प्रजा का नाश हो। यहाँ छः ग्रहों का संयोग बताया गया है। केतु और शुक्र इस योग में सम्मिलित नहीं हैं।

सप्तग्रहा यदैकस्था गोलयोगस्तदा भवेत्।
दुर्भिक्षं राज्यपीडा च तस्मिन् योगे नृपक्षयः॥

(मयूरचित्रक)

जब सात ग्रह एक राशि में स्थित होते हैं तब गोल-योग होता है। इस योग के परिणामस्वरूप देश में दुर्भिक्ष, राज्य में दुःख और राजाओं का नाश होता है। वर्तमान में प्रजातन्त्रात्मक शासन होने से इस योग का प्रभाव शासक वर्ग अर्थात् मंत्रीवर्ग पर होता है।

अष्टग्रहैकराशिस्था गोलयोगः प्रकीर्तितः।
प्लावयंत्री महीं सर्वां रुधिरेण जलेन वा॥

आठ ग्रहों के एक राशि पर एकत्रित होने से गोलयोग होता है। इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी पर रक्तपात व जल-प्रलय होता है। इससे ऐसा पता चलता है कि युद्ध, दुर्घटना तथा अतिवृष्टि और बाढ़ की विभीषिका का नग्न ताण्डव होगा। ऐसा कहा जाता है कि महाभारत के समय खगोल में सप्तग्रही का संयोग हुआ था।

ऐसे कई प्रमाण ज्योतिषशास्त्र में मिलते हैं। षड्ग्रही, सप्तग्रही और अष्टग्रही के इन प्रमाणों के अनुसार कहा जा सकता है कि इस आकाशीय महाभारत के दुष्परिणाम से विश्व प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता।

इस विषय के अन्तर्गत भारत और विभिन्न राशिवाले तक के सम्बन्ध में विचार किया जावे तो भारत भी स कालसर्प व गोलयोग के परिणामों से अछूता नहीं रह सकेगा। मानव भी अपने क्रियाकलापों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करे तो उसे भी परिणामों का अनुभव अवश्य होगा। इस अष्टग्रही का प्रभाव-काल दीर्घकालीन होगा। इसका श्री-गणेश सन् १९६१ के मध्य से प्रारंभ होकर सन् १९६४ में अन्त होगा। क्योंकि आगामी आषाढ़ में १३ दिवसीय पक्ष है और सन् १९६४ में एक मास का क्षय है। इन तीनों योगों के सम्मिश्रण से यह समय अति संकट का ही रहेगा।

यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि जन्मभूमि पंचांग के अनुसार दिनांक १६ जनवरी १९६२ को शाम के ६ बजकर ३३ मिनिट पर शुक्र का मकर राशि में प्रवेश होता है। इसी समय से षड्ग्रह योग प्रारम्भ होता है। सूर्य, बुध, गुरु, शनि और केतु इस राशि में पहले से ही विद्यमान हैं। यह षड्ग्रह योग २४ जनवरी १९६२ के अपराह्न में १ बजकर ३७ मिनट पर मकर राशि में मंगल के प्रवेश से सप्तग्रही में परिवर्तित हो जाता है। यह योग ३ फरवरी १९६२ को ५ बजकर ३७ मिनट तक रहता है। कुछ पंचांगों के अनुसार यह योग २ फरवरी १९६२ को ही समाप्त होकर अष्टग्रही का रूप ग्रहण कर लेता है। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग के समय ५ फरवरी १९६२ को सुबह सूर्यग्रहण भी है जो भारत में दिखायी नहीं देगा। दिनांक ३ फरवरी से ५ फरवरी तक सुबह ५-३० पर ग्रहों की स्थिति मकर राशि में इस प्रकार है :—

ग्रह	३–२–६२	४–२–६२	५–२–६२
सूर्य	२० अंश	२१ अंश	२२ अंश
चंद्र (शाम को ५ बजकर ३५ मिनिट पर)	० अंश	७ अंश	२२ अंश
मंगल	७ अंश	८ अंश	९ अंश
बुध	२५ अंश	२४ अंश	२३ अंश
गुरु	२४ अंश	२५ अंश	२५ अंश
शुक्र	२२ अंश	२३ अंश	२४ अंश
शनि	१० अंश	१० अंश	१० अंश
केतु	२४ अंश	२४ अंश	२४ अंश

भारतवर्ष की राशि के संबंध में विभिन्न मत है। प्राचीन ज्योतिर्विदों के मतानुसार भारत की राशि धन है और पाश्चात्य मतानुसार हमारा देश मकर राशि के क्षेत्र में आता है। कुछ ज्योतिषी भारत की गणना कन्या राशि में करते हैं। कन्या राशि के प्रबल समर्थक श्री बी० व्ही० रमन हैं; जो बँगलोर से प्रकाशित होनेवाले एस्ट्रालाजिकल मैगेजिन के सम्पादक हैं। आप राष्ट्रीय ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। इसी आधार पर भारत की राशि कन्या मानी जाय तो भारत की कुण्डली में यह योग पंचम भवन में हो रहा है। यह भवन बुद्धि और विद्या का द्योतक है। प्रजा में छोटे बच्चों का भी यही स्थान है। यह भवन त्रिकोण रूप में शुभ माना जाता है। अतः शुभ भाव में संयोग भारत के लिए ठीक नहीं है। राश्याधिपति बुध और प्रजापति शुक्र सूर्य से अस्त हैं वह ग्रहण से प्रभावित हैं। परिणामस्वरूप भारत की जनता अनेक प्रकार से—विशेषकर गले व कान के—रोगों से पीड़ित होगी। शिक्षण संस्थाओं में आन्दोलन होंगे, विद्यार्थियों में उग्रता आवेगी। रेल, मोटर आदि वाहनों की दुर्घटनाओं का योग आवेगा। तृतीयेश व अष्टमेश मंगल अपनी उच्च राशि में पंचम भवन में स्थित हैं। यह क्षय व नाश का सूचक है अतएव अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग करेगा। नवमांश में अग्नितत्त्व राशि में स्थित है। इसलिए अग्नि संबंधी दुर्घटनाओं की आशंका है किन्तु चर राशि और फिर मकर-जल तत्त्व-राशि में होने से ये दुर्घटनाएँ विकराल रूप नहीं ले सकतीं। गुरु नीच राशि में स्थित है। यह विदेशों से संबंध व भूमि, फसल का स्वामी है। नीच राशि में सूर्य से भी अस्त है। अतएव शक्तिहीन है। देवगुरु बृहस्पति बुद्धि के अधिष्ठाता हैं व वर्ष के प्रधान मंत्री पद पर आसीन हैं और फिर क्रूरकर्मा शनि के साथ हैं साथ ही केतु-ग्रसित सूर्य की कालिमा का आवरण उनपर पड़ा हुआ है। अतएव मंत्रीवर्ग की सात्विक बुद्धि पर विवेकहीनता की गहरी छाया पड़ती है। परिणामस्वरूप मंत्री वर्ग अपनी बुद्धि का सही अर्थ में उपयोग नहीं कर सकेंगे और न विचारक लोगों की तथ्यपूर्ण बातों को मानेंगे। पंचम भवन जो बुद्धि का ही स्थान है, उसमें संयोग होने से उनकी बुद्धि को लकुआ लग जावेगा। देश में शिक्षा के क्षेत्र में आन्दोलनों का जोर रहेगा। मंत्रीवर्ग में आपसी मामलों पर ईर्ष्या की भावना पैदा हो जावेगी। कृषि-उपज पर भी इस योग का गहरा प्रभाव पड़ेगा। अतिवृष्टि से फसल के नष्ट होने की आशंका है। पंचमेश और षष्ठेश शनि भी इस गोलयोग को अपना समर्थन दे रहा है। यद्यपि वह स्वक्षेत्री है किन्तु नवमांश में नीच राशि का है। यह अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करेगा। शत्रुपक्ष चाहे आन्तरिक हो अथवा बाह्य मौके का फायदा उठाना चाहेंगे। शत्रु-पक्षीय समस्या के उन्मूलन के लिए राष्ट्र की सैनिक शक्ति को मजबूत रखना आवश्यक है।

मकर राशि में सूर्य ग्रहण होना ठीक नहीं है। यह शनि की राशि है और सूर्य शनि का कट्टर शत्रु है। यह शासक वर्ग के पतन का सूचक है। फरवरी के माह में भारत में आम चुनाव होंगे। संभव है आंतरिक व बाह्य विकट परिस्थितियों के कारण यह चुनाव आगे बढ़ाना पड़ेगा।

प्रधान मंत्री पंडित नेहरू के लिए यह योग उत्तम नहीं है। नामराशि व जन्मराशि दोनों प्रकार से अहितकर है। उन्हें अपने स्वास्थ्य व मानादि का ध्यान रखना आवश्यक है। शब्दों का उपयोग नपे-तुले ढंग से ही करना ठीक है।

अष्टग्रही का प्रकोप बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, पंजाब व भारत की उत्तर पूर्वीय सीमा पर विशेष होगा। इसके परिणामस्वरूप अतिवृष्टि, भूकम्प, जलप्लाव, बाढ़, दुर्भिक्ष और संक्रामक रोगों से विनाश होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन व्यक्तियों की मेष राशि है उनके लिए राज्य व पिता पक्ष में यह योग ठीक नहीं है। उनकी आर्थिक स्थिति योग के पश्चात् ठीक होगी। वृषभ राशिवालों के लिए यह मध्यम श्रेणी का है। इस राशि के जातक के लिए शनिदेव का वरदहस्त रहेगा। मिथुन राशि के जातक के लिए अष्टग्रही का योग नेष्ट कारक है। मानभंग, आर्थिक संकट, शरीर-व्याधि और मानसिक अशांति रहेगी। कर्क राशि के लिए यह योग सप्तम स्थान में हो रहा है। उनके लिये यह मारक भाव है। आश्लेषा नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातक के लिए यह विशेष अनिष्टकारी है। स्वयं एवं जीवनसाथी के स्वास्थ्य में खराबी होगी और अनेक प्रकार की आपत्तियाँ सामने आवेंगी। यात्रा का योग होने पर दुर्घटना भी हो सकती है। सिंह राशि के लिए यह योग अच्छा नहीं तो बुरा भी नहीं है। स्वास्थ्य में साधारण गड़बड़ हो सकती है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ेगा। मघा नक्षत्रवाले जातक को अवश्य सतर्क रहना चाहिए। कन्या राशि के जातक के लिए यह योग पंचम भवन में हो रहा है। संतान-पक्ष के स्वास्थ्य का ध्यान रखना आवश्यक है। संभव है उनका स्वास्थ्य ठीक न रहे। विद्यार्थी वर्ग को अपनी परीक्षाओं के लिए कठिन परिश्रम करना आवश्यक है। धन लाभ व भाग्योदय का सुंदर समय आनेवाला है। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में जन्म लेनेवाले जातक को विशेष अशुभकारक है। तुला राशि के लिए मातृपक्ष से अशांति रहेगी, जमीन-जायदाद के झगड़े व वाहन के उपयोग से बचकर रहना उनके लिए अच्छा है। वृश्चिक राशि में जन्म लेनेवाले जातक के लिए यह संयोग अच्छा है। तृतीय स्थान होने से इसकी विशेष उपादेयता है। अकस्मात् धन आने का योग बनता है। पारिवारिक क्लेश हो सकता है। बिगड़े हुए समय के परिवर्तन का योग बनता है। धनराशि के उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म लेनेवालों के लिए यह अनिष्टकारक योग है। आर्थिक संकट, स्वास्थ्य का नाश और वादविवाद का चक्कर रहेगा। इस राशि के व्यक्तियों को फूँक-फूँक कर कदम रखना ठीक रहेगा। पथ्य से रहना, खर्च का बजट बनाकर चलना, नपे-तुले शब्दों को मुँह से निकालना उनके हित में ठीक रहेगा। मकर राशि के लिए यह संयोग प्रथम भाव में ही है। साढ़े-साती भी चल रही है। अतएव अनिष्टकारी है। शरीर-व्याधि, आय से व्यय अधिक, पारिवारिक क्लेश, दुर्घटना आदि के योग हैं। कुंभ राशिवाले को खर्च विशेष, शत्रुओं का विशेष भय व स्त्री-जाति से हानि होने की संभावना है। मीन राशि के जातक के लिए यह श्रेष्ठ योग है। उन्नति व लाभ की प्राप्ति होगी। उन्नति की आशा से व्यवसाय में परिवर्तन व कर्मचारी वर्ग के लिए पदोन्नति का समय आयेगा। सन्तान पक्ष की ओर ध्यान देना आवश्यक है। विद्यार्थियों के लिए यह योग ठीक नहीं है।

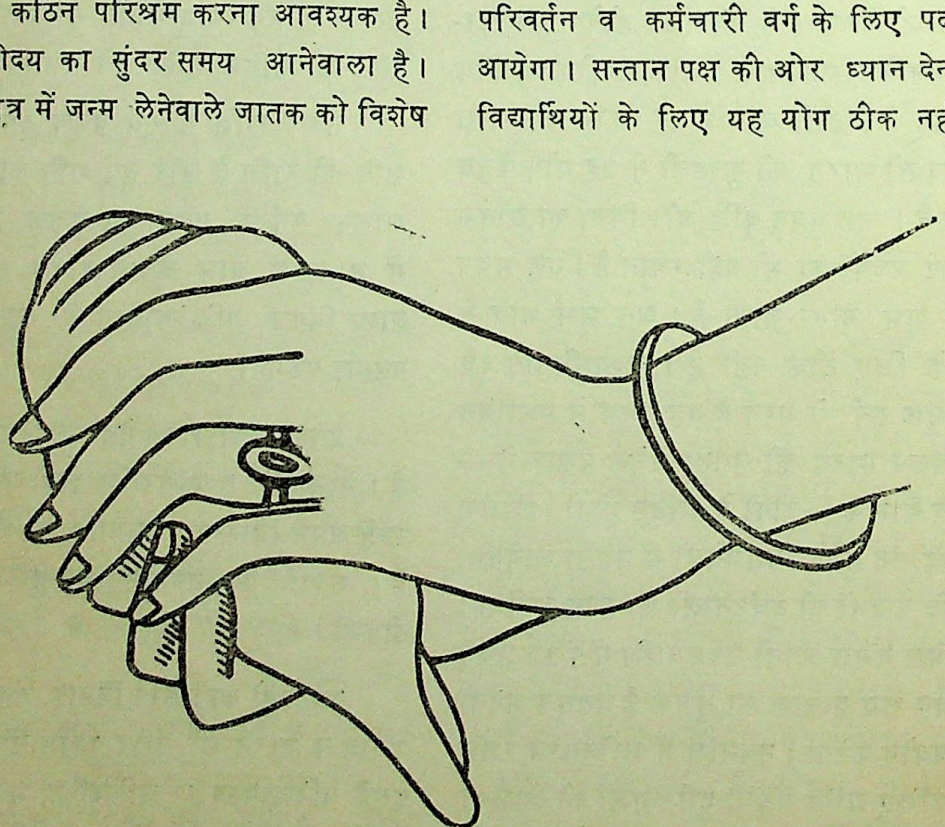

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातायात के साधनों का भविष्य

डा० अरविंद मोहन

वैज्ञानिक विकास के इस युग में भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन है। जब राइट बन्धुओं ने वायुयान बनाकर उड़ानें आरम्भ कर दी थीं तब भी जनता उनके उड़ने की बात सुनकर उसे सत्य मानने को तैयार न थी। पत्रकार भी समाचार-पत्रों में इस समाचार को प्रकाशित करने में डरते थे तथा अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने घोषित कर डाला था कि भविष्य में इन वायुयानों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा नहीं हो सकेगी। दूसरी ओर ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ भविष्यवाणी अत्यन्त उपहासजनक सिद्ध हुई है। एच० जी० वेल्स के सामने पेट्रोल इंजिन, विद्युत् मोटरें, रबर, इस्पात तथा सर्वप्रथम बनी मोटर गाड़ियाँ भी थीं, परन्तु युद्धकला के विकास पर भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने साइकिलों पर दौड़नेवाली फौजों की ही कल्पना की थी।

आज से ३६ वर्ष पूर्व टेलीविजन की कोई कल्पना न कर सकता था यद्यपि अलग-अलग उसके प्रत्येक अंग का निर्माण हो चुका था। १९०० ई० में पनडुब्बी को बेकार बतलाया गया था, परन्तु केवल १४ वर्ष पश्चात् उसके द्वारा ब्रिटेन महायुद्ध लगभग हार गया था।

अतः आनेवाले युग की झाँकी प्रस्तुत करना कठिन समस्या है। आज के ज्ञात साधनों पर आधारित एक दो भविष्यवाणियाँ करना संभव है जिन्हें सत्य होने में कदाचित् २५, ५० या १०० वर्ष तक लग जायँ। संभव है कि विज्ञान की प्रगति की गति हमारी धारणा से चौगुनी मन्द या तीव्र पड़ जावे क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति नवीन साधनों के मिलने पर बढ़ती है तथा किसी गुत्थी में उलझ जाने पर धीमी पड़कर रुक भी सकती है। फिर भी पिछले पचीस वर्षों में हुई प्रगति से अधिक या कम से कम उतनी ही प्रगति की आशा करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

यात्रा तथा गमनागमन के साधनों का विकास हमारी सभ्यता को बढ़ाने के हेतु परमावश्यक हैं क्योंकि कितनी भी शक्ति लगाकर वस्तुओं का ढेर बना लिया जावे परन्तु बिना उसको उपभोक्ता तक पहुँचाये सभ्यता का विकास संभव नहीं है।

यात्रा के साधनों को हम तीन अंगों में बाँटते हैं—स्थलीय, जलीय तथा वायु मार्ग से संबंधित। आइये अब इनके विकास पर विचार करें।

स्थलीय यात्राएँ

स्थलीय यात्रा का विकास सड़कों अथवा रेल की पटरियों के ऊपर निर्भर है। सड़कों पर घोड़े-गाड़ियाँ, साइकिल तथा पैदल चलनेवालों के कारण तीव्रगामी मोटरों आदि को बाधा पड़ती है। विभिन्न गति की गाड़ियों के लिए भविष्य में पृथक् सड़कें आवश्यक हैं। इसमें व्यय अधिक होगा अतः इसके लिए विशेष प्रयत्न करना पड़े तो आश्चर्य नहीं। भविष्य की मोटर-सड़कों से ७० या ८० मील प्रति घंटे से कम गति के वाहनों का निषेध रहेगा। यह तो सड़कों की बात है।

मोटरों के इंजिनों में भी परिवर्तन होगा। गियर व्यवस्था हट जावेगी, टरबाइन प्रकार के इंजिन बनेंगे जो बिना ध्वनि के, विशेषकर मूशीनी झनझनाहट के बिना, कार्य करेंगे। मोटरों के ऊपर लगे टैक्सों की कमी होने पर नवीन इंजीनियरी युक्तियों का विकास होगा तथा पेट्रोल के स्थान पर नया द्रव एवं ईंधन चलने लगेगा। इस भाँति भविष्य में १०० मील प्रति गैलन तो अवश्य ही, और संभव है कि ३०० मील प्रति गैलन भी मोटरें सफर करें।

आधुनिक मोटरों की बनावट यह बात याद दिलाती है कि वे घोड़ा-गाड़ी की वंशज हैं। इसमें नवीनता आयेगी—इंजिन पीछे या मध्य में रहेगा, स्टियरिंग ह्वील तथा संबंधित यांत्रिक सज्जा बदल जावेगी। निस्संदेह पूर्ण विकसित मोटर में रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन, सड़कों के मोड़ पर पूर्व आदेश द्वारा स्वयं मुड़ना, फ्लोरोसेन्ट ट्यूब जैसा स्निग्ध प्रकाश देने की व्यवस्था, छोटे इंजिन तथा सच्ची स्वतंत्र स्प्रिंग व्यवस्था हो जावेगी। रेलगाड़ियों में भी ये सुधार होंगे।

यह धारणा कि मोटरों का विकास रेलों को बन्द कर देगा सत्य नहीं हो सकेगी। रेलगाड़ियों का पूर्ण विद्युत्-करण हो जायगा, अर्थात् कोयले के इंजिन के स्थान पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेट्रोल इंजिन या विद्युत् मोटर का उपयोग होगा। इस भाँति तीव्रता, सुगमता तथा स्वच्छता मिलेगी। माल-गाड़ियों के लिए डीजल-विद्युत् इंजिन या टरबाइन इंजिन चल निकलेंगे। राकेटों के सिद्धान्त का उपयोग रेलों तथा मोटरों में अवश्य प्रचलित हो जावेगा।

जलमार्गों पर नये साधन

जलीय यात्रा की कायापलट होगी। यात्री जलपोतों का उपयोग बन्द होना संभव है। पर जो लोग केवल दूसरे स्थान तक पहुँचने के हेतु नहीं, किन्तु यात्रा का आनन्द लेने के हेतु निकलते हैं, वे जलयात्रा करेंगे। इसमें अधिक आराम तथा कम हल्ला-गुल्ला मिलता है।

भाप टरबाइन के स्थान पर गैस टरबाइन के इंजिन जलपोतों में लगेंगे। जेट सिद्धान्त जलीय यात्रा में सहायक न होंगे क्योंकि कम गति के यानों में जेट व्यवस्था असफल होती है। १०,००० अश्वबल का जेट इंजिन ४०० मील प्रति घण्टे की गति का यान चला सकता है किन्तु जलपोतों की २०-३० मील प्रति घण्टे की गति पर यह काम न दे सकेगा (जेट इंजिन के लिए पंखों को १५,००० चक्कर प्रति मिनिट देना भी कम है फिर इसको और कम करके जलपोत के लिए ठीक करना कठिन है।)

अतः तीव्रगामी छोटे जलयानों का चलन बढ़ेगा। इनके डेक बन्द तथा चिकने होंगे ताकि वायु का प्रतिरोध कम किया जा सके। निचले, बन्द, चिकने जलयान तीव्रतापूर्वक पानी की सतह पर चिपके हुए चलेंगे।

वायुमार्ग में क्रान्ति

पचीस-तीस वर्षों में वायु पर चलनेवाले वाहन जलीय यात्रा साधनों को पछाड़ देंगे। परन्तु भारी माल के लिए वायुयान महँगा पड़ेगा। जब १०० टन बोझा ढोनेवाले यान बनेंगे तब लोग जलपोतों की उपयोगिता भूल सकेंगे। बर्लिन में वायुमार्ग द्वारा सामग्री पहुँचाने की व्यवस्था से स्पष्ट हो गया है कि वायुयान ट्रकों का कार्य कर लेगा।

जेट सिद्धान्त का सर्वत्र उपयोग होना धातुओं के नवीन सम्मिश्रणों पर निर्भर है जो अत्यधिक ऊष्मा तथा दाब सह सकें। प्रतिवर्ग इंच सहस्रों सेर का दाब तथा ३०००° की उष्णता जेट या टरबाइन के चक्कों पर पड़ता है। इन धातुओं की जीवन अवधि भी अधिक होनी चाहिए। यह भविष्य में हो सकेगा जैसा कि अंतर्ग्रही मानव उड़ान की मूरकरी योजना के लिए बनायी गयी उस पेटी से स्पष्ट है जो अंतरिक्ष में राकेट द्वारा अत्यंत तीव्र गति से भेजी गयी थी। ६००० अंश तक का तापमान अपने बाहरी तल पर सह सकना, और दूसरी ओर अर्थात् पेटी की भीतरी दीवाल में १२० अंश से कम का तापमान रखना, प्लास्टिक-रेसिन तथा कुछ अन्य धातु-मिश्रणों का वह गुण है जिसका पता अभी हाल में लगा है।

इन धातुओं के सम्मिश्रण में सूक्ष्मता की इतनी सावधानी बरतनी पड़ती है कि यदि कोई धातु एक सहस्र अंश भी घट या बढ़ गयी तो गुणों में अत्यधिक परिवर्तन हो जाता है। फिर भी घर्षण के रोक-थाम तथा तेलों की खोजें इतनी बढ़ रही हैं कि भविष्य के यानों, मोटरों, मशीनों आदि में तेल व ग्रीज आरम्भ में देने पर आजीवन दुबारा न देना पड़ेगा। इसी प्रकार रबर के टायरों को १ लाख मील की यात्रा तक बदलना न पड़े, इसकी भी व्यवस्था हो सकेगी।

वायुयान के पैट्रोल इंजिन ५० वर्ष बाद कहीं न दिखेंगे। जेट! जेट! जेट! युग की पुकार होगी। भूमि से १५ मील या अधिक ऊपर २,००० मील प्रति घंटे (५०००

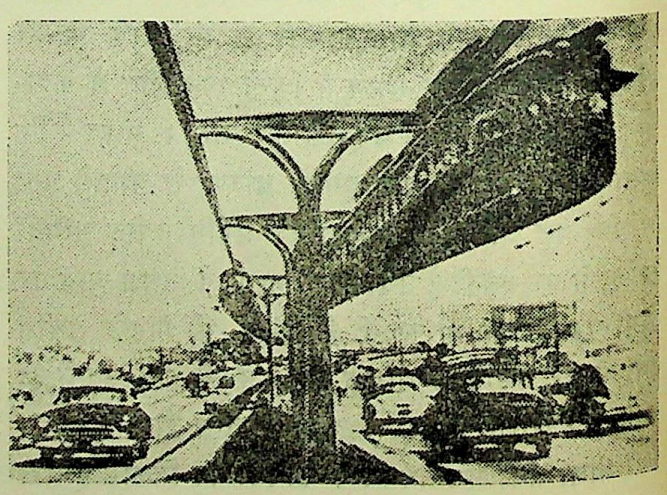

भविष्य की यात्रा के लिए नगरों के भीतर सड़कों के साथ ही ऊपर, लटकती हुई रेलगाड़ी चलने लगेंगी। इसके द्वारा कम स्थान में अधिक यात्री वहन होने लगेगा—नीचे मोटरें, बसें आदि और वहीं ऊपर से चलती रेलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

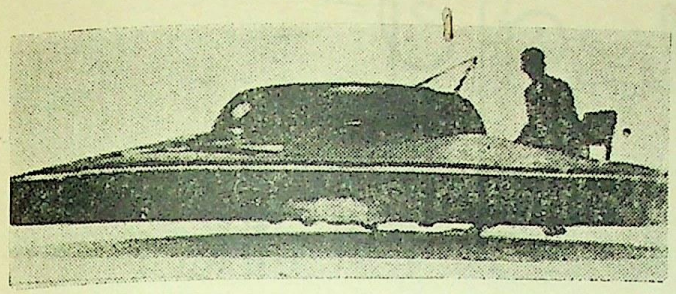

भूमि पर चलता हुआ और फिर ऊपर उड़नेवाला यान बनाया जा चुका है। जहाँ सड़क नहीं है या बहुत गड्ढे हों वहाँ यह उड़कर निकल जाता है। इसका रूप उड़न तश्तरी जैसा है।

तक भी) की गति भविष्य के वायुयानों के लिए साधारण बात होगी।

मानव अंतर्ग्रही यात्रा की रोमांचकारी कथा अगले १० वर्षों में सत्य होगी। इसके लिए ६–७ मील प्रति सेकेण्ड की गति देना आवश्यक है जिसके कारण वायु का घर्षण अत्यधिक ऊष्मा उत्पन्न करेगा। कृत्रिम उपग्रहों द्वारा ऋतु, संकट तथा रेडियो संकेतों की जानकारी सरल होगी। यह सब तो आजकल नित्य समाचारों में सुनायी देता रहता है। चन्द्र, मंगल, शुक्र आदि की यात्रा २५ वर्षों में होगी।

वायुयात्रा के लिए १००–२०० यात्री ले जानेवाले यानों का प्रचलन होगा, तथा यात्रा का व्यय रेलगाड़ी के समान हो सकेगा।

राकेट हमारे मित्र सिद्ध होंगे। उदाहरण के लिए पीठ पर बँधे राकेट द्वारा मनुष्य वायु में सीधा ऊपर कूद सकेगा। ऊँची इमारतों पर पहुँचने के लिए राकेट का हलका ऊपरी ढाँचा लगाकर एकबारगी मनुष्य खड़ा-खड़ा उठ सकेगा। इसी प्रकार लम्बी छलाँग मारना या उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक (मुर्गी के समान छोटी-छोटी उड़ानें लेकर) पहुँचना संभव होगा।

विचित्र दृष्टिकोण

बिना पटरी पर चलनेवाली रेलें, बिना सड़कों के उड़कर चलनेवाली मोटरें इत्यादि सभी में परमाणु शक्ति का उपयोग तथा अधिक बोझा ढोने की शक्ति का विकास हो जावेगा। राकेट या जेट द्वारा हेलीकोप्टर चलाने की व्यवस्था हो सकेगी। हेलीकोप्टर का उपयोग साइकिल के समान लोकप्रिय हो सकेगा।

आनेवाले युग के यात्रा के साधनों में दो मुख्य बातों का ध्यान रक्खा जावेगा कि गति तथा आराम की अधिकता हो। पचास वर्ष के भीतर ही आज के साधनों को गंदा, दूषित, अत्यन्त कष्टदायी, सुस्त तथा मानव उपयोग के लिए अनुचित माना जावेगा; और यह भी संभव है कि अगले १०० वर्षों में मनुष्य को यात्रा की आवश्यकता ही न रह जावे। एक स्थान पर बैठा रहकर ही घर, दफ्तर, बाजार इत्यादि के कामों का नियंत्रण व निरीक्षण, मनोरंजन के

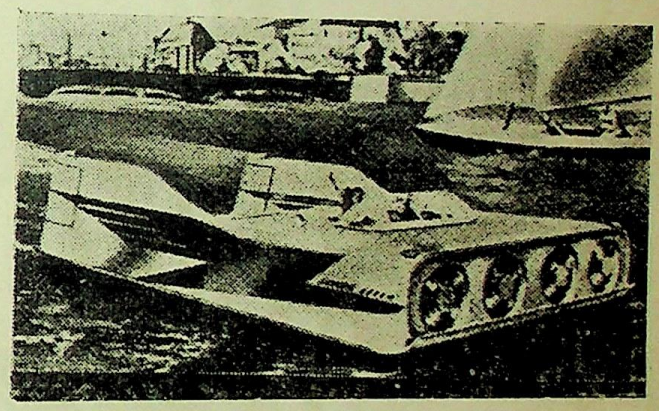

वही उड़ती चलनेवाली मोटर पानी के ऊपर भी यात्रा करती है। भूमि हो या नदी यह रमण सर्वत्र करती है––वायुयान की भाँति इसमें इंजिन नहीं है वरन् आठ पंखे इसको धरातल से लगभग दो फीट उठाये रखते हैं।

साधनों की पूर्ण व्यवस्था तथा एक दूसरे से पूर्ण सम्पर्क इत्यादि भी संभव हो जावेगा। तब यात्रा की आवश्यकता ही न रहेगी और पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए यात्रा के सभी साधन बेकार पड़े होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

'चल ही दीं ऑफिस ?'

तो फिर नौकरी करने का सोच ही लिया है ! यदि नौकरी करने का सोच ही लिया है तो फिर जरा इन पर भी सोचिए। अपने काम में आपको दोनों ही प्रकार के साथी मिलेंगे पुरुष व स्त्रियाँ। आपके साथी या हो सकता है आपके अधिकारी ही आपसे कहेंगे कि १—"आप यहाँ बस की प्रतीक्षा कर रही हैं—मैं तो उधर ही जा रहा हूँ—या उधर ही रहता हूँ लाइए आपको भी छोड़ दूँ ?" तो आप क्या उत्तर देंगी ? इसपर सोच लिया आपने ?

२—आपका कोई न कोई साथी आप तक एक न एक दिन सरककर पहुँच ही सकता है। जिसकी मुद्रा गंभीर होगी, और ओठों पर उदासी होगी और धीमी आवाज में वह आपसे कह रहा होगा "मैं तो बड़ा अभागा हूँ। मेरी पत्नी मुझे समझती ही नहीं। इससे भी बड़ा दुख जीवन में कोई हो सकता है ? गले बाँध दी गयी है—मैं अपना कर्तव्य निभाये जा रहा हूँ—पर सोचता था कि कोई जीवन में ऐसा साथी तो होता जो मेरे मनोभावों को समझता।" क्या करेंगी आप ? उनके साथ सहानुभूति नहीं दिखायेंगी ? मनोभाव समझने के नाते एक 'कोरी नातेदारी' की सादी गंभीर मुस्कान उसको न देंगी ? क्या सोचा आपने ?

३—" 'यह हमारा दफ्तर—एक भरा-पूरा परिवार है। हम सब उस परिवार के सदस्य हैं।' 'मेरी एक लड़की तुम्हारे बराबर ही थी जो गत वर्ष मर गयी। तुम्हें देखकर मुझे लगता है तुम वह ही हो।' 'खाओ ! खाओ ! खाओ ! क्या बात है—मैं तुम्हारा भाई ही तो हूँ।' 'आइये ! आज शाम को कैन्टीन में चाय पी लें, पैसे मैंने ही दे दिये ऐसी क्या बात है।' ये सब आपको सुनना पड़ेगा। दफ्तर में काम करना तो आसान है पर इन बातों का उत्तर देना कठिन। इन बातों पर विचार कर लिया आपने ? काम से भी ज्यादा जरूरी यह बातें हैं। काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा होते हुए भी अगर इस क्षेत्र में चूक हो गयी तो आराम से दफ्तर की कुर्सी पर बैठना भी मुश्किल हो जायगा।"

४—रोज की समस्या—कपड़े कौन से पहनें? कैसे सिलवायें? कैसे खरीदें? अपने कपड़े की रुचि में प्रत्येक स्त्री की चाह होती है वह 'प्रगतिशील' लगे, 'आधुनिका' जान पड़े—कपड़ों में नयी रुचि की छाप हो। रूढ़िवादी बनकर बाहर निकलना कौन चाहता है? पुरानी रुचि के कपड़े खरीदकर पैसे बहाना कौन चाहता है? आपने सोच लिया है कि आप कैसे कपड़े पहनकर दफ्तर जायेंगी—जैसी आपकी विचारधारा होगी वैसा ही आपका 'वार्ड रोब' बनकर तैयार होगा। तो क्या आपने सोच लिया आप प्रगतिशाली दिखना चाहती हैं या अति प्रगतिशाली? या आप पुरानी सभ्यता की ही पुजारी हैं?

उत्तर—

१—पहले से ही सोच लीजिएगा, क्योंकि ऐसा होगा जरूर। इस समय उपयुक्त यही होगा कि आप कहें कि आपके भाई व माता व पिता, व चाचा व जो कोई भी हों रोज उसी बस से घर लौटते हैं और आपको न पाकर चिन्तित होंगे। यह कहकर रोज-रोज का किस्सा ही खत्म कर दीजिए—वरना एक दिन आप बच निकलीं तो फिर शीघ्र ही दूसरे दिन यह फिर से होगा अवश्य। और यदि ये आपके बड़े अफसर हुए तो आप एक न एक दिन संकोच में आकर बैठ ही जायेंगी। आप बैठीं नहीं कि गलत कदम तो आपका उठ ही गया। आप भले ही केवल संकोच से ही बैठी हों—पर सबके ओठों पर उँगली रखने तो आप नहीं जायेंगी। स्त्रियों को चरित्र ही नहीं अपने चरित्र की ख्याति की भी रक्षा करनी होती है। यदि आप अविवाहित हैं और आपके विवाह पर कोई प्रतिबंध नहीं है तो अपने विवाह के लिए आप कोई भी साधन अपनायें मुझे आपत्ति नहीं। पर यह देख लें कि हाथ विवाह ही लगे कोरी बदनामी नहीं।

२—ये सज्जन जो आप तक अपनी पत्नी की यह शिकायत लेकर सरक आये हैं कि 'मेरी पत्नी मुझको समझती नहीं मैं अभागा हूँ।' सच यह है कि उनकी पत्नी उनको खूब समझती है और उन दोनों में कोई अभागा है तो कुछ हद तक उनकी पत्नी ही कही जा सकती है, वे नहीं। ये सज्जन स्त्री मनोभाव के चतुर कलाकार हैं। इन्हें पता है कि स्त्रियों की प्रकृति सरल होती है और वे अति शीघ्र द्रवित हो जाती हैं। ये अपने ध्येय की पूर्ति के लिए सहानुभूति के काँटे में उलझाकर अपने शिकार को अपने तक खींचने की कला जानते हैं। यथार्थ जाने रहने से आपके हृदय में उनके प्रति सहानुभूति उदित होने के बदले आपको उनकी नाटकीय कला उल्टी मनोरंजक लगेगी और उनका उद्देश्य उस खिलाड़ी की तरह निरर्थक हो जायगा जिसकी ताश की बाजी उसके प्रतिद्वन्द्वी ने देख ली है। उनकी बात सुनते ही आपको हँसी आ जायगी—और आपकी मूक हँसी सुनकर वे समझ जायेंगे कि ये वो जीव नहीं जो सहानुभूति के नाते मेरे चंगुल में फँसें। न मनोमालिन्य होगा, न कोई तीखी कड़वी बात, और आप एक संकट से यों ही बच निकलेंगी।

३—आप दफ्तर में काम करने गयी हैं दूसरा बाप खोजने नहीं—अपना परिवार बढ़ाने नहीं। घर पर बढ़ते हुए परिवार के कारण तो आपको संभवतः नौकरी करनी पड़ी है अब यहाँ एक परिवार और तैयार है! परिवार का उत्तरदायित्व निभाने को क्या वह घरवाला परिवार कम है?

गत वर्ष खोयी हुई बिटिया की स्मृति में जैसे वो गत वर्ष बीता वैसे ही आगे के वर्ष भी बीत जाते यदि आपसे उनकी भेंट न होती। इस कारण आपको उनकी स्वर्गवासी बिटिया बनकर उनको पिता स्वीकार करने में कोई धार्मिक बन्धन नहीं है। किसी दुखी हृदय को सान्त्वना देनी है तो आज के मिले इन नये दफ्तर के प्राणियों में ही क्यों?

पैसा—पुरुषों की निगाहों में स्त्रियों की सबसे बड़ी कमजोरी है पैसा। यह पैसा कभी चाय की प्याली के रूप में दिया जाता है तो कभी जन्मदिवस उपहार के रूप में। इस पैसे की जितनी चेतना पुरुष को है, उतनी स्त्रियों को नहीं हुआ करती। स्त्री पर पैसा खर्च करते ही वह उसपर अपना अधिकार समझने लग जाता है। आप इसके लिए तैयार हैं? यदि तैयार हैं तो दूसरी बात है, लेकिन सोती हुई ही न पकड़ी जाइए। इनका सबका उत्तर, झिड़कना, व मुँह बन्द करनेवाले तीखे जवाब नहीं। क्योंकि जो आपसे ऐसी बातें कर रहे हैं—ऐसी बातें करना उनका स्वभाव ही है—कटीले तार का काम ही वस्त्र को पकड़ लेना है—उससे बच निकलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुराई है। उसी क्षण कोई बहाना खोजकर क्षमा माँग लेना भी उसका उत्तर नहीं। बहाने बनाकर एक दो दिन ही बचा जा सकता है--वो लोग एक दो दिन की हार से चुप बैठने से तो रहे। इसका उत्तर है आपका अपना आत्मविश्वास, आपका अपना व्यवहार, आपकी आँखों की दृढ़ता--और चेहरे की सौम्यता, जिसमें क्रोध नहीं, आवेश नहीं परन्तु जिसमें यह स्पष्ट है कि जो यह कह रही हैं वास्तव में ये वही अर्थ रखती हैं--यह वह 'ना' नहीं है जिसका अर्थ होता है 'हाँ'। उस मुद्रा के साथ ही ये उत्तर 'जिस दिन भोजन नहीं लाऊँगी उस दिन अवश्य आपका साथ दूंगी' 'आपकी पुत्री के बारे में जानकर बहुत शोक हुआ'--बस! अपना अर्थ रखते हैं। जब आप जीवन में संग्राम करने स्वयं रणक्षेत्र में उतरी हैं तो कौन से वार का उत्तर किस प्रकार से दिया जायगा इस समझ की भी क्षमता आपमें होनी ही चाहिए--कि आप स्वयं ही अपने उत्तरों में न फँस जायँ।

४--आपके वस्त्र केवल आपके शरीर को नहीं ढकते हैं वे आपके चरित्र, व्यक्तित्व और रुचि पर भी प्रकाश डालते हैं। व्यक्तित्व और रुचि में दामन-चोली का सम्बन्ध माना जाता है। आपके साथ चाहे यह लागू न होता हो--पर जगत की धारणा ऐसी ही बनी है। आपको ऐसी क्या आवश्यकता है कि आप अपना सारा व्यक्तित्व खुले आम सड़क पर लेकर घूमें? आपका अपना व्यक्तित्व, आपका अपना निजी धन है, ढिंढोरा पीटने की वस्तु तो नहीं। यदि आपका व्यक्तित्व यही है कि आपको देखते ही देखने-वाले की साँस रुक जाय, तो दफ्तर जाते समय आप अपने को समझा दीजिए कि दफ्तर काम करने को जाना है--अगर सबकी साँस रुक गयी तो न आप काम कर पायेंगी और न वे--यदि उद्देश्य विवाह है और यदि उसका आधार पस्त्र ही है तो सीधी सपाट दिखनेवाली लड़कियों के ब्याह क्यों हो जाते हैं? पुरुष में दोनों ही भाव होते हैं आप अपने वस्त्रों से उसका कौन-सा भाव प्रज्वलित कर रही हैं?--सोच लें? इसका यह अर्थ नहीं कि आप सफेद धोती लपेटे ही रोज दफ्तर भागने लग जायँ। यदि आप प्रवृत्ति की संकोची हैं, शान्त हैं, लज्जाशील हैं तो सफेद धोती का झंडा फहराकर उसका विज्ञापन न करिए--प्रयास से वस्त्रों में सौंदर्य लाइए वरना दफ्तर में आपका नाम 'श्री १०८ माताजी' पड़ जायगा। तात्पर्य यह कि आप अपने वस्त्रों को किसी भी 'अति' से बचाइए। सुन्दरता से पहने हुए सौम्य वस्त्रों में अपनी अलग एक शोभा होती है।

घर-गृहस्थी

बड़ी सर्दी है!

हाथ ठिठुरे जाते हैं और बच्चे रात भर जगाते हैं। ऊपर से यह ही भय लगा रहता है कि ना जाने कब पैर मार-मारकर कम्बल या लिहाफ गिरा दें और सर्दी खा जायँ। लीजिए मुन्ना को रात की सर्दी से बचाने के लिए ये शयन वस्त्र बनाइए चित्र १/ इसको पहनाकर सुलाने से उसको रात को सर्दी नहीं लगेगी। यह नीचे से और पीछे से खुला हुआ है मोमजामा इसके अन्दर ही आ जाता है। रात में मुन्ना के कुनमुनाने पर उसने वस्त्र गीले तो नहीं कर लिये हैं यह नीचे का फीता खोलकर सुविधा से देखा जा सकता है। इस वस्त्र में हवा न लग सकने के कारण एक बार गीला कर लेने पर भी नन्हें को उतनी जल्दी सर्दी नहीं लगती, जितना कि हवा लगते ही गीला होने पर लग जाती है। यह वस्त्र पर्याप्त मात्रा में ढीला हो, और इसका रोयाँ मुलायम हो, वरना कपड़े के सख्त रोएँ की रगड़ से मुन्ना रोयेगा और आप दोष कभी मुन्ना को देंगी, तो कभी इस शयन वस्त्र को। इसका भी ध्यान रक्खें कि उसका कपड़ा बहुत मोटा न हो, कहीं आप नयी-नयी उमंग में कम्बल को ही काटकर न सी दें। यों तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर जहाँ मोटे कम्बल की दो तह नीचे आयीं कि या तो मुन्ना एक ओर को गिर जायगा, या उनकी चुभन से रो पड़ेगा--उस बेचारे को तो अपनी सब फरियादों को बस रोकर ही कहना आता है--आप फिर दोष उसके रोने को ही देंगी। चतुर गृहणियाँ तो घर के उन पुराने गर्म कपड़ों से ही यह शयन वस्त्र बना लेंगी जो या तो रीति निकल जाने के कारण व्यर्थ पड़े हैं या छोटे हो गये हैं। उपयोग में आ चुकने के कारण वे मुलायम भी होते हैं और फिर सस्ते तो पड़ते ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

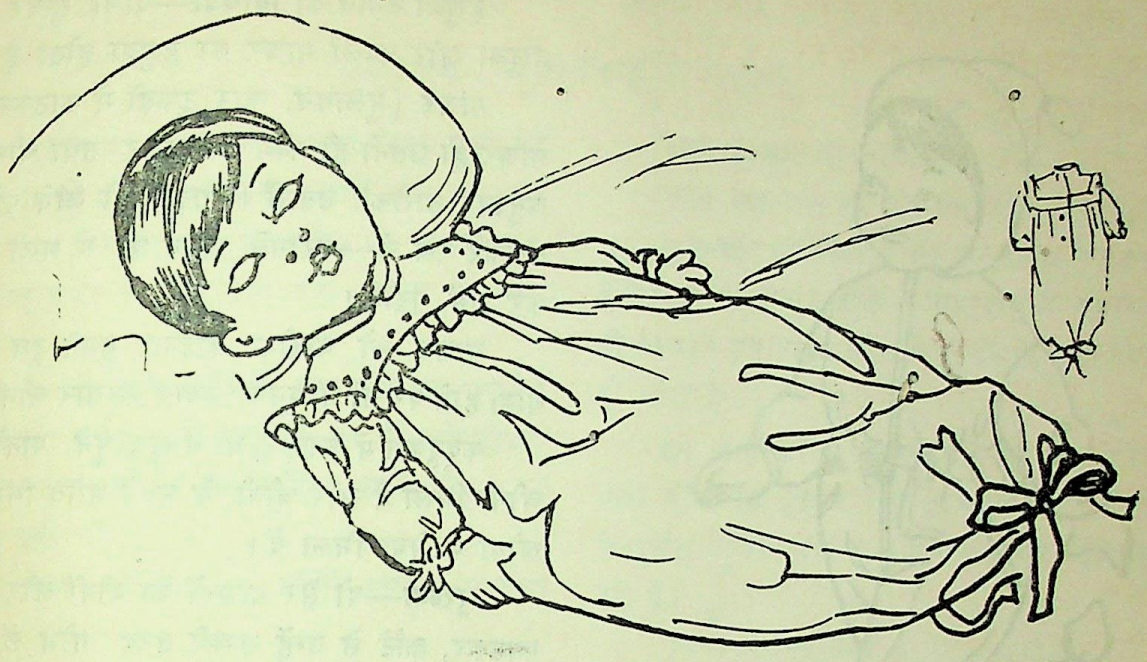

बच्चों को बाहर ले जाते समय व खेलते-कूदते समय गर्म रखने का 'ओवर औल' यह ऊपर से नीचे तक एक कपड़े में बना है--आस्तीनें अलग से काटकर लगायी गयी हैं, और टोपी अलग से सीकर पीछे से जोड़ी गयी है जो आवश्यकता पड़ने पर लगा ली जाती है वरना पीछे झूलती रहती है। सामने गले से कमर तक यह बटनों द्वारा खोला जा सकता है जिससे इसको उतारने व पहनने में सुविधा हो। कमर में 'इलास्टिक' द्वारा यह कमर से थोड़ा-थोड़ा लगा रहता है। और दोनों ओर पैरों के पास इसमें दो गहरी जेबें हैं जिनमें कभी हाथ गर्म करे जाते हैं तो कभी 'बाल-निधि' भरी जाती है। अपनी इन जेबों के कारण यह बालकों को बहुत प्रिय है।

इस पतलून में मोजे भी साथ में काटे गये हैं, जो फीते से ऊपर कस दिये जाते हैं। कमर पर इलास्टिक का प्रयोग किया गया है। नन्हें बालकों के लिए जो अभी चलना सीख रहे हैं यह बहुत उपयुक्त है।

(अगले पृष्ठ का चित्र देखें)

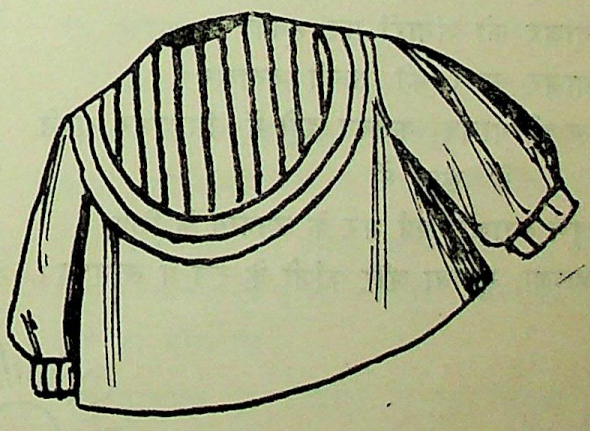

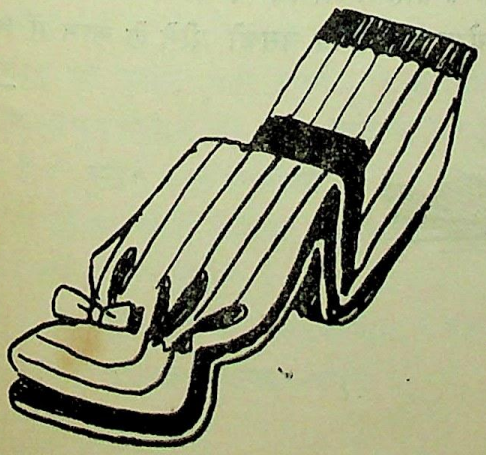

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसम की बात—

गाजरें उपयोग में लाइए——यह बवासीर व संग्रहणी में लाभकर है, कफ व वायु की नाशक है।

फलों के साथ मुलायम गाजर खाकर
कच्ची गाजर का रस निकालकर
गाजर को अंगारों पर भूनकर
गाजर मटर की सब्जी बनाकर
कच्ची गाजर कसकर दही में मिलाकर रायते के रूप में
चूर्ण बनाकर वर्ष भर के उपयोग के लिए
हलुआ, मुरब्बा और काँजी के रूप में लाभप्रद।

हलुआ बनाने की विधियाँ——पीली सुन्दर गाजर का हलुआ और काली गाजर का हलुआ होता है।

गाजर (मुलायम, चार टुकड़ों में काटकर) जितनी गाजर हो उतनी ही क्रीम मिलाकर तथा चीनी रुचि के अनुसार डालकर उबालें। गाढ़ा हो जाने पर बर्तन में ढककर रख लें——परोसते समय घी में भली भाँति भून कर गर्म परोसें।

गाजर को बारीक काटकर दुगने दूध में उबालें, गाढ़ा होने पर घी में भूनकर स्वाद अनुसार चीनी मिलायें।

कद्दूकस में कसकर, घी में खूब भूनें, पानी सूखने पर चीनी मिला दें और चीनी के भली भाँति मिल जाने पर खोया व मेवा मिला दें।

मुरब्बा——दो सेर गाजरों का दोनों ओर का हिस्सा काटकर, काँटे से उन्हें अच्छी तरह गोभ लें। ढाई सेर की एक तार की चाशनी बना लें, उसमें उबाली गाजरें डाल दें, गाजर का पानी निकलकर चाशनी को पतला कर देगा, उसे तब तक पकने दें जब तक चाशनी फिर एक तार की न हो जाय। फिर उसे एक सप्ताह तक काम में ले सकती हैं।

काँजी——गाजर के टुकड़े करके, कुछ देर को धूप में सुखा लें, फिर मसाले (राई, नमक, लाल मिर्च, हल्दी, हींग) पीसकर अन्दाज से मिलाकर धूप में रक्खें। राई ज्यादा डालना चाहिए। सब मिलाकर धूप में रख दें और जब पानी छूट जाय तो उसका पानी पियें और गाजर अचार की तरह खायें।

दूसरा तरीका——गाजर (काली) पानी में उबाल लें (मोटी काटकर)। उबल जाने पर ठंडा होने के पश्चात् उसको घड़े में डाल दें। नमक और राई उसमें डाल दें—— एक सप्ताह में गाजर के पानी का रंग तेज लाल निकल आयेगा उस समय उसको पीने के काम में लायें।

——लक्ष्मी गुप्त

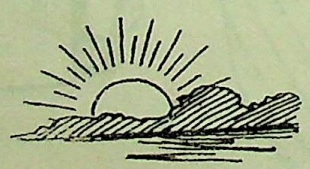

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामराज्य में विद्रोह

मूल लेखक--श्री प्रेमेन्द्र मिश्र

अनुवादक--गुलाबचन्द्र विश्वकर्मा

माघ का सुहावना सबेरा। नगर की निद्रा अभी भी टूटी न थी। हल्का कुहासा अभी मार्ग के वृक्षों पर छाया था। ऐसे ही समय बिना मेघ के वज्रघात के समान हठात् नगर के सिंह-द्वार पर नगाड़े की चोट पड़ी।

नगर के जो लोग जहाँ थे, बाहर निकल आये। मित्र, सभासद समेत स्वयं महाराज भी भौंचक्के होकर सभा-भवन की छत पर आ पहुँचे। सबके चेहरे पर हवाई उड़ रही थी।

शहर के जो नये वासी थे, उन्होंने पूछा--'मामला क्या है?'

जिनकी तीन पीढ़ियाँ शहर में बीत चुकी हैं उन्होंने सिर हिलाते हुए गम्भीर मुद्रा में कहा--'मामला संगीन है।'

आजतक जो बात इस नगर में नहीं हुई, आज घट गयी। बाप-दादों ने जो अपनी आँखों से नहीं देखा आज वही उनके नाती-पोते अपनी आँखों देखेंगे। राज्य में विद्रोह हो गया है। विद्रोहियों के दल ने नगर पर चढ़ाई कर दिया है।

'विद्रोही नगर पर चढ़े आ रहे हैं?'

नगर-प्राचीर पर जो जा बैठे थे वे आँखें फाड़-फाड़कर क्षितिज में खो जानेवाले मार्गों की ओर देख रहे थे।

'हाँ, हाँ, वहाँ बादाम ताल के पास धूल उड़ रही है।'

'और वह विप्लव का झंडा ऊँचे आकाश में उड़ रहा है।'

'आ रहे हैं, आ रहे हैं, सचमुच में विद्रोही आ गये हैं। तिल मात्र भी सन्देह नहीं इसमें। वे आ गये हैं, पास बिल्कुल पास। बल्लम की नोकें बिजली की तरह चमक रही हैं।' पुराने लोग चिल्लाये।

'विद्रोही तो आ रहे हैं लेकिन हम क्या कर रहे हैं?'--पूछा नये नगरवासियों ने।

'कहाँ हैं सिपाही, कहाँ हैं बरकन्दाज, कहाँ है लोक-लश्कर, ढाल-तलवार, बल्लम-धनुष?'

'कहाँ हैं सब वीर, सेनापति?'

'स्वयं महाराज ही इस घड़ी क्या कर रहे हैं?'

बाप-दादे की पीढ़ी से जो इस राज्य में रहते आ रहे हैं वे सिर हिलाकर बोले--'महाराज ने जो किया ठीक ही किया। इस राज्य में आते ही विद्रोही भी विवेकशील हो जाते हैं।'

इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता। तभी तो सेना पंक्तिबद्ध होकर सिंह द्वार पर आ डटी है। स्वयं सेनापति सफेद घोड़े पर सवार होकर आगे-आगे चल रहे हैं।

'बिना खून-खराबी हुए.....।'

'लेकिन यह तो आश्चर्य की बात है।'

'कहाँ है विद्रोही?'

बादाम ताल के पास जो लाल झंडा दिखाई दे रहा था, वह अब बिल्कुल आमने-सामने हो गया है। लाल झंडा सिंहद्वार की ओर बढ़ा आ रहा है। झंडे की संज्ञा उसे कैसे दी जाय। वह तो लाठी में लगा एक फटा हुआ चिथड़ा है। और इस झंडे को जो लिये आगे बढ़ा आ रहा है, जैसा उसका मुखड़ा है, वैसा ही मुखड़ा उसकी सवारी का भी है। झुका हुआ एक बूढ़ा, लँगड़ा तीन पैर का--एक घोड़ा जिस पर चढ़कर आया हुआ एक ताल-पत्र सिपाही! राम, राम! इसी का नाम विद्रोह है?'

तीन पैरवाले घोड़े के सवार तालपत्र के सिपाही का तेज कम नहीं जान पड़ता। सिंहद्वार के सामने पहुँचकर उसने पुकारा--'दरवाजा खोलो! मैं विद्रोही हूँ।'

'अरे कहाँ का सनकी और पागल है यह! भाग नहीं तो कच्चा ही भुरता बना दिया जायेगा।' यह सबके मँह का बोल था।

तालपत्र का विद्रोही सिपाही सिंहद्वार की ओर बल्लम की नोक किये अकड़ के साथ अब भी खड़ा रहा।

विराट् सिंहद्वार धीरे-धीरे खुलने लगा। उसके कब्जे-कब्जे आर्त्तनाद कर उठे।

अब क्या देखने को--लँगड़े घोड़े के सिकिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही के जान की खैर नहीं। सेना के दो-चार जवान पलक भाँजते उसे उस घाट लगा देंगे।

लेकिन आज--लड़ाई कहाँ, कहाँ खून-खराबा, कहाँ रक्त-पात? संतरी और सिपाही; विद्रोही के ऊपर कहाँ टूटेंगे। नहीं, कदापि नहीं। सभी ने दो ओर खड़े होकर उसके लिए रास्ता छोड़ दिया। स्वयं सेनापति ने तलवार-वाले हाथ से उसे सलामी दी और कहा--'विद्रोही वीर, आज्ञा दीजिए! आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'

विद्रोही वीर ने गर्दन उठा सेनापति की ओर अवज्ञापूर्ण दृष्टि से देखा और कड़ककर कहा--'जान पड़ता है तुम इस राज्य के सेनापति हो?'

'जी हाँ, इस सेवक को लोग इसी नाम से जानते हैं।'

घोड़े पर सवार सेनापति की ओर ध्यान से देखते हुए विद्रोही बोला--'देख रहा हूँ कि घोड़े को दूध में बोर दिये हो। क्या सचमुच घोड़े का रंग सफेद है कि उस पर चूना-पच्ची किये हो?'

सेनापति के कुछ उत्तर देने से पूर्व ही विद्रोही ने हाथ बढ़ाया और जोर से चिकोटी काट स्वयं परख देखी--मँजा हुआ घोड़ा है। सेनापति की लगाम भी कड़ी है। दो पैरों को उठाकर एक बार चिहीः करता हुआ घोड़ा शान्त खड़ा हो गया।

'तुम्हारा घोड़ा बड़ा असभ्य है। वश में नहीं कर पाते तो घोड़े पर चढ़ते ही क्यों हो?'--विद्रोही प्रभाव-शाली स्वर में बोला।

घोड़े की असभ्यता के लिए क्षमा माँगते हुए सेनापति ने सविनय पूछा--'अब आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ, कृपया कहें।'

'यह तुम सरीखे सेनापति का काम नहीं है। मुझे स्वयं राजा से बात करनी है। कहाँ है वह?'

'जी, वह तो राजसभा में आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि असुविधा न हो, तो आपको हम लोग उन तक मार्ग दिखाकर पहुँचा दें?'--सेनापति ने कहा।

विद्रोही भौंहें सिकोड़कर बोला--'मैं राजसभा में ही चलता हूँ। लेकिन खबरदार, बात फूटने न पाये। महाराज का मैं सम्मान करता हूँ।'

'श्रीमान्! ऐसा तो हमें स्वप्न में भी विचार न आयेगा।'

सेनापति के साथ सभी सैन्यवाहिनी लज्जा से जीभ काट लेती है।

विद्रोही, राजसभा की ओर बढ़ा। उसका लँगड़ा घोड़ा भचकते-भचकते सबसे आगे चला। उसके बायें हाथ में थी लगाम और दाहिने हाथ में चिथड़े वाला लाल झंडा। सेनापति, सैन्यवाहिनी और सामन्त उसके पीछे-पीछे चले।

राजसभा के सामने आकर लोग रुके। पात्र, मित्र समेत स्वयं महाराज ने सीढ़ियों से नीचे उतरकर विद्रोही वीर का स्वागत किया।

विद्रोही वीर यह निर्णय नहीं कर पाया--कि वह घोड़ा से उतरे या नहीं। इसका निर्णय उसके लँगड़े घोड़े ने कर डाला।

मंत्री महाशय की पगड़ी का रंग हरा था। अच्छी तरह से लपेटकर उनकी भारी-भरकम खोपड़ी बँधी थी। उसे बंदगोभी समझ लँगड़ा घोड़ा उनकी ओर गर्दन बढ़ाकर लपका। ऐसी दशा में वह अपने को सँभाल न सका और लुढ़ककर जमीन पर आ रहा।

मंत्री महोदय की पगड़ी हठात् घोड़े के काट खाने से जो शोर-गुल मचा उसी बीच अपने को सँभालकर विद्रोही उठ खड़ा हुआ। उसकी भाव-भंगिमा देखकर ऐसा लगता था मानों कुछ हुआ ही न हो। घोड़े से उतरने का मानों उसका ऐसा ही ढंग हो। नगर कोतवाल उसकी धूल झाड़ने के लिए दौड़े आये।

बायें हाथ से कोतवाल को हटाकर विद्रोही ने महाराज की ओर तनी भौहों से देखते हुए पूछा--'आप ही यहाँके महाराज हैं न?'

महाराज एक अपराधी की भाँति यह बात स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए। महाराज की स्थिति परखकर विद्रोही कुछ सन्तुष्ट हुआ और बोला--'तो महाराज के हिसाब से आप कोई बुरे नहीं लगते।'

'आपको जो प्रसन्न कर सका हूँ'--महाराज ने कहा।

महाराज की बात समाप्त होते-होते विद्रोही की मुखाकृति बदल गयी। झंझनाये हुए स्वर में उन्होंने कहा--'फिर भी इस राज्य का सिंहासन छोड़ देना आपके लिए हितकर है, जानते हैं न?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज पर घड़ों पानी पड़ गया। लज्जा में वे डूबने-उतराने लगे। लज्जित भाव में ही उन्होंने स्वीकार किया कि आपकी बात ठीक तरह से समझ में नहीं आ सकी।

विद्रोही का स्वर और मस्तिष्क दोनों ही आसमान पर चढ़ गया--'वही बात जनाने मैं आया हूँ। आपकी राजागिरी समाप्त करने के निमित्त ही मेरा विद्रोह है!'

'कुछ अनुचित न मानियेगा, श्रीमान्!'--महाराज अनुरोध के स्वर में बोले--'सड़क पर खड़े होकर इस प्रकार विद्रोह की घोषणा क्या फलदायक होती है। इतना मार्ग तय करके आते क्या शरीर नहीं थका? खा-पीकर थोड़ा विश्राम करके आराम से राजसभा में बैठकर विद्रोह-घोषणा करने से क्या काम नहीं चल सकता था?'

विद्रोही ने माथे पर बल डालकर विषय को विचारा फिर नकारात्मक सिर हिलाते हुए बोला--'नहीं, मैं विद्रोही हूँ। अपने विद्रोह का कोई निर्णय हुए बिना मैं आपका अन्न-जल ग्रहण नहीं कर सकता।'

महाराज खिन्न स्वर में बोले--'क्या आपका घोड़ा भी आप ही की तरह विद्रोही है? क्या वह भी थोड़ा दाना-पानी नहीं ले सकता?'

विद्रोही संकोच में पड़ गया, बोला--'घोड़े को मेरी इच्छा होने पर उसे दाना-पानी दे सकते हैं। मेरा घोड़ा विद्रोही अवश्य है, मगर वह आपके प्रति नहीं केवल मेरे प्रति उसका विद्रोह है। उसे खिलाना चाहते हैं, तो मुझे आपत्ति क्या? लेकिन दाना-पानी नहीं केवल बन्दगोभी। बन्दगोभी के सिवा मेरा घोड़ा कुछ खाता नहीं।'

नगर-भंडारी उसी क्षण विद्रोही के वाहन के लिए बन्दगोभी की खोज में बाजार निकल पड़े। विद्रोही ने उनकी ओर एक दृष्टि डाली और संदिग्ध दृष्टि से महाराज की ओर देखकर कहा--'मेरे घोड़े को बन्द-गोभी खिलाकर मुझे कृतज्ञ बना लेंगे। ऐसा होने को नहीं। यदि ऐसा सोचा है, तो यह आपकी भयंकर भूल है। मेरा विद्रोह बन्दगोभी से वश में होने का नहीं!'

'जी, सो मैं जानता नहीं। आपका विद्रोह अभी किस चीज से शान्त होगा कृपया.....।'

'शान्त होगा यह राजसिंहासन आपके त्याग देने से।'--महाराज को डपटकर विद्रोही बोला।

महाराज करुण स्वर में बोले--'हम प्रायः चौदह-पीढ़ी से इस सिंहासन पर बैठते आ रहे हैं।'

'चौदह पीढ़ी से? तब तो....।' विद्रोही का स्वर कुछ मन्द था।

महाराज पुनः विनत स्वर में बोले--'कुछ विचार कीजिए। मेरे अति वृद्ध प्रपितामह--राज चक्रवर्ती स्व० दिव्यादित्य....।'

'ताख पर रखिए अपना दिव्यादित्य। जानते हैं मेरे अति वृद्ध प्रपितामह कौन थे?' विद्रोही कुद्ध होकर बोला।

"जी, नहीं।' महाराज घबरा उठे।

'छोड़ें इन व्यर्थ की बातों को। लेकिन क्या यह आपका अपराध नहीं।'

'मेरा अपराध क्या है जानूँ तो?'

विद्रोही गरज पड़ा--'आपका अपराध। अपने राज्य की खबर आप रखते हैं। झूठमूठ में राजा....।'

'जी, भरसक खबर रखने की चेष्टा तो करता हूँ।'

'भरसक चेष्टा करते हैं फिर भी राजकार्य की इतनी बड़ी असावधानी की खबर आप नहीं जानते?' विद्रोही कड़का।

महाराज ने अबकी बार मंत्री की ओर देखा। मंत्री सकते में पड़ गये, बोले--'जी, किसी असावधानी की बात तो मस्तिष्क में नहीं धँसती। राज्य के उत्तर सीमान्त में वर्षा के कारण एक बैलगाड़ी फिसलकर पास के खन्दक में उलट गयी थी। खबर मिलते ही आहत बैल को चिकित्सा के लिए अस्पताल में भेज दिया गया। मार्ग की मरम्मत के लिए निर्माण विभाग वहाँ पहुँच गया है।'

'बस, आप लोग इतनी-सी ही खबर रखते हैं।' विद्रोही ने डाँट बतायी।

मंत्रीजी भयभीत स्वर में बोले--'यही नहीं, पच्छिम महल के पारघाट पर सरकारी खेवा-नौका निश्चित समय पर न पहुँचने के कारण एक ग्वाले का बाजार में बेचने का दही कुछ खट्टा पड़ गया। अर्थ-सचिव ने उसी क्षण क्षतिपूर्ति की व्यवस्था कर दी।'

'तब तो हम लोगों को एकदम कृतार्थ ही कर दिया है।'--विद्रोही दाँत किटकिटाकर बोला--'ढेर सारी खबरें तो रखते हैं, देखता हूँ। लेकिन कोई पता रखते हैं दशानी गाँव का?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दशानी गाँव।'--मंत्रीजी विमूढ़ भाव से महाराज का मुँह ताकने लगे।

'ओ! दशानी गाँव--गाँव का नाम तो समझता हूँ, जाना नहीं है अभी।'

'क्या कहते हैं--जाना नहीं है अभी। खूब जाना है। जान-बूझकर न बनने से अच्छा है न बनना।'

महाराज अब की बार मंत्री की सहायता को आगे बढ़े--'अरे, वही कंसाई नदी पर दशानी गाँव न? ऐसी मीठी फूट और किसी गाँव में नहीं होती।'

'खायी है क्या आपने दशानी गाँव की फूट?'--फूट का नाम सुनकर विद्रोही वीर की बाछें खिल आईं।

डूबते को तिनके का सहारा समझ इस दशानी फूट को ही प्राणपण से पकड़कर महाराज प्रफुल्लित हो बोले--'खायी नहीं तो और क्या? फूट नहीं जैसे चीनी डालकर मथा गया मक्खन।'

इतना शीघ्र पाशा पलट जायेगा इसकी किसे आशा थी।

विद्रोही हठात् तमककर बोला--'दशानी की फूट खायी है, फिर भी आपकी यह असावधानी!'

महाराज के चेहरे पर हवाई उड़ने लगी। कहने योग्य बात उन्हें नहीं मिली।

विद्रोही पुनः बोला--'जानते हैं तब से दिन-रात दशानी के किसी प्राणी की आँखों में नींद नहीं।'

महाराज से लेकर पात्र, मंत्री, परिषद्वर्ग सभी स्तम्भित। थोड़ी देर बाद महाराज क्षीण कंठ से बोले--'श्रीमान्! इस अनिन्द्रा का कारण?'

'कारण? कारण आपकी असावधानी! कंसाई नदी का बाँध बनाने के लिए पिछले वर्षों जहाँ से मिट्टी निकाली गयी थी उन सब स्थानों के गड्ढे क्या अच्छी तरह भठाये गये थे? वहाँ बरसात का पानी जमकर सड़ जाने से मच्छरों की वंशपरंपरा में भारी वृद्धि हुई है और उनके अत्याचार से गाँववालों की आँखों में नींद नहीं। उसकी क्या व्यवस्था की है आपने? इस असावधानी के लिए क्या आपकी गद्दी जानी सम्भव है या नहीं? विद्रोही वीर ने झंडा वाली लाठी का हुरा महाराज की नाक के बिल्कुल सामने दँता दिया।

महाराज ने स्तम्भित दृष्टि से मंत्री की ओर देखा, और मंत्री ने सेनापति की ओर--सभी अपराधी की तरह एक दूसरे का मुँह ताकते रहे।

महाराज ने सिर से मुकुट उतार कर विद्रोही के झंडे के नीचे रख दिया और बोले--'जब तक दशानी के मच्छरों का अत्याचार दूर नहीं होता, तब तक के लिए यह मुकुट रहा आपके पास बन्धक!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना (८)

श्री मनमोहन गुप्त

भाभी का प्रायश्चित्त

लालपरी भाभी ले तो आई, किन्तु मैं इतना झेंपा हुआ था कि आँखें उठाकर उनकी ओर देखने की शक्ति नहीं बटोर पा रहा था। शायद, अत्यन्त लज्जित था। यानी, अब तक भाभी के सामने बराबर रुस्तमे हिन्द बना रहता था और आज उस परम्परा में विघ्न पड़ गया। बराबर हाथ पाँव हिलाकर, ओंठों को कभी सिकोड़कर कभी फैलाकर, अपने मुँह अपनी पढ़ाई की, लिखाई की, और भी न जाने किन-किन बातों की तारीफ करते न अघाता था। शिष्टता, शालीनता तथा रुचि के परिचय देने में अपने से बड़ी उम्र के लड़कों के भी कान काटता था। ऐसे मुझको भाभी ने कनेठी खाते देख लिया, और उससे भी बढ़कर कि उन्होंने ही उस संकट से मुझे उबारा। छी, छी। सोचकर भाभी की छाती में ही मुँह छिपाये रहा।

किन्तु भाभी ने ही बड़े प्यार से मेरे कानों की नोकों को सहलाते हुए जब स्नेह पगे शब्दों में कहा--क्या है भइया! बहुत चोट लगी?"

मैंने सिर हिला दिया। तब भाभी ने मेरी आँखों को पोंछ देने के लिए अपने आँचल को हाथ में लेकर कहा--देखूँ।

नई दुलहिन की तरह आँखें बन्द किये ही सिर उठाकर मैंने मुस्कुरा दिया।

'--ओरे पाजी! तू मुस्कुरा रहा है?'

कहकर भाभी ने गाल पर एक हल्की सी चपत जमा कर मुँह चूम लिया। आँखें बनाते हुए, खोलकर मैंने कहा--'अच्छा, तुम ही बताओ भाभी कि मेरा कोई कसूर था?'

गोद से नीचे उतारते हुए भाभी ने कहा--इसीसे तो जब से शिबू की दादी तेरे यहाँ घुसी तब से मैं दरवाजे के पास कान लगाकर सुन रही थी। मैं जानती थी कि वह जरूर शिकायत करेगी।

--हें:! उसकी शिकायत से होता क्या है? यह तो बाबू उसी समय स्कूल से आये थे, तभी। नहीं तो अम्मा ने एक भी नहीं सुनी। उसने बहुत, बहुत कहा। कहते-कहते बिल्कुल थक गयी थी। मगर अम्मा....

--हाँ। हाँ, भैया! तुम्हारे बाबू बहुत गुस्सेवाले लगते हैं।

भाभी का इतना कहना था कि मैंने कहा--तुम, मगर, बड़ी बहादुर हो भाभी। अम्मा, दादी, किसीकी हिम्मत नहीं होती है कि वे जब गरम हो उठें तो उनके पास जायँ। अम्मा तो अलग बैठे-बैठे आँसू बहाया करती हैं और दादी दूर खड़े-खड़े डाँटा करती हैं बाबू को। मगर तुम तो.... हाँ, भाभी तुमको जरा भी डर नहीं लगा?

मेरे प्रश्न पर, भाभी ने चेहरे को ऐसा बनाया जैसे कि उन्होंने मुझको बता दिया कि ऐसे मौकों पर औरतें नहीं डरा करती हैं। साथ-साथ यह भी कह दिया कि मैं क्यों नहीं डरी उसे तू क्या समझेगा।

सचमुच उस अवस्था में मैं इन बातों को क्या समझता। मैं चुप ही रहा। भाभी के साथ-साथ रसोई की ओर चला गया। तब तक खाना पकानेवाली आ गयी थी। क्या-क्या कैसे-कैसे पकाना है, भाभी ने बता दिया। बाद को मुझे लेकर रसोई के बगल के कमरे में जो सोने के कमरे से कुछ छोटा था, ले गयीं। उस कमरे में, इससे भी पहले मैं कई बार आया था; किन्तु कभी भी इतना साफ और सजा हुआ न देखा था। उसमें पहले खुले हुए पलँग, और भी अटरम-सटरम रक्खे हुए रहते थे। किन्तु आज देखा कि पलँग लगा हुआ है। उसपर बिस्तर पड़ा हुआ था। बगल में छोटी-सी मेज लगी थी। दीवार पर कई तस्वीरें टँगी हुई थीं। पता नहीं कि इन तस्वीरों को भाभी ने कहाँ से निकाला था। कम से कम मुझे इसका तनिक भी ज्ञान न था। सब तस्वीरें सुन्दर-सुन्दर बच्चों की थीं। किसी में कोई बच्चा शीशे से सटकर बैठा अपनी प्रतिच्छाया को देखकर मगन हो रहा है, किसी में कोई "भें" करके रो रहा है, किसीमें एक बच्चा दूसरी बच्ची को देख रहा है, किसी-में एक बच्चा अन्य बच्चे से खिलौना छीनते हुए गगनभेदी चीत्कार से घोषणा करता जा रहा है कि ये खिलौने उसीके हैं। इसी प्रकार के अनेक चित्रों से कमरा सजा हुआ था। मैं अवाक् होकर चित्रों को देख ही रहा था कि भाभी ने कहा --इधर आ बे...टा!

यह प्रथम बार मैंने भाभी के मुँह से 'बेटे' का सम्बोधन सुना। मैं पास खिसक गया। तब भाभी अपनी पलँग पर ठीक जँगले के सामने बैठ गयीं। मुझे गोद में बैठाकर कहा--देखो।

जिधर उँगली से इशारा किया उधर मैंने देखा। जिस जँगले के पास मैं बैठकर पढ़ा करता था यहाँसे वही जँगला साफ दिखाई पड़ता था। मैंने कहा--अरे! यहाँसे तो मेरा जँगला बिल्कुल सामने पड़ता है...यहाँ बैठकर कमरे के अन्दर तक दिखाई पड़ता है।

--हाँ। इसीसे तो मैंने यहीं रहने का निश्चय किया है। अब तूने पढ़ते-पढ़ते इधर-उधर ध्यान दिया तो मैं खूब डाँटूँगी। और जरूरत हुई तो....

कहते-कहते हल्के हाथ से चम्पक की कलियों की सी उँगलियों से मेरे कानों को पकड़कर कहा--पढ़ते-पढ़ते इधर-उधर ध्यान दिया तो ऐसे पकड़कर...खूब हिला दूँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाभी की आँखों से आँख मिलाते हुए मैंने कहा--तुम भी मारोगी ?

छाती से लगाती हुए भाभी ने कहा--'हाँ.... नहीं.... ....नहीं.... वह तो तू इधर-उधर मन देगा तब।... और ध्यान से पढ़ेगा तो....'

कहते-कहते मेरे ललाट को चूम लिया। थोड़ी देर तक चुप रही। फिर अपने मन से ही पहाड़ा याद कराने लगी। मुझे अचानक याद आ गया कि आज की लिखाई अभी समाप्त नहीं हुई! मैंने कहा--भाभी। अभी एक पन्ने से अधिक अँगरेजी लिखना बाकी है। बाबू घूम करके आने के बाद देखेंगे।

भाभी के बन्धन ढीले पड़ गये। उन्होंने पूछा--क्यों ?

--दोपहर को तुम्हारे साथ सो गया था और फिर शिबू की दादी आ गई। दो पन्ने हिन्दी के और अँगरेजी का भी एक पन्ना पूरा हो गया। बस बैठने की देर है। यों चुटकी बजाकर खतम कर दूँगा।.... फिर आऊँगा .... हो ?

भाभी ने--अच्छा, जा।

कहकर बिदा किया। मैं, कूदते-फाँदते, सशंक दृष्टि से, बाबू हैं कि नहीं देखते हुए, सबकी निगाह बचाकर अपनी लिखने की जगह पर पहुँचा। वहाँसे देखा, भाभी मेरे जँगले की ओर टकटकी लगाये खड़ी है। लिखने के लिए बैठते-बैठते, मुँह से बिना आवाज निकाले, मुखमुद्रा द्वारा संकेत करते हुए, कलम दिखाकर कहा--लिखता हूँ।

भाभी ने भी उसी प्रकार से इशारा किया--लिखो .... मैं देखती हूँ।

कहीं अखरौटी में गलती न हो जाय इसीसे मैं लिखने में निमग्न हो गया। जब लिखाई कर चुका तब देखा तो भाभी नहीं हैं। मैंने पुकारा--भाभी !

बोली अम्मा। तब तक वह कमरे के अन्दर दाखिल हो चुकी थी। पूछा--लिख लिया ?

मैंने दिखाते हुए कहा--देखो। देखो न। सब लिख लिया।

अम्मा ने कहा--मैं सोच ही रही थी कि तू लिखते-लिखते उठा दिया गया था। कहीं लिखाई न हुई तो फिर वे शाम को मुझ पर बिगड़ेंगे। घूमने के लिए जाते समय यों ही कह रहे थे कि दिन भर धमाचौकड़ी मचायेगा तो लिखेगा कब ? शायद कुछ बाकी छोड़ दिया था ? वे देख गये हैं। अब कहीं जाना नहीं। बैठे-बैठे पढ़। ... हाँ, वह पहाड़ा याद किया है न 'नाइन का नाइन' जाने क्या ?

--धत् ! 'का' थोड़े ही। 'ज़ा'... 'ज़ा'... नाईन ज़ा नाईन एट्टीवन।... तुम कुछ नहीं जानती।

स्नेहपगी आँखों की स्मित दृष्टि में अपने विद्वान् शिशु को बटोरकर, नाममात्र की साक्षरा माता, मुस्कुरा दी। कहा--अच्छा, सब सुना दे।

--टू ज़ा टू से ऐट्टीन ज़ा टेन तक ?

अम्मा टुकुर-टुकुर ताकने लगी। तब मैंने कहा--बोलो न कहाँ तक ?

माता की समझ में न आया कि क्या कहे। बोल उठीं--नाईन ज़ा नाईन तक ?

उँह ! कुछ नहीं समझती। बस, वही एक याद कर लिया और बार-बार वही कहती हो ! मैं पूछता हूँ कि कहाँ से कहाँ तक ? सो तो बताती नहीं, बस एक दिन बाबू ने दस बार 'नाईन ज़ा नाईन' वाला पहाड़ा रटाया था सो उसीको पकड़े बैठी हो। बता तो दिया एट्टीवन !

तब भी अम्मा टुकुर-टुकुर ताकने लगी। उठकर अम्मा से लिपट गया एवं उनके मुँह की ओर मुँह उठाकर कहा--बोलो... बोलो न ?

अम्मा के बदले सामने के नीचे के जँगले से लाल परी भाभी ने कहा--टू ज़ा टू से बोलो....

उधर ताक कर ही मैं झेंप गया। अम्मा की धोती में मुँह छिपा लिया। अम्मा सिर पर हाथ फेरने लगी। भाभी के उद्देश्य से बोली--बड़ा शरीर है।... तुम्हें बड़ा कष्ट देता है न ?

--हाँ। आज शिबू की दादी को भी डाँट दिया। मगर ऐसी औरतें डाँटे बिना सीधी भी नहीं रहती हैं। और इतनी निर्लज्ज होती हैं कि दर-दर अपमानित होने पर भी लज्जित नहीं होतीं। मैंने शाम को इतना डाँटा और कहा भी कि रहने दीजिए अपनी भलाई। मेरे यहाँ आने-वाले बच्चों के विषय में चर्चा न किया कीजिए। मगर माने तब न ? यहाँसे सीधे आपके यहाँ पहुँची। मैं जानती थी कि आज बिना पिटवाये निकलेगी नहीं। बराबर आपका रास्ता देखती रही कि उसमें छोटके की कोई गलती नहीं है बता दूँ। मगर कोई दिखाई ही नहीं पड़ा। इतने में मास्टर साहब भी आ गये और शिबू की दादी की शिकायत भी शुरू हो गयी.... और....

आगे कुछ कहने से पूर्व ही अम्मा ने कहा--मगर बहन ! तुम हिम्मत करके न बचाती तो...

कुछ कह न पाई। मानों सहारा पाने की आकांक्षा से भाभी की ओर देखा। मेरे सिर पर फिरनेवाले हाथ की रफ्तार बढ़ गयी। कहने लगीं--न तो मुझमें योग्यता ही है और न शरीर ही ठीक रहता है। कैसे इसे सँभालूँ कुछ समझ में नहीं आता।

मुस्कराते हुए भाभी ने कहा--ठीक तो है... आइए हाथ बँटा लूँ।

--बँटाने की जरूरत नहीं रही। आपसे आप बँट गया। सोते में भी तुमसे बातें किया करता है। हँसता है.... कभी-कभी न मालूम क्या-क्या बकता है।

कहकर मेरी ओर देखकर अम्मा ने मुझसे पूछा--और... बता दूँ... वही ?

अम्मा के मुँह से इतना निकलना था कि अम्मा से लिपट-कर मैं दनादन अम्मा पर नन्हें-नन्हें हाथों के मुक्के चलाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। जँगले से उधर ढकेलने लगा। मुझे थामती हुई अम्मा ने कहा--'अच्छा अच्छा न कहूँगी,... बाबा,... न कहूँगी कि अब ऊपर के दूध से भी तुझे सन्तोष नहीं है और न तो...'

--धत्! कहकर मैं अम्मा को छोड़कर भाग खड़ा हुआ।

× × ×

उस जमाने में न तो बनारस में बिजली की बत्ती ही थी और न पंखे। कुप्पी थी औरतों का सहारा, नाना प्रकार की लालटेनें तथा टेबुल लैम्पें मर्दों का तथा बैठकों का। अपने जैसे गृहस्थों के बच्चे रेंड़ी के तेल के दीये से काम चलाया करते थे। शाम को पिताजी, हम लोगों को दीये के सहारे पढ़ाया करते थे। उस दिन भी नियमानुसार मैं और बड़े भाई, (मुश्किल से तीन वर्ष बड़े होंगे) दोनों दीया जलाकर पढ़ने बैठे ही होंगे कि अम्मा ने एक टेबुल-लैम्प लाकर हम लोगों के सामने धर दिया। देखकर बड़े भाई ने पूछा--इसे क्या बाबू लाये?

अम्मा ने कहा--नहीं, इसे छोटके की लालपरी भाभी ने दिया है।

स्वल्पभाषी बड़े भाई ने और कोई प्रश्न नहीं किया मगर मैंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। एक-एक करके अम्मा उत्तर दे ही रही थी कि बाबू के घर में आने की आहट मिली। झट अम्मा से प्रश्न करने के बदले मैंने आरम्भ किया-- your योर cat केट्। योर केट्। वाई ओ यू आर-यौर सी ए टी-कैट्=यौर कैट्। यौर कैट् माने, मेरी बिल्ली। मेरी बिल्ली।

सुनकर बड़े भाई ने पूछा--क्या कहा?

मैंने सब कुछ दोहराते हुए सुना दिया। सुनकर बड़े भाई ने कहा--गलत!

झंकारते हुए मैंने कहा--होगा गलत। तुम अपने चर्खे में तेल दो। मैं गलत ही पढ़ूँगा। योर कैट् योर कैट्, माने मेरी बिल्ली।

तब तक बाबू, हाथ-पैर धोकर पहुँच गये। उन्होंने कहा--क्या कहा?

धीरे से मैंने दोहरा दिया। सुनकर पिताजी ने कहा --किसने सिखाया?

झट मेरे मुँह से निकल पड़ा--लालपरी भाभी ने।

पिताजी चुप हो गये। थोड़ा-सा रुककर बोले--तीन अक्षरवाले शब्द खतम हो गये जो चार हरुफवालों में कूद पड़े?

मैंने कहा--एक पाठ बाकी है.... यों ही किताब में देखकर भाभी से पूछा था।

गम्भीर होकर पिताजी ने कहा--तीन हरुफवालों को खतम कर लो और कल फिर ठीक से पूछ आना। फिर याद करना। तुमने समझा नहीं कि उन्होंने क्या कहा।... अच्छा एम वाई=माई, माने क्या है?

मैंने कहा--मेरा

--और माई कैट् माने?

--मेरी बिल्ली।

--ठीक है। आज की पढ़ाई पढ़ो।

कहकर वे मुझे पढ़ाने लगे। दिन में क्या-क्या किया, यानी पढ़ा-लिखा, वह सब देखा। फिर बोले--जाओ। खाने में देर न लगाना। तब तक बड़े को पढ़ा लूँ। पहाड़ा बोलकर सोना।.... हाँ, कल 'योर' माने अच्छी तरह उन्हीं से समझ लेना।

उठते-उठते बाबू का ध्यान बत्ती की ओर दिलाते हुए मैंने कहा--देखा आपने? इस बत्ती को भाभी ने मुझी को दे दिया है। अगर जीवन भर पढ़ूँ तो यह बत्ती मेरे ही पास रहेगी।

मुस्कुराकर बाबू ने कहा--मगर आज जैसा उनसे तुमने याद किया वैसी ही करोगे तो कल तक वह छिन भी जाएँगी। जाओ.....

सुन कर मेरा 'मूड' बिगड़ गया। यानी, हतोत्साह होकर रसोई में पहुँचा। अम्मा से पूछा--अच्छा अम्मा! भाभी ने कहा है न कि अगर मैं रोज-रोज, जनम भर पढ़ूँगा तो वह बत्ती मेरे ही पास रहेगी?

--हाँ, हाँ, तेरी याद करने की शक्ति से सन्तुष्ट होकर तेरी लालपरी भाभी ने उसे तुझे दिया है। जैसे तेरे दादा को छठे में प्रथम होने पर बहुत सी किताबें और ग्लोब इनाम में मिले हैं न वैसे ही तुझे भी यह इनाम में ही मिली है, समझ ले।

--तब बाबू क्यों डरा रहे थे?

इसका उत्तर अम्माँ क्या देती? वह चुप रही। जब तक खाता रहा तब तक घुमा-फिराकर अपनी बुद्धि के अनुसार, बत्ती पर मेरा पूरा कब्जा हुआ कि नहीं, अभी भी भाभी चाहें तो वापस ले सकती हैं कि नहीं, आदि प्रश्न करता ही रहा।

खाना खाने के बाद आकर जब पन्द्रह के बाद सोलह, सत्रह, अठारह और आधा उन्नीस तक का पहाड़ा बाबू को सुना दिया तो उन्होंने कहा--वेरी गुड! कल तक तो केवल पन्द्रह तक याद किया था,...आगे का कैसे याद किया?

शेखी बघारते हुए मैंने कहा--किताब को देखा तक नहीं, भाभी ने कह भर दिया और मैंने झटपट याद कर लिया। भाभी कह रही थी कि मेरे पास रहा कर तो सब पढ़ा दूँगी।

अति साधारण भाव से बाबू ने कहा--अच्छा, जाओ छुट्टी!

फिर पहुँचा अम्मा के पास। वे बाबू को खिलाने की तैयारी कर रही थीं। मैंने कहा--भाभी के पास जाऊँ?

--न न। रात को नहीं जाते। और वह अब खा-पीकर सोने जा रही होंगी।

--एक मिनट में आऊँगा। बस कह आऊँ कि बाबू ने 'वेरी गुड' कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा कठिन होकर अम्मा ने कहा--नहीं, बिस्तर पर जाओ।

अपने मन से ही बड़-बड़ करते हुए बिस्तर की शरणागत होना पड़ा। रात कहाँसे बीती पता नहीं किन्तु दिन निकले से दस बजे तक का समय बड़ी कठिनाई से बीता। कई बार उधर, यानी भाभीवाले जँगले की ओर देखा भी किन्तु बराबर उसे बंद पाया। इधर बाबू का निकलना था कि उधर भाभी के घर मैं जा पहुँचा। आज वहाँका वातावरण कुछ उमस सी लिये था। देखा कि साहब-दादा आज दफ्तर जाने के बदले गम्भीर होकर आँगन के सामनेवाले बरामदे में कुर्सी लगाये बैठे हैं। मैंने कुछ धीमी आवाज से कहा--गुड मार्निंग सर्!

उन्होंने बेमन केवल कहा, 'गुड मार्निंग्!' न हाथ बढ़ाया न कुछ कहा। देखकर मैंने उनके चेहरे की ओर देखा। समवेदना से भली भाँति परीक्षा की। फिर पूछा--ताऊजी ने मारा?

कहते-कहते पास सरक गया। एकदम से उनका चेहरा पलट गया। मुस्कराते हुए मुझे गोद के पास खींचकर कहा--आओ..... हाऊ डु यू डु?
I am all right sir! How do you do? thank you sir. Why are you here? where is my sister-in law? Where is fathers elder brother? आदि, जितने वाक्य, अब तक साहबदादा ने सिखाये थे, उनमें से अधिकांश का व्यवहार कर डाला। फलतः घर की बन्द सी हवा जैसे खुल गयी। साहबदादा ने मुझे गोद में बैठा लिया। मैंने कहा--आज आप छावनी में नहीं गये?

--नहीं भैया। आज मेरी तबियत ठीक नहीं है।

सुनते ही मैंने सिर पर हाथ रखकर, जीभ निकलवाकर नाड़ी दबवाकर, और भी जो पद्धति रोगी की परीक्षा की होती है वह समस्त प्रकार से साहबदादा के प्रति की। दोनों घुल-मिलकर छानने लगे। साहबदादा के हृदय से जैसे बोझ उतर गया हो, किन्तु अब तक न तो भाभी को ही देख पाया और न गौड़जी को। एक बार भाभी की बात उठायी भी तो साहबदादा ने उसे टाल दिया।

इसी प्रकार की बातें चलते-चलते हम लोग साहबदादा के कमरे में गये। उनके पास न मालूम कितने चित्र थे। उन चित्रों को रखने का एक अलग से ही बक्स था। साहबदादा ने उस बक्से को खोल दिया। हम दोनों दोपहर भर उन्हीं चित्रों को देखते रहे। मेरी लिखाई का समय आया। याद आते ही मैंने कहा--अब मैं जाता हूँ। मुझे लिखना है।

साहबदादा से विदा लेकर जब चला तब उन्होंने कहा--जाओ। लिख लो। फिर अपनी अम्मा से पूछ आना तो हम दोनों नाव पर घूमने चलेंगे।

उनका इतना कहना था कि कूदते-फाँदते लिखाई के स्थान पर जाने से पूर्व ही अम्मा के पास पहुँचा। अम्मा राजी हो गयी। देखकर झटपट कापी खोलकर बैठा। अन्य दिनों से अधिक क्षिप्रता के साथ लिखने लगा। निगाह उठाने की फ़ुर्सत न रही। लिखता ही गया। हिन्दी समाप्त करके जब अँगरेजी की तैयारी करने लगा तो अचानक मेरी निगाह सामनेवाली खिड़की पर पड़ी। देखा, भाभी एकटक मेरी ओर देख रही है। मुस्कराते हुए मैंने पूछा--तुम भी चलोगी न?

भाभी ने अनजान की तरह पूछा--कहाँ रे?

--हें:। नहीं जानती है? अम्मा से पूछ लिया है। अम्मा ने कह दिया। अभी तुमको सब बातें कहने की फ़ुर्सत नहीं है। वहीं खड़ी रहो। लिख लूँ, फिर बताऊँगा।

कहते ही कहते हाथ चलने लगा। भाभी की ओर से ध्यान हटकर अँगरेजी शब्दों की अखरोटी में लग गया। और दिन एक घंटे से अधिक अँगरेजी लिखने में समय लगता था, किन्तु आज उससे जल्दी लिख लिया। लिखाई समाप्त करके पुकारा--अम्मा! जल्दी इधर आओ। सब कुछ लिख डाला। देखो आकर। फिर न कहना कि लिखे बिना चला गया।

बाहर ही अम्मा बैठी कुछ सी रही थीं। मेरा हुकुमनामा कानों में पहुँचते ही वह आ गयीं। मैंने कापी उलटकर दिखाना आरम्भ किया, किन्तु उनकी निगाह उधर के जँगले में खड़ी भाभी पर गयी। मेरी कापी देखने के बदले अम्मा ने भाभी से पूछा--क्या कुछ डाक्टर साहब के लड़के की तबियत खराब है क्या? आज दफ्तर नहीं गये?

उत्तर मैंने दिया--खराब है तो तुम्हें क्या? कहता हूँ, देख लो तो बन्द करूँ सो नहीं, चली बातें करने...

अम्मा से इतना कहकर ही भाभी को लक्ष्य करके कहा--तब से खड़ी हैं बातें करने के लिए जाओ वहाँ से। यह नहीं कि मेरी लिखाई देख लेतीं तब आतीं.....

आगे कुछ कहने से पहले ही 'तड़्' से एक चपत मेरे गाल पर पड़ी। मैं विरोध प्रकट करने के लिए घूरकर अम्मा की ओर देखता, या चपत के साथ-साथ अम्मा कुछ कारण बतातीं कि उधर से, उससे पहले ही, भाभी बोल उठीं--यह तो बड़ा अन्याय है। बेचारे को जिस लिये बुलाया उसे आप बिना किये, और काम में लग गयीं। और वह इतना कहकर भी विरोध न करेगा?

अम्मा भी भूल गयीं कि चपत के साथ-साथ कारण में क्या बताना चाहिए और मेरा भी घूरना रह गया। अम्मा ने कहा--देख लिया। ठीक है। जा, अब जहाँ जाना है।

मुझे छुट्टी देकर अम्मा लगीं भाभी से बातें करने। मैं गया घूमनेवाले कपड़ों को लेने। कपड़ों को लेकर जब आया तो साहस न हुआ कि अम्मा से कुछ कहूँ। अनुनय करने की सी शकल बनाये अम्मा के पीछे खड़ा रहा। अम्मा को मेरी चिन्ता हो, तब न! वह तो भाभी से बातें करने में तल्लीन थीं। कुछ देर तक पीछे खड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर सामने आने के लिए जँगले की छड़ तथा अम्मा के बीच से सर निकाला। अम्मा ने कहा--आ गया फिर!

मुँह फुलाकर कुछ कहा नहीं। कपड़ों को दिखाया। अम्मा ने भाभी से कहा--आज इसके साहबदादा इसे नाव की सैर के लिए ले जायेंगे।...ला देखूँ.....

मैंने कपड़े दिये। अम्मा पहनाने लगीं। भाभी ने कहा--मगर आजकल हाफपैंट और कमीज का रिवाज है। आप इन्हें वही क्यों नहीं बनवा देतीं?

--उनसे मैंने भी कहा था....मगर वे कहते हैं कि अपना देशी बाना छोड़कर मुझे उन साहबी बानों को नहीं लेना है। नहीं तो उसमें सुभीता भी कितना है..

आगे कुछ बिना कहे कपड़ों को पहना दिया। मैं तैयार होकर सीधे साहबदादा के पास पहुँचा। साहबदादा तुरन्त तैयार हो गये। हम दोनों घर से बाहर निकलने ही वाले थे कि उधर से भाभी आईं एवं चील की तरह मुझे झपटकर उठा ले गयीं। अपने कमरे में ले जाकर मुँह को पोंछ दिया, चेहरे पर पाउडर लगा दिया। मुँह चूमा। फिर कहा--जल्दी आना।

उस समय घर से निकलने की चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही थी, लौटने की चिंता किसे थी? जैसे-तैसे भाभी से पिंड छुड़ाकर दरवाजे के पास, जहाँ साहबदादा खड़े थे, वहाँ पहुँचा। सामने ही बाबू को देखा। अभी घर से बाहर पैर भी न रक्खा था कि 'बाबू?'

जैसे सामने ही भूत को देखा हो! मैं घबड़ा गया। साहबदादा ने नमस्कार किया। फिर बाबू से कहा--आपका ही रास्ता देख रहा था। तबियत कुछ लग नहीं रही थी। आज दफ्तर भी नहीं गया। सोचा, जरा नाव की सैर कर आऊँ। इन्हें भी लिये जाता हूँ।

--हाँ, हाँ, जरूर ले जाइए। मुझे भी बोटिंग का बड़ा शौक था। मगर अब तो वे दिन सपने हो गये। कई बार जाने की इच्छा होती है मगर कहाँ हो पाता है।

कहकर अपनी मास्टरी शुरू कर दी। यानी पहले कैसे पतवार को पकड़ना चाहिए, नाव को दाहिने या बाँयें घुमाने में क्या करना चाहिए इत्यादि। साहबदादा भी खूब मन लगाकर सुनने लगे।

मैं खड़ा-खड़ा व्याकुल होने लगा। किन्तु अपनी व्याकुलता को अपने ही तक सीमित रखना पड़ा, कारण साहब दादा के साथ बातें करके समय गँवानेवाले स्वयं पिताजी थे। बच्चों के पिताजी का अर्थ माताजी नहीं, कि जिन्हें बच्चे धौंस देकर या आँखों के आँसू दिखाकर काम बना लेते। फिर भी, चूँकि उसी समय पिताजी पूरे छः घण्टे लड़कों का अध्यापन करके, कुछ थके, कुछ भरे, आये थे, इस कारण आखिर साहबदादा को छुट्टी मिल ही गयी। बस बाबू से छुट्टी पाकर, आगे बढ़ा ही था कि 'दादा' दिखाई पड़े। साहबदादा से दादा की उतनी ही पटती थी जितनी कि मुझसे साहबदादा की बीवी की। दादा के अँगरेजी उच्चारण तथा उसी अवस्था में अँगरेजी का उतना ज्ञान ही उसका कारण था। दोनों अँगरेजी में ही गिटपिट करने लगे। मैं और कुछ समझ पाया या नहीं, इतना तो समझ ही लिया कि कोई समय-संहारक प्रोग्राम बन रहा है। बीच में ही बोल उठा--अभी-अभी स्कूल से लौट रहे हो तो, जल्दी-जल्दी घर क्यों नहीं जाते?

साहबदादा बोले--ये भी मेरे साथ चलेंगे। अभी जरा घर से पूछ आयें।

मैंने कहा--तब तो जाना हो चुका। ये स्कूल से जैसे पाखाना फिरते-फिरते ही आते हैं। घर पहुँचकर शौच जायँगे, कपड़े बदलेंगे, कुछ खायेंगे, तब आयेंगे। दो घण्टे से कम न लगेंगे।

दादा ने ही कहा--दो घंटे क्यों लगेंगे? आध घण्टे में सब हो जाता है।

साहबदादा, दिन की ओर देखते हुए बोले--आइडियल! तभी तो नाव पर सैर करने का उत्तम समय होता है।.....जाओ, जल्दी आओ....हम लोग आहिस्ते-आहिस्ते चल रहे हैं। अहिल्याबाई के घाट पर मिल जाना।

जब स्वयम् ले जानेवाले ने ही इस नुस्खे को बता दिया तो मैं क्या कहता। अधिक से अधिक, इस दशा से अपने आपको अलग कर लेता। दादा का घर की ओर कदम बढ़ाना था कि मैंने साहबदादा से कहा--तो मैं भी घर चला। आप रास्ते भर बातें और वादे करते चलेंगे। बेकार के लिए देर करते हैं। मुझे आपके संग नहीं चलना है।

सचमुच घर की ओर चल दिया। देखकर साहबदादा अवाक् रह गये। किन्तु तब तक उनसे मेरे बताये हुए सब अपराध हो ही चुके थे। क्या करते? मनाने के हेतु बोले--चल तो रहा हूँ। अब सीधे चलकर नाव पर ही रुकूँगा। आओ।

मैंने कहा--ठीक? अब तो कहीं न रुकेंगे न?

--कहा तो आओ। अब सीधे नाव पर ही चलूँगा। मैं क्या जानता था कि ये सब बातें तुम्हें जच नहीं रही हैं? आखिर उन लोगों से भी बातें करना जरूरी था न?

मुँह बिचकाते हुए मैंने कहा--ऐसी आदत बुरी होती है। कहीं बाबू जान लें तो बिना डाटे छोड़ें नहीं। वे हमेशा सिखाते हैं कि जब जिस उद्देश्य को लेकर चलो, उसमें और किसी उद्देश्य को, चाहे वह कितना ही महत् क्यों न हो, न जोड़ो, और न उसमें से किसी बात को छोड़ो। एक साथ एक ही उद्देश्य की पूर्ति में सारी शक्ति को लगा दो, नहीं तो आदत बिगड़ जाती है। उद्देश्य से हटकर बड़े-बड़े लोग दो कौड़ी के बन गये, और साधारण व्यक्ति को भी निश्चित उद्देश्य ने बड़ा बना दिया।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

द्राक्षासव की बोतल

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त संसद के सदस्य हैं। दिल्ली में उन्होंने स्थायी रूप से एक घर किराये पर ले रखा है जिसमें वे संसद के दिनों में रहते हैं। संसद बंद होने पर वे अपने घर चले जाते हैं और घर खाली रहता है। उनकी अनुपस्थिति में उनके मित्र उसमें आकर ठहर जाते हैं। कुछ दिनों पहिले उनकी अनुपस्थिति में उनके परम सुहृद मित्र राय कृष्णदासजी किसी काम से दिल्ली गये और गुप्तजी के खाली घर में ठहर गये। वे द्राक्षासव की एक बोतल लाये और घर लौटने के पहिले वह खाली हो गयी। वे उस खाली बोतल को मेज पर छोड़कर वाराणसी लौट गये।

उनके जाने के दो-चार ही दिन बाद गुप्तजी दिल्ली आये। यात्रा से क्लान्त घर में घुसे और सामने द्राक्षासव की मनमोहनी बोतल देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वह कौन-सा द्राक्षासव था, यह तो राय साहब और गुप्तजी ही जानें, किंतु वह कोई अत्यंत उच्च कोटि का रहा होगा क्योंकि दोनों ही की रुचि बड़ी आभिजात्य और अत्यंत परिष्कृत है। थकावट मिटाने के लिए जैसे ही गुप्तजी ने बोतल उठायी, उनका हाथ ढीला पड़ गया क्योंकि वह खाली थी। द्राक्षासव की तृषा अतृप्त रह गयी, उस समय उन्हें जो निराशा हुई उसका मांगलीकरण उन्होंने तुरंत इस कविता में कर डाला जिसे हमने अपने पाठकों के लाभ और मनोरंजन के लिए बड़े प्रयत्न से प्राप्त कर ली है। वह कविता इस प्रकार है:

कृष्णदास! यह करतूत किस क्रूर की?
आये थके हारे हम यात्रा कर दूर की।
द्राक्षासव तो न मिला, बोतल ही रीती थी!
जानते हमी हैं तब हम पर जो बीती थी!
ऐसी घड़ी भी हा! पड़ी उस दिन देखनी—
धार बिना जैसे असि, मसि बिना लेखनी!

निराशा की कैसी हृदयद्रावी अभिव्यक्ति है!

कवि की गर्वोक्ति

रीवा के प्रसिद्ध कवि अम्बिकेशजी का निधन दो-तीन महीने पहिले हो गया। वे राज-दरबारों में जाया करते थे। पुरानी परम्परा यह थी कि आश्रयदाताओं के नाम पर काव्य लिखे जाते थे, या उनके चरित्र का वर्णन उनके आश्रय में रहनेवाले कवि किया करते थे। इस युग में दरबारी कवियों के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल गया है। एक बार किसीने अम्बिकेशजी से भी ऐसी बात की, और उनके समान कवियों को व्यर्थ बतलाया। साथ में यह भी कहा कि उनकी कविताओं को कौन पूछता है। इस पर अम्बिकेशजी ने यह गर्वोक्ति कही:

होतौ छत्रसाल कौ न सुजस विसाल कहूँ,
जानतो को हाल, कौन भूपति अमान है?
कीर्ति-शिवराज के पताके फहराते नहीं,
विक्रम और भोज की न होती जो कि शान है।
जानी नहीं जाती पृथीराज की कहानी आज,
कीरति बखानी नहीं जाती भूप मान है।
कवि नींह जानै तिन्हे, जानत न आज कोई,
जिन्है कवि जानै, तिन्है जानत जहान है।

कितनी वास्तविकतापूर्ण गर्वोक्ति है, और गर्वोक्ति होते हुए भी यह व्यक्तिगत धरातल से कितनी ऊँची उठ गयी है!

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत हो गया

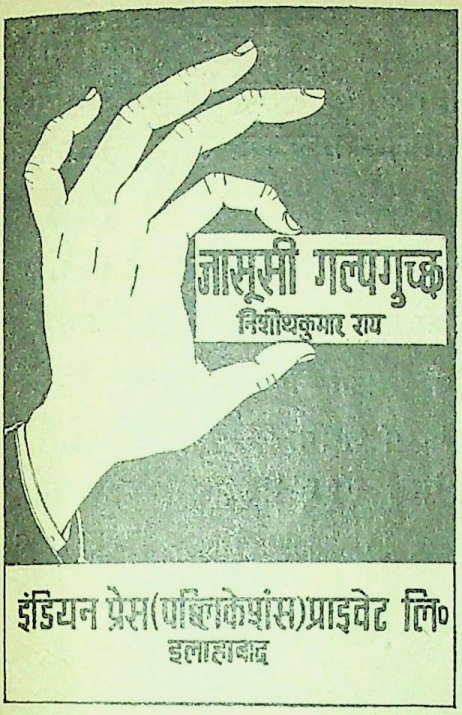

निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिए।

परमाणु ऊर्जा

और उसके

शान्तिपूर्ण उपयोग

लेखक—जेराल्ड वेन्ट अनुवादक—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक पृष्ठ २१२ मूल्य ५), खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है, जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २॥) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १॥) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओत प्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचि-पूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५ :

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

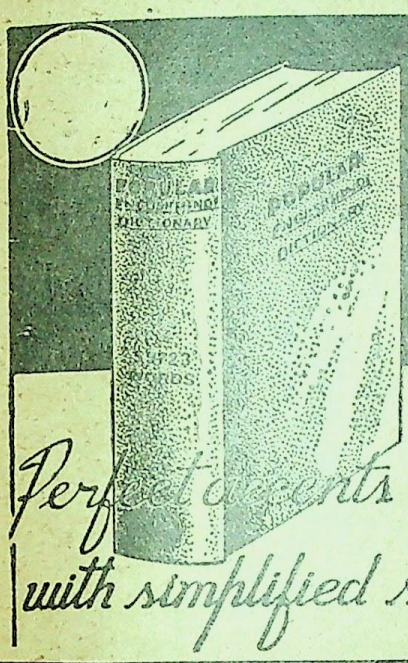

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए दो अनुपम सहायक ग्रन्थ

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० **धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा**—'हिन्दी राष्ट्र भाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० **रामकुमार वर्मा, प्रयाग अध्यक्ष विश्वविद्यालय**—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा रामायण साहित्य

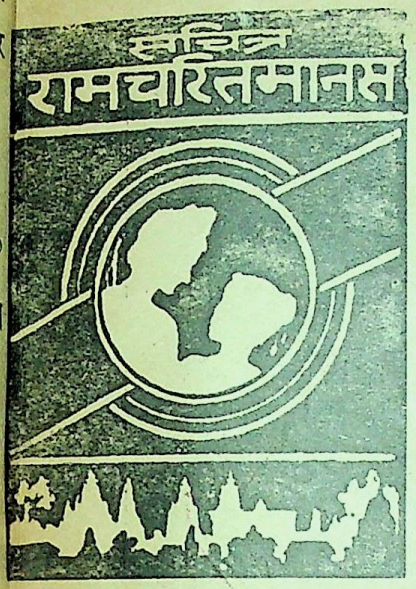

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० रुपये प्रति भाग है।

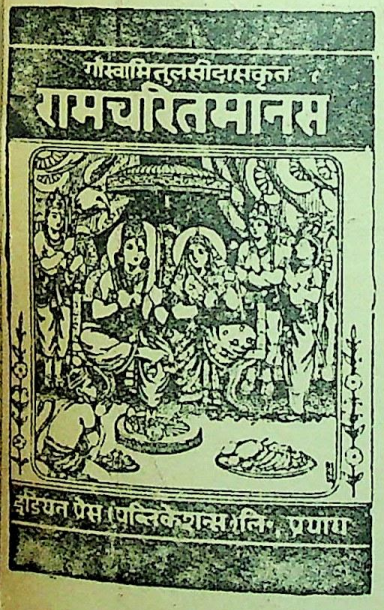

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

अयोध्याकाण्ड सटीक

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

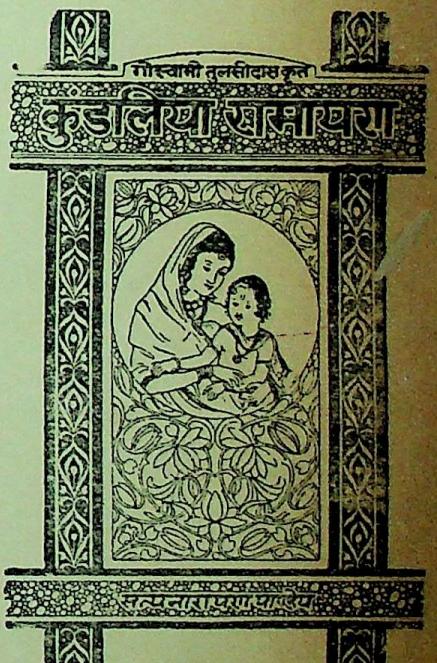

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४) चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50 SARASWATI—Reg. No. A.
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक
आर० डी० विद्यार्थी

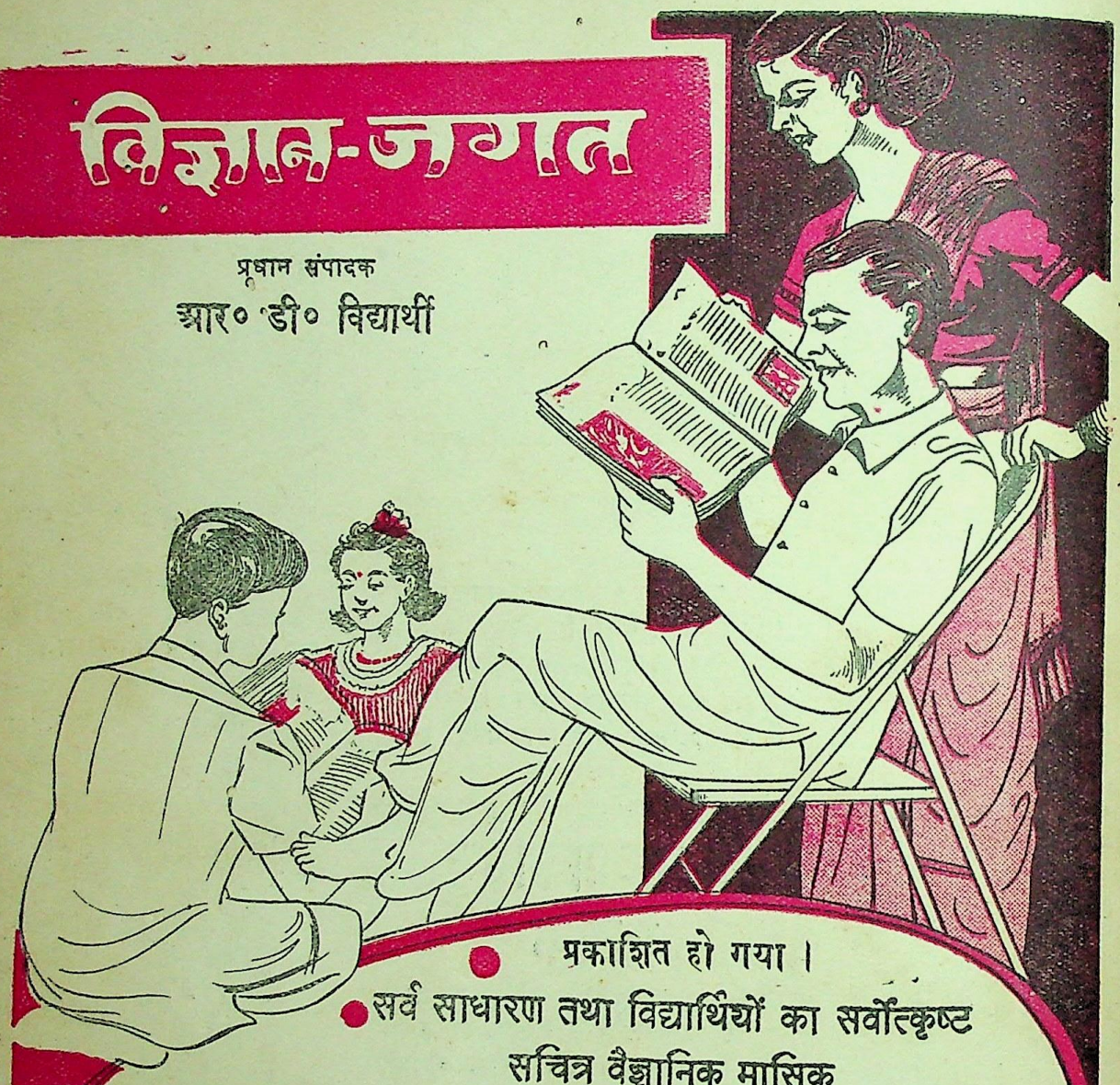

● प्रकाशित हो गया ।
● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं ।
● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

फरवरी १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत हो गया **निकल गया**

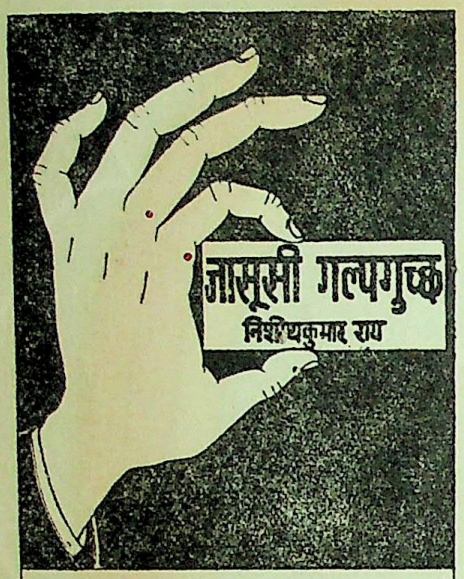

इंडियन प्रेस(पब्लिकेशंस)प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिए।

परमाणु ऊर्जा

और उसके

लेखक—जेराल्ड वेन्ट **शान्तिपूर्ण उपयोग** अनुवादक—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

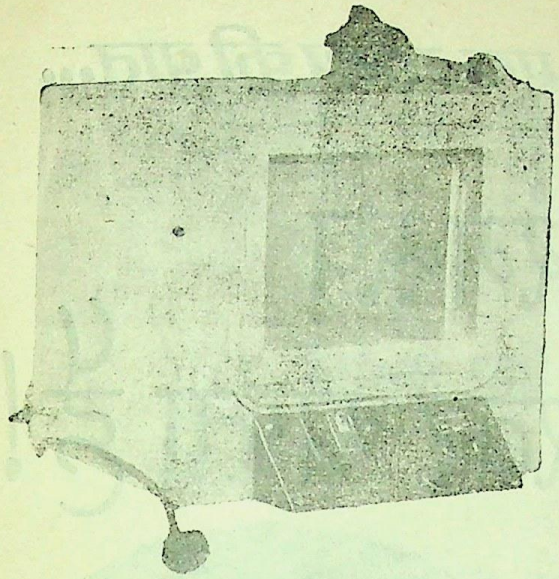

पाराफिन इमबोडिंग टेबुल

साइण्टिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

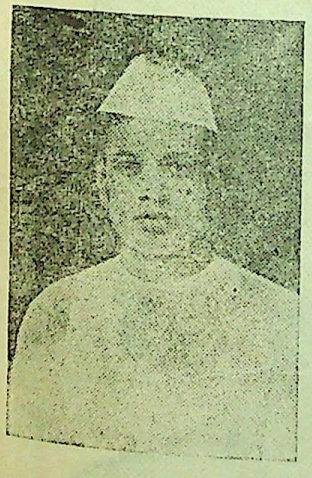

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए:—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:—

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा पारेख से सुनिये एक रहस्य की बात...

'लक्स से मेरा रंगरूप निखर आता है!'

आशा पारेख का रहस्य लाखों के मोल का है! ज़रा देखिये तो उनका निखरा हुआ रंगरूप! उन्हें शुद्ध, मुलायम लक्स के मृदुल प्रभाव पर पूरा भरोसा है। आप भी लक्स को अपना रूप-रहस्य बनाइये।
लक्स इस्तेमाल कीजिये...इसके मुलायम झाग से आपका रंगरूप सुन्दरता की नई सीमा को जा छूता है!
लक्स इस्तेमाल कीजिये...और इसकी अनमोल सुगंध के सुन्दर संसार में खो जाइये!
लक्स इस्तेमाल कीजिये...इसके रंगों के इंद्रधनुष में से अपनी पसंद का रंग लीजिये या अपना मनभावन सफ़ेद!
लक्स से अपना रंग रूप निखारिये।

चित्र तारिकाओं का शुद्ध, मुलायम,
सौंदर्य साबुन

'रंग ऐसे छबीले...साबुन ऐसा मुलायम' आशा पारेख कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTL 108-X52 HI

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय बचत योजना

की

विभिन्न मदों में रुपया लगाकर

आप

राष्ट्र निर्माण का पुण्य तो उठाते ही हैं

साथ ही

स्वयं अपना भविष्य उज्ज्वल बनाने की दिशा में

आगे बढ़ते हैं

बचत योजना के अन्तर्गत जमा किये गये धन से

करोड़ों लोगों को शिक्षा, चिकित्सा और रोजगार

की नयी सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं

बचत सार्टिफिक्टों को खरीद कर

या

पोस्ट आफिस में सेविन्ग्ज़ बैंक एकाउन्ट खोलकर

देश को आगे बढ़ाने में सहायता दीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना से क्या होगा

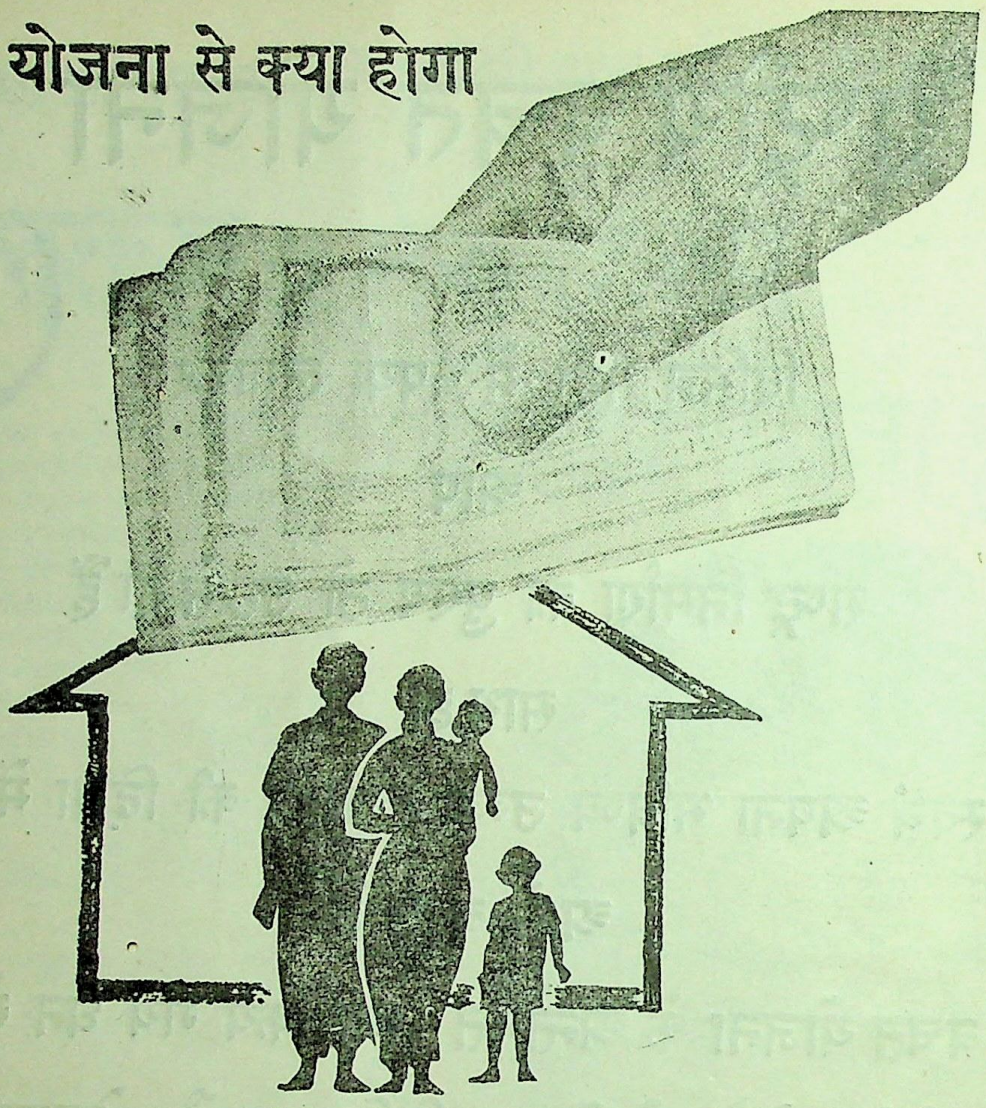

प्रति परिवार
२७५ रु० अधिक

तीसरी योजना पूरी होने तक प्रति परिवार की औसत सालाना आमदनी १९६०-६१ के १,६५० रु० से बढ़कर १,९२५ रु० हो जायेगी।

योजना को सफल बनाइए ताकि आपकी आमदनी बढ़ सके।

तीसरी पंचवर्षीय योजना

सबका सुख सबकी सुविधा

DA·61/614

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप हैं एक बिगड़े हुए नवाब...'

'मेरे पतिदेव एक बिगड़े हुए नवाब से कम नहीं,' डी/८, यूनियन हाउस, माहिम, बम्बई १६ की श्रीमती आर. आर. प्रभु कहती हैं, 'और कपड़ों की धुलाई पर इन का माथा मैला होते देर नहीं लगती। लेकिन जब से इन के कपड़े मैं ने सनलाइट से धोने शुरू किये हैं, यह भी खुश हैं और मैं भी। सनलाइट से कपड़े शानदार सफ़ेद और उजले धुलते हैं और इस का ढेरों झाग मैल का कण कण बहा ले जाता है।

गृहिणियाँ जानती हैं कि शुद्ध, मुलायम झागवाले सनलाइट की धुलाई में उन के कपड़ों की भलाई है। आप भी उन से सहमत हो जायेंगी।

सनलाइट

आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए -
हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

K 30-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकोमल चमकदार केशराशि के लिये

कैन्थाराइडिन

केश तैल

केश विन्यास के अपरिहार्य अंग के हैसियत से, सौन्दर्यप्रिय महिलाएँ कैन्थराइडिन केश तैल पसन्द करती हैं।

बंगाल केमिकल

कलकत्ता . बम्बई . कानपुर

नया प्रकाशन : **विवेकानन्द-ग्रन्थावली**

विवेकानन्दजी के सान्निध्य में सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य ६० नये पैसे। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विभिन्न विषयों पर स्वामी विवेकानन्दजी के उद्‌बोधक तथा स्फूर्तिदायक सम्भाषणों का संकलन।

देववाणी : सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य २·७५ नये पैसे। अमरीकी शिष्यों को आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्दजी के अमृततुल्य उपदेश।

भारत में विवेकानन्द : स्वामीजी द्वारा भारत में दिये गये समग्र व्याख्यान ५); विवेकानन्दजी के संग में : (वार्तालाप), शरच्चन्द्र चक्रवर्ती कृत, महान् शिक्षाप्रद संग्रह ५·२५; चिन्तनीय बातें १·००; विविध प्रसंग १·१२; जाति, संस्कृति और समाजवाद १·२५; व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १·१५ विवेकानन्दजी की कथायें १·६० आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १·२५; पत्रावली (प्रथम भाग) ५·२५ ,, (द्वितीय भाग) ४·२५; कर्मयोग १·४०; भक्तियोग १·५०; राजयोग ३·००; ज्ञानयोग ३·००; प्रेमयोग १·३७; सरल राजयोग ०·५०; हिन्दू धर्म १·५०; धर्मरहस्य १·२५; धर्मविज्ञान १·६२; परिव्राजक १·२५; भारतीय नारी ०·७५; शिक्षा ०·६२; कवितावली ०·६२; मेरे गुरुदेव ०·६२; मन की शक्तियाँ ·४०; हमारा भारत ०·५०; विवेकानन्द-चरित : सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत, तृतीय संस्करण, ६·००

पॉकेट साईज पुस्तकें :

विवेकानन्दजी के उद्‌गार ०·६५; शक्तिदायी विचार ०·६२; मेरी समर नीति ०·६२;

श्रीरामकृष्ण-साहित्य

श्रीरामकृष्णलीलामृत : विस्तृत जीवन-चरित्र, गांधीजी द्वारा भूमिका सहित, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मू० ५);

श्रीरामकृष्णवचनामृत : 'म' कृत, 'निराला' द्वारा अनुवादित, श्रीरामकृष्ण देव के अमृतमय उपदेशों का अपूर्व संग्रह, तीन भागों में, पूर्ण, प्र० भा० ६), द्वि० भा० ६), तृ० भा० ७);

श्रीरामकृष्ण उपदेश : स्वामी ब्रह्मानन्द कृत, पॉकेट साइज, आकर्षक जैकेट सहित, ७५ न० पै०

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीला-सहधर्मिणी का पावन जीवन-चरित्र, नयनाभिराम जैकेट सहित, ४·५०;

धर्म प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी शिष्य द्वारा धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर वार्तालाप, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २·७५;

परमार्थ प्रसंग : स्वामी विरजानन्दकृत, आर्ट पेपर पर छपी हुई, मूल्य ३·२५

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :— श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

ऐसे बोगस रजिस्टर्ड लिखनेवालों से सावधान

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र हैं। भेजे आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

उन्माद के लक्षण

- वेश एवं स्वभाव में अनोखापन
- रिक्त दृष्टि
- दुःख और उदासी
- विस्मरणता
- अस्पष्ट निर्णय
- आत्म-नियन्त्रण की कमी
- मनोग्रस्तता एवं मतिभ्रम

इन सब को आरंभ में ही नष्ट करने के लिए कविराज पं० दुर्गादत्त शर्म्मा वैद्य वाचस्पति से स्वयं मिलें या पत्र द्वारा परामर्श प्राप्त करें।

नवरत्न-कल्प फार्मेसी,
जालन्धर सिटी, इंडिया

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, बाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दाँत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खाँसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम बाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, मर्मोरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७-५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं खाना हजम करती है पेट साफ रखती है। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का फी १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्द के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

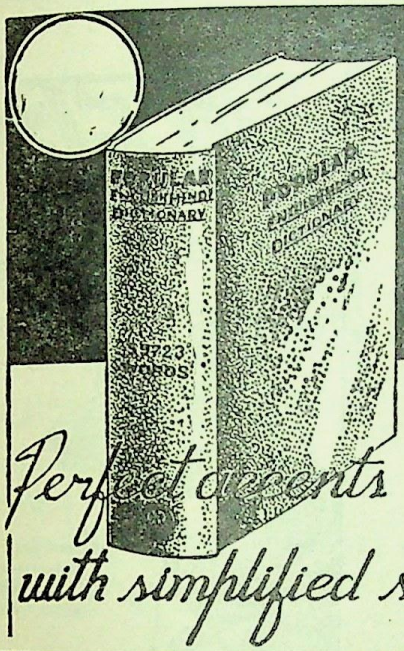

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आधुनिक छपाई

लेखक श्री कृष्णप्रसाद दर

भूतपूर्व मैनेजर, इलाहाबाद लाजर्नल प्रेस और भूतपूर्व टेक्निकल एडवाइजर दि हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, और वर्तमान वर्क्स मैनेजर इंडियन प्रेस, प्राइवेट लि०, इलाहाबाद।

आजकल सभी लोग अच्छी छपाई चाहते हैं, परन्तु आकर्षक छपाई कैसे की जाय, यह सबको ज्ञात नहीं। 'आधुनिक छपाई' इसी दिशा में एक सफल कदम है। अब तक अपने विषय की यही एक पुस्तक हिन्दी में है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। आधुनिक छपाई की सहायता से ऐसा व्यक्ति भी सरलता से अपना काम चला सकता है, जिसने कभी किसी छापेखाने में काम न किया हो। फिर आधुनिक छपाई के विभिन्न आकर्षक रूपों, शैलियों और छापाखाने सम्बन्धी सभी आवश्यक अंगों पर इस पुस्तक में इतनी सरल और बोलचाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है कि प्रत्येक मुद्रक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

आद्योपान्त सचित्र, सजिल्द और बढ़िया कागज पर आकर्षक ढंग से मुद्रित ३८७ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये वर्ष के उपलक्ष्य में अनुपम अनुवाद साहित्य

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

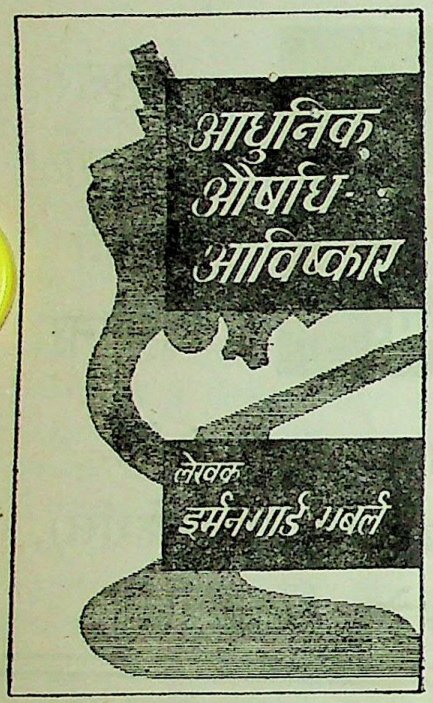

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

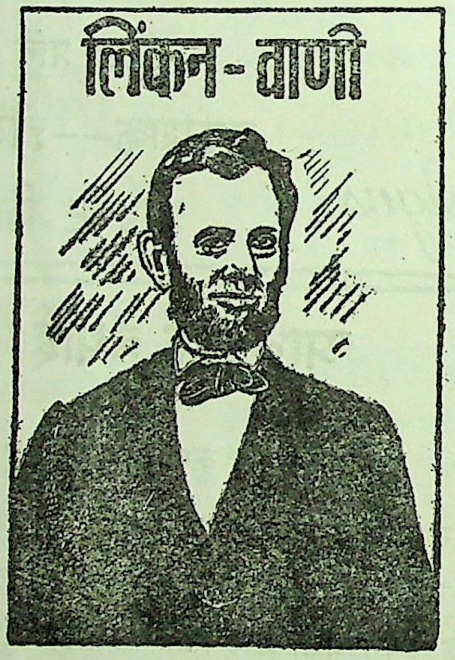

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन
अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करने वाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

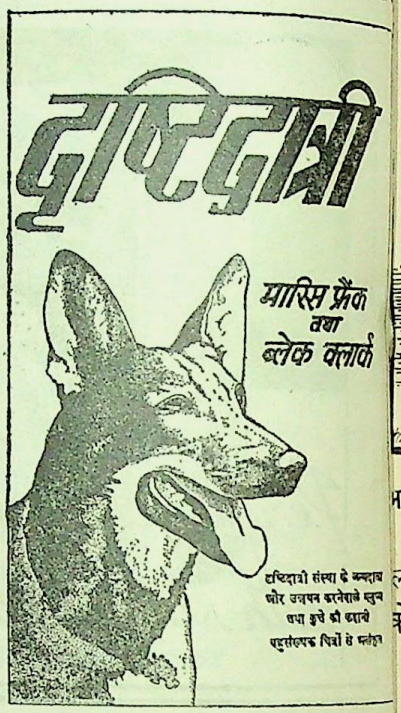

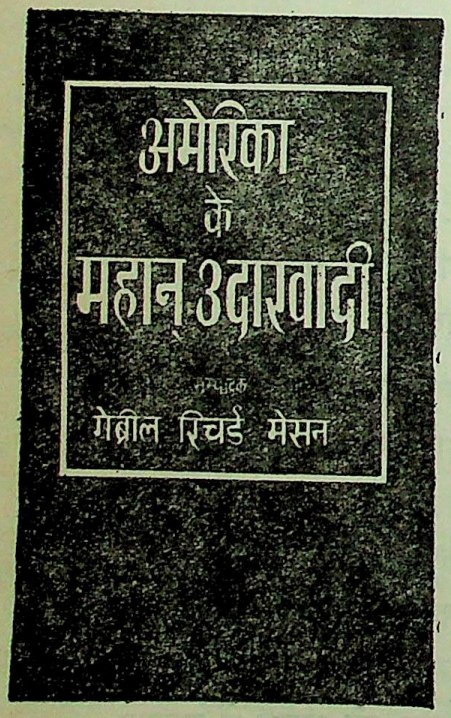

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

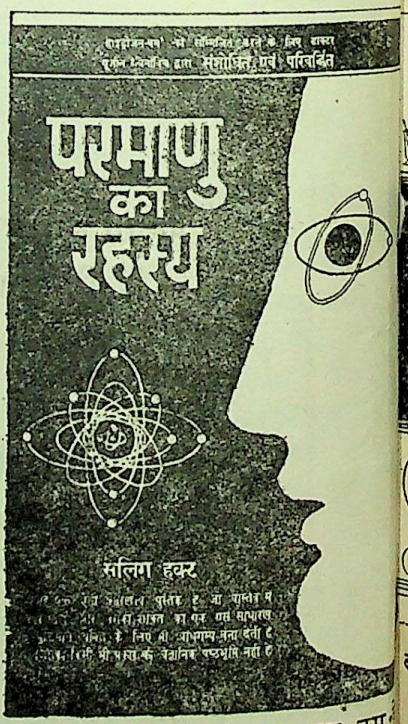

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यूक्लीय की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

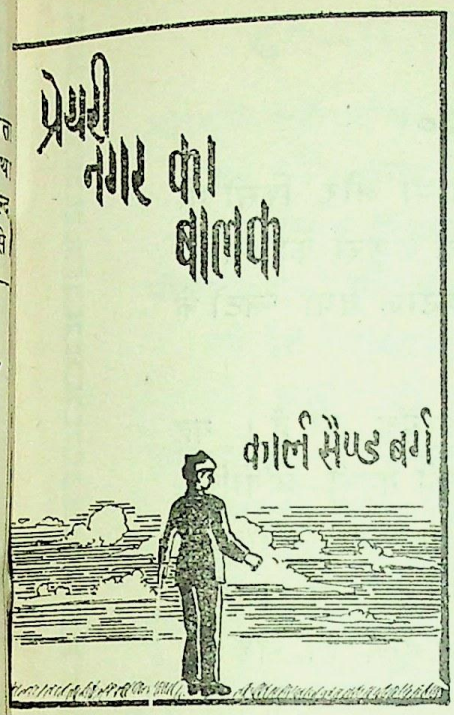

अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे
लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन।

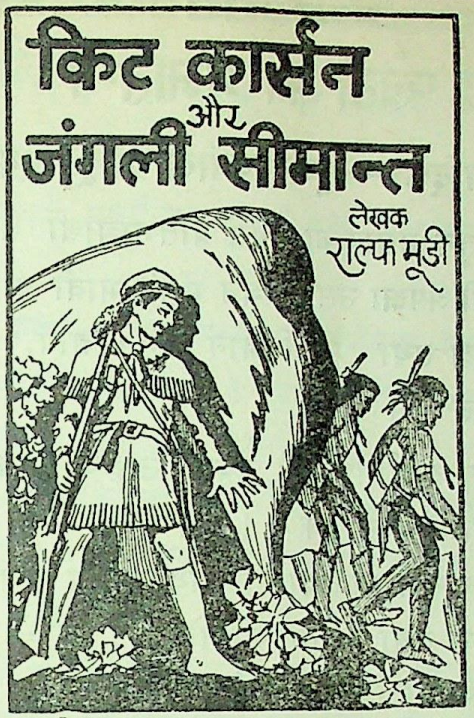

अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन।

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लखिका के बाल्यजीवन की सुन्दर कहानी में उस समय के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन।

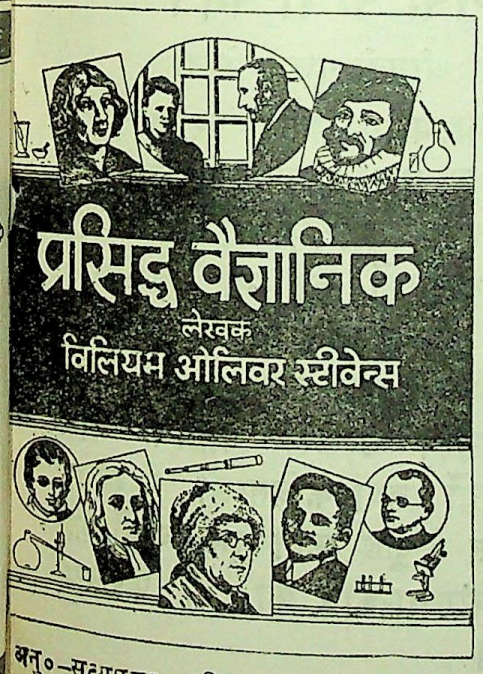

अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित।

अनु०—एम० पी० लखेड़ा, मए० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी।

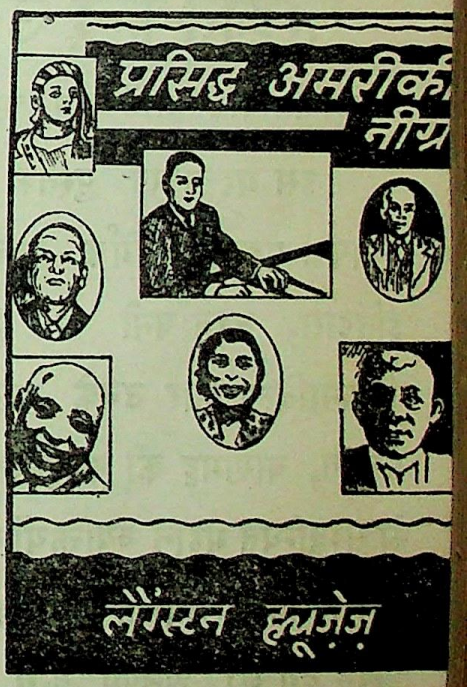

अनु०—रामप्यारी अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक पृष्ठ २१२ मूल्य ५), खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है, जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी लिपि में उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

× × ×

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

भारती कवि-विमर्श

लेखक—श्री रामसेवक पाण्डेय

संस्कृत कवियों के संबंध में ग्यारह अध्ययनपूर्ण लेखों का यह संग्रह पाठकों के ज्ञानवर्धन का अनुपम माध्यम है। इन निबन्धों से संस्कृत काव्य के अध्ययन की रुचि भी बढ़ेगी। पृ० २२०, मूल्य ३ रुपये।

हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि

डा० रामरतन भटनागर एम० ए०, डी० फिल०

इस ग्रन्थ में हिन्दी-कविता में प्रकाशित होनेवाली साधना-धाराओं और विचार-सरणियों की पृष्ठभूमि की खोज की गई है। हिन्दी-कविता की पृष्ठभूमि का अध्ययन करनेवालों के लिए यह ग्रन्थ बड़ा उपादेय है। पृष्ठ ४५१, मूल्य ४ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रचेता कवि सोहनलाल द्विवेदी

जिसकी कविता जीवन, उत्साह, वेग और बलपूर्ण हैं और जो लोक शिराओं में नव-जीवन का संचार करती हैं--जिसकी वाणी बिजली सी हृदय में उतरती है--जिसने राष्ट्रीय चेतना को काव्य का सच्चा रूप दिया है--और जिसमें बालकों की सी मृदुता और बच्चों की सी सरलता है निम्न कविता पुस्तकें लिख चुके हैं :--

राष्ट्रीय चेतना और बाल मनोरंजन की कविता पुस्तकें

जय गाँधी--लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सजधज से प्रकाशित संग्रह १५·००

गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ--गाँधीजी के संबंध में विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट कवितायें एकत्र संग्रहीत ७·५०

कुणाल--राजकुमार कुणाल की कारुणिक कथा पर शान्त रस सफल खंड काव्य ३·००

भैरवी--राष्ट्रीय जागरण के गीत जिनमें जनता रसमग्न हो उठती है। चार संस्करण हो चुके हैं २·७५

पूजागीत--जीवन में स्फूर्ति का संचार करनेवाली राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह २·५०

वासवदत्ता--प्रेम, कर्तव्य तथा आदर्शों के द्वन्द्वयुक्त बौद्ध आख्यान पर आधारित खंड काव्य २·००

विषपान--समुद्रमंथन की पौराणिक कथा के आधार पर प्रवाह और ओजपूर्ण खंड काव्य १·००

शिशु भारती--बालकों के लिए सरस और शिक्षाप्रद गीतों की रोचक पुस्तक १·००

झरना--इस पुस्तक की कवितायें पढ़ते ही बच्चे उछल पड़ते हैं १·००

बाँसुरी--नन्हें पाठकों के लिए लिखी मनोहर विचित्र कवितायें २·७५

युगाधार--चुनी हुई कवितायें स्वतन्त्रता की प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाली ३·५०

चित्रा--ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रण युक्त कविताओं और भावपूर्ण गीतों का संग्रह २·३१

वासन्ती--स्फुट कविताओं का सुन्दर और सरस संग्रह २·३१

बच्चों के बापू--गाँधीजी और सब नेताओं का परिचय करानेवाली बहुरंगी छपी कविता पुस्तक २·००

बाल भारती--बच्चों में नवीन उत्साह उत्पन्न करनेवाली सरल मनोरंजक कवितायें १·२५

चेतना--गांधीजी को आराध्यदेव मानकर रची हुई उत्प्रेरक कविताओं का संग्रह २·००

दूध बताशा--दो रंगों में छपे बालकों के लिए मधुर कविता गीत १·२५

हँसो हँसाओ--बच्चों को गुदगुदी और हँसी पैदा करनेवाली कवितायें १·५०

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१ रु०

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय—१·३७ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

"सरस्वती" हीरक जयंती के अवसर पर प्राप्त

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण रायकृष्णदास

मैं सदैव सगर्व कहा करता हूँ और यह यथार्थ है कि—मैंने जीवन में जो यत्किंचित् ज्ञान अर्जन किया है, उसमें ५० प्रतिशत अकेले सरस्वती से उपलब्ध हुआ है, शेष ५० प्रतिशत अनेक विभिन्न स्रोतों से।

पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय

हिन्दी भाषा के निर्माण और परिष्कार तथा हिन्दी-साहित्य के विकास और अभ्युदय में सरस्वती का योगदान ऐतिहासिक महत्त्व का है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों को इस बात पर एकमत देखकर 'सरस्वती' के प्रति स्वभावतः श्रद्धा होती है।—हिन्दी की यह गौरव-गरिमामयी वैजयन्ती सदा फहराती रहे।

माननीय श्री बूरूगुल रामकृष्ण राव, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

स्वतंत्रता संग्राम के प्रारम्भिक युग से ही सरस्वती उत्तर भारत की प्रबुद्ध एवं श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका के रूप में हमारी सामूहिक चेतना का सुनिर्देशन करती रही है।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय, वित्त व पंचायत मंत्री, राजस्थान

समूचे हिन्दी परिवार का अहोभाग्य है कि उसे हिन्दी की, बल्कि सब भारतीय भाषाओं में प्राचीनतम एवं गम्भीर साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रसाद एवं पथ-प्रदर्शन गत ६० साल से मिलता आ रहा है। इतिहास में वह हमारी थाती तथा गौरव सम्पत्ति समझी जायगी।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१--सम्पादकीय ७३
२--श्री राज्यपाल का भाषण ७९
३--भगवान् की वाणी में समाज का हस्तक्षेप--डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्० .. ८१
४--क्या 'राष्ट्रिय' का अर्थ वास्तव में 'राज्य का साला' है?--वेंकटेशनारायण तिवारी ८४
५--अपनी उमर सम्हालो (कविता)--श्री नरेन्द्र चतुर्वेदी 'अंचल' .. ८६
६--बिहारी का नूतन परिवेश--श्री आद्याप्रसाद त्रिपाठी ८७
७--"आज" की महिमा--श्री सन्तराम .. ९१
८--भारतीय साहित्य में मधु--डा० हरिहरप्रसाद गुप्त ९५
९--महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१२)--पंडित व्रजमोहन व्यास ९८
१०--रवीन्द्र शताब्दि के अवसर पर (कविता)--श्री प्रभाकर माचवे १०५
११--क्या जलप्लावन आख्यान मूलतः भारतीय है?--श्री श्रीराम गोयल .. १०
१२--वसंत--श्री पुत्तूलाल शर्मा, उद्दण्ड .. ११
१३--पंडित रामनरेश त्रिपाठी के साथ अंतिम दिन--श्री शिवकुमार तिवारी .. ११
१४--भुजनगर के राजस्थानी कवि हमीर और उनकी रचनाएँ--श्री अगरचन्द नाहटा ११
१५--आँगनों के बीच ११
१६--देखा-सुना (९)--श्री मनमोहन गुप्त १२
१७--प्राइवेट सेक्रेटरी--श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय १२
१८--सोमनाथ की भारत-यात्रा--श्री राजेश्वर-प्रसादनारायण सिंह १३
१९--१९०६ की सरस्वती--बुधवर मि० एफ० एस० ग्राउस, सी० आई० ई०--श्री काशी-प्रसाद जायसवाल १४
२०--मनोरंजक संस्मरण १४

चित्र : १ रंगीन, १० सादे।

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

दुर्गापाठ

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। पृष्ठ में एक ओर मूल है और उसके सामने हिन्दी रूपान्तर। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रकाशक का वक्तव्य, प्रस्तावना, प्रारम्भिक वक्तव्य, भूमिका, मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि है। फिर देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७४६

इलाहाबाद : फरवरी १९६२ : माघ २०१८

खण्ड १
संख्या २

सम्पादकीय

सरस्वती हीरक जयन्ती—दिनांक १२ जनवरी को इलाहाबाद में सरस्वती हीरक जयन्ती का उत्सव हो गया। इस उत्सव का पहिला भाग ३१ दिसंबर को राष्ट्रपति-भवन, दिल्ली में सम्पन्न हुआ था जिसमें महामहिम राष्ट्रपतिजी को सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक समर्पित किया गया। इसका संक्षिप्त विवरण गत मास की सरस्वती में पाठकों ने पढ़ा होगा। इलाहाबाद में इसका शेषांश सम्पन्न हुआ। इस उत्सव की अध्यक्षता सरस्वती के सबसे पुराने जीवित लेखक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त ने की। यह उत्सव कई दृष्टियों से अभूतपूर्व था। इस प्रकार का विशुद्ध साहित्यिक समारोह, जिसमें हिंदी के इतने अधिक प्रमुख साहित्यकारों तथा दूर-दूर के नये साहित्यिकों, हिंदी के प्राध्यापकों तथा हिंदी-प्रेमियों ने इतने प्रेम और उत्साह से भाग लिया हो, बहुत दिनों से नहीं हुआ था। इसका पूरा सचित्र विवरण हम अगले अंक के साथ एक परिशिष्टांक के रूप में प्रस्तुत करेंगे। यहाँ अपने पाठकों की तात्कालिक जानकारी के लिए उसका अति संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं।

ठीक छः बजे राष्ट्रकवि ने कम्पनी बाग के सामने, थार्नहिल रोड और पन्नालाल रोड के संगम पर, प्रतिष्ठित, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की आवक्ष कांस्य प्रतिमा का अनावरण किया। कार्यारंभ वेद की ऋचाओं से आरम्भ हुआ। उसके बाद सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह की ओर से इलाहाबाद के नगर-प्रमुख और प्रसिद्ध कवि एवम् साहित्यकार श्री बालकृष्ण राव ने राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त से प्रतिमा का उद्घाटन करने की प्रार्थना की। उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में बतलाया कि हिंदी के इतिहास में पहिली बार किसी साहित्यकार की प्रतिमा की स्थापना की जा रही है, और प्रयाग में यह पहिली मूर्ति है जो सार्वजनिक सड़क के किनारे स्थापित की गयी है। उन्होंने द्विवेदीजी की हिंदी-सेवा और उनके सरस्वती के सम्पादन कार्य की प्रशंसा तथा महत्त्व बतलाते हुए कहा कि सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह समिति ने सरस्वती के सर्वोत्कृष्ट सम्पादक का सम्मान करने के लिए उनकी प्रतिमा स्थापित करने का निश्चय किया था। नगर-महापालिका के अधिकारियों और सदस्यों ने, तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने, उसकी स्थापना के लिए यह भूमि देकर अपनी उदारता और हिंदी-प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिचय दिया है। इसके बाद उन्होंने मूर्ति के निर्माता श्री देवकृष्ण जोशी का राष्ट्रकवि से परिचय कराया। तुमुल करतल-ध्वनि के मध्य गुप्तजी ने रेशम के पीले पर्दे को हटाकर मूर्ति का उद्घाटन किया, और अनावरण के बाद हाथ जोड़कर उन्होंने आचार्य की वंदना की। अपने संक्षिप्त भाषण में उन्होंने द्विवेदीजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

मुख्य समारोह इंडियन प्रेस के विशाल हॉल में किया गया। गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, भारतेन्दु, प्रेमचंद, प्रसादजी, निरालाजी, हरिऔध आदि हिंदी साहित्यकारों और कवियों के चित्रों से उसे सजाया गया था। एक ओर श्री देवकृष्ण जोशी द्वारा निर्मित डा० राजेन्द्रप्रसाद का तैल चित्र लगा था। उत्तर की ओर मंच था जिस पर बीच में प्रयाग के प्रसिद्ध चित्रकार श्री कमलाशंकर सिंह का इसी उत्सव के लिए विशेष रूप से बनाया गया सरस्वतीजी का सात फुट ऊँचा अत्यंत सुन्दर चित्र एक अर्द्धगोलाकार वेदी पर स्थापित था। इस वेदी पर दीपकों की दोहरी पंक्ति मंच को आलोकित कर रही थी। सरस्वती के चित्र के दाहिने सरस्वती के संस्थापक श्री चिंतामणि घोष का, और बायीं ओर सरस्वती के प्रथम सम्पादक बाबू श्यामसुंदरदास के मनुष्याकार तैल चित्र लगे थे जिनका अनावरण होना था। मंच पर अध्यक्ष के अतिरिक्त इलाहाबाद हाईकोर्ट के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री कमलाकान्त वर्मा, इलाहाबाद के नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव, महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, वेदतीर्थ श्री नरदेव शास्त्री, डाक्टर हरि रामचंद्र दिवेकर, सरस्वती के भूतपूर्व सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल, श्री वियोगी हरि, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, सेठ गोविंददास, राजस्थान के वित्तमंत्री और सरस्वती के भूतपूर्व सहायक सम्पादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री सुमित्रानंदन पंत, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री सियारामशरण गुप्त, महाराष्ट्र साहित्य परिषद् की प्रतिनिधि श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर, तेलगू साहित्य सभा के प्रतिनिधि श्री के० लक्ष्मण शास्त्री, अंजुमन तरक्किए, उर्दू के प्रतिनिधि प्रोफेसर एहतिशाम हुसेन, दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति महामहोपाध्याय डाक्टर उमेश मिश्र, मैथिली साहित्य परिषद् के प्रतिनिधि श्री जयकान्त मिश्र, लेफ्टिनेंट कर्नल राजा पंचम सिंह, उ० प्र० के वनमंत्री श्री अलगूराय शास्त्री आदि अनेक गण्यमान्य साहित्यकार तथा विद्वान् बैठे थे। इनके अतिरिक्त डा० हेमचंद्र जोशी, श्री जी० एस० पथिक, श्री रघुवंशलाल गुप्त, श्री पांडुरंग सदाशिव खानखोजे आदि सम्माननीय सज्जन उपस्थित थे। श्रोताओं में इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री वी० डी० भार्गव, उ० प्र० विधान परिषद के अध्यक्ष श्री र० वि० धुलेकर, उत्तर प्रदेश सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री राधाकृष्णजी तथा सदस्य पं० रामधर मिश्र, ऐडवोकेट-जनरल पं० कन्हैयालाल मिश्र, डा० ईश्वरीप्रसाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति श्री ए० सी० बनर्जी, प्रोफेसर देव, बाबू बेनीप्रसाद टंडन, डा० गोविन्दचंद्र, डा० रामचरण अग्रवाल, पं० निर्मलचंद्र चतुर्वेदी आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जन थे। कितने ही हिंदी के विद्वान्, लेखक और पत्रकार भी मौजूद थे जिनमें प्रमुख ये थे श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ बेढब, डा० सत्यप्रकाश, डा० संतप्रसाद टंडन, श्री अशोकजी, श्री यशपाल जैन, श्री मार्तंड उपाध्याय, श्री अमृतलाल चतुर्वेदी, आचार्य जगदीशचंद्र, श्री काशिनाथ उपाध्याय 'भ्रमर', श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव, श्री श्रीकृष्णदास, श्री व्रजमोहन व्यास, श्री योगीन्द्रपति त्रिपाठी, श्री ललनप्रसाद व्यास, श्री रामबहोरी शुक्ल। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अधिकांश प्राध्यापक तथा पटना, मुँगेर, पन्ना, आरा, जबलपुर, रीवा, वाराणसी, जौनपुर, फैजाबाद, लखनऊ, फतेहपुर, कानपुर आदि के कितने ही हिंदी के प्राध्यापक उत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे।

कार्यक्रम प्रो० लक्ष्मीकान्त दीक्षित और डा० सत्यनारायण पांडे की सरस्वती-वंदना से आरंभ हुआ। जगत-तारन विद्यालय की छात्राओं ने अपने मधुर कंठ से स्वागत-गान गाया। इसके बाद महामहिम राष्ट्रपति का भाषण, जो उन्होंने कृपावंत होकर टेपरेकर्ड करा के भेज दिया था, आकाशवाणी के कार्यकर्ताओं द्वारा सुनाया गया। श्री राज्यपालजी सहसा अस्वस्थ हो जाने के कारण नहीं आ सके, किन्तु उन्होंने अपना लिखित भाषण उसी दिन दूत द्वारा भेज दिया था। श्री बालकृष्ण राव ने उस भाषण को पढ़कर सुनाया और उसके बाद उन्होंने राष्ट्रकवि से महाभाग श्री चिंतामणि घोष और डा० श्यामसुंदरदास के चित्रों के अनावरण करने की प्रार्थना की। राष्ट्रकवि ने पहिले मंच के दाहिनी ओर लगे श्री चिंतामणि घोष के चित्र का, और फिर बाईं ओर लगे डा० श्यामसुंदरदासजी के चित्र का अनावरण किया। अनावरण के बाद उन्होंने श्री घोष और श्री श्यामसुंदरदासजी को अत्यंत भावपूर्ण शब्दों में श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। अनावरण के बाद समारोह समिति के मंत्री ने समिति के संरक्षक राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन का लिखित आशीर्वाद पढ़कर सुनाया तथा आये हुए सैकड़ों शुभकामनाओं के संदेशों में से कुछ संदेशों का सारांश सुनाया। इसके बाद संस्कृत विद्वानों की ओर से महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र ने संस्कृत में शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। उनके बाद मराठी साहित्य परिषद् की प्रतिनिधि श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर ने, अंजुमन तरक्किए उर्दू के प्रतिनिधि प्रोफेसर एहतिशाम हुसेन ने, तैलगू साहित्य सभा के प्रतिनिधि पंडित के० लक्ष्मण शास्त्री ने, नागरीप्रचारिणी सभा के प्रतिनिधि श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ने और मैथिली साहित्य-सम्मेलन के प्रतिनिधि श्री जयकान्त मिश्र ने अपनी-अपनी संस्थाओं की ओर से शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। तदुपरान्त अध्यक्ष ने काशी नागरी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारिणी सभा को ताम्रपत्र के रूप में मानपत्र भेंट किया। सभा ने अपने प्रकाशन-मंत्री श्री सुधाकर पांडे को उसे सभा की ओर से लेने के लिए भेजा था। इसके बाद सरस्वती की स्थापना करने, तथा उसे सा वर्ष तक सफलतापूर्वक चलाते रहने के लिए हिंदी-प्रेमियों की कृतज्ञता के रूप में एक ताम्रपत्र इंडियन प्रेस को भेंट किया गया। उसे स्वर्गीय श्री चिंतामणि घोष के तृतीय पुत्र और इंडियन प्रेस के वर्तमान जनरल मैनेजर श्री हरिप्रसन्न घोष ने ग्रहण किया। इसके बाद सरस्वती के पुराने लेखकों के बहुमान का कार्य आरंभ हुआ। जिनका बहुमान किया गया उन्हें अध्यक्ष ने पहिले एक पुष्पहार पहिनाया और उनके कंधे पर जरी के किनारे का, आंध्र का बना, खद्दर का एक उत्तरीय (दुपट्टा) डाला, तथा उन्हें भेंट में एक नारियल, 'सरस्वती हीरक जयन्ती' अंकित और इसी अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार की गयी एक सुंदर और मूल्यवान् फाउंटेन पैन तथा सरस्वती हीरक जयंती अंक का विशेष संस्करण भेंट किया तथा उन्हें एक मानपत्र अर्पित किया जिसमें उनकी हिंदी-सेवाओं और सरस्वती के साथ सहयोग का संक्षिप्त विवरण छपा था।

समिति ने जिन विद्वानों का बहुमान करने का निश्चय किया था उनमें जो लोग सभा में उपस्थित थे, उनका इस क्रम से बहुमान किया गया—

१—पं० देवीदत्त शुक्ल भूतपूर्व सम्पादक, सरस्वती
२—महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
३—वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री
४—श्री वियोगी हरि
५—डा० हरि रामचंद्र दिवेकर
६—श्री पांडुरंग सदाशिव खानखोजे
७—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
८—सेठ गोविन्ददास
९—श्री जी० एस० पथिक
१०—श्री सियारामशरण गुप्त
११—डा० हेमचंद्र जोशी
१२—पं० रामनरेश त्रिपाठी
१३—श्री सुमित्रानंदन पंत
१४—श्रीमती महादेवी वर्मा
१५—श्री रामधारीसिंह दिनकर
१६—श्री भगवतीचरण वर्मा
१७—श्री रघुवंशलाल गुप्त
१८—श्री लल्लीप्रसाद पांडे
१९—राजा पंचम सिंह
२०—श्री देवकृष्ण जोशी (द्विवेदीजी की मूर्ति के निर्माता)

बहुमान के बाद श्री सुमित्रानंदन पंत ने अत्यन्त तन्मय होकर अपना गीत "बरसो ज्योतिर्मय" सुनाया। उस साहित्यिक वातावरण में पंतजी स्वयं भाव-विभोर हो उठे थे, और उन्होंने उस गीत को उसी कंठ से, और उसी लय में सुनाया जिसमें वे बीस वर्ष पहिले कविता-पाठ करते थे। सारी सभा मंत्र-मुग्ध की नाईं काव्य-रस से सिक्त हो गयी। इसी रससिक्त वातावरण में श्रीमती महादेवी जी ने हिंदी साहित्य के सम्बन्ध में एक भाषण दिया। वे साधारण रूप से बहुत अच्छा बोलती हैं, किन्तु जिन्होंने उस दिन उनका भाषण सुना वे उसे सदैव याद रखेंगे। बहुमानित विद्वानों की ओर से माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय और सेठ गोविंददासजी ने इस उत्सव तथा सरस्वती के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। श्री हरिभाऊजी उपाध्याय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय में तीन वर्ष तक सरस्वती के सहायक सम्पादक-पद पर द्विवेदीजी के साथ रहकर काम करते थे। उन्होंने अपने सम्पादनकाल के अनेक मनोरंजक संस्मरण सुनाये जिनसे द्विवेदीजी और श्री चिंतामणि घोष के व्यक्तित्व तथा कार्य-प्रणाली पर प्रकाश पड़ा। सरस्वती के आरंभिक काल की बहुत-सी नयी बातें मालूम हुईं। अंत में समिति के उपाध्यक्ष श्री दिनकरजी ने हिंदी की वर्तमान स्थिति और समस्याओं पर एक छोटा-सा सारगर्भित भाषण दिया। श्रोताओं के आग्रह से उन्होंने एक कविता भी सुनाई और उत्तर प्रदेश की सरकार, इलाहाबाद की नगरपालिका के नगरप्रमुख, सदस्यों और मुख्य नगर-अधिकारी, श्री नंदकिशोर अग्रवाल इंजिनियर (जिन्होंने मूर्ति की पीठिका तथा उद्यान तैयार कराया), श्री द्विवेदी जी की मूर्ति और श्री चिंतामणि घोष तथा डा० श्यामसुंदरदास के चित्रों के निर्माता श्री देवकृष्ण जोशी, तथा मंच पर स्थापित सरस्वतीजी के चित्र के चित्रकार श्री कमलाशंकरसिंह को धन्यवाद दिया। अन्त में जगततारन विद्यालय की छात्राओं ने 'जन गन मन' गाकर इस उल्लासपूर्ण उत्सव को समाप्त किया।

दूसरे दिन सबेरे साढ़े दस बजे श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ की अध्यक्षता में एक पत्रकार-विचारगोष्ठी हुई। इसके संयोजक श्री श्रीकृष्णदास ने हिंदी-पत्रकारिता के इतिहास का सिंहावलोकन करते हुए श्री विद्याभास्कर जी से विचारगोष्ठी का आरंभ करने की प्रार्थना की। श्री विद्याभास्करजी ने हिंदी-पत्रकारिता की वर्तमान समस्याओं का विवेचन किया और उनके सुलझाने के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव रखे। सर्वश्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, शंकरदयालु श्रीवास्तव, पद्मकांत मालवीय, ज्ञानचंद्र जैन, ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल, दूधनाथसिंह, के० लक्ष्मण शास्त्री आदि ने अपने विचार प्रकट किये। अंत में अध्यक्ष ने इस सफल गोष्ठी में व्यक्त विचारों का सारांश बतलाकर वर्तमान परिवर्तित परिस्थिति में हिंदी-पत्रकारिता को उन्नत करने के लिए व्यावहारिक सुझाव देकर गोष्ठी का कार्य समाप्त किया। श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर ने मराठी-पत्रकारिता पर एक निबंध तैयार किया था।

१२ जनवरी को दोपहर में एक साहित्य प्रदर्शिनी का उद्घाटन कर दिया गया था। इसके आयोजक थे पं० व्रजमोहनजी व्यास जिन्हें इलाहाबाद म्युनिसिपल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहालय के अध्यक्ष डा० सतीशचंद्र काला और श्री श्रीकृष्णदास का सहयोग प्राप्त था। इस प्रदर्शिनी में अनेक पुराने साहित्यिकों के पत्रों, पांडुलिपियों, चित्रों के अतिरिक्त हिंदी कविताओं पर चित्रित पुराने चित्र तथा देवनागरी में लिखे पुराने ताम्रपत्र और पठान तथा मुगल काल की ऐसी मुद्राएँ भी थीं जिन पर देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया था। यह प्रदर्शिनी १३ जनवरी की संध्या तक खुली रही और कितने ही दर्शकों ने इसे देखा।

१३ जनवरी की संध्या को इंडियन प्रेस के डाइरेक्टरों ने आगत तथा स्थानीय साहित्यिकों और प्रतिष्ठित सज्जनों को जलपान के लिए निमंत्रित किया। इसमें कई सौ सज्जनों और महिलाओं ने सम्मिलित होकर उसे गौरवान्वित किया।

इस प्रकार यह ऐतिहासिक उत्सव सम्पन्न हुआ। अगले अंक में हम इस उत्सव का पूरा सचित्र विवरण, भाषण, कविताएँ आदि प्रकाशित करेंगे।

यह उत्सव अनोखा था। हिंदी-प्रेमियों ने इतनी भारी संख्या में उपस्थित होकर सरस्वती के प्रति जो अनुराग प्रकट किया वह हमारे लिए मूल्यवान् निधि ही नहीं, हमारे भविष्य के कार्य के लिए प्रेरणाप्रद प्रोत्साहन और सम्बल भी है। इस उत्सव की दूसरी विशेषता यह थी कि एक मंच पर पुरानी और नयी पीढ़ियों के इतने मूर्धन्य और प्रतिष्ठित साहित्यकारों का जमाव इधर वर्षों से नहीं देखा गया था। यह विशुद्ध साहित्यिक उत्सव था। हमारे एक साहित्यिक मित्र ने उसे "जंगम तीर्थराज" की संज्ञा दी। सरस्वती को प्रतिष्ठित करके महाभाग श्री चिंतामणि घोष ने राष्ट्रभाषा हिंदी की जो मूल्यवान् सेवा की थी, उसको हिंदी संसार ने कितना महत्त्वपूर्ण समझा, और वह उनका कितना कृतज्ञ है, यह इस उत्सव में दिये गये भाषणों से स्पष्ट हो गया। महामहिम राष्ट्रपति, श्री राज्यपाल और राष्ट्रकवि ने ही नहीं, प्रत्येक वक्ता ने और शुभकामना के संदेश भेजनेवालों में से प्रायः सभी ने श्री चिंतामणि घोष के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। द्विवेदीजी ने हिंदीभाषी जनता के हृदय में जो स्थान बना लिया था, वह सर्वविदित है। किन्तु उस भावना की गहराई इस उत्सव में देखने को मिली। यह भी देखने को मिला कि सरस्वती के पुराने लेखकों के लिए हिंदी जनता के हृदय में कितना आदर है। अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि संस्थाओं ने इस उत्सव में अपने प्रतिनिधि भेजकर या अपनी शुभकामनाएँ भेजकर सरस्वती के मिस हिंदी के प्रति अपनी हार्दिक सद्भावना का परिचय दिया। जिन लोगों ने यह ऐतिहासिक उत्सव देखा है, वे उसे सदैव याद रखेंगे। इलाहाबाद के एक राजमार्ग पर स्थापित द्विवेदीजी की प्रतिमा इस उत्सव की भावना का चिरस्थायी स्मारक है और सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक दूर-दूर तक, अनेकों पीढ़ियों को, सरस्वती की हिंदी-सेवा तथा अपने सम्पादकों और लेखकों की ऐतिहासिक साधना की कहानी बतलाता रहेगा।

खेद है कि हम इस अंक में इस उत्सव का पूरा विवरण, भाषण आदि नहीं दे सके। उनके लिए पाठकगण अगले अंक के प्रकाशन तक हमें क्षमा करें।

साहित्यिकों का सम्मान––प्रतिवर्ष २६ जनवरी को भारत सरकार विशिष्ट भारतवासियों का सम्मान करती है। सरकार ने भारतरत्न, पद्मविभूषण, पद्मभूषण और पद्मश्री नामक चार सम्मान स्थापित किये हैं। भारतरत्न सर्वोच्च सम्मान है, और पद्मश्री सबसे छोटा। अभी तक भारतरत्न का सम्मान देश में बाबू राजेन्द्रप्रसाद, डा० राधाकृष्णन्, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० भगवानदास, श्री राजगोपालाचारी, डा० विधानचंद्र राय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० गोविंदवल्लभ पंत, महर्षि कर्वे और श्री विश्वेश्वरैया को मिला है। साहित्यकारों, कलाकारों और खिलाड़ियों को भी सम्मानित किया जाता है। हिंदी में हमारे कई प्रमुख साहित्यकार पद्मभूषण के सम्मान से समादृत हुए हैं। इस वर्ष बिहार के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक राजा राधिकारमणप्रसादसिंह को यह सम्मान मिला है। राजा साहब बिहार के ज्येष्ठ साहित्यिकों में हैं। हमें उनके सम्मानित होने से प्रसन्नता हुई। दक्षिण भारत में हिंदी-प्रचार का प्रशंसनीय कार्य करनेवाले और तैलगू विश्वकोश के सम्पादक श्री मोतुरी सत्यनारायण को भी पद्मभूषण के सम्मान से समादृत किया गया है। पहिले उनको पद्मश्री का सम्मान मिला था, किन्तु इस बार उन्हें पद्मभूषण दिया गया है। हमें उनके इस सम्मान से बहुत हर्ष हुआ। उर्दू के दो पुराने साहित्यकारों, श्री असर लखनवी और श्री नियाज फतेहपुरी को भी पद्मभूषण से सम्मानित किया गया है। ये दोनों ही उर्दू के पुराने साहित्यकार हैं। हम उन्हें इस सम्मान पर बधाई देते हैं।

हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि श्री ताराशंकर बंद्योपाध्याय को 'पद्मश्री' का सम्मान दिया गया। राज्य से सम्मानित होना सदैव गौरव का विषय है और यह संतोष की बात है कि ताराशंकर बाबू की साहित्यिक सेवाओं का मान किया गया। किन्तु जब सम्मान में श्रेणियाँ हैं तब सम्मान को सम्मानित व्यक्ति के साहित्यिक पद और उपलब्धियों से मेल खाना चाहिए। हमें सब भारतीय भाषाओं का ज्ञान नहीं है, और इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि वे भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। किन्तु आज के जिन भारतीय उपन्यासकारों के उपन्यास हमने देखे हैं उनमें हम निःसंकोच ताराशंकर बाबू को सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार समझते हैं। बँगला में शायद शरत् बाबू के बाद उन्हींका बोलबाला रहा है। उन्हें साहित्य अकादमी का पाँच हजार का पुरस्कार भी मिल चुका है, तथा जब साहित्यकारों का प्रतिनिधि-मंडल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस गया था तो वे उसके अध्यक्ष बनाये गये थे। इन बातों से उनकी वरिष्ठता और ज्येष्ठता स्पष्ट है। पद्मश्री का सम्मान भी सम्मान है और राज्य का प्रसाद समझकर वह सिर-माथे रखना चाहिए, किन्तु जब इन सम्मानों को श्रेणीबद्ध कर दिया गया है तब ताराशंकर बाबू ऐसे मूर्धन्य साहित्यकार को सबसे छोटा सम्मान देना हमें समीचीन नहीं मालूम होता। हम आशा करते हैं कि जिस प्रकार श्री मोतुरी सत्यनारायण को पहिले पद्मश्री देकर बाद में उन्हें पद्मभूषण का उच्चतर सम्मान दे दिया गया, उसी प्रकार अगले वर्ष ताराशंकर बाबू को भी वह सम्मान देकर उन्हें उनकी पद-मर्यादा के अनुसार समादृत कर दिया जायगा।

पं० रामनरेश त्रिपाठी का निधन——गत १६ जनवरी को प्रयाग में हिंदी के प्रसिद्ध लेखक और कवि पं० रामनरेश त्रिपाठी का स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय उनकी आयु ७२ वर्ष की थी। वे सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह में सम्मिलित होने के लिए १२ जनवरी को प्रयाग पधारे थे। वे दोपहर में प्रयाग पहुँचे और संध्या के समय समारोह में सम्मिलित हुए। वहाँ उनका बहुमान हुआ। वे स्वस्थ और प्रसन्नचित्त थे। समारोह में सम्मिलित होकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रयाग में वे हिंदी साहित्य-सम्मेलन के अतिथि-भवन 'सत्यनारायण कुटीर' में ठहरे थे। दूसरे दिन संध्या को समारोह में आये हुए सज्जनों के लिए जलपान का आयोजन किया गया था। उन दिनों प्रयाग में शीत कुछ अधिक थी। अतएव उन्होंने शीत के कारण संध्या के समय जलपान में न आने के लिए क्षमायाचना का पत्र लिखा। दूसरे दिन, अर्थात् १४ जनवरी को सबेरे प्रायः चार बजे उन्हें सहसा हृदय का दौरा हो आया। पास के कमरे में सूचना विभाग के उपसंचालक पं० बलभद्रप्रसाद मिश्र ठहरे हुए थे। हृदय के दौरे के कारण त्रिपाठीजी को साँस लेने में कठिनाई हो रही थी और वे जोर-जोर से हाँफ रहे थे। उनके हाँफने की आवाज सुनकर मिश्रजी उनके कक्ष में गये। उन्होंने समझा कि त्रिपाठीजी को शीत लग गयी है और उन्हें निमोनिया हो गया है जिससे उन्हें साँस लेने में कष्ट हो रहा है। तुरंत ही पड़ोस के एक डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने उनका परीक्षण करके उनके रोग को हृदय का दौरा बतलाया। तुरंत ही टेलिफोन से नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव को और हमें सूचना दी गयी। हम लोग उनके पास पहुँचे। श्री राव ने त्रिपाठीजी की बराबर देखरेख के लिए डाक्टरों का तथा चिकित्सा का समुचित प्रबंध कर दिया। उनका रक्तचाप गिरने लगा किन्तु संध्या को ९० अंश पर स्थिर हो गया। दूसरे दिन सबेरे उनका रक्तचाप १०० अंश हो गया और संध्या को १०५ अंश पहुँच गया। इससे हम लोग आश्वस्त हुए। उस दिन हम अंतिम बार उन्हें देखने रात्रि में आठ बजे गये और उन्हें बहुत प्रसन्नचित्त पाया। उनके बड़े सुपुत्र श्री आनन्दकुमार भी सुलतानपुर से आ गये थे और मँझले पुत्र श्री वसंतकुमार तो उनके साथ आये ही थे। १६ जनवरी को सबेरे ५ बजे वे शौच के लिए उठे। डाक्टरों ने उन्हें उठने-बैठने, चलने-फिरने के लिए मना कर दिया था। उनके परिचारकों ने उनसे कहा कि चारपायी पर ही शौच का प्रबंध कर दिया गया है और उन्हें शौचालय नहीं जाना चाहिए। किन्तु वे नहीं माने। उठकर शौचालय गये। वहाँ पहुँचते ही उन्हें हृदय में पीड़ा मालूम हुई और उनके चिल्लाने से लोगों ने लाकर उन्हें चारपायी पर लेटा दिया। उन्होंने काफी माँगी और पी ली। इस बीच डाक्टर के लिए आदमी भेज दिया गया था। किन्तु डाक्टर के आने के पहिले ही सहसा उनके हृदय की गति रुक गयी।

इसके पहिले उन्हें कभी हृदय का दौरा नहीं हुआ था। इधर उन्हें स्वास्थ्य की कोई विशेष शिकायत न थी। शीत से वे अवश्य घबराते थे और इसीलिए वे सुलतानपुर से प्रयाग दिन ही में आये। समारोह में सम्मिलित हुए, किन्तु दूसरे दिन कहीं नहीं गये। ऊपर से स्वस्थ होने पर भी उन्हें अपने अंत का कुछ आभास हो गया था। समारोह से वे पं० रामप्रताप त्रिपाठी के साथ लौटे। रास्ते में उन्होंने रामप्रतापजी से कहा कि अब यह शरीर अधिक नहीं चलने का। जो कुछ भी करना है वह तुरन्त कर लेना चाहिए। उन्हें प्रयाग बहुत प्रिय था। वही उनका कर्मक्षेत्र रहा। हिंदी और हिंदी साहित्य सम्मेलन से उन्हें बड़ी ममता थी। नियति उन्हें प्रयाग ले आयी। वहाँ कितने ही पुराने साहित्यिक मित्रों से एक साथ भेंट हो गयी। उत्तरायण के सूर्य में, एकादशी के दिन, गंगा जी के किनारे प्रयाग में, पुत्रों और मित्रों के बीच, हिंदी के मंदिर में उन्होंने प्राण छोड़े। हिंदू मान्यताओं के अनुसार ऐसी मृत्यु बड़े पुण्यात्माओं को ही मिलती है। किन्तु उनके निधन से हिंदी की पिछली पीढ़ी का एक कर्मठ, स्वावलम्बी और कल्पनाशील प्रमुख साहित्यकार चला गया। ग्रामगीतों का उद्धार कर उन्होंने जनता का ध्यान उनके अध्ययन और संरक्षण की ओर खींचा। खड़ी बोली कविता को लोकप्रिय बनाने में उनका योगदान बड़ा मूल्यवान् था। हिंदी कविता-कौमुदी ने कितने ही हिंदी पाठकों का परिचय हिंदी काव्य से कराया। उनके 'पथिक' और 'मिलन' खड़ी बोली काव्य के विकास के स्मरणीय सोपान हैं। और यह सब उपलब्धियाँ उन्होंने अपने ही बल पर प्राप्त कीं। हमें उनके निधन से बहुत दुःख हुआ। सरस्वती के वे बहुत पुराने लेखकों में थे। हम उनके शोकसंतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में हाईकोर्ट का विचित्र निर्णय——गुजरात सरकार ने कुछ दिन पहिले ऐक विश्वविद्यालय कानून बनाया था जिसकी धारा २०७ और २०९ में विश्वविद्यालय को यह अधिकार दिया था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने अधीनस्थ महाविद्यालयों में शिक्षा और परीक्षा का माध्यम गुजराती और या हिंदी निर्धारित करे। इस पर अहमदाबाद के एक सज्जन ने जो वहाँके सेंट जेवियर कालिज में पढ़नेवाले किसी विद्यार्थी के अभिभावक थे, हाईकोर्ट में एक रिट लगायी, और विश्वविद्यालय कानून की इन धाराओं को नागरिकों के मूलभूत अधिकारों के विरुद्ध बतलाया। हाईकोर्ट ने इस पर जो निर्णय दिया उसका आशय यह है कि विश्वविद्यालय अपनी संस्थाओं में तो शिक्षा के माध्यम और परीक्षा की भाषा निश्चित कर सकता है, किन्तु उसे मान्य संस्थाओं के लिए ऐसा नियम बनाने का अधिकार नहीं है। इस सम्बन्ध के निर्णय में कहा गया है कि यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि कानून की धारा ४ (२७) में ऐसे अधिकार दिये गये हैं, तो भी अधिक से अधिक वह अधिकार इतना ही है कि गुजराती या हिंदी को शिक्षा और परीक्षा का एक माध्यम बना दें, न कि दूसरी भाषाओं (के माध्यम के उपयोग) को बन्द कर सकें, और न इससे उसे (विश्वविद्यालय को) शिक्षा और परीक्षा के लिए अँगरेजी या अन्य किसी भाषा के उपयोग को मना करने का ही अधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त हाईकोर्ट ने यह भी व्यवस्था दी कि गुजरात विश्वविद्यालय कानून (संशोधन) की धारा ४ (२७) पारित करने का अधिकार गुजरात विधान सभा को नहीं है क्योंकि यह संविधान की सूची १ की ६६ वीं प्रविष्टि के विरुद्ध है। इतना ही नहीं, हाईकोर्ट के निर्णय में कहा गया है कि मान्य संस्थाओं के लिए किसी भाषा-विशेष को शिक्षा और परीक्षा का माध्यम निर्धारित करना और इन कामों के लिए अँगरेजी का उपयोग वर्जित कर देना संविधान की धारा १३(१) के अनुसार उस सीमा तक अवैध है जिससे वे संविधान की धारा २९ (१) और ३०(१) में दिये मूलभूत अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं।

निर्णय का सारांश यह है कि धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों द्वारा स्थापित या संचालित महाविद्यालयों में शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के लिए कि विशेष भाषा के निर्धारित करने, और उसे जबर्दस्ती ल करने या लादने का अधिकार न तो विश्वविद्यालय है और न गुजरात की विधान सभा को।

गुजरात हाईकोर्ट के इस निर्णय से विचित्र स्थि उत्पन्न हो गयी है। यदि उसके इस निर्णय के सिद्धा को मान लिया जाय तो विश्वविद्यालयों का स्वशा तो समाप्त हो ही जाता है, राज्य की विधान सभाओं भी अपने राज्य के विश्वविद्यालयों के नियंत्रण पर उ चित अधिकार नहीं रह जाता। हाईकोर्ट ने केंद्रीय सू १ की ६६वीं प्रविष्टि का हवाला दिया है। इसमें बातों की सूची है जिन पर कानून बनाने का अधिक केंद्रीय सरकार को है। ६६वीं प्रविष्टि में लिखा है "उच्चस्तर की शिक्षा के स्तर का निर्धारण और स जस्य।" किन्तु राज्य के अधिकार क्षेत्र की सूची प्रविष्टि ११ पर स्पष्ट लिखा है "शिक्षा जिसमें कि विद्यालय सम्मिलित हैं"। अतएव केन्द्र का अधि केवल स्तर की देखभाल और भिन्न-भिन्न विश्वविद्या के स्तरों का सामंजस्य करना है, किन्तु राज्य का शिक्षा का संचालन है और संविधान के अनुसार रा को अपने क्षेत्र के विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में मा सम्बन्धी निर्णय करने का पूरा अधिकार है। यदि गुज हाईकोर्ट का निर्णय मान लिया जाय तो दिल्ली या बं ऐसे बहुभाषी नगरों में बीसों भाषायी और धार्मिक अ संख्यकों के कालिज अपनी-अपनी अलग भाषाओं शिक्षा देना आरंभ कर सकते हैं, और वहाँके विश्वविद्या लयों को उन बीसों भाषाओं में परीक्षा लेने और प्र पत्र तैयार करने को बाध्य होना पड़ेगा। यह स्थि अव्यावहारिक और असंभव है। गुजरात सरकार इस मामले को सुप्रीम कोर्ट में ले जाना चाहिए, आवश्यकता हो तो शिक्षा को भाषावाद के विष से रखने और राज्य के अल्प वर्गों को राज्य की जीवनध में एक-रस करने के लिए कानून और संविधान में चित परिवर्तन करने में देर न करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राज्यपाल का भाषण

(सरस्वती हीरक जयन्ती के उत्सव में)

भाषा और साहित्य के जाने माने विद्वानों की इस सभा का शुभारंभ करने का जो गौरव आपने मुझे प्रदान किया उसके लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ।

सरस्वती हीरक जयन्ती के इस शुद्ध साहित्यिक समारोह में सबसे पहले मैं यह निवेदन कर दूँ कि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मेरी कोई विशेष गति नहीं जो आपके समक्ष कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत कर सकूँ। सदैव से मैं अपने को एक विद्यार्थी मानता आ रहा हूँ और उसी हैसियत से मैं यहाँ अपने विचार व्यक्त करना चाहूँगा।

सरस्वती ने अपने विगत साठ साल के कार्यकाल में भाषा और साहित्य की जो सेवाएँ कीं तथा इसके माध्यम से स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी भाषा और साहित्य के सर्वतोमुखी विकास में जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया उसका साक्ष्य स्वयं हिन्दी साहित्य का इतिहास कर रहा है। राष्ट्रभाषा का जो स्वरूप आज दिन हमारे सामने है उसके निर्माण और विकास में सरस्वती को सर्वाधिक श्रेय है। द्विवेदीजी के संपादन काल में उन दिनों की सरस्वती ने वस्तुतः एक गुरुकुल का रूप ग्रहण कर लिया था जहाँ से दीक्षा लेकर कितने ही कवियों, निबंध, कहानी तथा उपन्यास लेखकों और नाट्यकारों ने साहित्य-संवर्धन में अपनी प्रतिभा एवं श्रम-साधना का सदुपयोग किया।

इस अवसर पर काशी की नागरीप्रचारिणी सभा तथा उसके उन्नायक आचार्य श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पंडित रामनारायण मिश्र जैसे विद्वानों को श्रद्धांजलि समर्पित करना कदाचित् असंगत न होगा। वैसे तो सरस्वती का समारम्भ ही सभा की प्रेरणा से हुआ किन्तु कालान्तर में वह स्वयं ही एक स्वतंत्र साहित्यिक संस्था के रूप में सक्रिय हो गयी। प्रयाग से सरस्वती और काशी से नागरीप्रचारिणी सभा ने बीसवीं सदी के आरम्भ में ही हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वांगीण प्रगति की दिशा में जो भगीरथ प्रयत्न किये उनके परिणामस्वरूप गद्य शैली का सुनियोजित विकास, आधुनिक निबंध-लेखन तथा कहानी कला का प्रचलन, काव्य में छायावाद का प्रवर्तन एवं शास्त्रीय समालोचना-पद्धति का श्रीगणेश संभव हो सका।

यहाँ पर प्रसंगवश मुझे आप यह कहने की अनुमति प्रदान करें कि हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में अहिन्दीभाषियों का सहयोग एवं समर्थन कुछ कम नहीं रहा है। जिस सरस्वती की हीरक जयन्ती में आज हम सम्मिलित हुए हैं उसे सार्थक बनाने में स्वर्गीय चिन्तामणि घोष तथा उनके इंडियन प्रेस की सेवाएँ सर्वविदित हैं। इसके अतिरिक्त भारतमित्र, वंगवासी जैसे हिन्दी पत्र सर्वप्रथम कलकत्ते से ही प्रकाशित हुए। कलकत्ते में ही स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र ने एक लिपि-विस्तार-परिषद् की स्थापना की और उसके तत्त्वावधान में देवनागर नाम से एक पत्र भी निकाला जिसमें भिन्न-भिन्न भाषाओं के लेखादि देवनागरी लिपि में भी प्रकाशित किये जाते थे। बम्बई के निर्णयसागर प्रेस ने सर्वप्रथम हिन्दी के टाइप ढाले और स्वर्गीय श्री घोष के इंडियन प्रेस ने हिन्दी मुद्रणकला का परिमार्जन किया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा, वर्धा, और दक्षिण भारत हिन्दीप्रचार सभा, मद्रास ने भी भाषा-आन्दोलन को आगे बढ़ाने में जो कुछ थोड़ी-बहुत सेवाएँ कीं उन्हें मैं यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं समझता। इसी प्रकार यदि हिन्दी साहित्य में से कबीर, जायसी, रहीम, रसखान, नानक, प्रभृति कवियों और संतों की रचनाओं को निकाल लें तो हमारा साहित्य विकलांग प्रतीत होने लगेगा।

मेरा कहने का आशय यह है कि हिन्दी भाषा का विकास ही इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में हुआ। यह सत्य है कि हिन्दी आज यदि राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई तो उसका मूल कारण यह रहा है कि वही इस देश की अधिकांश जनता के विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम थी। किन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि इस देश की अहिन्दीभाषी जनता ने बिना किसी शर्त के, अविचल भाव से हिन्दी को इस परम सम्मान के पद पर आसीन होने में अपना सहयोग एवं समर्थन प्रदान किया।

तब फिर क्या कारण है कि आज दिन राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर इतस्ततः भ्रान्त धारणाओं को प्रश्रय मिल रहा है। ये भ्रान्तियाँ हैं और इन्हें सर्वथा उपेक्षित करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। इन भ्रान्त धारणाओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकरण करने का उत्तरदायित्व भी विशेष रूप से हिन्दी-भाषी जनता पर है। हिन्दी के विद्वानों और साहित्यकारों की इस सभा में, मैं आशा करता हूँ कि, उक्त प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जायगा और समय रहते ही समस्या का सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जायगा।

मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ जो राष्ट्रभाषा साहित्य की समृद्धि और प्रगति के संबंध में निराशावादी दृष्टिकोण रखते हैं। बल्कि इसके विपरीत मेरी धारणा है कि राष्ट्रभाषा के अभ्युत्थान तथा उसके समस्त अंगों को भरा-पूरा बनाने की दिशा में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रयत्न हो रहा है। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में तो काम हो ही रहा है, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, केरल, महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात आदि अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में भी हिन्दी साहित्य-सर्जन का काम प्रगतिपूर्वक चल रहा है। प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में इन राज्यों से हिन्दी ग्रन्थों तथा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।

राष्ट्रभाषा-निर्माण और विकास की इस पृष्ठभूमि में आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी तथा अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों के साहित्यकारों और शिक्षा-शास्त्रियों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य की एक सुव्यवस्थित शृंखला स्थापित की जाय। यह कार्य कैसे संभव हो, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए मेरी दृष्टि में यह सभा अधिक सक्षम सिद्ध होगी। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इस प्रकार के संपर्क सहयोग से क्षेत्रीय तथा आंचलिक साहित्यिक प्रवृत्तियों का ठीक-ठीक पता चल सकेगा जो अन्ततः हमारी राष्ट्रभाषा के समन्वित स्वरूप को सँवारने में सहायक होंगी।

मेरा स्पष्ट मत है, और कदाचित् आप इससे सहमत होंगे, कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद का अधिकार प्राप्त होने के बाद से उसका उत्तरदायित्व भी काफी बढ़ गया है। मैं यह मानता हूँ कि हिन्दी भाषा सदैव से ही उदार रही है और अपनी इस उदारता के ही कारण वह हमारे देश की अधिकांश जनता के हृदय का हार बन सकी किन्तु राष्ट्रभाषा-पद पर पहुँचने के बाद इस दिशा में उसे अपना दृष्टिकोण और अधिक व्यापक बनाना है। हिन्दी के विराट् स्वरूप में आज समस्त भारतीय भाषाओं का प्रतिबिम्ब होना चाहिए। यह काम इतना साधारण नहीं कि कह देने मात्र से ही पूरा हो जाय। वर्षों की अनवरत साधना अपेक्षित है इस बड़े काम के लिए। त्रिभाषा सिद्धान्त के रूप में यह काम आरम्भ कर दिया गया है और इसको सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में हिन्दीभाषी क्षेत्रों को विशेष रूप से सक्रिय होने की आवश्यकता है। भारत की समन्वयमूलक संस्कृति की भाँति राष्ट्रभाषा भी तभी वास्तविक अर्थ में अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर सकेगी जब कि उसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र की इच्छाएँ, अभिलाषाएँ प्रतिध्वनित होंगी। गंगा जिस प्रकार गंगोत्तरी से गंगासागर तक अनेकानेक नदियों को लिये दिये गंगा ही बनी रहती है उसी प्रकार हमारी राष्ट्रभाषा भी अन्य भारतीय भाषाओं को अपने अंक में लेकर सदैव हिन्दी ही बनी रहेगी।

अन्त में सरस्वती हीरक जयन्ती के आयोजकों को साधुवाद देते हुए समारोह की सफलता के लिए मंगल-कामना करता हूँ। सरस्वती पत्रिका के लिए यह सौभाग्य का विषय है कि उसे अपने समर्थ संपादकों की शृंखला में आज श्रीनारायणजी जैसे संपादक सुलभ हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके सम्पादकत्व में सरस्वती अपनी भव्य परम्पराओं के निर्वाह में कृतकाम होगी।

इन शब्दों के साथ मैं आज के इस उत्सव का अध्यारंभ करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् की वाणी में समाज का हस्तक्षेप

डॉ० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् की वाणी है। यह महाभारत के समय युद्धक्षेत्र में कृष्ण-अर्जुन के बीच जो वाद-विवाद या संवाद-हुआ था उसका नाम भगवद्गीता रक्खा गया। इस कारण गीता की भाषा विशुद्ध संस्कृत है और यदि हम शुद्ध वाणी बोलने का प्रयास करते तो गीता के बाद की संस्कृत तथा वर्तमान हिन्दी में गीता के शब्दों का एक ही अर्थ बना रहता। भाषा-शास्त्र का नियम है कि शब्दों का अर्थ, समय के प्रभाव से और मनुष्यों की जीभ, कान, कंठ आदि ध्वनि-यन्त्र दोषपूर्ण होने के कारण शब्दों में बहुधा ध्वनि तथा शब्दों के अर्थ में महान् परिवर्तन आ जाता है। दिल्लगी देखिये कि भगवान् की वाणी का अर्थ भी बाद की संस्कृत और हिन्दी में कुछ का कुछ हो गया है। कई स्थानों पर तो यह अर्थ हास्यास्पद बन गया है। उदाहरण के लिए गीता का एक पद लीजिए :—

तेषाम् नित्याभियुक्तानाम् योग-क्षेमम् वहाम्यहम्।

नयी संस्कृत या हिन्दी के अनुसार **अभियुक्त** उसे कहते हैं जिस पर अदालत में किसी अपराध के लिए मामला चलाया गया हो। नित्य-अभियुक्त वह है जो दिन में किसी कसूर के कारण अदालत में हाजिर किया जाता हो और रात में हवालात या जेल की हवा खाता हो। एक समय था जब कि कांग्रेस के कुछ लोग प्रायः नित्य ही अदालत में हाजिर किये जाते थे और उन्हें सजा भी दी जाती थी। इसलिये गीता का उक्त पद उनपर भी लागू होता है। क्योंकि वे नित्य ही **अभियुक्त** तथा अपराधी बने रहते थे, उनपर सदा कोई न कोई अभियोग लगा ही रहता था और वे जेल की चिड़िया कहलाते थे। क्या उक्त श्लोक में भगवान् ने जो **नित्याभियुक्त** का प्रयोग किया है वह आजकल के उक्त अर्थ में है? यदि नहीं तो हमारा संस्कृत का ज्ञान अधूरा है और भाषा-शास्त्र का यह नियम उचित ही मालूम होता है कि शब्दों के अर्थ समय-समय पर, मनुष्य में कुछ त्रुटियाँ होने के कारण बदलते जाते हैं। गीता में **नित्याभियुक्त** का अर्थ है 'जिनका मन नित्य भगवान् के साथ लगा या जुड़ा रहता है।' इसमें **अभि**-उपसर्ग का अर्थ विकृत नहीं किया गया है। धीमे-धीमे हमारे अज्ञान के कारण आज **अभियुक्त** शब्द का अर्थ कुछ-का-कुछ हो गया है। यह भी भगवान् की वाणी को बिगाड़ना नहीं है, मनुष्य की कमजोरी का फल है।

एक शब्द और देखिये। गीता में लिखा है :—

सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि

इसमें **कृतान्त** शब्द का प्रयोग हुआ और इस शब्द का उपयोग बहुत ही उचित रूप में किया गया है। **कृतान्त** **कृत-अन्त** है। इसका अर्थ हुआ 'सिद्धान्त'। सिद्धान्त का अर्थ है कि 'जिसका अन्त या निदान सिद्ध या पक्का कर लिया गया हो।' अब यह अर्थ संस्कृत कोषों तक में नहीं पाया जाता। इन कोषों में है **कृतान्तो यमुनाभ्राता** अर्थात् 'कृतान्त यम का नाम है।' पाठक देखें कि भगवान् ने **कृतान्त** का जिस अर्थ में प्रयोग किया है वह आज नदारद है। केवल अँगरेज कोषकार मोनियर विलियम्स् ने अपने कोष में गीता से उद्धृत करके इसका ठीक-ठीक गीता-संगत अर्थ किया है। हिन्दी कोषों में तो **कृतान्त** का अर्थ है 'यम आदि'। इस स्थान में **कृतान्त** का अर्थ है 'वह सांख्य दर्शन जिसके विषय में विद्वानों ने सारे विश्व का विदित ज्ञान मथकर पक्का निदान या सिद्धान्त निकाल लिया हो।' यह अर्थ व्युत्पत्ति-सम्मत भी है और यहाँ पर ठीक बैठता है। भगवान् के मुँह से निकले इस शब्द के अर्थ को हमने भुला दिया है। अब **कृतान्त** उस यम के लिये आता है जो विश्व के सब जीवों को मारकर उनका अन्त कर देता है।

एक और शब्द जो हमने गीता में प्रयुक्त किये हुए अर्थ में एकदम भुला दिया है वह है **विषम**। इस **विषम** की व्युत्पत्ति **वि-सम** है, जिसका अर्थ है 'वह पदार्थ या स्थिति जिसने मनुष्य की स्थिरता या समता का सन्तुलन बिगाड़ दिया हो।' गीता में निम्न पद आया है जिसमें उक्त शब्द प्रयुक्त हुआ है :—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।

इसका अर्थ है 'हे अर्जुन! तू इस समय महान् संकट में पड़ा हुआ है, तेरे पास ऐसे गंदे विचार कैसे आये?' यहाँ पर **विषम** का अर्थ 'घोर संकट है।' ऐसा मालूम पड़ता है कि इस शब्द के अर्थ की परम्परा महाभारत काल के बाद अधिक समय तक न चल सकी। प्राकृत और अपभ्रंश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी परम्परा बहुत ही क्षीण दिखाई देती है। पुरानी हिन्दी में यह शब्द मुझे अभी तक गीता में प्रयुक्त अर्थ में न मिला। प्राकृत और हिन्दी में यह विशेषण ही माना जाता है। पाठक देख रहे हैं कि गीता में यह शब्द नाम या संज्ञा है। इस सब का अर्थ यही है कि भारतीय आर्यों ने प्राचीन संस्कृत की परम्परा ठीक न रख सकने के कारण गीता के शब्दों का प्रयोग छोड़ दिया और उनका अर्थ बदल दिया है। यह कार्य भगवान् की वाणी के सम्मत भले ही न हो किन्तु भाषा-शास्त्र-सम्मत अवश्य है। भाषा-शास्त्र ने बताया है कि शब्दों के अर्थ मूल में जो कुछ भी हों, समाज उनका अर्थ संकुचित तथा विस्तृत कर देता है और उनके भीतर नये-नये अर्थ डालता रहता है।

एक और शब्द लीजिए। हिन्दी में **कार्य** का एक मात्र अर्थ रह गया है 'काम'। प्राकृत में भी इसका रूप **कज्ज** है जिससे हिन्दी में **काज** बना है। हिन्दी में **काम-काज** शब्द भी चलता है जिससे एक रूप **काम-काजी** भी बनता है जिसका अर्थ है 'अच्छी तरह काम करने वाला।' इन सब में **काज** का अर्थ काम रह गया है। अब गीता का श्लोक लीजिए :—

कार्य्यं कर्म करोति यः।

इस पद का अर्थ है 'जो करने के योग्य (समाज कल्याण के लिए) काम करता है' यहाँ कार्य्य का अर्थ '**काम**' नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है 'करने योग्य, कर्तव्य **कर्म**'। हिन्दी भाषा में हम **कार्य, काज, कारज, कर्म, काम** आदि शब्द एक ही अर्थ के काम में लाते हैं। गीतावाला अर्थ कभी का विस्मृति के गर्भ में लीन हो गया है।

एक तमाशा देखिये। गीता में एक श्लोक है :—

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥

इस श्लोक में **उदपान** का अर्थ 'कुआँ' है। इस शब्द में **उद** और **पान** दो भिन्न-भिन्न शब्द हैं। **उद** का अर्थ 'पानी' है और पान शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह महाभारत के समय के बाद संस्कृत भाषा से ही उड़ गया है। **पान** वास्तव में **पा** 'पीना' का एक रूप है। जिस प्रकार **पा** के अन्य रूप **पात, पात्रि, पातर, पात्र** आदि रूप मिलते हैं उसी प्रकार यह पा-न भी एक रूप है। इसका अर्थ है 'पात्र'। पानी के बड़े पात्र का नाम ही 'कुआँ' है। इसका प्रयोग छान्दोग्योपनिषद, मनु तथा महाभारत में ही हुआ है। उसके बाद संस्कृत भाषा में यह शब्द मर गया है, फिर इसका प्रयोग नहीं मिलता। यह प्राकृत और हिन्दी तक पहुँचा ही नहीं। तो भी यह भाषा-शास्त्र के इस नियम की पुष्टि करता है कि एक धातु या नाम-धातु से नाना प्रत्यय जोड़कर एक ही अर्थ के कई शब्द बन जाते हैं। हिन्दी में तो हम **पान** चबाते हैं। हिन्दी **पान** संस्कृत के **पर्ण** शब्द से प्राकृत में **पण्ण** होकर बना है। इसका गीता के **पान** से कोई सम्बन्ध नहीं है। और न ही यह हिन्दी कोषों के अनुसार पीने या शराब पीने का पर्यायवाची है। इसका तो केवल मात्र अर्थ है 'वह सुरक्षित स्थान या पात्र जिसमें किसी पेय पदार्थ की रक्षा की जाती हो।'

अँगरेजी में पुल के लिए बृज शब्द है। इस बृज के हिज्जे हैं (bridge) जिससे पता चलता है कि यह शब्द किसी **वृक्त** रूप से बना होगा, जो अब नहीं मिलता है। किन्तु गीता में एक पद है **सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।**

इस पद में जो **वृजिन** शब्द है उसमें इस पद के प्रसंग में अँगरेजी **बृज** शब्द की भी याद आती है। किन्तु भाषा-शास्त्र में 'जितने काले उतने मेरे बाप के साले' का सिद्धान्त नहीं चलता। समान-ध्वनिवाले शब्दों का सब ही आर्य्य-भाषाओं में एक अर्थ नहीं होता। स्वयं भारत की नवीन आर्य्य भाषाओं के शब्दों के अर्थों में भिन्नता आ जाती है। हिन्दी में **हमारी चेष्टा विफल** हुई का अर्थ होता है 'हमारा यत्न व्यर्थ गया।' मराठी और हिन्दी की एक बोली कुमाउनी में **चोष्टा** का अर्थ ही बदल जाता है। इनमें **चेष्टा** का अर्थ 'स्त्रियों के नखरे' हो जाता है। संस्कृत में भी कहीं-कहीं इसका आभास मिलता है। पञ्चतंत्र में निम्न पद है :—

आकारैरिंगितैर्चेष्ट्या वक्त्रया भाषणेन च

इसका अर्थ है कि 'मनुष्य के मन की स्थिति' रूप, इशारों, आँख, नाक, गला आदि अंगों के हिलाने-डुलाने (नाना नखरों, इशारों), मुँह तथा बोलने के ढंग से (ताड़ ली जाती है)। **हम जल पीते** हैं और हमारे बंगाली भाई **जल खाते** हैं (जल खाइ, जल खावार) आदि प्रयोग इस तथ्य के प्रमाण हैं। गीता का **वृजिन** अँगरेजी (bridgeing) नहीं है, यह तो **वृज** 'वर्जन करना', छोड़ना धातु का एक रूप है। वृजिन का अर्थ है '(वह मनुष्य जो समाज-कल्याण के काम में) वर्जन करने योग्य काम करता है'। इसका दूसरा अर्थ है वर्जन योग्य काम अथवा पाप। इस पद में **ज्ञानप्लव** महत्त्वपूर्ण है। **प्लव** प्रायः सब आर्य्य भाषाओं में मिलता है। अँगरेजी शब्द flood (**फ्लड्**) हमारे प्राचीन-भारतीय आर्य्य शब्द **प्लुति** का परिवर्तित रूप है। Fleet (**फ्लीट**) शब्द का अर्थ अँगरेजी में 'नावों या जहाजों का बेड़ा' है। 'अँगरेजी में भ्रम से **प्लू** धातु का flow float (**फ्लोट**) बहना, जहाज बहाना आदि हो गया है' जर्मन में fliessen 'बहना, बहाना' रूप है। आइसलेण्ड यूरप के उत्तर में एक बहुत छोटा द्वीप बहुत शिक्षित तथा सुसंस्कृत है। यहाँ की आबादी प्रायः १॥ लाख है; किन्तु इन मुट्ठी भर वीरों ने प्रायः एक हजार वर्ष पुरानी, नौरवे की भाषा को अभी तक सुरक्षित कर रक्खा है। यह भाषा भी आर्य्य परिवार में है। इस भाषा में अँगरेजी float का रूप fljóta (फ्ल्योटा) हो गया है, किन्तु इन सबका मूल रूप **प्लु** धातु का **प्लुत** रूप ही है। ग्रीक में भी इस **प्लु** धातु से एक शब्द बना है। ग्रीस देश के आस-पास के समुद्र में कार्तिक से बरसात आरंभ होती है। मल्लाह लोग इन समुद्रों में शाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या जहाज चलाना कुछ समय के लिए रोक लेते हैं, नदियों, समुद्रों आदि में बाढ़ आ जाती है। इस कारण ग्रीक भाषा में इस **ल्यु** (बाढ़ आना, जल बहना आदि) से कृत्तिका नक्षत्र को pleiades (पलेइआदेस्) कहते हैं। फारसी का **पुल** शब्द भी प्लव का निकट संबंधी मालूम होता है। संस्कृत में प्लव नाव के अर्थ में सब कोषों में मिलता है। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि इसका अर्थ कभी 'नाव-का-पुल' भी रहा होगा। **ज्ञानप्लव** से भी ऐसा आभास मिलता है कि भगवान् कह रहे हैं '(हे अर्जुन!) तू सब दुष्ट कर्मों और दुष्टों के सागर या नदी के वेग को ज्ञान की नावों के पुल द्वारा पार कर लेगा।' इस समय मुझे याद नहीं है किन्तु कुछ ऐसा स्मरण हो रहा है कि रामायण में भी कहीं ऐसा प्रयोग हुआ है। संस्कृत के विद्वानों से निवेदन है कि वे ऐसे प्रयोग का संग्रह करें।

हिन्दी में हम परिभाषा का अर्थ करते हैं 'किसी ज्ञान या विज्ञान में प्रयुक्त विशेष शब्दों का स्पष्टीकरण या खुलासा'। यह शब्द संस्कृत व्याकरण में भी काम में आया है, किन्तु गीता में इस परिभाषा के स्थान पर भगवान् ने केवल भाषा शब्द दिया। निम्न श्लोक कई दृष्टियों से विचारणीय है :—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थित धीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥

इस श्लोक में अर्जुन आज कल की हिन्दी में पूछते हैं कि 'स्थित-प्रज्ञा वाले पुरुष की परिभाषा कैसे की जायगी' किन्तु अर्जुन ने **परिभाषा** शब्द का प्रयोग नहीं किया है, उसने केवल **भाषा** शब्द से **परिभाषा** का बोध कराया है। भाषा-शास्त्र का यह एक नियम है कि आप जितने कम, छोटे और ओजस्वी शब्दों का अपने वाक्य में प्रयोग करेंगे, पाठकों के हृदय में वह उतना ही अधिक प्रभाव डालेगा। सरल और व्यंजक शब्द वाक्य की जान है। इसके अतिरिक्त व्याकरण-कारों का कहना है—'अर्ध मात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवम् मन्यन्ते वैय्याकरणाः' अर्थात् शब्द की आधी मात्रा घटने से भी व्याकरण-कार पुत्रोत्सव के समान हर्ष मानते हैं। अर्जुन ने **परिभाषा** के स्थान पर भाषा का प्रयोग करके महत्व का काम किया है। **भाषा** शब्द **भाष्** धातु से निकला है। धातु-पाठ में है **भाष् व्यक्तायाम् वाचि** अर्थात् **भाष्** का अर्थ है 'व्यंजक याने साफ-साफ समझ में आनेवाली बात कहना'; ऐसी बात कहना जिससे अपना अर्थ स्पष्ट हो जाय। इस दशा में **भाषा** शब्द में **परि**— लगाने की क्या आवश्यकता है। आडम्बर छोड़ने में ही सबकी शोभा है। भगवान् और अर्जुन की वाणी में बड़ी स्पष्टता है और उनका शब्दों का चयन बहुत ही उत्तम है।

अब और देखिये; इस श्लोक से एक रहस्य और खुलता है। भगवान् के समय की संस्कृत में एक ही शब्द विशेषण और संज्ञा भी होता था। आजकल हम **गरीब गया** वाक्य अधूरा समझते हैं। **गरीब आदमी गया** कहने से वाक्य पूरा माना जाता है; क्योंकि खाली गरीब शब्द केवल विशेषण बताया गया है और इसका अर्थ दिया गया है 'नम्र, दीन, हीन, दरिद्र, निर्धन, कंगाल'। अर्थ के सभी शब्द विशेषण हैं। इनके आगे संज्ञा शब्द न होने से वाक्य अधूरा ही रह जायगा। ऊपर के श्लोक में देखिये स्थितप्रज्ञ विशेषण और संज्ञा दोनों हैं। इसके अर्थ हैं :—(१) स्थिर-बुद्धि, (२) स्थिर-बुद्धिवाला मनुष्य। ऐसे ही शब्द **समाधिस्थ** और **स्थितधी** भी हैं। पाठक यह भी देखेंगे कि इन तीनों शब्दों के अर्थ एक ही हैं और ये तीनों शब्द संज्ञा और विशेषणों दोनों के स्थान पर प्रयुक्त किये जा सकते हैं। ऐसा एक शब्द **पाप** है जो स्वयम् भगवान् के मुँह से निकला है। गीता में एक श्लोक है :—

भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्

इसका अर्थ है 'जो पापी लोग (पापाः) केवल अपने लिए भोजन बनाते या बनवाते हैं वे पाप खाते हैं।' यहाँ **पापाः** पाप शब्द का बहुवचन है और पाप (दुष्टकर्म) या दुष्कृत को कहते हैं; किन्तु इस स्थान पर **पापाः** का अर्थ है 'पापी लोग'। गँवारी हिन्दी में **गरीब जा रहा है** चलता है, उर्दू में भी गरीब-गुर्बा जा रहे हैं चलता है; किन्तु 'खरी' बोली में गरीब केवल विशेषण ही रह गया है। **पापा** का ही अर्थ लीजिए। इसका अर्थ हिन्दी कोषों में 'वह कर्म जिसका फल इस लोक और परलोक में अशुभ हो। धर्म या पुन्य का उलटा। बुरा काम। गुनाह। अघ। पातक।' दिया गया है; किन्तु भगवान् ने **पाप** का एक अर्थ पापी भी किया है—इस कारण आधुनिक संस्कृत कोषों में **पाप** का अर्थ 'Sin, A wicked man' दिया गया है। खेद है कि हम हिन्दी भाषा-भाषी भगवान् की वाणी से विशेष लाभ नहीं उठा सके।

इस प्रकार के शब्द गीता में बहुत हैं। उनकी यदि सूची बनाई जाय तो वह लम्बी हो जायगी। उदाहरणार्थ— **संहार, संग्रह, भूत** (सर्वभूतहिते रताः) **ज्यायसी** (=फा० ज्या-दह, जाय-द), **बुद्धि** (=ज्ञान), **आराम** (इन्द्रियाराममय), **ज्वर** (=गरमी, सन्ताप) आदि आदि शब्द ऐसे हैं कि जिनका गीता में प्रयुक्त अर्थ लुप्त हो गया है। इनका अध्ययन भाषा-शास्त्र तथा गीता का शुद्ध अर्थ समझने के लिए भी नितान्त आवश्यक है। भगवान् की वाणी में मनुष्य का यह स्वाभाविक हस्तक्षेप विचारणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या 'राष्ट्रिय' का अर्थ वास्तव में 'राज्य का साला' है ?

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

मेरे पास संस्कृत के दो कोश और आठ हिंदी कोश हैं। इनके जिक्र के पहले पाणिनि ने इस विषय पर जो लिखा है उसे देख लेना चाहिए। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'राष्ट्रिय' शब्द मिलता है। पाणिनि का सूत्र है :—

'राष्ट्रावारपाराद्घखौ' ॥४।२।९३॥

'सोऽस्य निवासः' (४।३।८९) पाणिनि का दूसरा सूत्र है, जिसकी व्याख्या 'अष्टाध्यायी-प्रवेशिका' नामक ग्रंथ के रचयिता ने जो उदाहरण दिये हैं, उनमें 'मथुरा' का 'माथुर' और 'राष्ट्र' का 'राष्ट्रिय' मिलते हैं।

'राष्ट्र' में 'घ' प्रत्यय जोड़कर 'राष्ट्रिय' शब्द बनता है। 'राष्ट्र' में घ (इय) प्रत्यय के क्या वे ही अर्थ होंगे जो पाणिनि ने अपने सूत्र—'शेषे'—में दिये हैं ? इस सूत्र की व्याख्या में भट्टोजी दीक्षित ने ये शब्द लिखे हैं—'अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राऽणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। उलूखले क्षुण्ण औलूखले यावकः। अश्वैरुह्यते आश्वो रथः। चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। शेष इति लक्षणं चाधिकारश्च। तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

यह सूत्र लक्षणसूत्र है और अधिकार सूत्र भी है। जिन प्रत्ययों का विधान शैषिक प्रत्ययों में किया गया है वे, पाणिनि के अनुसार, उन सब अर्थों में प्रयुक्त होंगे जिनका इस प्रसंग में जिक्र किया गया है। उदाहरण के लिए 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ 'जात', 'प्रोक्त', 'आगत', 'निवास', आदि, आदि होगा। 'राष्ट्रिय' का अर्थ हुआ 'राष्ट्र में पैदा हुआ', 'राष्ट्र में किया गया', 'राष्ट्र में बेचा गया', 'राष्ट्र में खरीदा गया', 'राष्ट्र में प्राप्त', 'राष्ट्र के उपयुक्त', 'राष्ट्र में निवास', 'राष्ट्र से आया हुआ', 'राष्ट्र में उद्गम हो जिसका', 'राष्ट्र को जानेवाला रास्ता', 'राष्ट्र में प्रवेश करने का रास्ता', 'ऐसी पुस्तक जिसमें राष्ट्र का इतिहास दिया गया हो', 'राष्ट्र का रहनेवाला' या ऐसा निवासी जिसके बाप-दादा राष्ट्र में पहले ही से रहते चले आये हों। 'अमरकोष' के रचयिता ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि 'राज्ञश्यालस्तु राष्ट्रियः' यानी, राजा के साले को भी 'राष्ट्रिय' कहेंगे। पर उनसे कई सौ वर्ष पहले शूद्रक ने अपने 'मृच्छकटिक' नामक नाटक के नवम अंक में 'राष्ट्रिय-श्यालः' वाक्य का प्रयोग किया है। इस वाक्य का अर्थ होगा 'राजा का साला।' स्पष्ट है कि शूद्रक के समय में 'राष्ट्रिय' का अर्थ होता था 'राजा' न कि 'राजा का साला'। आपटे ने अपने संस्कृत-अँगरेजी कोश में 'राष्ट्रिय' का अर्थ किया है "राष्ट्रे भवः यः स राष्ट्रियः।" अर्थात्, जो राष्ट्र में पैदा हुआ, उसे 'राष्ट्रिय' कहेंगे। इस शब्द का दूसरा अर्थ होगा, आपटे के अनुसार, 'राजा' और उसके बाद तीसरे अर्थ में इस शब्द से 'राजा का साला' सूचित होगा।

अब आइए हिंदी कोशों की ओर। इन कोशों में से दो में केवल "राष्ट्रीय" मिलता है; अन्य दो कोशों में केवल 'राष्ट्रिय' के दर्शन होते हैं, और शेष चार कोशों ने 'राष्ट्रीय' और 'राष्ट्रिय' के अर्थ दिये हैं।

नारायण हिंदी-शब्द-सागर के पृष्ठ ५६८ पर शब्द 'राष्ट्रीय' का अर्थ दिया गया है। इस कोश के अनुसार 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ होगा 'राष्ट्र-सम्बन्धी।' "हिंदी शब्दकोश" में 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ दिया गया है—वि०-(सं०) राष्ट्र-सम्बन्धी, अपने राष्ट्र या देश का। इन दोनों कोशों में देशीय के वजन पर 'राष्ट्रीय' शब्द बना है लेकिन उन्होंने पाणिनि के मत से पूर्ण असहमत होते हुए 'राष्ट्रिय' शब्द का उल्लेख नहीं किया है।

अन्य दो कोशों में 'राष्ट्रीय' शब्द हमें नहीं मिलता। उन्होंने 'राष्ट्रीय' के स्थान में 'राष्ट्रिय' शब्द ही दिया है। 'संक्षिप्त प्रामाणिक कोश' में 'राष्ट्रिय' का अर्थ यह है—वि० (संस्कृत) राष्ट्र-सम्बन्धी। राष्ट्र का। अपने राष्ट्र की एकता, महत्ता और उन्नति, आदि से सम्बन्ध रखनेवाला। इस कोश के पृष्ठ ४०० पर 'राष्ट्रिय' शब्द के ऊपर लिखे हुए अर्थ पाठक को मिलेंगे। इसी तरह 'सरल हिंदी कोश' में केवल 'राष्ट्रिय' शब्द मिलता है। उसने 'राष्ट्रीय' शब्द नहीं दिया। 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ इस कोश ने इस प्रकार दिया है—राष्ट्र का, राष्ट्र की उन्नति चाहने वाला, (पृष्ठ ५८१)। शेष चार कोशों में हमें 'राष्ट्रिय' और 'राष्ट्रीय' दोनों शब्द मिलते हैं। 'श्याम संक्षिप्त-हिंदी-कोश' में 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ दिया है जो अँगरेजी शब्द "नैशनल" का होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

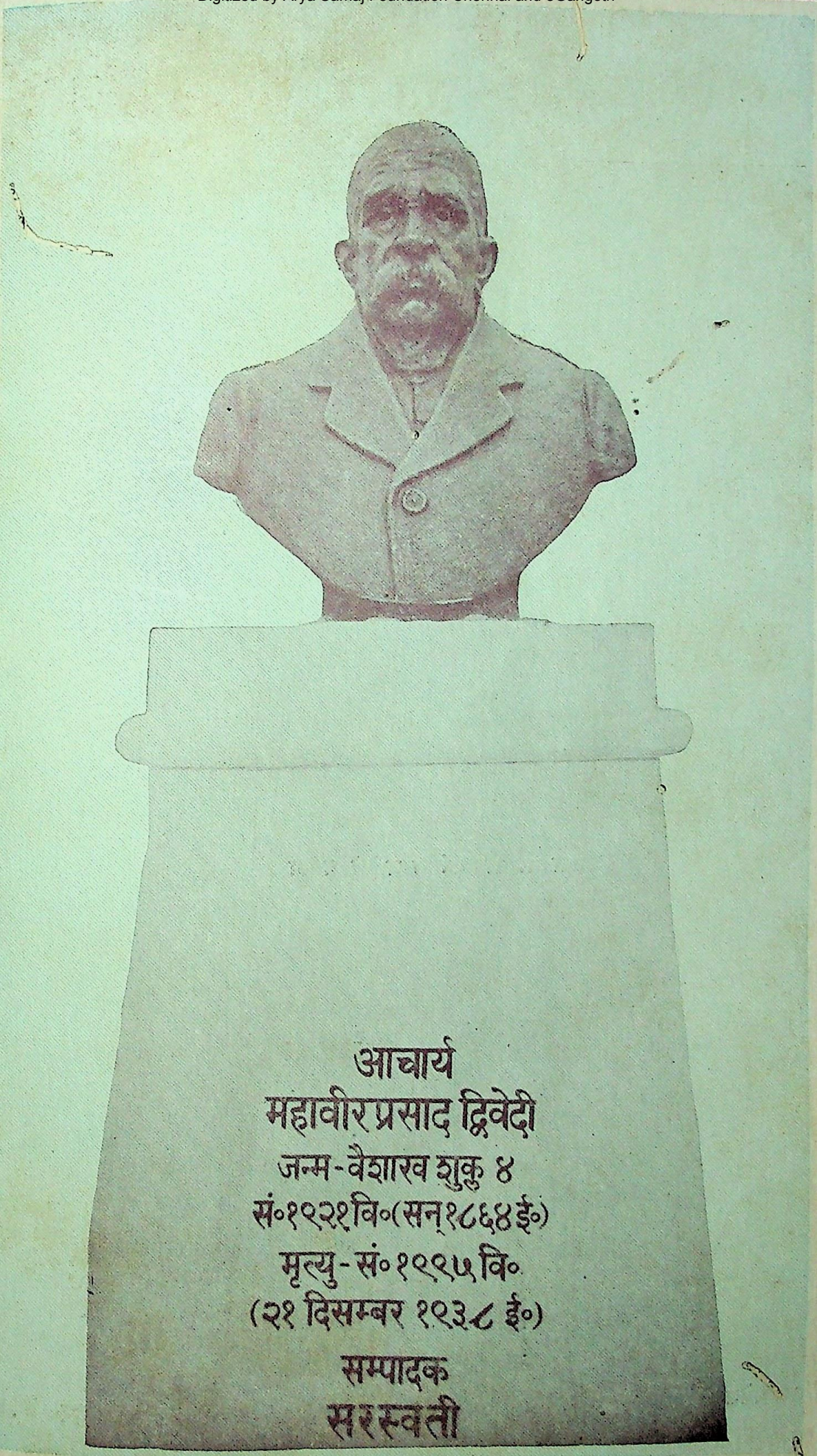

सरस्वती हीरक-जयन्ती के अवसर पर स्थापित
आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रतिमा

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटना भारतीय कांग्रेस अधिवेशन का तोरण द्वार

कांग्रेस अधिवेशन में श्री नेहरूजी भाषण करते हुए

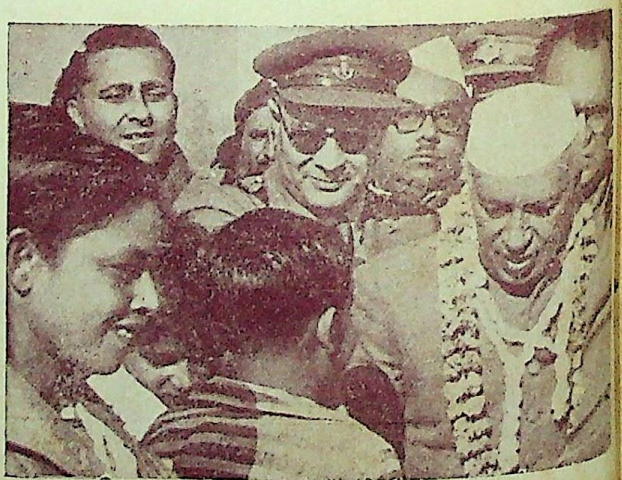

कांग्रेस अधिवेशन में जाते हुए श्री नेहरूजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में प्रचलित 'राष्ट्रीय' शब्द भी लिया गया है। उसका भी वही अर्थ है जो अँगरेजी के "नैशनल" शब्द से सूचित होता है। 'प्रामाणिक हिंदी-कोश', 'हिंदी-साहित्य-कोश' और 'राष्ट्र-भाषा-कोश' में दोनों शब्द, 'राष्ट्रिय' और 'राष्ट्रीय', हमें मिलते हैं। "राष्ट्र-भाषा-कोश" के पृष्ठ ९३२ पर 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ दिया गया है--राजा, राजा का साला, राष्ट्र का; और 'राष्ट्रीय' का अर्थ दिया है—(सं० पु०) राजा का साला, राष्ट्र का या राष्ट्र-सम्बन्धी। 'प्रामाणिक-हिंदी-कोश' में 'राष्ट्रिय' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है--'राष्ट्रिय'--वि० (सं०) (१) राष्ट्र-सम्बन्धी। राष्ट्र का। (२) अपने राष्ट्र की एकता, महत्ता, उन्नति आदि से सम्बन्ध रखने वाला। इस कोश में 'राष्ट्रीय' शब्द के अर्थ वे ही बताये गये हैं, जो 'राष्ट्रिय' शब्द के अर्थ होंगे। अतएव इस कोश-कार ने हिदायत की है कि 'राष्ट्रीय' शब्द के अर्थ जानने के लिए पाठक को 'राष्ट्रिय' शब्द को देखना चाहिए। हिंदी में, इस कोश के अनुसार, 'राष्ट्रिय' का अर्थ राजा का साला नहीं होता। इस कोशकार ने 'राष्ट्रिय' शब्द को मुख्य और 'राष्ट्रीय' को गौण माना है। दोनों ही शब्दों के अर्थों में 'राजा का साला' हमें देखने को नहीं मिलता। 'हिंदी साहित्य-कोश' के पृष्ठ ६०४ पर 'राष्ट्रिय' या 'राष्ट्रीय' शब्दों का अर्थ दिया है—राष्ट्र का। इस कोश में भी 'राजा के साले' का कहीं कोई जिक्र नहीं है। ऐसी दशा में हमें यह मानना पड़ेगा कि 'अमर-कोश' के रचयिता ने 'राष्ट्रिय' का जो अर्थ--"राजा का साला"--बताया है वह अर्थ हिंदी के सात कोशों में हमें नहीं मिलता। केवल 'राष्ट्रभाषा-कोश' में 'राष्ट्रिय' या 'राष्ट्रीय' शब्दों के अर्थों में एक अर्थ यह भी दिया है कि 'राजा के साले' को भी 'राष्ट्रिय' या 'राष्ट्रीय' कहते हैं।

जिन लोगों का यह कथन है कि संस्कृत भाषा में 'राष्ट्रिय' का अर्थ केवल 'राजा का साला' होता है, वह उनकी भूल है। जैसा ऊपर बताया गया है, पाणिनि के समय में इस शब्द का यह सीमित अर्थ नहीं था। शूद्रक के समय में भी 'राष्ट्रिय' का अर्थ 'राजा का साला' नहीं होता था। अन्यथा वह अपने नाटक में 'राष्ट्रियश्यालः' वाक्य का प्रयोग न करते। हिंदी में इस शब्द का प्रयोग 'राजा के साले' के अर्थ में नहीं होता। आठ हिंदी-कोशों में सात कोश 'राष्ट्रिय' या 'राष्ट्रीय' शब्द का व्यापक अर्थ देते हैं, जिनमें 'राजा का साला' सीमित अर्थ नहीं शामिल है। पाणिनि ने 'शेष' अर्थों में शब्दों में 'अण्' तद्धित प्रत्यय के जोड़ने की सम्मति दी है, लेकिन जिन शब्दों के साथ किसी प्रकार के दूसरे तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं उनका भी उल्लेख अपवाद के रूप में पाणिनि ने कर दिया है। उदाहरण के लिए पाणिनि के 'राष्ट्र' शब्द में 'अण्' तद्धित प्रत्यय न जोड़ा जायेगा, बल्कि उसमें जोड़ा जायेगा 'घ' (इय) प्रत्यय, और उसके वे सभी अर्थ होंगे, जिनका उल्लेख हमने ऊपर कर दिया है।

पाणिनि का प्रमाण इस 'राष्ट्रिय' शब्द के सभी अर्थ जानने को हमारे लिए पर्याप्त है। जो पाणिनि की अष्टाध्यायी को प्रमाण नहीं मानते, उन्हें शूद्रक के अर्थ को ठीक मान लेना चाहिए। अमरकोश ने 'राष्ट्रिय' का जो अपने समय प्रचलित रूढ़ अर्थ दिया है, उससे इस बात की पुष्टि होती है कि पाणिनि के समय से 'अमर-कोष' काल तक पहुँचते हुए 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ ही बदल गया था।

यह घटना संस्कृत भाषा के विकास-क्रम को देखते हुए कोई नयी नहीं है। 'मित्र' शब्द को लीजिए। किसी समय 'मित्र' शब्द का वह अर्थ न होता था, जो उसका अर्थ आज लगाया जाता है। 'विश्वामित्र' नाम में इस शब्द के पुराने अर्थ को देख लीजिए। पाणिनि को 'विश्वा-मित्र' शब्द को सिद्ध करने के लिए एक नये सूत्र--मित्रे चर्षौ।६।३।१३०--की रचना करनी पड़ी; अर्थात् विश्वं मित्रं यस्य, विश्वस्य मित्रं वा पूर्वपद-दीर्घः। क्यों पाणिनि को पूर्वपद के दीर्घ करने की आवश्यकता पड़ी ? उन्हें यह आवश्यकता इसलिए पड़ी कि 'मित्र' शब्द का उनके समय में वह अर्थ न होता था जो प्राचीन समय में मित्र का अर्थ होता था। 'मित्र' का अर्थ ही प्राचीन समय से बदलकर पाणिनि के समय में कुछ का कुछ हो गया। अतएव विश्वामित्र शब्द को सिद्ध करने के लिए उन्हें इस सूत्र-विशेष की रचना करनी पड़ी।

हमें यह मालूम है कि कुछ सम्मानित सज्जन यह नहीं मानते कि वैदिक काल में मित्र शब्द का वही अर्थ होता था जो पाणिनि के समय में उसका अर्थ होता था। हमारा प्रमाण तो शब्द 'विश्वामित्र' है। पाणिनि के नियमों के अनुसार शब्द का शुद्ध रूप होगा 'विश्वमित्र', न कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विश्वामित्र।' इसीलिए पाणिनि को एक नये सूत्र की रचना करनी पड़ी, ताकि उनके नियम के अनुसार 'विश्वामित्र' सिद्ध हो जाये, न कि 'विश्वमित्र।'

जो दशा 'मित्र' शब्द की हुई, वही दशा संस्कृत साहित्य में, मालूम होता है, 'राष्ट्रिय' शब्द की भी हुई। 'अमरकोश' के रचयिता के समय में, जान पड़ता है, 'राष्ट्रिय' शब्द का एक सीमित पर रूढ़ अर्थ में प्रयोग होता था। लेकिन हिंदी वाले उसे नहीं मानते और न 'राष्ट्रिय' शब्द ही का प्रयोग करते हैं। उनके लिए जैसे 'देशीय' शब्द है वैसे ही 'राष्ट्रीय' शब्द है। तद्धित प्रत्ययों के लगाने में हिंदी के लेखकगण पाणिनि के बताये हुए नियमों का निरंतर उल्लंघन करते जाते हैं। 'अन्तर्राष्ट्रीय' ही वे लिखते हैं, न कि 'आंताराष्ट्रीय।' इसे हिंदी वालों की जिद न सोचना चाहिए। उन्हें तो पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के बताये हुए नियमों का बोध नहीं है। इसीलिए वे ऐसा करते हैं।

हमने लिखा था कि जिन तद्धित प्रत्ययों में ञ्, ण् और क् इत् हों उनके आदि स्वर की वृद्धि यदि न की जाय और प्रत्यय शब्द में जोड़ दिये जायें तो हिंदी के लेखक संस्कृत नियमों के इस जाल से छुटकारा पा जायेंगे। इसीलिए हमने लिखा था कि 'भूत' का 'भूतिक', 'इतिहास' का 'इतिहासिक' और 'अलंकार' का 'अलंकारिक' यदि हम लिखने लगें तो हिंदी के सरल होने की एक कठिनाई मिट जायेगी। लेकिन पोंगापंथियों ने मेरे इस सुझाव का घोर विरोध किया है। उनके इस विरोध से हताश न होकर हम फिर इस बात को दोहराते हैं कि आदि स्वर की वृद्धि न की जाये जब ऐसे तद्धित प्रत्यय शब्दों में जोड़े जाएँ जिनमें ञ्, क् और ण् इत् हों। पोंगापंथियों के लिए मैंने यह सुझाव दिया था कि ऐसे शब्दों को वे वही स्थान दें, जो तद्भव शब्दों को हिंदी में प्राप्त है। यदि वे मेरी इस सलाह को भी अपनी हठधर्मी में नहीं मानते और अपनी बात को निबाहने में लगे हैं तो उनकी वही दशा होगी जो उन लोगों की हुई जो 'मुख' को 'मुँह' बनाने का विरोध करते थे। इस समय भी हमारे पोंगापंथी 'राष्ट्र' का विशेषण 'राष्ट्रीय' बताते हैं यद्यपि पाणिनि का सूत्र, जो हमने ऊपर दिया है, उनके ऐसा करने के विरुद्ध है। हिंदी-भाषा तो स्वतंत्र भाषा है, अतएव उसके लिए संस्कृत नियमों का पालन करना ठीक नहीं जँचता। उसे संस्कृत-व्याकरण के नियमों में जकड़ना असंभव है। स्वच्छन्द गति से उसकी धारा, जब जैसी वह चाहेगी, तब तैसी बहेगी।

अपनी उमर सम्हालो

श्री नरेन्द्र चतुर्वेदी 'चंचल'

प्रभु ! अब अपनी उमर सम्हालो ऐसा जीवन नहीं चाहिए,
एक अकेला मैं, लाखों गम, ऐसे जिया नहीं जाता है!

गम में जीता भी लेकिन मैं,
सुख की चाह बनाती निर्बल!
नहीं झुकाता तम को माथा--
यदि तारे का होता सम्बल।

असमय घटा घिरी अम्बर में, कैसे खाली गागर भर लूं?
बिना प्यास के पानी आखिर सबसे पिया नहीं जाता है!

सुधा न पाई दुख भी क्या है?
किन्तु हलाहल रूठ गया है!
किस बिजली को गले लगाएँ
बादल का दिल टूट गया है!

सपने आँखों के गुलाम हैं, पर तनहाई के साथी भी
जब सूरज की पड़े जरूरत चंदा लिया नहीं जाता है!

आशा थी फूलों की लेकिन
ढीठ शूल भी हाथ न आये!
तुमको मुस्कानों का बल है--
आँसू-मोती कौन लुटाये।

दुनियाँ बहुत व्यस्त है भाई, नहीं तुम्हारा दुख उसका है,
काम सिर्फ जो गीतों का है, सबसे किया नहीं जाता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारी का नूतन परिवेश

श्री आद्याप्रसाद त्रिपाठी

संस्कृत साहित्य को हिन्दी साहित्य का जनक कहा जाय तो अनुचित न होगा। संस्कृत साहित्य में हमें शृंगार रस का प्राचुर्य देखने को मिलता है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में भी इस शृंगार-प्रियता का वातावरण विद्यमान था। वीर गाथा काल सुन्दरी राजकुमारियों का संबल ग्रहण कर पल्लवित हुआ जिसके फलस्वरूप वीर और शृंगार रस की समानान्तर धारा प्रवहमान हो उठी। भक्तिकाल में इष्टदेव की आराधना में मधुरा भक्ति को विशेष प्रश्रय मिला; परन्तु भक्त कवियों की वैयक्तिक भावना उसकी शृंगारिकता से प्रायः अछूती ही रही। भक्त कवियों ने शृंगार के माध्यम से आत्मा-परमात्मा को स्त्री-पुरुष के रूप में निरूपित किया। जायसी ने आत्मा को पुरुष तथा परमात्मा को स्त्री मानकर भक्ति-साधना की, तो कबीर ने आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार इन भक्तों ने अपने भक्ति-परक काव्य में प्रेयसी और प्रियतम की प्रेम-क्रीड़ाओं एवं संयोग तथा वियोग की मनोहारी छटा दिखाई। आगे चलकर सूर और तुलसी ने भक्ति के इस रूप को सँवारा, परन्तु भक्ति-साधना की शुष्कता सामान्य जन-प्रवृत्ति को सरसता की ओर मोड़ने का कारण बन गयी। भक्ति में शृंगारिक भावना का सूत्रपात तो अकबर के शासन काल में ही हो गया था। मुसलमान शासकों ने इस भाव-धारा को वेगवान् बनाने में विशेष योग दिया। कालान्तर में भारतीय जन-जीवन इन विदेशियों की रीति-नीति एवं मान्यताओं से अत्यधिक प्रभावित हो उठा और इस प्रकार शृंगार में भक्ति-भावना के प्राधान्य के स्थान पर भक्ति-भावना में शृंगार का प्राधान्य हो उठा और फलस्वरूप विलासमयी शृंगार-भावना साहित्याकाश में मेघ बनकर छा गयी। समग्र साहित्यिक वातावरण शृंगारिक रंगीनियों से रँग गया और रीतिकालीन प्रवृत्तियों को विकसनशील होने की पर्याप्त प्रेरणा मिली। काव्य-गत शृंगार-भावना अधिकांशतः वासनामयी हो गयी। डा० गुलाबराय ने इस सम्बन्ध में लिखा है :—

"भक्त कवियों में धार्मिक भावना का प्राधान्य था और कवित्व उनके लिए एक गौण वस्तु थी। उनके पीछे के कवियों में कवित्व का प्राधान्य हो गया और भक्ति उनकी विलासमयी भावनाओं पर सुन्दर आवरण डालने की चादर बन गयी।"

जिस युग में इस सामान्य साहित्यिक प्रवृत्ति का प्राधान्य रहा, उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के नाम से पुकारा जाता है और कुछ विद्वान् तो उसे शृंगार काल भी कह देते हैं। यह स्वान्तःसुखाय के स्थान पर स्वामिनः सुखाय रचना करने का युग था। महाकवि बिहारी इसी काल के शृंगारी कवियों में सर्वोच्च पद पर अधिष्ठित हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी उन्हें रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि के रूप में स्वीकार किया है। बिहारी बहुज्ञ पण्डित थे। उन्होंने पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य—गाथा सप्तशती, अमरुक शतक, आर्या सप्तशती आदि का विशद अध्ययन किया था और उनकी कविता इन ग्रन्थों से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुई थी।

महाकवि बिहारी यदि तत्कालीन प्रवृत्तियों से प्रभावित हुए तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं माना जा सकता। उन्होंने अपने आश्रयदाता जयसिंह के आदेश पर बिहारी सतसई की रचना की; परन्तु सतसई के निर्माण को उन्होंने 'हरि-राधिका प्रसाद' ही माना, फिर भी उनकी इस एकमात्र रचना का उद्देश्य अपने आश्रयदाता का मनोरंजन ही था। अतः यदि ऐसी रचना के आधार पर बिहारी को घोर शृंगारी कवि कहा जाय तो उसमें पर्याप्त स्वाभाविकता है। बिहारी कोई महान् साहित्य साधक नहीं थे। ले-देकर एक सतसई ही उनकी साहित्यिक कीर्ति एवं महत्त्व के परिमापन का आधार है और इसीके आधार पर उन्हें घोर शृंगारी एवं अश्लील कवि के रूप में निरूपित किया गया है; परन्तु इसी सतसई के अनेक दोहों के आधार पर बिहारी के भक्त-रूप का भी अन्वेषण किया जा सकता है। यहाँ हमें विचार यह करना है कि जिन शृंगारी दोहों के आधार पर बिहारी को घोर शृंगारी एवं अश्लील साहित्य का स्रष्टा माना जाता है, उनके सृजन के पीछे परिस्थितियाँ कौन सी थीं। सबसे पहली बात तो यह है कि जयदेव तथा उनके पूर्ववर्ती भक्त कवियों ने भक्ति और शृंगार की जो समन्वित धारा बहाई थी, उसने बिहारी के कोमल अन्तस् को भी अभिसिक्त किया था। जयदेव का 'यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्' का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्घोष बिहारी के कर्तृत्व में साकार होकर उतर आया है। दूसरी बात यह है कि बिहारी एक दरबारी कवि थे। अपनी कवि-प्रतिभा के मूल्य पर ही उनकी जीविका चलती थी। प्रत्येक दोहे के सृजन के पीछे एक-एक अशर्फी का प्रलोभन लगा चलता था। ऐसी दशा में वे अपने आश्रयदाता का मनोरंजन कराने के लिए विवश थे। यह मनोरंजन तत्कालीन शृंगारभावना के वातावरण में तभी संभव था जब कि वे नायक-नायिका की विलास-क्रीड़ा एवं प्रेम-व्यापार की नाना विधाओं का अतिरंजित और खुला चित्रण करते। ऐसा उन्होंने किया भी, पर जयसिंह के राज्याश्रित कवि बनने के पूर्व बिहारी ने महाराज जयसिंह की विलासवृत्ति का अन्योक्ति के माध्यम से तिरस्कार करते हुए निर्भीक चेतावनी दी थी——

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो आगे कौन हवाल॥"

बिहारी चाहते तो क्या विद्यापति के 'भनइ विद्यापति एहो रस जान, नृप सिवसिंह लखिमा बिरमान' स्वर में स्वर मिलाकर जयसिंह के प्रणय व्यापार की प्रशंसा करते हुए उस विलास-भावना को उकसा नहीं सकते थे? नहीं, उनके हृदय में लोक-कल्याण की भावना उद्दाम वेग से प्रवहमान थी और इसीलिए उन्होंने महाराजा जयसिंह की प्रवृत्ति भोग-विलास से खींचकर राज-काज और प्रजा-पालन की ओर उन्मुख की। इसी एक दोहे ने तुलसी के शब्दों में "सुरसरि सम सब कर हित" साधन किया। यह संयोग की ही बात थी कि उक्त दोहे से प्रसन्न होकर जयसिंह ने उन्हें राजकवि बना लिया और एक-एक दोहे पर एक-एक अशर्फी देने का वचन दे दिया। परन्तु इसके पूर्व बिहारी की मानसिक प्रवृत्ति क्या थी, यह शायद कोई नहीं जानता और इस प्रकार उक्त दोहा बिहारी के पहले दोहे के रूप में ही हमारे सामने आता है। जयसिंह द्वारा दिया गया प्रलोभन बिहारी के लिए प्रोत्साहन बन गया। बिहारी भी संसारी जीव ही थे। माया ने उनकी अन्तर्भावना को ग्रस लिया और वे भी कविता-कामिनी को अशर्फियों की थाप पर नचाने लग गये। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनकी व्यक्तिगत प्रवृत्ति भी पूर्ण रूप से उसी ओर मुड़ गयी। यदि ऐसा होता तो बिहारी सतसई में जो उत्कृष्ट कोटि के भक्ति से ओत-प्रोत दोहे हमें देखने को मिलते हैं, उनका कहीं पता भी न लगता। यौवन के वसन्त ने चाहे उन्हें कुछ समय के लिए पथभ्रान्त कर दिया हो, पर वृद्धावस्था में लिखे गये उनके ये भक्तिपरक दोहे अपने अन्तस् में एक महान् भक्त छिपाये हुए हैं। बिहारी ही नहीं, अपितु अनेक रीतिकालीन शृंगारी कवियों ने वासना के उद्दीपन में सहायक शृंगार के अतिरेक से ग्लानि अनुभव करते हुए भक्ति-भावना से अनुप्रेरित होकर भगवान् से अपने उद्धार की प्रार्थना की है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में——

'रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो वे किसी न किसी तरह उसका आंचल पकड़े हुए थे। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति-भावना से हीन नहीं है——हो ही नहीं सकता था क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी।"

बिहारी की शृंगार भावना पर इतना अधिक लिखा जा चुका है कि यदि और कुछ कहने का साहस किया जाय तो वह किसी न किसी विद्वान् के मत का पुनराख्यान-मात्र होगा। संक्षेप में उसका सार यही है कि वे घोर शृंगारी कवि हैं। परन्तु मैं समझता हूँ कि अधिकांशतः सत्य होते हुए भी यह पूर्णतया सत्य नहीं है और बिहारी सतसई के शृंगारिक दोहों के परिमाण के आधार पर उन्हें विशुद्ध शृंगारी कवि कहकर उनके साथ अन्याय किया जाता है। वे शृंगारी कवि थे, इस बात में दो मत नहीं हो सकते, परन्तु यह कवि का एक रूप है। बिहारी के व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष की प्रायः अवहेलना ही हुई है और वह है उनका भक्त-पक्ष। घोर शृंगारी कवि अपनी एकमात्र कृति के आरम्भ में ही 'नवधा भक्ति' के अन्तर्गत 'आत्म-निवेदन' का आश्रय लेते हुए जब कहता है कि——

"मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परें स्याम हरित दुति होय॥"

तो इस मंगलाचरण पर मनन करते ही हम चौंक उठते हैं और हमारे कान खड़े हो जाते हैं। सहसा ही यह प्रतीति हृदय के निगूढ़ कोने में जागृत हो उठती है कि हो न हो, यह किसी महान् भक्त की पुकार है और जब हम इस एकमात्र कृति के निम्नलिखित अन्तिम पद पर विचार करते हैं——

"हुकुम पाइ जयसाहि कौ हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो जरा ठहरकर सोचने को बाध्य हो जाना पड़ता है कि 'जयसाहि को हुकुम पाइ' तक तो ठीक है, परन्तु यह "हरि-राधिका-प्रसाद" क्या बला है? एक शृंगारी कवि यदि अपनी एकमात्र कृति को 'हरि-राधिका-प्रसाद' मानता है तो निश्चय ही वह कोई 'हरि-राधिका-भक्त' होगा। इसके पूर्व 'मेरी भव-बाधा हरौ' वाले दोहे में कवि 'राधा' से 'भव-बाधा' हरने का निवेदन भी करता है। ये दोनों बातें एक साथ मिलकर बिहारी की भक्ति-भावना को प्रमाणीकृत करती सी जान पड़ती हैं। इसी स्थान पर 'भरी अनेक सवाद' शब्द भी विचारणीय हैं। अब तक विद्वानों को उसमें शृंगाररस का ही 'सवाद' मिलता आया है। इसमें अन्य जो 'अनेक सवाद' भरे पड़े हैं, जिनमें शान्त-रस(भक्ति) भी सम्मिलित है, वे प्रायः उपेक्षित से रह गये हैं अथवा राह चलते ढंग पर उनका नामोल्लेख मात्र कर दिया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इतना तो लिखा कि--

"जो पुस्तकें यों ही खुशामद के लिए आश्रित कवियों की रूढ़ि के अनुसार लिखी गयीं, जिनके नायकों के लिए जनता के हृदय में कोई स्थान न था, वे प्राकृतिक नियमानुसार प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। ... यदि बिहारी ने जयसिंह की प्रशंसा में ही अपने सात सौ दोहे बनाये होते तो उनके हाथ केवल अशर्फियाँ ही लगी होतीं।"

परन्तु अन्यत्र उन्होंने बिहारी के शृंगारेतर स्वरूप का विवेचन नहीं किया है। वास्तविकता यह है कि बिहारी में कतिपय विशेषताएँ ऐसी हैं जिनके बल पर वे अन्य शृंगारी कवियों से छिटक कर अलग खड़े दिखाई देते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम बिहारी की उन विशेषताओं का, विशेष रूप से उनकी भक्ति-भावना का, अवगाहन करते हुए उनकी सामान्य अन्तःप्रवृत्तियों की व्याख्या प्रस्तुत करने की ओर प्रवृत्त हों और उन्हें साहित्यिक विवेक की कसौटी पर कसकर परखने का प्रयत्न करें। तभी हम बिहारी के संबंध में समालोचन के वास्तविक कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकेंगे। परन्तु इससे बढ़कर खेद की बात और क्या हो सकती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे जागरूक एवं विवेकी आलोचक ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में बिहारी के भक्त रूप और उनकी भक्ति भावना पर किंचिन्मात्र भी प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया। भक्ति तथा भक्ति-काल के सम्बन्ध में अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में डा० रामकुमार वर्मा ने कुछ प्रकाश डाला है, परन्तु उन्होंने भी बिहारी की भक्ति-भावना को स्पर्श करने का कष्ट नहीं उठाया। यह ठीक है कि डाक्टर वर्मा का उक्त इतिहास केवल भक्ति-काल तक की सीमा का स्पर्श करता है और डाक्टर साहब के आश्वासन पर सन् १९४७ से उसके उत्तरार्द्ध की सुदीर्घ प्रतीक्षा हिन्दी साहित्य के विद्वान् एवं विद्यार्थी करते आ रहे हैं, तथापि कुल दस स्थानों पर बिहारी का उल्लेख होने पर भी उसमें उनके भक्त-रूप एवं भक्ति-भावना की ओर अंगुलि-निर्देश तक नहीं हो पाया है, जब कि सर जार्ज ग्रियर्सन ने समग्र बिहारी साहित्य को भक्ति साहित्य के रूप में निरूपित किया है।

ऊपर हम इस बात का उल्लेख कर आये हैं कि बिहारी की शाश्वत ख्याति का आधार उनकी एकमात्र कृति 'बिहारी सतसई' ही है और उसीके दोहों के आधार पर उन्हें घोर शृंगारी कवि कहा जाता है। बिहारी के सम्बन्ध में यदि 'गागर में सागर' भरनेवाली बात सही है तो यह भी सही है कि बिहारी सतसई में केवल शृंगारी दोहे ही नहीं हैं, अपितु उसके अनेक दोहे भक्ति की 'गगरियाँ' हैं जिनमें सागर लहरा रहा है। उन दोहों में भक्ति की जो पुण्य-सलिला प्रवहमान है, वह बिहारी को कबीर, सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों के पार्श्व में लाकर खड़ा कर देती है। डा० गुलाबराय ने भी यह स्वीकार किया है कि :—

"यह बड़े सन्तोषी, भगवद्भक्त और सौम्य स्वभाव के थे।" तथा

"यदि राज-दरबार के वर्णन से कवि राजा नहीं हो जाता तो शृंगारिक वर्णन करने से वह विषयी नहीं हो जाता। यह अवश्य मानना होगा कि वे इतने विरागी न थे कि इन बातों के वर्णन से उन्हें अरुचि हो।"

बिहारी नरहरि के शिष्य थे और उन्होंने सखा-सखी भाव से तरुण राधा-कृष्ण की मधुरा भक्ति को ग्रहण किया। बिहारी पर वृन्दावन की भक्ति-भावना का पूरा प्रभाव पड़ा था। वे तरुण कृष्ण के उपासक थे, सूर की भाँति बाल-रूप कृष्ण के नहीं। साथ ही राधा-भक्ति से भी उनका पूर्ण समझौता था।

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवा, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य तथा आत्म-निवेदन यही नवधा भक्ति के प्रकार हैं। नवधा भक्ति की इस कसौटी पर कसकर देखें तो उनके अनेक दोहे खरे उतरते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसी प्रकार भक्ति के क्षेत्र में विनय के जो सात भेद हैं—दीनता, मान-मर्षता, भय-दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण—इन सातों भेदों के उदाहरण बिहारी सतसई में सरलतापूर्वक खोजे जा सकते हैं।

भगवान् के प्रति अगाध श्रद्धा-भावना की सर्वोच्च स्थिति को भक्ति की संज्ञा दी गयी है। उसमें व्यष्टिगत श्रद्धा-तत्व का प्राधान्य होता है। ईश्वर के प्रति क्षण भर के लिए भी होने वाली प्रेमोन्मत्तता मुक्ति-प्रदायिनी होती है। इसमें भक्तअनन्य श्रद्धा-भाव से अनुप्राणित होकर भगवान की स्तुति, अर्चन, वन्दन, स्मरण, कीर्तन आदि करता है। वह कभी सखा-भाव से और कभी दास्य भाव से भगवान् (राम, कृष्ण, हरि आदि रूपों में) से आत्मकल्याणार्थ निवेदन करता है। पौराणिक आख्यान इस बात के साक्षी हैं कि यावज्जीवन पाप-पंक में निमग्न प्राणियों में जीवन के अवसान की सांध्य-बेला में भक्ति-भावना का उद्रेक होने पर भी उनका उद्धार हो गया है। बिहारी ने अपने भक्तिपरक दोहे चाहे वृद्धावस्था में ही क्यों न लिखे हों, परन्तु वे परिमाण में कम होने पर भी इतने सशक्त हैं कि उनके शृंगारिक कल्मष का प्रक्षालन कर सकते हैं।

बिहारी के आत्म-निवेदन की बानगी लीजिये :—

"कीजै चित सोई तरौं जेहि पतितन के साथ
मेरे गुन औगुन गनन गनौ न गोपीनाथ।"

यह दोहा पढ़ते ही सूरदास का 'प्रभु मेरे औगुन चित न धरो' पद तुरन्त हमारे स्मृति-पटल पर कौंध जाता है और हम बिहारी को सूर के स्वर में स्वर मिलाकर उद्धार के लिए निवेदन करते देखते हैं। इसी प्रकार—

मौहूँ दीजै मोषु ज्यों अनेक पतितन दियौ।
जौ बाँधे ही तोषु तौ बाँधौ अपने गुननि।"

इस दोहे में बिहारी ने अनेक पतितों का सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए मुक्ति के लिए भगवान् से याचना की है। 'मुक्ति' का विलोम है 'बन्धन'। अतः बिहारी ने भगवान् के सामने दूसरी शर्त यह रखी है कि यदि मुक्ति के स्थान पर बन्धन में रखने में ही तुम्हें संतोष हो तो अपनी गुणावली रूपी रस्सी से बाँधकर रखो। कितनी निर्लिप्त और उच्च भावना है?

बिहारी के भक्त-रूप का सबसे बड़ा प्रमाण उनका निम्नलिखित दोहा है जो नवधा भक्ति में 'स्मरण' के अन्तर्गत आता है :—

"भजन कह्यौ तासौं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जासौं कह्यौ सो तैं भज्यौ गंवार।"

हरि-स्मरण की निरन्तरता को भक्ति के रूप में अभिहित किया गया है। बिहारी ने हरि-नाम-स्मरण पर विशेष बल दिया है। एक और उदाहरण लीजिये :—

"पतवारी माला पकरि और न कछू उपाव।
तरि संसार पयोधि को हरि नावैं कर नाँव।"

भगवान् से साक्षात्कार करने के लिए भक्त को कपट का परित्याग करना अनिवार्य है। इस बात को तुलसीदास के मुँह से सुनिये :—

"दूरि न सौ हितू हेरि हिये ही है।
छलहिं छाँड़ि सुमिरे छोहु किये ही है।"

बिहारी ने भी तुलसी की ही भाँति मन-मन्दिर में भगवान् के प्रवेश के लिए कपट रूपी कपाट को खोलने की आवश्यकता पर बल दिया है :—

"तौ लगि या मन-सदन में हरि आवहिं केहि बाट।
विकट जड़े जौ लौं निपट खुलैं न कपट कपाट।"

यही कारण है कि डा० रामरतन भटनागर को तुलसी के बाद बिहारी को महत्त्व देते हुए कहना पड़ा कि :— "बिहारीलाल तुलसीदास के बाद हिन्दी संसार के सहृदय समाज के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि रहे हैं।' डा० भटनागर ने शृंगार-भावना से ओत-प्रोत जन-समुदाय को ही 'सहृदय' माना है, ऐसा तो मानना संभव नहीं दिखता।

निर्गुण भक्तों ने भक्ति के क्षेत्र में बाह्याचारों एवं मिथ्याडम्बरों के द्योतक जप, माला, छापा, तिलक की प्रवृत्ति का जिस उग्रता के साथ खण्डन किया, उसे कबीर के निम्न पद में देखा जा सकता है :—

"माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।"

इसी बात को बिहारी ने अपने ढंग से कहा है :—

"जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राँचे राम।"

यदि हृदय की शुद्धता पर बल देते हुए भक्ति-भावना को नई दिशा की ओर मोड़ने वाले कबीर भक्त हैं तो बिहारी भी उनसे पीछे नहीं दिखाई पड़ते।

इसी प्रकार के अनेक टक्साली दोहे बिहारी सतसई में भरे पड़े हैं जिनके आधार पर यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जा सकता है कि बिहारी कोरे शृंगारी कवि ही नहीं थे, उनके हृदय में भक्ति की गंगा हिलोरें ले रही थीं जिसमें वे आकण्ठ निमग्न रहते थे। आवश्यकता है दृष्टि पर दूसरा नया चश्मा चढ़ाने की—ताकि वस्तु स्थिति धुँधले वातावरण से निकलकर स्पष्टतर हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आज" की महिमा

श्री सन्तराम

पंजाबी भाषा में एक कहावत है। उसका भावार्थ यह है कि चिन्ता और चिता दोनों बराबर हैं। जिस प्रकार चिता में रखा हुआ शरीर धीरे-धीरे भस्मीभूत हो जाता है, वैसे ही चिन्ता भी मनुष्य को धीरे-धीरे जला डालती है। इतना ही क्यों, चिता तो मृत शरीर को जलाती है परन्तु चिन्ता जीते को भी जला डालती है।*

चिन्ता और शरीर की उपमा काँटेदार करीर की झाड़ी के निकट उगे केले के पेड़ से भी दी गई है। जब पवन से केले का पेड़ हिलता है तो करीर के काँटे उसके पत्तों को छलनी कर डालते हैं। यही दशा चिन्ता से मनुष्य की हो जाती है।

चिन्ता और परेशानी का मुख्य कारण उतनी कोई बड़ी विपत्ति नहीं होती जितना कि हमारी पिछली बातों को याद करना और आगे आनेवाले समय से भयभीत होना। हमें समझ लेना चाहिए कि जो बीत गया है, जो मर गया है उस पिछले कल का बोझ वर्तमान में उठाये फिरना, और जिस भविष्य का अभी जन्म भी नहीं हुआ और जो मालूम नहीं कब आयगा, उसके भय से दबे रहना ही परेशानी का कारण होता है। इसीलिए भगवद्गीता में कहा है कि जो बात बीत चुकी है बुद्धिमान् मनुष्य उसका सोच नहीं करता।

एक मनुष्य की बात है। जिन दिनों वह कालेज में पढ़ता था वह इस चिंता में डूबा रहता था कि मैं अपनी पढ़ाई कैसे पूरी करूँगा, परीक्षा में पास कैसे हूँगा, पास भी हो गया तो संसार में सफल कैसे हूँगा, अपनी आजीविका कैसे उपार्जन कर सकूँगा। ऐसी ही दशा में उसे एक महात्मा के सत्संग का सुअवसर मिला। महात्मा ने उसे समझाया कि तू व्यर्थ में भविष्य की चिन्ता करके अपने वर्तमान को क्यों बिगाड़ रहा है। तुझे चाहिए कि अगली-पिछली बातों का विचार छोड़कर सारा ध्यान वर्तमान पर दे। आनेवाला कल अपनी खबर आप रखेगा; तू "आज" का ही ध्यान रख।

विद्यार्थी ने महात्मा की बात पल्ले बाँध ली। उसने 'आगे क्या होगा' इसकी चिन्ता बिलकुल छोड़ दी और सारा ध्यान आज के ही काम पर लगा दिया। पीछे जाकर वह बहुत बड़ा आदमी हुआ। वह कहा करता था कि मुझमें कोई विशेष प्रतिभा नहीं। मैं भी बुद्धि की दृष्टि से दूसरे लोगों-जैसा ही हूँ। मेरी सफलता का रहस्य यही है कि मैं पिछले कल और आनेवाले कल की कुछ भी चिन्ता न करके केवल आज पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करता हूँ।

किसी सत्पुरुष का कथन है—बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि ले। बात ठीक ही है। आगे की 'चिन्ता करने' और 'सुधि लेने' में बड़ा अन्तर है। चिन्ता का अर्थ है प्रयत्न छोड़कर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और परेशानी में समय बिताना। इसके विपरीत सुधि लेने का अर्थ है समझदारी और उत्साह के साथ आगे की तैयारी में जुट जाना।

जैसे आँधी-पानी का तूफान आने पर हम किसी कमरे में बैठकर द्वार और खिड़कियाँ बंद कर लेते हैं, उसी प्रकार चिन्तारूपी आँधी-पानी के तूफान में अपनी रक्षा के लिए हमें पिछले कल और अगले कल रूपी द्वार बंद करके "आज" की कोठरी में सिकुड़कर बैठ जाना चाहिए।

ईसाई धर्म की एक प्रसिद्ध प्रार्थना है कि 'हे प्रभो, मुझे मेरी आज की रोटी दीजिए।" इसमें भी केवल 'आज' की ही रोटी माँगी गयी है। इसमें न तो बीते कल की रोटी के बासी होने का रोना रोया गया है और न यह ही आशंका प्रकट की गयी है कि कल कहीं वर्षा न होने से गेहूँ की फसल न मारी जाय जिससे मुझे रोटी मिलना कठिन हो जाय। प्रार्थना में केवल "आज" पर ही ध्यान दिया गया है। इसी प्रकार हमें भी विगत कल की शिकायत और आगामी कल की चिन्ता तथा भय छोड़कर केवल "आज" ही पर ध्यान देना चाहिए।

एक समय की बात है किसी देश में पानी नहीं बरसा। लोग अत्यन्त दुःखी और परेशान थे। वे सोचते कि बरसात न होने से अगली फसल नहीं होगी तब हम क्या करेंगे। हम सब भूखों मर जायँगे। उस गाँव में कोई महात्मा घूमता हुआ जा निकला। लोगों को दुःख से बिलबिलाते देख महात्मा को उनपर दया आ गयी। उसने उनको समझाया कि भाइयो, पानी न बरसने से कल क्या होगा इस बात की चिन्ता छोड़कर केवल आज की चिन्ता करो। आज के दुःख आज के निपटाने के लिए पर्याप्त हैं। कल जो कुछ होगा, वह कल देख लिया जायगा। मृत्यु के पहले ही रोने से क्या लाभ? महात्मा के इस उपदेश से लोगों को बड़ी सान्त्वना मिली और उनका रोना-धोना बंद हो गया।

आप कहेंगे कि कल की चिन्ता न करने से संसार में काम कैसे चल सकता है? कल की चिन्ता न करें तो हम

---

*इस पर गिरिधर की एक प्रसिद्ध कुंडलिया भी है:—

चिंता ज्वाल शरीर में बनि दावा लगि जाय।
प्रकट धुआँ नहिं संचरै, उर अंतर धुंधुआय॥
उर अंतर धुंधुआय, जरै जिमि काँच की भट्टी।
हाड़ मांस जरि जाय, रहै हड्डिन की ठठरी॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो मेरे मिंता।
वे नर कैसे जिएँ कि जिन घट व्यापी चिंता?

—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने के लिए मकान क्यों बनायें ? कल की चिन्ता न हो तो बच्चों को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाने का यत्न क्यों करें ? कल की चिन्ता न हो तो फल के पेड़ क्यों लगायें ? खेती कैसे करें ? ये सब काम तो कल को पड़नेवाली आवश्यकताओं के विचार से ही किये जाते हैं। आपकी बात ठीक है। हमें भविष्य पर विचार तो खूब करना चाहिए, उसके लिए तैयारी भी खूब करनी चाहिए; परन्तु उसके लिए परेशान नहीं होना चाहिए।

एक व्यापारी ने अपना माल जहाज में भरकर विदेश भेजा। लोग उसे डराने लगे कि तुझे हानि उठानी पड़ेगी। वह बोला—"मैंने अपना अच्छे से अच्छा माल भेजा है। मैंने बढ़िया से बढ़िया जहाज चुना है। मैंने माल बेचने के लिए अपना अतीव विश्वस्त कर्मचारी साथ भेजा है। मैंने उस देश की अवस्था पर पूरी तरह विचार कर लेने के पश्चात् ही माल भेजा है। इससे अधिक मैं और क्या कर सकता था ?"

उसने सोच लिया कि यदि जहाज डूब रहा है या डूब गया है तो मैं अब वहाँ जाकर न उसे डूबने से बचा सकता और न डूबे हुए को निकाल सकता हूँ। माल का भाव यदि उस देश में गिर जाय तो मैं उसे चढ़ा नहीं सकता हूँ। उसने यह भी समझ लिया कि मैं कुछ कर तो सकता नहीं, परन्तु यदि मैं जहाज की चिन्ता में डूबा रहा तो मुझे जहाज के साथ अपने प्राणों से भी हाथ धोने पड़ेंगे। बस वह व्यर्थ के उद्वेग से बच गया। यही बुद्धिमत्ता है।

कहा भी है—

यद् भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥

अर्थ—जो नहीं होना है वह कभी न होगा और जो होना है वह कभी रुक नहीं सकता। यह सोचकर चिन्तारूपी विष को दूर भगाना चाहिए।

चिन्ता न करने का अर्थ यह कदापि नहीं कि हम किसी बात के अच्छे और बुरे पक्ष पर विचार ही न करें। विचार अवश्य करना चाहिए। परन्तु विचार करने और चिन्ता करने में भारी अन्तर है। अच्छे ढंग से सोचने से हम काम को बना लेते हैं और चिन्ता करने से हम काम को बिगाड़ देते हैं। गलत ढंग से सोचने का नाम ही चिन्ता है। इससे मन की शान्ति नष्ट होकर हमारी नाड़ियों का तनाव बढ़ जाता और सिर-पीड़ा जैसे रोग खड़े हो जाते हैं।

गत विश्वयुद्ध के पहले की बात है। एक व्यापारी का सिल्क का व्यापार खूब चमक रहा था। उसे सहस्रों रुपये की आय थी। परन्तु युद्ध छिड़ जाने से व्यापार ठप होता देख पड़ा। इससे वह इतना चिन्तातुर हुआ कि उसकी भूख-प्यास सब जाती रही। वह रात को सो न सकता था। करवटें बदलते सारी रात कटती। शरीर सूखकर पंजर हो गया। चेहरे का सारा हुलिया ही बिगड़ गया। वह अपनी चिन्ता को भुलाने के लिए अपने मन को इधर उधर के खेल-तमाशे में लगाने का बहुतेरा यत्न करता परन्तु चिन्ता दूर न होती। संयोग से एक दि उसे एक साधु एक भजन गाता सुनाई पड़ा। व्यापारी ने उस भजन को पल्ले बाँध लिया। इससे उसे शान्ति मिल गयी। उस भजन का भावार्थ इस प्रकार था—

"हे करुणानिधे, तेरी करुणा का एक ही कण मेरे लिए बना है। मैं अधिक की याचना नहीं करता। तेरी एक ही कृपा-कटाक्ष से मैं निहाल हो सकता हूँ।"

कबीरजी का कथन है—

साधू गाँठ न बाँधहीं उदर समाता ले।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगे तब दे॥

स्मरण रहे कि कबीर भी कोई संसार-त्यागी भिक्षुक न था। वह हमारे आप जैसा गृहस्थ था। परन्तु सन्तोष के कारण वह चिन्ता से मुक्त हो गया था।

इसी प्रकार एक दूसरे मनुष्य का प्रसंग है। वह एक कम्पनी में नौकर होकर किसी दूर देश में चला गया। वहाँ उसे कम्पनी के फैले हुए सारे कारबार का ध्यान रखना पड़ता था। आज कौन-कौन वस्तु कितनी-कितनी बिकी है, कौन-कौन वस्तु चुक गयी है, किस-किस से रुपया लेना है, कौन-कौन नौकर क्या-क्या काम करता है, किसको किसको कितना वेतन देना चाहिए, कौन चीज कब खरीदनी चाहिए, कम्पनी का सारा लेखा-जोखा तैयार करके प्रधान कार्यालय को भेजना इत्यादि असंख्य काम उसके सुपुर्द थे। इससे वह चौबीसों घंटे बेचैन रहता था। विदेश आने के बाद उसके घर में लड़का जन्मा था। वह सोचता था कि मैं कब घर जाऊँ और बच्चे को गोद में लेकर प्यार करूँ। परन्तु वहाँसे निकलने की छुट्टी नहीं मिलती थी। सब समय चिन्ता में डूबा रहने से वह बीमार पड़ गया। उसका शरीर सूख गया। हड्डियाँ निकल आयीं। दर्पण में अपना मुँह देखते उसे डर लगता। वह एकान्त में रोया करता। उसकी अवस्था इतनी बिगड़ गयी कि उसके नीरोग होने की कोई आशा न रही।

अन्त में उसे एक अस्पताल में पहुँचाया गया। डाक्टर ने बड़े ध्यान से उसके शरीर की परीक्षा की। परन्तु उन उसमें कोई शारीरिक रोग न देख पड़ा। तब डाक्टर ने उससे कहा कि तुम्हारा रोग मानसिक है। तुम अपने मन को चिन्ता-मुक्त करने का प्रयत्न करो। मनुष्य के सामने करने के लिए प्रतिदिन बीसियों काम होते हैं। वह सबको एक साथ नहीं कर सकता। यदि को एक साथ करने की चेष्टा करेगा तो न केवल यही उसका कोई काम पूरा नहीं होगा वरन् उसका शरीर भी बिगड़ जायगा। इसलिए एक समय में एक ही काम करने से सब काम पूरे हो सकते हैं। डाक्टर ने रेत-घड़ी का उदाहरण देकर समझाते हुए कहा कि देखो इस घड़ी का मध्य भाग इतना तंग है कि उसमें से एक समय में केवल रेत का एक ही कण निकलकर नीचे गिर सकता है। यदि कोई मनुष्य यत्न करे कि एक से अधिक रेत-कण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस तंग भाग में से एक साथ निकल जायँ तो घड़ी को खराब किये बिना वह ऐसा नहीं कर सकेगा। इसलिए तुम भी अपने जीवन को एक रेत-घड़ी समझो और एक समय में एक ही काम करने का यत्न करो।

डाक्टर के उपदेश का रोगी पर बहुत अच्छा प्रभाव हुआ। विदेश से लौटकर वह घर पहुँचा और उसने कम्पनी की नौकरी छोड़कर अपना कारबार आरम्भ किया। अब प्रतिदिन उसके सामने करने के लिए सैकड़ों छोटे-छोटे काम होते थे। परन्तु वह घबराता और परेशान न होता था। वह उस डाक्टर के उपदेश पर आचरण करता हुआ शान्तिपूर्वक उनको एक-एक करके करता था। इससे उसका स्वास्थ्य भी ठीक हो गया और व्यवसाय भी चमक उठा।

आज के वैज्ञानिक युग में जहाँ सुख-सुविधा के साधनों में उन्नति हुई है वहाँ साथ ही इस युग के लोगों की परेशानियाँ भी बहुत बढ़ गयी हैं। जितने लोग आज मानसिक रोगों से पीड़ित हैं उतने कदाचित् पहले कभी न थे। हम लोग पिछले और अगले दिनों की चिन्ताओं को इकट्ठा कर लेते हैं और मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। विदुर नीति कहती है--

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते मनीषिणः॥

अर्थ--बीती बात का शोक नहीं करना चाहिए। भविष्य की चिन्ता भी व्यर्थ है। बुद्धिमान् मनुष्य केवल वर्तमान का ही ध्यान रखकर उसे ठीक करता है।

हम केवल वर्तमान में ही रह सकते हैं। भूत और भविष्य में नहीं। यदि हम भूत और भविष्य दोनों में रहने की कुचेष्टा करेंगे तो अपने शरीर और मन दोनों का नाश कर लेंगे। इसलिए हमें उसी "आज" पर सारा ध्यान देना चाहिए जिसमें हम रह सकते हैं।

एक युवती का पति आजीविका के लिए कहीं बाहर गया तो लौटकर घर नहीं आया। बेचारी ने दो-तीन बरस उसकी प्रतीक्षा की। परन्तु सब व्यर्थ। बेचारी रोटी-कपड़े से भी तंग हो गयी। वह एक छोटे गाँव में रहती थी। वहाँ कोई आजीविका का साधन न था। किसी बड़े नगर में जाकर किसीकी नौकरी करके पेट भरना भी उसके लिए कठिन और भयावह था। गाँव में तो उसका अपना मकान था। नगर में मकान भी किराये पर लेना पड़ता। एक कन्या-पाठशाला में उसे चपरासिन की नौकरी मिल गयी। परन्तु वहाँ भी अधिक दिन टिक न सकी। रात को जब वह अकेली खाती और अकेली सोती तो उसे पति की याद आ जाती। वह दुःख से पागल होकर आत्महत्या का विचार करने लगती। ऐसी ही दशा में उसे एक अनुभवी वृद्धा का सत्संग प्राप्त हुआ। उस विधवा के एक ही उपदेश ने उस युवती के दुःखी जीवन को बिलकुल बदल डाला। विधवा ने उसे समझाया कि ज्ञानी मनुष्य के लिए प्रत्येक दिन नया जीवन होता है। उसने इस वाक्य को एक मोटे कागज पर मोटे अक्षरों में लिखकर अपनी कोठरी में लगा लिया। वह सब समय उसके नेत्रों के सामने रहता। उस दिन से उसकी सारी चिन्ता और भय दूर हो गया। वह नये उत्साह के साथ जीवन-संग्राम में जूझ पड़ी।

चिन्ता केवल आज के लोगों को ही सताती हो, यह बात नहीं। प्रत्येक युग में मनुष्य चिन्ता से पीड़ित होते रहे हैं और प्रत्येक युग के मनीषी अपने अनुभव के आधार पर जनता को चिन्ता से बचने के उपाय सुझाते रहे हैं। कोई दो सहस्र वर्ष हुए, एक रोमन कवि ने कहा था कि "वही व्यक्ति, केवल वही व्यक्ति, सुखी है जो आज के दिन को अपना कह सकता है; हाँ, वही व्यक्ति सुखी है जो विश्वासपूर्वक आगामी कल को ललकार कर कह सकता है कि जिससे जो भी अनिष्ट तुम कर सकते हो कर लो, मुझे कुछ परवाह नहीं, क्योंकि मैं आज का दिन आनन्द-पूर्वक जी चुका हूँ।"

हम लोग बड़े बे-समझ हैं। परलोक में सुख पाने के लिए हम अपने इस लोक के जीवन को दुःखमय बना लेते हैं। साधु-फकीर स्वर्ग में परमानन्द पाने की आशा से अपनी बाँहें सुखा लेते, एक टाँग के बल खड़े रहते और काँटों की शय्या पर लेटते हैं। हम आज आनन्द से जीने का यत्न न करके किसी आगामी कल में आनन्द लेने की व्यर्थ आशा में बैठे रहते हैं।

मनुष्य कैसा विचित्र प्राणी है। जब वह बच्चा होता है तो बचपन का आनन्द न लेकर कहता है, मैं जब बड़ा लड़का हो जाऊँगा तो मौज लूँगा। फिर जब वह लड़का बन जाता है तब कहता है जब मैं तरुण हो जाऊँगा तो खूब आनन्द लूँगा। तरुण होकर विवाह करने के बाद वह कहने लगता है, अब तो मुझे सौ झंझट हैं। वृद्धावस्था में निवृत्त जीवन बनाकर आनन्द लूँगा। जीवन से निवृत्त हो जाने पर वह दुःखी होने लगता है कि हाय, मैंने युवाकाल में ही जीवन का आनन्द क्यों न लिया, दुनिया की सैर क्यों न की। बुढ़ापे में सब इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं। वह जीवन का आनन्द लेने में असमर्थ हो जाता है। तब वह पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि कल की आशा में मैंने आज पर ध्यान न देकर सारा जीवन ही व्यर्थ कर लिया। बहुत देर से अवसर निकल जाने पर ही, उसे ज्ञान होता है कि एक-एक पल, वरन् एक-एक मुहूर्त्त पर पूरा ध्यान देकर खूब जीने का नाम ही जीवन है। इसीलिए कहा है--

काल करै सो आज कर, आज करे सो अब।
क्षण में परलय होइगी, बहुरि करोगे कब?

एक व्यक्ति की बात है। वह बहुत निर्धन था। वह बाईसिकल पर मलाई की बर्फ बेचते फिरा करता था। फिर उसे एक दूकान में मुनीम की नौकरी मिल गयी। उसे आठ व्यक्तियों का भरण-पोषण करना पड़ता था। वेतन बहुत कम था। इसलिए उसने नौकरी छोड़कर अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कोई स्वतंत्र काम करने की ठानी। उसने पचास रुपये उधार लेकर काम आरम्भ कर दिया। बढ़ते-बढ़ते वह लाखों का स्वामी बन गया। अब उसपर एक बड़ी विपत्ति आयी। उसने एक मित्र की कई सहस्र की जमानत दे दी। मित्र का दीवाला निकल गया। इससे ऋण चुकाने का भार उसपर आ पड़ा। इसके साथ ही इससे भी बढ़कर एक और अनिष्ट हो गया। जिस बैंक में उसका रुपया था वह भी डूब गया। इतना ही नहीं कि उसके पास एक कौड़ी न रही, वरन् उसपर बीस सहस्र रुपये का ऋण भी हो गया। अब वह सब समय चिन्ता में डूबा रहने लगा। चिन्ता के सिवा उसे और कुछ सूझता ही न था। फल यह हुआ कि उसे भयंकर रोग हो गया। एक दिन वह सड़क पर जा रहा था कि उलटकर गिर पड़ा और चलने में असमर्थ हो गया।

उसे उठाकर घर लाया गया। उसे ज्वर हो गया और सारे शरीर पर फोड़े-फुंसियाँ निकल आयीं। कुछ दिन पीछे उसके कष्ट ने भीषण रूप धारण कर लिया। वह सब समय बेचैन रहने लगा। न उसे भूख लगती थी और न प्यास। रात तारे गिनते बीतती थी। उसका शरीर सूखकर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया। डाक्टर ने उसके जीने की सभी आशा छोड़ दी। रोगी को जब पता लगा कि मैं संसार में कुछ ही दिन का पाहुना हूँ, तो उसने अपनी वसीयत लिख दी और संसार की सारी माया-ममता छोड़ दी। मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। उसने समझ लिया कि मृत्यु से बढ़कर और क्या विपत्ति आ सकती है। सो उसे ग्रहण करने के लिए उसने मानसिक रूप से अपने को तैयार कर लिया।

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोपि तं लंघयितुं न शक्तः।
तस्माश्न शोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं नहि तत् परेषाम् ॥

अर्थ--मनुष्य को जो वस्तु मिलनी है वह अवश्य मिलकर रहेगी। उसे दैव भी नहीं टाल सकता। इसलिए मुझे शोक है और न हर्ष। जो मेरी है वह दूसरों की नहीं हो सकती।

वह निश्चिन्त होकर खाट पर लेट गया। सभी सांसारिक झंझटों और परेशानियों से पीछा छुड़ा लेने के कारण उसे शिशु की ऐसी गहरी नींद आ गयी। जो तनाव और थकावट उसे भीतर ही भीतर खाये जा रही थी वह दूर होने लगी। अब उसे भूख भी लगने लगी। धीरे-धीरे उसकी तौल भी बढ़ने लगी। पहले वह खाट से उठ न सकता था, कुछ ही दिन में वह बैसाखी के सहारे चलने-फिरने लगा। कोई ढाई-तीन मास बाद वह फिर अपने काम पर चला गया। वह एक कम्पनी से चीजें लेकर कमीशन पर बेचने लगा। पहले वह लाखों का स्वामी था; अब वह पचास रुपये मासिक ही कमा पाता था। परन्तु अब उसे कोई परेशानी न थी। उसे शिक्षा मिल चुकी थी। उसे न बीती की चिन्ता और न भविष्य का संत्रास था। वह मुँह में गुनगुनाया करता था--

"चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बे-परवाह।"

उसने अपना सम्पूर्ण उत्साह और शक्ति अपने काम में उँडेल दी। फलतः उसका काम फिर चमक उठा। कुछ ही वर्ष में वह पुनः लखपती बन गया। देश के बड़े-बड़े नगरों में उसकी कोठियाँ खुल गयीं। वह कभी भी फिर न उठ सकता यदि वह बीते कल और आनेवाले कल, दोनों की चिन्ता छोड़कर केवल वर्तमान आज पर ही पूरा ध्यान न देता।

जिन विपत्तियों और अनिष्टों के होने की संभावना से हम चिन्तातुर रहते हैं वे प्रायः कभी होते ही नहीं। एक बड़े दार्शनिक ने एक बार कहा था कि "मेरा जीवन ऐसी भीषण विपत्तियों से भरपूर रहा है जो कभी जटिल ही नहीं हुईं।" यह बात केवल उसकी ही नहीं, हम सब की भी है।

जीवन बड़ी द्रुत गति से निकला जा रहा है। आज का दिन फिर लौटकर न आयगा। इसलिए इसीको अपना समझकर इसका पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिए।

एक युवक ने अपने मित्र से चिन्ता दूर करने का कोई अच्छा सा उपाय पूछा। तब मित्र ने उसे निम्नलिखित कथा से शिक्षा लेने को कहा--

कोई युवक रेलवे में नौकर था। वह अपनी तरुणी पत्नी से बहुत प्रेम किया करता था। उसे सब समय यह चिन्ता रहती थी कि मैं कहीं अपनी स्त्री के लिए यथेष्ट धन इकट्ठा करने के पहले ही न मर जाऊँ। दिन-रात वह इसी चिन्ता में डूबा रहता। इससे उसकी तबीयत इतनी उदास और चिड़चिड़ी हो गयी कि स्त्री के लिए ऐसी रोनी सूरत के नीरस पुरुष के साथ रहना कठिन हो गया। वह उसे छोड़कर किसी दूसरे पुरुष के साथ भाग गयी और फिर उसका पता न लगा। व्यर्थ की चिन्ता प्रायः ऐसे ही काम किया करती है।

उपसंहार

(१) आज आनन्द में जीवन न बिताकर कल की चिन्ता में रहना, अथवा यह समझना कि आज चाहे दुःख में बीते तो कोई बात नहीं, क्योंकि कल छू-मंतर से ही स्वर्ग-सुख मिलने लगेगा, मूर्खता है।

(२) बीती बातों की चिन्ता में डूबकर वर्तमान को दुःखमय बनाना बुद्धिमत्ता नहीं।

(३) जब सबेरे उठो तो यह निश्चय करके उठो कि आज के दिन का, आज के आठों पहर का, मैं खूब उपयोग करूँगा।

(४) आगे-पीछे की चिन्ता त्याग कर केवल आज की ही सुधि लेने से मनुष्य अपने जीवन से अधिक लाभ उठा सकता है।

(५) किसी काम को करना अगले सप्ताह पर या आगामी कल पर स्थगित न करके आज ही करने लगो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य में मधु

डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त

मधु का प्रयोग ऋग्वेद १।९०।६-७ में इस प्रकार हुआ है--

"मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ मधुनक्तमुतोषसो
मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

मधु का मुख्य अर्थ मीठा है, पर यह शब्द समूचे वैदिक साहित्य में सोम रस, मधु (शहद), आदि कई अर्थों में आया है। मधु का अर्थ मीठा होने से ही इक्षु को **मधुतृण** या **मधुयष्टि** कहा जाता है। खर्जूर के वृक्ष को **मधुक्षीरः** या **मधुक्षीरकः** कहा गया है। कोयल का एक नाम **मधु-घोष** या-कंठ है। आम्र वृक्ष को **मधु आवासः** कहा गया है। यज्ञ या हवन में मीठी वस्तुओं को डालने को **मधु-आहुतिः** कहते हैं। **मधुत्रयं** में शर्करा, मधु (शहद) तथा नवनीत की गणना की जाती है। **मधुप्रमेह** रोग में भी मधु मीठा के अर्थ में ही है। मधु शब्द का इसी अर्थ में आलंकारिक प्रयोग भी अथर्ववेद (९।१।२२) में है जिसमें ब्राह्मण, राजा, धेनु, अनड्वान् (बैल), व्रीहि (शालि) तथा मधु ये सात (राष्ट्र के) मधु रूप में गिनाये गये हैं।

इसमें मधु शहद के अर्थ में ही होना चाहिए। ऋग्वेद ८।४।८ में **मध्वा** शब्द का प्रयोग इस प्रकार आया है--

"मध्वा संपृक्ताः सारघेण घेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥"

अर्थात् दूध शहद की मक्खियों के मधु से मिलाया गया है, शीघ्र आइए और पीजिए॥ यह अर्थ ग्रीफिथ का है। विलसन ने यहाँ मधु का सोम के साथ मिलाया जाना लिखा है। एक अन्य मंत्र ऋ० १०।१०६।१० में **सारघ** शब्द शहद के अर्थ में आया है। सरघा मधुमक्खियों के अर्थ में आता है। मंत्र इस प्रकार है--

"आरंगरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीत्रीनवारे।
कीनारेव रवेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे॥"

ग्रीफिथ के अनुसार इसका अर्थ इस प्रकार है-- परिश्रमरत मधुमक्खियों की भाँति तुम अपनी मधु हमारे लिए लाते हो। जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अपने छत्ते में संचय करती हैं जिसके छिद्र नीचे की ओर होते हैं। यहाँ छत्ते की उपमा उस पानी के थैले से की गयी है जिसके छिद्र नीचे की ओर हों।

सरघा = मधुमक्खी रघु० (४·६३) तथा शिशु० (१५।२३) में भी आया है। अथर्ववेद में मक्षाः (९।१।१७) तथा मधुकृतः (९।१।१६) दो शब्द मधुमक्खी के लिए और आये हैं।

चरक ने मधु को इक्षु वर्ग में रखा है इसीलिए कि मधु इक्षु रस की भाँति ही मीठी वस्तु है। इक्षु वर्ग में दाँत से चूसे हुए इक्षु के रस, यंत्र से पेरे हुए रस, गुड़, गुड़शर्करा, भासशर्करा, मधुशर्करा तथा मधु का वर्णन है। मधु के चार भेद बतलाये गये हैं--माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र तथा पौत्तिक। इन चारों में **माक्षिक** को सर्वश्रेष्ठ बतलाता गया है:--

"माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौत्तिकं मधुजातयः।
माक्षिकं प्रवरं तेषां विशेषाद् भ्रामरं गुरु॥"

च० सू० २७।२४०

इन चारों के रंग के संबंध में अगले श्लोक में लिखा गया है कि माक्षिक तैल के वर्ण का, भ्रामर श्वेत वर्ण का, क्षौद्र कपिलवर्ण का, तथा पौत्तिक घृत के वर्ण का होता है:--

"माक्षिकं तैलवर्णं स्याच्छ्वेतं भ्रामरमुच्यते।
क्षौद्रं तु कपिलं विद्याद् घृतवर्णं तु पौत्तिकम्॥

२७।२४१

सुश्रुत संहिता में मधु की उपर्युक्त चार जातियों के अतिरिक्त चार और जातियाँ--**छात्र, आर्घ्य, औद्दालक** तथा **दाल** बतलायी गयी हैं--

"पौत्तिकं भ्रामरं क्षौद्रं माक्षिकं छात्रमेव च।
आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः॥

सु० सू० ४५।२

इन मधुओं के रूपरंग के संबंध में सुश्रुत से जानकारी नहीं होती, केवल इनके गुणों के संबंध में यहाँ वर्णन है:--

१. **पौत्तिक**--रूक्ष है, गरम है, विषयुक्त अंशांश होने से वातरक्त और पित्तकारक है। छेदि है, दाह पैदा करता है और मदकारक है।

२. **भ्रामर**--गाढ़ा और अत्यंत मीठा होने से भारी होता है।

३. **क्षौद्र**--शीतल है, हलका है, लेखन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. **माक्षिक**——क्षौद्र से भी बहुत हलका और रूक्ष होता है। यह श्रेष्ठ है। श्वास आदि रोगों में उत्तम है।

५. **छात्र**——विपाक में मीठा भारी शीतल है। गाढ़ा है। रक्तपित्तहर्ता, श्वेतकुष्ठ, प्रमेह और कृमिरोगनाशक है। गुण में श्रेष्ठ है।

६. **आर्घ्य**——नेत्रों को अत्यन्त हितकर है। कफ-पित्त का परम हरनेवाला है। कसेला है। विपाक में कटु है। बलकारक है। तिक्त है तो भी वायुकर्ता नहीं है।

७. **औद्दालक**——रुचिकारक है, कंठस्वर सुधारनेवाला है, कुष्ठ और विष का नाशक है। कसेला गरम और अम्लता लिये होता है, पित्तकारक है, और विपाक में कटु है।

८. **दाल**—छर्दि और प्रमेह को दूर करता है। रूक्ष है।

"विशेषात्पौत्तिकं तेषु रूक्षोष्णं सविषान्वयात् ॥
वातासृक्पित्त कृच्छ्रेदि विद्याति मदकृन्मधु॥
सु० सू० ४५।३

पैच्छिल्यात्स्वादुभूयस्त्वाद्भ्रामरं गुरुसंज्ञकम् ॥
क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेखनम् ॥४॥
तस्माल्लघुतरं रूक्षं माक्षिकं प्रवरं स्मृतम् ॥
श्वासादिषु च रोगेषु प्रशस्तं तद्विशेषतः ॥५॥
स्वादुपाकं गुरु हिमं पिच्छलं रक्तपित्तजित् ॥
श्वित्रमेहकृमिहरं विद्याच्छात्रं गुणोत्तरम् ॥६॥
आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् ॥
कषायं कटु पाके च बल्यं तिक्तभवाक्कृत् ॥७॥
औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषापहम् ॥
कषायमुष्णमम्लं च पित्तकृत्कटुपाकि च ॥८॥
छर्दिमेहप्रशमनं मधु रूक्षं दलोद्भवम् ॥९॥

चरक (सू० २३।३५) में क्षौद्र का प्रयोग मधु के पर्याय रूप में है 'सक्तवो मदिरा क्षौद्रं शर्करा चेति तर्पणम्।' '**क्षौद्र**' पाणिनि (४।३।११८) में भी मधु के लिए आया है। मधुपर्क में क्षौद्र ही कहा गया है, "दधि सर्पि जलं **क्षौद्रं** सिता चैतैश्च पंचभिः——प्रोच्यते मधुपर्कः।" मधुपर्क मान्य अतिथि को अथवा वर को (द्वारपूजा के समय) देने की परंपरा थी। वर को इसे चटाने की प्रथा अब भी है।

उपर्युक्त आठों प्रकार की मधु जिन-जिन मक्खियों से उत्पन्न होती हैं उनके संबंध में शास्त्रों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है——

पौत्तिक——पुत्तिका नामक मक्खी जो पिंगल वर्ण की बड़ी मक्खी होती है। इसके शहद को पौत्तिक कहते हैं।

भ्रामर——भ्रमर मक्खी का शहद सफेद मिसरी जैसा होता है। इसका उल्लेख पाणिनि (४।३।११९) में भी है।

क्षौद्र——क्षुद्रा नामक पिंगल व छोटी मक्खी का यह शहद कपिलवर्ण होता है। इसका उल्लेख पाणिनि में भी है। (४।३।१९)।

माक्षिक——मक्षिका नामक एक पिंगल वर्ण की बड़ी मधु-मक्खी है। इसका शहद तैल वर्ण का है।

छात्र——एक प्रकार का वरट नाम परवाला कीड़ा जो हिमालय के वनों में रहता है——वह छत्राकार छत्ता बनाता है, उसका पीला गाढ़ा शहद होता है।

आर्घ्य——तीक्ष्ण डंक वाले पीले भौंरे से यह होती है। शहद श्वेत होता है। एक मत से मालवे के मधूक (महुआ) के वृक्षों से उत्पन्न शहद **आर्घ्य** है।

औद्दालक——यह छोटे परदार कीड़े से बनता है। यह शहद सुनहरा होता है।

दाल——जो पुष्पों का रस पत्तों पर स्वयं टपककर पड़ता है, वह दाल कहलाता है। एक अन्य मत से कोटरों में जो कीड़े रहते हैं उनके मधु को **दाल** कहते हैं।

काश्मीर में मधु के लिए 'माछ' प्रयोग में आता है जो माक्षिक से ही संबंधित है। जिस प्रकार 'क्षौद्र' मधु का पर्याय है उसी प्रकार माछ भी।

चरक मधु के सामान्य गुण इस प्रकार बतलाते हैं——

"वातलं गुरु शीतं च रक्तपित्तकफापहम्।
संधातृच्छेदनं रूक्षं कषायमधुरं मधु॥
च० सू० २७।२४२

अर्थात् मधु वातवर्धक, भारी, शीतल, रक्तपित्त और कफनाशक, भग्न जोड़नेवाला, मेदोग्रंथि का छेदन करनेवाला, रूखा, रस में कसैला-मधुर होता है।

चरक के अनुसार मधु विषयुक्त पुष्पों के संसर्ग के कारण अथवा विषयुक्त मक्षिकाओं के कारण उष्ण है इसलिए उष्णवीर्य औषधियों के साथ अथवा गरमी से पीड़ित मनुष्य को नहीं देना चाहिए। मधु गरम भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए। अधिक मात्रा में सेवन करने पर आम-दोष उत्पन्न होता है।

(च० सू० २७।२४३-४५)

सुश्रुत के अनुसार मधु में निम्न गुण हैं--यह मीठा रस और कसैला अनुरस है, रूक्ष है, शीतल है, अग्निदीपक है। रंग रूप निखारता है। बलकारक है। हलका, कोमल, लेखन, हृदयहितकारी, संधान, शोधक, व्रणरोपक, वाजीकरण, ग्राहि, नेत्रों को हितकर, सूक्ष्म, मार्गों में अनुसरण करनेवाला, पित्त, कफ, मेद, प्रमेह, हिचकी, श्वास, खाँसी, अतिसार, छर्दि, तृषा, कृमि, विष इन्हें शांत करता है। मधु आह्लादकर्ता तथा त्रिदोषनाशक है—हलका होने से कफ शांत करता है, पिच्छलता एवं मधुरता व कसैलेपन से वायु और पित्त को शांत करता है।

सु० सू० ४५।१

सुश्रुत के अनुसार नवीन मधु वृंहण (पुष्ट करने वाला) है, अत्यंत कफहर्ता नहीं है। पुराना मधु मेद और कफ-नाशक है लेखन, (शरीर को दुर्बल करनेवाला) तथा ग्राहि है। कच्चा शहद त्रिदोषकारक और पक्का त्रिदोष-नाशक है।

"वृंहणीयं मधु नव नातिश्लेष्महरं सरम्॥
मेदः श्लेष्मापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम्॥
दोषत्रयहरं पक्वमामम्लं त्रिदोषकृत्॥

सु० सू० ४५।१०-११

मधु नाना प्रकार के द्रव्यों से युक्त तथा परम योगवाही है।

"नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं लघु।"

--१२

इसका उष्ण उपचार (गरम करके प्रयोग) नहीं करना चाहिए। (--१३)

चरक ने मध्यवर्ग (सूत्रस्थान अ० २७) में मधु के मद्य के संबंध में इस प्रकार लिखा है--

"रोचनं दीपनं हृद्यं वल्यं पित्तविरोधि च।
विबंधघ्नं कफघ्नं च मधु लघ्वल्पमारुतम्॥"१८६॥

अर्थात् **मधु (आसव या मद्य)** रुचिकर, अग्निदीपक, हृदय के लिए हितकर बलकारक होता है। यह पित्त का विरोधी नहीं। विबंध को हटाता है। कफनाशक, लघु तथा थोड़ा सा वायु को उत्पन्न करनेवाला है।

एक अन्य श्लोक में **मध्वासव** आया है "छेदी **मध्वास-वस्तीक्ष्णो** मैरेयो मधुरो गुरुः॥" १८४ अर्थात् मधु का आसव छेदी, तथा तीक्ष्ण होता है।

एक अन्य श्लोक में **माध्वीक** के रूप में इसका वर्णन है "माध्वीकवन्न चात्युष्णो मृद्वीकेक्षुरसासवः।" अर्थात् मृद्वीक वा ईख के रस से तैयार किया हुआ आसव माध्वीक की भाँति ही अति उष्ण नहीं होता है।

सुश्रुत **मध्वासव** के संबंध में इस प्रकार लिखते हैं--

"लघुर्मध्वासवश्छेदी मेहकुष्ठविषापहः॥
तिक्तः कषायः शोफघ्नात्तीक्ष्णः स्वादुरवातकृत्॥

सु० सू० ४५।२०

अर्थात् मधु आसव छेदी, प्रमेह-कुष्ठ-विष-विनाशक है। तिक्त, कषाय, शोथहर्ता और तीक्ष्ण है। स्वादु है, वात-कारक नहीं है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में **मधु**-मृद्वीक-रस के पर्याय रूप में आया है--

"मृद्वीका रसो मधु।" और मृद्वीक-रस से बनी सुरा को भी मधु कहा गया है। यहाँ मधु सुरा के छः भेदों में से एक है--"मेदकप्रसन्नासवारिष्ट-मैरेयमधू-नाम्"--मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु।

इस प्रकार मधु और मृद्वीक रस पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए। अष्टांग हृदय में भी द्राक्षासव को मधु सम बतलाया गया है--**"द्राक्षासवो मधुसमः।"**

सुश्रुत ने इक्षुवर्ग (सूत्रस्थान अ० ४५) में **मधुशर्करा** का भी वर्णन किया है--

"मधु शर्करा पुनश्छर्द्यतीसारहरा रूक्षा छेदनी प्रह्लादनी कषायमधुरा मधुरविपाका च॥"१८ अर्थात् मधुशर्करा छर्दि--अतीसार को हरनेवाली, रूक्ष, छेदनी, आह्लाददायिनी तथा कसैलापन लिये मीठी होती है; विपाक में भी मधुर होती है।

मधु के जमे हुए टुकड़े या भाग को **मधु-अष्ठीला** कहा गया है।

मोम को **मधु आधार** कहा गया है।

हिंदुओं के यहाँ शुद्धि के लिए षोडश संस्कार हैं, जिनमें एक संस्कार मधुप्राशन भी है जिसमें नवजात बालक को मधु चटाने का विधान है।

सं० में **मधुः** वसंत के लिए भी आया है "मधुरया-मधुबोधित माधवी" शिशुपालवध ६।२०। वसंतोत्सव को **मधु उत्सव** भी कहा गया है। और कामदेव को **मधुदीप** कहा गया है।

मधुमास का अभिप्राय चैत्रमास है। यह बहुधा माधव (मधुमाधव) के साथ आता है जहाँ माधव वैशाख का पर्याय है। सुश्रुत में ऋतुओं का वर्णन देते हुए **मधु-माधव** को वसंत कहा गया है--मधुमाधवौ वसंतः

सु० सू० अध्याय ६।

इस प्रकार मधु भारतीय जीवन का अनादिकाल से एक मुख्य तत्त्व रहा है। वैदिक काल से आज तक इसकी परंपरा मिलती है--और मिठास के कारण इसने हिंदू-संस्कारों में, ऋतुओं में, वृक्षों में, पक्षियों में पेय पदार्थों में सभी जगह स्थान पा लिया है। अथर्व वेद में ठीक ही इसे राष्ट्र के सात मधुओं में स्थान दिया गया है (९।१।२२)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१२)

पण्डित व्रजमोहन व्यास

जन्मशताब्दी समारोह

३० दिसम्बर सन् १९६१ प्रयाग के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इसी दिन सौ वर्ष पूर्व वैक्रमाब्द १९१८ पौष कृष्ण ८ बुधवार को सायंकाल ६ बजकर ५४ मिनट पर मालवीयजी का जन्म हुआ था।

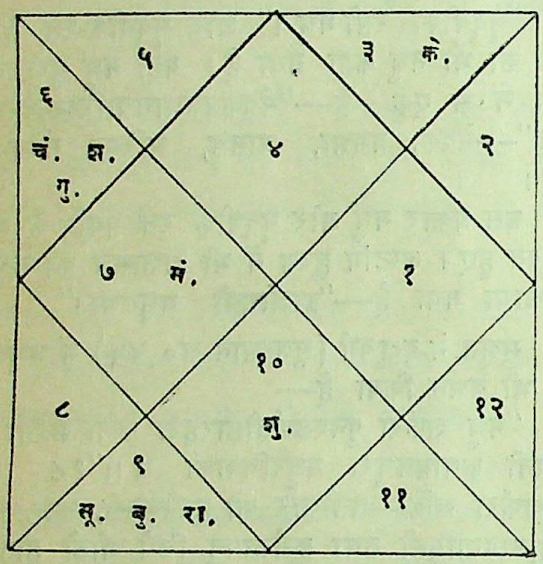

मालवीयजी की कुण्डली की विशेषता है गुरु-चान्द्री योग। मनकारक चन्द्रमा एवं ज्ञानकारक गुरु, दोनों का योग पराक्रम स्थान में है। मेरी तुच्छ बुद्धि में तो छठें घर में चंद्र, गुरु और शनि इस बात के द्योतक हैं कि मालवीयजी का चंद्र, शुद्ध हृदय था, मस्तिष्क में गुरु अर्थात् निर्मल बुद्धि और पैर में सनीचर था, क्योंकि अपने कर्तव्य-पालन के लिये वे जीवन भर मारे-मारे फिरते रहे। इन ग्रहों के प्रभाव की सत्यता का साक्षी इन पिछले सौ वर्षों का इतिहास है। "हक़ीकत खुद को मनवा लेती है, मानी नहीं जाती।" ग्रहों के प्रभाव को कोई माने या न माने, वे स्वयं घटनाओं के द्वारा मनवा लेते हैं। विक्टर ह्युगो कहते हैं--

"God makes visible to men his will in events, an obscure text written in a mysterious language. Men make their translations of it forthwith; hasty translations, incorrect, full of faults, omissions and misreadings. Very few minds comprehend the divine tongue. The most sagacious, the most calm, the most profound decipher slowly and, when they arrive with their text, the need has long gone by; there are already twenty translations in the public square".

(ईश्वर घटनाओं के द्वारा अपने विधान को व्यक्त करता है। यह विधान एक ऐसा दुर्बोध मूल पाठ है जिसकी अभिव्यक्ति रहस्यमयी भाषा में रहती है। लोग इस घटनारूपी मूल पाठ की व्याख्या तुरन्त करने लग जाते हैं। यह व्याख्या हड़बड़ी में की जाती है जो गलत, दोषों से भरी, अधूरी एवं अशुद्ध पाठयुक्त होती है। बहुत ही थोड़े मस्तिष्क, विधि की भाषा को समझ सकते हैं। बड़े-बड़े कुशाग्रबुद्धिवाले, शान्त भाव से विचारक और प्रगाढ़ मनन करनेवाले, बड़े प्रयत्न से छान-बीन कर, धीरे-धीरे उस मूल-पाठ के रहस्य को खोलते हैं और जब उन घटनाओं से मूल-पाठ का पुनर्निर्माण करते हैं, तब तक मैदान में उस समय उसके बीसों अनुवाद पहिले से मौजूद रहते हैं, जिससे इस पुनर्निर्मित मूल-पाठ की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।)

मालवीयजी के जन्म के समय विधि ने उनके ललाट पर यह भी लिख दिया था कि इस महापुरुष का देहावसान, वैक्रम २००३ मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया को होगा। परन्तु 'यल्लिखितं विधिना ललाटपटले' उसे पढ़ लेना उतलैती में नहीं हो सकता। इस ८५ वर्ष के जीवन में मालवीय जी के कार्यक्षेत्र में ललाट-लेख के अनुसार अनेकानेक घटनायें हुईं। उनकी अनेक व्याख्यायें भी हुईं। कितनी व्याख्यायें जल्द-बाजी में, बिना समझे-बूझे, गलत-सलत। फिर भी इन सब समालोचनाओं को धर्म-काँटे में तौल-कर यह कर्मठ पुरुष, युग की माँग का आदर करते हुए, आगे बढ़ता ही गया। परन्तु सभी तो ऐसे नहीं थे जो उन घटनाओं की झट-पट अधूरी व्याख्या कर दें। वे उन घट-नाओं की गहराई तक गये और उसे अच्छी तरह मथकर उसमें से नवनीत निकाल लिया। ऐसे एक विचारक थे पण्डित जवाहरलाल नेहरू।

मालवीयजी के जन्मशताब्दी समारोह के उद्घाटन करने के समय जो २९ दिसम्बर १९६१ को एलफ्रेड पार्क में स्थित प्रयाग संगीत समिति के विशाल 'हाल' में हुआ था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

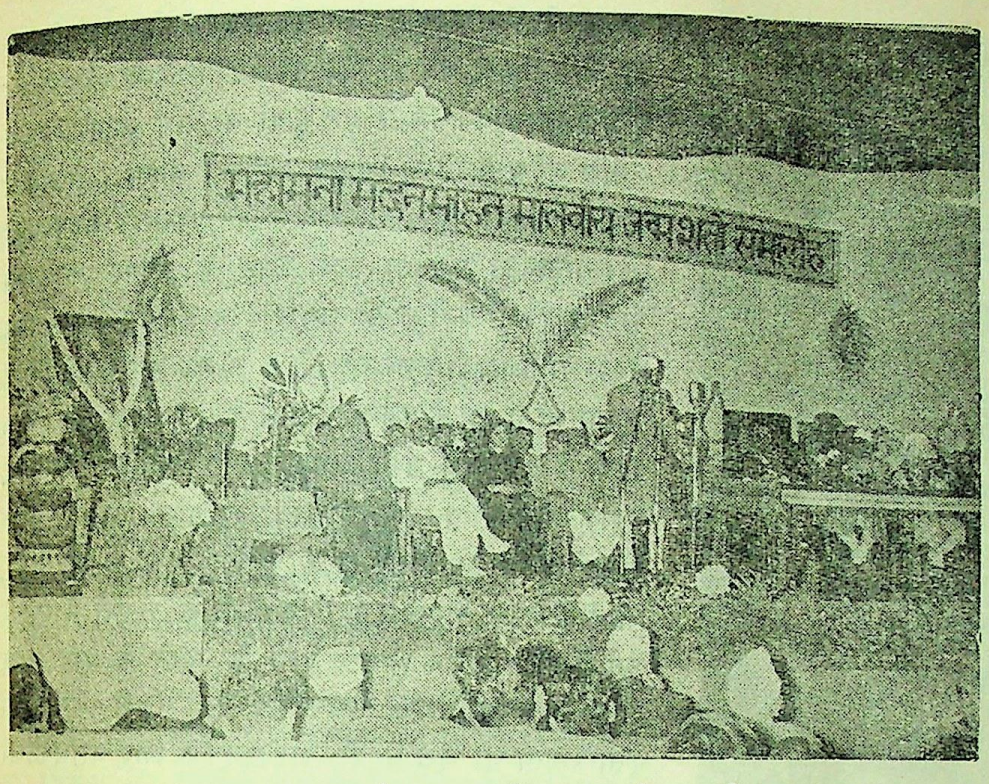

महामना मदनमोहन मालवीय-जन्मशती समारोह

नेहरूजी ने महा-लेखा-परीक्षक (Auditor-General) की भाँति, मालवीय जी सम्बन्धी उन घटनाओं की balance sheet (आय-व्यय का लेखा) और Profit and loss account (लाभ और हानि का लेखा) को जनता के सामने रखा और उसके समर्थन में कहा :—

"भारतीय राजनीति में मालवीयजी एक ऐसे अगुआ थे जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय-आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की अपितु कांग्रेस के उदारमना तथा अग्रवादी वर्ग को मिलाने की एक कड़ी के रूप में कांग्रेस की—जो भारतीय स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य रही—सेवा की।

मालवीयजी का स्वभाव मीठा और बहुत पुर-असर था। निर्माण के लिए वे निरन्तर प्रयास करते रहे परन्तु उनके करने का ढंग ध्वंसात्मक नहीं था। परिवर्तन की ओर उनका झुकाव था। इस सन्दर्भ में महामना मालवीय जी का राष्ट्र-पिता गांधीजी से विचार-साम्य था।

महामनाजी किसी भी भाषा के विरोधी नहीं थे, यद्यपि उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत भाषा की उन्नति के लिए जीवन-पर्यन्त काम किया। वे भारतीय संस्कृति के पोषक तथा युगद्रष्टा थे। भारतीय संस्कृति की शाश्वत पवित्रता यथावत् रखने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहे। उन्होंने देशवासियों में 'अँगरेज़ियत की नक़ल' के अभिशाप से मुक्त होकर अपनी संस्कृति और वेश-भूषा के प्रति आदर भाव को उत्पन्न किया। महामना ने अँगरेजी भाषा और पाश्चात्य संस्कृति के भारतीयों को यह शिक्षा तथा प्रेरणा दी कि यदि वे भारतीय संस्कृति की उपेक्षा करेंगे तो उनकी मौलिकता समाप्त हो जायगी और वे विदेशी संस्कृति की 'कार्बन कापी' मात्र रह जाँयगे।

मालवीयजी का मत था कि भारत को भूल जाना अपने को भूल जाना होगा। देश की समृद्धि के लिए आवश्यक है कि विज्ञान के बढ़ते हुए चरण के साथ देश की पुरानी संस्कृति को सम्बद्ध किया जाय। महामना के इन विचारों से नसीहत लेनी चाहिए।

महामना का लक्ष्य था देश के लोगों को स्वराज्य के लिए तैयार करना; ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना जो अपने पर भरोसा रखे तथा सर ऊँचा कर चल सके। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था, देश के भावी निर्माताओं को तैयार करना जो योग्य और सक्षम हों।

महामना कितने महान् राजनीतिज्ञ, दूरंदेश तथा देशभक्त थे, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें इसीसे मिल जाता है कि अँगरेजी तथा विज्ञान को उन्होंने बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय में, राष्ट्र के हित में, प्रमुख स्थान प्रदान किया।

बचपन से ही मुझे महामना मालवीयजी के सम्पर्क का अवसर मिला। मैं मालवीयजी का अत्यधिक आदर करता था। युवावस्था में मैं जब विलायत से लौटकर आया तो भारती भवन पर उनसे मिलता था, प्रश्न किया करता था और वे मुझे समझाया करते थे। कभी-कभी मैं महामना से उलझ जाता था; पर वे सदैव बड़े मीठे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

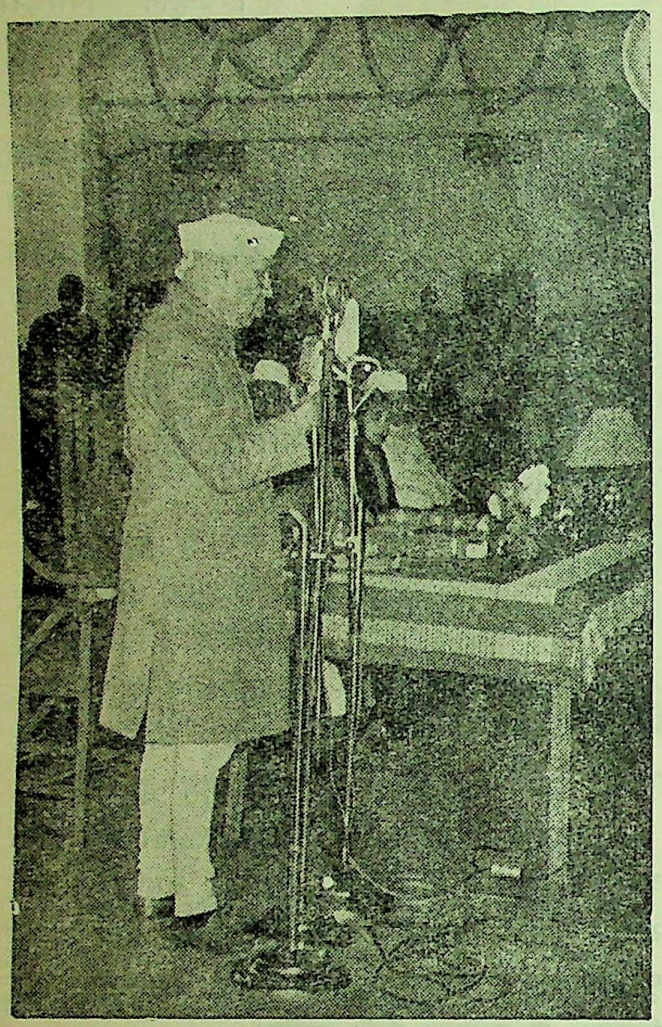

पं० जवाहरलाल नेहरू

मालवीयजी के जीवन की 'बैलेन्स शीट' प्रस्तुत कर रहे हैं

परन्तु पुरअसर तरीक़े से मेरी शंकाओं का समाधान कर दिया करते थे।

हम नौजवान महामना के प्रति शिकायत करते थे कि 'वे धीमे चलते हैं।' जवानी के जोम में हमें ऐसा ही लगता था।"

हाय मुल्ला कब मिली ख़ामोशिये-उल्फ़त की दाद।
अब कोई कहता है कुछ उनसे तो याद आता हूँ मैं॥

संक्षेप में मैंने उस 'बैलेंस शीट' को रखा जिसे नेहरूजी ने अपने अनुभव से मालवीयजी को अतिनिकट सम्पर्क से देख-सुनकर उस दिन जनता के सामने प्रस्तुत किया। इस 'बैलेंस शीट' को देखकर 'प्राफ़िट और लास एकौंट' में प्राफ़िट-ही-प्राफ़िट रहा। 'लास' का कहीं पता नहीं। अतः मालवीयजी की 'मिल' से भारतीयों को अच्छा 'डिविडेंड' मिला।

दूसरे दिन अर्थात् ३० दिसम्बर को मालवीयजी का जन्म-दिवस था। यद्यपि उनका जन्म संध्यासमय ६ बजकर चौवन मिनट पर हुआ था पर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के लिए लालायित, जनता ४ ही बजे से आने-जाने लगी थी। मालवीयजी के परिवार की स्त्रियाँ घंटों पहिले से भगवान् राधा-कृष्ण का शृंगार कर रही थीं। एक स्त्री बड़ी तन्मयता से रच-रचकर राधिकाजी के चरणों में मेंहदी लगा रही थी। मैं तो वहाँ अपने मित्रों के साथ समारोह के प्रबन्ध में हाथ बटा ही रहा था; इस मेंहदी के लगाने की प्रक्रिया को देखकर थोड़ी देर के लिए अवाक् और खोया-खोया सा खड़ा रह गया। मुझे तत्काल 'बिट्टी बुआ' (मालवीयजी की बहिन) की याद आ गयी जिन्होंने अपने जीवन भर राधिकाजी के चरणों में मेंहदी लगाई थी। शायद बिट्टी बुआ के मरने के बाद आज ही उनके चरणों में इस तन्मयता के साथ मेंहदी लगी हो। ऐसा लगता था जैसे मेंहदी लगवाने के लिए राधिकाजी अपने पैर बढ़ाये देती हों और बिट्टी बुआ,

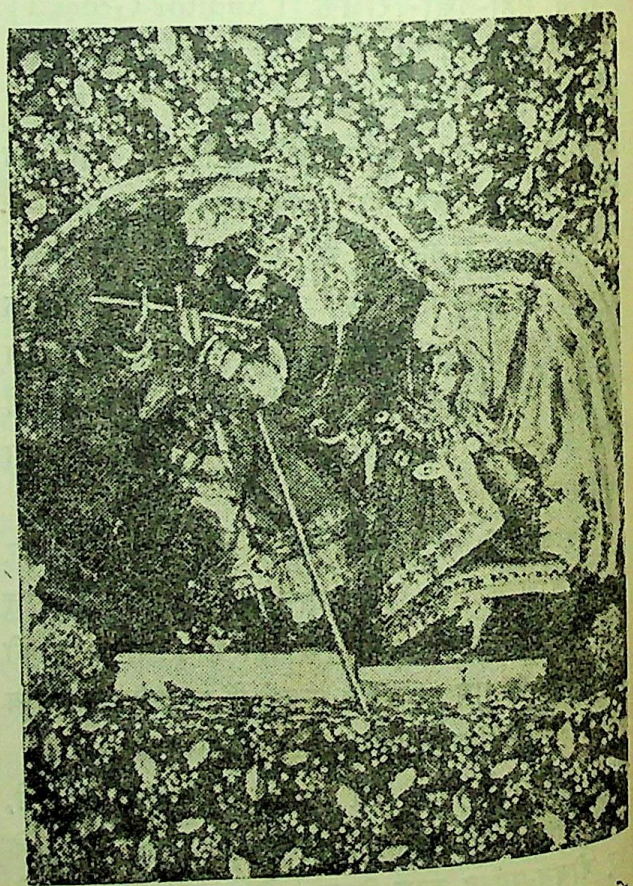

पं० प्रेमधर चतुर्वेदी एवं पं० व्रजनाथ चतुर्वेदीजी के इष्टदेव राधाकृष्ण की मूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदृश्यत त्वच्चरणारविंद-
विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ।।

——कालिदास

उनके चरणों के विरह के दुःख से चुप-चाप बगल में खड़ी हैं। राधिकाजी के दाहिने, अंशुकाभरणों से अलंकृत, भगवान् कृष्ण जैसे राधिका के चरणों में मेंहदी लग जाने की प्रतीक्षा में होठों में मुरली लगाये खड़े हों। उनके सिर पर रत्नों से जगमगाता मुकुट ऐसा देदीप्यमान हो रहा था जैसे——

चित्राभिरस्योपरि मौलिभाजां
भाभिर्मणीनामनणीयसीभिः।
अनेकधातुच्छुरिताश्मराशे-
र्गोवर्धनस्याऽकृतिमन्वकारि ।।

——माघ

(भगवान् श्रीकृष्ण के मस्तक पर विराजमान मुकुट की मणियों की विशाल एवं रंग-विरंगी रश्मियाँ अनेक धातुओं के सम्मिश्रण से रंग-विरंगी शिलाओं के समूहवाले गोवर्धन पर्वत की शोभा का अनुकरण कर रही थीं।)

मैं इस करुण एवं माधुर्य-मिश्रित कल्पना में बूड़-उतरा ही रहा था कि एक कार्यकर्ता ने मुझे पुकारा और मैं इस दुनिया में आ गया। अब मालवीयजी के जन्म का मुहूर्त निकट आ रहा है और घड़ी के हाथ, सौ वर्ष पीछे पलटकर ६ बजकर ५४ मिनट के निकट धीरे-धीरे अग्रसर हो रहे हैं। मैं लपककर सूतिका-गृह के सामने गया। कोठरी के भीतर फूल-मालाओं से सुसज्जित मालवीयजी का तैल-चित्र रखा था। सामने वेदी पर एक बड़ी थाल में रखे हुए १०१ दीपक जल रहे हैं। बाहर ठीक उस कोठरी के सामने हवन-कुंड के चारों ओर मालवीयजी ही की धर्म्मज्ञानोपदेश पाठशाला के १२ वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर वेदपाठ कर रहे हैं। मालवीयजी के चित्र की ओर नत-मस्तक होकर मैंने उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया——

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।

——माघ

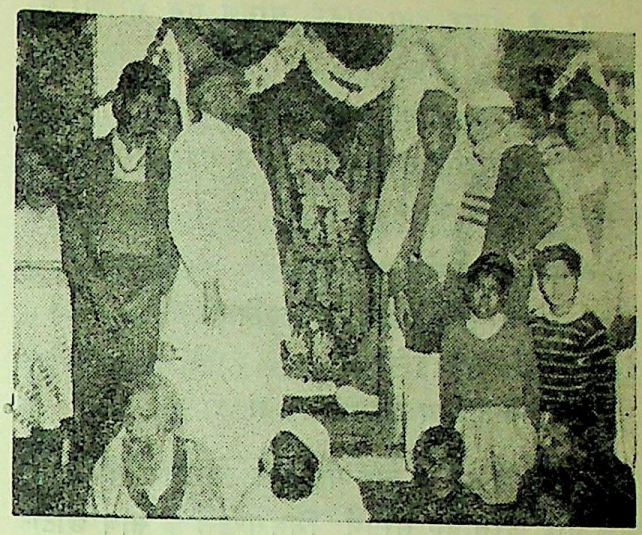

महामनाजी के 'सूतिकागृह' के सामने प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी यज्ञ करा रहे हैं

हे भगवन्! आपका दर्शन शरीरधारियों को तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) में योग्यता को देता है। वर्तमान काल में, दर्शन करते ही पापों को नष्ट करता है। भविष्य के कल्याण का कारण होता है और भूतकाल में किये गये सुकृतों का परिणाम होता है।

जैसे ही मैंने अभिवादन समाप्त किया तो देखता क्या हूँ कि श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी अपनी साधु-मण्डली एवं भक्तों के साथ घर में प्रवेश कर रहे हैं। आते ही सर्वप्रथम वे राधाकृष्ण के विग्रह के सामने नतमस्तक हुए और सूतिका-गृह में रखे हुए मालवीयजी के चित्र के सामने विनयानत होकर अध्वर्यु के आसन पर बैठ गये। हवन आरम्भ हो गया और अग्निकुण्ड में आहुतियाँ पड़ने लगीं। आरम्भ से लेकर पूर्णाहुति तक ब्रह्मचारीजी आहुति छोड़ते रहे। ऐसा लगता था जैसे भगवान् ऋष्यशृंग पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे हों। अब घड़ी की सूई शुभ मुहूर्त के बहुत सन्निकट पहुँच गयी। 'अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः' हवि का धूम वातावरण को पवित्र एवं जनता के अरिष्ट को नष्ट कर रहा है। वह घर ऐसा लग रहा था जैसे——

आसीदवन्यामतिभोगभारा-
द्दिवोवतीर्णा नगरीव दिव्या।

——कुमारदास

(वह कोई स्वर्ग की नगरी हो जो समृद्धि के भार से पृथ्वी पर उतर आयी हो)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर के भीतर तथा बाहर, प्रांगण एवं गलियों में, ठसा-ठस भीड़ है, फिर महामनाजी को श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के लिए लालायित जनता का ताँता बँधा है। इतनी भारी भीड़ इस छोटे-से स्थान में समा गयी, इसे देखकर अयोध्या की याद आ गयी--

व्यपावृतद्वारमुखेन सन्ततं
बलेन भूम्ना विशता कृतध्वनिम्।
पुरीमुदन्वन्तमुदग्रनिस्वनं
तनुं पिबन्तीमिव कुम्भजन्मनः॥

(लंका-विजय के बाद महाराज रामचन्द्र की सेना, तुमुल नाद करते हुए सम्पूर्ण मित्रमण्डल के साथ छोटी-सी अयोध्यापुरी में इस तरह समा गयी जैसे महर्षि अगस्त्य के छोटे से मुख में सम्पूर्ण समुद्र।)

इतने में घड़ी की सूई ६ बजकर ५४ मिनट पर आ गयी। घर के भीतर सहसा अनेकों शंख और घंटे-घड़ियाल बज उठे। वेदपाठ द्विगुणित स्वर से होने लगा। स्त्रियाँ मंगलगान गाने लगीं और प्रयाग विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पण्डित सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी ने, जिन्होंने मालवीयजी की श्री धर्म्मज्ञानोपदेश पाठशाला में अक्षरारम्भ से लेकर संस्कृत की उच्चतम शिक्षा पायी थी, मालवीयजी के प्रतीक, उनके चित्र की आरती उतारी। यह पं० सरस्वतीप्रसादजी का सौभाग्य था। सरस्वती ने मालवीयजी की आरती उतारी, यह समुचित ही था। इस शंखनाद से बाहर प्रतीक्षा करती हुई भीड़ को पता चल गया कि जन्म हो गया। बाहर प्रांगण में समारोह समिति की ओर से रेजकारी लुटायी गयी। उसी समय नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव भीड़ के बीच से, मालवीयजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए, उनके घर की ओर जा रहे थे। सहसा हाथ उठाकर उन्होंने बहुत-से पैसे लूट लिये। निकट में खड़े हुए एक सम्भ्रान्त व्यक्ति ने कहा--'राव साहब। आप बड़े लुटेरे हैं।' राव साहब प्रत्युत्पन्नमति हैं। तुरन्त बोल उठे--'लुटाने के लिए' और यह कहकर और सम्भवतः अपनी ओर से कुछ मिलाकर वहीं लुटा दिया। पता नहीं, उन सम्भ्रान्त व्यक्ति ने राव साहब के, हास्य में कहे गये, इस उत्तर की गम्भीरता को समझा या नहीं। उस छोटे-से उत्तर में यह भावना निहित थी--

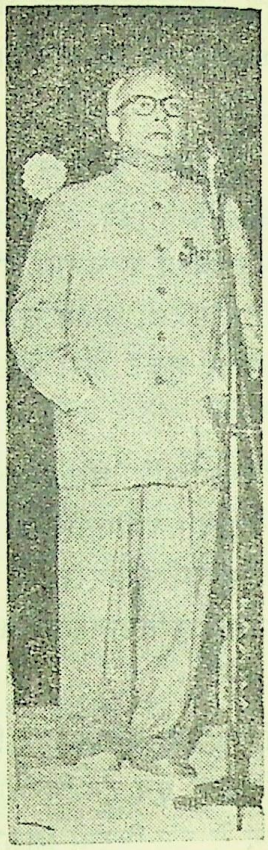

श्री बालकृष्णराव, नगरप्रमुख, महामनाजी को श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर रहे हैं।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

(महाराज रघु जो अपनी प्रजा से कर लेते थे वे उन्हींके हित के लिए लेते थे। जैसे सूर्य अनेकों स्थानों से जल सोखता रहता है और जनता के लिए सौगुना बरसा देता है।)

इस बीच, मालवीयजी के गृह से संलग्न एक विशाल कमरे में भजन-कीर्तन का व्यापार निरन्तर चलता रहा। यज्ञ समाप्त करने के बाद प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी की भजन-मण्डली इसमें सम्मिलित हो गयी और बड़ी धूम से कीर्तन होने लगा। यह 'रात्रिन्दिवं असंहृतान्दनान्दीकः' (दिन-रात निरन्तर चलनेवाला मंगल-समारोह) व्यापार चलता ही रहा कि इतने में 'समारोह समिति' के प्रधान मंत्री, पण्डित पद्मकान्त मालवीय के साथ इन्दिरा जी आती हुई दिखलायी पड़ीं।

देखो वह--

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

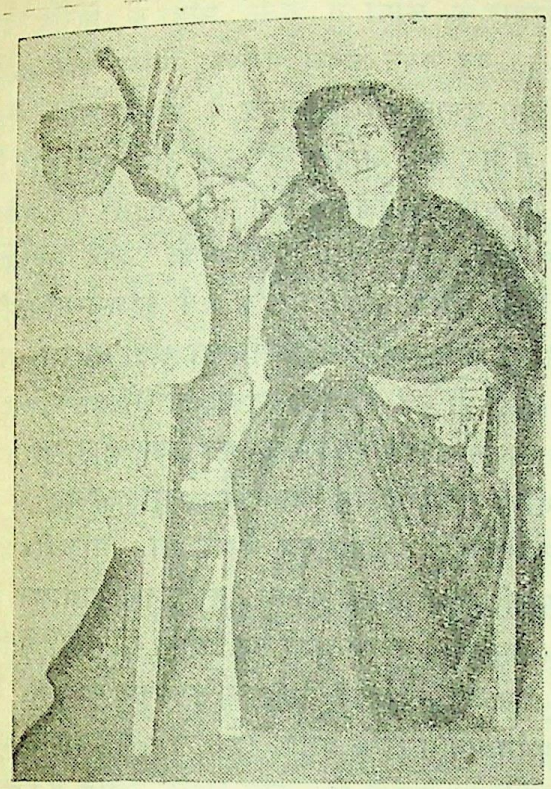

महामनाजी के जन्मशती समारोह के प्रधान मंत्री पं० पद्मकान्त मालवीय और इन्दिराजी

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
कमलाननेव गृहमेति 'इन्दिरा' ॥

(भावार्थ—पाण्डु एवं कृश गालों से सुन्दर, केश-सम्भार से अलंकृत मुख धारण करनेवाली, मूर्तिमती करुणा के समान, अपनी माता कमला के समान मुख-वाली इन्दिराजी मालवीयजी के गृह की ओर जा रही हैं)। घर के भीतर प्रवेश कर उन्होंने प्रथम मालवीयजी के कुल-देवता को प्रणाम किया और फिर 'सूतिकागृह' में प्रतिष्ठित मालवीयजी के चित्र पर बड़े आदर से पुष्पोहार द्वारा अपनी श्रद्धांजलि अर्पण की।

थोड़ी देर श्रद्धा से वहाँ खड़ी रहकर इन्दिराजी घर के बाहर आईं। द्वार ही पर प्रसाद-वितरण हो रहा था। उन्होंने आदरपूर्वक प्रसाद ग्रहण किया और थोड़ा सा अपने लिये हाथ में लेकर शेष वहीं पर बच्चों को बाँट दिया।

भीड़ धीरे-धीरे छटने लगी और लोग सुविधा से घर के भीतर जाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने लगे। यह क्रम रात को बहुत देर तक जारी रहा।

लगभग ग्यारह बजे रात्रि को श्रीकृष्णदासजी आये। उन्होंने मालवीयजी के समय में काशी-हिन्दू-विश्व-विद्यालय में कालिज की एम० ए० तक सब परी-क्षायें पास की हैं। उग्र क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के होते हुए और आये-दिन विश्वविद्यालय में राजनीतिक आन्दोलनों में मुठभेड़ करते हुए भी मालवीयजी उनको बहुत प्यार करते थे और दासजी उनके अनन्य भक्त थे। वे अस्वस्थ थे पर यह कैसे हो सकता था कि इस पुण्य अवसर पर वे अपनी श्रद्धांजलि न अर्पण करें। अस्वस्थता होते हुए भी, जब जी न माना तो वे आ ही गये। तब तक भीड़ छट गयी थी। वे आकर ठीक मालवीयजी के चित्र के सामने बैठ गये और उनको एकटक निहारने लगे। सहसा उनके हृदय में क्या टीस उठी कि उनकी आँखों से टप-टप आँसू झरने लगे। मैं खड़ा यह व्यापार देख रहा था। मैंने मन ही मन उनसे कहा—

अयं ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति चिरभराध्मातहृदयः॥

—भवभूति

(यह तुम्हारे आँसुओं का समह, टूटी हुई मोती की माला की भाँति जर्जरित होकर पृथ्वी पर गिर रहा है और यद्यपि तुमने अपने हृदय के आवेग को बहुत कुछ रोकने का प्रयत्न किया है परन्तु तुम्हारे नाक और होठों के फड़कने से वह आवेग स्पष्ट हो जाता है।) मुझे दासजी पर दया

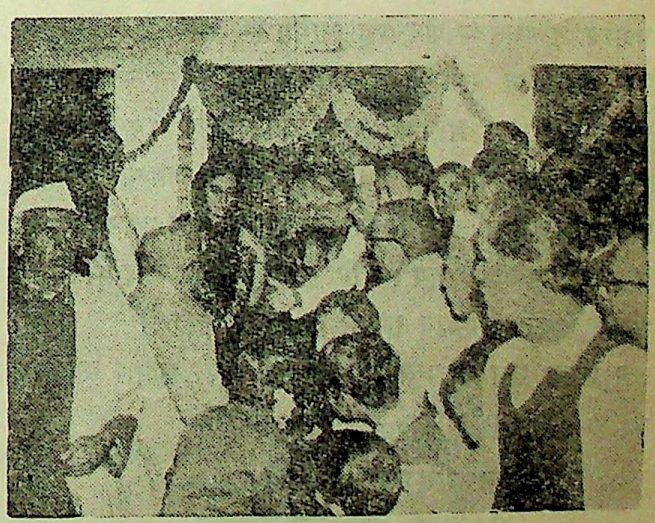

इन्दिराजी महामनाजी को श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर रही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गयी। मैंने कहा—'दासजी! अब रोना बन्द करो। चलो।' दासजी कातर नेत्रों से मेरी ओर देखने लगे जैसे कह रहे हों

थमते थमते थमेंगे आँसू।
यह रोना है, कोई हँसी नहीं है॥

मालूम नहीं कौन-कौन सी मालवीयजी से सम्बन्धित, मधुर स्मृतियाँ उनके हृदय को मथ रही थीं।

यह प्रभाव था मालवीयजी का काशी-विश्वविद्यालय के छात्रों पर, चाहे वे भयंकर क्रान्तिकारी ही क्यों न हों। सुना है, स्वामी रामतीर्थ के सामने सिंह भी दुम दबाकर बैठ जाता था।

मैंने इस समारोह का वर्णन विस्तार से इसलिए किया कि इतना पुनीत एवं हृदयग्राही समारोह प्रयाग के इतिहास में पहिले कभी नहीं हुआ था। इससे पता चलता है कि जनता के हृदय में मालवीयजी के प्रति कितनी असीम श्रद्धा, कितना आदर, कितना प्रेम था।

भीड़ और भीड़ के हृदय में प्रायः महदन्तर होता है। फारसी की एक कहावत है कि 'फरवेही चीज़े दिगर आमास चीज़े दीगरस्त'—शरीर का तगड़ा होना एक चीज है, उसमें सूजन होना बिलकुल दूसरी चीज है। इस समारोह की भीड़ तगड़ी थी, इसमें सूजन नहीं थी। अतः उसके विस्तृत वर्णन को जुगोकर रखना मेरा ध्येय है। अभी तो इस समारोह का एक-एक अवयव आँखों के सामने नाच रहा है। आगे चलकर ये ही, काल के प्रभाव से स्मर्तव्य शेष रह जायेंगे।

समारोह समाप्त हो गया। सब लोग अपने-अपने घर चले गये। घर का क्षुब्ध वातावरण एकदम शान्त हो गया। भगवान् कृष्णचन्द्र भी अपने अनन्य उपासक पण्डित व्रजनाथ चतुर्वेदी को महामना ऐसा पुत्ररत्न देकर विश्राम करने चले गये। मन्दिर का द्वारपट बन्द हो गया। भीतर केवल भगवान् कृष्ण और राधिकाजी रह गयीं। उस समय उस प्रशान्त मन्दिर की ऐसी शोभा हुई जैसे

रेचितं परिजनेन महीयः
केवलाभिरतदम्पतिधाम।
साम्यमाप कमलासखविष्वक्-
सेनसेवितयुगान्तपयोधेः।

—माघ

(परिवार के लोगों से शून्य, क्रीड़ा में निरत दम्पती से युक्त वह भवन केवल भगवान् विष्णु और लक्ष्मी से आश्रित, युगान्तकालिक समुद्र के समान लगने लगा।)

मैं घर लौट आया। देर तक नींद नहीं आई। इस सब व्यापार को देखकर मेरा मन, सहसा ५० वर्ष पीछे लौट गया। उस समय व्रजनाथजी और महामनाजी दोनों ही जीवित थे। प्रत्येक वर्ष कृष्णजन्माष्टमी पर इसी घर में धूम-धाम से जन्मोत्सव होता था। पिता और पुत्र दोनों ही बड़े चाव से इन उत्सवों में सम्मिलित होते थे। भजन-कीर्तन का अच्छा आयोजन होता था। नगर के नामी गवैये बुलाये जाते थे। 'सूतिका-गृह' में झिले डालकर स्त्रियों का समूह बैठता था। मालवीयजी की धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दन देवी उनका सभाजन करती थीं। प्रांगण में महामनाजी सब लोगों को आदर से बिठाते थे। इन अवसरों पर मेरे एक अति निकट सम्बन्धी, संगीत के मर्मज्ञ एवं नगर के प्रमुख रईस, पं० व्रजमोहन दुबे जी हारमोनियम बजाते थे। बहुत अच्छा बजाते थे। नगर के दूसरे रईस—नाम भूलता हूँ—याद आ गया, लाला दुर्गा प्रसाद थे—इनका गायन बड़ा मधुर होता था। ये दोनों व्यक्ति प्रतिवर्ष उत्सव में सम्मिलित होते थे। मालवीयजी इन दोनों का बहुत आदर करते थे। ठाकुरजी के ठीक सामने दालान में व्रजनाथजी अपनी बहुत सी बाँसुरी लेकर, उनके छिद्रों को रेत-रात कर और बजा-बजाकर हारमोनियम के स्वर से मिलाते रहते थे। इसमें बड़ी देर लगती थी। तबले का मिलाना उसके आगे झख मारे। उपस्थित लोगों का धैर्य छुटता रहता था परन्तु मालवीयजी का धैर्य असीम था। वे अपनी सहज मुस्कान से मृदुल स्वरों में पिता से कहते जाते थे 'उस छिद्र को थोड़ा और रेत दीजिये तो ठीक हो जायगी'। राम राम करके मुरली का स्वर मिल गया। व्रजनाथजी ने बाँसुरी के परीक्षणार्थ दो एक मिनट उसे बजाया और फिर वात्सल्य भरे नेत्रों से अपने पुत्र को निहारकर उन्होंने बाँसुरियों को झोले में रख दिया और ऐसे प्रफुल्लित हुए जैसे धनुष-यज्ञ में उनकी जीत हुई हो। लोगों की जान में जान आयी और गायन आरम्भ हो गया।

प्रत्येक वर्ष मैं इन उत्सवों के लिए उत्सुक ही नहीं आकुल सा रहता था। सन्ध्या के पहिले ही से उसकी प्रतीक्षा करता रहता था। भादों में वृष्टि तो होती ही है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि किसी वर्ष उसी समय बादल उमड़ आये और मुझे बँदर-भपकी दी तो जी धुक्-धुक् करने लगता था। मेरे मकान और मालवीयजी के इस पैतृकगृह के बीच में केवल एक दीवार है। जैसे ही उनके घर में तबले पर थाप पड़ी, मैं मयूर की भाँति गर्दन उठाकर सुनने लगता था और यह जानकर कि गायन आरम्भ होने ही वाला है, मैं 'लैयाँ-पैयाँ' उनके घर की ओर भाग खड़ा होता था।

जीमूतस्तनितविशंकिभिर्मयूरै--
रुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य।
निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था
मायूरी मदयति मार्जना मनांसि॥
कालिदास—मालविकाग्निमित्र

(मृदंग पर थाप पड़ने से निकली हुई ध्वनि को मेघ-गर्जन समझकर ये मयूर ऊपर गर्दन उठाकर देखने लगे और दूर तक गूँजने वाली यह मध्यम स्वर से उठी हुई मायू ी नाम की गमक मन को मतवाला बनाये डाल रही है।)

एक वर्ष उस उत्सव में बड़ी मज़ेदार बात हुई जिसको मैं अभी तक नहीं भूला। गायन के लिये सभी साज तैयार हो चुके थे; परन्तु सरंगिया नहीं आया था। दुबेजी खीझ रहे थे। लोग उतावले हो रहे थे। परन्तु मालवीय जी अपनी मधुर बात-चीत में सब को लगाये थे। इतने में एक व्यक्ति ने, जिसकी खासी गलमुच्छे थीं, घर में प्रवेश किया। दूर ही से उसे देखकर दुबेजी उबल पड़े-- "अभी तक कहाँ मर गए थे। चले भी तो बिना सरंगी के।" वह व्यक्ति भौचक्का सा खड़ा रह गया। मैंने तो उन्हें पहिचान ही लिया था क्योंकि वे उस स्कूल के अध्यापक थे, जिसमें मैंने उनके निरीक्षण में शिक्षा पायी थी। वे अपने छात्रों की अच्छी पिटाई करते थे जिसे मैं अब तक भूला नहीं था। नगर के एक पेशेवर सरंगिया से उनका रूप-साम्य था, इसीसे दुबेजी धोखा खा गये। मुंशीजी की झेंप उनके गलमुच्छों में खो गयी परन्तु मंडली में जोर का कहकहा लगा। मुझे तो प्रसन्नता हुई कि मेरे नाम-रासी पं० व्रजमोहन दुबे ने उनकी बेतों का बदला ले लिया पर मालवीयजी ने हँसकर उनसे क्षमा याचना की और उन्हें बड़े आदर से बैठाया। मुंशीजी पानी-पानी हो गये।

इसी प्रकार के अनेकानेक सजीव चलचित्र मेरे हृदय-पटल पर आ-आकर अन्तर्धान होने लगे और मैं उन्हें हृदय में सँजोकर सो गया।

क्रमशः

रवीन्द्र शताब्दि के अवसर पर

श्री प्रभाकर माचवे

ब्रह्मानन्द 'रसो वै सः' के साधक, ओ चिर-यौवन-पूजक
'जन-गण-मन' के प्रेरक, तुम को प्रणाम, तुम युग-युग के गायक
बाउल, चंडी ठाकुर, कबिरा, तुकाराम औ' भानुसिंह-पद
कथा-काहिनी, प्रभात-संध्या, खेया, गीतांजली, ...अमर-पद।
तुमने चित्र-गान-अभिनय या जो कुछ छुआ, नया कर छोड़ा
दुनिया देखी, लेकिन अपनी पद्मा से नाता कब तोड़ा?
चाहे वह इटालवी हो अंगरेजी या जापानी, बेशक--
जहाँ कहीं अन्याय दिखाई दिया, लेखनी जूझी अनथक।
देखी तुमने वर्ण-जाति और राष्ट्र-भेद से परे मनुजता,
देखी तुमने युद्ध-जिघांसा में संकट से घिरी सभ्यता।
भारत-तीर्थ मनोहर पावन, एकाकार जड़ाशय चेतन
महा-समन्वय के उद्गाता, कविर्मनीषी, शांति - निकेतन!
राष्ट्र-विहंगों ने पाया है नीड जहाँ वह विश्वभारती:
पूर्व और पश्चिम, गत-आगत, वंग और विश्वात्मक धरती!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या जलप्लावन आख्यान मूलतः भारतीय है ?

श्री श्रीराम गोयल

विश्व की लगभग सभी सभ्य और अर्द्धसभ्य जातियों में यह धारणा प्रायः प्रचलित मिलती है कि अति प्राचीन काल में किसी समय देवताओं के कोप के कारण पृथिवी पर भयंकर जलप्लावन हुआ था जिसके कारण समस्त मनुष्य जाति और पशुजगत् का विनाश हो गया, सिवाय उन प्राणियों के जो दैवी कृपा से बच गये और भावी जीव-जगत् के विकास का कारण बने। यद्यपि इस आख्यान के आन्तरिक विरोधाभासों तथा आधुनिक काल में हुई वैज्ञानिक गवेषणाओं, विकासवाद के आधार पर जीव-विकास-क्रम की व्याख्या और मानव प्रजातियों के नृ-शास्त्रीय अध्ययन से ज्ञात तथ्यों के कारण इसकी यथार्थता में अविश्वास करना अनिवार्य हो गया है, तथापि इस विश्वास का विश्वजनीन होना और लगभग सभी देशों में धार्मिक आख्यान के रूप में प्रचलित होना प्राचीन धर्मों और पुराकथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए मीमांस्य बना हुआ है।

जलप्लावन आख्यान के विविध रूप

पश्चिमी देशों में अभी हाल ही तक यह विश्वास किया जाता था कि अन्य देशों और जातियों को इस कथा का ज्ञान यहूदी बाइबिल से हुआ। परन्तु जैसा कि पुरा-कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले विद्वानों ने ध्यान दिलाया है, विश्व की विभिन्न जातियों में यह आख्यान इतने विविध रूपों में मिलता है कि इसकी व्युत्पत्ति और विश्वजनीन लोकप्रियता की व्याख्या किसी एक जाति के अनुभव के आधार पर करना असम्भव है। साधारणतः इस आख्यान में कहा गया है कि एक समय एक देवता या बहुत से देवता अकारण अथवा किसी विशेष कारण से मानव-जाति से अप्रसन्न हो गए। क्रोधवश उन्होंने मनुष्यों के विनाश के लिए प्रलय करने का निश्चय किया। परन्तु किसी एक देवता ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक या बहुत से व्यक्तियों को इसकी पूर्व सूचना दे दी और उससे बचने के लिए एक विशेष प्रकार की नौका, बॉक्स या ऐसी ही कोई वस्तु दी अथवा बनाने का आदेश दिया। इसके कुछ समय पश्चात् घोर वर्षा या किसी अन्य कारण से प्रलय हुआ जिससे केवल वही व्यक्ति और अन्य प्राणी जीवित बचे जिनको उक्त नौका में आश्रय मिला था। जब प्रलय का जल घटा, वे एक पर्वत अथवा द्वीप में आये और देवताओं को बलि देकर प्रसन्न किया। देवताओं ने प्रसन्न होकर भावी प्राणियों की रचना की और सब अवशिष्ट मनुष्यों अथवा उनके नेता या नेताओं को अमरत्व प्रदान किया।

जलप्लावन की कथा का यह रूप काल्पनिक है। इसमें इसके विभिन्न जातियों में प्रचलित विविध रूपों के मुख्य तत्त्वों को ले लिया गया है। स्मरणीय है कि किसी भी जाति में प्रचलित जलप्लावन की कथा में ये सब तत्त्व एक साथ नहीं मिलते और जितने तत्त्व किसी एक आख्यान में मिलते हैं उनका रूप अन्य जातियों में मिलनेवाले आख्यानों के प्रतिरूप तत्त्वों से प्रायः भिन्न है। उदाहरणार्थ जलप्रलय का कर्त्ता प्रायः किसी एक देवता को माना गया है परन्तु उत्तर-अमरीकी इंडियनों में प्रचलित कथा में काले नाग, चील या ऐसी ही किसी अशुभ शक्ति को। इसी प्रकार देवताओं के क्रुद्ध होने का कारण बाइबिल में मनुष्य का पापिष्ठ होना कहा गया है तो बहुत-सी आदिम जातियों में किसी मनुष्य द्वारा किसी क्रोधी देवता के प्रिय पक्षी का मारा जाना जैसी मामूली घटना। प्रलय की पूर्व सूचना भी बहुधा विभिन्न प्रकार से दी गयी है। शतपथ ब्राह्मण में यह कार्य एक मछली करती है, सुमेरियन आख्यान में एनकी नामक देवता और पीमा जाति में प्रचलित कथा में एक चील। जो प्राणी प्रलय के पश्चात् जीवित बचे उनकी सूची भी प्रायः भिन्न मिलती है। आसाम की पहाड़ी जातियों में प्रचलित आख्यान में यह सौभाग्य एक दम्पति को प्राप्त होता है, कोलारी जाति के आख्यान में एक भाई-बहिन को तथा बाइबिल में नूह और उसके सम्बन्धियों को। कश्मीर की एक कथा में तो प्रलय से समस्त प्राणी जगत् विनष्ट हो जाता है, इसके पश्चात् पुनः सर्वथा नवीन सृष्टि होती है। प्रलय होने के ढंग भी प्रायः भिन्न मिलते हैं, यद्यपि अधिकांशतः प्रकृत्या वर्षा को इसका कारण माना गया है। कुछ अमरीकी जातियों में समुद्र को पृथिवी पर बढ़कर प्रलय करनेवाला कहा गया है। प्रलय के विस्तार के विषय में भी विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यान एक मत नहीं है। किसी आख्यान में प्रलय स्थानीय बाढ़ के समान लगती है तो किसी में इसके कारण एक दो ऊँची पर्वत चोटियों को छोड़कर समस्त पृथिवी जल में डूब जाती है। प्रलय के पश्चात् देवताओं को बलि देने का उल्लेख बहुत कम आख्यानों में हुआ है। जहाँ इसका उल्लेख हुआ है वहाँ इसे बहुधा नवीन प्राणि जगत् की सृष्टि के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। जिन आख्यानों में प्रलय के पश्चात् एक व्यक्ति ही बचता है वहाँ नवीन प्राणियों की सृष्टि उस व्यक्ति के किसी देवता या पशु के साथ सहवास करने से होती है। पीरू में प्रचलित जलप्लावन की कथा में तोता अवशिष्ट मनुष्य की पत्नी बनता है।

आख्यान का मूल

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि जो आख्यान विभिन्न जातियों में इतने विविध रूपों में मिलता है उसका मूल किसी एक जाति में प्रचलित आख्यान अथवा एक विश्वजनीन जलप्लावन में खोजना नितान्त भ्रान्ति होगी। ध्यातव्य है कि प्राचीन काल में, जिस समय इन आख्यानों का जन्म हुआ होगा, मनुष्य अधिकतर नदियों की घाटियों में रहते थे, जहाँ उन्हें कृषिकर्म के लिए पर्याप्त जल मिल सके। ऐसे प्रदेशों में भयंकर बाढ़ आना एक सामान्य बात थी। कभी-कभी बाढ़ वस्तुतः प्रलयंकर रूप धारण कर लेती थी। इस अनुभव की व्याख्या आदिम मनुष्य जातियों ने विभिन्न प्रकार से की। बहुत से आख्यानों के पीछे उनमें विश्वास करनेवाली जातियों का स्थानीय अनुभव सर्वथा स्पष्ट है। चीन में प्रचलित प्रलय की कथा इसका उदाहरण है। बहुत से आख्यान आदिम मनुष्यों के द्वारा समुद्रों, नदियों, झीलों, मानव-जातियों में उपलब्ध भेदों और प्राचीन प्रस्तरित अस्थि-अवशेषों इत्यादि की व्याख्या करने के प्रयास का परिणाम लगते हैं। इससे स्पष्ट है कि जलप्लावन की अधिकांश कथाओं का मूल विभिन्न जातियों के व्यक्तिगत अनुभवों और उनकी प्राकृतिक दृग्विषयों (Natural phenomenon) की व्याख्या करनेवाली कल्पनाओं में निहित है।

यहूदी जलप्लावन आख्यान

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जलप्लावन विषयक सब आख्यान एक दूसरे से सर्वथा पृथक् और अप्रभावित रहे हैं। निश्चित रूप से कुछ जातियों के जलप्लावन आख्यानों को अन्य जातियों ने अपनाया है अथवा उनके अपने आख्यान दूसरी जातियों के आख्यानों से प्रभावित हुए हैं। इस दृष्टि से यहूदी, सुमेरो-बैबिलोनियन और भारतीय जलप्लावन आख्यान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

बाइबिल में सुरक्षित जलप्लान की कथा सबसे अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। विशेषतः ईसाई धर्म-प्रचारकों के उत्साह के कारण इसका ज्ञान विश्व की अनेक जातियों को हुआ। इस कथा के नायक हजरत नूह हैं। वह ईश्वर से भावी प्रलय की सूचना पाकर एक आर्क (बॉक्स ? जहाज ?) बनाते हैं और उसमें सभी प्राणियों का एक-एक जोड़ा रखते हैं। फिर ४० दिन और ४० रात तक वर्षा होती है। पृथिवी जल से ढक जाती है। नूह का जहाज अरारात पर्वत पर रुका रहता है। इसके बाद वर्षा थमती है। प्रलय का जल घटता है और नूह द्वारा रक्षित जोड़ों से सृष्टि बढ़ती है।

बैबिलोनियन आख्यान

यहूदी जलप्लावन आख्यान अपने लिखित रूप में नवीं शताब्दी ई० पू० से अधिक पुराना नहीं है और मूलतः एक प्राचीनतर बेबिलोनियन आख्यान का यहूदी संस्करण मात्र है। जैसा कि स्वयं बाइबिल से स्पष्ट है, यहूदी जाति प्रारम्भ में बैबिलोनिया में रहती थी। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के प्रारम्भ में वह अब्राहम के नेतृत्व में हर्रान होते हुए पेलेस्टाइन की ओर चली गयी। परवर्ती युगों में भी उसका बैबिलोनियन जाति से घनिष्ठ सम्पर्क बना रहा। इसलिए अगर यहूदी जाति को इस आख्यान का ज्ञान बैबिलोनियनों से हुआ हो तो आश्चर्य नहीं।

सुमेरिया में प्रचलित जलप्रलय की कथा

परन्तु स्वयं बैबिलोनियन भी इस कथा के जन्मदाता नहीं थे, यह बैबिलोनिया में निवास करनेवाली सुमेरियन जाति के अभिलेखों से ज्ञात होता है। सुमेरियन जाति, जिसे दजला और फरात की घाटी में सभ्यता को जन्म देने का श्रेय दिया जाता है, तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में सक्रिय थी। चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० की अन्तिम शताब्दियों में उसने सुमेर के दलदलों को सुखाकर नगर बसाने प्रारम्भ किये थे। उसके अभिलेखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जलप्लावन की कथा को ऐतिहासिक महत्त्व दिया गया है। इनमें बताया गया है कि एक बार देवताओं ने कोप करके पृथिवी को जलप्लावित करने का निश्चय किया। परन्तु एनकी नामक देवता ने यह रहस्य शर्रूपाक नगर के निवासी ज्युसुद्र को बता दिया। ज्युसुद्र ने एनकी की राय के अनुसार एक विशाल नौका बनायी और 'जीवों के बीजों' को उसमें स्थान दिया। फिर प्रलय हुआ। विकराल काले मेघ वर्षा करने लगे। समस्त पृथिवी जल में डूब गयी। स्वयं देवता भय से कुत्तों की भाँति काँपने लगे। सात दिन बाद प्रलय का जोर घटने लगा। ज्युसुद्र ने बलि देकर देवताओं को सन्तुष्ट किया। देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने ज्युसुद्र को अमरत्व प्रदान कर 'दिल-मुन' पर्वत पर स्थान दिया।

जलप्लावन आख्यान का भारतीय संस्करण और उसकी प्राचीनता

जलप्लावन आख्यान का तीसरा महत्त्वपूर्ण संस्करण भारतीय संस्कृत ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। यद्यपि यह संस्करण यहूदी और सुमेरो-बैबिलोनियन संस्करणों से प्राचीनतर प्रतीत होता है तथापि इसका अध्ययन अभी तक उतने सूक्ष्म रूप से नहीं हुआ है जितना होना चाहिए था, और जितना अन्यत्र उपलब्ध सदृश कथाओं का हुआ है।

भारतीय जलप्लावन की कथा आजकल शतपथ ब्राह्मण एवं महाभारत तथा मत्स्य, भागवत और अग्नि पुराणों में मिलती है। विष्णुपुराण में भगवान् वराह द्वारा पृथिवी के उद्धार की कथा में भी सम्भवतः इसकी छाया है। इन सब ग्रंथों की रचना आर्यों के भारत में आने के बाद उत्तर वैदिक काल से लेकर गुप्तकाल के अन्त तक हुई थी। इसलिए आपाततः ऐसा लगता है इनमें दी गयी जलप्लावन की कथा मूलतः आर्यों की कृति होगी। परन्तु यह धारणा भ्रामक है। विचारार्थ है कि यह कथा परवर्ती युग में अत्यन्त लोकप्रिय होने के बावजूद प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में सर्वथा अज्ञात है। यद्यपि ऋग्वेद में मनु और इन्द्र की शक्ति का संकेत देने-वाली बाढ़ों का उल्लेख यत्र तत्र हुआ है तथापि 'जल-प्लावन' का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इससे यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं है कि आर्यों को इस कथा का ज्ञान भारत में आने और आर्येतर जातियों से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित होने के बाद हुआ। इसीलिए यह सर्वप्रथम उत्तर वैदिक काल में रचित शतपथ ब्राह्मण में मिलती है।

इस निष्कर्ष का समर्थन इस कथा के विभिन्न रूपों के तुलनात्मक अध्ययन से भी होता है। शतपथ, महाभारत तथा मत्स्यपुराण में इसका नायक 'राजा मनु' को बताया गया है जिसने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर घोर तप किया था। इसके विपरीत भागवत पुराण में उसका नाम सत्यव्रत मिलता है और उसे द्रविड़ों का राजा और विष्णु का उपासक कहा गया है। भागवत पुराण का उसे द्रविड़ों का राजा बताना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे हमारे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि उससे सम्बन्धित जलप्लावन की कथा आर्येतर है। उसका घोर तप करके ऋषि बन जाना इसका अतिरिक्त प्रमाण है क्योंकि तपश्चर्या करके पुण्यार्जन करने में विश्वास मूलतः द्रविड़ और आर्य जीवनदर्शन के सर्वथा विपरीत था, यह तथ्य अब लगभग सुनिश्चित माना जाने लगा है। भागवत पुराण का उसे विष्णु का उपासक बताना इस प्रसंग में निस्सार है क्योंकि यह पुराण धार्मिक दृष्टि से निष्पक्ष ग्रन्थ नहीं है।

भारतीय जलप्लावन आख्यान में बताया गया है कि एक बार नदी में जलार्पण करते समय मनु के हाथ में एक छोटी सी मछली आ गयी। उसने उन्हें आनेवाले प्रलय से अवगत किया और शतपथ तथा महाभारत के अनुसार उन्हें एक जहाज बनाने की आज्ञा दी। मत्स्यपुराण के अनुसार उसने मनु को एक देव-निर्मित यान दिया। महाभारत के अनुसार उसने मनु को एक लम्बी रस्सी का प्रबन्ध करने के लिए भी कहा। जब प्रलय प्रारम्भ हुआ, वह मछली पुनः आयी। मनु ने यान को रस्सी की सहायता से उसके पर्वताकार सींग से बाँध दिया। यान 'तूफान से उत्पन्न लहरों में मत्त नारी के समान झूमता हुआ' आगे बढ़ा। महाभारत के अनुसार पर्वतों के समीप पहुँचने पर मछली ने यान को पर्वत की चोटी से बाँधने की आज्ञा दी। यह जगह 'मनोरवसमर्पणम्' (मनु के उतरने का स्थान) कहलायी। महाभारत में इसे 'नौकाबन्धनम्' (नाव बाँधने की जगह) कहा गया है। जलप्रलय के बाद मनु अकेले बच गये। उन्होंने यज्ञ किया। कुछ काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् वहाँ श्रद्धा नामक स्त्री उत्पन्न हुई। उससे मानवी प्रजा की पुनः सृष्टि हुई।

जलप्लावन की इससे मिलती-जुलती कथा भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व, अर्थात् तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में प्रचलित थी। यही समय सुमेरियन सभ्यता का भी है। प्रश्न उत्पन्न होता है--क्या भारतीय कथा सुमेरियन कथा से प्राचीनतर है ?

सुमेरियन आख्यान की प्राचीनता

हमारे विचार से इस प्रश्न का निषेधात्मक उत्तर देना कि न है। आजकल साधारणतः यह विश्वास प्रचलित है कि सुमेरियन जलप्लावन की कथा प्राचीनतम ही नहीं है वरन् इसमें सुमेर में आयी किसी यथार्थ भयंकर बाढ़ की स्मृति सुरक्षित है। सर लियोनार्ड वूली के नेतृत्व में उर नगर में किये गये उत्खनन में प्राचीन काल में आयी भयंकर बाढ़ के चिह्न मिले हैं। इसको साधारणतः जलप्लावन की कथा का मूल माना जाता है।

अगर यह विचार सही है तो स्वीकृत करना पड़ेगा कि जलप्लावन कथा सबसे पहले सुमेर में उद्भूत हुई, और भारतीयों को इसका ज्ञान बाद में हुआ। परन्तु इस निष्कर्ष को मानने में बहुत-सी बाधाएँ हैं। एक तो जिस बाढ़ के चिह्न हमें किश, वरका (उरुक) तथा शर्रूपाक में मिले हैं, वह जलप्लावन की कथा का मूल है, इसे पूर्णरूपेण सिद्ध नहीं किया गया है। स्मरणीय है कि सुमेर, मिस्र और सिन्धु प्रदेश, इन तीनों प्रदेशों में बाढ़ आना सामान्य बात थी। इसलिए किसी वर्ष आयी असाधारण बाढ़ को किसी विशेष कथा से निश्चित रूप से सम्बद्ध करना कठिन है। सुमेरियन राजावलियों में जलप्रलय को इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में उल्लिखित किया गया है। जिस समय तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में सुमेरियन लेखकों ने अपने देश के प्राचीन राजाओं की सूचियाँ तैयार कीं, उन्होंने उन्हें दो भागों में बाँटा--जलप्लावन के पूर्व के राजा और जलप्लावन के बाद के राजा। इनमें जलप्लावन के पूर्व के राजाओं के नाम मात्र सुरक्षित हैं, उनका विश्वसनीय इतिहास नहीं मिलता। इससे श्री वूली ने यह निष्कर्ष निकाला है और इसे प्रायः स्वीकृत किया जाता है कि सुमेरियन दक्षिणी मेसोपोटामिया (सुमेर) में जलप्लावन के पूर्व से बसे हुए थे। जलप्लावन से उनके राष्ट्रीय जीवन में व्याघात पहुँचा परन्तु अवशिष्ट सुमेरियनों ने पुनः गति करने में सफलता पायी।

सर लियोनार्ड का यह निष्कर्ष अत्यन्त असन्तोषप्रद है। उनकी यह मान्यता है कि जिन सुमेरियन राजावलियों में बाढ़ को एक ऐतिहासिक महत्त्व की घटना बताया गया है, उनमें सुमेरियन 'जाति' के राजाओं के नाम संगृहीत हैं। परन्तु वह यह भूल जाते हैं कि वस्तुतः ये सूचियाँ सुमेर 'देश' के राजाओं की हैं सुमेरियन 'जाति' की नहीं। इनमें उल्लिखित जलप्लावन के पूर्व के राजाओं को जाति से सुमेरियन मानना आवश्यक नहीं है। वास्तव में सुमेरियन जलप्लावन की कथा और राजावलियों में जलप्लावन के पूर्व के राजाओं के नामों का निष्पक्षता से अध्ययन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनमें सुरक्षित जलप्लावन के पूर्व और फौरन बाद का इतिहास सुमेरियन जाति का इतिहास नहीं है। (१) जलप्लावन की कथा का नायक ज्युसुद्र सुमेर में न रहकर सेमेटिक प्रदेश अक्काद के शर्रूपाक नगर में रहता था। (२) जलप्लावन के पूर्व जिन राजाओं ने शासन किया वे सुमेरियन प्रतीत नहीं होते। अनेक विद्वानों ने उनको पूर्णतः काल्पनिक माना है। (३) जलप्लावन के पश्चात् राज्य करने वाले वंश की राजधानी भी सुमेर में नहोकर अक्काद में किश नाम का नगर थी। इसके कम से कम चार राजाओं के नाम सेमेटिक हैं। (४) स्वयं लियोनार्ड वूली के अनुसार उर नगर के निम्नतम स्तरों में जो सामग्री प्राप्त हुई है वह सुमेरियन जाति की प्रतीत नहीं होती।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि जिस समय सुमेर में जलप्लावन हुआ था उस समय तक सुमेरियन जाति सुमेर में प्रविष्ट नहीं हो पायी थी। इसलिए हमारी यह शंका कि सुमेरियन राजावलियों में प्राप्त प्रारम्भिक सुमेरियन इतिहास सुमेरियन 'जाति' से नहीं केवल सुमेरियन 'देश' से सम्बन्धित है, दृढ़तर हो जाती है। ध्यातव्य है कि सुमेरियन जलप्लावन कथा में यान के एक पर्वत पर रुकने की चर्चा की गयी है। परन्तु सुमेर में ऐसा कोई पर्वत नहीं है जो इस प्रकार की कल्पना को जन्म दे सके। स्पष्टतः जलप्लावन एक ऐसी घटना थी जो सुमेरियनों के सुमेर में प्रवेश करने के पहले ही घट चुकी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या सुमेरियन कथा मूलतः भारतीय थी ?

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुमेरियन जाति को जलप्लावन की कथा का ज्ञान किस प्रकार हुआ। इस विषय में दो विकल्प सम्भव हैं। या तो सुमेरियन जाति इस आख्यान को अपने आदि देश से लायी थी, अथवा उसे इसका ज्ञान सुमेर में उसके आगमन के पूर्व रहनेवाले सेमाइटों से हुआ। हमारे विचार से इनमें पहला विकल्प अधिक मान्य है। जिस समय सुमेरियन जाति, दक्षिणी बैबिलोनिया में प्रविष्ट हुई वह सांस्कृतिक दृष्टि से पर्याप्त समुन्नत थी। इसके विपरीत उसकी पूर्वगामी सेमेटिक जाति अर्द्धसभ्य थी। उसका कोई प्रभाव सुमेरियन संस्कृति के उद्भव और विकास पर पड़ा, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए यह अनुमान करना निराधार नहीं होगा कि इस आख्यान के विषय में भी सुमेरियन जाति उसकी ऋणी नहीं थी।

इस प्रसंग में सुमेरियन जाति के मूल निवासस्थान की समस्या अतीव महत्त्वपूर्ण हो उठती है। सुमेरियन आख्यान और अन्य साक्ष्य इस विषय में निश्चित मत हैं कि सुमेरियन सम्भवतः समुद्री मार्ग से पूर्व की ओर से आए थे। हेलेनिस्टिक युग के बैबिलोनियन लेखक बेरोसॉस ने सुमेरियनों के इस विश्वास का, कि ओआनीज नामक देव ने समुद्री मार्ग से आकर उन्हें विविध कलाएँ सिखायीं और शिक्षित बनाया, उल्लेख किया है। बाइबिल में एक जाति को जिसका नाम नहीं दिया गया है, पूर्व दिशा से आकर शिन्नार (सुमेर) में बसने का उल्लेख हुआ है। सुमेरियन-विद्या-विशारदों की यह लगभग सर्वानुमोदित धारणा है कि इस कथन में सुमेरियनों की ओर संकेत किया गया है। इससे भी सुमेरियनों के पूर्व दिशा से आकर बसने का संकेत मिलता है। सुमेरियनों का यह विश्वास कि उनके देवता पूर्व दिशा में स्थित पर्वत पर निवास करते थे इस अनुमान को अतिरिक्त [illegible] प्रदान करता है। इन तथ्यों से कम से कम इस [illegible] स्पष्ट हो जाता है कि सुमेरियन जाति पूर्व दिशा [illegible] आयी थी।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुमेर के पूर्व में वह कौन-[illegible] देश हो सकता है जिसे सुमेरियनों का आदि निवास-स्थान माना जा सके। हमारे विचार से एशिया के मानचित्र पर एक दृष्टि डालते ही इसका उत्तर दिया जा सकता है। सुमेर के निकट ऐसा देश केवल भारत ही हो सकता है। स्मरणीय है कि जिस समय सुमेरियन सुमेर में आकर बसे, वे सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों से न्यूनाधिक परिचित थे। सुमेर के पूर्व में ऐसा देश जहाँ नागरिक सभ्यता से परिचित जाति निवास करती थी केवल भारत ही था। इसलिए हॉल, हेड्डोन, बर्टन, हेरास तथा क्रोली इत्यादि अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि सुमेरियन भारत के सिन्ध प्रदेश से आये थे। हाल ही में श्री क्रेमर ने भी इस मत की श्रद्धेयता स्वीकृत की है। इस सुझाव को मान लेने से सैन्धव और सुमेरियन सभ्यताओं की सादृश्यता की सन्तोषप्रद व्याख्या हो जाती है। इससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि सुमेरियन जलप्लावन की कथा से उस समय से परिचित थे जब वे सिन्धु प्रदेश में रहते थे। भारतीय जलप्लावन की कथा की सतर्क सिद्ध प्राचीनता हमारे इस निष्कर्ष में सहायक होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जलप्लावन आख्यान के यहूदी, बैबिलोनियन, सुमेरियन तथा भारतीय संस्करणों में भारतीय संस्करण सम्भवतः प्राचीनतम है। भारतीयों से इसका ज्ञान सुमेरियनों को और उनसे बैबिलोनियनों और यहूदियों को हुआ। यहूदियों को इसे रूपान्तरित करके और अपनी बाइबिल में स्थान देकर अनेक देशों और जातियों में लोकप्रिय बनाने का श्रेय प्राप्त है, इसके रचयिता होने का नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत

श्री पुत्तूलाल शर्मा, उद्दण्ड

भारतवर्ष ऋतुप्रधान देश है और समय-समय पर छः ऋतुओं से विभूषित होता रहता है। ज्योतिष में ऋतुओं के आधारभूत नामों का बड़ा वैज्ञानिक विवेचन मिलता है और ऋतुओं का नामकरण समय-सामंजस्य-सापेक्ष है। अन्य देशों में छः ऋतु नहीं होते, भले ही वे प्राकृतिक सुषमा-संपन्न और प्राकृतिक निधियों से प्रपूर्ण हों। अस्तु, यह स्वाभाविक है कि भारत के कवि एवं लेखकों द्वारा ऋतुओं का वर्णन किया जाय। फलतः नवीन तथा प्राचीन सभी लेखकों ने ऋतु-वर्णन से अपनी लेखनी को भूषित और धन्य कर जन-मानस को सरस किया है। छः ऋतुओं में से तीन ऋतु—ग्रीष्म, वर्षा, वसंत के वर्णनों की अधिकता है। इनमें भी वर्षा और वसंत का वर्णन प्रचुर है, वसंत का तो सबसे अधिक। वसंत-ऋतु के काल-निर्णय पर मतभेद है। ज्योतिष, आयुर्वेद और साहित्य में वसंत के काल संबंधी निश्चय में भिन्नता है। साहित्य में तो फाल्गुन और चैत्र ही वसंत माना गया है, पर अन्य मत से चैत्र और वैशाख के महीने वसंत की परिधि में आते हैं। किन्तु फाल्गुन और चैत्र का वसंत माना जाना बहु-सम्मत है। साहित्य-ग्रन्थों के अध्ययन से वसंतोत्सव की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन समझ पड़ती है। किसी समय इस पर्व का पर्याप्त महत्त्व था और यह बड़े समारोहपूर्वक मनाया जाता था, जिसके संबंध विभिन्न कथानक उपलब्ध हैं। कालान्तर में यह उल्लेख-मात्र के लिए रह गया। ऐसा लगता है कि जब हमारा देश उत्कर्ष पर था तो इसे लोग धूम-धाम से मनाया करते थे; क्योंकि यह सुख का पर्व था। हमारी दशा में परिवर्तन होने पर इसका मनाया जाना धीरे-धीरे समाप्तप्राय हो गया। यह इतना व्यापक पर्व था कि इसमें कितने ही राग-रंग, नृत्य, वाद्य और खेल-तमाशे होते थे। अतः 'बसंत मनाने' का मुहावरा ही चल पड़ा और इस प्रकार आज बसंत, तमाशे का पर्याय बन गया है। किन्तु प्रमुख बात यह है कि वसंतोत्सव का मनाया जाना परिपाटी प्रचलना-नुसार फाल्गुन में ही मिलता है और पंचांग में भी श्रीपंचमी फाल्गुन में ही पड़ती है; इसलिए साहित्य का फाल्गुन और चैत्र को वसंत मानना सुसंगत और समीचीन है। ऋतु-वर्णन दो प्रकार से किया गया है—एक, मात्र प्रकृति-वर्णन; दूसरे, प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करके। काल, वस्तुस्थिति और वातावरण जड़ तक के लिए प्रभावी है, फिर चेतना की तो बात ही क्या? अस्तु, हमारे कवियों ने चेतन से प्रकृति का संपर्क जोड़कर कोई अपराध नहीं किया। प्रगतिवादी दर्शन में यदि वे प्रतिगामी समझे जायँ तो यह दोष समझनेवालों की दृष्टि का अधिक और उनका कम है। वसंत-ऋतु मादक ऋतु है और यह मादकता कण-कण से उद्दीप्त होती है, तब काम का प्रखर होना सहज है। पंचबाण के पाँचों बाणों का संधान इसी समय होता है, यही कारण है कि वसंत ऋतुराज बन गया। इसे यह पदवी इसी विशेषता के कारण मिली।

तो, वसन्ती वायु प्राकृतिक-छटा को दर्शाता हुआ क्या करता आ रहा है, जरा कालिदास की वाणी में सुनिए—

लताकुञ्जं गुञ्जन् मदवदलिपुञ्जं चपलयन्,
समालिंगन्नंगं द्रुततरमनंगं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्,
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि॥

दिशाओं में मन्द-मन्द मारुत शरीर को छूकर जब इस प्रकार डोल उठे तो द्रुततर अनंग का प्रबल हो जाना नितान्त स्वाभाविक है। यही नहीं अविकसित, बाल चन्द्र के सदृश्य टेढ़े-मेढ़े लाल-लाल पलाशपुष्पों को देखकर कालिदास वनस्थली में नखक्षत समझकर वसंत के समागम की कल्पना कर लेते हैं—

बालेन्दु वक्राण्यविकासभावाद्
बभुः पलाशान्यतिलोहितानि,
सद्यो वसन्तेन समागमानां
नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्॥

इसी पृष्ठभूमि में कुछ रत्नाकरजी की भी सुनिए। वसंत आ गया तो क्या हुआ—

कूजन लगे हैं पिक पंचम रसीले राग,
गूँजन लगे हैं भौंर संघ सुघराई में।
कहै रतनाकर रसाल बौरि झूलि उठे,
फूलि उठे सुमन अनंद अधिकाई में॥
साजन लगे हैं साज सुखद सँजोगी गन,
बाजन लगे हैं बाज बिसद बधाई में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंत लागे चापन वियोगी कहि हाय हंत,
संत लागे काँपन बसंत की अवाई में ।।

रत्नाकरजी ने कैसी चौकस बात कह दी है। संत तक काँपने न लगें तो वसंत ही क्या? पंचबाण के पाँचों बाण धनुष पर चढ़े हुए हैं, फिर बचना कठिन कैसे न हो?

है सब कुछ वही, पर और का और नजर आ रहा है, यद्यपि अभी वसंत के दो दिन भी नहीं बीते हैं। इसे रसिक-प्रवर पद्माकर ने पहचाना और यों चित्रित किया——

औरैं भाँति कुंजन में गुंजरति भौंर भीर,
औरैं डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये।
कहै पदमाकर त्यों औरैं भाँति गलियन,
छलिया छबीले छैल औरैं छबि छ्वै गये।।
औरैं भाँति बिहँग समाज में अवाज होति,
ऐसे ऋतुराज के न आज दिन ह्वै गये।
औरैं राग औरैं रंग औरैं रस औरैं रीति,
औरैं तन औरैं मन औरैं बन ह्वै गये।।

वन और ही कुछ हो गये। उन्हें निहारकर तन-मन भी बदल गया। फिर रस-रीति कैसे न बदले? राग-रंग भी बदल ही जायँगे। ऐसी दशा में छलिया-छबीलों का क्या कहना? किन्तु इन छलिया-छबीलों में पद्माकरजी ने अपने को शामिल किया हो या नहीं, यह सोचने की बात है! परन्तु वास्तविकता की अदालत में रत्नाकरजी की गवाही काफी होगी। यही भाव द्विजदेव ने पद्माकर से लिया है, किन्तु जहाँ तक केवल प्रकृति का वर्णन है, द्विजदेव बहुत खरे उतरे हैं। उनका छन्द है——

सुरही के भार सूधे सबद सुकीरन के,
मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
द्विज देव त्यों ही मधुभारन अपारन सों,
नैंकु झुकि झूमि रहे मोगरे मरुअ दौन।
खोलि इन नैननि निहारौ तौ निहारौ कहा,
सुखमा अभूत छाय रही प्रति भौन-भौन।
चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद,
गंध ही के भारन बहति मंद-मंद पौन।।

बोझ लेकर चलनेवाले की गति का मंद पड़ जाना स्वाभाविक है, यही कारण है कि पवन सुगंधि-भार से मंदगामी है। (द्विजदेव के पूर्व किसी ने पवन की मंद-गामिता का रहस्योद्घाटन नहीं किया) इन दो नेत्रों से क्या-क्या देखा जाय? घर-घर की तो शोभा निराली है। यही नहीं, चाँदनी उड़ेलने में झुके हुए चन्द्र के कारण मन पर जो भार है द्विजदेव ने उसका भी वर्णन किया है और समस्या सुलझाने के लिए उन्होंने नायिका के लिए जो उपाय सोचा, वैद्यजन कदापि नहीं सुझा सकते। यह लीजिए——

भूले-भूले भौंर बन भाँवरैं भरैंगे चहूँ,
फूलि-फूलि किंसुक जके से रहि जाय हैं।
द्विज देव की सौं वह कूजनि बिसारि कूर,
कोकिल कलंकी ठौर-ठौर पछिताय हैं।।
आवत बसंत के न ऐहैं जो पै स्याम तो पै,
बावरी बलाय सों हमारेहू उपाय हैं।
पीहैं पहिले ही तैं हलाहल मँगाय या
कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय हैं।।

यदि श्याम नहीं आये, तो हलाहल कहाँ चला गया है उसे धारण कर लेने से, बंधुता के नाते कलानिधि के हो जायगा! तब उसकी एक भी कला क्या कर सकेगी और पद्माकर ने भी, वसंत नहीं बिताया जा सकता, ऐ अनुभव करके यों कहा——

बीर, अबीर अभीरन को दुख, भाखे बनै न बनै बिनु भाखे
त्यों पदमाकर मोहन मीत के, पाये सँदेस न आठएँ पाखे
आये न आप न पाती लिखी, मन की मन ही मैं रही अभिलाखे
सीत के अंत बसंत लग्यो, अब कौन कै आगे बसंत लै राखे

अभी तक धीरज बँधानेवाली सखी (वीर) को अब संबोधित किया जाने लगा; क्योंकि वह स्वयं जो धैर्य खो उठी। सब गोप तो दुखी हैं ही, उनका दुःख न कहते पड़ता है और न बिना कहे। वर्षा से शीत तक के आ पक्ष समाप्ति पर हैं, वसंत लग गया है, फिर भी आगमन दूर रहा, कोई पत्र भी नहीं। क्या किया जाय? मन अभिलाषाएँ मन में ही समाप्त हो रही हैं। ज्यों-त्यों क शिशिर बीता अब सुहावना वसंत कैसे कटे, ग्रीष्म प यह भावगाथा कैसी सहृदय-संवेद्य है! रसज्ञ-रंजन पद्मा ही इसे चित्रित कर सकते हैं; क्योंकि वे अनुभूति पुजारी हैं——'त्यों पदमाकर तीछे कटाच्छनि की सरि सर सेल नहीं फिर।' इस प्रकार वे बहुत कुछ जान-सु और देख चुके हैं।

और हाँ, वसंत आकर कर क्या गया, नन्दराम यह नयी ही खोज किये बैठे हैं। क्या——

जालिम जुलुमदार जाहिर जहान जौन,
डगर-डगर बिष बगर बगारि गो।
कहै नंदराम ब्रजगाम की गरीबिनि,
रावरे की चेरिन पै बेरिन को मारि गो।।
ऊधो जू हवाल कह दीजो नंदलाल जू सों,
गोकुल की गैल-गैल गजब गुजारि गो।
फूले न पलास ये पलास कै बसंत बाज,
काढ़ि कै करेजा डार डारन पै डारि गो।।

उद्धव के द्वारा गोपियाँ सन्देश भेज रही हैं जगत्-प्रसिद्ध जालिम वसंत गोकुल के घर-रास्ते सब विष-ही-विष फैलाकर गजब ढा गया। आपकी जो दासी, पर बैरिन समझकर जिन्हें दर्शन नहीं दिये, मार ही गया। अरे कह देना कि ये कहीं पलाश फूले हैं! वसंत-रूपी बाज हम लोगों का मांस खा-क कलेजा डालों के ऊपर डाल गया है।

नन्दराम ने तो उक्ति-वैचित्र्य का अंत ही कर अब जरा देव कवि की भाव-भूमि पर उतरकर उ कमाल देखिए:——

काम कमान तें बान उतारि है,
देव नहीं मधु माधव रै है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोकिल हू कल कोमल बोलन,
बोलि कै आप अलोप कहै है।।
मोहिं महा दुख दै सजनी रजनी-
कर औ रजनी घटि जैहै।
प्रान पियारे तौ ऐहैं घरै पर
प्रान पयान कै फेरि न ऐहै।।

वसंत आ गया। विरह-विदग्धा नायिका अपने जीवन का भरोसा ही छोड़ बैठी। वह समझ रही है कि वसंत और प्राण साथ-ही-साथ जायँगे। कामदेव धनुष पर से अपने बाणों को उतार लेगा और यह सरस वसंत-ऋतु समाप्त हो जायगी। कलरव करनेवाली कोयल अदृश्य हो जायगी, लम्बी रात तथा चन्द्रकिरण की मादकता भी कम पड़ जायगी। यह सब केवल दुःख देने के लिए प्राणों के गाहक बनकर आये हैं, फिर प्रियतम आये भी तो क्या? तब तक प्राण रहेगा कहाँ? किन्तु देवजी वसंत को कितनी जल्दी पावस बना देते हैं, यह बात भी ध्यान देने योग्य है—

नील पट तन पर घन-सों घुमाय राखौं
दंतन की चमक छटा-सी बिज्जु रति हौं।
हीरन की किरन जमाय राखौं जुगुनू-सी
कोकिल पपीहा पिक बानी-सों भरति हौं।।
कीच अँसुवान के मचाय कवि देव कहै
बालम बिदेस को पधारिबो हरति हौं।
इन्द्र को धनुष साज बेसर कसति आज
रहु रे बसंत! तोहिं पावस करति हौं।।

वसंत को चुनौती दे दी गयी। संयोग के साज ऐसे ही होते हैं! देव के कल्पना-रेडियो का प्रसारण अत्यन्त अद्भुत है; जहाँ नीले वस्त्र, घन; दंत-द्युति, विद्युत्-छटा-सी; हीरों की किरणें, जगमग करती हुई जुगुनू की ज्योति; कोकिल पपीहे की वाणी स्वयं उसके मधुर शब्द; आँसुओं से कीच और बेसर का सजाव, इन्द्रधनुष बन गया।

सेनापति ने पलाश तरुओं को देखकर जो कल्पना की वह कलेजा दहला देती है। देखिए न—

लाल-लाल टेसू फूलि रहे हैं बिलास संग,
स्याम रंग भेदू मानो मसि में मिलाये हैं।
तहाँ मधु काज आय बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपबन बन धाये हैं।।
सेनापति माधव महीना में पलास तरु
देखि-देखि भाव कविता के उर आये हैं।
आधे अनसुलगी सुलगि रहे आधे मानो,
बिरही दहन काम क्वैला परचाये हैं।।

एक विरही के लिए पलाश-पुष्प का इससे अच्छा रूपक क्या हो सकता है, यह रसिक-जन ही समझ सकते हैं। जब इस प्रकार कामदेव ने कोयला सुलगा रखा हो और वन-उपवन से आता हुआ मलय-पवन उन्हें उद्दीप्त कर रहा हो तथा मधुकर मधु लूट रहे हों तो बेचारा विरही बचेगा कैसे? सेनापति की इस सूझ-बूझ के क्या कहने! सेनापतिजी ने श्याम रंग का रहस्य भी खोलकर रख दिया। स्याही से डूबे हुए बहुत से लाल-लाल टेसू विलास के साथ फूल उठे हैं, साथ ही श्याम-रंग का भेद (भेदू) भी खोलनेवाले हैं। अभिमत यह कि यह श्याम-रंग (श्रीकृष्ण का) जलानेवाला भी है। तब कोयला और उसमें अंतर क्या?

अब वसंत की महिमा गाकर कवि किशोर क्या शोर कर रहे हैं, वह भी सुनिए—

फूलन दे बन टेसू कदंबन अंबन बौरन छावन दै री।
री मधुमत्त मधूक के पुंजन भृंगन सोर मचावन दै री।।
क्यों सहिहै सुकमारि किसोर अरी कल कोकिल गावन दै री।
आवत ही बनि है घर कंतहिं बीर बसंतहिं आवन दै री।।

आखिर किशोर ही ठहरे! उनकी अनुभूति अनोखी है! जो वियोगियों को संयोगी बना दे ऐसे वसंत की बलिहारी!

अब दो-एक उदाहरण प्रकृति से तादात्म्य भाव के भी—

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
माल गरे मानो बन झालरि सों लाई है।
भँवर गुँजार हरि नाम को उचार तिमि
कोकिला सों कुहुकि वियोग राग गाई है।।
हरीचंद तजि पतझार घर बार सबै
बौरी बनि दौरी जारु पौन ऐसी धाई है।
तेरे बिछुरे ते प्रान कंत कै हिमंत अंत
तेरी प्रेमयोगिनी बसंत बनि आई है।।

यह रहा, प्रेम-योगिनी और वसंत का सारूप्य, आगे संत-वसंत की समानता देखिए—

कलित कमंडल कमल कलिका के करि
किंसुक-कुसुम बर अंबर सुहायो है।
ठौर-ठौर भौंरन की पाँति जपमाल, मौर
सजे हैं रसाल जटाजूट-सों बढ़ायो है।।
सिष्यन के गीत कीर कोकिल कपोत संग,
पढ़ै ट्वै उमंग चहूँ ओर सोर छायो है।
कंत बनमाली को पठायो लाली सों लसंत
आली री बसंत धनि संत बनि आयो है।।

वनमाली स्वयं नहीं आये तो वसंत बनाकर संत भेज दिया। इसका उपदेश कौन सुनेगा जब दर्शन-मात्र से ही आग भड़कानेवाला हो? इसके संत बन जाने से क्या हुआ!

अंत में द्विजदेवजी के वसंत द्वारा हम सबकी शुभ-कामना करते हैं—

नागर-से हैं खड़े तरु कोऊ लिये कर पल्लव में फल फूलन।
पाँवड़े साजि रहे हैं कोऊ कोउ बीथिन बीच पराग दुकूलन।।
फूल झरैं द्विजदेव के ऊपर कानन माहँ कलिन्दजा कूलन।
आगम में ऋतुराज के आज सबै बिधि खोये सबै निज सूलन।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित रामनरेश त्रिपाठी के साथ अंतिम दिन

श्री शिवकुमार तिवारी

दिनांक १२ जनवरी ६२ को प्रयाग में "सरस्वती" मासिक पत्रिका का हीरक जयन्ती महोत्सव आयोजित किया गया था। आमन्त्रण पर पन्ना से मेरे साथ म० प्र० के विख्यात कवि श्री रत्नकान्तजी तथा श्री रामजी वर्मा उक्त उत्सव में सम्मिलित होने गये थे। श्री रामप्रताप शास्त्री त्रिपाठी, सहायक मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की कृपा से हम लोग सम्मेलन भवन के सत्यनारायण कुटीर जिसमें स्वर्गीय रामनरेशजी त्रिपाठी भी ठहरे हुए थे, ठहराये गये। त्रिपाठीजी सन् १९५९ में श्री रामप्रतापजी शास्त्री के साथ पन्ना हम लोगों के आमन्त्रण पर पधार चुके थे अतः उनसे पूर्व परिचित होने के कारण प्रयाग में हम लोगों का प्रायः अधिक समय उन्हींके समीप व्यतीत हुआ। १३ जनवरी ६२ की रात्रि को मैं तथा श्री रत्नकान्तजी उनके पास लगभग २ घंटे तक बैठे रहे और उनसे हम लोगों की विभिन्न विषयों पर वार्ता होती रही। क्या पता था कि यह उनकी अन्तिम वार्ता होगी, उक्त वार्ता के कुछ अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ :—

"सरस्वती हीरक जयन्ती का कार्यक्रम उत्तम रहा लेकिन यदि आज आचार्य महावीरप्रसाद अथवा बाबू श्यामसुन्दरदास में से कोई जीवित होते तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती।" पं० रामनरेशजी ने कहा।

रत्नकान्तजी ने कहा—"पंडितजी आप सत्य कहते हैं कि साहित्यकार का सम्मान उसके जीवनकाल में ही किया जाना चाहिए। सरस्वती हीरक जयन्ती पर जो साहित्यकारों का सम्मान किया गया है यह एक उत्तम परम्परा डाली गयी है।"

मैंने कहा—"लेकिन अपने देश की परम्परा तो यही रही है कि साहित्यकार का सम्मान तो उसकी मृत्यु के उपरान्त ही किया जाता है। ऐसे कितने साहित्यकार थे जो अपने जीवन में केवल मात्र लँगोटी से रह गये, भूख से तड़प गये और उनके जीवित रहते उन्हें कोई आदर न मिला लेकिन उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी दुहाई गाई जाने लगी।"

पं० रामनरेशजी ने कहा—"हाँ तुम ठीक कहते हो। बाहर का व्यक्ति एक दिन के लिए भारत आता है और उसे डाक्टरेट मिल जाती है, लेकिन यहाँ पूरे जीवन साहित्य-सेवा करते हुए भी डाक्टरेट प्राप्त नहीं होती। मेरे अनेक शिष्य डाक्टर हो गये हैं इसका मुझे संतोष है। मेरे एक शिष्य को कल इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में डाक्टरेट की उपाधि दी जा रही है।"

रत्नकान्तजी ने कहा—"जीवित साहित्यकारों में केवल मैथिलीशरण गुप्त ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनका पूर्ण सम्मान किया जा चुका है।" त्रिपाठीजी ने कहा "हाँ उनका काफी सम्मान किया जा चुका है।"

मैंने कहा—"पंडितजी आपको तो बहुत पूर्व ही डाक्टरेट मिल जानी चाहिए थी।"

उन्होंने कहा—"मैं अपना सम्मान नहीं चाहता। मेरे पिता अथवा गुरु जिस नाम से सम्बोधित कर पुकारते थे वही रामनरेश शब्द मुझे प्रिय है। उसमें डा० जैसा शब्द जुड़वाकर उसे अपभ्रंश नहीं करने देना चाहता। पं० नेहरू को सैकड़ों बार डाक्टरेट प्राप्त हो चुकी है किन्तु कभी उन्हें कोई डा० नेहरू नहीं कहता। लेकिन मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि मैंने जो कार्य किया है उसे सम्मान मिलना ही चाहिए।"

उनकी इस वाणी में बल था, आदेश था और प्रत्यक्ष प्रतीत होता था कि उन्हें इस बात की पीड़ा थी कि उनके कार्यों का उचित सम्मान नहीं किया गया है।

मैंने बातचीत का सिलसिला बदलते हुए कहा, "पंडितजी आपने हिन्दी साहित्य को अपनी अमूल्य सेवायें दी हैं इसे अवश्य वह अनुभव करेगा और सम्मान देने के लिए विवश हो जावेगा।"

पंडितजी मौन थे—

मैंने पुनः सिलसिला जारी रखते हुए कहा, "पंडितजी आप जब पन्ना पधारे थे उस समय आपने अनेक लोकगीत जो अवधी, भोजपुरी तथा उत्तर प्रदेश की अन्य लोक-भाषाओं के थे, सुनाये थे किन्तु हम लोगों की बड़ी लालसा थी कि आपके मुख से बुन्देलखण्डी लोकगीत भी सुनने को मिलते।"

त्रिपाठीजी ने कहा—"लोकगीत नहीं, ग्राम्य गीत कहो। हाँ बुन्देली भाषा मुझे बहुत प्रिय है और बुन्देलखण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ग्राम्यगीत मुझे अत्यन्त पसन्द हैं। उनमें लालित्य है। इनके संकलन किये जाने का कार्य कम हुआ है। आजकल तुम क्या कर रहे हो ?"

मैंने कहा--"पंडितजी आपके मुख से जब से ग्राम्य-गीतों को सुना है मुझे यह प्रेरणा मिली है कि बुन्देलखण्डी ग्राम्यगीतों का संकलन करूँ और अब तक मैंने विविध अवसरों के लगभग २०० ग्राम्यगीत संकलित कर लिये हैं।"

त्रिपाठीजी ने कहा--"यह बहुत सुन्दर कार्य किया है मेरा इसके लिए आशीर्वाद है। प्रत्येक अवसर के अधिक से अधिक ग्राम्य गीत एकत्र करो। यदि तुम स्त्री होते तो इस कार्य में विशेष सुविधा आ जाती क्योंकि पुरानी स्त्रियों को ही अधिक ग्राम्यगीत आते हैं और उनसे उन्हें लिखने में विशेष कठिनाई होती है। शर्म खाती हैं, लिखाते-लिखाते भूल जाती हैं आदि।

"इसके अतिरिक्त तुम एक काम और करो--बुन्देल-खण्ड शब्दकोष तैयार करो। इसमें कठिनाई तो अवश्य होगी लेकिन अब इसकी आवश्यकता है। हमें हिन्दी भाषा की अभिवृद्धि के लिए देश में प्रचलित अनेक प्रान्तीय भाषाओं के शब्द जो उपयुक्त हों ले लेना है। हिन्दी भाषा के लिए हम संस्कृत भाषा से भी अनेक शब्द ले चुके हैं किन्तु बुन्देल-खण्डी शब्द यदि कोई उसके लिए उपयुक्त मिल सकता है तो उसे लिया जा सकता है। मैंने उनके उक्त आदेशों को अपने लिए आशीर्वाद समझा।"

श्री रत्नकान्तजी ने अपनी पुस्तक "कैकेयी" भेंट की। मैं अपने कमरे में गया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पन्ना द्वारा प्रकाशित पुस्तक "पद्माञ्जलि" जिसके रचयिता श्री रमेशबहादुर खरे हैं, लाया और उन्हें अर्पित की। रात्रि को उन्होंने एक ग्राम्यगीत सुनाया। पश्चात् बोले 'मैंने तुम्हारे द्वारा दी हुई पुस्तक पर अपनी छोटी-सी सम्मति लिख दी है, देख लेना।" इसके पूर्व श्री रत्नकान्तजी की पुस्तक पर भी उन्होंने अपनी सम्मति लिखकर दी। इस प्रकार उनकी उक्त दोनों सम्मतियाँ क्या पता था अन्तिम लेख के रूप में होंगी। वे दोनों सम्मतियाँ निम्न प्रकार हैं:—

(१) कैकेयी नाटक--श्री रत्नकान्तजी का कैकेयी नामक नाटक मैंने पढ़ा। रामकथा के किसी पात्र को लेकर लिखा हुआ इतना रोचक और वास्तविकतापूर्ण दूसरा नाटक इसके पहिले मैंने नहीं पढ़ा था। राम का वनवास देवराज इन्द्र के षड्यंत्र का परिणाम था, नाटक द्वारा यह स्पष्ट हो जाने से महारानी कैकेयी निरपराधिनी ही नहीं एक उदार विचारोंवाली वीर नारी के रूप में परिणत हो जाती है। कथा के अन्य पात्र भी वनवास की सफलता पर एक दिव्य रूप में हमारे सामने खड़े हो जाते हैं।

मैं नाटककार श्री रत्नकान्तजी को बधाई देता हूँ। उन्होंने प्रांजल भाषा में एक सुन्दर नाटक लिखकर साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

रामनरेश त्रिपाठी
१३-१-६२

(२) पद्माञ्जलि--पद्माञ्जलि की अधिकांश कवि-तायें मैंने पढ़ लीं। कवितायें विविध छन्दों में हैं। भाषा साफ-सुथरी और सुबोध है। भाव अन्तर में जाकर विशेष प्रभाव उत्पन्न करते हैं। संक्षेप में मेरी सम्मति है कि ये कवितायें किसी पद्यकार की नहीं बल्कि सूक्ष्मदर्शी कवि की रचनायें हैं।

रामनरेश त्रिपाठी
१३-१-६२

उपरान्त उन्होंने एक गिलास दूध पिया। उनके छोटे पुत्र उनके समीप चारपाई पर बैठे थे। मैंने निवेदन किया, "रात्रि अधिक हो गयी है। आपके विश्राम करने का समय है आज्ञा दीजिये।" मैं और श्री रत्नकान्तजी उन्हें प्रणाम कर अपने विश्राम-कक्ष में आ गये।

प्रातः श्री बलभद्रप्रसादजी मिश्र घबड़ाये हुए मेरे कमरे में आये और बोले, "पं० रामनरेशजी की तबियत ज्यादा खराब है।" हम लोग उनके कमरे में गये। डाक्टरों ने आकर उपचार आरम्भ किया और फिर दो दिन उपरान्त दिनांक १६-१-६२ को जो सुनने को मिला उससे हृदय फटा जाता है।

उनके साथ हिन्दी की एक पीढ़ी चली गयी। उनके पन्ना प्रवास के क्षण मेरी आँखों में तैर रहे हैं, पन्ना के प्रति उनकी स्नेह-वाणी मेरे कानों में गूँज रही है, उनकी कर्मशीलता की ज्योति मेरे सामने जल रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजनगर के राजस्थानी कवि हमीर और उनकी रचनाएँ

श्री अगरचन्द नाहटा

सरस्वती के अक्टूबर ६१ के अंक में श्री कुंवर चन्द्र प्रकाशसिंह का एक लेख कच्छ राज्य के भुजनगर की 'ब्रजभाषा पाठशाला" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। और इसके संबंध में सम्पादकीय टिप्पणी भी प्रकाशित हुई है। वास्तव में ही कच्छ जैसे अहिन्दी प्रदेश में ब्रजभाषा के शिक्षण और साहित्य निर्माण का जो इतना अच्छा कार्य हुआ है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और उस पाठशाला का गुजरात सरकार द्वारा बंद किया जाना भी एक दुखद घटना है। मेरी राय में गुजरात सरकार को पत्र लिखकर इसकी आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाय तो उसे पुनः चालू करवाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। क्योंकि गुजरात सरकार हिन्दी के समर्थन में है।

सम्पादकीय टिप्पणी में यह लिखा गया है 'हमने कहीं यह सुन रखा था कि कच्छ की राजधानी भुज में एक बहुत पुरानी ब्रजभाषा की पाठशाला थी, किन्तु उसके बारे में हमें कोई निश्चित सूचना नहीं मिल रही थी।' पर, २२ वर्ष पूर्व राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता से प्रकाशित 'राजस्थानी' नामक त्रैमासिक पत्रिका के भाग ३ अंक ४ में भुज के कवि हमीर रचित 'लखपत-गुण पिंगल' का परिचय प्रकाशित करते हुए मेरी इस पाठशाला का संक्षिप्त परिचय 'कच्छदेशनो इतिहास' नामक ग्रंथ के आधार से दिया था। यह इतिहास आत्माराम केशवजी द्विवेदी द्वारा लिखित और सं० १९३२ में प्रकाशित है। इसके अनुसार उस समय तक 'कनककुशल' की शिष्य-परम्परा के भट्टारक जीवन कुशलजी के तत्त्वावधान में यह ब्रजभाषा पाठशाला चल रही थी। भाट, चारण आदि के विद्यार्थी बहुत दूर-दूर से यहाँ अध्ययन के लिए आते थे। राजस्थान के कई चारणों ने भी वहाँ जाकर ब्रजभाषा और काव्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी, जिनमें से एक थोड़े से वर्ष पहले ही बीकानेर में मुझसे मिलने के लिए पधारे थे।

कवि हमीर और कनककुशल कुँवरकुशल तथा महारावल लखपत के ग्रंथों की विशेष जानकारी सर्वप्रथम मैंने ही प्रकाशित की थी और उसका उल्लेख भी कुँवर चन्द्रप्रकाशजी ने अपने लेख में किया है। पर उन्होंने हमीर कवि की जानकारी बहुत ही संक्षेप में दी है। इसलिए यहाँ हमीर कवि की रचनाओं का कुछ विशेष परिचय प्रकाशित किया जा रहा है। श्री चंद्रप्रकाशजी ने लिखा है कि महाराव लखपतसिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही जो अनेक कवि और विद्वान् उनके दरबार में आए, उनमें जोधपुर राज्य के घड़ोई गाँव के साहित्यमर्मज्ञ चारण कविरत्न हमीरदान और भारमल भी थे। ये दोनों कवि शीघ्र ही महाराव के विशेष कृपापात्र बन गए और महाराव ने इन्हें लक्षपसाव और जागीरी के चार गाँव अर्पित किये। उन्होंने वहाँ रहकर 'लखपत पिंगल शब्दकोष, हमीर नाममाला, ज्योतिष जड़ाव और ब्रह्मांड पुराण आदि अनेक ग्रंथ लिखे।' पर वास्तव में हमीर कवि लखपत के सिंहासनारूढ़ होने से काफी पहले ही भुज पहुँच चुका था और लखपत के पिता देसल का आश्रय भी उन्हें प्राप्त हो चुका था। चंद्रप्रकाश जी उल्लिखित रचनाओं को दोनों कवियों ने नहीं, हमीर ने ही बनाया था। भारमल की रचनाओं का विवरण अभी प्रकाश में नहीं आया। 'लखपत-पिंगल' शब्दकोष नहीं, छन्द शास्त्र है, शब्दकोष तो 'हमीर नाममाला' है। श्री सीतारामजी लालस का एक लेख 'डिंगलकोश का रचयिता हमीर जी रतनू' नामक हमारे संपादित 'मरु-भारती' वर्ष १ अंक ३ में मेरी टिप्पणियों के साथ प्रकाशित हुआ था। उसके अनुसार हमीर कवि बचपन से ही कच्छभुज में रहते थे। उनकी सर्वप्रथम रचना 'गुण पिंगल प्रकाश' सं० १९६८ की रचित है। यथा—

संवत् सत्तरै अड़सठै महासीत रितुमास।
जेहड़ो जोड़ै जाणियो, एहड़ो कियो अभ्यास॥
सुणतां पढतां सीखतां, अधिक होय आणंद।
कहियो ग्रंथ हमीर कवि, गुण ग्राहक गोविन्द॥

इस छन्द ग्रंथ के रचनाकाल में कवि की आयु कम से कम २० वर्ष की भी मानी जाय तो उसका जन्म सं० १७४८ के लगभग होना संभव है। यह ग्रंथ कहाँ रचा गया इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। दूसरा ग्रंथ हमीर नाममाला, वेलियो गीत के छंद में रचा गया है। उसमें हरि-महिमा का भी वर्णन है इसलिए उसका दूसरा नाम हरि-जस-माला भी मिलता है। श्री सीतारामजी लालस के अनुसार इसमें २७०० डिंगल के शब्द हैं और सं० १७७४ की दीवाली को यह ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ है और मुझे प्राप्त प्रति के अनुसार सं० १७७६ में हुआ है। जोधपुर के राजस्थानी शोध संस्थान से प्रकाशित डिंगलकोष में यह कोष छप चुका है। पद्य संख्या ३११ है। इस ग्रंथ की मूल प्रति में आश्रयदाता का नाम नहीं है, पर पीछे की प्रति-लिपियों में निम्नोक्त पद्य बढ़ाया गया मालूम पड़ता है।

जाड़ेजां सूरजि रख जलवट,
भुज भूपति लखपति कुल-भांण।
त्रय ग्रंथ की छ अजाची तिणरै,
जोतिखि पिंगल नाम श्रव जांण॥३०८

इस पद्य के अनुसार, जब यह पद जोड़ा गया तब तक कवि ३ ग्रंथ बना चुका था। और संभवतः लखपत द्वारा उन्हें लाखपसाव व जागीरी मिल चुकी थी। और इसलिये वे अयाची अर्थात् फिर किसी के पास याचना नहीं करने की प्रतिज्ञावाले बन चुके थे। लखपत के लिए भूपति विशेषण दिया गया हैं। इसलिए यह पद्य सं० १७९६ के बाद में जोड़ा गया निश्चित है। 'हमीर नाम माला' भी लखपत की आयु जब १०-१२ वर्ष की थी तभी रची गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए उपरोक्त पद्य में ३ ग्रंथ रचे जाने का जो उल्लेख है वे ग्रंथ लखपत के लिए ही बनाये थे।

हमीर की तीसरी रचना 'जदुवंश वंशावली' की एक प्रति मुझे 'राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान' में प्राप्त हुई थी। उसमें कच्छ के राजाओं की वंशावली है। भट्ट गोपाल से सुनकर यह वंशावली सं० १७८० की आखातीज को बनायी गयी। ––

रजवट प्रिथी प्रमाण रहावा, कीर्त्ति थटीया तणी कहावा।
कहिया सुकवि जाणि हितकारी, भाखि हमीर एह गुण भारी। ६
भट गोपाल कनें विधिमांभलि, मैं जोड़ियौ तिसौ महि मंडल
संवत सतर आसियै छमंछर, आखातीज मांडियौ आदर।७।

प्राप्त प्रति बड़े महत्त्व की है क्योंकि सं० १८१५ में भट्टारक कवि कुँवर कुशल के हाथ की लिखी हुई है।

हमीर का चौथा ग्रंथ और भी महत्त्व का है जो राव देसल की विजय के संबंध में लिखा गया है। सं० १७८५ की होली के समय नवाब शेर बिलन्द का राव देसल के साथ युद्ध हुआ था और उसमें उन्हें विजय प्राप्त हुई थी। उसी प्रसंग को लेकर 'महाराव देसलनी वचनिका' नामक डिंगल काव्य बनाया गया। प्राप्त प्रति २९ पत्रों की है और पाटण के जैन भंडार से मुनि पुण्य विजयजी ने मुझे भिजवायी थी। उसी संग्रह में हमीर कवि के 'गुणपिंगल' की एक शुद्ध प्रति है। वचनिका शब्द का प्रयोग साधारणतया गद्य के लिए ही होता है पर देसल की वचनिका में गद्य नहीं है, १५ प्रकार के छंद प्रयुक्त हैं। इस ग्रंथ का परिचय मरुभारती वर्ष २ अंक २ में मैं प्रकाशित कर चुका हूँ। अंत के दो पद्य नीचे दिये जा रहे हैं :––

संवत सतर पंच्यासिअै, प्रथ होलिका प्रसिद्ध।
सेर बिलंद निबाबसूँ, कलह देसपति किद्ध ॥१॥
रूपक कहिऔ राउरौ, हित करि सुकवि हमीर।
प्रतपै देसल विरदपति, वडै तखत वरवीर ॥३॥

इस ग्रंथ से कवि हमीर राव देसल के आश्रित रहे हैं यह निश्चित होता है। अब राव लखपत के आश्रय में रहकर उन्होंने जो ग्रंथ बनाये उनका परिचय आगे दिया जा रहा है। लखपत सं० १७९६ में गद्दी पर बैठे थे। अतः अब जिन रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है वे उसके बाद की हैं।

हमीर का पाँचवाँ ग्रंथ 'लखपत-गुण-पिंगल' सं० १७९६ माघ सुदी ७ गुरुवार को रचा गया जिसमें ४ प्रकरण हैं और पद्य संख्या ४६९ हैं। वर्णिक, मात्रिक, गाहा छंद के विविध भेद और गीतों की विविध जातियों का इसमें वर्णन है जिनमें क्रमशः ६१, ४१, २६ और २७ छन्दों एवं गीतों के लक्षण बताये गये हैं और उदाहरण में अपने आश्रयदाता लखपत की प्रशंसा की गयी है। प्रारंभ और अंत के पद्य इस प्रकार हैं :––

आदि—**महादेव सुत करि महर, गणपति सुमति गंभीर।**
कुँअर वखाणां कुलतिलक, धजबंधी लखधीर ॥१॥
अति उत्तिम दीजै उकति, सरसति, हू सु प्रसन्न।
गाआं लखपत्ती गुणे, महि पत्ती वडमन्न ॥२॥
किया छंद पिंगळ कवी, के हजार लख कोडि।
आखां हूं तिण ऊपरे, जाति अमोलिक जोड़ि ॥३॥

अन्त––**सहरां सिरि भुज सहर राउ देसळ महाराजा**
पछिम तणौं पतिसाह सदा बोलै दिन साजा
पाटकुंअर लखपत्ति एम तिणरै मनि आयौ
कहि हमीर कीरत्ति मुखां वाइक फुरमायौ
साँभळे वयणधारी सुरति कहण तणौ उद्दिम कियौ
आपनां जिसी आवी उकति जस मति सारै जोड़ियौ ॥१॥
संवत सत्तर छिनुऔ पणां तस वरस पटंतर
तिथि उत्तिम सातिम्म वार उत्तिम गुरुवासर
माह मास व्रतमान अरक बैठौ उतराइणि
सुकल पख्य रिति सिसिर महा सुभ जोग सिरोमणि
विसतार गाह मात्रा वरण सुजि पसाउ सरसत्ति रौ
कहियौ हमीर चित चोजि करि पिंगल गुण लखपत्ति रौ ॥२॥

हमीर का छठा ग्रंथ 'ज्योतिषजड़ाव' अभी मेरे देखने में नहीं आया, पर इसका उल्लेख 'हमीर नाममाला' के उद्धृत पद्य में है और सीताराम लालस ने भी अपने लेख में उसका उल्लेख किया है। इसकी रचना भी संवत् १७९६ के बाद की ही संभव है।

हमीर का ७वाँ ग्रंथ 'भागवत-दर्पण' राजस्थानी में भागवत का अनुवाद है जिससे इनके संस्कृत भाषा के पांडित्य का पता चलता है। इसकी प्रति भी मेरे देखने में नहीं आयी। इसके अतिरिक्त आठवीं रचना 'ब्रह्मांड-पुराण' का उल्लेख भी श्री लालसजी ने अपने लेख में किया है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि हमीर कवि राजस्थानी भाषा के बड़े अच्छे कवि थे। भुज के राव देसल के आश्रय में रहकर उन्होंने कई ग्रंथ बनाये और फिर लखपत के आश्रय में भी रहे। जागीरी और लाखपसाव का सम्मान राव लखपत से ही उन्हें मिला। इससे यह सिद्ध होता है कि राव लखपत ने जिस तरह ब्रजभाषा और साहित्य की विशिष्ट सेवा की उसी तरह राजस्थानी भाषा में भी उनके आश्रय में कई ग्रंथ रचे गये। कवि हमीर के सभी ग्रंथ राजस्थानी भाषा के ही हैं। इससे जिस प्रकार राव लखपत ब्रजसाहित्य के पोषक थे उसी प्रकार राजस्थानी के भी सिद्ध होते हैं।

श्री चन्द्रप्रकाशसिंह ने हमीर के साथ भारमल कवि का भी उल्लेख किया है, पर जब तक उनकी रचनाएँ देखने को प्राप्त नहीं होती, तब तक उनके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

हाँ, राजस्थान के एक और कवि बारहठ उदयराम भी कच्छभुज के राजा भारमल और उनके पुत्र देसल द्वितीय के आश्रित हो गये हैं जिन्होंने कविकुलबोध नामक एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथ में छन्द-शास्त्र, कोष आदि काव्यशास्त्र के उपयोगी अच्छी सामग्री है। कवि मारवाड़ के थबूकड़ा नामक गाँव के निवासी थे। कविकुलबोध के तीन कोष 'डिंगल कोष' में छप चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगनें के बीच—

ये नाराजगी!

क्या आप अपने पति से नाराज हैं? तो समझ लीजिए कि आप बड़ी भाग्यवान् हैं? भला आप उनसे नाराज क्यों न हों—कोई एक बात हो तो इन्सान चुप लगा जाय। वे तो हर बात में ही अपनी चलाते हैं, अपने ही मन की करते हैं!

सबसे बड़ी शिकायत तो आपकी यह ही है कि उन्हें आपकी शक्ल देखने की ही फुर्सत नहीं—अगर इत्तफाक से आपके चेहरे पर एक नाक की जगह दो नाक निकल आये तो इसका ज्ञान भी आपके पति को पड़ोसियों से ही होगा? तब हो सकता है कि घर आकर आपके चेहरे की ओर एक निगाह फेंकें—आप कोई भी नया जेवर पहन लें उन्हें पता नहीं, आप कोई भी नया सौंदर्य प्रसाधन लगा लें, उन्हें पता नहीं? आप कोई भी नया परिधान पहन लें, उन्हें पता नहीं।

मैं तो कहती हूँ कि "शुक्र है! कि सुबह के नाश्ते के समय 'ये' मेरी ओर नहीं देखते। मेरा तो रात का काजल कानों तक फैला रहता है, सुबह के चूल्हा जलाने की राख बालों पर बैठी रहती है, और कोयले की कालिख अंगलेप के समान जहाँ देखो वहीं लिपटी रहती है—और फिर वस्त्रों का तो कहना ही क्या? आखिर सुबह-सुबह उठकर क्या-क्या करूँ—शृंगार प्रसाधन? या खाना, नाश्ता, दफ्तर और बच्चों का स्कूल? किसकी सुनूं? शुक्र है जो ये मेरी ओर नहीं देखते। सोचते होंगे मैं वैसी ही साफ, चिट्टी, सुन्दरी दिख रही हूँगी जैसा उन्होंने मुझे कभी देखा था। असलियत ना ही खुले—मेरी सुन्दरता का भ्रम उनपर और बढ़ता ही रहे।

पर बात उतनी ही हो तब न! आप भी सोचती होंगी—बस मुझ ही को देखने की छुट्टी नहीं है। अड़ोसिनों-पड़ोसिनों को तो दूर से ही पहचान लेंगे—और किसीको देखा नहीं कि ऐसी टकटकी बँधती है, ऐसी टकटकी बँधती है कि बस। इस मामले में मेरी तो बात ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी है, ईश्वर की कृपा मुझ पर कुछ विशेष रही है। शरीर का आकार, और मुँह का विकार भगवान् ने कुछ ऐसा बनाया है कि भूल से भी किसीकी दृष्टि मुझपर एक बार पड़ जाय तो फिर दूसरी बार उससे वह भूल होती ही नहीं। पर मैं आपसे कहती हूँ कि पुरुषों की जाति ही ऐसी है! यह तो आप मानती ही हैं न! 'वे' औरों की तरफ देखते हैं तो आपकी ओर भी तो 'और' देखते होंगे! फिर--शिकवा किसका?

...पर एक ही बात हो तब न! यहाँ तो हजारों बातें हैं। यह नहीं देखते सर्दी कितनी बढ़ गयी है और मेरे पास कोई कोट नहीं है--इतना ही नहीं--पुरानी रजाई में ही रात काट देती हूँ। और चीजें तो अलग रहीं कब से एक अरमान है कि एक बढ़िया साबुन इस्तेमाल करूँ पर करूँ कैसे? यहाँ मेरे इन त्यागों की ओर कौन देखता है--यह कौन देखता है कि बेचारी अपनी मामूली जरूरत भी पूरी नहीं कर पाती। यहाँ तो उल्टा लांछन लगता है फिजूलखर्ची का। जितना वे अपनी पान-बीड़ी पर खर्च करते हैं अगर उतना ही आपको अपने पर खर्च करने को मिल जाय तो आपकी सब जरूरतें पूरी हो जायँ। मेरी मानें तो यदि उनकी पान-बीड़ी के लिए पैसे हैं तो आपकी जरूरतों के लिए भी पैसा है--पर केवल जरूरतों के लिए ही-इसका ध्यान रक्खे और उसे आप पूरी कर लें। इस समस्या का सामना तो मुझको भी करना पड़ता है। वे मुझ-पर फिजूलखर्ची का लांछन लगाते हैं, मैं उन पर। घंटों बीत जाते हैं पर वाग्युद्ध में यह निर्णय नहीं हो पाता कि वास्तव में फिजूलखर्च है कौन। जिसे वे मेरा खर्चा बताते हैं उसे मैं बच्चों का खर्चा बताती हूँ। जिसे मैं उनका खर्चा बताती हूँ उसे वे घर का खर्चा बताते हैं। इसी समस्या को सुलझाते सुलझाते हम इतना थक जाते हैं कि जब घर की कोई वास्तविक समस्या सामने आती है तब हममें फिर से एक दूसरे पर लांछन लगाने की शक्ति ही नहीं रह जाती और फिर उसका फैसला बड़ी शान्ति और गंभीरता के साथ हो जाता है। शुक्र है कि हम इसी पर लड़-झगड़कर अपनी इतनी वाग्प्रतिभा एक दूसरे को दिखा देते हैं कि गंभीर समस्या के समय थोड़ी भी वाग्प्रतिभा और दिखाने को अवशेष ही नहीं रह जाती। और उनका सुलझाव ठीक से हो जाता है।

उतने ही तक होता तो फिर भी कोई बात थी--आपको उनसे शिकायत होगी बच्चों की। क्या बच्चों को सँभालने का आपने ही ठेका ले रक्खा है--पैदा करो, पालो पोसो, रातों जगो। क्या बच्चों का उनसे कोई भी वास्ता नहीं है--हाट-बाजार में सबको यों आप पर छोड़ देंगे मानों उनसे कोई वास्ता नहीं। जहाँ कोई रोया पान की दूकान पर जाकर यों सिगरेट सुलगायेंगे मानों किसी और का बच्चा रो रहा हो। और जब किसी और का बच्चा रोयेगा तो कहेंगे 'बेटे! क्या बात है! ना रो...ना...ना।' गुब्बारे की दूकान पर आपको सब बच्चों की उँगली पकड़ाकर 'जरा थामना' कहकर गायब हो जायेंगे--और फिर दिखेंगे कहाँ फर्लांग भर दूर टोपी की दूकान पर। बात ही नाराज होने की है--आप ही क्या, कोई भी नाराज होगा।

...हमारे बीच तो अब ये बच्चे मेरे हैं कि उनके इसीका निर्णय नहीं हो पाता है। जब कोई पास होता है तो उनका हो जाता है--जब फेल होता है तो मेरा। जब घर सिर पर उठा लेते हैं तो सब मेरे हो जाते हैं--जब बगीचे में काम करना होता है तब सब उनके। बच्चों की इस ठेलम-ठेल में हम बचे हुए हैं। जब हम स्वयम् ही यह निर्णय नहीं कर पाते कि कौन बच्चा कब हमारा है और कब उनका, तब भला इजलास ही इसका क्या निर्णय कर पायेगी--इससे भला यही है कि घर में ही बैठे आपस में ही उनकी 'ठेलम-ठेल' किया करो--इस तक नौबत ही न आये कि दूसरे बटवारा करने आयें कि कौन मेरा है और कौन उनका?.....

...आप खाना बनाते-बनाते थक जायँ--एक से एक व्यंजन बनाकर रक्खें, कितना भी उसमें बढ़िया घी डालें पर वे हैं कि उन्हें पसन्द ही नहीं आता। तारीफ तो दूर रही, उन्हें नुक्स न दिखे यही बहुत है। तारीफ किसकी होगी--बाहर के खाने की--मैं कहती हूँ उनके साथ आप भी बाहर खाइए--

इसमें भला रोने की क्या बात है।

माँ की डायरी से

माँ की इस डायरी में भाँति-भाँति के वैज्ञानिक चुट-कुले भी मिले। जो मुझे जैसे मिले वैसे ही उतारे देती हूँ। मैंने स्वयम् इनमें से किसीको अजमाया नहीं। माँ की यह डायरी अगर थोड़ा पहले मिल गयी होती तो अजमाती अवश्य, पर अब तो अगर कपड़ा धुलवाना हो तो ड्राई-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लीनर्स के पास ! रंगवाना हो तो ड्राईक्लीनर्स के पास ! यह समझ में ही नहीं आता कि यह काम भी घर में हो सकता है। कम मूल्य में घर चलाने में पुरानी गृहिणियाँ बड़ी चतुर समझी जाती थीं। अवश्य ही ये चुटकुले उसमें उनकी बड़ी सहायता करते होंगे।

कपड़े रंगना

कपड़े रंगने की तरकीब--कपड़े को पानी में इस प्रकार डुबाये कि सारे कपड़े पर एक सा रंग चढ़ जावे। (महीन कपड़े पर कम रंग लगता है) रंगने के पिछले डोब में पिसी फिटकरी या अमचुर का भीगा हुआ पानी या खट्टे नीबू का रस पानी में मिलाकर एक डोब और देना कि रंग खिल उठे और पक्का भी हो जाय। कच्चे रंग को साये में और पक्के को धूप में सुखा सकते हैं।

कपड़े का रंग काटना--पानी को किसी धातु के बर्तन में औटावे, जिस कपड़े का रंग काटना हो या उतारना हो उसको उस गर्म पानी में डाल दे कि कपड़ा डूब जावे। फिर थोड़ी सी फिटकरी डाल कर औटाता रहे। रंग कट-कटकर पानी में आ जायगा।

रंग का धब्बा--पहले कपड़े को पानी में भिगो ले, फिर रंग में भिगोये। इससे कपड़े में धब्बा नहीं पड़ेगा।

हरा रंग--पहले पक्के नील के पानी में डोब दे, फिर हल्दी के जोश दिये हुए पानी में थोड़ी देर तक पड़ा रहने दे। फिर हल्दी के पानी से निकालकर फिटकरी के पानी में डोब दे।

कासनी रंग--तीन सेर पानी में दो तोले नील डाल कपड़े का रंग सुखा ले। फिर कुसुम के फूलों में रंग दे। पीछे खटाई में धो डाले।

पीला रंग--पिसी हुई हल्दी में थोड़ी सज्जी मिला कपड़ा रंग ले। फिर पानी डालकर कई बार धो डाले, फिर फिटकरी के पानी में धो डाले।

केसरिया रंग--पानी में मजीठ को औंटाकर रंग निकाल ले, अनार के छिलके और हरश्रृंगार की डंडी को साथ-साथ औटा कर छान ले। कपड़े को फिटकरी के पानी में पहले डोब दे। फिर इन दोनों रंगों के पानी को एक संग मिलाकर कपड़े को रंग ले।

नारंगी रंग--हरसिंगार के फूलों को पानी में औटा कर, कपड़े को पीछे कुसुम के पानी में रंग, खटाई के पानी में रंग ले।

गुलाबी रंग--कुसुम की थोड़ी गाद को पानी में मिलाकर कपड़े को रंग ले।

लाल रंग--इसमें कुसुम की गाद गुलाबी से चौगुनी या छः गुनी देकर रँगना चाहिए। पीछे खटाई के पानी से धोवे।

गुलनार--पहले कपड़ों को कुसुम के फूलों के रंग में डोब ले। फिर गाद के पानी में हल्दी पीसकर मिला ले और उसमें डोबकर खटाई के पानी में डोब ले।

पिस्तई--कपड़े को हल्दी में रंगे, फिर साबुन के पानी में डोबे। इसके पीछे नीबू की खटाई देकर सुखा ले।

उन्नाबी--पहिले हर्रे के पानी में, द्वितीय छट के पानी में, तृतीय छटाँक भर पतंग के औटे हुए पानी में, चतुर्थ दो तोला फिटकरी के पानी में डोबे।

कोकरेजी--डेढ़ सेर पानी में पाव भर पतंग, महावर दो दाम, हिरमिच और माजूफल एक दो दाम को औटा-कर छानकर तब रंग ले।

बदामी--पाव भर तुन के चावल को सेर भर पानी में औटा लेवे। पहले कपड़े को गेरू के रंग में रँगकर सुखा ले। पीछे तुन के आधे सेर पानी में उसको डाब दे।

कपासी हल्का--थोड़ा-सा नील का रंग लेकर कपड़ा रंग ले। रात के भीगे टेसू के फूलों के पानी में थोड़ा-सा चूना डालकर निथार ले, अब इसमें नील के डूबे कपड़े को डाल दे।

अंगूरी रंग--टेसू के औटाये हुए पानी में कपड़ा रंगे। फिर बहुत ही हल्का नील का रंग दे। पश्चात् खटाई के पानी में सुखा दे।

शरबती--तीन भाग हरश्रृंगार के फूलों का रंग, एक भाग कुसुम का रंग (जो रैनी के पीछे निकाला जाता है) मिलाकर रंग ले।

अद्भुत दुरंगा रंग--सीप, मूँगे की जड़, सफेद गोंद इनको महीन पीस गुड़ मिला पानी के साथ खूब औंटावे। औंट जावे तब उतारकर खरल करे। फिर महीन मलमल लेकर एक तरफ इसका लेप करे। जब सूख जावे तब पहले पक्के रंग (जैसे नील) में डोबे। जब सूख जाय तब कच्चे रंग (जैसे कुसुम) में डोबे। तब एक ओर का आबी और दूसरी ओर का फरमानी हो जायगा। या पहले हल्दी के रंग, फिर नील में डोब दिया जाये तो एक ओर पीला और दूसरी ओर हरा दिखायी देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पृष्ठ-चित्र

सरस्वती पत्रिका के पृष्ठ-चित्र का उपयोग कीजिए। यदि आपको चित्रकारी से रुचि तो है, पर हाथ अभी पूरा सधा नहीं है तो आप बड़ी सुविधा से इस बड़े चित्र का अक्स उतार सकती हैं। अक्स उतारने के बाद केवल बाहर की रेखाएँ ही भरें। इससे चित्र सुन्दर लगेगा और आपकी अनभिज्ञता भी प्रदर्शित न होगी। यदि आप चित्रकारी से अधिक अपनी उँगलियों का कौशल सुई डोरे द्वारा प्रकाशित करने में रुचि रखती हैं तो इस अक्स को कपड़े

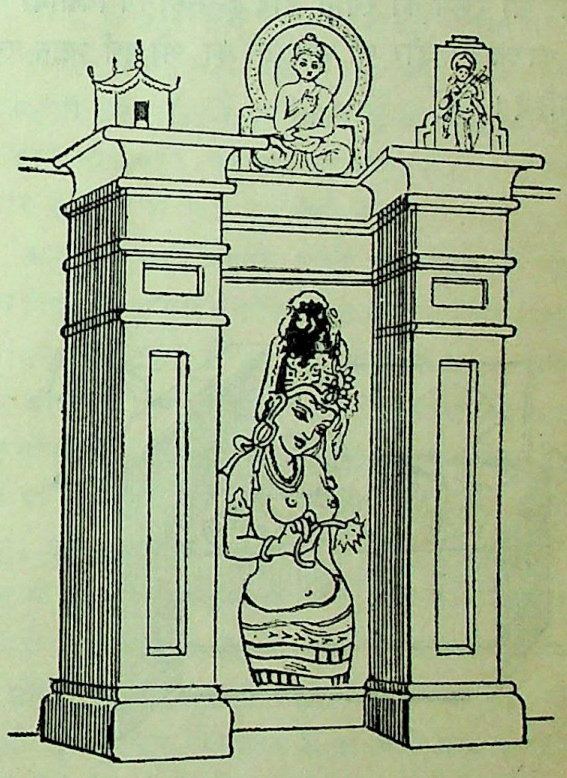

पर उतारकर सुई डोरे से चाहे इसकी रेखाएं मात्र भरें या उसे पूरा भर कर काटें रंगीन कपड़े पर अक्स उतारने पर जिन डोरों से रेखाओं को भरें उनका रंग कपड़े के रंग से भली भाँति मिला लें—रंगों में एक रसता होनी चाहिए और तीखे रंग का उपयोग केवल कहीं-कहीं सौंदर्य-वृद्धि के लिए ही करना चाहिए। इस कढ़े हुए सुन्दर चित्र के कई सुन्दर उपयोग हो सकते हैं। पहले चित्र के अनुसार आप उसे बैठक में 'फायर प्लेस' के सम्मुख लगा सकती हैं।

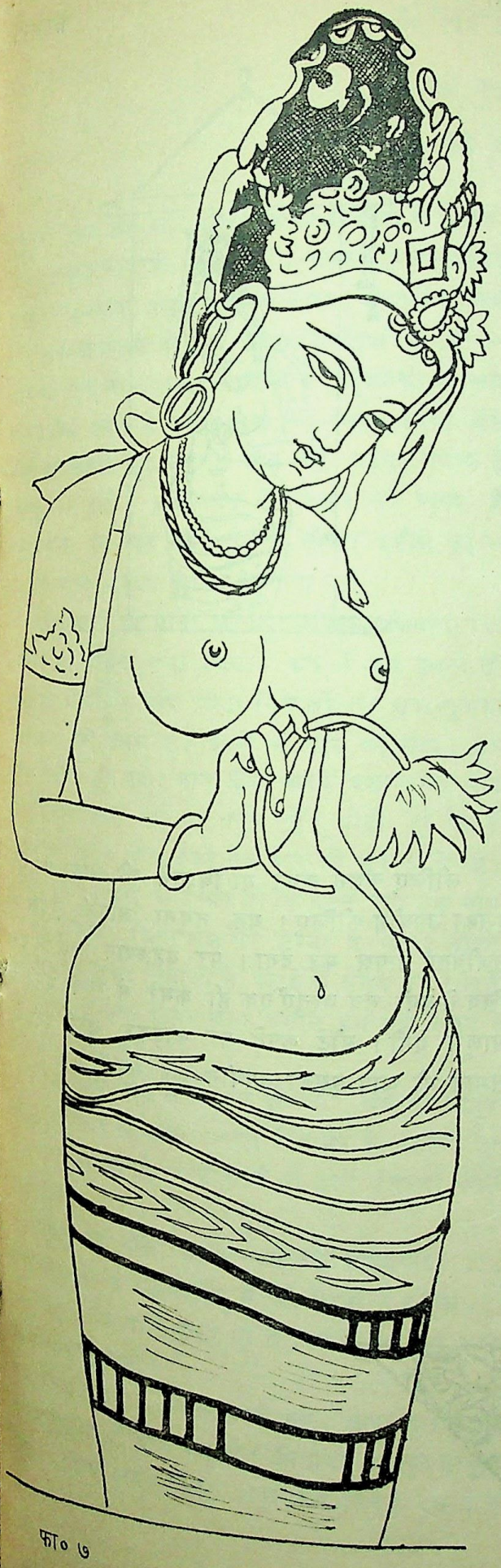

फा० ७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरानी शैली के अनुसार बने इस चित्र में कितनी भारतीयता है! चित्र की केवल बाह्य रेखाएँ काढ़कर उसको गोल पालिश किये डंडों से लगाकर सी दिया गया है और फुंदने लगी रेशमी डोर उसके दोनों सिरों पर बाँध दी गयी है। इस प्रकार के चित्र में जड़ते समय काँच की आवश्यकता न होने से इसे इधर-उधर ले जाने में बड़ी सुविधा होती है। गन्दा-सा हो जाने पर इसे सावधानी से लक्स आदि में (फ्रेम से अलग करने के पश्चात्) धोकर पुनः स्वच्छ भी किया जा सकता है। इसको लटकाने की डोर भी रेशम की रंगीन डोर है--सामने दिखायी पड़ने के कारण इस डोर की सुन्दरता का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

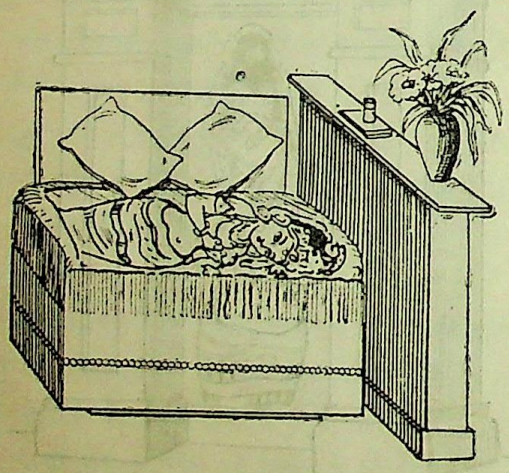

लीजिए कुशन कवर या बिझाने की चादर पर भी इसका उपयोग कीजिए। यह नमूना आपकी बैठक में सजीवता उत्पन्न कर देगा। पर यह ध्यान रखें कि इस चित्र से बनी सब वस्तुएँ एक ही कमरे में रखी भली न मालूम देंगी। मोटे कपड़े पर काढ़कर छोटी दरी के समान भी आप इसका उपयोग कर सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना (९)

श्री मनमोहन गुप्त

भाभी का प्रायश्चित्त

घाटी घाट की ओर चलते-चलते पिताजी के बताये, उद्देश्य सम्बन्धी जितने नीति-वाक्य थे, सब बघारने लगा। साहबदादा श्रोता थे एवं मैं वक्ता। बकते-बकते जब मेरा खजाना खाली हो गया तब साहबदादा ने कहा--और भी एक बात जान लो भइया! उद्देश्य की व्याख्या भी उद्देश्य बनने से पहले साफ कर लिया करो। जैसे अभी हम लोगों का उद्देश्य नाव पर चढ़ना अवश्य है किन्तु सो क्यों? मनोरंजन के लिए। तो 'मुख्य' है मनोरंजन, एवं नाव की सैर है 'गौण।' इसीसे उद्देश्य में भी मुख्य उद्देश्य को न भुलाना।

साहबदादा की बातों को मेरा मस्तिष्क जितना पचा सकता था, उतना पचा लिया। कम से कम इतना तो पचा ही लिया कि यदि श्रोता मिले तो सब सुना-सुनाया ज्यों का त्यों उगल दूँ। इतने में घाट आ गया। हम लोग व्यस्त हो गये। नाव ठीक करके दशाश्वमेध घाट से अहिल्याबाई घाट पर पहुँच गये। थोड़ी ही देर में दादा आ गये। दिन डूबने तक नाव की सैर करते रहे। यों तो साहबदादा की इच्छा थी कि बहुत रात तक नाव पर ही बितायें; किन्तु मुझ पर अम्मा ने 'जल्दी लौटने का' तथा दादा पर पिताजी ने 'पढ़ाई के समय तक लौटने' का प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसीसे हम सब समय से घर पर वापस हुए।

हम लोग, जब अपने घर को जाने लगे तो साहबदादा ने दादा से कहा--अपने पिताजी से कहकर तुम मेरे पास आ जाना। आज से मैं ही तुम्हें अँगरेजी आदि पढ़ा दूंगा।

सुनते ही मैंने कहा--चलो न साहबदादा.... जरा पिताजी से कह दो कि मैं भी भाभी से पढ़ूँगा।

भाभी का नाम सुनते ही वे गम्भीर हो गये एवम् कहा--फिर कभी।

वे चल दिये। हम लोग भी गये। दादा ने पिताजी से साहबदादा की बात कह दी। पिताजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। किताब आदि लेकर दादा चल दिये। उस दिन मेरी पढ़ाई बहुत जल्दी समाप्त हो गयी। बाद को कान लगाकर सुनता रहा कि दादा को साहबदादा अँगरेजी में ही पढ़ा रहे हैं।

दूसरे दिन अपने निश्चित समय पर मैं भाभी के पास पहुँचा। अरे, यह क्या? भाभी की आँखें जैसे गड्ढे में घुस गयी थीं। बाल रूखे-रूखे लग रहे थे। चेहरा कैसा-कैसा लग रहा था। मैंने पूछा--"तुम डाइन जैसी लग रही हो न?"

भाभी का कुम्हलाया चेहरा खिल उठा। पास खींचती हुई बोलीं--"हाँ, बड़ी डाइन.....वही जिस डाइन की कहानी तूने दादी से सुन रक्खी है, जो बच्चों को देखते ही उनके नाक-कान काटकर खा जाती है।...और इस प्रकार से झोले में बन्द कर लेती है।"

कहते ही कहते अपनी धोती का आँचल मेरे ऊपर डाल दिया और मुझे अपने हृदय से चिपका लिया। शायद उस समय वह नहाने जा रही थीं। केवल एक साड़ी पहने थीं। मेरे गाल ने उनके शरीर का स्पर्श कर लिया। ठीक दोनों स्तनों के बीच में ही मेरी नासिका-समेत चेहरा पड़ा था। उन्होंने मुझे और चिपका लिया। मैंने कहा--धत्। तुम डाइन कैसे हो सकती हो! उसके तो एक हाथ में लाठी, दूसरे हाथ में चाकू, और नमक की हाँड़ी, बोलती बिना दाँत के मुँह से, कन्धे पर झोला, यह लम्बा-सा झोला, पहनती थान की धोती, चलती कमर टेढ़ी करके, रहती है सुनसान श्मशान के पासवाले तालाब या नदी के किनारे के बड़े से बड़े या पीपल के नीचे....तुम झूठ बोलती हो।"

भाभी ने कहा--"कुछ खायेगा? मैंने आज खीर बनायी है।....अब मैं कभी तुझे बाजार की चीजें न खाने दूंगी। जो भी खाना होगा बता देना। सब बना दूंगी।"

मैंने कोई उत्तर न दिया। सोच रहा था कि अम्मा की गोद में अधिक सुख है या यहाँ? इसी उधेड़-बुन में आँखें लग गयीं। भाभी वैसे ही बैठी रही होंगी। कारण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर जब आँखें खुलीं तो देखा वैसे ही पड़ा हूँ और भाभी भी वैसे ही बैठी हैं। आँखें खुलते ही मैंने कहा--"चलूँ लिखने।"

भाभी ने कहा--"अच्छा जा। समय हो गया। मगर गलत न लिखना। हाँ, 'योर' माने तू मास्टर साहब साहब को कल क्या बता रहा था? 'मेरा' बता रहा था न?"

उठते हुए मैंने कहा--'कल तुम्हींने तो बताया था।'

--"तूने यों ही जल्दी से किताब दिखाते हुए पूछा था, पता नहीं कि मैंने क्या बताया। 'योर' माने--'तुम्हारा', 'तेरा', 'तुम लोगों के'। ऐसे ही कई माने होते हैं।"

बात समझ में आ गयी थी। मैं घर चला गया। अभी लिखना समाप्त भी नहीं हुआ था कि भाभी की आहट मिली। मैं उठकर गया। देखा अम्मा और दादी से भाभी कुछ बातें कर रही हैं। मुझे देखते ही कहा--"लिख लिया न सब?"

--"थोड़ा बाकी है.... जाता हूँ।"

कहा तो जाता हूँ, परन्तु खड़ा रहा। अम्मा ने कहा--"जाओ, अपना काम करो।"

चला तो आया परन्तु दरवाजे के पीछे से कान लगा कर सुनने की प्रबल आकांक्षा ने वैसा करा कर ही छोड़ा। बातचीत का आधार था कि किसी साधु ने कहा है कि पाँच महीने तक किसी के बच्चे को अपने साथ, अपना बच्चा जैसा रक्खो तो तुम्हें भी, यानी भाभी को भी बच्चे होंगे।

इसी से भाभी आयी थीं मेरी अम्मा और दादी से मुझे माँगने। अहा! भाभी के पास रहूँगा। कैसा मजा होगा। परन्तु अम्मा को चाहे मुझे देने की इच्छा न हो अथवा भाभी को टालने की गरज से ही हो, कह दिया--"अरी, बहू, तुम उसे जानती नहीं हो। वह दिन ही दिन का शेर है। रात को अपनी अम्मा के अलावा उसकी कोई गति ही नहीं है। नींद के बीच में उठकर जहाँ देखा कि पास अम्मा नहीं तो फिर बस। सारे मोहल्ले को सिर पर उठा लेगा। देखो न दादी बिना उसके लिए शाम बिताना असम्भव है, मगर सोते-सोते मेरे पास पहुँच ही जायगा। एक आध दिन ऐसा हुआ कि दादी के पास लेटे-लेटे कहानी सुनते-सुनते सो गया मगर ज्यों ही नींद खुली त्यों ही 'अम्मा' की पुकार शुरू होती है। कितने ही दिन कोशिश करके देखा गया मगर नहीं। ऐसे रोने लगेगा कि जैसे मैं मर गयी होऊँ।"

आगे कुछ, अम्मा के मुँह से, इस विषय के प्रतिपादन में, सुनने का धैर्य मुझमें नहीं रहा। दरवाजे के पीछे से सामने आ गया। वहीं से कहा--"न, न, अम्मा। भाभी के पास जरूर रह जाऊँगा।"

सुनकर सब लोग हँस दिये। अम्मा ने कहा--"यही तेरी लिखायी हो रही है? सुन रहा था?"

क्या सफ़ाई दूँ, कुछ समझ में न आया। अपनी बातों को दोहराते हुए अन्य प्रकार से कहा--"अच्छा तुम एक दिन भाभी के पास रहने के लिए छोड़कर देख लो। मैं तुम्हें याद भी न करूँगा।"

अपने पेट का बच्चा, अपनी माँ को भुला देने की बात करे; इसे भला कोई गर्भधारिणी कैसे बर्दाश्त करे? जरा गरम तथा उत्तेजित भाव से अम्मा ने कहा--"अच्छा-अच्छा जा! उसे मैं समझूँगी। तू तो अपना काम कर। लिखायी न पढ़ायी, खाली भाभी और भाभी..."

कहते ही कहते शायद अम्मा ने समझ लिया कि उत्तेजना में अधिक कह गयी। झट अपने को सम्हालते हुए कहने लगी--"इधर तो भाभी-भाभी करके व्याकुल... और उधर भाभी कुछ के कुछ मतलब बतायें और इधर आकर कुछ और ही बताये।... भाभी को बदनाम करने में नम्बर एक।"

कहकर भाभी की ओर मुँह करके कहने लगी--"अरे बाप रे! अपने बड़े भाई को डाँट दिया और गलत याद करने लगा। उन्होंने बीच-बिचाव किया, तब जाकर हजरत की अकल ठिकाने आई।"

दोष ओढ़ते हुए भाभी ने कहा--"कल कुछ अन्यमनस्क थी। उसने पूछा था। शायद मैंने ही गलत बताया था। उसमें उसका कोई कसूर नहीं है। आज ठीक कर दिया।"

तो, अपने लड़के की गलती नहीं? सप्रशंस दृष्टि से माँ ने बच्चे को देखा। फिर कहने लगी--"हाँ, यही तो मैंने कहा। आज तक पढ़ायी के लिए मेरे बच्चे कभी टोके नहीं गये। मैंने तो उनसे कल नयी बात सुनी कि लगता है कि बड़े की-सी स्मरण शक्ति छोटे की नहीं होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार से अपने बच्चों की पढ़ायी के विषय में अम्मा ने तो सातो काण्ड रामायण सुना दी। जब-जब दादा को छोड़कर मेरी प्रशंसा में कुछ सुनाती तब-तब भाभी मेरी ओर मुस्कराती हुई देखतीं। मानों मारे गर्व के वह समा नहीं रही हैं। अन्त में मेरे भाभी के पास रहने के विषय को पिताजी के निर्णय पर छोड़ा गया। उधर भाभी भी चली गयीं और मैं भी लिखायी में जुट गया। मन-ही-मन काली मायी, बाबा विश्वनाथ आदि तैंतीस करोड़ देवताओं से प्रार्थना करने लगा कि बाबू भी मान जायँ।

दादी ने उस समय तो कुछ भी नहीं कहा, मगर भाभी की अपील सेशन के सिपुर्द दादी ने ही की। यानी दादी ने ही बाबू के सामने बात छेड़ी। सुनकर बाबू ने बिना द्विधा से कह दिया--"इससे अच्छी बात और हो ही क्या सकती है? एक अच्छी, पढ़ी लिखी, सभ्य औरत के पास छोटका कुछ दिनों तक रहेगा तो आदमी बन जायगा। पढ़ी-लिखी माँ से बच्चों को इतना लाभ होता है कि कुछ कहने की बात नहीं। अँगरेजों के और जर्मनों के बच्चे इतने उन्नत क्यों होते हैं? कारण उनके यहाँ की स्त्रियाँ भी एक ही सी पढ़ी होती हैं।

कहते ही कहते मेरी ओर मुँह फेरकर कहा--"और बगल में तो है। तेरी अम्मा कहीं दूर थोड़े ही है। मन न लगे तो देख जाया करना।.....रह सकेगा न अपनी लाल परी भाभी के पास?"

मैंने हामी भर दी और अम्मा की ओर निगाह किये, सबसे पूछा--"जाऊँ भाभी के पास?"

अभी जाऊँ या नहीं, प्रश्न की झड़ी लगाकर पूछना ही चाहता था कि दयाल बाबू की अम्मा आ गयीं। आगे की घटना तो कुछ जानती नहीं थी, इसी से प्रश्न किया--"क्या है भाभी के पास?"

उत्तर में दादी ने आद्योपान्त समस्त बातें संक्षेप में सुना दीं। मुहल्ले भर में वही दादी की सबसे प्रिय सखी थीं। दोनों प्रायः समवयस्का भी थीं। एकादशी इत्यादि समस्त आचार-विचार दोनों एक साथ मनाती थीं। बात-चीत के दौरान में वह जान चुकी थीं कि बाबू और दादी, दोनों राजी हैं। अपनी सम्मति देते हुए उन्होंने आरम्भ किया--"अरे, इसमें कहीं आनाकानी करनी चाहिए। यह कहो कि बच्चे का भाग्य जग गया। बड़े आदमी की इकलौती बहू की निगाह में पड़ गया। देखना, चुटकी बजाते गोद भी ले लेगी। कहते हैं कि गौड़जी की जमींदारी है, कलकत्ते में कई किता मकान हैं, लाखों रुपये बैंक में हैं, और वही एक लड़का और उसकी एकमात्र वन्ध्या बहू। देर नहीं करनी चाहिए। कहीं और किसीका लड़का निगाह में चढ़ गया तो बना-बनाया मामला बिगड़ जायगा। मान लो कि वह सब भी गलत हो, फिर भी अभी पाँच महीने तक खूब दूध घी में नहायेगा, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनेगा। यही क्या कम है। कहीं दयाल के लड़के को माँगा होता तो मैं तुरन्त लाकर पटक जाती। हम लोग ठहरे निम्न-मध्यवर्ग के गृहस्थ। ऐसे मौकों में कहीं 'ना' करना चाहिए।"

आगे पता नहीं कि और क्या कहती। बीच में ही अम्मा इस प्रकार से बोल उठीं कि मानों उन्हें दम घुटने से किसीने बचा दिया। कहने लगीं--"तब फिर गौड़जी की बहू को चिन्ता किस बात की? उन्हें तो दवा के तौर पर लड़का चाहिए। वह चाहे किसीका हो। फिर दयाल बाबू भी ब्राह्मण हैं और वे लोग भी ब्राह्मण। मैं तो कहूँगी कि मौसी तुम मिल लो उनसे।"

अम्मा ने तो अपने लड़के से पिण्ड छुड़ाने के हेतु कहा था किन्तु दयाल की अम्मा झनक उठी--"तुम तो बहू कैसी बातें करती हो? जैसे तुम्हारा लड़का वैसा ही दयाल का लड़का भी। मेरे मन में कोई भेद थोड़े ही है। तुम चाहे जो समझो, मैं तो कोई भेद नहीं देखती हूँ। इसकी किस्मत चमके तो मुझे कोई ईर्ष्या थोड़े ही है। मैं तो चाहूँगी कि इसकी किस्मत चमके। इसमें बुरा मानने की क्या बात है!"

कहते-कहते वह उठ खड़ी हुई। दादी ने कहा--"बैठ न थोड़ देर। अभी तो आयी ही है।"

--"हाँ, बैठने तो आयी ही थी। मगर दूसरों की बातों में यों ही पड़ गयी। चल अपने कमरे में। जिनका लड़का है उन्हें फैसला करने दे। बीच में क्या डाल दिया, जैसे तेल की कढ़ाई में भुनवा दिया।"

अम्मा का चेहरा इतना सा रह गया। मुँह छिपाने की जगह नहीं मिल रही थी। टुकुर-टुकुर ताकने लगीं। बाबू ने मुझसे कहा--"ठीक है। तुम नहीं जाओगे।"

'तू' से 'तुम' का प्रयोग किसी गम्भीर निश्चय के उपरान्त ही बाबू हम लोगों से करते थे। मेरे ऊपर तो जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना बादल के वज्रपात हुआ। दयाल की अम्मा को सुनने के लिए बाबू ने कहा--"ठीक कहा है मौसी तुमने। मैंने एक बात सोची ही नहीं थी। ईश्वर जो करता है, मंगल के लिए ही करता है। अच्छे मौके पर तुम आ गयीं। मैंने कभी इसे नहीं सोचा था कि मेरी और गौड़जी की सामाजिक स्थिति तथा स्तर में बिल्कुल आकाश-पाताल का अन्तर है। मेरा लड़का उनके घर रहेगा तो लोग सोचेंगे कि उसे उतना अच्छा खिला-पिला या पहिना नहीं सकते हैं। इसीसे मैं राजी हो गया। बात तो केवल पाँच महीने की है। उसके बाद मेरा लड़का यों ही यहाँ रहता, मगर लोग कहेंगे कि फँसाने की चेष्टा की, मगर फँसा नहीं पाया। हाथ मसलकर रह गया। रहना तो समाज में ही है, और बर्दाश्त करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। बेकार का अनर्थ हो जाता। तुमने मेरी आँखों के सामने से पर्दा हटा दिया।"

इतने में अम्मा ने हाथ बढ़ाकर मुझे पास समेट लिया। मुझे बहुत बुरा लगा। मन कर रहा था कि भाभी के पास भाग जाऊँ। व्यथा से कराह उठा। एवं शायद इसीसे मैं भी और उसकी गोद के पास सिमट गया जिस गोद में सिमटकर जन्म से व्यथाओं के हाथ से छुटकारा मिलता आ रहा था।

आश्चर्य है कि ऐसे मौके पर दादा की बुद्धि में कौन से देवता सवार हुए। यों ही वे कह उठे--"इसमें क्या? खायेगा-पियेगा हमीं लोगों के घर में, और रहेगा भाभी के साथ। भाभी को तो जिसने बताया उसने यही बताया है न कि लड़के को पाँच महीने तक पास रक्खें? यह थोड़े ही बताया कि खाये-पिये भी वहीं? भाभी की भी बात रह जायगी और हम लोगों की भी?"

एकदम जैसे कि सारी बातें सुलझ गयीं। इस बात में अम्मा भी राजी थीं। कारण अम्मा ने यह तो देख ही लिया था कि भाभी के पास रहने से लड़के की उन्नति होती है। बाधा तो केवल स बात की थी कि लड़के की उन्नति के लिए भी वे अपने लड़के को छोड़ना नहीं चाहती थीं। अब वह बात तो रही नहीं। फलतः सारी बातें सुलझ गयीं। सिर हिलाते हुए दादी ने इतनी देर में मुँह खोला--"यद्यपि, अब भी कहनेवाले यही कहेंगे कि हम लोगों ने दूर की कौड़ी फेंकी, फिर भी बेचारी को देखने से आँखें भर आती हैं। कहीं तेईस चौबीस बरस की औरत बिना बच्चे के अच्छी लगती है? ...और स्वभाव तो देखो, बिल्कुल भगवती हैं। ...भगवान् ऐसों की ही परीक्षा करते हैं।...अहा, बेचारी कहती जाती थी और आँखें डबडबा उठती थीं। क्यों न उठें? पढ़ने-लिखने से क्या किसी की माँ बनने की इच्छा थोड़े ही समाप्त हो जाती है?"

तय हुआ कि दादी ही समझा बुझाकर भाभी को समझा देंगी कि इस परिस्थिति में इससे अधिक कुछ हो नहीं सकता है। दयाल की अम्मा ने भी इस बात के समर्थन में कहा--हाँ, हाँ इससे अधिक शह देना ठीक नहीं है। होंगी बड़े घर की बहू, मगर क्या छोटके को राजा बना देंगी?"

थोड़ा सा रुककर बोली--"फिर ऐसी बातों में जिनके दस-बीस हाथ के कलेजे होते हैं वे ही पड़ते हैं। यह तो एक प्रकार का टुटका है। कौन ऐसी बातों में पड़ता है? कहीं कुछ हो गया तो!"

अम्मा सिहर उठी। मुझे और पास समेटने के लिए हाथों को कड़ा किया। गिड़गिड़ाकर बोली--"इन सब बातों में पड़ने की जरूरत ही क्या है?"

पिताजी ने कहा--"समझती नहीं हो। कोई टुटका उटका नहीं। यह एक मानसिक प्रक्रिया है। इसके पीछे यह सिद्धान्त है कि जब वह अनुभव करेगी कि बच्चे के बिना जीवन व्यर्थ है तब मानसिक शक्ति के बल पर शारीरिक बल भी प्राप्त करेंगी। यह तो एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा है। बुरा, भला, जो कुछ भी होने को है, सब कुछ उन्हीं को होगा।"

कहते-कहते दयाल की अम्मा की ओर मुँह किये कहा--"तुम ही मौसी इस मामले में सन्देशवाहक का काम करो तो अच्छा है। लड़का हम लोगों का है, अपने मुँह से हम लोग कुछ न कहें तो अच्छा है। और तुम जरा ठिकाने से कह भी पाओगी।"

"ना, ना," "हाँ, हाँ" करते-करते वे राजी हो गयीं। हम लोगों के सन्देशवाहक के रूप में वही भेजी गयीं। हम दोनों भाई पिताजी के पास पढ़ने बैठ गये। बड़ी देर के बाद दयाल की अम्मा वापस हुईं। सब लोग उत्सुकता से उनकी बातें सुनने लगे। इस बार बातें वहीं होने लगीं जहाँ हम लोग लैम्प जलाकर पढ़ने बैठे थे। दयाल की अम्मा को सपने में भी यह खयाल न था कि उन्होंने जितनी बातें कह दी हैं उनके बाद भी भाभी ने मुझसे प्यार करना न छोड़ा। खूब खुलकर बातें करना आरम्भ किया--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे मास्टर! तुम भी किसके चक्कर में पड़े हो? वह देखने में ही ऐसी भोली-भाली लगती है। मगर है असली काली नागिन।"

"अब तो मैं समझ गयी। वह तो उसी छोकरे पर दाँत धरे है। बिल्कुल अपनाना चाहती है। यह सब ढोंग है। कहाँ के साधु वचन और काहे का नियम? मैंने जब देखा कि इसी छोकरे की जान के पीछे पड़ी है तो परीक्षा के लिए यों ही कहा कि मोहल्ले के किसी और के लड़के की कोशिश करूँ? एकदम; क्या कहूँ; नागिन जैसी फुफकार उठी। उसे तो उसीके विषय में सपना हुआ। अब साधू से सपने में आयी। मेरी तो समझ में आ गया। वह इसीकी जान के पीछे पड़ी है। न हो कुछ दिनों के लिए उस छोकरे को तुम यहाँ से हटा दो।"

यद्यपि बातें पिताजी से हो रही थीं, बोल उठी अम्मा--"मैं कल ही अपने भाई के पास भेजे देती हूँ। अगर बात यही है तो मैं एक दिन के लिए भी यहाँ न रक्खूंगी।"

"आगे और भी न जाने क्या कहती, किन्तु बीच में ही बाबू ने टोकते हुए कहा--"जैसी समझनेवाली मौसी है वैसी ही भेजनेवाली तुम हो। बेकार, एक छोटी-सी बात का बतंगड़ बनाती हो। तुम लोग इन बातों को समझ नहीं सकती हो। ये बातें रुचि की होती हैं दूसरे से उन्हें तृप्ति नहीं होगी। छोटके में और कोई गुण हो या न हो, अपनी भाभी को मोहने में उस्ताद है। कोई बात नहीं; कल मैं मुहल्ले के और दो एक सज्जनों से परामर्श करूँगा। जो सब लोग कहेंगे वही होगा। हाँ, मौसी, जरा दयाल बाबू से कह देना कि सबेरे मैं आऊँगा। यों बिना कहे भी ऐसे समय पर आऊँगा जिस समय वे घर पर हों।"

गुस्से से दयाल की अम्मा यों ही जली जा रही थी क्योंकि पिताजी को उनकी समझ पर आस्था न थी। मौका पाते ही वह उबल पड़ी। कहने लगी--"मेरे दयाल को इन बातों में घसीटने की किसीको क्या जरूरत है? यों ही तुम खूब समझदार हो!"

कहते-कहते, वह दनदनाती हुई कमरे से बाहर चली गयी। पीछे-पीछे अम्मा भी निकल गयी। बाबू ने हम लोगों से कहा--"हाँ। पढ़ो।"

यों ही आधे मन से मैं पढ़ रहा था। पिताजी समझ गये। बोले--"अच्छा जाओ। आज तुम्हारी छुट्टी।"

फिर देखने लगे कि साहबदादा के पास बड़े भाई क्या-क्या पढ़ते हैं। भाई का साहबदादा के पास पढ़ने के लिए जाने का समय हो रहा था। मैं उठकर बाहर गया। देखा कि अम्मा के साथ दयाल की अम्मा कुछ फुस फुस कर रही हैं। वे इतनी तन्मय थीं कि उन्हें खयाल न रहा कि पीछे, जरा अँधेरे में खड़े-खड़े, दो कान उनकी एक-एक बात को निगल रहे हैं।

बातचीत का सारांश यही था कि कल किसी प्रकार से अम्मा गंगा नहाने के बहाने मुझे लेकर निकल जायेंगी और मुझे अपने भाई के पास छोड़ आयेंगी। जब राक्षसी रूपी भाभीवाली बलाय टल जायेगी तब फिर मैं बुला लिया जाऊँगा।

बात समझ में आते ही मैं आहिस्ते से सरक गया। सीधे भाभी के पास पहुँचा। अरे, यह क्या? भाभी कहाँ गयीं? एक-एक जगह देख ली। कहीं भाभी का पता नहीं। गौड़जी के कमरे में, साहबदादा के पढ़ने-पढ़ाने के कमरे में, नहाने का, सोने का, यहाँ तक कि पाखाने तक में भी देखा। कहीं भाभी नहीं।

खड़े-खड़े सोचा। हाँ, अभी तक सीढ़ी नहीं देखी। तुरन्त सीढ़ी की ओर गया। अरे! यह दरवाजा तो खुला है। तो क्या भाभी छत पर गयीं? आहिस्ते-आहिस्ते ऊपर चढ़ गया। सामने कोई नहीं दिखायी पड़ा। आहिस्ते ही आवाज लगायी--भाभी।

बायीं ओर कोने में ही भाभी सीढ़ी की दीवार के साथ चिपकी हुई रो रही थीं। मेरी आवाज पाते ही लपककर मुझे गोद में उठा लिया। छाती से लगाकर फूट-फूट कर रोने लगी। मैं भी भाभी का रोना देखकर घबड़ा गया। चुप! बिल्कुल शान्त, भाभी की छाती से चिपका रहा। घने बादल के प्रथम झोंके के से जब भाभी के हृदय के बादल कुछ हलके पड़े तब भाभी ने कहा--"क्या है...बेटा!"

मैंने आहिस्ते से कहा--"भाभी अब मैं तुम्हें कभी न मिलूँगा। मैं चला जाऊँगा। कल ही अम्मा मुझे मामा के घर छोड़ आयेंगी।"

सुनकर भाभी ने मुझे हृदय से और समेट लिया। अँधेरे में भी चारों चमकती हुई आँखें मिल गयीं। एक ने दूसरे की भाषा को पढ़ लिया। मैंने भाभी से पूछा--"तो, अब क्या होगा भाभी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाभी स्वयम् नहीं जानती थीं कि क्या होगा। उन्होंने मेरे गालों से गाल लगाकर आहिस्ते दबाते हुए एक सुदीर्घ साँस ली।

इतने में पिताजी की आवाज सुनायी पड़ी--"छोटका! ओ छोटका!"

ध्यान भंग हुआ। भाभी ने उतार दिया। जल्दी-जल्दी मैंने कहा--"घबड़ाओ नहीं भाभी! मैं अस्सी घाट से यहाँ का रास्ता जानता हूँ। जरूर भाग आऊँगा।"

भाभी देखती रहीं। कूद-फाँदकर मैं अपने घर में पहुँचा। झट टट्टी में घुस गया। थोड़ी देर रुककर फिर जब पिताजी ने आवाज लगायी तो मैंने कहा--"टट्टी में हूँ।"

उधर बढ़ते हुए अम्मा ने कहा--"रह! तेरा टट्टी में रहना निकालती हूँ!"

तब तक मैंने दरवाजे पर धोती-कुरता उतार कर बाकायदे टट्टी फिरने की कवायद आरम्भ कर दी थी। दरवाजे के पास तक तो अम्मा झपट कर आयीं, मगर सच-मुच मुझे टट्टी में घुसा हुआ देखकर वहीं रुक गयीं। डाँटती हुई बोलीं--"अभी-अभी मैं देख गयी थी कि यहाँ कोई नहीं है। और तू कब आया? बोल कहाँ था?"

पाँवदान पर बैठे ही बैठे मैंने कहा--"वाह री! मैं तो कब से यहीं बैठा हूँ!"

अम्मा का पारा चढ़ रहा है देखकर दादी ने उधर से कहा--"बेकार क्यों गरम हो रही हो बहू? अँधेरे में बैठा रहा होगा। तुम देख न पायी होगी।"

चीखती हुई अम्मा बोल उठी--"मैं जानती हूँ, यह, उसी डाइन के पास था!"

कहते ही कहते, पाखाने की दीवार से टकराकर नीचे गिर पड़ीं। चारों ओर से भगदड़ मच गयी। यानी उधर से दादी, कमरे से बाबू एवम् अन्य किरायेदार औरतें भागी हुई आयीं। मिरगी का दौरा आ गया था।

इन सबकी जड़ मैं ही हूँ। अम्मा के सम्हलते ही मेरी खबर ली जायगी। इसे याद आते ही मैं सिहर उठा। नंग-धड़ंग जो रिहर्सल दे रहा था उससे विरत हुआ। कहीं किसीकी निगाह पड़ जाय तो? इसी भय से कपड़ों को वहीं रहने दिया। सीधे, भाभी के पास पहुँचा। भाभी ने उस हालत में मुझे देखकर कहा--"ऐसे क्यों?"

संक्षेप में मैंने सब सुना दिया। भाभी मुझे कमरे में ले गयीं। झट एक मलमल की चादर को बीच से फाड़ दिया। धोती की तरह उसे पहना भी दिया। कहा--"लेट जा। मैं दूध लाती हूँ। पीकर सो जाना। यहीं किसीको आने नहीं दूँगी।"

सचमुच दूध लायीं। गोद के पास बैठाकर पिलाया। बिस्तर में लेटाती हुई बोलीं--"कोई कितना भी चिल्लाये, बोलना नहीं। हरगिज मैं किसीको आने नहीं दूँगी।"

उधरवाले कमरे में साहबदादा बड़े भाई को पढ़ा रहे थे। गौड़जी तो सन्ध्या से पूर्व ही भोजन करके घूमने निकल जाते थे। रात के ग्यारह, कभी बारह बजे तक कथा, विश्वनाथजी की आरती वगैरह देखकर वापस होते थे और सो जाते थे।

उधर अम्मा को होश आते ही उन्होंने पहला प्रश्न किया कि छोटे कहाँ? मेरी ढुँढ़ायी के साथ-साथ पिताजी का गर्जन आरम्भ हुआ। आखिर बड़े भाई की पुकार हुई। मेरे जितने छिपने के स्थान थे, सब ढूँढ़े गये। कोई पता न चला। विचार आरम्भ हुआ कि नंगे कहाँ जा सकता है? अम्मा बराबर कहती रहीं--"उसी डाइन ने छिपा रक्खा है। वहीं ढूँढ़ो।"

आखिर दादा भेजे गये। मैं जिस कमरे में छिपा था उसीके दरवाजे के पास दादा में और भाभी में बातें हुईं। दादा ने कहा--"क्यों भाभी छोटका तो नहीं आया?"

"क्यों! छोटू कहीं गया है क्या?"

--"हाँ। नंगा ही छिप गया। सारा घर देख लिया। मिलता ही नहीं।"

गाल पर हाथ धरे भाभी ने कहा--"आश्चर्य है! रात को कहाँ जायगा! न हो सड़क-वड़क . . .।"

आगे कुछ कहने से पूर्व ही दादा ने कहा--"सब देख गये . . . कहीं मिलता ही नहीं।"

भाभी ने प्रश्न किया--"क्या किसीने मारने की बात तो नहीं कही?"

बड़े-बूढ़े का-सा सर डुलाते हुए दादा ने कहा--"बाबू बहुत नाराज हैं। अब मिल जायगा तो बहुत पीटा जायगा।"

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

प्राइवेट सेक्रेटरी

श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय

महेन्द्र को कमरे में प्रवेश करते ही, भारत व पाकिस्तान के अन्तिम क्रिकेट टेस्ट मैच के बारे में हो रही बहस के बीच—'आ गये जी महेन्द्र बाबू भी। हम तो कह ही रहे थे आने ही वाले होंगे। रास्ते में साइकिल पंचर हो गयी होगी।' सुनाई दिया। उसकी भौहें तन आईं। घृणा भरी आँखों से उसने अँगीठी के पास आग सेकते लोगों को देखा। वे लोग पुनः क्रिकेट मैच की बहस में जुट गये थे। उनकी बातों में मैच का आँखों-देखा हाल स्पष्ट झलक रहा था। यदि कोई कहता—'यार पाकिस्तान के आठ खिलाड़ी तो चटापट आउट हो गये, पर दो न हो सके।' तो कोई कहता—'सचमुच कमाल हो गया। पाकिस्तान हारा हुआ मैच ड्रा कर गया।'

सेक्शन आफीसर दोनों टाँगों को कुर्सी पर फैलाये, आराम से पीठ को कुर्सी पर चिपकाये अखबार पढ़ रहे थे। बन्द गले के कोट के ऊपरवाले दो बटन खुले होने से, उनका अण्डानुमा मुँह का आधा भाग कालरों के बीच छिपा था जिसके कारण उनका मुँह कुछ ऐसा लग रहा था जैसे कछुआ जरा-सा मुँह उठाकर पानी की सतह में किसी शिकार को देख रहा है। उस पर भी अध-फूले सिर के सफेद बाल, छोटी आँखें सभी कुछ उनकी आकृति को और भी विकृत किये थीं। उनके सामने कोनेवाली सीट पर चपरासी रामअवतार बायें हाथ की हथेली को गाल पर टिकाये बैठा था जो बीच-बीच में सेक्शन आफीसर को कुछ इस तरह देख रहा था जैसे उसे भय हो—कहीं कोई काम करने को न कह दें और कहीं जाने का हुक्म न दे दें!!

तनिक सकुचाते हुए महेन्द्र ने सेक्शन आफीसर की टेबिल से हाजिरी-रजिस्टर उठाया। पेन खोलकर हाजिरी लगाना ही चाहता था कि उसकी निगाह सामने टेबिल पर रखी घड़ी पर पड़ी। घड़ी की छोटी सुई दस पर व बड़ी वाली सुई एक व दो के बीच की दूरी को तय कर रही थी। उसने सन्तोष की साँस ली। सारे रास्ते वह सोच रहा था—समय सवा दस के करीब होगा। आज लेट पहुँचने का तोहफा 'क्रॉस' लग जायेगा। बल्कि एक बार तो उसके मन में यहाँ तक डर पैदा हुआ था कि आज हाजिरी लगाने बड़े आफीसर के कमरे में जाना पड़ेगा। तब उसने सोचा था जाना चाहिए या नहीं। आज तक कभी भी वह आफीसर के कमरे में हाजिरी लगाने नहीं गया था। क्योंकि हाजिरी-रजिस्टर नियमानुसार ठीक दस दस पर बड़े आफीसर के पास चला जाया करता है। दस दस तक लेट आने की छूट मिलती ही थी, वह, कभी कभी। छूट के अनुसार समय देख उसने सोचा—डरने की क्या बात है। अभी तो दस दस भी नहीं हुए हैं। फिर मैं तो आज ही लेट आया हूँ। इन्हीं विचारों में बिना सेक्सन आफीसर की प्रतिक्रिया जाने, हाजिरी लगा वह अपनी सीट की ओर आने लगा।

—"मिस्टर महेन्द्र....."

—"जी-ई....ई।"—मुड़कर प्रश्नभरी आँखों से सेक्शन आफीसर को देखते हुए महेन्द्र ने कहा।

—"हमारा मुल्क तरक्की नहीं कर रहा है। जानते हो क्यों?...."

"इसके कई कारण हैं।" वह बीच ही में बोल उठा।

"कई कारण! सबसे बड़े कारण तो हैं तुम जैसे लोग! जो दफ्तरों में हैं। वे भी उन दफ्तरों में जहाँ मुल्क का भाग्य है समझे.....।"

—"वा साप वाह! आप पूछते भी महेन्द्र जी से ही हैं। —"भटनागर बीच में सेक्शन-आफीसर की बात काटकर बोल उठा।

—"क्या महेन्द्र आदमी नहीं है?"—साहनी ने हँसते हुए भटनागर से पूछा।

—"आदमी तो है। तभी तो....जिस मुल्क में महेन्द्र जैसे आदमी हों, वह मुल्क क्या तरक्की करेगा?—भटनागर ने अपनी बात की भूमिका बाँधी। कोट के बटनों को ठीक करते हुए सेक्सन-आफीसर के पास ही जाकर बैठ गया। हँसते हुए बोला—"साप जरा आप महेन्द्र से यह तो पूछिये—हजरत कभी दस बजे आये भी। इनके आने का समय तो साढ़े दस है।"

सेक्शन-आफीसर हमेशा साढ़े दस बजे के करीब ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया करते थे। इसलिए उनको भटनागर की बात पर यकीन होना स्वाभाविक भी था। भटनागर की झूठी बात सुनते ही महेन्द्र के क्रोध का ठिकाना न रहा। घृणा-भरी आँखों से टेबिल पर पड़ी फाइलों को देखा। झल्लाया ——"देखो भटनागर, तुम बहुत बकबास करते हो। तमीज से बात किया करो। कब आता हूँ मैं, लेट। लेट तो तुम आते हो रोज ही।"

——"वाह, तुम भी यार बुद्धू ही हो। भटनागर, एस० ओ० साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी जो हैं।"——केशव ने भटनागर के अधिकार को स्पष्ट किया।

हँसी का फौव्वारा फूट पड़ा। प्राय: सभी, कभी भटनागर व कभी सेक्शन-आफीसर व कभी केशव को देखने लगे। भटनागर का चेहरा एकाएक फीका पड़ गया। वह पुन: उठकर अँगीठी के पास आकर बैठ गया था, महेन्द्र के चेहरे में विजय की झलक थी। और सेक्शन-आफीसर के चेहरे में क्रोध था। मानों यदि उसका बस चले तो वह केशव का कान पकड़कर उठ-बैठ करा दे। .... 'मुल्क क्यों तरक्की नहीं कर रहा है? महेन्द्र जैसे आदमियों के कारण क्यों कहा गया'——वह बात हँसी के साथ ही पीछे पड़ गयी। एक दो क्षण के बाद जैसे सबको भय हो आया हो। जो बात केशव ने कही है, सेक्शन-आफीसर को खल गयी है, वे नाराज हो उठे हैं। क्रोधवश कुछ हमसे भी न कह दें। पर सेक्शन-आफीसर अपनी हँसी को बचाने के लिए रूखे स्वर में बोले——"काम करो भइ काम!"

"——करते हैं जी। आपको क्या फिकर हो रही है" ——भटनागर भी अपनी हँसी बचाने के लिए बोला।

तभी तीन-चार व्यक्ति और आ पहुँचे। हाजिरी लगाकर सेक्शन-आफीसर के नाराज होने के भय से अपनी अपनी सीटों पर बैठ गये। पर सेक्शन-आफीसर फिर कुछ नहीं बोले। पुन: अखबार पढ़ने लगे।

क्लर्क लोग पुन: भारत व पाकिस्तान के क्रिकेट मैच की बहस में जुट गये। प्राय: ऐसा लग रहा था जैसे सभी मैच देखने गये हों, और अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार मैच का आँखों-देखा हवाला एक दूसरे को सुनाना चाहते हैं। विजय की मंजिल तक पहुँचने के आसार दिखाई देने पर भी भारतीयों का मंजिल तक न पहुँच पाना उन्हें खल रहा हो।

——"भई हनीफ की गिल्ली देसाई ने खूब उखाड़ी..."

——"सच...उस समय तो मजा आ गया।"

——"इतना इन्टरेस्टिंग मैच और कोई भी नहीं रहा।"

——"पाकिस्तान तो हारा ही था। पर क्या करें, अपने खिलाड़ियों ने झक मार दी।"

सेक्शन-आफीसर ने अखबार के पृष्ठ लौटाते हुए सबको देखा। महेन्द्र व केशव को छोड़ सभी अँगीठी को घेरे खड़े थे। हाजिरी का रजिस्टर उठाते हुए वे बोले—"क्यों भई! क्या काम शुरू नहीं करना है? साढ़े दस हो गये हैं। काम शुरू करो भई।"

——"काम की क्या फिकर है साहब? अभी शुरू करेंगे। जरा सुस्ता लें। हाथ गरम कर लें।"——भटनागर ने घूरकर सबको देखते हुए बैठे-बैठे कहा। महेन्द्र को देखते ही उसके चेहरे में हल्की-सी मुस्कान की रेखाएं खिंच आईं। उत्सुक आँखों से सेक्शन-आफीसर की ओर देखते हुए बोला——"करो भई, करो काम। आग कब तक सेंकते रहोगे? आखिर सरकार तुम्हें यों ही तो तनखा नहीं देती। कुछ तो सोचो।"

——"भटनागर पहले तुम चाय तो पी आओ। तुम्हारी चाय का समय होने ही वाला है।"——साहनी ने चिढ़कर कहा।

——"ये देखिए जी एस० ओ० साहब, साहनी कह रहा है——चाय का अमल लग रहा है। चल चाय पी आयें।" ——भटनागर ने पुन: बात साहनी के ऊपर ही थोप दी, और स्वयं अपनी सीट पर जाकर रैक में से आठ दस फाइलें उठाकर टेबिल में रखने लगा। कुछ इस तरह जैसे जो भी फाइलें उसने निकाली हैं, वे सब जरूरी फाइलें हैं। और उन सबको कुछ ही समय में सेक्शन-आफीसर की टेबिल पर पहुँच जाना है, ताकि वे अपने से बड़े अधिकारी के पास भेज सकें। या कोई भी अधिकारी उसकी टेबिल पर रखी फाइलों को देख समझे कि इसके पास काम बहुत है।

——"देखो भई, एक दूसरे पर रिमार्क न कसो। काम करो।"——सेक्शन-आफीसर ने सबको आदेश दिया; ठीक ऐसे ही जैसे थानेदार सिपाहियों को हुक्म देता है। महेन्द्र को सामने फाइल खोले देख उन्हें कुछ गुस्सा आ गया। सबसे अधिक गुस्सा उन्हें उस समय आया जब उन्होंने महेन्द्र के हाथ में बन्द पेन देखा। वे चाहते थे महेन्द्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू कर दे। पेन पकड़े बैठा ही नहीं रहे। लेकिन कहीं वह—'क्या लिखना चाहिए?—सोच रहा हूँ'—'न कह दे' सोच वे चुप रह गये। पर क्या कर रहा है जानने के लिए एक दो क्षण वे अपलक उसे देखते ही रहे। महेन्द्र पेन पकड़े पूर्ववत् बैठा ही था।

धीरे-धीरे सभी काम पर लग गये थे। केशव टाइप-राइटर पर कागज चढ़ाकर एक लेटर टाइप करने लग गया था। टाइप की आवाज के कारण उस पर सेक्शन-आफीसर को विश्वास था कि काम कर रहा है। राम-अवतार पर भी विश्वास ही था क्योंकि वह उनके पैसे निकाल लाने बैंक गया हुआ था। अन्य सब पर जैसे उन्हें यकीन ही न हो कि काम कर रहे हैं। गौर से सबको देखने लगे। जो लोग पेन या होल्डर से फाइलों में लिखने लग गये थे, कुछ कुछ उन पर भी विश्वास हो रहा था। कुछ कुछ इसलिए कि उन्हें शक था कि कहीं कोई व्यक्तिगत कार्य तो नहीं कर रहा है। किन्तु महेन्द्र पूर्ववत् बैठा ही था। इसलिए उस पर तो उन्हें और भी क्रोध आ गया। रूखे स्वर में बोले—"क्यों भई, एक बजे तक सोचते ही रहोगे मिस्टर महेन्द्र?"

—"जी....."

—"जी क्या? क्या काम करने का मूड नहीं बना है तुम्हारा?"

—"मूड तो मेरा बना ही था। हो सकता है अब, जो खतम हो जाय।"

महेन्द्र सेक्शन-आफीसर की बात न सह सका। पेन को टेबिल पर रखते हुए पुनः बोला—"मैं एक जिम्मे-वार नागरिक हूँ। अपने अधिकार व कर्त्तव्य को जानता हूँ। मुझसे अधिक कहने की जरूरत नहीं।"

—"यस० ओ० साप, आप महेन्द्र को काम करने को न कहें। काम करो कहने पर तो इनका मूड खराब हो जाता है।"—भटनागर अपनी सीट से उठकर सेक्शन-आफीसर के बगलवाली सीट पर बैठ गया। उचित अवसर पा सेक्शन-आफीसर को महेन्द्र के प्रति और भी उकसाने लगा; कुछ इस तरह जैसे वह महेन्द्र से पहले से जला-भुना हो; किन्हीं पुरानी बातों का बदला लेना चाहता हो।

सेक्शन-आफीसर महेन्द्र से कुछ कहते कि बड़े साहब का चपरासी हाजिरी-रजिस्टर माँगने आ गया। वह छाती तानकर सेक्शन-आफीसर के पास खड़ा हो गया, मानों वह बड़े साहब का चपरासी नहीं बल्कि स्वयं बड़े साहब ही हों। सेक्शन-आफीसर उसका मुँह ताकते ही रह गये।

इस कारण वे बीच में ही उलझ गये, क्योंकि वर्मा साहब अभी नहीं आये थे। वे, किसी भी हालत में यह नहीं चाहते थे कि वर्मा हाजिरी लगाने बड़े आफीसर के कमरे में जाय। इसी कारण उन्होंने रजिस्टर भेजा ही नहीं था। रजिस्टर के पत्रों को उलटते हुए बोले—"रजिस्टर साहब माँग रहे हैं। जिसने हाजिरी नहीं लगाई है, लगा ले।"

—"औरों ने तो सभी ने हाजिरी लगा ली है, एक वर्मा ने ही नहीं लगाई है।"—महेन्द्र चिढ़ा-सा बोला। जैसे वह सेक्शन-आफीसर के कहने के कारण को जान गया हो। और उसी कारण के द्वारा वह सुबह हुई झड़प का बदला लेना चाहता हो।

—"जल्दी कीजिये जी! दो घण्टे तो आप इसी तरह बिता देंगे। अगर बड़े साहब ने इस बीच घण्टी बजाई तो फिर क्या जवाब दूँगा।"—बड़े साहब का चपरासी चिढ़-कर बोला।

—"लिख दीजियेगा जी, लेट विद परमिशन"—केशव भी बोल उठा। और घृणा-भरी आँखों से 'सेक्शन-आफीसर की ओर देखने लगा। कुछ इस तरह जैसे कहना चाहता हो—वर्मा आपका क्या लगता है? जो उसकी इतनी पड़ी है। तभी उसने देखा सेक्शन के अन्य लोग अपलक उसे देख रहे हैं, मानों आँखों ही आँखों में उसके व्यंगपूर्ण 'लेट विद परमिशन' का समर्थन कर रहे हों। और वे भी कहना चाहते हों—हमें तो तंग करता है। वर्मा से कुछ नहीं कहता है। क्यों?

घड़ी अब पौने ग्यारह से भी अधिक बजा चुकी थी। इसलिए वे हाजिरी-रजिस्टर को अपने पास नहीं रोक सकते थे। विवश हो उन्होंने बड़े साहब के चपरासी को रजिस्टर दे दिया। किन्तु वर्मा का क्रॉस न लगाकर, 'लेट विद परमिशन' ही लिख दिया, जैसे केशव का सुझाव ही उनकी समस्या का समाधान हो। एक दो क्षण टेबिल पर पड़ी फाइलों को घूरते हुए स्वयं ही बुदबुदाये—"अफ-सर भी ऐसे कम्बख्त से पाला पड़ा है कि दिन में दस बार परेड कराता है। उस पर भी बड़ी बात यह कि यकीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं। आफिसों में ऐसे गधे अफसर जाने कितने भरे पड़े हैं।

—"हाँ जी, यह बात तो आपने पते की कही।"—भटनागर ने टेबिल से अखबार उठा लिया। अखबार के पृष्ठ लौटाता हुआ बोला—"आप गये जी क्रिकेट मैच देखने ?"

—"नहीं भई।"

—"मैच बहुत ही इन्टरेस्टिंग रहा। आपके घर के तो पास ही हो रहा था।"

—"घर के पास होने से क्या होता है। तुम्हारी तरह एस० ओ० साहब के पास फालतू पैसे नहीं हैं।"—केशव ने भटनागर व सेक्सन-आफीसर की बातों में हस्तक्षेप किया।

—"तुम नहीं गये थे क्या केशव ?"

—"नहीं मैं कैमेन्ट्री सुन रहा था।"

—"वाह, दावा तो ऐसे भर रहे थे जैसे तुम्हीं प्लेयरों में से एक हो।"

—"क्रिकेट खेलना जानता हूँ इसलिए मिस्टर भटनागर। तुम्हारी तरह बिना सिर-पैर की बात नहीं कर रहा हूँ। जैसे...."

—"मिस्टर केशव, क्या टाइप का काम पूरा कर लिया।"—सेक्शन-आफीसर अधिक बहस न सह सके, यहाँ तक कि उसकी बात पूरी तक नहीं होने दी।

—"दो लेटर कर चुका हूँ। तीसरा कर रहा हूँ।"

—"बस! एक घण्टे से भी अधिक समय में कुल दो लेटर? भई, मझे तुम्हारा काम पसन्द नहीं। पाँच मिनट लगते हैं एक लेटर करने में....."

—"क्यों होगा आपको मेरा काम पसन्द! क्योंकि मैं आपके गुडबुक में नहीं हूँ। आपको तो काम पसन्द आयेगा उसका जो आपकी हाँ में हाँ मिलाता है; जो आपके घर का भी काम कर दे।"—केशव बौखला उठा। क्रोध के कारण उसे इस बात का भी ध्यान नहीं रहा कि वह सेक्शन-आफीसर से बात कर रहा है। एक बार तो वह क्रोध में यहाँ तक कह गया था कि काम तो उसका पसन्द आता है जो दफ्तर का काम नहीं करता है। काम करता है, पसन्द करनेवालों का और जो कुत्ते की तरह आफीसरों के पाँव पर चिपका रहता है। आपको मेरा काम पसंद आये या नहीं मुझे इसकी परवा नहीं पर मैं दूसरा वाला काम मरकर भी नहीं करूँगा। भले ही कुछ भी हो जाय।

—"तुम्हारा काम! भगवान ही बचाये तुमसे और महेन्द्र से! दिन भर सिगरेट फूँकना, तीन-चार बार चाय पीने जाना। थोड़ा-सा जितना भी काम करो, उस पर भी हजारों गलतियाँ ?"—सेक्शन-आफीसर सबके सामने अपना अपमान न सह सके।

—"दिन भर गप्प तो नहीं हाँकते रहते हैं भटनागर और वर्मा की तरह।"

—"मैं चैलेन्ज करता हूँ मिस्टर केशव! जितना काम मैं आधे घन्टे में कर सकता हूँ, उतना तुम चार दिन में भी नहीं कर सकते हो।"—भटनागर भी न रह सका।

—"यह तो तुम ठीक कह रहे हो। हमें उतनी अक्ल कहाँ। फिर हमारे कालेज में टट्टेचूमी व चम्चागिरी की शिक्षा नहीं दी जाती थी।"—महेन्द्र ने सेक्शन-आफीसर को घृणा-भरी आँखों से देखते हुए कहा। बिना प्रतिक्रिया जाने अपने काम में लग गया, मानों इस बात को कहने से उसे आत्मिक संतुष्टि मिली हो, मन ही मन भटनागर के व्यवहार के बारे में सोच रहा हो।

—"देखो मिस्टर महेन्द्र! मुझे मजबूर न करो कि मैं तुम्हारे व केशव के खिलाफ कुछ लिखूँ। अच्छा है कि बिना मतलब की बातें बन्दकर काम करो।"—सेक्शन-आफीसर टेबिल पर पड़ी फाइलों को उठाकर अपने निकट रखने लगे। कुछ समय बाद जैसे अचानक कुछ याद आ गया हो, सिर खुजलाते हुए बोले—"देखो भई भटनागर! यार मेरी पे नहीं आई। जरा जाकर पता तो कर आओ। आना जरा जल्दी।"

—"वाह साहब, जल्दी क्या ? अभी आया। पन्द्रह मिनट जाने में लगेंगे। पन्द्रह मिनट आने में लगेंगे। पूरे आधे घण्टे में आ जाऊँगा।"—कहते कहते भटनागर सेक्शन-आफीसर के बिल-नम्बर को नोट कर कमरे से चला गया।

घड़ी की सुई बारह बजा रही थी। लगभग सभी काम करने लग गये थे। महेन्द्र तीन-चार फाइलें निकाल चुका था। सिगरेट का कस लेते हुए एक उलझे केस को सोच रहा था। किन्तु सुबह से अब तक की सभी बातें उसके हृदय को झकझोर रही थी, जिसके कारण वह कभी-कभी घृणा-भरी आँखों से सेक्शन-आफीसर को देख रहा था। तभी बड़े साहब का चपरासी कमरे में आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बता गया कि सेक्शन-आफीसर को साहब बुला रहे हैं, जिसके कारण सभी महेन्द्र को देखने लगे। क्योंकि बिना महेन्द्र को अपने साथ लिये वे बड़े साहब के पास जा ही नहीं सकते हैं। बड़े साहब के पास जाना तो सेक्शन-आफीसर को ऐसा लगता था जैसे मौत के सामने जाना पड़ रहा हो।

सेक्शन-आफीसर कोट के बटनों को ठीक तरह लगाते हुए मरे मन अपनी सीट से उठे। एक बार सतृष्ण नेत्रों से महेन्द्र की ओर देखा। बिना कुछ बोले ही धीरे-धीरे कमरे से बाहर चले गये, जैसे जानते हों आज महेन्द्र से कहना ठीक नहीं है। आज वह किसी भी स्थिति में साथ नहीं चलेगा। उनके जाने के एक दो क्षण बाद केशव उठकर महेन्द्र की सीट पर आ गया। सेक्शन-आफीसर की अनुपस्थिति में अपनी मन की बात कहने को मजबूर सा बोला--"आज चलेगा साले को पता !"

—"पता क्या चलता है। साले की नाक जो हो। हीं हीं करते हुए चला आयेगा। बात तो यह हो गयी है प्राइवेट सेक्रेटरी भटनागर और वर्मा ने गुड़गोबर कर दिया है। नहीं तो साला दो ही दिन में रो पड़े।"--महेन्द्र सिगरेट की अन्तिम कस लेकर बोला।

--"देखा श्रीमान जनम भर में पहली बार दस बजे क्या आये। बस चिल्लाना शुरू कर दिया है।"—कोने वाले सरदारजी भी बोल उठे।

—"कहता है मुल्क तरक्की नहीं कर रहा है। ऐसे आफीसरों के होते हुए क्या हो सकता है। ऐसे अफसर अगर दस-पाँच और हो जायँ तो सरकार ठप्प हो जाय।" —साहनी भी बोल उठा। सामने खुली फाइल को ठीक करते हुए महेन्द्र के पास आ गया। पुनः बोला--भय्या मुल्क तरक्की करे या न करे। ऐसे लोग जरूर तरक्की कर सकते हैं जो अफसरों की चम्चागिरी करते हैं। भटनागर को ले लो; बारह बजे तक कलम तक नहीं उठाई। अब श्रीमान की 'पे' के लिए चला गया। आयेगा आराम से दो ढाई तक। तीन बजे चाय पीने चला जायेगा। बस एक घण्टा फाइलों को लौटायेगा, फिर छुट्टी। रोज यह सबसे अच्छा काम करनेवाला कहलाता है। घर का काम जो करता है, वैसे भी; वैसा भी....".

—"तुम लोग अजीब बातें कर रहे हो, यह तो नौकरी का मूलमंत्र है। सबसे ज्यादे फायदे में वह रहता है जो अफसरों की जी-हजूरी करे।"—चपरासी रामअवतार भी बोल उठा।

—"रामअवतार तुम ठीक कहते हो। जब हम गुलाम थे तब तो हमारे लोग किया ही करते थे पर अब तो गुलाम नहीं। क्यों फिजूल में गुलामी करें।"--केशव रामअवतार की बात से और भी चिढ़ गया।

--"बाबूजी, आप माने या न माने, जी-हुजूरी अँगरेजों के जमाने से अब और भी ज्यादे बढ़ गई है।"--रामअवतार ने पुनः कहा।

--"हाँ भई रामअवतार, सुना है अँगरेजों के जमाने में काम की वकत थी। पर आज के जमाने में तो कामचोर, नाकाबिल वह आदमी है जो सबसे अच्छा काम करने वाला है।"--केशव ने सतृष्ण नेत्रों से रामअवतार को देखते हुए कहा।

--"भटनागर ही क्या। वर्मा को ले लो। एक बजे आयेगा आराम से। बस हो गया।"--अन्य लोग भी सेक्शन-आफीसर की आलोचना में भाग लेने लगे, मानो सेक्शन-आफीसर के व्यवहार से सभी तंग आये हुए हों। विरोध करना चाहते हों। पर कोई उपाय न सूझ केवल मौका मिलने पर इसी तरह बातें कर अपने क्रोध को शान्त करना चाहते हों। और कुछ लोग दूसरे कोने में बैठे-बैठे क्रिकेट-मैच की बात करने लग गये।

--"श्रीमान को झाड़ पड़ जाती तो अच्छा था।"

--"झाड़ तो रोज ही पड़ती है। काम करना आये तब तो झाड़ न पड़े।"

--"भई अगर हममें एका होता तो हमें तंग नहीं होना पड़ता।"

--"एका हो कैसे। भटनागर व वर्मा जैसे टट्टेचूम व चम्चेबाज हम में हैं।"

—"क्यों भई, क्या बातें हो रही हैं ? क्या आज साहब नहीं आये ?"--कहते हुए वर्मा ने कमरे में प्रवेश किया; मानों सेक्शन के लोगों की इस तरह बातें करने से उसने अनुमान लगाया हो आज एस० ओ० साहब नहीं आये हैं। इसी लिए ये उनके खिलाफ बातें कर रहे हो।

अवाक् से सभी वर्मा को देखते रह गये। कुछ इस तरह जैसे वे वर्मा के आने व उसके, सेक्शन में हो रही बातों के सुनने की कल्पना करते ही घबरा उठे हों। और उन्हें भय हो--कहीं यह सेक्शन-आफीसर से हमारी शिकायत न कर दे। सोच रहे हों शिकायत होने पर वह हमें और भी तंग करेगा। जो अपनी सीटों पर बैठे-बैठे बातें कर रहे थे, काम पर लग गये। जो खड़े-खड़े बातें कर रहे थे अपनी सीटों पर बैठ गये। किन्तु महेन्द्र व केशव पूर्ववत् ही रहे। केशव व्यंगपूर्ण स्वर में बोला--"कुछ नहीं आपकी तारीफ हो रही थी प्राइवेट सेक्रेटरी जो हुए आप।"

—"अच्छा।"--कहते-कहते वर्मा रुक गया। शंका-भरी आँखों से सबको देखते हुए हाजिरी-रजिस्टर ढूंढ़ने लगा। मानो वह समझ गया हो सेक्शन-आफीसर की अनुपस्थिति में कुछ भी कहना दो-चार बातें और सुनना होगा।....!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

सोमनाथ की भारत-यात्रा

श्री राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह

सोमनाथ को अपनी सभा में उपस्थित देखकर धर्मराज ने पूछा--"क्या बात है, सोमनाथ! आज बगैर बुलाये तुम्हें मैं सभा में उपस्थित पा रहा हूँ?"

सोमनाथ ने कहा--"महाराज! मुझसे अब और स्वर्ग में नहीं रहा जायेगा। मैं पुनः आर्यों की भूमि भारत-वर्ष को जाना चाहता हूँ--उस देश को जहाँ भगवान् राम ने धर्म का राज्य प्रसारित किया था, जहाँ भगवान् कृष्ण की बाँसुरी सुनकर मानव शरीरधारी गोपबालाओं की आत्माएँ उनकी ओर उसी प्रकार दौड़ पड़ी थीं जैसे लोहा चुम्बक की ओर दौड़ता है।"

ऐसा लगा मानों सोमनाथ स्वयं व्रजबाला हों। उनकी आँखें भर आईं। गला रुँध गया। गद्गद वाणी से वह गा उठे--

निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः,
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोदयाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुंडलाः।

सभा में सन्नाटा छा गया।

"मगर सोमनाथ!" निस्तब्धता भंग करते हुए धर्मराज ने कहा, "अभी तो तुम्हें शरीर त्यागे चार सौ वर्ष भी नहीं हुए हैं, तुम्हारे पुण्य शेष हैं; अपने पुण्य-बल पर तुम्हें यहाँ बहुत दिन रहकर स्वर्ग के सुख भोगने हैं। अभी पुनर्जन्म का प्रश्न कहाँ उठता है? उसके बाद ही तो तुम्हारे भारतवर्ष लौटने की प्रार्थना पर विचार किया जा सकता है--'प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।' अभी क्या जल्दी है, सोमनाथ!"

सोमनाथ चुप थे। धर्मराज ने तब चित्रगुप्त की ओर मुड़कर कहा--"चित्रगुप्त! सोमनाथ के पुण्यों की सूची तो सुनाओ!"

बूढ़े चित्रगुप्त ने आँखों पर ऐनक चढ़ायी और सामने रखी हुई बहियों में से एक बाहर निकालकर उसमें सोमनाथ के पुण्य और पापों का 'रेकार्ड' ढूंढ़ने लगे।

ढूंढ़ने में अधिक समय न लगा। दो-चार मिनटों में ही सूची सामने आ गयी। चित्रगुप्त ने पढ़ना शुरू किया--"यज्ञ, महावारुणी के समय वाराणसी में गंगा-स्नान, पाँच हजार ब्राह्मणों को अन्नदान, दो हजार संन्यासियों को भिक्षा, सौ गऊओं को दो सप्ताह तक भोजन, चारों धाम, हरिद्वार में गंगा-पूजन, चार सरोवरों और पच्चीस कुँओं का निर्माण, शत निर्धन ब्राह्मण-कन्याओं के विवाह में आर्थिक साहाय्य, चौरासी कोस ब्रज की प्रदक्षिणा, सहस्र कीर्तनों में सक्रिय भाग....."

"बस करो, चित्रगुप्त, बस करो! सूची बड़ी लम्बी है। अच्छा यह तो बताओ, सोमनाथ ने कितनी बार असत्य भाषण किये, कभी इसने कृतघ्नता दिखलायी या नहीं, परनिन्दा कितनी बार की, कभी विश्वासघात भी किया?"

चित्रगुप्त ने बही देखते हुए कहा--"नहीं, महाराज, कृतघ्नता, विश्वासघात, परनिन्दा, इसका कहीं उल्लेख नहीं है। हाँ, असत्य भाषण इन्होंने दो सौ इक्कीस बार जरूर किये थे।"

धर्मराज सोमनाथ की ओर देखते हुए बोले--"सोमनाथ! अभी सौ साल तुम्हें स्वर्गलोक में बिताने हैं। इसके बाद ही तुम मनुष्य-शरीर धारण कर सकोगे।"

सोमनाथ चुप थे। उन्हें स्वर्ग-लोक जैसे काटने लगा हो। उनकी आत्मा आर्यावर्त लौटने को छटपटा रही थी। कई सौ वर्ष पुण्य भोग कर अब वह पुनः कर्म में लगना चाहती थी। काशी और वृन्दावन, यमुना और गंगा, मानों उन्हें आह्वान कर रहे हों। हृदय में एक बेचैनी थी, एक पिपासा थी जिसे शान्त करने को वे देवलोक तक का त्याग करने को तैयार हो गये थे।

धर्मराज ने देखा--उनके भीतर एक तूफान-सा मचा हुआ है। कहा--"अच्छा सोमनाथ! तुम एक बार सूक्ष्म शरीर से भारतवर्ष की सैर तो कर आओ। फिर उसके बाद मैं तुम्हारी प्रार्थना पर विचार करूँगा। हमारे दूतों में विरूपाक्ष एक ऐसा दूत है जो बहुधा भूलोक --खासकर भारतवर्ष--को जाता रहा है। उसे वहाँ के गाँव-गाँव तक की खबर है। वह तुम्हारा 'गाइड'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मार्गदर्शक) होगा और एक-दो रोज में तुम्हें सारा देश घुमा लायेगा। विरूपाक्ष !"

विरूपाक्ष ने हाथ जोड़कर कहा--"आज्ञा, महाराज !"

धर्मराज--"देखो, सोमनाथ को कल तुम भारतवर्ष की सैर करा लाओ। नये-पुराने सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों को दिखाना और उनके सम्बन्ध में सारी बातें बताते जाना जिससे उसे वहाँकी पूरी जानकारी हो जाय।"

विरूपाक्ष--"आज्ञा, शिरोधार्य है, महाराज। मैं कल सुबह ही इसे लेकर प्रस्थान कर जाऊँगा।"

इतने में कई नये असामी आ गये और धर्मराज उनके लेखा-जोखा में लग गये।

सोमनाथ की बाँछें खिल गयीं। विरूपाक्ष के समीप पहुँचकर बोले--"भाई विरूपाक्ष ! कल प्रातःकाल सोमरस पीकर ही हम भारत-दर्शन पर चल पड़ेंगे।"

"एवमस्तु"--विरूपाक्ष ने कहा और सभा से बिदा ली। सोमनाथ भी अपनी कुटी की ओर चले गये।

(२)

सबेरा हुआ। ज्योति से भरा हुआ देवलोक और भी ज्योतिर्मय हो उठा। यत्र-तत्र विद्युत-सा प्रकाश कौंध-कौंधकर इस बात का परिचय देने लगा कि देवगण इतस्ततः आ-जा रहे हैं। देवताओं के इस लोक में रोग, शोक, सन्ताप कहाँ ! आलस कहाँ ! जड़ता कहाँ ! विषण्णता कहाँ ! जिधर देखिए, आनन्द, उमंग, उछाह ! ज्योतिपुंज ! सौ सूर्यों से भी अधिक प्रकाश !

सोमनाथ एक टीले पर बैठे हुए वेद मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। सोमरस का घड़ा सामने था तथा भारत-भ्रमण की अभिलाषा रह-रहकर हृदय को आलोड़ित कर रही थी। नेत्र विरूपाक्ष का पथ जोह रहे थे। एक नई चेतना, एक नयी उमंग, सोमनाथ को ऐसा लग रहा था मानों उन्हें एक नया जीवन मिलने जा रहा हो।

सहसा विरूपाक्ष ने आकर उनकी ध्यान-निद्रा भंग की। धर्मराज के सौंपे हुए कार्य-भार से नत विरूपाक्ष ने कहा--"सोमनाथ ! चलो, अब हम अपनी यात्रा पर निकल चलें।"

सोमनाथ सोमरस का प्याला आगे करते हुए बोले--"भाई विरूपाक्ष ! पहले इसे अपने होंठों से लगा तो लो।"

विरूपाक्ष ने 'सोमरसंहि अमृतं' कहते हुए उसे होठों से लगाया और प्याली खाली कर दी। फिर दोनों यात्रा पर चल पड़े।

भुवर्लोक पार कर जब वे भू-लोक के समीप पहुँच रहे थे, उन्होंने देखा कि एक नक्षत्र पागल की भाँति चक्कर काट रहा है। विस्फारित नेत्रों से उसे देखते हुए सोमनाथ ने पूछा--"विरूपाक्ष ! इस नक्षत्र को क्या हो गया है कि यह इस तरह पृथ्वी की चारों ओर दौड़ लगा रहा है--बेतहाशा दौड़ा जा रहा है, मानो विकृत मस्तिष्क का कोई मानव हो !"

विरूपाक्ष--"नक्षत्र नहीं, सोमनाथ, यह एक पार्थिव यन्त्र है, मानव-निर्मित, जिसे वह उपग्रह के नाम से पुकार रहा है, जो रूस नामक देश से उड़कर अन्तरिक्ष में घूम रहा है। जब इसकी शक्ति क्षीण होगी तो यह पुनः नीचे पृथ्वी पर जा गिरेगा ! असुरों की तरह आज मानव का मंसूबा भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। वह विविध लोकों का स्वामी बनना चाहता है, पर वह यह नहीं समझता कि उसकी यह सीमाहीन महत्त्वाकांक्षा ही एक दिन उसके विनाश का कारण बनेगी। विधि के इस विधान को वह अपना वैज्ञानिक साफल्य समझ रहा है !"

विरूपाक्ष की बातें समाप्त न हो पायी थीं कि उपर्युक्त उपग्रह उनके समीप आ पहुँचा। यही नहीं, सोमनाथ के शरीर से टकराते-टकराते बचा। सोमनाथ भाग खड़े हुए। विरूपाक्ष अपनी हँसी न रोक सका--जोरों से हँस पड़ा।

भूलोक आ गया। विरूपाक्ष ने पूछा--"सोमनाथ ! कहाँ उतरोगे सर्वप्रथम ?"

सोमनाथ--"ब्रज में, विरूपाक्ष भाई, ब्रज में, जहाँ का एक-एक रजकण भगवद्-स्मरण से भरा हुआ है।"

विरूपाक्ष ब्रज की ओर मुड़ा, साथ-साथ सोमनाथ। पल में वे नीचे, धरती पर आ खड़े हुए।

न पूछिए, सोमनाथ की उस समय की दशा। नेत्रों से जल गिर रहा था उनके और वे भूमितल पर साष्टांग पड़े हुए गद्गद कण्ठ से कह रहे थे--

आसामहो चरण-रेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा लगता था मानों उन्होंने अपना मानसिक सन्तुलन खो दिया हो! रह-रहकर वह रजकण अपने मस्तिष्क पर लगाते तथा नेत्रवारि से शुष्क धरती को सिक्त करते जा रहे थे।

"यही वह देश है, बन्धु, यही, जो मुझे अपनी ओर खींच रहा है! 'स्वर्गादपि गरीयसी'--स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है यह भूमि!"

विरूपाक्ष मौन था।

जमीन से ऊपर उठकर सोमनाथ ने देखा--मथुरा नगरी के एक हिस्से में जन-समूह एकत्रित है। उसके बीचोंबीच सुन्दरियों का एक छोटा-सा झुण्ड है जिसकी सजावट स्वर्ग की अप्सराओं से मुकाबला कर रही है। उसे देखते ही उन्हें ब्रजबालाओं का स्मरण हो आया और वे उनकी चरण-धूल लेने को उनकी ओर दौड़ पड़े। विरूपाक्ष से अब और चुप न रहा गया। उन्हें पकड़कर बोला--"सोमनाथ! होश सँभालो! ये ब्रजवनिता नहीं, बम्बई से आयी हुई फिल्म-स्टार (चलचित्र-तारिकाएँ) हैं, जो यहाँ एक समारोह में भाग लेने आयी हैं और उन्हें देखने के लिए ही यह भीड़ एकत्रित है। सोमनाथ! किस स्वप्न में पड़े हो तुम! आज ब्रजवनिताओं की नहीं, इन्हीं तारिकाओं की पूछ है जिनके पीछे लाखों की भीड़ चला करती है।"

सोमनाथ ने तब समझा कि वे कितनी भारी भूल करने जा रहे थे।

विरूपाक्ष ने कथन जारी रखा--"और देखो, वहाँ वृन्दावन में, वे जो सुन्दरियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे भी वे गोपियाँ नहीं जिनके उद्धव चरण छूने गये थे। वे शरणार्थियों की स्त्रियाँ हैं जिन्होंने नये तरीकों से अपना शृंगार कर रखा है--रूज, लिपस्टिक, आदि से। और वह संगीत जो तुम सुन रहे हो, वे भजन नहीं, सिनेमा के गीत हैं। 'लाउड स्पीकर' से बजाये जा रहे हैं। सामने पश्चिम-कोने पर वह सिनेमा-हॉल बना हुआ है, जहाँ शाम और रात में चल-चित्र दिखाये जायेंगे। रासों की ब्रज से अब समाप्ति ही समझो। उनका स्थान सिनेमा ने ले लिया है; रास के भक्तिभाव से पूर्ण गीतों का, मोहब्बत--पार्थिव प्रेम--के गानों ने।"

रूज, लिपस्टिक, सिनेमा, तारिका, लाउड-स्पीकर आदि क्या चीजें हैं, इन्हें विरूपाक्ष ने उन्हें तब विस्तार से समझाया।

सोमनाथ अवाक् थे। ऐसा लगता था मानो वे आसमान से नीचे गिर पड़े हों।

निस्तब्धता भंग करते हुए विरूपाक्ष ने तब कहा--"सोमनाथ! चलो, अब हम आगे बढ़ें। भारतवर्ष की वर्तमान राजधानी दिल्ली करीब है। उसे तुम्हें दिखायें।"

दिल्ली पहुँचने में उन्हें देर न लगी। वहाँ पहुँचकर विरूपाक्ष सोमनाथ को सर्वप्रथम वहाँ के एक प्रसिद्ध भोजन-गृह (रेस्टरां) में ले गया। लोगों के इकट्ठा होने का अभी वक्त न हुआ था, फिर भी कुछ लोग--स्त्री-पुरुष--आ चुके थे। दोतल्ले के एक कोने में एक पुरुष एक नारी का रह-रहकर आलिंगन कर रहा था। सामने काफी के प्याले पड़े हुए थे।

"ये कौन हैं, विरूपाक्ष?"--सोमनाथ ने पूछा।

विरूपाक्ष--"पुरुष एक राजकीय उच्च पदाधिकारी है, नारी उसके एक मित्र की भार्या। उसका पति कलकत्ता गया हुआ है, अतएव वह स्वच्छन्दतापूर्वक इसके संग यहाँ 'काफी' (एक प्रकार का पेय) पीने आयी हुई है तथा स्वेच्छा से उसकी कामचेष्टा का कारण हो रही है।"

"हरे, हरे!"--सोमनाथ ने कहा, "इस देश की अब यह अवस्था है, प्रभो! अच्छा, विरूपाक्ष, नीचे के उस कोने में कई पुरुषों से घिरी हुई वह कौन नारी है?"

विरूपाक्ष--"राज्य के एक 'सीनियर' (बड़े) सचिव की वह भार्या है।"

सोमनाथ--"और वे पुरुष उसके परिवार के लोग हैं?"

विरूपाक्ष--"जी नहीं, सोमनाथ! वे यहाँ के कुछ बड़े व्यापारी हैं। दिखावे के लिए तो वह उनके द्वारा 'काफी' के लिए आमन्त्रित हैं पर वास्तव में वह अपने पति की ओर से उनसे पच्चीस हजार रुपये की रकम लेने आई है जो बैंक ड्राफ्ट के रूप में उनमें से एक की जेब में पड़ी हुई है। इसे ही, सोमनाथ, इस देश में आज दिन 'रिश्वत' के नाम से पुकारते हैं। इसके बल पर ही आज इस देश के बड़े-बड़े व्यापारियों की चारों अँगुलियाँ घी में हैं।"

बैरा तश्तरियों में खाने का सामान लेकर उपस्थित हुआ। फिर 'कोना-काफी' के प्याले भर गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर सोमनाथ का सिगरेट के धुँएँ से भरे हुए बन्द कमरे में दम घुट रहा था। वे और वहाँ न ठहर सके। विरूपाक्ष से उन्होंने बाहर चलने का अनुरोध किया और वे दोनों बाहर निकल आये। इधर सुन्दरियों का एक दल भीतर घुसा जिनके कटे हुए बाल कन्धों पर लटक रहे थे, होंठ रंगे हुए थे तथा गालों पर गुलाबी रंग की कई परतें पड़ी हुई थीं। शरीर का अधिक हिस्सा खुला हुआ, वस्त्र-रहित था।

सोमनाथ आँखें फाड़-फाड़कर उन्हें देखने लगे--उन्हें ऐसा लगा मानों वे किसी ऐसी दुनिया में आ पड़े हैं जो उनकी कल्पना के परे है। 'क्या यही वह भारतवर्ष है जिसे छोड़ते समय मैं रो पड़ा था तथा जहाँ लौटने को मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं!'--सोमनाथ ने सोचा।

फिर वे एक ऐसे स्थान पर आकर रुके, जहाँ साधुओं का एक मजमा लगा हुआ था। जटा-जूट और अपनी लम्बी दाढ़ियों से वे प्राचीन मुनि-मनीषियों का स्मरण करा रहे थे। उनके भाव से यह साफ परिलक्षित था कि वे किसी महापुरुष के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुख्य-मुख्य साधुओं के हाथ में फूलों के हार थे।

सोमनाथ ने रुककर उन्हें नमस्कार किया जिसे स्थूल-दृष्टि होने के कारण वे देख न पाये।

विरूपाक्ष ने मुस्कराते हुए पूछा--"सोमनाथ! जानते हो ये किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं?"

सोमनाथ--"गुरुदेव की, किसी बड़े महात्मा, महर्षि की।'

विरूपाक्ष--"नहीं, सोमनाथ! केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल के एक सदस्य की। लो, देखो, वे आ ही गये।"

सोमनाथ ने देखा--एक बड़े-से यान (जिसका नाम विरूपाक्ष ने मोटर-कार बताया) से जिस पर तीन रंगों का एक केतु फहरा रहा था, एक पुरुष उतरा जिसे देखते ही साधु-समाज में खलबली मच गयी तथा जिसके गले में पुष्प-हार पहनाने को उनके बीच होड़-सी लग गयी। वह मंच पर जा बैठा और साधुओं की अभ्यर्थनाएँ स्वीकार करने लगा।

उधर सोमनाथ ने विरूपाक्ष से कहा--"बन्धु! अब यहाँ से आगे बढ़ो।" शहर से दूर बुद्ध-पार्क में जाकर उन्होंने शरण ली। नगर के धूल-धूम्र-भरे वातावरण में उन्हें साँस लेना अत्यन्त कठिन हो रहा था।

चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ देखकर सोमनाथ को हिमालय की याद आयी। बोले, "मित्र! छोड़ो इन नगरों को। यहाँके दूषित वायु में मुझे साँस लेने में कठिनाई होती है। चलो, अब हम देवाधिदेव महादेव के लीला-क्षेत्र, हिमालय को चलें--

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।

वहीं--उस पर्वत पर।

सोमनाथ पुनः भाव-विभोर हो उठे। उनके नेत्रों से भक्ति-सूचक वारि-बिन्दु निकल पड़े और वह बार-म्बार 'कुमारसम्भव' के इस श्लोक का पाठ करने लगे--

'न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र
भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणा-
मनंगलेखक्रिययोपभोगम्।'

शाम हो रही थी, जब स्वर्ग-लोक के ये टूरिस्ट (यात्री) मसूरी की माल-रोड पर उतरे। बिजली की रोशनियाँ जल चुकी थीं पर माल-रोड अब भी नर-नारियों से खचाखच भरी हुई थी।

सोमनाथ बीच सड़क पर खड़े होकर कैलासेश्वर महादेव का ध्यान करने लगे, तब तक एक रिक्शा आकर उनसे टकराया। रिक्शावाले को इसका कुछ अनुभव तो न हुआ, पर सोमनाथ के शरीर में एक हल्की-सी चोट लगी। वे उछलकर दूर जा खड़े हुए।

विरूपाक्ष ने कहा--"सोमनाथ! यह स्वर्ग नहीं, भूलोक है। यहाँ तरह-तरह के यान पथों पर चलते रहते हैं। चलने-फिरने और खड़े होने में जरा सावधानी बरता करो।"

पर सोमनाथ वहाँ कहाँ, वे ध्यानस्थ यक्षों की नगरी अलका में विचर रहे थे। बार-बार उन्हें मेघदूत का ध्यान आ रहा था और वे अपने को अलकापुरी में पा रहे थे।

विरूपाक्ष ने उनके बदन पर हाथ रखकर उनका ध्यान तोड़ना चाहा। कहा--"सोमनाथ! कहाँ हो तुम?"

सोमनाथ--"महाकवि ने ठीक ही लिखा था, विरू-पाक्ष भाई--

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुबिद्धं,
नीतालोध्रप्रसवरजसा पांडुतमाननश्रीः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी सुन्दर है यह अलकापुरी ! यक्ष और यक्ष-पत्नियों से निर्वासित, क्रीड़ित, ज्वाजल्यमान दीपों से आलोकित अलकापुरी ! धन्य हो भैया, जो आज मुझे तुम यहाँ ले आये। देखो, यक्ष-पत्नियों का वह समूह, कितने आनन्द से आगे बढ़ता आ रहा है, बालों में उनके कुरबक के वे फूल कितने सुन्दर लग रहे हैं। अहा ! तभी तो देश-निष्कासित यक्ष अपनी प्रियतमा से, विलग होकर 'आषाढ़स्य प्रथम-दिवसे' क्रीड़ा करते हुए मेघों को देखकर धैर्य खो बैठा था। कान्ता के विरह से व्याकुल वह यक्ष जो 'रामगीर्जाश्रमेषु' वियोग के दिन बिता रहा था—

कश्चित्कान्ताविरह गुरुणा
स्वाधिकारः प्रमत्तः
शापेनास्तं गमितमहिमा,
वर्ष भोग्येन भर्तुः
यक्षश्चक्रे जनकतनया
स्नान पुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छाया तरुषुवसतीम्
रामगीर्जाश्रमेषु .....'

घर की याद आते ही वह यक्ष तड़प उठा था।

विरूपाक्ष ने देखा—सोमनाथ एक के बाद दूसरे, तीसरे, चौथे, मेघदूत के श्लोकों का पाठ करते जा रहे हैं तथा मसूरी को अलकापुरी समझकर कल्पना के लोक में जा पहुँचे हैं। सैर-सपाटे के लिए आये हुए स्त्री-पुरुषों में उन्हें यक्ष और यक्ष-पत्नियों का भान हो रहा है। काफी देर तक वह सोमनाथ की इस भावुक अवस्था का मजा लेता रहा, फिर हँसकर बोला—"सोमनाथ ! अलकापुरी में ही रहोगे या आगे भी बढ़ोगे ? चलो, यक्ष और उनकी पत्नियाँ किस प्रकार नृत्य करती हैं, यह तुम्हें दिखायें।"

सोमनाथ का ध्यान भंग हुआ। बोले—"क्षमा करना विरूपाक्ष भाई, मैं कालिदास की दुनिया में जा पहुँचा था। ऐसी ही महिमा है इस स्थान की। हाँ, तो चलो, उर्वशी, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि देव-नर्तकियों से मुकाबला करनेवाली इन यक्ष-पत्नियों का हम नृत्य चलकर देखें।"

विरूपाक्ष तब उन्हें 'हैकमन' नामक नृत्य-गृह में ले गया, जहाँ 'बालडांस' चल रहा था। अँगरेजी बाजे के सुर पर लोग नृत्य कर रहे थे। दोनों एक कोने में खड़े होकर इसे देखने लगे।

देव-नर्तकियों के नृत्य से यह 'डांस' बिलकुल ही भिन्न था। स्त्री-पुरुष एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रख कर नाचें, यह सोमनाथ के लिए कड़ुआ घूँट साबित हुआ। इसे वे गले के नीचे न उतार पाये। बोले—"मित्र ! मुझे तो यह नृत्य पसन्द न आया। हमारे स्वर्ग की अप्सराएँ तो कभी इस प्रकार, इस भद्दे तरीके से नृत्य नहीं करतीं। और न भारतवर्ष की आर्य-ललनाएँ इस तरह, सरे आम, पुरुषों से अपना शरीर स्पर्श कराती हैं। यक्ष-पत्नियों का यह तरीका तो बड़ा ही दूषित, घृणित और शालीनता से रहित प्रतीत होता है मुझे।"

विरूपाक्ष ने देखा—सोमनाथ के सारे उत्साह पर मानों किसीने पानी डाल दिया हो। अलकापुरी, यक्ष और उनका नारी-समाज, सभी उनकी दृष्टि में हीन प्रतीत होने लगे हैं। फिर देखा—सोमनाथ की मोह-निद्रा भंग होती जा रही है और उनके हृदय में यक्ष-पुरी के लिए जो प्रशंसा के भाव जाग उठे थे वे धीरे-धीरे अन्तर्हित होते जा रहे हैं। तभी उसने सोमनाथ को वास्तविकता का परिचय दिया। ऐसा लगा मानों सोमनाथ फिर एक बार आसमान से नीचे गिर पड़े हों।

"शिव ! शिव !", सोमनाथ बोले, "क्या हमारी आर्य-सभ्यता अब इस अधोगति पर आ पहुँची है ? आर्य-ललना पर-पुरुष का स्पर्श ! अंग से अंग लगाकर नृत्य ! विरूपाक्ष ! अब यह देश मेरे योग्य न रहा। आर्यों का नहीं, यह देश अब असुरों का है। यह सभी देवभाषा के त्यागने का फल है, भैया। हमारे पूर्वजों ने ठीक ही कहा था—'न पठेत् यामिनीभाषाम् !' यदि इस देश के लोगों ने उस राय को माना होता तो आज आर्य-संस्कृति, आर्य-सभ्यता इस अधोगति को नहीं प्राप्त हुई होती, विरूपाक्ष !"

सोमनाथ को अब एक क्षण भी वहाँ ठहरना स्वीकार नहीं था। वह ऊपर उड़ चले और एक शैल-शिखर पर जाकर ही रुके। विरूपाक्ष उनके पीछे था—मुस्कराहट उसके गालों पर छायी हुई थी।

सोमनाथ ने कहा—"बन्धु ! अब मेरी एक ही लालसा शेष रह गयी है—कैलास-दर्शन की। सो चलो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल सुबह तिमिर-पट के हटते ही हम वहाँ जा पहुँचें। रास्ते में मानसरोवर के जल में नहा भी लेंगे।"

क्षितिज पर उषा के पाँव अभी पूरी तरह जम भी न पाये थे कि सोमनाथ और विरूपाक्ष कैलास की ओर उड़े। रास्ते में हजारों की संख्या में जन-समूह इधर-उधर जाता हुआ नजर आया।

सोमनाथ ने कहा—"धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्", ठीक ही कहा है, धर्म अब इन्हीं जगहों में रह गया है, विरूपाक्ष! देखते हो, मानसरोवर के आस-पास यात्रियों की वह भीड़। कितना कष्ट भोग कर वे भारतवर्ष से कैलास-दर्शन को जा रहे हैं। सनातन धर्म इन्हींमें जीवित है, विरूपाक्ष, दिल्ली आदि नगरनिवासियों में नहीं। धन्य हैं ये धर्मप्राण हिन्दू.....!"

विरूपाक्ष ने बीच में ही बात काटकर कहा—"अरे, किस भ्रम में पड़े हुए हो, सोमनाथ। ये तीर्थ-यात्रियों के दल नहीं हैं! ये चीनी सिपाहियों के काफिले हैं जो तिब्बत की सरहदों की ओर जा रहे हैं। तुम्हें मालूम नहीं, गत कई बरसों से कम्युनिस्ट चीन ने तिब्बत पर अपना फौलादी पंजा फैला रखा है, उसके शासक दलाई लामा ने भारत में शरण ली है और लामाओं के इस देश से धीरे-धीरे बौद्ध-धर्म की ज्योति मिटाने की चीन भरपूर चेष्टा कर रहा है। उसीकी सेना है यह, जो तिब्बत के कि न-से-कठिन स्थान तक में फैलती जा रही है। भारत की सीमा तक यह पहुँच चुकी है और अब भारतीयों के लिए कैलास और मानसरोवर की तीर्थ-यात्रा असम्भव हो गयी है, सोमनाथ।"

सोमनाथ के पाँव तले से अब पूरी मिट्टी खिसक चुकी थी। मायाजाल से पूर्णतः मुक्त होकर वह बोले—"भाई विरूपाक्ष! अब आगे नहीं, लौट चलो स्वर्ग-लोक को। यहाँ एक क्षण भी रहना मेरे लिए कठिन हो रहा है।"

(३)

धर्मराज का दरबार समाप्तप्राय था। केवल दस नवागतों का लेखा-जोखा शेष था। वे सामने खड़े थे, उनके हाथों में उनके परिचय का वह कागज, जिसे चित्रगुप्त ने उन्हें दे रखा था, था। चित्रगुप्त रह-रहकर जँभाई ले रहे थे जो उनकी थकावट का परिचायक थी।

धर्मराज ने पुकारा—"कुवलयाक्ष!"

कुवलयाक्ष नामक दूत ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज!"

"जो लोग बाकी रह गये हैं, उनके नाम और कर्म की संक्षिप्त सूची पढ़ो।"

कुवलयाक्ष ने पढ़ना शुरू किया। धर्मराज का आदेश साथ-साथ प्राप्त होता गया।

"कर्मचन्द। गृह—अमृतसर। व्यापारी। ४२०

के नाम से विख्यात। युद्ध के समय अनुचित ढंग पर अपार अर्थोपार्जन। सत्कर्म, शून्य।"

"दो सौ साल नर्क में। तदुपरान्त पुनः पेशी।"

"डाक्टर कैलाशनाथ। दिल्ली। रोगियों के प्रति कठोर व्यवहार। पुत्र-वधू से यौन-सम्बन्ध। दातव्य औषधालयों को फुटकल चन्दा, दो वैशाखी स्नान, हरिद्वार में।"

"कुम्भीपाक नर्क। निवास डेढ़ सौ साल।"

"यमुना देवी। जगन्नाथपुरी। बाल-विधवा। आजन्म भगवद्भक्ति। भजन-कीर्तन।"

"स्वर्ग में दो सौ वर्ष।"

"लियाकत हुसैन। लाहौर। धर्म, इस्लाम। पेशा, हकीमी। गरीबों का मुफ्त इलाज। दिन में आठ बार नमाज। सूद लेने से इन्कार।"

"जन्नत, सौ साल।"

'फ्रेडरिक लॉयल। डोभर। पादड़ी। आजन्म धर्म-प्रचार तथा सेवा-कार्य। अर्थ-लोभ से रहित।"

"हेमन। सवा सौ साल। पुनः पेशी।"

"कार्निकौफ। मास्को। नास्तिक। क्रान्ति के समय अनेक व्यक्तियों का खून।"

"नर्क कुम्भीपाक। दो सौ वर्ष, तत्पश्चात् पशु-योनि।"

"वेंकटाचार्य। मदुराई। शिक्षक। धर्मप्राण। असत्य-भाषण से घोर घृणा। निःशुल्क शिक्षा-प्रदान।"

"स्वर्ग में सौ वर्ष।"

"सेठ दुनीचन्द सरोरिया। जयपुर। काला बाजारी। अपार धन-लाभ। विश्वासघात, असत्य भाषण और कृतघ्नता, बार-बार। हरिद्वार तथा काशी में धर्मशालाएँ। चारों धाम की यात्रा।"

"नर्क। सौ साल। पुनः पेशी।"

"चन्दाबाई, काशी। गणिका। नियमित पूजा-पाठ, भजन, कीर्तन। प्रवीण गायिका। एक धनाढ्य की रखैल, आजन्म।"

"स्वर्ग सौ वर्ष। पुनः पेशी।"

फैसले देकर धर्मराज उठने ही वाले थे, जब सामने विरूपाक्ष और उसके पीछे सोमनाथ दृष्टिगोचर हुए। धर्मराज रुक गये, बोले—"सोमनाथ! देख आये तुम भारतवर्ष, राम और कृष्ण की भूमि, आर्यावर्त?"

"हाँ, महाराज!" सोमनाथ ने कहा।

"तो फिर क्या निश्चय किया तुमने? पुनर्जन्म लेकर वहाँ लौटना चाहोगे?"

सोमनाथ चुप! समझ न पाये कि क्या कहें।

विरूपाक्ष ने तब आगे बढ़कर उनकी ओर से कहा—"महाराज! सोमनाथ की इच्छा अब भारत लौटने की नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुधवर मि० एफ़्० एस० ग्राउस, सी० आई० ई०

श्री काशीप्रसाद जायसवाल

"अँगरेजी अरु फरासीस भाषा कौ पण्डित।
संस्कृत-हिन्दी-रसिक विबिध-विद्यागुन-मण्डित॥
गुनियन कौ सर्वस्व, दीप निज सेत दीप कौ।
परम भक्त सेवक सुजान अपने सहीप कौ॥
निज बानी में कीन्हीं तुलसीकृत रामायन।
जासु अमी-रस पियत आज अँगरेजी बुधगन।"

पं० श्रीधर पाठक।

विद्वत्वंच नृपत्वंच नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

आज हम एक ऐसे कीर्तिधाम विद्वान् का संक्षिप्त चरित आपको भेंट करते हैं, जो मानस-रामायण का अपनी भाषा में गानकर निज नाम को अमर कर गये हैं। जिले के एक साधारण हाकिम होकर वे अपने विद्याबल और गुणग्राहकत्व के द्वारा, इस देश में, लाट साहबों से भी अपने को अधिक स्मरणीय कर गये हैं।

विल्डेस्टन (इपस्विच) के रहनेवाले, एवर्ट ग्राउस साहब के ये सबसे छोटे बेटे थे। सन् १८३६ में ये पैदा हुए, और आक्सफोर्ड के ओरियल और क्वीन्स कालेजों में शिक्षित हुए। ये अपने कालेज के नामी छात्र थे। आक्सफोर्ड ही में इन्होंने एम० ए० पास किया। १८६० ई० में बंगाल की सिविल सर्विस में ये दाखिल हुए और १८६१ में एशियाटिक सोसाइटी के सभ्य चुने गये।

ग्राउस साहब की राजसेवा का अधिकांश आगरा प्रान्त—मथुरा, मैनपुरी और फतहगढ़—में बीता। कुछ वर्षों तक ये बुलन्दशहर और थोड़े समय के लिए फतहपुर में भी रहे।

जिस-जिस जगह के ये कलेक्टर रहे उस जगह को इन्होंने अलंकृत कर सुन्दरतर किया। हिन्दुओं की पुरानी इमारतों के आप बड़े प्रेमी थे। इनके शासित प्रत्येक स्थान में आप को "गुरूस" साहब के कीर्तिस्तम्भ, मरम्मत कराये हुए देवालय, नवनिर्मित बाजार, पुल, घाट या विद्यालय आदि के रूप में मिलेंगे। वृन्दावन के प्रसिद्ध गोविन्द देव के मन्दिर और मथुरा जिले की और कई एक प्राचीन इमारतों, का जीर्णोद्धार सिर्फ इन्हीं की बदौलत हुआ। बुलन्दशहर को तो इन्होंने चार ही वर्ष में, स्थानीय रईसों की सहायता से, कसबे से एक खासा शहर कर डाला। लकड़ी और पत्थर का काम करने वाले कारीगरों के आप बड़े ही कदरदाँ थे। बारिकमास्तरी के अफसर, रुड़की में सीखे हुए कारीगरों के सामने बुलन्दशहर के कारीगरों को पसन्द नहीं करते थे। इस पर उन कारीगरों की हिमायत में ग्राउस साहब खूब लड़े। "पायोनियर" पत्र में आपने बड़े जोर शोर के साथ विवादात्मक लेख लिखे। पर खेद है कि उनका प्रयत्न निष्फल गया। यहाँ तक निष्फल गया कि आप बुलन्दशहर में मकान वगैरह बनाने की विद्या सिखलाने की एक पाठशाला स्थापित किया चाहते थे, सो भी न कर सके।

इस तरह कारीगरी की तरफ प्रवृत्ति के साथ ही साथ, इनमें साहित्य और भाषा-शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन की अभिरुचि भी थी। यह इनमें दो भिन्न गुणों का दुर्लभ और विलक्षण एकत्र समावेश था। पहले कहा जा चुका है कि सन् १८६१ में ये एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल) में सम्मिलित हुए। ३० वर्ष तक परमोत्साह के साथ, इस सभा में, उन्होंने काम किया। "पायोनियर" लिखता है कि शुरू ही शुरू में इन्होंने अपने को अध्ययन के उस विषय में, अर्थात् ऊपरी भारत की देश भाषाओं के अध्ययन में, लगाया कि जिसके साथ उनके नाम का संसर्ग हमेशा बना रहेगा। उनका पहला लेख १८६६ में एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में छपा। बीम्स साहब ने आज कल की अदालती हिन्दुस्तानी (उर्दू) भाषा का पक्ष लिया था। बीम्स साहब के मत का, ग्राउस साहब ने, अपने इस लेख द्वारा, खण्डन किया। उन्होंने फारसी-मिश्रित भाषा का घोर विरोध किया और सर्वसुगम भाषा के बर्तने पर जोर दिया। लेकिन औरों के समान इनको भी, मुहर्रिरों के कुसंस्कार और दुराग्रह के कारण, निराश होकर यह विवाद छोड़ना पड़ा।

सन् १८६७ में, 'रोमन लिपि में भारतीय लिपियों के अक्षरान्तर' पर (On the Transliteration of Indian Alphabets in the Roman Character) इन्होंने, एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में लिखा। डा० ग्रियर्सन साहब इसीको इनका पहला लेख कहते हैं, पर "पायोनियर" ऊपरवाले लेख को। खैर, इसके बाद ग्राउस साहब चन्द के रायसो के प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में योग देने लगे। उस समय रायसो एशियाटिक सोसाइटी की ओर से छप रहा था। उसके पाठों की शुद्धता और अशुद्धता पर विवाद छिड़ गया। बीम्स और ग्राउस ने उस पर पहले अलग-अलग आक्रमण किया। पर आगे चलकर दोनों विद्वान्, आपस ही में, एक दूसरे की युक्ति का घनघोर खण्डन करने लगे। इस विषय में सोसाइटी के जरनल और इंडियन ऐंटिक्वरी में दोनों महाशयों के अनेक लेख निकले। एक अपने पाठ को ठीक ठहराता और अनुवाद को सही साबित करता और दूसरा उसे बड़ी ही बेरहमी से काट कर छिन्न-भिन्न कर डालता। ये दोनों महाशय इसी तरह बंगाल में उलझ रहे थे कि डाक्टर हार्नली ने रायसो के एक भाग का निजकृत बहुत ही उत्तम अनुवाद, सोसाइटी की ग्रन्थमाला (Bibliothica Indica) में चुपके से छपवा दिया। इसकी भी आलोचना ग्राउस साहब ने १८७४ में, इण्डियन ऐंटिक्वरी में कर डाली। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि १८७८ में ग्राउस साहब का आखिरी प्रबन्ध, इसी विषय पर, प्रकाशित हुआ।

इसी दरमियान में मथुरा और अन्तर्वेद के पुरातत्व, रीतिनीति और कारीगरी की तरफ इनका ध्यान गया। १८७३ से १८७९ के बीच के एशियाटिक सोसाइटी के जरनल और इंडियन ऐंटिक्वरी में मथुरा पर इनके लिखे हुए बहुत से उत्तमोत्तम प्रबन्ध मुद्रित हुए। इन सब फुटकर लेखों को इक्टठा करके "मथुरा" (Mathura: A District Memoir) नामक ग्रन्थ इन्होंने सम्पादित किया। इसकी पहली आवृत्ति की एक पुस्तक हमारे सामने है। उसमें चित्र नहीं है। पर हमने चौथी आवृत्ति की पुस्तक बहुत परिवर्द्धित और मनोरम चित्रों से भूषित देखी है। पहली आवृत्ति सन् १८७४ में, इलाहाबाद के गवर्नमेंट प्रेस से, दो भागों में निकली थी। इसकी भूमिका २२ नवम्बर, १८७३ की लिखी हुई है। इस ग्रन्थ के पहले भाग में जिले का, उसके निवासियों के चाल-व्यवहार और भाषा का; खास-खास रईसों का, व्रजमण्डल, व्रजयात्रा, कृष्णोपासना और वैष्णव सम्प्रदायों का, गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दगाँव आदि स्थानों का, मथुरा के इतिहास और पुरावृत का; और मथुरा-वृन्दावन की श्रेष्ठ इमारतों का वर्णन है। दूसरे भाग में केवल जिले भर के परगनों का, सरकारी अफसरों के काम के लायक बयान है। इस ग्रन्थ के मुखपत्र में एक विशेषता है। उसके ऊपर सप्तपुरीवाला यह श्लोक दिया हुआ है।

काशी कान्ती च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि।
मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः॥

कहने की जरूरत नहीं 'काञ्ची' की जगह 'कान्ती' शब्द भूल है। शेष तीनों तरफ अनुष्टुप छन्द के एक-एक अर्द्धक छपे हुए हैं, जिनमें "मथुरायां कृतं पापं, तत्रैव च विनश्यति" भी है।

सन् १८७८ में ये बुलन्दशहर को बदल आये, जहाँ ये ६ वर्ष तक रहे। इसके बाद ये फतहपुर आये और १८९१ तक वहाँ रहे। इन दोनों नगरों पर भी इन्होंने वर्णनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। पर मथुरा-वर्णन ही तीनों वर्णनों में सर्वोत्तम और मनोहारी हुआ। मथुरा से आप को बहुत प्रेम था। अपने कलक्टर साहब का मथुरापुरी पर इतना प्रेम देखकर सर्वसाधारण उनसे बहुत प्रसन्न थे, जैसाकि उनके "बैकुण्ठवास" पर, पं० श्रीधरजी लिखित कविता के निम्नस्थ पंक्तियों से प्रकट होता है—

हाय "गुरू" साहब ठाकुरजी माननवारे।
कहाँ गये तजि हमें हमारे परम पियारे॥

अब हम ग्राउस साहब के उस ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं जिससे हिन्दी-साहित्य से सम्बन्ध है और जिसने उनकी कीर्त्ति को अचल कर दिया है। हम पहले कह आये हैं कि ग्राउस साहब सर्वसाधारण की भाषा के पक्षपाती थे और उसके लिए उन्होंने लड़ाई भी की थी। उस विवाद के बाद इन्होंने हिन्दी का अभ्यास बराबर जारी रक्खा। इनको उत्तरी हिन्दुस्तान की भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था। यही कारण है जो यहाँवालों की चाल-ढाल और धार्मिक विचारों को अच्छी तरह ये अपनी भाषा में प्रकट कर सके। तुलसीदास की रचनाओं की उत्तमता इन्होंने शुरू ही में पहचान ली थी। उस समय तक गोस्वामी जी की रामायण, अँगरेजों के लिए, ऐसी बन्द थी मानों उस पर मुहर कर दी गयी हो। साहब ने, स० १८७६ में, रामचरितमानस की प्रस्तावना, एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में प्रकाशित कराई। इसके बाद इस महाकाव्य का अँगरेजी अनुवाद इन्होंने मुद्रित करना आरम्भ किया। १८७७ ई० में पश्चिमोत्तर गवर्नमेंट के सरकारी प्रेस में इसका पहला खण्ड अर्थात् बालकाण्ड (The Childhood) छपा और शायद १८८० तक सारा अनुवाद छप गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आवृत्ति की किताबें झटपट बिक गईं। इसके बाद कई एक और आवृत्तियाँ निकलीं, जिनमें एक बहुत ही मनो-मोहिनी आवृत्ति की प्रति हमारे देखने में आई है। वह ठीक इंडियन प्रेस की रामायण के आकार की है और उसमें निहायत अच्छे-अच्छे चित्र छपे हैं। उनमें से बहुतेरे इंडियन प्रेस की आवृत्ति में भी हैं। इसकी पाँचवीं आवृत्ति, छोटे आकार में, कानपुर से, १८९१ में निकली। इसमें सिवा साहब की प्रतिमूर्त्ति के और कोई चित्र नहीं है। इस पर इसका मूल्य ३ रु० लिखा है। इधर बहुत दिनों से इसकी कोई नई आवृत्ति नहीं छपी मालूम होती है। सचित्र आवृत्ति महाराज काशीराज के खर्च से छपी थी।

शुरू ही से इनकी रामायण (अनुवाद) पर ग्रिफिथ साहब का यह वाक्य छपता रहा है—

"The Ramayan of Tulsi Das is more popular and more honoured by the people of the North-Western Provinces than the Bible is by the corresponding classes in England,"

—Griffith

अर्थात्—इँगलैण्ड में लोग बाइबिल का जितना आदर करते हैं, उसी दरजे के आदमी, पश्चिमोत्तर प्रदेश में, रामायण का उससे अधिक आदर करते हैं।

कानपुर की आवृत्ति के आवरणपत्र पर, पुस्तक के नाम के ऊपर, दोनों तरफ, दहने-बायें दो "श्री" बड़े अक्षरों में और चारों ओर ये पद्य हैं—

ऊपर—**संबत सोरह सै कतीसा।**
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥
नीचे—**संबत सोरह सै असी, असी गंग के तीर**
श्रावणशुक्लासप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥
दाहनी तरफ—**रामचरित मानस यह नामा**
सुनत श्रवन पाइय विश्रामा।
मन-करि विषय अनलवन जरहीं
होंइ सुखी जे इहि सर परहीं।
बाईं तरफ—**जो यह कथा सनेह समेता**
कहिहहिं सुनहहिं समझ सचेता।
होइहहिं रामचरन अनुरागी
कलिमल रहित सुमंगल भागी।

पुस्तक खोलते ही दाहने बायें की चौपाइयों के पढ़ने से एक अलौकिक सुख का अनुभव होता है। यद्यपि वे पूर्वपरिचित हैं, पर साहब की रामायण पर सुन्दर अक्षरों में लिखे रहने से इनमें एक मोहिनी शक्ति सी आ गयी है। इनसे रामायण पर ग्राउस साहब की श्रद्धा जाहिर होती है। रामायण वास्तव में परम श्रद्धेय है; कुछ विशेष प्रकार के आदमियों को छोड़कर हमने और किसीमें इसके प्रति अन्यथा बुद्धि कभी नहीं देखी।

यह अनुवाद गद्यात्मक है। सिर्फ बालकांड के "छन्दों" का अनुवाद पद्यबद्ध है। अनुवाद प्रायः शुद्ध है; कहीं-कहीं कोई भूल हो गयी है। अनुवाद की अँगरेजी रस से भरी हुई है। अँगरेजी में रामायण के भावों को व्यञ्जित करने में अनुवादक ने अपने गहन अध्ययन और रचना-चातुर्य्य का परिचय दिया है।

अनुवाद की माधुरी और उसके कर्त्ता की कारीगरी दिखलाने के लिए, नमूने के तौर पर, हम यहाँ 'फुलवरिया' का एक अंश सानुवाद उद्धृत करते हैं।

मूल—**केहरि-कटि पट-पीत-धर सुखमा शील निधान।**
देखि भानु-कुल-भूषनहिं, बिसरी सखिन्ह अपान॥

अनुवाद—As her companions gazed upon the two glories of the solar race, with their lion-like waists and bright yellow attire, very abodes of bliss and amiability, they lost all relf-consciousness,

मूल—**धरि धीरज एक आलि सयानी।**
सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू।
भूप किशोर देख किन लेहू॥

अनुवाद—Yet one summoning up courage, grasped Sita by the hand and said,—"You can at any time mediate upon Gauri, why not now look at the princes ?"

मूल—**सकुचि सीय तब नयन उघारे।**
सन्मुख दोउ रघुवीर निहारे॥
नखसिख देखि राम कै शोभा।
सुमिरि पितापनु मनु अति छोभा॥

अनुवाद—Then the modest Sita unclosed her eyes and saw before her the two scions of Raghu. As she gazed upon Rama, all beautiful from head to foot, and remembered her father's vow, she was greatly agitated.

मूल—**परबस सखिन्ह लखी जब सीता।**
'भयउ गहरु' सब कहहिं सभीता॥

अनुवाद—When her companions saw her thus overcome, they all cried as if in alarm: "It is getting late."

मूल—**पुनि आउब यहि बिरिया काली।**
अस कहि मन विहसी इक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी।
'भयउ विलम्ब', मातु भय मानी॥

अनुवाद—And one added with a meaning smile—"We must come again at this time to-morrow." On hearing this clever hint,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sita was abashed and said, as if in fear of her mother: "It is late, indeed."

मूल—धरि बड़ धीर राम उर आनी।
फिरी अपनपौ पितु बस जानी॥

अनुवाद—Summoning up resolution, she fixed the image of Ram in her heart and turned to go, but again she thought how entirely it all depended upon her sire.

मूल—

देखन मिसु मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

अनुवाद—And under pretence of looking at a deer, or bird or tree again and again she turned her head, and each time that she beheld the beautious Raghubir her love was augmented not a little.

बालकांड के आदि के सोरठों में बड़े बड़े समस्यान्त पद सम्बोधन में हैं। देखिए उनका अनुवाद किस सुन्दरता से किया गया है। मूल—

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवरबदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि-राशि शुभ-गुन-सदन॥

अनुवाद—O Ganes of the grand elephant head, the mention of whose name ensures success, be gracious to me, accumulation of wisdom, store house of all good qualities!

मूल—

मूक होइ बाचालु, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा, सो दयालु, द्रवौ सकल-कलिमल-दहन॥

अनुवाद—Thou, too, by whose favour the dumb becomes eloquent and the lame can climb the vastest mountain, be favourable to me, O thou that consumest as a fire all the impurities of this iron age!

मूल—

करौ सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन।

अनुवाद—Take up thy abode also in my heart, O thou that slumberest on the milky ocean!

हिन्दी सीखनेवाले भाषाशास्त्र के अध्यायी योरोपियन लोगों को इस अनुवाद से बहुत सहायता मिलती है। इसकी बिक्री विशेष करके यहीं के अँगरेजी जाननेवाले लोगों में हुई। हम समझते हैं कि यह अनुवाद अब अप्राप्य हो रहा है; इसकी एक नई आवृत्ति छपनी चाहिए।

मानस रामायण की उत्तमता पर मुग्ध होकर उसके प्रचार करनेवाले योरोपियन लोगों में ग्राउस साहब के पीछे अब डाक्टर ग्रियर्सन की गिनती है। ये महाशय योरप में इसके प्रचार का खूब प्रयत्न करते हैं। पर साल आपकी एक चिट्ठी से मालूम हुआ कि आप नार्वे देश के एक पण्डित को, उस समय, इसका अध्ययन करा रहे थे।

ये फारसी अक्षरों की जगह रोमन अक्षरों के बर्त्ते जाने के पक्षपाती थे। यह इनमें भूल थी। बड़े-बड़े लोगों में भी कभी-कभी कोई बेडौल विचार पैदा हो जाता है।

ग्राउस साहब की बुद्धि ऐसी कलावती थी कि जिस विषय में उन्होंने हाथ लगाया उसको अलंकृत करके ही छोड़ा; जिस काम को आरम्भ किया उसको सांगोपांग कर ही डाला। फतहपुर के कलक्टर के दफ्तर में जेनरल कनिंहम की लिखी हुई पुरातत्त्व-सम्बन्धी जाँच की पुस्तकों के हासिया पर ग्राउस साहब के लिखे हुए नोट मौजूद हैं, जिनके देखने से साहब के विद्याव्यसन और पाण्डित्य का अच्छा अनुमान होता है।

ग्राउस साहब, आक्सफोर्ड के एम० ए०, बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की कमिटी के मेम्बर, और कलकत्ता विश्वविद्यालय के फेलो थे। १८७९ ई० में गवर्नमेंट ने इनकी योग्यता के उपलक्ष्य में, इन्हें सी० आई० ई० (C.I.E.) की पदवी दी थी।

इनका शरीर हमेशा से क्षयी रोग से ग्रसित था। इससे इनकी तबीयत बहुत कमजोर रहती थी। शायद पठन-पाठन में बहुत अधिक मेहनत का ही यह फल हो। आखीर में तबीयत अच्छी न रहने के कारण, १८९१ ई० में जब ये फतहगढ़ में थे, सरकारी नौकरी से इन्होंने पेन्शन ले ली और विलायत जाकर थस्टली हाल, हस्लिमियर, सर्रे, में रहने लगे। इनके जाने पर, इनके मित्रों ने आशा की थी कि घर पर ये सुखपूर्वक कालक्षेप करेंगे और लिखने पढ़ने में इनकी कीर्त्तिचन्द्रिका और भी दिनोंदिन विकसित होगी। पर "नर-चेती होवै नहीं, प्रभु-चेती तत्काल"।

मनुष्य मर्त्य है। मरना प्राणधारी मात्र का धर्म है। यह पार्थिव शरीर एक दिन अवश्य ही गिर जाता है। सर्वदा के लिए गिरकर खाक हो जाता है, चाहै उसमें कितने ही बड़े जीव का वास क्यों न रहा हो। इस शरीर के साथ, कहते हैं, सूक्ष्म शरीर का अन्त नहीं होता, वह कर्म्मानुसार दूसरी योनि में जन्म ग्रहण करता है, या ज्ञानाग्नि से यदि जीवात्मा शुद्ध हो गया है तो, परमात्मा में लीन हो जाता है। ये सब बातें सुनी हुई हैं, देखी या अनुभव की हुई नहीं। पर एक चीज प्रत्यक्ष देखने में आती है जो पार्थिव पिण्ड के क्षय हो जाने पर भी अक्षय्य और अमर बनी रहती है। उसे 'कीर्त्ति या 'नाम' कहते हैं। सो यद्यपि सन् १८९३ की १९वीं मई को, ५६ वर्ष की उम्र में, निज-निवृत्ति-निवास-स्थल थस्टली हाल में, यक्ष्मा से जर्जरीभूत होकर, ग्राउस साहब का नश्वर गात्र गिर गया, तथापि उनका अक्षय्य यशःशरीर अब भी जीवित है।

"ऐसौ गुनी गरूस आज सुरधाम सिधायौ
सुजस एक रहि गयौ, सेस छिति मांहि समायौ"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

आचार्य शुक्लजी की विनोदप्रियता

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आकृति बड़ी गम्भीर थी, किंतु उनका हृदय बड़ा सरस और स्वभाव बड़ा विनोदी था। हाजिरजवाबी में तो वे बेजोड़ थे। किंतु उनके विनोदी स्वभाव का परिचय उनके अंतरंग मित्रों को ही मिल पाता था।

हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होने के पहिले वे काशी नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर नामक कोश की तैयारी में लगे थे। उनके साथ लाला भगवान-दीनजी और श्री रामचंद्र वर्मा भी कोश विभाग में थे। गर्मी की ऋतु थी। वर्माजी ने सभा के चपरासी को बाजार भेजकर गँड़ेरी मँगवायी। चपरासी का नाम पनारू था। जब गँड़ेरी आ गयी और वर्माजी उन्हें चूसने लगे तो लालाजी ने शुक्लजी से कहा--"वर्माजी की गँड़ेरिया पनारू द्वारा आती हैं।" शुक्लजी ने उत्तर दिया--क्या आप उसे 'नैविगेबल' नहीं समझते?"

एक बार वर्माजी को जुकाम हो गया और उसके कारण वे काम नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने शुक्लजी से कहा--"शुक्लजी! जुकाम में काम नहीं होता।" शुक्लजी तत्काल बोल उठे--"जुकाम में तो काम लगा ही हुआ है!"

एक दिन उनका कहीं निमंत्रण था। जाना तो नहीं चाहते थे पर विवश होकर जाना पड़ा। जिन लोगों के यहाँ भोज था वे थे तो मांसाहारी पर शुक्लजी तथा उनके समान अतिथियों के लिए शाकाहारी भोजन बनवाया गया था। किन्तु मसालों में प्याज भी डाल दिया गया था। शुक्लजी प्याज नहीं खाते थे। वहाँ शाक में प्याज खा आये। दूसरे दिन प्याज खा जाने के कारण बड़े दुखी थे। उन्हें परेशान देखकर उनके एक मित्र ने उन्हें सान्त्वना देने के लिए कहा--"प्याज खा लिया तो क्या हुआ?" शुक्लजी ने सूखे मुँह से उत्तर दिया--"रात भर मुँह मियाँ बना रहा!"

किसी स्कूली पाठ्य पुस्तक में चीरहरण पर एक कविता सम्मिलित थी। श्री साँवलजी नागर उसे देख-कर बड़े क्षुब्ध हुए, और शुक्ल जी से उत्तेजित होकर बोले--"यह कविता एकदम निकाल देनी चाहिए। भला आप ही बतलाइए, बालकों को इसे कैसे पढ़ाया जायगा?" शुक्लजी ने शांत भाव से कहा--"परेशान क्यों हैं? कह दीजिएगा कि कृष्णजी स्काउटिंग करने गये थे!"

शुक्लजी लिखते समय तर्जनी को कलम से दूर रखते थे। किसीने इसका कारण पूछा, तो बोले--"तर्जनी है न! लिखते समय पास आकर वर्जित न कर दे!"

महाराज वीरसिंहजू देव का विनोद

स्वर्गीय ओरछा-नरेश महाराज वीरसिंहजू देव बड़े काव्यरसिक थे। समस्यापूर्ति देने का उन्हें बड़ा शौक था। एक दिन महाराज गोल्फ खेल रहे थे कि किसी काम से उनके एक इंजिनियर साहब मोटर साइकिल पर आये। वे पक्के रंग के थे, स्थूलकाय और बिल्कुल गोल-मटोल थे। सड़क से वे गोल्फ के मैदान की ओर बढ़े तो एक छोटे गड्ढे में साइकिल पड़ गयी, वह उछली, उलटी और इंजिनियर साहब गिर पड़े। उन्हें कुछ चोट भी लगी। पर उनके समान गोलमटोल आदमी के धरा-शायी होने से महाराज को विनोद सूझा। पास ही गुप-लेशजी खड़े थे। बुलाकर कहा--अभी एक समस्या सूझी है "--खाइ कें दच्चा बच्चा धमाक सों धरा पर्‌यौ।" जरा जल्दी से इसकी पूर्ति तो कर दो। तब तक मैं खेल समाप्त करके आता हूँ।" गुपलेशजी कागज पेंसिल लेकर समस्यापूर्ति में लग गये और जब महाराज लौटे तब पूर्ति हो चुकी थी। महाराज ने आते ही समस्यापूर्ति की माँग की। गुपलेशजी ने अपनी समस्यापूर्ति सुनायी--

करि सब साज, आय बोरा सौ बिराजि,
साइकिल कों सम्हारि, घरै चलिबौ चितैं धर्‌यौ।
पैया* गयो पिचकि, औ सीट गयी खिसकि,
पै जमि कें मुसक सौ न नेकु उत सों टर्‌यो।
कहें गुपलेश ताकी गति को बखान सकै?
गरुड़ सौ धायौ, सो सुबेग गर्व तें भर्‌यौ।
मारग न पेखत औ भैंसा-सौ भजत जात,
खाइ कें दच्चा बच्चा धमाक सों धरा पर्‌यौ।

महाराज ने समस्यापूर्ति को पसंद ही नहीं किया, समस्यापूर्ति का पर्चा अपनी नोट बुक में रख लिया और अंतरंग मंडली में उसे अनेक बार सुनाया।

---

*पहिया।

प्रकाशक--बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक--पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्र-प्रतिभा पुष्प

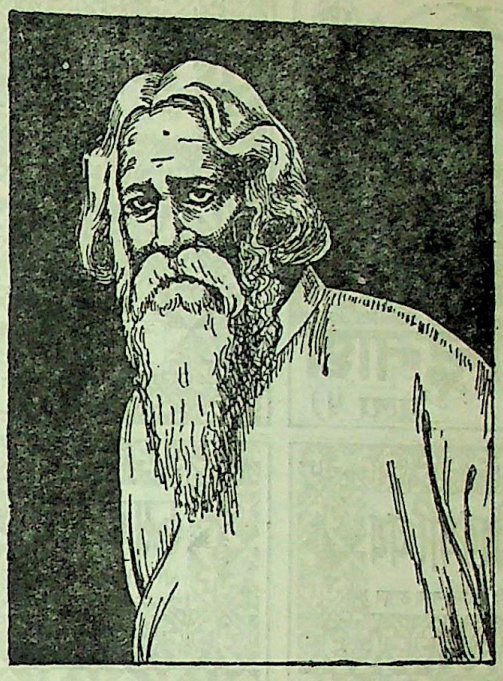

कवीन्द्र रवीन्द्र की शताब्दी न केवल बंगाल या भारत में धूमधाम से मनाई गई बल्कि योरप, रूस और अमरीका तक में इसका अपूर्व आयोजन हुआ और कवीन्द्र की प्रतिभा की विजय-दुन्दुभि निनादित हुई। उन्हीं कवीन्द्र के कुछ ग्रन्थ यहाँ विज्ञापित हैं। कवीन्द्र का मुख्य क्षेत्र कविता था; पर उन्होंने कहानियाँ, छोटे-बड़े उपन्यास, देश-भ्रमण, साहित्य आदि विविध अंगों पर ऐसी विचित्र रचनाएँ की हैं कि संसार शतमुख से उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाता। उनकी विख्यात रचनाओं का अध्ययन और मनन करके पाठक समझेंगे कि रवीन्द्रनाथ का संसारव्यापी इतना आदर-वन्दना क्यों है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ चुने हुए उपन्यास

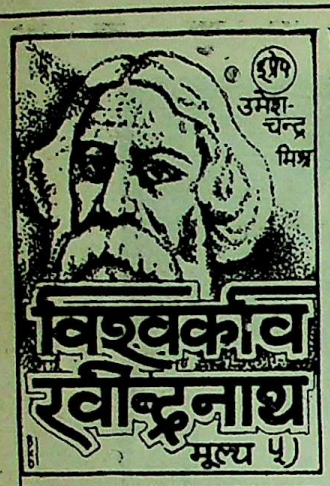

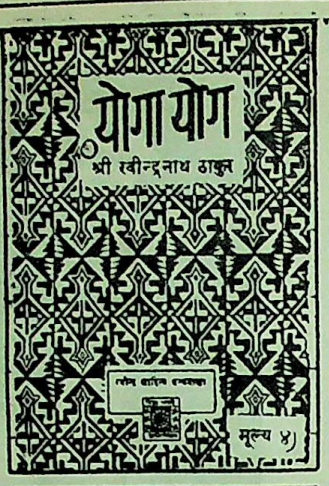

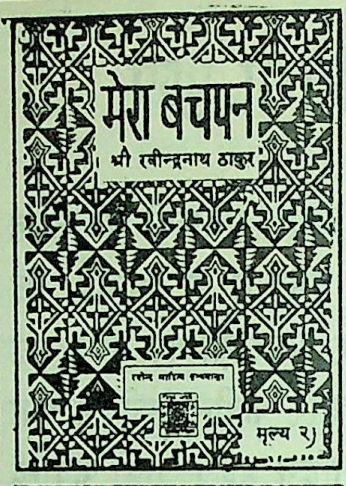

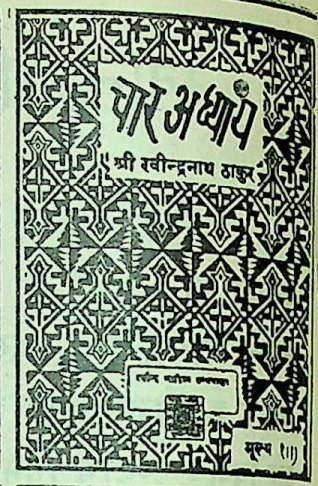

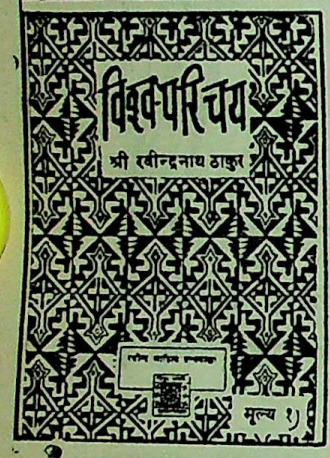

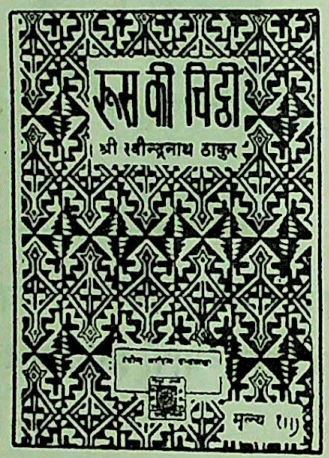

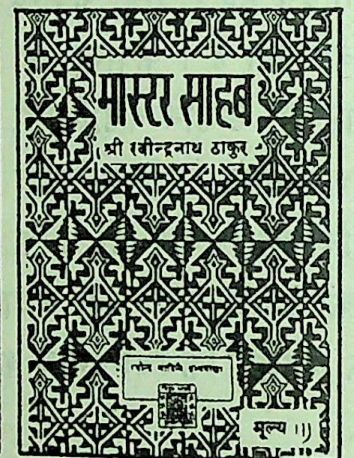

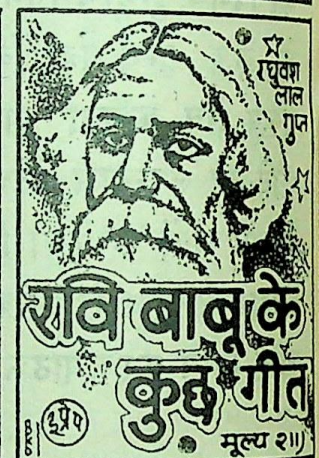

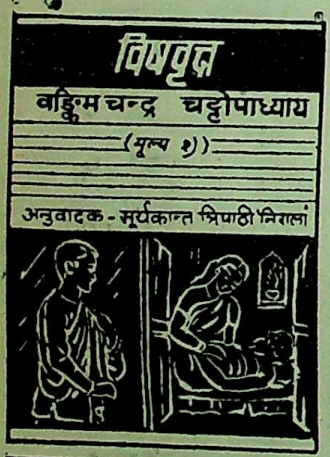

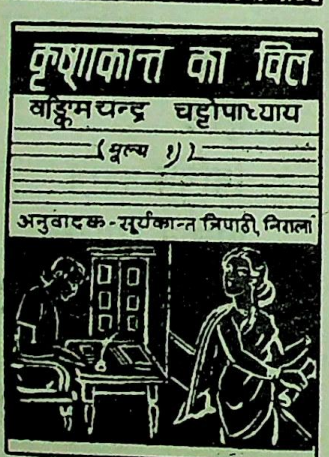

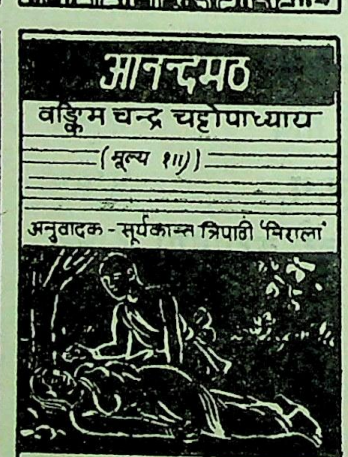

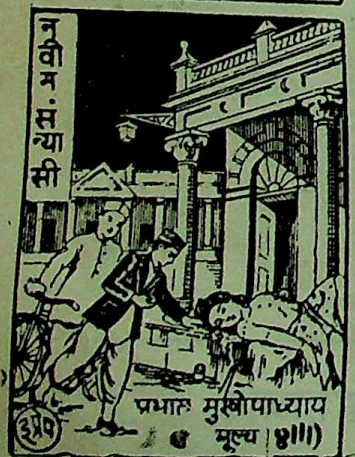

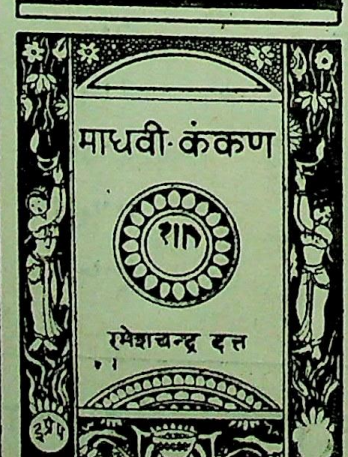

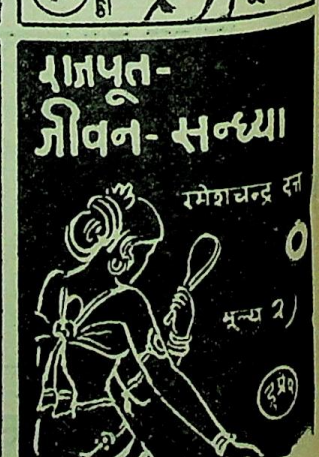

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन काव्य-कृतियाँ

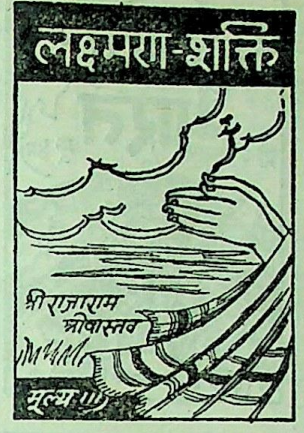

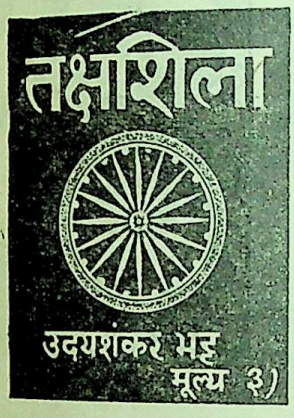

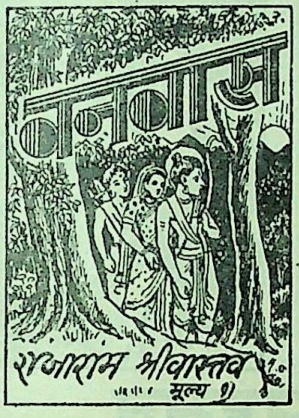

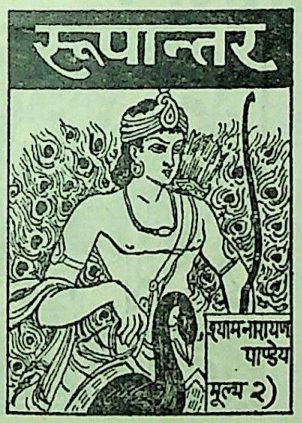

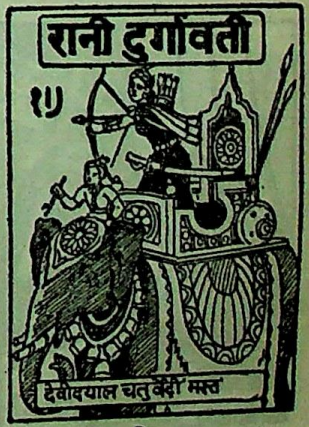

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ चुने हुए उपन्यास तथा नाटक-प्रहसन

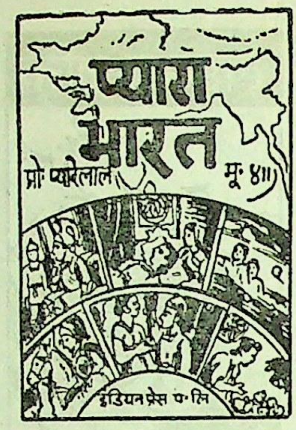

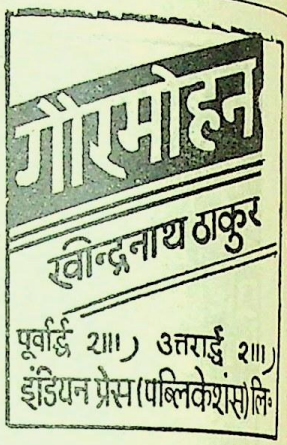

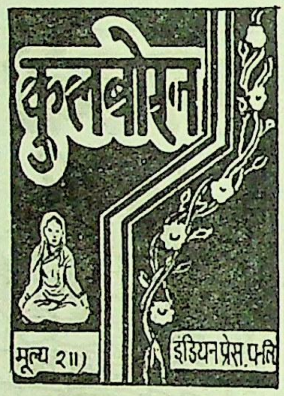

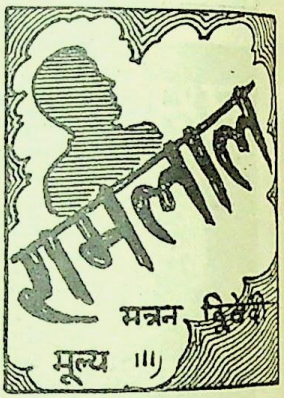

नाटक प्रहसन

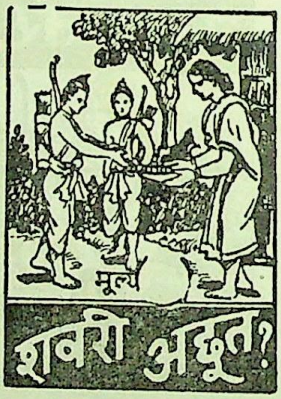

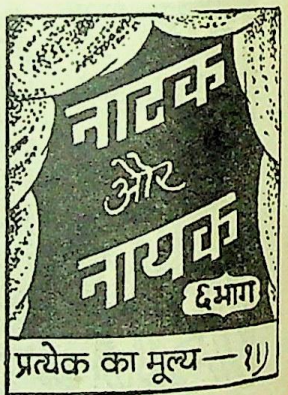

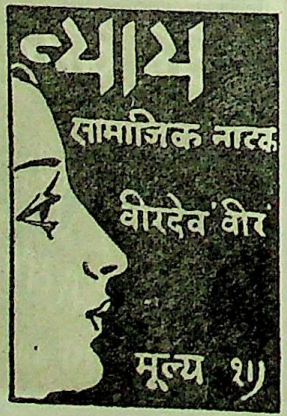

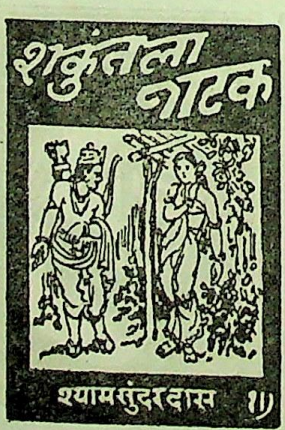

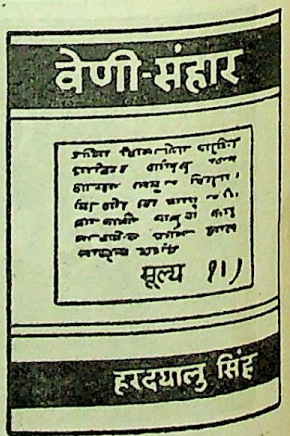

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

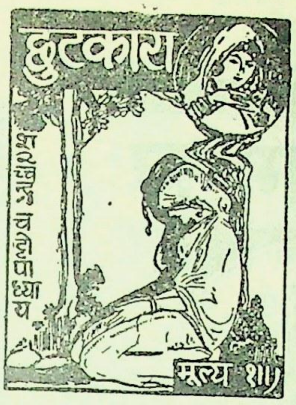

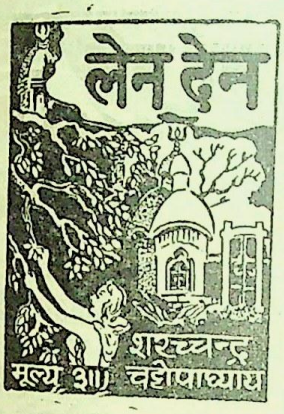

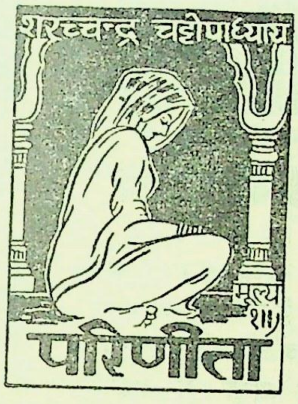

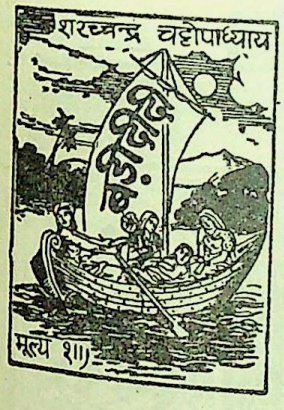

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा रामायण साहित्य

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

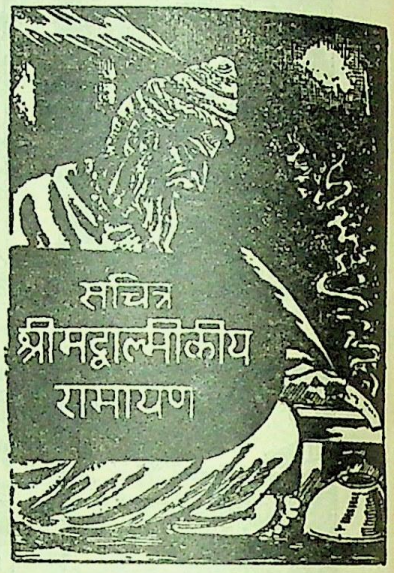

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० रुपये प्रति भाग है।

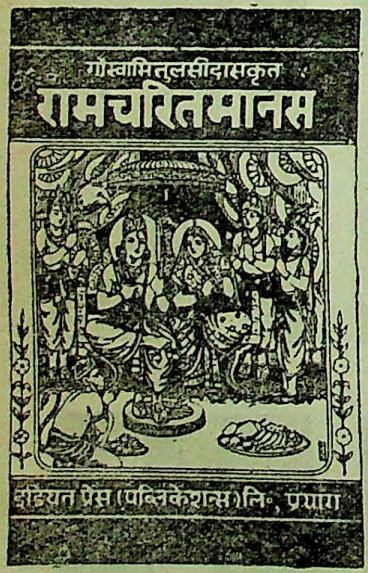

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

अयोध्याकाण्ड सटीक

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

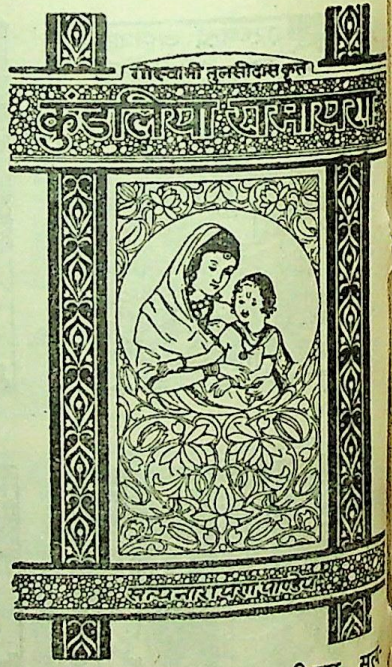

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्य नारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४) चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा धार्मिक साहित्य

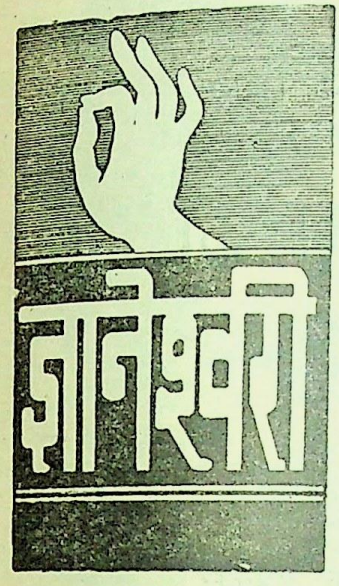

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

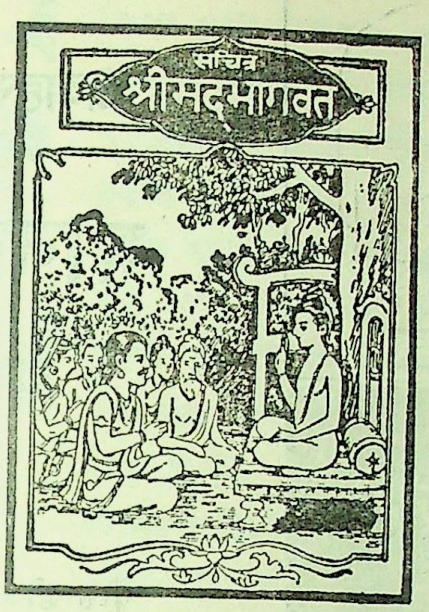

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

विनय पत्रिका

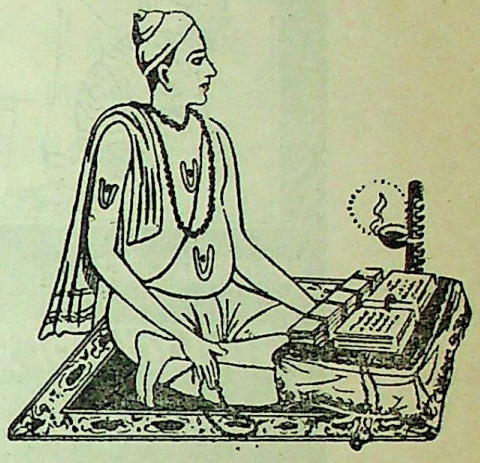

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।

राय साहब श्री राधामोहन लाल बी० ए०, रिटायर्ड जज चीफकोर्ट जयपुर द्वारा अनूदित; इसमें महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती के तिरंगे चित्र हैं। सजिल्द प्रति का मू० २·५०

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मू० १२)

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

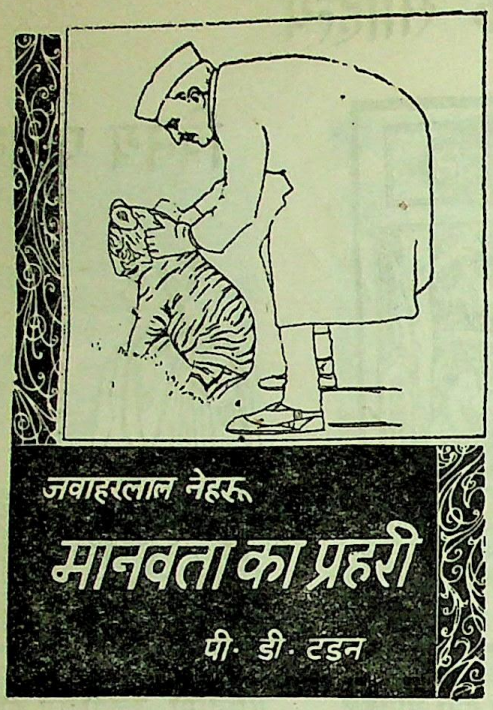

जवाहरलाल नेहरू

मानवता का प्रहरी

लेखक

पी० डी० टंडन, पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १॥) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य २·५०

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्दविभोर हो उठेंगे।

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रम-पूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अंगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्रीविश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, सजिल्द भी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास जार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50 SARASWATI—Reg. No. A-
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक
आर० डी० विद्यार्थी

● प्रकाशित हो गया ।
● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट
सचित्र वैज्ञानिक मासिक
● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं ।
● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिकांक -

मार्च १९८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१·०

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाकव्यय—१·३७ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—

साधारण संस्करण—८ रु०, डाकव्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

"सरस्वती" हीरक जयंती के अवसर पर प्राप्त

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण रामधारी सिंह दिनकर

"सरस्वती" के जरिये पुण्य-श्लोक पण्डित महावीर-प्रसादजी द्विवेदी ने हिन्दी भाषा और साहित्य की इतनी अधिक सेवा की कि हिन्दी-साहित्य के एक युग का नाम ही द्विवेदी-युग पड़ गया। सरस्वती मात्र एक पत्रिका नहीं, साहित्य की यशस्विनी संस्था रही है। जिस गौरव के साथ हम नागरीप्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की याद करते हैं, उसी गौरव से हम सरस्वती की भी सेवाओं का उल्लेख करते हैं।"

म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

"सरस्वती-पत्रिका" की हिन्दी-साहित्य सेवा और देश-सेवा वास्तव में संस्मरणीय है। उस युग में इसने साहित्य-सेवा का आरम्भ किया था जब कि हिन्दी में इनी-गिनी ही पत्र-पत्रिकाएँ थीं। इतने काल तक जीवित रहने का सौभाग्य एक इसी को प्राप्त हुआ। आरम्भ से ही इसमें दार्शनिक, वैज्ञानिक और साहित्य सम्बन्धी अन्यान्य विषयों के गम्भीरतम लेख प्रकाशित होते रहे जिनमें बहुत से आज भी उपयोगी प्रमाणित होंगे। यह भी सौभाग्य की बात है कि आरम्भ से ही यह योग्यतम सम्पादकों के हाथ में रही। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसकी बहुत काल तक संस्मरणीय सेवा की है।

पण्डित छविनाथ पाण्डेय

सरस्वती के द्वारा आचार्य द्विवेदीजी ने हिन्दी के अनेक ख्यातनामा और यशस्वी लेखक तैयार किये। इन लेखकों और कवियों को यदि सरस्वती का संबल नहीं मिला होता तो न इन्हें हिन्दी संसार जान पाता और न ये लोग हिन्दी की सेवा ही कर पाते। खड़ी बोली में हिन्दी पद्य शैली को सरस्वती से यदि उस युग में उस तरह का प्रोत्साहन न मिला होता तो संभवतः खड़ी बोली में हिन्दी की गद्य शैली का जितना विकास हुआ उतना विकास संभव नहीं था।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

'सरस्वती' के मूल में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की तपश्चर्या अंतर्निहित है। उन्होंने भाषा के विशाल अरण्य को उर्वर क्षेत्र में परिवर्तित किया। पाठकों का विस्तृत परिवार तैयार किया। अनेक नये लेखक बनाये। वर्षों से पड़ती पड़े हुए मस्तिष्क उपजाऊ बन गये और हिन्दी की चौमुखी खेती लहलहा उठी। वह हिन्दी के इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय ही हो गया है जिसका शीर्षक है 'सरस्वती'।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

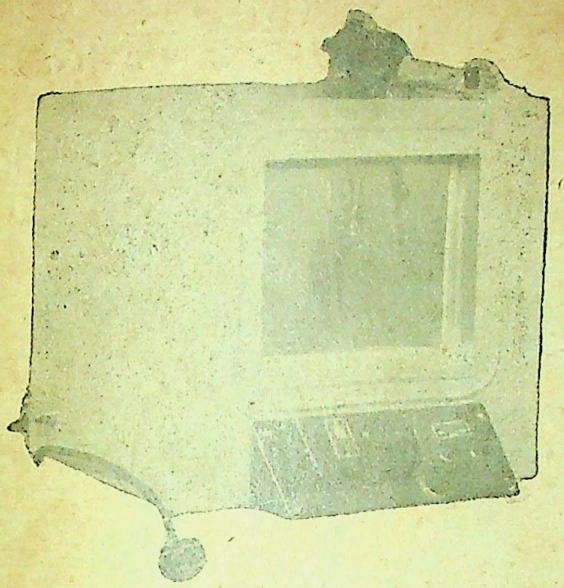

'एलेक्ट्रिक थरमोस्टेटिक वाटर बाथ'

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

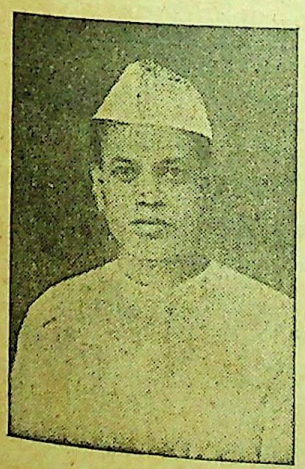

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—
प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए :—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् तथा प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

माल मंगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केश विन्यास
की पूर्णता
के लिये...

गोल्डेन आमला

केश तैल

बंगाल केमिकल

कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

नया प्रकाशन :

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

विवेकानन्दजी के सान्निध्य में सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य ६० नये पैसे। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विभिन्न विषयों पर स्वामी विवेकानन्दजी के उद्‌बोधक तथा स्फूर्तिदायक सम्भाषणों का संकलन।

देववाणी : सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य २·७५ नये पैसे। अमरीकी शिष्यों को आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्दजी के अमृततुल्य उपदेश।

भारत में विवेकानन्द : स्वामीजी द्वारा भारत में दिये गये समग्र व्याख्यान ५); विवेकानन्दजी के संग में : (वार्तालाप), श रच्चन्द्र चक्रवर्ती कृत, महान् शिक्षाप्रद संग्रह ५·२५;
चिन्तनीय बातें १·००;
विविध प्रसंग १·१२;
जाति, संस्कृति और समाजवाद १·२५;
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १·१५
विवेकानन्दजी की कथायें १·६०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १·२५;
पत्रावली (प्रथम भाग) ५·२५
,, (द्वितीय भाग) ४·२५;
कर्मयोग १·४०; भक्तियोग १·५०;
राजयोग ३·००; ज्ञानयोग ३·००;
प्रेमयोग १·३७; सरल राजयोग ०·५०;
हिन्दू धर्म १·५०; धर्मरहस्य १·२५;
धर्मविज्ञान १·६२; परिव्राजक १·२५;
भारतीय नारी ०·७५; शिक्षा ०·६२;
कविितावली ०·६२; मेरे गुरुदेव ०·६२;
मन की शक्तियाँ ·४०; हमारा भारत ०·५०;
विवेकानन्द-चरित : सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत, तृतीय संस्करण, ६·००

पॉकेट साईज पुस्तकें :
विवेकानन्दजी के उद्‌गार ०·६५;
शक्तिदायी विचार ०·६२;
मेरी समर नीति ०·६२;

श्रीरामकृष्ण-साहित्य

श्रीरामकृष्णलीलामृत : विस्तृत जीवन-चरित्र, गांधीजी द्वारा भूमिका सहित, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मू० ५);
श्रीरामकृष्णवचनामृत : 'म' कृत, 'निराला' द्वारा अनुवादित, श्रीरामकृष्ण देव के अमृतमय उपदेशों का अपूर्व संग्रह, तीन भागों में, पूर्ण, प्र० भा० ६), द्वि० भा० ६), तृ० भा० ७);
श्रीरामकृष्ण उपदेश : स्वामी ब्रह्मानन्द कृत, पॉकेट साइज, आकर्षक जैकेट सहित, ७५ न० पै०
माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीला-सहधर्मिणी का पावन जीवन-चरित्र, नयनाभिराम जैकेट सहित, ४·५०;
धर्म प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी शिष्य द्वारा धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर वार्तालाप, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २·७५;
परमार्थ प्रसंग : स्वामी विरजानन्दकृत, आर्ट पेपर पर छपी हुई, मूल्य ३·२५

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :— श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यराज सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खांसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, घाव, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मंगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खांसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा चमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आंखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं खाना हजम करती है पेट साफ रखती है। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का फी १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना से क्या होगा

बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं

तीसरी योजना के पूरे होने तक गांवों और शहरों के लिए
पीने का शुद्ध पानी, १४,६०० अस्पताल और डिस्पेंसरियां,
२,४०,१०० रोगी शय्याएं, ८१,००० डाक्टर, १०,००० जच्चा-बच्चा
स्वास्थ्य केन्द्र तथा मलेरिया, तपेदिक, चेचक जैसी
बीमारियों की रोकथाम से निश्चित रूप से आपके स्वास्थ्य
में निरन्तर सुधार होगा।

योजना को सफल बनाइये जिसका मतलब होगा—

तीसरी पंचवर्षीय योजना

सबका सुख सबकी सुविधा

डी.ए. ६१/७१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अंगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

ऐसे बोगस रजिस्टर्ड लिखनेवालों से सावधान

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

उसकी ओर देखो

* उसकी नाक खुजलाती है या उसके गले में सर्दी है।
* वह खाट पर बैठता है या खिड़की की ओर दौड़ता है।
* उसका दम घुटता है और वह श्वास लेने के लिए हाँफता है।
* वह जल्दी तथा थोड़ी मात्रा में साँस लेता है।
* वह कठिनाई तथा देर से श्वांस बाहर निकालता है।
* खाँसते समय उसे पसीना आता है।
* उसके होंठ पीले हैं।
* उसका चेहरा एक व्यथा की कहानी है।

यह दमा है

करुणा तथा चिन्ता का एक ऐसा चित्र जिस पर आँसू भी नहीं बहाए जा सकते।

इसको आशा तथा हर्ष में बदलने के लिए

नवरत्न-कल्प का प्रयोग करें,

जो नौ मूल्यवान् रत्नों, हीरक, माणिक्य, मुक्ता, विद्रुम, मरकत, पुष्पराग, नीलमणि, पिरोजा एवं सुलेमानी का सम्मिश्रण है।

आविष्कर्त्ता

कविराज पं० दुर्गादत्त शर्म्मा,
वैद्य-वाचस्पति

नवरत्न-कल्प फार्मेसी,
जालन्धर सिटी, इंडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कपड़ों की धुलाई को लीजिए तो हमारा मुन्ना सात बेटों के बराबर है—इतने कपड़े मैले करता है वह। लेकिन सनलाइट के कारण मुझे कपड़े धोना बिल्कुल आसान हो गया है।

'सनलाइट जैसे शुद्ध और भरपूर झागवाले साबुन ही से कपड़ों की इतनी अच्छी धुलाई इतने आराम से हो सकती है! फिर इसमें आश्चर्य ही क्या अगर मैं अपनी सारी धुलाई सनलाइट से करती हूँ।'

नई दिल्ली की श्रीमती कमला वाधवानी कहती हैं: घरभर की धुलाई के लिए सनलाइट के समान दूसरा साबुन नहीं।

सनलाइट

आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए

S. 31-X52 HI

हिन्दुस्तान लीवर ने बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका तार

आप
किसी भी
भारतीय
भाषा में
तार भेज
सकते हैं

इस
सुविधा के
लिये सन्देश
देवनागरी
में लिखिये

डाक – तार विभाग DA61/689

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

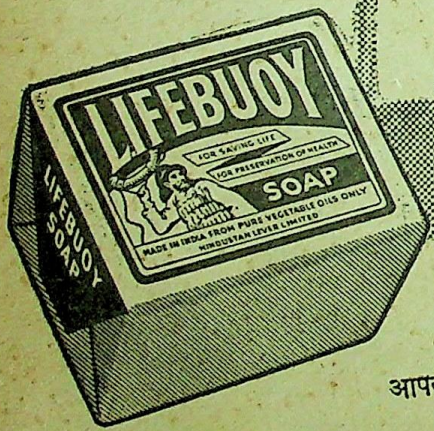

साफ़ सुथरा रहने का मज़ा उन से पूछिये जो लाइफ़बॉय से स्नान करते हैं! गर्मी और धूल-मैल की थकावट, घबराहट दूर कर के, लाइफ़बॉय आपको बिलकुल तरोताज़ा कर देता है ... और साथ ही साथ गंदगी में छिपे कीटाणुओं को भी धो डालता है।

जी हाँ, लाइफ़बॉय से आपका सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा।

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ!

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

L. 30-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

माल मंगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक उदार हृदय मामा

నందగిరి బంగారుమామా
చంద్రగిరి చీరాలంపేవా
బంగారుమామా రంగారుమామా
చంద్రగిరి చీరాలంపేవా

मामा सभी को प्यारा लगता है और उससे अपने मन की कोई भी बात निःसंकोच कही जा सकती है।

आन्ध्रवासिनी यह युवती क्या चाहती है? वह मामा से कहती है—मुझे एक चन्द्रगिरि की सुन्दर साड़ी ला दो। आखिर वह हैं 'बंगारू'—एक उदार हृदय व्यक्ति, क्यों हैं न?

ALL INDIA HANDLOOM BOARD

हाथकरघा वस्त्र

हमारी राष्ट्रीय परम्परा

DA 61/581

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा पारेख से सुनिये एक रहस्य की बात...

'लक्स से मेरा रंगरूप निखर आता है!'

आशा पारेख का रहस्य लाखों के मोल का है! ज़रा देखिये तो उनका निखरा हुआ रंगरूप! उन्हें शुद्ध, मुलायम लक्स के मृदुल प्रभाव पर पूरा भरोसा है। आप भी लक्स को अपना रूप-रहस्य बनाइये।
लक्स इस्तेमाल कीजिये...इसके मुलायम झाग से आपका रंगरूप सुन्दरता की नई सीमा को जा छूता है!
लक्स इस्तेमाल कीजिये...और इसकी अनमोल सुगंध के सुन्दर संसार में खो जाइये!
लक्स इस्तेमाल कीजिये...इसके रंगों के इंद्रधनुष में से अपनी पसंद का रंग लीजिये या अपना मनभावन सफ़ेद!
लक्स से अपना रंग रूप निखारिये।

चित्र तारिकाओं का शुद्ध, मुलायम, सौंदर्य साबुन

'रंग ऐसे छबीले...साबुन ऐसा मुलायम' आशा पारेख कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 108-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FORM IV

(See Rule 8)

1.	Place of Publication.	Allahabad.
2.	Periodicity of its publication.	Monthly.
3.	Printer's Name	Shri P. L. Yadav.
	Nationality	Indian.
	Address	36, Pannalal Road, Allahabad.
4.	Publisher's Name	Shri B. N. Mathur.
	Nationality	Indian.
	Address	36, Pannalal Road, Allahabad.
5.	Editor's Name	Pt. Sri Narain Chaturvedi.
	Nationality	Indian.
	Address	53, Khurshed Bagh, (Vishunupuri) Lucknow.
6.	Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital.	1. Shri H. P. Ghosh 2. Shri H. S. Ghosh 3. Shri H. N. Ghosh 4. Shri H. B. Ghosh 5. Shri D. P. Ghosh 5, Malaviya Road, Allahabad.

I, B. N. Mathur, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated 1-3-1962.

(Sd.) B. N. Mathur,
Signature of Publisher

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रविनहुड
डाकू मोहन का
विचित्र अभियान

मोहन सीरीज की प्रत्येक पुस्तक स्वयं पूर्ण है।
मूल्य प्रत्येक का १॥) या १ रु० ५० नये पैसे।

अब तक प्रकाशित पुस्तकें—

१ मोहन
२ मोहन जेल में
३ रमा और मोहन
४ रमा की शादी
५ फिर से मोहन
६ विरही मोहन
७ मोहन और पंचमवाहिनी
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन
९ नागरिक मोहन
१० मोहन बर्मा की सीमा पर
११ नारी-रक्षक मोहन
१२ मोहन का प्रथम अभियान
१३ नेता मोहन
१४ मोहन का जर्मनी अभियान
१५ प्रिय मोहन
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन
१७ बर्लिन में मोहन
१८ मोहन का तूर्यनाद
१९ मोहन का अनुराग
२० मित्र मोहन
२१ मोहन और स्वप्न
२२ स्वप्न का महन्त-दमन
२३ अफसर मोहन
२४ डाकू मोहन
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष
२६ मोहन का प्रतिदान
२७ नये रूप में मोहन
२८ मोहन का नया अभियान
२९ त्राता मोहन
३० मोहन का प्रतिशोध
३१ जर्मन षड्यन्त्र में मोहन
३२ मोहन और अणुबम
३३ मोहन के तीन शत्रु
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला
३५ सोवियट रूस में मोहन
३६ मोहन की प्रतिज्ञारक्षा
३७ सुन्दरवन में मोहन
३८ युवक मोहन
३९ मोहन और वनबिहारी
४० समुद्र-तल में मोहन
४१ बन्दी मोहन
४२ नारीत्राता स्वप्न

पक्के ग्राहकों के लिए खास सुबीता

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी।

साधारण वी० पी० से पाठकों को सुबीता

वी० पी० द्वारा कम से कम २ पुस्तक एक साथ मँगाने से साधारण पाठकों को पुस्तक का मूल्य ही देना होगा अर्थात् उनको पुस्तक मँगाने का डाकखर्च नहीं लगगा।

सरस्वती सीरीज

की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारतयात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीम चमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेख
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे
नवविधान

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

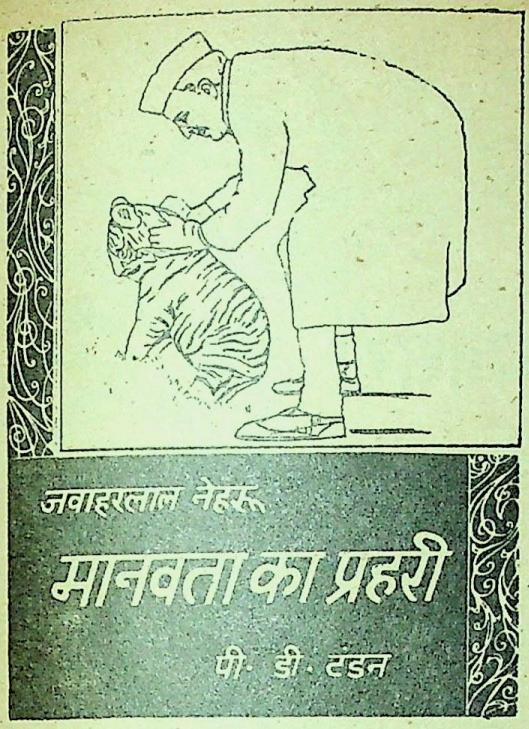

हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

जवाहरलाल नेहरू

मानवता का प्रहरी

लेखक

पी० डी० टंडन, पत्रकार

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति — कुछ देखा कुछ सुना

मूल्य १·५० नये पैसे।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक पृष्ठ २१२ मूल्य ५), खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखद अवसरों को अधिक सुखद बनाइये

सुखद अवसरों पर शुभकामनाएं अथवा बधाई भेजने का श्रेष्ठ साधन है—बधाई तार ।

बधाई तार सुचित्रित फार्म पर लिखा जाता है और जिस लिफाफे में तार पहुंचाया जाता है, वह भी रंग-बिरंगा और खूबसूरत होता है ।

व्यक्तिगत और सामाजिक सभी तरह के विशेष अवसरों के लिए उपयुक्त वाक्यों अथवा वाक्यांशों की एक सूची बना रखी है ।

आप अपने अवसर के अनुकूल इनमें से कोई वाक्य चुन लीजिए ।

साधारण बधाई तार का न्यूनतम शुल्क ५० नये पैसे है । प्रत्येक अतिरिक्त शब्द के ७ नये पैसे लगते हैं ।

डी ल क्स ता र

यदि आप निर्धारित वाक्यों में से चुनना पसन्द न करें और अपने लिखे हुए शब्द भेजना चाहें तो वह डीलक्स तार से सम्भव है ।

आप अपनी इच्छानुसार संदेश लिख लीजिए और विशेष हिदायतों के खाने में 'डीलक्स' शब्द लिख दीजिए । आपका तार विशेष रूप से छपे हुए बधाई तार के फार्म पर ही पहुंचाया जायेगा ।

ब धा ई
या
डी ल क्स
तार
भे जि ये

डा क - ता र वि भा ग

डी ए ६१/७४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती हिन्दी संस्करण

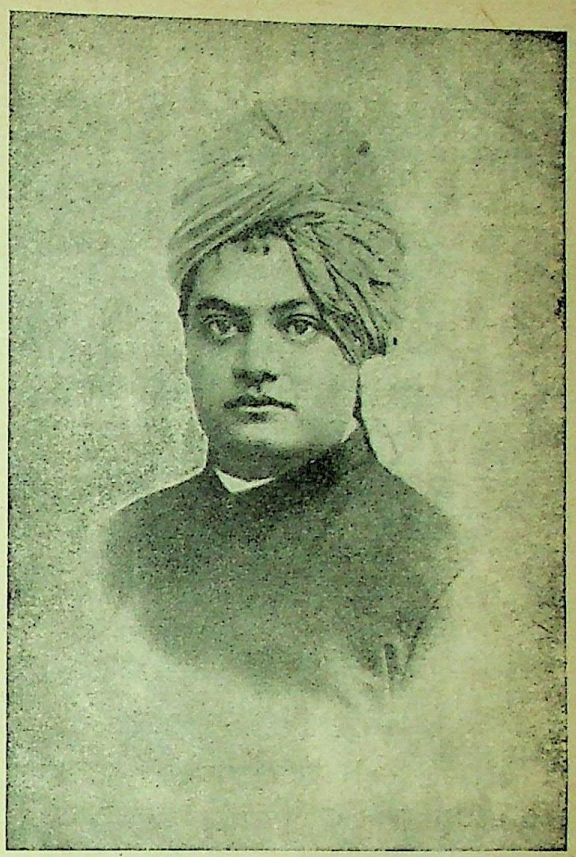

कुल १० खंड—डबल डिमाई १६ पेजी साइज में; पृष्ठसंख्या प्रति खंड लगभग ५००; मजबूत और आकर्षक सजिल्द प्रति खंड का सस्ता मूल्य (**सिर्फ जन्मशती वर्ष के लिए**) ४ रु० ७५ न० पै० और प्रति सेट ४७ रु० ५० न० पै०।

आधुनिक भारत के संत तथा स्वदेश-प्रेमी स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मशती सन् १९६३ ई० की जनवरी से सारे संसार में मनायी जायगी। इस शुभ समारोह के अवसर पर उनकी समग्र ग्रन्थावली "विवेकानन्द साहित्य" नाम से दस खंडों में प्रकाशित हो रही है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसा प्रथम प्रकाशन है। इन ग्रन्थों में स्वामी विवेकानन्द जी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित और अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों तथा कथाओं का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादकों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्री सुमित्रानन्दन पन्त, डा० प्रभाकर माचवे, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री फणीश्वर नाथ 'रेणु' आदि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रेमियों के लिए सुलभ बनाने और केवल प्रचार के उद्देश्य से इन पुस्तकों का मूल्य बहुत ही कम रखा गया है। जो पूरा सेट खरीदना चाहते हैं, वे ३१ मई, १९६२ को या उसके पहले पूरा मूल्य अथवा अंशतः १५ रु० अग्रिम हमारे निम्नलिखित पते पर, अथवा हमारे एजेंटों के पते पर भेजकर अपने नाम दर्ज करा लें। सेट का पूरा मूल्य पहले जमा करनेवालों को २ रु० ५० न० पै० कमीशन दिया जायगा, अर्थात् ४५ रु० में पुस्तकों का एक सेट मिलेगा। अग्रिम १५ रु० देनेवाले ग्राहकों को बाकी रुपया एक ही साथ, अथवा दो किस्तों में, ३१ अक्टूबर, १९६२ को या उससे पहले अवश्य जमा कर देना पड़ेगा। रुपये की प्राप्ति हम लोगों द्वारा या हमारे एजेंटों द्वारा स्वीकार की जायगी। पुस्तक-वितरण का समय बाद में सूचित किया जायगा। चूँकि अब केवल ४००० सेट जनता के लिए प्राप्य हैं, इसलिए सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे जल्दी से जल्दी अपना नाम दर्ज करा लें। रुपया नकद, मनी-आर्डर या बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft) द्वारा निम्नलिखित पते पर या हमारे एजेंटों के पास भेजना चाहिए। डाक द्वारा सीधे अद्वैत आश्रम से जो खरीद करना चाहते हैं, उनको डाक और पैकिंग खर्च १० रु० ५० न० पै० अतिरिक्त अग्रिम भेजना चाहिए। दूसरे ग्राहक स्वयं ही कलकत्ते से या हमारे एजेंटों से पुस्तकें ले सकते हैं।

एजेण्टों का नाम—रामकृष्ण मिशन : इलाहाबाद, कानपुर, वाराणसी, लखनऊ, कनखल, दिल्ली, बम्बई, पटना, नागपुर, जमशेदपुर और आसनसोल।

मैनेजर, अद्वैत आश्रम

५ डिहि एंटाली रोड, कलकत्ता—१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१—सम्पादकीय १४५
२—तंत्रमार्गी साधना और बौद्धयान (१)—श्री रामधारीसिंह दिनकर १५३
३—सुखद शरद् आया (कविता)—श्री गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" १५९
४—भारत के समाचार-पत्र—श्री वेंकटेशनारायण तिवारी १६०
५—संसार की राजनीति में भारत का स्थान—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार .. १६३
६—कृष्ण-कौतुक (कविता)—श्री राजेशदयालु "राजेश" १६८
७—हिन्दी विश्वकोश की कुछ त्रुटियाँ—डॉ० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्० .. .. १६९
८—महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१३)—पण्डित व्रजमोहन-व्यास १७१
९—नारी जागरण—नया विचार, नया पहलू—डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी १७८
१०—आँगनों के बीच—
(१) जीवन और मेरे कुछ अनुभव .. १८१
(२) गर्मियों के ये कपड़े .. १८४
११—गोडसे के सिर सेहरा—श्रीमती कमला-रत्नम् १८५
१२—खुसरू, शीरीं और फ़रहाद—श्री राजेन्द्र-प्रसाद जैन १८८
१३—तकियाकलाम—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी १९०
१४—आधुनिक आर्यों का सोमरस—श्री अरविंद मालवीय १९६
१५—पहिले हौं जरौं, जरिहै फिर होरी ?—श्री-हरिशंकर चतुर्वेदी १९८
१६—महापर्व होली—श्री पुत्तूलाल शर्मा .. २००
१७—अखिल भारतीय जन्तु-रक्षक मंडल—श्री शारदाप्रसाद भुशुंडि २०३
१८—नये साल का कैलेण्डर (कविता)—श्री-निरंकुश २०५
१९—घास के फूल (कहानी)—श्री राजेन्द्र जगोता २०९
२०—देखा-सुना (१०)—श्री मनमोहन गुप्त .. २१२
२१—नवीन प्रकाशन २१७
२२—१९०६ की सरस्वती—पण्डित प्रतापनारायण मिश्र—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी २२०
२३—मनोरंजक संस्मरण २२४

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

दुर्गापाठ

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर-एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। पृष्ठ में एक ओर मूल है और उसके सामने हिन्दी रूपान्तर। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रकाशक का वक्तव्य, प्रस्तावना, प्रारम्भिक वक्तव्य, भूमिका, मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि है। फिर देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवट लिमिटेड,
प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेलत फाग रसिक ब्रजवनिता सुन्दर श्याम तमाल—सूरदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६३ पूर्ण संख्या ७४७ | इलाहाबाद : मार्च १९६२ : फाल्गुन २०१८ | खण्ड १ संख्या ३

सम्पादकीय

भारत का तीसरा सामान्य चुनाव—संसार का सबसे बड़ा चुनाव सम्पन्न हो गया। एशिया में तो भारत इने-गिने जनतंत्रों में है। योरोप और अमरीका के भी किसी देश में इतने मतदाता (२१ करोड़) नहीं हैं जितने भारत में। आज हमारे कितने ही पड़ोसी देशों में जनतंत्रात्मक प्रणाली समाप्तप्राय है। एकाधिकार के इस समुद्र में भारत जनतंत्रात्मक द्वीप की भाँति मानव-अधिकारों और जनता की प्रभुता का आश्रयस्थल बना हुआ है। हमारे सफल चुनाव ने यह प्रमाणित कर दिया है कि भारत में जनतंत्र की जड़ें गहरी पैठ गयी हैं, और, यदि प्रयत्न किया जाय तो एशिया में भी यह प्रणाली पूर्णतः सफल हो सकती है। इस चुनाव को इतनी कुशलता और सफलता से सम्पन्न करने के लिए सबसे अधिक श्रेय चुनाव आयोग को है। किंतु यदि भारत और राज्यों की सरकारें हृदय से उसका सहयोग न करतीं तो उसे इतनी सफलता न मिलती। इसके साथ ही, जनता और चुनाव लड़नेवाले दलों का भी उन्हें सहयोग मिला। ये सब बधाई के पात्र हैं।

जैसी कि आशा थी, कांग्रेस दल को सर्वाधिक सफलता मिली। हमें इससे प्रसन्नता है, क्योंकि हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि स्वतंत्रता के बाद देश को अपने पैरों पर खड़ा करने और उसकी भौतिक उन्नति करने के लिए ऐसी स्थायी सरकार की आवश्यकता है जिसके पास उन्नति की सही कल्पना और व्यावहारिक रूपरेखा हो, जिसमें उसे कार्यान्वित करने की क्षमता हो और जिसके नेतृत्व में देश का विश्वास हो। कांग्रेस इन सब शर्तों की पूर्ति करती है। उसने देश के उत्थान की योजना बनाई है। हमारा देश संसार के दूसरे उन्नत देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है, इसलिए वह योजना इतनी विस्तृत है कि कई पंचवर्षीय सोपानों में पूरी हो सकेगी। उसके केवल दो पंचवर्षीय सोपान पूरे हो सके हैं। अधूरी दशा में उसे किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे दल के हाथ में दे देने से उसकी पूर्ति ही संदिग्ध न हो जायगी, प्रत्युत अब तक की बहुत-सी अपरिपक्व उपलब्धियों को भी खतरा उत्पन्न हो जायगा। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना है कि देश की उन्नति के लिए, देश की जनता और विदेशों में भारत की साख बनाये रखने के लिए, शासन की स्थिरता नितान्त आवश्यक है। और यह स्थिरता कांग्रेस ने देश को दी है। जब तक देश अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता, और जब तक देश में राजनीतिक प्रौढ़ता नहीं आ जाती, तब तक शासन का परिवर्तन देश के लिए अहितकर हो सकता है।

किंतु इसके अर्थ यह नहीं हैं कि देश में जो और राजनीतिक दल हैं, वे बेकार हैं। यदि मोटर में रोक (ब्रेक) न हो, या रोक कमजोर हो तो मोटर की यात्रा खतरनाक हो जायगी, और अपनी गति के वेग में वह दुर्घटनाग्रस्त हो सकती है। विरोधी दलों का यही काम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर शासनारूढ़ दल पर रोक लगा सकें। उनका यह काम नहीं है कि वे सदैव रोक लगाये रहें कि मोटर चलने ही न पावे। रोक जितनी शक्तिशाली होगी, उतनी ही कारगर होगी। अतएव विरोधी दलों का एक सीमा तक शक्तिशाली होना जनतंत्र के लिए आवश्यक और श्रेयस्कर है। उनके न होने पर, या उनके कमजोर होने पर, शासनारूढ़ दल मदान्ध होकर अनुत्तरदायी हो सकता और मनमानी कर सकता है। उसमें भ्रष्टता उत्पन्न हो जाती है। एक राजनीतिज्ञ ने ठीक ही कहा है कि उत्तरदायित्वहीन शक्ति मनुष्य या दल को भ्रष्ट कर देती है। विरोधी दल सत्तारूढ़ दल को भ्रष्ट होने से रोकते हैं। इसलिए जनतंत्र में विरोधी दलों का बड़ा महत्त्व है। इसी लिए यह शुभ लक्षण है कि जनता ने विरोधी दलों को प्रोत्साहन दिया। उनकी संख्या इतनी बढ़ा दी है कि वे अब अपने कर्त्तव्य का पालन अधिक प्रभावशील ढंग से कर सकेंगे। यदि विरोधी दल सरकार के हर एक अच्छे-बुरे काम में अड़ंगा लगाने की नीति न अपना कर विरोध करते समय विवेक से काम लेंगे तो अवश्य ही वे जनता की सेवा कर सकेंगे और इस देश में जनतंत्र की सफलता प्राप्त कर पायेंगे।

दक्षिण और वामपंथी दल—फ्रांस में जब राज्यक्रांति हुई और पहली संविधान-सभा बनी तो उसमें अध्यक्ष के दाहिनी ओर संयोग से वे लोग बैठे जो बहुत नरम विचारों के थे। अध्यक्ष के बायें ओर उग्र सुधारवादी बैठे। इन दोनों के मध्य में वे लोग बैठे जिनके विचार न बहुत नरम थे, और न बहुत उग्र। नरम विचारों के लोग बहुत उग्र परिवर्तन नहीं करना चाहते। वे परम्पराओं को यथासंभव मानते हैं। किंतु उग्र सुधारवादी परिवर्तन के लिए आतुर रहते हैं। वे समझते हैं कि परम्पराएँ सुधार और उन्नति में बाधक हैं। तब से नरम विचारों के लोग, जो सहसा परिवर्तन से घबराते हैं, 'दक्षिणपंथी' और उग्र सुधारवादी या उग्र परिवर्तन चाहनेवाले 'वामपंथी' कहलाने लगे। इस समय इस देश में 'वामपंथी' वह व्यक्ति कहलाता है जो साम्यवाद (कम्यूनिज्म) या समाजवाद (सोशलिज्म) में विश्वास करता हो। साम्यवादी कट्टर वामपंथी (ऐक्स्ट्रीम लेफ्टिस्ट), और समाजवादी साधारण वामपंथी माने जाते हैं। जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय कांग्रेस ही प्रायः एकमात्र राजनीतिक दल था। वह समाजवादी था। कम्यूनिस्ट पार्टी पहिले भी इस देश में थी। किंतु वह बहुत बड़ी न थी। कांग्रेस के सत्तारूढ़ होने पर, भिन्न-भिन्न कारणों से, उसके कुछ लोग कम्यूनिस्ट दल में चले गये और कुछ लोगों ने कांग्रेस से अलग होकर एक दूसरा समाजवादी दल बनाया जो बाद में 'प्रजा समाजवादी' दल कहलाया। किन्हीं कारणों से इसका भी विघटन हुआ, और इसके कुछ सदस्यों ने इससे अलग होकर लोहियाजी के नेतृत्व में 'समाजवादी' दल बनाया। इनके नेता पहिले किसी न किसी समय कांग्रेस में थे। जनता उनसे परिचित थी। और ये चारों दल भारत के राजनीतिक मंच पर जम गये। किंतु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ये सब 'वामपंथी' दल हैं क्योंकि ये साम्यवादी या समाजवादी हैं। भारत में कोई प्रभावशाली 'दक्षिणपंथी' दल नहीं था।

प्रत्येक देश में सभी विचारों के लोग होते हैं। कुछ उग्र सुधारवादी होते हैं, कुछ मध्य मार्ग के लोग होते हैं कुछ नरम विचारों के होते हैं। कुछ उग्र परिवर्तन के लिए आतुर होते हैं। कुछ धीरे-धीरे परिवर्तन चाहते हैं। कुछ परम्पराप्रिय होते हैं। इस देश में भी अवश्य ही ऐसे लोग हैं जो विचारों से 'दक्षिणपंथी' हैं। किंतु राजनीतिक क्षेत्र में जो मुख्य चार दल थे,, वे चारों ही 'वामपंथी' थे। उनका (दक्षिणपंथी विचारों का) प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई दल नहीं था। अतएव दक्षिणपंथी मतदाता या तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना मत डालता ही न था, और यदि डालता तो उसे सबसे कम वामपंथी दल को अपना मत देना पड़ता।

इस चुनाव की एक विशेषता यह है कि इसमें दो 'दक्षिणपंथी' दल मैदान में आये। इनमें से एक (जनसंघ) की स्थिति पिछले चुनाव में भी थी। किंतु उस समय वह एकदम नया था और उसे अपना प्रचार करने का पूरा अवसर नहीं मिला था। इस चुनाव में उसे इन पाँच वर्षों में काम करने और प्रचार करने का अवसर मिला। कुछ लोगों की सम्मति में यह 'साम्प्रदायिक' दल है। किंतु जनसंघ इसका विरोध करता है। डा० सम्पूर्णानंद भी उसे साम्प्रदायिक दल नहीं मानते। इस बार अपनी असाम्प्रदायिकता प्रमाणित करने के लिए उसने अपने टिकट पर कई मुसलमान प्रत्याशी चुनाव के लिए खड़े भी किये, और उनमें से एक (राजस्थान के श्री जब्बार) चुनाव जीत भी गये। किंतु यह निर्विवाद है कि वह दक्षिणपंथी दल है। दूसरा दक्षिणपंथी दल हाल ही में स्थापित हुआ और पहली बार चुनाव में खड़ा हुआ। यह है 'स्वतंत्र दल'। इसकी स्थापना श्री राजगोपालाचारी ने की जो किसी समय कांग्रेस के एक प्रमुख स्तंभ थे। कांग्रेस के एक दूसरे भूतपूर्व प्रमुख नेता प्रोफेसर रंगा इसके अध्यक्ष हैं। उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल और पुराने कांग्रेसी नेता श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी सरीखे लोग भी इसमें सम्मिलित हो गये। यह दल स्पष्ट रूप से साम्यवाद और समाजवाद के विरुद्ध है। ऐसे प्रतिष्ठित लोगों के कारण कितने ही दक्षिणपंथी विचारों के राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, जमींदार, उद्योगपति आदि भी इसमें सम्मिलित हो गये। इन लोगों के सहयोग के कारण इस दल की महत्ता एकदम बढ़ गयी और अल्पकाल ही में इसका इतना प्रभाव फैल गया कि देश के विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं में उसे अपने पहिले ही चुनाव में १६६ स्थान मिल गये। लोकसभा में भी यह दल अपने १८ सदस्य भेजने में सफल रहा। जनसंघ को अपेक्षाकृत कम सफलता मिली, किंतु उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की विधान सभाओं में उसने क्रमशः ४८ और ४१ स्थान प्राप्त कर लिये। भारत के तीसरे चुनाव की एक उल्लेखनीय बात दक्षिणपंथी इन दो दलों का भारत की राजनीति में अवतरण है।

इस टिप्पणी के लिखते समय तक चुनाव के विशेष विवरण और आँकड़े प्राप्त नहीं हुए। उनके प्राप्त होने पर हम आवश्यकतानुसार अपने विचार प्रकट करेंगे।

डाक विभाग में गड़बड़ी और उसका परिणाम—हमारे एक ग्राहक (श्री झम्मनलाल मिश्र, ग्राम व पोस्ट कुंडरी, जिला शाहजहाँपुर) ने हमें यह पत्र भेजा है—

'विनम्र निवेदन है कि सन् ६० ई० से मैं सरस्वती का ग्राहक हूँ। पिछले वर्ष केवल ११ अंक प्राप्त हुए। इस वर्ष सन् ६१ में अगस्त का अंक वी० पी० द्वारा प्राप्त हुआ। सितम्बर व अक्टूबर के अंक नहीं मिले। व्यवस्थापक महोदय को लिखने पर उन्होंने दोनों अंक भिजवाये तथा प्राप्त हुए। नवम्बर, दिसम्बर ६१ और जनवरी ६२ के अंक अभी तक नहीं आये। फरवरी की आज केवल ५ तारीख है। उसकी शिकायत करना व्यर्थ है। डाकघर मेरे मकान से मिला हुआ है। डाक मेरे सामने खुलती है। इसलिए यहाँसे पत्र गायब होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। पो० आफिस जलालाबाद के पोस्ट मास्टर महोदय से शिकायत करने पर उत्तर मिलता है कि अगर आपका पत्र आता है तो अवश्य भेजा जाता है। न आये तो हम कहाँ से भेजें?

कहते हैं तुम्हें होश नहीं इज़्तराब में।
सारे गिले तमाम हुए एक जवाब में।

इसी प्रकार पिछले दो वर्ष तक मैं वैद्यनाथ भवन द्वारा सम्पादित सचित्र आयुर्वेद का ग्राहक रहा परन्तु अंक ठीक-ठीक संख्या में प्राप्त न हो सकने के कारण मँगवाना बंद करना पड़ा। मैं समझता हूँ कि इस शासन में ऐसी छोटी-छोटी बातों का प्रबंध होना असंभव है। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप कार्यालय से मेरे नाम पत्र भिजवाना बंद कर दें क्योंकि मुझे पत्र प्राप्त नहीं होता, कार्यालय को कोई लाभ नहीं, अपने पास धन तथा समय दोनों की कमी है। अतः आगे बढ़ने में विवशता है। विवशता का नाम संतोष है। जब तक हमारी जनप्रिय सरकार का शासन है तथा ग्रामनिवास अनिवार्य है तब तक सम्भवतः ज्ञानपिपासा पर नियंत्रण रखना ही पड़ेगा।"

हमारे यहाँसे नियमित रूप से जाँच-पड़ताल करके ग्राहकों के पास सरस्वती भेजी जाती है। ऐसे कितने ही शिकायती पत्र आते हैं, और डाक विभाग की अव्यवस्था का ज्ञान होने के कारण हम शिकायत करनेवालों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त प्रतियाँ भेज भी देते हैं। किंतु इससे ग्राहकों को जो असुविधा और खीज होती है, और हमें अतिरिक्त अंक भेजने के कारण जो क्षति होती है, वह अपने स्थान पर मौजूद है। स्वतंत्रता-पूर्व के युग में डाक विभाग अपनी कार्यकुशलता और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध था। किंतु इन पिछले तेरह-चौदह वर्षों में उसमें आश्चर्यजनक अवनति हुई है। पहिले साधारण डाक से पुस्तकें, कलेंडर, डायरियाँ आदि भेजना साधारण बात थी और वे बराबर यथास्थान पहुँच जाती थीं। किंतु अब साधारण डाक से भेजने पर ये वस्तुएँ भूले-भटके ही यथास्थान पहुँचती हैं। इसीलिए कितने ही प्रतिष्ठानों ने डाक में भेजने के लिए कलेंडर आदि प्रकाशित करना ही बंद कर दिया है। सचित्र मासिक पत्रों का यथास्थान पहुँचना अब धीरे-धीरे दुरूह होता जा रहा है। देहातों की कौन कहे, बड़े-बड़े नगरों में भी वे नियमित रूप से नहीं पहुँचते। दिल्ली और लखनऊ ऐसे नगरों में भी उनके न पहुँचने की सूचनाएँ हमें कभी-कभी प्राप्त होती हैं। हमारे कितने ही ग्राहकों ने हमसे कहा है कि वर्ष के पूरे बारह अंक उन्हें शायद ही किसी वर्ष मिलते हों। 'रीडर्स डाइजेस्ट' ऐसे अँगरेजी पत्रों को डाक से मँगानेवाले कई सज्जनों ने भी हमसे ऐसी ही शिकायत की। डाक विभाग ने वी० पी० का रजिस्ट्री कराना अनिवार्य कर दिया और रजिस्ट्री का शुल्क बेहद बढ़ा दिया है। इससे ग्राहक को वी० पी० से मँगाने से पत्र का अधिक मूल्य तो देना ही पड़ता है, फिर, इसके ऊपर यदि उसे नियमित रूप से पत्र भी न मिले तो उसकी खीज बिल्कुल उचित है। गाँवों और छोटे नगरों में पत्र-विक्रेताओं के द्वारा समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ नहीं पहुँचाई जा सकतीं। डाक ही एक मात्र माध्यम है। उसकी जब यह दशा है, और यह दशा दिनों-दिन बदतर होती जाती है, तब पत्र-पत्रिकाओं द्वारा जनता का ज्ञानवर्द्धन करना और उनकी जानकारी को अद्यतन रखना असंभव है। आज डाकविभाग में इस प्रकार की खसोट का आकार इतना बढ़ गया है कि वह एक देशव्यापी और गंभीर समस्या हो गयी है। हमारी सरकार बड़ी-बड़ी नयी योजनाओं को सफल करना चाहती है। किंतु जब वह एक ऐसे विभाग में, जिसमें कार्यकुशलता और ईमानदारी की पुरानी और ऊँची परम्पराएँ विद्यमान थीं, उत्तरोत्तर गिरावट देखती और बर्दाश्त करती है, तथा छोटी-मोटी चोरियों और खसोट को नहीं रोकती या रोक नहीं सकती, तब उन विभागों का सुधार कैसे कर सकती है जिनमें ऐसी परम्पराएँ नहीं थीं? डाक विभाग का काम प्रत्येक नागरिक से पड़ता है। उसकी कार्यकुशलता की गिरावट सरकार की कुव्यवस्था का सबसे व्यापक विज्ञापन होगा। क्या हम आशा करें कि डाक विभाग इस नासूर को निकालने का शीघ्र ही कोई सफल प्रयत्न करेगा?

विश्वविद्यालय और निराला—दिसम्बर के अंक में हमने 'निराला संस्थान' शीर्षक एक टिप्पणी दी थी जिसमें इस बात पर खेद प्रकट किया गया था कि हमारे स्थानीय विश्वविद्यालयों में निरालाजी के जीवन-काल में उनके साहित्य की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया। इस संबंध में हमारे एक कृपालु पाठक ने हमारा ध्यान बड़ौदा-विश्वविद्यालय के हिंदी पाठ्यक्रम की ओर दिलाया है जिसका हमको ज्ञान नहीं था। उन्होंने हमें सूचित किया है कि "हिंदी क्षेत्र के प्रमुख विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों ने निराला को अब तक क्या स्थान दिया है, यह आपने अपनी टिप्पणी में स्पष्ट कर दिया है। मैं उस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। किंतु यह अवश्य बता देना चाहता हूँ कि अहिंदी क्षेत्र में एक ऐसा विश्वविद्यालय भी है जिसमें महाकवि निराला के अध्ययन को प्रमुख स्थान प्राप्त है। बड़ौदा-विश्वविद्यालय में १९५९ से बी० ए० (आनर्स) में विशेष कवि के रूप में निराला के काव्य साहित्य का अध्ययन हो रहा है। यद्यपि विकल्प के रूप में इस प्रश्नपत्र में अन्य कवियों के अध्ययन की भी व्यवस्था है, पर निराला साहित्य का अध्ययन करनेवाले छात्रों की संख्या सबसे अधिक रहती है। इस वर्ष भी ऐसे छात्रों की संख्या आठ है। एम० ए० के प्रथम प्रश्नपत्र में उनका 'तुलसीदास' यहाँ पूरा-पूरा पढ़ाया जाता है। अन्य पाठ्यक्रमों में भी उनकी 'अलका' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' आदि पुस्तकें निर्धारित हैं। विशेष ज्ञातव्य यह है कि यहाँ के एक शोध छात्र "महाकवि निराला : जीवनी और काव्य" विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि के लिए शोध-कार्य कर रहे हैं। यह विषय विश्वविद्यालय से स्वीकृत हो चुका है। इसके अतिरिक्त इस विश्वविद्यालय में 'निराला परिषद' नाम की एक संस्था तीन वर्ष से चल रही है जिसकी स्थापना सन् १९५९ में महाकवि निरालाजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जन्मतिथि के अवसर पर वसंतपंचमी के दिन हुई थी।" हमें यह सूचना पाकर प्रसन्नता हुई। वास्तव में यह विस्मयपूर्ण हर्ष की बात है कि जब निरालाजी के निवास-नगर के, और उस नगर के विश्वविद्यालय ने, जो अब अपने को निराला की कर्मभूमि होने का दावा करता है, निरालाजी के कृतित्व का समुचित आदर नहीं किया, तब सुदूरस्थ एक अहिंदी प्रदेश के विश्वविद्यालय में उनकी कद्र की गयी। बड़ौदा-विश्वविद्यालय नया है। उसका हिंदी विभाग भी नया है। वह रूढ़िग्रस्त और आत्म-केंद्रित हिंदी प्राध्यापकों से मुक्त है। इसीलिए वह दूर रहने के कारण निरालाजी के महत्त्व का अधिक वस्तु-निष्ठ मूल्यांकन कर सका। इसके लिए वह, और उसके हिंदी विभाग के अध्यक्ष, कुँअर चंद्रप्रकाशसिंह प्रशंसा के पात्र हैं। शायद हिंदी क्षेत्रों के अँगरेजीदाँ हिंदी प्राध्यापक अँगरेजी की उस कहावत के कायल हैं कि पैगम्बर अपने ही घर में नहीं पुजता। निरालाजी का सबसे बड़ा अपराध था कि वे हिंदी क्षेत्र में उत्पन्न हुए। यदि वे कहीं दूर पैदा हुए होते, और यदि कुछ नेताओं और विदेशी विद्वानों ने उनकी प्रशंसा कर दी होती तो हमारे हिंदी प्राध्यापक अवश्य उन पर दृष्टिपात करने की कृपा करते।

अँगरेजी माध्यम और मेडिकल शिक्षा—जिस भारत ने आयुर्वेद का आविष्कार किया उसमें आज वह अपनी अंतिम साँसें गिन रहा है। डाक्टरी या ऐलोपैथी प्रणाली सभी जगह फल-फूल रही है, और आज वही इस देश की मुख्य चिकित्सा-प्रणाली है। उसकी शिक्षा देने के लिए प्रत्येक राज्य में अनेक 'मेडिकल कालेज' हैं। इनमें शिक्षा का माध्यम अँगरेजी है। गत दिसंबर में बड़ौदा में मेडिकल शिक्षा की उन्नायक भारतीय परिषद् (इंडियन ऐसोसिएशन फार दि ऐडवांसमेंट आफ मेडिकल एज्यूकेशन) का दूसरा अधिवेशन हुआ। गुजरात राज्य के मुख्य मंत्री डा० जीवराज मेहता हैं जो स्वयं बड़े कुशल और प्रसिद्ध डाक्टर हैं। उन्होंने उस सम्मेलन में कहा—

"कालिजों में जो चिकित्सा-संबंधी विषय पढ़ाये जाते हैं उनको ठीक तरह से समझने और आत्मसात् करने के लिए यह आवश्यक है कि यह शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं, या मातृभाषा अथवा हिंदी में (यदि वह मातृभाषा उसी परिवार की हो) दी जाय। इसके साथ ही अँगरेजी पढ़ाने का भी प्रबंध हो जिससे विद्यार्थी अँगरेजी में छपी चिकित्सा शास्त्र संबंधी पुस्तकें और पत्रिकाएँ पढ़ सकें और दूसरे देशों में होने वाले चिकित्सा संबंधी विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकें।"

डा० मेहता ने अंत में अँगरेजी-ज्ञान को इसलिए आवश्यक बतलाया कि अभी क्षेत्रीय भाषाओं या हिंदी में आधुनिक चिकित्साशास्त्र संबंधी पाठ्य पुस्तकें भी नहीं हैं, सामान्य पुस्तकों की तो बात ही क्या की जाय। हमारी समझ में जब तक मेडिकल कालिजों में शिक्षा का माध्यम अँगरेजी रहेगा तब तक क्षेत्रीय भाषाओं या हिंदी में इस विषय की पुस्तकें तैयार ही नहीं हो सकतीं। बाजार में जिस वस्तु की माँग ही नहीं है, उसे कौन तैयार करेगा? डाक्टरी के व्यवसाय में साहित्यिक रुचि के लोग कम ही जाते हैं, और जो जाते भी हैं उन्हें अपने व्यवसाय से इतना अवकाश नहीं मिलता कि वे पुस्तक-लेखन कर सकें, क्योंकि डाक्टर का काम अत्यधिक समय और परिश्रम दोनों ही माँगता है। इसके अतिरिक्त, आज डाक्टरी की पुस्तक लिखने से विशेष आर्थिक लाभ भी नहीं हो सकता। आज के वातावरण में भारतीय डाक्टरों से यह अपेक्षा करना कि वे केवल देश-सेवा या मातृभाषा-प्रेम से प्रेरित होकर चिकित्साशास्त्र पर पुस्तकें लिखने का कष्ट करेंगे, व्यर्थ है। हाँ, यदि राज्य किसी अच्छे डाक्टर को दस-बीस हजार रुपये दे तो शायद वह अपने विषय पर एक पुस्तक लिख दे। किंतु भारतीय भाषाओं में पुस्तक लिख सकने की योग्यता रखनेवाले सुयोग्य डाक्टर इस देश में शायद दो-चार ही मिलें। इसका कारण यह है कि डाक्टरी में विज्ञान के विद्यार्थी ही लिये जाते हैं जिन्होंने अपनी मातृ-भाषा की उतनी ही न्यूनतम शिक्षा प्राप्त की है जितनी अनिवार्य है। उसके बाद पाँच वर्ष के मेडिकल कालिज के वातावरण में, और उसके बाद अपने व्यवसाय में, वे अपनी भाषा भूल जाते हैं, सीखते नहीं। इस कारण जब तक सरकार स्वयं प्रचुर धनराशि व्यय करके अच्छे डाक्टरों से भारत की परिस्थिति के अनुकूल चिकित्साशास्त्र संबंधी पुस्तकें तैयार नहीं कराती तब तक वे तैयार नहीं हो सकतीं। और जब तक वे तैयार नहीं होतीं, और मेडिकल कालिज के प्राध्यापकों को अपनी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा पर इतना अधिकार नहीं हो जाता कि वे उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ा सकें, तब तक ये पुस्तकें भी बेकार हैं। यदि भविष्य में कभी भारतीय भाषाओं का माध्यम प्राविधिक विषयों की शिक्षा में लाना है तो केवल मेडिकल कालिजों में ही नहीं, सभी प्रकार के प्राविधिक और वैज्ञानिक महाविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं और हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर देनी चाहिए जिससे वे अपनी भाषा न भूल जायें और आवश्यकता पड़ने पर उसके माध्यम से शिक्षा दे सकें।

डा० मेहता ने बतलाया कि जापान में मेडिकल कालिजों की शिक्षा का माध्यम जापानी है। पाठ्य पुस्तकें तो जापानी भाषा में हैं ही, उनके अतिरिक्त उसी भाषा में चिकित्सा-शास्त्र संबंधी सभी तरह का उच्चस्तरीय साहित्य भी उपलब्ध है। उन्होंने अधिकांश पारिभाषिक शब्दावली भी जापानी भाषा में बना ली है और उसीका व्यवहार करते हैं। अवश्य ही इस कार्य में समय लगा होगा। यदि हम आज प्रयत्न आरंभ कर तो दस-बीस वर्षों में ही कुछ प्रगति कर सकेंगे। किंतु दुर्भाग्य यह है कि हमारे भाग्य-विधातागण अँगरेजी के जादू से इतने मोहित हैं, और उन्हें भारतीय भाषाओं की क्षमता में इतना अविश्वास है कि वे इस दिशा में एक पैर भी नहीं बढ़ाना चाहते। मेडिकल शिक्षा जिन लोगों के हाथों में हैं वे अँगरेजी के कट्टर पक्षपाती हैं, और उन्हें हमारे भाग्य-विधाताओं का पूरा समर्थन प्राप्त है। जब तक मेडिकल शिक्षा भारतीय भाषाओं में नहीं दी जायगी तब तक वह थोड़े से लोगों तक सीमित रहेगी। उसे 'समाजवादी' बनाने के लिए आवश्यक है कि वह जनता की भाषा में सिखलायी जाय।

भारतीय कलाभवन—जनवरी में प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने हिंदू विश्वविद्यालय में भारतीय कलाभवन का उद्घाटन कर दिया। यह भारत की एक प्रसिद्ध गौरव-संस्था है। उत्तर प्रदेश ने तीन ऐसे व्यक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने अपने उत्कट व्यक्तिगत कलाप्रेम के कारण, अकेले अपने प्रयत्न से अपूर्व और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ स्थापित कर दीं। इन तीनों की लगन इतनी तीव्र थी कि इनके मित्र इन्हें 'सनकी' समझते थे। काश! ऐसे सनकियों की संख्या और अधिक होती! इनमें सर्वप्रथम मथुरा के स्वर्गीय पं० राधाकृष्ण थे जिन्होंने मथुरा कलाशैली की अज्ञात और उपेक्षित वस्तुओं को एकत्र करने का महत्त्वपूर्ण काम किया। उनका संग्रह (जो मथुरा के कर्जन म्यूजियम के नाम से प्रसिद्ध है) आज संसार के कुषान युग और मथुरा की कलाशैली का सबसे महत्त्वपूर्ण संग्रहालय है। दो-तीन वर्ष पहिले इसमें संग्रहीत बुद्ध की एक मूर्ति के लिए एक अमरीकन धनी ने छः करोड़ रुपये लगा दिये थे! दूसरे कलाप्रेमी पं० व्रजमोहन व्यास थे जिन्होंने प्रयाग के संग्रहालय की नींव डाली। तीसरे सज्जन काशी के राय कृष्णदासजी हैं जिनका कलाप्रेम बिल्कुल भिन्न प्रकार का है। ये केवल संग्रह करनेवाले ही नहीं, कला के पारखी और अपने विषय के ऊँचे विद्वान् भी हैं। भारतीय कलाभवन उनके सारे जीवन की कला-साधना का मूर्त परिणाम है। यह इस समय देश का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संग्रहालय है जिसमें भारतीय कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने संग्रह किये गये हैं। वे यहाँ केवल संग्रह ही नहीं किये गये, बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदर्शित भी किये गये हैं। राय साहब ने इस महत्त्वपूर्ण संस्था का 'अल्प आरंभ' नागरी-प्रचारिणी सभा में किया था, किंतु शीघ्र ही पुराणों में वर्णित ऋषि की मछली की तरह, वह इतना बढ़ गया कि उसका चलाना सभा के वश की बात न रही। राय साहब ने बड़ी बुद्धिमानी से उसे हिंदू विश्वविद्यालय को दे दिया, और जनक की ममता तथा वात्सल्य के साथ वे उस शिशु का पोषण करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक वातावरण में यह शिशु पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गया। भारत-सरकार की सहायता से उसने उसके लिए एक आधुनिकतम और सुंदर भवन बनवाया जिसे रायसाहब ने अपनी सहज कलात्मक रुचि से इस प्रकार सजाया है कि सारा संग्रह निखर और चमक उठा है। प्रधान मंत्री ने इस भवन का उद्घाटन किया। राय साहब की मौलिक कला-रुचि ने उद्घाटन का प्रकार भी बदल दिया। कैंची से द्वार पर लगे रेशम के फीते को काटकर उद्घाटन करने की पुरानी प्रथा के स्थान पर राय साहब ने फुंनगीदार एक अत्यन्त सुंदर रेशमी डोरी में ऐसी गाँठ लगा दी थी कि उसके एक छोर को खींचने से वह खुल जाती थी। उद्घाटन की इस मौलिक और सुंदर प्रक्रिया की उपस्थित लोगों ने बड़ी सराहना की। भारतीय कलाभवन हमारे देश में भारतीय कला की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहा है। इसके उद्घाटन से हिंदू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय और उत्तर भारत में कला का एक अत्यंत उत्कृष्ट संग्रहालय कला-प्रेमी जनता और कला के विद्यार्थियों को उपलब्ध हो गया है जो देश के कलाप्रेमियों के लिए एक तीर्थस्थान बन गया है। हम इस अवसर पर राय साहब को अपने जीवन के एक सुखद, सुरुचिपूर्ण और लोकोपकारी स्वप्न को मूर्त करने के लिए हार्दिक बधाई देते हैं।

श्री सजनीकान्त दास—गत मास बंगला की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'शनिवारेर चीठी' के संस्थापक और सम्पादक श्री सजनीकान्त दास का स्वर्गवास हो गया। सजनीकान्त बाबू की मृत्यु से बंगला साहित्य का एक देदीप्यमान नक्षत्र टूट गया। उनकी प्रतिभा और उनके व्यक्तित्व ने बंगला साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है, और पिछले तीन दशकों में बंगला साहित्य ने जो रूप ग्रहण किया उसको स्थिर करने में उन्होंने बड़ा काम किया। यद्यपि वे कवि और कथाकार भी थे तथापि उनकी ख्याति मुख्यतः आलोचक के रूप में ही थी। आज से तीस वर्ष पहिले मार्क्स और फ्राइड के सिद्धान्तों ने नवीन बंगला-लेखकों को सहसा प्रभावित किया और नवीन साहित्य में जीवन और उसकी समस्याओं को उन्हीं सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से देखा जाने लगा। आज—इतने दिनों बाद—हम कह सकते हैं कि वह दृष्टिकोण यथार्थ और वैज्ञानिक था, और उससे साहित्य का हित ही हुआ। किन्तु उन दिनों एक तो वह दृष्टिकोण नवीन और अपरिचित था, दूसरे, नूतनता के उत्साह में उसका उपयोग करने में कुछ लोगों ने अति कर दी थी। सजनी बाबू ने अपनी प्रखर आलोचनाओं से उन लेखकों में संतुलन स्थापित किया। वे ऊँचे साहित्यकार तो थे ही, और विद्वत्तापूर्ण एवम् शास्त्रीय आलोचना भी कर सकते थे, किन्तु उन्होंने व्यंग्य और हास्य शैली को अपनाकर असंतुलित नूतनतावादियों की अनेक बातों को जनता के सामने हास्यास्पद बना दिया। उनमें व्यंग्य की गजब की प्रतिभा थी। व्यंग्य और हास्य का तनिक भी अवसर पाने पर वे उसे हाथ से नहीं जाने देते थे और चुटीली भाषा में ऐसा व्यंग्य करते थे कि व्यंग्य का शिकार तिलमिलाकर रह जाता था। वे छोटे-बड़े किसीको भी नहीं छोड़ते थे। महाकवि रवीन्द्रनाथ स्वदेशी के बड़े भक्त थे। स्वदेश में बनी किसी भी वस्तु की वे सराहना कर देते थे। कहते हैं कि एक बार किसी ने एक ब्लेड बनाया और वह महाकवि के पास प्रशंसापत्र के लिए जा पहुँचा। देश में तब तक शायद ब्लेड नहीं बने थे। वे उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि देश में ब्लेड भी बनने लगे हैं। बनानेवाले ने एक प्रशंसापत्र की याचना की। अपनी सरलता में उन्होंने उसीसे स्वयं प्रशंसापत्र लिखने को कह दिया और जो प्रारूप उसने लिखकर दिया उसपर उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये। बनानेवाले ने उस प्रशंसापत्र को अपने विज्ञापन में छपवा दिया। उस प्रशंसापत्र में लिखा था कि मैंने इस ब्लेड का उपयोग किया और इसे बहुत अच्छा पाया। सजनी बाबू की निगाह में वह विज्ञापन आया। भला वे कब चूकनेवाले थे! उन्होंने कहा कि हमें गुरुदेव से मिलने का बहुधा अवसर मिलता है। अभी पिछले सप्ताह ही हमने उनके दर्शन किये और उन्हें केवल धोती पहिने उघारे शरीर बैठे देखा। उनमें बालों की कहीं कोई कमी नहीं दिखलायी पड़ी। तब यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने किस प्रकार और कहाँ उस ब्लेड का उपयोग करके उसका परीक्षण किया। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि वे किसीको भी नहीं छोड़ते थे। उन्होंने 'शनिवारेर चीठी' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला जिसमें साहित्यिक आलोचना रहती थी, और उनके वाग्बाणों का तूणीर कभी रिक्त नहीं होता था। इस प्रकार का आलोचना-पत्र और किसी भारतीय भाषा में नहीं प्रकाशित हुआ। वह लोकप्रिय ही नहीं था, उससे बंगला साहित्य का बड़ा हित भी हुआ। राजशेखर वसु का हास्य और व्यंग्य समाज पर होता था, किन्तु सजनी बाबू ने साहित्य को अपना क्षेत्र बना रखा था। इस युग में बंगला में ये दो महान् हास्य और व्यंग्य लेखक हुए जिनके जोड़ के लेखक देश में अभी तक उत्पन्न नहीं हुए। सजनी बाबू ने बंगला साहित्य के इतिहास का भी गंभीर अध्ययन किया था और कई मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण खोजें की थीं। स्वभाव के वे अत्यंत सरल और विनोदी थे। बंगला साहित्य-संसार में वे एक शक्ति थे और उनका प्रभाव बहुत व्यापक था। उनके निधन से भारतीय साहित्य, विशेषकर बंगला साहित्य की असीम क्षति हुई है। हम उनकी स्मृति में आदर से नतमस्तक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी नौकरशाही और हिंदी--भारतीय संसद (पार्लियामेंट) के हिंदी-प्रेमी सदस्यों ने हिंदी-प्रचार के लिए संसदीय हिंदी परिषद् नाम की एक संस्था बना रखी है। यह 'राजभाषा' नाम का एक पाक्षिक पत्र प्रकाशित करती है। इसके सम्पादक संसद के ही एक प्रमुख सदस्य श्री मन्नूलाल द्विवेदी हैं। उसके २२ फरवरी के अंक में 'आदेश-परिपालन की समस्या' नाम से एक सम्पादकीय लेख छपा है। उसमें केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी के उपयोग के संबंध में विचार किया गया है। उसमें प्रसंगवश यह कहा गया है--

"केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी को केन्द्र में कामकाज की भाषा बनाने के संबंध में कितने ही आदेश निकाले। इन आदेशों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि अब केन्द्रीय सरकार के कामकाज की भाषा हिंदी हो जायगी। ये आदेश समय-समय पर निकलते रहे हैं। किसी आदेश में हिंदी जाननेवालों की संख्या माँगी गयी तो किसीमें यह कहा गया कि जो लोग हिंदी जानते हैं वे अब फाइलों पर हिंदी में नोट लिख सकते हैं। यह आदेश ऐसा है जिससे सभी पाठकगण तथा जनता यह समझेगी कि अब तो केन्द्र में हिंदी आ गयी। परन्तु बात ऐसी नहीं है। सरकार तो आदेश जारी करके चुप बैठ जाती है परन्तु उन आदेशों का परिपालन करना काफी कठिन समस्या है। सरकार ने इन फाइलों पर हिंदी में नोट लिखने की बात तो कह दी परन्तु जो भी हिंदी में नोट लिखता है वही हिंदी-विरोधियों से भली-बुरी सुनता है। उससे कहा जाता है, क्या आप अँगरेजी नहीं जानते ? यह क्यों हो रहा है, उसे शायद आप जानते ही होंगे। बाबू लोग तो हिंदी नोट लिखकर भेज देते हैं परन्तु उसके ऊपर वाले अधिकारी को हिंदी नहीं आती और इसलिए वह अधिकारी उससे चिढ़ जाता है और ऐसा भी सुनने को मिला है कि उन बाबुओं की रिपोर्टें भी खराब की गयीं तथा उन्हें अपमानित भी किया गया। फाइल पर नोट लिखने की बात तो दूर रही, बेचारे चपरासी जो अँगरेजी नहीं जानते उन्हें भी अपनी छुट्टी की अर्जी अँगरेजी में लिखने को बाध्य किया जाता है क्योंकि छुट्टी मंजूर करनेवाला सहायक या अधिकारी अँगरेजी ही जानता है और उन्हें हिंदी का ज्ञान नहीं है। जिन लोगों ने अपनी छुट्टी की अर्जी हिंदी में लिखी उन अर्जियों को यह कहकर लौटा दिया जाता है कि कृपया इसे अँगरेजी में लिखकर भेजा जाय। कैसी दुर्दशा है आज हमारी राष्ट्र-भाषा की। कहने को तो सरकार यही कहती रहती है कि अब तो सारा कामकाज हिंदी में ही होने लगा है और जहाँ नहीं हो रहा है वहाँ भी शीघ्र ही हिंदी में काम शुरू हो जायगा, परन्तु उनका पालन करनेवाले अधिकारी यदि उन आदेशों को नहीं चाहते तो सरकार के लाख चाहने पर भी हिंदी में काम शुरू नहीं हो सकता।"

इसे पढ़कर हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। हिंदी राज्यों में तो हिंदी एकमात्र राजभाषा है। वहाँ भी अधिकारीगण अँगरेजी में ही काम करते हैं और हिंदी के सम्बन्ध में उनका भी रुख वही है जो केंद्र के अधिकारियों का। यही कारण है कि राजभाषा घोषित होने के चौदह वर्ष बाद भी हिंदी राज्यों में--विशेषकर उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में---आज भी अँगरेजी प्रायः पूर्ववत् बनी हुई है और राजभाषा हिंदी में जनता को भुलावा देने के लिए कुछ ऊपरी दिखाऊ काम दिखला दिया जाता है। स्वर्गीय पं० रविशंकरजी शुक्ल के समय में पुराने मध्यप्रदेश में, और मध्यभारत में भी बहुत कुछ काम हिंदी में होता था। किन्तु 'संस्कृतप्रेमी' डा० कैलाशनाथ काटजू के शासनकाल में अँगरेजी फिर उसी जगह पर आ गयी जहाँ वह अँगरेजों के समय में थी। उत्तर प्रदेश में तो हिंदी ने कभी अँगरेजी का दशांश भी स्थान नहीं ले पाया। शायद उत्तर प्रदेश सरकार का जो काम चौदह वर्ष पहिले अँगरेजी में होता था उसका ९८ या ९९ प्रतिशत काम आज भी अँगरेजी ही में होता है। यदि मशाल लेकर भी तलाश किया जाय तो इन हिंदी राज्यों में एक भी उच्च अधिकारी न मिलेगा जो अपना पाँच प्रतिशत काम भी हिंदी में करता हो। साधारण रूप से ये सभी अँगरेजी में ही काम करते हैं और यदि हिंदी की टिप्पणियाँ उनके सामने आ जायँ तो उन्हें उलझन मालूम होती है, और कुछ तो हिंदी के उपयोग को दबाने के लिए वे ही हथकंडे बरतते हैं जिनका उपयोग केंद्र के अधिकारी करते हैं। हमारे मंत्रीगण भी सामान्यतः हिंदी-निरपेक्ष हैं और अफसरों के अँगरेजी नोटों पर अँगरेजी में ही आदेश देने में गौरव का अनुभव करते हैं। मंत्रियों में कुछ अपवाद अवश्य है, पर बहुत कम। जब हमारे अधिकारी हिंदी राज्यों में ही हिंदी के एकमात्र राजभाषा घोषित होने के दस-बारह साल बाद भी अँगरेजी का ही प्रायः पूर्ववत् उपयोग करने का हठ कर रहे हैं, और जनता तथा हमारे मंत्री निरुपाय होकर इन सर्वशक्तिमान् अधिकारियों से चूँ तक नहीं कर सकते तो केंद्र में--जहाँ हिंदी अभी पूर्णतः राजभाषा हुई भी नहीं और जहाँ अहिंदी-भाषी अफसरों की इतनी बहुतायत है--हिंदी की दुर्दशा पर हमें कोई आश्चर्य नहीं। अँगरेजी में कहावत है कि कुत्ता दुम हिलाता है, किंतु हमारे देश में अधिकारी रूपी दुम जनता और मंत्री रूपी कुत्ते को हिला रही हैं, क्योंकि हमारी सरकार नौकरशाही से परिचालित होती है। जब तक मंत्रीगण अपना कर्तव्य नहीं समझेंगे और अधिकारियों को नियंत्रित नहीं करेंगे तब तक अँगरेजी इस देश से, विशेषकर हिंदी क्षेत्र से, नहीं हटाई जा सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तंत्रमार्गी साधना और बौद्ध यान—१

श्री रामधारीसिंह दिनकर

तंत्र-मार्ग की प्रसिद्धि उस समय बहुत अधिक हो गयी जब बौद्धमतावलंबी वज्रयानी साधु उसकी ओर झुके। किन्तु तंत्र-मार्ग इतना नया मार्ग नहीं था। उसकी परंपरा, कदाचित् बुद्ध से भी पूर्व आरंभ हो चुकी थी, शायद उसका मूल प्रागैतिहासिक धर्मों में था। किन्तु, उसके अति विकास में वज्रयान का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसमें संदेह नहीं।

जिस प्रकार बुद्ध के मौलिक उपदेश उपनिषदों की चिन्तन-पद्धति से निकले थे और, बाद को, महायान का आरंभ वैदिक धर्म के अनेक अंगों—मूर्ति-पूजा, अवतार-वाद, आदि—के प्रभावों से हुआ, उसी प्रकार महायान के बाद आरंभ होनेवाले यानों पर हम शाक्त धर्म का प्रभाव देखते हैं।

शाक्त धर्म के अनुसार सृष्टि का उद्भव और विकास शिव और शक्ति के संयोग से होता है। किन्तु, शिव शव और शक्ति प्रेरणा है। शक्ति से प्रेरित होने पर ही शिव में गति उत्पन्न होती है। भाव यह कि केवल ज्ञान निस्पन्द होता है। स्पन्दन अथवा चालना उसमें ऊर्जा अथवा शक्ति से आती है। संसार के रोमांटिक चिंतकों ने जो यह कल्पना की कि नारी प्रेरणा का उद्गम है और पुरुष उसीसे प्रेरित होकर बड़े-बड़े कार्य करता है, मूल में, यह कल्पना शाक्त-दर्शन से पूरा मेल खाती है। शाक्त-दर्शन का सम्बन्ध सांख्य-दर्शन से भी जोड़ा जाता है, क्योंकि सांख्य-दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति, दोनों अनादि हैं और उन्हींके योग से सृष्टि उत्पन्न होती है। सांख्य-दर्शन का प्रभाव अन्य संप्रदायों पर भी पड़ा। विष्णु की शक्ति के रूप में लक्ष्मी की उपासना और ब्रह्मा की शक्ति के रूप में सरस्वती की उपासना, और कुछ नहीं, पुरुष और प्रकृति के समन्वय का ही प्रयास है। इसी क्रम में शिव और उनकी शक्ति पार्वती की कल्पना विकसित हुई। आरंभ में शैव और शाक्त धर्म परस्पर भिन्न नहीं थे और आज भी शाक्त पंथ अन्य पन्थों से दूर, किन्तु, शैव पन्थ के समीप समझा जाता है। किन्तु, कालक्रम में, दोनों पन्थों के बीच दूरता का विधान हो गया। शैव धर्म की साधना पहले भी ज्ञानमयी भक्ति की साधना थी और आज भी शैव मार्ग ज्ञानसम्मत भक्ति का ही मार्ग है। शैव धर्म का ध्येय पहले भी मुक्ति था और आज भी मुक्ति ही है। किन्तु, शाक्त धर्म ने मोक्ष-कामी होते हुए भी, व्यवहारतः, अपना ध्येय मुक्ति नहीं, सिद्धि को माना और उसके साधनों में भी प्रधानता मंत्र, यंत्र और योग की ही हो गयी। योग की साधना शैव धर्म के साथ ही विकसित हुई थी और उसके साथ वह आज भी वर्तमान है, किन्तु शैवों में उसका लक्ष्य आज भी मुक्ति ही माना जाता है। किन्तु शाक्त धर्म ने योग को सिद्धियों के प्रमुख साधन के रूप में अपनाया।

तंत्र-मार्ग की असली विशेषता ही उसके साधनों की विशेषता है। भक्ति, उपासना और प्रार्थना तंत्र-मार्ग में भी हैं, किन्तु, तंत्र-मार्ग भक्ति, उपासना और प्रार्थना का मार्ग नहीं है। तंत्रमार्गी साधक रुदन, गायन अथवा विलाप और प्रार्थनाओं के द्वारा देवी को प्रसन्न करने की आशा नहीं रखता, बल्कि उसका विश्वास मंत्रों के शुद्ध उच्चारण में, मंडलों, वृत्तों और नानाविध यंत्रों के निगूढ़ रहस्य-चिंतन में और योग-पद्धति के द्वारा शरीर में निहित सूक्ष्म शक्तियों के जागरण और विकास में होता है। जब तक शरीर के भीतर निद्रित और प्रच्छन्न शक्तियाँ नहीं जगतीं, साधक को यह विश्वास नहीं होता कि वह सिद्धि के समीप है! जब उसकी कुंडलिनी-शक्ति जाग्रत हो जाती है, तभी वह समझता है कि उसके आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त हो गया। भारत में बहुत दिनों से यह विश्वास रहा है कि जिसकी कुंडलिनी जग गयी, वह चमत्कारपूर्ण शक्तियों से युक्त हो जाता है। वह एक नगर में बैठे-बैठे दूसरे नगर की घटनाओं को देख सकता है तथा वर्तमान में रहकर वह भूत और भविष्य की भी झाँकी ले सकता है। इसलिए योगी, सिद्ध होते ही, देश और काल के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

तंत्र-मार्ग में मंत्रों के शुद्ध पाठ पर जो जोर है उसकी परंपरा तो वेद में ही थी, क्योंकि, वेदों के समय भी समझा यही जाता था कि शुद्ध-शुद्ध उच्चरित हुए बिना मंत्र अपना फल नहीं देते। योग की परंपरा तो इस देश में वेदों के पूर्व से ही आ रही थी। रह गयी मंत्र, यंत्र और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग के साथ संबद्ध चमत्कारों की बात, सो उन चमत्कारों का भी भरपूर उल्लेख अथर्ववेद में है।

तंत्र की व्युत्पत्ति लोग तन् धातु से बतलाते हैं जिसका अर्थ तनाव या फैलाव होता है। किन्तु, तंत्र का अर्थ ज्ञान का विस्तार किया जाता है। तन्यते विस्तारयते ज्ञानं अनेन इति तंत्रम्। यहाँ फिर सांख्य का स्मरण होता है क्योंकि सांख्य में भी संख्या का अर्थ गणना नहीं, प्रत्युत्, चिन्तन है। अतएव, सांख्य का अर्थ है ज्ञान की पद्धति से सत्य की उपलब्धि का मार्ग, जैसे समाधि के द्वारा सत्य की उपलब्धि के मार्ग को योग का मार्ग कहते हैं। किन्तु, सभी ज्ञान तंत्र नहीं है। तंत्र एक विशिष्ट प्रकार का आध्यात्मिक ज्ञान है। कामिकागम के अनुसार तंत्र-साहित्य वह साहित्य है जिसमें तत्व और मंत्र के विषय निरूपित किये गये हैं।

तनोति विपुलान् अर्थात् तत्व-मंत्र-समन्वितान्
त्राणम् च कुरुते यस्मात् तंत्रं ति अभिधीयते।

तत्त्व से तात्पर्य यह कि सृष्टि के मूलभूत नियम और सत्य क्या हैं। मंत्र से यह अभिप्राय कि अक्षरों और शब्दों से उठनेवाली ध्वनियों का वैज्ञानिक स्वरूप और प्रभाव क्या है।

अर्थवाचक शब्द के रूप में "तंत्र" का दूसरा नाम "आगम" भी है और शुद्ध अद्वैत-साधना को छोड़कर आगम, प्रायः, सभी संप्रदायों के मिलते हैं। निगम वेद तथा वेदोद्भूत शास्त्रों को कहते हैं जिनमें मूल वैदिक धर्म का आख्यान है। आगम विभिन्न संप्रदायों की साधनाओं के अलग-अलग मार्ग बताते हैं कि अमुक संप्रदाय का साधक पूजा कैसे करे अथवा ध्यान, धारणा और समाधि के सही तरीके क्या हैं। इस प्रकार, तंत्र और आगम, दोनों के आधार वेद ही माने जाते हैं। कुलार्णव-तंत्र में भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं कि जो शास्त्र वेदोद्भूत हैं उन्हें भी कौलात्मक ही मानना चाहिए।

तस्मात् वेदात्मकम् शास्त्रं विद्धि कौलात्मकं प्रिये!

हिन्दू-धर्म में तंत्र अथवा आगम पाँच माने जाते हैं, गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त। गणेश और सूर्य की पूजा के गौण हो जाने के कारण अब गाणपत्य और सौर आगमों का अपेक्षाकृत कम प्रचार है। बड़े संप्रदाय अब वैष्णव और शैव ही रह गये हैं, किन्तु, शाक्त संप्रदाय का भी अभी, विशेषतः, बंगाल में अच्छा जोर है और तांत्रिक पूजा-पद्धति का अति विकास भी शाक्त-संप्रदाय में ही दिखायी देता है। बल्कि, तंत्र को शाक्त धर्म ने इस जोर से अपना लिया कि अब तंत्रमार्ग कहने से ध्यान सीधे शाक्त धर्म पर चला जाता है।

शाक्त-दर्शन

वामाचार-साधना के कारण शाक्त-धर्म बहुत बदनाम हुआ है, किन्तु, दार्शनिक दृष्टि से शाक्त दर्शन भी अद्वैत दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार सृष्टि के मूल में जो वास्तविक तत्व है वह अद्वैत है। उसका नाम शिव-शक्ति एवं उसका स्वभाव सत्-चित् आनन्द है। शांकर अद्वैत से शाक्त अद्वैत का भेद यह है कि शांकर अद्वैत में माया का अस्तित्व नहीं माना जाता है, किन्तु शाक्त दर्शन में माया भी शिव-शक्ति का ही गुण मानी जाती है। यही गुण विकसित होकर सृष्टि का रूप ग्रहण करता है। शिव-शक्ति में से शिव अचल और शक्ति गतिपूर्ण है। शक्ति की शक्तियाँ दो हैं: एक विद्या जो चेतना उत्पन्न करती है; दूसरी अविद्या जो माया-शक्ति का प्रतीक है। इसी माया-शक्ति के द्वारा एक अनेक बनता है, अनन्त सान्त का आकार ग्रहण करता है और जो अनादि तथा निराकार है वह भूत, जीवन और मन के रूप में प्रकट होता है।

शाक्त दर्शन में आदि तत्व को मातृ-रूप मानने की सामाजिक व्याप्तियाँ ये हुईं कि इस दर्शन के अनुसार नारी-मात्र पूजनीया समझी जाने लगीं। विशेषतः, माताओं और अविवाहित बालिकाओं का शाक्त-धर्म में अत्यंत ऊँचा और पवित्र स्थान है। शाक्त तंत्र में औरतों पर हाथ उठाने की मनाही है और सती-प्रथा को यह तंत्र निन्दित समझता है। बलि-कर्म में भी मादा पशुओं के बलिदान को यह मार्ग कुत्सित बताता है। महानिर्वाण-तंत्र का कहना है कि जो पति अपनी पत्नी को कुवाक्य कहता है उसे प्रायश्चित्त-स्वरूप एक दिन का उपवास करना चाहिए। यह भी कि विवाह के पूर्व बालिकाओं को भी भली भाँति पढ़ा-लिखाकर उन्हें सुयोग्य बना देना चाहिए। दबिस्तां नामक फारसी ग्रन्थ के एक मुस्लिम लेखक ने लिखा है कि आगमों में नारियों को बहुत बड़ा स्थान दिया गया है। आगम नारी-मात्र को शक्ति मानते हैं और उनके मत में किसी भी नारी के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करना अपराध में शामिल समझा जाता है। तंत्र मार्ग की एक क्रान्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ी घोषणा यह भी थी कि तंत्र-साधना करने से साधक गृहस्थ होता हुआ भी, सिद्ध हो सकता है।

सिद्धि का प्राधान्य शाक्त साधना में बाद को हुआ। वैसे, यह साधना भी मोक्ष की ही साधना है। जीव-मात्र को शाक्त तंत्र तीन कोटियों में विभक्त करते हैं। सबसे नीचे "पशु" है जो माया के पाश में आबद्ध है। उसके ऊपर "वीर" और उससे भी ऊपर "दिव्य" जीव की कोटियाँ हैं। साधना के क्रम में पशु को ऊपर उठकर वीर की कोटि में जाना पड़ता है और जो वीर की कोटि से ऊपर उठ गया, वह दिव्य बन जाता है। बौद्धों के यहाँ अर्हत् और जैनों के यहाँ सिद्ध का जो स्थान है, शाक्त धर्म में दिव्य का भी वही स्थान समझना चाहिए।

कुलार्णव-तंत्र के अनुसार आचार सात प्रकार के होते हैं; वैदिक, वैष्णव, शैव, दक्षिण, वाम, सिद्धान्त और कौल। वैदिक आचार कर्म पर आधारित है, वैष्णव भक्ति पर और शैव ज्ञान पर। कर्म, भक्ति और ज्ञान में से किसी एक की अथवा तीनों की साधना करनेवाला साधक दक्षिणमार्गी समझा जाता है। किन्तु, वामाचार इन तीनों आचारों से भिन्न है। कर्म, ज्ञान और भक्ति के गहरे पुट वामाचार में भी हैं, किन्तु, यह सब होते हुए भी वामाचार बिलकुल नया मार्ग है।

उलटी धारा की साधना

वामाचार उलटी धारा की साधना है। उसका दार्शनिक आधार यह कल्पना है कि शिव-शक्ति से छूटकर जीव माया के प्रवाह में बहता-बहता जन्म ग्रहण करता है। अतएव, वह यदि मोक्ष पाना चाहे तो उसे उलटकर उस उद्गम की ओर गमन करना चाहिए जहाँ से माया की धारा निःसृत हुई है।

जब जीव शिवशक्ति में निहित था तब वह सच्चिदानन्द-स्वरूप और अद्वैत की स्थिति में था। शिव-शक्ति से निःसृत होने पर ही वह द्वैत में पड़ा है। इसीलिए, संसार की कुछ वस्तुओं को वह काम्य तथा कुछ को अकाम्य समझता है; कुछ को प्रिय और कुछ को अप्रिय मानता है। इसी प्रिय और अप्रिय लगने के भाव से विधि और निषेध के नियम बने हैं जो बिलकुल कृत्रिम हैं। असल में, संसार का कोई भी कृत्य करणीय या अकरणीय नहीं है। जीवन की कोई भी क्रिया ऐसी नहीं है जो स्वयं पाप और पुण्य का कारण हो। मुख्य दृष्टि यह नहीं है कि जीवन में क्या कर्तव्य और क्या अकर्तव्य है, बल्कि, यह कि कर्म और अकर्म का भेद कैसे मिटाया जा सकता है। शिव-शक्ति से व्याप्त होने के कारण संसार की प्रत्येक वस्तु अघृण्य है। साधना की सच्ची सफलता इस बात में है कि हम घृण्य को भी अघृण्य बना सकें; स्थूल को भी सूक्ष्म के स्तर पर ले जा सकें। घृण्य को अघृण्य बनानेवाली साधना का उत्कट विकास औघड़-पन्थ में हुआ। कहावत मशहूर है कि सिद्ध औघड़ वह है जिसकी आँत मक्खी तक पचा सकती है।

इस उलटी साधना ने इस विचार पर जोर दिया कि संसार से मुक्ति का उपाय उससे माँगना नहीं, प्रत्युत्, सर्वतोभावेन उसे स्वीकार करना है। सम से सम का इलाज, यह होमियोपैथी का सिद्धान्त है। वामाचारियों का भी विश्वास है कि जो चीज़ मनुष्य को नीचे गिराती है, वही उसे ऊपर भी ले जाती है। इसी विश्वास के कारण वाममार्ग में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन से युक्त पंचमकार-पूजा का प्रचलन हुआ, जिससे कितनी ही बुराइयाँ उत्पन्न हुईं और शाक्त-धर्म दूषित एवं कलुषित समझा जाने लगा। किन्तु, तंत्रों में इस पूजा का जो रूप समझाया गया है, वह गर्हित नहीं है। पेहली अवस्था में तो मद्य, मांस, मीन आदि के सेवन की आज्ञा अवश्य है, किन्तु, दूस ी अवस्था में उनके बदले किसी और वस्तु के सेवन का विधान है। तीस ी अवस्था में योग की प्रधानता दिखायी गयी है और पंचमकार में से प्रत्येक का स्थान योग अथवा मनोविज्ञान की कोई न कोई क्रिया ले लेती है। तंत्र-साधना की इसी स्थिति का दुरुपयोग करके बौद्ध सिद्धों ने जनता को चक्कर में डाल दिया था। भोग तो वे पंचमकार का ही करते थे और बोल कर नाम भी वे मदिरा, मांस और नारी के ही लेते थे, किन्तु, जनता समझती थी कि उनका आशय कुछ और है।

वाममार्गियों के साथ कितनी ही ऐसी बातें देखी गयी हैं जिनका सभ्य, स्वच्छ एवं शिष्ट जीवन से कोई मेल नहीं है। उदाहरणार्थ, उनके बीच अखाद्य खाने का, अपेय पीने का और अगमनीया के साथ गमन करने का रिवाज रहा है। इन सारे भयानक आचा ों का उद्गम शाक्त दर्शन के इस विश्वास में था कि रमणीय और अरमणीय का भेद व्यर्थ है। द्वैत केवल वहीं नहीं है जहाँ हमारा चित्त आकृष्ट होकर जाता है, प्रत्युत्, वहाँ भी जहाँ जुगुप्सा और घृणा का प्राबल्य है, जिसे देखते ही हमारे भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्ति नहीं, वितृष्णा उत्पन्न होती है। जिसका चित्त अद्वैत में स्थित हो गया, वह मल और मिष्ठान्न में कोई भेद नहीं देखता, वह श्रेष्ठ और अधम को एक समान समझता है। भेद ही द्वैत का कारण है। अतएव, वाममार्गी साधक प्रत्येक प्रकार के भेद को घटाते-घटाते, अन्त में, उसे शून्य पर पहुँचा देता है।

दक्षिणमार्गी (वैष्णव, शैव और कर्मकाण्डी) साधक भी मानते हैं कि आत्मा पाशों में आबद्ध है। किन्तु, उनकी पाशों से छूटने की साधना और है। "मैं त्वचा नहीं हूँ, मैं मांस नहीं हूँ, मैं अस्थि नहीं हूँ, मैं रक्त और मज्जा भी नहीं हूँ", इस प्रकार सोचते-सोचते, सब को हटाकर, वे आत्म-ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह नेति (Elimination) की प्रक्रिया है। किन्तु, वाममार्गी साधक उदात्तीकरण (Sublimation) की प्रक्रिया में विश्वास करते हैं। जीव जब शिव-शक्ति के केन्द्र से वियुक्त होकर उड़ा, तब से वह "हंस" की स्थिति में है। "हंस" को उलटकर जब तक वह "सहं" अर्थात् "सोऽहम्"—वृत्ति में नहीं पहुँचता, तब तक वह पाशों से मुक्त नहीं होगा। नर और नारी जब तक हंस की स्थिति में हैं, तभी तक वे एक दूसरे के निमित्त पाश हैं। जब दोनों के भीतर यह अनुभूति जाग्रत होती है कि हम हंस नहीं, शिव-शक्ति के सोऽहम्-प्रतिरूप हैं, तब उनके पाश छूट जाते हैं। शाक्त धर्म में साधक का साधिका के साथ समागम आनुष्ठानिक समागम का प्रतीक है। शाक्त योगाचार में हम "नाद" और "विन्दु" का जो उल्लेख पाते हैं वे इसी आनुष्ठानिक समागम के "नाद" और "विन्दु" हैं तथा समाधि के आनन्द का मूर्त्त रूप इसी समागम का आनन्द माना जाता था।

तांत्रिक साधकों का विश्वास इस बात में रहा है कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड, दोनों एक हैं। जो शक्ति महाब्रह्माण्ड में फैलकर सृष्टि की लीला का विस्तार करती है, वही पिण्ड (शरीर) के भीतर भी अपना कार्य कर रही है। मानव-शरीर के भीतर जो जैव नियम क्रियाशील हैं, वे ही भौतिक नियम बनकर ब्रह्माण्ड में काम कर रहे हैं। अतएव, सत्य के लिए आकाश-पाताल छानने का प्रयत्न व्यर्थ है। सत्य मनुष्य के शरीर के भीतर छिपा हुआ है और उसे उपलब्ध करने का साधन भी मानव-शरीर ही है।

इसी विश्वास के कारण तंत्र-साधना में हठयोग की प्रधानता हुई। शरीर के भीतर छिपे सत्य को शारीरिक क्रिया से ही खोजने के लिए साधक योग के सिवा और दूसरे किस साधन का अवलम्ब ले सकते थे? हठयोग के साथ बहुत-से चमत्कारों का संयोग बहुत समय से चला आया था। किन्तु, तंत्र-साधकों ने हठयोग का वरण चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया। हठयोग को उन्होंने वह अभ्यास माना जिसके जरिये शरीर सत्यानुभूति का यंत्र बनाया जा सकता था। इस प्रकार उपस्थ से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक साधकों ने शरीर के भीतर छः चक्रों की कल्पना की। सबसे नीचे का चक्र मूलाधार है और सबसे ऊपर का सहस्रार। शक्ति का निवास मूलाधार में है और शिव का निवास सहस्रार पर। साधक का कर्त्तव्य है कि वह योग-क्रियाओं के द्वारा षट्चक्रों का भेदन करे अर्थात् मूलाधार पर स्थित शक्ति को जगाकर उसे सभी चक्रों के भीतर प्रवेश कराते हुए सहस्रार पर पहुँचा दे। सहस्रार पर पहुँचते ही शक्ति शिव से एकाकार हो जाती है और दोनों के एकत्र होते ही महासुख का अमृत फूट पड़ता है, जिसकी उपलब्धि साधक की परम सिद्धि कहलाती है। तंत्र-ग्रन्थों में साधक को बराबर आगाह किया गया है कि चक्र-भेदन की क्रिया वह गुरु की अनपस्थिति में न करे।

शिव-शक्ति-मिलन के कुछ दूसरे प्रतीक भी हैं जिनका उल्लेख शैवागम और पुराणों में पाया जाता है। शरीर के वाम भाग में शक्ति बसती है और दक्षिण भाग में शिव। एक ही शरीर में शिव और शक्ति का एकत्र निवास, यही अर्धनारीश्वर की कल्पना है। योग-दर्शन के अनुसार दक्षिण श्वास का नाम पिंगला है जिसमें शिव का निवास है और वाम श्वास का नाम इडा (अथवा इंगला) जिसमें शक्ति निवास करती हैं। साधक का कर्त्तव्य है कि वह पिंगला और इंगला को एक स्थान पर लाकर उन्हें एकाकार कर दे। श्वासों के इस एकीकरण का पारिभाषिक नाम सुषुम्ना है जब वे एक-दूसरे से बढ़कर या घटकर नहीं चलते, जब वे तटस्थ स्थिति में पहुँच कर समरसता को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार, शरीर और मन के द्वन्द्वों को भी तटस्थ बनाना, उन्हें समरसता की अवस्था में ले जाना तंत्र-साधना का ध्येय है। योग के साथ काम का मिश्रण तंत्र-मार्गियों ने इस विचार से किया कि साधक और साधिका, दोनों इस अनुभूति तक पहुँच सकें कि, वास्तव में, वे नर-नारी नहीं, प्रत्युत्, उससे भिन्न कोई और तत्त्व हैं जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लैंगिक भेदों का आरोप नहीं किया जा सकता, जो शुद्ध, बुद्ध और सभी लिंग-वाचक गुणों से स्वतंत्र है।

वामाचार की साधना वे साधक नहीं कर सकते जो अभी पशु-कोटि में हैं। यह उन साधकों के लिए विहित है जो वीर-कोटि में पहुँच चुके हैं। किन्तु, वामाचार शाक्त धर्म की अन्तिम साधना नहीं है। इसके आगे "सिद्धान्त" और "कौल", ये दो सोपान और हैं। सिद्धान्त की कोटि में साधक तब पहुँचता है, जब उसे अनुभव से यह ज्ञात हो जाता है कि भोग और त्याग, दोनों निःसार हैं: प्रवृत्ति और निवृत्ति, विधि और निषेध, इनमें कोई तत्व नहीं है; सारी सृष्टि अन्तःशून्य है और शिव-शक्ति के सिवा और किसी भी तत्व का कहीं अस्तित्व नहीं है। यह दिव्यावस्था है। उससे ऊपर कौल स्थिति है जो वैदिकों की ब्रह्मानुभूति के समान निर्विकल्प और शब्दातीत है। कौल शब्द "कुल" से बना है जो बहुत कुछ ब्रह्म का ही अर्थ देता है।

यह विचार तर्क-सम्मत है कि जीव मुक्त तभी हो सकता है जब उसके सारे पाश छूट जायँ। पाशों में से कामिनी और कांचन, ये दो पाश महा भयानक हैं। वैदिक धर्म के अन्दर जो भी संप्रदाय बने, उन्होंने यही सिखाया कि मोक्षप्राप्ति के लिए माया के पाशों से छूटना अत्यंत आवश्यक है। कर्मवादियों ने कर्म के द्वारा, ज्ञानमार्गियों ने ज्ञान के द्वारा और भक्तों ने भक्ति के द्वारा इन्हीं पाशों से छूटने का प्रयास किया। एक शाक्त धर्म ही ऐसा निकला जिसने यह कहा कि माया के असत्य होने के कारण, उसके गढ़े हुए पाश भी असत्य हैं, वे कुछ नहीं में कुछ होने के भ्रम मात्र हैं। अतएव, उनसे भागना व्यर्थ है। उन्हें अंगीकार करके उनका उदात्तीकरण ही योग्य है। कामिनी माया का सबसे प्रबल पाश मानी जाती थी। सभी मुक्तिकामी उसीको छोड़कर संन्यास लेते थे और उनमें से असंख्य वन में भी नारी-सुख के लिए मन-ही-मन तड़पते रहते थे। शाक्त धर्म ने अपने वीरकोटि के साधकों से कहा, तुम उस स्थिति में आ गये हो जब नारी-समागम भी तुम्हारे लिए पाश नहीं, उदात्तीकृत आनन्द का ही प्रतीक होगा। तुम इस भाव से समागम करो कि प्रत्येक पुरुष में शिव और प्रत्येक नारी में शिवा प्रच्छन्न हैं और जहाँ भी नर-नारी का समागम होता है, वहाँ, असल में, शिव और शक्ति ही समागम कर रहे हैं। अन्य धर्मों ने काम को पाप माना था। शाक्त साधकों ने उसे भी पवित्र कर्म मान लिया।

शाक्त तंत्र मानते हैं कि मंत्रों में शक्ति होती है; यंत्रों की शक्ति का परिणाम होता है; देवताओं का अस्तित्व है और सिद्धियाँ, यदि सही ढंग से खोजी जायँ तो वे प्राप्त होती हैं तथा साधनाओं के द्वारा मनुष्य, सचमुच ही, उन्नति करते-करते एक दिन सच्चिदानन्द-स्वरूप हो जाता है। वैदिक धर्मों के ज्ञान, भक्ति और कर्म शाक्त मत में भी चलते हैं, किन्तु, अपने ढंग पर। सांख्य से शाक्त दर्शन का एक बड़ा भेद इस बात को लेकर है कि सांख्य दर्शन में प्रकृति जड़ एवं पुरुष चेतन है अर्थात् नारी जड़ तथा नर जीवन्त है। किन्तु, शाक्त मत में जड़ता का आरोप नर (शिव) पर किया गया है, चेतना उसमें शक्ति (नारी) की चालना से उत्पन्न होती है। इस विश्वास का परिणाम यह हुआ कि शक्ति (दुर्गा, काली आदि) की जो भी प्रतिमाएँ बनीं, उनमें शक्ति शिव की पीठ पर खड़ी दिखायी गयी हैं।

तंत्र-साधना की परम्परा

सदैव से तंत्र-साधना के साथ गुह्यता का एक सघन वातावरण रहता आया है। इस गुह्यता का आधार यह माना जाता है कि तंत्र की क्रियाएँ प्रच्छन्न रहने पर ही फलवती होती हैं। किन्तु, एक कारण यह भी हो सकता है कि वामाचार को जनसाधारण हमेशा शंका की दृष्टि से देखता था, अतएव, साधकों ने अपनी साधना को गुप्त रखने में ही अपना कल्याण समझा।

योग और सिद्धि के चमत्कार बुद्ध भी जानते थे। उन्होंने स्वयं भी आस्फाणक-योग (अपने आपको विस्तृत करने की क्रिया) का अभ्यास किया था। उनके अपने शिष्य भारद्वाज जब श्रेष्ठी का पात्र ग्रहण करने को बढ़कर आकाश में ऊपर उठे थे,* तब बुद्ध ने उनके इस चमत्कार-प्रदर्शन की निन्दा की थी। अतएव, मंत्र, योग और सिद्धि की साधना भारत में, छिपे-छिपे, बहुत पहले से आ रही थी, इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु, यह सत्य प्रतीत होता है कि तंत्र-मार्ग का अति विकास महायान के बाद वाले सिद्ध साधुओं ने किया।

डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य का अनुमान है कि बौद्ध

---

*दे० राहुल-कृत बुद्धचर्या, सत्रहवाँ परिच्छेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षु अधिकतर युवक हुआ करते थे और, प्रायः, युवती नारियाँ भी भिक्षुणी बनकर संघ में प्रवेश करती थीं। इन साधकों के लिए यह असंभव था कि वे ब्रह्मचर्य का निर्वाह कड़ाई से कर सकें। अतएव, अपने स्खलन को सार्थक सिद्ध करने के प्रयास में वे बौद्ध मत के बाहर प्रचलित तंत्र-मार्ग को अपनाने लगे। चूँकि उनकी क्रियाओं का समर्थन बौद्ध धर्म-शास्त्र नहीं करते थे, अतएव, इन साधकों ने अपने समाज को गुह्य नाम दिया और जब "गुह्य-समाजियों" की संख्या काफी बढ़ गयी, तब वे अपना धर्म-शास्त्र लेकर प्रकट होने लगे। बौद्ध-तंत्रवादियों का पहला धर्मशास्त्र "गुह्य-समाज-तंत्र" था। इस ग्रन्थ में स्वयं बुद्ध से यह कहलाया गया है कि तंत्र-मार्ग का बौद्ध मत से विरोध नहीं है। किन्तु, यह शास्त्र छिपाकर इतने दिनों तक इसलिए रखा गया था कि पहले के लोग इसे समझने को तैयार नहीं थे।

गुह्य-समाज-तंत्र की दार्शनिक सामग्री असंग-कृत प्रज्ञापारमिता से ली गयी बतायी जाती है और उसमें वर्णित आचार "मंजुश्रीमूलकल्प" के आधार पर हैं। असंग आचार्य वसुबन्धु के भाई थे जो पेशावर में रहते थे। वसुबन्धु ने अभिधर्म-कोश लिखा और असंग योगाचार-संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। असंग का समय चौथी शताब्दी है और मंजुश्रीमूलकल्प का मूल-रूप दूसरी या पहली शताब्दी में ही बन चुका था। अतएव, अनुमान यह होता है कि महायान की आरंभिक सदियों में ही बौद्ध धर्म तंत्र-मार्ग की ओर झुकने लगा था एवं चौथी शताब्दी के बाद वह मुख्य रूप से, तंत्रमार्गी हो गया।

गुह्य-समाज-तंत्र की विशेषताएँ

गुह्य-समाज-तंत्र ने बौद्ध मत में कई सर्वथा नवीन बातों का समावेश किया। बुद्ध ने केवल इतना कहा था कि कृच्छ्र साधनाओं से मोक्ष नहीं मिलता, न वह भोग में आसक्त होने से प्राप्त होता है। गुह्य-समाज-तंत्र ने खुली घोषणा कर दी कि सांसारिक सुखों से मुँह मोड़कर शरीर को दंडित करना निर्वाण की राह नहीं है। निर्वाण की सही साधना वह है जो इंद्रियों को तृप्त रखकर की जाती है। पहले के धर्माचार्यों ने यह कहा था कि बुद्धत्व की प्राप्ति अनेक जन्मों में किये गये तपश्चरणों का परिणाम है। गुह्य-समाजियों ने कहा, बुद्धत्व एक जन्म में भी प्राप्त हो सकता है।

गुह्य-समाजियों का दूसरा नवीन अवदान यह था कि उन्होंने योग और समाधि में शीघ्र सफलता पाने के लिए शक्ति-सेवन (नारी की पूजा अथवा उसके सहयोग) को अनिवार्य बताया। कहते हैं, पूजा में त्रिया-सहयोग की आवश्यकता पहले-पहल गुह्य समाजतंत्र में ही (यानी तीसरी शताब्दी में) आवश्यक बतायी गयी थी। उससे पूर्व के तंत्र-साहित्य में इसका उल्लेख नहीं है।

वज्रयान और मंत्रयान

गुह्य-समाज-तंत्र के प्रभाव से भारत में महायान गौण एवं वज्रयान प्रमुख होने लगा। महायान से वज्रयान को भिन्न करनेवाली कई मान्यताएँ और कितने ही सिद्धान्त काम के प्रभाव से ग्रसित दिखायी देते हैं। वज्रयान, यह नाम ही इसलिए चला कि महायान का जो "शून्य" था, वह वज्रयानियों द्वारा "वज्र" कहा जाने लगा, क्योंकि "शून्य" "वज्र" के समान ही अक्षय और अविनश्वर होता है। फिर वज्रयानियों ने महायान की "शून्यता" एवं "करुणा" को क्रमशः, "प्रज्ञा" एवं "उपाय" के नाम दे दिये और इन दोनों के मिलन को "युगनद्ध" की दशा बताकर उसे ही प्रत्येक साधक का अन्तिम लक्ष्य ठहराया*।" "शून्य" (आदि तत्त्व जिससे सृष्टि उत्पन्न होती है) और "विज्ञान" (यानी चेतना), ये दो शब्द महायान के माध्यमिक एवं विज्ञानवादी, दोनों ही संप्रदायों में प्रयुक्त होते थे। वज्रयानियों ने उनके साथ "महासुख" नामक एक तीसरा तत्त्व भी जोड़ दिया। वज्रयानी साधक प्रज्ञा (यानी शून्य) को निष्क्रिय ज्ञान मात्र मानते हैं और उसे स्त्री समझते हैं। उपाय पुरुष तत्त्व है और वह क्रियाशील भी है। इन दोनों तत्त्वों के मिलन को वज्रयान सिद्धि के लिए परमावश्यक मानता है। इस मिलन की समरस-अवस्था ही वह "महासुख" है जो वज्रयानियों का परम ध्येय माना जाता है। वज्रयानियों की कल्पना यह रही कि बोधि-चित्त साधक को ऊर्ध्वमुख होकर अपनी यात्रा पृथ्वी के ऊपर की ओर आरंभ करनी पड़ती है। इस यात्रा-क्रम में साधक के सामने, एक के बाद एक के क्रम से, पच्चीस लोक आते हैं जो सभी त्याज्य हैं। सबके ऊपर जो छब्बीसवाँ लोक है वही शून्य है। उस शून्य के साथ रमण

---

* उत्तर भारत की संत-परंपरा—प० रा० चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में जो महासुख है उसे छोड़कर कोई भी साधक वापस आना नहीं चाहता। यही निर्वाण है।

गुह्य-समाज-तंत्र के आरंभिक अध्यायों में मंत्रयान पर विशेष जोर दिया गया है। सैकड़ों पृष्ठों के सूत्रों का पा शीघ्रता से करना कठिन था। यह कठिनाई वैदिक धर्म को भी अनुभूत हुई थी। इसीलिए, ब्राह्मणों ने भागवत का चतुःश्लोकी भागवत और गीता की सप्तश्लोकी गीता बनाकर प्रार्थना करनेवाले श्रद्धालु लोगों का काम आसान कर दिया था। लगता है, इन्हींकी देखादेखी बौद्ध भिक्षुओं ने भी लंबे-लंबे सूत्रों को छाँटकर पंक्ति-दो-पंक्ति की धारणियाँ बना लीं। "इन्हीं धारणियों को और संक्षिप्त करके मंत्रों की सृष्टि हुई।" यह इसलिए भी आवश्यक हो गया क्योंकि गुह्य-समाज-तंत्र ने यह स्थापना रखी कि ध्यानी बुद्ध पाँच हैं जिनमें से प्रत्येक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, इन पाँच स्कन्धों में से किसी एक पर शासन करते हैं। यही नहीं, गुह्य-समाज ने यह भी बताया कि प्रत्येक ध्यानी बुद्ध के साथ एक शक्ति विराजती हैं और उनके परिवार में अनेक बोधिसत्वों का स्थान है। इन सभी देवी-देवताओं की उपासना के लिए मंत्रों की अलग-अलग रचना की गयी और साधक यह विश्वास करने लगे कि मंत्रों के जाप और यंत्रों के लेखन तथा ध्यान-मात्र से उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

कालचक्रयान का विकास भारत से बाहर हुआ था और बाहर से ही यह यान बंगाल और असम में पहले पहल पाल-युग में पहुँचा। यह यान मंत्र की सम्यक् सिद्धि के लिए तिथि, मुहूर्त्त, नक्षत्र और राशि पर जोर देता था। अतएव, कालचक्रयान ने मंत्रों का सम्बन्ध ज्योतिष् की गणना से भी जोड़ दिया।

महायान, यद्यपि, मूल बौद्ध धर्म से भिन्न मार्ग पर था, किन्तु, उसके भीतर कदाचार नहीं था। पर, जब वज्रयान का प्राधान्य हो गया, बौद्ध संघ अत्यंत वीभत्स कर्म करने-वालों का अड्डा बन गया। गुह्य-समाज-तंत्र ने खुली घोषणा की थी कि वज्रयानी साधु को नियमों से सर्वदा स्वाधीन होकर विचरने से भी पाप नहीं लगता है। जब उस तंत्र का बोलबाला हुआ, बौद्ध साधक, सचमुच ही, औघड़ हो गये। "वज्रयान के विद्वान् प्रतिभाशाली कवि

सुखद शरद् आया—

गीत

श्री गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

सुखद शरद आया।
बीती वर्षा ऋतु विषाद की, संसृति सुख सरसाया
धुली धरा द्रुम विपिन वल्लरी,
धुला गगन शुभ्रांशु-हिमकरी।
अमल-कमलदल-भ्रमित चंचरी,
ललितराग प्रतिध्वणित बाँसरी,
कलित-काकली खंजन गाया।
काँस-गुच्छ वपु सुरभि-पुच्छ सम,
धानमंजरी निष्कुट - प्रस्फुट,
शेफाली-प्रसून - मद - मधु - झर,
बकुल मालती सिंचित सीकर,
परिमल रय बिखराया।
दूर्वादल मुक्ताजल संकुल,
हिमकर प्रतिबिम्बित प्रिय उन पर
बनदेवी के द्वार-द्वार पर,
गूँज उठे शहनाई के स्वर,
जब शरद साज सजि आया।
सुखद शरद आया।
बीती वर्षा ऋतु विषाद की संसृति सुख सरसाया।

चौरासी सिद्ध विलक्षण प्रकार से रहा करते थे। कोई पनही बनाया करता था, इसलिए, उसे पनहीपा कहते थे। कोई कंबल ओढ़े रहता था, इसलिए, उसे कमरीपा कहते थे। कोई डमरू रखने से डमरूपा, कोई ओखल रखने से ओखरीपा कहा जाता था। ये लोग शराब में मस्त, खोपड़ी का प्याला लिये, श्मशान या विकट जंगलों में रहा करते थे। ये लोग खुल्लमखुल्ला स्त्रियों और शराब का उपभोग किया करते थे। राजा अपनी कन्याएँ तक इन्हें प्रदान करते थे।"* [अगले अंक में समाप्त

*बुद्धचर्या—राहुल सांकृत्यायन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के समाचार-पत्र

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार ने सन् १९६० के लिए अपना वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित किया है। यह प्रतिवेदन दो भागों में है। पहले भाग में सामान्य अध्याय हैं, दूसरे भाग में ज्ञात और प्रकाशित समाचार-पत्रों की राज्यवार सूची और निर्देशिका दी गयी है। इन दोनों भागों में प्रस्तावना सहित डिमाई साइज के ३६२ पृष्ठ हैं। इनके अतिरिक्त, एक विषय-सूची भी है जो २ पृष्ठों में समाप्त हुई है। हमारे सामने इस प्रतिवेदन की जो प्रतिलिपि है, उसकी कागज की जिल्द है।

समाचार-पत्रों का 'यूनेस्को' (संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक व सांस्कृतिक संस्था) द्वारा स्वीकृत वर्गीकरण के आधार पर सामान्य रुचि के समाचार-पत्र और नियतकालिक भागों में व्यक्त किये गये हैं। सामान्य रुचि के समाचार-पत्र और नियतकालिक समाचार-पत्र फिर दो भागों में विभक्त हैं--'क' और 'ख'। सामान्य रुचि के समाचार-पत्र 'क' श्रेणी में आते हैं। 'ख' श्रेणी के वे समाचार-पत्र हैं जिनको विशेष रुचिवाले पाठक पढ़ते हैं। उदाहरण के लिए, इन विशेष रुचिवाले समाचार-पत्रों में धारावाहिक उपन्यास, ज्योतिष, घुड़दौड़, रेल का टाइम-टेबिल, और बाजार भाव इत्यादि रहता है या कोई विशेष वैज्ञानिक विषय होता है, जैसे कृषि, गणित, विज्ञान की पत्रिकाएँ।

सामान्य रुचि के समाचार-पत्रों में दैनिकों और सप्ताह के या सप्ताह में कम समय के अंतर से प्रकाशित अदैनिकों का समावेश किया गया है।

अब, आइए, इस प्रस्तावना के बाद हिंदी के समाचार-पत्रों तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की तालिका पर ध्यान कर लें। अँगरेजी में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की संख्या सन् १९५९ में १५५५थी जब हिंदी में प्रकाशित समाचार-पत्रों की संख्या १४३९ और उर्दू में प्रकाशित समाचार-पत्रों की संख्या ६२७ थी। सन् १९५९ में, इस प्रतिवेदन के अनुसार असमिया भाषा में निकलनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या १४, बंगला भाषा में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या ५१०, गुजराती भाषा में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या ५२२, कन्नड़ भाषा में निकलनेवाले पत्रों की कुल संख्या २२३, मलयालम भाषा में निकलनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या १९२, मराठी भाषा में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या ४०१, उड़िया भाषा में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या ७८, पंजाबी भाषा में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या १२७, तामिल और तेलगू में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या क्रमशः ३६१ और २४१ थी। संस्कृत भाषा में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों की संख्या केवल १२ थी, जिनमें से बम्बई में ३, पश्चिमी बंगाल में ३, उत्तर प्रदेश में २ समाचार-पत्र प्रकाशित होते थे।

ऊपर समाचार-पत्रों की जो संख्याएँ दी गयी हैं, उन्हें तालिका के रूप में, पाठकों की सुविधा के लिए, हम नीचे दे रहे हैं:--

तालिका

भाषा	संख्या
१--अंगरेजी में	१५५५
२--हिंदी में	१४३९
३--उर्दू में	६२७
४--असमिया में	१४
५--बँगला में	५१०
६--गुजराती में	५२२
७--कन्नड़ में	२२३
८--मलयालम में	१९२
९--मराठी में	४०१
१०--उड़िया में	७८
११--पंजाबी में	१२७
१२--तामिल में	३६१
१३--तेलगू में	२४१
१४--संस्कृत में	१२

सन् १९५९ में १३०२ नये पत्र निकले, जिनमें ४४ दैनिक थे। उत्तर प्रदेश में इस वर्ष (१९५९ में) निकलनेवाले पत्रों में ४ समाचार-पत्र कानपुर से निकले और एक वाराणसी से निकला। कानपुर से निकलनेवाले पत्रों के नाम ये हैं--टंकार, सत्यमार्ग, पूरबिया और राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य। वाराणसी से प्रकाशित होनेवाले पत्र का नाम 'समाचार' है। मध्य प्रदेश से इसी वर्ष सात हिंदी के पत्र निकले--'नई दुनिया' रायपुर से, जबलपुर से 'नई दुनिया', खंडवा से 'मजदूर', नीमच से 'नीमच-समाचार', साजापुर से 'साजापुर-समाचार', रायपुर से 'नवभारत' और कटनी से 'मध्य प्रदेश'।

नियतकालिक अखबारों में सबसे अधिक नये पत्र हिन्दी में निकले हिंदी के प्रकाशनों की संख्या २७८ थी, जब अँगरेजी में २३८ ही निकले। नये दैनिकों में हिंदी के १४ और अँगरेजी के ६ थे। प्रकाशन बंद करनेवालों की संख्या हिंदी में सबसे अधिक रही। इसमें ८० प्रकाशन बंद हुए। अँगरेजी में केवल ६१। ३२७ प्रकाशन बंद हो गये। इनमें १७ दैनिक थे---अँगरेजी के ४, हिंदी के ५, अन्य भाषाओं के ५ और ३ वास्तविक अर्थों में समाचार-पत्र ही नहीं थे।

सन् १९५९ में जिन समाचार-पत्रों का प्रकाशन बंद हो गया, उनकी संख्या ३२७थी जिनमें ७६ समाचार-पत्र 'ख' श्रेणी के थे। 'ख' श्रेणी के समाचार-पत्रों में १३ तो बाजार रिपोर्टें या बुलेटिन थीं, २५ स्कूल और कालेज की मैगजीनें थीं, दो धारावाहिक उपन्यास, एक ज्योतिष, १२ विज्ञापक या संस्था या प्रतिष्ठान के समाचार-पत्र और विविध समूह के २३ पत्र थे। (विविध समूहों, द्वि-भाषी या बहुभाषी पत्रों को ऊपर की तालिका में हमने स्थान नहीं दिया।)

बंद हुए पत्रों की संख्या हिंदी में ८० थी। इसके बाद अँगरेजी के ६१ और उर्दू के ५३ पत्रों का स्थान रहा। १४ दैनिक निकलने बंद हुए जिनमें १२ पत्र तो प्रातःकालिक थे और २ सायंकालिक। इन बंद हुए दैनिकों में हिंदी के ५ दैनिक, अँगरेजी के ४ दैनिक, पंजाबी के २ दैनिक, तामिल के २ दैनिक और तेलगू का एक दैनिक सम्मिलित था।

बंद हुए पत्रों का भाषावार विवरण सन् १९५९ में इस प्रकार था--

'क' श्रेणी:--

अँगरेजी के	४३
हिंदी के	५८
बंगाली के	११
गुजराती के	१७
कन्नड़ के	३
मलयालम का	१
पंजाबी के	११
तामिल के	१२
तेलगू के	८
उर्दू के	५०
द्विभाषी	२१
बहुभाषी	४
अन्य भाषाएँ	४

'ख' श्रेणी के समाचार-पत्रों में पत्रों की संख्या इस प्रकार है:--

अँगरेजी	१८
हिंदी	२२
बँगला	१
गुजराती	४
मराठी	१
उर्दू	३
द्वि-भाषी	१७
बहु-भाषी	१०

(यहाँ पर एक बात कह देना हम उचित समझते हैं। वह यह है कि हमारे संविधान ने उर्दू को हिंदी से भिन्न भाषा नहीं माना है। उसकी दृष्टि में तो दोनों भाषाएँ एक हैं; उनमें यदि भेद है तो वह शैली का है। जहाँ तक हमको याद पड़ता है, सन् १९५१ की जन-गणना का जो प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ था, उसमें भी उर्दू और हिंदी को एक ही भाषा मान लिया गया था। ऐसी दशा में समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार इस प्रतिवेदन में उर्दू और हिंदी के पत्रों की संख्या अलग-अलग बताते हैं, उससे पाठक से भ्रम होने की संभावना है। यदि दोनों भाषाओं की संख्याएँ मिला ली जायें--यानी उनका अलग-अलग उल्लेख न हो तो उर्दू और हिंदी के समाचार-पत्रों की संख्या अँगरेजी के पत्रों की संख्या से अधिक हो। इस प्रतिवेदन के अनुसार अँगरेजी में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की संख्या १५५५ थी; उसी वर्ष हिंदी में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की संख्या १४३९ थी और उर्दू में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की संख्या ६२७ थी। यदि हिंदी और उर्दू के पत्रों की संख्याएँ जोड़ दी जायें तो हिंदी और उर्दू के पत्र अँगरेजी पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक है। मालूम यह होता है कि समाचार-पत्रों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्ट्रार या तो संविधान की यह बात भूल गये या हिंदी-और उर्दू के पत्रों की संख्याओं में विभेद कर अँगरेजी पत्रों की संख्या को सर्वाधिक सिद्ध करना चाहते थे। कारण जो भी रहा हो, हम इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि हिंदी और उर्दू दो भाषाएँ अलग-अलग हैं। ऐसी दशा में हम अँगरेजी पत्रों की प्रधानता स्वीकार करने में असमर्थ हैं।)

समाचार-पत्रों के प्रकाशन में बम्बई राज्य का प्रमुख स्थान है, भारत में प्रकाशित होनेवाले कुल पत्रों का २२ प्रतिशत इस राज्य से निकलते थे। बम्बई राज्य के बाद पश्चिमी बंगाल का स्थान है। यहाँ से १४ प्रतिशत समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। उत्तर प्रदेश का स्थान तीसरा है, जहाँ से १२ प्रतिशत प्रकाशित होते हैं। दिल्ली और मद्रास के पत्रों की संख्या क्रमशः ९·७ और ९·९ प्रतिशत हुई।

पंजाब को छोड़कर शेष सात राज्यों में कुल समाचार-पत्रों का ५ से कम प्रतिशत पत्र प्रकाशित होते हैं। सारे राज्यों में सबसे कम समाचार-पत्र असम में प्रकाशित होते हैं, इनकी संख्या ०·७ प्रतिशत थी।

पृथक् पृथक् देखने पर ज्ञात होगा कि सामान्य रुचि के और नियत-कालिक, दोनों प्रकार के पत्रों बम्बई राज्य से अधिक निकलते हैं। यहाँ के दैनिक पत्रों की संख्या १०० थी; ९० प्रातःकालिक और १० सायंकालिक इस श्रेणी में ६ अ-दैनिक भी हैं, जिनमें ४ तो रविवासरीय हैं, एक त्रि-साप्ताहिक और एक द्वि-साप्ताहिक भी सम्मिलित हैं। 'ख' श्रेणी के पत्रों में ४२ दैनिक, ४ अर्ध-साप्ताहिक, ३० साप्ताहिक थी।

बम्बई राज्य में प्रकाशित होनेवाले नियत-कालिक पत्रों में ३९९ तो साप्ताहिक थे, १५७ पाक्षिक थे, और मासिक-पत्रों की संख्या ७२६ थी। इनमें 'ख' श्रेणी के पत्र भी शामल हैं जिनमें ४७ साप्ताहिक, २० पाक्षिक और ११७ मासिक थे।

बम्बई राज्य के बाद उत्तर प्रदेश का भी हाल सुन लीजिए। यहाँ से ५१ तो दैनिक प्रकाशित होते हैं—जिनमें ३४ तो प्रातःकालिक और १७ सायंकालिक पत्र सम्मिलित थे। अ-दैनिक समाचार-पत्रों में भी ९ द्वि-साप्ताहिक और त्रि-साप्ताहिक इस राज्य से निकलते थे। रजिस्ट्रार के प्रतिवेदन के अनुसार, दो दैनिक और एक अर्ध-साप्ताहिक सही अर्थों में समाचार-पत्रों की गणना में नहीं आते थे।

उत्तर प्रदेश के ३२१ साप्ताहिक समाचार-पत्रों में ऐसे १८ पत्रों की गणना की गयी थी जो वास्तव में समाचार-पत्र नहीं थे।

वार्षिकों और मासिकों की दृष्टि से पश्चिमी बंगाल का दूसरा स्थान बना रहा। इनमें 'ख' श्रेणी के १४ पाक्षिक पत्र और ४१ मासिक भी सम्मिलित थे।

सन् १९५९ के अंत में ४९१ दैनिक पत्र प्रकाशित हुए। इनमें ३५२ प्रातःकालिक, ६८ सायंकालिक और ७१ 'ख' श्रेणी के पत्र थे। सबसे अधिक संख्या में बम्बई से दैनिक प्रकाशित होते हैं। इसके बाद उत्तर प्रदेश में ५३ दैनिक प्रकाशित होते हैं। मध्य प्रदेश का तीसरा स्थान है। यहाँ से ४० दैनिक निकलते थे। शेष राज्यों में प्रकाशित होनेवाले 'क' और 'ख' श्रेणी के दैनिकों की संख्या इस प्रकार है—

आन्ध्र	२७
असम	२
विहार	९
केरल	३७
मदरास	३४
मैसूर	३७
उड़ीसा	५
पंजाब	२६
राजस्थान	१४
प० बंगाल	३०
दिल्ली	२६
मणिपुर	४
त्रिपुरा	१

हिमाचल प्रदेश से कोई दैनिक नहीं प्रकाशित होता। यह दुःखद बात है। अण्डमन और निकोबार से भी कोई दैनिक नहीं निकलता, लेकिन उसकी आबादी को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि वहाँसे दैनिक पत्र का न निकलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार की राजनीति में भारत का स्थान

श्रीअवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

ब्रिटिश शासकों ने इस देश में अपनी अक्षमता को ढाँकने के लिए यह भ्रम फैला रक्खा था कि यह देश बहुत विस्तृत है। किन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत एक बड़ा देश नहीं है। वर्तमान शासक भी इस भ्रम को कायम रखने में अपना मंगल समझते हैं। असफलता छिपाने का एक कारण मिल जाता है। शासकों द्वारा प्रचारित इस भ्रम के कारण जब हम विश्व की राजनीति पर विचार करते हैं तब हम अपना महत्त्व बहुत बढ़ा-चढ़ा कर देखते हैं। फलतः विश्व राजनीति में भारत का वास्तविक स्थान क्या है, यह हम ठीक-ठीक आँकने में असमर्थ रहते हैं। यदि हम अपने देश की यथार्थ स्थिति को जान लें, तो हम अनेक उलझनों से बच सकते हैं।

क्षेत्रफल की दृष्टि से हमारे देश की स्थिति क्या है?

क्षेत्रफल
(वर्ग मीलों में)

भारत	११,३८,८१४
सूडान	९,६७,५००
कनाडा	३५,६७,१६३
आस्ट्रेलिया	२९,७४,५८१
संयुक्त राज्य अमेरिका	३५,५६,४२८
अर्जेण्टाइना	२७,७८,४१२
बोलिविया	१०,९८,५८१
कांगो (बेल्जियन)	२२,४३,९३० (वर्ग किलोमीटर)
ब्राजील	८५,१०,०३७ (वर्ग किलोमीटर)
चीली	७,४१,७६७ (वर्ग किलोमीटर)
कोलंबिया	११,३८,६०५ (वर्ग किलोमीटर)
सोवियत रूस	२,२२,७०,६०० (वर्ग किलोमीटर)
रूस	१,६९,२२,००० (वर्ग किलोमीटर)
चीन	७०,१३,७४४ (वर्ग किलोमीटर)

क्षेत्रफल की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र के ८२ सदस्य देशों में पहले दस में भी भारत का स्थान नहीं है। इस कारण दुनिया की राजनीति में भारत को जो महत्त्व प्राप्त है, उसका कारण कोई अन्य होना चाहिए। यह कारण है जनसंख्या। चीन का दावा है कि उसकी जनसंख्या लगभग ६० करोड़ है। इतनी बड़ी आबादी और किसी देश की नहीं है। सोवियत संघ की कुल आबादी से यह लगभग तिगुणी है। चीन के बाद भारत का स्थान है। १९६१ की जन-गणना में, अनुमान है कि भारत की जनसंख्या लगभग ४४ करोड़ होगी। यह सोवियत संघ से लगभग दुगनी और अमेरिका से लगभग ढाई गुनी है। अफ्रीका महादेश की कुल जनसंख्या से भी यह अधिक है। भारत की जनशक्ति ने इसका महत्त्व बढ़ा दिया है। यह विशाल जनशक्ति ही है, जो बड़े-बड़े राष्ट्रों को प्रेरित करती है कि वे भारत को अपने पक्ष में लें। भारत के पास शस्त्र बल नहीं है। लड़ाई में प्रतिदिन चीन जितने विमान नष्ट होते हुए सहन कर सकता है उतने भी विमान भारत के पास नहीं हैं। फिर भी भारत को यदि विश्व की महती शक्तियाँ, दोनों पक्ष, अपनी-अपनी ओर मिलाना चाहती हैं, तो इसी जनसंख्या के कारण। जन-शक्ति की आज भी आवश्यकता है। चीन इस सत्य को जानता है। इसी कारण उसने सन्तति निरोधक मार्ग नहीं अपनाया है, क्योंकि विश्व-दिग्विजय की इच्छा जो वह करता है। वह चाहता है कि चीनी लोग दक्षिण-पूर्व एशिया तक ही सीमित न रहें, वे गोलार्द्ध के अन्य भागों में भी फैलें और चीनी राष्ट्र का बल बढ़ायें।

सन्तति-निरोध —

भारत ने यह मार्ग नहीं अपनाया। कालिदास ने इस देश में दिग्विजय की भावना को उत्पन्न करना चाहा था। जब तक कोई राष्ट्र अपना विस्तार नहीं करता, वह जीवित नहीं रह सकता। यही कारण है कि सर्वमेध-यज्ञकर्त्ता रघु के पास जब केवल मिट्टी के पात्र रह गये थे, तब भी वरुण डरता था और उसने जब सुना कि रघु चढ़ाई करनेवाला है, तब उसने स्वर्ण और रत्नों से रातों ही रात सम्राट् रघु का खजाना भर दिया। वह सारा धन कौत्स को ले जाना कठिन हो गया है। यह भले ही कवि-कल्पना हो, पर यह एक राष्ट्र के तेज को बताता है। उसके बल-वीर्य और पराक्रम को बताता है। किन्तु स्वाधीन भारत ने आत्म-विस्तार के मार्ग को नहीं पकड़ा है। लैटिन अमेरिका के सघन वनों को आबाद करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अफ्रीका में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रसार करने का मार्ग नहीं पकड़ा है। आस्ट्रेलिया और कनाडा पर वह इसी कारण दबाव नहीं डालता कि अपने देश के बन्द द्वार भारत के लिए खोल दो, यद्यपि भारत राष्ट्र-मण्डल (कामनवेल्थ) का एक सदस्य है, और आस्ट्रेलिया और कनाडा प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में यूरोपियनों को अपने देश में बसने के लिए आमंत्रित करते हैं। इसी प्रकार अफ्रीका के ब्रिटिश उपनिवेशों में भी भारतीयों को बसाने की हमने कोई योजना नहीं बनायी। इसके विपरीत वे लोग हमको वहाँसे निकाल रहे हैं और हम उनको खाली करने को तैयार हैं। इस कारण भारत ने सन्तति-निरोध को अपनाया है। देश की प्रजनन-शक्ति को कम करने का मार्ग पकड़ा है, क्योंकि हम आत्म-विस्तार में, भारत से बाहर जाकर गैर आबाद देशों को आबाद करने और अपने उपनिवेश स्थापित करने में विश्वास नहीं करते। हम श्वेतों के प्रभुत्व को चुनौती देने को आज भी तैयार नहीं हैं। युद्ध का कायदा है कि संरक्षणात्मक एवं बचाव की नीति नहीं ग्रहण करनी चाहिए। लेकिन हमने वही मार्ग पकड़ा है, क्योंकि हम अल्प-संतोषी हैं। एक हजार साल की गुलामी ने हमारी महत्त्वाकांक्षाओं को नष्ट कर दिया है। और हम भूल गये हैं चीली पेरू में हम बसे हुए थे और आज भी वहाँ 'सीता राम उत्सव' मनाया जाता है, लेटिन अमरीका के विभिन्न स्थानों की खुदाई में यज्ञ-मण्डप और यज्ञ-शालाएँ और हवन कुण्ड मिले हैं। यज्ञ-धूप से कभी वह देश सुगन्धित था। लेकिन आधुनिक भारत ने अपने पूर्वजों का मार्ग छोड़ दिया है, परित्याग कर दिया है। चूहे के समान अपने बिल में रहने का निश्चय किया है। यह जीवन का मार्ग नहीं है। यह सिसक-सिसककर जीने का मार्ग है।

जापान की माँग

यद्यपि जापान दूसरे महायुद्ध में पराजित हुआ, तथापि उसने अपनी नीति नहीं बदली। पहले भी वह आत्म-विस्तार की आकांक्षा रखता था और चाहता था कि दक्षिण अमेरिका और आस्ट्रेलिया के द्वार जापानियों के लिए खोल दिये जायँ। जापान में भ्रूणहत्या और गर्भपात अपराध नहीं हैं। फिर भी जापान की जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही है, वह और देश तथा जमीन चाहती है। जापान समझता है कि उसके जीवन के लिए यह जरूरी है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था में दो-तीन साल पहले उसने माँग की थी कि जनसंख्या को देखते हुए उसको बसने के लिए अन्यत्र जगह दी जाय। जनसंख्या के अनुपात से दुनिया में बसने योग्य जगह का बटवारा किया जाय। आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेण्टाइन, ब्राजील, चीली, और अफ्रीका के देश एशिया की बढ़ी आबादी को जगह क्यों न दें? विश्व-शान्ति की स्थापना और युद्धों का अन्त करने की दृष्टि से भी एशिया की बढ़ती आबादी की समस्या पर विचार करना चाहिए। पिछड़े देशों की आर्थिक सहायता करना जैसे औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों का कर्त्तव्य है, और इस सिद्धान्त को अन्तर्राष्ट्रीय निधि द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और इस कार्य को करने के लिए अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ काम कर रही हैं; जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था, स्वास्थ्य-संस्था, शिशुसंरक्षण-संस्था, आर्थिक संस्था, संस्कृति व विज्ञान संस्था, परिवहन संस्था और संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्थापित विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि वित्तीय कठिनाइयों को दूर करती हैं, उसी प्रकार निर्जन, गैर आबाद जगहों में भी एशिया की बढ़ी आबादी को बसाने की व्यवस्था होनी चाहिए और दुनिया की तमाम जमीन का वितरण जनसंख्या के अनुसार किया जाय। शान्ति अविभाज्य है, यह कहना उस समय तक कोई अर्थ नहीं रखता जब तक हम दुनिया की कुल आबादी और बसने योग्य भूमि के मध्य विश्व-स्तर पर सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। किन्तु इस देश के शान्ति-दूतों ने विश्व-शांति की पहली सीढ़ी को ही त्याग रखा है। भारत की जनसंख्या की समस्या का हल जब तक नहीं ढूँढ़ा जाता, उसकी गरीबी भी दूर नहीं हो सकती। सन्तति निरोध निराशा का उपाय है, आग लगने पर कुँआँ खोदने का उपाय है। यह विवशता और लाचारी का उपाय है। यह विश्व-शान्ति की स्थापना में सहायक नहीं हो सकता। इस दृष्टि से भारत की जनसंख्या की वृद्धि एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है।

भौगोलिक महत्त्व—

भारत के महत्त्व को बढ़ानेवाली एक अन्य बात है इसकी भौगोलिक स्थिति। विमान हिमालय के शृंगों को लाँघ सकते हैं, इस कारण हिमालय का महत्त्व कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम हो गया है, यह नहीं कहा जा सकता। आज भी वह भारत का प्रहरी है। यदि उसकी तट-बंदी ठीक तरह से की जाय और वहाँ दुर्ग-पंक्ति बनाई जाय। किन्तु इससे भी अधिक उसके महत्त्व का कारण है, हिन्दमहासागर का प्रवेश-मार्ग होना। प्रशान्त, एटलांटिक, भूमध्य महासागर पर एक न एक बड़े देश का प्रभुत्व, नियंत्रण है या उसके प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत है। लेकिन हिन्द महासागर पर किसी बड़े राष्ट्र का वर्चस्व नहीं है। रूस और चीन की इस पर गृद्ध-दृष्टि हो सकती है। किन्तु ये दोनों शक्तिशाली राष्ट्र हिन्दमहासागर में बर्मा, पाकिस्तान (भौगोलिक दृष्टि से पाकिस्तान भारत का एक भाग है और इसका विभाजन कृत्रिम रूप में हुआ है) और भारत के ही द्वारा जा सकते हैं। इनमें भारत का मार्ग सबसे छोटा है और अधिक उपयुक्त एवं कम परेशानी का है। दुनिया के दोनों गुटों के लोग भारत को अपने पक्ष में क्यों चाहते हैं, उसका रहस्य इसमें निहित है। हिन्द महासागर का स्वामी आज कोई राष्ट्र नहीं है। मारीशस आज तक अँगरेजों के नियंत्रण में है। यह द्वीप भारत के अधिकार में आना चाहिए। यह भारत की भौगोलिक सीमा के अन्दर है। लेकिन भारत-सरकार ने 'इण्डिया लाइब्रेरी' की तो माँग की है, लेकिन कभी इस द्वीप के लिए ब्रिटेन से तकाजा नहीं किया है और न इस द्वीप की स्वाधीनता के लिए कहा है, यद्यपि इसकी जनसंख्या में ५० प्रतिशत से अधिक भारतीय है। मारीशस पूर्वी और मध्य अफ्रीका के लिए मार्ग देता है और भारत को अफ्रीका के निकट लाता है। लेकिन मारीशस की सुध आज तक इस देश ने नहीं ली है। और वह केनिया, युगांडा और टंगानिका के प्रस्तावित अफ्रीकी संघ में सम्मिलित होने को उत्सुक है।

मैडागास्कर (मगाशी) स्वतंत्र है और संयुक्त राष्ट्र का एक नया सदस्य है। हिन्द महासागर में इस विशाल द्वीप का भी महत्त्व है। यह भी दक्षिण और मध्य अमरीका का प्रवेश द्वार है। भारतीयों की संख्या यहाँ कम नहीं है। यह द्वीप भारत के परम मित्रों में रहना चाहिए। अन्यथा हिन्द महासागर पर भारत का वर्चस्व स्थापित नहीं हो सकेगा। भारत के जंगी बेड़े को अभी तक सुसज्ज नहीं किया गया। सोवियत रूस और चीन ने अपनी पनडुब्बियों की शक्ति बढ़ाकर समुद्र पर वर्चस्व स्थापित कर लिया है। आर्कटिक, बाल्टिक सागर पर रूस का पूर्ण प्रभुत्व है और प्रशान्त महासागर में अमरीकी बेड़े को चुनौती दे रहा है तथा बलाडीवोस्टक दृढ़ जल-दुर्ग बन गया है। इसकी शक्ति अमरीकी बेड़े को चुनौती दे रही है। चाणक्य और शिवाजी को छोड़कर भारत के किसी शासक ने समुद्री शक्ति बढ़ाने का महत्त्व नहीं समझा। आज भी इसकी उपेक्षा है। चौदह सालों में भारत एक भी जंगी पोत नहीं बना सका। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं? कारण स्पष्ट है। भारत के वर्तमान शासकों के पीछे कोई सैनिक परम्परा नहीं। अतः ये सैनिक शक्ति बढ़ाने और राष्ट्र को शक्तिशाली एवं उद्यमी बनाने के महत्त्व को नहीं समझते। स्थायी सेना का बड़ा होना, बेकारी की समस्या को हल करना और उत्पादन को प्रोत्साहन देना है। आज जब शान्ति के समय सैनिक बाढ़ों को रोकते हैं, खेती करते हैं, बाग लगाते हैं, उस समय सेना पर हुए व्यय को अनुत्पादक कहना, उचित नहीं कहा जा सकता।

यदि हिटलर ६ साल में जर्मनी को सारे संसार का मुकाबला करने के योग्य बना सकता था, तो इस देश के नेता भी ४० करोड़ जन-शक्ति के सहारे देश को एक बलाढ्य देश बना सकते थे जिसकी ओर कोई देश कड़ी नजर से देख तक न सके। लेकिन इस देश ने शक्ति की उपासना नहीं की और न अपने देश की भौगोलिक स्थिति का यथार्थ महत्त्व अनुभव किया। ब्रिटिश शासकों ने इसके महत्त्व को अनुभव किया था। लार्ड वेवल ने किया था। अतः वे भारत-विभाजन के विरोधी थे और उन्होंने वायसराय पद छोड़ना पसन्द किया किन्तु सचाई को नहीं छिपाया। किन्तु भारत-सुरक्षा की ब्रिटिश नीति बताते हुए एक बार लार्ड विलिंगडन ने कहा था कि भारत की पश्चिमी सीमा सिकन्दरिया है और दक्षिणी सीमा सिंगापुर है। बात यह है कि सिकन्दरिया-सिंगापुर आधार-रेखा थीं। और खैबर दर्रा शीर्ष-बिन्दु था। इन तीनों से मिलकर जो त्रिभुज बनता था उसकी रक्षा करना भारत की सुरक्षा के लिए आवश्यक था। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रथम महायुद्ध के बाद विशाखापत्तनम बन्दरगाह तो बढ़ाया गया और खैबर-दिल्ली विशाखापत्तनम् रेलवे-मार्ग का नाम 'सिंगापुर मार्ग' रखा गया। स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते हुए भारत ने युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इन तैयारियों का विरोध किया था, स्व० श्री शिवप्रसाद गुप्त ने (कांग्रेस के कोषाध्यक्ष) ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में देश से इधर ध्यान देने की अपील की थी, लेकिन सत्य नहीं बदला। भारत की सुरक्षा के लिए हिन्द महासागर पर भारत का वर्चस्व स्थापित होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। दुनिया की बड़ी शक्तियों के मध्य इसके अभाव में भारत स्थान नहीं पा सकता। शक्तिशाली के पास ही लोग सहायता माँगने आवेंगे, निर्बल के पास नहीं। यही कारण है नैपाल चीन की गोद में आज बैठा हुआ है और हम मन मारकर देख रहे हैं। इस सत्य को देखकर भी हम यदि अपनी शक्ति न बढ़ावें तो हम से अधिक अदूरदर्शी और कौन होगा?

किन्तु फिर भी——

किन्तु यह होते हुए भी निकिता ख्रुश्चेव ने भारत के प्रधान मंत्री को संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेम्बली के १५वें अधिवेशन में सम्मिलित होने का आग्रह किया था। यही नहीं मार्शल टीटो ने भी अनुरोध किया था कि स्तालिनवादी नीति की पराजय के लिए स्तालिनवादी पक्ष को उभरने न देने के वास्ते, और पेकिंग-पोत को नष्ट करने के लिए संयुक्त राष्ट्र में म० निकिता ख्रुश्चेव को विजयी बनाना आवश्यक है। अतः प्रधान मंत्री को न्यूयार्क में अवश्य होना चाहिए और वे वहाँ अन्त में गये। कारण क्या है? दो तुल्यबल गुटों को सन्तुलित रखने का काम कौन करेगा? तुला के दोनों पलड़ों को बराबर रखने का काम कौन करता है? पासंग करता है। इसका कितना महत्त्व है? पासंग के आकार-प्रकार को नहीं देखा जाता, किन्तु उसके महत्त्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। उसके अभाव में तराजू की क्या हालत होगी? भारत का भी यही महत्त्व है। भौगोलिक स्थिति और जनशक्ति के कारण यह महत्त्व उसको अनायास प्राप्त हो गया है। इस महत्त्व की रक्षा और उसका उत्कर्ष बढ़ाया जा सकता है, यदि हम शक्ति की उपासना 'चण्डी सप्तशती' का पाठ करके नहीं, किन्तु वास्तविक अर्थों में करें, अपना औद्योगिक और सैनिक बल बढ़ायें।

रूप बदल गया है——

संयुक्त राष्ट्र का रूप भी बदल गया है। स्थापना के समय इसके सदस्यों की संख्या ५१ थी और पश्चिमी देशों की प्रधानता थी। लेटिन अमरीका के बीस देश उत्तरी अमरीका के दो देश और पश्चिमी यूरोप के कुछ देश संयुक्त राज्य अमरीका की थैली के अन्दर रहते थे और बहुमत सदा उसका होता था लेकिन संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों में अफ्रीका के २५ देशों के हो जाने और एशिया के बीस देशों के होने से स्थिति बदल गयी है।

'एफ्रो-एशियाई संघ' संयुक्त राष्ट्र में अनेक प्रश्नों पर मिलकर काम करता है। इसकी सदस्य-संख्या पहले २५ थी और अब पैंतालीस हो गयी (माँली राष्ट्र को मिलाकर) है। संयुक्तराष्ट्र के १०१ सदस्य देशों में 'एफ्रो-एशिया संघ' के सदस्यों की संख्या ४९ है और वह आधे से अधिक है। इस संघ के अधिकांश सदस्य भावी युद्ध में अपने देशों को झोंकने, और अपने देश को रण-क्षेत्र बनाने के विरोधी हैं और इस दृष्टि से तटस्थ हैं। तटस्थता नीति रख अमरीका और रूस इन दोनों प्रतिस्पर्द्धी राष्ट्रों से अलग रहकर, दोनों की सहायता से आर्थिक विकास करना भारत की नीति है। दूसरे महायुद्ध के बाद स्वाधीन हुए एशिया और अफ्रीका के अधिकांश देशों को यह रवैया पसन्द है। भारत को इस कारण महत्त्व प्राप्त है। सद्यः स्वाधीनता प्राप्त देश अमरीका और रूस का मुकाबला करने के लिए——विवाद सभा में—भारत को आगे करने में संकोच नहीं करते। प्रधान मंत्री की विनम्रता भले ही न कहे कि भारत इस नवोदित शक्ति का——विश्व की तीसरी शक्ति का——नेता है, पर सच्चाई यही है। भारत की भौगोलिक स्थिति ने, निसर्ग और प्रकृति ने एवं हिन्द महासागर की लहरों ने——यद्यपि हमारे जलयान अभी उसपर उस तरह नहीं चलते जैसे चलने चाहिए——यह महत्त्व प्रदान किया है। इसका लाभ यदि हम न लें तो हमसे अधिक दुर्भागी और कौन होगा?

दूसरा पक्ष——

विवाद सभाओं में हमारा महत्त्व है। लेकिन जहाँ शक्ति की बात होती है, ताकत का प्रश्न होता है, हम कहीं भी नजर नहीं आते। फ्रांस ने फ्रेंच अफ्रीकी उपनिवेशों में से चौदह को स्वाधीन कर दिया और म० निकिता ख्रुश्चेव भी संयुक्त राष्ट्र में इन राष्ट्रों के प्रतिनिधियों द्वारा जनरल डीगाल की प्रशंसा सुनकर हतबुद्धि और चकित रह गये। क्या उस फ्रांस के पास इतना समय नहीं था कि वह पाण्डेचेरी पर भारत का कानूनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार स्वीकार करने के लिए कानून बना सके। जनरल डीगाल के पहले से यह मामला अटका पड़ा है। पाण्डीचेरी आज भी भारत का, विधि की दृष्टि से, भाग नहीं है। पुर्तगाल ने गोआ को भारत का एक भाग तक मानने से इन्कार कर दिया है और प्रधान मंत्री अंगोला और मुजाम्बिक के स्वाधीन होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपको विश्वास है कि जब ये स्वतंत्र होंगे, तो गोआ भी अपने आप स्वतंत्र हो जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और पुर्तगाल में डा० सालाजार का पतन गोआ को स्वाधीन कर देना, यह है प्रधान मंत्री का विश्वास। इसलिए गोआ के बारे में भारत-सरकार का भी कुछ कर्त्तव्य है, यह प्रधान मंत्री नहीं मानते।

भूले हुए हैं—

देश-विभाजन का कोई भी आधार हो, प्रधान मंत्री भले ही कहें कि स्वभाग्य-निर्णय के आधार पर देश-विभाजन हुआ—किन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बंगाल और पंजाब में धर्मानुयायियों की संख्या की बहुलता के आधार पर और तहसील स्तर पर विभाजन हुआ। लेकिन बंगाल के चटगाँव हिल्स डिस्ट्रिक्ट के साथ यह नियम लागू नहीं किया गया। इस प्रश्न को प्रारम्भ में उठाया भी गया लेकिन फिर उसको अन्त तक पहुँचाया नहीं गया। बेरूबाढ़ी थाना पाकिस्तान को हस्तान्तरित करने को उद्यत होते हुए भी इस प्रश्न की ओर ध्यान नहीं गया। काश्मीर की चर्चा चलायी जाती है लेकिन चटगाँव हिल्स डिस्ट्रिक्ट की बात याद नहीं की जाती।

सिन्ध में तो हिन्दू-मुस्लिम बहुल जिलों का कोई ख्याल ही नहीं किया गया। राजस्थान के सीमावर्ती सिन्ध के जिले हिन्दू-बहुल थे किन्तु उनको पाकिस्तान के हवाले कर दिया गया। तेरह साल बाद भी उनको लेने की कोशिश नहीं की गयी। इस अवस्था में यदि चीन तिब्बत नस्ल का समूल नाश करने का बीड़ा उठा ले, हिमालय के साथ-साथ चीनी-सेना तैनात कर दे और इस मार्ग की रक्षा के लिए भारत की १२००० से १६-००० वर्ग मील जमीन हथिया ले तो क्या आश्चर्य? भारवि ने ठीक कहा है:

"अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां,
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना,
न जातहार्देन न विद्विषादरः॥"
"ज्वलितं न हिरण्यरेतसं
चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः
सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः॥"

इस सत्य को ७ हजार साल पहले कविगुरु कालिदास ने भी अनुभव किया था। अतः वे कह गये हैं:

"इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः॥"

लेकिन आधुनिक भारत ने कालिदास द्वारा आविष्कृत सत्य की उपेक्षा की है और उसकी नीति है: "शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।" किन्तु यह केवल पर-राष्ट्र नीति ही है। स्वराष्ट्र नीति इसके विपरीत है। छात्रों पर गोली चलाने से यह नीति उसको नहीं रोकती। इस अवस्था में यदि चीन, पाकिस्तान और पुर्तगाल भारत का अपमान करे, भूटान भारत की ओर पीठकर चीन की गोद में जाने को उत्सुक हो, और नेपाल भारत का अनादर करे तो क्या आश्चर्य! जो काम शक्ति से होता है, वह बातों से नहीं होता। लात के पीछे अंकुश होना चाहिए। पीठ पर शक्ति होनी चाहिए तो उसकी कीमत होती है। २५,००० वर्गमील लद्दाखी भूमि पर फहराती चीनी पताका इसी सत्य को कह रही है। नागा और भारत का प्रदाय (सप्लाई) विमान गिराने का साहस करें, यह इसीकी उपेक्षा करने के कारण सम्भव हुआ। सीलोन भारतीयों पर ४०० रु० 'जजिया कर' लगावे इससे अधिक दुःख और अपमान की बात और क्या हो सकती है?

आत्म-विस्तार

यदि भारत जनसंख्या की समस्या को हल करने के लिए आत्म-विस्तार की नीति अपनाता, बृहत्तर भारत के पुनर्जीवित करने का (सांस्कृतिक दृष्टि से, धर्म व संस्कृति के प्रचार की दृष्टि से) आदर्श नयी पीढ़ी के सामने रखा जाता। वेस्ट इण्डीज से लेकर तीमोरिन तक फैले भारतीयों के साथ निकट सम्पर्क स्थापित किया जाता और उनकी हर प्रकार से सहायता की जाती, तो भारत के नवयुवकों में प्रान्तीयता और जातीय भावनाओं का प्राबल्य न होता और नवयुवक अपनी विद्या-बुद्धि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा के लिए विदेशों का मार्ग लेते। इससे भारत का भी गौरव बढ़ता और भारतीयता भी दृढ़ होती। फैलने का स्थान न होने के कारण आज आन्तरिक, जातीय, साम्प्रदायिक और प्रान्तीय भावनायें उग्र रूप धारण कर रही हैं। यदि भारत के तरुण यह जानते और अनुभव करते कि योग्यता और शक्ति सम्पन्न होने पर वे देश से बाहर जाकर कीर्ति का अर्जन कर सकते हैं और देश को बलवान बना सकते हैं तो यहाँकी क्षुद्र नौकरियों के लिए न लड़कर उसकी जी-जान से तैयारी करते। यदि बौद्ध और हिन्दू प्रचारक, साधनों के अभाव में अलंघ्य पर्वत-मालाओं, गिरि-कन्दराओं को लाँघकर दुर्गम घाटियों की चिन्ता न कर और महासागरों को पार कर जा सकते थे, तो आज के भारतीय युवक भी सारी दुनिया के कोने-कोने में फैल सकते थे—आज भी १६,००० विज्ञान की शिक्षा पाये हुए युवा विदेशों में हैं और देश का गौरव ही नहीं राष्ट्र की शक्ति को भी बढ़ा सकते थे। लेकिन हमने फैलने बजाय सिकुड़ने की नीति ग्रहण की है। समुद्र-यात्रा निषेध का परिणाम जैसे पहले घातक हुआ था उसी प्रकार अनात्मविस्तार नीति भी इस राष्ट्र को निस्तेज कर रही है। कोई आदर्श न होने के कारण तरुण विद्याध्ययन की उपयोगिता नहीं मानते और अनुशासन भंग करते हैं। किन्तु इसके लिए दोषी वे नहीं, बल्कि वे लोग हैं जिन्होंने भारत के इतिहास और परम्परा को भुलाकर पिंजरे में बन्द रहने की नीति स्वीकार की है। क्या इस सत्य को अब भी समझा जायगा और विश्व के निर्जन भागों को आबाद करने की नीति ग्रहण की जायगी? विश्व-शान्ति का मार्ग यही है दूसरा नहीं।

कृष्ण-कौतुक

श्री राजेशदयालु "राजेश"

ना फल-मेवा न अन्न 'दयाल जू' छीर अहै सिसु हेत बनायो।
आय लियो अवतार तौ छीरदा-बृन्दहिं बेनु बजाय चरायो॥
एतेहु पै नहिं तोष भयो तौ घरै घर छीर को सार चुरायो।
छीर-समुद्र में बास करैं हरि, छीरहि माँहि रहै मन छायौ॥

रहे दधि खात, लख्यो मनि-खंभहिं, बोले, अहो! तोहिं कौन खवावै।
न खाउ, न खाउ, अहे! मति खाउ कि चाहत है पिटि कैं घर जावै॥
'दयाल जू' छोरे की देखौ ढिठाई, कह्यौ कितनो गयो कानै न लावै।
मनो जितनो नंदलाल करैं तितनो अरि कैं मुख औरौ चलावै॥

जोइ मिलै पहिरे पियरो पट, ताहिसों जाय कैं दीठि भिरे।
स्यामै नहीं निकसैं हर बार महान गलानि मैं आय गिरै॥
तैं सखि! नन्दहिं दै समुझाय सबै नगरी मैं ढिंढोरो फिरै।
या ब्रज मैं इक कान्हहिं छोरि कैं कोइ पितम्बर न पहिरै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी विश्वकोश की कुछ त्रुटियाँ

डॉ० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्०

ज्ञानविहीने सर्वमनेन
मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन

वर्तमान जगत् अति गतिशील है। ज्ञान-विज्ञान खरगोश की भाँति छलाँगें भरकर आगे को दौड़ रहा है। ज्ञान-विज्ञान की पैनी धार के समान सत्य में और भी प्रखरता लाई जा रही है। संसार सूक्ष्मतर को पकड़कर नयी क्रांति ला रहा है। यूरप और अमेरिका में बिजली का बटन घर-गृहस्थी का सभी काम कर रहा है। आफिसों में भी बिजली के बटन का राज है। मशीन, दिमागदार मशीन जिदों को बुद्धि के क्षेत्र में पीछे पछाड़ने की होड़ में है। अमेरिकन और रूसी ज्ञानी विज्ञानी अपने भ्रमरहित और बाल की खाल उतारनेवाले सत्य ज्ञान के कारण राकेटों द्वारा सूरज और चाँद तक पहुँच चुके हैं। यूरप और अमेरिका की अतुल समृद्धि में सच्चे ज्ञान और विज्ञान की ज्योति चमक रही है। भारत में ऋषियों ने ज्ञान की शक्ति के गीत सदा से गाये हैं। **ज्ञानं ब्रह्म, तस्मात् ज्ञानमुपास्व**। ज्ञान स्वयं सर्वशक्तिमान् ब्रह्म है, इस कारण उसके पास बैठकर उसकी लगन में जीवन बिना (**उपास्व**) मनु ने बताया है **तस्मात् यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः** जो वाणी की चोरी करता है वह सबसे बड़ा डाकू है। वाणी की चोरी, झूठ बात कहना है। यदि किसी क्षेत्र में इसका बोलबाला हो तो समाज का सत्यानाश होकर ही रहेगा। ज्ञान के क्षेत्र में असत्य की छाया भी सर्वनाश का दृश्य उपस्थित कर देती है। यह सब लिखने का प्रयोजन यह है। कि हिंदी में बहुत-सी पुस्तकों में भद्दी-भद्दी भूलें पायी जाती हैं। इससे सरकारी या गैर-सरकारी उत्तरदायित्व-पूर्ण साहित्यिक संस्थाओं द्वारा इनका अवश्य नियंत्रण होना चाहिए। अन्यथा, यह भ्रमपूर्ण ज्ञान देश को उठाने की जगह उसे चौपट करने का साधन बन जायगा। अब देखिए कि हमारी एक नामी साहित्यिक संस्था—नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा केंद्रीय सरकार की सहायता से संकलित और प्रकाशित हिंदी विश्वकोश नामक ग्रंथ का पहला खण्ड है। मैंने इसे मोल मँगाया। ज्ञान की तीव्र पिपासा से ग्रंथ मँगाया गया, किन्तु इसे पढ़ा तो ऐसा मालूम हुआ कि इस ज्ञान से भरे महाग्रंथ में प्रायः सभी शब्दों के विषय में भ्रमपूर्ण ज्ञान फैलाया गया है। अन्य भाषाओं —जर्मन, अमेरिकन, अँगरेजी आदि-आदि भाषाओं—के विश्वकोश ज्ञान का विशुद्ध प्रकाश फैलाते हैं। छोटा सा एक दस खंडों का जर्मन विश्वकोष १९५६ ई० में जर्मनी से प्रकाशित हुआ। इसके विषय में मैंने लंदन के टाइम्स के लिटररी सप्लीमेंट में आलोचना पढ़ी। उसमें संपादक ने लिखा था कि इतने छोटे विश्वकोश में कुछ ऐसी घटनाओं और तथ्यों का वर्णन इतना नवीन और रस-पूर्ण है कि इससे विश्वकोशों के संपादकों को सबक सीखना चाहिए। उत्तम-उत्तम विश्वकोशों के होते हुए हिन्दी विश्वकोश के निकृष्ट निकलने का दुख है। इसके संपादकों और लेखकों ने इसमें अशुद्धियों की भरमार कर रखी है। पाठक इनमें से कुछ का निरीक्षण करें :—

'अंधक' शब्द देखिए। हिन्दी विश्वकोश में इसके दो अर्थ दिये गये हैं। पर वास्तव में अंधक कई हुए हैं, उनका उल्लेख अँगरेज कोशकारों ने किया है। अंधक कई हुए थे, अपने विश्वकोश में इसका भी उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं अंधक-रिपु शिव का, तथा अंधक-वर्तक एक पर्वत का नाम, ये दोनों नाम भी जो सभा के हिंदी विश्वकोश के संकलनकर्त्ताओं ने अपने कोश में दिये हैं, गधे के सींग बन गये हैं। अपने शब्दों को देने में यह हिचक, यह कंजूसी कैसी? वेदों पुराणों में सुरों, असुरों, ऋषियों आदि के जो नाम पाये जाते हैं, यदि उनका उल्लेख हिन्दी, बँगला, मराठी आदि भारत के विश्वकोशों में न रहेगा तो क्या वह अन्य देशों के विश्वकोशों में रहेगा? एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में ईसाई धर्म के सभी संतों के नाम हैं और इनके पूरे परिचय दिये गये हैं। इसलिए अन्य अंधकों पर कुछ लिखना चाहिए था। इन अंधकों पर न लिखना पौराणिक नामों के विषय में अपनी अज्ञता प्रकट करना है।

अब एक और शब्द **अंगद** लीजिए। इस पर विश्वकोश ने केवल एक ही **अंगद** का परिचय दिया है। लक्ष्मण के पुत्र अंगद का इसमें उल्लेख ही नहीं है। एक अंगद श्रीकृष्ण के भतीजे थे। वे भी विश्वकोश में नदारद हैं। इस दृष्टि से हिंदी विश्वकोश का वर्णन अधूरा है। ऐसा ज्ञात होता है कि विश्वकोश के संपादकों को संस्कृत तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की पुरानी संस्कृति का ज्ञान प्रायः नहीं है। उक्त भूलों का रह जाना, यही तथ्य उद्घाटन करता है। खेद है कि हिन्दी विश्वकोश के योग्य सम्पादकों को हिन्दी में इनसे अच्छे लेखक खोज कर भी नहीं मिले। यह दुख का ही विषय है। जब इतने साधारण नामों में ऐसी भयंकर त्रुटियाँ हैं तो दूसरे नामों के वर्णन का क्या कहना।

एक नमूना हिंदी विश्वकोश के विद्वान् संपादकों और लेखकों के व्युत्पत्ति-ज्ञान का भी प्रस्तुत किया जाता है :—संस्कृत में एक शब्द **अंग** है। इसकी, बकौल हिंदी विश्वकोश के सुयोग्य संपादकों के, व्युत्पत्ति संस्कृत के अंग् (गति होना) से है जिसका अर्थ उपकारक होता है। संस्कृत कोशों को छान मारा, किन्तु यह अर्थ देखने में ही नहीं आया। **अंग** पर लिखनेवाले का ज्ञान देखकर विस्मय में विमुग्ध हो जाना पड़ा। कल्पना की यह आकाश तक की उड़ान देख, अवाक् पत्थर की मूर्ति बना हुआ था। संस्कृत में **अंग** (अव्यय) का अर्थ 'अच्छा' 'सचमुच' 'वास्तव में' आदि तो पाया जाता है, पर उपकारक अर्थ कहीं नहीं मिलता। यह अर्थ शायद छायावादी, रहस्यवादी या प्रयोगवादी हो। इसपर तुर्रा यह है कि इसमें बताया गया है कि जिसके द्वारा किसी वस्तु का स्वरूप जानने में सहायता प्राप्त होती है, उसे भी **अंग** कहते हैं। इसलिए, वेद के उच्चारण, अर्थ तथा प्रतिपाद्य कर्म के ज्ञान में सहायक तथा उपयोगी शास्त्रों को वेदांग कहते हैं, आदि। अब इस कथन पर थोड़ा भी विचार किया जाय तो यह स्पष्ट होने में देर नहीं लगती कि किसी शब्द की व्युत्पत्ति उसकी धातु से खुलती है। उदाहरणार्थ—**मनु** और **मनुष्य** की व्युत्पत्ति मन् (मनन करना) से स्पष्ट होगी और **खनक** की **खन** धातु से। इसी प्रकार अधिकांश शब्दों की व्युत्पत्ति समझिए। अँगरेजी **मैन** (man) या जर्मन मान (mann) भी मनु के ही विकृत रूप हैं। ये भी **मन** धातु से निकले हैं। अब **अंग** लीजिए। यह अंग् (हिलना-डुलना-चलना) धातु का रूप है। शरीर के अंग हिलने-डुलने या चलने के कारण उक्त नाम से संबोधित किये गये। वेदांग का अंग, वेद के अवयवों के अर्थ में आया है, नकि उपकारक के, क्योंकि अंग् धातु का अर्थ उपकार करना धातुपाठ में है ही नहीं। संस्कृत का यह अज्ञान अनुचित है और विश्वकोश में तो अक्षम्य है। यह तो पाठकों को भूलभुलैया में डालना है।

हिन्दी विश्वकोश में संपादकों और साथ ही लेखकों का महान् संस्कृत-ज्ञान सर्वत्र चमचमा रहा है। **अंतर्वेद** शब्द भी विश्वकोश की शोभा बढ़ा रहा है। आप्टे और मोनियर विलियम्स के कोशों में यह संस्कृत शब्द मिला ही नहीं। अन्य कोशों में भी नदारद है। वास्तव में यह शब्द हिन्दी विश्वकोश के संपादकों और उनके द्वारा स्वीकृत लेखकों की कल्पना की उपज है। यह **अंतर्वेद** संस्कृत भाषा के निपट अज्ञान का निदर्शन है। अंतर्वेद हिन्दी शब्दसागर में मिलता है। संभवतः हिन्दी विश्वकोश के काशी की नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किये जाने के कारण यह अशुद्ध शब्द विश्वकोश में भी रख दिया गया है। हि० श० सा० में अंतर्वेद शब्द दिया गया है। इसे संस्कृत भी बताया गया है। इसे कोश में देखकर हिंदी विश्वकोश ने भी ग्रहण कर लिया होगा। अब तमाशा देखिये कि हि० श० सा० ने इसे दिया है, पर जरा भी ध्यान नहीं दिया कि इसके संस्कृत रूप का पता चलाये या अंतर-वेद शब्दों का अर्थ विचारे। यदि अंतर्वेद शब्द का संस्कृत में कोई अर्थ होता तो वह भीतरी ज्ञान होता। पर गंगा और जमुना के बीच की भूमि के लिए अन्तरवेदिः-अंतर्वेदी रूप हैं। इसका अर्थ हुआ (गंगा और जमुना के) बीच की वेदी। अब पाठक समझ गये होंगे कि हिंदी विश्वकोश के संपादकों का संस्कृत और हिंदी का यह ज्ञान महान् दुख का विषय है। विश्वकोश का एक एक शब्द नपा-तुला होना चाहिए। उसके भीतर सर्वथा शुद्ध शब्द और तथ्य रहने चाहिए। उनके स्थान पर इस प्रकार की शब्दों की ही भद्दी भूलें हिन्दी की उन्नति में सहायक नहीं होंगी। ये भूलें बंगाली, मराठी आदि के विद्वानों में हमारा सिर नीचा करवायेंगी। इसमें कोई संदेह नहीं। भारत सरकार के विद्वानों को इस विषय की ओर ध्यान देना चाहिए। नहीं तो वही मसल चरितार्थ होगी—**विनायकम् प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्।** गणेश की मूर्ति बनाने में जुटा पर बना गये बानर। समय पर सावधान होना ही उचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१३)

पण्डित व्रजमोहन व्यास

मालवीयजी—एक महान् पुरुष

'महान्' संस्कृत का एक छोटा-सा शब्द है जिसके पर्याय-वाची शब्द तो अनेक हैं पर उस शब्द की व्याख्या करना असम्भव है। कारण, महत् का आरम्भ उस स्थान से होता है जहाँ पर साधारणता समाप्त होती है। इस स्थान से वह कितने ऊपर तक जायगा, यह बुद्धि से परे है। किसी महान् पुरुष की तुलना किसी दूसरे महान् पुरुष से नहीं की जा सकती। महानता वैयक्तिक होती है अतएव अनुपमेय है। सागर की उपमा नहीं दी जा सकती। 'सागरः सागरोपमः।' ईश्वर के पर्यायवाची शब्द अनेक हैं। पर उसकी व्याख्या नहीं हो सकती।

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो
महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं
द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः॥

इन्द्र कहते हैं कि जिस प्रकार हरि को पुरुषोत्तम कहते हैं और महेश्वर को त्र्यम्बक, उसी प्रकार मुनि लोग मुझे शतक्रतु के नाम से जानते हैं। यह शब्द किसी दूसरे के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। उर्दू साहित्य भी कहता है—

यह पूछते हो ख़ुदा क्या है।
ख़ुदा ख़ुदा है, और क्या है॥

इसी प्रकार महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी की तुलना किसी अन्य महान् पुरुष के साथ नहीं की जा सकती। हम उनके महत्त्व का थोड़ा-बहुत ज्ञान उनके संस्मरणों से कर सकते हैं। वह भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार। महामनाजी में बच्चों की-सी सरलता थी—

लज्जते न गदितः प्रियं परो
वक्तुरेव भवति त्रपाधिका।
व्रीडमेति न तव प्रियं वदन्
ह्रीमतात्र भवतैव भूयते॥
माघ।

(साधारण जन की यदि अत्यधिक प्रशंसा की जाय—चाहे वह उसके योग्य हो अथवा न हो—उसको लज्जा नहीं मालूम होती। प्रशंसा करने वाला ही लज्जित हो जाता है। परन्तु आपकी प्रशंसा करने में हमें तनिक भी लज्जा नहीं लगती। कारण, आप इतने महान् हैं कि हम कितनी भी आपकी

वृद्धावस्था में मालवीयजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा करें वह थोड़ी ही होगी। इसके प्रतिकूल, अपनी सरलता के कारण आप ही लज्जा का अनुभव करने लगते हैं।) यही कारण है कि बच्चे उन्हें बड़े प्रिय थे। मालवीयजी जब नैनीताल जाते थे तो पण्डित सुन्दरलालजी के साथ ठहरते थे। सुन्दरलालजी नगर के एक प्रमुख रईस और हाईकोर्ट के चोटी के वकील थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापन में वे मालवीयजी के दाहिने हाथ थे। एक बार जब मालवीयजी नैनीताल गये उस समय सुन्दरलालजी का भतीजा कृष्णा दवे बहुत छोटा था। कोई सात-आठ वर्ष का रहा होगा। मालवीयजी वृद्ध हो जाने पर भी प्रतिदिन नियम से व्यायाम करते थे और चन्दनादि तैल की मालिश कराते थे। एक दिन लँगोटा बाँधकर व्यायाम कर ही रहे थे कि खेलता-कूदता कृष्णा वहाँ आ पहुँचा। मालवीयजी ताल ठोंककर बोले "कृष्णा! आओ हमारी तुम्हारी कुश्ती हो।" चिबिल्ला तो था ही कृष्णा पिल पड़ा। मालवीयजी लड़ते-लड़ते आप ही आप चित हो गये और ठहाका मारकर बोले "बुड्ढा पटक गया, बुड्ढा पटक गया" इस प्रकार बच्चों में मिलकर वे प्रायः खेल किया करते थे।

एक बड़ी पुरानी बात याद आ गयी। १९०९ की है। उसी साल मैंने बी० ए० पास किया था। कसरत-कुश्ती का मुझे बहुत शौक था। सुबह डंड-बैठक करता और शाम को कुश्ती लड़ता। पैत्रिक मकान से सटा हुआ हमारे ही परिवार का एक छोटा-सा बाग था। वहीं अखाड़ा खुदवा लिया था। उसी बाग में मेरे पितामह रहते थे। वे बड़े धर्म-निष्ठ, मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र सद्गृहस्थ थे। मालवीयजी उनका बड़ा आदर करते थे और प्रायः, सत्संग के हेतु उनके पास आते थे। मेरे पितामह को भी युवावस्था में कसरत-कुश्ती का बड़ा शौक था, ऐसा वे हम लोगों से प्रायः कहा करते थे। व्यायाम और कुश्ती की ओर मेरी लगन देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। एक दिन डंड लगाकर मैं उठा तो उन्होंने मुझे पुकारा—'ब्रजमोहन।' वे शब्दों का शुद्ध उच्चारण करते थे। यही मर्ज मुझे भी है। शायद पैत्रिक है। पितामह ने कहा "ब्रजमोहन! तुम्हारा बुंदेलखण्डी क़द है (मेरी माता बुंदेलखण्ड की थीं)। तुमको यदि यथेष्ट घी-दूध मिले तो तुम अच्छे पहलवान हो सकते हो। तुम कितना पचा सकते हो? उसका खर्च हम देंगे।' हमने कहा "महाराजजी! (हम सब लोग छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष पितामह को महाराजजी कहते थे) हम प्रतिदिन पाव भर घी, दो सेर दूध और एक 'ढूँढ़ा' (मेवे का लड्डू) आसानी से पचा सकते हैं।" पितामह ने स्वीकार कर लिया और हर हफ़्ते पहिले से उसका दाम मुझे दे देते थे। जिस प्रकार सहसा धन मिल जाने से कुमार्गी खुल खेलता है कुछ उसी प्रकार मैं कसरत-कुश्ती में जुट गया। क्रमशः एक झुक में १००० डंड और ५०० बैठक तक लगाने का अभ्यास हो गया। पर अब—

वक़्त पीरी शबाब की बातें।
ऐसी हैं जैसे ख्वाब की बातें॥

पितामह बराबर मुझे प्रत्येक सप्ताह के आरम्भ में नियम से द्रव्य दे देते थे। परन्तु मैं दूध और घी वाले को दाम नहीं देता था बल्कि अपने पास जमा करता जाता था। एक दिन उस धन से तथा माता-पिता और बड़े भाइयों से अनुनय-विनय कर एक पुरानी बाईसिकिल खरीद डाली। जानते थे कि

क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन॥

ग़ालिब।

यही हुआ। घीवाले को तो वादे-ही-वादों में रखा पर दूधवाली, रघुवा की लँगड़ी दुलहिन, एक तो मेहराह की जात, और फिर अहिरिन, भला कब तक सब्र कर सकती थी। एक दिन चनचनाती हुई आयी। मैंने हजार चाहा कि बला टले पर महाराजजी को खबर लग गयी। माँ के सामने पेशी हुई। महाराजजी ने उनसे मेरी शिकायत की और कहा "अगर इनकी इसी तरह उधार लेने की आदत पड़ी रही तो ये एक दिन जेलखाने जायँगे। अब तुम इनका उधार चुकाओ।" माँ ने कहा—"ये रोज उधार लें और हम चुकावें, यह हमसे नहीं हो सकता। हमारी बला से ये जेलखाने जायँ। जैसा करेंगे वैसा पावेंगे।" पितामह हँसने लगे—बोले "बहू बड़ी कड़ी मालूम होती है।" इस फटकार को मैं सह लेता, पर दिक्कत तो यह आ पड़ी थी कि मेरी श्रीमतीजी सुन रही थीं। प्रतिकार करना आवश्यक हो गया। मैं झपटकर अपना जूता, छाता, कपड़े इत्यादि उठा लाया और बोला "इन सब को बेचकर मैं कौड़ी-कौड़ी चुकाये देता हूँ।" महाराजजी थोड़ा मुलायम पड़े। पर दृढ़ता से कहा "एक तो तुमने बेजा काम किया और फिर क्रोध करते हो! अच्छा, अब की बार तो हम इन लोगों का दाम चुका देते हैं, पर आइन्दा ऐसा न करना। उधार लेना बड़ी बुरी बात है।" खैर, बला टली। इतना असर अवश्य हुआ कि इस फटकार की पुनरावृत्ति का अवसर मैंने नहीं दिया और उससे द्विगुणित गति से कसरत चल निकली।

एक दिन की बात है। मेरे मकान से संलग्न गँगुवा तेली की दूकान थी। प्रातःकाल व्यायाम कर उठा था। मालिश कराने के लिए उस तेली की दूकान से तेल लेने के लिए मैंने अपना नग्न हाथ बढ़ाया। (16 inches round the biceps) १६ इंच डंड की नाप थी। गली से दो प्रयागवाल चले जा रहे थे। उन्होंने मेरे तगड़े हाथ को देखा। एक ने अपने साथी से कहा "—बड़ा तगड़ा है।" यह वाक्य एक गाली के शब्द से पुरस्कृत था जिसका उच्चारण अथवा लेखन नयी सभ्यता के कारण मैं नहीं कर सकता। परन्तु अँगरेजी में उसे brother-in-law, the loser और हिन्दी में 'पत्नी का भाई' कहते हैं। ऐसा विशिष्ट व्यक्ति जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

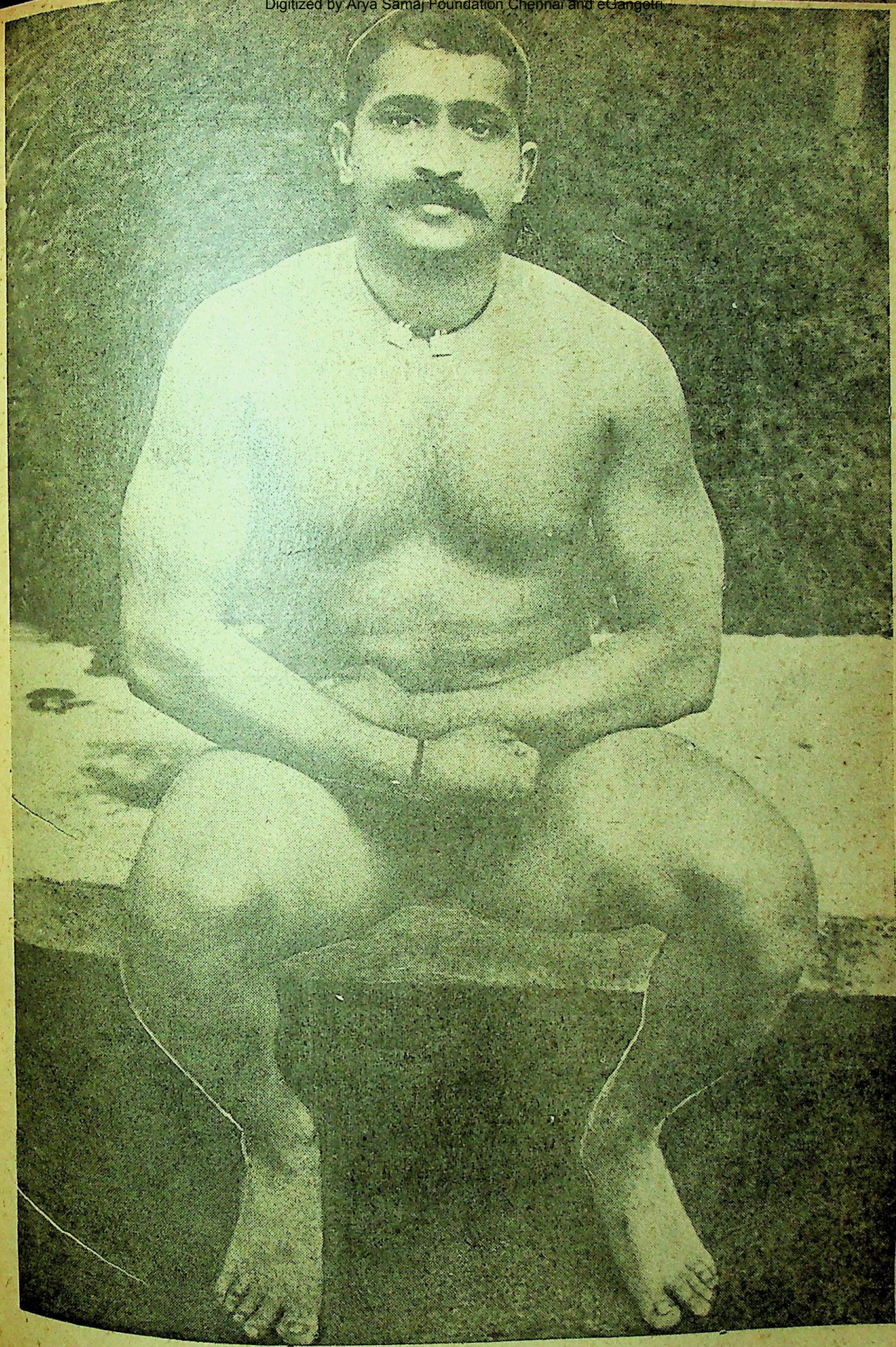

—लेखक—आयु २५ वर्ष

"Take off that black chord round your neck"—*Malaviyajee*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीया श्रीमती ललिता देवी
लेखक की माता

सामने 'सारी खुदाई एक तरफ़' रहती हो, उसका इतना अपमान कि उसकी गाली में गणना की जाय!! 'समय एव करोति बलाबलं' समय बलवान् को निर्बल कर देता है। खैर, गाली के शब्द प्रयोग करने पर भी मैंने उससे मन में कहा 'जाव तुम्हें माफ किया' क्योंकि वह प्रशंसात्मक गाली थी। यदि अन्य किसी अवसर पर उसने ऐसा कहा होता तो उसके दाँत जमीन पर दिखलाई पड़ते। अस्तु।

प्रत्येक व्यसन का चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा, एक वातावरण और उसकी सज-धज निराली होती है। मैं भी पहलवानों की तरह गरदन में काला गंडा और तावीज, दाहिनी कलाई में काला गंडा, यहाँ तक कि दाहिने पैर में भी काला गंडा बाँधता था। एक दिन मालवीयजी की नजर पड़ गयी। उस समय उनके साथ कई आदमी भी थे। मालवीयजी ने अँगरेजी में मुझसे कहा 'Vyas jee, take off that black chord round your neck. It used to be the fashion of times gone by' (व्यासजी, गरदन से काला गंडा उतार डालिये। वह वक्त जब इसका 'फ़ैशन' था, बीत गया) मालवीय जी ने अँगरेजी में इसलिए मुझे डाँटा क्योंकि जो लोग उस समय उनके साथ थे वे अँगरेजी नहीं जानते थे। मालवीयजी मुझे सबों के सामने अपमानित नहीं किया चाहते थे। डाँटने के समय भी उन्होंने इसका ध्यान रखा कि लोग यह न जान पावें कि मुझ पर डाँट पड़ गयी। महानता इसको कहते हैं। मैं कुछ नहीं बोला। उनका उपदेश मेरे गले के नीचे नहीं उतरा। यद्यपि मालवीयजी का साहचर्य मुझे नसीब था फिर भी मैंने उनके उपदेश का आदर न किया।

गुल का पहलू नसीब है, लेकिन
इसको कम्बख्त खार क्या जाने॥

मैंने मन ही मन कहा

कहो जो चाहो सुन लेंगे, मगर मुतलक़ न समझेंगे।
तबीयत तो ख़ुदा जाने कहाँ है, कान हाज़िर है॥

अकबर इलाहाबादी

अब आप ही इन्साफ़ करें। एक झुक में एक हजार डंड लगाकर खून पानी तो मैंने किया, पितामह की फटकार--और वह भी अपनी नव-विवाहिता पत्नी के सामने मैंने सहन की। एक प्रयागवाल की गाली मैंने सुनी। और मालवीयजी डाँटते हैं कि 'Take off that black chord....' भला यह भी कोई बात है। उस वक्त मैं सोचने लगा

तूफ़ान क्यों है बरपा थोड़ी सी जो पी ली है।
डाँका तो नहीं मारा, चोरी तो नहीं की है॥

सिर्फ काला गंडा ही तो बाँधा है। परन्तु जवाहर लालजी के शब्दों में 'जवानी के ज़ोम में हम लोगों को

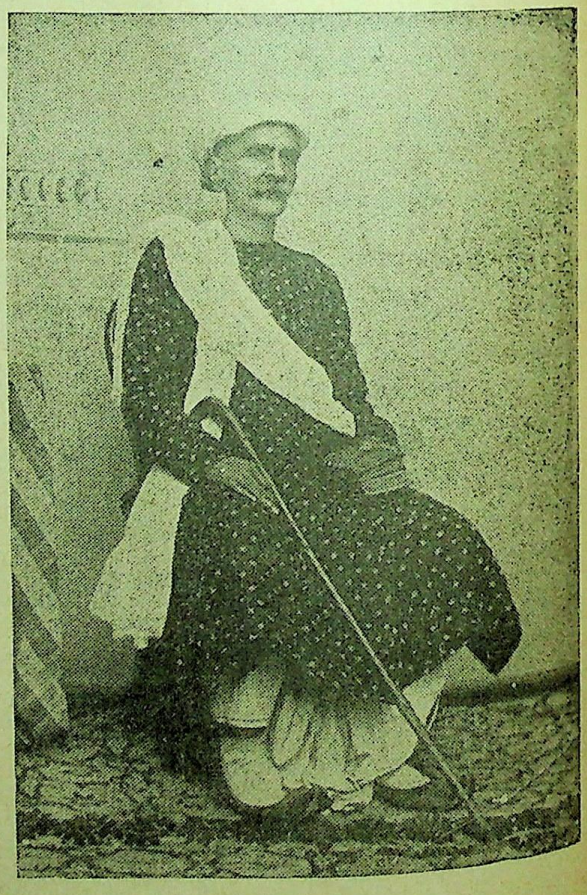

स्वर्गीय पं० लक्ष्मीनारायण व्यास
लेखक के पितामह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा ही लगता था कि मालवीयजी फूँक-फूँककर पैर रखते हैं।' बाणभट्ट कहते हैं :—

यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। गुरुवचनमसलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।

कादम्बरी—शुकनासोपदेश।

(यौवन के आरम्भ में शास्त्रों के अध्ययनरूपी जल के प्रक्षालन से निर्मल बुद्धि भी प्रायः कलुषित हो जाती है। अभागे को गुरुजनों का उपदेश कितना भी हितकर और स्वच्छ क्यों न हो, कान में पड़े हुए निर्मल जल के समान कष्टदायक होता है) जवानी का उफान उतर जाने पर मैंने स्वयं ही गंडों को उतार डाला।

भारतीय संस्कृत साहित्य, महान् पुरुष की इस प्रकार परिभाषा करता है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

(आपत्ति पड़ने पर धैर्य, अभ्युदय होने पर क्षमा, सभा में वाक्चातुर्य, लड़ाई छिड़ जाने पर शूरता, यश में रुचि, धर्म एवं धर्मशास्त्र में व्यसन, ये महान् पुरुषों के स्वाभाविक लक्षण हैं) अब मैं मालवीयजी को इन्हीं गुणों की कसौटी पर कसूँगा।

विपदि धैर्य—आपत्ति के समय धीरता।

मालवीयजी का जीवन संघर्षमय था। बचपन ही से अर्थाभाव, बड़े होने पर गृहस्थी न चल सकने के कारण ४०) महीने पर अध्यापकी करना इत्यादि का सामना करना पड़ा, पर उनके चेहरे पर शिकन नहीं आयी। उनका तो स्वभाव था—

चला जाता हूँ हँसता खेलता बहरे-हवादिस में।
अगर आसानियाँ हों ज़िन्दगी दुश्वार हो जाये॥

ऐसे हँसमुख स्वभाव के सामने सभी कठिनाइयाँ नत-मस्तक हो जाती हैं। इस सम्बन्ध में एक मार्मिक घटना अभी-अभी याद आयी थी पर पेश्तर इसके कि मैं उसे लिख पाऊँ, वह दिमाग से निकल भागी। ये संस्मरण कभी-कभी ऐसे गायब हो जाते हैं जैसे महाजन के सामने से कर्जदार। परन्तु महाजन के सामने कर्जदार की क्या हस्ती। कब तक वह मुँह छिपायेगा? 'कालोह्ययं निरवधिः' कभी न कभी तो पकड़ जायगा ही।

कठिनाइयों से अधिक, विपत्तियों का सामना करना कठिन होता है, विशेषकर दैवी विपत्तियों का। परन्तु मालवीयजी जानते थे कि

देह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥

सन् १९४२ की बात है। उन दिनों मालवीयजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रहते थे परन्तु बीच-बीच में प्रयाग आते-जाते रहते थे। उनकी धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दन देवी प्रयाग ही में रहती थीं। उन दिनों वे अस्वस्थ रहा करती थीं। हमारी छोटी बहिन सौभाग्यवती विद्या (मालवीयजी की पुत्र-वधू) उनकी सेवा में तत्पर रहा करती थी। माघ का महीना था। विद्या जब-तब गंगा-स्नान करने के लिए चली जाती थी; पर सास का ख्याल लगा रहता था। जल्दी ही लौट आती थी। एक दिन कुन्दन देवी ने उससे पूछा "बहू! मकुन्द (मालवीय जी के पुत्र) कहत रहें कि तुम कल्पवास किया चाहती हो। सोचा कि तुम्ही से क्यों न पूछ लेई। तुम जायवाली हो तो बुढ़ऊ (मालवीयजी) तो अबहिन जियत हैं। हम बनारस चली जायी।" विद्या ने कहा "बहुआ! हम न जावै। तुम्ही हमारा कल्पवास हो।" कुन्दन देवी को इससे बड़ा सन्तोष हुआ और उनकी आँखों में वात्सल्य के आँसू आ गये।

एक दिन विद्या गंगास्नान करने गयी थी। कुन्दन देवी आग ताप रही थीं। उन्हें पता न चलने पाया और उनके अँचरे में आग लग गयी। अशक्त तो थीं ही। कुछ करते-धरते न बन पड़ा। बहुत चिल्लायीं पर पेश्तर इसके कोई आवै, बहुत जल गयी थीं। राजा बच्चा (लक्ष्मीधर—विद्या का पुत्र) उस समय लगभग सात-आठ वर्ष का था। दौड़ा-दौड़ा पुराने भारती भवन के चबूतरे पर गया। उसी समय विद्या गंगा-स्नान से लौटकर आ रही थी। देखकर रोते हुए चिल्लाकर लक्ष्मीधर ने कहा 'बहुआ बहुत जल गयी हैं।" विद्या भागी-भागी घर आयी। देखा, बहुआ काँपी जा रही हैं और बराबर 'राजा राम, सीता राम' कह रही हैं। मालवीयजी को तुरन्त तार दिया गया। टेलीफोन किया गया। खबर पाते ही मालवीयजी आ गये। यह कहना निरर्थक है कि अच्छा से अच्छा उपचार होने लगा। परन्तु यहाँ आने पर उनकी जाँघ में एक भीषण 'कारबंकिल' (उलटा फोड़ा) निकल आया। वे चलने-फिरने से लाचार हो गये। कुन्दन देवी ऊपर के कमरे में पड़ी थीं। मालवीयजी के पुत्र लोग उन्हें कुर्सी पर बैठाकर अटारी पर उठा ले जाते थे। इस प्रकार वे घंटे डेढ़ घंटे प्रतिदिन अपनी पत्नी के पास बैठकर उनका सुख-दुःख पूछते थे।

सेवा करते समय एक दिन कुन्दन देवी से विद्या ने कहा "बहुआ! तुमने तो अपने जीवन में कभी कोई पाप की बात नहीं की। फिर तुम्हें क्यों इतना कष्ट मिल रहा है?" बहुआ ने धीरे-धीरे कहा 'बहू! एक ही जन्म का पाप नहीं देखा जाता। मालूम नहीं किस जन्म में हमसे पाप बन पड़ा है, उसका भोगमान भोग रही हैं। तुम्हें महाभारत की एक कथा सुनावें। जब धृतराष्ट्र के सौ पुत्र युद्ध में मारे गये तो उन्होंने व्यासदेव से पूछा 'भगवन्! हमने कौन-सा पाप किया कि हमारे सब पुत्र मारे गये। हमें अपने २१ जन्म की बातें तो याद हैं। उनमें हमने कोई पाप-कर्म नहीं किया। फिर क्यों हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

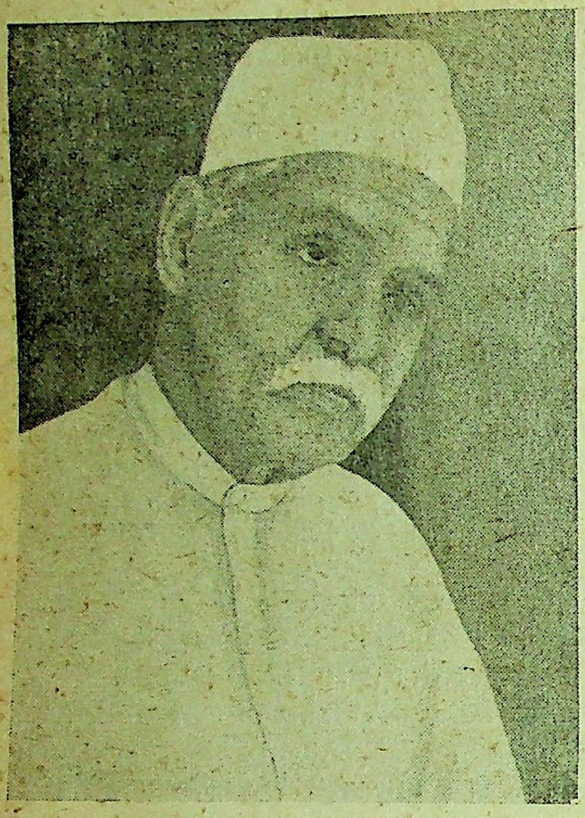

कारबंकिल से पीड़ित मालवीयजी

यह दारुण दुख भोगना पड़ रहा है। व्यास देव बोले "राजन्! यह पाप उससे भी पहिले का है। एक बार तुम बहुत बीमार पड़े। वैद्यों ने कहा कि यदि प्रतिदिन आप एक हंस के बच्चे का शोरबा पियें तो थोड़े दिनों में आप अच्छे हो सकते हैं। इस प्रकार हंस के सौ बच्चों का शोरबा पीकर आप अच्छे हुए हैं। उसीका यह फल है।" इतना कहने के बाद कुन्दन देवी चुप हो गयीं और सास-बहू दोनों की आँखों से आँसू झर-झर गिरने लगे।

कुन्दन देवी जिस दिन जलीं उस दिन से प्रतिदिन उनके पास एक डलिया गुलाब का फूल उनकी रसूलाबाद-वाली बगिया से आता था। उसमें सर्वप्रथम थोड़े-से फूल निकालकर परिवार के इष्टदेव राधा-कृष्ण पर चढ़ाने के लिए भेज देती थीं। फिर बचे हुए फलों में से एक-एक दो-दो फूल, बच्चों और बहुओं को देती थीं। मरने के तीन-चार दिन पहिले जब मालवीयजी कुरसी पर उनके पास आये तो कुन्दन देवी ने उनसे अपना पैर चारपायी पर रखने के लिये इशारा किया। यद्यपि फोड़े के कारण मालवीयजी के पैरों में दर्द था फिर भी अपनी पत्नी का मन रखने के लिए उन्होंने अपने पैरों को चारपायी पर रख दिया। कुन्दन देवी लेटे-लेटे फूलों की डलिया में हाथ डालकर खुड़ियारने लगीं और उसमें से दो श्वेत गुलाब के फूल चुनकर मालवीय जी के पैरों पर रख दिये और अपने हाथ को अपनी आँखों में लगा लिया।

तुषारलेखाकुलितोत्पलाभे पर्य्यश्रुणी मंगलभंगभीरु'
अगूढ़भावाऽपि विलोकने सा न लोचने मीलयितुं विषेहे॥

अर्थ—तीव्र पाला पड़ने से व्यथित कमल के समान उसके नेत्रों में अश्रु आ गये। यद्यपि उसकी आँखों से उसके हृदय का भाव प्रकट हो रहा था पर अमंगल के भय से उसने अपनी आँखों को नहीं मीचा। (कि कहीं मीचने से अश्रु न गिर पड़ें और अमंगल हो जाय)

कुन्दन देवी की आँखों में आँसू आ गये पर उन्होंने आँखों को बन्द नहीं किया कि कहीं आँसू ढुलक न पड़ें। फिर बहुत धीरे-धीरे बोलीं—'तुम हमें पहिले दुइ दफे जाय के लिये मना कर दिह्यो रहा। हम तुमरी बात मान गये रहे। अब हमें आज्ञा दै देव तो चली जायी।' मालवीय जी थोड़ी देर चुप रहे। फिर अँगौछे से आँख पोंछकर बोले—'अब तुम्हारा समय आ गया है। अब तुम जाव।'

पाठकों को 'दो दफा मना करने' का रहस्य बता दूं। १९०१ में प्रयाग में प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। लगभग तीन-चार सौ आदमी रोज मरते थे। गिलटी निकली, फिर बचना असम्भव हो जाता था। नगर के अधिकांश

सौभाग्यवती कुन्दन देवी, मालवीयजी की धर्मपत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकानों में ताले पड़ गये। जिसे जहाँ जगह मिली, भाग निकला। मालवीयजी का परिवार सिविल लाइन के एक बँगले में चला गया। मालवीयजी ने पीड़ितों के दवा-दारू और मृतों के जलवाने का यथाशक्ति प्रबन्ध किया पर इतने भयंकर प्राकृतिक प्रकोप में सब योजनायें लुंज हो जाती हैं। ठेलों में भर-भर कर लाशें यमुना में फेंक दी जाती थीं। मैंने अपनी आँखों से बलुआघाट के किनारे यमुना में दो-तीन सौ लाशें उतराते और मल्लाहों को नित्य के गंगा-स्नानार्थियों को नाव पर बिठाकर लाशों को डाँड़ से हटाकर स्नान के लिए ले जाते देखा है। उन्हीं दिनों सिविल लाइनवाले बँगले में कुन्दन देवी को तीव्र ज्वर हो आया और दोनों जाँघों में प्लेग की गिलटियाँ निकल आयीं। इस आपत्ति के सहसा आ पड़ने पर मालवीयजी उद्विग्न तो हो गये पर उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। कुन्दन देवी की भरपूर चिकित्सा होती रही। एक दिन जब उनकी हालत बहुत बिगड़ी तो मालवीयजी ने रुआँसे होकर उनसे कहा "तुम चली जावगी तो छोटे-छोटे बच्चों को कौन सम्हालेगा? हमें अभी बहुत काम करना है। उसे हम किसके सहारे करेंगे? तुम न जाव।" कुन्दन देवी आँख बन्द किये केवल इतना धीरे से बोलीं "तुम चिन्ता न करो। हम न जाबै।" 'रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।' वे धीरे-धीरे अच्छी हो गयीं।

दूसरी घटना १९२० की है। कुन्दन देवी इतनी बीमार पड़ीं कि बचने की कोई आशा न थी। इस बार भी मालवीयजी ने उनसे न जाने के लिए कहा और वे बच गयीं। इन दोनों बार मालवीयजी और कुन्दन देवी के कथोपकथन में क्या दैवी रहस्य निहित था यह तो भगवान् ही जाने।

अबकी बार सन् ४२ में सचमुच काल के अटल नियम की नोटिस कुन्दन देवी पर तामील हो गयी और वे मालवीयजी के चरणों पर श्वेत पुष्प से श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के बाद, उनकी आज्ञा लेकर, चार दिन के भीतर 'त्वच्चरणारविंदविश्ले दुःखादिव' इस कलेवर में सर्वदा के लिए बद्ध मौन हो गयीं। मालवीयजी उनके मृत शरीर को खोये-खोये से देखते खड़े रह गये जैसे कह रहे हों।

अब तमन्ना बेसदा है, अब निगाहें बेपयाम।
जिन्दगी एक फर्ज है, जीता चला जाता हूँ मैं॥

मुल्ला

उनका ध्यान तब टूटा जब गुरदेई बुआ--मोहल्ले की एक प्रौढ़ा स्त्री, जो मालवीयजी के परिवार के प्राणी के समान थीं, बोलीं--"इनके माँग में सेंदुर भरके जैसे पहिले बिदा कराय के लाये थे वैसे ही आज माँग में सेंदुर भर के इन्हें बिदा करो।" हमारी बहिन, सौभाग्यवती विद्या ने कुन्दन देवी के बीमारी के वस्त्रों को उतारकर उन्हें लाल चुँदरी पहनायी। विद्या मुझसे कहती थी--भैया! यद्यपि मरने के समय सास की आयु ७२ वर्ष की थी, परन्तु वे सुन्दर गोरी-नारी तो थी ही चुँदरी पहिनाते समय १८-२० वर्ष की युवती मालूम होती थीं। मालवीयजी जब सौभाग्यवती कुन्दन देवी की माँग में सेंदुर भरने लगे तो उनकी आँख से दो बूँद आँसू देवी के हँसते से चेहरे पर टपक पड़े। यही मानो पत्नी की चिता पर उनकी जलाञ्जलि थी। माँग भर जाने पर लाल चुँदरी पहिने हुए पतिव्रता कुन्दन देवी पर ऐसा रूप चढ़ा कि कहते नहीं बनता। इसी दिन के लिए भारतीय स्त्रियाँ जीवन भर व्रत-उपवास करती रहती हैं और ठिकरी पूजती फिरती हैं।

सहसा वह संस्मरण जो महाजन के सामने कर्जदार की तरह भाग निकला था स्वयं आकर भुगतान करने के लिए महाजन का दरवाजा खटखटाने लगा। वह यह है, बहुत दिन की बात है। कुन्दन देवी नियम से प्रतिदिन गंगा स्नान करने जाती थीं। उस दिन माता-पिता का भक्त, उनका पुत्र चि० मुकुन्द साथ में था। कुन्दन देवी ठीक गंगा-यमुना के संगम पर स्नान कर रही थीं। गंगा के प्रवाह से उनका पैर फिसल गया और वे यमुना में गले तक पानी में आ गयीं। निकट में एक मल्लाह ने उन्हें डूबने से बचाने के लिए उनका हाथ पकड़कर गंगा की ओर खींचना चाहा पर कुन्दन देवी ने उसका हाथ झटक दिया और अपने प्रयत्न से छिछले जल में चली आयीं। आकर मुकुन्द से कहने लगीं--"हमें डूबने से बचाने के लिए मल्लाह ने हमारा हाथ पकड़ लिया पर हमने उसे झटक दिया। सिवाय तुम्हारे पिता के और किसीको हमारा शरीर छूने का अधिकार नहीं है।" उन्होंने ठीक ही कहा

केहरि केश, भुजंग मणि, पतिव्रता को गात।
शूर अस्त्र, औ कृपण धन, मरे लगत है हाथ॥

ऐसी सोहागिन पतिव्रता स्त्री के मरने पर सती जी उसका दर्शन करने आती हों तो इसमें क्या आश्चर्य है?

जब कुन्दन देवी की अरथी बाहर निकली तो मालवीयजी के हृदय की व्यथा ने उनके फोड़े की पीड़ा को दाब लिया। उन्होंने अरथी में कंधा लगाया और फिर लँगड़ाते लँगड़ाते गली की मोड़ तक पहुँचाकर लौट आये। कुन्दन देवी की अरथी जब दृष्टि से ओझल हो गयी तो वे लौट आये और बाहर चबूतरे पर बैठ गये। अपने घर को उजड़ा हुआ देखकर वे बालकों की तरह भोंकार छोड़-कर रोने लगे।

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥

भवभूति

(जब तड़ाग लबालब भर जाता है तो उसके बाँध को टूटने से बचाने के लिए, बहुत से जल का निकल जाना ही एकमात्र उपाय होता है। हृदय जब शोक के उद्वेग से भर जाता है तो रोने ही से थमता है, नहीं तो वह फट जाय।)

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी जागरण—नया विचार, नया पहलू

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

"घर का रानीपन छोड़कर किसकी नौकरी की जाये ?" ये शब्द एक अत्यन्त उच्च कुल की उच्चतम शिक्षा-प्राप्त महिला द्वारा उच्चारित हैं।

आप दो विषयों में एम० ए० हैं, डी० लिट् हैं तथा वर्षों से एक डिग्री कालेज की प्रिन्सिपल हैं।

उपर्युक्त कथन ने मुझे नीचे से ऊपर तक झकझोर दिया। पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करके समाज में पुरुष से चार कदम आगे चलनेवाली नारी ने इस प्रकार के शब्द क्यों कहे ? विचार-विनिमय के पश्चात् यह निष्कर्ष निकला कि नारी अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की सेवा करने की अनभ्यस्त है। कदाचित् यह भी नहीं है। नारी अपने घर में बैठकर संसार पर राज्य करनेवाले पुरुष के हृदय पर अधिकार रखने में अपना गौरव समझती है। सम्भवतः यही कारण है कि भारतवर्ष के समाज की व्यवस्था का विधान करनेवाले स्मृतिकारों ने नारी को कुल-ललना एवं गृहलक्ष्मी ही कहकर सम्बोधित किया है।

प्राचीन बातों को छोड़कर नवीन के प्रति आकर्षित होना मानव का स्वभाव है। प्राचीन से मन भी भर जाता है, और नवीन प्रगति और विकास का सूचक भी है। परन्तु प्राचीन और नवीन के मध्य सामंजस्य उपस्थित करना ही मानव-जीवन की कठिनतम समस्या है। नारी को समान अधिकार दिये जायँ, उसको जीवन-संगिनी समझा जाये, वह हमारी न रहकर हमारी सखी बने आदि—यह विचार-धारा प्राचीन भी है और नवीन भी है। नारी जब घर को छोड़कर बाहर निकल पड़ती है, तब हम 'नवीन' और प्रगति के नाम पर उसका स्वागत करते हैं। नारी जब ज्वर से पीड़ित पति या पुत्र को घर में कराहता छोड़कर समाज-सेवा-संस्था की बैठक में भाग लेने जाती है तो हम समझते हैं कि यह नवीनता का अभिशाप है। और जब वह घर में रहकर पैसे-पैसे को तरसती है, प्राचीन मर्यादा के नाम पर घूँघट डाले घर में बन्द रहती है तथा भाँति-भाँति से अपमानित होने पर भी घर के कोने में चुपचाप रोती हुई लोक-लज्जा की रक्षा करती है, तो हम इसे प्राचीनता अथवा रूढ़िवादिता का श्राद्ध समझते हैं।

नारी के प्रमुखतया दो रूप हैं—माता और कामिनी। माता के स्वरूप पर अत्यधिक बल देने का परिणाम यह हुआ कि मानव के मन में अनेक कुण्ठाएँ या ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो गयीं और वह क्षुधित व्यक्ति की भाँति क्षुब्ध होकर प्रतिशोध की भावना से भर गया। फलस्वरूप समाज में अनेक कुरीतियों का प्रचलन हो गया और हमारा सामाजिक जीवन अपवित्र हो गया। हम माता और बहिन की ओट में कपट और कुटिलतापूर्ण आचरण में सिद्धहस्त बन गये।

नवीनता के नाम पर हमने उसके कामिनीत्व पर बल दिया। परिणाम यह हुआ है कि नारी विलास की सामग्री बन गयी है। व्योपारी और दूकानदार अर्द्धनग्न नारियों के चित्र प्रकाशित एवं प्रदर्शित करके अपना विज्ञापन करते हैं, तथा कामोद्दीपक वेश-भूषा में नारियों को सभा-सोसाइटी में प्रस्तुत करके व्यक्ति अपने विकृत मन का परिचय भी देते हैं। और उसका प्रतिफलित स्वरूप भी देखते हैं। माता नारी अपने परिवार में सन्तुष्ट थी, कामिनी नारी विलास की सामग्री बनकर अपने आपको कृतकृत्य मानने लगी है। पहले वह अबला थी, अब अबोधिनी है।

नारी उच्चतम शिक्षा प्राप्त करे, यह एक बात है, वह घर-बार की चिन्ता छोड़कर जीविकोपार्जन करे—यह सर्वथा दूसरी बात है। जीविकोपार्जन करने से नारी के मातृत्व एवं तज्जन्य स्वाभिमान पर आघात होता है। नारी का अपमान पुरुष के लिए असह्य होना चाहिए। परन्तु समय की माँग ने हमारे इस मनोवेग को बाधित कर दिया है। कौन नहीं जानता है कि जीविकोपार्जन में हमें प्रत्येक क्षण अपमान और भर्त्सना सहन करनी पड़ती है ? कठोर पुरुष उसे सह सकता है, नारी नहीं। प्रिन्सिपल महोदया ने नारी-स्वभाव के इसी कोमल पक्ष की ओर संकेत किया था। न मालूम कितनी नारियों के हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की यह कोमलता विवशतावश प्रतिदिन पददलित होती है और हम सभ्यता के क्षेत्र में उन्नति करते चले जाते हैं।

तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि आर्थिक आवश्यकताओं के वशीभूत होकर ही महिलाएँ जीविकोपार्जन के लिए घर से बाहर आती हैं। हमारा विचार है कि अधिकांशतः आवश्यकता केवल मन का धन है। न तो वे सभी परिवार दुःखी हैं जिनकी नरियाँ कमाई करने नहीं जाती हैं और न वे सभी परिवार सुखी हैं जिनकी स्त्रियाँ कमाई करती हैं। हमारे समाज में तथाकथित निम्न वर्ग की स्त्रियाँ ही रोजी-रोटी की फिक्र में निकला करती थीं। शेष अपने घर की रानियाँ थीं। परन्तु अब तथाकथित उच्च वर्ग की नारियाँ सुबह से शाम तक रोटी-रोजी के चक्कर में चक्कर लगाती रहती हैं। इतना ही नहीं, क्रम में कुछ विपर्यय भी हो गया है। तथाकथित निम्नवर्ग की स्त्रियाँ क्रमशः रोजी की फिक्र में घर के बाहर निकलना बन्द करती जा रही हैं और शिक्षित नारियों में नौकरी का रिवाज बढ़ता जा रहा है।

नारियों द्वारा जीविकोपार्जन किसी सीमा पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। जब पति और पत्नी दोनों ही जीविकोपार्जन करें, तो बच्चों तथा घर की देख-रेख कौन करे? उत्तर स्पष्ट है--बच्चों की देख-भाल नौकर करें तथा भोजन-व्यवस्था होटल में रहे। इसीके साथ कई अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न संलग्न हैं। इस सर्वोदय के युग में बच्चों की देख-भाल करनेवाले नौकर-नौकरानियाँ कब तक उपलब्ध हो सकेंगे, तथा क्या नौकर-चाकर हमारे बच्चों के शील-स्वभाव के विकास के प्रति हमारी ही भाँति सजग एवं सावधान होंगे? यह भी विचारणीय है कि नौकर-चाकर द्वारा लालित-पालित बालकों के मन में हमारे प्रति किस प्रकार के भाव पल्लवित होंगे। वे क्या हमें उत्तरदायित्व विहीन माता-पिता न समझेंगे? वे हमको अधिक चाहेंगे अथवा नौकर-नौकरानियों को? यदि तर्क यह हो कि बालक अनावश्यक एवं अवांछनीय तत्त्व होते हैं, वे तो पारिवारिक योजना के नियमों का उल्लंघन करनेवाले उच्छृंखल तत्त्व हैं, वे बड़े होकर चाहे जो कुछ बनें--हमें क्या करना है, तब स्थिति सर्वथा भिन्न हो जाती है। अन्यथा हमको यह विचार करना ही पड़ेगा कि भावी नागरिकों एवं भविष्य के कर्णधारों का निर्माण करने के उत्तरदायित्व का सम्यक् निर्वाह हम किस प्रकार करें।

अपने मातृत्व के प्रति जागरूक एक कुलीन पारसी महिला की बात मुझे इस समय स्मरण हो आई है। वह अपनी दो वर्षीया बालिका को पालने में झुला रही थी। संयोगवशात् उस समय मैं वहाँ पहुँच गया। कुशल-क्षेम के पश्चात् उस बालिका के विषय में मेरी उनसे कुछ बातें हुईं यथा--

"क्या आज छुट्टी है?"

"मैंने नौकरी छोड़ दी है।"

"क्यों?"

"इस बच्ची के कारण।"

"क्यों, इसे तो आया के ऊपर आसानी से छोड़ा जा सकता था।"

"नहीं, बच्चों की परवरिश खुद ही करनी चाहिए। और फिर यह तो लड़की की जाति है। नौकरों के भरोसे छोड़ना ठीक नहीं।"

इस महिला के व्यक्तित्व में मुझे मातृत्व की झाँकी दिखाई दी। मातृत्व के निर्वाह के लिए सुख-सुविधा का त्याग अपेक्षित है और उसका निर्वाह घर के भीतर रहकर ही सम्भव है। बालकों के व्यक्तित्व का निर्माण करने के इच्छुक माता-पिता उक्त पारसी महिला के दृष्टिकोण पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तथा तदनुकूल प्रतिक्रिया पर मनन करें।

नारी और पुरुष की शिक्षा समान हो, अथवा उसमें कुछ अन्तर हो सम्भवतः इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर ही नहीं है। समाज काफी आगे बढ़ चुका है। अन्यथा नियम यह है कि आवश्यकता के अनुसार ही प्रत्येक व्यवस्था का विधान किया जाना चाहिए। परन्तु अब तो कदाचित् नारी और पुरुष सबकी एक ही आवश्यकता है--नौकरी। अतः यह सोचना कि पुरुष और नारी की अमुक आवश्यकताएँ हैं तथा उनको अमुक प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए, समय की धारा का विरोध करने का दुस्साहस करना है।

समाज की गतिविधि के अध्ययन के फलस्वरूप दो तथ्य स्पष्टतः हमारे सम्मुख आते हैं--(१) लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है तथा (२) लड़कियों की सुन्दरता कम होती जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक नारी में पुरुषोचित श्मश्रु का अधिक दर्शन होने लगा है। उसकी चाल-ढाल में नारीत्व की अपेक्षा पुरुषत्व के लक्षण अधिक उभरे हुए दिखाई देते हैं। इसका केवल एक ही कारण है। आधुनिक नारी जीवन के कोमल पक्ष से दूर हटती जा रही है। घर की शीतल छाया त्याग कर वह मध्याह्न के सूर्य में अपने आपको झुलसाती हुई कभी दफ्तर जाती है और कभी हाथ में थैला लटकाकर बाजार-दारी करने निकल पड़ती है। हमारे विचार से नारियों की यह स्वतंत्रता पुरुष के लिए वरदान सिद्ध हुई है। आज से बीस वर्ष पूर्व नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता पुरुष को करनी पड़ती थी, अब यह भार नारी ने ले लिया है। नारी की यह स्वतन्त्रता एवं प्रगति नये जन्म की तमन्ना में खुद-कुशी करने के समान है।

जीवन-क्रम के इस उलटफेर के दो दुष्परिणाम हुए हैं--हमारे आर्थिक जीवन का संतुलन समाप्त हो गया है तथा शिक्षितों की बेकारी में वृद्धि होती जा रही है।

पहले नारी अबला थी और पुरुष सबल या सशक्त था। अतः वह इस प्रकार की वेश-भूषा धारण करता था कि उसके शरीरांग दिखाई देते रहें। अब पुरुष अपने शरीर को पूरी तरह ढाँकते हैं और नारियाँ अर्द्ध-नग्नावस्था में रहना पसन्द करती हैं। शरीरांगों का प्रदर्शन सम्भवतः आधुनिक सभ्य नारी का प्रमुख आभूषण है। यह अकारण नहीं है। फ्राइड का काम-सिद्धान्त इसका उत्तर सहज ही प्रस्तुत कर सकेगा। आधुनिक समय में पुरुषवर्ग की शक्ति क्रमशः क्षीण होती जा रही है। समाज में नारी की अरक्षित स्थिति हमारे कथन की पुष्टि करेगी। अन्यथा किसकी हिम्मत हो सकती है कि वह हमारी बहिन, बेटी अथवा पत्नी की ओर आँख उठाकर देख सके? समुद्र पार लंका और लंकेश्वर का विनाश करनेवाले राम की पत्नी सीता परित्यक्ता होने पर निर्भीकतापूर्वक वन-देवी के रूप में वन में विचरण करती रहती थीं। उसकी ओर आँख उठाकर देखनेवालों को यह सोचना ही पड़ता होगा कि यह उसी राम की पत्नी है।

लगभ २५० नारियों के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करने के फलस्वरूप दो तथ्य हमारे सामने आते हैं--(१) जीविकोपार्जन करनेवाली नारियाँ प्रायः अपने पति से अलग ही रहना चाहती हैं---इनमें अधिकांश को दाम्पत्य अथवा पारिवारिक जीवन अरुचिकर प्रतीत होता है। तथा (२) जीविकोपार्जन करने के कुछ ही समय पश्चात् उनके मस्तक चिन्ता की रेखाओं द्वारा कुंचित हो जाते हैं और उनका सौन्दर्य समाप्त होने लगता है। फलतः उनकी आकृति पर खिचाव आ जाता है, उनकी सहज कोमलता नष्ट हो जाती है, एवं उनकी उम्र असली से अधिक मालूम पड़ने लगती है।

हमारी धारणा है कि प्रगति के नाम पर पुरुषवर्ग नारी का शोषण करने में संलग्न है और समानाधिकार की मृग-मरीचिका में भटककर नारी ने सहज ही आत्म-समर्पण कर दिया है। यह स्थिति हमारे समाज के भविष्य की दृष्टि से हितकर नहीं कही जा सकती है। यदि नारी कोमलता का परित्याग कर देगी, तो फिर पुरुष को श्रद्धा, त्याग, करुणा आदिक कोमल वृत्तियों के निर्वाह की शिक्षा कहाँ प्राप्त हो सकेगी? उपर्युक्त प्रिन्सिपल महोदया के कथन में हमें इस स्थिति के प्रति असंतोष एवं विरोध के बीज दिखायी देते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि अधिकाधिक शिक्षित महिलाएँ अपनी स्थिति, अपने कर्त्तव्यों एवं अपने अधिकारों पर नये सिरे से विचार करेंगी और अपने खोये हुए स्वाभिमान को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

जीवन और मेरे कुछ अनुभव

बहुत से विवाह देखे थे और बहुत से विवाहों के बारे में सुना था। परन्तु एक ऐसे विवाह की भी चर्चा सुनी, जिसका जिक्र महीनों होता रहा और लोग हँस-हँसकर लोटते रहे। विवाह बड़े अरमानों से किया गया था। एक तो वह उस वंश की उस पीढ़ी की आखिरी शादी थी, दूसरे बहुत दिनों बाद उस खान्दान में एक ऐसा लड़का निकला था जिसके बारे में चार लोगों के सामने यह बात इज्जत से कही जा सके कि यह इस नौकरी पर है। बड़े जोर शोर से बहू की खोज मची हुई थी। और सभी बिरादरीवाले साँस रोके प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखो बहू कहाँ से आती है, कैसी आती है। फिर वह शुभ दिन भी आया कि बहू बिदा होकर आयी। सबने उसका चाँद सा मुखड़ा देखा——चार-पाँच दिन बहुत ठीक से बीते या यों कहो कि मिठाई खाते-खाते ही बीत गये। पाँचवें दिन 'फुलछड़ी' की एक रस्म थी जिसमें छड़ियों को फूलों से मढ़कर पति और पत्नी दोनों के हाथ में दे दिया जाता है और आशा की जाती है कि वे एक दूसरे पर एक-एक छड़ी जमायेंगे। वधू बहुधा शर्मा जाती है और उसका हाथ पकड़कर सहेलियाँ दूल्हे की मरम्मत करने के इरादे व्यक्त करती रहती हैं और उधर दूल्हा शराफत में आ जाता है और उसके साथी उसे वाक्य-बाणों से उसकाते हैं। मुझे कई कारणों से यह रस्म बहुत पसन्द है। एक तो यहीं कि हिन्दुओं में हर एक काम शुभ घड़ी से शुरू किया जाता है तो फिर बाद में अप्रिय व दुखदायी भले ही क्यों न हो जाय, प्रारंभ तो इस गृह-युद्ध का भी अपने सामने ही——शुभ घड़ी में ही——करा देना चाहिए। दूसरे यह कि नव-दम्पति को यह भी मालूम हो जाय कि प्रेम का अजीर्ण हो जाने के पश्चात् उसका यह रूप हो जाता है। जिस प्रकार पेट के अजीर्ण के पश्चात् कुछ लोगों को चूरन की आवश्यकता पड़ने लगती है और फिर धीरे-धीरे चूरन खाना उनका स्वभाव ही बन जाता है उसी प्रकार इस प्रेम के अजीर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रोग जिनको हो जाता है उनको भी इस दूसरी लत की आदत पड़ जाती है। बहरहाल, कारण तो और भी बहुत हैं जो इस खेल के समर्थन में मेरे हृदय में उठा करते हैं और सुझाव भी बहुत आया करते हैं (एक नया सुझाव आया है कि नवीन युग में इस खेल को नवीन रूप देने के लिए अब 'बौक्सिंग' को उसका स्थान देना चाहिए। प्रेम के अग्रदूत सिने-जगत् ने उसको स्थान देना भी शुरू कर दिया है। इसके लिए मैं उनकी बहुत आभारी हूँ। वास्तव में सत्य तो यह है कि यह विचार मेरा अपना नहीं है, उन्हींसे लिया हुआ है) परन्तु इस चर्चा में तो कहानी की धारा ही बदली जा रही है। कह यह रही थी कि 'फूलछड़ी खिली' और लोग मोटरों में बैठकर घरों को आने लगे तो एक साथ बहू ने पास पड़ी छड़ी उठायी जिसके फूल झड़ गये थे और पति की पीठ में सटाक से मारी। पति बेचारा कार में बैठ रहा था। एक पैर कार के अन्दर था, दूसरा भी अन्दर जा ही रहा था। पीठ पूरी की पूरी ठीक मोटर के फाटक से अन्दर जाने को घूमी थी। तात्पर्य यह कि निशाना लेने के लिए सबसे उपयुक्त समय यही था। गर्मी के दिन थे। शरीर पर वस्त्र भी बचाव के लिए कम थे—पति बेचारा बुरी तरह तिलमिला गया। पहले तो सभी नव-वधू की बहादुरी के इस रूप से अवाक् रह गये पर बाद में नन्दों ने बात सँभाली—"देखा भइया! अब रहोगे न होश में। आयी है भाभी जोरदार। अब देखें भाभी को छोड़कर अकेले सिनेमा कैसे जाओगे? और मारो भाभी।"

सास ने हाथ पकड़ा कि कहीं बहू दूसरा जड़ ही न दे। हो गया खेल। जब एक बार छड़ी फेंक दी तब फिर उठायी थोड़े ही जाती है। बेचारी बहू को मालूम नहीं था... और ये नन्हीं बड़ी बदमाश है 'क्यों तूने बहू का हाथ पकड़कर छड़ी मरवायी भइया के!' नन्हीं ने दाँत से जीभ काटी और बड़ी-बड़ी आँखें घुमाकर माँ की ओर देखा। माँ ने दूल्हा बेटा की ओर इशारा किया जो खिसियाया शर्म के मारे पीठ भी नहीं मल पा रहा था और सोच रहा था कि पहला दाँव ही इतना कस के पड़ा है तो यह जो जीवन सारा आगे पड़ा है, इसका क्या होगा। पर मोटर में ऐसा लगने लगा जैसे सारा परिवार सहम गया हो। सब चुप थे, बोलते थे बहू की इस बहादुरी तो मानों घटना पर पानी डालने को।

बहरहाल, घर पहुँचे। सब इधर-उधर हट गये। कोई कपड़े बदलने लगे, कोई इस नवीन घटना पर पुट देकर उसका रस लेने लगे। बहू कमरे में अकेली रह गयी घूँघट मारे कपड़ों में लिपटी बैठी थी। जेठजी को लाड़ आया, बोले 'बहू! गर्मी बहुत है। तुम भी कपड़े बदल डालो। आराम कर लो।' देखते क्या हैं, बहू उनको घूँघट में से मुक्का दिखा रही है। एक साथ सामने से हट गये। अभी घंटा भर पहले उसकी बहादुरी देख चुके थे। पहले कुछ सोचते इधर-उधर घूमते रहे। फिर अपनी पत्नी के कान में बोले 'क्योंजी बहू की तबियत तो ठीक है न? मैं अभी अन्दर गया था। मुझको घूँसा दिखा रही थी।' उनकी पत्नी ने, जो अपनी हास्यप्रियता के लिए प्रसिद्ध थी, हँसी रोकने को मुँह में कपड़ा ठूँसा और बोली 'और जाओ।'

बात माँ तक पहुँची और उन्होंने नन्हीं की ड्यूटी 'नयी बहू' पर लगा दी। शाम को छत पर से नन्हीं की आवाज आयी "माँ! जरा ऊपर आना छत पर। अकेले आना। भाभी सो रही है।" आवाज में घबड़ाहट थी। माँ ऊपर भागी गयीं। देखा, बहू छत पर पेटीकोट का लँहगा, और साड़ी की चुन्नी बनाये नाच रही है।" अब तो कोई शंका नहीं रह गयी थी। बहू बीमार थी और बीमारी मानसिक स्तर की थी। नाते-रिश्तेदार कुछ जा चुके थे। जो बचे थे वह प्रहसन का यह रूप देखकर बिस्तरा गोल कर के भागे। सुना, तीन मास के इलाज के बाद बहू स्वस्थ हुई।

फिर प्रथम सन्तान होने के समय एक और दौरा पड़ा और दूसरी सन्तान के होने पर जब वे नन्हीं बालिका को लेकर घर जा रही थीं तो उन्होंने चलती गाड़ी से अपने सारे जेवर उतारकर फेंक दिये। और पूछने पर कहा 'मुझे सांसारिक माया-मोह नहीं चाहिए।' जब वे नन्हीं मुन्नी को सिर के बल बाल्टी में डुबोकर नहलाने चलीं तो लगा अब तीसरा दौरा फिर पड़ा है। हँसी का नाटक बहुत हो चुका था और अब रिश्तेदारों को उसमें हास्य न दीख कर चिन्ता दिखने लगी थी।

बहुत पूछने पर उनके मायकेवालों ने बताया, पहले उनके घर पर भी एक ऐसा दौरा उसको पड़ा था, पर वह हल्का था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कुछ अधिक चिन्ता हुई क्योंकि मेरी एक सहेली को भी ऐसा ही एक रोग हो गया था। प्रत्येक सन्तान के बाद वह अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठती थी। तीन पुत्रियाँ उसके हुईं और चौथी सन्तान एक पुत्र के होते ही उसने इस व्याधि से बचने के लिए अपना औपरेशन करा लिया और उसी औपरेशन में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु की दुःखद घटना ने बहुत दिनों व्यथित रक्खा। पूरे विद्यार्थी-जीवन का चित्र एक साथ मेरे सामने से निकल गया। उसका किताबों का बैग लेकर मेरे कमरे में आकर धप्प से बैठकर यह कहना कि 'शीला! मैं तुमसे मित्रता करने आयी हूँ। मेरा अभी तक विचार था कि मित्रता हो जाया करती है, विशेष तौर पर की नहीं जाती है--इस कारण मेरे चेहरे का अर्थहीन भाव देखकर उसका स्पष्टीकरण ऐसा लगता है जैसे कल की बात हो। 'देखो शीला, बात यह है कि जब से कालेज खुला है (जिसको चार महीने हुए थे) मेरी चार लड़कियों से दोस्ती व लड़ाई हो चुकी है। मैंने देखा कि तुम्हारी किसी से लड़ाई नहीं होती--इस कारण मैंने तुमको छाँटा है।"

'रक्खो, रक्खो! तुम बाहर से आती हो, तुमको किताबें रखने को एक बोर्डिंग की लड़की का कमरा चाहिए--चलो यहीं रक्खो।' मैंने उत्तर दिया। और वह तब से सारे अपने घर के किस्से, भाई-भावज की बातें मुझे आ-आकर सुनाने लगी क्योंकि उसके लिए मुँह बन्द करके रहना संसार का सबसे कठिन काम था। एक दिन मालूम पड़ा कि उसकी सगाई होनेवाली है। आपने पूरा दास्तान सुनाना शुरू कर दिया "सगाई तो मेरी होने जा रही है। पर पता नहीं क्यों शीला! मुझको वह खुशी नहीं हो रही है जो सुनते हैं और लड़कियों को हुआ करती है। न जाने क्यों ऐसा लगता है कि मैं सुखी नहीं रहूँगी। वैसे वे बड़े चालाक हैं। हम लोग ताश खेलने बैठे। उन्होंने चट से मेज के नीचे से हमें पत्ते दिखा दिये फिर तो हम दोनों ने भइया-भाभी को हर खेल में ऐसा पछाड़ा है--भाभी तो कहने लगीं कि 'ये लो! इनका अभी से यह हाल है तो फिर आगे क्या होगा?' पर पता नहीं क्यों मेरे हृदय से शंका नहीं जाती। तुम देखना, न जाने मुझसे कौन कहता है कि शादी का सुख मेरे भाग्य में नहीं है।"

मृत्यु का समाचार पाते ही यह सब बातें एक साथ सामने से निकल गयीं। इसका उत्तर पाने के लिए मन छटपटाने लगा कि आखिर कारण क्या था। वह सन्तानोत्पत्ति के समय अपना मानसिक संतुलन क्यों खो बैठती थी। एक दिन एक दावत में मुझे इसका उत्तर मिला। प्रसिद्ध 'मानसिक चिकित्सकों' की एक सभा थी। उसमें एक भोज का आयोजन हुआ। मैंने देखा, मेरे पास एक प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक के बैठने का कार्ड लगा है। आकर बैठे तो मैं बड़ी उदास हुई। आकृति से वे स्वयम् एक मानसिक चिकित्सक तो नहीं वरन् एक मानसिक रोगी लगते थे। पर जब उन्होंने बातें करना शुरू किया, तब उनकी विशेषता ज्ञात हुई। मैंने भी सोचा, ऐसा स्वर्ण अवसर संभव है फिर न मिले इसी समय अपनी चिन्ता निवारण भी करो। समय देखकर उनके सामने मैंने अपना प्रश्न उपस्थित कर दिया और यह दोनों उपरोक्त दृष्टांत उनको सुना दिये।

उन्होंने कहा कि कुछ स्त्रियाँ विवाह व सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् एक साथ मानसिक संतुलन खो बैठती हैं। जो स्त्रियाँ इन अवसरों पर पागलों जैसा व्यवहार करती हैं वास्तव में प्रथम समय रजस्वला होने पर भी वे बहुत कुछ असंतुलित मन के लक्षण दिखाती हैं। परन्तु उस समय यदि वे लक्षण साधारण हुए तो माँ-बाप उस ओर ध्यान ही नहीं देते हैं और उसको लड़कपन की हरकतें कहकर टाल देते हैं और यदि कहीं इन लक्षणों ने विकराल रूप धारण कर लिया तो माँ-बाप उसको छिपा जाते हैं और कहीं ऐसी जगह लड़की का सम्बन्ध करने का प्रयास करने लगते हैं जहाँ लड़की का यह भेद अभी तक न खुला हो। वास्तव में यह बात इतनी भयंकर नहीं है। इसका कारण यह है कि स्त्रियों में कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो कि रजस्वला होने पर क्रियाशील होती हैं। साधारणतः स्वस्थ स्त्रियाँ उनका विषैला उत्श्रवण शरीर के बाहर फेंक देती हैं परन्तु जो स्त्रियाँ ऐसा नहीं कर पाती हैं वे पागलपन के लक्षण दिखाने लग जाती हैं। सन्तानोत्पत्ति के समय भी ये ग्रन्थियाँ क्रियाशील होती हैं। इसी कारण वे स्त्रियाँ इस समय भी पागलों सा व्यवहार करती हैं। जिन स्त्रियों को इस प्रकार के दौरे इन समयों में पड़ जाते हैं उनके सम्बन्धी उनकी ओर से कभी निश्चित होकर बैठ नहीं पाते--डरते ही रहते हैं कि देवी पर न जाने कब भूत उतर आये। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। एक बार स्वस्थ हो जाने के पश्चात् जब तक फिर वही परिस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सन्तानोत्पत्ति की) न पड़ जाय वे अपना मानसिक संतुलन नहीं खोती हैं। यदि एक दो सन्तान के बाद यह ध्यान रक्खा जाय कि अब वे ऐसी परिस्थिति से बचाकर रक्खी जायँ तो वे आजीवन स्वस्थ रह सकती हैं।

मैंने सोचा, माता-पिता को कन्या के किशोरावस्था में आते ही इसका आभास तो मिल ही जाता है कि ऐसे अवसरों पर मानसिक संतुलन खो बैठने की दुर्बलता उनकी कन्या में है या नहीं। अज्ञानता-वश वे उसकी यह दुर्बलता छिपाकर उसे दूसरे के घर में ढकेलकर स्वयम् मुक्त होकर बैठ जाना चाहते हैं और बेचारी लड़की ए तो पराये घर में, ऊपर से रोगिणी, अपने भाग्य के अनुसा कभी कहीं सहानुभूति पा जाय तो पा जाय, वरना धक्के ही खाती है। ऐसा करने में इस कष्ट से पीड़ित कन्या प्रति उनमें प्रेम की न्यूनता नहीं, अज्ञानता की विवशता है यदि इतनी अज्ञानता न हो तो इन अवसरों पर सहायक करने के बदले लड़की को वे मझधार में अकेला न छोड़ें जब सहायता करने की इच्छा होती है तो उसको कैसे किय जाय, इसका मार्ग भी वह स्वयम् ही खोज लेता है।

घर गृहस्थी--

गर्मियों के ये कपड़े

- हल्के
- फुल्के
- और सुन्दर
- और सीने में आसान

० पीछे से खुला हुआ (बाँयीं ओर से पहला) फ़्राक सामने से बन्द है। और उसका सामने का गला गोल है।

०० बाँयी ओर से दूसरा स्कर्ट सामने से खुला है और बड़े-बड़े बटनों के नीचे हुक लगाकर बन्द किया जाता है। इस स्कर्ट के साथ का अन्दर पहनने का निकर भी फ़्राक ही के कपड़े का बनना आवश्यक है। नीचे का किनारा, झालर व गले के स्ट्रैपस् के कपड़े का रंग स्कर्ट के फूल से मेल खाता हो।

००० नीचे बैठी हुई मुन्नी का जम्पर पीठ के पीछे से खुला है केवल यही आगे का भाग पतला होता जाता है और स्ट्रैप बनकर निकर से बटनों द्वारा पीछे जुड़ जाता है।

०००० पास खड़ी मुन्नी की फ़्राक अपनी जेबों के कारण उसको बड़ी प्यारी है। नीचे का घेरा देने के लिए इसको कपड़ा औरेब (आड़ा) करके काटा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोडसे के सिर सेहरा

श्रीमती कमला रत्नम्

दिसम्बर के आखिरी हफ्तों और जनवरी के प्रारम्भ की कड़ी सर्दी है। दोपहर तक कुहासा नहीं उठता, समाचार-पत्रों में रोज शीत-कवलित जनों की संख्या बड़े-बड़े अक्षरों में पढ़ने को मिलती है। बिना आवश्यक कामों के लोग घर से बाहर नहीं निकलते। संयोगवश इसी सप्ताह में पटना में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा है जिससे शासन के मन्त्री, संसद-सदस्य तथा कांग्रेस पार्टी के प्रमुख नेता सब राजधानी से बाहर गये हुए हैं। ऐसे में कुछ विदेशी फिल्म-निर्माता अपने अभिनेताओं, टेक्नीशियनों और साज-सरञ्जाम को लेकर नयी दिल्ली आये और धनिकवर्णी अँगरेजों की तरह अशोक होटल में ठहरे। घर के सब मुखिया जब बारात में गये हों तब सूने घर में जैसे चोरों की बन आती है उसी प्रकार इन लोगों की बन आयी। कई दिनों तक ट्रकों में भर-भरकर लायी भीड़ के कारण इण्डिया गेट के आस-पास का मैदान भरा रहा। साधारण जनता और सड़क चलनेवालों को कुछ पता न था कि क्या हो रहा है। उनमें से जो ज्यादा छानबीन करनेवाली प्रवृत्ति के लोग थे उन्होंने इसे रिपब्लिक डे परेड का एक अंग समझकर समाधान कर लिया। इण्डिया गेट से भीड़ छँटी तो शाहजहाँ रोड पर कोटा-हाउस के निकट यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन के अहाते के सामने आकर जम गयी। यहाँ भीड़ काफी थी और कई दिन तक रही। यहाँ तक कि इनके खान-पान की सुविधा के लिए इण्डिया गेट के मैदानों में शामियाना गाड़कर एक अच्छा खासा रेस्तोरां भी खोल दिया गया। इस सबका रहस्य अचानक एक दिन खुला। मेरे कमरे के पास ही मारी सीटन का कमरा है। यह एक अधेड़ उम्र वाली अँगरेज लेखिका है और फिल्मों में विशेष-रूप से दिलचस्पी लेती हैं, आरम्भ से ही भारत में और गान्धीजी में इसकी रुचि रही है और अब पिछले सात-आठ वर्षों से अँगरेजी वेश-भूषा, प्रसाधन, विचारधारा, संक्षेप में भाषा के सिवा सब कुछ तजकर दिल्ली में रहती हैं। इससे साधारण नमस्कारादि के सिवा अभी तक मेरी कोई बातचीत नहीं हुई थी। अचानक एक दिन वह मेरी टेबिल के पास आकर बोली—आज एक अजीब घटना घटी है। इस वाक्य से जो बातचीत शुरू हुई उसका सारांश निम्नलिखित है—

रेड लायन नामक अँगरेज फिल्म कम्पनी जिसकी पूँजी तथा संचालन अमेरिकनों के हाथ में है भारत में आकर महात्मा गांधी के जीवन पर जो फिल्म बना रही है उसका मुख्य चरित्र और प्रधान नायक हत्यारा नाथूराम गोडसे होगा। फिल्म के निर्देशन के लिए अमरीका के अनुभवी निर्देशक मार्क रोबसन को बुलाया गया। रोबसन ने गोडसे के चरित्र के लिए प्रसिद्ध पश्चिमी जर्मन अभिनेता होर्स्ट बुकहोल्टज को चुना है जो धारा-प्रवाह अमरीकन बोल लेता है। बुकहोल्टज को हत्यारे का अभिनय करने की ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा है। पिछली गर्मियों में दिल्ली के रीगल सिनेमा में अँगरेजी कम्पनी द्वारा निर्मित टाइगर बे नामक चित्रपट चल रहा था। इस चित्रपट का हीरो भी बुकहोल्टज ही है, यहाँ इसने हिटलर के अत्याचार से भागे हुए पौलैण्ड के एक नवयुवक का चित्रण किया है जो एक लड़की द्वारा अपने प्रेम के अस्वीकार किये जाने के कारण उसकी हत्या कर डालता है। यह हत्या फिल्म के आरम्भ में होती है और चित्र के अन्त तक बुकहोल्टज अपनी भूमिका का इस खूबी और बुद्धिमानी के साथ निर्वाह करता है कि दर्शकों को उसके साथ सहानुभूति हो जाती है और वे यह कभी नहीं चाहते कि हत्यारे को उसके अपराध का दण्ड दिया जाय। टाइगर बे के अलावा अन्य चित्रों में भी बुक होल्टज ने इसी प्रकार का काम किया है। अमरीकी और अँगरेज फिल्म-संसार में "टाइप कास्टिंग" की प्रवृत्ति देखकर यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि इस चित्र में भी बुकहोल्टज से ऐसे हत्यारे का अभिनय कराया जायगा जिसके अपराध को जनता सहानुभूति की दृष्टि से देखे।

इस चित्रपट के निर्माताओं को भारत-सरकार द्वारा भारतवर्ष में शूट करने की आज्ञा दी गयी है, साथ-साथ अन्य रूपों में भी सरकार का सहयोग प्राप्त किया गया है। गान्धीजी की हत्या के बाद शव-यात्रा का दृश्य इण्डिया-गेट और राजघाट में लिया गया है। दिल्ली रेलवे स्टेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा पुलिस स्टेशन पर फिल्म खींचने की अनुमति भी रोबसन को दी गयी। भारत की सेना ने भी कुछ दृश्यों में सहायता दी है तथा बचे-खुचे सीनों की शूटिंग बम्बई में होगी। इसके बाद आशा की जाती है कि फिल्म में गान्धी जी के जीवन की घटनाओं का तथ्यात्मक चित्रण होगा और उसमें उनके प्रति भारतीय जनता की जो भावना है उसको किसी प्रकार चोट पहुँचाने का प्रयत्न न होगा। परन्तु निर्माता जिस प्रकार फिल्म के चारों ओर गोपनीय वातावरण का परदा खड़ा कर रहे हैं उससे यह सन्देह हुए बिना नहीं रह सकता कि दाल में कुछ काला है। उस सब का प्रमाण पर्याप्त रूप में मारीसीटन को मिल गया। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन के अहाते में जहाँ प्रार्थनासभा की शूटिंग हो रही थी, दिन भर रहने के बाद मारीसीटन की भेंट कैमरामैन ब्रायन ब्रेक से हो गयी। ब्रेक संसार के प्रमुख कैमरामैनों में हैं और दार्जिलिंग में जब सत्यजीत राय रवीन्द्रनाथ की फिल्म बना रहे थे उस समय इनकी सीटन से भेंट हुई थी। फिल्म-लेखिका के रूप में उसकी प्रतिभा को जानते हुए ब्रेक ने यदृच्छया सीटन को इस फिल्म पर भी कुछ लिखने का सुझाव दिया। फलस्वरूप सीटन रोबसन के पब्लिसिटी विभाग में गयी, वहाँ इनके चेहरे और वेश-भूषा में सामञ्जस्य न देखकर अँगरेज प्रसाराधिकारी बिदक गये और कहा हम इस फिल्म के बारे में बिलकुल पब्लिसिटी नहीं चाहते, जो कुछ सूचना भारतीय जनता को हमें देनी है वह सब हमारे हैण्ड आउट में है जिसे आप हमारे विभाग से प्राप्त कर सकती हैं। इसी विभाग की एक कर्मचारी ईनिड जोन्स द्वारा सीटन को मालूम हुआ कि कम्पनी के मालिकों की इच्छा है कि वे जल्दी से जल्दी बिना किसी की जानकारी के अपना काम समाप्त करके देश से बाहर हो जायँ। सीटन ने देखा कि शूटिंग में सत्य का अनुसरण पूरी तरह से नहीं हो रहा, प्रार्थनासभा का दृश्य गाँव से लायी गयी भीड़ से लिया गया जब कि असली सभा में दिल्ली की जनता थी, इसी प्रकार कुछ दृश्य जिनका स्थान बम्बई था दिल्ली में खींचे गये। इससे तथा इसी प्रकार की अन्य बातों से सीटन का सन्देह दृढ़ हो गया कि हो न हो गान्धीजी के नाम पर गोडसे को धीरोदात्त नायक की गद्दी पर बिठाने का यह एक घृणित और अस्तुत्य प्रयास है। सीटन ने अदूरदर्शितापूर्वक यह बात फिल्म प्रसाराधिकारियों से कह भी दी। बस फिर क्या था उन्होंने न केवल सीटन को निकाल बाहर किया प्रत्युत प्रत्येक भारतीय संवाददाता तथा छाया-चित्रक को अन्दर आने से रोक दिया। ज्ञात हुआ है कि जिस समय भारतीय पत्रकारों के साथ यह व्यवहार हो रहा था उस समय डेली टेलिग्राफ तथा अन्य अँगरेज पत्रों के प्रतिनिधि बेरोक अन्दर जा रहे थे। सच है भारत में नराधम गोडसे की महिमा गानेवाली फिल्म लुक-छिपकर ही बनायी जा सकती है। एक और आश्चर्यजनक बात जिसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता यह है कि दिल्ली के एक अँगरेजी साप्ताहिक के अतिरिक्त किसी भी अँगरेजी समाचार-पत्र ने इस समाचार की ओर ध्यान नहीं दिया।

भारत के स्वाभिमान की संरक्षक होने के नाते अनुमान किया जा सकता है कि भारत-सरकार ने फिल्म की स्क्रिप्ट की जाँच-पड़ताल भली भाँति कर ली होगी। परन्तु तथ्य यह है कि असली स्क्रिप्ट किसी ने भी नहीं देखी है। कथानक का आधार एक नवयुवक अमरीकन प्रोफेसर की अप्रकाशित पुस्तक है जिसका प्रधान कार्य गान्धीजी की हत्या के दिन घटित होता है। यह नौजवान अमरीकन प्रोफेसर हाल ही में अपना शोध निबन्ध लिखने के लिए भारतवर्ष आया था और इसी बीच में इसने फिल्म-निर्माताओं की राय में भारतवर्ष पर कतिपय विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें भी लिखी हैं। फिल्म-निर्माताओं के अनुसार यह फिल्म गान्धीजी के जीवन पर नहीं है प्रत्युत उनके अहिंसात्मक सिद्धान्तों को नाटकीय रूप देना है। फिल्म में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि गान्धीजी के जीवन की अन्तिम घटनाओं ने किस प्रकार कुछ आदमियों के जीवन को प्रभावित किया, इनमें से गोडसे का ही जीवन-चरित्र इन्हें ऐसा जँचा जिसका क्लोजअप लिया जाय। सुनते हैं फिल्म का नाम पहले लाइट एण्ड डार्कनेस (तमसो मा ज्योतिर्गमय।) था परन्तु रोबसन ने इसे बदलकर "नाइन आर्क्स टु राम" रख दिया है अर्थात् उस क्षण से पहले के ९ घण्टों की कहानी जबकि देश की आत्मा के मुँह से अन्तिम बार 'हे राम!' शब्द निकले। रोबसन की हालीवुडीय कल्पना में गोडसे एक बाँका सिपाही है, जिसे गान्धीजी के सत्याग्रह आन्दोलन से हानि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँची है और उसे सेना से निकाल दिया गया है। इससे तथा अनेकों अन्य व्यक्तिगत और राजनैतिक कारणों से विफल मनोवृत्ति गोडसे अपने देश के पिता, देश की आत्मा की हत्या करने को उद्यत हो जाता है। हालीवुड का नाम पूर्णरूपेण चरितार्थ करने के लिए फिल्म में जबरदस्ती प्रेमकाण्ड भी घुसेड़ा गया है। गोडसे एक पारसी युवती से प्रेम करता है, जो समाज की तितली होते हुए भी गान्धीजी की भक्त है और उसे बापू की हत्या से रोकने का प्रयत्न करती है तथा उसके साथ विवाह नहीं करती। इसके बाद गोडसे बम्बई से भाग खड़ा होता है और दिल्ली में पुलिस से बचने के प्रयत्न में एक शरणार्थी वेश्या के यहाँ आश्रय प्राप्त करता है। इस प्रकार वेश्या के पात्र की कल्पना से हमारे भूतपूर्व गौरांग महाप्रभुओं ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्वतन्त्रता के बाद विस्थापित पञ्जाबी जनता की सहानुभूति देश के नेताओं के साथ नहीं थी। उक्त दोनों स्त्रियों की भूमिका में प्रसिद्ध अँगरेज और अमरीकन अभिनेत्रियाँ हैं। भारतीय चित्रपट का कुशल और लोकप्रिय अभिनेता डेविड पुलिस अफसर का पार्ट कर रहा है। फिल्म के किसी भी विदेशी अभिनेता के पास जाने में असमर्थ होकर भारतीय संवाददाता डेविड के पास गये, परन्तु विदेशी रुपयों के प्रभाव के कारण उसने संवाददाताओं को कुछ बताने से इन्कार कर दिया। फिल्मी धर्म की आड़ लेते हुए कलियुग के इस नारद ने कहा कि "जब तक कोई फिल्म समाप्त न हो जाय तब तक वह गर्भस्थित बालक के समान गोपनीय है।" दूसरे पुलिस अफसर का पार्ट पुओर्टो रीको के मँजे हुए अभिनेता जोसे फेरार को दिया गया है। फेरार ने १९४४ से लेकर १९४५ तक अमरीका में पौल रोबसन के साथ "ओथेलो" नामक नाटक में इयागो का अभिनय किया और उसीसे इसे ख्याति मिली। प्रस्तुत फिल्म में यही हत्या के बाद गान्धीजी के शरीर को उठाकर ले जाता है। फेरार की प्रगतिशील विचारधारा के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि पुओर्टो रीको के स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जब वह अपने देश से भागा तो बाहर आकर उसने कहा "मैं पुओर्टो रीको की स्वतंत्रता नहीं चाहता।" (इसके बारे में विशेष जानकारी के लिए अमेरिका की अनअमेरिकन एक्टिविटीज की जाँच-पड़ताल कमेटी के कांग्रेस के रेकार्ड देखे जायँ।) आश्चर्य की बात है कि इन सब अभिनेताओं में से जोसे फेरार के अतिरिक्त किसी ने भी फिल्म की पूरी स्क्रिप्ट नहीं देखी है। इन सबके अलावा रोबसन ने कुशल अँगरेज अभिनेता राबर्ट मोर्ली को एक कल्पित पात्र की भूमिका दी है, मोर्ली के चेहरे मोहरे की सरदार पटेल से समता देखकर अनुमान किया जाता है कि यह भूमिका लौहपुरुष की ही होगी।

यदि कोई व्यक्ति इस विषभरे कुम्भ का भण्डाफोड़ कर सकता है तो वह है चौंसठ वर्षीय भारतीय फिल्म-कलाकार कश्यप जिसने मद्रास के जेमिनि स्टूडियो में काम किया है और जो गेब्रीयेल पास्कल के जमाने से गान्धीजी का अभिनय करने के स्वप्न देख रहा है, सिर मुँड़ाकर और दाँत तुड़वाकर घुटनों तक की धोती पहनकर उसने अच्छी खासी 'मूवी स्टिल' तैयार करवा ली थी, परन्तु पास्कल की मृत्यु से उसके सुनहरे ख्वाब धूल में मिल गये। कुछ दिन बाद आटो प्रेमिन्जर ने जब फिर गान्धी फिल्म की बात उठाई तो कश्यप की मुरझाई आशालता फिर लहलहाने लगी परन्तु प्रेमिन्जर ने अपना नायक एलेकगिसेस को चुना यद्यपि अन्त में यह फिल्म भी नहीं बनी। सुनते हैं १४ लाख के इस कान्ट्रेक्ट ने कश्यप की सब सोई हुई कल्पनाओं को साकार बना दिया है। दिल्ली में चिड़िया को भी पता नहीं चला कि कश्यप कहाँ ठहरा है, कब सोता है, क्या खाता है, क्या पीता है। कम्पनीवालों ने पूछने पर उत्तर दिया 'कश्यप नया अनुभवहीन कलाकार है, नयी नवेली दुलहन की तरह अथवा नये सधे घोड़े की तरह वह भड़क सकता है, इसलिए उसे लोगों की दृष्टि से बचाकर रखना ही उचित समझा गया।' सच है लखपती कश्यप के दिल्ली की धूल से जुकाम हो सकता था।

फिल्म के सूचना विभाग से सीटन को यह भी पता चला कि केवल स्थानीय दृश्यों की जहाँ आवश्यकता है वे ही बड़े बाह्य दृश्य भारत में खींचे जा रहे हैं क्लोजअप तथा डायलाग के अन्य सारे सीनों का फिल्मीकरण लन्दन के स्टूडियोज में होगा। प्रश्न है क्या भारत-सरकार के कर्मचारियों ने डायलाग-स्क्रिप्ट देखी है? क्या उन्हें याद है कि १९३५ में एलेक्जैण्डर कोर्डा ने "एलिफैन्ट ब्वाय" और "साण्डर्स आफ दि रिवर" नामक फिल्मों को स्टूडियो से लाकर अपने मन्तव्य के अनुसार इस प्रकार काटा-छाँटा और पुनः फिल्मित किया कि स्थान पर खींची हुई फिल्म और सम्पादन के बाद जो फिल्म रिलीज हुई उनमें आपस में कोई साम्य नहीं रहा? कम्पनी का इरादा है कि अगले डेढ़ दो वर्ष तक फिल्म रिलीज नहीं होगी। इन दो वर्षों में उस फिल्म द्वारा लन्दन के स्टूडियोज में भारत के विरुद्ध न जाने कितना विषमय रसायन तैयार किया जा सकता है विशेषकर जब इस रसायन में गोआ-कार्यवाही पर से उठे उनके अभागे क्रोध के मिल जाने की सम्भावना है।

इतना सब सुनने के बाद मैंने सीटन से पूछा 'यदि मैं भारत-सरकार के उपयुक्त अधिकारियों को फोन पर यह सब सूचना दूँ तो क्या आप उनके सामने जो कुछ जानती हैं सब कहना पसन्द करेंगी।' बिना हिचकिचाहट के जब उन्होंने जवाब दिया 'हाँ सहर्ष।' तब मैंने जाना इँगलैण्ड के इस अस्थिपिञ्जर पर केवल भारतीय पोशाक ही नहीं है इसके अन्दर भारतीय हृदय भी धड़क रहा है।

दूरभाष के मेरे अनेकों प्रयत्न निष्फल हुए, पदाधिकारी तो सब पटना की भीड़ में धक्के खा रहे थे। मैंने निराश होकर सीटन से पूछा 'अब क्या किया जाय?' विचित्र रूप से आँखें चमकाकर वह बोली "भारत-सरकार कश्यप का पासपोर्ट रद्द कर सकती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ुसरू, शीरीं और फ़रहाद

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

ख़ुसरू परवेज सासानी वंश का बादशाह था जिसने ईरान पर सन् ईस्वी ५९१ से ६२५ तक राज्य किया। यह ईरानी लोककथाओं के नायक नौशेरवाँ का पोता तथा हरमज़ तृतीय का पुत्र था। परवेज़ इसकी उपाधि थी, जिसका अर्थ 'विजयी', 'महान् पारसी' तथा 'मधुरभाषी होता हैं। वास्तव में ख़ुसरू में ये सब गुण थे। कवियों ने उसके ऐश्वर्य, धन, शौर्य्य और पराक्रम का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया है। ख़ुसरू पारसी धर्म का बड़ा कट्टर अनुयायी था और जब पैगम्बर मुहम्मद साहब ने इसको इस्लाम स्वीकार करने के लिए सन्देशा भेजा तो ख़ुसरू ने पैगम्बर साहब के पत्र को फाड़कर जूते तले रौंद दिया था और उस पर थूक दिया था। उनके सन्देशवाहक दूत के साथ भी उसने बहुत अपमानजनक व्यवहार किया था। इस घटना को मौलाना निज़ामी गंजूमी ने बड़े विस्तार के साथ अपने प्रेम काव्य 'ख़ुसरू ओ शीरीं' में लिखा है।

शीरीं ख़ुसरू परवेज़ की चहेती बेगम थी। योरोपियन इतिहासकारों के अनुसार यह रोमन बादशाह मारकस की लड़की थी और इसका रोमन नाम मरियम था। यह जन्मतः ईसाई थी और ख़ुसरू से विवाह होने के बाद पारसी धर्म में दीक्षित हुई, और अपनी रूप-माधुरी के कारण शीरीं कहलाने लगी। परन्तु फ़ारसी कवि और इतिहासकार इस बात को नहीं मानते। उनका कहना है कि ख़ुसरू की कैसर रूम की लड़की मरियम से शादी अवश्य हुई थी, परन्तु वह शीरीं नहीं थी। शीरीं कोह काफ, जहाँ की परियाँ मशहूर हैं, के निकटवर्त्ती अरमन देश की रानी महींबानू की शुभ लक्षणा भतीजी थी। ईरानी कवियों के अनुसार शीरीं जन्मतः पारसी धर्म की अनुयायी, सुशीला, मधुरभाषिण, त्रैलोक्य-सुन्दरी, माशूकों की सरताज और अपने समय का अनमोल रत्न थी। संसार के सभी राजे और राजकुमार उसके लिए लालायित थे, परन्तु यह ख़ुसरू के भाग्य में लिखी थी।

फ़रहाद चीनी जाति का सुन्दर युवा था जो ख़ुसरू के अनन्य मित्र शापुर का सहपाठी रह चुका था। यह गणित और पत्थर के काम में बहुत प्रवीण था। बहुत से लोग इसे चीन के राजकुल से बतलाते हैं। धर्म से यह शिन्तो मत का अनुयायी रहा होगा क्योंकि इस्लाम उस समय तक चीन या ईरान में नहीं पहुँचा था। यह शीरीं का अनन्य प्रेमी था और उसीके प्रेम में इसने अपने प्राण दे दिये। कवियों ने उसे कोहकन की उपाधि दे रक्खी है।

ख़ुसरू, शीरीं और फ़रहाद की प्रेम कहानी के दो रूप मिलते हैं : एक तो लोक-प्रचलित, जिसके आधार पर भारतवर्ष में भी कई नाटक अभिनीत हो चुके हैं और कई फिल्में बन चुकी हैं। कहानी के इस रूप को पसन्द करनेवाले लोग इसे 'शीरीं फ़रहाद' का नाम देते हैं। इनकी राय में शीरीं ख़ुसरू की चहेती बेगम थी जिसका फ़रहाद से इश्क़ था। ख़ुसरू ने इस आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए फ़रहाद से कहा कि शीरीं को नित्य प्रति ताजा दूध मिलता रहे, इसलिए तुम गोचर भूमि से राजमहल तक एक दूध की पक्की नहर (जूए शीर) बना दो। यह तुम्हारे प्रेम की परीक्षा है। यदि तुमने यह जूएशीर—दूध की नहर—शीरीं की इच्छानुसार बना दी तो शीरीं तुम्हें दे दी जायेगी। राजमहल के चारों ओर पहाड़ थे और नहर का बनाना एकदम असम्भव था। परन्तु शीरीं के प्रेम में पागल फ़रहाद ने यह असम्भव भी सम्भव कर दिखाया। इस पर ख़ुसरू ने और कोई उपाय न देख चालाकी से काम लिया, और एक बुढ़िया द्वारा फ़रहाद को विश्वास दिलाया गया कि शीरीं मर गई। अपनी प्रेयसी के मरने का समाचार सुनकर फ़रहाद ने तेशा मारकर, और कुछ की राय में पहाड़ से सर फोड़कर, आत्मघात कर लिया। जब शीरीं को अपने प्रेमी के इस दुखद अन्त का पता चला तो उसने भी फ़रहाद की लाश पर आकर अपने प्राण खो दिये, और दोनों प्रेमी-प्रेमिका फिर एक साथ दफ़नाये गये।

कहानी का दूसरा रूप फ़िरदौसी के शाहनामे के आधार पर है। ये लोग इस कहानी को 'ख़ुसरू ओ शीरीं' के नाम से याद करते हैं जिनमें सबसे अच्छी रचना मौलाना निजामी गञ्जूमी की है। हज़रत अमीर ख़ुसरो ने भी फिरदौसी को प्रमाण मानकर यह प्रेम-काव्य लिखा है और इसका नाम 'मसनवी शीरीं ओ ख़ुसरू' रक्खा है। इसके अनुसार गद्दी पर बैठते ही ख़ुसरू विद्रोही सरदार बहराम चोबीं पर आक्रमण करता है। इसी बीच ख़ुसरू का अनन्य मित्र शापुर ने उसे अरमन की रानी महींबानू की भतीजी शीरीं का चित्र दिखाया और उसके सौन्दर्य का बखान किया। ख़ुसरू शीरीं का चित्र देखते ही पागल हो गया और शिकार के बहाने अरमन जा पहुँचा और वहाँकी रानी का मेहमान बना। शीरीं ने ख़ुसरू, और ख़ुसरू ने शीरीं को देखा। दोनों एक दूसरे के हो लिये परन्तु विवाह सम्बन्ध स्थिर न हो सका और गान्धर्व विवाह के लिए शीरीं तैयार नहीं हुई। अरमन से ख़ुसरू अत्यन्त दुखी और निराश होकर लौटा। शापुर ने अपने मित्र का दुःख दूर करने के लिए उसका विवाह इस्फ़हान की राजकुमारी त्रैलोक्य-सुन्दरी शकर से करा दिया। यह समाचार जब शीरीं को मिला तो वह क्रोध, ईर्ष्या और प्रतिहिंसा में डूब गयी और अपना जी बहलाने के लिए सैर-सपाटे में समय काटने लगी। एक इसी सैर के बीच कोह बेसतूं पर उसे फ़रहाद मिला जो देखते ही शीरीं पर प्राण पण से न्यौछावर हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनघट पर गोपीवल्लभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीरीं ने उसे बढ़ावा दिया और उसे जुएशीर बनाने के लिए कहा जिससे उसे ताजा दूध मिलता रहे। खुसरो यह सुनते ही आगबबूला हो गया, और फ़रहाद को मारने के लिए एक दूत द्वारा उसने उसे शीरीं की मृत्यु का झूठा समाचार भिजवाया जिसे सुनते ही पहाड़ से गिरकर फ़रहाद ने आत्मघात कर लिया। शीरीं खुसरो की इस धूर्त्तता पर भड़क उठी और उसने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार खुसरू ने मेरे प्रेमी फ़रहाद की हत्या की है उसी प्रकार मैं भी उसकी प्रेयसी शकर की हत्या करूँगी। आवेश में शीरीं अपना विवेक खो बैठी और शकर को मारने के लिए उसने एक बूढ़ी कुटनी को भेजा जिसने राजमहल में जाकर शकर का विश्वास प्राप्त किया और एक दिन उसके भोजन में विष मिलाकर उसकी इह-लीला समाप्त कर दी।

इस दुर्घटना ने खुसरो व शीरीं दोनों के ही नेत्र खोल दिये। दोनों ही बहुत दुःखी हुए। खुसरू अपने पापों की क्षमा-याचना करने और शीरीं को मनाने के लिए शीरीं के पास पहुँचा परन्तु माननी शीरीं खुसरू को आया देख फाटक की कुंडी बन्दकर छत पर जा पहुँची। खुसरू शीरीं को मनाने लगा और शीरीं अकड़-अकड़ कर उत्तर देने लगी। खुसरू ने शीरीं पर शकर की हत्या का, और शारीं ने खुसरू पर फ़रहाद की हत्या का आरोप लगाया। नीचे से खुसरू और छत पर से शीरीं दोनों में वाक्युद्ध छिड़ गया। काफी रोने-पीटने, रूठने मनने, अनुनय-विनय और नाज़-नखरों के बाद दोनों में मेल हो गया और फिर खुशी-खुशी उनका विवाह भी हो गया।

कुछ समय के बाद खुसरू के दूसरे लड़के शेर वया ने विद्रोह किया और बाप को कत्ल करने के बाद स्वयं गद्दी पर बैठ गया। शीरीं ने जब यह समाचार सुना तो उसने भी पति का अनुगमन करने के लिए खुसरू की लाश के पास जाकर छुरा मारकर आत्मघात कर लिया और दोनों पति-पत्नी एक साथ ही दफ़नाये गये।

फ़िरदौसी, निजामी और हज़रत अमीर खुसरो तीनों ही इस बात पर एकमत हैं कि शीरीं अपने पति खुसरू के साथ सती हुई और उसे फ़रहाद से कोई प्रेम नहीं था। एक साध्वी आधुनिका की तरह उसने प्रतिहिंसा और ईर्ष्यावश फ़रहाद को प्रोत्साहित अवश्य किया था। परन्तु निज़ामी और अमीर खुसरो ने फ़िरदौसी की अपेक्षा शीरीं को और ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। फ़िरदौसी के अनुसार पहिली ही भेंट के बाद शीरीं और खुसरू का विवाह हो गया था। शीरीं ने राजमहल में पहुँचकर जब देखा कि उसकी अपेक्षा मरियम का मान अधिक है तो उसने मरियम को ज़हर दिलवा दिया। इस प्रकार शीरीं पर विवाहित अवस्था में भी फ़रहाद के साथ मर्यादा भंग करने और मरियम की हत्या का दोष आता है। निज़ामी और अमीर खुसरो ने फ़रहाद प्रसंग शीरीं की कौमार्य अवस्था में दिखलाया है और मरियम का मरना शीरीं के विष प्रयोग द्वारा न होकर स्वयं शीरीं और खुसरो के प्रेम से कुढ़-कुढ़कर घुलने के कारण दिखलाया है। अमीर खुसरो ने अपनी मस्नवी में उस घटना का भी कोई ज़िक्र नहीं किया जिसमें खुसरो ने मुहम्मद साहब के सन्देशवाहक के साथ अपमान-जनक व्यवहार किया था क्योंकि उससे मुसलमानों का जी दुखता और खुसरो परवेज़ के प्रति उनके हृदय में घृणा उत्पन्न होती; जैसा कि मौलवी हाजी अली अहमद खाँ साहब के लेख से प्रकट होता है, "यह वही खुसरो परवेज़ है जिसने रसूल करीम सले अल्ला अले ओ सलम के सहीफ़ा गिरामी के साथ गुस्ताखी की थी और उसीकी सजा में आख़िरकार वह अपने लड़के शेर वपा के हाथ से ३८ साल सल्तनत करने के बाद सन् हिज्री ७ में निहायत ज़िल्लत व रुसवाई के साथ क़त्ल हुआ।"

अमीर खुसरो बलबन से लगाकर मुहम्मद तुग़लक के राज्यकाल तक राजकवि के सम्मानित पद पर रहे। यह मसनवी उन्होंने अलाउद्दीन खिलजी के समय में लिखी है। इसलिए स्वभावतः पुस्तक के आरम्भ में उन्होंने अलाउद्दीन खिलजी की प्रशंसा में क़सीदे लिखे हैं परन्तु उसके बाद ही हिन्दूधर्म की प्रशंसा में जो कुछ शेर लिखे हैं उनकी तुक समझ में नहीं आती :—

बइश्क़ार बुत परस्ती दीने पाकस्त।
वगर ताअत कुनी बे इश्क़ खाकस्त॥

—यदि प्रेम से मूर्त्तिपूजा की जाय तो वह सच्चा इस्लाम है और यदि बिना प्रेम के निराकार की भी उपासना की जाय तो वह व्यर्थ है।

नये कमज़ाँ ज़ने हिन्दी दरीं कूए।
के खुद रा ज़िन्दा सोज़द अंज पए शूए॥

—प्रेम मार्ग में हिन्दू स्त्री की तुलना कोई नहीं कर सकता जो मृत पति के साथ अपने जीवित शरीर को जला देती है।

हो सकता है कि पद्मिनी के जौहर से अमीर खुसरो को यह मसनवी लिखने और इसे ऊँचा उठाने की प्रेरणा मिली हो। चित्तौड़ के राणा का चरित्र खुसरो से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। राणा और पद्मिनी की प्रेम-कहानी भी खुसरू और शीरीं की प्रेम-कहानी से काफ़ी मिल जाती है। फिर भी पद्मिनी शीरीं से बहुत ऊँची है। हज़रत अमीर के उठाये भी वह भारतीय आदर्श तक नहीं उठ सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकियाकलाम

श्रीसद्गुरु शरण अवस्थी

मनुष्य श्रान्त होकर थोड़े समय के लिए तकिया का सहारा लेता है और फिर उठकर काम करने लगता है। बोलते-बोलते वक्ता अपनी वाणी के प्रवाह के बीच जिन शब्दों, वाक्यों अथवा उक्तिओं को दुहराया करता है, मानो उनके द्वारा वाणी को आगे बढ़ने का सहारा मिलता है; उन्हें तकियाकलाम कहते हैं। अंतर यह है कि श्रान्त व्यक्ति तकिया का सहारा इसलिए तकता है कि उसकी क्लान्ति दूर हो सके परंतु तकियाकलाम के आदी व्यक्ति को तो स्वभाव की लाचारी के कारण रुकना ही पड़ता है। वह आगे बढ़ ही नहीं सकता जब तक अपने तकियाकलाम को दोहरावे नहीं। यह वाणी की थकावट के कारण नहीं वरन् स्वभाव की विवशता के कारण होता है। बहुत बार वाणी की गरीबी और अभिव्यक्ति की दरिद्रता को भी तकियाकलाम ढक दिया करता है।

तकियाकलाम को विशुद्ध हिंदीवादी क्या कहेंगे यह मैं कह नहीं सकता। मुझसे तो इस शब्द का यथातथ्य अनुवाद हुआ नहीं। अँगरेजी भाषा में भी तकियाकलाम का चलन है परंतु इसे क्या कहते हैं यह ज्ञात नहीं। जिस व्यक्ति ने भी तकियाकलाम शब्द निकाला होगा वह बड़ा ही साहित्यिक और शब्दों के निर्माण करने में चतुर होगा। यह शब्द कलात्मक, संकेतपूर्ण और सार्थक है। हिंदी के जो थोड़े बहुत तकियाकलाम स्मरण हैं उनकी चर्चा इस लेख में की जा रही है।

मेरे घर के निकट एक वृद्ध सज्जन रहते थे। वे बड़े शिष्ट और सभा-चतुर थे। एक बड़े व्यापार प्रतिष्ठान के कोषाध्यक्ष थे। वे बात बात में कहा करते थे 'जो है सो' प्रत्येक वाक् में कभी एक बार कभी दो बार ये शब्द निकलते रहते थे। वैसे तो ये बिलकुल निरर्थक शब्द हैं और इनका योग किसी भी मंतव्य को आगे नहीं बढ़ाता परंतु बोलने-वाले को वाणी-प्रवाह में सहारा अवश्य देते थे। जो है सो तो है ही, अस्ति की प्रतिष्ठा अस्ति कहकर करना मूर्ख प्रयास है परंतु यह क्रम चलता अवश्य था। मुझे तो ऐसा ज्ञात हुआ कि खजांचीजी इस उक्ति के बार-बार प्रयोग से जैसे अपनी वाणी में गुरुता अनुभव करते हैं और उसमें नागरिकता का समावेश देखते हैं, ऐसे प्रयोग को बड़प्पन का चिन्ह समझते हैं, बात इसके बिलकुल विपरीत है। कुछ कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में 'जो है सो' के प्रयोग में गुरुता का अनुभव बहुत बूढ़े लोग देखते हैं परंतु यह प्रथा उठती-सी जा रही है।

एक दूसरे महानुभाव का तकियाकलाम है "का नाम करके"। यह भी निरर्थक ही उक्ति है परंतु इसकी भर-मार वे अपने बोलने में निरंतर किया करते हैं। 'जो है सो' अथवा 'का नाम करके' व्यक्ति विशेष के तकियाकलाम नहीं हैं वे जातिवाचक उक्तियाँ हैं। चलाया किसी ने हो अब उन्हें बहुत लोग प्रयोग करते हैं। वास्तव में जिन तकियाकलामों में व्यापकता नहीं है चाहे वे कितने ही सीमित हो, पनप नहीं पाते।

'का नाम करके' तकियाकलाम को मैंने कई रूपों में सुना है। इसके कई संक्षिप्त रूप, बोलनेवालों ने अपनी सुविधा के अनुसार कर लिये हैं। एक भद्र पुरुष को मैंने केवल "का नाम" ही कहते सुना। वे बार-बार इसी को दोहराते हैं "मैं घर पहुँचा ही था 'का नाम' कि बच्चे दौड़ पड़े 'का नाम' और मेरे हाथों से 'का नाम' सब मिठाई छीन ली 'का नाम'।" यह वाक्य एक बड़े पंडित का है जो मैंने इस लेख के लिए अपने पास लिख रखा था। पहले 'का नाम' का संबंध घर से है और वक्ता घर का नाम जानना चाहता है अथवा बच्चों से संबंधित है जिनका नाम वे नहीं जानते। परंतु है यह कुछ नहीं। इसी प्रकार दूसरे 'का नाम' का संबंध बच्चों से है अथवा नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। तीसरे का भी संबंध मिठाई से बहुत खींच-तानकर लगाया जा सकता है परंतु चौथे 'का नाम' का तो कोई प्रसंग ही नहीं जुड़ता। थोड़े ध्यान से विचार करने से मालूम होता है कि ये चारों 'का नाम' बिलकुल निरर्थक हैं और वक्ता की वाणी के लँगड़ेपन की लकड़ीमात्र हैं।

'का नाम करके' का संक्षेप 'का नाम' बना। इसका भी संक्षेप मैंने सुना है। वह केवल 'कन' होकर रह गया है और बोलनेवाले की वाणी में विज्ञों के लिए किरकिराहट, विनोदियों के लिए हास्य और भाषा-विशारदों के लिए कौतूहल उत्पन्न करता है। यह दो अक्षरों का तकिया-कलाम इतना लघु हो जाता है कि इसकी आवृत्ति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताड़ लेना सरल नहीं है। बोलनेवाला तो बहुधा अपनी मूर्खता भाँप नहीं पाता। सुननेवाला भी, यदि जागरूक न हुआ, तो बातचीत में उसे कोई भी असाधारणता दिखाई नहीं देती।

'का नाम करके' के दो और रूप मैंने देखे। यद्यपि उनका प्रचार मैंने नहीं पाया परन्तु उनका प्रयोग मैंने स्वयं सुना है। एक सज्जन मेरे मकान के पीछे रहा करते थे। वे अपनी वाणी के लहजे में 'का नाम करके करके' दो बार कहा करते। कभी 'का नाम' बिलकुल उड़ा देते थे केवल 'करके करके' कह दिया करते थे। यह तभी कहते थे जब वे बातों के जोश में आ जाते थे। बिलकुल निरर्थक रूप में यह प्रयोग चलता था। इसी प्रकार मेरे एक आदरणीय मित्र का सुशिक्षित पुत्र अपनी बातों की झोंक में 'क्याम' कहा करता था। 'क्याम' कदाचित् 'क्या नाम' का संक्षिप्त रूप है और 'क्या नाम' 'का नाम' का नागरिक संस्करण है। मैं उसे बीच-बीच में बराबर टोक दिया करता था कि यह 'क्याम' क्या बलाय है परंतु वह अपने स्वभाव से लाचार था। मेरी बात को केवल हँसकर टाल दिया करता था। लाख सावधानी बर्त्तने पर भी मेरे समक्ष कई बार उससे 'क्याम' निकल जाता था। बोलने में बहुत प्रवाह था, वेग भी था, नैरन्तर्य भी था; उस सबका विराम केवल 'क्याम' शब्द में ही हुआ करता था। वास्तव में यह सच्चा ही उसका तकियाकलाम था।

एक व्याख्यान देनेवाले पण्डित को मैंने सुना। वे बीच-बीच में 'क्या कहलाता है' कह दिया करते थे। यह उक्ति प्रश्नवाचक थी अथवा व्याख्यात्मक यह कहना कठिन है। परंतु इसका प्रयोग वे बार-बार करते थे। यह तकियाकलाम भी 'क्या नाम' से ही संबंधित है।

एक पदनिवृत्त ख्यातनामा प्रधानाचार्य को बोलते रहने का बड़ा स्वभाव है। मैंने देखा कि वे बीच बीच में यह कहा करते हैं कि 'मेरे कहने का मतलब यह है।' यह निरर्थक उक्ति होते हुए भी वाक्यों के बीच में इस प्रकार गूँथ दी जाती है कि निरर्थकपने का पता नहीं चलता। प्रत्युत यदि इसके प्रयोग में अखरनेवाली आवृत्ति न हो जो वक्ता का तकियाकलाम संबंधी रोग दूर से घोषित न करे तो ऐसा लगता है कि मानो वक्ता महोदय सचमुच ही अपना मतलब समझाना चाहते हैं। अध्यापक होने के नाते उनका यह आग्रह अनुचित भी नहीं लगता। कदाचित् उनका यह स्वभाव भी अध्यापक होने के कारण ही पड़ गया हो।

इस तकियाकलाम को थोड़े हेरफेर के साथ मैंने और भी सुना है। कुछ सज्जन केवल यह कहने के आदी हैं कि 'कहने का मतलब यह है'। वे उत्तम पुरुष के एकवचन का प्रयोग नहीं करते। परंतु अर्थ उनका अपने ही से रहता है, वैसे तो इन तकियाकलामों का कोई अभिप्राय ही नहीं होता। उनका कदापि यह भाव नहीं होता कि तुम्हारे कहने का मतलब यह है अथवा किसी अन्य पुरुष के कहने का मतलब यह है। कुछ लोग इसे और संक्षेप किये हुए हैं और केवल इतना ही कहते हैं कि 'मतलब यह है।' वे जैसे किसी गहरी समस्या अथवा जटिल परिस्थिति के समझाने का प्रयास करते हैं। परंतु ये सारे कथन वाणी का केवल सहारा मात्र हैं। इनके कहे बिना वक्ता आगे नहीं बढ़ पाते। यह कि कौन इनका कितनी बार प्रयोग करता है यह उसके बोलने की क्षमता और न्यूनता पर आश्रित है। इसके लिए कोई साधारण नियम नहीं बनाया जा सकता।

इसी तकियाकलाम से मिलती-जुलती एक उक्ति और है। कुछ व्यक्तियों का स्वभाव होता है कि वे समय-बे-समय यों ही बीच बीच में यह कहा करते हैं 'प्रश्न यह है।' वास्तव में न कोई प्रश्न होता है और न परिस्थिति का संदर्भ किसी प्रश्न को खड़ा करने के लिए प्रेरित करता है। यह तो केवल लड़खड़ाती वाणी और हकलाते बोल का सहारा है। वह वाक् यंत्र की हकलाहट नहीं होती वह तो केवल बोली के बहाव में पड़नेवाले बार-बार के भँवर हैं जिनका अस्तित्व केवल रुकना और मिट जाना मात्र है। तभी बहाव आगे बढ़ता है। लँगड़े व्यक्ति की लड़खड़ाहट से भी वह परिस्थिति भिन्न हैं। वह तो वेग से चलनेवाले व्यक्ति की नस जैसे चढ़ जाय और वह पैर झिटककर आगे चल दे; बस तकियाकलाम का यही उपयोग है और यही सार्थकता है। कुछ लोग 'प्रश्न यह है' के पूर्व 'अब' शब्द लगा दिया करते हैं और उनका तकियाकलाम 'अब प्रश्न यह है' इतना लम्बा हो जाता है। परंतु भाव में और मंतव्य में कोई अन्तर नहीं होता।

कुछ व्यक्ति बीचबीच में यह कहा करते हैं--'समझे'। 'समझे' शब्द भिन्न-भिन्न कण्ठों में फंसकर नाना प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ध्वनियों को जन्म देता है क्योंकि बोलनेवालों के अवधारण का संस्थान इसी शब्द पर टूटता है। बोली की सारी गुर्राहट, लोच, वर्णों के प्रयोग की मुलायमी, उनकी कर्कषता, नाक के बोल और गले के स्वर में वाणी की रंगी ध्वनि का बोझ, झकझोर और मार्दव 'समझे' के प्रत्येक वर्ण में बोलनेवाले की रुचि के परिचायक, द्वित्त का उच्चारण--इन सभी विशेषताओं को 'समझे' तकियाकलाम सम्हालता है और वैयक्तिता की रक्षा करता है। सुननेवाले हँसे या आनंदित हों बोलनेवाले की झोंक उसे कुछ नहीं जानने देती।

'समझे' के साथी और भी इसी शब्द से निकले हुए तकियाकलाम हैं। 'तुम समझे' 'समझो भाई' 'तुम समझे-नहीं', 'समझ गये' ये सब उक्तियाँ न्यूनाधिक बहुत वक्ताओं द्वारा प्रयोग की जाती हैं और निरर्थक रूप में केवल वाक् पूर्त्यर्थ। एक बड़े समझदार व्यक्ति को मैंने बात करते देखा कि वे बीच-बीच यह कह दिया करते थे 'आप बिलकुल नहीं समझे' न समझनेवाली बात का संदर्भ इतना क्षीण रहता था कि 'आप बिलकुल नहीं समझे' यदि प्रसंग में बिलकुल मिथ्या उक्ति न भी हो तो नितांत अनावश्यक और सारहीन प्रतीत होती थी। वास्तव में बोलनेवाले का भी ऐसा कोई मंतव्य नहीं होता कि वह सुननेवाले को बार-बार यह कहकर कि 'आप बिलकुल नहीं समझे' मूर्ख प्रमाणित करे। यह तो केवल उसका स्वभाव पड़ गया है वह सुननेवाले को न अपमानित करना चाहता है और न अपने को उससे अधिक समझदार मानता है अथवा सुननेवाले से मनवाना चाहता है। फिर भी यह उक्ति कितनी अनागरिक और अशिष्ट है इसका पता बोलने के बवण्डर में पड़े हुये व्यक्ति को तो होता ही नहीं, सुनने वालेभी इसका दंश पकड़ नहीं पाते।

मेरे एक निकट संबंधी हैं। खासे पढ़े लिखे और अच्छे विद्वान हैं। उनका यह स्वभाव पड़ गया है कि वे बीच-बीच में यह कहा करतेहैं कि 'चीज यह है।' 'प्रश्न यह है' की भाँति यह भी वैसा ही तकियाकलाम है। अंतर केवल यह है कि 'प्रश्न यह है' तो कभी-कभी प्रसंग में भिड़ भी जाता है परंतु यह उक्ति बिलकुल ही प्रसंग में नहीं खपती। मैंने ध्यान से देखा कि यह उक्ति उनके मुँह से तब निकलती है जब वे एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की ओर मुड़ते हैं परंतु दोनों का संबंध स्थिर रखना चाहते हैं। एक बार की घटना है कि एक मित्र के यहाँ चोरी हो गई। पुलिस जाँच कर रही थी। एक बड़ा पुलिस अधिकारी चुराई हुई वस्तुओं की सूची बना रहा था। बड़ी-बड़ी कीमती वस्तुएँ चोरी गई थीं। वे व्यक्ति भी बैठे थे जिनका तकियाकलाम यह था कि 'चीज यह है।' एक-एक चीज का नाम लिखाया जा रहा था। इतने में सहसा वे सज्जन बोल उठे 'चीज यह है।' और वे आगे नहीं कह पाये क्योंकि उसी समय पुलिस कप्तान सहसा आ गये। वास्तव में वे यह तकियाकलाम बोलने के बीच में कहा करते थे। आज आरंभ में ही यह उक्ति निकल गई। स्वभाव ही तो है। जिस अभिव्यक्ति को बार-बार वाक् यंत्र से फिसल फिसलकर बाहर निकलने का अभ्यास पड़ जाता है वह किसी समय बाहर आ सकती है। परंतु आये हुए कप्तान ने तुरंत उनसे पूछा; कहिये साहब कहाँ है चीज। आपको यह सुराग कैसे मिला? सब लोग तो अवाक् थे ही, वक्ता महाशय भी क्या उत्तर देते। वे क्या कहते कि यह तकियाकलाम है। उन्हें कठिनाई हुई और आगे बोलने में उन्हें 'चीज यह है' का प्रयोग लगभग पाँच बार करना पड़ा जिससे उनकी वाणी संबंधी इस बीमारी का पता पुलिस अधिकारी को लग सके। परिस्थिति स्पष्ट होने पर सब लोग खब कहकहा मारकर हँसे।

एक प्रसिद्ध डाक्टर मुझसे मिलने आये। वे विदेशों में घूमेहुए थे। आते ही मुझ से उन्होंने घरेलू बोली में कहा 'हाँ भइया, क्या हो रहा हैं।' मैंने समझा उन्होंने आत्मीयता के कारण 'हाँ भइया' करके सम्बोधन किया है। परंतु बातों के फेर में उन्होंने हाँ भइया पाँच बार कहा और वह बिलकुल निरर्थक उक्ति में, तब मुझे ज्ञात हुआ कि यह इनका तकियाकलाम है। कुछ लोग केवल 'भइयाजी' कहा करते हैं। एक व्यापारी मुझसे एक बार बोले--'भइया जी कल मैं आप के कालेज 'भइया जी' गया था। आप 'भइयाजी' तो मिले नहीं लेकिन 'भइया जी' लड़कों की इतनी भीड़ निकली कि मैं 'भइया जी' घबड़ा गया 'भइया जी'। यह वाक्य मैंने लिखा तो था नहीं परंतु करीब-करीब ठीक है। पहले हिंदी-पहाड़े सिखानेवालों को लोग भइया जी कहते थे। मैं समझा कि मुझे भी पहाड़ा सिखानेवाला कहीं यह व्यक्ति तो नहीं समझता है परंतु बात यह बिलकुल नहीं थी। वे तकिया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाम के मारे थे। बंबई के भइयों को भी वे बिलकुल नहीं जानते थे।

एक दूसरे सज्जन कमिश्नर पद से पेंशन ले रहे हैं। वे ७० वर्षों से अधिक ही आयु में होंगे। मेरे ऊपर दया करके कभी-कभी अवकाश के समय मिलने आते हैं। अँगरेजी के विद्वान् तो वे हैं ही, फारसी भी अच्छा जानते हैं। मैंने देखा कि वे बात बात में यह कहते हैं--"है कि नहीं" प्रसंग और बिना प्रसंग इसके प्रयोग की भरमार उनकी बोली में मिलती है। इनके संबंध में एक बड़ी मनोरंजक घटना प्रसिद्ध है। एक बड़े वकील इनकी अदालत में बहस कर रहे थे। उनका तकियाकलाम था 'हुजूर समझे' कमिश्नर साहब ने झुँझलाकर कहा, 'हुजूर सब समझ रहे हैं। आप कहते रहिये, 'है कि नहीं।' वकील साहब हाजिर जवाब थे। तुरंत बोल उठे, 'हुजूर ने कई बार कहा 'है कि नहीं' इससे मुझे शक हो गया कि हुजूर समझे या नहीं। सबने मुँह नीचा कर लिया। हँसने से मान-हानि का भय था।

कुछ लोग 'अरे यार' शब्द के प्रेमी होते हैं। आगे पीछे, बीच में, समय बे समय, ठौर बेठौर इसका प्रयोग करते हैं। यह शब्द विनोदप्रिय खुलावट से बात करने-वाले अट्टहास के साथ बोलनेवाले अधिक प्रयोग करते हैं। इस शब्द में आत्मीयता टपकती है। फिर भी होता यह निरर्थक ही और तकियाकलाम ही इसे समझना चाहिये।

साधारण प्रकार का स्वीकारगर्भित उत्तरात्मक आदर-सूचक 'जी हाँ' शब्द को जब कोई मूर्खतावश तकियाकलाम बनाना चाहता है तो बड़ी हँसी आती है। यह ठीक-ठीक नहीं बन पाता। केवल वाक्य के आदि में चाहे आप इसे जितनी बार प्रयोग कर लें, अंत में भी घसीटकर बोला जा सकता है परंतु वाक्य के मध्य में तो यह पत्थर की भाँति अड़ जाता है। पंजाबी लोग इसे उलटाकर 'हाँ जी' कर देते हैं और उनकी घुमावदार ध्वनि-संधि में वह अच्छा भी लगता है। इसे पूरा-पूरा तकियाकलाम बनाया जा चुका है और इसका प्रचलन अधिकतर पंजाबियों में ही है। इस उक्ति का अकेला खण्ड 'जी' मैंने बहुतों के मुँह से बड़े प्रवाह के साथ सुना। "जी मैं लखनऊ गया था लेकिन भाई 'जी' मिले नहीं तो 'जी' मैं करता क्या? लौटकर 'जी' घर आ गया। कल 'जी' फिर जाऊंगा।" यह एक साधारण व्यापारी का वाक्य है। लड़कियाँ इस 'जी' के साथ 'देखिये' और लगा लेती हैं। एक अध्यापिका मुझसे अपनी नौकरी के सिलसिले में मिलने आई। उसका एक वाक्य नीचे दे रहा हूँ।

"भाई जी 'देखिये' आपको यह मदद तो करनी ही होगी।' 'देखिये' यदि आप न करेंगे तो कौन करेगा। केवल 'देखिये' आपको एक चिट्ठी मैनेजर साहब को 'देखिये' लिख देना है। मैंने 'देखिये' सुना है कि वे आपकी बात 'देखिये' नहीं टालते।

एक रमणी की ओर से 'देखिये' शब्द की यह भरमार मेरे लिए संकोच और झिझक उत्पन्न कर देती यदि मैं मन में तकियाकलाम के देवता के स्पष्ट दर्शन न करता होता।

एक अर्धग्रामीण व्यक्ति मुझे अपनी आपत्ति सुनाने आये। उनके यहाँ डाका पड़ा था। वे बार-बार बीच-बीच में यह कहते थे 'जो जाने सो जाने' और कभी इसके साथ यह भी कह दिया करते थे 'हम तो यह कहते हैं'। यह जरा लम्बा तकियाकलाम था और मैंने और बहुत कम लोगों को इसे कहते सुना परंतु इस व्यक्ति के पास यह भरपूर बल के साथ था। इसका भाई मेरे मेस का महराज बीच-बीच में यह कह दिया करता था--"तेरी सौं मास्टरसाहब" और फिर दो चार शब्द कहकर फिर कह देता था "तेरी सौं मास्टर साहब।" यह इसका स्वभाव था। एक बार मैंने झुँझलाकर कहा कि अपनी सौं क्यों नहीं कहता मेरी सौं क्यों कहता है। वह इस उक्ति के मर्म को समझा ही नहीं और यह समझा कि उसके तकियाकलाम को लक्ष्य कर मैं कुछ नहीं कहता हूँ। मैं उसकी सत्यता पर विश्वास नहीं करता। अतएव उसने अपनी बात की सत्यता प्रमाणित करने के लिए दो तीन बार फिर 'तेरी सौं' कहकर अपनी बात दोहराई। इस कसम का इन व्यक्तियों के पास कोई मूल्य नहीं है। बहुत से दिहात के विद्यार्थी जैसे 'विद्या कसम', 'बाप कसम', 'जनेऊ कसम' दिनभर खाते रहते हैं और अपनी हर क्षण की बोली में इन उक्तियों को तकियाकलाम बनाये रहते हैं वैसे ही इस ग्रामीण का भी स्वभाव था। यही नहीं कभी-कभी 'तेरी सौं' के स्थान पर यह 'मेरी सौं' भी कह दिया करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा कहार बहुधा 'मुल' अथवा 'मुला' कहा करता था। "बात बाबूजी ठीक है 'मुल' होई न।" "रामू से कहा रहे 'मुला' वे गे नहीं।" यह तकियाकलाम संयोजक शब्द का काम देकर सार्थक विशेष भाववाची भी शब्द है परन्तु जब वह इस शब्द के प्रयोग की भरमार करता है तो निरर्थक तकियाकलाम ही हो जाता है। 'मुला' का पर्यायवाची 'मुदा' शब्द भी वह कभी-कभी प्रयोग करता था।

मेरे माली की पत्नी का तकियाकलाम बिलकुल विचित्र है। वह मेरी पत्नी से बातें करते समय 'तिके बहूजी' बार बार कहा करती है। इसी के जोड़ में 'जिके बहूजी' भी कहती है। कब 'तिके बहूजी' कहती है और कब 'जिके बहूजी' कहती है इसका कोई क्रम नहीं है। परन्तु इनका आवर्त्तन अवश्य होता है। कभी उसका तकियाकलाम बढ़कर 'तिके बीचो बीच में बहू जी' इतना बड़ा हो जाता है। न बहूजी इस 'जिके' अथवा 'तिके' को ताड़ पायी हैं और न मालिन। मैंने जब बहू जी का ध्यान दिलाया तो हँसने लगीं। मालिन से इसका अर्थ पूछा वह भी हँसने लगी परन्तु उसका तकियाकलाम छूटा नहीं। उस मालिन का एक तकियाकलाम यह भी है कि वह बीच-बीच में 'अच्छा बहू जी' भी कहती है। 'अच्छा बहू जी' कल आपको एक लौकी बगीचे से मिली होगी, 'अच्छा बहूजी' कल की भिण्डी 'अच्छा बहूजी' कैसी बनी थी? 'अच्छा बहू जी' भाँटे भी खूब लगे हैं 'अच्छा बहूजी।'

मेरे कालेज के एक अध्यापक हैं। उनका स्वभाव पड़ गया है कि बीच-बीच में 'अच्छा तो फिर' कहा करते हैं। एक उनका वाक्य सुनिये--'अच्छा तो फिर प्रिंसिपल साहब! मैंने पढ़ाया तो खूब लेकिन लड़के 'अच्छा तो फिर' पढ़े ही नहीं तो 'अच्छा तो फिर' मैं क्या करूँ?'

मेरे उपप्रधानाचार्य ने हँसकर कहा, 'अच्छा तो फिर आइयेगा।' अब बतलाइये कि लड़कों को 'अच्छा तो फिर' सुनने से अवकाश मिले तब तो पाठ पढ़ें। बहुत समय तक बच्चों ने हँसी उड़ाई। फिर अध्यापक और विद्यार्थी दोनों इस उक्ति का अजनबीपन भूल गये।

मेरे बँगले के पास एक होम्योपैथिक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। उनका तकियाकलाम है 'बिलकुल।' समय बे समय अपनी वाणी में 'बिलकुल' शब्द का प्रयोग किया करते हैं। मैंने कहा डाक्टर साहब कल उस व्यक्ति को अवश्य देख लीजियेगा। वे बोले 'बिलकुल।' मैंने कहा दवा आप आरंभ कर दीजिये। वे फिर बोले 'बिलकुल।' मैंने कहा उसे जल्दी आप स्वस्थ कर दीजिये। फिर डाक्टर ने कहा 'बिलकुल।'

एक संस्कृत के बूढ़े पंडित थे। वे मुझसे संस्कृत में ही बोलते थे। 'किल' और 'स्यात' का उनका तकियाकलाम था। कभी कभी 'तावत' भी समय बे समय भिड़ा दिया करते थे। बिलकुल ही निष्प्रयोजन इन शब्दों का प्रयोग करते थे। जब हिंदी बोलते थे तो 'हाँ' शब्द का उनका तकियाकलाम था। इस 'हाँ' शब्द को कभी लम्बा कभी छोटा कभी हलका कभी गरुआ उच्चारण देकर वाक्य को बढ़ाया करते थे। 'हाँ' तो मैंने कहा था न; 'हाँ' तो आप भी समझ लीजिये; 'हाँ' होना यह चाहिये। इस प्रकार के उनके साधारण वाक्य निकला करते थे। हिंदी में 'कदाचित्' शब्द की भरमार करते थे। यह उनका बड़ा शिष्ट तकियाकलाम था। मैंने इस शब्द की आवृत्ति अच्छे-अच्छे लोगों में देखी है।

इसी प्रकार बड़े सभ्य लोगों के बोलने के प्रवाह में मैंने गालियों की भरमार सुनी है। 'साला' '--तिया' तो साधारण उक्ति है। किसी की बहिन से संबंध जोड़ने वाले शब्द के अनेक संक्षिप्त और विस्तृत नाद लखनऊ और कानपुर के हिंदू और मुसलमान सभ्य घरानों में सुने हैं। समय बे समय अवसर बे अवसर नितांत अप्रासंगिक रूप में ये तकियाकलाम सुनने में आते हैं।

कुछ सरकारी चपरासियों में जिसमें एक विशेष धर्म के लोग अधिक पाये जाते हैं बात बात पर 'सरकार' और 'हजूर' कहने का स्वभाव पड़ जाता है। नितांत निरर्थक रूप में वे इसे कहा करते हैं। किसी सम्बोधन के उत्तर में कहना और बात है परन्तु यों ही इस शब्द को दोहराते रहना उनका तकियाकलाम ही होता है।

एक सज्जन मेरे यहाँ चाय पीने आये। बातों के बीच-बीच में उन्हें 'अकेले' कहने का रोग था। मुझसे बोले, 'अकेले' आपने अच्छा किया जो आज चाय रखी। मैं कल 'अकेले' जानेवाला था। वृन्दावन सबके साथ 'अकेले' जाना है। आप 'अकेले' जरूर आइयेगा।

मेरे बँगले का एक चौकीदार थोड़े समय रहा। वह समय बे समय बात करते समय कह दिया करता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हारे जाय करके बाबूजी' कभी-कभी बाबूजी न भी कहता तो 'तुम्हारे जाय करके' अवश्य कह दिया करता। बँगले का फाटक बनाने एक मिस्त्री आया। उसकी आयु चालीस वर्ष से अधिक न थी। उसे लगभग एक दिन हम लोगों के साथ रहने का अवसर मिला। उसका तकियाकलाम था, 'मैं तुम्हें बताऊँ।' पहले तो बातों की झोंक में मैं समझ नहीं पाया। फिर उसके कहने का ढंग बुरा लगा। बाद में यह जानकर कि यह इसका तकियाकलाम है हँसी लगी। तकियाकलामों को ताड़ने का मैंने बड़ा अभ्यास डाल रखा है फिर भी कभी-कभी परख की केवलता से फिसलकर वाणी के प्रवाह-कणों में मिल जाते हैं और इन्हें निकालना कठिन हो जाता है।

एक दम्भपूर्ण गर्वोक्ति मैंने बहुत बार सुनी है और बड़ों बड़ों से सुनी है। "मैंने कहा था न? मैंने कहा सोई हुआ, मैंने पहले ही कहा था।" ये उक्तियाँ कब साधारण बोल-चाल और नैसर्गिक प्रसंग से फिसलकर तकियाकलाम के घर पहुँच जाती हैं इसे ताड़नेवाला ही जान सकता है। परन्तु ये पहुँच अवश्य जाती हैं ऐसा मेरा पर्यवेक्षण है।

एक मेरे अत्यंत निकट मित्र प्रदेश के शासन में उच्च-पदाधिकारी हैं। जहाँ तक मुझे ध्यान है वे किसी विभाग के सचिव हैं। उनके एक छोटी लड़की है। वह बड़ी चंचल और प्यारी है। नैनीताल में मैंने देखा कि वह इधर से उधर, उधर से इधर उन्हें घुमाती रहती और एक स्थान पर बैठने नहीं देती। मुझे देखकर वे कहने लगे, इसने मेरी 'मट्टी पलीत' कर रखी है। ठीक है यह एक मुहावरा था और प्रसंगानुकूल भी था। परन्तु फिर दो चार बार उन्होंने इसी प्रसंग में कहा। संदर्भ अनुकूल होने के कारण मुझे नहीं अखरा। एक बार मैंने देखा कि जब वह लड़की उनके पास थी भी नहीं तो भी उन्होंने दो तीन बार किसी दूसरे संदर्भ में कहा 'भाई मट्टी पलीत है।' आजकल तो 'मट्टी पलीत' है। दस पाँच दिन साथ रहने पर मुझे बिलकुल निश्चय हो गया कि यह तो इनका तकियाकलाम है। बिलकुल ही निरर्थक रूप में वे इसका प्रयोग करते थे।

एक बड़े सज्जन को मैंने बार-बार "खाँ म खाँ" कहते सुना। यह उनका तकियाकलाम हो गया था। व्रजमंडल में एक वैश्य परिवार रहता है। गृहिणी पढ़ी-लिखी महिला हैं। वे ठेठ व्रजभाषा में बोलती हैं। इतनी शीघ्रता से उनकी जबान चलती है कि हम लोगों को समझना कठिन हो जाता है। बात-बात में यह महिला 'मरे' शब्द का प्रयोग करती हैं। अपने पुत्र को लक्ष्य कर एक बार उसने कहा, 'सारी दुनिया सोय रही है या 'मरे' को नींद नाँय है', 'इतने कपड़े 'मरे' सिलने को डरे हैं।' नौकर को एक बार संकेत करके उसने कहा "वा 'मरे' को घर की कछू फिकर नाय है।" एक बार दूध लानेवाला नहीं आया। चाय का समय हो गया था। 'म ो दूध वालो आज उतई मर गयो।' उसने कहा। उसका भाई पानी से खेल कर रहा था। वह बोली--'मरो मस्ताय रह्यो है सद्दी ह्वैय गई तो रोवैगो।' छोटे बच्चे ने एक डब्बा गिरा दिया। क्रोध में आकर हल्ला मचाती हुई कहती है 'मज्जाय मरे।' जो मरा है वह फिर कैसे मर जायगा। यह तकियाकलाम के जगत में ही होता है।

मेरा भोजन बनानेवाला महराज है। उससे जब कहिये कि दाल में नमक अधिक है तो तुरंत कहता 'बाबू जी मजे का है।' 'मजे' से उसका अर्थ है कि न बहुत अधिक है और न बहुत कम। कभी-कभी स्वयं कहता 'बाबू जी आज तरकारी मजे की पकी है।' 'ये बैंगन मजे के हैं।' उसका अर्थ हमेशा यही होता कि न बहुत अधिक न बहुत कम। 'बैंगन मजे के हैं' का भी भाव यही होता कि न बहुत अच्छे और न बहुत खराब। समय बे समय अपने ही अर्थ में वह इस 'मजे' शब्द का प्रयोग करता है। यह उसका तकियाकलाम हो गया है।

इस संबंध में एक बड़ी ही हँसी का प्रसंग मुझे स्मरण है। मुझसे मिलने मेरे मित्र एक डाक्टर की पत्नी आईं। मैं घर पर नहीं था। केवल वही महराज था। मेरे आने पर उसने कहा "बाबू जी, आप से मिलने कोई भारी स्त्री मोटर पर आई थीं" भारी से उसका अभिप्राय बड़े घर की स्त्री से था। मैंने जरा और समझने की चेष्टा की और, डाक्टर साहब की पत्नी का संकेत करके कहा 'क्या मोटी-सी थीं?' उसने तुरन्त उत्तर दिया 'मजे की थीं।' सब लोग हँस पड़े। उसका अभिप्राय यह था कि न बहुत मोटी थीं न बहुत पतली। बाद में महराज को भी अपने 'मजे' शब्द वाले तकियाकलाम की ध्वनि समझ में आई तो सिर नीचा करके चल दिया।

अँगरेजी भाषा के तकियाकलामों 'आई मीन', 'यू सी', 'डू यू फालो' 'डू यू अण्डर स्टैण्ड' इत्यादि कुछ प्रचलित तकियाकलाम हैं।

तकियाकलामों में अधिकांश स्थानिक होते हैं। कुछ जातिगत भी होते हैं। जिस तकियाकलाम में जितनी सर्वजनीनता होती है उतना ही वह शीघ्र समझ में आ जाता है। सम्भव है ऊपर लिखे हुए तकियाकलाम हर प्रदेश के लोग न समझें और उत्तर प्रदेश के भी हर स्थान पर उनका प्रचलन न हो परन्तु जहाँ कहीं भी उनका प्रचलन है उनका अपना नकारात्मक महत्त्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक आर्यों का सोमरस

श्री अरविंद मालवीय

अँगरेजी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक तथा आलोचक डॉ० जॉनसन के बारे में प्रसिद्ध है कि वे अपने समय के सबसे बड़े और "बेहया" चाय के पियक्कड़ थे--दिन में वे पचास-पचास प्याले चाय पी जाते थे। आज विश्व में तथा विशेषतौर पर भारत में जितनी चाय पी जाती थी उसे देखकर ऐसा लगता है कि आज कितने ही डॉ० जॉनसन का रिकार्ड तोड़नेवाले पैदा हो गये हैं।

चाय आज हमारा राष्ट्रीय पेय मानी जाती है। विश्व के चाय उत्पादक देशों में हमारा देश प्रमुख है। देश से जिन वस्तुओं का निर्यात होता है, चाय उनमें प्रमुख है। देश के किसी भी कोने में चले जाइए--उत्तर में हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों से दक्षिण में कन्या-कुमारी तक, पूर्व में आसाम के जंगलों से पश्चिम में राजस्थान के रेगिस्तान तक, कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े नगरों से लेकर छोटे-से-छोटे गाँव तक--सब जगह आपको चाय अवश्य मिलेगी। आज के इस महँगाई के युग में जब घी, दूध न तो शुद्ध मिलते हैं, न सस्ते ही हैं, न फल मेवा आदि पौष्टिक पदार्थ ही सस्ते और सर्वसुलभ हैं, चाय से बढ़कर सर्वसुलभ, सस्ता तथा लोकप्रिय कोई भी पेय नहीं है। यही आधुनिक आर्यों का "सोमरस" है। चाय के एक प्याले में आज गरीब-अमीर, राजा-रंक, कवि, वैज्ञानिक, लेखक, पत्रकार कोई भी क्यों न हो, अपना सब दुख-दर्द भूल जाता है तथा कल्पना-लोक में विचरने लगता है। अब वैद्य लोग चाहे कितना ही चाय को कोसें कि इससे शरीर में शुष्कता बढ़ती है, जठराग्नि मंद पड़ती है, कफ की ग्रंथियाँ सूख जाती हैं, निद्रा देवी रूठ जाती हैं, दिल कमजोर हो जाता है तथा चाय में गुप्त रूप से विद्यमान "कैफीन" डायन शरीर को धीरे-धीरे घुन की तरह खा जाती है, लेकिन चाय तो "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" का पालन करती सबसे समान रूप से मित्रता करती है। और तो और, गाढ़े समय में यह आपकी लज्जा ढाकने में काम आती है--अपने नाम को सार्थक करते हुए अतिथि (अ+तिथि) आ धमके, दुर्भाग्य से आप घर में उस समय खुक्क हैं, बस चाय के एक प्याले ने आपकी इज्जत रख ली। बताइए भला फिर मनुष्य के इस सच्चे सेवक का इतना प्रचार क्यों न हो? तब तो आपको चाय के बारे में कुछ जानने की इच्छा भी जरूर होगी --चाय क्या है, इसका जन्म कहाँ और कैसे हुआ तथा कैसे इसका इतना प्रचार हो गया?

चीनी "चा"

चाय की जन्मभूमि चीन है और वहींसे इस शब्द का भी जन्म हुआ---वहाँ इसे "चा" कहते थे। चीनियों का विश्वास था कि चाय बहुत-सी बीमारियों को--यहाँ तक कि कोढ़ तक को---दूर करती है।

पाश्चात्य देशों में चाय आज से लगभग चार सौ साल पूर्व प्रचलित हुई। इँगलैंड में जब इसका प्रचार हुआ तो वहाँ लोगों ने इसे बहुत पसंद नहीं किया। पहले वहाँ लोग इसकी पत्ती को डबल रोटी पर लगाकर अथवा अंडे के घोल में मिलाकर खाते थे तथा इसके "बदरंग पानी" को फेंक देते थे। इसकी पत्ती को तरकारी के रूप में भी खाया जाता था।

चाय

ईस्ट इंडिया कम्पनी के एजेंट श्री विकहम पहले अँगरेज व्यक्ति थे जिन्होंने चाय का स्वाद लिया--उन्होंने इसे "चॉ" पुकारा। चीनी "चा" से चॉ "ट्रा" (Tra), टा (Ta) तथा "टी" (Tea) इस प्रकार इसका आधुनिक अँगरेजी नाम पड़ा। भारत में "चाय", "चा", "चाह" आदि इसके नाम इसके मूल नाम के ही समरूप प्रचलित हैं।

विकहम के समय में चाय एक महँगा पेय था तथा केवल अमीर ही इसे पी सकते थे। सन् १६८६ तक इँगलैंड में चाय का प्रचार काफी हो गया था--उस समय इसका मूल्य १० रु० पौंड से १५० रु० तक था। बड़े-बड़े कलाकार, दार्शनिक, कवि तथा वैज्ञानिक इसे स्वाद से पीते थे।

भारत में चाय

अठारहवीं सदी से पूर्व भारत में चाय का कहीं नाम भी न था। चीन से इसके बीज लाये गये--इसके पौधे बागों की शोभा थे। इन पौधों की बहुतायत देख तत्कालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयन्ती, प्रयाग

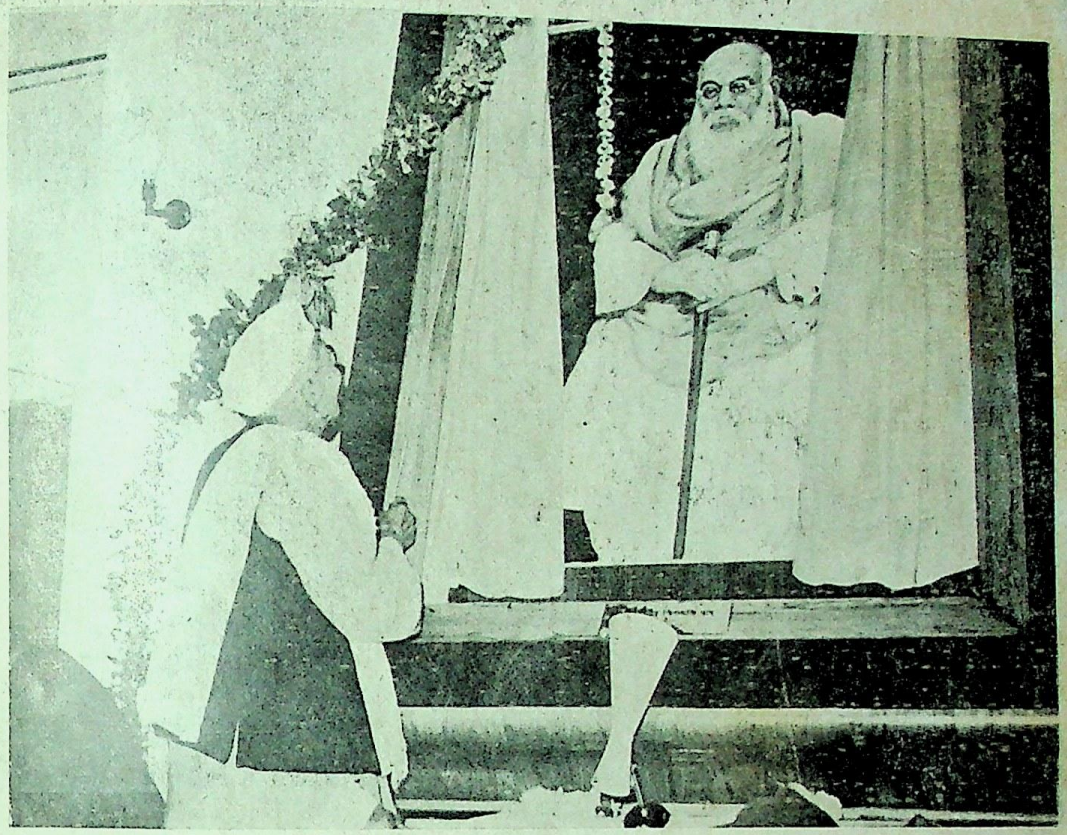

सरस्वती के संस्थापक स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के तैल-चित्र का राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा अनावरण

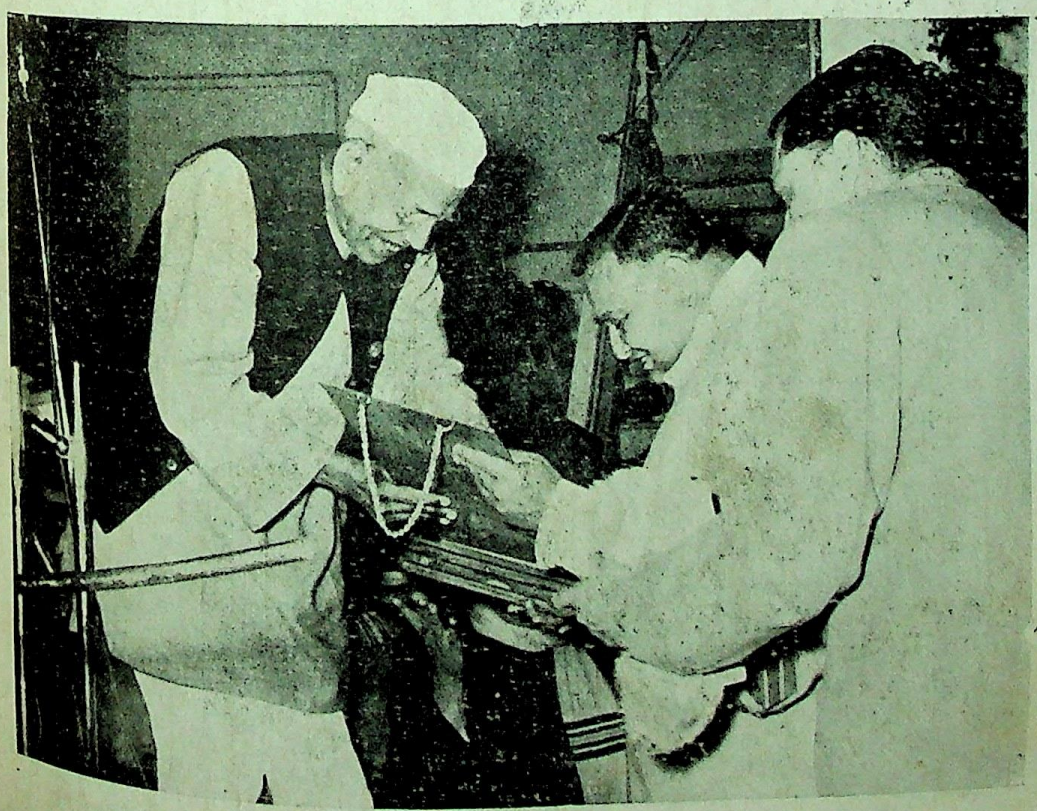

सरस्वती के प्रकाशक इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री हरिप्रसन्न घोष जी को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मानपत्र भेंट करते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

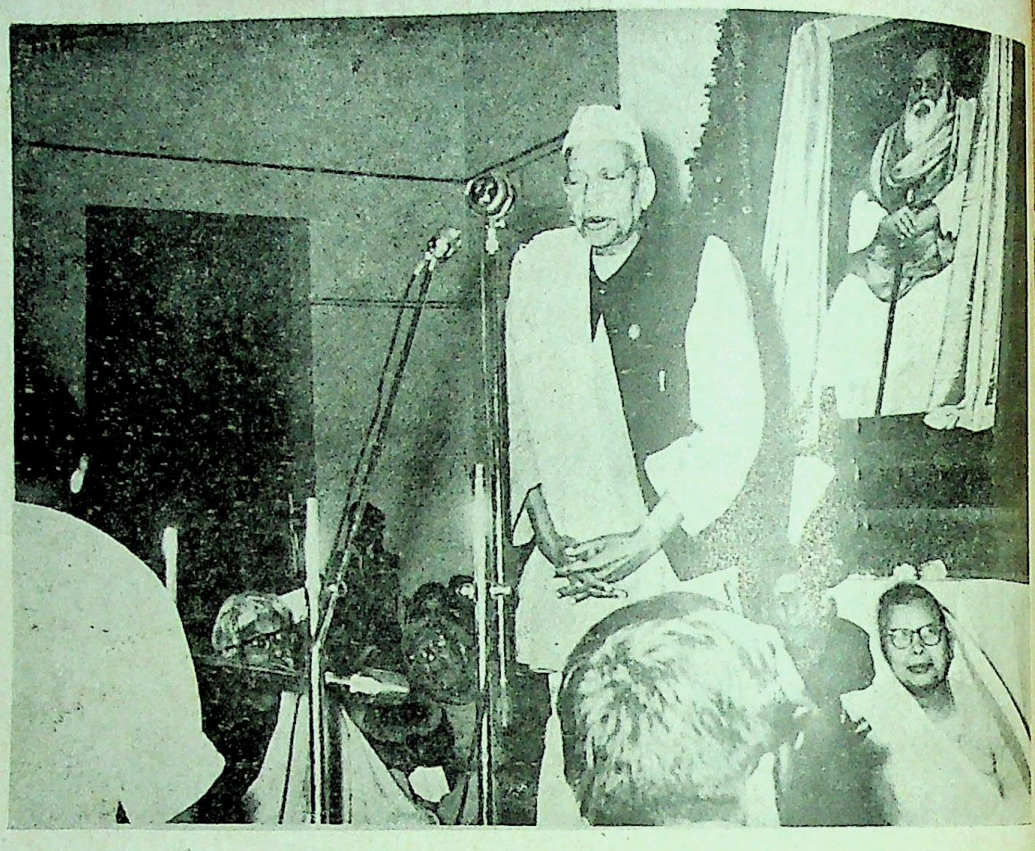

सरस्वती के संस्थापक स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के तैल-चित्र का अनावरण करते हुए राष्ट्र-कवि श्री मैथिली-शरण गुप्त भाषण कर रहे हैं।

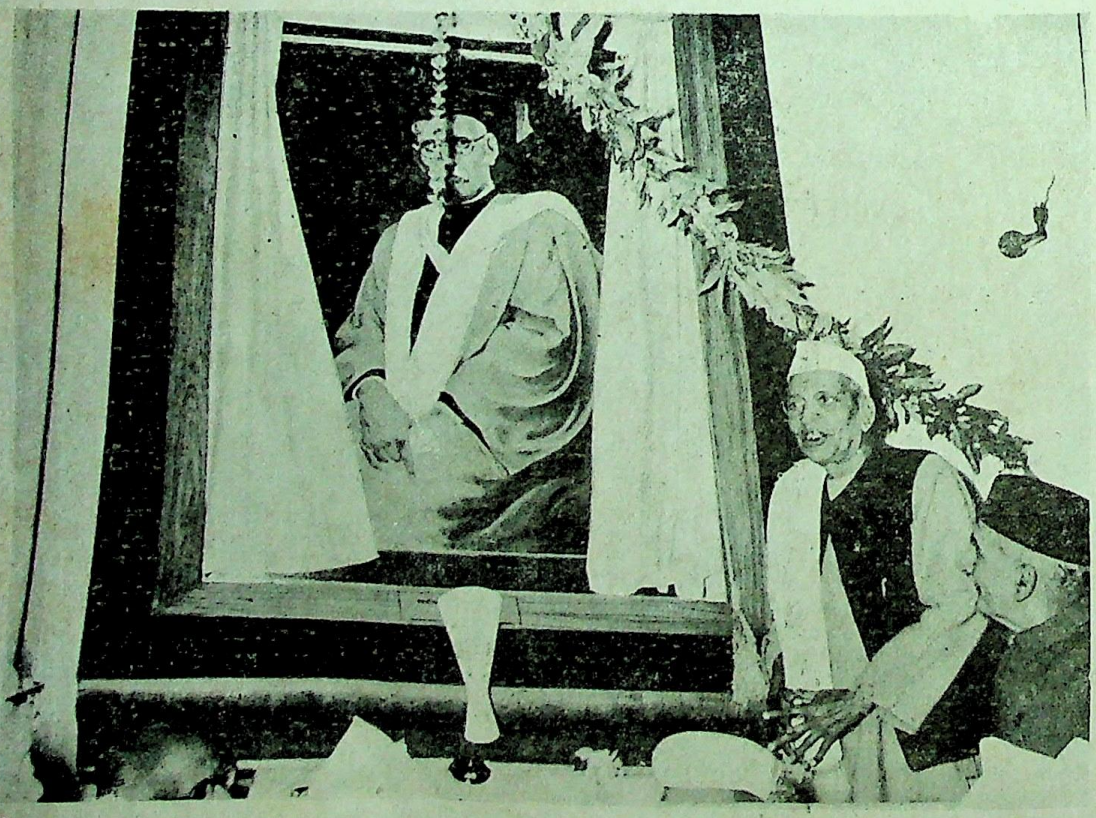

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त बाबू श्यामसुन्दर-दासजी के तैल-चित्र का अनावरण करते हुए भाषण दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिंक ने चाय-उद्योग को बढ़ावा देने तथा इसके प्रचार के लिए एक चाय-समिति नियुक्त की। इस समिति की नियुक्ति के कुछ समय बाद आसाम में देशी बीज से चाय के पौधे उगाये जाने लगे। जाने किस कारण से उक्त समिति ने चीन से लायी गयी चाय के प्रचार पर अधिक जोर दिया तथा इसके आयात को प्रोत्साहित किया। फिर भी, उपयोग से स्पष्ट हो गया कि आसाम में उत्पन्न देशी चाय हमारे देश के जल-वायु तथा यहाँके निवासियों के स्वाद के अनुकूल है और इसी कारण धीरे-धीरे इसका प्रचार भी बढ़ने लगा।

चाय हमारे देश में अधिकतर आसाम, बंगाल की दार्जिलिंग की पहाड़ियों तथा दक्षिण में नीलगिरि की पहाड़ियों में पैदा होती है। सन् १९४७ तक चाय के बाग अधिकतर विदेशियों के हाथ में थे किन्तु अब देशी पूंजी ही इस उद्योग में लगी है। चाय के प्रचार के लिए तथा इसके उत्पादन, गुण-नियंत्रण, आयात-निर्यात आदि के लिए सरकार ने एक बोर्ड बना दिया है। विज्ञान की प्रगति से चाय-उद्योग को भी लाभ हुआ है। चाय के बाग से ताजी पत्ती तोड़े जाने के उपरांत उन्हें कारखाने में सुखाने तथा चाय की केतली में प्रयुक्त होने योग्य बनाने के लिए अनेक आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों का प्रयोग होता है। इसी कारण चाय हमें एकदम ताजी मिलती है तथा उसका स्वाद भी अच्छा रहता है। हाँ, यह अवश्य खेद की बात है कि आजकल व्यापारी लोग, लाभ की दृष्टि से, चाय में मिलावट करने लगे हैं जिस कारण अधिक पैसा खर्चने पर भी उतनी अच्छी चाय नहीं मिलती जितनी आज से दस-पन्द्रह साल पहले मिलती थी।

चाय-सम्बन्धी किंवदंतियाँ

चाय के बारे में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं ईसा की छठी शती में दरूम नामक एक बौद्ध भिक्षु भारत से चीन गया। चीन में उसका बहुत आदर-सत्कार हुआ। उसे चीनियों ने "ता-मी" नाम से पुकारा। एक दिन उस भिक्षु ने प्रतिज्ञा की कि जब तक उसका चिंतन समाप्त नहीं हो जायेगा वह सोयेगा नहीं। दुर्भाग्य से वह सो गया। जागने पर उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई और प्रायश्चित्त के लिए उसने अपनी आँखों के पलक काट कर फेंक दिये। कहते हैं भूमि पर जहाँ पर पलक गिरे तु त ही वहाँ दो पौधे उग आये। भिक्षु ने उन पौधों की पत्तियों को खाया जिससे वह मानसिक तथा शारीरिक रूप में बलवान हो गया था तथा उसकी नींद सदा के लिए चली गयी।

बौधी धर्म नामक एक और भिक्षु ने इसी समय बौद्ध धर्म प्रचार के लिए पूर्व में यात्रा की तथा चीन में उसने चाय का सर्वप्रथम उपयोग किया। क्षात्रियों के वृत्तांतों से ज्ञात होता है कि ईसा की तीसरी शती में आसाम, तिब्बत तथा चीन में घनिष्ठ संबंध थे। संस्कृत तथा पाली से चीनी भाषा में बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद करने के लिए बहुत-से बौद्ध भिक्षु चीन जाते थे। उनमें से अधिकांश आसाम तथा तिब्बत के पहाड़ों में से होकर जाते थे। पहाड़ की बर्फीली ठंड से बचने के लिए वे लोग चाय की पत्ती को आटे, नमक और अदरख के साथ उबालकर पीते थे।

स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद ?

अपने देश में पुराने विचा ों के बुजुर्ग लोग चाय की बुराई करते अघाते नहीं। अभी थोड़े दिन पहले अखबार में छपा था कि सौराष्ट्र के किसी गाँव के लोगों ने चाय न पीने का प्रण किया है। चाय में नशा है, इसमें कोई शक नहीं। इसके अत्यधिक प्रयोग से खुश्की, भूख मंद पड़ जाना तथा अनिद्रा की शिकायत हो जाती है। इसमें उपस्थित टेनीन नामक विष से हृदय पर भी असर हो सकता है। किन्तु इसकी बुराइयाँ इसके दुरुपयोग के कारण ही हैं। हमने अँगरेजों से चाय पीना तो सीख लिया किन्तु उसे सही रूप में पीना नहीं सीखा। चाय कभी भी खाली पेट नहीं पीनी चाहिए। उसके साथ मक्खन, डबलरोटी, फल (केला, सेब, नाशपाती आदि) जैसे पौष्टिक तथा तर पदार्थ लेने चाहिए। फिर, अति सर्वत्र वर्जयेत। डॉक्टरों ने प्रयोग कर बताया है कि मस्तिष्क तथा शरीर की थकान मिटाने के लिए तथा बीमारी-आरामी, सफर आदि में सबसे निरापद वस्तु चाय है। हमा ी संस्कृति के अनुसार ताम्बूल मित्रता की निशानी है--आतिथ्य-सत्कार इसके बिना निरर्थक है। आज इसके साथ अथवा प्रायः इसके स्थान पर--चाय का प्याला भी आवश्यक है--सामाजिकता तथा मैत्री का यह अचूक साधन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिले हौं जरौं, जरिहै फिर होरी?

श्री हरिशंकर चतुर्वेदी

"ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करंबित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे।
बिहरति हरिरिह सरस बसन्ते।"

जयदेव।

शील सगीर की सुखद हिलकोर पर कलियाँ चिटकीं, बाटिका सौरभ से सुवासित हो गयी। मस्त मधुकर की बीन मुखर हुई, पंचरंगी परिधान पहिने तितलियाँ थिरक उठीं। बोल उठे बन्दी बृन्द 'वाह-वाह', बौराई अमराई के मद भरे झुरमुट से कोयलिया कूक उठी "लो बसन्त आ गया।" भावाभिभूत कवि ने सुकुमार ऋतुराज का स्वागत शब्द-कुसुमाकर से किया :—

लागे बिटप मनोहर नाना, बरन बरन वर बेलि बिताना।
नवपल्लव फल सुमन सुहाये, निज संपति सुर रूख लजाये।
चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजत विहग नटत कलमोरा।

तुलसीदास।

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर-ठौर झूमत झपत, भौंर-भौंर मधु अन्ध।

विहारी।

कवि सेनापति ने सदलबल राजा के रूप में ऋतु-राज का स्वागत किया :—

बरन बरन तरु फूले उपवन बन,
सोई चतुरंग संग दल लहियतु है।
बन्दी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल है,
गूँजत मधुप गान गुन गहियत है।
आवै आस पास पुहुपन की सुबास सोई,
सोंधे के सुगंध माँहि सने रहियत है।
शोभा को समाज सेनापति सुख राज—
आज आवत बसन्त ऋतुराज कहियत है।

रंग विरंगे भाँति-भाँति के सुगंध सने फूल, मलय-प्रेरित दोल के तरंगों पर केकी और कीर की लोरियों पर मंत्र मुग्ध गुलाब की कोमल कलियों का चिटकना देख 'देव' को लगा कि बसन्त कुसुमायुध कामदेव का बालक है और यह विविध प्राकृतिक उपकरण उसके मनोरंजन की सामग्री—

डारि द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झंगूला सोहै तनु छवि भारी दै।
पवन झुलावै केकी कीर बतरावै देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करै राई नोन,
कंज कली नाइका लतान सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि,
प्रातहिं जगावै गुलाब चटकारी दै।

कानन-कुंज बाग बाटिका, सर-सरिता तट, सम्पूर्ण प्रकृति के अंग-अंग में अनंग परिव्याप्त हो गया है। पलाश के लाल-लाल फूल पपीहा की पुकार और कोकिल की कूक-कूक पर कवि 'पद्माकर' के हृदय में हूक उठने लगी :—

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त हैं।
कहैं 'पद्माकर' परागन में पौनहू में,
पानन में पीकन पलासन पगन्त है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखौ दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।
वीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगर्‌यो बसन्त है।

प्रकृति की इस प्रत्यक्ष सुषमा के अप्रत्यक्ष आकर्षण ने ठूँठ में भी नवचेतना भर दी। शिशिर की 'मनहूस' प्रकृति नव शृंगार से निखर उठी। प्रकृति के इस प्यार भरे परिवर्तन पर 'द्विज देव' दाद के स्वर में बोल उठे :—

औरे भाँति कोकिल चकोर चहुँ ओर बोलै,
औरे भाँति सबद पपीहन को ह्वै गये।
औरे भाँति पल्लव लिये हैं बृन्द बृन्द तरू,
औरे छवि पुंज कुंज कुंजन उनै गये।
औरे भाँति सीतल सुगंध मंद-मंद डोलै,
'द्विजदेव' देखत न एते फल ह्वै गये।
औरे राग औरे रंग, औरे साज औरे संग।
औरे बन औरे छन औरे मन ह्वै गये।

प्रियतम पाहुने के आगमन के अवसर पर धरती ने अपने शृंगार में कुछ भी कमी नहीं छोड़ी। कविवर देवीप्रसाद 'पूर्ण' की उक्ति का आनंद लीजिये :—

पीत रंग सारी जौन फूल सरसों की थली,
अलक छटा है पाँति अलिन अनंत की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूमर रसाल बौर अंगराग है पराग,
पौन रस बात है सहेली हासवन्त की।
कोकिल कलाप की अलाप गान मंगल है,
कुजन विकास तेज आभा रतिकंत की।
लालमन चेत कित कामिनी विलोके छवि,
अवनी बनी है बनी बनिता बसन्त की।

यह बसन्त की वह छवि है जिसे देखने के लिये कभी नेत्रहीन कवि 'सूरदास' की आँखें अधीर हो उठी थीं।

कुसुमित बन देखन चलौ आज,
तहँ प्रकट भये रति रंग साज।
अलि गूँजत कोकिल कल कपोत,
जुबती जनमन आनंद होत।
राधिका सहित राजत निकुंज,
तहँ मन मोहन माधुर्य पुंज।
दंपति रति रस गावें हुलास,
यह सदा बसो मन सूरदास।

क्यों न हो, एक ओर समस्त सुषमा सम्पन्न प्रकृति, दूसरी ओर इस सुषमा को चुनौती देती हुई षोड़शी :—

बासित बयारि उतै स्वासा की सुगंध इतै,
त मुख शोभा उत प्रभा निसि कंत की।
उत अरविन्दन पै छटा ज्यों मिलिन्दन की,
इत कर नैन केस कालिमा अनन्त की।
कोकिल कलाप उत, मधुर अलाप इत,
सूर उतै, सारी इतै, सूही छविवन्त की।
'पूरन' विलोकौ चलि कैसे कुंज कानन में,
होड़ सी लगी है लाल बाला की बसन्त की।

ऐसे समय में जब मधुर दोल के हिलकोर का आनंद लेती हुई कलियाँ मधुर दंसन से तिलमिला उठती थीं, कोकिल की कूक कूक पर कुसुमांचल लहराती हुई लतायें वृक्षों से लिपट-लिपट जाती थीं और कुसुम चर्चित कुंजों में कुसुमायुध की रंगरलियाँ होती थीं,

दूसरी ओर :—

बिरही सतावन की बतियाँ बढ़ै लगीं।

इधर उद्दीपनों का अंतरंग व्यापी प्रभाव, उधर प्रियतम का अभाव, प्रकृति के हाव-भाव, विरही के सुकुमार हृदय पर घाव करने लगे। बचाव का एक ही उपाय है। पर बात बस की नहीं। राम कवि की नायिका की बात कोई नहीं समझता :—

चरचन चाँदनी चख चैन चुपो परै,
चौधा तें लग्यो है चारों ओर चित चेतना।
गुंजत मधुपवृन्द कंजन में ठौर ठौर
सोर सुनि सुनि रह्यो परत निकेतना।
राम सुनि कूकन करेजो कसकत आली,
कोकिल को काऊ मुख मूँदि अब देत ना।
अंत करि डारत बसन्त है बनाय हाय,
कंतहिं बिदेस तें बुलाय कोउ लेत ना॥

वही शीतल समीर वियोगी के लिये लू के समान अंतकारी हो गया। कोयल की कूक पर करेजा कसकने लगा। पलास प्रसूनों की लाली अग्निशिखा के समान दाहक हो गयी। बसन्त के विरहियों के पक्ष से अभिव्यक्ति के अनूठे कवि 'पद्माकर' ने श्रीब्रजचन्द से निवेदन किया—

ऐ ब्रजचन्द चलौ किन वा बज लूकैं बसन्त की ऊकन लागीं।
त्यों 'पदमाकर' पेखौ पलासन, पावक सी मनौ फूकन लागीं।
वै ब्रज वारी बिचारी बधू, बन वावरि लौ हिय हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइनि ये सुकुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी।

और साक्षी स्वरूप श्री मन्नालाल बनारसी द्विज देव बोल उठे :—

मदमाती रसाल की डारन पै
चढ़ि आनँद सों यों बिराजति है।
कुल कानि की कान करै न कछू,
मन हाथ पराएहि पारति है।
कोउ कैसे सहै 'द्विज' तू ही कहौ,
नहि नेकु दया उर धारति है।
अरी क्वैलिया कूकि करेजन की,
किरचैं किरचैं करि डारति है।

किन्तु वियोगियों की सुनता ही कौन है? हुआ यह कि मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा हुई। मूक विरहिणी के समस्त प्रयत्न असफल सिद्ध हुए। मन की बात मन ही में रह जाना चाहती है। ऐसी नाजुक स्थिति में बेनी कवि की नायिका ने अपना अंतिम निश्चय सुना दिया :—

धूधरि सी बन धूमसी धावति,
गावन गान लगे बन बौरी।
बौरी लता बनिता भई बौरी,
सु औधि अध्यापि रही अब थोरी।
बेनी बसन्त के आवत ही,
बिन कन्त अनन्त सहै दुख को री।
ऐरी घरी हरी आयो नहीं,
पहिले हौं जरौं जरिहै फिर होरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापर्व होली

श्री पुत्तूलाल शर्मा

प्रतिवर्ष होली आती है, नव वर्ष के आरंभ में संपूर्ण जीवन की भूमिका लेकर। संपूर्ण जीवन न भी सही तो वर्ष भर का जीवन उसमें अवश्य सन्निहित है। गत वर्ष हम कितना ढले और कितना बने, जो भूले उसी की याद दिलाने होली बार-बार आती है। लक्ष्य यही है कि संपूर्ण जीवन में हम उसी प्रकार प्रेरित हों और वर्ष में हम उसे एक बार पहचान कर आगे बढ़ने की चेष्टा करें। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का प्रेम संदेश होली लाती है। इस संदर्भ में कहीं ऐसा न हो कि मनुष्य की कमजोरियों को ही कहीं ध्यान में रखकर उसे हम मनुष्य न समझने की भूल कर बैठें; इसके लिए होली को उसके मिलन भाव के कारण ही बहुधा हम उसे 'मिलन' नाम से अभिहित करते हैं। जीवन का अभिप्राय आनंद है, इसीलिए होली का यह पर्व राग-रंगमय है। यही याद दिलाने के लिए होली प्रति वर्ष आती है जो सामाजिक या सामुदायिक प्रेम-प्रकर्ष की प्रतीक है। इस अर्थ में भारतीय दृष्टिकोण सदा सबसे अधिक यथार्थवादी रहा है।

दुनिया थोड़े-से महात्माओं के लिए ही नहीं है, उसमें कुआत्मा वाले भी हैं। उन्हीं में सामंजस्य लाने के लिए उसका नाम दुनिया है। खाली महात्मापन झाड़नेवालों के लिए अधोलिखित श्लोक पर्याप्त होगा, जो भारतवर्ष के यथार्थवाद का मूल्यांकन करा देता है :—

अज्ञस्यार्धं प्रबुधस्य, सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत्।
महानरक जालेषु स तेन विनियोजित:॥

महात्माओं की बात जाने दीजिए। सब बन भी नहीं सकते। जहाँ आदमी बनना ही बड़ा मुश्किल है, वहाँ महात्माओं की क्या बात ? क्योंकि—

होने के लिए होंगे फरिश्ते लेकिन,
इन्सान का होना बहुत दुश्वार है।

और महात्मा परमात्मा को रिझा लेते हैं; परन्तु आदमी का आदमी को रिझा लेना बड़ा कठिन है। यह कितना कठिन और कितना आसान ! —

ख़ुदा नहीं कि इबादत से कर लिया राज़ी,
बुतों की शेख़ जी मुश्किल मिज़ाजदानी है।

वैसे तो एक घर में रहकर भी हम, सबको समान प्यार नहीं दे पाते; यह सृष्टि की विचित्रता और भिन्नता है। और प्यार का अंकुर अपनी आधारभूमि में ही पनपता है। इस रोगमय जीवन को सफल बनाने के लिए ही राधा-कृष्ण की अवतारणा की गयी। सो, इन्हीं राधाकृष्ण के व्रज-रस से पावन प्राचीन काव्य, शृंगार रस से सराबोर है।

समय की जिस परिस्थिति में होली आती है, उसका चित्रांकन का प्रयास भर किया गया है, संपूर्ण चित्र उतारना संभव नहीं। तब होली बार-बार मनायी जाकर भी कुछ नयी है। वह परिस्थिति भी क्या है और मनोभूमि पर उसका कैसा प्रहार है, जरा द्विजदेवजी के दो छन्दों में देखिए :—

गुंजरन लागी भौंर-भीर केलि-कुंजन में
कबैलिया के सुख तें कुहूकनि कढ़ै लगी।
द्विजदेव तैसी कछू गहब गुलाबन तें
चहँकि चहूँथा चटकाहट बढ़ै लगी॥
लागे सर सावन मनोज निज ओज रति
बिरही सतावन की बतियाँ गढ़ै लगी।
होन लागी प्रीति रीति बहुरि नई सी नव
नेह उनई सी मति मोदसों मढ़ै लगी॥

× × ×

देखत ही बन फूले पलास,
विलोकत ही कछु भौंर की भीरन।
बावरी-सी मति मेरी भई लखि,
बावरी कंज खिले घटे नीरन॥
भाजि गयो कढि ग्यान हिये, तैं
न जानि परयो कब छोंड़िकै धीरन।
कंध न कौन के लोचन होंहि,
पराग सने हरसात समीरन॥

फूले-फूले पलाश, भ्रमरों की भीड़, विकसित कमल की सुषमा देख मस्ती आकर अधीर बना देगी ही ! फिर ज्ञान कैसे रहेगा ? पराग उड़ाता हुआ हर्षोन्मत्त समीर जब नेत्रों को गीला कर दे वे बरस पड़ेंगे ही और प्रकृति की पुलक का बोध प्राणी को प्रभावित क्यों न करेगा ? तो आइए पुराने कवियों की होली में सम्मिलित हों:—

लोल बिय लोचन अलोल झलकत छबि,
छलकत स्रुति मनि किरन कपोल मैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपति ललाट तें छुटत, बिघटत पट,
नटत किशोर भृगुटीतट कलोल में॥
आजु नंदलाल सों सुनवल किसोरी होरी
खेलत लसत बिहँसत बर बोल में।
रंग झर झेलत पछेलत अलीन मुख
मीड़त गुलाल मिलि जात फिरि गोल में॥

दोनों चंचल नेत्रों की छवि निरंतर झलक रही है और कानों के झुमकों की किरणें कपोलों पर छलकी पड़ती हैं। मस्तक से दीप्ति का भास हो रहा है। वस्त्र हट-हट जाते हैं और वह नटखट छोकरा आँखों में गड़ा हुआ है। सुंदर वचनों में हँस-हँस कर नवल किशोरी, नंदलला से आज कैसे होरी खेल रही है कि सखियों को पछेलकर, रंग की झर झेलती हुई, मुख में गुलाल मल-मलकर बार-बार अपने गोल में मिलकर हट-हट जाती है। नंदलाल को दावँ चुकाने का मौका ही नहीं देती।

अब जरा चोराचोरी की होरी देखिए :—

होरी आजु चोरी की कहों री कहा भोरी दई,
लाड़िली पठाई भुज गहन सहेली को।
भोरे भाय भावतो गहाय गयो जानि बूझि
आय गयो सँग मैं मचाइ रंगरोली को॥
ललिता लचायो लंक बाँह दै बिसाखा गरे
डारि हिय हार हरि आनंद चमेली को।
प्यारी लै गुलाल नंदलाल मुख मीड़ै जौ लौं
तौ लौं छैल छ्वै गयो कपोल अलबेली को॥

लाड़िली ने आज बाँह पकड़कर ले आने को कहा। कृष्ण ने भोले-भाले बनकर अपने को अपने आप पकड़ा दिया और साथ में रंग रोली का खेल भी खेला। जब आये तो ललिता ने कमर पकड़ ली। विशाखा ने गले में बाहें डाल कर हरि के हृदय पर चमेली का हार सुशोभित कर दिया। किन्तु जब तक प्यारी द्वारा मुख में गुलाल मीड़ा जाय कि छैल कपोलों को छूकर चला गया। और मन की कसक मन में ही रह गयी! किन्तु प्यारी ने भी प्रतिज्ञा कर ली और घोषणा कर दी :—

धूँधरि उमंग सों मचाय हौं अँबीरन की,
संग लिये मदन, तरंग भरी गोरी मैं।
रस-करसाय, दरसाय हाय-भाय, तिन्हैं
गाफिल करौं तौ वृषभानु की किसोरी मैं॥
सहि कै अपार पिचकारिन की धार सौहैं,
गरक करोंगी हनुमान रंग-रोरी मैं।
खेलन को होरी, चहै मो ते अरुझो री पर,
ओरी आज छैल को गहौंगी बरजोरी मैं॥

मैं तरंग-भरी गोरी हूँ। उमंग से अँबीरों की धूँधरि मचा दूँगी। ऐसा रस बरसाऊँगी कि हाव-भाव में उन्हें गाफिल कर लूँगी; तभी मैं वृषभान की किशोरी हूँ। सामने पिचकारियों की धार-पर-धार सहकर रंग रोरी में डुबा दूँगी। मुझसे उलझ कर होली खेलना चाहता है तो आज छैल को जबरन पकड़ लूँगी और होली का मजा चखाकर रखूँगी। और इस प्रकार प्रतिज्ञा होते ही हुक्म हुआ :—

डरौ ना अहीरन तें अगर अबीरन तें
चारि जनी चारु चार ओरन तें धाओ री।
एक हाथ आड़ो पिचकारी की अगारी मार
एक हाथ ओट राखि आँखिन बचाओ री॥
कवि सरदार आयो बड़ खिलवार, ताहि
खेल कै सवाद रंग रंगन बताओ री।
कीरति कुमारी कह्यो हेरि कै कुमारी कोउ
हौरी गुनवारी बनवारी बाँधि लाओ री॥

कि अगर अबीर की भरमार से इन अहीरों से मत डरो। चार जनी मिलकर चारों ओर से अच्छी प्रकार दौड़ पड़ो और इस तरकीब से कि एक हाथ पिचकारियों की धार को तिरछा रोके और एक हाथ आँखों की आड़ करता रहे। बड़ा खेलनेवाला आया है, इसे हर ंग से खेल का मजा चखा दो। ऐसा कहकर कीरति कुमारी श्री वृषभान दुलारी ने एक सखी की तरफ देखा कि है कोई गुनागर जिसके गुण रस्सी का काम दें और बनवारी को बाँध ले आए? भला ऐसे हुक्म की उपेक्षा कैसे होती, वह तो मन भाया हुआ हुक्म था! और हुआ क्या?—

सुनत निदेस सो असेष बनिता सु भेस
चलीं एक एक गहे गरब अकरि कै।
कबरी समेटि बाँधी सबरी, सुभग सुचि,
लहँगो जबर कस्यो लंक में जकरि कै॥
गिरिधरदास हाथ फूल की छरी लै धाईं
छबि सों अतूल होरी-होरी शोर करि कै॥
चपला-सी चमकि चहूँधा सों चपल चारु
चंदमुखी लीन्हों ब्रज चंद को पकरि कै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश पाकर तमाम वनिताएँ गर्व को धारण कर तथा अकड़ कर ऐसे सुंदर वेश में चल पड़ीं कि चोरियाँ समेट कर बाँध ली गयीं और लहँगा भी लपेट कर कस लिया गया। हाथों में फूल की छड़ी लेकर होरी-होरी का शोर कर दौड़ पड़ीं। उस समय की छवि अनुपम थी। चारों तरफ से बिजली-जैसी कौंध उठीं और उन चन्द्र मुखियों ने व्रजचंद को पकड़ ही तो लिया। अब वृषभान लली कृष्ण को किस दशा में देख रही हैं, उसे पद्माकर जी यों बयान करते हैं—

रंग भरी कंचुकी उरोजन पै तांगी कसीं,
लागीं भली भाई सी भुजान कखियान मैं।
कहै पदमाकर जवाहिर से अंग अंग,
ईगुर से रंग की तरंग नखियान मैं॥
फाग की उमंग अनुराग की तरंग वैसी,
तैसी छबि प्यारी की बिलोकौ सखियान मैं।
केसरि कपोलन मैं मुख मैं तमोल भरी
भाल मैं गुलाल नंदलाल अँखियान मैं॥

चोली से रंग चचुवा रहा है, उरोजों पर बंद कसे हुए हैं और बगल में दबाई हुई भुजाएँ बड़ी भली मालूम होती हैं। अंग-अंग से जवाहिर की द्युति झलक रही है। नखों से ईंगुर की तरंगें उठ रही हैं। जहाँ वह फाग की उमंग से भरी हुई हैं, वहीं उसमें अनुराग की मस्ती भी उसी प्रकार है। सखियों में उस प्यारी की छवि भी उसी अनुरूप में है। कपोलों पर केशर है, मुख में तांबूल भर रहा है और मस्तक गुलाल से सुशोभित है। इस प्रकार के रूप में एकटक कृष्ण को देख रही है। — क्यों न हो? प्रेम के अपराधी को इसी प्रकार देखा जाता है! किन्तु ऐसे अपराधी को कुछ सजा भी मिलनी चाहिए। झट कामिनियों के कोर्ट में फैसला हुआ, उसका कार्यान्वयन भी सामने है—

चंदकला चुनि चूनरि चारु दई पहिराय सुनाय सु होरी।
बेंदी बिसाखा रची पदमाकर अंजन आँजि समान करो री।
लागी जबै ललिता पहिरावन स्यामकोकंचुकी केसरि बोरी।
हेरि हरैं मुसकाइ रही अँचरा मुख दै वृषभानु-किसोरी॥

कृष्ण को भी छठी का दूध याद आ गया। जो गति बनायी गयी, पद्माकर ही नहीं, अनेक ललचा पड़ेंगे। कल्पना-बिहारी पद्माकर की पैठ दर्शकों में भी है! किन्तु आज दर्शक भी कहाँ रहे? आँखें ही बदल गयी हैं! जंजाल में जकड़े हुए लोग जड़ ही हो जाते हैं। चेतनता के चुंबक ने ऐसा घसीटा कि चिपक कर रह गये। किन्तु ऐसे उदारमना, पद्माकर को संकुचित कहें तो कहा करें! यह सब कहनी और करनी के अंतरवाले हैं। खैर। कृष्ण किसी तरह छूट भागे और अपने दल-बल के साथ आ धमके। नतीजा क्या हुआ, रत्नाकर से सुनिए:—

आयो जुरि उतते समूह हुरिहारन को,
खेलन कों होरी वृषभान की किसोरी सों।
कहै रतनाकर त्यों दूत ब्रजनारी सबै,
सुनि-सुनि गारी गुनि उठकि ठगोरी सों॥
आँचर की ओटि-ओटि चोटि पिचकारिन की,
धाईं धँसी धूँधर मचाइ मंजु रोरी सों।
ग्वाल-बाल भागे उत, भभरि उताल दूत
आये लाल गहरि गहाइ गये गोरी सों॥

वृषभान की किशोरी से होली खेलने के लिए हुरिहारों का समूह जो जुड़ा तो ब्रजबालाओं का दल भी तत्पर हो उठा। अंचल की ओट कर-कर के पिचकारियों की चोट बचायी जाने लगी। और दौड़-दौड़कर गोल में घुस गयीं। इस मोर्चे के आगे ग्वाल-बाल फिर भग खड़े हुए। हड़बड़ाकर कृष्ण इधर ही रह गये और गोरी ने उन्हें फिर जकड़ लिया।

बावरे न होउ सुनौं साँवरे बिहारी तुम,
छन माँहि रावरे गरूर को निकारैगी।
राधा महरानी जब ऐहै उमगानी तब
रावरी सुबानी बर बचन बिसारैगी॥
मणिदेव भनत बखान की चलाँकी तासु
रावरे सखान की न भीर को बिचारैगी।
खरे हौ गुलाल लै कि लाल मैं तयार पर
देखत ही लाल तुम्हैं लाल करि डारैगी॥

अरे बिहारी क्या बावले हो गये हो? क्षण में ही तुम्हारा गरूर निकल जायगा। यह बड़े-बड़े बोल जो बोल रहे हो भूल जाओगे जब राधा महारानी आ जायँगी। जो चालाकी बूँक रहे हो, उसके लिए महाराज के सखाओं को भी कुछ नहीं समझेंगी। गुलाल लेकर जो खड़े हुए हो तो लाल, मैं तो तैयार हूँ किन्तु राधा देखते-ही-देखते तुम्हें लाल कर डालेंगी। पर बेचारी बच भी नहीं पायी। और घर में बचाव हो तो कैसे हो, क्योंकि यह दशा थी:—

आई फाग खेलि कै सकेलि सुख साँवरे सों
सुंदर सुघर सो सनेह सरसावै है।
केसरि के रंग भीनी चूनरी सुरंग रंग
अंगन-अनंग की तरंग दरसावै है॥
राजत अनोखो आधो बदन गुलाल मढ्यो
कहत, किसोर सो अनूप छबि छावै है।
अमल अभंग आछो उतसाह सानो मानो
अरुण घटा ते ससि निकसत आवै है॥

सारे सोच-विचार सामने आये, पर उस प्रेम रस से भीगी हुई को होश ही कहाँ रहा जो कुछ छिपाव की सोचती? उक्त दशा में घर के समझ ही गये होंगे। फिर क्या नौबत हुई? फिर कभी:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखिल भारतीय जन्तु-रक्षक मंडल

(बैठक की कार्यवाही)

श्री शारदाप्रसाद भुशुंडि

अखिल भारतीय जन्तु-रक्षक मंडल की कार्यकारिणी समिति की बैठक की कार्यवाही जो दिनांक १९-२-६२ को रात १२॥ बजे बेली गारद के विशद प्रांगण में हुई।

उपस्थिति

१—श्री विद्युतसेन कचड़ा, उपसभापति (स्थानापन्न-सभापति)
२—श्रीमेलजित् छकड़ा, मंत्री
३—श्री बटरकुमार खोटे, सदस्य
४—श्री चेयरदीन खरे ,,
५—श्री सनीमा चन्द भड़चहचट ,,
६—श्री नेताशरण कलावत्तू ,,
७—श्री कमजोर किशोर टुइयाँ ,,
८—श्री डबलरोटी नन्दन सेंठा ,,
९—श्रीमती किम्बदन्ती चाटवाला सदस्या
१०—सुश्री कुमारी राइफल डकोटा ,,

सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

कार्यवाही प्रारम्भ होने के पूर्व समिति की पिछली बैठक की कार्यवाही पढ़ी गयी और वह सर्वसम्मति से स्वीकार की गयी। तत्पश्चात् सभापति की आज्ञा से श्री डबलरोटी नन्दन सेंठा ने निम्नलिखित अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया और निवेदन किया कि कार्यक्रम के अन्य विषयों पर विचार करने से पहले इस पर विचार करने की कृपा की जाय।

"देश में मांस खाने की प्रथा की प्रगति नये फैशन के समान अपनी जड़ जमाती चली जा रही है जिसके दुष्परिणाम स्वरूप यहाँ की बकरियों के वंश का विनाश होता जा रहा है। यदि इस भयावह स्थिति को रोकने के लिए उचित कदम शीघ्र न उठाया गया तो सम्भव है कि एक या दो वर्ष के अन्दर ही यह जाति गधे की सींग बन जाय। अतएव कार्यकारिणी समिति यह निश्चय करती है कि बकरियों के वंश की सुरक्षा के लिए देश में मांस की खेती का प्रचार किया जाय जो संयुक्त खेती प्रणाली से हो। इस काम के लिए सरकार से एक लम्बी रकम अनुदान के रूप में माँगी जाय।"

श्री नेताशरण कलावत्तू ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि यह बात सवा सोलह आने असत्य नहीं है। आज देश में मांस का उपभोग पिछले दस हजार वर्षों से भी अधिक हो रहा है। अभी हाल में उड़ती हुई खबर अखबारों से आयी है उससे यह साफ विदित होता है कि बकरियों के वंश की कौन कहे, नदियों तथा तालाबों में मछलियाँ और मेढकियाँ तक ठुमरी और तिल्लाना हो रही हैं। लोगों को शिकायत है कि वहाँ पर घोंघे भी ढूँढे नहीं मिलते। अतएव मेरा सुझाव है कि बकरियों की समस्या के साथ इनके वंश का भी ध्यान रखा जाय और इनकी सुरक्षा के लिये एक उप-समिति बना दी जाये जो इस पर छानबीन करके अपनी रिपोर्ट शीघ्र ही समिति के सन्मुख उपस्थित करे।

श्री सनीमाचन्द भड़चहचट ने कहा कि कलावत्तू जी की बातें भ्रमात्मक अर्द्धसत्यों से भरी हुई हैं। इनको शायद यह पता नहीं है कि तालाब के सारे घोंघे तरक्की करके हमारे बीच में आ गये हैं और मछलियों की इतनी अधिक पैदावार बढ़ गयी है कि उनमें फेमिली प्लानिंग की योजना फैलाने की चर्चा चल रही है। मेरी समझ में तो मांस की खेती की बात नहीं जँची।

श्रीमती किम्बदन्ती चाटवाला बोलीं, मैं श्री कलावत्तू की बातों से सहमत हूँ क्योंकि ऐसा करने से जीवों का भला होगा। लेकिन प्रश्न यह है कि मांस की खेती के लिये उपयुक्त जमीन और खाद कहाँ से आवेगी, तथा मांस का बीज भी तो हमारे यहाँ के बीज भंडारों में नहीं मिलता। इसलिए मेरा सुझाव है कि पहिले इन चीजों को प्राप्त करने की चेष्टा की जाय और इनके मिल जाने पर खेती के मसले पर विचार किया जाय।

कुमारी राइफल डकोरा ने कहा कि हमारे यहाँ बीज की कमी नहीं है। इस काम के लिये समूचा बकरा काम में लाया जा सकता है। रही जमीन तथा खाद की बात, वे विदेशों से मँगाई जा सकती हैं।

श्री कमजोर किशोर टुइयाँ ने अपने विचार प्रगट करते हुए कहा कि समूचा बकरा बोने से हत्या का मसला तो हल नहीं होता। मेरा सुझाव है कि यदि मांस की खेती करने के स्थान पर उसका ऐसेंस (सत्) बनाया जाय तो अच्छा होगा। मांस के एसेंस को हम हर चीज में प्रयोग करके उसका आनन्द ले सकते हैं।

श्री बटर कुमार खोटे ने कहा कि श्री टुइयाँ के विचार अति उत्तम हैं। हमें चाहिए कि हम एसेंस बनानेवालों से सम्पर्क स्थापित करके इस काम को आगे बढ़ायें। वे आगे और कुछ कहना चाहते थे कि मुर्गों की बाँगों की आवाज ने उनकी बोलती बन्द कर दी। सभापति ने क्रोध के आवेश में मंत्री जी से कहा कि वे बाहर जाकर इस शोर-गुल्ल का पता लगावें। मंत्रीजी ने उनके आदेशानुसार पता लगाया और लौटकर सभापति को बताया कि शहर के मुर्गे आपके पास अपनी फरियाद लाये हैं। उनका कहना है कि जबसे उनके अंडों को फलाहार घोषित कर दिया गया है तब से अदना और आला सभी लोग बुरी तरह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका इस्तेमाल करने लगे हैं जिससे उनके वंश का ह्रास हो रहा है। अतएव उनकी प्रार्थना है कि बकरियों की समस्या के साथ-साथ उनके अंडों की रक्षा पर भी ध्यान दिया जाये। यदि लोगों को अंडा खाना पसंद ही हो तो उनका इमीटेशन तैयार करवाया जाय।

सभापति ने मंत्री से कहा कि आप उनको शान्त रखने की चेष्टा करें। हम मुर्गों की शिकायत पर भी विचार करेंगे किंतु यदि वे ज्यादा शोरगुल मचायेंगे तो हम उन्हें समूचा चट कर जायेंगे। सभापति की गरजना सुनकर सब मुर्गे खामोश हो गये। इसके बाद उन्होंने सदस्यों से परामर्श लेकर इस विषय पर विचार करने के लिए १० मिनट का समय दिया।

श्रीमती किम्बदन्ती चाटवाला ने इस विषय पर बोलते हुए कहा, 'हम जगत-माँ हैं। हमें मुर्गियों की दुर्दशा से विशेष सहानुभूति हैं क्योंकि बकरियाँ तो साल छै महीने बच्चों का सुख भोग लेती हैं किन्तु ये विचारी अपने नन्हें मुन्नों का मुँह तक भी नहीं देख पातीं। अतएव इनकी समस्या पर पहले विचार होना चाहिए।"

कुमारी राइफल डकोटा ने प्रतिवाद करते हुए कहा कि "यदि श्रीमती चाटवाला पशुओं की माँ बनना चाहती हैं तो वह पद उन्हें मुबारक हो, किंतु उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि हम लोगों को भी इस पशुता में सम्मिलित करें।" सभापति ने मुसकुराते हुए कहा—"आपका प्रतिवाद नोट कर लिया गया। हाँ, खोटे जी! इसके बाद आप अपने विचार प्रगट करें।"

श्री भड़चहचट सभापति की इस बात पर उखड़ गये और ताव के साथ कहने लगे कि यह क्या तमाशा है जो बार-बार खोटे जी को पुकारा जाता है और हमारी ओर फूटी आँख भी नहीं देखा जाता।

सभापति ने मुसकुराते हुए कहा, 'अच्छा आप ही बोलिए। मैं क्या आपका मुँह पकड़े हूँ?"

श्री भड़चहचट ने कहा कि "जब समिति मुर्गियों के अंडों पर विचार करने जा रही हैं तो क्या वजह है कि वह मक्खियों की सुरक्षा पर ध्यान नहीं देती? आजकल हमारे यहाँ मक्खी मारनेवालों की संख्या दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। अतएव मेरा सुझाव है कि मक्खियों की रक्षा के लिए उचित नियम बनाये जायें जिसमें उनके मारनेवालों के लिए विशेष दंड की व्यवस्था की जाय।"

सभापति ने कहा कि "अभी तक हमारे पास मक्खियों की सुरक्षा का कोई प्रस्ताव नहीं आया। इसलिये हम इस पर विचार नहीं कर सकते। रही मांस के ऐसेंस की तरह अंडों के इमीटेशन की बात, सो तो बेकार है। क्योंकि अभी वैज्ञानिकों का सारा ध्यान चन्द्रमा की ओर है। इस लिये वे इधर ध्यान नहीं देंगे। किन्तु हमने सुना है कि लोग कुकुरमुत्ता की तरकारी और कंकड़ के शोरवेदार प्रेपरेशन में मांस और हड्डियों के चूसने का आनन्द पाते हैं। अतएव मेरा सुझाव है कि हमें अपने यहाँ कुकुरमुत्ता की खेती का प्रचार तथा इस कार्य के लिए उपयुक्त कंकड़ों की जाँच का उपाय करना चाहिए। ऐसा करने से बकरों के वंश की समस्या हल हो जायगी। रही मुर्गों के अंडों की बात, वह भी चावल के आटा और बेसन से हल की जा सकती है।"

श्री चेयरदीन खरे ने कहा कि "आप लोग मुझे क्षमा करें क्योंकि मैं खरी-खरी बात कहता हूँ। मैं आप की राय से सहमत नहीं हूँ। क्योंकि जो बात आप लोगों ने उठायी है वह नितान्त असम्भव है। हमारे यहाँ बकरा तिथि-त्यौहार में धार्मिक रूप से बलिदान करने के काम में लाया जाता है। इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास करने से जनता में क्षोभ उत्पन्न होने की सम्भावना है। अंडा भी इसी प्रकार का काम की चीज है। इसमें प्रोटीन बहुत होती है और विटामिन का तो यह भंडार बताया जाता है। अतएव मनुष्य के स्वास्थ्य के हित में इसका उपयोग आवश्यक है। इससे यदि मुर्गियों को शिकायत है तो हुआ करे। हम अपने सुख-सुविधा तथा स्वास्थ्य का हित किसी भी तरह छोड़ने को तैयार नहीं है। कहा भी है कि 'आत्मानम् सततं रक्षेत। इसलिए मानवता के हित में बकरों और मुर्गियों को हलाल होना ही पड़ेगा। रही मक्खियों की बात, उनकी भी रक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि उनसे कालरा और हैजा जैसी भयानक बीमारियों के फैलने का अंदेशा बना रहता है। मेरे विचार से यदि सेंठाजी अपना प्रस्ताव वापस ले लें तो अच्छा होगा क्योंकि इसमें मुझे कोई उपयोगी तत्व दृष्टिगोचर नहीं होता।

श्री सेंठाजी ने अपना प्रस्ताव वापस नहीं लिया। इस पर सर्व सम्मति से निश्चय किया गया कि पहिले इस बात का पता लगाया जाय कि शहर में प्रतिदिन कितने बकरे कटते है, कितने अंडे खाये जाते हैं और कितनी मक्खियाँ मारी जाती हैं। इसके लिए प्रस्तावक, श्रीमती किंवदंती चाटवाला, नेताशरण कलाबत्तू और चेयरदीन खरे की एक समिति बना दी जाय। इसकी रिपोर्ट आने पर इस प्रस्ताव पर विचार किया जाये।

अन्त में सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

(हस्ताक्षर) मेलजित छकड़ा
मंत्री

(हस्ताक्षर) विद्युतसेन कचड़ा
सभापति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये साल का कैलेण्डर

श्री निरंकुश

बसंत घर पर पहुँचा तो उसके हाथ में सबसे महत्त्वपूर्ण पदार्थ था नववर्ष का एक आकर्षक कैलेण्डर जिसे वनस्पति उद्योग में लगे हुए किसी प्रतिष्ठान ने वितरित किया था। बैठक की दीवारें बिना 'मेक अप' की फ़िल्मी अभिनेत्रियों की भाँति भौंडी लग रहीं थीं। उस कैलेण्डर के टाँगे जाने पर उनकी मनहूस चेष्टा में वैसा ही अंतर आया जैसा स्त्री के भाल पर ज्यामिति-सम्मत किसी आकृति के तिलक से आ जाता है। बसंत जानता था कि कमरे की देखभाल परिवार से अधिक करनी पड़ती है, नहीं तो आदमी शहरी नहीं, देहाती गिना जाता है। भित्तियों की दिगम्बरावस्था चूने के श्वेत परिधान से नहीं जाती बल्कि उनके लिये रंग-बिरंगी वेश-भूषा आयोजित करनी होती है। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के विचार से उसने दीवाली के अवसर पर जेन्सोलिन का 'लाइट ब्लू डिस्टेम्पर' कराया था जो एक से अधिक कोट की सामर्थ्य न होने पर पूरी तरह खिल भी न सका। वह तो कैलेण्डरों ने अपनी चमक-दमक में दीवारों की असलियत को बहुत कुछ छिपा लिया वरना पास जाकर तो कोई भी पहचान सकता था कि सीमेंट प्लास्टर नहीं हो रक्खा है। उन प्रतिष्ठा रक्षकों का कार्यकाल ३१ दिसंबर को समाप्त हो गया। सरकार को सब प्रकार के अधिकार होते हैं। जिस कर्मचारी को जब तक चाहे 'एक्सटेन्शन' दे सकती है पर इस मामले में वह भी कुछ नहीं कर सकती। किसी कैलेण्डर की कार्यविधि को बढ़ाना स्वेच्छाचारी शासक के बस की बात भी नहीं। बसंत बेचारा क्या कर सकता था। उसे समय आने पर सारे कैलेण्डर उतारने पड़े। वह सोचता था आबरू की खातिर उसे एक नहीं बीसियों दुकानदारों के आगे कैलेण्डर के लिये हाथ फैलाना पड़ेगा। उनमें से पहले ४९ प्रतिशत के मुखों से सुनने को मिलेगा "अभी छपकर नहीं आये हैं। हम आपका कैलेण्डर रक्खे रहेंगे। जब चाहें आकर ले जावें या घर का पता लिखा दें तो हम अपने आदमी के जरिये भिजवा देंगे।" दूसरे ५० फी सदी कहेंगे "आपने देर कर दी। कैलेण्डर तो कल ही निबटे हैं। हमारे लिये यदि किसी ने कैलेण्डर भेजा तो उसे आपके लिये सुरक्षित रख लेंगे। आप दो एक दिन में फेरा लगाकर देख लें।" जो सौ में एक बचे सो कैलेण्डर देंगे जरूर पर पैरों में छाले डलवाकर। उन्हीं दयावान् लोगों का भरोसा है जिनकी मेहरबानी से उसका कमरा भूखा नंगा कहलाने से बच जायेगा। यदि वह पिछले साल के रेकर्ड को तोड़ने का इरादा नहीं रखता तो उसे पूरे उन्नीस कैलेण्डर और संग्रह करने होंगे। शायद उन्हींके विषय में कोई योजना बना रहा था तभी पिताजी के आने के समाचार की पुष्टि हो गयी। बसंत जानता है उसके पिता किस धातु के बने हैं। यदि वह शायर होते तो उनके लिये 'बेढब' से बढ़कर दूसरा तखल्लुस नहीं था। झटपट आगे जाकर उसने उनके पाँव छुए और चिरायु का आशीर्वाद पाया। उसे याद है इस चिरायु पर आपत्ति करके उसने कितनी भद्दी गालियाँ खाई थीं। उसने यही तो कहा था "पिताजी! सदैव जीवित रहने का आशीर्वाद देकर आप धरती के लिये अनेक समस्याओं को जन्म दे रहे हैं।"

पिताजी का सामान ताँगे से उतारा जा रहा था। बसंत उसकी देखभाल करने के इरादे से कमरे के बाहर हो लिया। अस्बाब ज्यादा था जिससे अनुमान होता था पिताजी काफी दिन रुकेंगे। बसंत के लिये घबड़ाहट पैदा होने को इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए था। वह सोचने लगा "ले देकर घर में ढंग की बैठक ही थी।" उसे अब यह घेर लेंगे और 'मल्टी परपज रूम' बना लेंगे। अगर आयुर्वेद के दो एक नुस्खों की जड़ी-बूटियाँ ही उसके भीतर कुट गयीं तो रहा-सहा फर्श भी खुद जायेगा। यह ठहरे देर से सोकर जल्दी उठने वाले यानी इन्हें रात में एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क की आवश्यकता होती है जो चुपचाप इनके मुख से निकली बातें सुने जाये और चिलक फूटने से पूर्व इनके लिए पानी-पत्ते का प्रबंध करनेवाला भी कोई होना चाहिए। इन दोनों कामों के लिये मुझसे बढ़कर आज्ञाकारी अनुचर और कौन हो सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि मैं अपनी चारपाई पिताजी के पास बैठक में डाला करूँ और साथ सोऊँ और साथ उठा करूँ। यह तभी संभव हो सकता है जब घरवाली को मायके पहुँचा आऊँ और चूल्हे-चौके सबका प्रबंध अपने हाथों में ले लूँ। पिताजी पाकशास्त्र के पण्डित हैं। उन्हें आवधिकों में प्रकाशित भोजन बनाने के उपायों की परीक्षा करने की व्याधि है। यदि 'किचेन' का 'पोर्टफोलियो' उनके सिपुर्द कर दिया गया तो बर्त्तन भाँडे अपने को शोषित कहकर कम्युनिस्ट हो जावेंगे और फिर सामंती परंपराओं से घिरी हुई इस गृहस्थी का क्या होगा। क्या कुछ करे, इसी पर विचार करता हुआ वह वापस बैठक में लौटा। पिता की पक्षिराज-दृष्टि क्या पड़ी कि वज्रपात हो गया। पिताजी ने सलाद की उस प्लेट की सी आकृति बनाकर पूछा जिसमें टमाटर और चुकन्दर के टुकड़ों के साथ खीरे के वृत्ताकार खण्ड रक्खे होते हैं "तो तुमने डालडा खाना बंद नहीं किया!"

"मैंने तो पहली डाँट के साथ ही उसका प्रयोग रोक दिया था। आपको ऐसा शक क्यों हुआ?" मेंमियाते हुए बसंत ने उत्तर दिया।

"झूठ! बिल्कुल झूठ! तुम उसका खुले खजाने और वह भी धड़ल्ले के साथ सेवन कर रहे हो। तभी तो मैं कहूँ चार साल हो गये, शादी की बात क्या है।"

"बात कुछ भी नहीं है।"

"है और जरूर है। अब वंश-वृक्ष पनपने से रहा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने तो उसके फूलने-फलने में कोई रुकावट नहीं डाली।"

"क्यों बकते हो। तुमने यह वनस्पति खा-खाकर अपने को चौपट कर लिया। जानते हो अब तुम किसी लायक नहीं रहे। वह समय भी चला गया जब तुम्हें रनिवास की पहरेदारी का काम मिल जाता।"

"रनिवास की पहरेदारी यानी कंचुकी जैसा कोई पद जिसके लिये.... नियुक्त किये जाते थे। तो पिताजी ने मुझे क्लीव समझ लिया। इससे निकृष्ट शब्द कौन-सा होगा एक उभरती हुई जवानी के पुरुष के लिये। क्या मैं इस अपमान को पी जाऊँ सिर्फ इसलिए कि वह मुझसे बड़े हैं। जेब की घड़ी हाथ की घड़ी से बड़ी होती है। टाइम पीस पाकेट वाच से बड़ी होती है। क्लाक टाइम पीस से बड़ी होती है। और चर्च का क्रानोमीटर! वह तो इन सबसे बड़ा होता है। तिस पर भी एक के सामने पहुँचकर दूसरे का दम नहीं निकल जाता। नाड़ी नहीं छूट पड़ती। मैं ही क्यों निर्जीव हो जाता हूँ। मुझे उन्हें जवाब देना चाहिए। ऐसा जवाब जिसे सुनकर उनकी बोलती बंद हो जाये। और बसंत कह ही तो बैठा "पिताजी! आप मुझे हिजड़ा समझते हैं।"

"आज से! अगर ऐसी बात नहीं होती तो तुम इतना सोचकर क्यों बोलते।"

"मैं आपका लिहाज करता हूँ।"

"हर बेटा अपने बाप का लिहाज करता है पर अगर उसे कोई बात अनुचित प्रतीत होती है तो उसका प्रतिवाद करता है।"

"मैं भी वही करने जा रहा हूँ। आप इन शोधे हुए तैलों को इतना हानिकर समझते हैं। इसका आपके पास कोई प्रमाण है।"

"अरे बुद्धू! प्रत्यक्ष को भी प्रमाण की आवश्यकता रही है। जानता है सरकार जनाधिक्य से परेशान है और संतति नियमन का प्रचार कर रही है।"

"जानता हूँ। तृतीय पंच वर्षीय योजना काल में इस दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य होनेवाले हैं।"

"मुझे क्या बतलाता है। मैं भी राष्ट्र की सारी गति-विधियों से परिचित रहता हूँ। सरकार जानती है कितना भी प्रचार किया जाये भारतवासी बच्चे पैदा करना बंद नहीं करेंगे।"

"क्यों।"

"इसलिये कि यहाँ जन्म-पत्री में ही संतान योग का पूरा ब्योरा दे दिया जाता है। ज्योतिषी महाराज ने अगर चार पुत्र और आठ कन्याएँ बतलायी हैं तो बिना उनके उत्पन्न हुए पति अथवा पत्नी संतति निरोध के उपायों की सोच ही कैसे सकते हैं।"

"उसके बाद 'फैमिली प्लानिंग' की आवश्यकता ही क्या रह जाती है।"

"तू ठीक कहता है पर अक्सर ग्रह-दशा खराब होने पर एक साथ दो या दो से अधिक बालक भी तो हो जाते जिनकी कुण्डली में एक से अधिक गणना नहीं होती।"

"उस ओर मेरा ध्यान नहीं जा सका था।"

"जाता भी कैसे। तूने अभी देखा ही क्या है को न देखने की लालसा करता है।"

"यह आप क्यों कहते हैं?"

"जो नक्शा सामने है उसके आधार पर कहता हूँ तेरे वनस्पति तेल की बात कर रहा हूँ। जब सरकार की बात कोई कान लगाकर सुनता नहीं तो वह बेचारी क्या करे। उसने सीधी की बजाय टेढ़ी उँगली का इस्तेमाल शुरू कर दिया। चूँकि इस 'फार्मूले' में घी की जरूरत होती है इसलिए उसने घी ही ईजाद कर दिया। नकली घी। मूँगफली और बिनौले के जमाये हुए तेल। जो खाये वह भी चैन न पाये।"

"आप तो पहेलियाँ बुझाते हैं पिताजी!"

"नासमझों को फिर और कैसे समझाया जाता है बेटा। इस वनस्पति से क्यों रेढ़ मार रहे हो जिस्म की। देसी घी के लिये पैसा नहीं मिलता तो तेल खाओ। शुद्ध सरसों का।"

"असली देसी घी मिलता कहाँ है। पूरा पैसा देकर वनस्पति मिश्रित चिकनाई लेने से फायदा।"

"यह मैं मानता हूँ। घी वही खा सकता है जिसके अपना जानवर है। मिलावट तब तक नहीं बंद हो सकती जब तक वनस्पति को रंगा न जावे।"

"किस-किसको रंगियेगा पिताजी! हल्दी और मिर्च क्या रामरज और गेरू के चूर्ण से बची हुई हैं। यहाँ तक सुना गया है कुछ पाजी धनिये में सड़क पर पड़ी घोड़े-गधे की लीद मिला देते हैं।"

"कौन कहता है बाजार के कुटे-पिसे मसाले इस्तेमाल करो। हाथ पाँव की काहिली होगी तो मूँछें मुँह में जरूर घुस जायेंगी।"

"रेडी मेड चीजों को छोड़ दीजिए। साबित क्या ठीक मिल जाती हैं। काली मिर्च के साथ न जाने पपीते के कितने बीज आ जाते हैं। बीमार को साबूदाना तक नहीं उपलब्ध हो पाता। उसके नाम पर उसे मोटा भात खाना होता है।"

"तभी तो कहता हूँ बर्खुरदार! सोच समझकर खाया पिया करो। यह वनस्पति बड़ा घातक सिद्ध हुआ है।"

"मैं खाता ही कब हूँ। मैंने चिकनाई का प्रयोग बहुत कम कर दिया। स्वास्थ्य की दृष्टि से हमें बहुत कम 'फैट' की आवश्यकता होती है।"

"यह अपना ज्ञान तुम कहने भर के लिये ही रक्खो तो ठीक है। इसको लेकर मैदान में मत उतर पड़ना। हमारी संस्कृति दूध, दही और घी की रही है।"

"कहते हैं हृदय रोग का मुख्य कारण चर्बी का ज्यादा इस्तेमाल है।"

"और सूखा रोग की वजह नहीं जानते। वनस्पति में तैयार किया हुआ भोजन।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप अब अकारण संदेह कर रहे हैं। मेरे घर में वनस्पति का प्रवेश तक नहीं है। रहने पर आपको सारा पता चल जावेगा।"

"सो तो तुम्हारे सुझाने से पहले ही चल चुका है। तुम्हारे घर में ये रंग-बिरंगे 'रथ' 'पालकी' कैसे इकट्ठे हुए हैं।"

"मैं समझा। इन्हें देखकर आपको ऐसा भ्रम हुआ। नाज पानी, दाल दलिया, मैदा सूजी, चीनी चावल रखने को भी तो कुछ चाहिए। पहले मिट्टी के पात्रों का रिवाज था। अब तो सब जगह इन 'कन्टेनर्स' में ही सामान रखा जाता है।"

"मैं मान सकता हूँ पर इस कमरे में टँगा यह कैलेण्डर क्या कहता है। यही न कि तुम्हारा सबसे गहरा दोस्त है वनस्पति चिकनाई का विक्रेता।"

"यह आप कैसे कहते हैं। कैलेण्डर तो कहीं से भी प्राप्त किया जा सकता है।"

"बिल्कुल गलत। जो रोज-बरोज सौदा लेते हैं उन्हीं में से बेचारे सब कैलेण्डर नहीं हथिया पाते। मुझीको देखो। कितनी सिगरेट पीता हूँ पर आज तक मुझे किसी पनवाड़ी ने कोई कैलेण्डर नहीं दिया। मुझे कैलेण्डर मिलता है एक ही जगह से। और वह है 'उल्टा फोटोवाली नसवार' के डीलर की शाप। इस नसवार के गिने-चुने गाहकों में से मैं भी हूँ इसलिए कैलेण्डर बिना माँगे पा जाता हूँ।"

"मैं इस कैलेण्डर को अभी उतारे देता हूँ।"

"अरे पागल हुए हो। कैलेण्डर कुछ बुरा नहीं है। उस पर एक साथ गजानन, हनुमान, बलराम और भीमसेन के चित्र बने हुए हैं। ये सब अपने युग के अद्वितीय पेटू थे पर वनस्पति में तली हुई चार पूरियाँ खाकर उ बैठेंगे।"

उस समय तो नहीं पर अवसर देखकर बसंत ने कैलेण्डर दीवार से उतार लिया और शरद के घर को चल दिया। जिस कागज के टुकड़े की वजह से उसे इतनी अच्छी बुरी सुननी पड़ीं उसका तो फाड़ देना या जलाना उचित होता पर चूंकि कैलेण्डर था और वह भी महापुरुषों के चित्रों से युक्त इसलिए बसंत ने उसको अन्य किसी की दीवार की शोभा बढ़ाने के लिये दे देना ठीक समझा। शरद उसे पहुँचते ही मिल गया। मामूली-सी बातचीत के बाद उसे पता चल गया शरद के घर में भी सब कुछ ठीक नहीं है और उसके आ जाने से शरद को कुछ राहत मिली है।

"इतने परेशान क्यों दीखते हो शरद!" बसंत ने पूछा।

"बात ही ऐसी हो गयी। यह औरत की जात भी बड़ी नामाकूल होती है।" शरद ने उत्तर दिया।

"क्यों! खैरियत तो हैं। क्या भाभी से कुछ खटपट हो गई।"

"हाँ। खटपट तक ही रहती तो कोई मुजायका नहीं था। वहाँ तो सिर फुड़ौवल पर नौबत जा पहुँची।"

"तुमने फिर हाथ उठाया स्त्री पर!"

"मैं यह हिमाकत किस लिए करता। क्या घर के किवाड़ चौखट इस लायक भी नहीं रहे कि समय-समय पर उनकी इस प्रकार की कोई छोटी मोटी सेवा कर दिया करें।"

"तुम्हारा मतलब है भाभी ने किवाड़ से सिर फोड़ लिया।"

"अच्छा ही तो किया। दो-चार दिन माँग में सिन्दूर भरने की तवालत बच गयी।"

"नानसेंस। तुम आदमी हो या...."

"शैतान! यही कह रहे थे न। मेरी जगह तुम होते तो भी फर्क पड़ने नहीं जा रहा था। एक जरा से कैलेण्डर पर इतनी हाय तोबा।"

"कैलेण्डर पर हाय तोबा।"

"हाँ। वह कैलेण्डर जो मैंने तुमसे बदल लिया था सिर्फ इस वजह से कि मुझे यह पहलवान टायप लोग पसंद नहीं, मुसीबत की जड़ बन गया।"

"ऐसा बुरा तो था नहीं। 'नया सिंगार घर' का था।"

"तभी तो उसने हम दोनों का 'परमनेन्ट' शृंगार करने का इरादा किया। बस मरहम पट्टी की कसर रह गयी।"

"हुआ क्या!"

"मैंने घर आकर कैलेण्डर ड्राइंग रूम में टाँग दिया। आते-जाते उनकी निगाह उस पर जा पड़ी। एक तो नयी चीज और ऊपर से उस पर छपा था 'नया सिंगार घर।' 'उत्कृष्ट डिजायनों के सोने चाँदी और प्लेटीनम के आभूषणों का एकमात्र भण्डार।'

"तब।"

"तब क्या। वह समझ बैठीं मैं कोई जेवर खरीदकर लाया हूँ जिसे घंटे आध घंटे की लुका छिपाई के बाद उन्हें पहना दूँगा। जब मैंने हरी झंडी दिखा दी तो लगीं टिसुए बहाने। मेरे ऊपर रोने-धोने का असर होता नहीं देखा तो फर्माने लगीं "किसी और के लिये आप गहने खरीदें, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। मैं कोई कमानेवाली नहीं। आपके पैर की जूती से बदतर हूँ। वह भी उस दिन यातना से मुक्त हो जाती है जब आप नयी पैरों में धारण कर लेते हैं। मैं तो अंतिम साँस तक आपके दामन से जुड़ी रहूँगी। मेरे ऊपर इतनी ही कृपा की होती कि दो पैसे का संखिया या जमालगोटा ला देते।"

"अब बोलो, बीबी जब इस किस्म की बात बराबर किये जायें और आपकी एक बात उसकी औंधी खोपड़ी में धँसने का नाम न ले तो खाविन्द बेचारा क्या करे। यही न कि अपना सिर पीट ले।"

"सो किस तुफैल में।"

"इस रार टंटे को खत्म करने के विचार से।"

"कहीं ऐसा भी होता है। गुस्से में औरत की हालत चुड़ैल जैसी हो जाती है। उसका विवेक लुप्त हो जाता है। अगर आप एक बार माथा फोड़ेंगे और वह भी इस बात का ध्यान करके कि चोट कम से कम लगे तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना सिर इस सफाई से दे मारेगी जैसे कच्चा नारियल तोड़ रही हो। मैं समझता हूँ उस वक्त क्रोध को थूककर स्त्री की चिरौरी करने से उत्तम खाक डालने का उपाय नहीं।"

"और जो चुप हो लिया जावे।"

"कुछ नहीं होगा। वह बकती रहेगी उस वक्त तक जब तक तुम्हें फिर आवेश न आ जावे।"

"तो जीत तो उस कर्कशा की रही।"

"हमेशा रही। इसीलिए समझदार पति पत्नियों से उलझा नहीं करते। उन्हें 'ह्यूमर' करते रहते हैं।"

"'ह्यूमर' की भी तो कोई सीमा होती है। अब तुमसे छिपाऊँ। जब उस कम्बख्त ने अपने चोट मार ली तो मैंने तुम्हारा बतलाया हुआ इलाज ही किया पर सब कुछ बे असर। पानी का घूंट भरते ही वह लगी मेरी पुश्तें कोसने।"

"किसी तरह आयी होंगी रूठी देवी मठ में लौटकर।"

"आतीं कैसे नहीं, पर निहोरे जी भर कर करवा लिये।"

"चलो क्या फर्क पड़ता है। कभी रेल पुल पर, कभी पुल रेल पर। तो निपट गया तुम्हारा फसाद।"

"अभी कहाँ निपटा है। जब तक यह कैलेण्डर घर में है रिस्क में कोई कमी नहीं आती।"

"अब मेरी सुनो। तुम्हारे दिये हुए इस कैलेण्डर पर आते ही आते पिताजी की निगाह पड़ गयी और उन्होंने मुझे 'इम्पोटेंट' तक बना डाला। वह वनस्पति के नाम से चिढ़ते हैं, पास फटकना तो बहुत दूर रहा। यह बात और है शुद्ध घी के नाम पर चाहे उसके पीपे के पीपे खा जाते हों। मैं तुम्हें इसे वापस करने आया हूँ।"

"मैं भी तुम्हारा कैलेण्डर लौटानेवाला था। सो तुम ही आ गये हो। अभी लाता हूँ उतारकर।"

"अरे ऐसा गजब मत करना! ज्वेलर की दुकान का कैलेण्डर मेरे घर में पहुँचकर नया गुल खिलाना शुरू कर देगा।"

"वह क्या।"

"जिसका तुम अभी जिक्र कर रहे थे। मेरी बीबी इस मामले में तुम्हारी से कम नहीं। वह चवन्नी का तेरह नये पैसेवाला भाग है।"

"तुम तो कह सकते हो जेवर बेचने पर कैलेण्डर पाया है।"

"यह तो तभी मुमकिन है जब सुननेवाला राजी हो। औरतों की बुद्धि-नगरी में विचारों का 'वन वे ट्रैफिक' रहता है इसे क्यों भूलते हो। वे यह समझती हैं सर्राफ के यहाँ सिर्फ गहने खरीदने के लिये जाया जाता है और महीना बंद होने पर रुपयों की, विशेषकर जब किसी का बाप अंगद की तरह पाँव जमाने के इरादे से आनेवाला होता है, आवश्यकता पूर्त्ति के लिये नहीं पहुँचा जा सकता। मुसीबत यह है कि अपनी अँगूठी ही हर बार गिरवी रखनी पड़ती है।"

"एक बात इससे भी मजेदार हुई, उसे तो सुनाना ही भूल गया।"

"वह क्या।"

"वेजीटेबिल प्राडक्ट के नये टिन को खोलकर उन्होंने मेरा वह सत्कार किया कि कहते नहीं बनता। वैसे हर स्त्री पति को अधिक से अधिक तर माल खिलाने का इरादा रखती है और जब खुश हो तो उसके पेट में चिकनायी उड़ेल तरह लौटाना चाहती है जैसे किसी छकड़ा मोटर एंजिन में मोबेल आयल उँडेला जाता है।"

"तुम तो कहते थे भाभी तुमसे नाराज हो गयी।"

"वह तो जिमा चुकने के बाद। गहनों की लालच में उन्होंने कढ़ाई चढ़ाई थी। वैसे भोज तालिका के हिसाब से मूँग की पतली खिचड़ी का नम्बर था।"

"उसे फिर तुम्हें दूसरे दिन खाना पड़ा होगा।"

"चौथे।"

"वह कैसे!"

"दूसरा और तीसरा दिन हंगामे में बीत गया।"

"पेट ठीक रहा तुम्हारा।"

"वह भी मौका तक कर आपे से बाहर हो गया था।"

बसंत लम्बोदर वृकोदर की झाँकियों से सुशोभित कैलेण्डर को पटककर चल दिया। शरद ने नये सिंगार घर के यहाँ से प्राप्त नर कैकटस को उनकी आँखों से दूर कर देने में ही भलाई समझी। कैलेण्डर को फाड़ना मुश्किल काम था। उसने उसे बाहर बरामदे में कील ठोंककर उल्टा टाँग दिया और उसके चिकने उज्ज्वल सर्फेस पर 'साफ्ट रेड पेन्सिल' से लिख दिया "सावधान! 'कालबेल आउट आफ आर्डर' है। बजाने की कोशिश न करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौलिक कहानी

घास के फूल

श्री राजेन्द्र जगोता

"अरी करम फूटी मर, ढेर सा खावे, घर को ढावे, हाँ हाँ फोड़ दे, तोरी मैया दे जायगी न, मासा कर और पउआ बिगार, मरी ! नये बासन फेंक दिये नीचे, हाथ न हुए फूलों के गुच्छा हो गये, जो चार बासन नहीं उठते, हमारे तो बूढ़े हाथों से भी कभी न गिरे।"

मालती ने दीनता से सास की ओर देखा और उसके मुख पर वेदना के लक्षण प्रकट हो गये। नेत्रों से व्यथा सी झलकने लगी। वह आँचल सँभालते हुए उठी और गिरे बरतन समेटने लगी। नेत्रों से एक बड़ी सी बूँद निकल कर छिली हुई कलाई पर जा गिरी और कलाई की पीड़ा अधिक हो गयी।

"हाँ-हाँ रो, मेरा बेटा तो आते ही डस लिया नागिन ने, अब मुझे भी खा ले डाइन, फिर तू मुँह लीप पोतकर फिरियो भरे बाजारों में। मेरे तो भाग्य तभी फूट गये जब तुझ-सी कलमुँही ने चौखट लाँघी।"

"माताजी, मैंने जान-बूझकर तो नहीं फेंके, आप तो यूं ही ....."

"हाय मैया, मैं यूँ ही बक रही हूँ, सिर घूम रहा है मेरा तो, अरी कुलच्छिनी सिर तो मेरा उसी दिन घूमने लगा जब तुझे देखा था। अब तो बकना ही बाकी था, अरे ईसुर, सुनियो तो, देख तेरी माँ बकने भी लग गयी।"

"क्या बात है री ?" ईसुर ने आते ही नेत्र निकाल कर पूछा।

मालती ने झरझर गिरते हुए आँसू आँचल के छोर से पोंछे और बरतन लेकर रसोई की ओर चल दी। वह जानती थी कि कुछ और कहेगी तो ईसुर मारना आरम्भ कर देगा। सास की बड़बड़ाहट और ईसुर की कट-कटाहट अब भी उसके कानों में पड़ रही थी। वह बरतन अलमारी में रखने लगी। उसकी कलाई से रक्त रिसने लगा था। उसने आँचल से रक्त पोंछा और अपने काम में लग गयी। सास की चुभती हुई बातें अब भी उसे बींध रही थीं परन्तु उसे तो ये बातें सुनने का अभ्यास-सा हो गया था। कोई दिन भी तो ऐसा न जाता था जब वह सास और ईसुर की जली-कटी बातें न सुनती थी। यह क्रम तो उसी दिन से चल पड़ा था जिस दिन उसका पति उसे इन जल्लादों के हाथों में देकर परलोक चला गया था। पूरे कुटम्ब में वही तो एक ऐसा था जिसे अच्छा कहा जा सकता था, परन्तु यह बात भी तो असत्य नहीं हो सकती थी कि भगवान् अच्छे मनुष्यों को अधिक चाहता है। शादी के तीन ही मास के पश्चात् वह संसार छोड़ गया। वह दिन उसे अब भी याद था जब वह बीमार पड़ा था और तीसरे ही दिन वह उसे अकेला छोड़ गया था और तब से यही सास और ईसुर की जली-कटी बातें सुनती आ रही थी। उसका पति चल बसा था तो उसके लिए भी वही दोषी ठहरायी गयी थी। सास ने कहा था "अभागी, तूने मेरा बेटा खा लिया।" ईसुर ने कहा था "डाइन तूने मेरा भाई खा लिया।" परन्तु वह चिल्ला-चिल्ला कर कहना चाहते हुए भी न कह सकी कि उन दोनों ने उसका पति खा लिया। वही दोनों तो दिन भर उसे बैल की भाँति जोते रखते थे।

"अरी कब तक यहीं बैठी रहेगी, प्यासे मारेगी क्या ? पानी की बूँद घर में नहीं है और तू आलती पालथी मार कर बैठी है, परसा परसाया सामने रख जायेगा क्या कोई ?"

उसने माथे पर आयी हुई लट ठीक की और घड़ा उठा कर कुएँ की ओर बढ़ गयी।

"अरे राम", कुएँ पर खड़ी कई स्त्रियों के मुख से एक साथ निकला और वे एक दूसरे का मुख ऐसे ताकने लगीं जैसे कोई भयानक बात देख ली हो। एक दो ने दाँतों तले उँगली दबा ली।

मालती घबराकर रुक गयी और आस-पास देखा, फिर अन्यमनस्क-सी होकर कुएँ की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

"हे भगवान्, क्या जमाना आ गया है", एक अधेड़ महिला बोली, "पति को मरे पखवाड़ा भी न हुआ और बिंदिया भी सजने लगी।"

मालती ने घबराकर माथे पर आँचल फेरा और उस पर एक लाल निशान पड़ गया।

लट ठीक करते समय उसकी कलाई से निकलते हुए रक्त की एक बूँद माथे पर अनजाने में ही लग गयी थी।

सब महिलाएँ क्षोभ, क्रोध और घृणा से उसकी ओर देखती रहीं। उसने चाहा कि उसी समय कुएँ में छलाँग लगा दे ताकि उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से बच सके परन्तु तभी वह दुष्ट मंडली नीचे उतर गयी और बड़बड़ाते हुए चली गयी। उसने रस्सी कूएँ में लटका दी और एक ध्वनि के साथ डोल पानी के साथ टकराया।

घड़ा भर कर वह वापस घर आ गयी।

सास ने कपड़ों का ढेर इकट्ठा कर रखा था।

"जा, ये कपड़े धो ला तालाब पर और नहा भी आना, जाने कब से नहीं नहायी, पास खड़े दुर्गन्ध आती है।"

एक लम्बी साँस लेकर उसने कपड़े उठा लिए और तालाब की ओर चल दी।

"और सुन, जल्दी लौटियो" सास ने टोंक कर कहा। वह चली गई। कपड़े धोते-धोते दोपहर हो गयी, फिर थक हार कर वह नहायी और तब घर वापस आ गयी।

"अरी इतनी देर कर दी ?" सास ने उसके अन्दर घुसते ही पूछा, "पता नहीं था, खाना भी बनाना है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार उसने क्षोभ से सास की ओर देखा, फिर बैठक में दृष्टि डाली, ईसुर नहीं था। गठरी नीचे रख दी उसने।

"जा, आज मैंने खाना पका लिया है, तुझे तो पता ही था कि बुढ़िया पका लेगी तभी तो धरना धर कर तालाब पर ही बैठी रही", सास जोर से बोली।

उसने कोई उत्तर न दिया। बातें सुनकर चुप रहना उसका कार्यक्रम सा हो गया था। वह चुपचाप कपड़ों को तार पर डाल कर अन्दर चली गयी और उड़ते हुए बालों में कंघी करने लगी।

"आरी, खाना खा ले", सास रसोई से चिल्लायी।

"आती हूँ", वह बोली और चोटी करने लगी

सास धड़धड़ाती हुई कमरे में घुसी।

"अरे ....."उसके मुँह से निकल गया, 'तेरा नाश हो जाए चांडालिनी, सिगार ही तो करेगी अब! हाँ, हाँ, कर सिगार; खसम ही तो मरा है, जवानी तो नहीं मरी! आग लगे तेरी पहाड़ सी जवानी में, तेरी कढ़ी खाऊँ।"

"क्या बात है अम्मा?" ईसुर ने अन्दर घुसते हुए पूछा।

"अरे देख तो, जवानी चढ़ रही है इसे, बाल काढ़ कर चुटिया बना रही है, मेरे बेटे को तो खा लिया, अब किसी और को डसेगी।"

"क्यों री?" ईसुर ने उसके सिर पर एक थप्पड़ मारा और वह औंधी गिर पड़ी।

मार पीट कर ईसुर चला गया। वह रोती रही, बिसूरती रही, शाम तक वहीं घुटनों में सिर देकर बैठी रही। खाना भी नहीं खाया।

शाम हो गयी। सास कमरे में आयी, देखा मालती की आँखें सूज गयी हैं रो-रोकर। उसके मुख पर एक कठोरता आ गयी, पर यकायक भाव बदला और वह कोमल से स्वर में बोली, "उठ बेटी, देख तो रो-रो कर क्या दशा बना ली है अपनी, जा उठ कर थोड़ा गाँव में घूम फिर आ, मन बदल जायेगा।"

मालती ने चकित हो सिर उठाया, फिर बाँह पर चुटकी काटी और बाँह में तीव्र वेदना की एक तरंग दौड़ गयी। जीवन में प्रथम बार सास के मुख से ऐसी बात सुनना उसके लिये स्वप्न से कम न था। उसने सिर घुमा कर देखा, पश्चिम लाल हो रहा है, वह जान न सकी कि सूर्य निकल रहा है या डूब रहा है।

"उठ बेटी" सास ने फिर उसी स्वर में कहा।

वह सकुचाती सी उठ खड़ी हुई। उसके मन में यह भाव बार-बार आ रहा था कि सास का दयालु होना अकारण नहीं हो सकता।

"जा, और मन को उदास मत किया कर।"

वह चल दी बाहर की ओर।

"और हाँ, सुन!"

उसके पग ठिठक गये

"यह ले पैसे"

"पैसे", वह बड़बड़ाई और सास के हाथ से पैसे पकड़ लिए। उसकी सास ने उसे पैसे दिये, इस बात का विश्वास उसे न आ रहा था परन्तु सोचा, भगवान् तो बड़े-बड़े दुष्टों को सद्बुद्धि देता है। हो सकता है उसकी सास पर भी कृपा की हो। उसने मन ही मन भगवान् को धन्यवाद दिया।

"सुखिया के टाल से इन पैसों की बीस सेर लकड़ियाँ ले आना और जल्दी आ जाना, नहीं तो ईसुर नाराज होगा।"

मालती की आँखें खुल गयीं। उसने चाहा कि पैसे सास के मुँह पर खींच मारे। वह समझ गयी कि क्यों यह दया दिखलायी जा रही थी। सुखिया का टाल वहाँ से दो मील दूर था, वहाँ से बीस सेर लकड़ियाँ सिर पर उठा कर लाना था।

"जा बेटी, घूमने से मन बहल जायेगा।" सास फिर बोली।

और वह भाग्य को कोसती हुई चल दी सुखिया के टाल की ओर, लोग खेतों से लौट रहे थे। मकानों के आगे बच्चे खेल रहे थे। कुछ बूढ़े चौपाल पर बैठे चिलमें पी रहे थे। सामने से दो व्यक्ति आ रहे थे, उसने एक को कहते सुना, "है तो विधवा पर चलती कैसे मटक-मटक कर है।" यह कहकर उसने वासनामय दृष्टि से उसकी ओर देखा।

उसने उत्तर देना चाहा पर उनको मुँह न लगाना ही अच्छा समझ कर आगे बढ़ गयी।

दो स्त्रियाँ और आ रही थीं। एक ने उसकी ओर देखा और कहा, "विधवा है पर सिर में मन भर तेल डालती है।"

उसके नेत्रों में क्रोध उतर आया, चिल्लाकर बोली "जब तुम विधवा हो जाओ तो दो-दो मन डाल लिया करना।"

उन दोनों के मुख से गालियों की बौछार निकल पड़ी, पर वह बिना ध्यान दिये आगे बढ़ आयी किन्तु उनकी बात इसके कलेजे में चुभ गयी। "मैं विधवा हूँ पर मनुष्य हूँ", वह बड़बड़ायी और उसका चेहरा तमतमा गया, नथुने फूल गये।

उसने क्रोध में भर कर अपने बाल नोच लिए। "समाज ..... गन्दा समाज" वह बड़बड़ाई "जो किसी के प्रति अच्छी भावना रखना नहीं जानता। यदि किसी स्त्री का पति मर जाता है तो यह भी उस स्त्री का दोष है। अपने पति के मरने के पश्चात् क्या वह मनुष्य नहीं रह जाती जो उसके साथ मनुष्यता का व्यवहार नहीं होता? क्या विधवाओं को जीने का कोई अधिकार नहीं? यह कौन से समाज का विधान है कि विधवा होने पर स्त्री को पीस-पीस कर मार डाला जाए? कहाँ लिखा है कि विधवा बालों में तेल नहीं डाल सकती? कौन कहता है कि विधवा का समाज पृथक् होता है जिस पर लोग उँगली उठा सकते हैं? पति के पश्चात् इसीलिए उस पर आघात होते हैं कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असहाय हो जाती है। जो पुरुष विधवाओं को, उनकी चाल को, उनकी हर बात को कोसते हैं क्या वही अपने दूषित दिलों में उन गन्दी वासनाओं को नहीं छिपाये रखते जो समय पाते ही प्रकट हो जाती हैं? इनके बाहर का समाज कुछ और कहता है और भीतर का समाज कुछ और। बाहर का, दिखावे का समाज जिस बात की निन्दा करता है भीतर का समाज उसी में अपना स्वार्थ खोज निकालता है। पर क्यों? केवल इसीलिए कि वह जानता है कि उनकी रक्षा के लिए सदा उठनेवाले पति के दो मजबूत हाथ अब कभी न उठ सकेंगे। तभी तो विधवाओं को जिन्हें सहानुभूति मिलनी चाहिए, ग्लानि मिलती है, और मिलती है वह आग जिसमें उन्हें सदा जलना पड़ता है।"

सुखिया का टाल आ गया। वह लकड़ियाँ लेकर वापस लौटी और निश्चय कर लिया कि अब वह उस समाज से लड़ेगी जो सदा उसे रौंदता आया है। उसे भी जीने का उतना ही अधिकार है जितना किसी और को।

लकड़ियाँ लाकर उसने रसोई में डाल दीं और खाना खाने बैठ गयी। उसका तमतमाया मुखमंडल देखकर सास ने कुछ बोलना चाहा परन्तु न जाने क्या सोचकर चुप हो गयी। ईसुर अभी आया न था, वह सदा रात को सब के सोने के पश्चात् आता था।

खाना खाकर वह सो गयी। सास भी उसी समय सो गयी, ईसुर न जाने कब आकर सोया।

"अरी उठ री, कब तक सोयेगी?" सास भोर होते ही चिल्लायी।

वह पड़ी रही।

"अरी उठती है कि मैं उठाऊँ आकर", सास फिर चिल्लायी।

इस बार वह उठ खड़ी हुई।

"इधर आ" सास ने कहा।

वह सास की ओर देखकर मुसकुराने लगी।

सास की त्योरियाँ चढ़ गयीं "तेरा नास जाए कलमुँही! मेरी बात सुनती नहीं और दाँत दिखाती है!" कहते हुए सास ने आकर एक थप्पड़ जमा दिया।

परन्तु वह हँस पड़ी।

हँसती रही वह, जोर से, खूब जोर से।

सास हतप्रभ सी होकर देखती रही फिर क्रोधित होकर तमेड़ी उठाई और चिल्लाकर बोली "चल अभागी पानी ला, बेशर्म की भाँति दाँत निकाल रही है, ईसुर उठ गया तो तोड़ के रख देगा बत्तीस के बत्तीस, चल पकड़ तमेड़ी।"

वह चुपचाप आगे आयी और हाथ बढ़ाकर तमेड़ी पकड़ ली।

और उसने तमेड़ी को जोर से जमीन पर दे मारा।

सास हक्की-बक्की रह गयी।

वह फिर हँस पड़ी खिल-खिलाकर।

फिर उसने चुपचाप तमेड़ी उठा ली और पानी भरने चल दी।

वापस लौटी तो घर में चिल्लपों मची हुई थी, सास रो रही थी और ईसुर क्रोध से गुर्रा रहा था।

"इधर आ री" वह उसके अन्दर घुसते ही चिल्लाया।

"तुम्हारी दासी नहीं हूँ, समझे।" वह तमेड़ी भूमि पर पटकते हुए, आँख निकालकर बोली।

ईसुर स्तब्ध सी दशा में देखता रहा, फिर यकायक छड़ी उठाता हुआ बोला, "बताऊँ तुझे?"

"अब वे दिन गये ईसुर", वह चूल्हे से एक बड़ी-सी सुलगती हुई लकड़ी निकालकर बोली "देखूँ तो सही तुम क्या बताते हो?"

ईसुर के हाथ छड़ी पर ढीले पड़ गये।

सामने मालती हाथ में जलती हुई बड़ी लकड़ी नचा रही थी।

"और सुनो", मालती ने कहा, "अब सम्पत्ति में बटवारा होगा और मैं अपने पति का भाग लेकर पृथक् रहूँगी, और यदि बटवारा नहीं करना है तो मैं मालकिन बनकर घर में रहूँगी, दासी बन कर नहीं।"

"यह क्या कहे जा रही है तू?" वह घबराकर बोला—

"जो कहना था, कह चुकी", मालती ने कहा और अन्दर चली गयी।

गाँव भर में यह बात फैल गयी कि मालती ने घर में बवंडर मचा रखा है। उसी सुबह उसने कुएँ पर भी दो-तीन लड़कियों को पीट दिया था।

शाम को उसने सिर में तेल डालकर चुटिया की और कपड़े बदले।

"कहाँ जा रही हो बेटी?" सास ने आकर नर्मी से पूछा।

"यूँ ही घूमने-फिरने।"

"हाँ-हाँ बेटी जाओ, घूमना फिरना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।"

मालती के मुख पर एक कटु मुस्कान आ गयी।

तभी ईसुर आ गया।

"कहाँ जा रही हो भाभी?" उसने नम्रता से पूछा।

'भाभी' शब्द सुनकर वह खूब जोर से हँसी। वह समझ गयी कि यह उसी पुड़िया का असर है जो सुबह दी गयी थी।

"सहेलियों के यहाँ जा रही है" सास हौले से बोली।

"हाँ हाँ, जाओ भाभी, देखो कितना अच्छा मौसम है।"

"हाँ, आज मौसम काफी बदल गया है।" मालती हँस कर बोली।

वे दोनों भी फीकी हँसी हँसने लगे।

मालती ने एक बार अपनी चुटिया घुमाकर उँगली पर लपेटी, फिर घास पर लगे उन छोटे-छोटे भद्दे फूलों की ओर देखा,

जिनमें कोई सुगन्ध नहीं होती,
जिनका कोई मूल्य नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना (१०)

श्री मनमोहन गुप्त

भाभी का प्रायश्चित

भाभी सिहर उठीं। आगे दादा ने ही रुककर कहा"--"कहीं मिल जाता तो मैं कह देता कि छिप जा, नहीं तो बहुत पीटा जायगा। और है भी बड़ा शरीर। इतनी मार खाता है बदमाशी के पीछे, मगर उसकी आदत ही नहीं छूटती है। बेहया हो गया है। आज नंगा ही भाग गया है। और मैं जानता हूँ कि या तो भुतही नीम के पेड़ पर चढ़कर बैठा होगा या शंकर जी के मन्दिर की छत पर अथवा किसी गुम्बज के ऊपर बैठा होगा। यों बाबू ने सब जगह देखा मगर नहीं मिला। किन्तु छिपकर रहेगा कबतक, नींद लगते ही घर आ जायगा। बिना अम्मा के उसे नींद भी तो नहीं आती है। आयेगा जरूर।"

दादा का जब वक्तव्य समाप्त हुआ तब भाभी ने कहा--"अब क्या होगा?"

सर हिलाते हुए दादा ने कहा--"यही तो बात है। अम्मा को मिनट-मिनट में दौरे आयेंगे। उसके बिना अम्मा भी तो जी नहीं सकतीं।"

भाभी ने कहा--"तो तुम जाकर अम्मा के पास सो जाओ। कह देना कि सबेरे ढूँढेंगे।"

आश्चर्य का भाव चेहरे पर लाकर दादा ने कहा--"ऐसा कभी हो सकता है? यों तो मैं भी अम्मा के साथ ही सोता हूँ मगर अम्मा के साथ वह जो करता है उसे मैं थोड़े ही कर पाऊँगा। जब तक जगेगा, कभी छाती पर सर रक्खेगा, नहीं तो दोनों पाँव छाती पर चढ़ा देगा, नहीं तो अम्मा को तकिया बनाकर सोयेगा। उसके अनेक ढंग हैं। अम्मा मना भी करती हैं; फिर कहती भी रहती हैं कि अभी छोटा है। बड़े होने पर ठीक हो जायगा। आप नहीं जानती हैं भाभी! कि वह कितना मीठा है। मुझसे लड़ता भी रहता है मगर उसके बिना मुझे कोई खेल अच्छा भी नहीं लगता है। उसकी लड़ाई में भी मजा आता है।"

दादा की इन बातों को भाभी तन्मय होकर सुन रही थीं। दादा कहते गये--"बाबू को भी देखिये। हँसे बिना नहीं रहते। एक दिन बाबू ने कसकर कान पकड़ा तो रोता जाता था और कहता जाता था कि देखो, अब कभी इतनी जोर से कान न पकड़ें, नहीं तो मेरे कान गदहे के से लम्बे हो जायेंगे, मेरे कान तो बन्दर जैसे छोटे-छोटे रहने दें। और एक दिन बाबू ने मारा तो वहीं कमरे में तुरन्त टट्टी फिर दी और कहा कि चख लीजिए अब मजा; मारा तो टट्टी फिर दी, अब सब लोग बदबू के मारे मरेंगे।...ऐसी ही कितनी बातें है। बटोरी जायं तो महाभारत बन जाय। एक दिन अम्मा ने कसूर होने पर कहा, कान पकड़कर उठक बैठक कर। तो करता ही गया। बहुत मनाया गया। माने तब न! आखिर अम्मा ने अपना कान पकड़ा। तब बन्द किया। फिर देह के दर्द के मारे बुखार आ गया।"

भाभी समझ गयीं कि दादा के हृदय में मेरे लिए कितना स्थान है। तब वे आहिस्ते-आहिस्ते बोलीं--"तुम्हें बता दूँ कि वह कहाँ है?"

दादा ने कहा--"हाँ, हाँ, मैं तो उससे मिलना ही चाहता हूँ।"

भाभी ने उत्तर में कहा--"वह मेरे ही यहाँ छिपा है। जब मास्टर साहब का गुस्सा ठण्डा पड़ जायगा तो आकर ले जाना। मैंने उसे दूध वगैरह पिला दिया।"

सुनकर धीरे से दादा ने कहा--"मगर साहब दादा जान लेंगे तो आपको डाटेंगे नहीं? बाबू के साथ साहब दादा भी तो ढूँढते फिर रहे हैं। बड़ी चिन्ता में है।"

--"उसकी चिन्ता न करो। तुम बस खयाल रखना कि उस पर मार न पड़े।"

जब समझ गया कि दादा को पता लग गया तो मैं बाहर निकला। कहा--"देख दादा। चादर की धोती पहने हूँ। बार-बार मुझे नंगा, नंगा न कहना।"

दादा बोले--"चुपचाप छिपा रह। मैं मौके पर ले जाऊँगा।"

भाभी से बिदा लेकर दादा चले गये। अभी पन्द्रह मिनट भी नहीं हो पाये थे कि भागती हुई तेजी से अम्मा आईं सीधे जहाँ मैं था, वहीं घुस आईं। पीछे-पीछे दादा भी आये। बार-बार रोकने की चेष्टा करते, मगर अम्मा कहाँ रुकनेवाली थी? मुझे देखते ही तड़ातड़! तड़ातड़! कई जमा दिये। साथ-साथ उठाकर छाती से लगा लिया। कुछ बिना कहे, जैसे आईं थीं वैसे ही, मुझे लेकर चल दीं। कमरे के अन्दर ले जाकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया। दरवाजा बन्द करके भी निश्चिन्त न हुईं। ताख पर रखे ताले को लेकर भीतर की साँकल में लगा दिया। मैं चुपचाप आँख मूँदे पड़ा रहा। बगल में बैठी अम्मा रोती रहीं। मेरी आँखें कब लग गयीं, पता नहीं। जब आँखें खुलीं तो देखा अम्मा वैसी ही बैठी रो रही हैं। आहिस्ते-आहिस्ते अम्मा के पास सरक गया। गोद में सर रख दिया। बालों को सहलाते हुए अम्मा ने कहा--"तू मुझे जीने नहीं देगा?"

गोद में चढ़ गया। गिड़गिड़ा कर कहा--"रोती क्यों हो?"

"क्यों रोती हो?" इसका ठीक जवाब शायद अम्मा के पास भी न था। तथापि अम्मा और रोने लगीं। मैं पड़े पड़े फिर सो गया। इस बार दिन निकलने के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही आँखें खुलीं। देखा, कमरे में अकेले मैं लेटा हूँ। आवाज लगाई—"अम्मा!"

बाहर से ताला खोलकर अम्मा आईं। साथ ले जाकर शौचादि कराकर ले आईं। बस आने की देर थी। अम्मा तो तैयार थी ही। मैं दादी के पास नाश्ता करने लगा। बड़े भाई गये डोली लेने। उन दिनों तक अम्मा डोली या पालकी पर ही चलती थीं। डोली आयेगी, सुनकर मैं आनन्द से उछल पड़ा। डोली हो पालकी हो, या पालकी नुमा घोड़े की गाड़ी ही क्यों न हो, वह जो आनन्द आता था उनमें बैठने में, आजकल के हवाई जहाजों की सैर में भी मुझे कभी उतना आनंद नहीं मिलता। अम्मा से कहा—"जाऊँ जरा भाभी से कह आऊँ कि मैं डोली पर जा रहा हूँ? जाऊँ अम्मा? कह आऊँ?

अम्मा ने आँखें तरेरकर मेरी ओर घूरा। मैं चुप हो गया। दादी ने कहा—"तू खा तो ले!"

पूरी तैयारी करके, जब अम्मा डोली पर, मुझे लेकर सवार हुईं तो मैंने देखा—दो सजल नयन एकटक मुझे ही देख रहे हैं। मैंने आँखें नीची कर लीं, किन्तु रहा नहीं गया। आपसे आप निगाह उधर चली गई। तब भाभी अपने जँगले के पीछे आँखें पोंछ रही थीं। मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी रो रही हैं।"

गला भर आया। जिधर मेरी निगाह बार-बार जा रही थी, अम्मा ने उधर का पर्दा गिरा दिया। यों ही मेरे मुँह से निकल गया—"तुम बड़ी डाइन हो।"

अम्मा ने मुझे पास घसीट लिया। मैंने झिड़कते हुए कहा—"छोड़ो।"

इतने में बाबू आ गये। डाँटते हुए उन्होंने कहा—"क्या बमचक मचा रखी है डोली में? सम्हलकर बैठना नहीं तो उलट जायगी।"

शिकायत के रूप में चिल्लाकर मैंने कहा—"भाभी खड़ी जँगले पर रो रही हैं। मुझे जरा देखने भी नहीं देती हैं। पर्दा गिरा लिया।

बाबू की निगाह भी उधर पड़ गई। जो भाभी, किसी भी पुरुष को देखते ही जँगले से हट जाती थीं, आज वे उसी प्रकार से डोली पर आँख गड़ाये खड़ी रहीं। बाबू ने प्रथम निगाह में ही उन आँखों की भाषा समझ ली। अम्मा के उद्देश्य से कहा—"अच्छा नहीं कर रही हो....दो घड़ी जी बहला लेती तो क्या बिगड़ता था?"

अबकी अम्मा ने बाबू की ओर का पर्दा भी गिरा लिया। कहारों के उद्देश्य से कहा—'चलो। सब ठीक है।"

डोली के चारों ओर के पर्दे गिरा दिये गये। डाइन के पंजे से बचने को छुड़ाकर गर्भधारिणी चली, यद्यपि बच्चे के मन में तो ले चलनेवाली ही उस समय डाइन बन गई थी। पीछे-पीछे पहुँचाने के लिये बाबू चले।

× × ×

मामा के घर पहुँचकर, ममेरे भाइयों के संग खेलकूद में लगकर, भाभी की बात भूल-सा गया था। एक इतवार को दादा आये। अलग ले जाकर कहा—"शामको साहब-दादा मिलेंगे चौराहे पर। तू और मैं चला चलूँगा बग्घी में बैठकर। तू जरा भाभी से एक बार मिल आ। बहुत बीमार हैं। तेरा नाम ले-लेकर रोती ही रहती हैं। मगर अम्मा से या किसी से न कहना। हम दोनों चले चलेंगे फिर आ जायेंगे। समझा न?"

अरे हाँ। भाभी को तो भूल-सा ही गया था। सब बातें याद आ गईं। हृदय कराह उठा। मैंने कहा—"तो अभी-अभी चलो न दादा। शाम तक चले आयेंगे। एक दौड़ में पहुँच जायेंगे।"

दादा को भी बात जच गई। दोपहर का खाना खा ही चुका था। अम्मा से पूछा—"दादा के संग दुर्गा जी के मन्दिर तक हो आऊँ?"

ममेरे भाइयों को भी साथ ले जाने के लिए अम्मा ने आग्रह किया। दादा ने कहा—"नहीं।"

दादा के 'नहीं' या 'हाँ' का वजन अम्मा खूब जानती थीं। यह भी सब जानते थे कि मामी के घर के किसी से दादा की पटती नहीं थी। यहाँ तक कि मामी से नाममात्र की बोलचाल थी। कारण भी कोई साधारण नहीं था। मामी का बड़ा लड़का दादा का सहपाठी था। परसाल दादा को जब छात्रवृत्ति मिली और मामी का लड़का रह गया तो उसने घर में आकर कहा था कि दादाने नकल करके परीक्षा दी थी। मामी ने उसे सच मान लिया था और दादा से उसका इशारा भी किया था। गुस्से में दादा ने कहा था कि आपके लड़के के सिर में गोबर भरा हुआ है। मामी आपे से बाहर हो गई थीं। फलतः दादा न तो यहाँ आते ही थे और न बोलते। अम्मा इस बात में तो सहमत थीं कि मामी की यह ज्यादती थी, किन्तु दादा की बातों को भी वे ठीक नहीं मानती थीं। साथ-साथ यह भी कहने में नहीं छोड़ती थी कि मामा का लड़का नहीं पढ़ता।

हम दोनों निकल पड़े। अस्सी के पास से गोदौलिया के पास तक आने में हम लोगों को तीन-चार बार दौड़ लगानी पड़ी। अन्त तक भाभी के पास पहुँच ही गया। भाभी उस समय दरवाजे की ओर पीठ किये लेटी थी। मैंने पीछे से आहिस्ते-आहिस्ते जाकर भाभी की आँखों को बन्द कर लिया। मेरे स्पर्श करने के ढंग से ही भाभी समझ गई थी कि कौन है। शायद मेरी ही बात सोच भी रही थी। मेरे हाथों को पकड़कर कहा—"आ गया न?"

मैंने कहा—"तुम बीमार हो। देखने आया। अभी भाग जाऊँगा।'

सुनते ही खींचकर भाभी ने छाती से लगा लिया। इन कई दिनों में ही भाभी पस्त हो गई थीं। जोरों का बुखार चढ़ा हुआ था। मुँह चूमते हुए पूछा—"कहकर आया या भाग आया?"

अपने मस्तक को दिखाते हुए और पसीने को हाथ से पोंछकर कहा—"देख नहीं रही है? पसीने से तर हो रहा हूँ! भागते-भागते बिल्कुल दम घुंट गया है, फिर भागते-भागते ही जाऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोकते हुए भाभी ने कहा--"नहीं। अब गाड़ी पर जाना। मुझसे रुपये लेकर रख लेना। किराया देकर गाड़ी पर ही आया जाया करना।" अब कभी भागते-भागते न आना।"

जरा जोर देकर मैंने कहा--"तुम तो बड़ी पगली हो जरा भी अकल नहीं है। भला बताओ तो रोज-रोज मैं आऊँगा कैसे? यह तो आज दादा गया था तो अम्मा ने छोड़ा। उन्हें मालूम थोड़े ही है कि मैं तुम्हारे पास आया हूँ। हम लोग दुर्गामन्दिर के बहाने आ गये।"

सिर हिलाते हुए भाभी ने कहा--"अच्छे बड़े ले आया? वह बहुत अच्छा है।

सप्रशंस दृष्टि से देखते हुए मैंने कहा--"रास्ते में कई बार कहा कि तू मेरे कन्धे पर बैठ ले, अगर थक गया हो तो। मगर मैं कहीं थकनेवाला हूँ? सिर्फ तीन बार रुका था। फिर दौड़ा।"

विमुग्ध नयनों से भाभी मेरी बातों को सुनती जाती थी। भाभी का एक हाथ मेरे गले के नीचे था, दूसरा हाथ मेरी पीठ पर था; मैं एक हाथ से भाभी के कान के गहने को हिला रहा था। रह रहकर भाभी कोई न कोई प्रश्न छेड़ देती। मैं उसका उत्तर टीका-टिप्पणी-सहित देता। इसी प्रकार से दोनों में घुलमिल कर कितनी देर तक बातें होती रहीं। समय का ज्ञान जरा भी न रहा। जैसे अनन्त काल तक, हम दोनों, बातें करने के लिए ही, वहां लाकर धर दिये गये थे।

भाभी ने प्रश्न किया ही था--"तू अम्मा को ज्यादा चाहता है या मुझको?"

इतने में साहब दादा कमरे में दाखिल हुए। मेरा चेहरा भाभी के सामने रहते हुए भी मैं दरवाजा देख पाता था। मैं मुस्करा कर, यों ही पूछ बैठा--"भाभी?... तुम मुझको ज्यादा प्यार करती हो कि साहब दादा को?"

मुझे और पास समेटकर भाभी ने मेरा मुँह चूम लिया। मैंने भी भाभी का मुँह चूम लिया। इतने में साहब दादा बोल उठे--"दोनों में जब इतने गहन शास्त्रार्थ और सवाल जवाब होता है तब एक दूसरे के बिना रह कहाँ से पायेगा? मगर समय का भी कुछ ज्ञान है? छोटे को जाना भी तो है। कब का आया है, कुछ खयाल है?"

सुनते ही मेरा चेहरा कुम्हला गया, भाभी के ओंठ तक सफेद हो उठे। गिड़गिड़ाकर वह बोली--"जाकर मास्टर साहब से कह नहीं सकते कि मेरी तबियत ठीक होने तक यह मेरे पास ही रहे। कहो तो मैं ही उनके पैरों तले सिर रख आऊँ।"

साहब दादा ने कहा--"उनके हाथ की बात होती तो कब का काम बन जाता? वे तो यों ही कहते हैं कि ज्यादती हो रही है, और यह भी समझते हैं कि तुम क्यों बीमार पड़ गईं।

भाभी इसके आगे कह ही क्या सकती थीं? आँखें बन्द कर लीं। टप-टप बूँदें भाभी की आँखों के कोने से ढुलकने लगीं। उनके हाथ पैर ढीले पड़ गये। तब तक साहबदादा ने कहा--"यह तो मास्टर साहब की ही मेहरबानी है जो उन्होंने बड़े को समझाकर भेज करके इसे बुलवा दिया। वे सब समझते हैं। लाओ, मैं पहुँचा आऊँ, फिर अगले रविवार को आ जायेगा।"

दीर्घ साँस लेते हुए भाभी ने कहा--"सात दिन बाद?"

मैंने भी एक लम्बी साँस ली। आहिस्ते-आहिस्ते भाभी उठ बैठीं। मुझे साथ ले कर रसोई की ओर जाती हुई बोलीं--"थोड़ा कुछ खिला दूँ, तब ले जाना।

साहब दादा ने हाथवाले दोने को भाभी के हाथ में देते हुए कहा--"देखो, मिठाई लाया हूँ। काली जी के पासवाली दूकान की है। देख लेना, कुछ कम तो नहीं है?"

भाभी ने उस दोने को ले लिया। हम दोनों रसोई में गये। बीमारी के समय भाभी जितनी चीजों के नाम ले-लेकर कहती थी कि मैं बहुत आनन्द से खाती हूँ, उनमें से सभी उनमें थीं। कुछ खाया, कुछ जेब में भर लिया, पानी पिया। फिर भाभी का आशीर्वाद लेकर साहब दादा के साथ बाहर आया। दादा वहीं खड़े थे। देखा दादा भी खूब सतर्क हैं। यानी कहीं दादी न देख ले। कुछ दूर तक दादा भी साथ आये। फिर साहब दादा ने मुझे साइकिल पर बैठा लिया और कुछ ही मिनट में बिल्कुल मामा जी के घर के पास पहुँच गये। उतारते हुए साहब दादा ने कहा--"तुम चले जाओ, पूछने पर कह देना कि दादा घर के पास छोड़कर चले गये।"

दो कदम पर घर था ही। मैं चला गया। मुझे अकेले देखकर मामी ने पूछा--"बड़े कहाँ है?"

बिस्तरवाले कमरे की ओर बढ़ते हुए मैंने कहा--"रास्ते से चला गया।"

इतने में अम्मा भी आ गई। सुनकर बोली--"वाहरे! मुझे कुछ चीजें मँगवानी थीं घर से, वह बाहर ही बाहर चला गया? इन लोगों के मारे परेशान हूँ। और तूने बहुत देर की?"

मेरी तबियत भारी थी, अंग-अंग थके हुए से लग रहे थे, बात करने का जी नहीं चाहता था, मैंने झिड़कते हुए कहा--"मैं नहीं जानता। वह इस जहन्नुम में आना नहीं चाहता।"

मामी की किसी टिप्पणी से पहले ही अम्मा ने तड़ से एक चाँटा मेरे मुँह पर जमा दिया। मैं तो भरा हुआ था ही। फटने का रास्ता ढूंढ़ रहा था। चिल्ला-चिल्लाकर घर को सिर पर उठा लिया।

इस काण्ड ने भाभी का मुँह बन्द कर दिया। वह घूर-घूरकर मेरी ओर देखती ही रह गईं। किसी ने पूछा ही नहीं। मैं रोता ही गया। रोने का कारण अम्मा का तमाचा रहा हो या नहीं भाभी से बिछुड़ने की व्यथा तो थी ही। फूट-फूट कर रोता ही गया। बार-बार अम्मा पास अवश्य आती रहीं; किन्तु भ्रातृ-बधू के सामने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन को जिस कुलांगार ने जहन्नुम बताया है, उसे प्यार से इतनी जल्दी समेट भी कैसे लेती ? आगे बढ़ आतीं, परन्तु अजीब धर्म-संकट में पड़ी हुई थीं। बगल से निकल जातीं और कहतीं'--"मैंने कोई इतनी जोर से नहीं मारा कि तू इतना रो रहा है, चुप हो जा, कहती हूँ।"

मैं चुप होने का नाम ही नहीं ले रहा था। अंत में अम्मा उधर से झपटकर आईं; और मेरी पीठ पर दनादन घूंसे पड़ने लगे। मारती जाती थीं और कहती जाती थीं--"ऐसे असभ्य लड़कों को लेकर किसी के घर जाना.... सुअर को,..बिना मारे छोड़ूँगी ही नहीं!.... चुप रह!

मेरा स्वर और तेज हो गया। अबकी मामी बोलीं--"खाली पढ़ाई-लिखाई में अच्छा होने से तो समाज में काम नहीं चलता! शिष्टता भी सिखानी पड़ती है।"

अम्मा की घूसों की उस घनघोर वर्षा तथा अपने सप्तक में भी, मामी की एक एक बात मेरे कानों में पहुँच ही गई। मामी की ओर मुँह किया। रोते-रोते ही, मुँह बिराते हुए, मैंने कहा--"ईं! ईं! ईं ईं ईं!...चुप... र...अ अ...ह डाइन!"

स्थूल शरीर को डोलाते हुए, शरीर भर के अलंकारों को हिलाते हुए, वह उठ खड़ी हुईं। कहा--"क्या कहा बदजात, छोकरे?...मैं डाइन हूँ?...तेरे जैसे एक दर्जन लड़कों को मैंने पेट में भरा...और तू मुझे...जो ते मुँह में आयेगा कहेगा?"

कहते ही कहते वह मेरे पास आ गयीं। इतने में उनकी बड़ी लड़की, पास के कमरे से निकल आयी अपनी माँ को मानो सावधान करते हुए बोली--"छी छी! छोटे को मारोगी क्या?"

अम्मा ने कहा--"मारो! मारो!....उसकी जबान बन्द करो!.....मार ही डालो उसे!"

लपककर मामी ने मेरी गर्दन पकड़ ली और उठाकर खड़ा किया। प्राणपण शक्ति से मैंने मामी को पीछे ढकेला, जिसके लिए वह तैयार न थीं। भारी शरीर लिए धप से वह बैठ गयीं, मैं अलग हुआ। मिस्सीवाले काले-काले दाँतों को इस प्रकार से बा दिया जैसे कि मुझे खा ही जायँगी। रोना छोड़कर गुर्राते हुए मैंने कहा --"जरा चुड़ैल का मुँह देखो....जैसे राक्षसी बनी है....."

सुनकर मामी ने अपने सिर पर अपना हाथ दे मारा। अम्मा मुँह ढाँककर फूट-फूटकर रोने लगीं। शायद, वह परास्त हो गयी थीं। मारकर मुझे चुप कराने का धैर्य खोकर ही स्वयं रोने लगी थीं। साथ-साथ, मामी ने भी रोना आरम्भ किया। मामी की बड़ी लड़की, जो उस कमरे से अभी-अभी निकली थी, वह भी अवाक् होकर खड़ी हो गयी। इतने में मामी मुँह बाये अजीब ढंग से खींच-खींचकर रोने लगीं। काफी रुक-रुककर समतक पहुँचतीं। फलतः मुँह देर-देर तक खुला रहता। लाल-परी भाभी की दी हुई मिठाइयाँ अभी भी दो-चार मेरी जेब में बची थीं। मामी का खुला मुँह देखकर इतनी क्षिप्रता से अपनी जेब में हाथ डालकर, एक मिठाई निकालकर उनके मुँह में डाल दिया कि मैं स्वयम् भी ठीक से देख नहीं पाया तो औरों का क्या।

कच से मामी के दाँतों के बीच पड़कर लड्डू की आवाज होनी थी कि मामी ने--"थू! थू! थू! थू!" आरम्भ किया।

मामी कुछ कहने ही जा रही थीं कि बाहर से मामा आये। मामा को देखकर मामी ने और जोरों से थू! थू! किया! मामा ने कड़कते हुए कहा--"क्या है! हो क्या रहा है घर में! क्यों री सुषमा! क्या है?"

यह प्रश्न बड़ी लड़की से किया गया था। उत्तर दिया मामी ने--"तु...म्हा....रे गुणधर भांजे ने... मुझे मार कर गिरा दिया....और फिर थू! थू! थू! थू!"

अब की मामा को मैंने सुना दिया--"डाइन सी मुँह बाये रो रही थी तो मैंने....देखो मामा...वहीं से मुँह खोलो....दिखा दूँ।"

अपना चेहरा ऐसा बना लिया कि जैसे आज दिन भर में कभी रोया ही नहीं।

प्रसन्नचित्त मामा मुस्कराते हुए बोले--"अच्छा! यह बात है?....देखूँ?"

कहकर उन्होंने मुंह बा दिया। गट से दूसरा लड्डू उनके गले के पास पहुँच गया। मामी गरज उठी--"मुझे मैके भेज दो...अब मैं यहाँ एक दिन भी न रहूँगी।"

मेरे पास बढ़ते हुए लड्डू चबाते-चबाते मामा ने अम्मा की ओर उँगली से दिखाते हुए कहा--"मैं क्या जानूँ? उससे तय करो। उससे गृहस्थी सँभले तो जै दिन चाहो हो आओ!" यह कहते हुए आगे बढ़ आये और मेरा हाथ पकड़कर बोले--"चल रे! हम लोग इतवार मनायें।"

कहते ही कहते बड़ा सा बँधा हुआ दोना अम्मा की ओर बढ़ाते हुए बोले--"लो...सबको दे देना।"

अम्मा के आँसू पता नहीं कि कहाँ चले गये थे। हाथ बढ़ाकर, दोना लेकर उधर चली गयी। मेरा हाथ पकड़े कमरे में प्रवेश करते हुए, मामी को सुनाते हुए मामा ने कहा--"ये किसी रत्नगर्भा के बच्चे थोड़े ही हैं? जो सिर में गोबर के अतिरिक्त कुछ न होगा। इनके पास आइडिया है। कल्पना है। बड़े होने पर कलाकार होंगे। तुम गयी हो इनसे भिड़ने! मजा चक्खो! रोने से और मैके जाने से क्या इनके मस्तिष्क को दमन कर पाओगी..? तुम तो तुम...मैं भी रास्ते में आऊँगा तो ये मेरा लिहाज न करेंगे, उखाड़कर फेंक देंगे। अपना रास्ता बना ही लेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डिप्टी कलक्टर जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति की मेरे विषय में ऐसी राय है देखकर मामी के मुँह से और कोई आवाज न निकली। वह चुपचाप बैठी ही रह गयी। हम लोग अन्दर चले गये। जब मामा का पूरा ध्यान मेरी ओर आया तो वे मेरे हाथों को और दबाकर, माथे पर हाथ लगाकर नाड़ी पकड़ते हुए बोले--देखूँ! ऊपर देख! ...हैं...यह क्या!....सुषमा, थर्मामीटर तो ला।"

थर्मामीटर आया। बुखार देखा गया। १०२.४ था। घर भर में भगदड़ मच गयी। सबके मुँह में एक ही बात 'जोर का बुखार!' 'जोर का बुखार!'

अपने सोने के कमरे में बिस्तर लग गया। मामा ने ही ले जाकर लेटाया। जेब की मिठाइयाँ गिन-गिन कर मामा रखते गये और घोषणा के रूप में बोले--"देखो जी, सब लोग सुन लो! ये सात मिठाइयाँ और अभी जो लाया हूँ उनमें से दस मिठाइयाँ, इस प्रकार से बने.."

मामा के कहने से पहले ही मैंने कहा--"सत्रह!"

मामा बोले--"उसमें और तीन मेरी ओर से जोड़ कर बनेंगी बीस।....बीस मिठाइयों के हुए पाँच आने। उसकी जगह मैं छोटे को दूँगा सोलह आने। यानी.. यह देखो।"

कहते ही कहते जेब से एक रुपया निकालकर 'ठन' से बजा दिया।--"इसकी अच्छी-अच्छी मिठाई खरीद कर जब बुखार उतर जायेगा, तब यह खायेगा।"

कहकर मेरी तकिया के नीचे उस रुपये को रख दिया। उधर अम्मा की तथा मामी की बुरी हालत हो गयी। दोनों अपने-अपने मन में यही सोचने लगीं कि इसके लिए वे ही जिम्मेदार हैं। दोनों आहिस्ते-आहिस्ते आकर मेरी पलँग के पास खड़ी हो गयीं। मामा ने अम्मा से कहा--"चिन्ता की बात नहीं। चपरासी भेजकर डाक्टर को बुलवा लेता हूँ और मास्टर साहब को भी खबर देता हूँ।"

रात को और जोरों का बुखार चढ़ा। मामा, मामी, बहनें, अम्मा, सब लोग मेरे सर के पास बैठे। डाक्टर, बार-बार कपड़ा भिगो-भिगोकर, मेरे सिर पर रखता जाता और कभी-कभी आँखों से आँखें मिलाकर पुकारता 'छोटे!' मैं उत्तर में कहता--"भाभी....मुझे ....ले....चलो!

अम्मा, आँखों में आँसू भरे कहती--"किसी ओझा को बुलाओ।"

ओझा तो नहीं आया। जब हालत काबू से बाहर निकलती जा रही थी, तब यानी ढाई बजे के करीब, आये पिताजी और हरेन् दादा। १०४-५ के बीच में बुखार चढ़ा हुआ था। मैं कभी कहता--'भाभी आ गयी?' कभी कहता--'भाभी मेरी, भाभी है' या 'लालपरी भाभी'

पिताजी और हरेन दादा ने भी बड़ी देर तक मुझे देखा। पिताजी ने पूछा--"कहो हरेन....कुछ समझ में आ रही है?....बुखार तो चढ़ता ही जा रहा है!"

हरेन् दादा ने कहा--"दोनों पर एक ही देवता सवार हैं, मास्टर साहब। इन दोनों को बिना इकट्ठा किये, मेरी एक भी कार्यवाही कारगर न होगी। आप.."

बीच में ही मामा ने कहा--"दूसरा कौन हैं?.. किसकी बात कर रहे हैं ये?"

उत्तर में पिताजी ने कहा--"वही, जिनका नाम छोटे ले रहा है...हम लोगों के घर के बगल में एक परिवार है। उन्हीं के घर की बहू! वह भी दिन डूबे से प्रलाप में बक रही हैं, मुझे छोटे के पास ले चलो, छोटे को बुलाओ। झाड़ फूँक के लिए हरेन को बुलाया था। इसने उन्हें भी देखा। जहाँ दवा नहीं काम देती है, वहाँ दुआ का ही भरोसा है। स्वयम् गौड़जी थक गये तो हरेन को दिखाया। इतने में तुम्हारा आदमी पहुँचा। बिल्कुल एक ही बीमारी है। उसी के लिए हरेन कहता है कि दोनों को एक साथ करके झाड़ेगा। उसी से जरूर ठीक हो जायगा।"

आश्चर्य यह कि अम्मा बोल उठीं--"जरूर एक कर दो, जिलाओ छोटे को!"

कहते ही कहते वह फूट-फूट कर रोने लगी। हरेन् दादा ने ज़ोर से कहा--"अ...लख!"

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

भारत में अँगरेजी राज––(द्वितीय खण्ड): लेखक, श्री सुंदरलाल; प्रकाशक; प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली–६; सचित्र; बड़ा आकार; मूल्य, ८ रुपये।

श्री सुंदरलालजी की इस प्रसिद्ध पुस्तक को भारत-सरकार का प्रकाशन विभाग फिर से छाप रहा है। पहिला खंड कुछ दिन पहिले प्रकाशित हो चुका था जिसकी समालोचना सरस्वती में की जा चुकी है। इस खंड में दूसरे मराठा युद्ध के अंत से सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम तक का इतिहास है। यह पुस्तक बहुचर्चित है। अँगरेजी शासन में यह जब्त हो चुकी थी। देश ने इसका बड़ा आदर किया था और इसने स्वतंत्रता-संघर्ष के युग में विदेशी शासन के विरुद्ध भावना उत्पन्न करने में बड़ा काम किया था। अतएव इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व है और इस दृष्टि से यह पढ़ने योग्य है। जिस युग में यह पुस्तक लिखी गई थी उसमें वस्तुनिष्ठ इतिहास लिखना कठिन था। किंतु अब अँगरेजी राज्य समाप्त हो गया है और अब हम उसका अधिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करके वास्तविकता के निकट पहुँच सकते हैं। अतएव राजनीतिक पक्षपात और पूर्वाग्रहों से मुक्त विद्वानों को––जो सत्य के अन्वेषी हों––इस ओर शोध-कार्य में लगना चाहिए। तभी ऐसा इतिहास लिखा जा सकेगा जो एकांगी न हो और जो वास्तविकता का निकटतम चित्रण कर सके। फिर भी, जिस युग में यह पुस्तक लिखी गयी थी, उसमें इसका लिखना साहस और जोखिम का काम था। यह अपना काम कर चुकी। यह इतिहास की पुस्तक स्वयं इतिहास का अंग बन गयी है, और उस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तथा प्रत्येक पुस्तकालय में रखने योग्य है। हमें यह देखकर खेद हुआ कि इसमें जो कागज लगाया गया है वह काफी सफेद नहीं है। भारत-सरकार का प्रकाशन विभाग न तो इतना दरिद्र है और न इतना साधनहीन कि अच्छा कागज न लगा सके। छपाई का स्तर भी अच्छा नहीं है। किसी पृष्ठ में बड़ी हल्की, तो किसी में बड़ी गहरी स्याही है। १६ रुपये मूल्य की पुस्तक इस प्रकार छपे, यह बहुत प्रशंसा की बात नहीं है।

भारतीय अब्दकोश––प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना। सजिल्द, बड़ा आकार, पृष्ठ संख्या ७३८ मूल्य, ८ रुपये।

अब्दकोश (इयर बुक) के प्रकाशन की कल्पना बहुत सुंदर है। श्री र० वि० धुलेकर कई वर्ष तक हिंदी में अब्दकोश निकालते रहे जो बहुत उपयोगी था। इस अब्दकोश की भी रूपरेखा बहुत अच्छी है। इसमें ब्रह्माण्ड, विश्व और भारत संबंधी उपयोगी और दैनिक आवश्यकता की जानकारी दी गयी है। जहाँ तक रूपरेखा और विषय विभाजन का प्रश्न है, इसकी योजना बहुत अच्छी है। किंतु इसकी तैयारी में जितनी सावधानी आवश्यक है वह नहीं बरती गयी। एक दो उदाहरण काफी होंगे। भारत के दर्शनीय स्थानों का वर्णन करते हुए पृष्ठ २२८ पर श्रावस्ती को गोरखपुर जिले में बतलाया गया है जब कि वह गोंडा की सीमा पर बहराइच जिले में है। इससे भी भयंकर भूल पृष्ठ २३९ पर है जहाँ ग्वालियर को राजस्थान में बतलाया गया है। भारतीय नामों का शुद्ध होना भी ऐसे संदर्भ ग्रंथों में आवश्यक है। पृष्ठ २३७ पर किर्लोसकरवाड़ी को 'किर्लोस्करबारी' लिखा है। भारतीय प्रामाणिक प्रकाशनों में ऐसी भूलें अशोभनीय हैं। इससे संदर्भ ग्रंथ की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता नष्ट हो जाती है। परिषद को चाहिए कि प्रकाशन से पहिले अब्दकोश को विशेषज्ञों से सावधानी से शुद्ध करा लिया करें। किंतु प्रयास स्तुत्य है और यदि आँकड़ों और तथ्यों की प्रामाणिकता और शुद्धता पर पूरा पूरा ध्यान दिया जाय तो यह ग्रंथ हिंदी में बड़ा महत्वपूर्ण और उपयोगी संदर्भ ग्रंथ हो सकता है।

भारत-तथ्य और आँकड़े––प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली। मूल्य तीन रुपये।

यह अँगरेजी प्रकाशन "फैक्टस एबाउट इंडिया" का अनुसरण है।इसमें भारत संबंधी सामान्य, आर्थिक तथा सांस्कृतिक अद्यतन, उपयोगी एवंम् रोचक तथ्य तथा आँकड़े दिये गये हैं। ये आँकड़े सरकारी विभागों से लिए गये हैं और प्रामाणिक है। अधिकांश आँकड़े १९५९ तक के हैं। इस पुस्तक से देश की उन्नति का बोध होता है तथा उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। यह भारत संबंधी अत्यन्त उपयोगी संदर्भ ग्रंथ है।

हिंदी साहित्य को विदर्भ की देन––(पूर्वार्द्ध) ले० प्रयागदत्त शुक्ल। प्रकाशक, विदर्भ हिंदी साहित्य सम्मेलन, नागपुर। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य, चार रुपया।

विदर्भ पुराने मध्यप्रदेश का अंग था। आज वह महाराष्ट्र राज्य का भाग है। इसलिए इस पुस्तक में वास्तविक विदर्भ के अतिरिक्त पुराने मध्यप्रदेश के उन लोगों का वर्णन भी हो जो कभी विदर्भ से संपर्क में आये हों। आरंभिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग में विदर्भ में हिंदी के प्रवेश और प्रचार का अच्छा विवेचन है। पुस्तक के पढ़ने से मन पर यह प्रभाव पड़ता है कि विदर्भ में हिंदी का प्रचार मुख्यतया संतों की कृपा और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण हुआ। वहाँ उसका आज भी स्थान है। पुस्तक हिंदी के इतिहास की एक उपयोगी और महत्वपूर्ण कड़ी है। आरंभिक भाग जो अपेक्षाकृत संक्षेप में लिखा गया है विस्तृत वर्णन और अन्वेषण की अपेक्षा करता है। पुस्तक महत्वपूर्ण है।

कुट्टतीमतम्——अनुवादक, अत्रिदेव विद्यालंकार। प्रकाशक, इंडोलाजिकल बुक हाउस, सी० के ३८/१६ बाँस फाटक, वाराणसी। सजिल्द, पृष्ठ २०८+२८ मूल्य ६ रुपये।

कुट्टतीमतम् कश्मीर नरेश जयापीड़ के प्रधानमंत्री कवि दामोदर गुप्त की रचना है। यह ग्रंथ आठवीं शती में लिखा गया था। बेरीडेल कीथ के शब्दों में "भारतीय वेश्या-साहित्य का यह एक प्राचीन ग्रंथ है। इसमें एक युवती वेश्या को शिक्षा दी गयी है उसे बराबर, केवल सम्पत्ति की इच्छा रखते हुए ही, किस प्रकार चाटुकारिता की समस्त कलाओं का प्रयोग और कृत्रिम प्रेम द्वारा अपने लिए धन कमाना चाहिए।" पुस्तक में १०५९ श्लोक हैं। मूल श्लोक देकर नीचे उसका अनुवाद दे दिया गया है। अनुवाद अच्छा और संतोषजनक है। आरंभ में डा० सूर्यकान्त ने एक छोटी सी भूमिका में ग्रंथ और उसके कर्ता के संबंध में कुछ ज्ञातव्य बातें दी हैं। हमें इस प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का हिंदी अनुवाद देखकर प्रसन्नता हुई। इससे प्रकारान्तर से प्रायः बारह सौ वर्ष पुराने भारत की सभ्यता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पुस्तक संग्रहणीय है।

अब्दुर्रहीम खानखाना——ले० डा० समरबहादुरसिंह प्रकाशक, साहित्य सदन, चिरगाँव, (झांसी) सजिल्द, पृष्ठ ४३६ सचित्र। मूल्य, १० रुपये।

यह शोध निबंध लखनऊ वि० वि० की हिंदी डाक्टरेट के लिए प्रस्तुत किया गया था। खानखाना के पिता बैरम खां अकबर की बाल्यावस्था में उनके अभिभावक थे। उनकी हत्या के बाद अकबर ने बालक रहीम का पालन-पोषण किया और उन्हें अपने साम्राज्य में अनेक उच्च पद दिये। किंतु खानखाना का ऐतिहासिक महत्त्व उनके राजनीतिक कार्यों के लिए नहीं, उनकी साहित्यिक प्रतिभा और विशालहृदयता के कारण है जिससे प्रेरित होकर उन्होंने इस देश की भाषा और साहित्य की सेवा ही नहीं की, प्रत्युत अपने दरबार में हिंदी, संस्कृत तथा फारसी विद्वानों को आश्रय देकर उन्हें एक सामान्य मिलन स्थान भी दिया। उनके दोहे और बरवे हिंदी की अमूल्य निधि हैं। उनके दोहों की सरसता और चुटीलापन अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इस ग्रंथ में २३१ पृष्ठों में खानखाना का शोधपूर्ण जीवनवृत्त दिया गया है, तथा ७५ पृष्ठों में उनके साहित्य का मूल्यांकन किया गया है। १०८ पृष्ठों में उनके दोहे, बरवे, बरवे नायिकाभेद, मदनाष्टक, मिश्रित भाषाओं के छंद, प्रकीर्णछंद तथा संस्कृत रचनाएँ दी गयी हैं। अंत में कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टियाँ हैं खानखाना पर ऐसा सर्वांगपूर्ण और प्रामाणिक हिंदी ही में नहीं, जहाँ तक हमें मालूम है, किसी भाषा में नहीं लिखा गया। यह ग्रंथ हिंदी के साहित्य भंडार को समृद्ध करता है और खानखाना के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व का संतुलित एवंम् सजीव चित्रण करके उनके साहित्य को समझने में सहायता करता है। रहीम ने हिंदी की जो सेवा की है, और जो मूल्यवान् साहित्य हमें दिया है, वह भुलाया नहीं जा सकता। हिंदी का गौरव समझने के लिए रहीम का अध्ययन आवश्यक है, और यह ग्रंथ उस अध्ययन में बड़ा सहायक होगा।

नाट्य कला मीमांसा——डा० सेठ गोविंददास। प्रकाशक, सूचना तथा प्रकाशन संचनालय, मध्य प्रदेश, भोपाल, सजिल्द। बड़ा आकार। पृ० १९४+६। मूल्य, साढ़े तीन रुपये।

सन् १९६० में मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् ने से० गोविंददास जी को नाट्यकला पर चार व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया था। ये व्याख्यान विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में दिये गये थे। इस पुस्तक में उन चारों भाषणों को संग्रह करके प्रकाशित किया गया है। सेठ गोविंद दास स्वयं नाटककार हैं। यही नहीं, उन्होंने नाट्यशास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन किया है और उन्हें रंग मंच की भी जानकारी है। अतएव वे इस विषय पर बोलने के सर्वथा अधिकारी हैं। इन चारों भाषणों को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि उनसे नाट्यशास्त्र के इतिहास, उसके सिद्धान्त, भारतीय भाषाओं के नाटकों तथा रंग मंच का अच्छा ज्ञान हो जाता है। वास्तव में यह पुस्तक नाट्यशास्त्र और नाट्यकला की प्रवेशिका पुस्तक है। नाटक और नाट्यशास्त्र में अभिरुचि रखने वाले पाठकों और साहित्य के विद्यार्थियों की यह बड़े काम की है। भाषा और शैली अत्यंत सरल है।

फतेह प्रकाश——सम्पादक, श्री शूरवीर सिंह पँवार। प्र० भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़। मूल्य, तीन रुपये।

टेहरी गढ़वाल का राजवंश साहित्य और कला का आश्रयदाता रहा है। एक विशिष्ट पहाड़ी चित्रकला शैली का उद्भव और विकास इन्हीं राजाओं की छत्र-छाया में हुआ। हिमालय के दुर्गम पर्वतों के बीच बसा गढ़वाल का क्षेत्र मुसलमान काल में स्वतंत्र हिंदू राज्य था और बद्री नारायण का पुनीत स्थान इसी के अंतर्गत था। इस वंश में महाराज फतेहशाह नामक एक अत्यंत उदार, प्रतिभाशाली और साहित्य रसिक राजा हुए। भूषण, मतिराम आदि कितने ही हिंदी के कवि पहिले की गढ़वाल राज्य की उदारता और साहित्यरसिकता का परिचय पा चुके थे। महाराज फतेहशाह के आश्रय में क्षेमराम नामक कवि, जिनका कविता का उपनाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतन थां, रहते थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता के नाम पर पिंगल का यह ग्रंथ रचा। यह ब्रजभाषा में है और इसमें ऐसे शब्द और मुहावरे आते हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि कवि या तो ब्रज मंडल का था या वहाँ काफी दिनों रह चुका था। अभी तक यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ था। गढ़वाल राजवंश के एक साहित्य प्रेमी सदस्य केप्टेन शूरवीर सिंह जी के संग्रह में इसकी पुरानी प्रति थी। उन्होंने इसका सम्पादन करके इसे प्रकाशित कर दिया है। आरंभ में अपनी प्रस्तावना में विद्वान् सम्पादक ने गढ़वाल राजवंश का मनोरंजक वर्णन दिया है और इस ग्रंथ तथा इसके रचयिता के सम्बन्ध में विवेचनापूर्ण जानकारी दी है। इससे पुस्तक का महत्त्व बढ़ गया है। अलीगढ़ वि० वि० के हिंदी प्राध्यापक डा० हरिवंश लाल शर्मा ने इसकी प्रस्तावना लिखी है जिसमें लक्षण ग्रंथों का विवेचन करके इस काव्य की समीक्षा की है। फतेह प्रकाश हिंदी के लक्षण ग्रंथों की एक अमूल्य कड़ी है और उसके प्रकाशन से हिंदी काव्य शास्त्र की महत्त्वपूर्ण सेवा हुई है। इस विषय में रुचि रखनेवालों के लिए यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इसका एक महत्त्व यह भी है कि गढ़वाल ऐसे दुर्गम प्रदेश में भी वहाँ के राजा इतने साहित्यरसिक होते थे, और वहाँ साहित्यक हिंदी का इतना प्रचार था कि फतेह प्रकाश ऐसा उच्चकोटि का शास्त्रीय ग्रंथ तैयार हो सका। इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ को प्रकाश में लाने के लिए केप्टेन शूरवीर सिंह जी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

साहब बीबी गुलाम (उपन्यास)——मूल लेखक, विमल मित्रा। अनु० हंसकुमार तिवारी। प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली। सजिल्द। पृ० ६०० मूल्य, १० रुपये।

यह बँगला का एक आधुनिक प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। घटनाओं की नाटकीय विविधता, पात्रों का कलापूर्ण और मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा पिछली शती के समाज का सजीव रेखांकन इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। यह बहुत ही मनोरंजक उपन्यास है। अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है और पढ़ते समय पाठक को यह आभास नहीं होता कि वह अनूदित ग्रंथ पढ़ रहा है। हमारी सम्मति में अनुवाद की सफलता के लिए इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। उपन्यास प्रेमियों को इस उच्च कोटि के उपन्यास को अवश्य पढ़ना चाहिए।

मोतीलाल नेहरू——एक जीवनी। ले० सेठ गोविंद दास। प्र० मध्यप्रदेश मोतीलाल नेहरू जन्म शताब्दि समारोह समिति, भोपाल। सजिल्द और सचित्र। मूल्य, ढाई रुपये।

हिंदी में पं० मोतीलाल नेहरू की जितनी जीवनियाँ हमने देखीं, हमें उन सब में यह श्रेष्ठ मालूम हुई। इसमें उनके आरंभिक जीवन पर सरसरे ढंग से विचार किया गया है। मुख्य बल उनके राजनीतिक जीवन पर है। किन्तु उनके राजनीतिक जीवन का जो वर्णन दिया गया है वह प्रामाणिक, संतुलित और सर्वांगीण है। परिशिष्ट में उनका वह पत्र भी दे दिया गया है जो उन्होंने महात्मा जी को उस समय लिखा था जब इस बात की शिकायत की गयी थी कि कांग्रेसी होते हुए भी उन्होंने किसी पार्टी में शराब पी ली थी। यह पत्र उनके व्यक्तित्व और चरित्र की बहुत अच्छी व्याख्या है। इन सुन्दर और महत्त्वपूर्ण चित्रों से यह पुस्तक अलंकृत है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

कोणार्क——(नाटक) ले० श्री जगदीशचंद्र माथुर। प्रकाशक, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। सजिल्द, मूल्य, साढ़े तीन रुपये।

श्री माथुर का यह नाटक अत्यंत सफल हुआ है। यह इसका सातवां मुद्रण है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि इस बार लेखक ने इसमें कई महत्त्वपूर्ण संशोधन किये हैं जो कुछ तो अभिनय की सुविधा की दृष्टि से हैं, और कुछ नयी जानकारी के कारण। इसमें संदेह नहीं कि इन परिवर्तनों और परिवर्द्धन के कारण नाटक पहिले से भी अधिक ग्राह्य और सुन्दर हो गया है। कोणार्क उड़ीसा में एक प्रसिद्ध मंदिर है। वह प्राचीन भारतीय वास्तु शिल्प का उत्कृष्टतम नमूना है। उसके असंपूर्ण रहने और मग्न होने की कहानी बड़ी करुण और मार्मिक है। इस नाटक का प्रेरणा-स्रोत वही मंदिर है जिसमें एक बीता-युग साकार और जीवित होकर हमारे सामने आ जाता है। इस नाटक में उस युग का भीषण संघर्ष हमारे सामने मूर्तिमान् हो उठता है और शिल्पी की आहत आत्मा हमें समवेदना और सहानुभूति से अभिभूत कर देती है। यह नाटक शक्तिशाली है क्योंकि हमारे सहज मनोभावों को भली भाँति जागरित कर देता है। इस बार इसमें एक नयी 'टेकनीक' का प्रयोग किया गया है जो शायद लेखक के रेडियो नाटक के सम्पर्क से विकसित हुई है। रंगमंच पर अभिनीत नाटकों में वह विधि कितनी सफल होगी, इसको इस नये संस्करण का अभिनय देख कर ही कहा जा सकता है। आधुनिक हिंदी नाटकों में 'कोणार्क' का अपना विशिष्ट स्थान है और हम विश्वास है कि अपने इस नये रूप में वह पहिले से भी अधिक लोकप्रिय होगा।

संदर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK
यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी की हिमायत

यह कहने की जरूरत नहीं कि स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी के बहुत बड़े हिमायती थे। हिन्दी के पक्ष में इन्होंने "ब्राह्मण" में बहुत दफे अच्छे अच्छे लेख लिखे। एक दफा "फतेहगढ़-पंच" ने इनकी हिमायत के खिलाफ कुछ लिखा और हिन्दी में दोषोद्भावना की। इस पर प्रतापनारायण जामे से बाहर हो गये। आपने "पंच" की दलीलों का बड़ी ही योग्यता से खण्डन किया। कई महीने तक यह विवाद जारी रहा और प्रतापनारायण "पंच" की बे-सिर-पैर की बातों की असारता दिखलाते रहे। हिन्दी के विषय में आपका उपदेश यह था—

चहहु जु साँचौ निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत-सन्तान॥
जपो निरन्तर एक जबान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥१॥
तबहिं सुधरिहै जन्म-निदान।
तबहिं भलो करिहै भगवान॥
जब रहिहै निशिदिन यह ध्यान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥२॥

इससे इनका देशाभिमान भी सिद्ध होता है।

कविता के नमूने

पण्डित प्रतापनारायण की कविता के कुछ नमूने देकर हम इस लेख को पूरा करना चाहते हैं—

नोन, तेल, लकड़ी, घासहु पर टिकस लगै जहँ
चना, चिरौंजी मोल मिलै जहँ दीन प्रजा कहँ
जहाँ कृषी, वाणिज्य, शिल्प, सेवा सब मांहीं
देशिन के हित कछू तत्व कहुँ कैसहु नाहीं॥१॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ ऋन भारन
तहँ तिनकी धनकथा कौन जो गृही सधारन
जो अनुशासन करन हेत इत पठये जाहीं
ते बहुधा बिन काज प्रजा सों मिलत लजाहीं॥२॥

लोकोक्ति शतक

छोंड़ि नागरी सुगुण आगरी उर्दू के रँग राते
देशी वस्तु विहाय विदेशिन सो सर्वस्व ठगाते
मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख जिनकर यह ढँग दीठा
"घर की खाँड़ खुरखुरी लागै चोरी का गुड़ मीठा"॥१॥
नहिं सीखत सद्गुण करि नेम
निज हठ तजि न प्रचारत प्रेम
परदेशिन सेवत अनुरागे
"सब फल खाय धतूरन लागे"॥२॥

तृप्यन्ताम्

केहि बिधि वैदिक कर्म्म होत कब
कहा बखानत ऋक, यजु, साम।
हम सपनेहूं में नहिं जानैं,
रहैं पेट के बने गुलाम।
तुमहिं लजावत जगत जनम लै
दुहू लोकन में निपट निकाम
कहैं कौन मुख लाय हाय फिरि
ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम्॥१॥

× × ×

देख तुम्हारे फरज़न्दों का
तौरो-तरीक तुआमो-कलाम
खिदमत कैसे करूं तुम्हारी
अकल नहीं कुछ करती काम।
आबे गंग नजर गुजरानूँ
या कि मये-गुलगूं का जाम
मुंशी चितरगुपत साहब
तसलीम कहूं या तिरपिंताम॥२॥

इन नमूनों से प्रतापनारायण का स्वदेश और स्व-भाषा सम्बन्धी प्रेम टपका पड़ता है। स्वदेश-दशा का चित्र भी इनमें अच्छा देख पड़ता है।

फुटकर कविता

अपने लेखों और चिट्ठियों में ये कभी कभी बैसवारे की अपनी ठेठ देहाती बोली के वाक्य लिख दिया करते थे। उनमें अपूर्व रस भरा रहता था। इस तरह देहाती बोली में इन्होंने कुछ कविता भी की है। ऐसी कविता का एक नमूना सुनिए। एक वृद्ध आदमी अपनी दशा क वर्णन करता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाय बुढ़ापा तोरे मारे
अबतो हम नकन्याय गयन
करत धरत कुछु बनतै नाहीं
कहाँ जान और कैस करन।
छिन भरि चटक छिनै मां मद्धिम
जस बुझात खन होय दिया
तैसे निखवख देखि परत हैं
हमरी अक्किल के लच्छन ॥१॥
अस कुछु उतरि जाति है जी ते
बाजी बेरिया बाजी बात
कैस्यौ सुधिही नाहीं आवति
मूँडुइ काहे न दै मारन।
कहा चहौ कुछु निकरत कुछु है
जीभ रांड का है यहु हालु
कोऊ याकौ बात न समुझै
चाहै बीसन दाँय कहन ॥२॥
दाढ़ी नाक याक मां मिलि गै
बिन दाँतन मुँहुँ अस पोपलान
दढ़िही पर बहि बहि आवति है
कबौं तमाखू जो फांकन।
बार पाकि गे रीरौ झुकि गै
मूँड़ौ सासुर हालन लाग
हाथ पाँय कुछु रहे न आपनि
केहिके आगे दुखु र्वावन ॥३॥

इस कविता में बुढ़ापे का बहुतही अच्छा फोटो है। कविता खूब सरस है। पर हमें डर है कि जो इस बोली को अच्छी तरह नहीं जानते वे इसका पूरा मजा न पावेंगे। जिन लोगों का यह खयाल है कि किसी विशेष प्रकार की भाषा या बोली में ही अच्छी और सरस कविता हो सकती है, वे देखें कि महा गँवारी बोली में भी रसवती कविता हो सकती है। पर, हाँ, कवि प्रतिभावान् होना चाहिए। प्रतापनारायण ने आल्हा तक में कविता की है और वह भी सरस और हृदयहारिणी है। इस पिछली कविता का गोरक्षाविषयक एक नमूना देखिए--

गैया माता तुमका सुमिरों
कीरति सबते बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लरिकन कै
पुरिखन बैतरनी देउ तारि॥
तुम्हरे दूध दही की महिमा
जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका
गोबर लगे पवित्तर होय ॥१॥
जिनके लरिका खेती करिकै
पालैं मनइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रछ्या मां
जो कुछु जतन करौ सो थ्वार॥
घास के बदले दूध पियावैं
मरि कै देंय हाड़ औ चाम।
धनि वह तन मन धन जो आवै
ऐसी जगदम्मा के काम ॥२॥
आल्हखण्ड की पोथी लैकै
द्याखौ तनुक लिखा कस आय।
"जहाँ रोसैंयाँ है ऊदन कै
भुरवा मुगल पछारै गाय"॥
को अस हिन्दू ते पैदा है
जो अस हालु देखि एक साथ।
रकत के आँसन रोय न उठिहै
माथे पटकि दुहत्थौ हाथ॥३॥
सब दुख सुख तो जैसे तैसे
गाइन की नहिं सुनै गुहार।
जब सुधि आवै मोहिं गैयन की
नैनन बहे रकत की धार॥
हियां की बातैं तौ हियनैं रहिं
अब कम्पू के सुनौ हवाल।
जहाँ के हिंदू तन मन धन ते
निसदिन करैं धरम प्रतिपाल ॥४॥

प्रतापनारायण के आल्हा का नमूना आप देख चुके। अब उनकी भक्ति-रस में सराबोर कविता का एक उदाहरण लीजिए--

आगे रहे गनिका गज गीध
सुतौ अब कोऊ दिखात नहीं हैं।
पापपरायन ताप-भरे
परताप समान न आन कहीं हैं॥
हे सुखदायक प्रेमनिधे
जग यों तो भले औ बुरे सबही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनदयाल औ दीन प्रभो
तुमसे तुमहीं हमसे हमहीं हैं ॥१

इस पद्य की हम तारीफ नहीं कर सकते। सरस कविता का यह बहुत ही अच्छा नमूना है।

उर्दू कविता

अब इनकी थोड़ी सी उर्दू कविता सुनिए। यह कविता एक तरह के समस्यासमूह की पूर्ति है। इसमें पहली पंक्ति इनकी है, दूसरी और किसी की। पर, मेल दोनों का खूब मिल गया है—

ग़ज़ल

वो बदख़ू राह क्या जानै वफ़ा की।
'अगर ग़फ़लत से बाज़ आया जफ़ा की' ॥१॥
न मारी गाय गोचारन किया बन्द।
'तलाफ़ी की जो ज़ालिम ने तो क्या की' ॥२॥
मियाँ आये हैं बेगारी पकड़ने।
'कहे देती है शोखी नकशे पा की' ॥३॥
पुलिस ने और बदकारों को शह दी।
'मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' ॥४॥
जो काफिर कर गया मन्दिर में बिद्अत।
'वो जाता है दुहाई है खुदा की' ॥५॥
शबे कतलागरे के हिन्दुओं पर।
'हकीकत खुल गई रोजे जजा की' ॥६॥
खबर हाकिम को दें इस फिक्र में हाय।
'घटा की रात और हसरत बढ़ा की' ॥७॥
कहा अब हम मरे साहब कलक्टर।
'कहा मैं क्या करूँ मरजी खुदा की' ॥८॥
जमीं पर किसके हो हिन्दू रहें अब।
'खबर ला दे कोई तहतुस्सरा* की' ॥९॥
कोई पूँछै तो हिन्दुस्तानियों से।
'कि तुमने किस तवक्का पर वफा की' ॥१०॥
उसे मोमिन न समझो ऐ बरहमन।
'सताये जो कोई खिलकत खुदा की' ॥११॥

यह १५ दिसम्बर १८८३ के "ब्राह्मण" में प्रकाशित हुई थी। उस समय गोरक्षा-विषयक खूब चर्चा चल रही थी। आगरे में हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़ा भी उसी दरमियान में हुआ था। बेगारी पकड़ने के विषय में भी "ब्राह्मण" में कई लेख निकले थे। इन्हीं बातों को लक्ष्य करके "बरहमन" साहब ने यह गजल गाई थी। उर्दू में आप अपना तखल्लुस "बरहमन" लिखते थे। इसी तरह की एक और कविता सुन लीजिए—

विवादी बढ़े हैं यहाँ कैसे कैसे।
'कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे कैसे' ॥१॥
जहाँ देखिए म्लेच्छ-सेना के हाथों।
'मिटे नामियों के निशां कैसे कैसे' ॥२॥
बने पढ़ के गौरंड-भाषा द्विजाती।
'मुरीदाने पीरे-मुगां कैसे कैसे' ॥३॥
बसो मूर्खते देवि आर्यों के जी में।
'तुम्हारे लिए हैं मकां कैसे कैसे' ॥४॥
अनुद्योग आलस्य सन्तोष सेवा।
'हमारे भी हैं मिहरबां कैसे कैसे' ॥५॥
न आई दया . . गो भक्षियों को।
'तड़पते रहे नीमजां कैसे कैसे' ॥६॥
विधाता ने यां मक्खियाँ मारने को।
'बनाये हैं, खुशरू जवां कैसे कैसे' ॥७॥
अभी देखिए क्या दशा देश की हो।
'बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे' ॥८॥
हैं निर्गन्ध इस भारती-वाटिका के।
'गुलो लाल ओ अरगवाँ कैसे कैसे' ॥९॥
हमैं वह दुखद हाय भूला है जिसने।
'तवाना किये नातवां कैसे कैसे' ॥१०॥
प्रताप अपनी (अब तो ?) होटल में निर्लज्जता के।
'मजे लूटती है जबां कैसे कैसे' ॥११॥

शृंगार-रस-की कविता

कानपुर के कवियों ने जो "रसिकसमाज" नाम का कविसमाज स्थापित किया था, उसके प्रतापनारायण जी बड़े उत्साही मेम्बर थे। हम उनके कुछ छन्द चुनकर पाठकों को भेंट करते हैं। प्रतापनारायण भी शृंगाररस के प्रेमी थे। ये उदाहरण भी उसी रस के हैं।

(पपिहा जब पूँछिहै पीव कहाँ)
बन बैठी है मान की मूरति सी
मुख खोलति बोलै न नाहि न हाँ।

* तहसुस्सरा= पाताल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम हीं मनुहारि कै हारि परे
सखियान की कौन चलाई कहाँ॥
बरखा है प्रतापजू धीर धरो
अब लों मन को समुझायो जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू
पपिहा जब पूँछिहै पीव कहाँ॥१॥
(बीर बली धुरवा धमकावैं)
बूड़ि मरैं न समुद्र में हाथ
ये नाहक हाथ निछीछे डुबावैं।
का तजि लाज गराज किये
मुख कारो लिये इतही उत धावैं॥
नारि दुखारिन पै बज मारे
वृथा बुँदियान के बान चलावैं।
बीर हैं तो बल बीरहि जाय कै
बीर बली धुरवा धमकावैं॥२॥
(देह धरे को यहै फल भाई)
नैनन में बसै साँवरो रूप
रहे मुख नाम सदा सुखदाई।
त्यों श्रुति में व्रज केलिकथा
परिपूरण प्रेम प्रताप बड़ाई॥
कोऊ कछू कहै होय कहूँ कछु
पै जिय में परवाहि न लाई।
नेह निभै नंदनंदन सों नर-
देह धरे को यहै फल भाई॥४॥

शकुन्तला

पण्डित प्रतापनारायण ने शकुन्तला का जो अनुवाद हिन्दी में किया है वह अनुवाद नहीं कहा जा सकता; हाँ स्वतन्त्र या स्वच्छन्द अनुवाद कहा जा सकता है। मूल के भावों को इन्होंने अनुवाद में बहुत कुछ घटा बढ़ा दिया है। इस बात को इन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है। ऐसा करने से अगर कहीं कहीं मूल का मजा जाता रहा है तो कहीं कहीं अधिक भी हो गया है। हम यह नहीं कह सकते कि यह अनुवाद सब कहीं अच्छा ही हुआ है; पर इसका अधिक अंश रोचक, रसवान् और मनोहर है।

चौथे अंक की बात है। कण्व प्रवास से वापस आ गये हैं। उनकी आज्ञा से उनका शिष्य यह देखने के लिए कुटी से बाहर निकला है कि कितनी रात बाकी है। इधर उधर देखने पर उसे मालूम हुआ कि प्रातःकाल हो गया। तब वह कहता है—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥१॥
अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टि न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि॥२॥

प्रतापनारायण ने इसका अनुवाद नहीं किया। सिर्फ इसकी छाया लेकर उन्होंने जो कविता लिखी है वह इस प्रकार है—

प्रश्नावली

कैसी कमनीय है प्रभा प्रभातकाल की।
दिनकर करि इत उजास, इत लहि ससि तेज नास,
कै रहे दसाप्रकास मानो जग-जाल की।
कुमुदिनि सोभा-बिहीन, विरहिनि इव दुखित दीन,
लागति नैनन मलीन देखत दिसि ताल की।
दरभ की कुटीन त्यागि, उठहिं मोर जागि जागि,
बेदन ढिग लागि लागि ऐंडनि मृगमाल की।
इहि छिन सब साधु सन्त, प्रेम-पूरि ह्वै इकन्त,
सुमिरत महिमा अनन्त त्रिभुवन महिपाल की॥१॥

दोहा

तो हमहूँ गुरु देव सों करैं निवेदन जाय।
नाथ होम बेला भई अरुन उदित दरसाय॥२॥
बदरि बिरिछ के पात पै ओस-बुंद छबि छाय।
कैसी लगति सुहावनी अरुन उदय दुति पाय॥४॥

सवैया

सोई निसापति जो गिरि मेरु पै
पाँव धरे बिचरै निसि मांहीं।
त्यों तम तोमहिं नासत जासु
मरीचिका श्रीहरि धाम लौं जाहीं॥
तेज गंवाय गिरै नभ ते सोउ
भोर समै दबि कै रबि पांहीं।
या जग मांहि बड़ेइ बड़ेन की
दीसति है थिर संपति नाहीं॥५॥

प्रतापनारायण का अनुवाद इसी तरह का है। इसी से उसकी योग्यता का अन्दाज पाठक कर सकते हैं। पिछला सवैया अपूर्व है; याद रखने लायक है; शिक्षा ग्रहण करने लायक है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

हरिऔधजी के शिष्यों का विद्रोह और उनकी सरलता

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध बड़े सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके अनेक शिष्य थे जिनमें चोंचजी भी थे। एक बार किसी कारण से उनके शिष्यों ने विद्रोह कर दिया और लगे उनकी समालोचना करने और उन पर व्यंग्यात्मक कविता लिखने। चोंचजी ने तुलसीदासजी की कवितावली के छंदों के अनुकरण में तीन प्रसिद्ध व्यंग्यात्मक छंद लिखे जिनकी आरंभिक पंक्ति यों हैं।

"हरिऔध के द्वारे सकारे गया,
कर दाढ़ी पै फेरते वे निकसे"
लख के वह रूप महाकवि का
ठग सा गया, जो न ठगे धिक से (वे)"

बेचारे हरिऔधजी इन व्यंग्यों से काफी परेशान हुए। किंतु विद्रोही शिष्य इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने उनके काव्य की उल्टी-सीधी आलोचना आरंभ की। प्रिय प्रवास को लेकर जिस प्रकार की कठहुज्जतें की गयीं उनके दो नमूने देखिए--

"प्रिय प्रवास भारतीय परम्परा के विरुद्ध है।"

"क्यों ?"

"उसमें मंगलाचरण नहीं है।"

"मंगलाचरण का संकेत प्रथम छंद के प्रथम शब्द 'दिवस' से दिया गया है जो शास्त्रानुसार मंगलात्मक है।"

"किंतु उसी पंक्ति में उसका 'अवसान समीप' करके उसे अमंगलात्मक कर दिया गया है।"

× × ×

"शब्दों का प्रयोग चिंत्य है।"

"कैसे ?"

"प्राणप्यारा शब्द का प्रयोग ही देखिए।

"उसका क्या दुरुपयोग किया गया है ?"

"प्राणप्यारा तो पति के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रिय प्रवास में पुत्र के लिए प्रयोग किया गया है।"

हरिऔधजी इस प्रकार की आलोचनाओं, व्यंग्यों से बहुत दुखी हो गये--विशेषकर इसलिए कि यह सब उन्हीं के शिष्य कर रहे थे। किंतु वे चुप रहे। छुट्टियों में वे काशी से अपने घर निजामाबाद चले गये। इस बीच शिष्यों का रोष भी शांत हो गया था और चोंचजी यह सुनकर कि हरिऔधजी बहुत दुखी हैं, उनसे क्षमा-याचना करने के लिए निजामाबाद गये। वे पहिले भी वहाँ हो आये थे और हरिऔध जी के परिवार से भली भांति परिचित थे। इस बहकी हुई भेड़ को फिर बाड़े में लौटा हुआ देख कर हरिऔधजी बहुत प्रसन्न हुए। गुरु-शिष्य में बड़े प्रेम से बातचीत हुई। हरिऔधजी के परिवारवालों ने चोंचजी को यथासमय भोजन करा दिया था। सोते समय उनके पूछने पर घरवालों ने कहा कि चोंचजी को भोजन करा दिया गया है। हरिऔधजी ने पूछा--"क्या खिलाया है ?" उत्तर मिला--"पूड़ी-कचौड़ी और कुछ मिठाई भी।" हरिऔधजी ने जिज्ञासा की--"रबड़ी-मलाई कुछ खिलाई कि नहीं।" "नहीं" "तब वह काशी लौट कर फिर मेरे विरुद्ध लिखेगा। बिना रबड़ी-मलाई खाये वह संतुष्ट न होगा।" शायद हरिऔधजी अपने शिष्य की कमजोरी जानते थे। इतने सरल थे कि चोंच के समान 'बच्चे' को रबड़ी-मलाई से संतुष्ट कर सकने में उनका पूरा विश्वास था।

द्वितीय महायुद्ध का समय था। अच्छी सिगरिटों का मिलना कठिन हो गया था और जो अच्छी सिगरिटें मिलती भी थीं उनका मूल्य इतना बढ़ गया था कि साधारण लोगों की पहुँच के वे बाहर हो गयी थीं। जो लोग सस्ती सिगरिटें पीते थे उनका काम तो किसी प्रकार चल जाता था किंतु जो लोग धनी लोगों के साथ रहने के कारण बढ़िया सिगरिट पीने के आदी हो गये थे उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। गुपलेशजी को बहुत दिनों ओरछा नरेश के साहचर्य के कारण 'क्रेवैन ए' नामक कीमती सिगरिट की आदत पड़ गयी थी। एक बार उसी युद्धकाल में दो तीन सप्ताह गुपलेशजी टीकमगढ़ नहीं गये। सिगरिट का अभ्यास तो था, किंतु अच्छी सिगरिट पहिले तो मिलती ही न थी, और यदि मिलती भी तो बाबा के मोल। अतएव कई सप्ताह उन्हें 'क्रैवेन' सिगरेट पीने को नहीं मिली। लौटकर जब वे महाराज से मिलने गये तब महाराज किसी आवश्यक राजकाज में लगे हुए थे। गुपलेशजी ड्राइंगरूम में प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार जब एक-डेढ़ घंटा हो गया और महराज नहीं निकले तब गुपलेशजी के 'अमल की तलब' ने इतना जोर मारा कि उन्होंने यह छंद लिखकर महाराज के पास भिजवा दिया--

"बैचलर" "विल्स" और "प्लेयर" पी देखीं सब,
"पार्सिंग शो" धौंकि शौक कीनो दुखदायी है।
"कवैण्डर" "क्लब" और "केमिल" मिलि जाती,
पर सिग सिगरेटन की रेट अधिकाई है।
कवि गुपलेस जू खरीदते खलास भये,
"कैंची" काज कैंची किती जेब पै चलाई है।
अति ही सुहाई, मनभायी खोज पायी नाहिं,
हिय में तो क्रेविंग* "क्रेविन ए" की समायी है।

महाराज काम में लगे थे किंतु इतने काव्यरसिक थे कि छंद देखकर उसे उसी समय पढ़ा और पढ़कर तुरंत आज्ञा दी कि गुपलेशजी के पास 'क्रेवैन ए' का एक डब्बा तुरंत पहुँचा दिया जाय। जब कार्य समाप्त कर बाहर आये तो छंद की प्रशंसा करते हुए उन्हें 'क्रेवैन ए' सिगरेट के कई डब्बे भेंट किये।

---

*तलब, उत्कट अभिलाषा।

प्रकाशक--बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक--पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्र-प्रतिभा पुष्प

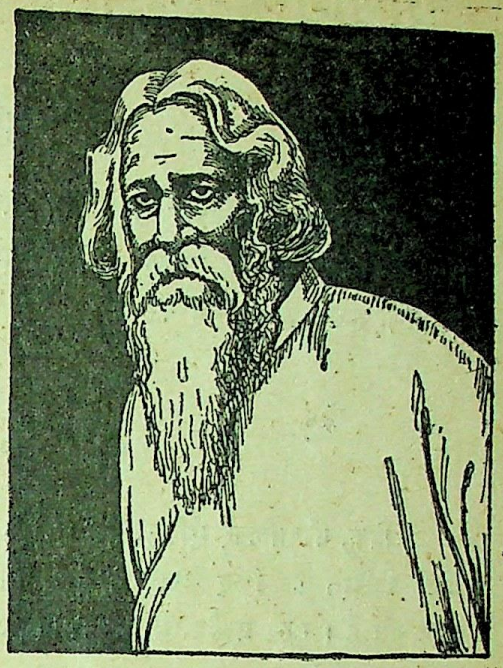

कवीन्द्र रवीन्द्र की शताब्दी न केवल बंगाल या भारत में धूमधाम से मनाई गई बल्कि योरप, रूस और अमरीका तक में इसका अपूर्व आयोजन हुआ और कवीन्द्र की प्रतिभा की विजय-दुन्दुभि निनादित हुई। उन्हीं कवीन्द्र के कुछ ग्रन्थ यहाँ विज्ञापित हैं। कवीन्द्र का मुख्य क्षेत्र कविता था; पर उन्होंने कहानियाँ, छोटे-बड़े उपन्यास, देश-भ्रमण, साहित्य आदि विविध अंगों पर ऐसी विचित्र रचनाएँ की हैं कि संसार शतमुख से उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाता। उनकी विख्यात रचनाओं का अध्ययन और मनन करके पाठक समझेंगे कि रवीन्द्रनाथ का संसारव्यापी इतना आदर-वन्दना क्यों है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १·७५ न० पै० मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १।) या १ रु० २५ नये पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

मझली महारानी

श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १।।) या १ रु० ७५ नये पैसे।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है। पृष्ठ १८०; मूल्य १ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचि-पूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने ३ सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है; नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालसटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओत प्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन व्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २॥) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १॥) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपम अनुवाद साहित्य

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	**बड़े वन में छोटा घर**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ अनु० रामअौतार अग्रवाल	**प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	**किट कार्सन और जंगली सीमान्त**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	**अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	**प्रेयरी नगर का बालक**	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	**प्रसिद्ध वैज्ञानिक**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	**दृष्टिदात्री**	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	**परमाणु का रहस्य**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	**अमेरिका का महान् उदारवादी**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल	**आधुनिक औषधि-आविष्कार**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६
अनु० सच्चिदानन्द बात्स्यायन	**लिंकन वाणी**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत हो गया

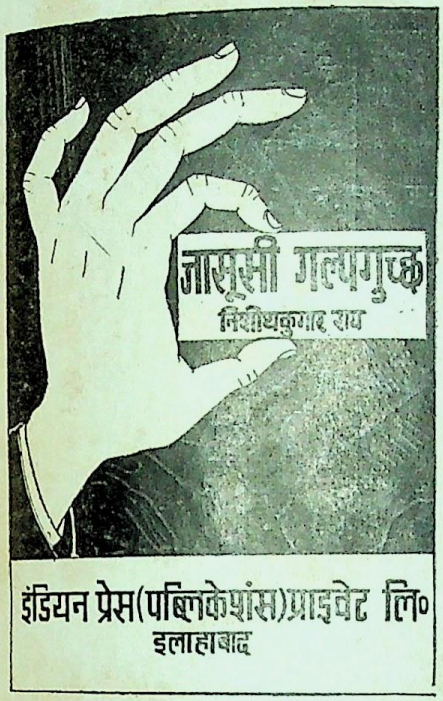

निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिए।

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्दविभोर हो उठेंगे।

मूल्य २·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennaj and eGangotri

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

SARASWATI—Reg. No. A-2

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

● प्रकाशित हो गया ।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं ।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

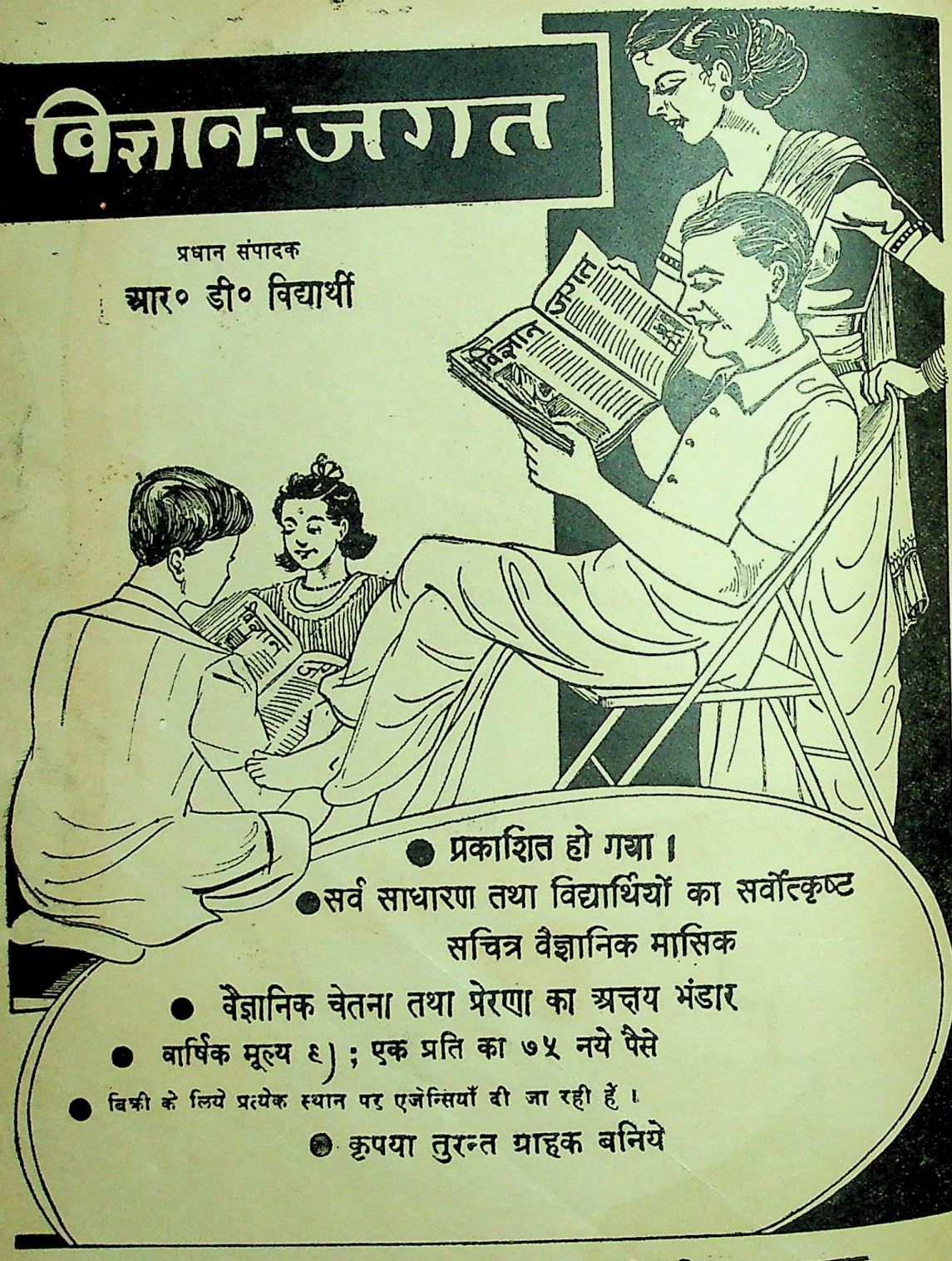

● प्रकाशित हो गया।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

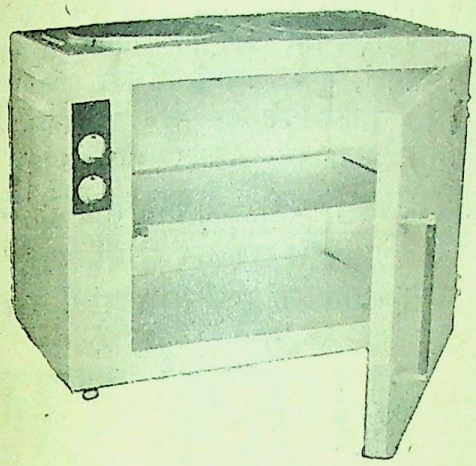

इलेक्ट्रिक कुकिंग साई कुक

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

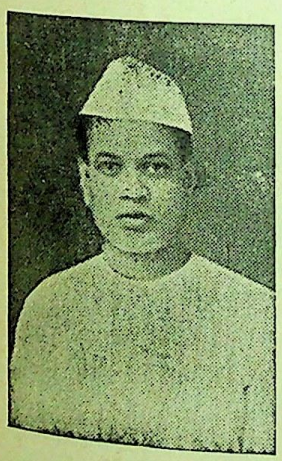

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

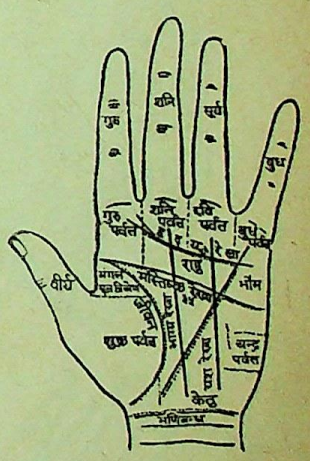

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, आई० सी० एस०, एम्बेसडर आफ इंडिया पेकिंग, चीन क्या कहते हैं :—

ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को यह पत्र देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक है परन्तु मुझे इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है कि यह विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है। मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्योतिष में अधिक पड़ने से मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है। इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझे ज्योतिषाचार्य श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया। उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं। अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें।

माल मंगाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

इल्मे मजलसी या सभाचातुरी की उर्दू कवितायें

इस पुस्तक में उर्दू भाषा की ऐसी चुनी हुई कवितायें दी हुई हैं, जिनको मौके मौके से बातचीत के समय प्रयोग करने से बड़ा प्रभाव पड़ता है। हिन्दी में पहली बार। बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, सजिल्द मूल्य १॥)

(१) शान्ति निकेतन---ले० रवीन्द्रनाथ टैगोर ६)

(२) महाकवि अकबर और उनका काव्य ३॥)

ज्ञान-प्रकाश-मन्दिर, पोस्ट बाछरा, जिला—मेरठ

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

ऐसे बोगस रजिस्टर्ड लिखनेवालों से सावधान

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन, (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

सुरुचि सम्पन्ना महिलाएँ ...

सभी सुगंधित कैस्टर आयल पर गर्व करती हैं, कारण घन कुञ्चित केश राशि द्वारा मुलायम जुड़ा रचना में यह अद्वितीय है।

परफ्युमड्

कैस्टर आयल

बंगाल केमिकल

कलकत्ता . बम्बई . कानपुर

माल मंगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हृदय का ध्यान रखें

ल्यूबडुप ही हृदय का वास्तविक संगीत है

सविराम नाड़ी

मूर्च्छा की भावना

भार एवं पीड़ा की अनुभूति

श्वास की न्यूनता

मलिन आकृति

वाम बाहु में पीड़ा

पैरों में शोथ

हृदय की धड़कन एवं शीतपूर्ण अवयव हृद्रोग के निश्चित चिह्न हैं

पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत रूप से या पत्रद्वारा परामर्श करें

कविराज

पं० दुर्गादत्त शर्मा

वैद्य-वाचस्पति

नवरत्न-कल्प फार्मेसी,

जालन्धर सिटी, (इंडिया)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)	.. ५·००		
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५		
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५		
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५		
विवेकानन्दजी के संग में	.. ५·२५		
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	.. १·५०		
जाति, संस्कृति और समाजवाद	.. १·२५		
विवेकानन्दजी की कथाएँ	.. १·६०		
स्वाधीन भारत ! जय हो !	.. १·५०		
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)	.. १·५०		
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	.. १·२५		
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	.. १·३७		
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	.. १·१५		
हिन्दू धर्म के पक्ष में	.. ०·७५		
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	.. ०·९०		
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ	.. ०·८७		
कर्मयोग	.. १·४०	भक्तियोग	.. १·५०
राजयोग	.. ३·००	ज्ञानयोग	.. ३·००
प्रेमयोग	.. १·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म	.. १·५०	धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान	.. १·६२	शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५	मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग	.. १·१२	चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव	.. ०·६२	भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा	.. ०·६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली	.. ०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा	.. ०·५०	ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत	.. ०·५०	मन की शक्तियाँ	०·४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज)	.. ०·६५		
शक्तिदायी विचार (,,)	.. ०·६२		
मेरी समर नीति (,,)	.. ०·६५		
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत	.. ६·००		

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००

श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना से क्या होगा

रोजगार के अधिक अवसर

तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत

- कृषि क्षेत्र में सघन खेती और भूमि विकास के काम में ३५ लाख और व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा, तथा
- कल-कारखानों, परिवहन, वाणिज्य, समाजसेवाओं और सरकारी नौकरियों में १०५ लाख और व्यक्ति काम पा सकेंगे।

इसके माने हैं आपके लिए

बेहतर और अधिक रोजगार के अवसर

योजना को सफल बनाइये जिसका मतलब होगा—

तीसरी पंचवर्षीय योजना

सबका सुख सबकी सुविधा

61/758

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

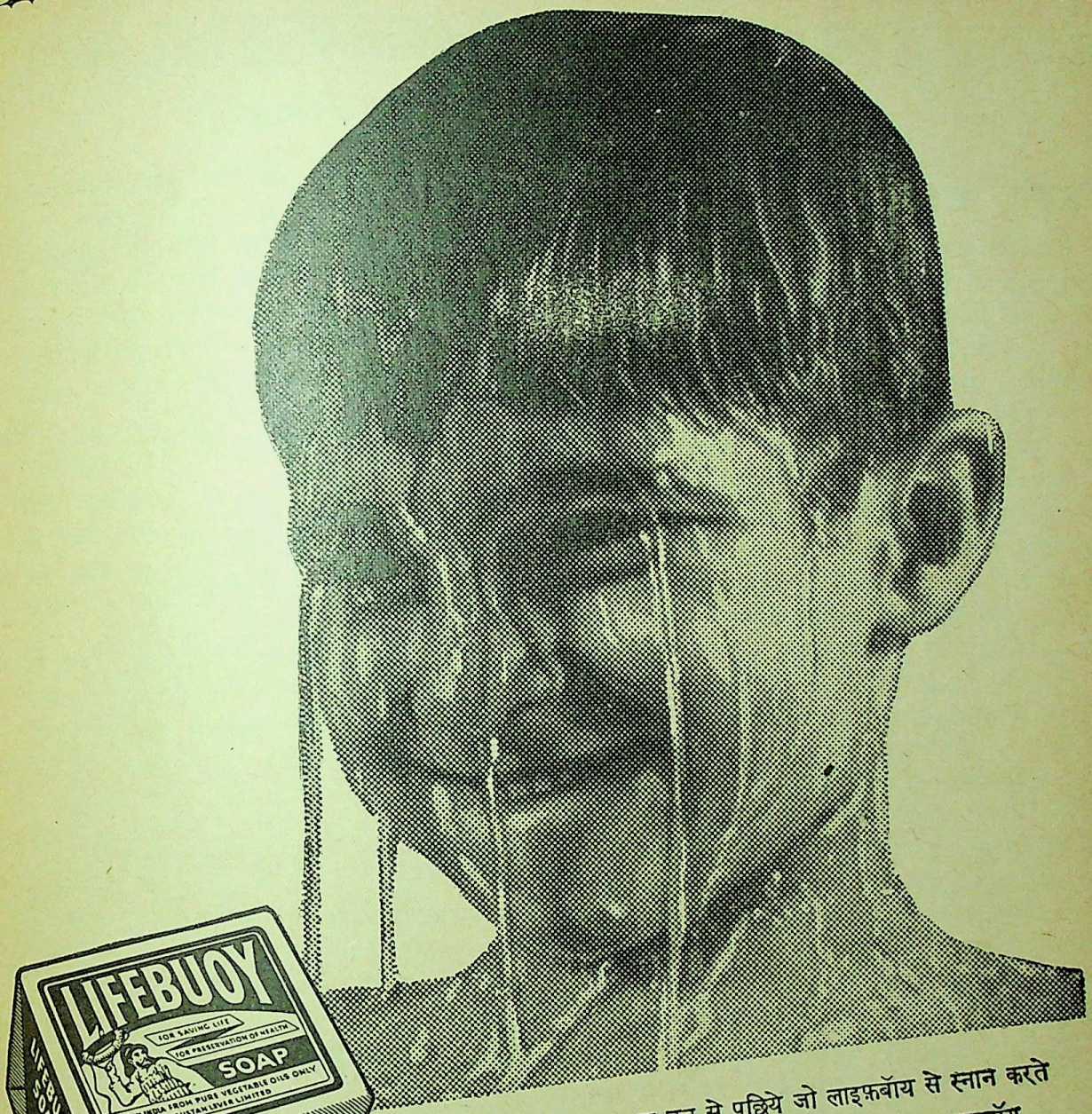

साफ़ सुथरा रहने का मज़ा उन से पूछिये जो लाइफ़बॉय से स्नान करते हैं! गर्मी और धूल-मैल की थकावट, घबराहट दूर कर के, लाइफ़बॉय आपको बिलकुल तरोताज़ा कर देता है ... और साथ ही साथ गंदगी में छिपे कीटाणुओं को भी धो डालता है।

जी हाँ, लाइफ़बॉय से आपका सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा।

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ!

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

L. 30-XS2 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खांसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, बाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खांसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, मक्षीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए लक्स ज़रूरी है'

साधना का खिला हुआ रंगरूप देखिये... साफ़ नज़र आता है कि यह लक्स ही की देन है! मगर आप अपने रंगरूप के लिए क्या करती हैं? लक्स इस्तेमाल कीजिये... इस के मुलायम झाग से आपका रंगरूप सुंदरता की नई सीमा को जा छूता है! लक्स इस्तेमाल कीजिये... और इसकी अनमोल सुगंध के सुंदर संसार में खो जाइये! लक्स इस्तेमाल कीजिये... आप की पसंद के लिए इसके रंगों का इंद्रधनुष भी है—और आपका मनपसंद सफ़ेद भी! आपके रंगरूप को लक्स टॉयलेट साबुन की ज़रूरत है!

चित्रतारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

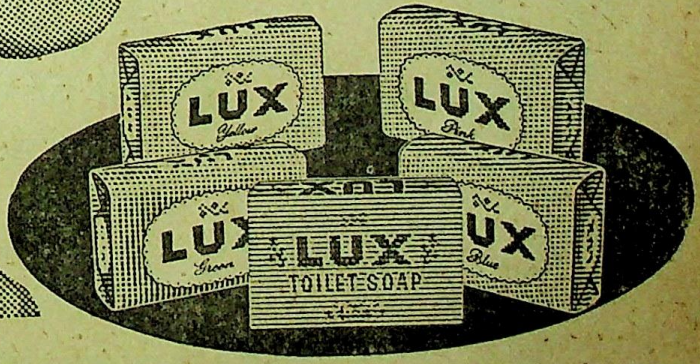

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में!' साधना कहती हैं

LTS. 111-X52 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

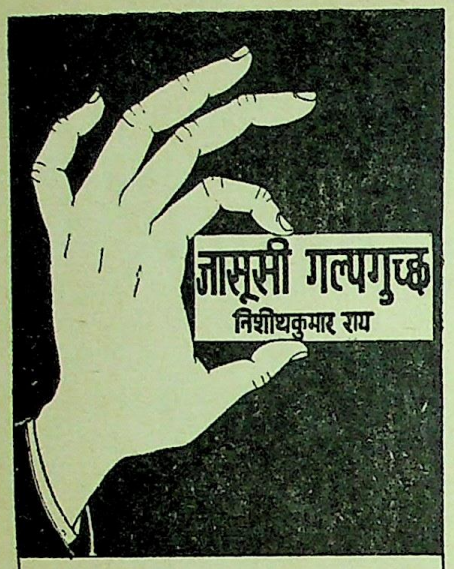

इंडियन प्रेस(पब्लिकेशंस)प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया **निकल गया**

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही है। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिए।

मूल्य २·५०

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्दविभोर हो उठेंगे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपम अनुवाद साहित्य

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	बड़े वन में छोटा घर	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७ ,
ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ अनु० रामअौतार अग्रवाल	प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	किट कार्सन और जंगली सीमान्त	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	प्रेयरी नगर का बालक	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	प्रसिद्ध वैज्ञानिक	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	दृष्टिदात्री	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	परमाणु का रहस्य	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	अमेरिका का महान् उदारवादी	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन	आधुनिक औषधि-आविष्कार लिंकन वाणी	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६ मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

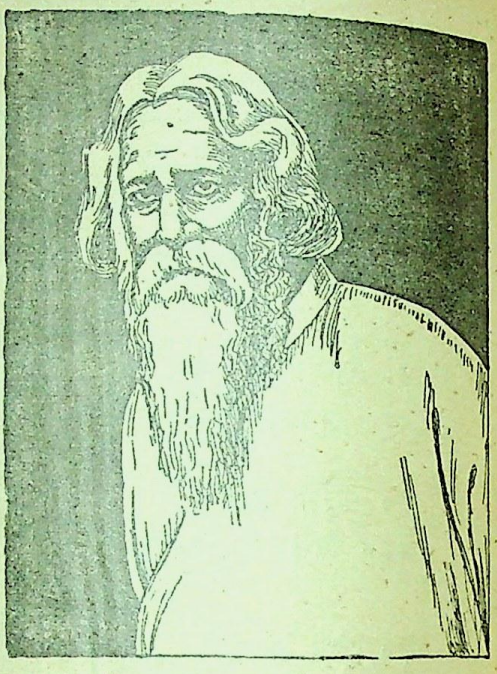

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी थे। युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युग-द्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

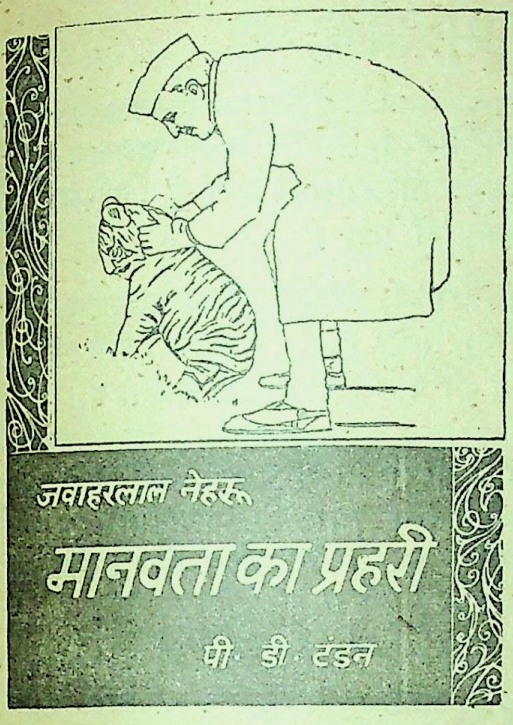

हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

जवाहरलाल नेहरू

मानवता का प्रहरी

लेखक

पी० डी० टंडन, पत्रकार

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति — कुछ देखा कुछ सुना

मूल्य १·५० नये पैसे।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक पृष्ठ २१२ मूल्य ५), खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रम-पूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अंगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्रीविश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

परमाणु ऊर्जा
और उसके
शान्तिपूर्ण उपयोग

लेखक—जेराल्ड वेन्ट अनुवादक—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचि-पूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है; नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टालसटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती हिन्दी संस्करण

कुल १० खंड--डबल डिमाई १६ पेजी साइज में; पृष्ठसंख्या प्रति खंड लगभग ५००; मज़बूत और आकर्षक सजिल्द प्रति खंड का सस्ता मूल्य (**सिर्फ जन्मशती वर्ष के लिए**) ४ रु० ७५ न० पै० और प्रति सेट ४७ रु० ५० न० पै०।

"आधुनिक भारत के संत तथा स्वदेश-प्रेमी स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मशती सन् १९६३ ई० की जनवरी से सारे संसार में मनायी जायगी। इस शुभ समारोह के अवसर पर उनकी समग्र ग्रन्थावली "विवेकानन्द साहित्य" नाम से दस खंडों में प्रकाशित हो रही है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसा प्रथम प्रकाशन है। इन ग्रन्थों में स्वामी विवेकानन्द जी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित और अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों तथा कथाओं का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादकों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्री सुमित्रानन्दन पन्त, डा० प्रभाकर माचवे, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री फणीश्वर नाथ 'रेणु' आदि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रेमियों के लिए सुलभ बनाने और केवल प्रचार के उद्देश्य से इन पुस्तकों का मूल्य बहुत ही कम रखा गया है। जो पूरा सेट खरीदना चाहते हैं, वे ३१ मई, १९६२ को या उसके पहले पूरा मूल्य अथवा अंशतः १५ रु० अग्रिम हमारे निम्नलिखित पते पर, अथवा हमारे एजेंटों के पते पर भेजकर अपने नाम दर्ज करा लें। सेट का पूरा मूल्य पहले जमा करनेवालों को २ रु० ५० न० पै० कमीशन दिया जायगा, अर्थात् ४५ रु० में पुस्तकों का एक सेट मिलेगा। अग्रिम १५ रु० देनेवाले ग्राहकों को बाकी रुपया एक ही साथ, अथवा दो किस्तों में, ३१ अक्टूबर, १९६२ को या उससे पहले अवश्य जमा कर देना पड़ेगा। रुपये की प्राप्ति हम लोगों द्वारा या हमारे एजेंटों द्वारा स्वीकार की जायगी। पुस्तक-वितरण का समय बाद में सूचित किया जायगा। चूंकि अब केवल ४००० सेट जनता के लिए प्राप्य हैं, इसलिए सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे जल्दी से जल्दी अपना नाम दर्ज करा लें। रुपया नकद, मनी-आर्डर या बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft) द्वारा निम्नलिखित पते पर या हमारे एजेंटों के पास भेजना चाहिए। डाक द्वारा सीधे अद्वैत आश्रम से जो खरीद करना चाहते हैं, उनको डाक और पैकिंग खर्च १० रु० ५० न० पै० अतिरिक्त अग्रिम भेजना चाहिए। दूसरे ग्राहक स्वयं ही कलकत्ते से या हमारे एजेंटों से पुस्तकें ले सकते हैं।

एजेण्टों का नाम--रामकृष्ण मिशन : इलाहाबाद, कानपुर, वाराणसी, लखनऊ, कनखल, दिल्ली, बम्बई, पटना, नागपुर, जमशेदपुर और आसनसोल।

मैनेजर, अद्वैत आश्रम

५ डिहि एंटाली रोड, कलकत्ता--१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१--सम्पादकीय ३३७
२--वेद तीन हैं या चार ?--श्री चन्द्रकान्त वाली ३४५
३--हिन्दी क्षेत्र का नेतृत्व--श्री जी० एस० पथिक ३४९
४--ब्रज-कोकिल सत्यनारायण 'कविरत्न'--डा० रामचन्द्र मिश्र एम० ए० पी-एच० डी० ३५६
५--'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ और वाजपेयीजी--पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी .. ३६०
६--महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१५)--पण्डित व्रजमोहन व्यास ३६३
७--प्राचीन भारत का व्यापार पश्चिम की ओर--श्री विद्याभूषण गौड़ .. ३६८
८--अकेले का गीत (कविता)--श्री श्रीकान्त-प्रसाद सिंह .. ३७०
९--आनेवाले युग में शक्ति के स्रोत--डा० अरविंद मोहन ३७१
१०--तुमने धर दिया गुलाल (कविता)--श्री रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण' .. ३७३
११--मक्का और काबा--श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन ३७४
१२--पत्नियाँ किस मिट्टी की हों--डा० श्याम-सुन्दर व्यास ३७६
१३--अनमाँगे, अनपाये छन (कविता)--राजेन्द्रप्रसादसिंह .. ३७७
१४--श्रमदान--एक विश्लेषण--श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी ३७८
१५--सोना और पत्थर (कविता)--श्री रमेश धाकर ३७९
१६--आँगनों के बीच--
(१) क्या आप शाकाहारी हैं और शाकाहारी ही रहना चाहते हैं? .. ३८०
(२) घर-गृहस्थी : धारियाँ और फैशन ३८२
१७--देखा-सुना (१२)--श्री मनमोहन गुप्त .. ३८४
१८--चीते से मुठभेड़--श्री के० बी० हकीमुद्दीन ३९०
१९--आवश्यकता है एक गृहिणी की--श्री एन० टी० वासदेवन नायर .. ३९३
२०--खनवाहाँ--अनु० श्रीमती त्रिवेनी जोशी ३९८
२१--नवीन प्रकाशन ४०१
२२--१९०६ की सरस्वती--
(१) सुल्तान अब्दुल अजीज--श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी .. ४०४
(२) गंगा-भीष्म (कविता)--श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी .. ४०६
२३--मनोरंजक संस्मरण .. ४०८

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य--एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान--श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

दुर्गापाठ

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर-एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। पृष्ठ में एक ओर मूल है और उसके सामने हिन्दी रूपान्तर। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रकाशक का वक्तव्य, प्रस्तावना, प्रारम्भिक वक्तव्य, भूमिका, मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि है। फिर देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये पचास नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

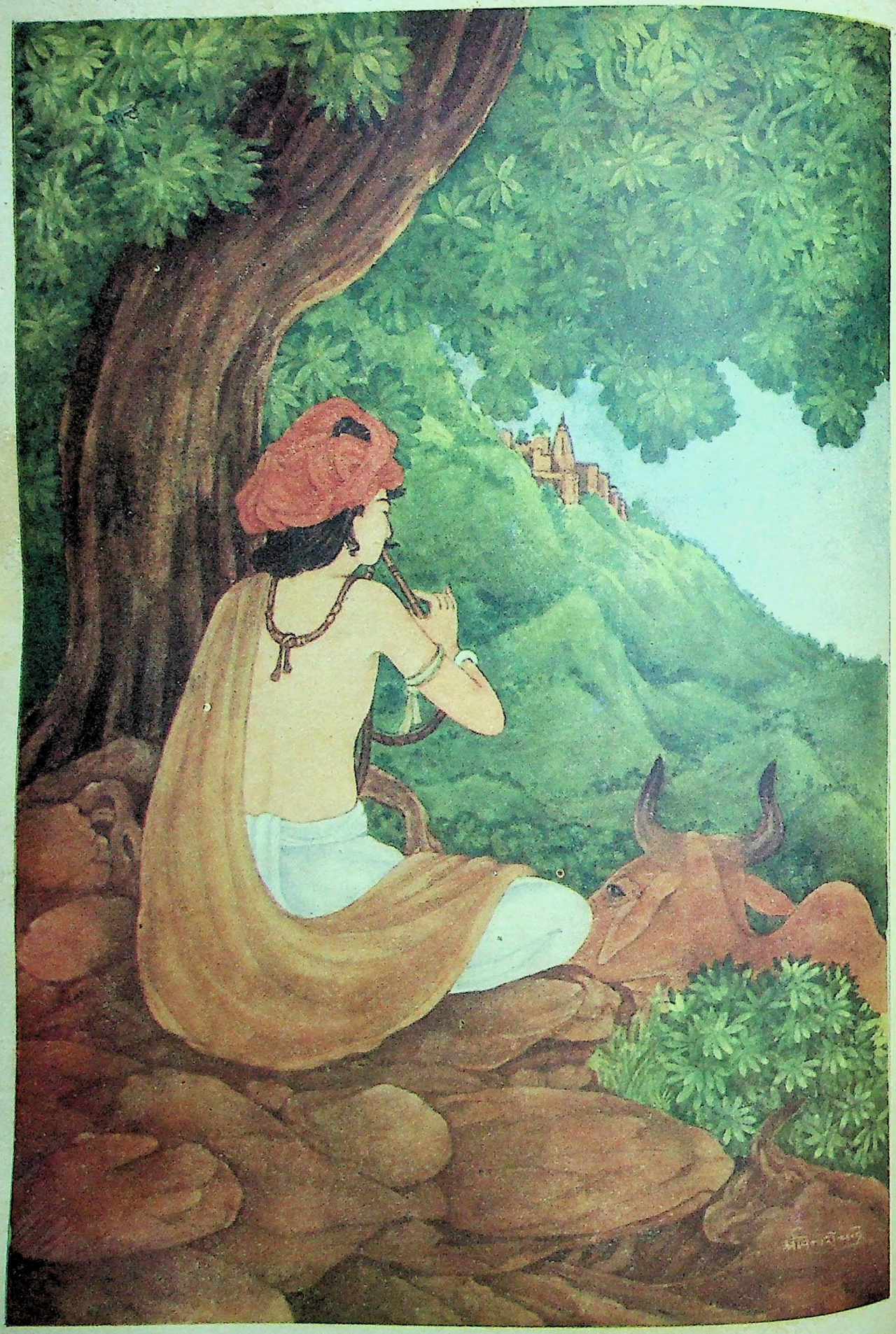

वंशी-वादन [प्रयाग संग्रहालय के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

राजकीय,
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७४६

इलाहाबाद : मई १९६२ : वैशाख २०१९

खण्ड १
संख्या ५

सम्पादकीय

एक स्वस्थ जनतांत्रिक परम्परा की समाप्ति—जनतंत्र में कुछ ऐसे पद हैं जिनपर रहनेवाले व्यक्तियों को निर्भीक, निष्पक्ष और निरपेक्ष रहना आवश्यक है क्योंकि वे जनतंत्र के मूलभूत अधिकारों के प्रहरी और रक्षक हैं। इस श्रेणी के मुख्य पद हैं—संसद की अध्यक्षता, सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के पद, लोक-सेवा आयोग की अध्यक्षता और सदस्यता, आडिटर जनरल का पद आदि। यदि इन पदों पर रहनेवालों को यह मालूम हो कि वे प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा उन पदों से अलग किये जा सकते हैं, अथवा उन पदों से सेवामुक्त होने पर अधिकारियों की कृपा से उन्हें ऊँचे या अधिक वेतन या सम्मान के पद मिल सकते हैं, तो इस बात की संभावना बनी रहती है कि वे अपना कर्तव्य पालन करते समय अधिकारियों के रुख का ख्याल रखेंगे और उनके प्रसन्न या अप्रसन्न होने का भी विचार करेंगे। ऐसा होने से वे निर्मम सत्य या निर्मम न्याय का पक्ष न ले सकेंगे। इसीलिए सेवामुक्त हाईकोर्ट के जजों आदि को जब सरकार कोई अच्छे वेतन का पद देती है तो लोग यह आलोचना करते हैं कि इससे न्यायाधीश वर्ग की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को खतरा है। अभी हाल में संसद के अध्यक्ष (स्पीकर) श्री अनन्तशयनम् आयंगार को बिहार के राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया गया है। इँग्लैण्ड में (जिसकी पार्लियामेंट को इस देश में आदर्श माना जाता है और जिसकी परम्पराओं का अनुकरण करने की बात बार-बार कही जाती है) जो व्यक्ति एक बार स्पीकर चुन लिया जाता है, वह यावज्जीवन उस पद पर बना रहता है। वहाँ स्पीकर के विरुद्ध चुनाव में कोई दल अपना प्रत्याशी खड़ा नहीं करता, और स्पीकर भी किसी दल से संबंध नहीं रखता। परिणाम यह होता है कि स्पीकर के प्रति सब दलों की श्रद्धा रहती है और उसमें विश्वास रहता है। उसे मालूम रहता है कि वह यावज्जीवन उस पद पर बना रहेगा, और उसे उस पद को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि स्वास्थ्य आदि के कारण उसे वह पद छोड़ना भी पड़ा तो उसे अन्य किसी पद के मिलने की संभावना नहीं है। इस विश्वास और निश्चितता के कारण उसमें अपने कर्तव्य के प्रति जो निष्ठा उत्पन्न हो जाती है उस पर जोर देना अनावश्यक है। इस देश में अभी स्पीकर को अपने दल के टिकट पर चुनाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ना पड़ता है क्योंकि वह अपने को निर्दलीय घोषित नहीं करता। उचित तो यह था कि सब दल मिलकर आपसी समझौते से यह परम्परा बना लेते कि जो स्पीकर हो वह अपने क्षेत्र से संसद के लिए निर्विरोध चुना जाय। यह अभी तक नहीं हुआ। किन्तु श्री अनन्तशयनम् आयंगार चुनकर फिर संसद में आ गये, और यह आशा की जाती थी कि वे संसद के स्पीकर के पद पर बने रहेंगे क्योंकि वे उस पद पर काम कर रहे थे। यदि स्पीकर के निर्विरोध संसद-चुनाव में सफल होने की परम्परा स्थापित नहीं की जा सकी तो कम से कम यह परम्परा तो चलायी ही जा सकती थी कि यदि स्पीकर चुन लिया जाय तो वह उस पद पर बना रहे। किन्तु कांग्रेस के अधिकारियों ने उन्हें राज्यपाल का पद देने का निश्चय किया। श्री आयंगार बड़े निर्भीक और निष्पक्ष अध्यक्ष थे और संसद के सभी दल के लोगों को उनके प्रति विश्वास था और श्रद्धा भी। उन्होंने किसी दल के प्रति कभी कोई पक्षपात नहीं किया। अतएव उन्हें राज्यपाल का जो पद दिया गया, उससे उनकी संसद की अध्यक्षता से कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारी वर्तमान सरकार और श्री आयंगार दोनों में से किसी पर अँगुली नहीं उठायी जा सकती। किन्तु जो परम्पराएँ बनायी जाती हैं वे भविष्य को दृष्टि में रख कर, और वे हर एक पहलू पर विचार करके स्थापित की जाती हैं। हमारी सम्मति में भारतीय संसद के अध्यक्ष को राज्यपाल का पद देना उस पद की मर्यादा को घटाना है, और एक ऐसा पूर्व-दृष्टांत भविष्य के अध्यक्षों के सामने रखना है कि यदि सरकार चाहे तो उन्हें राज्यपाल का उच्च पद दे सकती है, अर्थात् सरकार संसद के अध्यक्ष को पुरस्कृत कर सकती है। हम उन सब कामों को, जिनसे संसद के अध्यक्ष, हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के जजों आदि को तत्कालीन सरकार की कृपा की ओर देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न करने की संभावना हो, जनतंत्र के लिए हानिकारक समझते हैं। हमारी समझ में इन पदों पर रहनेवालों को ऐसी अवस्था में रख देना चाहिए जहाँ उन्हें तत्कालीन सरकार की कृपा या कोप से लाभ या हानि न हो। तभी वे निर्भीक और निष्पक्ष होकर अपने कर्तव्य का पालन कर सकते हैं। इन पदों पर रह कर जो अपने अधिकारों या पदों का दुरुपयोग करें, उनको हटाने के लिए संविधान में काफी गुंजाइश है। सरकार को न तो यह अधिकार होना चाहिए कि वह उन्हें जब चाहे, उच्च पद पर भेज सके, और न यह अधिकार ही होना चाहिए कि सेवा-मुक्त होने पर दूसरे उच्च पद देने की कृपा दिखला सके। इसीलिए हम समझते हैं कि दीर्घकालीन दृष्टि से श्री अनन्तशयनम् आयंगार को संसद की अध्यक्षता से हटाकर राज्यपाल के पद पर नियुक्त करना जनतंत्र के हित में नहीं हुआ। एक स्वस्थ परम्परा को स्थायी करने के बजाय, इस कार्य ने एक अस्वस्थ परम्परा का श्रीगणेश किया है।

डा० विश्वेश्वरैया का स्वर्गवास—गत मास १०० वर्ष और प्रायः ७ महीने की परिपक्व अवस्था में भारत-रत्न डा० विश्वेश्वरैया का स्वर्गवास हो गया। डा० विश्वेश्वरैया मैसूर की चामुंडी पहाड़ी के पास के एक गाँव में पैदा हुए थे और उन्होंने इंजिनियरी की शिक्षा पायी थी। वे बम्बई राज्य में इंजिनियर रहे और कुछ वर्षों सेवा करके वे सेवा-निवृत्त हो गये। बाद में हैदराबाद और मैसूर राज्यों में वे इंजिनियर रहे। वे अत्यंत प्रतिभाशाली इंजिनियर थे। उन्होंने सिंध के सक्कर बैरज का नक्शा ठीक किया था। हैदराबाद और मैसूर में कितने ही बाँध तैयार किये। मैसूर का प्रसिद्ध कृष्णराजसागर बाँध उनकी इंजिनियरी का जीवित स्मारक है। उन्होंने बाँध से पानी निकालने के फाटकों की बनावट में मौलिक सुधार करके उन्हें अत्यंत उपयोगी बना दिया। उनकी प्रतिभा और प्रशासनिक योग्यता से प्रसन्न होकर महाराज मैसूर ने उन्हें अपना दीवान (मुख्यमंत्री) बना लिया था। वे उस पद पर केवल साढ़े छः वर्ष रहे, किन्तु उसी अल्प अवधि में उन्होंने मैसूर राज्य की काया पलट दी। उन्होंने राज्य का उद्योगीकरण किया। आज मैसूर की जो असाधारण औद्योगिक उन्नति दीख पड़ती है, उसको आरंभ करने का श्रेय डा० विश्वेश्वरैया को ही है। उन्होंने राज्य में औद्योगिक शिक्षा का आरंभ किया, और उनका स्थापित किया हुआ औद्योगिक विद्यालय आज भी देश के सर्वश्रेष्ठ औद्योगिक विद्यालयों में गिना जाता है। उन्होंने उच्च शिक्षा को बढ़ाया और अनिवार्य आरंभिक शिक्षा आरंभ की। उनसे पहिले कभी कोई इंजिनियर दीवान नहीं हुआ था, किन्तु उन्होंने अपनी अद्भुत प्रशासनिक योग्यता के कारण मैसूर के शासन को अत्यंत कुशल बना दिया। उनके दीवानी छोड़ने के कारण से उनके व्यक्तित्व की महत्ता और सिद्धान्त-निष्ठा का पता लगता है। उस समय लोगों ने देखा कि मैसूर में अधिकांश सरकारी पदों पर ब्राह्मण जाति के लोग हैं। उस समय (और दुर्भाग्य से आज भी) राजनीतिक कारणों से पिछड़े वर्ग के लोगों को शासकीय पद देने, या विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में पर्याप्त योग्यता न होने पर भी विशेष प्रतिनिधित्व देने की बात चल रही थी। इसके लिए पहिले ही एक समिति बना दी गयी थी और उसने यह प्रस्ताव किया कि कम योग्यतावाले पिछड़ वर्ग के लोगों के साथ रियायत करके उन्हें सरकारी सेवाओं और शैक्षणिक या प्राविधिक संस्थाओं में लिया जाय। डा० विश्वेश्वरैया इसके विरुद्ध थे। वे सरकारी सेवाओं या शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए एकमात्र योग्यता पर बल देते थे। उनका कहना था कि शासन की कुशलता के लिए योग्यतम व्यक्तियों ही को लिया जाना चाहिए—उनकी जाति या वर्ग का विचार न करना चाहिए। उनकी बात नहीं मानी गयी। इस पर उन्होंने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। जिस बात को वे सिद्धान्ततः अनुचित समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे उसे न मानकर बड़े से बड़े पद को छोड़ देना, उनके चरित्र की दृढ़ता का मूर्त प्रमाण है। डा० विश्वेश्वरैया ने देश को 'उत्पादन करो या नष्ट हो जाओ' (प्रड्यूस ऑर पैरिश) का नारा दिया। जो योजनाएँ हमारी स्वतंत्र सरकार आज चला रही है, उनकी मूल कल्पना डा० विश्वेश्वरैया ही ने की थी। वे पहिले भारतवासी थे जिन्होंने सारे देश को इकाई मान कर उसकी समृद्धि के लिए उद्योगीकरण की योजना बनायी थी और जिसके आधार पर आज की योजनाएँ बनी हैं। उड़ीसा के हीराकुड बाँध की योजना भी उन्हींकी कल्पना थी। डा० विश्वेश्वरैया का जीवन अत्यंत सादा था। वे पुराने ढंग से रहते थे। वृद्धावस्था में भी उनकी मानसिक शक्ति विलक्षण रूप से सजग थी। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस दिन उनके पिता का वार्षिक श्राद्ध-दिवस था। उस दिन वे उनका श्राद्ध किया करते थे। अनेक वर्षों से पंडित लोग उस दिन श्राद्ध कराने आया करते थे। उस दिन भी वे यह समझकर आये थे कि डा० विश्वेश्वरैया अपने पिता का श्राद्ध करेंगे। किन्तु पंडितों के आगमन के थोड़ी देर पहिले ही उनका स्वर्गवास हो चुका था। संयोग की बात पिता और पुत्र की मृत्यु एक तिथि को ही हुई। डा० विश्वेश्वरैया ने उस वर्ष (१८६१ में) जन्म लिया था जिसमें महामना मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू और रवींद्रनाथ टागोर उत्पन्न हुए थे। इनमें डा० विश्वेश्वरैया को ही अपने जीवन में अपना जन्मशती-उत्सव देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यही नहीं, उन्होंने भारत की स्वतंत्रता देखी, और देखा कि भारत की समृद्धि के लिए उन्होंने उसके उद्योगीकरण की जो कल्पना की थी, वह कार्यान्वित होने लगी है। वे उन महान् व्यक्तियों में थे जो जब कभी ही पैदा होते हैं। अपने स्वप्नों को मूर्त होते देखना तो और भी बड़े भाग्य की बात है। वास्तव में, प्रत्येक अर्थ में, वे भाग्यवान् थे। देश के इस मनीषी, नेता, विचारक और कर्मठ अभियंता की स्मृति में हम श्रद्धा और आदर से नतमस्तक हैं।

नये राज्यपाल——नयें राज्यपालों की नियुक्ति का पंचवर्षीय पहिला चक्र समाप्त हो गया। इस चक्र में महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार और उत्तरप्रदेश के राज्यपालों की नयी नियुक्तियाँ हुई हैं। सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन श्री श्रीप्रकाशजी की सेवामुक्ति और डा० सम्पूर्णानन्द जी की नियुक्ति हैं। उत्तर प्रदेश ने अभी तक साढ़े तीन राज्यपाल दिये हैं। उनमें से दो——श्री श्रीप्रकाशजी और डा० सम्पूर्णानन्दजी वाराणसी के, और एक कायमगंज (जिला फर्रुखाबाद) के डा० जाकिर हुसेन हैं। आधे डाक्टर काटजू हैं, क्योंकि वे मध्यप्रदेश में अपने को जावरा का, और उत्तरप्रदेश में अपने को इलाहाबाद का बतलाते हैं। वाराणसी को दो राज्यपाल देने का गौरव प्राप्त है। श्री श्रीप्रकाश जी असम, मद्रास और बम्बई (अब महाराष्ट्र) के राज्यपाल रह चुके हैं। उनके आभिजात्य सौजन्य, शिष्टाचार तथा हार्दिकता ने उन्हें बड़ा लोकप्रिय बनाया। वे जहाँ भी रहे, वहाँके निवासियों के आत्मीय हो गये। अखिल भारतीय संस्कृति और भावना के वे मूर्तिमान प्रतीक हैं। उनसे उत्तरप्रदेश की प्रतिष्ठा बढ़ी है। डा० सम्पूर्णानंदजी की राजस्थान के राज्यपाल पद पर नियुक्ति एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अपने आरंभिक जीवन-काल में वे बीकानेर के डूँगर कालिज के आचार्य थे। अतएव राजस्थान से उनका केवल पुराना सम्पर्क ही नहीं है, प्रत्युत उनके हृदय में उस राज्य के लिए बड़ी ममता भी है। यह राजस्थान का परम सौभाग्य है कि उसे उनके समान सुलझा हुआ राजनीतिज्ञ, शिक्षा-शास्त्री, विचारक, दार्शनिक, भारतीय संस्कृति का व्याख्याता और साहित्यकार राज्यपाल के रूप में मिला। डा० सुब्बारायन महाराष्ट्र के राज्यपाल नियुक्त हुए हैं। श्री अनंतशयनम् आयंगार बिहार के राज्यपाल नियुक्त हुए हैं और डा० जाकिर हुसेन के पद-त्याग पर वहाँका कार्यभार सम्हालेंगे। उत्तरप्रदेश में श्री विश्वनाथदास पधारे हैं। अभी तक उत्तर प्रदेश में छः राज्यपाल आये। इनमें से दो हैदराबाद से (श्रीमती सरोजिनी नायडू और डाक्टर रामकृष्ण राव), दो बम्बई से (श्री मोदी और श्री कन्हैयालाल मुंशी) और दो उड़ीसा-आंध्र के सीमान्त से (श्री वी० वी० गिरि बरहामपुर से और श्री विश्वनाथदास गंजाम से) आये। श्री राव उत्तर प्रदेश में पूरे दो वर्ष भी नहीं रहे। वे हिंदी के अच्छे ज्ञाता थे। दक्षिण के हिंदी-प्रचार अभियान में उन्होंने बड़ी रुचि ली थी, और वे मदरास की दक्षिण भारत हिंदीप्रचार सभा के उपाध्यक्ष थे——जिसके अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसादजी हैं। किंतु वे उत्तर प्रदेश में इतने कम समय रहे कि उनसे हमें वह लाभ नहीं हुआ जिसकी हम आशा करते थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री मोदी और श्री गिरि हिंदी-निरपेक्ष थे। वे हिंदी से अपरिचित भी थे। श्री मुंशी अवश्य ही साहित्यकार हैं, हिंदी के ज्ञाता हैं और हिंदी साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। किंतु उत्तर प्रदेश के राज्यपाल-पद पर पहुँचते-पहुँचते उनका हिंदी-प्रेम ठंडा पड़ चुका था और उनका अँग्रेजी-प्रेम उभर आया था। यहाँ वे भाषा और साहित्य की अपेक्षा "सांस्कृतिक" कार्यों में (नृत्य, संगीत आदि में) अधिक रुचि लेते थे। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय में हिंदी की एक शोध संस्था खुलवायी जिसका नाम 'हिंदी इंस्टिट्यूट' होने को था। बाद में वह भारतीय भाषाओं और भाषा-विज्ञान (लिंग्विस्टिक्स) की संस्था हो गयी, और "मुंशी इंस्टिट्यूट" नाम धारण कर श्री मुंशी का स्मारक बन गयी। उससे जो आशाएँ थीं, वे पूरी नहीं हुईं। उत्तर प्रदेश में रहते समय श्री मुंशी ने हिंदी में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली। जब वे यहाँ आये, तो स्थानीय हिंदी साहित्यकारों ने एक समारोह करके उनका समादर किया, किंतु श्री मुंशी से हिंदी के सम्बन्ध में उन्हें इतनी निराशा हुई कि उसके बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने किसी राज्यपाल से कोई संपर्क स्थापित नहीं किया। राजभवन में बहुधा उर्दू के मुशायरे होते रहे हैं। जहाँ तक हमें मालूम है, उत्तर प्रदेश के राजभवन में हिंदी या हिंदी साहित्यकारों को प्रश्रय नहीं मिला। अपने लंबे इतिहास में (कुछ अपवादों को छोड़कर) हिंदी राज्य के आश्रय या प्रोत्साहन पर निर्भर नहीं रही। उसके साहित्यकारों में भी राज्य की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति नहीं है। हिंदी साहित्यकारों के दृष्टिकोण को तो कुंभनदासजी ने अपनी इन अमर पंक्तियों में सदा के लिए व्यक्त कर दिया है जो उन्होंने फतेहपुर सीकरी में अकबर द्वारा बुलाये जाने पर लिखी थीं:

संतन कों सीकरी सों कहा काम?
आवत-जात पन्हैयाँ टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम!

हिंदी साहित्यकार फक्कड़ होते हैं। शायद आवश्यकता से अधिक स्वाभिमानी हैं। वे राजाश्रय या राज्याश्रय के भूखे नहीं हैं, किंतु आधुनिक जनतंत्र में जनता को वाणी देने वालों का सम्पर्क राज्य से होना स्वयं राज्य के लिए वांछनीय है। अस्तु। हम उत्तर प्रदेश के नये राज्यपाल श्री विश्वनाथदास का हार्दिक स्वागत करते हैं। वे पुराने कांग्रेसी नेता हैं। अनुभवी राजनीतिज्ञ और तपे हुए जनसेवक हैं। उनके लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि वे लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित उस भारतीय लोक-सेवामंडल के वरिष्ठ सदस्य हैं जिसके अध्यक्ष हमारे पूज्य राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन हैं। हमें नये राज्यपाल के हिंदी संबंधी विचार नहीं मालूम। लखनऊ में एक अधिकारी ने बतलाया कि वे हिंदी नहीं जानते। किंतु हमें इस बात की कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। फिर भी हम आशा करते हैं कि वे अपने पूर्ववर्ती राज्यपालों के समान "हिंदी-निरपेक्ष" नहीं रहेंगे, और यदि अन्तर्भारतीय राजभाषा के रूप में नहीं, तो कम से कम उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय भाषा और विधानसभा द्वारा स्वीकृत राज्य की राजभाषा के रूप में हिंदी को राजभवन और उसके कार्यालय में उचित स्थान और मान्यता देंगे। हम आशा करते हैं कि उनके कार्यकाल की समाप्ति पर हमें उनके लिए भी 'हिंदी-निरपेक्ष' शब्द का प्रयोग न करना पड़ेगा। इस आशा को रखते हुए, हम इस हिंदी के हृदय-प्रदेश में, उनका पुनः हार्दिक स्वागत करते हैं।

एक लाख का पुरस्कार––गत मास प्रसिद्ध उद्योगपति श्री साहू शांतिप्रसाद जैन की पत्नी श्रीमती रमा जैन ने दिल्ली में घोषणा की कि भारत में प्रकाशित होनेवाली वर्ष में सर्वोत्तम पुस्तक पर 'भारतीय ज्ञानपीठ' की ओर से एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया जाया करेगा। भारतीय ज्ञानपीठ जैनियों की एक धर्मादे की संस्था है जो जैन साहित्य एवम् अन्य साहित्य भी प्रकाशित करती है। इसका कारबार काफी बड़ा है, और जब वह एक लाख रुपया वार्षिक का पुरस्कार देने को तैयार है, और उसके प्रबंध में प्रतिवर्ष प्रायः पचास हजार रुपये और व्यय करेगी तो निश्चय है कि उस संस्था के पास प्रचुर धनराशि है। श्रीमती रमा जैन ज्ञानपीठ की अध्यक्षा हैं। उन्हें साहित्य में रुचि है और वे सार्वजनिक कार्यों में सक्रिय भाग लेती हैं। भारत में इतना बड़ा पुरस्कार अभी तक घोषित नहीं हुआ। इसके लिए ज्ञानपीठ और श्रीमती रमा जैन––दोनों ही––की प्रशंसा होनी चाहिए।

यह पुरस्कार किसी विशेष भाषा के लिए नहीं है वह भारतीय भाषा में प्रकाशित वर्ष की सर्वोत्तम सर्जनात्मक साहित्यिक कृति पर दिया जायगा। चौदह भाषाओं के उपन्यास, काव्य, कहानी आदि के ग्रन्थों में से 'सर्वोत्तम' पुस्तक को चुना जायगा!

हिंदी में कई पुरस्कार दिये जाते हैं। सबसे अधिक सम्मान हिंदी साहित्य-सम्मेलन के "मंगलाप्रसाद पुरस्कार" का है, यद्यपि इसकी राशि केवल १२०० रुपये है। देव-पुरस्कार बाद में आरंभ हुआ। महाराज ओरछा ने इसे स्थापित किया था और यह केवल व्रजभाषा के प्रोत्साहन के लिए था। इसकी राशि २००० रुपये थी। अब इस पुरस्कार को मध्यप्रदेश सरकार देती है और इसमें खड़ी बोली, व्रजभाषा, गद्य और पद्य के––सभी प्रकार के, ग्रंथों पर विचार किया जाता है। हिंदी जगत् में इसकी वह मान्यता नहीं हो पायी जो होनी चाहिए थी। शायद "सबसे बड़ा पुरस्कार" देने की भावना से श्रीमती रमा जैन के पिताश्री श्रीरामकृष्ण डालमिया ने २५०० रुपये का 'हरजीमल डालमिया' पुरस्कार स्थापित किया था। वह कई वर्ष दिया गया। हमें नहीं मालूम कि अब उसकी स्थिति क्या है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् और हिंदुस्तानी एकाडमी भी पुरस्कार देती हैं। उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश की सरकारों ने भी विविध विषयों के हिंदी ग्रंथों पर पुरस्कार देने की योजना चला रखी है। उत्तर प्रदेश की सरकार के कई पुरस्कार पाँच हजार के, और कई ढाई हजार के हैं। साहित्य अकादमी १४ मान्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित प्रत्येक भाषा की सर्वोत्तम पुस्तक पर ५००० रुपये के १४ पुरस्कार देती है। दूसरी भाषाओं में पुस्तकों पर पुरस्कार दिये जाने का हाल हमें नहीं मालूम। किंतु हिन्दी में इतने पुरस्कार दिये जाते हैं, और इतने दिनों से दिये जा रहे हैं, कि उनकी उपयोगिता पर कोई सम्मति बनायी जा सकती है।

इन पुरस्कारों के तीन प्रत्यक्ष या परोक्ष उद्देश्य हो सकते हैं: हिंदी में उच्च कोटि की पुस्तकों के प्रणयन को प्रोत्साहन, लेखक का सम्मान, लेखक की सहायता और दाता की कीर्ति। पिछले प्रायः बीस वर्षों से पुरस्कार प्रणाली को निकट से देखने के बाद हम यह कहने को वाध्य हैं कि आज से २०–२५ वर्ष पहिले इन पुरस्कारों से उच्च कोटि की पुस्तकों के प्रणयन को चाहे थोड़ा-बहुत प्रोत्साहन भले ही मिला हो, किंतु आज की परिस्थिति म इन पुरस्कारो के कारण हिंदी में उच्च कोटि की पुस्तकों का प्रणयन नहीं होता। लेखक स्वेच्छा से पुस्तक लिखता है। उसको लिखने के लिए वाध्य करनेवाले और कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कारण हों, ये पुरस्कार तो नहीं ही हैं। अच्छे लेखक प्रतिद्वंद्विता में पड़ना भी नहीं चाहते। यदि विशेष विषय पर पुस्तक लिखवानी है तो योग्य और उस विषय के किसी अधिकारी विद्वान् को अच्छा पारिश्रमिक और सुविधा देकर यह काम सौंपना चाहिए। यह अपेक्षा करना कि चार-पाँच बड़े विद्वान् 'पुरस्कार' के लोभ से उसके लिए आपस में होड़ करेंगे, बुद्धिमानी नहीं है। अतएव जहाँ तक पुस्तक प्रणयन का संबंध है, ये पुरस्कार बेकार हैं। उत्तर प्रदेश की पुरस्कार देने की पुरानी प्रथा से नये लेखकों को अवश्य प्रोत्साहन मिलता था। सरकार ने प्रायः साठ हजार रुपया पुरस्कारों के लिए स्वीकृत कर रखा था। उससे प्रकाशित पुस्तकों में से जो प्रोत्साहन के योग्य समझी जाती थीं, उन्हें दो सौ से लेकर एक हजार तक का पुरस्कार दे दिया जाता था। ये पुरस्कार अधिकतर नये लेखकों को मिलते थे जिन्हें उनसे, विकास के उस स्तर पर, वास्तविक प्रोत्साहन मिलता था और कुछ लेखकों की सहायता भी हो जाती थी। पुरस्कार से लेखक का सम्मान अवश्य होता है और यदि सम्मान करना ही इष्ट है तो यह ठीक है। किन्तु नकदी के रूप में सम्मान देने से पुरस्कार के साथ जो अर्थ बँधा हुआ है, उससे वह सम्मान कम, और रुपये की प्राप्ति का रूप अधिक हो गया है। तीसरा उद्देश्य—अर्थात् लेखक की सहायता—इन पुरस्कारों से पूरा नहीं होता क्योंकि अधिकांश पुरस्कार उन्हीं लेखकों को मिलते हैं जो अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न हैं। जिन अच्छे लेखकों को सहायता की वास्तविक आवश्यकता है, उन्हें ही वे पुरस्कार मिलें—ऐसा कम ही होता है। चौथा उद्देश्य सफल हो जाता है। दाता की कीर्ति अवश्य फैल जाती है।

मंगलाप्रसाद पुरस्कार के इतने सम्मानित होने का कारण यह है कि वह हिं० सा० सम्मेलन ऐसी प्रतिष्ठित संस्था द्वारा दिया जाता है। नोबुल प्राइज़ का प्रबंध एक स्वतंत्र देश की संसद के अधीन है। निजी पुरस्कारों का तब तक महत्त्व, और जनता में उनका आदर नहीं हो सकता जब तक कि उनके देने का अधिकार ऐसी संस्था को न हो जिस पर जनता का पूरा विश्वास हो। यदि वास्तव में एक लाख रुपये का यह पुरस्कार स्थायी रूप से देना है तो इसका मूलधन सरकार के पास जमा कर दिया जाना चाहिए जिससे उसके ब्याज से भारत-सरकार साहित्य अकादमी के द्वारा, या अन्य किसी विधि से, दाता के उद्देश्यानुसार उसे प्रतिवर्ष दिया करे। ज्ञानपीठ भी एक संस्था है, किंतु इस प्रकार की संस्थाएँ व्यक्ति-प्रधान होती हैं। और यदि ये व्यक्ति अत्यंत धनी और प्रभावशाली हुए तो कागजी जनतांत्रिक विधान के रहते हुए भी, सारी शक्ति उन्हीं में केंद्रित हो जाती है। सभी लेखक एक ही प्रकार के नहीं होते। कुछ स्वाभिमानी होते हैं। कुछ ऐसे नहीं होते। ऐसी अवस्था में जहाँ एक लाख रुपये का मामला हो वहाँ जो 'टोडीपन' हो सकता है, उसकी कल्पना की जा सकती है।

हमें इस पुरस्कार का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं दीखता। इसका एक ही लाभ हो सकता है। वह यह कि भारत में प्रकाशित विविध भाषाओं की पुस्तकों का मूल्यांकन अखिल भारतीय दृष्टि से किया जाय। इससे साहित्य को अखिल भारतीय दृष्टि से देखने का 'दृष्टिकोण' विकसित हो सकता है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में एक खतरा भी है। यदि पुरस्कारों के वितरण में विविध भाषाओं की कृतियों का संतुलन न रहा, विशेषकर दक्षिण और उत्तर की भाषाओं की कृतियों में तो साहित्यिक सौमनस्य खतरे में पड़ जायगा। और यदि उत्तर-दक्षिण तथा विभिन्न भाषाओं के प्रतिनिधित्व का प्रश्न सामने रहा, तो पुस्तकों के मूल्यांकन पर प्रभाव पड़ सकता है। फिर, हम उपन्यास और काव्य को एक कसौटी पर जाँचना संभव नहीं समझते। सर्वोत्तम उपन्यास और सर्वोत्तम काव्य में कौन पुरस्कार के योग्य है, इसका निर्णय बहुधा वस्तुनिष्ठ दृष्टि से नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त ऐसे विशाल क्षेत्र में व्यक्तियों और उनकी ख्याति का जो प्रभाव मूल्यांकन पर पड़ सकता है, वह भी छोटी बाधा नहीं है।

यह पुरस्कार इतना बड़ा है, और इसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इससे किसी साहित्य को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल सकता। साधारण ही नहीं, अधिकांश 'असाधारण' लेखकों को भी उससे कोई लाभ नहीं होगा। हाँ, उससे दाता की दानशीलता और कीर्ति का विज्ञापन सारे देश में हो जायगा, और देश के अनेक साहित्यकार ज्ञानपीठ और उसकी अध्यक्षा से परिचय प्राप्त करने को लालायित रहा करेंगे। इससे साहित्य-जगत् में जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका प्रभाव और सम्मान होगा उसके सामने एक लाख रुपया कुछ नहीं है।

राहुलजी की अस्वस्थता—हिंदी-संसार राहुलजी की बीमारी से बहुत चिंतित है। वे पं० किशोरीदासजी वाजपेयी के अभिनंदन-समारोह में सम्मिलित होने के लिए दिसम्बर में कलकत्ते आये थे और एकाएक वहीं बीमार पड़ गये। उनकी स्मृतिशक्ति लुप्त हो गयी। उनके मस्तिष्क में कहीं कुछ ऐसा विकार आ गया कि वे गिनती ही नहीं, अक्षर पहिचानना भी भूल गये। वहाँ वे एक अस्पताल में भर्ती कर दिये गये। प्रधान मंत्री ने उन्हें कुछ आर्थिक सहायता भेजी। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री ने भी उन्हें कुछ रकम भेजी। किन्तु उनकी पत्नी के पत्र से पता चला कि अस्पताल में उनकी चिकित्सा का व्यय सत्तर-अस्सी रुपया प्रतिदिन था। प्राप्त समाचारों के अनुसार ऐसा मालूम पड़ता है कि बंगाल की सरकार ने इस 'अतिथि रोगी' की चिकित्सा की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और न कोई विशेष सुविधा ही दी। उनकी अवस्था में कुछ सुधार होने पर उनकी पत्नी उन्हें दार्जिलिंग ले गयीं, किन्तु वहाँ जाकर उनकी दशा फिर बिगड़ गयी। कलकत्ते में जब उन्हें कुछ क्षणों के लिए चेतना आती थी तब वे बराबर कहा करते थे कि 'मुझे घर ले चलो।' कलकत्ता या दार्जिलिंग के वातावरण में वे अपनत्व का अनुभव नहीं कर सकते। शारीरिक चिकित्सा से अधिक आवश्यकता उनकी मानसिक चिकित्सा की है। हमारी सम्मति में उन्हें ऐसे स्थान में रखा जाना चाहिए जहाँ के वातावरण में वे 'अपनत्व' का अनुभव कर सकें, जहाँ उनके मित्र, परिचित और भक्त उन्हें नित्य देखने को मिलें, जहाँ वे समझ सकें कि "मैं घर पर हूँ।" ऐसा स्थान प्रयाग, काशी या पटना हो सकता है। इनमें भी प्रयाग कई कारणों से उन्हें सबसे अधिक अनुकूल पड़ेगा, क्योंकि एक तो उन्हें प्रयाग से बहुत प्रेम रहा है तथा वहाँ उनके ऐसे मित्रों और सुहृदों की इतनी बड़ी संख्या है कि वे वहाँ कभी एकाकीपन का अनुभव नहीं कर सकते। वे मित्र और भक्त उनकी देखभाल ही नहीं करेंगे, किन्तु उनका मानसिक संतुलन तथा स्मृति की पुनःप्राप्ति में भी परोक्षरूप से सहायक होंगे। प्रयाग के बाद काशी या पटना में उनको रखना ठीक होगा। किन्तु उनकी चिकित्सा तथा देखभाल इतनी व्ययसाध्य है और उसके इतने दिनों चलने की संभावना है कि उनके स्थानीय साहित्यिक मित्र और भक्त उसका व्ययभार नहीं उठा सकते—चाहे वे प्रयाग में रहें, चाहे काशी या पटना में। अतएव उत्तर प्रदेश या बिहार की सरकार को चाहिए कि वह अपने व्यय से उनकी चिकित्सा का प्रबंध कर दे। चाहे उन्हें स्थानीय मेडिकल कालेज में एक निजी कॉटेज दे दी जाय, और चाहे स्थानीय प्रमुख अस्पताल में। उनके परिवार का उनके साथ रहना भी परम आवश्यक है। राहुलजी ने सारा जीवन सेवा में व्यतीत किया। उन्होंने दुर्दिन के लिए अर्थ संचय की कभी चिंता नहीं की। सरकार या तो उनके परिवार के रहने का प्रबंध कर दे, अथवा उनकी पत्नी को (जो हिंदी में पी-एच० डी० हैं) किसी स्थानीय संस्था में कोई अस्थायी या स्थायी पद दिला दे जिससे वे स्वयं अपने परिवार का पोषण करते हुए वहाँ रह सकें। राहुलजी और उनके परिवार को दार्जिलिंग से प्रयाग, काशी या पटना लाने का प्रबंध भी सरकार को ही करना होगा, क्योंकि उनका परिवार यह व्यय-भार उठाने में समर्थ नहीं होगा। स्वतंत्र भारत में हमारी कल्याणकारी (वैलफेयर) सरकार के शासन में यदि राहुलजी के समान अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् की चिकित्सा की समुचित व्यवस्था राज्य की ओर से नहीं होती तो भावी पीढ़ियाँ हमारे "कल्याणकारी राज्य" होने के दावे को क्या समझेंगी, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। राहुलजी का स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जा रहा है, और यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र उपयुक्त स्थान में लाकर उनकी चिकित्सा विधिवत् आरंभ कर दी जाय। विलम्ब घातक हो सकता है। राज्य सरकारों को इस ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए।

राहुलजी और साहित्यिकों की सहानुभूति—राहुलजी की बीमारी से हिंदी-प्रेमियों और साहित्यिकों में बड़ी बेचैनी फैल गयी है। वह इस बात से और भी बढ़ गयी है कि उनका उचित उपचार धनाभाव के कारण नहीं हो पा रहा है। श्रीलंका से कुछ दिनों के लिए आये हुए एक सज्जन से मालूम हुआ कि वहाँके विद्वान् और उनके प्रशंसक उनके लिए चंदा करके धन भेजना चाहते हैं, किन्तु उन्होंने (हमारे परिचित सज्जन ने) उन्हें यह कह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुत्साहित कर दिया कि श्रीलंका की सरकार भारत को भेजने के लिए विदेशी मुद्रा (फारन एक्सचेंज) नहीं देती। निजी रूप से उन्होंने बतलाया कि भारतवासी होने के कारण इस बात की लज्जा मालूम हुई कि राहुलजी की चिकित्सा का भार हम भारतवासी नहीं उठा सकते, और उसके लिए विदेशी विद्वानों को सहायता करनी पड़े। इस देश में भी कितने ही हिंदीप्रेमी और हिंदी साहित्यकार इस संबंध में यथाशक्ति अपना कर्तव्यपालन करने के लिए उत्सुक हैं। जबलपुर में इसके लिए कुछ उत्साही साहित्यिकों ने चंदा जमा करना आरंभ भी कर दिया है। हमें वहाँकी एक घटना सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह इतनी प्रेरणाप्रद और सुन्दर है कि उसका लिपिबद्ध होना आवश्यक है। जबलपुर के प्रसिद्ध कवि और लेखक श्री नर्मदाप्रसाद खरे को मध्यप्रदेश शासन से उनकी कहानियों के संग्रह "रोटियों की वर्षा" पर ५०० रुपये का पुरस्कार मिला। उस पुरस्कार की राशि जिस दिन उनके पास पहुँची, उससे दो-चार दिन पहिले राहुलजी के चिकित्सा-व्यय के लिए धन एकत्र करना आरंभ हो गया था। इस पुरस्कार की राशि के आने की सूचना पाकर एक-दो साहित्यिक मित्र नर्मदाप्रसादजी के पास पहुँचे और बोले, "तुम्हारी अपेक्षा राहुलजी को इस समय इन रुपयों को अधिक आवश्यकता है।" नर्मदाप्रसादजी की समझ में यह बात तुरंत आ गयी, और उन्होंने तुरंत ही प्रसन्नतापूर्वक सारा पुरस्कार राहुलजी की चिकित्सा के लिए दे दिया। जब हमने यह घटना सुनी तब हमें कवि हरिनाथ जी के संबंध में कहा गया यह दोहा याद आ गया:

दान पाय दो ही बढ़े, कै हरि, कै हरिनाथ।
उन बढ़ि पग ऊँचे किये, इन बढ़ि ऊँचे हाथ!

हरिनाथजी को जयपुर-नरेश ने बहुत-सा धन पुरस्कार में दिया। वे उसे लेकर घर चले। रास्ते में एक दूसरा कवि मिला; जिसके काव्य पर प्रसन्न होकर उन्होंने जयपुर-नरेश से पाया हुआ सारे का सारा पुरस्कार हाथ उठाकर (ऊँचे हाथ करके) दे दिया। साहित्यकार के हृदय की नैसर्गिक कोमलता, संवेदनशीलता, सहृदयता और उदारता विख्यात है। वह विपरीत होने पर भी "सरसत्वं न मुंचति।" श्री नर्मदाप्रसादजी के इस अनुपम कार्य ने हमें आश्वस्त कर दिया कि इस व्यावसायिक और आपाधापी के युग में भी साहित्यकार की सहृदयता बिलकुल लुप्त नहीं हुई। उनके इस कार्य का महत्त्व इस कारण और भी बढ़ जाता है कि वे स्वयं कोई प्रसिद्ध "पूँजीपति" साहित्यकार नहीं हैं। आज हिंदी में कितने ही साहित्यकारों की आर्थिक अवस्था अपेक्षाकृत अच्छी है। एक "हिंदीजीवी" वर्ग (जिसे 'हिंदी प्रोफेसर' कहा जाता है) तो किसी भी अच्छे से अच्छे साहित्यकार से अधिक सम्पन्न है। वह हिंदी का 'प्रतिनिधि' और 'शुभचिंतक' होने का सबसे अधिक दावा करता है। उससे हम यह तो नहीं कहेंगे कि आप अपने वेतन में से एक पाई भी ऐसे कामों में खर्च करें, पर हम बड़ी नम्रता से उनसे कहेंगे कि "अपनी इस वर्ष की 'बालाई' (ऊपरी आमदनी जैसे, परीक्षा, थीसिस आदि का पारिश्रमिक, टैक्स्ट-बकों की रायल्टी आदि की आमदनी) में से केवल आधा इस बार राहुलजी की चिकित्सा के लिए दे देने की कृपा कीजिए।" हिंदी में इतने प्रोफेसर हैं कि यदि वे हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लें तो राहुलजी की चिकित्सा का एक वर्ष का व्यय आसानी से एकत्र हो जाय। देखना है कि हमारी प्रार्थना पर वे ध्यान देने की कृपा करते हैं या हमारा सुझाव केवल अव्यावहारिक प्रलाप समझा जायगा, और अरण्यरोदन की तरह व्यर्थ जायगा।

डॉ० काटजू का चुनाव—डॉ० कैलाशनाथ काटजू इलाहाबाद हाईकोर्ट के अपने समय के अत्यंत प्रसिद्ध वकील रहे हैं। सन् १९३७ तक ये वकालत करते रहे। सक्रिय राजनीति में नहीं रहे और न तब तक जेल गये थे। १९३७ में जब उत्तर प्रदेश में पहिला कांग्रेसी मंत्रिमंडल बना तो उसमें ये मंत्री बना दिये गये। सन् १९३९ में जब मंत्रिमंडल ने त्यागपत्र दिया तब उन्होंने भी त्यागपत्र दे दिया और अन्य नेताओं के साथ १९४२ में वे भी पकड़कर जेल में बंद कर दिये गये। जब केन्द्र में कांग्रेसी सरकार आयी तो वे बंगाल के राज्यपाल बनाये गये। बाद में केन्द्र में गृहमंत्री और सुरक्षा-मंत्री भी रहे। जब पं० रविशंकर शुक्ल का अचानक स्वर्गवास हो गया तब मध्य प्रदेश में मुख्य मंत्री पद के लिए किसी योग्य और उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता हुई। मध्यप्रदेश राज्य बड़ा विहंगम राज्य बन गया था। वह "कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा" एकत्र कर एक 'भानमती का कुनबा' बना दिया गया था। उसमें जो नेता थे वे या तो महाकोशल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के थे, या मध्यभारत के, या विंध्यप्रदेश के और या फिर भोपाल के। 'अखिल मध्यप्रदेशीय' नेता कोई न था। जो मध्यभारत में सुपरिचित था, उसे महाकोशल या विंध्यप्रदेश के लोग न जानते थे, और जो महाकोशल का था उससे अन्य प्रदेशों के लोग अपरिचित थे अतएव वहाँ तब तक ऐसा व्यक्तित्व न था जो 'अखिल मध्यप्रदेशीय' हो, या इतना बड़ा नेता हो जिसकी साख और दबदबा केन्द्रीय सरकार पर भी हो। ऐसी अवस्था में डॉ० कैलाशनाथ काटजू पर केंद्र की निगाह पड़ी। केन्द्र में उनके बिना काम चल सकता था। उनका मध्यप्रदेश से यह संबंध था कि वे मध्यभारत की एक भूतपूर्व रियासत जावरा में पैदा हुए थे। उनका सारा कर्मठ जीवन उत्तर प्रदेश में बीता। इलाहाबाद में वे घर बना कर बस भी गये, किन्तु जब मध्यप्रदेश के लिए एक मुख्य मंत्री की "आवश्यकता" विज्ञापित हुई तब जावरा के संबंध के कारण केन्द्र ने उन्हें 'मध्य प्रदेशीय' घोषित करके वहाँ की मुख्य मंत्री की गद्दी पर बैठा दिया। डॉ० काटजू बड़े सज्जन, बुद्धिमान्, अच्छे वकील और आभिजात्य वर्ग के हैं। बड़े और सफल वकील की हैसियत से उनकी यथेष्ट ख्याति थी, और राज्यपाल तथा केन्द्रीय मंत्री होने के कारण उनकी बड़ी साख थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्हें केन्द्र का पूरा विश्वास और समर्थन प्राप्त था। अतएव मध्यप्रदेश के मंत्रियों और कांग्रेस ने उन्हें चुपचाप स्वीकार कर लिया। तिहत्तर वर्ष की अवस्था में भी वे शरीर से स्वस्थ हैं, यद्यपि उनकी कई इंद्रियाँ शिथिल हो गयी हैं, फिर भी उन्होंने दौरा करने में युवक मंत्रियों को लज्जित कर दिया। वे राजनीति में नहीं रहे थे, अतएव आज की निम्नस्तर की राजनीति से अपरिचित थे, और इतने सज्जन हैं कि उसमें सक्रिय भाग लेना वे शायद अपनी शान के विरुद्ध भी समझते हैं। उन्हें नौकरशाही पर बड़ा भरोसा है और उनके समय में मध्यप्रदेश में नौकरशाही सर्वशक्तिशाली हो गयी। वे स्वयं संस्कृत नहीं जानते, पर संस्कृत को 'राष्ट्रभाषा' बनाने की बात कहा करते हैं। हिंदी में उनकी कोई विशेष रुचि नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रदेश, विंध्यप्रदेश और मध्यभारत में सरकारी कार्यालयों में हिंदी ने जो प्रगति कर ली थी, वह समाप्त हो गयी, और अँग्रेजी का पूर्ववत् प्राधान्य हो गया। पिछले चुनाव में वे अपनी जन्मभूमि जावरा से खड़े हुए। पहिले भी वे वहीं से खड़े हुए थे और जीत गये थे। इस बार वे हार गये। जावरा मुसलमानी राज्य था। जावरा में मुसलमानों की अच्छी बस्ती है। लोग कहते हैं कि पहिली बार नवाब साहब ने उनका समर्थन किया था और उन्हें अधिकांश मुस्लिम मत मिल गये थे। इस बार कहा जाता है कि नवाब साहब तटस्थ रहे, और एक मुसलमान सज्जन भी खड़े हो गये। परिणाम यह हुआ कि उन्हें आठ हजार (अधिकतर मुस्लिम मत) मिले। डॉ० काटजू दो हजार मतों से हार गये। यदि मुस्लिम मत उन्हें मिल जाते तो वे छः हजार मतों से जीत जाते। मालूम पड़ता है कि नवाब साहब के तटस्थ होने से यह दुर्घटना हो गयी। अब कांग्रेस उच्च कमान ने उन्हें नरसिंहगढ़ के उप चुनाव में खड़ा किया है। यहाँ नरसिंहगढ़-नरेश संसद और राज्यविधानसभा के लिए पिछले चुनाव में खड़े हुए थे, और उन्होंने कांग्रेस का विरोध किया था तथा कांग्रेस को भारी बहुमत से पराजित किया था। वे दोनों जगह नहीं रह सकते। अतएव उन्होंने विधानसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने डॉ० काटजू को नरसिंहगढ़ से खड़े होने को निमंत्रित किया, किन्तु उस समय उन्होंने इंकार कर दिया। तब महारानी नरसिंहगढ़ विधानसभा के लिए खड़ी हो गयीं। किन्तु बाद में कांग्रेस उच्च कमान ने डॉ० काटजू को नरसिंहगढ़ से खड़ा कर दिया। नरसिंहगढ़-नरेश तो उन्हें पहिले ही निमंत्रित कर चुके थे, अतएव उन्होंने रानी साहबा को बैठा दिया, और उन्होंने स्वयं गाँव-गाँव घूम कर डॉ० काटजू को जिताने के लिए प्रयत्न किया। यदि रानी साहबा खड़ी रहतीं तो डॉ० काटजू का जीतना अत्यंत कठिन था। अब डॉ० काटजू हजारों की संख्या में अधिक मत पाकर जीत गये। एक देशी नरेश अर्थात् जावरा के शासक की तटस्थता के कारण डॉ० काटजू को पराजित होना पड़ा, किन्तु दूसरे देशी नरेश अर्थात् नरसिंहगढ़-नरेश की कृपा से डॉ० काटजू सफल हो गये हैं। देशी नरेश अब भी अपने क्षेत्रों में कितने प्रभावशाली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद तीन हैं या चार ?

श्री चन्द्रकान्त बाली

भारत का विद्वत्समाज न जाने कब से विवाद करता चला आ रहा है कि "वेद तीन हैं या चार।" इस विवाद की निर्णायक स्थिति अभी तक नहीं आई; संभवतः आयेगी भी नहीं। इसका कारण जो हो, अपनी राय तो यह है कि विवाद का आरंभ जिस पावन धारणा से होता है, उसकी अन्तिम निर्णिनीषा उतनी पावन नहीं रह जाती, जितनी कि आशा की जाती है। यह है भी ठीक। जब ज्ञान का स्थान हठ ले लेता है तो विजिगीषा भी निर्णिनीषा को अपदस्थ कर देती है। 'विजिगीषा' के साथ जुड़ा हुआ 'वितण्डा' सत्य को दूर-ही-दूर रखता है। यही कारण है कि वेद-विषयक समस्याएँ भी जो स्वतः ज्ञान-मूलक होने से पावन मानी जानी चाहिए थीं—अज्ञान गर्त्त में जा गिरती हैं और विवदिषुजनों को उपहासपात्र बना देती हैं। इस समय तक एक पक्ष की मान्यता है—वेद तीन हैं; दूसरे पक्ष का आग्रह है—वेद चार हैं। दोनों पक्ष झुकने का नाम नहीं ले रहे। यही कारण है कि दोनों पक्षों में से किसीने एक दूसरे के साथ न्याय नहीं किया और न एक दूसरे को ईमानदारी से समझने का यत्न किया है।

वेद तीन हैं

वेद स्वतः प्रमाण हैं। वेद के किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिए किसी इतर ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं है। वेद अपने तथ्यों, स्वीकृतियों और निर्णयों के लिए स्वयं प्रमाण है। वह अपने ही अन्तः साक्ष्यों के बल पर बड़ी दृढ़ता से खड़ा है। वेद की अपनी स्थापना यह है कि वेद तीन हैं; यथा—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मदजायत।

यह यजुर्वेद का मंत्र है। इसमें तीन वेदों का अत्यन्त स्पष्ट उल्लेख है। ऋग्वेद के बाद सामवेद का नाम आ गया है, जो क्रमभंग का सूचक बताया जा सकता है। क्रमानुसार ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद का नाम आना चाहिए था। परन्तु इसमें क्रमभंगवाली कोई बात नहीं है। सभी जानते और मानते हैं कि वेद की तीन शैलियाँ हैं—छन्दः, गीत और गद्य। भाषा-विज्ञान का भी यही निर्णय है कि छन्दः गद्य से वयस्क है। बस, मंत्र में इसी वैज्ञानिक उपक्रम का निर्वाह किया गया है। इसकी ध्वनि 'छन्दांसि' शब्द से स्फुट है। इसमें चतुर्थ वेद की कोई बात नहीं। परन्तु चतुर्वेदवादियों की इससे कोई सहमति नहीं। वे अपने ढंग से इसका अर्थ करते हैं। जाने वे किस तरीके से 'छन्दांसि' का अर्थ 'अथर्ववेद' लगा लेते हैं![1] क्या 'छन्दः' तथा 'अथर्व' परस्पर पर्यायवाचक शब्द हैं? यदि हाँ, तो इसका आधार बताना होगा। क्या 'छन्दः' का अथर्ववेदपरक अर्थ यौगिक पद्धति से लगाया जाता है या रूढ़ पद्धति से? आखिर इस प्रसंग में व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा, कल्प तथा अन्य शास्त्रों की सम्मति उद्धृत करनी होगी। बिना किसी ठोस आधार के चतुर्वेद-वाद को हृदयङ्गम कर सकना कठिन है। हम जानते हैं, चतुर्वेद-पक्ष अपनी अर्थ-सिद्धि के लिए कोई नया तर्क नहीं दे सकता। और मजे की बात यह है कि वैदिक शब्दों पर पैदे-पदे टकराने वाले आर्य-समाजी तथा सनातन धर्मी विद्वान् इसी एक बिंदु पर एकमत हो जाते हैं।

अच्छा, वादी-संतोष न्याय से हम मान लेते हैं कि "तस्माद्यज्ञात्" इस मंत्र का वही अर्थ ठीक है, जो चतुर्वेदवादियों को मान्य है; 'छन्दांसि' इस शब्द का अर्थ हृदयग्राह्य न होने पर भी उसे अपने मस्तिष्क में स्थान देने का यत्न करते हैं। पर वे इस मंत्र के विषय में अपनी राय क्या रखते हैं? यथा—

यस्मिनृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमेतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

इसमें ऐसा कौन-सा शब्द है, जिसमें 'अथर्ववेद' का अर्थाधान किया जायगा? 'रथ-नाभि-इव-आर' इतने शब्द तो इसमें आ गये हैं! चतुर्वेद-वादियों की दुर्बलता अब इतनी

१—"क्योंकि वेदमंत्रों में अथर्ववेद का नाम छन्दोवेद भी है" (वेदवाणी: १२-९: पृष्ठ ५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जटिल नहीं रही, जो समझ में ही न आये। वे आवश्यकता पड़ने पर ब्रह्म[१], छन्दः[२]; उद्गीथ[३] और उक्थ[४] को 'अथर्व' का पर्याय ठहरा लेते हैं और बड़ी आसानी से चतुर्थवेद की निष्पत्ति कर लेते हैं। इधर वेद-दर्शक ऋषियों की गणना में अथर्व ऋषि का नाम नहीं है; यथा--

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्धचर्थम् ऋग्यजुःसामलक्षणम्।--मनु० १-२३।

इसमें अग्नि, वायु और रवि के साथ-साथ अथर्वा का नाम भी आना चाहिए था। पर वह नहीं है। ऋषि दो प्रकार के हैं; यथा--मंत्रद्रष्टा ऋषि और मंत्रव्याख्याता ऋषि। अग्नि-वायु-रवि ये मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं। अतः कर्तृ-सापेक्ष-पक्ष में वेद को तीन ही बताया जा सकता है, अधिक नहीं। मनु के कथन को यूँही फूंक मार कर उड़ाया न जा सकेगा। कारण ऐत्तरेय ब्राह्मण तथा शतपथब्राह्मण मनुस्मरण का शत-प्रतिशत समर्थन करते हैं[५]।

मीमांसा के अनुसार वेद की तीन शैलियाँ इस प्रकार हैं; यथा--

१--तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था

२--गीतिषु सामाख्या

३--शेषे यजुः शब्दः।

यह शैलीव्यवस्थापन भी अथर्व वेद को अपनी सीमा से बाहर ही रखता है। यह त्रयीवाद वेद के अन्तःसाक्ष्य से पूर्ण तथा स्पष्ट और पुष्ट है; यथा--

१--ऋचो नामास्मि, यजूंषि नामास्मि, सामानि नामास्मि।[६] (यजुः १८।६७)।

२--त्रयी वै विद्या। ऋचो यजूँषि सामानि। (शतपथ ब्राह्मण)।

३--शरीरं ब्रह्म प्राविशद् ऋचः, सामाथो यजुः। (अथर्ववेदः १।१०।२३)।

इस प्रकार अनेक वैदिक तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद तीन हैं। वेदत्रयीवाद स्वतः प्रमाण वेदों से प्रतिपादित ही है। इसे किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। यदि इतर प्रमाणों की आवश्यकता आ भी पड़े, तो भी वे त्रयीवाद का ही समर्थन करते हैं। त्रयीवाद के समर्थन में ऋग्वेद[१] के अतिरिक्त गोपथब्राह्मण[२], छान्दोग्य उपनिषद्[३], पद्मपुराण[४], मत्स्य पुराण[५], महाभारत[६] से लेकर आधुनिकतम काव्य शास्त्रों के नाम लिये जा सकते हैं।

निष्कर्ष यह कि अथर्ववेद के ऊर्ध्ववर्ती समय में वेद तीन ही थे। वेद की शैलियाँ तीन ही मानी जाती थीं; वेद के द्रष्टा ऋषि भी तीन ही थे और इन तीनों वेदों के परस्पर-सिद्ध अन्तःसाक्ष्य 'वेदत्रयी' का प्रतिपादन करते हैं। अतः वेदत्रयी युग में अथर्ववेद को ठेलकर स्थापित करना एक तरह का दुष्कर प्रयास है। ब्रह्म, छन्दः, उद्गीथ और उक्थ आदि शब्द भी उत्तरकालीन माने जाते हैं। वेदत्रयी में इन शब्दों का प्रयोग अथर्व-वेद-परक देखने में नहीं आता। अतः सर्वसिद्ध तंत्र प्रसिद्ध तथ्य यही है कि वेद तीन हैं।

वेद चार हैं

कालक्रम के अनुसार 'वेदत्रयी' का स्थान 'वेद चतुष्टय' ले लेता है। अथर्ववेद में पहली बार अन्य वेदों के साथ साथ 'अथर्ववेद' का नाम आया है; यथा--

यस्मादृचोऽअपातक्षन् यजूंषि यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वांगिरसो मुखम्॥
--अथर्व० १०।७।२०

यह अथर्ववेद का मंत्र है। बस, केवल यही एक मंत्र है जो सीमा-विभाजन का काम करता है। सीमा-पारवर्ती

१--चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः (गोपथ ब्राह्मण)।

२--तदिदं किंच ऋचो यजूँषि सामानि छन्दांसि (बृहदारण्यक उपनिषद्)।

३--वाचा ऋग्रसः, ऋचा सामरसः, साम्ना उग्दीथोरसः (छान्दोग्य उपनिषद्)।

४--सैव ऋग्, तत्साम, तदुक्थं तद्यजुः। (वही)।

५--(क) त्रयो अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात् (ऐतरेय ब्राह्मण)।

(ख) अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः (शतपथ ब्राह्मण ११।४।२।३)।

६--ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये। (यजुः ३४।१७)।

१--तिस्रो वाचः (१।१०१।१)।
२--त्रीन् वेदान् (पू० १।६)।
३--त्रयी विद्या।
४--वेदत्रयमिदं ज्ञेयम्। (पा० ख० अ० १०८।४)।
५--त्रयीं शास्त्रसुनिश्चिताम् (अ० २१४।५०)।
६--त्रयो वेदाः (शान्तिपर्व १०८।६)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में वेद तीन थे, और उनका वैसा ही उल्लेख उन वेदों में है--जैसा कि हम विगत पंक्तियों में देख आये हैं। सीमा-अपारवर्ती युग से सहसा वेदचतुष्टय मत खड़ा हो गया है और तदुत्तरवर्ती ग्रंथों में उसीकी छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है। यद्यपि ऋग्वेद में 'अथर्वा' तथा 'अङ्गिरा' के नाम[1] आते हैं; तथापि वे किसी दूसरे अर्थाधान को व्यक्त करते हैं; उनमें से चतुर्थवेद का निष्पादन करना साहसमात्र होगा।

वेद निम्नवर्ती साहित्य में 'चतुर्वेदवाद' का स्पष्ट प्रतिपादन मिल जाता है। यद्यपि 'स्ववचन व्याघात' के न्याय से वे दूसरे पक्ष (वेदत्रय) का निरूपण भी कर जाते हैं; तथापि उसमें उपलब्ध चतुर्वेद-वाद की उल्लेख-शृंखला से इंकार नहीं किया जा सकता। यथा--

१--ब्राह्मण ग्रन्थ---

वेद के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम लिया जाता है। ये वेद व्याख्यान के रूप में प्रसिद्ध हैं ही। इनमें 'चतुर्वेद पक्ष' को स्पष्ट देखते हैं; यथा---

(क) **चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेद, सामवेदो ब्रह्मवेदः** (गोपथब्राह्मण)

(ख) **चत्वारो वै वेदाः। तै यज्ञस्तायते।** (वही)।

(ग) **ऋग्यजुःसामाथर्वाणि...** (वही)

(घ) **ऋचो यजूँषि सामानि अथर्वाङ्गिरसश्च ये।** (तैत्तिरीय ब्राह्मण)।

(ङ) **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः** (शतपथ)

२--उपनिषद्--

सनातनधर्म्म के अनुसार "वेदब्राह्मणयोरेकनामधेयम्" ब्राह्मण ग्रन्थ वेदरूप ही हैं। अतः वेद ब्राह्मणग्रन्थों के बाद उपनिषद माने जाते हैं। उनमें चतुर्वेद-पक्ष इस प्रकार से है--

(क) **स होवाच भगवोऽध्येमि ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थञ्चेति** (छान्दोग्य उप०)

(ख) **तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः** (मुण्डकोपनिषद्)।

(ग) **स ऋचोऽधीते स यजूष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वाणमधीते** (बृहज्जाबालकोप०)।

वैदिक साहित्य से नीचे उतर कर गृह्यसूत्र[1], स्मृतिग्रंथ[2], संहिताग्रंथ[3] महाभाष्य[4], वाल्मीकिरामायण[5] तथा महाभारत[6] में भी चतुर्वेद विद्या का स्पष्ट उल्लेख है। पुराण ग्रन्थ[7] भी यथामति चतुर्वेदवादियों का पक्ष पुष्ट करते ही हैं।

संघर्ष कहाँ है?

वेदत्रयी का पक्ष सामने है, उसके प्रमाण भी सामने हैं; चतुर्वेद-वाद भी सामने हैं, उसके पोषक प्रमाण भी सामने हैं; विचारकों को इनका बलाबल देखकर एक मत स्थिर करना होगा।

वेद-वादविषयक सारे प्रमाण दो भागों में विभक्त हैं--अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य। बहिःसाक्ष्यों को प्रमाण कोटि में ला सकना कठिन है। एक तो वेद संबंधी कुछ प्रतिबंध ऐसे हैं जो वेदोत्तर अथवा वेदेतर साहित्य को अपने निकट लाने में प्रतिरोधक बन जाते हैं। दूसरा,

---

१--(क) यज्ञैरथर्वा प्रथमः प्रथस्यते (ऋग्वेद १।६।५)
(ख) त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः।
(१) ऋग्वेद ६।१६।३; (२) यजुः ११।३२।१५; (३) सामवेद, म० ९)।
(ग) अग्निजातोऽथर्वणः (ऋग्वेद १०।२१।४)।
(घ) सोऽअङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमोऽभूद् (ऋग्वेद १।१००।४)।

१--(क) जुहोति पृथिव्यै ऋग्वेदाय, यजुर्वेदाय, सामवेदायाथर्ववेदाय (वैखानसगृह्यसूत्र)
(ख) यदृचोऽधीते, यद्यजूँषि, यत्सामानि, यदथर्वाङ्गिरसः (आश्वलायन गृह्य सूत्र)।
२--अधीत्य चतुरो वेदान्....
३--ऋग्भिः शंसन्ति, यजुर्भिः यजन्ति, सामभिः स्तुवन्ति, अथर्वभिर्जपन्ति। (काठक संहिता)।
४--त्रयो लोकाः चत्वारो वेदाः (१।१।१)
५--ना नृग्वेदविनीतस्य, ना यजुर्वेदधारिणः। ना सामवेदविदुषः.....(?) (कि० का० ३।२८)।
६--ऋग्वेदे यजुर्वेदे च तथैवाथर्वसामसु। (शान्तिपर्व ३४१।८)।
७--(क) ऋचो यजूँषि सामानि छन्दांस्यथर्वणानि च। (हरिवंश पुराण)।
(ख) अकारं बह्वृचं प्राहुरुकारो यजुरुच्यते। मकारः सामनादोऽस्य श्रुतिराथर्वणी स्मृता।
(ग) आध्वर्यवं यजुभिः स्यात् ऋग्भिर्होत्रं द्विजोत्तम! उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः।
(कूर्मपुराण)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नवर्ती युगों में बना साहित्य ऊर्ध्ववर्ती साहित्य को भला क्या प्रमाणित करेगा? पूत क्या जाने बाप की बात? तीसरा, ऐसे ग्रन्थों को प्रमाणरूप में उपस्थित करना भी एक जटिल प्रश्न बन जायेगा जो दोनों पक्षों का स्पर्श करते हैं। नैयायिकों ने ऐसे साधनों को कोई आदर नहीं दिया जो अपने साध्य के प्रति निश्चित न हों, तथा आवश्यकता पड़ने पर परपक्ष को भी पुष्ट कर सकते हों[1]। पद्मपुराण एक साँस में 'तीन वेद' की बात करता है और दूसरे साँस में 'चार वेद' की बात बता जाता है[2]; महाभारत में 'तीन वेद' वाले अपना पक्ष देखते हैं और 'चार वेद' वाले अपना पक्ष[3]। पर इसका अर्थ यह नहीं कि इन निम्न युगवर्ती साहित्य का कोई मूल्य नहीं। नहीं, ऐसी बात नहीं है। 'त्रयीवाद' तथा 'चतुर्वेदवाद' वैदिककाल से लेकर अद्यतन समय तक किन-किन मंजिलों से गुजर चुका है, 'त्रयीवाद' का अपना इतिहास क्या है और चतुर्वेदवाद का भी इतिहास कितना है?—यह ज्ञान वेद परवर्ती साहित्य पर निर्भर करता है। अतः इसका उपयोग इस दृष्टि से लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

अब रही वैदिक अन्तःसाक्ष्यों की बात। ऋग्वेद में कहीं अथर्ववेद का नाम नहीं है। ब्रह्म, छन्द, उद्गीथ और उक्थ—ये अथर्ववेद के नाम हैं या तद्विषयक संकेत हैं, ऐसा ऋग्वेद में कहीं नहीं। अलबत्ता ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका वेदविषयक प्रयोग देखकर यह कहना असंगत न होगा कि आखिर यह परवर्ती साहित्य है। कुछ अन्य विद्वानों ने ऋग्वेद से 'चतुर्वेदवाद' को सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है[1]। इसमें हमारी दो धारणाएँ हैं—पहली यह कि उक्त विद्वानों को अपने विषय में कुछ अतिशयोक्ति मालूम पड़ती हैं, दूसरी यह कि वे पाठों के विषय में एकदम अत्युक्ति-ग्रस्त हैं। अन्यथा वे 'पद' के विशेषण को वेद का विशेषण न ठहराते। इस प्रकार सामवेद तथा यजुर्वेद भी अथर्ववेद के विषय में मौन हैं। जो लोग चतुर्वेद-वाद के लिए तर्क एकत्र करते हैं, उन्हें चाहिए कि 'ऋग्यजुःसाम' का मन्थन करें; अन्यथा 'वेदत्रयी' को स्वीकार करें। हाँ, अथर्ववेद में 'अथर्ववेद' का उल्लेख है, जो ठीक है। 'अथर्ववेद' के बाद पौस्तक स्तर पर चतुर्वेद-पक्ष चल पड़ा है और जो अद्यावधि जीवित है। परन्तु वह 'त्रयीवाद' को सर्वथा समाप्त नहीं कर सका। निष्कर्ष यह कि—

१—ऋग्यजुःसामवेदों के अन्तःसाक्ष्यों से वेदत्रयीवाद सर्वथा सिद्ध है।

२—शैलीगत[2], प्रयोगगत[3], कर्तृगत[4] और व्यवहार-गत[5] त्रयीवाद ही यथार्थ है।

३—अथर्व से पूर्व वेदत्रयीवाद था और अथर्ववेद के बाद चतुर्वेदवाद है।

४—ब्राह्मण, गृह्यसूत्र, स्मृति, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत तथा लौकिक काव्यों में वेदत्रयीवाद तथा चतुर्वेदवाद का अपने-अपने तौर पर इतिहास विद्यमान है।

अतः प्राचीनतावादियों के मत में "वेद तीन हैं", और नवीनवादियों के मत में "वेद चार हैं"।

१—यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षेविरुद्धञ्चयत् तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव—(मुद्राराक्षस ५-१०)।

२—(क) वेदत्रयमिदं ज्ञेयम् (पद्मपुराण पा० अ० १०८।६)।

(ख) चतुरो वेदान् (वही, सृ० अ० १३।३६२)।

३—(क) त्रयो वेदाः (शान्तिपर्व)।

(ख) ऋग्वेदे यजुर्वेदे च तथैवाथर्वसामसु (शान्ति पर्व)।

१—(क) वेदों का यथार्थ स्वरूपः श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड: पृष्ठ ४०३-४०७।

(ख) वेदवाणी: वर्ष ९, अंक ७, पृष्ठ १४।

२—छन्द, गीत और गद्य।

३—होता, ऋत्विक् और अध्वर्यु (तीन वेदों का युग-पज्ज्ञाता ब्रह्मा होता है)।

४—अग्नि, रवि और सूर्य।

५—ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड।

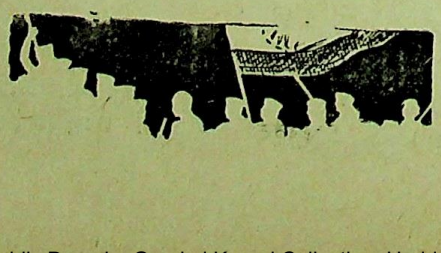

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

हिन्दी क्षेत्र का नेतृत्व

(चुनावों में लक्षित प्रवृत्तियों की समीक्षा)

श्री जी० एस० पथिक

'हिन्दी क्षेत्र' भारत का सबसे विशाल अंग है। उसका महत्त्व, उसका प्रभुत्व और उसका नेतृत्व सारे देश में विद्यमान है। यह हिन्दी क्षेत्र उत्तर से मध्य भारत तक प्रसारित है। उसके ही प्राङ्गण में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और पूर्वी पंजाब है। स्वतंत्र भारत में इन राज्यों का एक हिन्दी राज्य नहीं बन पाया, किन्तु संसद में हिन्दी क्षेत्र के रूप में संयुक्त नेतृत्व है। यदि देश में प्रादेशिकता एवं क्षेत्रीय भावना और भाषावाद का उफान न पैदा होता तो यह प्रकट है कि नये भारत के मानचित्र में केवल चार-पाँच राज्य होते। मगर दैव दुर्विपाक से देश के स्वतंत्र होने पर दक्षिण भारत कई टुकड़ों में बँट गया। दक्षिण की नई रचना में आंध्र प्रदेश, केरल, मैसूर और तामिल चार राज्य बने। यदि ये राज्य न बनते तो कदाचित् नये पुनर्गठन में दक्षिण का विशाल राज्य मद्रास बनता। उस अवस्था में दक्षिण का नेतृत्व अत्यंत सबल और स्वस्थ होता। उत्तर में साम्प्रदायिकता का विष न फैलने देने के लिए यह आवश्यक था कि शासन पंजाब में हिमाचल प्रदेश और राजस्थान का विलीनीकरण करता। तब यह संभव था कि उसमें गुजरात और महाराष्ट्र भी मिलते। या महाराष्ट्र आंध्र प्रदेश में मिलता। इससे उत्तर और दक्षिण एक कड़ी में बँधते। इस सिलसिले में पूर्व भारत में पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा और आसाम 'पूर्व भारत' राज्य का निर्माण करते। इस दिशा में पश्चिम बंगाल का नेतृत्व अग्रसर हुआ था कि किसी न किसी रूप में पश्चिम बंगाल और बिहार का एकीकरण हो। किन्तु बिहार की भारी संख्या देखकर पश्चिम बंगाल की जनता भय खा गयी और तब बंगालियों में जो रोष पैदा हुआ, उससे इस योजना के प्रणेताओं को साहस न हुआ कि वे अपने निश्चय पर अड़े रहें। उस योजना का अंकुर नहीं फूट पाया और वह जड़ मूल में मुर्झा गयी।

राज्यों के संघर्ष

एक बार विघटन का जो कदम बढ़ा, वह फिर कब रुकनेवाला था! लाख प्रयत्न करने पर भी पुराना बम्बई राज्य कायम न रह सका। गुजरात और महाराष्ट्र के क्षेत्रों में जबर्दस्त संघर्ष हुआ। उसके आगे केन्द्रीय शासन को झुकना पड़ा और महाराष्ट्र और गुजरात दो पृथक राज्य बने। अतीत में देश में जिस प्रकार अनेक छोटी-बड़ी रियासतें थीं, वैसे ही नये भारत में नये राज्य भाषा का लबादा ओढ़कर बने। इतिहास ने पुनरावृत्ति की। ये नये राज्य पुरानी रियासतों की विषाक्त मनोभावना लेकर बढ़े। उनका लक्ष्य सारे देश के संयुक्त रूप में नव-निर्माण का नहीं रहा। रियासतों की अपेक्षा इन राज्यों में कई अनेक विनाशकारी तत्त्व पैदा हुए। एक राज्य दूसरे राज्य से संघर्ष करने में बढ़ा। दो विदेशी राष्ट्र जिस मनोभावना से एक दूसरे के प्रति पेश आते हैं, वस्तुतः उसी मनोभावना से एक राज्य का अपने पड़ोसी राज्यों के प्रति व्यवहार हुआ। किसी एक राज्य को यह सहन न हुआ कि उसके कुछ भाषा-भाषी पड़ोस के राज्य की सीमा में बने रहें। जब सहनशीलता का बाँध टूट गया, तब कोई राज्य यह कैसे सहन करता कि किसी दूसरे राज्य में उसका कुछ क्षेत्र बना रहे। जमीन, नदियों के जल और भाषा आदि के प्रश्नों पर नित्य नये झगड़े खड़े हुए। राज्यों में यह चेतना जाती रही कि भारत एक देश है, और सभी भाग उसके अंग हैं। इस अवस्था में देशभक्ति, राष्ट्रीयता और एकीकरण के भाव तिरोहित हो गये। आसाम में बंगालियों के आसामी भाषा न मानने पर संग्राम मच गया। इस शर्मनाक कृत्य पर संसार हम पर हँसा। फिर बिहार में बंगालियों के बसे हुए क्षेत्र को पाने के लिए पश्चिम बंगाल ने बिहार के विरुद्ध मोर्चा खड़ा कर दिया। इन सब कारनामों के समय यह आवाज भी उठी कि उनकी माँगें पूरी न होने पर राष्ट्र का एकीकरण नष्ट हो जायेगा। अर्थात्, कई राज्य भारतीय संघ से अलग हो जायँगे।

राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ

राष्ट्र के एकीकरण को छिन्न-भिन्न करने के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में आज भी प्रयत्न जारी हैं। आग पर रखे हुए भुस की तरह वे दबे हुए हैं। पंजाब और दक्षिण भारत प्रत्यक्ष रूप से एकीकरण के विनाश के लिए अग्रसर हैं। अन्य कई राजनीतिक शक्तियाँ प्रत्यक्ष रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से देश का अपघात करने में तल्लीन हैं। ये सब तत्त्व अवसर पाकर चोट पहुँचाने की ताक में हैं। दक्षिण भारत में द्रविड़ों के एक ऐसे दल ने जन्म लिया, जो देश के लिए सिरदर्द है। उसके अनुयायी अपने को भारत का मूल-निवासी मानते हैं। उनका यह कथन है कि जिस प्रकार अनेक मुसलमान और ईसाई भारत में आकर बसे, उसी प्रकार आर्य भी बाहर से आये। दोनों में समय का अन्तर है, किन्तु वे इस देश के मूलनिवासी नहीं हैं। यह वर्ग राम और कृष्ण की संस्कृति नहीं मानता और रामायण तथा महाभारत का तिरस्कार करता है। इन द्रविड़ों का कहना है कि उत्तर का शासन दक्षिण पर नहीं लादा जा सकता। इसलिए वे दक्षिण में अपना स्वतंत्र राज्य 'द्रविड़स्तान' कायम करना चाहते हैं। यह महत आश्चर्य है कि राजाजी ने इन द्रविड़ों को द्रविड़स्तान कायम करने के प्रयत्न को अपना आशीर्वाद दिया। उन्होंने द्रविड़ों की देश-भक्ति की प्रशंसा की। ये ही राजा गोपालाचार्य क्रिप्स-मिशन के समय देश-विभाजन की योजना लेकर सर्वप्रथम आगे आये थे। देश की राष्ट्रीयता के लिए बाधक मानकर कांग्रेस जिस चीज का विरोध करे, आज कांग्रेस को किसी भी चाबुक से मारने की मनोभावना से वे उसका समर्थन करें, तो कोई आश्चर्य नहीं। दूसरी ओर पंजाब में भी मास्टर तारासिंह को पंजाबी सूबे की माँग के समर्थन में कई राज-नीतिक दल और नेतृवृंद का समर्थन प्राप्त हुआ है। देश के विभाजन की घड़ियों में मास्टर तारासिंह ने पाकिस्तान के साये में सिखस्तान बनाने का श्री मुहम्मदअली जिन्ना से प्रस्ताव किया था, किन्तु जिन्ना ने तब मास्टर तारासिंह को ठुकरा दिया। अगर मास्टर तारासिंह की बात मान ली जाती, तो सारा पंजाब पाकिस्तान में चला जाता। मास्टर साहब चुप नहीं बैठे। आज उन्होंने सिखस्तान को पंजाबी सूबे का चोगा पहनाया है। वे कहते हैं कि पंजाब में पंजाबी भाषा का सूबा बनना चाहिए। अर्थात् पंजाबी भाषा के अन्तर्गत ऐसा सूबा बने, जिसमें सिखों का सर्वा-धिक मत हो। यह भाषा के प्रान्त-निर्माण की माँग नहीं है, अपितु एक साम्प्रदायिक माँग है, एक सम्प्रदाय के धर्म का राज्य-निर्माण करने का प्रयत्न है। जहाँ तक पंजाबी-भाषा के राज्य की बात है, वर्तमान पंजाब पंजाबी-भाषा का ही राज्य है। यदि उसमें अन्य भाषा-भाषी रहते हैं, तो वे केवल पंजाब में ही नहीं हैं, अन्य राज्यों में भी अन्य भाषाओं के लोग बसे हैं। आज पंजाब में हिन्दू और सिख सभी पंजाबी बोलते हैं। हिन्दुओं को भी पंजाबी भाषा से उतना स्नेह है, जितना सिखों को। इसलिए वर्तमान पूर्वी पंजाब पंजाबी सूबे का प्रतीक है। पर मास्टर तारासिंह को हिन्दुओं के साथ रहना मान्य नहीं है। पंजाब के जिस टुकड़े में वे पंजाबी सूबा कायम करना चाहते हैं, उसमें भी तो हिन्दू बसे हुए हैं। फिर शेष पंजाब में भी सिख रह जाते हैं, उनका और भारत में सर्वत्र बसे हुए सिखों का क्या होगा? क्या वे पंजाबी सूबे के सुख से वंचित रहेंगे? यह कैसी दुखद स्थिति है कि जिन सिख गुरुओं ने हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए, गौ-ब्राह्मण के प्रतिपालन के लिए, अपने और अपने शिष्यों के मस्तक दिये, आज उन्हीं के वंशज अपने को हिन्दुओं से पृथक् मानते हैं! सिख-सम्प्रदाय हिन्दू-धर्म से जुदा नहीं है, वह शैव और जैन की तरह हिन्दू-धर्म का एक दार्शनिक अंग है। सिखों की तरह पंजाब के हिन्दू भी गुरुग्रन्थसाहब का पाठ व पूजन करते हैं। इसके सिवा सिख और पंजाबी हिन्दुओं में रोटी-बेटी का संबंध है। कितने ही सिख युवकों के विवाह पंजाबी हिन्दुओं की लड़कियों से होते हैं। हिन्दुओं की गलती से ब्रिटिश शासनकाल में सिखों को पंजाब की राजनीति में अग्रसर किया गया था। पंजाब के शासन में मुसलमानों के प्रति-निधित्व को संतुलित रखने के लिए हिन्दुओं ने यह कहा कि सिख उनसे अलग हैं, इसलिए उन्हें पृथक् प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। अन्यथा, इसके पूर्व पंजाब की राजनीति में सिखों का कोई 'स्वतंत्र अस्तित्व' नहीं था। वे हिन्दुओं के दायरे के अंतर्गत थे। उस समय सिखों को आगे बढ़ाने का यह परिणाम हुआ कि उनके दिल व दिमाग बदल गये। पंजाबी एक बोली है, भाषा नहीं है, जिसे पंजाब में सभी बोलते हैं। यह हकीकत है कि पंजाबी साहित्यिक भाषा नहीं है। गुरुमुखी ग्रंथसाहब की धार्मिक लिपि है, वह कोई साहित्यिक लिपि नहीं है। यह दुर्भाग्य है कि धर्म और सम्प्रदाय के धरातल पर निर्माण चाहनेवाले इस तथा-कथित पंजाबी सूबे का समर्थन करने को कांग्रेस-विरोधी प्रजा-समाजवादी पार्टी, सर्वोदयी नेता, और कम्यू-निस्ट बढ़े। दक्षिण में चार साहित्यिक भाषाएँ हैं, पर यह न सोचना चाहिए कि इन भाषाओं के बोलनेवाले सभी लोग द्रविड़स्थान का समर्थन करते हैं और हिन्दू-धर्म और हिन्दू संस्कृति का अनादर करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा दक्षिण द्रविड़स्तान की माँग के पीछे कदापि नहीं है।

क्षेत्रीय भाषाओं के नये राज्य

भारत में भिन्न-भिन्न भाषाओं की आबादियों पर दृष्टिपात करने पर यह प्रकट होता है कि कहीं भी एक ऐसा छोटा-बड़ा क्षेत्र नहीं है, जहाँ एक भाषाभाषियों की समूची आबादी हो। सारे देश में एक भी ऐसा राज्य नहीं है, जहाँ एक भाषावादियों का पूरा आधिपत्य हो। अतएव, कहीं भी एक भाषाभाषी सर्वांग में नहीं बसे हैं। अलबत्ता, अन्य राज्यों की अपेक्षा हिन्दी-क्षेत्र में अन्य भाषा-भाषी स्वल्पतम हैं। उनकी संख्या नगण्य है। फिर भी आमतौर पर यह प्रकट है कि देश के किसी भाग में एक भाषा की पूरी आबादी नहीं है। इसलिए, एक भाषा के राज्य के निर्माण-तत्त्व ही निराधार हैं, भाषावार प्रान्त की रचना ही गलत है। संस्कृति के प्रश्न पर यह कहना चाहिए कि इस देश में राम और कृष्ण की संस्कृति है, और उसे ही सारा देश मानता है। इसलिए भाषा और संस्कृति का विभेद अर्थहीन है। देश के विभाजन के समय हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के जो दो टुकड़े हुए, उसमें जो टुकड़ा पाकिस्तान में गया, उसमें सारी आबादी मुसलमानों की नहीं थी। पाकिस्तान में लाखों और करोड़ों हिन्दू चले गये। फिर भारत में जो मुसलमान रह गये, वे पाकिस्तान से कुछ कम नहीं थे। अलबत्ता, भारत में रह जानेवाले मुसलमानों का दिल और दिमाग पाकिस्तान में चला गया और हिन्दुस्तान में उनका अस्थि-पिंजरवत् शरीर रह गया। भारत के इन मुसलमानों को पाकिस्तान का इस्लामी राज्य नसीब नहीं हुआ। एक राज्य का भाषा के आधार पर निर्माण होने पर भी उसमें अन्य भाषाओं की आबादी कमोबेश रहती ही है। अतएव, इन भाषावार राज्यों ने राष्ट्र को दूसरी मोड़ पर खड़ा किया। उनसे क्षेत्रीय भावना और प्रादेशिकता पनपी। भाषाओं के राज्य-निर्माण की विचारधारा का सूत्रपात राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में हुआ था। स्वतंत्रता के युद्ध के समय कांग्रेस संगठन की व्यापकता के लिए सभी भाषाओं के क्षेत्रों में प्रदेश कांग्रेस कमेटियों का निर्माण हुआ था। उस समय राष्ट्रीय नेतृत्व ने यह अभिवचन दिया कि देश के स्वतंत्र होने पर भाषा के अन्य राज्यों की रचना होगी। बस फिर क्या था, क्षेत्रीय जनता में प्रादेशिकता की भावना बल पा गयी। पर जब देश स्वतंत्र हुआ, और राष्ट्रीय नेतृत्व के सामने भाषा के राज्य बनाने की माँगें सामने आयीं, तब उसे होश हुआ कि अतीत में वह क्या गलती कर बैठा। उसे अपनी गलती की चेतना हुई। पर अब कोई चारा नहीं था। उसे इस विषय को अपने गले के नीचे उतारना पड़ा। लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था में यह संभव नहीं कि जनता की माँग दबा दी जाय। उसका प्रतिकार करना शासन के बस के बाहर था। परिणाम यह हुआ कि भारत के नये मानचित्र में भाषा के राज्य अंकित हुए। फिर जो परिणाम होना था, वह हुआ। प्रादेशिकता और भाषा के उफान में राष्ट्रीय एकीकरण की कड़ी ढीली पड़ गयी। प्रत्येक राज्य के लोगों ने अपना राज्य, अपनी भाषा और अपने विकास की आवाज को। फिर नये राज्य बनने पर दर्जनों राजनीतिक दलों ने जन्म लिया और राजनीतिक नेताओं की भी बाढ़ आयी। इसकी अपेक्षा देश में कुछेक राज्य होते, तो यह कब संभव था कि इतने राजनीतिक दल मैदान में आते। एक बड़े राज्य में शक्तिशाली राजनीतिक दल का ही नेतृत्व संभव है। छोटे-छोटे राज्यों में साधारण राजनीतिक दल स्थान पाते हैं। यही कारण है कि कम्यूनिस्ट दल, प्रजा समाजवादी पार्टी और अन्य साम्प्रदायिक दलों ने छोटे-छोटे राज्यों के निर्माण की माँगों का सदा समर्थन किया।

क्षेत्रीय कौंसिलों का निर्माण

जब भाषा के राज्यों की समस्त आबादी एक भाषा के लोगों की नहीं है तब वहाँ भिन्न-भिन्न भाषाओं का अल्पमत काफी तादाद में होता है। उन पर बहुमत का अनाचार न हो, इस ओर केन्द्रीय शासन का ध्यान गया। इसके सिवा, राज्यों के बीच में होनेवाले मतभेद सामने आये। इन समस्याओं के हल के लिए क्षेत्रीय कौंसिलों का गठन किया गया। भाषावादी राज्य में अल्पमत की केवल उपेक्षा ही नहीं होती, उस पर बहुमत का अनाचार भी होता है। अल्पमत को यह सदा भय रहता है कि कब उसका राज्य से निष्कासन न हो जाय। अल्पमत की आवाज बंद रहती है, यदि वह कुछ कहे तो बहुमत उस पर टूट पड़े। देश के पूर्वीय क्षेत्र में यह नक्शा दिखायी दिया। आसाम में आसामियों ने अपने बहुमत के जोर पर आसाम में बसे हुए बंगालियों को खदेड़ा। उनकी सम्पत्ति नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और सैकड़ों की हत्याएँ कीं। पश्चिम बंगाल में भी 'भूमिपुत्र' आन्दोलन राष्ट्रीय विभेद का रूप है। इस आन्दोलन का यह लक्ष्य है कि सभी गैर सरकारी प्रतिष्ठानों का कारबार बँगला में हो और बंगालियों को नौकरियाँ दी जायें। कहना न होगा कि पश्चिम बंगाल में बिहार और उत्तर प्रदेश के लोग लाखों की तादाद में बसे हैं। यहाँ उनके बड़े-बड़े उपनिवेश से हैं। अनेक हिन्दी भाषाभाषियों ने बंगालियों से वैवाहिक संबंध भी किये हैं। दूसरे प्रान्तों के लोग इस राज्य में अतिथि के रूप में हो सकते हैं, किन्तु बिहार और उत्तर प्रदेश के निवासियों की वह स्थिति नहीं है। बिहार का बंगाली आबादी का क्षेत्र पश्चिम बंगाल में मिलने पर भी बिहार में लाखों की तादाद में बंगाली बने हुए हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में कोई बंदरगाह न होने से उनके व्यापार का केन्द्र कलकत्ता है। उत्तर प्रदेश और बिहार के उद्योग और व्यापार के आर्थिक स्रोत इस राज्य में बहते हैं। मैनेजिंग एजेंसियों के दफ्तर, आयात-निर्यात के प्रतिष्ठान और बैंक उनके स्रोतों को खींचते हैं। इससे जहाँ इस राज्य का वैभव बढ़ा, वहाँ बिहार और उत्तर प्रदेश गरीब बने हुए हैं। पर वहाँ हिंदीभाषियों का सरकारी और गैर-सरकारी, किसी भी क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। आबादी के अनुपात में उनका प्रतिनिधित्व भी नहीं है। इस स्थिति में क्षेत्रीय कौंसिलों का निर्माण उपयोगी है। वे राज्यों के झगड़ों को मिटाने में योग देकर राष्ट्र की एकता कायम रख सकती हैं। अन्यथा, यह असंभव नहीं है कि योरप के बालकन राज्यों की तरह भारत के टुकड़े हो जायँ। अतएव, ये कौंसिलें देश की अखंडता कायम रखेंगी और राज्यों के विद्रोहों का दमन करेंगी। पूर्वीय क्षेत्र की कौंसिल में पश्चिम बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा राज्य हैं। एक समय था, जब ये चार राज्य बंगाल के शासन में थे। आज ये चारों राज्य एक राज्य में परिणत न होने पर भी क्षेत्रीय कौंसिल में एक साथ आए हैं। सम्प्रति क्षेत्रीय कौंसिलों का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित है, उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उनकी गतिविधि बड़ी धीमी है। अभी ये कौंसिलें केवल विचार-विमर्श और राज्यों के झगड़े निपटाने में योगदान देती हैं। पर धीरे-धीरे ऐसा वातावरण पैदा किया जाय कि ये कौंसिलें राज्यों की व्यवस्था के कुछ अधिकार प्राप्त करें। सभी राज्यों के आर्थिक विकास, सुरक्षा आदि के अधिकार कौंसिल को प्रदान किये जायें। राज्य का कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे सीमित हो। जब ग्रेटब्रिटेन जैसी सत्ता अपने राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों को योरप के छः राष्ट्रों के साझा बाजार को सौंपने में हिचकती नहीं है, तब भारत के राज्य को अपने संकुचित दायरों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय कौंसिल को संघ राज्य का रूप देना चाहिए। इससे प्रत्येक क्षेत्र का आर्थिक विकास एक साथ होगा। क्षेत्रीय राज्यों की व्यवस्थाएँ और योजनाएँ एक साथ चलेंगी।

हिन्दी क्षेत्र का महत्त्व

इस विवेचन में भारत के हिन्दी क्षेत्र पर एक दृष्टि डालना चाहिए। देश में यही एक क्षेत्र है जिसके अंतर्गत सर्वाधिक भूमि है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य सभी भाषाएँ अपने राज्य की सीमा तक प्रभाव रखती हैं। उसके बाहर उनका कोई स्थान नहीं है। किन्तु हिन्दी का देश में व्यापक क्षेत्र है, उसका अपना क्षेत्र ही बड़ा विशाल है। यही एक भाषा है जिसके क्षेत्र में कई बड़े-बड़े राज्य हैं। यही हिन्दी क्षेत्र भारत का प्राण है, भारत में इस क्षेत्र का अति प्राचीन काल से महत्त्व रहा है। यही क्षेत्र है जिसे हमने भारत कहा। हिन्दुस्तान यही है। प्राचीन काल में इस क्षेत्र को आर्यावर्त्त कहा गया था। भारत की सभ्यता एवं संस्कृति, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान का जन्म इसी हिन्दी क्षेत्र में हुआ। यहाँ ही रामायण, महाभारत और अन्य महाकाव्यों की रचनाएँ हुईं। यहाँ ही सर्वप्रथम वेदों का गान हुआ। अम्बाला के समीप के स्थान में वेदों की रचना हुई थी। इसी क्षेत्र के एक भाग में संमोहित अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का संदेश दिया था। पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भाग में ऋषियों ने उपनिषदों की रचनाएँ की थीं। यहाँ ही वृन्दावन है, जिसके गुणगान में सारा देश तल्लीन रहता है। यहाँ ही काशी, प्रयाग, अयोध्या और हरिद्वार आदि प्रमुख तीर्थस्थान हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतें भी इसी क्षेत्र में हैं। अतः देश की राजनीति का भी यह क्षेत्र धुरी रहा। उसके उत्कर्ष और पतन का सारे देश पर प्रभाव पड़ा। जब इस क्षेत्र ने विजय प्राप्त की, तब सारा देश स्वतंत्र हुआ और उसकी पराजय पर गुलाम बना।

हिन्दी क्षेत्र के पड़ोसी राज्य

हिन्दी क्षेत्र के पूर्व की सीमा में पश्चिम बंगाल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी क्षेत्र और हिन्दी भाषा के प्रति बंगाल सदा सहिष्णुता से पेश आया। वह हिन्दी भाषा का समर्थक रहा और उसने हिन्दी के विकास में योगदान दिया। यह बंगाल ही है जिसके वरद पुत्र श्री केशवचन्द्र सेन ने भारत में सर्वप्रथम हिन्दी का महत्त्व समझा था। वे प्रसिद्ध समाजसुधारक और हिन्दी के ज्ञाता थे। हिन्दी क्षेत्र के प्रभाव का वे अनुभव करते थे। उन्होंने स्वामी दयानंद सरस्वती को यह परामर्श दिया था कि यदि वे देश में समाज-सुधार चाहते हैं तो हिन्दी क्षेत्र में काम करें। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि संस्कृत में भाषण न देकर हिन्दी में भाषण दें और हिन्दी में साहित्य लिखें। बँगला और हिन्दी में एकरूपता है, दोनों मूल में एक हैं। बँगला और हिन्दी की एकसूत्रता से आसामी और उड़िया भाषाएँ निकलीं। हिन्दी के सहयोग में इन दोनों भाषाओं के विकसित करने का श्रेय बँगला को है। हिन्दी क्षेत्र के पश्चिम में गुजरात और महाराष्ट्र हिन्दी के प्रति सदा अनुकूल रहे। गुजराती और हिन्दी में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। यदि देवनागरी लिपि में गुजराती लिखी जाय, तो गुजराती और हिन्दी में अन्तर बहुत कम रह जाता है। मराठी तो पहले से देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इधर गुजरात के राजशासन में देवनागरी-लिपि को स्थान दिया गया है। अतः पूर्व और पश्चिम के अहिन्दी राज्य हिन्दी क्षेत्र के प्रति कोई विषाक्त भावना नहीं रखते। यह भी बात है कि इन अहिन्दी राज्यों में हिन्दी क्षेत्र के लाखों व करोड़ों व्यक्ति बसे हुए हैं।

दक्षिण का प्रायद्वीप

दक्षिण का भाग जो प्रायद्वीप के रूप में भारत से जुड़ा हुआ है, हिन्दी क्षेत्र के प्रति सर्वथा अनुकूल नहीं है। देश के लिए वह समस्यागत क्षेत्र है। यहाँकी भाषाएँ तमिल, तेलगू, मलयाली और कन्नड़ हैं। ये भाषाएँ संस्कृत से नहीं निकलीं। इन भाषावादियों में से बहुत की हिन्दी क्षेत्र के प्रति सौहार्द भावना नहीं है। राष्ट्र के एकीकरण के लिए उन्हें हिन्दी क्षेत्र के प्रति अनुकूल बनाने के लिए सतत प्रयत्न की आवश्यकता है। यह नहीं कि यह क्षेत्र हिंदी से सूना हो। मद्रास, केरल और आंध्र में हिन्दी का प्रचार बढ़ा है। दक्षिण में हिन्दी की व्यापकता बढ़ने पर ही वहाँका हिन्दी क्षेत्र के प्रति विरोध मिटेगा। अतः यहाँके लोग हिन्दी के अध्ययन में रस लें, इसके लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था करे। यहाँके केन्द्रीय दफ्तरों का संचालन हिन्दी में हो। अन्यथा, लोग हिन्दी पढ़कर क्या करेंगे? जब यहाँका केन्द्रीय राजशासन हिन्दी में चलेगा, तब दक्षिण के निवासी केन्द्र में हिन्दी का विरोध नहीं करेंगे। यह होने पर ही दक्षिण और हिन्दी क्षेत्र में सानुकूलता पैदा होगी।

हिन्दी क्षेत्र का नेतृत्व

हिन्दी क्षेत्र भारत की राजनीति का प्रधान स्रोत है। प्राचीन काल से इसी क्षेत्र में देश की राजनीति का निर्माण हुआ। अतः युगों व सदियों से इस क्षेत्र की राजनीति ने देश का नेतृत्व किया। देश की राजधानियाँ इसी क्षेत्र में स्थापित हुईं। उज्जैन, पाटलिपुत्र और दिल्ली का शासन सारे देश में स्थापित हुआ। इस ऐतिहासिक परम्परा में स्वतंत्र भारत का शासन सूत्र हिन्दी-क्षेत्र के हाथ में आना स्वाभाविक था। सम्प्रति हिन्दी-क्षेत्र की राजनीति का प्रतीक कांग्रेस है। यह क्षेत्र कांग्रस का बलशाली अंग रहा। स्वतंत्र भारत की संसद में कांग्रेसी प्रतिनिधियों के रूप में हिन्दी क्षेत्र के राज्यों का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व है। अतः यह क्षेत्र कांग्रेस का सुदृढ़ किला रहा। यह सोचा गया कि अन्य राज्यों में कांग्रेस की स्थिति बने-बिगड़े; किन्तु हिन्दी क्षेत्र में यह कमजोर न पड़ेगा। इस क्षेत्र के सभी राज्यों से उसे भारी बहुमत प्राप्त होगा। सारा देश यह सोचता रहा कि राजस्थान और मध्यप्रदेश में कांग्रेस का सर्वाधिक प्रभाव है। बिहार और उत्तर प्रदेश भी कांग्रेस के अभेद्य किले माने गये। जो उत्तर प्रदेश पण्डित जवाहरलाल नेहरू का अपना प्रान्त है, वह कांग्रेस की प्रधान शक्ति है। यह सपने में भी विचार में नहीं आया कि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान तथा पंजाब के कांग्रेसी मोर्चे में कभी दरारें पड़ेंगी। पर दस वर्ष में ही इस क्षेत्र के लोग अकर्मण्य बन गये। फिर जो नतीजा होना था, वही हुआ।

विरोधी राजनीतिक शक्तियाँ

यह पूछा जा सकता है कि कांग्रेस का इतना क्या महत्त्व है? इसका उत्तर यह है कि कांग्रेस ही देश में एक ऐसी राजनीतिक संस्था है जिसका सारे देश में प्रभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी क्षेत्र का प्रभाव कांग्रेस के स्रोत से ही देश में कायम हुआ। स्वतंत्रता के युद्ध के समय कांग्रेस देश की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था थी। उस समय कोई दूसरा राजनीतिक दल नहीं था। उसके ही झण्डे के नीचे देश ने स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा और उसे अर्जन किया। देश के स्वतंत्र होने पर कई राजनीतिक दल पैदा हुए, किन्तु कांग्रेस जैसी शक्ति किसी में नहीं है। आज भी कांग्रेस निरा राजनीतिक दल नहीं है। उसे राजनीतिक दल कहना गलत है। इस नयी स्थिति में भी वह सारे देश का एक शक्तिशाली राष्ट्रीय मोर्चा है। कांग्रेस ने इस देश में लोकतंत्र शासन को जन्म दिया। उसकी जड़ मजबूत हो, इस ओर संसार के सभी लोकतंत्र देशों की आँखें लगी हुई हैं। यदि वह कमजोर पड़ गयी, तो इस देश में लोकतंत्र शासन-व्यवस्था की नींव हिल जायगी। एशिया और अफ्रीका ही नहीं कुछ सीमा तक योरप में भी लोकतंत्र-शासन का अस्तित्व भारत के लोकतंत्र की सफलता पर निर्भर है। इसीलिए सारा संसार यह देख रहा है कि वह लोकतंत्र में विजयी होता है या पराजित। यदि कांग्रेस लोकतंत्र शासन-व्यवस्था को कायम रखने में शक्तिहीन हो गयी तो एशिया व अफ्रीका से लोकतंत्र विदा हो जायगा। प्रजा समाजवादी दल लोकतंत्र शासन-व्यवस्था और समाजवाद को मानता है, किन्तु वह शक्तिहीन हो गया है और अपने लक्ष्य से दूर हट गया है। शक्ति-अर्जन के जोड़तोड़ में उसकी अंगड़ाइयाँ उसके पराभव का कारण बनीं। कम्यूनिस्टों का लोकतंत्र में विश्वास नहीं है। स्वतंत्र पार्टी और अन्य साम्प्रदायिक दल प्रतिक्रियावादी हैं। पश्चिम बंगाल वामपंथी दलों का गढ़ है। उनमें कम्यूनिस्ट पार्टी अग्रणी है। उसकी यह आकांक्षा है कि पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार कायम हो। स्वतंत्र दल भी राजस्थान और बिहार में अपनी सरकारें चाहता है। पश्चिम बंगाल में सर्वाधिक राजनीतिक चेतना होने से जनसंघ, हिन्दू महासभा और स्वतंत्र पार्टी को तृतीय आम निर्वाचन में एक भी स्थान नहीं मिला। हिन्दुओं के साम्प्रदायिक दल जनसंघ और हिन्दू महासभा के अस्तित्व ने मुसलिम लीग, अकाली दल और द्रविड़ खगजम पार्टी को राजनीति में अग्रसर किया। राष्ट्र के लिए ये दल घातक हैं। यदि अकाली दल की पंजाबी सूबे की माँग मान ली जाये, तो शासन को दक्षिण के द्रविड़स्तान की माँग के आगे भी झुकना पड़ेगा। उस समय ये तत्त्व प्रत्यक्ष में आ जाएँगे जो अपने राज्यों का स्वतंत्र निर्माण चाहते हैं। मुसलिम लीग का प्रयत्न है कि भारत में दूसरा मुसलिम राज्य कायम हो। तब ईसाई भी अपने राज्य-निर्माण की माँग करेंगे।

हिन्दी क्षेत्र की निर्धनता और बेकारी

हिन्दी क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से सर्वथा गरीब और निर्धन है। सामाजिक प्रगति में वह पिछड़ा हुआ है। पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र की तरह उसमें राजनीतिक चेतना नहीं है। राजस्थान की जनता की गरीबी ने उसे जातिवाद, धर्म और सामंतवाद से प्रभावित कर रखा है। राजा, महाराजा और रानियों में उसकी भक्ति बनी हुई है। यह स्थिति इस राज्य का पिछड़ापन साबित करती है। उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश धार्मिक एवं साम्प्रदायिक भावनाओं से प्रभावित हैं। अन्यथा, जनसंघ और हिन्दू महासभा आदि दल इस क्षेत्र से कब विजयी हो सकते थे? बिहार में छोटे-बड़े महाराजा हैं और जातिवाद का तो वह गढ़ है। औद्योगिक विकास होने पर शिक्षित और अशिक्षित समाज में राजनीतिक चेतना आती है। तब मतदाता गिरे हुए विचारों के नहीं रहते और उनके मत साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी दलों को नहीं मिलते। इस हिन्दी क्षेत्र में केवल पूर्वी पंजाब सजग राज्य है। विभाजन के उपरांत पूर्वी पंजाब एक पिछड़ा क्षेत्र था। पश्चिम पंजाब में सिंचाई की नहरें थीं और अन्न उत्पादन की खदान पाकिस्तान में चली गयी थी। अतः पूर्वी पंजाब कृषि में एक उजड़ा हुआ क्षेत्र था। मगर पंजाबियों ने अपने कर्मठ जीवन और खून-पसीने से अपने राज्य को अन्न-उत्पादन में आत्मनिर्भर कर दिया। पर केवल कृषि से जनता की आर्थिक अवस्था नहीं सुधरती। बड़े उद्योगों की स्थापना भी आम जनता की गरीबी नहीं मिटाती। उनमें करोड़ों की पूँजी लगने पर भी कुछ थोड़े से लोगों ही को काम मिलता है। अतः पंजाब में भारी व बुनियादी बड़े उद्योगों की स्थापना न होने पर भी वहाँके लोगों ने छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास में अपनी सारी शक्ति लगायी। उन्होंने छोटे उद्योगों के उपनिवेश खड़े किये, उनमें मशीन और कल-पुर्जों के सभी पदार्थ इतने सस्ते तैयार किये कि बड़े उद्योग उनका मुकाबिला नहीं कर सके। बिना किसी संरक्षण के उनके माल की स्वतः माँग बढ़ी। लाखों पंजाबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर-नारी इन उद्योगों में लगे। इस प्रकार अपने परिश्रमशील जीवन से अपने राज्य की गरीबी और बेकारी मिटाने में स्वयं समर्थ हुए। गरीबी दूर करने और समाज को व्यापक रूप से रोजगार में लगाने के साधन छोटे उद्योग हैं, बड़े उद्योग नहीं। बिहार खानों का घर है, उसके एक भाग में विशाल औद्योगिक 'द्वीप' है; किन्तु छोटे धंधों के अभाव में वह गरीब बना हुआ है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश भी गरीब क्षेत्र हैं। इन राज्यों के शासन का किंचित् ध्यान नहीं गया कि वे समाज के आर्थिक विकास की ओर बढ़ें। हिन्दी-क्षेत्र के नेतृत्व ने दलगत राजनीति में अपनी शक्ति का अपव्यय किया। जनता की ओर उनका कोई ध्यान नहीं गया। जिस पश्चिम बंगाल का केन्द्रीय शासन में कोई विशेष प्रतिनिधित्व नहीं है, उसके मुख्यमंत्री औद्योगिक विकास के लिए भारी धनराशि प्राप्त करने में समर्थ हुए। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के प्रतिनिधियों का केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में सर्वाधिक प्रतिनिधित्व है; किन्तु वह नंगा-बूचा ही बना हुआ है। उत्तर प्रदेश में न तो भारी उद्योग स्थापित हुए और न छोटे उद्योगों का विकास हुआ। उत्तर प्रदेश की अपेक्षा बिहार भारी उद्योगों की स्थापना में कहीं आगे बढ़ा। राजस्थान के खनिज पदार्थ और कच्चे माल का उत्पादन उसका नक्शा बदल देगा। वहाँ नये उद्योग स्थापित होंगे। छोटे उद्योगों की प्रगति में राजस्थान बढ़ा हुआ है। अतः हिन्दी-क्षेत्र से गरीबी और बेकारी मिटाने तथा स्वस्थ राजनीति की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी-क्षेत्र के प्रत्येक राज्य के जिले-जिले में औद्योगिक बस्तियाँ खड़ी की जायें। ये औद्योगिक उपनिवेश अपने क्षेत्र के लोगों को बेकार न रहने देंगे। उन्हींकी शृंखला में ग्रामों में छोटे-छोटे उद्योग खड़े किये जायें जिससे ग्रामीणों को भी काम-धंधा मिले। ग्रामीण अपने कच्चे माल को तैयार पदार्थों में परिवर्तित करें। तेलहनों के तेल, चावल और दाल आदि के उद्योग ग्रामों से छिन गये हैं। ये सब धंधे ग्रामों में पनपने चाहिए। यह होने पर ही हिन्दी-क्षेत्र में कांग्रेसी शासन सुदृढ़ होगा।

आग घर के चिराग से

हिन्दी क्षेत्र के राज्यों का आर्थिक क्षेत्र की ओर मोड़ लेना कांग्रेस के शक्ति-अर्जन के लिए सर्वथा आवश्यक है। प्रजा नंगी-भूखी रहेगी, बेकार रहेगी, तो कांग्रेसी शासन कदापि न टिक सकेगा। विगत दस वर्षों में इस दिशा में कुछ कार्य नहीं हुआ। यही कारण है कि १९६२ के आम निर्वाचन में कांग्रेसी शासन लड़खड़ा गया। अधिकार, पद और आर्थिक स्वार्थों की लोलुपता में कांग्रेसी दल को जनता का ख्याल नहीं रहा। कांग्रेसियों की स्वार्थ-तृष्णा ने हिन्दी क्षेत्र में कांग्रेस के संगठन को जर्जर कर दिया। जनसेवा से कांग्रेसजन विलग हो गये। वे पदों और प्रतिनिधित्व के लिए लड़े-झगड़े। जिसे पद व टिकट नहीं मिला, उसने अनुशासन और कांग्रेस की भक्ति को ताक में रख दिया। स्वतंत्र उम्मेदवार के रूप में खड़े होकर उसने कांग्रेस के उम्मेदवार को परास्त किया। कांग्रेसियों ने अपने हाथों से अपने घर का यह हाल किया। घर में आग लगी, घर के चिराग से। हिन्दी-क्षेत्र में बीसों मंत्रियों की हार हुई और भारी संख्या में कांग्रेसी उम्मेदवार हारे। एक प्रदेश में कांग्रेस के प्रदेशाध्यक्ष ने यह नहीं चाहा कि अमुक मंत्री जीते। उसने उनकी हार के लिए स्वतंत्र सदस्य खड़े कर दिये। इन्हीं कांग्रेसियों ने एक ऐतिहासिक निर्वाचन के क्षेत्र में कांग्रेसी उम्मेदवार को हराने के लिए विरोधी दल के उम्मेदवार के लिए चंदा इकट्ठा किया। हिन्दी क्षेत्र में कांग्रेस की यह हार चिन्त्य है। मध्यप्रदेश और राजस्थान में कांग्रेस का बहुमत नहीं हुआ। मध्यप्रदेश का बहुमत उन स्वतंत्र कांग्रेसियों को मिलाकर हुआ, जिन्होंने कांग्रेसी उम्मेदवारों को हराया था। कांग्रेस की इस दुरवस्था के कारण धार्मिक, साम्प्रदायिक, जातिवादी और सामंतवादी तत्त्वों ने प्रबलता पायी। कांग्रेसजनों की नैतिकता, सेवा और कर्तव्यनिष्ठा के ह्रास का परिणाम प्रत्यक्ष है।

उत्साहवर्द्धक लक्षण

जहाँ हिन्दी क्षेत्र में कांग्रेस की यह निराश स्थिति रही, वहाँ अहिन्दी क्षेत्र में आशा की नई झलक प्रकट हुई। महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल में कांग्रेस ने भारी विजय प्राप्त की। पश्चिम बंगाल में कांग्रेस ने वामपक्षी दलों को करारी हार दी और अपना राज्य स्थापित करने के उनके स्वप्न को पूरा न होने दिया। महाराष्ट्र की राजधानी बम्बई में कांग्रेसी उम्मीदवार के निर्वाचन में सारे विश्व की आँख लगी थी। निहित स्वार्थवर्ग तथा विदेशियों ने कांग्रेसी उम्मेदवार की पराजय के लिए लाखों रुपये खपा दिये; सारे दल, उनके पोषक और देश के बड़े पत्र कांग्रेसी उम्मेदवार को परास्त करने के लिए विरोध में खड़े हो गये। पर इस क्षेत्र में कांग्रेस सोने की तरह चमकी। कांग्रेस उम्मेदवार की डेढ़ लाख से अधिक मतों से विजय होने पर देश का धनी वर्ग दंग रह गया। कांग्रेस के गौरव की रक्षा महाराष्ट्र ने की। उसने अपनी कीर्ति में चार चाँद लगाये। पर कांग्रेस की शक्ति का स्रोत हिन्दी क्षेत्र है। सारा देश अपेक्षा करता है कि देश में लोकतंत्र शासन की सफलता के लिए हिन्दी क्षेत्र में कांग्रेस बलशाली बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रज-कोकिल सत्यनारायण 'कविरत्न'

डा० रामचन्द्र मिश्र एम० ए०, पी-एच० डी०

'कविरत्न' ब्रजभाषा के कवि थे; किन्तु 'उत्तर राम-चरित' और 'मालतीमाधव' अनूदित नाटकों में उनके गद्यकार का सफल रूप भी विद्यमान है। उनके इन नाटकों में 'करुण' और शृंगार' रसों के मौलिक भाव चिर-अक्षुण्ण हैं, जिससे उनके ये अनुवाद हिन्दी के मौलिक नाटक से प्रतीत होते हैं। यह सब वस्तुतः उनकी कविसुलभ प्रतिभा के बल पर ही सम्भव हो सका है। आज ब्रजभाषा को खड़ी बोली का ग्रहण लग जाने से उनका काव्यालोक भले ही धूमिल लगता हो; किन्तु अपनी विशेषताओं से युक्त वह अब भी ज्योतित है। उसका महामहिम स्वरूप ही इस स्थल पर विवेच्य है।

'कविरत्न' का जीवन करुण और विषम रहा है। जन्म से पूर्व ही पिता के वात्सल्य को खोकर जिसे जननी के अंक में प्रश्रय मिला हो, वह कैसे संकीर्ण और हृदयहीन हो सकता है? भवन के स्थान पर एक तपस्वी की कुटी में जिसके क्षण बीते हों, वह कैसे अभद्र और अहंकारी हो सकता है? ब्रजमाधुरी की घूँटी ही अपने जन्म से जिसे पीने को मिली हो, उसकी वाणी कैसे परुष और नीरस हो सकती है? घनश्याम की लुभावनी और सुहावनी झाँकी से ही जो तृप्त रहा हो, वह अपनी पत्नी द्वारा उत्पन्न विलोम परिस्थितियों में भी उस प्राणप्यारे को कैसे भुला सकता है? वस्तुतः असम्भावित भी उनके जीवन में सम्भावित हो सका है।

उनमें स्वाभाविक और सरल ग्रामीण जीवन के सभी गुण विद्यमान थे। सिर पर दुपल्लू टोपी, शरीर पर मिर्जई, गले में दुपट्टा और कमर में ऊँची धोती पहने हुए उनका व्यक्तित्व ठेठ देहाती-सा ही जँचता था। उस स्वरूप में भी आबाल वृद्ध को मुग्ध करने की क्षमता और प्रतिभा थी। एक ओर यदि वह ग्रामीणों के साथ रसिया गाते हुए ग्राम्य वातावरण रसप्लावित करते थे तो दूसरी ओर कवि-सम्मेलनों, गोष्ठियों तथा अन्य समारोहों में अपने कोकिल-कण्ठ के पंचम स्वर से नागरिक सहृदयों को भी मंत्र-मुग्ध कर देते थे। निस्सन्देह यह सब उनके असाधारण व्यक्तित्व की महत्तम देन थी।

जो मोसों हँसि मिलै, होत में तासु निरन्तर चेरौ।
बस गुन ही गुन निरखत तिहिं मधि, सरल प्रकृति कौ प्रेरौ।
यह सुभाव कौ रोग जानिऐं, मेरो बसु कछु नाँहीं।
नित नव विकल रहत याही सों, सहृदय विछुरन माँही।
सदाँ दारु-योषित-सम बेबस, आग्या मुदित प्रमानें।
कोरो सत्य ग्राम कौ बासी, कहा तकल्लुफ जानें॥

यह 'कविरत्न' की जीवन विषयक स्वकथित कसौटी थी जिस पर अपनी विपन्नताओं में भी वह खरे उतरे हैं।

'कविरत्न' का जन्म २४ फरवरी १८८० ई०, निधन १६ अप्रैल १९१८ ई० और शिक्षा-समाप्ति १९१० ई० में है। इन तिथियों की गणना से उनका नश्वर शरीर ठीक ३८ वर्ष १ मास २२ दिन रहा जिसमें उन्हें साहित्य-सेवा के लिए स्वाधीन केवल आठ वर्ष का समय ही मिल सका। इस अल्प जीवन में दारुण शारीरिक कष्ट, आर्थिक संकट और असफल गृहस्थ-जीवन के मानसिक संताप सहन करते हुए भी साहित्य-सृजन में कभी उन्मन नहीं हुए और न कविसुलभ माधुर्य का पल्ला ही छोड़ा। यह उनके साहित्यिक जीवन के अदम्य उत्साह और साहस का प्रमाण है।

काव्य के भाव, भाषा, छन्द आदि सभी अंगों में उनके मौलिक तत्त्व विद्यमान हैं। उन्होंने परम्पराओं को ग्रहण किया है; किन्तु साथ ही भाव, छन्द आदि के क्षेत्र में उनके नवीन प्रयोग भी हैं। इस स्थल पर उन सबके विवेचन में प्रविष्ट होने से पूर्व तत्कालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार करना भी उचित है क्योंकि उससे उनके काव्य का मूल्यांकन भी हो सकेगा और उस क्षेत्र में उनकी मौलिकता भी परखी जा सकेगी।

उनका कवि-जीवन 'द्विवेदी-युग' में प्रारम्भ हुआ और उसीमें समाप्त भी हो गया। द्विवेदीजी द्वारा विज्ञापित साहित्यिक प्रवृत्तियों से कविरत्नजी की प्रवृत्तियाँ विषम थीं। फलतः द्विवेदी-मण्डल के बाहर की काव्य-भूमि में उनके काव्य की गणना होती है। उनको द्विवेदी-कक्ष से अलग रखने का कारण केवल भाषा का विधान ही प्रमुख नहीं है, यद्यपि अन्य कारणों के साथ यह भी विचार का विषय रहा है। सच तो यह है कि उस समय ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों काव्यों के स्रोत अलग-अलग प्रवाहित थे। कविरत्नजी के काव्य का चोला सोलहो आना ब्रज-भाषा का था जब कि काव्य की आत्मा-भाव को लेकर वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोलहो आना खड़ीबोली के साथ थे। इस स्थल पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि वे जिस प्रकार कला-पक्ष में रत्नाकरजी से सहमत न थे उसी प्रकार भाव-पक्ष में द्विवेदीजी के अनुयायी न थे। ब्रजभाषा के अन्तर्गत रीतिकाल की शास्त्रीय स्थूल पर्यस्विनी जो भारतेन्दु-युग में क्षीण हो उठी थी, 'द्विवेदी-युग' में रत्नाकरजी द्वारा पुनः परम्परागत बना दी गई, और उन्हींके साथ कवि-रत्नजी उसे बन्धन से विमुक्त कर स्वच्छन्दता के राजपथ पर ले आना चाहते थे। उपर्युक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रजभाषा को लेकर उनके नये प्रयोग थे जिनके कारण रत्नाकरजी से उनका स्थान स्वभावतः अलग हो जाता है।

अब रही भावक्षेत्र की बात। उस समय खड़ीबोली के दो प्रतिनिधि थे—श्रीधर पाठक और महावीरप्रसाद द्विवेदी। भाषा के क्षेत्र में खड़ीबोली को लेकर दोनों सहमत थे; किन्तु भावनाओं के क्षेत्र में दोनों के विभिन्न दृष्टिकोण थे। भावपक्ष में भारतेन्दु ने जो मानवजनीन प्रयोग किये थे, द्विवेदीजी ने उन्हें उपेक्षित ही रखा। सच तो यह है कि भारतेन्दु और ठा० जगमोहनसिंह की परम्पराओं को श्रीधर पाठक ने चिरंजीव रखा। यह धारा जीवन के साथ मेल खाती थी, इसीसे द्विवेदी-युग में भी पाठकजी का व्यक्तित्व धूमिल न हो पाया। इस स्थल पर पाठकजी और द्विवेदीजी की काव्य-सीमाओं के स्पष्टीकरण से कविरत्नजी का स्थान स्वयं निर्धारित हो जाता है। भावक्षेत्र में वह पाठकजी की काव्य-प्रवृत्तियों का ही अधिकांशतः पोषण करते हैं।

उनके काव्य में हमें रत्नाकरजी और द्विवेदीजी से प्रभावित कवियों के काव्यों से कहीं अधिक मानवीय चेतना मिलती है। उन्होंने अपनी भावनाओं के साथ कहीं भी छलना न कर काव्य में उन्हें सरल और व्यावहारिक विधान से सजा दिया है। भावनाओं के साथ उनका यह न्याय बड़ा मर्मस्पर्शी है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से कविरत्नजी की काव्य-दिशा का ज्ञान हो जाता है। उनके जीवन में अल्हड़ता के साथ मस्ती थी। इसीसे वे विषयों के सम्बन्ध में रूढ़िवादी और संकीर्ण न रह सके। फलस्वरूप उनके काव्य में मौलिकता के तत्त्व मिलते हैं, जिनसे उनके स्वरूप को आँका जा सकता है।

हिन्दी में भक्ति-भावना की क्रमागत परम्परा भक्ति-काल से प्रारम्भ होती है। यह भावधारा भारतेन्दु-युग में भी अक्षुण्ण रही। देश की सामयिक परिस्थितियों और परतंत्रता की विवशताओं के कारण तब काव्य के विषय बदल उठे थे। फलस्वरूप, विनय अथवा भक्तिपरक पंक्तियों में आत्म-निवेदन के साथ कवि देश-समस्याओं का भी समावेश कर उठे थे। भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रताप-नारायण मिश्र आदि के अतिरिक्त श्रीधर पाठक, राधा-कृष्णदास आदि के काव्यों में द्विवेदी-युग तक इस प्रवृत्ति का सम्पोषण हुआ है। इसीको हम कविरत्नजी में भी प्रस्फुटित देखते हैं। विनय के पदों के अतिरिक्त उनके उपालम्भों में भी यह भावना स्पष्ट हो उठी है।

जागै अरु जगमगाय, नव जीवन सत्य पाय।
सरल भारतीय जाति, विनय ये हमारी।

× × ×

तब हिन्दी भाषा में हम सब मिलि भैरवी अलापैं।
चरचैं कर्म-योग चन्दन की तिलक अनूपम छापैं॥
बिलसैं मोद लसैं नित नव सों आतम भाव संचारैं।
धर्म ध्वजा गहि जगत मनोहर सत शिक्षा विस्तारैं॥

× × ×

तुम ही हो माँ! सकल भाँति सों, या भारत की आशा।
प्रगटैं हृदय-भाव कहु कैसे बिन बानी, बिन भाषा?
जासों भारति! भारत जन की रसना सदा बिराजौ।
ऐसे दिये बिसारि देव! क्यों? मुदित दया निज साजौ।
जग के और और देसनि हित जैसी तुम सुखदाता।
जानि स्वजन भारत हू कों तिमि दृवहु भारती माता!
जब लौं भारत देश विश्व में जीवित नित मन भावै।
तब लौं नाम भारती अविचल अजर अमर छबि पावै।

× × ×

तुम्हरे अछत तीन तेरह यह देस दसा दरसावै।
पै तुमकों यहँ जनम धरे की तनिकहु लाज न आवै॥

× × ×

द्रुम तक हू के दृग तव किसलइ रोइ भए अरुणारे।
दारुण देश दशा लखि बौरे ये रसाल चहुँ सारे।

ब्रजभाषा की परम्परागत रूढ़ियों को विरासत में पाने पर भी कविरत्न के हृदय में संकीर्णता न थी, वे उदार-चेता थे। फलस्वरूप देश की दयनीय और करुण स्थिति पर यदि वे आर्द्र न होते तो कवि हृदय के साथ न्याय न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता। कवि की भावुक शालीनता समाज के साथ आँख-मिचौनी ही खेलती दिखलाती।

सूरदास के द्वारा प्रारम्भ किये हुए भ्रमरगीतों की परम्परा में कविरत्नजी ने भी अपना 'भ्रमर-दूत' लिखा है। ज्ञान और भक्तिपरक उत्तर-प्रत्युत्तर में उनकी गोपियों ने भी अपनी तार्किकता से ज्ञानी उद्धव को खूब छकाया है। इस सम्बन्ध में कविरत्नजी की विशेष साहित्यिक मौलिकता है जो अलग से ही तुलनात्मक विवेचन की अपेक्षा रखती है। इस स्थल पर भी कविरत्न ने आधुनिक देश-दशा की उपेक्षा नहीं कर दी है।

नारी-शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस-अवनति प्रचंड-पातक अधिकारी॥

× × ×

नित नव परत अकाल काल कौ चलत चक्र चहुँ।
जीवन कौ आनन्द न देख्यौ जात यहाँ कहुँ॥
बढ्यो यथेच्छाचार-कृत जहँ देखौ तहँ राज।
होत जात दुर्बल विकृत दिन दिन आर्यसमाज॥
दिनन के फेर सों।

× × ×

जे तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी।
तिन्हे विदेसी तंग करत दै विपदा खासी॥

——भ्रमरदूत

इन पंक्तियों में कवि ने 'नारी-शिक्षा', 'अकाल', 'राज्य की स्वेच्छाचारिता से भारतीय समाज की दुर्बलता', 'प्रवासी भारतीयों पर विदेशियों का आतंक' आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः 'द्विवेदी-युग' (१९००-२०) की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इन तत्कालीन सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं से पर्याप्त रूप से प्रभावित हुई हैं। प्रसंग-वश ये पंक्तियाँ गोपियों ने अपने सम्बन्ध की ही रखी हैं; किन्तु विशेष परिस्थिति की विचारणाओं का समावेश साहित्यकार की अपनी ही मौलिकता कहलाती है।

स्वदेश-भक्तिपरक रचनाओं के अतिरिक्त सत्य-नारायणजी ने रामतीर्थ, गांधी, रवीन्द्र, तिलक, गोखले, सरोजनी नायडू एवं लाजपतराय आदि के सम्बन्ध में प्रशस्तियाँ लिखी हैं। उनमें उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवाओं का सम्यक् उल्लेख है। 'श्री गांधी-स्तव' में केवल दो पंक्तियाँ ही गान्धीजी के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में पर्याप्त हैं——

तुम से बस तुम ही लसत और कहा कहि चित भरैं।
सिवराज प्रतापऽरु मेजिनी किन किन सों तुलना करैं?

उपर्युक्त विवेचित राष्ट्रीय भावना के अतिरिक्त प्रकृति के प्रति भी उनमें अत्यधिक ममत्व था। हिन्दी में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण की जो परम्परा भारतेन्दु-युग में ठाकुर जगमोहनसिंह द्वारा प्रारम्भ की गई थी और जिसको पाठकजी ने 'मनोविनोद' में प्रदर्शित प्रकृतिपरक स्फुट रचनाओं, 'काश्मीर सुषमा', 'सान्ध्य अटन', 'देहरादून', 'स्वजीवनी' (अप्रकाशित) आदि के द्वारा पोषित किया था, उसको कविरत्नजी ने भी अपनी कवि-साधना के द्वारा सशक्त बनाया है। यों ब्रजभाषा की परम्परागत भावनाओं के पोषक रत्नाकरजी जैसे शास्त्रीय कवि ने भी अपने 'हिंडोला', 'हरिश्चन्द्र काव्य', 'गंगावतरण', 'उद्धवशतक' काव्यों में प्रकृति का उपयोग किया है; किन्तु वह विशेष परिस्थितिवश है। उनमें प्रकृति के व्यापक आकर्षण और जी रमानेवाली भावनाओं का पूर्ण अभाव है। भाषा की अतिरंजना और अलंकार-बहुलता के कारण उनमें स्वाभाविकता का आनन्द ही नहीं मिलता।

जुलाई १९२५ ई० में नागरीप्रचारिणी सभा, आगरा के तत्त्वावधान में कविरत्नजी के ग्राम धाँधूपुर (आगरा में ताजगंज के समीप) में उनके चित्रोद्घाटन समारोह में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने भाषण में कहा था:—

"सामने जो इमली का वृक्ष दीख रहा है उसके साफ पत्तों ने उन्हें कविता रचने के लिए बाध्य कर दिया। एफ० ए० की परीक्षा के दिन थे। पद्य का पर्चा था। वर्षा ऋतु थी। कविता बनाने लगे——

पौन की सनक घन
सघन ठनक चारु
चंचला चिलकि
सतदेव चहुँ चाली है।
बादर की कड़ी झड़ी लगी
चहुँधा सों वर
बोलन पपैया "पिय पिय"
प्रनपाली है।
आतुर सो दादुर
उछरि दुर दुर देत
दीरघ अवाज बाज
गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात बात
खात हरखात गात
धोए धोये पातनुकी
बात ही निराली है।

परीक्षा छूट गई।" ——हिन्दू संसार, दिल्ली (१ अगस्त १९२५)

प्रकृति के प्रति उनके हृदय में अनन्य निष्ठा थी, अन्यथा परीक्षा जैसी जीवनोपयोगी व्यस्तता को विस्मृत कर जाना सरल न था——यह उपर्युक्त संस्मरणात्मक पंक्तियों से स्पष्ट है ही।

कविरत्नजी ने प्रकृति के अन्तर्गत षट्ऋतुओं का विस्तृत वर्णन किया है। वैविध्य के साथ मानव-जीवन में उनकी व्यावहारिक अनुभूतियाँ काव्य में सजीव हो उठी हैं। ग्रामीण वातावरण में ही प्रकृति का उन्मुक्त स्वरूप उपलब्ध होता है। इससे उनमें वहींके ही स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रसंग में केवल 'पावस' का एक चित्र देखना ही पर्याप्त है——

मेह थमत चुहकार चहचही करत चाव चित।
फरफराय निज परन फिरत पंछी गन प्रमुदित॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोए धोए पात तरुन के हरसावत मन।
नेक झकोरत और झरत अनगिनत अम्बुकन॥
घन बूँदन सन सजल थलन उपजत बुदबुद गन।
रेख बर्तुलाकार बनति तिनके चहुँ ओरनि॥
बढ़ि बढ़ि अपने आप नसति जल में ताकी गति।
जिमि निरधन हिय आस उठति बढ़ि बढ़ि पुनि विनसति॥

सीधी सरल भाषा में कवि ने 'मेह थमने' पर पावस की स्थिति 'पक्षियों का प्रमुदित होना' 'वृक्षों के धुले पात' एवं 'बुदबुदों' का यथातथ्य वर्णन कर दिया है। बुदबुदों के निर्मित और नष्ट हो जाने की परिस्थिति की तुलना कवि ने निर्धन-हृदय की आशाओं से अवश्य कर दी है, जो स्वाभाविक है।

ब्रजभाषा के वे अनन्य प्रेमी थे। उनका विश्वास था कि देश की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं के संरक्षण के लिए यह भाषा सम्पन्न और सरल है। उसमें सभी प्रकार के विचारों के प्रकट करने और भावनाओं को गुम्फित करने की क्षमता और सुविधा है। वीरगाथा-काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक काव्य के क्षेत्र में जिसका एकाधिपत्य रहा हो, उसकी उपेक्षा और अवहेलना कहाँ तक उचित है? इससे उन्हें व्यथा होती थी। फलस्वरूप उन्होंने 'श्री ब्रजभाषा' के सम्बन्ध की अपनी अमर पंक्तियाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लखनऊ अधिवेशन में श्रीधर पाठक के सभापतित्व में पढ़कर सुनाई थीं:—

करी जाय यदि जासु परीच्छा सविधि यथारथ।
याही में सब जग को स्वारथ अरु परमारथ।
बरनन को करि सकत भला तिह भाषा-कोटी।
मचलि मचलि जामें माँगी हरि माखन रोटी।
जाकौ सो रस अवगाहत जाही में आवै।
कैसो हू गुनवान थाह जाकी नहिं पावै।
× × ×
लिखन रह्यो इक ओर तासु पढ़िवो हू त्यागो।
माता सो मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यो।
शुभ राष्ट्रीय विचारनु को जब पुण्य प्रचारा।
कैसो याके संग कियो तुमने उपकारा।
रही बनावन याहि राष्ट्रभाषा इक ओरी।
उलटो जासु अनिष्ट करन लागे बरजोरी।
या जीवन संग्राम माँहि पावत सहाय सब।
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अब।
क्यों जासों मन फिर्यो कृपा करि कछुक जतावौ।
वृथा आत्मा या ब्रजभाषा की न सतावौ।
× × ×
काज न जब कछु करत शिथिलता तन में व्यापत।
यही सोचि जननी ब्रजभाषा निसि दिन काँपत।
सुत सेवा हित तासु रुचिर रुचि रहत सदा हीं।
जनमें पूत कुपूत कुमाता माता नाहीं।

खड़ीबोली के समर्थक होते हुए भी श्रीधर पाठक ने सभापति के आसन से इस रचना के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उनकी वाणी के इस करुण प्रस्फुटन में मातृभाषा के प्रति जगतव्यापी भावना की अनुभूति है। वह स्वयं ब्रजभाषा की आराधना में तत्पर रहकर उसे सर्वप्रकारेण सम्पन्न करते रहे; किन्तु ब्रजभाषा में परम्परा-वादी रचनाएँ प्रस्तुत करनेवाले कवि उसे प्रगतिशील बनाने के लिए अनुदार ही रहे। भाषा में अतिरंजना उन्हें पसन्द थी, शब्दों के चमत्कार के प्रति ममता थी, अलंकार-बहुला पंक्तियाँ जोड़ने में उनके आनन्द की पराकाष्ठा थी; किन्तु सीधी-सादी सरल भाषा में सामयिक विषयों को लेकर काव्य-क्षेत्र में आने में वे लज्जा का अनुभव करते थे। वे यह भूल ही गये कि उनका स्वीकृत पथ जीवन और समाज का प्रतिनिधित्व करने में असफल रहेगा। उन्होंने अपने प्रति प्रवंचना तो की ही; किन्तु भाषा के साथ भी खिलवाड़ कर उसका गला घोंट दिया।

ब्रजभाषा के कवि राधा-कृष्ण को लेकर अधिकांशतः भक्ति और शृंगार की भूमिकाओं में ही अपने कवि-कर्म की इति समझते रहे हैं। उनके इस संकीर्ण दृष्टिकोण से ही काव्य की व्यापक भूमि को छिनते देखकर ब्रजभाषा के कुछेक साधकों को ठेस लगी थी। वे अग्रसर होकर उसकी निष्कृति के लिए साहसिक भी हुए; किन्तु उनके अभियान उन्हींके साथ समाप्त हो जाने से उनके प्रयास आज भी ब्रजभाषा-काव्य में ध्रुव के समान टिमटिमा रहे हैं और अपने अनुरागियों को आज भी मूक रूप से इंगित कर रहे हैं कि अब भी तो उचित मार्ग का आश्रय ग्रहण करो।

सच तो यह है कि पद्माकर और घनानन्द ने भाषा और विषय की निर्धारित सीमाओं से बाहर झाँककर अपने-अपने काव्यों का सृजन किया था। उनके काव्यों में मानवीय भावनाओं का समावेश देखकर मन बड़ा आश्वस्त हो उठता है। फिर भी वस्तुस्थिति तो यह है कि ये रीति-युक्त कवि उस काव्य-भूमि को प्रस्तुत न कर सके जिस पर कविरत्न सत्यनारायण को चलना था। यह कार्य उन पर आ पड़ा। उन्होंने अपनी मौलिक वाणी से युग का काफी प्रतिनिधित्व किया, ब्रजभाषा में अपने काव्य से नवीन आलोक की आभा छिटकाने में वे समर्थ हुए। ब्रजभाषा में प्रतिपादित स्वच्छन्दतावादी काव्य के उनके उत्तराधिकारी एकाध कवि यदि और निकल आते तो ब्रजभाषा आज के समान विस्मृति में न पड़ सकती थी। आज तो अनुपयोग के कारण उसके स्वरूप का मलिन हो जाना स्वाभाविक है और उसका अनिश्चित भाग्य बड़ा ही निराशा उत्पन्न करता है।

कविरत्नजी में प्रतिभा थी, भावुकता थी, कवि-हृदय था; किन्तु दुःख यही रहा कि अपनी थोड़ी सी अवस्था के कारण वह उनका पर्याप्त उपयोग न कर सके। फिर भी उनके साहित्य से हिन्दी गौरवशालिनी और चिर ऋणी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ और वाजपेयीजी

आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी के लेख का जवाब

पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

फरवरी, सन् १९६२ ई०, की 'सरस्वती' में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक वही था जो इस लेख का प्रथम शीर्षक है। आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी ने अपने एक लेख में यह लिखने की कृपा की थी कि 'राष्ट्रिय' का अर्थ वास्तव में 'राजा का साला' है। इस पर पाणिनि, भट्टोजी दीक्षित और संस्कृत के दो कोषों और सात हिन्दी के कोषों के उद्धरण देकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कहीं भी न तो पाणिनि में, न भट्टोजी दीक्षित में और न संस्कृत और हिन्दी के कोषों में मुझे वह अर्थ मिला, जो श्री किशोरीदास जी ने इस शब्द का अर्थ बताया था। भारतीय संविधान के आठ अनुवादकों ने भी 'राष्ट्रिय' शब्द का प्रयोग किया है उस अर्थ में, जिसे श्री किशोरीदास जी वाजपेयी नहीं स्वीकार करते।

'सरस्वती' के इस लेख का उत्तर श्री किशोरीदास ने दिल्ली के दैनिक पत्र, 'नवभारत टाइम्स', में छपाना उचित समझा। उन्होंने संभवतः अपने लेख को छपाने के लिए अन्य दैनिक पत्रों की शरण ली हो, यह हम नहीं कह सकते। लेकिन मेरा लेख एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उसका उत्तर आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी ने एक दैनिक पत्र में छपाया! यदि उन्हें मेरे लेख का उत्तर देना था, तो उसे 'सरस्वती' के किसी अंक में छपने के लिए वह भेज सकते थे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। दैनिक पत्र में जवाब देना उन्होंने उचित समझा। अकस्मात् मेरी निगाह उनके इस लेख पर पड़ गयी। कहाँ मासिक-पत्रिका में मेरा लेख और कहाँ दैनिक में आदरणीय श्री किशोरीदास का उत्तर! 'बड़ेन की बात बड़ेन पहिचाना'! औचित्य के पारखी आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी हैं, अतएव इस संबंध में मेरा मौन रह जाना ही उपयुक्त है।

अपने लेख के अन्त में श्री किशोरीदास वाजपेयी जी लिखते हैं:—"सो क्षमा माँगता है यह 'पोंगापंथी'। अब आगे दखल न देगा। साथ ही हिंदी प्रेमियों से निवेदन है कि 'सरस्वती'-प्रकाशित और माननीय तिवारी जी की दी हुई यह मेरी उपाधि याद रक्खें और मेरे नाम के आगे जोड़ा भी करें 'पोंगापंथी'।"

यदि आदरणीय श्री किशोरीदास जी वाजपेयी के सिर पर यह टोपी ठीक बैठती है तो इसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी यदि श्री किशोरीदास वाजपेयी इस टोपी को अपने सिर पर धारण कर लें। यह इनकी रुचि की बात है। इसमें किसी को दखल देने का कोई कारण नहीं दिखायी देता, परन्तु सारे लेख में मैंने आदरणीय श्री किशोरीदास को इस उपाधि से विभूषित करने का न कोई प्रयत्न किया था और न ऐसा मेरा इरादा ही था।

मैंने क्या लिखा था, जिसे देखकर आदरणीय श्री किशोरीदास अपने जामे के बाहर हो गये? उस लेख में मैंने जो कहा था, उसका उद्धरण दे देना मैं आवश्यक समझता हूँ:—"हिंदी वालों के लिए जैसे 'देशीय' शब्द है, वैसे ही 'राष्ट्रीय' शब्द भी है। तद्धित प्रत्ययों के लगाने में हिंदी के लेखकगण 'पाणिनि' के बताए नियमों का उल्लंघन करते जाते हैं।.....इसे हिंदी वालों की जिद न सोचना चाहिए। उन्हें तो पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के बताए नियमों का बोध नहीं है। इसीलिए वे ऐसा करते हैं।"

आगे चल कर मैंने जो कुछ कहा, उसे भी सुन लेने की कृपा आप कीजिए: "जिन तद्धित प्रत्ययों में अ, ण और क् इत् हो, उनके आदि स्वर की वृद्धि यदि न की जाए और प्रत्यय (अविकृत) शब्द में जोड़ दिए जाएँ तो हिंदी के लेखक संस्कृत नियमों के इस जाल से छुटकारा पा जाएंगे। इसीलिए हमने लिखा था कि भूत का 'भूतिक', इतिहास का 'इतिहासिक' यदि हम लिखने लगें तो हिंदी के सरल होने की एक कठिनाई मिट जाएगी। लेकिन 'पोंगापंथियों' ने मेरे इस सुझाव का घोर विरोध किया है। उनके इस विरोध से हताश न होकर हम फिर इस बात को दोहराते हैं कि आदि स्वर की वृद्धि न की जाय, जब ऐसे तद्धित प्रत्यय (अविकृत) शब्दों में जोड़े जाँए, जिनमें अ, ण और क् इत् हों। पोंगापंथियों के लिए मैंने यह सुझाव दिया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ऐसे शब्दों को वे वही स्थान दें, जो तद्भव शब्दों को हिंदी में प्राप्त हैं। यदि वे मेरी इस सलाह को भी अपनी हठधर्मी में नहीं मानते, और 'अपनी बात को' मनाने में लगे हैं, 'तो उनकी वही दशा होगी जो उन लोगों की हुई जो 'मुख' को 'मुँह' बनाने का विरोध करते थे .....हिंदी भाषा तो स्वतंत्र भाषा है, अतएव उसके लिए संस्कृत नियमों का पालन करना ठीक नहीं जँचता। उसे संस्कृत व्याकरण के नियमों में जकड़ना असंभव है। स्वच्छंद गति से उसकी धारा, जब जैसी वह चाहेगी, तब तैसी बहेगी"।

आदरणीय श्री किशोरीदास बाजपेयी तुलसीदासजी के इन शब्दों की दोहाई देते हैं--'दैहिक', 'दैविक', और 'भौतिक'--और मुझसे यह सवाल करते हैं कि ऐसे सरल शब्दों का आप क्यों विरोध करते हैं। इसका मैंने पहले ही जवाब दे दिया है। तुलसीदासजी ने अपने 'राम चरित मानस' की भाषा को 'साहित्यिक' रूप दिया था। वह संस्कृत के पंडित थे, वैसे ही जैसे आदरणीय श्री किशोरी दास वाजपेयी के विषय में कहा जाता है कि 'सिद्धांत कौमुदी' के अतिरिक्त उन्हें और किसी अन्य भाषा का बोध नहीं है। ४०० वर्ष पुरानी लकीर को पीटने के वह हामी हैं। लेकिन उन्हें यह भूलना नहीं चाहिये कि तुलसीदासजी के पूर्व जायसी हुए थे; और उन्होंने अपने काव्य की रचना बोल-चाल की भाषा में की है। उन्होंने कहीं भी अपनी भाषा को 'साहित्यिक' भाषा बनाने का प्रयत्न नहीं किया। तुलसीदासजी की भाषा के मुकाबले में आधुनिक आलोचक जायसी की भाषा को--जो साहित्यिक नहीं थी--कुछ कम महत्व नहीं देते। बड़ों-बड़ों की यह राय है कि जायसी की कविता में जो मिठास है वह तुलसीदासजी की कविता में नहीं मिलती।

आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी को यह याद कर लेना चाहिए कि संस्कृत जानने वालों से केवल हिंदी के जानने वालों की संख्या कहीं अधिक होगी। क्या शुद्ध हिंदी लिखने के लिए आगे भी यह कसौटी रहेगी कि संस्कृत के व्याकरण के नियमों का ज्ञान अनिवार्य है? क्या पाणिनि, कात्यायन या पतंजलि के बताए नियमों का पालन न कर सकने वाला शुद्ध हिंदी नहीं लिख सकता? यदि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में है तो शुद्ध हिंदी के लिखने का दावा वे ही करेंगे जो तद्धित प्रत्ययों के लगाने में विकृत आदि स्वरों वाले शब्दों से संबंधित संस्कृत के नियमों का पालन करना जानते हैं। यह नीति अनीति है, पीछे की ओर हमें घसीटती है। इसके लिए आगे का कोई मार्ग नहीं है। हिंदी भाषा का स्वतंत्र व्याकरण नहीं रह जाएगा--वह तो संस्कृत व्याकरण का पिछलगुआ कहा जाएगा।

आदरणीय किशोरीदास वाजपेयी के सामने यही प्रश्न है और प्रत्येक हिंदी लिखनेवाले के सामने भी यही प्रश्न है कि जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक हिंदी सरल बनायी जाय। मेरा एक सुझाव है। उसे मानने या न मानने का हिंदी लिखनेवालों को अधिकार है। यही मेरा विनम्र निवेदन उनके प्रति है। ऐसी दशा में आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी का ख़फ़ा होना कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन उनके व्यंगों से तिलमिलाने की मुझे कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती; मैं कोई कुम्हड़-बतिया नहीं हूँ कि उनके उँगली उठाने से मैं मुर्झा जाऊँगा। जो 'चुनौती और 'चुनौटी' में भेद नहीं मानता--जैसा आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी ने 'चुनौती' को 'चुनौटी' के अर्थ में लिया है --उसके विषय में कुछ अधिक कहना असंगत होगा।

हिंदी किसीके हाथ बिक नहीं गयी है। जो लोग अहमन्यता में अपनेको एकमात्र हिंदी का भाषाविद् समझते हैं, उन्हें यदि हिंदी में सुधार की गुंजाइश देख पड़ती है तो वह दूसरे के अधिकार को छीनने का प्रयत्न न करें और उनके बताए हुए सुधारों पर शांत चित्त से विचार करें। यदि उन्होंने अपने लेखों में कोई अनुचित बात भी लिखी है तो भी उसकी उपेक्षा कर विज्ञों को उसके सुधार-संबंधी प्रस्तावोंपर स्वस्थ चित्त से विचार करना चाहिए।

छोड़िए आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी को। उनकी तो यह पुरानी आदत है कि वह दूसरे के लेख को पढ़ कर उसका विपरीत अर्थ लगाते हैं और दावा करते हैं भाषा-विद् होने का। हमने हाल ही में उनकी लिखी हुई एक पुस्तिका पढ़ी और तब मुझे मालूम हुआ कि वह अपने ज्ञान के सामने दूसरों की बात पर विचार करने के लिए तैयार नहीं। जिस समय मैंने श्री राधारानी के विषयमें एक लेखमाला लिखी थी, उस समय आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी ने अपने बेढंगे तर्कों से श्री राधा-रानी के पातिव्रत का समर्थन किया था। उस समय 'सरस्वती'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मैंने 'समालोचक कौन देश कौ वासी' शीर्षक वाला एक लेख लिखा था और उस लेख में मैंने आदरणीय श्री किशोरी दासजी को उपेक्षावाची उपालंभ दिया था। तभी से, मालूम होता है, आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी हाथ धोकर मेरी बातों का उलटा-सीधा अर्थ लगाते और अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। मुझे जो कुछ कहना है, उसे मैं अपने लेख द्वारा ही कहता हूँ। किसी पत्र के संपादक से मिल कर उसे भड़काने की चेष्टा मैंने कभी नहीं की। इसके विपरीत आदरणीय श्री किशोरीदासजी लेख तो लिखते ही हैं परंतु इससे इनकी आत्मा को, मालूम होता है, संतोष नहीं होता। इसलिए किसी संपादक के पास जाकर भी, उन्होंने उसे मेरे विरुद्ध भड़काने की चेष्टा की। इसीलिए मैं कहता हूँ कि उनका विरोध सिद्धांततः मेरी बातों से नहीं है, बल्कि मुझसे वह नाराज हैं। ऐसी दशा में उनकी यदि उपेक्षा मैं करूँ तो अनुचित न होगा। करबद्ध प्रार्थना मेरी आदरणीय किशोरीदास से यही है कि वह अपने लेखों में हिंदी का एकमात्र ठेकेदार होने का दावा छोड़ दें। अपने ज्ञान की सीमा को वह न भूलें और उसीके भीतर रह कर उन्हें हिंदी-सुधार संबंधी प्रस्ताव करने चाहिए। ऐसी ही प्रार्थना मैंने श्री किशोरीदास वाजपेयी से पहले भी की थी परन्तु उसका कोई प्रभाव नजर नहीं आता। उन्हें मेरी प्रार्थना मानने या न मानने का अधिकार है। 'क्षमा बड़ेन को चाहिए छोटेन को अपराध'।

आदरणीय किशोरीदास के विषय में इतना ही कहना काफी होगा। मैं आइंदा से इस अप्रिय विषय पर न तो कुछ लिखूँगा और न आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी के लेखों का उत्तर ही दूंगा। जो वह चाहें उसे वह लिखें। आगे से उनके विषय में मेरी नीति मौन की नीति होगी।

ऊपर जो कुछ मैंने लिखा है, उसे मैं न लिखता यदि आदरणीय श्री किशोरीदास वाजपेयी ने मेरे हिंदी-सुधार संबंधी सुझावों का जम कर विरोध करना अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य न बना लिया होता। अभी तक मैंने इन्हें तरह दी। अब जब मुझसे न रहा गया तब मैंने आदरणीय किशोरीदास वाजपेयी के विषय में ऊपर लिखे हुए शब्दों का प्रयोग किया। आपसी तू तू-मैं-मैं मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। अतएव मैंने ऊपर जो कुछ कटु बातें कही हैं, उनके लिए मुझे हार्दिक खेद है और अब मैं आदरणीय श्री किशोरी दास और पाठकों से ऊपर कही गयी बातों के लिए क्षमा का प्रार्थी हूँ। हिंदी-सुधार संबंधी मेरे सुझावों की कटु आलोचना करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है, लेकिन उस आलोचना में इस लेखक को घसीटना सर्वथा अनुचित होगा। बस।

इस लेख का लाभ उठाकर मैं फिर अपने उन तर्कों को दोहरा देना चाहता हूँ, जिनके आधार पर कतिपय प्रत्ययों को शब्दों में जोड़ने के पहले, शब्दों के आदि स्वर में विकार न करने का सुझाव मैंने दिया था। मेरा सुझाव यह था :—संस्कृत के प्रत्ययों में से कुछ ही का हिंदी में प्रचलन हो। उदाहरण के लिए मैंने 'भौतिक' 'ऐतिहासिक' और 'आलंकारिक' शब्दों को लिया था। मैंने इन शब्दों के आदि स्वर में विकार न करने की प्रार्थना की थी। मेरे उस सुझाव से कुछ संस्कृत-भाषी सज्जन अप्रसन्न हुए। उनको 'इतिहासिक' की जगह 'ऐतिहासिक', 'अलंकारिक' की जगह 'आलंकारिक' लिखना पसंद था। उनके इस विरोध के प्रति मैंने यह निवेदन किया था कि हिंदीवाले संस्कृत प्रत्ययों के लगाने में स्वच्छंद रूप से अपने को स्वतंत्र समझते हैं। उदाहरण के लिए 'आन्ताराष्ट्रिय' न लिख कर 'अन्तर्राष्ट्रीय' लिखते जाते हैं। मैंने इस संबंध में यह सुझाव दिया कि हिंदी लिखने के लिए पाणिनि की 'अष्टाध्यायी', कात्यायन के 'वार्तिक' और पतंजलि के 'महाभाष्य' का पूर्ण ज्ञाता होना आवश्यक नहीं हैं। उन्होंने—पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ने—संस्कृत में प्रत्ययों को शब्दों से जोड़ने के जो नियम बनाए हैं वे इतने दुरूह हैं कि उनका पूर्ण ज्ञान होना हिंदीवाले के लिए असंभव है। उदाहरण के लिए 'अलंकार' के विशेषण को ले लीजिए। आजकल 'आलंकारिक' न लिख कर बहुत से लोग 'अलंकारिक' भी लिखते हैं। ऐसी दशा में उनसे यह आशा करना कि वे 'आलंकारिक' लिखेंगे न कि 'अलंकारिक' एक दुराशा मात्र है। हमें यह न भूलना चाहिए कि प्राथमिक शिक्षा देश में अनिवार्य हो रही है। संस्कृत के ज्ञाता इन बालक-बालिकाओं में इने-गिने ही होंगे। अतएव मैंने यह सुझाव किया था। हिंदी में कतिपय संस्कृत प्रत्ययों को शब्दों में जोड़ने के पहले उन शब्दों के आदि स्वर में कोई विकार न किया जाए। कुछ संस्कृतज्ञ इसका विरोध करते हैं। उनके विरोध का शमन करने के लिए मैंने यह सुझाव रखा कि 'आलंकारिक' तत्सम और 'अलंकारिक' तद्भव शब्द माने जाएं। इस पर भी इन पंडितों का रोष न गया। वे हिंदी भाषा को संस्कृत व्याकरण के ढाँचे में ढालने के अनुयायी हैं। मैं हिंदी व्याकरण को एक स्वतंत्र शास्त्र मानता हूँ। संस्कृत व्याकरण का पिछलगुआ उसे नहीं मानता। लेकिन इस विषय में मेरी कोई हठधर्मी नहीं है। सर्व सम्मति से या प्रचुर बहुमत से जिसे हिंदी के लेखकगण स्वीकार कर लेंगे, उसे मैं अंगीकार करने को तैयार हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१५)

पण्डित ब्रजमोहन व्यास

व्यसनं श्रुतौ—श्रुति अर्थात् वेद-धर्मशास्त्र आदि में लगन।

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्तिपयो न धेनुः शुचिर्विभावा।

ऋग्वेद १।६६।१

भावार्थ :—धन के समान विलक्षण, सूर्य के समान सब पदार्थों के दर्शक, प्राण के समान सुहृद, सन्तान के समान हितकारी, दुग्धदात्री गौ के समान सुदाता जिस प्रकार यह अग्नि दीप्त है, उसी प्रकार हम तेजस्विता को प्राप्त करें।

ऐसा लगता है जैसे ऋग्वेद का अग्निदेवता से सम्बन्धित यह ज्वलन्त मंत्र मालवीयजी का जीवन-संकल्प रहा हो। बहुत दिन की बात है। उन दिनों मालवीयजी प्रयाग में रहा करते थे। स्थानीय श्री धर्म्मज्ञानोपदेश पाठशाला के वे सभापति थे और मैं मंत्री था। इसी पाठशाला में मालवीयजी का विद्यारम्भ हुआ था। उन्होंने ही अन्य विषयों के साथ-साथ वेद का कक्ष खुलवाया था। उस कक्ष में वेद का सस्वर, शुद्ध पाठ करना सिखलाया जाता था। वह कक्ष अब तक जारी है। जब कभी किसी अवसर पर वेद-पाठियों की आवश्यकता होती है तो प्रायः धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला ही के विद्यार्थी वेद-पाठ करने के लिए भेजे जाते हैं।

एक दिन मालवीयजी मेरे साथ पाठशाला का निरीक्षण करने गये। उन दिनों वे सभापति थे और मैं मंत्री था। जिस समय हम लोग पाठशाला के द्वार पर पहुँचे, वहाँके छात्र, एक स्वर से वेद-पाठ कर रहे थे। एक समा-सी बँधी थी। मालवीयजी प्रवेश-द्वार पर ही ठिठक गये और आँखों को बन्द कर उस स्वर-लहरी का रस-पान करने लगे। जिस प्रकार मेघ के गर्जन को सुनकर उद्ग्रीव, मत्त मयूर को अपने तन-बदन की सुध नहीं रहती, अथवा जिस प्रकार कोई सूम अपनी थैली में धन भरते नहीं अघाता, कुछ उसी प्रकार मालवीयजी वेद-ध्वनि सुनकर आनन्द-विभोर हो रहे थे। वे वेद-ध्वनि सुन रहे थे और मैं उन्हें देख रहा था। वेद-पाठ में जैसे ही विराम हुआ, मालवीयजी मेरी ओर देखकर, मधुर मुसकान बिखेरते हुए बोले 'वाह' और हम लोग पाठशाला के भीतर चले गये।

भीतर जाकर पहिले मालवीयजी हरिदेवजी की चरणपादुका के सामने नत-मस्तक हुए, और तत्कालीन प्रधानाध्यापक को प्रणाम किया। तदनन्तर प्रत्येक कक्ष में जाकर छात्रों से पूछ-ताछ करने लगे। प्रत्येक छात्र से वे यह अवश्य पूछते थे कि सन्ध्या करते हो या नहीं, नियम से नित्य व्यायाम करते हो या नहीं और रोज कितना दूध पीते हो। पाठशाला का निरीक्षण कर लेने के बाद मालवीयजी मुझसे बोले "व्यासजी, इन छात्रों की देख-भाल से मुझे असंतोष है। ये लोग न तो ठीक से दूध ही पीते हैं और न नियम से व्यायाम ही करते हैं। देखिए, ये कितने दुबले हैं। इनके चेहरे पर वह तेज नहीं है जो होना चाहिए।" फिर थोड़ा मुस्कराकर मुझसे पूछा—"बताइए इन्हें कैसा होना चाहिए।" मुझे ऐसा लगा जैसे वे मुझसे माघ का वह श्लोक कहलवाना चाहते हैं जिसमें नारद का आकाश से उतरने का वर्णन है। मैंने तुरन्त कहा :—

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः
प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधोधाम विसारि सर्वतः
किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः॥

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा
ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवः पुमानिति
क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः।

माघ—शिशुपालवध—१। २-३

(भगवान् नारद आकाशमार्ग से पृथ्वी पर उतर रहे हैं। लोग चकित होकर देख रहे हैं। वे समझ नहीं पा रहे हैं कि यह कौन-सी चीज है जो पृथ्वी की ओर आ रही है। उन्होंने सोचा—क्या यह सूर्य तो नहीं है जिसकी गति तिरछी हो गयी है। अथवा यह अग्नि तो नहीं है? परन्तु यह अग्नि नहीं हो सकती क्योंकि यह जानी हुई बात है कि अग्नि की ज्वाला ऊपर को ओर जाती है। परन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर फैलता हुआ प्रकाश नीचे की ओर गिर रहा है। तो फिर यह है क्या? पहिले तो उन्होंने यह समझा कि वह केवल एक तेज पुञ्ज है। फिर जब वह प्रकाश-पुञ्ज और निकट आया और उसमें कुछ आकृति दिखाई पड़ने लगी तो उन्होंने सोचा कि यह कोई शरीरधारी है। परन्तु जब उसके अवयव स्पष्ट दिखाई देने लगे तो मालूम हुआ कि यह कोई पुरुष है। और जब वह तेज पृथ्वी पर आ गया तो उन्हें यह पता चल गया कि यह तो नारद हैं।

मुख पर ऐसा तेज, कोरी कवि-कल्पना नहीं है। मैंने स्वयं अपनी आँखों से स्वामी रामतीर्थ के दमकते हुए चेहरे के चारों ओर एक प्रभामण्डल सा प्रकाश देखा है। मालवीयजी इन दोनों श्लोकों को सुनकर फड़क उठे और बोले "शाबाश! मैं इसी तरह का तेज यहाँके छात्रों के चेहरे पर देखना चाहता हूँ।" फिर यहकहकर कि सभी छात्रों को वेद-पाठ में सम्मिलित होना चाहिए—अपनी मोहनी मुस्कान बिखेरते हुए चले गये।

मालवीयजी के लिए 'व्यसनं श्रुतौ' की परिभाषा बहुत विशद थी। 'ईश्वर की खोज' को वे वेदों का सार मानते थे। स्वरचित पुस्तिका "जगत् में सबसे उत्तम और अवश्य जानने योग्य कौन है? ईश्वर" उसमें उन्होंने लिखा है—"इस संसार में सबसे पुराने ग्रंथ, वेद हैं।..... भागवत में भगवान् का वचन है:—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

२।९।३३

(सृष्टि के आदि में कार्य [स्थूल] और कारण [सूक्ष्म] से अतीत एक मात्र मैं ही था। मेरे सिवा और कुछ भी न था। सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही रहता हूँ और यह जो जगत्प्रपञ्च दीख पड़ता है वह भी मैं ही हूँ तथा सृष्टि का संहार हो जाने पर जो कुछ बच रहता है वह भी मैं ही हूँ।)" आगे चलकर इसी पुस्तिका में वे लिखते हैं:—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एव—
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

श्वेता० ४।१७

(वह परमदेव विश्व का रचनेवाला सदा प्राणियों के हृदय में स्थित है। अपने-अपने हृदय में स्थित इस महात्मा को जो शुद्ध हृदय से, विमल मन से अपने में विराजमान देखते हैं वे अमर होते हैं।)

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सोई सच्चिदानन्दघन रामा।
अज विज्ञानरूप बलधामा॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता,
अखिल अमोघशक्ति भगवन्ता।

.. .. ..
.. ..

सूरदासजी ने कहा है—

जगत्पिता जग के आधार।
तुम सबके गुरु सबके स्वामी,
तुम सबहिन के अन्तर्यामी॥
हम सेवक तुम जगत अधार,
नमो नमो तुम्हे बारंबार।
सर्वशक्ति तुम सर्व अधार
तुम्हें भजै सो उतरै पार॥

... ...
... ...

इस प्रकार मालवीयजी ने अपनी लिखी हुई पुस्तक "ईश्वर" में वेद, उपनिषद् आदि धर्म-ग्रंथों से संकलन-कर ईश्वर की महिमा का वर्णन किया है। विस्तार-भय से मैंने उन्हींकी व्याख्या सहित थोड़े से उद्धरण दिये हैं। इससे मालवीयजी के हृदय के एक कोने की झाँकी और उनकी ईश्वर-निष्ठा का आभास मिलता है। सांसारिक वैभव की ओर उदासीनता और ईश्वर में तन्मयता मालवीयजी के जीवन की 'शवीह' है। महाकवि अकबर की यह उक्ति उनपर पूर्णरूप से लागू होती है:—

गुरूर उनको है, मुझको भी नाज़ है अकबर।
सिवा ख़ुदा के सब उनका, फ़क़त ख़ुदा मेरा॥

मालवीयजी और काया-कल्प

काया-कल्प, मालवीयजी के जीवन की एक विशेष उल्लेखनीय घटना है। उस समय इसके सम्बन्ध में अनेक टीका-टिप्पणियाँ हुई थीं, प्रायः बिना समझे-बूझे जैसा ऐसी बातों में अकसर हुआ करता है। चूँकि मैंने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग को आद्योपान्त देखा है, इसलिए मैं उसे विस्तार से लिखता हूँ जिससे लोग सही राय क़ायम कर सकें।

आरम्भ ही में यह लिख देना उचित होगा कि मालवीयजी को आयुर्वेद में बड़ी आस्था थी। यह तो मुझे ठीक तरह से नहीं मालूम कि उन्होंने अपने जीवन में डाक्टरी औषध का प्रयोग कभी किया या नहीं, परन्तु यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि स्वास्थ्य के लिए वे आयुर्वेदिक औषधियों को डाक्टरी औषधियों से कहीं अधिक अच्छा मानते थे और समय-समय पर उनका उपयोग भी करते थे।

देश तथा समाज के अनेक कार्यों में अविश्रान्त परिश्रम करने के कारण बुढ़ाई में मालवीयजी बहुत निर्बल हो गये थे। अतः १९३६ की गर्मियों में किसी न किसी प्रकार थोड़ा अवकाश ग्रहण कर कुछ दिनों के लिए वे विश्राम करने के हेतु मसूरी पहाड़ पर चले गये। यह १९३६ की बात है। उस समय उनकी आयु लगभग ७४ वर्ष की थी। वे प्रायः कहा करते थे कि

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सबों के लिए नीरोगता नितान्त आवश्यक है। इधर कई वर्षों से उनकी कमर में बहुत पीड़ा होती थी और वह थोड़ी झुक भी गयी थी। जब वे मसूरी गये तो वहाँ पंजाब के एक नवयुवक, आनन्दजी उनसे मिले और कहा कि एक स्वामी, तपसीजी हैं जिनकी आयु १०० वर्ष से अधिक है। उन्होंने अपने योगसाधन के द्वारा कुछ ऐसी दिव्य औषधियों को खोज निकाला है जिनके नियमित सेवन से मनुष्य नीरोग हो जाता है और उसकी आयु बढ़ जाती है। मालवीयजी तो यह चाहते ही थे कि यदि उनका स्वास्थ्य सुधर जाय तो वे अधिक दिनों तक देश की सेवा कर सकें। अतः तपसी स्वामीजी को उन्होंने बुलवाया। तपसीजी ने काया-कल्प की सब विधि बतलायी और उसके द्वारा नीरोग होने तथा आयु बढ़ने का समर्थन किया। मालवीयजी उनकी बात से प्रभावित हुए और 'काया-कल्प' करने का निश्चय कर लिया। तदनन्तर वे काशी लौट आये। वहाँ पण्डित सत्यनारायण शास्त्री, जो काशी के लब्धप्रतिष्ठ और ख्यातनामा वैद्य हैं और जो मालवीयजी की सदा चिकित्सा करते थे, तथा अन्य मित्रों ने 'काया-कल्प' का बड़ा विरोध किया, परन्तु मालवीयजी निश्चय कर चुके थे। वे उसी पर कायम रहे।

यह निश्चित हुआ कि 'काया-कल्प' की प्रक्रिया प्रयाग में होगी। एतदर्थ शिवकुटी में स्थित, गंगातट पर रायबहादुर लाला रामचरणदास के बाग में सब प्रबन्ध कर दिया गया। तपसीजी के आदेशानुसार पंजाब से खूब तगड़ी, चार काली गौएँ मँगाई गईं। जिस बँगलिया में मालवीयजी के रहने की व्यवस्था की गयी थी उसके बरामदे की मेहराबें ईंट से चुन दी गयीं। आने-जाने के लिए केवल एक मेहराब खुली थी और उसमें मोटा टाट का परदा लटका दिया गया था जिसमें भीतर तनिक भी प्रकाश न जा सके। इस प्रकार हवा भी नाममात्र को घूम-घुमाकर जा सके। इसी बँगलिया के भीतर के कमरे में मालवीयजी को नियमानुसार ४० दिन रहना था। प्रकाश के लिए मालवीयजी के कमरे में लाल चिमनी की एक लालटेन जलती थी जैसी फोटोग्राफरों के 'डार्क रूम' में होती है।

जब यह सब प्रबन्ध सम्पन्न हो गया तो मालवीयजी तपसी स्वामी तथा अपने पुत्र चि०मुकुन्द, के साथ मोटर में काशी से प्रयाग आये। सबसे पहिले उन्होंने अपने परिवार के इष्टदेव राधाकृष्ण के विग्रह का दर्शन किया, फिर अपनी धर्मपत्नी सौभाग्यवती कुन्दनदेवी से मिलकर शिवकुटी चले गये। मालवीयजी के साथ देहरादून के प्रसिद्ध तांत्रिक पण्डित हरिदत्त शास्त्री नें भी 'काया-कल्प' करने का निश्चय किया था। वे भी शिवकुटी पहुँच गये। उनके लिए भी उसी बाग में एक बगल की बँगलिया में सब प्रबन्ध कर दिया गया।

अब चिकित्सा प्रारम्भ हो गयी। पंजाब से काली गौएँ आ गयी थीं। उन गौओं को उनके नित्य के आहार के साथ कुछ जड़ी-बूटियाँ भी औषध के रूप में खिलाई जाती थीं। इन्हीं गौओं का दूध मालवीयजी और शास्त्रीजी पीते थे। और इन्हीं गौओं का दूध जमाकर उसमें से जो मक्खन निकलता था वह औषधि के साथ दिया जाता था।

काया-कल्प कुटी में प्रवेश

शिवकुटी में जिस समय मोटर पहुँची तो चि० मुकुन्द और मालवीयजी के भृत्य, मोड़ी कहार ने सहारा देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवीयजी को मोटर से उतारा और फिर बड़ी कठिनाई से वे काया-कल्प के कमरे में पहुँचे। इतने अशक्त हो गये थे मालवीयजी।

काया-कल्प के शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार चिकित्सा आरम्भ होने के पूर्व, मालवीयजी का मुंडन, रेचन, वमन इत्यादि कराया गया। तपसीजी ने स्वयं अपना मुण्डन कराया और आज्ञा दी कि जो निरन्तर मालवीयजी की सेवा में रहे उसका भी मुण्डन आवश्यक है। अतः चि० मुकुन्द ने भी मुंडन कराया। मैं तो यह देख-देखकर हैरान था। धृष्टता क्षमा हो। यद्यपि अकबर का यह शेर पूरी तरह से लागू नहीं होता परन्तु न जाने क्यों उस वक्त याद आ ही तो गया--

मजहब छोड़ो, मिल्लत छोड़ो,
सूरत बदलो, उम्र गँवाओ।
सिर्फ़ 'किलरकी' की उम्मीद
और इतनी मुसीबत तोबा, तोबा।

'इस कदर सामान दो दिन के लिए!' खैर, चिकित्सा आरम्भ हो गयी। मैंने तपसी स्वामी को देखा। उनकी उम्र १०० वर्ष से अधिक बतायी जाती थी पर देखने में अधिक से अधिक ४०° वर्ष के लगते थे। खूब लम्बे-चौड़े, हृष्ट-पुष्ट, गौरवर्ण एवं प्रतिभाशाली। यदि कौषेय वस्त्र धारण न किये होते और शाम को चौक में दिखलायी पड़ते तो यही समझता कि किसी दंगल में अपनी जोड़ लिखाने आये हैं।

चिकित्सा की व्यवस्था

चालीस दिन अन्न अथवा फल का निषेध था। नारायण तैल की मालिश जो मालवीयजी का नियम था, बन्द कर दी गयी थी। मक्खन के साथ औषधि और केवल दूध ही का आहार था। औषधि के लिए डाल के पके हुए आँवले का प्रयोग होता था। तपसी स्वामी रोज प्रातःकाल आँवलों को लेकर प्रयाग से तीस-पैंतीस मील दूर शंकरगढ़ मोटर में जाते थे। पलास के वृक्ष को ऊपर से काटकर उसके तने के बीच में, आँवला भर दिया जाता था। ऊपर से गजपुट (मुँह बंदकर उसके चारों ओर मट्टी लहेसना) कर उसके चारों ओर उपली की आग जला दी जाती थी। इस प्रकार प्रतिदिन यह प्रक्रिया चलती रही। दूसरे दिन तपसीजी पहिले दिन के पलास के तने में पका हुआ आँवला लेकर और दूसरे पेड़ में नया आँवला भर देते थे। पके हुए आँवले को लाकर तपसीजी उसे शहद में भिगो देते थे। उसमें कोई और औषधि भी मिलाते थे। इस औषधि का नाम उन्होंने किसीको नहीं बताया। इस प्रकार तैयार किया हुआ आँवला, मक्खन के साथ, मालवीयजी और शास्त्रीजी को औषधि के रूप में दिया जाता था। आहार के लिए दिन में चार बार दूध दिया जाता था। प्रारम्भ में आँवला और मक्खन एक छटाँक दोनों समय में दिया जाता था और वह क्रमशः बीस तोला तक बढ़ाया गया। दूध एक सेर से लेकर ढाई सेर तक ही बढ़ सका। तपसीजी के आदेशानुसार मालवीयजी अधिकतर चारपाई पर ही विश्राम करते रहते थे पर शास्त्रीजी उठकर पूजा-पाठ भी कर लेते थे। मालवीयजी के कमरे के बगल में श्रीमद्भागवत का नित्य पाठ होता था जिससे उन्हें बड़ी शान्ति मिलती थी। लोगों के मिलने की प्रायः मनाही थी। दिन में चार बार दूध व औषधि देने के लिए उनके पुत्र चि० मुकुन्द जाते थे। प्रातःकाल और संध्या के समय तपसीजी जाते थे। मालवीयजी की धर्मपत्नी कभी-कभी उनके पास जाती थीं। और कभी-कभी कुछ खास-खास लोगों को तपसीजी अनुमति दे देते थे।

प्रारम्भ में बीस दिन तक मालवीयजी को उत्तरोत्तर लाभ होता रहा। एक दिन डाक्टर हृदयनाथ कुंजरू मालवीयजी से मिलने आये। उस समय मालवीयजी सीधे होकर, दोनों हाथ पीठ के पीछे किये हुए टहल रहे थे। हरी जी यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए और ताली पीट कर कहने लगे--'Twenty years before, I saw you walking with this gait in Delhi.' (बीस वर्ष हुए, मैंने दिल्ली में आपको इस प्रकार चलते देखा था)। इसी प्रकार एक दिन सर तेजबहादुर सप्रू आये। मालवीयजी को देखकर बोले "महराज, अब तो मैं रमाकान्त (मालवीयजी के ज्येष्ठ पुत्र) को बड़े मालवीयजी कहूँगा। आप तो छोटे मालवीयजी लगते हैं।"

इस कायाकल्प से मालवीयजी का वजन १० पौंड बढ़ गया पर शास्त्रीजी का वजन केवल चार पौंड बढ़ा था। बीस दिन के बाद मालवीयजी को नींद कम आने लगी। और फिर तो किसी किसी दिन वे रात भर जागते रह जाते थे। तपसीजी ने औषधि की मात्रा कम कर दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। और ४० दिन के पहले ही औषधि बन्द कर दी गयी। फिर भी नींद का न आना जारी रहा। इससे मालवीयजी थोड़े निर्बल हो गये पर कोई घबराहट की बात नहीं थी। यद्यपि औषधि बन्द कर दी गयी तथापि आहार में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। चालीस दिन की अवधि समाप्त होने पर उन्हें मूँग की दाल और पतली रोटी दी जाने लगी, और लगभग १५ दिन विश्राम करने के बाद वे अपने पैतृक घर में आये। वहाँ अपने परिवार के इष्टदेव का दर्शन कर और अपनी धर्मपत्नी से मिलकर काशी चले गये और देश एवं काशी हिन्दू-विश्व-विद्यालय के काम में जुट गये। १९४२ में उनकी धर्मपत्नी का देहान्त हुआ। इससे उनके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा। वे फिर चारपायी से लग गये और उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया, और वे अन्त समय तक अशक्त होकर बिस्तरे ही पर पड़े रहे।

इस 'काया-कल्प' की घटना को मैंने विस्तारपूर्वक कई कारणों से लिखा। जहाँ तक मुझे मालूम है इस सम्बन्ध में सिवाय इसके कि मालवीयजी ने 'काया-कल्प' किया, लोगों को इसके विवरण की बहुत थोड़ी जानकारी है। ऐसी परिस्थिति में इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की मन-गढ़न्त बातों का प्रचलित होना स्वाभाविक ही था। इतने बड़े महापुरुष ने आयुर्वेद शास्त्र से अनुमोदित इस कायाकल्प को आयुर्वेद के पण्डित सत्यनारायण शास्त्री जैसे धुरन्धर विद्वान् के विरोध करने पर भी किया, इसकी अच्छी तरह से जाँच होना आवश्यक था। पर यह सब कुछ नहीं हुआ। वह एक आँधी की तरह आयी और निकल गयी। मैं अपना मत इस पर कुछ नहीं प्रकट करता। मैं इसका अधिकारी भी नहीं हूँ। यदि तपसी स्वामी अब मुझसे मिलते तो उनसे यह अवश्य कहता कि—

ज़ुबाँ कट जाय गर लब से तुम्हारा कुछ गिला निकले।
मगर यह तो कहूँगा, तुमको क्या समझा था, क्या निकले॥

तन्दुरुस्ती परकीया स्त्री होती है, विवाहिता सहधर्मिणी नहीं। अभिज्ञान शाकुन्तल में कण्व शकुन्तला को बिदा करने के समय उपदेश देते हैं—

पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

(पति तुम्हारी अवहेलना भी करे तो तुम क्रुद्ध होकर उनके विपरीत आचरण न करना।) यह विवाहिता पत्नी का धर्म है, परकीया का नहीं। तन्दुरुस्ती एक हद तक अवहेलना सहन कर सकती है। उसके बाद वह छोड़कर चली जाती है। मालवीयजी ने जीवन भर उसकी अवहेलना की, और उसे ब्रह्मचर्य, मालिश, धर्म इत्यादि के दम-दिलासे में रक्खा और उसकी तनिक भी परवाह न करते हुए देश और समाज के अनेक काम नाध रखे थे। आखिरकार हाड़-मांस का ही यह शरीर है। उसकी शक्ति, बहुत होते हुए भी, सीमित है। देश के बड़े-बड़े नेता, देश के हित में इसका ध्यान रखें। काया-कल्प के सम्बन्ध में मुझे गालिब के शेर की याद आती है:—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीकत लेकिन
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है।

काया-कल्प के कई वर्ष बाद मालवीयजी की धर्म-पत्नी का देहान्त हुआ। यह मैं मानता हूँ कि उससे उन्हें बहुत आघात पहुँचा। परन्तु उसके बाद उनके फिर नितान्त अशक्त हो जाने का कारण सौभाग्यवती कुन्दनदेवी की मृत्यु नहीं थी। वह तो निमित्त मात्र थी। मूल कारण था मालवीयजी का अपने स्वास्थ्य की निरन्तर अवहेलना। वृद्धावस्था में स्वास्थ्य, इस अवहेलना का दाँव निकालता है। बिस्मिल इलाहाबादी ने ठीक ही कहा है—

बहुत बेकैफ़ होता है ये हिस्सा जिन्दगानी का।
ज़ईफ़ी सह रही है सारा ख़मियाज़ा जवानी का।

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत का व्यापार पश्चिम की ओर

श्री विद्याभूषण गौड़

मेसोपोटामिया, एसीरिया, एलाम, वनायु (अरब), मिस्र आदि देशों से भारत का व्यापार सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ था। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के उत्खनन से इतिहासकार मार्शल को कहना पड़ा, "जैसे-जैसे खुदाई का कार्य अधिक विस्तृत होता गया, यह प्रमाणित होने लगा कि भारत से मेसोपोटामिया का सम्बन्ध केवल सांस्कृतिक कारणों से ही नहीं था, प्रत्युत दोनों देशों में गाढ़तम व्यापारिक और अन्य सम्पर्कों के कारण भी था; अतएव "इण्डो-सुमेरियन सभ्यता" शब्द को हटाकर "सिंधु की सभ्यता" रखा गया।"

भारत रोम को शृंगारिक प्रसाधनों का निर्यात करता था, क्योंकि वह इस व्यवसाय-कला में अधिक दक्ष और अग्रणी था। प्रतिवर्ष रोम से १ करोड़ ३५ लाख रुपये भारत खींच लेता था। इस सम्बन्ध में इतिहासकार प्लिनी विषाद भरे शब्दों में लिखता है कि "कोई वर्ष नहीं, जिसमें भारत रोम से १० लाख पौंड न खींच लेता हो। ..... हम लोग स्त्री-प्रसाधनों के लिये इतना अधिक व्यय करते हैं ....।" कोयम्बटूर तथा इलाहाबाद में रोम के सिक्कों का पाया जाना सिद्ध करता है कि भारत एक विशाल व्यापारिक केन्द्र था, जहाँ हजारों जलयान क्रय-विक्रय के लिये आते रहते थे। क्यों? यह फ्रांसीसी यात्री वर्नियर के मुख से सुनिये, "यह भारत एक ऐसा अथाह गड्ढा है, जिसमें विश्व का अधिकांश सोना और चाँदी चारों ओर से, अनेक मार्गों से, आ-आकर जमा होता है जिसे बाहर निकलने का एक भी मार्ग नहीं सुलभ होता।"

भारत का व्यापार तीन हजार वर्ष पूर्व बेबीलोनियाँ से भी होता था। वहाँपर भारतीय चीड़ की कुछ लकड़ियाँ भी प्राप्त हुई हैं। यह लकड़ियाँ मालावार के तट से जल-मार्ग द्वारा पहुँचाई जाती थीं। भारत ने काबुल और कम्बोज में व्यापारिक संघों का भी निर्माण किया था जो राजनैतिक रूप से भारतीय व्यापार के अंग थे। चीन देश से भी आयात-निर्यात सम्बन्ध होता था। वहाँसे माल के आने का मार्ग बैक्ट्रिया से होकर वरायगाजा और फिर जलयान द्वारा 'तामोल' तक था। लंका, जावा (यवद्वीप), सुमात्रा (सौमित्र्य), बोर्नियो, हिन्द चीन, हिन्देशिया आदि देशों से गाढ़तम व्यापारिक सम्बन्ध था क्योंकि यहाँके अनेक भारतीय राजाओं का वहाँ शासन था।

बौद्धयुग में कौशाम्बी एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। यह प्रयाग के निकट यमुना पर स्थित है। यहाँ अनेक वणिक-पथ थे। इन वणिक पथों पर बाजार लगते थे। भिन्न-भिन्न वस्तुओं के विक्रय स्थान भिन्न-भिन्न वणिक-पथों पर निश्चित किये जाते थे। कौशम्बी के समीप ही गंगा और यमुना ये दो बड़ी नदियाँ बहती हैं जिन पर महानाव नामक जहाज चलते थे। जलयान से जो सामान तट पर उतारे जाते थे, वह कौशाम्बी नगर में गाड़ियों में भर-भरकर वणिक-मार्ग तक जाते थे। इलाहाबाद के समीप रोमन सिक्कों का पाया जाना इस बात की पुष्टि करता है कि भारत का कौशाम्बी नगर एक समृद्धशाली व वैभवयुक्त नगर था और उसका व्यापार अन्य देशों से सम्बद्ध था।

भारतीय काफिले प्रायः व्यापारिक ध्येय से पश्चिम के अन्य देशों में जाया करते थे। भारत की उत्पादित वस्तुएँ इन्हीं काफिलों द्वारा विनिमय के लिये अन्य देशों में पहुँचती थीं। चीन की खाद्य-सामग्रियाँ भारत लाई जाती थीं तथा भारत उसका निर्यात विदेशों में ब्रह्मपुत्र, गंगा व सिंधु नदियों की घाटियों के सहारे करता था। भारत की मानसूनी जलवायु, जलयान, यातायात की सुलभता, व्यापार योग्य समुद्री मार्गों का होना ---इन सब उत्कृष्ट वातावरणों से विदेशों में भारत के वाणिज्य की महत्ता बढ़ने लगी। पुरातत्वान्वेषण से पता चलता है कि समुद्री आवागमन के विकास के कारण भारत वाणिज्य में अधिक अग्रणी हो चला था। जब भारतीय जलयान समुद्र में चलते समय मार्ग विचलित हो जाता था, तो जलयान का नवाध्यक्ष ऐसी अवस्था में दिशा-सूचक काक उड़ा देता था। ये काक दिशा निर्देशन के लिये प्रशिक्षित किये गये होते थे। भारतीय आर्यों के विदेशों में पहुँच जाने के बाद जलयान निर्माण-कार्य बड़ी तीव्रता से होने लगा।

भारतीय नाविकों को अरब-सागर का अच्छी तरह से ज्ञान था। भारतीय जहाज सिंधु के मुहाने से निकलकर बिलोचिस्तान के समुद्री तट तक जाते थे। एक कीलाक्षर अभिलेख में भारतीय समुद्री व्यापार की गाथा दी हुई है। मनुस्मृतिकार जलयान-कर के विषय में स्पष्ट सूचना देते हैं। अन्य प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि बन्दरगाहों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिस-व्यवस्था थी। श्री बालकृष्ण गुप्त अपने निबंध में लिखते हैं कि हिरोडोटस ने सिंधु नदी के मुहाने पर पोत-निर्माण के उद्योग का अतिविस्तृत वर्णन किया है। मौर्य युग में जलयानों का एक राजकीय विभाग था और 'पत्तनाध्यक्ष' नाम से एक अधिकारी नियुक्त किया जाता था जो समुद्री यातायात की देखभाल करता था।

भारतीय काफिले पर्वत-श्रेणियों, नदियों आदि को पार करते हुए स्थल और समुद्री मार्गों से मिस्र पहुँचते थे। मिस्र की नील नदी की उपजाऊ घाटियों में भारतीय यात्री-संघ द्वारा बड़े-बड़े कार्य किये गये। वहाँ की कला के विकास का श्रेय इन्हीं काफिलों को है, क्योंकि इन काफिलों में कुछ कलाविद तथा वैज्ञानिक लोग भी सम्मिलित रहते थे। मिस्र के पिरामिड बनानेवाले राजाओं में शंखकार (Sonkhkor) जैसे आर्यध्वनिवाले नाम मिलते हैं जिससे पुष्ट होता है कि वहाँ भी क्षत्रिय राजा पहुँच चुके थे। पाश्चात्य विद्वान् मेडीटरेनियन सागर के बाद की व्यापारिक सभ्यता का श्रेय भारत को देते हैं। कई स्थलों में उन्होंने परोक्ष रूप से स्वीकार किया है कि शायद विदेश से वाणिज्य करनेवालों में सर्वप्रथम भारत हो। इस प्रकार गोल मोल बात कह के वह सत्य बात को जानते हुए भी भारत की व्यापारिक प्राचीनता स्वीकार नहीं करते।

हिब्रू देशीय बन्दरगाहों पर भारतीय वणिकों ने अपने कार्यालय भी स्थापित कर लिये थे, और वहींसे व्यापार करना आरम्भ कर दिया था। यही नहीं, भारतीय उत्पादित वस्तुएँ अपने जलयानों द्वारा हिब्रू बन्दरगाह पर पहुँचाई जाती थी और फिर वहाँसे हिब्रू की उत्पादित वस्तुएँ अरब ले जायी जाती थीं। इस प्रकार वे अपनी वस्तुओं के विनिमय के साथ-साथ अन्य देशों के व्यापारिक विकास के लिये अभिकर्ता (एजेन्ट) का कार्य भी करने लगे थे। इसका कारण यह था कि हिब्रू के पास जलयान की असुविधा थी जिसके कारण दूरगामी व्यापार नहीं हो सकता था; अतएव यहींसे अभिकर्तृत्व प्रणाली चल पड़ी। कहना न होगा कि मध्यस्थ या बिचवई (मिडिलमैन) पद्धति का अभ्युदय भारतीय व्यवसाय से ही हुआ। विदेशों में भारतीय जलयानों को आयात-निर्यात की सुविधा मिलने से यह प्रणाली चल पड़ी; क्योंकि विदेशों में जलयान अविकसित अवस्था में थे। भारतीय सिक्कों का वहाँ पाया जाना इस बात की पुष्टि है कि हिब्रू भारत से अधिक व्यापार करता था, अतएव यह कहा जा सकता है कि भारत ही व्यापार का मुख्य केन्द्र था—हिब्रू नहीं। यहाँकी प्रगति के शतवर्षों के अनन्तर हिब्रू, फीनीशिया आदि सभ्यता के प्रकाश में आये और भारतीय वाणिज्य की नवीनता देखकर उसकी अनुकृति करने में लग गये; किन्तु तब तक भारत अधिक प्रगतिशील हो गया था और इसके आयात-निर्यात पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ने लगे थे। भारत की मुख्यतम निर्यात वस्तुएँ रत्नमणि, बहुमूल्य पदार्थ, सुगंधित द्रव्य, मसाले, गुलमेंहदी आदि थे।

कुछ पाश्चात्य पुरातत्वान्वेषी सर्वप्रथम टंक (सिक्के) के प्रचलन का आदि स्थान फीनीशिया मानते हैं और कुछ लोग ग्रीस को ही सिक्का प्रणाली का अन्वेषक मानते हैं। फीनीशिया के समर्थक विद्वान् उनको सिक्के निर्माण का आदि स्थान मानते हुए कहते हैं कि ग्रीस से कला का विकास फीनीशिया में हुआ और यहींसे वर्णात्मक एवं स्वरात्मक शब्दों का प्रयोग सिक्कों में होने लगा। इन सिक्कों के प्रचलन से भाषा समुन्नत हुई और यह भाषा सम्मानित हो गयी। किंतु, भारत में पुरातत्वान्वेषण-विभाग की ओर से हुई सरागवाला गाँव की खुदाई से प्राप्त अवशिष्ट सिक्के तथा उनके निर्माण की सामग्रियाँ उनके उक्त कथन का खंडन करती है।

हमारे यहाँ वैश्यों के भाषाविद् होने की प्रधानता रही, क्योंकि वैश्यों को सभी स्थानों पर व्यापार करने के लिये जाना पड़ता था, अतएव उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक था। यह सभी वैश्यों के लिये आवश्यक नहीं था, प्रत्युत उन्हींको था जो प्रायः व्यापार हेतु एक देश से दूसरे देश को द्वीपान्तरित होते थे। यह बात ऋक् के पुरुष-सूक्त ११ से स्पष्ट है। यहाँ वैश्यों के लिये कहा गया है कि 'प्रत्येक देश की भाषाओं का ज्ञानी वैश्य ही है।' क्षत्रिय भी द्वीपान्तर गमन करते थे, अतः वे भी भाषाविद् थे। इससे यह अभिप्रेत होता है कि वैश्यों व क्षत्रियों के बारम्बार आवागमन से यहाँ की भाषा दूसरे देशों में फैलती गयी, और इस प्रकार भारत के सिक्के भी विश्वभर में फैल गये। फीनीशिया की सभ्यता भारत से बहुत पीछे की है। यहाँ भारतीय सिक्कों के आ जाने के बाद, वहाँ के देशों ने सिक्कों की अनुकृति करनी आरम्भ कर दी।

जो विद्वान ग्रीस को सिक्का-प्रणाली का आविष्कारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताते हैं, उनका कथन है कि रजत व स्वर्ण-टंक वहाँके अनेक राज्यों में बनाये जाते थे। एथेंस ने सर्वप्रथम स्वर्ण और रजत-टंक निर्गमित किये और वहाँके राज्य द्वारा मूल्य का स्थायीकरण इस सावधानी से किया गया कि ये सिक्के अनेक राज्यों में स्वीकार किये गये। यह बात सही मान ली जाय, तो भी यह मानना पड़ेगा कि सिक्के का सर्वप्रथम आविष्कार भारत में ही हुआ था। सरागवाला गाँव के उत्खनन से प्राप्त भग्नावशिष्ट टंकशाला उस युग की कहानी कह रही है, जब भारत का सामुद्रिक व्यापार विस्तार पर था और यह लगभग ४००० वर्ष पूर्व की बात है। हमारे यहाँ स्वयं मूल्य-प्रमाप इस प्रकार स्थिर किया जाता था कि कोई गड़बड़ी न उत्पन्न हो। कुछ काल के अनन्तर कौटल्य ने अर्थशास्त्र में इसके लिये कड़े नियम ही बना दिये।

बइज़ैन्टियम (वर्तमान कान्स्टैंटिनोपिल) एक महत्त्वपूर्ण नगर था और यह नगर कारवाँ का सीमान्तस्थल था। 'सारडिस' और 'सूसा' के बीच ही काफिले आया-जायाकरते थे। वे भारत से व्यापार करने की इच्छा से प्रेरित अपने व्यापार को मजबूत रखने के यत्न में लगे रहते थे। भारतीय माल-असबाबों--रेशमी वस्तुओं, मोती, रत्नमणि, हीरे-जवाहिरात, स्वर्ण-रजत, सुगन्धित द्रव्य व मसाले, औषधियों एवं सूती वस्त्रों के बने सामानों आदि से बाइज़ैन्टियम नगर के बाजार भरे रहते थे।

ईसवी सन् की कई शताब्दी पूर्व फीनीशिया के व्यापार का विकास हो चुका था। उसके जहाज जब अरब तथा भारतीय उदधि में संतरण करने लगे थे, तब भारतीय जलयान पूर्व और पश्चिस के समुद्र नाप चुके थे। ये भारतीय जलयान पूर्व और पश्चिम को एकता-सूत्र में लाने के प्रयास में लगे थे। पश्चिम में प्राच्य संस्कृति इन्हीं जलयानों द्वारा पहुँची। अलेक्जण्डर महान् के पूर्व पश्चिम-पूर्व के सम्बन्ध अच्छे ही रहे--इसमें कोई संशय नहीं। फीनीशिया का जलयान लंका, मालाबार, सिंधु व गंगा की उत्पादित वस्तुओं को फारस की खाड़ी के बन्दरगाह से ले जाया करता था। भारत के हाथियों का व्यापार उन देशों की दृष्टि में बड़ा महत्त्वपूर्ण हो गया था। भारत के तटकर नीति का अनुसरण फोनोसिया ने अच्छी तरह से किया। चाणक्य ने तथा उनके पूर्व मनीषि याज्ञवल्क्य और मनु की स्मृतियों में तटकर नीति का अच्छी तरह से विवेचन किया गया है।

ज्योंही भारत की वाणिज्य-पद्धति इथिओपिया की राजधानी में पहुँची, त्योंही प्राच्य उत्पादित वस्तुओं की खपत बढ़ी। फारस की खाड़ी से लालसागर तक और लालसागर से मरुस्थल तक काफिले चलते थे। इस मार्ग पर भारतीय वणिकों ने अपने गोदाम और भंडारगृह बनवा लिये और यहाँ पर सामान रखे और बेचे जाते थे। भारतीय जहाज कार्थेज भी पहुँच गया था। कार्थेज की सभ्यता ८१३ ई० पू० की है। कार्थेज भी उन्हीं वस्तुओं का आयात करता था जो ग्रीस भारत से करता था।

अकेले का गीत

श्री श्रीकान्त प्रसाद सिंह

बहा जा रहा हूँ लहर में अकेला
थकूँ बीच में तो मुझे छोड़ देना
किनारे-किनारे चलें जो मुसाफिर
थकें वे अगर तो उन्हें थाम लेना।

किसी के सहारे जिए तो जिए क्या?
मिले स्नेह की छाँह जग में बहुत है।
मुझे फूल औ' शूल दोनों बराबर,
किसी की मधुर याद मग में बहुत है।

किनारे-किनारे चले तो चले क्या?
न जूझा भँवर से लहर से न खेला,
वृथा जिंदगी उस मनुज की जगत में
नहीं चल सका पंथ में जो अकेला!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनेवाले युग में शक्ति के स्रोत

डा० अरविंद मोहन

जब १९४५ में सर्वप्रथम यह मालूम हुआ कि परमाणु शक्ति को पाकर मानव असीमित ऊर्जा के भंडार का स्वामी बन चुका है तब इस नवीन आविष्कार की उपयोगिता पर अनेक अजीबोगरीब आशाओं के पुल बाँधे गये। परन्तु समय की धारा ने उनमें से कुछ को छोड़कर सभी को ढहा दिया।

कहा गया था कि ईंधन की समस्या अब न रहेगी क्योंकि संसार की सभी ऐसी आवश्यकता न्यून मात्रा में ही यूरेनियम पूरी कर सकेगा। एक विशालकाय २० लाख मन भार वहन करनेवाला जलयान केवल कोयले के एक छोटे पिंड द्वारा आजीवन चलाया जा सकेगा, संसार की सभी बत्तियों, पंखों या मशीनों को अल्प लागत से २४ घंटों चलाते रखना संभव हो जावेगा तथा हम सब का जीवनस्तर ऊँचा उठेगा और प्रतिदिन २-३ घंटों से अधिक परिश्रम संसार के किसी भी नागरिक को न करना पड़ेगा।

आज की तस्वीर बहुत कुछ बदली हुई है। उपर्युक्त स्वप्नों की चर्चा तक बाकी नहीं रह गयी। परमाणु शक्ति को उसके पूर्णतः काम में लगाने के लिए बहुत समय चाहिए। ये दोनों बातें समझी जा चुकी हैं। इसको अलादीन का चिराग अब नहीं समझा जाता है।

परमाणु शक्ति को व्यवसायिक क्षेत्रों में बे-रोक-टोक इस्तेमाल करने से पहिले वैज्ञानिकों को अनेक जटिल गुत्थियाँ सुलझानी पड़ेंगी। परमाणु भट्टियों को ऊष्मा, विघटन के पश्चात् मिली राखों या दूषित बेकार पदार्थों को फेंकने की समस्या, प्रति यूरेनियम पिंड के केवल सह-स्रांश का उपयोग होना तथा बाकी का बेकार जाना, अन्य परमाणुओं से शक्ति प्राप्त करना, तथा अनेक दूसरी समस्याओं का हल ढूँढ़ा जाना चाहिए। आज भी परमाणु भट्टियों से निकली बेकार की वस्तुओं को कहाँ फेंकें, यह समस्या है क्योंकि वे रडियो सक्रिय हैं (अर्थात् पदार्थों के भीतर घुसनेवाली पैनी किरणें छोड़ती हैं) जिनकी आयु १००० वर्ष तक तो होती ही है। भविष्य में यह समस्या और भी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न कर देगी।

परमाणु शक्ति को उपयोगी बनाने का अर्थ ऊष्मा से भाप और भाप से विद्युत् शक्ति प्राप्त करना है। यदि विद्युत् पाने की क्रिया एक ही कक्ष में हो सके ताकि बीच में अन्य क्रिया न करनी पड़े तो बहुत से प्रश्नों का हल अपने आप हो जाता है। छोटे स्टेशनों से तब शक्ति का वितरण कम मूल्य पर किया जा सकेगा और छोटी बस्तियों के लिए पृथक् विद्युत्-उत्पादकों को बनाया जाना संभव होगा।

परमाणु शक्ति क्यों नहीं ?

परन्तु परमाणु शक्ति उत्पादन की तीन समस्याएँ हैं: अत्यधिक विस्तार व भारी भरकम यंत्रादि, कारीगरों को खतरा तथा कल-पुर्जों की मरम्मत का अत्यधिक व्यय इसीलिए परमाणु ईंधन से चलनेवाली मोटरें या फटफटी हमारे जीवनकाल में असंभव प्रतीत होती हैं। लाखों मन की सीसे की मोटी चादरों से परमाणु भट्टी को चारों ओर घेरना पड़ता है ताकि रेडियो किरणों से जान माल को खतरा न रहे।

हाँ, इस शक्ति से, विद्युत् प्रेरण से, ट्रकों या क्रेन या छोटे यंत्रों को चलाया जा सकेगा——इनको दूर से नियंत्रित कुंडलियों में थोड़े-थोड़े समय के लिए विद्युत् दिया जा सकेगा। इस प्रकार सड़कों पर विद्युत् प्रकाश भी किया जा सकता है।

एक और समस्या है कि यदि सड़कों पर चलनेवाली परमाणु शक्ति की मोटरें आदि बना भी ली जावें तो आकस्मिक दुर्घटना के समय इंजिनों से निकली परमाणु राख, किरणें तथा गैस पूरे नगर को इतना दूषित कर देंगी कि जान का खतरा कई वर्षों तक बना रहेगा। पेट्रोल के जलने से यह कहीं अधिक भयंकर दुर्घटना होगी। न दिखनेवाली किरणों की भयंकर हनन शक्ति को जानने के लिए टार्च जैसे यंत्रों का तब घर-घर में प्रचलन आवश्यक होगा।

हमारी आज की जानकारी यही बतलाती है कि परमाणु शक्ति के उत्पादन केन्द्र शहरों से दूर ही रहेंगे। उनके कारीगरों को बहुत सावधानी व सतर्कता बरतनी पड़ेगी तथा गमनागमन के साधनों में अगले दस-बीस वर्षों के भीतर कोई परमाणु शक्ति से चलनेवाली मोटर सामने न आ सकेगी।

उपर्युक्त सूची तो परमाणु शक्ति से क्या न हो सकेगा बतलाती है, परन्तु इसकी उपयोगिता की सूची लम्बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और बढ़ती ही जा रही है। ईंधन के रूप में एक सेर यूरेनियम लगभग ४ लाख मन कोयले का काम दे देता है। तनिक सोचें कि कितनी कम जगह में ईंधन रक्खा जा सकेगा। अतः निर्जन प्रदेशों पर ऐसी परमाणु शक्ति को ले जाकर मरुस्थलों की सिंचाई या अन्य औद्योगिक कार्य किये जा सकेंगे। बर्फीले ध्रुव प्रदेशों को आबाद करना या वहाँ उपयोगी कारखानों को बनाकर चलाना संभव हो जावेगा।

मरुस्थल संपन्न होंगे

अतः हमारे सम्मुख एक ऐसी झाँकी आती है कि कोयले, पेट्रोल, भाप की पुरानी सभ्यता के नगरों के बाहर एक नये सुख, समृद्धि तथा बहुतायत की बस्तियाँ आज के रेगिस्तानों या बर्फिस्तानों में धीरे-धीरे जमेंगी। और धीरे-धीरे कोयले की खानों के मजदूर, लकड़ी के जंगलों के कारीगर इत्यादि को इन कठिन पेशों से छुट्टी मिल सकेगी। आज भी संसार के अनेक देशों में कोयला खोदने का काम करनेवालों की कमी महसूस होती जा रही है।

परमाणु शक्ति का विकास होने पर आज असंभव प्रतीत होनेवाली बातें फिर अनहोनी न रहेंगी। सौ वर्षों के पश्चात् हिम से ढके ध्रुवीय प्रदेशों को किसी प्रकार उष्ण बनाना संभव हो सकेगा, क्योंकि ऐसी योजनाओं में व्यय या धन का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। पृथ्वी की इस भौगोलिक दशा में सुधार करना और फलस्वरूप जलवायु को परिवर्तित कर लेना भी काफी हद तक संभव हो सकेगा।

तीसरी उपयोगिता परमाणु शक्ति की उन कार्यों में है जहाँ साधारण विद्युत् शक्ति को लगाना संभव नहीं है। साधारण घरेलू या व्यवसायिक कार्यों में यदि परमाणु शक्ति सस्ती बनाई भी जा सके तो बेकार रहेगी। किसी तैयार पदार्थ के दाम का केवल आठवाँ अंश शक्ति या पावर के व्यय में लगता है। अतः शक्ति का मूल्य आधा करने पर भी किसी वस्तु के मूल्य में रुपये पीछे केवल एक आना की कमी की जा सकेगी। पदार्थ की बिक्री कमीशन, टैक्स, कच्चा माल आदि का दाम बाकी वैसा ही रहेगा। अतः रुपये में एक आना लाभ होने पर कारीगरी की बढ़ती तनख्वाह या उसके काम करने के अल्प समय आदि की बात सोचना ही बेकार है। साधारण काम-धंधों में परमाणु शक्ति से विशेष लाभ न होंगे।

सूर्य शक्ति का संचय

अतः परमाणु शक्ति केवल वहीं इन कामों के लिए अपनायी जा सकेगी जहाँ पर अन्य ईंधनों का अभाव है। उपर्युक्त सत्य परमाणु युग को अपूर्व वरदान माननेवालों की आँखें खोलने के लिए पर्याप्त हैं; परन्तु वे इस दिशा में प्रगति या अनुसंधान करने के लिए रोधक नहीं हैं। परमाणु शक्ति द्वारा ऊर्जा की आवश्यकता पूरी होने का स्वप्न ही तो सब कुछ नहीं है। संभव है कि अगले १०० वर्षों के भीतर ही शक्ति के अन्य स्रोतों के विकास ऊर्जा की आवश्यकता को कम कर देंगे और परमाणु से शक्ति पाने के स्वप्न को बेकार बना देंगे।

शक्ति के अन्य भंडारों में सूर्य का स्थान विशेष है क्योंकि इसकी ऊष्मा को पाना सरल व सस्ता है। और चूँकि सूर्य की ऊर्जा एक प्रकार की परमाणु शक्ति ही है अतः इसको भली भाँति पाना सीख लेने पर आगे के लिए और विकास को स्थान मिल सकता है। सूर्य की शक्ति से भोजन पकाना या पानी गरम करना तो आज साधारण-सी बात बन गयी है। परन्तु इसकी शक्ति को संचित करके रात-दिन हर समय के लिए संचित कर लेना एक वास्तविक प्रगति होगी।

सूर्य ऊष्मा से भाप बनाना या पर्याप्त मात्रा में उसको व्यावसायिक कार्य के लिए तैयार करना सरल नहीं है। इसको नियमित रूप से दक्षतापूर्वक प्राप्त करने के लिए अतीव ऊँचे तापमान चाहिए जो कि दर्पणों द्वारा सूर्य रश्मियाँ केन्द्रित करने पर भी नहीं प्राप्त हो पाते। हाँ, सूर्य किरणों को कुछ विशेष पदार्थों पर डालकर विद्युत्धारा बनायी जा रही है। यदि इस कार्य में ३० प्रतिशत ऊर्जा भी परिवर्तित हो सकी तो भविष्य में ऐसी व्यावसायिक क्रांति हो सकेगी जिसका आज अनुमान करना कठिन है। रेगिस्तानों में बने कारखाने की छतों पर लगे यंत्रों से शक्ति संग्रहीत करके रात-दिन मशीनों को चलाया जा सकेगा।

प्राकृतिक ऊर्जा का संचय

ज्वार-भाटे में पानी के प्रवाह से टरबाइनों को चलाना शक्ति का एक ऐसा भंडार हमें सामने दिखायी देता है जिसका मूल्य बहुत अधिक तथा दक्षता अधिक है। परन्तु परमाणु बम में लगनेवाले व्यय के शतांश मूल्य में ज्वार भाटे की विद्युत् मशीनें बन सकती हैं। अगले वर्षों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

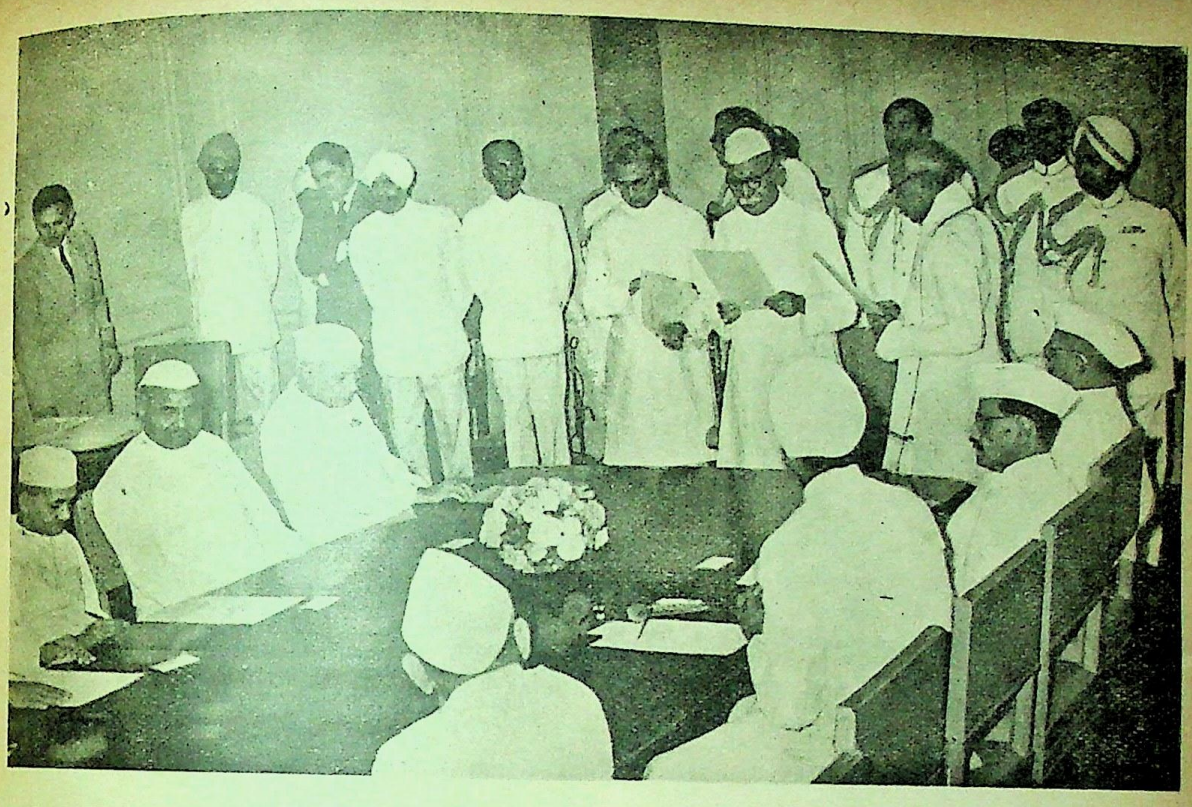

नये केन्द्रीय मंत्रिमण्डल का शपथ-ग्रहण-महोत्सव : प्रतिरक्षा-मंत्री श्री बी० के० कृष्ण मेनन शपथ लेते हुए।

नया केन्द्रीय मंत्रिमंडल : शिक्षामंत्री डा० श्रीमाली शपथ ग्रहण कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

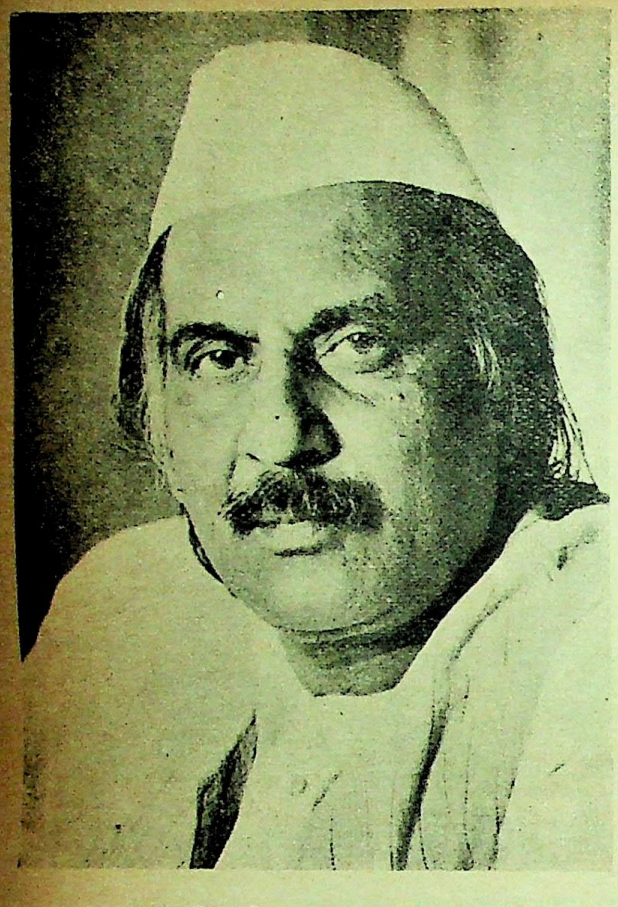

राजस्थान के नये राजपाल डा० सम्पूर्णानन्द

श्री मुकन्दीलाल एम० एल० ए०

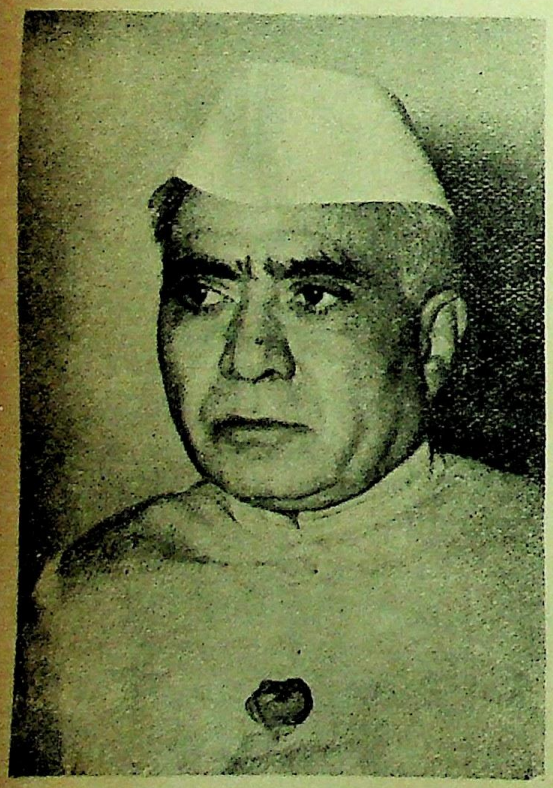

उत्तर प्रदेश के अवकाश-प्राप्त राजपाल श्री रामकृष्ण राव
जो अपने पद को छोड़कर लोकसभा का
उपचुनाव लड़ रहे हैं

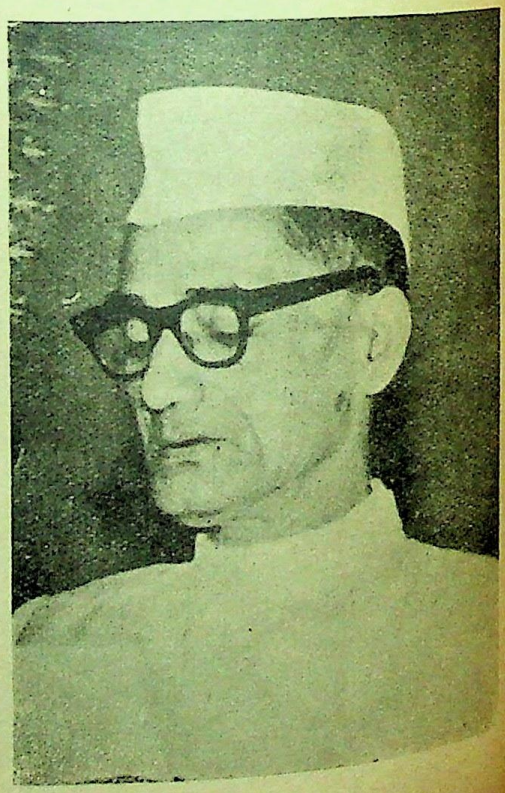

उत्तर प्रदेश के नये राजपाल
डा० विश्वनाथ दास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

परमाणु शक्ति की विकास योजना की असफलता पर इस नवीन शक्ति स्रोत का भविष्य निर्भर है।

वायु की मशीनों का युग कोयले, पेट्रोल आदि के सामने फीका पड़ गया। पुरानी हवा की चक्की से कहीं अच्छी दक्षता की मशीनों को बनाना आज संभव है। २० गज लम्बे पंखों को २०० फुट की मीनार पर लगाकर लगभग सौ किलोवाट की शक्ति पायी जा चुकी है। वायु की गति कम होने पर शक्ति का उपार्जन रुक जाने पर मशीनों को पहिले की संयोजित शक्ति द्वारा चालू रक्खा जाना संभव होगा। यदि ऐसी योजना सफल हो सके तो भविष्य में ऐसे यंत्र अत्यधिक लोकप्रिय होंगे।

इसके अतिरिक्त पृथ्वी की ऊष्मा अथवा सागर की ऊष्मा से शक्ति बनायी जा सकती है, परन्तु वह उपर्युक्त सभी साधनों से बहुत ही महँगी पड़ेगी। इस प्रकार की योजनाओं का सुझाव बहुत प्राचीन है किन्तु पृथ्वी के भीतर सुरंग खोदकर ऊष्मा प्राप्त करना अभी वैज्ञानिक युक्तियों के काबू की बात न होकर स्वप्न ही बनी हुई है।

अजीब भविष्य की झाँकी

आज से सौ वर्ष आगे इस प्रकार किस युक्ति से कितनी ऊर्जा मिलेगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है। कोयले की नवीन खानें मिल जावें या पेट्रोल आदि को नवीन कृत्रिम प्रयोगों से प्राप्त किया जावे, परमाणु शक्ति पाने में ही नवीन आविष्कार हो सकें, अथवा सूर्य शक्ति से चलने वाले पम्पों से घरों को गरम या ठंडा रखने की व्यवस्था की जा सके, आदि संभावनाएँ कार्यरूप में चल सकती हैं। कोयले की उपयोगिता इस्पात उद्योग में इतनी अधिक है कि उसको ईंधन के रूप में जलाना अपव्यय मानना पड़ेगा।

रेडियो सक्रियता भविष्य में नवीन रासायनिक क्रियाओं का सूत्रपात करेगी तथा आइसोटोपों की उपयोगिता का गवेषण, नवीन चिकित्सा प्रणाली पर, तथा भोजन खाद्य इत्यादि की सार्थकता पर प्रकाश डालेंगे। अगले सौ वर्षों में इनकी छाप प्रायः प्रत्येक व्यवसाय, क्रिया तथा उत्पादन कक्ष में अनिवार्य हो जावेगी। न्यूट्रान किरणों से एक्स-रे के समान छायाचित्रों का लिया जाना संभव हो जायगा।

सौ वर्ष पश्चात् परमाणु विघटन साधारण बात हो चुकेगी। रेडियो सक्रियता से बचाव के वैसे ही उपयोगी यंत्र बनेंगे जैसे कि छाते से धूप, या पानी से हम बचाव पाते हैं। जैसे लाखों मील लंबे विद्युत् तार होने पर भी उनकी करेण्ट से मृत्यु की घटनाएँ अत्यन्त अल्प हैं, वैसे ही परमाणु यंत्रों का हाल हो जावेगा। आज के आविष्कारों का सुख पाते हुए संसार के सौ वर्ष पश्चात् के नागरिकों को इस बात से थोड़ा विस्मय होगा कि उनके सुखों की सृष्टि का आविष्कार प्रचंड हनन-अस्त्रों से हो सका है।

तुमने धर दिया गुलाल

श्री रामचंद्र 'चंद्रभूषण'

तुमने धर दिया गुलाल साँवरे! चोरी से
हो गई सकुच में लाल बावरी गोरी से।

केसर की मिली सुगंध--
अमंद पसीने में
मुखड़े ने दी सौगंध
निहार नगीने में
नयनों ने तानी पाल पलक की डोरी से।

भौंहों के ये मेहराब--
सजे, झालर झलके,
थपकी दे रहा गुलाब
बहुत हलके - हलके
घुँघरू पर पड़ते ताल रँगीली होरी से।

मैना से बिसरी बात
कहे तोता तन के,
अपने से ही अज्ञात
चले जादू मन के,
डोली बन गया रसाल मंजरी छोरी से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्का और काबा

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

नवम्बर १९६१ की सरस्वती में "पुरानी सरस्वती" के स्तम्भ के अन्तर्गत १९०५ का श्रीपार्वतीनन्दन का 'मक्का तीर्थ' नाम का लेख छपा है। इसलिए आशा है कि मक्का और काबे के बारे में कुछ और बातें पाठकों को रोचक लगेंगी।

काबा मुसलमानों की सबसे बड़ी मस्जिद है। पहिले पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब जेरूसलम के उपासना-गृह की ओर मुँह करके नमाज पढ़ा करते। एक दिन मदीने में उन्हें खुदा की ओर से हुक्म हुआ कि काबे की ओर ही मुँह करके नमाज पढ़ा करें (कुरआन सूरा २ आयत १५०-१५१)। तब से दुनिया भर के मुसलमान काबे की ओर ही मुँह करके नमाज पढ़ते हैं। काबे की यात्रा करना हर दीनदार मुसलमान का आवश्यक कर्त्तव्य है जिसे हज करना कहते हैं। जो मुसलमान हज कर आते हैं वे सगर्व अपने नाम के साथ 'हाजी' नाम की सम्मान-सूचक पदवी जोड़ते हैं। काबा लगभग सदा ही सुन्नी मुसलमानों के प्रबन्ध में रहा है। इस वास्ते शिया सम्प्रदाय के मुसलमान वहाँ नहीं जाते या जाने नहीं दिये जाते। वे ईरान में अपने कर्बला तीर्थ की यात्रा करने को ही हज मानते हैं, और इस यात्रा के बाद ही अपने आपको हाजी कहने लगते हैं।

काबा अरब देश के मक्का नगर में स्थित २३ हाथ चौड़ी २४ हाथ लम्बी और २७ हाथ ऊँची पत्थर की एक चौकोर इमारत है। काबा का शाब्दिक अर्थ ऊँचा है। काबा मक्का की सबसे ऊँची इमारत है। शायद इसी कारण इसे काबा कहते हों। पूर्व की ओर पृथ्वी से ४ हाथ ऊँचे पर एक दर्वाजा है। जिसके पास ही अन्दर की ओर एक काला पत्थर रक्खा हुआ है जिसे संगे असवद कहते हैं। काबे के उत्तर में एक चन्द्राकार घेरे में एक और सफेद पत्थर है जिसे हजरत इस्माइल की कब्र बतलाया जाता है। काबे के पूर्व में कुछ दूरी पर हजरत इब्राहीम का स्थान है जहाँ एक और पत्थर है। इन तीनों ही पत्थरों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है परन्तु पूजा केवल संगे असवद की ही होती है जिसे बोसा देना (चूमना) प्रत्येक हाजी का आवश्यक कर्त्तव्य है। काबे की छत दुहरी है और उसकी दीवालें सदा काले रेशम से ढकी रहती हैं जिस पर सोने चाँदी का काम रहता है। इसे काबे का गिलाफ बोलते हैं और यह हर साल बदला जाता है।

विद्वानों के मतानुसार काबा एक प्राचीन मन्दिर है। सन् १९२१ में जगद्गुरु शंकराचार्य शारदापीठ ने मक्का को हिन्दुओं का पवित्र तीर्थस्थान बतलाया था--ध्यान रहे श्री शंकराचार्य खिलाफत आन्दोलन में जेल भी गये थे। तारीखे फरिश्ता के अनुसार इस्लाम के उदय से पहिले हिन्दोस्तान के ब्राह्मण काबे की यात्रा व वहाँ की मूर्त्तियों को पूजने आया-जाया करते थे। विलफोर्ड साहब के अनुसार मक्का का पुराना नाम मोक्षेस यानी मोक्ष-स्थान है और संगे असवद शिवजी का प्रतीक है, जहाँ पर हिन्दू मान्यता के अनुसार शिवजी पार्वती सहित यात्रा को आये थे। दबिस्ताँ के अनुसार संगे असवद शनीचर का प्रतीक है। पारसी विद्वान् मक्का को माह गाह का अपभ्रंश मानते हैं जिसका अर्थ है चाँद का स्थान, क्योंकि यहाँ पर चंद देव की सुन्दर प्रतिमा थी। जनाब खुदाबख्श के अनुसार काबा प्राचीन काल में चार जातियों का धर्म-स्थान रहा है-- (१) हिन्दू, (२) पारसी, (३) साबी, (४) मुसलमान।

मुसलमानों के विश्वास के अनुसार काबा संसार की सबसे प्रथम मस्जिद है। बाद में लोगों ने इसमें मूर्तियां स्थापित करके इसे मन्दिर बना लिया था। हजरत मोहम्मद ने वहाँकी मूर्तियों को तोड़कर फिर उसे मस्जिद के रूप में परिणत किया। मुसलमानों का कहना है कि संगे असवद सृष्टि के आदि में हजरत आदम के साथ स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरा था। यह पहिले दूध की तरह सफेद था परन्तु एक रजस्वला स्त्री के छू देने से काला पड़ गया, क्योंकि अन्दर से यह अब भी सफेद है। कुछ यूरोपियन विद्वान् इसे आसमान से टूटकर गिरनेवाले तारे का अवशेष बतलाते हैं। संगे असवद चार टुकड़ों में टूटा हुआ है। इसलिए यह चाँदी के तारों से खिंचा हुआ और चाँदी में ही जड़ा हुआ है। १४वीं शताब्दि का प्रसिद्ध यात्री इब्नेबतूता लिखता है, "अल करमती ने, कि अल्लाह की उस पर लानत हो, संगे असवद को तोड़ा था जिससे उसके चार टुकड़े हो गये। इसी जुर्म के कारण मुबारिया का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरोह का गिरोह कत्ल करा दिया गया। इसको बोसा देने से लज्जते दीन की अजीब नेमत हासिल होती है।"

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार काबा वास्तव में एक प्राचीन इस्लामी मन्दिर है (It is essentially a pure Islamic temple) और इस्लाम के उदय के बाद भी काबा कई बार टूटा और बना है। इस कोष के विद्वान् सम्पादक संगे असवद को एक प्राचीन मूर्त्ति बतलाते हैं, जिसे तोड़ना मुहम्मद साहब ने उचित नहीं समझा (It was originally the most venerated of a multitude of idols) क्योंकि काबे की अगणित मूर्त्तियों में संगे असवद सबसे अधिक पूजनीय था। प्राचीनता के प्रति जो मुहम्मद साहब ने यह मोह दिखलाया इससे तत्कालीन कट्टर मुसलमानों में रोष भी उत्पन्न हुआ। इमाम बुखारी लिखते हैं कि दूसरे खलीफा हजरत उमर ने संगे असवद को बोसा देते हुए कहा था, "या अल्लाह, तू एक खाली बेजरर पत्थर है। न तू मुझे कोई नुकसान पहुँचा सकता है न फायदा। अगर मैंने पैगम्बर को तुझे बोसा देते हुए न देखा होता तो मैं तुझे कभी न छूता।"

मुहम्मद साहब ने काबे की उपासना पद्धति को भी नहीं बदला। कहने के लिए काबा मस्जिद है परन्तु वहाँ की उपासना की कई बातें हिन्दू मन्दिरों की उपासना से कुछ-कुछ मिलती हैं जो सिवाय काबे के दुनिया की किसी और मस्जिद में देखने को नहीं मिलती--

(१) काबे के प्रबन्ध का भार कबायल कुरैश पर है। ये लोग हिन्दुओं की तरह अपने को काबे का सेवक कहते हैं--खुद्दामिनाएहरम--

(२) तवाफ जिसका अर्थ परिक्रमा है केवल हज में ही देखने को मिलती है। मन्दिरों की तरह काबे की सात परिक्रमा करना हज का एक प्रमुख अंग है। मक्का स्थित सफा और मरवा नाम की दो पहाड़ियों की भी सात परिक्रमाएँ दी जाती हैं। इब्नेबतूता लिखता है कि काबे की अखंड परिक्रमा चलती है। आज तक एक भी क्षण ऐसा नहीं बीता जब कि कोई न कोई काबे की परिक्रमा करता हुआ न पाया जाये।

(३) जमजम--काबे के पास ही जमजम नाम का कुआँ है जिसमें स्नान किये बगैर काबे के अन्दर प्रवेश नहीं हो सकता। इब्नेबतूता लिखता है कि मक्का जाकर मैंने जमजम का पानी पिया क्योंकि रसूल ने फर्माया है कि जमजम का पानी दिल की मुरादों को पूरा करता है।

(४) जामये अहराम--काबे के अन्दर सिला हुआ कपड़ा पहिनकर कोई नहीं जा सकता (मौलाना हाली)। हर हाजी को बगैर सिले कपड़े पहिनने पड़ते हैं--एक तहमद और एक चादर जिनको जामये अहराम बोलते हैं और इनकी बिक्री से अहले कुरैश की बड़ी जबर्दस्त आमदनी है। परन्तु हाजियों का सर नंगा रहता है काबे के अन्दर।

(५) काबे को स्नान भी कराया जाता है। जहाँ यह स्नान का पानी गिरता है उस स्थान को भी बहुत पवित्र माना जाता है।

(६) वैसे हज में कई जगह पशु-बलि होती है परन्तु काबे की सीमा में शिकार व प्रत्येक प्रकार की जीव-हिंसा वर्जित है--(कुरआन सूरा ५ आयत ९५) काबे में कुछ जलमुर्गाबियाँ भी हैं जिन्हें मुसलमान बहुत पवित्र मानते हैं।

(७) काबे को छोड़कर और किसी मस्जिद में मुसलमान स्त्रियाँ नहीं जातीं, लेकिन काबे की यात्रा को स्त्रियों का जाना उतना ही आवश्यक है जितना कि पुरुषों का। इब्नेबतूता लिखता है कि मक्के की स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दर और रूपवान होती हैं, सुगन्ध का बहुत प्रयोग करती हैं। हर शुक्रवार की रात्रि को काबे की परिक्रमा के लिए जाती हैं। इस समय उनके शरीर पर बहुत बढ़िया वस्त्र होते हैं और सारा काबा सुगन्ध से महकने लगता है।

वास्तव में काबा और हज इस्लाम के अन्दर विरोधाभास पैदा करते हैं जिसे लेकर मुसलमान कवियों ने जो छींटे उड़ाये हैं उनका यदि संग्रह किया जाय तो अच्छा खासा एक पोथा तैयार हो जाये। हम यहाँ केवल नमूने के लिए 'जौक' का एक शेर उद्धृत करते हैं।

एक पत्थर पूजने शेख जी काबे गये।
'जौक' हर शै लायक़े बोसा है इस बुतख़ाने में॥

एक हिन्दू मन्दिर देखकर जौक साहब ने यह फर्माया था जिसका हाजियों के पास कोई जवाब नहीं।

हाफिज शीराजी की हालावाद की दो पंक्तियाँ देकर अब हम इस लेख को समाप्त करते हैं।

बया ब मैकदा ओ चेहरा अर्ग़वानी कुन।
मरौ ब सूमिये काबेख़ा स्याह कारांनद॥

--आओ शराबखाने में और सुर्खरू बनो। मत जाओ काबा अपना मुँह काला करने।

शराब पीने से चेहरा लाल हो जाता है। सुर्खरू होने का भी शाब्दिक अर्थ है चेहरे का लाल होना। मुहावरे में इसका अर्थ है यश का अर्जन करना। (सन् १९०५ में लालापार्वतीनन्दन ने मक्का तीर्थ पर लेख लिखा था। श्री जैन ने अपने इस लेख में नयी और रोचक जानकारी दी है जो पुराने लेख की पूरक है। --सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नियाँ किस मिट्टी की हों !

डा० श्यामसुन्दर व्यास

ज्ञानवल्लभी के असीम आशीर्वाद से आखिर महर्षि नारद मिल ही गये। "नारायण नारायण" के बाद ही मैंने नवनीत-लेपन प्रारंभ कर दिया। कहा "भगवन्, हम मृत्युलोकवासियों से ऐसा क्या अपराध हो गया कि आपने अपनी कृपा-दृष्टि ही फेर ली ? भूल चूक हो भी गयी हो तो क्षमा तो बड़ों का भूषण है। फिर आप तो विरक्त दानी हैं, पर-पीड़ा-कातर, परम-परमार्थी।"

क्लोरोफार्म काम कर गया। महर्षि बोले—"वत्स, ऐसी कोई बात नहीं, समयाभाव के कारण न आ सका। कहो, क्या समाचार हैं ?"

"भगवन्",—मैंने कहा—"हालत खस्ता है। समस्त मृत्युलोक का पति-समाज 'त्राहिमाम्' कर उठा है। मैं अखिल विश्व-पति-पीड़ा-निवारण-संघ की ओर से श्रीमान् की शरण में आया हूँ। आप तो शरणागत वत्सल हैं, आप ही कुछ उपाय बताइए।"

"नारायण नारायण" का सुर साधकर महर्षि क्षण भर सोचते रहे। फिर बोले—"देखो पुत्र, संघ शक्ति ही कलियुग में काम देती है। अतः इस जमाने में संगठन ही सब कुछ है। चिल्लावोगे तो छाछ भी बिक जावेगी।"और फिर स्वर को धीमा कर बोले—"कुछ उपाय सोचा है ?"

"भगवन्, पत्नियों के नाज-नखरे उठाने में ही अकल असफल हो जाती है, फिर भला वनिता और वनस्पति ब्रांड दिमाग कहाँ तक दौड़े ? आपकी शरण आने का प्रयोजन भी तो यही है।"

नारदजी, नाद-नवनीत से निहाल हो उठे। अपना तकिया-कलाम अलापते हुए बोले—"वह उपाय बताता हूँ वत्स, कि साँप भी मर जावे, लाठी न टूटे। पर हमारा नाम नहीं लेना।"

शपथ-बद्ध हुआ तो महर्षि ने कहा "देखो बेटे, जब जड़ में ही खराबी हो तो पत्ते नोचने से काम नहीं चलता। ऐसी हालत में जड़ ही साफ करना चाहिए। जानते हो, पतियों की पीड़ा के मूल कारण क्या हैं ?"

मैंने उत्तर दिया—पत्नियों की तुनक मिजाजी, कड़वी जबान, कटु-वचन, काला मन और मैला मगज।"

"नारायण नारायण"—नारदजी ने रहस्यमय मुस्कान फैलाते हुए कहा—"यही तो भूल है। चोरी करे चेतराम, मारा जावे मणिराम ! अरे भाई, इसमें पत्नियों का कोई दोष नहीं, सारी कारस्तानी ब्रह्मा की है, बुढ़ापा जो ठहरा। फिर मामला मिलावट का। सारे माल में मिलावट है।"

मैं कुछ समझा नहीं। बात खोलकर कहने की प्रार्थना की तो महर्षि प्रवर ने धीमे से कहा—"देखो, बात भेद की है। ब्रह्मा के कारखाने में मिजाज बनाने की जो मिट्टी आयी है वह मिर्ची के खेत में से खोदी गयी है। इसलिए पत्नियाँ प्रायः तुनक-मिजाज होती हैं। कड़वी जबान और कटु-वचन का कारण यह है कि जबान बनाने के मसाले में करेले के बीज और नीम का रस मिला दिया गया है। मिट्टी रौंदते समय लापरवाही से बर्र और बिच्छू के डंक भी मिल गये हैं। अब जबान कड़वी और वचन कटु हों तो बेचारी पत्नियों का क्या दोष ? बुढ़ापे में ब्रह्मा का दिमाग चले भी तो कहाँ तक ? और फिर आजकल तो आँकड़ों के अनुसार ब्रह्मा के कारखाने का काम अनाप-शनाप बढ़ गया है। बूढ़ा आदमी इतनी बड़ी जवाबदारी कैसे सँभाल सकता है ? कुछ समझे ?"

मैं सिर खुजाने लगा तो नारदजी "नारायण नारायण" कर बोल उठे। बोले—"वास्तव में वनिता-व्याधि ने आदमियों की अकल आधी भी नहीं रखी। अरे भाई, मतलब साफ है। अपने संघ से कहो कि ब्रह्मा के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव पास करे। भगवान् विष्णु के पास 'डेप्युटेशन' ले जाओ। बूढ़े को पेंशन दिलवाओ। नये-खून की माँग करो। मिलावटी माल का आरोप लगाओ। समझे ?"

गर्दन हिलाकर मैंने 'हाँ' की और हिचकते हुए पूछा—"पर भगवन्, इससे पतियों की पीड़ा कैसे दूर होगी ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुटकी से चोटी खड़ी करते हुए नारदजी बोले--'गरज बहुत बुरी होती है। बेटा! इधर हंगामा उठा नहीं कि उधर ब्रह्माजी के होश-हवास फाख्ता हो जावेंगे। समझौते की चर्चा चलेगी तो चार शर्तों में चतुरानन चौकड़ी भरना भूल जावेंगे। जड़ पकड़ी तो पत्तों की क्या चिन्ता? साँप भी मर जावेगा, लाठी भी सलामत रह जावेगी।"

'चार शर्तें क्या-क्या होंगी?' मैंने पूछा।

"निकालो झरना-कलम और लिखो"--नारदजी ने कहा।

मैंने कलम निकाली और डायरी में नोट करने को तैयार हुआ तो महर्षि बोले--"शर्त नम्बर एक यह कि आगे से पत्नियों का मिजाज बनाने की मिट्टी गन्नों के खेतों में से खोदी जावेगी। शर्त नंबर दो, जबान बनाने के मसाले में विशुद्धता होगी और उसमें चाशनी तथा शहद मिलाया जावेगा। शर्त नंबर तीन, औरतों का मन बनाने के मसाले में पारा, नीबू का रस, चकमक पत्थर के टुकड़े और तेजाब नहीं मिलाया जावेगा। लिख रहे हो न?

"जी हाँ"--मैंने कहा--"पर भगवन्, इस तीसरी शर्त से लाभ?"

"लाभ विपुल हैं वत्स!"--नारदजी ने कहा--"पारा न पड़ा तो मन चंचल न रहेगा। नीबू के रस के अभाव में मन दूध-सी गृहस्थी फाड़ने में असमर्थ रहेगा। चकमक पत्थर के टुकड़े न हुए तो मन में ईर्ष्याग्नि की चिनगियाँ न फूंगी और तेजाब के अभाव में मन बात-बात पर ज्वालामुखी न बनेगा। शेष रहेगा मोम और माखन, सो मोम और माखन-सा मन पाकर कौन पति परेशान रहेगा?"

महर्षि की बात सुनकर मैं उत्साह से उछल पड़ा और दूसरे ही क्षण 'बाप रे!' और चाय के प्याले के फूटने की आवाज ने मुझे चौंका दिया। देखता हूँ तो सामने नारद नहीं, कोपाग्नि बनी श्रीमतीजी खड़ी थीं। क्या बताऊँ, इस उछल-कूद पर 'बच्चे और बंदर' का उपमेय तो बनना पड़ा; पर गम इस बात का रहा कि चौथी शर्त न मालूम हो पायी और नारद जी अंतर्ध्यान हो गये; बेचारे पतियों की तबालत ज्यों की त्यों रह गयी।

न साँप ही मरा, न लाठी ही टूटी। हाँ, नारदजी की काल्पनिक भेंट में अपनी चाय की एक प्याली जरूर फूट गयी।

अनमाँगे, अनपाये छन

राजेन्द्रप्रसाद सिंह

ये छन आँखमिचौनी खेलें।

. . . दो झरने बोलें न किसी से, दो बादल बौरायँ हँसी से,
दो दर्पण देखें खिड़की से,
अनमाँगे, अनपाये ये छन सीमा का छल झेलें. . . . !
. . . जितने घाव लगें इस मन में, जितने तीर चुभें जीवन में,
जितना दाह जगे कण-कण में;
उतने सस्मित, शीतल ये छन, छाया तरल उड़ेलें. . . !
. . . बरसें मेघ, बजें चुप नूपुर, तड़ित् भरे मधु से लोचन-उर,
चन्द्रग्रहण से ये शंकातुर,--
पाकर मदिर विशदता के छन, अपना संबल ले लें. . . !
. . . मौन प्रतीक्षा जगकर सोयी, दे विश्वास आस चल खोयी,
अब खुद से रूठे मत कोई;
जीकर फिर हम शैशव के छन, पावन चुम्बन देलें. . . !
ये छन आँखमिचौनी खेलें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमदान—एक विश्लेषण

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी

एक दिन बड़े तड़के ही भूदान भाई ने आ जगाया। श्रमदान करना था। भूदान भाई रियासतों के एकीकरण के समय बने मंत्रिमंडल के सदस्य थे, पर बाद में कुर्सी खिन्ना नायिका की भाँति उनसे ऐसी रूठी कि वे वीतरागी हो सर्वोदयी बन बैठे। और सर्वोदयी भी बड़े उत्साही किस्म के। अतएव बिना ननुनच किये मैं उनके साथ हो लिया। नगर की पिछड़ी जातियों के मुहल्लों में सफाई व पशुओं के बाड़ों की सफाई का कार्यक्रम था। श्रमदान प्रारम्भ हुआ। सब लोगों ने झाड़ुएँ सम्हालीं और लगे सफाई करने। जब बाड़ों का कीचड़ निकालने का प्रश्न आया तो कुछ हरिजन भाई बुलाये गये और वे कीचड़ निकालने लगे। मैंने भूदान भाई से कहा, "भाई, हम सब लोग श्रमदान करने आये हैं। हम लोग ही यह काम क्यों न करें।" भूदान भाई चुपके से बोले, "चुप रहो, क्यों चलती गाड़ी में अड़ंगा लगाते हो? बेगार है, चलने दो।" मैं चुप हो गया, पर ऐसा लगा कि जब कोई विचार किसी लोकप्रिय महापुरुष द्वारा प्रवर्तित किया जाता है, तो वह आम जनता में लोकप्रियता तो प्राप्त कर लेता है, पर यदि उसका उचित मानसिक पाचन न हो, तो वह भ्रष्ट होकर शीघ्र ही नाश को भी प्राप्त हो सकता है। श्रमदान के बारे में हृदय में ऐसी शंका उत्पन्न हो तो अनुचित न होगी।

श्रमदान का तात्पर्य

यदि हम श्रमदान शब्द के अर्थ पर विचार करें तो इसका अर्थ होता है दूसरों के लिए (समाज के लिए) शुल्कहीन श्रम स्वेच्छा से करना। और इसके विपरीत बेगार का अर्थ होता है, दूसरे के लिए शुल्कहीन श्रम स्वेच्छा से न करना। दोनों में केवल इच्छा का भेद है। पुराने सामन्तवादी युग में सत्ताधीश किसी भी नागरिक को पकड़कर बलात् कोई भी काम करा लेते थे। ऐसे बलपूर्वक कराये कार्य को बेगार व उसके कर्त्ता को बेगारी कहा जाता था। बेगार प्रथा का तो देश में जनतंत्र के उदय के साथ कानूनन् अंत हो गया। किंतु एक ऐसे देश में जो आर्थिक दृष्टि से अविकसित हो, और जिसके शीघ्र पुनर्निर्माण की समस्या सम्मुख हो, देश के लिए वे कार्य, जो जनता सुविधा व सरलतापूर्वक कर सकती है, जनता को स्वयं करने पड़ते हैं क्योंकि हर कार्य को सरकार के ऊपर ही नहीं छोड़ा जा सकता। अतएव जब हम अपना कर्त्तव्य समझकर अथवा समाज-सेवा की इच्छा से प्रेरित होकर, निःशुल्क श्रम से समाज सेवा या निर्माण का कार्य करते हैं तब उसे श्रमदान की संज्ञा दी जाती है। विनोबाजी के श्रमदान की यही भावना है, जो आज भारत के कोटि-कोटि पुत्रों को राष्ट्र सेवा के लिये प्रेरित कर रही है।

श्रम का दान

आज देश के शिक्षित मध्यवर्ग में श्रमदान धीरे-धीरे लोकप्रिय हो चला है। व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के दोनों अंगों में शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा हो रही है। आज से दस वर्ष पूर्व हमारे जो मध्यवर्गीय शिक्षित जन शारीरिक श्रम करने में अप्रतिष्ठा समझते थे और लज्जा का अनुभव करते थे, अब वे ही सामाजिक हित में श्रम करने में गौरव का अनुभव करने लगे हैं। परन्तु जब हम देश में हो रहे श्रमदान कार्य पर दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रमदान की भावना ठीक ढंग से अपनायी नहीं जा रही है। राजनीतिक प्रचार की दृष्टि से जब श्रमदान कराया जाता है, या वह जब सरकारी कार्य बनकर रह जाता है, तब वह बेगार हो जाता है। समाचार-पत्रों में चित्र छपवाने की दृष्टि से जब श्रमदान होता है, तब वह चाहे जो कुछ हो, श्रमदान नहीं होता। जब विभागाध्यक्षों के लिए मंत्री की कृपा प्राप्त करने के लिए श्रमदान कराना आवश्यक हो जाता है तो परिणाम यह होता है कि एक दिन अफसर मातहत सब एकत्र होते हैं। कुछ थोड़ी-बहुत झाड़ाझूड़ी कर दी जाती है, बाकी काम करने के लिए चपरासियों की ड्यूटी लग दी जाती है और मंत्री महोदय को सूचना दी जाती है कि इतना कार्य श्रमदान से किया गया। इधर विद्यालयों के अध्यक्ष जब युग के साथ चलने के लिए श्रमदान कराना चाहते हैं तो कुछ विद्यार्थियों को इकट्ठा किया जाता है, उनके प्रचुर नाश्ते व दूध की व्यवस्था की जाती है; और कुछ कार्य कराकर प्रचारित कर दिया जाता है कि श्रमदान हो गया। विभिन्न राजनीतिक दलों व सैनिक प्रशिक्षण केन्द्रों द्वारा श्रमदान कैम्प लगाये जाते हैं, पर जितने रुपया का श्रमदान कार्य होता है, उससे कहीं अधिक रुपया शिविर के लंगर व चाय बिस्कुट में खर्च हो जाता है। ऐसे श्रमदान शिविर क्या लगते हैं, अच्छे खासे पिकनिक शिविर लग जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जिनके सदस्यों का उद्देश्य अधिकतम आनंद करना व न्यूनतम कार्य करना होता है। जब नेतागणों का श्रमदान एक दो फावड़ा चला देने से हो जाता है, तब उनके साथियों का श्रमदान एक दो घण्टे काम करने से अधिक क्यों हो ? इसी प्रकार जब श्रमदान हार्दिक श्रद्धावश न किया जाकर केवल प्रदर्शन व राजनीतिक आवश्यकताओं के लिए किया जाता है तब वह निरी चोंचलेबाजी ही होता है, श्रमदान नहीं।

श्रद्धा परमावश्यक

इसलिए आवश्यक है कि श्रमदान की भावना ठीक ढंग से अपनाई जावे। कभी-कभी श्रमदान के उत्साही प्रचारक देशवासियों के लिए कानूनन् अनिवार्य श्रमदान की चर्चा करते हैं। पर वे संभवतः भूल जाते हैं कि स्वेच्छा तथा पर-इच्छा का अंतर ही श्रमदान और बेगार में है। बाध्य होकर किया गया श्रम श्रमदान नहीं होता, न वह श्रद्धापूर्वक श्रम के समकक्ष ही हो सकता है। अतएव आवश्यक है कि श्रमदान सदा व्यक्ति की त्याग की भावना को जगा कर ही कराया जावे। विचार के प्रचार से भावना उत्पन्न करना एकमात्र जनतांत्रिक उपाय है। इसलिए ऐसे श्रमदान आयोजनों से पूर्व आवश्यक है कि सम्यक् विचार-आंदोलन भी किया जावे। त्याग का सम्यक् प्रचार श्रमदान की रीढ़ है। जब श्रमदान समाज-सेवा की भावना के स्थान पर अन्य कारणों से प्रेरित होकर किया जाता है, तब वह श्रमदानियों के हृदय में देश व समाज के प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाता और वह बेगार या बढ़िया चाय-नाश्तादाता बनकर ही रह जाता है। आज जब बुद्धिजीवियों में श्रमदान की भावना निरंतर लोकप्रियता प्राप्त करती जा रही है, इसका उत्तरदायित्व हम पर है कि हम इस पुनीत विचारधारा को श्रेयस्कर बनने दें या नहीं।

सोना और पत्थर

श्री रमेश धाकर

जैसा पत्थर, वैसा सोना; प्रभु ही दोनों का निर्माता।
पर, पत्थर खलता क्यों सबको, कंचन सबसे आदर पाता ?
पक्षपात क्या यह न जगत का, जो कंजन की पूजा करता !
और अभागा पाहन पाँवों के नीचे दब आहें भरता !!

मैंने होकर क्रुद्ध प्रश्न यह एक दिवस पूछा कंचन से :—
"तुममें क्या गुरुता है, तुम भी तो हो जड़ पाहन ही जैसे !"
कंचन बोला, "हाँ, मैं भी जड़ ही तो हूँ जैसा है पाहन।
मैं कब कहता हूँ, दुनिया, तू मुझे बना अपना आभषण !!

मैंने कब चाही है गुरुता, मैं तो सदा रहा हूँ कोमल।
विनय, नम्रता ही मेरा धन, कोमलता ही मेरा सम्बल ।।"
हुआ सत्य का बोध मुझे तब, सुन कंचन की कोमल वाणी।
तब मैंने प्रभु की प्रभुता, कोमलता की गुरुता पहिचानी ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

क्या आप शाकाहारी हैं ? और शाकाहारी ही रहना चाहते हैं?

क्या आप शाकाहारी हैं ? और शाकाहारी ही रहना चाहते हैं ? पर विवश किये जाते हैं कि अपना यह शाकाहार का मार्ग छोड़ें और दूसरा अपनायें ? तो सुनिए। इसमें भूल आपकी है, शाकाहार की नहीं ?

मट्ठे (मक्खन निकला दही) का नाम आपने सुना है, बादाम के यश से भी आप परिचित हैं, खजूर के गुण भला कौन नहीं जानता ? दूध और दही तो शाकाहारियों का जीवन है। फिर मक्खन तो भोजन की जान है, चाँदी का वर्क और चिरौंजी व किशमिश से मेवे, नाम सुनते ही मुंह में पानी भर आता है—आँवले का मुरब्बा और शहद··· यह आप क्या गिना रही हैं ? मैं गिना नहीं रही हूँ आप से पूछ रही हूँ कि आप सबके यश से परिचित हैं। पर क्या आपके भोजन में उनका समुचित स्थान है ? जरा सोचकर उत्तर दीजियेगा। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि सुबह जाने की जल्दी में आप कहते हैं "बस जो जुट गया वह खा लिया, यहाँ होश किसको है।" फिर दोष भोजन को क्यों देते हैं, अपने को दीजिये। सुबह के खाने में धनिया पोदीने, हरी मिर्च व नीबू की चटनी, जो विटेमिन 'सी' की खान हैं, क्या आपको मिल जाती है ? आप मन में कह रहे होंगे, यहाँ अपनी ही चटनी पिसी रहती है और आप पूछती हैं कि. . . . .कटा प्याज, टमाटर, सलाद, चुकन्दर, दही, मट्ठा और मक्खन की टिकिया आप ध्यान से रोज ले लेते हैं ? एक आँवला (विटेमिन सी के लिए), बादाम पाँच दस (प्रोटीन के लिए), चिरौंजी (कैलशियम के लिये) आप प्रतिदिन ले लेते हैं ? यदि नहीं तो फिर भोजन को दोष क्यों ? अपने को दीजिये।

कौन नहीं जानता रोटी का आटा इतने पहले गूँध लेना चाहिए कि ढीला हो जाय। (देर के गूंधे आटे में 'यीस्ट' की कुछ मात्रा आ जाती है।) पर क्या आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दफ्तर के समय तक ऐसे आटे की रोटी मिल जाती है? आपको पता है कि चावल का माड़ लाभदायक है--दाल छिलकों के सहित अधिक लाभकारी है, पर आप स्वाद और रूप के लिए चावल का माड़ नहीं फेंकते व दालें धुली हुई नहीं बनाते? फिर इसमें दोष किसका है? भोजन का या आपका?

कुछ अज्ञानता, कुछ आलस्य, कुछ समयाभाव, कुछ चटोरेपन के बन्धनों से जकड़ा भोजन यदि शिथिलता उत्पन्न कर आपके शरीर को जकड़ ले तो उसमें दोष किसका है? आपकी अज्ञानता, आपके आलस्य, आपके व्यस्त जीवन और चटोरेपन का, या शाकाहार का?

दही, मट्ठा और श्रीखंड के उपयोग से पश्चिमीय विद्वानों का मत है कि वृद्धावस्था तक ओज की कमी नहीं होती। एक प्याला अंकुरित गेहूँ (भिगोकर अंकुरित किया गया), खमीर (तीन-चार चम्मच या खमीर उठा हुआ आटा) तथा श्रीखंड या चार-पाँच गिलास मट्ठा प्रतिदिन सेवन करना इस दुर्बलता की औषधि है।

दूध व पनीर शरीर के हारमोन्स को संतुलित रखते हैं।

पीली व हरी सब्जियाँ व फल से शरीर को पर्याप्त विटेमिन ए मिल जाता है--नीबू के उपयोग से विटेमिन सी।

नपुंसकता, बाँझपन व गर्भपात के लिए स्फुटित अनाज औषधि का काम करते हैं क्योंकि इनमें विटेमिन ई आ जाता है।

शाकाहारी भोजन में केवल शाक सामग्री ही महत्त्व नहीं रखती। भोजन बनाने की विधि भी उतनी ही महत्त्व-पूर्ण है जितनी कि खाद्य सामग्री। जरा गृहणी से पूछिए कि सब्जी कैसे पकती है, तुरंत उत्तर मिलेगा, धोया, बनाया और बघारा, आँच धीमी कर दी और ऊपर ढक्कन में पानी रख दिया। अब देखियेगा कि वैसे बनाती भी हैं? या कटे आलू, कटी मूली की पत्ती, कटी अरुई, व छिली मटर भी मिला सब एक साथ उबाला। अलग-अलग बघारा और दस कटोरियों की थाली सज गई--जल्दी हुई तो दाल से लेकर उबलती सब्जियों में एक एक चुटकी सोडा डाला और चतुर गृहणी का नाम चरितार्थ करते हुए थाली परोस कर ले आई। भोजन की कला जानते हुए भी जो व्यवहार में, सुविधा की कला अपनायें, वास्तव में शाकाहारी भोजन के सबसे बड़े शत्रु वे ही हैं। सोडा भोजन के सर्व पोषक तत्त्वों का नाश कर देता है। वह भले ही आपकी पकौड़ियों को थोड़ा और खस्ता कर दें, व आपके भोजन को जल्दी गला दे। उबली हुई मूली के पत्तों को निचोड़ते समय आप उसके सब विटेमिन व मिनरल (खनिज लवण) फेंके दे रही हैं--अब बची हुई भूसे सी पत्ती खाकर वैद्य के नाम दोष रखना क्या न्याय है? 'कब से खा रहा हूँ मूली की पत्ती। वैद्यजी कहते थे ठीक हो जाओगे'। सब्जियों को उबालना उन्हींको उचित है जिनमें ऊपर छिलका हो, जो छीला जाता हो--जैसे आलू। परन्तु उसमें भी ध्यान रहे कि आलू का छिलका अधिक उबाल खाकर फट न जाय। पकाते समय ढक्कन के ऊपर पानी रखना--सब्जियों को आधे समय में गला देता है और उनके पोषण तत्त्व की रक्षा करता है। जहाँ तक हो सके 'प्रेशर कुकर' का प्रयोग करें--सुविधा, शीघ्रता और पौष्टिक पदार्थों की रक्षा के लिए।

जो फल व सब्जियाँ काटने पर तुरन्त या जल्दी काले पड़ जाती हैं उनमें 'लौह' की अधिकता है। जैसे सेब, बैंगन, अनार आदि। जिनमें रुधिर की कमी हो उनको इनका सेवन करना चाहिए।

सब्जियों के छिलके कम से कम उतारें।

बासी होने व दबने आदि से सब्जियाँ खराब नहीं हो जातीं, उनके गुणों में भी अंतर पड़ता है।

सब्जियाँ चूल्हे पर जितना कम रहें उतना ही उनमें विटेमिन सी अधिक रहता है। नमक सब्जियों में जल्दी डालें तो विटेमिन सी की रक्षा करता है।

शाकाहारी भोजन पर प्रोटीन की मात्रा कम होने का

(पाठक व पाठिकाओं से अनुरोध है कि वे अपने 'दाम्पत्य जीवन की सबसे अधिक मनोरंजक घटना' प्रायः १००० शब्दों के इस स्तम्भ के लिए लिखकर भेजें। घटना का वर्णन आधे पृष्ठ से कम न हो। प्रत्यक स्वीकृत वर्णन के लिए ५) का पुरस्कार दिया जायगा।)

शीला शर्मा
सहायक सम्पादिका, सरस्वती
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़ा लांछन लगता है। प्रोटीन की आवश्यकता सब को है, (१) बढ़ते हुए बच्चों को, नहीं तो उनका विकास रुक जाता है, (२) गर्भवती नारी को--अपने व शिशु के स्वास्थ्य के लिये, (३) बुड्ढों को शरीर में उष्णता रखने के लिए। शाकाहारी जो नित्य बादाम का सेवन करता है तथा दही, श्रीखंड व पनीर में से भोजन के समय किसी एक का भी सेवन करता है, वास्तव में मांसाहारी से कई रूपों में अच्छा है। बादाम सर्वोत्तम प्रोटीन माना गया है--उससे शरीर को वह प्रोटीन मिलता है जो केवल शरीर की ही रक्षा कर नहीं रह जाता, वरन् मानसिक वृद्धि भी करता है इतना और लिख दूँ कि 'बादाम संबंधी ज्ञान' मात्र प्राप्त कर लेने से शारीरिक व मानसिक वृद्धि नहीं होती-स्वास्थ्य वृद्धि उसके सेवन से होती है--और वह माह में एक दिन खीर में डालकर खा लेने से नहीं। यदि शरीर भी काम से पिस रहा है तो बैठकर बादाम को सबेरे-सबेरे ही पिसाइए और तब खाइये।

घर-गृहस्थी

धारियाँ और फैशन

धारियाँ अब प्रिंट को पीछे ढकेलकर फिर से फैशन में आ गयी हैं। लीजिए आप भी उसमें शामिल होइए। इन नमूनों में यह विशेषता है कि बचे धारीदार टुकड़े भी सुन्दरता से उपयोग में लाये जा सकते हैं।

(क्रमशः : जून में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

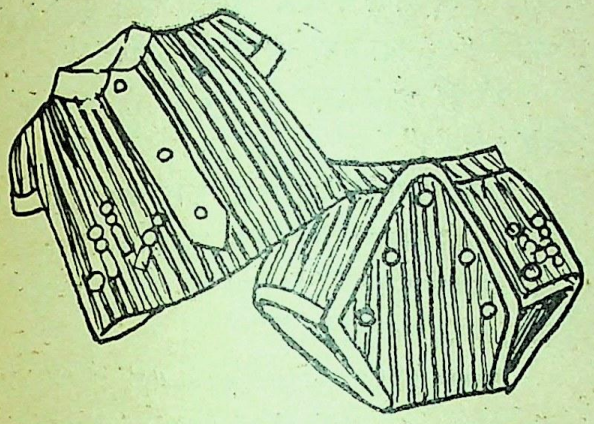

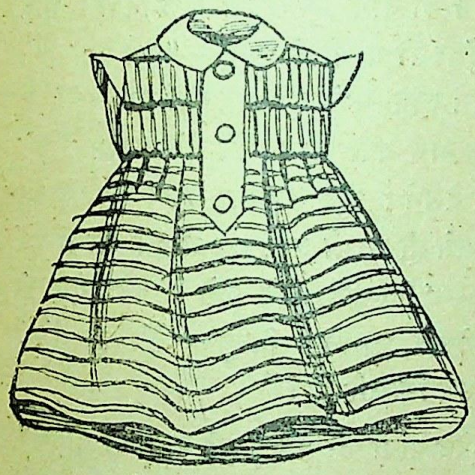

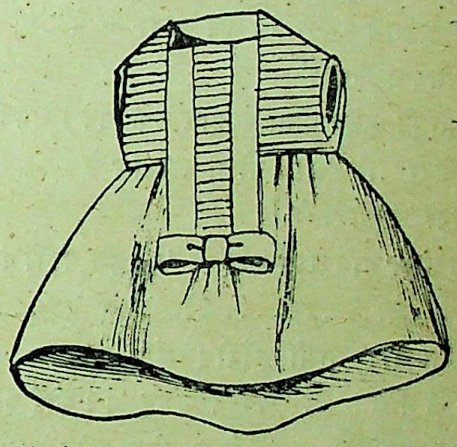

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना (१२)

श्री मनमोहन गुप्त

भाभी का प्रायश्चित्त

भाभी की आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना ही भगा। सीधे हरेन दादा के पास पहुँचा। उस समय वे कैंची, चाकू, आरी, कागज, कपड़ा आदि लिये न मालूम क्या बनाने में जुटे हुए थे। उन्हें देखते ही मैंने कहा--"छः महीने हो गये। अभी तक मैं उड़ नहीं सकता?"

अति साधारण भाव से हरेन दादा ने कहा--"उसमें क्या? साल भर में उड़ेगा।"

जिद्द पकड़ते हुए मैंने कहा--'नहीं, नहीं, तुमने कहा था कि छः महीने में उड़ूँगा और अब कह रहे हो कि साल भर में उड़ूँगा। ऐसा मत करो। मुझे आसमान में भाभी के साथ रहना है। तुम जल्दी-जल्दी उड़ा दो... बस अब देर न करो।'

सुनते ही हरेन दादा के हाथ रुक गये। अपनी पैनी दृष्टि से मेरी ओर देखा। नीची आवाज से पूछा--'तेरी भाभी क्या उड़नेवाली है?'

मैंने सहज भाव से ही कहा--"हाँ, हम दोनों कल चले जायँगे....दूर..दूर....और बहुत दूर....जहाँ मैं होऊँगा और भाभी होंगी। कोई और न होगा। आकाश के नीचे.... सुनसान जगह में। कोई पकड़ भी न पाएगा क्योंकि घर भी न होगा और न तो कोई और होगा। बस मैं होऊँगा और भाभी होंगी। आकाश में रहेंगे। इसीसे तो कह रहा हूँ कि पंख उगा दो।"

कुछ समय तक वे चुप रहे। फिर पूछा--"तेरे साहब दादा अंडा खाते हैं? बताशा बाँटते हैं?"

"हाँ, रोज दो अंडे खाते हैं, साथ में कोई दवा भी पीते हैं।"

हरेन दादा फिर कुछ देर चुप रहे। मैं भी चुप रहा। तब हरेन दादा ने कहा--"अच्छा जा!"

जिद्द पकड़ते हुए मैंने कहा--"मगर मुझे उड़ा तो दो। अभी मैं उड़ ही नहीं पाता हूँ।"

हरेन दादा ने शैतानी हँसी से भरे अपने चेहरे को मेरी ओर करके कहा--"अभी छः महीने कहाँ पूरे हुए?"

हाँ, छठा महीना चल रहा था। अभी पूरे तो नहीं हुए। मेरी बुद्धि ने इस तर्क को ग्रहण कर लिया। मैं चुप रहा। हरेन दादा के हाथ चलते रहे। देखते-देखते मैंने कहा--"यह क्या बना रहे हो हरेन दादा?"

यों ही हरेन दादा के मुँह से निकल गया--"तेरे जैसे लड़के।"

हरेन दादा के लिए कोई काम असाध्य तो है नहीं। शायद यही होगा। मेरे जैसे लड़कों को बना रहे होंगे। मानकर मैंने पूछा--"बिल्कुल मेरे जैसे? हू-बहू? आँख, कान, नाक, सब होंगे?"

बेजार होकर उन्होंने कहा--"हाँ, हाँ, तेरे ही जैसे। अब तू जा, ... नहीं तो मंत्र भूल जाऊँगा।"

मंत्र का नाम सुनकर मैं चल दिया। भाभी के पास जब पहुँचा तो भाभी ने कहा--"घर गया था?"

मैंने कहा--"धत्! घर क्यों जाऊँगा? मैं तो हरेन दादा के पास गया था। मेरे जैसे तमाम लड़के बना रहे हैं, वही देखने। खूब सामान लेकर मंत्र पढ़ रहे हैं।"

सुनते ही भाभी आगे बढ़ आईं। आशा भरी निगाह से कहा--"बिल्कुल तेरे जैसे? क्या ऐसे ही बोलते, चलते, देखते, भालते। बिल्कुल तेरे ही जैसे? शकल, सूरत, सब मिलती है?"

हरेन दादा की बताई हुई बात को दोहराते हुए मैंने कहा--"हाँ, हाँ, सब मुझ-से होंगे।"

भाभी कुछ देर चुप रहीं। फिर पूछा--"एक ला सकता है?"

असहाय भाव से मैंने कहा--"हरेन दादा देंगे तब न लाऊँगा?"

फिर भाभी चुप हो गयीं। अपने काम में लग गयीं। दिन भर अन्यमनस्क-सी रहीं। रात को भी अत्यन्त अन्यमनस्क-सी, मुझे अँगरेजी की कविता याद कराई। दूसरे दिन सबेरे ही मुझसे कहा--"जाकर हरेन दादा से पूछ आ कि वे लड़के कैसे मिलेंगे? बेचते हैं? क्या करते हैं?"

तुरन्त पहुँचा। मैंने भाभी के प्रश्नों को दोहरा दिया। साथ-साथ यह भी कहा कि भाभी ने पूछा है, उन्हें चाहिए और अभी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनकर हरेन दादा चुप हो गये। बहुत देर तक कुछ सोचते रहे। फिर कहा--"हाँ, तो तेरी लालपरी भाभी को चाहिए ? . . .मगर . . . हाँ . . . ."

कहते-कहते चुप हो गये। कुछ समय उपरान्त बोले--"ऐसे नहीं मिलते। लिखकर भेजें कि कैसा, किस रंग का, वगैरह। तू जाकर कह देना कि सब चीज लिखकर भेजें . . . और . . . . हाँ . . . . और कुछ नहीं . . . . . बस तू इतना ही कह दे। समझ गया न ?"

खूब समझ गया था। कूदते-फाँदते भाभी के पास पहुँचा। भाभी से सब बातें कह दीं। सुनकर भाभी ने कहा--"तूने मेरा नाम क्यों लिया ?"

साश्चर्य होकर मैंने कहा--"वाह री ! मुझे नाम लेने को मना किया था तुमने ?"

हाँ, आवेशवश मना करना भूल गई थीं। समझ कर चुप हो गई। किन्तु ज्यों ही मैंने कहा--"लिख दो।"

झिड़कती हुई बोली--"चुप रह तू। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

उस समय कह तो दिया कि कुछ नहीं चाहिए परन्तु हृदय में जैसे उथल-पुथल मची हुई थी। प्रत्येक बात में अन्यमनस्कता और अनिश्चितता। पूरा एक सप्ताह बीत गया। आज फिर भाभी ने कहा --"जाएगा हरेन दादा के पास ? वही लिखा लेकर ?"

भला मुझे कब झिझक थी ? चलते समय भाभी ने कहा--"और किसीको पता न चले।"

भाभी समझा दें और मैं पूर्ण न करूँ ? यह कैसे सम्भव था ? वैसा ही किया।

अब भी वह पत्र मुझे स्मरण है, जिसे मैं यहाँ लिख रहा हूँ--

"महाशय :--आपके विषय में बहुत कुछ सुना था, किन्तु क्या यह सम्भव है कि हू-बहू छोटे जैसे और भी लड़के बन सकते हैं ? आपने इसे बहका तो नहीं दिया ? इसे सविस्तर लिखने की कृपा करें। साथ में मेरे लिखे जिज्ञासापूर्ण इस पत्र को वापस भी कर दें, . . .जिसे मैं उचित समझती हूँ।"

इस पत्र को हरेन दादा ने कई बार पढ़ा। उनके सिर के बाल तक जैसे खड़े हो गये। झटपट एक सिगार सुलगाया। बड़ी देर तक आँखें बन्द किये, आराम-कुर्सी पर पड़े-पड़े धुएँ की कश लेते रहे। फिर मुझे पत्र वापस करते हुए कहा--"उत्तर कल ले जाना। आज मैं बाबा स्मशाननाथ से जान लूँ।"

मैंने भाभी से जाकर कहा। भाभी तो मेरा रास्ता देख ही रही थी। लम्बी साँस लेती हुई कुछ निराश सी भाभी न कहा--"तब तो हो चुका ! ठीक है, कल जाना।"

दूसरे दिन, भाभी के कुछ कहने के पूर्व ही मैंने पूछा--"जाऊँ भाभी ? हरेन दादा से उत्तर लाऊँ ?"

सामान्य रूप से भाभी ने सहमति-ज्ञापन किया। मैं पहुँचा हरेनदादा के पास। उन्होंने मुझसे प्रश्न किया--"तुझे भाभी ने भेजा है या यों ही चला आया ?"

मैंने कहा--"वाह रे ! बिना पूछे योंही थोड़े ही आया ? पूछा . . . भाभी ने सिर हिला दिया।"

हरेनदादा बोले--"ठीक है . . . उस कमरे से जरा दावात-कलम ले आ। मगर देख, कुछ देखकर डरना नहीं। सब बाबा स्मशाननाथ की लीला है। सामने ही मेज पर सब चीज है।"

यों चाहे न भी डरता किन्तु हरेन दादा के टोक देने पर कुछ इतस्ततः करने लगा। हरेन दादा बोले--"जा न ? डरता क्यों है ? . . . .सामने ही धरी हैं।"

मोटा-सा पर्दा हटाने के साथ-साथ मुझे ऐसा लगा कि उस ओर की दीवार के पास मेरे ही जैसा कोई लड़का खड़ा है। और लड़के के चारों ओर नाना प्रकार के हाथ पैरवाले काले सफेद भूत प्रेत। मैं घबड़ाया। किन्तु दुबारा उधर बिना ताके दावात, कलम और कागज उठाकर चला आया। हरेन दादा ने मुझसे कुछ भी न पूछा। कागज-कलम आदि लेकर लिखा--

"महाशया--सब बातें ईश्वर के हाथ में हैं। हम लोग प्रयत्न भर कर सकते हैं। नमस्कार।"

हरेन दादा ने तो इतना ही लिखकर दिया। जिसे मैंने हाँफते हुए आकर भाभी को दिया। कहने लगा--"अरी भाभी ! आज मैंने अपने ही जैसे एक लड़के को भूत-प्रेत से घिरा हुआ देखा। अरे बाप रे ! दुबारा . . . . क्या बताऊँ . . . क्या बताऊँ . . . ताकने की हिम्मत नहीं हुई . . . . कलम-दावात लेकर भगा।"

सुनकर भाभी ने कहा--"क्या कहा . . . . . जिन्दा ! बिल्कुल तेरी शकल का ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह बनाते हुए मैंने कहा--"कैसी बेवकूफ हो तुम ? कहा न कि बिल्कुल मेरे ही जैसा .... हूबहू .... मगर क्या बताऊँ ? मारे भूतों के, मारे प्रेतों के, बिल्कुल सबसे घिरा हुआ।"

भाभी कुछ समय तक चुप रहीं। फिर अपने काम में लग गईं। मैं पढ़ने बैठा। दोपहर को खाना खाते समय भाभी ने पूछा--"अच्छा ... उस लड़के से तूने पूछा नहीं कि किसके लड़के हो ?"

"हे : ! पूछूँगा ? .... उसे जैसे भूतों ने घेर रक्खा था कि मैं क्या बताऊँ ! दुबारा ताका ही नहीं।"

"अपने हरेन दादा से ही पूछा होता कि वह लड़का कौन है ?"

"हरेन दादा से क्या पूछता ? मैं भगा तुमसे कहने कि उनसे पूछता !"

कुछ समय तक भाभी चुप रहीं, फिर मुझसे कहा--"शाम को पूछ आना .....समझा ?"

खूब समझ गया था। शाम को जब हरेन दादा स्कूल से आकर चाय पी रहे थे उसी समय मैं पहुँचा ? मैंने कहा "सबेरे जो भूतप्रेतों से घिरे हुए लड़के को आपके यहाँ देखा था, वह किसका लड़का है ? भाभी ने पूछा है।"

हरेन दादा मुस्कराये। बोले--"तूने उसे कैसे देख लिया ?"

--"वाह रे ! वही जब कागज-कलम लेने मैं हाल में गया था। तभी तो वह उधर खड़ा था। बाप रे बाप ... अहा ! बेचारा भूतों से घिरा हुआ था ... मैं भगा ... जल्दी ... जल्दी।"

कुछ समय तक वे चुप रहे। फिर बोले--"ठीक है। मगर अपनी भाभी से क्यों कहा ?"

इसका मेरे पास कोई उत्तर न था। केवल आँखें नीची कर लीं। तब हरेन दादा ने आरम्भ किया--"देख! हमलोग जादूगर हैं। जादू के बल पर सब कुछ कर सकते हैं। तू आता जाता है। मास्टर साहब का लड़का है। इसीसे मैं मना भी नहीं करता। मगर यहाँकी हर बात को सबसे मत कहा कर। इससे मुझे बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है। अभी मान ले कि तेरी भाभी उस लड़के को माँग बैठी तो मैं कहाँ से दूंगा ? उसे किसी और के लिए रक्खा है।--"

अपराधी की तरह सुनता रहा। कुछ देर और रुका रहा। फिर आहिस्ते-आहिस्ते चल दिया। जब घर पहुँचा तो भाभी का प्रश्न पूछना था कि मैं आपे से बाहर हो गया। गुर्राते हुए मैंने कहा--"तुम तो बेकार की बात पुछवाती हो और हरेन दादा भाँप जाते हैं कि वहाँकी सब बातें मैंने तुमसे कह दीं। बहुत बिगड़ रहे थे।"

गम्भीर होकर भाभी ने कहा--"बुरा न मानो भैया ! साधक लोग ऐसे ही होते हैं। वे अपने गुणों की ख्याति नहीं चाहते हैं। आखिर वे सिद्ध पुरुष ठहरे न ? अच्छा अब तुझसे मैं कुछ पुछवाऊँगी नहीं। जो कुछ मुझे जानना होगा लिख दूँगी। तू बस जवाब भर ले आना। एक पत्र देती हूँ। लेता जा।"

भाभी ने पत्र दिया--"महाशय ! यों तो आप लोगों का जीवन परोपकार के लिए ही है। आप लोग प्रत्येक काम को औरों की भलाई के लिए ही करते हैं। यदि आप थोड़ी-सी दया करें तो इस अभागिन के जीवन का एक सहारा हो जाय। .. क्या आप मुझ पर कृपा कीजियेगा ? नमस्कार।"

मैं पत्र लेकर हरेन दादा के पास गया। पत्र पढ़कर उसे वापस करते हुए उसीके पीछे लिख दिया। "महाशया ! यों तो गुरु ने जो कुछ सिखाया था वह परोपकारार्थ ही, किन्तु जब तक मैं न जानूँ कि आपके ऊपर किस प्रकार का संकट है, तब तक मैं वचनबद्ध नहीं हो सकता। नमस्कार।"

हरेन दादा के पत्र को पढ़कर भाभी कुछ समय तक चुप रहीं। फिर एक पत्र लिखा। "महाशय ! मेरे ससुर तथा मेरे पति से आपने सब कुछ जान ही लिया होगा। ऐसी परिस्थिति यदि अन्य किसी औरत की होती तथा वह सन्तान की कामना करती तो वह कैसे पूरी हो सकती है ? नमस्कार।"

पत्र पाते ही हरेन दादा ने उसीके पीछे लिखा। "महाशया ! मेरी शक्ति से बाहर है इसका उत्तर देना। इसे तो बाबा स्मशाननाथ ही सुलझा सकते हैं। किन्तु आपको स्वयं ही प्रश्न करना पड़ेगा जिसकी सम्भावना कम है। अतः आप इस इच्छा को त्याग दें। ये सब काम उन्हींके लिए सम्भव हैं जो लोग कि एक चित्त से, मान-अपमान, धन-जन, शरीर-मन, सब कुछ भूलकर साधना करने की हिम्मत रखते हों, जिसे तपस्या कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं समझता हूँ कि वह आपके लिए सम्भव नहीं है। अतः आप उसे भूल जायँ। यही मेरी नेक सलाह है।

——नमस्कार।"

भाभी ने कई बार पत्र को पढ़ा। फिर मोड़कर रख दिया। उस दिन जुलाई की तीसरी तारीख थी। छः दिन और। यानी छः दिन के बाद मैं अपने घर चला जाने वाला था। इधर भाभी के माँगे हुए पाँच महीने भी पूरे हो जाते थे। उधर मेरा स्कूल भी खुल जाता था। उसी रात को बराबर भाभी रुक-रुककर लालटेन बढ़ायें और पत्र पढ़ें। लालटेन घटावें, फिर मेरे बगल में लेट जायँ, मुझे जगावें, मेरे अंग-अंग का स्पर्श करें, चूमें, फिर लेट जायें।

मुँह चूमते हुए भाभी ने पूछा——"आखिर तू चला जायगा।

भाभी के प्रश्न में आकुलता थी। मैंने थूक निगलते हुए अपनी असहायता को प्रकट करते हुए कहा——"अब जो स्कूल में भर्ती हो जाऊँगा।"

छोटा-सा 'हूँ' कहकर भाभी चुप रही। फिर थोड़ी देर बाद कहा——"अपने हरेन दादा के यहाँ से, अपने जैसे उस लड़के को फुसलाकर मेरे पास नहीं ला सकता?"

थोड़ा-सा सोचकर मैंने कहा——"उसे तो भूत-प्रेत पकड़े हुए हैं।"

मुस्कराकर भाभी ने कहा——"तू भूत-प्रेत से डरता है?"

मैंने कहा——"अब न डरूँगा। कल सबेरे ही उसे फुसलाकर लाऊँगा।"

आश्वासन से आशान्वित होकर भाभी ने कहा——"जरूर लाना। लायेगा न?"

मेरा छोटा सा उत्तर था। किन्तु उस छोटे से उत्तर ने ही भाभी को बता दिया कि मुझे जाना कबूल है।

दूसरे दिन कुछ देर से मैं भी उठा और भाभी भी देर से उठीं। किन्तु पहला काम था हरेन दादा के घर जाना। सामने ही हरेन दादा चाय पी रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने कुछ आशा से मेरी ओर देखा। किन्तु मैंने उनकी ओर न देखकर बड़ी उत्सुकता से गोल कमरे की ओर देखा। दरवाजा बिल्कुल खुला था। पर्दे हटे हुए थे। एकदम सामने ही वह जगह दिखाई पड़ रही थी, जिस स्थान पर मैंने उस लड़के की झाँकी भर ली थी। कहीं कुछ नहीं। आगे बढ़ गया। आज जँगले वगैरह भी खुले हुए थे। कमरे में खूब उजाला था। अन्दर जाकर इधर-उधर झाँकने लगा। हरेन दादा ने पूछा——"क्या?"

मैंने कहा——"उसी लड़के को, वही जो मेरे जैसा था, उसीको ढूँढ़ रहा हूँ।"

सुनकर उन्होंने कहा——"कौन-सा....?"

जोर देते हुए मैंने कहा——"वह सामने जो बड़ा-सा शीशा है, वहीं पर मैंने जो देखा था।"

हरेन दादा गम्भीर हो गये। थोड़ा-सा रुककर बोले——"समझा...तुझे, तेरी भाभी ने...."

आगे कुछ कहने से पूर्व ही प्रतिवाद करते हुए मैंने कहा——"भाभी क्यों भेजेंगी। मैंने खुद ही कहा कि चलकर जरा जान-पहचान कर लूँ। अहा! बेचारा भूतों से घिरा था!"

झट हरेन दादा ने कहा——"ऐसे जान-पहचान नहीं होती है। उसे बाबा स्मशाननाथ ने किसीके लिए पैदा किया था और वे ही कहीं अपने आदमियों से भेज रहे थे। वे भूत-प्रेत थोड़े ही थे। वे तो उन्हीं के अनुचर थे।"

चुप हो गया। बड़ी निराशा हुई। चुपचाप चला आया। भाभी ने पूछा तो लम्बी साँस में कहा——"बाबा स्मशाननाथ ने पैदा किया और भेज भी दिया।"

सुनकर भाभी कुछ देर चुप रही। फिर एक पत्र लिखा——

"महाशय! आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप जानते हैं कि मैं परम भाग्यवती होती हुई भी अभागिन हूँ। यदि आप बाबा स्मशाननाथ से कहकर मेरे दुःखों को दूर कर दें तो भगवान् आपकी और उन्नति करेंगे। मैं हर प्रकार से तैयार हूँ। जो भी विधि हो उसे सूचित करने की कृपा करें——नमस्कार।"

मैंने पत्र ले जाकर हरेन दादा को दिया। हरेन दादा ने शैतानों की-सी हँसी हँसी। थोड़ी देर रुककर मुझसे पूछा——"हाँ रे, तू तो अपनी भाभी को भी अपनी अम्मा जैसा प्यार करता है न?"

मैंने कुछ कहा नहीं। केवल सिर नीचा कर लिया। तब वे बोले——"तेरी भाभी को जल्दी ही तेरी अम्मा जैसी भिरगी आनेवाली है। मगर तू चाहे तो बच सकती है.....तू तैयार है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भला भाभी के लिए दुनिया में ऐसा कौन-सा कार्य था कि जिसे मैं न कर सकता था? मैं तुरन्त राजी हो गया। कारण उस दिन भाभी ने मुझे हर प्रकार से छाप रक्खा था। मेरे बाल हृदय की वह जननी हो रही थीं, मेरे छात्र-जीवन की वह शिक्षिका थीं, मेरी उद्दण्डता की वह अनुशासिका थीं। यदि हरेनदादा कहते कि हिम्मत करके उनके लिए अपना सिर उड़ा दो, तो मैं तैयार था। यदि कहते कि 'अपना सिर उड़ाकर बलि-वेदी पर चढ़ा दो, तब भी मैं राजी था।

कुछ समय तक हरेन दादा मेरे चेहरे की ओर देखते रहे। शायद मेरा अध्ययन करते रहे। हिसाब बैठने पर उन्होंने पूछा--"अच्छा, यदि तेरी भाभी ने कहा, आधी रात को मुझे स्मशाननाथ के पास ले चलना है तो तू हिम्मत करके ला सकता है?"

मेरी हृदय की महारानी, मेरी उपासना की देवी की इष्टसिद्धि के हेतु स्मशाननाथ के यहाँ केवल लाने की बात कौन कहे, यदि कहते कि रात-दिन बैठा रहना पड़ेगा तब भी मैं राजी हो जाता। मेरे मुँह से तुरन्त छूटा--"खूब! खूब! अभी ला सकता हूँ।"

हरेन दादा बोले--"अभी नहीं....आधी रात को"

"--हाँ, हाँ, आधी रात को ही सही, जब चाहें तब।"

सुनकर हरेनदादा ने पत्र लिखा।

"महाशया! यों तो मैंने आपको मना किया था कि पुत्र की इच्छा त्याग दें। कारण यह पथ बड़ी साधना का है। किन्तु आपने जब सब कुछ झेलने को ठान ही लिया है तो अब मेरा कोई वक्तव्य नहीं है। मैं, छोटे को सब कुछ बताये देता हूँ। वह आपको ठीक-ठीक रास्ता बता कर ला सकता है। आप आज रात्रि के बारह बजे के आस-पास उसके साथ चली आवें। बाबा स्मशाननाथ से आपकी बातचीत हो जायगी। आगे उन्हींकी इच्छा तथा आपकी साधना का बल। मेरा कोई और वक्तव्य नहीं है। आप जानें और आपका काम जाने। --नमस्कार।"

कहकर, अपने मकान के पीछेवाले दरवाजे को बता दिया। मुझे सावधान करते हुए समझा दिया कि कैसे सबकी आँखें बचाकर तथा कान बचाकर भाभी को लाना है तथा ले जाना है। कई बार एक ही बात को नाना प्रकार से समझा दिया।

मैं पत्र लेकर चल दिया। भाभी को दिया। भाभी ने पढ़ा। फिर पूछा---'कैसा रास्ता है रे? क्या बहुत कठिन है?

मैंने कहा--"कोई कठिन नहीं। बस पीछे का रास्ता है।'

"हूँ" कहकर भाभी कुछ सोचने लगी। मैंने समझा कि मेरी योग्यता में भाभी को कुछ सन्देह हो रहा है। मैंने विश्वास दिलाते हुए कहा--"चिन्ता की कोई बात नहीं। बिल्कुल ठीक जगह पर मैं ले चलूँगा। जरा भी न डरूँगा। रास्ते में कोई होगा भी नहीं और होगा भी तो क्या! मैं तो बाबा स्मशाननाथ का कमरा भी पहचानता हूँ। सीधे ले चलूँगा।"

इस प्रकार से जब भाभी को आश्वासन देने लगा तो भाभी ने मुझे पास खींच लिया। गोद पर बैठाकर आहिस्ते-आहिस्ते सिर सहलाने लगीं। बोलीं--"ठीक है।"

"रात की बात रात को ही देखी जायगी।" यह कहकर भाभी ने बात टाल दी। दिन भर उसी प्रकार से काम चलता रहा। शाम को हरेन दादा को कहला भेजा कि मैं आऊँगी।

शाम भी आ गयी। सोने का भी समय आया। सोते-सोते मैंने पूछा--"भाभी चलोगी न?"

भाभी ने कहा--"देखा जायगा। अगर जाऊँगी तो तुझे बुला लूँगी। सो जा।"

"ठीक है।" कहते ही कहते एक अँगरेजी की कविता याद करते-करते सो गया। जब समय हुआ तो भाभी ने जगाया। मैं एकदम से उठ खड़ा हुआ। भाभी को तैयार देखा। यानी अपने को एक चादर में लपेटे खड़ी हैं। मेरा हाथ पकड़े बाहर निकलीं। सदर दरवाजे को धीरे से खोला। दोनों बाहर हुए। दरवाजे को उढ़का दिया। एकदम गली में आ गये। तीन चार मकानों के बाद ही तो हरेन दादा के मकान का पिछवाड़ा पड़ता था। आश्चर्य यह कि अपने पिछवाड़े के दरवाजे के पास ही खड़े हरेन दादा मिल गये।

थोड़े में बहुत आहिस्ते से उन्होंने कहा--'आइये।'

हम दोनों अन्दर पहुँच गये। सब कुछ जैसे तैयार था। हरेन दादा ने दरवाजा बन्द किया। साथ-साथ घटाई हुई लालटेन की बत्ती को बढ़ाया। उधर के कमरे में गये। हरेन दादा बोले--"मगर स्मशाननाथ के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको अकेले ही जाना होगा। मैं छोटे को उधर के कमरे में बैठा आता हूँ। क्यों रे छोटे! डरेगा तो नहीं?"

डर की जितनी मुझे फिक्र न थी उससे अधिक भाभी को छोड़ने की अनिच्छा, किन्तु भाभी ने ही जब कहा--"नहीं वह डरेगा क्यों?" तब मेरा और कोई वक्तव्य न रहा। वैसा ही हुआ। यानी हरेन दादा के सोने के कमरे में मैं उन्हींके साथ गया। बिस्तर दिखाते हुए उन्होंने कहा--"उसी में सो जा। चलते समय भाभी जगा लेगी। तू पड़ा रह। कोई डर नहीं।"

वे तो चले गये। परन्तु मुझे नींद कहाँ? दस-पाँच मिनट ही पड़ा रहा होगा कि मैं उठा। पैर दबा-दबाकर देखने चला कि भाभी क्या कर रही हैं। पहुँचा बाबा स्मशाननाथवाले कमरे के दरवाजे पर। देखने की चेष्टा की किन्तु टिमटिमाती बत्ती में ठीक से दिखाई न पड़ा कि भाभी खड़ी हैं या बैठी। आहिस्ते से अन्दर दाखिल हुआ। दीवार से लगा लगा पहुँचा एकदम स्मशाननाथ-वाली मेज के पीछे। तब भाभी पूछ रही थी--"हे दया-निधान! क्या मेरे पति के अगले जन्म के किये अपराध का कोई प्रायश्चित्त नहीं?"

स्मशाननाथ बोले--"क्यों नहीं देवी! समस्त पापों के प्रायश्चित हैं।"

भाभी ने पूछा--"हे कृपानिधान! कृपया आज्ञा हो कि क्या किया जाय?"

बाबा स्मशाननाथ ने कहा--"रुष्ट देवता की तुष्टि ही एकमात्र उपाय है।"

फिर भाभी ने कहा--"वे किस प्रकार से तुष्ट होंगे भगवन्?"

झट स्मशाननाथ ने कहा--"जिस प्रकार से पूर्व-जन्म में तुम्हारे पति ने देवपत्नी को भोग करके पाप किया था, उसी प्रकार से इस जन्म में जब तक तुम्हारे पति की पत्नी को वह देवता भोग न कर लेगा तब तक उस पाप का प्रायश्चित्त न होगा। चाहे इस कार्य को स्वेच्छा से किया जाय अथवा अनिच्छा से। यही विधि का विधान है।"

भाभी चुप रही। आहिस्ते-आहिस्ते हट गयी। मैं आँख बचाकर दीवार से सटे-सटे टिमटिमाती बत्ती के उजाले में निकलकर जाकर हरेन दादा के बिस्तर में लेट गया। बड़ी खिन्न-सी भाभी भी आईं। मैं आँख बन्द किये पड़ा था। भाभी ने आहिस्ते से पूछा--'सो गया?' नींद का बहाना करते हुए कहा--"नहीं। अभीनहीं। तुम्हारी बातें हो चुकीं?"

"हाँ, चल। सब बातें हो गई हैं। तू चल अब..।"

आगे कुछ कहने ही जा रही थी कि हरेन दादा आये। उन्होंने पूछा--"बाबा ने आपको कुछ आदेश दिया है?"

भाभी ने अपने सिर का कपड़ा जरा सम्हाल लिया। फिर बोली--"हाँ।"

तुरन्त हरेन दादा ने कहा--"बाबा बड़े दयालु हैं। वे सबके दुःखहारी हैं।"

पीछे-पीछे हरेन दादा बाबा स्मशाननाथ के गुण गाते जाते थे और भाभी मेरा हाथ पकड़े आगे बढ़ती जाती थीं। जिस दरवाजे से अन्दर दाखिल हुआ था वह दर-वाजा भेड़ा ही हुआ था। हम दोनों बाहर गली में आये। फिर जैसे गये थे वैसे ही आकर लेट गये। दुनियाँ में हम तीनों के अतिरिक्त किसी ने न जाना कि इस रात को क्या हो गया। भाभी घर में आकर मुझे लिपटाये खूब रोने लगीं। मैं भाभी को छाती से लगाये पड़ा रहा। दोनों में कोई न सोया।

टन्! टन्! दो बजे। आँसू पोंछते हुए भाभी ने कहा--अब एक सप्ताह भी न रहा.....तू चला जायगा मैं कैसे जिऊँगी?"

गम्भीर प्रश्न था। कैसे सुलझाता? मैंने कहा--"चलो भाभी! कहीं दूर चले चलें। जहाँ से कोई मुझे घर न ले जा पाये।"

भाभी चुप रही। फिर मैंने कहा--"वह जो त्रिलो-चन महादेव का मन्दिर है न, उसके ऊपर अगर हम लोग छिपकर बैठे रहेंगे तो किसीको पता ही न चलेगा।"

इतने दुःख में भी भाभी मुस्करा दीं। फिर कोई बात नहीं हुई। पता नहीं कि कब मैं सो गया। दूसरे दिन जब उठा तो देखा कि भाभी की आँखें लाल हैं। मैंने पूछा--"बीमार हो भाभी?"

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीते से मुठभेड़

श्री के० बी० हकीमुद्दीन

मि० कांजीलाल एक्स्ट्रा-एसिस्टेंट कंसरवेटर थे। वे मुझसे सीनियर थे। उनको भोजन का शौक था। अत: उनको बड़े जानवरों की अपेक्षा तीतर, मुर्ग और मोर ज्यादा अच्छे लगते थे। इसके विरुद्ध मुझे बड़े जानवरों के मांस में दिलचस्पी थी। मि० कांजीलाल बिना निशाना लिये उड़ती चिड़ियों पर एक साथ दो फायर करते थे—चाहे चिड़िया मरे या न मरे। इससे उन्हें कुछ प्रयोजन न था। इसके विरुद्ध मैं ठीक निशाना लेकर फायर करता था। उन दिनों कारतूस ८-१० रु० सैकड़ा मिलते थे।

फरवरी १९२४ ई० में हम लोग जोरासाल, हल-द्वानी फारेस्ट डिवीजन (यू० पी०) को छीनी नामक स्थान से जा रहे थे। थोड़ी दूर जाने के बाद हमने देखा कि तालाब की हरियाली में मुर्गियाँ चर रही हैं। मि० कांजीलाल के मुँह में पानी भर आया। तुरंत ही अरदली से बन्दूक लेकर तालाब की ओर चले। मैंने भी अपनी २२ बोर रायफल ली और कांजीलालजी के सामनेवाले पेड़ों के नीचे खड़ा हो गया कि मुर्गियाँ फायर होने पर अवश्य सामनेवाले पेड़ों पर बैठेंगी। अपने स्वभावानुसार कांजीलालजी ने बिना निशाना लिये दोनों फायर एक साथ किये। दो मुर्गियाँ मेरे सामने एक बाँस के पेड़ पर आ बैठीं। उनमें से एक को गिराकर मैं सड़क की ओर बढ़ा क्योंकि उधर काले तीतर बोल रहे थे। मैंने सोचा एक तीतर मार लूँ, नहीं तो कांजीलाल इस चिड़िया को आधाआधा बाँट लेंगे। मि० कांजीलाल अरदली के साथ अपनी घायल चिड़िया को ढूँढ़ रहे थे।

मैं सड़क की ओर थोड़ी दूर गया और एक छोटे से लकड़ी के पुल को पार कर रहा था कि मेरी दृष्टि पुल के दाहिनी ओर सड़क के किनारे एक पेड़ की जड़ के पास पूरे कद के चीते पर पड़ी। वह हमसे १०-१२ फीट के अंतर पर था। चीता दुबका हुआ बैठा था। चीते के पीछे उत्तर की ओर लगभग १०० कदम पर घना साल का वन था, सामने सड़क और उसके बाद जली हुई घास का क्षेत्र था जिसमें हरी घास उग रही थी। लगभग १०० कदम पर ५०-६० गाय-भैंसें और बछड़े चर रहे थे। चीता इन्हींकी ताक में बैठा था कि मौका पाकर किसी बछड़े को दबोच ले। इस अप्रत्याशित शिकार को देखते ही मैं झिझककर ठहर गया। चीते ने धीरे-धीरे अपना सिर झुकाना और बदन सिकोड़ना शुरू किया। मैंने देखा सामने १०० कदम पर फारेस्ट कालिज के तमाम विद्यार्थी और ऊँट जा रहे थे। मैंने सोचा कि जब इतना बड़ा काफिला इसके पास से निकल गया और चीता चुप-चाप बैठा रहा किसीसे नहीं बोला तो मुझसे ही क्यों बोलेगा? मैं बाईं ओर होकर १५-२० कदम गया और मुड़कर देखा तो चीता फिर धीरे-धीरे सिर उठा रहा था। मैं सोचने लगा कि किस प्रकार इसको मारा जाय? पाठक याद रखें कि इससे पहले मैंने सिर्फ एक चीता मारा था। बाद में तो जीवन में कई दर्जन चीते मारे। पर अभी पक्का शिकारी न बन पाया था।

मेरे पास बड़ी रायफल न थी। सोचा शायद मि० कांजीलाल के पास १२ नं० की गोलियाँ हों। अत: मैं उनके पास गया, और रायफल में बड़ा कारतूस लगाकर चीते के किनारेवाली भूमि पर होता हुआ लौट आया। मैं चीते के पास जब आया तब वह गायों की ओर देख रहा था। उसने धीरे से मेरी ओर मुँह मोड़ा और फिर सिर झुकाकर दुबकने लगा। मैंने उसके सिर का निशाना लेकर रायफल सीधी की और सोचा कि जब मैं इसके पास से होकर निकलूँगा तब लिबलिबी दबा दूँगा। उसी समय मि० कांजीलाल अरदली के साथ उधर से मेरी ओर आने लगे। मैंने सोचा कि यह अच्छा होगा कि उनके पुल पर पहुँचने के पहले मैं पुल के पार हो जाऊँ। रायफल लटकाये हुए गुलदार के सिर से दो-तीन इंच ऊपर नाल निकल गयी। मैं नौसिखिया तो था ही, घबराहट और डर के मारे कुछ न कर सका। जब मैं पुल पर पहुँचा तो मि० कांजीलाल भी आ गये। मैंने उनके सीने पर धीरे से हाथ रखकर कहा—"लौट चलिये।" वे मेरे अफसर थे। उन्हें मेरी यह हरकत नागवार हुई, और अफसराना ढंग से कहा—"यह क्या हिमाकत है?" मैंने कहा—"हिमाकत नहीं चीता बैठा है।" सुनते ही उनकी फूंक सरक गयी, और वे चुप-चाप लौट पड़े। दूर जाकर मैंने कहा—"आपके झोले में गोली के कारतूस भी हैं?" उन्होंने कहा—"मालूम नहीं।" मैंने अरदली से झोला लेकर धरती पर उलट दिया। दो गोली और एक गरीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारतूस निकले। बाकी सब छर्रे के थे। मैंने गोली दाईं नाल में और कारतूस गर्राब वाला बाईं नाल में लगाया। अब हम फिर लौटकर पुल पर आये। उसने फिर सिर झुकाकर छिपना शुरू किया। मैंने मि० कांजीलाल को संकेत से गुलदार दिखाया। मोटे शीशे की ऐनक के कारण उन्हें जब वह दिखाई न दिया तो अरदली ने बताया--"साहब! चीता वह है?" इस पर उन्होंने कहा--"मैं मारूँगा।" मैंने बन्दूक उन्हें दे दी। चीता १०-१२ फीट की दूरी पर था। उन्होंने बन्दूक सीधी की मगर लंबी और भारी साँस लेने लगे, और निशाना इतनी देर तक लेते रहे जितनी देर में वह चिड़ियों पर एक दर्जन कारतूस फूंक देते। चीता हम सबको देखकर चौकन्ना हुआ। उठा। मैंने कहा--"जल्द फायर कीजिए, नहीं तो यह या तो भाग जायगा या आक्रमण करके हमलोगों की खबर लेगा। इतने समीप से ऐसा अच्छा मौका पाकर भी न मरा तो पश्चात्ताप होगा।" उन्होंने कहा--"इतने समीप से फायर करना खतरनाक है। मैंने कहा--"तो मुझे दे दीजिए।" उन्होंने बन्दूक मुझे दे दी। अब चीता खड़ा हो चुका था और सिर झुकाये कान पीछे किये हुए हमारी ओर देख रहा था। मैंने सोचा--अब यह आक्रमण करने ही वाला है और एक दो को घायल करके भाग जायगा। बस उसके सिर का निशाना लेकर लिबलिबी दबा दी। दनाके की आवाज के साथ ही चीता जोर से चीखा और हमने बारूद के धुएँ में उसे गिरते देखा। मैंने अपने निशाने के घमंड में यह सोचकर कि उसका भेजा उड़ा दिया है, बंदूक को कंधे पर रख लिया। अनुभवहीन तो था ही, तब तक केवल एक ही चीता तो मारा था। इतने में खलीफा कैसे बन जाता? धुआँ साफ होते ही देखा कि चीता खड़ा हुआ सिर नीचा किये, कान पीछे की तरफ मोड़े गुस्से से गुर्रा रहा है। अब वह घायल होने के कारण पहले की अपेक्षा अधिक भयावह था। अर्दली और डाकवाला भाग गया। मैं और मि० कांजीलाल पहली फायर का फल देखने को खड़े थे। चीते की यह गति-विधि आक्रमण करने की थी। मैंने घबराकर कंधे से बंदूक उतारी, हाथ तो लिबलिबी पर था ही, घबराहट में गोली हवा में चली गयी। अब हम दोनों एक प्रकार से निहत्थे थे। बंदूक खाली, और हम अनुभवहीन खड़े थे। चीता हमला करके नोच डालता तो ये पंक्तियाँ कौन लिखता? पर खैरियत गुजरी कि चीता फायर की आवाज सुनकर जंगल की ओर भागा। मैंने जल्दी से दाहिनी नाल में गोली, और बाईं में ४ नं० का छर्रा भरा। क्या करता गोली का कारतूस एक ही था। मैं चाहता था कि जल्दी ही दूसरी गोली मार दूँ, अभी गुलदार २० कदम ही पर जा रहा था। मि० कांजीलाल ने कहा--"अब हम फायर करेंगे" मैंने उनको बंदूक दे दी। यह सब लिखने में तो देर लगी, पर चन्द सेकंडों ही में सब कुछ हो गया।

अब चीते की पूँछ हमारी ओर थी। मि० कांजीलाल ने कहा, और ठीक कहा, कि मैं थोड़ी दूर सड़क पर जाकर फिर दाईं ओर घास में जाकर गुलदार (चीता) की बगल पर गोली मारूँगा। वे उधर गये तो चीते ने उन्हें आता देखकर दाईं ओर पुलवाले नाले की ओर रुखकर दिया जिसके किनारे आदमी के बराबर ऊँची घास खड़ी थी। मैंने सोचा, चीता यदि इस घास में घुस गया तो उसे बिना हाथी के पैदल ढूंढ़ना खतरनाक होगा। अतः मैं अपनी २२ बोर रायफल में बड़ा कारतूस लगाकर नाले के किनारे बड़ी घास में होता हुआ चीते की दाईं ओर से जाने लगा। घास में कीचड़ व पानी था जिसके कारण चलने की आवाज से चीते को शक हुआ कि इसमें कोई शत्रु है। अतः चीता खड़ा होकर कभी बाईं ओर कांजीलाल को, और कभी पुल की ओर देखने लगा। फिर वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा। मैं भी उसी गति से बढ़ा। हम दोनों में ४० कदम की दूरी थी। अब हम तीनों एक लाइन में थे। चीते के सामने २०-२५ कदम पर सेमल का पेड़, जली और बे जली घास के मिलान पर था। मैं चाहता था कि उसकी आड़ में गुलदार से पहले पहुँच जाऊँ। मैं आगे बढ़ा, चीता सशंक दृष्टि से दोनों ओर देख रहा था। मैं घास में छिपा था और मिस्टर साफ मैदान में थे। यदि चीता चाहता तो हम लोगों की बोटी-बोटी उड़ा देता, क्योंकि एक तो हम अनुभवहीन थे, दूसरे पास के हथियार भी ढंग के न थे। पर चीते ने बड़ी शराफत बरती या खुदा ने रहम किया कि चीते ने आक्रमण नहीं किया। उसको खड़ा देखकर मैं चुपके-चुपके चोर की तरह चलकर अंत में पेड़ के पास पहुँचने में सफल हो गया। अब चीता मुझसे १०-१२ कदम पर खड़ा मि० कांजीलाल को देख रहा था। मैंने उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इशारा किया कि फायर करो, उन्होंने जोर से कहा—"तुम सामने पड़ते हो" मैं थोड़ा और पेड़ की आड़ में छिप गया, फिर उनको फायर करने का संकेत किया। उन्होंने फायर किया। गोली नहीं लगी, और चीता बिल्कुल पेड़ के पास आकर खड़ा हो गया। अब मैं काँप गया। मौत इतने समीप है, ऐसा सोचकर थर्रा उठा। मैं चीते की पूँछ और पिछले पैर पेड़ से मिले हुए देख रहा था। मैं यह न जानता था कि चीते को मेरी उपस्थिति का पता है या नहीं, और वह किस तरफ देख रहा है। मैंने धीरे-धीरे रायफल को बढ़ाकर पेड़ के उत्तर की ओर निकाला और छाती पर जमाकर जो आगे झुककर देखा तो चीता मेरी ओर देख रहा था। मेरे और चीते के बीच में नाममात्र को पेड़ की मोटायी की दूरी थी। एक ओर चीता, दूसरी ओर मैं, एक दूसरे की जान के प्यासे खड़े थे। अभी फैसला हुआ जाता है कि दो में से एक नहीं। हिम्मत छोड़ी, और शिकारी गीदड़ बना। मैंने सोचा आखिर यह तो धज्जियाँ उड़ा ही देगा, क्यों न मरने से पहले किस्मत आजमाई करूँ? मैंने जल्दी से उसकी आँख पर गोली मारी, और बिना परिणाम देखे सीधा पुल की ओर भागा। कुछ-कुछ ऐसा आभास था कि गोली चलाने के बाद चीता गिरता-सा मालूम हुआ।

जब मैं पुल पर पहुँचा तो मि० कांजीलाल और अर्दली आ गये, और पूछा—"क्या हुआ?" मैं क्या उत्तर देता? क्योंकि मुझे स्वयं चीते के मरने या न मरने का विश्वास ही न था। हम लोग सेमल की जड़ के आस-पास और उसके आगे-पीछे देखते रहे, पर चीता दिखायी न दिया। अब किसीकी हिम्मत न थी। न १२ बोर की कोई गोली थी, न गर्राब का कारतूस था। एक तो नौ सिखिये, दूसरे सामान बेढंगा, और पैदल मारने चले गो से भी अधिक चालाक और मक्कार चीते को! सेमल पास किसीके जाने की हिम्मत न हुई। जाते भी किस बूते पर? न हथियार ठीक, न साहस।

थोड़ी देर खड़े रहे तो एक कौआ आया और सेमल की सबसे नीचे की डाल पर बैठकर धरती की ओर देख कर काँव-काँव करने लगा, मानो अपने कुटुम्बियों को निमंत्रण दे रहा हो। उसकी बोली सुनकर और कौए आ गये। अब विश्वास हो गया कि चीता वहाँ है—चाहे मरा हो चाहे अधमरा। कौए धरती पर नहीं उतरे। इससे शक हुआ कि चीता मरा नहीं, जिन्दा है। मैंने दो बोर बंदूक में दो कारतूस चार नम्बर लगाये और राय-फल कांजीलालजी ने ले ली। हम लोग बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़े। जब सेमल के पास पहुँचे तो श्रीमान् चीते जी महाराज पैर पसारे सो रहे थे। पर दूध का जला मठे को भी फूँक-फूँककर पीता है। अब हमने दूर से पत्थर फेंके, शोर मचाया। अब चीते के मरने का विश्वास हो गया। पास जाकर देखा तो २२ बोर की गोली उसकी आँख में पड़ी हुई थी, और वह अपने अगले दायें हाथ को मुँह में लिये था जिसको उसने चबा डाला था। बायाँ हाथ पहली गोली से टूट चुका था। चीता खूब तन्दुरुस्त नर था। मुझ अनुभवहीन को खुशी का ठिकाना न था। ऊँट मँगाकर उसे लादकर पड़ाव पर ले गये। वहाँ नापा गया तो ७ फीट ७ इंच निकला। यद्यपि हम लोग मौत के मुँह में कई बार गये, तथापि मौत तो चीते की थी। हम बाल-बाल बचे, और एक खरोंच तक न आयी। इसे ईश्वर की कृपा के सिवाय और क्या कहा जाय?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है एक गृहिणी की

श्री एन० टी० वासदेवन नायर

अपने १७वें प्रेम व्यापार की समाप्ति पर श्री पी० के० आर० जी० पणिक्कर ने एक पीड़ा-भरी उसाँस ली। वेदान्तियों जैसी मुद्रा में बोले—"हाँ, जिन्दगी ही ऐसी है।" हम बात की गंभीरता समझ गये थे। और इस पर हँसे नहीं, क्योंकि वे जल्दी ही चिढ़ जाते हैं। नाराज होने पर वे हाथ-पैरों का भी उपयोग करने से नहीं चूकते। सुना है कि एक बार ऐसी ही घटना हुई भी थी। साधारणतया वे विनोदप्रिय व्यक्ति हैं, किन्तु यह अवसर कुछ हँसकर टालने का तो नहीं था।

जोसेफ अनजाना बनकर पणिक्कर की ओर देख रहा था और आचार्य की चारपाई पर आसन जमाये था। उसने बड़ी सहानुभूति से पूछा—"गुरु! क्या बात है?"

जोसेफ पणिक्कर का प्यारा शिष्य और आराधक है। उसीमें यह पूछने की सामर्थ्य थी।

रामचन्द्र और मैं चुप बैठ रहे। पणिक्कर जल्दी बोलना नहीं चाहते थे। इन बातों को नाटकीय तौर पर कहना आवश्यक है। सिनेमा और नाटकों में, नायकों के प्रेम-नैराश्य का अभिनय उन्हें याद आ रहा था।

सिगरेट जलाकर दिलीप की वेदना भरी मुस्कराहट का अभिनय करते हुए नाटकीय रूप में बोले, "अब होने के लिए क्या रखा है?" हँसी को दबाकर जोसेफ, संवेदना के स्वर में बोला—"क्या हुआ आचार्य!"

रामचन्द्र ने बात आगे बढ़ाई—"कहो बेटा! कैसी" गुजरी?"

"वह भी गयी।"

जोसेफ, जो हमको इसके बारे में पहले ही बता चुका था, घबराहट का अभिनय करते हुए बोला—"कौन गेसेल्डा की चर्चा कर रहे हो?" पणिक्कर कुर्सी से उछल पड़े और चिल्लाकर बोले—"बन्द करो बकवास, तुम नहीं जानते कि उसे मैंने एक अरसा हुआ छोड़ दिया है।"

"तो और कौन?"

"मालती"

"ओह!" रामचन्द्र ने मुझे आँख मारते हुए पणिक्कर को समझाया, "Better luck next time" पणिक्कर के लिए इस बात का भूल जाना इतना आसान न था। वेदनापूर्ण हृदय के गुबार से वह प्रताड़ित हो उठा। जब दोपहर में कड़ी धूप पड़ती है तो बिना छतरी लगाये उसने रविवार की छुट्टियों में कंक्रीट की सड़क की न जाने कितनी बार परिक्रमा की थी। बगीचों और समुद्र के किनारे उसने मालती की न जाने कितनी देर तक प्रतीक्षा की थी और उसके आने के समय को जानने के लिए कितनी हाजिरी बजायी थी। उस तक पत्रों को पहुँचाने में न जाने कितनी बार आफिस जाने में देर हो गई। जब मैनेजर डाँटता था तो वे मालती के दर्शनों के आगे फटकार भूल जाते थे।

"मेरी मालती! तुम्हारे लिए क्या नहीं किया?"

रामचन्द्र जो एक क्रीड़ाप्रेमी पत्रकार था, बोला—"कोई बात नहीं! इन सबमें स्पोर्ट्समैन स्पिरिट चाहिए। कभी न कभी जीत होगी ही।" लेकिन जोसेफ अपने आचार्य को ऐसे छोड़ने को तैयार न था—"गुरु क्या उसने तुम्हें धोखा दिया?"

पणिक्कर ने गहरी साँस ली—"हाँ बेटा! दुनिया की यही गति है।" "क्या उसने वादा किया था"—यह प्रश्न आचार्य को पसन्द नहीं आया। उन्होंने शिष्य की ओर एक अभिनव दयाभाव से देखा, मानों कह रहे हों कि "क्या वह इतना बुद्धिशून्य हो सकता है।" फिर बोले—

"वादा न था, पर बात तो थी ही।"

किन्तु शिष्य महोदय इसे समझ न सके।

वह बोलती नहीं थी। परन्तु उसकी आँखें भाषा का कार्य करती थीं? उसकी आँखें एक निमंत्रण-सा देती थीं। खैर छोड़ो भी—यह सब तुम्हारी समझ में न आयेगा। इस पर सबको हँसी तो आई किन्तु कोई भी प्रकट रूप से हंसा नहीं। क्योंकि पणिक्कर की दशा ऐसी न थी कि हम उसका विरोध करते। उसके दोनों हाथ काफी लंबे और हड्डियाँ मजबूत थीं। उसका हँसी-मजाक कहाँ आरम्भ हुआ और कहाँ समाप्त, इसका पता न लगता था। फिर भी पत्रकार जिस प्रकार महत्त्व के समाचार इकट्ठा करता है, उसी भाव से आचार्य के पास गया।

"एक बात पूछूं।"

"पूछो।"

"गुस्सा मत होना।"

"पूछ तो।"

"अच्छा, यह तुम्हारे कौन से नंबर का प्रेम था?"

पणिक्कर की मुखश्री जाती रही। ऐसा लगा कि वह विचार कर रहा है कि उसे गुस्सा होना चाहिए या नहीं। सब लोग उत्सुकता से उसे देख रहे थे। जोसेफ के हिसाब से यह उसका सत्रहवाँ प्रेम-व्यापार था। लेकिन निश्चित रूप से जानने के लिए अधिकृत घोषणा की आवश्यकता थी।

"क्या तुम मुझे बेवकूफ बना रहे हो?" पणिक्कर ने कहा।

"नहीं, नहीं, मैं बड़ी गम्भीरता से पूछ रहा हूँ" पणिक्कर चेहरे पर मूर्खता भरी हँसी लाकर बोला—"अब तो कई हो गये" पर इस बार भी मैं सीरियस रहा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र ने बड़े गौरव से कहा—"सारी दुनिया, शहर के इसी कोने में सीमित नहीं है। कितने ही शहर, कालेज, सड़कें, बस-स्टाप, थियेटर वगैरह, इस विशाल विश्व में हैं और क्या मालती ही 'ईव' (आदि नारी) की एकमात्र सन्तान विश्व में रह गई है?"

"हूँ" कहकर पणिक्कर ने फिर उसाँस ली।

फिर हमारी ओर देखकर चेतावनी के स्वर में बोला—यह बात उस कहानीकार के बच्चे से मत कहना।"

"नहीं कहेंगे।"

कहानीकार इस समय कमरे में सो रहा था।

एक छोटे से घर में एक दुनिया समाई थी, जिसके सदस्य कुल पाँच ही व्यक्ति हैं। कम्पनी में काम करनेवाला पी० के० आर० जी० पणिक्कर, पत्रकार और स्पोर्ट्समैन रामचन्द्र, पणिक्कर का शिष्य और सिनेमा के अभिनय करने का स्वप्न देखनेवाला कचहरी का एक बाबू जोसेफ और इसोनोफीमिया का रोगी एक कथाकार और फिर एक दरिद्र अध्यापक मैं।

पणिक्कर लॉज का संविधायक और हमारा अनभिषिक्त गुरु भी है। उसकी उम्र बताना कठिन है। लेकिन आप उनसे पूछें तो २८ ही बतायेंगे। लोग कहते हैं कि छः साल पहिले भी वे यही बताते थे। लेकिन अब जनता इसपर अविश्वास करने लगी थी। कारण यह था कि सिर का गंजापन बढ़ रहा था। पर इसका क्या महत्त्व। किन्तु पणिक्कर चुनौती देकर कहते हैं कि कौन है दुनिया में ऐसा मर्द, जिसकी चाँद में गंज नहीं होता और ऐसी स्त्री जो ईर्ष्यालु नहीं होती? लेकिन कथाकार इस पर भी विश्वास नहीं करता। उसका कहना है कि बाल सिर के दोनों ओर होने चाहिए।

पणिक्कर कहानीकार को छोड़कर सबसे सौहार्द रखता है। उसकी दिन-चर्या बड़ी नियमित है। तड़के उठते हैं। हमारे उठते-उठते नहाकर, काफी आदि पीकर और तैयार होकर कम्बल के भीतर लिपटे कलाकार को फटकार बताते हैं। दूसरा कार्यक्रम उनका सड़क के सामने की छोटी दीवार पर बैठकर उस पर गुजरनेवालों का ठीक-ठीक हिसाब-किताब रखना। कालेज जानेवाले कितने हैं, कामकाजी कितने हैं, बेकार कितने हैं। किनका भविष्य अच्छा उज्ज्वल है।

आफिस से भी जल्दी भाग आते हैं। मुँह-हाथ धोकर, चमचमाता बुशर्ट और पतलून पहिनकर फिर निकल पड़ते हैं। 'ईवनिंग इन पेरिस' 'कर्डले' और सिगरेट की महक सारे शहर में प्रसारित करते हुए एक बार शहर में घूमेंगे। उनके दोस्त सभी जगह हैं और दुश्मन कम। और इस तालिका में कलाकार का स्थान प्रमुख है।

पत्रकार रामचन्द्र दूसरा नेता है, वह एक सम्मानित पुरुष है। तात्पर्य यह कि दूसरों को अपने बारे में सही समझना चाहता है। उसकी जिन्दगी भी बड़ी नियमित है। उसके अपने कुछ सिद्धान्त हैं, जैसे शरीफों को दिन में केवल दो सिगरेट पीना चाहिए। वह स्वयं ऐसा [illegible] करता है। एक दो दोष उनमें हैं। वह यह कि काम करते थकने पर आफिस के बरामदे में खड़े होकर बस स्टा की ओर देखते हैं। पर सोचिए तो यह भी कुछ बुरा नहीं है क्योंकि वह भी नियमित है। इनसे तीन बार ही यह होता है। यदि आप पूछें कि किसी और समय मानसिक संतुलन बिगड़ने पर क्या करेंगे, तो इसकी भी एक विधि है, एक कागज काटनेवाला चाकू। यह कागज काटनेवाला चाकू कोई अधिक तेज धार का नहीं है। वह तो प्लास्टिक की बनी छोटी सी सुन्दरी की प्रतिमा का रूप है। ऐसी सुन्दरी की, जो स्नान करके निकल रही है। उसके समीप पहुँचते ही हमें पता लग गया कि पत्रकार आज विषाद मग्न था। उसे प्रेरणा की आवश्यकता थी।

शाम को लॉज में लौट आने पर पत्रकार आधे घंटे लेक्चर झाड़ते। प्रधान विषय एक ही होता—आफिस में बोर करनेवाले साथी या होनेवाली शादी के बारे में दिल खोल बातचीत। एक तामिल पत्र में व्यतीत [illegible] जीवन के संस्मरण, और अगर वह विषय....., पर बात आ जाय तो वह अत्यधिक उत्तेजित हो उठते। टेस्ट मैच में इंडिया की हार, या ओलम्पिक में खिलाड़ियों के चुनाव में पक्षपात की बात पर उनका रोष एकदम उमड़ पड़ता।

पी० के० आर० जी० पणिक्कर आफिस की बात कभी नहीं चलाते थे। पिछले साल २७ फरवरी तक वे आफिस का ध्यान रखते थे। इसके बाद आफिस में आग लग जाने की खबर पाने पर भी वे निष्क्रिय रहते थे। वह दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण था। उस दिन दफ्तर की टाइपिस्ट मधुर मन्दहासिनी का तबादला हो गया था। वे सड़क के वृक्षों और घटनाओं की अक्सर चर्चा करते। वह भी साहित्यिक भाषा में एक बड़े लौहद्वार के अन्दर किस प्रकार एक कमलपुष्प खिला और पीत-परिधान के अन्दर से किस प्रकार दो भौंरे निकले थे। यह देखने के लिए वे कैसे परेशान हुए थे। प्रेम और नैराश्य, बिना लोभ के लगातार चल रहा था।

कहानीकार का किसी से झगड़ा नहीं था। उसकी सबसे दोस्ती थी। पी० के० आर० जी० पणिक्कर से अवश्य ही उसकी पटरी नहीं बैठती थी, जो उसे अपना दुश्मन समझते थे। कारण गत मास की एक घटना थी।

आचार्य और शिष्य दोनों ने मिलकर उसका प्रबन्ध किया था। बात छोटी ही थी, कलाकार की एक प्रेम-घटना को लेकर बात थी। एक बार जब वह घर में नहीं था तो मि० पणिक्कर ने, जो बड़े धीर प्रकृति के थे, उसके बक्स की निगरानी करते हुए, उसमें पाये १६ प्रेम कहानियों के (उस दिन के हिसाब से) पत्रक। पी० के० आर० जी० पणिक्कर का मस्तिष्क गर्त में जा पड़ा। शिष्य भी निढाल पड़ गया।

बक्स में पुस्तकें तथा अखबार इधर-उधर अस्त-व्यस्त रूप में भरे थे। और साथ में ३ सुन्दर रूमाल के। उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेल-बूटे कढ़े थे। और सुन्दर अक्षरों में लिखा था! 'Forget me not' रूमाल के छोर पर काले धागे से 'शादी' 'शारदा का संक्षिप्त' कढ़ा था।

अनेक प्रेम-पत्र थे, जो बंडलों में बँधे थे। आचार्य ने एक को उठाकर देखा। शिष्य ने पढ़ा—"मेरे दिल के सरताज"।

'एक साहित्य यह भी था!'

"अजीब आदमी है, यह भी।

पी० के० आर० जी० पणिक्कर को यह सब अच्छा न लगा। कथाकार के प्रेमी रूप को वे पसन्द न कर सके। दिन भर कुर्सी पर बैठकर बीड़ी पीते हुए, आँखें बन्द करके, सपना देखनेवाला भी किसी लड़की के हृदय का मालिक हो सकता है, वह उसकी प्रतीक्षा किया करती है, पणिक्कर को इसकी प्रतीति नहीं होती थी।

"यह बहुत बुरा हुआ।"

"क्या इसे भी कोई प्यार कर सकता है?" वह मुझसे पूछ रहा था।

मैंने अपनी शरीररक्षा का ध्यान रखते हुए, कहा, मालूम नहीं, फिर इन सबको देखते हुए तो ऐसा ही लगता है।

पणिक्कर ने कहा, इसकी भी कोई 'पर्सनेलिटी' (व्यक्तित्व) है? बदन देखो, किसीको भला रुचेगा? मैं जो इतना अल्पवयस्क हूँ, मुझे जो मिलता है, क्या उतना उसे मिलता भी है? अगर इस लड़की के घरवाले यह जान जावें तो उस जैसे आदमी को भला लड़की देने को राजी होंगे?

"नहीं, पणिक्कर साहब, कतई नहीं," हम लोगों में से किसी के ये शब्द नहीं थे, आसमान से जैसे अचानक गिरा हो, कलाकार हमारे सामने खड़ा था। पणिक्कर बहुत परेशान हो उठे। कलाकार ने तीखी नजरों से उसे देखा। और कहा, "तुम दूसरों के मामलों में मत पड़ा करो। मैं अपनी योग्यताओं को लेकर तुम्हारी बहिन ब्याहने नहीं आया, याद रखना।"

पणिक्कर चुप रहा। बात ठीक निशाने पर बैठी थी। उसकी बोलती बन्द हो गयी। जोसेफ मेज के पास जाकर जिल्द बँधी सेक्स्टनब्लेक की पुस्तकें उलटने लगा। जैसे इस व्यापार में उसका कोई हाथ न हो। कथाकार अपने खुले हुए बक्स को अच्छी तरह देख रहा था। उसने फिर कहा—'समझ लेना, मेरी योग्यता और सौन्दर्य को परखने वाले बाबू।'

पत्रकार और मैं सोच रहा था, कि कुछ मारपीट अवश्य होगी। पर ऐसा कुछ न हुआ। पणिक्कर निस्सहाय बना खड़ा था। वह कांड वैसे ही समाप्त हो गया। उसके बाद पणिक्कर के प्रधान दुश्मनों में कथाकार की गिनती होने लगी।

पिछले दिन शोकाकुल निस्तब्ध पणिक्कर को रामचन्द्र ने उपदेश दिया—"इस बात में थोड़ी-सी श्रद्धा रखनी चाहिए। विजय तो निश्चय ही मिलेगी।" पणिक्कर को मालूम था कि रामचन्द्र ने प्रायोगिक रूप के बारे में विश्व-विख्यात तीन वैज्ञानिकों के द्वारा लिखित एक लेख पढ़ा है, इससे इन्हें उनकी बात पर विश्वास हो गया।

रामचन्द्र ने फिर कहा, कथाकार किस प्रकार इस प्रेम-व्यापार में विजय प्राप्त कर सका। "इस पर जरा विचार कीजिए। उसके पास आकर्षण ही क्या है? न तो पैसे ही हैं और न कोई ऐसा आकर्षण ही व्यक्तित्व में है" पणिक्कर ने बीच ही में पूछा—"क्या उसके पास साहित्य नहीं है?"

"अरे जाओ, रहने दो, अपना साहित्य, साहित्यकारों का क्या मूल्य? महान् चित्रकारों से पूछो, वे इन लोगों के बारे में जो बात कहते हैं, उसे सुनना चाहिये।"

"फिर भी"

"आज कौन साहित्यकार नहीं है? तुम भी साहित्यकार हो, सिर्फ लिखते नहीं, तुम न लिखनेवाले साहित्यकार हो।"

"पणिक्कर इस बात को मान गया।"

"तो कलाकार की विजय किसी महान् कृतित्व से नहीं। एक वस्तु उसने देखी थी और उसने उसे पकड़ लिया। कोई भी ऐसा न होगा जो कुछ समय के बाद उससे सहानुभूति न करने लगे और यही बाद में प्रेम बन जाती है।"

रामचन्द्र ने अन्त में साररूप में कहा, "तो मैं कह रहा था कि तुम अपनी श्रद्धा एक विन्दु में केन्द्रित करो। बिना किसी प्रकार उससे हटते हुए।"

पणिक्कर को अपने साथी की बात से बड़ा आश्वासन मिला। उसके कहने में बड़ा प्रभाव था। इसीके अनुसार दूसरा युग प्रारम्भ होता है, पहिले और आखिरी सत्य प्रेम की तीर्थयात्रा शुरू हुई। प्यासी आँखों और दिल को संजोकर वह चला। अन्त में एक सुप्रभात में उसे अभिलषित अज्ञात नायिका के दर्शन हुए।

"बस स्टाप पर वह खड़ी थी"

"अकेली?"

पणिक्कर के पास उसके वर्णन के लिए शब्द न थे।

यथार्थ प्रेम का ऐसा कलाशिल्पी जो उसे लेकर इस प्रकार चला हो, जैसे जीसस क्रॉस लेकर चले थे—शायद उसका वर्णन कर सके। लेकिन कलाकार को उन्होंने चेतावनी दी—"तुम उसको कभी नहीं मिलोगे।" न उससे बोलना, न पीछा करना। शिष्य ने शारीरिक और आर्थिक सहायता के लिए और पत्रकार ने नैतिक बल देने का आश्वासन दिया।'

"शिक्षक क्या करेगा?" जोसेफ ने पूछा।

"उन्हें भी एक कार्य बताया है।" पणिक्कर ने कहा।

"तो आप गुरु की शादी में पंडित का कार्य करेंगे?" जोसेफ ने अनुमान किया।

पणिक्कर को लगा कि इस बार जरूर कुछ आशा है। नित्य ठीक समय पर वे बस स्टाप पर पहुँच जाते, देखते रहते, एक दो बार मुस्कराहट का उत्तर भी मिला—'क्या वह भी मुस्कराई?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ" उपन्यासकार जो बोलती आँखों का वर्णन कर सके, यही कहेगा कि वह भी प्रेम के रंग में रँग गयी होगी। खुलकर सब ने कुछ कहने के अवसर की प्रतीक्षा की—

"लेकिन"

"या खुदा! मैं इसका बदला अवश्य लूँगा।"

पणिक्कर को इस बात का अचानक पता लगा कि उसकी शादी तय हो गयी है। उसने उनका कुछ भी विचार न किया। सचमुच यह बड़ी लज्जा की बात थी। अतएव पणिक्कर विषाद में मग्न बैठे थे। जिन्दगी में कुछ सार न रह गया था। सब कुछ व्यर्थ-सा लगने लगा। उनका कहना था कि दुनिया माया है। सब कुछ मिथ्या है। पत्रकार की राय थी कि हमारे लॉज में एक व्यक्ति संन्यासी हो जायेगा।

छः दिन की तपस्या के बाद पणिक्कर को अचानक एक आशा की किरण दिखी। एक रविवार को सब लोग खाना खाकर बैठे थे तो एक नया आइडिया आया।

"अरे सुनो, गुरु को एक नया आइडिया आया है।"

"वह क्या?"

"बड़ी गोपनीय बात है। किसी से कहना नहीं," जोसेफ ने पूछा—

"बात क्या है?"

"विज्ञापन छपवानेवाला हूँ।"

"कैसा विज्ञापन।"

पणिक्कर ने कहा, "विज्ञापन विवाह संबंधी है, २८ साल उमर के एक पढ़े-लिखे और २०० रु० पानेवाले एक युवक को २८ साल तक की पढ़ी-लिखी सुन्दर युवती की आवश्यकता है, पूर्ण विवरण के लिए लिखिये।"

लोगों ने दो-तीन शंकाएँ प्रकट कीं। प्रथम तो उम्र २८ साल की, बात झूठ है, पत्रकार ने इसका तीव्र विरोध किया। दूसरी बात यह कि लोग जान जायँगे—"इसके बारे में हमने खूब सोच लिया है। विज्ञापन में तो केवल पो० बाक्स का नम्बर रहेगा और किसीको पता भी नहीं चलेगा। पणिक्कर ने स्पष्ट किया। "यह सूचना देने का विचार कैसे उत्पन्न हुआ?" हमने पूछा। इसका उन्होंने पूर्ण विवरण सुनाया। आजकल वरों की कमी है, कोई सुन्दर और सुयोग्य वर बाजार में मिलता नहीं, और यदि लोग जान जायेंगे तो प्रार्थना पत्र तो आगे-आगे आयेंगे। उनको सभी पढ़ सकते हैं। उन लड़कियों के भी सीधे प्रार्थना-पत्र आ सकते हैं, जो अभी तक मुझे निरपेक्ष भाव से देखती रही हैं। इनमें से दो-एक से पत्र-व्यवहार भी किया जा सकता है। फोटो मँगाया जा सकता है और प्रेम भी कर सकते हैं। जब शादी की बात आयेगी तो फिर कुछ दिमाग लगाना पड़ेगा। एक दो हफ्तों में देखना कि मेरी कितनी माँग हो जाती है। रामचन्द्र ने कहा, कि कुछ तमाशा जरूर होगा। अपने गुरु की शक्ति और भावना की जोसेफ ने जयजयकार की।

एक ने मुझसे पूछा—"शिक्षक महोदय की क्या राय है?"

मैं इस सबके विरुद्ध था। किन्तु मुझमें इन लोगों से बहस करने की शक्ति न थी। मैंने कहा—"मुझे इन बातों का अनुभव नहीं है। मैं क्या राय दे सकता हूँ।"

पणिक्कर ने बड़प्पन और सहानुभूति के साथ मुझे देखकर मुस्करा दिया। उस समय बगल के कमरे का कलाकार दरवाजे पर आया। उसके हाथ में अपना पानी पेय गिलास भर ठंडा पानी था।

"क्या तुम पागल हो गये हो?" कलाकार ने पूछा।

"क्यों"

तमाशे की भी एक हद होती है, "यह तो नीचता है। तुम लोगों की भावनाओं से खेल रहे हो।"

पणिक्कर इस बात को सह न सके, बोले—मैं तुम्हारी राय नहीं माँगता। चुप रहो, कलाकार की शारीरिक स्थिति अच्छी न थी—इसी से वह अपने कमरे में चला गया। पणिक्कर ने मेज पर जाकर कागज और कलम निकाल कर विज्ञापन लिखा। उसके अक्षर गिने। आठ रुपये चार आने आये। फिर भी—

दूसरे दिन समाचार-पत्र में पणिक्कर की सूचना छपी। पोस्ट बा० नं० ४१२, एक दुलहिन की आवश्यकता है। पणिक्कर उसे अच्छी तरह पढ़कर कृतार्थ हो गये। कल वह घटना हुई। शाम को जब वे लौट आये थे, तब केवल पत्रकार और कलाकार मौजूद थे। भूखे होने पर भी दूसरे लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। नौ बजे पणिक्कर आये, साथ में शिष्य जोसेफ भी था।

"मास्टर साहब! आपने खाना खा लिया?"

"नहीं"

"जल्दी खाना खाओ, बाद में कुछ जरूरी काम करना है।"

"क्या तुम खाना नहीं खाओगे।"

"नहीं।"

जब वह पास आया तो उसके मुँह से गंदी बू आ रही थी। माथे पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं और आँखें लाल हो रही थीं।

"डरने की कोई बात नहीं, एक क्वार्टर ही पिया है फिनिश्ड"

जब हम लोग खाना खाके वहाँ आये तो पणिक्कर ने पूछा "आल आर प्रेजेन्ट।"

जोसेफ ने कहा—"कलाकार नहीं हैं।"

"उसको बुलाओ।"

कथाकार अपने पुराने रिकार्ड ढूँढ़ रहा था। जोसेफ गुरु की आज्ञा के अनुसार उसको खींच लाया।

पणिक्कर ने एक पैकेट बर्कले सिगरेट और एक डिबिया दियासलाई मेज पर रखी। बनियाइन के अन्दर से एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोटा-सा लिफाफा निकाल कर विजय-भाव से मुस्कराकर कहा, "आ गया बेटे!"

"क्या है?"

आठ रुपया चार आने बेकार नहीं गये। उन्होंने समाचार-पत्र के कार्यालय से मिला हुआ लिफाफा खोला। उसमें चिट्ठियों का एक बंडल था। उन्हें देखकर वे कह उठे, "माई गॉड! टैरिबल! टैरिबल!!"

बंडल खोला गया, ४१२ नं० के बक्स के आनेवाले पते पर, विवाह-संबंधी पत्रों का ढेर मेज के ऊपर लग गया। उन्हें देखकर पणिक्कर को जैसे नशा चढ़ गया हो।

"जोसेफ! तुम पढ़ो"

शिष्य मेज के पास आ बैठा।

कथाकार दीवाल से लगकर खड़ा था। उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी, जो वर्णनातीत थी।

"पढ़ो"

जोसेफ पहिली चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगा। पेंशन पानेवाले एक अध्यापक का पत्र था। उसने अपने घर का हाल, पुराना प्रभाव और कुलीनता का विवरण दिया था—

"मेरी चौथी लड़की सयानी हो गयी है। वह २१ साल की है, देखने में कोई खराब नहीं। घर का काम-काज, सिलाई, आदि में चतुर है, अगर आपको पसन्द हो तो हम मिलें और बात तय कर दी जाये।

"अच्छा! अच्छा!! २१—कोई डिफेक्ट नहीं, सिलाई वगैरह जानती है, "नेक्स्ट"।

जोसेफ ने दूसरी चिट्ठी उठाई—वह एक बी० ए० पास लड़की के लिए उसके भाई की प्रार्थनी थी।

"वह यदि खुद लिखती तो उस पर कुछ विचार भी करता", कहकर पणिक्कर जोर से हँसे।

जोसेफ ने तीसरा पत्र उठाया, '३३ जासूसी उपन्यास के एक लेखक और साहि त्यकार की अपनी आखिरी लड़की के लिए प्रार्थना थी।

चिट्ठियाँ एक-एक करके पढ़ी जा रहीं थीं। जब विवरण पढ़ा जाता तो पणिक्कर जोर से पागलों की-सी हँसी हँसता था। कभी-कभी चिल्ला उठता था। आँखों में लाली और नशा बढ़ रहा था। गानेवाले, नाचनेवाले, काम करनेवाले, क्यू लम्बा होता जा रहा था।

ग्यारहवाँ पत्र, वह एक स्त्री का था, लिखनेवाली स्त्री है, यह सुनते ही पणिक्कर की आँखें खुल गयीं। लेकिन जब पढ़ने लगा तो मालूम हुआ कि वह अपनी बहिन के लिए लिख रही है जो अध्यापिका थीं।

"नान्सेंस," कहकर उसने अपनी सिगरेट फेंक दी और दूसरी जलायी।

जोसेफ १२वीं चिट्ठी पढ़ने लगा—

"इस पत्र के पानेवाले को मैं नहीं जानती, अतः खुलकर नहीं लिख सकती।" पत्रकार बोला, यह बुद्धिमान् मालूम होती है।

जोसेफ अगला पत्र पढ़ने लगा—

हम लोग पुराने खानदान के हैं, किसी प्रकार गुजारे के लिए कुछ जायदाद है। हमारी एक ही बेटी है, उसीके लिए लिख रहा हूँ।

"एक बेटी!" हुर्रे!! यही तो चाहिये।

"इनकिलाब—जिन्दाबाद! आगे बढ़ो।"

"उम्र २३ वर्ष है।"

"२३ वर्ष, तब तो ठीक है।"

"रंग थोड़ा साँवला है, पर देखने में बहुत सौभाग्यशालिनी है। दसवें दर्जे तक पढ़ी है। अगर पसंद हो तो कुंडली भेज सकता हूँ—अगर कोई आपके लड़की हो तो उसके भाई को दे सकते हैं। बड़ा भाई मेरा बड़ा लड़का अभी अविवाहित है। वह एक कम्पनी में काम करता है।"

पणिक्कर सचेत होकर सीधे बैठ गये "इसको छोड़ना नहीं चाहिए। मेरी कम्पनी के ही किसी कर्मचारी की बहिन मालूम होती है, पता तो पढ़ो, जोसेफ ने पता पढ़ा, के० राघवन नायर, कारपुरत हाउस, पो० भड्डिरूर, गया।

पणिक्कर की हँसी अचानक रुक गयी, उसकी शराबी आँखें तेजी से चमकने लगीं। सारा शरीर सकुंचित सा होने लगा। उसका चेहरा पीला पड़ गया। वह उठकर खड़ा हो गया।

जोसेफ ने पूछा—"गुरु यह क्या अनुपयुक्त है?"

पणिक्कर कुछ बोला नहीं, वह जोर-जोर से साँस ले रहा था। मेज के सहारे खड़ा होकर वह प्रेत जैसा लग रहा था।

जोसेफ ने पूछा, क्या शादी के लिए तैयार हो—

"बन्द करो यह सब! वह चिल्ला उठा, उसके मुख पर पैचाशिक भाव था। वह सब चिट्ठियों को फाड़-फाड़ कर फेंकने लगा और धीरे से बोला "वह मेरे....पिता.... का...पत्र....था।"

सारा वातावरण अचानक भारी हो उठा, जैसे फूट पड़ना चाहता हो। सब स्तब्ध थे....निः शब्द....कोई किसी से बोलने का साहस न कर पा रहा था। कथाकार ने एक गहरी साँस ली! मेज के किनारे खड़े पणिक्कर को बिना सिर उठाये ही कनखियों से देखा। उसकी आँखें सजल हो रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खनवाहाँ

मू० ले०--सुश्री कलाप्रकाश
अनु०--श्रीमती बेनी जोशी

ज्योंही गाड़ी बम्बई सेन्ट्रल से बाहर हुई अष्टवर्षीय हरीश की खुशी और उल्लास की जैसे कोई सीमा नहीं थी, डिब्बे से बाहर मुँह निकालकर उसने कुछ निहारा और फिर अन्दर खींचकर प्रश्न कर बैठा--'हम कहाँ जा रहे हैं ?'

उसे पीछे की ओर करके मैं कह बैठी "खनवाहाँ"।

"नहीं, नहीं, ममी तो कहती हैं कि हम 'अहदामाबाद जा रहे हैं।

मेरे माता-पिता दोनों हँस पड़े। हँसते-हँसते माँ ने बताया कि छोटा हरीश बार-बार सिखाने पर भी 'अहमदाबाद' को 'अहदामाबाद' बताता है।

हरीश ने गंभीरता से प्रतिवाद किया--लेकिन कली कहती हैं कि हम खनवाहाँ जा रहे हैं।

मेरे दूसरे भाई पामा ने उसका हाथ पकड़कर समझाया--देखो, सच तो यह है कि हम अहमदाबाद ही जा रहे हैं पर कली और मैं उसे अहमदाबाद की जगह खनवाहाँ कहना अधिक पसंद करते हैं। खनवाहाँ अपने प्यारे सिंध के गाँव का नाम है। तुम्हीं बताओ कि तुम कौन-सा नाम पसंद करोगे अहमदाबाद अथवा खनवाहाँ' ?

'खनवाहाँ' तुरंत हरीश ने उत्तर दिया।

'तो फिर अहमदाबाद की जगह खनवाहाँ ही कहना, है न ?'

'ठीक है अब मैं खनवाहाँ ही कहूँगा' कहकर हरीश संतुष्ट हो गया मानो किसी उलझन को सुलझा लिया हो।

'अरे खनवाहाँ तो वह है ही' माँ ऊँची आवाज से कह उठी 'क्या हमारे अपने सभी अपने-विराने सगे-सम्बन्धी वहाँ नहीं बस गये हैं ?'

'इसीलिए तो हमने उसे खनवाहाँ कहना अधिक पसंद किया है।' मैंने कहा 'हमारी प्रिय चाची का परिवार, सीता का परिवार, मीरा का परिवार और गिरधारी का परिवार तो वहीं है। वहाँ कौन अपना नहीं है ?'

उपर्युक्त नाम लेने पर मेरे स्मृतिपट पर उपर्युक्त स्नेहियों के सरल चेहरे उभर आये। एक और प्राणी भी पंक्ति में उभरा। मध्यम वय का मैला-कुचैला काली सलवार पहने और कंधे पर लाल कम्बल डाले, आगे झुककर हमारा अभिनंदन करता हुआ 'शेख जुम्मन'। मुझे वह सुबह याद हो आया जब शेख जुम्मन हमें मेहराबपुर रेलवे स्टेशन से अपनी बैलगाड़ी से मेहराबपुर ले गया था। जैसे ही बैलगाड़ी चली थी, पिताजी ने पूछा था--'जुम्मन मियाँ, क्या तुम इतने तड़के सीधे खनवाहाँ से पहुँचे हो ?' तो स्नेह के दरिया में जैसे डूबकर जुम्मन बोल उठा था--'नहीं भैया, कल शाम मैं गाँव से कुछ आदमियों को लेकर रेलवे स्टेशन आया था। यहीं किसीने मुझसे कहा कि तुम लोग प्रातः की गाड़ी से आ रहे हो, अतः मैंने तुम लोगों को गाँव ले जाने की खुशी की खातिर रात स्टेशन पर ही व्यतीत करने का फैसला कर लिया।'

बैलगाड़ी मेहराबपुर की सरहद से निकलकर समतल चौड़े विशाल मैदानों में आ गयी थी। मेरे ग्रामीण भाइयों के दिलों की तरह चौड़े थे ये मैदान, जिन पर हरियाली की बहार थी, ऊँचे-ऊँचे दरख्त सिर उठाये खड़े थे, पक्षियों का कलरव एक अद्‌भुत संगीतमय सृष्टि का सर्जन कर रहा था। प्रातः का मंद समीर एक अवर्णनीय मस्ती प्रदान कर रहा था। कुछ समय के लिए हम सब खामोश हो गये थे। ज्योंही गाँव पास आया वैसे ही लगा कि हमारे हरे-भरे खेत हमारे स्वागत में झूम उठे हों। हमारे ग्रामीण भाई खेतों में काम कर रहे थे, कैसी आह्लादकारक और रोमांचपूर्ण थी वह घड़ी जब हम अपने गाँव में उतरे। बैलों की चाल कुछ धीमी पड़ी और उस पीपल के पेड़वाले रास्ते से गुजर कर बैलगाड़ी ने एक तंग रास्ते में प्रवेश किया। उस पीपल के नीचे मिट्टी के वे चिराग थे जिन्हें हमारे गाँव की महिलाएँ जलाया करती थीं, और जब बैलगाड़ी उस कुएँ के पास पहुँची तो याद आई वह पानवाली दूकान, जहाँसे हम खाने-पीने की वस्तुएँ ढूँढ़ते थे ..... एकाएक पामा ने मेरी चुन्नी खींची और पूछ बैठा, 'क्या तुम्हें वह बाग याद है जहाँ हम प्रातःकाल घूमने जाया करते थे ?' मेरा स्वप्न भंग हो गया। मैं फिर गाड़ी के डिब्बे में आ गयी।

'हाँ याद है' मैंने उत्तर दिया एक आह के साथ--'हाँ सच कितना बड़ा बाग था। एक बार हम लगभग उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंदर कैद भी हो गये थे, तब हमें कितने जोर की प्यास लगी थी?'

पामा स्मृति को कुरेदते हुए बोला--'और हम तब कहाँ गये थे पानी पीने?'

'सदोरा के यहाँ' याद आया। जिसका घर बाग के निकट ही था।

सचमुच, और तब हम लोगों को किस स्नेह के साथ वहाँ मक्खन और दूध दिया गया था पानी के बदले?

'और वे बहुत निर्धन थे बेचारे' मैंने पामा को याद दिलाई। हरीश ध्यान से सब कुछ सुन रहा था। पामा बोला--'और कली, क्या तुम्हें वे मीठी बेरियाँ, लाल गुलाब और मीठे आम याद हैं?'

'क्यों नहीं?' मैं हँसकर बोली 'क्या मैं भूल गयी जब हम ढेर सारे गुलाबों को लेकर लौटते थे घर में, गुलकंद बनाने के लिए?'

हम सब हँस पड़े। 'गुलकंद?' हरीश तीव्र जिज्ञासा से पूछ बैठा 'तुम सब किस तरह गुलकंद को बनाते थे?' अपनी हँसी दबाकर पामा बोला--'बड़ी आसानी से, गुलाब के फूलों को घर लाकर आसानी से चोरी छिपे दालान में ले जाते थे वहाँ रखे बर्तनों के बड़े संदूक में से एक देगची निकालकर उसमें गुलाब की पंखुड़ियाँ, पानी और चीनी छोड़कर उसे बक्स में बन्द रख देते और शाम को गुलकंद तैयार मिलता? समझे, मीठा और खुशबूदार गुलकंद!'

पामा ने हरीश की ठोड़ी पकड़कर हँसाना चाहा पर वह गंभीर बना रहा, लगा कि जैसे वह भी उन बेरियों, आमों और दूध, मक्खन और गुलकंद की दुनिया में खोया हुआ है। गाड़ी बड़ी तेजी से अपने पथ पर भागी जा रही थी, और हमारी स्मृतियाँ उसी तेजी से अतीत के सुनहले दिनों का पीछा कर रहीं थीं। कुछ समय पश्चात् मैं माँ से बोली--'माँ, दादा तो अवश्य उस शरणार्थी कैम्प से ऊब गये होंगे। वे तो वहाँ बड़ी घुटन महसूस कर रहे होंगे। गाँव में तो वे बड़ी विशाल धरमशाला में रहते थे न?'

पामा ने माँ से प्रश्न किया कि 'अपने बड़े घर के रहते हुए भी दादा धरमशाला में क्यों रहते थे?'

पिताजी ने इसका समाधान करते हुए समझाया कि दादा चूँकि ग्रामप्रधान थे, अतः गाँव की पंचायती बड़ी इमारत, जहाँ गाँव के शादी-ब्याह, तीज-त्योहार पूर्ण होते थे, उनके संरक्षण में थी। बिना उनके गाँव का कोई कार्य पूर्ण नहीं होता था। अतः उनका डेरा उसी इमारत में, जिसका नाम 'धरमशाला' पड़ गया था, पड़ा रहता था। एक तरह से वहीं उनका घर था।

इसके बाद माँ बोली--'वे तो वहाँ के बादशाह थे, बादशाह! लोगबाग हरदम उनकी खुशामद करते रहते थे, वहीं उनकी कचहरी लगती थी। कचहरी समाप्त होने पर वे भंग का गिलास चढ़ाते थे और फिर शाही हुक्का ताजा होकर उनके पास पहुँचता। जो भी बच्चा उनके निकट जाता उसे वे एक पाई अवश्य देते, यह उनका नियम था।'

अपने बचपने के दिनों को याद करता हुआ पामा हरीश के पेट में गुदगुदी लगाता हुआ बोल उठा--'और दादा तुम्हें इस प्रकार गुदगुदी लगाकर चिल्लायेंगे.... गिड्.....गिड्, गिड्....गिड्।'

और हरीश हँस-हँसकर दोहरा हो गया।

अहमदाबाद स्टेशन पर गाड़ी रुकने पर हम हरभजन को खोजने लगे। शीघ्र ही उन्होंने हमको देख लिया। वे हमें लेने प्लेटफार्म पर आ गये थे। हरीश ने उन्हें न पहचानकर मुझसे पूछा--'ये कौन हैं?'

'हमारे चचेरे भैया हैं' मैंने उत्तर दिया।

हरभजन एक-एक कर हमसे मिले, प्रेम और स्नेह-भरे हृदय से। वे उलाहना दे रहे थे हमने इतने समय बाद उनसे भेंट की और यह भी उन्हें शिकायत थी कि हमने उन्हें इतने समय पश्चात् स्मरण किया। पिताजी तो उन्हें गले भेंटते वक्त रो पड़े। माँ ने बड़ी स्नेहसिक्त वाणी में कहा कि यदि इन भारी कमरतोड़ रेल-भाड़ों की दिक्कत न होती तो ऐसी देर क्यों होती?

जब हम सब कबीरनगर शरणार्थी कैम्प की तरफ चले तो मैंने रास्ते में हरभजन भैया से पूछा कि क्या उनके पास एक दालान भी है? तो वे हँस दिये। मैं पामा से बोली--'सुनो पामा, न तो दालान और न भेड़ें, भैय्या के यहाँ यह कुछ भी नहीं है।'

पामा शर्मीली-सी हँसी हँसा। हो सकता है उसे वे दिन याद आये हों जब हरभजन के पिता, हमारे चाचा, बकरियों को दुहते तो वह दुहते समय एक बड़ा गिलास वहीं पी जाते थे।

जब हम कबीरनगर कैम्प की बैरक के एक कमरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गये तो एक चारपाई पर दादा को पड़े हुए देखा। वे चुपचाप निश्चल, खटिया पर पड़े थे। उनकी आँखों की ज्योति अत्यन्त मद्धिम पड़ चुकी थी। वे अशक्त हो गये थे। अतः उठकर गाँव की तरह नहीं भेंट सके, न पुचकार सके। पामा दौड़कर दादा से चिपक गया और चिल्ला उठा—'बाबा'।

उन बूढ़े प्रेमालु दादा की हार्दिक भावना का क्या वर्णन किया जाय, जबकि भरे हृदय से अपने सूखे होंठों को फैलाकर मुस्काने का प्रयत्न करते हुए वे मद्धिम स्वर में बोले—'आह! आखिर आज मैं अपने बच्चों के मध्य में हूँ।' उन्होंने हमारे माथों को चूमा।

हरीश भी उनसे मिला, पर लगा उसे कुछ असंतोष है। कुछ समय पश्चात् फुसफुसाया—'न तो दादा ने पाई ही दी और न गिड्-गिड्....गिड्...गिड् गुदगुदी ही लगाई।' उनके अशक्त जराजीर्ण शरीर को देखकर जी न जाने कैसा हो गया। इसके बाद मैं अंदर चल दी, दूसरे कमरे में जहाँ चाची अपने कपड़ों को सँभाल कर रख रही थीं और चचेरी बहन बिंदरी खाना तैयार करने में मशगूल थी। हरभजन भैया की बहू अपने लड़के को कपड़े पहना रही थी। वे सब हमसे बड़े प्रेम से मिले पर फिर भी मैंने एक परिवर्तन महसूस किया। मैं चाहती थी कि चाची मुस्कराये गाँव की तरह जहाँसे उसके दो सामने के टूटे दाँत दिखाई दें, पर ऐसा न हो सका। भाभी शायद हमारे आने से पहले बच्चे को कपड़े पहनाते समय लोरी गा रही होंगी और लगा कि बिंदरी अपने में ही इतनी खोई थी कि खाना जलने की जलाँध पाकर ही चेतन हो सकी। इन सबके चेहरों की वह आभा कहाँ चली गयी, जो खनवाहाँ में विद्यमान थी! सब कुछ फीका, निस्तेज!

हम बैठकर बातें करने लगीं और हरीश हरभजन भैया के छोटे लड़के के साथ मशगूल हो गया। वह तब लौटा जब हम सब खा रही थीं। आते ही बोला—"मेरा भोजन कहाँ है?'

'अपने चाचा के साथ ही खा लो न' चाची बोली।

'नहीं मैं अलग ही लूँगा' उसने अकड़कर कहा।

'ठहर मेरे बच्चे, मैं अभी पामा से तुम्हारे लिए अलग प्लेट लाती हूँ।' कहकर चाची उठ गयी प्लेट के लिए।

चाची की बाहों से ज्योंही हरीश मुक्त हुआ वह रोता हुआ बाहर चला गया। मैंने जाकर घूरकर पूछा—'हरीश क्या बात है? क्यों रो रहे हो?'

हरीश सुबकते हुए बोला—'वे (चाची) मुझे खाना देने में इतनी देर क्यों कर रही हैं?'

'कोई खाली प्लेट जो नहीं है' या तो साथ खा लो या इन्तजार करो।,

हरीश गुर्राया, बोला—'वे उस सन्दूक से प्लेट क्यों नहीं ले आतीं?'

मैंने ताज्जुब से पूछा—'कौन-सा संदूक हरीश?'

'वही जो दालान में रखा है' उसने विश्वस्त भाव से कहा।

हम सब हँसे। चाची ने पड़ोस की एक बैरक से एक प्लेट लेकर हरीश को खाना परस दिया।

शाम को हम सब अपने गाँव के अन्य स्नेही जनों से जो कैम्प में थे, मिलने निकले, सदोरा भी उनमें थी। हम उसके यहाँ गये और चाय-वाय पी, हरीश चीख उठा—'क्यों तुम्हें तो दूध-मक्खन और हमें कोरी चाय?' मैंने उसके मुँह पर हाथ रख दिया।

दूसरे दिन प्रातः जैसे ही हरीश उठा तो कह बैठा—'आज तो बाग की सैर को चलेंगे।'

'किस बाग में?' मैंने पूछा।

'जहाँ से तुम गुलाब लाकर गुलकंद बनाती थी।'

'हरीश! सुनो, यहाँ कोई बाग-वाग नहीं है।'

हरीश गुस्से से जमीन पर पड़े एक रैकेट को ठुकराता हुआ बाहर जाने लगा। चाची ने उसे एक आना देना चाहा और पिताजी ने अपने साथ बाजार ले चलने का निमंत्रण दिया, पर उसने एक न सुनी, और जोर-जोर से रोना प्रारंभ कर दिया। बीच-बीच में बड़ी-बड़ी हिचकियाँ भी लेने लगा। जब वेग कुछ कम हुआ तो सुबक-सुबककर बोल उठा—'मुझे...बाग...में...ले....चलो....मैं....वहाँ.....गुलाब....आम.....और....बेरियाँ...चुनूँगा।'

माँ आगे न सुन सकीं, सिर पर चपत मारकर चिल्ला उठी—'गधे, क्या तुझे पता नहीं कि यह 'खनवाहाँ' नहीं अहमदाबाद है अहमदाबाद!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

अकबर सर्वस्व—द्वितीय भाग और चौथा भाग। प्रकाशक, अकबर मेमोरियल कमेटी, १ पोनप्पा रोड, इलाहाबाद। बड़ा आकार, सजिल्द। द्वितीय भाग की पृष्ठ-संख्या २३६, मूल्य साढ़े सात रुपये। चौथे भाग की पृष्ठ-संख्या १९६, मूल्य सात रुपये।

अकबर इलाहाबादी का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक युग में उत्तर भारत में इतना महान् व्यंग्यकार कोई नहीं हुआ। वैसे भी उर्दू काव्य-जगत् में उनका स्थान काफी ऊँचा है। उन्हें लोगों ने 'लस्सानुल् अस्र' (सामयिक कविता के आचार्य) की उपाधि से विभूषित किया था। उनके काव्य के छुट-पुट संग्रह कितने ही निकले हैं, किन्तु उनके काव्य का संपूर्ण संस्करण (कुल्लियात) हिंदी में नहीं निकला। उनका गांधीनामा अभी तक प्रकाशित ही नहीं हुआ था। उनका काव्य इतना बिखरा हुआ था कि उसका एकत्र करना कठिन था। इलाहाबाद की अकबर मेमोरियल कमेटी ने यह महत्त्व-पूर्ण कार्य अपने हाथ में लिया है। वह अकबर की सारी कृतियों को अकबर सर्वस्व (कुल्लियाते अकबर) के नाम से कई भागों में प्रकाशित कर रही है। दूसरे और चौथे भाग प्रकाशित हो गये हैं। देवनागरी संस्करण का नाम 'अकबर सर्वस्व' है। उनकी कविताएँ देवनागरी लिपि में छपी हैं और कठिन या हिंदी में अप्रचलित शब्दों के सरल हिंदी में अर्थ दे दिये गये हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन से अकबर की कविता के प्रेमियों को बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारी समझ से अकबर के शेरों में जो हिंदी के शब्द आये हैं उनकी अखरौटी हिंदी ढंग से नहीं, उर्दू ढंग से लिखनी चाहिए। उदाहरण के लिए—

न चंदा है, न बंदा है, फकत मगरिब का खंदा है
अगर चंद दिन यही हालत रही शेख व ब्राह्मण की।

यहाँ 'शेख व ब्राह्मण' के स्थान पर 'शेख-ओ-बिरह-मन' लिखना उपयुक्त है क्योंकि उर्दू में वह इसी ढंग से पढ़ा जायगा। देवनागरी लिपि में जो शब्द जैसे बोले जाते हों वैसे ही लिखे भी जाने चाहिए।

देवनागरी लिपि में अकबर सर्वस्व के प्रकाशन का आयोजन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हम चाहते हैं कि कमेटी इसे इस प्रकार प्रकाशित करे कि वह जनता को सुलभ हो।

लोक प्रशासन—श्री वेदप्रकाश सिंह। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। सजिल्द। पृष्ठ-संख्या ३९६+१६ मूल्य १० रुपये।

लोक प्रशासन (पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन) पर हिंदी में बहुत कम पुस्तकें हैं। स्वतंत्रता के पहिले प्रशासन में भारतवासियों का बहुत कम हाथ था। इसलिए उस समय वे लोक प्रशासन की सूक्ष्मताओं में रुचि नहीं लेते थे। विश्वविद्यालयों में सारी शिक्षा अँगरेजी में होती थी। इसलिए उनके लिए भी हिंदी में इस विषय की पुस्तकें अनावश्यक थीं। अधिकतर विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अब भी अँगरेजी है, पर अब अँगरेजी का स्तर इतना गिर गया है कि विद्यार्थियों को अँगरेजी पुस्तकें समझने में कठिनाई होती है। अब राजनीतिज्ञ भी थोड़ी-बहुत रुचि लोक प्रशासन में लेने लगे हैं। इसलिए अब हिंदी में ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन आरंभ हो गया है। यह पुस्तक राजनीति के स्नातकोत्तर (एम० ए० के) छात्रों के लिए लिखी गयी है। किन्तु यह इतने अच्छे ढंग से लिखी गयी है, और इसमें विषयों का विवेचन इतने सरल और स्पष्ट ढंग से किया गया है कि इस विषय की जानकारी की इच्छा रखने वाले साधारण पाठकों के लिए भी यह बहुत उपयोगी है। लोक प्रशासन के सभी अंगों पर इसमें विचार किया गया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का भी विवेचन किया गया है जैसे, लोक प्रशासन और दलीय-प्रशासन, निगम और आयोग आदि। पुस्तक उपयोगी है।

खत्री स्मारक ग्रंथ—सम्पादक श्री शिवपूजन सहाय और श्री नलिन विलोचन शर्मा। प्रकाशक, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना। सजिल्द, बड़ा आकार, मूल्य ५ रुपये।

अयोध्याप्रसाद खत्री बिहार के एक उत्साही हिंदी कार्यकर्ता थे। वे खड़ी बोली के प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका कार्य और जीवन महत्त्व-पूर्ण है। इस ग्रंथ में उनकी कृतियों का सुसम्पादित संकलन है और उनके जीवन और कार्य का प्रेरक विवरण है। खत्रीजी के संबंध में हिंदी विद्वानों की सम्मतियाँ भी दी गयी हैं। आधुनिक हिंदी के इतिहास में रुचि लेने वालों के लिए यह बड़ी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। खत्रीजी के लेख पाठकों को सुलभ नहीं थे। उनको एकत्र और प्रकाशित करके परिषद् ने बड़ा उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

सदल मिश्र ग्रंथावली—सम्पादक, श्री नलिन-विलोचन शर्मा। प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। बड़ा आकार, सजिल्द, मूल्य ५ रुपये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिंदी गद्य के आरंभिक निर्माताओं में सदल मिश्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे फोर्ट विलियम कालिज में डा० गिलक्राइस्ट के साथ काम करते थे और उस आरंभिक युग में लल्लूजी लाल के साथ उन्होंने हिंदी ग्रंथ प्रणयन में सहयोग दिया था। उनका नासिकेतोपाख्यान आरंभिक हिंदी के नमूने की तरह पढ़ाया जाता है। किन्तु उनकी कृतियाँ अब अप्राप्य थीं। इस ग्रंथ में इस आख्यान के अतिरिक्त उनका वृहद् गद्य ग्रंथ 'अध्यात्म रामायण' भी प्रकाशित किया गया है जो पाठकों को अभी तक दुर्लभ था। सम्पादन बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। आरंभ में विद्वान् सम्पादक ने सदल मिश्र के जीवन वृत्त को देकर तत्कालीन साहित्यिक स्थिति तथा उनके जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। पुस्तक बड़े ऐतिहासिक महत्त्व की है और यह हिंदी के इतिहास में रुचि रखनेवालों के बड़े काम की है। सदल मिश्र बिहारी थे। अतएव बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने इसे प्रकाशित कर एक पुराने बिहारी हिंदी-सेवी की स्मृति-रक्षा करने का स्तुत्य कार्य किया है।

गोस्वामी तुलसीदास—स्व० शिवनंदन सहाय। प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। बड़ा आकार, सजिल्द। मूल्य, साढ़े पाँच रुपये।

बा० शिवनंदन सहाय भारतेन्दु युग के बिहार के अनन्य हिंदी सेवकों में थे। उन्होंने उस युग में १६ पुस्तकें लिखी थीं। यदि कहा जाय कि वे हिंदी के पहिले जीवन-चरित लेखक थे, तो अत्युक्ति न होगी। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, सीतारामशरण, भगवानप्रसादजी, बा० साहिबप्रसाद सिंह, श्री गौरांग महाप्रभु, और सिख गुरुओं के जीवन-चरित्र लिखे थे। उनका लिखा भारतेन्दु का जीवन-चरित्र बड़ा विशाल और सर्वांगपूर्ण ग्रंथ था जिसका आज भी महत्त्व है। प्रस्तुत ग्रंथ हिंदी में गोस्वामी तुलसीदासजी के ऊपर पहिला ग्रंथ है। यह बड़े आकार के ३५१ पृष्ठों में है। बिना किसी पूर्व कृति के आधार के, उन्होंने गोस्वामीजी पर यह ग्रंथ लिखा और, यद्यपि तब से बहुत कुछ शोध कार्य हो चुका है, वह इतना गंभीर और विद्वत्तापूर्ण है कि आज भी उसका महत्त्व कम नहीं हुआ। बहुत दिनों से यह ग्रंथ अप्राप्य था। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने इसका सुसंपादित संस्करण निकालकर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। इसका संपादन और भूमिका लेखन स्व० श्री नलिनविलोचन शर्मा ने किया था। भूमिका बड़ी विद्वत्तापूर्ण है और उसमें शिवनंदनसहायजी का जीवन वृत्त भी संक्षेप में दिया गया है। यह पुस्तक हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में है और तुलसी के प्रेमियों को अवश्य पढ़नी चाहिए।

वेणु शिल्प—श्री उपेन्द्र महारथी। प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। बड़ा आकार, सजिल्द और सचित्र। मूल्य, ११ रुपये।

बाँस भारत में बहुतायत से मिलता है और इससे तरह-तरह की उपयोगी या कलापूर्ण वस्तुएँ बनायी जाती हैं। भारत ही नहीं, बर्मा आदि देशों में भी इसका उपयोग किया जाता है। बिहार सरकार ने पटना में हस्तशिल्प अनुसंधान संस्थान स्थापित कर रखा है। उसके निदेशक प्रसिद्ध कलाकार श्री उपेन्द्र महारथी हैं। उन्होंने जापान जाकर इस काम का विशेष अध्ययन किया था। इस अत्यंत उपयोगी पुस्तक में उन्होंने बाँस के शिल्प के संबंध में सभी प्रकार की जानकारी दी है। इस पुस्तक को पढ़कर आश्चर्य होता है कि बाँस से कितनी प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनायी जाती हैं, और उससे बनी कला-कृतियाँ कितनी सुंदर होती हैं। पुस्तक में २८ पृष्ठ आर्टपेपर पर छपे चित्र हैं, और इनके अतिरिक्त २१६ रेखाचित्र हैं। कितनी ही वस्तुओं को बनाने का ऐसा सचित्र विवरण दिया है कि जो लोग बाँस का काम करना चाहें उन्हें इस पुस्तक की सहायता से कितनी ही प्रकार की सुंदर और उपयोगी वस्तुएँ बनाना सरलता से आ जायगा। हिंदी में यह पुस्तक अपने विषय की सर्वप्रथम ही नहीं, अत्यंत उत्कृष्ट और उपयोगी है। जिन विद्यालयों में हस्तशिल्प सिखलाया जाता है, उनके बड़े काम की है। कितने ही नगरों में बाँस का काम होता है, पर पुराने ढंग से। यदि नगरपालिकाएँ या उद्योगविभाग उन लोगों को इस पुस्तक का परिचय करा दें तो वे अधिक अच्छे शिल्पी होकर अधिक कमा सकेंगे। हिंदी में शिल्प की इस प्रकार की व्यावहारिक पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। अन्य शिल्पों के ऊपर पुस्तकें लिखने के लिए यह पुस्तक आदर्श का काम करेगी।

रंगनाथ रामायण—अनुवादक, श्री ए० सी० कामाक्षी राव। प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य, साढ़े छः रुपये।

तेलुगु भाषा में अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ महाभारत और श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखे गये, किंतु भगवान् राम के चरित्र पर भी भास्कर रामायण और रंगनाथ रामायण नाम के दो काव्य रचे गये और इनका पर्याप्त आदर भी हुआ। रंगनाथ रामायण की रचना तेरहवीं शती में आंध्रदेश के वूदनगर के एक मांडलिक राजा के राजकुमार गोनबुद्ध राजा ने की। इस ग्रंथ की कथा मूलरूप से वाल्मीक रामायण पर आधारित है। किंतु न तो यह उसका अनुवाद है और न इसमें वाल्मीक का ही पूरा-पूरा अनुसरण है। इसमें कितनी ही ऐसी कथाएँ भी सम्मिलित हैं जिनकी चर्चा वाल्मीक ने नहीं की। संभवतः वे लोक में प्रचलित थीं। तुलसीदास ने भी अपनी रामायण में पूरी तरह से वाल्मीक का अनुसरण नहीं किया। यह रंगनाथ रामायण आकार में तुलसीकृत रामायण के लगभग ही है। यह अत्यंत कवित्वपूर्ण है और साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की है। किंतु यह कोरा काव्य नहीं है। तुलसी की तरह एक निष्ठावान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामभक्त की कृति है। रामायण, महाभारत, श्रीमद्-भागवत ने प्राचीन काल में सारे भारतवासियों के हृदयों को समान भावों से स्पंदित करके उनका जीवन, लोक और परलोक संबंधी दृष्टिकोण एक करके उस अंतर्निहित भावनात्मक एकता को दृढ़ रूप से स्थापित किया जिसके कारण अनेक होकर भी हम एक बने रहे। तमिल की कम्बन की रामायण और तेलुगु की रंगनाथ रामायण, बंगला की कृत्तिवास रामायण और हिंदी की तुलसीकृत रामायण ने संस्कृत के महान् ग्रंथों के कार्य को जनता की भाषाओं के द्वारा जारी रखा। अतएव रंगनाथ रामायण भारत की एकता की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसका गद्यानुवाद श्री कामाक्षिराव ने किया है जो तेलुगु-भाषी हैं किंतु हिंदी पर उनका बहुत अच्छा अधिकार है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से हिंदीभाषियों को रंगनाथ रामायण का परिचय प्राप्त होगा और इस सुंदर महाकाव्य के सौंदर्य और भावप्रवणता से वे अवश्य प्रभावित होंगे। इस ग्रंथरत्न का हिंदी में अनुवाद होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अनुवाद की भाषा प्रांजल है और उसमें इतनी गति है कि वह अनुवाद नहीं मालूम होती। केवल रामभक्तों को ही नहीं, भाषा-प्रेमियों और साहित्य-प्रेमियों को भी इस अमूल्य ग्रंथ को पढ़ना चाहिए।

व्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प—डा० सावित्री सिन्हा। प्रकाशक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य, बीस रुपये।

यह लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में डी० लिट० के लिए प्रस्तुत और स्वीकृत अधिनिबंध है। अधिनिबंध बड़े परिश्रम से तैयार किया गया है। कृष्ण-संबंधी व्रजकाव्य का अध्ययन साधारणरूप से भक्ति-काव्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। इसमें साहित्य की दृष्टि से उसका अध्ययन किया गया है। इस अधिनिबंध में वह अध्ययन अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से, केवल अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से किया गया है। किंतु यह समझ में नहीं आया कि अभिव्यंजना-शिल्प के अध्ययन में कृष्ण-लीला-संबंधी चित्रों के ऊपर एक लम्बे अध्याय की क्या संगति है। इसी प्रकार सप्तम अध्याय में इन कवियों की कृतियों का जो वर्णन है, उससे "अभिव्यंजना-शिल्प" का क्या संबंध है? अधिनिबंध के मुद्रण में व्रजभाषा छंदों का पाठ शुद्ध होना चाहिए। कहीं-कहीं उनके छापने में असावधानी की गयी है। उदाहरण के लिए पृष्ठ १११ पर रसखान का एक प्रसिद्ध छंद इस प्रकार छपा है:

× × ×

बंसी बजावत आनि बढ़ो
सो गली में अली कछु टोना सों डारै।
हेरि चितै तिरछी करि दृष्टि
चलो गयो मोहन मूठि सी मारै।
ताही घरी सो परी धरी सेज पे
प्यारी न बोलत प्रानहूँ वारे।
राधिका जी हैं तो जीहैं सबै
न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारे।

कोई भी पंक्ति शुद्ध रूप से नहीं छपी। क्या रसखान ने दूसरी पंक्ति में 'दृष्टि' शब्द का प्रयोग किया था? या वे अपनी सरस कविता में उसका प्रयोग करते? तीसरी पंक्ति में 'सों' के लिए 'सो', 'पै' के लिए 'पे' और "वारैं" के लिए 'वारे' छापना तो व्रजभाषा और रसखान दोनों पर अत्याचार है। हम पहिली और चौथी पंक्तियों की त्रुटियाँ बताने का कष्ट नहीं करते। इसी प्रकार अनेक छंद छपे हैं। साधारण पुस्तकों में भी व्रजभाषा शुद्ध रूप से छापी जानी चाहिए। किंतु यदि विश्वविद्यालयों के अधिनिबंधों में भी भाषा की ऐसी दुर्दशा हो तो व्रजभाषा की रक्षा भगवान् कृष्ण भी न कर पावेंगे। यह निबंध विद्वत्तापूर्ण है, और इसलिए साधारण पाठकों को इसमें रस नहीं मिलेगा। जब एक विश्वविद्यालय ने, तीन विद्वानों की सम्मति से इसे डी० लिट० के लिए स्वीकार कर लिया है तब इसकी प्रशंसा में और कुछ कहना पिष्टपेषण मात्र है। शोध के विद्यार्थियों और विश्वविद्यालयों तथा कालिजों के पुस्तकालयों के लिए यह विशेषरूप से उपयोगी है।

साहित्यिक शब्दावली—डा० प्रेमनारायण टंडन। प्रकाशक, हिंदी साहित्य भंडार, अमीनाबाद, लखनऊ। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य, पुस्तकालय संस्करण, दस रुपये। साधारण संस्करण आठ रुपये।

यह अत्यंत उपयोगी अंग्रेजी-हिंदी कोश एक बड़े अभाव की पूर्ति करता है। अंग्रेजी के जो शब्द साहित्य शास्त्र में प्रयुक्त होते हैं और जो पारिभाषिक हैं, तथा उनसे संबंधित हैं, उनके हिंदी पर्याय जानने की आये दिन आवश्यकता पड़ती है। साधारण अँग्रेजी-हिंदी कोशों में न तो वे सब मिलते हैं, और न उनमें उनका अर्थ साहित्य शास्त्र की दृष्टि से दिया होता है। अतएव एक ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी जिसमें साहित्यशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले अँग्रेजी शब्दों के पर्याय हों। यह कोश उस अभाव की पूर्ति करता है। पर्याय चुनने में सम्पादक ने बड़ा परिश्रम किया है और उन्हें काफी सफलता मिली है। अधिकांश पर्याय, जो हमने देखे, हमें समीचीन मालूम पड़े। इसमें १८,००० अँग्रेजी शब्दों के पर्याय दिये गये हैं, और यह कोश इतना पूर्ण है कि अधिकतर साहित्यिक कार्य के लिए यह पर्याप्त है। पुस्तक बड़े आकार में अच्छे कागज पर छापी गयी है। अक्षर स्पष्ट हैं और छपाई सुंदर है। हिंदी पारिभाषिक कोश साहित्य में इस कोश का विशिष्ट स्थान होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुल्तान अब्दुल अजीज

श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

योरप की शक्तियों की इस समय मुराको पर विशेष कृपादृष्टि है। मुराको का राज्य-प्रबन्ध अच्छा नहीं। इस कारण मुराको के सभ्य और शिक्षित पड़ोसियों को आन्तरिक पीड़ा हो रही है। उनसे मुराको की राज्य-दुर्व्यवस्था देखी नहीं जाती। इससे वे उसे सुधारने की फिक्र में हैं।

मुराको आफरीका के उत्तर-पश्चिम में है। इसके उत्तर में भूमध्य सागर और पश्चिम में अटलांटिक महासागर है। इसका असली नाम मराकुश है। मुराको उसीका अपभ्रंश है। यह बहुत पुराना देश है। इस देशवालों ने योरप की शक्तियों को कई बार परास्त किया है। पर अब उनका वह दिन नहीं। अब जमाना बिलकुल ही बदल गया है। मुराको के पूर्व आलजीरिया नामक एक छोटा-सा देश है। वह फ्रांस के अधिकार में है। उसे फ्रांस का उप-निवेश कहना चाहिए। पहले वहाँ मुसल्मानी राज्य था। सुल्तान रूम उसके सार्वभौम शासक माने जाते थे। पर कई कारणों से अनेक लड़ाई-झगड़ों के बाद फ्रांस ने उसे अपने कब्जे में कर लिया। उस पर दखल करके उसने अँगरेजों से कहा कि हम यहाँकी दुर्व्यवस्था दूर करके अपना दखल उठा लेंगे। हम सिर्फ यहाँ सुधार करने आये हैं। पर कुछ वर्ष बाद फ्रांस ने वहाँ से हटने से इन्कार कर दिया। अँगरेजों ने इस पर कोई एतराज नहीं किया। मिस्र को सुधारने के इरादे से उन्होंने अपना ध्यान उस तरफ फेरा। अब फ्रांस को मुराको की व्यवस्था भी खट-कने लगी है। इस कारण उस पर भी दया दिखाने का वह आयोजन कर रहा है। उधर स्पेन भी मुराको का पड़ोसी है। वह भी इस पुण्य कार्य में शामिल होना चाहता है। जर्मन यद्यपि दूर है, तथापि अच्छे कामों के लिए दूर या पास का ख्याल नहीं किया जाता। दूर रहकर भी जर्मन नरेश मुराको की सीमा का दर्शन कर आये हैं और अपने शुभचिन्तन से मुराको के सुल्तान को ऋणी बना आये हैं।

इन्हीं कारणों से योरप की शक्तियों में मुराको को लेकर विषम विवाद हो रहा है। जिबराल्टर के पास एक जगह आलजिसीरस है। वह स्पेन के अधिकार में है। वहीं सब शक्तियों के प्रतिनिधियों ने जमा होकर मुराको सम्बन्धी समस्याओं को हल करने की ठानी। सब जमा हुए। महीनों मीमांसा होती रही। जरमनी ने बड़े-बड़े दाँव-पेंच खेले। इससे मीमांसा के सिद्धान्त स्थिर करने में बहुत विलम्ब हुआ। अब सुनते हैं सब बातों का निश्चय हो गया है। और उस निश्चय को सुनाने के लिए सभा के कुछ सभ्य मुराको के सुल्तान अब्दुल अजीज़ के पास गये हैं।

पाठक कहेंगे, मुराको के सुल्तान अपने देश का सुधार करें या न करें औरों को दस्तंदाजी करने का क्या अधिकार? पर योरप की राजनीति ऐसी नहीं। उसके अनुसार इस तरह दस्तंदाजी करना ही न्याय है। वहाँ के नीति-निपुण कहते हैं यदि आपके पड़ोस में दिन-रात दंगा-फसाद और मार-पीट हुआ करे तो उससे आपको कुछ तकलीफ पहुँचे या नहीं? यदि रात-रातभर तबला ठनके या आल्हा गाया जाय तो आपको नींद आयेगी? यही दशा आप मुराको की क्यों न समझें। वहाँ के कु-प्रबन्ध से पास-पड़ोस के देश आजिज आ गये हैं। इस-लिए वे कहते हैं कि मुराको में खूब अमन-चैन का राज्य स्थापित करके हम अपने घर चले जायेंगे और वहाँ फिर सुख से सोयेंगे। मुराको के बागियों और डाकुओं के भेरी-नाद से फिर हमारी निद्रा भंग न होगी। इसीलिए यह सारा प्रयत्न है।

जिस मुराको के लिए यह सब बखेड़ा हो रहा है उसका क्षेत्रफल कोई तीन लाख वर्गमील है। क्षेत्रफल में वह फ्रांस के आलजीरिया देश से दूना है। वहाँ की आबादी का ठीक हिसाब नहीं मालूम हुआ। कई अँगरेज ग्रंथकारों का मत है कि वह कोई ६५ लाख है। अरब, बर्बर और यहूदी लोग वहाँ अधिक बसते हैं। हब्शी भी कुछ हैं। बिगड़ी हुई अरबी वहाँकी भाषा है। पहले वहाँ कोई विदेशी व्यापार करने न जाने पाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु १८६४ ईसवी में सुल्तान ने एक एकरारनामा योरप की सब शक्तियों को लिख दिया कि आज से जो योरप-निवासी चाहें हमारे देश में आकर व्यापार करें। बस मुराको के दोष देख पड़ने का यहीं से सूत्रपात हुआ।

मुराको के सुल्तान का पूरा नाम है मुलाई अब्दुल अजीज। उनकी पदवी है अमीरुल्मोमनीन। आप जिस वंश के हैं उसका राज्य १५ पीढ़ियों से मुराको में चला आता है। आपका जन्म २४ फरवरी १८७८ को हुआ था। पिता के मरने के बाद ७ जून १८९४ को आपने गद्दी पाई। आपकी राजधानी फेज नाम का शहर है। सुल्तान अब्दुल अजीज अपने को अली वंशज बतलाते हैं। आपके कुमार का नाम है शाहजादा हसन। इस समय शाहजादे की उम्र कोई ८ वर्ष की होगी।

मुराको में सुल्तान की सत्ता अखण्ड है। वे जो चाहें कर सकते हैं। उनकी इच्छा ही कानून है। राजकीय और धार्मिक दोनों विषयों में सुल्तान की आज्ञा ही श्रेष्ठ है। अलग-अलग महकमों के ६ मंत्री सुल्तान के अधीन हैं। इच्छा होने पर सुल्तान उनसे सलाह ले सकते हैं। पर इसका कोई नियम नहीं कि सब बात मंत्रियों से पूछ कर ही वे करें। सुल्तान की आमदनी कोई ७५ लाख रुपये सालाना है। प्रजा से कर, नजरें और तोहफे इत्यादि लेने से यह आमदनी होती है।

सुल्तान की राजधानी यद्यपि फेज में है, पर आप अकसर और जगह भी रहा करते हैं। आप की फौज में तोपों की कई बैटरियाँ हैं, रिसाले हैं और कोई दस हजार कवायदी-सिखाई पैदल फौज भी है। काईद मैकलीन नाम का एक अँगरेज सुल्तान के यहाँ नौकर है। वही इनकी फौज को कवायद परेड सिखलाता है। यह साहब बहादुर फौजी काम भी करते हैं और मुल्की भी। अँगरेज लोग इनकी बड़ी तारीफ करते हैं। वे कहते हैं कि इनके सुधार मार्ग में यद्यपि अनेक कठिनाइयाँ हैं तथापि इन्होंने मुराको की बहुत कुछ उन्नति की है।

सुल्तान को फोटो लेने का बड़ा शौक है। आप एक अच्छे फोटोग्राफर हैं। आपने इँगलैण्ड से फोटोग्राफी के बहुत कीमती सामान मँगवाये हैं। कैमरा सोने का है। उसमें रत्न जड़े हुए हैं। आप कैमरा लिए हुए अकसर फोटो उतारा करते हैं। आपके महल में अनेक बेगमें हैं। उन तक के फोटो आप उतारते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें लोगों को दिखलाते भी हैं। अँगरेजों के सामने ये फोटो अकसर पेश होते हैं। इस बात से सुल्तान के अमीर उमरा अप्रसन्न हैं। एक तो इस तरह के चित्र उतारना ही मुसल्मानी धर्म के खिलाफ है, दूसरे विकट परदे में रहने वाली सुल्तान बीबियों के चित्र खुल्लमखुल्ला औरों को दिखलाना तो स्वतंत्रता की हद हो गई। लोग समझते हैं कि सुल्तान में पश्चिमी सभ्यता की बू भर गई है। वे इसे अनुचित समझते हैं।

सुल्तान अब्दुल अजीज के दादा एक बार अपने नजर बाग में अपनी बेगमों समेत हवा खाने गये। वहाँ एक कृत्रिम तालाब था। उसमें छोटी-छोटी नावें पड़ी थीं। सुल्तान अपनी एक प्यारी बेगम को लेकर एक नाव पर सवार हुए और जल-विहार करने लगे। दुर्दैव से नाव उलट गई। सुल्तान तो किसी तरह निकल आये। पर सुल्ताना डूबने लगी और मदद के लिए चिल्लाई। दूर खड़े हुए एक मंत्री ने उनकी आवाज सुनी। वह दौड़ा आया और उन्हें डूबने से उसने बचाया। इस पर बूढ़े सुल्तान बहुत ही अप्रसन्न हुए। उन्होंने बेगम की जान बचाने के उपलक्ष्य में उसका सिर कटवा दिया। सुल्तान की बेगम मर चाहे जाय, पर उसके बदन पर दूसरे का हाथ न लगे। इन्हीं सुल्तान के पौत्र अपनी असूर्यम्पश्या बगमों के चित्रों की प्रदर्शिनी करते हैं।

सुल्तान को विलायती चीजें बहुत पसन्द हैं। उन्होंने मामूली बाइसिकल, मोटर बाइसिकल, मोटर गाड़ी, मोटर नाव, गुब्बारे इत्यादि चीजें मँगाई हैं। १२ घोड़े की ताकत रखने वाला एक यंजिन भी उन्होंने मँगाया है। अपने महल के अहाते में ३ मील लम्बी लोहे की पटरी सुल्तान ने बिछवाई है। दो तीन बहुत ही अच्छी गाड़ियों में इस यंजिन को जोड़कर सुल्तान खुद इसे चलाते हैं। गाड़ियों में सुल्तान की बेगमें बैठकर मुसाफिरी करती हैं और सुल्तान ड्राइवरी।

सुल्तान अब्दुल अजीज योरप और अमेरिका के कला-कौशल की बड़ी तारीफ करते हैं। सिनिमेटोग्राफ की बदौलत उन्होंने सारे योरप को अपने महल में बुला लिया है। वहाँ के सैकड़ों दृश्य इसी यंत्र की सहायता से वे देखा करते हैं। लंडन, पेरिस और न्यूयार्क की सड़कों में गोया वे हर रोज घूमा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकीय बातों को सुल्तान खुद देखते हैं, सब काग-जात पढ़ते हैं, और हुक्म देते हैं। वजीरों ही की आँखों से वे नहीं देखते। उन्हें खुशामद पसन्द नहीं। योरप के सर्वसाधारण की राय की वे बहुत परवा करते हैं। वहाँ के अखबार पढ़ते हैं और जी-जान से अपने देश का सुधार करना चाहते हैं। पर यह सुधार ही लोगों को विष हो रहा है। वे नहीं चाहते हैं कि योरप की शिक्षा और सभ्यता का प्रचार वहाँ हो। ऐसे ही अनेक कारणों से सुल्तान का एक प्रतिपक्षी खड़ा हो गया है। वह अकसर दंगे फसाद किया करता है। उसने कुछ फौज भी इकट्ठी कर ली है। इस कारण मुराको में कहीं-कहीं अराजकता फैल गई है।

अँगरेज ग्रन्थकारों की राय है कि सुल्तान की योग्यता में कोई कसर नहीं। वे शिक्षा सभ्यता और कला-कौशल के पक्षपाती हैं। पर प्रजा पर उनकी बात का असर कम पड़ता है। सुल्तान के अमीर उमरा और अधिकारी विश्वासपात्र नहीं। वे प्रजापीड़क हैं। चाहे जिस तरह से हो रुपया कमाना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहता है। अधिकार की जगहें बिकती हैं। जो सबसे अधिक देता है वही पाता है। गवर्नरी तक बिकती है। इसी तरह ऊँचे से ऊँचे पद से लेकर नीचे से नीचे पद तक का क्रय-विक्रय होता रहता है। यदि सुल्तान प्रजा पर किसी निमित्त एक हजार रुपये कर लगाते हैं तो उसका कई गुना प्रजा को देना पड़ता है। कुछ गवर्नर बढ़ा देता है, कुछ कमिश्नर, कुछ जिले के हाकिम। इसी तरह उसकी खूब वृद्धि हो जाती है। हर एक बड़े अधिकारी के अधीन एक एक जेल रहता है। जो कोई उसे अप्रसन्न करता है वह उसी में ठूँसा जाता है। यदि प्रजा से तीन रुपये कर वसूल किया जाता है तो सिर्फ एक रुपया सुल्तान के खजाने में पहुँचता है। इसी से मुराको की दशा अच्छी नहीं।

योरप की शक्तियों को मुराको की यह दुरवस्था असह्य हो गई है। इसी से आलजिसीरस में सभा करके वे उसे दूर करना चाहते हैं:—"परोपकारः पुण्याय।"

गंगा-भीष्म

श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१)

पाठक, सुनिए कथा पुरानी;
थे मुनिवर वशिष्ठ विज्ञानी।
पास अष्ट वसु उनके आये;
उनसे गये मुनीश सताये॥

(२)

क्रोध उन्हें इससे हो आया,
वसुओं को यह शाप सुनाया।
"जन्म जगत् में लो तुम सारे;
वचन अन्यथा नहीं हमारे"॥

(३)

यह सुनकर वे सब घबराये;
कम्पित हुए; होश में आये।
भागीरथी समीप सिधाये;
वचन विशेष विनीत सुनाये॥

(४)

"हे सुरसरि? विपत्ति के मारे;
आये हैं हम पास तुम्हारे।
जग में जननी बनो हमारी;
करो हमें निज कृपाधिकारी"॥

(५)

सुरसरि ने इनको स्वीकारा;
वसु-गण अपनी पुरी पधारा।
हुई जह्नुतनया तब नारी;
रूप राशि अद्भुत विस्तारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

देखा नृप शान्तनु ने उसको;
मदन-विमर्दित-तनु ने उसको।
तब वह उस नरेश की रानी,
हुई, बहुत उसके मनमानी॥

(७)

हुए सात उसके सुत सुन्दर;
वसुओं के अवतार मनोहर।
उनको उसने जल में डाला;
पहले किया हुआ प्रण पाला॥

(८)

जब देवव्रत अष्टम बालक;
प्रकटा भीष्म-प्रतिज्ञा-पालक।
सुतस्नेह से नृप घबराया;
सुरसरि को बहुविध समझाया॥

(९)

युक्ति-युक्त सुन उसकी वाणी,
द्रवति हो गई गंगा रानी।
उसने वह सुत हाथ उठाया;
इस प्रकार वर वचन सुनाया॥

(१०)

"हे नृप मुझको सुरसरि जानो;
बात सत्य यह मेरी मानो।
कारण-वश जग में आई मैं;
यहाँ तुम्हारे मन भाई मैं॥

(११)

"अब मैं अपने घर जाती हूँ;
नहीं यहाँ रहने पाती हूँ।
सुनो बात जो बतलाती हूँ;
यह सुत तुम्हें दिये जाती हूँ॥

(१२)

"बैरी इससे घबरावेंगे;
पार नहीं इससे पावेंगे।
यदि कोई सम्मुख आवेंगे;
तत्क्षण ही मारे जावेंगे॥

(१३)

"ब्रह्मचर्य व्रत इसका होगा;
यश न कभी मृत इसका होगा।
पण्डित होगा, सच कहती हूँ;
अनुमति चलने की चहती हूँ॥

(१४)

"जो कोई जग में है आता;
सुख दुख वह दोनों ही पाता।
विधि ही यह जोड़ा निर्म्माता;
यह न किसी से तोड़ा जाता"॥

(१५)

यह कह सुरसरि ने सुत दिया;
सुरपुर का पथ उसने लिया।
उसका चित्र विचित्र बना है;
नृप रविवर्म्मा की रचना है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुपलेशजी संस्मरण

नौकरी के नखरे !

कवि गुपलेशजी ने कई बार नौकरी की, किन्तु कोई भी नौकरी दो-तीन वर्ष से अधिक नहीं चली। नौकरी का नाज़ उनके उठाये उठता नहीं था और देर-सबेर वह उनसे विदा हो जाती थी। कई वर्ष घर बैठे रहने के बाद एक बार फिर एक नौकरी की बात चल पड़ी। सफलता की कुछ आशा भी दीखने लगी। नौकरी-मिलन की आशा से प्रसन्न होकर गुपलेशजी ने लिखा—

आँख-मिचौनी-सी खेलति है,
कहूँ हाथ में आयकें जात है भागी।
नैन नचाय, लुभाय, रिझाय कैं,
रूसि कैं और के प्रेम में पागी।
पाप कटै नहीं, फंद छुटै नहीं,
मंद परिन्द फँस्यौ अनुरागी।
का कहिए गुपलेशजू की गति?
नौकरी फेरि बुलावन लागी।

किन्तु बातचीत होते कई महीने बीत गये। कोई निर्णय नहीं हो रहा था। गुपलेशजी लटके रहे। लोगों ने कहा, "अब उसकी आशा छोड़ो। वह नहीं मिलने की!" इस पर गुपलेशजी ने कहा—

जानत है जिय मेरौ भली बिधि,
नेह लगाय, दगा करि जायगी।
नैन मिलाइ कें चार दिना,
भरमाय-भुराइ कहूँ रमि जायगी।
आस सदा पै बनी ही रहै,
कबहूँ थिर ह्वै वह संग सुहायगी।
है गुपलेशजू कौं परतीति,
स्वकीया कौ धर्म कबौं तौ निभायगी!

और आशावाद का यह शहीद बराबर, "यहै आस अटक्यौ रह्यौ!"

भारत में आ गये !

निरालाजी एक बार किसी दूसरे नगर में अपने एक मित्र के यहाँ गये। उनके मित्र बड़े आदमी थे। वहाँ कई महीने रह गये। लौटने पर उनके कोई परिचित सज्जन सड़क पर संयोग से मिल गये। नमस्कार के बाद उन्होंने कहा—"इधर कई महीनों से आप दिखायी नहीं दिये, क्या कहीं बाहर चले गये थे?" उन्होंने संक्षेप में 'हाँ' कह दिया। तब उन सज्जन ने दूसरा प्रश्न किया—'कहाँ गये थे?" निरालाजी ने गंभीर भाव से उत्तर दिया—"विलायत गया था!" यह सुनकर उन सज्जन ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—"विलायत! आपके विलायत जाने की बात तो किसीने बतलायी नहीं!" निरालाजी ने व्याख्या करते हुए कहा—"जहाँ मैं गया था वहाँ बढ़िया पक्की आलीशान कोठी थी। गद्देदार बड़े-बड़े पलंग थे। सोफा थे। गद्दीदार कुर्सियाँ थीं। फ्लश लेट्रीन था। बिजली थी। बिजली का पंखा था। मोटर थी। फूलों का बाग था। लॉन थे। टेलिफोन था। लोग अधिकतर अँगरेजी बोलते थे। और अब मैं यहाँ लौट आया हूँ। यहाँ खपरैल का मकान है। टूटी चारपाई है। जमीन पर बिछाने को चटाई है। रोशनी के लिए मिट्टी के तेल की ढिबरी है। खुड्ढीवाला पखाना है जो दूसरे-तीसरे दिन साफ किया जाता है। हाथ का ताड़ का पंखा है। यहाँ आने पर यह अनुभव होने लगा कि अभी तक मैं विलायत में था और अब भारत में आ गया हूँ। इसीलिए मैंने आपसे कहा कि मैं विलायत गया था।"

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २॥) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १॥) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १·७५ न० पै० मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १।) या १ ० २५ नये पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है। पृष्ठ १८०; मूल्य १ ८० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत दस खण्ड	८०·००
हिन्दी महाभारत : महावीरप्रसाद द्विवेदी	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १, २	१३·००
श्रीरामचरितमानस	१२·००
विनयपत्रिका	४·००
कवितावली	२·७५
कुण्डलिया रामायण	४·००
तुलसी रत्नावली	१·५०
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	·७५
बाल-रामायण	१·००
रामचरितमानस अयोध्याकांड : श्यामसुन्दरदास	३·५०
रामचरितमानस, सटीक : पं० रामेश्वर भट्ट	६·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)	·५०
तुलसी के चार दल : प्र० भाग ३) द्वि० भाग	२·७५
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् : डा० मङ्गलदेव शास्त्री	८·७५
वेदान्त दर्शन	५·००
हिन्दी ऋग्वेद	१२·००
दुर्गापाठ	२·००
श्रीमद्भागवत १, २	१६·००
श्रीभगवत्तत्व	३·००

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

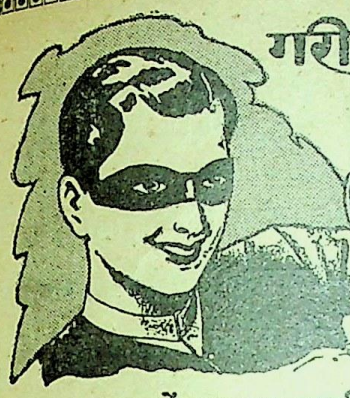

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड

डाकू मोहन की विचित्र अभियान

४२ पुस्तकें अब तक प्रकाशित

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित बीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ.....मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है.....मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। हा हा। हा हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। बी० पी० द्वारा कम से कम २ पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रचेता कवि सोहनलाल द्विवेदी

जिसकी कविता जीवन, उत्साह, वेग और बलपूर्ण हैं और जो लोक शिराओं में नव-जीवन का संचार करती हैं—जिसकी वाणी बिजली सी हृदय में उतरती है—जिसने राष्ट्रीय चेतना को काव्य का सच्चा रूप दिया है—और जिसमें बालकों की सी मृदुता और बच्चों की सी सरलता है निम्न कविता पुस्तकें लिख चुके हैं :—

राष्ट्रीय चेतना और बाल मनोरंजन की कविता पुस्तकें

जय गाँधी—लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सजधज से प्रकाशित संग्रह १५·००

गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ—गाँधीजी के संबंध में विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट कवितायें एकत्र संग्रहीत ७·५०

कुणाल—राजकुमार कुणाल की कारुणिक कथा पर शान्त रस सफल खंड काव्य ३·००

भैरवी—राष्ट्रीय जागरण के गीत जिनमें जनता रसमग्न हो उठती है। चार संस्करण हो चुके हैं २·७५

पूजागीत—जीवन में स्फूर्ति का संचार करनेवाली राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह २·५०

वासवदत्ता—प्रेम, कर्तव्य तथा आदर्शों के द्वन्द्वयुक्त बौद्ध आख्यान पर आधारित खंड काव्य २·००

विषपान—समुद्रमंथन की पौराणिक कथा के आधार पर प्रवाह और ओजपूर्ण खंड काव्य १·००

शिशु भारती—बालकों के लिए सरस और शिक्षाप्रद गीतों की रोचक पुस्तक १·००

झरना—इस पुस्तक की कवितायें पढ़ते ही बच्चे उछल पड़ते हैं १·००

बाँसुरी—नन्हें पाठकों के लिए लिखी मनोहर विचित्र कवितायें २·७५

युगाधार—चुनी हुई कवितायें स्वतन्त्रता की प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाली ३·५०

चित्रा—ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रण युक्त कविताओं और भावपूर्ण गीतों का संग्रह २·३१

बासन्ती—स्फुट कविताओं का सुन्दर और सरस संग्रह २·३१

बच्चों के बापू—गाँधीजी और सब नेताओं का परिचय करानेवाली बहुरंगी छपी कविता पुस्तक २·००

बाल भारती—बच्चों में नवीन उत्साह उत्पन्न करनेवाली सरल मनोरंजक कवितायें १·२५

चेतना—गांधीजी को आराध्यदेव मानकर रची हुई उत्प्रेरक कविताओं का संग्रह २·००

दूध बताशा—दो रंगों में छपे बालकों के लिए मधुर कविता गीत १·२५

हँसो हँसाओ—बच्चों को गुदगुदी और हँसी पैदा करनेवाली कवितायें १·५०

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० १५ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·३७ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

"सरस्वती" हीरक जयंती के अवसर पर प्राप्त

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

'सरस्वती' वास्तव में सरस्वती है। इसको हिन्दी पत्रिकाओं की माता-मही होने का गौरव प्राप्त है। इसने अनेक पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया है और अपनी प्रेरणाओं से हिन्दी जगत् को अनुप्राणित किया है। जातीयता, राष्ट्रीयता तथा भारतीय-संस्कृति का मूलमंत्र देनेवाली 'सरस्वती' अमर हो।

श्री सियारामशरण गुप्त

अब यह एक निश्चित तथ्य है कि 'सरस्वती' के द्वारा कितने ही कवियों और लेखकों को वाग्देवी का अनुपम प्रसाद वस्तुतः प्राप्त हुआ है। इस प्रकार वह हिन्दी साहित्य के ही इतिहास में नहीं, वरन् अभिनव भारत के इतिहास में भी अपना निश्चित स्थान बना चुकी है। उसके हिन्दी भाषाभाषी सम्पादक और बँगला भाषाभाषी प्रकाशक ने मिलकर विभिन्न भाषियों के बीच की दूरी मिटाने के लिए एक राष्ट्रीय भाषा को भारत के केन्द्र-स्थल तक ऊँचा उठाने का अपूर्व और अप्रतिम कार्य किया है।

श्री संतराम बी० ए०

पुण्यश्लोक द्विवेदीजी के पथप्रदर्शन और सहयोग से मेरे जैसे अनेक लोगों ने हिन्दी लिखना सीखा। सरस्वती ने हिन्दी को उन्नत एवं परिष्कृत करने का जो दुरूह कार्य किया है उसके लिए हिन्दी जगत् सदा इसका ऋणी रहेगा। जिस धैर्य और उत्साह के साथ और जिन उच्चतम एवं उदात्त आदर्शों को लेकर सरस्वती संसार में आई थी उन्हींको लेकर वह आज भी हमारे साथ है।

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का बहुत बड़ा हाथ है, हरेक हिन्दी के आलोचक को यह निःसंकोच स्वीकार करना पड़ेगा।

इधर कई वर्षों से सरस्वती ने फिर से परम्परागत हिन्दी साहित्य का नेतृत्व प्राप्त कर लिया है, यह संतोष का विषय है।

डा० दीनदयालु गुप्त

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

'सरस्वती' पत्रिका ने हिन्दी ही नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का एक गौरवपूर्ण आदर्श स्थापित किया है। साथ ही उसका प्रकाशन हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मानित पद दिलाने के प्रयासों में स्थायी महत्त्व का स्थान रखता है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise
SARASWATI—Reg. No. A-

कारखानेदारों तथा इन्डस्ट्रीज से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए अमूल्य पुस्तक

स्मॉल स्केल इन्डस्ट्रीज़

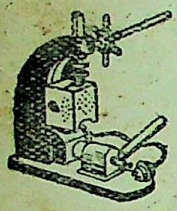

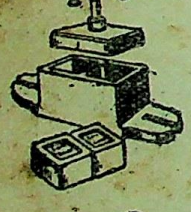

लघु उद्योग लेखक—कालीचरन गुप्ता, कंसल्टिंग इंजीनियर

*** १०१ लघु उद्योगों की जानकारी १,००० से अधिक पृष्ठों तथा ३०० से अधिक चित्रों में देने वाली पुस्तक ***

भारत व विदेशों के अनुभवी इन्जीनियरों, कारखानेदारों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के टैक्नीकल सहयोग से लिखी गई पुस्तक, जिसमें बताया गया है कि किस तरह इन्डस्ट्री चालू करने के लिये आप भारत सरकार से बहुत कम ब्याज पर नकद कर्ज, आसान किस्तों पर मशीन और कारखाने के लिये रियायती मूल्य पर जमीन, इमारत और पावर ले सकते हैं। पुस्तक में थोड़ी आमदनी वालों, दरम्याने दर्जे के लोगों और धनवान लोगों के लिए थोड़ी दरम्याना व अधिक पूँजी से चलाई जा सकने योग्य इन्डस्ट्रीज दी गई हैं। इसमें प्रत्येक इन्डस्ट्री का स्कोप, बनाने के तरीके व फार्मूले, कच्चे माल का विवरण व मशीनों से काम लेने का तरीका, कच्चा माल व मशीनें मिलने के पते आदि विस्तार-पूर्वक समझाये गये हैं। वे सज्जन जिन की कोई इन्डस्ट्री चल रही है वे पुस्तक में वर्णित कोई इन्डस्ट्री साइड इन्डस्ट्री के रूप में चालू कर सकते हैं। देहातों व कस्बों में रहने वालों व पार्ट टाइम में इन्डस्ट्री चालू करने के इच्छुकों के लिये पावर से चलने वाली व ऐसी इन्डस्ट्रीज जिन में पावर अथवा मशीनों की जरूरत नहीं पड़ती, भी दी गई हैं।

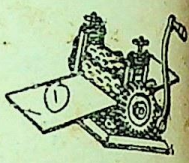
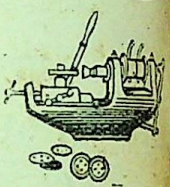

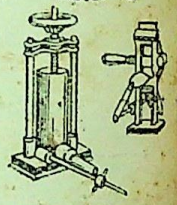

यही नहीं बल्कि पुस्तक में पैकिंग, लेबलिंग, माल की बिक्री बढ़ाने, पार्टनर-शिप, लिमिटेड कम्पनियाँ व कोआपरेटिव सोसाइटीज बनाने के नियम, विदेशों से माल इम्पोर्ट करने के तरीके आदि सैकड़ों अति लाभदायक बातों का भी समावेश किया गया है। ऐसे ग्रामवासी जिन के पास फालतू रुपया है यह पुस्तक खरीद कर अपना रुपया उद्योग में लगा कर उससे मुनाफा कमा सकते हैं। वे लोग भी जो एक बार उद्योग चला कर किसी भी कारण से बन्द कर चुके हैं, इस किताब को पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं। जिनके पास रुपया नहीं है और जो उत्साही हैं वे भी थोड़ी-थोड़ी रकम लगा कर कोई उद्योग शुरू कर सकते हैं। सफेद कागज क्लाथ बाइंडिंग। पुस्तक हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में छपी है। मूल्य केवल १२) बारह रुपया, डाक-व्यय दो रुपया पृथक। गुजराती, मराठी, बंगाली, तिलंगी भाषा में छपवाने की व्यवस्था की जा रही है।

एक साथ ५ किताबें मँगाने पर डाक-खर्च माफ़ ।

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मँगाने का एक मात्र स्थान—

देहाती पुस्तक भंडार

(S-A 5/62) चावड़ी बाज़ार, देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

फोन नं. २२००३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

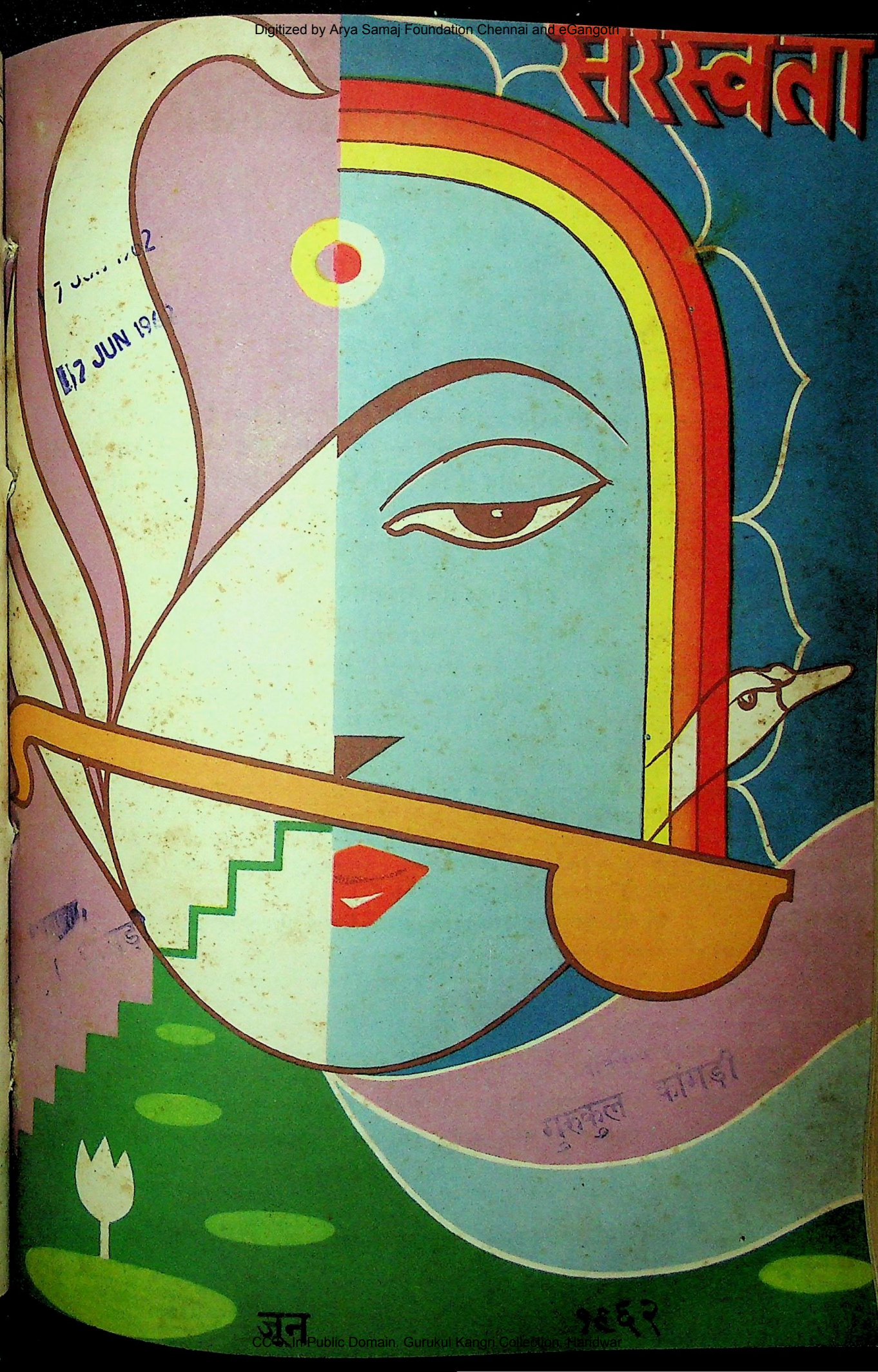

17 JUN 19

जून १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक ज़यन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

"सरस्वती" हीरक जयंती के अवसर पर प्राप्त

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्त्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आंकना तो आसान नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी देखने को मिलती है—राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्यधिक आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-विन्दुओं का स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरकजयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17 JUN 1962

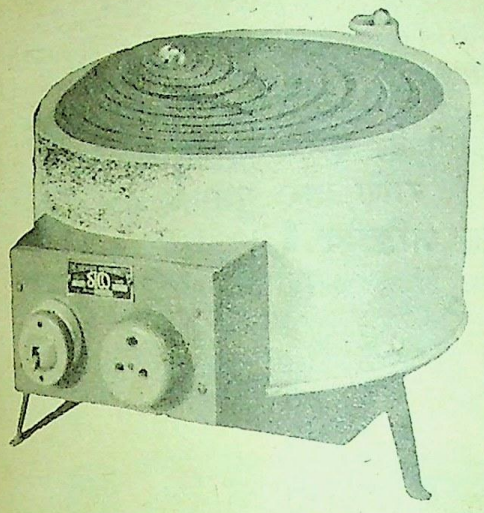

इलेक्ट्रिक वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी के उत्पादक प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिये कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥ ॥ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥

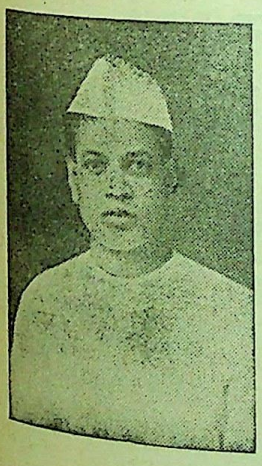

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए :—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् तथा प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरुचि सम्पन्ना महिलाएँ ...

सभी सुगंधित कैस्टर आयल पर गर्व करती हैं, कारण घन कुञ्चित केश राशि द्वारा मुलायम जुड़ा रचना में यह अद्वितीय है।

परफ्युमड्

कैस्टर आयल

बंगाल केमिकल

कलकत्ता . बम्बई . कानपुर

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

ऐसे बोगस रजिस्टर्ड लिखनेवालों से सावधान

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17 JUN 1962

आदर्श लिवर टानिक

ओ० आर० सि० एल का

कुमारेश

लीवर व पेट की पीड़ की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ० आर० सि० एल० लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

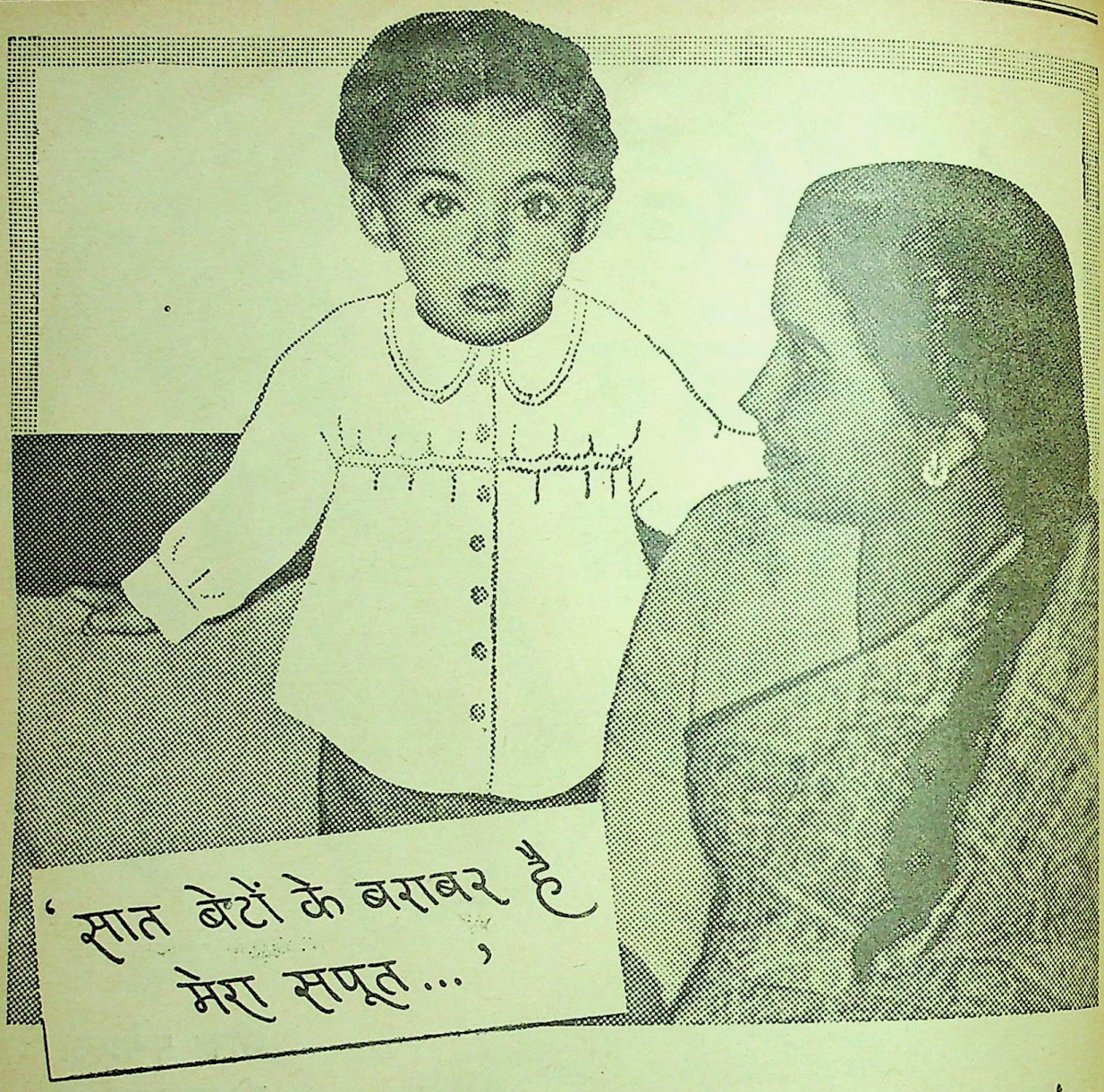

'कपड़ों की धुलाई को लीजिए तो हमारा मुन्ना सात बेटों के बराबर है—इतने कपड़े मैले करता है वह। लेकिन सनलाइट के कारण मुझे कपड़े धोना बिल्कुल आसान हो गया है।

'सनलाइट जैसे शुद्ध और भरपूर झागवाले साबुन ही से कपड़ों की इतनी अच्छी धुलाई इतने आराम से हो सकती है! फिर इसमें आश्चर्य ही क्या अगर मैं अपनी सारी धुलाई सनलाइट से करती हूँ!'

नई दिल्ली की श्रीमती कमला वाधवानी कहती हैं: घरभर की धुलाई के लिए सनलाइट के समान दूसरा साबुन नहीं।

सनलाइट

आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए

हिन्दुस्तान लीवर ने बनाया

S. 31-X52 HI

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यराज सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खांसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खांसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, कसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा चमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाग को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, मम्मीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आंखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—**रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर**

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्माद के लक्षण

❀ वेश एवं स्वभाव में अनोखापन

❀ रिक्त दृष्टि

❀ दुःख और उदासी

❀ विस्मरणता

❀ अस्पष्ट निर्णय

❀ आत्म-नियन्त्रण की कमी

❀ मनोग्रस्तता एवं मतिभ्रम

इन सब को आरंभ में ही नष्ट करने के लिए कविराज पं० दुर्गादत्त शर्म्मा वैद्य वाचस्पति से स्वयं मिलें या पत्र द्वारा परामर्श प्राप्त करें।

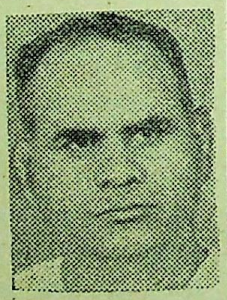

नवरत्न-कल्प फार्मेसी,

जालन्धर सिटी, (इंडिया)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)	..		५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)			२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग			५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग			४·२५
विवेकानन्दजी के संग में	..		५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	..		१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद	..		१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ	..		१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो !	..		१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)	..		१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	..		१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	..		१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	..		१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में	..		०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	..		०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ	..		०·८७
कर्मयोग	..	१·४० भक्तियोग	.. १·५०
राजयोग	..	३·०० ज्ञानयोग	.. ३·००
प्रेमयोग	..	१·३७ सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म	..	१·५० धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान	..	१·६२ शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य		१·२५ मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग	..	१·१२ चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव	..	०·६२ भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा	..	०·६२ मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली	..	०·६२ हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा	..	०·५० ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत	..	०·५० मन की शक्तियाँ	०·४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज)			.. ०·६५
शक्तिदायी विचार (,,)			.. ०·६२
मेरी समर नीति (,,)			.. ०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत			.. ६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००

श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलो में खरीदिये

कृपया इसे काटकर रखलें, काम आएगी

मेट्रिक बाट अब देश भर में अनिवार्य हैं।
पुराने बाटों का प्रयोग गैर कानूनी है।

कीमतों की परिवर्तन तालिका (सेर से किलोग्राम)

नये पैसे प्रति सेर से नये पैसे प्रति किलोग्राम

न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम
१	१·०७	११	११·७९	२१	२२·५१	३१	३३·२२	४१	४३·९४
२	२·१४	१२	१२·८६	२२	२३·५८	३२	३४·२९	४२	४५·०१
३	३·२२	१३	१३·९३	२३	२४·६५	३३	३५·३७	४३	४६·०८
४	४·२९	१४	१५·००	२४	२५·७२	३४	३६·४४	४४	४७·१५
५	५·३६	१५	१६·०८	२५	२६·७९	३५	३७·५१	४५	४८·२३
६	६·४३	१६	१७·१५	२६	२७·८६	३६	३८·५८	४६	४९·३०
७	७·५०	१७	१८·२२	२७	२८·९४	३७	३९·६५	४७	५०·३७
८	८·५७	१८	१९·२९	२८	३०·०१	३८	४०·७२	४८	५१·४४
९	९·६५	१९	२०·३६	२९	३१·०८	३९	४१·८०	४९	५२·५१
१०	१०·७२	२०	२१·४३	३०	३२·१५	४०	४२·८७	५०	५३·५८

रुपये प्रति सेर से रुपये प्रति किलोग्राम

रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम
१	१·७७	११	१९·४६	२१	३७·१५	३१	५४·८५	४१	७२·५४
२	३·५४	१२	२१·२६	२२	३८·९२	३२	५६·६२	४२	७४·३१
३	५·३१	१३	२२·९३	२३	४०·६९	३३	५८·३९	४३	७६·०८
४	७·०८	१४	२४·७०	२४	४२·४६	३४	६०·१६	४४	७७·८५
५	८·८५	१५	२६·४७	२५	४४·२३	३५	६१·९३	४५	७९·६२
६	१०·६२	१६	२८·२४	२६	४६·०	३६	६३·७०	४६	८१·३९
७	१२·३९	१७	२९·९९	२७	४७·७७	३७	६५·४७	४७	८३·१६
८	१४·१६	१८	३१·७६	२८	४९·५४	३८	६७·२४	४८	८४·९३
९	१५·९३	१९	३३·५३	२९	५१·३१	३९	६९·०	४९	८६·७०
१०	१७·७०	२०	३५·३०	३०	५३·०८	४०	७०·७७	५०	८८·४७

१ किलोग्राम (१००० ग्राम) = ८६ तोला

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 61/6001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

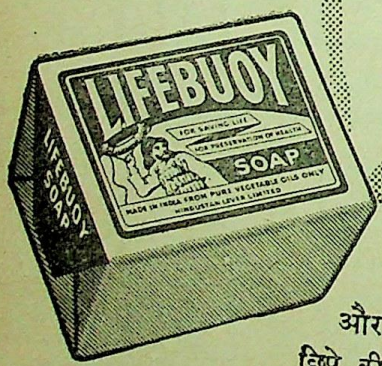

चुस्त, तंदुरुस्त और तरोताज़ा... यह है लाइफ़बॉय से स्नान का आनंद! और जब आप इस के स्नान के आनंद में मग्न होते हैं लाइफ़बॉय साबुन मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है... ऐसे कीटाणु जिन से हम किसी प्रकार भी बच नहीं पाते! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा!

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ!

L 29-X52 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुने हुए उपन्यास

विष-वृक्ष—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	२·००
देवी चौधरानी—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
कपाल-कुंडला—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
आनन्द मठ—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
चन्द्रशेखर—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·२५
कृष्णकान्त का विल—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१·५०
रजनी—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	०·७५
गौर मोहन—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	५·५०
योगायोग—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	४·००
रूस की चिट्ठी—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
मेरा बचपन—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
राजर्षि—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
चार अध्याय—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
आश्चर्य घटना—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
विचित्र वधू-रहस्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
मुकुट—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	०·३१
गृहदाह—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	४·००
श्रीकान्त—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	६·००
लेन-देन—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	३·५०
देहाती समाज—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२·००
शुभदा—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२·५०
पंडितजी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२·००
परिणीता—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·५०
बड़ी दीदी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·५०
छुटकारा—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·३१
ब्राह्मण की बेटी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·७५
बैकुंठ का बिल—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·७५
मझली दीदी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·००
अरक्षणीया—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·६२
नवविधान—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·६२
सुधा—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·७५
महाराष्ट्र जीवन-प्रभात—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·००
राजपूत-जीवन-सन्ध्या—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·००
माधवी-कंकण—श्री रमेशचन्द्र दत्त	१·५०
प्रांतिक—श्री ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	३·००
समाज—श्री रमेशचन्द्र दत्त	१·२५
पथभ्रान्त पथिक—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय	२·७५
धोखा-धड़ी—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय	२·७५
आखिरी सलाम—डा० ब्रजेश्वर वर्मा	४·५०
हार या जीत—डा० ब्रजेश्वर वर्मा	२·००
कुलबोरन—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य	२·५०
राजदुलारी—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य	१·२५
अपना-पराया—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·५०
उड़ते-पत्ते—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·५०
शीलादेवी—श्री नलिनीरंजन चौधरी	२·७५
संगति—श्री गोपालचन्द्र शास्त्री	१·५०
युद्ध और शान्ति—महर्षि टालस्टाय	५·००
रुबिया—श्री अवध उपाध्याय	२·००
सत्याग्रही—श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय	१·५०
द्वंद्व—श्री सरोजकुमारी देवी	२·७५
रिक्ता—श्री नीहारबाला देवो	१·२५
ब्रजनाथ का विवाह—श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त	२·२५
नवीन संन्यासी—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	४·७५
रत्नदीप—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	२·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कलंकिनी--श्री महावीरप्रसाद गहमरी	०·६२
जीवन-क्रान्ति--पं० गौरीशंकर मिश्र	२·७५
बलिदान-मन्दिर--पं० गौरीशंकर मिश्र	२·००
भक्त जयदेव--पं० गौरीशंकर मिश्र	२·००
उलझन--ठाकुर श्रीनाथसिंह	२·७५
प्यारा भारत--प्रोफेसर प्यारेलाल	४·५०
वंचिता--पं० उमेशचन्द्र मिश्र	३·५०
अभागिनी अन्ना भाग १--	२·२५
अभागिनी अन्ना भाग २--	२·००
लक्ष्मी--श्री रामनरेश त्रिपाठी	१·००
अज्ञात दिशा की ओर--श्री सौरीन्द्रमोहन	१·००
अग्नि--श्री 'वनफूल'	१·५०
दिव्यचक्षु--श्री र० व० देसाई	३·५०
नवदुर्गा--श्री ठाकुरदत्त मिश्र	१·२५
शनि की दिशा--श्रीमती कांचनमाला देवी	२·००
लीलावती का स्वप्न--श्री कात्यायनीदत्त त्रिवेदी	१·००
अनाथ बालक--श्री अनु० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी	१·२५
कादम्बरी--श्री गदाधरसिंह	०·७५
रामलाल--श्री मन्नन द्विवेदी	१·७५
नूतन चरित्र--श्री रत्नचन्द्र	२·००
अनजानी राहें--श्री कंचनलता सब्बरवाल	३·००
तारा--पं० रूपनारायण पाण्डेय	१·००
अन्न का आविष्कार--यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	२·२५
धोखे की टट्टी--श्री रामजीदास वैद्य	०·५०
स्वर्णलता--अनु० पं० जनार्दन झा	१·७५
संकट--हरिदत्त दूबे	२·५०
ठाकुरद्वारा--श्री हरिदत्त दूबे	३·००
पुनर्जन्म--श्री हरिदत्त दूबे	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस काव्य साहित्य

सरस सुमन--श्री गुरुभक्तसिंह	०.५०
मधुस्रवा--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१.२५
प्रतिमा--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१.००
वनवास--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१.००
किंकिणी--श्री राजाराम श्रीवास्तव	०.७५
लक्ष्मण-शक्ति--श्री राजाराम श्रीवास्तव	०.७५
मन्दार-माला--श्री देवेन्द्रनाथ पाण्डेय	२.००
विजया--श्री 'अभिराम'	१.००
नव सतसई-सार--डा० कैलाशनाथ भटनागर	२.७५
चारण--पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी	०.३१
हल्दीघाटी--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२.७५
रूपान्तर--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२.००
तुमुल--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२.००
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ--श्री सोहनलाल द्विवेदी	७.५०
जय गांधी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१५.००
कुणाल--श्री सोहनलाल द्विवेदी	३.००
युगाधार--श्री सोहनलाल द्विवेदी	३.५०
भैरवी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२.७५
चित्रा--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२.३१
वासन्ती--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२.३१
पूजागीत--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२.५०
वासवदत्ता--श्री सोहनलाल द्विवेदी	४.५०
बाल-भारती--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१.२५
झरना--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१.००
विषपान--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१.००
बाँसुरी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२.७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों के बापू---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
चेतना---श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
प्रेमांजलि---ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
जगदालोक---ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
संचिता---ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
ग्रामिका---ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
मानवी---ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
ज्योतिष्मती---ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
सुमना---ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
माधवी---ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
विश्वगीत---ठाकुर गोपालशरण सिंह	१·७५
क्षण के बीज---गौरीशंकर लहरी	२·००
उद्धव-शतक---श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	२·००
गंगावतरण---श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	१·२५
द्विवेदी काव्यमाला---संग्रहकर्त्ता---पं० देवीदत्त शुक्ल	४·००
मेघदूत---अनुवादक---राजा लक्ष्मणसिंह	१·००
पद्यमाला---पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१·००
माधुरी---श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	०·७५
एकादशी---श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	१·५०
दैत्यवंश---श्री हरदयालुसिंह	३·५०
देव-दर्शन---श्री हरदयालुसिंह	२·००
बिहारी-विभव---श्री हरदयालुसिंह	२·००
मंजीर---श्री गिरजाकुमार माथुर	१·००
तक्षशिला---श्री उदयशंकर भट्ट	३·००
कविता-कलाप	३·००
पद्य-समुच्चय---स्वर्गीय कमताप्रसाद गुरु	१·००
रविबाबू के कुछ गीत---अनुवादक--श्री रघुवंशलाल गुप्त	२·५०
खैयाम की रुबाइयाँ---श्री इकबाल वर्मा 'सेहर'	४·००
संक्षिप्त पद्मावत---रायबहादुर सुन्दरदास	२·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त बिहारी—श्री रमाशंकर प्रसाद	२·००
सीताराम-संग्रह—रायबहादुर लाला सीताराम	२·५०
ब्रज-सतसई—पं० रामचरित उपाध्याय	०·७५
वन्दना—श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'	२·००
सवेरा और साया—श्री विद्याभास्कर 'अरुण'	१·५०
कवि और छवि—श्री बालकृष्ण राव	२·००
रात बीती—श्री बालकृष्ण राव	३·००
हमारी राह—श्री बालकृष्ण राव	२·५०
अपराजिता—श्री रामेश्वरप्रसाद शुक्ल 'अंचल'	३·००
सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त'	२·७५
संक्षिप्त सूरसागर—प्रो० वेणीप्रसाद	३·५०
सूर-संदर्भ—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	२·००
सूरसुषमा—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	१·००
सुदामा के तंडुल—श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम'	१·५०
जीवन-कण—श्री जगमोहननाथ अवस्थी	१·००
वेणुकी—श्रीमती तारा पाण्डेय	१·००
रानी दुर्गावती—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	१·२५
कश्मीर-विजय—श्री सत्यनारायण पाण्डेय	१·५०
वैरागी—श्री परमानन्द शर्मा	२·००
सरोज—श्री सोमेश्वर सिंह	२·००
शाहजादा खुसरो—कुँवर सोमेश्वर सिंह	२·२५
सिद्धान्त-समर—श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय	४·००
अवसाद—श्रीमती 'ममता'	१·२५
मधुमास—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	१·५०
बुन्देलखंडी लोकगीत—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	०·५०
महारथी—श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'	१·२५
रजनीगन्धा—श्री देवेन्द्रदत्त तिवारी	२·५०
फूल व पत्ते—श्री कमलाकान्त पाठक	२·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए लक्स ज़रूरी है'

साधना का खिला हुआ रंगरूप देखिये... साफ़ नज़र आता है कि यह लक्स ही की देन है! मगर आप अपने रंगरूप के लिए क्या करती हैं? लक्स इस्तेमाल कीजिये... इस के मुलायम झाग से आपका रंगरूप सुंदरता की नई सीमा को जा छूता है! लक्स इस्तेमाल कीजिये... और इसकी अनमोल सुगंध के सुंदर संसार में खो जाइये! लक्स इस्तेमाल कीजिये... आप की पसंद के लिए इसके रंगों का इंद्रधनुष भी है—और आपका मनपसंद सफ़ेद भी! आपके रंगरूप को लक्स टॉयलेट साबुन की ज़रूरत है!

चित्रतारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में!' साधना कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ४३३
२—संस्कृत-साहित्य में ग्रीष्म-वैभव—श्री राधेश्याम गुप्त ४४१
३—राष्ट्रभाषा और स्वातंत्र्य संग्राम—डॉक्टर पां० स० खानखोजे ४४३
४—एक ऐतिहासिक पद्यमय भाषण—श्री मैथिलीशरण गुप्त ४४८
५—जनकनन्दिनी—डाक्टर हरिहरनाथ हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट० .. ४४९
६—तीन मुक्तक (क०)—श्री सूर्यनारायण सिद्धार्थ ४५३
७—पंजाब और संस्कृत साहित्य—श्री सत्यव्रत 'तृषित' ४५४
८—भूधर कवि और उनकी 'ध्यान बत्तीसी'—श्री कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह .. ४५९
९—महान् समाज-सुधारक एवं राष्ट्रोद्धारक गुरु नानकदेव—प्रो० शम्भुसिंह मनोहर ४६५
१०—आफिस—'वर्किंग-गर्ल' की नजर में! (कविता)—श्री रमेशनारायण तिवारी ४६८
११—महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१६)—पण्डित व्रजमोहन व्यास ४६९
१२—बन के जो कभी बिगड़े ही नहीं (कविता)—श्री कुँअर सोमेश्वर सिंह .. ४७४
१३—हिंदी में वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता ४७५
१४—बादशाहों का अप्राकृतिक प्रणय और राजनीति पर उसका प्रभाव—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन ४७८
१५—साँझ की बेला (कविता)—श्री पाण्डेय शशिभूषण प्रसाद 'शीतांशु' ४८०
१६—आँगनों के बीच—(१) फूटती कोंपल .. ४८१
(२) धारियाँ और फैशन ४८३
१७—सिर का मूल्य—अनुवादक श्री म० वर्मा ४८५
१८—भारत का सन्देश (कविता)—प्रो० आनन्दनारायण शर्मा ४९०
१९—नाले के उस पार—श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय ४९१
२०—वहाँ और यहाँ (कविता)—श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह ४९५
२१—इंटरव्यू—श्री दयाप्रकाश सिन्हा .. ४९६
२२—देखा-सुना (१३)—श्री मनमोहन गुप्त .. ४९९
२३—नवीन प्रकाशन .. ४९८
२४—१९०६ की सरस्वती—हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी .. ५००
२५—मनोरंजक संस्मरण ५०४
२६—'सरस्वती' हीरक जयंती उत्सव का विवरण ५०९

सूचना—'सरस्वती' सम्पादक के लिए पत्र, लेख, परिवर्तन के पत्र आदि कृपया निम्नांकित पते पर भेजें:

श्रीनारायण चतुर्वेदी
सम्पादक, सरस्वती
५३ खुर्शेदबाग (विष्णुपुरी)
लखनऊ

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

दुर्गापाठ

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। पृष्ठ में एक ओर मूल है और उसके सामने हिन्दी रूपान्तर। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रकाशक का वक्तव्य, प्रस्तावना, प्रारम्भिक वक्तव्य, भूमिका, मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि है। फिर देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये पचास नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7 JUN 1962

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

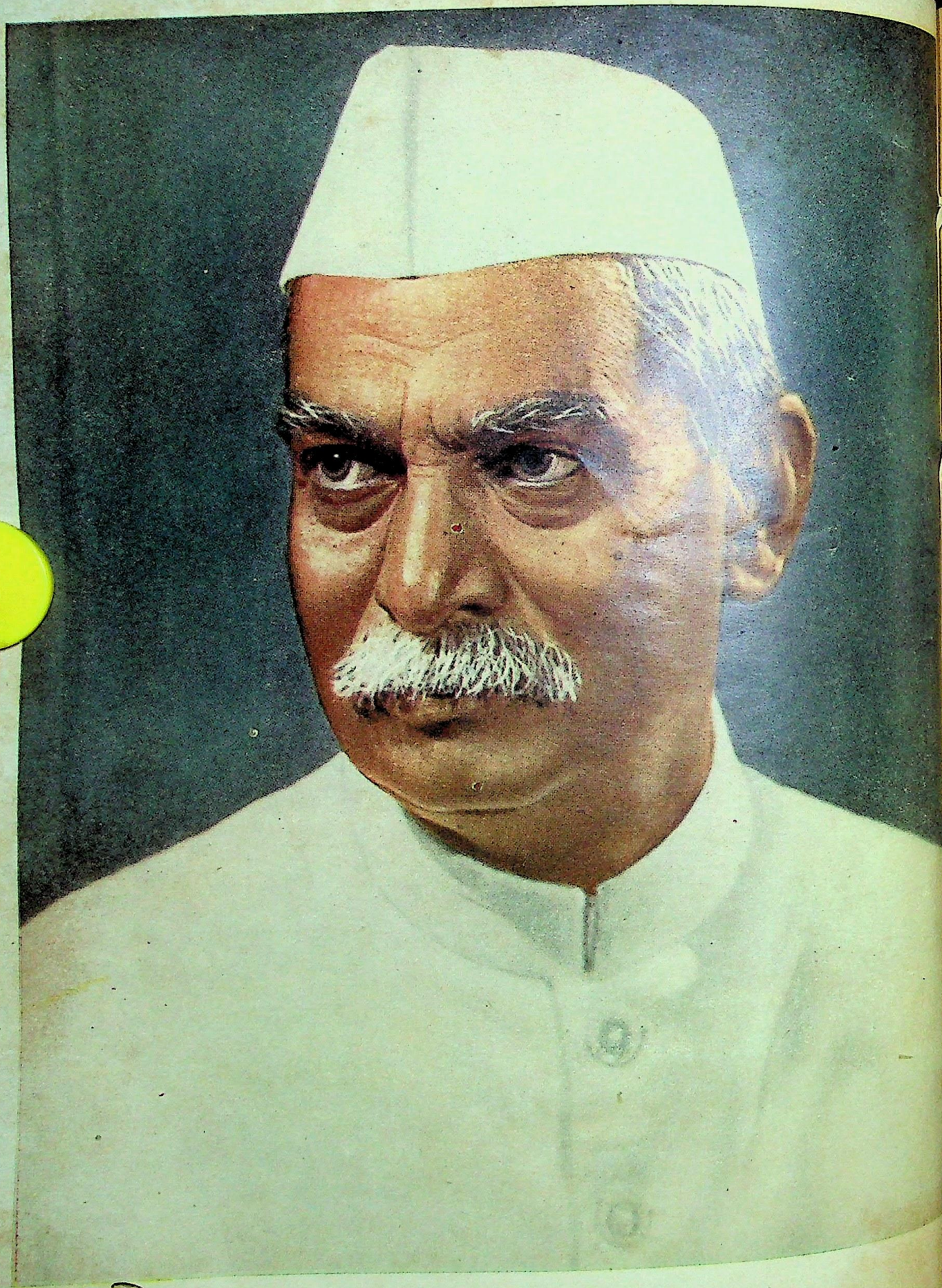

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7 JUN 1962

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७५०
इलाहाबाद : जून १९६२ : ज्येष्ठ २०१९ वि०
खण्ड १
संख्या ६

सम्पादकीय

प्रथम राष्ट्रपति का अवकाश ग्रहण——भारत के गणतंत्र में कितने ही राष्ट्रपति होंगे, किंतु इतिहास में प्रथम राष्ट्रपति होने का गौरव देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी को ही मिलेगा। हमने उन्हें 'भारतरत्न' न लिखकर 'देशरत्न' लिखा है क्योंकि आज से बीसों वर्ष पहिले जनता ने उनके त्याग, तपस्या, सरलता, भारतीयता, देश-सेवा आदि गुणों से प्रभावित होकर उन्हें स्वेच्छा से यह उपाधि दी थी। जनता की दी हुई यह उपाधि हमें सरकार द्वारा दी गयी उपाधि से अधिक प्रिय है, और इस समय जब जनता के राजेन्द्र बाबू फिर जनता के व्यक्ति हो गये तब हमें इसी उपाधि का उपयोग समीचीन मालूम हुआ। राजेन्द्र बाबू बिहार में पैदा हुए। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। विदेहजनक को उत्पन्न करनेवाला बिहार ही राजेन्द्र बाबू के समान 'पद्मपत्र मिवाम्भसा' राजनीतिज्ञ उत्पन्न कर सकता था। यह भारत का परम सौभाग्य था कि उसके पहिले राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू हुए। उनमें भारतीय किसान की सादगी, भोलापन, कर्मठता, अपार श्रद्धा, आस्था, धर्म और ईश्वर में अखंड विश्वास और दुख-सुख झेलने की अपार क्षमता है। औरों की तरह वे पश्चिमाभिमुख नहीं हैं। उनका रहन-सहन, आचार-विचार और दृष्टिकोण भी वही है जो एक साधारण भारतवासी का है। राजनीति के कीचड़ में वे कमल की तरह स्वच्छ, निष्कलुष और आकर्षक बने रहे। बिहार का एक राजा नाम ही से अजातशत्रु था, किंतु राजेन्द्र बाबू वास्तव में अजातशत्रु हैं। राष्ट्रपति का सिंहासन उनके महान् व्यक्तित्व से चमक उठा था। उन्होंने उसका गौरव, उसकी गरिमा और उसकी श्री की वृद्धि की। उन्होंने राष्ट्रपतिभवन में जो स्वस्थ और जनोपकारी परम्पराएँ डाली हैं, वे देश के गौरव और उस महान् पद की मर्यादा को बढ़ाएँगी। उन्होंने राष्ट्रपति के आचरण का जो महान् और उच्च मानदंड निर्धारित कर दिया है, वह आगे होनेवाले राष्ट्रपतियों के लिए आदर्श होगा। उनका राष्ट्रपतित्व का समय इतिहास में 'स्वर्णयुग' माना जायगा।

आज सक्रिय राजनीति में राजेन्द्र बाबू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री राजगोपालाचारी और आचार्य भावे ही ऐसे लोग हैं जो गांधीजी के सान्निध्य में रहकर उनके उपदेशों और सिद्धान्तों से सबसे अधिक प्रभावित हुए थे, और जिन्होंने गांधीजी को अपना गुरु और आदर्श मानकर उनके झंडाबरदार का काम किया था। इनमें आचार्य भावे उस राजनीति से दूर हैं जो देश का शासन चलाती है। श्री राजगोपालाचारी आज कांग्रेस के विरोधी हैं। राजेन्द्र बाबू और नेहरू की जोड़ी ने बारह वर्ष भारत की राजनीति को चलाया। दोनों ही गांधीजी के अनुयायी हैं, किंतु एक दूसरे से भिन्न हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भारतीय संस्कृति और परम्परा का भक्त है और उसका दृष्टिकोण 'पूर्वीय' है, तो दूसरा पाश्चात्य सभ्यता से बेहद प्रभावित है और उसका दृष्टिकोण 'पश्चिमी' है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक थे। और चूँकि दोनों में परस्पर बड़ा सौहार्द था, एक दूसरे के मत का आदर करते थे। परिणाम यह होता था कि अधिकांश मामलों में एक 'मध्यमार्ग' निकल आता था। यह संदेहास्पद है कि राजेन्द्र बाबू के चले जाने के बाद वह संतुलन कायम रह सकेगा।

राजेन्द्र बाबू संविधान के पालन में बड़े सतर्क रहते थे। संविधान में हिंदी को राजभाषा माना गया है। अतएव वे औपचारिक अवसरों पर हिंदी ही का प्रयोग करते थे। संसद को संबोधित करते समय अपना भाषण पहिले हिंदी में पढ़ते थे। राष्ट्रपति-भवन में भी हिंदी का उपयोग होने लगा था। यह बात छिपी नहीं है कि दिल्ली का वातावरण हिंदी के अनुकूल नहीं है। संविधान में हिंदी को जो स्थान मिला है उसे दिल्ली के कितने ही लोग पसंद नहीं करते और वे घुमा फिराकर अँगरेजी को उसके पूर्व पद पर प्रतिष्ठित कर देना चाहते हैं। हमें भय है कि राजेन्द्र बाबू के चले जाने से दिल्ली में हिन्दी के हितों की वैसी रक्षा नहीं हो सकेगी।

राजेन्द्र बाबू अब पटना में, सदाकत आश्रम में, रहेंगे। भरद्वाज आश्रम की तरह सदाकत आश्रम भी देश के लिए एक पवित्र स्थान और तीर्थ हो जायगा। "तहाँ अवध जहँ राम निवासू"। यह ठीक ही है कि राजर्षि राजेन्द्र प्राचीन राजर्षियों की भाँति आश्रम में रहें, और उन्हींकी तरह वे अपने अनुभव, ज्ञान और व्यापक प्रेम से इस संक्रांति-काल में अपना स्वरूप और अपना कर्तव्य पहिचानने में हमारा मार्गदर्शन करें। वे सदा ही जनता के व्यक्ति रहे हैं और जनता उन्हें फिर अपने बीच में पाकर अपने को धन्य समझती है। उनकी वाणी जनता की वाणी है और जो वे कहेंगे वह चालीस करोड़ भारतवासियों की हृत्तंत्री की झंकार होगी। राजेन्द्र बाबू के जनता के बीच में आने से मूक जनता को वाणी मिलेगी। कितने ही दिग्भ्रमित लोगों को दिशा-ज्ञान होगा। कितने ही चोटिल हृदयों को सान्त्वना मिलेगी। देश को एक तपस्वी और निर्लिप्त ज्ञानी की सलाह मिलेगी। नैतिकता को बल मिलेगा। हमारी एकान्त कामना है कि राजेन्द्र बाबू चिरायु हों और दीर्घकाल तक हमारा पथप्रदर्शन करते हुए भारतमाता की सेवा करते रहें।

हमारे नये राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति—यह सुखद संयोग है कि हमारे द्वितीय राष्ट्रपति और द्वितीय उपराष्ट्रपति—दोनों ही—शिक्षक रहे हैं। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् दर्शनशास्त्री हैं। उनके कंठ में सरस्वती का निवास है, यद्यपि उनकी सरस्वती अँगरेजी बोलती है। उन्होंने अपनी प्रतिभा, वाग्मिता और विद्वत्ता के कारण अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। विदेशों में भारतीय दर्शन का इतना सफल और सशक्त व्याख्याता स्वामी विवेकानंद के बाद दूसरा नहीं हुआ। उन्होंने भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण को पश्चिमी जगत् में सुबोध और प्रभावशाली शैली में रखकर विदेशों में भारत का गौरव बढ़ाया है। जिस प्रकार कुछ दिनों पहिले गांधी और टागोर संसार के कोने-कोने में सुपरिचित थे, उसी प्रकार आज प्रधान मंत्री नेहरू और डा० राधाकृष्णन् सारे संसार में विख्यात हैं। डा० राधाकृष्णन् तैलगूभाषी हैं और मदरास के एक छोटे से नगर में साधारण परिवार में उत्पन्न हुए थे। आरंभ ही से वे प्रतिभाशाली थे, और शिक्षा समाप्त करके वे अध्यापक हो गये। बाद में मैसूर में वे दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए और जब कलकत्ता-विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र का एक विशेष पद निर्मित हुआ तो वे उस पर साग्रह निमंत्रित किये गये। दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में उनकी ख्याति इतनी बढ़ी कि वे आक्सफोर्ड के विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए जहाँ वे कई वर्ष रहे। जब आंध्र में विश्वविद्यालय स्थापित हुआ तब वे उसके उपकुलपति बनाये गये। बाद में वे काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के भी उपकुलपति-पद पर कई वर्ष रहे। जब भारत स्वतंत्र हुआ तब वे श्रीमती विजयलक्ष्मी के हटने पर रूस में भारतीय राजदूत पद पर नियुक्त हुए। यह पद बड़ा महत्त्वपूर्ण है—विशेषकर उन दिनों तो उसका महत्त्व बहुत अधिक था क्योंकि रूस में वह युग स्टालिन का युग था। स्टालिन से बहुत कम राजदूतों की भेंट होती थी, किंतु डा० राधाकृष्णन् की ख्याति और व्यक्तित्व इतना महान् है कि उन्हें दो बार स्टालिन से भेंट करने का अवसर मिला। जब प्रथम उपराष्ट्रपति चुनने का प्रश्न आया तब लोगों की निगाह उन पर पड़ी और वे भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति चुने गये। दूसरे चुनाव में भी लोगों के अतीव आग्रह से वे उस पद पर काम करने को राजी हो गये। इस बीच उन्होंने अनेक देशों में भ्रमण करके अपने व्याख्यानों द्वारा भारत का गौरव बढ़ाया। किसी भी व्यक्ति को जिसने आंदोलन में सक्रिय भाग नहीं लिया, अब तक इतने उच्च पद देने की बात भी नहीं उठी। किंतु डा० राधाकृष्णन् का व्यक्तित्व इतना महान् है कि कांग्रेस दल ने उन्हें उसके लिए उपयुक्त समझा और सारे देश ने इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन किया।

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) ने कहा है कि शासक को दार्शनिक होना चाहिए। प्लेटो के इस मत को भारत ने कार्यान्वित किया है। किसी राजनीतिक नेता को देश के सर्वोच्च पद पर न बैठाकर भारत ने एक दार्शनिक को उस पद पर बैठाया है। हमें आशा है कि वे प्लेटो के मतानुसार ही अपने इस उच्च पद के कर्तव्य-पालन में सफल होकर देश में उस भावनात्मक एकता की स्थापना करेंगे जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है। हम अपने नये राष्ट्रपति का हार्दिक स्वागत और अभिनंदन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नये उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन का मूल स्थान उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के कायमगंज नामक नगर में है। उनके पिता हैदराबाद राज्य में थे। उनकी आरंभिक शिक्षा इटावा के इसलामिया हाईस्कूल में हुई और उन्होंने उच्च शिक्षा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में पायी। उन्होंने जर्मनी से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। आरंभ ही से वे राष्ट्रीय विचारों के थे और जब खिलाफत आंदोलन के समय अलीगढ़ विश्वविद्यालय से कुछ राष्ट्रीय विचारों के मुसलमान अलग हुए थे तो वे भी उनमें थे। उन्होंने 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया" नाम की एक राष्ट्रीय मुस्लिम संस्था स्थापित की और बहुत दिनों उसमें अध्यापन का कार्य करते रहे। जब महात्माजी ने बेसिक शिक्षा (बुनियादी तालीम) का आरंभ किया और बुनियादी तालीमी संघ बनाया तो डा० जाकिर हुसेन के राष्ट्रीय विचारों और शिक्षाशास्त्र के गहन ज्ञान के कारण उन्हें उसका अध्यक्ष बनाया। बुनियादी तालीम की रूपरेखा तथा उसका कार्यक्रम बनाने में डा० जाकिर हुसेन का प्रमुख हाथ था। स्वतंत्रता के बाद वे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उपकुलपति बनाये गये और बाद में उन्होंने बिहार के राज्यपाल-पद को सुशोभित किया। डा० जाकिर हुसेन में विद्वान्-सुलभ गांभीर्य और सरलता है। वे बड़े ही शिष्ट और सुलझे विचारों के विद्वान् हैं। देश के सब वर्ग के लोगों के हार्दिक समर्थन से उनका इस उच्च पद पर आसीन होना भारत की धर्म-निरपेक्षता का व्यावहारिक प्रमाण है। हमें उनके इस उच्च पद पर चुने जाने से हार्दिक संतोष है। हम उनका हृदय से स्वागत और उनकी सफलता की कामना करते हैं।

संसद में हिंदी—संसद के इस सत्र में कुछ ऐसे लोगों ने अँगरेजी में भाषण दिये जिनसे हिंदी में बोलने की अपेक्षा की जाती थी। उनमें तीन व्यक्ति प्रमुख थे—श्री काका कालेलकर, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और उत्तर प्रदेश के एक नवनिर्वाचित लोकसभा के कांग्रेसी सदस्य। इन तीनों ने अँगरेजी में भाषण देने के जो कारण दिये हैं वे बड़े मनोरंजक और विचारणीय हैं। काका साहब ने अपना पहिला भाषण अँगरेजी में दिया। उसके बाद पं० बनारसीदास चतुर्वेदी बोले। उन्होंने अपने भाषण के आरंभ में कहा—

I had prepared my speech in Hindi, but when I found that my colleagues, Kaka Saheb Kalelkar and Prof. Malkani Saheb had forgotten their Hindi, I thought, for their benefit, I should speak in the foreign language.

(मैंने अपना भाषण हिंदी में तैयार किया था, किंतु जब मैंने देखा कि मेरे सहयोगी काका साहेब कालेलकर और प्रोफेसर मलकानी साहब हिंदी भूल गये हैं तब मैंने सोचा कि उनके लाभ के लिए मैं विदेशी भाषा में बोलूँ।)

काका साहब जब दुबारा बोले तब उन्होंने पं० बनारसीदास के इस आक्षेप का उत्तर देते हुए कहा—

Shri Banarasi Das Chaturvedi criticised me because I spoke in English. I want to repeat the same crime, if he thinks so, because I want to reach the ears of the Hindi-speaking people. My experience is that people like him admire my style—it is fairly Sanskritised, almost exclusive style—and ordinary people understand it. But I have found that only when I speak something in English I get response, I get congratulatory letters etc. from the Hindi-speaking people. I am not speaking for all. There are good many people who admire my Hindi. But only when I speak in English, they give response. That is why I am speaking in my broken English. I think I can speak better in Hindi. But I want to reach the ears of the Hindi-speaking people.

(श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझ पर आक्षेप किया है क्योंकि मैं अँगरेजी में बोला था। मैं उसी अपराध को दुहराना चाहता हूँ, यदि वे ऐसा समझते हैं, क्योंकि मैं अपनी बात हिंदीभाषियों तक पहुँचाना चाहता हूँ। मेरा अनुभव है कि उनके समान व्यक्ति मेरी शैली की प्रशंसा करते हैं—वह काफी संस्कृतनिष्ठ है, प्रायः निराले ढंग की है—और सामान्य जन उसे समझ लेते हैं। किंतु मैंने यह देखा है कि हिंदीभाषियों पर मेरी बात का प्रभाव तभी पड़ता है जब मैं कोई बात अँगरेजी में कहता हूँ। तब हिंदीभाषियों से मुझे बधाई के पत्र आदि मिलते हैं। मैं इस समय सब लोगों को सुनाने के लिए नहीं बोल रहा। कितने ही मित्र मेरी हिंदी की प्रशंसा करते हैं। किंतु वे तभी प्रत्युत्तर देते हैं जब मैं अँगरेजी में बोलता हूँ। इसीलिए मैं अपनी टूटी-फूटी अँगरेजी में बोल रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि मैं हिंदी में अधिक अच्छा बोल सकता हूँ। किंतु मैं हिंदीभाषियों तक अपनी बात पहुँचाना चाहता हूँ।)

तीसरे महाशय जब लोकसभा में प्रथम बार बोलने को खड़े हुए तब कुछ सदस्यों ने चिल्लाकर उनसे हिंदी में बोलने को कहा। उन्होंने उत्तर में (अँगरेजी में) जो कहा उसका आशय था कि मैं उत्तर प्रदेश से आ रहा हूँ। इसलिए मैं अँगरेजी में बोल रहा हूँ। जब तक अहिंदीभाषी मुझसे हिंदी में बोलने को नहीं कहेंगे तब तक मैं अँगरेजी में ही बोलूँगा क्योंकि हिंदी तभी चल सकती है जब उसे अहिंदीभाषी चाहें।

अतएव विचित्र स्थिति यह है कि संसद में अहिंदीभाषी (काका साहब और प्रो० मलकानी आदि) अँगरेजी में इसलिए बोलते हैं कि हिंदीवाले हिंदी में कही हुई बात नहीं सुनते। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की तरह के लोग अँगरेजी में भाषण इसलिए देते हैं कि काका साहब और प्रोफेसर मलकानी उनकी बात समझ लें। तीसरे प्रकार के सदस्य उत्तर प्रदेश के होने के कारण तब तक हिंदी में बोलना पाप समझते हैं जब तक कि अहिंदीभाषी हिंदी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलने की माँग न करें। 'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी।' न अहिंदीभाषी हिंदी की माँग करेंगे, और न हमारे उत्तर प्रदेश के ये और इनके समान सदस्य हिंदी में बोलेंगे। तब संसद में भारत की संविधान-सम्मत राज-भाषा में कौन बोलेगा? केवल वे ही हिंदीभाषी जिन्हें टूटी-फूटी भी अँगरेजी नहीं आती।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का तर्क हमारी समझ में नहीं आया। क्या संसद में भाषण केवल दो-चार सदस्यों के लाभ के लिए किया जाता है? क्या वास्तव में उन्हें विश्वास था कि काका साहब और प्रो० मलकानी हिंदी को इतना भूल गये हैं कि वे उनका भाषण न समझ सकते? एक हिंदी पत्रकार और हिंदी साहित्यिक होने के नाते हिंदी के प्रति उनका कुछ उत्तरदायित्व था। क्या वह उत्तरदायित्व काका साहब के अँगरेजी में बोलने के कारण समाप्त हो गया? उन्हींकी प्रिय अँगरेजी में एक कहावत है— Two wrongs never make a right. 'दो भूलें मिलकर एक सही बात नहीं बना सकतीं।' यदि वे समझते थे कि काका साहब ने भूल की तो उनकी भूल से स्वयं बनारसीदासजी की भूल कैसे क्षम्य हो सकती है?

किंतु काका साहब ने जो कारण दिया है वह विचारणीय है। हम स्वयं कुछ अंशों में उनसे सहमत हैं। किंतु इसका वह कारण नहीं है जो काका साहब समझते हैं। बात यह नहीं है कि हिंदीवालों पर उनके हिंदी भाषणों का प्रभाव नहीं होता। उनकी हिंदी पुस्तकों और लेखों का प्रभाव तो होता है, फिर भाषणों का क्यों नहीं होता। इसका कारण यह है कि संसद में दिये जानेवाले हिंदी भाषणों की रिपोर्टिंग समाचार-पत्रों में या तो होती ही नहीं, और यदि होती भी है तो अत्यल्प। इसका कारण यह है कि प्रेस ट्रस्ट अँगरेजी की समाचार एजेंसी है। भारत में संवाद प्रेषण का उसका प्रायः एकाधिपत्य है। जिस प्रकार अँगरेजी के बड़े-बड़े समाचार-पत्र अपने विशेष संसदीय संवाददाता रखते हैं उस प्रकार हिंदी समाचार-पत्र नहीं रखते। अधिकांश बड़े हिंदी समाचार-पत्र उन पूँजीपतियों के हाथ में हैं जो अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए अँगरेजी समाचार-पत्र निकालते हैं और जो व्यावसायिक या अन्य स्वार्थ के कारण हिंदी में 'भी' पत्र निकालते हैं किंतु उनका सारा ध्यान अँगरेजी पत्रों की उन्नति में केंद्रित रहता है। वे अपने हिंदी पत्रों के लिए उस पाये के सम्पादक नहीं रखते जिस पाये के अँगरेजी पत्रों के लिए रखते हैं। उन्हें हिंदी में केवल व्यावसायिक रुचि है। पी० टी० आई० का स्वार्थ अँगरेजी में है। अतएव हिंदी भाषणों की रिपोर्टिंग या तो की ही नहीं जाती या केवल खानापूरी करने के लिए अत्यल्प ढंग से की जाती है। यदि काका साहब पता लगावें कि संसद में पी० टी० आई० के कितने संवाददाता हिंदी भाषणों को ठीक तरह से समझ सकते हैं, तो उन्हें स्थिति स्पष्ट हो जायगी। यदि हमारी सरकार को हिंदी में वास्तविक रुचि होती तो वह हिंदी की संवाद समिति की स्थापना की ओर ध्यान देती, या उन लोगों को प्रोत्साहन देती जो हिंदी संवाद समिति बनाने को उत्सुक हैं। हमें मालूम है कि राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने हिंदी संवाद समिति की स्थापना का कई बार प्रयत्न किया, किंतु आज के 'समाजवादी' तंत्र में सरकार की सहायता के बिना यह काम असंभव है। धन का एकत्र करना, टेलीप्रिंटर पाना, तार की लाइन लेना—आदि सभी कुछ सरकार की कृपा पर निर्भर है। अस्तु। वर्तमान स्थिति की यह कृपा है कि हिंदीवालों को उनके हिंदी भाषणों की खबर ही नहीं होती। और सिवाय मंत्रियों और कुछ चुने हुए लोगों को छोड़कर अन्य वक्ताओं के अँगरेजी भाषणों की भी नहीं के बराबर ही खबर होती है। क्या काका साहब का यह अँगरेजी का भाषण हिंदीवालों के पास पहुँचा? जी नहीं। पी० टी० आई० ने दो-चार चुनी हुई बातें—जिनसे उनके भाषण के प्राण नष्ट हो गये—दस-बारह पंक्तियों में प्रसारित की थीं। हमने तो विशेष प्रयत्न करके उनके भाषण की प्रतिलिपि प्राप्त की। यदि हिंदीवालों तक पहुँचने का ध्येय हो तो वह भाषण की भाषा पर निर्भर नहीं है। वह संवाद समितियों और समाचार-पत्रों के सम्पादकों की कृपा पर निर्भर है। काका साहब की हिंदी पुस्तकें और लेख हिंदी जगत् में पढ़े और सराहे जाते हैं। यदि हिंदीवाले उनकी हिंदी न पढ़ते तो हिंदी संसार में उनकी आज जो प्रतिष्ठा है, वह न होती। संवाद समितियों और संवाददाताओं का दोष हिंदीभाषियों के सिर मढ़ना कहाँ तक उचित है? किंतु आज हिंदीवालों की भर्त्सना करना 'फैशन' है। हम हिंदीवालों का एक ही अपराध है: हम भारत में रहकर वह भाषा बोलते हैं जिसे भारत के संविधान ने देश की राजभाषा माना है। यदि अँगरेजों की अँगरेजी की तरह हमारी भाषा भी अभारतीय होती तो जिस प्रकार अँगरेजीभाषी अँगरेजों की भर्त्सना नहीं होती, उसी प्रकार हमारी भी न होती। काका कालेलकर यदि युग की इस 'फैशन' में बह गये और हिंदीवालों की भर्त्सना कर बैठे तो उन्होंने 'युगधर्म' ही का पालन किया है।

रहे उत्तर प्रदेश के वे कांग्रेसी सदस्य जिन्होंने उत्तर प्रदेश के होने के कारण तब तक हिंदी में भाषण न देने की प्रतिज्ञा की है, जब तक अहिंदीभाषी उनसे हिंदी में बोलने का आग्रह न करें। हम उनकी बातों पर विशेष ध्यान नहीं देते। वे करोड़पती हैं। उच्च पुलिस अधिकारी रह चुके हैं। जिस वर्ग के वे हैं उसमें मित्रों की तो बात कौन कहे, पिता और पत्नी को भी अँगरेजी में ही पत्र लिखे जाते हैं। उनके लिखा-पढ़ी के जीवन में हिंदी का स्थान नगण्य है। वे केवल जनता से 'वोट' लेने के लिए हिंदी में बोलने की कृपा करते हैं। वहाँ अहिंदीभाषियों के आग्रह की राह नहीं देखते। वहाँ वे हिंदी बोलने को मजबूर हैं। उनके अभिजात्यवर्ग से हिंदी ने कभी कोई आशा नहीं की। यदि उन लोगों को उत्तर प्रदेश के उस अभिजात्य वर्ग के 'हिंदी प्रेम' का हाल मालूम होता जिसकी वे उपज हैं, तो वे उनसे हिंदी में बोलने का आग्रह नहीं करते। "मैं उत्तर प्रदेश का हूँ इसलिए हिंदी में नहीं बोलूँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

जब तक ....." वास्तव में बड़ा मौलिक तर्क है। संसद में हिंदी तो वे बड़े उच्च आदर्श के कारण नहीं बोले, किंतु कोई उनसे पूछे कि आप अपने निजी जीवन में कितना पत्रव्यवहार हिंदी में करते हैं तो उनके उत्तर से मालूम हो जायगा कि उनका अँगरेजी-प्रेम और अँगरेजी का अभ्यास कितना गहरा है। यह उत्तर प्रदेश का दुर्भाग्य है कि हिंदी से इतने निरपेक्ष लोग उसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

चीन का खतरा और सीमा की सुरक्षा—यह संतोष की बात है कि इधर सरकार की ओर से चीन-भारत-सीमा-विवाद पर जो वक्तव्य दिये गये हैं वे इस बात को प्रकट करते हैं कि भारत सरकार ने चीन की ओर से अपना रुख बदल दिया है। अब वह आवश्यकता पड़ने पर, अर्थात् चीन के और अधिक बढ़ने पर, सक्रिय विरोध करने का निश्चय कर चुकी है। लद्दाख में हमारे सीमा के पहरेदारों ने पहरा देने का काम सक्रियता से आरंभ कर दिया है और अपनी भूमि में जहाँ-तहाँ चौकियाँ बनाना भी आरंभ कर दिया है। इससे चीनियों को धीरे-धीरे रेंगते हुए बढ़ने में बाधा मालूम होने लगी है, और वे बौखला उठे हैं। उनकी बौखलाहट इसका प्रमाण है कि हमारे सीमान्त के पहरेदार अपना काम ठीक ढंग से करने लगे हैं।

किंतु देशवासियों को इस सीमा की सुरक्षा की कठिनाइयों को समझना आवश्यक है क्योंकि जनतंत्र में प्रबुद्ध जनता ही देश की सुरक्षा की समस्याओं को ठीक तरह से समझ सकती है। इसके लिए हमें भारतीय सेना का इतिहास और परम्पराएँ जानना आवश्यक है। भारतीय सेना अँगरेजों ने संगठित की थी। उस सेना का संगठन एक पराधीन देश को दबाये रहने की दृष्टि से किया गया था जिससे यदि इस विशाल देश में कहीं आंतरिक उपद्रव या विद्रोह हो तो वह आसानी से दबाया जा सके। अँगरेजों के सामने दो मुख्य समस्याएँ थीं: उत्तरी-पश्चिमी तथा पूर्वी-उत्तरी सीमान्तों के लड़ाकू निवासी, तथा देशी राज्यों की छोटी-मोटी सेनाएँ। भारतीय सेना को सीमा की रक्षा की समस्या ही न थी, क्योंकि उस समय भारत के पड़ोसी देश, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, बर्मा (और बाद में थाईलैण्ड) इतने निर्बल और पिछड़े हुए थे कि उनसे आक्रमण का कोई भय न था। यदि भय था तो जारशाही रूस का। किंतु रूस और भारत के बीच में हिमालय की लंबी-चौड़ी श्रेणियाँ थीं जो उन दिनों अभेद्य थीं। वे इतनी अभेद्य समझी जाती थीं कि उन पर सेना रखने की बात कौन कहे, उसकी देखरेख के लिए सामान्य पुलिस की चौकियों की भी आवश्यकता न समझी जाती थी। रूस के भय का सामना करने के लिए इँगलैण्ड भारतीय सेना का उपयोग अनावश्यक समझता था। वह उसके लिए अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति का सहारा लेता और योरोप में उसे उलझाये रहता। फिर, भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व सारे ब्रिटिश साम्राज्य का था। आवश्यकता पड़ने पर सारे संसार में फैली हुई ब्रिटिश नौ-सेना तथा स्थल-सेना का उपयोग भारत की सुरक्षा के लिए किया जा सकता था। अतएव भारतीय सेना का संगठन देश की सुरक्षा की दृष्टि से नहीं, किंतु आंतरिक विग्रह को दबाने की दृष्टि से किया गया था। उसका संगठन ही नहीं, किंतु उसको शस्त्रास्त्र भी ऐसे दिये गये थे जो आंतरिक विद्रोहों को दबाने के लिए पर्याप्त हों। फिर भी, भारतीय सेना को समय-समय पर ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए चीन, अफरीका आदि में जाकर लड़ना पड़ता था। किन्तु उन दिनों जो युद्ध होते थे उनमें व्यक्तिगत वीरता, साहस आदि की अधिक अपेक्षा की जाती थी। सुअनुशासित वीर भारतीय जवान इन युद्धों में सफल प्रमाणित होते थे। प्रथम महायुद्ध में भी भारतीय सेनाएँ योरोप में लड़ीं, किंतु फिर भी उनके संगठन में अँगरेजों ने कोई उल्लेखनीय या मौलिक परिवर्तन नहीं किया। जब दूसरे महायुद्ध के बादल घिरने लगे और संसार की सेनाओं में जो शस्त्रास्त्र-संबंधी उन्नति हो गयी थी उसकी तुलना में भारतीय सेना का पिछड़ापन स्पष्ट रूप से चमकने लगा तब भारतीय सेना को पुनर्गठित करने की समस्याओं पर विचार करने के लिए चैटफील्ड कमेटी बनायी गयी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि संगठन और शस्त्रास्त्र में भारतीय सेना संसार के उन्नत राष्ट्रों की सेनाओं से बहुत पिछड़ी हुई है और उसे आधुनिक और अद्यतन बनाने की आवश्यकता है। इसी बीच द्वितीय महायुद्ध आरंभ हो गया। शतियों में पहिली बार इँगलैण्ड का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। अतएव उसने अपनी सहायता और अपने उपयोग के लिए भारतीय सेना का आकार बहुत बढ़ा दिया और किसी-किसी मामले में उसे उतना आधुनिक भी बना दिया जितना परमावश्यक था। किंतु ये सब परिवर्तन युद्धकाल में हुए थे और तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किये गये थे। भारतीय सेना का आकार बढ़ा, वह थोड़ी-बहुत आधुनिक भी हुई, किंतु उसका विकास बहुमुखी नहीं हुआ और परिवर्तन करते समय यह उद्देश्य भी स्पष्ट रूप से सामने नहीं रखा गया कि भारतीय सेना प्रत्येक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो और उसके प्रत्येक अंग का संतुलित विकास कर दिया जाय। उसे कुछ आधुनिक शस्त्रास्त्र मिले थे। कुछ आधुनिक सज्जा भी मिली, किंतु बहुत-सी आधुनिक वस्तुओं से वह वंचित रही।

द्वितीय महायुद्ध के बाद से स्वतंत्रता-प्राप्ति तक अनिश्चितता का समय था। इसमें कोई दीर्घकालीन परिवर्तन नहीं किये जा सकते थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय सेना पर नया उत्तरदायित्व आ गया। अब भारत की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश साम्राज्य की सैनिक और नौ-सेना-शक्ति का भरोसा नहीं रह गया था। भारत की सुरक्षा का सारा भार एकमात्र भारतीय सेना पर आ पड़ा। उस समय हमारे पड़ोसी इतने बलवान् या खतरनाक नहीं थे कि भारतीय सेना के लिए भारत की सुरक्षा करना कठिन हो जाता। कश्मीर में आक्रमणकारियों को जिस चतुरता और वीरता से हमारी सेना ने पीछे ढकेलना आरंभ कर दिया था और जिस प्रकार उसने श्रीनगर घाटी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा की थी, वह इसका प्रमाण है। किंतु १९५० से स्थिति एकदम बदल गयी। चीन ने तिब्बत पर अधिकार करके वहाँ कम्यूनिस्ट शासन स्थापित कर दिया। अभी तक भारत का कोई पड़ोसी राष्ट्र इतना बड़ा, शक्तिशाली, विस्तारशील, आक्रामक और कुटिल तथा चालाक नहीं था। तिब्बत में चीन के घुसते ही, भारत का सामना संसार की एक ऐसी महान् सैनिक शक्ति से हो गया जो छल-बल से अपने साम्राज्य का विस्तार करने पर तुली हुई है। चीन की सेना की गणना संसार की प्रथम तीन-चार महान् सेनाओं में होती है। साठ करोड़ के उस देश में जहाँ तानाशाही है, अपार जनशक्ति है। रूस के प्रशिक्षण, सामान एवम् शस्त्रास्त्र की सहायता के कारण चीनी सेना अत्यंत आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सज्जित है। उत्तरी कोरिया में अमरीकी सेना के साथ उसका जो युद्ध हुआ उससे उसकी सैनिक दक्षता का प्रमाण मिल चुका है। अँगरेजों के समय में भी भारत की सुरक्षा को कभी इस प्रकार का खतरा उत्पन्न नहीं हुआ था।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, हिमालय अभेद्य समझे जाते थे और इस सीमा पर न तो सीमारक्षक सैनिकों के रखने की आवश्यकता होती थी और न साधारण पुलिस चौकियों की। जहाँ भारत और चीन की सीमाएँ आज मिलती हैं वे स्थान १४००० फुट से १८००० फुट तक की ऊँचाई पर हैं। इनमें से बहुत से स्थान तो बारहों महीने बरफ से ढँके रहते हैं। ये वीरान स्थान हैं। न यहाँ बस्तियाँ हैं, न वनस्पति। इनमें कहीं-कहीं कुछ नीची घाटियाँ या पठार हैं जिन पर गर्मियों में घास हो जाती है और भ्रमणशील गड़ेरिये अपनी भेड़ों आदि को चराने पहुँच जाते हैं। यहाँ की वायु बहुत पतली है। इससे मैदान के आदमियों को वहाँ साँस लेने में कठिनाई होती है तथा चलने से थोड़ी ही देर में थकावट आ जाती है। इस सर्दी में रहने के लिए गर्मी उत्पन्न करने के साधन चाहिए। ईंधन यहाँ होता ही नहीं। इस ऊँचाई पर पानी इतने कम तापमान पर उबलने लगता है कि दाल गल नहीं सकती, चावल पक नहीं सकता। केवल आधुनिक दबाववाले कुकर में ही भोजन बन सकता है। सड़कों की कौन कहे, पगडंडियाँ भी कहीं ही कहीं मिलती हैं। इन स्थानों में पहुँचने के लिए १००-१५० मील दुर्गम पहाड़ों को पार करना पड़ता है। सीमा पर पहुँचने के लिए इन दुर्गम पहाड़ों पर उत्तर से दक्षिण बहनेवाली नदियों की घाटियों के किनारे-किनारे चलना पड़ता है। किंतु अधिकांश घाटियों में सड़कें नहीं हैं। वे बड़ी तेजी से बनायी जा रही हैं, पर अभी भी जिस सीमा की सुरक्षा करनी है वहाँ पहुँचना अत्यंत कठिन है। ऐसे दुर्गम स्थानों में सेना का भारी और हलका सामान ले जाना कितना कठिन है, इसकी कल्पना हम साधारण नागरिक ठीक तरह से नहीं कर सकते। बदरीनारायण, केदारनाथ, गंगोत्री या जमनोत्री के यात्री उन कठिनाइयों की कुछ कल्पना कर सकते हैं। किंतु सीमा पर पहुँच जाने पर सीमा के एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना अत्यंत कठिन है। एक पर्वत या एक नदी का अवरोध दर्जनों मीलों का चक्कर लगवा कर "नौ दिन चले अढ़ाई कोस" की कहावत चरितार्थ कर देता है। यह भाग बड़ा ऊबड़-खाबड़ और नदी-नालों से कटा-पिटा हुआ है। इन्हें पार करने के लिए पुल नहीं हैं, और साधारण रूप से उन्हें पार करना श्रम और समयसाध्य है। इतनी ऊँचाई पर होने के कारण यहाँ बहुधा बर्फानी तूफान आते रहते हैं और बर्फानी हवाएँ तो चलती ही रहती हैं। कुहरा भी बहुधा छाया रहता है। शीत अत्यधिक है। यहाँ जीवित रहने के लिए विशेष प्रकार का बहुत पौष्टिक और गर्मी पहुँचानेवाला भोजन आवश्यक है। सामान या तो खच्चरों से ले जाया जा सकता है या कुलियों द्वारा। बहुत जगह तो खच्चर भी काम नहीं देते। उनके चारे की समस्या वहाँ अलग है। वहाँ शारीरिक स्वास्थ्य और कार्यकुशलता के लिए केवल शीत की ही समस्या नहीं है, ऊँचाई की भी समस्या है। हमारे अधिकांश सैनिक मैदानों या कम ऊँची जगहों में रहने के आदी हैं। उन्हें इन विशाल ऊँचाइयों पर रहने का अभ्यास धीरे ही धीरे हो सकता है। संसार में किसी देश को अपनी सुरक्षा के लिए इतनी विस्तृत, ऊँची, दुर्गम और वीरान सीमा की रक्षा करने की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। इतिहास में केवल दो बार आल्प्स पर्वत सैनिकों द्वारा पार किये गये हैं, किंतु हिमालय के सामने आल्प्स पहाड़ियाँ नगण्य हैं। चंगेज खाँ के घुड़सवारों ने एक बार मध्य एशिया के कुछ दुर्गम पर्वत पार किये थे। उनके काम संसार के कीर्तिमान हो गये हैं। किंतु भारतीय सैनिकों को जो काम करना पड़ रहा है, जिस भयंकर और दुर्गम भूमि में जमकर रक्षा करनी पड़ रही है, उसका पूर्व उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं मिलता। आज के युग में हेलिकाप्टर, बे तार के तार, रडार, वायुयान आदि अनेक उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है। किंतु जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं, हमारी सेना का आधुनिकीकरण हाल ही में आरंभ हुआ है। हमें इस खतरे की शंका भी न थी। इसलिए हम अपनी सारी शक्ति देश की आर्थिक और औद्योगिक उन्नति में लगाये हुए थे। किंतु देशवासियों को यह समझना चाहिए कि चीन के इस खतरे ने हमारे सामने जो समस्या रख दी है, वह कितनी कठिन और कितनी उलझी हुई है, और उसके लिए उपाय करने में कितने समय, श्रम, चिंतन, दूरदर्शिता, संगठन-शक्ति, प्रशिक्षण, आधुनिक शस्त्रास्त्र, उपकरण और धन की आवश्यकता है। अधीरता से काम नहीं चलेगा। सारे राष्ट्र के सतत और पूर्ण परिश्रम से ही उसकी रक्षा हो सकती है।

हिंदी की राज्यभाषा के रूप में व्यावहारिक समाप्ति—जिस समय संविधान बनाया गया उस समय देश में स्वतंत्रता आंदोलन की गर्मी शेष थी। शुद्ध राष्ट्रीयता की भावना फैली हुई थी। भाषावादी राज्यों का निर्माण नहीं हुआ था। भाषावाद, जातिवाद और संकुचित सामुदायिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

तथा व्यक्तिगत स्वार्थ दबे हुए थे। यद्यपि अँगरेजी-प्रेमी उस समय भी हिंदी के विरोधी थे तथापि उस समय जनमत हिंदी के पक्ष में इतना प्रबल था कि वे बोल नहीं सके। किंतु वे अधिकार के स्थानों में थे। सारे अँगरेजी समाचार-पत्रों का उन्हें समर्थन था। हमारे अँगरेजी-परस्त नेता अँगरेजी अखबार ही पढ़ते हैं और उन्हींको भारत की जनता की आवाज समझते हैं जब कि वे मुट्ठी पर अँगरेजीभक्तों, पूँजीपतियों और निहित स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमारे नेतावर्ग में भी बहुत से ऐसे हैं जो हृदय से हिंदी नहीं चाहते। वे समय-असमय हिंदी की बुराई और अँगरेजी का गुणगान किया करते हैं। वे हिंदी के विरोध में और अँगरेजी के पक्ष में वर्षों से अप्रत्यक्ष प्रचार करते आ रहे हैं। इधर भाषावादी राज्यों के बनने और प्रान्तीयता की भावना के उभड़ने से किसी-किसी राज्य में हिंदी का विरोध मुखर हो गया। हमारे नेताओं ने उसका विरोध करने के बजाय जोर-जोर से "हिंदी साम्राज्यवाद", "हिंदी लादने" आदि की बातें करके इस हिंदी-विरोध की अग्नि में घी डालने का काम किया। वे स्वयं हिंदी को नहीं चाहते थे, और जब उन्होंने हिंदी-विरोध की अग्नि भड़का दी तब "शांतं पापम्" का जप करके विरोधियों को संतुष्ट करने की नीति अपनायी, और १९६५ के बाद अँगरेजी का स्थान पूर्ववत् रखने के लिए संविधान का संशोधन करने का निश्चय घोषित कर दिया। इस बीच हिंदी की भर्त्सना करनेवाले और अँगरेजी का गुण बखाननेवाले व्याख्यान तो दिये, किंतु उन्होंने हिंदी के प्रचार का या उसके अनुकूल वातावरण बनाने का कोई प्रभावी उपाय नहीं किया। अपने व्यवहार से उन्होंने जनता को बतला दिया कि वे अँगरेजी को ज्यों का त्यों बनाये रखेंगे। इसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाने लगे थे और अँगरेजी पर जोर देना छोड़ रहे थे, वे घबड़ा गये। उन्होंने देखा कि स्वतंत्र भारत में भी बिना अँगरेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किये उनके बच्चों का भविष्य अंधकारमय है। अतएव हिंदी के विरुद्ध और अँगरेजी के पक्ष में तीव्र प्रतिक्रिया आरंभ हुई। हमारी सरकार ने इस प्रतिक्रिया का नेतृत्व किया, और, जैसा कि अँगरेजों के राज्य में होता था, अँगरेजी का पढ़ाना फिर तीसरी श्रेणी से आरंभ कर दिया गया।

वर्धा की राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा ने गत मास अपनी रजत जयंती मनायी। हमारी मिनिस्टर-परस्त साहित्यिक और हिंदी संस्थाओं का कोई उत्सव बिना मिनिस्टरों के सम्पन्न हो नहीं सकता। अतएव अन्य मंत्रियों के साथ साथ उसने भारत के गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री को भी एक "उद्घाटन" के लिए निमंत्रित किया। श्री शास्त्रीजी लोक-सेवक मंडल के सदस्य हैं। वे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन के "खास आदमी" समझे जाते हैं। किंतु वे भारत के गृहमंत्री हैं। अतएव राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा की रजत जयंती के अवसर पर उन्होंने यह संवाद सुनाया कि संसद के अगले सत्र में सरकार संविधान का संशोधन करने के लिए यह प्रस्ताव ला रही है कि १९६५ के बाद अँगरेजी भारत की "सहकारी राजभाषा" (ऐसोसिएट आफिशियल लैंग्वेज) के रूप में अनिश्चित काल तक बनी रहे। उन्होंने "हिंदी लादने" के अवगुणों को उस नेताशाही भाषा में दुहराया जिसे हम इतने दिनों से सुनते-सुनते ऊब गये हैं। "सहकारी राजभाषा" कूटनीतिपूर्ण शब्द है। उसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि अँगरेजी में पूर्ववत् काम होता रहेगा। कुछ सरकारी कागजों का, जो मूल में अँगरेजी में तैयार होते रहेंगे, हिंदी अनुवाद या हिंदी सारांश भी प्रकाशित कर दिया जाया करेगा (जिन्हें कोई नहीं पढ़ेगा) और कुछ औपचारिक अवसरों पर कुछ बातें हिंदी में भी कह दी जाया करेंगी। इससे यह होगा कि व्यवहार में अँगरेजी यदि एकमात्र नहीं तो मुख्य राजभाषा हो जायगी और हिंदी वास्तविक "सहकारी" राजभाषा रह जायगी जिसे भारत-सरकार संविधान में उल्लिखित होने के कारण केवल सहन करेगी। हिंदी अँगरेजी की "दासी" की तरह हो जायगी। अवश्य ही "हिंदी प्रचार" का नाटक होता रहेगा, और एक दो करोड़ रुपये उसके प्रचार के नाम पर फूँक दिये जाया करेंगे जिसका बहुत बड़ा अंश "कोतल" अफसरों के मोटे वेतनों पर खर्च होगा। किंतु हिंदी के उन्नयन पर ही रुपया खर्च नहीं होगा। अन्य भारतीय भाषाओं के उन्नयन पर भी भारत-सरकार रुपया खर्च कर रही है। हिंदी भी भारत की चौदह मान्य भाषाओं में है, और यदि वह संविधान में "राजभाषा" न भी घोषित की गयी होती तो भी उसके उन्नयन पर अन्य भाषाओं की तरह कुछ न कुछ खर्च करना पड़ता। वह सबसे अधिक भारतवासियों द्वारा बोली जाती है, इसलिए स्वभावतः उस पर अनुपाततः अधिक ही व्यय करना पड़ता। अतएव हिंदी के उन्नयन पर सरकार जो व्यय कर रही है वह हिंदी पर कोई विशेष कृपा नहीं है।

देशभक्त भारतवासियों और हिंदीप्रेमियों को वस्तु-स्थिति समझ लेनी चाहिए। हिंदी में राजकाज करने को तैयार न होने पर भी सरकार किसी कारण से संविधान से हिंदी को राजभाषा पद से एकदम हटाना नहीं चाहती। और ठीक भी है, "जो गुड़ दीने ही मरे, तो विष दीजे काहि" न्याय के अनुसार सरकार जब अँगरेजी को "सहकारी राजभाषा" बनाकर हिंदी को व्यावहारिक रूप से समाप्त करके अँगरेजी चलाते रहने का अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त कर सकती है तब संविधान से हिंदी को निकालकर आंदोलन का खतरा क्यों व्यर्थ मोल ले?

इस संबंध में हिंदीवालों को अपने विचार स्पष्ट कर लेने चाहिए। यह प्रत्यक्ष है कि सरकार हिंदी को राजभाषा के रूप में चलाने के लिए न उत्सुक है, और न तैयार। अँगरेजी को १९६५ के बाद अनिश्चित काल के लिए सहकारी या मुख्य राजभाषा के रूप में रखना इस बात को स्पष्ट कर देता है कि अँगरेजी दीर्घ काल तक देश की राजभाषा बनी रहेगी और ९५ प्रतिशत काम उसीमें हुआ करेगा। अतएव संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में रखना देश को केवल ऐसा भुलावा देना है जिसमें कोई समझदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति न आवेगा। यदि सरकार समझती है कि देश हिंदी को राजभाषा के रूप में नहीं चाहता तो साहसपूर्वक उसे संविधान से निकाल दे। तब देश में किसी प्रकार की द्विधा न रहेगी। हिंदी को राजभाषा बनाने का एक कारण यह भी था कि वह देश को एक सूत्र में गूँथने में समर्थ समझी जाती थी। किंतु सरकार का कहना है कि उसके "लादने" से देश में अलगाव होगा। हम हिंदीप्रेमी हैं, और आज भी इस बात के समर्थक हैं कि हिंदी को केंद्र की एकमात्र राजभाषा और अंतर्राज्य संचरण का माध्यम होना चाहिए। हमारा हिंदी-प्रेम असंदिग्ध है। किंतु हम देश को हिंदी से ऊपर और अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। यदि हिंदी देश की एकता के लिए घातक है तो उसे देश की राजभाषा होने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा मालूम पड़ता है कि सरकार हिंदी को देश की एकता और संगठन में बाधक समझती है। इस अवस्था में उसे साहस बटोर कर, देश की एकता के लिए, हिंदी को संविधान से निकाल देना चाहिए। हिंदी अपनी तेरह बहनों की तरह अपने क्षेत्र की भाषा बनी रहेगी। हम उस स्थिति से संतुष्ट रहेंगे। व्यवहार में हिंदी के "कागजी राजभाषा" बने रहने पर हम हिंदी वालों को सरकार और अन्य हिंदी-विरोधियों की नित्यप्रति भर्त्सना सुननी पड़ती है, और उससे हिंदी का भी कोई वास्तविक हित नहीं होता। उसके इस कागजी पद से अपदस्थ होने पर वह भर्त्सना तो हमें न सुननी पड़ेगी और उसका विरोध तो समाप्त हो जायगा। संभव है कि अहिंदीभाषियों का सौमनस्य भी हमें प्राप्त हो जाय। नयी परिस्थिति में, अर्थात् अँगरेजी के सहकारी राजभाषा हो जाने पर, संविधान में हिंदी राजभाषा के रूप में रहने या न रहने से वस्तुस्थिति पर कोई प्रभाव न पड़ेगा क्योंकि यह निश्चय है कि राजभाषा के रूप में उसका व्यवहार प्रायः नहीं होगा। इसलिए ईमानदारी का तकाजा यही है कि हम अँगरेजी को भारत की एकमात्र राजभाषा घोषित कर दें। यदि हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी उन्नति कर ले तो भाषा की दृष्टि से वह उन्नति काफी होगी। बंगाल और तामिल के जो सज्जन कल तक हमारे मित्र थे और जो आज विरोधी हो गये हैं, उनका विरोध तो समाप्त हो जायगा। देश की एकता के लिए, और हिंदीभाषियों के प्रति सौमनस्य उत्पन्न करने की दिशा में क्या यह उपलब्धि थोड़ी होगी?

श्री शास्त्री ने वर्धा में भी "हिंदी लादने" की बात दुहराई है। हमें खेद है कि शास्त्रीजी के समान प्रबुद्ध सज्जन ने हिंदी-विरोधियों के इस थोथे तर्क को अपना लिया है। देश की संविधान सभा ने बहुमत से एक भाषा को संविधान में राजभाषा का पद दिया। उस संकल्प का सरकार द्वारा कार्यान्वित करना यदि "लादना" है तो हमें "लादने" शब्द का अर्थ बदलना पड़ेगा। भारत-सरकार और हमारे नेता आज इस देश में सब बच्चों को जो एक विदेशी भाषा (अँगरेजी) पढ़ने को बाध्य कर रहे हैं (क्योंकि इसके बिना उन्हें रोजी-रोजगार नहीं मिलेगा), इसे क्या कहा जायगा? क्या यह "लादना" नहीं है?

देश को समझ लेना चाहिए कि सरकार और हमारे नेताओं की क्या इच्छा और क्या रुख है। हमें भ्रम में न रहना चाहिए। सरकार यदि चाहे भी तो हिंदी को केवल "राजभाषा" बना सकती है। हमारा लक्ष्य उसे राष्ट्रभाषा अर्थात् अंतर्प्रांतीय संचरण की भाषा बनाना है। उसका राजभाषा पद इसमें सहायक हो सकता है, पर वह पद गौण है। न तो मुसलमान सरकारों ने और न अँगरेजी सरकार ने हिंदी को आश्रय दिया। कांग्रेसी सरकार भी उन्हींके चरण-चिह्नों पर चल रही है। वह हिंदी को देश की राजभाषा के रूप में नहीं चाहती। किंतु मुसलमानी साम्राज्य का आश्रय न पाने पर भी उस युग में सूर-तुलसी, जायसी, कबीर, खानखाना, रसखान आदि ने उत्पन्न होकर हिंदी का उन्नयन किया। अँगरेजों की उपेक्षा के बावजूद हिंदी ने भारतेन्दु, प्रसाद, प्रेमचंद और निराला उत्पन्न किये। इन दोनों साम्राज्यों के विरोध के बावजूद कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिंदी फैली। वह सब जगह समझी जाने लगी। हिंदी में इतनी जीवनशक्ति है कि वह कांग्रेस सरकार की उदासीनता, उपेक्षा और अप्रत्यक्ष विरोध के बावजूद उन्नति करती रहेगी। जिस प्रकार गंगा-सिंधु के मैदान में घास प्राकृतिक रूप से उपजती है, नष्ट किये जाने पर भी वह तनिक सा अवसर पाने पर फिर पृथ्वी से अपना सिर निकालकर गर्वोन्नत होकर मुस्कुराने लगती है, उसी प्रकार हिंदी इस देश की प्रकृत भाषा है। वह दबाने से नहीं दब सकती। इतना ही होगा कि सरकार के तथाकथित संरक्षण के कारण जो लाखों रुपये फूँके जा रहे हैं, उनमें हिस्सा बँटाने के लिए जो नकली हिंदीप्रेमी उत्पन्न हो गये हैं, वे हिंदी के राजभाषा न रहने पर अंतर्ध्यान हो जायेंगे; और हिंदी के वे निःस्वार्थी, कर्मठ और त्यागी सेवक फिर सामने आवेंगे जिन्होंने हिंदी को देश की वास्तविक अंतर्प्रान्तीय भाषा (लिंगुआ इंडिका) बनाया था। इसलिए हम सरकार से आग्रह करेंगे कि वह हिंदी को कागजी राजभाषा न बनावे। हम मुक्ता चाहते हैं, मुक्ताभास नहीं। हम सत्य चाहते हैं, सत्य का आवरण नहीं। भारत-सरकार ने अपना आदर्श वाक्य रखा है "सत्यमेव जयते"। अतएव सत्य का पालन उसका कर्तव्य है। हिंदी को राजभाषा घोषित करते हुए, उसे कागजी बनाकर छोड़ देना "सत्यमेव" नहीं है। हिंदी का हृदय विशाल है। उसकी छाती चौड़ी है। यदि देश की एकता हिंदी के बलिदान से होती है तो इस शुभकार्य में वह अपने को सहर्ष बलि कर देने को प्रस्तुत है। हिंदी का भविष्य राजभवन में नहीं, जनता की झोपड़ियों में है, सरकारी कार्यालयों में नहीं भारत के मंदिरों, घाटों, बाजारों और तीर्थस्थानों में है जहाँ से कोई शक्ति उसे अपदस्थ करके अँगरेजी को प्रतिष्ठित नहीं कर सकती। और ये नेता भी, यदि अखिल भारतीय नेता होना चाहेंगे, तो इन्हें भी अंततोगत्वा हिंदी ही की शरण लेनी पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

संस्कृत-साहित्य में ग्रीष्म-वैभव

श्री राधेश्याम गुप्त

सरस वसन्त की विदाई दे चुकने के उपरान्त ग्रीष्म-ऋतु तज्जनित वियोग में उष्ण लू के रूप में अपना उच्छ्वास छोड़ने को विवश हो उठती है। आनन्दवाही मन्द-मलयानिल के स्थान पर उष्ण धूल से लदी आँधियाँ चलने लगती हैं। ग्रीष्म ऋतु में प्रकृति की कमनीयता रौद्र रूप धारण कर अपनी विकरालता से समस्त सृष्टि के प्राणियों को व्याकुल बना देती है। प्रखर सूर्य भयानक आग उगलने लगता है जिसके फलस्वरूप सारी पृथ्वी आग की भट्टी के सदृश हो उठती है। ग्रीष्म की इस प्रचंड प्रखरता से बचने के लिए दोपहर में सभी मनुष्य अपने घरों में घुसे रहते हैं और अपनी सुविधानुसार ताप के शमन के लिए विभिन्न उपकरणों का प्रयोग करते हैं।

ऐसी अपरिमित प्रखर ग्रीष्म ऋतु को ऋतु-संहार में प्राथमिकता देकर उसका वर्णन षट्ऋतुओं के क्रम में सर्वप्रथम किया गया है। ग्रीष्म ऋतु के आगमन का अनूठा चित्र चित्रण करते हुए कहते हैं :—

'प्रचंडसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः
सदावगाहक्षतवारिसंचयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशांतमन्मथो
निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये॥'

(हे प्रिय, यह ग्रीष्म ऋतु आ गयी है। इसमें सूर्य अत्यधिक तपता है। सभी मनुष्य चंद्र की ज्योत्स्ना की अभिलाषा रखते हैं। निरंतर स्नान से नदियों तथा जलाशयों के जल कम हो जाते हैं। सायंकाल की छवि मनोरम होती है और मन्मथ का आवेश शान्त रहता है।)

दसों दिशाएँ प्रचंड धूल से रुद्र हो रही हैं। आततायी ज्येष्ठ मास में भूमि एवं आकाश की भीषण उष्णता से समस्त जगत तप रहा है। ऐसी तपन से बचने के लिए सभी लोग घरों के शान्त-शीतल भागों में विश्राम करते हैं। सुगन्धित पुष्पमाला, शीतल अंग-राग चन्दन, घनसार, गुलाब, केवड़ा से सुवासित जल, खस की टट्टी, जलक्रीड़ा और वन-विहार की संयोजना करके ग्रीष्म के प्रतिकूल वातावरण को उपयुक्त अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं तथा उपयुक्त पदार्थ का सेवन करते हैं :—

'निशाः शशांकक्षतनीलराजयः
क्वचिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम्।
मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनम्
शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम्॥'

(हे प्रिये, चन्द्रकिरणयुक्त रात्रि, कहीं-कहीं चित्र-विचित्र जल-यंत्र-मंदिर अथवा फव्वारेदार भवन, अनेकों भाँति के रत्न, चंद्रकान्त मणि और रसयुक्त चन्दन, इस ऋतु में जनसमूह के लिए ये ही पदार्थ सेवनीय हैं।)

वर्ष भर में होनेवाली छहों ऋतुओं की अपनी-अपनी परम्पराएँ एवं विशेषताएँ होती हैं, किन्तु ग्रीष्म की भी विशेषताएँ अत्यल्प हैं। यहाँ तक कि चन्द्रमा भी ग्रीष्म ऋतु में समुज्ज्वल कांतिवाला न रहकर प्रातःकाल के समय कुछ कम कान्तिवान दिखाई देता है :—

'सितेषु हर्म्येषु निशासु योषितां
सुखप्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः।
विलोक्य नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं
निशाक्षये याति हियेव पाण्डुताम्॥'

(हे कामिनी, इस ऋतु में, रात्रि में भवनों की छतों पर सुख से सोई स्त्रियों के मुखों को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि चन्द्रमा लज्जा-विह्वल होकर प्रातःकाल पीला पड़ जाता है।)

ग्रीष्म की प्रचंड प्रखरता के फलस्वरूप सभी वन्य प्राणी आपस का वैर-भाव भूल कर मैत्री के बंधन में एकत्र होकर रहने लगते हैं—महाकवि ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय देते हुए उपरोक्त भाव का अनूठा चित्र प्रस्तुत किया है :—

'रवेर्मयूखैरभितापितो भृशम्
विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः।
अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्य तले निषीदति॥'

(सूर्य की किरणों से अति पीड़ित तथा मार्ग की तप्त धूल से दग्ध सर्प नीचे की ओर सिर किये कुटिल गति से बार-बार श्वास छोड़ते हुए मोर के नीचे बैठ रहा है।)

ग्रीष्म में प्यास बुझाए नहीं बुझती, अपितु सौगुनी होकर बढ़ती है। पथिकजन मार्ग चलना बन्द कर देते हैं। सारा शरीर पसीने से भीगा रहता है। समस्त पशु-पक्षी सूर्य की प्रचंडता से व्याकुल हो उठे हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तृषा-महत्या हतविक्रमोद्यमः
श्वस-मुहुर्दूरविदारिताननः।
न हन्त्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो
विलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः॥'

(सिंह प्यास के कारण बलहीन हो गया है। वह बारम्बार श्वासें छोड़ रहा है। मुख फैलाकर पड़ा है। उसकी जीभ चंचल हो रही है। सिर के बाल काँप रहे हैं। देखा, हाथियों को समीप पाकर भी वह उनका शिकार नहीं करता।)

सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के असाधारण प्रभाव से जगती झुलसने लगती है। समस्त आकाश में ज्वालाएँ सी जलने लगती हैं। लगने लगता है मानो सूर्य दावाग्नि उगल रहा है। जीव व्याकुल हैं:—

'रविप्रभोद्भिन्नशिरोमणिप्रभो
विलोलजिह्वाद्वयलीढमारुतः।
विषाग्निसूर्यातपतापितः फणी
न हन्ति मंडूककुलं तृषाकुलः।'

(सर्पों के सिरों की मणियाँ सूर्य की किरणों से दीप्त हैं। सर्प भी दोनों जीभों से वायु को चाट रहे हैं। वे अपने विष के प्रभाव से तथा सूर्य के तेज से व्याकुल होकर मेढकों का नाश नहीं कर रहे हैं।)

महाकवि कालिदास ने ग्रीष्म ऋतु की प्रखरता को प्राथमिकता देकर जहाँ उसका शास्त्रीय वर्णन किया है, वहाँ ग्रीष्मचर्या के सम्बन्ध में महर्षि चरक के श्लोक भी सदैव स्मरणीय हैं:—

मयूखैर्जगतः सारं ग्रीष्मे पेपीयते रविः।
स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम्॥
शीतं सशर्करं मन्थं जांगलान् मृगपक्षिणः।
घृतं पयः सशाल्यन्नं भजन् ग्रीष्मे न सीदति॥

(ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों से संसार का सार तत्त्व पीता रहता है। इन दिनों स्वादिष्ट, शीतल, स्निग्ध और मीठा खान-पान हितकर होता है। चीनी मिला सत्तू, जंगली जीवों का मांस, दूध, मक्खन तथा चावल का भोजन मनुष्य को गर्मी के विकृत प्रभावों से बचाकर शीतल रखता है।)

'मद्यमल्पं न वा पेयमथवा सुबहूदकम्।
लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत्।
दिवा शीतगृहे निद्रां निशि चन्द्रांशुशीतले।
भजेच्चन्दनदिग्धांगः प्रवाते हर्म्यमस्तके॥

(ग्रीष्म में शराब नहीं पीनी चाहिए। यदि बिना पीये रहा ही नहीं जाए, तो काफी मात्रा में जल मिलाकर पियें। नमकीन, खट्टे, कड़वे तथा गरम पदार्थ एवं व्यायाम निषिद्ध हैं। दिन के समय शीतल घरों में तथा रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणों में खुली छत पर सोयें। सोने से पूर्व मस्तक तथा शरीर पर स्निग्ध चन्दन का लेप कर लें।)

'व्यजनैः पाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदक-शीतलैः।
सेव्यमानो भजेदस्यां मुक्तामणिविभूषितः।
काननानि च शीतानि जलानि कुसुमानि च।
ग्रीष्मकाले निषेवेत मैथुनाद् विरतो नरः॥'

(ग्रीष्मकाल में चन्दन और जल से भिगोये गये पंखों से हवा करने पर शीतलता आती है। मनुष्य मोती-मणियों से मंडित रहें। शीतल बाग-बगीचों एवं जलाशय के निकट ठंडे स्थानों तथा पुष्पों का उपयोग करें। इन दिनों मनुष्यों को कामवासना से विरक्त रहना चाहिए।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

राष्ट्रभाषा और स्वातंत्र्य संग्राम

डॉक्टर पां० स० खानखोजे

(डा० पांडुरंग सदाशिव खानखोजे 'सरस्वती' के पुराने लेखक हैं। वे जब अमरीका में थे तब वहाँसे, इस शती के दूसरे दशक में, 'सरस्वती' में लेख भेजा करते थे। उनका जीवनवृत्तांत उपन्यास की घटनाओं की तरह आश्चर्य-जनक और मनोरंजक है। वे आरंभ ही से क्रांतिकारी हो गये। वह लोकमान्य का युग था। अहिंसा का सिद्धान्त देश में नहीं फैला था। लोगों का यह विश्वास हो गया था कि बिना सशस्त्र क्रांति के अँगरेजों से मुक्ति नहीं मिल सकती। क्रांतिसेना के बनाने के लिए प्रशिक्षित सैनिक अफसरों की आवश्यकता थी। कितने ही युवक गुप्त रूप से यह रण-शिक्षा लेने के लिए विदेश गये। स्वामी रामतीर्थ से एक सामान्य परिचय पत्र लेकर खानखोजेजी भी अमरीका पहुँचे। वहाँ तथा मैक्सिको में उन्होंने युद्धकला की शिक्षा ली। अमरीका में गदर पार्टी बनी। प्रथम महायुद्ध में इस गदरपार्टी के ओर से कितने ही युद्धकला में शिक्षित युवक तुर्की और बगदाद पहुँचे। तुर्की उस समय जर्मनी के साथ था। वहाँ इन युवकों ने भारतीय क्रांतिसेना संगठित कर भारत की ओर बढ़ना आरंभ किया और यह भारतीय क्रांतिसेना बलूचिस्तान तथा उत्तर-पश्चिम सीमान्त तक आ गयी, और इसने कुछ स्थानों पर अधिकार करके भारतीय गणतंत्र की स्थापना की घोषणा भी कर दी। किंतु अँगरेज सतर्क और शक्तिशाली थे। जनरल साइक्स और जनरल डायर के नेतृत्व में इस भारतीय क्रांति सेना को नष्ट करने के लिए अँगरेजी सेना भेजी गयी। कई युद्ध हुए और अंत में भारतीय सेना की पराजय हुई। खानखोजेजी भी इस अभियान में थे, और इन युद्धों में लड़े थे। पराजय के बाद खानखोजेजी किसी तरह बचकर अमरीका लौट गये। सन् १९४७ में स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद वे स्वदेश लौट आये।

'सरस्वती' हीरक जयंती के अवसर पर 'सरस्वती' के पुराने लेखकों का सम्मान किया गया था। हमने आग्रह-पूर्वक उन्हें इलाहाबाद बुलाया, और उस उत्सव में सम्मिलित होकर उन्होंने हमें गौरवान्वित किया। उस समय हमने उनसे पूछा था कि महाराष्ट्रीय होते हुए भी आपको उस सुदूर अतीत में हिंदी में लिखने को प्रेरणा किस कारण से हुई थी। तब उन्होंने बतलाया कि देश की स्वतंत्रता के लिए क्रांति का कार्य करते समय सब कार्यकर्ताओं को यह अनुभव हुआ था कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोगों के लिए सामान्य आदान-प्रदान की भाषा हिंदी ही है। इसलिए उन लोगों ने हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया था और वे उसीमें काम किया करते थे। उनके लिए हिंदी देश की एकता और स्वतंत्रता का अविभाज्य अंग था। तब हमने उनसे निवेदन किया कि 'सरस्वती' में आपने प्रायः आधी शती से कुछ नहीं लिखा। अब आप फिर लिखना आरंभ करें। प्रथम लेख में आप यही बतलावें कि क्रांतिकारियों ने हिंदी को क्यों और कैसे अपनाया। हमारी प्रार्थना स्वीकार कर डा० खानखोजे ने यह लेख भेजने की कृपा की है। हमने इसका सम्पादन नाममात्र को किया है। यह प्रायः उन्हींकी भाषा में है। हमें बड़ी प्रसन्नता है कि हम द्विवेदी युग के इस वरिष्ठ लेखक को आधी शती बाद फिर 'सरस्वती' में लिखने के लिए राजी कर सके। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक इस प्रेरणाप्रद और महत्त्वपूर्ण लेख को पढ़कर प्रसन्न होंगे।

—सम्पादक, सरस्वती)

हमारे बचपन में भारतवर्ष अत्यंत सुखसंपन्न मालूम होता था। पुराने मध्यप्रदेश में नागपुर में अँगरेजी राज जम चुका था। किंतु उस समय सबका भारतीय संस्कृति के ऊपर प्रेम था। लोगों का उस समय अँगरेजी पर प्रेम नहीं हुआ था। मेरे पितामह पूजनीय व्यंकटेशजी तथा तात्या-जी खानखोजे ने सन् १८५७ के भारत-स्वातंत्र्य युद्ध के समय स्वयं महाराणी लक्ष्मीबाई के तरफ से अँगरेजों के विरुद्ध युद्ध में उनकी सेना में कार्य किया था, और अँगरेजों को इस देश के बाहर निकाल कर भारत को स्वतंत्र और सुखी बनाने की प्रतिज्ञा की थी। स्वातंत्र्य-संग्राम की दुःखद समाप्ति के पश्चात् पितामह पूजनीय तात्याजी अपने मूलनिवास ग्राम (कुंतीलापुर, काटोल) चले आये और उन्होंने हमारे चंद गाँवों को बेचकर काटोल नगर में श्रीरामचन्द्रजी भगवान् का मंदिर स्थापित किया (यह मंदिर अभी भी अच्छी स्थिति में है) और कुछ दान-धर्म करके काटोल से वर्धा आये। वर्धा में ही उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना जीवनक्रम चलाया। पूजनीय तात्याजी स्वातंत्र्य-प्रिय और विशेषरूप से देशसेवक होने के कारण राजकीय और अन्य संस्थाओं से बिलकुल दूर रहते थे! वह स्वतंत्र विचारधारा के देशप्रेमी थे! यहाँ पर उन्होंने अपने नव जीवन का प्रारंभ किया!

वर्धा में उस समय अँगरेजी भाषा जाननेवाले लोग बहुत ही कम परिमाण में थे! अपने पिताजी परम पूजनीय सदाशिव राव उर्फ भाऊजी का मैं सबसे बड़ा पुत्र था। इसी कारण पितामह पूजनीय तात्याजी का मेरे ऊपर सबसे ज्यादा प्रेम था, और मैं ज्यादा करके तात्याजी के साथ रहा करता था। इसका प्रभाव संस्कार मुझ पर घनिष्ठ हुआ; तात्याजी के समान मुझे अंग्रेज और परकीयों के प्रति घृणा हो गयी थी। मेरे पिताजी को अँगरेजी कानून अच्छे रूप में मालूम थे। उन्होंने उसका ठीक ढंग से अभ्यास किया था। एक दिन बातों बातों में मैंने पूजनीय तात्याजी से पूछा था—"तात्याजी महाराज! यह बताइये कि जब आप सन् ५७ के युद्ध के लिए उत्तर प्रदेश में गये थे तो वहाँ पर आप सब लोग सेना में कौन-सी भाषा में बोलते थे?" उन्होंने तुरंत जवाब दिया—"अरे मूढ़! तुझे इतना भी मालूम नहीं! भारत में सभी प्रांतों में हिन्दी भाषा जाननेवाले लोग हैं। कन्याकुमारी से लेकर मानसरोवर तक यात्रा और प्रवास करनेवाले साधु, संत, सबको हिन्दी में ही व्यवहार करना पड़ता है। वही सुलभ भाषा है! मगर अब लोगों को अंग्रेजी भाषा के प्रति प्रेम लगता है, और अपनी राष्ट्रभाषा को तथा संस्कृति को वह भूल रहे हैं!" पितामह के इन उच्च विचारों का और शिक्षा का प्रभाव मेरे पर अच्छे रूप से हुआ करता था। यह दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता था।

इसी समय प्रार्थना समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती जी का आर्य समाज आदि संस्थाओं की ओर से हिन्दी भाषा का प्रचार हुआ करता था, और साथ में समाज जागृति होती थी। यह हिन्दी के प्रचार को तो विशेष कार्य मानते थे।

सन् १८९६ में प्लेग और सन् १९०० में अकाल हुआ था। पुराने लोग प्लेग और अकाल अँगरेजों के राज के कारण हुआ, ऐसा समझते थे! और हम लोग छोटे होते हुए भी ऐसा ही समझते थे कि यह प्लेग और अकाल अँगरेजों का राज आने के कारण हुए हैं। "केसरी" और "काल" वृत्त-पत्रों में इन्हीं विचारों का प्रचार हो रहा था। अँगरेजी राज में अनीति और भ्रष्टाचार के काफी परिमाण में बढ़ने के कारण ये रोग आये हैं। वे लोग ऐसा बताते थे। पूजनीय गुरुवर्य तिलक महाराज को ऐसे कठिन समय में कारागृहवास हो गया। जब तक गुरुवर्य तिलकजी को मुक्त नहीं किया जाता तब तक भारत की प्रगति असंभव है, ऐसा सबको लगता था। अँगरेजों के प्रति घृणा बढ़ती जाती थी। वैसे ही सबको यह भी लगता था कि जब तक भारत स्वतंत्र नहीं होता तब तक प्रगति असंभव है।

हम लोगों के मन में परराज्य के प्रति घृणा और स्वातंत्र्य के लिए प्रेम बढ़ रहा था। इसका परिणाम "बाल बांधव समाज" के रूप में हुआ और अँगरेजी शृंखला से भारत को मुक्त करने का ध्येय इस 'बाल बांधव समाज' का हुआ। सन् १९०० में बांधव समाज की शाखाएँ नागपुर, वर्धा, अमरावती, यवतमाल आदि महाराष्ट्र के अन्य शहरों में स्थापित हुईं। और कुछ दिनों में बंगाल में कलकत्ता पंजाब में लाहौर वगैरः के शहरों में ये शाखाएँ पहुँचीं। वहाँ पर कार्य बढ़ने लगा। इस कार्य को करते-करते यह विश्वास दृढ़ हो गया कि हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा है और राष्ट्र कार्य के लिये सबसे सुलभ साधन है, और हमारे क्रांति कार्य को करनेवाले बंधुओं को मालूम हो गया कि उत्तर मेरठ जैसे स्थानों में गुप्त रूप से क्रांति कार्य करने के लिये वही सुलभ है। लाहौर और गुरुकुल कांगड़ी में गुप्त रूप से आर्य-बांधव समाज की शाखाएँ स्थापित हुईं, और वहाँपर हिन्दी भाषा के जरिए हम लोगों के कार्य का प्रचार शुरू हुआ। लाला हंसराजजी, भाई परमानंदजी, लाला लाजपतरायजी, सूफी अंबाप्रसादजी, अजीतसिंहजी, आदि देशभक्तों का हमारे इस गुप्त कार्य में संपूर्ण सहकार (सहयोग) मिलने लगा। इस प्रकार संपूर्ण भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी होने के कारण यह सबसे अच्छा, सुलभ साधन था। जब बंगाल प्रांत का विभाजन लार्ड कर्जन के समय हुआ, और जब डाइमंड ज्युबिली के विरुद्ध प्रचार कार्य बढ़ गया, तब हम क्रान्तिकार्य करनेवालों को अनुभव हुआ कि हमें हिन्दी भाषा का सब से अधिक उपयोग करना पड़ता है। हम लोगों ने सब भारतीय एक हैं, और हिन्दी यही राष्ट्रभाषा है, यह प्रचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

जोर से शुरू किया। यह 'हिन्दी' भारत के भिन्न-भिन्न प्रांत के कार्यकर्त्ताओं की हिन्दी का मिश्रण बन गयी थी। यह व्याकरण-शुद्ध हिन्दी नहीं थी, किन्तु इसका महत्त्व राष्ट्रभाषा की दृष्टि से था। क्रांति संबंधी नूतन वाङ्मय निर्माण करने की दृष्टि से यह भाषा उपयुक्त थी। उसी प्रकार बन्देमातरम् एक गीत बँगला गीत था और उसके 'सप्तकोटि कंठ कलकल निनाद कराले' की जगह "त्रिशत कोटि' डालकर बंगाली गीत को हम लोगों ने अखिल भारतीय हिन्दी स्वरूप दे दिया था। इसी प्रकार कितने ही गीतों का हिंदीकरण कर दिया गया, जैसे—"उठरे उठरे डारे तोरा हिन्दू मुसलमान एकले भाई! हिन्दू-मुसलमान, पारशी, ख्रिश्चन, बन्देमातरम् गा रे भाई।" किसी भी पद को जरा-सा बदल कर हिन्दी गीत का रूप दे दिया जाता, और सब भारत एक है और हिन्दी राष्ट्र-भाषा है, यह भावना सबके मन में दृढ़ करने का प्रयत्न होता था।

"चिरदिन तोमार आकाश तोमार बात्तोब आमार प्राणे बजाय बारी" को हिंदी करके उसको भारतमाता का गान करने की कोशिश बालकों ने ही की थी। इस प्रकार सब धर्मों के लोगों को मिलाकर गणपतिपूजा, दुर्गा-पूजा, मोहर्रम आदि मेलों में मिलकर भारत स्वातंत्र्य की भावना, व्याख्यान, कीर्तन, भजन, खेल, तमाशा आदि कार्यक्रमों में हिन्दी भाषा का ही उपयोग हुआ करता था। इस प्रकार बांधव समाज, अनुशीलन समिति और अन्य क्रांतिकारी संस्थाएँ एक दूसरे से ऐसे समय मिलकर परिचय बढ़ाया करती थीं और सुलभ मार्ग से हिन्दी भाषा का प्रचार बढ़ता था। अँगरेजों के विरुद्ध प्रचार करने के लिए, अँगरेजी कपड़ों की होली जलाने के कार्य में, स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करो—इन तत्त्वों का प्रचार करने के लिए, राष्ट्र की एकता और भारतीय संस्कृति की उच्चता बढ़ाने के लिए, हिन्दी में ही भिन्न-भिन्न प्रांतों में ये कार्यक्रम होते थे। इसी समय स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त हुआ और लार्ड कर्जन की शिकस्त हुई। और जो बात स्वातंत्र्य के बाद भी नहीं हुई, वह हो गयी, याने पूर्व और पश्चिम बंगाल एक हो गया। यदि हमें "लाल, बाल, पाल" का नेतृत्व नहीं मिलता, तो इतना बड़ा प्रचार कार्य असंभव था।

हिन्दी प्रचार के कार्य में महाराष्ट्रीयों के साथ हनुमंत नायडू, लछमन सुखनंदन शर्मा, सूफी अंबाप्रसाद, सखाराम गणेश देऊस्कर, तथा द्रविड़, बंगाल, पंजाब के तरुण देश भक्त, और अन्य प्रांत के बांधव केवल भारतमाता को मानकर आपस में बंधुभाव रखकर राष्ट्रसेवा करते थे। प्रांतीयता अथवा जातीयता हम लोग नहीं मानते थे। सब लोग भाई-भाई के नाते आर्थिक सहायता न मिलते भी इस प्रकार के छोटे-मोटे राष्ट्र-कार्यों का प्रचार प्रेम से करते थे।

स्वदेशी आंदोलन और क्रांति का कार्य इतना बढ़ चुका था कि उसने शालाधिकारी, सरकारी दफ्तर, पुलिस डिपार्टमेंट के लोगों के मन में भी यह भावना निर्माण कर दी थी, और दुश्मनों के मन में डर पैदा कर दिया था। सशस्त्र क्रांति किये बिना आजादी नहीं मिलेगी, यह विचार-धारा सर्वदूर प्रसारित हो गयी थी। विचारों का परि-वर्तन आचारों के स्वरूप में लाने का एक प्रयोग गोंड लोगों को एकट्ठा करके युद्ध करने का हुआ था, किन्तु यह सफल नहीं हो सका। लोकमान्य तिलकजी ने राजा-महाराजाओं से मिलकर नवयुवकों को सैनिक युद्धकला सिखाने के लिये सहायता पाने की कोशिश की, किंतु वह भी सफल नहीं हुई। आखीर में रामलाल बाजपेयी ने अपने मित्रों की मदद से और स्वार्थ त्याग करके और कुछ अच्छे लोगों से धनराशि प्राप्त कर एक सर्कस तैयार किया। इसमें तीर चलाना, घोड़े पर बैठना; अन्य कार्यक्रमों के साथ अँगरेजों के विरुद्ध मत प्रचार करना—यह कार्य होता था। एक दिन इस सर्कस का टेंट (तंबू) बड़ोदा शहर के पास तूफान के कारण टूट गया। शेर पिंजरे के बाहर निकल पड़े और डर के मारे सर्कस देखनेवाले दर्शक इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार दुर्भाग्य से हमारे सर्कस का कारो-बार चंपत हुआ, और सबका बड़ा भारी नुकसान हुआ। सर्कस का जो वास्तविक ध्येय था वह भी पूरा नहीं बन सका। हम लोग निराश हो गये। बाद में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत में सैनिक शिक्षा प्राप्त होना असंभव है। इसलिए इँगलैंड, अमरीका जैसे आधुनिक-प्रगति से पूर्ण देशों में जाकर रणशिक्षा हासिल करना, स्वातंत्र्य संग्राम योजना बाहर से भारत में लाना और अँगरेजों से युद्ध करके उनको भारत के बाहर करना—ध्येय प्राप्त करने का यही मार्ग है। इसी समय स्वामी राम-तीर्थ अमरीका से लौट कर आये थे। मास्टर पूरण सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सिफारश से हनुमंत नायडू को स्वामीजी ने अपने कुछ अमरीकन भक्तों के नाम सिफारशी पत्र दिया था। लाहौर से वापस आने पर उसने (हनुमंत नायडू ने) मुझको विदेश में जाकर रणशिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी। मैंने निश्चय किया कि इस बारे में गुरुवर्य लोकमान्य तिलक से अनुमति मिलने पर ही विदेश जाने का निश्चय करूँगा। मैंने लोकमान्य तिलकजी से मिलकर चर्चा की। गुरुवर्य तिलकजी ने कहा कि बड़ौदा, इन्दौर, नैपाल जैसे संस्थानों में जाकर प्रथम वहाँ पर रण शिक्षा प्राप्त करके बाद में परदेश जाना उचित रहेगा। और इस उद्देश्य से मुझे इन स्थानों में भेजने की कोशिश हुई। मुझे ऐसा लगा कि जैसे नायडू को सिफारश पत्र मिल गया है, वैसे ही मुझे भी मिल जायगा। इसी आशा से मैं स्वामी रामतीर्थजी के दर्शन के उद्देश्य से इलाहाबाद गया क्योंकि मैंने सुन रखा था कि उन दिनों वे वहाँ हैं। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि वे बनारस चले गये हैं। जब मैं वहाँ पहुँचा तो वे गाजीपुर चले गये थे। गाजीपुर में स्वामीजी का दर्शन हुआ। वहाँ पर मैंने स्वामीजी से विनती की कि परदेश में जाकर सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये आपने जैसा प्रशंसा-पत्र नायडू को दिया है, वैसा ही कृपया मुझे भी पत्र दीजिए क्योंकि मैं भी उस उद्देश्य से अमरीका जाना चाहता हूँ। मैं शरीर से दुबला था। उन्होंने कहा कि मेरे जैसे शारीरिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति को बाहर परदेश जाना योग्य नहीं। यह सुनकर मैंने आवेश में आकर उनसे कहा "स्वामीजी! मैं समझता था कि आप एक पूजनीय देशभक्त होंगे, किंतु अनुभव उल्टा आया। ऐसे संन्यासियों की भारत को आवश्यकता नहीं जोकि देशभक्त नहीं हैं। मुझे लगता था कि आपसे मुझे देशसेवा के कार्य में स्फूर्ति मिलेगी, किन्तु वैसा नहीं हुआ।" इस प्रकार मैंने कटु शब्दों से स्वामीजी का अनादर किया! मेरे कटु और स्पष्ट शब्दों को सुनकर स्वामीजी नाराज नहीं हुए। उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से एक पत्र दे दिया। उसमें केवल इतना लिखा था—

"खानखोजेको मदद करना, याने राम को मदद करना!"

इस प्रकार स्वामीजी का पत्र और आशीर्वाद लेकर मैं अगले कार्य की व्यवस्था में लगा। मैसाजरिस मारीटीम (Messageries Maritimes) नाम की फ्रांसीसी जहाजी कंपनी थी। उसके जहाजों पर फ्रांसीसी खलासियों की खिदमत करने के लिये हब्शी रखे जाते थे। मैंने उन हब्शी नौकरों में से एक की खाली जगह पर नौकरी प्राप्त कर ली और गुप्त मार्ग से सन् १९०६ में बंबई छोड़ा। सायगोन (हिंदी चीन) में जहाज के पहुँचने पर मेरी यह नौकरी खत्म हो गयी। फिर सन्यत्सेन के चीनी क्रांति-कारकों से मिलकर शांघाई, हाँगकाँग होता हुआ जापान पहुँचा। वहाँ पर पता चला कि चीन में भारतीय क्रांतिकारियों को मदद मिलती है। तब वहाँ गया, और वहाँ पंजाब तथा दक्खिन प्रांतों से जो भारतीय क्रांतिकारी लोग आये थे, उनसे मिला। इन सभी लोगों से हिंदी भाषा में व्यवहार होता था। जापान में रणशास्त्र का जो शिक्षण और स्वातंत्र्य प्रचार होता था, वह हम लोग दूसरे बंधुओं को हिंदी में बताते थे। सान फ्रान्सिस्को के भूकंप के कारण एशिया के कुछ लोग अमरीका जाने लगे। उनमें मिलकर मैं भी कैलीफोर्निया में पहुँचा, और वहाँ पर भारत-स्वातंत्र्य का प्रचार शुरू किया। यहाँ इस कार्य में चीनी बंधुओं ने काफी मदद दी। मिलटरी अॅकेडमी का अध्ययन करके पूरा उस पद्धति से उस शास्त्र के अनुसार प्रचार कार्य आरंभ किया। वहाँ कुछ भारतीय क्रांतिकारी लंबर मिल (लकड़ी चीरने के कारखानों) में काम करते थे। उनके साथ मैंने भी मजदूर का काम करके उनका प्रेम प्राप्त किया, और स्वातंत्र्य का प्रचार शुरू किया। यह प्रचार काफी तेजी से होने लगा। यहीं पर सौभाग्य से हमारे पुराने क्रांति-बंधु लाहौर के पंडित काशीराम पोर्टलैंड में मिले। वह इस मिल के कन्ट्राक्टर थे। इसीलिए उनकी मदद से वहाँ पर भारतीय स्वातंत्र्य-क्रांति का प्रचार करना सुलभ हुआ। यहाँ पर हिन्दू-मुसलमान-पंजाबी सभी लोग मिले, और "आजादी ए हिंद" नाम की पार्टी स्थापित की गयी। हिन्दी में आपसी व्यवहार होता था। पोर्टलैंड से हम लोग सिआटल गये। वहाँ सत्यदेवजी से परिचय हुआ। वह वहीं पर विश्वविद्यालय में अध्ययन करते थे। बाद में भारत में वे 'स्वामी सत्यदेव' के नाम से प्रसिद्ध हुए। वहाँ सुरेन मोहन बोस, तारकनाथ दास, और अन्य छात्र मिले और यहाँ पर एक भारतीय संघ स्थापित किया। सिआटल से जब हम लोग कनाडा गये तब अनुभव हुआ कि वहाँ पर भारतीय लोग ज्यादा परिमाण (संख्या) में हैं। उनमें भारतीय स्वातंत्र्य-क्रांति का प्रचार बढ़ाने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

कैनाडा, वाशिंग्टन, आरेगन, कालीफोर्निया में विशेष रूप से कार्य हुआ। यद्यपि वहाँ अमरीका में सब को अँगरेजी भाषा का ज्ञान था, तो भी हम भारतीय वहाँके लोगों से कुछ दूर रहते थे। इस कारण हमारा प्रचार कार्य हिन्दी में होता था।

सन् १९१० में मेक्सिको गणराज्य में कृषक क्रांति हुई। उन लोगों से मिलकर हमारे स्वातंत्र्य-प्रिय देश-भक्तों ने क्रांति का अनुभव प्राप्त किया। उन दिनों मेक्सिको गणराज्य, केलिफोर्निया, आरेगन, वाशिंग्टन, अमेरिकन संस्थानों में; और व्हिक्टोरिया, ब्रिटिश कोलंबिया, कैनाडा वगैरः प्रदेशों में हिन्दी (और कुछ पंजाबी भाषा) में—भारत स्वातंत्र्य प्रचार हुआ करता था। कुछ दिनों में ही वहाँ भोलानाथ पांडे से मुलाकात हुई। हम दोनों कॉर्नवालिस (Cornwallis) में (OAC में) पढ़ते थे और भाई-भाई जैसे एकही कमरे में रहते थे। भाई जैसे एक दूसरे की सहायता करते थे। साथ में देशकार्य के बारे में विचार करते थे। भोलानाथ पांडे, स्वामी सत्यदेव, वगैरह ने मिलकर वहाँ पर हिन्दी प्रचार संस्था स्थापित की थी। भोलानाथ पांडे और स्वामी सत्यदेव अमरीकन विश्वविद्यालयों की पदवी प्राप्त करके भारत वापस आये और यहाँ आकर उन्होंने स्वातंत्र्य सेना स्थापित करके कार्य का प्रचार जोर से शुरू किया। कुछ दिनों में लाला हरदयाल और भाई परमानंदजी अमरीका आये। उनकी सहायता में "गदर पार्टी" का कार्य बढ़ने लगा, और "गदर" नाम की पत्रिका हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती सभी भाषाओं में शुरू हुई। राष्ट्र-स्वातंत्र्य और हिन्दी राष्ट्रभाषा का प्रचार इस पत्रिका द्वारा हो रहा था। हरदयाल, पं० रामचन्द्र, मौलवी बरकतुल्ला, भाई भगवान सिंह आदि सुशिक्षित लोग अपने अपने राष्ट्रीय विचारों का प्रचार इस पत्रिका द्वारा करते ही थे, किंतु जो अशिक्षित थे वह भी चातुर्य से अपने विचार प्रकाशित करने का प्रयत्न करते थे। राष्ट्रीय कविताएँ और लेख हिन्दी में ही प्रकाशित होते थे। कुछ दिनों में ही लाला लाजपतराय का संपूर्ण साहाय्य गदर पार्टी को और गदर पत्रिका को प्राप्त हुआ।

सन् १९१३ में हमारी भारत स्वातंत्र्य-सेना तैयार हुई, और १९१४ में भारत से हमारे स्वातंत्र्य सेना के संबंध दूर हुए। हम लोग कौस्टँटिनोपल में आ गये थे। हमारी कुछ हिन्दी स्वातंत्र्य सेना बगदाद में भी आ गयी थी। गदर पत्रिका में हिन्दी में और दूसरी भारतीय भाषाओं में अँगरेजों के विरुद्ध प्रचार हो रहा था। यह पत्रिका लिथो-प्रेस पर छापी जाती थी। कुछ दिनों में ही सूफी अंबाप्रसाद, आगाशे, केदारनाथ, प्रमथनाथ दत्त आदि क्रांतिकारी बांधवों ने मिलकर और भारतीय गदरी-क्रांतिसेना को लेकर जनरल साइक्स (General Sykes) और जनरल डायर (General Dyer) के विरुद्ध युद्ध शुरू किया, और बलूचिस्तान और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत (N.W.F.) की तरफ स्वतंत्र भारत गणराज्य स्थापित हुआ। यद्यपि सन् १९१९ में हमारी पराजय हुई तो भी गुरुवर्य तिलकजी के आदेश के अनुसार हम लोगों ने मेक्सिको और अमरीका में भारत स्वातंत्र्य-प्रचार का कार्य पुनः शुरू हुआ।

हिन्दी राष्ट्रभाषा होने के कारण, और स्वातंत्र्य सेना के सैनिकों को हिंदी का ज्ञान होने के कारण हमारे बंधुओं ने जो रणयात्रा-क्रमण गीत (Army March) बनाये थे और हम लोग जिन्हें गाकर जागृति बढ़ाते थे, उनमें से कुछ पंक्ति सरस्वती के पाठकों को सादर अर्पित करके मैं वंदन करता हूँ।

जय बोलो जी हिंद की
जय जय जय जी हिंद॥

तोपों, बंदूकों, हत्यारों से
आजाद करो जी हिंद॥

हिंद हमारा जान है
और हिंद हमारा प्राण॥

भगत बने हम हिंद के
और हिंद पर कुर्बान॥

"वन्देमातरम्"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ऐतिहासिक पद्यमय भाषण

(पद्य में भाषण देने की प्रथा बहुत कम है। हिंदी में सबसे प्रसिद्ध और ऐतिहासिक पद्यात्मक भाषण भारतेन्दुजी ने प्रयाग की नागरी प्रवर्द्धिनी सभा में दिया था जिसकी इन अमर पंक्तियों ने हिंदी भाषा के आंदोलन को आरंभ कर उसे बराबर अनुप्राणित किया—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त संसद की राज्यसभा के सदस्य हैं। गत मास बजट पर उन्होंने राज्यसभा में जो भाषण दिया वह पद्य में था। राष्ट्रकवि को कई मास पहिले हृदय का दौरा हो गया था, इससे डाक्टरों ने उन्हें बहुत देर तक खड़े रहने या बोलने के लिए मना कर दिया है। इसलिए वहाँ उन्होंने इस भाषण के केवल कुछ अंश ही पढ़े। हम यहाँ अपने पाठकों के मनोरंजन के लिए उनका वह ऐतिहासिक भाषण पूरा का पूरा प्रकाशित कर रहे हैं। उससे मालूम होता है कि राष्ट्रकवि ने जनता की भावनाओं को कितने सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। संपादक, सरस्वती।)

निवेदन

गये सदस्यों का शुभ पथ हो, स्वागत नवागतों का है,
लक्ष्य एक निज मातृभूमि का मंगल सकल मतों का है।
मिली पुनर्नवता सत्ता को उसे भार यह लेना है—
लेकर एक सहस्र गुना कर सबके हित में देना है।
भली योजनायें कितनी ही चलीं और चल रहीं बड़ी,
किन्तु राष्ट्र भाषा तपस्विनी यहाँ जहाँ, थी वहीं पड़ी।
कुछ ऐसी ही बात सुनी थी आई थी जब खादी हाय!
अब भी नर-पुंगव कहते हैं हिन्दी यहाँ न लादी जाय!
किसने किस पर लादी हिन्दी? अँगरेजी लादे रहिये,
जाने दीजे बा-बापू को 'ममी' और 'डैडी' कहिये।
ममी नहीं है डैड नहीं है, भारत जननी जीती है,
उसकी राष्ट्रभारती कड़ुवे घूँट निरन्तर पीती है।
निज विरोध में भी वह बढ़ती आई बढ़ती जावेगी,
जन्मसिद्ध अधिकार-शक्ति से ऊँचे चढ़ती जावेगी।
बिना एक व्यापक वाणी के एक राष्ट्र की सत्ता क्या,
किसी देश में निजता का पद पाती है परवत्ता क्या?
करते रहे सदन-सम्बोधन प्रथम राष्ट्रपति हिन्दी में,
बह न जाय यह परम्परा भी दिल्ली की कालिन्दी में!
अपनी भाषा में ही अपने भाव भव्यता पाते हैं,
उसके द्वारा ही जनता के जीवन में वे जाते हैं।
जननी ही माँ हो सकती है अन्य पूतना भी होगी,
बचा एक ही शिशु सुधन्य वह उसका स्तन्य-गरल भोगी।
जो मत हो मन्त्री कबीर का, पहले थे जो सन्त कबीर,
देख अधिक प्रचलित भाखा को बता गये वे बहता नीर।
बन उपकार-निमित्त न उसका करे भले कोई अपकार
बापू आज नहीं, हिन्दी का अब नेहरू चाचा पर भार।
वे ही सहमत करें जनों को करके उनकी संशय-शुद्धि
सबकी आशा लगी उन्हीं पर, अक्षय हो उनकी बल बुद्धि।
इंगलिश 'आया' हो सकती है, वह है ज्ञान गुणों की खान
यहाँ रक्षिता उसे बनाना, करना है उसका अपमान।

कार्य सिद्धि में धैर्य ठीक है, पर विलम्ब में जड़ता है,
अपने आप नहीं कुछ होता सब कुछ करना पड़ता है।
अधिक रेल भाड़ा देकर लो, आ पहुँचा लेखा-जोखा।
लेगा वह जितना लेना है, देना है हमको चोखा।
शासन सब हैं बिना हृदय के, पड़े पदों पर पलते हैं
चलते नहीं परन्तु पदों से, सदा करों से चलते हैं।
कर क्या, सिर देने में भी है अहोभाग्य अपनों के अर्थ,
पर कब तक घर घाल हमारा किया करेगी घूँस अनर्थ?
रोमन में ही सही, करें कुछ संस्कृति-मंत्री सफल प्रचार,
सबके पूर्व पदस्थ पुरुष ही सीखें उससे शुद्धाचार।
लज्जा है रक्षक सज्जा में अब भी कितने भक्षक हैं
सावधान फूलों के भीतर छिपे हुये वे तक्षक हैं।
मेल-मिलावट चोर-बजारी अब महाजनी धन्धे हैं
धर्म कर्म कैसे देखें जो हुए स्वार्थ से अन्धे हैं।
धन के साथ प्राण हरते हैं झूठे औषध-विक्रेता
वे पानी रंगते हैं, कोई कृत्रिम घी ही रंग देता!
यही सोचकर समाश्वस्त हों क्या करदाताओं के चित्त,
बने हमारे बड़े बाँध तो, बहा क्यों न यों ही बहुवित्त?
खेत हरे होंगे, घर बहु जगमग, जागेगा जैसे सपना,
इतने से ही हो जावेगा क्या कृतार्थ शासन अपना?
बिजली के प्रकाश से ही क्या मन का तम मिट जावेगा?
नृत्य मात्र से ही संस्कृति का कृत्य पूर्णता पावेगा?
राज्य धर्म निरपेक्ष हमारा, प्रजा विवशता की मारी
फँसती है पर धर्म चक्र में, फिर भ्रूभंग न हो भारी।
सुन पड़ती है आज देश में बातें बाहर के भय की,
किन्तु अन्त में एक कसौटी सत्य शीलता के ही जय की।
सबके पहले हमें भरोसा अपना ही करना होगा
जो लड़ने पर ही तुल जावे, उसे आप मरना होगा।
रहे हमें यह ध्यान अन्त में, हम ऋण लेकर घी न पियें
रखकर अपनी साख हमारी आगे की पीढ़ियाँ जियें—
लोक-राज्य राजेन्द्र हमारे भारत के मन के आदर्श
देते रहें निवृत्त हुए भी शुभ दर्शन का पुण्य-स्पर्श!
लिया नहीं जो कभी उन्होंने, लेवें अब वह सुख-विश्राम।
उनके गौरव से नत, सादर करते हैं हम उन्हें प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

जनकनन्दिनी

डाक्टर हरिहरनाथ हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट०

(क)

किसी महाकविने एक सुकुमार ललना के प्रति ऐसी निर्दयता का व्यवहार नहीं किया जैसा महर्षि वाल्मीकि ने जनकलली के प्रति। महाकाव्य की कथा वर्षों की कहानी होती है और रामायण की कथा में तो बालक युवा हो गये और युवक प्रौढ़। परन्तु देवताओं के राजा इन्द्र के प्रिय मित्र चक्रवर्ती दशरथ की पुत्रवधू, सुविख्यात प्रशस्त मैथिल देश के प्रातःस्मरणीय राजा जनक की प्रिय पुत्री, रघुकुलभूषण की प्रियतमा सीते! तुम्हारी लम्बी पलकों पर आँसुओं की नन्हीं मोतियों की लड़ियाँ चमकती ही रहीं। आर्त्तचित्ता मैथिली को चित्रण करते-करते कविवर ने उन्हें आर्द्रनयना कर दिया। मृगशावक नयनी मैथिल कुमारी! मृग ललना के समान स्वच्छन्द राज-उपवन में फूल तोड़ती, पंखुरियाँ बिखेरती, वृक्षों के नीचे बिछे धूप-छाया के हरे-नीलमणियों पर समीर गति से क्या तुमने कभी उल्लासपूर्वक विचरण किया था? त्रिभुवन-मोहिनी! क्या तुम्हारे मनहर अट्टहास से महाराज जनक के स्वर्ण-प्रासाद के मणि-शोभित भवन कभी गुंजायमान हुए थे? क्या कभी ऐसा हुआ था, रति-मद-मोचनि! कि शब्दों ने भाव का बोझ असह्य मानकर उसे स्वरों को दे दिया हो? भाव का मद गान बनकर तुम्हारे कमल-पंखुरियों से अधिक कोमल और मूँगे की कान्ति को लजानेवाले अधरद्वय से उच्छ्वास के समान क्या कभी स्वतः फूट पड़ा था? खेल और गान ने तुम्हारे मायके के जीवन में क्या कोई स्थान पाया था, मिथिलेशकुमारी? कविवर होकर वाल्मीकि पाषाण-हृदय हो गये, महर्षि बनकर निष्ठुर! उन्होंने मृगनयनी को कभी मृगबाला न बनाया, पद्मवदना का मुख-कमल कभी हँसी से न खिला, कोकिल-कंठी मूक ही बनी रही। बस एक बार*, एक ही बार, रामायण में जनकनंदिनी को हम फूल तोड़ते पाते हैं। और उसके बाद ही सुख ने उनसे ऐसा मुँह मोड़ा कि हँसी उनके लिए अपरिचित-सी हो गयी क्योंकि उस दृश्य के पश्चात् ही हेम-मृग ने सीतानाथ को लुभा लिया, रावण सीता को रुलाता लंका ले गया और उनको विश्व-शोक-हर अशोक भी अशोक न कर पाया। यह कौन-सा था फूलों का शाप, यह क्या थी भाग्य की निष्ठुरता कि सुमन भी कठोर-हृदय हो गये और महर्षि सहानुभूति-शून्य!!

× × ×

यद्यपि सीता के संबंध में आदि काव्य में कितने ही स्थलों पर उल्लेख पाया जाता है तथापि इनसे हमारी प्रथम भेंट अयोध्याकाण्ड में २६वें सर्ग के आरम्भ में होती है (२६ : ४) जब वे देव वन्दना के पश्चात् पति की प्रसन्नता-पूर्वक प्रतीक्षा करती पायी जाती हैं। परन्तु यह आशारूपी आनन्द की मृगतृष्णा चिरजीवित न रही क्योंकि इसके बाद ही २६वें सर्ग के पाँचवें श्लोक में हम देखते हैं कि रामचन्द्र आते हैं और "रामचन्द्र को देखकर सीता काँप गयीं और शोक-संतप्त तथा चिन्ता-व्याकुल पति को उन्होंने देखा" (२६ : ६) "रामचन्द्र का मुँह सूख गया था, शरीर से पसीना निकल रहा था, वे अपना दुःख सँभाल नहीं सकते थे। दुख-संतप्त सीता उनसे बोलीं—प्रभो इस समय यह क्या?" (२६ : ८) यह उदासी सीता की अंतरंग सहचरी हो जाती है। जब राघव प्रिया से अयोध्याजी में ही रहने को कहते हैं और उनके अपने साथ वनगमन का विरोध करते हैं तब "सीता की आँखें आँसू से भर आयीं।" (२८ : २) इसके बाद जब हम आदि काव्य में सीता से मिलते हैं तब हम उन्हें राघवेन्द्र और उनके भ्राताओं सहित दशरथ के स्वर्गगमन के लिए विलाप करते पाते हैं। इसके बाद सीता से हमारी अरण्यकाण्ड के आरम्भ में भेंट होती है और विराध के हाथ में पड़ी जानकी का करुण क्रन्दन हमें स्पष्ट सुनायी देता है। अरण्यकाण्ड भर में (सर्ग ४७, ४८, ४९, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५८, ५९) और सुन्दर काण्ड में (सर्ग १५, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २८, ३३, ३५, ३९, ४०, ६७, ६८) और एकदम लंका काण्ड तक जनकलली का क्रन्दन हमारे आँसुओं को सहानुभूति के लिए आमंत्रित करता रहता है। इन सब काण्डों की कथा में यदि अड़चा आती

---

* अर० ४३ : १ (पं० चंद्रशेखर शास्त्री द्वारा संपादित वाल्मीकीय रामायण)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है तो वह निराशा में कहीं परिणत न हो जाय यह भय जानकी की पलकों को सूखने नहीं देता। आँखें बनी थीं आँसुओं के स्वागत के लिए, आँसू बने थे मिट्टी में गिरकर अपना अस्तित्व विलीन करने के लिए, मिट्टी में लिखने को हृदय की वेदना-लहरियों की छिपी कहानी—संक्षेप में आदि काव्य में मैथिली की यही जीवन कथा है।

× × ×

एक काली बदली की हल्की चुनरी से अपना अमृतमय मुख लपेटे शशि के समान जनक-नन्दिनी की अनुपम छबि रामायण में चिन्ता-छाया से लिपटी है। ऐसी जानकी हमारी सहानुभूति को बरबस आकृष्ट कर लेती हैं। उनके आँसुओं से, हमारे आँसुओं की धारा मिलकर एक हो जाती है क्योंकि वाल्मीकीय मैथिली की आँसू-लड़ियाँ हमारी ऐसी हैं—मानवीय हैं। परन्तु ऐसी जानकी के प्रति यह भावना हमारे भीतर उत्पन्न नहीं होती कि वे उनकी सहचरी हैं जो अनन्त आनन्दमय हैं, जिनके असीम आनन्द के ही कारण इस जगती पर जो कुछ आनन्द पाया जाता है, वह है। आदिकाव्य की जनकलली तो स्पष्टरूप से एक गर्विता राजकुमारी हैं जिनसे उनका भाग्य रूठ गया है। पति से उनका यह कहना "जिसके अनुकूल होकर चलने का आप मुझे उपदेश देते हैं और जिसके लिए आपका अभिषेक रुक गया है, हे निष्पाप, आप स्वयं उसके अनुकूलवर्ती तथा भृत्य बनिए, मैं नहीं बनने की" (अयो: ३०: ९) यह उच्च राज्यकुलोत्पन्न गर्व का द्योतक है। एक लाड़िली राजकुमारी में जो अधीरता हो सकती है वह उनमें पायी जाती है। अरण्यकाण्ड के ४५वें सर्ग के २०वें श्लोक के आगे लक्ष्मण के प्रति उनके ये कटुवाक्य "अनार्य, निर्दय, घातक, कुलकलंक, मैं समझती हूँ कि रामचन्द्र का कष्ट तुम्हें अच्छा मालूम होता है। अतएव रामचन्द्र का दुख देखकर तुम ऐसी बातें बोल रहे हो। तुम्हारे समान क्रूर और छिपे शत्रु से इस तरह की बुराइयाँ होने में कोई आश्चर्य नहीं है। तुम बड़े दुष्ट हो" इत्यादि और अयोध्या-काण्ड के ३०वें सर्ग के तीसरे श्लोक में राघव के प्रति उनका "अभिमान" से यह कहना, "मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनक ने आपको पुरुष-शरीर धारी स्त्री नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया" इसका प्रमाण है। किसी-किसी स्थल पर तो आदिकाव्य में सीता एकदम सामान्य नारी हो जाती हैं। अयोध्याकाण्ड के ३०वें सर्ग के १९वें श्लोक में उनका राघव को यह कहना "यदि आप वन न ले जायेंगे तो मैं आज ही विष पी लूँगी", अरण्यकाण्ड के ४५वें सर्ग के २९ और ३० श्लोकों में लक्ष्मण और सीताजी का शोकाकुल होकर हाथों से छाती पीटने लगना (अर० ४५ : ३८), जिन वानर श्रेष्ठ से जानकी के मिलन और कथा-वार्त्ता का उल्लेख सुन्दरकाण्ड के ३१ से ४० सर्गों तक में है उन हनुमान के लिए सीता का राक्षसियों से यह कहना "मैं भी भयभीत हो गयी हूँ। मैं नहीं जानती यह कौन है। मैं तो इस आये हुए को काम रूपी राक्षस ही समझ रही हूँ" (सु० ४२ : १०) ऐसा असत्य भाषण—सीता के क्रन्दन की अति, उनके कैकेयी* के लिए कटुवचन और उनका "दुराचारिणी पापिनी कुब्जा मन्थरा" को धिक्कारना (यु० ४२ : ५६) ये सब बातें परमोच्च कुलोत्पन्न राजकुमारी सीता को एक सामान्य नारी के स्तर पर बरबस खींच लाती हैं।

× × ×

आदिकवि ने जानकी से आत्महत्या का भय दिखवाकर, "मुझे वन ले जाना नहीं चाहते तो मैं अपनी मृत्यु के लिए विष, आग या जल के उपयोग का विचार करूँगी" (अयो० २९ : २१) कहला कर राघव को उन्हें अपने साथ वन ले जाने के लिए बाध्य करके जनकनन्दिनी की अर्धांगिनी अनुरूप भक्ति के महत्त्व को घटा दिया। कविवर से और भी भूलें हो गयीं। सीता से यह कहलवाकर "पहले पिता के घर में मैंने ब्राह्मणों का यह सत्य वचन सुना है कि मुझे वन में रहना पड़ेगा" (अयो० २९ : ८) और जानकी का इस वचन पर विश्वास सीता के वनगमन के समय राज्य सुख त्याग के महत्त्व को भी घटा देता है। यह भविष्यवाणी और इसमें मैथिली का विश्वास जानकी की लंका में वेदना, तीव्रता के सौन्दर्य का भी बाधक है क्योंकि उनको तो ज्योतिषियों ने यह विश्वास दिला ही दिया था कि वे एक दिन पति के साथ वन से लौटकर महिषी बनेंगी। रावणपुरी में सीता के आँसुओं का मूल्य अधिक हो जाता यदि वे एक निस्सहाय अबला की भाँति राक्षस नगरी में ऐसी फँसी पड़ी रहतीं जहाँ भविष्य को सुखमय बनाने के लिए एक भी मृदु आशा उनके पास न रहती। परम सुदृढ़ लंका नगरी, महारथी क्रूर निशाचरों द्वारा सेवित, रावण-

---

* अर० ४९ : २९ और युद्ध: ३२ : ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

दास सजग वरुण से रात-दिन सुरक्षित, त्रैलोक्य-विजयी राक्षसाधिप की राजधानी--इसमें क्या कोई मानव कभी आ सकता था ? और इस नगरी में भी विशेष प्रकार से रावण का दुर्ग, और उस दुर्ग में रावण-प्रिय अशोक वन, और उस वन में राक्षसियों के घेरे में सीता ! पहले क्रूर राक्षसियों का चक्र, उसके बाद अशोक वन की सुरक्षित परिधि, उसके बाद रावण का दुर्गम दुर्ग, उसके उपरान्त लंका के निशाचर राज की जय अभिलाषा से अधिक ऊँचा, पिशाच-हृदय से अधिक कठोर, सजग महारथियों द्वारा निरन्तर रक्षित नगर-कोट, उसके बाद हृदय-कम्प करनेवाली, घोर शब्द से दिशाओं को सन्तप्त करनेवाली, गगनचुम्बी लहरों से भरा अथाह समुद्र का अनन्त घेरा--इस प्रकार पाँच कठोर दुर्गम घेरों में फँसी सीता निस्सहाय थीं, निराशामग्न थीं, पूर्णतः अबला थीं। ऐसी अवस्था में कोई सुखद आशा जैसी आदिकवि ने मैथिली के हृदय में जागृत रखी, जनकलली की वेदना-तीव्रता की अनुपम सुन्दरता को भंग कर देती है। जनकनन्दिनी को तो सर्वथा, सब प्रकार से आशा-शून्य बनाना कला के दृष्टिकोण से स्थिति का आदेश था।

धर्म के दृष्टिकोण को छोड़कर साहित्यिक पक्ष में राम-कथा में सीता का स्थान उतना ही प्रमुख है जितना राघव और दशकंधर का क्योंकि सीता के व्यक्तित्व से ही रघुकुल भूषण और लंकापति के प्रेम का संघर्ष उत्पन्न होता है। यदि राम सीता को न चाहते या रावण सीता को न चाहता तो कहानी अधूरी रहती, रामायण न बनती। उनको दोनों ने चाहा, इसलिए राम-रावण युद्ध हुआ। जानकी राम-रावण की इच्छाओं और प्रेम-वैमनस्य की संघर्ष भूमि बन गयीं। राघव को प्यार करके जनकलली को दुख मिला, रावण के प्रेम ने भी उन्हें उपहार में वेदना ही प्रदान की।

(ख)

राम-कथा में मैथिली का ऐसा प्रमुख स्थान होते भी आदिकवि के अनुगामी लेखकों ने उनके चरित्र निरूपण में उतना परिश्रम नहीं किया, उतनी सूक्ष्मदृष्टि से काम नहीं लिया, कला-कौशल की वैसी एकाग्रता न दिखलाई जैसी चाहिए थी। रामचन्द्र आदि पुरुष थे, जानकी आदि शक्ति थीं--उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणी--यह सत्य मानकर राम-कहानी आगे चलती है। परन्तु जैसे-जैसे कथा-सरिता बहती है उसका जल राम-कथा की कल्पना-रेणु पर बने राम-जानकी के परात्पर स्वरूप के चित्र विलीन कर देता है। और जो अलौकिक थे, वे लौकिक रह जाते हैं। सीता उमा-रमा-ब्रह्माणी सेविता से गिरकर केवल अबला, केवल एक नारी, रह जाती हैं जिनका राम-कथा में कामोद्दीपन मात्र कार्य रह जाता है चाहे वह राघव का काम हो या लंकेश का। अध्यात्म रामायण में उनके चरित्र का विशेष विकास हुआ ही नहीं। राघव और दशशीश की कामभूमि होने के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण की जानकी में दुख और क्रोध की छाया पायी जाती है। (अयो : ४ : ७१) आनन्दमय की शक्तिरूपा होने का भाव हमें उनके प्रति नहीं होता। हनुमन्नाटक की सीता यद्यपि काम कला प्रवीण हैं तथापि उनका बुद्धि संबंधी विकास अपूर्ण है। राघव को परशुराम के दिये हुए धनुष के खींचने पर जानकी का यह संदेह कि वे दूसरा विवाह करना चाहते हैं, (१ : ४९) कोई बुद्धिमान् स्त्री नहीं सोचेगी। अनर्घराघव में भी चौथे अंक में ऐसी बात पाई जाती है। दस-बारह वर्ष तक पति के सहवास से सुपरिचित कोई कामिनी क्या इतनी भोली होगी कि वह हनुमन्नाटक की जनकलली के समान यों कहे :--

"हे नाथ ! जब कि गौतम ऋषि शाप से शिलारूप हुई अहल्या तुम्हारे चरण कमलों की रज से दिव्य शरीरवाली बन गई तो विन्ध्याचल की तलैटी पर तुम्हारे विचरण करने के कारण न जाने कितने तपस्वी स्त्रीवाले हो जायेंगे'। (३ : १९)

"गौतम ऋषि के शाप से पाषाण शरीरवाली अहल्या के समान यह नौका यदि शाप को प्राप्त हुई किसी मुनि की स्त्री हो तो आपके चरणकमल का उपकार मानकर चिरकाल तक हमको सुख देनेवाली हो जाय अर्थात् आपके चरण से शापमुक्त होकर आपका उपकार मानकर हमको सर्वत्र लिये फिरेगी।" (३ : २०)

हनुमन्नाटक के छठे अंक में हनुमान द्वारा रामचन्द्र की स्वर्ण मुद्रिका के मणि में अपना प्रतिबिंब देखकर सीता भ्रम में पड़ गयीं कि मेरी चिन्ता में क्या प्राणनाथ मेरा ही रूप हो गये और इस विचार से जानकी मूर्छित हो गयीं। (६ : १७) यह कल्पना सुन्दर है, परन्तु सीता की बुद्धिमत्ता इससे प्रकट नहीं होती। कभी-कभी संस्कृत के लोकप्रिय कवि एक कल्पना से ऐसे मुग्ध हो जाते थे कि वे उसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान निकालकर किसी न किसी पात्र के मुख से उसे व्यक्त करवाने पर विवश हो जाते थे और उनको इस बात का ध्यान नहीं रहता था कि उस सुन्दर कल्पना के उस स्थान पर व्यक्त करने से उस पात्र के चरित्र-चित्रण पर क्या प्रभाव पड़ेगा--उस पात्र का चित्र ऐसा करने से बनेगा या बिगड़ेगा। हनुमन्नाटक के दसवें अंक में लंका में वेदना-भरे समय में भी उनकी पति के प्यासे अधरों की स्मृति बनी रहती है। वे कहती हैं,....."नदी के तट पर बेत के लतागृह में मेरे अधर रस पीकर तुम कहते थे कि क्या अमृत है। इसके सामने तो यह आकाश के चन्द्रमा का भी अमृत नीरस प्रतीत होता है....." (१०:३) इस दम्पति के काम क्रीड़ा से हनुमन्नाटक का द्वितीय अंक भरा पड़ा है। इस अंक का नाम ही "राम जानकी विलास" है।

निश्चय ही इस अंक में मनहर सुखद कल्पना है, परन्तु इससे निर्णय यही निकलता है कि इस सुन्दर नाटक की जनकलली हमारे समान ही पार्थिव हैं।

कविवर कुमारदास के 'जानकीहरण' में जनक-नन्दिनी की काम-परम्परा को अधिक परिपक्वता प्राप्त होती है। जीवन के आनन्द विनिमय में वे निःसंकोच हैं। उदाहरणार्थ :--

"अवनिसुता की ऐसे पात्र की इच्छा ने जिसके द्वारा उनका मुख प्रियतम के मुख के साथ मधुपान कर सके, सीता के कर-कमलों में स्वर्ण शुक्ति हटाकर मणिमय गोलाकार पात्र रख दिया जिसकी किरणें चारों ओर फैल रही थीं।

'कामोत्तेजित' होने से दोनों की तीक्ष्ण दन्तधाराएँ कोमल अधर पल्लवों पर ही आधान करेंगी इस डर से अधरों की लालिमा अधर किसलयों को छोड़कर मधु पीते समय दोनों के नयनों में जा बसी।" (८:९५-९८)

'जानकीहरण' की जनकलली एक प्रसन्न चित्त ललना हैं जो सहर्ष प्राणप्रिय द्वारा भेंट की हुई मधु का पान करती हैं। जिन जनककुमारी का नीचे लिखा वर्णन सातवें सर्ग में हमें मिलता है उन जानकी से और हम क्या आशा कर सकते हैं ?

"जिसके सुन्दर गोल अंग कुछ झुक गये थे, ऐसी सुन्दरी के हृदय में जिस संताप-अग्नि का आधान कामदेव ने किया था और जिसकी ज्वालाएँ रागारुण नयनों से प्रकट हो रही थीं, ऐसी सीता को सखियों ने देखा।" (७:२६)

"सुकोमल अरुण नव पल्लव जिस पर बिछे हुए थे ऐसी शिला पर वह तन्वङ्गी चैन नहीं पा सकी मानों रक्त-रंजित काम की शरशय्या पर ही लेटी हो"। (७:२९)

"जब राम ने अपने चक्र चिह्नित करतल से सीता के कोमल कर दबाये तो सीता अपने दीर्घनयनों को आकुंचित करके सीत्कार कर उठीं जैसे अग्नि ने उन्हें स्पर्श कर लिया हो"। (७:५४)

आठवें सर्ग में कविश्रेष्ठ कुमारदास ने कमनीय कल्पना की सहायता लेकर शृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण हमारे सामने रख दिया, परन्तु इस दृश्य में जानकी त्रिभुवनेश्वरी से स्वकीया नायिका के समान हो गयीं।

'प्रसन्नराघव' में जयदेव धनुष भंग के पूर्व राघव-जानकी-मिलन प्रसंग में जानकी को बहुत समय तक मंच पर रहने देते हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार का उद्देश्य शृंगार निरूपण में अपना कौशल प्रकट करना है और यह उद्देश्य नहीं है कि ऐसी जानकी का चरित्र विकसित किया जाय जो आदिपुरुष की शक्ति के रूप में हमारे आदर की पात्र बने। जानकी का दूसरे अंक में यह कथन कि "आज वाटिका को पंचवाण सहित अनंग-शोभायमान कर रहे हैं," और उनकी यह भावना "अरे नयनो! प्रियतम की मुख-छबि पान करो"--ये दो उदाहरण ही शृंगार रस की परिपक्वता की ओर संकेत करते हैं।* अपने साहित्यिक पूर्वजों के समान यह नाटककार भी जानकी की राम-कथा-वस्तु में यथायोग्य मूल्य को स्थान न दे सके।

बहुत से लेखकों ने मैथिली का चरित्र अविकसित ही रहने दिया। रघुवंश के बारहवें सर्ग में जनककुमारी का नाम कोई दस-बारह बार आता है। परन्तु वह नाम-उल्लेख मात्र ही है। मिथिलेशनन्दिनी कुछ कार्य नहीं करतीं। इसके उपरान्त १३वें सर्ग में राघव की लंका से अयोध्या की यात्रा में वे एक अकर्मण्य व्यक्ति के समान श्रोता मात्र का स्थान प्राप्त करती हैं। केवल एक बार कुछ करती हैं--वे हँसती हैं--शूर्पनखा के तिरस्कृत

*"जोतिसी" जी से भी रामचन्द्रोदय काव्य में यही भूल हो गई--पृष्ठ ९६:१५-१६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

होने पर! परन्तु इस क्षणिक हास का प्रतिशोध उन्होंने कैसे कटु अश्रुओं द्वारा किया!! भट्टिकाव्य में रघुवंश से अधिक मैथिलकुमारी के चित्रण पर ध्यान दिया गया। कविवर उनका यत्र-तत्र उल्लेख करते हैं। जानकी सबसे अधिक समय तक भट्टिकाव्य में सीता-हरण-प्रसंग में हमारे सामने उपस्थित रहती हैं। परन्तु उनका व्यवहार इस प्रसंग में वैसा ही है जैसा कि एक हिन्दू विवाहिता स्त्री सती-साध्वी का हो। किसी प्रकार से वे सामान्य स्तर से ऊपर नहीं उठतीं। 'बाल रामायण' के रचयिता रावण के सीता-रूप-मोह-निरूपण में ऐसे व्यस्त रहे कि जानकी का चरित्र-चित्रण पूर्णरूप से ही हो नहीं पाया। 'प्रतिमा' नाटक के प्रथम अंक में भास ने जनक-लली के चरित्र की एक ऐसी मनहर छवि दिखलायी है जो राम-कथा परम्परा में सामान्यतः नहीं मिलती। यहाँ जनकलाड़िली एक मोदभरी हास्य-प्रिय राजकुमारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती हैं। इसके बाद पाँचवें अंक में जब हम उन्हें राघव को सद्परामर्श देते पाते हैं तब हमें जानकी की बुद्धिमानी की झलक मिलती है। परन्तु यह जो कुछ है, यह चरित्र-निरूपण तो दूर, चरित्र का पूर्ण रेखाचित्र भी नहीं है और 'प्रतिमा' की जानकी के दर्शन पाकर हमें आदिशान्ति के दर्शन का सुख प्राप्त नहीं होता। 'महावीर चरित्र' की जानकी एक बाला हैं (१ अंक) जिनके हृदय में राक्षस का बालोचित भय है, बालिका के समान उत्तेजना है और एक बालिका का सा अज्ञान है (७ अंक)। एक किन्नर को भी वे नहीं पहचान पाती हैं। इस नाटक में वे हमको जगज्जननी के समान पूज्य नहीं लगती हैं। 'आश्चर्य चूड़ामणि' नाटक में भी वे जग-माता नहीं मालूम देती हैं। वे एक मध्यवर्ती श्रेणी की नारी हैं जो निस्सन्देह बहुत सुन्दर हैं। परन्तु नाटककार ने उनके मुख से यह कहलाकर उनकी अनुपम सुन्दरता के आकर्षण को घटा दिया कि वे अनसूया के वरदान के कारण पति को इतनी सुन्दर लगती हैं (अंक २ श्लोक ४ के उपरान्त)। इसका यह अर्थ हुआ कि यदि जनकलली पति-प्रिया हुईं तो अपनी सहज सुन्दरता के कारण नहीं, बल्कि अनसूया के वरदान के कारण।

तीन मुक्तक

श्री सूर्यनारायण सिद्धार्थ

(१)

जब-जब मन में कौंधी मुस्कानों की बिजली,
पलकों में भीगी है अरमानों की बदली!
जब-जब मेरे सपनों के मयूर नाचे हैं--
गूँजी है गीतों के गाँवों में सुधि-कजली!!

(२)

सावन में धरती को हँसते भी देखा है,
जहाँ जेठ में उसको जलते भी देखा है!
'सब दिन क्या जग में एक जैसा रहा कोई--'
हमने यह धरती को कहते भी देखा है!!

(३)

दर्दों से मेरे गीतों को जब प्यार हुआ,
पूनम का शीतल चंदा तब अंगार हुआ!
फूट-फूट रोयी सुधि-बँसवट की हरियाली--
जब हँसता मन मधुवन घायल पतझार हुआ!!

जगज्जननी की अनुपम सुन्दरता को किसीके वरदान से सौन्दर्य्य-वृद्धि करवाने की क्या आवश्यकता थी? बड़े दुख की बात है कि इस नाटक के दूसरे अंक में राघव शूर्पनखा से कहते हैं कि यह अनुपम सीता उनके अनन्त की खोज में बाधक हुई!! क्या मैथिली के प्रेम और सौन्दर्य्य-न्यौछावर का राघव ने यही मूल्य समझा? रावण के प्रेम को ठुकराने में और राघव-विरह-विलाप और राघव की मुद्रिका के प्राप्त होने के हर्ष में 'आश्चर्य चूड़ामणि' की जानकी का वैसा ही व्यवहार है जैसा कि एक सामान्य हिन्दू राजपुत्री का होता जिसके रक्त में पातिव्रत स्वाभाविक होता है। इस प्रकार इस नाटक में भी सीता का चरित्र साधारण हिन्दू नारी के स्तर से कुछ विशेष ऊँचा नहीं है।

× × ×

क्रमशः

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब और संस्कृत साहित्य

श्री सत्यव्रत 'तृषित'

भारत के सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक इतिहास में पंजाब[१] को अद्वितीय स्थान प्राप्त है। आर्यों के आगमन से लेकर ब्रिटिश साम्राज्य के अवसान तक पंजाब ने अनेक साम्राज्यों का उत्थान-पतन देखा, अनेक भाग्यनिर्णायक तुमुल युद्धों को वक्ष पर झेला। परन्तु अनादि काल से ही विदेशी नृशंस आक्रान्ताओं के मर्मान्तिक आक्रमणों के क्रूर थपेड़े सह कर भी यह वीरप्रसू भू न केवल अपने विक्षत वैभव को जुटाने में ही संलग्न रही है, प्रत्युत साहित्य के प्रणयन तथा अन्य ललित कलाओं के उन्नयन के प्रति भी सतत् जागरूक रहती आयी है। पंजाब भारत के पश्चिमोत्तर द्वार का प्रतिहारी ही नहीं, साहित्य का सजग प्रहरी भी है। अपने घावों को स्वयं सहलाकर जिस जिन्दादिली से पुनर्निर्माण के कार्य में प्रवृत्त हो जाने की क्षमता वीर पंजाबियों में है, उसे देखकर दिल फड़क उठता है। जिसे विश्वास न हो, वह आकर देख ले कि जो सज्जन विभाजन के समय लुट-पिटकर इधर आये थे, वे अब आप-बीती को भूल कर अन्य व्यक्तियों के साथ सोल्लास कदम मिलाये चले जा रहे हैं। इसीलिए पंजाब जीवन के मधुर अंग साहित्य एवं ललितकलाओं से कभी भी विमुख नहीं रहा है। कांगड़ा की चित्रशैली आज जन-मन का हार बन चुकी है; लोकनृत्य भंगडा विदेशियों तक का प्रीतिभाजन बन गया है। पंजाब का लोक-साहित्य मदिरमानस पंजाबी 'गभरुओं' (युवकों) तथा 'मुटियारों' (युवतियों) का ही धड़कता हृदय नहीं है, वह सब पर अपनी मोहिनी डालकर बरबस आकृष्ट कर लेता है। यही दशा साहित्य की है। जनभाषा हिन्दी एवं पंजाबी के साहित्य की तो बात रहने दीजिए, उसकी रचना तो प्रभूत मात्रा में हुई है और होती जा रही है। संस्कृत साहित्य के सृजन में भी पंजाब ने श्लाघ्य योगदान दिया है। संस्कृत-साहित्य की प्रायः सभी विधाओं की रचना इस प्रदेश में हुई है !

"वह दूर की दुनिया थी, दूर का जमाना था, जब एक सफेद कौम ऊँचे घोड़ों पर चढ़ी हिन्दूकुश की गगनचुम्बी चोटियों को लाँघ काबुल के उत्तर से नीचे के मैदान में उतर पड़ी थी। काबुल की ऊँचाइयों से नजर जो नीचे दूर तक फैले मैदानों पर पड़ी, और उन मैदानों की छाती पर रेंगती नदियों की चाँदी-सी चमकती धाराएँ नजर में उठीं, फैले हुए लहराते हरे खेत जब उड़ती निगाह से गुज़रे तब उन रिसालों की बाग रुक गई, जिन्होंने कभी बस्ती न जानी थी, जिनके जवानों का घर घोड़ों की पीठ पर सदा रहा था, दौलत के नाम पर जिनके पास बस तीर और कमान रहे थे। और उन्होंने हिन्दूकुश के उतार से लगे नीचे के फैले मैदानों में, स्वात और बाजोर में, बामियान-लमगान में अभिसार-गांधार में, एक के बाद एक समुन्दर तक बहती चली गयी धाराओं के दाव में अपने गाँवों के बल्ले गाड़ दिये, और उनके मुखर गायकों ने कृतज्ञ उल्लास से उदार प्रकृति को अभिराम सराहा ! साहित्य का पहला आकर तब ऋग्वेद के रूप में सप्तसिन्धु की जमीन पर खुला।"[२] ऋग्वेद मानव जाति का आदिम ज्ञानभण्डार है, हिन्दू जाति का प्राण। वस्तुतः एक न एक रूप में आज हम सभी ऋग्वेदरूपी विशाल वटवृक्ष की स्निग्ध-सघन छाया में बैठ श्वास ले रहे हैं। भारतीय परम्परा समग्र वैदिक साहित्य को 'अपौरुषेय' अथवा मानव-अप्रणीत मानती है। उसके अनुसार मानव सभ्यता के स्वर्णिम 'उषा-काल' में हमारे अप्रतिम प्रतिभा-सम्पन्न क्रान्तदर्शी पूर्वजों ने इन मन्त्रों का साक्षात् किया था। ऋग्वेद के अध्ययन से हृदय गौरव एवं हर्ष से आचूड़ पूरित हो जाता है। यह उस साहसी जाति के भावुक हृदय का नैसर्गिक उद्गार है, जो अति प्राचीन काल में ही समस्त मानव-जाति को अपनी प्रतिभा के स्फुरण से विस्मित कर चुकी थी। प्रो० मैक्समूलर के शब्दों में "आध्यात्मिकता की जिस उत्तुंगता को अमित बुद्धि भारतीय ऋषि पहुँच गये थे, वहाँ उनके ही फेफड़े श्वास ले सकते थे, दूसरों के फेफड़े तो वहाँ फट गये होते"।[३] भारतीय जीवन, धर्म एवं दर्शन ऋग्वेद से कितने अनुप्राणित हैं, यह स्वयं शोध

१—इस लेख में पंजाब से मेरा अभिप्राय अविभाजित पंजाब से है।

२—देखिए 'जागृति' अक्तूबर १९६१ पृष्ठ ५।

३—"They climbed upto heights where their lung only could breathe, and where those of other beings would have burst". Max Muller. (स्वामी विवेकानन्द की सुन्दर पुस्तिका Hinduism से उद्धृत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

का विषय है। ऋग्वेद का धार्मिक मूल्य कुछ भी हो, वह उच्चकोटि की यथार्थ एवं सजीव कविता है। निस्सन्देह ऋग्वेद स्तुति-परक ग्रन्थ है, पर इसमें आर्यों के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं राजनीतिक जीवन का भव्य तथा यथातथ्य चित्रण भी अनायास समाहित हो गया है।

पाश्चात्य मनीषियों ने ऋग्वेद-कालीन आर्यों को बहुदेवतोपासक माना है। आपाततः ऋग्वेद से यह धारणा पुष्ट भी होती है। पर वास्तव में आर्यों ने विभिन्न देवी-देवताओं में एक सत्ता का प्रतिबिम्ब देखा। इसका स्पष्टीकरण उन्होंने 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' ईश्वर एक है, ऋषिजन उसे विभिन्न नामों से अभिहित करते हैं—कहकर स्वयं ही कर दिया है।

"यजुर्वेद न केवल ऋग्वेद से भिन्न भौगोलिक क्षेत्र से, अपितु भारत के अभिनव सामाजिक एवं धार्मिक जीवन से हमारा परिचय कराता है। वैदिक सभ्यता का केन्द्र सप्तसिन्धु को छोड़कर दूर पूर्व में अवस्थित प्रतीत होता है। यजुर्वेद में न सिन्धु का गम्भीर नाद है, न शुतुद्री—विपाश् की निनादिनी धारा। उसमें उपलब्ध समूची भौगोलिक सामग्री कुरु-पाञ्चालों से अधिष्ठित, उत्तर भारत के अन्तराल में स्थित भूमि को अपना रचनास्थल इंगित करती प्रतीत होती है। विशेषकर कुरुदेश (कुरुक्षेत्र) यजुर्वेद तथा तत्सम्बद्ध ब्राह्मणों की पावन रचनास्थली है।"[४] "यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थ पूर्वी पंजाब के इसी भाग की याज्ञिक महत्ता से ओतप्रोत हैं। धर्मशास्त्रकारों ने जिन शिष्टों के आचार को सदाचार माना है, वे शिष्ट विद्वान् इसी प्रदेश के आभूषण थे। वैयाकरणों ने जिन शिष्टों के भाषा-प्रयोग को प्रामाणिक माना है, वे शिष्ट भाषाविद् इस प्रदेश के निवासी थे।"[५]

"कोश और व्याकरण का पहला विज्ञान सिन्धु नद की आसपास की भूमि पर चमका। यास्क ने जिस निरुक्त और निघण्टु का विस्तार किया, वह देश के ज्ञानकोश-कारिता के क्षेत्र में पहला कदम था, और वैज्ञानिक दृष्टि से उन कोशों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था जिनका निर्माण प्रायः डेढ़ हजार साल पहले असुरों और बाबुलियों ने, पच्छिम में, सुमेरियों की कीलित लिपि में उन्हींकी भाषा से किया था"।[६] कालचक्र के प्रवाह में एक समय आया जब वेदों का अर्थ अस्पष्ट हो गया, भारत की अन्तःप्रज्ञा लुप्त हो गयी, जिसके फलस्वरूप वेदों को हृदयङ्गम करने में कठिनाई होने लगी। तब कठिन वैदिक शब्दों की क्रम-बद्ध तालिका, निघण्टु, का निर्माण हुआ। निरुक्त निघण्टु का बृहद् भाष्य है। स्वयं यास्क का कथन है—"समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः। तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते"। वैदिक मन्त्रों के स्पष्टीकरण के निमित्त शिक्षा, छन्द, व्याकरण प्रभृति जिन छः वेदांगों का प्रणयन हुआ, उनमें निरुक्त को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। निरुक्त 'शब्दव्युत्पत्ति-भाषाविज्ञान तथा अर्थविज्ञान-विषयक प्राचीनतम भारतीय प्रबन्ध है'।[७]

यास्क के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। उन्होंने वैदिक कृदन्त शब्दों की व्युत्पत्ति उन धातुओं से बतलायी है जो लोकव्यवहार में आते थे। यास्क ने समस्त शब्द धातुओं से उत्पन्न हुए माने हैं। उनकी व्युत्पत्ति दिखलाने का प्रयत्न भी इस ग्रन्थ में किया गया है। निरुक्त वेदभाष्यकारिता की दिशा में प्रथम प्रयास है। "यद्यपि यास्क ने चन्द ही मन्त्रों पर टीका की और वहाँ भी उनके व्याख्यान से सर्वत्र सहमत होना सम्भव नहीं, तथापि यास्क के अमूल्य भाष्य के अभाव में ऋग्वेद के कई मन्त्र हमारे लिए मुद्रित रह जाते"।[८]

सुविख्यात व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी के प्रणेता महामुनि पाणिनि इसी भूमि के वरद पुत्र थे। पाणिनि का जन्म ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में तक्षशिला के समीप शलातुर गाँव में हुआ था। "कैंबलपुर जिले में गीरा स्टेशन के पास जिस स्थान पर हम सिन्धु नदी पार करते हैं, वहाँ दस मील पर एक गाँव है, जिसे अब लहुर कहते हैं। यही शलातुर है"।[९] यहीं चीनी यात्री ह्यनत्सांग ने पाणिनि की एक भव्य मूर्ति भी देखी थी।

४—द्रष्टव्य 'History of Sanskrit Literature'—A.A. Macdonell—का १७४ पृष्ठ। प्रो० मैक्डानल का यह मुद्रण-वाह्य ग्रन्थ 'मुन्शी राममनोहरलाल, दिल्ली' से पुनः प्रकाशित हुआ है।

५—देखिये 'जागृति' नवम्बर १९६१ पृष्ठ २।

६—देखिए 'जागृति' अक्तूबर, १९६१ पृष्ठ ६।

७—डॉ० लक्ष्मणस्वरूप द्वारा सम्पादित निरुक्त का मुखपृष्ठ।

८—देखिए Ghate's Lectures on Rigveda का ५२ पृष्ठ।

९—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल—'कला० और संस्कृति' पृष्ठ ९७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक्षशिला के निकटवासी होने के कारण पाणिनि पर तक्षशिला विश्वविद्यालय की वैज्ञानिक शिक्षा-पद्धति का प्रभूत प्रभाव पड़ा हुआ प्रतीत होता है। संभवतः वे कुछ दिन इस विश्वविद्यालय में पढ़े भी हों और बाद में वहाँ आचार्य भी रहे हों। पाणिनि सूत्रयुग के अन्तिम आचार्य कहे जा सकते हैं। अष्टाध्यायी की रचना में पाणिनि ने तक्षशिला विश्वविद्यालय की वैज्ञानिक पद्धति बरती है। उन्होंने सामग्री-संकलन करके उसके अन्तराल में पैठ नीर-क्षीर-विवेक से अष्टाध्यायी का निबन्धन किया है।

अष्टाध्यायी यद्यपि व्याकरण ग्रन्थ है, तथापि तत्कालीन राजनैतिक-भौगोलिक सामग्री की दृष्टि से भी यह कम उपादेय नहीं है। वास्तव में सिकन्दर के बाद के यूनानी ऐतिहासिकों के वर्णन की बहुत सी सामग्री अष्टाध्यायी की सामग्री के साथ मिलती है। "इस प्रकार की सामग्री का संकलन पाणिनि ने किया है। उस समय इस देश के जितने प्रसिद्ध संघ या गण, गोत्र या कुल अथवा वैदिक चरण थे, उनकी विस्तृत सूची उनके शास्त्र में आ गयी है। इस समय उत्तर-पश्चिम से लेकर दक्षिण-पूर्व तक जो सभ्यता फैली हुई थी, उसका एक विशिष्ट चित्र पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है। उस समय में प्रचलित मुद्राओं का चारु वर्णन भी अष्टाध्यायी में सन्निविष्ट है। इसके अतिरिक्त लोक-जीवन की बाँकी झाँकी पाणिनीय शास्त्र में दृष्टिगोचर होती है।"[१०]

पाणिनि के वैयाकरण ने उनके कवि को तिरोहित कर दिया। परन्तु पाणिनि शुष्क पण्डित ही नहीं, विदग्ध कवि भी थे। उनके काव्य जाम्बवतीजयम् का उल्लेख भी राजशेखर ने किया है। पाणिनि का हृदय उदात्त एवं कमनीय कल्पनाओं का सुकुमार आकर है। पावस का कितना भव्य वर्णन इस पद्य में हुआ है--

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह किन्तु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास॥

(दमकती दामिनी के आलोक में अभिसारिका का मुख निहार मेघ यह समझ कर रो रहा है कि जलधारा के साथ उसका चाँद भी धरा पर गिर गया है!) डॉ० कीथ[११] के समान दो पाणिनियों की कल्पना सर्वथा वृथा है।

उसी तक्षशिला विश्वविद्यालय से एक अन्य विचक्षण मेधा प्रसूत हुई, जो कौटिल्य के नाम से धरा पर विख्यात हुई और जिसने राजनीति का प्रथम ग्रन्थ रचा—अरस्तू से भी पहले। भासकृत नाटकों के समान कौटिल्य-अर्थशास्त्र के उल्लेख तथा उद्धरण तो अनेक स्थलों पर पाये जाते थे, पर मूलग्रन्थ १९०५ तक अनुपलब्ध था। १९०४ के लगभग तंजोर जिले का एक अज्ञातनामा ब्राह्मण इस अद्वितीय ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति ही नहीं अपितु उसके थोड़े से अंश की शब्द-प्रतिशब्दवृत्ति भी मैसूर राज्य के संस्कृत पुस्तकालय में दे गया जिसने प्रकाशित होकर संसार को चकित कर दिया। उक्त पुस्तकालय के तत्कालीन अध्यक्ष पण्डित शामशास्त्री ने १९०५ में उसका सर्वप्रथम अनुवाद करना प्रारम्भ किया तथा १९१५ में पुस्तकाकार भी प्रकाशित कर दिया। १९०९ में उसका मूल पाठ भी डॉ० शामशास्त्रीजी ने प्रकाशित किया। १९६० तक पण्डित शामशास्त्रीकृत अंग्रेजी अनुवाद के ६ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जो इस अद्भुत ग्रन्थ की महत्ता एवं लोकप्रियता के नितान्त परिचायक हैं। अर्थशास्त्र की श्री माधवयज्वानकृत 'नयचन्द्रिका' नामा वृत्ति भी पंजाब में लिखी गयी थी। भारतीय राजनीति तथा अर्थविज्ञान का दिग्दर्शन करानेवाला यह अर्थशास्त्र साहित्य का अनुपम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थरत्न की रचना ३२१-२९६ ई० पू० के मध्य में हुई होगी।[१२]

प्रथम शताब्दी ईस्वी में कुषाण-सम्राट् कनिष्क पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर अन्यान्य वस्तुओं के अतिरिक्त प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष को भी अपने साथ पुरुषपुर (पेशावर) ले आये थे। 'साकेतक' अश्वघोष का सम्बन्ध इस प्रकार पश्चिमोत्तर प्रान्त से हुआ। कनिष्क ने अश्वघोष को अपना धर्मगुरु बनाया तथा अपनी

१०--द्रष्टव्य डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ 'पाणिनिकालीन भारत' तथा 'कला और संस्कृति' में पाणिनि शीर्षक लेख।

११--डॉ० कीथ---A History of Sanskrit Literature पृष्ठ ४५।

१२--विस्तृत विवरण के लिये देखिए हिन्दी के यशस्वी लेखक श्री कस्तूरमलजी बाँठिया का 'सरस्वती' के जुलाई १९६० अंक में प्रकाशित "कौटल्य अर्थशास्त्र के प्रामाणिक संस्करण और हिन्दी अनुवाद" शीर्षक लेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

छत्रच्छाया में बौद्ध धर्म का प्रचार करने का समुचित अवसर दिया। अश्वघोष ने काव्य को धर्मप्रचार का सशक्त साधन बनाया। उन्होंने स्वान्तःसुखाय कविता नहीं लिखी प्रत्युत भगवान् सुगत के धर्म के प्रचार-प्रसार-हेतु ही काव्य का माध्यम अपनाया—"इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः"। उनके दोनों काव्य, बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द, इसी प्रचार बुद्धि से लिखे गये।

महाराज हर्षवर्धन तलवार के ही नहीं कलम के भी धनी थे। परवर्ती धारानरेश भोज के समान हर्ष ने साहित्य-प्रणयन एवं उन्नयन में विशेष रुचि ली। हर्ष नाटिका के प्रवर्तक हैं। उनकी प्रियदर्शिका तथा रत्नावली संस्कृत की आद्य नाटिकाएँ हैं। यद्यपि कालिदास का मालविकाग्नि-मित्र नाटिका से किसी प्रकार भिन्न नहीं, तथापि पाँच अंकों में विभक्त होने के कारण उसे नाटक का अभिधान देना ही न्याय्य होगा। नागानन्द की रचना हर्ष के बौद्ध होने के पश्चात् हुई प्रतीत होती है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनत्सांग हर्ष के समय में ही भारत आया था। महाराज हर्ष ने अभ्यागत का जो विशिष्ट सत्कार किया था, वह आज भी इतिहास के पन्नों में उज्ज्वल हीरे की तरह दमक रहा है। ह्यूनत्सांग के भारत से जाने के एक वर्ष पश्चात् ६४८ ई० में हर्ष की मृत्यु हो गयी और उनके साथ ही उत्तर भारत का सुगठित साम्राज्य ढह गया।

हर्ष की राज्यसभा अनेक महारथी पण्डितों से मण्डित थी। बाण कदाचित् उस माला के मध्यमणि हैं। बाण सर्वविख्यात एवं सर्वोत्कृष्ट गद्यकार हैं। उनका हर्षचरित महाराजाधिराज हर्ष की जीवनी पर आधारित प्रौढ़ गद्य काव्य है। हर्षचरित से हर्ष के समसामयिक इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। कुछ आलोचक हर्षचरित की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर सन्देह करते हैं, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। बाण न तो इतिहास लिख रहे हैं न हर्ष की जीवनी। ऐतिहासिक कथानक का अवलम्ब ले गद्य लिखना ही बाण को अभीष्ट है, जिसमें उनकी प्रौढ़ कल्पना स्वैर विहार कर सके। ऐतिहासिक तथ्यों को समाविष्ट करने पर बाण का आग्रह नहीं है। फिर भी जिस ऐतिहासिक सामग्री का समावेश हर्षचरित में अनायास ही हो गया है उसकी पुष्टि ह्यूनत्सांग की 'सिवूकी' तथा हर्ष की मुद्राओं एवं मधुबन के ताम्रपत्र से होती है।

बाण की प्रतिभा का चरम विपाक कादम्बरी में गोचर होता है। कादम्बरी में चन्द्रापीड़ तथा गन्धर्व-राजकन्या कादम्बरी के प्रणय का रसवन्ती भाषा में चित्रण हुआ है। बाण की उत्प्रेक्षणशक्ति निराली है, उनका शब्दभण्डार अक्षय है, उनका शास्त्रीय ज्ञान, भारतीय परम्पराओं और गाथाओं की परिचिति, राजनीतिक सूझ और अलंकार-मर्मज्ञता सब अनूठी हैं। बाण के निरीक्षण, शब्द-चयन तथा शब्दगुम्फन की आलोचकों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इसके विपरीत बाण की कृत्रिमता से खिन्न होकर वेबर ने बाण के गद्य की तुलना भारतीय जंगल से की है जहाँ पथिक को झाड़ियाँ काट कर अपना मार्ग स्वयं बनाना पड़ता है; किंतु फिर भी उसे विकट समासों तथा अपरिचित शब्दों रूपी हिंसक जन्तुओं की दहाड़ का सामना करना पड़ता है। वेबर की यह उक्ति कादम्बरी पर आंशिक रूप से ही घटती है। साथ ही, बाण का मूल्यांकन तत्कालीन साहित्यिक मानदण्डों से करना ही न्याय्य एवं युक्तिसंगत होगा।

बाण के श्वशुर अथवा श्यालक मयूर भी हर्ष के सभा-सद् थे। कहते हैं कि बाण की पत्नी के शाप से इन्हें कुष्ठ हो गया था। मयूर ने सूर्य की, स्तुति की जिससे वे रोगमुक्त हो गये। सूर्यशतक मयूर की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है।

पहले कहा जा चुका है कि हर्ष की मृत्यु के साथ ही उत्तर भारत का शासन छिन्न-भिन्न हो गया। प्रान्तीय भाषाओं के उदय के कारण विद्वानों का ध्यान जनभाषाओं की ओर अधिक आकृष्ट हुआ और संस्कृत प्रायः उपेक्षित ही रही। संस्कृत-साहित्य के उपबृंहण में ओरिएण्टल कॉलेज लाहौर ने विशेष योगदान दिया है। उक्त कालिज के पण्डित हृषीकेश भट्टाचार्य (१८५०—१९१३) जी का नाम इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय है। भट्टाचार्यजी पंजाब विश्वविद्यालय के प्रथम शास्त्री थे। शास्त्रीजी ने 'विद्योदय' मासिक संस्कृत पत्रिका का लगभग चालीस वर्ष तक निरन्तर सम्पादन किया। १९वीं शती में संस्कृत पत्रिका का पाश्चात्य विचार-शैली से सम्पादन करना साहस का कार्य था। पर भट्टाचार्यजी ने अपनी लेखनी को समय की प्रतिकूलता की हवा-बतास से बचाकर संस्कृत-साहित्य की अभिवृद्धि का स्तुत्य कार्य किया है। अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनता तथा विविधता के कारण शास्त्रीजी के निबन्ध मैक्समूलर तक की प्रशंसा के भाजन बने। संस्कृत में प्रबन्धों का प्रायः अभाव है। आद्य प्रबन्धकार होने के नाते भट्टाचार्यजी को संस्कृत का बेकन माना जा सकता है। 'विद्योदय' में प्रकाशित उनके कतिपय ललित निबन्धों का संचयन प्रबंधमञ्जरी है। यह 'सकलरसपरम्परातरंगितानां प्रबन्धानां' संग्रह है। सामाजिक कुरीतियों पर चोट करनेवाली शैली भट्टाचार्यजी के निबन्धों में ही मिलती है। संस्कृत में व्यंग्य शैली का प्रादुर्भाव इन्हीं निबन्धों से माना जायेगा।

होशियारपुर के सरस्वती-मन्दिर के निर्माता तथा सनातनधर्म पाठशाला के संचालक पण्डित कन्हैयालालजी शास्त्री धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित तथा सहृदय गीतिकार थे। कहते हैं, धर्मशास्त्र में काशी तक के पण्डितों में उनकी साख थी। शास्त्रीजी ने शेख सादी के सुप्रसिद्ध नीति ग्रन्थ 'गुलिस्तां' का संस्कृत में 'पुष्पवाटी' नाम से ललित अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त आरती तथा अन्य कतिपय भजनों का हृदयहारी अनुवाद किया।

संस्कृत के उद्भट विद्वान् मेरे पूज्य गुरुदेव पण्डित चारुदेवजी शास्त्री का 'गान्धीचरितम्' १९३० में लाहौर से प्रकाशित हुआ था। गान्धीचरित संस्कृत गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। गांधीचरित में पूज्य पण्डितजी की असीम विद्वत्ता स्पष्ट झलकती है। वस्तुतः शास्त्रीजी उन इने-गिने महानुभावों में हैं जिनका—इयं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते—सरस्वती दासी के समान अनुगमन करती हैं। पण्डितजी में विद्वत्ता तथा सौजन्य का दुर्लभ संयोग है। वे उच्चकोटि के वाग्मी हैं। उनके समान संस्कृत एवं अंग्रेजी के धाराप्रवाही वक्ता विरले ही मिलेंगे। पण्डितजी सरलचित्त, संयमधन, अल्पतोषी तथा सात्त्विक महापुरुष हैं। गांधीचरित के अतिरिक्त पण्डितजी के शब्दापशब्दविवेक, अनुवादकला, प्रस्तावतरङ्गिणी, वाक्यमुक्तावली आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं तथा 'उपसर्गार्थचन्द्रिका' शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। पण्डितजी टाँडा के निकटस्थित अहियापुर गाँव के अधिवासी हैं।

ओरिएण्टल कॉलेज लाहौर के अन्य आचार्य पं० गणेशदत्त 'पद्मचन्द्रकोष' के लेखक हैं। पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० ए० सी० वुलनर संस्कृत के विख्यात विद्वान् थे। उनका 'An introduction to Prakrits' मार्मिक ग्रन्थ है।

१९३५ में डी० ए० वी० कालेज लाहौर के शोध विभाग से पं० कृष्णकौर मिश्र का श्रयङ्ककाव्यम् प्रकाशित हुआ। इस काव्य का प्रारम्भ अमृतसर के वर्णन से होता है। इसमें सिक्खों के प्राचीन इतिहास का वर्णन है।

पण्डित रामप्रपन्न शास्त्री प्रसिद्ध टीकाकार थे। निरुक्त, वासुदेवविजय, धातुकाव्य तथा वृत्तरत्नाकर पर उनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। शास्त्रीजी होशियारपुर जिले के जेजों गाँव के वासी थे।

पं० नृसिंहदेव शास्त्री अपने समय के प्रकाण्ड दार्शनिक थे। अनेक टीका-टिप्पणियों के अतिरिक्त 'प्रस्तावचन्द्रिका' उनकी मौलिक रचना है।

पण्डित कन्हैयालाल शास्त्री रँगीले व्यक्ति थे। शास्त्री पास करने के अनन्तर वे जैनी हो गये थे। तब उन्होंने अपना नाम मुक्ति ऋषि रखा तथा फगवाड़ा में वैद्यक पढ़कर वैद्यक की पुस्तक 'भुक्तिविलास' लिखी।

पं० बंसीधर न्याय के उद्भट विद्वान् थे। उन्होंने मुक्तावली पर उच्चकोटि की टीका रची थी जो अभी तक अप्रकाशित है। गत वर्ष ६ नवम्बर को अमृतसर में उनका देहावसान हो गया।

प्रो० श्यामदेव शास्त्री संस्कृत के मेधावी कवि हैं। उनका राजसिंहचरितम् अभी तक अप्रकाशित है। प्रो० श्यामदेव आजकल गवर्नमेण्ट कॉलेज नाभा में संस्कृत के प्राध्यापक हैं।

गत वर्ष देहली से मेरे अग्रजतुल्य डॉ० सत्यव्रतजी शास्त्री का 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' काव्य प्रकाशित हुआ है। बौद्धगाथाओं पर आधारित यह काव्य संस्कृत का शृङ्गार है। 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' सा प्रसन्न, प्राञ्जल तथा मधुर काव्य हमारे सीमित अनुभव में नहीं है। कविता डॉक्टर साहब के हृदय से फूटी है। उनकी कविता कालिदास की कविता का स्मरण करा देती है और कवि को सहसा 'अभिनवकालिदास' की उपाधि से विभूषित करने को जी चाहता है। इससे पूर्व उनका एक खण्डकाव्य 'बृहत्तरं भारतम्' भी प्रकाशित हो चुका है। आजकल डॉ० सत्यव्रत दिल्ली विश्वविद्यालय में आचार्य हैं।

इनके अतिरिक्त पं० विश्वनाथ, पं० परमानन्द, महामहोपाध्याय छज्जूराम शास्त्री, म० पण्डित परमेश्वरानन्द, पं० दिवाकरदत्त, पं० देव शर्मा, पं० भगवद्दत्त प्रभृति विद्वान् संस्कृत-साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दे रहे हैं।

इस प्रकार पंजाब में अब भी संस्कृत-साहित्य-मन्दाकिनी अजस्र प्रस्रवित हो रही है, भले ही उसकी धारा क्षीण हो गयी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

भूधर कवि और उनकी 'ध्यान बत्तीसी'

श्री कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

गुजरात में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की व्यापक खोज करते हुए मुझे भूधर कवि का लिखा हुआ 'ध्यान बत्तीसी' नामक एक छोटा सा ग्रंथ मिला है। इसमें कुल मिलाकर बत्तीस सवैये और घनाक्षरी छंद हैं, जिनमें बड़ी ही सरस ब्रजभाषा में रासरसेश्वर भगवान् कृष्ण की अनेक मनोहारी मुद्राएँ अंकित की गयी हैं। इस ग्रंथ की मूल प्रति मुझे प्राप्त नहीं हो सकी है। जो प्रति मुझे मिली है, वह मूल प्रति अथवा उसकी किसी प्रतिलिपि की प्रतिलिपि है। उसके प्रतिलिपिकर्त्ता अथवा लेखक हैं गुजरात के प्रसिद्ध कवि और महान् हिन्दी-सेवक, गोविंद गिल्लाभाई। गोविंद गिल्लाभाई की हिन्दी सेवा का सच्चा मूल्यांकन होना अभी शेष है। वे एक सफल कवि और बहुज्ञ आचार्य तो थे ही, साथ ही एक महान् संपादक, संशोधक और संग्रहकर्ता भी थे। उन्होंने अपने समसामयिक अनेक कवियों को हिन्दी में काव्य रचना करने की प्रेरणा दी और उनकी कृतियों का संशोधन और संपादन किया। इसके अतिरिक्त नितांत साधनहीन और निरंतर अर्थाभाव से पीड़ित होते हुए भी वे घूम-घूमकर हिन्दी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करते रहे। इसके लिए उन्हें देश के भिन्न-भिन्न भागों में अवस्थित देशी राज्यों के पुस्तकालयों की छान-बीन करनी पड़ी। वहाँ उन्होंने प्राचीन कवियों के दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ स्वयं तैयार कीं। उदाहरण के लिए, उन्होंने भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय के प्रायः सब महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ स्वयं तैयार की थीं। यह सुविधा उन्हें मोरवी के महाराज-कुमार हरभर्मजी के द्वारा प्राप्त हुई थी। महाराजकुमार संभवतः उस समय भरतपुर में दीवान थे। पता लगाने पर ज्ञात हुआ है कि भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में अब ये हस्तलिखित ग्रंथ नहीं रह गये हैं। मेरा अनुमान है, उनके द्वारा की गई हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ दो ढाई सौ से कम नहीं होंगी। उनके द्वारा की गयी इस प्रकार की लगभग सत्तर-पचहत्तर प्रतिलिपियाँ मेरे विभागीय संग्रह में ही हैं। मुझे यह मूल्यवान सामग्री सोनगढ़ (सौराष्ट्र) के एक महान् लोकसेवी संत एवं परम वीतराग जैन मुनि श्री कल्याणचन्द्र बापाजी की अन्यतम उदारता और कृपा से प्राप्त हुई है। गोविंद गिल्लाभाई के संग्रह का बहुत बड़ा अंश नष्ट हो गया है। जो अंश अभी इधर-उधर बचा हुआ पड़ा है, वह भी क्षयशील स्थिति में है और मैं उसे प्राप्त करने का प्रयत्न शक्ति भर कर रहा हूँ। उनके निजी संग्रह का कुछ मूल्यवान् अंश सौभाग्य से उपर्युक्त जैन मुनि महानुभाव के हाथ लग गया, बड़ी सावधानी से उन्होंने उसे सुरक्षित रखा और बड़े विश्वास के साथ उन्होंने वह मुझे दिया है। अब उस पर हमारे विभाग में काम हो रहा है। इसी सामग्री में भूधर कवि की 'ध्यान बत्तीसी' भी प्राप्त हुई है।

यदि गोविंद गिल्लाभाई की सब सामग्री प्रकाशित कर दी जाय, तो वे सहज ही हमारे हिन्दी के आदि इतिहास लेखकों में भी परिगणित होने लगेंगे। उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' के आदर्श को सामने रखकर 'कवि चरित्र' नामक एक 'कवि-वृत्त-संग्रह' भी तैयार किया था। उसके केवल बयालिस पृष्ठ अब तक मुझे मिले हैं। उनके जो नोट और डायरियाँ मुझे मिली हैं, उनसे पता चलता है कि 'कवि चरित्र' के प्रणयन की उनकी योजना विशाल रही होगी। उनकी एक अकार क्रम से तैयार की गई उन कवियों की सूची भी मुझे मिली है जिनके नाम 'शिवसिंह सरोज' में नहीं हैं। इस सूची का शीर्षक है "शिवसिंह सरोज में जिन कवियों का उल्लेख नहीं हुआ है उनकी सूची"। मेरे पास उनके अपूर्ण अथवा खंडित 'कवि चरित्र' की जो प्रति है, उसमें इस सूची के कुछ कवियों का विवरण दिया गया है। गोविंद गिल्लाभाई ने जिन पुराने हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह किया है, उनके रचयिताओं का परिचय भी उन्होंने अपने इस "कवि चरित्र" नामक कवि-वृत्त-संग्रह में दिया है। भूधर कवि का नाम इसमें नहीं है। अपने समय तक नहीं छपी हुई पुस्तकों के नाम लेखकों सहित उन्होंने एक बारह पृष्ठ की सूची में दिये हैं। इसमें क्रम-संख्या ९४ के सामने भूधर कवि और उनकी "ध्यान बत्तीसी" का उल्लेख है, पर रचना काल और विवरण के खानों में कुछ नहीं दिया गया है। इसका कारण संभव है यह हो कि गोविंद गिल्लाभाई स्वयं यह निश्चय नहीं कर पाये थे कि 'ध्यान बत्तीसी' किन भूधर कवि की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसका रचना-काल क्या है। "ध्यान बत्तीसी" की जो प्रतिलिपि मेरे पास है उसमें भी रचना-काल आदि का कोई उल्लेख नहीं है। उसके अंत में केवल इतना लिखा है—"इति श्री कवि भूधर विरचित श्री ध्यान बत्तीसी ग्रंथ संपूर्णम् .....समाप्तम्..... इति संपूर्णम्"।

हिन्दी साहित्य के पुराने इतिहास ग्रंथों में भूधर नाम के कई कवियों का उल्लेख मिलता है। 'मिश्रबंधु विनोद' के द्वितीय भाग (द्वि० संस्करण) में भूधर नामधारी चार कवियों का चार स्थलों पर उल्लेख है:—

		पृष्ठ
१—भूधरदासजी जैन	..	५९८
२—भूधरदास मिश्र	..	८९०
३—भूधर मिश्र	..	६१९
४—भूधर	..	६८४

इनमें से भूधरदास मिश्र (पृष्ठ ८९०) और भूधर मिश्र (पृष्ठ ६१९) दोनों एक ही प्रतीत होते हैं, कारण भूधरदास मिश्र के लिखे हुए 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' की टीका और 'चरचा समाधान' नाम के जो दो ग्रंथ बताये गये हैं, ठीक वे ही भूधर मिश्र की विधरणिका में उनके द्वारा विरचित कहे गये हैं, दोनों का निवासस्थान भी एक ही 'शाहगंज' बताया गया है। अंतर केवल इतना है कि भूधरदास मिश्र 'शाहगंज आगरा निवासी' बताये गये हैं, और भूधर मिश्र की विवरणिका में 'आगरा' का उल्लेख नहीं है; केवल इतना ही लिखा गया है कि वे 'शाहगंज' वासी जैन-मतावलंबी थे। भूधरदास मिश्र की विवरणिका में उनके जैनमतावलंबी होने का उल्लेख नहीं है। एक अंतर और। मिश्रबंधुओं ने भूधरदास मिश्र का रचना काल १८७१ दिया है और भूधर मिश्र का १७८१। यह अंतर छापे की भूल के कारण भी हो सकता है, और यह भी संभव है कि १८७१ भूधरदास मिश्र की किसी रचना का प्रतिलिपि काल हो, जिसे उनका रचना-काल मान लिया गया हो। इस अनुमान की पुष्टि काशी नागरीप्रचारिणी सभा के हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों के चौदहवें त्रैवार्षिक विवरण में प्राप्त भूधरदास के वृत्त (पृष्ठ ३३; १६८-१६९-१७०) से होती है। इसमें भूधरदास के नाम के साथ न मिश्र जुड़ा है और न जैन, किंतु इनकी रचनाओं में "चरचा समाधान" भी है जिसका रचना-काल 'ठारह शत षटहोत्तरो' अर्थात् १८७६ दिया गया है, और इन्हींके रचे हुए दूसरे ग्रंथ 'पारस पुराण' का रचना-काल सं० १७८९ बताया गया है। 'मिश्रबंधु विनोद' के अनुसार 'पारस पुराण' भूधरदासजी जैन की रचना है। इससे यह समस्या सामने आती है कि भूधरदासजी जैन, भूधरदास मिश्र, और भूधर मिश्र ये तीनों एक ही कवि हैं अथवा अलग-अलग। तीनों कवि एक ही हों अथवा अलग अलग, पर रचनाओं से इतना निश्चित सा प्रतीत होता है कि वे जैन थे। यदि यह अनुमान सत्य है, तो इन्हें कृष्णभक्तिपरक 'ध्यान बत्तीसी' का प्रणेता नहीं माना जा सकता।

अतएव अब 'मिश्रबंधु विनोद' में उल्लिखित एक ही 'भूधर' कवि रह जाते हैं, जिन्हें ध्यान बत्तीसी का प्रणेता माना जा सकता है। वे असोथर के यशस्वी नरेश भगवंत राय खीची के मंडल के भूधर कवि थे जिनको मिश्रबंधुओं ने तोष की श्रेणी का माना है। उन लोगों ने यह भी लिखा है कि 'इनका कोई ग्रंथ देखने में नहीं आया, पर स्फुट छंद संग्रहों में देखे गये हैं।' उनके जो स्फुट छंद मिले हैं वे या तो शृंगार रसात्मक हैं अथवा भगवंतराय खीची का यशोवर्णन करने के कारण वीररसात्मक। 'ध्यान बत्तीसी' के छंदों में भक्ति-भावना का जो प्रकर्ष दिखाई पड़ता है, वैसा इन भूधर के अब तक के उपलब्ध छंदों में कहीं दिखाई नहीं पड़ता। पर भगवंतराय स्वयं उच्च कोटि के भक्त थे। और उनके आश्रित भूधर कवि ने भक्तिपरक श्रेष्ठ रचनाएं की हों, यह असंभव नहीं। यह मानने के लिए इस अनुमान के अतिरिक्त और कोई अन्य प्रमाण नहीं है।

ग्रियर्सन ने अपने इतिहास में (हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ १८६) असोथर वाले भूधर के अतिरिक्त दूसरे भूधर बनारसी का भी उल्लेख किया है। उनका जन्मकाल १६४३ ई० बताया गया है। इस प्रकार इनका रचना-काल असोथर वाले भूधर के संभवतः कुछ पहले पड़ता है। इनकी रचनाएँ भी हिन्दी के संग्रहग्रंथों में मिलती हैं, पर हैं वे सब शृंगार रस की ही। 'दिग्विजय भूषण' में भूधर नाम के कवि की जो रचनायें मिलती हैं, उनके संबंध में डाक्टर भगवतीप्रसादसिंह ने अपनी भूमिका में लिखा है (पृष्ठ ७१)—"भूधर कवि काशी के रहनेवाले थे। इनका आविर्भाव सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ। .....ये असोथर के महाराज भगवंतसिंह के आश्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

भूधर कवि से भिन्न हैं।" कम से कम इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भूधर बनारसी की जो रचनायें मिली हैं, उनमें ऐसी कोई प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती जो उन्हें निर्विवाद रूप से "ध्यान बत्तीसी" का कवि प्रमाणित कर सके।

'मिश्रबंधु विनोद' के तृतीय भाग में (पृष्ठ ९९३) भूधरमल नाम के एक अन्य कवि का उल्लेख है। उनकी रची हुई 'भूपाल चौबीसी' नाम की एक रचना बताई गई है। ना० प्र० सभा की १९०० की खोज रिपोर्ट में भी इसका उल्लेख है। 'भूपाल चौबीसी' और 'ध्यान बत्तीसी' दोनों ही संख्यावाची रचनाएँ हैं। दोनों के एक कवि द्वारा विरचित होने के अनुमान-प्रमाण का अन्य कोई आधार नहीं।

नागरीप्रचारिणी सभा के चौदहवें त्रैवार्षिक विवरण (पृष्ठ १६७ सन् १९२९-३१) में इन सबसे भिन्न एक दूसरे भूधरदास और उनके रचे हुए 'सुदामा चरित्र' का विवरण मिलता है। 'सुदामा चरित्र' की रचना के जो नमूने उद्धृत किये गये हैं, उनसे यह अवश्य सिद्ध होता है कि यह भक्तिप्रधान रचना है। कवि ने रचना के आरंभ में यह बताया है कि एक दिन भगवान् कृष्ण ने स्वयं सोते समय मुझे पुकार कर कहा कि तुम मेरे मित्र का चरित्र संसार में प्रसिद्ध करो :—

औचकई प्रभु शयन मो ढेर सुनाएबो बैन।
जागु जागुरे भूधरा चंद्रचूड पद रैन॥

× × ×

तुअ चरित्र मो मित्र को करु प्रसिद्ध संसार॥

ये कृष्णभक्त भूधरदास भी 'ध्यान बत्तीसी' के रचयिता हो सकते हैं। पर 'ध्यान बत्तीसी' की भाषा में जो स्वच्छता और सरसता है, वह 'सुदामा चरित्र' के उपलब्ध अंशों की भाषा में नहीं मिलती। यदि दोनों एक ही कवि की रचना हों तो 'सुदामा चरित्र' को कवि की प्रारम्भिक कृति और 'ध्यान बत्तीसी' को प्रौढ़ कालीन रचना मानना पड़ेगा। उक्त 'सुदामा चरित्र' के लेखक भूधरदास ही 'ध्यान बत्तीसी' के लेखक हैं, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं।

'ध्यान बत्तीसी' के कवि भूधर मधुर भाव के उपासक प्रतीत होते हैं। उनकी यह मधुर भावोपासना चैतन्य, निंबार्क अथवा राधावल्लभीय जैसे किसी संप्रदाय के आश्रित रही होगी। इनमें से किस संप्रदाय की निश्चित छाप इन रचनाओं पर है। यह बता सकना कठिन है। 'ध्यान बत्तीसी' यहाँ उद्धृत की जा रही है, सहृदय इसका आस्वाद कर संतुष्ट होंगे और अनुसंधाताओं को इसमें सोचने-विचारने की पर्याप्त सामग्री मिलेगी।

श्री गणेशाय नमः

अथ ध्यान बत्तीसी ग्रंथ

सवैया

मोर किरीट लसै शिर चारु ललाट दिपै छवि चंद कला की।
बाँके कटाक्ष विशाल महा द्रग कुंडल लोल कपोल थला की।
दंतन की दुति कंठसिरी मुक्ताकर कंकन छाप छला की।
नूपुर की कटि-किंकिनि की उर तें न टरें छवि नंदलला की॥१॥

पुनः सवैया

पीत दुकूल लिये लकुटी कर फेंट धरैं मुरली यहुं जोहै।
बाँकी चितौनि विशाल महा द्रग कज्जल रेख सुरेखनि सोहै।
भाल विराजत खौर सु पेशल रंगनितें मघवा धनु को है।
वैस किशोर खड़ी जमुना तट बैन बजाय सबै मन मोहै॥२॥

पुनः कवित्त

साँवरे सलौंना अंग हीरामनि मोती संग,
उज्ज्वल अनूप रंग देखै दृग जीजिये।
शोभित अनोखे नैन देखे न परत चैन।
नैसुक चितौनि में करेजो काढ़ि लीजिये।
कुंडल की हाल जैसी गजगति चाल जैसी,
परम रसाल छवि नैन भरि पीजिये।
छिनहूं न हूजे न्यारी वार वार बलिहारी,
वारवार नैनन की नौछावरि कीजिये॥३॥

पुनः कवित्त

पायन की पटकनि आंगुरी की चटकनि,
ग्रीवाहू की लटकनि जैसी रास गन में।
दंतन की दमकनि कुंडल की चमकनि,
नूपुर की ठमकनि सालति है तन में।
शोभा जल वरखनि जिय कों आकरखनि,
हियहू कों हरखनि मोहे छिन छिन में।
चंद सौ वदन और मंद मंद मुसकनि,
कसकि कसकि उठ मेरे नित मन में॥४॥

पुनः सवैया

स्याम स्वरूप अनूप महा छवि सुंदरता झलकै चहुं फेरे।
रूप की रास विलास भरचो अति हास उजास गह्यौ जिय घेरे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीछन तान मनोज के बान से मारत है मुरली सुर टेरें।
क्यों रचिये बचिये न अली जु वृथा पचिये उरझ्यो मन मेरे ॥५॥

पुनः सवैया

रंग सुरंग बनी पगिया शिर लाल जरी कलँगी अति राजै।
कंठसिरी उर हीर दिये बनमाल मनोहर उप्पम साजै।
कंज फिरावत गावत गीत सु पीतपटा मुरली कर छाजै।
रैनि दिना यहु रूप अनूपम 'भूधर' नैननि मांहि विराजै ॥६॥

पुनः कवित्त

सुंदर वदन शुभ शोभा को सदन भव,
भीर को कदन औ परम सुखदाई है।
अंग अंग सौरभ सुगंधता की खांनि आली,
परम रसाल बनमाल छबि छाई है।
पूरन अनंद वृजचंद सुखकंद बहु
टारन दरिद्र दंद दीन की सहाई है।
देखे मुख जीजे रूप नैना भरि पीजे मन,
वाके रस भीजे ऐसो कुंवर कन्हाई है ॥७॥

पुनः कवित्त

टेढ़ी पाग बांधे भाल टेढ़ोई तिलक किये,
टेढ़ी चितवनि टेढ़ी ग्रीव की लटकिवो।
टेढ़िये लकुट औ मुकुट टेढ़े कुंडल हैं,
टेढ़ी टेढ़ी भौंहें अंग अंगनि मटकिवो।
टेढ़ी तान गावत नचत टेढ़ौ भाव करि,
टेढ़ो पद टेढ़ी टेढ़ी अँगुरी चटकिवो।
शोभा को समाज शिर ताज वृजराज आज,
आठो जाम यहै ध्यान वहै नाम रटिवो ॥८॥

पुनः सवैया

स्याम घटा घन नील कलेवर मोर किरीट प्रभा जु धरी है।
पीतपटा तड़िता चमकै दमकै मुगुता बग पांति खरी है।
गावत बाजत बैन रसाल विलोचन चातक चेत हरी है।
कुंजनि तें बनतें फिरि कुंजनि, कान्ह मनों घन होड़ परी है ॥९॥

पुनः सवैया

गोल कपोल विलोचन लोल कटाक्ष कलोलनि मोल लये हैं।
कुंडल डोल अडोल प्रभा छलकैं छवि पीत निचोल मये हैं।
दीरघ बाहु उदार महा हिय शोभ रसालनि रूप रये हैं।
सुंदरता को समूह किधों इह देखि सखी व्रग चेरे भये हैं ॥१०॥

पुनः कवित्त

जरकसी चीरा मुख वीरा सौ अरुण दंत,
दमकत हीरा उर शोभा सुख दांनिये।
बाजूबंद बाहू मनिजटित वलय करि,
पौंहची रतन-जरी जात न बखानियें।
वागौ भीनो केसरि जरी कौ फेंटा राजै कटि,
काँधे उपरौना छुद्र घंटा मन आनियें।
ठाड़ो कुंज द्वार गावै बांसुरी बजावै नीकी,
किधौं यहु नंद को ढुठौना अलि जानिये ॥११॥

पुनः कवित्त

कसूंभी खुली है पाग भाग भरे राजे भाल,
तुर्रा गोल पेच अति उत्तम सुधारयो है।
जामो जरकसी नीमा अंबर अतर तर,
उपरौना फेंटा छैल तासों जु सँवारयो है।
मोतीमाल वनमाल कंठी कंठ लालजुत,
पंकज विशाल व्रग आजुही निहारयो है।
तनक हसनि में सकल तन तोर मोर,
नैननि की कोर सों मरोरि मन डारयो है ॥१२॥

पुनः सवैया

झीन झगा झलकै सब अंग सु वोप बनी अतिही दुपटा की।
चंदन चित्र विराजि रहे छवि पूरि रही तनपीत पटा की।
मोतिय माल विशाल महा मनि पैने कटाक्ष रु कारी लटा की।
स्याम सरूप अनूप सखी निरख्यौ मुहि दे व्रग ओट अटा की ॥१३॥

पुनः सवैया

आजु विराजत है मुरलीधर मोर पखा शिर में छवि छाये।
खोही किये मुख बैन बजावत गावत रागिनी राग सुहाये।
हाथ लिये लकुटी विकुटी भृकुटी अलकें कच धूरि लगाये।
राजत है अति सांझ समें वनतें ग्रह आवत धेनु चराये ॥१४॥

पुनः कवित्त

चंदन के चित्र तन चित्रित विचित्र गति,
राजत अनूप खौरे वेंदा लाल भाल को।
कंकन जराऊ नग जटित जगमगात,
हिये हार हीरामनि मानिक विशाल को।
पंकज करनि पौंहची पौंहचनि रतन,
नूपुर दमक चमकनि छबि जाल को।
गावत नचत ब्रजबालन में आवत है,
परम रसाल रूप राजे नंदलाल को ॥१५॥

पुनः कवित्त

फूलनि के आभूषन विविध बनाय रचे,
फूलनि के गेंदुवा झवा हमेल हार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

फूलनि के टौरा शिर फूलनि वितान ताने,
फूलनि के गुच्छ कर कंज सुकुंवारे है।
फूलनि के बैठक बिछौना बने फूलनि के,
फूलनि उढ़ौंना सेज फूलनि सुधारे है।
फूलनि की रचना विचित्र रचि प्यारी तन,
फूले व्रजराज किये फूलनि सिंगार है॥१६॥

पुनः सवैया

पाग अनार के रंग रंगी गुल सोसनी पेंची खरी सघनी है।
पीत पीतांबर चम्पक के सम कुंद से दंतनि शोभ सनी है।
बागो जुही पटका गुल लाल चमेली प्रभा दुपटा की तनी है।
मो मन मोहन के तन में सखी फूलनि की फुलवारि बनी है॥१७॥

पुनः सवैया

नील घटा घनरूप अनूपस बीज छटा जिम राग रंगी है।
मर्कत की मनि संग जराय कैं ज्यों सुदरी नग भाग जगी है।
वेह तमाल ज्यों भृंग मृनाल मनोहर माल ज्यों धाग लगी है।
त्यों पिय के पिय प्यारी प्रिया अतिही छवि सों उर लागि पगी है॥१८॥

पुनः कवित्त

इत पीत पट उत राजत है नीलवर,
इत मोरचंद्रिका उत उजास हास है।
इत वनमाल उत राजत है मोतीमाला,
इत खौरि किये उत बेंदा को प्रकाश है।
कुंडल श्रवन इत राजत तरौंना उत,
इत छुद्रघंट उत नूपुर विशाल है।
इत संग सखा उत सोहे संग सखीगन,
देखो दोउ होड़ाहोड़ी रचि राख्यो रास है॥१९॥

पुनः कवित्त

कालिंदी के तीर दोउ ठाड़े लाल लली संग,
खेलत हैं हाथ जोरि अति ही अनंद सों।
और पास सखीगन उज्ज्वल बसन तन,
भांति भांति आभूषन पहिरे सु छंद सों।
उरप तिरप गति आड़ डाट लेत दोऊ,
तान मान जुगति जनावै मुखकंद सों।
रच्यो रास मंडल अखंडल अनूप गति,
मिलिकें किशोरी गोरी भोरी नँदनंद सों॥२०॥

पुनः सवैया

केसरि सों छिरक्यों है झगा पगिया मृगसार के रंगहि भीनी।
चोवा सुगंध में चोली करी दुपटा में गुलाब की डोव जु दीनी।
भीजि रह्यो अति सौंधे सौ गात सु आवै झकोर सुवास नवीनी।
देखि सखी व्रजराज मनौं व्रजवीथिन आजु सुवासित कीनी॥२१॥

पुनः सवैया

धूरि कपूर की छाइ रही छति डारें सखी जु मुठी भरिकें।
चहुँ ओर अबीर उड़े अति ही व्रज केसरि कीच रही धरिकें।
चोवा गुलाब मिलै मिलकें मुख मंडित लाल भुजा भरिकें।
मिस फागहि आनंद सों सजनी उर लागि रही ललना हरिकें॥२२॥

पुनः कवित्त

नख पद नूपुर में जानु जंघ किंकिनि में,
कटि तट काछनी में नाभि कुंड अरच्यो है।
भुज उरमालनि में ग्रीवा छविजालनि में,
कुंडलि की हालनि में जाइ जहां भिरच्यो है।
चिबुक कपोलन में अधर अमोलनि में,
बैन मृदु बोलनि में टारे हू न टरच्यो है।
मुरली की घोरनि में भौंहनि मरोरनि में,
नैननि की कोरनि में जाइ मन परच्यो है॥२३॥

पुनः कवित्त

सजल जलद तन राज उर नीलमनि,
अलक चिलक मनि शोभा रही छाइकें।
चंदन के चित्र तन उज्ज्वल दसन गन,
तीछन कटाक्ष जनु भौंहन चढ़ाइकें।
कुंडल करन कर पहुंची रतन छबि,
भीर कौ फसन पीत वसन बनाइकें।
मंद हास हसन कसन कटि काछनी के,
बांसुरी बजन लूट लेत है बजाइ कें॥२४॥

पुनः सवैया

मकराकृत कुंडल कान लसैं मुकतागन हार हिये झलकें।
कटि किंकिनि राजत है पग नूपुर भू पर पाय परैं ठमकें।
अलबेलि वही क्रम हाथ छरी अरु छूटि रही सुथरी अलकें।
ललचाइ रह्यो मन देखन कों बन बाजत है मुरली ललकें॥२५॥

पुनः सवैया

मोहन गौंहन लागि रह्यो यहु नैसुकहू चिततें न टरै है।
जे पद पंकज धारत है भव तेतेई नैननि मांझ धरै है।
छाड़्यो सबे ग्रहकाज हमें घर लाइ लग्यो कोउ काहि लरै है।
घाइलसी करी राखिइ नैंन कहा करिये परो प्रेम गरे है॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः कवित्त

ठाड़ोइ रहत द्वार आवे मेरे बारबार
नैननि (कीवार) किवार* कहौ कौलों दियें रहियें।
सुंदर सलौना यहु कौन को ढुटौना ताहि
देखे न अघात बिन देखैं देह दहियें।
प्यारौ अति प्रानन कौ रागी अति तानन कौ
देखि न सकत लोग कासों कहा कहियें।
घर जाहु तन जाहु नैन प्रान धन जाहु
लगनि न जाहु शीश परै जैसी सहियें॥२७॥

पुनः कवित्त

काहे कौ कृसत तन धन काज बारबार
काहे कौ करत तप तीरथ पलटिबौ।
काहे को उदास भाव मौन मन साधे कहा
पड़त झखत आशा फंदनि सों जटिबौ।
स्यामास्याम सघन सरूप पुंज वृंदावन
कुंजन विहार बंशीबट तट लटिबौ।
अरि दरधारी ध्यान हृदै धरि, "भूधर"
सु कुंडल मुकुटधर राधावर रटिबौ॥२८॥

पुनः सवैया

मंजुल मोर की चंद्रिका शीश दिये दुति कुंडल ओप कपोलै।
घूघरवारी लटैं लटकैं चहुँ फैली रही छवि सिंधु झकोलै।
वैस किशोर लिये मुरली सुरींन भई मनसा संग डोलै।
"भूधर" श्री मुरलीधर की यहु मूरति मो मन मांझ कलोलै॥
२९॥

पुनः कवित्त

तैसिये लटक मोर चंद्रिका चटक सोहे,
कुंडल झलक अलकनि की कपोल में।
तैसिये चिलक चारु तिलक सभाग भाल,
गरे मुक्त माल गुंज माल चख लोल में।
तैसिये दमक औ चमक पीत पट तट,
कटि काछनीन काछे रुचिर निचोल में।
माई नंदलाल अनूप छबिबाल देखि,
वारवार कहै लीनी मोलहू अमोल में॥३०॥

पुनः कवित्त

मोर चंद्रिका सुवेश काछनी कछें सुवेश,
छोर दै ललार केश गोल ग्रीव में परे॥
तरंग सिंधु रूप की लसै प्रभा सरूप की,
फबी बलै अनूप की सु जोति रत्न के जरे॥
ललाट खौरि चंदनी सुगंध विंदु वंदनी,
विलोकि गोप नंदनी उरोज भेंट लै धरे।
थकी कटाक्ष कोर में बजी जु वीन घोर में,
लखै गुपाल खोर में किशोर खोर में खरे॥३१॥

पुनः कवित्त

दयाल रूप देव हे कृपाल सिद्ध सेव हे,
अपार औ अभेव हे अनंत जोति जानियें।
उदार दीनबंधु हे अभक्त को अबंधु हे,
महादयालसिंधु हे अनाथनाथ मानियें।
महा अनंद कंद हे हरन्न दुख दंद हे,
यहे जु नंदनंद हे सुछंद न बखानियें।
अगाध जोगजुक्त हे अनंत रूपसक्त हे,
महेश शेष उक्त हे सुभक्ति मुक्ति दानियें॥३२॥

इति श्री कवि "भूधर" विरचित श्री ध्यान बत्तीसी ग्रंथ संपूर्णम्॥.....समाप्तम्॥ इति संपूर्णम्॥...

*मूल पाठ ऐसा ही है—कोष्ठक में (कीवार) आगे शुद्ध रूप 'किवार।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

महान् समाज-सुधारक एवं राष्ट्रोद्धारक गुरु नानकदेव

प्रो० शम्भुसिंह मनोहर

गुरु नानकदेव न केवल सिक्खों के आदि गुरु के रूप में ही पूज्य हैं अपितु मानवमात्र के उद्धार एवं कल्याण का सन्देश देनेवाले एक उच्च कोटि के सन्त एवं युग पुरुष के रूप में भी।

वस्तुतः गुरु नानक हमारे देश के उन महान् सन्तों की परम्परा में हैं जिनकी पुनीत वाणी देश, काल तथा सम्प्रदाय की संकीर्ण सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्व मानवता की कल्याणकामना से ही प्रस्फुटित हुई है। यही कारण है कि वे किसी वर्ग विशेष के नहीं प्रत्युत हिन्दू, मुस्लिम सभी के समान रूप से आराध्य थे। उन्होंने न केवल हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थों---काशी, रामेश्वर, द्वारिका आदि की ही यात्रा की वरन् मुसलमानों के पवित्र स्थानों मक्का, मदीना आदि की भी; एवं जहाँ-जहाँ वे गये, उन्होंने लोगों को अपने आध्यात्मिक प्रेम का दुर्लभ अमृत पिलाया तथा बदले में लोगों ने उनके चरणों में अपनी श्रद्धा के सुमन चढ़ाये।

नानकदेव की महिमा लोग प्रायः एक धर्मगुरु के रूप में ही जानते हैं पर वस्तुतः उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे एक पहुँचे हुए सन्त एवं ज्ञानी तो थे ही, साथ ही एक उत्कृष्ट कवि, अपूर्व समाज-सुधारक, उत्कट राष्ट्र-प्रेमी, प्रचण्ड रूढ़ि-विरोधी एवं एक क्रान्तिदर्शी युग-पुरुष भी थे। यही नहीं, वे संगीत-मर्मज्ञ भी थे। उन्होंने अपनी वाणी में १९ रागों का प्रयोग किया है जो उनके विलक्षण संगीत ज्ञान का परिचायक है। यहाँ संक्षेप में उनके रूढ़ि-विरोधी एवं समाजसुधारक रूप का परिचय देना ही हमारा अभीष्ट है।

जिस समय गुरु नानकदेव अवतीर्ण हुए वह हिन्दू धर्म और संस्कृति के लिए एक संक्रमण काल था। मुगलों के आक्रमण से देश आक्रान्त था एवं उनके अत्याचारों एवं अनाचारों से हिन्दू जनता संत्रस्त हो उठी थी। हिन्दू ही क्यों, मुसलमान भी उनके अत्याचारों के शिकार होने से वंचित न रह सके थे जैसा कि नानक की निम्नलिखित अष्टपदी से प्रकट है:—

मुगल पठाणा भई लड़ाई रण महि तेग बगाई।
×
इक हिन्दवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी
इकन्हा पैरण सिर खुर पाटे इकन्हा वासु मसाणे॥

उधर सामाजिक स्थिति भी कम शोचनीय नहीं थी। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था के दुष्परिणाम अपने हेयतम रूप से प्रकट होने लगे थें। जाति-पाँति के भेद-भाव ने मनुष्य को मनुष्य के प्रति घृणा से भर दिया था। ब्राह्मण वर्ग कर्मकाण्ड में जकड़ ब्रह्मज्ञ के पद से च्युत हो गया था। अनेकानेक अन्धविश्वासों से ग्रस्त हो जनता धर्म के असली स्वरूप को विस्मृत कर बैठी थी। यही हाल मुल्ला-मौलवियों का था। सारांश यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बाह्याडम्बरों में उलझकर धर्म के तत्त्व को भुला बैठे थे। ऐसे ही समय गुरु नानकदेव ने मानव मात्र की समता के धरातल पर अपनी अमृत वाणी रूपा आध्यात्मिक ज्ञान की पवित्र मन्दाकिनी प्रवाहित की जिसके घाट पर पानी पीने के लिए हर कोई स्वतंत्र था।

इसके लिए गुरु नानकदेव ने जातिवाद का प्रबल खंडन किया:—

जाणहु जोति न पूछहू जाती, आगै जाति न है।

अर्थात् मनुष्य मात्र में स्थित आत्मा रूप ईश्वर की ज्योति को जानने का प्रयत्न करो। जाति मत पूछो क्योंकि आगे (ईश्वर की दृष्टि में) जाति नहीं है।

जाति का उनकी दृष्टि में रंच मात्र मूल्य नहीं। मूल्य और महत्त्व है सत्य का; अर्थात् उस ज्ञान का जिससे ईश्वर की उपलब्धि होती है। नानकदेव ने बारम्बार उसीको परखने का उपदेश दिया है:—

जाती दै किआ सचु परखीए।

तथा

जाति जनमु नह पूछीए सच घर लेहु बताइ।

अपना परिचय भी वे यही कह कर देते हैं:—

हमरी जाति पात सचु नाउ।

तथा कभी खीझकर यह भी कह देते हैं:—

फकड़ जाती फकड़ नाउ।

यही नहीं, वे अपने को नीचों से भी नीच की श्रेणी में रखना चाहते हैं क्योंकि भगवान् की कृपादृष्टि उन्हीं पर होती है—

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिनकै संगि साथि बडिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति भेद के अतिरिक्त तत्कालीन समाज में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त बाह्याचारों का भी नानकदेव ने प्रबल खंडन किया है। धर्म के सत्य स्वरूप को इन आडम्बरों ने ओझल कर दिया था जो नानकदेव को सह्य नहीं था। इस विषय में उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-सा फटकारा है। पंडितों के विषय में वे कहते हैं:—

पड़ि पुसतक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं॥
मुखि झूठ बिभूखण सारं। त्रैपाल तिहाल विचारं॥
× × ×
जे जाणसि ब्रह्मं करमं। सभि फोकट निसचउ करमं॥

इसी प्रकार मुसलमानों को सम्बोधन करते हुए वे कहते हैं:—

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमल चीतु॥

मुसलमानों की धारणा है कि कपड़े पर रक्त लग जाने से वह अपवित्र हो जाता है। इसी पर नानक कहते हैं कि यदि जामे पर रक्त लगने से वह अपवित्र हो जाता है तो जो मनुष्यों का रक्त पीते हैं (अत्याचार से पराये धन का अपहरण करते हैं) उनका चित्त किस प्रकार निर्मल रह सकता है? इसलिए नानक कहते हैं कि खुदा का नाम अच्छे दिल और अच्छे मुख से लो:—

नानक नाउ खुदाइ का दिलि हछ मुखि लेहु।

एक सलोकु में नानकदेव ने सच्चा मुसलमान बनने की क्या ही सुन्दर विधि बताई है:—

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु॥

अर्थात् प्राणी मात्र पर दया को मस्जिद बनाओ; श्रद्धा को मुसल्ला (नमाज पढ़ने का वस्त्र) और हक की कमाई को कुरान बनाओ। कुकर्मों के प्रति लज्जा को सुन्नत मानो; शील स्वभाव को रोजा बनाओ; हे भाई, इस विधि से मुसलमान बनो।

इसी प्रकार वे सच्चे ब्राह्मण के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं:—

सो ब्रहमणु जो बिंदै ब्रहमु।
जपु तपु संजमु कमावै करमु॥

नानकदेव पाषाण पूजा को निरा बाह्याचार ही मानते थे। मूर्तिपूजा का इसीलिए उन्होंने खंडन किया है। इस विषय में उनका तर्क देखिए:—

अंधे गुंगे अंध अंधारु। पाथर ले पूजहि मुगध गवारु।
ओहि जा आपि डूबे तुम कहा तारणहारु॥

किन्तु इस पाषाण पूजा खंडन के पीछे साम्प्रदायिक दुर्भावना न होकर सत्यान्वेषण का ही आग्रह था। इसी प्रकार उन्होंने जैनियों के बाह्याचारों का भी खंडन किया:—

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही।
भेड़ा वागी सिरु खोहाइनि भरीअनि हथ सुहाही।
माऊ पीऊ किरतु गवाइनि टबर रोवनि धाही॥

अर्थात् सिर के बाल नुचवा कर गंदा पानी पीते हैं और जूठी रोटी माँग-माँग कर खाते हैं। अपना मल फैला देते हैं और मुँह से गंदी साँस लेते हैं; पानी देखकर बहकते हैं। भेड़ों के समान बाल नुचवाते हैं और नोचनेवालों के हाथ में राख लगाते हैं। माँ-बाप के कर्म गँवा देते हैं इसलिए इनके कुटुम्बी इन्हें ढाढ़ मार कर रोते हैं।

वस्तुतः गुरु नानकदेव सत्य के अनन्य आराधक थे। समाज, धर्म या राजनीति किसी भी क्षेत्र में जिस बात को वे अनुचित समझते थे उसका निर्भय होकर विरोध करते थे। इस विरोध के पीछे उनकी कल्याण कामना ही छिपी रहती थी। सत्य के प्रकाश को फैलाना ही उनके खंडन और विरोध का ध्येय था। यह गुरु नानकदेव की निर्भीकता ही थी कि उन्होंने बाह्याडम्बरों का, चाहे वे किसी भी वर्ग में क्यों न हों, खुले शब्दों में खंडन किया। धर्म और समाज के क्षेत्र में ही नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी उन्होंने अनीति और अनाचार के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। यह वह समय था जब मजहब में अन्धे मुगल शासकों को अपने या इस्लाम के विरुद्ध एक शब्द सुनना भी गवारा न था। बाबर के आक्रमण से संत्रस्त और पीड़ित जनता की दशा से क्षुब्ध हो नानक ने कितने करुणा भरे हृदय से ईश्वर से यह प्रश्न किया:—

'हे परमात्मा! बाबर ने खुरासान पर शासन किया किन्तु खुरासान को अपना समझकर तूने बचा रक्खा और बेचारे हिन्दुस्तान को उसके आक्रमण से आतंकित किया। .....इतनी मारकाट हुई कि लोग करुणा से चीख उठे किन्तु हे प्रभु! तुझे क्या जरा भी दर्द नहीं उत्पन्न हुआ?'

जगत से निर्लिप्त एवं निस्पृह होते हुए भी नानक अपने देश की राजनीतिक स्थिति से निरपेक्ष नहीं थे—यह उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है। इसी प्रकार एक अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

स्थल पर नानक तत्कालीन राजाओं व उनके कर्मचारियों का चित्रण करते हुए कहते हैं :—

राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइन बैठे सुते।

अर्थात् इस समय राजागण सिंह के समान हिंसक और चौधरी कुत्ते के समान लालची हो गये हैं जो सोती हुई प्रजा को जगाकर उनका मांस भक्षण कर रहे हैं।

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि नानकदेव एक वीतराग सन्त ही नहीं, अनन्य देशप्रेमी और राष्ट्रोद्धारक भी थे। उनके ये उद्‌गार राष्ट्रीय चेतना से ही अनुप्राणित हैं। इस भर्त्सना का यह तात्पर्य नहीं कि नानकदेव में अभेद दर्शन का अभाव था। अध्यात्म के स्तर पर यद्यपि वे मनुष्यमात्र को एक समझते थे, जैसा कि उनके अनेक वचनों से स्पष्ट किया जा चुका है, तथापि क्रूरता, अत्याचार और अनाचार, चाहे वह किसी भी वर्ग या सम्प्रदाय का क्यों न हो, उन्हें सह्य नहीं था। वैसे उनकी दृष्टि इतनी उदार थी कि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम अभेद को ही सच्ची धर्म मर्मज्ञता कहा है :—

राह दोवै इकु जाणे सोई सिझसी।

किन्तु जब धर्म का स्वांग भर कर दोनों ही जुल्म करने लगे तो उन्होंने दोनों को ही नहीं छोड़ा :—

माणस खाणे करहि निवाज। छुरी बगाइन तिन गलि तागि।

अर्थात् मनुष्य भक्षक (मुसलमान) नमाज पढ़ते हैं और जुल्म की छुरी चलाने वाले (हिन्दू) गले में तागा (जनेऊ) धारण करते हैं।

यही नहीं जब मजहब में अन्धे मुगलों को सिवा 'खुदा' और 'अल्लाह' के और कोई नाम सुनना भी सह्य नहीं हुआ तो उनकी इस संकीर्ण मनोवृत्ति पर नानक ने करारा व्यंग्य किया :—

कलि महि बेदु अथरबणु हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ।

'जगत के स्वामी का नाम 'खुदा' या 'अल्लाह' हो गया है।' इसमें कितना तीव्र व्यंग्य है। किन्तु यह उनकी संकीर्ण मनोवृत्ति को लक्ष्य करके ही लिखा गया है। नानक की अपनी दृष्टि में 'अल्लाह' और 'राम' में कोई अन्तर नहीं है। देखिए :—

बाबा अलहु अगम अपारु ॥
पाकी नाई पाक थाइ सचा परवदिगारु।

अरे बाबा, अल्लाह अगम और अपार है। वह सच्चा पालनकर्ता पवित्र नाम और पवित्र स्थान वाला है।

इससे स्पष्ट है कि नानकदेव कितने स्पष्टवादी, निर्भीक एवं सत्यवादी पुरुष थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों की जो भर्त्सना की उसका आशय यही था कि दोनों ही अपने दोषों को जानकर उनका परिमार्जन करते हुए आत्मकल्याण करें। नानकदेव इसी समत्व भावना के जीवन्त प्रतीक थे।

अन्त में एक महत्त्वपूर्ण बात के साथ हम अपना विवेचन समाप्त करेंगे। नानकदेव अपने युग में नारी वर्ग की हीन स्थिति को देखकर भी बहुत दुखी थे। वे समाज में नारी को अपने उचित एवं गौरवमय आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि मध्य युग के सन्तों ने जहाँ नारी को ईश्वर-प्राप्ति में बाधक समझ उसे कभी 'ठगिनी' और कभी 'मायाविनी' कहकर तिरस्कृत किया, वहाँ नानक ने इस सम्बन्ध में अपनी मौलिक सूझ का ही परिचय दिया। यहाँ तक कि कबीर ने भी नारी के विषय में यही कहा था :—

नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।

किन्तु नानक जानते थे कि राष्ट्र-रथ का एक चक्र नारी यदि हीन और पतित समझा जायगा तो राष्ट्र कभी आगे नहीं बढ़ सकता। तभी नानक ने कितनी तर्कयुक्त शैली में नारी के अप्रतिम महत्त्व का प्रतिपादन किया :—

भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु ॥
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखिऐ जितु जंमहि राजान ॥

अर्थात् 'स्त्री से ही मनुष्य जन्म लेता है, स्त्री ही के पेट में प्राणी का शरीर बनता है। स्त्री ही के द्वारा अन्य लोगों से सम्बन्ध जुड़ता है। स्त्री ही से जगत् की उत्पत्ति का क्रम चलता है। जब एक स्त्री मर जाती है तो दूसरी स्त्री की खोज की जाती है। उस स्त्री को बुरा क्यों कहा जाय जिससे राजागण भी जन्म लेते हैं ?'

मध्य युग के सन्तों की सामान्य धारणा के सन्दर्भ में नानक का नारी के प्रति ऐसा उदार एवं श्रद्धापूर्ण दृष्टिकोण कुछ कम क्रान्तिकारी नहीं है। यह नानक जैसे क्रान्तदर्शी पुरुष की मौलिकता एवं दूरदर्शिता का ही ज्वलन्त प्रमाण है।

आज जब देश में विघटन एवं विच्छेद के स्वर प्रबलतर होते जा रहे हैं एवं हमारी समष्टिगत एकता को भंग करने के लिए एक चुनौती बनकर उपस्थित हो रहे हैं—हमें गुरुवर नानकदेव की सत्य और समत्व से भरी अमृत वाणी की ओर ध्यान देना चाहिए जो आज मानों हमारी मूर्खता पर एक करुणा भरी हँसी हँस हमें प्रेम का यह पावन सन्देश दे रही है :—

बाबा, आवहु, भाई हो, गलि मिलह, मिलि मिलि देहि असीसा हे।

अर्थात् 'हे बाबा, आओ, सभी भाइयों से गले मिलो और मिल-मिलकर एक दूसरे को आशीर्वाद दो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आफिस--'वर्किंग-गर्ल' की नज़र में !

श्री रमेशनारायण तिवारी

(नये युग की नयी नारी का नया राष्ट्रीय गान)

हाँ, हम हैं 'वर्किंग-गर्ल', देश की सबला हैं,
हम हैं समाज के रथ का पहिया मूल्यवान
आफिस में बैठें, या हम बैठें होटल में
हम करती रहतीं अपने श्रम का सतत् दान
हाँ! हम हैं 'वर्किंग-गर्ल',
हमें शत्-शत प्रणाम!

× × ×

(एक अनुभवी प्रौढ़ा 'वर्किंग-गर्ल' का उपदेश आफिस में नयी आनेवाली युवती सहकर्मिणी को)

यह आफिस है जिसमें तुम करने काम चलीं
सरकारी है या प्राइवेट, कुछ फर्क नहीं।
व्यापार यहाँ पर रोज प्यार के चलते हैं
मजबूरी से या खुशी-खुशी--यह तर्क नहीं।

× × ×

भूखी आँखों वाले कातर भिखमंगों से
ये बाबू जो दफ्तर के, ये जो 'भद्र' लोग
ये अवश बहाते लार देखते जब हमको
जैसे देखा हो स्वर्ण-थाल में राजभोग।

× × ×

यह भूखे दानव सा जो मानव बैठा है
सम्भ्रान्त, शिष्ट, गम्भीर, धीर सा जो दिखता
यह तिरस्कार के भाव लिए चाहे बोले,
मन कटी-पूँछ-सा डोले इस लंडूरे का
ये ढोंगी नम्बर एक, छद्मभेषी रावण
सीधी भोली नारी के कट्टर शत्रु बड़े!
अंगूर न खा पाएं तो कह दें--'खट्टे थे!'
बदनाम करें शुभनाम हमारा खड़े खड़े।

× × ×

सब समझ बूझ कर आयी हो तुम आफिस में,
तो स्वागत है, सहकर्मी, आओ काम करें;
कुछ व्यंग्य करेंगे दुष्ट लोग अफलातूनी,
पर काम देख शर्माएँ वे, हम नाम करें।

× × ×

पर एक बात मेरी सहकर्मी सुन लो तुम,
है यह सलाह सद्भावजनित, विश्वास करो,
औ' वह सलाह है निम्नलिखित, खुद पढ़ लो तुम
ओ तुम! जो 'वर्किंग-गर्ल'! देश की सबला हो!:--

--"अच्छा है बन्द रहो अपने मन-घोंघे में,
खाई से घिरे किले सी तुम मजबूत दिखो,
यह आफिस है, है जंगल जैसा क्रूर बहुत,
तुम हिरनी नहीं, सिंहनी जैसी शूर दिखो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

भारत गणतन्त्र के द्वितीय राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

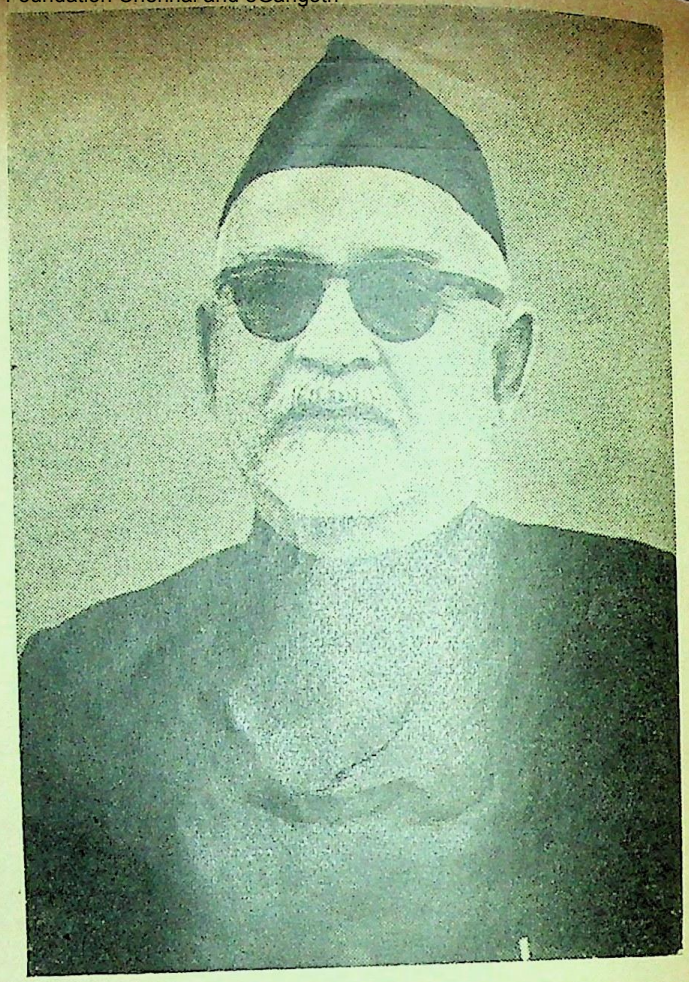

भारत गणतन्त्र के नये उपराष्ट्रपति
डा० जाकिर हुसेन

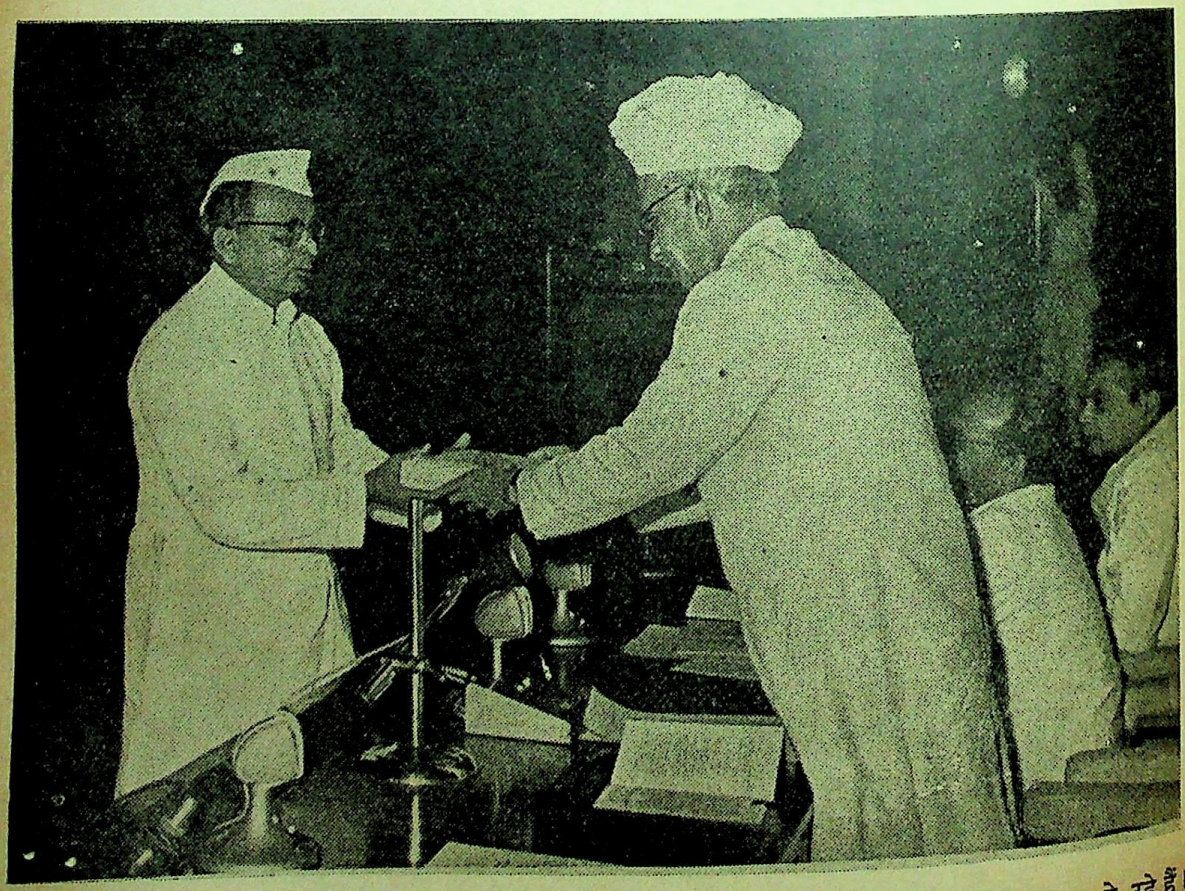

श्री भगवतीचरण वर्मा को साहित्य अकादमी की ओर से डा० राधाकृष्णन् ५००० रु० का पुरस्कार दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१६)

पंडित व्रजमोहन व्यास

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय

अँगरेजी का एक पद्य है--

Believe in God
And in thine own self believe,
All that thou hast desired,
Thou shalt achieve.

(ईश्वर में विश्वास करो और स्वयं अपने में विश्वास करो। जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा होगी वह निश्चय ही तुम्हें प्राप्त होगी।)

ईश्वर में विश्वास और अपने आत्मबल पर विश्वास, इन्हीं दोनों पर सफलता अवलम्बित है। संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में इन दोनों शक्तियों का गुण-गान किया गया है।

मालवीयजी जब विश्वविद्यालय में गीता प्रवचन करते थे तो इस श्लोक पर बहुत जोर देते थे और उसकी बड़ी विशद और मार्मिक व्याख्या करते थे :--

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता ६।५

(मनुष्य अपना उद्धार आप ही करे। अपने आपको (कभी भी) गिरने न दे। क्योंकि (प्रत्येक मनुष्य) स्वयं ही अपना बन्धु (अर्थात् सहायक) या स्वयं अपना शत्रु है।) भगवद्गीता-रहस्य--तिलक।)

सौभाग्य से मैं विश्वविद्यालय में उपस्थित था जब मालवीयजी इस श्लोक की व्याख्या कर रहे थे। उन्होंने 'नात्मानमवसादयेत्' की व्याख्या इस प्रकार की--मनुष्य को चाहिए कि वह कभी भी अपने में हीनता का अनुभव न करे और अपने में दृढ़ विश्वास रखे। छात्रों और अध्यापकों के समझाने के लिए उन्होंने 'inferiority complex' 'इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स' शब्द का प्रयोग किया था और कहा था कि मनुष्य में हीनता नहीं होनी चाहिए। यदि मनुष्य में आत्मविश्वास है तो वही उसका सबसे बड़ा बन्धु है।

प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में इन दोनों शक्तियों की प्रशंसा की गयी है। उर्दू साहित्य कहता है--

खुदी को कर बलन्द इतना कि हर तक़दीर के पहिले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है॥

इकबाल

आत्मविश्वास पर कविवर हाली कहते हैं--

जहाँ में 'हाली' किसी पै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
ये राज़ है अपनी जिन्दगी का, बस इसका चर्चा न कीजियेगा॥

इस प्रकार की उक्तियों से संसार का साहित्य भरा पड़ा है। विस्तार-भय से अधिक नहीं लिखता।

यह कहना अनावश्यक है कि मालवीयजी में ईश्वर के प्रति और अपने प्रति अटूट विश्वास था और ये ही काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना एवं अभिवृद्धि के मूल-मंत्र थे।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय, मालवीयजी की एक महान् कृति होते हुए भी उनके विशाल हृदय का सम्पूर्ण चित्र नहीं है। वह केवल उसके एक कोने की झाँकी मात्र है। मालवीयजी की मृत्यु पर प्रयाग के हाईकोर्ट के 'बार एसोसियेशन' की शोकसभा में बोलते हुए सर तेजबहादुर सप्रू ने कहा था--

"If he had done nothing else but founded this University and helped it to reach its present position, his name would be immortal in Indian history"

सर तेजबहादुर सपरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यदि इस विश्वविद्यालय को स्थापित करने और उसे उसकी वर्तमान स्थिति पर पहुँचने में सहायता देने के अतिरिक्त उन्होंने और कोई भी काम न किया होता तो भी उनका नाम भारत के इतिहास में अमर रहता।

उसी अवसर पर गांधीजी ने 'नवजीवन' में लिखा था---

"मालवीयजी के काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा है हिन्दू विश्वविद्यालय।"

इसके पहिले सन् १९३१ में गांधीजी ने लिखा था--

"काशी विश्वविद्यालय के मालवीयजी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीयजी का प्राण है, वह नर-वीर हमारे लिए दीर्घायु हो।"

गांधीजी ने उपर्युक्त अभिवादन में 'काशी विश्वविद्यालय' कहा है। उसमें हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है। बात यह है कि आरम्भ में मालवीयजी ने इस संस्था का नाम 'काशी विश्वविद्यालय' रखा था, 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' नहीं। गांधीजी लिखते हैं--

"गलती से उसे हम बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के नाम से पहचानते हैं। उस नाम के लिए दोष मालवीयजी महाराज का नहीं, उनके पैरोकारों का रहा है। मालवीयजी दासानुदास थे।"

विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में मालवीयजी की एक कविता इस प्रकार है:--

जयतु विश्वविद्यालय काशी।
मातु गंग पय जाहि पियावत, मूलधर्म सुखराशी।
पालत विश्वनाथ विद्यागुरु, शंकर अज अविनाशी।
ज्ञान-विज्ञान-प्रकाशी॥
गंग-जमुन-संगम बिच देवी गुप्त रही चपला-सी।
ईश-कृपाते सोइ सरस्वति, वाराणसी प्रकाशी॥
तिमिर-अज्ञान-विनाशी॥
ऋषि-मुनि सँग नृप-मंडल सोहत, उत्सव मरम हुलासी।
देत असीस फलहु अरु फूलहु सब बिध भारतवासी।
लहहु विद्याधन राशी॥

इसमें भी मालवीयजी ने 'विश्वविद्यालय काशी' कहा है, 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी' नहीं।

एक प्रमाण और भी। विश्वविद्यालय के शिलान्यास के प्रस्तर पर ये श्लोक खचित हैं--

ॐ

काशीविश्वविद्यालय।

माघे शुक्ले प्रतिपदि तिथौ शुक्रवारे शिलाया
न्यासं काश्यां ह्यगनवमहीसम्मिते विक्रमाब्दे।
प्राञ्चं धर्मं परिफलयुतं विश्वविद्यालयस्या-
कार्षीत् सम्राट् प्रतिनिधिवरो लौर्ड हार्डिञ्जसुकीर्तिः।

इस प्रस्तर के नीचे एक गौखे के भीतर एक ताँबे का डब्बा है। उस डब्बे के भीतर अन्य तात्कालिक चीजों के साथ एक ताम्रपत्र रखा है। उस ताम्रपत्र पर जो लेख है उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करता हूँ--

धर्मं सनातनं वीक्ष्य कालवेगेन पीडितम्।
भूतले दुर्व्यवस्थं च व्याकुलं मानवं कुलम्॥
कलेः पञ्चसहस्राब्दे गते भारतभूमिषु।
आरोपयितुमुद्धारबीजस्य पुनर्नवम्॥
काशीक्षेत्रे पवित्रेऽत्र गंगातीरे महोदया।
शुभेच्छा पुण्यसम्पन्ना सञ्जाता जगदात्मनः॥
संगमय्याथ पाश्चात्याः प्राच्याश्चापि प्रजा निजाः।
तच्छ्रेष्ठानां विधायैकमत्यं सुमतिलक्षणम्॥
विश्वनाथपुरे विश्वजनीनो विश्वभावनः।
विश्वात्माऽऽकारयद्विश्वविद्यापीठव्यवस्थितिम्॥
निमित्तमात्रमत्राभूत् सभीहायाः परेशितुः।
मालवीयो देशभक्तो विप्रो मदनमोहनः॥
निधाय वाङ्मयं तेजस्तस्मिन्नुद्बोध्य भारतम्।
प्रहृत्रीकृत्वापि तच्छास्तानस्मिन्नर्थे व्यधात्प्रभुः॥
अन्ये चापि निमित्तानि प्राभवन्नन्तरात्मनः।
बीकानेरनृपो वीरो गंगासिंहो महामना॥
श्रीरामेश्वरसिंहश्च दरभंगा-महीपतिः।
प्रधानः कार्य्यकारिण्याः सभाया मानवर्धनः॥
सुधीः सुन्दरलालश्च मन्त्री कोषाभिरक्षकः।
गुरुदासादित्यरामौ वासन्ती वाग्मिनी तथा॥
तथा रासबिहारी च वृद्धा ये देशवत्सलाः।
दासाश्चान्ये भगवतो यथाशक्यं सिषेविरे॥
विक्टोरियामहाराज्ञः पौत्र एड्वर्डदेहजे।
सम्राजि पञ्चमे ज्याज्यें भारतं परिशासति॥
मेवारकाशिकाश्मीरमयसूरात्वराधिपान्।
कोटाजयपुरेन्दौरजोधपूरादिभूमिपान्॥
तथा कर्पूर्थलानाभाग्वालेरादिनरेश्वरान्।
ईरयित्वा सहायार्थं सज्जनानपरांस्तथा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९६२

गर्भस्थ सर्वधर्माणां रक्षायै प्रचयाय च।
प्रचाराय स्वलीलानां स एवैकः परः प्रभुः॥
लार्डहार्डिङः सुविख्यातं सम्राट्प्रतिनिधिं वरम्।
धीरं वीरं प्रजाबन्धुं जनानां हृदयंगमम्॥
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत्।
सङ्ग्रामे नेत्रभूभृद् ग्रहधरणिमिते वैक्रमाऽब्दे च मासे।
माघे पक्षे च शुक्ले प्रतिपदि च तिथौ वह्नि शुक्रे क्षणेऽच्छे॥
श्री काश्यां श्रीलसम्राट् प्रतिनिधिकरतो यच्छिलान्यास आसीद्।
यावच्चन्द्रार्कतारं विलसतु स महाविश्वविद्यालयोऽयम्॥
सरस्वती श्रुति महती महीयताम्।
ततः स्रुता ज्ञानसुधा निपीयताम्॥
सदा मतिः शुभचरिते विधीयताम्।
रतिः परा परमगुरौ प्रचीयताम्॥

(सनातन धर्म को काल के वेग से पीड़ित तथा सम्पूर्ण भूमण्डल के प्राणियों को दुखी अवस्था में और आकुल देख कर कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर, भारत भूमि पर, काशी-क्षेत्र में गंगा के पावन तट पर इस सनातन-धर्म के बीज का पुनः नवीन रूप से आरोपण करने के लिए जगदीश्वर की शुभ, पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य पूजा को एक में सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानों का एक-मत कर, विश्वभावन, विश्वस्वरूप, विश्वस्रष्टा ने विश्वनाथ की नगरी में विश्व-विद्यालय के संस्थापन की व्यवस्था की। देशभक्त, विप्र मदनमोहन मालवीय परमेश्वर की इस इच्छा के पूर्ण करने के लिए निमित्त-मात्र बने। भारत को जगा कर और उसमें वाङ्मय तेज का विधान कर भारत के शासकों को अनुरक्त कर इस कार्य को सफल करने में उन्हें प्रवृत्त किया। भगवान् की इस इच्छा की पूर्ति में और भी कई महापुरुष निमित्त बने। महामना बीकानेर-नरेश—वीर महाराज श्री गंगासिंह बहादुर, कार्यकारिणी सभा के सम्मानवर्धक सभापति, दरभंगानरेश श्री रामेश्वरसिंह जी, मंत्री एवं कोषाध्यक्ष, डाक्टर श्री सुन्दरलालजी, सर गुरुदास बैनर्जी, श्री आदित्यराम भट्टाचार्यजी, विदुषी श्रीमती एनी बेसेंट, डाक्टर रासबिहारी घोष तथा अन्य विद्या-वयोवृद्ध, देश-प्रेमी भगवत-दासों ने यथा-शक्ति इसकी सेवा की। महारानी विक्टोरिया के पौत्र, महाराज एडवर्ड के पुत्र, सम्राट् पंचम जार्ज के शासन-काल में मेवाड़, काशी, काश्मीर, मैसूर, अलवर, कोटा, जयपुर, इन्दौर, जोधपुर, कपूर्थला, नाभा, ग्वालियर आदि राज्यों के नृपतियों को तथा अन्य धनी-मानी सज्जनों को इसकी सहायता के लिए प्रेरणा कर सब धर्मों के जन्म-दाता सनातनधर्म की रक्षा एवं उन्नति के लिए तथा अपनी लीला के विस्तार के निमित्त उन्हीं परात्पर प्रभु ने सम्राट् के प्रतिनिधि (वायसराय) धीर-वीर प्रजाबन्धु श्री लार्ड हार्डिञ्ज के द्वारा इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास कराया।

श्री विक्रम संवत् १९७३ में माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के दिन शुभ महूर्त में श्री काशी नगरी में सम्राट् के प्रतिनिधि के द्वारा जिस विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया गया वह सूर्य और चन्द्र के रहने तक सुशोभित रहे।

वेद में महती सरस्वती की अभिवृद्धि हो।
तब उससे झरते हुए ज्ञान के अमृत को लोग पियें।
शुद्ध चरित्र में बुद्धि सदा लगी रहे।
परमगुरु (शिव, विष्णु आदि) में अटूट अनुराग की वृद्धि हो॥)

इस लम्बे ताम्रलेख में भी 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। परन्तु इन सभी उपयुक्त स्थानों पर 'हिन्दू' शब्द के न प्रयुक्त होने से मुझे ऐसा लगता है कि मालवीयजी ने इसका नाम पहिले 'काशी-विश्वविद्यालय' ही रखा था।

मैंने इस लम्बे ताम्रलेख का सम्पूर्ण उद्धरण कई कारणों से किया है। यद्यपि मेरे पास इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है तथापि मुझे ऐसा लगता है कि यह ताम्रलेख स्वयं मालवीयजी की कृति है। वे संस्कृत के विद्वान् थे। संस्कृत में बिना किसी तैयारी के देर तक भाषण करते थे और संस्कृत में पद्य-रचना भी करते थे। पं० अम्बिका-प्रसाद उपाध्यायजी लिखते हैं :—

"संस्कृत भाषा के ऊपर भी मालवीयजी का पूर्ण अधिकार था। संस्कृत में व्याख्यान तथा श्लोकबद्ध लेख मैंने देखे हैं। संस्कृत में व्याख्यान मैंने सुना है :.... (एक समय) संस्कृत साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। संस्कृत साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष माल-वीयजी थे। कार्य अधिक था। मालवीयजी अस्वस्थ भी थे, इसलिए अपना भाषण तैयार नहीं कर सके।..... बोले, हम बोल लेंगे, समय पर बोलने के लिए खड़े हो गये। हमसे धीरे से बोले अशुद्धियों को गिनकर कहना।.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना भाषण ४५ मिनट तक अपने मन से बोलते गये। मैं ध्यान लगाये था परन्तु कहीं भी कोई अशुद्धि न हुई। व्याख्यान समाप्त कर, बैठे तो मुझसे पूछा। मैंने कहा कि हनुमान्‌जी के व्याख्यान के बाद आद्य वाल्मीकि ने जो टिप्पणी लिखी है 'बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्' वही मेरे स्मृति-पथ में आ गयी है। मालवीयजी महाराज हँसने लगे।"

उपर्युक्त ताम्र-लेख का सम्पूर्ण उद्धरण इसलिए भी किया कि वह विश्वविद्यालय के संस्थापन का एक संक्षिप्त इतिहास है और उससे संस्थापक की ईश्वर-भक्ति, धर्म-निष्ठा एवं पवित्र-हृदय की एक सुन्दर झाँकी है।

परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण इसका प्रारम्भिक इतिहास और उससे सम्बन्धित कुछ संस्मरण हैं। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि', अच्छा काम करने में बड़े विघ्न होते हैं। परन्तु धीर एवं दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष उससे विचलित नहीं होते। कहा भी है--

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति॥

अर्थात् नीची श्रेणी के मनुष्य विघ्न के भय से कोई कार्य आरम्भ नहीं करते। मध्यम श्रेणी के लोग कार्य का आरम्भ तो करते हैं परन्तु जहाँ विघ्नों का थपेड़ा लगा तो हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाते हैं। परन्तु उत्तम श्रेणी के लोग जिस काम को हाथ में लेते हैं, फिर मुँह नहीं मोड़ते। महर्षि वाल्मीकि ने भी कहा है--

सत्यं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥ वाल्मीकि।

अर्थात् चाहे सही हो अथवा चाहे लोग उसे अनुचित समझें, जो बात जबान से निकल गयी उसका जो सत्यता से पालन करता है वही मर्द आदमी, पुरुषोत्तम है। सन् १९०४ में मालवीयजी ने एक विश्वविद्यालय के संस्थापन का निश्चय किया। उसमें अनेक विघ्न आये परन्तु मालवीयजी का तो उसूल था --

चला जाता हूँ हँसता खेलता बहरे-हवादिस में।
अगर आसानियाँ हों, जिन्दगी दुश्वार हो जाये॥

उन्होंने जब अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए अपनी जान की बाजी लगा दी तो वह बन कर ही रहा।

दाद देती है गर्दिशे-दौराँ,
जिन्दगी एहतराम करती है।
इश्क़ जब मौत से उलझता है,
मौत झुक कर सलाम करती है॥

उनके जीवन में कई मौके ऐसे आये जब उनके पास मौत आयी, पर तब तक विश्वविद्यालय अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो चुका था, वह नत-मस्तक होकर लौट गयी।

सन् १९०४-५ में सर्वप्रथम एक विश्व-विद्यालय के संस्थापन की चर्चा छिड़ी। जोर-शोर से उबाल आया परन्तु कई ओर से ठंडा पानी पड़ने से शान्त हो गया। पर नीचे अग्नि रखी थी, किसी वक्त उबाल आ सकता था। उस समय की रस्सा-कशी देखने लायक थी। एक ओर मालवीयजी के उत्साह की अग्नि और दूसरी ओर उनके फूँक-फूँक कर चलनेवाले मित्रों के उत्साह के भंग करनेवाले मृदुल वचन। यह संग्राम कुछ ऐसा था जैसे कृष्ण और शिशुपाल के बीच हुआ था--

मधुरैरपि भूयसा स मेध्यैः
प्रथमं प्रत्युत वारिभिर्ददीपे।
पवमानसखः ततः क्रमेण
प्रणयक्रोध इवाशमत् विवादैः॥ माघ।

(शिशुपाल एक ओर से आग्नेय अस्त्र छोड़ रहा है। दूसरी ओर से कृष्ण वारुणास्त्र छोड़ रहे हैं। पहिले तो ठंडे पानी के पड़ने से अग्नि भभकी पर निरन्तर पानी पड़ते रहने से प्रणय-क्रोध की भाँति शान्त हो गयी। प्रेयसी क्रोध में भरी कटु शब्द उगल रही है। प्रियतम उसे मनाने के लिए मृदु शब्दों का प्रयोग कर रहा है। पहिले तो प्रेयसी की क्रोधाग्नि इन सान्त्वना के शब्दों से भड़की। परन्तु जब वह अनुनय-विनय करता ही चला गया तो प्रेयसी का क्रोध शान्त हो गया।)

यद्यपि १९०४-५ में विश्व-विद्यालय की चर्चा एक प्रकार से शान्त हो चुकी थी तथापि मालवीयजी की लगन की अग्नि तो 'अन्तःप्रसुप्त दहनः' के समान नीचे लगी थी। किसी समय भड़क सकती थी। सौभाग्य से वह अवसर आ ही गया।

तुम मरीजे-इश्क की मैयत को काँधा तो न दो।
फिर नये सर से न उठ बैठे सहारा देख कर॥

१९०९ में अलीगढ़ में मुस्लिम युनिवर्सिटी की चर्चा शुरू हुई और बात आगे बढ़ गयी। मालवीयजी को सहारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलगया। उन्होंने विश्वविद्यालय की चर्चा फिर चलायी। उनकी अभिलाषा थी कि काशी और प्रयाग के बीच गंगा के तट पर ऐसे आश्रम स्थापित किये जायँ जहाँ देश के नवयुवक और लड़कियाँ ज्ञान-वर्द्धन के साथ-साथ चरित्र-निर्माण की भी शिक्षा पा सकें। सन् १९११ में 'हिन्दू यूनीवर्सिटी सोसायटी' की स्थापना हुई और इसी नाम से विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रेशन भी हुआ। १ अक्टूबर १९१५ को 'बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी बिल' पारित हुआ। काशी के स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त मालवीयजी के अनन्य भक्त थे और मालवीयजी उन्हें पुत्र की तरह मानते थे। शिवप्रसादजी लिखते हैं :—

"हिन्दू-विश्वविद्यालय का आन्दोलन ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के सदृश समुद्र की ओर वेग से बह रहा था। उसके आगे के पथ का रोकना असम्भव हो चुका था। जब शिमला-शिखर से बाबू (मालवीयजी) के लिए बुलावा आया, बाबू के साथ मैं भी शिमला पहुँचा। परलोकवासी राजा हरनामसिंह की कोठी में हम लोग ठहराये गये। बाबू उस समय के वाइसराय से मिलने गये और वहाँसे बड़े प्रसन्न आये और मुझे बुलाकर कहा कि वाइसराय ने विश्वविद्यालय को अपनाने का वचन दे दिया है। मेरे काटो तो बदन में खून नहीं। मैं तो सन्न रह गया और मेरे मुख से हठात् निकल पड़ा —This is the death-knell of the Hindu University अर्थात् यह तो हिन्दू-विश्वविद्यालय की मृत्यु-घोषणा है। अस्तु, हम लोग ऊपर से उतरकर फिर लाहौर वापस आये। लाहौर की बृहती सभा में स्वनामधन्य परलोकवासी लाला लाजपत राय ने कहा कि—'Charter or no Charter, Hindu University must exist'. जिसके उत्तर में बाबू ने कहा कि—Charter and Charter, Hindu University must exist". इन वाक्यों से दोनों महान् व्यक्तियों की मनोवृत्ति का भली भाँति पता चल सकता है। अब तो चारों ओर से लोगों की सहानुभूति उमड़ने लगी ..... लाहौर से डेप्युटेशन आगे बढ़ा। मेरठ में बड़े समारोह से सभा हुई। १२ घंटे तक का लम्बा जलूस निकला। परलोकवासी महाराजा दरभंगा ने आकर शिरकत की और सभापति बनना स्वीकार किया और ५ लाख का दान भी दिया। इसीके पहिले पूज्य पंडित सुन्दरलालजी ने भी श्री हारकोर्ट बटलर के कहने पर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था।" अब बहाव का रुख दूसरी ओर चला; और विद्यालय के लिये धन की अनभ्रवृष्टि होने लगी।

४ फरवरी १९१६ को लार्ड हार्डिञ्ज ने विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया। मैं उस अवसर पर उपस्थित था। समारोह का क्या कहना था! मालवीयजी का स्वप्न जो पूरा हुआ था।

इस बात को हुए ४६ वर्ष हो गये! उससे सम्बन्धित घटनाओं की रूपरेखा एवं उनका क्रम धूमिल पड़ गया। अतः घटनाक्रम में थोड़ी भ्रान्ति हो जाना स्वाभाविक है। इसी अवसर पर या इसके कुछ ही आस-पास शिलान्यास के मैदान में एक सभा हुई। इसमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे, राजसी ठाठ से सुसज्जित उपस्थित थे। गाँधीजी थे। श्रीमती एनी बेसेन्ट भी थीं। लोगों के व्याख्यान हुए। इतने में मालवीयजी ने गाँधीजी से अपने श्रीमुख से कुछ कहने के लिये कहा। यह कैसे हो सकता था कि सभा में गाँधीजी हों और मालवीयजी उनसे बोलने के लिए न कहें? गाँधीजी उठे।

सोते हुए उसको जगाना एक वीरता थी।
जागे हुए उसको सुलाना एक काम था॥
(सिंह के प्रति एक कवि की उक्ति)

अपने व्याख्यान के किसी प्रसंग में महाराजाओं की ओर देखकर उन्होंने कहा जिसका भाव यह था—"जब जनता भूखों मर रही है, आपको इन हीरा-जवाहरात के पहिनने का कोई हक नहीं है। ये सब जनता की सम्पत्ति हैं।" राजा लोगों ने कसमसाकर—यद्यपि राजसी ठाठ से मुसकुराते हुए—इस खून के घूँट को पी लिया। पर जब गांधीजी ने किसी प्रसंग में यह कहना आरंभ किया कि मैं तो बम फेकनेवाले की प्रशंसा करता हूँ तो ग़जब हो गया। इतना उन्होंने कहा ही था कि श्रीमती एनी बेसन्ट झटके से खड़ी हो गयीं और बोलीं—"Stop Mr. Gandhi" और इसके पहिले कि वह और कुछ कहें, —बहुत दिन की बात हो गयी, परन्तु जहाँ तक मुझे याद है—सब के पहिले महाराज दरभंगा या महाराज मैसूर और उनके बाद एक-एक करके सब राजे-महाराजे पंडाल के बाहर चले गये। गांधीजी हँसने लगे। मैं एक कोने में भौचक्का सा खड़ा यह सब व्यापार देख रहा था। मालवीयजी के पैरों के तले की जमीन खसक गयी और उनके हृदय में जोर की पीड़ा उठी। लोग उन्हें तुरन्त बाबू शिव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

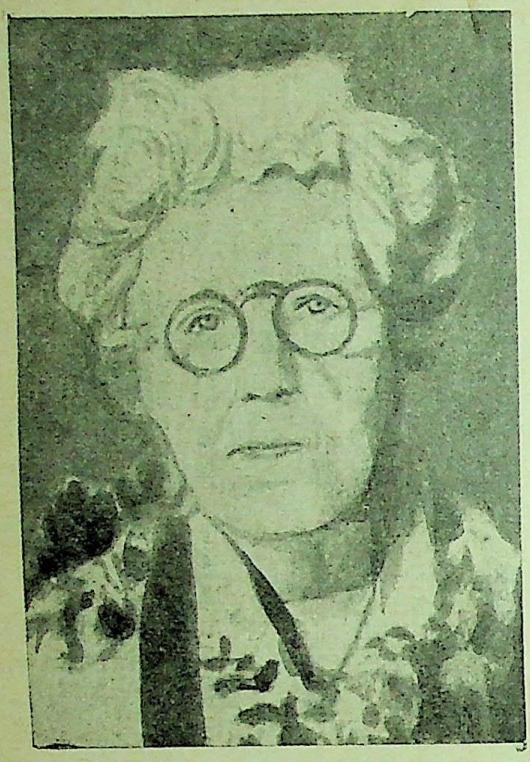

श्रीमती एनी बेसेन्ट

प्रसाद गुप्त की कोठी पर ले गये। कोठी निकट ही थी और मालवीयजी उन दिनों वहीं रहते थे। तुरन्त कविराज गणनाथ सेन आये और दस-दस मिनट पर कोई रस देने लगे। मैं पहिले ही कोठी पर पहुँच गया था। कोठी के बाहर जनता साँस रोके उद्विग्न खड़ी थी। खबर फैल गयी कि मालवीयजी को हृदयाघात (heart atack) हो गया है और उनकी दशा शोचनीय है। गांधीजी तो उनके साथ ही आये थे। राजा-महाराजाओं को भी खबर होते देर न लगी। जब मालवीयजी की तबीयत कुछ ठहरी तो गांधीजी ने उनसे कहा—इन लोगों ने तो मुझे बोलने ही नहीं दिया और उठकर चले गये। मैं तो आगे कहने जा रहा था कि इन बम फेंकनेवालों का, देश का हित समझकर, हथेली पर जान रखना प्रशंसनीय है। इससे कौन इन्कार कर सकता है, परन्तु वे गलत रास्ते पर हैं और उसे उन्हें तुरन्त छोड़ देना चाहिए। मैं तो अहिंसा का पुजारी हूँ। मैं भला हिंसात्मक कार्य की कैसे प्रशंसा कर सकता हूँ? मालवीयजी को थोड़ी ढाढ़स हुई। इतने में राजा-महाराजाओं की मोटरें आने लगीं। मालवीयजी ने उनसे सब बातें जो गांधीजी से हुई थीं, कहीं। राजाओं ने स्वयं कहा कि आप सभा कल फिर बुलावें। यदि उसमें गांधीजी इसका स्पष्टीकरण करने कहें तो हम सब लोग आवेंगे। मालवीयजी की जान में जान आयी।

दूसरे दिन सभा हुई। सब राजे-महाराजे आये। गांधीजी ने स्पष्टीकरण कर दिया। बला टल गयी। काशी विश्वनाथ ने मालवीयजी की इच्छा-पूर्ति कर दी।

'यथा येषां वाञ्छा वितरति तथा कल्पतरुवत्

क्रमशः

बन के जो कभी बिगड़े ही नहीं

श्री कुँअर सोमेश्वर सिंह

(१)

स्वर हैं उसके न कभी भी सधे,
जिसने कभी बेसुरा गाया नहीं।
नहीं जो है खला किसी को भी कभी
वह तो जग को कभी भाया नहीं।
जिसने है कभी कुछ खोया नहीं,
उसने है यहाँ कुछ पाया नहीं।
नहीं राह से जो भटका है कभी,
वह है कभी राह पै छाया नहीं।

(२)

भँवरों की न नीति हैं जानते वे,
लहरों से कभी जो लड़े ही नहीं,
पथ की कठिनाइयाँ क्या वे कहें
पग पंक में हैं जो पड़े ही नहीं,
क्रम भाग्य का आँक वे कैसे सकें
जम के जो कभी उखड़े ही नहीं,
गति जीवन की पहचानेंगे क्या
बन के जो कभी बिगड़े ही नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता

[डा० डी० एस० कोठारी की गणना देश के प्रमुख वैज्ञानिकों में होती है। इस समय वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन) के अध्यक्ष हैं। हिंदी पारिभाषिक शब्दावली के पुनरीक्षण का कार्य भी उनके सुपुर्द है। विज्ञान की शिक्षा के लिए हिंदी पाठ्य पुस्तकों के संबंध में उनके विचार श्री बांठियाजी ने भेजे हैं जिन्हें हम यहाँ अपने पाठकों की जानकारी के लिए सहर्ष और साभार प्रकाशित कर रहे हैं।—सम्पादक, सरस्वती।]

हमें कस्तूरमल बांठिया का यह पत्र मिला है:

प्रिय सम्पादकजी,

इस पत्र के साथ मैं डा० श्री कोठारी का लेख 'हिन्दी में वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता' साप्ताहिक 'विशाल राजस्थान' से उद्धरण कर भेजता हूँ जो कि उसके ता: २८-१-'६२ के गणतंत्र अंक में प्रकाशित हुआ है। बहुत संभव है कि इस लेख की ओर आपका ध्यान ही नहीं गया हो क्योंकि लेखक का नाम इस प्रकार दिया गया है कि पाठक का ध्यान उस ओर जाना कठिन है।

अपने ढंग का, और डा० कोठारी जैसे भारत के एक उच्च कोटि के वैज्ञानिक का लिखा हुआ यह पहला ही लेख है जिसने हमारे शिक्षा के माध्यम को हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा में परिवर्तन कर देने की हमारी दीर्घसूत्रता से हो रहे वैज्ञानिक विकास के विलम्ब की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इतना ही नहीं, अपितु स्वानुभव से उदाहरण प्रस्तुत कर यहाँ तक बता दिया है कि अंगरेजी के माध्यम द्वारा एम० एस-सी० तक के विद्यार्थियों को मूल बात को पकड़ पाना जब संभव नहीं होता तो वही हिन्दी द्वारा वे तुरन्त ही पकड़ लेते हैं। इससे अधिक प्रत्यक्ष उदाहरण उन लोगों को क्या दिया जा सकेगा कि जो अँगरेजी को शिक्षा का माध्यम बनाये रखना चाहते हैं? इतना ही नहीं, वे अँगरेजी शिक्षा के गिरते हुए स्टैण्डर्ड को उठाने के लिए देश का धन खर्च करते जाने और हिन्दी आदि क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति घोर उपेक्षा बताने का ही रुख अपनाये हुए हैं।

जैसा कि अधिकांश जनता का मानना है, स्वतंत्रता के बाद से हम अँगरेजियत की दासता में ऐसे जकड़ते जा रहे हैं कि जैसे पहले कभी भी नहीं थे। भाषा आज राजनैतिक मंच का विषय हो गया है और अँगरेजी पढ़े-लिखे अपना वर्चस्व बनाये रखने को तरह-तरह के भय हमें बता रहे हैं जब कि उन्हें जानना चाहिए कि इस देश ने पिछले सौ वर्षों में जितनी तरक्की नहीं की थी उससे कहीं अधिक तरक्की अँगरेजों के जाने के बाद कर ली। इसी प्रकार अँगरेजी के स्थान में हिन्दी आदि क्षेत्रीय भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा दिये जाने पर वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान में भी उतनी ही आश्चर्यजनक तरक्की करना निश्चित है, क्योंकि भारतीय दिमाग संसार के किसी भी क्षेत्र के दिमाग से हीन नहीं है। जैसा कि डा० कोठारी ने कहा है, मध्यमवर्ग अपनी स्थिति बनाये रखने के डर से भयभीत है और वही अँगरेजी से चिपका रहना चाहता है ताकि उसकी स्थिति अक्षुण्ण बनी रहे। पर ऐसा अब असम्भव है। जितना शीघ्र यह समझ लिया जाय, उसका इसीमें लाभ है। मैं आशा करता हूँ कि श्रीमान् डा० कोठारी के इस लेख को आप अपने पत्र द्वारा जनता तक पहुँचायेंगे ताकि वह मूलभूत बात को समझ जाय और राजनीतिज्ञों के दावपेंच से इस महत्त्व की समस्या को मुक्त कराने में सफल हो। हम संसार से वैज्ञानिक ज्ञान में अंगरेजी को छोड़कर पिछड़ जायेंगे, यह भय उतना ही निराधार है जितना कि भय हमें अंगरेजी राज्य के चले जाने से होने का दिखाया जाता था।

आज 'अंगरेजी छोड़ो' का नारा बुलंद करनेवाला गांधी हमें चाहिए।

भवदीय
कस्तूरमल बांठिया

डा० कोठारी लिखते हैं:

हिन्दी में वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता पर सोचते समय पहला सवाल यह उठता है कि हम वैज्ञानिक और इंजीनियरिंग की पाठ्य-पुस्तकों को हिन्दी में क्यों करना चाहते हैं? और इसका उत्तर स्पष्ट है। क्योंकि जब तक वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें हिन्दी और देश की अन्य भाषाओं में उपलब्ध नहीं होतीं, तब तक न तो देश के गरीब आदमियों को विज्ञान की उपलब्धियों से कोई लाभ ही पहुँच सकेगा और न देश की वैज्ञानिक व औद्योगिक उन्नति तीव्र गति से ही हो पायेगी। जब मैं हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की बात करता हूँ तो यह बात सदा मेरे ध्यान में रहती है कि आज हिन्दी के दो पहलू हैं। हिन्दी एक ओर तो सारे देश की राजभाषा मानी जाती है किंतु दूसरी ओर वह १८ करोड़ लोगों की मातृभाषा भी है। मैं यहाँ पर हिन्दी के पहले रूप के बारे में चर्चा नहीं करना चाहूँगा। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मैं हिन्दी के दूसरे रूप के बारे में बात कर रहा हूँ, और मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात जितनी हिन्दी के लिए लागू होती है उतनी ही देश की अन्य भाषाओं के लिए भी। सचाई यह है कि जब तक हम विद्यार्थियों को शुरू से ही अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध नहीं करायेंगे, तब तक हम असली रूप के वैज्ञानिक नहीं पा सकेंगे, क्योंकि विज्ञान के बुनियादी तथ्य आम तौर पर आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करते समय ही स्वस्थ ढंग से अंकुरित होते हैं। पर यदि इस अवस्था में इन बुनियादी बातों को बताने के लिए कक्षा के भीतर एक भाषा की शब्दावली इस्तेमाल की जाती है और उसके बाहर दूसरी, तो बेचारा विद्यार्थी उलझन में पड़ जाता है। उसके दिमाग में वैज्ञानिक ज्ञान उतने सहज ढंग से नहीं पनप पाता और बुनियादी बातों के बारे में उसकी पकड़ इतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी कि तब हो पाती है जब कि उसको अपनी ही भाषा में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है। फिर यह भी आज एक माना हुआ तथ्य है कि जिस भाषा में कोई व्यक्ति अपने को व्यक्त करता है, उस भाषा का उसके विचारों पर भी असर पड़ता है।

यही कारण है कि योरप में आज से तीन सौ वर्ष पूर्व जिस जमाने में विज्ञान शुरू हुआ था और जब संपूर्ण योरप में पढ़े-लिखे लोगों की भाषा लैटिन थी, यहाँ तक कि रूस और फ्रांस में भी यही भाषा चलती थी, उस समय वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ही भाषा में लिखने के प्रश्न की ओर गया। उस जमाने में लैटिन भाषा का इतना असर था कि न्यूटन जैसे अँगरेजी भाषाभाषी वैज्ञानिक को भी अपना पहला ग्रंथ 'प्रिंसपिया', सन् १६८७ में, लैटिन में ही लिखना पड़ा था और सन् १७२९ में इसका अँगरेजी में अनुवाद हो पाया था। पर बाद में न्यूटन को अपनी भाषा में लिखने के महत्त्व का पता चला और इसलिए सन् १७०४ में उसने अपना दूसरा ग्रंथ 'आप्टिक्स' अँगरेजी ही में लिखा। इसका लैटिन में अनुवाद दो वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। इसके बाद जब योरप के देशों की भाषाएँ परिष्कृत हो गयीं, तब विज्ञान इन देशों की भाषाओं ही में लिखा जाने लगा।

इसी तरह अँगरेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ वैज्ञानिक साहित्य की भाषाएँ बनीं और तभी इन देशों में वैज्ञानिक व टैक्नालोजी का विकास तेजी से हुआ। क्योंकि विज्ञान का विकास किसी देश में तभी होता है जब वहाँके कारीगर और शिल्पकार, यानी जो हाथ से काम करते हैं और तरह-तरह के उपकरण बनाते हैं, उनको सुधारने और आविष्कृत करने के लिए दिमाग से सोचें भी। और वे तभी ऐसा कर सकते हैं कि जब उनको अपने क्षेत्र में हुई वैज्ञानिक प्रगति का हाल मालूम हो। योरप में शल्य चिकित्सा का विकास इसी प्रकार हुआ था। वहाँके जिन हज्जामों ने हाथ के काम के अतिरिक्त दिमाग से सोचा भी था, वे ही बाद में जाकर सर्जन बन गये। हमारे देश में भी आज यही स्थिति है। हमें सोचना है कि हाथ से काम करनेवाले और दिमाग के सोचनेवाले, दोनों का मिलन किस प्रकार हो सकता है। आज ऐसे अनेक दस्तकार और कारीगर हैं जिनको जरा भी वैज्ञानिक ढंग से सोचने का मौका मिले तो वे अनेक नई-नई ईजाद कर सकते हैं। इसलिए आज हिन्दी और भारतीय भाषाओं में ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है जो आसान भाषा में लिखी हों और जिनको पढ़कर हमारे कारीगर और शिल्पकार अपने व्यवसायों को उन्नत कर सकें। इससे न केवल उद्योग ही बढ़ेगा वरन् विज्ञान भी गंभीरतम ऊँचाई तक पहुँचेगा। क्योंकि जब विज्ञान की पढ़ाई हमारी अपनी ही भाषा में होगी तभी हम प्रकृति को अधिक सहज व वैज्ञानिक ढंग से समझ सकेंगे। दूसरी भाषा में पढ़ने पर तोते की तरह रटकर, दिमाग पर आवश्यकता से अधिक जोर देकर, जहाँ हम अपनी प्रतिभा को मंद करेंगे वहाँ बुनियादी बात को पूरी तरह समझ भी नहीं पायेंगे। मैं अपनी इस बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर देना चाहता हूँ यद्यपि उसका विज्ञान से कोई संबंध नहीं है। हमारे देश में 'राम' एक ऐसा शब्द है जिसके पीछे भारतीय संस्कृति का पूरा रूप छिपा हुआ है। अन्य देशों की भाषाओं द्वारा 'राम' शब्द का अनुवाद करके कितनी ही तरह से क्यों न समझाया जाय, फिर भी वह बात नहीं आ पायेगी कि जो केवल 'राम' शब्द के उच्चारण करने से भारतीय लोगों के मन में पैदा होती है। विज्ञान पढ़ाने के बारे में स्वयम् भी मेरा यही अनुभव है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष होने के बाद भी मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० के विद्यार्थियों को पढ़ाता हूँ। पढ़ाते समय जब कभी कोई गंभीर बात विद्यार्थियों को समझानी होती है तो वह तब तक उनकी समझ में नहीं आती जब तक कि वह हिन्दी में न समझायी जाय। इससे यह सिद्ध होता है कि गंभीर से गंभीरतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय भी अपनी भाषा में बहुत ही जल्द समझ में आ जाता है। फिर वे ही भाषाएँ आज के वैज्ञानिक युग में जीवित रह पाती हैं जो अपने में विज्ञान और तक्नीकी बातों को भली भाँति स्पष्ट करने की क्षमता रखती हैं क्योंकि तभी वे वास्तविक प्रवाह, गति और जीवन को प्राप्त करती हैं।

यह चीज इतनी अनिवार्य होने पर भी इसको हम लोग लागू क्यों नहीं करते ? इसका कारण यह है कि हम प्रगति से डरते हैं। यह अजीब सी बात लगती है, लेकिन निस्सार नहीं है। महात्मा गाँधी कहते थे कि हमें आजादी इसलिए नहीं मिलती क्योंकि हम आजादी से डरते हैं। हम सभी जानते हैं कि जिस दिन हमारे दिलों से उन्नति तथा आगे बढ़ने के बारे में कहीं बैठा हुआ भय निकल जायगा उस दिन हम इस बात को तुरन्त ही अपना लेंगे। आज राष्ट्रीय स्तर पर इस क्षेत्र में जितना डर हिन्दी से है उतना ही डर प्रादेशिक स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं से भी है। किन्तु यह डर केवल मध्यम वर्ग तक ही सीमित है। पर मध्यम वर्ग तो देश में अल्प मत में है वह इसलिए हिन्दी को विज्ञान और टेक्नोलोजी पढ़ाने का माध्यम बनाने में हिचकिचाता है क्योंकि इस बात से सबसे अधिक हानि उसको ही पहुँचनेवाली है। पर गाँधीजी ने तो हमें एक मंत्र दिया था कि कभी हम किसी तरह के असमंजस में पड़ें तो हमें यह सोचना चाहिए कि जो काम हम करने जा रहे हैं उससे हमारे देश के प्रत्येक निवासी को और गरीब से गरीब को लाभ पहुँचेगा या हानि होगी। और यदि उस काम को करने से सब को लाभ पहुँचता है तो हमें निश्चय ही वह काम कर देना चाहिए।

यही बात आज भारतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा विज्ञान को पढ़ाने के बारे में लागू होती है। निश्चय ही भारतीय भाषाओं के माध्यम से जब शिक्षा दी जायगी तो गरीब से गरीब आदमी भी उसका लाभ उठा सकेगा।

आज के जीवन में वैज्ञानिक ज्ञान से सबसे अधिक वंचित हमारी माताएँ और बहनें हैं क्योंकि वे ही सबसे कम पढ़ी-लिखी हैं। और जो पढ़ी-लिखी हैं भी, उनमें से अधिकांश को अपनी ही भाषा का ज्ञान है। पर भारतीय भाषाओं में अच्छा वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध नहीं है। इसलिए वे वैज्ञानिक क्षेत्र में आज १०० वर्ष पीछे पड़ गई हैं, और इसी कारण रूढ़ियाँ भी उनसे अधिक चिपकी हुई हैं। हमारे देश की ग्रामीण नारी को राकेट और अणु-शक्ति जैसे शब्दों का भी पता नहीं है जो नगरों में आज हर आदमी की जबान पर हैं। इस तरह हम यदि वैज्ञानिक ज्ञान को अपनी ही भाषा में देने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो नारी के रूप में देश की आधी जन-संख्या वैज्ञानिक ज्ञान को कभी नहीं पा सकेगी।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम उन भाषाओं को पढ़ाना नहीं चाहते जिनमें आज मुख्य रूप से विज्ञान लिखा जा रहा है। आजकल संसार में प्रति वर्ष ५० लाख के लगभग वैज्ञानिक लेख, ५० हजार वैज्ञानिक पुस्तकें और ५० हजार के लगभग वैज्ञानिक रिपोर्टें प्रकाशित होती हैं। इन सब के लिए आम तौर पर रूसी और अँगरेजी भाषाएँ इस्तेमाल की जाती हैं। संसार का ५० प्रतिशत से अधिक साहित्य अँगरेजी में प्रकाशित होता है।

सूचना

श्री वासुदेवन नायर

पिछले महीने हमने श्री वासुदेवन नायर की एक कहानी 'आवश्यकता है एक गृहिणी की' प्रकाशित की थी। कहानी पर लेखक ने अपना पता नहीं दिया, न उसके साथ कोई पत्र मिला। यदि लिफाफे पर पता लिखा हो तो वह डाक खोलते समय फेंक दिया गया था। हम इस कहानी को एक वर्ष तक रोके रहे कि लेखक का अनुस्मारक आवे और हमें उनका पता मालूम हो। किंतु उनका कोई पत्र नहीं आया। हमने उनकी कहानी को गत मास के अंक में प्रकाशित कर दिया, किंतु उनके पते के अभाव में न तो हम उन्हें सरस्वती के उस अंक की प्रति ही भेज सकते हैं, और न पारिश्रमिक ही। अतएव इस सूचना द्वारा हम श्री वासुदेवन नायर से निवेदन करते हैं कि वे अपना पता निम्नांकित पते पर शीघ्र सूचित करने की कृपा करें।

श्रीनारायण चतुर्वेदी
सम्पादक, सरस्वती
५३ खुर्शेदबाग (विष्णुपुरी)
लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाहों का अप्राकृतिक प्रणय और राजनीति पर उसका प्रभाव

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

यद्यपि इस्लाम में अप्राकृतिक प्रणयलीलाओं की घोर निन्दा की गयी है परन्तु अरब, तुर्क, मुगल, ईरानी इत्यादि जातियों में इस्लाम ग्रहण करने के पहिले से ही वह रोग इतने भयानक रूप से फैला हुआ था कि इस्लाम के धार्मिक नियम व उपदेश उसे दबाने में नितान्त असमर्थ रहे और इस्लाम के विरुद्ध होते हुए भी अप्राकृतिक (समलिङ्गी) प्रणय इस्लामी देशों का एक काला पहलू बन कर रह गया।

न केवल काव्य ही, बल्कि राजनीति भी इन प्रणय-लीलाओं के प्रभाव से अछूती नहीं रही। विद्वानों की राय में इस्लाम की बागडोर अरबों के हाथों से निकलकर जो ईरानियों के हाथों में पहुँची उसका एक प्रधान कारण अरब शासकों का ईरानी छोकरों के प्रति उन्मुक्त प्रेम भी था। ईरानियों के हाथों से निकलकर यह सत्ता तुर्कों के हाथ पहुँची, और इसका भी एक कारण ईरानियों का तुर्क छोकरों से प्रणय-सम्बन्ध रहा है। फारसी भाषा में तुर्क का एक अर्थ माशूक भी होता है। कई बादशाहों ने इन प्रणयलीलाओं के वश अपने पुत्रों के स्थान पर अपने गुलामों को उत्तराधिकारी घोषित किया। गुलाम का भी एक अर्थ माशूक होता है। हमारे दासी शब्द की तरह गुलाम भी द्विअर्थक है। जैसे हमारे यहाँ दासी का अर्थ रखेली व उपपत्नी भी होता है, वैसे ही गुलाम भी रखेला वा नर उपपत्नी के अर्थ में आता है। फारसी के कई कवियों ने बादशाहों को प्रसन्न करने के लिये उनके गुलामों की शान में कसीदे तक लिखे हैं। अँगरेजी का 'स्लेव' फारसी का गुलाम नहीं है, जैसा कि ताश के इस्लामी खेल से भी समझा जा सकता है। गुलाम की स्थिति बेगम से कुछ ही नीचे, परन्तु प्रजावर्ग से ऊपर होती है, प्रजावर्ग से नीचे नहीं।

अय्याज़ महमूद गजनवी का गुलाम और माशूक था। महमूद की राजनीति पर अय्याज का बड़ा प्रभाव था। अय्याज़ की प्रेरणा से ही महमूद ने फिर्दौसी के साथ दुर्व्यवहार किया था। महमूद के मरने के बाद उसके उत्तराधिकार के झगड़ों में अय्याज ने प्रमुख भाग लिया था। गफ़ारी राज़ी और फ़रखी जैसे महाकवियों ने अय्याज़ की शान में कसीदे लिखे हैं। अय्याज़ को प्रसन्न करना महमूद को प्रसन्न करना था।

फ़रिश्ता के अनुसार एक दिन रात्रि के समय सुल्तान महमूद ने मस्ती की दशा में अक्ल से हाथ धो डाले, और अय्याज के चेहरे पर दूसरी ही तरह से नजर डाली। यह देखकर बुरहाने शरअ (धर्माधिकारी) ने चिल्लाकर कहा, 'ऐ महमूद, काम को प्रेम से दूषित मत कर'। सुल्तान चेता, और एक कैंची अय्याज़ के हाथ में देकर कहने लगा, "अपनी इन लुटेरी जुल्फों को काट डाल।" अय्याज़ ने फौरन अपनी जुल्फें काट डालीं। अय्याज़ की इस फर्माबर्दारी को देखकर सुल्तान की प्रेमाग्नि और भी भड़क उठी। इसके आगे जो कुछ लिखा है अस्पष्ट सा है और उसमें वीभत्स रस की गन्ध आती है, परन्तु डा० इक़बाल ने इसी घटना को शृंगार रस का रूप दिया है:—

न वह इश्क में रही गर्मियाँ, न वह हुस्न में रही शोखियां।
न वह ग़ज़नवी का मज़ाक है, न वह खम है ज़ुल्फे अयाज़ में।

परन्तु एक दूसरे स्थल पर यही इकबाल साहब फर्माते हैं :—

वह मुहब्बत नहीं कुछ और शै है।
सिखाती है जो ग़ज़नवी को अयाज़ी॥

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की राजनीति पर उसके प्रधान माशूक मलिक काफूर का बहुत प्रभाव था। फरिश्ता के अनुसार काफूर के इश्क में अलाउद्दीन अक्ल और दीन दोनों से हाथ धो बैठा था। अलाउद्दीन के अनेक अत्याचार-पूर्ण कुकृत्यों का दोष फरिश्ता और बार्नी दोनों ही उसके 'दिलवर' मलिक काफूर के सिर मढ़ते हैं। काफूर जन्म से हिन्दू था। इस वास्ते मुस्लिम इतिहासकारों की राय में अलाउद्दीन ने जो एक नया धर्म चलाना चाहा था वह भी मलिक काफूर के इस्लाम विरोधी संस्कारों का प्रभाव था। सौन्दर्य और प्रणय के बल पर ही मलिक काफूर प्रधान मन्त्री के पद तक पहुँचा था और इसी बल पर वह अला-उद्दीन के बाद स्वयं बादशाह बनने का स्वप्न देखता था। मलिक काफूर के बहकावे में आकर ही अलाउद्दीन ने अपने बड़े लड़के खिज्रखाँ को ग्वालियर में और प्रधान बेगम को दिल्ली में कैद कर दिया। अलाउद्दीन के मरने के बाद उसकी वसीयत के अनुसार उसका ६वर्षीय पुत्र शिहाबउद्दीन उमर गद्दी पर बैठा और मलिक काफूर उसका वली हुआ, जिसका अर्थ यह हुआ कि मलिक काफूर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रकार से दिल्ली का शासक बन गया। अलाउद्दीन के राजघराने पर मलिक काफूर ने बड़े अत्याचार किये। उसने अलाउद्दीन की विधवाओं के साथ विवाह किया। फिर उन्हें मरवा डाला। उसके लड़कों को अन्धा करवाया। उनकी स्त्रियाँ छीन लीं और उनकी हत्या करा दी। अन्त में अलाउद्दीन का एक लड़का मलिक काफूर की हत्या कराने में सफल हुआ और स्वयं मुबारिक खिल्जी के नाम से गद्दी पर बैठा।

मुबारिक खिल्जी भी अपने सुयोग्य बाप का सुयोग्य पुत्र था। यह खुसरो खाँ नाम के एक लड़के पर बुरी तरह आशिक था। खुसरो खाँ हिन्दुओं की एक छोटी जाति में पैदा हुआ था। मुसलमान इतिहासकारों की राय में वह दिल से मुसलमान नहीं बना था और बादशाह की आसक्ति का लाभ उठाकर फिर से हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहता था। डा० ईश्वरीप्रसाद ने भी लिख दिया है कि यदि इस समय कोई सबल हिन्दू नरेश अन्य राजाओं को संगठित करके दिल्ली पर आक्रमण करता तो दिल्ली पर उसका अधिकार जम जाता और मुस्लिम प्रभुत्व सदा के लिए समाप्त हो जाता, क्योंकि उनकी राय में भी खुसरो का उद्देश्य हिन्दू सत्ता का पुनर्संस्थापन था। परन्तु हमारी राय में खुसरो जैसे चरित्रहीन व्यक्ति किसी भी राष्ट्रीय अथवा धार्मिक अनुभूति से शून्य होते हैं। खुसरो का उद्देश्य स्वयं गद्दी हथियाना था और इस काम में उसने अपने हिन्दू रिश्तेदारों व असन्तुष्ट व्यक्तियों की सहायता ली जिनमें स्वभावतः हिन्दुओं और देशी मुसलमानों की संख्या अधिक थी। यदि खुसरो का उद्देश्य मुस्लिम प्रभुत्व की समाप्ति होता तो उसे हजरत निजामुद्दीन औलिया जैसे मुस्लिम सन्त का आशीर्वाद प्राप्त न होता।

सत्रह वर्ष का खुसरो बादशाह के प्रणय के बल पर बादशाह का वज़ीरे आज़म तक बन गया। उसने राज्य के उच्चपदों पर अपने आदमी नियुक्त कर दिये। चालीस हजार सवारों की अपनी सेना खड़ी कर ली और बादशाह की हत्या करने का षडयंत्र पूरा कर लिया। फरिश्ता लिखता है कि काज़ी ने बादशाह को चेतावनी दी कि खुसरो खाँ तुम्हें कत्ल करना चाहता है, परन्तु बादशाह पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। कत्ल की रात जब खुसरो आया तो बादशाह ने उसे गोद में खींचा और जो काज़ी से सुना था कह सुनाया। खुसरो रोने लगा, इस पर बादशाह बहुत बेचैन हुआ और खुसरो को दिलासा देने के लिए उसे बार-बार चूमने लगा। जिस समय महलों में शोर मचा और हत्यारे बादशाह के निकट नङ्गी तलवार लिये पहुँचे तो बादशाह अन्तःपुर की ओर भागा, खुसरो ने पीछे से दौड़कर बादशाह के सर के बाल पकड़ लिये। बादशाह ने उसे अपनी रान के नीचे खींचा, इसी समय एक हत्यारे ने बादशाह का सिर काट कर खुसरो खाँ को उसके वक्षःस्थल से हटाया। अब खुसरो नासिरउद्दीन खुसरो शाह के नाम से गद्दी पर बैठा, परन्तु छः महीने बाद ही मुसलमान विद्रोहियों के नेता गयासुद्दीन तुगलक के हाथों मारा गया।

अकबर यद्यपि इस प्रकार के अप्राकृतिक प्रणय से घृणा करता था, फिर भी उसका दर्बार इन प्रणयलीलाओं का अखाड़ा बना हुआ था। अपने बाप के माशूक शाहम के कारण अकबर को काफी परेशानी थी। इधर अबुलफजल व अब्दुर्रहीम खानखाना के प्रेम को लेकर काफी चर्चा रहती थी यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं अबुलफजल का प्रेम सात्विक और कामुकता से कोसों दूर था। स्वयं रहीम भी अपने सौन्दर्य के लिए जितने प्रसिद्ध थे उससे कहीं अधिक अपनी चारित्रिक उत्कृष्टता के लिए ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इसी समय अर्फी नाम का एक नौजवान शायर शीराज से आया। मौलाना शिबली नूमानी के शब्दों में "हिन्दोस्तान में आया तो शहजादा जहाँगीर पर आशिक हुआ"। आगे चलकर मौलाना लिखते हैं, "यह अम्र अगचें बज़ाहिर बिल्कुल खिलाफ क़यास है लेकिन अर्फ़ी के क़सायद में बेशुबह यह झलक पायी जाती है"।

अर्फ़ी क़सीदे लिखने में बहुत कुशल था। उसने अकबर के भी कसीदे लिखे और सलीम (जहाँगीर) के भी। सलीम के कसीदों में उसकी प्रणयात्मक भावनाएँ पायी जाती हैं :—

१"शहजादे ने कुछ नहीं कहा और मैंने सुन लिया, क्योंकि बातें करने में उसकी आँखें जबान से आगे हैं।"

अर्फी सफल आशिक था। सलीम ने उसके प्रेम का प्रेम से उत्तर दिया। इससे दर्बार में तहलका

१नगुफ्तो मन बशुनूदम हर आँच गुफ्त नदाश्त।
के दर बयाँ निगहश कर्द बर ज़बाँ तकीदम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मच गया। अबुलफ़जल और फ़ैजी के आसन डोल गये। राज्य का भावी उत्तराधिकारी अर्फी की मुट्ठी में आ गया, हमारा क्या होगा। उधर सलीम को पाकर अर्फी आपे से बाहर हो गया। वह सबके साथ अपमान-जनक व्यवहार करने लगा, यहाँ तक कि अकबर को भी कुछ नहीं समझता था। इन्हीं दिनों अकबर ने अर्फी को एक घोड़ा इनाम में दिया। अर्फी को घोड़ा पसन्द नहीं आया। उसने घोड़े की हिजो लिखी जिसमें अकबर का भी मजाक उड़ाया गया था। इसी पर अकबर, अबुलफजल और फैजी की सम्मत्ति से अर्फी को जहर दे दिया गया। अर्फी मर गया ३५ वर्ष के भरे यौवन में। यह घटना सन् १५९१ की है। सलीम की आयु इस समय २२ वर्ष के लगभग थी। उसने आशिक की मृत्यु का बदला लेने की प्रतिज्ञा की। इन्हीं दिनों उसने अकबर के प्रति विद्रोह के चिह्न प्रकट किये और दस वर्ष बाद इलाहाबाद में अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। अगले ही वर्ष सन् १६०२ में उसने वीरसिंह बुन्देला द्वारा अबुलफजल की हत्या करा दी। बाद में अकबर और सलीम का मेल हो गया परन्तु इस घटना-चक्र ने अकबर का हृदय तोड़ दिया और ३ वर्ष बाद १६०५ में वह स्वर्ग सिधारा। गद्दी पर बैठने के बाद भी सलीम आशिक के खून को भूला नहीं। उसने अबुल-फ़जल के अनन्य प्रियपात्र रहीम को दुःख देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फ़ैजी १५९७ में अपनी मौत मर चुका था। इतिहासकारों ने और स्वयं जहाँगीर ने अपने आत्मचरित में अबुलफ़जल के बध का कारण उसके इस्लाम विरोधी विचार लिखे हैं, परन्तु मेरी सम्मति में यह सब सत्य पर पर्दा डालने का प्रयास है। जहाँगीर स्वयं कट्टर मुसलमान नहीं था। वह बचपन से ही खूब शराब पीता और नाच-रङ्ग, ज्योतिष व चित्रकारी का शौकीन था। उसने सुन्नी होते हुए एक शिया स्त्री से विवाह किया था। सभी धर्मों के प्रति उसका व्यवहार अकबर से भी अधिक उदार था, और फिर अबुलफजल की हत्या के लिये उसने किसी कट्टर सुन्नी को न चुनकर एक कट्टर हिन्दू को चुना था। इन सब पर यदि ठंडे दिल से सोचा जाय तो यह समझने में देर नहीं लगेगी कि सलीम के विद्रोह व अबुलफ़जल के वध का कारण धार्मिक उन्माद न होकर कुछ और ही था।

साँझ की वेला

श्री पाण्डेय शशिभूषण प्रसाद 'शीतांशु'

यह भरी साँझ की वेला!
अगम सिन्धु, निर्वाक् दिशाएँ, मैं उद्भ्रान्त अकेला!
यह भरी साँझ की वेला!

दूर बहुत हैं कूल-किनारे,
डाँड़ चलाते करतल हारे,
चूर-चूर हो रहे अंग सब,
कशिश और कोशिश के मारे!

उखड़ा-सा लगता मन के सतरङ्ग सपन का मेला!
यह भरी साँझ की वेला!

विथुरे नयन मदालस तब के,
बाट जोहते होंगे कब के,
लगी अर्गला मेरी कारा,
कैसे आऊँ सुन स्वर सबके?

मधुर बाँसुरी की धुन पर तो पड़ता होगा रेला!
यह भरी साँझ की वेला!

माँझी मन का मोह न डारे,
नभ में घिरते बादल कारे,
चले जा रहे गाँव, विजन से
लौटे श्रान्त-क्लान्त बनजारे!

शाख नीम की झुकती-उठती, जग का यही झमेला!
यह भरी साँझ की वेला!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

फूटती कोंपल

इन फूटती कोंपलों के लिए, भाग्य का हाथ कम है और भोजन का अधिक। वरना ये फूटती कोंपलें कभी बिना फूटे ही मुरझा जाती हैं, कभी फूटते ही झड़ जाती

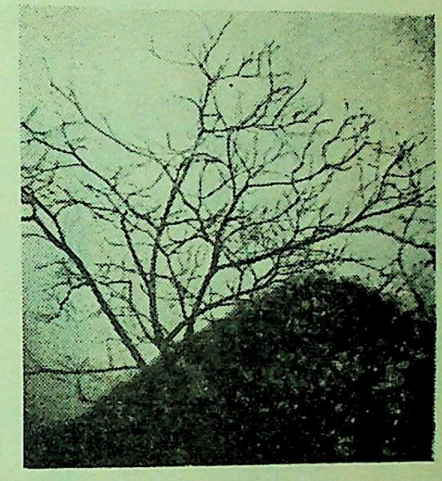

सूखा झाड़

हैं कभी वृक्ष में कोपलें फूटने की क्षमता होते हुए भी खाद और जल के अभाव में बिना फूटे ही रह जाती हैं। भोजन की ओर ध्यान देकर आप अपनी कोंपल को इन सभी दुर्भाग्यों से बचा सकती हैं। दुर्भाग्य मयी कोंपल वह है जो अभी-अभी फूटने के पहले मुर्झा गईं, (गर्भपात) जो फूटीं पर फूटते ही झड़ गईं (शिशु मृत्यु) फूटने की क्षमता होते हुए भी जल व खाद के अभाव में सूखा झाड़ (वन्धया) ही रह गई हैं।

भोजन में यदि संतुलन बरता जाय तो उससे नव स्फूर्ति बनी रहती है और यौन ग्रंथियों पर उसका जीवनदायक प्रभाव पड़ता है।

तीस व चालीस वर्ष की आयु के समीप की बाह्य दुर्बलता व थकान असंयमित भोजन का परिणाम है। भोजन में संयम व उन न्यूनताओं को दूर करते ही यह बाह्य दुर्बलता भी अन्तर्द्धान हो जाती है। विटेमिन (B) बी युक्त भोजन, या गोली के रूप में विटेमिन बी इस समय बहुत सहायता करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फूटती कोंपल

(Pantothemic acid, Para-amino-benzoic acid, Inositol) पैन्टोथिमिक ऐसिड, पैरा-अमीनो-बेंजोइक ऐसिड, तथा इनोसिटोल की कमी केशों को श्वेत करती है तथा यौन ग्रन्थियों में दुर्बलता लाती है। बुलगारिया तथा उन देशों के लोग जो दही का अधिक सेवन करते हैं या एक रूप से दहीं पर ही जीवन व्यतीत करते हैं, जीवन पर्यन्त और अति वृद्ध काल तक जीवन में एक नयी स्फूर्ति अनुभव करते रहते हैं। आधा प्याला अंकुरित गेहूँ, तीन चार चम्मच खमीर, तीन गिलास दही व मट्ठा का यदि सेवन किया जाय तो भोजन की न्यूनता के कारण प्राप्त हुई शिथिलता दूर हो जाती है।

मांसाहार में गोश्त व अंडे, तथा शाकाहार में दूध, पनीर और मेवा प्रोटीन की न्यूनता को दूर करते हैं तथा शरीर के हारमोन्स में वृद्धि शीघ्रता से करते हैं।

विटेमिन ए से स्त्रियों में ओवरी (Ovaries) की

(पाठक पाठिकाओं से अनुरोध है कि वे अपने 'दाम्पत्य जीवन की सबसे अधिक मनोरंजक घटना' प्रायः १००० शब्दों के इस स्तम्भ के लिए लिखकर भेजें।)

सहायक सम्पादिका, सरस्वती
इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

कार्यक्षमता बढ़ती है। वह मासिक धर्म को नियमित करता है और उस समय के कष्टों को दूर करने में सहायक होता है। जिन भोजनों में आयडीन व लौह पदार्थ होता है वे भी इसमें लाभदायक होते हैं। विटेमिन सी की कमी से स्त्रियों को मासिक धर्म में अति अधिक स्राव व पीड़ा बनी रहती है और अवधि समाप्त होने के स्थान पर अधिक समय लेता है। गर्भपात, व गर्भपात के पश्चात स्वस्थ होने में बहुत विलम्ब लगता है।

विटेमिन ई की कमी से पुरुषों में नपुंसकता तथा स्त्रियों में गर्भपात की दुर्बलता आ जाती है। विटेमिन ई को भोजन की मात्रा में बढ़ाने से समय के पूर्व जनन व गर्भपात दूर होते हैं। यह अंकुरित गेहूँ के (germinatingwheat) में सब से अधिक होता है—सलाद, हरी पत्तों वाली सब्जी, तथा उस अनाज में होता है जिसकी शक्ति मिलों में नष्ट नहीं हो जाती। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि विटेमिन 'ई' भोजन बनाने के तेलों में भी होता है। मोटे अनाज जैसे मक्का, बाजरा आदि में भी यह अधिक होता है।

विटेमिन ई अति अधिक आवश्यकता के समय सुई के रूप में दिया जा सकता है (यह प्रायः सभी विटेमिनों के साथ है)। यह बाजार में टिकिया रूप में भी मिलता है। अधिक न्यूनता के समय उसका सेवन किया जा सकता है। भोजन में आंवला, नीबू, संतरा, खट्टे फल बढ़ाकर और सदैव उनका सेवन करके उसकी कमी पूरी की जा सकती है।

यदि आपकी अभिलाषाएँ अधूरी हैं तो उसमें भाग्य का नहीं, भोजन का अधिक दोष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारियाँ और फैशन

नीचे धारीदार कपड़े का बना एक विव है जो कपड़ों को गन्दा होने से बचाने के लिए ऊपर से पहना दिया जाता है।

मुन्नी की इस फ्रौक में चैक व धारियाँ दोनों ही उपयोग में लायी जा सकती हैं।

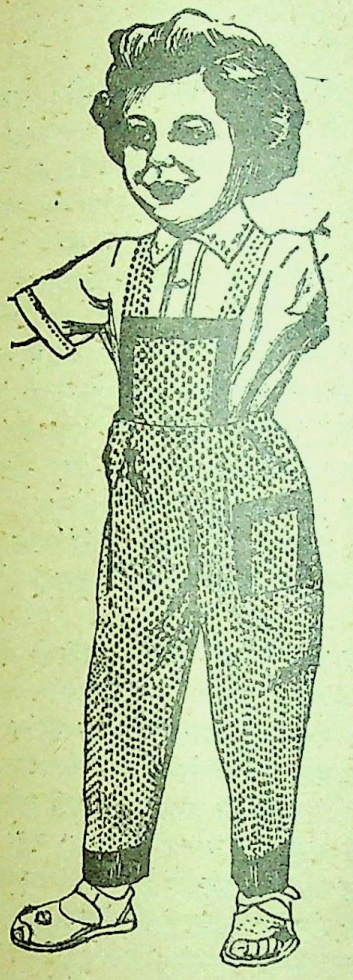

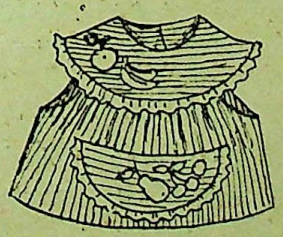

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर का मूल्य

मूल लेखक: जॉन रसेल

अनुवादक: श्री म० वर्मा

(१)

क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट की मिल्कियत में अब सिर्फ ये चीजें शामिल थीं: उसका पूरा नाम जिसे उसने आज तक अखंड कायम रक्खा था, सफेद जीन का एक सूट जो अब अखंड न था और जिसे पहिनकर ही वह सोता तथा उसीमें निवास करता था। एक अनबुझी शराब की प्यास और एक जोड़ा सुर्ख गलमुच्छे। उसका एक मित्र भी था। मगर पालिनीशिया के विनम्र टापुओं में मित्रता किसी विशिष्ट गुण के आधार पर ही प्राप्त होती है, शक्ति, मसखरापन, गुंडागीरी--कोई भी ऐसी सिफ़त हो जिसके सहारे मित्रता जड़ पकड़ सके, तब फिर कम्पनी की नाव के छोकरे-मल्लाह काराकी की उस सेवा-परायण प्रीति का सार कैसे समझा जा सकता है जो उसने क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट के लिए सँजो रक्खी थी? फूफुटी नगर की यह मुख्य पहेली थी।

पेलेट का कोई दुश्मन न था। वह कभी झगड़ा न करता था। किसीको मुक्का न दिखाता था। शायद वह यह भी न जानता था कि हर अँगरेज को पैर इसलिए दिया गया है कि लड़खड़ाते हुए भी वह काले लोगों को अपने मार्ग से ठोकर द्वारा हटाने में काम आये। वह तो किसीको गाली तक न देता था सिवा अपने आपको, या उस यूरेशियन चीनी को जो उसे ब्रांडी बेचा करता था। और यह ठीक ही था क्योंकि वाकई ब्रांडी बहुत रद्दी होती थी।

दूसरी ओर उसमें कोई गुण भी दृष्टिगोचर न होता था। बहुत समय हुए काम करने का आत्मबल उसने खो दिया था, और कुछ समय से तो माँगकर काम चलाने की कला भी वह खो बैठा था। वह न तो अकारण मुस्कराता, न नाचने लगता, न कोई ऐसी झख का प्रदर्शन करता जिसके कारण संसार शराबियों को क्षम्य मानता है। संसार के किसी और कोने में वह बिना झंझट के अपनी राह बना लेता। पर भाग्य के चक्र ने उसे एक ऐसे समुद्र-तट पर भटका दिया था जहाँ जीवन एक गीत की तरह सरल था, और उसकी अपनी अनोखी किस्मत से उसे एक दोस्त भी मिल गया था। और इसी कारण से वह जीवित था। बस इतना ही कि वह जीवित था,--एक लुजलुजा मांसपिंड--जो शराब के तेजाब में सुरक्षित था।

उसका दोस्त काराकी उस बूगैनविल का निवासी एक असभ्य बर्बर था जहाँ आदमियों को आग में भून दिया जाता है, और कभी-कभी उनको खा भी लिया जाता है। वह हब्शी और मिलेनीशियावासी होने के कारण गंदुमी रंग वाले फूफुटी नगर में उतना ही विदेशी था जितना कोई भी अँगरेज। वह एक गम्भीर और छोटा-सा दक्ष व्यक्ति था। उसकी आँखें धँसी हुई थीं। सिर भेड़ के से ऐंठे बालों से आवृत था और उसका चेहरा पूरी तरह भावशून्य रहता था। एक सूती लाल रूमाल को वह कमर में बाँधे रहता और उसकी नाक में पीतल का पर्दा टाँगने का एक छल्ला लटका रहता था।

काराकी के देश के किसी शक्तिशाली मुखिया ने काराकी को व्यापारी कम्पनी के हाथों तीन साल के लिए बेच दिया था और तम्बाकू तथा पोत की मालाओं के रूप में उसे मिलनेवाली तनख्वाह को पहले ही से जब्त कर लिया था। तीन साल पूरे होने पर काराकी को जहाज द्वारा करीब ८०० मील दूर उसके देश लौट जाना था जहाँ वह अपने अर्जित अनुभव को छोड़कर, उतना ही निर्धन लौटता जितना कि वह वहाँसे आते समय था। पर शायद काराकी ने अपनी कोई दूसरी योजना बना रखी थी।

प्रशांत महासागर की हब्शी जातियों में शायद ही वे गुण होते हैं जिनके कारण दूसरी शासित जातियाँ पसंद की जाती हैं। गंदूमी से चॉकलेटी रंग की सारी जातियों पर दबाव डालकर उनकी सेवा और विनम्रता प्राप्त की जा सकती है। पर हब्शी एक ऐसा पूर्ण बर्बर है कि वह सदा से हमारी समझ के दायरे के बाहर रहा है। उसका गुप्त हृदय एक अनबूझ पहेली है। इसीलिए जब काराकी ने उस निकम्मे अँगरेज आवारे को अपना सुहृद बना लिया तो फूफुटी नगर, जो हब्शी-स्वभाव से परिचित था, आश्चर्य में डूब गया।

"ए ज्हॉनी" मॉय जैक चीनी यूरेशियन ने काराकी को पुकारकर कहा "तुम अपना इस मालिक साब को ले जाएँगा भाई। ये दारु के नासा में धुत हैंगा।"

काराकी नारियल के छप्पर की छाया में एक घंटे से इंतजार कर रहा था; वह बढ़कर आगे आया इस मांस के बेदम ढेर को सँभालने, जिसे अब दरवाजा दिखाया जा रहा था। उसने बड़ी सफाई से उसकी कलाई हाथ में ली और बगल में सहारा लगाया, और उसे समुद्रतट की ओर ले चला। मॉय जैक अपनी देहली पर खड़ा उसे शुष्क अनुभवी दृष्टि से ताकता रहा।

"अरे ओ" उसने काराकी को सम्बोधित कर कहा "तुम क्या अपने इस मालिक के पीछू लगना माँगता? अमको तुम अपना निकास किया मोती बेचता, अम तुमको अच्चा दाम देता--कसम से बोलता!"

मॉय जैक को इसकी बड़ी शिकायत थी कि उसे पेलेट महाशय को उन छोटे-छोटे मोती के दानों के बदले शराब पिलानी पड़ती थी, जिनसे हमेशा पेलेट की जेबें भरी-सी रहती थीं। वह जानता था कि यह मोती कहाँसे आते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। समुद्री झील में काराकी उनके लिए चोरी से वर्जित डुबकी लगाया करता था। मॉय जैक को मोतियों के बदले शराब देने में काफी फायदा होता था, पर अगर वह उन्हें सीधे-सीधे काराकी से ही कुछ तम्बाकू की पत्तियों के बदले खरीदता तो उसे और भी फायदा होता।

"क्या लेके तुम ओ सब बेचारा मोती अपना इस मालिक को देना माँगता?" मॉय जैक ने बिगड़कर कहा "ओ तो अबी एकदम बेकार है। अबी पास में तो ओ एकदम मर जाएगा।"

काराकी ने जवाब न दिया। उसने एक बार छूटकर यूरेशियन की तरफ देखा और मुँह ही मुँह में कुछ बड़-बड़ाने लगा। एक क्षण के लिए काराकी की आँखों में एक अजीब चमक पैदा होकर बुझ गयी, जैसे समुद्र की गहराइयों में हिंसक मछली की करवट की हरीतिमा चमककर गायब हो जाये।

काराकी अपनी उस अमानत को समुद्रतटवर्ती अपनी पांडाना के पत्तों की झोपड़ी में ले गया जो उसका एक-मात्र घर था। बड़े सँभालकर उसने पेलेट को एक चटाई पर लिटा दिया, उसके सिर के नीचे तकिया लगा दिया, उसके चेहरे को ठंढे पानी से अँगोछ डाला और उसके बाल तथा गलमुच्छों को पोंछकर साफ कर डाला। पेलेट के गलमुच्छे असली गलमुच्छे थे, जैसे बिलाओ मछली के गल-फड़े हों और उनका रंग ताँबे की तरह लाल सुनहला था। इसके उपरान्त वह पंखे से उस शराबी के सूजे हुए चेहरे पर से मक्खियाँ उड़ाता रहा।

मध्याह्न के कुछ देर बाद कोई ऐसी बात हुई कि वह झपटकर झोपड़ी के बाहर निकला। हफ्तों से वह मौसम को परख रहा था। वह जानता था कि जब दक्षिण-पूर्वी ट्रेड हवाएँ स्थिरता और वेग धारण कर लेती हैं तो समुद्र के इस प्रसुप्त और अनिश्चित टेढ़ी तिरछी हवाओं-वाले हिस्से में एक परिवर्तन दिखाई देने लगता है। और आज उसने देखा कि रेत पर एक गहरी छाया दौड़ रही है और सूर्य पर एक झाँई-सी चढ़ी जा रही है।

सारा फूफुटी नगर निद्रा में निमग्न था। घरों के नौकर पीछे के बरामदों में पड़े खर्राटे ले रहे थे। कपड़े के पर्दे की आड़ में एजेण्ट महोदय नारियल से लदे जहाजों और उनसे उपार्जित मुनाफे के सुख-स्वप्न देख रहे थे। मॉय जैक अपनी शराब की बोतलों के बीच ऊँघ रहा था। कौन ऐसा पागल था कि मध्याह्न में विश्राम के समय धूप में बाहर निकलता—सिवाय काराकी के जो असभ्य बर्बर होने के नाते न तो दस्तूर की पर्वाह करता था और न सुखद स्वप्नों की? लहरों के गम्भीर नाद में उसकी हलकी पेलट समुद्र की दिशा में गायब हो गयी। वह एक प्रेत-छाया की तरह इधर-उधर दौड़ रहा था। और इस तरह जब सारा फूफुटी सो रहा था वह उस काम में लग गया जिससे उसकी नौकरी का कोई सरोकार न था.....

बहुत समय हुए काराकी ने दो पते की बातें मालूम कर ली थीं: एक तो यह कि कम्पनी के कमरों की कुंजी कहाँ रहती थी और दूसरी यह कि बन्दूकें और गोलियाँ कहाँ छिपाकर रखी गयी थीं। उसने कम्पनी के कमरे खोले और उनमें से तीन थान चटख लाल कपड़े के, कुछ चाकू, दो बक्स तम्बाकू और एक छोटी कुल्हाड़ी छाँट ली। इसके अलावा वहाँ बहुत कुछ था जो काराकी ले सकता था। पर काराकी एक सरल रुचि का कुशल मनुष्य था।

इसके बाद कुल्हाड़ी द्वारा उसने बन्दूकों के सन्दूक को खोल डाला और उसमें से एक विंचेस्टर राइफल और एक कार्तूस का बड़ा बक्स निकाल लिया। उसी कुल्हाड़ी से उसने नावों के छवाँन का फाटक खोल दिया। फिर उसी कुल्हाड़ी से उसने एंजिन से चलनेवाली दो छोटी और एक बड़ी नावों के पेंदों की लकड़ी काट डाली ताकि वे बहुत समय के लिए बेकार हो जायँ। सचमुच वह बड़ी काम की कुल्हाड़ी थी, जैसे अमेरिका की आदिम जातियों के फरसे होते हैं। और उसकी धार उस्तरे की-सी तेज थी। उसके सही हाथ मारने में काराकी को एक कुशल कारीगर का-सा सुख प्राप्त हुआ। करीब-करीब वही उसके लिए इस लूट की सबसे प्रिय वस्तु थी।

समुद्र के तट पर एक बड़ी देशी नाव पड़ी थी, एक तरह की अर्धचन्द्राकार 'कनू' जो दोनों छोर पर पतली और ऊँची थी और जिसे बूगेन्विल में काराकी के स्वजातीय काम में लाते थे। पिछले मौसम उत्तर पश्चिमी बारिश की हवा ने उसे फूफुटी के तट पर ला फेंका था, और काराकी ने उसकी मरम्मत कर डाली थी, ऐन एजेण्ट महोदय की आज्ञा के मातहत। इस नाव को उसने समुद्री झील में प्रवाहित कर दिया और उसमें अपनी लूट का माल लाद दिया।

यात्रा के लिए आवश्यक सामग्री को उसे चुनने का अधिक समय नहीं मिला। उसने चावल का एक थैला ले लिया और एक आलू का भी। जाली के झोले में जितने भी नारियल वह तीन खेप में ले जा सकता, ले गया। उसने एक कनस्टर पानी का रख लिया और एक डिब्बा बिस्कुट भी। और इसी समय एक अजीब घटना घटी। बिस्कुट की तलाश में उसको एजेण्ट की निजी असली आइरिश शराब की बोतलों का एक पूरा बक्स मिल गया। उसने उनको देखा और आगे चलता बना। वह शराब की बोतल पहचानता था यद्यपि वह एक असभ्य बर्बर था। पर उसने उस शराब पर दिल न ललचाया। जब मॉय-जैक ने उसके इस त्याग के बारे में सुना तो उसे काराकी की आँख की वह हरी चमक याद आई और उसने भविष्य-वाणी की कि काराकी जीते जी नहीं पकड़ा जायगा।

जब सारी तैयारी हो चुकी तो काराकी ने अपनी झोपड़ी में जाकर क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट को जगाया। "मालिक उठो, उठो, चलो अमारा साथ!"

पेलेट महाशय उठ बैठे और उन्होंने काराकी की ओर देखा। कहने का तात्पर्य यह कि उन्होंने उसकी दिशा में मुँह कर आँखें खोलीं, कुछ देखा या नहीं यह तो मनो-विज्ञान के गूढ़ प्रश्नों में माना जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी गम्भीरता से वे बोले: "समय बीत चुका। यह दूकान बन्द हो चुकी। ब्वॉय, आवारा फिरनेवाले हरामजादों को हमारा सलाम बोलो। मैं . . . . . मैं . . . . . तो अब सोता हूँ।"

तदुपरान्त वे पीठ पर दराज हो गये।

काराकी ने उसे झकझोरकर जगाते हुए कहा "जागो साब तुम बहुत सोया। सुनो मालिक रम—रम पियेगा ना? रम है जितनी चाहो—कसम से! बउत बउत रम मालिक, क्या?"

पर यह जादू का मन्त्र भी पेलेट के बहरे कानों पर असर न कर सका। पेलेट पेट भरकर पी चुके थे और जड़जगत् का नियम अब यही कहता था कि घड़ी के पूरे चक्कर के बाद ही उनका नशा उतरेगा।

काराकी ने बड़ी कठिनाई से चटाई और पेलेट की पीठ के बीच संधि बनाई और धीरे-धीरे उसकी कमर के नीचे अपना कंधा टिकाकर उसे आटे के बोरे की तरह कंधे पर उठा लिया। पेलेट का वजन था डेढ़ सौ पाउण्ड और काराकी का सिर्फ एक सौ पाउण्ड। फिर भी कुली-गीरी के किसी चातुर्य से उसने अपने उस बोझ को अपने शरीर पर संतुलितकर साध ही लिया और यद्यपि पेलेट के पाँव जमीन चूम रहे थे, वह उसे समुद्र के किनारे ले गया। यही नहीं, उसने उसे नाव पर भी पहुँचा दिया। पेलेट डूबते-डूबते बचा और नाव भी करीब-करीब उलट ही गयी। पर अंत में काराकी सफल रहा।

किसीने उनको रवाना होते नहीं देखा। फूफुटी नगर निर्विघ्न सोता रहा। इससे बहुत पूर्व कि एजेण्ट महोदय जागें और इस दुर्घटना से आगबबूला हो जायँ उनकी अर्धचन्द्राकार नौका समुद्री झील से बाहर हो गयी और ट्रेड हवा के पंखों पर क्षितिज के पार पहुँच गयी।

(२)

पहले दिन काराकी को ट्रेड हवा के पूरे बल पर नाव को संतुलित रखने में बड़ी मुश्किल रही। बड़ी बड़ी धूमिल लहरें आग्नेय कोण से उभरती आती रहीं और अगर वह जरा भी उन्हें मौका देता तो वे अवश्य ही नाव को डुबा देतीं। वह एक अशिक्षित बर्बर था जो न तो कुतुबनुमे से परिचित था, न अक्षांश से। पर उसके पूर्वजों ने अपनी छोटी-छोटी नावों में वह यात्राएँ तय की थीं जिनके मुकाबिले में कोलम्बस का महाप्रयास नदी पार करने के समान था। काराकी एक टीन से नाव का पानी निकालता था, चटाई का पाल चढ़ाये था और डाँड़ से दिशा निर्देश कर रहा था: पर वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जा रहा था।

सूर्योदय के कुछ पहले पेलेट महाशय नाव की तलहटी के उथले पानी में कसमसाये और उन्होंने नशे की हलकी हरियाली से दीप्त चेहरा ऊपर उठाया। चारों ओर लहराते अनन्त सागर पर उन्होंने एक विस्मित दृष्टि डाली और फिर कराहकर वैसे ही लुढ़क रहे। एक अच्छे अव-काश के बाद उन्होंने फिर कोशिश की, पर वह प्रलयंकर पारावार धोखा साबित न हुआ और तब उन्होंने अपने शरीर को काराकी की ओर मोड़ा जो नाव के सिरे पर फुहार से भीगी देह लिये दबका-सा बैठा था।

उत्कंठित स्वर में उन्होंने याचना की "रम।"

काराकी ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया और पेलेट साहब की दृष्टि एक निःशब्द आतंक के त्रास से मैली हो गयी।

उन्होंने समुद्र को इंगित कर कहा: "हटाओ यहाँ से इस तमाम पानी को" . . . . . .

इसके बाद दो दिन तक उन्हें बुरी तरह मतली होती रही, और उन्होंने यह जाना कि किस तरह एक हलकी नाव किसी भी सामुद्रिक दिशा में डेढ़ मिनट के भीतर सैंतालिस भिन्न दिशाओं में संचालित की जा सकती है। यह कोई साधारण ज्ञान नहीं, जैसा कि जिन्होंने इसे अप-नाया है आपको बतायेंगे। इस सब ने तो पेलेट के प्राण ही ले लिये। तीसरे दिन जब वह जागा तो उसका पेट और मुँह धुँआ खाये चमड़े की तरह हो रहे थे और वह अत्यन्त कमजोर हो चुका था, पर अन्यथा उसको अपनी इन्द्रियों पर कुछ अधिकार प्राप्त हो चुका था। तूफान थम गया था और काराकी निश्चित भाव से ताजे नारियल खाने के लिए साफ कर रहा था। जब वह दो नारियलों का पानी पी चुका तो पेलेट को उस ब्रांडी की याद आई जिससे उसका ब्रेकफास्ट हमेशा अपने पूरे स्वाद को प्राप्त होता था। पर जब उसे वह याद आई तो उसका गला नारियल के पानी को पीते-पीते रुँध सा गया।

"मुझे रम चाहिए!"

"हंगा नाँई"

पेलेट ने आगे देखा फिर पीछे, दायें फिर बायें। क्षितिज का विस्तार बहुत बड़ा था पर और कुछ न था। जो कुछ हो रहा था उसमें पेलेट को पहली बार एक विचित्रता का आभास हुआ।

"इतनी दूर क्यों निकल आये हो?" उसने पूछा।

"ट्रेड हवा—बड़ी हवा माँगता नाव के वास्ते" काराकी ने समझाया। पेलेट की हालत ऐसी न थी कि वह इस व्याख्या का विश्लेषण करता या नाव में रसद का ढेर देखकर यह सोचता कि वे भटके हुए मछली के शिकारी न थे। उसकी उलझन कुछ और थी। उसे अजीब और दिलचस्प चीजें दिखाई दे रही थीं—कुछ गुलाबी, कुछ बैंजनी और कुछ जो कि इन्द्रधनुष के समान धारियों से आभूषित थीं।[१] महासागर की विनाशकारी गहराइयों

१—लेगून (Lagoon) वे सागरवर्ती झीलें हैं जिनमें समुद्री पानी ही रहता है और जो समुद्र से संबद्ध रहती हैं।

१—"डिलीरियम ट्रेमेन्स" शराबियों का एक मनो-विकार होता है जिसमें शराब न मिलने पर उन्हें चित्र-विचित्र वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं यद्यपि उनका कोई अस्तित्व नहीं होता। इसी दशा की ओर यहाँ संकेत किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul-Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में से उभर-उभरकर क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट के मनोरंजन के लिए ये आकृतियाँ झुंड की झुंड आने लगीं। वे उसके लिए बड़ी दिलचस्प साबित हुईं।

अगर आप उस आदमी की शराब, जो कि दो साल तक उसमें भीगता रहा है, यकायक बन्द कर दें तो इसका नतीजा बड़ा ही दिलचस्प होगा। इसलिए कुछ दिनों तक काराकी की नाव गीतों और कविता-पाठ से ध्वनित वातावरण में समुद्र पर दौड़ती रही। पेलेट के हाथ-पाँव रस्सी से बँधे थे और उसको एक मस्तूल से बाँध दिया गया था और वहीं पड़े-पड़े वह अपनी मासूम जवानी के गीत अपने प्रमाद में गा रहा था। समझनेवाले के लिए वह सुनने की चीज थी, पर वहाँ तो केवल काराकी ही था जिसको मध्यम श्रेणी के सामन्त कालीन कवियों में रुचि न थी और "एटलान्टाइन के लाइडन"[२] के पूरे-पूरे पन्ने जिस पर कोई प्रभाव न रखते थे। बीच बीच में वह एक लोटा पानी उस बेचारे अँगरेज पर उछाल देता था या चटाई फैला कर सूर्य से उसका बचाव करता था या जबरन नारियल का दूधिया पानी उसे पिलाता था। काराकी कविता का बड़ा अयोग्य श्रोता था, पर निपुण नर्स था। वह दिन में दो बार पेलेट की गलमूछों में कंघी भी करता था।

वे वहाँ जा निकले जहाँ हवा थमी हुई थी। पर हलकी पश्चिमी ट्रेड हवा ने फिर उन्हें अपनी बाँहों में ले लिया जिसके कारण काराकी की नाव का मुँह पश्चिम की ओर मुड़ने का बल पा गया और दमकते पीतल के से आकाश के नीचे वे फिर बह चले।

"मेरे शरीर में मेरा हृदय ऐसा है
जैसे आग में दबी राख;
जिसने भी मुझे बिना वीणा
और बिना सितार के देखा है
वही मेरा अपवाद करेगा
मुझे उन कर्मों का भागी कहेगा
जिनकी कामना करना बुरा है...."

इन शब्दों में क्रिस्टोफर एलेक्जन्डर पेलेट सस्वर कविता-पाठ कर रहे थे और उनके चेहरे का रंग अब मानवी त्वचा से अधिक मिल रहा था और सड़ी सेवार से कम।

जब भी मौका मिलता काराकी उन छोटे द्वीपों में से एक की आड़ लेता जिन्हें विधाता ने सान्ताक्रुज प्रदेश पर छिटका दिया है, और किसी तरह चावल और आलू पानी निकालने के डोंगे में पकाता। इसमें खतरा अवश्य था क्योंकि एक दिन ऐसा ही एक द्वीप आबाद साबित हुआ। एक बड़ी नाव में दो अँगरेजों ने आगे बढ़कर उन्हें रोकने की कोशिश की। एक भागे हुए हब्शी की सूरत को काराकी छिपाने में असमर्थ था और उसने इसकी चेष्टा भी न की। पर जब उनकी नाव पचास गज की परिधि में आ गयी तो उसने अपने आपको अचानक एक बन्दूक-धारी भागा हुआ हब्शी घोषित कर दिया। वह एक अँगरेज को मरा और नाव को डूबता छोड़ गया।

मस्तूल के पास से पेलेट ने कहा "मेरे पास यहाँ गोली से छेद हो गया है। इसे बन्द कर दो।" काराकी ने उस छेद को बन्द करके अपने यात्री को बंधनों से मुक्त कर दिया। पेलेट उठ बैठा और अपने हाथ-पाँव सीधे करने में उसे एक अत्यन्त सरल शारीरिक सुख का अनुभव हुआ।

उसने काराकी को घूरकर देखा और कहा, "अच्छा तो तुम एक सत्य हो, मेरा भ्रम-मात्र नहीं। तुम्हारे सच होने में कोई संशय नहीं है। यह अच्छी ही बात है।"

उसने ठीक कहा। काराकी एक कठोर सत्य था।

"यह नाव तुम किधर लिये जा रहे हो ?"

काराकी ने गेन्विल के स्वदेशी नाम का उपयोग कर कहा, "बाल्बी"

पेलेट का आश्चर्य मुखरित हो उठा। एक छोटी-सी खुली नाव में आठ सौ मील भाग निकलना कोई साधारण काम न था। ऐसी हिम्मत का उसके हृदय ने आदर किया। इसके अतिरिक्त इस छोटे से आदमी की कुशलता का प्रमाण अभी उसे मिल चुका था।

"बाल्बी में तुम्हारा घर है ?"

"हाँ।"

"बहुत ठीक कप्तान साब" पेलेट बोले "बढ़े चलो। पता नहीं तुमने मुझे क्यों व्यापार की गठरी में शामिल कर लिया है, पर मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

(३)

अजीब बात है--पर शायद इतनी अजीब भी नहीं--कि जैसे-जैसे विष पेलेट की, माँस-पेशियों में से छनकर बाहर होता जा रहा था वह अपनी आत्मकथा में से फूफूटी सम्बन्धी अध्याय को भूलता जा रहा था। जो क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट आविर्भूत हो रहा था वह बहुत पहले का पेलेट था: बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट, मानना पड़ेगा, और अति उदार मूल्यांकन से भी एक उद्देश्यहीन, आलसी, कमजोर व्यक्ति, पर ऐसा कि जिसमें साधारण मानवी गुण मौजूद थे और जो साधारण से कहीं अधिक बुद्धि रखता था।

पहले तो वह बहुत कमजोर था, पर काराकी के तैयार किये नारियल तथा आलू के पथ्य ने उस पर जादू का असर किया, और एक समय आया कि जब समुद्र की फुहार का नमक उसके ओठों को सुखद लगने लगा और वह घंटों तक शराब की प्रमादी प्यास को भूला रहा। उनकी जोड़ी निराली थी--सरल स्वभाव बर्बर और स्वास्थ्य में उन्नत होता शराबी--पर कौन स्वामी था इसमें कभी संदेह पैदा नहीं हुआ। इसका निर्णय तीसरे सप्ताह में हुआ जब उनकी रसद चुकने लगी और पेलेट ने देखा कि काराकी ने दिन भर कुछ नहीं खाया।

२--अँगरेजी कवि स्विन्बर्न का एक विख्यात कविता-पद्य नाटक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेलेट ने कहा था "यह क्या ! यह नहीं हो सकता। तुमने मुझे आखरी नारियल दे दिया, अपने लिए कुछ नहीं रखा।"

"अम को माँगता नई" काराकी ने संक्षेप में उत्तर दिया।

उन लम्बी अवकाश की घड़ियों में जब जल और आकाश के बीच केवल नाव के नीचे फेनिल समुद्र की तीव्र धारा और पाल की चरचराहट और फड़फड़ाने का शब्द ही व्याप्त रहता था, क्रिस्टोफर एलेक्जेंडर पेलेट ने कई बातों पर गहन विचार किया। सोचते-सोचते उनके माथे पर वेदनायुक्त बल पड़ जाते। स्मृतिपटल के स्तर तक उन्हें खींच कर लाना हमेशा सुखकर नहीं होता। विवेक दीर्घकाल तक शराब में डूबे रहने से शांतिदायक साथी नहीं बन जाता। डिलीरियम के प्रेतों से उसका मुकाबला हो चुका था। बीते जीवन की स्मृति के वृहत्तर प्रेतों को उसे अब समझना था। इसके पूर्व वह इन स्मृतियों का सामना ही न कर पाता था।

पर यहाँ तो पलायन का कोई मार्ग न था। इसलिए उसने उनका सामना किया, उनसे युद्ध किया और एक एक कर उन्हें धराशायी कर दिया।

जब वे उन्तीस दिन सफर तय कर चुके तो उनके पास थोड़े से पानी को छोड़कर खाने को कुछ न बचा। काराकी बड़ी कृपणता के साथ नारियल की जटा पानी में भिगोकर पेलेट को चूसने को देता था। पेलेट की खिसियाई सी आपत्ति के बावजूद भी वह खुद कभी नहीं लेता था। फिर एक बार, बर्बर ने उस मनुष्य के भग्नावशेष की शुश्रूषा की, इस बार उसे प्यास की वह पराकाष्ठा पार कराई जब पानी के ढोल की लकड़ी पर से अन्तिम बूँद चाकू की धार पर पोंछकर उसने पेलेट को प्रदान की।

फूफुटी से चले हुए उनको छत्तीसवाँ दिन था। जब उन्हें श्वाज्यू एक लम्बी हरी पश्चिम में फैली दीवाल की तरह उठता दिखाई दिया।

उसके उन्नत ललाट की छाया में पहुँचकर काराकी चाहता तो सफलता के ढोल बजा सकता था। सॉलोमन्स की छः सौ मील की पूरी लम्बाई को उसने अपना लक्ष्य माना था पर तूफान और प्रतिकूल धाराओं तथा नौका संचालन के यन्त्रों की अनुपस्थिति में एक क्षुद्र जलयान द्वारा इतने विस्तृत प्रदेश को कहीं भी पा लेना प्रत्यक्ष ही नौका संचालन की एक उच्च कोटि की सफलता थी। पर काराकी चिन्तायुक्त मुद्रा से केवल अपने पीछे पूर्व की दिशा में देखता रहा।

सुबह से हवा के झोंके रुक रुककर आ रहे थे। दोपहर तक हवा एकदम बन्द हो गयी और समुद्र की चंचल सतह तेल की तरह हो गयी। बैरोमीटर ऐसे समय में बड़ी बुरी भविष्यवाणी करता। काराकी को भी इसका कुछ आभास अवश्य हो गया क्योंकि उसने लड़खड़ाते पैरों से उठकर अपने छोटे मस्तूल को उखाड़ लिया। फिर उसने अपना सारा सामान नाव की तह में ठीक से बाँधकर सुरक्षित कर लिया, और अपनी अवशिष्ट शक्ति को [illegible] को उस ओर खेने में लगा दिया जिधर प्रहरी के से [illegible] छोटे द्वीप के तट की श्वेत रेखा खिची हुई थी। अभी [illegible] तो भाग्य ने उनका साथ खूब निबाहा था पर अबकी [illegible] से दो मील की दूरी पर तूफान का पहला झोंका [illegible] पर टूट पड़ा।

काराकी चमड़े के थैले में हड्डियों का ढेर रह [illegible] था और पेलेट में हाथ उठाने की भी शक्ति न थी। [illegible] किनारे की चट्टानों पर आग की लपट की तरह फुफकार [illegible] लहरों के बीच का राकी पेलेट के प्राणों की रक्षा करता रहा [illegible] क्यों और कैसे वे बच गये, नहीं कहा जा सकता या शायद इसलिए कि उस अँगरेज के भाग्य में यही लिखा था कि शराब, बीमारी, प्रमाद और भूखे मरने के पश्चात उसे फिर और आखरी बार एक काला हब्शी पानी [illegible] विकराल पंजे से छुड़ाये। जब वे द्वीप के तट पर पहुँचे तो दोनों की देह बुरी तरह छिली हुई थी, पर वे जीवित थे, और काराकी अब भी पेलेट की कमीज कसके पकड़े हुए था .....

वे वहाँ एक हफ्ते रुके रहे। इस बीच में पेलेट पेट भर भर के अनगिनत नारियल खाते रहे और काराकी नाव की मरम्मत करता रहा। वह एक झाड़ियों के झुरमुट में आ फँसी थी जहाँ पानी भर गया था। पर उनका जमा-जथा सुरक्षित थी। वे कहाँ थे, इसका पता काराकी को एक उधर से गुजरते देसी मछलीमार से प्राप्त हुआ और तब वह जान गया कि उसकी संपूर्ण सम्पत्ति सुरक्षित थी। जिस द्वीप पर उसका घर था वह बूगेन्विल खाड़ी के पार थोड़ी दूर पर ही था। पेलेट ने पूछा, "बाला उधर को है ?"

काराकी ने कहा "हाँ"।

"यह तो बहुत अच्छी बात है" पेलेट खुश होकर बोले "अँगरेजी हुकूमत यहाँ खत्म होती है, प्यारे ! ब्रिटेन की बहादुर सरकार यहीं तक सीमित है—इसके आगे वो नहीं जाने सकता।"

काराकी इसे अच्छी तरह जानता था। अगर संसार में वह किसीसे डरता था तो वह था फीजी का हाईकमिश्नर और वहाँ पर नियुक्त दक्षिणी सॉलोमन्स का स्थानीय कमिश्नर जो अपने क्षेत्र में अपराधियों को अचूक और पूरा दंड देता था। एक बार वह खाड़ी के पार हो जाय तो केवल चोरी और इकरारनामे के भंग करने का आरोप [illegible] उस पर लग सकता था। मगर—और यह मुख्य बात थी—उसने बूगेन्विल में क्या किया इसका हवाला उससे कोई नहीं माँग सकता था।

इसलिए काराकी संतुष्ट था।

उधर क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट भी सन्तुष्ट थे। उनका शरीर निचोड़ा, झटकारा और माँजा जा चुकाथा। शीतल वायु और निर्मल धूप उनके हृदय में उतर गयी और ओठों पर उनका स्पर्श सुखद था। उनकी हड्डियाँ एक मिठास से भर गयी थीं। जैसे-जैसे शरीर ने बल प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया वे समुद्री झील में तैरने या काराकी की नाव की मरम्मत में सहायता करने लगे। घंटों वे समुद्रतट की हलकी गरम रेत को छाती से लगाये रहते या किसी नन्हीं सीप की आकृति पर मुग्ध हो गुनगुनाने लगते। चारों ओर तूफान से उद्वेलित लहरें शीत होती जातीं और उन्हें जीवन अत्यन्त सुखद प्रतीत होता।

"कितना सरस है यह जीवन!" वे सोचते।

काराकी को वे समझ न पाते। इसकी उन्हें अधिक चिंता न थी क्योंकि बाल-सुलभ सर्वव्यापी विस्मय से उनका हृदय उन दिनों भर गया था। पर वे इस गुमसुम बर्बर के बारे में सोचते कि किस तरह उसने निःस्वार्थ सेवा पर अद्वितीय बलिदान की कलँगी लगा दी थी। और आज जब वह इन बातों को सोचते तो उन्हें इनका कोई कारण न मिलता। आखिर क्यों? प्रेम? दोस्ती? यही होगा, और यह सोचकर उनका दिल उस नाटे, मौन, धँसी आँख और शून्य मुखाकृतिवाले मनुष्य के लिए द्रवित हो उठता जिसके चेहरे पर वह कोशिश करके भी मुस्कराहट पैदा न कर सके थे।

"अरे ओ काराकी! तू यार, मेरे साथ कभी हँसता क्यों नहीं? क्यों रे? तूने जो माल चुराया है उसका तुझे बहुत डर है क्या? मत घबरा, बेईमान! अगर उन्होंने कभी तुझे इसके लिए तंग किया तो मैं सब ठीक कर दूँगा। अरे इसमें क्या धरा है रे, कह दूँगा मैंने ही सब कुछ चुराया था।"

काराकी मुँह ही मुँह में कुछ बुदबुदाकर एक ओर बैठ अपनी विन्चेस्टर राइफल एक चिथड़े तथा सूखे खोपरे से निचोड़े दो बूँद तेल से साफ करने लगा।

"इसका भी कोई असर नहीं!" पेलेट ने हैरान होकर अस्फुट स्वर में कहा "तेरी इस काली खोपड़ी में कौन से विचार चक्कर काटते हैं, मैं अवश्य जानना चाहता हूँ। तू तो किप्लिंग[१] की एकान्तप्रिय बिल्ली के समान है, यार। पर भगवान् जानता है कि मैं कितना कृतज्ञ हूँ तेरा। काश कि मैं बता सकता—"

यह कहते-कहते पेलेट उछल पड़े,

"अच्छा देख काराकी मैं तेरा पक्का दोस्त: समझा? और तू मेरा पक्का दोस्त: समझा? हम दोनों पक्के गहरे दोस्त वादा रहा। ठीक है न?" काराकी ने कहा "हाँ" और चुप हो रहा। उसने पेलेट की ओर देखा, फिर सुदूर बूगोन्विल की ओर दृष्टि डाली। उसने कहा "हाँ, वादा रहा" और बन्दूक साफ करने लगा, अन्त तक वह एक काला हब्शी रहा जो एक पहेली था, रहस्यमय और साधारण समझ के बाहर।

(४)

यह "अंत" दो ही दिन बाद बूगोन्विल में सामने आया।

एक जाज्वल्य प्रातः बेला में वे खाड़ी में दाखिल हुए जो अपनी दमकती हीरक-सी बाहें पसारकर मानों उनका स्वागत कर रही थी। पृथ्वी रंगीन आवरणों से परिवेष्ठित एक अर्द्ध-जाग्रत नायिका के समान प्रसारित थी, आभायुक्त, मुस्कराती, इन्द्रियों के मधुर स्पन्दन से विमुग्ध, जीवन के प्रवाह से प्रकंपित सुगंधियों से उच्छ्वसित और निकटतम—

ऐसे ही कुछ प्रलाप के साथ पेलेट किनारे पर कूद पड़े और दौड़ कर एक चट्टान पर जा चढ़े जहाँ से वे सब कुछ देख सकें, अनुभव कर सकें और इस दिव्य प्रदेश के जादू को अपने में आत्मसात कर लें।

इस बीच में सरल चित्त और कुशल काराकी अपने निजी काम में व्यवस्थित ढंग से व्यस्त था। उसने अपनी कपड़े की गाँठें, तम्बाकू, छुरे और बाकी लूट का माल उतारा। कार्तूसों के डिब्बे, राइफल और कुल्हाड़ी को भी उतार लिया। चीजें समुद्र के पानी से कुछ खराब हो चुकी थीं, पर हथियार बड़ी हिफाजत से साफ करके चमकाए हुए थे.....

पेलेट रम्य एकान्त को कविता सुना रहा था कि उसे पैंछट की आहट मिली और उसने घूमकर आश्चर्य से देखा कि काराकी ठीक उसके पीछे दाएँ हाथ में कमर पर बन्दूक और बाँह में तेज कुल्हाड़ी लिये खड़ा है।

पेलेट ने प्रसन्न होकर कहा "कहो दोस्त, क्या चाहिए?"

काराकी की आँखों में वही रोशनी चमक गयी जिसे मॉय जैक ने गहरे पानी में एक हिंसक मछली की करवट के सदृश पाया था, और उसने कहा, "अमको साब तुम्हारा सिर बहुत पसन्द, उसी कूं माँगता।"

"क्या? सिर! किसका सिर? मेरा?"

"हाँ" काराकी ने सरलता से उत्तर दिया।

तो यह बात थी। यही वह रहस्य था। बर्बर उसके सिर पर मोहित हो गया था और इस तरह क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट के सुर्ख गलमुच्छों ने उसके प्राण ले लिये। काराकी के देश में किसी अँगरेज का धुँआ दे के सुखाया सिर धन, सम्पत्ति, जमीन जायदाद, मुखियागिरी की ख्याति से भी मूल्यवान् और स्त्री के प्रणय की तरह प्रिय माना जाता है। उसके देश भर में किसीके पास पेलेट का-सा सिर न था। इसलिए हजरत याकूब की लगन और निष्ठा के साथ उसने उसके हेतु अथक सेवा की थी। इसीके लिए उसने षड्यंत्र रचा, मौके की प्रतीक्षा की, चोरी की, खून किया, पसीना बहाया और चालाकी की, भूखा रहा और त्याग किया, सेवा-शुश्रूषा की, देखभाल की, उपचार किया, खिलाया-पिलाया और इस अँगरेज गौरांग को सुरक्षित रखा, केवल इसलिए कि वह उसके जीवित सिर को एक बकरे या बैल की तरह उस स्थान तक ले आये जहाँ उसे आराम से काटा जा सकता था और जहाँ वह अपनी मेहनत के फल को सानन्द भोग सकता था।

पेलेट ने यह सब पलक मारते समझ लिया, जहाँ तक

१ एक अँगरेजी के लेखक जो कभी भारत में अखबार के सम्पादक भी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का सन्देश

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

लगी विश्व में आग, धुआँ कैसा विषाक्त छाता है?
किंतु कौन यह लिए दृगों में सुधाधार आता है?

चारों ओर शोर भीषण है, पीर अधीर भुवन में,
सुलग रही है शिखा गरल की व्यक्ति-व्यक्ति के मन में;
बँटी नहीं धरती केवल, किस्मत का भी बँटवारा,
दानवता की विजय, सदा देवत्व मनुज का हारा।
घूम रहे हैं घात लगाए स्यार दग़ा देने को,
ऊपर चील-गीध मँडराते झपट छीन लेने को;
लप-लप करती जीभ बढ़ी आती नर भक्षक टोली,
भीतर है विषभरा, रसीली पर अधरों की बोली।
टुकड़ा देकर एक चाहते हैं सब कुछ हर लेना,
मिटा मनुज का स्वाभिमान फिर श्वान उसे कर देना!

घिरा राहु से चंद्र गगन में क्षीण हुआ जाता है!
किंतु कौन यह लिए दृगों में सुधाधार आता है!

शिखरों का विस्फोट, दिग्गजों ने ली क्या अँगड़ाई?
मध्यपूर्व में वेष बदलकर ईर्ष्या लड़ने आई।
अफ्रीका तब बच पाए क्यों, स्वार्थ उधर जगता है,
सच, काले मनुष्य का मीठा बड़ा लहू लगता है!
छिटक पड़ी है वही इधर भी एक ज्वलित चिनगारी,
मरघट-सी बन गई पलों में हरी-भरी फुलवारी।
चले चाल कोई भी लेकिन कटता पहले प्यादा,
शतरँज के मोहरों से नर की रही न कीमत ज्यादा,
बड़ी जलन है उर में सोई चिर-प्रशांत सागर के,
दहक रहे हालाहल पीकर प्राण नील अंबर के!
खड़ा युगों से मौन हिमालय बेबस अकुलाता है।
किंतु कौन यह लिए दृगों में सुधाधार आता है?

भारत की आवाज नहीं यह मानवता की आशा,
मूक पड़े, सदियों से कुचले जनजीवन की भाषा!
भारत के स्वर में अंतर का सुप्त देवता जागा,
इसकी दृढ़ पुकार में निर्भय स्वत्व मनुज ने माँगा।
दूर करो दनुजत्व-द्वेष को, जियो और जीने दो,
समय-सिंधु-मंथन से निकला अमृत कलश पीने दो!
दो विकल्प में एक---मरणमुख या जीवनसुख पाना,
नहीं रास्ता और जगत को होगा अब अपनाना!
जगी अगर भारत की संस्कृति, नर का भाग्य जगेगा,
डूब गई तो चिरकालिक फिर निश्चय ग्रहण लगेगा।
नाश या कि निर्माण---प्रश्न श्रुतियों से टकराता है!
तभी लिये नयनों में कोई सुधाधार आता है!

कोई भी अँगरेज इस बात को समझ सकता था: और उसकी मौलिक तथा गहन सरलता को भी समझा। और तब शक्तिमान् शरीर और स्वस्थ मानस से उस मंगल प्रभात में वह ठहाका मारकर इतने जोर से हँसने लगा कि समुद्र की ऊर्मियों पर दूर तक उसका अट्टहास गूँज उठा और चट्टानों की चोटियों पर बैठे समुद्री पक्षी उससे आतंकित हो उड़ चले। वह उस मनुष्य का भीम गम्भीर अट्टहास था जो जीवन की अंतिम ठिठोली की तह पा जाता है और उसे स्वीकार कर लेता है।

क्योंकि संशोधित सूची के अनुसार, क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट की मिलकियत में अब ये शामिल थे: उसका पूरा नाम जो बदस्तूर-अखंड था; जीन की पुरानी पतलून के अवशेष; उसके कीमती गलमुच्छे और एक आत्मा जिसको उसके मित्र काराकी ने बड़ी सफाई से पुनर्प्रजनित, पुनर्निर्मित, परिमार्जित किया था और उसे फिर से सौंप दिया था।

"तू ऐसे मर जैसे कि तेरे
ऊपर कोई आँसू बहाने वाला नहीं है।
अपनी आँखों को, अपने कानों को भर
प्रकाश से....कुसुमित जीवन से,
सौन्दर्य से....."

क्रिस्टोफर एलेक्जेन्डर पेलेट ने यह गीत समुद्र की लहरों को सुनाया और फिर एकदम घूमकर बाहें फैलाकर कहा---

"मार गोली! यह सब इन दामों भी महँगा नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाले के उस पार

श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय

थाने की घड़ी पाँच बार बज कर चुप हो चुकी है। आज मुझे काम है। इसीलिये दूध लेने जल्दी जा रहा हूँ। लेकिन अधिक जल्दी नहीं लग रही है। गर्मियों के दिन जो हैं।

नाले के पास पहुँचते ही मैं सहम जाता हूँ। यह एक दिन की बात नहीं है। ऐसा हमेशा ही होता है। इसलिये नहीं कि झुटपुटे के बीच, पास ही किसी झाड़ी में चोर के छिपे होने की आशंका हो। बल्कि—

वैसे तो ग्वालों ने इस नाले पर पुलिया को बड़ी मेहनत से बनाया है ताकि नाले के इस पार रहने वाले बाबू लोग आसानी से उन तक पहुँच जायँ। उन्हें किसी प्रकार की दिक्कत न हो। वे तो इसका इतना ध्यान रखते हैं कि कहीं पुलिया पर बिछे तख्तों में से कोई टुकड़ा सड़ तो नहीं गया है, टूटने की आशंका तो नहीं है, जिससे दूध लेने आनेवाले बाबू लोगों में से कोई बाबू तख्ते के एकाएक टूट जाने से नाले में न गिर पड़े और डरकर बाबू लोग उनसे दूध लेना ही न छोड़ दें।

बाबू लोग यहाँसे दूध तो ले जाते हैं, पर मजबूरी की स्थिति में। बल्कि कई लोग तो दूध ले जाते हुए कहते हैं—यहाँसे दूध ले जाना तो अपने को बीमार करना है। कितनी बदबू आती है नाले के पास! कैसे रहते होंगे ग्वाले यहाँ?

शहर का यह भाग, अभी वीरान पड़ा है। शायद इस विकास बेला में अन्य जगहों की तरह इस नाले को कभी ढँक दिया जायगा। फिर उस पर ऊँची-ऊँची नई डिजाइनों की इमारतें खड़ी कर दी जायँगी जिनमें सभ्य और सुसंस्कृत लोग रह सकें। लेकिन अभी तो यहाँ गंदे घिनौने ग्वाले ही रहते हैं।

इसी पुलिया के पास एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ है जिसकी जटाएँ दिन पर दिन झुकती जा रही हैं। कुछ जटाएँ इतनी झुक गई हैं कि नाले के गन्दे पानी के अन्दर तक जा चुकी हैं। कुछ और झुक रही हैं जिसके कारण ग्वालों के बच्चों के लिए यह बरगद का पेड़ आँख-मिचौनी खेलने व झूले का काम देता हैं। वे सारे दिन इसी पेड़ से खेला करते हैं। मुझे उनका खेलना बहुत भला लगता है।

पर एक बात का ग्वालों के पास भी कोई इलाज नहीं है। अगर सात-आठ आदमी एक साथ पुलिया पर चलें तो वह बड़े जोरों से हिलने लगती है। उस क्षण तो ऐसा लगता है—जैसे पुलिया अब टूटी। फिर पुलिया का एक सिरा दूसरे से कुछ ऊपर उठ आया है जिसके कारण एक सिरा झुक गया है। वहाँपर पाँव फिसलने का डर हमेशा ही बना रहता है। मुझे यहीं पर डर लगता है क्योंकि मैंने एक बाबू को वहीं पर गिरते देखा है। ओह! किस तरह उसकी दूध से भरी बाल्टी नाले में जा गिरी थी। और कितनी जल्दी दूध का रंग बदल गया था, काले काले पानी के रूप में।

सचमुच उस दिन मूसलाधार बारिश हो रही थी। उसी दिन अचानक वह आदमी जल्दी-जल्दी में दूध लेकर लौट रहा था। इसी जल्दबाजी में उसका पाँव फिसल पड़ा। गनीमत यह हुई कि वह नीचे नाले में नहीं गिरा। नहीं तो वह अपंग हो जाता। शायद तब तक नाक-भौं सिकोड़ते हुए काले-काले बदबूदार पानी में डुबकियाँ लगाता रहता, जब तक कोई उसे वहाँसे बाहर नहीं निकालता।

तब उसने कितनी बुरी-बुरी गालियाँ दी थीं अपने उस अफसर को जिसने उसे दस बजे के बदले आठ बजे ही दफ्तर बुलाया था। और तब मेरे कानों में एक मास के पहले के उसके वे शब्द स्मरण हो आये, जब उसने कहा था—"छि: जाने कैसा है यहाँ का लोग। जो इस गॉन्दे नाले पॉर से गुजर कर दोध लेने यहाँ आता है। कीतना बादबू आता है यहाँ पॉर!"

'शायद यह व्यक्ति हाल ही में यहाँ आया है। शायद इसे अभी देहली का ज्ञान नहीं। अन्यथा देहली के रंगीन वातावरण के बीच कहीं-कहीं उठती सुगन्ध का इसे पता अवश्य ही होता।'—उस दिन मैंने सोचा था।

उस व्यक्ति को नाला पार करते समय नाक पर रूमाल रखे देख तो मैं और भी चकित रह गया था। तब मेरे मन में सहज ही नाले के उस पार छोटी-छोटी झोंपड़ियों में रहनेवाले उन ग्वालों के प्रति सहानुभूति उमड़ आयी थी जिन्हें नाले की गन्दगी तनिक भी महसूस नहीं होती है। और यदि होती भी हो तो वे उसे विवश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर सह जाते हों। फिर इन्हें तो गन्दगी में रहने की आदत ही हो गयी है। वास्तव में ये लोग हैं भी कितने गन्दे! शायद ही महीनों में एक बार नहाते हों। इनको देखकर तो दूर ही से मन ऊब जाता है।

सेरू पहली भैंस का दूध निकालने की तैयारी कर रहा है। बाल्टी साफ कर रहा है। भैंस बाहर खूंटे पर बाँध चुका है।

अन्य चार-पाँच ग्वाले तम्बाकू पी रहे हैं। आपस में बातें कर रहे हैं। उन्हें इस तरह बातें करते व तम्बाकू पीते देख लगता है जैसे गाँवों में अभी भी एक दूसरे के प्रति स्नेह है जिसका शहर में अभाव है।

——बाबुओं को राजी रखना हमारे बस की बात ना है।.....

——वे तो रोजाना ऐसो ही कहते हैं। झाग..... झाग.....

——हमने थोड़े से झाग घाल दिये तो कै हो गयो? ये तो खूब रिश्वत लेवें।——

——लेवें कैसे नाहीं। ये तो टान टिप में ही डूब गये।

अभी बाबू लोग नहीं आये हैं, नहीं तो ग्वाले बाबू लोगों की बातें नहीं करते। यदि करते तो बाबू लोग बौखला उठते——एक बाबू ने घूस-रिश्वत लिया भी तो सभी एक से तो नहीं। तुममें से भी तो कई ऐसे हैं कि सामने-सामने दूध में पानी मिला देते हैं। यह ठीक है बाबू लोग शान-तोफ़ान करते हैं। पर तुम तो कोई कम नहीं। तुम्हारा बस चलता तो हमसे कम नहीं करते।

यद्यपि मैं पहुँच गया हूँ, तथापि मेरी उपस्थिति का उन्हें ज्ञान नहीं। एक दो क्षण पश्चात् मैं अपने को नहीं सम्हाल पाता हूँ। उनकी बातों का विरोध करता हूँ——हमें तो तुम बदनाम करते हो कि दूध कम होने की रोज शिकायत करते हैं। लेकिन तुम कैसे हो, जो रोज कहने पर भी दूध पूरा नहीं नापते। झाग ही झाग भर देते हो।

मैं कहना बहुत कुछ चाहता था——तुम लोग तो हम पढ़े-लिखे लोगों की आँखों में धूल झोंक देते हो। पानी मिलाते हो। सेर का हमेशा चौदह छटाँक दूध देते हो। लेकिन कह कुछ भी नहीं पाया। कारण मैं अकेला था। वे छः-सात जने थे। मुझे डर भी था। मैं एक बात कहूँगा तो ये दस बातें सुनायेंगे।

——बाबू! हमरा कसूर है ही क्या? ताजा दूध होणाते कम हो जाहै। एक ग्वाला तनक उठता है।

——तुम तो रोजाना यूँही कहोगे।

मैं प्रत्युत्तर कुछ भी नहीं देता हूँ।

इसका प्रत्युत्तर है भी कुछ नहीं।

दूध नापते समय जब भी कोई बाबू दूध और डालने का आग्रह करता तो मुझे बड़ी हँसी आती है। और उस समय ग्वाले के आधे तोले के करीब पुनः दूध डालने से तो मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता हूँ। मन ही मन सोचता हूँ, बेचारे ने बड़ी मेहनत कर, पव्वे व अधसेरे को बाल्टी में रख कर झाग बनाया है, ताकि सेर नापने में उसे एक छटाँक का फ़ायदा हो। इस पर भी हम लोग ऐसे कि उससे पूरा नापने को कहते हैं। कैसी अजीब बात है?

सेरू के अब तीन गाहक आ गये हैं। इसीलिए वह तम्बाकू की लम्बी-लम्बी कश लेने लगा है। पर उसे फिर भी सन्तोष नहीं हो पा रहा है क्योंकि पाँच व्यक्तियों के कश लेने के बाद उसकी बारी आ पा रही है।

——उठो भाई सेरू! दूध निकालो। देर हो रही है।——हममें से एक व्यक्ति बोल उठता है। उसके शब्दों में व्याकुलता है।

मेरे विस्मय का ठिकाना ही नहीं रहता है। मैं अपलक उसी को देखता रह जाता हूँ। पुलिया पर फिसलने-वाली घटना याद हो आती है। सोचता हूँ——क्या यह व्यक्ति यहींसे दूध ले जाता है? आजतक इसे मैंने पहले कभी देखा ही नहीं।

लेकिन इच्छा होते हुए भी मैं उससे नहीं बोलता। यह सोचकर——कहीं इन्हें नालेवाली घटना याद न हो आये। और ये अपनी बेइज्जती न अनुभव करें।... तभी मैं देखता हूँ कि वह भी अपलक मुझे देख रहा है। पर न वह ही बोलता है, न मैं ही।

तब से नाला कई बार पार कर चुका हूँ। लेकिन उस दिन के बाद वह दूध लेते समय मिला ही नहीं। जाने क्यों? नाला पार करते समय आज भी हमेशा की तरह उसकी ही याद हो आती है।

हाँ, उसके विषय में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त कर पाया कि उसे देहली आये एक मास ही हो पाया है। बहुत बड़ा अफसर है। नेहरूजी के साथ काम करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले वह कलकत्ते में था। वहाँ भी अफसर था। सात जनों की फैमिली है उसकी।

ये बातें सेरू ने बतायी हैं। उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते हुए सेरू ने कहा--बड़े भले आदमी हैं बेचारे। पैसे वसूल करने गया, बिना चाय पिये आने ही नहीं दिया। कहने लगा..... भाई सेरू आभी तौनखा नहीं मिला हमको।

मैं अपलक सेरू को देखता रह गया था तब। सेरू के प्रति सहानुभूति उभर आयी--अब तक बेचारे से किसी ने बैठने के लिए कहा ही नहीं होगा। दरवाजे से ही बिल चुकाकर बिदा कर दिया होगा। चाय किसीने भी नहीं पिलायी होगी। बेचारे का यह सोचना स्वाभाविक ही है। पर उसकी बुद्धि पर तरस भी आया था--यह इतना क्यों नहीं सोच पाया कि बड़े अफसर होते हुए भी वे क्या बीस-पच्चीस रुपये नहीं दे सकते थे? क्या उनके पास बिल्कुल भी पैसे नहीं जो वे हम जैसे कम वेतनवालों की तरह बहाना बनाने लगे--वह भी भोलेभाले सेरू के सामने?

--उन्होंने पैसे दे दिये हैं।--सेरू बाल्टी साफ करता है।

पैसे उसे देने ही थे। दे दिये तो कौन सी बड़ी बात की? कोई ऐसा काम तो नहीं किया जिसे दूसरे को सुनाया जा सके, कहा जा सके। मैं मन ही मन सोचता हूँ। पर सेरू के स्वर से लगता है--जैसे उसे पैसे बड़ी कठिनाई से मिले हैं। उसे बड़े चक्कर लगाने पड़े हैं उनके घर के।

सेरू मेरी बेरुखी देख बाल्टी साफ कर अपने साथियों के बीच जा बैठा है। तम्बाकू के कश की प्रतीक्षा करने लगा है।

मुझे उसका इस तरह बैठना कुछ खला। मैं तो सोच रहा था--यह जल्दी दूध निकाले। जल्दी ही घर लौटूं।

ठीक सवा छः बजे स्कूल की बस हमारे घर के पास से गुजरती है। इसीलिये बेबी को छः बजे तैयार करना होता है।

किन्तु वह तम्बाकू की कश पर कश ही लेता रहा। मैं खीझ उठा--"उठो भाई सेरु! दूध निकालो। जल्दी है। बेबी को स्कूल को देर हो जाती है।

--थमतो तावड़ (जल्दी) कब ना होय। न उठणे की उकास न बैठणे की उकास। बस, अपणे घरसू में मस्त।--सेरू चिलम दूसरे की ओर बढ़ाता है। पास ही ऊँघते हुए अपने दसवर्षीय भतीजे से कँटरा खोलने को कहता है।

मैं सहम जाता हूँ। ठीक ही कह रहा है यह। हम लोग करें भी क्या? नौ से छः बजे तक दफ्तर। दफ्तर के बाद घर। बच्चों की पढ़ाई। इधर-उधर जाना। सभा-सोसाइटियों में जाना। हफ्ते में एक दिन की छुट्टी। उस दिन भी मेहमानों का ताँता। हमारा तो, हर काम के लिए, समय बँधा रहता है। .....

--"उठो भाई! दूध निकालो। दफ्तर को देर हो रही है।"--एक परिचित सी आवाज सुन मेरी विचार-शृंखला टूट जाती है।

वे तो बहुत बड़े अफसर हैं। नेहरूजी के साथ काम करते हैं। ..... कानों में सहज ही सेरू के शब्द गूंज उठते हैं।--उनके विषय में पूरी तरह जानकारी प्राप्त करने की इच्छा पुनः उभर आती है। ये क्या काम करते हैं? लेकिन मैं उनसे फिर भी नहीं बोलता। शायद यह मेरे दब्बू व्यक्तित्व का प्रभाव हो। पर अपलक उसकी ही ओर देखता रह जाता हूँ।

वह भी मुझ पर ही आँखें टिकाये हैं। लगता है जैसे किसी बहुत बड़े अफसर की दो आँखें मुझे घूर रही हैं। काम करने को कह रही हों। उनके प्रति सहज ही घृणा उभर आती है। मुँह फेर लेता हूँ। सोचता रह जाता हूँ--बातों का सिलसिला किस तरह बाँधा जाय।... कुछ उपाय ही नहीं सूझ पाता। सहमे-सहमे उनके ही पास जा खड़ा हो जाता हूँ।

--आप कौन से आफिस में काम करते हैं?--वह व्यक्ति ही बातों का सिलसिला बाँधता है।

--जी, जी ..... मैं, एक्सटर्नल मिनिस्ट्री। विदेश मंत्रालय में काम करता हूँ।--मैं धीरे से उत्तर देता हूँ।

--तब तो हमारा एक ही दफ्तर है।--उसके शब्दों में सादगी है।

सेरू अब दूध दुहने चला गया है।

कुछ समय तक हम दोनों पुनः गुमसुम से खड़े ही रहते हैं। सेरू को देखते हैं, कहीं मौका मिलने पर वह पानी न मिला दे। हमारी आँखों में धूल न झोंक दे। वैसे तो सेरू के विषय में मेरी धारणा है कि भले ही और ग्वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना ही पानी क्यों न मिलाते हों पर यह नहीं मिलाता है। लेकिन ग्वालों का भरोसा ही क्या? किसीका भी भरोसा क्या? जमाना ही ऐसा आ गया है। बाप को बेटे का भरोसा नहीं, बेटे को बाप का भरोसा नहीं। भोले-भाले गाँववाले भी बदल गये हैं। उन्हें भी अब दुनिया की झूठी बातों का पता चल गया है।

लेकिन वह बाल्टी साफ करता है। पानी नीचे गिरा देता है। दूध दुहने लगता है।

——आप रहते कहाँ हैं?——मैं पुनः बातों का सिलसिला बाँधता हूँ।

——मैं बी० डी० ब्लाक में रहता हूँ।——वह व्यक्ति तनिक रुखाई के साथ कहता है। उसके स्वर में कुछ झिझक है।

मैं प्रश्न भरी आँखों से उसकी ओर देखता हूँ। जाने क्यों बी० डी० ब्लाक में रहने वालों के प्रति सहज ही आत्मीयता उभर आती है। लगता है, जैसे यहाँ रहनेवाले एक जैसे सभी व्यक्ति मेरे पड़ोसी हैं। मेरे साथी हैं। हैं भी तो सभी मुझसे ही, पूछता हूँ——आपके क्वार्टर का नम्बर?——

——एक हजार पाँच।

अब मेरे आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहता। मैं अपलक उसकी ओर देखता रह जाता हूँ। उसके पीछे बैठे उस ग्वाले के शब्द कानों में गूँजने से लगते हैं जिसने कहा था——आप लोगों को जल्दी कब नहीं होती। आपको तो न उठने की फुरसत, न बैठने की फुरसत।....होठों ही होठों में बुदबुदाता रह जाता हूँ——एक हजार पाँच तो मेरे ही बगल का तीसरा क्वाटर है।

सेरू दूध दुह रहा है। बीच-बीच में तम्बाकू की कश लेते हुए अपने साथियों को देख रहा है। उसके सभी साथी अभी भी पूर्ववत् बैठे हैं।

वहाँ और यहाँ

श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह

उठ गई होंगी वहाँ भौंहें तुम्हारी,
इन्द्रधनु अब तक यहाँ ठहरा हुआ है!
कौन तो पहले, अजाने प्रात में ही
खुल गई होंगी वही सुकुमार पलकें,
जो प्रतीक्षा में बिछी रहतीं निरन्तर,
श्याम से जब तक न हों रजताभ अलकें।
किन्तु इस निर्मम अवधि के बीच ही जब
कनक-किरणें ओढ़ छाये साँझ के घन,——
गगन पर होगी गड़ी अनुराग-चितवन,
बस, तभी सतरंग यह गहरा हुआ है!

वायु में अभिषिक्त साँसें बोलती हैं,
इन्द्रियों में गन्ध भी बजने लगी है,
ऊँघता-सा, मौन, सम्मोहित उजाला,
छाँह में भी भंगिमा जमने लगी है!
धातु-दर्पण बन गया गोधूलि-अम्बर,
उग रही दूरागता-सी छवि तुम्हारी;
झूमते भींगे, विटप, झुलसे यहाँ जो,
सूखकर आँचल वहाँ फहरा हुआ है!

तुम परे इस रूप से औ' नाम से भी
चेतना में बीज मन्त्र-निवासिनी हो,
पर तुम्हीं साकार एक प्रतीक बनकर
इस मनःसन्देश की आभासिनी हो!
चिर मिलन की एक स्वप्निल कल्पना-सी
सामने है इन्द्रधनु की क्षणिक जोड़ी;
क्या वहाँ मृग-जल तुम्हारी पुतलियों में
एक आदिम शाप-सा लहरा हुआ है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंटरव्यू

श्री दयाप्रकाश सिन्हा

योजना विभाग की उस छोटी सी नौकरी के लिए इंटरव्यू करने, एक उच्च सरकारी अधिकारी और पाँच जनता के प्रतिनिधि बैठे थे। जनता के प्रतिनिधियों के लिए यह पहला अवसर था जब कि वह किसीको नौकरी देने इंटरव्यू लेने बैठें। जीवन के इस अभूतपूर्व मौके के लिये वे बड़े अरमान से तैयार होकर आये थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ीवाले, मोटी-मोटी धोती, कुर्ते और टोपी, जिनपर मोटा-मोटा मैल लगा था... पहनकर आनेवाले जनता के प्रतिनिधि चाहते थे कि इंटरव्यू में आनेवाले आवेदकों के ऊपर अपनी काबिलियत का सिक्का जमा कर यह सिद्ध कर दें कि वह उनसे बहुत अधिक बुद्धिमान् हैं। यद्यपि नौकरी बहुत छोटी थी, और उसके लिए योग्यता केवल हाईस्कूल थी, आवेदक सब बी० ए० या एम० ए० पास थे। एक से एक चतुर और बुद्धिमान्। उनके सम्मुख इंटरव्यू लेनेवाले जनता के प्रतिनिधियों के अरमान सूखने लगे। उनपर अपनी काबिलियत का सिक्का जमाना तो दूर की बात, उनकी बुद्धि के अनुरूप वह प्रश्न भी नहीं पूछ पा रहे थे। इस नौकरी के लिए शर्त थी कि आवेदकों में "रूरल-वायस" (ग्रामीण रुचि) होनी चाहिए, इसलिए यदि वह उनसे गाँव के बारे में भी कोई प्रश्न पूछते, तो उनकी आशा के विपरीत, वह पैंट, बुशशर्ट तथा डिग्रीधारी आवेदक एकदम ऐसे आँकड़े और ऐसे लेखकों के नाम बताना शुरू कर देते, और इस देश तथा उस देश की तुलना करते कि उनकी समझ में एक शब्द भी नहीं आता और उनको मजबूरन चुप रह जाना पड़ता।

इस तरह दो घंटे बीत गये, और वह सब निराश हो गये। किन्तु तब ही एक घुटनों तक ऊँची धोती पहने, कंधे पर चारखाने का गमछा डाले, किसी देहात के स्कूल से हाईस्कूल पास आवेदक घुसा। उसे देखते ही जनता के प्रतिनिधियों की बांछें खिल गयीं। "वह मारा" का भाव उनकी आकृति पर लिख गया। बड़ी देर से वह इसकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उसके घुसते ही पाँचों कण्ठों से एक साथ आवाज निकली, "तुम्हारा नाम?"

वह इस सामूहिक प्रहार से घबरा गया। बोला, "माताप्रसाद।"

"माताप्रसाद?" चौंककर जनता के प्रतिनिधियों ने एक दूसरे को देखा, फिर अपने कागजों को देखा। फिर एक ने डाँटते हुए पूछा..... "तुम कौन हो? कैसे चले आये यहाँ? रामप्रसाद कहाँ है?"

वह ग्रामीण एकदम सकपका गया, किन्तु अपने को सम्हाल कर उसने कहा—"रामप्रसाद मैं ही हूँ।"

"तब माताप्रसाद कौन है?"

"हमारा बाप।"

बस फिर क्या था। पाँचों सवार तैश में आ गये।

"हम तुम्हारा नाम पूछते हैं, तो तुम अपने बाप का नाम बताते हो।"

"तुम अपने बाप बनना चाहते हो?"

"तुम क्या कम सुनते हो?"

"क्या बहरे हो?"

"तुममें बिलकुल अक्ल नहीं है।"

"तुम इस नौकरी के काबिल नहीं हो।"

सरकारी अफसर ने बीच में बोलकर उन लोगों को शान्त करने का प्रयत्न किया। समझाया कि बेचारा घबरा गया है और आपका सवाल ठीक से नहीं समझ सका था।

मगर वह आसानी से माननेवाले नहीं थे। बड़ी मुश्किल से उन्हें यह मौका मिला था, और वे इसे छोड़ने को तैयार नहीं थे। कब मिलता है ऐसा शिकार बार-बार? नतीजा यह हुआ कि उनमें से कोई एक प्रश्न पूछता। और जब तक रामप्रसाद इसका उत्तर दे, तब तक कोई दूसरा प्रश्न पूछ बैठता, कोई तीसरा, और कोई चौथा और कोई पाँचवाँ।

रामप्रसाद एकदम घबरा गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किसको जवाब दे। और क्या जवाब दे। वह रुआंसा हो गया।

"तुम गाँव के बारे में कुछ नहीं जानते"... एक ने न्यायाधीश के समान अपना निर्णय किया।

"सरकार, मैं गाँव में ही इतना बड़ा हुआ हूँ। गाँव में ही पढ़ा-लिखा, और अब भी गाँव में ही रहता हूँ।".... उसने बड़ी अनुनय और विनती से कहा।

"अगर तुम गाँव में रहते हो" दूसरे ने अविश्वास से कड़ककर डाँटते हुए कहा, "तो बताओ, तुम्हारे गाँव में सबसे ज्यादा पैदावार किसकी है...?"

डरे हुए रामप्रसाद ने हाथ जोड़कर कहा.... "सरकार, पटवारी की।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना (१३)

श्री मनमोहन गुप्त

भाभी का प्रायश्चित्त

भाभी ने कोई उत्तर न दिया। दिन भर कटी-कटी सी ही फिरती रहीं। शाम को एक पत्र को देते हुए भाभी ने कहा—'हरेन दादा को दे आ।'

मैं पत्र लेकर चला गया। पत्र में केवल दो वाक्य लिखे थे। 'प्रायश्चित्त के लिए तैयार हूँ। बाबा श्मशान-नाथ से प्रार्थना कीजियेगा।'

हरेन दादा ने भी दो ही वाक्य लिखे। "ठीक है। उसी समय आ जाइयेगा।"

इससे अधिक कोई बात न हुई। मैंने आकर पत्र दे दिया। सब काम नित्य का-सा चलने लगा। मैंने पूछा भी कि मुझे तो कुछ करना नहीं है। भाभी ने छोटा-सा सिर हिलाकर नहीं में उत्तर दिया। नित्य की भाँति आज लेटे-लेटे भाभी ने अँगरेजी कविता न याद कराई। यों ही पड़ी रहीं। पूछने पर जरा कड़ी होकर बोलीं—"तू सो तो जा!"

मैं सो ही गया। भाभी मेरे बगल से कब हट गयीं कुछ पता न चला। अचानक नींद खुलते ही देखा कि मैं अकेले लेटा हुआ हूँ। उठा। बत्ती को तेज किया। बाथरूम की ओर गया। ना! यहाँ तो भाभी नहीं! छत की सीढ़ी की ओर देखा। वहाँ भी कुण्डी लगी थी। सदर की ओर देखा। अरे! कल का-सा दरवाजा उट-काया हुआ था। रोएँ खड़े हो गये! अरे, तो भाभी कहीं अकेले ही श्मशाननाथ के यहाँ तो नहीं चली गयीं?

सन्देह होते ही लालटेन वहीं छोड़ी। एक पलक में दरवाजा खोला और उटका भी दिया। वही, पीछे के दरवाजे से हरेन दादा के मकान में घुसा। कल जैसा ही दरवाजा भेड़ दिया। सीधे, दबे पाँव श्मशाननाथ के कमरे में पहुँचा। वहाँ अँधेरा ही अँधेरा था। टटोलते हुए श्मशान नाथ के पास पहुँचा। कोई नहीं। श्मशान-नाथ के चारों ओर चक्कर काटा। तब चला हरेन दादा के कमरे की ओर। वहाँ भी दरवाजा उटकाया था। आहिस्ते से घुसने भर की जगह बना ली। बत्ती जल रही थी, किन्तु मद्धिम थी। देखा पलँग पर भाभी और हरेन दादा पड़े हैं।

मेरी नसों में खून दौड़ गया। मैं बाहर निकल आया। जैसे आया था वैसे ही वापस हुआ। अब की अपने कमरे में न जाकर साहब दादा के कमरे में गया। साहब दादा को हिलाया। वे उठ बैठे। पूछा—"क्या है?"

मैंने कहा—"भाभी के साथ हरेन दादा बदमाशी कर रहे हैं!"

एक छलाँग में साहब दादा भाभी के कमरे की ओर दौड़े। मैंने रोकते हुए कहा—"उधर नहीं इधर।"

साहब दादा ने पूछा—"सड़क पर?"

मैंने जोर से कहा—"नहीं। उनके घर पर!"

जरा जोर से ही कहा था। गौड़ जी भी जग गये। पूछा—"कौन है?"

साहब दादा ने कहा—"कुछ नहीं। आप सोइये।"

कहते ही कहते वे अपने कमरे की ओर लपके। दो नली बन्दूक ले ली। उसे भर लिया।

आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे साहब दादा। दोनों दबे पाँव वहीं पहुँचे जिस जगह से मैंने सब कुछ देखा था।

दोनों पूर्ववत् पलँग पर थे। हम दोनों के आने की कुछ आहट शायद हरेन दादा को मिल गयी थी। उन्होंने उचक कर इधर ताका ही था कि 'धम्म' से गोली दगी। 'आह!' करके वे पलँग से नीचे छटक गये। भाभी ने अपनी साड़ी सम्हाली। साहब दादा ने शान्त भाव से कहा—'तुम छोटे के साथ घर जाओ..... मुझे पुलिस पकड़ने आती ही होगी।'

उछलकर भाभी साहब दादा के पास आईं। झट उनका हाथ पकड़ा। तेज कदम उसी पीछे के रास्ते से तीनों निकल गये। जब घर पहुँचकर हम सब सम्हल गये तब सड़क की ओर बड़ी भीड़ इकट्ठी होने लगी। घरों से लालटेनें निकल आईं। मेरे पिताजी आदि भी गये। कोई आध घण्टे बाद पिताजी वगैरह जब वापस हुए तो गौड़जी ने पूछा—"क्या बात है मास्टर साहब?"

सबको सुनाते हुए पिताजी बोले—"वही कलकत्ते वालों के घर में उनका लड़का हरेन रहता था न? उसी को किसी ने मार डाला। नौकर लोग दूसरे महल में रहते थे। वह तो अकेले ही रहता था। खून करके पीछे के रास्ते से भाग गये। अब पुलिस आई है। देखिये क्या होता है।"

हम लोगों की रात आतंक में ही बीती। किन्तु किसको पता चलता कि किसने हरेन दादा की हत्या की है? रात भर, भाभी झेंप में, एवम् मैं गुस्से में, एक दूसरे से बोले नहीं। सबेरे मैंने ही कहा—"तुम बड़ी खराब हो। मैं चला जाऊँगा।"

भाभी ने सिर नीचा कर लिया। दूध वगैरह पिलाने के बाद भाभी ने ही कहा—"हाँ, भइया! मैं बहुत पापिन हूँ। अब तुम मेरे पास न रहो। घर जाओ। अम्मा को प्यार करना। वही तुम्हारी जिन्दगी बनाएगी!"

मैंभी तैयार हो गया। चलते समय भाभी ने कहा—"कल रात की बात किसी से न कहना। नहीं तो हम लोगों को फाँसी हो जायगी।"

शायद पाँच महीने पूरे हो रहे हैं, इसीसे भाभी ने मुझे बिदाई दी। समझ कर अम्मा ने मुझे 'आओ' कह कर पास बैठाया। उस दिन का अम्मा का स्पर्श जैसे मुझे अपने अन्दर समेटे ले रहा था। मैं अम्मा से और लग कर बैठा। बाद को फिर भाभी के पास आता-जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य रहा, मगर भाभी में बड़ा परिवर्तन देखा। जब तक साहब दादा घर में रहते तब तक उनकी सेवा करतीं। बाकी समय ससुर की सेवा, भगवत-भजन, गीता-पाठ आदि में लगी रहतीं।

एक दिन गौड़जी के यहाँ खूब धूमधाम से भाभी की 'साध' हुई। अनेक औरतें एकत्र हुईं। खूब ढोलक वगैरह बजी। कुछ महीनों के बाद गौड़जी के घर नाती पैदा हुआ। गौड़जी के पैर जमीन में नहीं पड़ते। भाभी के मैके से बहुत लोग आये। सबने लड़के को देखा। आशीर्वाद दिया। बाबू ने भी आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद के समय योंही बाबू की जबान से निकल गया--'लगता है कि हरेन, मेरे पुराने छात्र ने इस घर में जन्म लिया है।'

बगल में साहब दादा खड़े थे। वे सिहर उठे। मैं आँखें गड़ा-गड़ाकर मिलाने लगा कि सचमुच कोई साम्य है या नहीं।

गौड़जी के परिवार में एक आनन्द की लहर दौड़ गई। अब तो गौड़जी की पूजा तथा पठन आदि के कार्यक्रम सीमित हो गये। कारण वे नाती को लेकर ही व्यस्त रहते।

अचानक एक दिन गिरधारी आ धमका। गिरधारी आते ही सिर पटक-पटककर रोने लगा। गौड़जी ने सान्त्वना देते हुए कारण पूछा तो गिरधारी हरेन दादा और बाबा श्मशाननाथ को एक हजार एक गाली सुनाते हुए कहने लगा--"उसी जादूगर के बच्चे ने मेरा सर्वनाश करवा दिया। हुजूर से छुट्टी लेकर मैं गया रामप्यारे को ढूंढ़ने। साल भर तक दर-दर भटकता रहा। आशा ही आशा में मेरे पास जो कुछ पूंजी थी उसका बहुत कुछ खर्च कर डाला, बाकी बर्मा मुलुक के लुटेरों ने लूट लिया। नंगा, भूखा, प्यासा, महीनों तक फिर भी फिरता ही रहा। जैसी श्मशाननाथ ने बतायी थी वैसी कोई जगह या घर ही न मिला। आखिर मरते-खपते जैसे-तैसे रंगून पहुँचा। लोगों से माँग जाँचकर जीता रहा। जमा हुए पेंशन के रुपये मँगवाये। एक बार सोचा कि हुजूर को लिखूं। हिम्मत न हुई। उसीसे टिकट खरीदकर कलकत्ता आया। कलकत्ते में एक रिश्तेदार से मिलने गया तो उसीने रामप्यारे की बात बताई। बहुत दिनों के बाद मुलाकात हुई। नहीं तो पहिले ही मालूम हो जान गयी होती।"

कहते ही कहते फूट फूटकर रोने लगा। जरा-सा सम्हला तो कहा--"हुजूर! रामप्यारे घर से भागकर गया तो कलकत्ते में एक बंगाली के यहाँ नौकरी कर ली। देखने में अंगरेज से बढ़कर था। उसी रईस के घर की एक छोकरी से मुहब्बत हो गयी।"

कहते ही कहते फिर रोना आरम्भ किया। फिर जब सम्हला तो कहा--'रईस की छोकरी से मोहब्बत हो गयी तो हो गयी। जवानी का खून है। कोई समझाने-वाला भी नहीं था। उसने उस छोकरी से शादी करनी चाही। अरे रईसों की और गरीबों की मोहब्बत काहे की? गाड़ी रुक जाय तो खटारा समझकर छोड़ देना चाहिए। उसने सो नहीं किया। लड़की से कहा कि भाग चलो। भला वह क्यों दुख उठाने लगी? रईस के छोकरे जैसे नौकरानियों से मोहब्बत दिखाकर काम चलाते हैं, वैसी ही छोकरियों को भी समझकर पीछा छोड़ना चाहिए था। रामप्यारे से सो नहीं हुआ। छोकरी की शादी से एक दिन पहले ही उसे कतल कर दिया। पकड़ा गया। केस चला। गुनाह कबूल करके फाँसी लटक गया। मुझे खबर तक नहीं भिजवाई।"

कहकर सिर कूटने लगा। गौड़जी ने सान्त्वना देना आरम्भ किया। इतने में आया गौड़जी के नाती को लेकर आई। गौड़जी ने कहा--"ले। इसे सँभाल। इसके बाप को भी तूने ही अपनी गोद और पीठ पर बड़ा किया, अब इसे भी गोद में उठा ले।"

गिरधारी ने झटपट नन्हे बच्चे को छाती से लगा लिया। उसी समय से फिर वह गौड़जी के यहाँ नौकर हो गया। दूसरे दिन उसने मुझसे पूछी हरेन दादा की बात। मैंने कहा "किसी ने गोली से मार डाला।" सुनकर उसने कहा था--"अच्छा हुआ। नहीं तो मैं ही मारकर फाँसी चढ़ जाता!"

(समाप्त)

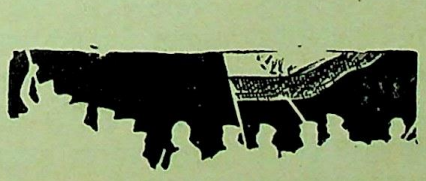

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

सहकारी खेती और भारतीय तंत्र––आचार्य दीपंकर। प्रकाशक, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा० लिमिटेड, रानी झांसीरोड, नयी दिल्ली–१। सजिल्द, मूल्य पाँच रुपये।

उत्तर प्रदेश के कृषि मंत्री श्री चौधरी चरण सिंह ने एक पुस्तक लिखी थी, 'ज्वाइंट फार्मिंग एक्स-रेड'। इसमें उन्होंने सहकारी खेती का विरोध किया था। वह पुस्तक अंग्रजी में थी, और शायद इसलिए अंग्रजी में लिखी गयी थी कि वे अपने विचार भारत के उस नेतावर्ग में पहुँचाना चाहते थे जो हिंदी नहीं जानता। उसमें उन्होंने सहकारी खेती का विरोध किया था और अपने मत के पक्ष में तर्क, तथ्य और आँकड़े दिये थे। यह पुस्तक चौधरी साहब की उपर्युक्त पुस्तक के उत्तर में लिखी गयी है। इसमें भी दूसरे प्रकार के तथ्यों और आँकड़ों की सहायता से अपने विरोध का समर्थन किया गया है। लेखक उग्र समाजवादी हैं। उनका कहना है कि "आज का पश्चिमी प्रजातंत्र कल का तानाशाही शासन तंत्र होगा तथा आज का कम्यूनिस्ट अधिनायकत्व कल का परम उदार प्रजातंत्र होगा। विधि का यही निश्चय है। समाज का पहिया जिस चमत्कारिक ढंग से घूम रहा है, उसकी यही स्वाभाविक परिणति होती है।" यह किसी पैगम्बर का इलहाम मालूम होता है क्योंकि शायद उन्हें 'विधि' ने अपना निश्चय बतला दिया है। अतएव वे देश को कम्यूनिज्म की ओर ले जाना चाहते हैं और कम्यूनिस्ट तंत्र में सहकारी खेती के जो अर्थ हैं शायद वे उसी ओर जाना चाहते हैं। हमारी सरकार की कल्पना, जहाँ तक हम समझे हैं, उससे भिन्न है। इस पुस्तक को पढ़कर साधारण पाठक पर यही प्रभाव पड़ता है कि राजाजी और स्वतंत्र पार्टी ने 'सहकारी' खेती के सम्बंध में जो शंकाएँ व्यक्त की हैं, वे (यदि आचार्य दीपंकर की व्याख्या ठीक है) निराधार नहीं हैं। उन्होंने चीन के कम्यूनों के उदाहरण दिये हैं और आँकड़ों द्वारा बतलाया है कि वहाँ कम्यूनों की स्थापना के कारण खेती में सौ गुनी उन्नति हो गयी। किंतु जो समाचार मिल रहे हैं उनसे तो यही मालूम होता है कि चीन का कम्यूनों द्वारा सरकारी खेती का प्रयोग सफल नहीं हुआ। आचार्य दीपंकर ने अपने पक्ष में सबल तर्क दिये हैं। किंतु मनुष्य तर्क से परिचालित नहीं होता। वह भावना-प्रधान प्राणी है। इसलिए वह मशीन की तरह व्यवहार नहीं कर सकता। रूस में भी सरकारी 'सहकारी' खेती लाखों किसानों की हत्या के बाद स्थापित की जा सकी थी। अवश्य ही वर्तमान खेती का उत्पादन बढ़ाने के लिए कुछ उपाय करने अनिवार्य हैं, किंतु वे ऐसे होने चाहिए जो बिना तानाशाही के व्यवहार्य हों। श्री दीपंकर की पुस्तक का बड़ा गुण यह है कि इससे दूसरे पक्ष का दृष्टिकोण मालूम हो जाता है।

कुछ पुरानी चिट्ठियाँ––पं० जवाहरलाल नेहरू। प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली। सजिल्द, मूल्य दस रुपये।

श्री जवाहरलाल नेहरू का सार्वजनिक जीवन अत्यंत व्यापक रहा है। इस देश ही के नेता नहीं, सारे संसार के विशिष्ट व्यक्ति उन्हें पत्र लिखते रहे हैं। इस पुस्तक में उन पत्रों में से चुनकर ३६८ पत्रों के अनुवाद संग्रहीत किये गये हैं जो उन्हें १९१७ से १९४८ तक लिखे गये थे। इनमें अधिकांश पत्र राजनीतिक महत्त्व के हैं और वे तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि, घात-प्रतिघात पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। पत्र-साहित्य की दृष्टि से तो इनका महत्त्व है ही, किंतु इनका वास्तविक महत्त्व ऐतिहासिक है। ये इस युग के भावी इतिहास-लेखकों के लिए बड़े उपयोगी होंगे। आरंभ में कुछ वे पत्र भी हैं जो पं० मोतीलालजी नेहरू ने दूसरों को लिखे थे, या दूसरों ने उनको लिखे थे। गांधीजी, श्री जिन्ना, किदवई साहब, सरदार पटेल, सुभाष बाबू, रवींद्रनाथ टेगोर, श्रीमती सरोजनी नाइडू, आदि भारतवासियों के अतिरिक्त चियाँग काई शेक, मैडम सनयात सेन, बर्नाड शा, क्रिप्स, राष्ट्रपति रूज़वेल्ट आदि प्रमुख विदेशियों के भी पत्र हैं। सभी पत्र महत्त्वपूर्ण हैं और इतिहास तथा समसामयिक राजनीति में रुचि लेनेवालों के लिए मनोरंजक और उपयोगी हैं।

बापू की कारावास कहानी––डा० सुशीला नैयर। प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली। सजिल्द और सचित्र। मूल्य, साढ़े सात रुपये।

डाक्टर सुशीला नैयर महात्मा गाँधी की अनन्य भक्त थीं और जब १९४२ में महात्मा जी आगा खाँ महल में नजर- बंद थे, तब वे उनके साथ थीं। वहाँ वे प्रतिदिन अपनी दैनंदिनी लिखा करती थीं। यह पुस्तक वास्तव में वही दैनंदिनी है। महात्माजी की वह नजरबंदी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि उसी अवधि में महादेव देसाई और माता कस्तूरबा का स्वर्गवास हुआ, तथा महात्माजी ने अपना प्रसिद्ध उपवास किया। इस पुस्तक में राजनीतिक बातें हैं, किंतु वे प्रमुख नहीं हैं। गांधीजी के व्यक्तिगत पावन संपर्क से जो अनुभूतियाँ हुईं वे ही इस पुस्तक में प्रमुख रूप से उभरी हैं। महात्माजी के महान व्यक्तित्व और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके सिद्धान्तों और उपदेशों को समझने में यह पुस्तक अत्यन्त सहायक हो सकती है। पुस्तक बड़ी होते हुए भी, इस ढंग से लिखी गयी है कि बिना समाप्त किये उसे छोड़ने का जी नहीं चाहता।

हमारे देश की नदियाँ—श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल। प्रकाशक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली। बड़ा आकार, अनेक चित्रों और नकशों सहित। मूल्य ढाई रुपये।

इस पुस्तक की कल्पना बड़ी सुंदर है। इस विषय पर सर्वोत्तम पुस्तक काका कालेलकर की है जिसमें उन्होंने सात नदियों का बड़ा मनोरंजक और सरस वर्णन दिया है। यह पुस्तक भिन्न प्रकार की है। इसमें नदियों की जानकारी देने पर और उनका उपयोग बतलाने पर विशेष बल है। इसलिए यह पुस्तक साहित्यिक न होकर भूगोल की आधुनिक पुस्तक हो गयी है। इसका भी उपयोग है। इसमें नदियों से जो नहरें निकाली गयी हैं और उन पर बाँध बनाकर जो बिजली पैदा की गयी है, उनका भी उपयोगी वर्णन है। किंतु इसमें जो जानकारी दी गयी है, उसके संकलन में काफी सावधानी नहीं बरती गयी। यह पढ़िए—"नंदप्रयाग में विष्णुगंगा, स्कंदप्रयाग में पिंडर नदी, रुद्रप्रयाग में केदारनाथ से आई मंदाकिनी और देव प्रयाग में बद्रीनाथ से आई अलकनंदा का भागीरथी से संगम होता है।" वास्तव में विष्णुगंगा, पिंडर और मंदाकिनी अलकनंदा में मिलती हैं न कि भागीरथी में। चलता नाम कर्णप्रयाग है न कि स्कंदप्रयाग। "कानपुर से पूरब की ओर कुछ दक्षिण हटकर तीर्थराज प्रयाग है!" यह 'कुछ' केवल १२० मील है! "भिलसा के कुछ ही दक्षिण पर राजा भोज की राजधानी भोजपुर है।" भोजपुर भोपाल से प्रायः बीस-पचीस मील दूर है और भिलसा से भोपाल तीस मील के लगभग है। केन "बाँदा जिले में चीलतारा के पास यमुना में जा मिली है।" चीलतारा कोई नाम नहीं है। वास्तविक नाम "चिल्लांतारा" है। "इसी राज्य (अलवर) की काली खोह और मेवाती पहाड़ियों से बाणगंगा नदी निकली है जो कुछ दूर पार्वती में जा गिरती हैं और दोनों शिकोहाबाद के पास यमुना में मिल गयी हैं।" 'बाणगंगा' से मतलब यदि उटंगन से है तो वह पार्वती में नहीं मिलती। वह आगरा जिले में (शिकोहाबाद से काफी दूर) यमुना में जा मिलती है। "इसी नदी के किनारे हवन गाँव के पास रघुगढ़ के महल और किले की दीवारों के खण्डहर मौजूद हैं।" शायद लेखक का तात्पर्य राघोगढ़ से है। यह किला अभी खड़ा है और बसा हुआ है। यहाँ (नरसिंहगढ़ जिले के फौड़ावर ग्राम में) "पंद्रहवीं सदी में मेवाड़ जिले के ऊँट हाँकनेवाले उन्मत्त राजपूत बस गये थे। जब मुगलों की ताकत घटने लगी थी तो इनके मुखिया मोहन सिंह और परशुराम ने राजगढ़ और नरसिंहगढ़ में अपने राज्य कायम कर लिये।" मालूम नहीं कि राजगढ़ और नरसिंहगढ़ के पूर्वजों को "ऊँट हाँकनेवाले उन्मत्त" किस आधार पर कहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुस्तक का विषय और रूपरेखा बहुत अच्छी है किंतु छापने के पहिले इसे किसी विशेषज्ञ से सावधानी से शुद्ध करा लेना चाहिए था। पुस्तक इतनी सुंदर है कि उसमें इस प्रकार की भूलें देखकर दुःख होता है। तनिक सी सावधानी बरतने से यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी हो सकती थी। लेखक में उत्साह है, परिश्रम करने की शक्ति, कल्पना है, किंतु इस विषय का उतना सूक्ष्म ज्ञान नहीं मालूम पड़ता जितने ज्ञान और जानकारी की ऐसी पुस्तक को विश्वसनीय बनाने के लिए आवश्यक है। पुस्तक बड़े अच्छे ढंग से छापी गयी है। यदि प्रकाशक इसके द्वितीय संस्करण को ठीक तरह से शुद्ध करा लें तो यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेगी।

लक्ष्मी—श्री हरगोविंद गुप्त। वितरक, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली। सचित्र। मूल्य तीन रुपये।

लक्ष्मी के संबंध में हमारे देश में अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। ये कथाएँ 'जीवित' कथाएँ हैं क्योंकि अब भी हमारी वे माँ और बहिनें—जिनके संस्कार आधुनिक शिक्षा के कारण अपने परम्पराओं से विच्छिन्न नहीं हो गये हैं—इन लोककथाओं को कहतीं और इनसे प्रेरणा लेती हैं। अन्य लोककथाओं की तरह इनमें भी सरलता, भोलापन, अकृत्रिम विश्वास और सहज कल्पना है। वे जनमानस के अनुकूल हैं। इसीलिए हजारों वर्षों से जीवित हैं। श्री गुप्त ने लक्ष्मी संबंधी १३ कथाओं को इस पुस्तक में संग्रह कर दिया है। सभी कथाएँ सुंदर, उपदेशपूर्ण और मनोरंजक हैं। दो-तीन अध्यायों में लक्ष्मी का पौराणिक आख्यान और उनका महत्त्व भी बतलाया गया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसकी पांडित्यपूर्ण भूमिका लिखकर इसके मानक होने की मोहर लगा दी है। पुस्तक सभी के पढ़ने योग्य है—विशेषकर महिलाओं के। भाषा सरल और प्रवाहमयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

किसी-किसी का मत है कि हिन्दू शब्द नदीवाचक सिन्धु शब्द का अपभ्रंश है और इण्डस (Indus) अर्थात् सिन्धु शब्द से ही अंगरेजी शब्द इण्डिया (India) की उत्पत्ति है। किसी-किसी का मत है कि अरबी हिन्द शब्द से अंगरेजी शब्द इण्डिया निकला है। कोई-कोई पण्डित हिन्दू शब्द की सिद्धि संस्कृत व्याकरण से करते हैं और कहते हैं कि वह हि सि—दो धातुओं से बना है और हीन अर्थात् बुरे या कुमार्गगामी लोगों को दोष या दण्ड देनेवाले आर्यों का नाम है। बहुत आदमी हिन्दू शब्द को फारसी भाषा का शब्द मानते हैं और इसका अर्थ चोर, डाकू, राहजन, गुलाम, काला या काफिर आदि करते हैं। फारसी में हिन्दू शब्द जरूर है और अर्थ भी उसका अच्छा नहीं है। इसीसे इस शब्द के अर्थ की तरफ लोगों का इतना ध्यान गया है। सिन्धु से हिन्दू हो जाना या पुराने जमाने में हिन्दुओं को तुच्छ दृष्टि से देखने वाले मुसलमानों का, उनके लिए काफिर और गुलाम आदि अर्थों का वाचक शब्द प्रयोग करना, कोई विचित्र बात भी नहीं। परन्तु पण्डित धर्म्मानन्द महाभारती न तो इन अर्थों में से किसी अर्थ को मानते हैं और न हिन्दू शब्द की आज तक प्रसिद्ध व्युत्पत्ति ही को कबूल करते हैं। आपने पुरानी व्युत्पत्ति और पुराने अर्थ को गलत साबित करके हिन्दू शब्द की उत्पत्ति और अर्थ एक नये ही ढंग से किया है। आपने इस विषय पर, तीन चार वर्ष हुए, बँगला भाषा में एक लेखमालिका निकाली थी। उसके उत्तर अंश का मतलब हम यहाँ पर, संक्षेप में, देते हैं।

फारसी में हिन्दू शब्द यद्यपि रूढ़ हो गया है तथापि वह उस भाषा का नहीं है। लोगों का ख्याल है कि फारसी का हिन्दू शब्द संस्कृत सिन्धु शब्द का अपभ्रंश है। यह लोगों का केवल भ्रम है। ऐसे अनेक शब्द हैं जो भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही रूप में पाये जाते हैं। यहाँ तक कि उनका अर्थ भी कहीं-कहीं एक ही है। पर वे सब भिन्न-भिन्न धातुओं से निकले हैं। उदाहरण के लिए 'शिव' शब्द को लीजिए। संस्कृत में उसकी साधनिका तीन धातुओं से हो सकती है। पर अर्थ सबका एक ही, अर्थात् कल्याण या मंगल का वाचक है। यही 'शिव' शब्द यहूदी भाषा में भी है। वह अंगरेजी अक्षरों में "Sceva" लिखा जाता है। पर उच्चारण उसका 'शिव' होता है। वह यहूदी भाषा में 'शू' धातु से निकला है। उसका अर्थ है "लाल रंग"। 'शिव' नाम का यहूदियों में एक वीर भी हो गया है। अब, देखिए, क्या संस्कृत का 'शिव' यहूदियों के 'शिव' से भिन्न नहीं? लोग समझते हैं, संस्कृत का 'सप्ताह' शब्द और फारसी का हफ्ता शब्द एकार्थवाची होने के कारण एक ही धातु से निकले हैं। यह उनका भ्रम है। हफ्ता एक ऐसी धातु से निकला है जो संस्कृत सप्ताह शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। फारसी में स (से), स (स्वाद) स (सीन), श (शीन) ऐसे चार वर्ण हैं जिनका उच्चारण एक दूसरे से बहुत कुछ मिलता है। अतएव, सप्ताह का 'स' हफ्ता के 'ह' में कभी नहीं बदल सकता। हफ्ता शब्द सप्ताह का अपभ्रंश नहीं। जो कोई उसे सप्ताह का अपभ्रंश समझते हैं वे भूलते हैं।

ईसा के पाँच सौ वर्ष बाद महम्मद का जन्म हुआ। उनके जन्म के कोई साढ़े सात सौ वर्ष बाद मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में पदार्पण किया। यदि हिन्दू शब्द मुसलमानों का बनाया हुआ है तो उसकी उमर बारह सौ वर्ष से अधिक नहीं। परन्तु पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि हिन्दू शब्द ईसा के जन्म से भी कई हजार वर्ष पहले का है। तो फिर क्या वह वेद में है? नहीं। किसी शास्त्र में है? नहीं। जैन या बौद्धों के पुराने ग्रन्थों में है? नहीं। फिर है कहाँ? है वह अग्निपूजक पारसियों के धर्मग्रन्थ जेन्दावस्ता में। जिन पारसियों को आजकल हिन्दू लोग, धर्म सम्बन्ध में, बुरी दृष्टि से देखते हैं उन्हींके प्राचीनतम ऋषियों और विद्वान् पण्डितों ने हिन्दू शब्द के आदिमरूप को अपने धर्मग्रन्थ में स्थान दिया है। वह आदिम रूप हन्द् शब्द है। यहूदियों की धर्मपुस्तक ओल्ड टेस्टामेन्ट (बाइबल के पुराने भाग) में भी हन्द् शब्द पाया जाता है। अब देखना है कि इन दोनों ग्रन्थों में से अधिक पुराना ग्रन्थ कौन है।

क्रिश्चियन लोगों का कथन है कि बाइबल का पुराना भाग क्राइस्ट से पाँच हजार वर्ष पहले का है। इनमें उनको कोई सन्देह नहीं। इसे वे पूरे तौर पर सच समझते हैं। पारसी कहते हैं:—"Our Zendavesta is as ancient as the Creation; it is as old as the Sun or the Moon" अर्थात् हमारा धर्मग्रन्थ जेन्दावस्ता इतना पुराना है जितनी यह सृष्टि, वह इतना प्राचीन है जितना सूर्य या चन्द्रमा। पारसियों की यह उक्ति सच है। उसके प्रमाण:—

(१) यहूदियों का धर्मशास्त्र, ओल्डटेस्टामेन्ट, हिब्रू अर्थात् इब्रीय भाषा में है और पारसियों की जेन्दावस्ता जेन्द भाषा में। हिब्रू भाषा की अपेक्षा जेन्द भाषा बहुत पुरानी है।

(२) ओल्ड टेस्टामेन्ट में अनेक नये-नये स्थानों और जंगलों का नाम है। वे स्थान और जंगल जेन्दावस्ता के समय में न थे।

(३) हाल साहब और मिस्टर मलाबारी कहते हैं कि पुरानी पारसी जाति में मनु के आर्षविवाह के समान सभ्य विवाह पद्धति प्रचलित न थी। परन्तु ओल्ड टेस्टामेन्ट में इस प्रथा के विवाह का वर्णन है। ओल्डटेस्टामेन्ट के प्रचार के पूर्ववर्ती समाज में जिस प्रकार की विवाह प्रथा प्रचलित थी उसका वर्णन जेन्दावस्ता में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) जेन्दावस्ता में यहूदी शब्द या यहूदी जाति का नाम नहीं है। पर ओल्ड टेस्टामेन्ट में कम से कम नौ दफा पारसी जाति का जिकर है।

(५) बाइबल में कई जगह लिखा है कि पारसियों ने यहूदियों को जीत कर बहुत काल तक उनके देश में राज्य किया। पर यहूदियों में किसी ने भी पारसियों को विजय नहीं किया।

(६) अग्निपूजा पृथ्वी की प्राचीन जातियों की सबसे अधिक प्राचीन प्रथा है। ओल्ड टेस्टामेन्ट के समय में अग्निपूजा बन्द हो गई थी, पर जेन्दावस्ता के समय में खूब प्रचार था।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि ओल्ड टेस्टामेन्ट से जेन्दावस्ता पुराना ग्रन्थ है।

बँगला संवत् १३०६ के ज्येष्ठ की भारती नामक बंगला मासिक पत्रिका में भारती सम्पादिका श्रीमती सरलादेवी बी० ए० लिखित एक प्रबन्ध छपा है। उसका नाम है "हिन्दू और निगर।" उसमें लिखा है--हिन्दू शब्द संस्कृत सिन्धु शब्द से उत्पन्न नहीं। जेन्दावस्ता नामक पारसियों का पुराना धर्म्मग्रन्थ वेदों के समय का है। उसमें हिन्दू शब्द एक दफा आया है। हारोबेरेजेति (अल्बुर्ज) पहाड़ के पास पहले पहल ऐर्यन ब्रयेजों (आर्य-निवास) था। धीरे-धीरे अहुर्मजदा ने (पारसियों के परमेश्वर ने) सोलह शहर बसाये। उनमें से पन्द्रहवें शहर का नाम हुआ 'हस्तहिन्दव।" वेदों में इसीको "सप्तसिन्धवः" कहते हैं। जेन्दावस्ता में तीर इयास्ते नामक एक पहाड़ के लिए भी, एक बार, हिन्दव शब्द आया है। अनुमान होता है यही हिन्दव शब्द आजकल के हिन्दूकुश पर्वत का पिता है।

व्यवहार में न आने के कारण यह मूल अर्थ धीरे-धीरे भूल गया। तब बहुत दिनों के बाद, वैयाकरण लोगों ने सिन्द धातु के आगे औणदिक "ऊ" प्रत्यय लगा कर, किसी तरह तोड़ मरोड़ कर समुद्रार्थ बोधक सिन्धु शब्द पैदा कर दिया। यह उनकी सिर्फ कारीगरी मात्र है। इत्यादि। यह बात बिलकुल नई है। इसके पहले और किसीने इसका पता नहीं लगाया। इससे मालूम हुआ कि हिन्दू शब्द यवनों की सम्पत्ति नहीं, उसे मुसलमानों ने नहीं बनाया। जेन्दावस्ता नामक अति प्राचीन और पारसियों की अति पवित्र पुस्तक में उसका प्रयोग सबसे पहले हुआ। जेन्दावस्ता ग्रन्थ वेदों का समसामयिक है। प्राचीन पारसी लोग अग्निहोत्री (अग्नि के उपासक) थे। आजकल के पुरातत्वज्ञ उनकी गिनती प्राचीन आर्यों में करते हैं।

अभी तक आपने हिन्दू शब्द का सिर्फ अंकुर देखा। अब लीजिए अंकुरोत्पन्न वृक्ष और उसके बाद वृक्षोत्पन्न फल।

यहूदियों का धर्मशास्त्र, ओल्ड टेस्टामेन्ट, ३९ भागों में बँटा हुआ है। अथवा यों कहिए कि उसमें जुदा-जुदा ३९ पुस्तकें हैं। उनमें से सत्रहवीं पुस्तक का नाम "दि बुक आफ यस्थर" (The Book of Esther) इसका हिब्रू नाम है आजथुर। इसके पहले अध्याय में है:--

Now it came to pass in the days of Ahasuerus, this is Ahasuerus which reigned, from India even unto Ethiopia over an hundred and seven and twenty provinces." Esther, Chapter I, Verse I.

अर्थात् आहासुरस राजा ने इण्डिया से ईथियोपिया तक राज्य किया। अब, इस बात का विचार करना है कि यह इण्डिया (हिन्दुस्तान) शब्द किस अर्थ का वाचक है। याद रखिए यहूदियों का ओल्ड टेस्टामेन्ट ग्रन्थ ईसा से पाँच हजार वर्ष पहले का है। वह हिब्रू भाषा में है। उसके अँगरेजी अनुवाद में इण्डिया शब्द आया है। अच्छा, तो यह इण्डिया शब्द किस हिब्रू शब्द का अनुवाद है? वह पूर्वोल्लिखित "हन्द्' शब्द का भाषान्तर है। हिब्रू में हन्द् शब्द का अर्थ है--विक्रम, गौरव, विभव, प्रजा, शक्ति, प्रभाव आदि। यह बात ओल्ड टेस्टामेन्ट के अनेक अवतरणों से साबित की जा सकती है। परन्तु उन सब प्रमाणों को देने से लेख अधिक बढ़ जायगा। इससे हम उन्हें नहीं देते। अब आजथुर पुस्तक से जो वाक्य ऊपर दिया गया है, उसके अर्थ का विचार कीजिए "आहासुरस राजा ने हन्द् (शक्ति) से ईथियोपिया तक राज्य किया।" जिस तरह अँगरेजी में बहुधा गुणवाचक शब्द का परिचय सिर्फ उसके गुण के उल्लेख से होता है उसी तरह हिब्रू भाषा में भी होता है। अतएव, हन्द् से ईथियोपिया तक राज्य किया, इस वाक्य का अर्थ हुआ हन्द् (शक्तिविशिष्ट राज्य) से लेकर ईथियोपिया तक राज्य किया। जिनको इस बात पर विश्वास न हो वह डाक्टर हेग का बनाया हुआ अँगरेजी हिब्रू व्याकरण देखने की कृपा करें।

यहूदी लोग ग्रीक लोगों से पुराने हैं। ग्रीस में एक ऐतिहासिक लेखक हो गया है। उसका नाम था मिगास्थनीज। उसने एक जगह लिखा है यहूदी लोगों ने पारसियों से ज्ञान और शिक्षा और भारतवासियों से धन और प्रभुत्व प्राप्त किया था। यहूदियों ने भारतवर्ष में व्यापार करके बहुत धन कमाया था, यह बात यहूदियों ने अपने ही लिखे हुए इतिहास में स्वीकार की है। इसके और भी अनेक प्रमाण ग्रीस और रोम विषयक पुस्तकों में पाये जाते हैं। यहूदी राजा दाऊद के पुत्र सालोमन के विश्वविख्यात मन्दिर के लिए लकड़ी, चूना, पत्थर इत्यादि मसाला हिन्दुस्तान से गया था। थराक्लूश नामक एक ग्रीक ग्रन्थकार ने लिखा है--"भारतवर्ष का विक्रम और गौरव देखकर ही यहूदी लोग इस देश को हन्द् कह कर पुकारते थे।" अब देखना है कि यहूदी लोगों ने इस हन्द् शब्द को पाया कहाँ से? पाया उन्होंने पारसियों की जेन्दावस्ता से। प्रमाण :--

(१) यहूदियों के देश में बहुत काल तक पारसियों ने राज्य किया। उनके राज्यकाल में यहूदी अदालतों में जेन्द भाषा राजभाषा थी। शिक्षित लोग जेंद् भाषा ही बोलते थे। वे लोग जेन्दावस्ता पढ़ते थे। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारसियों के हिन्दव शब्द से यहूदी जरूर परिचित रहे होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

(२) यहूदियों ने जेन्दावस्ता से अनेक देश, पर्वत और नदियों आदि के नाम लिये हैं। यथा :—

जेन्द भाषा	हिब्रू भाषा
तराशश् (Taurus)	तरश्
मोश्जा	मोशजा
मज्दाहा	मेशाया (Messiah)
काशा	कोशा
अरद्जु	इयारजउ

(३) हिब्रू भाषा कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं। वह जेन्द भाषा से उत्पन्न है। अतएव यह बात अखण्डनीय सत्य है कि जेन्द भाषा के हिन्दव शब्द ने ही हिब्रू भाषा में हन्द् रूप धारण किया। इसकी पुष्टि में अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

पाठक, आपने महाजनों की मुड़िया लिपि देखी है। न देखी होगी तो उसकी विशिष्टता से आप जरूर ही वाकिफ होंगे। उसमें अकार, इकार, उकार आदि की मात्रायें नहीं होतीं। इससे बाबा, बीबी, बूबू, बोबो सब एक ही तरह लिखे जाते हैं। अपेक्षित शब्द पढ़ने वाले अपनी बुद्धि से पढ़ लेते हैं। इस कारण से कभी-कभी मामा का मामी, किश्ती की कुश्ती, घड़ा का घोड़ा और 'अजमेर गये' का 'आज मर गये' हो जाता है। हिब्रू भाषा भी ऐसी ही है। उसमें भी एकार उकार आदि नहीं है। वह दाहने हाथ की तरफ से लिखी जाती है। उसकी पुत्री अरबी और पौत्री फारसी भाषा है। इन दोनों भाषाओं में जेर जबर और पेश आदि चिह्नों के प्रयोग से वैयाकरणों ने अकार, इकार और उकार का उच्चारण किसी प्रकार निश्चित कर लिया है। पर हिब्रू में यह बात अब तक नहीं हुई। उसकी वर्णमाला में सिर्फ दो ही एक स्वर हैं, सो भी अपरिस्फुट। चिह्नों के द्वारा अनेक शब्दों का उच्चारण होता है। इससे क्या होता है कि बहुत स्थलों में इकार का लोप हो जाता है देखिए :—

जेन्द	हिब्रू
किरियाद्	करयोयद्
शिकिना	सकना
हिशिया	अशयः
हिज़रद	यजानुद्
बिरजोद्	बरजाद्

यदि हम यह कह दें कि हिब्रू में इकार है ही नहीं तो भी अत्युक्ति न होगी। जो शब्द खास हिब्रू का नहीं है उसमें पूरा इकार नहीं होता। उच्चारण में इकार होने से भी वह लिखा नहीं जाता। यथा :—

हिब्रू उच्चारण	हिब्रू लिखावट
जिहोवा	जहोवा
इज्जिल	अज्जल
इश्राइल	यश्रहिल
इजाया	आजाया
इयाकुव	आकूब
मरियम्	मरम्

अतएव जेन्द शब्द हिन्दव की इकार यदि हिब्रू में उड़ जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? अच्छा, इकार तो गई, अब यह बतलाइए कि हिन्दव का व कार कहाँ किस तरह गया ? सुनिए, उसका भी हम पता बतलाते हैं। हिब्रू भाषा में त, थ, द, च, छ, झ, ड आदि अक्षरों का उच्चारण होने से व, फ, ओ और य का लोप हो जाता है। दृष्टान्त :—

हिब्रू शब्द	उच्चारण में लोप
तोवा	तोहा
अस्थुवा	अस्थुहा
सन्दव	सन्द अथवा सन्द
गदद्	गद्
दाडदव	दाडद्
आदावो	आदाहा

अतएव पारसियों की जेन्दावस्ता का पवित्र हिन्दव शब्द हिब्रू भाषा में हन्द् हो गया। जो कुछ यहाँ तक लिखा गया उससे यह सिद्धान्त निकला कि :—

(१) हिन्दू शब्द पहले जेन्दावस्ता में प्रयुक्त हुआ।

(२) पारसी लोग इस शब्द के सृष्टिकर्ता हैं।

(३) यहूदियों ने इसे अपनी भाषा में लेकर हन्द् कर दिया।

हिन्दुस्तान से ग्रीक लोग बहुत दिनों से परिचित थे। उनको इस देश की खूब अभिज्ञता थी। जिस रास्ते से ग्रीक लोग हिन्दुस्तान आते थे उस रास्ते में एक पहाड़ पड़ता था। कई कारणों से उन्हें उसके पास ठहरना पड़ता था। इस रास्ते का वर्णन उन्होंने आहासुरस राजा की पुस्तक में पढ़ा था। बर्फ से ढकी हुई और बहुत ऊँची पर्वतमाला को रास्ते में देखकर ग्रीक लोगों ने अपने साथियों से उनका नाम पूछा। उन्होंने कहा इसका नाम हम नहीं जानते। पर उनके साथ एक पुरोहित भी था। उसने कहा—"मैंने सुना है कि इसके एक तरफ हन्द् देश की सीमा है और दूसरी तरफ ईथियोपिया राज्य की राजनैतिक सीमा" इसी ईथियोपिया राज्य का हिब्रू नाम है कुश (Cush) बाइबल (ओल्ड टेस्टामेन्ट) की पहली पुस्तक, जेनेसिस, के दूसरे अध्याय की तेरहवीं आयत में है।

"And the name of the second river is Gihon: the same is it that compasseth the whole Ethiopia"

जहाँ पर यह आयत है उसके किनारे, टीका में लिखा है कि ईथियोपिया को यहूदी लोग कुश कहते थे। मूल हिब्रू में ईथियोपिया नहीं है, उसकी जगह कुश ही है। इसी कुश शब्द ने ग्रीक भाषा में कोश (Cosh) रूप धारण किया। यह कोश शब्द चेतना विशिष्ट पुल्लिंग है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कोश, ईथियोपिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य का नाम है। हिब्रू भाषा की तरह ग्रीक भाषा के व्याकरण के अनुसार भी कोश शब्द गुणवाचक है। हिब्रू भाषा में कुश या कोश शब्द का अर्थ सीमा भी होता है और पर्वत भी होता है। इसी कुश या कोश से 'कोः' और "कोहे" शब्द निकले हैं जिनका अर्थ अरबी और फारसी भाषा में पर्वत है। पुराने जमाने में इस देश की पश्चिमी सीमा हिन्दूकुश पर्वत था। रघु के दिग्विजय में, महाभारतोक्त गान्धारी के विवाह वर्णन में, और पुराने भूगोल में इस बात का प्रमाण मिलता है कि हिन्दूकुश के आस-पास भारतीय राजाओं का राज्य था, पर उसके आगे न था। इन्हीं कारणों से ग्रीक लोगों ने हनुद् देश की सीमा के, अथवा हनुद् देश के सीमाज्ञापक पर्वत के, अर्थ में इस पहाड़ का नाम हनुद् कोश (Hand kosh) रक्खा। यह बात युक्तिसंगत और सन्देहहीन है। ग्रीक भाषा में पर्वत शब्द पुल्लिंग और चेतनावान है। अपभ्रंश होते-होते वह हनुद्-कोश से इण्डिकस हो गया। यही इण्डिकस अँगरेजी राज्य में इण्डिया (India) हुआ। अब देखिए, जेन्दावस्ता का हिन्दव हिब्रू भाषा में हुआ हनुद्। हिब्रू भाषा का हनुद् ग्रीक भाषा में हुआ हनुद्कोश इण्डिकस। ग्रीक भाषा का इण्डिकस अँगरेजी में हुआ इण्डिया।

हिन्दूकुश से अटक के किनारे तक जो लोग रहते हैं वे पश्तू भाषा बोलते हैं। ये लोग फारस के आदिम निवासी हैं। फारसी से उनकी भाषा बहुत मिलती है। धर्मान्तर ग्रहण करने के पहले ये लोग भी पारसियों की तरह अग्नि-पूजक थे। इन्हीं पश्तू बोलनेवाले भारतवासियों ने, अर्थात् जेन्दावस्ता को माननेवाले अग्निसेवक पुराने पारसियों के वंशधरों ने, हनुद् शब्द के आगे ह्रस्व उ प्रयोग करके, उसे 'हन्दु' के रूप में बदल दिया। पश्तू व्याकरण के अनुसार हनुद् और हिन्द् शब्द के उत्तर ह्रस्व उ प्रत्यय करने से "युक्त" अर्थ होता है। उ प्रत्यय होने से हनुद् अर्थात् शक्ति, गौरव, विभव, प्रभाव इत्यादि महिमायुक्त जाति सूचित होती है। क्योंकि पश्तू व्याकरण के नियमानुसार उ प्रत्यय गुणवाचक जाति या गुणवाचक पुरुष के आगे होता है। प्राचीन आर्य हिन्दू जाति के गौरव, पवित्रत्व और विभव आदि को देखकर ही पश्तू बोलनेवालों ने उप्रत्यय का प्रयोग किया था। पश्तू भाषा में हनुद् और हन्दु शब्द गौरववाचक हैं। इसके प्रमाण में पश्तू भाषा के दो पद नीचे पढ़िए :—

पुश्तो लबोदे जंगीर फेजोयान्।
उरो उरो नन् लाखियाल् लदे जंगेरे
हनुदु जेल् फालगो॥१॥

देवाट् देरन जु ज़रर् उहे रम्।
कत्लेबे पत्वे देश् तरगो
हनुदु एन् साँ डेरो॥२॥

इस प्रकार जेन्दावस्ता का हिन्दव शब्द पश्तू में "हन्दू" तक पहुँचा। सिक्ख धर्म-प्रवर्तक गुरु नानक के सैनिक शिष्यों ने गुरुमुखी भाषा में उसे "हिन्दु" कर दिया। नानक के पहले यह शब्द हिन्दव, सिन्धव, हनुद् और हन्दू तक रहा। हिन्दुवंशावतंस सिक्खों ने अन्त में उसे हिन्दू के रूप में परिवर्तित कर दिया। जो लोग कहते हैं कि हिन्दू शब्द सीमाबद्ध है वे बड़े ही भ्रान्त हैं। कहाँ फारस, कहाँ यहूदी देश, कहाँ ग्रीस, कहाँ आहासुरस का राज्य। सब कहीं वही प्राचीन हिन्दू नाम!

इस विवेचन से सिद्ध हुआ कि हिन्दू शब्द का अर्थ है विक्रमशाली, प्रभावशाली आदि। सुप्रसिद्ध फरासीसी लेखक जोकोलियेत् (Jaquoliette) ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है "आसारण बल और असाधारण विद्यावत्ता के कारण पूर्वकाल में भारतवर्ष पृथिवी की सारी जातियों का आदरपात्र था।" जिस हिन्दू जाति की साधुता, वीरता, विद्या, विभव और स्वाधीनता आदि देखकर पारसी, यहूदी, ग्रीक और रोमन लोग मोहित हो गये और मुसलमान इतिहास-लेखकों ने जिस देश को स्वर्ग भूमि कहकर उल्लेख किया, क्या उसी देश के रहनेवाले काफिर, काले, गुलाम, कदाकार और परस्वापहारी कहे जा सकते हैं? यह बात क्या कभी विश्वासयोग्य मानी जा सकती है? हिन्दू शब्द कदर्थबोधक नहीं। हिन्दू शब्द गौरव, गरिमा, विक्रम और वीरत्व का व्यञ्जक है। तो कहिए, क्या आप अब हिन्दू नाम छोड़ना चाहते हैं? जो ज्ञान विज्ञान और सर्वशास्त्री तत्त्वों का आदर्श है, जो प्राण शीतलकारी ब्रह्म विद्या का आकर है, जो विक्रम और विभव की खानि है, वही पवित्र और प्रशस्त हिन्दू नाम हमारे मस्तक की मणि है। हमारे देश का गौरव है, हमारी जाति के महत्त्व का व्यञ्जक है, और वही इस अधःपतित, अर्द्धमृत, पदानत भारतीय आर्यजाति के जातीय जीवन का पुनरुद्दीपक है। हिन्दू एक ऐसा शब्द है, एक ऐसा नाम है, जिसके उच्चारण से भग्न हृदय में फिर आशा का संचार हो जाता है, क्षीण देह में बल-स्रोत फिर वेग से बहने लगता है। अन्तःकरण में जातीय गौरव का फिर अभ्युदय हो जाता है, और मन में ब्रह्मानन्द का अतर्कित अनुभव होने लगता है। तब हिन्दू नाम हम छोड़ें क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

मंगलाप्रसाद पारितोषिक में कटौती

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को उनके निबंध संग्रह 'चिंतामणि' पर १२०० रुपये का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला था। यह पारितोषिक काशी के एक प्रसिद्ध रईस के नाम पर उनके परिवार ने स्थापित किया है, और हिंदी साहित्य सम्मेलन उसे प्रदान करता है। यों तो हिंदी में अनेक और बड़ी-बड़ी राशियों के पुरस्कार दिये जाते हैं, किंतु जो सम्मान मंगलाप्रसाद पारितोषिक का है, वह अन्य किसी पुरस्कार का नहीं है।

जिस उत्सव में शुक्लजी यह पुरस्कार लेने गये उसमें बैठक हिंदुस्तानी ढंग की थी। अतएव शुक्लजी को अपना जूता बाहर उतारना पड़ा। उन्होंने वह जूता एक-दो दिन पहिले ही बारह रुपये में खरीदा था। जब पुरस्कार लेकर वे बाहर निकले तो देखा कि किसीने उनका जूता तिड़ी कर दिया है।

शुक्लजी इसी सोच में खड़े थे कि अब क्या करें, कि इतने ही में उनके कुछ मित्रों ने उन्हें घेर लिया और औपचारिक बधाई देने के बाद कहने लगे कि आपको बारह सौ रुपये मिले हैं, कुछ हम लोगों का भी मुँह मीठा कराइए। शुक्लजी ने सूखे मुँह से कहा--"बारह सौ कहाँ मिले? ११८८ रुपये ही तो मिले हैं!" लोगों को आश्चर्य हुआ। वे बोले "सो कैसे? अभी-अभी तो आपको १२०० रुपये मिले हैं।" शुक्लजी ने अपने नंगे पैरों को दिखाते हुए कहा--"भाई! इसी पुरस्कार-उत्सव के लिए बारह रुपये के नये जूते खरीदे थे। आज उन्हें पहिनकर आया और वे किसीने उड़ा दिये। अब बारह रुपये मुझे फिर खर्च करने पड़ेंगे। वह इसी हिसाब में तो जायँगे! अतएव मुझे तो नगद ११८८ ही मिले हैं। एक प्रतिशत से आपका मुँह मीठा कर देता, सो जूतों में गये।"

लोग मिठाई माँगना भूल गये। शुक्लजी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने लगे। शुक्लजी भी नंगे पैर एक इक्के पर बैठकर घर लौटे।

साहित्यिक झाँसा

काशी के प्रसिद्ध साहित्यिक, पत्रकार और प्रकाशक बा० रामकृष्ण वर्मा को दुर्लभ पुस्तकों को प्रकाशित करने का बड़ा शौक था। उन्हें कहींसे पजनेस कवि के पचास छंद मिल गये जिन्हें उन्होंने 'पजनेस पचासा' के नाम से संग्रह में प्रकाशित कर दिया। पजनेस की कविता उन्हें इतनी पसंद आयी कि एक बार रत्नाकरजी के घर पर साहित्यिकों के एक जमाव में उन्होंने कह दिया कि यदि कोई मुझे पजनेस के अप्रकाशित छंद खोजकर ला दे तो मैं प्रत्येक छंद के लिए पाँच रुपये पुरस्कार दूँगा। उस समय उस मंडली में पंडित लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी नाम के एक कवि भी थे। वे बड़े मौजी और विनोदप्रिय थे। इस घटना के कुछ दिनों बाद उन्होंने पजनेस की शैली में कुछ छंद बना डाले। उन्होंने उन्हें कालपी के कागज पर काली स्याही से लिखा और फिर उनको धरती में गाड़ दिया। कुछ दिनों बाद जब उन्हें निकाला तो वे मैले और पुराने मालूम पड़ने लगे। वे उन पन्नों को लेकर वर्माजी के पास पहुँचे और बोले--पजनेस के ये पुराने छंद मुझे बड़े परिश्रम से मिले हैं। यदि आपको पसंद हों तो आप इन्हें ले लें और जो पुरस्कार आपने देने कहा था, उसे दे दें। वर्माजी ने छंद पढ़े। उन्हें विश्वास हो गया कि वे पजनेस के ही हैं। वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने त्रिपाठीजी से मोलभाव करके उन्हें २५० रुपयों में ले लिया। रुपया लेने के कुछ दिनों बाद त्रिपाठीजी ने किसी बगीची में एक वृहद् और शानदार भांग-पार्टी दी जिसमें सभी प्रमुख साहित्यिकों को निमंत्रित किया। बाबू रामकृष्ण वर्माजी को विशेष आग्रह करके ले गये। जब पार्टी समाप्त होने को हुई तो त्रिपाठीजी ने खड़े होकर उपस्थित लोगों से कहा कि इस शानदार उत्सव के लिए हम सबको वर्माजी का कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि यह वृहद् पार्टी वर्माजी के रुपयों से दी गयी है। इतना कहकर उन्होंने अपनी सारी करतूत का रोचक और विस्तृत वर्णन सुना दिया। तब वर्माजी को मालूम हुआ कि त्रिपाठीजी ने उन्हें झाँसा देकर उनके साथ कैसा सटीक मजाक किया था। सारी कथा सुनकर लोग हँसी से लोटपोट हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव का विवरण

सरस्वती की हीरक जयन्ती का विचार

सरस्वती का प्रथम अंक १९०० की जनवरी की पहिली तारीख को प्रकाशित हुआ था। अतएव ३१ दिसंबर १९५९ को उसके जीवन के ६० वर्ष पूरे हुए। १, जनवरी १९६० को इकसठवें वर्ष का जब पहिला अंक सामने आया तब किसी कारण से उसकी वर्ष-संख्या पर निगाह पड़ी और तब यह भान हुआ कि सरस्वती ने षष्टिपूर्ति कर ली है। तब तक इस तथ्य की ओर ध्यान ही नहीं गया था। इस बात की चर्चा कई साहित्यिक मित्रों से की और सब ने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि हिंदी की एक साहित्यिक मासिक पत्रिका इतने दीर्घ समय तक जीवित रहकर हिंदी की सेवा करती रही। बहुत विचार-विनिमय के बाद साहित्यिक मित्रों की यह राय हुई कि इस अवसर को एक उत्सव करके मनाया जाय। यदि इंडियन प्रेस के डाइरेक्टरों को सुझाव दिया जाता तो वे तुरंत ही इसे मनाने के लिए तैयार हो जाते। किंतु मित्रों की यही राय हुई कि यह उत्सव हिंदीप्रेमी ही मनावें क्योंकि सरस्वती ने हिंदी की जो सेवा की है उसे देखते हुए यह कार्य उन्हें ही करना चाहिए। इंडियन प्रेस ने, अहिंदीभाषी होते हुए भी, हिंदी की पत्रिका निकाल कर और उसे इतने दिनों सफलतापूर्वक चला कर हिंदी का जो उपकार और सेवा की है, वही बहुत है। यह भार उस पर न डाला जाय। हिंदीप्रेमी उसके प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन करें। यदि इंडियन प्रेस इस उत्सव को करेगा तो उसमें हिंदीवालों का सहयोग अतिथियों के रूप में होगा। वह उनका उत्सव न होगा। कानून की दृष्टि से 'सरस्वती' इंडियन प्रेस की सम्पत्ति अवश्य है और उसे निकालने और इतने दिनों तक चलाते रहने का श्रेय उसीको है; किंतु 'सरस्वती' जो आज है और भूतकाल में जो रही है, उसका श्रेय उसके सम्पादकों और लेखकों को है। इस-लिए हिंदीवालों का उस पर एक प्रकार का नैतिक अधिकार है। वह हिंदी की अपनी पत्रिका है। अतएव यह कार्य उन्हें ही करना चाहिए।

मैंने यह सब बातें इंडियन प्रेस के वर्तमान मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री हरिप्रसन्न घोष से कहीं। सरस्वती की जयन्ती मनाने का सुझाव उन्हें बहुत पसंद आया। उन्होंने यह भी कहा कि इंडियन प्रेस इस उत्सव को स्वयं करने को तैयार है, किंतु हमसे और हिंदी साहित्यिकों से दीर्घकाल तक इतना घनिष्ठ और मधुर संबंध रहा है कि यदि वे लोग इस उत्सव को करना चाहते हैं तो हमें कोई आपत्ति न होगी। हम सब प्रकार का सहयोग देंगे। उनका ऐसा उदार और सहयोगपूर्ण उत्तर सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने सरस्वती हीरक जयन्ती की कल्पना को मूर्त रूप देने की कार्यवाही आरंभ की।

जयन्ती-समारोह की स्थापना

इस कार्य के लिए सबसे पहिली आवश्यकता थी कि हिंदीप्रेमियों की एक समिति बनायी जाय जो इस उत्सव की रूपरेखा बनावे तथा उसे कार्यान्वित करे। तदनुसार मार्च १९६० में प्रयाग में कुछ स्थानीय साहित्यकारों और हिंदीप्रेमियों की एक सभा बुलायी गयी। इसमें तीस सज्जन उपस्थित थे। सभा की अध्यक्षता श्री व्रज-मोहन व्यास ने की। मैंने उसके सामने हीरक जयन्ती-उत्सव का विचार रखा। वह सब लोगों को पसंद आया। अंत में यह तय हुआ कि इस कार्य के लिए एक ऐसी समिति बनायी जाय जिसमें हिंदी संसार के यथासंभव सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व हो, और उसके अध्यक्ष सरस्वती के सबसे पुराने लेखक राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी बनाये जायँ। सभी हिंदीप्रेमी जो अपना सहयोग देना चाहें, उसके सदस्य हो सकें। अतएव इस सभा ने निम्नांकित 'सरस्वती हीरक जयन्ती-समारोह समिति' का निर्माण किया :

संरक्षक
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन
अध्यक्ष
श्री मैथिलीशरणजी गुप्त
उपाध्यक्ष
पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, खंडवा, मध्य प्रदेश
आचार्य शिवपूजन सहाय, पटना, बिहार
श्री हरिभाऊ उपाध्याय, जयपुर, राजस्थान
श्री रामधारीसिंह दिनकर, दिल्ली
श्री कमलापति त्रिपाठी, वाराणसी
श्री कमलाकान्त वर्मा, अध्यक्ष, हिंदुस्तानी एकाडमी
श्री हरिप्रसन्न घोष, मैनेजिंग डाइरेक्टर, इंडियन प्रेस
मंत्री
श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी
संयुक्त मंत्री
डा० उदयनारायण तिवारी
डा० रामशंकर द्विवेदी
प्रबंध-मंत्री
श्री हरिभूषण घोष
अर्थमंत्री
श्री पुरुषोत्तमदास टंडन (राजा मुनुआँ)
कार्यकारिणी के सदस्य
श्री सी० बालकृष्ण राव
पंडित व्रजमोहन व्यास
श्री नरेन्द्रनाथ मुकर्जी
श्री पद्मकांत मालवीय
श्री श्रीकृष्णदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा ने यह मत व्यक्त किया कि उत्सव के कार्यक्रम की रूपरेखा इस बात का ध्यान रखकर बनायी जाय कि 'सरस्वती' हिंदी की पत्रिका है जो अखिल भारतीय भाषा है, तथा आरंभ ही से सरस्वती के लेखक और पाठक केवल हिंदीभाषी ही नहीं, अन्य भाषाभाषी भी रहे हैं, और इस कारण वह एक प्रकार से अखिल भारतीय पत्रिका रही है। अतएव उसका कार्यक्रम भी हिंदी और सरस्वती की अखिल भारतीयता के अनुरूप हो।

सभा ने इस अवसर के अनुरूप सरस्वती का एक विशेषांक निकालने के लिए इंडियन प्रेस से अनुरोध किया।

उसने यह भी निश्चित किया कि इस अवसर पर हिंदीप्रेमियों की ओर से सरस्वती के संस्थापकों, भूतपूर्व प्रमुख सम्पादकों और पुराने तथा विशिष्ट लेखकों का सम्मान करने का प्रयत्न किया जाय।

कार्यक्रम की रूपरेखा

कार्यसमिति ने समारोह समिति के निदेशों के अनुसार कार्यक्रम बनाने का काम हाथ में लिया। इंडियन प्रेस ने समिति का यह अनुरोध स्वीकार कर लिया कि इस अवसर पर वह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक निकाले। इसका सारा उत्तरदायित्व प्रेस के ऊपर छोड़ दिया गया।

कार्यक्रम बनाते समय समिति का यह मत था कि इस अवसर पर कोई ऐसा काम किया जाय जो स्थायी महत्त्व का हो और जो इस उत्सव का स्मरण भावी पीढ़ियों को दिलाता रहे। इसी सिलसिले में विचार करते समय समिति में यह मत व्यक्त किया गया कि अभी तक किसी साहित्यकार की कोई प्रतिमा स्थापित नहीं की गयी। इस अवसर के स्थायी स्मारक के रूप में हिंदी के कुछ महारथियों की प्रतिमाएँ सार्वजनिक स्थानों में स्थापित की जायँ। सरस्वती के सर्वोत्कृष्ट सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और उसके संस्थापक बाबू चिंतामणि घोष की प्रतिमाओं को स्थापित करने पर विचार हुआ। समिति ने इस विचार को बहुत पसंद किया किंतु उसे ऐसा अनुभव हुआ कि हिंदी जगत् में हिंदीसेवा की दृष्टि से सबसे पहिले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिमा स्थापित होनी चाहिए। उनके बाद महामना मालवीयजी की और तब द्विवेदी जी की। प्रयाग में पं० बालकृष्ण भट्ट का स्मारक भी प्राथमिकता की माँग करता है। समिति ने मालवीयजी के स्मारक के संबंध में यह सुना कि उनकी जन्मशती के अवसर पर एक अखिल भारतीय समिति बन चुकी है जो उनकी मूर्ति की स्थापना कर रही है। प्रयाग में भी एक समिति बनी है जो शायद इस प्रस्ताव पर विचार कर रही है। यदि यह समिति चार प्रतिमाओं के लिए धन एकत्र कर सके तो भारतेंदु, द्विवेदीजी, पं० बालकृष्ण भट्ट और श्री चिंतामणि घोष की प्रतिमाएँ स्थापित करना बहुत उचित और वांछनीय होगा। किंतु सरस्वती हीरक जयंती-समारोह समिति का तात्कालिक संबंध उसके ख्यातनामा सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्री चिंतामणि घोष से ही है। अतएव यद्यपि प्रयत्न चारों महानुभावों के स्मारक बनाने का किया जाय तथापि इस अवसर पर विशेष बल द्विवेदीजी और घोष महोदय की प्रतिमाओं पर दिया जाय।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि मैंने इस संबंध में समिति के आदेशानुसार प्रयत्न भी किया। चारों प्रतिमाओं की स्थापना में प्रायः एक लाख रुपये के व्यय का अनुमान किया गया। समिति का मत था कि भारतेंदु की प्रतिमा यदि बनायी जाय तो वह मनुष्यायत (फुल साइज़) की हो। प्रतिमाओं के बनाने का नियम यह है कि वह मनुष्य के वास्तविक आकार से कम से कम ड्योढ़े आकार की बनायी जाती है। यदि वह वास्तविक आकार की बनायी जाय तो पीठिका के ऊपर चढ़ाए जाने पर बहुत छोटी मालूम होती है। यह भी तय हुआ था कि मूर्ति संगमर्मर की न बना कर काँसे (ब्रोंज) की बनायी जाय क्योंकि सार्वजनिक स्थानों पर वह लगायी जायगी, और यदि किसी ने शरारत से उस पर एक ढेला भी मार दिया तो संगमर्मर के टूट जाने से प्रतिमा का अंगभंग हो जाने का भय रहेगा। मैंने इस संबंध में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानंदजी से भी बात की। उन्होंने इस प्रस्ताव को पसंद भी किया और भारतेंदु की प्रतिमा के लिए उसके व्यय का आधा अनुदान देने का वचन भी दिया। मैंने इस बात का प्रयत्न किया कि इस कार्य के लिए धन एकत्र हो सके। कानपुर और कलकत्ता के कुछ धनी लोगों तथा साहित्यिक मित्रों से भी बातचीत की। किंतु मुझे उनसे प्रोत्साहन नहीं मिला। यदि इस समिति के कार्यकर्ता विशुद्ध साहित्यिक न होकर राजनीतिक नेता होते तो एक लाख रुपया संग्रह कर लेना कठिन न था। आज सात्विक दान देने का युग नहीं रहा गया। दान भी दबाव ही से मिलता है। सब का परिणाम यह हुआ कि जब हमने अपने आर्थिक साधनों को देखा तब ऐसा लगा कि हम केवल एक प्रतिमा की स्थापना कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में सरस्वती हीरक जयन्ती-समारोह के अवसर पर केवल आचार्य द्विवेदीजी की प्रतिमा की स्थापना का निर्णय लेना पड़ा। यदि इंडियन प्रेस से अनुरोध किया जाता तो वह श्री चिंतामणि घोष की प्रतिमा का पूरा व्यय दे देता तथा अन्य प्रतिमाओं के लिए भी सहायता देता। किंतु समिति का दृष्टिकोण यह था कि हिंदी संसार को अपनी ओर से ये स्मारक बनाने चाहिए। इंडियन प्रेस ने सरस्वती निकाल कर और उसे इतने दिनों चलाकर हिंदी की जो सेवा की है उसके लिए कृतज्ञता ज्ञापन करना हिंदीवालों का कर्तव्य है। वह उस पर यह बोझ डालना उचित नहीं समझता। इस समय केवल द्विवेदीजी की मूर्ति स्थापित की जाय और भविष्य में प्रयत्न किया जाय कि भारतेंदु, श्री चिंतामणि घोष और पं० बालकृष्ण भट्ट की मूर्तियाँ भी स्थापित की जायँ।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि महाभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंतामणि घोष के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए समिति की ओर से उनका एक मनुष्यायत तैलचित्र सरस्वती कार्यालय में लगाया जाय।

सरस्वती के प्रथम सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास थे। इस जयंती के अवसर पर उनकी सेवा के उपलक्ष में उनका मनुष्यायत तैल चित्र भी सरस्वती कार्यालय में लगाने का निश्चय हुआ।

इंडियन प्रेस ने सरस्वती की स्थापना की और अनेक बाधाओं के होते हुए वह उसे लगातार साठ वर्ष तक निकालता रहा। उससे हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता के विकास में जो सहायता मिली है उसके उपलक्ष में उसका सम्मान करने के लिए उसे एक ताम्रपत्र भेंट करने का निश्चय किया गया।

नागरीप्रचारिणी सभा ने 'सरस्वती' के प्रकाशन का अनुमोदन अपने एक संकल्प द्वारा किया था तथा उसके सम्पादन के लिए उसने अपने पाँच प्रमुख सदस्य-विद्वानों का एक सम्पादक-मंडल बना दिया था जिसने प्रथम वर्ष में उसका सम्पादन करके सरस्वती की नीति और रूपरेखा का निश्चय किया। उस सम्पादक-मंडल ने जो नीति निर्द्धारित की थी, वह इतनी प्रौढ़ थी कि आज तक सरस्वती उसीका पालन कर रही है। सम्पादक-मंडल के भंग होने पर सभा के मंत्री बाबू श्यामसुन्दरदास ने दो वर्ष उसका सम्पादन किया, और उसके बाद भी कई वर्ष सभा सरस्वती का अनुमोदन करती रही। सरस्वती के प्रति की गयी इन सेवाओं के कृतज्ञता-ज्ञापन के रूप में समिति ने उसे एक ताम्रपत्र भेंट करने का निश्चय किया।

समिति ने यह अनुभव किया कि सरस्वती को बनाने में उसके लेखकों का सहयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है क्योंकि यदि उनका सहयोग न होता तो इंडियन प्रेस की व्यावसायिक कुशलता और सम्पादकों की सम्पादन-दक्षता सरस्वती को सफल न बना पाती। अतएव प्रथम बीस वर्षों के जीवित लेखकों तथा बाद के भी कुछ प्रमुख लेखकों का बहुमान करने का निश्चय किया गया। साहित्य में बहुमान करने की कोई परम्परागत विधि ज्ञात नहीं थी। इसलिए समिति ने उसकी विधि निर्धारित की। बहुमानित विद्वान् को पुष्पहार अर्पण करके उसके कंधों पर खद्दर का जरी की किनारी का एक उत्तरीय डाला जाय तथा उसे एक नारियल और लेखनी तथा हीरक जयंती अंक भेंट में देने के अतिरिक्त एक मानपत्र भी दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि सरस्वती के दो अवसरप्राप्त वयोवृद्ध सम्पादकों—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और पं० देवीदत्त शुक्ल का भी बहुमान किया जाय। यह भी तय हुआ कि मानपत्र केवल लेखकों को दिया जाय।

सभा का एक निदेश यह था कि कार्यक्रम बनाते समय हिंदी की अखिल भारतीयता के तत्त्व का ध्यान रखा जाय। इसलिए कार्यसमिति ने यह निश्चित किया कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के मान्य परिषदों से अनुरोध किया जाय कि उत्सव में वे अपना प्रतिनिधि भेजकर सहयोग दें।

यह भी निश्चय हुआ कि इस अवसर पर एक पत्रकार गोष्ठी की जाय तथा एक साहित्यिक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि इस अवसर का महत्त्व देखते हुए महामहिम राष्ट्रपतिजी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपावंत होकर इस उत्सव का तथा द्विवेदीजी की मूर्ति का उद्घाटन करें तथा उनकी अनुमति प्राप्त कर सरस्वती का हीरक जयंती विशेषांक उन्हें समर्पित किया जाय।

महामहिम राष्ट्रपति की स्वीकृति

कार्यसमिति के निर्णय क अनुसार समिति के अध्यक्ष श्री मैथिलीशरण गुप्त, उपाध्यक्ष श्री रामधारीसिंह दिनकर और मंत्री दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपतिजी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने हीरक जयन्ती-उत्सव तथा आचार्य द्विवेदीजी की मूर्ति का उद्घाटन करने और हीरक जयंती विशेषांक को स्वीकार करने की प्रार्थना की। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने कृपावंत होकर समिति की प्रार्थनाएँ स्वीकार कर लीं और सन् १९६१ में फरवरी के बाद इस कार्य के लिए समय देने का आश्वासन दिया।

द्विवेदीजी की मूर्ति की तैयारी

द्विवेदीजी की मूर्ति का काम सबसे पहिले हाथ में लिया गया। सबसे पहिले एक कुशल मूर्तिकार की खोज करनी थी। सौभाग्य से सुप्रसिद्ध कलाकार, इंदौर के शासकीय कला महाविद्यालय (गवर्नमेंट आर्ट कालिज) के आचार्य (प्रिंसिपल) श्री देवकृष्ण जोशी ने द्विवेदीजी की मूर्ति का निर्माण करना स्वीकार कर लिया। वे केवल उच्चकोटि के कलाकार ही नहीं, अत्यंत सुसंस्कृत और उदार सज्जन हैं। ऐसे कामों में उनका दृष्टिकोण व्यावसायिक नहीं होता। उन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक द्विवेदीजी की मूर्ति बना देने और उसके लिए कोई पारिश्रमिक न लेने का वचन दिया। यह काम उन्होंने कितने परिश्रम, मनोयोग और रस से किया है उसका कुछ अनुमान दर्शकगण उनकी बनायी द्विवेदीजी की प्रतिमा को देखकर कर सकते हैं। प्रतिमा तैयार करने के लिए उन्होंने द्विवेदीजी के चित्र माँगे। उनको संग्रह करके उनके पास भेजा गया और उन्होंने उन चित्रों में से एक के आधार पर मिट्टी की एक प्रतिमा बनायी। मैं उसे देखने इंदौर गया, किन्तु वह मुझे पसंद नहीं आयी क्योंकि जिन चित्रों के आधार पर वह तैयार की गयी थी वे अच्छे नहीं थे। अतएव मैंने द्विवेदीजी के कुछ और चित्र एकत्र करने आरंभ किये। अंत में कानपुर के श्री पन्नालाल त्रिपाठी ने एक सुंदर चित्र दिया जो द्विवेदीजी की मृत्यु से कुछ ही वर्षों पूर्व लिया गया था। मैंने वह चित्र जोशीजी को भेज दिया। उसके आधार पर उन्होंने दूसरी प्रतिमा बनायी और उसे देखने को मुझे इंदौर बुलाया। मैं दुबारा इंदौर गया। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार इस नये चित्र के आधार पर जोशीजी ने जो प्रतिमा बनायी वह मुझे बहुत पसंद आयी क्योंकि उसमें द्विवेदीजी की गंभीरता तेजस्विता, और विचारशीलता की सजीव अभिव्यक्ति हुई थी। मैंने उसे पसंद किया। जोशीजी ने उस मिट्टी की प्रतिमा से प्लास्टर आफ पैरिस की प्रतिमा बनायी और अपने तत्त्वावधान में उसे बड़ौदा के एक प्रसिद्ध कारखाने में ढलवा दिया। इस मूर्ति के बनाने में उन्होंने अपनी उत्कृष्ट कला का ही नहीं, प्रत्युत अपनी सहृदयता, हिंदी-प्रेम और उदारता का भी परिचय दिया है।

मूर्ति के निर्माण के प्रबंध के साथ ही इस बात पर भी विचार किया जाने लगा कि मूर्ति किस जगह स्थापित की जाय। समिति ने उसे किसी सार्वजनिक स्थान में स्थापित करने का निश्चय किया था। बहुत कुछ सोच-विचार के बाद इलाहाबाद के प्रसिद्ध मोतीलाल नेहरू पार्क (पुराना नाम ऐल्फ्रेड पार्क या कम्पनी बाग) के उत्तर-पूर्वी फाटक के सामने की वह तिकोनिया जमीन पसंद की गयी जो थार्नहिल रोड और पन्नालाल रोड के संगम पर है और जिन्हें एक छोटी सड़क मिलाती है। यह स्थान भारद्वाज आश्रम और म्योर सेंट्रल कालिज के बीच में है। इसके ठीक सामने जैन होस्टल और पूर्व की ओर सड़क के पार इंडियन प्रेस का विशाल भवन है। यह नजूल की जमीन है और महापालिका के अधिकार में है। सरस्वती हीरक जयंती-समारोह समिति अस्थायी संस्था थी। उसके नाम जमीन का पट्टा नहीं हो सकता था। चूँकि यह प्रतिमा हिंदीप्रेमियों की ओर से स्थापित की जा रही थी, इसलिए यह ठीक समझा गया कि इस जमीन का पट्टा उत्तर प्रदेशीय हिंदी साहित्य-सम्मेलन के नाम से लिया जाय। नजूल से जमीन लेने में बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं, किन्तु नगर-महापालिका के नगर-प्रमुख श्री बालकृष्ण राव और प्रमुख नगर-अधिकारी श्री के० के० शर्मा आई० ए० एस० के हार्दिक सहयोग से तथा स्वायत्त शासन विभाग के सचिव श्री श्यामसुन्दर लाल कक्कड़ आई० ए० एस० की कृपा से द्विवेदी जी की मूर्ति को स्थापित करने के लिए इस जमीन का पट्टा एक रुपया नाममात्र के किराये पर मिल गया। इसमें बाग लगाने, पीठिका (पेडेस्ट्रल) बनाने तथा इसे लोहे के सीखचों से घेरने की कुल योजना इलाहाबाद के प्रसिद्ध इंजीनियर श्री नंदकिशोर अग्रवाल ने बनायी और अपनी देख-रेख में तैयार कराया। यह उनकी कृपा का फल है कि द्विवेदीजी की भव्य मूर्ति मनोरम उद्यान में सुन्दर पीठिका के ऊपर स्थापित की जा सकी।

श्री चिंतामणि घोष और बाबू श्यामसुंदर-दास के तैलचित्र

श्री चिंतामणि घोष और बाबू श्यामसुंदरदास के तैल-चित्र बनवाने के लिए उनके कई फोटोग्राफ संग्रह किये गये। उनमें से प्रत्येक का एक-एक फोटोग्राफ, तैलचित्र बनवाने के लिए, चुना गया। उन्हें बनाने के लिए कई चित्रकारों पर विचार किया गया। अंत में निश्चय हुआ कि श्री देवकृष्ण जोशी से ही इन चित्रों को तैयार करने का अनुरोध किया जाय। जोशीजी ने अपनी सहज उदारता से हमारे अनुरोध को स्वीकार कर लिया। ये चित्र साढ़े पाँच फुट ऊँचे हैं। जिन्होंने इन चित्रों को देखा है वे उनकी सजीवता और कला की उत्कृष्टता की भूरि-भूरि सराहना करते हैं। इनके चौखटे भी अत्यंत कलापूर्ण बने हैं जिन्हें इलाहाबाद के श्री दुर्गादत्त देवीदत्त ने तैयार किया है।

ताम्रपत्र

काशी नागरीप्रचारिणी सभा और इंडियन प्रेस को ताम्रपत्र देने का निश्चय किया गया था। मैंने उनका प्रारूप तैयार करके सदस्यों से उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। ताम्रपत्र पर उन प्रारूपों को खोदने का काम अलीगढ़ के शंकर ब्रदर्स नामक प्रतिष्ठान को सौंपा गया। इसके स्वामी श्री रमाशंकर याज्ञिक स्वयं बड़े हिंदीप्रेमी हैं। उन्होंने ये दोनों ताम्रपत्र बड़ी रुचि से तैयार किये। उत्सव में भाग लेने वालों के वक्ष पर लगाने के लिए सफेद धातु के मीनाकारी के गोल बिल्ले भी इन्होंने बनाये जिनके बीच में सरस्वती की मूर्ति और गोलाई में "सरस्वती हीरक जयन्ती इलाहाबाद १९६१" लिखा था। ताम्रपत्रों में शीर्षक के नीचे सरस्वती की मूर्ति के ये गोल चिह्न भी चाँदी में मीनाकारी का काम लगा कर लगा दिये गये।

बहुमान के लिए लेखकों का चुनाव

सरस्वती में जिन लोगों ने प्रथम बीस वर्षों में लेख लिखे थे उनकी सूची बनायी गयी। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रमुख लेखकों की भी सूची बनायी गयी जो सरस्वती में बहुत दिनों से लिखते आ रहे हैं। बहुत सी बातों का विचार करके अंत में निम्नांकित विद्वानों का बहुमान करने का निश्चय किया गया:

श्री मैथिलीशरण गुप्त
श्री वृंदावनलाल वर्मा
श्री सेठ गोविंददास
श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
श्री संत निहाल सिंह
श्री गुलाबराय
श्री श्रीप्रकाश
श्री रघुवंश लाल गुप्त
श्री हरिवंशराय बच्चन
श्रीमती महादेवी वर्मा
श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
श्री जी० एस० पथिक
श्री भगवतीचरण वर्मा
श्री रामनरेश त्रिपाठी
श्री पांडुरंग सदाशिव खानखोजे
श्री संतराम
श्री मुकुंदी लाल
श्री कस्तूरमल बांठिया
श्री नरदेव शास्त्री
श्री सुमित्रानंदन पंत
श्री जहूरबख्श
श्री शिवपूजन सहाय
श्री राहुल सांकृत्यायन
श्री सियारामशरण गुप्त
श्री राय कृष्णदास
श्री राजा पंचमसिंह
श्री हरि रामचंद्र दिवेकर
श्री वेंकटेशनारायण तिवारी
श्री रामधारीसिंह दिनकर
श्री लल्लीप्रसाद पांडेय
श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री सूर्यनारायण व्यास
श्री वियोगी हरि
श्री डाक्टर हेमचंद्र जोशी
श्री सनेही जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

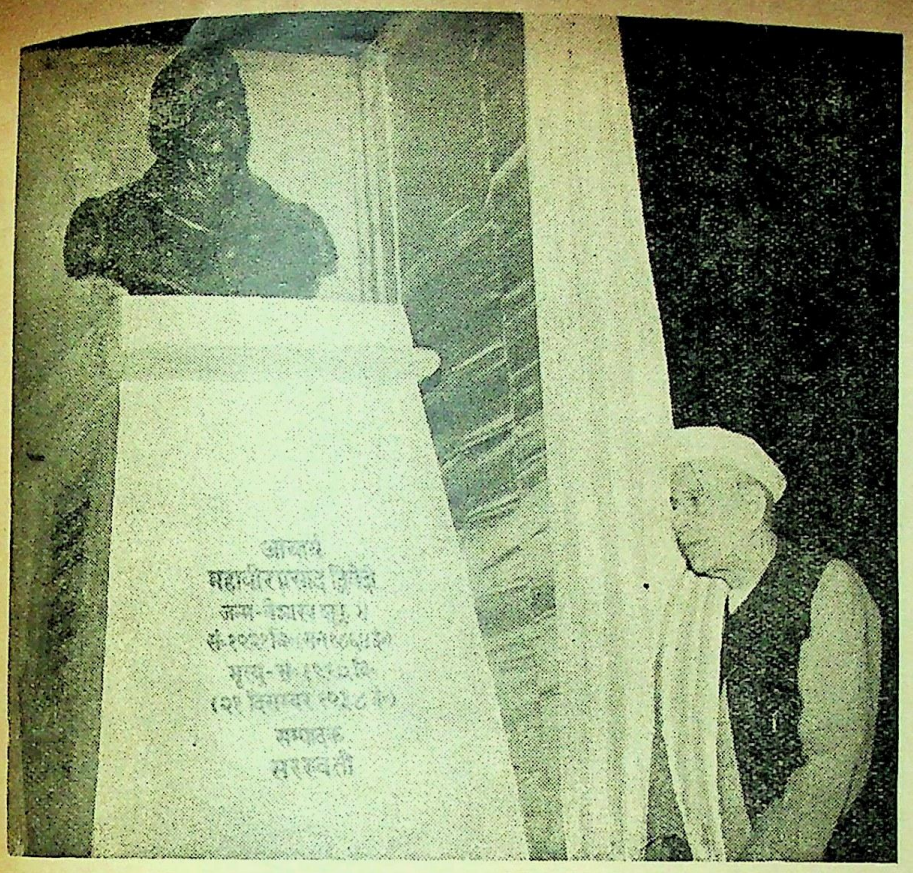

सरस्वती हीरक जयंती समारोह

श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की मूर्ति का उद्घाटन।

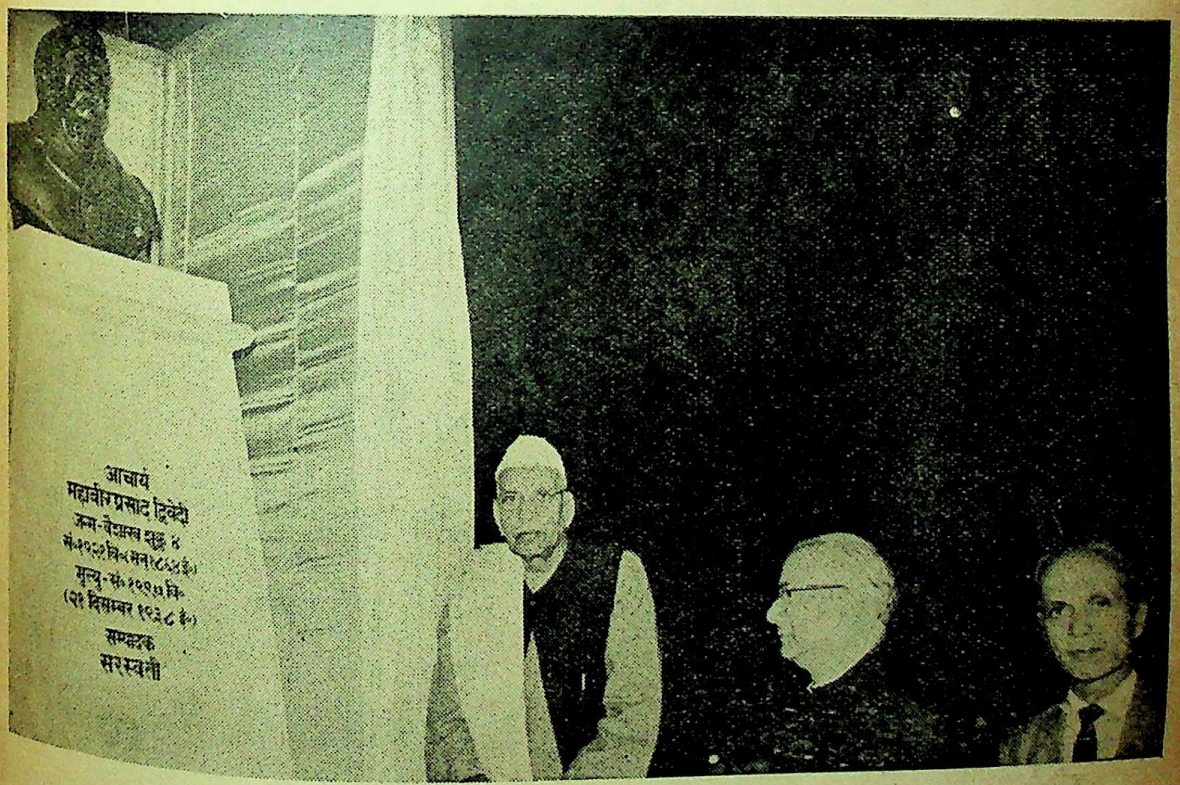

सरस्वती हीरक जयन्ती के अवसर पर इंडियन प्रेस के सामने सड़क पर विशेष रूप से निर्मित उद्यान में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की मूर्ति का उद्घाटन करते समय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का भाषण। पास ही इलाहाबाद नगर महापालिका के नगर प्रमुख श्री सी० बी० राव और इस मूर्ति के मूर्तिकार श्री देवकृष्ण जोशी खड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

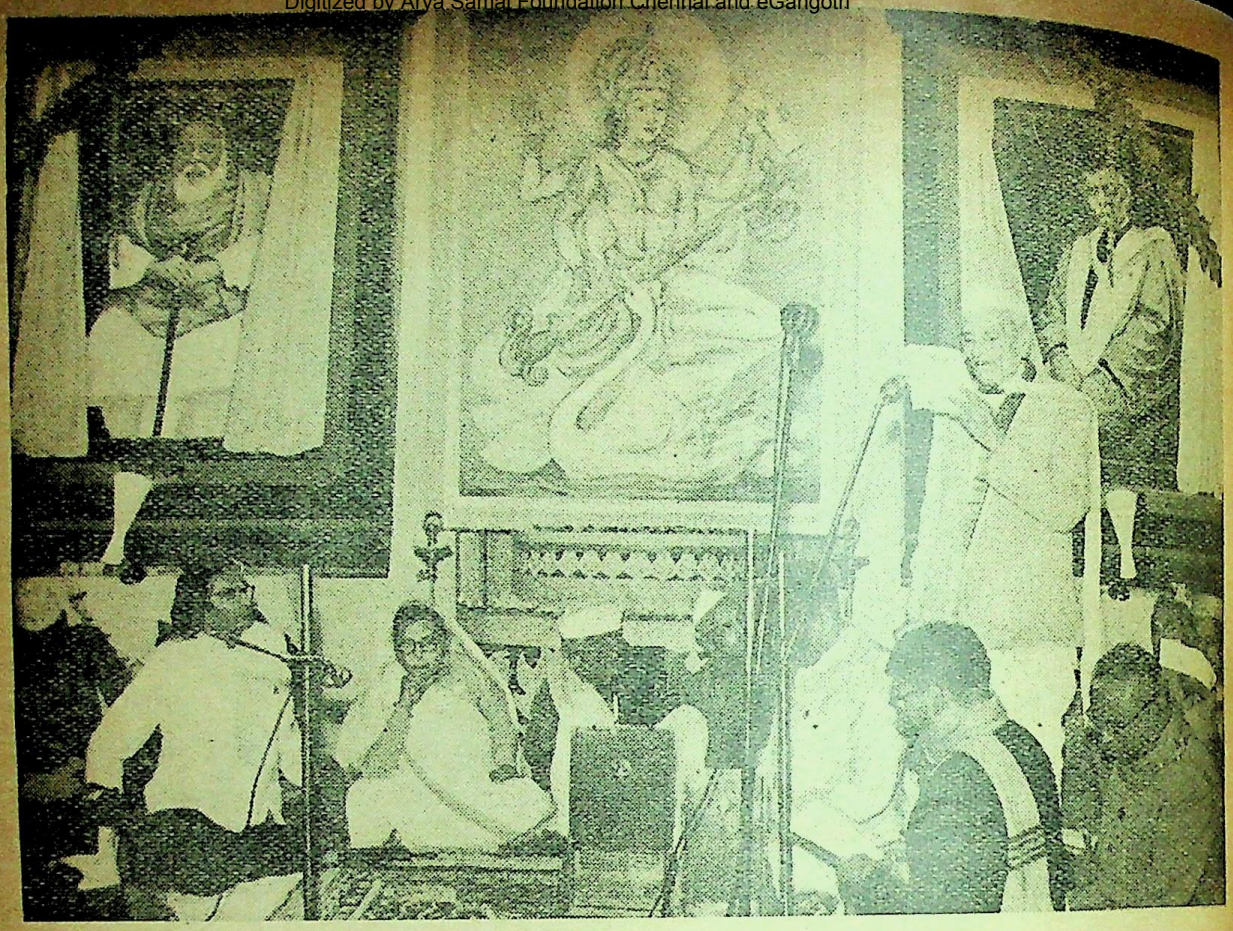

मंत्री राजर्षि टंडन का संदेश पढ़ रहे हैं।

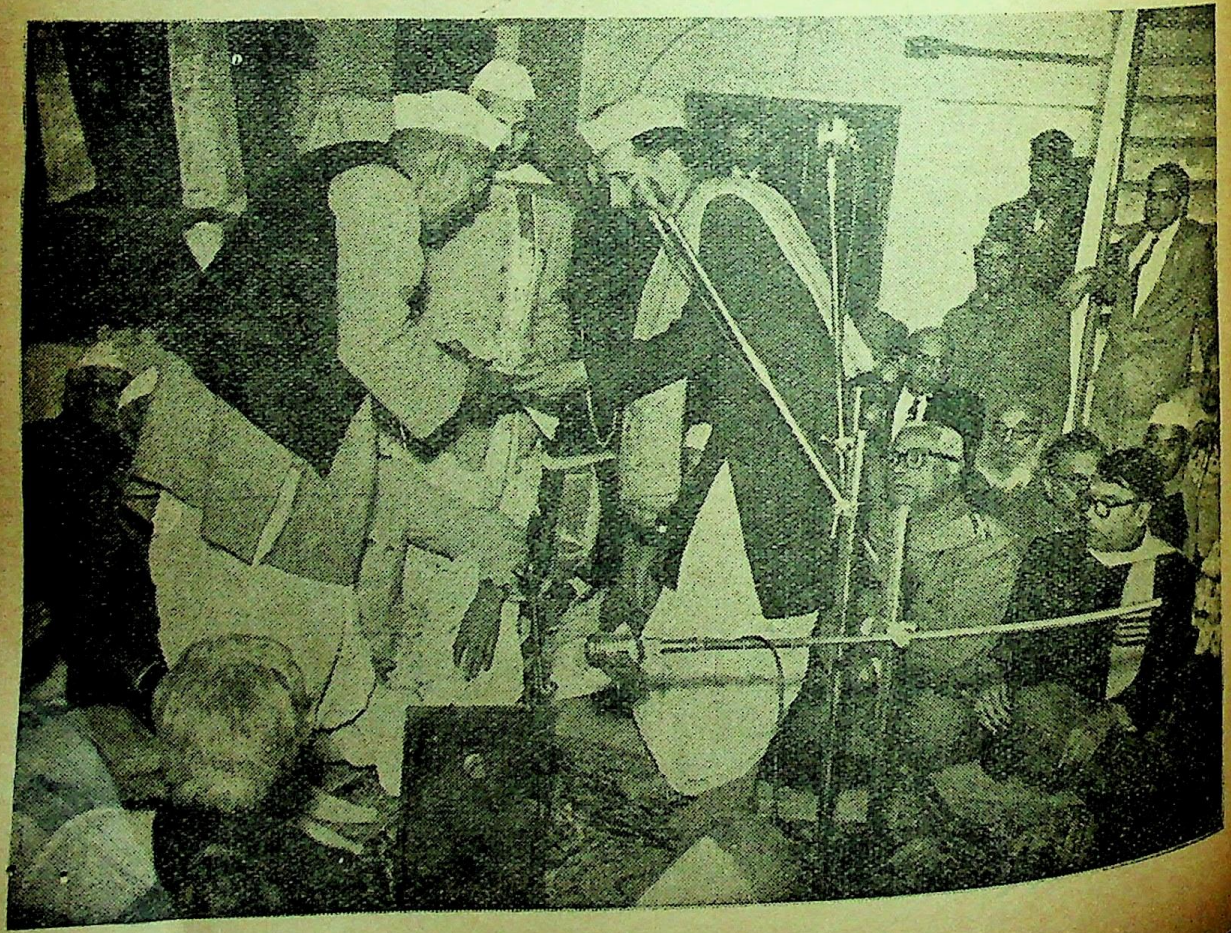

काशी नागरीप्रचारिणी सभा को ताम्रपत्र की भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय सरस्वती के साठ वर्ष पूरे हुए उस समय यदि उत्सव होता तो निम्नांकित सज्जन भी सम्मानित किये जाते क्योंकि वे उस समय जीवित थे--

पं० लोचनप्रसाद पांडे श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
पं० गिरिधर शर्मा नवरत्न माननीय श्री गोविंदवल्लभ पंत स्वामी सत्यदेव

वे सरस्वती की षष्टिपूर्ति तो देख सके किन्तु दुःख है कि वे उसके उत्सव में सम्मिलित न हो सके।

सम्मानित विद्वानों के लिए मानपत्र तैयार करने का कार्य मुझे सौंपा गया।

फाउन्टेनपेन और उत्तरीय

समिति ने सम्मानित व्यक्तियों को एक लेखनी और उत्तरीय भेंट करने का निश्चय किया था। यह भी निश्चित किया गया था कि दुपट्टे खद्दर के और जरी के किनारे के हों। अतएव हमने मदरास से आंध्र देश के बने अंगवस्त्र मँगाने की व्यवस्था की जिसमें मदरास के श्री मदनलाल शर्मा ने बड़ी सहायता की।

यह भी निश्चय हुआ था कि जो लेखनी दी जाय वह सोने के निब की हो और उस पर देवनागरी में 'सरस्वती हीरक जयंती' अंकित हो। हमने मदरास और बंबई के कई कारखानों से पत्र-व्यवहार किया किन्तु उनमें से कोई भी देवनागरी अक्षर अंकित करने को तैयार नहीं हुआ। तब हमने लखनऊ की कौशला कम्पनी से बातचीत की। उन्होंने इस कार्य के लिए एक विशेष डिजाइन की और सर्वोत्तम सामान से बनाकर सोने की निबवाली लेखनी देने का वचन दिया। तदनुसार उन्होंने उसका नमूना तैयार करके दिया। वह नमूना समिति ने पसंद किया और कौशला कम्पनी की लेखनी सम्मानित व्यक्तियों को भेंट की गयीं।

हीरक जयन्ती विशेषांक

हीरक जयन्ती विशेषांक तैयार करने का भार समिति ने मुझ पर डाला था। उस समय विशेषांक की रूपरेखा और आकार के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट कल्पना नहीं की गयी थी। साधारण विशेषांकों का मुझे जो अनुभव है वह बहुत अच्छा नहीं है। ऐसे अंकों के लेखक गिने-चुने होते हैं। उनसे अवसर और विषय के उपयुक्त लेख लिखवाना बड़ा कठिन काम है। इस पर भी जो लेख आते हैं उनमें अधिकांश स्थायी महत्त्व के नहीं होते। सरस्वती की हीरक जयन्ती विशेषांक के लिए जो लोग लेख लिखते वे या तो सरस्वती के सम्बन्ध में होते या उसके सम्पादकों के सम्बन्ध में। कुछ अवश्य ही महत्त्व-पूर्ण होते किन्तु अधिकांश पुरानी बातों की पुनरुक्ति ही होते। अतएव मुझे इस प्रकार के विशेषांक का कोई महत्त्व नहीं मालूम हुआ। मुझे ऐसे लेखों के लिए सरस्वती का एक साधारण अंक बहुत काफी मालूम पड़ा। मेरी कल्पना थी कि जो विशेषांक निकले वह ऐसा स्थायी महत्त्व का हो कि लोग उसे रखना पसंद करें। इसलिए बहुत सोच-विचार कर मैंने यह निश्चय किया कि इस अंक में सरस्वती के साठ वर्षों के पुराने अंकों में से चुन कर साठ कविताएँ, साठ कहानियाँ और साठ लेख दिये जायें। सरस्वती के माध्यम से ही खड़ी बोली कविता का विकास हुआ है। हिंदी की पहिली आधुनिक कहानी सरस्वती में ही प्रकाशित हुई थी, और आरंभ काल से अब तक प्रायः सभी लब्धप्रतिष्ठ कहानीकारों ने सरस्वती के द्वारा कहानी-कला को आगे बढ़ाया है। अतएव यदि यह चयन ठीक ढंग से किया जाय तो साठ वर्ष में हिंदी कविता, हिंदी कहानी और हिंदी निबंध-लेखन में जो परिवर्तन हुए हैं, उनके क्रमिक नमूने एक स्थान पर एकत्र हो जायँगे और इस प्रकार हिंदी के साठ वर्षों के विकास का एक मूर्तरूप पाठकों के सामने आ जायगा। इसके साथ ही मैं सरस्वती में प्रकाशित साठ सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी देना चाहता था। सरस्वती के पुराने अंक पलटते समय मैंने देखा कि उसमें असंख्य महत्त्वपूर्ण विषयों पर अधिकारी विद्वानों के लेख छपे हैं जो आज भी शोध कार्य करनेवालों और विद्वानों के काम के हैं। मैंने यह सोचा कि यदि सरस्वती में प्रकाशित लेखों, कविताओं और कहानियों की पूरी सूची विषयक्रम और लेखक-क्रम से तैयार करके छाप दी जाय तो वह विद्वानों और विद्यार्थियों के बहुत उपयोग की होगी। मैंने यह सूची तैयार भी कर ली। किन्तु ज्ञात हुआ कि केवल विषयक्रम से तैयार की गयी सूची छपने पर सरस्वती के आकार के ५०० पृष्ठों से अधिक की होगी! अतएव मुझे विशेषांक में उसे प्रकाशित करने का विचार छोड़ना पड़ा। किन्तु उसके महत्त्व को ध्यान में रखकर मैंने हिंदुस्तानी एकाडमी को सुझाव दिया कि वह उसे महत्त्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ समझ कर प्रकाशित कर दे। एकाडमी ने इस सम्बन्ध में अभी तक कोई निर्णय नहीं किया।

लेखों, कहानियों और कविताओं की साठ की संख्या इसलिए रखी गयी थी कि हम सरस्वती की साठ वर्ष की जयंती मना रहे थे। किन्तु जब चयन-कार्य आरंभ हुआ तब देखा कि साठ की संख्या पर्याप्त नहीं है। इन साठ वर्षों में सरस्वती में इतने महत्त्वपूर्ण विद्वानों ने लिखा है कि उनमें से केवल साठ कवियों और साठ लेखकों का छाँटना संभव नहीं है। पिछले साठ वर्षों में हिंदी के प्रायः सभी प्रमुख लेखकों ने सरस्वती में लिखा है। उनके अतिरिक्त कितने ही विद्वानों ने जो मूलतः हिंदी साहित्यिक नहीं थे, अपने-अपने विषयों पर लेख लिखे हैं, जैसे महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा, म० म० डाक्टर गंगानाथ झा, डा० भगवानदास, डा० काशीप्रसाद जायसवाल, डा० हीरानन्द शास्त्री, लाला कन्नोमल, मुनि जिनविजय सूरि आदि। इनके अतिरिक्त कितने ही राजनीतिक नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भी इसमें लेख लिखे हैं, जैसे लाला लाजपतराय, पं० जवाहरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू, श्री श्रीप्रकाश, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, पं० गोविंदवल्लभ पंत, आचार्य नरेन्द्रदेव आदि। नेताओं के अतिरिक्त सरकारी उच्च अधिकारी भी इसमें जब तब लिखते रहे हैं, जैसे सर गिरिजाशंकर वाजपेयी, श्री एन० सी० मेहता, श्री वी० एन० मेहता, श्री एल० के० झा, श्री रघुवंशलाल गुप्त, श्री मनोहरदास चतुर्वेदी, सरदार आबासाहब पाटील चालुक्ये आदि। लेखकों का एक और भी वर्ग है जो रईस या व्यवसायी है किन्तु जो हिंदी की सेवा करता रहा है जैसे श्री शिवप्रसाद गुप्त, राजा पृथ्वीपालसिंह, राजा पंचमसिंह, श्री घनश्यामदास बिड़ला आदि। इनके अतिरिक्त कितने ही अहिंदीभाषी विद्वान् उसमें लिखते रहे हैं जैसे डा० नलिनीमोहन सान्याल, श्री बसंतकुमार चटर्जी, श्री संत निहाल सिंह, डा० हरि रामचंद्र दिवेकर, श्री भवानीशंकर याज्ञिक, श्री गोपाल दामोदर तामसकर आदि। साठ लेखों में इन सब वर्गों का समुचित प्रतिनिधित्व कर देना मुझे असंभव सा लगा। किन्तु साथ ही इस बात का भी ध्यान था कि विशेषांक का आकार बहुत बढ़ न जाय। उसमें सरस्वती सम्बन्धी कुछ लेख देना भी आवश्यक था। मैंने इंडियन प्रेस के जनरल मैनेजर श्री हरिप्रसन्न घोष से अपनी कठिनाई बतलायी। अंत में वे सब मिलाकर एक हजार पृष्ठ तक छापने को राजी हो गये। उनकी इस कृपा के कारण मैंने १०८ कवियों की कविताएँ और १०० विद्वानों के लेख देने का निश्चय किया, यद्यपि यह संख्या भी अपर्याप्त थी क्योंकि मुझे बहुत से कवियों और विशेषकर महत्त्वपूर्ण लेखकों के लेख छोड़ देने पड़े। किन्तु इंडियन प्रेस की कृपा से मैं ऐसा संतोषजनक संग्रह तैयार कर सका जिसमें सभी वर्गों के लेखों, कहानियों और कविताओं का प्रतिनिधि संकलन है। यह संकलन इस प्रकार किया गया है कि उससे हिंदी के पिछले साठ वर्षों की शैली, भाषा, कविता और कहानी का क्रमिक विकास स्पष्ट हो जाय, और सब वर्गों के लेखकों के प्रतिनिधि लेख एक स्थान पर मिल जायँ। इस अंक से आज के पाठकों को यह मालूम हो जाय कि हिंदी के निर्माण-काल में उसे किस प्रकार के लेखकों ने किस प्रकार पुष्ट किया। उसके लेखकों की सूची देखने से ही हिंदी की अखिल भारतीयता स्पष्ट हो जायगी। उसमें हिंदीभाषी प्रदेशों के लेखकों के अतिरिक्त बंगाली, पंजाबी, गुजराती, महाराष्ट्रीय, कश्मीरी आदि अनेक प्रदेशों के लेखक मिलेंगे। इन सब ने आधुनिक हिंदी के विकास में योगदान किया है।

भाषा और शैली के परिवर्तनों को स्पष्ट करने के लिए मैंने पुराने लेखों की अखरौटी (स्पेलिंग), मुहावरों या शब्दों के उपयोग और भाषा को ज्यों का त्यों रहने दिया है जिससे पाठकों को मालूम हो सके कि इतने दिनों में हिंदी गद्य में क्या परिवर्तन हुआ है।

भाषा के परिवर्तन के अतिरिक्त लेखकों और पाठकों की रुचि और दृष्टिकोण के परिवर्तन भी परिलक्षित होते हैं। ये कविताओं में विशेष रूप से दीख पड़ते हैं और लेखों के विषयों से स्पष्ट हो जाते हैं। व्रजभाषा काव्य से आरंभ कर खड़ी बोली कविता के विकास की पूरी कहानी सरस्वती के पुराने अंकों में सुरक्षित है। द्विवेदी युग की वर्णनात्मक शैली की कविता के बाद छायावाद का उदय और उसके बाद रहस्यवाद, हालावाद और प्रगतिवाद के उत्थान के विविध सोपान इस संग्रह में देखे जा सकते हैं। पुराने युग के 'आधुनिक कवि' जैसे राधाकृष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी, सत्यनारायण कविरत्न और श्रीधर पाठक से आरंभ कर द्विवेदी युग के खड़ी बोली के महारथी श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का विकास इसमें देखा जा सकता है। सुमित्रानंदन पंत के 'स्वप्न' के साथ छायावाद का आरंभ होता है और प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा के काव्य में इनकी चरम परिणति होती है। प्रसादजी ने अपनी कामायनी के कुछ सर्ग सरस्वती में प्रकाशित किये थे। बच्चन का हालावाद भी सरस्वती से ही आरंभ हुआ। और आधुनिक कवियों जैसे दिनकर, बालकृष्ण राव, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा आदि ने अपनी काव्य-प्रतिभाओं से इसे आलोकित किया। आधुनिक हिंदी काव्य के विकास की मनोरंजक कहानी को इस अंक में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

सरस्वती सचित्र पत्रिका है। उसमें प्राचीन और आधुनिक भारतीय चित्र प्रकाशित होते रहे हैं। अतएव इसमें ६० रंगीन चित्र देने का निश्चय किया गया जिससे पुराने चित्रों के अतिरिक्त इसमें रवि वर्मा और और अवनींद्रनाथ टागोर से लेकर अब तक के प्रमुख चित्रकारों की कला के नमूने एक जगह पर मिल सकें।

मैंने पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, महापंडित राहुल सांकृत्यापन, श्री संत निहाल सिंह, सरस्वती के दो पुराने सम्पादकों तथा कुछ अन्य सज्जनों से सरस्वती के इतिहास पर या उससे संबंधित अपने संस्मरण लिखने का अनुरोध किया। ये लेख उपोद्घात के रूप में इस विशेषांक में दिये गये हैं।

जब चयन समाप्त हो गया तब मालूम हुआ कि उसमें २५६ लेखकों की कृतियाँ संग्रह हो गयी हैं। विशेषांक के अंत में इन लेखकों का संक्षिप्त और सचित्र परिचय भी देने का प्रयत्न किया गया और प्रथम दस वर्ष के विज्ञापनों के कुछ नमूने भी दे दिये गये।

इस अंक का आवरण हम किसी अच्छे कलाकार से तैयार कराना चाहते थे। सौभाग्य से प्रसिद्ध चित्रकार श्री असितकुमार हालदार ने उसे तैयार कर इस अंक का गौरव बढ़ा दिया।

कागज

इतने बड़े और बहुचित्रित विशेषांक को निकालने के लिए कागज और छपाई का प्रबंध करना था। इस नियंत्रण के युग में एक हजार पृष्ठ के ग्रंथ की दस हजार प्रतियाँ छापने के लिए साधारण कागज और सत्तर-अस्सी चित्रों की उतनी ही प्रतियों के लिए आर्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज और साधारण कागज मिलना खुले बाजार में कितना कठिन है, यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। उस समय माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्र में वाणिज्य-मंत्री थे। मैंने उनसे अपनी आवश्यकता और कठिनाई बतलायी। उन्होंने कृपा कर कागज दिलाने का प्रबंध कर दिया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

विज्ञापन

इतने दीर्घाकार और खर्चीले विशेषांक के निकालने में अपार व्यय होता है और यदि केवल बिक्री के ऊपर निर्भर रहा जाय तो लागत इतनी अधिक होती है कि एक प्रति का मूल्य बहुत अधिक हो जाता है और इस कारण बिक्री कम हो जाती है। आज बड़े आकार के अच्छे छपे हुए ग्रंथ का मूल्य सामान्यतः तीन आना प्रति फर्मा रखा जाता है। एक हजार पृष्ठों में १२५ फर्मे होते हैं। अतएव उसका मूल्य साढ़े तेइस रुपये होना चाहिए। यदि आर्ट कागज पर छपे साठ-सत्तर चित्रों का मूल्य भी लगाया जाय तो इस ग्रंथ का उचित मूल्य तीस रुपये होना चाहिए। किन्तु हम उसका प्रचार करने के लिए उसे सुलभ बनाना चाहते थे और इसलिए हम उसका कम से कम मूल्य रखना चाहते थे। इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि हम उसमें विज्ञापन भी दें। हमने विज्ञापनों की दर भी बहुत साधारण रखी। ऐसे महत्त्वपूर्ण विशेषांक में, जिसकी दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित होने को हों, विज्ञापन की दर २५० रुपया प्रति पृष्ठ बहुत उचित मानी गयी। उत्तर प्रदेश सरकार ने हमें १२ पृष्ठों के विज्ञापन दिये। मध्य प्रदेश सरकार ने भी ५ पृष्ठों के विज्ञापन देने की कृपा की। बिहार, राजस्थान, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात की सरकारों से भी हमें विज्ञापन मिले। बिड़ला संस्थान से हमें ५ पृष्ठों के विज्ञापन प्राप्त हुए। अन्य कितने ही उद्योगों, प्रकाशकों और रेल विभाग से विज्ञापन मिले। किन्तु हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हमें भारत सरकार से विज्ञापन नहीं मिल सके। जब हमने भारत सरकार के विभागों से बातचीत की तब उन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखलायी, किन्तु बतलाया कि भारत सरकार के सारे विज्ञापन सूचना विभाग के प्रचार विभाग के डाइरेक्टर द्वारा दिये जाते हैं। हम सूचना मंत्री से मिले। इतनी बड़ी भारत सरकार ने केवल चार विज्ञापन भेजे किन्तु यह शर्त लगा दी कि वे हमारी दर से विज्ञापन का मूल्य न देंगे। उसमें प्रायः सौ रुपया प्रति पृष्ठ कम कर देंगे। हमारे लिए यह असंभव था क्योंकि हमने राज्य सरकारों, रेल विभाग तथा अन्य विज्ञापनदाताओं से जो मूल्य लिया था उससे कम भारत सरकार से नहीं ले सकते थे। हमारे प्रतिनिधि ने सूचना मंत्री तथा डाइरेक्टर से भी सब स्थिति बतलायी। इस विशेषांक का महत्त्व भी बतलाया किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। हमें खेद है कि इस महत्त्वपूर्ण विशेषांक में भारत सरकार के विज्ञापन नहीं प्रकाशित हो सके। हमारा ध्येय १०० पृष्ठ बाहरी विज्ञापन देने का था, किन्तु हमें सत्तर विज्ञापन ही मिल सके। यदि भारत सरकार के सूचना विभाग का रुख सहानुभूतिपूर्ण होता तो हमें जितने विज्ञापन उत्तर प्रदेश सरकार से मिले थे, कम से कम उससे दुगने भारत सरकार से मिलते। किन्तु हिंदी के प्रति भारत सरकार के कुछ विभागों और अधिकारियों का जो रुख है उसके कारण उनका पा सकना हमारे लिए संभव नहीं हुआ।

महामहिम राष्ट्रपति की बीमारी

हम जयन्ती-उत्सव को १९६१ के मार्च या अप्रैल मास में करना चाहते थे किन्तु उस समय राष्ट्रपति बहुत व्यस्त थे और प्रयाग आने में असमर्थ थे। उन्होंने यह आशा प्रकट की कि दशहरे पर वे पटना जायेंगे, और जाते या लौटते समय एक दिन प्रयाग में रुक कर इस उत्सव का उद्घाटन करने की कृपा करेंगे। किन्तु उनके सहसा बीमार हो जाने से वह तिथि टालनी पड़ी। भगवान् की कृपा और देश के सौभाग्य से उन्होंने आरोग्य लाभ किया किन्तु इतने दुर्बल हो गये कि कुछ काल तक यात्रा करने में अशक्य थे। उधर १९६१ बीता जा रहा था। उत्सव में वैसे ही विलम्ब हो गया था। अतएव उन्होंने स्वयं आदेश दिया कि हम उत्सव को और न टालें। समारोह समिति को इससे बड़ी निराशा हुई। अतएव उसने यह प्रार्थना की कि उत्सव दो भागों में किया जाय। हीरक जयन्ती विशेषांक उन्हींको समर्पित है। वह दिल्ली में उनको भेंट किया जाय और चूँकि आचार्य द्विवेदीजी की मूर्ति की स्थापना प्रयाग में हुई है, उसका उद्घाटन किसी अन्य महानुभाव से वहीं करा लिया जाय और उसके साथ ही अन्य कार्यक्रम भी वहीं हो। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने कृपावंत होकर उदारतापूर्वक इस प्रार्थना को स्वीकार ही नहीं कर लिया अपितु उस उत्सव को राष्ट्रपति-भवन में करने का आदेश दिया।

महामहिम राष्ट्रपतिजी को सरस्वती हीरक जयंती विशेषाङ्क का समर्पण

सरस्वती हीरक जयंती-समारोह का प्रथम उत्सव रविवार ३१ दिसंबर १९६१ को राष्ट्रपतिभवन के विशाल अशोक हॉल में सम्पन्न हुआ, जिसमें सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक उन्हें समर्पित किया गया।

इस उत्सव का प्रबंध करने के लिए नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन, साप्ताहिक हिंदुस्तान के सम्पादक श्री बाँकेबिहारी भटनागर, 'आज' के दिल्ली स्थित विशेष प्रतिनिधि श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, संसदीय हिंदी परिषद् के मंत्री और संसद-सदस्य श्री मन्नूलाल द्विवेदी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा दैनिक हिंदुस्तान के उपसम्पादक श्री गोपालप्रसाद व्यास की एक समिति बना दी गयी थी जिसके संयोजक व्यासजी थे। इस समिति ने स्थानीय प्रबंध किया।

३१ जनवरी को ठीक साढ़े तीन बजे उत्सव आरंभ हुआ। प्रायः सात सौ महिलाएँ और सज्जन इस उत्सव में उपस्थित थे। आगत लोगों में दिल्ली के प्रायः सभी साहित्यकार, पत्रकार, हिंदी-प्रेमी तथा अनेक उच्च अधिकारी थे। दिल्ली के हिंदी साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों और हिंदी-प्रेमियों का यह अपूर्व जमाव था जो दिल्ली में भी यदा-कदा ही देखने में आता है। समिति के उपाध्यक्ष श्री रामधारीसिंह दिनकर इस उत्सव की अध्यक्षता कर रहे थे।

महामहिम राष्ट्रपति ने ठीक साढ़े तीन बजे अशोक हाल में प्रवेश किया। सारी सभा उनके सम्मानार्थ उठ खड़ी हुई। समारोह समिति के सदस्यों ने, श्री दिनकरजी के नेतृत्व में, द्वार पर उनका स्वागत किया। उनके बैठने पर श्री दिनकरजी ने महामहिम राष्ट्रपति के कोट में सरस्वती जयंती समिति का स्वर्ण प्रतीक लगाया। कार्यारंभ सरस्वती-वंदना से आरंभ हुआ जो सनातनधर्म कालिज कानपुर के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० श्री सत्यनारायण पांडे ने की। उनके सुमधुर कंठ और स्पष्ट उच्चारण से संस्कृत के श्लोकों और हिंदी के छंदों ने एक मधुर और पवित्र वातावरण बना दिया जिसने उपस्थित श्रोताओं को आनंद-विभोर कर दिया।

मंगलाचरण

सौवर्णेन्दीवरस्थां दिवसपतिनिभां पुण्यवात्सल्यशीलां,
आद्यां सौन्दर्यसारां हरिहरवरदां ब्रह्मणा स्तूयमानाम्।
कल्याणीं काव्यलक्ष्मीं कलिकलुषहरां चारुचन्द्रार्घचूडां,
वन्दे त्वां ज्ञानगंगां त्रिभुवनजननीं पूज्यपादारविन्दाम्॥

वाणीमादिकलां कलाधरधरां कारुण्यकादम्बिनीं,
मंगल्यां मणिमाल्यमण्डितगलां विश्वात्मिकामम्बिकाम्।
रागोत्फुल्लविलोलपद्मनयनामानन्दमन्दाकिनीं,
वन्दे त्वां रसभारतीं सुरनुतां श्रीराजराजेश्वरीम्॥

कवित्ववनवासिनीं कविकदम्बकादम्बिनीं,
प्रफुल्लकमलालयां ललितलोललीलामयीम्।
विशालमणिमालिकां विमलचन्द्रचूडामणिं,
नमामि रसभारतीं त्रिभुवनेश्वरीं सुन्दरीम्॥

वाणीं पूर्णनिशाकरोज्वलमुखीं कर्पूरकुन्दप्रभां,
चन्द्रार्धांकितमस्तकां निजकरैः संविभ्रतीमादरात्।
वीणामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां च तुंगस्तनीं,
दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं सिंहाधिरूढां भजे॥

वीणानुरक्तपाणीं सुश्रोणीं दृग्विलासविजितैणीम्।
प्रणतघनायतवेणीं परवाणीं भावयामि शुकवाणीम्॥

आ रसना में निवास करो जगदम्ब! तुम्हें मैं सदैव मनाऊँ।
पूजा करूँ मन मंदिर में, चरणों में सदा निज ध्यान लगाऊँ।
वाहन है कलहंस तुम्हारा, सखा प्रिय मेरा, उसे भी बुलाऊँ।
मानस में दूँ निवास सदा, निज भाव के मोती बना के चुनाऊँ॥

मातु! विलम्ब हो हंस को तो निज कल्पना यान सजाया करो।
मानस में कवि के जब भाव फुरें, प्रतिभा बरसाया करो।
गाया करूँ गुण मैं गिरा के, तुम वीणा मिला के बजाया करो।
जो न बसो यहाँ आठहू याम, बुलाने से माँ! चली आया करो॥

इसके बाद कुमारी सरोज ने अपने वीणाविनिंदित स्वरों में महाकवि निराला का प्रसिद्ध गीत, "वीणा-वादिनि! वर दे" गाया जिसने श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। तदनंतर समारोह समिति के मंत्री और सरस्वती के वर्तमान सम्पादक ने अपने भाषण में 'सरस्वती' का संक्षिप्त इतिहास, उसकी विशेषताएँ तथा हीरक-जयंती विशेषांक का निम्नांकित विवरण उपस्थित किया:

"महामाननीय राष्ट्रपतिजी, दिनकरजी,
महिलाओ और सज्जनो,

सरस्वती इस समय हिंदी की सबसे पुरानी जीवित मासिक और साहित्यिक पत्रिका है। गुजराती को छोड़कर, जिसमें 'बुद्धि प्रकाश' नामक पत्र एक शती से भी अधिक पुराना है, और किसी भारतीय भाषा की साहित्यिक पत्रिका को सरस्वती के समान इतनी लम्बी अवधि तक जनता की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इस देश में जिस प्रकार शिशुमरण का अनुपात बहुत अधिक था उसी प्रकार भारतीय भाषाओं की पत्रिकाएँ भी अल्पायु के रोग से पीड़ित थीं। हिंदी में कितनी ही सुंदर पत्रिकाएँ निकलीं, किन्तु बहुत दिनों नहीं चल सकीं। जनवरी १९०० में सरस्वती का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ और तब से वह नियमित रूप से हिंदी संसार और देश की सेवा करती आ रही है।

सरस्वती का जन्म उस समय हुआ जब भारतेंदु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, महामना मालवीयजी आदि के सतत प्रयत्नों से उत्तर भारत में जनता की भाषा हिंदी को उसका न्यायसंगत स्थान दिलाने के लिए आंदोलन चल रहा था। बिहार में भूदेव मुकर्जी के साधु प्रयत्न और खड्गविलास प्रेस के स्वामी तथा अंबिकादत्त व्यास की जागरूकता से हिंदी को शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग और शासन में स्थान मिल गया था तथा वहाँ उसका प्रचार बढ़ रहा था। मध्य प्रदेश में शिक्षा और शासन में हिंदी प्रतिष्ठित हो गयी थी, किन्तु वर्तमान उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के कितने ही राज्यों में हिंदी को उसका उचित स्थान नहीं मिला था। राजा शिवप्रसाद के प्रयत्न से उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में हिंदी चलने लगी थी, किंतु शासन में वह बहिष्कृत थी। फिर भी जनता में हिंदी के प्रति अपूर्व उत्साह उत्पन्न हो गया था। हिंदी-पुस्तकों का प्रकाशन तेजी से बढ़ रहा था। कलकत्ते से लेकर बंबई तक, और आसाम से लेकर लाहौर तक, कितने ही हिंदी पत्र निकलने लगे थे। किंतु उस समय के पत्र जनता के उत्साह और हिंदी-प्रेम के द्योतक तो अवश्य थे, किंतु उनके पीछे व्यावसायिक निपुणता, आधुनिक छपाई के साधनों का उपयोग और आर्थिक दृढ़ता नहीं थी। सम्पादन भी प्रायः एकांगी होता था। इस कारण वे बहुत दिनों चल नहीं पाते थे। उस समय के समाचार-पत्रों में स्मारक के रूप में केवल श्री वेंकटेश्वर समाचार (साप्ताहिक) आज भी निकल रहा है।

हिंदी में एक सर्वांग सुन्दर मासिक पत्र की आवश्यकता का सब लोग अनुभव कर रहे थे, किंतु उसके साधन नहीं मिल रहे थे। एक ऐसे मासिक पत्र की आवश्यकता थी जो केवल सुमुद्रित ही न हो, सुसम्पादित भी हो; जिसमें आधुनिक ढंग के विषयों पर लेख हों, जिसकी भाषा टकसाली हो और जो अपने रूपरंग तथा लेखों की विविधता तथा उत्कृष्टता के कारण हिंदी संसार की सेवा ही नहीं, किंतु उसका प्रतिनिधित्व भी कर सके। सौभाग्य से इलाहाबाद में इंडियन प्रेस के स्वामी महाभाग श्री चिंतामणि घोष को भगवान् ने प्रेरणा दी और उन्होंने हिंदी में एक उच्च स्तर की मासिक पत्रिका निकालने का निश्चय किया। उस समय इंडियन प्रेस उत्तर भारत का सर्वश्रेष्ठ मुद्रक था। श्री चिंतामणि घोष कुशल व्यवसायी थे। अतएव पत्रिका के बहिरंग की उत्कृष्टता और स्थायित्व का तो वे आश्वासन दे सकते थे, किंतु उसको हिंदी की प्रतिनिधि पत्रिका नहीं बना सकते थे। इसलिए उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी और सूझबूझ से काशी नागरीप्रचारिणी सभा से उसके सम्पादन का भार लेने को कहा। सभा ने पाँच सदस्यों का एक सम्पादक-मंडल बना दिया और इस प्रकार सरस्वती का आरंभ हुआ। वह अच्छे ढंग से नियमित रूप से ही नहीं निकलने लगी, प्रत्युत सभा के कारण वह अधिकृत रूप से हिंदी की प्रतिनिधि पत्रिका भी हो गयी। सम्पादक-मंडल में पाँच सदस्य थे। इनमें हिंदी के ऐसे दिग्गज थे जैसे बा० श्यामसुन्दरदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, बा० राधाकृष्णदास, बा० जगन्नाथदास रत्नाकर तथा बा० कार्तिकप्रसाद खत्री। प्रथम वर्ष ही में सरस्वती ने हिंदी संसार में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। दूसरे वर्ष से सभा के सर्वस्व बा० श्यामसुंदरदास उसके एकमात्र सम्पादक हो गये और उन्होंने दो वर्ष उसका सम्पादन कुशलता से किया। प्रथम तीन वर्षों में सरस्वती ने बड़ी स्वस्थ और उच्च साहित्यिक परम्पराएँ स्थापित कर लीं। शिव साहित्य का प्रचार, भाषा का संस्कार और ज्ञान-विज्ञान के लेखों द्वारा जनता के बौद्धिक स्तर का उन्नयन, तथा देश के महत्त्व के प्रति चेतना और उसके प्रति बौद्धिक प्रेम उत्पन्न करना उसकी नीति थी। तब से आज तक सरस्वती उसी नीति का पालन करती चली आ रही है।

१९०३ में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती का सम्पादन-भार लिया और सरस्वती के जीवन के अन्त्यंत महत्त्वपूर्ण और शानदार अध्याय का आरंभ हुआ। वे १९२१ तक उसका सम्पादन करते रहे। उनके सम्पादन-कौशल और प्रखर प्रतिभा के सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। उन्होंने सरस्वती के द्वारा भाषा का जो संस्कार किया, साहित्य के जो मानदंड स्थापित किये और साहित्यिक सुरुचि का जो स्तर प्रतिष्ठित किया, उसका प्रभाव हिंदी संसार पर इतना व्यापक और गहरा पड़ा कि वह युग ही हिंदी में 'द्विवेदी युग' के नाम से प्रख्यात हो गया। उन्होंने सरस्वती को हिंदी की प्रतिनिधि राष्ट्रीय मासिक पत्रिका बना दिया।

सरस्वती अनेक अर्थों में हिंदी की राष्ट्रीय पत्रिका है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक कारणों से हिंदी सारे भारत में फैल गयी थी। सत्रहवीं-अठारहवीं शती में केरल के महाराज की हिंदी कविता, बंगाल के आरंभिक वैष्णव कवियों की हिंदी कविता, महाराष्ट्र के संतों की हिंदी की वाणियाँ, गुरुओं के हिंदी शब्द, गुजरात के कवियों की हिंदी कविताएँ तथा दो सौ वर्ष पूर्व महाराज कच्छ द्वारा स्थापित ब्रजभाषा पाठशाला उसका प्रमाण हैं। श्री चिंतामणि घोष बंगाली थे, किंतु बंगाली होते हुए भी वे राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अपने कर्तव्य के प्रति सजग थे। अतएव सरस्वती के राष्ट्रीय पत्र होने का पहला प्रमाण तो यह है कि वह अहिंदीभाषी और हिंदी-भाषियों के हिंदी-उन्नयन के प्रयत्न में मधुर सहयोग का स्मारक है। दूसरा प्रमाण यह है कि आरंभ ही से उसे देश के प्रायः सभी भागों और विविध भाषाभाषियों के विद्वानों का सहयोग मिलता रहा है। बंगाली, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू-भाषी हिंदीप्रेमी विद्वानों ने इसमें आरंभ से ही लिखा है। हिंदू, जैन, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, बौद्ध आदि सभी धर्मों के लेखकों ने अपने लेखों से इसके पृष्ठ अलंकृत करके हिंदी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट किया है। भिन्न भिन्न राजनीतिक विचारों के लोगों ने इस पत्रिका को अपनाया है। सरस्वती को एक साथ लाला लाजपत राय, पं० जवाहरलाल नेहरू, भाई परमानंद, लाला हरदयाल सरीखे नेताओं का सहयोग मिला है। यही नहीं, श्री घनश्यामदास बिड़ला ऐसे महान् उद्योगपति से लेकर अकिंचन लेखकों तक ने इसके द्वारा माँ भारती को अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं। आरंभ से ही भारत का कोई भाग नहीं रहा जहाँ यह नहीं मँगायी जाती रही हो। भारत ही नहीं, भारत से बाहर बसे हुए हिंदीभाषी भारतवासी, वे चाहें निकटस्थ बर्मा में हों, चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदूर फीजी और मारिशस में हों, सरस्वती मँगाते रहे हैं। अनेक विदेशी विश्वविद्यालय—रूस, योरप और अमरीका में उसको हिन्दी की प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका मानकर उसे आज भी मँगाते हैं।

इन ६० वर्षों में हिंदी के सभी तत्कालीन महारथियों ने सरस्वती में लिखा है। उनकी नामावली बड़ी लंबी है। मिश्रबंधु, पद्मसिंह शर्मा, राधाकृष्णदास, लाला सीताराम, रामचन्द्र शुक्ल, श्रीप्रकाश, 'नवीन' जी, आदि के अतिरिक्त गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डा० भगवान्-दास, डा० हीरानंद शास्त्री, डा० गंगानाथ झा, डा० काशी-प्रसाद जायसवाल जैसे विद्वानों ने भी सरस्वती को अपने लेखों से गौरवान्वित किया है। हिंदी की पहिली आधुनिक कहानी 'इंदुमती' सरस्वती में प्रथम वर्ष में ही प्रकाशित हुई। बंगमहिला, पार्वतीनंदन, ज्वालादत्त शर्मा, कौशिक आदि ने आधुनिक हिंदी कहानी को सरस्वती ही में आगे बढ़ाया। वृंदावनलाल वर्मा की पहिली कहानी १९०९ में सरस्वती में प्रकाशित हुई। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' १९१५ में सरस्वती में निकली। प्रेमचन्द की पहिली हिंदी कहानी प्रकाशित करने का सौभाग्य भी सरस्वती को ही है। खड़ी बोली कविता का प्रचार सरस्वती ने किया। राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त ने सरस्वती के ही माध्यम से खड़ी बोली कविता को प्रतिष्ठित किया। नाथूराम शंकर शर्मा, पूर्णजी आदि ने सरस्वती के द्वारा ही हिंदी की सेवा की। छायावाद का प्रवर्तन श्री सुमित्रानंदन पंत ने इसी के द्वारा किया। महादेवी वर्मा, बच्चनजी, नरेन्द्र शर्मा आदि की आरंभिक कविताएँ इसी में प्रकाशित हुईं। आज भी हमारे लेखकों में म० म० गिरिधर शर्मा, दिनकर जी, जी० एस० पथिक, वेंकटेशनारायण तिवारी, भगवती-चरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी आदि उसमें लिख रहे हैं। यही नहीं, कितने ही उच्च अधिकारी भी इसके लेखकों में रहे हैं। सर गिरिजाशंकर वाजपेयी, एन० सी० मेहता, वी० एन० मेहता, रघुवंशलाल गुप्त, एल० के० झा, मनोहर-दास चतुर्वेदी आदि ने भी इसके द्वारा हिंदी की सेवा की है।

इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से यह हिंदी की राष्ट्रीय साहित्यिक पत्रिका है, और इसी कारण जब इसकी अवस्था साठ वर्ष की हुई तब कुछ हिंदीप्रेमियों ने 'सरस्वती' के आज के सबसे पुराने लेखक राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता में उसकी हीरक जयंती मनाने के लिए एक समिति बनायी। उसने जो कार्यक्रम बनाया उसमें एक हीरक जयंती विशेषांक का प्रकाशन, आचार्य द्विवेदी की कांस्य मूर्ति की स्थापना, सरस्वती के संस्थापक और प्रथम सम्पादक के तैलचित्रों का अनावरण, तथा उसके प्रथम बीस वर्ष के जीवित लेखकों तथा अन्य वरिष्ठ लेखकों का सम्मान सम्मिलित थे। समिति ने यह विशेषांक श्री-मान् को समर्पित करने का निश्चय किया। शेष कार्यक्रम इलाहाबाद में १२ जनवरी को सम्पन्न होंगे। आज उस कार्यक्रम का यह प्रथम चरण है जिसमें आपने अत्यंत कृपावंत होकर सरस्वती हीरक जयंती अंक को [illegible] स्वीकार किया है।

६० वर्षों में जितनी कविताएँ, लेख और कहानि[illegible] निकली हैं, उनमें से छाँटकर इस अंक में १०८ कवि[illegible] की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०[illegible] विद्वानों के लेख इस प्रकार रखे गये हैं कि उनसे पिछ[illegible] ६० वर्षों के हिंदी भाषा, साहित्य, प्रवृत्तियों और [illegible] के विकास का पता लग सके। सरस्वती सचित्र पत्रि[illegible] है। इसमें भारतीय कलाकारों के रंगीन चित्र [illegible] प्रकाशित होते रहे हैं। उनमें से चुनकर ६० रंगीन चि[illegible] इसमें दिये गये हैं जिससे राजा रविवर्मा और अवनींद्र नाथ ठाकुर से लेकर असितकुमार हालदार तथा खान[illegible] गीर तक की भारतीय चित्रकला के विकास के नम[illegible] एक स्थान पर उपलब्ध हो जाएँ। इस शती के प्रथम दशक में किस प्रकार के विज्ञापन दिये जाते थे, इसको दिखलाने के लिए प्रथम दस वर्षों की सरस्वती में प्रकाशित विज्ञापनों में से कुछ विज्ञापन भी प्रकाशित किये गये हैं। प्रथम अंक तथा द्विवेदीजी के समय की सरस्वती के आवरण भी मुद्रित कर दिये गये हैं। आरंभ में १० विद्वान् के लेख भी हैं जिनमें सरस्वती के इतिहास और उसकी सेवाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। इस अंक में जि[illegible] लोगों की कविताएँ, कहानियाँ और लेख छापे [illegible] हैं, उनका संक्षिप्त परिचय तथा उनके उपलब्ध चित्र [illegible] अंत में प्रकाशित किये गये हैं।

'सरस्वती' के प्रकाशन का संकल्प अवश्य ही कि[illegible] शुभ मुहूर्त में किया गया था। वह चिराय हुई। [illegible] श्यामसुंदरदास, महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे सम्पादक मिले। उसके सहायक सम्पादकों में अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय (वर्तमान वि[illegible] मंत्री, राजस्थान) तथा श्री शम्भूनाथ शुक्ल (वर्तमान वनमंत्री, मध्य प्रदेश) के समान व्यक्ति रहे हैं। उसके प्रकाशकों ने पत्रकारिता के उच्चतम मानदंडों का पालन किया और उसके सम्पादकों को अपने कार्य की सदैव पू[illegible] स्वतंत्रता रही। हिंदी पत्रों में वही पहिली पत्रिका जिसने अपने सेवानिवृत्त सम्पादकों को पेंशन दी। और [illegible] उसका चरम सौभाग्य है कि उसकी हीरक जयंती के अवस[illegible] पर वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति जी को अपना हीरक जयंती अंक भेंट करने का गौरव प्राप्त कर रही है।"

उनके बाद श्री वियोगी हरिजी ने एक संक्षिप्त भाषण में सरस्वती के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त की। उन्होंने कहा—

"अभी उत्सव समिति के मंत्री महोदय ने सरस्वती पत्रिका का जो विवरण विस्तार से सुनाया उसके एक-एक शब्द का मैं समर्थन या अनुमोदन कर दूँ तो मेरा भाषण हो जाता है, एक मिनिट भी न लगे। परन्तु थोड़ा कुछ कहना भी है। इलाहाबाद के साथ मेरा सम्बन्ध [illegible] वर्ष के लगभग रहा और आज भी वह सम्बन्ध बना हुआ है, दूर रहते हुए भी। सरस्वती पत्रिका को बहुत बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मैं विद्यार्थी-अवस्था से ही पढ़ा करता था और सोचता था कि क्या कभी इसमें कुछ लिखने लायक मैं बन सकूँगा या नहीं। बहुत संकोच और डर लगता था। एक बहुत बड़े विद्वान्, जो आज आचार्य भी माने जाते हैं, मैं नाम नहीं लूँगा, उन्होंने अपना एक लेख सरस्वती में भेजा। आचार्य द्विवेदीजी ने उसे वापिस कर दिया और लिखा उस पर, 'अभी थोड़े दिन और कलम माँजिये।' तो मैं देखने लगा उनकी तरफ कि इनको शायद कुछ बुरा लगा हो, परन्तु उनको आनन्द हुआ। मैंने कहा क्या बात है? बोले, इतना तो लिखा है द्विवेदीजी ने मुझे। मैं तो समझता था कि शायद इतना भी नहीं लिखेंगे और वापिस कर देंगे। तो उस समय द्विवेदीजी जितना परिश्रम करते थे सरस्वती पत्रिका के सम्पादन में, वह पुरानी फाइलों को देखने से पता लगता है। हम सबको उससे बहुत पाठ मिल सकता है।

श्रद्धेय चिन्तामणि घोष ने जो काम सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन करके किया उसके लिए हिन्दी संसार उनका चिरकृतज्ञ रहेगा। आज हमको यह कहना पड़ता है कि बंगालियों ने, गुजरातियों ने, अमुक अमुक प्रदेश के बड़े बड़े विद्वानों ने उसका समर्थन किया था——हिन्दी का। यह कहने की आवश्यकता नहीं है, बड़े सहज रूप से उन्होंने किया था। यह कहना उसी तरह है जिस तरह यह कहा जाय कि कबीरदासजी ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए बहुत बड़ा काम किया था। यह कहना असंगत सा मालूम होता है। तो इन लोगों ने, अमृतलाल चक्रवर्ती ने, शारदा-चरण मित्र ने, चिन्तामणि घोष ने और भी कितने ही हमारे बंगाली विद्वानों ने, दूसरे प्रदेशों के विद्वानों ने, हिंदी की सेवा की, उत्तेजन दिया हिन्दी-भाषियों को। उससे हिंदी को प्रोत्साहन मिला, इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। बहुत बड़ा काम सरस्वती के द्वारा हुआ। आज यह उत्सव जो मनाया गया है, यह कुछ विलम्ब से शायद मनाया गया, एक ही जयन्ती इसकी मनायी गयी। तो विलम्ब से ही सही, यह उत्सव तो हुआ। इसीकी हमें प्रसन्नता है। हमें आशा है कि आगे भी हम इसी प्रकार की कृतज्ञता प्रकाश करेंगे और सरस्वती से जो हमने सीखा है उसको कभी हम भुलायेंगे नहीं।"

श्री वियोगी हरिजी के भाषण के बाद पं० सोहनलाल द्विवेदी ने एक कविता पढ़ी जिसमें उन्होंने सरस्वती की महत्ता बतलाते हुए इस विशेषांक को स्वीकार करने की राष्ट्रपतिजी से कवित्वमय प्रार्थना की। बाद में उत्सव के अध्यक्ष श्री दिनकरजी ने अपना भाषण देते हुए राष्ट्रपति के स्वास्थ्य लाभ पर हिंदी संसार और देश की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा——

"महामहिम महामान्य राष्ट्रपतिजी,

सबसे पहले हम भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि उनकी असीम कृपा से आपका खोया हुआ स्वास्थ्य वापिस हुआ। सारा देश इस बात के लिए प्रार्थी है कि भगवान् आपके स्वास्थ्य को सुदृढ़ करें, आपको दीर्घायु बनावें क्योंकि आपके अस्तित्व मात्र से एक प्रकाश छिटकता है जिससे इस देश में आशा, आत्म-विश्वास और भविष्य के प्रति आस्था का संचार होता है।

श्रीमन्! आज का यह समारोह दो एक दृष्टियों से काफी महत्त्वपूर्ण है। इसका पहला महत्त्व यह है कि संतों, लेखकों, कवियों और राजनेताओं की जयन्तियाँ मनाने के अवसर हमें अक्सर प्राप्त होते हैं, किन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, आज हम पहली बार किसी पत्रिका की जयन्ती मनाने को एकत्र हुए हैं। पत्र-पत्रिकाएँ निकालना आसान है, उनको कायम रखना बहुत ही कठिन सिद्ध हुआ है। समाचारपत्रों के लिए अब थोड़ी अनुकूलता उत्पन्न हो गयी है, लेकिन मासिक पत्र अभी भी निश्चिन्त नहीं है; बल्कि जिन पत्रों का झुकाव बौद्धिक होने की ओर है, वे आज भी कठिनाई में उगते और डूबते रहते हैं। इस दृष्टि से सरस्वती ने साठ वर्ष पार कर लिये, वह साठ वर्ष जी गयी, इतनी ही बात उसकी बहुत बड़ी सफलता का द्योतन करती है। भगवान् करें, सरस्वती तब तक कायम रहे जब तक संसार में हिन्दी भाषा का अस्तित्व है, और अतीत में जैसे वह देश के विभिन्न कोनों में बसनेवाले मनीषियों के विचारों और भावों की अभिव्यक्ति और प्रचार का साधन रही, वैसे ही, आगे के युगों में, भारत-वर्ष के महा संदेश को वह विश्व के कोने-कोने में विकीर्ण कर सके।

श्रीमन्! इस समारोह की दूसरी विशेषता वह है जिसकी ओर वियोगी हरिजी ने इशारा किया है और जिसका संबंध भारत की एकता से पड़ता है। सरस्वती का नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त गौरव से लिया जाता है। सरस्वती ने आधुनिक हिन्दी को माँजने, सँवारने में बड़ा काम किया, उसने बहुत से लेखक और कवि उत्पन्न किये, उसने हिन्दी को आधुनिक बनाने में बहुत बड़ा अंश दान दिया। साहित्य के भीतर आधुनिक भावों और शैलियों के प्रचार में भी सरस्वती ने जो सहायता पहुँचायी वह उल्लेखनीय बात है। ये सारी बातें हैं, लेकिन इससे भी महत्त्व की बात यह है कि सरस्वती भारतीय एकता की कीर्त्ति-पताका रही है। आज के भाषा-विषयक द्वंद्वों के घमासान में इस बात के स्मरणमात्र से भारत के भविष्य के बारे में आस्था बँधती है कि जिस हिंदी पत्रिका की हम जयंती मना रहे हैं, उसका आरंभ एक बंगाली सज्जन ने किया था। उन्हींके उत्तराधिकारी उसे अब भी चला रहे हैं।

श्रीमन्! आधुनिक भारत का जन्म बंगाल में हुआ था और बंगाल के ही महान् नेताओं को पहले पहल यह बात सूझी थी कि हिन्दी का विकास अन्तःप्रान्तीय भाषा के रूप में करना चाहिए, जिससे किसी समय हिन्दी अँगरेजी का स्थान ग्रहण कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द को सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में लिखने की प्रेरणा केशवचन्द्र सेन ने दी थी, और बिहार में हिन्दी को कचहरियों में स्थान दिलानेवाले आन्दोलन का नेतृत्व भूदेव मुकर्जी ने किया था। हिन्दी के दो बड़े प्रतापी मासिक पत्र एक तो सरस्वती, दूसरा विशाल भारत, इन दोनों का प्रकाशन बंगाल के दो महापुरुषों ने किया। चिन्तामणि बाबू तो प्रयाग में रहते थे, लेकिन रामानन्द चटर्जी ने कलकत्ते से विशाल भारत निकाल कर वही काम किया जो एक समय सरस्वती को निकाल कर चिन्तामणि घोष ने किया था। दूसरी स्थिति हो नहीं सकती थी। उस समय के भारतवासी बड़े आदमी थे, सचमुच बड़े आदमी थे, भाषा की क्षुद्रता उनमें नहीं थी। अपनी भाषा को वे दूसरों की भाषा से श्रेष्ठ कहकर दूसरों का जी नहीं दुखाते थे। सभी भाषाओं के प्रति उनका समान भाव था। मुख्य बात यह थी कि देशप्रेम उनमें प्रधान था, भाषाप्रेम गौण था। इसलिए भाषा की समस्या देश की एकता में बाधक नहीं हुई। आज उस भाव को जोर से अपनाने की जरूरत है।

कितने आनन्द की बात है कि कलकत्ता हिन्दी का गढ़ बन गया था। सन् १९०२ ईसवी में, हिन्दी प्रान्तों से बाहर कलकत्ता एकमात्र नगर था जहाँ हिन्दी का काम सबसे जोर से होता था। १९०२ ईसवी में पंजाब, मध्यप्रदेश और बम्बई, इन तीन प्रान्तों में प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों की संख्या १२७ थी, जबकि बंगाल में १३६ पुस्तकें छपीं थीं, और यही अनुपात बाद के दिनों में भी रहीं।

जिस प्रकार कलकत्ता हिंदी का केंद्र था, उसी प्रकार प्रयाग बँगला का केंद्र बन गया था। 'प्रवासी' का प्रकाशन इलाहाबाद से ही आरंभ हुआ। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ की पुस्तकों का आरम्भिक प्रकाशन इलाहाबाद में हुआ। जब तक रवि बाबू ने अपनी पुस्तकों का अधिकार विश्वभारती को नहीं दे दिया था तब तक ये सारी पुस्तकें इलाहाबाद से, इंडियन प्रेस से, निकलती थीं। खैर, वे दिन चले गये, मगर उनकी याद से आज भी हमको प्रेरणा मिलती है। मुझे बड़ी खुशी है, यह आयोजन सम्भव हो सका।

सरस्वती का सम्पादन इधर कई वर्षों से पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदीजी 'श्रीवर' कर रहे हैं। लेखक और कवि होने के सिवा उनकी संपादन-योजना-योग्यता भी बहुत ही उच्चकोटि की है। सरस्वती की हीरक जयन्ती मनायी जाये, यह विचार पहले पहल उन्हींके मन में उठा था, और उन्हींकी कार्यदक्षता में आदि से अन्त तक यह सारा कार्य पूर्ण हुआ। जब हम लोगों ने यह सुना कि आप सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक को स्वीकार करेंगे तब हम लोगों का उत्साह दूना हो गया। हम अपना परम सौभाग्य मानते हैं कि आपके समक्ष यह उत्सव सम्पन्न हो सका।

अब मैं घोष महोदय से अनुरोध करता हूँ कि वे ग्रन्थ आपको अर्पित करें, और आपसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इस क्षुद्र भेंट को स्वीकार करके इस आयोजन को गौरव प्रदान करें।"

दिनकरजी ने अपना भाषण समाप्त करके सरस्वती के प्रकाशक श्री हरिप्रसन्न घोष से विशेषांक को महामहिम राष्ट्रपति की सेवा में प्रस्तुत करने को कहा। श्री घोष ने और श्वेत रेशम से परिवेष्टित तथा एक सुंदर कलात्मक मंजूषा में रखे हुए सरस्वती के हीरक जयंती विशेषांक को उन्होंने महामहिम राष्ट्रपतिजी को निवेदित किया। उन्होंने उठकर और कृपावंत होकर स्वीकार किया। विशेषांक स्वीकार करने के बाद महामहिम राष्ट्रपतिजी ने सभा को इस प्रकार सम्बोधित किया--

"सभापति महोदय, देवियो और सज्जनो,

मुझे सबसे पहले आप लोगों से इस शिकायत के लिए माफी माँगनी है कि आपको यह समारोह दिल्ली में आकर करना पड़ा जबकि मुझे प्रयाग जाकर इसमें सम्मिलित होना चाहिए था। मगर इसका कारण आप जानते हैं और इसका मुझे भरोसा है कि आपने मेरे माँगने के पहले ही मुझे क्षमा कर दिया होगा।

यह शताब्दी आरम्भ से आज तक एक बड़ी क्रान्तिकारी शताब्दी भारतवर्ष के लिए रही है। वह केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, साहित्यिक क्षेत्र में भी, विशेष करके हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी और उसका ही यह एक सुफल है कि "सरस्वती" जैसी पत्रिका का जन्म इसके आरम्भ में हुआ और उसका काम आज तक ठीक तरह से खूबी से चलता आया है।

इस राष्ट्रपति-भवन में एक सुन्दर उद्यान है। इसमें बहुत से सुन्दर मौलसिरी और बकुल के पेड़ लगे हैं। अगर कोई देखे तो वह जल्द पहचान नहीं सकता कि ये बकुल के पेड़ हैं, और वे जैसे सुन्दर हैं, और वैसे सुन्दर कैसे बने हैं, और उनकी जो दूसरी खूबियाँ हैं उनको तो और भी किसी अनजान पुरुष के लिए जानना कठिन है।

मैं सोच रहा था कि 'सरस्वती' का भी वही रूप है। जिसने इसको जन्म दिया, जिन लोगों ने आरम्भ में इसके पौधे को लगाया, वह तो ठीक उसी तरह का पौधा होगा, रहा होगा जैसा इस मौलसिरी के वृक्ष का पौधा हुआ होगा, मगर आहिस्ता आहिस्ता जैसे यह पौधा बढ़ता गया और इसको काट-छाँट कर ऐसा सुन्दर बना दिया गया कि वह अर्धगोलाकार देखने में आता है, और सिर्फ यही नहीं कि इसमें सुन्दर पत्ते लगे हुए हैं, जब समय आता है तो इसमें बहुत सुन्दर फूल भी निकलते हैं और वे फूल दूसरे फूलों जैसे नहीं होते जिनकी सुगन्ध थोड़े ही दिनों में खतम हो जाती है, बल्कि इन फूलों की सुगन्ध उनके सूख जाने के बाद भी ज्यों की त्यों बनी रहती है। जब फूल फल में परिणत हो जाते हैं तो फल भी वैसे ही सुन्दर देखने में होते हैं और विशेष करके पक्षियों के खाने के लिए बहुत ही मीठे होते हैं। इन पेड़ों को अगर आप दिन में जाकर देखें तो आपको कहीं भी पता नहीं लगेगा कि इन मीठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरी के गाछों में कोई रहता भी है। और ५ बजे शाम के करीब आप देखें तो चिड़ियों की चहचहाहट ऐसी सुन्दर मालूम होती है कि मन सुनकर मुग्ध हो जाता है।

मैं सोचता हूँ कि 'सरस्वती' का जन्म देने में जिन लोगों ने मदद की, जिन लोगों ने इसके लिए साधन और सामान जुटाये उन्होंने इसी तरह का काम किया जिस तरह सीढ़ियों के जरिये से और कैंचियों से काट-कर माली इनको सजने-सजाने का काम करते रहते हैं। इसके अनेक सम्पादक रहे हैं मगर इसका श्रेय जिन्होंने इसको मुख्य रूप दिया उनको ही है, और उन्हें भी जिन्होंने इसको गोलाकार रूप दिया, इसको औरों ने भी सुन्दर बनाया, सजाया और आज भी बनाते जा रहे हैं उन सब को है।

जिस तरह मौलसिरी के पेड़ के फल बहुतेरे जीवों को सहायता देते हैं और उनके फूल अपनी सुगन्धि चारों तरफ फैलाते हैं उसी तरह से जिनके लेख इस पत्रिका में छपे, प्रकाशित हुए, उनसे इनके लिखनेवालों, पढ़नेवालों, दोनों को, हर तरह से फायदा पहुँचा और जिस तरह से इस बगीचे के मौलसिरी के पेड़ों में न मालूम कितनी चिड़ियाँ पलती हैं, इस सरस्वती को न मालूम कितने लेखकों ने पढ़ा, पढ़ाया।

तो मैं यह सोचता था कि जिस तरह से मौलसिरी के गाछ बहुत दीर्घजीवी हुआ करते हैं और काटने पर उनका काठ भी बहुत जबर्दस्त हुआ करता है, उसी तरह से 'सरस्वती' का जो सुन्दर वृक्ष इतने परिश्रम से बनाया गया है, पैदा किया गया है, वह दीर्घजीवी रहेगा और अन्त में भी यह इतना जबर्दस्त और मजबूत काम कर जायगा कि बहुत दिनों तक भारतवर्ष में इसकी याद रखी जायगी।

इसके लिए सबसे पहले श्री चिन्तामणि घोष को हमें धन्यवाद देना है या उनकी याद रखनी है। उसके बाद श्री द्विवेदीजी, उनसे भी पहले श्यामसुंदरदासजी और जितने लोगों ने आज तक इसकी सेवा की है, जितने लोगों ने इस पत्रिका में कविताओं, लेखों, कहानियों द्वारा जनता की सेवा की, वे सब हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

मुझे इस बात की खुशी है कि आपने सोचा कि सरस्वती की हीरक जयन्ती मनायी जाय। जैसा आपसे कहा गया, यह एक नयी चीज है। मनुष्यों की हीरक जयन्ती मनायी जाती है मगर इस पत्रिका की हीरक जयन्ती मनायी गयी, यह बड़ी बात है। इससे आशा होती है कि न केवल लिखनेवालों की बल्कि उनकी कृतियों की जयन्ती मनायी जायगी। हमारे देश में जिस तरह से 'सरस्वती' ने एक नयी परिपाटी कायम कर दी, हिन्दी भाषा को एक रूप देदिया और जिस प्रकार से न केवल लेखों का लिखना लिखवाना ही नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य में आलोचनात्मक लेखों को एक प्रकार से 'सरस्वती' ने जन्म दिया, उस सबके लिए हम उसके आभारी हैं और हमेशा आभारी रहेंगे।

आपने बड़ी कृपा की कि इतना कष्ट उठाकर आप यहाँ आये। जैसा मैंने कहा, मुझे प्रयाग जाना चाहिए था और यहाँ आकर और भी विशेष कृपा मेरे ऊपर आपने यह की कि आपने मुझे एक सुन्दर ग्रन्थ भेंट किया। मैं आप सबको दिल से धन्यवाद देना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि भारतवर्ष में हिन्दी का प्रचार हर तरह से, पहले जैसा आपने बताया, अहिन्दीभाषियों के द्वारा अधिक हुआ, हिन्दीभाषियों में भी अहिन्दीभाषियों के द्वारा हिन्दी का प्रचार हुआ, उसी तरह से अब राजनीतिक झगड़ों को भूल भुलाकर हम लोग हिन्दी भाषा का प्रचार एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में, सारे देश को एक साथ बाँधने के सूत्र के रूप में हिन्दीभाषी तो करेंगे ही, मगर इससे भी ज्यादा अहिन्दीभाषी इस काम को खूबी से करेंगे, और तब जो स्वतन्त्रता हमने पायी है वह पूरी हो सकेगी। जब तक विदेशी भाषा की आवश्यकता हमें रहेगी तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारी बौद्धिक उन्नति ठीक प्रकार से हुई। क्योंकि विदेशी भाषा हमने अपने यहाँ नहीं पायी है, उसको हमें कहीं विदेश से लाना पड़ा। उस चीज के भरोसे हम अपनी बौद्धिक उन्नति, हम अपना बौद्धिक विकास कैसे और कहाँ तक कर सकेंगे, यह समझने की बात है।

मुझे पूरी आशा है कि हिन्दी बोलनेवाले, जो हिन्दी प्रदेशों के रहने वाले हैं, भारतवर्ष के दूसरे हिस्से के लोगों की देश के प्रति जो आस्था और प्रेम है उस पर विश्वास करके यह उनपर छोड़ दें कि वे हिन्दी को अपना लें और हिन्दी की जो प्रतिष्ठा होनी चाहिए वह उसे अपनी खुशी से दें, और वह सारे देश की एक भाषा हो जाये। धन्यवाद।"

महामहिम राष्ट्रपतिजी के भाषण के बाद दिल्ली के गांधर्व संगीत विद्यालय की छात्राओं ने 'जन गण मन' गाया। सारी सभा खड़ी हो गयी, और कितने ही लोगों ने उसके साथ अपना स्वर मिलाया। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने अंत में सभा का अभिवादन करके विदा ली। उन्होंने कृपावंत होकर अपने कक्ष में विशेषांक की दो प्रतियों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये—एक प्रति सरस्वती के सम्पादक और दूसरी उसके प्रकाशक के लिये।

उत्सव की समाप्ति पर महामहिम राष्ट्रपतिजी की ओर से उपस्थित महिलाओं और सज्जनों को बहुत सुंदर जलपान कराकर उन्हें सम्मानित किया गया।

यह उत्सव अपनी भव्यता, गरिमा और सादगी में अभूतपूर्व था। 'सरस्वती' के इतिहास में यह दिन स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने सरस्वती के प्रति जो भाव और शुभकामनाएँ प्रकट की हैं, तथा उसके लिये जो कर्त्तव्यकर्म बतलाएँ हैं, वे सदैव उसकी अमूल्य निधि रहेंगे, और देश तथा हिंदी की सेवा में उसका सतत मार्गप्रदर्शन करते रहेंगे।

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

बर्ष ६३ जनवरी से जून १९६२ खण्ड १

विषय		लेखक	पृष्ठ
१—अकेले का गीत (कविता)	..	श्री श्रीकान्तप्रसाद सिंह	३७०
२—अखिल भारतीय जन्तु-रक्षक मंडल	..	श्री शारदाप्रसाद भुशुंडि	२०३
३—अनमाँगे, अनपाये छन (कविता)	..	श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह	३७७
४—अपनी उमर सम्हालो (कविता)	..	श्री नरेन्द्र चतुर्वेदी 'चंचल'	८६
५—अमृत पुत्र रवीन्द्र	..	कु० सुशीला सिंह	३२
६—अर्चना में क्यों निरत हूँ? (कविता)	..	श्री राजेन्द्र मिश्र	२९१
७—अष्टग्रही गोलयोग का संसार पर प्रभाव	..	प्रो० प्रद्युम्न नारायण सिंह	
८—आँगनों के बीच	..	६०, ११८, १८१, २७८-२८१,	३८०
९—आकाशीय महाभारत गोलयोग	..	प्रो० मदनगोपाल राठी, एम० काम० 'साहित्यरत्न'	५२
१०—"आज" की महिमा	..	श्री सन्तराम	८१
११—आधुनिक आर्यों का सोमरस	..	श्री अरविन्द मालवीय	११६
१२—ऑफिस—'वर्किंग-गर्ल्स' की नजर में (कविता)		श्री शम्भुसिंह मनोहर	४६५
१३—आनेवाले युग में शक्ति के स्रोत	..	डॉ० अरविंद मोहन	३७१
१४—आवश्यकता है एक गृहिणी की	..	श्री एन० टी० वासदेवन नायर	३९३
१५—इंटरव्यू	..	श्री दयाप्रकाश सिनहा	४९५
१६—इंडियन प्रेस और कवि रवीन्द्रनाथ	..	श्री नयनचन्द्र मुखोपाध्याय	१७
१७—इतिहास और शुक-सारिका कथा	..	प्रोफेसर कुवेरनाथ राय, एम० ए०	२५६
१८—१९०६ की सरस्वती—	..	१४०, २२०, ३०८, ४०४,	५००
१९—एक ऐतिहासिक पद्यमय भाषण	..	श्री मैथिलीशरण गुप्त	४४८
२०—कवीन्द्र रवीन्द्र की दो कविताएँ (कविता)	..	अनु० श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'	१३
२१—कृष्ण-कौतुक (कविता)	..	श्री राजेश दयालु "राजेश"	१६८
२२—कौन आया द्वार मेरे! (कविता)	..	श्री रमेशनारायण तिवारी	२७७
२३—क्या जलप्लावन आख्यान मूलतः भारतीय है?		श्री श्रीराम गोयल	१०६
२४—क्या राष्ट्रीय का अर्थ वास्तव में 'राज्य का साला' है?		श्री वेंकटेशनारायण तिवारी	८४
२५—खनवाहाँ	..	अनु० श्रीमती त्रिबेनी जोशी	३९८
२६—खुसरू, शीरीं और फरहाद	..	श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन	१८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७—गांधी, टाल्स्टाय और रवीन्द्रनाथ का शिल्पबोध	अनु० श्रीनारायण पांडेय	.. ३४
२८—गीत	कुमारी सरोज सक्सेना	.. २६५
२९—गुरुदेव और राष्ट्रीयता	श्री श्रीपाद शास्त्री	.. २०
३०—गुरुदेव और हास्य--रस	श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव	.. २४
३१—गोडसे के सिर सेहरा	श्रीमती कमला रत्नम्	.. १८५
३२—घास के फूल (कहानी)	श्री राजेन्द्र जगोता	.. २०९
३३—चीते से मुठभेड़	श्री के० बी० हकीमुद्दीन	.. ३९०
३४—जनकनन्दिनी	डॉ० हरिहरनाथ शुक्ल एम० ए०, डी० लिट्०	.. ४४९
३५—जब सोवियत जनता ने टैगोर का स्वागत किया	श्री उदय नारायण सिंह	.. २९
३६—जासूसी उपन्यासों का सम्राट्---एडगर वेलेज़	श्री महेन्द्रराजा जैन एम० ए०	.. २६६
३७—जीवन-नौका (कविता)	श्री शिवानन्द 'शिवम्'	.. २६१
३८—तंत्रमार्गी साधना और बौद्धयान	श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'	१५३, २४९
३९—तकियाकलाम	श्री सद्गुरुशरण अवस्थी	.. १९०
४०—तीन मुक्तक	श्री सूर्यनारायण सिद्धार्थ	.. ४५३
४१—तुमने धर दिया गुलाल (कविता)	श्री रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण'	.. ३७३
४२—तुमसे जितनी मिली प्रेरणा (कविता)	श्री रामचन्द्र शर्मा 'किशोर'	.. ४०
४३—देखा-सुना	श्री मनमोहन गुप्त ६७, १२३, २१२, ३००, ३८४, ४९६	
४४—नवीन प्रकाशन		२१७, ३०५, ४०१, ४९८
४५—नये साल का कैलेण्डर (कविता)	श्री निरंकुश	.. २०५
४६—नारी जागरण---नया विचार, नया पहलू	डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	.. १७८
४७—नाले के उस पार	श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय	.. ४९१
४८—पंजाब और संस्कृत साहित्य	श्री सत्यव्रत 'तृषित'	.. ४५४
४९—पं० रामनरेश त्रिपाठी के साथ अंतिम दिन	श्री शिवकुमार तिवारी	.. [illegible]
५०—पत्नियाँ किस मिट्टी की हों	डॉ० श्यामसुन्दर व्यास	.. ३७६
५१—परिशिष्टांक—	सरस्वती हीरक जयंती	५०५
५२—पहिले हौं जरौं, जरिहै फिर होरी ?	श्री हरिशंकर चतुर्वेदी	.. १९८
५३—प्रणय-प्रतीति (कविता)	श्री सूर्यनारायण सिद्धार्थ	.. २९९
५४—प्राइवेट सैक्रेटरी	श्री जगदीशचन्द्र पाण्डेय	.. १२९
५५—प्राचीन भारत का व्यापार पश्चिम की ओर	श्री विद्याभूषण गौड़	.. ३६८
५६—बन के जो कार्य बिगड़े ही नहीं (कविता)	श्री कुँअर सोमेश्वर सिंह	.. ४७४
५७—बादशाहों का अप्राकृतिक प्रणय और राजनीति पर उसका प्रभाव	श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	.. ४७८
५८—बिहारी का नूतन परिवेश	श्री आद्या प्रसाद त्रिपाठी	.. ८७
५९—ब्रज-कोकिल सत्यनारायण 'कविरत्न'	डॉ० रामचन्द्र मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०	.. ३५६
६०—भगवान की वाणी में समाज का हस्तक्षेप	डॉ० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०	.. ८१
६१—भारत का सन्देश (कविता)	प्रो० आनन्द नारायण शर्मा	.. ४९०
६२—भारत के समाचार-पत्र	श्री वेंकटेश नारायण तिवारी	.. १६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६३—भारतीय साहित्य में मधु .. डा० हरिहर प्रसाद गुप्त .. १५
६४—भुजनगर के राजस्थानी कवि हमीर और उनकी रचनाएँ .. श्री अगरचंद नाहटा .. ११६
६५—भूधर कवि और उनकी 'ध्यान बत्तीसी' .. श्री कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह .. ४५६
६६—मकड़ी का जाला .. श्री श्रीराम शर्मा 'राम' .. २९२
६७—मक्का और काबा .. श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन .. ३७४
६८—मनोरंजक संस्मरण .. ७२, १४४, २२४, ३१२, ४०८, ५०४
६९—महान् समाज-सुधारक एवं राष्ट्रोद्धारक—गुरुनानक देव .. प्रो० रमेश नारायण तिवारी .. ४६८
७०—महापर्व होली .. श्री पुत्तुलाल शर्मा .. २००
७१—महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण पं० ब्रजमोहन व्यास ४१, ९८, १७१, २६८, ३६३, ४६९
७२—महामहिम राष्ट्रपतिजी को सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का समर्पण ७
७३—माँ ने कहा था .. श्री पद्माकर निमदेव, अनु० मुन्नालाल देवासे .. २९६
७४—यातायात के साधनों का भविष्य .. डा०अरविन्द मोहन .. ५५
७५—रवि बाबू .. श्री अमृतलाल नागर .. १४
७६—रवीन्द्र शताब्दी के अवसर पर (कविता) .. श्री प्रभाकर माचवे .. १०५
७७—राजस्थानी शब्दकोश .. श्री मदनराज दौलतराम मेहता .. २८३
७८—रामराज्य में विद्रोह .. अनु० गुलाबचन्द्र विश्वकर्मा .. ६३
७९—राष्ट्रभाषा और स्वातंत्र्य संग्राम .. डॉ० पां० स खानखोजे .. ४४३
८०—राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ और वाजपेयी .. पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी .. ३६०
८१—वसंत .. श्री पुत्तूलाल शर्मा 'उद्दंड' .. १९१
८२—वहाँ और यहाँ (कविता) .. श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह .. ४९४
८३—वासना के अपराध और यौवन .. श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा .. २७४
८४—वेद तीन हैं या चार? .. श्री चन्द्रकान्त वाली .. ३४५
८५—श्रमदान—एक विश्लेषण .. श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी .. ३७८
८६—श्री राज्यपाल का भाषण ७९
८७—श्री राहुल सांकृत्यायन (एक रेखा-चित्र) .. डॉ० उदयनारायण तिवारी .. २६२
८८—संसार की राजनीति में भारत का स्थान .. श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार .. १६३
८९—संस्कृत-साहित्य में ग्रीष्म-वैभव .. श्री राधेश्याम गुप्त .. ४४१
९०—सम्पादकीय— .. १, ७३, १४५, २४१, ३३७, ४३३
९१—साँझ की बेला (कविता) .. श्री शशिभूषण प्रसाद पाण्डेय 'शीतांशु' .. ४८०
९२—सिर का मूल्य .. अनुवादक मा० वर्मा .. ४८४
९३—सुखद शरद् आया (कविता) .. श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' .. १५९
९४—सोना और पत्थर (कविता) .. श्री रमेश धाकर .. ३७९
९५—सोमनाथ की भारत-यात्रा .. श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह .. १३४
९६—हम आलोचक बनें .. विद्वान् के० नारायणन् .. २८४
९७—हमारा मस्तक नत कर दो (कविता) .. स्व० पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय .. ११
९८—हिन्दी क्षेत्र का नेतृत्व .. श्री जी० एस० पथिक .. ३४९
९९—हिन्दी में वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता ४७५
१००—हिन्दी विश्वकोश की कुछ त्रुटियाँ .. डॉ० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्० .. १६९

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

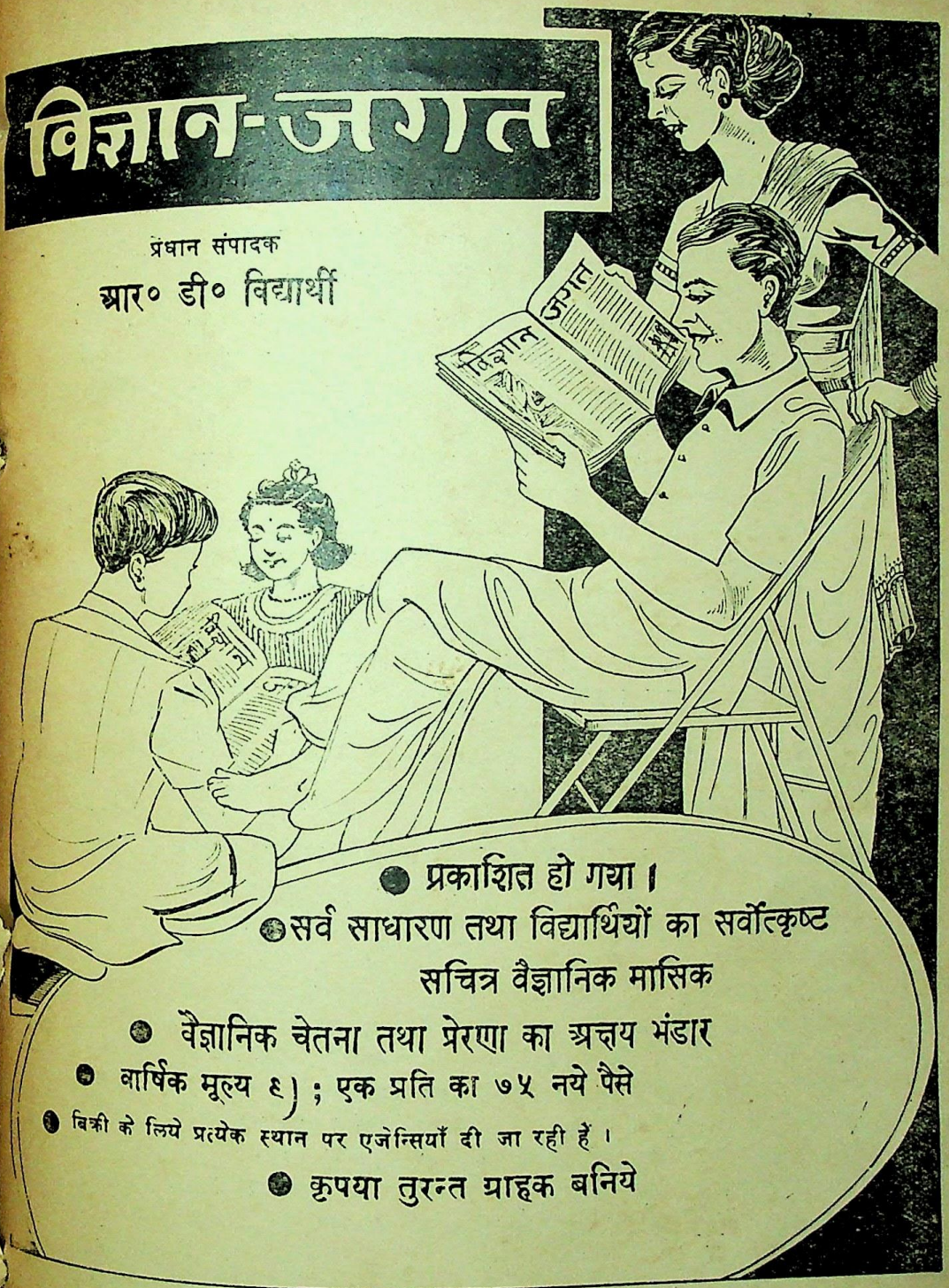

● प्रकाशित हो गया।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारखानेदारों तथा इन्डस्ट्रीज से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए अमूल्य पुस्तक

स्मॉल स्केल इन्डस्ट्रीज़

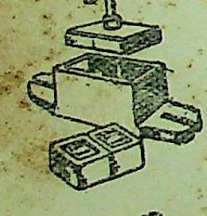
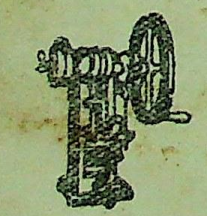

लघु उद्योग लेखक—कालीचरन गुप्ता, कंसल्टिंग इंजीनियर

* १०१ लघु उद्योगों की जानकारी १,००० से अधिक पृष्ठों तथा ३०० से अधिक चित्रों में देने वाली पुस्तक *

भारत व विदेशों के अनुभवी इन्जीनियरों, कारखानेदारों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के टैक्नीकल सहयोग से लिखी गई पुस्तक, जिसमें बताया गया है कि किस तरह इन्डस्ट्री चालू करने के लिये आप भारत सरकार से बहुत कम ब्याज पर नकद कर्ज, आसान किस्तों पर मशीन और कारखाने के लिये रियायती मूल्य पर जमीन, इमारत और पावर ले सकते हैं। पुस्तक में थोड़ी आमदनी वालों, दरम्याने दर्जे के लोगों और धनवान लोगों के लिए थोड़ी दरम्याना व अधिक पूंजी से चलाई जा सकने योग्य इन्डस्ट्रीज दी गई हैं। इसमें प्रत्येक इन्डस्ट्री का स्कोप, बनाने के तरीके व फार्मूले, कच्चे माल का विवरण व मशीनों से काम लेने का तरीका, कच्चा माल व मशीनें मिलने के पते आदि विस्तार-पूर्वक समझाये गये हैं। वे सज्जन जिन की कोई इन्डस्ट्री चल रही है वे पुस्तक में वर्णित कोई इन्डस्ट्री साइड इन्डस्ट्री के रूप में चालू कर सकते हैं। देहातों व कस्बों में रहने वालों व पार्ट टाइम में इन्डस्ट्री चालू करने के इच्छुकों के लिये पावर से चलने वाली व ऐसी इन्डस्ट्रीज जिन में पावर अथवा मशीनों की जरूरत नहीं पड़ती, भी दी गई हैं।

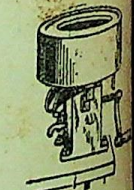

यही नहीं बल्कि पुस्तक में पैकिंग, लेबलिंग, माल की बिक्री बढ़ाने, पार्टनर-शिप, लिमिटेड कम्पनियाँ व कोआपरेटिव सोसाइटीज बनाने के नियम, विदेशों से माल इम्पोर्ट करने के तरीके आदि सैकड़ों अति लाभदायक बातों का भी समावेश किया गया है। ऐसे ग्रामवासी जिन के पास फालतू रुपया है यह पुस्तक खरीद कर अपना रुपया उद्योग में लगा कर उससे मुनाफा कमा सकते हैं। वे लोग भी जो एक बार उद्योग चला कर किसी भी कारण से बन्द कर चुके हैं, इस किताब को पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं। जिनके पास रुपया नहीं है और जो उत्साही हैं वे भी थोड़ी-थोड़ी रकम लगा कर कोई उद्योग शुरू कर सकते हैं। सफेद कागज क्लाथ बाइंडिंग। पुस्तक हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में छपी है। मूल्य केवल १२) बारह रुपया, डाक-व्यय दो रुपया पृथक। गुजराती, मराठी, बंगाली, तिलेंगी भाषा में छपवाने की व्यवस्था की जा रही है.

एक साथ ५ किताबें मँगाने पर डाक-खर्च माफ़ ।

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मँगाने का एक मात्र स्थान—

देहाती पुस्तक भंडार

(S-A 5/62) चावड़ी बाजार, देहाती बिल्डिंग, दिल्ली-

फोन नं. २२००३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

9 JUL 1962

Good book

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

जुलाई १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय—१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

"सरस्वती" हीरक जयंती के अवसर पर प्राप्त

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्त्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आसान नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी देखने को मिलती है—राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्यधिक आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-बिंदुओं का स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवकाशप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

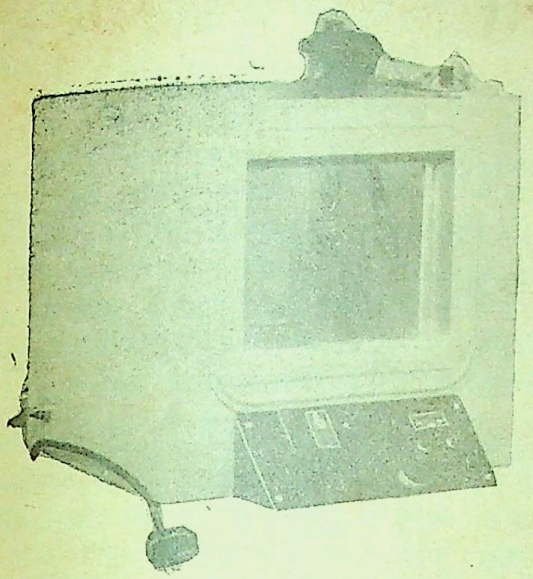

थरमोस्टैट वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

वाचनालय, कांगड़ी

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:—

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

फा० १

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खांसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खांसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरीनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आंखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया चौ आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—**रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)
अति प्राचीन और निर्भर योग्य
औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता
डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"
ऐसे बोगस रजिस्टर्ड लिखनेवालों से सावधान

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।
वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।
वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८७
कर्मयोग .. १·४० भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग .. ३·०० ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग .. १·३७ सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म .. १·५० धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान .. १·६२ शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य १·२५ मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग .. १·१२ चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव .. ०·६२ भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा .. ०·६२ मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली .. ०·६२ हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा .. ०·५० ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत .. ०·५० मन की शक्तियाँ	०·४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५
शक्तिदायी विचार (,,) ..	०·६२
मेरी समर नीति (,,) ..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००
श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००
माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :
श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्दविभोर हो उठेंगे।

मूल्य २·५०

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

केश विन्यास
की पूर्णता
के लिये...

गोल्डेन आमला

केश तैल

बंगाल केमिकल....
कलकत्ता · बम्बई · कानपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

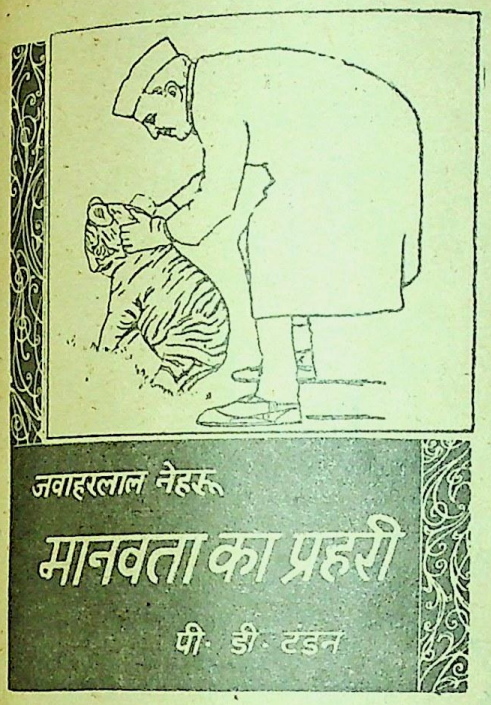

हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

जवाहरलाल नेहरू

मानवता का प्रहरी

लेखक

पी० डी० टंडन, पत्रकार

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य पुस्तक : कुछ देखा कुछ सुना

मूल्य १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

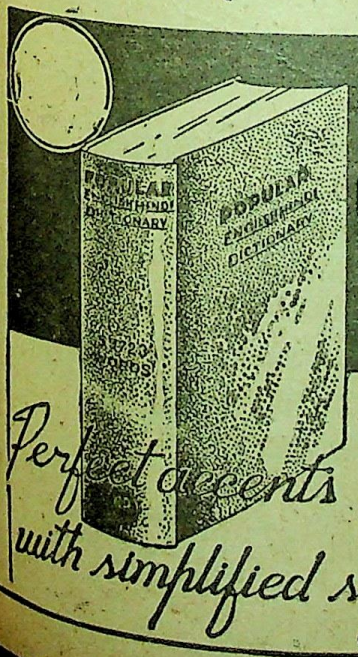

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये से

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए

लक्स ज़रूरी है'

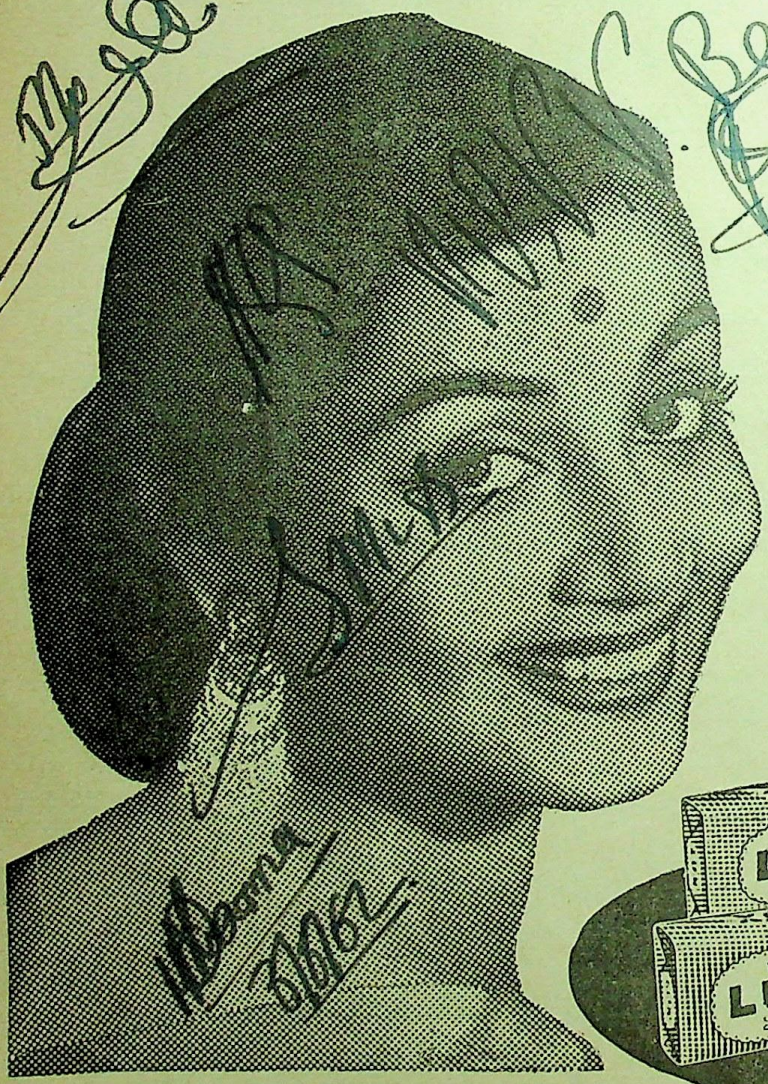

साधना का खिला हुआ रंगरूप देखिये ... साफ़ नज़र आता है कि यह लक्स ही की देन है! मगर आप अपने रंगरूप के लिए क्या करती हैं! लक्स इस्तेमाल कीजिये ... इस के मुलायम झाग से आपका रंगरूप सुंदरता की नई सीमा को जा छूता है! लक्स इस्तेमाल कीजिये ... और इसकी अनमोल सुगंध के सुंदर संसार में खो जाइये! लक्स इस्तेमाल कीजिये ... आप की पसंद के लिए इसके रंगों का इंद्रधनुष भी है—और आपका मनपसंद सफ़ेद भी! आपके रंगरूप को लक्स टॉयलेट साबुन की ज़रूरत है!

चित्रतारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

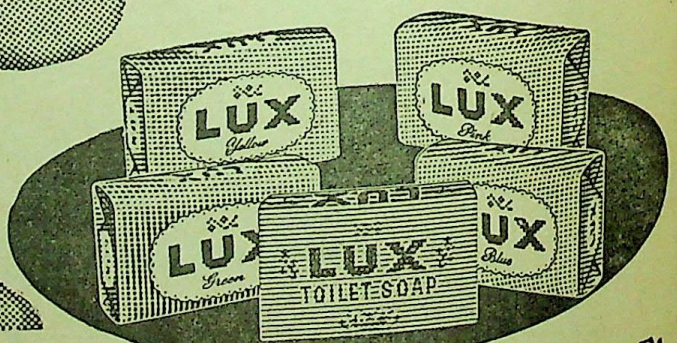

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में!' साधना कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 111-X52 BG

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

धर्म निरपेक्ष राज्य का मतलब एक ऐसा राज्य है जो सब तरह के धर्मों और मजहबों का आदर करता है और उन्हें फलने फूलने का एक-सा मौका देता है। भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत से धर्म और मजहब हैं, धर्मनिरपेक्षता की बुनियाद पर ही सच्ची राष्ट्रीयता कायम की जा सकती है। अगर कोई संकीर्ण दृष्टि रक्खी गई तो उस हालत में भारत में हमें हिन्दू राष्ट्रीयता, मुस्लिम राष्ट्रीयता, सिक्ख राष्ट्रीयता या ईसाई राष्ट्रीयता का खयाल रखना पड़ेगा, भारतीय राष्ट्रीयता का नहीं। ये संकीर्ण राष्ट्रीयतायें पुराने जमाने की बातें हैं। ये पिछड़े हुए और पुराने जमाने के नकशे हैं।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता बाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक पृष्ठ २१२ मूल्य ५), खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला

(सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला

(सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका: श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २·५० नये पैसे।

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित ब्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताज़गी का तराना ! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके तनमन में ताज़गी का तराना गूंज उठेगा ! और मज़ा यह है कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताज़ा कर देता है ! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा !

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ !

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रम-पूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अंगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०।

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English **by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)** अँगरेजी में

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बेच बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

अनुवाद साहित्य में अभिवृद्धि

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	**बड़े वन में छोटा घर**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ अनु० रामअौतार अग्रवाल	**प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	**किट कार्सन और जंगली सीमान्त**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	**अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	**प्रेयरी नगर का बालक**	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	**प्रसिद्ध वैज्ञानिक**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	**दृष्टिदात्री**	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	**परमाणु का रहस्य**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	**अमेरिका का महान् उदारवादी**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल	**आधुनिक औषधि-आविष्कार**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६
अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन	**लिंकन वाणी**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समालोचना

भाषा-रहस्य--डा० श्यामसुन्दरदास	५·५०
साहित्यालोचन--डा० श्यामसुन्दरदास	५·५०
भाषा-विज्ञान--डा० श्यामसुन्दरदास	५·००
हिन्दी साहित्य--डा० श्यामसुन्दरदास	३·५०
रूपक रहस्य--डा० श्यामसुन्दरदास	३·००
संक्षिप्त पद्मावत--डा० श्यामसुन्दरदास	२·५०
निबन्ध-रत्नावली--(पहला भाग)--डा० श्यामसुन्दरदास	२·००
हिन्दी भाषा--डा० श्यामसुन्दरदास	२·००
गद्य कुसुमावली--डा० श्यामसुन्दरदास	१·२५
हिन्दी निबन्ध रत्नावली--डा० श्यामसुन्दरदास	२·७५
काव्य कला--श्री गोपाललाल खन्ना	२·००
हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास--श्री गोपाललाल खन्ना	२·००
काव्य-कलाप--श्री गोपाललाल खन्ना	१·००
काव्य-माला	०·७५
देव-दर्शन--श्री हरदयालुसिंह	२·००
मतिराम मकरंद--श्री हरदयालुसिंह	१·२५
विहारी-विभव--श्री हरदयालुसिंह	२·००
भूषण-भारती--श्री हरदयालुसिंह	२·२५
पूर्ण-पराग--श्री हरदयालुसिंह	२·००
प्रतिष्ठान--पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·००
परिव्राजक की प्रजा--पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·५०
युग और साहित्य--पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·२५
संचारिणी--पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	२·५०
कवि और काव्य--पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	२·००
हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी--पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	५·००
निबंध-निचय--पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी १·००
आलोचनांजलि—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी १·५०
कालिदास की निरंकुशता—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ०·५०
हिंदी भाषा की उत्पत्ति—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ०·५०
चिन्तामणि—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ३·००
आलोचनादर्श—डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' २·५०
साहित्य-प्रकाश—डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' २·००
माधव मिश्र-निबंध-माला—साहित्यभूषण चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ३·५०
विवेचनात्मक गल्प-विहार—संपादिका : स्वर्गीया सुभद्राकुमारी चौहान २·००
भाषा-विज्ञान—डाक्टर मंगलदेव शास्त्री ६·००
प्रबंध प्रकाश—डा० मंगलदेव शास्त्री पहले भाग का ४·००
दूसरे भाग का ५·००
द्विवेदी-मीमांसा २·५०
हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा—पं० गंगाराम शर्मा १·५०
कुमार सम्भव—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी १·२५
यात्री—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी २·००
कुछ—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी १·५०
मेरी अपनी कथा—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ४·५०
समीक्षा-दर्शन—श्री रामलालसिंह (प्रथम भाग) ६·००
(द्वितीय भाग) ४·००
कामायनी-अनुशीलन—श्री रामलालसिंह ४·००
कामायनी का विवेचन—पं० ब्रजभूषण शर्मा १·५०
सिद्धराज-समीक्षा—पं० ब्रजभूषण शर्मा १·००
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग ३·००
द्वितीय भाग २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा--श्री कालिदास कपूर	१·००
महाकवि अकबर--श्री 'वतन'	१·२५
हिंदी कविता की पृष्ठभूमि--डा० रामरतन भटनागर	४·००
प्राचीन हिंदी काव्य--डा० रामरतन भटनागर	४·००
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य--गंगाप्रसाद पाण्डेय	२·७५
प्राचीन साहित्य--डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१·५०
हिंदी मेघदूत विमर्श--सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	४·००
विचित्र प्रबंध--डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२·००
भारती-कवि-विमर्श--श्री रामसेवक पाण्डेय	३·००
मौलाना हाली और उनका काव्य--श्री ज्वालादत्त शर्मा	१·५०
संस्कृत गद्य रत्नावली--पं० अमरनाथ झा	१·००
अपभ्रंश-पाथमाला--(प्रथम भाग)--श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
विचार-तरंग--आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी	३·५०
साहित्य-तरंग " "	५·००
हिंदी साहित्य में जीवन चरित का विकास : एक अध्ययन चंद्रावती सिंह एम० ए०	४·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

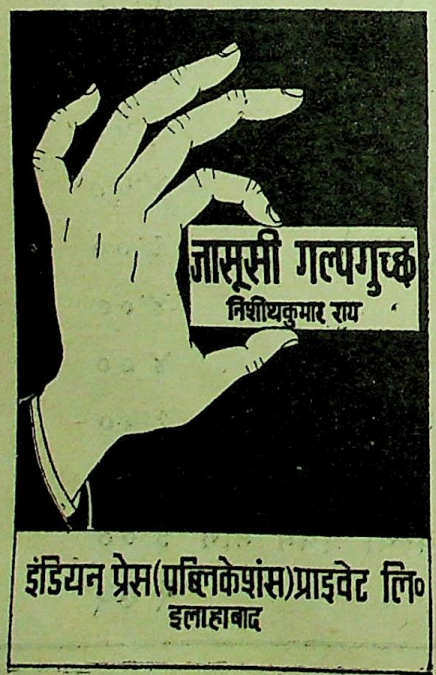

प्रस्तुत हो गया **निकल गया**

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट--कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक ग्रन्थ

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०.००
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६.००
हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२.००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६.००
ज्ञानेश्वरी गीता	६.००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३.००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२.००
रामचरितमनास (मूल)	३.००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६.००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१.००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३.५०
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४.००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२.७५
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४.००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१.५०
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३.००
द्वितीय भाग	२.७५
भक्तचरितावली	३.५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०.७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५.००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८.७५
दुर्गापाठ—अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२.००
श्री भगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३.००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१—संपादकीय १७
२—श्री अरविन्द के विचार में वेदों के प्रतीक का रहस्य—श्री नारायणप्रसाद 'विन्द' २५
३—आधुनिक सांस्कृतिक पक्षाघात—प्रोफेसर कुवेरनाथ राय, एम० ए० .. .. २९
४—जनकनन्दिनी—डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट्० .. .. ३५
५—दिल्ली की सामयिक राजनीतिक हलचल—पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी .. ३९
६—महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१७)—पं० व्रजमोहन व्यास .. ४२
७—नई कविता में प्रेम-चित्रण—श्री रमाशंकर तिवारी, एम० ए० .. .. ४६
८—देशी रियासत के प्रांगण में—श्री जी० एस० पथिक ५२
९—पावस आया—श्री सन्तोषकुमार श्रीवास्तव ५८
१०—राष्ट्रिय—श्री शिवाधार पाण्डेय .. ६१
११—मुक्तक (कविता)—श्री महेशचन्द्र 'सरल' ६१
१२—वादे वादे जायते तत्त्वबोधः—आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन' ६२
१३—नील वितान (कविता)—श्री विजयशंकर शुक्ल 'संत' ६५
१४—आँगनों के बीच—(१) विवाहित जीवन का सबसे मनोरंजक अनुभव—श्रीमती सादिका सरन ६६
(२) मेरे विवाह की सबसे मनोरंजक घटना—ईरा ६८
घर-गृहस्थी—नया युग ६९
१५—आँसू का मुकदमा—डा० श्यामसुन्दर व्यास ७०
१६—पर धन तकै कबूतरबाज—श्री कालिकाप्रसाद मोहिले ७२
१७—भैया, माँ से मत कहना—श्री ओम्प्रकाश शर्मा ७९
१८—हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नयी नियमावली—श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ८२
१९—नवीन प्रकाशन ८४
२०—मनोरंजक संस्मरण .. ८६
२१—१९०६ की सरस्वती—प्रश्नोत्तर रत्नमाला का कर्ता—महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा .. ८७
२२—'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव का विवरण (गतांक से आगे) ८९

सूचना—'सरस्वती' सम्पादक के लिए पत्र, लेख, परिवर्तन के पत्र आदि कृपया निम्नांकित पते पर भेजें:

श्रीनारायण चतुर्वेदी
सम्पादक, सरस्वती
५३ खुर्शेदबाग (विष्णुपुरी)
लखनऊ

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

१) की पुस्तक बिलकुल मुफ्त

योगासन व पैसे पैसे के नुसखे
महाभयंकर रोगों को भी.
मिटा देते हैं।
लोक कल्याण के पुस्तक
मुफ्त लें।

श्री कुशल पुस्तक भवन, नाभा (पंजाब)।

सरस्वती में

देकर लाभ उठाइए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

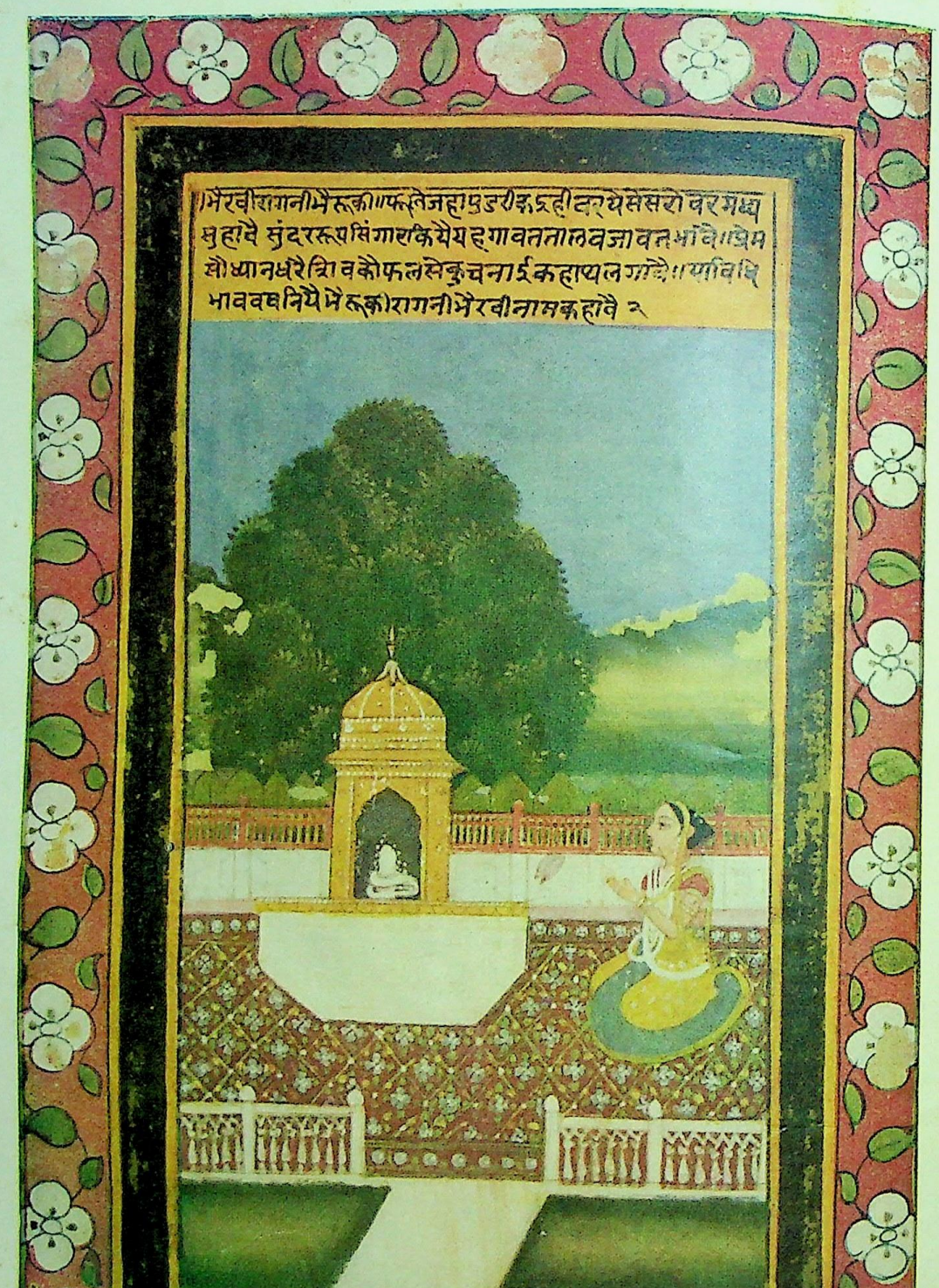

भैरवी रागनी का रूप

(राजस्थानी शैली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७५१

इलाहाबाद : जुलाई १९६२ : आषाढ़ २०१९ वि०

खण्ड २
संख्या १

सम्पादकीय

हवा के तिनके—तिनके हवा का रुख बतला देते हैं। यद्यपि सरकार ने खुल कर हिंदी के विरोध में कुछ नहीं कहा, तथापि एक ऐसा वातावरण बना दिया गया है जिसमें हिंदी की प्रगति तो रुक ही गयी है। अब तक जो उपलब्धि हुई थी, वह भी नष्ट होती जाती है। पिछले कुछ सप्ताहों में जो अनेक समाचार मिले उनमें से कुछ प्रमुख समाचार यह हैं:

(१) केंद्रीय गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री और मंत्री श्री दातार ने सूचित किया है कि शीघ्र ही संसद में संविधान का संशोधन रखा जायगा जिसके अनुसार संविधान की वह धारा, जिसमें १९६५ के बाद केंद्र का सारा काम हिंदी में करने की व्यवस्था है, इस प्रकार बदल दी जायगी कि अंग्रेजी सहयोगी राजभाषा बना दी जाय और उसमें अनिश्चित काल तक केंद्र का राजकाज होता रहे।

(२) भारत सरकार के सूचना मंत्री ने आकाशवाणी के हिंदी समाचारों की हिंदी को कठिन बतलाया है और उसे "सरल" करने का इरादा प्रकट किया है।

(३) बिहार राज-सेवा-आयोग ने राज्य की कई सेवाओं की परीक्षाओं में हिंदी का एक अनिवार्य प्रश्नपत्र रखा था। बिहार सरकार ने एक आज्ञा द्वारा यह प्रश्नपत्र बंद कर दिया। अब हिंदीभाषी बिहार राज्य की सेवा की परीक्षाओं में हिंदी में उत्तीर्ण होना आवश्यक न रह जायगा।

(४) उत्तर प्रदेश में देहात के उन हजारों प्राथमिक विद्यालयों की कक्षा ३ में अंग्रेजी पढ़ाने का प्रबन्ध कर दिया गया है जिनमें अंग्रेजों के राज्यकाल में भी अंग्रेजी नहीं पढ़ायी जाती थी। अंग्रेजों ने भी देहातों में अंग्रेजी के प्रचार का इतना व्यापक और विशाल प्रबंध नहीं किया था जितना हमारी स्वदेशी सरकार कर रही है। जब कि साधारण अध्यापकों के अपर्याप्त वेतन बढ़ाने के लिये उसके पास धन नहीं है, वह अंग्रेजी पढ़ानेवाले साधारण अध्यापकों को वेतन के अतिरिक्त दस रुपया मासिक भत्ता देगी।

(५) कई वर्ष पहिले दिल्ली विश्वविद्यालय ने निश्चय किया था कि शीघ्र ही सारी शिक्षा का माध्यम हिंदी कर दिया जायगा। अब उस निश्चय का संशोधन कर दिया गया है। वहाँ बी० ए० के लिए दो प्रकार के पाठ्यक्रम हैं:—एक "आनर्स" कहलाता है जो उच्च श्रेणी का माना जाता है। दूसरा "पास" पाठ्यक्रम जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नस्तर का है। इस 'पास' पाठ्यक्रम को लेकर उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी सामान्यतः एम० ए० में भर्ती नहीं हो सकते। अब विश्वविद्यालय ने निर्णय किया है कि "पास" पाठ्यक्रम के केवल कुछ विषय, और वे भी केवल कुछ कालेजों में, हिंदी के माध्यम से पढ़ाये जा सकते हैं। किंतु विज्ञान आदि के विषय अंग्रेजी में ही पढ़ाये जायेंगे। जहाँ ये "कुछ" विषय हिंदी द्वारा पढ़ाये जायेंगे, वहाँ भी अंग्रेजी माध्यम की कक्षाएँ पूर्ववत् चालू रहेंगी। यदि हिंदी में बी० ए० के योग्य पुस्तकें नहीं हैं तो ये विद्यार्थी कैसे पढ़ेंगे? और यदि वे उपलब्ध हैं, तो 'आनर्स' के विद्यार्थियों को हिंदी माध्यम से शिक्षा क्यों न दी जाय? इस भेद-भाव का परिणाम यह होगा कि "पैट्रीशियन" (उच्च वर्ग के) लोग अंग्रेजी द्वारा, और "प्लीबिअन" (निम्न वर्ग के) हिंदी द्वारा पढ़ेंगे। इस प्रकार हिंदी माध्यम को "शूद्र" बनाकर प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए उसका उपयोग रोक दिया गया है। बाद में कहा जायगा कि हिंदी माध्यम से पढ़े ग्रेजुएट प्रतिभाशाली होते ही नहीं।

(६) मदरास सरकार ने निश्चय किया है कि कुछ माध्यमिक विद्यालयों में सारे विषय उसी प्रकार अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाये जायेंगे जिस प्रकार अंग्रेजों के समय में पढ़ाये जाते थे। यह केवल आरंभ है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि वहाँ धीरे धीरे अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम फिर अंग्रेजी हो जायगी। इसका प्रभाव अन्य राज्यों पर भी पड़ेगा। कक्षा ३ से अंग्रेजी पढ़ाने के समर्थन में तर्क देते हुए उत्तर प्रदेश के एक मंत्री ने कहा था कि हमारे विद्यार्थियों की अंग्रेजी इतनी कमजोर हो गयी है कि वे अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षाओं में बहुत कम उत्तीर्ण होते हैं। जो विद्यार्थी माध्यमिक और विश्वविद्यालय की सारी शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त करेंगे, उनकी अंग्रेजी उन विद्यार्थियों से कहीं अच्छी होगी जिन्होंने कक्षा ३ से अंग्रेजी केवल एक विषय के रूप में पढ़ी है, किंतु अन्य विषय अपनी मातृभाषा के माध्यम से पढ़े हैं। अतएव अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थी अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षाओं में अधिक सफल होंगे क्योंकि वहाँ भी परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। इसकी प्रतिक्रिया दूसरे राज्यों पर भी होगी, और तब हमारे मंत्री उसी तर्क का सहारा लेकर अपने यहाँ भी अंग्रेजी माध्यम आरंभ करेंगे जिस तर्क के बल पर उन्होंने कक्षा ३ से अंग्रेजी आरंभ की है। अतएव अंग्रेजों का राज्य जाने पर भी अंग्रेजी के राज्य का विस्तार करने का पूरा पूरा बानक बन रहा है। इस वातावरण में हिंदी का नाम लेना भी "कुफ्र" हो जायगा।

(७) अंग्रेजी ही नहीं, उर्दू को भी उत्तर प्रदेश में हिंदी के समकक्ष लाने के लिए प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रयत्न हो रहे हैं। इस संबंध में 'हिंदुस्तान' दैनिक (८ जून, १९६२) का यह समाचार देखने योग्य है:—

"फतेहगढ़। फर्रुखाबाद के जिला न्यायाधीश श्री राजेन्द्रप्रसाद सक्सेना ने अपने समस्त अधीनस्थ कर्मचारियों को एक आदेश निकाल कर आज्ञा प्रदान की है कि यदि उन्हें आगामी तीन मास में उर्दू लिखने पढ़ने का समुचित ज्ञान प्राप्त न हुआ तो उनकी पदोन्नति ही नहीं रोकी जायगी वरन् यदि वे अस्थायी पदों पर कार्य कर रहे होंगे तो उनकी सेवाएँ तक समाप्त कर दी जा सकती हैं।

"आदेश में कहा गया है कि कोई भी कर्मचारी अन्य कारणों से वरिष्ठ क्यों न हो पर यदि उसे उर्दू का समुचित ज्ञान नहीं है तो उसे वरीयता नहीं दी जायगी और उसकी वार्षिक वेतन-वृद्धि भी रोक दी जायगी। जजी के समस्त अधिकारियों से कहा गया है कि वे तीन मास समाप्त हो जाने के पश्चात् ऐसे कर्मचारियों की रिपोर्ट करें जिन्होंने उर्दू का समुचित ज्ञान प्राप्त न कर लिया हो।

"न्यायाधीश ने एक भेंट में बताया कि राज्य सरकार ने जजी कर्मचारियों के लिए नौकरी की परीक्षाओं में तो उर्दू के समुचित ज्ञान होने का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा है और उनमें परिवर्तन हो गया है, किन्तु जहाँ तक उनकी शैक्षणिक अनिवार्य योग्यताओं का प्रश्न है वहाँ उनके लिए उर्दू का समुचित ज्ञान होना अनिवार्य है। अतः जब तक उसमें परिवर्तन नहीं किया जाता है तब तक उनका यह आदेश वैध और न्यायसंगत है।"

हमें संदेह नहीं कि न्यायाधीश की आज्ञा "नियमानुसार" ही होगी क्योंकि संभव है कि लालफीताशाही, दूरदर्शिता की कमी, अदक्षता और हिंदी के प्रति उदासीनता के कारण पुराने नियम (जो हिंदी के राजभाषा घोषित होने पर बदल दिये जाने चाहिए थे) अब तक न रद्द किये गये हों। किंतु यह "नियम" १४ वर्षों तक उपयोग में न आने के कारण व्यवहारतः आज अप्रभावी हो गया है। इतने दिनों इस "नियम" की दुहाई किसी अधिकारी ने नहीं दी। आज ये गड़े मुर्दे क्यों उखाड़े जा रहे हैं? उत्तर स्पष्ट है। आज हिंदी-विरोधी वातावरण इतना तैयार हो गया है कि उसमें इस दकियानूसी और मृत नियम को धड़ल्ले से कार्यान्वित किया जा सकता है। हम यह भी जानना चाहेंगे कि अधिकारियों ने "राजभाषा" हिंदी के ज्ञान संबंधी आदेश को कर्मचारियों पर क्या कभी इस कड़ाई से लागू किया है? आज भी उत्तर प्रदेश में कितने अधिकारी और कर्मचारी ऐसे हैं जो शुद्ध हिंदी में एक साधारण पत्र या आलेख्य (ड्राफ्ट) लिख सकते हैं? क्या उन्हें कभी वेतनवृद्धि रोकने की धमकी दी गयी है? देखना है कि उत्तर प्रदेश सरकार पर इस घटना की क्या प्रतिक्रिया होती है।

(८) सबसे महत्त्वपूर्ण और चिंताजनक समाचार यह है कि प्रधान मंत्री ने अपने संवाददाता-सम्मेलन में यह कहा है, संविधान में हिंदी के स्वरूप की जो परिभाषा दी गयी है, उसे बदला जायगा। संविधान में कहा गया है कि हिंदी में नये शब्द लेने और बनाने में प्राथमिकता संस्कृत के शब्दों को दी जायगी। उर्दू या हिंदुस्तानी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमायती इसके विरुद्ध हैं। आकाशवाणी की हिंदी को जब प्रधान मंत्री ने 'कठिन' बतलाया तब एक संवाददाता ने कहा कि यदि आकाशवाणी की हिंदी बदली जा रही है तो क्या संविधान में हिंदी की जो परिभाषा दी गयी है वह भी बदली जायगी? इस पर प्रधान मंत्री ने कहा--"You are quite right. We have to. We propose to. (आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। हमें (उसे) बदलना ही पड़ेगा। हम उसे बदलने का विचार कर रहे हैं।) अतएव इससे मालूम होता है कि भारत सरकार हिंदी के स्थान पर, किंतु हिंदी नाम रखते हुए, हिंदुस्तानी को भारत की राजभाषा बनाना चाहती है। यह हिंदुस्तानी हिंदी की अपेक्षा उर्दू के अधिक निकट होगी। अतएव हिंदी को संविधान में जो कागजी स्थान मिला हुआ है, उसकी आत्मा भी निकाल दी जायगी। हिंदी के अहित का इससे बढ़कर और समाचार क्या हो सकता है?

पिछले कुछ सप्ताहों की थोड़ी सी चुनी हुई घटनाएँ तिनके के समान यह बतलाती हैं कि हवा किधर बह रही है। सरकार की भाषा-नीति इन घटनाओं में प्रतिबिंबित है। यदि सरकार की भाषा-नीति यही रही तो हम पचास वर्ष पूर्व पहुँच जायेंगे। हिंदी पूर्ववत् उपेक्षित रहेगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व, माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो गयी थी। पचास वर्ष पहिले सारी शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से दी जाती थी। उस समय, अर्थात् ५० वर्ष पहिले, अंग्रेजी का जो रोब और स्थान था, उस पर उसे प्रतिष्ठित करने की ओर हम बढ़ते हुए मालूम होते हैं। उत्तर प्रदेश में हिंदी उर्दू की जो समस्या समाप्त हो गयी थी, वह फिर से उठायी जा रही है। यदि यही दशा रही तो पचास वर्ष पहिले इस विवाद में जो तीव्रता थी, वह फिर उत्पन्न हो जायगी। हिंदी को दबाने और उसके रूप को विकृत करने का प्रयत्न किया जा रहा है। देशवासियों को, विशेषकर हिंदी प्रेमियों को, इस स्थिति पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

दिनकरजी को साधुवाद--गत २० जून को राज्य सभा में श्री दिनकर ने एक महत्वपूर्ण भाषण देते हुए कहा कि आकाशवाणी के समाचारों की भाषा वैसे ही बहुत सरल है। उसका और सरल करना अत्यंत कठिन होगा। उसमें अभी भी फारसी, अरबी और अँगरेजी के बहुत से शब्दों का उपयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध में उनके भाषण का यह अंश विशेषरूप से उल्लेखनीय है जो २१ जून के टाइम्स आफ इण्डिया में छपा है:

Mr. Dinkar complained that it had become the habit of some people to attack Hindi and its protagonists. "In all probability they derive their inspiration from the Prime Minister. My submission is that to hurt the feelings of 16 crores of Hindi-speaking people by ridiculing them day in and day out is not in the interest of emotional integration".

(श्री दिनकर ने इस बात की शिकायत की कि कुछ लोगों की आदत हिंदी और हिंदी के समर्थकों पर आक्रमण करने की पड़ गयी है। "मालूम यह पड़ता है कि बहुत करके वे इसकी प्रेरणा प्रधान मंत्री से लेते हैं। मेरा निवेदन है कि नित्यप्रति १६ करोड़ हिंदीभाषियों का मजाक उड़ा कर उनकी भावनाओं को चोट पहुँचाना भावनात्मक एकता के हित में नहीं है।")

हम श्री दिनकर की इस स्पष्टोक्ति के लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं। आज हिंदीवालों को ऐसा मालूम पड़ रहा है कि प्रधान मंत्री के नेतृत्व में उनके विरुद्ध "जेहाद" बोल दिया गया है। जब प्रधान मंत्री हिंदी की चर्चा करते हैं तब मानों उन्हें हिंदीवालों की भर्त्सना करने या उनका मजाक उड़ाने का अवसर मिल जाता है। हिंदी के संस्कृत शब्दों से उन्हें चिढ़ मालूम होती है। इसका परिणाम यह है कि, सही या गलत, हिंदीवाले प्रधान मंत्री को हिंदी का विरोधी और उर्दू या हिंदुस्तानी का पक्षपाती समझने लगे हैं। उनकी धारणा हो गयी है कि वे हिंदी को इतना नापसंद करते हैं कि जो कोई उसका विरोध करता है वह उनका कृपापात्र हो जाता है। मालूम होता है कि हिंदी का समर्थक होना उनकी दृष्टि में बहुत बड़ा अवगुण है। हिंदी क्षेत्र के निवासी कांग्रेस और पं० नेहरू के इतने दिनों से, और इतने अधिक, अंधभक्त रहे हैं कि वे उनकी और अन्य कांग्रेसी नेताओं की हिंदी की उपेक्षा और अवमानना का खुलकर विरोध नहीं कर पाते। किन्तु भीतर ही भीतर हिंदी संसार में जो तीव्र असंतोष की लहरें उठ रही हैं, वे कब तक दबी रहेंगी, यह कहना कठिन है। प्रमुख और कांग्रेसभक्त कवियों और लेखकों की कृतियों में वह तीव्र असंतोष परिलक्षित होने लगा है और यदि यही दशा रही तो यह प्रवृत्ति और बढ़ेगी। जो अहिंदीभाषी नेता इस हिंदी-विरोधी सहगान में अपना स्वर मिला रहे हैं उनसे हम नम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि वे इस कर्तव्य से अपने क्षेत्रों के प्रति हिंदीभाषियों में प्रेम उत्पन्न नहीं कर रहे। आज हिंदीवालों ने जान-बूझकर वाक्-संयम का व्रत ले रखा है क्योंकि वे भाषा-विवाद की अग्नि में घी नहीं डालना चाहते। किन्तु वे अपने मित्रों और विरोधियों को पहचानने लगे हैं। हमारी सरकार और ये हिंदी विरोधी हम हिंदीवालों को शायद कीड़ा-मकोड़ा समझते हैं जिनकी भावना की परवाह करना उन्हें आवश्यक नहीं मालूम होता। किन्तु उनकी प्रिय अँगरेजी भाषा में एक कहावत है--Even the worm turns. 'कीड़ा भी कभी उलट पड़ता है।' हम उन्हें इस कहावत की याद दिलाते हैं। सहिष्णुता की भी एक सीमा होती है। एक दिन हिंदीभाषी जनता भी इस आये-दिन के हिंदी विरोध का उत्तर दे सकती है। हम श्री दिनकर को यह चेतावनी देने के लिए हार्दिक साधुवाद देते हैं कि हिंदीवालों पर लगातार वाक्बाणों की वर्षा करने से देश की भावनात्मक एकता को खतरा है। जो लोग इन उपेक्षित हिंदीवालों के निकट सम्पर्क में हैं, उन्हें मालूम है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी उन लोगों के बारे में क्या राय और क्या भावना है जो उनकी भर्त्सना किया करते और उनका मजाक उड़ाया करते हैं। यदि ये लोग हिंदीवालों से यह अपेक्षा करते हैं कि उनकी भर्त्सना और विरोध के बावजूद हिंदी-वालों के हृदय में इन विरोधियों के क्षेत्रों के प्रति कोई स्निग्धता रह जायगी, तो या तो वे हिंदीवालों को देव-ताओं और परमहंसों की श्रेणी में रख कर उनका गौरव बढ़ाते हैं, और या फिर उन्हें आत्मसम्मानहीन विशुद्ध मूर्ख समझते हैं। छः राज्यों के निवासियों और उनकी भाषा का इस प्रकार विरोध करके इस देश में भावनात्मक एकता स्थापित नहीं की जा सकती। जिन्हें अंगार खिलाये जाते हैं वे आग उगलते हैं। श्री दिनकर ने यह सामयिक चेतावनी देकर देश की बहुत बड़ी सेवा की है।

गांधी शांति-प्रतिष्ठान का आणविक अस्त्र-विरोधी सम्मेलन—गांधी शांति-प्रतिष्ठान (गांधी पीस फाउण्डेशन) गांधीवादियों की संस्था है। गांधीजी की अहिंसा में उसका पूरा विश्वास है। आणविक अस्त्र-शस्त्रों से संसार को जो खतरा है वह सर्वविदित है। राष्ट्रसंघ में और असंख्य समितियों और सम्मेलनों में, आणविक अस्त्रों की भयंकरता भली भाँति बतला दी गयी है और नये अणु बमों के परीक्षण को रोकने के लिए भी इन संस्थाओं द्वारा पूरा पूरा प्रयत्न किया जा चुका है। किंतु इन प्रयत्नों का कोई परिणाम नहीं हुआ। तब भारत ऐसे अहिंसक और सैनिक दृष्टि से अमहत्त्वपूर्ण देश के एक सम्मेलन की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज ही हो सकती है। भारत सरकार का इस संबंध में वही मत है जो देश का है, और प्रत्येक अवसर पर उसने इस समस्या पर भारतीय भावना की दृष्टि से सम्मति ही नहीं दी, प्रत्युत जोर भी डाला। किंतु जिन शक्तिशाली राष्ट्रों के पास आणविक हथियार हैं, वे इतने शक्ति-मदमत्त हैं कि अपने स्वार्थों के सामने दूसरे देशों की कौन कहे, मानवता की भी चिंता नहीं करते। ऐसी अवस्था में यह सम्मेलन और इसके प्रस्ताव केवल चर्वित-चर्वण-मात्र हैं। यह समझ में नहीं आता कि इस सम्मेलन से उद्देश्यपूर्ति में क्या लाभ हुआ। देशरत्न डा० राजेन्द्र-प्रसाद ने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि संसार को युद्ध की विभीषिका से बचाने और अहिंसा का प्रत्यक्ष उदाहरण रखने के लिए किसी न किसी देश को त्याग करना होगा, और अपना अहिंसा में विश्वास प्रमाणित करने के लिए हिंसा के साधन—सेना—को तोड़ देना पड़ेगा। इसमें पहल भारत को करनी चाहिए। बुद्ध से लेकर गांधी तक भारत में अहिंसा का पाठ पढ़ाया गया है और हमारे नेता 'अहिंसा' का नाम जपते हुए नहीं अघाते। डा० राजेन्द्र-प्रसाद की यह चुनौती गांधीवादी सरकारों के लिए बड़ी असुविधाजनक होगी। सरकारी मंत्री जिन पदों पर हैं, वहाँ रहकर अपने उत्तरदायित्व को देखते हुए, वे सेना को समाप्त करने की बात सोच ही नहीं सकते, और न देश कभी इस विचार को सहन करेगा। हमारी अहिंसा सैद्धान्तिक है। आदर्श है। आदर्श और व्यवहार के बीच में जो चौड़ी खाई है, उसे सब लोग देखते और जानते हैं। इस सम्मेलन में कितने ही सुझाव दिये गये। उनमें कोई नवीनता नहीं थी। एक वक्ता ने तो यहाँ तक कहा कि यदि कोई राष्ट्र आणविक परीक्षण बंद न करे तो उसे राष्ट्रसंघ से निकाल दिया जाय। अमरीका, रूस और इंग्लैण्ड ही ऐसे देश हैं। इनमें से किसी को भी (विशेष कर प्रथम दो में से किसी को) निकाल देने से राष्ट्रसंघ ही समाप्त हो जायगा। सम्मेलन ने यह भी निश्चय किया कि एक शिष्ट-मंडल रूस, अमरीका आदि देशों में जाकर उनकी सरकारों को समझाए। यदि किसी दूसरे सम्मेलन में यह प्रस्ताव स्वीकृत होता तो इसे 'बचकाना' कहा जाता, क्योंकि जो संसार की वास्तविकता जानते हैं, उन्हें मालूम है कि इन देशों की सरकारों को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते। उनके पास शिष्टमंडलों का ले जाना समय, धन और शक्ति का अपव्यय मात्र है। यदि उन्हें केवल अपनी सम्मति बतलानी है तो एक पत्र से भी काम चल सकता है। राजनीतिज्ञों—विशेषकर सैनिक राजनीतिज्ञों—की मान-सिकता मानवतावादी नहीं होती। और आज जो राज-नीतिज्ञ सैनिक नहीं भी हैं, वे सेना-विशेषज्ञों के एकदम हाथों में हैं। इस कारण वे निरुपाय हैं। इन राजनीतिज्ञों और सैनिकों की कुंजी वैज्ञानिक हैं जो इन आसुरी अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार करते और बनाते हैं। विज्ञान के कारण संसार की बड़ी उन्नति हुई। जनसाधारण की सुख-सुविधाएँ बहुत बढ़ गयीं। स्वास्थ्य में भी उन्नति हुई। किंतु विज्ञान ने तोप, टारपीडो, हथगोला, मशीनगन, विषैली गैस से लेकर आणविक और हाइड्रोजन बम तक बनाकर व्यापक मानव संहार और मानवता के क्षय का जो उपक्रम किया है, वह उसके वरदानों की काट कर देता है। यदि इन वैज्ञानिकों को सुबुद्धि आ जाय और वे प्रतिज्ञा कर लें कि नये आणविक अस्त्रों का आविष्कार न करेंगे तो आणविक बमों के परीक्षण का प्रश्न ही न उठे। राजनीतिज्ञों और सेना के अधिकारियों की अपेक्षा वैज्ञानिकों को समझाना सरल है क्योंकि इन अस्त्रों के आविष्कार से उनके निहित स्वार्थों को कोई लाभ नहीं पहुँचता। किंतु इन मुट्ठी भर वैज्ञानिकों को भी इन मानवता-विनाशी अस्त्रशस्त्रों के बनाने से विरत करना आज असंभव है। तब जिनकी सारी स्थिति, शान-शौकत, शक्ति और स्वार्थ अधिक भयंकर हथियारों पर निर्भर हैं, उन्हें समझाना कैसे संभव हो सकता है? परिस्थिति की विवशता ही उन्हें इन हथियारों से विरत कर सकती है। नये अस्त्रों के आविष्कार पर इतना अधिक व्यय हो रहा है, और वह व्यय दिन दिन इतना बढ़ता जा रहा है, कि एक दिन अति समृद्ध देशों को भी वह व्यय अपनी सामर्थ्य से बाहर मालूम पड़ेगा। तब, या ऐसी ही किसी अन्य स्थिति में, यह दौड़ रुक सकेगी। तब तक मानवता का भविष्य इन हृदय और आत्मा-हीन राजनीतिज्ञों, सैनिकों और वैज्ञानिकों के तिगड्डम के हाथों में है। गांधी शांति-प्रतिष्ठान के प्रस्तावों पर ध्यान देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उन्हें अवकाश नहीं। यदि प्रतिष्ठान वास्तव में 'शांति' में रुचिशील है तो वह पूर्वी पाकिस्तान और तिब्बत में कुछ रचनात्मक क्रियाशीलता दिखलावे। वहाँ शांति की सक्रिय सेवा हो सकती है। हाँ, वहाँ केवल भाषणों से काम न चलेगा।

पाकिस्तान ने रॉकेट बनाया—पिछले मास पाकिस्तान ने 'रहबर १' और 'रहबर २' नामक दो प्रक्ष्येप (रॉकेट) छोड़े। ये दो खंड के थे और आकाश में ८५ मील की ऊँचाई तक गये। पाकिस्तान ने बतलाया कि इन्हें अंतरिक्ष में ऋतु संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए छोड़ा गया है। किंतु ऋतु संबंधी जानकारी के लिए बनाये गये प्रक्ष्येप ठीक उसी तरह थोड़ा फेर बदल करके युद्ध के काम में लाये जा सकते हैं जिस तरह वायुयान। जो बात हमारे ध्यान देने की है वह यह कि पाकिस्तान ने प्रक्ष्येप (रॉकेट) बनाना आरंभ कर दिया है और यदि वह इन्हें बनाने में लग गया है तो वह दिन दूर नहीं है जब वह ऐसे शक्तिशाली प्रक्ष्येप बनाने में समर्थ हो जायगा जो युद्ध में काम आ सकें। चूँकि वह इन प्रक्ष्येपों को स्वयं बना रहा है, इसलिए वह इनके लिए दूसरे देशों की दया पर निर्भर न रहेगा। भारत के लिए यह समाचार नयी चिंता का विषय है। अमरीका से उसे जो अत्यंत शक्तिशाली अद्यतन लड़ाकू वायुयानों का बेड़ा मिल गया है, उसका ही सामना करने योग्य वायुयान हमारे पास नहीं हैं। यह भी सुना गया है कि उसे अमरीका से ऐसी 'मारक मिसिल' भी मिली है जो धरती से वायुयानों पर, या वायुयानों से धरती पर, या वायुयानों से वायुयानों पर फेंकी जा सकती है। हमारे जवान बड़े वीर हैं, रणविद्या में कुशल हैं और उनका मनोबल भी बहुत ऊँचा है। किंतु अधिक घातक अस्त्रशस्त्रों का सामना और भी अधिक घातक अस्त्रशस्त्रों ही से किया जा सकता है। भारत का अंग्रेजी राज्य तक का इतिहास इसी स्वयंसिद्ध सिद्धान्त की व्याख्या है। पुरु और उसके सैनिकों की वीरता की प्रशंसा स्वयं सिकंदर ने भी की थी, किंतु पुरु युद्ध में हार गया। इसलिए हार गया कि यूनानियों के अस्त्र अधिक घातक थे। उनके तीरों की सामूहिक मार से पुरु के हाथी मैदान में नहीं ठहर सके। राना साँगा की वीरवाहिनी से एक बार बाबर भी घबड़ा गया था, किंतु राना के वीर सैनिकों के पास तलवारें थीं और बाबर के पास तोपें थीं। परिणाम यह हुआ कि तोपों ने वीरता पर विजय प्राप्त की। अँगरेजों के आधुनिकतम घातक हथियारों के सामने पुराने ढंग के हथियारों से सज्जित भारतीय राजाओं और नवाबों की सेनाएँ नहीं ठहर सकीं। अतएव आज के युग में यदि हम इतिहास से कुछ भी शिक्षा ले सकें तो हमें अपनी सेनाओं को आधुनिकतम अस्त्रशस्त्रों से सज्जित करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। दिल्ली में अणुबमों के विरुद्ध बुलाये गये सम्मेलन में हमारे शांतिप्रिय और आदरणीय नेताओं ने यहाँ तक कह डाला है कि चाहे दूसरे देश अपनी सेनाएँ रखे रहें, भारत को अपनी सेना तोड़ कर संसार के सामने एक नमूना रखना चाहिए। हमारे ये नेता जिस आध्यात्मिक, नैतिक और काल्पनिक लोक में पहुँच गये हैं उससे संसार अभी बहुत दूर है। वे इस अपूर्ण और जंगली संसार के योग्य नहीं हैं। तिब्बत में सेना नहीं थी। उसका जो परिणाम तिब्बत को भुगतना पड़ा वह सबके सामने है। बड़े बड़े शांतिप्रिय देश भी उसकी सहायता न कर सके। सहायता करना तो दूर, राष्ट्रसंघ में भी उसकी हत्या की चर्चा तक न उठा सके। हमें पाकिस्तान और चीन से खतरा है। हम अहिंसक हैं। इसलिए हम उन पर आक्रमण नहीं करेंगे, किंतु यदि वे हम पर आक्रमण करें तो हमारे पास ऐसे साधन तो होने ही चाहिए कि हम उनके अस्त्र-शस्त्रों की मार का ठीक ठीक उत्तर दे सकें। इसीलिए हम भारत सरकार की उस कार्यवाही का समर्थन और स्वागत करते हैं जिससे वह पाकिस्तान को दिये गये लड़ाकू वायुयानों का सामना करने के लिए रूस से 'मिग' वायुयानों को लेने की बातचीत कर रही है। देश की सुरक्षा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हमारे सैनिकों के पास अपने विरोधियों से यदि अधिक शक्तिशाली नहीं, तो समान शक्ति के अस्त्रशस्त्र तो हों। स्वतंत्र राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता की रक्षा सर्वोपरि है। उसके सामने और सब बातें गौण हैं। इस संबंध में भारत सरकार का सर्वप्रथम कर्तव्य है कि पाकिस्तान और चीन के पास जो अस्त्रशस्त्र हैं उनसे बेहतर अस्त्रशस्त्र वह अपने सैनिकों को सुलभ करे। हमारे प्रधानमंत्री कहा करते हैं कि हम 'अणुयुग' में रह रहे हैं। अणुयुग केवल नागरिक क्षेत्र में नहीं, सैनिक क्षेत्र में भी आ गया है। हमें विश्वास है कि उनकी सरकार यह न भूल जायगी कि युद्धक्षेत्र में हम स्वरबेधी जेट वायुयानों, प्रक्ष्येप अस्त्रों और मिसिलों के युग में रह रहे हैं, और हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन साधनों को सुलभ कर लें जिनसे हम संभावित खतरे का सामना कर सकें।

बिहार की दरिद्रता—बेरोजगारी का अध्ययन करते समय बिहार में परिवारों की आय का अभी हाल में सर्वेक्षण किया गया है। उससे बिहार के परिवारों की मासिक आय के संबंध में बड़े मनोरंजक, किंतु चौंका देनेवाले, तथ्य प्रकट हुए हैं। मासिक आय की दृष्टि से वहाँके परिवारों का विभाजन इस प्रकार है—

परिवार की मासिक आय	परिवारों का प्रतिशत
५१ रु० से १०० रु० तक	३४
१०१ रु० से १५० रु० तक	१५
१५० रु० से ३०० रु० तक	१०
३०१ रु० से ५०० रु० तक	६
५०० रु० से अधिक	३

शेष परिवारों की आय ५० रु० प्रतिशत से कम है। अर्थात् बिहार में प्रायः एक-तिहाई परिवार ऐसे हैं जिनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आय ५० रुपये मासिक से कम है। इस अवस्था की भीषणता तब और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है जब यह मालूम होता है कि बिहार में प्रत्येक परिवार की जनसंख्या का औसत ७.८५ अर्थात् बालक-युवा-वृद्ध मिलाकर प्रायः आठ व्यक्तियों का है। कुछ वर्षों पहले तक उत्तर प्रदेश के परिवारों का औसत आकार ४.५ व्यक्ति था। बिहार में जिस परिवार की मासिक आय ५० रुपये है उसमें प्रत्येक व्यक्ति के भरण-पोषण, हारी बीमारी आदि के लिए केवल ६ रुपये ३७ नये पैसे उपलब्ध हैं। इससे बिहार की जनता की गरीबी का अनुमान लगाया जा सकता है? संसद में पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक सदस्य ने उस राज्य के पूर्वी जिलों की दरिद्रता का मर्मस्पर्शी वर्णन किया था। सर्वेक्षण करने के बाद ही यह बात ठीक तरह से मालूम हो सकती है कि दरिद्रता कहाँ अधिक है। कहीं भी हो, यह दशा असहनीय है। जब तक यहाँ के लोगों का राहत नहीं मिलती तब तक हम यह दावा नहीं कर सकते कि देश में 'सुराज' हो गया है, स्वराज्य भले ही हो गया हो। जनता को स्वराज्य तब तक नहीं लुभा सकता जब तक वह 'सुराज' भी न हो।

आकाशवाणी में हिंदी का "हिंदुस्तानीकरण"—कश्मीर में उर्दू राजभाषा है। वहाँ "राज्यपाल" शब्द ग्राह्य नहीं है क्योंकि वह हिंदी का है। इसके स्थान पर इजाफत के साथ अरबी "सदर-ए-रियासत" का प्रयोग होता है जो उर्दू को स्वीकार है। सामान्यतः भारतीय कश्मीरियों के घरों में भी उर्दू बोली जाती है, यद्यपि अब उनकी महिलाएँ हिंदी पढ़ने लगी हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू भी कश्मीरी हैं और उनके परिवार में भी उर्दू बोली जाती रही है। प्रयाग में बहुत दिनों रहने के कारण वे थोड़े बहुत हिंदी से भी परिचित हैं, किंतु इधर वर्षों से दिल्ली के उर्दू वातावरण में रहने से उन्हें हिंदी के वे साधारण शब्द भी, जिन्हें हिंदी पढ़ने वाले स्कूली लड़के भी आसानी से समझ लेते हैं, अटपटे और कठिन मालूम होते हैं। आकाशवाणी के समाचारों की हिंदी को वे कठिन समझते हैं, और अब उन्होंने उसे सरल बनाने के आदेश दिये हैं। श्री गोपाला रेड्डी सूचना विभाग के नये मंत्री बनाये गये हैं। वे हैदराबाद (आँध्र) के हैं। निजाम की कृपा से तैलगू प्रदेश में होते हुए भी हैदराबाद उर्दू का गढ़ बन गया था, और पुरानी पीढ़ी के हैदराबादियों को सरकारी कामकाज के लिए उर्दू पढ़नी पड़ती थी। अतएव यदि निजामी-उर्दू के संस्कारों के कारण श्री रेड्डी को उर्दू या हिंदुस्तानी "सरल" मालूम होती हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उनके उपमंत्री दिल्ली के भूतपूर्व नगर-प्रमुख लाला शामनाथ बनाये गये हैं। समाचार पत्रों में उनका नाम "शामनाथ" ही छपता है—श्यामनाथ नहीं। शामनाथ—शाहे-शाम लार्ड आव ईवनिंग। उनके हिंदी नाम के इस उर्दू संस्करण ही से उनके हिंदी प्रेम का अनुमान किया जा सकता है। उर्दू वाले अंग्रेजी के "सर्क्युम्स्पैक्शन" ऐसे शब्दों का तो ठीक तरह से उच्चारण कर लेते हैं, किंतु हिंदी के संयुक्ताक्षरों को बोलते समय उनकी जबान में "लुक़नत" आ जाती है। वे "प्रसाद" को "परशाद", "प्रेम" को "परेम", "श्याम" को "शाम" और "श्री" को "सिरी" कहते हैं। हिंदी के संस्कृतमूलक शब्दों के संयुक्त अक्षरों को इस प्रकार तोड़कर विकृत करना "उर्दू कल्चर" की विशेषता है। लाला शामनाथ दिल्ली की मृत मुग़लिया संस्कृति के प्रशंसक हैं। उर्दू के "हामी" हैं। जब दिल्ली के नगर निगम ने हिंदी को अपने कामकाज की भाषा बनाने का निश्चय किया तब उन्होंने उर्दू को भी उसके समकक्ष रखने के लिए भरपूर प्रयत्न किया। हमें यह नहीं मालूम कि वे कितनी हिंदी जानते हैं, किंतु उर्दूदाँ होने के कारण यदि उन्हें आकाशवाणी के समाचारों की हिंदी "सक़ील" मालूम होती हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस प्रकार आज आकाशवाणी के सभी वरिष्ठ प्रभुगण उर्दू या हिंदुस्तानी के समर्थक मालूम पड़ते हैं जिस पर "सरल हिंदी" का लेबुल लगाकर शायद वे उसे आकाशवाणी का चालू सिक्का बनाने का प्रयत्न करें। इसलिए हमें यह समाचार पढ़कर कोई आश्चर्य नहीं हुआ कि श्री रेड्डी ने यह घोषित किया है कि वे आकाशवाणी के समाचारों की हिंदी को "सरल" बनाने का प्रयत्न करेंगे। शायद उनकी दृष्टि में आकाशवाणी की उर्दू "आमफ़हम" और "आसान" है। उसको सरल बनाने की आवश्यकता वे नहीं समझते। सुधार केवल हिंदी का होना है। एक फारसी के कवि ने कहा है कि "आसमान से जो भी बलाएँ उतरीं, और वे चाहें किसी दूसरे के लिए ही क्यों न भेजी गई हों, उतरते ही मेरे घर का पता पूछने लगीं"। हिंदी की दशा ऐसी ही है। वह "गरीब की लुगाई, सबकी भौजाई" हो रही है। जो आता है वही हिंदी को एक ठोकर लगाकर अपने तीसमारखाँपन का परिचय देने लगता है। आकाशवाणी की बोखारी-युग की भाषा को इन तेरह-चौदह वर्षों में कुछ ढंग पर ले आया गया था, यद्यपि अब भी उसमें उर्दू के काफी शब्दों का अनावश्यक प्रयोग किया जाता है। किंतु आजकल हिंदी के ग्रह खराब हैं। अब फिर उलटी गंगा बहाने का प्रयत्न किया जा रहा है। हम मैसर्स रेड्डी एण्ड शामनाथ कम्पनी के "कारनामों" को उत्सुकता से देखेंगे और यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि हिंदी के संस्कृतमूलक शब्दों का बहिष्कार करके, उनकी जगह अरबी, फारसी या अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने के अतिरिक्त, अर्थात् हिंदी को उर्दू या हिंदुस्तानी बनाने के अतिरिक्त, हिंदी को सरल बनाने की उनकी क्या कल्पना है। हमें यह भी देखना है कि "रेडियो ऐडवायजरी कमेटी" के हिंदीविद् सदस्य इस "सरलीकरण" पर क्या सम्मति देते हैं।

रेलगाड़ियों का विलम्ब से चलना: मुसोलीनी के अभ्युदय से पहिले इटली की रेलगाड़ियाँ बड़े अनियमित समय से चला करती थीं। रेलों की अनियमितता इटली के प्रशासन की ढिलाई और निम्न स्तर के होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण समझा जाता था। मुसोलीनी ने अधिकार पाते ही रेलों की इस अनियमितता को एकदम बंद कर दिया। वहाँकी रेलें समय से चलने लगीं। इंग्लैंड, अमरीका आदि देशों में मुसोलीनी की इस एक उपलब्धि ही ने उसकी ख्याति बढ़ा दी और उसकी योग्यता की साख स्थापित कर दी।

हमारे देश में रेलों की दशा प्रायः मुसोलीपूनी-पूर्व इटली ही के समान हो गयी है। रेलों के समय से न पहुँचने की घटनाएँ अब इतनी सामान्य हो गयी हैं कि जनता इस मुसीबत को उसी तरह सहन करने की आदी हो गयी है जिस प्रकार मच्छरों को। और आश्चर्य की बात यह है कि जब रेलें कम्पनियों द्वारा चलायी जाती थीं तब वे नियमित समय पर चलती थीं। उनका "राष्ट्रीयकरण" कर दिया गया। हम स्वयं राष्ट्रीयकरण के समर्थक हैं क्योंकि हम समझते हैं कि कम्पनियों की तरह राष्ट्रीयकरण से रेलों को चलाने में केवल आर्थिक लाभ पर ध्यान न देकर यात्रियों की सुख-सुविधा का अधिक ध्यान रखा जायगा और उनकी कार्य-दक्षता बढ़ेगी। किंतु राष्ट्रीयकरण से रेलों की कार्यदक्षता के मामले में हमें निराश होना पड़ा। रेल की सेवा में पहिले जो लोग लिये जाते थे उनमें अधिकांश हाईस्कूल भी नहीं होते थे। अब तो गार्डों, टिकट कलक्टरों, एसिस्टेंट स्टेशनमास्टरों के पदों पर कम से कम बी० ए० ही लिये जाते हैं। उनमें आज कितने ही एम० ए० भी हैं। पर उनकी व्यावहारिक कार्य-दक्षता कम्पनियों के समय के आठवीं या नवीं कक्षा तक पढ़े रेल बाबुओं से कम ही दीख पड़ती है।

हमारे बचपन में रेलों के इंजिन इतने शक्तिशाली और बड़े नहीं थे जितने आज हैं। पटरियाँ भी इतनी भारी नहीं थीं जितनी अब हैं। कर्मचारियों का वेतन भी इतना नहीं था। फिर भी इतने दिनों से रेलों की गति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। आज भी भारत में बड़ी लाइन की डाकगाड़ियों की औसत गति ३० मील प्रति घंटे या इसके लगभग है। सवारी गाड़ियों की तो बात ही न पूछिये। कभी कभी तो ७०, ८० मील तै करने में उन्हें चार या पाँच घंटे लग जाते हैं। हमारे बचपन में, आज से ५०-६० वर्ष पहिले, इलाहाबाद से इटावे जाने में सवारी गाड़ी जितना समय लेती थी, आज भी प्रायः उतना ही लेती है। केवल एक अंतर हो गया है। तब वह निर्धारित समय पर पहुँच जाती थी, अब दो तीन घंटे विलम्ब से पहुँचना कोई बड़ी बात नहीं है। आज हम स्टेशन पर समय से पहुँचते हैं। पता लगता है कि गाड़ी आध घंटा "लेट" है। कुली सामान लिए बैठा रहता है। थोड़ी देर में घोषणा होती है कि गाड़ी ४५ मिनट "लेट" है। टहल कर कुछ समय और काटते हैं कि घोषणा होती है कि गाड़ी ७० मिनिट "लेट" है। आती है १२० मिनिट "लेट"। तब कुली कहता है डेढ़ घंटे रुकने का डेढ़ रुपया दीजिए। संगम स्टेशनों पर गाड़ियों के छूट जाने से यात्रियों को जो कष्ट होता है, वह तो अवर्णनीय है।

किंतु वास्तव में गाड़ियाँ जितने विलम्ब से चलती दिखलायी जाती हैं, उससे कहीं अधिक विलम्ब से चलती हैं। कहा जाता है कि और गाड़ियों की तरह मदरास से दिल्ली आने वाली गाड़ियाँ भी बराबर अति विलम्ब से आती थीं। किंतु दिल्ली में मदरासी अफसरों की संख्या और प्रभाव सबसे अधिक है। उन्हें गाड़ियों के विलम्ब से आने के कारण बड़ा कष्ट होता था। और लोग तो उस कष्ट को सहन कर लेते थे, किंतु ये भारत सरकार के "बड़े अफसर" इस असुविधा को कैसे सहन करते? रेलमंत्री पर दबाव डाला जाने लगा। उन्होंने रेल के उच्च अधिकारियों को बुलाया। समय से गाड़ियाँ चलाने के लिए कर्मचारियों की यांत्रिक दक्षता बढ़ाने का प्रयास करना शायद संभव नहीं था, और शिकायत भी दूर करनी थी। एक बड़ा मौलिक उपाय निकाला गया। ऐसा मौलिक उपाय "बड़े अफसरों" के दिमाग ही से निकल सकता है। अंतिम संगम स्टेशन से अगले संगम स्टेशन पर पहुँचने के लिए दस-पंद्रह या बीस मिनिटों का फालतू समय रख दिया गया, जिससे कि यदि पिछले संगम स्टेशन और अगले संगम स्टेशन के बीच वह पंद्रह बीस मिनिट "लेट" हो गई हो तो भी अगले संगम स्टेशन पर निर्धारित समय पर ही पहुँचे। इस प्रकार कलकत्ते से दिल्ली, बंबई से दिल्ली, मदरास से दिल्ली के बीच में जो संगम स्टेशन पड़ते थे उनमें से प्रत्येक पर पहुँचने के लिए अतिरिक्त समय की गुंजाइश कर दी गयी। जो यात्रा २० घंटे में होती थी, वह २४ घंटे में होने लगी। कुछ दिनों इस लंबी गुंजाइश के कारण नयी समय-सारिणी में दिए हुए समय के अनुसार गाड़ियाँ चलने भी लगीं। किंतु मालूम होता है कि रेल के हमारे "बड़े अफसरों" के दिमाग में यह नहीं आया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जिस "अदक्षता" को दबाने के लिए वे चार अतिरिक्त घंटे देना काफी समझते थे, उसे दूर करने के लिए दस-बारह घंटों की छूट दी जाने चाहिए थी।

अभी हाल ही संसद में रेलों के विलम्ब से छूटने और पहुँचने के संबंध में बड़ी बहस हुई। रेल विभाग ने अपनी इस अदक्षता पर पर्दा डालने के लिए खराब कोयला, पटरियों की कमी, गाड़ियों की संख्या में वृद्धि, रेल की जंजीर खींचना आदि अनेक कारण बतलाये। किंतु हमारी समझ में इसका मुख्य कारण निम्न कर्मचारियों की ढिलाई और अदक्षता, तथा "बड़े अफसरों" की कमजोरी और अप्रभावी नियंत्रण है। स्वराज्य में हमारे "बड़े अफसर" मेज पर बैठ कर बाबूगीरी करने के आदी हो गये हैं, और उनकी मानसिकता भी "बाबुओं" की सी हो गयी है, अर्थात् कायदा कानून की कागजी खानापूरी पर बल देना। वे यह नहीं जानते कि अधीनस्थ कर्मचारियों से काम कैसे लिया जाय और उनकी दक्षता कैसे बढ़ायी जाय। अतएव जब तक रेल का अधिकारी वर्ग अधिक सचेष्ट, कर्मठ और दक्ष न होगा तब तक कोई स्थायी सुधार न हो सकेगा। यदि उस पर बहुत जोर डाला गया तो फिर वैसी ही कोई कागजी योजना बनाकर रख दी जायगी जैसी कि मदरास की गाड़ियों के देर से आने पर बना दी गयी थी और उसका परिणाम भी वैसा ही होगा। ऐसा काम तो जनता को दम-दिलासा देना भर है। उससे रेलों की दक्षता नहीं बढ़ सकती। रेलों की कार्यकुशलता तभी बढ़ सकती है जब उसके अधिकारी कर्मठ हों, प्रशासन करना जानते हों, उन्हें अनुग्रह और विग्रह करना आता हो और उसका उन्हें अधिकार हो। वे अनुशासन बनाये रख सकें। या फिर, जब मुसोलीनी के ढंग का कोई रेल-मंत्री हो तब संभव है कि रेलों में दक्षता आ जाय। किंतु न हम मुसोलीनी चाहते ही हैं, और न किसी रेल-मंत्री में हमें मुसोलीनी के कोई अच्छे और रचनात्मक तत्त्व ही दिखलायी पड़ते हैं।

साम्प्रदायिकता क्या है?—एक बार हमने किसी से कहानी के बीच में सुना था कि अमुक व्यक्ति रात भर रामायण सुनता रहा, पर सबेरा होने पर वह यह पूछने लगा कि राम राक्षस थे या रावण! अशोक मेहता समिति की भी कुछ ऐसी ही दशा है। राष्ट्रीय एकता सम्मेलन (नेशनल इंटेग्रेशन कान्फरेंस) ने श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति बनायी है जिसको यह सुझाव देने का काम सौंपा गया है कि साम्प्रदायिकता कैसे रोकी और नष्ट की जा सकती है। इस समिति का कहना है कि काम आरंभ करने के पहिले यह जानना आवश्यक है कि साम्प्रदायिकता क्या है। उसकी परिभाषा क्या है? उसका रूप क्या है? अतएव वह पहिले उसका स्वरूप-निरूपण करेगी। जब स्वरूप-निरूपण हो जायगा, शायद जब उसकी सर्वसम्मत कानूनी परिभाषा बन जायगी, तब वह उसे रोकने के उपाय खोजने का काम आरंभ करेगी। वास्तव में 'साम्प्रदायिकता' शब्द का व्यवहार नाना अर्थों में होता है। किसी समय—अतीत में—हम एक राज्य के एक विभाग के अध्यक्ष थे। एक दिन एक गाँव से कुछ 'जनता' हमसे मिलने आयी। उन्होंने जो पुर्जा भेजा उस पर लिखा था 'जनता,...गाँव, जिला....' उस शिष्टमंडल में आठ-दस ग्रामवासी थे। उनमें एक दो ही ऐसे व्यक्ति थे जो साधारण हिंदी अटक-अटक कर पढ़ सकते थे। वे हमारे विभाग के एक कर्मचारी को, जो उनके गाँव में नियुक्त था, वहाँसे हटा देने की प्रार्थना करने आये थे। साथ में एक लिखित आवेदनपत्र भी था। उसमें उस कर्मचारी के विरुद्ध बड़ी-बड़ी शिकायतें थीं। उसमें और शिकायतों के साथ यह भी लिखा था कि वह कर्मचारी बड़ा 'साम्प्रदायिक' है। हमने शिष्टमंडल के चौधरी से पूछा कि आप उसे साम्प्रदायिक क्यों कहते हैं? चौधरी ने सरल भाव से कहा—"सरकार! वह सबसों लड़ौ-झगड़ौ करत है!" अवश्य ही अशोक मेहता समिति के सदस्य गाँव के इन लोगों की तरह अनजान नहीं हैं। यदि वे भी इतने दिनों सार्वजनिक जीवन में रहकर यह नहीं जान पाये कि 'साम्प्रदायिकता' क्या है, तब तो उसका पता तभी लगेगा जब उसकी शोध के लिए एक उच्चस्तरीय आयोग नियुक्त किया जाय। यदि 'साम्प्रदायिकता' में उसके शब्दार्थ से अधिक और कोई अर्थ निहित नहीं करना, तो उसकी परिभाषा देने के लिए समिति का काम रोक देना निरर्थक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अरविन्द के विचार में वेदों के प्रतीक का रहस्य

श्री नारायणप्रसाद 'विन्द'

श्री अरविन्द-साहित्य अथाह सागर है। उसके ओर-छोर का पता पाना सबके लिए संभव नहीं। वेदों पर भी श्री अरविन्द का कितना बड़ा अधिकार था, यह उनके आस-पास रहनेवाले भी नहीं जानते। सुतरां, उनके जीवन के इस पहलू पर किंचित् विस्तार से लिखने की आवश्यकता है। वेद को श्री अरविन्द शाश्वत सत्य का वचन मानते थे। उसे उन्होंने अपनी आधारभूत दृढ़ चट्टान के रूप में अपनाया। वेद का सूक्ष्म या गंभीर अध्ययन करने का उनका विचार नहीं था। उन्होंने तो उसे किसी संशय के निवारणार्थ उठाया था पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह अपने निजी सहारे पर स्वतंत्र रूप से आध्यात्मिक उपलब्धियों की जिन राहों पर पता लगा रहे थे, वेद उन पर प्रकाश देनेवाला है। उन्होंने अपनी खोज जारी रखी और इस छोटे से द्वार से प्रवेश करके एक महान् वेद-वेत्ता के रूप में प्रकट हुए। संसार के प्रायः सभी आविष्कारों का जन्म छोटी-छोटी घटनाओं से ही हुआ है। उनमें मनुष्य के जिज्ञासाशील मन ने एक सँकरी गली से ही प्रवेश किया था।

वेदार्थ करने की अपनी प्रणाली को समझाने के लिये १९४६ में श्री अरविन्द ने अपनी एक कृति Hymns to the Mystic Fire (अग्नि स्तुति) की एक विस्तृत भूमिका लिखी थी। यह उनके वेद संबंधी विचारों का नवीनतम निदर्शन है। अन्य रचनाओं की भाँति उनके वेद संबंधी निबंध भी 'आर्य' में ही प्रकाशित हुए थे। उसी समय उन्होंने एक योजना बनायी थी कि ऋग्वेद के दसों मंडलों का ऐसा भाष्य करेंगे जो कि मूल के समीपतम हो। पर समयाभाव के कारण उस विशाल कार्य में फिर कभी हाथ नहीं लगा सके।

भृंग बन जो श्री अरविन्द के वेद-विचार-कुसुम का मकरंद लूटना चाहते हैं उन्हें श्री अरविन्द के 'The Secret of the Veda, Hymns to the Atris तथा Hymns to the Mystic Fire' लेखमालाओं का गहन अध्ययन करना चाहिए। इनमें से पहली और अंतिम का हिन्दी में 'वेदरहस्य' के नाम से अनुवाद हो चुका है। जो पुराने विचारों के लोग हैं उनके लिए किसी आधुनिक को शंकर और सायण के भाष्य पर कलम उठाते देखना असह्य है किन्तु "शंकर और सायण की गणना आधुनिकों में करना क्या भूल होगी ? उनके और हमारे काल में कुछ शताब्दियों का ही तो अंतर है जब कि वेदों का प्रणयन हुए हजारों वर्ष बीत चुके हैं। भाष्यकार मूल लेखक का स्थान नहीं ले सकता। सायण का भाष्य हमें यह समझने में सहायता देता है कि कुछ सदियों के पूर्व के विद्वान् वेद का क्या अर्थ लगाते थे, उसे किस दृष्टि से देखते थे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि प्राक्-ऐतिहासिक काल से ही वेदों का अर्थ अंधकार से घिरने लगा था। शंकर का उपनिषद्-भाष्य हमें यह बताता है कि उनके जैसा समर्थ और प्रतिभावान् पुरुष वेदांत के भावों को किस रूप में प्रतिपादित करता है। एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि अपने सिद्धांतों के पोषण और समर्थन के लिए शंकर प्रायः वेदों की युक्तियाँ पेश करते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि शंकर ने वेदांतिक सत्य का बहुत बड़ा अंश आयत्त किया था किंतु वह बहुत कुछ नहीं भी अधिगत कर सके थे...।" मैंने यह उद्धरण श्री अरविन्द के एक अप्रकाशित पत्र से लिया है।

अपनी वेद संबंधी धारणा को व्यक्त करने के हेतु श्री अरविन्द जिन वाक्यों का उपयोग करते हैं उनमें से एक यह है—

"वेद मानवता का उच्च अभीप्सामय संगीत है; उसकी ऋचाएँ मानव आत्मा द्वारा अपने अमर आरोहण में गाये गये गान समृद्ध महाकाव्य के प्रसंग हैं।"

वेदों में क्या है इसका सांगोपांग विवरण देना यहाँ आवश्यक नहीं।

यह सौभाग्य की बात है कि वेदामृत पान करने के लिए श्री अरविन्द सायण का भाष्य पढ़ने के बदले सीधे ऋचाओं की ओर झुके और तब उन्हें ज्ञात हुआ कि क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी हिन्दुओं के हृदय में वेदों के लिए इतनी श्रद्धा विद्यमान है।

यहाँ मैं किंचित् यह दिखाने का प्रयास करूँगा कि श्री अरविन्द के प्रत्यक्षदर्शी चक्षु ने युगों से चले आते अंधकार को चीरकर किस तरह सत्य को सीधे देखा और अपनी दृष्टि को कहाँ आबद्ध किया।[१] 'वेद-रहस्य' लिखने का उनका अभिप्राय क्या था, सुनिये—

"वेद-रहस्य नाम से इन अध्यायों के लिखने का मेरा उद्देश्य यह है कि मैं इस पुरातन प्रश्न के लिए एक नयी दृष्टि का निर्देश करूँ, दो एक ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर भी प्रकाश डालूँ जो अभी तक हल नहीं हो सके।"

ऋषि सूक्तों के स्वयं निर्माता नहीं थे, वे तो द्रष्टा थे।[२] वेद की भाषा स्वयं 'श्रुति' है। एक छन्द है। उसका बुद्धि द्वारा निर्माण नहीं हुआ। वह एक दिव्यवाणी है जो कंपन करती हुई असीम में से निकलकर उस मनुष्य के कानों में पहुँचती है जो उस 'तत्' का साक्षात्कार कर चुका है।

देश-विदेश के विद्वानों की दृष्टि में वेद

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार वेद यदि गड़रियों का गीत, शिशुमन का संगीत हो तो वेद को शाश्वत वाणी मानकर हिन्दू-जाति क्यों उसे पूजती आ रही है, उसके प्रमाण को अकाट्य मानती आ रही है? अपने-अपने मत के समर्थन में भारत के श्रेष्ठ दार्शनिक गण क्यों पद-पद पर उसकी दुहाई देते हैं? और वेद यदि वह है जो सायणाचार्य कहते हैं तो आज के विकसित मानव के लिये उससे कुछ पाने को नहीं है। परंतु वेद यदि सचमुच वेद है, सत्य की वाङ्मयी मूर्ति है तो हमारे लिए यह अत्यंत महत्त्व की बात हो जाती है कि हम जानें कि उसका सच्चा स्वरूप क्या है।

बुद्धि के औजार से अज्ञान के प्रगाढ़ अंधकार को दूर नहीं किया जा सकता। गुह्य ज्ञान के बिना वेदों की तह में पहुँचना असंभव है। "वेद के वचन उनके सच्चे अर्थों में केवल उसीके द्वारा जाने जा सकते हैं जो कि स्वयं ऋषि या रहस्यवेत्ता हो, अन्यों के प्रति मंत्र अपने गुह्य ज्ञान को नहीं खोलते।" विदेशी विद्वानों ने जिस प्रकार वेद की प्राकृतिक व्याख्या की है वैसे हमारे वेदविद् पंडितों में से किसीने याज्ञिक, किसीने ऐतिहासिक, किसीने ज्योतिषिक और किसीने आध्यात्मिक व्याख्या की है। इनमें से प्रत्येक की कुछ कुछ युक्ति वेद में मिलती है परंतु इनमें से कोई वेद के गुह्यतम रहस्य का संधान नहीं देता।

श्री अरविन्द ने एक-एक सूक्त को ले-लेकर दिखाया है कि वेद की तत्त्व-विषयक चाभी का संधान एक बार मिल जाने पर ऊपर से दीखनेवाली असंगतियाँ, अस्पष्टताएँ तथा क्लिष्ट क्रमहीन अस्त-व्यस्तताएँ, किस तरह लुप्त हो जाती हैं। वेद असभ्य, जंगली जाति की आदिम कृति प्रतीत होने के बदले कैसे उसमें एक परम और सचेतन कला निश्वास लेती नजर आती है और तब किस प्रकार विभिन्न सूक्त, विभिन्न मंडल एक अखंड सत्य का विचित्र छन्द प्रकाशित करते हैं। वैदिक भाषा के कठिन आवरण को भेदकर श्री अरविन्द ने यही 'वेद रहस्य' में विशद रूप से प्रतिपादित किया है।

एक स्थल पर वह लिखते हैं—"पहले पहल वेद की ओर मेरे विचार गंभीरतापूर्वक तब आकृष्ट हुए जब मैं दक्षिण भारत में रह रहा था। उसकी महत्ता का पता मुझे तब लगा जब मैंने देखा कि वेद के मंत्र मेरी अपनी उन आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकट करते हैं जिनके लिये मुझे कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं मिलता था।

मेरे मन में प्रतीक रूप नामों की शृंखलाएँ उठनी शुरू हुईं। वे इला, सरस्वती और सरमा के प्रतीक थे। ये स्वतः प्रकाश (Revelation), अन्तःप्रेरणा (Inspiration) और अन्तर्ज्ञान (Intuition) की द्योतक थीं। इसके बाद 'ऋत', 'श्रवः', 'केतु', 'ऋतु' जैसे कुंजी रूप शब्दों के अर्थ मिले।"

जब इतना हो चुका तो जो बाकी था वह भी अनिवार्य

---

१ यह ठीक है कि बहुतेरे ऐसे सूक्त हैं जिनका अर्थ अब विवादास्पद नहीं रहा, परंतु बहुतेरे ऐसे भी हैं जिनका प्रस्तुत अर्थ नितांत भ्रममूलक है। अतएव यथार्थ भाव समझने में अपने को असमर्थ पाकर अनेक आधुनिक विद्वानों ने कतिपय मंत्रों को निरर्थक कह डाला है।

विश्व-धर्म-दर्शन से

२ स्वयं वेद इनके विषय में कहता है—'कवयः सत्य श्रुतः' अर्थात् वे द्रष्टा थे जो दिव्य सत्य को श्रवण करने वाले थे।

Hymns to the Mystic Fire की भूमिका से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से स्वभावतः होने लगा और तब उन्हें अनुभूत हुआ कि वेदों में मानव जाति का महान् आध्यात्मिक धन निहित है।

प्रतीकों के अर्थ

अंग्रेजी भाषा में जिसे 'रिसर्च' कहते हैं, श्री अरविन्द ने वेदों की सचमुच उसी प्रकार की गवेषणा की है। वेद की जो सब ऋचाएँ भस्म-राशि में उपेक्षा की वस्तु हो रही थीं, उन्होंने नूतन मर्यादा पायी। वेदों की भाषा सांकेतिक है। प्रतीकों को ऋषिगण बड़ी सावधानी से चुनते थे। वे प्रतीक ऐसे होते थे जिससे उनके विचार-कुसुम सुरभित रहें और समय के अनुसार उनका बाह्य अर्थ भी अनुकूल हो। आधुनिक समय में भी 'कोड' (code) से बातचीत करने की प्रथा है।

हम कह आये हैं वेदों को जानने की चाभी है प्रतीक। प्रतीकों को समझने का सूत्र हाथ लगते ही वेदों का रहस्य खुलने लगता है और तब ज्ञात होता है कि सारा ऋग्वेद आत्मा के संग्राम और उसकी विजय की सूक्ति है।

बहुतेरे प्रश्न करेंगे कि वेद यदि आध्यात्मिक तत्त्व का शास्त्र है तो वैदिक ऋषिगण बात बात में 'गौ', 'अश्व', 'यज्ञ' आदि का क्यों नाम लेते हैं? 'इन्द्र', 'सूर्य', 'अग्नि' की क्यों उपासना करते हैं?

'गो' शब्द गाय के अतिरिक्त 'प्रकाश' का या 'प्रकाश की किरणों' का भी वाचक है। यह कई ऋषियों के नामों में भी प्रयुक्त हुआ है जैसे गोतम अर्थात् प्रकाशिततम, 'गविष्ठिर' अर्थात् 'प्रकाश में स्थिर'। सुतरां वेदोक्त गौवें सूर्य के गो-यूथ हैं।

इसी प्रकार वैदिक अश्व शक्ति का, आध्यात्मिक सामर्थ्य, तपस्या के बल का प्रतीक है। श्री अरविन्द कहते हैं जब ऋषि 'अश्व रूप वाले और गौ जिसके आगे हैं' ऐसा दान[1] अग्नि से माँगते हैं तो वह वस्तुतः सौ-पचास घोड़ों के समुदाय जिनके आगे कुछ गौवें चल रही हैं, दान रूप में नहीं माँगते बल्कि एक ऐसी शक्ति माँगते हैं जो प्रकाशयुक्त हो।

कुंजी रूप शब्दों में से एक है ऋतम्। व्याख्याकारों ने अपनी सुविधा के अनुसार इसके कई प्रकार के अर्थ किये हैं—'सत्य', 'यज्ञ', 'जल', 'गया हुआ' और 'अन्न' तक के अर्थ किये गये हैं। यदि ऐसे करें तो वेद व्याख्या में कोई निश्चितता नहीं आ सकती। यदि 'ऋतम्' का सत्य करें, 'ऋतु' का अर्थ संकल्प करें (क्योंकि अग्नि को द्रष्टा संकल्प 'कविक्रतुः' कहा गया है) 'श्रवः' जो वेद में बराबर आता है 'सुनी हुई बात' करके देखें तो अद्भुत परिणाम निकलता है। ऋषि गण अपने आपको 'सत्य श्रुतः' सत्य के सुनने-वाले कहा करते थे। इसीलिए श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान को 'श्रुति' कहते हैं।

'वेद में दो समुद्रों का वर्णन आता है, ऊपरले जल और निचले जल का। इनमें से एक है अवचेतना जो कि अंधकारमय है, और दूसरा है अतिचेतन जो कि प्रकाश-मय है।' 'इन्द्र वृत्रासुर का वध करके वर्षा को मुक्त करते हैं। वह वर्षा दिव्य वर्षा है जो द्युलोक से आती है और वह सात नदियों को प्रवहमान कर देती है। इस प्रकार जलों की मुक्ति एक प्रतीकात्मक कथा का रूप धारण कर लेती है।' 'सूर्य परम सत्य और ज्ञान के अधिदेवता हैं। उनकी किरणें वह प्रकाश हैं जो कि उस परम सत्य और ज्ञान से निलकता है।' 'वृत्र' एक असुर है जो कि प्रकाश को ढकता है और जलों को रोके रखता है। इस प्रकार वेद में ऐसे संकेत विद्यमान हैं जो हमें ऊपरी अर्थ से एक आंतरिक और गुह्य अर्थ की तरफ ले जाते हैं।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है इन प्रतीकों की आखिर आवश्यकता ही क्यों पड़ी? ऋषियों ने जो ज्ञान प्राप्त किया था उसको उन्होंने ऐसा रूप क्यों न दिया जो सर्व-सुलभ होता? उस युग में मन की सांकेतिक वृत्ति बहुत प्रबल थी। उन दिनों वस्तुओं को देखने का ढंग दूसरा था। ऋषिगण बाह्य रूपों को ही नहीं देखते थे। सहज-स्फुरित ज्ञान से उन्होंने जान लिया कि उच्चतर को निम्नतर, अंतर को बाह्य छिपाये है, जीवन के पुर्जे वास्तव में ऊपर और पीछे चलाये जाते हैं। प्रकृति की प्रमुख कार्रवाइयों के पीछे उन्होंने कोई बड़ी भारी शक्ति को देखा और चाहे जैसे भी हो उन्होंने उसके पास पहुँचने की कोशिश की। इन शक्तियों के अधिष्ठाता देवता माने जाने लगे। मनुष्य और प्रकृति के उन नियंताओं तक पहुँचने के लिए उस युग के लोगों ने अपने-अपने तरीके निकाले, निजी आंतरिक पद्धतियाँ विकसित कीं। अपनी विधि वे केवल दीक्षित व्यक्तियों को ही बताते थे। रहस्यवेत्ताओं की यही कहानी सब जगह रही है—चाहे एशिया, चाहे मिस्र, चाहे यूनान या भारत—कोई अपवाद नहीं रहा।

---

१ गो. अग्रां अश्वपेशसं रातिम् (८-२-१३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों के सूक्तों में यज्ञ की प्रमुखता है। अब देखिए यज्ञ को श्री अरविन्द किस अर्थ में लेते हैं। हमारे ऋषिगण समाज के नेता माने जाते थे। वे इन देवताओं का साक्षात्-कार करने, उनसे वार्तालाप करने और उन्हें अपने भीतर मूर्तिमान करने के लिए जी जान से चेष्टा करते थे। उनकी सहायता से वे उस सर्वोच्च सत्ता तक पहुँचने के लिए जीवन होम कर देते थे। एतदर्थ उन्हें इन देव-देवियों पर निर्भर करना पड़ता था, उनके प्रकट होने और सदैव प्रकट रहने के निमित्त उन्हें उनका आह्वान करना पड़ता था, उनसे विनती करनी पड़ती थी, अपना सर्वस्व अर्पित करना पड़ता था—संक्षेप में इसीका नाम है यज्ञ।

ऋग्वेद को, उन ऋषियों के अन्तः प्रेरित ज्ञान को उप-निषदों के रचयिताओं ने कितने सुन्दर ढंग से समझा था इसे सोदाहरण श्री अरविन्द ने समझाया है। स्थल-संकोच के कारण उसका उद्धरण देना संभव नहीं।

वेद का गुह्य आशय

वेद का गुह्य ज्ञान ही वह चीज है जो कि पीछे जाकर वेदांत के अंदर विकसित हुआ। एक सत्य है जो वाह्य सत्ता के सत्य से गम्भीरतर और उच्चतर है, एक प्रकाश है जो कि मानवीय समझ के प्रकाश से वृहत्तर और उच्चतर है, एक अमरत्व है जिसकी तरफ आत्मा को उठना है, मर्त्य अवस्था से अमरत्व में पहुँचना है। वैदिक रहस्यवादियों की यह प्रथम और केन्द्रीय शिक्षा है।

एक उच्चतर सत्य का लोक है, दूसरा जिसमें कि हम रहते हैं। हमारा लोक बहुत से अनृत और भ्रांति से मिश्रित है किंतु सत्य का लोक 'सत्यं ऋतं वृहत्' है। वहाँ सब कुछ सत्य चेतन है 'ऋत चित्' है। बीच में अनेक लोग हैं। हमें उस वृहत् द्यौ को ले जानेवाले मार्ग—'ऋतस्य पंथा' की खोज करनी होगी। यह है उनका दूसरा सिद्धांत।

तीसरा सिद्धांत यह है कि हमारा जीवन सत्य और प्रकाश की तथा अंधकार की शक्तियों के बीच चलनेवाला युद्ध है। 'ऋतस्य धारा' को रोकनेवाली शक्तियों को विनष्ट करने के हेतु हमें देवों की सहायता प्राप्त करनी होगी। आंतरिक यज्ञ के द्वारा उनका आह्वान करना होगा। पूर्णता की खोज करनेवालों के हाथ में वेदमंत्र एक शस्त्र का काम देता है। बाह्य यज्ञ के तत्त्वों को वेद में आंतरिक यज्ञ और आत्म-हवि (आत्म-समर्पण) के प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। हम जो कुछ हैं, जो कुछ हमारे पास है उसे देने से दिव्य सत्य हमारे भीतर अवतरित होता है। हमारा यज्ञ एक युद्ध है, एक यात्रा है। और अंत में है एक वस्तुसत्ता का रहस्य, 'एकं सत्' या 'तत् एकम्' जो कि उपनिषद् का महावाक्य है, हमें वहीं पहुँचना है।

इतिहास के तत्त्ववेत्ताओं के बीच यह सदैव एक विवादास्पद प्रश्न रहा है कि घटनाओं और युगों को ढालने और रूप देनेवाला मनुष्य होता है या यह कि मानव तो करण या उपादान-मात्र है जिसके द्वारा ऐतिहासिक शक्तियाँ उद्दाम वेग से क्रिया में संलग्न होती हैं। दोनों विचारों में कुछ न कुछ सत्य निहित है। ऐसे उदाहरण विरल नहीं हैं जिनमें हम देखते हैं कि शक्तिमान व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से इतिहास की गति को अपनी इच्छा-नुसार मोड़ने में सफल हुए हैं। एक ऐसे ही असाधारण व्यक्ति थे सायणाचार्य।

वेदों को समझने के निमित्त श्री अरविन्द ने जिन सूत्रों का आविष्कार किया है वे न अनुमानिक हैं और न किसी दर्शन-पद्धति को चुनकर उसीका समर्थन करने के उद्देश्य से किये गये अध्ययन पर अवलंबित हैं। सायण के बाद वैदिक स्रोत का प्रवाह जिस प्रकार कर्मकांडों और पुरोहित-गिरी की वीरान भूमि की ओर घूम गया, हो सकता है वह फिर नई दिशा में बह निकले और आदि गंगा की तरह सागरोन्मुख हो जाय। समय की माँग भी यही मालूम पड़ती है। श्रीयुत कपाली शास्त्री ने इस ओर कलम उठायी थी पर उनकी मन की साध मन में ही रह गयी और वह चल बसे। यह कार्य समय की प्रतीक्षा में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक सांस्कृतिक पच्चाघात

प्रोफेसर कुवेरनाथ राय, एम० ए०

"मेरा विश्वास है कि पश्चिमी दृष्टिकोण---या आधुनिक दृष्टिकोण--बिना किसी विरोध के प्राचीन सभ्यताओं पर विजय प्राप्त करने जा रहा है। सम्भवतः भारत में परम्परागत कट्टर हिन्दुत्व अन्तिम मोर्चा ले। पर इसे भी कोई सफलता मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास नहीं।"

--आर्नाल्ड टॉयनबी ('द एशिया मैगजीन' ---२९, अप्रैल, '६२)

इधर हाल में ही श्री माधव पाणिक्कर ने कहा है कि विगत शताब्दी में भारतीय संस्कृति और पश्चिमी जीवन-दर्शन के बीच जो टक्कर हुई थी उसमें भारतीय संस्कृति को ही विजय लाभ मिला है और इस प्रकार उसने अपनी सप्राणता सिद्ध कर दी है। इस उत्साहजनक वाक्य को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि इस निष्कर्ष पर अभी पहुँच जाना जरा जल्दबाजी सा है। अभी वह टक्कर समाप्त नहीं हुई है। अभी तो पहला धक्का था। दूसरा धक्का अधिक खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इस शताब्दी के आरम्भ और विगत शताब्दी के अन्तिम चरण में बंगाल में एक आइरिश 'निहिलिस्ट' (नास्तिवादी) शिक्षक--- डीरोज महाशय के नेतृत्व में 'अभिनव बंगाल' (यंग बेंगाल) नामक एक सांस्कृतिक आन्दोलन चला था। विक्टोरियन युग के अन्दर उठनेवाले परम्पराविरोधी और संशय-शील स्वरों को इस व्यक्ति ने बंगाल के कालेज-शिक्षा प्राप्त युवकों तक पहुँचाया। इसका मूल मंत्र था परम्परा-ध्वंस। यह सर्वतन्त्र-मुक्ति का नारा नवयुवकों को अच्छा लगा। बंगाली नवयुवक खुले आम हिन्दू-भोजन-वस्त्र, हिन्दू-रीति-रिवाज का त्याग करके यूरोपियन संस्कारों में दीक्षित होने लगे। कुछ तो सचमुच बुद्धिवादी प्रेरणा से ऐसा कर रहे थे पर, जैसा कि हर जगह होता है, अधिक संख्या उनकी ही थी जिनके लिए बुद्धिवाद फैशन मात्र था। फ्रान्स की १८वीं शती में जब बुद्धि-प्रधान युग (द एज ऑव इनलाइटेनमेण्ट) का उदय हुआ और वाल्टेयर, डिडरॉट जैसे दार्शनिकों ने बुद्धि-मुक्ति का आदर्श उपस्थित किया, तो पेरिस के दर्जी और धोबी अपना परिचय 'प्रबुद्ध' (इनलाइटेण्ड) कहकर देने लगे। इस डिरोजियन आन्दोलन में भी शीतला-वाहन-सज्जित पाँचवें सवारों की संख्या ही ज्यादा थी। इन लोगों ने हर प्रकार की विकृति को अपनाया जो आन्दोलन के मूल उद्देश्यों के विपरीत थी। योगी कम ही होते हैं पर जोगड़ों की भरमार सदैव रहती है।

उक्त काल-संदर्भ में कई हिन्दू युवक हिन्दुत्व को जीर्ण-शीर्ण समझकर ईसाई धर्म में दीक्षित हो गये। उस समय उनकी समझ में यह बात नहीं आयी कि प्रत्येक धर्म उतना ही परम्पराग्रस्त है जितना 'बेचारा' हिन्दू धर्म। ऐसे ही लोगों में प्रसिद्ध कवि मधुसूदन दत्त (माइकेल) भी थे। बाद में इस नयी सांस्कृतिक अराजकता पर क्षुब्ध होकर उन्होंने इस अंध मुक्ति का विरोध किया, "एई की ब' ले सभ्यता" नामक पुस्तक लिखकर। इस पुस्तक में एक तथाकथित बुद्धिवादी युवक का चित्र है, जो मदपान-उन्मत्त होकर अपनी ही बहन का हाथ, आतुर होकर, पकड़ लेता है। सौभाग्य या दुर्भाग्य से डिरोज साहब की युवा-वस्था में ही मृत्यु हो गयी, और यह आन्दोलन नेता के मरने पर विकार-ग्रस्त होता गया। अन्त में कुछ और नव-युवकों का जीवन नष्ट करके यह आन्दोलन काल-कवलित हो गया।

आज जो कुछ ब्राह्मण-विरोधी, या हिन्दुत्व के सम्बन्ध में जो दकियानूसी आदि की, आम धारणाएँ फैली हैं, उनमें आधे से अधिक मिथ्या प्रचार के फल हैं। (हिन्दी के बारे में भी यही शस्त्र आज कार्य में लाया जा रहा है।) उक्त काल में एक ओर तो डिरोजियन आन्दोलन जैसी चेष्टाएँ 'आन्तरिक ध्वंस' कर रही थीं और दूसरी ओर ईसाई मिशनरी 'बाह्य प्रहार'। हिटलर कहता था कि झूठ को तीन बार दुहरा दो, तो वह सच बन जाता है। और जगह चाहे जो हो, पर हिन्दू और हिन्दी के सम्बन्ध में यह नाज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शस्त्र बड़ा ही कारगर सिद्ध हुआ है। सन् सत्तावन के बाद इस शस्त्र का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और आज तक जारी है। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में ईसाई-धर्म व्यावहारिक रूप में राज धर्म की श्रेणी में था। हिन्दुओं में हीनता की भावना बहुत जल्दी भर गयी। पर इस आत्महीनता को नष्ट करने के लिए नियति ने हिन्दू महाजागरण को राम-मोहन राय के नेतृत्व में भेजा। राय महाशय ने पहले तो मिशनरी प्रचारकों का समर्थन ही किया, पर बाद में उन्होंने खतरे को समझा और अपनी आत्मा को पहचाना, एवं सारी शक्ति से वैदिक संस्कारों को जगाने लगे। 'ब्रह्म-समाज' हिन्दू धर्म का एक कूटनीतिक रूप बन गया। पथभ्रान्त बंगाली युवक जिन सुविधाओं एवं सुखों के लिए ईसाई बनते थे, उन्हें ब्रह्म समाज ही प्रदान करने लगा। ऐंग्लो-इण्डियन-करण की बाढ़ थम गयी। इसके बाद तो ऋषि बंकिम, पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, पूज्य परमहंस देव, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ जैसे तेजस्वी नक्षत्रों का उदय हुआ। खोया आत्माभिमान लौटा। मैक्समूलर, पाल ड्युत्सेन जैसे विदेशियों ने भी हमारी आत्म-चेतना लौटाने में सहायता प्रदान की। प्रथम षड्यन्त्र विफल रहा।

उस काल में कम या बेश भारत के हरेक भाग में इसी प्रकार की घटना-प्रक्रिया चली। सन् सत्तावन की याद ताजी होने के कारण हिन्दू-मुसलमानों में भी कोई वैसा विकट संघर्ष नहीं था, यद्यपि विष के बीज सर सैयद अहमद खाँ बो चुके थे। (देखिए, 'भारत का शिक्षा-दर्शन': इण्डियन फिलॉसफी ऑव एजूकेशन': प्रो० हुमायूँ कबीर) राष्ट्रीय जागरण और आत्मगौरव के संस्कार दोनों साथ-साथ आये। अतः पश्चिम का पहला धक्का मुँहकी खाकर लौट गया। पर आज? आज बात और है। आज "आन्तरिक ध्वंस" (इन्टरर्नल साबोताज) अत्यन्त शक्तिशाली हो उठा है और बाह्य प्रहार 'क्रिश्चियन धर्म' और 'मसीहा की शरण' के नारों को छोड़कर 'नयी मानवता' 'आधुनिक दृष्टि' 'प्रगतिशीलता' आदि विविध बारीक और छद्मनामों को धारण कर सामने आ चुका है। इसका खुलकर विरोध भी नहीं किया जा सकता, अन्यथा 'फैनेटिक' 'साम्प्रदायिक' आदि गालियों से अपने ही बन्धु अलंकृत कर देंगे। शासन उनके हाथ में है जो विदेशी नहीं है, अतः उनका राष्ट्रीयता के नाम पर विरोध नहीं हो सकता। पर उनको "उर पर शिरस्त्राण" ही कहना उपयुक्त होगा। वे ही भीतर-बाहर भारतीय साहित्य और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। सबसे बढ़कर ट्रेजेडी यह है कि आज दयानन्द-विवेकानन्द, भारतेन्दु-रवीन्द्र और तिलक-गांधी की तरह प्रकाश-स्तम्भ नहीं रहे। पचास और तीस के बीच की पीढ़ी, साहित्य, इतिहास, समाज-सेवा, किसी भी क्षेत्र में 'शून्य डिम्ब' के अतिरिक्त कुछ नहीं।

यहाँ 'पश्चिम' शब्द स्थान या राष्ट्र का वाचक नहीं है। 'पश्चिम' से हमारा तात्पर्य उस दृष्टिकोण-विशेष से है जिसको माननेवाले भारतीय आधुनिक-दृष्टि के नाम पर उत्तरदायित्वहीन जीवन दर्शन की वकालत करते हैं। यह एक प्रकार से बौद्धिकता का पाखण्ड-मात्र है। 'हम पश्चिम की देन विज्ञान और औद्योगिक कलाओं को स्वीकार करके ही आज जीवित रह सकते हैं। बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार हमें अपने को भी संतुलित करना होगा। 'बाबा-वाक्य प्रमाणं' की वकालत आज सचमुच कौड़ी की तीन जैसी बात लगती है।' अतः हमारा विरोध पश्चिम के द्वारा प्रदत्त ज्ञान-विज्ञान से नहीं। हमारा विरोध उस जीवन दर्शन से है जहाँ "कल्चर" का अर्थ 'टाई' तक ही सीमित है। उस दृष्टि के हम विरोधी हैं जो बौद्धिक अराजकता की जननी है एवं भारतीय जीवन को आदि से अन्त तक पाखण्डपूर्ण बना रही है।

जो यूरोप के आधुनिक साहित्य से परिचित हैं, उन्हें ज्ञात है कि आधुनिकता के विविध दर्शन, यथा फ्यूचरिज्म, सुररियलिज्म, नास्तिक अस्तित्ववाद, समाजवादी यथार्थवाद आदि या तो एक सड़ी हुई मनोवृत्ति और उत्तरदायित्वहीनता को शब्द-जाल द्वारा ढकने के प्रयास-मात्र हैं अथवा जीवन-हीन प्रोपेगैण्डा। यूरोप में महायुद्ध के बाद इस प्रकार की विचारधाराओं के प्रति एक प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुई है और वहाँपर ये सब विचारधाराएँ शिथिल पड़ती जा रही हैं। पर इनके द्वारा उत्पन्न संस्कारों का कुफल वहाँका समाज काफी दिन तक भोगेगा। विक्टोरियन युग में यूरोप के पास काफी धन था और जीवन एक मौज-शौक की वस्तु बन गया। यही कारण है कि उमर खय्याम की रुबाइयों का वहाँ इतना आदर हुआ। फ्रॉयड आदि के आगमन के कारण अंध संस्कारों से मुक्ति प्राप्त कर वहाँकी जनता मौज-शौक के पीछे होड़ लगाकर दौड़ी। पर दो-दो महायुद्धों ने वहाँके बुद्धिवादी वर्ग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झकझोर सा दिया है। वहाँपर जीवन के इस खोखलेपन को उद्घाटित कर एक 'नयी ईसाइयत' की स्थापना का प्रयत्न साहित्यकार कर रहे हैं। पर जनता को अपना अस्तिष्क बदलने में काफी समय लगेगा।

आधुनिक यूरोप हमारे औद्योगिक-विकास का आदर्श भले ही बने, पर वह हमारी कला-संस्कृति का भी आदर्श नहीं बन सकता। यह तथ्य ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है। हमें क्लासिकल यूरोप की कला-संस्कृति, होमर, दान्ते, गेटे, शेक्सपियर, इब्सन और शॉ भी प्रेरणा दे सकते हैं और प्रेरणा ग्रहण करना मङ्गलमय भी है। यदि कोई व्यक्तिगत रूप से वाल्टेयर या आस्कर वाइल्ड जैसा जीवन बिताए, तो हम कौन होते हैं एतराज करनेवाले? पर इसे वह जन-संस्कृति का आदर्श बनाने की चेष्टा करे, इसे समाज-दर्शन का रूप देने की चेष्टा करे, यूरोप के महिमामय प्रतिदानों का उपयोग अपने यहाँके आदर्शों की आधार-हीन आलोचना एवं अपने पाखण्ड को ढकने के लिए करे, तो यह अवश्य ही आपत्तिजनक है। यूरोपीय संस्कृति से रचनात्मक प्रेरणा न लेकर उसे विध्वंसक प्रेरणा लेने के लिए उत्साहित करना ही 'आधुनिकता' का, कम से कम भारत के 'भद्रलोक' में, उद्देश्य हो गया है। इसीसे आज आधुनिकता वध्य है। उसपर प्रहार होना आवश्यक है।

असुरों का विनाश क्यों हुआ? कौरवों का विनाश क्यों हुआ? मुगलों का विनाश क्यों हुआ? इसलिए काल-क्रम से उनके जीवन में मौज-शौक ही प्रधान हो गया। उनमें रचनात्मक तत्त्व समाप्त हो गये। न केवल दैनिक जीवन में बल्कि कला और चिन्तन के आदर्शों में भी वे भोगवादी हो उठे। भगवान् रामचन्द्र में रावण से कौन सी अधिक विशेषता थी? तेजस्वी, विद्वान्, महापण्डित, परम साधक महात्मा रावण किस तत्त्व के अभाव में पराजित हुआ? वह तत्त्व था रचनात्मक दृष्टि और आदर्श-पालन। राम में यह तत्त्व था, रावण में नहीं। एक अकेला, विपत्ति का मारा, वन वन ठोकरें खाने वाला साधन-हीन व्यक्ति आदर्श से विचलित न होकर एक बड़ी सी सेना इकट्ठी कर लेता है। किष्किन्धा और लंका जैसे शक्तिशाली राज्यों को जीत लेता है। फिर भी उन्हें अपने साम्राज्य का अंग न बनाकर शत्रुओं के सगे-सम्बन्धियों को दे देता है। रावण शुद्ध ब्राह्मण वंश-जात था और व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास को पाकर भी रचनात्मक दृष्टि को न पा सका। अतः उसकी पराजय हुई।

(२)

प्रसिद्ध आस्तिक अस्तित्ववादी दार्शनिक कीर्केगार्द्र ने जीवन-विकास का आदर्श रखा है तीन स्तरों में। प्रथम स्तर है: सौन्दर्य बोधात्मक। इस सौन्दर्य-बोध के उपभोग की अवस्था के बाद आचारात्मक बोध की अवस्था आती है; और जीवन का चरम विकास होता है तीसरी अवस्था आध्यात्म-बोध में। डेविड मॅककूशन ने इस विचार की टीका करते हुए बताया है कि समाज में उपर्युक्त स्तर उलटे क्रम आते हैं: श्रद्धा-युग, तर्क-युग और आनन्द-युग। यहाँ 'आनन्द' का प्रयोग 'मौज' (प्लेजर) के अर्थ में हुआ है। 'पेगन'-संस्कृति में प्रारम्भ श्रद्धा से हुआ। प्लेटो के आते आते वह तर्क[1] प्रधान बनी। फिर रोमन प्रजातंत्र में भी तर्क-प्रधान रही। परन्तु सम्राट् नीरो तक आते-आते वह विलास-प्रधान हो गयी। तत्पश्चात् उसका अन्त हुआ। उसके अन्त के बाद दूसरा चक्र प्रारम्भ हुआ। मध्ययुग श्रद्धा-प्रधान रहा। १६वीं शती से १९वीं शती तक तर्क की प्रधानता चली। २०वीं शती में आनन्दवाद और निरुद्देश्य सौन्दर्य-साधना चल रही है।

यह आधुनिक सौन्दर्य-साधना मध्ययुग या क्लासिकल युग के सौन्दर्यबोध से तात्विक दृष्टि से भिन्न है। इस सम्बन्ध में आज 'व्यक्ति' है, 'मनुष्य' नहीं। किसी भी धार्मिक या सामाजिक पहलू से इस बोध को संयुक्त करना 'व्यक्ति' को बहुत अखरता है। यह एक प्रकार का घोर स्वार्थ और दम्भ मात्र है जिसमें बे-लगाम मन के अश्व तीनों लोकों में भटक-भटककर मरते हैं। अरविन्द की भाषा में इस बोध का स्तर 'प्राण स्तर' (वाइटल लेयर ऑव माइण्ड) है। यह स्तर अति मानस से अत्यन्त नीचे है। यहाँपर आत्मिक सौन्दर्य-बोध नहीं हो सकता। फलतः यहाँ शारीरिक सौन्दर्य-बोध भी समन्वित और व्यवस्थित नहीं हो पाता।

इस नवीन जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा यूरोप में बहुत पहले ही हो गयी। आज वहाँ यह सौ वर्ष से भी लम्बी परम्परा है, जो जोला, फ्लाबर आदि फ्रांसीसी उपन्यासकारों

---

१ जो सेमेटिक धर्मों (यहूदी, ईसाई और मुस्लिम-पथ) को न माने वह 'पेगन' है। साधारणः यह शब्द ग्रीक-रोमन बहुदेववादी धर्म के लिए प्रयुक्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा प्रारम्भ होती है। हमारे देश में सन् २० के आसपास ही से प्रारम्भ हुई है।

इस नवीन जीवन-दर्शन का आधार है : 'इन्द्रियानुभूति के लिए इन्द्रियानुभूति'। चिन्तन, कला, आध्यात्म सबको इस ऐन्द्रिक स्तर पर लाकर देखने का प्रयास तथा ऐन्द्रिक स्तर को ही प्रथम और अन्तिम मानना इसका उद्देश्य है। इधर एक आस्ट्रियन (जर्मन) विद्वान् ने, जिन्होंने गैरिक-परिधान लेकर अपना नाम 'स्वामी अगेहानन्द भारती' रख लिया है, एक आत्मकथात्मक पुस्तक प्रकाशित की है 'द ओकर रोब' ('गैरिक परिधान')[1]। यह पुस्तक भारत में और बाहर अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है यद्यपि इसका प्रकाशन एक साल पूर्व ही हुआ है। इसकी लोकप्रियता का कारण यही मौज-शौक की फिलॉसफी ही है। उन्होंने भारतीयों की 'चरित्र और विद्या के एकत्व' की धारणा की पर्याप्त आलोचना की है और सेक्स या वासना-सिद्धि के अनुभव को आध्यात्मिक अनुभूति के समकक्ष रख कर देखने की चेष्टा की है। 'सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य' और 'बुद्धि स्वातन्त्र्य' की दुहाई देनेवाले भारतीय इसे चंग बनाकर उड़ा रहे हैं, और पर्याप्त ध्वज-वन्दन हो रहा है। दूसरा उदाहरण है वाल्दी मीर नोबोकोव का उपन्यास 'लोलिता'। 'लोलिता' एक विदेशी स्त्री-लिङ्ग व्यक्तिवाचक संज्ञा है। हमारे यहाँके बुद्धिजीवी तो ऐसे इसपर मुग्ध हैं कि जब अमेरिकन संस्करण वहाँकी सरकार ने अनैतिकता का दोष लगाकर जब्त कर लिया, तो तुरत महीने-दो-महीने में एक भारतीय संस्करण छपकर तैयार हो गया। पुस्तक का नायक एक विधवा से इसलिए विवाह करता है कि वह उसकी नाबालिग पुत्री पर कामासक्त है। समस्त कथानक वासना और ऐन्द्रिक अनुभूतियों के शक्तिशाली अनुभवों से भरा पड़ा है। सारे संघात अत्यन्त उत्तेजक हैं। पर फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' को कितने गैर हिन्दी बुद्धिजीवी पढ़ पाये हैं? दिनकर की 'उर्वशी' का स्वागत यह वर्ग कर सकेगा? यह अनुभूति-प्रधान काव्य होने पर भी ऐन्द्रिकता पर आधारित नहीं तथा अरविन्द दर्शन के परिवेश में लिखा गया है। और द्वितीयतः यह कि यह हिन्दी में है। अतः इसका स्वागत "सांस्कृतिक स्वातंत्र्य" के उद्घोषक शायद ही करें। 'कामायनी' इस शताब्दी की उन भारतीय कृतियों में से एक है जिनकी संख्या चौदहों भाषाओं को मिलाकर एक दर्जन से अधिक नहीं होगी। फिर भी उसे अखिल भारतीय महत्त्व नहीं मिला। पर तथाकथित प्रगतिशीलों की सस्ती प्रचारमूलक रचनाएँ अथवा 'अमेरिकन कल्चर' और 'सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य' की उद्घोषणा वाली हल्की-फुलकी कृतियाँ आज के बौद्धिक वर्ग द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर सम्मानित हैं। यह एक अक्षम्य सस्तापन है।

(३)

दूसरी ओर इधर और एक विचित्र प्रवृत्ति, विशेषतः हिन्दी-प्रान्तों में, सामने आ रही है। इधर पत्रों में पढ़ा कि एक कम्युनिस्ट एम० एल० ए० या एम० पी० अपनी मातृभाषा हिन्दी में रखा हुआ नाम परित्याग कर एक फारसी नाम से अपने को पुकार रहे हैं। ऐसे एक दो नहीं अनेक हैं। 'रेणु' के 'परती परिकथा' में नीलाम्बर एक ऐसा ही चरित्र है जो अपने को मकबूल कहकर पुकारता है। तथा प्रत्येक 'क' का उच्चारण 'क़' के रूप में करता है। लेखक के परिचित एक कलकतिया 'कामरेड'-विशेषण-भूषित रिसर्च स्कालर ने एक बार अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देते हुए एक ऐसे खाद्य का सगर्व उल्लेख किया था जिसका उल्लेख करना उचित नहीं। इस तरह अनेक उदाहरण हैं। ये सब प्रगतिशीलता के लक्षण हैं या उन्माद के? मनुष्य को कुछ चीजों में 'हठी' भी होना चाहिए। जीवन में 'क' से 'ज्ञ' तक हरेक वस्तु के प्रति आत्मसमर्पण करने लगना भी एक कमजोरी है। यह एक आत्महीनता (इनफ़ीरियारिटी कम्प्लेक्स) का लक्षण है, स्वस्थ मस्तिष्क का नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रीक-रोमन, अरबी-फारसी संस्कृतियाँ महान् संस्कृतियाँ हैं। पर संस्कृत और हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति ही प्रतिक्रियावादी है, और ये सब सिर से पैर तक प्रगतिशील हैं, यह एक विचित्र विचार-धारा है। हिन्दी-संस्कृत शब्दों के अन्दर प्रतिक्रियावाद की दुर्गन्ध है और उर्दू-फारसी शब्दों में प्रगतिशीलता भरी पड़ी है, यह एक विचित्र भाषा-विज्ञान है। यह रोग कम्यूनिस्ट बन्धुओं तक ही सीमित रहता, तो कोई बात नहीं। कांग्रेसी

---

१ ये आजकल सिराक्यूज वि० वि० (न्यूयार्क) में हैं। पहले काशी विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में थे। लेखक को उनके दो-चार क्लास-लेक्चर सुनने का भी अवसर मिला है। बाद में विश्व-विद्यालय से उनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णधारों की कृपा से एक विचित्र 'नेता-हिन्दी' चली है जिसमें संस्कृत शब्दों को वर्ण-वहिष्कृत करना और अशुद्ध बोलना राष्ट्रीयता का लक्षण माना जाता है। कुछ वर्ष पहले इसे 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता था।

यह संस्कार शब्दों तक ही सीमित नहीं। किशन-चन्दर और ख्वाजा अब्बास की कलम से जो कुछ अच्छा-बुरा निकल जाये, वह रवीन्द्रनाथ के समकक्ष चला जायगा। शौकत थानवी की व्यंग-कथाओं के आगे निराला और परशुराम झख मारते हैं। मुल्कराज आनन्द के उपन्यासों की भद्दी व्यंजना और रोमन-लिपि में हिन्दी गालियों का संग्रह और कभी कभी अर्धानुवाद (शालीनता का आग्रह है कि यहाँ उदाहरण न प्रस्तुत करूँ) हमारे नागार्जुन की 'बल चनमा' का प्रकाश-स्तम्भ बन गया। अमृत राय की भाषा के आगे पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी और शुक्ल जी हवा हो गये। आदि, आदि। 'बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ।' 'नीलोत्पल' शब्द भारत से अरबी में जाकर 'नीलूफर' बना। पर 'नीलूफर' पुण्य का वाचक हो गया और 'नीलोत्पल' का प्रयोग समाजवादी पाप। चूँकि लज्जा-हया-संकोच-शील आदि बूर्ज्वा कल्चर की धारणाएँ-मान्यताएँ हैं, अतः उनका परित्याग करके कटि प्रदेश से ऊपर '.....' का अभेद्य कवच धारण कर नग्न नृत्य करो। हे रावण,—मैंने सचमुच जाना कि तुम्हारे अन्दर मान-अपमान का कुछ भी ख्याल नहीं और इसीसे तुम निश्शंक हो क्योंकि लज्जा का प्रश्न ही अब कहाँ रहा ?[1]

जिन्होंने आई० ए० रिचर्ड का आलोचनाशास्त्र पढ़ा है, युग के मनोविज्ञान की 'जातीय चेतना' (कलेक्टिव कांशसनेस) की थ्योरी का अध्ययन किया और जिन्हें भाषान्तर करने का अनुभव है, वे जानते हैं कि शब्द के 'अर्थ' और 'संस्कार' दो पहलू हैं। अर्थ देना आसान है। पर शब्द बदलने से व्यंजना के संस्कार ही बदल जाते हैं।

उत्तर प्रदेश में हिन्दू-मुसल्मानों ने मिलजुल कर एक 'हिन्दी संस्कृति' का विकास किया है। पर यदि इस्लाम नहीं आता तो भी यह हिन्दी-संस्कृति पन्द्रह आना वही रहती जो आज है। इस सिर्फ एक आने पर अधिक जोर देकर पन्द्रह आने को उपेक्षित रखना एवं सदैव इस कुचक्र में निरत रहना कि यह अनुपात कम से कम संस्कृति के क्षेत्र में उलटा हो जाय, एक अनुचित और विकृत प्रयास है। यह उपचार नहीं व्याधि है। संकेत पर्याप्त है।

ग्रहग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइअ वारुनी, कहहु कौन उपचार!

(४)

हमारी राष्ट्रीय सरकार संस्कृति पर अधिक प्रवचन किया करती है और पैसा भी दिल खोल कर पानी की तरह बहाती है। रवीन्द्र शतवार्षिकी या बुद्ध-जयन्ती आदि इसके प्रमाण हैं। पर ऐसा करने से क्या हमारी अभिरुचि का स्तर ऊँचा उठा है ? अभिरुचि की तो बात अलग है। इससे अनेक अवांछनीय मनोवृत्तियों को भी प्रोत्साहन मिला है। कलकत्ते में रह कर ऐसा लगा कि रविबाबू राष्ट्रीय अभिमान के प्रतीक न होकर वर्ग विशेष के घमण्ड के प्रतीक हों। इस पवित्र अवसर का उपयोग राष्ट्र-चिन्तन के लिए न कर के विविध वर्गों ने विविध रूपों में किया। रविबाबू की आत्मा शायद ही इस धमा-चौकड़ी से प्रसन्न हुई हो। सबसे अधिक तो आश्चर्य इस बात को देखकर हुआ कि कुछ जिम्मेवार लोगों ने इस महान् राष्ट्रीय पर्व का उपयोग हिन्दी-विरोधी 'स्टण्ट' के रूप में किया। यहाँ पर एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

लन्दन की 'रॉयल सोसायटी ऑव आर्ट्स' की मुख पत्रिका में श्री जार्ज गोर्डन कैटलीन का लेख 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' इस शतवार्षिकी के उपलक्ष में निकला। इसका लघु रूप (एब्रिज्ड) त्रैमासिक 'क्वेस्ट' (शरद ६१) में छपा है। 'क्वेस्ट' मुख पत्रिका है 'इण्डियन सोसायटी ऑव कल्चरल फ्रीडम' (सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य की भारतीय परिषद्) की। इसके सम्पादक हैं श्री अम्लान दत्त और श्री अबू सयीद अय्यूब। दोनों व्यक्तियों की गणना भारत के प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों में होती है, विशेषतः प्रोफेसर अम्लान दत्त का तो पर्याप्त नाम है। उक्त लेख में कैटलिन साहब फरमाते हैं :

"टैगोर को सबसे अधिक क्षोभ हुआ इस बात पर कि मैकाले द्वारा चलायी गयी शिक्षा-पद्धति भारतीय संस्कृति पर चुस्त-वेस्टकोट की तरह पहना दी गयी है। उन्होंने 'क्रियेटिव युनिटी' नामक पुस्तक में लिखा है कि हम (भारतीय) सिर्फ गैरों के चीथड़े बटोरनेवाला बनकर न रहें। संस्कृति स्वायत्तशासित हो, स्वतन्त्र हो। यह तो हम नहीं जानते कि बंगाल के ऊपर हिन्दी-संस्कृति लादना वे पसंद

[1] देखिए तुलसीदास का 'मानस', अंगद-रावण संवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते या नहीं। (पर) निश्चय ही भारत उनकी समझ से एक राष्ट्र नहीं था। यहाँ पर उनका सांस्कृतिक स्व-शासन (या स्वातन्त्र्य) पर जोर हो... उनका सबसे शक्ति-शाली और अमर सन्देश है।"

और इस अमर सन्देश के वाहक हैं भारत के गोरे मित्र कैटलीन साहब। लन्दन में बैठकर हिन्दी संस्कृति का भूत इन्हें सता रहा है और भारत के सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य के लिए इन्होंने टैगोरी बिगुल फूँक दिया है। यहाँ पर हिन्दी का प्रश्न घसीटने की क्या आवश्यकता थी? क्या रवि बाबू की समझ में भारत एक नहीं था? क्या "महामानवेर सागर तीरे" का फाटक आर्य-अनार्य दुनिया भर के लिए खुला है पर हिन्दीवालों के लिए ही "प्रवेश-निषेध" की व्यवस्था है? सोचने की बात तो यह है कि एक अँग्रेज विचारक तथ्यों को चाहे जैसे रखे, जब प्रोफेसर अम्लान दत्त उसे काट छाँट कर छाप रहे हैं, तो उक्त अंश को राष्ट्रीय कल्याण के लिए निकाल देना उचित था या नहीं?

हमें अन्य भारतीय विद्वानों का उदाहरण देकर अप्रिय प्रसंग बढ़ाने की चेष्टा नहीं करनी है। गुरुदेव के प्रति हमारी धारणा ऊपर की धारणा से अत्यन्त भिन्न है। वे हमारी संस्कृति के प्रहरी हैं। इन पंक्तियों का लेखक स्वतः साहित्य सम्बन्धी विचारों में 'टैगोरिस्ट' है और श्री प्रिय-रंजन सेन, डॉ० सुबोध सेन गुप्ता एवं प्रोफेसर तारक सेन जैसे 'टैगोरिस्टों' के चरणों में बैठकर उसने विद्या-लाभ किया है। यहाँ पर हमारी आलोचना का सम्बन्ध रवीन्द्र-नाथ से नहीं बल्कि 'शतवार्षिकी' जिस रूप में मनायी गयी है, उससे है। यदि शतवार्षिकी के उद्देश्यों में राष्ट्रीय एकता भी एक उद्देश्य रहा हो तो निश्चय ही हमें असफलता ही हाथ लगी है। अन्य उद्देश्यों के बारे में अभी कुछ नहीं कहना है। उसके लिए एकाध साल और प्रतीक्षा करके देखना होगा। धरती में नमक बोया गया है या धान, इसका पता बाद में चलेगा।

वास्तव में चाहे बुद्ध-जयन्ती हो या रवीन्द्र शतवार्षिकी हो, हमारे लिए सब धान बाइस पंसेरी—सबके बारे में हमारा आयोजन 'यूथ फेस्टिवल' से ऊपर के स्तर का नहीं हो पाता। सब वी० आई० पी० रईसों के मनोरंजन के साधन बन कर रह जाते हैं। हाँ, प्रजा का पैसा पानी की तरह अवश्य बहता है।

मैथ्यू आर्नल्ड ने विक्टोरियन युग की छिछली रुचि का दोष उस युग की वणिक (फिलिस्तीन) मनो को दिया है। गत वर्ष आगरे में राधास्वामी मन्दि लोगों ने उक्त मन्दिर को ताजमहल से भी गरिमामय सुन्दर बनाने की महत्त्वाकांक्षा का जिक्र किया। प्रमा बताया कि ताज में केवल आठ या नौ तरह के पत्थर मरमर लगे हैं तो उक्त मन्दिर में चौदह-पन्द्रह किस्म लगेंगे। आगे, ताज में केवल गुलदाऊदी की लताओं पच्चीकारी है तो मन्दिर में सारे फूलों-फलों की रहेगी। हमने देखा भी कि गाजर-गोभी-अनन्नास के साथ अनेक तरह के पुष्प कटे हुए हैं। ऐसी बातें सम्बन्धी मोटी अभिरुचि को प्रकट करती हैं। ऐसे दृ कोण को 'फिलिस्तीन दृष्टि' कहा गया है। कला के क्ष कल संस्कार सादगी और बुलन्दी में हैं, न कि भद्दी नक में। आर्नल्ड ने अपने युग की सांस्कृतिक अराजकता 'फिलिस्तीन' अभिरुचि का ध्वंस करके क्लासिकल आ की स्थापना की।

हमारे यहाँ अभिरुचि का विधायक 'भद्रलोक' या वर्ग है। यह बाबूवर्ग शीतला-वाहन की तरह ज्ञान-वि ढोता हुआ नेता वर्ग के द्वारा हाँका जाता है। यही साहित्य का सृजनकर्त्ता और कलागुरु भी है। इसके दृ कोण पर आधुनिक नेता वर्ग के दृष्टिकोण का इतना प्र पड़ा है कि जन्म के साथ उत्पन्न सहज भाषा को छो यह नेता-भाषा और नेता-शैली में बोलने लगा है। हमारे "शीर्ष वलक्ष" कविराज एक "बूढ़े.....नीति के "व्याहार" के फलस्वरूप अपने स्वाभाविक 'कुरुक्षेत्र' भाषा भूल कर क्या-क्या कह बैठते हैं, तो वह नेता-सा का ही पुण्य प्रताप है। यह 'लीडर कल्चर' (नेता संस्कृ और 'लीडर टेस्ट' (नेता-अभिरुचि) एक व्यक्ति, एक या एक प्रदेश के अन्दर नहीं। यह ऐसा रोग है जो कोटि के मस्तिष्क में व्याप्त है और इसका कारण है ह सत्य के साथ सौदा करने की दुर्नीति। जब तक यह रहती है तब तक हमारे दृष्टिकोण सस्ते, छिछले और प्र हीन शब्द जाल मात्र रहेंगे। तब तक 'नेता संस्कृति' प्राधान्य बना ही रहेगा। फलतः हमारा राष्ट्रीय नीचे गिरता ही जायगा। देश का पढ़ा-लिखा वर्ग निरीक्षण करे और सोचे कि लेखक जैसे अपने आदर्श बातों में कुछ तथ्य है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकथा के मुख्य पात्र

जनकनन्दिनी

डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट्०

गतांक से आगे

इसके पहले कि भवभूति और दिङ्नाग की रचनाओं की चर्चा की जाय एक बात का यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है। राम-कथा में कुछ और बातों के समान सीता के रावण के प्रेम को ठुकराने को अनुचित महत्त्व दिया है। जानकी को लुभाने योग्य दशकन्धर में कोई आकर्षण नहीं है। आदिकाव्य में रावण के रंग, रूप, आकार में कुछ भी मनमोहकता नहीं है। वाल्मीकि का अनुकरण करनेवाली लेखकमण्डली ने कभी रावण के सौन्दर्य-निरूपण की चेष्टा नहीं की। रावण की कुरूपता विषयक परम्परा ऐसी अचल हो गई थी कि आदि कवि के पश्चात् आने वाले लेखकों ने वाल्मीकीय रावण के वर्णन को मान्य समझा और उसे सत्य का स्थान दिया। कज्जल गिरि सा असुन्दर बृहत्काय व्यक्ति किसी भी सरस-हृदया बाला को आकृष्ट नहीं कर सकता जब तक कि वह स्वयं भी निशिचर बाला ही न हो। मैथिली ऐसी अनुपम कामिनी के लिए जिसे दिव्य सुन्दरता विभूषित परम कोमलांग रसिकवर रघुनन्दन के साथ काम-केलि का अलौकिक आनन्द वर्षों प्राप्त हो चुका यदि रावण की निशाचरी सुन्दरता स्वीकृत न हुई तो स्वाभाविक ही था। न रावण की धन-संपदा-सुख की विश्व ख्याति ही जानकी के लिए आकर्षक थी। सुविख्यात, विशद मैथिल देश के राजप्रासाद, अथवा सुरपति इन्द्र-बन्धु-चक्रवर्त्ति दशरथ के राजभवन किसी सामान्य नरेश के निवासस्थान नहीं थे। ऐसे भवनों में दुलार से पली राज-कुमारी के लिए लंकेश के महलों का कौन सा राज-सुख नया था? शक्तिमान रावण जानकी के साथ बलात्कार नहीं कर सकता था क्योंकि नलकूबर के शाप का रावण को भय था। इसलिए रावण के हाथों सतीत्व भंग का जानकी को कोई भय नहीं था। जिस दयावान राक्षसी ने सीता के प्रति प्रेम और सहानुभूति प्रकट की उसने नलकूबर शाप के कारण रावण की असमर्थता का शांतिप्रद समाचार जानकी को अवश्य दिया होगा। इसके अतिरिक्त मैथिल ज्योतिषियों की जानकी के प्रति इस भविष्यवाणी ने कि वे पति के साथ पुनः सिंहासनासीन होंगी, उस भीषण अवधि में भी सुख-आशा सजीव रखी होगी जो राक्षसियों के घेरे में जनकलली ने लंका में बितायी। ज्योतिषियों की भविष्य वाणी, नलकूबर का शाप, जनक भवन और साकेत का राज-प्रासाद-वैभव, रघुकुल भूषण का अद्वितीय सौन्दर्य और अभंग प्रेम, और उच्च कुलोत्पन्न हिन्दू रमणी की स्वाभाविक सतीत्व भावना इन सबको ध्यान में रखते हुए जानकी का रावण प्रेम-तिरस्कार एक हिन्दू पतिव्रता की स्वाभाविक लीला थी। ऐसा करने से सीता ने कोई विशेष संयम नहीं दिखाया, न इससे उनके चरित्र में विशेष आध्यात्मिक विकास का ही प्रादुर्भाव हुआ। अस्तु।

× × ×

जैसे उपर्युक्त संस्कृत के कवि और नाटककार समुदाय ने अपनी रचनाओं में जानकी को शृंगार रस का केन्द्र बनाया वैसे उत्तर रामचरित में भवभूति ने, और कुन्दमाला में दिङ्नाग ने जनकनन्दिनी को करुणारस की सुपात्री का स्थान विशेष रूप से प्रदान किया। संस्कृत नाटक साहित्य संबंधी दुखान्त कृति की निषेध परम्परा होते हुए भी सीता की दशा दोनों नाटकों में बड़ी करुणापूर्ण है। जिन कारणों से उनकी शोचनीय दशा हुई उनके उत्तरदायित्व का भार अबला जानकी पर नहीं है। भवभूति की जनकनन्दिनी कुन्दमाला की जानकी से उच्चतर हैं क्योंकि उनका समर्पण अधिक सहर्ष है। परन्तु यह सब होते हुए भी भवभूति की जनकलली एक अनुपम सुन्दरी हैं—सिसकती, आँसू बिखेरती, अचेत गिरती-पड़ती। अध्यात्म रामायण के उस भाग में जिसमें रावण-मरण के बाद की कथा कही गई है हमें ऐसी जानकी का साक्षात्कार होता है जो एक सामान्य नारी के समान क्रन्दन करती हैं (उत्तरः ४.६०), जो विरह दुख के कारण विलाप करती हैं और कवि स्पष्ट कहते हैं कि यह दुखाक्रान्त सीता असली सीता हैं जिनका उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धकाण्ड में १३वें सर्ग के २३वें श्लोक में "त्रिलोक जननी" शब्दों से हुआ है और माया सीता नहीं हैं जिनका हमारा साथ अरण्यकाण्ड के सातवें सर्ग के चौथे श्लोक से युद्धकाण्ड के १३ वें सर्ग के १८ वें श्लोक तक रहता है। उत्तररामचरित, कुन्दमाला और अध्यात्म रामायण के रचयिताओं ने यदि ऐसा लिखा तो उन्होंने कोई नई बात नहीं की। वे आदिकवि द्वारा आरम्भ की हुई एक दुखमग्ना जानकी की परम्परा का आदर कर रहे थे। आधुनिक हिन्दी के राम-कथा-गायक कविगण अंग्रेजी भाषा और प्रणाली और पाश्चात्य सभ्यता के अदृश्य प्रभाव के कारण जानकी की शृंगार रस संबंधी परम्परा का यथावत् सत्कार न कर सके परन्तु उन्होंने जनकलली की वेदना-परम्परा अटूट रखी। यद्यपि "साकेत" में राम-कथा संक्षेप में कही गई है फिर भी उसमें सीता को रोती हुई "अबला" (३८४:२०) कहा गया है। रामचरित चिन्तामणि में जहाँ वे एक सामान्य स्त्री के स्थान को प्राप्त हैं (११:४७) वहाँ वे राघव से अपनी दशा वर्णन करने के लिए हनुमान से यों प्रार्थना करती हैं: "सीतादासी मलिन वदन आपकी रो रही है" (१७:५२) मेघनाद वध के सुन्दर चतुर्थ सर्ग की भूमि जानकी के आँसुओं से भीगी पड़ी है और द्विजेंद्रलाल राय के सीता नामक नाटक की सीता-व्यथा किसे स्मरण न होगी !!

× × × ×

उपर्युक्त बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से एक प्रश्न उठता है। क्या संस्कृत के महाकवियों एवं सुविख्यात नाटककारों और हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों का उद्देश्य जगज्जननी का चित्रण करना था ? और यदि वास्तव में यही उद्देश्य था तो जैसी काम तथा दुख पीड़ित जनकनन्दिनी उन्होंने निरूपण की क्या वे आदिशक्ति के रूप से हमारी श्रद्धा-पात्र बन पाती हैं ? क्या ऐसी जनकनन्दिनी यह विश्वास हमें प्रदान करने में सफल होती हैं कि यदि जगदम्बा अवतरित होकर मानवरूप ग्रहण करने की परम अनुकम्पा करती तो इस जगती पर जहाँ हमारे भग्न हृदय की अनकही व्यथा को देखकर सुदूर तारे भी काँप उठते हैं, क्या उनकी जीवन कथा वैसी ही काम-तप्त और अश्रुप्लावित होती जैसी साहित्यकारों की राम-कथा परम्परा में जनकनन्दिनी की हम पाते हैं ?

कविवर तुलसी ने मानस-रचना के पूर्व इस प्रश्न पर ऐसा लगता है कि गम्भीर विचार किया था, क्योंकि रामचरितमानस में उन्होंने एक सामान्य नारी से सरस्वती गौरी-सेविता देवी का कार्य सम्पादन कराने के अनौचि को ध्यान में रखा। कविवर को यह स्पष्ट था कि रघुनन्दन परमानन्द धाम हैं, प्रेम-मूर्त्ति और सौन्दर्य्य-निधि हैं तो जानकी भी ऐसी ही हों क्योंकि

गिरा अरथ जल बीचि सम
कहिअत भिन्न न भिन्न

इसलिए कविवर ने जनकसुता को मानस में आनन्द मय बनाया। रामचरितमानस में जनकनन्दिनी को प्रथम बार जब देखते हैं तब उन्हें गान-मुग्ध पाते हैं :—

संग सखी सब सुभग सयानी।
गावहिं गीत मनोहर बानी॥

उल्लास-तरंग जब हृदय-सिन्धु की क्षुद्र सीमा को पार करके अपनी दुनिया को विभोर कर देती है तब वह सारा संसार गान से गुंजायमान हो पड़ता है। सुख जब मूक होता है तब आनन्द बन कर दिल में समाया रहता है, परन्तु जब वह मुखर होता है तब गान के स्वरूप में प्रगट होता है। जानकी का परम आनन्द दिव्य गान बनकर हृदय का रहस्य खोल रहा है। कविवर ने मानस में सीता को आनन्दमयी ही बनाकर संतोष नहीं किया। तुलसी ने उनको मूर्तिमान आनन्द बना दिया। वे सच्चिदानन्द की शक्ति रूप हैं के नाते और कुछ हो ही क्या सकती थीं ? रामचरितमानस में जहाँ जानकी जाती हैं वहाँ उनको खोजते हुए सब प्रकार के मंगल-मोद पहुँच जाते हैं जैसे कि जल-सम्पन्न होने पर भी नद को तब तक शांति नहीं होती जब तक वह अपने समुद्र से एक नहीं हो जाता। इसलिए मानस में हम पाते हैं :—

जब ते राम ब्याहि घर आए।
नित नव मंगल मोद बधाए॥

और जब जानकी अपने प्रियतम के साथ अयोध्या छोड़कर वन को चली गईं तब वह नगरी—"पुरी सुहावनि" सुखविहीन हो गई। "आरत पुर लोग" चौदह वर्ष के वियोग में "कृस तन" हो गये। अवध अवध नहीं रही। चौदह वर्ष बाद जब जानकी वापिस अयोध्या आईं उनके साथ-साथ दीप-हास के संग राम-प्रिया का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर सुख ने वियोग पीड़ित अयोध्या नगरी में फिर से प्रवेश किया।

रामचरितमानस में जनकनन्दिनी की सुन्दरता के प्रभाव-परिधि से कौन मुक्त रहा ? सत्य संध रघुकुलनन्दन ने स्वीकार किया :—

मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं॥

यह वचन उन रामचन्द्र का था जो सत्य के अवतार थे। इसलिए ये शब्द असत्य नहीं हो सकते थे। प्रमाण-स्वरूप मानस में हम देखते हैं कि सीता का रूप देखकर :—

देखि रूप मोहे नर नारी

और ग्राम नारियाँ उनसे प्रार्थना करती हैं :—

देबि न हम पर छाड़ब छोहू
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी।
जो एहि मारग फिरिअ बहोरी॥
दरसनु देब जानि निज दासी।
लखीं सीय सब प्रेम पिआसी॥

जनकनन्दिनी की सुन्दरता के अलौकिक गुण के संबंध में स्वयं कविवर कहते हैं :—

जो छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय सम तूल॥

क्योंकि जैसा तुलसी ने कहा जनकनन्दिनी थीं

जगदंबिका रूप गुनखानी

× × ×

रामचरितमानस की जानकी के सर्वव्यापक प्रेम की सीमा की खोज करनी वृथा है। जगज्जननी का प्रेम उनकी दया के समान असीम है। वे कैकेयी के प्रति भी कटु वचन नहीं कहतीं। मन्थरा के प्रति घृणा उनके मन में नहीं पायी जाती। भरत के लिए उनके हृदय में कोई क्षुद्र विचार स्थान नहीं पाता। लक्ष्मण तो उनको मातृवत् मानते हैं। वानर सेना को उनके प्रति माता का भाव उत्पन्न हुआ। और सब स्थानों में—पुर, नगर, ग्राम, वन में—जहाँ जहाँ वे गईं वहाँ के नर-नारियों से वे मातृ-समान वंदित और सेवित हुईं। मानस की जानकी प्रत्यक्ष रूप से जगज्जननी हैं। असीम करुणा से ओतप्रोत वे प्रेम मूर्त्ति जगदंबा हैं।

× × ×

मानस-चित्रित जानकी के यथायोग्य चित्रण-मूल्य को निर्धारित करने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वे मानस में

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा।

के पश्चात् अन्तरधान हो जाती हैं और पुनः उनके दर्शन

श्रीखंड सम पावक प्रबेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली

के उपरान्त हमें मिलते हैं। फलस्वरूप अयोध्याकाण्ड के अन्त के बाद अरण्य को क्रंदन-गुंजायमान करती मैथिल-कुमारी जिनको प्रियतम-वियोग ने।

कृस तनु सीस जटा एक बेनी

बना दिया था वे माया-सीता थीं—अर्थात् असत्य-मूर्त्ति। वास्तविक सीता तो आनन्दमय की शक्तिरूपा होने के कारण आनन्दस्वरूपा थीं। उनसे और विलाप से उतना ही संबंध हो सकता था जितना सूर्यप्रभा और तिमिर घन से, परन्तु जहाँ माया का सम्पर्क होगा वहाँ निराशा, हृदय-पीर, विलाप, क्रन्दन, अश्रु-प्रवाह की शृंखला अनिवार्य है। माया सीता के लिए दुखी और जगज्जननी सीता के लिए आनन्दमय होना स्वाभाविक है।

× × ×

रामकथा के कवियों और नाटककारों की परम्परा में एकमात्र कविवर तुलसी ही जनकनन्दिनी को बिना उनके अलौकिक वैभव को कम किये पूर्णतः मानव बनाने में सफल हुए। मानस की जानकी पार्थिव न होते हुए भी मानवीय हैं। वे किसी कल्पना की असंभव प्रतीक अथवा एक अधूरे चरित्र की रूपरेखा मात्र नहीं हैं बल्कि पूर्ण व्यक्तित्व को प्राप्त एक कुमारी हैं, स्त्री हैं, पुत्री हैं, पुत्रवधू हैं, जगन्माता हैं—कभी चंचल सरोवर पर शशि प्रभा सी तिलमिलाती, कभी पूर्ण चन्द्रमा सी अचल शांत। उदाहरणार्थ, स्वयंवर प्रसंग में उनका विविध-मुखी चरित्र सुचारु रूप से प्रकट होता है क्योंकि राम-कहानी में यही एक ऐसा स्थल है जहाँ वे स्वतंत्र अस्तित्व को प्राप्त होती हैं और जहाँ उनके भाव अपने होते हैं, जहाँ सीता सीता रहती हैं। धनुष-भंग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरान्त वे रघुनन्दन से अभेद हो जाती हैं, इनके विचार उनके विचार हो जाते हैं, इनका जीवन उनका जीवन, इनका वनवास उनकी वनयात्रा। इस कारण कविवर ने स्वयंवर प्रसंग में जनकलली के बहुमुखी जीवन के भाव-वैचित्र्य के चंचल अनुभव का सुन्दर चित्र हमारे सामने खड़ा कर दिया है। रामचरितमानस की जनकनन्दिनी में हम पाते हैं उपासना-गाम्भीर्य और हमारी-सी सुखद फल की मानवीय अभिलाषा :—

गईं मुदित मन गौरिनिकेता
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा।
निज अनरूप सुभग वर माँगा॥

एक ललना के सुकोमल हृदय को व्यथित करने वाली कठोर उत्कण्ठा तरंग :—

सिय हिय अति उत्कण्ठा जानी

एक प्रेम—आशा की अधीरता :—

सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥

अथवा :—

चितवत चकित चहूँ दिसि सीता

एक प्रेम—अति का मधुर भार :—

अधिक सनेह देह भइ भोरी

एक सुन्दर मनहर संकोच :—

लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी॥

एक छिपती—प्रकट होती रसिकता :—

देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहोरि बहोरि

एक प्रेम-विभोर मृदु भय :—

मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती
तब रामहि बिलोकि बैदेही।
सभय हृदय बिनवति जेहि तेही"

एक भ्रम—छोटा, तीव्र, असत्य—जिसे उनके अकथ प्रेम ने महान् और सत्य सा कर रखा था :—

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा।
सिरिस सुमन किमि बेधै हीरा॥

और एक सुख की अति जो केवल कन्या के सहज संकोच के स्वाभाविक विनियमन के कारण ही रह सकी :—

तन सकोच मन परम उछाहू।
गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू॥

इस एक प्रसंग में कविवर तुलसी ने त्रैलोक्य-सुन्दरी जानकी का दर्शन हमको अनेक दृष्टिकोणों से कराया है और हम देखते हैं कि जनकलली मानव हृदय के सुन्दरतम भावों के प्रति सजग हैं। उनका सरस हृदय सुकोमल भावों के प्रति सचेत है, समुद्र-सा अनन्त है और प्रियतम-मुखचन्द्र को देखकर कोलाहलमय स-तरंग, परन्तु एक आर्यललना के सहज संयम के कारण मर्यादा-सीमित। मानस की जनक-नंदिनी आनन्दस्वरूपा हैं, त्रैलोक्य-मोहिनी हैं, जगदम्बिका हैं, मदनारि उमा-नाथ-सेवित रामचन्द्र की आदिशक्ति—उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणीं। रामवल्लभा रामचरित-मानस में काम-मोहिता नहीं होती जैसी वे अन्य राम-कथा कृतियों में पाई जाती हैं।

नाथ साथ साँथरी सुहाई? सयन सयन सय सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक विषय बिलासू॥

सुमिरत रामहि तजहिं जन, तृन सम विषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥

कविवर तुलसी की जानकी सब प्रकार से हमको दैवी लगती हैं परन्तु सांसारिक भावों की प्रतिक्रिया के विचार से उत्तम मानवीय।

× × ×

ऐसी जनकनन्दिनी जो मानव होते हुए अलौकिक हों, जो देवी हों और हमारी-सी भी, जिनका रस-भरा हृदय तरंगमय हो और विशाल स-शांत, जो उमा-रमा-ब्रह्माणी सेविता हों और भूमि-सुता भी—ऐसी ही रघुनन्दन-प्रियतम राम-कहानी में अपना उचित स्थान निर्माण करके उस कथा को क्षत्रिय-कुमार और निशाचर-राज के युद्ध की एक सामान्य कहानी को दिव्य स्तर पर उठाने में सफल हो सकती थीं, और तब ही वह कथा लोक-कल्याण-कारक बनती, अज्ञ-जन-पथ-प्रदर्शक बनती, पतित पावन बनती। यह सूक्ष्म तत्त्व तुलसी ने समझा, समझकर ऐसा करने के लिए प्रयत्न किया, प्रयत्न करके सफल हुए। रामचरितमानस की जनकनन्दिनी में कटुता का सर्वप्रकार से अभाव है, घृणा उन्हें छू भी नहीं सकी है। उनकी रीतियाँ प्रेम की रीतियाँ हैं, उनकी बातें प्रेम की बातें। वे माँ हैं। वे जगन्माता हैं। वे जगदम्बा हैं जो दर्शन मात्र से मोक्षदायिनी हैं, जिनकी एकमात्र उपस्थिति से दशरथकुमार और निशाचर-राज की कहानी परम पुनीत मानस-कथा बन गई।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली की सामयिक राजनीतिक हलचल

पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी

तीसरे आम चुनाव के बाद संसद का यह नया सत्र आरंभ हुआ। इसका पहला अधिवेशन १४ अप्रैल, सन् १९६२ को हुआ और कब तक यह सत्र चलेगा, यह कहना इस समय कठिन है। सरकार की ओर से १६ विधेयक संसद में पारित होने के लिए उपस्थित किए जाएंगे जिनमें अभी तक एक पारित हुआ है, वह था रेल संबंधी एप्रोप्रिएशन बिल।

वास्तव में, इस सत्र में राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद के अवकाश ग्रहण करने और नए राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव ही की एकमात्र चर्चा रही। श्री राजेन्द्रप्रसाद के स्थान पर नये राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन का चुनाव हो गया और ता० १३ मई को प्रातःकाल उन्होंने अपने नए पद की शपथ ग्रहण कर ली।

पहला काम जो नए राष्ट्रपति ने किया, वह था डा० राजेन्द्रप्रसाद को 'भारतरत्न' की उपाधि से विभूषित करना। पिछले दस वर्षों में जो दूसरों को उपाधि वितरित करता रहा उसीने नए राष्ट्रपति के कर-कमलों से इस उपाधि को ग्रहण किया।

पहले श्री राजेन्द्रप्रसाद ने यह घोषणा की थी कि राष्ट्रपति-पद के लिए वह तीसरी बार फिर खड़े होंगे। बाद में उन्होंने अपनी राय बदल दी और राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली से यह सूचना निकली कि तीसरी बार के लिए श्री राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन के लिए नहीं खड़े होंगे। श्री राजेन्द्रप्रसाद के पुराने साथी, श्री वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद और श्री गोविंदवल्लभ पंत तो चले गये। उनकी ओर से कुछ कहने वाला कोई न रह गया था। किसके बिरते पर तीसरी बार इस निर्वाचन क्षेत्र में श्री राजेन्द्रप्रसाद उतरते? जहाँ तक प्रधान मंत्री का संबंध है, दूसरी बार इस पद का चुनाव होने के पूर्व वह राज्यसभा के अध्यक्ष को इस पद के लिए मनोनीत करना चाहते थे, लेकिन मौलाना अबुल कलाम आजाद और श्री गोविंदवल्लभ पंत के कहने से प्रधान मंत्री ने अपना यह हठ छोड़ दिया था। उस समय भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्यसभा के अध्यक्ष श्री राधाकृष्णन ने उन्हें यह धमकी दी थी कि वह यदि बहुमत से राष्ट्रपति न चुने गये तो वह आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्पैल्डिंग प्रोफेसर के पद पर चले जायेंगे। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बहुत अनुनय विनय से दूसरी बार भी उप-राष्ट्रपति पद के लिए श्री राधाकृष्णन को किसी तरह राजी कर लिया था। प्रधान मंत्री तीसरी बार श्री राधाकृष्णन के पक्ष में थे और श्री राजेन्द्रप्रसाद का पक्षलेवा कोई न था। यह इस बात के रहस्य पर प्रकाश डालता है कि क्यों श्री राजेन्द्र-प्रसाद तीसरी बार इस पद के लिए पहले तो मैदान में उतरने को तैयार थे, लेकिन बाद में उन्होंने आत्म-त्याग का पथ ग्रहण किया और राष्ट्रपति भवन से यह सूचना निकली कि राजेन्द्रप्रसाद तीसरी बार इस पद के लिए खड़े न होंगे।

इस अप्रिय कांड को यहीं पैर समाप्त कर देना चाहिए। यह ऐतिहासिक सत्य है कि उनकी बिदाई के समय श्री राजेन्द्र-प्रसाद का जो अभिनंदन हुआ वह उल्लेखनीय है। दिल्ली के नगरवासियों ने जो उनका अभिनंदन किया वह दिल्ली वालों की स्वच्छंद, स्वतंत्र राय थी। उसमें श्री राधाकृष्णन ने जो उद्घाटन किया वह नये राष्ट्रपति के सर्वथा अनुकूल था और प्रधान मंत्री ने इस अवसर पर जो भाषण किया, उसकी प्रशंसा करना सूरज को दीपक दिखाना होगा।

अब श्री राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति नहीं रहे। इन्होंने पिछले १२ वर्षों में जिस निष्पक्षता और संयम का परिचय दिया वह हृदयग्राही है। उनके स्थान पर उन्हींके उप-राष्ट्रपति अब राष्ट्रपति का कार्यभार सम्हालेंगे। उनका निर्वाचन होने पर देश-विदेशों से जो शुभ-संवाद आये हैं, उससे यह प्रत्यक्ष है कि भविष्य के लिए उनसे बहुत बड़ी आशाएँ की जाती हैं। हम भी इन शुभ-संवादों में अपनी विनम्र सहमति प्रकट करते हुए यह आशा करते हैं कि हमारे नये राष्ट्रपति इस देश की जनता को ऐसे मार्ग पर ले चलेंगे कि इस देश की विभिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातियाँ एक-दूसरे से घुल-मिल जायें और यह भारत एक परिवार के लोगों की तरह रहने लगे। इस समय सबसे बड़ी जरूरत भारतीय एकता की है और हम यह आशा करते हैं कि हमारे नये राष्ट्रपति भारत की एकता को दिन-ब-दिन दृढ़तर करते जायेंगे। यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारतवर्ष जब अनेक राज्यों में विभाजित हुआ तब वह विदेशियों का गुलाम हुआ और जब भारत एक सूत्र में बँधकर खड़ा हुआ तब विदेशियों की सत्ता इस देश में न ठहर सकी। चन्द्रगुप्त, अशोक, अकबर, इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। भारत की कुंजी भारत की एकता में है। यदि वह फिर से विभिन्न राष्ट्रों में विभक्त हो गया तो वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कदापि न कर सकेगा। इसीलिए हम यह कहते हैं कि सब मसलों पर भारत की एकता का मसला सबसे ऊपर है। जो भारत की अखण्डता के विरोधी हैं, उन्हें इतिहास के इस सत्य को न भूलना चाहिए। सिक्खों ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारत की एकता के सामने आपसी फूट को मिटा देना चाहिए और पंजाबी सूबे की माँग उस समय तक के लिए स्थगित कर दी जाये जब तक भारत की अखण्डता को अक्षुण्ण रखने का हमारे सामने प्रश्न है। क्यों उन्होंने ऐसा निर्णय किया? कुछ भी हो, हमें इस बात की खुशी है। आशा है कि डी० एम० के० वाले भी अपने द्रविड़स्तान की माँग को सिक्खों की तरह न उठाएँगे। यदि सिक्ख और डी० एम० के० वाले अपनी-अपनी माँगों को सदा के लिए छोड़ दें तो भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा।

हमने इस विषय पर इसलिए लिखा कि भारत की एकता का प्रश्न इस समय तीसरे आम चुनाव के बाद गुरुतर रूप धारण कर रहा है और संसद् की सब पार्टियाँ इसी एक मसले पर एक स्वर से सहमत हैं कि किसी तरह भारत की अखण्डता अक्षुण्ण रहे। इसका एक अपवाद भी है। वह है डी० एम० के० जिसने अभी तक द्रविड़स्तान की अपनी माँग को तिलांजलि नहीं दी यद्यपि उसका राज्यसभा में सब दलों ने विरोध किया और प्रधान मंत्री ने तो यहाँ तक कहा कि केरल, आंध्र और मैसूर में इस तरह का कोई नारा नहीं है और तमिलनाड में (मदरास प्रदेश में) बहुमत इस माँग के खिलाफ है। लेकिन डी० एम० के० वाले, इस विरोध के होते हुए भी, अपना बेसुरा राग अभी तक अलापते जाते हैं। कब तक उनकी यह धुन चलेगी यह कहना कठिन है, लेकिन प्रधान मंत्री के वक्तव्य से यह बात स्पष्ट है कि जैसे उत्तरी अमरीका में वहाँके राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने संयुक्त राज्य की अखण्डता को अक्षुण्ण रखने के लिए हथियार उठाये थे, वैसे ही भारत भी अपनी अखण्डता को अक्षुण्ण रखने के लिए हथियार उठाएगा यदि इसकी आवश्यकता पड़ी। वह दिन भारत के लिए दुःखदायी होगा जब उसे अपनी अखण्डता को अक्षुण्ण रखने के लिए हथियार उठाने की नौबत आयेगी। हम यही आशा करेंगे कि डी० एम० के० (द्रविण मुनेर कटगम) अपनी इस माँग को वापस लेगा। तब तक के लिए इस माँग को अत्यधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। यही प्रधान मंत्री की सलाह है जिसका हम अंतःकरण से समर्थन करते हैं।

श्री राजेन्द्रप्रसाद की बिदाई के जो समारोह हुए उनमें एक अवसर पर श्री राजेन्द्रप्रसाद ने कहा कि हिंदी को अधिक सरल बनाने की ओर हिंदी लिखनेवालों को अधिक प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हिंदी ऐसी हो कि उसे सरलता से अ-हिंदी-भाषी सीख सकें। हिंदी के लेखकगण भूतपूर्व राष्ट्रपति, श्री राजेन्द्रप्रसाद, की इस नेक सलाह को कहाँ तक हृदयंगम करेंगे, यह इस समय कहना कठिन है। लेकिन जो लोग हिंदी में से तत्सम शब्दों को निकालने के पक्षपाती हैं, उन्हें विधान सभा के एक अ-हिंदी-भाषी वक्ता के वचन को याद कर लेना चाहिए कि संस्कृत ही भारत को एकता के सूत्र में बाँध सकती है और उससे संस्कृत के तत्सम शब्दों का बहिष्कार करना संगत नहीं है क्योंकि जहाँ तक मलयालम, कन्नड़, तेलगू और तमिल का संबंध है वहाँ तक संस्कृत के शब्दों का बहिष्कार असंभव होगा क्योंकि इन विभिन्न भाषाओं में तत्सम शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता है। एक अँगरेजी अखबारवाले ने तो यहाँ तक कहा कि सरकारी हिंदी की जितनी बुराई की जाये उतनी थोड़ी होगी। प्रश्न यह है कि श्री राजेन्द्रप्रसाद के सत्परामर्श से हिंदी के लेखकगण लाभ उठायें या संविधान सभा के उस तमिलभाषी वक्ता की इस चेतावनी से लाभ उठायें जिसने संस्कृत के तत्सम शब्दों पर जोर दिया था। हमें अच्छी तरह से याद है कि जिस समय स्वर्गीय श्री बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन', का संस्कृतनिष्ठ हिंदी में भाषण हुआ, उस समय इन अ-हिंदी-भाषियों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि 'नवीन' जी के भाषण के अधिकांश को समझने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें कोई भी कठिनाई न हुई क्योंकि 'नवीन' जी के उस भाषण में उर्दू शब्दों का प्रयोग कम था और संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक था। दक्षिणवाले 'नवीन' जी की हिंदी जैसी हिंदी लिखने के अनुकूल उस समय प्रतीत हुए थे। अतएव यहाँ पर यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि श्री राजेन्द्रप्रसाद ने जो कुछ हिंदी के लेखक गणों को सत्परामर्श दिया है वह कहाँ तक हिंदी के लिए हितकर होगा ?

इस विषय विशेष को समाप्त करने के पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि अवकाश ग्रहण करने पर दिल्ली की जनता ने जिस मनोयोग और उत्साह से उन्हें बिदाई दी, वह सर्वथा दिल्ली की जनता के उपयुक्त है। बिदाई के समय श्री राजेन्द्र प्रसाद का जो भव्य स्वागत हुआ और अनेक समारोहों में जिस भावना का प्रदर्शन हुआ, उसको देखते हुए यही कहना पड़ता है कि पद-ग्रहण के समय में नहीं, बल्कि अवकाश ग्रहण करने पर किसी का मूल्यांकन किया जा सकता है।

श्री राधाकृष्णन के राष्ट्रपति और श्री जाकिर हुसैन के उप-राष्ट्रपति चुने जाने से हिंदी को क्या खतरा है, यह बहुतों को शंका हो सकती है। श्री राजेन्द्रप्रसाद की परंपरा को वे निभायेंगे या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर शीघ्र ही मिल जायेगा। श्री राधाकृष्णन की ख्याति का कारण उनका अंगरेजी भाषा पर अधिकार है और श्री जाकिर हुसैन की ख्याति उर्दूवालों के सामने बड़ी है। इन दोनों को श्री राजेन्द्रप्रसाद की परंपरा को कायम रखना असंभव जान दीखता है। हमारे नये राष्ट्रपति आंध्र प्रदेश के निवासी हैं और तेलगू उनकी मातृभाषा है। अँगरेजी भाषा पर उन्हें असाधारण अधिकार है। मुसलमान होने के नाते श्री जाकिर हुसैन अच्छी खासी उर्दू बोलते और लिखते हैं। इसके लिए हिंदी का जानना अनिवार्य नहीं था, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि बिहार की गवर्नरी जिसने पाँच साल तक निबाही उसके विषय में ऐसी शंका करना अनुचित होगा। फिर उर्दू को हिंदी की एक शैली ही हिंदीवाले मानते हैं। ऐसी दशा में हिंदीवालों के लिए यह चुनौती होगी कि सचमुच क्या वे उर्दू को हिंदी की एक शैली मानते हैं या नहीं। क्या उनका ऐसा कहना केवल मौखिक प्रलाप है या सचमुच इस बात में सार है ?

संक्षेप में यहाँ पर दो बजटों का जिक्र कर देना अनुचित न होगा। केन्द्र के नये रेल मंत्री, सरदार स्वर्णसिंह, ने नए साल का अपना विभागीय बजट पेश किया। घाटे की पूर्ति के लिए उन्होंने मुसाफिरों और माल पर नये कर लगाने की घोषणा की। पहले तो विपक्षी दलों में मुसाफिरों और माल पर नए करों के प्रस्ताव पर विरोध प्रकट किया गया लेकिन अंत में सर्वसम्मति से रेल का बजट स्वीकार कर लिया गया। जहाँ तक रेल के मुसाफिरों का संबंध है, पहले दर्जे के यात्रियों पर रुपया पीछे १५ पैसे के हिसाब से और तीसरे दर्जे के यात्रियों पर दस पैसे के हिसाब से कर की वृद्धि हुई। मासिक टिकट देने वालों पर पाँच नए पैसे की कर वृद्धि लगायी जाएगी। इसी तरह से रेल के द्वारा माल की ढुलाई पर भी कर की वृद्धि की गयी है। इन दोनों करों की वृद्धि से यह अनुमान है कि २१ करोड़ रुपया हर साल रेल की आय में वृद्धि होगी।

आम बजट २३ अप्रैल को लोकसभा में उपस्थित किया गया। केन्द्र के वित्त मंत्री ने इसमें भी कर-वृद्धि का प्रस्ताव रखा है। उनके हिसाब से ७८ करोड़ के घाटे की पूर्ति इन प्रस्तावित करों से हो जाएगी। उन्होंने प्रत्यक्ष करों की वृद्धि से २१ करोड़ सालाना का अनुमान लगाया है और शेष घाटे की पूर्ति अप्रत्यक्ष करों की वृद्धि से होगी। उनकी यह आशा कहाँ तक सफल होगी, यह कहना कठिन है। लेकिन शेयर मार्केट को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि प्रत्यक्ष करों में वृद्धि का भार उतना व्यापारियों पर नहीं पड़ेगा, जिसका अनुमान शेयर मार्केट वालों ने किया था। हमारे वित्तमंत्री ने यह भी कहा कि प्रजासत्तात्मक सोशलिज्म का यह पहला चरण है और सिर्फ एक ही साल के बजट को देखने से यह नहीं कहा जा सकता कि देश में समाजवाद का (सोशलिज्म का) अवतार हो गया। समाजवाद तो हर वर्ष क्रियात्मक रूप ही से प्रगट हो सकता है। किसी साल विशेष पर उसका स्वप्न देखना हमारी भूल होगी।

यहाँ तक तो हुई वित्त मंत्री की बात। अर्थ-शास्त्रियों का, कम से कम एक अर्थशास्त्री का मत, इससे भिन्न है। उसका कहना है कि पूँजीपतियों के हित में यह बजट तैयार किया गया। किसका कहना ठीक है, इस झगड़े में हम नहीं पड़ना चाहते। पर यह सही है कि आम जनता, गरीब जनता, पर इसका अधिक बोझ पड़ेगा। जिन वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर-वृद्धि की गयी है, उनमें प्रमुख हैं दियासलाई, तम्बाकू, चाय, इत्यादि। दियासलाई, तम्बाकू और चाय गरीब लोग ही अधिकांश इस्तेमाल करते हैं। वित्त मंत्री ने यह भी कहा कि देश में इनकम टैक्स देने वालों की संख्या बढ़ गयी है और पूँजीपतियों की वार्षिक आमदनी में कमी है और भारत की गरीब जनता का जीवन-स्तर ऊपर उठता है। यह कहना गलत है कि अमीर तो और अमीर होते जाते हैं और गरीब दिन पर दिन अधिक गरीब होते जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१७)

पण्डित व्रजमोहन व्यास

मालवीय जी—भिक्षुक।

मर जाऊँ माँगू नहीं अपने हित के काज।
पर-कारज हित माँगिबो मोंहि न आवे लाज॥

दूसरे के सामने हाथ पसारना!! कितनी घृणित बात है! कोई भी आदमी जिसकी आँख का पानी ढरक नहीं गया है, यही कहेगा। "माँगन भलो न बाप से जो बिधि राखे टेक।" इस कहावत की लोग दोहाई देते हैं। परन्तु दुनिया में सब चीजों के अपवाद होते हैं। यहाँ तक कि ताज़ीरात हिन्द' (Indian Penal Code) में भी बड़े-बड़े जुर्मों के अपवाद 'जेनेरल एक्सेप्शन्स' के नाम से दिये हुए हैं। उसी प्रकार इस माँगने के पाप का भी अपवाद है। साहित्यशास्त्र कहता है—

अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः स एवागुरुसम्भवो धूपः॥

जो बात एक के मुख से गाली लगती है वही बात प्रियजन के मुँह से भली लगती है। उदाहरण के लिए, ईंधन की लकड़ी से निकला हुआ धुआँ दुखदायी होता है और उसे 'धूम' कहते हैं। वही धुआँ जब अगरु की लकड़ी से निकलता है तो सुखदायी होता है और उसे 'धूप' कहते हैं।

महाकवि अकबर इलाहाबादी ने भी कहा है—

खुदा से माँग, जो कुछ माँगना हो ऐ 'अकबर'।
यही वो दर है कि ज़िल्लत नहीं सवाल के बाद॥

इसका एक कारण भी है—

जिसने कुछ एहसाँ किया इक बोझ सर पर रख दिया।
सर से तिनका क्या उतारा, सर पै छप्पर रख दिया॥

भारवि ने कहा है कि 'न भूरिदानं विरहय्य सत्क्रियाम्'—बिना सत्क्रिया के दिया हुआ प्रचुर दान भी निरर्थक है; परन्तु सत्क्रिया की कौन कहै, प्रायः लोग या तो अपना पिंड छुड़ाने के लिये देते हैं या अपने मन में यजमान से 'प्रोनोट' लिखवा लेते हैं कि सनद रहे और वक्त पर काम आवे। कहा गया है कि—

शतेषु जायते शूरः सहस्रे श्रुतपण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा नवा॥

(सौ में एक आदमी बहादुर होता है, हजार में एक आदमी वेद का पण्डित, दस हजार में एक आदमी मंच पर धड़ल्ले से बोलने वाला होता है। परन्तु दान देने वाला मनुष्य होता है अथवा नहीं होता, इसमें सन्देह है।) मालवीय जी ने शास्त्र के इस सन्देह का निराकरण कर दिया। उन्होंने दिखला दिया कि अगर भगवान् की मर्जी हो, तो ऐसा भी हो सकता है कि माँगनेवाला केवल एक हो और देनेवाले सैकड़ों हों।

गदाये-मैकदा, सब छोड़कर, जब भी खुदा की राह लेता हूँ।
यहाँ पर सर पटकने से नहीं मिलता, वहाँ वह आप देता हूँ॥

मालवीयजी माँगने जो निकले तो उन्होंने शंकरजी को आगे कर दिया और आप निमित्त मात्र बन गये।

कोटा के महाराज ने मालवीयजी को श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए लिखा है:—

"मालवीयजी अपने मित्रों से कहा करते थे कि भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें काशी विश्वविद्यालय के रूप में दर्शन दें और उनकी प्रार्थना सुनी गई।"

मालवीयजी के अन्तःकरण से निकली हुई प्रार्थना में इतनी शक्ति थी कि—

खुद-ब-खुद परदे उठे, देखा तेरी तस्वीर थी।
जज्बए-दिल की मेरी, अदना सी यह तासीर थी॥

परन्तु मुझे एक बात का आश्चर्य है। भोला बाबा हमें क्षमा करेंगे। इतना शक्ति-शाली देवमण्डल उनके सामने था। फिर उन्होंने शंकर ही से क्यों प्रार्थना की?

एक बार महाराज रघु को भी बहुत से धन की आवश्यकता पड़ गई थी। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय रघु, विश्वजित यज्ञ में अपना सर्वस्व दान किये बैठे थे उसी समय वरतन्तु के शिष्य, कौत्स ऋषि, गुरुदक्षिणा देने के हेतु १४ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ माँगने के लिए आये। रघु ने उनको मट्टी के पात्र से अर्घ्यजल दिया। मिट्टी का पात्र देखकर कौत्स का माथा ठनका और उनकी निराशा उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो गयी। रघु तुरन्त ताड़ गये और नैराश्य का कारण पूछा। कौत्स ने अपने आने का हेतु बताते हुए कहा :—

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो
गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥

कालिदास—रघुवंश—५—१७

(आपके पास तो कुछ नहीं है, इसलिए मैं अब किसी दूसरे का द्वार खटखटाता हूँ। क्योंकि चातक भी जलहीन बादलों से जल की पुकार नहीं करता। आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ।)

रघु ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि आप चिन्ता न करें। मैं धन का अभी प्रबन्ध करता हूँ। यह कह कर रघु ने अपनी सेना को कुबेर पर तुरन्त चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। युद्ध का डंका बजने लगा। कुबेर ने सुना। उनका नशा उतर गया। रात्रि ही में उन्होंने अयोध्या में सुवर्ण की वृष्टि की। बात की बात में कौत्स को १४ करोड़ मुद्रायें मिल गईं। वे चकित हो गये और बोले—

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भू-
र्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो
मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा॥

कालिदास—रघुवंश—५—३३

(धर्मनिष्ठ राजाओं को पृथ्वी उनकी इच्छा के अनुसार यदि धन दे तो कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु आपका प्रभाव देख कर सचमुच आश्चर्य होता है कि आपने जितना धन कहा उतना धन स्वर्ग से ले लिया।)

परन्तु महाराज रघु में और मालवीयजी में बड़ा अन्तर था। वे थे क्षत्रिय और ये थे ब्राह्मण।

भवभूति कहते हैं—

सिद्धं ह्येतद् वाचिवीर्यं द्विजानां
बाह्वोः वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम्।

(यह बात तो सिद्ध है कि ब्राह्मणों में वाचि वीर्य होता है। बाहु का वीर्य तो क्षत्रियों में होता है।)

परन्तु इस संशय का निराकरण नहीं होता कि उन्होंने भगवान विश्वनाथ को क्यों चुना। ('आप मियाँ माँगते द्वार खड़े दरवेश') भगवान् शंकर तो—

स्वयं पंचमुखः पुत्रौ षडाननगजाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥

(शंकरजी के तो निज के पाँच मुख हैं। उनके एक पुत्र कार्त्तिकेय हैं, जिनके ६ मुख हैं। दूसरे गणेश जिनके हाथी का मुख है और अपने पास सिवाय भूँजी भाँग के लँगोटी तक नहीं है। शंकरजी के लिये इतनी बड़ी गृहस्थी का पालना असम्भव था यदि अन्नपूर्णा उनकी गृहणी न होती।) सांसारिक गृहस्थ इसे अच्छी तरह याद रखे कि उनकी गृहस्थी का बेड़ा पार नहीं लग सकता यदि उनके घर में अन्नपूर्णा ऐसी सहधर्मिणी नहीं है। परन्तु मालवीय जी बड़े चतुर थे। जैसे ही उन्होंने कहा—

पर्यंकग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो-
रन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य।
आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या
शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्न समाधिः॥

—शूद्रक। मृच्छकटिक

(पर्यङ्क पर पद्मासन लगाये हुए, सब इन्द्रियों को ज्ञान से वश में कर, अपने को अपनी ही अन्तरात्मा में सन्निविष्ट कर, अपनी तत्त्व-दृष्टि से (हमारे अभिलषित को) देखते हुए, भगवान् शंकर की, ब्रह्म में लीन समाधि, हमारी रक्षा करे।)

इतना पर्याप्त था। शंकरजी ने सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ओढ़ लिया। उन्हीं दिनों मेरे गुरुदेव, प्रातःस्मरणीय पण्डित बालकृष्ण भट्ट के सुपुत्र स्वर्गीय पण्डित लक्ष्मीकान्त भट्ट ने एक बड़ा सुन्दर 'कार्टून' बनाया था। जलहरी के ऊपर काशी विश्वनाथ स्थापित हैं। मालवीयजी, अपना सम्पूर्ण वस्त्र—पगड़ी, दुपट्टा, पायजामा इत्यादि—पहिने शिव की पिंडी को अपनी बाहों में लपेट कर दृढ़ता से पकड़े हैं और जनता गगरों में धन भर कर पिंडी पर उड़ेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। उस समय काशी विश्वनाथ की पिंडी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आकृति का अनुकरण कर रही थी। 'कार्टून' के अन्तर्गत यही भाव था। मुझे क्या मालूम था कि आगे चल कर मैं मालवीयजी के संस्मरण लिखूँगा वर्ना मैं उसे जुगो कर रखता और आज उसका उपयोग करता। खैर, जो हुआ सो हुआ। मालवीयजी ने शंकर जी के झंडे के नीचे विश्वविद्यालय के लिये धन एकत्र करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि इसका सम्पूर्ण भार उन्होंने विश्वनाथ जी पर छोड़ रखा था तथापि अपने प्रयत्न में उन्होंने कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी थी।

मालवीयजी में भिक्षा माँगने में सफलता प्राप्त करने के लिये दो बहुत बड़े गुण थे। एक तो उनकी वेश-भूषा, दूसरी उनकी मधुर वाणी। इन दोनों का वार विरले ही सम्हाल सकते थे।

संस्कृत साहित्य इसका समर्थन भी करता है—

वस्त्रेण किं स्यादिति नैव वाच्यं
वस्त्रं सभायामुपकारहेतुः।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां
दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः॥

वस्त्र से क्या होता है, ऐसा कभी न कहना चाहिये। जनसमूह में वस्त्र से बड़ा लाभ होता है। समुद्र-मन्थन से जब बहुत से पदार्थ निकले तो उन्हें लेने के लिये देवता लोग दौड़ पड़े। विष्णु भगवान् तो खूब सज-धज कर पीताम्बर पहिने हुए गये। समुद्र ने बड़े आदर से उन्हें लक्ष्मी दी। शंकर जी को नंग-धड़ंग देखकर केवल विष देकर टरका दिया।

मधुर-वाणी तो मालवीयजी का ही हिस्सा था। यह उनकी पैत्रिक सम्पत्ति थी। इससे वे सभी लोगों को मोल ले लेते थे।

कागा काको धन हरै, कोयल काकों देय ?
मीठे बचन सुनाय कें जग अपनो कर लेय॥

संस्कृतशास्त्र भी यही कहता है—

वाङ् माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं
वाक्पारुष्यात्वोपकारोपि नष्टः।
किन्तद्रव्यं कोकिलेनोपनीतं
को वा लोके गर्दभस्यापराधः॥

(वाङ् माधुरी से बढ़ कर संसार में और कोई चीज प्रिय नहीं होती। और कठोर वाणी से किया हुआ उपकार भी विफल हो जाता है। आप ही बतलायें कि कोयल ने किसीको कौन चीज दे दी और गदहे ने संसार का कौन सा अपराध किया ?)

एक बार मालवीयजी स्वर्गीय रायबहादुर साँवलदास कक्कड़ के पास चन्दा माँगने के लिए गये। साँवलदासजी प्रयाग के एक लब्धप्रतिष्ठ रईस थे। उन दिनों, अंग्रेजी राज के उरूज का जमाना था। साँवलदासजी में अंग्रेजों के प्रति खैरख्वाही की मात्रा अत्यधिक थी। फिर भी वे चरित्रवान, अपने सिद्धान्त के पक्के और भले लोग थे। शहर ही में मालवीयजी के पैत्रिक मकान के निकट उनका मकान था। बचपन में मालवीयजी उनसे पढ़ने जाया करते थे, और उन्हें 'उस्ताद' कहते थे। मालवीयजी ने अपने उस्ताद को भी नहीं बख्शा और यद्यपि साँवलदासजी फूँक-फूँक कर पाँव रखनेवाले व्यक्ति थे, तथापि उनसे भी चन्दा माँगने गये। साँवलदासजी एक स्थान पर लिखते हैं :—

"एक दिन जब मैं दफ्तर के काम से जा रहा था वे (मालवीयजी) मेरे पास (चन्दा के लिये) आये, मैं उनकी मनमोहिनी वाणी से इतना बेबस हो गया कि मैंने बिना तनिक भी सोचे-समझे उन्हें तुरन्त चेक दे दिया। बाद में मैं अकसर सोचता था कि मुझे उस पर विचार करने के लिए कुछ समय लेना चाहिए था और इतनी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए थी। परन्तु पण्डितजी के माँगने में कुछ ऐसी जादू की शक्ति थी जो रोकी नहीं जा सकती थी।" साँवलदास जी लिखते हैं—'फिसानये-आजाद' का यह शेर उन पर पूरी तरह लागू होता है :—

असर लुभाने का प्यारे ! तेरे बयान में है।
किसीकी आँख में जादू, तेरी ज़बान में है॥

साँवलदासजी ने उन्हें 'हिन्दुस्तान के सबसे सफल भिक्षुक' की उपाधि दी थी।

ऐसी कितनी ही उपाधियाँ कितने ही आदमियों ने मालवीयजी को दी हैं। वे जहाँ भी माँगने गये वहाँ प्रायः दक्षिणा के साथ उन्हें यह उपाधि 'साँघिता' के रूप में मिली।

शुरू-शुरू में मालवीयजी, इण्डियन प्रेस के भूतपूर्व प्रोप्राइटर स्वर्गीय चिन्तामणि घोष के पास झोली लेकर पहुँचे। घोष महोदय उदार-प्रकृति तो थे ही, उन्होंने विश्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय सम्बन्धी, प्रास्पेक्टस, बुलेटिन इत्यादि छापने का भार निःशुल्क अपने ऊपर ले लिया, कुछ धन भी दिया और साथ में 'बैगर-जेनेरल' की उपाधि भी।

सेन्ट जान्स कालेज के कैमिस्ट्री के प्राध्यापक श्री के० सी० पाण्ड्या ने मालवीयजी को 'Prince of beggars' 'भिक्षुकराज' की पदवी दी है। उनके सन् ३२ के एक लेख का यही शीर्षक है। उसमें वे लिखते हैं :—

.....But not many realise that within only the last two decades we have given to the world two master-mendicants who have easily dwarfed all others even as our Himalaya has dwarfed all other mountains.

Undoubtedly one of the two is the Mahatmaji..... There is only one other of whom we can think by his side. And that is our Pandit Malaviya Jee. Like every true master of the craft he has his own style, his technique..... He almost disdains small fishing..... He would not worry small men but would take care to get in his net Rajas and Maharajas, merchant princes and Marwari millionaires.....

His manner and 'modus operandi' are necessarily unlike those of the half-clad Fakir. The U. P. mendicant must naturally be more courtly, more polished and even magnificant in his appeals. His scale is admirably sustained by his spotless white clothing, by a noble figure and a soft captivating voice."

(परन्तु बहुतों ने इसका एहसास नहीं किया है कि पिछले २० वर्षों के भीतर हम लोगों ने संसार को दो सर्वोत्कृष्ट भिक्षुक दिये हैं, जिनके सामने और सब बहुत छोटे जँचते हैं जिस प्रकार हिमालय के सामने और सब पहाड़ बौने से लगते हैं।..... निःसन्देह उनमें से एक महात्माजी हैं.....हमारे ध्यान में केवल एक ही व्यक्ति और है जो उनके बगल में रखा जा सकता है। और वे हैं हमारे पण्डित मालवीयजी। प्रत्येक कला के आचार्य की भाँति उनका अपना एक ढंग था, अपनी एक निराली पद्धति। वे छोटे आदमियों को परेशान नहीं करते थे पर इसका वे हमेशा ध्यान रखते थे कि राजे, महाराजे, व्यापारिक, जगत-सेठ और करोड़पति उनके जाल में फँसें।

जाहिर सी बात कि उनका ढंग और कार्यप्रणाली, 'अर्धनग्न फकीर' से भिन्न होगी। उत्तर प्रदेश के भिक्षुक के लिये यह स्वाभाविक था कि वह भिक्षा माँगने में अधिक शिष्ट और अधिक परिमार्जित ही नहीं अधिक शानदार भी हो। उनका यह ढंग, उनके नितान्त निर्मल श्वेत वस्त्र, भव्य शरीर और मीठी मनोहारिणी वाणी से, बड़ी खूबी से सन्तुलित था।)

एक दिन की बात है। मालवीयजी नियमानुसार अपने कमरे में तेल मालिश करा रहे थे। वे कुछ चिन्तित से देख पड़ते थे। पास में बैठे हुए एक मित्र ने चिन्ता का कारण पूछा। मालवीयजी ने कहा "मुझे एक लाख रुपया आज ही चाहिए। इंजीनियरिंग कालेज के प्रिन्सिपल किंग साहब की माँग है। परन्तु रुपया नहीं है। सोचता हूँ कहाँ से जुटाऊँ।" इतने में तत्कालीन प्रो-वाइस चांसेलर आचार्य ध्रुवजी आये और मालवीयजी के हाथ में एक तार रख दिया। वह तार महाराज पटियाला का था। उसमें लिखा था कि महाराज पाँच लाख रुपया इंजीनियरिंग कालेज के लिये दान देते हैं। तार पढ़ कर मालवीयजी का कण्ठ भर आया और आँखों में आँसू आ गये। बोले 'मेरे लिए भगवान् को यह कष्ट करना पड़ा' और वह तार किंग साहब के पास भेज दिया।

एक बार राजा बलदेवदास बिड़ला ने कहा कि वे गङ्गाजी में पैठ कर कुछ दान किया चाहते हैं पर शर्त यह है कि गङ्गाजी में पैठ कर कोई ब्राह्मण उसे ले। मालवीय जी को इसकी खबर लग गई। वे तुरन्त तैयार हो गये। मालवीयजी के साथियों ने इसका बड़ा विरोध किया। काशी के पण्डितों ने आपस में बैठकर मालवीयजी को भला-बुरा कहा। उन्हें विमुख करने के लिए उनके पास लोगों का ताँता बँध गया। परन्तु मालवीयजी टस-से-मस न हुए। बिड़लाजी ने जब सुना कि मालवीयजी गङ्गाजी में पैठ कर दान लेंगे तो अवाक् रह गये। परन्तु मुँह से उनके बात निकल चुकी थी। उन्होंने यजमान के अनुरूप धन का आकार कर दिया। राजा और भिक्षुक दोनों ही गङ्गा में पैठे। दान लेने के लिए मालवीयजी उनके सामने आये। ऐसा लगता था जैसे विष्णु भगवान् वामन का रूप धर कर राजा बलि के सामने खड़े हों। राजा बलदेवदासजी ने कुशा लेकर मालवीयजी के हाथ में चेक रख दी। ठीक रकम तो याद नहीं, परन्तु लाख के ऊपर अवश्य थी। मालवीयजी ने राजा साहब को आशीर्वाद दिया, और बिड़लाजी से मिले हुए धन पर थोड़ा सा अपना धन मिलाकर उसी समय गंगाजी के भीतर विश्वविद्यालय के नाम संकल्प कर दिया। उपस्थित व्यक्तियों के मुख से सहसा 'साधु साधु' निकल पड़ा।

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने ठीक ही कहा है :—

भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी,
पूज्य पुरोहित थे हम सब के, रहे सदैव समाधानी।
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं, किन्तु कौन तुमसा दानी ?
अक्षय शिक्षा-सत्र तुम्हारा हे ब्राह्मण-ब्रह्मज्ञानी !
स्वयं मदन-मोहन की तुममें तन्मयता है समा गई,
कल्याणी वाणी जनजन के हित में धूनी रमा गई।

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कविता में प्रेम-चित्रण

श्री रमाशंकर तिवारी, एम० ए०

(क)

अज्ञेय ने प्रेम को मनुष्य की नैसर्गिक भूख माना है। खग-युगल के प्रणय को देख कर वे यह दुःख-पूर्ण उद्गार व्यक्त करते हैं—

"हाय तुम्हारी नैसर्गिकता। मानव-नियम निराला है—
वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपानेवाला है।"

'क्षण के जीवन' में तन्मय होकर प्रणय-भोग का आनंद लूटने की सलाह भी कवि ने विहग प्रणयि-युग्म को दी है—
खग-युगल ! करो सम्पन्न प्रणय, क्षण के जीवन में हो तन्मय।"

उसका यह 'क्षण-वाद' प्रकृतिवाद को प्रोत्साहन देने वाला है—

"आओ, बैठें
इसी ढाल की हरी घास पर।"

क्षण के जीवन में तन्मय हो प्रणयोपभोग करना उमर खैय्यामी प्रवृत्ति से प्रायः मिलता-जुलता समझा जाएगा। कुँवरनारायण की 'निजी वसंतः अंधकार' शीर्षक कविता में यही मनोदृष्टि मुखर हुई है—

"प्रिय इन आँखों के नीले एकान्त में
प्यार के अनकहे भावों को उमगने दो,

जब यह छोटा-सा उत्सव बुझ जाएगा,
साथ इस समय की बहती हुई धारा में

युगों से यही एक परिचय है जीवन का
प्राणों से प्राणों तक
प्रति-क्षण जो आया है।"

'छोटा-सा उत्सव' और 'क्षण के जीवन' में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। जीवन-प्रदेश में दो जुहियों के समान फूलने तथा महकने में प्रणय की वह स्वीकृति सन्निहित है जो कर्म-संकुल संसार से मुँह मोड़ कर, विवशता-जन्य आनन्द की मुद्रा में भोग की ओर, एकान्त भाव से प्रवृत्त होती है। रामानन्द 'दोषी' की 'कौन जाने' शीर्षक कविता में "कल होने वाली प्रलय" की चिन्ता छोड़ कर, तात्कालिक प्रणय-भोग के लिए प्रेमिका को आहूत किया गया है, क्योंकि—

"आज का विश्वास ही विश्वास है
आज का इतिहास ही इतिहास है
कौन जाने पुण्य क्या है, पाप क्या,
क्या पता वरदान क्या, अभिशाप क्या !"

उपर्युक्त उद्धरणों के आलोक में यह समझा जा सकता है कि नई कविता का 'क्षणवादी' दर्शन प्रेम के राज्य में प्रायः तात्कालिक भोग की उसी मनोदृष्टि के रूप में प्रतिफलित हुआ है।

(ख)

किन्तु, प्रेम की दृष्टि कोई भी हो, एक बार जब प्रेम का अधिशासन स्वीकृत हो जाता है, तब प्रेम का घोर वासनात्मक स्वरूप बहुत-कुछ घिस-घिसा जाता है और वह एक नितान्त गहरी मनोवृत्ति के आयाम ग्रहण कर लेता है। नई कविता में इस जाति का परिष्कृत प्रेम-चित्रण भी उपलब्ध होता है। अज्ञेय उसी मनोभंगी में 'रूप के पिंजरे' में से उत्पन्न होने वाले 'मन' की प्रशस्ति का गान करते हैं—

"देह-वल्ली रूप को एक बार बेझिझक देख लो। पिंजरा है ? पर मन इसीमें से उपजा। जिसकी उन्नति शक्ति आत्मा है।"

इसी मनोभंगिमा से अनुप्राणित होकर, वे सहज अनुराग की भावना से पुलकित हो उठते हैं—

"बाहु मेरे घेर कर तुमको रुके रहे
दो लताओं के प्रलंबित अंकुरों से।"

इस 'अहं की अभिव्यंजना' के नहीं जगने का विशेष महत्त्व समझा जाना चाहिए क्योंकि इसके पूर्व एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सामर्थ्य-दर्प से उन्मत्त' व्यक्तित्व नारी के ऊपर यों टूट पड़ा था—

"तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान
तुम हँसो, कह दो कि अब उत्संग वर्जित है।"

अस्तु। प्रिय के संमुख अहं के विसर्जन की यह भावना सर्वेश्वरदयाल ने अधिक स्पष्टतापूर्वक यों अभिव्यक्त की है—

"अहं से मेरे बड़ी हो तुम!
क्योंकि मेरी शक्तियों की
हर पराजय-गीत की
अंतिम कड़ी हो तुम।....."

वस्तुतः 'अहं की जयमाल' एक-बार 'प्यार के कर' में डाल देने से प्यार 'बौना' नहीं रह जाता, अपितु सर्व-समर्थ बन जाता है। तभी तो, सबेरे-सबेरे प्रिय का नाम लेने से जीवन में सूर्य-रश्मियों का आलोक बिच्छुरित हो जाता है और 'नये बीज' बोने तथा नई फसल उगाने की प्रेरणा उत्पन्न होती है—

"मेरा कर्म
मेरे गले का जूआ नहीं,
वह जोती हुई भूमि बन जाय
जिसमें मुझे नया बीज बोना है।
गाते हुए गान गाते हुए मंत्र गाते हुए नाम :
सबेरे-सबेरे तुम्हारा नाम।"

नई फसल, जो 'नई इंसानियत' होगी, प्रिय के प्यार की ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रसूति होगी। गिरिजाकुमार के लिए प्रिया की गोरी बाँह मनुजता की ध्वजा बनेगी और उसके अधर की छाप 'नया सूरज।' तब कवि वसुधा पर फैलती जाने वाली 'असुर-संस्कृति' के संहार के लिए शस्त्र-ग्रहण करेगा और उसकी यह प्रार्थना सार्थवती होगी—

"फिर कटीली दृष्टि-रंजित प्यार दो
आदमी की शक्ति का आधार दो.....।"

इस प्रकार का प्रेम गहराइयों में उतरने का अभिलाषी है तथा कूल से सदा शंकित रहता है—"प्यार की गहराइयों में डर नहीं किन्तु डर तो है हमेशा कूल से गहन जल की धार पर जो खेलती नाव डूबती किनारे भूल के।"

जब प्रेम अतल गहराइयों में जड़ें जमा लेता है, तब उसकी प्रकृति 'दर्द' की बन जाती है क्योंकि दर्द में ही दृढ़ता है, चिरन्तनता है। भारतभूषण अग्रवाल प्रेमिका को उपालंभ देते हैं कि उसने उन्हें उनकी अंतिम भेंट में 'दर्द के फूल' दे दिये जिनको उन्होंने 'आँसुओं से सींचा है, आशाओं से पाला है, सपनों में बसाया है, सिर-माथे स्वीकारा है।' तौ भी, कवि का एक मधुर प्रश्न है—

"पर एक बात बताओ: क्या दर्द के उन बीजों के सिवा उस दिन तुम्हारे पास ऐसा कुछ नहीं था जो तुम मुझे दे सकती और जो अमर होता?"

वस्तुतः अमर होने वाली वस्तु 'दर्द' ही है। वह 'अपरिमित ज्वार' जो तन को तोड़ता-मरोड़ता है, केवल सतही है और उसका प्रेम के प्रकृत दर्द से बादरायण संबंध भी नहीं जोड़ा जा सकता। संभवतः 'प्यार' शब्द भी उस दर्द की व्याख्या नहीं कर सकता। वह 'अतल आघात से भी तीव्र, अतीन्द्रिय आँधियों से भी अधिक उद्दाम, प्राणदायिनी ज्वाल है' जो सुर-सरिता के समान फूट कर बह निकलने के लिए आतुर है—

"खोल दो, मेरी शिरायें खोल दो;
तोड़ दो, मेरी परिधियाँ तोड़ दो;....."

दर्दीली प्रकृतिवाला प्रेम, अतएव, वासना से अतीत वस्तु है जिसके निकट 'जुही के फूलों के तन' अथवा 'गुलाबी जिस्म' का कोई तात्विक महत्त्व नहीं रह जाता। केवल 'तन का रिश्ता' भी जब पवित्र स्नेह-दान करता है और 'मांसलता' से ऊपर उठ जाता है,

"अब यह जूही के फूलों-सा तन नहीं रहा
पर इसमें पहले से कहीं अधिक जादू है।"

तब उस प्रेम का मूल्य क्यों कर आँका जा सकता है जिसमें 'चमकती आँखों' से छल-छल झरने वाले अमृत के झरने में नहा कर, प्रेमी को समस्त निधियाँ मिल जाती हैं और वह ('अग-जग' में) जीवन एवं उल्लास का विकीरण करने लग जाता है?—

"मैं बादल-सा उमड़ूँगा
मरुस्थल पर छा जाऊँगा.....।"

(ग)

प्रेम के संयोग-पक्ष का चित्रण भी नई कविता में हुआ है, यद्यपि मिलनोपभोग के गहरे चित्रों का अभाव ही परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षित होता है । प्रणय का अखंडित रस नए कवि-प्रेमी आस्वादित करने में असमर्थ से प्रतीत होते हैं । उनके तन एवं मन में एक संघर्ष मचा हुआ है । तन 'बाहों के फूलों' जैसे बंधन के आकुल परिरंभण के लिए व्यग्र है जबकि मन में 'जहरीले अजगर जैसे प्रश्न-चिह्न एक-एक पसली को जकड़ लेते हैं ।' आधुनिक प्रणय की यह एक विचित्र विरोधाभास वाली अवस्था है जिसमें 'पिछले फूलों की रसवंती आग' पीते हुए भी, प्रेमी प्रणय का आस्वाद नहीं ले पाता । यह 'नया रस' युग की देन है—

"प्रभु
इस रस को
इस नये रस को क्या कहते हैं.... ।"

प्रेम की यह मखौल है जिसमें प्रेमी तन-मिलन की लालसा सँजोए हुए भी, मन-मिलन की सिद्धि नहीं कर पाता । मध्यकालीन कवि मन-मिलन को, तन-मिलन के अभाव में, कोई महत्त्व नहीं देता था, किन्तु, आज का कवि मन-मिलन को ही प्रेम की वास्तविक कसौटी मानता है ।

कुछ इसी मनोमुद्रा में कवि वर्त्तमान से प्यार करने और उगती 'नव ऊषा का शृंगार' करने के लिए लालायित है तथा 'कुछ जाहिर, कुछ चोरी-चोरी' कस जाने वाली रेशम-डोरी को शिथिल करने के लिए उद्यत हो जाता है । जब प्रिया की आँखों का काजल कटु अंतर-पीड़ा से गल-गल कर, इन 'नरम गुलाबी गालों पर' आँसू के साथ बह जाएगा, तब वह उसे अपने आलिंगन में भर कर, सुहाग-बिन्दी देने के लिए कल आएगा—

"लेकिन पहले, निज बाहों का बिस्तार मुझे कर लेने दो !
इस वर्तमान से प्यार मुझे कर लेने दो !"

'गीले नैन, सिहरते बैन, बिखरती अलकें', जब प्रेमिक को बाँधने की चेष्टा करती हैं, तब वह उस 'रूप की रानी' को इस प्रकार उत्तर देता है—

तुम मधु के सागर ले आईं, अहसा नबड़ा—
उनकी तुलना में लेकिन मेरी प्यास बहुत..."

वर्तमान यदि आकर्षक भी हो और रंगीन मौसम में उसके विश्वास फलीभूत होने से भी दिखाई दें तथापि भविष्य के विषय में कवि शंकालु है और इसी कारण वह प्रेयसी से आँखें मिलाना भी नहीं चाहता—

"किन्तु जब झकझोरने को कल मुझे आँधी चलेगी
कल्पना की सहज दुलहन जबकि असमय ही जलेगी..."

अतएव, प्रणय के खंडित रस की अनुभूति की व्यंजना नई कविता का एक नया स्वर है ।

तथापि, मिलन के सुरम्य चित्रों का इस नई धारा में 'अभाव' है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । प्रेमिका का मिलन प्रेमिक के मन पर ऐसा चमत्कारी प्रभाव डालता है कि उसकी चेतना दीप में नई प्रकाश-रेखा, चाँद में नई किरण फूटती अनुभव करने लगती है । सरस, सलज साँवरी स्वप्न-सेज सजा रही है; प्रेमी की साँस में सुहासिनी सिहर-सिमट कर समाती जा रही है; माँग में सुहाग का सिन्दूर-बिन्दु चमक उठा है; केशों से गन्ध फूट निकली है और वह नवोढ़ा प्यार की पीर में विभोर हो उठी है । किन्तु, वह मिलन भी क्या अनुपम रहा जिसमें अधर तो हिले पर मौन मुखर न हो सका—

"अनभ्र रूप-कुंज में असंख्य पुष्प खिल उठे,
कि जब सुवास-सिक्त तव अधर अधीर हिल उठे ।"

भीतर का प्रेम अधरों पर आना चाहता था । उस आन्तरिक उद्वेलन का प्रकाश प्रेमिका की बाल-रूपाकृति में फूट पड़ा, असंख्य विक्रियाएँ (अनुभूतियाँ) रूप सरोवर में हिलोरें लेने लगीं । अधर हिले तो जैसे बन्दी भाव कारा के होठ-द्वार पर आकर बाहर निकलना चाहते हों । परन्तु, मौन को वाणी नहीं मिल सकी, उसी प्रकार जैसे अँगुलियाँ तो चलती रहें किन्तु वीणा के तार स्पन्द-विहीन बने रहें । निश्चय ही, यह मिलन महान् है जिसे देख कर शब्दधर्मी गगन भी विस्मित हो उठा ! प्रस्तुत चित्र अपने ढंग का निराला है जिसमें यथार्थ कल्पना के रंगों में नहा कर, अभिनव माधुर्य से समन्वित हो गया है । संयोग शृंगार के कितने अनुभवों एवं व्यभिचारियों की सूक्ष्म छायाओं का पंचामृत इस चित्र की कनक-कटोरी में उतर आया है संयोग किस नए हृदयग्राही स्वरूप में यहाँ सम्पन्न हुआ है, यह रसाभ्यासियों के लिए मधुर खोज का विषय है ।

प्रेयसी की बातें कवि को कैसे प्रभावित करती हैं, उसका एक चित्र भारती की एक कविता में यों अंकित हुआ है : "सपनों में डूबे से स्वर में जब तुम कुछ भी कहती हो, तब मन जैसे ताज फूलों के झरनों में घुल जाता है, जैसे गन्धर्वों की नगरी में गीतों से चंदन का जादू-दरवाजा खुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। बातों पर बातें ऐसी जमती जाती हैं जैसे जूही के फूलों पर जूही के फूलों की परतें जमती जाती हैं। दोनों उन्हें मन्त्रों में बंध जाती हैं और दिन की ढलती रेशम-डोरें थम जाती हैं। तब खामोशी छाती है, एक लहर आती है और सहसा दो नीरव होंठ दो कँपते होंठों से सट जाते हैं।"

बातें करते-करते होंठों का मिल जाना एकदम तर्कातीत है। अ-स्वाभाविक केवल एक उपमा है : बातों पर बातों के जमते जाने के लिए फूलों पर फूलों की परतें जमने की कल्पना दूरारूढ़ है, अ-यौक्तिक है। भारती को जुही के फूलों से परम अनुराग है, यह उनकी नई कविताओं से प्रकट है। लेकिन, फूलों की परतें जमाना उचित नहीं है—पराग की परतें तो जमाई जा सकती थीं और उनकी स्निग्धता की प्रतीति से प्यारी की वाणी की मृदुता एवं मसृणता का आभास दिया जा सकता था। फूलों की परतें जमाने में कवि-कल्पना लचर हो गई है।

भारती प्रणय-संबंध में शायद 'तन के रिश्ते' को ही महत्व देते हैं। सुतरां, उनकी प्रेयसी दूसरों की प्रेयसी भी हो सकती है। चैत का एक दिन उन्होंने अपनी वल्लभा के सामीप्य में व्यतीत किया है; कैसे, सुनिये : "बेसुध तुम्हारे पास बैठे हुए सखी ने तुम्हारी मुक्त वेणी को अंगुली में बार-बार प्यार से लिपटा कर अनबाँधे छोड़ दिया। निंदियारी आँखों से बार-बार देखने की कोशिश की—देखा नहीं; बौर-लदी नाजुक टहनी-सी इस देह की हल्की थरथराई को केवल महसूस किया, जाना नहीं; शाम हुई; केवल तुम्हारी रूप-गन्ध में पगा मन टूट-टूट रह-रह अलसाने लगा; मैंने कुछ नहीं किया, धीमे से तुम्हारे माथे पर झुके रूखे हठीले एक कुन्तल को होंठों से सँवार दिया।"

प्रेमिका की मुक्त वेणी की माया में दिन-भर फँसे रहना तथा शाम को जब मन प्रिया की रूप-गंध में पग कर अलसाने लगे, तब एक हठीले कुन्तल को होंठों से सँवार देना—निश्चय ही यह एक नितान्त संयमी प्रणयी का चित्र उपस्थित करता है। लेकिन, 'मैंने कुछ नहीं किया' के पीछे एक अभिप्राय है जो अंतिम पंक्तियों में "कनक-कलई" के समान उभर आया है—

"सुनो, सच बतलाना, क्या तुमको कभी-भी, किसीने भी इतना उजला, कोमल, पारदर्शी प्यार दिया ?"

कवि-द्वारा प्रदर्शित प्यार 'उजला' है क्योंकि उसमें मांसल भोग का कलुष नहीं; 'कोमल' है क्योंकि उसमें दैहिक संसर्ग की कोई कठोरता नहीं; 'पारदर्शी' है क्योंकि उसमें विशुद्ध साहचर्य के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं। उस प्रकार की व्याख्या से ही 'मैंने कुछ नहीं किया' का सामंजस्य बैठ सकता है। किन्तु, साथ ही, किसीने भी 'उसे वैसा प्यार नहीं दिया है', उससे प्रकट होता है कि वह बहुतों की प्रेमिका है। पूरी कविता की स्पिरिट से जान पड़ता है जैसे वह 'सामान्या मुग्धा' का आधुनिक 'सभ्य' संस्करण हो जिसके प्रेम को जीतने के लिए कवि ने दिन-भर बैठ-बैठे, यह सम्पूर्ण 'प्लैटानिक' नाटक किया हो—देह की हलकी गरमाई को महसूस करने, हठीले केश को होंठों से सँवारने तथा स्पष्ट यह कहने में 'कि मैंने कुछ किया नहीं', कवि की अतृप्त वासना 'उजला', 'कोमल' तथा 'पारदर्शी' नकाब पहने हुए भी, बाहर झाँक ही जाती है।

भारती ने मिलन-चित्रों में दूरारूढ़ क्लिष्ट-कल्पना का बहुधा सहारा लिया है। 'फूल, सागर, सीपी' ऐसी ही कविता है। प्रेमिका के हाथों में लाल फूलों का एक गुच्छा देखने से कवि को इस कविता की प्रेरणा मिली है। पहले भाग में फूल के अधखिले अन्तस् को 'रंगीन, लहराता अतृप्त सागर' कहा गया है और प्रेमिका की सुकुमार अंगुलियाँ तट मानी गई हैं जिनसे टकरा कर, वह समुद्र बारबार अपने में वापस लौट जाता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि नव-प्रस्फुटित-यौवना प्रेयसी के अन्तस् में भाव का सागर लहरें मार रहा है, किन्तु, वह जैसे जान-बूझकर, अपने कोमल करों से दबा कर, उसे अभिव्यक्त नहीं होने देती। प्रेमिका अनूढ़ा है, इसलिए शायद उसमें लज्जा का अंश अधिक है और उसके लाल सीपी-जैसे होंठ उसके हृदय-सागर में उठने वाले कातर हिलकोरों से रह-रहकर काँप उठते हैं—जैसे उसके भाव होंठों पर आकर, वाणी द्वारा प्रकाश पाना चाहते हों, किन्तु, वह नव-तरुणी ऐसा नहीं कर पाती। कवि उसकी विवशता का यह अनुवचन करता है—

"क्या यह उभड़ता, अमर्यादित, व्याकुल ज्वार इन पतले होंठों में बँध कर सिमट जाएगा.....।"

स्वाती की बूँद सीप में पड़ कर मोती बन जाती है। यहाँ भावों का 'व्याकुल ज्वार' होंठों की सीप में बँध कर, पीड़ा की गहराई में डूबने से मोती बन जाएगा। जब भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी द्वारा अभिव्यक्ति नहीं पाएँगे, तब वे अन्तस् की गहरी पीड़ा में पलेंगे और बहुमूल्य चमकीले मोती बन जाएँगे। ये मोती प्यार के मोती होंगे जो प्रेमिका के हृदय-तल में पलेंगे, पकेंगे। सागर, सीपों में बँधेगा! यह भी एक प्रकार की 'उलटवाँसी' ही है जो प्रेम के 'मर्मियों' के समीप मार्मिक मूल्य रखती है। कल्पना की विच्छित्ति यों अधिक निखर जाएगी: नव-यौवना अधाखिला कुसुम, कुसुम के सुकुमार अन्तम् में उमड़ता सागर और वह सागर स्वयं अपने तट पर रहने वाली सीपियों में बँध गया!

कविता के दूसरे भाग में 'भीगी मणियाँ', 'खारा फेन' तथा 'जल-परी का लज्जा भीत कम्पन' का परिगणन किया गया है जो सागर के रूपक को पूर्ण करने के निमित्त शायद आवश्यक समझे गए; किन्तु, उनका कोई सु-संगत अर्थ निष्पन्न नहीं होता। देखिये—

"कुछ भीगी मणियाँ, कुछ आँसूँ-सा खारा फेन, किसी निर्वसना जल-परी का लज्जा-भीत कम्पन नियति के टुकड़ों-सा छूट-छूट जाता है मुट्ठी में तुम्हारी।"

'नियति के टुकड़ों' की कल्पना नये कवि की नयी शब्द-साधना का प्रतीक है जिसका अभिप्राय संगत ढंग से सम्प्रेष्य नहीं है। पुनः 'घूट-घूट जाता है' भी विचित्र प्रयोग है क्योंकि इसके पहले 'मणियाँ', 'फेन' और 'कम्पन' तीन पद हैं जो यहाँ बहुवचनान्त कर्त्ता होंगे एक वचनान्त क्रिया को और, यदि केवल 'कम्पन' को कर्त्ता माना जाय, तो फिर 'मणियाँ' तथा 'फेन' का कौन-सा व्याकरणीय संबंध उपपन्न होगा? भारती की यह पूरी कविता दुष्कल्पित (ill conceived) मानसिक व्यायाम है जिसमें एक 'रमणीय अर्थ' के प्रतिपादन के लिए विचित्र अभिव्यंजना-पद्धति अपनाई गई है। मदन वात्स्यायन ने बिहाग राग में एक ऐसा संभोग-चित्र अंकित किया है जिसमें पत्नी को विषैले 'गेहुँअन साँप' से उपमित किया गया है जिसके शरीर एवं बाजी से मद की लहरें निकलती हैं और जिसने नयनों में टोना तथा अंगों में तरंग भर कर, रात को प्रियतम की राह रोक ली तथा—

"लिपट गई अँग-अंग लपट-सी, गोरी मोरी गेहुँअन-साँप अधर-परस-आकुल मन मेरा आँगन घर न बुझाय...।"

पुराने कवि प्रिया के परस्पर लिपटने के बिम्ब को तमाल-तरु तथा लता के लिपटने का उल्लेख कर, स्पष्ट किया करते थे। नया कवि गेहुँअन साँप के लिपट जाने में अधिक अर्थ-देखता है—शायद निर्जीव वल्लरी न तो मद की लहरें निकाल सकती थी और न प्रियतम की राह ही रोक सकती थी। पूरा चित्र एक सर्वथा नवीन व्यंजना से गर्भित हो गया है।

प्रेयसी को देख कर एकान्त विवशता में संयम क्योंकर टूट जाता है इसका एक चित्र दुष्यन्त कुमार ने यों अंकित किया है—

"हिल उठा अचानक संयम का वट-वृक्ष
अस्फुट शब्दों की हवा
तुम्हारे अधरों से क्या बही.....।"

हर क्षण पर कोई मुहर नहीं होती; प्रेमी के लिए कोई 'लक्ष्मण-रेखा' नहीं होती; 'दिल मुसकानों को नित्य झेले नहीं जा सकता'—ये सभी अत्युक्तियाँ प्रणय-राज्य के मार्मिक तथ्यों की विवृति करती हैं जिन्हें कवि ने बड़े गंभीर भाव से विज्ञप्त किया है।

उसी गंभीर मुद्रा में मार्कण्डेय ने प्रेमिका के 'मिथ्या बोल' का अनुमोदन किया है।' 'झूठ की भी अपनी एक साधना है'; 'तथ्य का वह रूप भारी झूठ है जो युग-युगान्तर से आदमी को सन्त बनाता आया है। प्रेमिका के झूठ में अदम्य जिजीविषा के बीज छिपे रहते हैं; अतएव कवि उसे सलाह देता है—

"पर तुम्हारे झूठ में है आदमी की चाह.....।"

व्यावहारिक जीवन में प्रेम बड़ा कोमल एवं दुर्बल होता है। अविवेक-पूर्ण आचरण से उसका सुकुमार पौधा सूखने लगता है। बिहारीलाल ने इसे 'सुहृदता-वारि' से सींचने की सलाह दी है। नए कवि का प्रेम शायद अत्यंत क्षीण-क्षाम, अत्यन्त नाजुक है और वह जीवन के साधारण प्रपंचों का आघात भी नहीं सहन कर सकता। अतएव, वह अपने को कभी दुहरा नहीं सकता, जब उठा तब उठा और उचित प्रतिदान नहीं मिलने पर जब वह दबा तब शायद सर्वदा के लिए दबा ही रह जाएगा—

"प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयम् को दुहरायेगा?
नहीं! शायद नहीं.....।"

प्यार की यह सुकुमारता महसूस कर, एक कवयित्री 'रोज-रोज की प्रेम और तकरार की नुमाइश' से घबड़ा जाती हैं और प्रिय से अनुरोध करती हैं कि चाहे तुम प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो या न करो, केवल दो-चार क्षण मीठी-मीठी बातें बोल दो—

"क्योंकि दो-चार क्षण
शब्दों के जादू में
कितना भला है प्रिय
कुछ खो-सा जाना !
कि क्षण दो चार
कुछ मीठा-मीठा बोल दो
क्योंकि उन क्षणों का करने में इन्तजार
मेरी जिन्दगी के दिन
कटते जाएँगे
एक सुखद स्वप्न से।"

प्रवत्स्यत्पतिका प्रेमिका के चित्र सदा अनूठे माधुर्य से मंडित हुआ करते हैं। सर्वेश्वर दयाल ने 'सुहागिन का गीत' शीर्षक कविता में एक ऐसी ही सुहागिनी का सुकुमार चित्रण किया है। पत्नी 'बालम' को तत्काल चले जाने से रोकती है। वह हिन्दू गृहिणी है; अतएव, वह पहले दीप जलाएगी, तुलसीजी की आरती सजाएगी, मंदिर में घंटे-घड़ियाल बजेंगे, पूजा की सँझौती वह गाएगी, उत्तर दिशा में ध्रुवतारा उगेगा, पथ पर जल-फूल-दीप वह रखेगी, ठाकुरजी का चरणामृत वह लाएगी; तब बालम के प्रस्थान की वह अनुमति देगी। अभी तो उदासी का आलम छाया हुआ है और वह बहुत अनमनी है।

पुनः प्रेमिका काली-काली रात की याद प्रिय को कराती है, जब वह डरी-डरी सी हो रही है और अपने चतुर्दिक बेबसी का आलम छाया हुआ देखती है। अतएव, वह सुकुमारी प्रिय से निवेदन करती है कि पहले बेले की कलियाँ खिल जावें, रजनी-गन्धा से सुरभि का ज्वार फूटने लगे, घर के आँगन में चाँद के तनिक ऊपर आसमान में उठने से रोशनी चली आवे, तनिक वह घर का कपाट बन्द कर कमरे का तनिक बुझा ले, तब कहीं प्रिय जाने की सोचे—

"कर लेने दो तुम मुझको बन्द कपाट जरा
कमरे के दीपक को पहले सो जाने दो,
यह काली-काली रात बेबसी का आलम,
मैं डरी-डरी-सी, चले नहीं जाना बालम।"

उसके बाद, प्रेमिका ठंढी रात और उनींदे-से आलम की याद दिलाती है और यह भी निवेदन करती है कि वह नींद-भरी-सी हो रही है। अतएव, उस अवस्था में उसे छोड़ कर प्रिय का चला जाना अनुचित होगा, निष्करुण होगा। 'उनींदी प्रिया को छोड़ कर चले नहीं जाना', यह भी एक तुक तर्कना है जिसे सुहागिन नारी ही प्रस्तुत कर सकती है। किन्तु, ये सभी बातें गौण हैं, मुख्य अनुरोध यही है कि प्रणय हो जाने पर ही प्रिय का घर छोड़ना उचित होगा—

"यह ठंडी-ठंडी रात
उनींदा-सा बालम,
मैं नींद-भरी-सी
चले नहीं जाना बालम।
चुप रहो जरा सपना पूरा हो जाने दो,
घर की मैना को जरा प्रभाती गाने दो,
खामोश धरा, आकाश दिशाएँ सोयी हैं,
तुम क्या जानो क्या सोच रात-भर रोयी हैं ?
ये फूल सेज के चरणों पर धर देने दो,
मुझको आँचल में हर सिंगार भर लेने दो,
मिटने दो आँखों के आगे का अँधियारा,
पथ पर पूरा-पूरा प्रकाश हो जाने दो।
मैं नींद-भरी सी चले नहीं जाना बालम।"

प्रस्तुत कविता में ऐसी कोमल-मना पत्नी का चित्र अंकित हुआ है—जो प्रवास में जानेवाले पति को केवल रात-भर अपने सेज का बन्दी बनाए रखने के लिए ललकती है। किन्तु, उसकी मनोभावनाओं में एकान्त साहचर्य-सुख की ही सिहरन वर्तमान नहीं है। दीप जलाने, तुलसी की आरती सजाने तथा ठाकुरजी का चरणामृत लाने में इस सुहागिनी की प्रिय-मंगल-कामना मुखर हो गई है। उदासी एवं विवशता के आलम की उसकी अन्तस्प्रतीति में व्यंजना यह है कि वह एकान्त पति-परायणा गृहिणी है जिसके लिए प्रिय-विश्लेष संसार के समस्त सुखों का निरास करने वाला सिद्ध होगा। रात के कपाट बन्द करने तथा दीपक के बुझ जाने और तनिक सपना पूरा हो जाने देने में उसके सौभाग्य-सुख के विलास की जो प्रशान्त व्यंजना छिपी है, वह शील एवं संयम के लिहाफ में लिपटी होने पर भी, उस अनमनी प्रेमिका के व्यथित मनोदेश में एक सुकुमार आलोक-रश्मि प्रक्षिप्त कर देती है। सकसेना की वर्तमान रचना में भाव का सौन्दर्य, दंपति के सौन्दर्य से मिलकर, पूरे चित्र को नितान्त वलस्पर्शी बना देता है।

उपर्युक्त उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए, यह स्थापना आसानी से की जा सकती है कि नई प्रयोगवादी धारा में प्रेम की रंगीनी खिल नहीं पाई है। यद्यपि नए कवि प्रणय-भोग को स्वाभाविक समझते और उसके लिए ललचते-ललकते हैं; तथापि वर्तमान की विषण्णता उन्हें प्रेम की मिलन-गंगा में डुबकी लगाने नहीं देती। वे प्रेम की गह-राइयों में दर्द के ही मोती खोजते और पाते हैं। प्रिया से संश्लिष्ट होते-होते वे गंभीर बन जाते हैं और भविष्य-रचना के स्वप्न देखने लगते हैं। उनका प्रणय-रस खंडित है जो युग की देन है। वियोग-पक्ष का चित्रण शायद मिलन-पक्ष की तुलना में अधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशी रियासत के प्राङ्गण में

(महाराज माधवराव सिंधिया की चर्चा के साथ कुछ आप बीती भी)

श्री जी० एस० पथिक

मेरा यह संस्मरण जहाँ आरंभ होता है, वहाँ उसके संदर्भ की दूसरी कहानियाँ समाप्त होती हैं। इस संस्मरण का नायक जिस आधार पर खड़ा रहा, उसका यहाँ वर्णन करना अप्रासङ्गिक न होगा। यह इसलिए आवश्यक है कि नायक के उपरांत उसके ढाँचे का अंत हो गया। फिर जिस महान् शक्ति ने इस ढाँचे को जीवन दिया था, वह भी मुर्झा गयी। वह देश से बिदा ही नहीं हुई, उसकी चमक भी जाती रही। आज अपने घर में वह शक्ति साँसें ले रही है, और नए सिरे से उठ खड़े होने के लिए प्रयत्नशील है। उसमें जीवट अवशेष है। इस संस्मरण के लिखते समय दो विचार सामने आये। पहला विचार अपने संस्मरणों में एक देशी नरेश को स्थान देने का है। मैं न तो वीर पूजा का समर्थक रहा और न राजाओं का भक्त। यहाँ जिन नरेश का चरित्र चित्रण है, वे नरेश तो अवश्य थे, किन्तु आगे चल कर वे जनता के समीप पहुँच गये थे। देश के जीवन के विविध क्षेत्रों में उनकी गति थी। दूसरी बात है कि संघर्ष के बीच में रहते हुए भी नरेश से मेरा व्यक्तिगत संबंध बना रहा। बात यह है कि मेरे जीवन में युद्ध और प्रेम एक साथ चला। एक ही साँस में प्रेम और संघर्ष की बात निकालने पर मेरे सहयोगी चिंता प्रकट करते। पर मेरे लिए तो संघर्ष जीवन की साधना थी। और सच्ची साधना यह चाहती है कि दो विरोधियों में एकत्व हो। अतः इस एकत्व के लक्ष्य से जो पक्ष अपनी साधना में आगे बढ़ता है, उसे अपने विरोधी पर विजय मिलती है। वह अँधेरे को मिटाकर प्रकाश देने में समर्थ होता है। इस स्थिति में छिपा हुआ सत्य स्वतः सामने आता है। यह होने पर विरोधी के अंतर पट खुलते हैं। मैं शक्ति भर इसी भावना से रियासती आन्दोलन में आगे बढ़ा। मैंने हर हालत में व्यक्तिगत संबंध कायम रखा। राजनीतिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों के आन्दोलनों में मेरा यह रवैया बना रहा। मेरी जैसी हालत यदि किसी दूसरे की होती तो वह नरेश पर टूट पड़ता। शासन के द्वारा मेरी जायदाद जप्त हुई, सम्पति छीनी गयी, परिवार संकट में पड़ा और मुझ पर बेतरह मार पर मार पड़ी कि मैंने आह नहीं की। मैं रोया नहीं, आहें नहीं भरी और जरा भी दुखित नहीं हुआ। मेरे रोने कलपने और दुखित होने का यह अर्थ होता कि अपने आन्दोलन के प्रति मेरी सच्ची आस्था नहीं थी। जो व्यक्ति सर्वभावेण अपने काम में रत है, उसे कितनी ही विपत्तियाँ झेलनी पड़ें, उसे अपने में भी दुख कहाँ है ? और यदि वह दुख महसूस करता है विपत्तियों की चिंता करता है, तो फिर यह मानना पड़ेगा कि उसका अपने काम में सच्चा विश्वास नहीं है। निस्संदेह ही देर सबेर, वह व्यक्ति पथ भ्रष्ट हो जाता है। आज ट्रेड यूनियन लीडरों का डबल डीलिंग है। ये मजदूर नेता फैक्टरियों में हड़ताल कराते हैं। हड़तालें चलती हैं। बीच में उनके दलाल छूटते हैं और फैक्टरियों के मालिकों से जोड़ तोड़ करते हैं। फिर क्या होता है, महीनों भूखे और प्यासे मरने वाले और हर तरह की तबाही उठाने वाले मजदूरों को गड्ढों में डालकर मजदूर नेता मालिकों से मिलते हैं। वहाँ वे कुछ आवाज नहीं उठाते, जबान बंद कर लेते हैं, और लाख पचास हजार रुपए मिलने पर उस समय कहते हैं कि आज संध्या में हड़ताल खत्म होने की घोषणा हो जाएगी, कल से फैक्टरियाँ चल सकती हैं। वे संध्या में मजदूरों की सभा करते हैं और कहते हैं कि साथियो, हड़ताल में हमसे कुछ कानूनी गलतियाँ हो गयीं इसलिए हमें हड़ताल खत्म करनी पड़ती है। पर कोई बात नहीं, हमारी माँगें जारी रहेंगी और हम इन पूँजीवादियों को झुका कर रहेंगे। इस प्रकार ये मजदूर नेता चाँदी बना रहे हैं। मैं और गणेशजी दोनों चाँदी कमा सकते थे। पर यह कोई अभिमान की बात नहीं है कि हम दोनों में से कोई नहीं डिगे। यदि मैं डिगता, तो जप्त शुदा सम्पति और जायदाद वापस मिलती। और भी धन मिलता। इतने पर भी कि आडम्बर से अन्य नेताओं की तरह अपना नेतृत्व बना रख सकता था। पर मैंने शासन पर, बिना कोई मुलाहिजा किए, बराबर आक्रमण किये। बवंडर खड़े कर मैं अधिकारियों की नींद हराम करता।' उस हालत में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव था कि शासन मेरे पथ में फूल बिछाता ? निर्भयता और दृढ़ संकल्प से मैं आगे बढ़ा। इसलिए सम्पत्ति छिनने और कष्ट झेलने पर मुझे कोई विषाद नहीं हुआ। मैंने अपने मन को ज्ञात कराया कि यह सम्पदा चलती-फिरती छाया है, मेरे पास सदा रहने के लिए नहीं आयी थी। अन्य किसी योग से यदि सम्पति चली जाती, तो मैं क्या करता ? आन्दोलन में सम्पति जप्त होने पर मैंने यही समझा कि मुझे सफलता में पहला नम्बर मिला। पहला नम्बर पाने की बात मेरे दिमाग में छात्र जीवन से बनी हुयी थी। एक बार मेरे हिन्दी अध्यापक श्री हरिप्रसाद चतुर्वेदी ने वार्षिक परीक्षा में हिन्दी के द्वितीय प्रश्नपत्र में रामायण के तीन पात्रों के चरित्र लिखने के लिए प्रश्न दिए। मैंने जो चरित्र लिखे, उस पर चतुर्वेदीजी ने बीस में बीस नम्बर दिए और अंत में लिखा—'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' इससे सहपाठियों, प्राध्यापकों और प्रिंसपल में मेरे प्रति जो खयाल हुआ, उसका यह नतीजा हुआ कि साथी हिन्दी की चीजें मुझसे पूछते और परीक्षक बिना उत्तर पुस्तक देखे नम्बर दे देते। आन्दोलन में मैंने मार्क सतत संघर्ष से प्राप्त किए। यह बात नहीं कि मुझे विषाद और दुःख नहीं होता। वह होता जब साथी पिछड़ते, नेकचलनी का बांड भरते या शासन मेरे किसी मोर्चे को तोड़ने में सफल होता। सच पूछिए उस समय मेरे दुख का अंत नहीं रहता था। तब मैं उदास होता और रो पड़ता।

अब यहाँ दो शब्द ढाँचे के संबंध में कहे जाएँ। अँगरेजों के आने के पहले देश में बीसों स्वतंत्र राज्य थे। मुगल, मरहठा और सिखों के शासन में केंद्रीय सत्ताओं का शासन न रहा। देश टुकड़े टुकड़ों में विभाजित था। जब अँगरेज आए, तब उन्होंने पहले पहल सारे देश का एकीकरण किया। अपना शासन कायम करते समय उन्होंने बहुत से राज्यों को मिटा दिया, कुछ को खड़ा रखा, और काश्मीर जैसे नए राज्य भी कायम किए। जो रियासतें कायम रहीं, उनसे अँगरेजों ने संधियाँ कीं। पर ये संधियाँ दो स्वतंत्र राज्यों के बीच में नहीं थीं। कारण, अँगरेजों की सर्व प्रभुत्व-सम्पन्न सत्ता थी। रियासतों से उनकी वैसी ही संधियाँ थीं, जैसे किसी ताल्लुकेदार व जमींदार ने अपने रियाया को जमीन का कायमी पट्टा लिख दिया हो। ये देशी नरेश ब्रिटिश सत्ता के बलि थे जो इतनी शक्तिमान थी कि जब चाहे उनकी गरदन मरोड़ सकती थी। यह नहीं कि आवश्यकता पड़ने पर अँगरेज गर्दन मरोड़ने में हिचकते थे। उन्होंने नाभा नरेश को राज्यच्युत किया। भारत का गवर्नर जनरल ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में वायसराय था और उसके नियुक्त किए हुए अँगरेज रेजीडेंट नरेशों की गर्दनों पर बन्दूक लिए खड़े थे। पर कहना होगा कि भारत के राष्ट्रीय पत्रों ने रियासतों का साथ दिया। उनकी रक्षा करने में वे ढाल बने। जब कभी अँगरेजों की देशी नरेशों पर वक्र दृष्टि हुई, अमृत बाजार पत्रिका, ट्रिब्यून और केसरी ने ब्रिटिश शासन को आड़े हाथों लिया। मोतीलाल घोष और लोकमान्य तिलक ने यह माना कि नरेशों का शासन होने पर रियासतों में अपने देशवासियों का राज्य है। नरेशों में कुछ काली भेड़ें थीं, जो अँगरेजों के गुलाम थे और ऐश-आराम की जिन्दगी बिताते थे। फिर, अनेक रियासतों का ऐतिहासिक महत्व था। उदयपुर और ग्वालियर की रियासतें वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप और महादजी सिंधिया की स्थापित की हुई थीं। इन महापुरुषों की गौरव गाथाओं से देश का बालक बालक प्रभावित था। अतः राष्ट्रीय पत्रों की आवाज के आगे हर बार ब्रिटिश शासन को झुकना पड़ा था। इस सिलसिले में यह कहना होगा कि जब देश में राष्ट्रीय जागरण का कदम बढ़ा, तब अँगरेजों ने भारत में स्थापित अपने विशाल साम्राज्य को संकुचित करना आरंभ किया। १९३७ में ब्रह्म देश को भारत से पृथक् किया। यद्यपि सीलोन भारत का अंग था, उसका शासन दिल्ली से नहीं होता था। उसे भी भारत से पृथक् किया। १९०५ में एक प्रदेश (बंगाल) के विभाजन को देश सहन नहीं कर सका था, किन्तु ४२ वर्ष उपरांत अँगरेजों ने सारे देश का विभाजन कर दिया। यह पृथकत्व नहीं था, अपितु विभाजन था। भारत और संसार में अँगरेजों की जो प्रबल सत्ता थी, उसे देखकर यह खयाल नहीं होता था कि वह हवा के एक दो झकोरों से मिट जाएगी। मगर संसार में किसीका ऐश्वर्य सर्वदा कब कायम रहा है ? सत्ता के मद में अँगरेजों को भविष्य का खयाल नहीं रहा। भारत के मानचित्र में ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता का सूचक लाल रंग छाया हुआ था। उसके साथ ही जहाँ तहाँ देशी रियासतों का पीला रंग भी था। इन पीले रंग की रियासतों की गरदनें ब्रिटिश शासन के जुए में थीं।

भारत को पाकर ग्रेट ब्रिटेन इतना शक्तिशाली बना कि एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में उपनिवेश कायम करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समर्थ हुआ। आज का शक्तिशाली अमरीका तक एक दिन ब्रिटिश सत्ता के अधीन था। योरप का अंग होने पर भी ग्रेट ब्रिटेन को बीस मील के इंग्लिश चेनल ने ९०० वर्षों तक उसे योरप से पृथक् रखा। इतने पर भी योरप में वह प्रधान शक्ति था। संसार की महान् शक्तियों में उसका पहला स्थान था। राज्य विस्तार के साथ उसका संसार में व्यापार फैला हुआ था। संसार की लक्ष्मी उसके चरणों में लोटती थी। पर उसी ग्रेट ब्रिटेन के लिए दो महायुद्ध के रूप में दैव दुर्विपाक से बुरे दिन आए। इन दोनों महायुद्धों में वह क्या पड़ा कि आसमान से लुढ़क कर जमीन पर आ गिरा। अमरीका बहुत पहले ही उसके हाथ से निकल गया था। किन्तु फिर भी वह ग्रेट ब्रिटेन का कर्जदार था। पर प्रथम महायुद्ध के उपरांत वह कर्जदार से महाजन बन गया। अब ग्रेट ब्रिटेन की शक्ति क्षीण पड़ गयी। उसका प्रताप और ऐश्वर्य धूमिल पड़ गया था। आगे जब वह द्वितीय महायुद्ध में पड़ा, तब एकबारगी अशक्त हो गया। उसने अपने हित में स्वतः यह फैसला किया कि वह भारत और अन्य उपनिवेशों को स्वतंत्र कर दे। उसमें इतनी शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह अपने साम्राज्य को बनाये रख सके। उसने सोचा कि भारत और अन्य उपनिवेशों की सहानुभूति अर्जन कर वह अपने व्यापार को कायम रख सकेगा। उसने भारत और अन्य उपनिवेशों को स्वतंत्र करने में अपने साहस का परिचय दिया, क्योंकि हमने देखा कि फ्रांस और योरप के अन्य राज्य अपने उपनिवेशों को स्वतंत्र करने में पिछड़े रहे। अँगरेजों में राजनीतिक और व्यावहारिक कुशलता बेजोड़ है। वे बड़े अनुभवी हैं। अपने जीवन में मोड़ लेकर अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाना वे जानते हैं। व्यापारी होने के कारण यदि उन्हें सेठ की गद्दी छोड़ना पड़ी तो मोदी की दुकान पर बैठने में हिचक नहीं हुई। उन्होंने सोचा कि इसमें क्या रखा है कि मूँछ ऊँची रहती है या नीची। अपना धंधा चलना चाहिए। अपनी कुशलता से वे फिर ऊपर उठने के लिए प्रयत्नशील हैं। साम्राज्य जाने पर भी ग्रेट ब्रिटेन के अधिकार में दो शक्तिशाली स्रोत हैं। पहला स्रोत स्टर्लिंग क्षेत्र का है, जिसके द्वारा उस क्षेत्र के देशों के विदेशी व्यापार की आय उसके हाथ में रहती है, इससे वह इन देशों का बैंकर बना हुआ है। दूसरा स्रोत राष्ट्रमण्डल का है। उसका व्यापार उसके हाथ में है। एक समय इस ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की अर्थ-नीति साम्राज्यवाद की भयंकरता की प्रतीक थी। उस समय यह संगठन उसका चरागाह था। इम्पीरियल प्रिफरेंस की कर नीति से उसके पौ बारह थे। उसके निर्यात माल पर उपनिवेश कोई कर नहीं लगा पाते थे और उपनिवेशों के माल पर भी ग्रेट ब्रिटेन में कोई कर नहीं लगता था। उस समय यह इम्पीरियल प्रिफरेंस उपनिवेशों के लिए अभिशाप था। पर आज राष्ट्रमण्डल के नए ढाँचे में उसकी यह कर नीति राष्ट्रमण्डल के देशों के माल की खपत के लिए हितकारक है। पर योरोपीय देशों के बीच में आज ग्रेट ब्रिटेन इतना कमजोर पड़ गया है कि उसे उसका भी मोह नहीं रहा। वह कहाँसे कहाँ पहुँच गया? औद्योगिक उत्पादन और व्यापार में पश्चिम जर्मनी इतना बढ़ गया है कि ग्रेट ब्रिटेन हैरान है। फ्रांस, इटली और पश्चिम जर्मनी सभी उससे आगे बढ़ गये। १९५६ से १९६० तक के काल में ग्रेट ब्रिटेन का औद्योगिक उत्पादन केवल २१ प्रतिशत बढ़ सका, जबकि पश्चिम जर्मनी का ६२ प्रतिशत, इटली का ५८ प्रतिशत और सोवियट रूस का ९१ प्रतिशत बढ़ा। अतः ग्रेट ब्रिटेन को अपनी सार्वभौम सत्ता का परित्याग कर साझा बाजार में शामिल होने में कोई हिचक नहीं है।

सोचिए, जब रक्षा देने वाले ग्रेट ब्रिटेन की यह दशा हुई, तब देशी रियासतों का धराशायी होना स्वाभाविक था। १९४७ में जब अँगरेज भारत से बिदा हुए, तब उन्होंने नरेशों से हाथ मिलाया। उन्होंने भरे हुए गले से कहा कि हमारा तुम्हारा बहुत दिनों तक संबंध रहा। अब हमारी-तुम्हारी संधियाँ खत्म हुईं। हमें यह अधिकार नहीं रहा कि भविष्य में तुम्हारे लिए कुछ कर सकें। अँगरेजों का यह सब कुछ कहना दुरुस्त था। किन्तु आगे उन्होंने अपने कूटनीतिक जीवन की शरारत भरी बात कही। नरेशों के आँसू पोंछते हुए कहा कि अपना रास्ता चुनना अब उन पर निर्भर है। वे चाहे भारत में रहें, या पाकिस्तान में रहें या दोनों में शामिल न होकर आजाद रहें। यह संकेत उनका गृहयुद्ध का सिग्नल देना था। वे भारत को बिखरा हुआ छोड़ गये थे। वह हालत उस वस्त्र की तरह थी जिसमें छेद ही छेद हों, और जिसका रफू करना संभव न हो। उन्होंने सोचा होगा कि ये रियासतें विद्रोह कर बैठेंगी और उन्हें फिर लौटने का मौका मिलेगा।

पर स्वतंत्रता प्राप्त होने पर भारत इस सजगता से खड़ा हुआ कि अंग्रेजों के होश हवा हो गये। लौह-पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार पटेल ने संसार के देखते भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में जो खेल खेला कि देश विदेश के लोगों को दाँतों तले अँगुलियाँ दबानी पड़ीं। रियासतों के विलीनीकरण के समय एक दो स्थान पर मैं भी उपस्थित था और मैंने भी वह ऐसी रंगत देखी। एक विद्यालय के अध्यापक की तरह दीवार पर टँगे हुए नक्शे में रियासत को दिखा कर नरेशों से पूछा कि वे अपनी रक्षा कैसे करेंगे। बड़े सीधे-सादे ढंग से सारी बातें कहीं। नरेशों के लिए रियासतों के विलीनीकरण की इजाजत देने के सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं था। बिना रक्तपात के यह विलीनीकरण संसार में अनोखी घटना थी। नरेशों के इस उत्सर्ग पर सरदार पटेल ने उनके प्रति प्रिवी पर्स की धनराशि नियत करने और अन्य सुविधाएँ देने में बड़ी उदारता दिखलायी। यह मानना पड़ेगा कि इस उदारता का भारत के राजस्व पर भारी बोझ पड़ा। जब नरेशों के हाथ से रियासतें निकल गयीं, तब सामंतवादी सत्ता का क्या मूल्य रहा? इन नरेशों में सबसे पहले ग्वालियर-नरेश महाराज जीवाजी राव सिंधिया सरदार पटेल से मिले थे। जब पिछले दिनों मैं बम्बई में जीवाजीरावजी से मिला, तब उन्होंने विलीनीकरण का सारा वृत्तांत सुनाया। महाराज ने कहा कि वे संघर्ष कर सकते थे। पर उन्होंने बड़े गौरव से कहा कि "अँगरेजों ने हम मराठों से राज पाया था, न कि मुसलमानों से। मराठों पर यह कर्तव्य का भार आ पड़ा था कि वे देश को ब्रिटिश सत्ता से मुक्त करें। पर मराठा शक्ति अँगरेजों की सांकल से जकड़ी हुई थी। इसलिए वह कुछ न कर सकी। इसलिए जब सदियों के बाद देश स्वतंत्र हुआ, तब क्या हम गृहयुद्ध खड़ा कर उसे खो दें? मराठा नरेशों ने मीरजाफर और जयचंद बनकर कलंकित होना पसंद नहीं किया। हमने सरदार-श्री की बात तुरन्त मान ली। छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज होने के कारण पहले आगे बढ़ने में मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा।" बम्बई के समन्दर महल पैलेस में इस संबंध में महाराज से मेरी लम्बी चर्चा हुई। तब मुझे यह भासित हुआ कि वे अपने पिता के समान दूरदर्शी निकले। मुझे यह कहना पड़ेगा कि विलीनीकरण के उपरांत जहाँ नरेशों के दिमाग में उफान आया, वहाँ श्रीमंत जीवाजीराव सिंधिया सदा शांत रहे। उन्होंने मेरे सन्मुख कई योजनाएँ रखी थीं। सिंधिया वंश पर एक विशाल ग्रंथ लिखने का उन्होंने मुझसे बड़ा अनुरोध किया था। विधाता का विधान विचित्र है, भेंट के कुछ काल के उपरांत ही उनका निधन गया। अब सिंधिया राजवंश में एक नन्हा सा शिशु रह गया। इस प्रकार देशी रियासतों के अस्तित्व का लोप हुआ। इतिहास के पृष्ठों में भावी पीढ़ियों के लिए राजा, महाराजा और नवाब कल्पना की चीज रह गये।

अब मैं अपने संस्मरण के नायक का चरित्र चित्रण करने में बढ़ता हूँ। जिन ग्वालियर नरेश का मैं यह संस्मरण लिख रहा हूँ, उनका नाम माधवराव सिंधिया था। ब्रिटिश सरकार से नाइटहुड और अन्य उपाधियों के सिवा उन्हें सैनिक उपाधियाँ भी प्राप्त थीं। आलीजाह बहादुर और मंसूरे दौलत और अन्य मुसलिम उपाधियाँ भी उन्हें दी गयी थीं। इसी ग्वालियर राज्य का मैं एक निवासी था। इस राज्य की राजधानी लश्कर थी। लश्कर और उज्जैन दोनों नगरों में हमारे परिवार के विशाल भवन ग्राम और बागीचे थे। लश्कर के मकान का ऐतिहासिक महत्त्व था। कई युगों का बना हुआ होने पर भी वह वैसा ही खड़ा था। उसमें बीसों तल घर थे, जिनका पता पाना किसीके लिए संभव न था। मैंने अनेक क्रान्तिकारियों और राजद्रोहियों को इस प्रकार शरण दी कि और तो और, मेरे घर वालों तक को पता न लगा। इस मकान के पत्थरों पर प्राचीन कारीगरी और दीवारों पर विविध रंगों में प्राचीन चित्रकला अनुपम थी। उज्जैन के मकान में मेरा जन्म हुआ था। आठ-दस वर्ष की अवस्था में मैं ग्वालियर आया। यहाँ ही मेरी शिक्षा हुई। इसी शिक्षा काल में मेरे सार्वजनिक जीवन का भी सूत्रपात हुआ। उस समय श्रीमंत माधवराव सिंधिया का शासन था। इन्हीं ग्वालियर नरेश से मेरा संघर्ष हुआ। मेरे आन्दोलन का कार्यक्षेत्र ग्वालियर राज्य तक सीमित नहीं था। देशी रियासतों के अखिल भारतीय संगठन में भी मेरा योगदान था। पर मेरे आन्दोलन का श्रीगणेश ग्वालियर राज्य से हुआ। उत्तर भारत में यह सबसे बड़ी रियासत थी। उसके जाग उठने पर अन्य रियासतें कब पिछड़ी रह सकती थीं? रियासत में जो दूसरे सार्वजनिक कार्यकर्ता थे, वे वकील और डाक्टर प्रभृति थे वे वैधानिक दायरे के अन्दर ही बोलते थे। किन्तु फिर भी उन बेचारों ने जब तक 'वांड' भरे। मगर रियासत में मेरा आन्दोलन युद्ध पट पर था। अधिकारियों के लिए संकट पैदा करना, युवकों के दल खड़े करना और आम प्रजा में चेतना उत्पन्न करना मेरा काम था। अपने इस आन्दोलन के बीच में जब तक ग्वालियर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में क्रान्तिकारी आते, और उन्हें गले लगाता। यहाँ वे अपने मतलब का सामान खरीदने आते थे। बाजारों में जिस प्रकार दुकानों में वस्त्र और खाद्यान्न बिकता है, उसी प्रकार राजधानी के केन्द्र में कई दुकानें गोला-बारूद और अस्त्र-शस्त्रों की थीं। उनमें बन्दूकें और पिस्तौलें आदि बिकती थीं। इस सामान को खरीदने के लिए क्रान्तिकारियों का दल मेरे घर पर ठहरता। फिर कई ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण ये दुकानें न रहीं। मेरे ये आन्दोलन, और प्रताप, बम्बई क्रानीकल और केसरी में विविध नामों से रियासत की व्यवस्था के विरुद्ध मेरे लेख, मेरी सम्पति की जप्ती के कारण बने। मैं चाहे जिस नाम से लिखता, अधिकारियों और महाराज के लिए मेरा नाम छिपा नहीं रहता। महाराज स्वयं लेखों को पढ़ते और लाल स्याही से अंडरलाइन करते। इस जप्ती से मेरे माथे में सिकुड़न न पड़ी। राजनीतिक और सामाजिक दोनों आन्दोलनों में मैंने नीति और व्यवस्था पर कड़े प्रहार किए थे, किन्तु अपने विरोधियों से व्यक्तिगत संबंध मधुर रखे। किसीकी पगड़ी नहीं उछाली और व्यक्तिगत रूप में न महाराज को, और न पुरातनवादी सनातनियों को नीचा दिखाया। ये चोटें सहने पर भी मैं महाराज से मिलता। वे चाहते तो मिलने से इन्कार कर देते। यह उनकी महान् सदाशयता थी कि उन्होंने मिलने से कभी इन्कार नहीं किया। मैं महाराज से सीना ताने हुए हँसता हुआ मिलता। मैंने उनसे यह कभी नहीं कहा कि श्रीमंत ने मुझ पर यह क्या वज्रपात किया। अगर मैं रोना रोता तो वे निश्चय ही दया दिखाते। मुझे जप्तशुदा सम्पति ही वापस न मिलती, बल्कि धन से भर दिया जाता। परिणाम यह होता कि मैं उनके हाथ बिक जाता। मैं अपनी भट में रियासत की चर्चा करता, जिसे वे गंभीरता से सुनते और कार्रवाई करने का वचन देते। गणेशशंकर विद्यार्थी ने मेरा यह कदम उचित बताया। प्रताप भी निहाल हो जाता, यदि गणेशजी झुक जाते। पर वे अडिग रहे। गणेशजी ने भारी रकम भले ठुकरा दी हो, किन्तु दिल्ली, बम्बई और झाँसी के पत्रकारों के मुँह में पानी भर आया। उन्होंने सोचा कि प्रताप के सम्पादक ने रुपए न लेकर भले बेवकूफी की हो, किन्तु हम रकमें लेकर लौटेंगे। ऐसे पत्रकारों से महाराज तो मिले नहीं, राज्य के होम मिनिस्टर मिले। उनसे जब शिकायतों पर बहस करने के लिए कहा, तब वे बगलें झाँकने लगे और बोल उठे कि वे अब कुछ न छापेंगे। अपने पत्र पर राज्य का हाथ चाहते हैं। नतीजा यह हुआ कि उन्हें आने-जाने का मार्ग व्यय देकर वापस भेज दिया गया। दिल्ली के अंग्रेजी पत्र के मद्रासी सम्पादक पर महाराज ने मुकदमा चलाया, और उसे सजा हुई।

सामाजिक क्षेत्र में भी मैं समाज सुधार संबंधी लेखों और व्याख्यानों में पुरातनवादी सनातनियों की कस कर खबर लेता था। पुरातनवादी, और पोंगा-पंथी आदि जितने भी वीभत्स शब्दकोष में होते, वे मेरे लेखों में होते। किन्तु इन लेखों में मैंने सनातनी नेताओं के व्यक्तित्व पर कभी नहीं हमला किया। उनसे मैं मिलता, वे मेरा सम्मान करते। मैंने उन्हें बताया कि मैं उनसे कम सनातनी नहीं हूँ। मेरे घर में देव-पूजन होता है, श्राद्ध होता है। मेरे पिता ने कभी बर्फ का पानी नहीं पिया, अँगरेजी दवाइयाँ तक नहीं खायीं। मेरी माता का उससे भी कठोर जीवन है। किन्तु इतने पर भी समाज में सुधारों का समर्थन करता हूँ। इन सुधारों से सनातन धर्म की रक्षा होगी। शास्त्रों के पन्ने पलट कर विरोध करने से सनातन धर्म का काम पूरा नहीं होता, सनातन धर्म का काम देश काल के अनुसार व्यवस्था देना भी है। जब मैं सनातनी नेताओं से मिलता, तो सुधारक वर्ग चिंतित हो उठता। पर मैंने कहा कि मैं भ्रष्ट नहीं होऊँगा, उनके हाथ में नहीं पड़ूँगा, मेरे संसर्ग से वे ही कुछ आगे बढ़ेंगे। मैं मुसलिम लीग की बैठक में जाता और मियाँ फजलुल् हक व सुहरावर्दी से बहस करता। ग्वालियर नरेश से भी समाज-सुधार संबंधी चर्चा करता। महाराज ने यह माना कि राज्य में समाज-सुधार के कई कानून बनने चाहिए। रियासत और रियासत के बाहर मैंने सुधारों के क्षेत्र को प्रबल किया। पर समाज की परम्परागत मान्यताओं को एकाएक मिटाना संभव नहीं था। कुछ ऐसी बातें थीं जो मानवता को कलंक लगाती थीं। धनी सनातनियों के हाथ में एक अस्पताल का संचालन था। उसकी व्यवस्था में समाज की बड़ी धन राशि व्यय होती थी। सरकार से भी अनुदान मिलता था। पर रोगियों की भर्ती के संबंध में एक अजीब नियम था। वह यह था कि 'श्रुति स्मृति पुराण प्रतिपादित सनातन धर्मावलम्बी व्यक्ति को ही अस्पताल में भर्ती किया जा सकेगा, इसके विपरीत किसी को स्थान न दिया जाएगा।' नतीजा यह हुआ कि उस समाज के ही सुधारक स्थान न पाते। एक सुधारवादी पुरुष बीमार पड़ा, मैं उसे लेकर अधिकारियों के पास गया। वे बोले, पण्डितजी, यह व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधारक है, इसने विधवा विवाह किया है, इसे कैसे स्थान दिया जा सकता है ? मैंने उनसे कहा है कि वे जिस व्यक्ति के बारे में सोचते हैं, उसे मैं कैसे लाता। वह कोई दूसरा होगा। बस झाँसा-पट्टी देकर उसे भर्ती कराया। उसकी प्राण रक्षा हुई। मेरे द्वारा एक बार नियम भंग होने पर फिर वह कायम नहीं रहा। रियासत में सनातन धर्म का स्थान राजनीति ने लिया था। कार्यकर्ताओं और उनके लड़कों के लिए अस्पताल व स्कूल तथा कालिजों के दरवाजे बंद थे। वैसे तो मैंने संघर्ष के बीच में इसे बुरा नहीं माना, पर मैंने कहा कि इस प्रकार के अन्याय सहने पर हम पौरुष ही खो बैठे, भेड़ बकरी बन गये। मेरे रोष का ठिकाना नहीं था। महाराज से मैंने सारी कहानी कही, उन्होंने कहा कि यह बुरी चीज है। अब उनसे मैंने कहा कि मैं दरबार से मिलने नहीं आऊँगा। उन्होंने कहा कि वे अर्से से आन्दोलन को देख रहे हैं, वे अब आगे बढ़ेंगे और वह काम पूरा करेंगे, जिसकी माँग की जाती है। फिर हँसते हुए बोले कि मैं चाहूँ तो उन्हें अपना एक स्वयंसेवक बना लूँ। महाराज की बड़ी मस्त तबियत थी। वे दीवार के अदृश्य लिखित को अपने अंतरपट से देखते थे।

राज्य से अपने लिए किसी कृपा की आकांक्षा नहीं की। कई ऐसे अवसर आए कि मैं अपनी खोई हुयी सम्पति पा जाता। पर मैंने सोचा कि उससे मेरा सार्वजनिक जीवन नष्ट हो जाएगा। मैं पतित हो जाऊँगा। सार्वजनिक क्षेत्र में ईमानदारी मेरे जीवन का लक्ष्य रहा। राज्य की दया होने पर मैं बंधन में जकड़ सकता था। दया का दरवाजा बंद नहीं हुआ। राष्ट्रीय सरकार जब कायम हुई, तब स्वर्गीय स्वराष्ट्र मंत्री पण्डित गोविन्दवल्लभ पंत ने कई बार मुझसे कहा कि मैं सरकारी कागज भर कर प्रार्थनापत्र दूँ। मेरे खामोश रहने पर वे मुझ पर नाराज भी हुए। ब्रिटिश शासन काल में जब दिल्ली की बड़ी व्यवस्थापिका परिषद् में पंतजी थे, तब एक पत्रकार के नाते मेरा उनका सम्पर्क हुआ था। उनका मुझपर अत्यंत स्नेह था। उनका यह प्रस्ताव भी उसी स्नेह के प्रतिरूप में था। उनसे तो मैं कुछ नहीं कह सका, पर मेरा मन राजी नहीं हुआ। मैंने सोचा कि यह काम अपनी राजनीतिक सेवाओं को बेचना है। इस निश्चय में ईश्वर मेरा सहायक बना। मेरे सामने जो नजारा था, उससे मैं फिसल सकता था। मैंने देखा कि जो लोग साल-दो-साल के लिए जेल गए, या जिन्होंने भारी कष्ट भी झेले, वे पेशनें लेने और सहायता पाने के लिए दौड़ पड़े। पदों की प्राप्ति के लिए अपना अधिकार प्रकट किया। मिनिस्ट्रियों और सदस्यता के लिए बेतरह लड़े झगड़े। परमिट, लाइसेंस, कोटा और अन्य सुविधाएँ तो उन्होंने पायीं ही। इतना ही नहीं, उनमें से कई उद्योगपतियों के एजेण्ट बने कि केन्द्रीय सरकार में उनका काम कराएँ। वे उनके उद्योगों को सहूलियतें दिलाते हैं और कोटा मंजूर कराते हैं। इतना धन वे कमाते हैं कि उसे सुनकर आँखें चौधिया जाएँगी। व्यापारी समाज के एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता लोकसभा में जाकर इस धंधे में पड़े। उन्हें अपने उद्योग खड़े करने के लिए लाखों रुपए इस दलाली में मिले। एक हिन्दी साहित्यकार भी इस ओर बढ़े। इस परिधि में उनकी साहित्य साधना कहाँ खड़ी है ? उन्होंने यह नहीं सोचा कि साहित्य का सृजन करने के लिए साहित्यकार को पेट में गीली पट्टी बाँधनी पड़ती है। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावस आया

श्री सन्तोषकुमार श्रीवास्तव

जीवनदायिनी पावस प्रतिवर्ष आती है और इसके मन-मोहक दृश्यों का कवियों ने अपनी उच्च कल्पना और पैनी सूझ के सहारे सदैव चित्रांकन किया है। ग्रीष्म की ज्वाला से जब धरित्री त्राहि-त्राहि कर उठती है, चर और अचर सभी जीवन-हीन हो जाते हैं, तभी पीयूषदायिनी पावस का आगमन होता है। सूखी, त्रस्त, विदीर्ण एवं दग्ध पृथ्वी में सर्वत्र हरियाली छा जाती है। पी-पी की रट लगाने वाले चातक को रस की बूंदें मिल जाती हैं। सारा वातावरण जीवनमय, रसमय हो जाता है।

वर्षा काल के प्रत्येक नयनाभिराम रूप की साकार कल्पना के चित्र महाकवियों ने संजोए हैं। प्रथम वर्षा के जल सिंचन से खेतों की मिट्टी से सोंधी बास उठ रही है, भोली सुन्दर कृषक-पत्नियाँ टोकरी लिए कार्य-रत दिखाई पड़ती हैं—

"त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यस्सीरोत्कषण-सुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंजित्ररश्चाद् व्रज लघुगतिः किंचिदेवोत्तरेण।"
(कालिदास)

पानी की बूंदें आकाश से गिर रही हैं, पक्षियों के पंख गीले होकर बिगड़ रहे हैं, जल की बूंदें पत्तों की नोकों पर लग रही हैं जिन्हें तृषित विहंग पी रहे हैं—

"मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम्।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति।"
(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांडे)

घने मेघों के कारण अंधकार आ गया है, पर्वत के ऊपर से पानी की मोटी धारा काली शिलाओं पर छितराती है, वर्षा में पर्वत की गेरू से मिलकर नदियों की धारा लाल होकर बह रही है।

"क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं,
नभः प्रकीर्णाम्बुघनं विभाति।
क्वचित् क्वचित्पर्वत-संनिरुद्धं,
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य॥
व्यामिश्रितं सर्जकदम्ब-पुष्पै-
र्नवं जलं पर्वत-धातु-ताम्रम्।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं,
शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति॥"
(कवि वाल्मीकि)

वर्षा का आलंकारिक शैली में सुन्दर वर्णन किया गया है। रावण रूप अवर्षण से क्लान्त देवता-रूप सस्य को इस प्रकार वाणी-रूप अमृत जल से सींच वह कृष्ण रूप मेघ अंतर्हित हो गया।

"रावणावग्रहक्लांतमिति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघास्तिरोदधे॥"
(कवि विश्वनाथ)

वर्षा काल का वातावरण विरहियों को विदग्ध करता है। सीता-विरह में व्याकुल भगवान् रामचन्द्र को, वर्षा आने पर, ग्रीष्म की धूप से संतप्त पृथ्वी जल से पूर्ण होकर सीता के समान अश्रु बहाती दिखाई पड़ती है।

"एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही वाष्पं विमुंचति॥"
(कवि वाल्मीकि)

काले काले बादलों के बीच चमकती हुई विद्युत् रावण की गोद में विरहविह्वला छटपटाती हुई तपस्विनी वैदेही के समान दिखायी पड़ती है।

"नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति माम्।
स्फुरन्ती रावणास्यांके वैदेहीव तपस्विनी॥"
(कवि वाल्मीकि)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव वर्षा मन-मयूर को नचा देती है। पावस काल में अनेक प्रकार के भाव मोर की पूँछ के समान हृदय प्रदेश में विकसित हो रहे हैं, आकुल प्राण आकाश की अलौकिक शोभा को निरख न जाने किस उल्लास में किसकी याचना कर रहे हैं।

"हृदय आमार नाचे रे आजि के, मयूरेर मतो नाचे रे,
हृदय नाचे रे।
शत बरनेर भाव-उच्छ्वास
कलापेर मतो करेछे विकाश,
आकुल परान आकाशे चाहिया उल्लासे कारे याचे रे।"
(रवीन्द्रनाथ)

गगन में मेघों की गंभीर गुरु-गुरु गड़गड़ाहट हो रही है, उमड़ घुमड़ कर बादलों की धारा दौड़ी चली आ रही है, कपोत काँप रहे हैं, दादुरी जोर से टर्र-टर्र कर रही है।

"गुरु गुरु मेघ गुमरि गुमरि गरजे गगने गगने
गरजे गगने।
धेये च'ले आसे बादलेर धारा,
नवीन धान्य दुले दुले सारा,
कुलाये काँपिछे कातर कपोत, दादुरि डाकिछे सघने।"
(कवि रवीन्द्र)

नव पल्लवों पर वर्षा की घनी धारा झर रही है, झींगुरों की झनकार से कानन काँप रहा है—

"झरे घन धारा नवपल्लवे
काँपिछे कानन झिल्लिर रवे।"
(कवि रवीन्द्रनाथ)

कवि तुलसी ने वर्षा काल की अनेक झाँकियाँ उपदेशात्मक शैली के सहारे प्रस्तुत की हैं। जलद भूमि के पास आकर जल बरसा रहे हैं, बादलों के क्रोड़ में बिजली की चमक ठहर नहीं रही है, उथली क्षुद्र नदियों में बाढ़ आ गई है, पृथ्वी पर पड़ने से पानी गँदला हो गया है, चारों दिशाओं में मेढ़कों की सुहावनी ध्वनि हो रही है।

"बरषहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध विद्या पाए॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं॥
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल बौराई॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी॥
समुद्र थुनि चहुँ ओर सोहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥"

काले काले सावन के उनये नये जलद काजल के ढोंकों के समान इधर से उधर दौड़ रहे हैं, गगन घन से आच्छादित हो गया है, सघन अंधकार छा गया है, सूर्य दिखाई नहीं पड़ता मानों कहीं खो गया है।

"सेनापति उनए नए जलद सावन के
चारिहू दिसान घूमरत भरे तोय कैं।
सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूँ भाँति
आने हैं पहार मानो काजर के ढोय कैं।
घन सों गगन छप्यो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परत मानों रवि गयो खोय कैं।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि,
मेरे जान याही तें रहत हरि सोय कैं।"
(सेनापति)

प्यास से जलती धधकती भूमि अपने प्राण को सुशीतल करने हेतु श्रावण की इस धार से मिलने को इच्छुक है—

"कुलिश विद्युत झड दुर्दिन ए धारा श्रावणर
लोडुथिला आर्त कंठे भेटिबाकु विश्व चराचर
तप्त वक्षे लोडुथिला तृषिता धरत्री पुणि थरे
सुशीतल प्राण स्रोत मर्त्यर ए मृत्तिका उपरे॥"
(उड़िया: कालिंदीचरण पाणिग्राही)

रिमझिम वर्षा हो रही है, और आज भी मनवांछित प्रिय की चिट्ठी नहीं आई।

"सि बिचरा चिठि खन नाहल। आजिओ नाहिल।
वाहिरत पातल बरषुण..." (असमिया:: महेन्द्र बरा)

वर्षा काल में गाढ़ा अंधकार और भी घना होता चला जा रहा है। काला बादल इस प्रकार जल बरसा रहा है मानो उसने सागर के मयखाने से फेनिल ह्विस्की-सोडा पी लिया है।

"मब्बु
कामाले कत्तलु,
बंदु मैमले अब्बरिसि एद्देद्दु बिद्दु बोब्बरिदलेव कार्मोउ
:कुडिदु बिट्टिदे कणो, कडल परवानेयलि नोरेगरेव
विस्कि सोडा" (कन्नड़: गोपालकृष्ण अडिग)

वर्षा के आने पर कवि की कविता-केकी अपने शत-शत नयन खोलकर नाच उठती है तथा नूतन वर्षा का शीतल मधु बूँदों को भाव-चातक घूंट-घूंट कर पी जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मळेगाल वैतरलु नन्ना कवितेय नवेलु
नूरु कंणनु तेरेदु र्नतिसुबुदु।
भाव चातक होच्च होस मळेय तंबनिय
जेम्बनिय गुटुकरिसि वर्तिसुवदु॥"
(कन्नड़: चेन्नवीर कण्ठि)

मनमोहक पुरवाई हवा चल रही है, ऐसे उद्दीपक समय में विरहिणी अपने राजा की स्मृति में डूब जाती है। मेरे राजा, हाय बूंदाबाँदी होने लगी, पुरवाई चलने लगी, आकाश में बिजली कड़कती है, उसकी कौंध आँखों को चौंधियाती है, मेरे राजा, तुम कहाँ चले गए? मैं तुम्हारे बंद किवाड़ों को देख वर्षा की बौछार खाकर मर रही हूँ। राजाजी, अपने बंद किवाड़ आकर खोलो।

"लहि पईयाँ नी बूंदा हुण, हाय,
घुल्ल पई ए पुरे दी पौण,
मेरे राजा,
गढ़कदी ए बिजली आकाश,
नाल गज्जदी ए बद्दला दी फौज।
चुंधियाँदी ए अख्खाँ नू लिशक,
पर दिखा जाँदी ए बन्द किवाड़,
तेरे राजा जी बन्द किवाड़,
खोले आपणे बन्द किवाड़।"
(पंजाबी:: भाई वीरसिंह)

ओ नील मेघ! चल, आगे बढ़ता चल, ऐ नभ वीणा के मृदुल राग, फटी दरारों वाले खेतों में पीयूष बहाकर, हरी घास से शून्य मड़ैयों पर मरकत बरसा कर चल, बढ़ चल।

"सागुमा ओ नील मेघमा।
गगनवीणा—मृदुल रागमा।
बीटबारिन चेल पीयूषमुलु राल
गरिकलेनि पोलाल मरकतम्मुलु देल,
सागुमा ओ नील मेघमा।"
(तेलुगु:: सि० नारायण रेड्डी)

जब तू आता है तभी वन मयूरों के पदों की किंकिणियाँ ध्वनित हो उठती हैं, लतिकाओं की असंख्य नव मल्लिकायें खिल उठती हैं—

"नेमिलपादाल किंकिणुलु घल्लुन म्रोय।
प्रियरालि वलपु—मल्लियुलु जिल्लुन श्य॥"
(सि० नारायण रेड्डी)

आषाढ़ सावन की झड़ी में सभी मस्त हो नाच उठे हैं। देखो, पावस की झड़ी आई है। कितनी चातक-चोंचों से मैं वर्षा ऋतु-तरी पिऊँ।

"आला आषाढ़ श्रावण
आल्या पावसाच्या सरी।
किति चातक-चोंचीनें
प्यावा वर्षा-ऋतु तरी!" मराठी::
(बा० सी० मर्ढेकर)

देखो, काली मिट्टी के ढेलों की सुगंध कलियों में आयी है।

"काळ्या ढेकलांच्या गेला
गंध भरून कल्यांत॥" (बा० सी० मर्ढेकर)

गीले पत्रों पर की जल की रेखाओं को मानों पक्षीगण पढ़ते हैं।

"ओल्या पानांतल्या रेषा
वाचतात ओले पक्षी।" (बा० सी० मर्ढेकर)

भागते हुए क्षणों को भी मधुरिमा मिल गई है, मन के तपे हुए तार शीतल हो गए हैं।

"धांवणाऱ्या क्षणालाहि
आली ओलसर गोडी।
मनी तापलेल्या तारा
जरा निवतात संथ॥" (बा० सी० मर्ढेकर)

पावस मानस में तूफान ला देता है, भाव-उर्मियाँ उठने लगती हैं। उस समय न देश का बंधन रहता, न काल का, न भाषा का, न शरीर का। सभी एक हो जाते हैं, सभी के स्वर एक हो जाते हैं। कवि पुकार उठता है—ऐ घुमड़ कर हृदय में इसका उभाड़ उठानेवाले मँडराते बादल, तेरी पुरवा की लहरों से सुख का संचार हो रहा है। सूखे हुए सुमनों को हरियाली का आभास दिखानेवाले! तू बिना बरसे मतजा। अंचल के शब्दों में—

"ओ नभ में मँडराते बादल बे-बरसे मत जा!
मन के ओठों पर रस की बिसरी पहचान जगा।
पुरवा की लहरों में सुख की आतुरता उमगा
सूखे सुमनों को हरियाली का आभास दिखा!

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राष्ट्रिय"

मई की सरस्वती में श्री वेंकटेशनारायणजी तिवारी का "राष्ट्रीयता" की पोल खोलने वाला लेख पढ़ कर मुझे हृदयिक हिल्लोल हुआ। कमनीय कल्लोल हुआ। आनन्द में गोते लगाने लगा। अक्षम्य अपराध की उस अक्षय क्षमा-याचना में जरा भी माथापच्ची नहीं है। कुछ भी कोर-कसर बाकी नहीं रही। माननीय तिवारीजी ने श्री किशोरी-दासजी वाजपेयी को तेईस बार आदरणीय कहा है और छै बार नहीं कहा है। इससे मुझे कुछ भी श्रवणिक अथवा मानिक क्लेश हुआ हो यह मैं नहीं कह सकता। मैंने सोचा कि इस इतिहासिक और राजनीतिक युग में जब उन्नीस सौ पचास शब्दों की नली का हुक्का तिवारीजी गुड़गुड़ा रहे हैं तब कुछ तो धुआँ उठ के जायगा ही। उदरिक, वक्षिक और घ्राणिक नाड़ियों में ही वह विलीन नहीं हो सकता। आजकल के व्याकरणिक तो न लाजिक देखते हैं न ताजिक। तर्कीयता से सदा तर्क करने को तय्यार हैं। अज्ञात को ज्ञात बनाना नहीं चाहते। रही पोंगापन्थी की बात। वह भी बुढ़भस ही सी काल्पनिक है। कोरी टेकनिक है। भाषा की पिकनिक है। अँगरेजी में एक मजेदार ग्रन्थ है—उपन्यासिक। नाम है "पोंगो और साण्ड!" वाज-पेयीजी ने उसे पढ़ा होता तो ऐसी भूल न कर बैठते।

हमारे तिवारीजी दङ्गल मारने में छिपे रुस्तम हैं। राष्ट्रीय विभूतियों को आजकल राष्ट्रिय कहना एक नया अलंकार है, जिनका अभी मुखिक नामकरण नहीं हो सका है। होगा इसी साल, सरस्वती की दया से। झगड़े की जड़ कही गई हैं राधा रानी—शान्तम् पापम्। माननीय वेंकटेश जी महाभागवत तो हैं ही। भगवती का चण्डीपाठ भी कभी किया होगा। देवी भागवत में क्या आपने महाराज भगीरथ का गङ्गास्तोत्र नहीं पढ़ा है जिसमें लिखा है कि जो लोक में राधाकृष्ण की पुलकावली से कार्त्तिकी पूर्णिमा को श्री गङ्गाजी का आविर्भाव हुआ था जिसका पर्व उस दिन समस्त हिन्दू जाति मनाती है। मीरा का पवित्र चरित्र श्रीराधाजी के दिव्य चरित्र की छाँह भी नहीं छू सकता है। जग-माता का पावन नाम स्मरण कर गङ्गाजल को छिड़क कर उन्हें अपनी लेखमाला को चौबीस बार दूर से नमस्कार करना चाहिये। वाजपेयीजी पुलकित हो उठेंगे। अवश्य ही पुष्पायमान हो जायँगे। राधाजी को किशोरीजी कहा जाना ही क्या कम प्रमाण है? मुझे तो तिवारीजी से छनिक भी और आशा नहीं है। पूरी तनिक मनिक धनिक समवेदना है। अथ किम्?

२१-५-१९६२

शिवाधार पाण्डेय

मुक्तक

श्री महेशचन्द्र 'सरल'

लोग जो कहते हैं, दोहराता हूँ,
बात जो कह सकूँ, निभाता हूँ।
किन्तु पाने के बाद भी सब कुछ,
एक विश्वास, नहीं पाता हूँ।

मान-अपमान, विचारो तो सही, कुछ भी नहीं;
निन्दा या स्तुति, सौ बार करो, कुछ भी नहीं।
भावना श्रेष्ठ है, मानव को समझना होगा,
स्वाभिमानी को अगर मन न दिया, कुछ भी नहीं।

यों तो सब कहते सुने जाते हैं,
हम न बातों में कभी, आते हैं।
किन्तु अवसर पड़ा कि मुड़ कर वे,
देख कर, राह बदल जाते हैं।

दूर से देख, आ मिले चल कर,
और दिल खोल, रख दिया हँस कर।
किन्तु बातों में, यह रहस्य खुला,
प्यार इस ओर, तो नफ़रत है उधर।

मृत्यु को सोच, एक बहाना है,
ज़िन्दगी जिसका ताना-बाना है।
श्वास का तार टूटते ही जिसे,
हँसते-रोते, गले लगाना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन'

मई १९६२ ई० की 'सरस्वती' में पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का एक लेख 'राष्ट्रिय शब्द का अर्थ और वाजपेयी-जी' शीर्षक से, श्री किशोरीदास वाजपेयी के लेख के जवाब के रूप में प्रकाशित हुआ है। लेख हिन्दी भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में विविध तर्कों, नवीन स्थापनाओं तथा कई अपसिद्धान्तों का स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। 'राष्ट्रिय' शब्द के माध्यम से संस्कृत व्याकरण से हिन्दी व्याकरण का विभेद प्रकट करते हुए मान्यवर श्री तिवारीजी ने श्रीकिशोरीदास वाजपेयी की भाषाविज्ञता तथा 'हिन्दी का एकमात्र ठेकेदार' बनने के दावे को एकदम झूठा सिद्ध करने का सफल या विफल प्रयास किया है। मुझे इन दोनों महारथियों की विज्ञता के तारतम्य या उत्तरोत्तमता की परीक्षा का न अधिकार है और न सामर्थ्य। संस्कृत भाषा के कुछ सम्पर्क में रहने तथा हिन्दी भाषा-भाषी होने के परिणामस्वरूप मान्यवर तिवारी-जी का लेख पढ़ने के उपरान्त जो विचार मन में जगे उन्हें ही लेखबद्ध करने का निश्चय मैंने किया है। विचारों के औचित्यानौचित्य की परीक्षा का अधिकार प्रत्येक पाठक को स्वतः प्राप्त है।

श्री तिवारीजी ने श्री किशोरीदास वाजपेयी के एक लेख में 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ 'राजा का साला' देखकर पाणिनि, भट्टोजीदीक्षित, संस्कृत के दो कोष तथा हिन्दी के सात कोष छान डाले किन्तु उन्हें कहीं भी 'राष्ट्रिय' शब्द का अर्थ 'राजा का साला' न मिला। इस विषय में श्री तिवारीजी से मेरा निवेदन है कि उन्हें कहीं दूर न जाकर संस्कृत के सर्व-प्रसिद्ध व सर्वत्र प्राप्त 'अमरकोष' ग्रन्थ के प्रथम काण्ड के नाट्यवर्ग के १४वें श्लोक का द्वितीय चरण 'राजश्यालस्तु राष्ट्रियः' अविलम्ब देख लेना चाहिये। ठीक भी है 'अक्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।' इसके अतिरिक्त हिन्दी के प्रसिद्ध कोष 'नालन्दा विशाल शब्द-सागर' में ११७३ पृष्ठ पर 'राष्ट्रीय' शब्द के अर्थों में 'प्राचीन संस्कृत नाटकों में राजा का साला' यह अर्थ वे तुरन्त देख लेने की कृपा करें। जहाँ तक पाणिनि व भट्टोजीदीक्षित को देख लेने का प्रश्न है उस विषय में श्री तिवारीजी से निवेदन है कि ये दोनों वैयाकरण व्याकरण-नियमों के निर्देष्टा तथा व्याख्याता हैं, कोषकार नहीं जो कि शब्द का अर्थ वहाँ लिखा मिलता। अर्थ-विशेष में शब्द-विशेष के रूप-भेद का संकेत कर देना इनका अवश्य यत्र-तत्र उद्देश्य रहा है। जैसे, 'द्विवर्ष' शब्द से ठञ् तद्धित प्रत्यय करने पर भूतकाल में उत्तर पद में वृद्धि करके 'द्विवार्षिक' तथा भविष्यत् काल में पूर्व पद में वृद्धि करके 'द्वैवर्षिक' रूप बनता है। वहीं दीक्षित ने 'वर्षस्याभविष्यति' सूत्र के उदाहरण रूप में 'द्विवार्षिको मनुष्यः। भविष्यति तु द्वैवर्षिकः' यह स्पष्ट निर्देश कर दिया है। व्यवहार में 'राष्ट्रिय' शब्द का 'राजा का साला' अर्थ 'मृच्छकटिक' आदि संस्कृत नाटकों में श्री तिवारीजी जब चाहें, देख सकते हैं।

हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए श्री तिवारीजी का यह सुझाव है कि जिन तद्धित प्रत्ययों में ञ्, ण् और क्, इत् हो उन्हें शब्दों में जोड़ने पर, शब्दों के आदि स्वर की यदि वृद्धि न की जाय तो हिन्दी के लेखक संस्कृत-नियमों के जाल से छुटकारा पा जाएँगे। उदाहरण के लिए 'भूत', 'इतिहास' तथा 'अलंकार' शब्द से 'भौतिक', 'ऐतिहासिक' तथा 'आलंकारिक' रूप न लिखकर 'भूतिक', 'इतिहासिक' तथा 'अलंकारिक' लिखने की उन्होंने प्रार्थना की है। इस सुझाव को न माननेवालों की उनके शब्दों में 'वही दशा होगी जो उन लोगों की हुई जो 'मुख' को 'मुँह' बनाने का विरोध करते थे।' इस स्थापना के समर्थन में कुछ शुभ परिणामों का उल्लेख भी उन्होंने किया है। उनके कथनानुसार, ऐसा करने से एक तो, हिन्दी के सरल होने की कठिनाई मिट जायगी; दूसरे, शुद्ध हिन्दी लिखने के लिए संस्कृत व्याकरण के नियमों का ज्ञान अनिवार्य नहीं रह जायगा; तीसरे, हिन्दी का व्याकरण संस्कृत व्याकरण का पिछलगुआ न रहकर स्वतन्त्र शास्त्र बन जायगा। इस विषय में श्री तिवारी-जी से मेरा निवेदन है कि जिन पाणिनि, कात्यायन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतंजलि के बताये गये नियमों की दुरूहता का उल्लेख कर वे 'संस्कृत व्याकरण के नियमों में जकड़ने से हिन्दी के सरल होने की कठिनाई,' का अनुभव करते हैं वे लक्ष्यैकचक्षुष्क वैयाकरण थे, लक्षणैकचक्षुष्क नहीं। उनकी दृष्टि लक्ष्य अर्थात् शब्द पर ही रहती थी, लक्षण अर्थात् नियम पर नहीं। किसी पूर्व वैयाकरण के बताये लक्षणमात्र को देखकर वे नहीं चलते थे। वे तो जिन शब्दों में रूपसाम्य तथा अर्थ-साम्य देखते थे, उनमें समान प्रत्यय की कल्पना करके प्रकृतिगत विकार के नियमों का निर्देश कर दिया करते थे। उनके नियम पूर्व प्रचलित शब्दों को देखकर बनाये गये हैं, भविष्य में नूतन प्रचलन के सुझाव रूप में नहीं। शब्दों के प्रचलित रूप-भेद को ही नहीं, अर्थभेद को भी उन्होंने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। पाणिनि ने 'तुम सब का' इस एक अर्थ के लिए 'युष्मदीय', 'यौष्माक', 'यौष्माकीण' ये तीन तद्धित प्रत्ययान्त प्रयोग देखे थे, तीनों की व्युत्पत्ति के सूत्र बना दिये।[1] कात्यायन ने 'अहर्गणः' आदि प्रयोगों में 'न्' को 'र्' होता देखने के साथ-साथ 'अहोरूपम्', 'अहोरात्रिरेषा', 'अहोरथन्तरम्' प्रयोगों में 'र्' को 'रु' होता देखा था इसलिए पाणिनि के 'रोऽसुपि' सूत्र के अर्थ में संकोच कर दिया।[2]

पतञ्जलि ने 'कम्बोज' देश में 'शव्' धातु का सामान्यतः 'गमन' अर्थ देखते हुए भी आर्यों में उसका मृतावस्था के लिए प्रयोग देखा था, स्पष्ट निर्देश कर दिया।[3] इसलिए उन आर्यों पर नियमों की दुरूहता का आरोप उचित नहीं है। अश्वमुच, घटनिर्माता कुम्भकार की भाँति वैयाकरण शब्दों का निर्माता नहीं होता। वह तो पूर्व निर्मित शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय का विभाजन किया करता है। 'व्याकरण' शब्द का अर्थ भी 'शब्दों की व्युत्पत्ति बतानेवाला' ही है, 'शब्द बनाने-वाला' नहीं।[4] इसीलिए पाणिनि आदि ने भी शब्द का प्रयोग विषय देखकर ही अपने नियमों की रचना की। इन उद्धरणों से श्री तिवारीजी को यह विदित हो गया होगा कि वस्तुतः वैयाकरण अपनी ओर से किसी शब्द के स्थान पर कोई शब्द लिखने के सुझाव नहीं दिया करता, जैसा उन्होंने 'भौतिक' आदि के स्थान पर 'भूतिक' आदि लिखने का सुझाव दिया है, अपितु, प्रयुक्त या प्रचलित शब्दों का ही विवेचन कर दिया करता है। यदि सामान्य प्रयोग के अतिरिक्त किसी विशेष व्यक्ति द्वारा शब्द के दूसरे रूप का भी दर्शन या समर्थन किया गया हो, तो वैयाकरण उस विशेष व्यक्ति का नाम निर्देश करके उसका भी उल्लेख कर दिया करता है। पाणिनि के 'लोपः शाकल्यस्य', 'अवङ् स्फोटायनस्य', 'लङः शाकटायनस्यैव' आदि सूत्र इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। ठीक इसी प्रकार, सर्वत्र 'भौतिक', 'ऐतिहासिक' तथा 'आलंकारिक' आदि शब्दों का प्रयोग मिलने पर भी तिवारीजी जैसे मूर्धन्य वैयाकरणों द्वारा 'भूतिक' 'इतिहासिक' तथा 'अलंकारिक' आदि शब्दों का दर्शन या समर्थन होने से हिन्दी के वैयाकरण नाम-निर्देश करके उनका भी उल्लेख कर दिया करें, उन्हें तिलमिलाने की आवश्यकता नहीं। जहाँ तक ऐसा करने से हिन्दी की सरलता का प्रश्न है, वहाँ श्री तिवारीजी को सोचना चाहिये कि सरलता सदा सामान्यतः प्रयुक्त या प्रचलित शब्दों के प्रयोग में ही होती है, अप्रयुक्त या अप्रचलितों के प्रयोग में नहीं। यदि उनके सुझाव के अनुसार दैनिक प्रयोग में आने वाले 'दैनिक पत्र' के स्थान पर 'दिनिक पत्र' का प्रयोग किया जाने लगे, नरपुत्र जल के लिए 'नार' शब्द का प्रयोग न करके 'वेंकटेश नारायण' के स्थान पर 'वेंकटेश नरायण' ही लिखा जाय, किसी के दुराग्रह पर 'हार्दिक खेद' न होकर 'हृदिक खेद' होने लगे, 'प्राथमिक शिक्षा' के स्थान पर 'प्रथमिक शिक्षा' लागू हो जाय, 'औचित्य के पारखी' 'उचित्य के परखी' रह जायँ, तिवारीजी के सुझाव की व्यावहारिकता के सम्बन्ध में 'मौन' धारण न करके 'मुन' धारण कर लिया जाय, 'आधुनिक' आलोचक 'अधुनिक' ही रह जायँ तो सम्भवतः श्री तिवारीजी को भी मानसिक दुःख ही होगा, क्योंकि उन्होंने भी, जो हिन्दी की सरलता के पक्षपाती हैं, अपने इसी लेख में पहले ही शब्दों का प्रयोग किया है पिछलों का नहीं। क्या इन पिछले शब्दों के बोलने-लिखने में उन्हें विशेष सरलता का अनुभव नहीं हुआ?

जहाँ तक शुद्ध हिन्दी लिखने के लिए संस्कृत व्याकरण के नियमों के ज्ञान की अनिवार्यता का प्रश्न है, वहाँ श्री तिवारीजी को चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि

---

[1] 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥४।३।१॥ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥४।३।२॥

[2] 'रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्।' रोऽसुपि ८।३।६९॥ सूत्र का वार्तिक।

[3] 'शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एवैनमार्या भाषन्ते शव इति।

[4] व्याक्रियन्ते=व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन तद्व्याकरणम् ॥ ॥१।१।१ आह्निक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध हिन्दी लिखने के लिए हिन्दी व्याकरण के नियमों के ज्ञान की भी अनिवार्यता नहीं है। भाषा-ज्ञान नियमों से नहीं, व्यवहार से होता है। वृद्ध व्यवहार ही शब्द के स्वरूप-ज्ञान तथा शक्तिग्रह का सर्वसुलभ साधन है। न जाने, कितने हिन्दी भाषा-भाषी ऐसे होंगे जिनको 'आदि स्वर की वृद्धि', तिवारीजी के इस वाक्यांश का अर्थ भी समझ में नहीं आया होगा और आदिम स्वर की वृद्धिवाले 'साधारण', 'सामान्य', 'दैनिक', 'वार्षिक' आदि शब्दों का बेरोक-टोक प्रयोग करते होंगे। पेप्सु (Pepsu) में रहनेवाले लोगों में से कितने लोग यह जानते हैं कि 'पटियाला एण्ड ईस्टर्न पंजाब स्टेट्स यूनियन' इन पाँच शब्दों के आदिम वर्णों के योग से 'पेप्सु' शब्द की रचना हुई है? अंग्रेजी का 'न्यूज पेपर' पढ़नेवालों में से १% को भी सम्भवतः यह ज्ञान न हो कि 'नार्थ, ईस्ट, वेस्ट, साउथ' इन चार शब्दों के आदिम वर्णों को लेकर ही (News) शब्द का निर्माण किया गया है जो चारों ओर घटित घटनाओं या समाचारों का वाचक बन गया है।

जहाँ तक हिन्दी व्याकरण के संस्कृत व्याकरण का पिछलगुआ बनने की बात है वहाँ श्री तिवारीजी से निवेदन है कि वे इस व्यवहार से रुष्ट न हों। 'मातुर्गुणान्याति सुताप्यसंशयम्।' तथा 'सीखा-सीख पड़ौसन सीखे। माँ के लक्खन धी भी सीखे।' इत्यादि वाक्यों में प्रतिपादित सत्य को झूठा बनाने का प्रयास वे न करें। जब संस्कृत का हिन्दी से पूर्व जातानुजात सम्बन्ध है तो हिन्दी को उससे आवश्यक प्रेरणा लेने में आनाकानी नहीं करनी चाहिये। यदि गुरु संस्कृत व्याकरण अपने पारस्परिक शिष्य हिन्दी व्याकरण को आवश्यक निर्देशोपदेश दे रहा है तो इसमें हानि क्या? हानि तो तब है जब वह गुरु किसी अन्य शिक्षक से कोई भी शिक्षा लेने की रोक लगाता हो। यह माना कि हिन्दी किसीके हाथ बिक नहीं गयी है किन्तु यह मानने में भी हमें हिचक नहीं होनी चाहिये कि 'स्टेशन' को 'इस्टेशन', 'सटेशन' या 'टेशन' लिखने में भी हिन्दी का गौरव नहीं बढ़ेगा। यह माना कि 'मुख' के स्थान पर 'मुँह' का प्रयोग हिन्दी में संस्कृत व्याकरण नहीं रोक सकेगा किन्तु 'मौखिक' के स्थान पर 'मुँहिक' या 'मुखिक' के प्रयोग का सुझाव देनेवालों से हिन्दी व्याकरण की भी नहीं निभेगी। आज हिन्दी में ध्वनि, अंजलि, आत्मा, दार, अभिलाष आदि शब्दों का प्रयोग संस्कृत व्याकरण के लिङ्गानुशासन से पृथक् रखकर किया जा रहा है। नवीन-नवीन प्रत्ययों के योग से अहर्निश नवीन-नवीन शब्दों की रचना करके हिन्दी के कोष की श्री-वृद्धि की जा रही है। रेल, मोटर, स्टेशन आदि शब्दों को ज्यों का त्यों, तथा आलमारी (ऐल्मा), सिपाही (स्पौय), लालटेन (लैनटर्न) आदि शब्दों को कुछ रूप-भेद से स्वीकार करके अपनी पाचन-शक्ति का परिचय दिया जा रहा है। संस्कृत-व्याकरण के अनुस्वार पर सवर्ण नियम को ढीला करके 'अङ्क' आदि को लिखकर 'अंक' आदि लिखा जा रहा है। ठीक है, ऐसा करने से हिन्दी का स्वरूप-विकास होगा, व्यापकता बढ़ेगी तथा सरलता के फलस्वरूप ग्राह्यता आ जायगी। किन्तु, हिन्दी व्याकरण को एक स्वतन्त्र शास्त्र माननेवाले श्री तिवारी जी भी, शास्त्र होने के नाते, शब्दस्वरूप नियमन के लिए कुछ-न-कुछ नियम तो स्थिर करेंगे ही। उन नियमों के विपरीत लिखा जाने पर कोई न कोई शब्द तो त्याज्य या अशुद्ध बताया ही जायगा। अन्यथा, हिन्दी व्याकरण का स्वतन्त्र शास्त्रत्व ही क्या रहा? 'तीनों' के अनुकरण पर 'दोनों' पद के प्रयोग में न की अधिकता सह्य होने पर भी 'पंचम' के अनुकरण पर 'षष्ठम' इस प्रयोग को अशुद्ध कहा ही जायगा। 'सौम्यता' के अनुकरण पर 'साम्यता' की शुद्धि के प्रतिपादन में तो मौन साधना ही पड़ेगा। 'क्षेत्र' के अनुकरण पर 'छत्रपति' और 'छात्र' को 'क्षत्रपति' और 'क्षात्र' लिखनेवालों पर तो प्रतिबन्ध लगाना ही पड़ेगा। किसी एक-दो शब्दों को एक-दो नासमझ व्यक्तियों द्वारा अशुद्ध लिखे जाने पर, उनके ही अनुसार, सभी शुद्ध शब्दों को अशुद्ध रूप में लिखने का सुझाव दे देना श्री तिवारीजी जैसे समर्थ विद्वानों का काम हो सकता है, हम जैसे सामान्य जनों का नहीं। जहाँ तक 'दैहिक', 'दैविक', 'भौतिक' आदि सरल शब्दों के विरोध करने के लिए तुलसीदासजी की भाषा को साहित्यिक बताकर तिवारी के स्वमन्तव्य का पोषण करने का प्रश्न है, वहाँ उन्हें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि 'देहिक', 'दैविक' तथा 'भूतिक' या 'इतिहासिक', 'अलंकारिक' आदि शब्दों का प्रयोग भी कोई असाहित्यिक नहीं कर सकता। साहित्यिकता का आवरण इनसे भी नहीं हट सकता। जायसी की बोलचाल की भाषा के आदर्श को माननेवाले तिवारी जी ने कितने ऐसे तद्धित प्रत्ययान्त शब्द खोजे हैं जहाँ सरलता की दृष्टि से 'आदि स्वर की वृद्धि' न की गयी हो?

आज तो वे तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों के विषय में यह एक नयी अव्यवहार्य स्थापना कर रहे हैं, कल कृदन्त प्रत्ययान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों की ओर उनकी पैनी दृष्टि जायगी। फिर कैसे भाषा का सर्वग्राह्य रूप रह सकेगा, समझ में नहीं आता। वे तनिक शान्त चित्त से सोचें कि साक्षर मात्र के दैनिक व्यवहार में आने वाले गौरव, लाघव, सौन्दर्य, माधुर्य, सामान्य, साधारण, सैनिक, धार्मिक, दैनिक, साप्ताहिक तथा वार्षिक आदि शब्द उनके नये सुझाव की चक्की में पिसकर क्या अपना ध्वनि-सौन्दर्य नहीं खो बैठेंगे ? और इनके स्थान पर बोले जाने वाले 'गुरव' 'लघव' आदि शब्द अपनी कर्कशता से कर्णकटु नहीं हो जायेंगे ? इतने पर भी यदि उन्हें अपने सुझाव से मोह है, तो क्षमा करें। जहाँ तक 'अन्ताराष्ट्रिय' के स्थान पर 'अन्तर्राष्ट्रीय' लिखने की युक्ति देकर तिवारी जी का हिन्दी वालों को संस्कृत प्रत्ययों के प्रयोग में स्वतन्त्र सिद्ध करने का प्रश्न है, उस विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि वस्तुतः हिन्दीवाले स्वतन्त्र बनने के लिए ऐसा नहीं कर रहे। श्री तिवारीजी के ही शब्दों में 'इसे हिन्दीवालों की जिद न सोचना चाहिये। उन्हें तो पाणिनि, कात्यायन, और पतंजलि के बताये नियमों का बोध नहीं है। इसीलिए वे ऐसा करते हैं।' सचमुच, 'देशीय' और 'जातीय' शब्दों के अनुकरण पर 'राष्ट्रीय' तथा 'अन्तर्देशीय' व 'अन्तर्जातीय' शब्दों के अनुकरण पर 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द का प्रयोग भी हिन्दीवालों की नियमानुसारिता तथा समझदारी का पूरा परिचायक है। ऐसी स्थिति में संस्कृत व्याकरण का अनुशासन इस शब्द पर न रहे, न सही, हिन्दी व्याकरण का अनुशासन मानने में इसे कोई आपत्ति नहीं होगी। किसी विशेष प्रयोग के लिए बताये गये संस्कृत व्याकरण के नियम का स्मरण रखने की हिन्दी वालों की आवश्यकता नहीं, यह सच है, किन्तु व्यवहार में आने वाले 'भीरु', 'जागरूक', 'भावुक' आदि अनेक ऐसे शब्द हिन्दी में विद्यमान हैं जिनकी व्युत्पत्ति बताने के लिए पाणिनि ने एक-एक सूत्र की स्वतन्त्र रचना की है।[1] उन नियमसूत्रों का स्मरण न हो, न सही, किन्तु उन शब्दों की इसी रूप में शुद्धि के विषय में किसी को सन्देह नहीं। इसलिए किसी एक उदाहरण से हिन्दी और संस्कृत में विभेद स्थापित करके एक को दूसरी से अत्यधिक दूर करने की चेष्टा करना विद्वानों के लिए शोभनीय नहीं है।

मुझे विश्वास है कि श्री तिवारी जी आइन्दा हिन्दी में प्रचलित शुद्ध तत्सम शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए संस्कृत व्याकरण की सेवाएँ स्वीकार करने में न हिचकेंगे और प्रचलित शुद्ध शब्दों के प्रयोग के ही पक्षपाती रहेंगे। शम्

१—भियः क्रुक्लुकनौ ॥३।२।१७४॥ जागरूकः ॥३।२।१६५॥

नील वितान

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

श्री विजयशंकर शुक्ल 'संत'

बना रहने दो कृपानिधान ! जगत में भ्रम का नील वितान।
सुरभित पद्मों की छाया में क्षण भर विगत बिसार--
पीकर मधु पल भर को रच लें स्वप्नों का संसार--
मान न पायें अतल पंक का मेरे मधुप अजान--
करि-पद की व्याकुल कुचलन का कभी न आये ध्यान,
जहाँ परियाँ गाती हों गान, निराला भ्रम का नील वितान !
राका-निशि के झिलमिल पट में शशि की मृदु मुस्कान--
धरती का व्यवधान नापती हों किरणें अम्लान--
जान सके न मृदु चकोर इस छलना का आह्वान--
अंगारों के मोल बिकें रेशम-से कोमल प्रान--
जहाँ झुलसे जाते अरमान, अनोखा भ्रम का नील वितान !
दूरागत वंशी-रव भर दे जड़ में चेतन ताप--
घुल जायें आकुल कंपन में राशि-राशि अभिशाप--
जान सके ना भोला मृग यह तानों का व्यापार--
मानस की गहराई नापे असि की तीखी धार,
जहाँ चलते हों पंचम-बान, निराला भ्रम का नील वितान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

(अब लीजिये ! पाठिकाओं से उनके वैवाहिक जीवन के सबसे अधिक मनोरंजक अनुभव पढ़िये)

सह० सम्पादिका

मेरे विवाहित जीवन का सबसे मनोरंजक अनुभव

मेरी शादी १९४२ में हुई। पिछले बीस वर्ष के वाकयात दिमाग में लाने कि कोशिश करती हूँ तो बहुत सी बातें याद आती हैं जो कि उस वक्त हद से ज्यादा एहमियत रखती हुई मालूम होती थीं। मगर अब उनको सोचकर हँसी आती है।

शुरू शुरू में एक नौकर था, वही खाना पकाता था और घर का बाकी सब काम भी करता था। एक दिन नौकर बीमार पड़ गया, बेहद परेशानी हुई नयी नयी शादी हुई थी और खाने पकाने से बिलकुल वास्ता न था। शादी से पहले का जमाना स्कूल और कॉलेज की होस्टल में गुजरा था। जब छुट्टियों में घर आती और अम्मा कभी बावरची-खाने में बुलातीं तो डैडी यह कहकर उन्हें डाट दिया करते, "मेरी बेटी खाने पकाने के लिये पैदा नहीं हुई है, उसे तो शैक्सपियर और 'मिलटन' पढ़ना है।" इसलिये कभी कुछ सीखा ही नहीं। अब जो नौकर गायब हुआ तो हाथ-पाँव फूल गये। पतिदेव ने दिलासा देते हुए समझाया "परेशान क्यों होती हो ? बहुत ज्यादा चीजें बनाने की जरूरत नहीं है, चार अंडे का आम्लेट तल लो, बस काफी है।" अब तो पैरों तले जमीन निकल गयी। आम्लेट क्या, यहाँ तो कायदे से अंडा तोड़ना तक नहीं आता था !! बहर हाल बड़ी हिम्मत करके बावर्चीखाने में गयी और सोचने लगी कि आम्लेट पकाया नहीं लेकिन खाया तो है। जाहिल जाहिल बावर्ची पका लेते हैं, फिर मैं तो पढ़ी-लिखी हूँ, ऐसी भी क्या मुशकिल चीज होगी ? बहुत सम्हालकर डरते-डरते अंडे तोड़े। फ्राई पैन और उसी ठंडे घी में बगैर फेंटे अंडे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल दिये। प्याज काटने की कोशिश की तो आँखों से जारो-कतार आँसू बहने लगे। प्याज के मोटे-मोटे टुकड़े भी फ्राई पैन में डाल दिये और जरा सा नमक डालकर चूल्हे पर चढ़ा दिया। चूल्हा माली से जलवा लिया था। दफ्तर से उठकर जब बैरिस्टर साहब अन्दर खाने के कमरे में आये और बड़े शौक से बीबी के हाथ का पका हुआ खाना खाने बैठे तो उनके सामने जो आम्लेट रखा गया, वह आम्लेट क्या था—आधा जला, आधा कच्चा, छिलकों से भरा हुआ चमड़े का टुकड़ा था !! मेरी आँखों से आँसू टपक पड़े और शर्म से चेहरा सुर्ख हो गया। उसी वक्त कसम खा ली कि खुद भी बेहतरीन खाना बनाना सीखूँगी और अपनी बच्चियों को भी इस फ़न में माहिर कर दूँगी।

अब सुनिये दूसरा किस्सा। मेरी जिस वक्त शादी हुई थी उन दिनों कचेहरी खुली हुई थी। मेरे शौहर की वकालत भी नयी थी। इसलिये शादी के फौरन बाद ही हम लोग कहीं हनीमून के लिये जा न सके। छः महीने बाद गर्मियों की छुट्टियों में मंसूरी जाने का प्रोग्राम बना। आमदनी कुछ ऐसी ज्यादा थी नहीं कि होटल में ठहरते। इसलिए दो कमरे का एक घर कैमेल्स बैक पर ले लिया था। और नौकर भी साथ नहीं ले गये थे क्योंकि तब तक तो मैंने खाना पकाना बखूबी सीख लिया था।

देहरादून से मंसूरी आखिरी गेट से पहुँचे। घर पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी। हम दोनों ने पहले तो यह तय किया कि वहाँके बड़े अंग्रेजी होटल में खाना खा लेंगे, लेकिन घर पहुँचकर इतनी थकान मालूम हुई कि बाहर जाने का इरादा तर्क कर दिया। मैंने जल्दी-जल्दी कुकर (Cooker) निकाला, कोयले सुलगाये, सफर के लिये उबले अंडे साथ थे, उनमें से बचे हुए अंडों का सालन चढ़ा दिया और बाकी के डब्बों में आलू की सब्जी और चावल रख दिये। आप बहनें तो जानती ही हैं कि कुकर में खाना ज्यादा से ज्यादा डेढ़ घंटे में तैयार हो जाता है। भूख बेहद लगी हुई थी। हम दोनों वक्त काटने के लिए ताश खेलने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन दोनों का ध्यान कुकर ही की तरफ था। हर चन्द मिनट पर एक दूसरे की निगाह बचाकर बावर्चीखाने की तरफ देख लेते थे। दो एक बार मुझे ख्याल आया कि सालन के पकने की खुशबू नहीं आ रही है। लेकिन ट्रेन में बड़ी जोर का जुकाम हो गया था, और यह सोचकर कि शायद नाक बन्द है, इसलिए खुशबू नहीं आ रही है, खामोश बैठी रही। ठीक डेढ़ घंटे बाद जब भूख बिल्कुल नाकाबिले-बर्दाश्त हो गयी और पेट में चूहे दौड़ने लगे, मैं बावर्चीखाने की तरफ गयी। यह भी मेरे साथ लपककर उठे, बड़े शौक से कुकर का ढकना खोला—सारा का सारा खाना, सालन, तरकारी, चावल, वैसे का वैसे ही रखा हुआ था ! कुछ समझ में नहीं आया क्या बात हुई। जल्दी से अँगीठी खींचकर बाहर निकाली तो देखा कि कोयला बिलकुल बुझा पड़ा था। डब्बे बाहर निकाले तो पता चला कि कुकर में कहीं छेद हो गया था और पानी टपक-टपककर अँगीठी में पहुँच गया था। दिल बैठ गया, नजरें मिलीं, उनकी वह नजर आज तक नहीं भूली।

श्रीमती सादिका सरन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) मेरे विवाह की सबसे मनोरंजक घटना

ईरा शर्मा

मेरे विवाह की सबसे मनोरंजक घटना वास्तव में अत्यन्त मनोरंजक है। मेरा विवाह होकर आया ही था—मेरे ससुराल में रूढ़िवादी परम्परायें बहुत हद तक पीटी जाती थीं, एक एक रस्म सविस्तार निबाही जाती थी और पति-पत्नी के मुँह की झाँकी पा सके, इसमें हफ्ता तो लग ही जाता था। मेरे पति प्रायः प्रत्येक रूढ़िवादी परिवार के आधुनिक पुत्रों में से हैं जो माता-पिता के भय के कारण रूढ़ियाँ तो पीटते चले जाते हैं पर अन्दर से कुढ़ते और अपनी चलाने के लिये अन्दर ही अन्दर दूसरे रास्ते खोजा करते हैं।

एक दिन न जाने इनकी और इनकी बहनों की क्या बातें हुईं कि मुझे आवाज आई "भाभी ! जरा साड़ी जेवर बदल लो पूजा पर जाना है।" मेरी सास मुझसे कह गयी थीं कि अभी पूजा के तीन दिन और बाकी हैं—मैंने सोचा फिर कोई पूजा आ पड़ी। इस कारण मैं कपड़े पहनने लगी, इतने में मेरी छोटी नन्द आई और मेरे साथ मायके से आई नौकरानी से कहने लगी "अरी ! ओ मुनिया तनिक तू भी बिंदी लगा ले, ये ले ये लाल फुँदना बाँधकर चुटिया गूँथ ले, ले चोटी में फूल गूँथ ले। जायगी नहीं बहू के साथ कुँआ पूजने ? ये ले गोटे की चुनरी ओढ़ ले।" और उसे चमाचम पीतल के जेवर देती हुई बोली "ले इनको भी पहन ले। बाहर जायगी लोग कहेंगे जिसकी नौकरानी इतना पहने है उसकी मलकिन भला क्या नहीं लाई होगी।" सारांश यह कि मुनिया का नख-शिख शृंगार हो गया और छोटी नन्द उसे उठाकर पास के कमरे में ले गयी और बोली "देख यहाँ बैठ-कर, घूँघट काढ़ कर मिट्टी की गौर बना, (गौर का पूजना ब्याहती स्त्रियाँ अखंडयाँ सुहाग के लिये किया करती हैं) घूँघट जरूर काढ़ लीजो, शुभ होता है।" मुनिया को बिठा कर मेरी नन्द चली गयी। मुझे दूसरे कमरे में जिसके किवाड़ के शीशे का पेन्ट कुछ खुर्चा हुआ था खड़ा कर दिया गया।

मेरी छोटी नन्द ने मेरे पति से जाकर कुछ कहा होगा, थोड़ी देर में देखती हूँ कि मेरे पति कमरे में आये और उन्होंने कुछ खाँसा। मुनिया गौर बनाने में लगी थी, पुरुष की आवाज सुनकर उसने कुहनी से अपना घूँघट और नीचा कर लिया। मेरे पति ने कहा.....'जरा सुनिए' मुनिया ने घूँघट और नीचा कर लिया। मेरे पति ने जरा और साहस किया और बोले "क्या मैं आपका घूँघट छू सकता हूँ ?"

मुनिया का धीरज समाप्त हो चुका था वहींसे बोली "का होय हो ? हाय मइया ! ई देखो या घर के मनई ! तू कौन होत हो ए ! हमरे घुँघटवा की सुध लेय वाले ! पूजा करन बैठी हन, नाहीं तो अबहिन दिखाइत दुइ हाथ। का समझेहौ ! सुरजपुर की असली कहारिन हम हन्—अँखिया तरेर देइ तो मुसई बन जाओ, गुहराई केहू का कि ...." मुनिया से घूँघट खोलने को मना किया गया था बोलने को तो मना किया नहीं गया था। वह मुक्त कंठ से ससुराल के सब पुरुषों की मूँछ उखाड़ने के विचार प्रबल भाषा में प्रकट कर रही थी। मेरे पति उल्टे पैरों भागने की कोशिश में थे, पर उस दरवाजे की कुंडी चढ़ी थी जिससे आये थे—सामने वही दरवाजा था जिससे हम झाँक रहे थे। बिचारे उसीसे निकलकर भागे—मेरे पीछे खड़ी मेरी छोटी नन्द कह रही थी "अरे भइया कहाँ जा रहे हो ? भाभी तो ये रही वहाँ कहाँ उलझ गये थे ? पहले भाभी की नौकरानी को झाँक आओ—सीधा भाभी को देखोगे तो नजर लग जायगी। यह रस्म हो गयी अब तीन दिन बाद आना तो मुनिया की जगह भाभी मिलेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया युग

नये युग के, नये छोटे मकान, नये विचारों के सहारे ही सुन्दर व स्वच्छ रह सकते हैं। आप भी अपनी रसोई में ऐसी मेज बनाइये जो जब आवश्यकता हो मेज बन जाय, और जब काम पूरा हो जाय तो अलग कर इस तरह सरका दी जाय जैसे मेज वहाँ पहले कभी थी ही नहीं। गृहणी से पूछिये इसका सुख! स्कूल जाते समय बच्चे, दफ्तर जाते समय पति को वहीं भोजन बनाया और वहीं रसोई से लगी मेज पर परोस दिया।

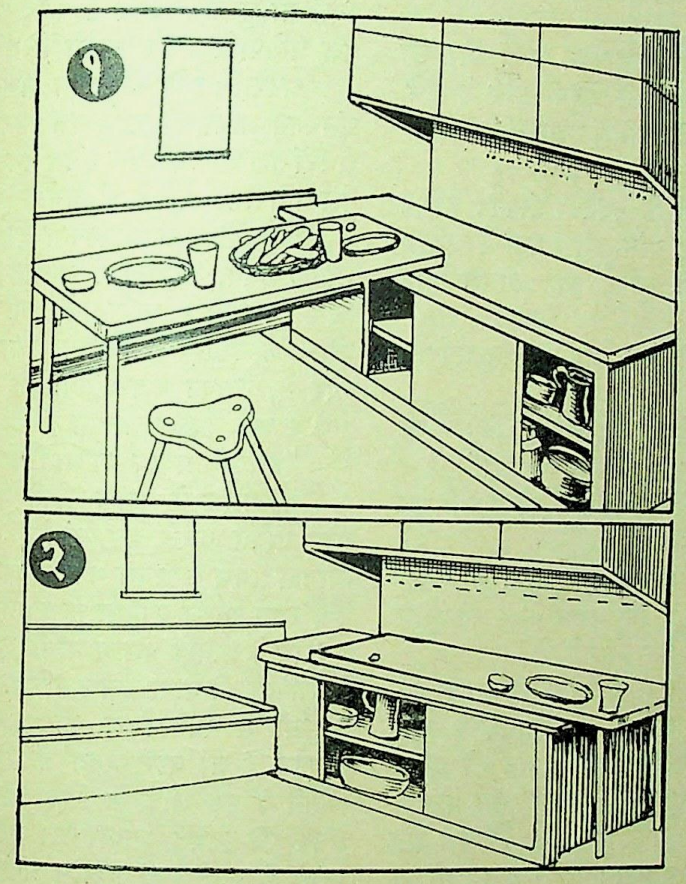

१—चित्र में मेज को खींच कर उस पर भोजन परोस दिया गया है। पीछे बैठने को लम्बी बेंच है जिस पर रसोई का काम भी हो सकता है और बैठते समय उस पर गद्दियाँ डाली जा सकती हैं। सामने के लिये यह स्टूल है जो कि अन्दर में खसकाकर एक किनारे लगाया जा सकता है। एक और उसके किनारे पर के दो गोल पाये उसे दृढ़ता देते हैं दूसरी ओर स्टोर की अलमारी।

२—आवश्यकता निकल जाने पर वह स्टोर की अलमारी के ऊपर सरका दी गयी है, और रसोई में काम करने को फिर जगह निकल आई है। इस अलमारी में स्टोर का सामान भी रक्खा जा सकता है।

इस प्रकार एक थोड़े से स्थान में, स्टोर भी हो गया, रसोई भी और साथ में खाने की मेज भी। स्थान भी कम लगा और सुविधा भी सब मिल गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँसू का मुकदमा

निरालाजी के स्वर्गवास के पश्चात् 'सरोज-स्मृति' पढ़ने पर एक परिकल्पना

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास

आँसू की दो बूँदें, सरोज-नयन से क्या झरीं, स्वर्ग में भूचाल आ गया !

फूस की आग की तरह यह समाचार चारों ओर छा गया, और ऐसा लगा जैसे सपनों की रेशमी डोर से बँधे, सुख के पलने में सोता हुआ संवेदन-शिशु रुदन की प्राथमिक मचलन का अनुभव कर रहा हो !

आँसू और निःश्वास, स्वर्ग के स्वदेशी-संस्कार नहीं। वहाँ आँखों से उल्लास झरता है, आँसू नहीं। वहाँ उच्छ्वास में अतृप्ति की तपन नहीं बसती, तृप्ति का शीतल चंदन महकता है।

स्वर्ग में अश्रुपात, तीन सौ दो से भी भयावह अपराध माना जाता है।

स्वर्ग के नागरिकों के लिये दो बूँद आँसू, विहार की बाढ़ थे ! सारा स्वर्ग सिहर उठा, और परंपरा पंथियों ने न्यायिक जाँच की माँग की। विधि-विशेषज्ञों का एक विशेष दल न्याय-दान के लिये नियुक्त हुआ।

न्याय-मंदिर के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। प्रकरण प्रारंभ होने के पूर्व ही स्वर्ग के सम्माननीय नागरिकगण, सभागृह में उपस्थित हो गये थे।

यथासमय न्यायाधीश-गण पधारे। सभा-गृह का कोलाहल शांत हो उठा। राजकीय अभिभाषक ने आँसू का मुकदमा प्रारंभ किया और स्वर्गीय संविधान की अनेक धाराओं का उल्लेख करते हुए इसे संविधान तथा परंपरा की हत्या करनेवाला अक्षम्य अपराध घोषित किया। अंत में प्रभावशाली शब्दों के साथ माननीय न्यायाधीशों से दंड व्यवस्था की प्रार्थना की गयी।

माननीय न्यायाधीशों ने क्षण भर अपराधिन की ओर देखा—वह नत-नयना, विषाद की प्रतिमूर्त्ति सी मूक खड़ी थी। नयन-कोर अभी भी गीले थे। अंतर की घनीभूत पीड़ा, दुर्दिन के मेघ की तरह उसके उज्ज्वल आनन पर, विषाद की छाया बनकर, प्रतिलक्षित हो रही थी।

दूसरे ही क्षण न्यायाधीशों की दृष्टि, कनक-चौकी पर रखे उन पारिजात-पत्रों की ओर उठी जिनमें अपराध के प्रत्यक्ष प्रमाण—दो बूँद आँसू—सहेजकर रख छोड़े गये थे।

इस दृष्टि-विनिमय के पश्चात् कुछ क्षणों के लिये माननीय न्यायाधीशों में विचार-विनिमय हुआ और सुविख्यात नियामक महर्षि मनु ने अपराधिन को संबोधित करते हुए कहा—"भन्ते ! स्वर्ग की न्याय-व्यवस्था तुम्हें अपने पक्ष-प्रतिपादन का अवसर प्रदान करती है। तुम स्वयं या तुम्हारी ओर से कोई भी नागरिक-जन, तुम्हारा पक्ष प्रतिपादित कर सकता है।"

अपराधिन के नत-नयन क्षण भर को उठे; रुद्ध-वाणी अंतरगत भावों को अभिव्यक्त करने के लिये आगे बढ़ी, पर अधरों तक आकर केवल कंपन बनकर रह गयी। वह अपना पक्ष-प्रतिपादन करने में सर्वथा असमर्थ थी !

क्रौंच-पीड़ा से शोकाकुल हो उठनेवाले आदि-कवि का भावुक हृदय, शताब्दियों पश्चात्, आज पुनः उस कंपन से विद्ध हो उठा। आदि-कवि उठे। सभागृह में एक गंभीर घोष गूँज उठा—"माननीय न्यायाधीशगण, आरोपिता की ओर से, उसका पक्ष-प्रतिपादित करने की अनुमति चाहता हुए, मैं कुछ कहना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा है ?"

"अनुमति प्रदान की जाती है।"—महर्षि मनु ने कहा।

वाल्मीकि ने कनक-चौकी पर रखे पारिजात-पत्रों की ओर इंगित करते हुए, गंभीर स्वर में कहा—'माननीय न्यायदातागण ! सामने की कनक चौकी पर रखे पारिजात-पत्र, स्वर्ग सुलभ महिमा के प्रतीक हैं और इस महिमा पर अपराध के प्रत्यक्ष प्रमाण मानी जानेवाली आँसू की दो बूँदें आरोपिता की नारी-सुलभ गरिमा की परिचायिका हैं। इन आँसुओं में कवि-कन्या की भावाकुलता है, सहृदयता के संस्कार हैं जो नारी-हृदय के लिए उतने ही सजातीय हैं जितने वे इस लोक के लिए विजातीय हो सकते हैं। आँसू अंतर की द्रवित भाषा है। इसकी तरलता में अपराध गलते हैं, पलते नहीं। आँसू अंतर-जनित संवेदन का संविधान है। संविधानहीन देश में अराजकता पलती है और संवेदनहीन अंतर में अपराध। अश्रुहीन अंतर, भावहीन होता है। जब हृदय जड़ हो जाता है, संवेदन सो जाता है, तरलता सूख जाती है तो उत्पात जागते हैं, अपराध पलते हैं और सभ्यता विनाश की राह पकड़ती है। तब, देव सृष्टि का अमर-जीवन भी जल-प्लावन के थपेड़ों से ध्वस्त हो जाता है और शाश्वत करुणा, सुख-सुप्त जड़ हृदय पर आघात करते हुए, संवेदन को जागृत करती है। उस दिव्य सुख के नद में तैरनेवाले अमरता के पुतले, भीगे नयनों से प्रलय-प्रवाह देखने को बाध्य होते हैं। असहायावस्था के ऐसे ही क्षणों में, निवृत्ति को प्रवृत्ति की राह बताने के लिये, जड़ता को गतिमान बनाने के लिये, आँसू से भीगे आँचल पर मन का सब कुछ रखकर कोई नारी अपने सोते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपनों का दान करती है और यही दान, ध्वस्त-सभ्यता के लिए वरदान की राह बन जाता है। ऐसी स्थिति में आँसू को अपराध मानना, सभ्यता और संस्कृति को लांछित करने जैसा है। युग की निर्ममता पर हृदय सदैव रोया है। इस रुदन-जल से सभ्यता और संस्कृति की मलीनता उज्ज्वल हुई है। जिस सभ्यता एवं संस्कृति ने नयनों की गंगा से निसृत इस पावन जल में स्वयं को नहीं पखारा, वह सभ्यता, वह संस्कृति बर्बर, हृदयहीन और भावना-शून्य हो जाती है। क्या यह भावना-जनित अश्रुपात अपराध है ?"

आदि-कवि का प्रश्न सभा-गृह के स्फटिक-स्तंभों से टकराकर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठा। न्याय-मंदिर में सन्नाटा छा गया। राजकीय अभिभाषक की वाणी विलुप्त सी हो गयी। आपस्तंब, मनु, याज्ञवल्क्य-प्रभृति न्यायाधीश-गण विचार में पड़ गये।

"माननीय न्यायकर्त्तागण !"—महर्षि वाल्मीकि का स्वर पुनः वातावरण को मंत्र-मुग्ध करता-सा लहराया—"स्वर्गीय परंपरा और संविधान को अपने दो बूँद अश्रुओं से विचलित कर देनेवाली यह कन्या, एक कवि-कन्या है। जीवन के अष्टादश अध्याय अभावों के मध्य पूरे कर इसने आलोक वरण किया है। जिसके अक्खड़ किन्तु ओढर दानी पिता ने कन्या-स्नेह के कारण विधि-विधान को चुनौती देकर जन्म भर विधुर-व्रत रखा, वही पिता युग की निर्ममता का शिकार होकर जब स्वर्ग-प्रविष्ठ हो रहा था, तब इसे कुछ पूर्व-कथित स्मृतियाँ भावाकुल कर उठीं। याद आया सरोज को वह दिन जब पिता नाना-नानी के बुलाने पर, उसे अपने साथ ले जाने को आये थे। यौवन की देहरी पर पग रखती कन्या, प्रत्येक पिता की चिन्ता का विषय होती है। कन्या के हाथ पीले करने की चिन्ता में प्रत्येक-सद् गृहस्थ स्वयं पीला हो जाता है। और फिर गृहस्थी की ओर से वीतराग रहनेवाले व्यक्ति के संकट का तो ओर-छोर ही नहीं।

"सरोज का पिता—एक अजीब आदमी। भाव, भाषा, छंद का धनी; घर-बार-संपदा से विरक्त ! पर-दुःख-पीड़ा जिसके लिये असहनीय ! युग की नग्नता को ढकने के लिये स्वयं वस्त्रहीन हो जाने पर पर-पीड़ा-विष का पान कर ले, पर अपना प्राप्य सुखामृत यों लुटा दे ज्यों मत्त गजराज बेखबर-सा सुरभि-माल उतार फेंकता हो ! ऐसे हृदय के धनी व्यक्ति के सामने कन्या-दान की चिन्ता थी। पर उसका स्वाभिमान विचलित नहीं हुआ ! कन्या साथ गयी। कन्यादान का आयोजन हुआ ! स्वयं पिता ने मंत्र पढ़े, मंगल-जल छिड़का। बेटी को विदा किया। पर इस मंगल आयोजन के बाद, कुछ ही समय पश्चात्, उसी पिता को डोली के बदले अर्थी की व्यवस्था करनी पड़ी।

"सरोज सी बेटी का अग्नि-दाह ! कुसुम की पाँखुरी पर ओस की नन्ही सी बूँद भी जिसके भावुक हृदय में हाहाकार पैदा कर सकती हो, भला सोचिये, वही पिता, अपनी फूल सी बेटी को चिता की आँच पर कैसे रख सकता था !

"प्रथम बार उसकी विपन्नता, कुररी की नाईं करुण-विलाप कर उठी। अपनी साधना, तप, त्याग, साहित्य-सेवा—सभी उसे निरर्थक से जान पड़े। प्रथम बार उसे अपनी निर्धनता का बोध हुआ। प्रथम बार उसका पितृत्व रोया' इसलिए कि एक सामान्य पिता की तरह वह अपनी कन्या को दधि-मुख न रख पाया ! चीनांशुक न पहना पाया ! द्रव्याभाव के कारण पुत्री को व्याधि के क्रूर हाथों से छुड़ा न पाया। उसे अपनी अक्षमता का बोध हुआ ! हिन्दी का यह स्नेहोपहार कितना निर्मम था !

"राष्ट्र के युग-प्रवर्तक कवि ने प्रथम बार अपनी अक्षमता अनुभव करते हुए, अपनी स्वर्ग-यात्री कन्या से प्रश्न किया—'पिता के पूर्व तेरा यह महाप्रयाण क्या इसलिये कि स्वर्ग के अज्ञात दुस्तर-पथ में तू अपने पिता का मार्ग-दर्शन कर सके ?'

"माननीय न्यायाधीश गण ! उस दिन यह प्रश्न निरुत्तर रह गया था ! सरोज महाप्रयाण कर चुकी थी। वर्षों पर वर्ष बीते। स्नेह-निर्भर बह गया ! शेष रह गया रेत सा तन ! और आज वही रेत-सा तन लेकर कवि, जब इस दुस्तर पथ में पदार्पण कर रहा था, कन्या के भावित-नयन, युग की निर्ममता से शापित उस रेत-देह को, स्नेहाधिक्य के कारण, दो बूँदों से सींच उठे। आज उसीकी तापित-तृष्णा, उसीके भावुक-अंश से सींची गयी है। युग के निर्मम गुणों पर यह स्वर्ग का अमृतोपम लेपन है ! इन अश्रुओं ने स्वर्गीय परंपरा का उल्लंघन कर अपराध नहीं, स्वर्गीय परंपरा की संकीर्ण अपराधी मनोवृत्ति का परिहार किया है। सुख का एक मात्र संचय स्वर्ग ही करता रहेगा तो क्या देवोपम उदारता लांछित न होगी। आज इन अश्रुओं ने स्वर्ग को गौरवान्वित ही किया है। स्वर्ग के नंदन-कानन में पारिजात की अपेक्षा सहानुभूतिजन्य अश्रुओं के अंकुर फूट सकें तो विलुप्तप्राय देवत्व पुनः पूजनीय हो जावेगा। माननीय ! ये अश्रु न्याय चाहते हैं !"

न्याय-पीठ से तत्काल निर्णय सुनाया गया—'अश्रु आरोप अमान्य किये जाते हैं। अभियोग-अनुताप के लिए स्वर्गीय न्याय-व्यवस्था सरोज के समक्ष खेद प्रकट करती है !" निर्णय सुनकर पारिजात-पत्रों में सुरक्षित अश्रु-हीरक-कण से दमक उठे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर-धन तकै कबूतरबाज

श्री कालिकाप्रसाद मोहिले

'आव बेटा आव', 'आव बेटा आव' की ध्वनि बड़े स्नेह भरे गम्भीर स्वरों में लाला बच्चूलाल की छत पर से आने लगी। 'आव बेटा आव' मंत्र से कबूतरों का आवाहन करते जाते थे और चना छीटते जाते थे। कबूतर छतरी से फड़-फड़ाकर चने पर टूटे और बात की बात में चुँगकर छीटे चने को साफ कर दिया। इतने ही में लालाजी ने जो आसमान पर निगाह छोड़ी तो एक कबूतर साधारण ऊँचाई पर उड़ता दिखाई पड़ा। लालाजी ने तुरंत कबूतरों को हुसकारा। कबूतर छतरी पर पहुँचे। फौरन लग्घी उठाकर लत्ती दी। कबूतर भरभराकर छतरी से उठे और छतरी का गोलाकार चक्कर लगाने लगे। लम्बे बाँस के अन्त में काला कपड़ा बँधा था, लालाजी हाथ में लिये व्यग्रता से हिला रहे थे जैसे गार्ड गाड़ी के रवाना करने के लिए हरी झंडी देता है। जो कबूतर आसमान पर दिखाई पड़ा था वह अपनी राह से भटका था, यानी भूल गया था अपने पालनेवाले मालिक का घर, और उसीकी तलाश में परेशान था। खिलाड़ी थे लालाजी। उन्होंने फौरन ताड़ लिया और अपने कबूतरों को उड़ा दिया जिसमें भटका कबूतर कबूतरों की गोल में पड़कर बजाय अपने मालिक के, उनकी छत पर आ बैठे और वह उसको पकड़ लें।

यह देखो कबूतर चक्कर मारते आसमान पर ऊँचे उठे किन्तु भूला पंछी और अधिक ऊँचा था। लालाजी के कबूतरों को उसको अपनी लपेट में लेने के लिए और ऊँचा उठना आवश्यक था। लालाजी ने जफील देना प्रारम्भ किया। मुँह में उँगली रखकर यह सीटी बजाने की कला अभ्यास से आती है। लालाजी की जफील बजना कि कबूतर चमककर आसमान से बातें करने लगे। लालाजी की निगाह लावारिस कबूतर पर थी। अब वह कबूतरों की टुकड़ी में आ गया था और उन्हींके साथ आसमान में चक्कर दे रहा था। इधर बच्चूलालजी की बेचैनी बढ़ी। अब समस्या थी उन्हें उतारने की। कैसे वे आकर पुनः छतरी पर बैठें और भूले मुसाफिर की गिरफ्तारी हो? काबुकों की कोठरी खोली। कुछ मादा अपने अण्डे में थीं। या तो नर अण्डे पर बैठा रहता है या मादा। मादा चुँगने जाती है तो नर अण्डों पर बैठता है। अण्डा कभी खाली नहीं रहता। परन्तु संकट का समय था, क्या किया जा सकता था? बिना एक-दो कबूतरियाँ छतरी पर लाये कबूतरों की टुकड़ी नीचे कैसे उतरे? अतः 'आपत्ति काले मर्यादा नास्ति' का आश्रय लेकर, लालाजी ने दो तीन मादाओं को फौरन छतरी पर भेजना ठीक समझकर जो काबुक में हाथ डाला तो कबूतरी ने लालाजी के गोरे मुलायम हाथ पर तड़-पड़ चोंच से दो-चार वार किये। किन्तु खून की बूँद पीकर लालाजी वार झेल गये और उसे निकालकर छत पर फेंका। एक, दो, तीन, ये देखो छतरी पर कबूतर पहुँच गईं। लालाजी ने लग्घी में से काला कपड़ा खोल लत्ती को निकालकर लग्घी को जमीन पर पसार दिया था और व्यग्र स्वर से 'आव बेटा आव' कह रहे थे जैसे भक्त अखंड कीर्तन में 'हरे राम हरे राम' की ध्वनि लगाते हों। कबूतरों की टुकड़ी अब नीचे उतर आई थी और छत से छूते चक्कर लगाने लगी। एक, दो, तीन, चार कबूतर छतरी पर बैठने लगे। लालाजी की निगाहें आसमान पर उसी नये पंछी पर थीं जिसे उनका गोल समेट कर छतरी के बिल्कुल निकट ले आया था। अब केवल तीन कबूतर रह रहे थे, उसमें वही भटका पंछी भी था। लालाजी लग्घी उठाकर 'छेड़' दे रहे थे, यानी छतरी पर बैठे कबूतरों को कोंच रहे थे ताकि वह उड़ें और नया पंछी ललचाकर छतरी पर बैठ जाय।

सूरज की गरमी के कारण लालाजी बेहाल थे। बनियाइन उतारकर फेंक दी थी। धोती चढ़ाये, गर्दन उठाये, लग्घी से छेड़ जाते थे। वाह भाई वाह—कबूतर छतरी पर बैठ गया। लालाजी के सूखे चेहरे पर हरियाली आ गयी। अब दूसरी चिन्ता का दौर आया। कबूतर को पकड़ा कैसे जाय? यह एक कला बड़े तजुरबे से आती है। पुराने खिलाड़ी होने के कारण लालाजी सभी हथकंडों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचित थे। बड़े पेशोपेश से बोले कि 'फाँद मारें कि मूठ ?' मैं नहीं जानता था कि क्या फाँद है और क्या मूठ। अनायास मुँह से निकल गया 'फाँद।' फाँद का नाम सुनकर लालाजी कुछ हिचकिचाये। बोले 'बेटा इसका मजा किसी और दिन देखना। धूप अधिक हो गयी है। मूठ ही में इसे पकड़ेंगे।' मैं मूक दर्शक था।

धूप में लालाजी का चेहरा तमतमा रहा था, किन्तु उनकी निगाह उसी कबूतर पर उस तरह थी जिस तरह कुत्ते की निगाह हलवाई की दुकान पर मिठाई खानेवाले के होने पर। उन्होंने कबूतरों की कोठरी खोल दी। मिट्टी में भरे नाँद का पानी उछालना शुरू किया। कबूतर अभी तक उड़ान की थकान के कारण हाँफ रहे थे। कोठरी का खुलना, पानी का उछालना कारगर हुआ और वे पंख पट-पट करते बड़े नाज-अंदाज से छत पर उतरने लगे, किन्तु नया आगन्तुक छतरी पर टँगा हाँफ रहा था और पंख तौल रहा था। मालूम पड़ता था अब उड़ा, अब गया। मेरे उस्ताद के पास हर परिस्थिति के लिए उपयुक्त दाँव था। लालाजी ने फिर कबूतर हुसकारे और वे जाकर छतरी पर बैठ गये। इस बार चने के दाने छिटकते हुए 'आव बेटा आव' के मंत्र से उन्होंने कबूतरों को फिर आवाहन किया। बड़े मिठास, धीरज से संगीत स्वर 'आव बेटा आव' निकल रहा था। कबूतर धीरे-धीरे एक-एक कर उतरने लगे। अब केवल तीन छतरी पर रह गये थे, उनमें वह नया आगन्तुक भी था। लालाजी ने 'आव बेटा आव' की टेक जारी रखते हुए एक अच्छी मुट्ठी चनों की छितराई। क्या कहना है! नया कबूतर भी उतर आया। जैसे सब गोरे विदेशी एक से लगते हैं मुझे नया कबूतर पहचान में न आया था। अब समझ में आया कि यह सफेद, काली चोंचवाला पंछी ही नया मेहमान है। लालाजी की इस समय मानसिक दशा वही थी जो किसी सोसाइटी के मंत्री की उस समय होती है जब सोसाइटी के वार्षिक उत्सव में मुख्य अतिथि पधारते हैं, विशेषकर यदि मुख्य अतिथि सरकारी मंत्रिमंडल से हुए। क्या करें, क्या न करें! सफेद पंछी बड़ी सतर्कता से सम्हलकर दाने पर चोंच डाल रहा था। लालाजी की घबराहट समाप्त हो चुकी थी। बदन साधे पैंतड़े से निगाह पंछी पर गड़ाये वह खड़े थे कि हाथ मारें। पाँसा फेकनेवाले की जो मनोदशा दाँव गिरने के पहले होती है वही लालाजी की थी। जिस तरह गिलहरी पर टूटने के पहिले कुत्ता बदन सिकोड़े, दम साधे, शिकार पर निगाह जमाये रहता है, वही हाल हमारे उस्ताद लालाजी का था। बिल्ली की तरह दुबककर एक कदम बढ़ाया फिर दूसरा कदम! पंछी भी सशंक था। लालाजी इस ताक में थे कि वह पानी पर झुके और ये पकड़ें! बजाय पानी पर जाने के वह पंख तौलने लगा कि अब उड़े, अब उड़े। बड़ी दर्दनाक दशा थी! जीती बाजी हारी में परिवर्तित होती दिखाई पड़ती है। वह देखो कबूतर उड़ा! बिजली की तरह तड़प लालाजी ने उसे बीच में छाप लिया और अब वह उनकी मुट्ठी में फड़फड़ा रहा था। लालाजी उसके पंख समेट उसे उस्तादी पकड़ से अपने एक हाथ में पकड़ उसके रंग-रूप का बखान करने लगे जैसे कोई जौहरी हीरे को परखता है। नोखा है! आँखें मोतीचूर हैं। मैंने कबूतर हाथ में लेना चाहा, लालाजी ने झिड़ककर कहा 'लड़कपन न करो, अभी सब खेल बिगड़ जायगा। जाओ दौड़कर कैंची लाओ।' कैंची आई लालाजी ने कबूतर के पंख काटे। उसे ऊपर उछाला कबूतर फड़फड़ाकर गिरा। लालाजी नें वह मुस्कराहट मुस्कराई जो चीते को मारने के बाद शिकारी के मुख पर होती है, और यह कहते हुए कि 'आज सबेरे से तेरे पीछे दातून भी नहीं चीरी है' उसे कोठरी में डाल दिया।

× × ×

रात्रि में आठ बजे थे। लालाजी दुकान से लौटकर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। आँच कंजिहा गई थी। उसको जगाने के लिए चिलम उतारकर फूँक दे रहे थे कि सामने से व्यंग्यात्मक हँसी के साथ उनके मित्र कबूतरों के दूसरे शौकीन उच्च स्वर से बोले—'कबूतर पाले चोट्टा जो तके पराया माल'! ऐसे लहजे से जैसे कि ऋचा कह रहे हों। "बच्चूलाल! सौ-पचास रुपये तो बाजार से ठीक कर लाते हो, किन्तु आठ आने के पड़ोसी के कबूतर पर नीयत खराब करते हो!" बच्चूलाल हँसे। यह हँसी न थी, विजय का अट्टहास था। हँसने के कारण तोंद हिल रही थी। 'भाई क्यों भूल जाते हो। तुमने जो मेरी पिलंगिनी को फँसाया था तो यह ख्याल किया था कि मेरे पिलंग का जोड़ा खराब हो रहा है? खिलाड़ी! यह तो खेल है। कभी हम तुम्हारे चंगुल में, और कभी तुम्हारी चोटी हमारे हाथ में।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुना कि गरीब का पर काट दिया है—कोई बात नहीं महीने भर में तो नये पंख जमेंगे। तुम्हारा माल खा-पीकर फिर हमारी छतरी आबाद करेगा।'

बात चल रही थी कि इस फन के माहिर फक्कू तथा मुनीर खलीफा भी आ गये। फक्कू व मुनीर ने बड़ी गम्भीरता से प्रस्ताव किया कि खेल का पूरा मौसिम खतम होने को आया है, किन्तु 'छुड़ाई' नहीं हुई—बिना एक लम्बी छुड़ाई के कबूतरों के रियाज का भी तो अन्दाज नहीं मिलता।

गोपी लाला ने भी प्रस्ताव का समर्थन किया। "आज शुक्रवार है। आगामी इतवार ही ठीक होगा। आगे लगन है दुकानदारी में खलल पड़ेगी।" सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ किन्तु छुड़ाई की तिथि ने सबकी मुखाकृति बदल दी। ऐसी चिन्ता मुख पर छा गयी जैसे उन इंजीनियर व ठेकेदारों के चेहरे पर जिन्हें दूसरे दिन नेहरूजी द्वारा भाखरा-नंगल बाँध का उद्घाटन कराना हो।

बच्चूलाल ने मुनीर से कहा 'पचास-पचास कबूतर हर एक के रहें। इसके लिए गाड़ी ऐसी बननी चाहिए जिसमें कम से कम १००० कबूतर भरे जा सकें।'

मुनीर ने आश्वासन दिया कि 'पिछले साल की गाड़ी रखी है। मरम्मत होकर काम लायक बन जायगी।' बिना ठहरे वे खिलाड़ियों को छुड़ाई की सूचना देने के लिए चल पड़े। दूसरे दिन सबेरे ही सारे कबूतरबाजों में चर्चा थी कि अगले दिन यानी एतवार को छुड़ाई होगी, और वह उसकी तैयारी में लग गये।

लालाजी ने भी रात करवटें बदलते काटी। आज गम्भीर दिवस था। कौन ५० कबूतर छुड़ाई में जायेंगे, इनको चुनना था। उनके आदेशानुसार मैं भी छत पर तड़के पहुँच गया था। रमरतना कहार चिलम देने आया था—उसे भी लालाजी ने रोक लिया था। रमरतना ने काबुक खोलकर एक एक कबूतर फेंकना प्रारम्भ किया। मैं फिहरिस्त बनाने के लिए पेंसिल लेकर बैठा। बच्चू लालजी की वही मुद्रा थी जो प्रेसीडेंट एथेलेटिक एसोसिएशन की विश्वविद्यालय की ओलम्पिक के लिए टीम चुनते समय होती है। सब कबूतरों के कुछ न कुछ जाति व उनके व्यक्तिगत नाम थे। लाला ने भगवान् का नाम स्मरण कर बोलना प्रारम्भ किया। मैंने फिहरिस्त बनाना प्रारम्भ किया—'पिलंग, लम्बदुमा, लालसिरा, दो बाज, सब्ज, कासनी...।' मैंने एक बड़े डील-डौल के कबूतर की ओर इशारा किया—लालाजी ने बड़ी नफरत की निगाह मेरे ऊपर डालते हुए कहा 'कल के योगी हो—क्या जानो इन परिन्दों का राज़? यह कबूतर शिराजी है। देखो न पंजे तक पंख से ढके हैं! इन्हें पावपोश भी कहते हैं। यह हाथी के दाँत देखने भर को हैं। यह क्या छुड़ाई में जायँगे? एक ही चक्कर में गिर पड़ेंगे, मैंने चुपचाप फिर लिखना जारी रखा। तनिक देर बाद मैंने दूसरे कबूतर की ओर साहस करके संकेत किया कि इस बार तो मेरा सुझाव मान ही लिया जायगा। लालाजी ने बुरा मुँह बनाया, जैसे कड़ुआ नीम गले के नीचे उतर रहा हो—'अरे बेटा तेरी अक्ल मारी गयी है—यह है 'लक्का'—लक्का केवल बड़े आदमियों के चबूतरे की शोभा होता है। अकड़-ऐंठ भर इनमें होती है—उड़ाई के मतलब के नहीं। हर एक इन सब बातों को थोड़े समझ सकता है? यह संस्कृत नहीं कि वयति वयतः वयन्ति रट के पास हो गये। धूप में तपस्या करने से यह हुनर आता है। अभी थोड़े दिन संगत करो।' बच्चूलालजी द्वारा तिरस्कृत होने पर फिर हिम्मत न पड़ी उनके चुनाव में दस्तन्दाजी करें, और मुनीम की तरह सूची की तरफ ध्यान रखा। रमरतना काबुक खाली करता जाता था और वह बोलते जाते थे—'हाँ, इस काले को अवश्य रक्खो। यही तो टुकड़ी की जान है। क्या नासपाल की तरह गोल से उठकर सड़कता है।' मैंने लिख लिया। यह कबूतर उस किस्म का था जो एकदम ऊँचे उठ जाते हैं फिर पैंकी खाते उतरते हैं, और लालाजी को इसकी कलाबाजी पर नाज था। सूची तैयार थी। मेरी समझ में एक भारी कमी थी। उस चोटीदार कबूतरी को तो टोली में रक्खा ही न था। मैंने साहस करके लालाजी का ध्यान इस त्रुटि की ओर खींचा। किन्तु लालाजी फिर चमक उठे और करुण दृष्टि से मेरी ओर देखते बोले—'रहे तुम भोंदू के भोंदू! यह चोटीदार केवल तमाशे की चीज है। शायद तुमने देखा नहीं,' यह कहकर लालाजी ने कबूतर को पकड़ उसकी गर्दन पर अँगुली से हल्का झटका देकर छोड़ दिया। कबूतर घुमंडी लेता फड़फड़ाते हुए गेंद की तरह लुढ़कने लगा। मैं अवाक् करिश्मा देख रहा था। कुछ क्षण भर बाद बच्चूलालजी ने उठाकर उसकी चोंच मुँह में रखकर हवा भरी जिस तरह गुब्बारा फुलाते हैं, और जमीन पर सहारे से रखते हुए बोले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि 'इसको भुँइलोट (भूमिलोट) भी कहते हैं। यदि यह इलाज न करे तो जानवर मर जाय।' मैंने उनके हुनर का लोहा माना। सूची तैयार हुई। आद्योपान्त पढ़ी गयी। चौंककर बोले कि 'ताखी को तो रक्खा ही नहीं।' मैं मुँह बाये उनकी ओर देख रहा था कि ताखी कौन बला होती है। उन्होंने एक सफेद कबूतर को उठाकर प्रदर्शन किया। 'देखो, एक आँख काली है। इसे मकोय कहते हैं—दूसरी साधारण यानी बीच में काली पुतली और चारों ओर सफेद है। यह है मोतीचूर। एक आँख ऐसी, एक आँख वैसी हो तो ऐसे कबूतरों की आँख को ताखी कहते हैं। यही कारण है कि बौना महाराज को जिनके आँख में फुल्ली है, ताखी कहकर चिढ़ाते हैं।' ५०वीं संख्या पर ताखी नाम लिख मैंने समझा कि सूची पूर्ण हुई—मानों हम गंगा नहाये। घर भागना चाहते थे कि लालाजी ने हाथ पकड़कर कहा कि 'शागिर्दी की है तो कुछ इल्म हासिल करो।' रमरतना से सम्बोधित कर कहा 'मौसिम बदल रहा है। जाड़े की खुनकी महसूस होने लगी है। अब दाने में चना नहीं बाजरा चलेगा। और याद रखना थोड़ी दारू का प्रबन्ध रखना। जो कबूतर लड़ाई पर जायेंगे इन्हें दारू में भीगा दाना दिया जायगा।' लालाजी की भी चिलम जल चुकी थी। कबूतर कुछ छतरी पर पहुँचे, कुछ छत की मुँडेर पर गुटरूँ गूँ कर अपनी मस्ती प्रदर्शित कर रहे थे। जो लालाजी ने लग्घी उठाई तो मुँडेरवाले छतरी पर पहुँचे और जो लत्ती हिलाई तो कबूतरों की टुकड़ी आसमान पर टँग गयी। कबूतरों के चुनाव में आज लालाजी भूल गये थे कि नया खाता करना है—दुकान में पूजा है। अर्थ चिन्ता ने उन्हें विह्वल किया और मुझे भी ख्याल आया कि 'होम टास्क' करना है—लालाजी ने मुझे चेतावनी दी कि कल मुँहअँधेरे आना है। लड़ाई का इन्तजाम देखना है। मैं आदेश शिरोधार्य करके नये सबक के शिराजी, लक्का, भुँइलोट, ताखी आदि मन में दुहराता घर की ओर चला।

× × ×

मुहल्ले में गंगास्नान को जानेवाले सबसे पहिले उठते थे, किन्तु आज कबूतरबाज उनसे भी पहिले कुण्डी पीट-पीटकर साथियों को जगा रहे थे। गोपी लाला व मुनीर पर लड़ाई की सारी जिम्मेदारी थी। जिस तरह बारात में जानेवालों का सामान घर-घर जाकर इकट्ठा किया जाता है, हर कबूतरबाज को चेतावनी दी जाती थी कि अपने कबूतरों की टुकड़ी वह खँड़हर के पास मैदान में शीघ्र भेज दे। वहीं पर बाँस की खपच्चियों की चार पहिये की गाड़ी खड़ी थी जिसमें भरकर कबूतरों को फाफामऊ ले जाना था। फक्कू, मुनीर, गोपी लाला, साहू आदि की टुकड़ियाँ गाड़ी में सम्मिलित हो गयी थीं। बच्चूलाल की टुकड़ी की देरी थी। मुझे चेतावनी के लिए भेजा गया—'बस अब सब तैयार हैं, थोड़ा सा शराबवाला बाजरा चुगा दें।' पंडितजी ने साढ़े पाँच बजे का मुहूर्त्त बताया था। कबूतर एक बड़े बाँस के पिटारे में रक्खे गये थे। साढ़े पाँच बजते ही रमरतना ने 'जय हो सरकार की' कहकर पिटारा साधा। दरवाजे पर महरी को आदेश था कि वह 'दही-मच्छी' लिए उपस्थित रहे।

खँड़हर के मैदान में जमघट का क्या पूछना था! सभी प्रतिष्ठित शौकीन जाड़ा होते भी, कबूतरों को छुड़ाई की विदाई देने आ गये थे। मुनीर पटरीदार रेशमी कमीज धारण किये, दुपट्टा ओढ़े, आये हुए कबूतरों को कायदे से गाड़ी में भरवाते जाते थे। सभी नामी खिलाड़ियों के कबूतरों को गाड़ी में स्थान मिल चुका था। ५० से कम किसीकी संख्या न थी। रमरतना भी पिटारा सिर पर सम्हाले गाड़ी पर पहुँचा और एक एक कबूतर निकाल-कर गाड़ी में पेश किये जैसे कोई मेवाफरोश पिटारी में से दशहरी आम निकालकर दुकान सजा रहा हो। कुछ छोटे लोग भी पिंजड़े टोकरी आदि में कबूतर लाकर गाड़ी में रखकर प्रतियोगिता में शरीक होना चाहते थे, किन्तु उन्हें यह अधिकार नहीं दिया गया क्योंकि इस हुनर में उन्होंने अभी पूरी योग्यता नहीं प्राप्त की थी।

सूर्योदय होनेवाला था। आज मुहल्ले में कबूतरबाजों का कबूतर उड़ाने का शोर नहीं सुन पड़ रहा था—सबके सब खँड़हर के मैदान में जमा थे। 'बोल हनुमान बाबा की जय'! जयकार के साथ गाड़ी चर्र मर्र करती रवाना हुई। गाड़ी के पीछे ऐसे शौकीनों की भी टोली थी जिनके कबूतरों को गाड़ी में जगह नहीं मिली थी। कुछ पिंजड़ा लटकाये, कुछ सिर पर कबूतरों का झाबा रखे साथ जा रहे थे। मानों पहाड़ी रास्ते में भक्तों का समूह बद्री विशाल के दर्शन के लिये अग्रसर हो रहा हो। ऋषिकेश से मैदान में उतरने के बाद जैसे गंगा का पाट बढ़ता जाता है जन-समूह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी प्रकार बढ़ता गया। साथ में तमाशबीन ही नहीं, पान-बीड़ी, सिगरेट, मेवा, मूँगफली, गरम चाय आदि के विक्रेता भी थे। जगन्नाथजी के रथ की तरह भक्तजन बारी-बारी से गाड़ी को खींचने में योग दे रहे थे। बात की बात में २॥ – ३ घंटे बीत गये और गाड़ी फाफामऊ पहुँची। वहाँ पहिले से ही कबूतरबाजों का अच्छा जमाव हो गया था। गाड़ी पहुँचते ही जन-समुदाय ऐसा लपका जैसे नेहरूजी की कार आ गयी हो। मुनीर खलीफा ने साथियों को शान्ति रखने के लिए कहा। अभी दस मिनट बाकी हैं। छुड़ाई निश्चित समय पर ही होगी। झटपट बीड़ी की तलबवालों ने बीड़ी की दो फूँकें लीं। पान-सुरतीवाले तमोली के यहाँ इकट्ठा हुए। जैसे सिनेमा में मध्यान्तर में शीघ्र से शीघ्र आवश्यक कार्य से निबटने की चिन्ता होती है, लोग अपनी आवश्यकताओं से शीघ्र मुक्ति पा गाड़ी के पास इकट्ठा हो गये, और छुड़ाई की इस प्रकार प्रतीक्षा कर रहे थे जैसे सिनेट हाल में परीक्षार्थी पर्चा बँटने की। फक्कू उस्ताद ने दस का घंटा बजते ही 'जय बजरंग बली' के नारे के साथ गाड़ी का ढक्कन खोल दिया। ताजमहल में आश्रय पानेवाले जंगली कबूतरों का गोल जैसे गोली छूटने पर एकदम फड़फड़ाकर निकलता है—लगभग हजार कबूतर गाड़ी से भरभराकर उड़े। नये शौकीनों ने भी झाबे व पिंजड़े खाली कर महायज्ञ में आहुति दी। क्षण भर के लिए फाफामऊ पर मानों कबूतरों के बादल छा गये हों। जितने दर्शक थे उन सबने ताली पीट-पीटकर विचित्र प्रकार का कोलाहल करना प्रारम्भ किया जैसे पहिले से रिहर्सल करके आये हों। सीटी, बिगुल, जफील, शंख सब बज रहे थे। हो-हा-हू के शब्दों से लोग गला फाड़कर चिल्ला रहे थे। अगर कोई ताली बजा रहा था, तो दूसरे फूटे कनस्तर को पीटे डालते थे। सफरमैना की पलटन के जवान दत्तचित्त होकर जिस प्रकार किसी काम में सहयोग देते हैं, कबूतरबाज भाई भी एक देह, एक दिल होकर छुड़ाई को सफल बनाने में लगे थे। आखिर इस कोलाहल का अभिप्राय क्या था? वह यह कि कोई कबूतर फाफामऊ में न रह जाय। बड़ी भारी बदनामी थी यदि कबूतर ६ मील तो दूर रहा, फाफामऊ में ही गिर पड़े। मैराथन रेस का दौड़ाक यदि पहिले चक्कर के बाद ही हाँफकर पसली पकड़कर बैठ जाय तो तिरस्कार का पात्र होता है, वैसे ही वह शौकीन भी तिरस्कार योग्य माना जाता था जिसके कबूतर फाफामऊ भी न पार कर सकें। आबरू-इज्जत का सवाल था। हो-हल्ला से शीघ्र कबूतरों की टुकड़ी आसमान से बातें करने लगी। फाफामऊ के कबूतरबाजों ने कोई बात इसके लिए उठा न रखी थी कि कम से कम एक कबूतर तो चिह्न के स्वरूप में वहाँ रह जाय—किन्तु वे सफल न हुए। कबूतरों का गोल आसमान में दौड़ मारता शहर की ओर अग्रसर हो रहा था और जन-समुदाय भी यथाशीघ्र शहर पहुँचने की चेष्टा में था क्योंकि शहर ही अब क्रीड़ा-स्थल होने जा रहा था।

आज जितनी कबूतरों की टुकड़ियाँ आसमान पर उड़ती दिखाई दे रही थीं उतनी साल में कभी न देखी गयी थीं। कबूतरबाज भी अपने चेलों के साथ छत पर डटे थे और हाथों से आँखों का धूप से बचाव किये चौगिर्दा इस प्रकार निरीक्षण कर रहे थे जैसे जहाज का कप्तान जहाज के रक्षार्थ तूफान के समय दूरबीन से चारों ओर देख रहा हो। बच्चूलाल जाँघ तक धोती चढ़ाये थे। धूप तेज हो चुकी थी, अतः सर पर एक फटा टोप पहन रक्खा था। आज कबूतरबाजी का महापर्व था। खिलाड़ी की सारी तपस्या व साधना की परीक्षा का दिवस था। हर एक शौकीन दूसरे के कबूतरों के फँसाने में तल्लीन था। सबके कबूतर मिलाकर शहर से ६ मील पर से छोड़े गये थे। इसका मतलब ही यही था कि कबूतर अपने असली अड्डों से भटकें। हार जीत दो बातों पर निर्भर थी : कितने कबूतर खिलाड़ी के खोते हैं और वह कितने दूसरों के कबूतर पकड़ता है।

बच्चूलाल के कबूतरों की टुकड़ी उनकी छत पर मँडरा रही थी—वे छतरी पर बैठे कबूतरों को छेड़ देते थे ताकि उड़ते कबूतरों की टुकड़ी भी छतरी पर आ बैठे। टुकड़ी ऊँचाई पर उड़ रही थी और बहुत से भूले-भटके तीव्र गति से खाली आसमान को काट रहे थे। बच्चूलाल की टुकड़ी के नीचे आते ही भूले-भटके पंछी भी उनकी टुकड़ी से लपट कर उड़ने लगे। लालाजी के मुँह में पानी आ गया। वे चाहते थे कि कब टुकड़ी छत पर उतरे और कब फाँद मारें। टुकड़ी छतरी को छूकर चक्कर मार रही थी। एक-आध चक्कर के बाद बैठनेवाली थी कि एकाएक समीपवर्ती छत पर पटाखे का धमाका हुआ और टुकड़ी फिर चमककर आसमान पर टँग गयी। जिनके कबूतर गिरने-वाले थे उन्होंने धमाका किया ताकि कबूतर बैठ न पावें। जफील, सीटी आदि का तो पूछना ही क्या था! कबूतर आसमान पर चढ़ तो गये, किन्तु दम टूट चुका था। लम्बे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

फासले से छुड़ाई, फिर दोपहर का हो जाना। ज्यों लालाजी ने छतरी पर बैठे कबूतरों को छेड़ दी, कबूतर एकदम कैंची भर कर नीचे गिरे और छतरी की परिक्रमा करने के बाद छतरी पर आ बैठे। छतरी अब कबूतरों से भर गयी थी। वे चोंच बाये हाँफ रहे थे। उनके गले हिल रहे थे। मेरी निगाह कबूतरों से हटकर लालाजी पर पड़ी। 'बेटा, देख लो फाँद कैसे दी जाती है, रोज यह मौके नहीं मिलते।' जिस तरह सुई लगाने के पहिले डाक्टर पिचकारी—सुई आदि से तैयारी करता है, लालाजी घोड़े के बाल से लम्बी लग्घी के अन्त में फंदा बना रहे थे और मुझे समझा रहे थे, और मैं उसी ध्यान से देख रहा था जैसे विज्ञान के किसी अद्भुत प्रयोग को। फंदा तैयार था। लालाजी ने आवाज दी 'रमरतना, दो बीड़े पान दे जा।' पान जमाकर फन्दे वाली लग्घी को लालाजी ने उस अन्दाज से सँभाला जैसे बौलिंग करते जाते वक्त कैप्टन नायडू बैट को। लग्घी उठाते ही कबूतरों का झुंड सचेत हो गया। उनमें ढाढ़स आ जाय, इसलिए लालाजी ने लग्घी छतरी के सहारे रख दी। दो नये कबूतर गिरे हैं—दोबाज व लालसिरा। दोबाज पानी का अच्छा मालूम पड़ता है। इसीकी क्यों न फाँद मारी जाय—ऐसा संबोधित करते वे फाँद मारने का काम शुरू करनेवाले थे कि उनका ध्यान किसी और चीज ने खींचा—'देखा बेटा आसमान में। ताखी की तलाश में थे तो वह आसमान में डूब गया है—सितारा-सा चमक रहा है। देखो शाम तक भी उतर आये तो जल्दी है'—मैंने दाद देते हुए कहा कि लालाजी वह दो-दो दिन बाद उतरा है—लालाजी की आँखें आसमान पर ही थीं। 'खतरा उसके भटकने का नहीं है। डर है बहरी व लग्घड़ का। कहीं इसे आसमान पर ही न दबोच ले।' मेरे चेहरे से उन्हें मालूम हुआ कि मैं अवसर की गम्भीरता को नहीं समझ पाया। समस्या को साफ करते बोले—'बेटा, जैसे बाज छोटी चिड़ियों को दबोच लेता है, लग्घड़ और बहरी वे शिकारी पक्षी हैं जो आसमान पर कबूतर को नहीं छोड़ते। वह देख, दो लग्घड़ आसमान पर उसी ओर जा रहे हैं जिधर ताखी आसमान में टिमटिमा रहा है।' उनकी वाणी में बड़ा भय, बड़ी चिन्ता थी। मैं कुछ समझा कि मामला गंभीर है किन्तु फाँद भी देखने का मेरा पहिला अवसर था। मैंने छतरी से सधी लग्घी की ओर लालाजी का ध्यान खींचा। लालाजी ने अनमने मन से लग्घी साधी—एक निगाह छतरी पर बैठे दोबाज पर थी और दूसरी आसमान पर 'ताखी' पर। लग्घी उठी, घोड़े का बाल का फन्दा दोबाज के पंजों से छुआ। 'मन को मार सुरत सम्हार' कह लालाजी ने ऊपर झटका दिया कि दोबाज लग्घी के सिरे पर लटका फड़फड़ाता नजर आया। शाबाशी में 'वाह मारा' 'वाह मारा' की आवाज समीपवर्ती छतों से आई, किन्तु लग्घी अभी छत पर गिराई भी नहीं थी कि एक तेज चीख लालाजी के मुंह से निकली। लग्घी हाथ से छूट पड़ी। 'हाय लग्घड़ ने ताखी को पकड़ लिया।' उसी समय जैसे एक साथ बिजली ने झटका दिया हो सारे कबूतर-बाज उच्च स्वर से गला फाड़-फाड़कर हल्ला करने लगे मानों कई शरीर और एक प्राण। इस संवेदना से पहिले तो मैं अवाक् था, किन्तु मैंने भी हवा के साथ गला फाड़कर चिल्लाना ही अपना कर्त्तव्य समझा। मर्म यह था सब चीख चीख कर लग्घड़ को डरा रहे थे कि लग्घड़ ताखी को छोड़ दे किन्तु वह कबूतर को पंजे में दाबे दरियाबाद के मैदान की ओर उतर रहा था। छत से उतर कर लालाजी भी नंगे सिर, नंगे पैर मैदान की ओर भागे। फक्कू, मुनीर, साहू आदि ने भी साथ दिया। सब दुलकी पर दरियाबाद की ओर दौड़े जा रहे थे। पीछे-पीछे छोटे-छोटे लड़कों की संख्या भी काफी थी। फक्कू ने मैदान पहुँचते देखा कि लग्घड़ खिन्नी के पेड़ पर बैठ रहा है। दूसरों को भी धीरे आने का संकेत देकर आगे बढ़े। लग्घड़ ने जख्मी कबूतर को एक डाल पर रख दिया था और पास में बैठा सुस्ता रहा था कि ठण्डे होने पर क्षुधा शान्ति करें। फक्कू के साथ और भी नौजवान पहुँच गये थे। एक ढेला फेंकते तो लग्घड़ उड़ गया—कबूतर ज्यों का त्यों धरा था। झम से एक नवयुवक पेड़ पर चढ़कर कबूतर को उतार लाया। लालाजी भी आ पहुँचे थे। ताखी की यह दशा देखकर आँखों के नीचे अँधेरा छा गया। हाय मारकर दोनों हाथों से सिर रखकर बैठ गये।

× × ×

लालाजी के दरवाजे पर भीड़ लगी थी। आये थे ताखी की मृत्यु पर संवेदना में। सब एक दूसरे से उस दिन का अपना अपना अनुभव बता रहे थे—कितने कबूतर उनके खोये, कितने फँसाये, वैसे भी पुराने खलीफा होने के नाते लालाजी के यहाँ ही दरबार लगता था, चिलम सुलगती थी—बीड़ी का बंडल फुंकता था, कभी-कभी चटपटा भी उड़ जाता था। किन्तु आज वातावरण उदास है। लालाजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह लटकाये बैठे हैं। कोने में ताखी का शव कफ़न में लपटा रखा है। एक साथी बोले—'भाई, ऐसा उड़ान में पक्का—और टह का सच्चा तो कबूतर ही नहीं देखा।' दूसरे हमदर्दी साथी बोले—'कबूतर ने वीरगति पायी—जान से हाथ धोयी किन्तु दूसरे के छत के दाने पर मुँह न डाला।' लालाजी के धीरज का बाँध टूट गया—वे फूट-कर रोने लगे। "वीरगति! अरे! इसने तो एक बार नेवले के छक्के छुड़ा दिये थे। नेवला काबुक में घुसना चाहता था। इसने मारे डैनों के फटफटा के उसकी तबियत झक कर दी। न मालूम मैंने क्या पाप किया कि भगवान् ने मझे आज यह दिन दिखाया! १३ छुड़ाई देख चुका था। कई बार बहरी से बचा, किन्तु आज लग्घड़ के झपट्टे में आ ही गया। या भगवान् कैसे बेड़ापार होगा!" मुनीर ने कहा "भाई सबेरे से अभी बिना खाये-पिये हो, देर क्यों करते हो? मुनीर ने ताखी के शव को उठाया। लालाजी मुनीर से रोते लिपट गये। 'बैजू, हाय बैजू (बैजू लालाजी का प्रथम लड़का था जो कम उम्र में ही मर चुका था) कहाँ ले जाते हो ताखी को"!—हाय! आज ताखी ने उन्हें पहलौठी के लड़के की मृत्यु की याद दिला दी। 'हे राम अब कैसे दिन कटेंगे!' मुनीर आगे-आगे ताखी को लिये जा रहे हैं। पीछे मातम करते लालाजी को फक्कड़ व साहू सँभाले चल रहे हैं। साहू बोले, "क्या भगवान् की लीला है! 'कह रहा है आसमाँ यह सब समाँ कुछ भी नहीं'—परमेश्वर ऐसा वक्त किसी का न बिगाड़े!"

[भारत में अनादिकाल से कबूतरबाजी का शौक रहा है। अजंता के चित्रों में राहुल की पाठशाला के ऊपर कबूतरों को बैठे दिखाया गया है। पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने एक राजा के पुत्रों को कबूतरों के द्वारा अक्षर ज्ञान कराया था। मुस्लिम काल में इस शोक ने बड़ी उन्नति की। पचास वर्ष पहिले तक बड़े नगरों में कबूतरों की सैकड़ों छतरियाँ दीख पड़ती थीं। पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी पुरानी रुचि को बदल दिया। अब कुत्तों का शौक अवश्य है; पर कबूतर, तोते आदि पालने का नहीं। इस लेख में कबूतरबाजी का अच्छा वर्णन तो है ही, उसमें प्रयुक्त कितने ही शब्द जो अब भुला दिये गये हैं, उपयोग में लाये गये हैं जिनका सुरक्षित रखना आवश्यक है। इन दोनों दृष्टियों से यह लेख महत्त्वपूर्ण है। सम्पादक, सरस्वती।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भैया, माँ से मत कहना

श्री ओम्प्रकाश शर्मा

वह सुबह से ही पालती मार कर बैठती। रङ्ग-बिरङ्गी पटारों के ढेर उसके आस-पास पड़े रहते। वह एक-एक कर हाथ में उठाती, एक निश्चित अन्दाज से यथास्थान जमाती, आगे घुमाती, अन्य पटारों के साथ उठाती, गिराती, लपेटती। यह क्रम थोड़े समय ही चलता कि उन पटारों के सुलभ संयोग से एक मनोरम फूल हँस उठता। चारों ओर पटारें बढ़ती जातीं, और वह फूल फूल न रहकर एक रङ्ग-बिरङ्गी डाली का रूप ग्रहण करता जाता, जिसमें एक के स्थान पर अब अनेक फूल खिल उठते। अलग अलग रङ्गों की दीप्ति एक दूसरे का सामीप्य पाकर और भी निखार-पा जाती।

इस प्रकार अनेक प्रकार की, अनेक आकार की विभिन्न रङ्गों से अलंकृत डालियाँ उसके हाथों से निकलतीं। सन्ध्या को जब दिन के समस्त कार्यों का लेखा-जोखा उसके सम्मुख आता तो सुख-सन्तोष का एक निःश्वास उसके हृदय से निकल पड़ता। सचमुच उसे दो रोटियों का सहारा मिल जाता था।

मिन्नी को छाती से लगाती, उसे दूध पिलाती। फिर पालने के हवाले कर अन्य कार्यों में जुट जाती। जब तक जगह-जगह घूमते हुए डालियाँ बेचकर उसके पति वापस आते, वह भोजन तैयार कर चुकी होती। उनके हाथ-पैर धुलाती, अपने अंचल से पोंछती और भोजन की थाली उनके सम्मुख रख देती। पत्नी का इस प्रकार का प्रणयपूर्ण-एकाग्र समर्पण पाकर पति निहाल हो जाते। उनकी थकान दूर हो जाती तथा एक सब्जीवाला भोजन ही छत्तीस व्यंजनों का स्वाद दे जाता। वे भी बिक्री का एक एक नया पैसा पत्नी के हाथ पर धर देते। अविरत श्रम से थका थका वातावरण भी पारस्परिक सद्भावना तथा सुमधुर संभाषण से सुपुष्ट पुट पाकर जीवन के माधुर्य से भर भर जाता।

मिन्नी जब स्नेहिल थपकियों का अवलम्बन पाकर सो जाती तो दम्पति का कार्य फिर जोर पकड़ लेता। दोनों ही साथ-साथ डालियाँ बुनने में संलग्न हो जाते। सुख-दुख बँटाते। अपने-अपने मन की कहते-सुनते। रात अधिक हो जाती, सो रहते।

एक दिन वह डालियाँ बना रही थी। मिन्नी पास ही पालने में झूल रही थी। साहसा उसका छोटा भाई सामने आ खड़ा हुआ। उसने देखा। क्षणभर को देखती ही रह गई। कितने दिनों बाद आज उसने छोटे भाई के दर्शन किये हैं। स्नेह-स्रोत उमड़कर आँखों के रास्ते बह निकला। डाली बुनना छोड़कर आँगन में आयी। भाई से लिपट गयी। हिचकियाँ भर भरकर रोयी।

जैसे-तैसे हृदयोद्वेग शान्त हुआ। चारपाई डालकर भाई को उस पर बैठाया। उसके यहाँ मोढ़ा और कुर्सियाँ कहाँ थीं। कोई बैठक भी नहीं थी। पीहर में यह सुविधा अतिथियों को ही नहीं घरवालों को भी प्राप्त है। यहाँ उसको पीहर और ससुराल के जीवन-स्तर में धरती-आसमान का अन्तर जान पड़ा। फिर उसे ध्यान आया अपने कपड़ों का। वह एक मैला-सा पेटीकोट पहने है तथा फटी हुई धोती से सिर ढके है। उनपर भी अनेक रङ्ग-बिरङ्गे धब्बे लगे हैं।

उसका भाई यह सब देखकर क्या कहेगा? हाथ भी तो विभिन्न प्रकार के रङ्गों के सम्मिश्रण से किस प्रकार रँग गये हैं! वह अपनी इस दशा को, अपने इस नङ्गे स्वरूप को भाई से किस प्रकार बचाये? दालान में उसने यह किस प्रकार का कूड़ा-कर्कट बिखेर रखा है? भाई की दृष्टि में यह सब कूड़ा ही तो है! वह उसे कैसे बताये कि यह कूड़ा नहीं, जिन्दगी का एकमात्र अवलम्ब है। फिर यह सब सफाई वह माँग कब रहा है? वह लज्जा से गड़-सी गयी।

वह कैसी उलझन में फँस गयी थी। इन बाधा-व्यथाओं के विषय में सोचते-सोचते उसे यह भी ध्यान न आया कि अपनी माँ के हालचाल जाने। छोटी बहन नन्दा की कुशल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछे। स्वयं भाई से ही उसकी बात पूछे। भाई इतनी देर में सब कुछ भाँप गया। उसने बड़े सुमधुर कण्ठ से बहन को पुकारा।

"जीजी!"

बहन को इन दो अक्षरों में न जाने क्या मिल गया कि वह सभी उलझनों को पार कर गयी। मानों उसे अपने भूले हुए स्नेह की समस्त संचित निधि ही मिल गयी हो। संकोच का बाँध अपनत्व की अदम्य बाढ़ के धक्के से चूर-चूर होकर बिखर गया। उसे अपनी स्थिति पर बड़ी दया आई।

पगली! छिपना भी किससे चाह रही थी, अपने ही भाई सोमू से? यह वही तो सोमू है, जिससे दो वर्ष पहले वह खूब झगड़ती थी। हाँ, शादी हुए अभी दो ही वर्ष तो हुए हैं।

सोमू और वह, दोनों मिलकर अपनी माँ के विरुद्ध कितनी योजना बनाते थे! लड़ने के लिए नहीं, पैसे लेने के लिए, इच्छित वस्तु प्राप्त करने के लिए। दोनों साथ-साथ खाते थे। एक दूसरे के लिए दोनों का कुछ भी गोपनीय नहीं था। आज वह उसी से छिपना चाह रही है! यदि वह गरीब है तो उसका दोष क्या? गरीबी दुःख भले हो, पर लज्जा या असम्मान तो है नहीं। यह तो साहस की ही बात है कि वह जिन्दगी से हार खाकर नहीं बैठी; अपने तन-मन से गरीबी के भूत को भगाने में जुट पड़ी है। गृहस्थी की नौका की वल्ली अपने हाथों में साधना कोई बुरी बात तो है नहीं।

और सोमू द्वारा चिरपरिचित शब्द 'जीजी' का सम्बोधन सुनकर उसके मन की ग्लानि बिलकुल ही धुल गयी। उलझनों की बरसात समाप्त हो गयी। उसके हृदय का निरभ्र नीलाकाश एक बार फिर सहजता की सुखद शारदी या चाँदनी से आलोकित हो उठा। उसकी सहज स्वाभाविकता ने चेतना पायी।

भाई के सम्मुख चारपाई के नीचे धरती पर बैठ गयी। कुशल-क्षेम पूछने लगी—माँ कैसी है? नन्दा के क्या हाल-चाल हैं? मीनू तो अब चलने लगा होगा, खूब बोलता होगा। स्वयं सोमू क्या कर रहा है? पिताजी भी उसकी याद करते हैं कि नहीं? कहीं उन्होंने यह तो नहीं समझ लिया कि उनकी इन्दा कहीं मर-खप गई? कभी सुध भी नहीं लेते? आज कितने दिन बाद आया है? कैसे भूल पड़ा? आदि-आदि कितने ही प्रश्न उसने पूछ डाले। अपनी सभी सहेलियों के विषय में भी पूछा।

फिर बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये हुए वह उठ खड़ी हुई। डालियाँ बनाने का सामान उठाकर एक तरफ रख दिया। मिट्टी से रगड़-रगड़कर हाथ धोये। स्नान किया, कपड़े बदले, और खाना बनाने में जुट पड़ी।

खाना बना रही थी, पर सोचना अब भी जारी था—

आज सोमू आया कैसे समय! एक पत्र भी नहीं डाल दिया कि मैं आ रहा हूँ। कितना अच्छा रहता! आज इस तरह के वेश में यह काम करती हुई वह क्यों मिलती? क्या भाई के हृदय को यह सब देखकर ठेस नहीं पहुँची होगी? विवाह के पूर्व किस तरह का जीवन था उसका! हर समय सजी-सँवरी रहती थी। सब काम सलीके से होते थे। कपड़े एकदम स्वच्छ रहते। माँ स्वयं उसे साफ रहने को बाध्य करती थी।

माँ की क्या है। उसका एक भी सपना साकार नहीं हुआ? वह तो चाहती थी कि उसकी बेटी किसी बहुत धनी परिवार में जाये। राज्य करे राज्य। जब तक वह उसके यहाँ रही, परी बनकर ही रही। माँ की लाडली जो थी।

दुलार की शीतल छाया में पली, अंचल का दूध पीकर बड़ी हुई, मान-मनौतियों के संरक्षण में पनपी तथा बाबुल के घर के स्वच्छन्द वातावरण में विचरी वह इन्दा माँ को प्राणों से भी प्यारी थी। माँ ने अपने रक्त की बूँद से उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की थी। अपनी सुख-सुविधायें त्यागती रही, पर बेटी के तन-मन और जीवन में उनकी अलौकिक सुधा का सत्व निचोड़ती रही। मन और धन की कौन कहे अपनी समस्त जीवनीशक्ति लगाकर उसे सजाया सँवारा। उसने अपनी बेटी की एक-एक सुख-किलकारी पर सौ-सौ जीवन निछावर करने चाहे। वह फूली न समाती कि उसकी बेटी अति सुन्दर है, कि उसके नाक-नक्शे राजकुमारियों से भी श्रेष्ठ हैं, कि उसका शरीर मंजु कंज-किशलयों से भी सुकुमार है। वह अपनी बेटी के जीवन-सम्पुट को रूपसुधा के माधुर्य से परिप्लावित देखकर निहाल हो उठती। उसकी तन-लता पर अर्द्ध विकसित यौवन की अनेक कल्पनातीत कलियाँ फूटती देखकर उसके प्राण आनन्द से सिहर उठते।

माँ ने कितना चाहा था कि उसकी रानी बेटी को कोई राजकुमार-सा वर मिले, समृद्ध घर मिले, जहाँ सुख-चैन की हर समय वर्षा हो। उसकी बेटी की कोई भी लालसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपूर्ण न रह जाये। चाहे उसकी इस इच्छापूर्ति में स्वयं का घर भले ही बरबाद हो जाये। वह स्वयं दर-दर की भीख माँग लेगी, पर बेटी को राजगद्दी पर बैठाकर ही दम लेगी।

उसने कुछ उठा भी नहीं रखा। पिताजी ने कितनी चेष्टा की, तब उसके लिए एक सुन्दर-सा राजकुमार मिल सका। पर कितना महँगा सौदा था। एक बार सोचते ही उसके प्राण काँप गये। लड़के के पिता की मिन्नत-खुशामद करने में अपना अमूल्य सम्मान तो भेंट चढ़ ही चुका था, अब शादी में पास की कुल जमा-पूँजी के अतिरिक्त जीविका के एकमात्र आश्रय खेतों का भी एक भाग गिरवी रखा जाने को था। मेरी प्यारी माँ, तुम क्या सचमुच ही यह समझती थीं, कि तुम्हारी जीवनी के उस हरे-भरे स्रोतस्थल को सदा-सदा के लिए मरुस्थल बनाकर तुम्हारी यह बेटी सुख से दिन काटती रहेगी? यह इतनी स्वार्थी थी क्या कि माता-पिता की ही नहीं, अपने सोमू की, लाड़ली नन्दा की तथा उस छोटे से मासूम शिशु मीनू की जिन्दगी को भी दग्ध होने के लिए भाड़ में झोंक देती? फिर उसकी भी आत्मा को इस तरह कब चैन मिलता? वे राजकुमार, उनके वे माता-पिता क्या उस धन से पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाते? हो सकता था कि इतने पर भी उनकी लाडली बेटी को ताने सुनने पड़ते। अतः वह कैसे चुप बैठी रहती? तन के धनी, पर मन के दरिद्र उस राजकुमार से उसे एकदम घृणा हो गयी थी। उसे तो ऐसे राजकुमार की आवश्यकता थी, जो तन से भले ही गज-गज भर दारिद्र्य लपेटे हो, पर मन का धनी हो, उदार हो।

बेटी ने माता-पिता के विरोध में आवाज ऊँची की। अपना गरीब राजकुमार अपने आप ही खोजा। राजकुमार ने कहा था—"मैं तुम्हारे लिए एक भी सुविधा नहीं जुटा सकूँगा इन्दा! मैं मजबूर हूँ।"

"मुझे सुविधा नहीं, तुम्हारे दोनों हाथों की सामर्थ्य चाहिए। दो और दो चार हाथ मिलकर भी क्या एक छोटी सी गृहस्थी न चला सकेंगे?"

माता-पिता ने आशीर्वाद दिया, खूब प्रसन्न होकर। पर माँ का सपना पूरा कहाँ हुआ? राजकुमार मिल गया। घर की रानी भी वह बन ही गयी। पर धन और वैभव की शीतल छाया उसे कहाँ मिल पायी?

आज भी माँ को रह-रहकर यह बात खलती होगी, कि वह अपनी बेटी की जिन्दगी के नन्दन-कानन को अभावों के थपेड़ों से सुरक्षित नहीं कर सकी। इस आत्मदाह में भी वह किसी तरह जी ही रही होगी। पर अब वह सुनेगी कि उसकी राजकुमारी बेटी सारे दिन डालियाँ बुनती रहती है, तब दो समय का भोजन जुटा पाती है, फटे हाल वस्त्रों में किसी तरह अपनी जिन्दगी के दिन ढकेल रही है, तो रो-रोकर अन्धी हो जायेगी, प्राण ही दे देगी।

कैसे सोमू को समझाये कि ससुराल के इन दुःखों को वह माँ से जाकर न कहे। सुख सन्तोषपूर्वक अपनाये गये दुःख से बढ़कर आत्मवैभव इस संसार में अन्यत्र नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी साहित्य सम्मेलन की नयी नियमावली

कुछ सुझाव

श्रीनारायण चतुर्वेदी

हिंदी सा० स० अधिनियम के अनुसार भारत सरकार ने पंद्रह सदस्यों की एक समिति बनायी है जो छः महीने के भीतर उसकी नयी नियमावली बना कर और सरकार से उसकी स्वीकृति प्राप्त कर उसके अनुसार सम्मेलन का संगठन कर देगी। हम सरकार और प्रस्तावित समिति के विचार के लिए कुछ सुझाव रखना आवश्यक समझते हैं। कई वर्षों तक हमें सम्मेलन का कार्य निकट से देखने का अवसर मिला था। उसी अनुभव के आधार पर हम ये सुझाव देने का साहस करते हैं।

सम्मेलन की नियमावली में हमारी दृष्टि से ये विषय महत्त्वपूर्ण हैं :

(१) सम्मेलन का स्वरूप
(२) निर्वाचन
(३) स्थायी समिति का संगठन
(४) सभापति का निर्वाचन
(५) सम्मेलन के खुले अधिवेशन में प्रतिनिधियों के आने की विधि और उनका अधिकार
(६) परीक्षाएँ और उनका संचालन।
(७) साहित्यिक और भाषा संबंधी कार्य के लिए विशेष प्रबंध।

(१) सम्मेलन का स्वरूप——सबसे महत्त्वपूर्ण विषय जिसका निर्णय करना है वह यह है कि सम्मेलन का स्वरूप क्या होगा। उसके दो पहलू हैं। एक तो यह कि क्या वह हिंदी-भाषियों की संस्था हो, अथवा हिंदी के राज्यभाषा होने के कारण वह हिंदीभाषी और अहिंदीभाषी दोनों की संस्था हो अथवा वह मुख्य रूप से उन अहिंदी-भाषियों की संस्था हो जो हिंदी को अंतर्प्रान्तीय कार्य की भाषा मानते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर पर उसका भावी स्वरूप निर्भर है। हिंदी देश की स्वीकृत राजभाषा अवश्य है, किंतु वह प्रायः बीस करोड़ लोगों की मातृभाषा भी है। इन हिंदीभाषियों को अपनी मातृभाषा का रूप निर्धारित करने और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्वेच्छापूर्वक उसके साहित्य की उन्नति करने का अधिकार है या नहीं? अथवा, राज्यभाषा हो जाने के कारण अब चौदह मान्य भारतीय भाषाओं के हिंदीप्रेमियों में उनकी आवाज हिंदी के मामलों में एक बटे चौदह ही रह जायगी? अहिंदीभाषी-हिंदीप्रेमी हिंदी की समस्याओं को अखिल भारतीय दृष्टि से ही देख सकते हैं। यह स्वाभाविक है। क्या तब हिंदी-भाषियों को अपनी मातृभाषा के स्वरूप-निर्धारण में एक बटे चौदह ही अधिकार रख कर केवल अखिल भारतीय दृष्टिकोण ही अपनाना होगा? इस प्रश्न के उत्तर पर सम्मेलन का भावी रूप बहुत कुछ निर्भर है।

दूसरा संगठन संबंधी प्रश्न यह है: क्या सम्मेलन व्यक्तिगत सदस्यों का समूह होगा, अथवा हिंदी-प्रचारक संस्थाओं का संघ (फैडरेशन)? इस प्रश्न के उत्तर पर उसकी सदस्यता की विधि निर्भर है।

गलतफहमी बचाने के लिए हम स्वयं इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे रहे। अपनी ओर से हम इतना ही कह सकते हैं कि जो भी निर्णय वे करेंगे वह हमको मान्य होगा। यदि वे हिंदी साहित्य-सम्मेलन को केवल अहिंदीभाषी हिंदीप्रेमियों की संस्था बनाने का निर्णय करें तो वह भी हमें मान्य होगा। यदि बाद में हम देखेंगे कि अपनी मातृभाषा की दृष्टि से हमें एक साहित्यिक संस्था की आवश्यकता है तो हम मातृभाषा हिंदी की एक स्वतंत्र संस्था बनाने में समर्थ हैं।

(२) **निर्वाचन**——सम्मेलन का संगठन उस समय हुआ था जब 'निर्वाचन' और 'जनतांत्रिक' सिद्धान्तों में हमारा अखंड विश्वास था। वह विश्वास आज भी है, किंतु अनुभव की अग्निपरीक्षा में हमें उसकी त्रुटियाँ भी मालूम हो गयी हैं। महात्माजी से अधिक जनतांत्रिक हम नहीं हो सकते। किंतु उन्होंने चर्खासंघ, हिंदुस्तानी तालीमी संघ आदि जो संस्थाएँ बनायीं उनमें 'निर्वाचन' को वह स्थान नहीं दिया जो सम्मेलन में पग पग पर मिलता है। उन्होंने चुने हुए कर्मठ व्यक्तियों की समितियाँ बना दीं, जिनमें लोगों का बैठाना या जिनसे उनका हटाना साधारण सदस्यों की शक्ति के बाहर था। तभी वे संस्थाएँ चलीं। शायद सम्मेलन में वह प्रणाली पूरे ढंग से नहीं चल सकेगी, किंतु यह अत्यंत आवश्यक है कि चुनाव कम से कम हों, और यथासंभव वे परोक्ष हों।

(३) स्थायी समिति का संगठन——अधिनियम में स्थायी समिति के सदस्यों की संख्या सीमित कर दी गयी है। वह ५५ है। अब प्रश्न यह है कि यह स्थायी समिति कैसे संगठित की जाय। इसमें ७ सदस्य सरकार मनोनीत करेगी। शेष ४८ अन्य होंगे। अधिनियम के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि सदस्य ४८ ही हों। उनसे कम की संख्या भी रह सकती है। हमारी सम्मति में अभी केवल ४५ सदस्य ही रखे जायें। उनका निर्वाचन इस प्रकार हो——

(१) हिंदीसाहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति——उनकी औसत-संख्या १२ से १५ तक रहेगी।

(२) साहित्य-वाचस्पतियों में से ५ सदस्य (उन्हीं द्वारा चुने हुए या बारी बारी से ज्येष्ठतानुसार तीन वर्षों के लिए)

(३) मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त विद्वानों में से ५ सदस्य (उन्हींके द्वारा चुने हुए, या बारी बारी से ज्येष्ठता के अनुसार तीन वर्षों के लिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

(४) प्रान्तीय हिंदी साहित्य-सम्मेलनों के अध्यक्ष (पदेन) अथवा उनके मंत्री (पदेन)—६

(५) अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी का प्रचार करनेवाली मान्य संस्थाओं के प्रतिनिधि—५ से १० तक

(६) ४५ सदस्यों की पूर्ति के लिए जितने सदस्यों की आवश्यकता हो उतने सदस्यों को उपर्युक्त चार श्रेणियों के सदस्य प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकारों, शिक्षाविदों और हिंदी-उन्नायकों में से संयोजित कर लें।

हमारी सम्मति में इस विधि से हिंदीभाषियों और अहिंदीभाषी हिंदी-कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि स्थायी समिति में आ सकेंगे, और हिंदी के मान्य विद्वान् तथा उन्नायक भी उसमें उचित संख्या में आ जायेंगे।

(४) **सभापति का निर्वाचन**—यदि हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सभापति के पद की वही पुरानी प्रतिष्ठा रखनी है जो अब तक रही है तो यह आवश्यक है कि उसके चुनाव में हिंदी-जगत् का विशेष हाथ हो। कार्यसमिति सभापति के पद के लिए ५ या ७ नामों का प्रस्ताव करे। स्थायी समिति उनमें से तीन नामों को चुन ले और उनका चुनाव प्रान्तीय सम्मेलनों, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा, और संबद्ध हिंदी संस्थाओं की कार्यकारिणी समितियों के तथा स्थायी समिति के सदस्यों, साहित्य वाचस्पतियों, मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त विद्वानों, विद्वत् परिषद के सदस्यों एवम् सम्मानित सदस्यों के व्यक्तिगत मतों से किया जाय। इस प्रणाली से हिंदी के अधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा चुनाव होगा।

(५) **अधिवेशन में प्रतिनिधि**—सम्मेलन की नीति का अंतिम निर्धारण सम्मेलन के खुले अधिवेशन में होता है। अतएव उन लोगों पर सम्मेलन की नीति और कार्य निर्भर है जो उसमें मत देते हैं। इसके लिए प्रत्येक प्रान्तीय सम्मेलन से प्रतिनिधियों की संख्या, उसके आकार के अनुपात में, निर्धारित होनी चाहिए। अहिंदीभाषी क्षेत्रों में प्रचार करनेवाली मान्य संस्थाओं को भी उसमें उचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। अध्यक्ष को यह अधिकार होना चाहिए कि वह २० तक ऐसे प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकारों और कार्यकर्ताओं को प्रतिनिधि मनोनीत कर सके जो सम्मेलनों या संस्थाओं के माध्यम से न आ सकें। स्थायी समिति और कार्य समिति के सदस्य पदेन प्रतिनिधि माने जायँ। साहित्य वाचस्पति, मंगलाप्रसाद पारितोषक प्राप्त विद्वान्, विद्वत् परिषद के सदस्य और सम्मानित सदस्य भी प्रतिनिधि हों।

(६) **परीक्षाएँ**—सम्मेलन की परीक्षाओं में 'रीडर-बाजी' की शिकायत संसद में की गयी और बाहर भी। यह सत्य है। किंतु सम्मेलन 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' नहीं है। विश्वविद्यालयों, शिक्षा-परिषदों और शिक्षा विभागों में भी ये ही शिकायतें हैं, और उनकी संख्या सम्मेलन की शिकायतों से कम नहीं है। अंतर यह है कि अन्य स्थानों में सरकार के हस्तक्षेप का भय रहता है। सम्मेलन में यह भय नहीं रहा। परीक्षा संबंधी जो समिति बनायी जाय वह स्थायी समिति ही बनावे और उसमें कोई ऐसा सदस्य न हो जो पुस्तक प्रकाशन का व्यवसाय करता हो। सदस्यों की पुस्तकें पाठ्यक्रम में न रखी जायँ। संग्रह और संकलन सम्मेलन स्वयं तैयार करावे और उन पर रायल्टी न दी जाय—केवल एककालिक पारिश्रमिक दिया जाय। हमारे देश में कर्तव्यबुद्धि और नैतिकता का स्तर आज जैसा है उसमें कुछ न कुछ गड़बड़ी अनिवार्य है, किंतु उपर्युक्त उपायों से वह बहुत कुछ कम की जा सकती है।

इस संबंधमें एक मौलिक प्रश्न यह भी है कि क्या अब सम्मेलन को परीक्षाएँ चलानी चाहिए?

७(क) **विद्वत् परिषद्**—भाषा, लिपि और व्याकरण संबंधी अनेक समस्याएँ उठती रहती हैं जिन पर सम्मेलन को हिंदीभाषी जनता का मार्गदर्शन करना चाहिए। इस काम के लिए उसे एक विद्वत् परिषद बनानी चाहिए जो इन समस्याओं पर विचार करके व्यवस्था दे। इसमें हिंदी के विद्वान हों। परिषद् के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक २५ हो।

(ख) **सम्मानित सदस्य**—विश्वविद्यालय और उच्च-स्तरीय साहित्यिक संस्थाएँ विद्वानों को सम्मानित करने के लिए उन्हें 'फेलो' या सम्मानित सदस्य बना लिया करती हैं। इससे विद्वानों का सम्मान होता है और संस्था की भी प्रतिष्ठा बढ़ती तथा बहुत सी बातों में उनका सहयोग प्राप्त होता है। हमारी सम्मति में सम्मेलन को भी 'सम्मानित सदस्य' (फेलो) बनाने की प्रथा आरंभ करनी चाहिए।

हमने सम्मेलन के संगठन की मुख्य समस्याओं को जनता और सम्मेलन-समिति के सामने रख दिया है। बहुत सी विवरण की बातें भी हैं किंतु बहुत विवरण में जाना समिति के सदस्यों का काम है। हमने ऊपर कुछ मोटे मोटे सुझाव रखे हैं, किंतु इनमें से किसी को भी स्वीकार करने का हमारा आग्रह नहीं है। ये केवल विचार के लिए रखे गये हैं। हमें विश्वास है कि सम्बंधित सज्जन इन पर समुचित विचार करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

अँधियारे तारे—उपन्यास—श्री मोहनसिंह सेंगर। प्रकाशक, न्यू एज पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, २२ कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता–१, मूल्य, साढ़े चार रुपये।

श्री सेंगर हिंदी के सुपरिचित और प्रतिष्ठित लेखक, सम्पादक और कहानीकार हैं, किंतु अभी तक वे साहित्य संसार में उपन्यास लेखक के रूप में नहीं आये थे। यह उनका पहिला उपन्यास है, और इसे पढ़कर कहना पड़ता है कि उपन्यास लिखने की इतनी प्रतिभा रखते हुए भी अब तक उपन्यास न लिखकर उन्होंने हिंदी संसार के और अपने प्रति अन्याय किया है। उपन्यास का पहिला, और सबसे महत्त्वपूर्ण, गुण उसकी रोचकता है। वह उपन्यास रोचक है। यह साभिप्राय है। इसमें वर्तमान समाज की उन विकृतियों का चित्रण है जो भयंकर रूप से समाज में घुसी हुई हैं। इसे पढ़ने से मालूम होता है कि आजकल शिक्षा संस्थाएँ किस प्रकार के पतित लोगों के हाथों में पड़ सकती हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारा समाज सफेदपोश अपराधियों को कितना सहन करता है और उसके बाह्यरूप से कितने भुलावे में आ जाता है। इस उपन्यास की नायिका एक सच्चरित्र महिला है जो अपने काले रंग के कारण अपनी माँ से बराबर अनादृत होती और ससुराल वालों के बर्ताव से परेशान होकर स्वावलम्बी बनने का सफल प्रयास करती है। उसकी माता का बर्ताव कुछ अस्वाभाविक मालूम पड़ता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि श्री सेंगर ने इसकी पांडुलिपि को सावधानी से नहीं दुहराया। सत्रहवें अध्याय के आरंभ में वकील साहब कहते हैं कि "आज छुट्टी का दिन था, सो सोचा कि चलो आज ही कुछ बातें कर लें," किंतु अध्याय के अंत में उनका अन्त कहता है "मैं दो-एक जगह होता हुआ सीधा कोर्ट पहुँच रहा हूँ। आप ग्यारह बजे तक जरूर आ जायँ।" उपन्यास बहुत सुंदर है। उसमें रोचकता है, भाषा में प्रवाह है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह विचारोत्तेजक है—कोरी कहानी नहीं है।

अज्ञातवास (उपन्यास)—श्री श्रीलाल शुक्ला। प्रकाशक, राजपाल एंड संज, पो० बा० १०६४ दिल्ली, मूल्य, ढाई रुपये।

श्री श्रीलाल शुक्ल की कहानियाँ बड़ी मनोरंजक और विनोदपूर्ण होती हैं। उनका यह उपन्यास हमने पहिली बार पढ़ा। पहिले ही उपन्यास की सफलता से हमें इस बात का आश्वासन हो गया है कि वे हिंदी के उपन्यास-साहित्य की श्री बढ़ाने में विशेष रूप से सहायक हो सकते हैं। घटना केवल एक संध्या की है, किंतु कथा शिल्प के चातुर्य से लेखक ने नायक के सारे जीवन का इतिहास बड़े कौशल से पाठक के सामने रख दिया है। इस उपन्यास में नये 'उच्च मध्यवर्ग' (विशेषकर अधिकारी वर्ग) के भीतरी जीवन का बड़ा सजीव चित्रण है। ऐसा मालूम पड़ता है कि शराब तो इस वर्ग का अविभाज्य अंग हो गया है। इस वर्ग का छिछलापन पग-पग पर सामने आता है। साथ ही, गाँव के लोगों की दरिद्रता, बेबसी और कष्टों पर भी प्रकारान्तर से अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस वर्ग में पुराने ढंग की लड़की का विवाह 'सुशिक्षित' व्यक्ति से कर देने के कुपरिणाम भी दिखलाये गये हैं। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे 'आधुनिक' रुचि के लोगों को ग्रामगीतों के सुनने का शौक है! इस उपन्यास के मुख्य पात्र—रजनीकान्त (जो सुपरिंटेंडिंग इंजिनियर हैं) असाधारण रूप से कला के प्रति संचेत्य हैं। जंगल का एक चित्र देखकर वे विह्वल हो जाते हैं। यह उपन्यास बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक है और इसमें पात्रों की मनःस्थितियों के चित्रण का सफल प्रयत्न किया गया है। उपन्यास रोचक है, किंतु मालूम होता है कि उस वर्ग के लिए लिखा गया है जिसका इसमें चित्रण है, क्योंकि इसमें बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। शब्द ही नहीं, अंग्रेजी वाक्यों की लड़ियाँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं। इस कारण जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते उन्हें इस उपन्यास का पूरा आनन्द नहीं मिल सकता। केवल पात्रों की बातचीत ही में नहीं, लेखक के वर्णन में भी अंग्रेजी शब्दों का काफी प्रयोग है। फारसी और अरबी दाँ लोगों ने हिंदी में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग करके 'उर्दू' या 'हिंदुस्तानी' बनायी जो आज हमारे लिए एक समस्या हो रही है। अब हमारे अंग्रेजी-दाँ हिंदी-लेखक हिंदी में अंग्रेजी शब्दों का प्रचुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

प्रयोग कर रहे हैं। वे बहुत शीघ्र 'हिंदुस्तानी' की तरह एक नयी शैली 'इंग्लिस्तानी' बना डालेंगे जो शायद कालान्तर में 'उर्दू' की तरह ही एक स्वतंत्र भाषा हो जाय—विशेषकर यदि ये अंग्रेजी-दाँ लेखक अपने सुभीते के लिए उसे रोमन लिपि में लिखना आरंभ कर दें!

प्रवचन डायरी (१९५३)—आचार्य तुलसी, प्रकाशक, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, ३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१, सजिल्द, मूल्य, ६ रुपये।

अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक जैन मुनि आचार्य श्री तुलसी ने १९५३ में सुजानगढ़ में चातुर्मास किया। वहाँ उन्होंने जो प्रवचन दिये, उनका यह संग्रह है। इसमें छोटे बड़े १७५ प्रवचन या प्रवचनों के सारांश हैं। अधिकांश प्रवचन नैतिक विषयों पर हैं। वे उपयोगी और पठनीय हैं।

भिक्षु विचार दर्शन—मुनि श्री नथमल, प्रकाशक, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, ३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता–१, सजिल्द, मूल्य, साढ़े तीन रुपये।

जैनमत की एक शाखा तेरापंथी कहलाती है। उसके प्रवर्तक आचार्य भिक्षु या भीखन थे जिनका जन्म अठारहवीं शती में मारवाड़ में हुआ था। इस ग्रंथ में उनके जीवन की मनोरंजक घटनाओं के साथ उनके उपदेशों का विस्तृत वर्णन है। आरंभ में एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका में तेरापंथी शाखा के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है। श्री भिक्षु की अनेक कृतियाँ कविता में हैं। इनकी भाषा पुरानी हिंदी है जिसमें मारवाड़ी का पुट है। इसके पढ़ने से मालूम होता है कि श्री भिक्षु एक उदारमना संत थे और उनके उपदेशों से सभी प्रकार के लोगों को लाभ हो सकता है।

'आज के लोकप्रिय हिंदी कवि' नाम की पुस्तकमाला का आयोजन राजपाल एण्ड संज, दिल्ली ने किया है। माला की प्रत्येक पुस्तक का मूल्य दो रुपये है। इसमें आज के प्रमुख और लोकप्रिय हिंदी कवियों का संक्षिप्त परिचय और उनके काव्य के चुने हुए लोकप्रिय अंशों का संग्रह रहता है। हिंदी साहित्य सम्मेलन और चिरगाँव के साहित्य सदन ने भी इसी प्रकार की मालाएँ निकाली हैं। सम्मेलन की पुस्तकमाला अधिक साहित्यिक है, और साहित्य सदन की आकार में छोटी है। इन दो पुस्तकमालाओं के रहते हुए भी इस तीसरी पुस्तकमाला की गुंजाइश है। इसकी योजना इन दोनों से कुछ भिन्न है। हमें विश्वास है कि इस पुस्तकमाला से हिंदी-कवियों की लोकप्रिय कविताओं का प्रचार होगा और कविता-प्रेमियों को उससे लाभ होगा। हमें इस माला की निम्नांकित पुस्तकें मिली हैं:

भगवतीचरण वर्मा—लेखक श्री अमृतलाल नागर।

आरंभ में नागरजी ने श्री वर्मा का परिचयात्मक रेखा-चित्र दिया है जो उस शैली में है जिसके लिए वे प्रसिद्ध हैं। यह रेखाचित्र अत्यंत रोचक है और इसमें वर्माजी का व्यक्तित्व सफलतापूर्वक उभर आया है। नागरजी ने वर्मा जी की कविताओं पर कुछ नहीं लिखा। यह काम आलोचकों के लिए छोड़ दिया है। किंतु साधारण पाठकों के लिए उनके काव्य के संबंध में मोटी-मोटी बातें बतला देना उपयुक्त होता। कविताओं का संकलन बड़ी सुरुचि, विवेक और परिश्रम से किया गया है। वर्माजी की प्रायः सभी शैलियों की कविताओं के नमूने उसमें आ गये हैं और उनकी अधिकांश लोकप्रिय एवम् प्रसिद्ध कविताएँ उसमें संकलित कर दी गयी हैं। कविताओं का चयन इस पुस्तक की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आधुनिक कवियों में वर्माजी का विशिष्ट स्थान है। वे हिंदी जगत् में सबसे पहिले कवि के रूप में ही आये, और 'वर्मात्रयी' के प्रमुख कवि माने जाते थे। किंतु बाद में वे कथा साहित्य की ओर मुड़ गये और आज तो वे हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार माने जाते हैं। फिर भी कविता को उन्होंने 'तलाक' नहीं दे दिया, और आज भी वे बड़ी सरस और सशक्त कविताएँ लिखते हैं। यह संग्रह पाठकों को उनका कवि-रूप समझने में बहुत सहायक होगा, और उन्हें इन कविताओं से पर्याप्त आनन्द मिलेगा।

गिरिजाकुमार माथुर—ले० डाक्टर नगेन्द्र और श्री कैलास वाजपेयी। आरंभ में श्री वाजपेयी द्वारा लिखित 'व्यक्तित्व' और डा० नगेन्द्र कृत 'कृतित्व' नाम के दो निबंधों में श्री गिरिजाकुमार माथुर का और उनके काव्य का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। दोनों ही निबंध रोचक और सहानुभूतिपूर्ण हैं। गिरिजाकुमार माथुर का हिंदी की नयी पीढ़ी के कवियों में विशेष स्थान है। गीत से आरंभ कर प्रयोगवादी और 'नयी कविता' तक उन्होंने लिखी है। इस संकलन में उनकी सभी शैलियों की कविताओं को रखा गया है। कविता-प्रेमियों—विशेषकर नयी कविता से प्रेम करनेवालों के लिए यह संग्रह बड़ा रुचिकर है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनोखे संस्मरण

अँगरेजी का रसिया

मास्टर छंगामल मिश्र मैनपुरी के मिशन स्कूल में अध्यापक थे। यह इस शती के आरंभ की बात है। वे अंग्रेजी पढ़ाते थे और अंग्रेजी व्याकरण के बड़े विशेषज्ञ थे। दुर्भाग्य से उन्हें व्याकरण के साथ कविता का भी शौक था और व्रजभाषा में कविता लिखते भी थे। उन्होंने शिखरणी छंद में गंगालहरी का हिंदी अनुवाद किया था। हिंदी में छंद, दोहे और राग-रागनियों में गीत भी लिखते थे। संगीत का ज्ञान भी था और गाते भी थे। उनके मोहल्ले में वराहजी का एक प्राचीन मंदिर है जिसमें वसंत पंचमी पर उत्सव होता था, उस दिन की विशेषता यह थी कि केवल रसिया गाये जाते थे, और बड़ी भीड़ होती थी। संयोग से छंगामलजी के स्कूल में रेवरेंड विलियम मैचिन नाम के एक अंग्रेज नये मैनेजर होकर आये। मैचिन साहब को देशी लोगों के रहन-सहन, उत्सव-मेलों आदि की जानकारी प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा रहती थी। अतएव जब उन्होंने किसीसे इस 'रसिया'-दंगल का हाल सुना तो छंगामलजी से उसे देखने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने उत्सव दिखाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। उत्सव का दिन आया। तब एकाएक छंगामलजी को यह ध्यान आया कि साहब हिंदी तो जानते नहीं, वे 'रसिया' समझेंगे कैसे? बहुत सोच-विचारकर उन्होंने साहब के लाभ के लिए स्वयं अंग्रेजी में एक 'रसिया' तैयार किया। 'रसिया' अंग्रेजी भाषा में था, किंतु वह 'रसिया' के छंद में बनाया गया था, और उसके भाव भी 'रसिया' के अनुरूप थे। वह 'रसिया' इस प्रकार था :—

दाई ब्यूटी शैल फेड वन डे—दाई ब्यूटी ऽऽ
मेक यूज़ आव इट फ्रीली, ओ दाऊ सो लवली सपॉसि
गेऽऽ ! —दाई ब्यूटी शैल...
टेक काउंसेल आव छंगामल, सरेंडर, डोंट डिले ऽऽ
दाई ब्यूटी शैल फेड वन डे, दाई ब्यू

Thy beauty shall fade one day—Thy beau
Make use of it freely, O thou so lovely s
passing gay,
Take counsel of Changamal, surrend
don't delay !
Thy beauty shall fade one day—T
beauty !

कहने की आवश्यकता नहीं कि मैचिन साहब को प्रसन्न करने के लिए छंगामलजी और उनके मित्रों ने बड़े तन्मय होकर यह रसिया गाया। मैचिन साहब ने अपनी मातृभाषा को भारतीय संगीत में और व्रजभाषा के उच्चारण में सुनकर क्या सोचा होगा—इसका पता हमें नहीं है। किंतु छंगामलजी का यह अंग्रेजी रसिया मैनपुरी में बहुत दिनों प्रचलित रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

प्रश्नोत्तररत्नमाला का कर्ता

महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

प्रश्नोत्तररत्नमाला नामक ३२ श्लोकों का पुस्तक देखने में बहुत छोटा है, परन्तु उसका उपदेश अमूल्य और सर्व-मान्य होने के कारण प्राचीन काल से ही वह रत्नों की माला के समान कंठ में धारण करने योग्य माना जाता है। भिन्न-धर्मावलंबी भी उसके उपदेश को आदर के साथ स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु जैन तो उसे अपने एक आचार्य्य का रचा हुआ मानते हैं। उस परमोपयोगी पुस्तक के कर्ता के विषय में बहुत कुछ मतभेद है। कोई तो उसे यतीन्द्र शुकदेवजी[१] का रचा हुआ बतलाते हैं, कोई शंकराचार्य्य[२] को उसका कर्ता मानते हैं। श्वेतांबरी जैन उसे अपने आचार्य्य विमल[३] की कृति प्रकट करते हैं, और दिगंबरी जैनों के भंडार से मिली हुई प्रतियों के अंत में लिखा है, कि "विवेक से राज्य छोड़ने वाले राजा अमोघवर्ष[४] ने विद्वानों की उत्तम अलंकार रूप यह रत्नमाला रची।"

इस प्रकार भिन्न-भिन्न चार पुरुष उसके कर्ता माने जाते हैं, जिनमें से कोई एक उसका कर्ता होना चाहिये। उक्त पुस्तक में वेदवाक्य के सेवन, विष्णु और शिव की भक्ति तथा सेवा का उपदेश[५] होने और जैनों के उपास-नीय देवताओं का नाम न होने से स्पष्ट है, कि वह जैनी नहीं, किन्तु किसी वेदधर्मानुयायी का रचा हुआ है। और संभव है कि विमल को उसका कर्ता प्रकट करने वाला अंतिम श्लोक जो श्वेतांबरियों के भंडार की प्रति में लिखा मिलता है, किसी जैन विद्वान् ने पीछे से उसमें धर दिया हो। इसी प्रकार शुकदेवजी और शंकराचार्य को उसका कर्ता मानने के लिये कई एक प्रतियों के अंत में उनका नाम होने के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है। ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उसका तिबती भाषा में अनुवाद हुआ जिसमें लिखा है कि 'वह पुस्तक बड़े राजा अमोघवर्ष ने रचा था।' और दिगंबर जैनों के भंडार से मिली हुई पुस्तक में भी वैसा ही लिखा मिलता है। अतएव अमोघवर्ष नामक कोई राजा उसका कर्ता होना चाहिए।

अमोघवर्ष नाम नहीं, किन्तु उपनाम अर्थात् विरुद है, जो दक्षिण में राज्य करने वाले राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश के चार राजाओं ने और मालवे के परमार राजा मुंज ने धारण किया था। इन अमोघवर्ष उपनाम वाले पाँच राजाओं में से राठौड़ राजा अमोघवर्ष प्रथम और परमार राजा मुंज[६] ये दो ही विद्वान् और कवि थे। अन्य

---

[१] इति श्रीशुकयतीन्द्रविरचिता प्रश्नोत्तरमाला समाप्ता॥ बंगाल एशियाटिक् सोसाइटी का जरनल, जिल्द १६, भाग २, पृ० १२३५।

[२] इति श्रीमच्छंकराचार्य्यविरचिता प्रश्नोत्तरमाला समाप्ता॥ राजा राजेन्द्रलाल मित्र संगृहीत हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची, जि० २, पृ० ३५५।

[३] रचिता सितपटगुरुणा विमला विमलेन रत्नमालेव। प्रश्नोत्तरमालेयं कंठगता किं न भूषयति॥ इंडिअन् एण्टिक्वेरी, जि० १९, पृ० ३७८

[४] विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका। रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः॥ इंडिअन् ऐण्टिक्वेरी, जि० १९, पृ० ३७८। बंबई गेजेटिअर, जि० १, भा० २, पृ० २०१।

[५] सेव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यं ॥८॥....॥ कार्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः.....१०॥.....॥ किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं कामारिकंसारिसमर्चनाख्यं ॥२०॥....॥ उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्। वाक्कायचित्तैः सुखदं यमघ्नं मुरारिपादाम्बुजमेव चिन्त्यम् ॥२४॥ .....॥ किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः.....॥३०॥

[६] मालवे के परमार राजा हर्ष का पुत्र मुंज, जिसके उपनाम अमोघवर्ष और वाक्पतिराज [...श्रीभोज इत्यात्मजः। प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुंजाख्यया यः स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्तः स्वयम् ॥४३॥ धनपालरचित तिलकमंजरी पृ० ५ ॥...॥ श्रीमदमोघवर्षदेवपराभिधानश्रीमद्वाक्पतिराजदेवपृथ्वीवल्लभश्रीवल्लभनरेन्द्रदेवः कुशली-.....॥ वाक्पतिराज (मुंज) का संवत् १०३६ का दानपत्र, इण्डिअन ऐण्टिक्वेरी, जि० १४, पृ० १६०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन राजाओं को सरस्वती देवी की प्रसादी मिलने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, और न उनमें से एक भी ६ वर्ष से अधिक राज्य करने पाया था।

उपर्युक्त दोनों विद्वान् राजाओं में से परमार मुंज (अमोघवर्ष) भी उसका कर्ता नहीं ठहर सकता, क्योंकि उक्त पुस्तक के अंत में स्पष्ट लिखा है कि "विवेक से राज्य छोड़ने वाले राजा अमोघवर्ष ने उसे रचा।" यह कथन मुंज के वास्ते यथार्थ नहीं हो सकता, क्योंकि वह विवेक (वृद्धावस्था) के कारण राज्य छोड़ वानप्रस्थ होने नहीं पाया; किन्तु कल्याण के चौलुक्य (सोलंकी) राजा तैलप पर चढ़ाई करने के समय कैद होकर मारा गया[७] था।

उपर्युक्त कथन राठौड़ राजा अमोघवर्ष प्रथम के वास्ते सार्थक हो सकता है। क्योंकि वह विद्वान् था, कविराज उसकी उपाधि थी, 'कविराजमार्ग' नामक अलंकार का ग्रन्थ भी उसने कनडी[८] भाषा में रचा था, जो उक्त विषय में प्रमाण रूप माना जाता है। [९] वर्ष के लगभग राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र कृष्ण (अकालवर्ष) दूसरे को राज्य देकर वह वानप्रस्थ हुआ था। और दिगंबर जैनों का, जिनके भंडार पुस्तक में उसका नाम मिलता है, आश्रयदाता[१०] था। अतएव प्रश्नोत्तरमाला का कर्त्ता राठौड़ अमोघवर्ष प्रथम ही होना चाहिए।

मिलते हैं, प्रसिद्ध विद्वान् था और उसकी सभा में धनपाल (तिलकमंजरी का कर्ता), पद्मगुप्त (नवसाहसांकचरित का रचयिता), धनंजय (दशरूपक का कर्ता), धनिक (दशरूपावलोक का रचयिता), हलायुध और अमितगति आदि कई विद्वान् थे। उसका रचा हुआ कोई पुस्तक इस समय उपलब्ध नहीं है, तथापि उसके रचे हुए श्लोक सुभाषितावलि और अलंकार के पुस्तकों में मिलते हैं, और उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है (..यः सर्वविद्याब्धिना—श्रीमुंजेन सरस्वतीति सदसि श्रोणी-भूता व्याहृतः ॥५३॥ तिलकमंजरी पृ० ६ ॥...॥ सरस्वतीकल्पलतैककन्दं वन्दामहे वाक्पतिराजदेवम्। यस्य प्रसादद्वयमप्यनन्यकवीन्द्रचीर्णे पथि संचरामः ॥१॥ १८॥.....॥ अतीते विक्रमादित्ये गतेऽस्तं सातवाहने। कविमित्रे विशश्राम यस्मिन्देवी सरस्वती।११।९३॥ नवसाहसांकचरित ॥....॥ गते मुंजे यशःपुंजे निरालम्बा सरस्वती ॥ प्रबंधचिंतामणि, पृ० ६३) ॥

[७] मुंजराज,-प्रबंधचिंतामणि पृ० ५५—६३।

[८] अमोघवर्ष कर्नाटक देश का राजा था, जहाँ की मातृभाषा कनडी थी।

[९] अमोघवर्ष प्रथम का राज्याभिषेक शक संवत् ७३७ (विक्रम संवत् ८७२) में हुआ था। शक संवत् ७९७ (वि० सं० ९३२) के पूर्व उसने राजकार्य त्याग दिया था और श० सं० ७९९ (वि० सं० ९३४) तक वह विद्यमान था, (जिसके पीछे किसी समय उसका देहान्त हुआ होगा(ऐसा प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्रों से निश्चय होता है। अतएव यदि राज्य छोड़ने के बाद उसने प्रश्नोत्तरमाला की रचना की हो तो उसका समय वि० सं० ९३२ के निकट स्थिर होता है।

[१०] जैसे ईसवी सन् की १२वीं शताब्दी में गुजरात के चौलुक्य राजा कुमारपाल के दरबार में श्वेतांबरी जैन पंडितों का अच्छा सम्मान रहा और हेमचन्द्र सूरि (हेमाचार्य) को राजा के गुरु कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वैसे ही अमोघवर्ष के राज्य में दिगंबरी जैन विद्वानों का बहुत कुछ आदर हुआ और उनमें से जिनसेनाचार्य को उसने अपने गुरु का पद दिया। (इति विरचितमेघदूत-काव्यमावेष्ट्य मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं भुवनमवतु देवस्सर्वदामोघवर्षः ॥७१॥ श्रीवीरसेनमुनिपादपद्मो भृंगः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्। तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परिवेष्टिमेघदूतम्॥ ७१॥ इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचिते मेघदूतवेष्टितवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम चतुर्थस्सर्गः ॥४॥ जिनसेन-सूरि-रचित पार्श्वाभ्युदयकाव्य—बंबई की एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, जि० १८, पृ० २२४॥...॥ यस्य प्रांशुनखांशुजालविलसद्धारान्तराविर्भवत्पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः। संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोहमद्येत्यलं सश्रीमांजिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम् ॥—जिनसेनाचार्य के शिष्य गुणभद्रविरचित उत्तरपुराण के अंत की प्रशस्ति, श्लोक १०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव

का

विवरण

(गतांक से आगे)

इलाहाबाद में उत्सव

जयन्ती का मुख्य कार्यक्रम इलाहाबाद में १२ जनवरी को सम्पन्न हुआ। सबसे पहिले आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्य आवक्ष प्रतिमा का उद्घाटन किया गया। यह प्रतिमा द्विवेदीजी के आकार से डयौढ़ी बनायी गयी है और थार्नहिल रोड तथा पन्नालाल रोड के संगम पर मोतीलाल नेहरू उद्यान (पुराना नाम कम्पनीबाग या एल्फ्रेड पार्क) के पूर्वोत्तर फाटक के सामने, नगर महापालिका द्वारा प्रदत्त, एक तिकोनिया भूमि पर स्थापित की गयी है। इसे लोहे की छड़ों की चारदीवारी से घेरकर भीतर एक उद्यान बना दिया गया है। बीच में एक चबूतरे पर एक पृष्ठपीठ बनायी गयी है। उस पर यह प्रतिमा स्थापित है। इसकी पीठिका पर सामने संगमर्मर पर लिखा हुआ है

आचार्य
महावीरप्रसाद द्विवेदी
जन्म—वैशाख शुक्ल ४
सं० १९२१ वि० (सन १८६४ ई०)
मृत्यु—सं० १९९५ वि०
२१ दिसम्बर १९३८ ई०
सम्पादक-सरस्वती

पीठिका के दाहिने पार्श्व पर संगमर्मर पर यह खुदा हुआ है:

उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्यसम्मेलन के
सहयोग और हिन्दीप्रेमियों,
तथा हिन्दी साहित्यसेवियों की
सहायता से
इण्डियन प्रेस के स्वामी
श्री चिन्तामणि घोष
द्वारा संस्थापित
सरस्वती
की
हीरक जयन्ती के अवसर पर
सरस्वती हीरक जयंती समारोह समिति
द्वारा प्रतिष्ठित
सं० २०१८ वि०

पीठिका की बायीं ओर यह अंकित है:

इस प्रतिमा का उद्घाटन
राष्ट्रकवि
श्री मैथिलीशरण गुप्त
ने किया
१२ जनवरी १९६२

चबूतरे पर दोनों ओर मंगल घट रखे गये थे, उस पर अल्पना बनायी गयी थी तथा फूलों से उसे सजाया गया था। मूर्ति को पीले रेशम के पर्दों से ढँक दिया गया था और मूर्ति बिजली के प्रकाश से आलोकित कर दी गयी थी। ठीक छः बजे राष्ट्रकवि पधारे। उनके साथ श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री दिनकर तथा अनेक साहित्यकार थे। द्वार पर इलाहाबाद के नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव श्री हरिप्रसन्न घोष, समारोह समिति के मंत्री और मूर्तिकार श्री देवकृष्ण जोशी ने उनका स्वागत किया। नगरप्रमुख ने राष्ट्रकवि के सामने मूर्तिकार श्री जोशी को उपस्थित करके उनका परिचय कराया। अनावरण का कार्य वेदपाठ से आरंभ हुआ जो दारागंज के तीन वेदपाठी पंडितों ने बड़े मधुर कंठ से किया। तदुपरान्त नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव ने एक संक्षिप्त भाषण में राष्ट्रकवि से मूर्ति के उद्घाटन करने की प्रार्थना की। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि यह अवसर हिंदी संसार में एक नयी परम्परा का आरंभ कर रहा है क्योंकि आज पहिली बार एक हिंदी साहित्यकार की मूर्ति किसी सार्वजनिक स्थान में हिंदी-प्रेमियों द्वारा स्थापित की जा रही है। प्रयाग के लिए भी यह पहिला अवसर है कि जब सड़क के किनारे, ऐसे सार्वजनिक स्थान में, किसी महापुरुष की मूर्ति स्थापित की गयी है। उन्होंने द्विवेदीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि यह उचित ही है कि हमारे राष्ट्रकवि जो आचार्य द्विवेदीजी के प्रमुख भक्त और शिष्य हैं, इस मूर्ति का अनावरण कर रहे हैं। राष्ट्रकवि ने तुमुल करतल ध्वनि और जयनाद के बीच एक रेशमी डोर खींचकर मूर्ति का अनावरण किया, और उसे पुष्प भेंटकर तथा हाथ जोड़कर द्विवेदीजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने द्विवेदीजी के प्रति संक्षिप्त श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कलाकार की प्रशंसा की।

आचार्य द्विवेदीजी की मूर्ति के अनावरण के बाद उपस्थित दर्शक सभामंडप में पधारे। सभा का प्रबंध इंडियन प्रेस के विशाल हॉल में किया गया था जो ११५ फुट लंबा है। इसे सरस्वती की सहकारी सम्पादिका श्रीमती शीला शर्मा ने बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया था। मंच के सामने के सिरे पर श्री जोशी द्वारा निर्मित राष्ट्रपति का तैल चित्र, तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र और तुलसीदासजी के चित्र लगे थे। हॉल में दोनों ओर हिंदी के आधुनिक कवियों और लेखकों के चित्र थे। इनमें एक ओर बीच में महामना मालवीयजी का एक विशाल चित्र लगा था। पल्लवों और पुष्पों से खंभों को अलंकृत किया गया था। पूर्व की ओर मंच था। इसमें बीच में एक अर्द्धचंद्राकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठिका के ऊपर इलाहाबाद के प्रसिद्ध चित्रकार श्री कमलाशंकर सिंह का बनाया सरस्वतीजी का अत्यंत सुंदर चित्र स्थापित किया गया था। यह तैल चित्र सात फुट ऊँचा था और इसी अवसर के लिए अंकित किया गया था। पीठिका पर देशी दीपकों की दुहरी पंक्ति मंच को आलोकित कर रही थी। चित्र के दोनों ओर पीतल के दो विशाल पाँच बत्तियों के दीपाधारों के दीपक शोभा बढ़ा रहे थे। इस चित्र के एक ओर सरस्वती के संस्थापक महाभाग श्री चिंतामणि घोष, और दूसरी ओर सरस्वती के प्रथम संपादक डा० श्यामसुंदरदास के विशाल--छः फुट ऊँचे--तैल चित्र लगे थे जिन पर पर्दे पड़े थे क्योंकि उनका अनावरण होना था। मंच के एक ओर, दूसरे मंच पर, जगततारन हाईस्कूल की बालिकाएँ बैठी हुई थीं जिन्हें स्वागत-गान गाना था।

आगत सज्जनों में प्रयाग और बाहर के हिंदी के साहित्यकार, कवि, लेखक, प्राध्यापक, पत्रकार, हिंदी-प्रेमी ही मुख्यरूप से थे। बैठने के लिए कोई भेद-भाव नहीं किया गया था। इच्छानुसार जो जहाँ बैठना चाहे बैठ जाता था। सारा हाल खचाखच भरा था। वास्तव में आशातीत उपस्थिति थी और यह अनुभव हुआ कि हाल दर्शकों की संख्या देखते हुए अपर्याप्त है। जबलपुर, रीवा, पन्ना, भागलपुर, पटना, आरा, वाराणसी, बलिया, आजमगढ़, गोरखपुर, जौनपुर, फैजाबाद, लखनऊ, कानपुर, फतेहपुर, प्रतापगढ़, सुलतानपुर, इटावा, झाँसी, उरई, सहारनपुर, आगरा, दिल्ली आदि से कितने ही साहित्यकार और हिंदीप्रेमी पधारे थे। उन आगत सज्जनों की सूची देना हमारे लिए असंभव है। हिंदी प्राध्यापकों की संख्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डा० रामकृष्ण राव ने उत्सव का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया था किंतु उस दिन वे सहसा ज्वरग्रस्त हो गये और प्रयाग नहीं आ सके। उन्होंने कृपाकर एक विशेष दूत से अपना उद्घाटन-भाषण उसी दिन दोपहर में भेज दिया था। बर्मा के प्रधानमंत्री श्री ऊनू के उस दिन वाराणसी आ जाने के कारण मनोनीत अध्यक्ष डा० सम्पूर्णानंद भी नहीं आ सके।

उत्सव का आरंभ संस्कृत में सरस्वती-वंदना से हुआ। यह वंदना श्री लक्ष्मीकान्त अवस्थी और डा० सत्यनारायण पांडे ने की। इसके बाद जगततारन हाईस्कूल की बालिकाओं ने वाद्य यंत्रों के साथ स्वागत-गान किया। वह स्वागत-गान इस प्रकार था--

मंगल स्वागत, मंगल गान
रवि शशि मंगल किरन प्रकासहिं,
मंगलकर शिव मुदमय नाचहिं,
शांति, स्वस्ति सब जग-जन पावहिं,
मंगल दस दिसि होय महान।

बरसहिं मेघ समय पर मंगल,
पूरित शस्य रहहि महि मंजुल,
भारत माँ लहि नित सुख, मंगल
लहहिं स्वत्व भारत-संतान।

नवल सलोनी बेलि नागरी
सिंचित साहित सुधा-गागरी
कुसुमित तुम सों भयी आजु री,
चाहत तुव मंगल-कल्यान!

स्वागत-गान के बाद राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी का टेप रेकर्ड भाषण सुनाया गया जो उन्होंने दिल्ली के उत्सव में दिया था। इसके सुनाने का प्रबंध आकाशवाणी के सहयोग से किया गया था और वह राष्ट्रपति के आदेश और अनुमति से सुनाया गया था।

इसके बाद नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव ने राज्यपाल का लिखित भाषण पढ़ा जो इस प्रकार था--

"भाषा और साहित्य के जाने माने विद्वानों की इस सभा का शुभारंभ करने का जो गौरव आपने मुझे प्रदान किया उसके लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ।

"सरस्वती हीरक जयन्ती के इस शुद्ध साहित्यिक समारोह में सबसे पहले मैं यह निवेदन कर दूँ कि हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में मेरी कोई विशेष गति नहीं जो आपके समक्ष कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत कर सकूँ। सदैव से मैं अपने को एक विद्यार्थी मानता आ रहा हूँ और उसी हैसियत से मैं यहाँ अपने विचार व्यक्त करना चाहूँगा।

"सरस्वती ने अपने विगत साठ साल के कार्यकाल में भाषा और साहित्य की जो सेवाएँ कीं तथा इसके माध्यम से स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी भाषा और साहित्य के सर्वतोमुखी विकास में जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया उसका साक्ष्य स्वयं हिन्दी साहित्य का इतिहास कर रहा है। राष्ट्रभाषा का जो स्वरूप आज दिन हमारे सामने है उसके निर्माण और विकास में सरस्वती को सर्वाधिक श्रेय है। द्विवेदीजी के संपादन-काल में उन दिनों की सरस्वती ने वस्तुतः एक गुरुकुल का रूप ग्रहण कर लिया था जहाँ से दीक्षा लेकर कितने ही कवियों, निबंध, कहानी तथा उपन्यास-लेखकों और नाट्यकारों ने साहित्य-संवर्धन में अपनी प्रतिभा एवं श्रम-साधना का सदुपयोग किया।

"इस अवसर पर काशी की नागरीप्रचारिणी सभा तथा उसके उन्नायक आचार्य श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पंडित रामनारायण मिश्र जैसे विद्वानों को श्रद्धांजलि समर्पित करना कदाचित् असंगत न होगा। वैसे तो सरस्वती का समारम्भ ही सभा की प्रेरणा से हुआ किन्तु कालान्तर में वह स्वयं ही एक स्वतंत्र साहित्यिक संस्था के रूप में सक्रिय हो गयी। प्रयाग से सरस्वती और काशी से नागरीप्रचारिणी सभा ने बीसवीं सदी के आरम्भ में ही हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वांगीण प्रगति की दिशा में जो भगीरथ प्रयत्न किये उनके परिणामस्वरूप गद्य शैली का सुनियोजित विकास, आधुनिक निबंध-लेखन तथा कहानी-कला का प्रचलन, काव्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद का प्रवर्त्तन एवं शास्त्रीय समालोचना-पद्धति का श्रीगणेश संभव हो सका।

"यहाँ पर प्रसंगवश मुझे आप यह कहने की अनुमति प्रदान करें कि हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में अहिन्दीभाषियों का सहयोग एवं समर्थन कुछ कम नहीं रहा है। जिस सरस्वती की हीरक जयन्ती में आज हम सम्मिलित हुए हैं उसे सार्थक बनाने में स्वर्गीय चिन्तामणि घोष तथा उनके इंडियन प्रेस की सेवाएँ सर्वविदित हैं। इसके अतिरिक्त भारतमित्र, बंगवासी जैसे हिन्दी-पत्र सर्वप्रथम कलकत्ते से ही प्रकाशित हुए। कलकत्ते में ही स्वर्गीय शारदाचरण मित्र ने एक-लिपि-विस्तार-परिषद् की स्थापना की और उसके तत्वावधान में देवनागर नाम से एक पत्र भी निकाला जिसमें भिन्न-भिन्न भाषाओं के लेखादि देवनागरी लिपि में भी प्रकाशित किये जाते थे। बम्बई के निर्णयसागर प्रेस ने सर्वप्रथम हिन्दी के टाइप ढाले और स्वर्गीय श्री घोष के इंडियन प्रेस ने हिन्दी मुद्रणकला का परिमार्जन किया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा, वर्धा, और दक्षिण भारत हिन्दीप्रचार सभा, मद्रास ने भी भाषा-आन्दोलन को आगे बढ़ाने में जो कुछ थोड़ी-बहुत सेवाएँ कीं उन्हें मैं यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं समझता। इसी प्रकार यदि हिन्दी साहित्य में से कबीर, जायसी, रहीम, रसखान, नानक, प्रभृति कवियों और संतों की रचनाओं को निकाल लें तो हमारा साहित्य विकलांग प्रतीत होने लगेगा।

"मेरा कहने का आशय यह है कि हिन्दी भाषा का विकास ही इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में हुआ। यह सत्य है कि हिन्दी आज यदि राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई तो उसका मूल कारण यह रहा है कि वही इस देश की अधिकांश जनता के विचारों के आदान-प्रदान की माध्यम थी। किन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि इस देश की अहिन्दीभाषी जनता ने बिना किसी शर्त के, अविचल भाव से हिन्दी को इस परम सम्मान के पद पर आसीन होने में अपना सहयोग एवं समर्थन प्रदान किया।

"तब फिर क्या कारण है कि आज दिन राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर इतस्ततः भ्रान्त धारणाओं को प्रश्रय मिल रहा है? ये भ्रान्तियाँ हैं और इन्हें सर्वथा उपेक्षित करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। इन भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करने का उत्तरदायित्व भी विशेष रूप से हिन्दी-भाषी जनता पर है। हिन्दी के विद्वानों और साहित्यकारों की इस सभा में, मैं आशा करता हूँ कि, उक्त प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जायगा और समय रहते ही समस्या का सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जायगा।

"मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ जो राष्ट्रभाषा, साहित्य की समृद्धि और प्रगति के संबंध में निराशावादी दृष्टिकोण रखते हैं, बल्कि इसके विपरीत मेरी धारणा है कि राष्ट्रभाषा के अभ्युत्थान तथा उसके समस्त अंगों को भरा-पूरा बनाने की दिशा में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रयत्न हो रहा है। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में तो काम हो ही रहा है, आन्ध्रप्रदेश, मद्रास, केरल, महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात आदि अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में भी हिन्दी साहित्य-सर्जन का काम प्रगतिपूर्वक चल रहा है। प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में इन राज्यों से हिन्दी ग्रन्थों तथा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।

"राष्ट्रभाषा-निर्माण और विकास की इस पृष्ठभूमि में आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यकारों और शिक्षा-शास्त्रियों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य की एक सुव्यवस्थित श्रृंखला स्थापित की जाय। यह कार्य कैसे संभव हो, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए मेरी दृष्टि में यह सभा अधिक सक्षम सिद्ध होगी। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इस प्रकार के संपर्क-सहयोग से क्षेत्रीय तथा आंचलिक साहित्यिक प्रवृत्तियों का ठीक-ठीक पता चल सकेगा जो अन्ततः हमारी राष्ट्रभाषा के समन्वित स्वरूप को सँवारने में सहायक होंगी।

"मेरा स्पष्ट मत है, और कदाचित् आप इससे सहमत होंगे, कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा-पद का अधिकार प्राप्त होने के बाद से उसका उत्तरदायित्व भी काफी बढ़ गया है। मैं यह मानता हूँ कि हिन्दी भाषा सदैव से ही उदार रही है और अपनी इस उदारता के ही कारण वह हमारे देश की अधिकांश जनता के हृदय का हार बन सकी। किन्तु राष्ट्रभाषा-पद पर पहुँचने के बाद इस दिशा में उसे अपना दृष्टिकोण और अधिक व्यापक बनाना है। हिन्दी के विराट् स्वरूप में आज समस्त भारतीय भाषाओं का प्रतिबिम्ब होना चाहिए। यह काम इतना साधारण नहीं कि कह देने मात्र से ही पूरा हो जाय। वर्षों की अनवरत साधना अपेक्षित है इस बड़े काम के लिए। त्रिभाषी सिद्धान्त के रूप में यह काम आरम्भ कर दिया गया है और इसको सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में हिन्दीभाषी क्षेत्रों को विशेष रूप से सक्रिय होने की आवश्यकता है। भारत की समन्वयमूलक संस्कृति की भाँति राष्ट्रभाषा भी तभी वास्तविक अर्थ में अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर सकेगी जब कि उसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र की इच्छाएँ, अभिलाषाएँ प्रतिध्वनित होंगी। गंगा जिस प्रकार गंगोत्तरी से गंगासागर तक अनेकानेक नदियों को लिये दिये गंगा ही बनी रहती है उसी प्रकार हमारी राष्ट्रभाषा भी अन्य भारतीय भाषाओं को अपने अंक में लेकर सदैव हिन्दी ही बनी रहेगी।

"अन्त में सरस्वती हीरक जयन्ती के आयोजकों को साधुवाद देते हुए समारोह की सफलता के लिए मंगलकामना करता हूँ। सरस्वती पत्रिका के लिए यह सौभाग्य का विषय है कि उसे अपने समर्थ संपादकों की श्रृंखला में आज श्रीनारायणजी जैसे संपादक सुलभ हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके सम्पादकत्व में सरस्वती अपनी भव्य परम्पराओं के निर्वाह में कृतकाम होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन शब्दों के साथ मैं आज के इस उत्सव का अध्यारंभ करता हूँ।"

भाषण का पाठ समाप्त करके श्री राव ने समारोह के अध्यक्ष राष्ट्रकवि से महाभाग श्री चितामणि घोष और डा० श्यामसुंदरदास के चित्रों का अनावरण करने की प्रार्थना की। राष्ट्रकवि ने पहिले मंच की दाहिनी ओर लगे श्री चितामणि घोष के चित्र का अनावरण किया। अनावरण करके उन्होंने श्री घोष के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और उनकी हिंदी सेवा तथा सरस्वती की स्थापना के लिए कृतज्ञता ज्ञापन की। इसके बाद उन्होंने डा० श्यामसुंदर दास जी के चित्र का अनावरण किया और कहा--

"देवियो और सज्जनो! यह नागरीप्रचारिणी सभा के प्रतिष्ठापकों में अन्यतम बाबू श्यामसुंदरदास हैं, उनके सम्बंध में अधिक कुछ न कह करके केवल दो पंक्तियों मैं आपसे निवेदन करता हूँ। मैं समझता हूँ उनसे आप मेरी भावनाओं को समझ लेंगे--

"राष्ट्रभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास
नाम उनका एक ही है--श्यामसुंदरदास।"

इसके बाद मंच पर आकर उन्होंने अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा--

"देवियो और सज्जनो! बड़े सन्तोष की बात है कि आज तीर्थराज के महत्त्व में एक और नयी अभिवृद्धि हुई है। भारद्वाज के आश्रम के समीप आज एक तपस्वी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा आप लोगों ने की है। पूज्य द्विवेदीजी के विषय में मैं क्या कहूँ कि उन्होंने हिन्दी के लिए क्या किया। इस प्रश्न का उत्तर एक यही हो सकता है कि उन्होंने हिन्दी के लिए क्या नहीं किया? सरस्वती के सम्पादक श्री श्रीनारायणजी चतुर्वेदी ने, जिनके उद्योग से आज हम सब लोग उपस्थित हैं और यह उत्सव मना रहे हैं, मुझे आज्ञा दी कि मैं उनके सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिख दूँ, तो मैंने जो पंक्तियाँ लिखी थीं वह मैं आपको सुना रहा हूँ। 'हिन्दी ने आज जो उन्नति की है उसमें पूज्य द्विवेदीजी का योगदान अद्वितीय है। विशेषकर सरस्वती के द्वारा ही उन्होंने यह कार्य किया है। इसका प्रकाशन प्रयाग के इंडियन प्रेस के स्वामी श्री चिन्तामणि घोष ने किया था। इसके बहिरंग का श्रेय उन्हींको है। इसके लिए हम हिन्दी भाषी उनके कृतज्ञ हैं। हम उनके उत्तराधिकारियों के भी कृतज्ञ हैं जो अपना कर्त्तव्य उसी निष्ठा से आज भी पालन कर रहे हैं। उस समय सरस्वती ही एक ऐसी पत्रिका थी जिसे भारत के सभी प्रान्तों में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। द्विवेदीजी ने सरस्वती के संपादन में जो परिश्रम किया वह विस्मयजनक है। एक विशिष्ट व्यक्ति ने मुझसे कहा था, ऐसा लगता है जैसे सरस्वती को एक ही जन लिखता हो। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं, उन्होंने अपने परिश्रम का फल लेखकों को ही अर्पण कर दिया और हिन्दी में नये-नये लेखक उत्पन्न किये। यदि भारतेन्दु ने हिन्दी को नया जन्म दिया था तो पूज्य द्विवेदीजी ने उसका पालन-पोषण किया। उन्हींका अनुग्रह था जो कृतविद्यों के समाज का मेरे जैसा अस्पृश्य भी इस मंदिर में प्रवेश पा सका और प्रसाद भी।' अन्त में प्रणामस्वरूप मैं कुछ पंक्तियाँ सुनाऊँगा आपको, जो मैंने लिखी थीं। (आप कहें तो मैं बैठ जाऊँ।)

बहु कलकण्ठ खगों के आश्रय पोषक वा प्रतिपाल प्रणाम
भव भूतल को भेद, गगन में उठनेवाले शाल प्रणाम
हरे भरे, आँखों को शीतल करनेवाले तुम्हें प्रणाम
छाया देकर पथिकों का श्रम हरनेवाले तुम्हें प्रणाम
अटल अचल न किसी बाधा से डरनेवाले तुम्हें प्रणाम
शुद्ध सुमन सौरभ समीर में भरनेवाले तुम्हें प्रणाम
देनेवाले औरों को ही सारे सुफल रसाल प्रणाम
भव भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल प्रणाम
व्रत में रत आतप वर्षा हिम सहनेवाले तुम्हें प्रणाम
स्वावलम्ब से उन्नत औ' नत रहनेवाले तुम्हें प्रणाम
खींच रसातल से भी रस को गहनेवाले तुम्हें प्रणाम
जन्मभूमि के छत्र-पत्रमय अहो समुन्नत भाल प्रणाम
भव भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल प्रणाम
विस्तृत शतभुज शाखाओं से देनेवाले वीर प्रणाम
हिमकण से प्रभुदत्त वज्र तक लेनेवाले तुम्हें प्रणाम
विविध कालदर्शी, साक्षीसम, बद्धमूल गंभीर प्रणाम
सभी दशाओं में सदैव ही परहित हेतु शरीर प्रणाम
क्रम-क्रम से सर्वस्व त्यागमय स्थान मूर्ति चिरकाल प्रणाम
भव भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल प्रणाम!!"

अध्यक्ष के भाषण के बाद मंत्री ने सरस्वती हीरक जयंती समारोह समिति के संरक्षक राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन का लिखित संदेश पढ़ा जो इस प्रकार था--

"सरस्वती की हीरक जयन्ती मनाने के अवसर पर मुझे उसके प्रारम्भ का ध्यान आया। मुझे स्मरण आता है कि मैंने उसका पहला अंक देखा था और उसका कुछ अंश पढ़ा था। उसकी एक कविता मुझे विशेष प्रिय लगी थी। उस समय मैं कालिज में विद्यार्थी था। उद्योगशील हिन्दी-हितैषी स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोष की सत्कल्पना ने सरस्वती को जन्म दिया था। उसके सम्पादन के लिए हिन्दी के मान्य पाँच लेखकों का सम्पादक-मण्डल था। उन सबों की पुण्य स्मृति को प्रणाम करता हूँ। उस आरम्भिक काल के बाद स्वर्गीय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व ने सरस्वती को अधिक दृढ़ किया। उनके पश्चात् भी उसका स्तर बराबर अच्छा रहा है। इंडियन प्रेस के संचालकों को इसका श्रेय है। वे हिन्दीप्रेमियों के बधाई तथा कृतज्ञता के अधिकारी हैं।

मैं रोगग्रस्त होने के कारण जयन्ती-समारोह में पहुँच न सकूँगा। सरस्वती के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ और यह अभिलाषा व्यक्त करता हूँ कि वह हिन्दी के हितों की रक्षा के कार्य में सदा सावधान रहे।

पुरुषोत्तमदास टण्डन"

इस संदेश के बाद मंत्री ने कहा कि इस उत्सव के लिए सैकड़ों शुभकामनाओं के संदेश आये हैं। उनमें उपराष्ट्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

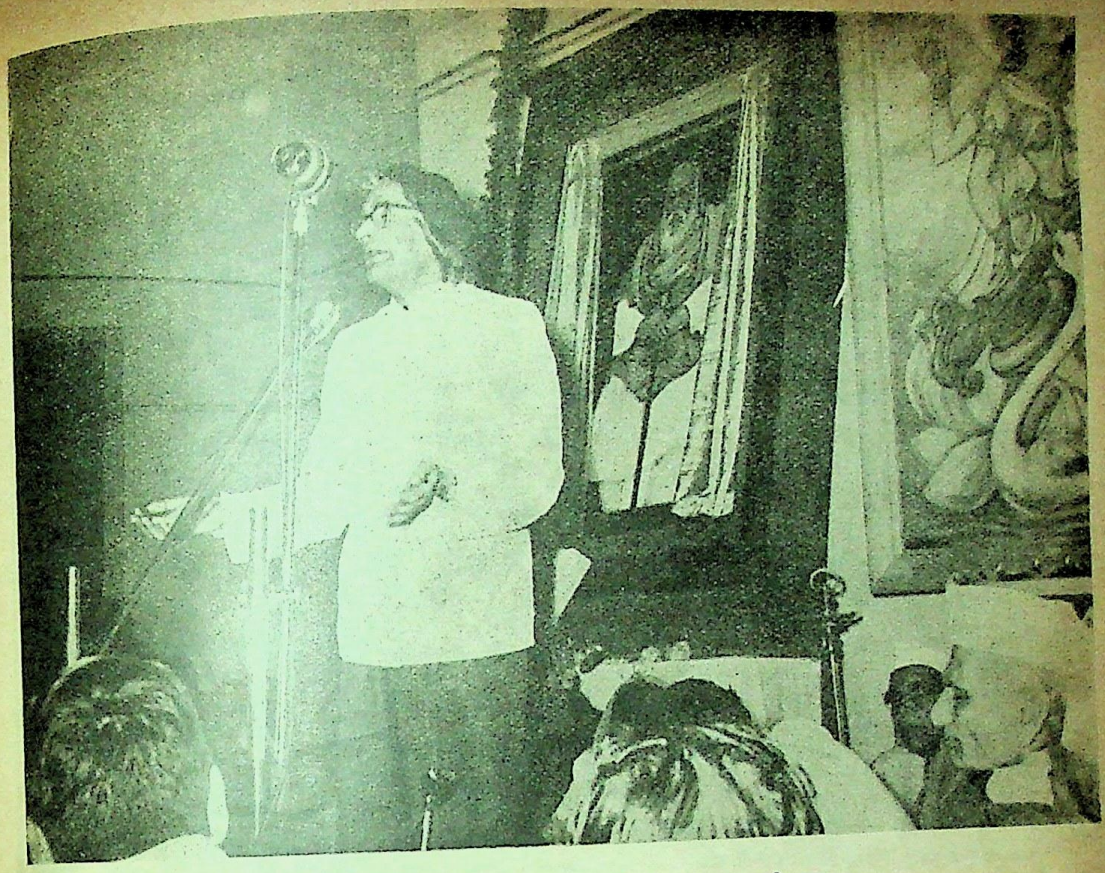

श्री सुमित्रानंदन पंत कविता पाठ करते हुए

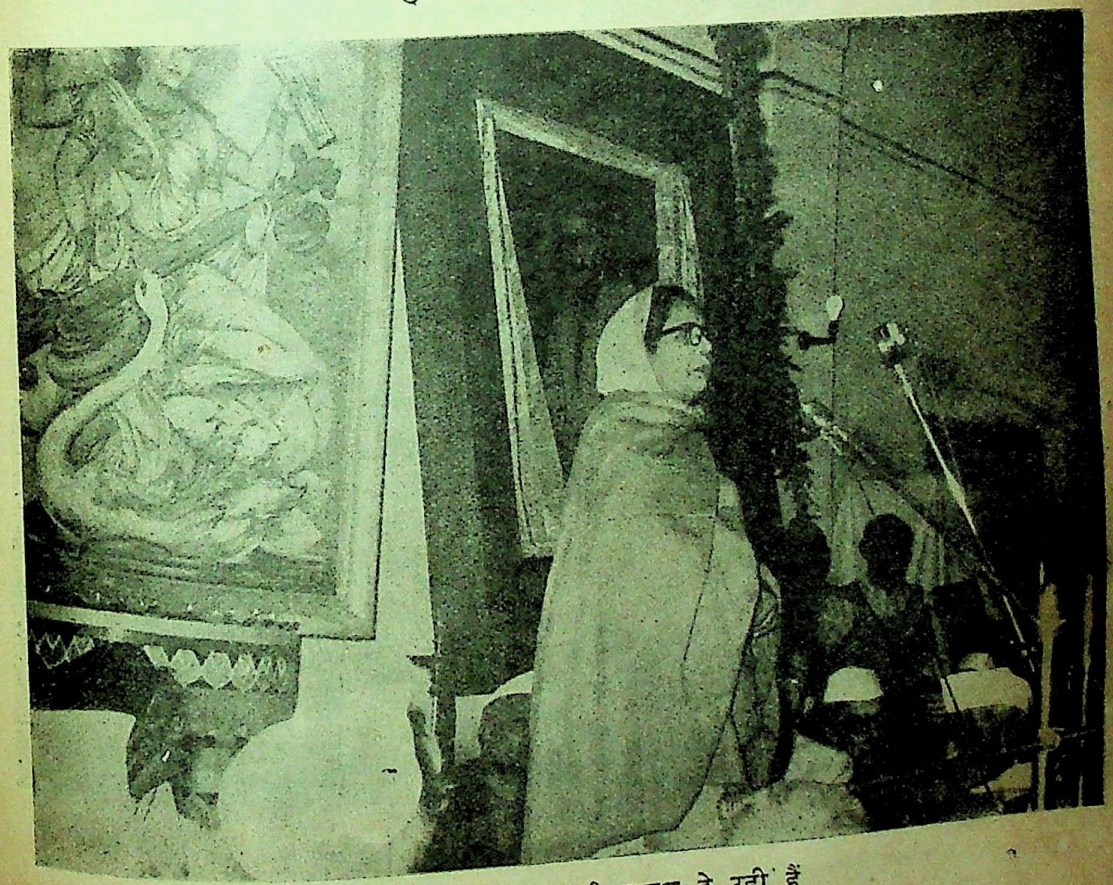

श्रीमती महादेवी वर्मा भाषण दे रही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय का बहुमान।

का० ना० प्र० सभा की शुभकामनाएँ श्री बेढबजी दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति डा० राधाकृष्णन का संदेश अँगरेजी में और शेष सज्जनों के संदेश हिंदी में हैं। उनमें ब्रह्मर्षि सातवलेकर, श्री श्रीप्रकाश, नवाब मेहदी नवाजजंग, डा० काटजू, डा० जीवराज मेहता, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य शिवपूजन सहाय, राय कृष्णदास, आचार्य जुगुलकिशोर आदि अनेक सज्जनों के संदेश हैं। उन सबका पढ़ना संभव नहीं। उन्हें पुस्तिका के रूप में छपवा दिया गया है। यह प्रसन्नता की बात है कि कई भारतीय भाषाओं के सम्मेलनों ने अपनी शुभकामनाएँ भेजी हैं या अपने प्रतिनिधियों को इस उत्सव में अपने संदेश देने के लिए भेजा है। असम साहित्य-परिषद् ने गौहाटी के श्री वीरेन भट्टाचार्य को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया है और उसके अध्यक्ष आचार्य टी० एन० गोस्वामी ने संदेश भेजा है। श्री भट्टाचार्य अभी तक नहीं आ पाये। असमिया साहित्य-परिषद् का संदेश हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं में आया है जो इस प्रकार है:

"सरस्वती' की हीरक जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित समारोह के अवसर पर मैं "असम साहित्य-सभा" की तरफ से गम्भीर आनन्द-प्रकाश करता हूँ और असमिया जाति की आन्तरिक सदिच्छा का ज्ञापन करता हूँ।

"हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य के विकास में 'सरस्वती' ने जो महत्त्वपूर्ण योग-दान किया है वह आज भी स्मरणीय है। आचार्य द्विवेदी के स्पष्ट आदर्शवाद और प्रभाव से 'सरस्वती' ने राष्ट्रीय जीवन की आशा-आकांक्षा को व्यञ्जित किया तथा राष्ट्र को नवीन सन्देश दिया। हिन्दी भाषा में जिस कार्य का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था उसे आचार्य द्विवेदी ने पूर्णता की सीमा पर पहुँचाया। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में हिन्दी के प्रतिमानित रूप (खड़ी बोली) को सुप्रतिष्ठित तथा खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा के द्वन्द्व की परिसमाप्ति उन्होंने ही की। 'सरस्वती' के सहयोग से कीर्त्तिमान् लेखकों और समालोचकों का दल अवतरित हुआ। भारतीय पुरातनता की पृष्ठभूमि पर पाश्चात्य जगत् की भावधारा को चित्रित कर 'सरस्वती' ने नवीन और प्राचीन का समन्वय किया। 'सरस्वती' के द्वारा भारतीय संस्कृति और सभ्यता अपने स्वाभाविक रूप में व्यञ्जित हुई और उसकी सहायता से पाठकों के हृदय में स्वदेश-चेतना का संचार हुआ। जब भारतीय संस्कृति के जीवन में अन्धानुकरणप्रियता और अनुकरण-उन्माद प्रबल हो उठा तो आचार्य द्विवेदी के ही प्रभाव से स्वदेश-चेतना-सम्पन्न कृती लेखकों का दल सक्रिय हुआ।

"समारोह समिति के अध्यक्ष श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में आज भी वही धारा विद्यमान है। केवल पाश्चात्य-साहित्य से प्रेरणा उधार लेकर, और स्वदेशी विशेषताओं को भुलाकर, राष्ट्रीय साहित्य का सृजन कदापि नहीं किया जा सकता है। वास्तव में आज के युग में निर्मल भारतीय दृष्टिकोण की सहायता से एक नवीन कला-विन्यास और कला-कौशल की उद्भावना, एवं नवयुग-उपयोगी साहित्य के सृजन की नितान्त आवश्यकता है।

——श्री त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी
सभापति, असम साहित्य-सभा।"

गुजराती साहित्य परिषद् के प्रतिनिधि, 'बुद्धिप्रकाश' के सम्पादक, आचार्य यशवन्त शुक्ल का तार आया था कि वे आज सबेरे यहाँ पहुँच जायँगे, किंतु किसी कारण से वे नहीं पहुँच सके। परिषद के अध्यक्ष ने तार द्वारा अपनी शुभकामनाएँ भेजी हैं।

इसी प्रकार बंगीय साहित्य परिषद् के मंत्री ने परिषद् की शुभ कामनाएँ भेजी हैं।

कन्नड़ साहित्य परिषद् के अध्यक्ष स्थान विद्वान्, पंडितरत्नम् श्री बी० शिवमूर्त्ति शास्त्री ने भी पधारने की सूचना दी थी किंतु सहसा अस्वस्थ हो जाने के कारण वे नहीं आ सके। उन्होंने अनुपस्थिति का खेद प्रकट करते हुए तार द्वारा अपनी और कन्नड़ साहित्य परिषद् की शुभ कामनाएँ भेजी हैं।

अब भारतीय भाषाओं के जो प्रतिनिधि यहाँ उपस्थित हैं, वे अपनी तथा अपनी संस्थाओं की शुभकामनाएँ देंगे। सबसे पहिले संस्कृत विद्वन्मंडली की ओर से दरभंगा कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्रजी सरस्वती की इस हीरक जयंती पर शुभकामना व्यक्त करने की कृपा करेंगे। डा० मिश्र ने संस्कृत में कहा——

"महानुभावाः,

भारतवर्षं हि देवानामपि सेवाभूमिः, साधनभूमिः। तेऽपि भारतवर्षं समागत्य साधनद्वारा विशेषरूपेण स्व-स्वशक्त्याः उन्नतिं कर्त्तुं यतन्ते। सरस्वती अपि तथैव भारतभूमिं समागत्य स्वसाधनानि समापयितुं चेष्टते स्म। भारतभूमिः तीर्थरूपेण सर्वेषां देवानां स्थानम्। सा पुनः सरस्वती देवी भारतवर्षं न केवलं तीर्थभूमौ एव अपि तु तीर्थराजमेव अवलोक्य अत्र चिन्तामणिद्वारा समाविष्टा। स्थूलशरीरं धृत्वा अवतरति स्म। अत्र समागत्य लोकानां यादृशी सेवा तया विहिता सा तु प्रसिद्धा एव वर्तते। न तत्र अस्माकं किमपि वक्तव्यमस्ति। सेवार्थमपि तस्याः बहवः सहायकाः बभूवुः। तत्र महावीरप्रसादद्विवेदिनः, देवीप्रसादशुक्लाः, अधुनापि श्रीनारायणचतुर्वेदिनः, ईदृशः विद्वांसः सन्ति, येषां साहाय्येन तस्याः साधना सर्वथा समीचीना जाता। अत्र तु न किमपि वैचित्र्यं वर्त्तते। भारतभूमिः सरस्वत्याः तु प्रथमं स्थानम् वर्त्तते एव। गृहे गृहे, कोणे कोणे सर्वत्र सरस्वत्याः समादरो भवत्येव। सरस्वतीसमादरार्थं सर्वे उत्सुकाः सन्ति। भारतवर्षं हि संस्कृत-विद्यायाः महत्त्वपूर्णं स्थानम्। अत्र तु नास्माकं किमपि वक्तव्यं वर्त्तते। प्रयागं अवतीर्य सरस्वती अपि स्थूलरूपेण तु अस्माकं चिन्तामणिघोषद्वारा तत्पश्चात् तेषां महानुभावानां याः खलु सन्ततयः तद्द्वारा पूजिता अधुना तु षष्टिवर्षवयस्का जाता। यादृशी सेवा-साधना तया दीरिता तयैव साधनद्वारा अधुना हिन्दीभाषायाः या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिः, उन्नतिः, समादरः देशे विदेशे वर्त्तते तत्र विशेष-रूपेण अस्या एव सरस्वतीपत्रिकाया महत्त्वं दृश्यते। सरस्वतीसेवायां सर्वे संलग्नाः सन्ति भारतवर्षे। सरस्वती अजरा अमरा वर्त्तते एव। एतत्सर्वमवलोक्य अस्माभिः संस्कृतज्ञैः संस्कृतानुरागिभिरपि विशेष-प्रतिनिधिरूपेण अत्र उपस्थितो भूत्वा सरस्वत्याः तस्या शुभाकांक्षा कर्त्तव्या। यथा सा चिरमेव सर्वैः समादृता संसेविता भवेत् तथा अस्माभिरपि सर्वैः चेष्टा कर्त्तव्या। एतदर्थं ये खलु हिन्दी-साधकाः सन्ति, हिन्दी-भाषा-साधकाः सन्ति, तेषां प्रति शुभाशीर्वचनं वितरितं अथ च सरस्वत्याः पत्रिकायाः ये खलु इंडियनप्रेसस्य अध्यक्षाः सन्ति तेषामपि शुभाशीर्वचनैः समादरं करोमीति।"

महाराष्ट्र साहित्य परिषद् पूना ने अपने प्रतिनिधि-स्वरूप श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर को भेजा है। वह अब महाराष्ट्र साहित्य परिषद् की ओर से इस जयंती के अवसर पर अपनी शुभकामनाएँ देंगी।

(करतल ध्वनि)

श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर एम० ए० ने अपनी परिषद् की ओर से संदेश देते हुए कहा--

"बड़े सौभाग्य की बात है कि हिन्दी प्रान्त के इस गौरव-क्षण पर महाराष्ट्र को भी इस खुशी में सहभागी होने का शुभ अवसर मिला है। 'सरस्वती' पत्रिका के हीरक जयंती महोत्सव के उपलक्ष में मैं महाराष्ट्र की समस्त शुभ कामनाएँ लिए आ रही हूँ। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी यह पत्रिका अपने विचारों, आदर्शों और अपने विशेष वैचारिक स्तर को निभा रही है, यह बात किसी भी भाषा-भाषी पत्रिका के लिए आदर्शस्वरूप है। पत्र जन-जागृति का एक बलाढ्य साधन है। आज 'सरस्वती' नारीजागरण के उद्देश्य से 'आँगन' की देहरी तक आ पहुँची है। और आँगन की स्वामिनी, हमारी हिन्दू संस्कृति की पुण्य-पावन श्रीमाँ का आशीष पा रही है। सरस्वती और संस्कृति का सुंदर संगम इस रूप में हो रहा है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि 'सरस्वती' के शतवार्षिक महोत्सव में भाग लेने का सौभाग्य भी महाराष्ट्र को मिले।

"आज आपने मराठी मन और हिन्दी मन को एक सूत्र में बाँधकर अवश्य ही भावात्मक ऐक्य-निर्माण करने में सहयोग दिया है। महाराष्ट्र आपका स्वागत करने के लिए सदैव उत्सुक है।

जय हिन्द!"

तदुपरान्त तेलगू भाषा समिति, हैदराबाद के प्रतिनिधि श्री के० लक्ष्मण शास्त्री ने इस प्रकार अपनी और अपनी समिति की शुभकामनाएँ व्यक्त कीं--

"हैदराबाद की तेलगू भाषा समिति के अध्यक्ष और सदस्य और आन्ध्रप्रदेश के सारे कवि और साहित्यकार प्रयाग की सरस्वती, सरस्वती पत्रिका के हीरक उत्सव के शुभ अवसर पर सरस्वती पत्रिका और हिन्दी के कवियों और साहित्यकारों को अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ हर्ष-पूर्वक समर्पण करते हैं, और आशा प्रकट करते हैं कि यह पत्रिका और अधिक उन्नति प्राप्तकर भारत की जनता और विशेषतः साहित्यकारों की सेवा करती हुई भारत की एकता की ओर, प्रयत्नशील रहे। ये शुभकामनाएँ मैं तेलगू भाषा समिति की ओर से दी हैं। अब मैं अपनी शुभकामनाएँ संस्कृत में देना चाहता हूँ:

श्रीमद्भारतगीर्विशेषसरितां सारस्वतानामियम्
सौरभ्यस्य भुवि प्रसारसरणीमातन्वती मंजरी।
रत्नैर्निर्मित आसने हि कविभिः कृत्वा प्रयागेऽधुना
विद्वद्वंद्यसरस्वतीभरतभूविद्याङ्गणे खेलती॥
सरस्वती भासमाना चिन्तामणिमयासने।
विद्वत्कवीन्द्रमणिभिः राजतां च सदा भुवि॥"

अंजुमन तरक्किए उर्दू, अलीगढ़ के प्रतिनिधि प्रोफेसर एहतिशाज हुसेन ने अंजुमन की शुभकामनाएँ व्यक्त करते हुए कहा--

जनाबे सदर और आला हाज़रीन! मुझे खुशक़िस्मती से यह मौक़ा मिला है कि मैं कुल हिन्दी अंजुमन तरक्क़ी उर्दू की तरफ से सरस्वती के इस अरतमासी डायमंड जुबिली के मौके पर अंजुमन का यह पैग़ाम पढ़ कर सुनाऊँ। ज़ाहिर है कि इसमें मेरी दिली ख्वाहिशात, दिली तमन्नाएँ भी शामिल हैं। अंजुमन तरक्की उर्दू, हिन्द, इलाहाबाद की मुअज्जत और मुस्तगिर रिसाले सरस्वती की डायमंड जुबिली के मौक़े पर आपकी तमाम उर्दूदानों की तरफ़ से बरमियोंने तकरीकी खिदमात में मुबारकबाद पेश करती है। रिसाले सरस्वती ने ६० साल की मुअज्जत की जो शमा रोशन रक्खी है उससे सिर्फ हिन्दी में ही नहीं, हिन्दुस्तान की दूसरे ज़ुबानों में भी दस्तेनूर किया है इससे मगबूरी तौर पर हिन्दुस्तानी अदब की हर शाख बुलन्द हुआ है। एक रिसाले का इतनी तबीर मुद्दत तक जारी रहना और अथक लगन के साथ इल्म मुअद्दत की खिदमत में लगे रहना ख़ुद एक बहुत बड़ा कारनामा है और जब उसकी ज़बरदस्त तामीरी खिदमात को भी सामने रक्खा जाय तो यह रिसाला सिर्फ रिसाला ही नहीं रह जाता, बल्कि इल्मी और तालीम में भी दायरे की सिफ़त अख्तियार कर लेता है जिनसे बहुत लोग लिखना, पढ़ना सीखते हैं और शायर और अदीब बनकर मुल्क की दफ़ीना खज़ाने में इजाफ़ा करते हैं। सरस्वती की सबसे बड़ी ख़ुशकिस्मती यह थी कि उसे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसा फ़ाजिल अदीब एडीटर नसीब हुआ जिसने हिन्दी ज़ुबान के तालीमी दौर में एक अदबी मयाज़ हर वक्त सामने रक्खा और हिन्दी अदब के सतह को बलन्द से बलन्दतर करने की कामयाब जद्दोजहद जारी रक्खी। यहाँ तक कि हिन्दी अदब की तारीख में उनका अपना एक अहद बन गया, जिससे नये हिन्दी अदब में बहुत से ख़ूबसूरत फूल खिले और थोड़े ही अर्से में सारे अदब का चमन महक उठा। आचार्यजी के बाद आने वाले एडीटरों ने भी इनकी रवायतों को न सिर्फ बरक़रार रक्खा बल्कि इनमें बराबर इजाफ़ा करते रहे हैं। अंजुमन उर्दू तरक्की, हिन्द, एक बार फिर सरस्वती के एडीटरों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारकुनों और पढ़नेवालों को मुबारकबाद देती है और उम्मीद करती है कि सरस्वती के नाम के फैज से ये रिसाला सदाबहार रहेगा और अपनी खुशबू बिखेरता रहेगा।

मैथिली साहित्य परिषद् की ओर से श्री जयकान्त मिश्र ने परिषद की शुभकामनाएँ देते हुए कहा--

अखिल भारतीय मैथिली साहित्य समिति की ओर से और समस्त मैथिली भाषियों की ओर से सरस्वती की इस हीरक जयन्ती के अवसर पर मैं शुभकामनाएँ प्रस्तुत करता हूँ।

"यों तो किसी भी भारतीय भाषा के पत्र या पत्रिका की हीरक जयन्ती होना एक विशेष महत्त्व की बात है, उसमें भी राष्ट्र-भाषा की किसी पत्रिका का हीरक जयंती होना एक राष्ट्रीय पर्व है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में सरस्वती का जो विशिष्ट स्थान है, वह इस पर्व को अनायास ही एक और विशेषता देता है। किन्तु समस्त हिन्दीभाषियों की ओर से इस पर्व की विशेषता एक दृष्टि से और देखते हैं कि इंडियन प्रेस के अधिष्ठाताओं ने अपने प्रेस के नाम की सार्थकता राष्ट्रीय भाषा की सेवा करके बंगभाषा-भाषी होते हुए भी जिस प्रकार निभायी है, वह अद्वितीय और सूहणीय है। इस अवसर पर सरस्वती के मंदिर में महावीर जी के प्रसाद जहाँ हों, जहाँ स्वयं नारायण और कमलापति विराजे हों, जहाँ दिनकर सहाय हों और मैथिली स्वयं शरण देने को प्रस्तुत हों, मैं इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझता।"

अंत में नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के प्रतिनिधि श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ने सभा की ओर से कहा--

"मैं काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से, जिसके अनुमोदन और सहयोग से सरस्वती का प्रकाशन आरंभ हुआ, और जिसने प्रथम वर्ष उसके सम्पादन के लिए अपने सदस्यों का एक सम्पादक मंडल बना दिया तथा बाद में भी जिसके मंत्री बाबू श्यामसुंदर दास दो वर्ष तक उसका सम्पादन करते रहे, सरस्वती की षष्टिपूर्ति पर हार्दिक शुभ कामनाएँ प्रकट करता हूँ। सभा की यह हार्दिक कामना है कि वह शतियों जीवित रहे। जिस सरस्वती के द्वारा द्विवेदीजी ने हिंदी गद्य और पद्य का एक स्तर स्थापित किया, उस सरस्वती की इस हीरक जयन्ती के अवसर पर मैं एक बार फिर सभा की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ।"

शुभकामनाओं के बाद, कार्यक्रम के अनुसार, पं० सुमित्रानंदन पंत द्वारा कविता पाठ था। पंतजी ने कहा--

"सभापति महोदय, उपस्थित देवियो और सज्जनो! यह कल्पना करके कि यह आचार्य द्विवेदीजी का आशीर्वाद हम लोगों के लिए है, मैं इस कविता को आप लोगों के सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ--

बरसो ज्योतिर्मय जीवन
जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन!
बरसो कुसुमों में मधु बन
प्राणों में अमर प्रणय धन;
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में
उर अंगों में सुख यौवन
छू छू जग के मृत रज कण
कर दो तृण तरु में चेतन
मृण-मरण बाँध दो जग का
दे प्राणों का आलिंगन

बरसो सुख बन, सुषमा बन,
बरसो जग जीवन के धन
दिशि दिशि में औ' पल पल में
बरसो संसृति के सावन!

इसके बाद अध्यक्ष ने समिति की ओर से काशी नागरी-प्रचारिणी सभा को एक ताम्रपत्र भेंट किया। सभा की ओर से सभा के प्रबंध मंत्री श्री सुधाकर पांडे ने उसको ग्रहण किया। ताम्रपत्र में निम्नांकित अंकित था जिसे मंत्री ने पढ़कर सुनाया--

सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह इलाहाबाद

मानपत्र

जिस युग में भारतेन्दु की प्रेरणा से हिन्दी का जागरण हो रहा था, किन्तु उसके लेखकों को अभिव्यक्ति का उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं था, उस युग में सभा ने हिन्दी में एक सुसम्पादित, ज्ञानवर्द्धक, साहित्योन्नयन कर सकनेवाली सर्वांगसुन्दर मासिक पत्रिका की आवश्यकता अनुभव की, तथा उसके प्रकाशन के लिए तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ मुद्रक और प्रकाशक इंडियन प्रेस को इसके प्रकाशन के लिए प्रेरित ही नहीं किया, अपितु उसके सम्पादन के लिए अपने प्रमुख सदस्यों का एक सम्पादक-मंडल भी बना दिया जिसने सरस्वती को वह रूप-रेखा, साहित्यिक स्तर तथा स्वस्थ परम्परा दी कि जिनके कारण वह हिन्दी की अनुपम सेवा कर सकी। इसके बाद भी सभा वर्षों उसका अनुमोदन करती रही। सभा ने यह शिवसंकल्प इतने शुभ मूहूर्त में किया था कि हिन्दी मासिक पत्रों में सर्वप्रथम सरस्वती को आज अपनी षष्टपूर्ति मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर समारोह समिति सभा के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता का प्रतीक यह ताम्रपत्र उसे सादर अर्पित करती है।

मैथिलीशरण गुप्त
अध्यक्ष, जयंती समिति

संपूर्णानंद
अध्यक्ष, समारोह

श्रीनारायण चतुर्वेदी
मंत्री, समारोह समिति
और सम्पादक, सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला कार्यक्रम इंडियन प्रेस को ताम्रपत्र के भेंट करने का था। इंडियन प्रेस के वर्तमान जनरल मैनेजर, और स्वर्गीय श्री चिंतामणि घोष के तृतीय पुत्र, श्री हरिप्रसन्न घोष मंच पर उसे लेने के लिए बुलाये गये। मंत्री ने उसे पढ़कर सुनाया। उसमें अंकित वाक्य ये थे--

सरस्वती हीरक जयंती समारोह इलाहाबाद

मानपत्र

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद को

जिस समय हिन्दी साहित्यिकों के पास अभिव्यक्ति का कोई संतोषजनक माध्यम नहीं था, उस समय वंगभाषी होते हुए भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रेम और उसके प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण इंडियन प्रेस के स्वामी महाभाग स्व० श्री चिन्तामणि घोष ने काशीनागरी प्रचारिणी सभा की प्रेरणा से जनवरी १९०० में सरस्वती का प्रकाशन आरम्भ किया और उसे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। उन्होंने उसे सुन्दर ढंग से प्रकाशित ही नहीं किया, अपितु उसके लिए बाबू श्यामसुन्दरदास और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ऐसे संपादकों का मनोनयन करके सारा सम्पादन-भार उन्हें सौंप दिया। सम्पादकीय स्वतंत्रता में उनकी पूरी निष्ठा थी और इसका श्रेय उन्हींकी स्थापित परम्परा को है कि साठ वर्ष के दीर्घकाल में उसके सम्पादक के कार्य या नीति में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया। उनके सुयोग्य पुत्र स्व० श्री हरिकेशव घोष ने भी अपने पूज्य पिता के चरण-चिह्नों का अनुसरण किया और वर्तमान काल में भी उनके उत्तराधिकारी उनकी बनायी स्वस्थ परम्पराओं को जीवित रखे हुए हैं। इस बात का श्रेय इंडियन प्रेस को ही है कि अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी सरस्वती हिन्दी की पत्रिकाओं में पहली पत्रिका है जिसे अपनी षष्टि-पूर्ति का उत्सव मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक वंगभाषी द्वारा प्रतिष्ठित और पोषित साठ वर्ष पुरानी यह पत्रिका वंगभाषियों के राष्ट्रभाषा हिन्दी के वास्तविक प्रेम का जीवित प्रमाण है। इंडियन प्रेस ने सरस्वती को आरम्भ करके तथा इतने वर्षों तक उसे बड़ी योग्यता और कुशलता से प्रकाशित कर हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता की जो अनुपम और श्लाघनीय सेवा की है, उसके कृतज्ञता-ज्ञापन के रूप में यह समिति इंडियन प्रेस को यह ताम्रपत्र भेंट करती है।

मैथिलीशरण गुप्त
अध्यक्ष, हीरक जयंती समिति

संपूर्णानन्द
अध्यक्ष, समारोह

श्रीनारायण चतुर्वेदी
मंत्री, हीरक जयंती समिति
और सम्पादक, सरस्वती।

इलाहाबाद

राष्ट्रकवि ने अपार करतल ध्वनि के बीच यह ताम्रपत्र उन्हें भेंट किया जिसे उन्होंने बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञता से स्वीकार किया।

इसके बाद सरस्वती के पुराने और प्रमुख लेखकों के बहुमान का कार्यक्रम आरंभ हुआ। निम्नांकित विद्वानों के बहुमान की घोषणा की गयी थी--

सरस्वती के दो पुराने सम्पादक--
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पंडित देवीदत्त शुक्ल

पुराने और प्रमुख लेखक (अकारादि क्रम से)
सर्वश्री कस्तूरमल बाँठिया
कृष्णदास (राय)
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (महामहोपाध्याय)
गुलाबराय
गोविंददास (सेठ)
जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
जहूरबख्श
जी० एस० पथिक
नरदेव शास्त्री (वेदतीर्थ)
पंचम सिंह (राजा)
भगवतीचरण वर्मा
महादेवी वर्मा
मुकुंदीलाल (बैरिस्टर)
मैथिलीशरण गुप्त
रघुवंशलाल गुप्त
रामधारी सिंह दिनकर
रामनरेश त्रिपाठी
राहुल सांकृत्यायन
लल्लीप्रसाद पांडेय
वियोगी हरि
वेंकटेशनारायण तिवारी
वृन्दावनलाल वर्मा
संत निहालसिंह
संतराम
सदाशिव पांडुरंग खानखोजे
सियारामशरण गुप्त
सुमित्रानंदन पंत
सूर्यनारायण व्यास
शिवपूजन सहाय
श्रीप्रकाश
हरिभाऊ उपाध्याय
हरि रामचंद्र दिवेकर
हरिवंशराय बच्चन
हेमचंद्र जोशी

इनमें से जो विद्वान् उपस्थित थे उनका सम्मान इस क्रम से किया गया--

महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
वेदतीर्थ नरदेव शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
डा० हरि रामचन्द्र दिवेकर
श्री वियोगी हरि
श्री देवीदत्त शुक्ल
श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री जी० एस० पथिक
श्री रामनरेश त्रिपाठी
श्री सदाशिव पांडुरंग खानखोजे
श्री सेठ गोविंददास
श्री सुमित्रानन्दन पंत
श्रीमती महादेवी वर्मा
श्री रामधारी सिंह दिनकर
श्री सियारामशरण गुप्त
श्री रघुवंशलाल गुप्त
डा० हेमचन्द्र जोशी
श्री भगवतीचरण वर्मा
श्री लल्लीप्रसाद पांडेय
राजा पंचम सिंह

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और पं० देवीदत्त शुक्ल मंच पर एक ओर बैठे थे। वृद्धावस्था के कारण उनको उठने में कष्ट होता था। इसलिए अध्यक्ष ने उनके पास जाकर उनका सम्मान किया। शेष विद्वान् अध्यक्ष के निकट आते थे। अध्यक्ष पहिले उन्हें पुष्पहार पहनाते, फिर उनके कंधे पर उत्तरीय (दुपट्टा) डालते और एक नारियल के साथ मानपत्र अर्पित करते। मानपत्र के अतिरिक्त इस अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार की गयी एक फाउंटेन पैन भी उन्हें भेंट की गयी जिस पर 'सरस्वती हीरक जयंती' अंकित था। सरस्वती का हीरक जयंती विशेषांक भी उन्हें उसके साथ भेंट किया गया। हिंदी संसार के वयोवृद्ध, पुराने तथा प्रसिद्ध लेखक एक एक कर मंच पर आते। दर्शकगण तुमुल करतलध्वनि से उनका स्वागत करते। उनके दर्शन कर तथा उनको सम्मानित होते देखकर हर्षध्वनि करते। सारा वातावरण आनंद-विभोर हो उठा था। उस समय यह दृश्य अत्यंत आह्लादमय हो गया जब अध्यक्ष राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज, श्री सियारामशरण गुप्त सम्मान के लिए मंच पर बुलाये गये। श्री रघुवंश लाल गुप्त ने (जिनका सम्मान भी इस अवसर पर किया गया था) उस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है—"एक दृश्य नहीं भूलेगा। वह उस समय जब कि बाबू मैथिलीशरणजी, अपने अनुज सियारामशरणजी को माला और अंगवस्त्र पहिना रहे थे, स्वयं आनन्द-विभोर थे। हँस रहे थे। सभा भी आनन्द में मग्न थी और उसी समय सियारामशरण जी उनके चरणों में गिर पड़े। यह भारतीय संस्कृति की एक अनुपम घटना थी जिसका जोड़ भारतवर्ष के बाहर नहीं मिल सकता। सभा में ऐसे आनन्द की वर्षा हुई कि कवि की आँखों से देखा जाय तो समझिए कि देवताओं ने सभामण्डप पर पुष्प-वर्षा कर दी।" जब विद्वानों का सम्मान हो रहा था तब दर्शकों की प्रसन्नता, उनका उत्साह और सम्मानित व्यक्तियों की उत्सुकता देखने योग्य थी।

विद्वानों के सम्मान के बाद इंदौर के राजकीय कला-महाविद्यालय के प्राचार्य श्री देवकृष्ण जोशी का सम्मान किया गया। उन्होंने इस उत्सव के लिए द्विवेदीजी की मूर्ति का निर्माण किया था तथा राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसाद, श्री चिंतामणि घोष और डा० श्यामसुंदरदास के मनुष्यायत अपूर्व तैल चित्र बनाये थे। इस मूर्ति और इन चित्रों की कला देखकर सारा दर्शक समाज मुग्ध हो गया था।

तदुपरान्त श्रीमती महादेवी वर्मा ने इस कार्यक्रम का मुख्य भाषण दिया। सारी सभा ने मंत्रमुग्ध होकर उस ऐतिहासिक भाषण को सुना। भाषण तो अत्यन्त उच्च-कोटि का था ही, उनके भाषण का ढंग इतना मोहक था कि श्रोतागण उनके एक-एक शब्द को स्वाति की बूँद की भाँति ग्रहण कर रहे थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा—

"सज्जनो, बहनो! हिन्दी पत्रिकाओं की मातामही ही नहीं, स्वमातामही सरस्वती की षष्टिपूर्ति का समारोह आज हम मना रहे हैं और इस समारोह में सरस्वती में प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले अन्यतम शिल्पी महावीर-प्रसाद द्विवेदी का स्मरण भी हमारे मन को भविष्य के लिये आश्वासन दे रहा है। समय अपने आप तो कोई महत्त्व नहीं रखता जैसे नदी का प्रवाह अपने आप महत्त्व नहीं रखता। तट से मिलकर के जल से जो हरीतिमा उत्पन्न होती है, जो रंग उत्पन्न होते हैं, जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उन्हींके कारण हम नदी को पहचानते हैं। यह प्रवाह यहाँ से गया, इसके चिह्न धरती की हरीतिमा ही देती है। पिछले साठ वर्षों में हिन्दी साहित्य के चार याम व्यतीत हुए हैं, चार पीढ़ियाँ उपस्थित हैं। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक परिस्थिति भी बदल गयी है। सन् सत्तावन से आरम्भ हुआ संघर्ष समाप्त हो गया। आज हम स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक हैं और हमारे सामने अनेक प्रश्न हैं। पत्रिकाएँ अपने आप में एक संस्था होती हैं क्योंकि वे अनेक व्यक्तियों के प्रयत्न अपने में समेटती हैं, सँभालती हैं, संयोजित करती हैं। किसी भी युग की सृजन-शक्ति की जो गंगा है, वह किसी सृष्टि के कमण्डल में चुपचाप नहीं बैठी रहती, वह अपने उद्भव से पहले ही अपने भगीरथ को नहीं उत्पन्न कर देती है। वहाँसे चलकर भी वह किसी शिव की ऊँची जटाओं में नहीं खो जाती। वह फिर धरती के सम-विषम भागों को बराबर करती हुई, सम करती हुई, हरा-भरा करती हुई उतर आती है। वह भगीरथ कहाँ कैसे मिलता है, उसका कोई उपाय जानने का नहीं है।

"द्विवेदी युग में, खड़ी बोली के प्रारम्भिक युग में, वह भगीरथ रेलवे के किसी कार्यालय में मिला। यह युग की सृजन-शक्ति ही जाने कि उसने उसके हृदय में कौन सी उदारता, कौन सी महानता देखी, उसके दृष्टिकोण में कौन सी दूरदर्शिता उसे मिली। और द्विवेदीजी ने वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य किया जिसे भारतेन्दु ने आरम्भ किया था। भारतेन्दु का कार्य तो वर्षा-काल जैसे है, अनन्त-अनन्त धाराएँ बह निकलीं। साहित्य के सभी अंगों का सृजन उन्होंने किया। ऐसा कुछ नहीं है जो उन्होंने नहीं छुआ, जिसका स्पर्श नहीं किया, जिसे रूप नहीं दिया, जिसे वाणी नहीं दी। परन्तु वर्षाकाल के उपरान्त ही यह निश्चय हो सकता है कि कौन सी धारा गंगा बन सकेगी, कौन सी धारा समुद्र से हिमालय को मिला सकेगी। इस कार्य को द्विवेदी जी ने खूबी के साथ किया, निष्ठा के साथ किया, आत्मबल के साथ किया। जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है, वह निर्गुण सन्तों की वाणी को सँभाल सकी है, उस शून्य आकाश को सँभाल सकी है जिसमें सारी विविधताएँ रूप पाती हैं, विलीन होती हैं; भावना के उस माधुर्य को सँभाल सकी है जो जीवन को राग देता है, संगीत देता है। अर्थात् उसने जीवन में भावना, विचार, चिन्तन सब कुछ सँभाला है; उसकी प्रकृति, उसकी प्रवृत्ति दोनों समन्वयवादिनी हैं। हम सब जानते हैं भारत की संस्कृति समन्वयवादिनी है, हमारा दर्शन समन्वयवादी है, हमारा धर्म समन्वयवादी है, हमारा साहित्य समन्वयवादी है। हम किसी को अस्वीकार नहीं करते, उसमें जो कुछ उत्कृष्ट है उसे हम स्वीकार करते हैं, उसे मिलाते हैं, उसे समष्टि तक फैलाते हैं। हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा को कोई भय नहीं है, वह सबकी सहोदरा है। साम्राज्य उसकी प्रवृत्ति में नहीं है, वह अधिकार चाहती नहीं, वह केवल अपना स्नेह, अपना संवेदन ही चाहती है। इसीसे करील के कुंजों में भी गूँजी है, करील के कुंजों में भी घूमती रही है और उत्तर अयोध्या, सरयू तक से लेकर के समुद्र पार लंका तक चली गयी है। सब प्रदेशों ने, सब प्रदेश के साहित्यकारों ने, सन्तों ने, उसके इस तत्त्व को पहचाना है, इसकी समन्वयवादिनी प्रवृत्ति को पहचाना है। इसीसे उसके समर्थकों में आपको भारत भर के साहित्यकार, चिन्तक, विचारक मिलेंगे। स्वामी दयानन्द जैसे धर्म के उद्धारक, और राजा राममोहन राय जैसे, बंकिम जैसे समाज के सुधारक और अपने ही युग में महात्मा गांधी जैसे राष्ट्र के स्वातंत्र्य-मंत्र को फूँकने वाले, सबने उसकी इस प्रकृति को समझा है और आज हम जिस स्थिति में आ गये हैं, जो निर्माण का कार्य हमारे समक्ष है, उसे देखते हुए आज हम उस प्रकृति को न पहचानें, उस समन्वयवादिता को न पहचानें तो हम अपने कर्त्तव्य से च्युत होंगे। आलोक से सभी लाभ उठा सकते हैं परन्तु दीपक का उत्तराधिकार तो दूसरा दीपक ही सँभालता है, उसे कोई और नहीं सँभालता; किसी के वश की बात नहीं। अंगारा जल करके भस्मशेष होता है, राख के अतिरिक्त बचता कुछ नहीं है; परन्तु दीपक जल कर और आलोक ही देता है, जिसका कारण यही है कि उसमें तरलता है, उसमें स्नेह है, उसमें भावना है। तो आज हम उसी सद्भाव, उसी भावना को फिर स्मरण करें। हमारा संकल्प ऐसा हो कि हम अपने देश की एकता को, भावनात्मक एकता को, समन्वयवादिता को सुरक्षित रख सकें। यदि हम इस देश की अखण्डता को सुरक्षित रखना चाहते हैं राजनीतिक दृष्टि से, तो इसकी सांस्कृतिक एकता उतनी भी मूल्यवान है, उसके संरक्षण के बिना कोई राजनीतिक एकता संभव नहीं है। आज उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक घूम आइए और सम्पूर्ण भारत का हृदय आपको अखण्ड मिलेगा, उसके स्पन्दन में एक ही स्वर मिलेगा, उसका एक-सा दर्शन मिलेगा, उसका एक-सा सौन्दर्य-बोध मिलेगा, उसकी एक-सी भावना मिलेगी और यह एकता जो जन-जन में बिखरी हुई है, उसे यदि हम हिन्दी के माध्यम से सँभाल सकें, दूर-दूर तक उसका संदेश पहुँचा सकें, तो हम इतना बड़ा कार्य करेंगे कि हम अपने-आप को गौरवान्वित कर सकेंगे! तभी महावीरप्रसाद द्विवेदी के हम उत्तराधिकारी होंगे।

जिस समय ब्रजभाषा का माधुर्य ऐसा था कि उसके सम्मुख कुछ कहा नहीं जा सकता था, इस सीमा तक वह माधुर्य था कि विश्व-वंद्य कवि रवीन्द्र ने भानुसिंह की पदावली में ब्रज बोली के ही पदों की भाषा रखी थी, इसी से अंकन कीजिए कि उसमें कितना माधुर्य होगा। अवधी के सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं क्योंकि हमारा समाज का गठन, हमारे समाज का चरित्र, हमारे समाज की नीति; सब तुलसीदास के रामचरितमानस से मिले है। आज का समाज तुलसीदास का समाज है। हम और किसी राम को नहीं जानते हैं, केवल तुलसीदास के राम को ही जानते हैं। तुलसीदास के ही कर्त्तव्य को जानते हैं जो उनकी दृष्टि थी, समाज के मूल में आज भी वही दृष्टि है। ऐसी दो अवधी और ब्रज जैसी यानी मधुर और नैतिकता की दृष्टि से इतनी उन्नत भाषाओं के समक्ष खड़ी बोली की कविता को रखा। निश्चय ही उनके प्रयास पर लोग हँसे होंगे, विशेषकर उस समय के उनके समय के कवि। हमारे श्रद्धेय दद्दा मैथिलीशरण भी उपस्थित हैं। वे जानते हैं कि कितने प्रयत्न से उन्होंने इनकी खड़ी बोली की रचनाओं को कैसे काटा-छाँटा होगा, कैसे उपस्थित किया होगा। उनकी दूरदर्शिनी दृष्टि ने देख लिया था कि यदि हिन्दी का संदेश दूर तक जाना है, देशव्यापी होना है, तो भाषा में कोई परिवर्तन आएगा ही। यदि वह नहीं आता है तो फिर लौट कर चाहे वह राजदरबार की रसाल छाया में बैठ जाय, चाहे धर्म के कल्पवृक्ष के नीचे बैठ जाय, परन्तु सामान्य जनता की भाषा नहीं होगी। भले ही विशिष्ट हो सकती है, सामान्य तो नहीं ही होगी। इसी कारण उन्होंने प्रयत्न किया और भारतेन्दु ने जो अंकुर दिया था उसको उन्होंने बड़े स्नेह से, बड़े मनोयोग से, बड़ी निष्ठा से बनाया, बड़ा किया और आज उस वट-वृक्ष के नीचे बैठकर हम उनका स्मरण करते हैं। उन्होंने कितना कार्य भाषा का किया।

"भाषा किसी भी देश के लिये केवल वस्त्र नहीं है आवरण नहीं है, वह उसकी आत्मा की वाणी है। कोई भी भाषा उसकी संस्कृति के साथ बनती है, जीवन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ बनती है, उसे उससे भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। हमारे समक्ष यदि कोई गंगा का नाम लेता है तो मन में जो चित्र आता है, दूसरे देश के निवासी के सामने गंगा कहने वह चित्र नहीं आएगा। वह गंगा को गैंजेज कहेगा। अँगरेजी में गैंजेज कहने से क्या चित्र आता होगा उसके सामने? एक भारतीय के सामने उस नाम से जो भावना उत्पन्न होती है उसके पीछे है अनन्त युगों की परम्परा। उसके सामने आ जाती है उसके हृदय की भावना, छू जाती है युगयुगान्तर की धारणा। तुलसी साधारण पौधा है, घास है, परन्तु तुलसी का नाम लेने पर भारतीय के हृदय में एक दूसरा भाव उत्पन्न होता है। हर शब्द के साथ हमारी भावना का संबंध है, उसके साथ हमारी भावना जागती है और इसी प्रकार हमारा चिन्तन, हमारे विचार, हमारी भावना, यह सब उस भाषा के साथ संबद्ध है, मिली हुई है। यदि इन भावनाओं को, चिन्तन की उन पद्धतियों को, विचारधाराओं को हम नहीं छोड़ देते तो भाषा भी हम नहीं छोड़ते! और कोई भी देश यह नहीं कह सकता कि हम अपने चिन्तन पद्धति, दर्शन, साहित्य सब कुछ छोड़ देंगे। इस प्रकार का त्याग उसे पाषाण बना सकता है, जीवित जाति नहीं बना सकता। तो आज हमारे सामने फिर वही प्रश्न है कि इस विशाल देश की संस्कृति एक रहे, और हम हिन्दी का संदेश इस प्रकार पहुँचाएँ कि कोई किसी प्रकार से भी इस भ्रम में न पड़े कि हम किसी प्रकार के दबाव से ऐसा अधिकार चाहते हैं। हम आत्मदान चाहते हैं, अधिकार नहीं चाहते; कुछ देना चाहते हैं, हमारा अपना ऐसा अधिकार नहीं, शासन नहीं। इस प्रकार से यदि हम पूरे देश को आश्वस्त कर दें, इतने विराट् देश को यदि यह बता सकें कि इतने विशाल देश के पास वाणी का होना लज्जा की बात होगी, अगौरव की बात होगी तो हम बहुत बड़ा कार्य भाषा देकर कर सकते हैं। आज हम इसी संकल्प को अपने समक्ष रखें। उसी सद्भावना, उसी स्नेह, उसी मनोयोग से, जिसे महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने समक्ष रखा था और सरस्वती को ऐसा रूप दिया था। अनन्त-अनन्त लेखक होंगे ऐसे कि जिनके साथ उन्होंने रात-रात भर परिश्रम किया, जागकर जिनके लेखों का संशोधन किया, वह रूप दिया कि जो देना अभीष्ट था उनको। लेखक के हृदय की बात वह समझ जाते थे और भाषा में, उसके भावों में, उसकी शैली में इतना अधिक संशोधन करते थे, इतना परिश्रम करते थे कि आश्चर्य होता था। मेरे साथ तो उनका बहुत थोड़ा सा सम्पर्क रहा है परन्तु मैं यह जानती हूँ कि उनसा कर्मनिष्ठ व्यक्ति दूसरा नहीं होगा। हम स्वर्गीय चिन्तामणि घोष के तो ऋणी हैं ही। कृतज्ञता से अधिक हम उन्हें अपना अग्रज सभी प्रकार मानते हैं जैसे महावीरप्रसाद द्विवेदी को। इन दोनों के संयोग से सरस्वती को यह रूपरेखा मिली। सरस्वती ने अनेक कार्य किये हैं, अनेक लेखकों को बनाया है। उसने भाषा को एक प्रामाणिक, परिमार्जित रूप दिया है। किसी भाषा के लिये एक प्रामाणिक परिमार्जित रूप आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त उसका शब्द-कोश, भावों को व्यक्त करने की उसकी शक्ति, उसकी सामान्य गति सबको स्पष्ट करती है। हिन्दी के पास यह चारों विशेषताएँ हैं। आज हमारी चारों पीढ़ियाँ यहाँ उपस्थित हैं। लेखकों की जब एक ही पीढ़ी थी, जब भविष्य के सम्बन्ध में हम आश्वस्त नहीं थे, तब जो कार्य हम कर सके उसे आज हम निश्चय ही आसानी से कर सकेंगे। हम अपने सभी अग्रजों को, सभी पूर्वजों को, जिनका उत्तराधिकार हमें प्राप्त है, उन्हें अपना प्रणाम देते हैं और हमारे मन में आज सचमुच वही संकल्प जागना चाहिए कि हम उनके उपयुक्त उत्तराधिकारी हो सकें।"

श्रीमती महादेवी वर्मा का भाषण अपार करतल-ध्वनि के साथ समाप्त हुआ। इसके बाद सम्मानित सज्जनों की ओर से श्री हरिभाऊजी उपाध्याय और सेठ गोविंददासजी ने सभा को सम्बोधित किया। श्री उपाध्यायजी पहिले बोले। वे द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में कई वर्ष तक 'सरस्वती' के सहकारी सम्पादक थे। उन्होंने अपने भाषण में द्विवेदी-जी और चिंतामणि बाबू के कितने ही बड़े मनोरंजक संस्मरण सुनाये। उन्होंने अपने भाषण में कहा--

"आदरणीय दद्दा जी, दूसरे पूज्य और आदरणीय सरस्वती के लेखक, आराधक, भाई और बहनो! आज मैं सचमुच अपनी प्रसन्नता व्यक्त नहीं कर सकता और भाई चतुर्वेदीजी के प्रति अपनी कृतज्ञता को भी प्रकट नहीं कर सकता। उन्होंने प्रेमाग्रह करके मुझे यहाँ बुलाया जभी तो आप सबके दर्शनों का अवसर मिला। उससे भी अधिक इस सरस्वती संस्था के दो महान् व्यक्ति स्व-र्गीय चिन्तामणि घोष और पूज्य आचार्य द्विवेदीजी के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करने का सुअवसर दिया।

आज से कोई बयालिस वर्ष पहले की बात है सन् सोलह में, मैट्रिक पोस करके जब मैं काशी में सोच रहा था कि मुझे अब आगे क्या करना है तो मैंने निश्चय किया था कि लोकमान्य तिलक के केसरी में जाकर शिक्षण लेकर के फिर हिन्दी में केसरी की टक्कर का एक पत्र निकाला जाय। उस समय, मुझे खुशी है कि मेरे गुरुदेव जो आज यहाँ विराजे हुए हैं--डाक्टर हरि रामचन्द्र दिवेकरजी ने मुझे काशी में प्रेरणा दी। आचार्य द्विवेदी जी ने उनसे जिक्र किया था कि भाई एक अच्छा सहायक दे दो। उनके पास कोई टिकता नहीं है, क्योंकि वे बड़े तेजस्वी थे, बहुत श्रमशील थे, बड़े विधिवत् काम करनेवाले थे। साल-साल डेढ़-डेढ़ साल रहकर सब लोग भाग जाते थे। उन्होंने किसी कारण मुझे चुना। मुझे कहा कि तुम वहाँ क्या शिक्षा प्राप्त करोगे, पूना में; हिन्दी में पत्र निकालना है तो तुम द्विवेदीजी के पास क्यों नहीं चले जाओ। वह आज यहाँ विद्यमान हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूँ कि उनकी प्रेरणा से मैं वहाँ गया और तीन साल तक मैं लगा-तार वहाँ रहा। उस समय का सब दृश्य याद आ रहा है। इस समय जो यह बड़ा कमरा है, यह तो मुझे याद नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता कि उस समय था, लेकिन इसी इंडियन प्रेस में सन् १९१६ में मैं पहले-पहल आया था। एक तरफ के कमरे में बाबू चिन्तामणिजी बैठते थे, दूसरे तरफ का कमरा हम लोगों को दिया गया था। वह सब चित्र मेरे सामने है। आज मैं आपके सामने, इस थोड़े समय में, इन दोनों महापुरुषों के एक-दो संस्मरण ऐसे सुना देना चाहता हूँ कि जो शायद आपने और जगह नहीं सुने होंगे। पहले मैं बाबू चिन्तामणिजी को लेता हूँ। यह एक बड़े दैवयोग की बात है कि चिन्तामणिजी भी गरीब बाप के बेटे थे, दस पन्द्रह रुपये से उन्होंने जीवन प्रारम्भ किया था और द्विवेदीजी भी गरीब बाप के बेटे थे। दस पन्द्रह रुपये से उन्होंने भी जीवन शुरू किया और यह भी गरीब बाप का बेटा है, जिसने, जिसके बाप ने दस पन्द्रह रुपये से जीवन शुरू किया। तीनों गरीब बाप के बेटे थे।

जब यहाँ वह बैठते थे तो मैंने उनकी व्यवस्था कुशलता उसी समय देखी। सुबह से उठके आते थे आफिस ठीक टाइम पर और सारे प्रेस में राउण्ड लगाते थे। किसीसे कुछ कहते नहीं थे, बोलते नहीं थे, चुपचाप राउण्ड लगा के आ के अपने कमरे में बैठ जाते थे। बैठने के बाद जो कुछ कमियाँ देख आते थे, सबको बुला के अपने कमरे में कहते थे; कभी किसीसे उन्होंने अपने निरीक्षण-काल में बातचीत डाट-डपट नहीं की। शाम को जाते वक्त फिर एक राउण्ड लगाते थे और देख लेते थे कि दिन में जो हिदायतें दी हैं, सूचना दी है, उनका कुछ पालन हुआ या नहीं हुआ। अपने कमरे में दिन भर बैठे रहते थे बेकार, कोई काम उनके पास नहीं था। व्यवस्था-कुशलता का मैंने नमूना देखा तो उन्हींमें। अखबार पढ़ा करते थे, किताब पढ़ा करते थे, जरूरी कोई काम हुआ तो बात कर लेते थे। मैं समझता हूँ कि एक घंटे सुबह और एक घंटे शाम में सारे प्रेस को, सारी संस्था को, वह कंट्रोल करते थे। छोटी से छोटी चीज आपको चाहिए, एक पिन चाहिए, एक निब चाहिए, तो बड़े बाबू के पास जाओ। बड़े बाबू के पास गये बिना कोई चीज नहीं मिलेगी। लेकिन जाने पर बड़े बाबू इनकार करना नहीं जानते थे। हरिभाऊ को एक पेंसिल चाहिए तो बड़े बाबू के पास जाओ। बड़े बाबू से कहा कि एक पेंसिल चाहिए कि झट उठ के उन्होंने पेंसिल दे दी। पास हुई तो स्वयं दे दी, या कहा कि इनको पेंसिल दे दो। कभी किसीसे इनकार नहीं किया। अब उसमें देखिए हर एक आदमी को उनके पास जाना पड़ता था और वे कभी इन्कार नहीं करते थे। उनकी ऐसी व्यवस्था थी कि हर एक आदमी से रोजाना करीब करीब उनका परिचय हो जाता था। रोज किसी न किसी काम से उनके पास हरेक को जाना पड़ता था। इन दो बातों का बड़ा गहरा प्रभाव मेरे मन के ऊपर पड़ा।

अब आचार्यजी को आप लीजिए। सम्पादन-कला का मनोरंजक उदाहरण आपको देता हूँ। आप सभी अच्छी तरह जानते हैं कि उनके काल में सरस्वती का सम्पादन इस प्रकार से होता था कि ऐसा मालूम होता था कि एक ही लेखक के लिखे हुए सब लेख हैं और टिप्पणियाँ एक ही हैं। इतना माँजते थे, इतना घोर परिश्रम करते थे। सौभाग्य से कहिए या दैवयोग से कहिए अब हमारे महिम जो राज्यपाल हैं बम्बई के भाई श्रीप्रकाशजी, वह योरोप में थे और उनके लेख वहाँसे सरस्वती में आ करते थे। एक लेख उनका आया। उस समय वे नये-नये लेखक थे। भाषा बड़ी शिथिल होती थी। मुझे द्विवेदी जी ने दे दिया कि इसे जरा ठीक-ठाक कर दो। मैंने करीब करीब सारा का सारा रंग दिया, काटकूटकर करीब करीब दूसरा लेख बना दिया। वह लेख पड़ा रहा कई दिनों तक। छपा नहीं। अब श्रीप्रकाशजी ने समझा कि शायद अस्वीकृत हो गया। कुछ गड़बड़ हो गयी। एक भेजा। उत्तर में द्विवेदीजी ने लिखा था कि लेख छप जायगा। जब बाद में सरस्वती में उनका लेख छपा, उनके नाम से, परिमार्जित मार्जित कुछ भी कह लीजिए, जब वह दोनों लेख उनके पास गये तो वह बड़े चकित हुए कि यह क्या मामला है। उन्होंने बड़ा कड़ा पत्र लिखा कि 'कौन आदमी है तुम्हारे यहाँ द्विवेदीजी! कि जिसने मेरा सारा लेख भ्रष्ट कर दिया, बिगाड़ दिया, उसका रूपान्तर कर दिया, यह कर दिया, वह कर दिया। द्विवेदीजी ने सोचा कि यह क्या बात हो गयी? मुझे बुलाया और पूछा कि हरिभाऊ! क्या मामला है? तो वह जो उनकी भी परम्परा यही थी कि जितने भी लेख दें उनकी प्रतियाँ जो दी थीं मैं रखता था, काट-छाँट के सारा लेख उनके सामने रख दिया। आप देख लीजिए इसमें। उन्होंने वह लेख ज्यों का त्यों ही श्रीप्रकाशजी के पास भेज दिया। उन्होंने मुझे कुछ नहीं कहा। उन्होंने कहा, ठीक किया तुमने। मैंने कहा, आपने जो आदेश और निर्देश दिया है, उनका पालन इसमें मैंने किया है। इसमें कोई गलती हो तो मेरे कान पकड़ लीजिएगा आप। तब सरस्वती में लेख इतने आते थे कि द्विवेदीजी कहा करते थे कि भाऊ इतना परिश्रम क्यों करते हो, दो साल तक सरस्वती चल सकती है, इतने सुसम्पादित लेख मेरे पास तैयार हैं। सिर्फ टिप्पणियाँ लिखने की कसर है। दो साल तक का मसाला मेरे पास है। तुम इतना परिश्रम क्यों करते हो। उन दिनों आप समझिए कि ग्रेजुएट बहुत कम हुआ करते थे। तो उनके एक बड़े परम मित्र के लड़के, मैं नाम भूल वक्त भूल रहा हूँ, देहरादून में थे। वह वहाँसे पढ़ के आये, योरोप से पास हो के। उन दिनों ऐसे लोगों के लिए मिलते नहीं थे। उन्होंने एक लेख लिख के दिया। सामने की बात है। वह लाये लिख के। अपने पिताजी की याद दिलाई और वह जानते थे कि उनको विलायत भेजने में द्विवेदीजी का हाथ था। मैं नाम भूल रहा हूँ इस समय उनका। उन्होंने कहा कि यह लेख मेरा है लेकिन इसका एक शब्द आप इधर का उधर मत करना। ऐसा द्विवेदी जी से कहा। वह इस शर्त पर किसी बड़े से बड़े का लेख नहीं लेते थे। जीवन भर उन्होंने ऐसी शर्त कभी नहीं मानी। आनेवाला उस समय नया-नया लड़का था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

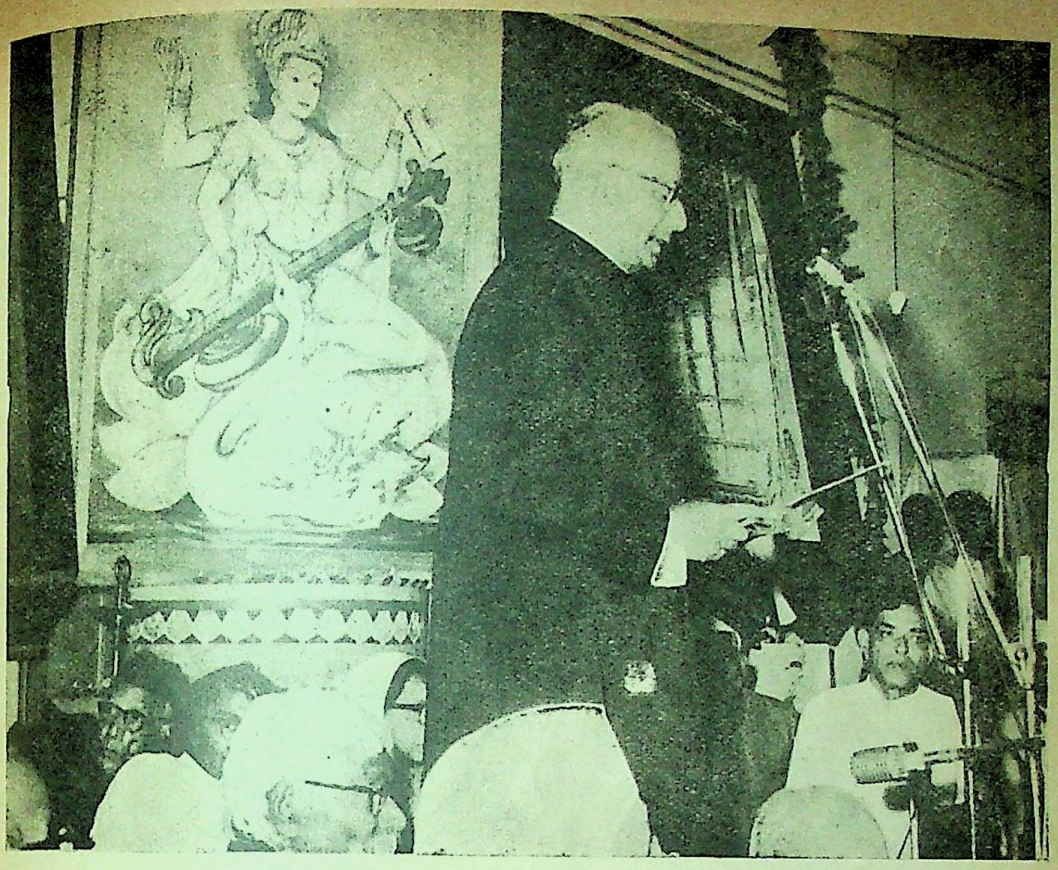

श्री बालकृष्ण राव माननीय राज्यपाल का भाषण पढ़ते हुए

अंजुमन तरक्किए उर्दू, हिंद, के प्रतिनिधि प्रो० एतिश्शाम हुसेन संदेश पढ़ते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

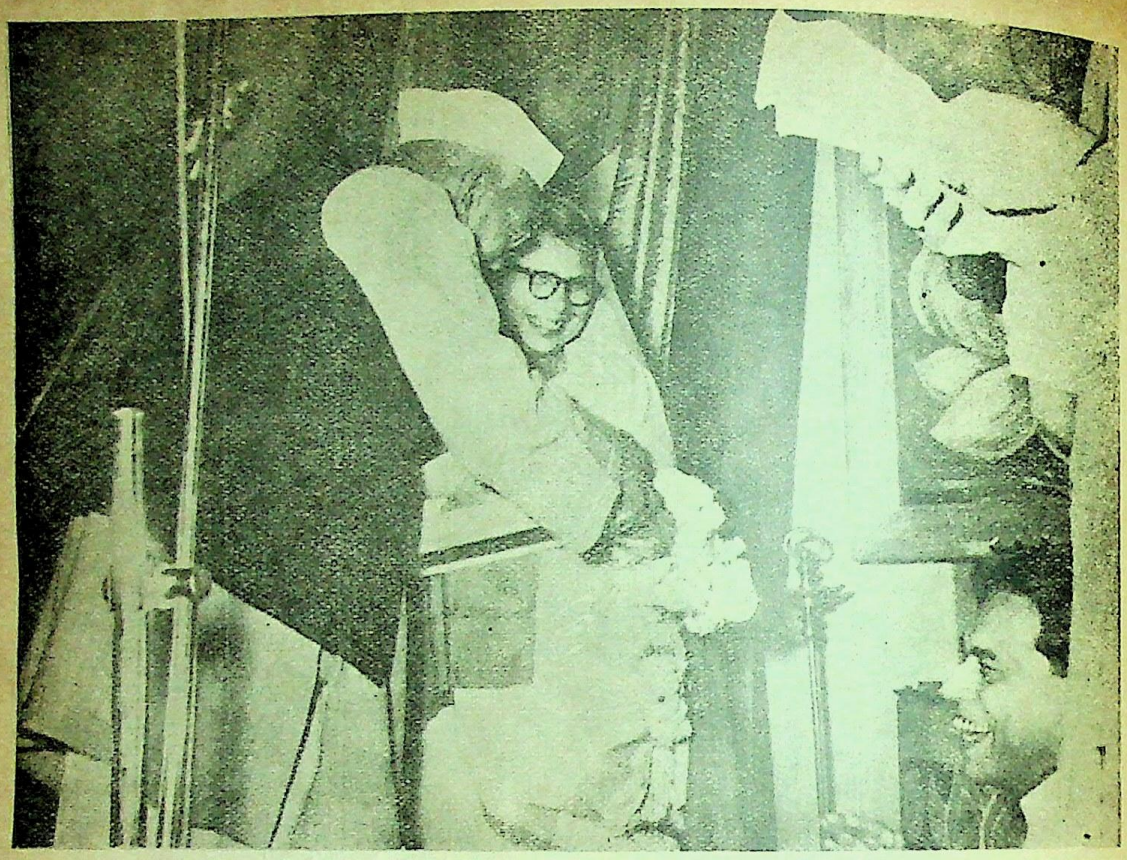

श्रीमती महादेवी वर्मा का बहुमान

परिषद की प्रतिनिधि श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर संदेश पढ़ते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा अच्छा, रख जाओ। आठ-दस दिन के बाद फिर वह आया। आया तो कहने लगे (उस समय भी मैं वहाँ मौजूद था) "अच्छा वह जो तुम लाए उस दिन मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा, तुम्हारा उत्साह मारा जाता। लेकिन इस शर्त पर आज तक मैंने कोई लेख लिया नहीं है। तुम्हारा कितना ही अच्छा लेख हो, कितने तुम मेरे प्यारे हो, तुम अपना लेख ले जाओ। तुम्हारी शर्त पर मैं तुम्हारा लेख नहीं लूंगा।" वह इतना सा मुँह ले के चले गये। तो उन दिनों महाराष्ट्र में या भारत में सम्पादन में या तो लोकमान्य तिलक की धाक थी या हिन्दी में, यद्यपि वह पत्रिका साहित्यिक और सामाजिक पत्रिका थी, उनकी धाक थी। इन पत्रों में किसीकी प्रशंसा निकल गयी तो वह निहाल हो गया। किसीकी आलोचना निकल गयी तो वह मर गया। यह धाक द्विवेदीजी की थी उस जमाने में। लोग जानते थे कि एक ही शब्द लिख दें द्विवेदीजी, अच्छा हो। इस प्रकार कड़ा स्टेण्डर्ड उन्होंने सरस्वती का रखा था। जिसका यह फल है न, कि सरस्वती आज तक जीवित है, बल्कि बहुत कुछ उसी उच्च स्तर पर अब तक चल रही है, और मुझे निहायत खुशी है इस बात की कि आज जो उसके संपादक हैं चतुर्वेदीजी, वह बहुत ही योग्यता और कुशलता से और विद्वत्ता के साथ उसका संपादन कर रहे हैं। मैं अपनी तरफ से तो उन्हें देता ही हूँ मगर आप इजाजत देंगे तो आप सबकी तरफ से उनको धन्यवाद दूँगा। उन्होंने बाबू चिन्तामणि का, आचार्य द्विवेदी का जो श्राद्ध आज इस रूप में किया है, मैं समझता हूँ उससे उनकी विद्वत्ता और योग्यता और सम्पादन के साथ-साथ उनका नाम भी अमर रहेगा। मैंने श्राद्ध शब्द का प्रयोग जान-बूझकर किया है। हम सब लोग श्राद्ध करते हैं, और श्राद्ध करनेवालों में, मुझे और भी खुशी है, हमारे भाई शुक्लजी भी यहाँ मौजूद हैं। मेरे बाद शुक्लजी ही द्विवेदीजी के पास थे और यह दैवयोग की बात है कि जब मैं काशी में पढ़ता था तब शुक्लजी भी काशी में पढ़ते थे। मैं एक पत्रिका निकालता था और शुक्लजी तब संस्कृत पढ़ते थे। मैं अंग्रेजी पढ़ता था। ब्राह्मण नाम की एक कविता शुक्लजी ने लिखी जो पहले पहल मैंने अपनी पत्रिका में छापी। पहली कविता शुक्लजी की। और उसके बाद दैवयोग यह है कि मैं गया, उसके बाद द्विवेदीजी के यहाँ वे गये। वहाँ गंगा के किनारे मैं दौलतपुर भी रहा हूँ। कभी-कभी तीन-तीन महीने द्विवेदीजी के साथ। शायद ही किसीको यह सौभाग्य मिला हो। जिस पर द्विवेदीजी ने हाथ रख दिया वह कुछ का कुछ हो गया! मिट्टी पर हाथ रख दिया वह सोना हो गया, लेकिन तीन साल तक लगातार उनके साहित्यिक जीवन का, उनके पत्रकारित्व का, उनके गृह-जीवन का, उनके व्यक्तित्व का, उनके तीन साल चरणों में बैठने का जो सौभाग्य मुझे मिला वह मैं समझता हूँ बहुत कम लोगों को मिला होगा। शायद ही किसीको। बाबू हरिपद, जहाँ तक मैं भूलता नहीं हूँ हरिपद नाम था उनका। मेरे सहपाठी थे। यह सामने जो आप बैठे हैं, यह हैं उनके छोटे भाई। १९१६ में; कौन थे वह? आपके बड़े भाई थे? तो क्या कह रहा था--हाँ, परम्परा के बारे में कह रहा था। बाबू चिन्तामणि की परम्परा आज तक अक्षुण्ण निभा रहे हैं ये लोग। इसलिये हम सब, जो भी हिन्दी-भाषी हैं, आज हम इनके कृतज्ञ हैं। उनकी परम्परा में, प्रकाशन की, स्वामित्व की परम्परा में वंश-परम्परागत काम चलता है, किन्तु साहित्य की परम्परा में ऐसे चलता नहीं। द्विवेदीजी के परिवार में अब कोई है ही नहीं। द्विवेदीजी के पास जो कुछ था, उनके पास जो साधना थी, वह पहले दे गये। सम्पत्ति थी, वह बाद में दे गये। अब कुछ नहीं रहा। लेकिन उत्तराधिकार पर उस विरासत पर चतुर्वेदीजी बैठे हैं। वह बहुत योग्यता से सरस्वती को चला रहे हैं। देखकर मुझे बहुत खुशी है। फिर प्रत्यक्ष और प्रमाण भी है। जब मैं आया तो मैंने चतुर्वेदीजी से तीन बातें कहीं कि भाई दस मिनट में जो-जो देखा वह यह देखा 'संगठन", "सूझ-बूझ" और "सुरुचि"। तीन का सम्मेलन दस मिनट में मुझे दिखाई दिया। इस उत्सव द्वारा न केवल श्राद्ध हुआ उभय महारथियों का, बल्कि ब्राह्मण-भोजन भी हुआ। हम लोग जो लेखक, साहित्यिक हैं, एक प्रकार के ब्राह्मण ही हैं। और श्राद्ध के बाद ब्राह्मण-भोजन के बिना कुछ सम्पूर्ण नहीं होता है। पितरों की तृप्ति नहीं होती है। उसका भी आयोजन किया है चतुर्वेदीजी ने। आखिर स्वयं भी तो ब्राह्मण हैं न? इन्होंने अपने ब्राह्मणत्व की श्राद्ध की प्रथा को निभाया, और केवल निभाया ही नहीं बल्कि नवीन युग की माँग के अनुसार उसको नवीन रूप देकर के बहुत सुन्दर आयोजन किया। इसके लिये उनको, उस कमेटी को, मैं, मुझे छोड़ कर, क्योंकि कमेटी के सदस्य के रूप में नहीं, एक सरस्वती के लघु लेखक के रूप में, जिनका आपने सम्मान किया है, मेरा और बड़े बुजुर्गों का, उन सबका सम्मान किया।"

उपाध्यायजी के मनोरंजक भाषण के बाद सेठ गोविंद-दासजी ने इस अवसर पर अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये।

'अध्यक्ष जी, बहनो और भाइयो! मुझे चतुर्वेदीजी ने कह दिया है कि बहुत संक्षेप में मैं कुछ कहूँ। ऐसे अवसरों पर मैं जानता हूँ लम्बे भाषण आवश्यक भी नहीं होते। श्रोताओं को रुचिकर भी नहीं होते। आज के इस समारोह को मैं एक ऐतिहासिक महत्त्व देता हूँ। साठ वर्ष में हिन्दी में जो कुछ हुआ उसका आरम्भिक काल में सारा श्रेय सरस्वती को है, उसके संपादक, श्रद्धेय द्विवेदीजी को है, इंडियन प्रेस के संस्थापकों और संचालक श्री चिन्तामणि जी घोष और उनके सुपुत्रों को है। मेरा द्विवेदीजी से सन् १९१६ ही से सम्बन्ध हुआ और उनके सम्बन्ध में अनेक व्यक्तिगत बातें मुझे स्मरण होते हुए भी उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मैं एक ही वाक्य कहूँगा। एक ओर उनमें बड़ी कठोरता थी, और जितनी उनमें कठोरता थी उतनी ही मृदुलता भी थी। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'। इस संस्कृत के श्लोक के चरण के अंतर्गत उनका सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व आ जाता है। एक बात मैंने और देखी जिसका मुझे अपने जीवन में भी अनुभव हुआ। जिन लोगों से मेरा सम्पर्क आया उनसे भी अनुभव हुआ कि आदमी उसी कार्य में सफल होता है जिस कार्य के सम्बन्ध में उसे विश्वास होता है। वह कार्य पूरा होकर रहेगा। जिस समय स्वराज्य का प्रयत्न शुरू हुआ, बहुत कम लोगों को इस बात का विश्वास था कि स्वराज्य होगा। उसी प्रकार जिन्होंने हिन्दी की सेवा की उनमें से भी आरम्भिक काल के लोगों को, बहुत कम लोगों को, इस बात का विश्वास था कि हिन्दी कभी इस देश की राजभाषा होगी। द्विवेदीजी में, और उनके साथियों में, यह आत्मविश्वास ठूँस-ठूँसकर भरा हुआ था। आज भी हिन्दी के लिए बहुत काम करना है, लेकिन मेरा विश्वास है कि हिन्दी के मार्ग में चाहे कितने ही रोड़े क्यों न आएँ, हिन्दी अपना उचित स्थान प्राप्त करके ही रहेगी। मैंने आयरलैण्ड में एक चित्र देखा था। कई बार वह चित्र मुझे याद आ जाता है। एक ओर जब कि आयरलैण्ड स्वतंत्र हुआ उस समय वहाँ भी अंग्रेजी के समर्थक थे। वह उस चित्र में चित्रित किया गया था कि अंग्रेजी का एक छोटा सा झोंपड़ा है और उस झोंपड़े की रक्षा करने के लिए वहाँ एक बुढ़िया बैठी है एक टूटी सी झाड़ू लिये हुए। उसके सामने 'गैलिक' भाषा समुद्र की लहरों के समान उड़ उड़ के, उठ-उठ के, उस झोंपड़े की ओर बढ़ रही है। आज जो अंग्रेजी के रक्षक हैं, जिनको मैं प्रायः मैकाले के मानस पुत्र कहा करता हूँ, उनकी स्थिति वही है जो उस बुढ़िया की थी। आज अंग्रेजी भाषा की वही स्थिति है इस देश में, जो उस झोपड़े की थी। जिस प्रकार उस झोपड़े का बचाव नहीं हो सकता था उस टूटी झाड़ू से, उसी प्रकार इस अंग्रेजी का बचाव नहीं हो सकेगा। इन अंग्रेजीदाँ बूढ़ों की झाड़ुओं से अंग्रेजी की रक्षा नहीं हो सकती है। हिन्दी अपना उचित स्थान प्राप्त करके ही रहेगी। मेरी आज हिन्दी के सम्बन्ध में यह कल्पना है कि जिस प्रकार संयुक्त-राष्ट्र संघ में चार भाषाएँ हैं—अंग्रेजी, फ्रांसीसी, स्पैनिश और रूसी—उसी प्रकार एक दिन होगा कि तेरह करोड़ मानवों की मातृभाषा और इस देश की राष्ट्रभाषा जिसका पोषण द्विवेदीजी ने किया उसको वही स्थान होकर रहेगा। इस सारे आयोजन के लिये अन्त में मैं चतुर्वेदीजी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।"

अंत में समारोह समिति के एक उपाध्यक्ष श्री रामधारी सिंह दिनकर खड़े हुए। उन्होंने हिंदी की वर्तमान दशा पर अपने विचार व्यक्त किये, श्रोताओं के आग्रह से एक कविता भी सुनायी और उत्सव में सहयोग देनेवालों को धन्यवाद दिया। उन्होंने अपने भाषण में कहा—

"देवियो और सज्जनो! मेरे जिम्मे एक ऐसा काम है जिसमें श्रोता कभी भी वक्ता का साथ नहीं देते हैं। यानी मुझे धन्यवाद देना है। सबसे पहले अपनी कृतज्ञता महामान्य राष्ट्रपतिजी के प्रति व्यक्त करते हैं—इस समारोह को जिन्होंने गौरव प्रदान किया उस दिन दिल्ली में भी और आज अपनी आवाज भेज कर यहाँ भी। उसके बाद धन्यवाद के सबसे बड़े अधिकारी वे लोग हैं जो अन्य भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने को यहाँ पधारे। प्रयाग तीर्थराज है, क्योंकि यहाँ दो-तीन नदियाँ परस्पर मिलती हैं। यह पौराणिक बात है। वास्तविक स्थिति इस देश की यह है कि जहाँ भी इस देश में दो-तीन भाषाएँ एक मंच पर मिल जायँ उस स्थान को तीर्थ समझना चाहिए। नये भारतवर्ष के सामने सबसे बड़ी समस्या थी हिन्दू-मुस्लिम एकता की। लेकिन उस समस्या का समाधान देश नहीं निकाल सका और बटवारे के बाद भी दोनों देशों में वह समस्या मौजूद है। भाषा की समस्या शायद उससे अधिक भयानक है, क्योंकि भाषा की समस्या को भयानक वे बना रहे हैं जिनको हम देशभक्त कहकर प्रणाम करते हैं। ऐसी अवस्था में जो भी दो भाषा के प्रेमी एक राह पर चलें, वह तीर्थगामी हैं। जब दो भाषा के प्रेमी एक मंच पर जुटें वह स्थान तीर्थ है। इस दृष्टि से मैं सबसे अधिक कृतज्ञता उनके प्रति प्रकट करता हूँ जो लोग अन्य भाषाभाषी होते हुए भी यहाँ पधारे।

"भाषाओं के बारे में सेठ साहब ने कुछ बातें आपसे कहीं। मुश्किल है कि हम लोग दिल्ली में रहते हैं और हिंदी का काम भी करते हैं, लेकिन अपनी आत्मा से मैं पूछता हूँ कि भविष्य क्या मुझे दिखलाई पड़ता है? अपने मिनिस्ट्रों को भी क्या उज्ज्वल दिखलाई पड़ता है? हमको पता नहीं मिलता है कि कैसा दिखलाई पड़ता है?

बलिया के एक कवि हैं रामसिंहासन सहाय मुख्तार। उन्होंने एक बार एक कविता मुझे लिखकर भेजी थी। उसमें दो पंक्तियाँ बड़ी ही मार्मिक थीं, और इसीसे अभी तक मुझे याद हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आज देश स्वाधीन हो गया, हम किसान मजदूर; दिल्ली में ही पूछ रहे हैं, दिल्ली कितनी दूर ?'

सबसे विचित्र बात है कि देश में जिन लोगों की नीति चलती है, उन्होंने यह फैसला कर दिया कि पहले शब्द बनाओ तब भाषा लाओ। अर्थात् तुम्हारी भाषाएँ असमर्थ हैं। नितान्त विचित्र बात है। यद्यपि अंग्रेजों की मुस्तैदी, उनकी तत्परता, उनकी ईमानदारी, उनकी निष्पक्षता, हमारे मंत्रियों में, हमारे अफसरों में नहीं है, लेकिन स्वराज्य पाते ही उनको निकाल कर उनकी गद्दी पर बैठ गये किंतु भाषाओं को कह दिया कि अँग्रेजी के समान नहीं हैं, इसलिए अलग रहें। यहाँ केवल सवाल हिन्दी का नहीं है, और इसे आप मत भूल जाइए। हिन्दी का सवाल, हिन्दी समेत भारत की सभी भाषाओं का सवाल है। सभी भाषाएँ आगे बढ़कर राज्य पर अधिकार करना चाहती हैं, और इधर सभी भाषाओं की राह में रोड़े अटकाए जा रहे हैं। वह भी बड़े लोगों के द्वारा, बुद्धिमान् लोगों के द्वारा, देशभक्त लोगों के द्वारा। जो विरोधी हुए हैं अँगरेजी के जो समर्थक हैं, वह सदा एक ही बात कहते हैं कि ये भाषावादी देश की सस्ती राष्ट्रीयता की धुन में पड़ गये हैं। उनसे मेरा सवाल है, मैं पूछता हूँ कि क्या भाषा की माँग सस्ती राष्ट्रीयता है? क्या भाषा की माँगों के भीतर जनता के आर्थिक अधिकारों की माँग छिपी हुई नहीं है? राजनीतिक अधिकारों की माँग छिपी हुई नहीं है? सांस्कृतिक अधिकारों की माँग छिपी हुई नहीं है? भाषा जनता को न मिली तो स्वराज्य लँगड़ा रहेगा, और जब स्वराज्य दोनों पाँवों पर चलेगा तो अँगरेजी के जरिए नहीं, उस समय देश की भाषाएँ ही सामर्थ्य देंगी। यही सोचकर हमें भाषाओं के परस्पर सद्भाव को प्रेरित करना चाहिए।

अब तो औपचारिक रूप से धन्यवाद मुझे देना है नगरपालिका को जिसने द्विवेदीजी की कांस्यमूर्ति स्थापित करने के लिये भूमि प्रदान की। नगर-प्रमुख श्री बालकृष्ण रावजी को, मुख्य नगराधिकारी श्री के० के० शर्माजी को और महापालिका के अन्य सदस्यों को, श्री नन्दकिशोर जी अग्रवाल को जिन्होंने मूर्ति की आधारशिला तैयार की, उद्यान तैयार किया, इंडियन प्रेस के मालिकों को, कलाकार श्री देवकृष्णजी जोशी को, श्री ब्रजमोहन व्यास को, जिन्होंने प्रदर्शनी आयोजित की और श्रीकृष्णदासजी को, श्री कमलाशंकरजी को, जिन्होंने सरस्वती का चित्र तैयार किया। अन्त में सबसे बड़े धन्यवाद के पात्र एक व्यक्ति और रह जाते हैं, वे हैं पण्डित श्रीनारायणजी चतुर्वेदी। यह सारी योजना कल्पना के रूप में उनके मन में उगी और उन्होंने ही आदि से अन्त तक इस अनुष्ठान को पूरा किया। हम लोग उनको बूढ़े समझने लगे थे, लेकिन लगता है कि ठीक से बूढ़े अभी वह हुए नहीं हैं, और मेरा ख्याल है कि वह ठीक से बूढ़े नहीं हों, यही अच्छा है; उनके उद्योग से यह आयोजन सफल हुआ। मैं समझता हूँ कि इस घटना का ऐतिहासिक महत्त्व होगा। अन्त में आप सब लोगों को धन्यवाद और अब हम लोग प्रत्यावर्तित हों।'

अंत में जगत-तारन विद्यालय की छात्राओं ने राष्ट्रीय-गान (जन गन मन) गाया। सारी सभा राष्ट्र के सम्मान में खड़ी हो गयी और आनन्द में विभोर होकर कितने ही दर्शकों ने इस प्रेरणाप्रद गान में अपने कंठों से सहयोग दिया। इस प्रकार बड़े उल्लास और आनंद के वातावरण में यह ऐतिहासिक और चिरस्मरणीय उत्सव समाप्त हुआ। इसके संबंध में दर्शकों की जो प्रतिक्रियाएँ हुईं उन्हें कई महानुभावों ने लिखकर भेजने की कृपा की है। हम उनके लेखों को इस परिशिष्टांक के अंत में प्रकाशित कर रहे हैं।

दूसरे दिन सबेरे नौ बजे पत्रकार गोष्ठी हुई जिसका विवरण अगले अध्याय में दिया गया है। १२ जनवरी को रात्रि में नगर-प्रमुख ने आगत साहित्यिकों के सम्मान में नगर महापालिका के हॉल में एक अत्यंत शानदार भोज दिया। १३ जनवरी को संध्या के समय इंडियन प्रेस ने आगत सज्जनों को चाय का निमंत्रण दिया जिसमें बाहर के और नगर के कई सौ सज्जनों ने सम्मिलित होकर उसकी शोभा बढ़ायी। इन अवसरों पर आगत सज्जनों को आपस में मिलने और विचार-विनिमय का मौका मिला। जो लोग इन उत्सवों में सम्मिलित हुए वे प्रसन्न होकर लौटे।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
ज्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

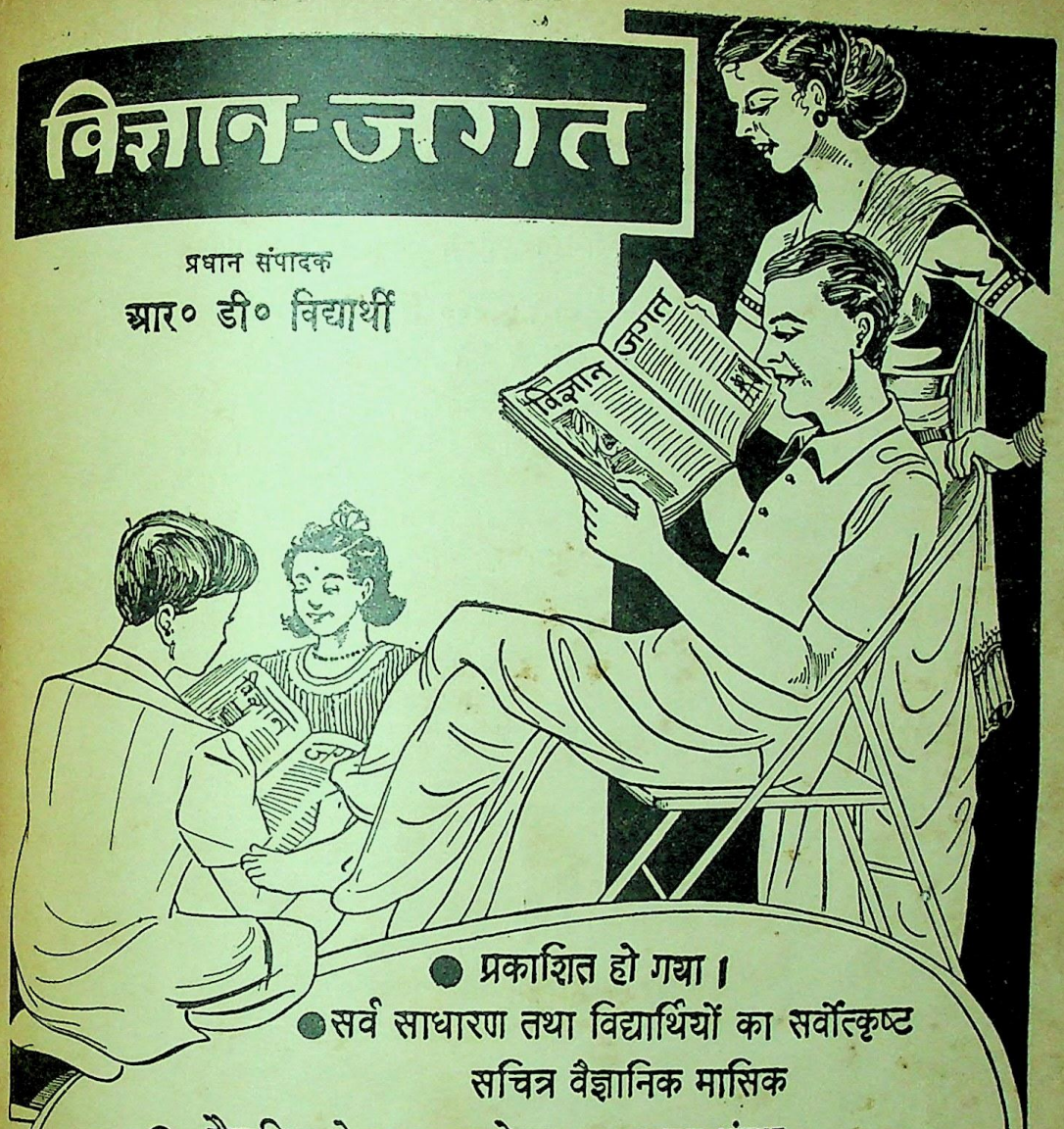

● प्रकाशित हो गया।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H...

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50 SARASWATI—Reg. No. A-
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारखानेदारों तथा इन्डस्ट्रीज से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए अमूल्य पुस्तक

स्मॉल स्केल इन्डस्ट्रीज़

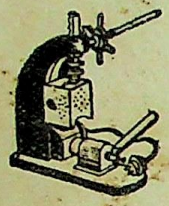

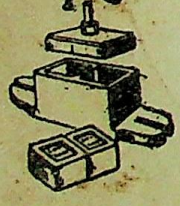
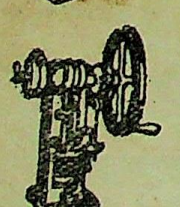
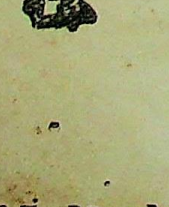

लघु उद्योग लेखक—कालीचरन गुप्ता, कंसल्टिंग इंजीनियर

*** १०१ लघु उद्योगों की जानकारी १,००० से अधिक पृष्ठों तथा ३०० से अधिक चित्रों में देने वाली पुस्तक ***

भारत व विदेशों के अनुभवी इन्जीनियरों, कारखानेदारों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के टैक्नीकल सहयोग से लिखी गई पुस्तक, जिसमें बताया गया है कि किस तरह इन्डस्ट्री चालू करने के लिये आप भारत सरकार से बहुत कम ब्याज पर नकद कर्जे, आसान किस्तों पर मशीन और कारखाने के लिये रियायती मूल्य पर जमीन, इमारत और पावर ले सकते हैं। पुस्तक में थोड़ी आमदनी वालों, दरम्याने दर्जे के लोगों और धनवान लोगों के लिए थोड़ी दरम्याना व अधिक पूंजी से चलाई जा सकने योग्य इन्डस्ट्रीज दी गई हैं। इसमें प्रत्येक इन्डस्ट्री का स्कोप, बनाने के तरीके व फार्मूले, कच्चे माल का विवरण व मशीनों से काम लेने का तरीका, कच्चा माल व मशीनें मिलने के पते आदि विस्तार-पूर्वक समझाये गये हैं। वे सज्जन जिन की कोई इन्डस्ट्री चल रही है वे पुस्तक में वर्णित कोई इन्डस्ट्री साइड इन्डस्ट्री के रूप में चालू कर सकते हैं। देहातों व कस्बों में रहने वालों व पार्ट टाइम में इन्डस्ट्री चालू करने के इच्छुकों के लिये पावर से चलने वाली व ऐसी इन्डस्ट्रीज जिन में पावर अथवा मशीनों की जरूरत नहीं पड़ती, भी दी गई हैं।

यही नहीं बल्कि पुस्तक में पैकिंग, लेबलिंग, माल की बिक्री बढ़ाने, पार्टनर-शिप, लिमिटेड कम्पनियाँ व कोआपरेटिव सोसाइटीज बनाने के नियम, विदेशों से माल इम्पोर्ट करने के तरीके आदि सैकड़ों अति लाभदायक बातों का भी समावेश किया गया है। ऐसे ग्रामवासी जिन के पास फालतू रुपया है यह पुस्तक खरीद कर अपना रुपया उद्योग में लगा कर उससे मुनाफा कमा सकते हैं। वे लोग भी जो एक बार उद्योग चला कर किसी भी कारण से बन्द कर चुके हैं, इस किताब को पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं। जिनके पास रुपया नहीं है और जो उत्साही हैं वे भी थोड़ी-थोड़ी रकम लगा कर कोई उद्योग शुरू कर सकते हैं। सफेद कागज क्लाथ बाइंडिंग। पुस्तक हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में छपी है। मूल्य केवल १२) बारह रुपया, डाक-व्यय दो रुपया पृथक। गुजराती, मराठी, बंगाली, तिलेंगी भाषा में छपवाने की व्यवस्था की जा रही है।

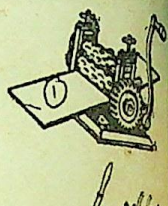

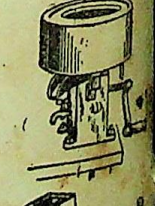
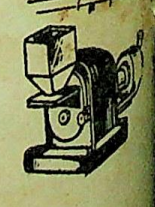

एक साथ ५ किताबें मँगाने पर डाक-खर्च माफ़ ।

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मँगाने का एक मात्र स्थान—

देहाती पुस्तक भंडार

(S-A 5/62) चावड़ी बाज़ार, देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

फ़ोन नं. २२००३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वत

अगस्त १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

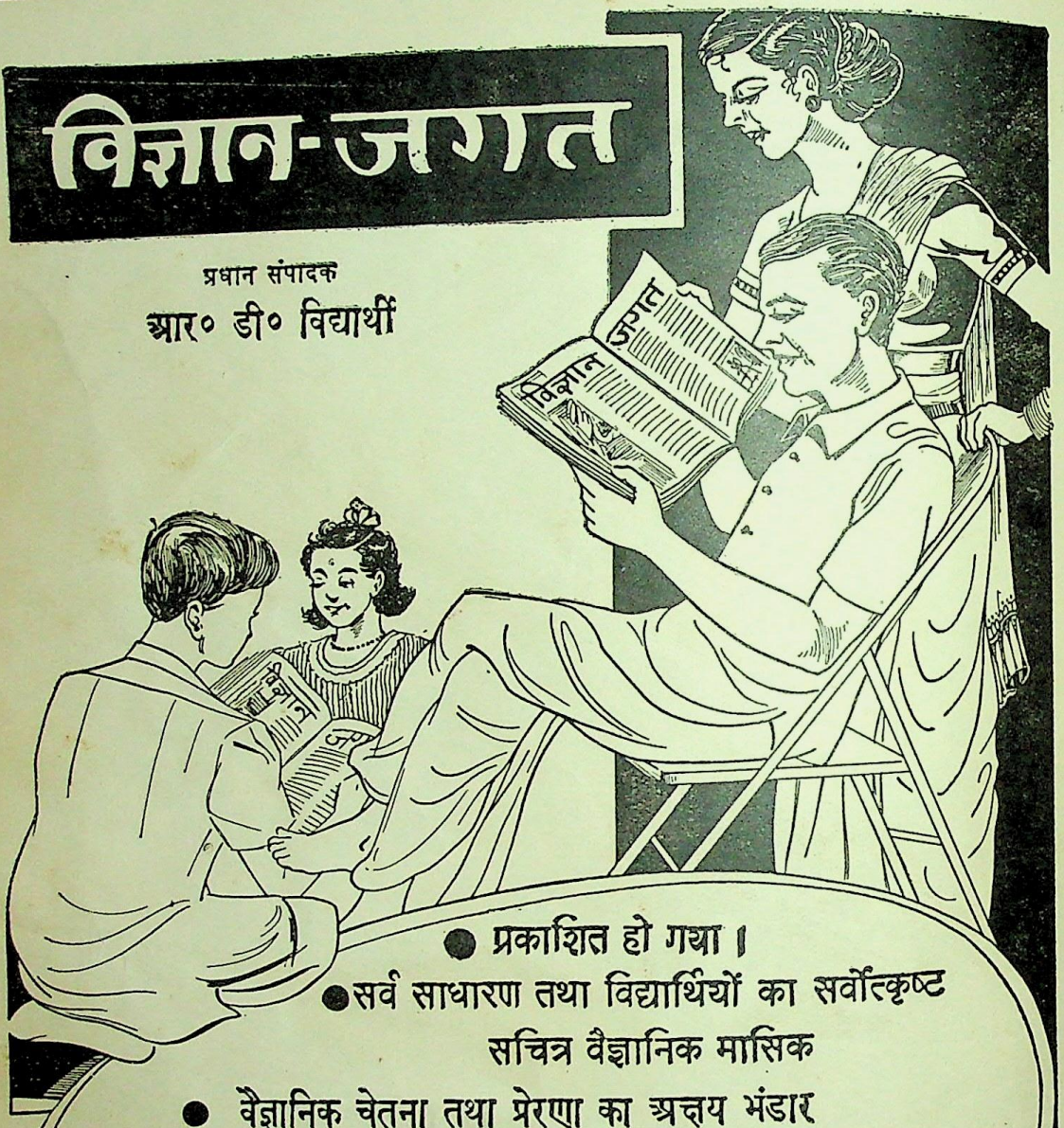

● प्रकाशित हो गया।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

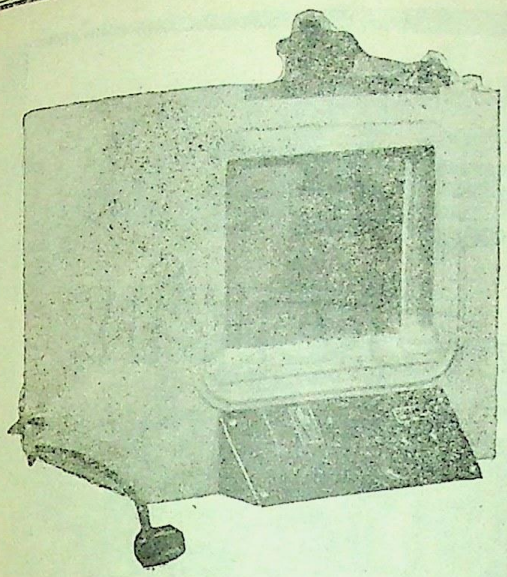

थरमोस्टैट वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥ ॥ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥

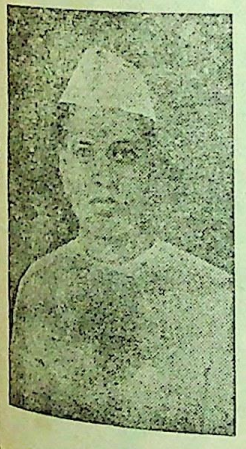

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

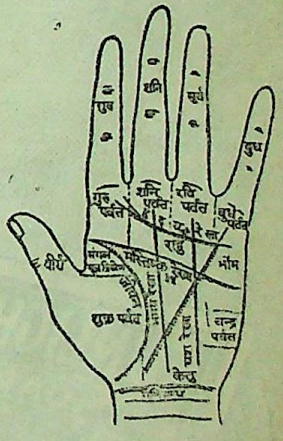

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, आई० सी० एस०, एम्बेसडर आफ इंडिया पेकिंग, चीन क्या कहते हैं:—

ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को यह पत्र देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक है परन्तु मुझे इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है कि यह विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है। मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्योतिष में अधिक पढ़ने से मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है। इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझे ज्योतिषाचार्य श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया। उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं। अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें।

फा० १

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़ पहनने के कपड़े...

सनलाइट से

कितने सफ़ेद और उजले!

साफ़, सजीले ! सफ़ेद और उजले !

यह है सनलाइट से धुले कपड़ों की शान !

अपने सभी कपड़े घर में सनलाइट से धोइये।

सनलाइट बढ़िया झागवाला शुद्ध साबुन

S. 32A-X52 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

आदर्श लिवर टानिक

ओ० आर० सि० एल का

कुमारेश

लीवर व पेट की पीड़ा की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ० आर० सि० एल० लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगंधित

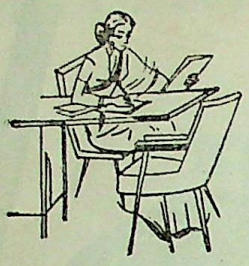

ब्राह्मी
केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वेदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल
केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

१) की पुस्तक बिलकुल मुफ्त

योगासन वे पैसे पैसे के नुसखे महाभयंकर रोगों को भी मिटा देते हैं। लोक कल्याण के लिये पुस्तक मुफ्त लें। ६ पैसे के लिफाफे में डाक व्ययार्थ =) के टिकट भेजें।

श्री कुशल पुस्तक भवन, नाभा (पंजाब)।

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेज हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या की
अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्य थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलौकिक सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता।
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

अनुवाद साहित्य में अभिवृद्धि

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	**बड़े वन में छोटा घर**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ अनु० रामअौतार अग्रवाल	**प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	**किट कार्सन और जंगली सीमान्त**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	**अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	**प्रेयरी नगर का बालक**	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	**प्रसिद्ध वैज्ञानिक**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	**दृष्टिदात्री**	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	**परमाणु का रहस्य**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	**अमेरिका का महान् उदारवादी**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल	**आधुनिक औषधि-आविष्कार**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६
अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन	**लिंकन वाणी**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

सरस्वती में

देकर लाभ उठाइए

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·२५
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३०
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१०
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८५
कर्मयोग .. १·४० भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग .. ३·०० ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग .. १·३७ सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म .. १·५० धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान .. १·६२ शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य १·२५ मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग .. १·१२ चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव .. ०·६२ भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा .. ०·६२ मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली .. ०·६२ हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा .. ०·५० ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत .. ०·५० मन की शक्तियां	०·४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५
शक्तिदायी विचार (,,) ..	०·६२
मेरी समर नीति (,,) ..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००

श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

किलो में खरीदिये

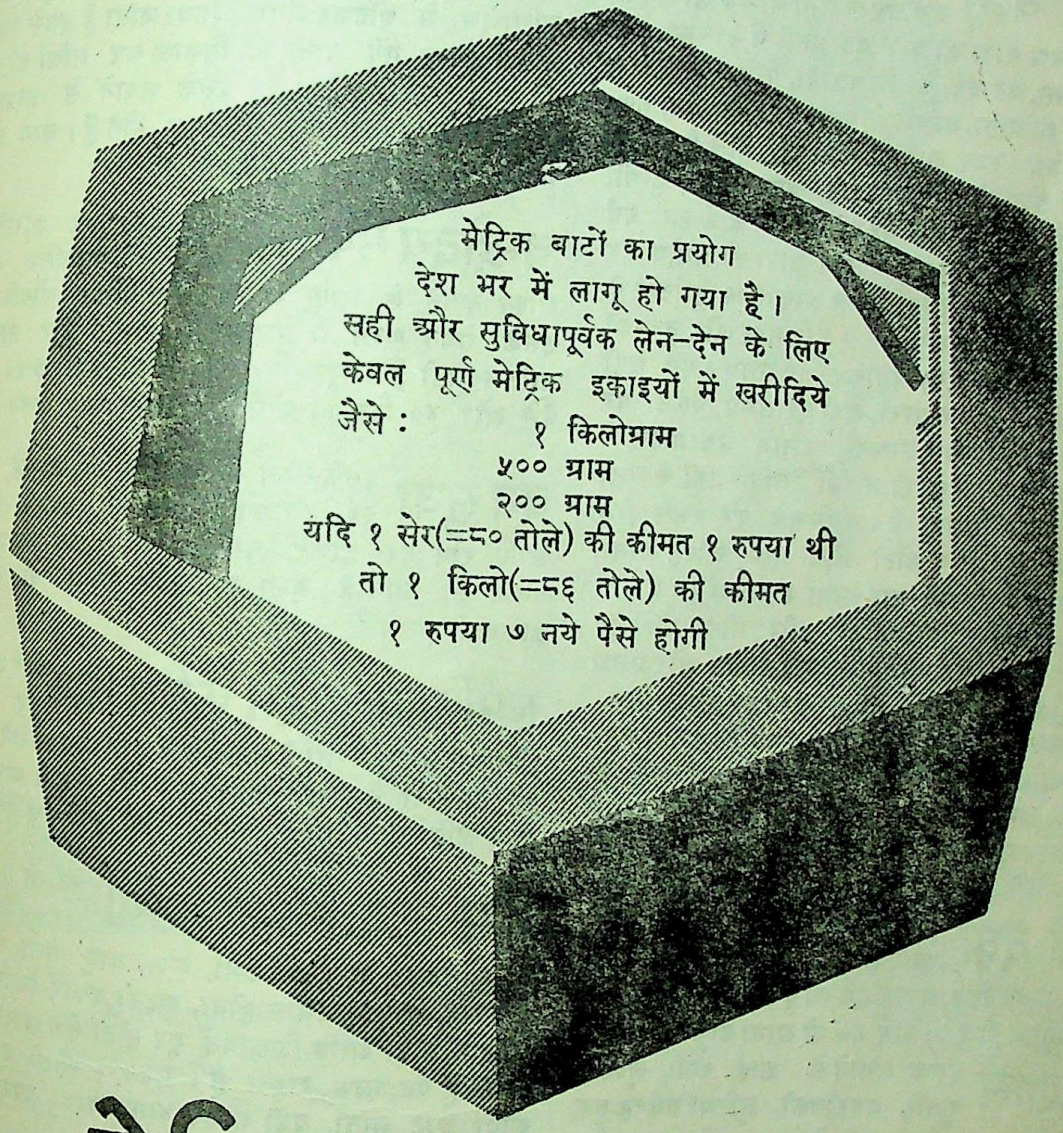

मेट्रिक बाट

सरलता व एकरूपता के लिए

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 62/190

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, घाव, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दाँत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खाँसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, झुर्री, खुश्की, फुन्सी, बदरीनकी, झुर्रियाँ वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य की डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिंगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत की डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, मसीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—**रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर**

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

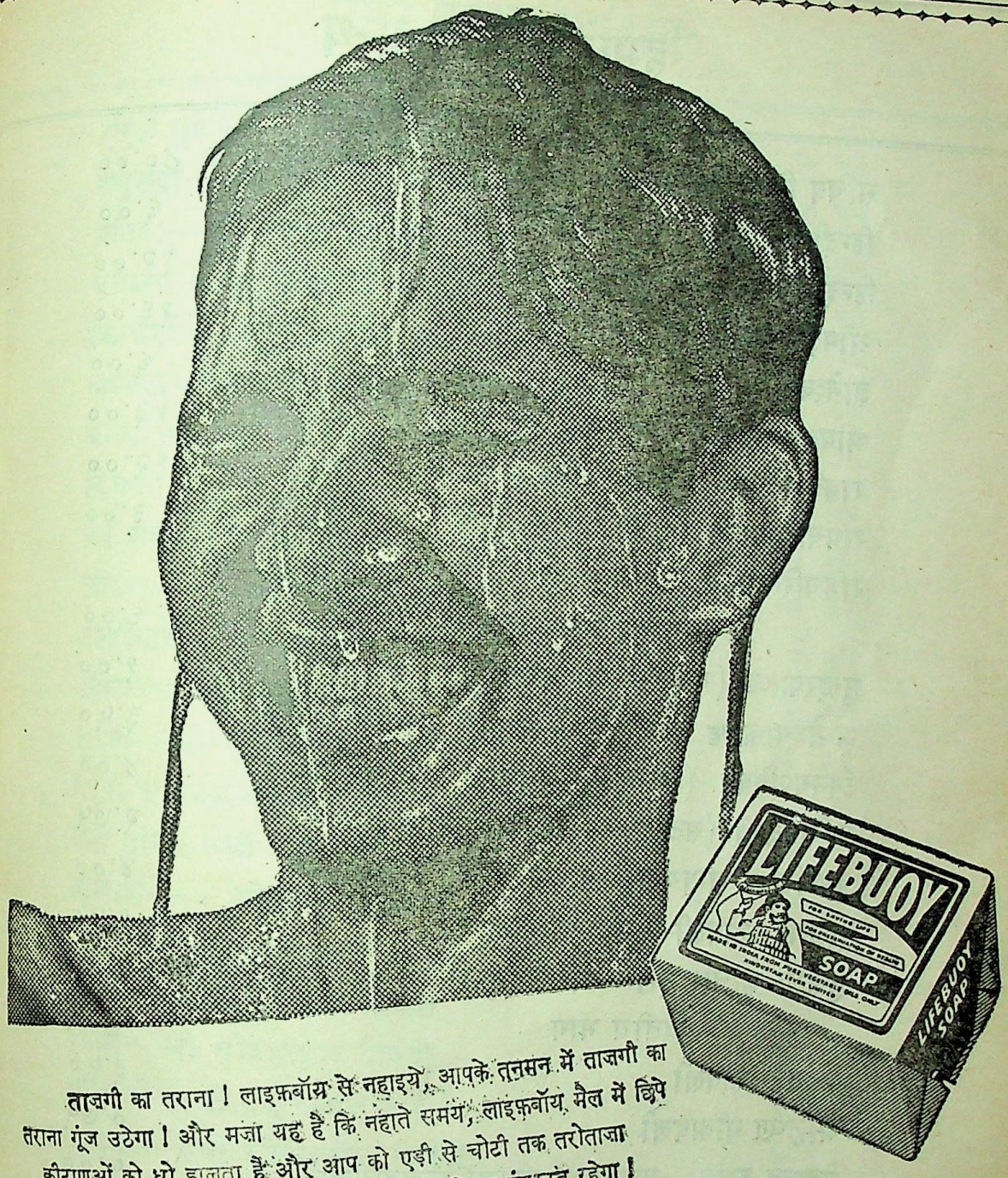

ताज़गी का तराना ! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके तनमन में ताज़गी का तराना गूंज उठेगा ! और मज़ा यह है कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताज़ा कर देता है ! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा !

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ !

L 33-X52 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक ग्रन्थ

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·००
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६·००
हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३·००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३·५०
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४·००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१·५०
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
दुर्गापाठ—अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२·००
श्री भगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

सरस काव्य साहित्य

सरस सुमन--श्री गुरुभक्तसिंह	०·५०
मधुस्रवा--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·२५
प्रतिमा--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
वनवास--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
किंकिणी--श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
लक्ष्मण-शक्ति--श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
मन्दार-माला--श्री देवेन्द्रनाथ पाण्डेय	२·००
विजया--श्री 'अभिराम'	१·००
नव सतसई-सार--डा० कैलाशनाथ भटनागर	२·७५
चारण--पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी	०·३१
हल्दीघाटी--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·७५
रूपान्तर--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
तुमुल--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ--श्री सोहनलाल द्विवेदी	७·५०
जय गांधी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१५·००
कुणाल--श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·००
युगाधार--श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·५०
भैरवी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५
चित्रा--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·३१
वासन्ती--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·३१
पूजागीत--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·५०
वासवदत्ता--श्री सोहनलाल द्विवेदी	४·५०
बाल-भारती--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·२५
झरना--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
विषपान--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
बाँसुरी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों के बापू--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
चेतना--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
प्रेमांजलि--ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
जगदालोक--ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
संचिता--ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
ग्रामिका--ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
मानवी--ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
ज्योतिष्मती--ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
सुमना--ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
माधवी--ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
विश्वगीत--ठाकुर गोपालशरण सिंह	१·७५
क्षण के बीज--गौरीशंकर लहरी	२·००
उद्धव-शतक--श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	२·००
गंगावतरण--श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	१·२५
द्विवेदी काव्यमाला--संग्रहकर्त्ता--पं० देवीदत्त शुक्ल	४·००
मेघदूत--अनुवादक--राजा लक्ष्मणसिंह	१·००
पद्यमाला—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१·००
माधुरी--श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	०·७५
एकादशी—श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	१·५०
दैत्यवंश—श्री हरदयालुसिंह	३·५०
देव-दर्शन—श्री हरदयालुसिंह	२·००
बिहारी-विभव—श्री हरदयालुसिंह	२·००
मंजीर—श्री गिरजाकुमार माथुर	१·००
तक्षशिला—श्री उदयशंकर भट्ट	३·००
कविता-कलाप	३·००
पद्य-समुच्चय--स्वर्गीय कमताप्रसाद गुरु	१·००
रविबाबू के कुछ गीत--अनुवादक--श्री रघुवंशलाल गुप्त	२·५०
खैयाम की रुबाइयाँ—श्री इकबाल वर्मा 'सेहर'	४·००
संक्षिप्त पद्मावत—रायबहादुर सुन्दरदास	२·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त बिहारी—श्री रमाशंकर प्रसाद	२·००
सीताराम-संग्रह—रायबहादुर लाला सीताराम	२·५०
ब्रज-सतसई—पं० रामचरित उपाध्याय	०·७५
वन्दना—श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'	२·००
सवेरा और साया—श्री विद्याभास्कर 'अरुण'	१·५०
कवि और छवि—श्री बालकृष्ण राव	२·००
रात बीती—श्री बालकृष्ण राव	३·००
हमारी राह—श्री बालकृष्ण राव	२·५०
अपराजिता—श्री रामेश्वरप्रसाद शुक्ल 'अंचल'	३·००
सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त'	२·७५
संक्षिप्त सूरसागर—प्रो० वेणीप्रसाद	३·५०
सूर-संदर्भ—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	२·००
सूरसुषमा—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	१·००
सुदामा के तंडुल—श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम'	१·५०
जीवन-कण—श्री जगमोहननाथ अवस्थी	१·००
वेणुकी—श्रीमती तारा पाण्डेय	१·००
रानी दुर्गावती—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	१·२५
कश्मीर-विजय—श्री सत्यनारायण पाण्डेय	१·५०
वैरागी—श्री परमानन्द शर्मा	२·००
सरोज—श्री सोमेश्वर सिंह	२·००
शाहजादा खुसरो—कुँवर सोमेश्वर सिंह	२·२५
सिद्धान्त-समर—श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय	४·००
अवसाद—श्रीमती 'ममता'	१·२५
मधुमास—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	१·५०
बुन्देलखंडी लोकगीत—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	०·५०
महारथी—श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'	१·२५
रजनीगन्धा—श्री देवेन्द्रदत्त तिवारी	२·५०
फूल व पत्ते—श्री कमलाकान्त पाठक	२·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदा से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए **लक्स** ज़रूरी है!'

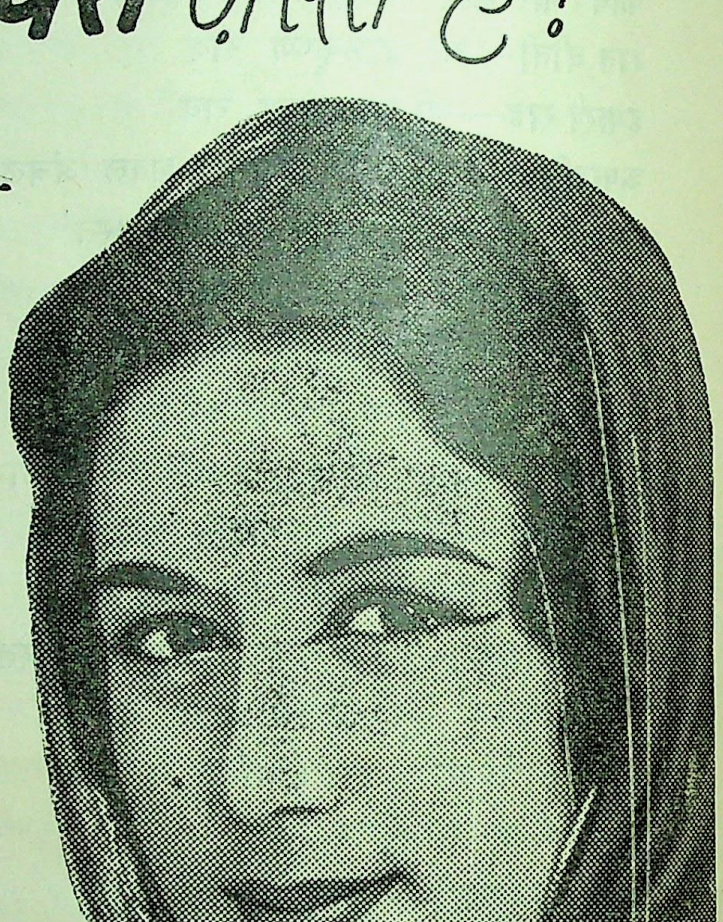

तीन शब्दों की ओट में है नंदा का रूप रहस्य -
और वह शब्द हैं...लक्स टॉयलेट साबुन !
लक्स इस्तेमाल कीजिए...इसके मुलायम
झाग से आपका रंग-रूप सुंदरता की नई
सीमा को जा छूता है।
लक्स इस्तेमाल कीजिये...और इसकी
अनमोल सुगंध के सुंदर संसार में खो जाइये !
लक्स इस्तेमाल कीजिए...आपकी पसंद के
लिए इसके रंगों का इन्द्रधनुष भी है
और आपका मनपसंद सफ़ेद भी !
मुलायम लक्स से अपना रंगरूप
निखारिये...लक्स...

चित्रतारिकाओं का शुद्ध, मुलायम सौंदर्य साबुन

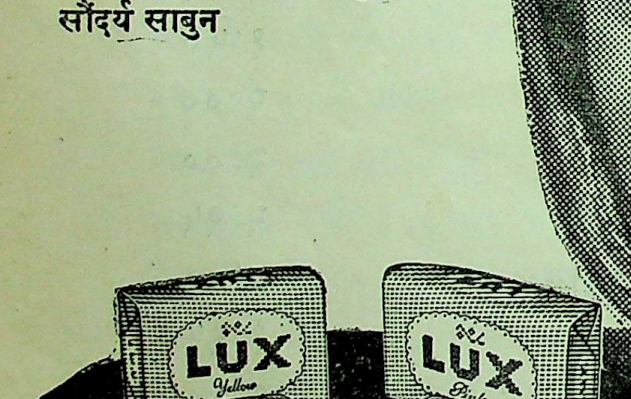

नंदा, पंचदीप चित्र की फ़िल्म 'आज और कल' की तारिका

'जैसे सुन्दर रंग... वैसा सुन्दर साबुन !' नंदा कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 121-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती हिंदी संस्करण

कुल १० खंड--डबल डिमाई १६पेजी साइज में; पृष्ठसंख्या प्रतिखंड लगभग ५००; मजबूत और आकर्षक सजिल्द प्रतिखंड का सस्ता मूल्य (सिर्फ जन्मशती वर्ष के लिए) ४ रु० ७५ न० पै० और प्रति सेट ४७ रु० ५० न० पै० ।

आधुनिक भारत के संत तथा स्वदेश-प्रेमी स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मशती सन् १९६३ ई० की जनवरी से सारे संसार में मनायी जायगी। इस शुभ समारोह के अवसर पर उनकी समग्र ग्रन्थावली "विवेकानन्द साहित्य" नाम से दस खंडों में प्रकाशित हो रही है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसा प्रथम प्रकाशन है। इन ग्रन्थों में स्वामी विवेकानन्द जी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित और अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों तथा कथाओं का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादकों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्री सुमित्रानन्दन पन्त, डा० प्रभाकर माचवे, श्री फणीश्वर नाथ 'रेणु' आदि ख्याति-लब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी-प्रेमियों के लिए सुलभ बनाने और केवल प्रचार के उद्देश्य से इन पुस्तकों का मूल्य बहुत ही कम रखा गया है। जो पूरा सेट खरीदना चाहते हैं, वे ३० सितम्बर १९६२ को या उसके पहले पूरा मूल्य अथवा अंशतः १५ रु० अग्रिम हमारे निम्नलिखित पते पर, अथवा हमारे एजेंटों के पते पर भेजकर अपने नाम दर्ज करा लें। सेट का पूरा मूल्य पहले जमा करनेवालों को २ रु० ५० न० पै० कमीशन दिया जायगा, अर्थात् ४५ रु० में पुस्तकों का एक सेट मिलेगा। अग्रिम १५ रु० देनेवाले ग्राहकों को बाकी रुपया एक ही साथ, अथवा दो किस्तों में, ३१ दिसम्बर १९६२ को या उससे पहले अवश्य जमा कर देना पड़ेगा। रुपये की प्राप्ति हम लोगों द्वारा या हमारे एजेंटों द्वारा स्वीकार की जायगी। पुस्तक-वितरण का समय बाद में सूचित किया जायगा। चूंकि अब केवल ४००० सेट जनता के लिए प्राप्य हैं, इसलिए सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे जल्दी से जल्दी अपना नाम दर्ज करा लें। रुपया नकद, मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft) द्वारा निम्नलिखित पते पर या हमारे एजेंटों के पास भेजना चाहिए। डाक द्वारा सीधे अद्वैत आश्रम से जो खरीद करना चाहते हैं, उनको डाक और पैकिंग खर्च १० रु० ५० न० पै० अतिरिक्त अग्रिम भेजना चाहिए। दूसरे ग्राहक स्वयं ही कलकत्ते से या हमारे एजेंटों से पुस्तकें ले सकते हैं।

एजेंटों के नाम और पते

रामकृष्ण मिशन, रामकृष्ण आश्रम मार्ग, नयी दिल्ली--१

रामकृष्ण मिशन आश्रम, रामकृष्ण वीथी, पटना--४

रामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर--१

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसायटी, बिष्टुपुर, जमशेदपुर

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, डा० कनखल, जि० सहारनपुर (उ० प्र०)

रामकृष्ण मिशन आश्रम, डा० आसनसोल, जि० बर्दवान

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, अमीनाबाद, लखनऊ

रामकृष्ण मठ एवं मिशन, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद--३

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लक्शा, वाराणशी--१

रामकृष्ण मिशन, खर, बम्बई--५२

रामकृष्ण मिशन, रामकृष्ण नगर, कानपुर

मैनेजर, अद्वैत आश्रम

५ डिही एंटाली रोड, कलकत्ता--१४

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१—सम्पादकीय १२१
२—युधिष्ठिर-संवत्—पं० चन्द्रकान्त बाली १२९
३—चहकीं वन-चिड़ियाँ (कविता)—श्री विलासबिहारी १३४
४—एक सच्चे संत थे वे—श्री वियोगी हरि .. १३५
५—श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन—श्री वेंकटेश-नारायण तिवारी १३८
६—यूरोपियन आर्थिक समाज (साझा बाजार) और भारत—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार १४२
७—देशी रियासत के प्रांगण में—श्री जी० एस० पथिक १४७
८—महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१८)—पंडित व्रजमोहन व्यास १५५
९—राजर्षि के प्रति निराला— १६०
१०—व्रजभाषा-साहित्य में वर्षा-वर्णन—प्रो० आनन्दनारायण शर्मा १६१
११—मौसम सुहाना (कविता)—श्री चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र' बी० ए० साहित्यरत्न १६५
१२—संस्कृति, सौंदर्य और सम्पत्ति का प्रतीक 'श्री'—श्री अनवर आगेवान १६६
१३—नील कमल—प्रो० भगवन्तशरण जौहरी एम० ए० १६९
१४—दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के आश्चर्य—डा० अरविन्दमोहन १७१
१५—गतिशील सभ्यता और परिवार—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा १७३
१६—आँगनों के बीच—(१) आपके दाम्पत्य जीवन की सबसे मनोरंजक घटना—श्रीमती शीला शर्मा १७५
(२)—मेरे दाम्पत्य जीवन की सबसे मनोरंजक घटना—श्रीमती उषादेवी वर्मा १७७
घर-गृहस्थी—रिमझिम बरसन लागीं बुँदियाँ १७९
१७—सीमा—श्री सुरेन्द्र कुशवाह .. १८०
१८—विवशता (कविता)—प्रो० मित्तल एम० ए० १८२
१९—मौत का झूला—श्री कालिकाप्रसाद मोहिले १८३
२०—उजली लहरें, फेनिल बादल (कविता)—श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' .. १८५
२१—नवीन प्रकाशन १८६
२२—पुरानी सरस्वती—
(१) हिन्दी-प्रदीप—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी १८८
(२) देवनागरी में गवर्नमेंट गजट—पं० देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए० १९०
२३—मनोरंजक संस्मरण १९२
'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव का विवरण (गतांक से आगे) १९३

सूचना—'सरस्वती' सम्पादक के लिए पत्र, लेख, परिवर्तन के पत्र आदि कृपया निम्नांकित पते पर भेजें:

श्रीनारायण चतुर्वेदी
सम्पादक, सरस्वती
५३ खुशेंदबाग विष्णुपुरी
लखनऊ

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रम-पूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अंगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

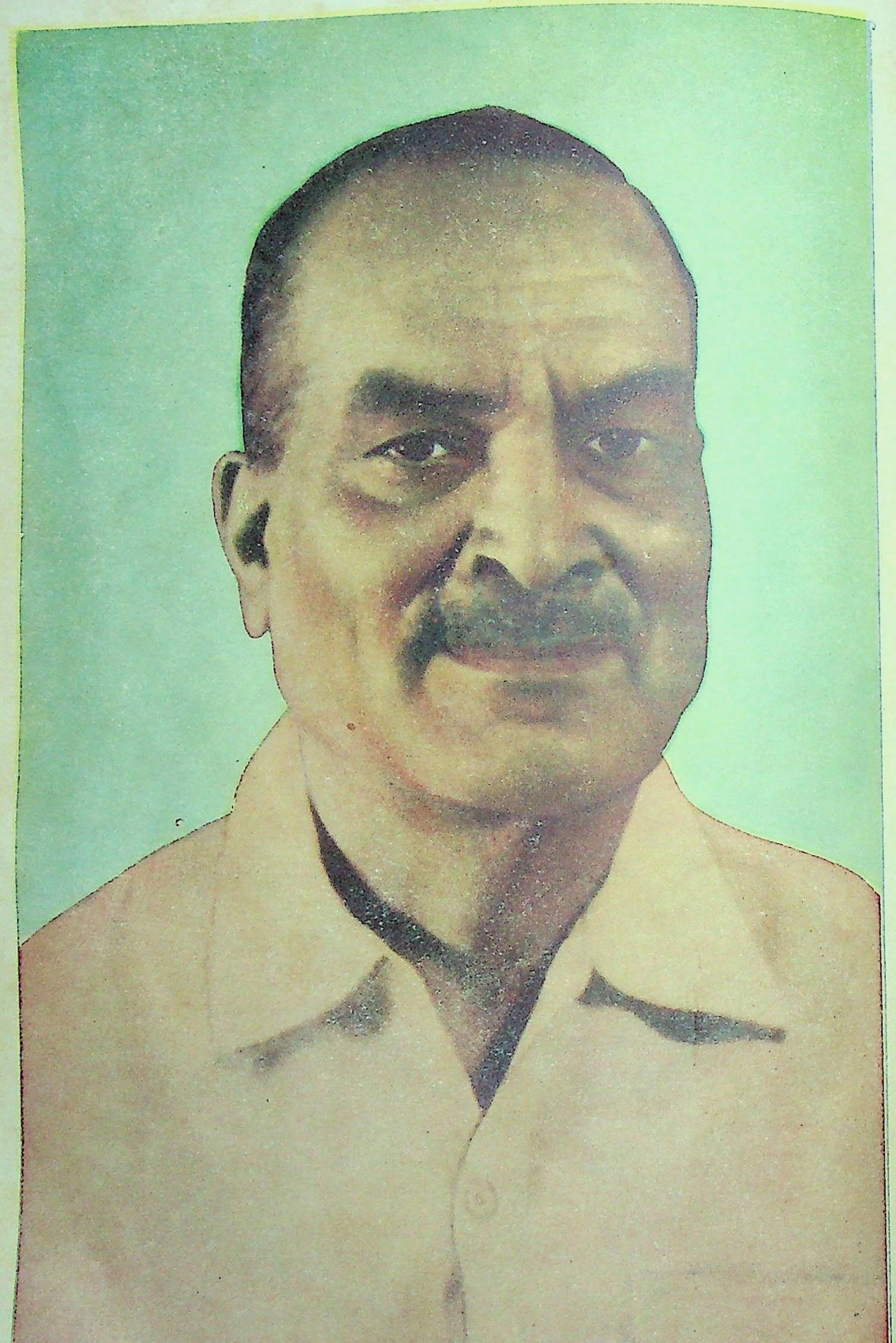

स्व० डाक्टर विधानचन्द्र राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

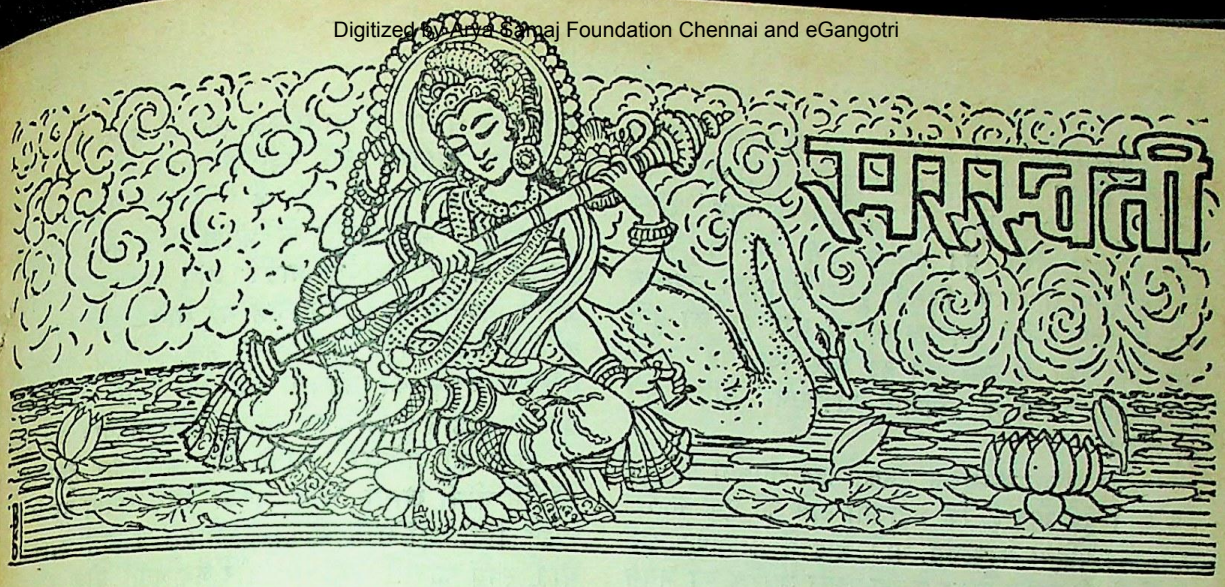

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७५२

इलाहाबाद : अगस्त १९६२ : श्रावण २०१९ वि०

खण्ड २
संख्या २

सम्पादकीय

संत मरे कहा रोइए जो अपने गृह कों जाय !

राजर्षि संत थे। संत मरते नहीं। वे शरीर त्यागते हैं। मीरा के शब्दों में, उन्हें छटपटाहट रहती है कि "पिया मिलन कैसे जाउँ, गली तौ चारों बंद भई !' और जब वह चिर प्रतीक्षित समय आता है तब कबीर की तरह वे "ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया" की उक्ति चरितार्थ कर देते हैं। वे पृथ्वी छोड़कर, शरीर त्यागकर, अपने वास्तविक गृह को प्रयाण करते हैं—हर्ष से, प्रसन्नता से। इसीको लक्ष्य कर एक तत्त्वदर्शी ने कहा है "संत मरे कहा रोइए जो अपने गृह कों जाय ?" इसीलिए उनकी अंतिम यात्रा पुष्पमालाओं से सुसज्जित विमान में होती है। वह शंख, घंटों और कीर्तन की ध्वनि से मुखरित हो उठती है। वह हम संसारी जीवों की मृत्यु की तरह रोने-धोने का अवसर नहीं। वह ज्योति का ज्योति में मिलन है।

राजर्षि संत थे। जो लोग उनके निकट संपर्क में आने का सुयोग पाते थे, और यदि उनमें दृष्टि होती, तो वे जान लेते थे कि हमें एक महान् संत का सान्निध्य प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। वैसे भी राजर्षि की आध्यात्मिक साधना कम नहीं थी। वे स्वामी बाग के गुरू (महन्त) होते होते रह गये।

राजर्षि संत थे। इसीलिए वे राजनीति में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त थे। वे राजनीतिरूपी गंदे तालाब में कमल के समान थे जिस पर उसके गंदे पानी के छींटे न तो ठहर ही सकते हैं और न उसे मैला ही कर सकते हैं। संत का एक गुण त्याग भी होता है। उनका जीवन आरंभ से अंत तक त्याग की सुंदर और मनमोहक कविता थी। सार्वजनिक जीवन में उन्होंने सिद्धान्त और देशहित के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष पद तक का त्याग कर दिया था। उन्होंने जिस पारिवारिक परिस्थिति में अपनी चलती हुई वकालत छोड़ी थी, वह सर्वविदित है। किंतु नित्य के निजी जीवन में उनके त्याग के उदाहरण कम नहीं हैं।

× × ×

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन संत अवश्य थे, पर हम हिंदीवालों के लिए वे हमारे 'बाबूजी' थे। उनके लिए सारा हिंदी-भाषी संसार एक परिवार था जिसके वे सर्वमान्य वयोवृद्ध 'पुरखा' थे। हिंदी का प्रेम उनमें नैसर्गिक था, किंतु उनके गुरु पं० बालकृष्ण भट्ट और राजनीतिक आदर्श महामना मालवीयजी से वह प्रेम पुष्ट हुआ। उन्होंने प्राचीन काल के ऋषियों की तरह देखा कि भारत की एकता के लिए उसे वाणी मिलनी चाहिए। और वह लोकवाणी, हिंदी ही हो सकती है। शायद इस बात को कुछ और लोगों ने भी समझा, किंतु बाबूजी का समझना उनकी तरह नहीं था। क्षणिक करुणा हम सबमें आती है, किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी करुणा बंध्या होती है। गौतम बुद्ध की करुणा ने संसार को बदल दिया। उसी प्रकार जब बाबूजी ने हिंदी को भारत की लोकवाणी समझा तो वे उसके लिए सारे जीवन सतत परिश्रम करते रहे। उन्होंने इस देश में भाषा की वह चेतना उत्पन्न की जिसका दूसरा उदाहरण उपलब्ध नहीं है, और उनकी अनवरत तपस्या और व्रत की पूर्ति संविधान सभा में उस दिन हुई जिस दिन वह उसके द्वारा सारे भारत की एकमात्र राजभाषा स्वीकृत कर ली गयी।

हिंदी साहित्यस-म्मेलन उनकी हिंदी-साधना का मूर्त रूप था। हमें याद है कि महाजनी टोले की एक कोठरी में उसका पहिला कार्यालय था। बाद में क्रास्थवेट रोड पर थोड़ी सी जमीन लेकर कच्चा-पक्का खपरैल का भवन बनाया गया, और अंत में वर्तमान विशाल भवन बना। किंतु सम्मेलन केवल ईंट-चूने का भवन नहीं था। वह प्राणवान संस्था थी। उसकी आवाज सारे हिंदी संसार की आवाज थी। इस एक संस्था ने हिंदी-प्रचार का जो काम किया उसका एक अंश भी स्वतंत्र भारत की केंद्रीय और राज्य सरकारें सर्वशक्तिमान होते हुए भी तथा प्रचुर धन व्यय करके भी नहीं कर पायीं। इसका कारण बाबूजी का संकल्प था। कुछ लोग बहुधा यह शिकायत किया करते थे कि बाबूजी को सम्मेलन से बड़ा मोह है। किंतु वे भूल जाते थे कि सम्मेलन बाबूजी का मानस पुत्र था। वह उनके हिंदी-संकल्प का मूर्त रूप था। वह उनकी उस हिंदी-सेवा का सर्वोत्कृष्ट साधन था जो उनके जीवन की श्वास-प्रश्वास बन गयी थी।

महात्माजी ने भारत को स्वतंत्रता दिलवायी, किंतु बाबूजी ने भारतमाता को वाणी दी। महात्माजी को हिंदी की ओर प्रेरित करने का श्रेय बाबूजी ही को था। उन्होंने अपने कार्यक्रम में हिंदी को बड़ी ऊँची प्राथमिकता दी। किंतु जब राजनीतिक कारणों से महात्माजी ने हिंदी के रूप का परिवर्तन करके उसे हिंदुस्तानी बनाना चाहा तो बाबूजी भाषा के क्षेत्र में उनसे अलग हो गये। वे जिस बात से हिंदी का अहित समझते थे उसपर महात्माजी से भी समझौता करने को तैयार न थे। और इतिहास का व्यंग्य यह हुआ कि संविधान सभा ने बाबूजी द्वारा प्रतिपादित हिंदी को स्वीकार किया। यह इतिहास का दूसरा व्यंग्य था कि जिस दिल्ली में खत्री वंश के राजा टोडरमल ने भारत की 'सल्तनत' के राजा-भाषा पद पर से हिंदी को हटाकर एक विदेशी भाषा (फारसी) को उस पद पर प्रतिष्ठित किया था, उसी दिल्ली में एक दूसरे खत्री की प्रेरणा और प्रयत्न से स्वतंत्र भारत के राजा-भाषा-पद पर हिंदी को फिर से प्रतिष्ठापित किया गया।

भारतेन्दु, स्वामी दयानंद, राजा शिवप्रसाद, भूदेव मुकर्जी, महामना मालवीयजी, राजा रामपाल सिंह आदि कितने ही हिंदी के उन्नायक हुए जिनका पुण्य स्मरण हिंदी-भाषी सदैव करते रहेंगे, किंतु हिंदी के उन्नयन में जो दीर्घ-कालीन एकनिष्ठा राजर्षि ने दिखलायी, वह भारत ही नहीं, सारे संसार के भाषा-उन्नायकों में अनूठी है। उसके जोड़ का उदाहरण हमें नहीं मिलता।

× × ×

बाबूजी भारतीयता के प्रतीक थे। उनमें भारतीय आदर्शों के प्रति अत्यंत आदर था। गो-सेवा में उनका अगाध विश्वास था। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि चमड़े के लिए गउएँ मारी जाती हैं तो उन्होंने (प्रायः साठ साल पहिले) चमड़े का उपयोग बंद कर दिया था। उसके बाद से उन्होंने कभी चमड़े का जूता नहीं पहिना। जब देश में जावा की दानेदार चीनी का बहिष्कार हुआ तब उन्होंने चीनी खाना छोड़ दिया और सिवाय गुड़ के वे सफेद चीनी नहीं खाते थे। मुसलमानों से उन्हें बड़ा स्नेह था। स्वयं फारसी पढ़ी थी और जब कभी मौज में आते तब फारसी की कविता--विशेषकर सूफी कविता--सुनाया करते थे। किंतु वे हिंदू-मुस्लिम समस्या को समझते थे और मुस्लिम-तुष्टीकरण के विरुद्ध थे। इस कारण कभी-कभी कुछ कांग्रेसी भी उन्हें 'साम्प्रदायिक' कह देने का दुःसाहस कर बैठते थे। आधुनिक होते हुए भी वे पश्चिम के अंधभक्त नहीं थे। अपने देश के लिए उपयोगी पाश्चात्य बातों को वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे, किंतु जिन पाश्चात्य बातों से भारतीय आदर्शों को हानि की संभावना हो उन्हें स्वीकार करने को तैयार न थे। जिस प्रकार वे लखनऊ को 'इस्फ़हान की गलियाँ' बनाने के विरोधी थे, उसी प्रकार वे भारत को अमरीका, इँगलैण्ड या रूस की अनुकृति बनाने के भी विरुद्ध थे।

जनता ने उन्हें राजर्षि की उपाधि दी थी। उनमें ऋषियों के कितने ही गुण थे--त्याग, तपस्या, निर्लिप्तता, अपरिग्रह, सत्य और ईश्वर में अविचल निष्ठा। और शायद इसीलिए उनकी दृष्टि में इतनी निर्मलता थी। वे द्रष्टा थे। विभाजन का विरोध करते समय उन्होंने जो ऐतिहासिक भाषण दिया, उसके सुननेवालों का कहना है कि ऐसा मालूम होता था कि वे प्रेरित होकर बोल रहे हैं। उस भाषण का इतना प्रभाव हुआ कि यदि महात्माजी को बुलाकर उनका व्यक्तिगत जोर न डलवाया जाता तो विभाजन का प्रस्ताव सभा में स्वीकार न हो पाता। इसी प्रकार, जब हमारी सरकार ने चीन से मैत्री की दुराशा में तिब्बत को उसके भाग्य पर छोड़ दिया, उस समय भी उनकी वक्तृता किसी भविष्यदर्शी की भविष्यवाणी मालूम होती थी। संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा स्वीकार करते समय उन्होंने जो भाषण दिया था वह तो पीढ़ियों तक हिंदी-संसार को अनुप्राणित करता रहेगा।

वे राजनीति में आ गये थे जो उनका वास्तविक क्षेत्र न था। वह उस समय पराधीन देश के प्रत्येक कर्तव्यनिष्ठ नागरिक का कर्तव्य था। किन्तु उनका मन उसमें रम नहीं सकता था। वे अनीति, असत्य और अन्याय के साथ समझौता नहीं कर सकते थे, और राजनीति में प्रधानता "नीति" (पालिसी) की होती है न कि नैतिकता की। उन्होंने भाषा, समाजसुधार, धर्म, राजनीति और सर्वोदय आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक क्षेत्रों में सारे जीवन काम किया। राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ अपने देशवासियों के चरित्र का भी उनका ज्ञान विशाल था। एक बार उन्होंने हमसे कहा था, "भारत की राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ बड़ी होती हुए भी अपेक्षाकृत सरल हैं। वे कोई समस्याएँ नहीं हैं। देश की वास्तविक समस्या तो नैतिक है, और जब तक वह हल नहीं होती तब तक और समस्याएँ उलझती ही जायेंगी।"

बहुत से लोग राजर्षि को स्वप्नद्रष्टा और अव्यावहारिक व्यक्ति समझते थे। किन्तु वे उत्तर प्रदेश की विधान सभा के प्रथम अध्यक्ष चुने गये। जिस योग्यता, निर्भीकता, निष्पक्षता तथा व्यवहार-कुशलता से उन्होंने उसकी अध्यक्षता की, उसकी प्रशंसा उनके विरोधियों ने भी की। लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोक-सेवा-मंडल के वे अध्यक्ष थे और उसमें भी उन्हें प्रशासनिक कार्य करना पड़ता था। विभाजन के बाद उसका संचालन और भी कठिन हो गया था क्योंकि पाकिस्तान में उसकी प्रायः सारी सम्पत्ति रह गयी थी और उसका सारा कार्य छिन्न-भिन्न हो गया था। किन्तु राजर्षि ने अपनी प्रशासनिक योग्यता का परिचय देकर उसको सफलतापूर्वक फिर अपने पैरों पर खड़ा कर दिया।

राजर्षि ने हिंदी के लिए जो कुछ किया उसे यहाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं है। उनकी सेवाएँ और उनके कार्य कृतज्ञ हिंदी-भाषियों के हृदयपटल पर अमिट रूप से अंकित हैं। उन्होंने निद्रित हिंदीभाषियों में हिंदी-चेतना उत्पन्न की, उन्होंने सैकड़ों युवकों को हिंदी की सेवा करने के लिए अनुप्राणित किया, उन्होंने संघर्ष किये। हिंदी को भारत की राजभाषा बनाने और उसे असंख्य अहिंदीभाषियों की सहानुभूति दिलाने में उनका कार्य महान् ऐतिहासिक महत्त्व का है। उसे अभी तक किसी ने लिपिबद्ध नहीं किया। जब वह लिपिबद्ध होगा तब देशवासियों को मालूम होगा कि राजर्षि ने हिंदी के लिए कितनी तपस्या और कितना संघर्ष किया था। उनका हिंदी-प्रेम भावनात्मक न था। वह दृढ़ बौद्धिक नींव पर आधारित था, क्योंकि उनका अटल विश्वास था कि भारत को एक करने और उसे अपना स्वरूप पहिचानने में सहायता देने के लिए देश में एक भारतीय भाषा की आवश्यकता है, और वह भाषा हिंदी ही हो सकती है।

राजर्षि को हम "बाबूजी" के नाम से जानते थे। वे हमारे स्वर्गीय पिताजी के मित्रों में थे, और हमारे बचपन में उनका हमारे यहाँ, और हमारे पिताजी का उनके यहाँ, आना-जाना बहुधा होता था। बचपन से लेकर अब तक हमें उनके वात्सल्य-भाजन होने का गौरव और सौभाग्य रहा। वे हमारे पितृव्य के समान थे। जब हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हुई और जानसेनगंज में उसकी कक्षाएँ चलने लगीं तो उन्हींके आग्रह और आदेश से हमने उसमें एक-दो वर्ष प्रथमा और विशारद की कक्षाओं में इतिहास का अध्यापन भी किया। हिंदी के संस्कार रहते हुए भी हमने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में बहुत दिनों कोई सक्रिय भाग नहीं लिया था। बाद में इसका एक कारण यह भी था कि हम सरकारी नौकरी में फँस गये थे। किंतु १९३८ में उन्होंने हमें बुलाकर उसमें सक्रिय भाग लेने का आदेश दिया। उनका आदेश था कि "दृढ़ता से, किंतु विनम्रतापूर्वक, हिंदी की सेवा करो, और जो कुछ कहो वह नाप-तौल कर।" हमें खेद है कि न हममें बाबूजी द्वारा अपेक्षित दृढ़ता है और न विनम्रता, और शायद नाप-तौल का भी उनका मानदंड हमारे लिए दुष्कर है। आज हमारी तरह कितने ही हिंदी-कार्यकर्ता उनसे अनुप्राणित होकर हिंदी की सेवा कर रहे हैं। यदि हम उनके उपदेशों का शतांश भी पालन कर सकें तो हम अपने जीवन को कृतार्थ समझेंगे।

राजर्षि का निधन देश के लिए और विशेषकर हिंदी के लिए एक युगान्तकारी घटना है। उनके साथ हिंदी-उन्नायकों के उस महान् युग की समाप्ति होती है जिसका राजर्षि ने अपना सर्वस्व देकर सबल और सफल किया। भविष्य के हिंदी-कार्यकर्ता उनके जीवन-आदर्शों, उनके कार्य और उनकी दृढ़ता से सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे। इस अर्थ में वे अमर हैं। अपने पितृव्य और हिंदी के भीष्म, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन के इस नश्वर संसार से विदा होने पर हम श्रद्धानत होकर उनका विनम्र अभिवादन करते हैं। जिस प्रकार भीष्म पितामह का श्राद्ध आज भी प्रत्येक हिंदू करता है, उसी प्रकार प्रत्येक हिंदी-प्रेमी अनन्त काल तक हिंदी की सेवा करके उनका "श्राद्ध" करता रहे--यही हमारी कामना है। राजर्षि का यशःशरीर अमर है। जब तक हिंदी जीवित है तब तक राजर्षि अमर हैं।

डा० विधानचंद्र राय--अस्सी वर्ष की प्रौढ़ अवस्था में भी अपनी कर्मठता से युवकों को भी लजा देनेवाले पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री और स्वतंत्रोत्तर बंगाल के अन्यतम नेता डा० विधानचंद्र राय का स्वर्गवास पहिली जुलाई को एकाएक हृदय की गति रुक जाने से हो गया। उस दिन उनका जन्मदिन था और जब लोग इस दिवस का हर्ष मना रहे थे यह वज्राघात हुआ। इससे यह घटना और भी कारुणिक हो गयी। वे बंगाल की राजनीति में दिल्ली के लौह-स्तंभ की तरह अडिग खड़े हुए मालूम होते थे, और मनुष्य-शरीर की नश्वरता को जानते हुए भी जनता यह कल्पना न करती थी कि वे एकाएक इस प्रकार चले जायेंगे। उनके निधन से बंगाल ही की नहीं, सारे देश की जो हानि हुई है उसकी पूर्ति असंभव है।

विधान बाबू का जन्म पटना में हुआ था और उनकी उच्च शिक्षा कलकत्ते में हुई। वे बड़े मेधावी छात्र थे। उन्होंने मेडिकल कालिज और इंजीनियरिंग कालिज में भर्ती होने का एक साथ आवेदन किया, किंतु मेडिकल कालिज से स्वीकृति पहिले आयी, इसलिए वे मेडिकल कालिज में भर्ती हो गये। यदि इंजिनियरिंग कालिज से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिले स्वीकृति आती तो वे इंजिनियर होते। वे उतने ही महान् इंजिनियर होते जितने महान् वे चिकित्सक हुए।

इँगलैंड जाकर उन्होंने एक वर्ष में एफ० आर० सी० एस० की वह परीक्षा उत्तीर्ण की जो साधारणतः प्रतिभाशाली विद्यार्थी भी कम से कम दो वर्षों में उत्तीर्ण कर पाते हैं। कुछ दिनों वे सरकारी सेवा में रहे, किंतु बाद में उन्होंने उसे छोड़ दिया और मेडिकल कालिज में अध्यापक हो गये। उनकी चिकित्सा खूब चमकी और शीघ्र ही वे कलकत्ते के अग्रगण्य चिकित्सक माने जाने लगे। उन्होंने विवाह नहीं किया और आजीवन एकाकी रहे। किंतु वे इतने महान् थे कि सारा बंगाल उनका परिवार था। ऐसा व्यक्ति केवल चिकित्सा की परिधि में बँधा नहीं रह सकता था। उन दिनों श्री चित्तरंजन दास बंगाल-राजनीति के बेतिलक के राजा थे। उनकी पैनी दृष्टि इस सफल चिकित्सक और प्रतिभाशाली आदर्शवादी एवं कर्मठ युवक पर पड़ी, और उनकी प्रेरणा से विधान बाबू ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। जैसा कि आगे की घटनाओं से प्रमाणित हुआ, वह अत्यंत शुभ मुहूर्त्त था जब विधान बाबू के समान व्यस्त चिकित्सक ने बंगाल की राजनीति में पदार्पण करने का निश्चय किया। उस समय बंगाल की राजनीति में तीन महान् व्यक्ति छाये हुए थे: चित्तरंजन दास, जे० एम० सेन गुप्त और सुभाष बाबू। उनके सामने नवागत विधान बाबू एकदम चोटी पर नहीं पहुँच सकते थे, फिर भी अपनी प्रतिभा के बल से वे शीघ्र ही चित्तरंजन दास की स्वराज्य पार्टी के उपनेता हो गये। यह कम बात न थी। इसके बाद तो धीरे-धीरे विधान बाबू बंगाल के एकमात्र नेता हो गये।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जो पहिला मंत्रिमंडल बना उसमें वे मंत्री तो बनाये गय, किंतु उन दिनों विदेश में रहने के कारण उन्होंने मंत्रिपद ग्रहण नहीं किया। उस मंत्रिमंडल के भंग होने पर विधान बाबू मुख्य मंत्री बने, और जीवन के अंतिम दिन तक उस पद पर बने रहे। बंगाल का यह सौभाग्य था कि उस समय उसे विधान बाबू का नेतृत्व प्राप्त हुआ, क्योंकि विभाजन के कारण बंगाल अत्यंत क्षत-विक्षत हो गया था। उसकी आर्थिक व्यवस्था असंतुलित हो गयी थी। पूर्वी बंगाल के पाकिस्तान में चले जाने से भाई भाई से अलग हो गया था। इससे बंगाल की जनता की कोमल भावना को जो चोट पहुँची थी उससे उसका हृदय विदीर्ण हो चुका था। बेकारी बढ़ गयी थी—विशेषकर शिक्षित वर्ग में उसने भयंकर रूप धारण कर लिया था। ऐसी अवस्था में वहाँ साम्यवाद प्रबल हो उठा और सरकार के लिए आये दिन का सिर दर्द हो गया। मानों ये आपत्तियाँ पर्याप्त नहीं थीं, पूर्वी बंगाल में हिंदुओं के ऊपर अमानुषिक अत्याचार होने लगे और वहाँसे लाखों हिंदू भाग-भागकर कलकत्ते आने लगे। बंगाल में पहिले-ही से जनसंख्या बहुत अधिक थी और बेरोजगारी के कारण वहाँके मूल निवासी ही पीड़ित थे। एक साथ लाखों पीड़ित शरणार्थियों के आ जाने से उनके निवास और रोजगार की समस्या बड़ी भीषण हो गयी, और शरणार्थियों का जो ताँता आरंभ हुआ तो वह अब तक बंद न हुआ। विभाजन के बाद प्रशासन वैसे ही कठिन हो गया था, उपर्युक्त कारणों से बंगाल का प्रशासन और भी जटिल हो गया। उस समय विधान बाबू ने जिस धैर्य, दृढ़ता और सूझबूझ से बंगाल का शासन चलाया, उसकी प्रशंसा जितनी की जाय वह कम है। भारत-सरकार का पुनर्वास विभाग पंजाब के शरणार्थियों की समस्या सुलझाने में लगा था। सुदूर बंगाल में आये हुए शरणार्थियों की समस्या की भीषणता को वह नहीं समझ सकता था। विधान बाबू ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से दिल्ली के अधिकारियों को पूर्वी बंगाल के विस्थापितों के मामले में क्रियाशील होने को बाध्य किया। उसीके अनुसार दण्डकारण्य योजना बनी। इसके अनुसार मध्यप्रदेश के बस्तर जिले के विशाल वन क्षेत्र के एक बड़े समतल भूभाग को साफ करके उसे खेती के योग्य बनाया जायगा और वहाँ कई तरह की सहायता देकर पूर्वी बंगाल के विस्थापितों को बसाया जायगा। मध्य प्रदेश की सरकार और भारत-सरकार को इस योजना के लिए सहमत कर लेना विधान बाबू ही का काम था। बंगाल और बिहार पहिले एक ही राजनीतिक प्रान्त थे। इसी कारण स्वयम् विधान बाबू का जन्म पटना में हुआ था। बंगाल और बिहार में सीमा के कुछ थानों के क्षेत्रों को लेकर मनोमालिन्य हो गया था। इसे दूर करने के लिए तथा प्रान्तीयता की संकुचित और हानिकारक भावना को दूर करने के लिए विधान बाबू ने यह प्रस्ताव किया कि बंगाल और बिहार को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाय। जब सारा देश भाषावादी राज्यों की वेगवती धारा में बेतहाशा बहा जा रहा था, तब ऐसा उदार और दूरदर्शी किंतु अप्रिय प्रस्ताव करना बड़े साहस का काम था। स्वयं बंगाल में इस प्रस्ताव का घोर विरोध हुआ। इस प्रश्न को लेकर कलकत्ते में कांग्रेस एक चुनाव भी हार गयी। बिहार में भी इसकी प्रतिक्रिया बहुत अनुकूल नहीं हुई। विधान बाबू को अंततोगत्वा इस प्रस्ताव को छोड़ देना पड़ा, किंतु इससे उनकी विशाल और अखिल भारतीय दृष्टि का पता लगता है। बंगाल की बेकारी दूर करने के लिए उन्होंने बंगाल में भारत सरकार से नये-नये कारखाने खुलवाये। दुर्गापुर का लोहे का कारखाना और चित्तरंजन का रेल के इंजिन बनाने का कारखाना उनमें मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने निजी व्यापारियों और संस्थानों को बंगाल में तरह तरह के कारखाने खोलने के लिए प्रोत्साहन ही नहीं, सक्रिय सहायता भी दी। बंगाल का जितना उपकार विधान बाबू ने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में किया, उतना और किसी राज्य में शायद और किसी मुख्यमंत्री ने नहीं किया। इसका एक बड़ा कारण यह था कि दिल्ली की सरकार और कांग्रेस पर उनकी बड़ी धाक थी। वे कांग्रेस की उच्च कमान के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। उनके मत का सब लोग आदर करते थे और उनकी बात इतनी तर्कपूर्ण होती थी कि उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टालना कठिन हो जाता था। प्रशासन का इतना गंभीर उत्तरदायित्व होते हुए भी वे यह कभी नहीं भूले कि मैं चिकित्सक हूँ। महात्मा गाँधी के तो वे व्यक्तिगत चिकित्सक के समान थे। नित्य प्रातःकाल घंटे-दो-घंटे वे रोगियों को देखने के लिए समय निकाल ही लिया करते थे। मृत्यु से एक दिन पूर्व तक उन्होंने मंत्रिमंडल की बैठक की अध्यक्षता की। यद्यपि उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था तथापि उनकी उत्तरदायित्व की भावना इतनी ऊँची थी कि वे मरने के दिन तक काम करते रहे। उनके स्वर्गवास के समाचार से देश स्तब्ध रह गया। बंगाल का शेर चिर-निद्रा में मग्न हो गया। बंगाल और विधान बाबू इधर पर्यायवाची हो गये थे। देश की तो महान् क्षति हुई ही है, उनके निधन से बंगाल की जो क्षति हुई है उसको आज कता भी नहीं जा सकता। हम इस महान् पुरुष की स्मृति में आदर से श्रद्धानत हैं।

आकाशवाणी की भाषा का 'रेड्डीकरण' या 'रद्दी-करण'—मैसर्स गोपाला रेड्डी एंड शामनाथ कम्पनी ने आकाशवाणी के दो समाचार बुलीटनों का रद्दीकरण आरंभ कर दिया है और उनसे यह पता लग गया है कि हिंदीवालों की जो आशंका थी कि ये आकाशवाणी के नये प्रभु हिंदी को उर्दू बनाना चाहते हैं, वह बिल्कुल ठीक थी। इधर सरलीकरण के नाम पर हिंदी के शब्दों को निकाल-कर उनके स्थान पर जिन शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है उनके कुछ नमूने देखिए : मनसूख, मिसाल (उदाहरण के लिए), माली (आर्थिक के लिए), दाख़िल (प्रवेश के लिए), महसूल (किराया या कर), महकमा (विभाग), इल्ज़ाम (आरोप), अदा, पुश्ता, मातहत (अधीन), हौसला (साहस), पटटीदर्ज़ा, सदर मुक़ाम (मुख्य कार्यालय), यक़ीन (विश्वास), मुलाकात (भेंट), वगैरा (इत्यादि), तरक्क़ी (उन्नति), मरकज़ी (केंद्रीय), मसीही (ईसाई), मरहूम (स्वर्गीय), अमन (शांति), मुल्क (देश), हमदर्दी (सहानुभूति), खबरदार (सावधान), बगावत (विद्रोह), मुलाज़िम (कर्मचारी), तजुरबा (अनुभव), इस्तेमाल (उपयोग), इंतक़ाल (मृत्यु) महसूस (अनुभव), मनअत (कारीगरी), इलाक़ाई (क्षेत्रीय), रस्म (रीति), सरहद (सीमा), अमला (नौकर या भृत्यवर्ग), मुक़र्रर (नियुक्त), नौआबादी (नयी आबादी)।

कोष्ठक में हमने अधिकांश शब्दों के हिंदी पर्याय दे दिये हैं जो सामान्यतः हिंदी में प्रयुक्त होते रहे हैं और अब जिनका उपयोग बंद कर दिया गया है। इनसे स्पष्ट है कि आकाशवाणी के प्रभुओं ने हिंदी के संस्कृतमूलक शब्दों को बीन बीन कर निकाल बाहर करने की शपथ सी ले ली है। दिल्ली में अठारवीं और उन्नीसवीं शतियों में दिल्ली की "सदारत" में आठ "मजलिसें" हुई थीं जिनमें उन दिनों "उर्दू" में जो हिंदी के शब्द आ गये थे उनका "मतरूक" (वर्जित) कर दिया गया था। जनाब गोपाला रेड्डी और मुंशी शामनाथ की "सदारत" में उसी दिल्ली में उर्दू-ए-मुअल्ला की नवीं "मजलिस" आरंभ हुई है जिसका उद्देश्य हिंदी से हिंदी के शब्द निकालकर उसे उर्दू बनाना मालूम पड़ता है!

अब थोड़े से उन वाक्य-रत्नों के नमूने देखिए जो इन "खबरों के बुलीटनों" में से लिये गये हैं :

१ जुलाई—श्री पुरुषोत्तमदास टंडन इलाहाबाद में सुबह दस बजे की थोड़ी देर बाद चल बसे।

राजर्षि के स्वर्गवास के लिए ऐसे हलके और चलते हुए शब्दों का प्रयोग करके मेसर्स रेड्डी और शामनाथ की आकाशवाणी ने उनके प्रति प्रतिष्ठा व्यक्त की या अप्रतिष्ठा, यह वही जाने।

२.७.६२ इन टापुओं को माल ले जाने के लिए मोटर किश्तियों को....खरीदने के लिए एक लाख पैंतालिस हजार रुपया मंजूर किया गया है।

आकाशवाणी की "राय मुकद्दस" में 'किश्ती' शब्द 'नाव' शब्द से अधिक सरल है, और हिंदीभाषी द्वीप और "स्वीकार" शब्द समझ नहीं सकते।

३.७.६२ : केंद्रीय यानी मरकज़ी सरकार ने ऐसे इलाक़ों के विद्यार्थियों यानी तालिब इल्मों की... हिंदी की ऊँची पढ़ाई के लिए सौ से ज्यादा वजीफ़े देने का फ़ैसला किया है।

हिंदीभाषी श्रोता "केंद्रीय" और "विद्यार्थी" समझते हैं। उन्हें उर्दू सिखाने के लिए इन शब्दों को कहने के बाद "मरकज़ी" और "तालिबइल्म" शब्दों का प्रयोग करके इन शब्दों का परिचय कराया गया है। बाद में, जब वे ये शब्द सीख जायेंगे तब शायद 'केंद्रीय' और 'विद्यार्थी' शब्द 'मतरूक' (वर्जित) कर दिये जाएँगे। और यह "ऊँची पढ़ाई क्या है?" "उच्च शिक्षा" तो हम समझते हैं, पर "ऊँची पढ़ाई" हमारी समझ के बाहर है। शायद यह रेड्डी साहब के श्रीशैलम् पर दी जाती होगी। क्या 'वजीफ़ा' हिंदीवाले समझते हैं? क्या वे "छात्रवृत्ति" नहीं जानते? "निश्चय" के लिए अरबी "फ़ैसला" कहकर रेडियो ने अपनी अरबी-परस्ती और संस्कृत एवम् हिंदी के प्रति अपनी घृणा का अच्छा परिचय दिया है।

अब रेडियो 'इंग्लिस्तानी' हिंदी का भी उदाहरण लीजिए—"कौंसिल के ४७ मेम्बर हैं और यह ट्रेनिंग प्रोग्राम को बढ़ाने के ख्याल से बनाई गयी है।"

शायद "ट्रेनिंग प्रोग्राम" लाला शामनाथ के कूचे का हर एक पानवाला और रिक्शावाला समझता है। "सदस्य" संस्कृत-मूलक है। उसे नहीं रखना। उर्दू में इसके लिए कोई शब्द नहीं है। इसलिए हिंदी में चलता हुआ "सदस्य" न रख कर अंग्रेजी का "मेम्बर" रखा गया है। पहिले तो शब्द अरबी के हों या फारसी के हों। यदि इनके शब्द न मिलें तो अंग्रेजी के ले लिये जायँ। पर हिंदी के संस्कृत-मूलक शब्द न लिये जायँ। आकाशवाणी की यही नीति मालूम होती है।

४.७.६२ श्री नेहरू ने एक बयान में अलजीरिया की आज़ादी पर खुशी ज़ाहिर की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हिंदी वाले "स्वतंत्रता" भूल जायँ! "बयान" अदालत में दिया जाता है। हिंदी में उसे "कथन" कहते हैं। श्री नेहरू ने "वक्तव्य" दिया था। "खुशी ज़ाहिर की" की जगह यदि "प्रसन्नता प्रकट की" कहा जाता तो आकाशवाणी को हिंदी और संस्कृत की छूत लग जाती।

८.७.६२ "भूखे लोगों ने नाराज़ी ज़ाहिर करते हुए मार्च किया।"

९.७.६२ "सरकार उनके बारे में अपने फ़ैसले का ऐलान जल्दी ही कर देगी।"

१०.७.६२ "कल के ऐटमी तजरुबे की वजह से"

"इस इमारत को बग़ावत की कार्रवाइयों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था।"

१४.७.६२ "यह कहना बहुत मुश्किल है कि वहाँ क्या होगा, लेकिन हमें मुस्तैद रहना चाहिए।"

प्रत्येक बुलेटिन और उसका प्रत्येक वाक्य प्रायः इसी प्रकार की भाषा में है। हमने यहाँ कुछ ही अंश दिये हैं क्योंकि बुलेटिनों को सुनकर उनका लिख लेने के लिए हमारे पास उर्दू के आशुलिपिक नहीं हैं। किंतु ये नमूने यह बतलाने के लिए पर्याप्त हैं कि आकाशवाणी के अधिकारी क्या कर रहे हैं। इनसे हिंदी-भाषियों को मालूम हो जायगा कि आकाशवाणी हिंदी से हिंदी शब्द निकाल कर उसे उर्दू बनाना चाहती है, और वह यह प्रयत्न कर रही है कि लोग हिंदी के शब्द भूल जायें और उर्दू सीख लें। वह इस समय 'आकाशवाणी' नहीं, 'अंजुमन तरक्किए-उर्दू, आसमानी' हो रही है। हम आकाशवाणी की इस नीति की घोर निंदा और विरोध करते हैं। हम उसकी इस नीति को हिंदी पर सबसे भीषण प्रहार समझते हैं। यदि सरकार हिंदी-भाषियों की भावनाओं का कुछ भी ध्यान करती है तो उसे तुरन्त ही इस हिंदी-नाशक नीति को बंद कर देना चाहिए। हिंदी संसार में आकाशवाणी के इस एक कार्य ने सरकार के प्रति जो असंतोष, क्षोभ और रोष उत्पन्न कर दिया है, वह विरोधी दलों का संयुक्त प्रयास भी नहीं कर सकता था। इस स्थिति से केवल सरकार के विरोधी ही प्रसन्न हो सकते हैं। यदि सरकार के दरबार में हिंदी संसार की भावनाओं की तनिक भी पर्वाह न की जाती हो, तो भी, केवल स्वार्थ की दृष्टि से, अपने हित में, उसे सारे हिंदी संसार को अपना विरोधी बनाने की भूल न करनी चाहिए। जिस समय "एकता" की बात की जा रही हो, उस समय देश के सबसे बड़े क्षेत्र के निवासियों की भाषा पर प्रहार करके उसमें भाषा संबंधी उत्तेजना और असंतोष उत्पन्न करना राजनीतिक बुद्धिमानी न होगी।

क्या प्रतिकार किया जाय? केवल समाचारों ही की भाषा में परिवर्तन नहीं किया जा रहा। अब आकाशवाणी के स्थानीय कार्यकर्त्ता प्रतिष्ठित हिंदी भाषणकर्ताओं से संस्कृतमूलक शब्दों को अपनी पांडुलिपि से निकालने के लिए आग्रह करने लगे हैं। उत्तर प्रदेश के एक रेडियो स्टेशन में जब हिंदी के एक प्रतिष्ठित सज्जन वार्ता देने गये जो स्वयं ही बहुत सरल भाषा लिखते हैं, तो उनसे ऐसे शब्द जैसे "प्रोत्साहन", "प्रतिष्ठा" आदि को निकाल देने के लिए कहा गया। सुना है कि एक "हिंदुस्तानी-परस्त" सज्जन ने यह सुझाव दिया है कि जब तक आकाशवाणी से "हिंदीवाले प्रोड्यूसर", "आर्टिस्ट" आदि नहीं निकाल दिये जाते तब तक आकाशवाणी हिंदी का "रद्दीकरण" ठीक तरह से नहीं कर सकेगी। यदि उसके प्रभुगण उनको निकाल दें, या उनके लिए ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दें कि वे स्वयं आकाशवाणी छोड़कर चले जायँ तो हमें आश्चर्य न होगा। इस संबंध में हिंदी के एक वरिष्ठ और वयोवृद्ध लेखक ने हमें लिखा है--"किंतु मेरा व्यक्तिगत मत है कि सभी हिंदीप्रेमी और साहित्यकार आकाशवाणी से अहिंसात्मक असहयोग करें, पूर्ण बहिष्कार करें उसका, कंट्राक्ट न करें उसके साथ, किसी प्रकार का सम्बन्ध किसी लेखक या कवि का रेडियो से न रहे। यही एकमात्र अचूक दवा है। यह रामबाण दवा है--यदि यह शक्य और साध्य हो तो। प्रस्ताव या विरोध या भाषण या लेख या आलोचना या निन्दा से कुछ भी न होगा। सरकार का रुख बड़ा निर्मम है। मैं अपने विद्रोही मन को समझा नहीं पाता।" हमारे प्रतिष्ठित मित्र ने जो सुझाव दिया है, वह विचारणीय है। आकाशवाणी के इतिहास में हिंदीवाले हिंदी के अधिकारों के लिए दो बार उसका सफल बहिष्कार कर चुके हैं। हिंदीवाले इसके लिए समर्थ हैं। किंतु हमारी सम्मति में यह तभी होना चाहिए जब समझाने-बुझाने का कोई प्रभाव न हो। अवश्य ही सरकार का रुख निर्मम है। ऐसा मालूम होता है कि आकाशवाणी हिंदी को कुचलने के लिए, और अपनी भाषा को उर्दू बनाने को कटिबद्ध है। फिर भी हमें विरोधियों को यह कहने का अवसर न देना चाहिए कि हमने बहिष्कार का अस्त्र जल्दबाजी में चला दिया। हमने सुना है कि शीघ्र ही इस स्थिति पर विचार करने के लिए हिंदी लेखकों और कवियों का एक सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है। हमें विश्वास है कि वह सम्मेलन हिंदी-संसार का मार्गप्रदर्शन करेगा।

यह अपव्यय: हमारी सरकार जनता को करों के बोझ से लादती चली जा रही है। हम विदेशों से असंख्य धन की राशि ऋण लेकर भावी पीढ़ी के ऊपर उसे चुकाने का गंभीर उत्तरदायित्व रखते जा रहे हैं। देश की आर्थिक समृद्धि बढ़ाने के लिए यह आवश्यक हो सकता है, किंतु जो धन हम इस प्रकार प्राप्त करते हैं क्या उसका उपयोग देश की समृद्धि बढ़ाने में ही व्यय होता है? क्या वह धन उचित सावधानी से व्यय किया जाता है? यदि भ्रष्टाचार को छोड़ भी दें, तो उसका अच्छा खासा अंश स्वयं सरकार किस प्रकार की अनावश्यक योजनाओं पर व्यय करती है, इसका एक उदाहरण देखिए।

गत मास हमें राजस्थान जाना पड़ा। हम मोटर द्वारा श्रीनाथ द्वारा से उदयपुर जा रहे थे। हमने देखा कि सड़क की एक ओर पुराने मील के पत्थर लगे हुए हैं, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर किलोमीटरों के नये पत्थर लगाये गये हैं। ये धरातल से कम से कम एक गज ऊँचे होते हैं। प्रायः उतने ही नीचे गड़े रहते हैं। ये शायद लोहे की छड़ों को डालकर सीमेंट कंकरीट के बनाये जाते हैं। हमने वहाँके एक ठेकेदार से पूछा कि सीमेंट के इन किलोमीटर पत्थरों का क्या मूल्य है। ठेकेदार ने हमें बतलाया कि इनका मूल्य वे परिस्थितियों के अनुसार पचास से साठ रुपये तक लेते हैं। इनको पीले रँग से रँगने, और इन पर बड़े आकार के अक्षरों में नगरों के नाम और दूरी लिखने का व्यय अलग होता है। इनको लगाने का भी व्यय अतिरिक्त है। किंतु इन्हें लगाने के पहिले सार्वजनिक निर्माण विभाग का एक ओवरसियर तीन चार सहायकों, जैसे नापने की जंजीरवाले व्यक्तियों आदि को लेकर सर्वेक्षण करके किलोमीटर तथा उसके अंशों (फर्लांगों के पर्यायों) के स्थानों पर निशान लगाता है। दस मील सर्वेक्षण करने में (छुट्टी मिलाकर) कम से कम आठ दस दिन तो लग ही जाते हैं। यदि यह सब तथा ऊपरी (ओवरहैड) व्यय ले लिया जाय तो नये किलोमीटर का एक पत्थर (किलो-फर्लांग के पत्थरों को छोड़कर) सौ रुपये से सवा सौ रुपये तक का बैठता है। सारे भारत में नये किलोमीटरों के पत्थर लगाये जायँगे। सन् १९५६ में (टाइम्स आफ इंडिया डाइरेक्टरी के अनुसार) भारत की सड़कों की लम्बाई ३,१६,६६८ मील थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ६८,१५९ मील लम्बी सड़कें बनीं। द्वितीय योजना में ६२,००० मील सड़कें बनायी जाने को थीं। यह लक्ष्य शायद पूरा हो गया है। अतएव इस समय भारत में ४,४६,८२७ मील लंबी सड़कें होनी चाहिए। १०० मील में १६६ किलोमीटर होते हैं। अतएव इस "दशमलव" योजना के अनुसार अंततः ७,४१,७३२ किलोमीटर पत्थर लगाये जाने को हैं। किलो-फर्लांगों की गिनती इनमें नहीं है। यदि प्रत्येक पत्थर लगाने का व्यय (जैसा कि ऊपर बताया गया है) सौ रुपया भी मान लिया जाय तो केवल इन पत्थरों के लगाने का व्यय कम से कम ७,४१,७३,२०० (सात करोड़, इकतालिस लाख, तिहत्तर हजार, दो सौ) रुपया होता है।

यही नहीं। रेलों में भी मीलों के पत्थर बदलकर उनकी जगह किलोमीटर पत्थर लगाये जा रहे हैं। तार के खंभों पर मीलों के हिसाब से तार के खंभों की जो संख्या अंकित रहती है, वह भी बदली जा रही है। भारत में मार्च १९५७ में ३४,७४४ मील लंबे रेल मार्ग थे। प्रथम और द्वितीय योजनाओं में नयी लाइनें खुली हैं, वे अलग हैं। रेलों में कितने ही अन्य साइनबोर्ड आदि होते हैं जिनमें "मील" शब्द का प्रयोग होता है। उन सब में मील की जगह किलोमीटर लिखे जायेंगे। इस सब में कितना व्यय होगा इसका अनुमान करना कठिन है।

इतने पर ही इतिश्री नहीं है। मालगाड़ियों के डब्बों पर अभी तक उनके क्षेत्रफल तथा भार आदि मीलों, टनों, हंड्रेडवेट, पाउंड या मनों में लिखे जाते रहे हैं। अब ये बातें प्रत्येक डब्बे पर दशमलव प्रणाली के अनुसार बदली जा रही हैं। हमने कितने ही डब्बों पर ये परिवर्तित लेख देखे हैं।

उदाहरण के लिए एक डब्बे पर नये और पुराने लेख इस प्रकार लिखे थे :

पुराना	नया
Tons 22	Tonnes 22
T C Q	Tare 10566 Kg.
Tare 10 8 0	Area 21·1 sqr. M.
Area 227 sqr. ft.	

मार्च १९५७ में भारतीय रेलों के पास २,४२,७७७ माल के डब्बे थे। प्रथम और द्वितीय योजनाओं में जो नये डब्बे बनाये गये हैं, वे इनमें सम्मिलित नहीं हैं। इन सब में नयी दशमलव प्रणाली के अनुसार ये बातें लिखी जायँगी।

सेरों, मनों आदि के बाटों के बदलने में सरकार और जनता का कितना व्यय हुआ है, इसका अनुमान लगाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। सरकार ने दशमलव प्रणाली का प्रचार करने के लिए एक केंद्रीय कार्यालय ही खोल रखा है। उसमें ऊँचे वेतन पाने वाले कितने ही अधिकारी और लंबा चौड़ा कर्मचारीवर्ग है। उसके प्रचार के लिए बढ़िया कागज पर छपी खर्चीली पत्रिकाएँ निकाली जाती हैं। प्रचार के लिए सारे देश के पत्रों और पत्रिकाओं में वर्षों से विज्ञापन दिये जाते हैं। इस संबंध में राज्य जो व्यय कर रहे हैं, वह अलग है।

दशमलव प्रणाली को प्रचलित करने के लिए सरकार ने कुल कितना व्यय किया है, इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। यदि कोई संसद सदस्य चाहे तो शायद उसे कुछ पता लग सके। किंतु सब बातों पर विचार करके हमारा मोटा अनुमान है कि सरकार अपनी इस "सनक" पर पचीस-तीस करोड़ रुपया तो खर्च कर ही देगी जिसका बहुत कुछ अंश अब तक व्यय हो भी गया होगा।

हम स्वयं दशमलव प्रणाली के बड़े भक्त नहीं हैं। उसके पक्ष और विपक्ष दोनों में बड़े प्रबल तर्क हैं। किंतु यदि वह उतनी ही अच्छी हो जितनी सरकार उसे समझती है, तो क्या देश की वर्तमान अवस्था में उसकी प्राथमिकता इतनी ऊँची है कि वह इस समय इस तेजी से लागू की जाय? जब देश की समृद्धि बढ़ाने के लिए हमें पाई पाई बचानी है, जब हम उसके लिए दरिद्र जनता को कर के भार से लादते जा रहे हैं, और सारे संसार के देशों से आर्थिक सहायता और ऋण की प्रार्थना कर रहे हैं, तब इस अवसर पर इस योजना पर करोड़ों रुपया खर्च करने की बुद्धिमानी हमारी समझ में नहीं आती। हम इसे बहुत बड़ा अपव्यय समझते हैं। और जब हम सरकार को "बेरहमी" से इस प्रकार का अपव्यय करते देखते हैं तब हमें संदेह होने लगता है कि हम पर जो करों का भार दिनोंदिन बढ़ाया जा रहा है, वह कहाँ तक उचित है। यदि सरकार इस प्रकार के काम, जो तात्कालिक महत्त्व के नहीं हैं, रोककर सारा उपलब्ध धन उत्पादक कामों में लगावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपव्यय तथा भ्रष्टाचार रोक सके तो जनता का कर-भार बहुत कम हो सकता है।

कुछ संगठनकारी प्रवृत्तियाँ––इस संसार में जाति, रंग, राष्ट्रीयता तथा स्वार्थों के कारण बहुत विघटन हो गया है, और उस विघटन के कुपरिणाम इतने प्रत्यक्ष हो गये हैं कि अब संसार के विचारशील राजनीतिज्ञ चिंतित हो उठे हैं। कम से कम विचारों में प्रतिक्रिया आरंभ हो गयी है और कहीं-कहीं उन विचारों को मूर्तरूप भी दिया जाने लगा है। राष्ट्रों के संगठन के इन प्रयासों के दो उदाहरण ऐसे हैं जिनकी सफलता पर संसार का भविष्य बहुत-कुछ निर्भर है।

इनमें पहिला प्रयास पश्चिमी योरोप में किया जा रहा है। पश्चिमी योरोप प्रायः उतना ही बड़ा है जितना भारत। उसमें भी भाषा और धर्म की वही विविधता है जो भारत में। उन्नीसवीं शती में वहाँ भी भाषावार राज्य बने और उनमें राष्ट्रीयता का ऐसा पुट लगा कि वे सब स्वतंत्र और सर्वप्रभुत्व-संपन्न राज्य बन गये। उनके आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ एक दूसरे से टकराने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ युद्ध हुए और बर्बादी हुई। प्रायः एक सौ वर्ष का विघटित जीवन व्यतीत करने, और दो महायुद्धों की विभीषिका भुगतने के बाद उनमें कुछ बुद्धि आयी। उन्होंने देखा कि छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे होने के कारण, संसार में सबसे अधिक प्रगतिशील और उन्नत होते हुए भी, वे बराबर मुसीबत से घिरे रहते हैं। इस विपत्ति से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि योरोप एक इकाई बनाकर 'संयुक्त' बना दिया जाय। अंतिम उद्देश्य यही है। सारे योरोप का एक संसद हो, एक संयुक्त सेना हो, एक संयुक्त कमान हो, एक परराष्ट्र नीति हो, एक कर-नीति हो। अर्थात् सारा योरोप एक 'संयुक्त-राज्य' या 'संघराज्य' हो जाय। किंतु ये उद्देश्य धीरे-धीरे ही पूरे हो सकते हैं। अतएव उन्होंने पहिला काम व्यापार के क्षेत्र को एक करने का किया है। योरोप के छः राज्यों (पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटली, बेलजियम, हॉलैण्ड और लक्समबर्ग) ने विचारविमर्ष करने के बाद रोम में एक संधि की, और योरोप के 'साझा-बाजार' को जन्म दिया। इस साझा-बाजार में सदस्य-देशों का माल बिना किसी आयात कर के आ जा सकेगा। इन देशों में बाहर से जो माल आवेगा उस पर केवल एक बार आयात-कर लगेगा। योरोप समृद्ध भूभाग है। वहाँका जीवन स्तर बहुत ऊँचा है। अतएव उसके देशों में माल की बहुत खपत है। एक सदस्य-देश को पाँच देशों का बाजार अनायास मिल गया। जब इतना बड़ा बाजार मिल गया जहाँ उन्हें प्रतिद्वंद्विता नहीं करनी पड़ी, तब वे वस्तुएँ भी बनायी जाने लगीं जो बाहर से आती थीं। इन थोड़े ही दिनों में इस साझा-बाजार को इतनी बड़ी सफलता मिली कि इँगलैंड भी उसमें सम्मिलित होने को उत्सुक हो गया। आर्थिक क्षेत्र की सफलता के कारण इन देशों का राजनीतिक एकीकरण अपेक्षाकृत सरल हो गया है। यदि ऐसी ही प्रगति रही तो वह दिन दूर नहीं है जब 'योरोप का संयुक्तराष्ट्र' वास्तविक रूप में स्थापित हो जायगा। उसमें सम्मिलित होने से इँगलैंड के उस व्यापार को धक्का लगेगा जो वह राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) देशों से करता था, और जिससे अभी तक उसको सबसे अधिक लाभ था। किंतु उसे योरोप का साझा-बाजार राष्ट्रमंडल के व्यापार से अधिक लाभदायक मालूम होता है। इससे 'कामनवैल्थ' का विघटन हो जायगा और इँगलैंड यथार्थ अर्थ में योरोप का अंग बन जायगा। राष्ट्रमंडल के देशों पर––विशेषकर भारत पर––इँगलैंड के साझा-बाजार में सम्मिलित होने का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। हमारा चौथाई निर्यात इँगलैंड को होता है। इससे हमारे विदेशी व्यापार को बड़ा धक्का लगेगा।

इस प्रकार के क्षेत्रीय संगठन का दूसरा प्रयत्न अफ्रीका में हो रहा है। अफ्रीका के अधिकांश देश हाल ही में स्वतंत्र हुए हैं और उनकी व्यापारिक और राजनीतिक परम्पराएं भी भिन्न-भिन्न रही हैं। वे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं पर उनमें कच्चे माल की बहुतायत है। राजनीतिक दृष्टि से अफ्रीका में कई दल बन गये हैं। एक 'कासाब्लैंका' दल कहलाता है। इस दल की स्थापना उस सम्मेलन में हुई थी जो अफ्रीका के कासाब्लैंका नगर में हुई थी। इसमें मिस्र, घाना, गिनी आदि छः देश हैं। इन देशों की राजनीति उग्र वामपंथी है। दूसरा दल 'मोनरोविया' दल कहलाता है जो पश्चिमी ढंग की उदार राजनीति में विश्वास करता है और उसका लगाव पश्चिमी देशों से है। इसमें लाइबीरिया आदि १९ देश हैं। तीसरा दल 'ब्रेजाविल' दल कहलाता है। 'ब्रेजाविल' भूतपूर्व फ्रांसीसी कांगो की राजधानी है। स्वतंत्र होने के बाद अफ्रीका के भूतपूर्व फ्रांसीसी उपनिवेशों ने यह संगठन बनाया था, क्योंकि उन सबमें फ्रांसीसी भाषा चलती है और उनकी शासन-व्यवस्था तथा नीति एक सी है। इनके अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका आदि देश अभी किसी दल में नहीं हैं। जो उपनिवेश अभी स्वतंत्र नहीं हुए, उनके किसी दल में सम्मिलित होने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

योरोप के साझा-बाजार की सफलता को देखकर, और अफ्रीका के देशों को शक्तिशाली बनाने के लिए 'कासाब्लैंका' देश उसी प्रकार का एक संयुक्त अफ्रीका संघ बनाना चाहते हैं। उन्होंने अफ्रीका के विकास के लिए एक बैंक स्थापित करने, और आपसी व्यापार संबंधी समझौता करने के अतिरिक्त एक संयुक्त सेना बनाने का भी निश्चय किया है। किंतु जब तक 'मोनरोविया' और 'ब्रेजविल' दलों के देश भी इस संघ में सम्मिलित नहीं होते तब तक यह संघ प्रभावशील नहीं हो सकता। किंतु अफ्रीका के संगठन की दिशा में यह एक बड़ा प्रयत्न है, और इसमें बहुत बड़ी सम्भावनाएँ निहित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर-संवत्

पं० चन्द्रकान्त बाली

(१) अतीत की कड़ी--

सृष्टि-संवत् के अनन्तर दूसरा महत्त्वपूर्ण संवत् 'युधिष्ठिर-संवत्' है। कलि-संवत् से पूर्ववर्ती होने से उसका ऐतिहासिक महत्त्व स्वयंसिद्ध एवं अनन्य है। इससे पूर्व के अन्य किसी संवत् के प्रचलन की अधिसूचना इस समय तक नहीं है। यद्यपि गणक-समाज 'हरिश्चन्द्र-संवत्', 'परशुराम-संवत्', 'रावण-संवत्', 'राम-संवत्' तथा 'कृष्ण-संवत्' परम्परावश स्मरण करता चला आ रहा है, तथापि उन्हें पौराणिक समर्थन अभी तक नहीं मिल सका है। इस प्रसंग में यल्लयार्य को अधिकाधिक श्रेय मिलना चाहिए, जिसने संवत्-संग्रह में अनुपम उत्साह दिखाया है। गणक-समाज को छोड़कर किसी शिलालेख में, या ताम्रपत्र में अथवा किसी इतिहास-ग्रंथ में युधिष्ठिर-संवत् के अतिरिक्त किसी अन्य पुराकालीन संवत् का उल्लेख नहीं है। अलबत्ता 'सप्तर्षि-संवत्' का प्रयोग देखने को मिलता है; महाभारत में तथा पौराणिक आख्यानों में 'सप्तर्षि-संवत्' के चर्चे विद्यमान हैं, यथा--

१--सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम्।
--वायुपुराण

२--सप्तर्षयस्तदा प्राप्ताः विन्ध्ये पारिक्षिते शतम्।
---ब्रह्माण्डपुराण

३--ते तु पारिक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम।
--विष्णुपुराण

सम्प्रति 'सप्तर्षि-संवत्' का ज्ञान एवं उसकी व्यावहारिकता पौस्तक स्तर पर ही रह गयी है। इस पुराकालीन सप्तर्षि-संवत्-गणना के अतिरिक्त 'युधिष्ठिर-संवत्' ही एकमात्र ऐसा संवत् है, जो असंदिग्ध शब्दों में, अतीत की कड़ी का काम दे रहा है। अतीतकाल से लेकर ईसवी सन् १०८४ तक 'युधिष्ठिर-संवत्' के कहीं विरल और कहीं सतत प्रयोग मिलते हैं। और-तो-और, ईसा-पूर्व की सभी पुरातत्त्व-संबंधी सामग्री पर या तो युधिष्ठिर-संवत् अंकित है, या फिर प्राचीन शक-संवत्। राजतरंगिणी के कीर्तिमान् प्रणेता कल्हण ने मुख्यतया युधिष्ठिर-संवत् का ही अवलम्बन लिया है।

(२) ४० वर्ष कलिपूर्व--

(१) युधिष्ठिर-संवत् को कलि-ऊर्ध्ववर्ती किस केन्द्र-बिन्दु से आरंभ किया जाय अथवा उसे किस ढब से शृंखलान्वित किया जाय, कि जिससे इतिहास को परम्परा-बद्ध रखने में कोई अड़चन न आये--इसपर गंभीरता-पूर्वक सोचने की आवश्यकता है। महाभारत के पर्यालोचन से इतना तो ज्ञात हो जाता है कि धर्मपुत्र ने महाभारत के बाद पैंतीस वर्ष राज्य किया। अपने राज्य के छत्तीसवें वर्ष उसने राजा परीक्षित को सिंहासनासीन देखा और हिमालय-प्रस्थान के लिए चल पड़े। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर-शासन के दो अध्याय हैं। यथा--

(क) धृतराष्ट्र के वन-प्रस्थान से पूर्व: १५ वर्ष।

(ख) भगवान् कृष्ण के निधन तक: २१ वर्ष।

प्रसिद्ध गणक-चूड़ामणि वराहमिहिर के अनुसार कलि से चार वर्ष पूर्व महाराजा युधिष्ठिर का हिमालय-प्रस्थान सिद्ध होता है। कतिपय अन्य गणकों ने युधिष्ठिर के हिमालय-प्रस्थान एवं कलियुगारंभ के मध्य छह वर्षों का व्यवधान बताया है, जिस पर हम आगामी पंक्तियों में विस्तृत विचार कर रहे हैं। निष्कर्षतः युधिष्ठिर-संवत् को कलिपूर्व ठहरानेवाले दो पक्ष बन जाते हैं। एक पक्ष उसे ४० कलि-पूर्व (२१+१५+४=४०) बताता है, दूसरा पक्ष उसे ४२ कलि-पूर्व (२१ + १५ + ६=४२) बताता है। युधिष्ठिर-संवत् को ४० कलि-पूर्व माननेवाला पक्ष कहीं अधिक दृढ़ता से खड़ा है। ऐसा माननेवालों में गर्ग, वराहमिहिर तथा कल्हण का नाम प्रथम पंक्ति में आता है। कल्हण ने वराहमिहिर को आप्त माना है और उसे उद्धृत किया है, कल्हण का समय अपनी गणना के अनुसार १०८४ ईसवी है; वराहमिहिर ने गर्ग को आप्त माना है और उसे उद्धृत किया है, वराहमिहिर का समय भी १०० ईसा-पूर्व निश्चित है; गर्ग ने महाभारत का अनुसरण किया है; यह एक तरह से 'महाभारत-गर्ग-वराह-मिहिर-कल्हण' युधिष्ठिर-संवत् माननेवालों की शृंखला बन जाती है। इसके विपरीत दूसरे पक्ष की ऐसी सुदृढ़ स्थिति नजर नहीं आती। वराहमिहिर ने 'कुतूहलमंजरी' में लिखा है--

स्वस्ति श्रीनृपसूनुजशके शाके द्विवेदाम्बर-
त्रैमानाकमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले वसुतिथावादित्यवारादभूत्
वेदांगे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशीभिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें युधिष्ठिर-संवत् का निर्भ्रान्त उल्लेख नहीं है। केवल अन्वय-संगति के बल पर इसमें से युधिष्ठिर-संवत् का संदोहन किया जा सकता है। इसी अधार पर उसे ४० कलि-पूर्व भी लिखा जा सकता है। इसमें कठिनाई केवल इतनी है कि श्लोक में "श्रीनृपसूनुज' का युधिष्ठिरपरक अर्थ घटित करना जटिलता से शून्य नहीं है। इतना सब होने पर भी इस श्लोक में ३०४२ के अंक और 'जय' वर्ष का उल्लेख बड़े महत्त्व का है। ३०४२ और 'जय' वर्ष की अन्विति इस प्रकार है—

(क) युधिष्ठिर-संवत् का आरंभ प्रभव-विभव-शुक्ल आदि साठ संवत्सरों में से यदि 'प्रमादी' नामक वर्ष से मान लें तो 'जय' वर्ष तक ६०×५०=३०००+४२=३०४२ के अंक ठीक हैं।

(ख) कलि-संवत् का आरंभ 'विजय' नामक संवत्सर से सर्वथा निश्चित है। विजय से गणना करने पर ६०×५०=३०००+२=३००२ 'जय' संवत्सर ठीक है।

दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि 'जय' वर्ष तक युधिष्ठिर-संवत् तथा कलि-संवत् के मध्य ४० वर्षों का व्यवधान अकाट्य है। इसे हम एक अन्य पद्धति से भी जान सकते हैं। यल्लयार्य ने प्रतिपादित किया है कि 'विक्रम (मालव) संवत्' कलि-संवत् के ३०४३ वर्ष बीतने पर आरंभ हुआ। यथा—

(क) बाणवेदनवचन्द्रवर्तिताः तेऽपि शूद्रकसमाः प्रकीर्तिताः।

—शूद्रक-संवत् : कलि-संवत् १९४५+

(ख) नागनंदवियदिन्द्रवर्तिताः तेपि विक्रमसमाः प्रकीर्तिताः।

—विक्रम-संवत् : शूद्रक-संवत् १०९८=

अर्थात् कलि-संवत् के १९४५ बीतने पर शूद्रक-संवत् आरंभ हुआ और शूद्रक-संवत् के १०९८ बीतने पर विक्रम-संवत् आरंभ हुआ; इस प्रकार दोनों के अंक मिलाने पर १९४५+१०९८=३०४३ कलि-संवत् से विक्रम-संवत् का आरंभ निश्चित हो जाता है। साठ-संवत्सरों की चक्रवत् भ्रमण-पद्धति से युधिष्ठिर-संवत्, कलि-संवत् तथा विक्रम-संवत् की अन्विति को निम्न सारिणी में स्पष्ट देख सकते हैं—

क्रमांक	संवत्सर	युधिष्ठिर-संवत्	कलि-संवत्	ईसवी
२८	जय	३०४२	३००२	१०० पूर्व
३३	विकारी	३०४७	३००७	९५ ,,
३८	क्रोधी	३०५२	३०१२	९० ,,
४३	सौम्य	३०५७	३०१७	८५ ,,
४८	आनन्द	३०६२	३०२२	८० ,,
५३	सिद्धार्थ	३०६७	३०२७	७५ ,,
५८	रक्ताक्ष	३०७२	३०३२	७० ,,
३	शुक्ल	३०७७	३०३७	६५ ,,
८	भाव	३०८२	३०४२	६० ,,
९	युवा	३०८३	३०४३	५९ ,,
१०	धाता	३०८४	३०४४	५८ ,,
११	ईश्वर	३०८५	३०४५	५७ ,,

चाहे 'विक्रम-संवत्' का आरंभ 'ईश्वर' (५७ ईसा-पूर्व) संवत्सर से मानें या 'धाता' (५८ ईसा-पूर्व) नामक संवत्सर से मानें, युधिष्ठिर-संवत् और कलि-संवत् के मध्य ४० वर्ष का व्यवधान अखण्डनीय है।

(२) यशस्वी ज्योतिर्विद् वराहमिहिर ने 'कुतूहल-मंजरी' में जो समय प्रतिपादित किया है, उसे ४० कलि-पूर्व देख चुके हैं; उसकी एक अन्य प्रमाण से परीक्षा करते हैं। गर्ग को प्राप्त माननेवाले वराहमिहिर को उद्धृत करनेवाले कल्हण ने लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्-द्वि-क-पंच-द्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च।

अर्थात् जब महाराजा युधिष्ठिर शासन कर रहे थे तो उस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे। सप्तर्षि-संवत् के २५२६ वर्ष-पश्चात् उस राजा का शककाल आरंभ हुआ। यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि श्लोक में युधिष्ठिर-संवत् एवं सप्तर्षि-संवत् को अभिन्न मान लिया गया है, जो कि अपनी दृष्टि में अशुद्ध है। इसमें उटंकित शककाल भी प्रसिद्ध शककाल से अभिन्न नहीं है। यह शककाल वस्तुतः ६१६ ईसा-पूर्व चला था। राजतरंगिणी के प्रणेता कल्हण ने इसी शककाल का संकेत दिया है। प्रस्तुत शककाल को न समझने के कारण भारतीय और यूरोपीय विद्वानों ने 'राजतरंगिणी' को उलट-पुलट प्रतिपादित किया है। वस्तुस्थिति यह है कि राजतरंगिणी का इतिहास शक-काल के १०७०वें वर्ष से, तदनुसार युधिष्ठिर-संवत् के ३५९६वें वर्ष से आरंभ होता है। यथा—

(क) शककाल १०७०+

युधिष्ठिर सं० २५२६=३५९६।

यह गणना राजतरंगिणी के अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

(ख) गोनन्दादि शासनकाल १२६६ +
अन्य ५२ राजा २३३०=३५९६।

निष्कर्ष यह कि--

(क) वराहमिहिर के 'जय' वर्ष में ३०४२ के अंक लिखने से,

(ख) ६१६ ईसा-पूर्व के शककाल की नई शोध से,

(ग) कल्हण द्वारा निश्चित रूप से 'युधिष्ठिर-संवत्' के प्रयोग से,

युधिष्ठिर-संवत् को ४० कलि-पूर्व निश्चित करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं।

(३) **युधिष्ठिर-संवत् के विकल्प--**

जिस नाम के साथ 'संवत्-गणना' का संबंध हम जोड़ रहे हैं, उस 'संवत्-गणना' के साथ कुछ अन्य नाम भी सम्बन्धित नजर आते हैं, जिनका स्पष्टीकरण असामयिक न होगा।

(क) युधिष्ठिर-संवत् का अन्य नाम, जो विद्वानों को अधिक भ्रान्त रख सकता है, 'पाण्डव-संवत्' प्रचलित है। यदि 'पाण्डव-संवत्' युधिष्ठिर-संवत् का पर्याय है तो इस विषय में हमें कुछ नहीं कहना। परन्तु वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। यल्लयार्य ने 'पाण्डव-संवत्' के आरंभ-बिन्दु का निर्देश इस प्रकार दिया है--

कल्यब्दाः रूपरहिताः पाण्डवाब्दाः प्रकीर्तिताः

इस श्लोकांश के दो अर्थ हैं--(अ) कलि-संवत् के छह वर्ष-पश्चात् 'पाण्डव-संवत्' चला; अथवा (आ) कलि-संवत् से छह वर्ष-पूर्व 'पाण्डव-संवत्' चला। श्लोक के प्रथम अन्वय पर हमें आपत्ति है; कलि-संवत् ६ में न तो परीक्षित् ने कोई विशेष कार्य किया, न यज्ञ किया, न संवत्-स्थापन आदि कार्य किया; इस समय पाण्डवों का हिमालय-प्रस्थान भी सिद्ध नहीं होता। अतः कलि-संवत् ६ में पाण्डव-संवत् की स्थापना निराधार है, और अन्य स्रोतों से भी इसे समर्थन प्राप्त नहीं है। श्लोक के दूसरे अन्वय पर विचार करने की आवश्यकता है। यदि महाभारत के तत्काल पश्चात् 'युधिष्ठिर-संवत्' की स्थापना मान ली जाय तो कलि-संवत् से ६ वर्ष पूर्व पाण्डवों का हिमालय-प्रस्थान असंभव नहीं माना जा सकता। अपनी गणना के अनुसार कलि से ४ वर्ष-पूर्व पाण्डवों का राज्य त्याग संभव है; यल्लयार्य के अनुसार ६ कलि-पूर्व उनका हिमालय-प्रस्थान बनता है। ईसका निर्णय कि वास्तविकता ४ कलि-पूर्व है, या ६ कलि-पूर्व, अधिक-से-अधिक बाह्य साक्ष्यों पर निर्भर है।

(ख) कुछ विद्वान् 'महाभारत संवत्' तथा 'युधिष्ठिर-संवत्' को अभिन्न मानते हैं।

यह मत भी हमें समीचीन प्रतीत नहीं होता। महाभारत-संग्राम के बाद महाराजा युधिष्ठिर सिंहासनासीन हो गये थे, यह तो ठीक है; पर क्या उन्होंने उस समय 'युधिष्ठिर-संवत्' की स्थापना भी कर दी होगी--इसमें हमें संदेह है। यदि अपना अनुमान निराधार नहीं है तो महाराजा युधिष्ठिर ने संग्रामोत्तर राजनयिक यज्ञ किया होगा, और उसी शुभावसर पर प्रजा को ऋणमुक्त करके 'युधिष्ठिर-संवत्' की स्थापना की होगी। स्मरण रहे, पौराणिक मान्यता के अनुसार कोई राजा उस समय अपने नाम से संवत् चलाता है, जब उसकी प्रजा में कोई व्यक्ति ऋणवान् शेष न रहे। धर्मावतार महाराजा युधिष्ठिर ने अवश्य इस धार्मिक प्रतिबंध का पालन किया होगा। यदि यह सत्य है तो महाभारत संग्राम एवं युधिष्ठिर-संवत् के मध्य ५-६ वर्ष का व्यवधान आवश्यक है। ऐसा है भी, जैसा कि हम अगली पंक्तियों में देखेंगे। हमारे इस अनुमान को एक पौराणिक आधार मिल जाता है, जिस पर विचार-विनिमय कर लिया जाय। यथा--

१--'प्लवंग' नामक संवत्सर में महाभारत संग्राम; अर्थात् ३१४७ ईसा-पूर्व।

२--'प्रमादी' नामक संवत्सर में 'युधिष्ठिर-संवत्' की स्थापना, अर्थात् ३१४१ ईसा पूर्व, ४० कलि-पूर्व एवं महाभारत से ६ वर्ष-पश्चात्।

३--धृतराष्ट्र का वन-प्रस्थान 'प्रभव' नामक संवत्सर में हुआ, अर्थात् ३१२७ ईसा-पूर्व तथा २६ कलि-पूर्व, तदनुसार महाभारत से २१ वर्ष-पश्चात्।

४--युधिष्ठिर का हिमालय-प्रस्थान 'सर्वजित्' नामक संवत्सर में हुआ, अर्थात् ३१०७ ईसा-पूर्व, ६ कलि-पूर्व, महाभारत से ४० वर्ष-पश्चात् तथा युधिष्ठिर-संवत् ३५ में। इसी समय परीक्षित् छत्रधारी हुआ।

५--'विजय' नामक संवत्सर में कलि-आरंभ।

इसकी स्पष्टकारिणी सारिणी इस प्रकार है--

क्रमाङ्क	संवत्सर	महाभारत	युधिष्ठिर-संवत्	कलि-संवत्	ईसा-पूर्व
४१	प्लवंग	१	--	--	३१४७

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमांक	संवत्सर	महाभारत	युधिष्ठिर-संवत्	कलि-संवत्	ईसा-पूर्व
४७	प्रमादी[1]	७	१	--	३१४१
१	प्रभव[2]	२१	१५	--	३१२७
२१	सर्वजित्[3]	४१	३५	--	३१०७
२७	विजय[4]	४७	४१	१	३१०१

निष्कर्ष यह कि यल्लयार्य का कथन पाण्डवाब्द को ६ कलि-पूर्व सिद्ध करता है तो उसका अभिप्राय युधिष्ठिर-संवत् नहीं है, बल्कि पाण्डवों का वन-प्रस्थान है।

(ग) तीसरा पक्ष ऐसा भी है, जो कलि-संवत् एवं युधिष्ठिर-संवत् को अभिन्न मानता है। इस पंक्ति में खड़े व्यक्तियों में डाक्टर राजबली पाण्डेय प्रमुख स्थान पर हैं। उनका कथन है--"युधिष्ठिर-संवत् के प्रारंभ तथा शक-संवत् की स्थापना में जिसका यहाँ उल्लेख है २५२६ वर्षों का अन्तर है। युधिष्ठिर-संवत् का वर्तमान-वर्ष ५०५२ है। अतः उपरिलिखित शक-संवत् का प्रारंभ (५०५२-२५३६=२५२६) वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम-संवत् के ५१५ वर्ष पूर्व हुआ। आमराज के अनुसार वराह-मिहिर की मृत्यु शकसंवत् ५०९ में हुई। अतः यह घटना ५१८-५०८ विक्रम-संवत् से ९ वर्ष पहले घटित हुई थी। .....५१८ ई० पूं० में आरंभ होनेवाले शक-संवत् का ज्ञान गर्गसंहिता के लेखक को था जिसकी रचना शुंगकाल में हुई थी। अतः आमराज द्वारा प्रयुक्त शक-संवत् के उल्लेख से हम वराहमिहिर तथा कालिदास दोनों को प्रथम शती ई० में रख सकते हैं।"

इस कथन की छानबीन करने की आवश्यकता है--

१--युधिष्ठिर-संवत् तथा कलि-संवत् एक नहीं हैं। यदि यह एक हैं तो वराहमिहिर उटंकित श्लोक में आये 'जय' संवत्सर में ३०४२ के अंक घटित करके दिखाया जाय।

२--शक-संवत् ५१८ ईसापूर्व नहीं, बल्कि ५१६ ईसापूर्व में आरंभ हुआ था। यदि भ्रमवश युधिष्ठिर-संवत् एवं कलि-संवत् को अभिन्न मान भी लिया जाय तो भी शक-संवत् ५७६ ईसा-पूर्व में आरंभ होना चाहिए, ५१८ ई० पू० की बात तो एकदम निराधार है।

३--आमराज का कथन भी सर्वथा भ्रान्तिग्रस्त है। वराहमिहिर शक-संवत् ५१६ में 'कुतूहल-मंजरी' के प्रणयन में रत थे, वे उससे भी सात वर्ष पहले (५०९ शक संवत् में) मर कैसे गये थे? यह अभी तक पता नहीं चल सका।

इस भ्रमजाल को सारिणी की कसौटी पर जरा देख लें--

क्रमांक	संवत्सर	युधिष्ठिर	प्रा० शक	ईसवी
५२	कालयुक्त	२५२६	००	६१६ पू०
३२	विलम्ब	२६२६	१००	५१६"
१२	बहुधान्य	३०२६	५००	११६"
२१	सर्वजित्[1]	३०३५	५०९	१०७"
२६	नन्दन	३०४०	५१४	१०२"
२७	विजय	३०४१	५१५	१०१"
२८	जय[2]	३०४२	५१६	१००"

डॉ० राजबली पाण्डय कलि-संवत् तथा युधिष्ठिर-संवत् को अभिन्न मान रहे हैं। आशा है, उन्होंने प्रस्तुत उलझन का समाधान सोच रखा होगा।

युधिष्ठिर-संवत् के विषय में किंचित् भ्रान्तिग्रस्त एक अन्य सज्जन भी हैं--पंजाब के महान् रिसर्च-स्कॉलर श्री भगवद्दत्तजी। उनका लिखना है--

"वराहमिहिरनिर्दिष्ट शक युधिष्ठिर शक के २५२६ वर्ष पश्चात् और विक्रम संवत् से ५५४ वर्ष पूर्व चला।"

अर्थात् ५५४ विक्रम-पूर्व को +५८=६१२ ईसा पूर्व कह सकते हैं। इसमें तथा अपनी शोध में केवल तीन

---

[1] युधिष्ठिर-संवत् एवं महाभारत के मध्य छह वर्ष का व्यवधान एक श्लोक से समर्थित है।

[2] धृतराष्ट्र वन-प्रस्थान

[3] १--श्रीकृष्ण-निधन, २--परीक्षित्-अभिषेक, ३--हिमालय-प्रस्थान, ४--पाण्डव-संवत् की स्थापना।

[4] (क) कल्यब्दाः रूपरहिताः पाण्डवाब्दाः प्रकीर्तितः

(ख) वत्सराणां दशकं तथा कलियुगात् गतम्।

जब परीक्षित्-अभिषेक के १० वर्ष व्यतीत हुए थे, तब कलियुग के तीन तथा महाभारत के पच्चास वर्ष बीत गये थे।

---

[1] --आमराज का कथन है, ५०९ शक-संवत् में वराहमिहिर मर गया।

[2] --वराहमिहिर का कथन है: ३०४२ जय वर्ष में 'कुतूहलमंजरी' रची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष का अन्तर है। श्रीयुत भगवद्दत्तजी स्वयं युधिष्ठिर-संवत् को ३७ कलि पूर्व मानते हैं। इसमें 'मतभेद' की गुंजायश है, अन्य की नहीं।

(४) **एक निर्णायक श्लोक**--

उपर्युक्त उपलब्धियों तथा विकल्पों का निर्णायक एक श्लोक है, जिसके अनेक अर्थ किये गये हैं; यथा--

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारताद् आहवादितः
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पंचसु।
पंचाशत्सु कलौ काले षट् सु पञ्चशतासु च
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।

इस श्लोक के तीन अर्थ प्रस्तुत हैं--

(१) कीलहार्न ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है--"३०+३०००+७००+५=३७३५ कलि-संवत् तथा ५०+६+५००=५५६ शक भूभुजों के वर्ष में है।" इस अर्थ की बोधिका सारिणी इस प्रकार है--

संवत्सर	कलि-संवत्	मालव-संवत्	शक	ईसवी
२६ नन्दन	००	—	—	३१०२ पू०
१० धाता	३०४४	१	—	५८ पू०
२६ नन्दन	३१८०	१३७	१	७९ पश्चात्
३१ प्लवंग	३७३५	६९२	५५६	६३४ "

(क) इस पर टिप्पणी करते हुए श्री भगवद्दत्त ने लिखा है: "कीलहार्न ने लेख का पाठ बदल कर अपना इष्ट अर्थ निकाला है। यह विद्वत्ता पर कालुष्य लेप है।"

(ख) कीलहार्न के अर्थ पर अपनी दो आपत्तियाँ हैं; पहली यह कि कीलहार्न ने अन्य पण्डितों की तरह महाभारत-संवत् तथा कलि-संवत् को अभिन्न मान लिया है, दूसरी यह कि इसमें किन शक राजाओं के ५५६ वर्ष गिनाये हैं? ज्यों ही शक संवत् का विश्लेषण किया जायगा, त्यों ही कीलहार्न की भूल उभरकर सामने आ जायेगी।

(२) श्री भगवद्दत्तजी ने इसका अर्थान्वय इस प्रकार दिया है: "इसके विपरीत इसके सरल अर्थ दो हो सकते हैं। पहला अर्थ, ३०+३०००+१०७+५०० +१०=३६८७ कलि के बीतने पर जब शक भूभुजों के १०७+५००=३६३७ वर्ष व्यतीत हुए। दूसरा अर्थ, ३०+३०००+ वर्ष भारत-युद्ध के चले जाने पर उस कलि में शक भूभुजों के ५५६ वर्ष व्यतीत हो गये।" इस अर्थ की प्रतिपादिका सारिणी इस प्रकार है--

संवत्सर	युधिष्ठिर-शक	मालव-संवत्	शक	ईसवी
३६ परिधावी	००	—	—	३१४२ पू०
१० धाता	३०८४	१	—	५८ पू०
२५ खर	३२१९	१३६	००	७८ पश्चात्
२५ खर[1]	३६३९	५५६	४२०	४९८ "

(क) श्री भगवद्दत्त के प्रस्तुत अर्थ में पहला दोष क्रमभंग का है। श्लोक में प्रत्येक संख्या के लिए पृथक्-पृथक् घटक हैं, यथा--

दहाई: त्रिंशत्सु--३०,
हजार: त्रिसहस्रेषु--३०००,
सैकड़ा: सप्ताब्दशत युक्तेषु--७००,
ईकाई: पंचसु--५।

कीलहार्न ने अर्थ करते समय इस क्रम संगति को सामने रखा है। इसके विपरीत श्री भगवद्दत्तजी ने 'सैकड़ा' को दो बार गिनने का यत्न किया है, यथा--सप्ताब्द-शतयुक्तेषु--१०७ तथा शतेष्वब्देषु पंचसु--५००। किसी भी घटक को दो बार गिनने की प्रथा नहीं है।

(ख) प्रस्तुत अर्थ में दूसरी आपत्ति यह है कि मान्य महोदय ने मालव-विक्रम-संवत् को शक-संवत् मान लिया है, जो सर्वथा अनैतिहासिक है। मालव-संवत् को शकान्त-काल तो कह सकते हैं, पर शक-संवत् नहीं।

(ग) इस अर्थ पर तीसरा आक्षेप यह है कि श्री भगवद्दत्त जी ने महाभारत संवत् तथा युधिष्ठिर-संवत् को अभिन्न मान लिया है, जो कि अवैज्ञानिक है।

(३) अपनी गणना के अनुसार उक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए: ३०+३०००+७०० +५=३७३५ वें महाभारत-संवत् में शक (शालिवाहन) राजा के ५५६ वर्ष बीत गये। उक्त अर्थ के तीन आधार हैं--(१) महाभारत संवत् युधिष्ठिर-संवत् से ६ वर्ष पूर्व है। (२) कीलहार्न की अर्थपद्धति वैज्ञानिक है एवं हमें मान्य है। (३) शकराजा से यहाँ तात्पर्य शालि-वाहन-संवत् से है, जो ३३ ईसा-पश्चात् चला था। इसकी सारिणी इस प्रकार है--

---

[1] श्री भगवद्दत्तजी ने ३७ कलि पूर्व युधिष्ठिर-संवत् माना है, और ५७ ईसा-पूर्व विक्रम-संवत्। इस गणना में २ वर्ष कम करने से अनुपात ठीक हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्सर	महा-भारत	युधि-ष्ठिर	शालि-वाहन	ईसवी
३१ प्लवंग	१	—	—	३१४७ पू०
३६ परिधावी	६	००	—	३१४२ "
२९ विश्वावसु	३१७९	३१७३	००	३२ पश्चात्
२५ खर	३२२५	३२१९	४६	७८ "
४५ दुर्मति	३७३५	३७२९	५५६	५५८ "

इस अर्थ में 'महाभारत' शब्द की उपेक्षा नहीं की गयी है। शक राजाओं का अर्थ भी संगत है। अतः प्रस्तुत श्लोक के अर्थ-निर्धारण में ६३४ ईसवी, ४९८ ईसवी तथा ५८८ ईसवी के विकल्प में 'भारताहव' शब्द निर्णायक है। यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है 'शालिवाहन संवत्' मालव संवत् से ९० वर्ष पश्चात् चला था।

स्पष्ट हो, महाभारत एवं युधिष्ठिर-संवत् में ६ वर्ष का व्यवधान असंभव नहीं है। अनुमानतः, अभिषिक्त महाराजा युधिष्ठिर ने महासमर के छह वर्ष पश्चात् अश्वमेध यज्ञ किया होगा और प्रजा को ऋणमुक्त करके अपने नाम से संवत् चलाया होगा। अनुमानतः राजा परीक्षित् ने भी द्वापर युग में १० वर्ष राज्य किया होगा। यथा—

वत्सराणां दशकं तथा कलियुगात् गतम्।

इस श्लोक में 'तथा' विभाजक रेखा का काम दे रहा है। इस समूची स्थिति का सर्वेक्षण करने के बाद यह निर्णय करना कठिन नहीं—

(१) महासमर तथा युधिष्ठिर-संवत् के मध्य ६ वर्ष का व्यवधान ठीक है।

(२) महाराजा युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया; अर्थात् युधिष्ठिर संवत् ३० तक।

(३) राजा परीक्षित् ने ६० वर्ष राज्य किया। १० द्वापर + ५० कलियुग।

(४) मृत्यु के समय परीक्षित की आयु ९० वर्ष होगी; ३० + १० + ५० = ९०।

निष्कर्ष यह कि—

१—अतीत की कड़ियों में केवल 'युधिष्ठिर-संवत्' ही आज तक पहुँच सका है।

२—युधिष्ठिर-संवत् तथा कलि-संवत् में ४० वर्ष का व्यवधान अकाट्य है।

३—पाण्डव-संवत् युधिष्ठिर के हिमालय-प्रस्थान से गिना जाता है, जो कि ६ कलिपूर्व मान्य है।

४—महासमर एवं युधिष्ठिर-संवत् भी अभिन्न नहीं है।

आज युधिष्ठिर-संवत् का ५१०३वाँ (१९६१ ईसवी) वर्ष है।

चहकीं वन-चिड़ियाँ

श्री विलासबिहारी

चिहुँक-चिहुँक चहकीं वन-चिड़ियाँ।
डूब रही पश्चिमी गगन पर—
वह फीकी मनचली चँदनियाँ॥
मंदिर पवन में झिलमिल-झिलमिल
एक दूसरे से वे मिल मिल
डोल रहे हैं पात-पात में,
आमों की मंजरित टहनियाँ।
जाग पड़ा है वन-वन उपवन
कसक उठा फूलों का तनमन
निरख रहीं प्राची की किरणें
रेशम-सी सुगबुगी पँखुड़ियाँ।
बोल विहग! तू सुभग बोल रे!
मानव-मन की डोर खोल रे!
आज जागरण भर जीवन में
सोयी थकी-थकी ये दुनियाँ।
चिहुँक-चिहुँक चहकीं वन-चिड़ियाँ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सच्चे संत थे वे

श्री वियोगी हरि

सिहों के लेंहडे नहीं, हंसों की नहिं पाँत
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात ।।

कबीरदास की इस साखी को टंडनजी प्रायः अपने व्याख्यानों में कहा करते थे। ऐसों को--अर्थात् सिहों, हंसों, लालों और साधुओं को समूहों में नहीं पाया जाता। किसी कल-कारखाने में इनका कोई उत्पादन नहीं हुआ करता। किसी संघ या संगठन के अन्दर इनको बाँधा नहीं जा सकता। किन्तु समूहों, संगठनों और संघों को ऐसे साधुपुरुष ही शक्ति पहुँचाते हैं, उनको प्रेरणा देते हैं और मार्ग दिखाते हैं। उनके पीछे-पीछे कोई चलना चाहें, सच्चाई और दृढ़ता के साथ, तो वे चल सकते हैं। मगर पीछे चलने की लालसा रखनेवालों से वे यह साफ-साफ कह देते हैं कि,

'जो घर जाले आपना, चले हमारे साथ।'

इस कड़ी शर्त को सुनकर उनका अनुगमन करने के इच्छुक तब झिझक जाते हैं, आगे पैर रखने की वे हिम्मत नहीं करते। बहुत करके वे व्यापार करने चले थे, पर प्रत्यक्ष लाभ के स्थान पर जब उन्हें घर फूंक देने की सलाह दी गयी, तब हाथ में अधजली लकड़ी लिये हुए किसी पागल के पीछे-पीछे भला वे क्यों जायें? फलतः साधुओं की जमात नहीं बन सकी। उनका संघ नहीं बन सका। उन्होंने अकेले ही अपना रास्ता बनाया और अकेले ही उसे नापा। परन्तु उनकी करुणा ने सदा चाहा यही कि प्रत्येक मानव उनके मार्ग का अनुसरण करे और उनको जो अमृत-फल मिले, उसमें हर किसी का भाग हो, भले ही उनका कोई अनुगामी न बना हो, पर उनको जो रस-लाभ हो उससे कोई भी वंचित न रहे। यही तो संतों की दृष्टि है, यही तो उनका अपना मार्ग है।

टंडनजी इसी मार्ग पर जीवन भर चलते रहे। कितने ही ऐसे प्रसंग उनके जीवन के हमारे सामने हैं, जब ऐसी-ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियाँ आईं कि बहुत बड़ों-बड़ों के पैर भी डगमगा जाते, पर टंडन जी स्थाणु की तरह वैसे ही वहाँ स्थिर रहे। असत्य के साथ किसी भी कीमत पर उन्होंने समझौता नहीं किया। उनको 'सनकी' कहा गया, 'जिद्दी' कहा गया, पर जिस बात को यथार्थ माना, सही समझा उससे पीछे हटना तब तक उन्होंने गलत माना, जब तक वह अन्यथा सिद्ध नहीं हुआ। जिस बात को लोगों ने उनकी जिद्द कहा, उसमें भी टंडनजी ने अपना संयम, वाणी और क्रिया में, बनाये रखा। उनके मतभेद ने मनभेद को कभी जगह नहीं दी। अपने सिद्धान्तों पर वे चट्टान की तरह सदा दृढ़ रहे।

चंचला राजनीति टंडनजी के समीप आने में हमेशा झिझकती रही। उसे वह जैसे अजनबी से मालूम दिये। गांधीजी की तरह वे भी धर्म की 'चेरी' बनाकर राजनीति को प्रतिष्ठा देना चाहते थे। किन्तु वह तैयार नहीं हुई। उसे तो अपने ही रंग में खेलते रहना पसन्द था। टंडनजी ने सिद्धान्त की रक्षा के लिए, राजनीति के तन पर से मैल उतारने के लिए कांग्रेस का अध्यक्ष-पद भी त्याग दिया। कुछ साथियों ने उनके इस कदम को उनकी कमजोरी समझा, लेकिन उसी शाम को, जिस दिन टंडनजी ने अध्यक्ष की गद्दी छोड़ी, कई ऐसे मित्र उनकी ऊँचाई के आगे नतमस्तक हो गये, जिन्होंने कुछ ही घंटों पहले उनका विरोध किया था। उनकी आँखों में आँसू थे और मन में पछतावा, कि वे टंडन जी की गहराई और दूरदर्शिता को ठीक तरह से समझ नहीं पाये थे। उनका कोई दोष नहीं था। राजनैतिक दलों के लोगों की दृष्टि क्योंकि अक्सर ऐसी ही हुआ करती है, जो बहुमत को, सिद्धान्तों और आदर्शों की आहुतियाँ देकर भी, संगठन के अन्दर बनाये रखना चाहती है। यह दृष्टि तात्कालिक 'फायदा' को देखना चाहती है, भले ही उस फायदे से उन सिद्धान्तों की जड़ कटती हो, जिनपर वे संगठन खड़े किये जाते हैं। इस सचाई का पता तुरन्त नहीं, किन्तु कुछ समय बाद ही चलता है, और गलत कदम उठाने का फल भी वैसा ही भोगना पड़ता है। टंडनजी की चेतावनी पर तत्कालीन राजनीतिज्ञों ने ध्यान नहीं दिया। टंडनजी के हृदय की विशालता ही कहनी चाहिए कि कांग्रेस के अध्यक्ष-पद को उन्होंने उसी प्रकार त्याग दिया जैसे किसी गजेन्द्र के मस्तक पर पड़ी हुई फूल-माला खिसक जाये, और उसे इसका पता भी न चले। परन्तु कांग्रेस से वे अलग नहीं हुए। कुछ लोगों ने उस समय की परिस्थितियों से अनुचित लाभ उठाना चाहा, कि टंडनजी को अपने दलों में खींचकर शामिल कर लें। पर उनका यह विचार हास्यास्पद था। एक कर्त्तव्यशील सृर्जन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह टंडनजी तो कांग्रेस के शरीर में से विष को निकालना चाहते थे, क्योंकि उसके प्रति उनके हृदय में गहरी श्रद्धा-भावना निहित थी। उसे वे छोड़ कैसे सकते थे? भारत को स्वतंत्र करने में कांग्रेस ने जो महान् त्याग और बलिदान किये थे, उन्हें भुलाना उनके लिए असंभव था। आग्रह उनका मात्र यही था कि इस 'भोग-युग' में कांग्रेस अपने-आपको कहीं कलुषित न कर बैठे। इसीलिए एक सतत जागृत प्रहरी की तरह उन्होंने भोग-लोलुपता के हर अवसर पर उसे सचेत किया। उनके लिए यही सर्वथा उचित था। गांधीजी के मन में भी ऐसी ही आशंका थी। उन्होंने तो यहाँ तक सलाह दी थी कि कांग्रेस अपने आपको समाप्त करके लोक-सेवा-संघ में परिणत हो जाये।

राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए जीवन भर रचनात्मक दिशा में कार्य करनेवाले टंडनजी को भारत का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन अत्यन्त क्लेशदायक लगा। गांधीजी को भी यह महाविष की गोली निगलनी पड़ी। जो होनहार थी, वह होकर रही। किन्तु राष्ट्रीय ऐक्य का सुखद स्वप्न टंडनजी का तब भी भंग नहीं हुआ, यद्यपि उसे प्रायः गलत भी समझा गया। हिन्दी के प्रति उनके हृदय में जीवन भर जो अगाध श्रद्धा-भक्ति रही, उसके मूल में राष्ट्रीय ऐक्य की यही भावना थी। उनको हिन्दी का 'फेनेटिक' कहा गया, पर उन्होंने इस गलत आरोप पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। उनका तेजस्वी स्वर जीवन के अंतिम क्षण तक मंद नहीं पड़ा। भावात्मक एकता के लिए आज अनेक प्रकार के प्रयत्न किये जा रहे हैं—अन-जान में कुछ ऐसे भी प्रयत्न, जिनका परिणाम, तुष्टीकरण की नीति के कारण, उलटा भी आ सकता है। हैरानी भी कभी-कभी प्रकट की जाती है कि आखिर भावात्मक ऐक्य सध क्यों नहीं रहा। कोई-कोई तो यहाँ तक कह बैठते हैं कि 'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' मर्ज तो बढ़ेगा ही, क्योंकि इलाज उलटा हुआ, गलत हुआ। निदान सही हो और उपचार भी वैसा ही, और उससे भी बढ़कर आहार-विहार में संयम रखा जाये, तो अस्वस्थ कोई हो नहीं सकता, फिर वह कोई व्यक्ति हो चाहे कोई राष्ट्र। हिन्दी के प्रचार और प्रसार को जब साम्प्रदायिक तक कहा जाने लगा और तुष्टीकरण की कृत्रिम नीति को राष्ट्रीय घोषित किया गया तब मूल रोग में वृद्धि तो होगी ही। टंडनजी को यह अविवेक कभी सहन नहीं हुआ। इस तथा ऐसे ही दूसरे विचारों में उन्होंने राष्ट्र की शक्ति हीनता को देखा। संसद में तथा बाहर भी समय-समय पर उन्होंने ऐसे-ऐसे गलत कदमों के विरुद्ध आवाज उठाई रोग-शय्या पर पड़े-पड़े भी उनको मर्मान्तिक वेदना होती थी, जब वे देखते थे कि राष्ट्रीय ऐक्य के जबरदस्त माध्य हिन्दी को राजनैतिक खिलवाड़ बनाया जा रहा है; इतना ही नहीं, किन्तु अँगरेजी को वह स्थान और वह पद दिया जा रहा है, जो अँगरेजों के राज्य-काल में भी उसे प्राप्त नहीं था। उनका क्षीण, किन्तु तेजस्वी स्वर अन्तर्वेदना से भरा हुआ निकलता था कि, "आज मैं यह क्या देख रहा हूँ! स्वराज्य आने के पहले जो देश-भक्ति लोक-नेताओं में पायी जाती थी, आज वह भी देखने में नहीं आ रही है।"

समाज के जीवन में जिस शील, संयम और नैतिकता को टंडनजी देखना चाहते थे, वह सब दिन-प्रति-दिन क्षीण होता जा रहा था। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान देश के ये दो टुकड़े हुए सो हुए, पर इससे भी बुरा जो हुआ वह था असत्य, अनीति, अतिलोभ और अतिभोग का समाज के प्रत्येक क्षेत्र पर आक्रमण। स्वराज्य के इन उत्तरकालीन वर्षों में इन असुरों ने जिस प्रकार अपने हाथ-पैर फैलाये उसे देख-सुनकर टंडनजी को भारी मनोव्यथा हुई। वे कुछ कर नहीं पा रहे थे और अन्दर-ही-अन्दर उनका हृदय घुटता था। अंतिम दिनों में कुछ-कुछ ऐसी ही मनोदशा सरदार वल्लभभाई पटेल की भी देखने में आई थी। जो वे चाहते थे वह हो नहीं पा रहा था, और जो कुछ हो रहा था वह वे देखना नहीं चाहते थे।

दुनिया का कहना है, हमेशा की ही तरह, कि समय इतना आगे कदम बढ़ा चुका है कि टंडनजी-जैसे पुराने विचारों के व्यक्ति उसमें 'फिट' नहीं हो पा रहे हैं। ऐसे लोग श्रद्धेय और पूज्य तो हैं, किन्तु उनके आदर्श और उनके सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं हैं। बुद्धिवाद एवं विज्ञान के युग में वे मान्यताएँ अब चलनेवाली नहीं, जिनको नीति के आधार पर खड़ा किया जाता है। आज तो जीवन के वे सारे ही मूल्य बदल गये हैं, और राजनीति में तो चाहे व अनचाहा सभी कुछ होता आया है।

किन्तु इस प्रकार के विचार रखनेवाले आलोचक शायद यह नहीं जानते थे कि टंडनजी काल की गति से, उसके स्वभाव से अनभिज्ञ नहीं थे। वे कम बुद्धिवादी नहीं थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु विवेक के साथ बुद्धि का संबंध-विच्छेद करने के वे समर्थक नहीं थे। सत्य और अहिंसा की साधना किन्हीं बाह्य हेतुओं से प्रेरित होकर उन्होंने नहीं की। बुद्धि को उन्होंने कभी ताक पर नहीं रखा। वहमों को पास नहीं फटकने दिया। देश के, और खासकर उसके दुर्बल अंगों के आर्थिक उत्थान के प्रयत्नों में वे पीछे नहीं रहे, पर इसके लिए नैतिकता को दाँव पर रखने के लिए वे कभी तैयार नहीं हुए। साम्प्रदायिक एकता के वे पक्के हामी थे। अल्प-संख्यकों के हित में मौका आने पर अपनी जान भी दे सकते थे। अस्पृश्यता को हिन्दूसमाज पर लगा एक भारी कलंक मानते थे। उनका विश्वास था कि भंगी जब तक पाखाना-सफाई का पेशा नहीं छोड़ेगा, तब तक न तो उसकी मुक्ति है, और न समाज की ही। तब ऐसा कौन कहेगा कि वे समय की गति को पहचानते नहीं थे?

टंडनजी ने जब भी जो कहा उसे खूब सोचकर, समझकर, नाप-तौलकर कहा, और वैसा ही किया भी। कथनी और करनी में भरसक अन्तर नहीं आने दिया। जिस पद पर बैठे उससे वे अलिप्त रहे। जब देखा कि वह पद सत्य की साधना में बाधक बन सकता है, तो उसे तृणवत् त्याग दिया, या उसे ग्रहण ही नहीं किया। वैराग्य का मौज-सागर सामने सदा लहराता रहा। एक-एक साँस का हिसाब-किताब हमेशा रखा। गफलत को पास नहीं फटकने दिया। संतों की करनी और क्या होती है?

शील और नीति की जो अनमोल सम्पदा जीवन में टंडनजी ने इकट्ठी की थी, उसके सामने दुनिया का सारा वैभव तुच्छ था। उनके पास रहता ही क्या था। पुराने फटे-कटे दो कम्बल। खादी की मोटी धोती फट गई, तो उसके टुकड़ों को जोड़-जाड़ कर लुंगी बना ली। कभी-कभी कुर्ते में भी थीगरे सिले दीखते थे। दिल्ली के हमारे हरिजन-निवास के मेहमान-घर में टंडनजी उन दिनों रहते थे, जब वे कांग्रेस के अध्यक्ष थे। दौरे पर वे गये हुए थे कि एक रात को कोई चोर वेण्टीलेटर तोड़कर कमरे में कूदा चोरी करने की नीयत से। पर हाथ उसके क्या लगा? कच्ची मूँगफलियाँ, मुट्ठी-दो-मुट्ठी तिल और एक फटी कंबली। हम लोगों ने मेहमान-घर से चहार-दीवारी तक जब मूँगफली के छिलके और तिल के दाने बिखरे हुए देखे, तो शक हुआ कि कमरे का क्या ताला तोड़ा गया है। देखा तो ताला बन्द था। उसे खोला गया। वेण्टीलेटर टूटा हुआ पाया। कागज बिखरे हुए, मूँगफली की पोटली खुली हुई और टीन के डिब्बे में से तिल के दाने भी वहीं पर पड़े हुए। दो फटे कम्बलों में से एक कम्बल गायब। जैसा साह, वैसा ही चोर। उसने समझा होगा कि कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट को बड़ी-बड़ी कीमती चीजें भेंट में मिलती हैं, सो काफी माल हाथ आयेगा। उसे क्या पता था कि भेंट में जो चीजें मिलती हैं, उनको किसी-न-किसी सार्वजनिक संग्रहालय में भेज दिया जाता है।

सिद्धान्त पर अंत तक दृढ़ रहना कोई आसान काम नहीं है। ऐसा करते हुए फकीरी बाना धारण करना ही पड़ता है। ऐसा जीवन-शोधक बाहर से तो रंक या फकीर-सा दीखता है, पर असल में वह शाहों का भी शाह होता है। वास्तव में दरिद्र तो वे हैं, जिनके पास शील और चारित्र्य की सम्पदा नहीं है, और लोभ ने जिनको बुरी तरह दीन-हीन बना डाला है। टंडनजी सच्चे अर्थ में सम्पत्तिशाली थे। कबीर की जिस साखी को वे बहुधा कहा करते थे, वह उनके जीवन पर पूरी तरह घटती है। यह कि,

पतिवरता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन बिच यों दिपं, ज्यों रबि-ससि की जोत॥

टंडनजी को राजर्षि कहा गया, किसी-किसी ने ब्रह्मर्षि भी लिखा, पर इन उपाधियों से ऊँचा उनका निज स्थान तो एक निरुपाधि संत का था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन

(कुछ संस्मरण)

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

लखनऊ से एक दयालु मित्र ने लिखा है--"श्रद्धेय टंडनजी का अंत अप्रत्याशित नहीं था, फिर भी उनकी उपस्थिति मात्र से हिंदी को बल मिलता था। हिंदी प्रचारकों में उनका स्थान अपूर्व था। उनकी जगह लेनेवाला देखलायी नहीं पड़ता।"

श्रद्धेय टंडनजी लगभग तीन वर्ष तक रोग-शय्या पर पड़े रहे और इस अर्थ में उनका अंत अप्रत्याशित नहीं था। इस बात से मैं सहमत हूँ। उनकी दूसरी बात से भी मैं सहमत हूँ कि उनकी उपस्थिति-मात्र से हिंदी को बल मिलता था और हिंदी-प्रचारकों में उनका स्थान अपूर्व था। यह हमारा दुर्भाग्य है कि उनकी जगह लेनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति सामने नहीं देखायी देता। वास्तव में श्रद्धेय टंडनजी के निधन से हिंदी संसार अनाथ हो गया और उनके स्थान की पूर्ति कोई दूसरा करे, यह कहना असंभव है। वास्तविक बात यह है कि एक देदीप्यमान नक्षत्र आकाश से टूट कर धरती में विलीन हो गया। हिंदी प्रचारकों में उनका स्थान सदा के लिए सुरक्षित है क्योंकि दूसरा कोई नहीं देखायी देता जो इस स्थान की पूर्ति कर सके। एक दूसरे मित्र ने यह कहा है कि श्रद्धय टंडनजी के लिए हिंदी का मसला केवल भाषा का मसला नहीं था, न उनके लिए यह मसला मातृभाषा का प्रश्न था। हिंदी की रक्षा करना, उसकी पुष्टि करना, उसके अभ्युदय के लिए सतत प्रयत्नशील रहना--यह उनके जीवन का अर्थ था। उनके लिए हिंदी का मसला उनके जीवन की पूंजी थी और उनके जीवन के रहस्य को समझने की यह कुंजी है।

× × ×

सन् १९१० में काशी में हिंदी साहित्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हुआ। वहीं पर उनके साक्षात्कार का सुख-सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। सन् १९१७ में गांधीजी के सभापतित्व में इंदौर में हिंदी साहित्य-सम्मेलन का एक अधिवेशन हुआ था। उसमें महात्माजी के अनुरोध से मैंने प्रचार-मंत्री के पद को स्वीकार किया था। तब से श्रद्धेय टंडनजी के बहुत निकट मैं आ गया। लेकिन यह संबंध अधिक दिन तक कायम न हो सका क्योंकि मैंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उसके बाद सन् १९३७ में वह कांग्रेस की ओर से प्रांतिक विधान-सभा के अध्यक्ष चुने गये। मैं उस समय पार्लमेंटरी सचिव था और कांग्रेस दल का सचेतक भी। इससे श्रद्धेय टंडनजी के साथ सहयोग के अनेक अवसर आये। उनकी कृपा, दयालुता और मैत्रीपूर्ण व्यवहार का मेरे ऊपर जो प्रभाव पड़ा, वह अमिट है। मुझे वह दिन याद है, जब मोटर-दुर्घटना के कारण अस्वस्थ होने पर भी गृहमंत्री, श्री रफीअहमद किदवई, ने श्रद्धेय टंडनजी में विश्वास का प्रस्ताव पेश किया और उस समय श्रद्धेय टंडनजी ने खुले शब्दों में--निष्कपट भाव से--यह घोषणा की कि यदि विरोधी दल का कोई भी सदस्य उन्हें लिखकर यह देगा कि उनमें उसका विश्वास नहीं रहा तो वह अपने पद से इस्तीफा दे देंगे। विरोधी दल के किसी सदस्य की हिम्मत नहीं पड़ी कि टंडनजी के खिलाफ अविश्वास का प्रदर्शन करे। सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव मंजूर हो गया और श्रद्धेय टंडनजी की अध्यक्षता का सौभाग्य हम सूबेवालों को जैसे पहले, वैसे ही बाद में मिलता रहा। जिस खूबी के साथ श्रद्धेय टंडनजी ने विधान-सभा की अध्यक्षता की, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा मुक्त कंठ से सभी ने की। लेकिन उनमें और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पार्लमेंटरी समिति में मतभेद हो गया और इस पर मुख्यमंत्री, श्री गोविन्दवल्लभ पंत, ने उनसे अध्यक्ष पद का इस्तीफा ले लिया।

बात छोटी थी। श्रद्धेय टंडनजी का यह दावा था कि कांग्रेस के सदस्य वह बने रहेंगे, लेकिन अध्यक्ष के पद से विरोधी दलों के अधिकारों की रक्षा इसके कारण सदा वह निष्पक्षता से करेंगे। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय के राजनीति विभाग के अध्यक्ष, श्री बेणीप्रसादजी, से जो लेख लिखवाया, वही गलत था। उन्होंने उसमें यह कहा कि जैसे संयुक्त राज्य, अमरीका, की विधान-सभा का अध्यक्ष अपनी पार्टी को नहीं छोड़ता, उसी तरह से मैं भी काम करता हूँ और मुझे भी काम करना चाहिए। वह यह भूल गये कि वहाँ प्रेसीडेंट की सत्ता है और संयुक्त राज्य, अमरीका, का यह संविधान है कि शासन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून बनानेवाली विधान-सभा में कोई संपर्क न रहे। अतएव प्रो० बेणीप्रसाद की यह दलील भारत पर लागू नहीं होती, क्योंकि यहाँपर जो संविधान बना, उसमें संयुक्त राज्य, अमरीका, का अनुसरण नहीं किया गया है, बल्कि इंग्लैंड की तरह अध्यक्ष को पार्टी से इस्तीफा देना लाजमी है। वह किसी दल का सदस्य नहीं हो सकता। अतएव अमरीका की नीति भारत पर लागू नहीं होती। श्रद्धेय टंडनजी कांग्रेस पार्टी के सदस्य थे। अतएव उन्हें कांग्रेस पार्टी से इस्तीफा देने के लिए पार्लमेंटरी कमेटी का अनुरोध था। इस विषय में श्रद्धेय टंडनजी अपने सिद्धांत पर अड़े रहे और उन्होंने यह पद छोड़ना स्वीकार किया, सिद्धांत को छोड़ना उनके जीवन का ध्येय कभी नहीं रहा। जिस समय श्रद्धेय टंडनजी ने विधान-सभा से अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया, तब से उसकी चर्चा बहुत दिनों तक सभी दलों में बनी रही। विरोधी दल के प्रत्येक सदस्य ने, जैसे कांग्रेस की पार्टी के प्रत्येक सदस्य ने, श्रद्धेय टंडनजी के इस असामयिक इस्तीफे पर शोक प्रकट किया और बार-बार लोगों के मुँह से यही ध्वनि निकलती थी कि ऐसा निष्पक्ष अध्यक्ष मिलना असंभव है। उनके उत्तराधिकारी हुए श्री नफीसुल हसन, और उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि श्रद्धेय टंडनजी की अध्यक्षता की नीति का पालन वह हर काम में करेंगे।

× × ×

यहाँ पर एक मजाक की बात याद आती है। उसका भी उल्लेख कर देना असंगत न होगा। श्रद्धेय टंडनजी समय के बड़े पाबंद थे। ठीक ११ बजे अपनी कुरसी पर वह आ जाते थे। एक दिन सदन की घड़ी कुछ सुस्त चल रही थी। १५ मिनट का विलंब हुआ। मैंने श्रद्धेय टंडनजी से कहा कि आप १५ मिनट देर में आये, सारा सदन आपका इंतजार करता रहा। श्रद्धेय टंडनजी मुसकरा दिये और कहा कि घड़ी ठीक कर दी जाये।

× × ×

बनारस के 'आज' के 'टंडन-श्रद्धांजलि-अंक' में जो लेख निकले हैं, उनमें इस बात पर जोर दिया गया है कि श्रद्धेय टंडनजी भारतीय संस्कृति और हिंदी के प्रबल समर्थक थे। इसमें वह अडिग रहे। हिंदी-उर्दू के विषय में बिहार के आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपनी श्रद्धांजलि में लखनऊ के सम्मेलन का जिक्र किया है। लखनऊ उर्दू का गढ़ है। उर्दूवालों की उसी अवसर पर एक सभा हुई, जिस अवसर पर हिंदी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होनेवाला था। उसके मंतव्यों पर श्रद्धेय टंडनजी का बड़ा ही प्रभावशाली भाषण सम्मेलन पांडाल में हुआ। उन्होंने हिंदी और उर्दू की एकता का प्रतिपादन बड़े ओजस्वी शब्दों में किया था और दोनों भाषाओं की अभिन्नता को छिन्न-भिन्न करने की कुचेष्टा के उदाहरण भी दिये थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रद्धेय टंडनजी यद्यपि हिंदी के समर्थक थे, लेकिन उनका संबंध संप्रदायवाद से नहीं रहा। मुसलमानों के साथ रोटी-बेटी तक संबंध करने के वह अनुकूल थे, लेकिन हिंदी के मामले में किसी तरह वह झुकने को तैयार न थे।

× × ×

उनके जीवन की सादगी और उनकी मितव्ययिता प्रसिद्ध है। कुछ थोड़े से कपड़े उनके पास रहते थे, जिनकी सफाई वह खुद करते थे। उनकी सफाई उन्होंने उस समय तक की, जब तक वह रोगग्रस्त नहीं हुए। गरीबों का कष्ट उनसे देखा नहीं जाता था। उनकी सहायता वह धन से भी करते थे। एक मित्र ने लिखा है—"उनकी लंबी बीमारी में भी उनकी दानशीलता पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी। किसी प्रसंग पर श्रद्धेय टंडनजी (बाबूजी) ने एक बार कहा था कि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे पास एक पैसा भी न बचे और मेरे कफन का प्रबंध जनता के चंदे से हो तो मेरी आत्मा को विशेष शांति मिलेगी'।"

× × ×

श्री ब्रजमोहन व्यास ने अपनी श्रद्धांजलि में सन् १९२० का जिक्र किया है। वह लिखते हैं—

"सन् १९२० में जब म्युनिसिपैलिटी के प्रथम अशासनिक सभापति, बाबू शिवचरणलाल, ने इस्तीफा दे दिया तो टंडनजी चुने गये। ६ दिसम्बर, सन् १९२१ तक वे इस पद पर काम करते रहे। उसके बाद वह गिरफ्तार हो गये और उनको १८ महीने की सजा हो गयी। प्रांतीय सरकार ने उन्हें १० मार्च, सन् १९२२, को सभापति के पद से हटा दिया। सन् १९२३ में जब वह जेल से लौटे, उस समय तत्कालीन बोर्ड की अवधि समाप्त हो चुकी थी और दूसरे चुनाव की तैयारियाँ बड़े जोर-शोर से शुरू हो चुकी थीं। चुनाव के शतरंज के पटरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मोहरों की चालें चली जाने लगी थीं और 'शह एवं अदब' का आश्रय लेकर मोहरे दाँव पर बैठने लग गये थे। कांग्रेस ने भी इस चुनाव के लड़ने का निश्चय कर लिया था। अतः 'घर का परसवैया अँधेरी रात' का सुभीता न था। कबाब में हड्डी आ गयी थी। कांग्रेस के मैदान में आ जाने से सरकार के खुशामदियों में सनसनी फैल गयी थी। कलेक्टर साहब के भी कान खड़े हो गये थे।

"कांग्रेस ने टंडनजी को चुनाव के संघटन का काम सौंपा। चुनाव हो गया। सिर्फ चेयरमैन का चुनाव रह गया था। टंडनजी का चुनाव निश्चित था। वह जब चेयरमैन के पद पर थे, तभी वह जेल गये थे। विरोधियों ने एक चाल चली। मुसलमानों के नेता थे खानबहादुर अब्दुल बाक़ी खाँ साहब। एलेक्शन के मैदान में 'आठो गाँठ कुम्मैत।' उन्होंने अपने एक खास आदमी को टंडनजी के पास भेजा और यह संदेश कहलाया—'आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के हामी हैं। अब की बार आप सर्व-सम्मति से एक मुसलमान को चेयरमैन चुनें।' टंडनजी ने तुरंत मंजूर कर लिया और सैयद कमालउद्दीन अहमद जाफ़री को चुना। खानबहादुर साहब ने मंजूर कर लिया, पर खास चुनाव के दिन खानबहादुर साहब पलट गये और चुनाव की मीटिंग ही में उन्होंने टंडनजी से कहलवाया कि वे ही खड़े हों क्योंकि मुसलमान लोग उन्हीं को पसंद करते हैं। टंडनजी ने तुरंत अस्वीकार कर दिया और श्री जवाहरलालजी को घेर-घार कर राजी कर लिया। श्री जवाहरलालजी का नाम प्रस्तावित हुआ, वह बहुमत से चुन लिये गये।"

श्रद्धेय टंडनजी की चुनाव योजनायें सफल हुईं। उदाहरण के लिए, प्रयाग जिले के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनाव का काम उन्होंने बड़ी धीरता से किया और उसमें वह कामयाब भी हुए। श्री कमालउद्दीन जाफ़री को प्रयाग के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में उन्होंने चेयरमैन चुना। कांग्रेस दल का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में बहुमत था और इसीलिए जाफ़री साहब चुन लिये गये। इसमें टंडनजी का विशेष हाथ था।

× × ×

सन् १९४५ में टंडनजी के पास महात्मा गांधी का एक पत्र आया। वह पत्र यह है—

महाबलेश्वर
२५-५-४५

भाई टंडनजी,

मेरे पास उर्दू खत आते हैं, हिंदी आते हैं और गुजराती। सब पूछते हैं मैं कैसे हिंदी साहित्य-सम्मेलन में रह सकता हूँ और हिंदुस्तानी सभा में भी। वे कहते हैं, सम्मेलन की दृष्टि से हिंदी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है जिसमें नागरी लिपि ही को राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को स्थान दिया जाता है और जो भाषा न फारसीमयी है, न संस्कृतमयी है, जब मैं सम्मेलन की भाषा और नागरी को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ तब मुझे सम्मेलन में से हट जाना चाहिए। ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है। इस हालत में क्या सम्मेलन से हटना मेरा फर्ज नहीं होता? ऐसा करने से लोगों को दुविधा न रहेगी और मुझे पता चलेगा कि मैं कहाँ हूँ।

आपका
मो० क० गांधी

श्रद्धेय टंडनजी ने इसका जो उत्तर दिया, वह नीचे दिया जाता है:—

१०, क्रास्थवेट रोड
इलाहाबाद
८-६-४५

पूज्य बापूजी, प्रणाम।

आपका २५ मई का पत्र मुझे मिला। हिंदी साहित्य-सम्मेलन और हिंदुस्तानी प्रचार सभा के कामों में कोई मौलिक विरोध मेरे विचार में नहीं है। आपको स्वयं हिंदी साहित्य-सम्मेलन का सदस्य रहते हुए लगभग २७ वर्ष हो गये। इस बीच आपने हिंदी प्रचार का काम राष्ट्रीयता की दृष्टि से किया। वह सब काम गलत था, ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से हिंदी का प्रचार वांछनीय है, यह तो आपका सिद्धांत है ही। आपके नये दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू शिक्षण का भी प्रचार होना चाहिए। यह पहले काम से भिन्न एक नया काम है, जिसका पिछले काम से कोई विरोध नहीं है।

सम्मेलन हिंदी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को एक शैली मानता है, जो विशिष्ट जनों में प्रचलित है। स्वयं वह हिंदी की साधारण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं। आप हिंदी के साथ उर्दू को भी चलाते हैं। सम्मेलन उसका तनिक भी विरोध नहीं करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प० बंगाल के मुख्यमंत्री डा० विधानचन्द्र राय के देहावसान पर राष्ट्रपति म० म० डा० स० राधाकृष्णन्, प्रतिरक्षा मंत्री श्री मेनन एवं राज्यपाल कु० पद्मजा नायडू आदि शोक प्रकाश कर रहे हैं।

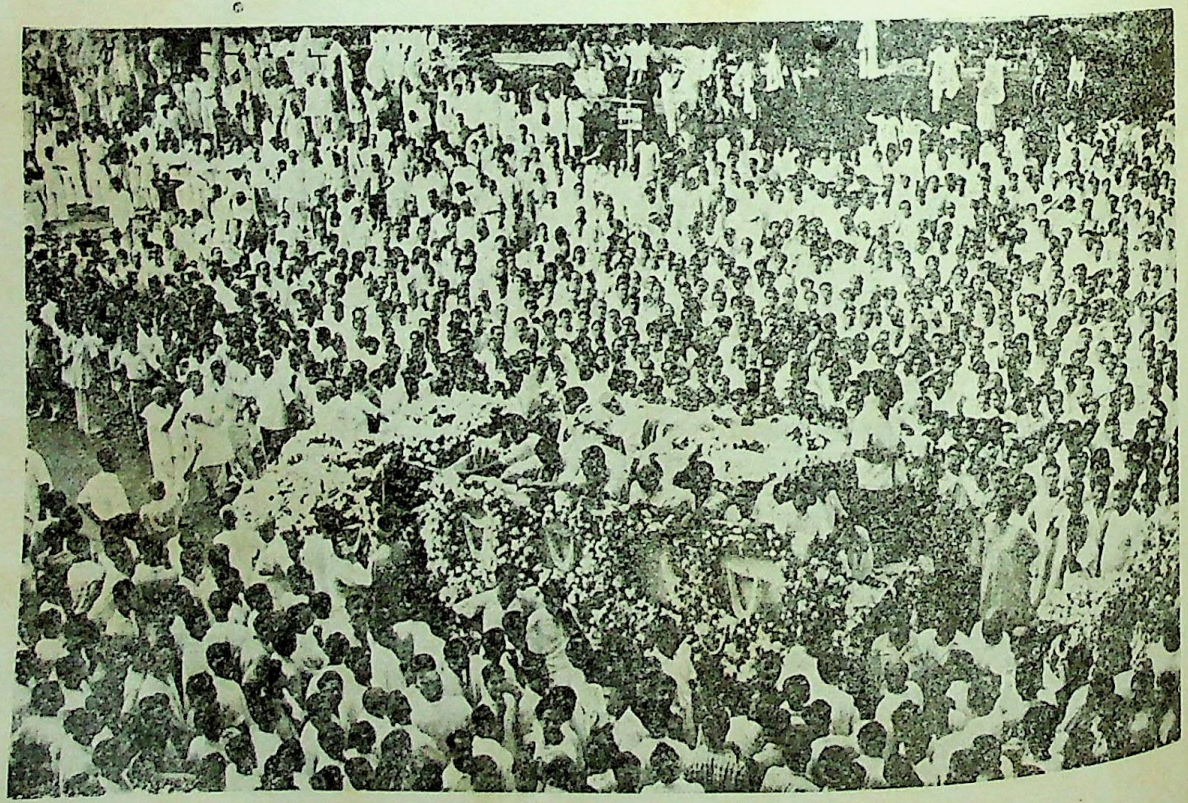

प० बंगाल के मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्रीविधानचन्द्र राय की शव-यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु राष्ट्रीय कार्यों में अँगरेजी को हटाने में वह उसकी सहायता का स्वागत करता है। भेदभाव केवल इतना है कि आप दोनों चलाना चाहते हैं। सम्मेलन आरंभ से केवल हिंदी चलाता आया है। हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों को हिंदुस्तानी प्रचार सभा के सदस्य होने में रोक नहीं है। हिंदी साहित्य-सम्मेलन की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधि हिंदुस्तानी अकादमी के सदस्य हैं और हिंदुस्तानी अकादमी हिंदी और उर्दू दोनों शैलियाँ और लिपियाँ चलाती है। इस दृष्टि से मेरा निवेदन है कि मुझे इस बात का कोई अवसर नहीं लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें।

एक बात इस सम्बन्ध में और भी है। यदि आप हिंदी साहित्य-सम्मेलन के अब तक सदस्य न होते तो संभवतः आपके लिए ठीक होता कि आप हिंदुस्तानी प्रचार सभा का काम करते हुए हिंदी साहित्य-सम्मेलन में आने की आवश्यकता न देखते। परन्तु जब आप इतने समय से सम्मेलन में हैं, तब उसका छोड़ना उसी दशा में उचित हो सकता है जब निश्चित रीति से उसका काम आपके नये काम के प्रतिकूल हो। यदि आपने अपने पहले काम को रखते हुए उसमें एक शाखा बढ़ायी है तो विरोध की कोई बात नहीं है।

मुझे जो बात उचित लगी, (मैंने) ऊपर निवेदन किया। किंतु यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं और आपकी आत्मा यही कहती है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊँ तो आपके अलग होने की बात पर बहुत खेद होते हुए नतमस्तक हो आपके निर्णय को स्वीकार करूँगा।

विनीत,
पुरुषोत्तमदास टंडन

इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रद्धेय टंडनजी के विचार कितने उदार थे।

× × ×

एक बार टंडनजी का लोकसभा के सदन में हिंदी पर व्याख्यान हुआ। उसकी लोगों ने बड़ी प्रशंसा की और खूब तालियाँ बजीं। लेकिन जब दूसरे दिन केंद्र के शिक्षामंत्री, मौलाना अबुलकलाम आजाद, बोलने खड़े हुए, तब उनके भाषण पर उन्हीं लोगों ने तालियाँ बजा कर अपनी सहमति उनके साथ प्रकट की, जो कल श्रद्धेय टंडनजी के भाषण की दाद दे रहे थे। मौलाना का उत्तर वास्तव में कोई जवाब न था और श्रद्धेय टंडनजी के भाषण का जवाब कोई शायद ही दे सकता था! जो लांछन उन्होंने केंद्र के शिक्षा-मंत्रालय पर लगाये, उनका जवाब ही क्या हो सकता था? लेकिन हमें आश्चर्य तब हुआ, जब जिन लोगों ने एक दिन श्रद्धेय टंडनजी के भाषण की प्रशंसा की, उन्हीं में से अधिकांश ने तालियाँ बजा कर मौलाना साहब के भाषण के साथ सहमति प्रकट करने की जुर्रत की। लेकिन यह तो राजनीति का खेल है, भाषण के द्वारा लोगों को अपनी तरफ कर लेना चतुर खिलाड़ी के लिए बायें हाथ का खेल है। लेकिन इसमें हताश होने की कोई बात नहीं। उस दिन की बाजी मौलाना साहब के हाथ रही। तर्कों का जहाँ तक संबंध है, वहाँ तक श्रद्धेय टंडनजी का पक्ष प्रबल था और मौलाना साहब ने उनका कोई उत्तर नहीं दिया।

× × ×

श्रद्धेय टंडनजी के सैद्धांतिक होने में कोई संदेह नहीं। अंत तक वह सिद्धांत के मामले में अडिग रहे। पर उनमें उस व्यावहारिक विवेक की कमी थी जो महामना मालवीयजी में थी। उन्होंने मूल नाम काशी विश्वविद्यालय के स्थान पर 'बनारस हिंदू यूनीवर्सिटी' नाम को स्वीकार कर लिया। उनका कहना था कि इससे शिक्षा के प्रचार में बाधा नहीं पड़ सकती है। इसीलिए उन्होंने सिद्धांत पर अडिग न रहकर व्यावहारिक विवेक का परिचय दिया। टंडनजी का काम उस विश्वविद्यालय की तुलना में थोड़ा ही है, पर उनकी गणना हमारे एक सम्मानित मित्र ने महामना मदनमोहन मालवीय और बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र के साथ की है। लेकिन टंडनजी में यदि व्यावहारिक विवेक होता तो वह क्या कम सफल होते?

श्रद्धेय टंडनजी में मैत्री को निबाहने का बड़ा गुण था। बहुत से कांग्रेसी उनके गुण गाया करते हैं। एक समय की बात है कि किसी ने उनके सचिव के विरुद्ध कुछ शिकायत की। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि यह शिकायत तो उनके सचिव के प्रति है, तब वह बिगड़ उठे और कहा कि 'वह ऐसा काम नहीं कर सकता जैसा उसके खिलाफ तुम कहते हो।' श्रद्धेय टंडनजी का अपने सचिवों के प्रति कितना आदर-भाव था, यह इस एक घटना से सूचित होता है। श्रद्धेय टंडनजी के लिए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि दूसरों की दुर्बलताओं को वह नजरंदाज करते थे, लेकिन उनका जीवन बड़ा पवित्र था और घरेलू मामलों में उनका-सा सात्विक व्यक्ति मिलना कठिन है।

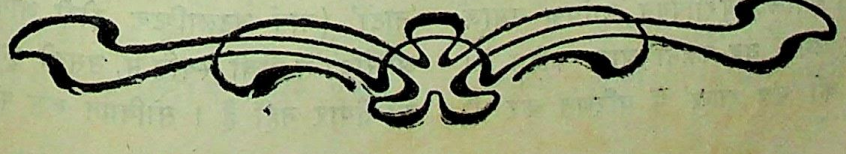

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपियन आर्थिक समाज (साझा बाजार) और भारत

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

'ब्रसेल्स-कांफरेंस' के बाद यूरोपियन आर्थिक समाज ने अपने जीवन का दूसरा अध्याय प्रारम्भ किया है। रोम-सन्धि के अनुसार अब पश्चिमी यूरोप के छः देशों (फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली--इनके चार वोट हैं;--नीदरलैण्ड, बेल्जियम--इनके दो-दो वोट हैं,--लक्समबर्ग--इसका एक वोट है) की कृषि-नीति भी एक होगी। यूरोपियन कौंसिल के निर्णय अब सर्वसम्मति से नहीं, बहुसम्मति से होंगे। यदि आर्थिक समाज के तीनों बड़े देश सहमत हुए, तब तो कोई कार्य सरलता से ही हो सकेगा, किन्तु यदि उनमें से कोई एक असहमत हुआ, तो बेनेलक्स (बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लक्समबर्ग) का महत्त्व बढ़ जायगा। इनके पाँच वोट निर्णायक और सन्तुलनकारी सिद्ध होंगे। भविष्य में जो कोई राष्ट्र (आयर ने इसमें बिना किसी पूर्व शर्त के सम्मिलित होने की इच्छा की है; तुर्की और ग्रीस भी इसका सदस्य होने के अभिलाषी हैं, और ग्रेट ब्रिटेन इसकी सदस्यता का प्रार्थी है) सम्मिलित होगा, वह बहुमत के निर्णय को मानने के लिए बाध्य होगा। निस्सन्देह यह बहुमत सशर्त (क्वालिफाइड मेजारिटी) होगी, परन्तु किसी राष्ट्र सदस्य को सुरक्षा परिषद् (सिक्युरिटी कौंसिल) के समान निषेधाधिकार (वीटो) प्राप्त न होगा। क्योंकि रोम-सन्धि को पूर्णतः स्वीकार करने के बाद ही कोई यूरोप का देश इसका सदस्य हो सकेगा।

मानव के इतिहास में कम्युनिस्ट देश-समूह (सोवियत रूस, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, बलगेरिया, रुमानिया, पूर्वी जर्मनी) और पूँजीवादी देश संयुक्त राज्य अमरीका व कनाडा के बीच यह एक नया परीक्षण है। विश्व के इतिहास में दोनों प्रक्रियाएँ दिखाई देती हैं। आर्थिक एकता ने राजनीतिक एकता को जन्म दिया है और इसके विपरीत राजनीतिक एकता ने आर्थिक एकता को जन्म दिया है। कहीं-कहीं यह सम्मिलित चुंगी--व जकात की एक एकता से आगे नहीं बढ़ा है। पहले का उदाहरण जर्मन राज्यों का संघ (फेडरेशन आफ जर्मन स्टेट, मार्च १८३४) है, और अन्तिम का उदाहरण मोनाको और फ्रांस (१८६५) है। इसलिए यूरोपियन आर्थिक समाज भविष्य में क्या रूप लेगा, यह कहना आज कठिन है। यह पश्चिमी यूरोप को 'संघ राज्य' में परिणत कर भी सकता है, नहीं भी कर सकता है। हो सकता है, यह शिथिलबन्ध राष्ट्रमण्डल हो और इस मण्डल का प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रभुत्व शक्ति का आंशिक मात्रा में ही त्याग करे। किन्तु कृषि नीति का निर्धारण, फसलों की कीमतों का विनिश्चय, हाट-व्यवस्था, किसानों को एक निश्चित मूल्य देना, ऐसी बातें हैं, जिनके लिए यूरोपियन आर्थिक समाज के सदस्यों को अपनी प्रभुत्व-शक्ति का पर्याप्त मात्रा में परित्याग करना होगा। परन्तु पच्चीस साल बाद इसका क्या रूप होगा, यह आज कल्पना का विषय नहीं हो सकता। क्योंकि हमारे विचार का आधार आज के संघराज्य हैं। परन्तु यूरोप के देशों का संघराज्य संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा जैसा न होगा, यह निश्चित है। यह इनसे भिन्न होगा। यह भारत जैसा होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। आज हम राष्ट्रों के जिन स्वरूपों से परिचित हैं, उनसे यह भिन्न होगा, यह निश्चित प्रतीत होगा। विकास की प्रक्रिया का अभी प्रारम्भ है। यह किस दिशा में होता है, यह भविष्य बतायेगा।

राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद के जन्मदाता यूरोप के ये देश साम्राज्य के नष्ट हो जाने और दो महायुद्ध की विनाश लीला से भयभीत होने के कारण अपनी शतियों की शत्रुता और पुराना वैर-भाव भूलकर 'होली रोमन एम्पायर' (इसके बारे में कहा जाता है कि यह न तो पवित्र था, न यह रोमन था) की स्मृति को जगाते हुए एक नये पथ पर चल रहे हैं। कम्युनिस्ट तंत्र का आधार सामूहिक जीवन है, वैयक्तिक स्वतंत्रता का उसमें स्थान नहीं है। पश्चिमी यूरोप की सभ्यता, संस्कृति का आधार वैयक्तिक स्वतन्त्रता है और ये देश इसको छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। कम्युनिज्म का भय इनको आत्मरक्षा के लिए प्रेरणा कर रहा है। आत्मरक्षा की भावना इनको एक होने की प्रेरणा कर रही है।

ये छोटे-छोटे देश जो भारत के एक जिले के समान हैं संयुक्त राज्य अमरीका के हाथ से दूध की बोतल जीवन भर पीने को तैयार नहीं हैं। ये आत्मनिर्भर होना चाहते हैं। 'नाटो' (नार्थ अटलाण्टिक ट्रीटी आर्गनाइजेशन) में ये अमरीका से नीची स्थिति में, उसकी कृपा पर निर्भर रहने को तैयार नहीं हैं। सोवियत रूस की बलाढ्य सेना से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी रक्षा अटलाण्टिक पार कर आई अमरीकी सेना करे, यह इनको अपमानजनक प्रतीत होता है। यांत्रिक विज्ञान (टेक्नॉलाजी) तंत्रज्ञान और विज्ञान को प्रगति में सर्वागुणी रहनेवाले ये देश यदि संयुक्त हो, एक हों तो ये अपनी विशिष्टता, अपनी विशेष सभ्यता और संस्कृति को बनाये रख सकते हैं। यह भावना ही यूरोपियन आर्थिक समाज की स्थापना की प्रेरक मूल हेतु है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद उध्वस्त यूरोप के पुनर्निर्माण में अमरीका ने आर्थिक सहायता दी और सोवियत रूस ने इसमें भाग लेने से अमरीका की आर्थिक मदद लेने से इन्कार कर दिया। सितम्बर १९४७ में जान-मार्शल ने पश्चिमी यूरोप के उध्वस्त राष्ट्रों को विशाल परिमाण में आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। यह 'मार्शल योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सहायता को प्राप्त करनेवाले देशों ने बाद में अपना एक संगठन बनाया यूरोपियन आर्थिक सहकारी संस्था (आर्गनाइजेशन आफ यूरोपियन इकनामिक कार्पोरेशन--ओ० ई० ई० सी०)। अमरीकी आर्थिक सहायता का वितरण इस संस्था के द्वारा होता था। इसी अर्से में बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लक्समबर्ग, इन तीन देशों ने 'बेनेलक्स इकनामिक यूनियन (बेनेलक्स आर्थिक संघ)' नाम से अपना एक संघ बनाया।

रूर फ्रांस के अधिकार से जर्मनी में मिल रहा था। इस अवस्था में फ्रांस को रूर के कोयले और लोहे का लाभ नहीं मिलता। युद्ध-क्षति की पूर्त्ति के रूप में उसने इनका जो लाभ उठाया था, उसको वह सहज में छोड़ना न चाहता था। परन्तु यह तभी हो सकता था, जब फ्रांस और जर्मनी बिस्मार्क-नेपोलियन के समय से चली आई शत्रुता को भूलने को तैयार हों। फ्रांस के तात्कालिक अर्थ-मंत्री म० शूमा ने 'यूरोपियन कोल एण्ड स्टील कम्युनिटी' नाम से एक संस्था स्थापित करने की योजना बनाई। प्रारम्भ में यह केवल फ्रांस और जर्मनी की संस्था थी। परन्तु अप्रैल १९५१ में इसमें इटली और बेनेलक्स (बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लक्समबर्ग) भी सम्मिलित हुए। कहना होगा कि इसकी भूमिका मार्शल योजना के कारण बनी अथवा 'आर्गनाइजेशन आफ यूरोपियन इकनामिक कार्पोरेशन' (ओ० ई० ई० सी०) ने बाँध दी थी।

सैनिक सुरक्षा करार को बल देने के लिए अमरीका आवश्यक समझता है कि यूरोप के राष्ट्रों में आर्थिक एकता हो और उसका भार कम हो। 'नाटो' के विषय में सोवियत रूस की जो राय है, वही यूरोपियन आर्थिक समाज के बारे में है। उसका कहना है कि अमरीका इस प्रकार यूरोप को विभक्त कर कमजोर करता है। रूस के विरोध की उपेक्षा करके पश्चिमी यूरोप के छः राष्ट्रों ने २५ मार्च १९५७ को रोम सन्धि पर हस्ताक्षर किये और यूरोपियन आर्थिक समाज (यूरोपियन इकनामिक कम्युनिटी) को जन्म दिया। इस सन्धि में अन्यून सौ अनुच्छेद व काण्डिकाएँ हैं। फ्रांस, प० जर्मनी, इटली और बेनेलक्स 'जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एण्ड ट्रेड' (जी० ए० टी० टी०) के भी सदस्य हैं जिसका उद्देश्य विश्व-व्यापार में बाधक तट-कर की ऊँची-ऊँची दीवारों को गिराना या नीचा करना है। यह करार (अनुच्छेद २४) किन्तु जकात संघों और उन्मुक्त व्यापार-क्षेत्रों की स्थापना में बाधक नहीं और इसको यह अन्तरराष्ट्रीय करार अपवाद के रूप में स्वीकार करता है। रोम-सन्धि १९५७ का व्यापारिक रूप प्रमुख होने से 'यूरोपियन इकनामिक कम्युनिटी' (यूरोपियन आर्थिक समाज), 'यूरोपियन कामन मार्केट' (यूरोपियन एक सामान्य बाजार) के नाम से भी प्रसिद्ध है।

रोम सन्धि १९५७ का उद्देश्य किन्तु आर्थिक और व्यापारिक नहीं, अपितु मुख्यतः राजनीतिक है। इसकी भूमिका में कहा गया है : यूरोपियन राष्ट्रों के बीच अधिकाधिक घनिष्ठ व गाढ़ एकता स्थापित करने के लिए नींव डालना। इस उद्देश्य की सिद्धि यह करार विभिन्न देशों के जीवन के विभिन्न पहलुओं तक पहुँचने के लिए आर्थिक व्यवस्था करेगा और प्रभावशाली सत्ता व अधिकार-प्राप्त अनेक संयुक्त संस्थाओं की स्थापना करेगा। पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटली, नीदरलैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्ग ने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम जकात व चुंगी संघ बनाया और स्वीकार किया कि अन्तर्गत चुंगी व जकात की बाधाओं, व्यापार पर लगे परिमाण प्रतिबन्धों और सामान्यतः पारस्परिक व्यापार की सब रुकावटों को दूर करेंगे और अन्य देशों के प्रति एक व्यापारिक नीति स्वीकार करेंगे।

एक सामान्य बाजार बनाकर यह सदस्य देशों की सतत और सन्तुलित आर्थिक प्रगति करता है। इसमें माल, वस्तुएँ, पूँजी, सेवाएँ, व्यक्तियों का संचार निर्बाध होगा। इसके वास्ते उपयुक्त आर्थिक और सामाजिक संस्थाएँ स्था-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित होंगी। प्रतियोगिता बाजार में रहेगी, किन्तु नियमित रूप में होगी। १२ से १५ वर्षों में यह प्रक्रिया पूर्ण होगी। इसका दूसरा पर्व है, कृषि नीति में परस्पर एकता जिसका आरम्भ जनवरी १९६२ से हुआ है।

यूरोपियन आर्थिक समाज की व्यवस्था और नियमन के लिए निम्न संस्थाएँ हैं :—

१—**असेम्बली**—छओं देशों की पार्लमेण्ट से चुने प्रतिनिधि मण्डल। इसकी वर्ष में एक बार अवश्य बैठक होती है।

२. **कौंसिल**—प्रत्येक देश का एक प्रतिनिधि : विभिन्न देशों की आर्थिक नीतियों में एकसूत्रता लाने का प्रयत्न करना इसका काम है।

३. **कमीशन** : ९ सदस्यों का है, एक देश से दो से अधिक सदस्य नहीं हो सकते। यह रोम-सन्धि के क्रियान्वित किये जाने का निरीक्षण करता है और कौंसिल को प्रदत्त अधिकारों को व्यवहार में लाता है।

४. **कोर्ट आफ जस्टिस** (न्यायालय)—रोम-सन्धि के किसी अनुच्छेद व कण्डिका के अर्थ व्याख्या के विषय में उत्पन्न विवादों का निर्णय करने के लिए यह संस्था है। इसमें सात जज हैं।

५. **इकनामिक एंण्ड सोशल कौंसिल** (आर्थिक व सामाजिक परिषद्)—उत्पादकों, किसानों, मजदूरों, व्यवसायियों, शिल्पियों, वकीलों, डाक्टरों, मास्टरों, इंजीनियरों सदृश पेशों के प्रतिनिधियों की यह संस्था है, जो कि 'समाज' को परामर्श देती है।

१२ मई १९६० को कौंसिल ने निश्चय किया कि रोम-सन्धि को पूरा करने के वास्ते चाल तेज की जाय और तटकरों में औसतन १० से ३० प्रतिशत तक कम करने का उपक्रम किया गया। ३१ मार्च १९६१ को ग्रीस भी इसका एक सदस्य हो गया।

पश्चिमी यूरोप के ६ देशों का क्षेत्रफल है ४,४९,००० वर्गमील और इसकी जनसंख्या है लगभग १८ करोड़। इस १८ करोड़ जनता के एक साथ उठते कदमों ने दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है और भारत के वित्त मंत्री इसके कारण विशेष चिन्तित हैं।

उपर्युक्त पाँच संस्थाओं के अतिरिक्त यूरोपियन बैंक, यूरोपियन सोशल फण्ड और ५० कोटि डालर से अधिक डेवलपमेंट फंण्ड (विकास निधि) की भी स्थापना की गयी है। विकासनिधि समुद्र पार के सह-सदस्य देश के आर्थिक विकास में काम आयेगी और पाँच वर्षों तक हरएक सदस्य बराबर राशि देगा।

एक सामान्य बाजार (कामन मार्केट) शब्द रोम सन्धि के वास्तविक उद्देश्य को प्रकट नहीं करता। क्योंकि यह सदस्य देशों के अन्तर्गत जकात की बाधाओं को ही दूर नहीं करता, प्रत्युत आर्थिक एकीकरण का भी आग्रह करता है। राष्ट्रीय अर्थतंत्रों के मध्य एकता लाने का अर्थ है कि सब कानूनों, नियमों और नीतियों के बीच एक सादृश्य और एकरूपता हो। फलतः आयात कोटा, राज्य व्यापार नियम, मुद्रा विनियोग, परिवहन, कीमतों, सेवाओं के बारे में आन्तरिक नियमों और कृषि क्षेत्र में एक नीति का व्यवहार होगा।

यूरोपियन एक-सामान्य बाजार का क्षेत्र किन्तु यूरोप तक ही सीमित नहीं है। फ्रांस और नीदरलैण्ड एवं बैल्जियम के जो उपनिवेश थे और अब जो स्वतंत्र हो गये हैं या होनेवाले हैं उन देशों को भी इसमें सम्मिलित करने की योजना है। यह फ्रांक क्षेत्र और सुरीनाम (डचगायना) और नीदरलैण्ड वेस्ट इन्डीज का विचार कर किया गया है। रोम-सन्धि १९५७ पर हस्ताक्षर कर कोई भी यूरोपी का देश इसका सदस्य हो सकता है। इस सन्धि में यह भी कहा गया है कि 'समाज' (कम्युनिटी) अन्य देश, अन्य देश समूह या अन्तरराष्ट्रीय संस्था के सदस्य के साथ पारस्परिक अधिकारों व उत्तरदायित्वों के आधार पर या संयुक्त कार्रवाई के लिए सन्धि कर सकती है। पर राष्ट्रक्षेत्र जितना व्यापक है, वह सब 'रोम-सन्धि' में आ गया है। संक्रमण-काल १२ वर्षों का है और रोम-सन्धि तीन चरणों में पूरी होगी। दूसरा चरण ब्रुसेल्स-कान्फ्रेंस की समाप्ति के साथ इस वर्ष जनवरी से आरम्भ हो गया।

प्रत्येक देश ने १२ से १८ मासों के अन्तर से १ जनवरी १९५७ के बाद से, दस प्रतिशत तटकर घटाया है और यह इस रीति से घटाया है कि प्रत्येक वस्तु पर अन्यून प्रतिशत तटकर या जकात शुल्क घटे। जिस किसी उत्पाद चीज पर शुल्क ३० प्रतिशत से अधिक शेष रहेगा, उसमें १० प्रतिशत कमी करना आवश्यक है। प्रत्येक वस्तु पर तटकर में कमी भिन्न-भिन्न है। किन्तु अपेक्षित यह है कि पहले पर्व में २५ प्रतिशत और दूसरे पर्व में ६० प्रतिशत और शेष ४० प्रतिशत तीसरे पर्व में पूरा होगा। तीसरा पर्व चार से सात वर्ष तक का हो सकता है। इस अन्तिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरण के वास्ते तटकर घटाने की कोई पूर्व योजना नहीं बनाई गयी है। इसका निश्चय कमीशन के प्रस्ताव पर मन्त्रिपरिषद् (कौंसिल आफ मिनिस्टर) करेगी। प्रथम चरण के अन्त में उन सब वस्तुओं पर एक सा तट-कर लगेगा, जिनमें कि १५ प्रतिशत से अधिक अन्तर है, और शेष चीजों में विभिन्नता में ३० प्रतिशत कमी की जायगी और यह कार्य १९६२ से प्रारम्भ होगा, और तीसरे चरण के अन्त में विभिन्नता का अन्त हो जायगा।

वस्तु-परिमाण नियंत्रण के विषय में कहा गया है कि एक साल के अन्तर द्विदेशिक कोटा भूमण्डलीय कोटा में परिवर्तित हो जाय, और इसके बाद प्रतिवर्ष कोटा में २५ प्रतिशत (मूल्य के अनुसार) वृद्धि की जाय (प्रत्येक वस्तु का कोटा अन्यून १० प्रतिशत बढ़ाया जाय) और अन्ततोगत्वा वह स्थिति पर पहुँच जाय, जब कोई प्रतिबन्ध न हो।

ब्रिटिश सरकार ने पहले यूरोपियन आर्थिक समाज में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था। नेपोलियन की आर्थिक एकता के प्रस्ताव को ब्रिटेन ने जिस घृणा और तुच्छता से देखा था, इसको उसने उसी दृष्टि से देखा। इसने राष्ट्रकुल (कामनवेल्थ) के बाजार पर भरोसा किया। परन्तु शीघ्र ही इसको ज्ञात हो गया कि यूरोपियन आर्थिक समाज काल्पनिक और अस्थायी संस्था नहीं है परन्तु एक वास्तविक सत्य है, और यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। इसको मूर्तरूप प्राप्त न हो, इसके लिए इँगलैण्ड ने प्रयत्न किया। इसमें सफल न होने पर उसने उसके मुकाबले आस्ट्रिया, डेनमार्क, नार्वे, पुर्तगाल, स्वीडन और स्वीटजरलैण्ड के साथ मिलकर १० मई १९६० को 'यूरोपियन फ्री ट्रेड एसोसियेशन' (यूरोपियन मुक्त व्यापार संघ या ई एफ टी ए) की स्थापना की। किन्तु, यह संस्था यूरोपियन आर्थिक समाज के सामने निस्तेज और निर्बल सिद्ध हुई। फलतः ३१ जुलाई १९६० को ब्रिटिश प्रधान मंत्री हैरल्ड मैक्मिलन ने पार्लमेण्ट में घोषणा की कि ब्रिटेन यूरोपियन कामन मार्केट में सम्मिलित होने के लिए सन्धि-चर्चा चलायेगा। प्रधान मंत्री ने कहा कि रोम-सन्धि का एक उद्देश्य यूरोप में स्थिरता लाना भी है। अतः हमारा हित इसी में है कि यूरोप के साथ हम घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करें और उसको बलवान् बनावें। अमरीका ने इसको प्रोत्साहन दिया। म० ख्रुश्चेव ने ब्रिटेन के इस निर्णय को आत्मसमर्पण बताया।

ब्रिटेन के इस निर्णय का भारत समेत राष्ट्रकुल के सदस्यों ने प्रबल विरोध किया। ब्रिटेन के इस निर्णय का भारत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह नीचे की तालिका से प्रकट है :—

भारत पर प्रभाव

(करोड़ रु० में)

	ब्रिटेन		यू. का. मा. यू.		फ्री. ट्रे. ए.	
	आयात	निर्यात	आयात	निर्यात	आयात	निर्यात
१९५६	२०६	१८६	१६४	४०	३४	४
१९५७	२३८	१६१	२१७	४१	४०	४
१९५८	१६८	१७६	१६४	३४	२६	६
१९५९	१७३	१६२	१९०	४०	२५	५

ब्रिटिश बाजार में भारत को तीन सुविधाएँ प्राप्त हैं; (१) राष्ट्रकुल का सदस्य होने के कारण इसका सारा माल शुल्क-मुक्त जाता है; (२) स्टर्लिंग-क्षेत्र का सदस्य होने के कारण परिमाण प्रतिबन्धों से इसका ब्रिटेन को निर्यात मुक्त रहता है; (३) ओटावा-पैक्ट के कारण भारत की कुछ वस्तुओं पर वरीयता या तरजीह प्राप्त है। अराष्ट्रकुल के सब देशों के माल पर ब्रिटेन में शुल्क लगता है। यदि यू० का० मा० के समान ब्रिटेन में भी आयात माल पर तटकर लगा, तो वर्तमान समय में प्राप्त सब सुविधाओं का अन्त हो जायगा। पश्चिमी यूरोप में चाय पैदा नहीं होती, परन्तु उसका प्रवेश भी वहाँ शुल्क मुक्त नहीं है। फिर यूरोपियन कामन मार्केट में सूती वस्त्रों, जूट, वस्त्रों, वनस्पति घी, नारियल के रेशे की चटाइयों, सदृश तैयार माल पर विभेदात्मक परिमाणात्मक प्रतिबन्ध है।

ब्रिटेन यूरोपियन कामन मार्केट में प्रविष्ट होने और पश्चिमी यूरोप के साथ रहने को बाध्य है। ब्रिटिश मजदूर दल के नेता मि० टैटस्केल के कथनानुसार ब्रिटेन का व्यापार उस समय तक नहीं बढ़ सकता जब तक वह 'कामन मार्केट' में सम्मिलित न होगा, यह अनुभूति ब्रिटिश जनता में घर कर गयी है। फिर अदृश्य निर्यात कुछ वर्षों में ही ४० कोटि पौ० से घटकर कुछ भी नहीं रहा है। अतः ब्रिटेन का 'कामन मार्केट' में शामिल होना अनिवार्य है। इस कारण भारत की चिन्ता घट गई है।

११ अगस्त १९६१ को वित्तमंत्री श्री देसाई ने इसको गम्भीर स्थिति बताया और कहा कि राष्ट्रकुल (कामनवेल्थ) को जोड़नेवाली कड़ी कमजोर हो जायगी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Coll...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के आयात पर ब्रिटेन में 'कामन मार्केट' के देशों के समान आयात शुल्क लगेगा और व्यापार पहले की अपेक्षा भी और अधिक असन्तुलित हो जायगा। क्योंकि १८ जुलाई १९६१ को बान में पश्चिमी यूरोप के देशों ने घोषणा की थी कि जो कोई यूरोपियन देश 'कामन मार्केट' में सम्मिलित होना चाहता है, वह सब क्षेत्रों में समान उत्तर-दायित्व और बाध्यताओं को शेष सब के समान स्वीकार करके ही हो सकता है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है। ब्रिटेन के साथ भारत का आज जो भी आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्ध है, वह ब्रिटिश साम्राज्य के शासन का अवशेष है, यह न भूलना चाहिए। जिस वरीयता और तरजीह की बात बार-बार दोहराई जाती है, वह ब्रिटेन ने भारत को अपने लाभ के उद्देश्य से दिया था, भारत को लाभ पहुँचाना उसका उद्देश्य न था। क्योंकि कच्चा माल सस्ता रहने से तैयार माल की लागत कम रहती है और इस तरीके से औद्योगिक तैयार माल प्रतियोगिता करने में अधिक समर्थ होता है। अतः भारत को इसका मोह छोड़ देना चाहिए।

फिर, भारत रियायत पाने की आशा क्यों करे? दक्षिण अमेरिका के देश भी भारत के समान विकासावस्था में है, परन्तु उनको तो ब्रिटिश बाजार में कोई सुविधा और रियायत प्राप्त नहीं है। फिर भारत ही क्यों रियायत और तरजीह की बैसाखी का सहारा ले। क्यों नहीं, भारत पश्चिमी एशिया, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया और लेटिन अमेरिका के देशों में अपने माल के लिए बाजार ढूँढ़े? आस्ट्रेलिया, कनाडा और जापान के साथ क्यों न वह नये व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करे? एकमात्र ब्रिटेन पर निर्भर रहने का अन्त करने का अन्त तो होना ही चाहिए। यह भारत अनिच्छा से क्यों करे? ब्रिटेन के साथ भारत का आज का सम्बन्ध भारत की स्वेच्छापूर्ण योजना का परिणाम नहीं है। यदि इसका अन्त भारत विवेक से करे तो यह भारत का आर्थिक बल बढ़ायेगा और भारत का व्यापार बढ़ाने में यह सहायक होगा। ब्रिटेन के साथ अत्यधिक सम्बद्ध रहने से भारत ने शेष संसार की उपेक्षा की है। ब्रिटेन के अपने हित को सर्वोपरि स्थान देने से भारत और राष्ट्रकुल के अन्य देशों का मोह दूर हो जायगा और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इस अवांछनीय अवशेष का भी अन्त हो जायगा। इसके अन्त पर दुःख और विषाद क्यों?

नूतन यूरोप का जन्म हो रहा है। राष्ट्रीयता की कल्पना नया रूप धारण कर रही है। 'एको वै भूमा नाल्पं सुखमस्तीति' के सत्य का यूरोप अनुभव कर रहा है। इसमें उसका भारत को सहायक होना चाहिए या विरोधी? भारत का मंगल इस नूतन क्रान्तिकारी परिवर्तन का स्वागत करने में ही है।

शोकोच्छ्वास!

त्याग, तप, सेवा, सदाचार, परमार्थ-मूर्ति,
देस हित जान्यो जिन मरनों और जीनों है।
मान, मरजाद, निज बात के धनी हे, अभै,
नाम पुरुषोत्तम ता रूप काम कीनों है।
जीवन सरल, सुचि प्रतिभा, विचार उच्च,
हिन्दी दिव्य भाल लाल बिन्दी सुठि दीनों है।
आज फेरि भैया जब घिरी हैं घटान कारी
नैया कौ खिवैया दैया कुसमै ही छीनों है।

—अमृतलाल चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशी रियासत के प्राङ्गण में

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

श्री जी० एस० पथिक

(गतांक से आगे)

जब मध्यभारत में मंत्रिमण्डल बना, तब मैं वहाँ फटका तक नहीं। वे लोग मंत्रियों की गद्दियों पर देशभक्ति का बाना पहनकर बैठे, जिनका संघर्ष के काले दिनों में नाम तक नहीं था। कई लोगों ने आग्रह किया कि मैं चुनाव में खड़ा होऊँ, आसानी से चुन लिया जाऊँगा। उनकी बातों पर मैं चुप रहा। अपना जीवन मेरे लिए सब कुछ है। कलकत्ते और बम्बई के धनियों के बीच में रहने पर भी मैं अछूता रहा। संकोच वृत्ति का रोग बुरा हो या भला हो, मेरे जीवन में रहा। मेरे इस व्यवहार से भले लोगों ने मुझे अव्यावहारिक, मूर्ख और भोंदू माना हो, और इस अर्थयुग में वैसा सोचना असंगत भी नहीं है, किन्तु मैं आगे नहीं बढ़ा। मैंने कभी किसीसे माँगा-जांचा भी नहीं। महाराष्ट्रीय जीवन की संकोच वृत्ति ने मेरे जीवन में घर कर लिया। एक बार वीर सावरकरजी ने मुझसे कहा कि वे कलकत्ते के एक विशिष्ट व्यक्ति को सहायता के लिए पत्र लिखने का विचार करते रहे, किन्तु वे नहीं लिख सके। अतः मैं दूसरों से क्या माँगता? पिछले काल में जिन व्यक्तियों से ठगा गया, उन्हें मैंने छोड़ दिया। एक युवा कार्यकर्त्ता गेरुआ वस्त्र धारण कर संन्यासी बन गये। मेरे अपने खयाल से संन्यासी का जीवन वीतराग का होना चाहिए। पर ये महाशय संन्यासी की वेशभूषा में सार्वजनिक योजनाओं द्वारा धन हड़पने में बढ़े। उन्होंने अपना जीवन ऐश-आराम का बना लिया। इन महात्माजी ने मुझे आड़ बनाकर रुपया ठगा। सोचा होगा कि इस पढ़े-लिखे को अच्छा मूर्ख बनाया। यह क्रम जारी रहा। पश्चिम बंगाल के मंत्रालय में एक शिक्षित बंगाली युवक से सम्पर्क हुआ। वह साहित्यिक था। उसे और उसके परिवार को अपने घर में रहने के लिए स्थान दिया। मैंने सोचा था कि वह मेरी बँगला की रचनाओं में सहायक होगा। जिस समय वह मेरे पास आया, उसके नाम खाने को दाना नहीं था। जब मैं एकाएक बीमार पड़ा, और अस्पताल गया, तब वह युवक मेरा सामान लेकर अपने परिवार सहित चम्पत हो गया। कुर्सी, टेबुल अलमारी, ट्रंक, बिस्तर, पुस्तकें और दीगर सामान कुछ नहीं छोड़ा। अस्पताल में मेरे पास जो कपड़े थे, बस वे रह गये। इसके बाद मैं अपने एक अँगरेजी प्रकाशन के सिलसिले में एक चालाक दल के पंजे में पड़ गया। वह सारे रुपये खा गया। यह दल भी कीमती सामान उठा ले गया। लोगों ने कहा कि उन्हें सजा दिला दो। मैंने सोचा कि दूसरी मूर्खता करना ठीक नहीं। पिछले दिनों राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने मुझे लिखा कि गणेशजी के साथ रहने पर वे जानते हैं कि प्रताप के कारण मुझे कितना भारी त्याग करना पड़ा, क्षति उठानी पड़ी। हकीकत यह है कि प्रताप में लेख छपने पर जब महाराज मुझ पर टूट पड़े, तब बम्बई में गणेशजी के मेरे पास तार और पत्र आये और यह लिखा कि कानपुर से अधिक से अधिक सहायता भेजी जा सकती है। पण्डित शिवनारायण मिश्र वैद्य बम्बई भी आये। मैंने कहा कि मित्रों की सहानुभूति मेरे लिए सम्बल है, धन नहीं। मेरा जीवन आग से खेलने का है।

यह कहना होगा कि रियासत से संघर्ष करने पर भी ग्वालियर-नरेश का व्यक्तिगत बर्ताव मेरे प्रति सदाशयता का रहा। संघर्ष अपनी जगह था, और व्यक्तिगत संबंध अपनी जगह। आन्दोलन में जब मैं उनका लिहाज नहीं करता, प्रहार करने से बाज नहीं आता, तो अधिकारियों से सिर पर चोटें पड़ना स्वाभाविक था। उनकी रियासत का हूँ, इसका उन्हें सदा खयाल रहता। वे जब कहीं होते और उन्हें मेरे वहाँ होने का पता लगता, तो तुरन्त बुलाते। अपने छात्र-जीवन के काल से ही महाराज के सम्पर्क में आया था।

माधवरावजी जब युवा थे, राजगद्दी पर बैठे ही थे, तब आधी रियासत एक फ्रेंच परिवार को लिख बैठे थे। इस घटना से सारी मराठी रियासतें काँप उठी थीं। वह दस्तावेज इन्दौर के दबंग महाराज, मल्हारराव होल्कर ने बड़े कौशल से नष्ट की। वे उसे निगल ही गये। इस घटना से माधवरावजी को इतना सबक मिला कि भविष्य में सदा सदाचारी रहे। भोग-विलास से वे कोसों दूर थे। मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र-जीवन के काल में माधवरावजी जार्ज पंचम के राज्याभिषेक में शामिल होने के लिए लंदन गये। ग्वालियर-नरेश ब्रिटिश सेना के उच्च कमांडर थे। ब्रिटिश राजवंश से उनका परिवार-जैसा संबंध था। यही कारण था कि जब माधवरावजी के दो सन्तानें हुईं, तब ब्रिटिश सम्राट् ने पुत्री और पुत्र के नाम के आगे अपने नाम जोड़ने के संदेश भेजे। इसलिए राजकुमारी कमलाराजे के नाम में 'मेरी' और पुत्र जीवाजीराव के नाम के आगे 'जार्ज' जोड़ा गया। पर इन दोनों ने उनका कभी उपयोग नहीं किया। अतः राज्याभिषेक के समारोह में ग्वालियर का विशेष स्थान था। सम्राट् के जुलूस में उन्हें चढ़ने के लिए घोड़ा दिया गया। माधवरावजी घोड़े की सवारी में अपूर्व क्षमता रखते थे। पर जुलूस में बाजों की आवाज से उनका घोड़ा बिचका, लगाम खींचने पर भी वह काबू में नहीं आता था। सेना का घोड़ा था, पर महाराज बीसों सैनिक घोड़ों की सवारी कर चुके थे। वह शक्तिशाली घोड़ा कूदता-फाँदता हवा से बातें करता था। मार्ग के दोनों ओर नर-नारियों का अपार जनसमूह खड़ा था। बड़ी भयानक स्थिति पैदा हो गयी थी। यह दिखाई देता था कि सैकड़ों स्त्री-पुरुष आहत हुए बिना न रहेंगे। महाराज को चिंता हुई कि सवारी के काबिल न होने का सिर पर अपयश लगेगा। दूसरा कोई सवार होता तो जमीन पर आ गिरता। पर माधवरावजी ने वीरपुंगव महादजी सिंधिया के वंशज होने पर कलंक न लगने दिया, अपने क्षत्रियत्व की लाज रखी। लोगों के देखते-देखते वे घोड़ा काबू करने में समर्थ हुए। उनके इस कौशल पर अपार हर्षध्वनि हुई। उनके साहस को देखकर राज-परिवार और जनता दंग रह गयी। अँगरेज कवियों ने इस घटना पर कविताएँ रचीं। भारत में भी मराठी और हिन्दी के कवियों ने महाराज के इस कौशल का काव्य में यशोगान किया।

महाराज जब विलायत से लौटे, तब अपने दिमाग में ब्रिटिश नगरों की रचना का स्वप्न लेकर आये। उन्होंने निश्चय किया कि वे अपनी राजधानी को नया रूप देंगे। उसे नया आवरण पहनायेंगे और नये रूप में उसका साज-शृंगार करेंगे। उस समय राजधानी लश्कर एक साधारण नगर था, वैसे इमारतें खड़ी हुई थीं। जयविलास, मोती-महल, गोरखी में राज-मंदिर, पुराना राजभवन, कम्पू कोठी और ग्वालियर का किले का मान मन्दिर और छतरियाँ शानदार इमारतें थीं। सफेद पत्थर की प्रचुरता थी और ग्वालियर के शिल्पी नक्काशी करने में प्रसिद्ध थे। इसके पर भी नगर में सौंदर्य नहीं था। सार्वजनिक इमारतें बड़ी नहीं थीं। महाराज ने योजना तैयार की और उनके बड़े श्रीमंत बलवंतराव सिंधिया ने उसे मूर्त्तरूप दिया। जहाँ वे इंजीनियर थे, वहाँ वे संस्कृत और मराठी तथा हिन्दी के विद्वान् भी थे। प्रसिद्ध संगीतज्ञ और कवि भी थे। हिन्दी में बलवंतराव भैया ने श्रीमद्भागवत की दशम स्कंध की कथा पर तुलसी कृत रामायण की तरह दोहा-चौपाइयों में सुन्दर काव्य-ग्रंथ लिखा, ऊषा नाटक की रचना की और पदावली लिखी। उन्होंने नगर के नये निर्माण का नक्शा तैयार किया। इस योजना के अनुसार जयाजी चौक के मध्य में माधवरावजी के पिता जयाजीराव सिंधिया की मूर्ति संगमरमर पत्थर की सुन्दर छतरी में खड़ी की गयी। मार्ग चौड़े किये गये। हाईकोर्ट, टाउन हाल, जनरल पोस्ट आफिस, प्रेस आदि बीसों विशाल भवन खड़े किये गये। महाराज ने अपने ग्रीष्म-ऋतु के निवासस्थान शिवपुरी को नये रूप में साजा-सँवारा। यहाँ माधवरावजी ने अपनी माता जीजाजी महारानी की मूर्ति स्थापित की। जब मूर्ति का उद्घाटन दूसरे दिन वायसराय के द्वारा होनेवाला था, तब महाराज रात में व्यवस्था देखने आये। उन्होंने अचानक देखा कि मूर्ति पर कुछ धूल लगी है। अपने कुर्ते से वे उसे साफ करने लगे। लोगों ने कहा कि श्रीमंत यह क्या करते हैं? मातृभक्त माधवरावजी ने कहा कि तुम लोगों के लिए पत्थर की मूर्ति है, किन्तु मेरी तो माँ हैं। ग्वालियर ने अत्यंत श्रद्धा और भक्ति-भाव से मूर्ति को निहारा।

रियासती आन्दोलन को रूप देने की मेरे सामने जब तब समस्या उठी। कार्यकर्त्ताओं का खयाल हुआ कि उनकी कठिनाइयाँ कैसे हल हों। आन्दोलन में सभी श्रेणी के युवकों का योगदान था, किंतु उनमें से इने-गिने कुर्बानी के लिए बढ़ सकते थे। अधिकारियों के लड़कों को अपने अभिभावकों का भय था। यदि वे खुल्लम-खुल्ला आन्दोलन में कूदते हैं, तो उनके पिता, चाचा या भाई की नौकरियाँ जाने का भय था। व्यापारियों के लड़कों का कारबार चौपट होने का भय था। जिन पर शासन का प्रहार होता। उन्हें चौबीस घण्टे में रियासत छोड़ने का हुक्म होता था। तब सदियों की अर्जित सम्पदा मिट्टी के मोल में बिकती थी। रियासत के एक वित्तमंत्री को इस आदेश का शिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना पड़ा था। बेचारे खड़े-खड़े सारी सम्पत्ति कौड़ियों में बेच गये। निर्वासन का आदेश चम्बल पार करना था। मेरे इस दल में ग्वालियर-सेना के कर्नल गिरधारीसिंह के पुत्र यदुनाथसिंह भी थे। यदुनाथ अपने बचपन में सीधा-सादा लड़का था। बड़ी धीमी आवाज उसके मुँह से निकलती थी और वह भी बड़ी मधुर होती थी। उस समय किसी ने नहीं सोचा था कि वह जर्मनी में सैनिक शिक्षा प्राप्त करने जायेगा और सेना का उच्च पद ग्रहण करेगा। जब देश स्वतंत्र हुआ तो उसे भारतीय सेना में स्थान मिला। यदुनाथ राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के ए० डी० सी० हुए। फिर वे कश्मीर गये। उनकी अकाल मृत्यु से मुझे मर्मान्तिक दुःख हुआ। यदुनाथ की मेरे और मेरे परिवार के प्रति जो श्रद्धा किशोर अवस्था में थी, वह अंत तक बनी रही। बचपन की तरह वह सैनिक अधिकारी होने पर भी मेरे पैर छूते। यदुनाथ ने कई बार मेरे साथ ग्वालियर स्टेशन पर जाने की इच्छा प्रकट की। पर उन्हें मुझे रोकना पड़ा। जब कभी लोकमान्य तिलक बम्बई मेल से दिल्ली के लिए जाते, तब ग्वालियर स्टेशन पड़ता था। जब ग्वालियर स्टेशन पर बम्बई मेल पहुँचती और लोकमान्य अपने डिब्बे के दरवाजे पर आ खड़े होते, तो मैं उनके सामने खड़ा होता। विनयावनत भाव से उन्हें प्रणाम करता। फिर गाड़ी छूट नहीं पाती कि लोकमान्य के देखते-देखते मेरी पीठ पर तड़ा-तड़ बेंत पड़ते। इतने बेंत पड़ते कि पीठ सूज जाती, खून बहने लगता। बूट-जूतों की ठोकरों से अधमराकर मुझे घसीटकर बाहर फेंका जाता। रियासत की ये सजाएँ और कच्ची जेलों की लोग कल्पना नहीं कर सकते। मगर मैं इतने पर भी लोकमान्य से मिलने से बाज नहीं आता था। बम्बई मेल दोपहर के बाद में आती थी, उस समय मेरा स्टेशन पर पहुँचना दुश्वार था। पुलिस रास्ते में रोक लेती। इसलिए मैं रात में तीसरे दर्जे के यात्रियों के बीच बीमार बनकर सोया पड़ा रहता। जब गाड़ी आती, तब प्लेटफार्म पर लोकमान्य के डिब्बे के सामने खड़ा होता। कई अधिकारी आंतरिक सहानुभूति रखते थे, उन्होंने मुझे परामर्श दिया कि मैं आगरा या झाँसी में मिला करूँ। किन्तु मैंने उसे पसन्द नहीं किया। हाँ, पूना में उनसे मैंने अपनी रियासती आन्दोलन की समस्याएँ प्रकट कीं। उन्होंने कहा कि मैं जो काम करूँ, उसमें दूसरों को न लेऊँ। अन्यथा सारा दल तुरन्त कुचल दिया जायेगा। फिर मेरी अन्य योजनाओं में कार्यकर्त्ता भारस्वरूप न हों। वे सब अपने धंधे में लगे रहकर योजनाओं में योगदान दें। उनके हाथ में मैं लोक-शिक्षा, साहित्य-प्रचार व समाज-सुधार का काम सौंपूं। इस प्रकार जिस किसी काम को अग्रसर किया जायेगा, उससे लोगों में चेतना उत्पन्न होगी, जनता में जागरण उत्पन्न होगा। मैंने इस आदेश की पूर्ति की। पर मैं किसी खूँटे से नहीं बँधा। मैंने कहा कि मेरी भिड़न्त तब तक जारी रहेगी, जब तक कि महाराज के जीवन में परिवर्तन न होगा। यह बात मैं उनसे भी कहता था। मैंने देखा कि कुछ काल में वे इतने बदल गये कि जिसकी मैंने कभी कल्पना नहीं की थी। उन्होंने रेजिडेण्ट की पर्वाह नहीं की। उन्होंने निश्चय किया कि ग्रेट ब्रिटेन की तरह उनका दर्जा एक वैधानिक शासक का हो, और धीरे-धीरे प्रजा को उत्तरदायी शासन दिया जाये। इस लक्ष्य से उन्होंने प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियों की लोकसभा—'मजलिस आम' खड़ी की। जब अन्य रियासतों में निरंकुश शासन था, राजे-महाराजे और नवाब विलासिता की जिन्दगी बिताते थे, तब माधवरावजी नरेशों में सर्वप्रथम प्रजा को वैधानिक अधिकार देने में आगे बढ़े।

हकीकत में माधवरावजी का जीवन सामन्तवादी चौखट में घिरा हुआ नहीं था। जब वे किसानों की ओर बढ़े, तो उन्हें मेरा सहयोग मिला। महाराज के प्रति मेरा संबंध प्रति-सहकार की नीति का था। प्रजाहित की योज-नाओं में सहयोग न देना अनुचित होता। पर जहाँ अन्याय होता, वहाँ मेरा विरोध दब नहीं गया था। राजमहल में बैठकर समय गुजारना महाराज को पसंद नहीं था। वे सदा काम करने की धुन में रहते थे। जब वे किसानों की समस्याओं की ओर बढ़े, तब वे महल में नहीं बैठे रहे। रियासत में दौरे पर जाते और ग्राम-ग्राम में पहुँचते। प्रत्येक जिले के सूबा के साथ वे किसानों की चौपालों में जाते और उनकी बातें सुनते। महाराज को अपनी झोपड़ियों के सामने आया देखकर किसान भौंचक्के हो जाते। वे ताज्जुब करते कि राजाजी उनके ग्राम में आये। अब मैं सोचता कि जब शासक मैदान में उतर आया, तो मेरे लिए क्या करना रहा? यदा-कदा महाराज राजधानी में जमींदार और किसानों की सभा अपनी सदारत में करते। उसमें जिलों के सूबा भी हाजिर होते। तब महाराज जमींदार और किसानों से सवाल करते। किसानों के उत्तर देने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूबा लोगों को कैफियत देने के लिए कहते। वे हकबक हो जाते और आहिस्ते से जवाब देते। उस समय महाराज उनसे कहते कि सूबात में किस तेज आवाज से बोलते हैं, और यहाँ उनके गले से आवाज नहीं निकलती है। तुम जानते नहीं हो कि ये मेरे मालिक हैं। उनकी बदौलत मैं वालिये-मुल्क हूँ। उनकी कमाई से मैं हरे मखमल की गद्दियों पर बैठता हूँ। ये मेरे अन्नदाता हैं। इसे वे सच्ची नियत से कहते थे।

कृषि-विकास और ग्रामों के निर्माण की ओर महाराज का ध्यान गया। किसानों के आगे एक आदर्श-ग्राम की योजना रखी। उन्होंने चाहा कि किसानों का जीवन समुन्नत हो और ग्रामों का रूप बदले और किसान नये ढंग से खेती करें। महाराज विविध विषयों का अध्ययन करते थे। उन्होंने कृषि पर स्वयं कई उपयोगी पुस्तकें लिखीं। इस प्रकार वे लेखक और वक्ता दोनों बने। मनुष्य कब किस ओर कैसी मोड़ लेगा, इसका क्या ठीक है ! ग्वालियर-नरेश का इतना जीवन बदला कि कहाँ से कहाँ पहुँच गये। उन्होंने सोचा कि कोरी कृषि की बातों में किसान रस न लेंगे। इसलिए ग्रामों में जो लोग प्रचार करने जायँ, वे धर्म का उपदेश भी दें। उन्होंने उपदेशकों के तैयार करने की योजना सोची। काशी के भारत धर्म महामण्डल से देश में दो विख्यात उपदेशक निकले। उनमें पण्डित दीनदयाल शर्मा और पण्डित गणेशदत्त शास्त्री भी थे। दोनों ही सनातन-धर्म के विद्वान् थे। शर्माजी को महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय अपना बड़ा भाई मानते थे। ग्वालियरनरेश ने पण्डित गणेशदत्त शास्त्री को उपदेशक विद्यालय का प्रिंसिपल बनाया। बीसों युवक शिक्षा पाने के लिए पढ़े। उन्हें वजीफा मिलता। शिक्षा समाप्त कर लेने पर उनकी ग्रामों में नियुक्तियाँ होती थीं। महाराज में जो लगन थी, और जो कामना थी, उस भाव से नौकरशाही नहीं बढ़ी।

ग्वालियरनरेश की बड़ी उत्कण्ठा थी कि उनकी रियासत का वैभव बढ़े। राज्य में कृषि और उद्योग--दोनों क्षेत्र विकसित हों। उनकी नजर में आया कि बड़ौदा और इन्दौर आदि रियासतों की तरह ग्वालियर राज्य में बड़े व्यापारियों का अभाव है। यह सोचकर वे स्वयं आगे बढ़े। धीरे-धीरे सरकारी पूँजी से उन्होंने राज्य में कई महत्त्वपूर्ण उद्योग खड़े किये। उन्होंने सोचा था कि औद्योगिक उन्नति से प्रजा की गरीबी दूर होगी और लोगों को रोजगार मिलेगा। अतएव, इंजीनियरिंग, पॉटरीज़, कागज़, मेटल, प्रिंटिंग प्रेस, टुबेको-सिगरेट और लेदर आदि के कारखाने खड़े किये। पर उद्योगपति और व्यापारियों की संचालन-कुशलता सरकारी अफसरों में नहीं थी। इसलिए कई कारखाने बंद हो गये। महाराज ने इम्पीरियल टुबेको कम्पनी की प्रतियोगिता में ग्वालियर टुबेको कम्पनी खड़ी की थी। पर दोनों की स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर था। इम्पीरियल टुबेको के पीछे भारी ब्रिटिश पूँजी लगी थी। ग्वालियर टुबेको कम्पनी के महाराज चेयरमैन थे। अतएव उसकी जब मीटिंग होती, और घाटे का तलपट पेश होता, तो महाराज कहते कि होने दो। और पूँजी रियासत से ले लो। कम्पनी बंद नहीं होगी। जब घाटे का दर्जा बढ़ गया, और डायरेक्टरों ने जोर दिया कि कम्पनी बंद कर दी जाय तब भी उन्होंने कहा कि इम्पीरियल टुबेको कम्पनी की क्या बिसात है ? ग्वालियर टुबेको कम्पनी के पीछे सारी रियासत है। उसके चलने के लिए मैं सारी रियासत लगा दूँगा। इस प्रकार वे जिस काम में योग देते, सहसा साहस नहीं खोते थे। रियासत के खड़े किये हुए कई कारखाने गड़बड़ा गये, तब महाराज ने बड़े उद्योगपतियों को रियासत में उद्योग खड़े करने के लिए खींचा। उन्होंने लाहौर से लाला रामशरणदास, कलकत्ते से बाबू घनश्यामदास बिड़ला और इन्दौर से सर सेठ हुकमचंद को आमंत्रित किया। यह भी कहा जा सकता है कि ग्वालियर में बिड़ला जी के पैर जमने पर उनके प्रतिष्ठान का उत्तरोत्तर वैभव बढ़ा। जहाँ तक महामना मालवीयजी की बात है, ग्वालियर दरबार पर उनका भारी प्रभाव था। ग्वालियर-नरेश मालवीयजी के बड़े भक्त थे और उनपर बड़ी श्रद्धा रखते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय के ग्वालियरनरेश केवल चांसलर ही नहीं बने, उसके लिए उन्होंने बड़ी धनराशि दी और बीकानेर आदि नरेशों से सहायता दिलवायी। वे मालवीयजी की सहायता में यहाँ तक आगे बढ़े कि हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए ब्रिटिश भारत के नगरों में चंदा माँगने तक गये। महाराज ने राज्य के आर्थिक विकास की जो कमेटी गठित की थी, उसकी बैठक में उक्त तीनों उद्योगपति उपस्थित होते थे। महाराज उन सबका वाद-विवाद बड़ी दिलचस्पी से सुनते। सेठ हुकमचंदजी इस कमेटी में अपनी वेशभूषा में आते थे। वे धोती और अंगरखा पहनते और सिर पर होल्करशाही मराठा पगड़ी लगाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उनके गले में हीरों की माला होती थी। महाराज बहस में रस लेते हुए हुक्मचंदजी से कहते कि वे उनपर बहुत खुश हैं। वे दिल खोलकर साफ-साफ बोलते हैं। महाराज ने कहा कि उनकी निगाह में हीरों की अपेक्षा उनकी बहस का अधिक महत्त्व है।

जब इस प्रयत्न से भी राज्य की आय नहीं बढ़ी, तब ग्वालियरनरेश को अन्य स्रोत ढूँढ़ने पड़े। रियासत में राजस्व की आय कस्टम और मालगुजारी से थी। सरदारों और जागीरदारों को बेहद जमीन देने पर मालगुजारी की आय में कमी पड़ गयी थी। जमींदार और किसानों पर भारी लगान नहीं था। इधर राज्य में कल्याणकारी योजनाओं में व्यय अधिक बढ़ रहा था। यहाँ महाराज संकुचित दायरे से ऊपर उठे। उनमें राष्ट्रीयता के भावों का उदय हुआ। स्वदेशी की भावना से वे देश के उद्योग-धंधों में सहयोग देने के लिए बढ़े। गांधीजी ने उनकी सराहना की और कहा कि ग्वालियर के राजाजी बड़े देश-भक्त हैं। मगर बम्बई के उद्योगों में पूँजी विनियोजन में रियासत का भी लाभ था। इस काम के लिए महाराज ने नरम दल के प्रसिद्ध नेता वाचा महोदय को नियुक्त किया। उनके परामर्श के अनुसार राज्य की पूँजी का विनियोजन होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की आय दुगुनी व तिगुनी बढ़ गयी। इस प्रकार महाराज राज्य के आर्थिक स्रोतों की वृद्धि करने में सफल हुए। करोड़ों रुपये की आय उद्योगों के डिवीडेण्डों से बढ़ी। अन्य नरेशों के समान ग्वालियरनरेश राज्य का धन अपने भोग-विलास में व्यय कर गुलछर्रे उड़ा सकते थे, किन्तु उनका जीवन जिस जीवट का था, उसमें अपव्यय को कहाँ स्थान था? जीवन की सादगी और प्रजा का खयाल महाराज के जीवन के दो प्रधान तत्त्व थे। प्रजा की हालत जानने में इतने व्यग्र रहते थे कि सादा कुर्ता और पाजामा पहने स्वयं ही मोटर चलाकर रात में निकल पड़ते और नगर में जहाँ-तहाँ गाड़ी रोककर लोगों से उनकी अवस्था की पूछ-ताँछ करते। गाँवों में भी वे इसी प्रकार घूमते थे। रियासत में सिंधिया घराने का जमा किया हुआ एक गंगाजली कोष था। पूर्वजों के इस कोष का कभी अनुमान नहीं लगाया कि उसमें कितना धन है। पुराने समय के सोने-चाँदी की मुद्राओं का ढेर जमा था। रियासत के ठोस चाँदी के हाली के रुपये थे। महाराज ने इस धन को सारे देश के नव-निर्माण में लगाकर रियासत के आर्थिक स्रोत बढ़ाये।

माधवरावजी उन नरेशों में थे, जो रियासत के कामों में सदा जागरूक रहते थे। विलासिता के पुतले बनकर उन्होंने राजशासन का भार दूसरों पर नहीं सौंपा। रियासत में महाराज ने कभी दीवान नहीं रखा। अलबत्ता प्रत्येक विभाग का एक मंत्री होता था, जिसे मेम्बर कहा जाता था। अतः महाराज एक कुशल प्रशासक थे और वे राज-काज में अपना पूरा समय देते थे। वे छोटे कर्मचारियों से अधिकारियों की गतिविधियों का पता लगाते और दफ्तर में उनके आने-जाने का समय पूछते। कोई अफसर देर से आता, तो उसे दुरुस्त करने का उनका अपना तरीका था। उससे कैफियत तलब करने की अपेक्षा किसी दिन दस बजे वे उसकी चेम्बर में जाकर बैठते। बैठे-बैठे वे टेबिल पर रखे हुए कागज उलटते-पलटते और रोजनामचा-डायरी देखते। दूसरों की निगाह में यह प्रकट नहीं होने देते कि वे कोई जाँच कर रहे हैं। इतने पर भी वे बहुत-सी बातें जान जाते। उन्हें रोजनामचे के पन्ने बिना भरे हुए कोरे दिखाई देते। जब अधिकारी महोदय बारह-एक बजे पहुँचते, तो उन्हें पता लगता कि महाराज उनके कमरे में बैठे हैं। वह साहस-कर अपनी चेम्बर में दाखिल होता और महाराज को मुजरा करता। महाराज कुर्सी से उठ खड़े होते, और कहते कि वे शायद किसी जाँच के सिलसिले में गये होंगे। उन्हें काम का इतना बोझ है कि रोजनामचा भरने का समय नहीं मिलता। इन बातों से बेचारे अफसर पर घड़ों पानी गिरता। वह क्या जवाब दें? तब वे उसके कमरे से चल देते। महाराज का यह नियम था कि वे मोतीमहल के दफ्तर में दस बजे पहुँचते और पाँच बजे तक रहते। आज देश की लोकतंत्र शासन-व्यवस्था में उत्तरदायी मंत्री कितना काम करते हैं और किस तरह रहते हैं, यह विचारणीय है।

मराठा-क्षत्रिय होने के कारण ग्वालियरनरेश का सैनिक जीवन स्वाभाविक था। हकीकत में वे एक महान् सेनानी थे। रियासत में उन्होंने बड़ी सेना खड़ी की थी। महाराज की कामना थी कि रियासत की सेना आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो। इसके लिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार से लिखा-पढ़ी की और बड़ा संघर्ष किया, किन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। महाराज का ब्रिटिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजवंश से जो संबंध था, ब्रिटिश अधिकारियों के इस बेरुखेपन से उसमें दरार पड़ गयी। उन्हें दिखाई दिया कि वे कहाँ खड़े हैं। ये अँगरेज उन्हें कठपुतली बनाकर ही रखना चाहते हैं। उन्होंने कहा था कि ग्वालियर की सेना सारे देश के हित में होगी। ब्रिटिश शासन की इन्कारी से उनके हृदय को सख्त चोट पहुँची। बम्बई में महाराज ने मुझसे गंभीर मुद्रा में कहा कि ब्रिटिश शासन उन पर प्रहार कर बैठेगा, अन्यथा वे सारा पत्र-व्यवहार छापने के लिए मुझे दे सकते हैं। वे व्यग्र होकर कहते कि तुम अखबार-नवीस हो, क्या ग्वालियर रियासत को अपनी नहीं समझते हो कि इस काम में योग दो। अखबार और देश के नेता दोनों इस मसले को हाथ में ले सकते हैं। पर फिर कहते कि मामला तूल पायेगा, और कुछ होगा नहीं। महाराज अपनी सेना की स्वयं देख-भाल करते थे। प्रत्येक रविवार को वे सबेरे सात बजे से सैनिकों की परेड लेते। महाराज दौड़ में थकते नहीं, और रिसालदार तथा उनके घोड़े पसीने से तर-बतर हो जाते। महाराज आर्ट्स की कोरी शिक्षा के समर्थक नहीं थे। वे कहते कि घड़ी और चश्मा लगाकर कालिजों से निकलनेवाले युवक सिवा नौकरी के कुछ नहीं कर सकते। वे न तो खेतों में काम कर सकते हैं और न कारखानों में। वे कहते कि छात्रों को खेलना-कूदना और तैरना आदि जानना आवश्यक है। उन्होंने राजपूत और मराठा क्षत्रिय के लड़कों के लिए किले में सरदार स्कूल की स्थापना की थी। इस स्कूल के छात्रों के लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। उन्हें तैरना भी पड़ता था। एक दिन महाराज स्कूल देखने गये। एक लड़के की इच्छा तैरने की नहीं थी। महाराज उसकी भावना को ताड़ गये। उससे वे बोले कि आज तुम मत तैरो। वह इधर-उधर देख रहा था कि महाराज ने उसे धक्का दिया, वह तालाब में कूद पड़ा, और तैरने लगा। तब महाराज बोले कि अरे तुम तो तैरने लगे। दोनों हँस पड़े।

ग्वालियरनरेश में बड़ी राजनीतिक कुशलता थी। आज स्वतंत्र भारत के संविधान में राज्य-शासन में धर्म-निरपेक्षता को स्थान दिया गया है। पर इस देश में महाराज सिंधिया ने अपनी रियासत में उसे सर्वप्रथम स्थान दिया था। वे कहते थे कि मैं भले हिंदू होऊँ, मराठा होऊँ, किन्तु राजगद्दी पर बैठने पर राज करते समय मैं न हिन्दू हूँ और न मराठा हूँ। रियासत के काम में मेरा कोई धर्म नहीं है, कोई मजहब नहीं है, और न कोई जाति है। रियासत का शासन किसी एक धर्म के खूँटे से नहीं बँधा है। रियासत के लिए सब धर्म एक समान हैं। यह उनकी विचारधारा थी और इसे उन्होंने मूर्त्तरूप दिया था। पर साथ ही वे यह भी नहीं चाहते थे कि लोग अपने धर्म और मजहब की उपेक्षा करें और अपने जीवन में अनैतिकता लायें। वे कहते थे कि धर्म के बिना मनुष्य कुमार्ग में चला जाता है और जड़ रहता है। आगे वे कहते कि एक हिन्दू लड़के को जानना चाहिए कि वह जो यज्ञोपवीत पहनता है, उसका क्या महत्त्व है। उन्होंने बताया कि धर्म-निरपेक्षता का यह अर्थ नहीं है कि रियासत सब धर्मों को ठोकर मार दे। उसके लिए सब धर्म एक समान हैं, अतएव महाराष्ट्र के राष्ट्रीय पर्व गणेशोत्सव को सरकार मनाते। विजया दशमी और होली के पर्वों में भी वे हिस्सा लेते। राजमहल में गणेशोत्सव मनाया जाता। महाराज कमर में दुपट्टा बाँधकर मण्डली में खड़े होते और सबके साथ भजन गाते। इस गान में सभी संगीतज्ञ उपस्थित होते थे। ग्वालियर संगीत और वाद्य का केन्द्र रहा है। तानसेन की उस भूमि में विख्यात संगीतज्ञ और वादकार पैदा हुए। महाराज सामवेद के गान में अपनी अनुपम प्रतिभा रखते थे। महाराज ने संगीत और वादकला को पोषण दिया था। वादक में निपुण और संगीतज्ञों को राज्य से अच्छी मासिक वृत्ति मिलती थी। स्त्री और पुरुष सभी सहायता पाते थे। ग्वालियर का दशहरा मैसूर के दशहरे की तरह देश भर में प्रसिद्ध था। दशहरे के दिन शस्त्रों का पूजन और शमी वृक्ष का पूजन और महाराज का जुलूस निकलता था। जिस प्रकार बंगाल में दुर्गा-पूजा के अवसर पर नर-नारी और बालक नये वस्त्र और नये जूते पहनते हैं, पहले से कपड़ों की खरीद होती है, यही प्रथा दशहरे का पर्व मनाने के लिए ग्वालियर में थी। दशहरे के जुलूस में पैदल सेना, रिसालों और तोपों के सिवा मुगलों से प्राप्त प्राचीन बहुमूल्य वस्तुएँ निकाली जाती थीं। होली के पर्व पर महाराज सबके साथ होली के रंग से सराबोर होते थे। छोटे-बड़े का भेद-भाव नहीं रखते थे। जब मुसलमानों के पर्व आते, तो उन्हें भी रियासत की ओर से उसी श्रद्धा और भावना से मनाते। एक मुसलमान की तरह वे मुहर्रम मनाते। राज्य का विशाल ताजिया इमामबाड़े में रखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता। बढ़िया चावल का केसर डाला हुआ पुलाव पकता और फकीरों को बाँटा जाता। ब्रिटिश भारत के दूर-दूर नगरों से मुसलमान फकीर ग्वालियर में आते थे। महाराज हरा कुर्ता पहने और गले में फकीरी डालकर घोड़े की सवारी पर कतल की रात के जुलूस में निकलते और दूसरे दिन जब ताजिये करबला जाते, तब भी जुलूस में सरकारी ताजिये के साथ घोड़े की सवारी पर निकलते। राज्य के व्यय से मुसलमान फकीरों में कई उर्स मनाये जाते। वेदांतवादियों और थियासोफिकल सोसाइटी को भी महाराज ने संरक्षण दिया था। सोसाइटी का भवन भी बनवाया था। सिखों के लिए गुरुद्वारा बनवाया था। ग्वालियरनरेश की धर्म-निरपेक्षता का यह साकार रूप था।

देशी रियासतों के राजे-महाराजे एक दूसरे से तने रहते थे, शायद वे आपस में मिलने-जुलने में इज्जत हतक मानते थे। ग्वालियरनरेश को राजाओं का बिखरा रहना पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा कि इस बदलती हुई दुनिया में सब फिरकों के लोग अपने संघ बनाते हैं, और देशी रियासतों के शासक बँटे हुए हैं। उन्होंने राजाओं को एक संगठन में खींचकर नई दिल्ली में नरेन्द्र मण्डल की स्थापना की। इस नरेन्द्र मण्डल में हैदराबाद के निजाम अंत तक नहीं आये। नरेन्द्र मण्डल के सदस्य बनने पर उनका ध्यान जहाँ अधिकारों की माँग की ओर गया और वहाँ राज्यों की शासन-व्यवस्था में सुधार करने की ओर भी गया। यहाँ नरेशों को अपनी स्थिति का खयाल हुआ। नरेशों ने ब्रिटिश सरकार से सुरक्षा की माँग करनी चाही। पर ग्वालियरनरेश ने कहा कि कौन उनकी सुरक्षा की गारंटी देगा। ब्रिटिश भारत की जनता स्वराज्य और स्वतंत्रता की माँग करती है, तब अँगरेज हमें क्या गारंटी देंगे। आजादी देने पर वे देश से चले जायँगे। इसलिए हमारी सुरक्षा की गारंटी हमारे अपने हाथ में है। हमारा अच्छा शासन ही हमारी सुरक्षा की गारंटी है। जिन प्रश्नों के लिए रियासत से मेरा संघर्ष था, उस ओर जब महाराज का स्वयं ध्यान गया, तब मैंने खयाल किया कि कुर्बानियाँ खाली नहीं गयीं। रियासत में मजलिस आम की स्थापना और अन्य सुधार शासन को लोकोत्तर बनाने के बढ़ते हुए कदम थे। बम्बई में एक बार ग्वालियरनरेश से दिल खोलकर राजनीतिक प्रश्नों पर वार्तालाप हुआ। मुझे लगा कि महाराज देश की आकांक्षाओं से दूर नहीं हैं। यही कारण था कि चोटें खाकर भी मैंने उन्हें सम्मान दिया और अपने हृदय में उनके प्रति श्रद्धा की भावना रखी। एक दिन था, जब लोकमान्य से मेरे मिलने पर मुझे ताड़ना देते थे, फिर ऐसा दिन आया कि वे ही महाराज मेरे द्वारा भारतीय नेताओं से मिलने-जुलने लगे। फिर उन्होंने यह खयाल नहीं रखा कि वे रियासत के शासक हैं। वे एक आम नागरिक की तरह मेरे साथ जब तब नेताओं के घर पर पहुँचे। सार्वजनिक कार्यों को सफल करने के लिए उन्हें नेताओं के घर पर जाने में और सार्वजनिक सभाओं में देश की संस्थाओं के लिए अपना कुर्ता पसारकर चंदा माँगने में कोई संकोच नहीं हुआ। वे नेताओं को अपने यहाँ बुलाकर बातचीत कर सकते थे। पर नहीं, वे तो लोकसेवक बन गये थे। अपनी रियासत की प्रजा को एक बड़ा परिवार समझने लगे थे। यह वे कहते थे कि नागरिकों में वे फर्स्ट सिटीजन हो सकते हैं; किन्तु शासक होने के कारण सबके खादिम हैं। बड़े परिवार की भावना का परिचय उन्होंने अपने पुत्र के जन्मोत्सव पर दिया। उन्होंने अपनी रियासत की ४० लाख प्रजा को न्यौता दिया। किसी परिवार का एक बालक भी भोजन पाने से नहीं बचा। राज्य के भवन में प्रत्येक जाति के लोग आकर भोजन बनाते और खाते और जो स्त्री, पुरुष और बालक नहीं पहुँच पाते, मिलेट्री की गाड़ियों में सैनिक प्रत्येक के हिस्से का मिठाई का एक-एक थाल घर पर वितरण करते। सब धर्म और जातियों के लोगों को भोज दिया। ग्राम-ग्राम में यह भोज हुआ। रियासत में घी, दूध और अनाज की कभी महँगाई नहीं रही। एक बार अकाल पड़ा, तब भी दस-बारह सेर का गेहूँ बिकता था। फिर भी गरीब लोगों को कष्ट में देखकर महाराज स्वयं अनाज मण्डी में आये, और दुकानों का अनाज उठवा दिया। व्यापारियों को राज्य ने मूल्य चुकाया। गरीबों को अँगरेजी चिकित्सा महँगी और उपयुक्त न समझकर महाराज ने आयुर्वेद चिकित्सा को प्रोत्साहन दिया। आयुर्वेद की शिक्षा के लिए स्कूल खोला और आयुर्वेद की डिस्पेंसरियाँ खोलीं, जिनमें लोगों को बिना मूल्य औषधियाँ दी गयीं।

यहाँ इन मराठा शासक के हिन्दी-प्रेम की चर्चा करना उचित होगा। हिन्दी की उन्होंने बड़ी सेवा की है। हिन्दी-सेवकों में उनका नाम अमर रहेगा। ग्वालियर रियासत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अनेक राजनीतिक कार्यकर्त्ता, देशसेवक और हिन्दी के महान् कवि, लेखक और पत्रकार पैदा किये। कई महाराष्ट्रीयों ने भी हिन्दी की सेवा की। एक दो गुजराती भी थे, जो हिन्दी-साहित्यसेवी थे। उनमें पण्डित भास्कर रामचन्द्र भालेराव और पण्डित गणपति जानकीराम दुबे के नाम उल्लेखनीय हैं। भालेरावजी ने पूना के चित्रमय जगत् के हिन्दी संस्करण का सम्पादन किया था, और दूबेजी हिन्दी साहित्य-सभा के मंत्री थे, और दर्शन पर उन्होंने हिन्दी में एक सुन्दर पुस्तक लिखी थी जो नागरीप्रचारिणी सभा ने प्रकाशित की थी। बलवंतराव सिंधिया और स्वयं माधवरावजी की हिन्दी में रचनाएँ गौरवपूर्ण स्थान रखती हैं। महाराज की मातृभाषा मराठी थी किन्तु उन्हें अँगरेजी और उर्दू की शिक्षा मिली थी। राजगद्दी पर बैठने पर उन्होंने हिन्दी सीखी थी, किन्तु उनके भाषण और रचना में उर्दू शब्द आये बिना नहीं रहते थे। वर्षों के प्रयत्न के उपरांत जब उनका लिखा हुआ 'जमींदारी हितकारिणी' ग्रंथ प्रकाशित हुआ, तब उनसे एक प्रति लेकर मैंने पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास भेजी कि वे सरस्वती में उसकी समालोचना प्रकाशित करें। द्विवेदीजी ने अपनी समालोचना में ग्रंथ की प्रशंसा के साथ उर्दू शब्दों के उपयोग की शिकायत की। महाराज को यह शिकायत भूली नहीं। जब हिन्दी साहित्य-सभा के मंत्री और मैंने महाराज से हिन्दी साहित्य-सभा के एक समारोह की अध्यक्षता करने के लिए निवेदन किया, तो वे उस आयोजन में आये। उन्होंने सभापतित्व ग्रहण किया। सभा के अध्यक्ष नार्मल स्कूल के प्रिंसपल थे। प्रिंसपल महोदय अपने भाषण में धीमे-धीमे बोल रहे थे। जब ग्वालियरनरेश के भाषण देने का अवसर आया, तो उन्होंने कहा कि आज उन्हें एक साथी मिल गया। उन्होंने कहा कि हिन्दी साहित्य-सभा के अध्यक्ष ने अपने भाषण में जहाँ-तहाँ बीसों अँगरेजी शब्दों का उपयोग किया। पर जब उनकी पुस्तक 'जमींदार हितकारिणी' इलाहाबाद में समालोचना के लिए भेजी गयी, तब उसकी समालोचना में उन पर यह इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने उर्दू शब्दों का उपयोग किया। मगर आज उन्हें प्रसन्नता है कि हिन्दी साहित्य-सभा का अध्यक्ष, हिन्दी का विरासतदार शुद्ध हिन्दी बोलना नहीं जानता। पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी महाराज के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। जब रियासत में हिन्दी राजभाषा घोषित हुई, तब द्विवेदीजी ने महाराज को बधाई का संदेश भेजा था। सारे देश में सर्वप्रथम हिन्दी को ग्वालियर राज्य में राजभाषा का स्थान दिया गया।* हिन्दी ग्वालियरनरेश की चिरऋणी हुई। सिंधियानरेश ने कहा कि वे अवश्य मराठा हैं, और उनकी मातृभाषा मराठी है, किन्तु रियासत की प्रजा हिन्दी भाषा-भाषी है। ग्वालियर गजट में जब यह घोषणा प्रकाशित हुई और देश के पत्रों में जब इस समाचार को दिया गया, तब अनेक नेताओं ने महाराज की प्रशंसा की। महामना मालवीयजी ने अपने पत्र में महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की। द्विवेदीजी ने मुझे सुझाव दिया था कि ग्वालियर में हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना हो। महाराज से जब मैंने कहा तो उन्होंने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और कहा कि वे अकेले ही विश्वविद्यालय खड़ा करने का सारा व्यय उठायेंगे और उसके लिए एक कोष कायम कर देंगे। पर महाराज और मेरे--दोनों के इधर-उधर रहने से यह योजना बढ़ न सकी। ग्वालियरनरेश की इन सेवाओं से द्विवेदीजी बड़े प्रभावित थे। जब एक बार पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी को हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का सभापति बनाने का प्रस्ताव हुआ, तब द्विवेदीजी ने कहा कि उनकी अपेक्षा ग्वालियरनरेश सर माधवराव सिंधिया को सम्मेलन का सभापति बनाया जाय। हिन्दी के लिए उनकी सेवाएँ बड़ी मूल्यवान् हैं। जब ग्वालियरनरेश से मैंने इस प्रस्ताव की चर्चा की तो वे बोले--पण्डितजी के आगे वे एक अदना हैं। बिना सभापति हुए वे सम्मेलन की सेवा करने के लिए तैयार हैं। देश में ग्वालियरनरेश का नाम और उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

---

*हमारी सूचना के अनुसार कोटा और रीवा में हिंदी को राजभाषा इससे पहिले घोषित किया जा चुका था।
--सम्पादक, सरस्वती

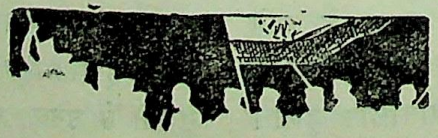

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१८)

पंडित व्रजमोहन व्यास

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का वातावरण—

पाँव रखियेगा ज़रा फर्शे-ज़मीं को देखकर।
ज़र्रे-ज़र्रे में दिले-मरहूम की तसवीर है॥

याद रखियेगा जब कभी आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भीतर जायँ तो कदम सम्हालकर रखियेगा क्योंकि उस जमीन के कण-कण में मालवीयजी के अरमान बिखरे पड़े हैं। विश्वविद्यालय के भव्य प्रवेशद्वार के सामने मालवीयजी की विशाल मूर्ति ऐसी लगती है जैसे साक्षात् महामनाजी कह रहे हों कि—

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिचयाः स्वांशं विशन्तु ध्रुवं
धातारं प्रणिपत्य नम्रशिरसा याचेहमेकं वरम्।
तद्वापीषु पयः तदीयमुकुरे ज्योत्स्ना तदीयांगणे
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मसु धरा तत्तालवृन्तेनिलः॥

मेरा शरीर पञ्चत्व को प्राप्त हो जाय और सब तत्त्व 'पृथ्वी, सलिलं, तेजो, वायुराकाशमेव च' अपने अपने अंशों में मिल जायँ, परन्तु विधाता से नतमस्तक होकर एक वर यह माँगूँगा कि मेरे शरीर का जलवाला तत्त्व विश्वविद्यालय के कुओं के जल में मिल जाय, मेरा तेज-

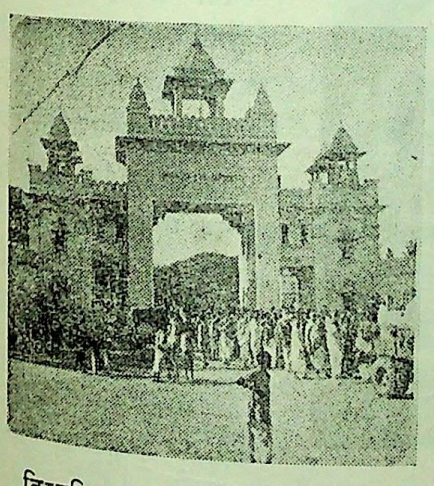

विश्वविद्यालय का विशाल प्रवेशद्वार

तत्त्व वहाँ के दर्पणों की ज्योत्स्ना में, मेरा पृथ्वी-तत्त्व वहाँ के मार्गों के जमीन में, मेरा आकाश-तत्त्व, विश्वविद्यालय के ऊपर आकाश-खंड में, और मेरा वायु-तत्त्व वहाँ बहने-वाले वायु में मिल जाय।

इस प्रकार आत्म-समर्पण करनेवाले एक महान् पुरुष की यह विश्वविद्यालय विभूति है। महामनाजी

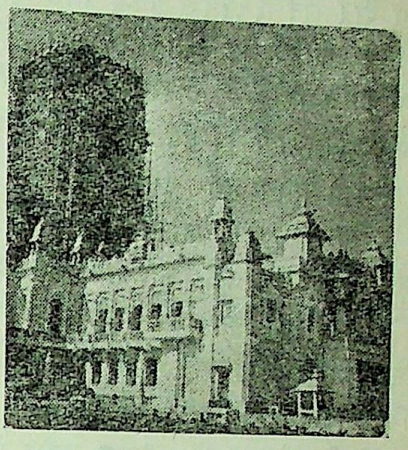

साइन्स कालेज

के समय का विश्वविद्यालय, विविध विद्याओं एवं कलाओं का केन्द्र होते हुए एक बहुत बड़ा धार्मिक क्षेत्र था। वह छात्रों को लोक-कल्याण के लिए आदर्श मनुष्य बनाने की एक मशीन थी। इस विराट् मशीन का बनानेवाला वहीं एक छोटे से मकान में भगवान् विश्वनाथ का प्रतिनिधि-स्वरूप होकर मशीन का सञ्चालन करता रहता था। सन् १९३५ में महामनाजी ने विश्वविद्यालय के हाल में भाषण देते हुए अध्यापकों और छात्रों से कहा था—

"आप लोग जानते हैं कि हिन्दू यूनिवर्सिटी के इंजिनियरिंग कालेज में जो 'पावर हाउस' है और इस पवित्र नगरी के एक तरफ बना हुआ है उसका सम्बन्ध सब विशाल भवनों, कालेजों, छात्रावासों और बँगलों से है। इससे सब कमरों में प्रकाश जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के बल्ब लगे हैं, पंखे चलते हैं, कुओं से पानी खिचता है और साइन्स विभाग में अनेक कार्य होते रहते हैं। इस सबका करनेवाला वही एक 'पावर-हाउस' है। उसी तरह इस विचित्र सृष्टि का वैभव एक परमात्मा दिखा रहा है। वह सब करता हुआ द्रष्टा है, खुद ही सब देखता है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी कैलाश पर और समुद्र के गम्भीर तल में उसकी लीला का नृत्य होता रहता है.....
उसी विश्वम्भर विश्वनाथ की कृपा से हम लोग इस भूमि में उसका गुणगान कर रहे हैं। उसकी कृपा से विश्व-विद्यालय का प्रादुर्भाव हुआ है। वही अपना स्वरूप बढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। सन् १९०४ में इसके बनाने का विचार हुआ। देश भर में अपील की गयी। जनता और राजा-महाराजाओं ने सहायता दी। सन् १९१५ में पन्द्रह लाख एकत्र हुए। सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज कामाक्षा (काशी) में बना। अठारह वर्ष की अवधि में विश्वविद्यालय नगरी की रचना हो गयी और होती जाती है। डेढ़ करोड़ रुपये मिल चुके। उसी परमात्मा से प्रार्थना है कि इसकी पूर्ण रचना कर दें। विश्वनाथ प्रार्थना सुनेंगे और मनोरथ पूर्ण होगा।". ..... इसी भाषण में आगे चलकर मालवीयजी ने छात्रों को बताया है कि छात्रों की दिनचर्या क्या होनी चाहिए।

"विश्वविद्यालय में निवास करने का पहिला कर्तव्य यह है कि व्यायाम करके शरीर को दृढ़ बनावें। पहिले स्वास्थ्य सुधारें, फिर विद्या पढ़ें। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करें तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं। नित्य सबेरे-शाम नियम से व्यायाम करें। शाम को खेलें, मैदान

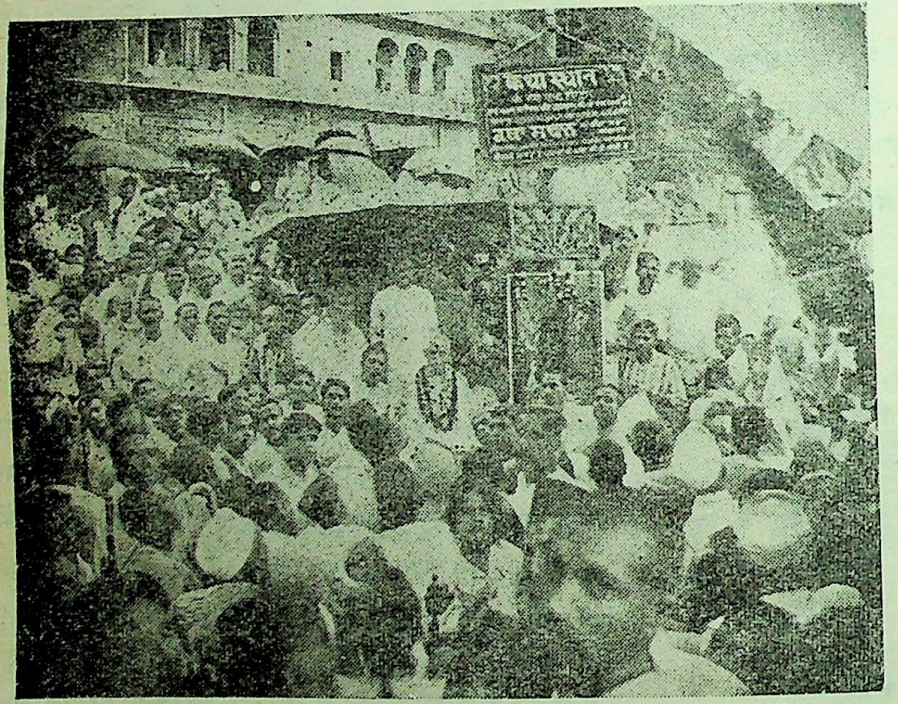

कथास्थान—मालवीयजी एकादशी की कथा कह रहे हैं।

में विचरें। जल्दी भोजन करें और नियम से नित्य अध्ययन करें। धार्मिक उत्सवों, एकादशी कथा, गीता-प्रवचन आदि में उपस्थित रहें और विद्वानों का उपदेश लें, उनका अनुभव ग्रहण करें और आशीर्वाद लें। अपनी रक्षा आप करें। समय की पाबन्दी रक्खें। व्यर्थ समय नष्ट न करें।....."

अपनी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर मालवीयजी ने छात्रों को उपदेश दिया था उसके कुछ अंश उद्धृत करता हूँ—

"प्रत्येक मनुष्य को ऐसा कोई काम न करना चाहिए जो वह माता से न कह सके। ऐसा नियम मैंने किया था। इस नियम से मैं कई पापों से बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उत्साह और दिव्य ज्योति से उज्ज्वल होता गया।..... यदि पाप किया है तो प्रायश्चित्त कर ले। आगे फिर पाप न करे। सबेरे और शाम सन्ध्या कर ईश्वर से प्रार्थना कर ले। जैसे स्नान से शरीर शुद्ध होता है वैसे ही भजन से हृदय। सबसे पहिले धर्म भार और परमात्मा का स्मरण, दूसरा काम माता-पिता और गुरु की सेवा, तीसरा काम प्राणिमात्र का लाभ, चौथा देशसेवा और तब जगत् की सेवा का भार ले।

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

सत्य बोले, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे, व्यायाम करे, विद्या पढ़े, देश-सेवा करे और लोक में सम्मान प्राप्त करे। यह अन्तिम उपदेश हर एक छात्र को हमेशा स्मरण रखना चाहिए और इसके अनुसार आजीवन आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है।"

उपर्युक्त उद्धरणों से आपको पता चलेगा कि मालवीयजी के समय में विश्वविद्यालय का क्या वातावरण था और किस प्रकार वे चाहते थे कि वहाँके विद्यार्थी फूलें और फलें।

जिस प्रकार "सागरः सागरोपमः" सागर की उपमा सागर ही से दी जा सकती है, उसी प्रकार काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय को उपमा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ही दी जा सकती है। यह 'विस्तीर्णा योजनशतं, शतमध्यर्धमायता' नगरी अनुपमेय है। जिस तरफ निगाह उठाइये कितने ही बड़े-बड़े विशाल कालेज, हजार-हजार विद्यार्थियों से भरे दोमञ्जिले अनेक छात्रावास और हर एक कालेज और छात्रावास के सामने खेल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूद के लिए विस्तीर्ण मैदान, जिनपर प्रायः अन्तर्प्रान्तीय क्रिकेट, फुटबाल और हाकी की मैचें हुआ करती हैं, प्राध्यापकों के सैकड़ों आवास दिखलाई पड़ते हैं और इन सबों की स्थापत्य-कला विशुद्ध भारतीय है। और मालवीयजी के समय में वे सब भवन गेरुवे रंग से पुते थे। उन्हें केवल देखने ही से हृदय में एक धार्मिक भावना उत्पन्न होती थी। मालवीयजी के देहावसान के बाद कुछ ऐसे भी छात्रावास और प्राध्यापकों के निवास बने हैं जिनका स्थापत्य पुराने भवनों से मेल नहीं खाता और वे हलके-पीले रंग के पुते हैं। ये आँखों में खटकते हैं। जिस विद्यालय में बाइस मील सड़कें और इतनी अधिक संख्या में विशाल भवन हों उसे विद्यालय कहें या नगरी। मालवीयजी ने अपने भाषण में ठीक ही कहा था "अठारह वर्ष की अवधि में विश्वविद्यालय नगरी की रचना हो गयी और होती जाती है।" यद्यपि यह विद्यालय चार मील की परिधि में है फिर भी आये दिन भवनों के निर्माण की आवश्यकता पड़ने पर वह स्थान संकुचित लगता है। सन् ५१ में जब मैं वहाँ एक्जेकेटिव आफिसर था तो और भूमि लेने की बात चल रही थी। उसी समय शाकुन्तल की वह बात याद आयी जिसमें शकुन्तला अनुसूया से शिकायत करती है कि प्रियंवदा ने उसकी चोली बहुत कस कर बाँधी है—शकुन्तला कहती है "हला अनुसूये! अति पिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया दृढं पीडितास्मि, तत् शिथिलय तावदेनाम्"

(सखी अनुसूया! प्रियंवदा ने इस वल्कल को बहुत ज्यादा कस दिया है। इससे मुझे पीड़ा पहुँच रही है। सो तुम इसे ढीला कर दो) इस पर प्रियंवदा अनखाकर कहती है—

"अत्र तावत् पयोधरविस्तारहेतुकम् आत्मनो यौवनाभ्यं उपालभस्व, मां किमुपालभसे।"

(तुम अपने चढ़ते हुए यौवन की शिकायत करो जो तुम्हारे स्तनों का बराबर विस्तार करता जा रहा है। मेरी शिकायत क्यों करती हो)।

और विश्वविद्यालय के लिये वह यौवन था ऋषि-कल्प एक महामानव जिसकी पवित्र कल्पना और भगवान् विश्वनाथ की कृपा से यह तिलस्म इस प्रकार क्रमशः ऐसा बड़ा होता जा रहा था जैसे—

प्रजा इवांगादरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुराद्विरीयुर्मुरजित् ध्वजिन्यः॥

माघ—शिशुपालवध ३—६५

[द्वारिकापुरी से (यहाँ मालवीयजी के मस्तिष्क से) भगवान् कृष्ण की सेना (यहाँ इतने विशाल भवन) इस प्रकार निकली जैसे अरविन्दनाभ विष्णु के अङ्ग से सम्पूर्ण सृष्टि, भगवान् शंकर के जटाजूट से मंदाकिनी का अथाह प्रवाह और ब्रह्मा के मुख से सम्पूर्ण श्रुतियाँ]

इन तमाम भवनों के निर्माण करने का प्लान भी बड़ा विचित्र है। वह त्रिकोण मयूर-पंख के सदृश है। एक कोने पर केवल एम्फीथियेटर जिसके विशाल प्रांगण में वार्षिक कानवोकेशन, एन० सी० सी० का परेड तथा

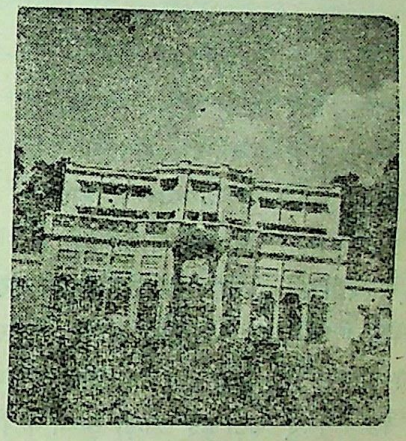

मालवीयजी का निवासस्थान

बड़ी-बड़ी सभाएँ हुआ करती हैं। इस केन्द्र से कालेज, फिर छात्रावास और तदनन्तर प्राध्यापकों के रहने के बँगले, अर्धचन्द्राकार श्रेणी में बने हुए हैं। और इस पाटलिपुत्र के समान विशाल नगरी में, मुख्य प्रवेश-द्वार से थोड़ी ही दूर पर मालवीयजी का एक छोटा-सा निवास-स्थान, प्रहरी के समान खड़ा है। सादगी का एक नमूना है। न उसमें कोई शानदार फर्नीचर है और न सैनिटरी फिटिंग। एक कमरे में मालवीयजी के सोने के लिए चारपायी और बैठकर काम करने के लिए तख्त बिछा रहता था। भीतर प्रांगण में तुलसी की झाड़ और कोने में रसोईघर और निकट में ईंधन रखने के साधन। बस, उस भवन को देखकर चाणक्य के भवन की याद बरबस आ जाती है जिसका चित्र विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में खींचा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

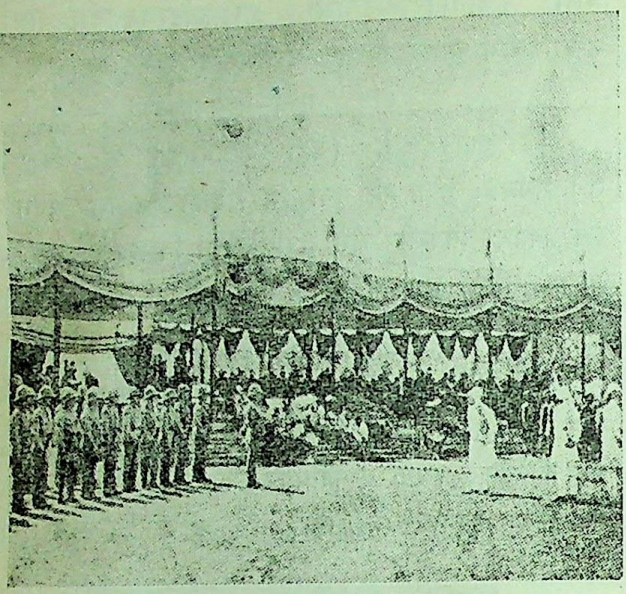

एम्फीथियेटर

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोममेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिः
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥

(एक स्थान पर उपली पाथने के लिए पत्थर की एक सिल रखी है। एक दूसरे स्थान पर छात्रों के लाये वर्हि-घास का अड़ार लगा हुआ है। जीर्ण-शीर्ण मकान जिसकी छत पर यज्ञ के लिए कटी हुई लकड़ी सूखने के लिए लाद दी गयी है और जिसके बोझ के कारण उस कुटी की मुँडेर झुक गयी है)

यह निवासस्थान था मौर्य-सम्राट् के प्रधान मंत्री का जिसमें बड़े-बड़े राज्यों के तख्ता उलट देने और एक दूसरे राज्य के स्थापन एवं निर्माण करने की शक्ति थी। उनको अपनी बुद्धि पर गर्व था। एक अवसर पर चाणक्य कहते हैं :--

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु, तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यताः।
एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागान्मम॥

(चाणक्य से जब यह कहा गया कि सेना के कुछ अफसर पद त्याग कर चले गये तो वे बोले "जो लोग कुछ मन में ठानकर चले गये उन्हें चले जाने दो। जो रहना चाहते हैं वे प्रसन्नता से ठहरें और वे भी यदि हमें छोड़कर जाना चाहते हैं तो भले ही चले जायँ। केवल मेरी बुद्धि मुझे छोड़कर न जाय। वह बुद्धि जो कार्यसाधन में अनन्त सेना से भी अधिक शक्ति रखती है और जिसकी शक्ति एवं महिमा की परीक्षा नंदवंश के उखाड़ फेंकने में हो गयी है।")

इसी प्रकार की शक्ति रखनेवाले मालवीयजी भी छोटे से मकान में रहते थे। वही विश्वविद्यालय का 'पावर हाउस' था। विश्वविद्यालय की विस्तीर्ण भूमि पर जहाँ पहिले भूत लोटते थे और खेतिहर लोग 'अहि शिवारुतैः" सियारिनों के अमंगलसूचक फेंकरने से जाग थे, वहाँ भगवान् विश्वनाथ की कृपा से प्रातःकाल वेदध्वनि एवं पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर तथा उनके शिष्यों की मधुर स्वरलहरी से अब प्रातःकाल लोगों की आँखें खुल लगीं। कितने ही विश्वविद्यालय हैं जो बड़े-बड़े नगरों में स्थित हैं; परन्तु यह नगर के बिलकुल बाहर।

सेहर वह है, खाक़ के ज़र्रे को कर दे ज़र निगार।
ऊँची ऊँची चोटियों पर नूर बरसाने से क्या॥

पण्डित सीताराम चतुर्वेदीजी लिखते हैं--

"मालवीयजी का बँगला एक सराय है। हर तरह के लोग वहाँ आपको देखने में मिलेंगे। उनका दरवाजा सबके लिए खुला रहता है। इससे होता यह है कि हर एक ऐरा-गैरा, नत्थू-खैरा वहाँ पहुँच जाता है और उनका समय व्यर्थ नष्ट करता है। वे संकोच में आकर किसी से जाने को नहीं कहते थे।"

गांधीजी का क्रम इससे बिलकुल भिन्न था। वे पहिले ही से कह देते थे कि अमुक व्यक्ति को वह कितना समय देंगे और घड़ी सामने रखकर बात करते थे। जब निर्धारित समय समाप्त हो जाता था तो वे आगन्तुक से यह तो नहीं कहते थे कि अवधि समाप्त हो गयी, अब तुम जाव। वे एक अँगौछे से मुँह ढककर मौन हो जाते थे। दो एक मिनट बाद बेचारा आगन्तुक स्वयं ही उठ जाता था।

"अच्छी हालत में तो खैर कुछ नहीं पर मालवीयजी जब बीमार पड़ते हैं तो उनकी दशा देखकर दया आती है। न मालूम कहाँ-कहाँ से लोग अपना पचड़ा लेकर आते हैं और मालवीयजी बिस्तर पर पड़े-पड़े उनकी गाथा सुनते जाते हैं। पिछले साल जब वे बीमार थे तो डाक्टरों ने बहुत देर तक उपदेश दिया और सलाह दी कि आपको किसीसे मिलना न चाहिए, लोगों का आना जाना बन्द कर देना चाहिए, कम बोलना चाहिए इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कुछ सुनकर मालवीयजी बोले--"कह चुके न? देखो एक शायर ने कहा है--

नासेहा! मत दे नसीहत जी मेरा घबराय है।
मैं उसे समझूँ हूँ दुश्मन जो मुझे समझाय है।

पचहत्तर वर्षों की पुरानी आदत भला मुझसे अब छोड़ने को कहते हो।" बस इस एक शेर में सारे जीवन की कहानी भरी है।

एक बार उनके छोटे पुत्र, गोविन्दजी ने भी उनसे कहा था कि आपको लोग बहुत परेशान करते हैं। मैं सब लोगों को रोक देता हूँ। इसपर मालवीयजी बोले "जब तक मैं इस घर में हूँ तब तक यह नहीं हो सकता।" इस खुले दरबार के कारण न जाने कितने खुफिया पुलिसवाले भी उनके बँगले के चारों ओर मड़राया करते हैं पर काँच की गच पर चोंच चील मारेगी तो अपना ही मुँह तोड़ेगी।" चतुर्वेदीजी का यह विवरण मालवीयजी के निवासस्थान एवं उनके हृदय का एक सजीव चित्रण है।

गांधीजी ने एक स्थान पर लिखा है--

"पण्डित मालवीयजी ने मुझे अपने ही कमरे में शरण दी। उनके जीवन की सादगी की एक झाँकी मुझे हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर मिली। परन्तु इस अवसर पर उनके साथ एक ही कमरे में होने के कारण मैंने अत्यन्त निकट से उनकी नित्य की जीवन-चर्या देखी थी और उसे देखकर मैं मंत्रमुग्ध हो गया। उनका स्थान सभी दरिद्रों के लिए एक धर्मशाला की भाँति था। वह इतना ठसाठस भरा था कि एक कोने से दूसरे कोने तक जाना आपके लिए बहुत कठिन था। उसमें सब समय के लिए किसी भी अभ्यागत के लिए, जो अपने को अपनी इच्छानुसार उनके समय लेने का अधिकारी समझता था, आने की कोई मनाही न थी। इस धर्मशाला के एक कोने में बड़े सम्मान से मेरी खटिया बिछी थी। इस भाँति मुझे मालवीयजी से नित्य वार्तालाप करने का सुयोग मिला। वह मुझे भिन्न दल और भिन्न विचारों के होते हुए भी बड़े भाई की भाँति समझाते थे।"

एक दिन एक विद्वान्, मालवीयजी से मिलने आये। वहाँ तो हर समय लोग मालवीय जी को घेरे रहते थे। आगन्तुक विद्वान् बहुत देर तक संकोचवश बाहर ही बैठे रह गये। जब न रहा गया तो उन्होंने एक पुर्जे पर यह लिखकर कि 'समुद्रे शान्तकल्लोले स्नातुमिच्छति मूढधीः'

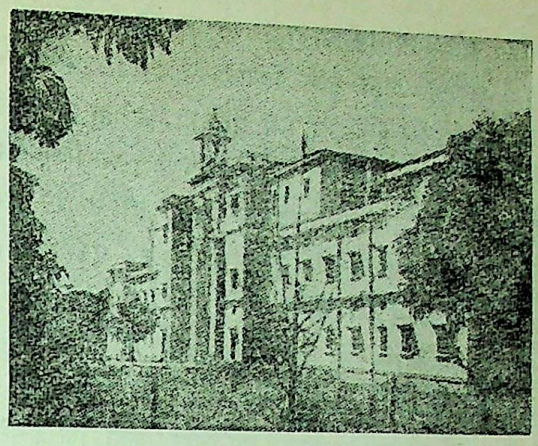

एक छात्रावास

(यह मूर्ख विक्षुब्ध समुद्र में स्नान करने की इच्छा करता है) मालवीयजी तुरन्त समझ गये और बाहर आकर हँसते हुए बोले 'क्षमा कीजियेगा, आपको विलम्ब हो गया।' यह तो हुई मालवीयजी के लोक-व्यवहार और घर के वातावरण की बात। वे जिज्ञासु थे। वे सब की बात ध्यान से सुनते थे। शायद कोई अच्छी बात सुनने को मिले। इस बात में वे इस नीति का अनुसरण करते थे—

न कञ्चिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम्।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः॥

(किसी की सलाह की अवहेलना न करे। सबके मत को ध्यान से सुने। बालक भी यदि सारगर्भित बात कहे तो उसका आदर करे)

वे जानते थे कि--

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

भवभूति

(गुणीजनों में गुण ही पूज्य होता है। वह व्यक्ति स्त्री है अथवा पुरुष, उम्र में छोटा है या बड़ा, यह सब नहीं देखा जाता।)

अब मालवीयजी का व्यवहार छात्रों के साथ जैसा होता था, उसे थोड़े में कहूँगा। यों तो इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं पर दो-तीन ही पर्याप्त होंगे।

मालवीयजी का प्रतिदिन यह नियम था कि वे नित्यकर्म से निवृत्त होकर कभी आचार्य ध्रुवजी के साथ और कभी अकेले ही किसी छात्रावास या कालेज में जाकर निरीक्षण करते थे। छात्रावास में लड़कों का दुख-सुख पूछते थे। पूछते थे व्यायाम करते हो या नहीं, दूध पीते हो या नहीं, सन्ध्या-वन्दन करते हो या नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि। एक दिन एक छात्रावास में जा रहे थे कि रास्ते में एक लड़का आता हुआ दिखलाई पड़ा। मालवीयजी ने उसे रोककर पूछा कि दूध पीते हो कि नहीं? उसने उत्तर दिया कि वह बहुत गरीब है, दूध पीने के लिए पैसे कहाँ से पावे। मालवीयजी जब घर लौटे तो उन्होंने उस लड़के के लिए दूध का प्रबन्ध करा दिया। ऐसी घटना आये दिन हुआ करती थी।

एक बार रात्रि में किसी छात्रावास में गये। एक संस्कृत का विद्यार्थी दमचूल्हे पर दूध गरम कर रहा था। मालवीयजी उसपर नाराज हुए और कहा कि इससे गन्दगी फैलती है और कमरे के भीतर दमचूल्हा जलाना नियम के विरुद्ध है। यह कहकर उन्होंने उसके ऊपर ५) रुपया जुर्माना किया। परन्तु घर जाकर मालवीयजी ने उसके पास ५) रु० भेज दिया कि वह उस जुर्माने को जमा कर दे और फिर भविष्य में ऐसा अपराध न करे।

पण्डित अम्बिकाप्रसाद लिखते हैं--

"जयकुमार नाम का एक मेरा छात्र आचार्य अन्तिम वर्ष में पढ़ता था। छात्र बुद्धिमान् तथा सुन्दर और बलिष्ठ था। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। अन्त्येष्टि के लिये घर गया। आने में विलम्ब हुआ इसलिए उपस्थिति पूरी न हो सकी। फलतः परीक्षा में प्रविष्ट होने की सम्भावना नहीं थी। मैंने कहा कि एक प्रार्थना-पत्र लिख कर मालवीयजी के पास जाओ और वहाँ जाकर

या त्वरा द्रौपदीत्राणे या त्वरा गजमोक्षणे।
मद्गतें करुणानाथ! सा त्वरा क्व गता हि ते॥

[द्रौपदी की रक्षा करने में जो तुम्हें जल्दी थी, जो जल्दी तुम्हें गजेन्द्र-मोक्ष में थी, हे करुणानाथ! वह तुम्हारी जल्दी (हमारे विषय में) कहाँ चली गयी?]

यह श्लोक रोकर पढ़ देना। उसने वैसा ही किया। सुनकर मालवीयजी के नेत्रों में भी आँसू आ गये और लिख दिया 'ही शुड बी एडमिटेड'। उसी समय मैं तथा पं० कालीप्रसादजी दोनों मिलने गये। हम दोनों को देखकर महाराज ने पंतजी से कहा कि वह प्रार्थना-पत्र रजिस्ट्रार के यहाँ मत भेजो। इससे व्यवस्था में बाधा होती है। अध्यक्ष वर्ग बुरा मानेगा। मेरे मन में हुआ कि हम लोगों के आने से यह बना-बनाया काम बिगड़ रहा है। मैंने मालवीयजी महाराज से कहा कि महाराज! विधाता का लेख कटता नहीं है। मालवीयजी ने कहा कि विधाता का लेख तो नहीं कटता है। मैंने कहा, तब कैसे आपका लेख कटेगा? उन्होंने कहा, मैं क्या विधाता हूँ। मैंने कहा, विश्व-विद्यालय के तो आप विधाता ही हैं। इसपर पं० कालीप्रसादजी ने कहा--आपको यहाँ विधाता पुरुष कहते ही हैं। इसपर मालवीयजी हँसने लगे और बोले कि पंडितों का कहना मानना चाहिए, भेज दो। उस वर्ष वह छात्र परीक्षा में प्रविष्ट हो गया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण भी हो गया।" बात तो यह है कि जयकुमार के पिता उसे मचहले में छोड़कर स्वर्ग चले गये परन्तु मालवीयजी "स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः" वास्तव में तो मालवीयजी उसके पिता थे। उसके असली पिता ने तो केवल जन्म दिया था।

(क्रमशः)

राजर्षि के प्रति निराला

राजर्षि की ७६वीं वर्षगाँठ पर निरालाजी ने अपने संदेश में कहा था:--

"पुरुषोत्तम संज्ञा भगवान की है, जिसके दर्शन से सदैव मानस-पटल में करने का आदी हूँ। जहाँ तक राजर्षि जी का प्रश्न है, मैं उनकी कर्मठता का हामी हूँ। रही बात उनकी हिन्दीप्रियता की, वह इस काम में मुझसे आगे है, क्योंकि मैंने हिन्दी के लिये मजदूरी की है और उन्होंने हिन्दी का भवन बनाया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजभाषा-साहित्य में वर्षा-वर्णन

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

भारतीय ऋतु-परंपरा में वसंत और वर्षा, इन दो ऋतुओं को विशेष गौरव प्राप्त है। ऋतुराज वसंत पतझड़ के पश्चात् आकर कोयल की काकली द्वारा संसार को नवीन सृजन और विकास का संदेश सुनाता है, उसे वासंती रंग में अनुरंजित कर देता है जो हर्ष और उल्लास का द्योतक है। ऋतुओं की रानी वर्षा निदाघ से तभी धरती को अपनी रिमझिम फुहारों से नहलाकर स्वच्छ, स्निग्ध और शीतल बनाती है, कलापी के कलापूर्ण नृत्य के माध्यम से जीवन को नूतन गति और प्रेरणा देती है। पावस ऋतु में जिस प्रकार नीलनिस्सीम आकाश कृष्ण मेघखंडों से आवृत हो जाता है, उसी प्रकार रूखी धरती की नग्न देह भी हरिताभ अंकुरों से आच्छादित हो जाती है और तब इस धन-धान्य विभव-वैभव को देखकर अनायास ही कवि-कंठ से कविता-कल्याणी की अजस्र धारा फूट पड़ती है—'सुजलां, सुफलां, शस्यश्यामलां....!' प्रकृति की प्रेरणा छंद बन जाती है।

भारत की विभिन्न जनपदीय बोलियों के लोक-गीतों में वर्षा ऋतु का बड़ा ही सरस, मार्मिक और हृदयग्राही वर्णन हुआ है। अँगरेजी साहित्य में जो गरिमा समुद्र को प्राप्त है, भारतीय साहित्य में वही स्नेह और सम्मान बादलों को मिला है। यह एक कृषि-प्रधान देश के लिए स्वाभाविक भी है, क्योंकि पावस का सीधा संबंध यहाँके लोक-जीवन से है। सूने आसमान में सजल श्यामल बादलों को तह-पर-तह जमते देख कृषक-बंधुओं का मन मयूर की भाँति नाच उठता है और तब उस काल के उनके हास-विलास का वर्णन, अश्रु-उच्छ्वास की कथा किसी भी श्रेष्ठ साहित्य का सहज, समृद्ध उपादान है। साहित्यिक कृतियों में लोक-गीतों का वन्य निर्झर के समान उद्दाम अकृत्रिम प्रवाह तो संभव नहीं, पर शीतल जल से परिपूर्ण सुकोमल कमलों से सज्जित एक मनोहर पुष्करिणी की सुघरता अवश्य सुलभ है। संस्कृत साहित्य में कालजयी कवि कालिदास का 'मेघदूत' इस विषय की एक अनुपम कृति है, जिसमें रामगिरि के शिखर पर निर्वासित यक्ष ने आषाढ़ के पहले बादलों द्वारा अलका में विरह के भार-सदृश दिवस यापित करती हुई अपनी प्रिया को संदेश भेजा है। वस्तुतः यक्ष की काया में बैठकर लोकप्राण कवि कालिदास ने ही मेघों का अभिनंदन किया है। पीयूषवर्षी कवि जयदेव ने भी कालिंदी के कदंबयुत कूलों को झूलों से दोलित करती, वर्षा में भीगती युगलमूर्त्ति की बाँकी झाँकी प्रस्तुत की है। 'गीत गोविंद' का प्रथम श्लोक

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नंदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः।

ही पावस का पावन जयघोष है।

व्रजभाषा-साहित्य के वाल्मीकि, साहित्य-गगन के सूर्य कवि सूरदास ने भी पावस का अभिषेक करने में कहीं कृपणता नहीं बरती है। कृष्ण-काव्य में वर्षाऋतु को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भागवत-पुराण के अनुसार कृष्ण का जन्म ही ऐसी वेला में हुआ था, जब धारासार वर्षा धरती को आचूड़निमज्जित कर देने का उत्साह प्रदर्शित कर रही थी। उनके गोकुल-आगमन के उपरांत तो वर्षा न केवल एक तटस्थ द्रष्टा रही, प्रत्युत उनके लीलाविलास की सहचरी ही बन गयी। उसकी ही छाया में राधाकृष्ण के पारस्परिक प्रेम का बीज-वपन हुआ, वह पनपा, पल्लवित-पुष्पित हुआ और पूर्णता तक पहुँचा। ऊपर जिस स्थिति का संकेत गीतगोविन्दकार ने किया है, उसी पावस की सलोनी सुरमई साँझ को रससिद्ध कवि सूरदास के शब्दों में देखिए—

गगन घहराई जुरि घटा कारी।
पवन झकझोर चपला-चमक चहुँ ओर,
सुवन तन चितै नंद डरत भारी॥
कह्यौ वृषभानु की कुँवरि सों बोलिकैं
राधिका कान्ह घर लिए जा री।
दोऊ घर जाहु संग, गगन भयो स्याम रंग,
कुँवर कर गह्यो वृषभानुवारी॥
गए बन घन ओर नवल नंदकिसोर
नवल राधिका नए कुंज भारी।
अंग पुलकित भए, मदन तिन्ह तन जए,
'सूर' प्रभु स्याम स्यामा बिहारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद की लीलाएँ भी गोवर्द्धन-धारण, मान, दान, झूला आदि पावस की पृष्ठभूमि में ही संघटित होती हैं। इसलिए कृष्ण के मथुरा-प्रवास के पश्चात् जब गोपिकाएँ अकेली पड़ जाती हैं तो उनकी सुधि लेनेवाला, उन्हें अपने प्रियदर्शन से पुलकित करनेवाला कोई नहीं रहता। वर्षा ऋतु आकर उनकी पीड़ा को उकसा जाती है, उनके मन में एक टीस, एक कसक उत्पन्न कर देती है। उन्होंने हेमंत और वसंत का कंतहीन रहकर अंत कर दिया, ग्रीष्म के ताप को अपने विरहजनित संताप से मिलाकर आलाप-विलाप में डुबो दिया, पर बरसात की बेपीर रात प्रिय की दो मीठी बात के बिना कैसे बीते? कृष्ण की कांतिवाले मेघ अंबर में उमड़-घुमड़कर उनकी सुधि को और भी दंशन-युक्त बना देते हैं और मदन की क्रूर सेना उन्हें असहाय और अरक्षित जानकर सताने लगती है। सूरदास ने इस करुण अवस्था का चित्र बड़े ही सूक्ष्म कौशल से अंकित किया है—

व्रज पर बदरा आए गाजन।
मधुवन कों पठए सुन सजनी फौज मदन लग्यौ साजन।
ग्रीवा रंध्र नैन चातक जल पिकगन मुख बाजे बाजन।
चहुँ दिसि तें तन विरहा घेरघो अब कैसे पावतु भाजन।

कृष्ण का यह वियोग व्रज में अक्षय बरसात का कारण है। ऊपर श्याम गगन लरज रहा है, नीचे गोपियों के नील नलिन से नयन बरस रहे हैं। दोनों में होड़ मची है और परिणाम यह होता है कि जब ऊपर जल का कोश रिक्त हो जाता है, तब भी नीचे आँसुओं की सरिता नहीं सूखती—'सखि, इन नैनन तें घन हारे'! यह नयनों की बरसात ऐसी है, जो केवल गोपियों की कंचुकी को ही नहीं भिगोती, पाठकों के हृदय को भी आविल कर देती है।

सूरदास की ही भाँति अष्टछाप के और दूसरे कृष्ण-भक्त कवियों ने भी संयोग और वियोग दोनों पक्षों में पावस का मनोहारी वर्णन किया है। संयोगवेला में बरसात प्रेमी और प्रेमिकाओं को एक दूसरे के अत्यधिक निकट ला देती है और उनके हृदय का मान-व्यवधान आप-ही-आप लुप्त हो जाता है—'आन गाँठि छुटि जात ज्यों मान गाँठि छुटि जाय।' पर वियोग की वेला में वह उतनी ही निर्मम और निदारुण बनकर विरह के ताप को तीव्रतर कर देती है। संयोग का एक मादक चित्र देखिए—

नयो नेह नयो मेह नए रसमाते, दोऊ नवल कान्ह वृषभानु किसोरी।
नवल पीतांबर नवल चूनरी नई-नई बूँदन भीजत गोरी।
नव वृन्दावन हरित मनोहर चातक बोलत मोरा-मोरी।
नव मुरली जु नाद मल्हार राग नई गत सुरत सुनत आए घनघोरी।
नव भूषण नव उरग विराजत नई-नई उरच लेत थोरी-थोरी।
'हित हरिवंश' असीस देत मुख चिरजीवो भूतल ये जोरी॥

लेकिन दरद-दीवानी मीरा की परिस्थिति कुछ दूसरी ही है। उसे वियोगवेला में भी वर्षाऋतु वेदनामयी नहीं लगती। जो प्रियतम इतना सदय है कि विष के प्याले को भी अपने हिम-शीतल अधरों के स्पर्श से सुधा की धार में परिणत कर दे, वह इस भरी बरसात में, जब प्रकृति का कण-कण मिलन के गान गा रहा है, अपनी झिरमिट-खेलनहारी प्रिया का निमंत्रण कैसे अस्वीकृत कर सकता है? फलतः मीरा को श्यामतन बादलों में अपने प्रिय का रूप, वज्र-निर्घोष में उसकी पदचाप और दामिनी के दमकने में उसके पीतांबर की चमक देखने को मिलती है और उसके पाँवों में बँधे नूपुर अनायास मेघों के सम पर खनक उठते हैं। अंतर की वेदना नृत्य की भंगिमा बन जाती है—

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवाँ भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़-घुमड़ चहुँदिसि से आयो दामिनि दमक झर लावन की।
नन्हीं-नन्हीं बूँदन मेहा बरसै सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर आनंद-मंगल गावन की॥

रीतिकाल में आकर ऋतु-वर्णन हृदय के नैसर्गिक हर्ष-विषाद, उल्लास-वेदना को वाणी देने का माध्यम नहीं रह गया। अपनी आजीविका के लिए राजदरबारों की खाक छाननेवाले कवि को उन्मुक्त प्रकृति के दर्शन का वैसा अवसर प्राप्त नहीं था, जैसा प्रकृति की खुली गोद में विनोद करनेवाले भक्त-महात्माओं को। 'देखे मुख भावै, अनदेखेई कमल चंद' का आदर्श मानने वाले कवियों से प्रकृति के साथ सान्निध्य-स्थापन, उसकी रसमयी वर्णना की क्या आशा की जा सकती है? फिर भी पावस के विभिन्न मनोरम दृश्यों, उसके मर्मस्पर्शी उद्दीपनों की ओर से एकबारगी आँखें मोड़ लेना कुछ आसान न था। रससिद्ध कवि बिहारी के 'देखन में छोटे' दोहे अपने अर्थगर्भत्व, अलंकृति और रस की पिचकारी छोड़ने के लिए पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावस का जो वर्णन किया है, उसमें उनकी रसिकता और अलंकार-प्रियता के समवेत दर्शन होते हैं। 'व्यतिरेक' और 'काव्यलिंग' का यह प्रकृष्ट उदाहरण एक युग से अलंकार-प्रेमियों का कंठहार रहा है—

पावक झर तें मेह झर दाहक दुसह बिसेखि।
दहै देह वाके परस याहि दृगन ही देखि॥

इसी प्रकार 'काकु' और 'यमक' का यह सम्मिलित निदर्शन भी वियोगिनी की मर्मव्यथा को मूर्त्त कर देता है—

कौन सुनै, कासों कहैं, सुरति बिसारी नाह।
बदा-बदी जिय लेत हैं ये बदरा बदराह॥

कवि देव ने भी कई-एक सवैये और कवित्तों में वर्षा का वर्णन किया है। देव के वर्णन का भी उद्देश्य वही है, जो बिहारी का, पर जहाँ बिहारी में चुस्ती का चमत्कार और भावों का घनत्व है, वहाँ देव के लंबे वर्णन अनुभूति की गहनता और चित्र की समग्रता को उतारने की चेष्टा के परिणाम हैं। बिहारी को दोहे की छोटी जमीन पर रहकर ही समास का कौशल दिखलाना पड़ा था। देव ने कवित्त और सवैये छंद की व्यापकता का पूरा-पूरा उपयोग किया है। देव अपने समय के बड़े ही प्रतिभा-संपन्न और प्रगल्भ कवि थे। उनका निम्नलिखित सवैया अपनी मुखर चित्तात्मकता के लिए चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा—

धुनिकै धुनि चातक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों
अनुराग भरे हरि बागनि में सखि रागत राग अचूकनि सों।
कवि देव घटा उनई जु नई बनभूमि भई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

संयोग की इस सरस चित्रकारी के साथ ही, पावस की पृष्ठ-भूमि में अंकित, वियोग का यह विशिष्ट वर्णन भी द्रष्टव्य है—

झहरि-झहरि झीनी बूँद हैं परति मानो
घहरि-घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मो सों चलौ झूलिबे कों आज
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं।
चाहति उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में।
आँख खोलि देखों तो न घन हैं न घनस्याम,
वेई छाई बूँदें मेरे आँसु ह्वै दृगन में॥

इधर देव की नायिका की आँखों में सावन की बूँदें विजड़ित हो गयी हैं। उधर सेनापति की प्रिया प्रिय के प्रवास से व्यथित उसकी प्रतीक्षा में पलकें बिछाए बैठी है। वर्षाकाल का शीतल चंचल समीर उसे बार-बार अधीर कर देता है और घहराती घटा उसके मन में भयंकर उथल-पुथल की सृष्टि कर देती है। दिन तो खैर किसी प्रकार बाट जोहते बीत भी जाते हैं, लेकिन बैरिन रात तो अपने साथ स्मृतियों का अंबार लेकर एक बार जो आती है तो फिर जाने का नाम ही नहीं लेती और बिचारी नायिका कवि के शब्दों में तड़प उठती है—

आई सुधि वर की हिए में आन खरकी
सुमिरि प्रान प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मन भावन की
डग भईं बावन की सावन की रतियाँ॥

कुछ ऐसी ही स्थिति श्रीपति की उस प्रेमिका की भी है जिसे एकाकी जानकर 'पावस के उड़ते फणिधरों' ने सताना शुरू कर दिया है और जो वियोग की असह्य वेदना से जैसे पराजित होकर कहती है—

जल भरे झूमैं मानौ भूमैं परसत आय,
दसहू दिसान घूमैं दामिनि लए लए।
धूरिधार धूमरे से, धूम से, धुआँरे कारे,
धुरवान धारे, धावैं छबि सों छए-छए॥
श्रीपति सुकवि कहै घेरि घोरि घहरांहि
तकत अतन तन ताव तें तए-तए।
लाल बिनु कैसे लाज चादर रहैगी आज,
कादर करत मोहि बादर नए-नए॥

रीतिकालीन कवियों में पद्माकर अपनी अनुप्रास-योजना और अतिशयोक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं। भाषा पर जैसा असाधारण अधिकार पद्माकर का था और जिस प्रकार उनके संकेतों पर वह थिरकती थी, वैसा समग्र हिंदी साहित्य में केवल कुछ ही कवियों के साथ दीख पड़ता है। उनकी भाषा में यदि एक ओर माधुर्य की कल्लोलिनी अठखेलियाँ कर रही है तो दूसरी ओर ओज का उद्दाम प्रवाह उमड़ पड़ा है। पर इन सबसे बड़ी पद्माकर की विशेषता है उनके काव्य की चित्रधर्मिता। बिहारी के बाद पद्माकर रीतियुग के सबसे बड़े शब्द चित्रकार हैं। उनकी चित्रणशक्ति नायक-नायिका की आंगिक चेष्टाओं को मूर्त्त कर देने तक ही सीमित नहीं है, वे उतने ही कौशल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठभूमि की सजीवता को भी कलमबंद कर देते हैं। पावस का जो रसमय चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है, उसमें गहीले रंगों और रेखाओं की बहार तो है ही, झम-झम बूँदों के सम पर बज उठनेवाले शब्द-संगीत की मिलित झंकार भी है। उनका निम्नलिखित कवित्त चित्र, काव्य और संगीत का संगम बनकर सहृदय-चित्त को एक युग से अवगाहन का सुख सुलभ कराता रहा है—

मल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले
मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै 'पदमाकर' त्यों नदन-नदीन नित
नागर नवेलिन की नजर नसा की है।
दौरत दरेरो देत दादुर सु दुंदे दीह
दामिनि दमंकत दिसान में दसा की है।
बद्दलनि बुंदन बिलोको बगुलान बाग
बँगलान बेलिन बहार बरसा की है॥

एक दूसरे कवित्त में उन्होंने बादलों की तुलना फिरंगियों से करते हुए अभूतपूर्व रूपक बाँधा है, जो उनकी अनोखी सूझ-बूझ और कल्पना-शक्ति का परिचायक है। पावस के अंग-प्रत्यंग को शासक का बाना पहनाते हुए निष्कर्ष रूप में वे कहते हैं—

मान मुख भंगी सफजंगी ये निसंगी लिए
रंगी रितु पावस फिरंगी बनि आयो है!

पद्माकर के ही समकालीन ठाकुर (बुंदेलखंडी) का भी यह सवैया अपने उक्ति-वैचित्र्य और अनूठे बंधान के कारण लोक कंठ की सवारी करता आया है—

अपने-अपने सुठि गेहन में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री।
अँगनान में भींजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जाँव पै री।
कहै 'ठाकुर' दोउन की रुचि सों रंग ह्वै उमड़े दोउ ठाँव पै री।
सखी कारी घटा बरसै बरसानेपै, गोरी घटा नँदगाँवपै री॥

किंतु रीतिकाल के इन सभी कवियों से विलक्षण और विचक्षण व्यक्तित्व है घनानंद का। इस युग में प्रेम की सच्ची चिनगारी यदि किसीके अंतःकरण में विद्यमान थी तो घनानंद के ही। घनानंद किराए के आँसू बहानेवाले कवि नहीं थे। इसलिए उनकी उक्तियों में एक ऐसी मार्मिकता और वेधकता है, जो एकमात्र उनकी ही विशेषता है। उनकी शैली भी अपने सहयोगियों की अपेक्षा भिन्न है। न तो वहाँ अलंकारों के लिए आग्रह है, न रीतिपालन का मोह। उन्होंने भाषा की नवीन संभावनाओं की खोज की है और उसपर अपने व्यक्तित्व का रंग चढ़ाकर उसे अतिशय व्यंजनापूर्ण और मर्म-मधुर बना दिया है। निर्मोही 'सुजान' के अभाव में घनानंद की 'प्रेम की पीर' ऐसी है कि उनकी आँखों ने बादलों से प्रतिद्वंद्विता ठान रखी है। इतना ही नहीं, कवि का बादलों से अनुरोध भी है कि यदि कभी उनका कोश रिक्त हो जाए तो कवि के आँसुओं से वे निस्संकोच अपना घर भर डालें। कितनी करुण, कितनी सजलता और कैसी टीस है उनकी इस पुकार में—

परकाजहि देह को धारें फिरौ परजन्य! जथारथ ह्वै दरसौ
निधि नीर सुधा के समान करौ, सबही विधि सज्जनता सरसौ
'घन आँनद' जीवन दायक हौ, कछु मेरियौ पीर हिए परसौ
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिं लै बरसौ।

'बिसासी सुजान' के आँगन में कवि के आँसुओं की वर्षा चाहे बेदर्द बादलों ने न की हो, लेकिन पाठकों के संवेदनशील हृदय तो उन्होंने रसप्लावित कर ही डाला।

भारतेंदु का अभ्युदय युग-परिवर्तन की वेला में हुआ था, जब प्राचीन समाज की मान्यताएँ ध्वस्त हो रही थीं। उन्होंने एक नवीन युग के आगमन की आहट सुनी एवं उसकी अमूर्त्त भावनाओं को अपने साहित्य में मूर्त्त रूप देने का सफल प्रयास किया। इसलिए ही उनके साहित्य में एक ओर जहाँ म्रियमाण सामंती संस्कृति की अनुगूंज है, वहीं दूसरी ओर नूतन जन जागरण का उदग्र जयघोष भी। उन्होंने जहाँ अपने गीतों और कवित्त-सवैयों में भक्ति और रीतिकाव्यों की परंपरा को आगे बढ़ाया है, वहीं कजरियों और लावनियों में लोकचेतना को वाणी दी है, देश की दुर्दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए उसे जागरण का संदेश भी सुनाया है। संक्रांतिकाल की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाली उनकी एक कजरी दर्शनीय है—

देखो भारत ऊपर कैसी छाई कजरी।
मिटि धूर में सपेदी सब आई कजरी॥
दुज बेद की रिचन छोड़ि गाई कजरी।
नृपगन लाज छोड़ि मुँह लाई कजरी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेंदु के बाद व्रजभाषा की शीतल पयस्विनी नव-युग की विस्तीर्ण वनस्थली में सूखती-सी जान पड़ती है। यद्यपि उसके कुछ बाद तक भी रत्नाकर, सत्यनारायण, रसाल आदि दो-चार कवि मध्ययुग की वंशी के सुर में सुर मिलाकर कुछ-कुछ गाने का प्रयास करते रहे, पर परिस्थितियों के बदल जाने के कारण न तो उनमें वह उन्मादन-शक्ति रह गयी थी और न गहरी प्रभावोत्पादकता ही। फलतः उनकी पंक्तियाँ वर्त्तमान युग की काकली नहीं बन सकीं। बीसवीं शताब्दी के व्यस्त जीवन-क्रम और यांत्रिक परिवेश में विशुद्ध प्रकृति वर्णन के लिए अपेक्षाकृत अवकाश भी कम रह गया है। रत्नाकर का वर्षा-वर्णन बहुत कुछ परंपरा और रूढ़िबद्ध है, जिसमें भाव-गांभीर्य से अधिक भाषा की सजावट और अलंकारों की सुगठित योजना पर ही कवि का ध्यान केन्द्रित है। जिस प्रकार 'मानस' में तुलसी का प्रकृति-वर्णन अपनी उपदेशात्मकता के कारण नीरस हो गया है और चित्र की समग्रता खंडित हो गयी है, उसी प्रकार 'उद्धवशतक' के पावस-संबंधी छंद--'सील सनी सुरुचि सुबात चले पूरब की औरे ओप उमगी दृगनि मिदुराने ते' आदि--अलंकारों, विशेषकर शब्दश्लेष के भार से दब गये हैं। सत्यनारायण में नवीनता अपेक्षाकृत अधिक है। पर वे भी मुख्यतया मानव-प्रकृति के कवि थे, मानवेतर प्रकृति के साथ सामंजस्य-स्थापन उनसे संभव न हो सका। हाँ, श्रीधर पाठक की रचनाओं में पावस के सजीव व्यक्तित्व की थोड़ी-बहुत झाँकी जरूर मिलती है। आधुनिक काल के खड़ी बोली के कवियों ने पावस की रानी के अभिनव रूप का मंगलमय अभिषेक कर उच्छ्वसित कंठ से उसका यशोगान गाया है और उसे एक नयी और अपेक्षाकृत संश्लिष्ट पृष्ठ-भूमि में सजाने की कोशिश की गयी है। लेकिन वह तो एक स्वतंत्र निबंध का ही विषय है।

मौसम सुहाना

श्री चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र' बी० ए० साहित्यरत्न

मखमली चादर बिछी शोभित धरा पर
आज कितना है सुमुखि, मौसम सुहाना!!
घन-सघन चुप गगन से झुक अवनि-चुंबन--
ले रहे, अवनी जलद-कर चूमती है।
मोद से भर वृक्ष से लतिका लिपट कर,
बिहँस कर गल-बाँह डाले लूमती है॥
मृदु चमेली चहकती, जूही महकती,
नवल कलियाँ चटकतीं, बेला गमकता,
सुरस सौरभ से बयार लदी-भरी-सी,
भटकती-सी, ठुमकती-सी झूमती है॥
गुनगुनाता, भुनभुनाता, रुनझुनाता,
नव-गुलाब-कपोल पर भौंरा लुभाना!
मखमली चादर हरित फैली धरा पर,
आज कितना है सखी, मौसम सुहाना!
ठिठुरता रवि बादलों की शाल ओढ़े,
साँझ अलसा अंगड़ाई ले रही है।
तुम क्षितिज की ओर देखो तनिक कैसी--
गाल पर लहरें ललाई ले रही हैं॥
चहचहाता विहग-संकुल लहलहाता--
विटप का हर पात, कण-कण महमहाता।
सुनहली-सी, रुपहली, सतरँग-भरी-सी,
तन तरँग मादक लुनाई ले रही है॥
अलि! लजाई-सी, लुभाई-सी, सुहाई--
नव-निशा-मुख-'चन्द्र' भी अब मुसकुराना!
मखमली चुनरी सजी मोहित धरा-तन।
आज कितना है सुभग! मौसम सुहाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, ...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति, सौंदर्य और सम्पत्ति का प्रतीक

श्री

श्री अनवर आगेवान

भारतीय संस्कृति, साहित्य, कला और लोक-जीवन में 'श्री' का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैदिक काल से लेकर आज तक की भौतिक उपासना, साहित्य और कला में 'श्री' का वर्णन, चित्रण एवं अंकन अपूर्व भावात्मकता और सौंदर्यभावना से हुआ है। ऋग्वेद में सर्वप्रथम उसका उल्लेख 'श्री सूक्त' में मिलता है। यहाँ उन्हें दो नामों से सम्बोधित किया गया है--श्री और लक्ष्मी।

वस्तुतः श्री शब्द मूलतः भाववाची है। इसका व्यवहार साधारणतः भौतिक सुन्दरता अर्थात् किसी भी वस्तु के सौंदर्य को व्यक्त करने के लिए किया गया है। सोम और दूध के सम्मिश्रण से जो रंगत आती है, उसे 'श्री' कहा गया है। साथ ही सुरुचि एवं सजावट के रूप में भी 'श्री' का प्रयोग पाया जाता है। इस प्रकार ऋग्वेद में श्री का प्रयोग सौंदर्य के प्रतीक के रूप में अथवा अन्य विशेषणों के रूप में हुआ है। किन्तु, स्वतंत्र देवी के रूप में उसका उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु, शतपथ ब्राह्मण की एक कथा में 'श्री' मूर्तस्वरूप में हमारे सामने आती है। इस कथा के अनुसार, प्रजापति की साधना की मूल-श्रुति रूप 'श्री' उनके अन्तस् से निकलकर स्वर्गिक सौंदर्य-वती, ओजस्वी देवी के रूप में सामने उपस्थित होती है। सम्भवतः यही देवी आर्यपूर्व भारत की आद्या देवी --माता है, जिसके देवत्व में सौंदर्य और सम्पत्ति का भाव निहित है।

उपनिषद् और गृह्यसूत्रों में भी श्री का उल्लेख मिलता है। तैत्तरीय उपनिषद् में वस्त्र, गौ, खाद्य, एवं पेय की दात्री को श्री कहा गया है। गृह्यसूत्रों में इसका उल्लेख उर्वरता यथा प्रजनन की देवी के रूप में हुआ है। इस प्रकार श्री कल्याणमय अर्थ लक्ष्मी की भावना के बहुत समीप है। दोनों ही जीवन में सौभाग्य और समृद्धि की द्योतक है। एक सुख का द्योतन करती है, दूसरी प्राप्ति की। अतः कई मंत्रों में 'श्रीश्च लक्ष्मीश्च' साथ साथ आते हैं। तैत्तरीय आरण्यक और वाजसनेयी में श्री और लक्ष्मी दो देवियाँ साथ-साथ प्रकट हुई हैं, और आगे चल कर एकरूप बन गयी हैं। ऋग्वेद के श्रीसूक्त में श्री और लक्ष्मी में कोई अंतर नहीं। इसमें उसके उपास्य रूप का वर्णन भी किया गया है, और दोनों को ही आर्द्रा और पद्ममालिनी कहा गया है--

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां
ज्वलंती तृप्तां तर्पयन्तीम्,
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां
त्वामिहोपह्वये श्रियम्॥

--जो साक्षात् ब्रह्मरूपा, मंद-मंद मुस्कानेवाली, स्वर्णाभरण से आवृत्त, दयार्द्र तेजोमयी, पूर्णकामा, भक्तानुग्रहकारिणी, कमलासना, पद्मावर्णा है उन लक्ष्मीदेवी का मैं यहाँ आह्वान करता हूँ।

और एक प्रार्थना में कहा गया है--

तद्वो दिवो दुहितरो विभाती रूप
बुव उषसो यज्ञकेतुः।
वयं श्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च
धत्तां पृथिवी च देवी॥

--हे दीप्ति की दुहिते, ज्योतिर्मयी! हमें जीवलोक में यशस्वी बनने का वरदान दें!

यजुर्वेद में श्री और लक्ष्मी दोनों को दो शक्तियाँ बताया गया है और उन्हें एक ही परम पुरुष की पत्नियों के रूप में बताया गया है--'श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते सपत्न्यौ।' इससे ऐसा ज्ञात होता है कि श्री का अर्थ तेज और लक्ष्मी का अर्थ संपदा हो गया था, और परम पुरुष को उन दोनों का स्वामी मान लिया गया।

अथर्ववेद में विष्णु-पत्नी के रूप में उसका वर्णन जिसका स्वरूप भूमि से अधिक मिलता है। शतपथ में कहा गया है कि जिन देवताओं में श्री बसती है, वे ज्योतिर्मय होते हैं। इस प्रकार श्री या लक्ष्मी का वैदिक स्वरूप आधिभौतिक है।

'श्री' हस्तिनाद से प्रबुद्ध होती है, और सुवर्णघट से गजेन्द्र उसका अभिषेक करते हैं--'सरोवर में कमलों से घिरी हुई... कमलवदना, कमल के सदृश कंध और नेत्रोंवाली, कमल से ही उत्पन्न, विष्णुप्रिया, महालक्ष्मी, अपने चरण-कमल हृदयस्थल में स्थित करें!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार लक्ष्मी सौंदर्य और समृद्धि का प्रतीक है और गजेन्द्र मेघों के प्रतीक हैं। पृथिवी की श्री मेघों के जल पर ही निर्भर करती है। अतः उर्वरता के प्रतीक कमल से उत्पन्न लक्ष्मी पर गजेन्द्र उसी श्री की वर्षा करते वर्णित किये हैं और कमल उनका आसन शील का द्योतक है। अतः श्री लक्ष्मी सौंदर्य, समृद्धि के साथ शील की भी अधिष्ठात्री है।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार श्री की उत्पत्ति समुद्र-मंथन से बताई गयी है। धनधान्य अथवा समृद्धि की देवी के रूप में श्री लक्ष्मी की चर्चा महाभारत में पायी जाती है। किंतु वहाँ उसका उल्लेख विष्णु की अर्धांगिनी अदिति के रूप में हुआ है। मंत्रकार कहता है:

'सरलता से दुग्ध देनेवाली, विष्णु-पत्नी, कृपालु, संसार की शासिका . . . अदिति हमारे ऊपर अनुग्रह करें!'

किन्तु, श्री के साथ विष्णु का सम्बन्ध वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। फिर भी अदिति और श्री में समानता पाई जाती है, यद्यपि अदिति पूर्ण रूप से श्री नहीं है, क्योंकि उसमें भू के अधिक गुण हैं।

इस प्रकार पौराणिक आख्यानों में श्री लक्ष्मी का स्वरूप और भी निखरा है। वे महर्षि भृगु की पत्नी 'ख्याति' के गर्भ से प्रकट हुई, इसीसे उन्हें भार्गवी भी कहा जाता है। और इसी भाँति, धर्म की पत्नी के रूप में, मकरध्वज की माता के रूप में, कृष्ण-पत्नी रुक्मिणी तथा प्रद्युम्न की जननी के रूप में भी उनका उल्लेख मिलता है। फिर भी मातृत्व उसकी विशेषता है। कहीं-कहीं उसकी तुलना पृथ्वी से की गयी है। उसके सहस्त्रों स्तनों से दिव्यामृत दुग्ध की अजस्र धारा निकला करती है। इससे भी उसके मातृत्व की धारणा और अधिक पुष्ट होती है।

रामायण में वह हाथ में कमल लिये, कुबेर के रथ पर प्रदर्शित की गई है। और उसे कुबेर की भार्या भद्रा कहा गया है। उसके लिये पद्मालया, पद्महस्ता आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। श्री लक्ष्मी का जल के प्रतीक कमल के साथ दृढ़ सम्बन्ध परिलक्षित होता है। जल अथवा जल में निहित रस उर्वरता एवं प्रजनन का मूल तत्व माना गया है, उन्हें समुद्र से उत्पन्न और पद्म में स्थित कहा गया है। उनका यह प्रतीक सभी महाकाव्यों एवं आख्यानों में समान रूप से माना गया है।

बौद्धसाहित्य में श्री लक्ष्मी की चर्चा है, किन्तु विशेष आदर नहीं और 'मिलिन्द प्रश्न' में उसकी उपासना वर्जित मानी गयी है। फिर भी प्रारंभिक बौद्धकला में 'श्री लक्ष्मी' बराबर अंकित हुई है।

जैन साहित्य में श्री लक्ष्मी का कल्याणमयी रूप मिलता है। कल्पसूत्र के अनुसार महावीर के जन्म के पूर्व त्रिशला ने जो जो चौदह मंगलमय स्वप्न देखे थे, उनमें एक श्री का स्थान भी है। रानी धरणी के स्वप्न में भी इसी स्वरूप के देखे जाने का उल्लेख भगवती सूत्र में पाया जाता है। प्रेमचन्द्रकृत परिशिष्ट पर्व में श्री देवी का उल्लेख करते हुए कहा है कि—'वे हिमालय में पद्महृद में निवास करती हैं और देवताओं की अभ्यर्थना के लिए हाथ में पद्म लिये रहती हैं।'

साहित्य की भाँति कला में भी श्री लक्ष्मी की अभिव्यक्ति मिलती है। कमल से संयुक्त उसकी आकृतियाँ तीन स्वरूपों में मिलती हैं:—(१) पद्महस्ता—जिसमें ऊपर को उठे हुए दाहिने हाथ में कमल धारण किये हुए, (२) पद्मासना—खिले हुए कमलदल पर बैठी या खड़ी, (३) पद्मवासिनी—कमलवन में खड़ी या कमल-नाल और पत्रों से घिरी। कहीं-कहीं हाथों में खिले हुए कमल लिए हुए भी मिलती है।

अपने इन्हीं तीनों रूपों में भी कभी कभी—गज-लक्ष्मी या अभिषेक लक्ष्मी दिखाई जाती है। और कभी इन रूपों में से दो या तीनों एक में ही सम्मिलित पाये जाते हैं।

अजन्ता के चित्रों में अनेक दृश्य हैं जिसमें स्त्रियाँ हाथों में कमल लिये हुए अंकित की गयी हैं। अतः कला में अंकित पद्महस्ता नारीमात्र को श्री अथवा लक्ष्मी नहीं कह सकते। भरहुत की एक पद्महस्ता मूर्ति में एक स्थान 'सिरि मा देवता' लिखा हुआ है। इससे हम उसको श्री की मूर्ति कह सकते हैं। भरहुत में ही एक अन्य दृश्य है, जिसमें हाथ में वीणा धारण किये हुए एक नारी पद्मासीन है, किंतु उसे लक्ष्मी नहीं कह सकते। वह या तो गन्धर्वी है, या अप्सरा। यही नहीं, वहाँ पद्मासन का प्रयोग स्त्री-पुरुष एवं पशुओं से युक्त अनेक अलंकरणों में हुआ है।

हाल ही में भरहुत में एक और नारीमूर्ति मिली है, जो दाहिने हाथ में कमल लिये हुए है, और स्वयं एक पूर्ण प्रस्फुटित कमलपुष्प पर खड़ी है, वह बहुत कुछ श्री लक्ष्मी जैसी ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मवासिनी अथवा कमलालया लक्ष्मी कला में विशेष रूप से निखरी है; और इस रूप में उनका प्राचीनतम अंकन शुंगकालीन कला में पाया जाता है। साँची के स्तूप २ में एक स्थान पर लक्ष्मी की पद्मावासिनी मूर्ति है। वह कमलवन में दासियों के साथ खड़ी है। उसके दोनों हाथों में उत्फुल्ल कमलपुष्प हैं। एक दूसरी मूर्ति में उसके दाहिने हाथ में सनाल कमल और बायें में अंगवस्त्र है। और दासियों में एक जलपात्र तथा दूसरी खाद्यपात्र लिये हुए है जो उनके सौंदर्य और समृद्धि के द्योतक हैं।

मथुरा से प्राप्त कुशाणकालीन श्री लक्ष्मी की मूर्ति सबसे अधिक कलात्मक है, इस समय लखनऊ के संग्रहालय में रखी हुई है। इसमें एक पूर्व घट से फूलते-फलते कमल पुष्पों और पत्रों का गुच्छ निकलता दिखाया गया है। बीच वाले पत्र पर मयूर का एक जोड़ा बैठा हुआ है और आगे दो कमल दल पर पैर रखे एक अत्यंत सुन्दर स्त्री खड़ी है। यह स्पष्टतः हमारी सौंदर्य और सम्पत्ति की देवी ही है।

उस काल में यह अंकन पत्थर की अपेक्षा मृण्मूर्तियों में और भी आकर्षक रूप में पाया जाता है। प्राचीन मृण्मूर्तियों में देवी की नग्न आकृतियाँ भी निर्माण करने की परम्परा का भरहुत में प्रत्यक्ष दर्शन होता है। एक ऐसी ही सुंदर मूर्ति प्राप्त हुई है जो उर्वरता की देवी है और उसकी कल्पना सर्वदा किसी सुन्दरी के रूप में ही की जा सकती है।

श्री लक्ष्मी का यह रूपांकन मुहरों एवं सिक्कों आदि पर भी शुंगकाल से लेकर मध्यकाल और उसके पीछे भी आज तक बराबर पाया जाता है। गुप्तकालीन सिक्कों पर श्री लक्ष्मी के हाथ में अक्सर अंगवस्त्र या फीता रहता है, और किसीमें वह उत्फुल्ल कमल पर बैठी हैं। समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की कुछ मुद्राओं पर लक्ष्मी पद्महस्ता पीठासन पर आसीन अंकित की गयी है। पीठासीन लक्ष्मी अन्यत्र देखने में नहीं आती, और कुछ थोड़े से सिक्कों को छोड़कर अन्य सभी पर वह पद्माहस्ता पद्मासना ही है। मध्यकालीन सिक्कों पर लक्ष्मी पद्मासना, पद्माहस्ता होने के साथ-साथ पद्मवासिनी रूप में भी पाई जाती है। इसमें पद्म कभी-कभी पूर्ण घट से प्रकट होता दिखाई देता है। दायें और बायें दो पद्मदलों पर दो हाथी स्थित, अपने सूँड़ में लिये स्वर्णकलश से लक्ष्मी पर जलाभिषेक करते हैं। सामान्यतः श्री लक्ष्मी द्विभुजी ही अंकित की गई है, पर मध्यकालीन कला में उनकी चार भुजाएँ पायी जाती हैं और वही परम्परा आज तक चली आयी है।

उज्जयिनी के सिक्कों पर श्री लक्ष्मी की तीनों प्रकार की आकृतियाँ——कमल पर बैठी, कमलासन पर हाथ में कमल लिये खड़ी और गजलक्ष्मी मिलती हैं। किन्तु, सिक्कों में सबसे लोकप्रिय अंकन अभिषेक अथवा गजलक्ष्मी के रूप में पाया जाता है। इस प्रकार, अपने-अपने समय में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी सम्राटों और राजाओं ने अपने सिक्कों एवं मुहरों पर श्री लक्ष्मी का अंकन कराया था; और उन्हीं-की देखा-देखी, दिल्ली के प्रथम मुस्लिम शासक मुहम्मद गोरी (मुहम्मद बिनसाम) ने भी अपनी सुवर्ण-मुहरों पर श्री लक्ष्मी का अंकन कराया था। इससे सिद्ध होता है कि श्री लक्ष्मी सुख और समृद्धि की दात्री-देवी होने में सबको विश्वास एवं श्रद्धा थी।

प्राचीन वैदिककाल से लेकर आज तक के इतिहास में हम देख सकते हैं कि प्रारंभ में श्री केवल सौंदर्य भावना का द्योतक शब्द था, आगे चलकर उसी भावना ने मूर्त रूप धारण किया। फिर, श्री और लक्ष्मी के व्यक्तित्वों का एकीकरण हुआ——दोनों एक हो गयीं। यह उस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, क्योंकि इस देश में मातृपूजा सिन्धु सभ्यता के काल से ही प्रचलित थी, जिसके साथ सौंदर्य प्रतीक 'श्री' का सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया। इस प्रकार वैदिक और अवैदिक भावनाओं के एकीकरण से मूर्त-रूप की कल्पना साकार हुई, जो भारतीय धर्म, संस्कृति और कला में आज भी विद्यमान है, और यह सौंदर्य, सम्पत्ति और शील की अधिष्ठात्री-देवी के रूप में पूजनीया बनी। जिसका अनुग्रह प्राप्त करने को सभी लालायित रहते थे और आज भी हैं:

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।

——मन की कामनाएँ, एवं संकल्प की सिद्धि एवं वाणी का सत्य मुझे प्राप्त हो, गौ आदि पशुओं तथा विभिन्न अन्नों अर्थात् योग्य पदार्थों के तथा यशकीर्ति के रूप में श्रीदेवी हमारे यहाँ पदार्पण करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नील कमल

प्रो० भगवन्तशरण जौहरी एम० ए०

प्राचीन यूनानियों ने 'लोटस' नाम कई पौधों को प्रदान किया था, जिनके फलों को वे खाते थे। उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिणी योरप में उत्पन्न होनेवाला 'जिजीफस लोटस' इन्हींमें से एक है। यह फल झरबेरी के बेर सा होता है तथा इससे रोटी व एक प्रकार का पेय बन सकता है। पुराने समय में यह फल निम्न वर्ग का मुख्य भोजन था। इसीसे 'लोटोफागी' व 'लोटसईटर्स' शब्द निकले। ये वही व्यक्ति थे जिनके सम्पर्क में 'आडिसियस' आया था। यह कमल खाकर ही जीवन-निर्वाह करता था तथा दूसरे मनुष्यों को भी अपना साथी बनने को उकसाता रहता था। जो इन्हें खाते थे उनमें कमल खाते रहने के अतिरिक्त और कोई अभिलाषा नहीं रह जाती थी तथा वे दीन-दुनिया को भूल बैठते थे। कमल से जो मदिरा बनती थी उसमें बहुत झाग पड़ते थे, और शायद इस मदिरा की लत पड़ जाने के कारण वे उसे नहीं छोड़ सकते थे।

'डिआसपायएस कमल' योरप की उपज है। कुमुद को भी कहीं-कहीं कमल कहते हैं। 'निम्फिआ' जाति का कमल नील तथा उसकी समीपवर्ती नदियों, तालाबों में उत्पन्न होता है। यह फूल आकार में बड़ा तथा सफेद रंग का होता है, तथा जल से दो फुट ऊपर रहता है। मेजेला झील के लोग इसकी जड़ खाते हैं। इसकी सुगन्धि लुभावनी और तीव्र होती है, इस कारण वह प्राचीन मिस्र का गुलाब समझा जाता था। इसकी मालाओं से महिलाएँ अपने मस्तक सजाती थीं। मिस्र की पौराणिक कथाओं में इसका सम्बन्ध सूर्य से स्थापित किया गया है। वनस्पति शास्त्र विशेषज्ञों ने भी 'लेमुमीनोज़' वर्ग के कई पौधों को 'कमल' का नाम दिया है। हिन्दुओं तथा बौद्धों के ग्रन्थों में वर्णित कमल 'नीलाम्बुज' है। प्रायः सभी पौराणिक कथानकों में इसे साकार सौन्दर्य का रूप माना गया है, तथा पद-पद पर यह उपमा देने में काम आया है। कली, पुष्प, पत्ता ही क्या, कमलनाल तक बहु वर्णित है। आजकल इसकी दो ही जातियाँ प्राप्त होती हैं।

'नीलाम्बु न्यूसीफेरा' या भारतीय कमल एशिया के गरम प्रदेशों, उत्तरी अफ्रीका और उत्तरी आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। वह पायथेगोरस का पौधा है। हिन्दू उसे कमल या पद्म तथा 'चीनी' लियन-होआ कहते हैं। प्राचीन समय में कमल उर्वरता के तत्त्व का प्रतीक था, जैसा मिस्र के निवासी इससे 'इसिस' और 'आसिरिस' नामक देवी-देवताओं की मूर्त्तियों को अलंकृत करते थे। हिन्दुओं की दृष्टि में यह फूल श्रद्धा की वस्तु है, तथा विष्णु के और ब्रह्मा के आसन का काम देता है।

कमल के बीज छोटे बेर की आकृति के होते हैं, तथा खाने में सुस्वादु होते हैं। प्राचीन मिस्रवासियों का उन्हें बोने का ढंग यह था कि वे प्रत्येक बीज को मिट्टी में लपेटकर उसे जल में फेंक देते थे। भारतवर्ष में भी इसी प्रकार उसे बोया जाता है।

'नीलाम्बु ल्यूटियम' नामक दूसरी जाति उत्तरी अमेरिका में होती है। उसके फूल पीले रंग के होते हैं। वहाँ भी इसके बीज खाये जाते हैं। भारतीय कमल सामान्यतः गुलाबी रंग के होते हैं। यहाँ सफेद रंग के कमल भी कहीं-कहीं मिलते हैं। पहिली जाति को रक्त-पद्म तथा दूसरी को श्वेत पद्म कहते हैं।

काश्मीर में कमलों का मनहर दृश्य जिसने देखा है वह उसे सहसा भुला नहीं सकता। चौड़े-चौड़े पत्ते मानों हरा गलीचा बिछा देते हैं जिसपर हंस दौड़ते हैं। प्रत्येक पुष्प एक स्वतन्त्र चित्र का निर्माण करता है तथा उन्हें समूह में देखकर मनुष्य आनंदविभोर हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में पत्ते-बीज और नाल (कमल कुकड़ी, कमल गट्टे व नलरू मंग) सब श्रेणी के लोग खाते हैं, तथा उनकी कढ़ी बनायी जाती है।

उबालने पर कमल की जड़ का रंग पीला तथा स्वाद मीठा होता है। जड़ों में से एक प्रकार का अरारोट भी निकलता है जिसका बढ़िया साबुन बनता है।

कमल का उपयोग कितने ही देशों में बहुत प्राचीन काल से आभूषण के रूप में होता रहा है। चित्रकला, स्थापत्य और मूर्तिकला में अलंकरण के रूप में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है।

मिस्र के प्राचीन शिल्प में तीन पत्तों तथा एक कली वाली कमल की दो डिजायनें मिली हैं। असीरिया वालों ने इनका उपयोग हाशिये के अलंकरण में किया है। रोम के निवासियों ने शायद मिस्रवासियों से कला में कमल का उपयोग ग्रहण किया था। इटली के एट्रस्कन शैली के शिल्प में और भी कई प्रकार के कमल-चिह्नों को अपनाया गया है। और ये अलंकरण स्थापत्य में आज भी चलते हैं। इस प्रकार यूरोप की कला में कमल का उपयोग मिस्र से लिया हुआ मालूम होता है, जहाँ उसका उपयोग तीन हजार वर्ष पहिले भी होता था।

बौद्धों का वह प्रधान धार्मिक चिह्न है। भारत, लंका, ब्रह्मा, स्याम, चीन, जापान और तिब्बत में आज भी कमल अपने महत्त्व को धर्म और कला के क्षेत्र में पूर्ववत् बनाये हुए है। हिन्दू मन्दिरों के पीतल के पात्रों में कमल अवश्य अंकित होगा।

साहित्य में कमल की चर्चा बार-बार आती है, किन्तु वह साहित्यिक दृष्टि से--रूपक और उपमा की तरह। उदाहरण के लिए बारहवीं शती के संस्कृत नाटक "रत्नावली" में वसन्तक अपनी प्रेयसी से कहता है:--

"मेरी प्रियतमे सागरिके! तुम्हारा मुख चंद्र सा निर्मल है, तुम्हारी आँखें दो कमल कलियाँ हैं। तुम्हारा कर पूर्णोत्फुल्ल पुष्प है और तुम्हारी भुजाएँ उसके वृंतु हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं में पानी पर तैरता हुआ कमल विश्व तथा उसकी उत्पत्ति का प्रतीक है। कमल उनकी भार्या लक्ष्मी को भी प्रिय है जो कमला कही जाती हैं। उन्हें पद्मादेवी या पद्मावती भी कहते हैं। चित्रों में भी वे पद्मस्थित ही हैं। प्राचीनतम वेद में उसका वर्णन मिलने से ब्राह्मणों के पौराणिक ग्रन्थों में भी उसका प्रमुख स्थान है। पुरानी से पुरानी हिन्दू तथा जैन शिल्पकला के ध्वंसावशेषों में वह मिलता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में कमल का वर्णन सृष्टि की रचना के संबंध में मिलता है। लिखा है:

"प्रजापति ने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा की। उस समय सर्वत्र जलतत्त्व ही था। उन्होंने उस जल में एक कमलपत्र देखा जो जल के बाहर सीधा खड़ा था। यह विचार कर कि वह किसी आधार पर स्थित होगा, उन्होंने वराह के रूप में गोता लगाया तथा नीचे पृथ्वी पाकर एक टुकड़ा तोड़ा, जिसकी सहायता से वे धरातल पर उठे और उसे पत्ते पर फैला दिया।"

महाभारत में ब्रह्मा का जन्म कमल से होना लिखा है जो विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ था जब वे समाधिस्थ थे। इसीसे विष्णु का नाम पद्मनाभ है।

प्रायः ईसा से २०० वर्ष पूर्व से बौद्धमूर्तियों पर कमल दिखाई देता है। साँची, बरहुत, अमरावती और बुद्ध-गया की नक्काशी में कमल का वृत्ताकार आलेख्य बहुत प्रचलित है। पश्चिमी भारत के मंदिरों, स्तम्भों तथा छतों पर कमल खुदे मिलते हैं। लंका में सीढ़ियों के नीचे अर्धकमल बड़े ही कलात्मक ढंग से खुदे हुए हैं। गांधार व मथुरा में नाल पर स्थित कमल मुख्यतः पाये गये हैं।

देवताओं के चरण रखने की चौकी पर कमल की आकृति एक परम्परा रही है। उदयगिरि की लक्ष्मी की मूर्ति में यह स्पष्ट है। साँची के स्तूप-द्वारों पर लक्ष्मी कमल पर बैठी या खड़ी अंकित हैं। उनके प्रत्येक हाथ में कमल है। दोनों ओर हाथी सूँड़ों में स्थित पात्रों से जल उँडेल रहे हैं। यही आलेख्य लंका में पोलोन्नरूआ में मिला है।

बुद्ध प्रायः कमल-सिंहासन पर पलथी मारकर बैठे या खड़े उपस्थित किये जाते हैं। बिहार, कान्हेरी की गुफाओं तथा उत्तर-पश्चिम में ऐसी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। गान्धार की मूर्तियों से शिल्पकला के प्रेमियों को यह कला इतनी आकर्षक प्रतीत हुई कि नेपाल ही नहीं, भारत के बाहर चीन, जापान और ब्रह्मा में भी इसका विस्तार हुआ। चौकियों पर दो-तीन पुष्प खुदे मिलते हैं। एक चरण रखने की तिपाई पर भी खुदे मिले हैं। इन कमलों की पंखुड़ियों की संख्या चार से छः तक है।

सारनाथ, जावा और तिब्बत में बोधिसत्व की मूर्तियाँ कमलासन पर स्थित पायी जाती हैं। सुप्रसिद्ध अन्वेषक तथा पुरातत्त्वविद सर आरेल स्टीन ने मध्य एशिया की अपनी पहिली खोज में फारस की एक बुद्ध-मूर्ति का पता लगाया था जो एक कमलों से अलंकृत आसन पर बैठे हुए बुद्ध की थी।

नेपाल की कला मूलतः भारत की कला ही है। वहाँ भी बुद्ध कमल की चौकी पर खड़े बनाये गये हैं। कमल का बोधिसत्व से अविच्छिन्न सम्बन्ध है क्योंकि वे निरन्तर कमल से ही उत्पन्न बतलाये गये हैं तथा अपने एक हाथ में कमल धारण करते हैं। इसीसे उन्हें पद्म-पाणि कहते हैं। "ओं मणि पद्मे हुं" (ओं कमलों में रत्न, तथास्तु) नामक बौद्ध मंत्र उन्हींसे संबंधित मालूम होता है। तिब्बत के बौद्धों में यह मंत्र बहुत पवित्र माना जाता है। इस मंत्र का अलग-अलग प्रकार से भाष्य किया गया है।

कमल का प्रतीकवाद बौद्धों ने अपने पूर्वज हिन्दुओं से ग्रहण किया। मालूम होता है कि बहुत ही प्राचीन काल में यह भारत के आर्यों का मुख्य चिह्न हो गया था। उन्होंने उसे आध्यात्मिक, अमर तथा चेतन शक्ति का चिह्न माना था। कीचड़ में उत्पन्न होकर भी वह पवित्र और निर्मल रहता है, चाहे सरोवर कितना ही गंदा और विस्तृत क्यों न हो।

कमल का सूर्य से भी संबंध है। सूर्य की भी चौकी कमलों की ही है। सूर्य की कमल की तद्रूपता का विचार स्वाभाविक है। कमल सूर्योदय पर ही खुलता है तथा सूर्यास्त पर बंद हो जाता है। इस पुष्प में किरणें जैसी ही पंखुड़ियाँ होती हैं और वह वृत्ताकार भी होता है।

इस प्रकार कमल अपने सौंदर्य के कारण योरप और एशिया में अनादिकाल से लोकप्रिय रहा। सूर्य के उदय और अस्त के साथ उसके खिलने और बंद होने के चमत्कार ने उसे धार्मिक महत्त्व दिया होगा। उसने स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला को प्रभावित किया। वह भारत में उत्पन्न धर्मों—जैसे हिंदू, बौद्ध और जैन धर्मों में पवित्र माना जाता है। उसने कला, साहित्य और धर्म में समान-रूप से स्थान प्राप्त किया। भारत का वह राष्ट्रीय फूल है और वह भारतीय कला अधूरी समझी जाती है जिसमें किसी न किसी रूप में कमल का उपयोग न किया गया हो।

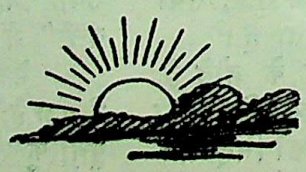

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,

दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के आश्चर्य

डा० अरविन्द मोहन

[प्राकृतिक सौंदर्य व रहस्यों का आकर्षण मानव-विकास, उत्थान तथा क्रांति का प्रेरणा-स्रोत रहा है। दक्षिणी ध्रुव के अनजाने विस्तृत बर्फीले निर्जन प्रदेश के बारे में भी यही सत्य है। वनस्पति-रहित नंगे बीहड़ पर्वतों व भयंकर घाटियों के बीच मनमोहक बर्फीले क्षेत्रों में संध्या की सूर्य-किरणों का प्रकाश किसी भी हीरे-माणिक की चमक-दमक को फीका कर देता है। परन्तु डेढ़ सौ करोड़ रुपयों का व्यय करके क्यों उस क्षेत्र को पिछले दो वर्षों में वैज्ञानिक खोज-बीन के लिए चुना गया, क्यों ठिठुरते शीत में पेंग्युन नामक पक्षियों के बीच इतने परिश्रम के साथ अनुसंधान किये गये और क्यों वहाँ परमाणु शक्ति का पावर हाउस तैयार किया जावेगा ?]

विरला साहसिक मानव ही ऐसे घर में रहना चाहेगा जिसकी नींव भूमि में रातोंरात धँसकर दो मंजिले को तहखाना बना दे। पृथ्वी के दक्षिणी बर्फीले महाद्वीप "अंतार्कतिक' पर बसे वैज्ञानिकों के लिये यह साधारण बात थी। जहाँ २०० मील की प्रति घण्टे की गति का बवंडर सदैव चलता हो, जहाँ पानी को जमा कर हिम बनाने का तापमान भी उष्ण कहलावेगा (क्योंकि वहाँका साधारणतः तापमान इससे भी १२५ डिगरी नीचे रहता है), जहाँ छः मास रात रहती है, जहाँ सूर्यास्त का आकाश लाल और भयंकर व भूमि बर्फ की चट्टानों से ढँकी है, और जहाँके आकाश में रंग-बिरंगी भयंकर विशाल ज्योतियों का जगमगाना दिल को दहला देता है—इस प्रदेश की निर्जनता को भेद कर वैज्ञानिकों की टोलियाँ खोजबीन में लगी हैं ताकि न केवल पृथ्वी की एक अच्छी जानकारी मिल सके बल्कि इसलिए भी कि बहुत से अनजाने, अनोखे अचरजों को समझा जा सके।

ब्रिटिश, अमरीकन व रूसी वैज्ञानिक टोलियाँ गत दो वर्षों से इस प्रदेश की छानबीन में लगी थीं। इनके पारस्परिक सहयोग का यह उदाहरण उस भविष्य की झाँकी प्रस्तुत करता है जब मानव-प्रयास के पग एक साथ उन्नति की ओर चलेंगे। १२ राष्ट्रों ने इस दक्षिणी ध्रुव प्रदेश की खोजबीन में साथ दिया। सबसे बड़ी बात यह थी कि परमाणु युद्ध सामग्री को इस प्रदेश में लाने की कड़ी मनाई है जिसको रूस व अमरीका दोनों देशों ने माना है।

बर्फीले निर्जन प्रदेश की उपयोगिता ?

दक्षिणी बर्फीले प्रदेश "अंतार्कतिका" की आज के जमाने में बहुत उपयोगिता है। बसी बस्तियों से दूर, बर्फ से ढँके होने के बावजूद भी यहाँ अनेक बातें ऐसी पायी गयी हैं जो इसको आनेवाले युग में दुनिया का एक जरूरी भाग बना देंगी। पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्द्ध का सैनिक नियंत्रण यहाँसे करना सरल है क्योंकि दक्षिणी अमरीका तथा अंतार्कतिका के बीच का सागर उस हालत में जरूरी होगा जब कोई पनामा नहर को विध्वंस कर दे। फिर यहाँसे भारी राकेट, वायुयान इत्यादि को भेजना सरल भी है। अफ्रीका से अमरीका, आस्ट्रेलिया से दक्षिणी अमरीका इत्यादि के हवाई मार्गों का सबसे छोटा रास्ता इसी ध्रुव के ऊपर से पड़ता है।

फिर कृत्रिम उपग्रहों के युग में इस प्रदेश की उपयोगिता और बढ़ गई है। उपग्रहों को पृथ्वी की परिक्रमा के लिए उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों के ऊपर से गुजरनेवाला मार्ग सबसे अच्छा पड़ता है। चूँकि पृथ्वी ध्रुवों को मिलानेवाली रेखा को धुरी मानकर गोल चक्कर लगाती है, अतः ध्रुव के ऊपर के उपग्रह के नीचे पृथ्वी का प्रत्येक भाग गुजरता है। इसलिए दक्षिणी ध्रुव पर बने स्टेशनों द्वारा समस्त पृथ्वी से एकत्रित सूचनायें मिलती रहेंगी और निर्जन होने की वजह से यहाँ पर भीड़ भाड़ से होने वाली अड़चनें न होंगी।

जैसे ही अंतरिक्ष यात्रा के लिये मानव यात्री चल पड़ेंगे, "अंतार्कतिका" की उपयोगिता बढ़ जावेगी क्योंकि पृथ्वी के चारों ओर फैली संहारक परमाणु व इलेक्ट्रान किरणों का क्षेत्र ध्रुवों पर क्षीण है। दूसरी ओर कास्मिक किरणों की अधिकता इस प्रदेश को अध्ययन के लिए उपयुक्त बनाती हैं। तीसरे, इस प्रदेश के द्वारा सारी पृथ्वी के जल-वायु पर पड़नेवाला प्रभाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अगर यहाँ की सब बर्फ पिघल जावे तो सारी पृथ्वी के सागरों का पानी २०० फुट ऊँचा उठ जावेगा। पिछले ५० वर्षों में इस प्रदेश का तापमान ५ डिगरी गरम हो गया है—अगर यही हाल रहा तो अगले २००० वर्षों में यहाँकी पूरी बर्फ पिघल जावेगी। परन्तु यह नहीं होगा क्योंकि यह ५ डिगरी बढ़ना अल्पकालिक परिवर्तन है। पिछले १,००,००० वर्षों में तापमान वृद्धि नहीं के बराबर हुई है।

फिर इस प्रदेश की बर्फ के नीचे दबी चट्टानों, गैसों, खनिजों, बर्फ के जमने की तहों, ज्वालामुखी की राखों की मात्रा, वनस्पति व फौसिलों द्वारा पृथ्वी का प्राचीन इतिहास जाना जावेगा। इस भाँति "अंतार्कतिका" प्रदेश की खोजबीन अनेक दृष्टिकोणों से आवश्यक है।

विचित्र घटनाएँ

इस देश में अजीबो-गरीब घटनाए होना नित्य की बातें हैं। रहने के लिए बनाये गये एक घर की दीवालें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति वर्ष ६ फुट बर्फ में नीचे सरक जाती हैं। पाँच वर्षों में ३० फुट की इमारत भूमि के नीचे चली जाती है। अब सभी मकानों में पत्थर की नीवें दी जा रही हैं ताकि वे नीचे कम धँसें।

मछली का शिकार करते समय पेंग्युन नामक पक्षी के झुंड भी समीप आकर मानव प्रयास को कौतूहल-दृष्टि से देखते हैं। इस प्रदेश में लगभग सवा सौ प्रकार की मछलियाँ पायी गयी हैं। अक्सर मछली आखेट के समय बर्फ की चट्टानें टूट जाती हैं और मनुष्यों को ठंडे पानी में डुबकी लेनी पड़ती है।

सूर्य किरणों का बर्फ की चट्टानों से टकराकर वर्तन होने पर हीरे जैसी रश्मियाँ दिखना इस प्रदेश में साधारण बात है। बर्फ की ऊपरी पपड़ी के नीचे बहुधा पोला रहता है जिसकी गहराई हज़ार फुट से भी अधिक हो सकती है। कभी-कभी यात्रा करते समय भारी-भरकम गाड़ियाँ इत्यादि खड्डों में समा जाती हैं। तब असीम साहस के साथ उनकी सवारियों, सामग्रियों तथा गाड़ियों को रस्सों द्वारा बाँधकर ऊपर उठाया जाता है।

एक ब्रिटिश टोली ने सर विवियन फश की अध्यक्षता में सर्वप्रथम इस बर्फीले प्रदेश को एक छोर से दूसरे तक पार किया। रूसी टोली ने, जिसके नायक श्री टौल्स्टी-कोव थे, दक्षिणी ध्रुव के प्रदेशों का पर्यटन किया तथा अमरीकन उड़ाकों व अन्य टोलियों ने दस लाख वर्ग मील क्षेत्र को भली भाँति जाँच कर नक्शे बनाये।

शीत का भंडार

यहाँ पर रहनेवालों को शीत से बचाव के हेतु चमड़े के कपड़े, तीन तीन जोड़ मोजे भारी-भरकम पैंट तथा ऊपर से भारी लबादा पहिनना पड़ता है। फिर भी बहुधा शीत से ठिठुरने के कारण नाक, गाल व कानों पर श्वेत दाग (रक्ताभाव के कारण) पड़ जाता है। डाक व भोजन सामग्रियों का आना शीतकाल में बन्द रहता है परन्तु "गरम" मौसम (जो कि हमारे ठंडे से कहीं अधिक ठंडा रहता है) में बाहर से समाचार, सूचनायें तथा रसद पहुँचती रहती है।

रसद में आधे से अधिक मात्रा तो ट्रैक्टरों, गाड़ियों आदि के ईंधन की रहती है। चिकनी, ऊँची-नीची भूमि पर टैंक समान (पट्टियों के स्थान पर जंजीरों द्वारा चलनेवाली) गाड़ियाँ ही चल पाती हैं और वह भी रेंगती चाल से। वस्तुओं को पहुँचाने का कार्य इतना दुर्गम है कि एक रुपये मूल्य की वस्तु को पहुँचाने में ५० का व्यय बैठता है। विद्युत्, ऊष्मा, भोजन, प्रकाश आदि के लिए ईंधन चाहिए, अतः डीजल तेल की मात्रा ही रसद में अत्यधिक रहती है।

चारों ओर बर्फ से घिरे इन प्रदेशों में मनुष्य की आँखें चौंधिया जाती हैं और उपचार की तुरंत व्यवस्था न होने पर अंधा होना कोई बड़ी बात नहीं है। फिर भी विंड स्टेशन, मैकमर्डो, अमंडसनस्काट, ऐल्सवर्थ, हेलट इत्यादि स्टेशनों पर गत वर्ष से बस्तियाँ बस गयी हैं और सभ्य संसार से वर्ष भर कुछ न कुछ संपर्क बना रहता ही है।

दक्षिणी ध्रुव अफ्रीका महाद्वीप के सबसे पास के स्थान से भी लगभग ४,००० मील दक्षिण में है। दक्षिणी अमरीका का निकटस्थ स्थान इस ध्रुव से लगभग २,००० मील दूर है। संयुक्त राज्य अमरीका का समीपस्थ माल पहुँचाने व संपर्क का स्थल यहाँसे १३,००० मील उत्तर है। जलयान केवल जनवरी व फरवरी में यहाँ माल लाते और ले जाते हैं जब कि यहाँ ग्रीष्म ऋतु रहती है। संयुक्त राज्य अमरीका से इसका क्षेत्रफल दुगना (अतः भारत से ५ गुना) है।

वैज्ञानिक देनस्वरूप

एक अन्य जिज्ञासा का उत्तर "अंतार्कतिका" महाद्वीप से मिलना बाकी है। सिद्धान्त माना गया है कि पृथ्वी के जन्म के समय सब महाद्वीप एक दूसरे से मिले हुए थे। बीच में सागर नहीं थे। हाल ही में २ मील बर्फ की परतों को पार करके न्यूजीलैंड के वैज्ञानिकों ने पाया कि यहाँकी चट्टान अफ्रीका तथा द० अमरीका से बहुत मिलती-जुलती हैं।

फिर यहाँ खनिजों का भंडार है। इसका आभास भी मिल रहा है। सोना, ताँबा व टिन, कोयले के कुछ घटिया प्रकार, अभ्रक, ग्रेफाइट व लोहा तथा यूरेनियम, सीसा व जस्ता अनेक स्थानों पर पाया जाता है। यहाँपर भूकम्प की तरंगों को भली भाँति यंत्रों द्वारा रिकार्ड करना सरल है क्योंकि नगर आदि का कोलाहल व भूकंपन यहाँ नहीं रहता।

और इस प्रदेश का सबसे अच्छा इस्तेमाल तो शीत-भंडार के रूप में संसार के भोजन पदार्थों को बिना सड़े गले बनाये रखने में होगा। फसलों की बढ़ती हुई मात्रा को यहाँ सुरक्षित रखना सरल है। फिर कम उपज या दुर्भिक्ष के समय उसको इस्तेमाल के लिए भेजा जा सकेगा। एड-मिरल बेर्ड का यह सुझाव अत्यन्त उत्तम जँचता है।

शायद १९६१ के अंत तक परमाणु शक्ति द्वारा मिला पावर-गृह इस प्रदेश को मानव सुख, सुरक्षा तथा आकर्षक जीवन प्रदान करने की ओर ले जाकर दक्षिणी ध्रुव को पृथ्वी का केंद्र बना सके। इस अणु स्टेशन द्वारा २० वर्षों तक शक्ति मिलेगी तथा वहाँके ३००० निवासियों की आवश्यकता पूर्ति सहज में हो जावेगी। कदाचित् तब अंतार्कतिका भी सभ्यता का सीमांत प्रदेश बन जावेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिशील सभ्यता और परिवार

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

जब अपराध हर दिशा में बढ़ रहे हैं तो आज की वासनामय सभ्यता में ऐन्द्रिक अपराधों की वृद्धि भी आश्चर्यजनक नहीं है। जापान अपने धन तथा समृद्धि में संसार में इतना ऊँचा उठ गया है पर अपनी ९ करोड़ आबादी के चरित्र को सँभालने में असमर्थ है। सन् १९६० में उस देश में केवल मादक-द्रव्य की अवैधानिक बिक्री के १९८६ अपराध हुए यानी फी ४५,००० व्यक्ति पीछे एक अपराध। अर्थात् ०·०००२ प्रतिशत। जापान सरकार का कहना है कि एक अन्तर्राष्ट्रीय गिरोह उनके देश में ऐसे अपराध कर रहा है।

आज की गतिशील सभ्यता में अपराध, हत्या, मृत्यु यह सब तो खिलवाड़ सा होता जा रहा है। मनुष्य जैसे उन्मत्त हो रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रसिद्ध नगर शिकागो का २७ दिस० १९६१ का समाचार है कि बड़े दिन में मतवाले लोगों के कारण ५१९ व्यक्ति सड़क की दुर्घटनाओं से मरे। सन् १९५५ में उसी नगर में ६०९ व्यक्ति मरे थे। ऐसी सभ्यता में अपराधों का बढ़ना कौन सा आश्चर्य है? सोवियत रूस के प्रधान सरकारी वकील रुडेनको ने वर्तमान सोवियत रूस में बढ़ते हुए अपराधों की मीमांसा करते हुए आजकल की सभ्यता को भी दोषी ठहराया है।

आज हमारे जीवन का हरेक बन्धन शिथिल हो गया है। मानव जीवन का सबसे बड़ा बन्धन परिवार का होता है। वही छिन्न-भिन्न हो गया है। डा० कर्कपैट्रिक ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि सौ वर्ष पूर्व अमरीकन परिवार में पति का बड़ा आदरणीय स्थान होता था। घर में उसकी बात कानून की तरह मान्य होती थी। बच्चे उसके सामने बड़े आदर से पेश आते थे। आजकल उस किस्म के न तो बच्चे मिलेंगे और न आज्ञाकारिणी पत्नी मिलेगी। आजकल का पति दिन भर का थका-हारा घर वापस आता है और उसे तुरंत घर के काम में जुट जाना पड़ता है। आज के अमरीकन परिवार में भी वहाँ प्रजातन्त्र है। घर में सबकी राय से काम होना चाहिए। बेचारे बाप की एक ही वोट होती है। प्रायः लड़के अपनी माता के पक्ष में वोट देते हैं। बाप को यह भी अधिकार नहीं है कि अपने मन के कपड़े पहने या अपने मन की नौकरी करे। ऐसी दशा में बाल-अपराधों में वृद्धि होना स्वाभाविक है। डा० जैकबसन का कहना है कि पिछले पैंतीस साल के भीतर १८ वर्ष की उम्र से कम के ४०,००,००० बच्चे ऐसे हैं जिनके माँ-बाप ने एक दूसरे को तलाक दे दिया है। ऐसे पिता-माता की सन्तान यदि अपराध की ओर न बढ़े तो आश्चर्य है।

जब पारिवारिक जीवन इतना बिगड़ जायगा तो युवक-युवतियाँ अपना संतुलन खो बैठेंगी। सोवियत रूस में भी अपराधों में इसी कारण काफी वृद्धि हो गयी है। नवयुवकों में गुंडाशाही, पाजीपन और उद्दंडता बहुत बढ़ गयी है। इसीलिए सोवियत रूस की जेलों का शासन और भी कठोर हो गया है। ५ मई, १९६१ को वहाँ एक आदेश जारी करके कैदियों को अवधि के पूर्व छोड़ने की सुविधा समाप्त कर दी गयी है। प्राणदंड की सजा फिर चालू कर दी गयी है तथा गुंडागीरी के लिए भी प्राणदंड की सजा की घोषणा कर दी गयी है।

सोवियत सरकार की सबसे बड़ी अदालत के प्रधान विचारपति श्री ए० गोर्किन ने अपनी एक विज्ञप्ति में गुंडों को चेतावनी दी है। उन्हें प्राणदंड की सजा देने की धमकी दी है। कम्यूनिस्ट युवक समिति के मुखपत्र ने भी ऐसे उद्दंड युवकों की भर्त्सना करते हुए एक लेख में लिखा है—

"समाज में ऐसे अस्थिर चरित्र के लोग हैं जो गुंडा-गीरी करने के लिए मौके की तलाश में रहते हैं ..... ये लोग समाज की आत्मा में, उसके रक्त में, घुल-मिल रहे हैं। इनकी बीमारी बढ़ती जा रही है।"

समाज के रोगी, असंतुलित, नशेबाज तथा सह-मैथुन के शिकार लोगों की चिकित्सा में बड़ा खर्च बढ़ता जा रहा है। कैलिफोर्निया के एक अस्पताल में क्षयी रोग के २०० मरीज हैं, २०० मरीज मानसिक असंतुलन के हैं, १०० नशेबाज हैं तथा १०० सह-मैथुन के रोगी हैं। इनकी देख-रेख के लिए ३३० वैतनिक कर्मचारी नियुक्त हैं।

अविवाहित मातायें

डा० क्रिस्टेंसेन तथा रुबर्स्टन ने संयुक्त राज्य अमरीका के १५२० नवविवाहितों की परीक्षा करके यह निर्णय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है कि वहाँ हर पाँच नवविवाहिता वधुओं में एक वधू विवाह के पहले से ही गर्भवती होती है। डा० जैकबसन का कथन है कि गत पैंतीस वर्षों में संयुक्त राज्य अमरीका में डेढ़ करोड़ पुरुष-स्त्रियों ने तलाक दे दिया है। जैक नार्मन नामक एक बड़े वकील ने गत ३५ वर्ष में उसी देश में तलाक सम्बन्धी ३३०० मुकदमे किये थे। उनका कहना है कि ऐसे तलाक देनेवाले अधिकांश लोगों ने जल्दी में बिना सोचे-समझे शादी कर ली थी। उनमें से अनेक को यह भी याद नहीं रहा कि क्यों शादी की, कब तथा कहाँ शादी की। कुछ लड़कियों ने प्यार किसी दूसरे से किया। जब वे अपने प्रेमी से ठुकरायी गयीं तो उसे चिढ़ाने के लिए जो युवक मिला, उसीसे शादी कर ली।

कुछ अमरीकन तो इसलिए शादी से छुटकारा पाना चाहते हैं कि वे अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का खर्च नहीं सहन कर सकते। वह जमाना चला गया जब देहात के परिवार में जितने ही बच्चे पैदा होते थे उतना ही घर गृहस्थी में काम करनेवालों की वृद्धि समझी जाती थी। अब तो एक लड़का होना मुसीबत है। संयुक्त राज्य अमरीका में एक लड़के को १८ वर्ष की उम्र तक पालने में लगभग ३,००,००० रुपये का खर्च पड़ता है। इसमें स्कूल की पढ़ाई का खर्च शामिल है। कालेज की पढ़ाई में इस रकम के ऊपर ५ से १० हजार डालर यानी पच्चीस या पचास हजार रुपये का खर्च पड़ता है। इसलिए नये जमाने के पिता-माता बच्चा पैदा करना मूर्खता समझते हैं।

अभिभावकों की लापरवाही से ही, माता-पिता की उदासीनता के कारण ही, सन् १९५७-५८ के एक वर्ष में ४,४०० अमरीकन बच्चे मोटरों के नीचे दबकर मर गये। ३६० लड़के अमरीकन नगरों की सड़कों पर साइकिल चलाने का अभ्यास करने में कुचल कर मारे गये। सन् १९५७ में न्यूयार्क में ५४४ छात्र इसलिए पढ़ाई से हटा दिये गये कि वे उद्दंड थे, शरारती थे।

आज से सौ सवा सौ वर्ष पूर्व सामाजिक जीवन अधिक स्थिर था। अधिक संयत था। शायद उस जमाने में पति-पत्नी में उतना प्रेम भी न होता हो जितना आज प्रकट में मालूम होता है, पर विवाहित लोग जीवन भर साथ निभाना जानते थे। धर्म कहिए, समाज कहिए, परम्परा कहिए, जिस किसी कारण से हो, पारिवारिक जीवन में अधिक ठोसपन था। वही जमाना था जब कि इंग्लैंड में पैसे दो पैसे पर औरत नीलाम कर दी जाती थी। अप्रैल १८३२ को इंग्लैंड के कार्लाइल नगर में एक व्यक्ति अपनी पत्नी को चौराहे पर लेकर खड़ा हो गया और आवाज लगाने लगा:

"यह स्त्री नहीं प्लेग है, पागल कुत्ता है। भरी पिस्तौल है, इसे कौन खरीदेगा।"

और उसने २० शिलिंग--यानी पन्द्रह रुपये में न्यूफाउण्डलैंड की नस्ल का एक कुत्ता लेकर अपनी पत्नी को बेच दिया।

पर आज की सभ्यता में ऐसी बात हो तो बलवा हो जाय। फिर भी, आज स्त्री का सामाजिक मूल्य समाप्त हो रहा है। आज उसका आर्थिक मूल्य है। संयुक्त राज्य अमरीका की सवा करोड़ विवाहिता स्त्रियों में, हर एक पत्नी पीछे एक कमानेवाली बीबी है। पत्नी दफ्तर से आकर थकी-माँदी आराम करती है। पतिदेव दफ्तर से थके-माँदे आकर बच्चे सँभालते हैं। चूल्हा-चक्की देखते हैं। झाड़ू-बुहारी करते हैं। स्त्री आराम करने के बाद अपने क्लब जाती है। अपने राजनीतिक कार्यों को सम्पन्न करती है या फिर सिनेमा देखने या गोल्फ खेल खेलने चली जाती है। इसीलिए डा० कर्कपैट्रिक कहते हैं कि आजकल पत्नी तीन प्रकार की होती हैं:

(१) पुराने ढंग की बीबी।

(२) जीवन की सहचरी स्त्री।

(३) जीवन में बराबरी की हिस्सेदार बीबी।

आधुनिक स्त्रियाँ सहचरी बनना चाहती हैं, पत्नी नहीं।

जापान में

यह न सोचना चाहिए कि यह सब दूषण इंग्लैंड या अमरीका ऐसे बहुत उन्नत देशों में है। पूर्वी देशों में सबसे बढ़ा हुआ जापान है। आज के पचास साल पहले तक जापान में लड़की की उम्र सात वर्ष की होते ही भाई से अलग कर दी जाती थी, वह अपने भाई के साथ खेल भी नहीं सकती थी। अब यह सब समाप्त हो गया है। पुराना तरीका कि माता-पिता शादी पक्की करें, वह भी समाप्त हो गया है। अभी वहाँ समाजशास्त्रियों द्वारा एक गणना की गयी थी जिससे पता चला कि जापान के ३८ प्रतिशत नवयुवक उसीसे शादी करेंगे जिससे उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम हो, पर केवल प्रेम के कारण शादी करनेवाली युवतियों की संख्या केवल १८ प्रतिशत है। ३७ प्रतिशत जापानी लड़कियाँ "स्नेहवश" शादी करना चाहती हैं। २७ प्रतिशत पुरुष का स्वास्थ्य देखकर शादी करना चाहती हैं। १५ प्रतिशत लड़कियाँ पुरुष का 'व्यक्तित्व' देखकर, ११ प्रतिशत 'सच्चरित्रता' देखकर, ६ प्रतिशत 'उम्र' का विचार कर तथा केवल २ प्रतिशत 'संस्कृति' देखकर पति का चयन करना चाहती हैं।

पति के इस प्रकार के चुनाव में कितने ही लोग मैदान में हार मान जाते होंगे, और फिर ऐसे चुनाव के बाद जो विवाह होगा, उसके बारे में केवल सोचा ही जा सकता है। लिखना बेकार है। एक अमरीकन उपन्यासकार हॅमिंग्वे ने एक ऐसे अधेड़ उम्र के रईस का चित्रण किया है जो अपनी सुन्दर युवती पत्नी का दूसरे पुरुषों के साथ प्रेमालाप तथा प्रेमकांड देखकर संतुष्ट हो जाता था। इसी प्रकार की बातों को देखकर डा० किंसे ने लिखा है कि ७५ प्रतिशत पुरुष तथा २५ प्रतिशत स्त्रियाँ विवाह के बन्धन के बाहर जाकर अपनी कामवासना को सन्तुष्ट करते हैं। मनोवैज्ञानिक फ्रेड फेल्डमान ने लिखा है कि आजकल बहुत से लोग विवाह के बन्धन में इसलिए नहीं पड़ते कि उससे वासना की सन्तुष्टि में बाधा पड़ती है।

हमने ऊपर जैक नार्मन नामक एक प्रसिद्ध अमरीकन वकील का जिक्र किया है, तलाक के मुकद्दमे लड़ने में उनका बड़ा नाम है। उनका कथन है कि ज्यादातर तलाक तीन कारणों से होते हैं:—

(१) पति के पास या पत्नी के पास धन की कमी।

(२) पति पत्नी की वासना को शान्त नहीं कर सकता या अपने काम-धंधे में बहुत व्यस्त रहता है।

(३) पति प्रायः बीमार रहता है, पूरी कमाई नहीं कर पाता। पत्नी को परिवार का खर्च चलाने के लिए नौकरी करनी पड़ती है। वह थककर चूर हो जाती है।

डा० जॉन एल० टामस ने हिसाब लगाया है कि पश्चिम-पश्चिम अमरीका के सनातनी (कैथोलिक) ईसाई परिवारों में नीचे लिखे कारणों से तलाक होते हैं:—

अत्यधिक शराबी	..	३० प्रतिशत
दुराचारी	..	२५ ,,
गैर जिम्मेदार	..	१२ ,,
स्वभाव नहीं मिलता	..	१२ ,,
रिश्तेदारों के कारण	..	७ ,,
नपुंसकता	..	५ ,,
मानसिक रोग	..	३ ,,
धार्मिक मतभेद	..	३ ,,
फुटकर कारण	..	२ प्रतिशत
धन की समस्या	..	१ ,,

आज की सभ्यता में वासना की एक दौड़ और हाय-हाय सी मची हुई है। ऐसी दशा में हम असभ्य कहे जाने-वालों से किसी भी दशा में बेहतर नहीं हैं। एस्किमो जाति में यह प्रथा अभी तक थी कि घर में मेहमान आने पर उसकी थकान मिटाने के लिए मेजवान अपनी पत्नी भेज देता था। जब वहाँ घोर जाड़ा पड़ता है तो एक कमरे में बहुत से विवाहित या अविवाहित स्त्री-पुरुष इकट्ठा हो जाते हैं। बीच में एक लालटेन रख दी जाती है। एक आदमी लालटेन बुझा देता है। बस, अँधेरे में जिसके हाथ जो स्त्री पड़ी वही उस व्यक्ति की वासना तृप्त करती है। ऐसी जंगली रीति में और आजकल के रीति-रिवाज में क्या अन्तर रह गया है? लैम्प बुझाने की प्रथा में भी एक मर्यादा है। वर्त्तमान प्रथा में तो कहीं कुछ भी नहीं है।

भारत में अब भी सभ्यता तथा शिष्टता, संस्कार तथा धर्म का प्रभाव बाकी है। हमारे यहाँ पारिवारिक जीवन अभी उतना शिथिल नहीं हुआ है जितना पश्चिमी देशों में। हमारे यहाँ अब भी अपराधों की संख्या काफी कम है। सन् १९३४ में भारत में फी दस लाख व्यक्ति पीछे २७५·४ अपराध हुए थे। सन् १९५० में केवल २५८·६ और सन् १९५८ में २०२·९। इस प्रकार वास्तव में हमारे देश में अपराध घटे हैं। पर पश्चिम की नकल करने की आदत बढ़ती और पड़ती जा रही है। हम कब तक अपने को सम्भाल सकेंगे, यह कहना कठिन है।

औसतन हमारे देश में अपराधों की संख्या कम प्रतीत होती है। आबादी जिस तेजी से बढ़ रही है, उतनी तेजी से अपराध नहीं बढ़ रहे हैं। पर, अपराधों की संख्या चिन्ताजनक अवश्य है। उत्तर प्रदेश में वास्तविक हस्त-क्षेप्य अपराधों की संख्या सन् १९५७ में १,२७,३९६ थी। सन् १९५८ में १,२८,२३६ हो गयी। उड़ीसा ऐसे छोटे से प्रदेश में सन् १९५७ में ६१,३९७ अपराध हुए। उस प्रदेश में सन् १९५७ में २,७९७ व्यक्तियों को पन्द्रह दिन से कम की कैद की सजा हुई। इतनी छोटी मियाद के लिए जेल में रखना नितान्त हानिकारक है। मद्रास प्रदेश में सन् १९६० के वर्ष के प्रारम्भ में १९,१०८ कैदी जेल में थे। वर्ष के भीतर २,२१,०७२ नये कैदी दाखिल हुए और २,२२,२३५ छोड़े गये। इस प्रकार जेल की नित्य की आबादी का औसत १७,७९,३९७ था।

अब इन थोड़े से आँकड़ों से क्या यह बोध नहीं होता कि हमारे देश में भी समस्या उग्र रूप धारण कर रही है? अपराध तथा अपराधी दोनों बढ़ रहे हैं।

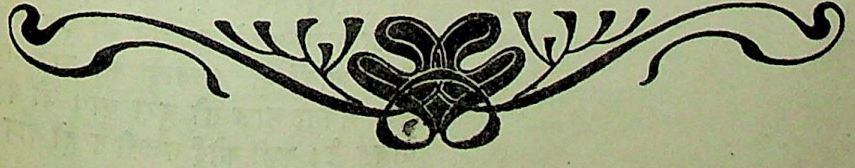

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

आपके दाम्पत्य जीवन की सबसे मनोरंजक घटना

हमारे दाम्पत्य जीवन की सबसे मनोरंजक घटना ले
है कि जिसे याद करके हम आज भी जी भरकर ह
लेते हैं। मेरे पति को उतावली थी कि मैं मायके से जल्
आऊँ और घर सँभालूँ लेकिन बार-बार पिताजी
यही उत्तर पाने पर कि "बेटा! घर सँभालने के लि
पत्नी को जब बुलाया जाता है तब उसके लिए सबसे आव
श्यक वस्तु यह होती है कि पहले एक घर हो।" मेरे प
कुछ अचरज में पड़े।

परन्तु सुना कि उसके बाद कुछ दिनों तक एक घ
खोजने की धूम मची रही। घर मिला और मैं
उसमें पहुँच गयी और उसके साथ-साथ 'अरे यार
बसा लिया और हमें पूछा तक नहीं! पहले बता
मिठाई कब खिलाओगे?' के इसरार भी शुरू हो ग
और जब ऐसे आग्रह हर ओर से आने लगे और हमें
कि बचना कठिन है तो फिर हमने भी हार मान ली
बहुत सोच-समझकर खाने-पीने की चीजों की सूची बना
बैठे। रमेश जब तक आधे दर्शन गुलाबजामुन न
जाय मानता ही नहीं है कि उसने मिठाई खाय
बुल्लू दद्दा को रसगुल्ला से वही प्रेम है। और अप
किशन यदि भोज्य सामग्री में समोसे न देखे तो उदास हो
जाता है। और नन्दू के लिए तो बस पकौड़ियाँ होनी
चाहिए और वो भी गर्म, सर्दारा को छोले न मिले तो
सोचेगा हम दावत में कंजूसी कर गये, फिर बहती गंग
में मैंने भी हाथ धोये। जब दही-बड़े मेरी ओर से
किसी प्रस्तावना के सूची में आ गये तो मेरे पति की आँ
आश्चर्य से फट गयीं। उन्होंने अपनी ओर से उसमें
इमरती लिख दी।

दिन निश्चित हुआ। दो दिन पहले से यह धूम म
गयी मानों किसी बिटिया का ब्याह हो। पतिदेव हलवा
को दिन में दो-तीन बार आते-जाते सहेज आते थे कि देख
माल ठीक बनना चाहिए वरना एक पैसा न मिलेगा
मित्रगण अलग न जाने कितनी बार पूछ चुके थे कि दावत
की तारीख बदल तो नहीं गयी। एक मित्र तो इतना
पीछा करते-करते हलवाई की दूकान तक पहुँच गये और
अपने कानों ही हलवाई की बात सुनकर सच माना
मेरा अपना हाल तो बुरा था। जी धड़क रहा था पहली
दावत है। कहीं कोई गलती न हो जाय। क्या असर पड़ेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके मित्रों पर और इन पर। क्या पता रमेश आज छः के बदले आठ गुलाबजामुनों की एक गुलाबजामुन माने! रसगुल्ले क्या औरों को बुरे लगते हैं। माना बुल्लू दद्दा को अति प्रिय है पर प्रिय तो वह सभी को है। ऐसा सोच-सोचकर मिठाई की संख्या दुगनी तो न जाने कब की हो चुकी थी, पर अभी मुझको संतोष नहीं हुआ था। शादी में मिली सभी चीजें सजाई जा रही थीं। मित्रगण न देखें उनकी पत्नियाँ तो देखेंगी ही उन सजी वस्तुओं की ओर। साड़ी कौन सी पहनूँगी एक समस्या यही हो गयी थी। खैर दिन आया। सबेरे से दो तीन बार फर्श पोंछा जा चुका था, मिठाई करीने से कई बार लगाई जा चुकी थी, चम्मचों प्यालों की धुलाई पुछाई करके उनको उचित स्थान पर जमा दिया गया था, पान इलायची तश्तरी में भर दी गयी थी और दिन भर की थकी मैंने सोचा जरा कमर सीधी कर लूं। लेटी ही थी कि आँगन की कुंडी खटकने लगी। मैं जान गयी आ रही होंगी पड़ोस की माताजी! मैं सुनी अनसुनी कर गयी क्योंकि ये माताजी आते ही ऐसी गाथा छेड़ती थीं कि उससे बचना मुश्किल था। जिस दिन मैं घर में आयी थी उसी दिन दो-चार घंटे बाद माताजी से परिचय हो गया था और जब वे लौटकर गयी थीं तब तक उन्हें सब पता चल गया था, कि मेरे ससुराल से मुझे क्या-क्या जेवर चढ़े थे। मायके से मैं क्या-क्या लायी थी। तौल में क्या चीज भारी थी और क्या चीज हल्की। उनकी बहू जो जेवर लायी थी उनमें क्या-क्या नुक्स थे वे मुझे मालूम हो गये थे। कुंडी खटकती ही रही पर मुझे इस समय इन बातों की छुट्टी न थी। मैं भी नहीं उठी। थोड़ी देर में सामने की घंटी बजी। मैंने समझा ये आ गये। झट से मैंने किवाड़ खोला तो देखती क्या हूँ कि सामने वही पड़ोस की माताजी खड़ी हैं "अरे बहू मेरा झबरा तो यहाँ नहीं आया?" "नहीं तो!" मैंने संतुलित होते हुए कहा "यहीं होगा। मैं देख लूँगी तुम जाकर लेटो। तुम्हारे पहले जो इस मकान में थे उनके बच्चों ने उसको ऐसा परका रक्खा था कि पूछो मत।"

जान बची लाखों पाये। मैंने चट से अपने कमरे की कुंडी चढ़ा ली। माताजी झबरा को कोस रही हैं वह सुनाई पड़ रहा था।

आधे घंटे बाद मैं आराम करके कपड़े बदल कर चाय का पानी ठीक करने रसोई की ओर गयी तो देखती क्या हूँ कि पड़ोस की माताजी, मय अपनी बहू और बेटी के रसोई में उपस्थित हैं। खटाखट सिल-बट्टा रगड़ा जा रहा है। मसाले की खुशबू उड़ रही है। मुझे रसोई के दरवाजे से ही ढकेलकर बाहर कर दिया गया "जाओ जाओ अपने मेहमानों को देखो। तुम कल की ब्याहली रसोई में खाना बनाने की हो? ये तो हमारे काम हैं। हम सँभाल लेंगे। वे कौन सी साड़ी पहन आई। वो वाली साड़ी पहन कर दिखा जा मुझको, वो जो तेरी बहन ने भेजी थी।" माताजी आलू की टिकिया लौटते हुए बोलीं। इतनी आत्मीयता का उत्तर था कि मैं वापिस कमरे में लौट जाऊँ और साड़ी बदलने के मामले में उनके आदेश का पालन करूँ। बहरहाल रसोई माताजी के कब्जे में थी। मेहमान आने लगे और उसीके साथ-साथ रसोई से भोज्य पदार्थ। एक से एक गर्म, एक से एक स्वादिष्ट, एक से एक नये, जब कोई नयी चीज आती तो मेरे पति मेरी ओर यों देखते मानों यह कह रहे हों कि 'छिपी रुस्तम हो।' थोड़ी देर में अपनी ही दावत का यह जोर देखकर मेरी घबड़ाहट भी प्रसन्नता में बदल गयी, और मेरे पति भी अपने मित्रों का आवभगत जरा और खुलकर करने लगे। रमेश ने गुलाबजामुन सफाया करते हुए इनकी पीठ पर हाथ मारते हुए कहा "यार! तुमसे तो भाभी ही अच्छी निकलीं। उन्हें चार दिन ही में मालूम हो गया कि गुलाबजामुन किस दूकान की खाने लायक है। ये भाभी ने नत्थू की दूकान से मँगाये हैं। शर्त लगा लो। वहाँकी नहीं है जहाँ आप आर्डर दे रहे थे।" सारांश यह कि दावत खूब जमी। सब-पर मेरा कसकर रोब पड़ा था। एक-एक चीज की भूरि-भूरि प्रशंसा सुन चुकी थी। अन्त में समय आया। एक-एक पान गालों में दबाकर मित्रगण उठने लगे। सब के जाने पर जिनका मुझको सबसे अधिक डर था श्रीमान् पतिदेव ने भी मुड़कर मुझको देखा और बोले "आज तो तुमको हम भी मान गये।"

रसोई में जाकर देखा तो माताजी अपने बर्तन समेट कर ले गयी थीं, मिठाई कटोरदानों में बन्द थी और आँगन के किवाड़ की कुंडी उनकी तरफ से लगी थी। परन्तु किवाड़ के पास ही एक नाली में धड़ाधड़ ईंटें ठोंकी जा रही थीं। मैंने कुंडी खटखटाई। आँगन में गयी पर माताजी को मुझसे बात करने की छुट्टी नहीं थी। वो नाली बन्द करने पर बुरी तरह चिपकी थीं। मुझे देखकर कहने लगीं "नास जाय इस नाली का, मुआ झबरा आज इसी नाली के रास्ते जाकर तुम्हारी सारी मिठाइयाँ सफाचट कर गया था, भला हुआ जो मैं जरा देर पहले पहुँच गयी थी।"

शीला शर्मा

मेरे दाम्पत्य-जीवन की सबसे मनोरंजक घटना

मेरे पति को पानों का बेहद शौक है, हमेशा गिलौरी-दान उनके साथ रहता है। उनका कहना है कि यह मेरा विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। बात भी ठीक है; इसके कारण वे अनायास ही लोगों का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। पर इसी को लेकर वे एक बार ऐसी मुसीबत में फँस गये कि कुछ न पूछिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने घर जा रही थी। साथ में ये भी थे। गाड़ी में कुछ ऐसी भीड़ थी कि ढूँढ़े से भी दो आदमियों के बैठने लायक जगह न मिली। हारकर इन्होंने मुझे जनाने डिब्बे में बैठा दिया और स्वयं दूसरे में चले गये।

अब हुआ यह कि जिस डिब्बे में ये बैठे, उसी में इनके पीछे-पीछे एक महिला और चढ़ीं। जिस बर्थ पर इन्होंने अपने लिए जगह बनाई, उसके सामनेवाली पर एक सज्जन लेटे हुए थे। इनके पीछे उन महिला को देखकर उन्होंने जाने क्या सोचा कि उठ बैठे और बोले 'लीजिये बहनजी, आप इधर आ जायँ, मैं ऊपर चला जाता हूँ', बहनजी मुस्कराईं और बैठ गयीं।

जब गाड़ी चली तो इन्होंने बातचीत का सिलसिला शुरू किया और अपना गिलौरीदान निकाला। अगल-बगल बैठे यात्रियों को एक-एक पान दिया, स्वयं खाया और भद्रतापूर्वक अन्त में उस महिला के सामने भी बढ़ा दिया। उन्होंने भी चुपचाप ले लिया। यह क्रम जो एक बार चला, तो कई बार चला।

जब खाने का समय हुआ तो ये डाइनिंग-कार में गये, दो थाली लगाने का आर्डर दिया और समझाकर बता आये कि एक उनके और एक मेरे डिब्बे में जाएगा। फिर ये मेरी तरफ चले आये और मुझसे बात करते रहे।

उधर बेयरा इनके डिब्बे में खाना लेकर गया तो उसे बर्थ खाली मिली। पास बैठे अन्य यात्री भी इधर-उधर हो गये थे; बस वह महिला भर उसे दिखीं। बेयरे ने उन्हीं से पूछ लिया कि 'बीबीजी, जो बाबूजी यहाँ बैठे थे, किधर गये?' बीबीजी बोलीं 'यहीं हैं, अभी आये जाते हैं।' बेयरे ने इनकी थाली वहीं रख दी; फिर जाने क्या सोचा और दूसरी थाली उस महिला के सामने रख कर चला गया।

मेरे पास खाना नहीं आया। गाड़ी चल दी। ये भी अपने डिब्बे में चले गये। वहाँ पहुँचे तो देखा कि वह महिला खा रही हैं, और एक थाली इनकी जगह रखी है। वे बोलीं, 'आपका खाना रखा है।' इन्होंने समझा कि बेयरे ने मेरे लिए जनाने डिब्बे में भी खाना पहुँचा दिया होगा, और चुपचाप खाना खा लिया।

रात काफी हो चुकी थी; और फिर सफर की बात; इन्हें अलकस आ गया; थोड़ा-थोड़ा ऊँघने लगे; फिर मेरी तरफ नहीं आये। बेयरा आया और दो थाली खानों के पैसे लेकर चला गया।

कुछ स्टेशनों के बाद वह महिला उतर गयी। भद्रता-पूर्वक इन्होंने उसका सामान भी उतरवा दिया।

उस महिला की ऊपर की बर्थवाले सज्जन आराम से सो रहे थे। थोड़ी देर बाद उनका भी स्टेशन आया तो यात्रियों ने उनको जगा दिया। वे हड़बड़ा कर उठे, और जल्दी-जल्दी अपना सामान सजाने लगे। देखा तो अटैची गायब। इधर पूछा, उधर पूछा, कहीं न पता मिला। वे भाग कर गये; स्टेशन-मास्टर को खबर की और पुलिस बुला लाये।

पुलिस-इंस्पेक्टर आया तो उसने पूछताछ की; यहाँ कौन-कौन बैठा था, कौन उतरा, इत्यादि। लोगों ने कहा, 'और तो कोई नहीं उतरा; बस बाबूजी के साथ एक औरत थी, वही उतरी हैं', और इनकी तरफ इशारा कर दिया। जिनकी अटैची चोरी गयी थी, वे भी बोले, 'अरे हाँ साब, आपकी वाइफ कहाँ हैं?'

इनकी तो सिट्टी-पिट्टी गुम। कहें कि 'मेरी वाइफ? मेरी वाइफ यहाँ कब बैठी थीं? वे तो जनाने डिब्बे में हैं।'

अब तो लोग इनके पीछे पड़ गये। 'वाह साब, वे आपकी बीबी नहीं थीं तो कौन थीं? आपने उन्हें पान दिया; बातें कीं; खाना खिलाया और अब बात बनाते हैं।'

जिनकी अटैची गयी थी, बोले 'खूब! मैंने साब आपकी वाइफ के लिए जगह खाली की, ऊपर सोया, और अब मुझी से उड़ते हैं!'

डाइनिंग-कार का बेयरा कहता था, 'मैंने साहब और मेमसाहब को यहीं खाना दिये हैं, पैसे लिये हैं।'

सारे स्टेशन के लोग इकट्ठा हो गये। इन्हें देखते थे और हँसते थे। ये भी क्या कहें? कैसे कहें? कुछ देर तक बड़ा तमाशा रहा।

फिर ये इंस्पेक्टर और स्टेशन-मास्टर को लेकर मेरे पास आये। मुझे भी हँसी आई। एक बार मन में आया, कह दूँ, मैं इन्हें जानती भी नहीं। फिर स्थिति गंभीर होती देखकर चुप रह गयी। अब उन्हें आश्वस्त करना भी एक मुश्किल; जैसे-तैसे करके वे लोग माने। फिर भी जिनकी अटैची गयी थी, इन्हें संदेहात्मक दृष्टि से ही देखते रहे। लेकिन क्या कहते?

तब से ये जिस किसीको परिचयात्मक रूप से पान नहीं देते हैं; महिलाओं को तो भूल कर भी नहीं।

उषादेवी वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर गृहस्थी

रिमझिम बरसन लागीं बँदियाँ

बरसात कितनी भी सुहावनी क्यों न हो, भीगे कपड़े सुखाने की समस्या अवश्य खड़ी कर देती है। आखिर कपड़े कहाँ सुखायें--जो आते जाते समय रास्ते में भी न पड़ें और सूख भी जायें! बाहर तो निरन्तर झड़ी लगी है।

यदि यह समस्या आपके सम्मुख भी खड़ी है तो आप भी कपड़े सुखाने का यह सुविधाजनक मार्ग अपनाइये। चित्रों में बना यह कपड़े सुखाने का चौखटा आसानी से स्नानगृह, रसोईगृह व बरामदों में टाँगा जा सकता है। रस्सी ढीली करके यह कपड़े टाँगने के लिए नीचे उतारा जा सकता है और कपड़े चौखटे पर फैला देने के पश्चात् वह मार्ग में न पड़े इस कारण रस्सी को खींचकर ऊँचा किया जा सकता है।

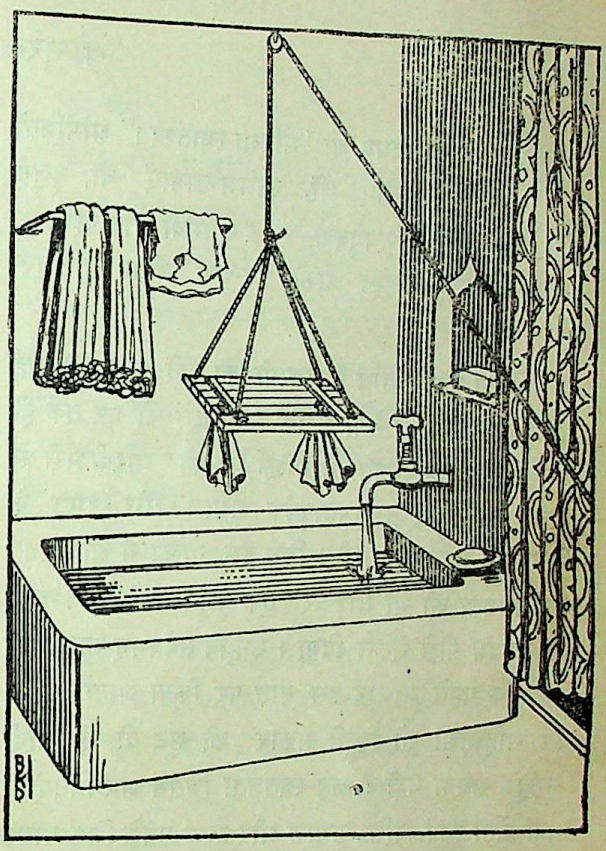

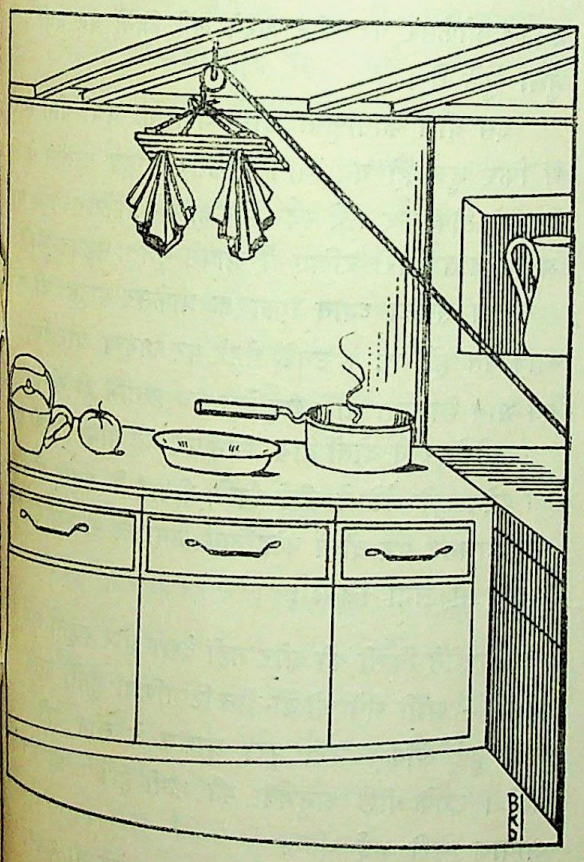

यह चौखटे आपके स्नानगृह, रसोईगृह व बरामदे आदि (जहाँ कहीं भी उनको टाँगना हो) की बनावट के अनुसार छोटे व बड़े बन सकते हैं। इनको बनाने की विधि साधारण है--लकड़ी के चौकोर व लम्बाई लिये हुए चौखटे में बीच में तार व लकड़ी के तख्ते जड़ दिये गये हैं--जिससे उन पर कपड़े सुखाये जा सकें। चौखटे के चारों कोनों पर लोहे के छल्ले लगे हैं--जैसे कि प्रायः झूलों में लगे रहते हैं--इन्हीं छल्लों में रस्सी बँधी है जो कि चौखटे को ऊपर व नीचे ले जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमा

श्री सुरेन्द्र कुशवाह

गोष्ठी का विषय था "महिला स्वातंत्र्य।" आमंत्रितों में महिलाएँ थीं, कालेज-छात्राएँ थीं, बुजुर्ग प्रोफेसर थे और थे नवयुवक—कुछ अनुभवी और परिपक्व और कुछ वे जिन्होंने अभी जिन्दगी जीना ही शुरू किया था।

विषय यद्यपि खास दिलचस्पी का नहीं था क्योंकि यह तो सर्वमान्य-सा हो गया है कि महिलाओं को घर तक ही अब सीमित नहीं रखना है बल्कि घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर स्वतंत्रतापूर्वक समाज और राष्ट्र के विकास में हाथ बटाना है। किंतु इस गोष्ठी में आधारभूत इस मान्यता को भी तोड़कर एक बुजुर्ग प्रोफेसर ने चर्चा को एकदम पीछे धकेल दिया। उन्होंने सर्वप्रथम आग्रह यह रखा कि पहले विचार इस बात पर किया जाना चाहिए कि महिलाओं को किसी प्रकार की छूट दी भी जानी चाहिए अथवा नहीं ? वह स्वतंत्रता जिसमें आत्म-नियंत्रण नहीं होता स्वयं व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सबके लिए घातक होती है।

इतना कहकर प्रोफेसर चुप ही नहीं हो गये थे बल्कि वह आगे भी कुछ कहते अगर उनकी बात नवयुवा छात्राएँ और महिलाएँ बीच में ही न काट देतीं।

"महिलाएँ घर में कैद होकर नहीं रहेंगी।" किसीने कहा।

"महिलाओं को पुरुषों के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर काम करना है। वे पुरुषों से किसी तरह कम नहीं हैं। पुरुषों से ज्यादा शक्ति उनमें है।" यह किसी नवयुवती का दूसरा स्वर था।

"क्या आप चाहते हैं कि महिला दासी बनकर, जैसा कि शताब्दियों से उसके साथ हो रहा है, घर में रहे और बच्चे जनने और पालने-पोसने का ही उसका काम हो ? नहीं, यह संकीर्णताएँ और बेड़ियाँ हमें काटनी होंगी। भारतीय नारी ने बहुत सहा है। आगे अब वह नहीं चलने दिया जायगा।" जोशीले पतले स्वर में यह तीसरी आवाज थी।

इतना सब कहा गया कि मानो आगे ब्रेक लग गया हो। अप्रत्याशित और आकस्मिक मौन न जाने कहाँ से आ टपका। अधिकांश लोग विस्मय में उक्त भाषणकर्त्ताओं को देख रहे थे। कारण, प्रोफेसर बुजुर्ग ही नहीं थे, युवा लोगों को स्नेह और प्रोत्साहन देना उनकी प्रकृति में था, इसलिए उनकी प्रतिष्ठा थी और उनकी बात में वजन माना जाता था।

पिछली किसी गोष्ठी में भी प्रोफेसर को ऐसे तीखे जवाब नहीं मिले थे। उन्होंने अपने को अजीब हालत में पाया और टटोलने लगे कि आज उन्होंने ऐसा क्या कह दिया है। तभी उनके अन्तर्मन ने उन्हें अतीत में ले जाकर पटक दिया और स्मृतियों के धुएँ के गाले उठ उठकर प्रोफेसर पर चोट करने लगे जिन्हें वह वर्षों पहले भुला चुके थे।

इस बीच कानाफूसी और व्यक्तिशः चर्चा धीमे स्वर में फिर शुरू हो गयी थी। प्रोफेसर साहब तल्लीन थे कि किसीने टोक कर ऊँचे स्वर में कहा—'प्रोफेसर साहब आप अपनी बात जारी रखिए मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूँ।"

तब सबका ध्यान एकाएक प्रोफेसर साहब की ओर आकर्षित हो गया। उनके चेहरे पर कारुण्य और विपन्नता का भाव छा गया था। यह देख सब हतप्रभ हो रहे।

प्रोफेसर ने दोनों हाथ, जिन पर वह माथा टिकाये थे, की ओर झुके बैठे थे, पीछे किये, दीवार के सहारे सीधे और मसनद पर दोनों कोहनियाँ जमाकर पीठ और दीवार से लगा लिया।

उन्होंने किसी की ओर नहीं देखा और कहना शुरू कर दिया—"अभी मैंने जो दो-तीन टिप्पणियाँ सुनीं, इससे कुछ खुशी हुई लेकिन मेरा पूरा आशय वे लोग नहीं समझ पाये। इनके पीछे अनुभव की कमी है।" प्रोफेसर की आवाज गिरी हुई थी।

और फिर शून्य में झाँकते हुए उन्होंने यों कहना शुरू किया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं एक परिवार को बीस साल से जानता हूँ। आज तो वह परिवार बिलकुल टूट-सा गया है। पति व्यापार करते हैं, बाहर कहीं दूसरी जगह रहते हैं। पत्नी अलग किसी शहर में नौकरी करती हैं। दो छोटे बच्चे पत्नी के पास हैं और दो बड़े—लड़का १८ साल का, लड़की १६ साल की, ग्वालियर होस्टेल में रहकर पढ़ते हैं।

नाम बतलाने का मुझे हक नहीं है इसलिए मैं अपने दोस्त को माडगुलकर नाम से सम्बोधित करूँगा और उनकी पत्नी को लक्ष्मी।

बीस साल पहले माडगुलकर प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति था। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत क्रांतिकारी था। देश के लिए मर मिट जाने की उसमें लगन थी, तमन्ना थी। पाँच गोरों को उसने मौत के घाट उतार दिया था और कई पुलिस-स्टेशन और डाकखाने जला डाले थे। डकैतियों के केस भी उस पर थे और सरकार की ओर से १०,००० का इनाम उस व्यक्ति के लिए घोषित किया गया था जो माडगुलकर को जिन्दा या मृत पुलिस के हवाले करे। खैर, यह सब लम्बी बातें हैं। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि वह साहसी और होनहार था। गहरी चिंता को भी वह हँसी के एक कहकहे में उड़ा देता था।

उन्हीं दिनों उसके विवाह की बात चली। उसने तुरंत इंकार कर दिया। उसका मित्र होने के नाते उसके पिताजी ने मुझ पर जोर डाला कि मैं ही उसे विवाह के लिए तैयार करूँ। मैंने माडगुलकर से बात की तो वह तुरंत बोला—यार तुम भी कैसी बात करते हो। मेरे बारे में तुम्हें क्या नहीं मालूम है? तुम्हीं बताओ विवाह के बाद मैं यह सब खुराफात कर पाऊँगा। फिर तो मुझे मरने से भी डर लगेगा। उसके विधवा होने का डर और उसके दुख-सुख की चिंता रहेगी।

मैंने उसे समझाने का यत्न किया कि वह तुम्हारे उद्देश्य में साधक ही सिद्ध हो सकती है। अन्य देशों में महिलाओं ने क्या नहीं कर दिखाया है। यह सब तो इस पर निर्भर है कि तुम उसे कितनी छूट और स्वतंत्रता देते हो। इस तरह उसको समझाने में मुझे तीन-चार दिन लगे और वह विवाह के लिए तैयार हो गया।

उसके विवाह होने के बाद मैं वहाँ नहीं रह सका। मुझे लखनऊ अच्छी नौकरी मिल गयी सो वहाँ चला गया।

लगभग पाँच वर्ष बाद लखनऊ स्टेशन पर एक कुली मेरे सामने झपटकर आया, बोला—बाबूजी कुली चाहिए? स्वर तो उसका तुरंत पकड़ गया था लेकिन उसे पहचानने में कुछ क्षण जरूर लगे।

तुम?

यह भेस?

माडगुलकर ने तुरंत आँख से इशारा किया और बोला रात को वह मेरे घर आयेगा। मैंने एक कागज के टुकड़े पर उसे अपना पता लिखकर दे दिया।

रात को दो-तीन बजे वह मेरे घर पहुँचा। बोला—तुम्हें अब सुबह तक सोना नहीं मिलेगा। बहुत-सी बातें करनी हैं। सुबह पाँच बजे मैं यहाँसे निकल पड़ूँगा। उससे इधर-उधर की बहुत सारी बातें हुईं। लेकिन जो संगत हैं वही आपसे कहूँगा।

बोला—लक्ष्मी से मैं तंग आ गया हूं। चाहता हूँ उसे तलाक दे दूँ।

मुझे सुनकर एकदम धक्का-सा लगा और बहुत दुःख हुआ। जिस बेधड़कपन से उसने कहा, मुझे लगा क्या इस आदमी में हृदय बिलकुल नहीं है। शब्द उसके मुँह से ऐसे निकले जैसे मशीन से ढलकर निकलते हो। फिर तब दो बच्चे भी उसके थे।

मैंने कहा—कहीं तुम पागल तो नहीं हो गये हो? यह क्या उखड़ी-पुखड़ी बातें करते हो, बिना सोचे-समझे, विचारे।

वह बोला—मैं ठीक कह रहा हूँ।...आपको ऐसा ही लगना चाहिए।...मैंने चार साल तक सोचा है।

फिर माडगुलकर ने संक्षेप में यह बताया—

विवाह के समय लक्ष्मी सीधी-सादी, भोली-भाली थी। लज्जा और संकोच उसमें कूट-कूटकर भरा था। मेरे साथ मुझ जैसे काम करनेवाले साथी थे, सो ऐसे कैसे निभता। धीरे-धीरे मैंने यह दोष दूर किये। परिणामस्वरूप वह हमारे साथ खुलकर रहने लगी और काम करने लगी और मुखर भी हो गयी। इससे मैं खुश हुआ और मुझे अच्छा लगा।

मेरे पास दो कमरे थे। एक में मैं था या मेरे साथी आते रहते थे और मीटिंग होती थी। दूसरे में लक्ष्मी रहती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन रात को मैं घर आने के लिए मना कर गया था। पर जब काम खतम हो गया तो पहुँच भी गया। देख मैं कुछ नहीं सका लेकिन लक्ष्मी के कमरे में अपने साथी रज्जन की आवाज साफ सुन सका। वे दोनों अठखेलियाँ कर रहे थे।

तीव्र रोष में मुझसे कोई अनर्थ न हो पड़े इस कारण उस रात मैं घर नहीं रुका और स्टेशन जाकर बेंच पर सो गया। अगले दिन भी मैं घर नहीं जा सका और रज्जन को ही खत्म कर देने का इरादा बनाता रहा। लेकिन जब जरा विवेक से काम लिया तो सूझ पड़ा कसूर तो मेरा ही है। लक्ष्मी को यह छूट और स्वतंत्रता किसने दी? लेकिन स्वतंत्रता अपने आप में कुछ नहीं है। मैंने उसे अपना विश्वास दिया था जिसका उसने घात किया।

वे दोनों चार साल से समझते आ रहे हैं कि मैं उनके बारे में कुछ नहीं जानता हूँ। कारण, सब कुछ जानते हुए भी, जैसे मुझे कुछ नहीं मालूम है, ऐसा मैंने दिखाया। ऐसे दिखाते रहने के भुलावे में ही अपने आपको भी भुलाता और खोता चला गया। लेकिन अब और मैं सहन नहीं कर सकूँगा। फोड़ा रिस रिसकर नासूर बन गया है। सम्बन्ध-विच्छेद ही अब एक उपाय हो सकता है।

माडगुलकर प्रवाह और रोष में कहते जा रहे थे। तब मैंने बीच में ही कहा—माडगुलकर, उपाय वह भी नहीं है। इससे भी गहरी पीड़ा तब तुम्हें जीवनपर्यंत सतायेगी।

दुखित माडगुलकर तब क्लिष्ट स्वर में झुँझलाकर बोले—तो फिर मैं क्या करूँ?

मैं कहना चाहता था कि जानते हुए भी न जानने का दिखावा करते जाना और निभाते जाना ही इसका उपाय है। बारीकी से, अणुवीक्षण यंत्र से देखोगे तो दही में भी कीड़े दिखाई दे जायँगे। लेकिन यह सब मैं नहीं कह सका क्योंकि उपाय सचमुच वह नहीं है।

अब आप ही बतलाइये क्या महिलाओं को ऐसी स्वतंत्रता की जरूरत है जिसकी रक्षा करने में वह असमर्थ हों?"

कहते-कहते प्रोफेसर का गला रुँध गया था, आवाज भारी हो गयी थी और वह चुप हो गये।

एक बड़ा प्रश्नचिह्न सबके सामने चित्रित हो गया था; और गोष्ठी अगले दिन के लिए विसर्जित हो गयी।

विवशता

प्रो० मित्तल एम० ए०

बढ़ रहे हैं डग उधर, जाना नहीं मैं चाहता जिस ओर जीवन में।

कौन वह प्रेरक, अमर उल्लास सा
मदिर सा मोहक, अमिट विश्वास सा
बाँध प्राणों को लिए जो जा रहा—
चेतना की लौ अमर सुलगा रहा—

और कहता है—"अरे चल देख तो ले जिन्दगी उस ओर उपवन में"

बढ़ रहे हैं डग उधर०....

कौन आया है, अमर होकर रहा है
प्यार ने तो मौन होकर ही कहा है
जिन्दगी, यौवन नहीं मिलता दुबारा
प्राण-पिक ने देख तो तुझको पुकारा

चल अरे नादान मत बन, दो क्षणिक तो देख ले, दो लहर सावन में

बढ़ रहे हैं डग उधर०.....

प्यार अमृत या हलाहल या भुलावा है
जिन्दगी का क्या सहारा, क्या किनारा है?
मनुज ने भी मनुज को मन से पुकारा है—
दर्द में, दुख में, अरे जो बेसहारा है

मनुजता की राह पर चलता मनुज, क्या चुन रहा है आज मधुबन में

बढ़ रहे हैं डग उधर, जाना नहीं मैं चाहता जिस ओर जीवन में।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत का झूला

श्री कालिकाप्रसाद मोहिले

'भैंसे का सा डीलडौल,' 'भैंसे की सी आवाज', 'भैंसे की सी शक्ल' आदि मुहावरे कोई अपने प्रति प्रयोग करे तो यह मन होता है कि कहनेवाले का मुँह नोच लें। कारण यह है कि भैंसे का डीलडौल, और आवाज, ऐसी होती है कि देखकर या सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मनुष्य ने जब यह शब्द गढ़ा, तो इस जानवर की कुरूपता, भयानकता, डीलडौल का मानों काढ़ा तैयार कर दिया हो। झूमता, चाल मस्तानी, गाँव में जिस ओर पहुँचा, खेत के रखवाले 'हट जाओ भैंसा आ रहा है' की आवाज उठाते हैं। यदि खेत रौंदने पहुँचे और गाँव वालों ने लाठी-प्रहार प्रारम्भ किया तो बिना अधिक बखेड़े के यह इस शान से खेत के बाहर होते हैं जैसे सरकार के मंत्री बिना सिर पर जूं रेंगे काले झण्डे दिखानेवाले प्रदर्शनकारियों की भीड़ को अकड़ते हुए पार कर जाते हैं।

जंगल में भी इनका बोलबाला है। जंगल के राजा शेर भी इन्हें औचट में या दाँव-पेंच से ही मार सकते हैं। यदि सींगों को सामने कर चौड़े नथनों से फुफकार मार-कर सामना करने को खड़े हो गये तो बाघ व शेर को भी अपनी आबरू-इज्जत सम्हालनी कठिन हो जाती है। इनकी जंगल की उस नामवरी ने हमें आकर्षित किया था कि इनके दलदली निवास में जाकर इनकी शान-शौकत का अन्दाज करें। सबेरे उषा के आँचल से सूरज ने झाँका ही था कि हमलोग अपने डेरे से रवाना हो चुके थे और सोन नदी की तलैटी में उँचास भूमि पर आगे बढ़ रहे थे। सोन को 'नदी' नहीं 'नद' कहते हैं। वर्षा में इसका विकराल रूप देखकर, जब यह ताण्डव नृत्य करती हुई कगारे ढाती तटीय प्रदेश को उजाड़ती चलती है, छक्के छूट जाते हैं। कहीं-कहीं पर पाट कई मील चौड़ा हो जाता है और वर्षा के उपरान्त जब यह नद लजीली नदी का रूप धारण कर लेता है तब पूस-माघ तक तटीय प्रदेश दलदल रहता है। बहुधा ऐसे ही प्रदेश में गैंडा, भैंसा, हाथी आदि आश्रय लेते हैं। जहाँ-तहाँ पानी भरा रहता है और बहुत से ऐसे स्थान रहते हैं कि जहाँ साल भर हर ऋतु में पानी मिलता है। यह प्रदेश वन-जन्तुओं के लिए जितना सुन्दर आश्रय-स्थल है उतना ही शिकारियों के लिए खतरनाक।

आसमान में सूरज उठते ही पक्षियों में चहल-पहल होने लगी थी। सामने के टीले पर घने महुए के पेड़ पर चिड़ियाँ बड़े जोर से कलरव कर रही थीं। कुछ पेड़ पर मँडरा भी रही थीं। कौतूहल जागृत हुआ कि किस कारण से पक्षी आतंकित हैं--कोई बनविलाव, बिज्जू या भालू ऐसा जानवर तो पास में नहीं पड़ा है। खोज-वृत्ति से सम्हल के टीले पर चढ़ रहे थे। थोड़ी ऊँचाई पर पहुँचने पर सोन नदी पतली रेखा सी टेढ़ी-मेढ़ी दिखलाई पड़ी। किनारे से पैर के पास तक की भूमि बहुरंगी थी। नीले जल के बाद श्वेत रेत समीपवर्ती हरियाली से चित्ताकर्षक भिन्नता उपस्थित कर रहा था। नम भूमि में घास की हल्की हरियाली के बाद लहराती भूमि चटक हरी काँस से ढकी थी। हवा के हलके झोंकों से सरकंडे एक साथ ऐसा हिलते थे मानों भारी युवक समूह सामूहिक व्यायाम कर रहा हो।

टीले पर आधी ऊँचाई ही पर था। देखा कि महुए के नीचे दीमक के बंबीठों को भालू देवता चाटकर चटपटे का मजा ले रहे थे। तने के समीप मोटी डाल पर बहरी ने एक चिड़िया मार कर रक्खी थी और बैठी चोंच खोले हाँफ रही थी। शिकारी के सामने हिंसक पशु का आना एक चुनौती होती है, किन्तु बहरी व भालू पर नियत खराब करना उचित न समझा। गोली छोड़ने की मन में आयी। भालू झबर-झबर करता गुर्राता टीले की घास पर खसक गया। बहरी ने भी किनारा कसा और दूसरे पेड़ को अपनाया। चिड़ियों का समूह भी उसी पेड़ पर अपने दल बादल के साथ पहुँचा और उसी ज़ोर-शोर से बहरी को पेड़ छोड़ने पर बाध्य कर रहा था जिस प्रकार महात्मा गाँधी ने क्विट इन्डिया (भारत छोड़ो) के नारे से अंग्रेजों को भारत से खदेड़ा था।

सामने सोन की विस्तृत घाटी पसरी थी। हवा की हलकी थपकियों से घास व सरपत में उठी सिहरन एक खड़खड़ाहट के साथ समाप्त होती थी। बीच की निस्तब्धता में हम लोग कान लगाकर सुनने की चेष्टा कर रहे थे कि कहीं जानवरों के कारण तो घास में घरमर नहीं हो रही है। दोनों बनरखे इसी घात से अलगे छिटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर निरीक्षण में लगे थे। कहीं टीले, कहीं पेड़ पर चढ़कर चारों ओर निगाह दौड़ाते थे। हम टीले से उतर रहे थे कि बनरखों में से एक ने आकर मूक इशारा किया पूरब की ओर। दूरबीन लगाकर देखा तो घास असाधारण रूप से हिल रही थी। कुछ साफ समझ में तो न आया किन्तु यह अवश्य था कि वहाँ कुछ वन्य पशु हैं, चाहे नील-गाय, चाहे साँभर। यह आशा नहीं थी कि सरलता से भैंसे के दर्शन हो जायेंगे। हवा सीधी हमें छूती हुई उधर से बह रही थी जिधर से संभावना थी कि भैंसे चर रहे हैं। मनुष्य की गन्ध से वन्य पशु सचेत होकर कहीं कतरिया न जायें, इसलिए हम बड़ी सावधानी से बढ़ने लगे। हमारी चेष्टा थी कि चक्कर देकर उनके पीछे पहुँचें। सामने से यदि मार्ग आध मील का था तो घूमकर जाने में इससे पंचगुना अधिक चलना पड़ता। किन्तु वन्य पशुओं को वन में मात देने में बड़े धैर्य, परिश्रम तथा तात्कालिक सूझबूझ की आवश्यकता होती है। मारने वाले से बचानेवाला बड़ा है।

हमारे कदम शीघ्रता से उठ रहे थे। चुप मारे सधे पैरों से आगे बढ़ रहे थे। दिल की धड़कन अपने को सुनाई पड़ रही थी। थोड़ा आगे बढ़ने पर निगाह बार-बार उस ओर जाती थी जिस तरफ जानवरों के होने की संभावना थी। अंत में हम मनचाहे स्थान पर पहुँच गये। अभी तक चरते जानवरों का ध्यान हमारी ओर आकर्षित नहीं हुआ था। हम समीपवर्ती ऊँची भूमि पर दम साधे झुक-झुककर चढ़ रहे थे कि ऊपर पहुँचकर मोर्चा लें। यहाँ धरातल कछुए की पीठ की तरह था और ऊपर एक बड़ा बरगद का पेड़ मुकुट की तरह शोभा बढ़ा रहा था। हम ऊपर बढ़ रहे थे, किंतु पीछे फिर मुड़-मुड़कर देखते भी जाते थे। जानवर बहके नहीं थे, और दर पर ही थे। हमारे अनुमान से वन्य पशु भैंसे ही थे और १–२ जितने भी हों, लगभग दो फर्लांग पर चरने में मग्न थे। जैसे-जैसे हम टीले पर बढ़ रहे थे और जानवरों के निकट पहुँच रहे थे, तैसे-तैसे स्पष्ट मालूम होने लगा कि चरनेवाले पशु भैंसे ही हैं। आगे बनरखा, पीछे लालजी और मैं, और बाद में फिर एक बनरखा था। मैं दूरबीन से जानवरों की ओर दृष्टि डाल रहा था कि एकदम बंदूक का धड़ाका हुआ। लालजी ठोकर खाकर गिरे और सहसा घोड़ा दब गया। शायद वह सेफ चढ़ाना भूल गये थे। गोली की आवाज सन्नाटे की छाती चीरती हुई निकल गयी। लालजी सम्हलकर उठे और पेशतर इसके कि कुशल-क्षेम का शिष्टाचार निभता, लगभग सौ गज दूरी पर काँस बेचैनी से हिली। चर्रमर्र, खड़खड़ की ध्वनि हुई और देखता हूँ एक भीमकाय भैंसा गर्दन उठाये निरीक्षण करता हुआ मानों जवाब तलब करता हो कि "मेरे सबेरे के कलेवे में क्यों विघ्न डाला गया?" लालजी अपने राइफल में लगे थे। कैसे घोड़ा दबा, सेफ चढ़ा था कि नहीं यही उधेड़ बुन कर रहे थे। सहसा बालों की गुच्छेदार दुम उठी और एक डीक सुनाई पड़ी और वह देखो, भैंसे ने हमला बोल दिया। एक तेज दुलकी पर काँस रौंदता डीक देता, महाकाल सा बढ़ा आता था और लगा कि क्षण भर में हम उसकी लपेट में आये। पहली प्रतिक्रिया भागने की थी, किन्तु लालजी ने ललकार कर डाँटा, क्या करते हो; मोर्चा लो, कहकर पेड़ के पीछे भागे। पेड़ का तना काफी मोटा था। अनुमानतः इसका व्यास होगा ८ फीट। मैं एक चट्टान की ओर लपका। मेरे, लालजी व तने में १० गज का फासला था। भैंसे ने घास का हिस्सा पार कर लिया था और चौरस में आते ही अपनी चाल दुलकी से सरपट में बदल दी थी। लगा कि पलभर में वह लालजी पर आ टूटेगा क्योंकि लालजी उसके रास्ते में पड़ रहे थे और मैं चट्टान के लिये कतरिया गया था। दोनों बनरखे का पता नहीं कहाँ बिला गये थे। मैं चट्टान के पीछे पहुँचकर बुरी तरह से हाँफ रहा था। लालजी व भैंसा— दोनों में इतना ही अन्तर था जैसे दो शब्दों में, किन्तु इतने ही में उन्हें पेड़ का तना मिल गया। मुझे चट्टान ने आश्रय दिया था। सिगनल के समीप से जैसे इंजन निकलता है —वैसे भैंसा टप टप करते मेरे सामने से निकला ही था कि मैंने निशाना साधकर गोली छोड़ दी। भैंसे की गति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। धमाके से चौंका और क्षण भर के लिए ठिठका, किन्तु वही रोष, वही चाल, वही रुख। वह बरगद के पेड़ की ओर ही अग्रसर रहा। उसके तक मैं दूसरे फायर करने की सोचूँ, लालजी ने दूसरी गोली दागी। साथ ही भैंसे के सिर ने पेड़ से टक्कर ली। लालजी मोर्चा सम्हाले, मौत से बाजी लगाये हुए थे। भैंसे का पहला वार बेकार गया। लाल-लाल आँखें, अगले पैर से धरती कुरेदता, मुँह पर झाग, नथुनों से फुफकार— साक्षात् यम सा वह दोबारा चोट के फेर में दस कदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे हटकर प्रहार के लिए जो आगे बढ़ा तो उसे देखकर मन की जो दशा हुई वह कही नहीं जा सकती। होश गुम से थे। कहीं लालजी मोर्चा न छोड़ दें, या दूसरी ओर से और कोई भैंसा न टूट पड़े। आँखों के नीचे अँधेरा सा था। अँगुलियों ने फौरन झोले में से कारतूस निकालकर नली में रखा। भैंसा बिजली की तरह डीक देकर लपका, किन्तु दो कदम बाद गिरा, जैसे ठोकर खा गया हो। क्षण भर स्तब्ध रहा। फिर चारों पैर हिले, शरीर काँपा, और तदुपरान्त अटल समाधि! दूसरी गोली छोड़ने की नौबत न आई। क्या लालजी और क्या मैं अपने-अपने दर पर जमे रहे। कुछ मिनट बीते। मैंने रूमाल से माथे का पसीना पोंछा और आवाज दी कि क्या करना है। देखा कि दोनों बनरखे आमने-सामने से झपटे आ रहे थे। 'निकल आओ सरकार—खेल खतम है। आज तो सौंजा ने बड़े औचट में लिया रहा', सोहन बनरखे ने कहा। भैंसे के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। हमारे प्राण आधे हो चुके थे। लालजी तने के पीछे से मुस्कराते हुए निकले। जान में जान आई। बनरखे लाश का निरीक्षण कर रहे थे। दोनों गोलियाँ लगी थीं। मेरी कन्धे के कुछ नीचे, किन्तु लालजी की ठीक मस्तक पर। गाढ़ा लाल खून आबनूस से बदन के ऊपर से बहकर धरती पर टप-टप कर रहा था। बनरखे ने अपनी टंगारी से नाप कर दोनों सींगों का चाप विस्तार लगभग ६ फुट बतलाया।

बरगद के गुम्बद से छनकर आनेवाली धूप सूर्य की प्रचण्डता बता रही थी। मौत का झूला झूलने के बाद शिथिलता बदन पर हावी हो रही थी। लालजी ने कहा, "भाई साहब घर चलो! यह है शिकार! 'चढ़े तो चाखे प्रेम रस—गिरे तो चकनाचूर'। आज यम-वाहन ने यम-द्वार दिखाया होता।" भैंसे के सिर को सुरक्षित लाने की व्यवस्था के लिए हम लोग बनरखों को छोड़कर लौट पड़े। आस-पास पेड़ों पर कौओं की अच्छी चहल-पहल हो चुकी थी, बड़े प्रफुल्लित थे वे, जैसे नमक या मिट्टी के तेल पर कन्ट्रोल लगने से चोर-बाजारवाले प्रफुल्लित हो उठते हैं।

उजली लहरें, फेनिल बादल

श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

उजली लहरें, फेनिल बादल
बादल से छन रहा रुपहला चाँद
चाँद की बिछली-फिसली किरन
दूधिया वरन नरम रे गात!!

एक साथ बादल की कंडीलों में दीप जले
दीप जले या ज्योति-हंस झीलों से निकल चले
एक साथ लहरों में मौलसिरी के फूल खिले
फूल खिले या गंधभरे वातायन आप खुले

वातायन से झाँक-झाँक कर
शोभा सँवरी चली सुधा से स्नात
रूप की मधुर छाँह के तले खिले
अनगिनत रात जलजात॥१॥

रूपाली की आभा की अञ्जलि से फूल झरे
फूल झरे या रस के सीकर-कन ही आप ढरे
नई कोपलों की क्वारी टहनी के नयन भरे
नयन भरे या यौवन ने गुञ्जन के छन्द वरे

चढ़ा कुसुम-धनु, खिंची कि डोरी
सुरभि उड़ चली मादकता के साथ
विजन कपूरी वल्लरियों की बाँहों में
बँध गया स्वयं अवदात॥२॥

रजत शिखर से धान खील की फूही बरस उठी
प्राणों के पाटल में रजनीगंधा सरस उठी
कितने भावों की पंखुरियाँ रसमय विकस उठीं
वह अनामिका ज्योतिगंधा जैसे विलस उठी

नींद-वृन्त पर खिले स्वप्न-दल
तूलीं कुंकुम रंगीले सौगात
रँगने लगी साधके मधुरिम चित्रपटल
पर उभर आज की रात॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

पूर्व और पश्चिम—डा० राधाकृष्णन्। प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली। सजिल्द। आवरण पर डा० राधाकृष्णन् का चित्र। मूल्य, पाँच रुपये।

यह पुस्तक डा० राधाकृष्णन् के East and West: Some Reflections का हिंदी अनुवाद है। अनुवादक हैं श्री रमेश वर्मा। कनाडा के मेकगिल विश्वविद्यालय में उसके कुलपति सर जॉन बटी के नाम पर एक वार्षिक व्याख्यानमाला स्थापित की गयी। डा० राधाकृष्णन् से उस व्याख्यानमाला का आरंभ करने को कहा गया। उन्होंने तीन व्याख्यान दिये। इस पुस्तक में उन तीनों व्याख्यानों का अनुवाद है। "शरीर, मस्तिष्क और आत्मा तीनों के स्वाभाविक सामंजस्य के निर्वाह से ही व्यक्ति और राष्ट्र सुखी हो सकते हैं; आज के युग में आध्यात्मिक मूल्यों को भुलाकर हम मस्तिष्क की उपलब्धियों पर अधिक जोर देते हैं, और इसी कारण हम दुखी हैं।" इन वाक्यों के साथ आरंभ कर उन्होंने भारतीय दर्शन का विवेचन किया, दूसरे व्याख्यान में अन्य मुख्य धर्मों के विकास पर विचार किया और अंत में पश्चिम के आधुनिक दर्शनों का विवेचन करके यह प्रमाणित किया कि भिन्न होते हुए भी इन सब में एक मौलिक एकता है। इन व्याख्यानों की पश्चिम में बड़ी सराहना हुई क्योंकि उन्होंने वास्तव में 'सागर को गागर में भर दिया था।' इन व्याख्यानों में केवल कोरा दर्शन ही नहीं है, किंतु यह भी बतलाया गया है कि संसार की वर्तमान समस्याओं में वह किस प्रकार सहायक हो सकता है। इन प्रेरक व्याख्यानों को हिंदीभाषियों के लिए उपलब्ध करके प्रकाशक और अनुवादक ने बड़ा उपकार किया है। अनुवाद सफल हुआ है। हम इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार चाहते हैं।

पद्मकान्त मालवीय और उनका काव्य—प्रकाशक, शारदा पुस्तक भंडार, १ पोनप्पा रोड, इलाहाबाद, आकर्षक आवरण। अच्छे कागज का संस्करण मूल्य ढाई रुपये।

पंडित पद्मकान्त मालवीय उन कवियों में हैं जो कविता करते ही नहीं, कवि-सुलभ जीवन जीते भी हैं। मस्ती, बेफिक्री आदि उनके कवि-सुलभ गुण हैं। उनमें यह मस्ती और लापर्वाही जीवन ही के प्रति नहीं, अपनी कविताओं के प्रति भी है। उन्होंने कभी भी अपने 'कवि' को आगे लाने का प्रयास नहीं किया। वे अच्छी कविता ही नहीं करते, पढ़ते भी बहुत अच्छे ढंग से हैं। फिर भी वे कवि सम्मेलनों से दूर रहे। कविताओं के संकलन छपवाये, पर स्वांतःसुखाय। उनके प्रचार की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। और इस प्रचार के युग में इस सबका परिणाम यह हुआ कि लोग उन्हें भूल से गये हैं। इसलिए हम कविताओं के इस संकलन का स्वागत करते हैं। पद्मकान्त जी ने अपनी कविता से कितने ही नवयुवकों को प्रेरणा दी और उनमें कई आज हिंदी के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने उस युग में लिखना आरंभ किया था जब द्विवेदी युग प्रायः समाप्त हो रहा था और 'छायावादी' कविता का बोल बाला था। 'छायावाद' को समझने के संस्कार तैयार नहीं हुए थे, किंतु उसकी शब्द माधुरी, नवीनता, गेयता, गूढ़ता और नूतन प्रतीकों के प्रति लोगों में आकर्षण था, यद्यपि वे उसे पूरी तरह से समझ नहीं पाते थे। उसमें सामान्यतः जिस भाषा का प्रयोग होता था, वह अत्यधिक संस्कृत-निष्ठ थी। इस कारण भी बहुत से लोग जो साधारण हिंदी नहीं जानते थे, उसको समझने में असमर्थ थे। छायावादी युग की कविता की भाषा बोलचाल की भाषा से बहुत दूर चली गयी थी। शब्द भंडार तो प्रचुर था, किंतु मुहावरे आदि का प्रयोग नहीं के बराबर होता था। पद्मकान्त ने बोलचाल की सरल हिंदी लेकर आये। उनकी कविता में रस था, ओज था और था राष्ट्रीयता का पुट। वे शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये। वे स्वयं अपनी भाषा के बारे में लिखते हैं।

मेरी भाषा में है गंगाजी की बहती हुई रवानी
सभी शब्द पावन हो जाते छूकर जिसका पावन पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नारी सी सीधी सादी सुंदर भाषा मेरी
इसमें उर्दू की शोखी है, हिंदी की मधु मिश्रित बानी।

और फिर यह गर्वोक्ति :—

भाषा का गौरव पाया है वीणावादिनि के प्रसाद से
जिसे सीखना हो वह आये सीखे हिंदी भाषा मुझसे !

यह तो हुई भाषा की बात। अपनी कविता के संबंध में कहते हैं :—

मेरी कविता में है मेरे जीवन की उठती हुई जवानी
यह सच्ची, यह स्थायी है, और नहीं यह महज कहानी
पश्चिमीय मदिरा के प्रेमी भले पा सकें स्वाद न इसका,
पर इसका सम्मान करेंगे, जो अपने पन के अभिमानी।

पुरानी पीढ़ी के कितने ही साहित्यकारों की भाँति पद्मकान्तजी हिंदी के भक्त होते हुए भी उर्दू के ज्ञाता और उसके काव्य के प्रशंसक हैं। अकबर के तो वे बड़े भक्त हैं।

मेरे ओ कवि अकबर महान
भारत माता के मुकुट-रत्न, तुम कोहेनूर जाज्वल्यमान
सोयी भारत की आत्मा थी
कर पश्चिमीयता-सुरा पान
खोने पर सब थे तुले हुए
अपनापन, गौरव, ज्ञान, मान।
जग उठा तुम्हारी वाणी में भारत का आहत स्वाभिमान !

पद्मकान्त सक्रिय राजनीति में रहे हैं। नेताजी के विश्वस्त अनुयायी थे, अतएव उनकी कविताओं में समसामयिक राजनीति की भी झाँकी होती है। त्रिपुरी कांग्रेस के संबंध में 'त्रिपुरी' नामक कविता की ये पंक्तियाँ देखिए—

कहते हैं गाँधीवादी यह बीमारी भी मक्कारी है
वह लड़ने कैसे आया है जो बिस्तर से भी हिल न सके !
है सत्य असत्याचरण यहाँ, हिंसा का नाम अहिंसा है
फिर क्या ताज्जुब जग का मानव
यदि आपस में हिल-मिल न सके !
'अंग्रेज विदेशी शासक को जीतेंगे प्रेम अहिंसा से'
जिनका दावा था—त्रिपुरी में
वे जीत बोस का दिल न सके।

प्रेम, वियोग, मिलन आदि की कविताएँ सरस और शक्तिशाली हैं। प्रसाद गुण, हृदय पर सीधे चोट करने की क्षमता और भाषा सौष्ठव पद्मकांत की कविताओं के विशेष गुण हैं। इस छोटी सी आलोचना में उनके इस संकलन की विशेषताएँ ठीक तरह से नहीं बतलायी जा सकतीं। जो लोग आजकल की कविताओं को समझने में दिमाग पर जोर लगाते-लगाते थक गये हैं, उन्हें इन हृदयस्पर्शी कविताओं को 'जायका' बदलने के लिए अवश्य पढ़ना चाहिए। कविता-प्रेमियों को उन्हें इसलिए पढ़ना भी आवश्यक है कि वे मालूम करें कि पिछली पीढ़ी में हिंदी कविता की एक ऐसी भी शैली थी जो सर्व-सुलभ थी, और एक ऐसा कवि भी था जो 'वादों' के चक्कर में न पड़कर अपने आसपास के जीवन और देश की दशा से प्रेरित होकर सौष्ठवपूर्ण और सरल हिंदी में हृदयस्पर्शी कविता लिखा करता था।

कप्तान लाल—श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, मूल्य, दो रुपये।

बिहार के एक जमींदार के कुमार लाल का यह जीवन चरित्र है। कुमार लाल बड़े आदमी के पुत्र थे। द्वितीय महायुद्ध में वे सेना में भर्ती होकर कप्तान हो गये और पूर्वी सीमांत पर, जब जापानी इम्फाल तक बढ़ आये थे, वे लड़े थे। इस मनोरंजक जीवनवृत्त में इस सीमांत युद्ध का मनोरंजक वर्णन है।

कोई शिकायत नहीं—श्रीमती कृष्णा हठीसिंह, प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली, मूल्य, सजिल्द, ढाई रुपये।

श्रीमती कृष्णा हठीसिंह पंडित जवाहरलाल नेहरू की छोटी बहिन हैं। इन्होंने अंग्रेजी में अपने और अपने परिवार के संस्मरण लिखे हैं। यह पुस्तक उसीका अनुवाद है। इसमें नेहरू-परिवार का अंतरंग चित्रण है और इससे मालूम पड़ता है कि इस महान् परिवार में राजनीति ने कैसे प्रवेश किया, और सारे परिवार ने स्वाधीनता आंदोलन में किस साहस, लगन और त्याग से भाग लिया। पुस्तक बहुत रोचक है। अंतिम दो अध्याय तो बड़े हृदयस्पर्शी हैं। इस तरह के अंतरंग संस्मरण मनोरंजक साहित्य ही नहीं, प्रत्युत ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबंधित होने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व के भी होते हैं। पुस्तक सभी के पढ़ने योग्य है। अनुवाद अच्छा हुआ है।

पुष्पोद्यान—श्री शंकरराव जोशी, प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली। मूल्य, ३ रुपये।

बहुत से लोगों को फूल लगाने का शौक होता है, किंतु उन्हें मालियों पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि इस संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं होती। यह पुस्तक उन लोगों के बड़े काम की है। इसकी विशेषता यह है कि यह एकदम व्यावहारिक है और इतनी सरल भाषा में और ऐसी शैली में लिखी गयी है कि साधारण योग्यता का व्यक्ति भी इसकी सहायता से फूलों के उत्पादन के संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकता है। हिंदी में ऐसी व्यावहारिक पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। जलवायु, खाद, जमीन, लॉन लगाने, सींचने, कलम लगाने, तरह-तरह के फूल पैदा करने की उपयोगी जानकारी का यह पूरा व्यावहारिक कोश है। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-प्रदीप

पं० महावीर साद द्विवेदी

इस समय हिन्दी के जितने समाचार-पत्र निकल रहे हैं दो-एक को छोड़कर हिन्दी-प्रदीप सबसे पुराना है। मासिक पुस्तकों में तो यही सबसे ज्येष्ठ है। इसे निकलते २७ वर्ष हो चुके। जब से यह निकलने लगा तबसे कितने ही मासिक और साप्ताहिक-पत्र निकले और अस्त हो गये। पर हिन्दी-प्रदीप जारी है। बीच-बीच में इसपर कितने ही अरिष्ट आये, परन्तु टल गये। यदि यह पत्र किसी और भाषा में निकलता होता तो इसकी रजत जुबिली हो गयी होती। पर अभागी हिन्दी के यह भाग्य कहाँ? प्रदीप किसी तरह चलता है यही गनीमत है।

हिन्दी-प्रदीप के सम्पादक पं० बालकृष्ण भट्ट कायस्थ पाठशाला, प्रयाग में संस्कृताध्यापक हैं। आप अँगरेजी भी जानते हैं। संस्कृत में, काव्य आपका प्रिय विषय है। आपकी सहृदयता प्रशंसनीय है। कोई काव्य, नाटक, या चम्पू ऐसा नहीं जिसकी आपने सैर न की हो। भारती भवन में संस्कृत के जो अनेक अच्छे-अच्छे काव्य-ग्रन्थ हैं वे आप ही की सलाह से मँगाये गये थे। सैकड़ों उत्तमोत्तम सामयिक श्लोक आपको कण्ठ हैं। आपसे वार्तालाप करने में बड़ा आनन्द आता है। आप व्याकरण और ज्योतिष विद्या में भी खूब प्रवीण हैं। अफसोस इस बात का है कि आपके नेत्र विकृत हो गये हैं। उनसे आप बहुत तंग रहते हैं। हद से जियादह आँखों से काम लेने का यह फल है। आज हम आपके प्यारे हिन्दी-प्रदीप का कुछ हाल लिखते हैं।

कोई ३० वर्ष हुए, इलाहाबाद में, कालेज के थोड़े से विद्यार्थियों ने, हिन्दी की उन्नति के लिये, "हिन्दीवर्द्धिनी" नाम की एक सभा स्थापित की। कुछ दिनों तक इस सभा के मेम्बरों में हिन्दी की उन्नति का बड़ा जोश था। उसी जोश में यह निश्चय हुआ कि समाचारपत्र, हिन्दी की उन्नति का सर्वोत्तम साधन है। सभा के कई एक मेम्बर धनाढ्य घराने के थे। उनको भी यह बात अच्छी लगी। पाँच-पाँच रुपये के हिस्से करके तत्काल ही थोड़ा सा रुपया इकट्ठा किया गया और यह ठहरी कि एक वर्ष तक एक पत्र अवश्य ही निकले। यदि पत्र के ग्राहक बढ़े और लोगों का मनोरंजन हुआ तो पत्र जारी रहेगा नहीं तो बन्द कर दिया जायेगा। उसी समय बाबू हरिश्चन्द्र अपने किसी निज के काम से प्रयाग गये थे। वहाँ हिन्दी-वर्द्धिनी-सभा के मेम्बरों की उत्कट वासना हिन्दी की ओर देख वे बड़े प्रसन्न हुए और आप भी उसके मेम्बर हो गये। पत्र निकालने में यथासाध्य सहायता देने के लिए आपने अभिवचन दिया और "कविवचनसुधा" के बहुत से ग्राहकों की नामावली भेज दी।

सितम्बर १८७७ से हिन्दी-प्रदीप निकलना शुरू हुआ। परन्तु "मूँड़ मुड़ाते ही ओले पड़े" की मसल खूब ही चरितार्थ हुई। उसी समय प्रेस ऐक्ट का जन्म हुआ। प्रदीप में कई लेख ऐसे निकले कि वह स्थानीय कर्मचारियों की आँख का काँटा हो गया। साल में कई बार मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ उसके मैनेजर और सम्पादक की तलबी बराबर होती गयी। यह तमाशा देख जो लोग चन्दा देकर इसके मेम्बर हुए थे उन्होंने अपने रुपये से हाथ धोया। प्रदीप की शिरकत से वे दस्तबरदार हुए। अपनी उन्नति के आगे हिन्दी की उन्नति का उत्साह भंग हो गया। कोई-कोई तो स्वदेश और स्वभाषा के इतने प्रेमी निकले कि पाँच रुपये देकर हिन्दी-प्रदीप का शेयर लेना उन्होंने बहुत बड़ा अपराध समझा। वे सोचने लगे कि इस पाप का प्रायश्चित्त किस तरह हो जो आगे कभी किसीके मुँह से यह न निकल जाय कि छात्रदशा में ये भी हिन्दी के हितैषी थे और एक ऐसे पत्र में शरीक थे जो गवर्नमेन्ट के खिलाफ लेख लिखने में बदनाम था। अस्तु यह तै पाया कि पत्र बन्द कर दिया जाय।

उस समय भट्टजी के लेख विहारबन्धु, कविवचन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय, कांगड़ी

सुधा और काशी-पत्रिका आदि में छपा करते थे। भट्ट-जी तो चाहते ही थे कि कोई ऐसा पत्र मिल जाता तो उसमें अपनी इच्छानुसार लिखा करते। अतएव प्रदीप को सर्वथा बन्द होते देख उसका कुल भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया और धड़ल्ले के लेख आप उसमें लिखने लगे। एक बार रामलीला और मुहर्रम एक साथ आ पड़े। उस मौके पर मुसलमानों ने हिन्दुओं को कुछ तकलीफ पहुँचाई। इसपर प्रदीप में एक लेख "न नीचो यवना-त्पर:" लिखा गया। इस कारण मुसलमानों की एक बड़ी सभा हुई और उसमें सम्पादक पर मुकद्दमा कायम करने की सलाह ठहरी। पर लायल साहब ने, जो उस समय यहाँके लेफ्टिनेंट गवर्नर थे, मुकद्दमा चलाने की इजाजत न दी। मुसलमानों से १० महीने बाद किसी तरह प्रदीप का पिण्ड छूटा। यह बात हमने भट्टजी ही से सुनी है। उनसे यह भी हमने सुना कि उनके तीव्र लेखों के कारण अप्रसन्न होकर शहर के कुछ लोगों ने बदमाशों को उनके पीछे लगा दिया था जिन्होंने भट्टजी को बहुत तंग किया। उस समय "Indian union" नामक एक अँगरेजी साप्ताहिक पत्र प्रयाग से निकलता था। उसमें इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया और यूनियन ने भट्टजी की बहुत सहायता की। इतना होने पर भी प्रदीप के लेखों का ढंग भट्टजी ने नहीं बदला। राजकीय विष-यक लेख वे बराबर लिखते ही गये। १३ वर्ष तक प्रदीप इसी ढंग पर चलता रहा। एक से एक बड़े लेख निकलते रहे। अन्त को यह सोचकर कि "फलं न किञ्चिद् अशुभा समाप्ति:" कौन रोज उठ झंझट में फँसता रहे, हिन्दी-प्रदीप केवल साहित्य और समाज-विषयक पत्र कर दिया गया।

जब से हिन्दी-प्रदीप साहित्य-विषयक मासिक पत्र हुआ तब से उसमें अनेक उपयोगी और मनोहर लेख निकले हैं। प्राचीन संस्कृत कवियों के जीवन-चरित लिखने में यह पत्र अद्वितीय है। आज तक इसमें कालिदास, श्री हर्ष, बिल्हण, गोवर्द्धन, भवभूति, बाण, त्रिविक्रम भट्ट, भारवि, क्षेमेन्द्र, हरिश्चन्द्र आदि कितने ही कवियों के चरित निकल चुके हैं। श्रीमद्भागवत वाराही-संहिता, भगवद्गीता और सप्तशती आदि पुस्तकों की समालोच-नायें भी निकली हैं इसके कुछ बहुत ही अच्छे लेखों की नामावली हम नीचे देते हैं:—

कविता-सम्बन्धी

१—कवियों की सूझ का अनोखा ढंग
२—उपयुक्त क्रिया
३— " विशेषण
४— " उपमा
५—नई गढंत के नये-नये अर्थ
६—क्षेमेन्द्र की उक्तियाँ
७—संस्कृतलोकोक्ति

नाटक

१—नल-दमयन्ती नाटक
२—किरातार्जुनीय नाटक
३—औचार-विडम्बन (प्रहसन)
४—जैसा काम वैसा परिणाम (प्रहसन)

उपन्यास

१—भाग्य की परख
२—सौ अजान एक सुजान
३—हमारी घड़ी।

प्राचीन देश, नगर, नदी, पर्वतों आदि का वर्णन भी प्रदीप में निकल चुका है। नृपति चरितावली-नामक लेखमाला में इस देश की छोटी-बड़ी रियासतों का हाल भी छप चुका है। हँसी-दिल्लगी की बातें भी इसमें कभी-कभी रहती हैं। इसके पुराने अंकों में "परसन" नाम के एक लेखक का लेख बहुत ही हास्यरस-पूर्ण है। भट्ट जी के लेख प्राय: नये होते हैं। किसीकी छाया या अनु-वाद नहीं।

इसके सम्पादक में न्यायप्रियता का गुण सबसे बढ़ कर है। अपनी समझ के मुताबिक जो उचित और न्याय्य होता है वही आप लिखते हैं। इनके लेखों से यह नहीं मालूम होता कि आप किस सम्प्रदाय या पन्थ के हैं। कभी आप आर्यसमाज के अनुयायियों की सी बातें करने लगते हैं, कभी सनातनधर्मियों की सी। बाल-विवाह के आप बेहद खिलाफ हैं। कुछ न कुछ आप इसपर लिखा ही करते हैं।

भट्टजी के नेत्र विकृत रहते हैं। इस कारण पहले यह पत्र यथासमय नहीं निकलता था। यहाँ तक कि दो एक दफा बन्द भी हो गया। पर अब कई महीने से यह ठीक समय पर निकलता है। भट्टजी के चिरजीव जनार्दन, जो अभी छात्रावस्था में हैं, भट्टजी की बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ सहायता करते हैं। यह युवक बहुत होनहार है और आशा है, किसी समय यह हिन्दी का अच्छा लेखक होगा।

हिन्दी की दशा कुछ ऐसी बुरी है कि अच्छे से भी अच्छे पत्र को बहुत कम लोग पढ़ते हैं। इस कारण बेचारे हिन्दी-प्रदीप को आज कोई २८ वर्ष में न मालूम कितना घाटा उठाना पड़ा है। बीच में जो नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, उसकी सहायता न करती तो वह अब तक बुझ गया होता। हमें आशा है, हिन्दी के इस इतने पुराने पत्र को हिन्दी के हितैषी जरूर जीवित रक्खेंगे। २४ पृष्ठ के मासिक पत्र का वार्षिक मूल्य १॥) बहुत नहीं है। यदि चार पाँच सौ ग्राहक भी इसके हो जायँ तो यह अच्छा हो जाय और लेख भी इसमें विशेष अच्छे निकलने लगें। क्योंकि "सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः"। अभी इसके ग्राहकों की संख्या बहुत ही कम है। पर भट्टजी की धीरता और विद्याभिरुचि प्रशंसनीय है जो इस दशा में भी वे इसे बराबर निकाले जाते हैं। और समय पर

भट्टजी से एक हमारी प्रार्थना है। वह यह है कि समय के रंग-ढंग को देखकर उन्हें अपने लिखने का ढंग अब कुछ बदल देना चाहिए और जिन विषयों पर वे अक्सर लिखा करते हैं उनमें भी परिवर्तन करना चाहिए।

देवनागरी में गवर्नमेन्ट गजट

पं० देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए०

यद्यपि भारतवर्ष में समाचार-पत्रों का प्रचार और प्रभाव इतना नहीं, जितना अन्य सभ्य देशों में है, तथापि इनकी चर्चा और उपयोग यहाँ भी दिनोंदिन बढ़ते ही जाते हैं। सच पूछिये तो समाचार-पत्र आजकल एक बहुत बड़ी शक्ति रखते हैं। क्या राजा, क्या प्रजा, सभी को अपने विचार प्रकट करने के लिए इन्हीं की शरण लेनी पड़ती है। प्रजा को किसी प्रकार का क्लेश हुआ और समाचार-पत्रों ने चट उसे राजा के कान तक पहुँचाया। इसी तरह यदि राजा को कोई बात बतलानी हुई तो समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते ही वह प्रजा तक पहुँच जाती है। अन्यान्य देशों में सरकारी कार्रवाई उन देशों की ही भाषाओं में हुआ करती है। इससे प्रजा को सरकारी बातों के जानने में बड़ा सुभीता रहता है। परन्तु भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश होने के कारण इसमें अनेक भाषायें और लिपियाँ प्रचलित हैं। और राजकीय प्रधान भाषा अँगरेजी है। अतः हमारी सरकार को अपने विचार प्रकट करने के लिए भाषान्तर की आवश्यकता होती है। सरकारी कायदे, कानून, मसविदे, हुक्म इत्यादि पहले अँगरेजी में लिखे जाते हैं। उसके बाद उनका भाषान्तर होता है। यों तो सरकारी बातों को बहुतेरे समाचार-पत्र प्रकाशित किया ही करते हैं, परन्तु सरकार के विचार पहले पहल बाजाप्ता सरकारी गजटों (Government Gazettes) ही में प्रकाशित होते हैं। ये गवर्नमेन्ट गजट सरकारी गजट प्रत्येक प्रान्त में जुदे-जुदे हैं। और एक गजट सारे भारत के लिए है। इसे "गवर्नमेन्ट-गजट आफ इण्डिया" कहते हैं। जहाँ तक हम जानते हैं, इन सरकारी गजटों में बहुतेरे प्रान्तिक गजट, अँगरेजी न जाननेवाली प्रजा के लाभ और सुभीते के लिए, अपने-अपने प्रान्त की भाषा में भी अनुवादित होकर प्रकाशित होते हैं। निस्सन्देह उसमें प्रजा का बहुत बड़ा लाभ है। जो समाचार सरकार की ओर से प्रजा को मिलते हैं वे ऐसे समाचार की अपेक्षा, जो इधर, उधर घूमघाम कर उनके पास पहुँचते हैं, अधिक विश्वसनीय समझे जाते हैं। फिर, सभी उपयोगी समाचार जो सरकारी गजटों में निकला करते हैं, वे समाचार-पत्रों द्वारा न प्रजा तक पहुँचते हैं और न पहुँचाये ही जा सकते हैं। कारण यह है कि अन्यान्य समाचार-पत्रों को इस काम के सिवा प्रजा की और प्रकार की भी सेवा करनी पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे दो बातें सिद्ध हुईं। एक तो सरकार की ओर से सरकारी गजटों के निकलने की आवश्यकता, दूसरे इन गजटों का ऐसी भाषाओं में भी प्रकाशित होना जिनके द्वारा प्रजा सरकारी समाचारों और मन्तव्यों को समझ सके। आनन्द की बात है, सरकार ने इस विषय की तरफ बहुत कुछ ध्यान दिया है। उसकी ओर से गजट भी निकलते हैं। और वे ऐसी भाषा में भी होते हैं जिसे प्रजा समझ ले। परन्तु इसमें एक छोटी सी त्रुटि है जिसे हम सरकार और देवनागरी के पक्षपातियों पर प्रकट करना चाहते हैं। वह यह है कि संयुक्त प्रदेश से जो सरकारी गजट निकलता है उसका अनुवाद केवल उर्दूभाषा और फारसी अक्षरों ही में प्रकाशित किया जाता है। जिस समय सरकार हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों की उपयोगिता से अनभिज्ञ थी उस समय सरकारी गजट का केवल उर्दू में निकलना विशेष न खटकता था। परन्तु सर अन्टनी मेकडानल्ड के समय से सरकार को यह बात भली भाँति विदित हो गयी है कि हिन्दी बोलनेवालों और देवनागरी अक्षरों को व्यवहार में लानेवालों की संख्या अन्य भाषा-भाषियों और अन्य लिपि के प्रयोग करनेवालों की अपेक्षा बहुत अधिक है। तब से सरकार ने देवनागरी अक्षरों को सरकारी न्यायालयों में प्रचलित कर दिया और समन्स इत्यादि फारसी और नागरी दोनों ही अक्षरों में लिखे जाने लगे। परन्तु कुरीतियाँ धीरे ही धीरे निर्मूल हुआ करती हैं और सरकारी नियमों का यथेष्ट पालन भी धीरे ही धीरे होता है। सरकारी गजटों की जो केवल उर्दू और अँगरेजी ही में निकलने की पुरानी चाल थी उसमें अब तक परिवर्तन न होने का कारण, हमारी समझ में, दृष्टि-दोष ही (Over-sight) समझना चाहिए। क्योंकि इस प्रान्त के गवर्नमेन्ट गजट के हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों में भी प्रकाशित होने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह एक ऐसा विषय है जिसके विरुद्ध कुछ कहा ही नहीं जा सकता। जब और सरकारी कार्रवाइयाँ देवनागरी अक्षरों में होने लगी हैं तब सरकारी गजटों की हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों में निकलने की तो और भी आवश्यकता है। जब ये गजट अँगरेजी और फारसी अक्षरों में निकलते हैं तब देवनागरी में भी क्यों न निकलें? इसी लिपि का तो यहाँ सबसे अधिक प्रचार है।

हम अपनी न्यायशीला सरकार से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा करके इस कमी को भी पूरा कर दे। नागरी-प्रचारिणी सभा काशी ने इस विषय पर विचार नहीं किया, यह आश्चर्य की बात है। हिन्दी-समाचार-पत्रों से हमारी विनय है कि वे इस विषय की चर्चा करके सरकार का ध्यान इस ओर खींचें। हमें भरोसा है, प्रयत्न करने से सरकार शीघ्र ही हमारे विनय पर ध्यान देगी और हमारी आशा पूर्ण करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

आलोचना और प्रत्यालोचना

छंगामल मिश्र का परिचय हम पिछले अंक में दे चुके हैं, और उनके अंग्रेजी के रसिये का भी पाठकों को स्वाद दिला चुके हैं। इस बार हम उनका एक दूसरे ढंग का संस्मरण सुना रहे हैं। उनके एक पूर्वज लेन-देन का काम करते थे। वे गहने आदि बंधक रखकर ब्याज पर रुपये देते थे। पड़ोस में कुछ चर्मकार भी रहते थे। उन्हें भी ऋण लेने की आवश्यकता पड़ती थी। उनके पास अपने बनाये नये जूतों के अतिरिक्त बंधक रखने को और कोई वस्तु नहीं होती थी। अतएव वे जूते बंधक रख जाते थे। मिश्रजी के पूर्वज ने पौर में एक टाँड़ बनवा दिया था जिस पर ये बंधक के जूते रखे रहते थे। ब्राह्मणों का मोहल्ला था। बहुत से पड़ोसियों को उनका यह रोजगार पसंद नहीं आया। अपनी अप्रसन्नता प्रदर्शित करने को उन्होंने इनका नाम 'चमरा मिसुर' रख दिया। तब से इनके परिवार का नाम ही 'चमरा मिसुर' पड़ गया।

छंगामलजी के पड़ोस में मैनपुरी के प्रसिद्ध वकील दम्मीलालजी रहते थे। वे पंडित सुंदरलालजी के सहपाठी थे और प्रायः वैसे ही प्रतिभाशाली थे। वे अपने समय के प्रान्त के सर्वोत्तम वकीलों में माने जाते थे और उन्होंने बड़ा धन कमाया था। उनके घर के सामने एक विशाल नीम का पेड़ था। इस कारण इनका परिवार 'निबरिया वाला' कहलाता था। दम्मीलालजी का परिवार आरंभ में निर्धन था और, यह जनश्रुति है कि, उनके पिता ने कुछ दिनों कहीं रसोई बनाने का काम भी किया था। संयोग से उन्हें भी (दम्मीलालजी को) कविता से प्रेम था और इस कारण छंगामलजी से और उनसे खूब बनती थी।

उसी बीच श्रीधर पाठक का गोल्डस्मिथ के 'डेज़र्टेड विलेज' का पद्यात्मक अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' के नाम से निकला और उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। छंगामलजी को अपने अंग्रेजी ज्ञान और काव्य-प्रतिभा का बड़ा गर्व था। उन्होंने सोचा कि मैं श्रीधर पाठक से अच्छा अनुवाद कर सकता हूँ। अतएव उन्होंने भी 'ऊजड़ ग्राम' के नाम ही से 'डेज़र्टेड विलेज' का दूसरा अनुवाद किया। जब वह तैयार हो गया, तब उन्होंने उसकी पांडुलिपि सम्मति के लिए दम्मीलालजी को दी। दम्मीलालजी को वह कृति नहीं जँची, और उन्होंने उसके ऊपर ये पंक्तियाँ लिख कर उसे छंगामलजी को लौटा दिया :—

छंगामल कौ ऊजड़ग्राम,
जात के चमरा, गाँठें चाम !

आलोचना बड़ी तीखी थी। अतएव यह स्वाभाविक था कि छंगामलजी तिलमिला उठें। शायद दम्मीलालजी ने उन्हें उत्तेजित करने के लिए ही यह तीखा व्यंग्य किया था। आवेश में आकर छंगामलजी ने लिखा :—

दम्मीलाल अघासुर जानौ
उगौ कमल घूरे पै मानौ।
बी० ए० पास करि ऐसौ फूल्यौ,
बाप बबर्ची की सुधि भूल्यौ।
हैगो असल पेट कौ कारौ
बेईमान निबरिया वारौ !

दम्मीलालजी ने इस प्रत्यालोचना में बड़ा रस लिया, और बहुत से लोगों को अपनी आलोचना और यह प्रत्यालोचना सुनाई।

सत्य की रक्षा के लिए यह कहना पड़ता है कि मूल की अंतिम पंक्ति में 'बेईमान' शब्द नहीं है। जो शब्द है वह अमुद्रणीय है, किंतु उतने ही अक्षरों और मात्राओं का है। हमने मूल में परिवर्तन करने का 'पाप' किया है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव

का

विवरण

(गतांक से आगे)

सरस्वती हीरक जयन्ती उत्सव के सम्बन्ध में कुछ सम्मतियाँ

एक अपूर्व हीरक जयन्ती

डॉ० हरिरामचन्द्र दिवेकर

'सरस्वती' नामक हिंदी के पुराने मासिक के नये संपादक श्री श्रीनारायण चतुर्वेदीजी ने सरस्वती हीरक जयन्ती क्या मनाई, मानों आपने सरस्वती के पुराने लेखकों की ही हीरक जयन्ती की। साथ ही उस समारोह के अवसर पर उन लेखकों को निमंत्रित कर एकत्रित किया गया। यह बात तो बहुत ही अनोखी और अनुकरणीय हुई। इस निमित्त से न जाने कितने पुराने लेखकों को परस्पर दर्शन का महालाभ मिला और आनंद तथा आश्चर्य का अनुभव हुआ। मुझे तो उस दिन की सरस्वती-जयंती की सभा को देख एक संस्कृत-श्लोक का स्मरण हुआ जिसमें कवि ने कहा कि--

'कविरेको गुरुरेकः शक्रसभायां कलाधरोऽप्येकः

अर्थात् इंद्र की सभा में कवि (शुक्राचार्य) एक ही थे, गुरु (बृहस्पति) भी एक ही था और कलाधर चंद्र भी एक ही था। पर उस दिन की सभा में अनेकों कवि थे, अनेकों गुरु थे और वैसे ही अनेक कलाधर भी थे। पर खेद इतना ही था कि इंद्रसभा के समान ही यह भी केवल दर्शन का ही आनन्द देनेवाली सिद्ध हुई। बाहर से आये हुए हम लोगों के निवास की व्यवस्था बहुत ही अच्छी थी। कम से कम मुझे जिस सज्जन के घर टिकाया था उसने—श्री सियालजी ने—तो मेरी व्यवस्था अपेक्षा से अच्छी रखी जिसके लिए मैं उनका सदा के लिए कृतज्ञ रहूँगा। पर यदि बाहर से आये हुए हम सब लोग एक ही निवास पर रह सकते तो केवल दर्शन पर समाधान जो मानना पड़ा वह संभाषणादि संपर्क से अधिक होता और सुवर्ण में सुगंध आ जाता।

मेरी ही बात लीजिये। मैं रहनेवाला ग्वालियर का। मेरी शिक्षा-दीक्षा यहीं हुई। ग्वालियर शिक्षा की दृष्टि से उन दिनों ऐसा था कि प्रवेश-परीक्षा का भी केंद्र वह न हो पाया था। अतएव सन् १९०१ में प्रवेश-परीक्षा देने के लिए आगरा जाना पड़ता। हम सब लोगों के लिए परीक्षा लेनेवाला विश्वविद्यालय केवल इलाहाबाद था। उसी विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा देने के लिए इलाहाबाद की यात्रा करनी पड़ी। बी० ए० पास होते ही मुझे हाईस्कूल में शिक्षक बनाया गया। तीन साल मैंने ग्वालियर में हाईस्कूल-शिक्षक तथा गणित के सहायक प्राध्यापक का कॉलेज में काम किया। १९०९ में अँगरेज सरकार के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति करने के विषय में ग्वालियर में ३६ लोग पकड़े गये और ३३ लोगों को सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। दो साल भैरवगढ़ जेल में काट बाहर निकलने पर मैं काशी पहुँचा और सेंट्रल हिंदू कॉलेज में एम्० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ने लगा। पास होने पर दूसरे वर्ष में मैंने क्वीन्स कॉलेज में नाम लिखाया और स्व० आचार्य नरेंद्रदेव तथा श्री गोपीकृष्ण कविराज के से प्रतिभाशाली सहपाठियों के साथ मैंने एम० ए० पास किया। एक वर्ष रिसर्च स्कॉलर रह सन् १९१५ में मैं म्योर सेंट्रल कॉलिज में अपने गुरु वेनिस साहब की कृपा से डॉ० गंगा-नाथ झा का सहायक अध्यापक नियुक्त हुआ। काशी जाने पर ही मैंने नागरीप्रचारिणी सभा में कुछ काम किया और तभी से हिंदी-साहित्य-जगत् से मेरा परिचय हुआ।

मासिकों में मेरा जो सबसे प्रथम लेख प्रकाशित हुआ, वह था मराठी मासिक "मनोरंजन" में। लेख का नाम था "भीष्माची भयंकर भूल"। पितामह भीष्म की भयानक भूल दिखलानेवाले इस लेख ने उस समय मराठी साहित्य में थोड़ी खलबली मचा दी। स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के पढ़ने में यह लेख आया और उन्होंने मेरा पता लगाकर मुझे सरस्वती के लिए कुछ हिंदी में लिखने का आग्रह किया। मैंने हिंदी लिखने में अपनी असमर्थता प्रकट की। पर द्विवेदीजी ऐसे माननेवाले थोड़े ही थे। उन्होंने लिखा "टूटी-फूटी क्यों न हो, पर आप अपनी हिंदी में लिखकर भेजिये। उसकी रफ कॉपी अपने पास रखिये। जब लेख सरस्वती में प्रसिद्ध होगा तब उसका अपने लेख की भाषा से मिलान करते जाइये। ऐसा करने से मराठी भाषाभाषी लोगों की हिंदी लिखने में प्रायः कौन-सी गलतियाँ होती हैं, यह ठीक से समझ में आवेगा। बस, उन सुधारों को ध्यान में रखें तो थोड़े ही दिनों में आप ठीक हिंदी लिख सकेंगे।" ऐसे प्रसिद्ध हिंदी साहित्यिक का आग्रह तथा उनकी शिक्षा से होनेवाला लाभ मैं न टाल सका। उसी प्रकार से मैंने अपनी हिंदी थोड़ी बहुत सुधारी। आज जो कुछ मैं हिंदी में लिख सकता हूँ वह द्विवेदीजी की ही कृपा का फल है।

उस समय के सरस्वती-लेखकों में से मेरा जिनसे विशेष संबंध हुआ ऐसे दो नाम मुझे मुख्यतः याद हैं। उनमें से एक हैं कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त। आपकी भारत भारती उस समय भारत भरमें खूब गूँजती थी। उसके अतीत खंड में 'यहाँ नर-विक्रय या गुलामी की प्रथा नहीं थी' ऐसा वर्णन है। मैंने शुनःशेप तथा हरिश्चंद्र के उदाहरण देकर इस कथन का विरोध करनेवाला पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर को भेजा। आपने मेरी बात मानकर पूछा कि क्या इस प्रकार की टिप्पणी देना आवश्यक है? मैंने वैसी आवश्यकता न समझी। परंतु हम दोनों हृदय से परस्पर परिचित हो गये। दूसरे थे श्री चंद्रधरशर्मा गुलेरी। इनके विषय में एक बड़े मजे की बात हुई। Journal of the Royal Asiatic Society, London के एक अंक में रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में जो हूणों का उल्लेख आता है, उस पर से कालिदास का समय-निर्धारण करनेवाला एक लेख था। उसी का आधार लेकर हम दोनों के लिखे हुए लेख द्विवेदीजी के पास पहुँचे। पर गुलेरीजी का लेख प्रथम पहुँचा और इसलिए 'सरस्वती' में छपा। मैं कहीं पक्षपात न समझूँ इसलिए द्विवेदीजी ने शर्माजी के लेख का Page proof ही 'प्रूफ' के नाते भेजा। मैंने चंद्रधरशर्मा को उनके सुन्दर लेख के लिए अंतःकरणपूर्वक धन्यवाद दिया और उनका अभिनंदन भी किया। मैं अगर इधर ही रहता तो ऐसे अनेक परिचय होते और हिंदी साहित्य की सेवा करने का मुझे अवसर भी अधिक मिलता।

किंतु बारहवें साल ही विधवा हुई अपनी छोटी बहिन की शिक्षा-व्यवस्था करने के हेतु मैं पूना उसे ले गया। वहाँ श्री० कर्वेजी के आश्रम में रखने के लिए उसे लेकर मैं कर्वेजी से मिला। उनसे जो बातें हुईं और उनके आश्रम में मैंने जो कुछ देखा, उसका मेरे मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि म्योर सेंट्रल कॉलिज का अच्छे वेतन का काम छोड़ मैं इलाहाबाद से पूना गया और कर्वेजी के सहायक के नाते काज करने लगा। वहाँ Indian Women's University की स्थापना करने में और कर्वेजी के साथ काम करने में वर्षों तक ऐसा व्यस्त रहा कि हिंदी-जगत् से मेरा संबंध बिलकुल छूट गया। यहाँ तक कि बीस साल के बाद जब मैं फिर से ग्वालियर आया तो हिंदी के साहित्यिक मुझे भूल से गये थे। इस कालखंड के अंत में मैंने जो हिंदी-जगत् की सेवा की, वह थी 'संत तुकाराम' पुस्तक लिखने की। यह पुस्तक इलाहाबाद की हिंदुस्तानी एकेडेमी ने प्रकाशित की। उसका दूसरा संस्करण भी छपे हुए कई साल बीत गये। ग्वालियर में भी मैं मध्यभारत शिक्षा समिति का काम चलाता रहा जिसके द्वारा आज ग्वालियर में दो कॉलिज, एक कला और वाणिज्य का और दूसरा विज्ञान का, चल रहे हैं। पर इन सब कामों को करते हुए मुझे कहने में लज्जा लगती है कि हिंदी सरस्वती को मैं बिलकुल भूल गया था।

परंतु द्विवेदीजी का स्थान चतुर्वेदीजी ने ग्रहण किया और आपने सरस्वती हीरक जयंती की आयोजना की। इसी आयोजना के कारण से मेरे मन में पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। इस आयोजन को सफल करने में चतुर्वेदीजी ने जो सूझ और बूझ दिखलाई वह बेजोड़ है। सरस्वती के पुराने लेखक उसे भूल ही नहीं सकते। शुद्ध भारतीय ढंग से इस हीरक जयंती की व्यवस्था की गई। हर एक पुराने लेखक को उसके गुणों का ठीक वर्णन करनेवाला मान-पत्र, श्रीफल और जरीकिनार उपवस्त्र के तथा सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक के ग्रंथराज के साथ दिया गया। परंतु सबसे अधिक उपयुक्त कोई वस्तु दी गई हो तो वह थी एक एक मसी-निर्झरिणी लेखनी। (fountain pen) जिस पर सरस्वती हीरक जयंती तथा लेखक का नाम सुहावने हरे अक्षरों में खुदा हुआ था। कहना आवश्यक नहीं कि लेखक को लेखनी की कैसी प्रीति होती है। यह लेखनी जब जब लेखक हाथ में लेगा, उसे हठात् सरस्वती की याद आवेगी। मेरा तो यह भी विश्वास है कि वे लेखक फिर से 'सरस्वती' के प्रति आकृष्ट होंगे और नये उल्लास से उसकी सेवा करने में अग्रसर होंगे।

इति शम्।

अपूर्व समारोह

श्री विद्याभास्कर

भवन छोटा प्रतीत हो रहा था। मञ्च बड़ा होने पर भी बहुत संकुचित तथा सीमित दिखायी दे रहा था। मञ्च और दर्शक श्रोताओं के बीच बड़े-बड़े खम्भे बाधा उपस्थित करते जान पड़ रहे थे। भगवती सरस्वती के उपासकों का उत्साह आकाश को छूना चाहता था। इण्डियन प्रेस के विशाल 'हॉल' की ऊँची छत से मानो इसमें रुकावट आ रही थी। हिन्दी के आरम्भिक विकास के दिनों में उसके भविष्य के जिस विशाल रूप की कल्पना की गयी थी, उसके आकार ग्रहण करने की सम्भावना को निश्चित देखनेवालों के हौसले की क्या कोई सीमा हो सकती थी? उल्लास और उत्साह, आशा और विश्वास और श्रद्धा और कृतज्ञता से पूर्ण जनसमूह विनयावनत था। उस दिन हम 'सरस्वती' की हीरक जयन्ती मना रहे थे; उस 'सरस्वती' की जिसने भारत की राष्ट्रभाषा को प्रारम्भकाल में सिंचित तथा पल्लवित किया था। उस दिन हम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा स्वनामधन्य श्री चिन्तामणि घोष के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे। पुरानी पीढ़ी के लोग वहाँ आभार प्रदर्शनार्थ तो उपस्थित थे ही, उन्हें इसका सहज अभिमान भी था कि द्विवेदीजी के नेतृत्व में हिन्दी के निर्माण में योगदान करने का सुअवसर उन्हें मिला था और यह भी कि यह दिन देखने का उन्हें सौभाग्य सुलभ हुआ। नयी पीढ़ी के लोग ऋषिजनों के ही रूप में वहाँ उपस्थित थे किन्तु साथ ही उनके हृदय में बार-बार यह विचार उठ रहा था कि हिन्दी की जो महती सेवा आचार्य द्विवेदीजी कर गये हैं, उसका सहस्रांश भी हमसे बन पड़े तो हमारा इस समारोह में सम्मिलित होना सार्थक हो और जीवन कृतार्थ हो। महावीर हनुमान की अतुलित शक्ति का स्वल्पांश भी प्राप्त करने की कामना वाली स्तुति हर हनुमान-भक्त मन में स्वतः करने लगता है; अनायास उसके मुँह से वह स्तुति निकल पड़ती है।

'सरस्वती' की हीरक जयंती का उत्सव ऐतिहासिक महत्त्व का था। मालूम नहीं, निकट भविष्य में या दूरस्थ भविष्य में भी हम भारत के राष्ट्रपति पद पर किसी हिन्दी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त को विराजमान पायेंगे या नहीं। वैसा राष्ट्रपति तो शायद ही अब मिले जिसने द्विवेदीजी की हिन्दी-सेवा का चमत्कार स्वयं देखा हो, जो स्वयं द्विवेदीजी के प्रति हिन्दी-भक्त होने के नाते ऋणी हो। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने समस्त भारत की ओर से द्विवेदीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पितकर देशवासियों के तथा अपने कर्त्तव्य का निर्वाह और पालनमात्र नहीं किया वरन् उन्होंने वास्तव में एक ऐतिहासिक महत्त्व की घटना घटित की। द्विवेदीजी के समकालीन तथा "द्विवेदी युग" के कवियों में अग्रणी राष्ट्रकवि डाक्टर मैथिलीशरण गुप्त की उपस्थिति से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हम आज से ३० वर्ष पूर्व के युग में चले गये हैं। शायद यह उत्सव द्विवेदीजी के जीवनकाल में ही उनकी अनुपस्थिति में मनाया जा रहा है। वास्तव में यह उत्सव आज से तीस वर्ष पूर्व मनाया जाना चाहिये था। उन दिनों द्विवेदी-युग के कवि और साहित्यिक आज की अपेक्षा अधिक संख्या में हमारे बीच वर्तमान थे। तीस वर्ष पूर्व के इस उत्सव में श्री जयशंकरप्रसाद और श्री प्रेमचन्द को भी सम्मिलित तथा सम्मानित होते देखकर हमारा हृदय कितना अधिक उत्फुल्ल होता, यह कहने की आवश्यकता नहीं। आज से तीस वर्ष पूर्व देश को स्वतन्त्र होना चाहिए था और सुरभारती हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाना चाहिये था। देश की आजादी देर से हुई है। हिन्दी की प्रगति के द्वार देर से खुलते जान पड़ रहे हैं। यह शिथिल गति देखकर क्षोभ होना और मन का विचलित होना स्वाभाविक है। और, यदि इस उत्सव के कारण यह क्षोभ तथा व्यग्रता उत्पन्न हुई है और इसने अधीरता का रूप ग्रहण किया है, हिन्दी भक्तों के हृदय को आलोड़ित किया है, तो वास्तव में इसके आयोजकों ने राष्ट्र तथा राष्ट्रभारती की बड़ी सेवा कर दी है। शायद यही इसका उद्देश्य था। शायद यही इसका फल हुआ और शायद यही अदृष्ट का अभीष्ट था।

इस उत्सव को और बड़े पैमाने पर और अधिक विस्तृत क्षेत्र में तथा और अधिक जनसमूह की उपस्थिति में करने का अवसर शीघ्र ही आ रहा है। आचार्य द्विवेदीजी की जन्म-शताब्दि निकट है। शायद भारत सरकार अपनी ओर से प्रतीक स्वरूप उनकी चित्राकृति का डाक टिकट जारी कर अपने कर्त्तव्य की इति-श्री कर लेगी। किन्तु क्या यह पर्याप्त होगा। क्या हिन्दीसेवियों को इतने से संतोष हो जायगा? उनका भी क्या इतना ही कर्त्तव्य होगा? क्या इससे अधिक कुछ कर सकने की उनकी क्षमता नहीं? क्या उक्त अवसर पर वह आचार्य द्विवेदीजी के जगाये हुए लौ को और तेजस्वी करने का कोई ठोस और सक्रिय उपाय नहीं कर सकेंगे? इस विषय में आयोजना और कार्यक्रम बनाने का अभी समय है। क्या हिन्दी-जगत् समय रहते जागेगा? द्विवेदीजी ने हिन्दी के आरम्भ काल में उसका निखार किया। उन्होंने उसका रूप स्थिर किया। व्याकरण के नियमों का पालन करने की परिपाटी डाली। भाषा-शैली का निर्माण किया। आलोचना-शास्त्र की नींव डाली। आज जब हिन्दी के कार्यक्षेत्र का विस्तार हो रहा है, जब वह भारत की राजभाषा के रूप में राष्ट्र की सीमा पार कर रही है और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व ग्रहण कर रही है, तब आज, फिर से, वही सब काम करने की जरूरत है, जो द्विवेदीजी ने अपने समय में किया। आज किसी अकेले से यह काम होने का नहीं। यह युग संघ का है। क्या द्विवेदीजी के प्रति ऋणी हिन्दी साहित्यसेवी ऐसा कोई आयोजन करेंगे कि संवत् २०२१ वि० में इस महत्कार्य के लिए संघटित प्रयास का श्रीगणेश हो जाय?

'सरस्वती' सम्पादक आदरणीय पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी इस आयोजन का नेतृत्व ग्रहण करें तो इसकी सफलता में सन्देह न रहेगा। उनकी सूझ-बूझ और कर्मठता को ही हमने उस दिन मूर्त्तरूप ग्रहण करते देखा और भविष्य में भी इसी का हमें भरोसा है। निःसन्देह उन्हें इण्डियन प्रेस के संचालक श्री हरिप्रसन्न घोष का सहयोग प्राप्त होगा। प्रादेशिक और अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कर्त्तव्य तो स्पष्ट ही है।

हिन्दी का अभिनव अनुष्ठान

—श्री यशपाल जैन

'सरस्वती' हीरक जयंती समारोह निस्संदेह अनेक दृष्टियों से अभिनव था। हमारे देश में तथा अन्य देशों में भी व्यक्ति को सम्मानित करने की परिपाटी बहुत समय से चली आती है। अपने सेवकों के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति होनी ही चाहिए; लेकिन प्रशंसा की सारी मिठाई पाने का आदमी ही अधिकारी है, यह सही नहीं है। बहुत-सी ऐसी संस्थाएं और परम्पराएँ हैं, जिन्होंने समाज और राष्ट्र की बड़ी भारी सेवा की है। उन्हें भी सार्वजनिक रूप से सम्मान मिलना चाहिए, इसकी ओर कम ही लोगों का ध्यान गया है। उन संस्थाओं को और परम्पराओं को मान-प्रतिष्ठा की अपेक्षा नहीं है; लेकिन कृतज्ञता का तकाजा है कि उनकी मूक सेवाओं को पूरा आदर मिले और सामूहिक रूप में उनका अभिनंदन हो। कुछ समय पूर्व श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने, जो उन दिनों बिहार में शिक्षा-सचिव थे, भारत के प्राचीन आध्यात्मिक केन्द्र वैशाली के सम्मान में 'वैशाली अभिनंदन ग्रंथ' निकाल कर इस दिशा में नया कदम उठाया था। संभवतः एकाध प्रयास और भी हुए हों। यह हीरक जयंती समारोह पहला अवसर था, जब कि एक मासिक पत्रिका को इतने विशाल स्तर पर सम्मान से विभूषित किया गया।

पाठक जानते हैं कि 'सरस्वती' को यह उचित ही गौरव मिला। हिन्दी के इतिहास में उसके जोड़ की परम्पराएँ शायद ही किसी अन्य पत्रिका को मिलें। उसके आरंभ का श्रेय एक अहिंदीभाषी महानुभाव, स्व० चिन्तामणि घोष की दूरदर्शिता को है। सन् १९०० में अपने जन्म-काल से लेकर अब तक यह पत्रिका अनवरत रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की सेवा करती आई है। बड़े सौभाग्य की बात है कि उसे एक-से-एक बढ़कर सम्पादक मिले। उसके पहले सम्पादक-मण्डल में ही बा० राधाकृष्णदास, बाबू कार्त्तिक प्रसाद खत्री, श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, श्री किशोरी लाल गोस्वामी और बाबू श्यामसुन्दरदास जैसे साहित्य-महारथी थे। सन् १९०३ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथों में पहुँचकर तो वह एक संस्था बन गई। आज के अनेक लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध साहित्यकारों की प्रथम रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं। बहुत-से लेखकों के निर्माण में इस पत्रिका का बहुमूल्य योगदान रहा। इतना ही नहीं, अपनी दीर्घकालीन सेवाओं से उसने हिन्दी-साहित्य की गतिविधियों को प्रभावित किया और हिन्दी को शक्तिशाली एवं महिमा-मंडित बनाया। हिन्दी-भाषा को परिष्कृत करने तथा हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में 'सरस्वती' ने जो सेवा की, वह चिर-स्मरणीय रहेगी।

द्विवेदी जी के परवर्त्ती सम्पादकों ने भी उस परम्परा को आगे बढ़ाया। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और पं० देवीदत्त शुक्ल ने उसके लिए बड़ा परिश्रम किया और अब श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी उस दायित्व को बड़ी कुशलता से उठा रहे हैं।

इस समारोह ने इस बात की याद दिलाई कि आज हिन्दी को जो गौरव मिला है, वह यों ही नहीं मिल गया है, उसके पीछे अनगिनत व्यक्तियों की तपस्या है।

समारोह का पूर्वार्द्ध राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की उपस्थिति में राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ। राष्ट्रपति भवन में आए दिन बहुत-से समारोह होते रहते हैं, लेकिन साहित्यिक समारोह वहाँ कम ही होते हैं। जिन्हें 'सरस्वती' के इस समारोह में सम्मिलित होने का अवसर मिला, वे इस बात के साक्षी हैं कि इस अनुष्ठान की अपनी महिमा थी। 'सरस्वती' के हीरक जयंती अभिनंदन-ग्रंथ की भेंट स्वीकार करते हुए राष्ट्रपति ने जो उद्गार प्रकट किये, वे मानों किसी कवि के उद्गार थे, राष्ट्रपति भवन के मौलिश्री अथवा बकुल के वृक्ष के विकास और गरिमा से हिन्दी के विकास की तुलना करते हुए उन्होंने उन मनीषियों के प्रति भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की, जिन्होंने निःस्वार्थ भावना से हिन्दी की सेवा की थी। उन्होंने इतिहास के बहुत से पुराने पृष्ठों को खोलते हुए याद किया कि कितने अहिन्दी-भाषियों ने भी हिन्दी की अभिवृद्धि में योग दिया। अंत में उन्होंने स्पष्ट कहा, "जब तक विदेशी भाषा की हमें आवश्यकता रहेगी, तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारी बौद्धिक उन्नति ठीक प्रकार से हुई, क्योंकि विदेशी भाषा हमने अपने यहाँ नहीं पाई है, उसको हमें कहीं विदेश से लाना पड़ा। उस चीज के भरोसे हम अपनी बौद्धिक उन्नति, अपना बौद्धिक विकास, किस हद तक कर सकेंगे, यह समझने की बात है।"

सम्मेलन का उत्तरार्द्ध तीर्थराज प्रयाग में पूर्ण हुआ। हिन्दी में प्रथम बार एक साहित्य-स्रष्टा की कांस्य प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई। हिन्दी के महान् उन्नायक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की इस प्रतिमा का अनावरण श्री मैथिलीशरण गुप्त ने किया। सांध्यकाल की वेला में जाने कितने साहित्यकारों तथा साहित्य-प्रेमियों ने गद्-गद् हृदय से सरस्वती के उस वरद पुत्र को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

इंडियन प्रेस के हॉल में 'सरस्वती' के जन्मदाता स्व० चिन्तामणि घोष और हिन्दी के अनन्य सेवक आचार्य श्यामसुन्दरदास के तैल चित्रों के श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा अनावरण की स्मृति बहुत समय तक लोगों के मन में बनी रहेगी। दोनों चित्रों के बीच सरस्वती का विशाल चित्र था। ऐसा जान पड़ता था, मानो माँ सरस्वती हर्ष-विभोर होकर अपने पुत्रों को आशीर्वाद दे रही हो।

कितने बुजुर्ग साहित्यकार एक साथ मंच पर बैठे थे। सर्वश्री हरि रामचंद्र दिवेकर, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पांडुरंग सदाशिव खानखोजे, जी० एस० पथिक, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, हरिभाऊ उपाध्याय, नरदेव शास्त्री, रामनरेश त्रिपाठी प्रभृति नई पीढ़ी के लिए इतिहास की स्मृति बन गये हैं और श्री वियोगी हरि साहित्यिक समारोहों में कम ही दिखाई देते हैं। सर्वश्री महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, दिनकर, सियारामशरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा आदि मिलकर एक मंच पर बैठते हैं तो जैसे लोगों के चित्त प्रफुल्लित हो उठते हैं। 'सरस्वती' के इस अनुष्ठान में ये सब साहित्यकार एकत्र हो गये थे। उनमें से कई तो शरीर से बहुत ही दुर्बल हो गये हैं, फिर भी उनकी राष्ट्रभारती के प्रति ममता उन्हें वहाँ खींच लाई और उन्होंने उस समारोह में बड़े उत्साह से भाग लिया। यह वास्तव में विचित्र संयोग था कि श्री रामनरेश त्रिपाठी के अंतिम दर्शन हिन्दी प्रेमियों को मिल गये। समारोह के तीसरे या चौथे दिन ही उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

हिन्दी के इतिहास की संभवतः यह पहली घटना थी कि एक साथ बीस साहित्यकारों को बहुमान दिया जाय। उन्हें बड़े आदर से एक शाल, उस अवसर के लिए विशेष रूप से बनवाया गया एक फाउण्टेन पेन, 'सरस्वती' के हीरक जयंती अभिनंदन ग्रंथ की एक प्रति अभिनंदन-पत्र के साथ भेंट की गई। कितना भावभरा वातावरण था उस समय का। सर्वश्री दिवेकर जी, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पथिक, खानखोजे, वियोगी हरि, हरिभाऊ उपाध्याय, नरदेव शास्त्री, मैथिलीशरण जी, रामनरेश त्रिपाठी, राजा पंचमसिंह, देवीदत्त शुक्ल, लल्ली-प्रसाद पांडे, सियारामशरण गुप्त, रघुवंशलाल गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, भगवतीचरण वर्मा आदि वे व्यक्ति थे, जिन्होंने 'सरस्वती' की वर्षों तक सेवा की थी।

समारोह में केवल हिन्दी-भाषी साहित्यकारों को सम्मान नहीं मिला, अन्य अनेक भाषाओं के प्रतिनिधि भी उसमें आमंत्रित किये गए थे। मराठी, तमिल, उर्दू, संस्कृत, मैथिली आदि-आदि भारतीय भाषाओं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती समारोह में मंच पर बैठे प्रमुख साहित्यिक

सरस्वती हीरक जयंती समारोह में दर्शकगण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

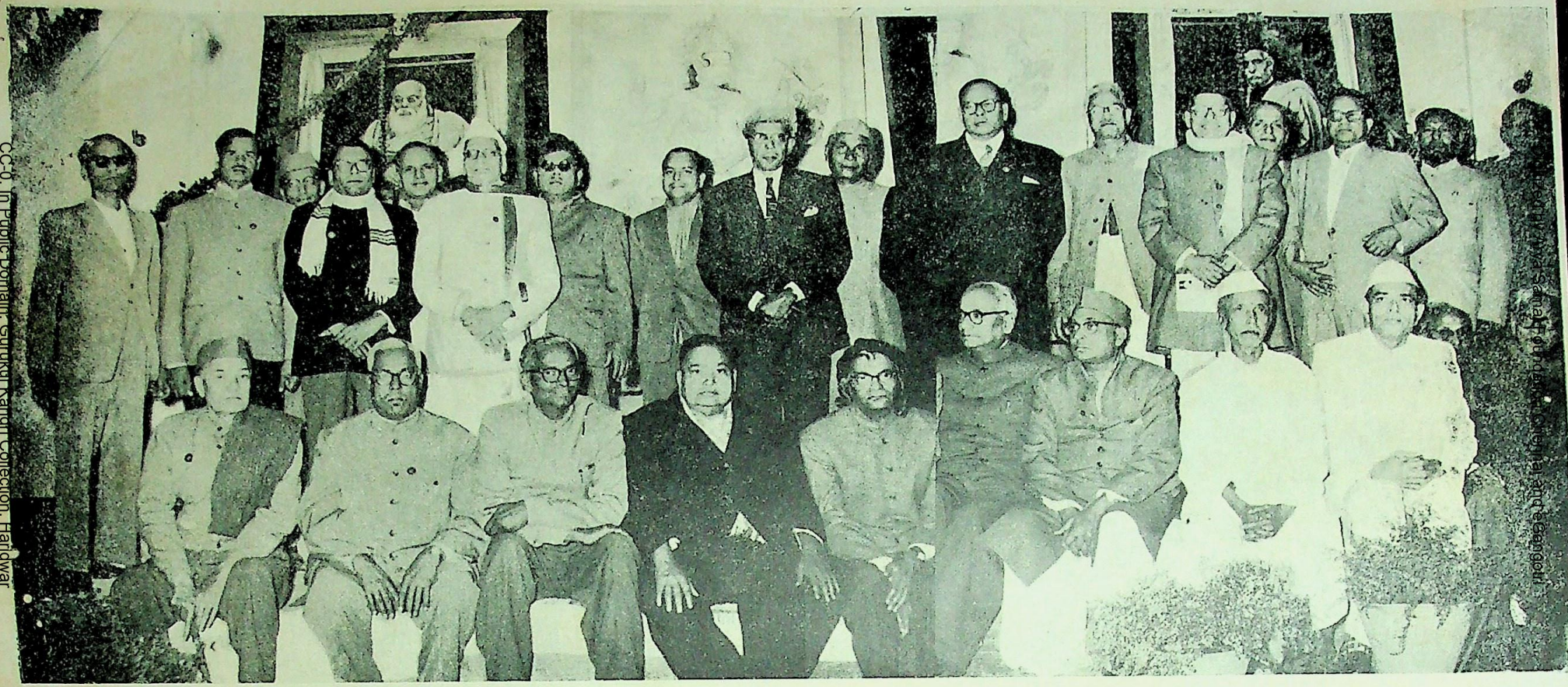

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरस्वती हीरक जयंती समारोह में सम्मिलित कुछ साहित्यिक और साहित्य-प्रेमी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलियों के साहित्य-सेवी पधारे थे। एक मंच पर सब को साथ बैठे देखकर लगता था कि सचमुच हिन्दी सारे देश की भाषा है। उसके प्रति सबका अनुराग है और सब चाहते हैं कि अँगरेजी के स्थान को वह जल्दी से जल्दी प्राप्त कर ले।

इस अवसर पर प्रकाशित 'सरस्वती' का हीरक जयंती अभिनंदन ग्रंथ हिन्दी के पाठकों के लिए एक अनुपम वस्तु है। उसमें वे कहानियाँ, कविताएँ, निबंध आदि दिये गए हैं, जो 'सरस्वती' के अंकों में प्रकाशित हुए थे और जिनसे हिन्दी की प्रगति का पता चलता है। हिन्दी की पहली कहानी पाठकों को इस विशेषांक में मिलेगी। सबसे अधिक आश्चर्यमिश्रित हर्ष पाठकों को तब होता है, जब वे देखते हैं कि उसमें उन भारतीय नेताओं आदि की भी कविताएँ हैं, जिनके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता कि उन्होंने अपने जीवन में कभी कविता की होगी। साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ ग्रंथ में अनेक नये पुराने चित्र भी हैं, जो कला के विकास पर प्रकाश डालते हैं। हिन्दी के लिए यह विशेषांक दिशादर्शक है।

समारोह के अध्यक्ष श्री मैथिलीशरण जी तथा श्री सुमित्रानंदन पंत का कविता-पाठ, श्रीमती महादेवी वर्मा का मधुर और दिनकर जी का ओजस्वी भाषण श्रोताओं के कानों में बहुत समय तक गूँजते रहेंगे। हरिभाऊ जी उपाध्याय के स्व० चिन्तामणि घोष और आचार्य द्विवेदी जी के संस्मरण हिन्दी के उदीयमान कलाकारों को प्रेरणा देते रहेंगे।

हिन्दी के गौरव के लिए ऐसे अनुष्ठानों की जितनी आवश्यकता है, उससे भी अधिक इनकी आवश्यकता है देश की भावनात्मक एकता के लिए। देश में अनेक भाषाएँ हैं, उनका अपना-अपना साहित्य है; लेकिन देश का हृदय एक और उसकी आत्मा अखण्ड है।

इस समारोह की मूल कल्पना श्री श्रीनारायण जी चतुर्वेदी की थी। उनकी कर्मठता और लगन को कौन नहीं जानता। अनेक सहयोगियों को जुटाकर उन्होंने यह अभिनव अनुष्ठान इतने सुन्दर ढंग से किया, इसके लिए वह हम सबके धन्यवाद के पात्र हैं। हमें आशा है कि भविष्य में ऐसे साहित्यिक पर्व समय-समय पर होते रहेंगे।

चिरस्मरणीय समारोह

डॉ० उदयनारायण तिवारी

सरस्वती हीरक-जयन्ती समारोह का प्रथम उत्सव, रविवार ३१ दिसम्बर १९६१ को राष्ट्रपति के विशाल अशोक हॉल में तथा दूसरा उत्सव १२, १३ जनवरी १९६२ को प्रयाग के इंडियन प्रेस में सम्पन्न हुआ। प्रथम उत्सव में महामहिम राष्ट्रपति महोदय को 'सरस्वती' का 'हीरक जयन्ती' विशेषांक समर्पित किया गया था तथा दूसरे उत्सव में 'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के आवक्ष कांस्यमूर्त्ति का अनावरण-संस्कार सम्पन्न हुआ था। उत्तरी भारत के इतिहास में यह वस्तुतः प्रथम अवसर था जब एक पत्रिका की जयन्ती मनाई गई और एक स्वर्गीय सम्पादक की मूर्त्ति स्थापित की गई। 'सरस्वती' तथा इसके सम्पादक को यह महत्त्व क्यों मिला इसके वास्तविक मूल्यांकन के लिए हमें इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जाना पड़ेगा। 'सरस्वती' का समारम्भ सन् १९०० में नागरीप्रचारिणी के तत्त्वावधान में हुआ था। आरम्भ में इसके सम्पादन का भार एक सम्पादक मण्डल पर था और इसका प्रकाशक इंडियन प्रेस था। इस रूप में यह कार्य केवल एक वर्ष तक ही चल सका। इसके पश्चात् बाबू श्यामसुंदरदास दो वर्ष तक अकेले ही सम्पादक रहे। इसके बाद पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक नियुक्त हुए। द्विवेदीजी के सम्मान में प्रयाग में जो अभूतपूर्व साहित्यिक मेला हुआ था उसमें साहित्यिकों को सम्बोधित करते हुए आप ने अत्यन्त नम्रता से कहा था—'पता नहीं, आप लोग क्यों मेरी इतनी स्तुति एवं प्रशंसा कर रहे हैं? मैंने हिन्दी के लिए किया ही क्या है? मुझे अपने उदर-पोषण के लिए एक मालिक की जरूरत थी और श्री चिन्तामणि बाबू (इंडियन प्रेस के संस्थापक) को एक नौकर की। बस मैं 'सरस्वती' का सम्पादक बन गया। मैं इस जन्म में हिन्दी की कुछ भी सेवा न कर सका। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि हिन्दी की सेवा के लिए वह मुझे बार-बार जन्म दे।'

द्विवेदीजी के अन्तिम वाक्य अत्यधिक मार्मिक थे। उनके लिए भरण-पोषण की कोई समस्या नहीं थी। हाँ, वह एक ऐसी पत्रिका अपने हाथ में अवश्य चाहते थे जिसमें वह स्वतन्त्रतापूर्वक जो चाहें लिख सकें। 'सरस्वती' के रूप में उन्हें यह पत्रिका मिल गई। 'सरस्वती' के प्रकाशन का आरम्भिक काल (सन् १९०० से १९१० तक का समय) भारतीय नवजागरण का काल था। इसी समय लार्ड कर्जन ने बंग-भंग किया था जिसके कारण बंगाल में 'स्वदेशी' आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। इसी समय सूरत की कांग्रेस के अधिवेशन में क्रान्तिकारी दल की विजय हुई थी तथा उदार दल (मॉडरेट पार्टी) का कांग्रेस से सदा के लिए निष्कासन हुआ था। उधर विदेश स्थित भारतीय क्रान्तिकारियों का एक दल संगठित हुआ था जिसमें महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि सभी प्रदेशों के नवयुवक थे। इस युग में राष्ट्रीयता की जो लहर उठी उसने राष्ट्रभाषा की ओर भारतीय तरुणों का ध्यान आकर्षित किया और उसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रीयता का अविभाज्य अंग बनने लगी। द्विवेदीजी इस नवजागरण के मूक द्रष्टा-मात्र न थे। एक अँगरेज अधिकारी से अनबन हो जाने के कारण वह अपनी रेल की नौकरी छोड़ आये थे। उनके मन में क्रान्ति की आग दहक रही थी, किन्तु महामना पं० मदनमोहन मालवीय तथा राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टंडन की भाँति सक्रिय राजनीति में भाग लेते हुए वे हिन्दी की सेवा नहीं करना चाहते थे। उनके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सहज कर्म न था। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही सँवारने तथा समृद्ध करने में अपना सारा समय लगा दिया।

हिन्दी के क्षेत्र में द्विवेदीजी एक क्रान्तिकारी के रूप में आये। उनके सामने अनेक कार्य थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी "हिन्दी भाषा" नामक पुस्तक में हिन्दी की बारह शैलियों के उदाहरण दिये हैं जो उनके समय में प्रचलित थीं तथा जिनसे वे परिचित थे। भारतेन्दु तथा उनके मण्डल के अन्य लेखकों के समक्ष सबसे बड़ा काम एक सर्वमान्य शैली का निर्माण करना था। यह कार्य इन लेखकों द्वारा अत्यन्त सफलता से सम्पन्न हुआ किन्तु अभी भी हिन्दी गद्यशैली में अनेक त्रुटियाँ थीं जिनका मार्जन द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के माध्यम से किया। द्विवेदीजी की मातृभाषा बैसवाड़ी (अवधी) थी। उन्हें ब्रज से भी अपार स्नेह था किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट रूप से देख लिया कि हिन्दी तभी सर्वसाधारण के योग्य और राष्ट्रभाषा बन सकती है जब गद्य तथा पद्य दोनों की भाषा एक हो। गद्य की सर्वमान्य भाषा खड़ी-बोली बन चुकी थी, अब उसे पद्य की भी भाषा बनाना था। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के माध्यम से यह कार्य आरम्भ कर दिया। वे कवि न थे किन्तु मार्गदर्शक के रूप में उन्होंने खड़ी बोली में पद्य लिखना प्रारम्भ कर दिया। उस युग में, इस सम्बन्ध में, द्विवेदी जी का जो विरोध हुआ था उसका उन्होंने तथा उनके सहयोगियों ने डटकर सामना किया और अन्त में वे खड़ी बोली को पद्य की भाषा बनाने में सफल हुए।

सन् १९०८ तक द्विवेदीजी हिन्दी के एक छत्र सम्राट हो चुके थे और समस्त हिन्दी-क्षेत्र (पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार) में उनकी धाक जम चुकी थी। उस युग में द्विवेदीजी की किसी भी रूप में अवहेलना करना, किसी व्यक्ति अथवा संस्था के लिए कितना कठिन था, यह बात पं० प्रयागदत्त शुक्ल कृत "हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन" पुस्तक में "हिन्दी केसरी" (नागपुर) से उद्धृत दो पत्रों से स्पष्ट हो जाती है। सन् १९०६-८ में द्विवेदीजी नागरीप्रचारिणी सभा की नीति से असन्तुष्ट थे। सन् १९०६ में नागपुर में 'हिन्दी प्रकाशक मण्डली' की स्थापना हुई थी जिसके संचालक पं० माधवराव सप्रे थे। इस मण्डली में नागपुर के डा० मुंजे, डा० वासुदेवराव लिमये, श्री लालाभगीरथप्रसाद, पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी, पं० कामताप्रसाद गुरु, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आदि थे। 'प्रकाशक मण्डली' ने प्रथम वर्ष में ही पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित "स्वाधीनता" ग्रंथ का प्रकाशन किया। उस वर्ष के काशी नागरीप्रचारिणी सभा के वार्षिक विवरण में जिन दस-बारह हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख हुआ था उसमें 'स्वाधीनता' का नाम न था। हिन्दीप्रेमियों को यह बात बुरी लगी और ३ अक्टूबर १९०८ के "केसरी" में इसका उल्लेख करते हुए एक सज्जन ने इस प्रकार लिखा था--"सभा के मंत्री महोदय ने भाषा-भंडार की पूर्ति करने योग्य १०-१२ पुस्तकों के नाम अपने विवरण में दिये हैं--पर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा अनुवादित "जानस्टुअर्ट मिल" के "लिबर्टी" नामक ग्रंथ का अनुवाद जो "स्वाधीनता" के नाम से प्रकाशित हुआ--उसे आपने कौड़ी काम का नहीं समझा। उसका रिपोर्ट में उल्लेख भी नहीं है। जिसकी प्रशंसा विद्वान् लोग कर रहे हैं और जो लोगों को इतना पसन्द आया है कि उसका दूसरा संस्करण ६ मास में निकालने की तैयारी हो, उसे सभा महारानी के महात्माओं ने 'भाषा-भंडार की पूर्ति' करने योग्य नहीं समझा। सभा को याद रखना चाहिए कि ऐसी चालबाजियों से वह लोगों की नजर में गिरती है।"

ऊपर यह कहा जा चुका है कि सक्रिय राजनीति में भाग लेना द्विवेदीजी को पसन्द न था। वह सरकार से दूर रहकर, स्वतंत्र ढंग से, हिन्दी के कार्य करने के पक्षपाती थे। उधर नागरीप्रचारिणी सभा जिन लोगों के हाथ में थी वह सरकार के भक्त थे। द्विवेदीजी ने इस सम्बन्ध में सभा की कभी आलोचना नहीं की; किन्तु द्विवेदीजी के भक्त तथा 'सरस्वती' के पुराने लेखक, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने तो इस सम्बन्ध में सभा के नाम आक्सफोर्ड (लन्दन) से एक खुली चिट्ठी लिखी थी। यह चिट्ठी कार्तिक शुक्ल ४ सम्वत् १९६५ को लिखी गई थी तथा "हिन्दी केसरी" में २ नवम्बर १९०८ को प्रकाशित हुई थी। यह चिट्ठी इस प्रकार थी--"सभा का सम्बन्ध देश से है। उसके भले बुरे का परिणाम देश को भुगतना पड़ेगा। इसलिए देशमात्र के लिए इसके कार्यों की आलोचना करना आवश्यक है। उसी तरह सभा के कार्यकर्त्ताओं को देश की आलोचना पर ध्यान देना और देश की सम्मति से चलना भी आवश्यक है। सभा से मेरा निज का भी सम्बन्ध है--अतः उसके पाप पुण्य का उत्तरदायित्व प्रत्येक सदस्य पर है। अतएव आप के नाम यह पत्र लिखता हूँ। आशा है कि कार्य-संचालन समिति ध्यान देगी।"

पत्र में ५ बातों का उल्लेख है:--(१) "सभा क्रमशः सरकारी पक्ष में जा रही है, जो कि एक विदेशी सरकार है। उसकी यह नीति होती है कि जन-समुदाय के प्रत्येक कर्मोत्साह को अपने हाथों में रखे। सभा ने सरकार से सहायता ली और अब वह गोरे कलेक्टर की कठपुतली बन गयी। अब यह जान पड़ता है कि काशी के धनिक और पंडित वहाँ से भाग गये हैं। नये मजिस्ट्रेट के आते ही सभा उनकी पधरावनी करती है और खुशामद किया करती है। सभा के कार्यकर्त्ता अपने को गोरे मजिस्ट्रेट से चतुर समझते हैं कि वे कलेक्टर से काम निकाल लेंगे और वह कठपुतली-सा उनके हाथ में नाचकर संतुष्ट हो जायेगा। क्या सभा यह आशा रखती है कि वह अँगरेज जाति के एक शासक में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करा देगी? जिस जाति ने अपनी नीति-कुशलता से आयरलैण्ड की भाषा का वहाँ से लोप कर डाला, उस जाति के किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि के विषय में यह कहना और समझना कि उसे हिन्दी से स्नेह है, अपनी आँखों में धूल डालना है।"

(२) "सभा का संचालन भी मिस्टर ग्रीव्ज पादरी के द्वारा हो रहा है। उन्होंने सन् १९०५ की काशी कांग्रेस के प्रसंग पर कहा था कि 'वे आशा रखते हैं कि अँगरेजी अक्षर ही भारत के देश भर के सार्वजनिक राष्ट्रीय अक्षर होंगे।' उन्होंने यह भी कहा था, सभा के सभापति के रूप में और एक बड़ी सभा में, जिसमें लोकमान्य तिलक आदि उपस्थित थे। नागरी अक्षरों से उन्हें इतनी प्रीति है कि उसके त्याग और कैथी के ग्रहण के लिये आप "हिन्दुस्तान रिव्यू" में भी सलाह दे चुके हैं। सभा का अध्यक्ष ऐसे विजातीय को बनाया गया है, जो उसके आदर्श पर आस्था नहीं रखता और न शुद्ध बोलता ही है।"

(३) "सभा का नियम है कि वह राजनीति से दूर रहेगी। पत्रिका में राजनीति और धर्म सम्बन्धी लेख नहीं छपते, किन्तु कलेक्टर की बार-बार पधरावनी करानी और एक सच्चे पादड़ी को जनेऊ-सा जरूरी बताना—'दुम न निगलना पर हाथी पचा जाना है।"

(४) "सभा एक कोष निर्माण करने जा रही है, जिसका संचालन करेंगे ग्रीव्ज पादरी। यह महान् अपमानजनक बात है।

(५) "यह सब लिखने का अभिप्राय यह है कि सभा अपनी नयी नीति को बदल दे और ऐसा काम न करे कि कालान्तर में सभा सर्वसाधारण की वस्तु के बदले सरकार की वस्तु या अधिकारियों का खिलौना हो जावे।"

ऊपर के दोनों पत्र इसलिए उद्धृत किये गये हैं जिसमें द्विवेदीजी तथा 'सरस्वती' का वास्तविक रूप में मूल्यांकन हो सके। सच तो यह है कि हिन्दी-क्षेत्र में न तो द्विवेदीजी साधारण व्यक्ति थे और न "सरस्वती" साधारण पत्रिका। वास्तव में ये दोनों हिन्दी के विशिष्ट प्रतीक थे। यही कारण है कि प्रसिद्ध समीक्षक आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य के इतिहास" में सन् १९०० से १९२५ के काल को द्विवेदी-युग के नाम से अभिहित किया। भारतेन्दु के बाद हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले तथा राष्ट्रीय एकता के लिए उसका महत्त्व समझनेवाले केवल तीन व्यक्ति उत्पन्न हुए। वे हैं:— (१) महामना पं० मदनमोहन मालवीय (२) आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (३) राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन। सरस्वती के वर्तमान सम्पादक की यह कामना थी कि इन तीनों व्यक्तियों की मूर्तियाँ प्रयाग में स्थापित हों। इनमें "सरस्वती" की हीरकजयन्ती के अवसर पर द्विवेदीजी की मूर्ति की स्थापना हो गई, देखें शेष दो व्यक्तियों की मूर्तियाँ कब तक स्थापित होती हैं?

हीरकजयन्ती-समारोह का सब कार्य प्रयाग में ही सम्पन्न होने वाला था, इसका उद्घाटन हमारे महामहिम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जी करनेवाले थे किन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण यह संभव न हो सका और समारोह को दिल्ली तथा प्रयाग दोनों स्थानों में करना पड़ा। इन दोनों समारोहों का विस्तृत वर्णन "सरस्वती" के पाठक पढ़ेंगे। इस समारोह की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें संस्कृत, मराठी, तेलुगु, मैथिली, उर्दू तथा भारत की कई अन्य भाषाओं के प्रतिनिधियों ने समारोह में उपस्थित होकर "सरस्वती" के प्रति अपनी शुभकामनाएँ अर्पित कीं। हिन्दीभाषा राष्ट्रभाषा है, इसका वास्तविक रूप सर्वप्रथम इस समारोह में देखने को मिला। इसमें "सरस्वती" के पुराने लेखकों को सम्मानित किया गया। इन सम्मानित लेखकों में श्री खानखोजे तथा श्री दिवेकर जैसे व्यक्ति भी थे जिनकी मातृभाषा मराठी है किन्तु जो "सरस्वती" के पुराने लेखक हैं। श्री खानखोजे की अवस्था लगभग अस्सी वर्षों की होगी। इनका नाम मैं, अमेरिका में गदर पार्टी के क्रान्तिकारियों में, पढ़ चुका था। "सरस्वती" समारोह के अवसर पर जब इनसे वार्तालाप करने का अवसर मिला तो मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। हिन्दी राष्ट्रभाषा के संबंध में बातें करते हुए श्री खानखोजे ने कहा, "हम क्रान्तिकारियों ने तो सन् १९०१ ई० में ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर बिठा दिया था किन्तु आज फिर भी कुछ लोग जब इस संबंध में अन्यथा बातें करते हैं तो मुझे अत्यधिक दुःख होता है, मुझे तो इस वृद्धावस्था में यह अनुभव होने लगा है कि लोग जितना अपनी सुख-सुविधा का ध्यान रखते हैं उतना राष्ट्र का नहीं।"

"सरस्वती" के इस हीरक-जयन्ती-समारोह में प्रायः हिन्दी के सभी विशिष्ट साहित्यिक सम्मिलित हुए थे। देश में ऐसा समारोह द्विवेदी-मेला के बाद कोई दूसरा नहीं हुआ था। इसमें भारत के अन्य भाषाओं के साहित्यिकों में हिन्दी के प्रति जो अनुराग उत्पन्न हुआ वह वास्तव में इस समारोह की सफलता का परिचायक है। ऐसे समारोहों से हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष सहायता मिलेगी और राष्ट्रभाषा के मार्ग में जो भ्रामक धारणाएँ और कुछ अवरोधक तत्त्व हैं वे अवश्य ही दूर हो जायँगे। जय हिन्दी, जय नागरी।

मेरी दृष्टि में 'सरस्वती' हीरक जयन्ती समारोह

आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र

मुझे इस साठ वर्ष की लम्बी आयु में हिन्दी-संसार के अनेक उत्सव-महोत्सव देखने को मिले, परन्तु इस वर्ष की बारह जनवरी का 'सरस्वती-हीरक-जयन्ती-समारोह' का दिन मेरे जीवन में चिर-स्मरणीय रहेगा।

मेरे ही जीवन में नहीं, तीर्थराज प्रयाग के पुण्य-जीवन में भी, जिसकी पुण्यस्थली पर 'सरस्वती-हीरक जयन्ती-समारोह' का वृहद् आयोजन हुआ, बारह जनवरी चिरस्मरणीय ही रहेगा।

तीर्थराज प्रयाग ने बारह जनवरी के दिन देश के अनेक प्रदेशों से आये हिन्दी-संसार के उन तपस्वी साधकों के दर्शन किये, जिन्होंने उसके तट पर एकान्तनिष्ठा से बैठकर चिरकाल तक सरस्वती की निरन्तर अभ्यर्थना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना की और अपनी कठिन साहित्यिक साधना से संसार में हिन्दी का मुख उज्ज्वल किया और सारे भारत में दक्षिण से उत्तर तक उसकी श्रीवृद्धि का प्रसाद फैलाया। यद्यपि निर्मम कठिन काल-प्रवाह के कारण उसका अग्रणी, सरस्वती का प्रमुख साधक, हिन्दी का उन्नायक, जो अपनी सरस्वती-साधना के आदिकाल से ही उन सब साधकों को अपने अदम्य ज्ञान-बल के सहारे हाथ पकड़कर अपने साथ हिन्दी के पथ में आगे-आगे ले चला था, उस बारह जनवरी के दिन सशरीर उपस्थित नहीं था, तथापि इससे कौन इंकार कर सकता है कि उसके आशीर्वाद, उसके वरद हस्तों की अदृश्य पावन-छाया आदि से अन्त तक बारह जनवरी के दिन 'सरस्वती-हीरक-जयन्ती-समारोह' में सर्वत्र सब लोगों के सिर पर चारों ओर मँडराती रही। 'सरस्वती' ने अगणित हिन्दी-लेखकों को जन्म दिया और उन्हें अपने ज्ञान से दिशा-बोध और साहाय्य बल से सदा समृद्ध किया।

'सरस्वती' के इस अभूतपूर्व वैभव का श्रेय यदि अधिकारपूर्वक किसी को दिया जा सकता है तो उसके भूतपूर्व संपादक श्रद्धेय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी को ही, जिन्होंने अपनी कठिन लगन तथा घोर तपस्या से सरस्वती को निरन्तर अपने ज्ञान-बल और बुद्धि-बल से सिंचित किया और साथ-साथ हिन्दी का परिष्कार कर, और कवि तथा लेखकों का सतत मार्गदर्शन कर उन्हें ऊँचे से ऊँचे स्तर तक पहुँचाया। सर्वश्री राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, दिनकर, एक प्रकार से सब उन्हीं की देन हैं।

यह सब कुछ होते हुए भी हम स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोष का और प्रयाग के उनके इंडियन प्रेस का नाम अपने हृदय से कैसे भुला सकते हैं। अन्य प्रान्तीय निवासी होते हुए भी उन्होंने अपने हृदय में हिन्दी-भाषा को स्थान दिया और निरन्तर अपने इंडियन प्रेस से 'सरस्वती' मासिक के रूप में अपनी जन्मजात-पुत्रिका के रूप में सदा पालित-पोषित किया और आज भी तो उनके उत्तराधिकारी के रूप में उनके सुपुत्र धूनी बाबू उसी तल्लीनता और निष्ठा के साथ 'सरस्वती' का पालन-पोषण करते जा रहे हैं।

बारह जनवरी को उसी 'सरस्वती' का हीरक-जयन्ती-समारोह था।

सरस्वती-हीरक-जयन्ती-समारोह की योजना 'सरस्वती' के सुयोग्य ख्यातिमान संपादक भैय्या साहब के चिन्तनशील अपने ही मस्तिष्क की उपज थी। प्रमुख हिन्दी-संसार 'भैय्यासाहब' उपनाम से पूर्ण परिचित है। कौन नहीं जानता पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी अपने इष्ट-मित्रों में भैय्यासाहब के प्रिय सम्बोधन से ही सदा पुकारे जाते हैं।

इस समारोह-योजना के तीन महत्त्वपूर्ण कार्य-क्रम थे। प्रथम: सरस्वती के भूतपूर्व संम्पादक आदरणीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रस्तर मूर्त्ति का, इंडियन प्रेस के आगे के चौराहे पर, जो बहुत-सा धन व्यय करके एक कुशल अनुभवी कलाकार द्वारा निर्मित की गई थी, महामान्य राष्ट्रकवि द्वारा अनावरण।

द्वितीय: इंडियन प्रेस के बड़े हॉल में 'सरस्वती' के जन्मदाता इंडियन प्रेस, प्रयाग के संस्थापक श्री चिन्तामणि घोष तथा 'सरस्वती' के प्रथम संपादक बाबू श्यामसुन्दरदासजी के बड़े चित्रों का अनावरण।

तृतीय: 'सरस्वती'' के आदि-काल की दो दशाब्दियों के तथा कुछ अन्य प्रमुख लेखकों का सार्वजनिक साहित्यिक-अभिनन्दन।

मैं जब पहुँचा, 'सरस्वती' के स्वर्गीय संपादक, श्रद्धेय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की मूर्त्ति का अनावरण की प्रारम्भिक प्रथा आरम्भ हो चुकी थी। उत्सुक दर्शकों की तथा साहित्यिकों की पर्याप्त भीड़ इंडियन प्रेस के आगे के चौराहे पर जमा थी। कुछ ही देर में पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी अपने आन्तरिक उल्लास से मचलते, हिलते-डोलते राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का नियत स्थानपर अपने साथ लाये और राष्ट्रकवि ने सरस्वती-पूजा के मंत्रोच्चारण के कंठ-घोषों के साथ जगमगाते विद्युत्प्रकाश में शिरसा अभिवादन कर द्विवेदीजी की प्रस्तर मूर्त्ति को अनावृत किया। अनावृत होते ही ऐसा दिखाई दिया जैसे अनुभवी कुशल कलाकार ने अपनी कला की असीम श्रद्धा उस मूर्त्ति में उँडेल दी है। मेरा यह सौभाग्य था कि अपने जीवन-काल में दो बार द्विवेदीजी से मेरी भेंट हुई थी।

उस समय ऐसा लगा यदि मैं द्विवेदीजी की मूर्त्ति के सम्मुख इसी प्रकार श्रद्धाभक्ति से भरा खड़ा रहा तो द्विवेदीजी अपने इस मूर्त्तिरूप में ही बोल उठेंगे और पूछ बैठेंगे—'अरे, पूरे पैंतीस वर्ष बाद!'

पर मैं कुछ देर भी खड़ा न रह सका, पीछे से दर्शनार्थियों की छोटी-बड़ी श्रेणियाँ अपने-अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाने आगे बढ़ी आ रही थीं।

गंगा-यमुना के संगम की तरह प्राच्य और पाश्चात्य विद्या के संगम-स्थल प्रयाग में एक महान् साहित्यकार का भव्य स्टैच्यू खड़ा करने का हिन्दी के साहित्यिकों, इंडियन प्रेस के मालिक धूनी बाबू और 'सरस्वती' के वर्त्तमान संपादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का यह समारोहपूर्वक आयोजन जहाँ स्तुत्य है, वहाँ हिन्दी-संसार में एक नयी प्रेरणादायिनी ऐतिहासिक परम्परा के श्रीगणेश करने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है।

इस प्रथम कार्यक्रम के अनन्तर हम सभी लोग इंडियन प्रेस के बड़े हाल में ले जाये गये। वहाँ इंडियन प्रेस के संस्थापक, 'सरस्वती' के प्रवर्त्तक श्री चिन्तामणि घोष और 'सरस्वती' के प्रथम संपादक बाबू श्यामसुन्दरदासजी के चित्रों का अनावरण होनेवाला था।

वहाँ पहुँचते ही राष्ट्रकवि ने चतुर्वेदीजी की प्रार्थना पर उन दोनों चित्रों का भी श्रद्धा-भक्ति से अनावरण किया। उस समय देश के अनेक प्रसिद्ध आमंत्रित नये-पुराने साहित्यकार वहाँ उपस्थित थे। नगर की विशिष्ट जनता तथा दूर-दूर से आये अतिथि तथा पत्रकार भी उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। ये दोनों चित्र भी उसी कलाकार के हस्तलाघव के परिणाम थे जिसने अपने हाथ से पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का स्टैच्यू प्रस्तुत किया था। उन दोनों चित्रों की प्रशंसा में इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे दोनों अपनी-अपनी वास्तविकता में परिपूर्ण थे और देखते ही बनते थे।

अनावरण के अनन्तर 'सरस्वती' की प्रथम दो दशाब्दियों के तथा अन्य प्रमुख लेखकों के अभिनन्दन से पूर्व महामहिम राष्ट्रपति की तथा उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की अनुपस्थिति का कारण बताया गया और दोनों का वक्तव्य पढ़ा गया, जो उनके ही अपने आदमी दिल्ली और लखनऊ से लाये थे। उसी समय महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार आदि लगभग सभी प्रदेशों की प्रमुख साहित्यिक-संस्थाओं के आये हुए प्रतिनिधियों ने सहयोग और शुभ-कामनाओं से भरे सन्देश पढ़कर सुनाये। तदनंतर 'सरस्वती-हीरक-जयन्ती-समारोह' की ओर से एक ताम्रपत्र नागरीप्रचारिणी सभा, काशी को और दूसरा इंडियन प्रेस के वर्तमान स्वामी धूनी बाबू को समर्पित किया गया। उसके बाद अपने में उच्च आदर्शों से ओत-प्रोत्र उस दूसरी ऐतिहासिक परम्परा की हिन्दी-संसार में नयी स्थापना की गयी जो अपने में महान् कही जा सकती है। 'सरस्वती' की प्रथम दो दशाब्दियों के तथा कुछ अन्य प्रमुख लेखकों का सार्वजनिक अभिनन्दन आरम्भ हुआ। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, रामनरेश त्रिपाठी, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, सुमित्रा नन्दन पंत, कविवर 'दिनकर', महादेवी वर्मा, डाक्टर हेमचन्द्र जोशी, बेढब बनारसी, भगवतीचरण वर्मा, नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आदि सभी साहित्यकार और विशिष्ट व्यक्ति बिना किसी भेद-भाव के बैठे हुए थे। आमंत्रितों में विशिष्ट, अल्प विशिष्ट, अविशिष्ट जैसे अविशिष्ट भेद, जो प्रायः सभी सार्वजनिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक समारोहों में संयोजकों के द्वारा कर लिये जाते हैं, पहली बार इस समारोह में अनुपस्थित दिखाई दिये। न तो किसी विशिष्ट आमंत्रित के लिए किसी भी समय आगे स्थान खाली कराया गया और न अविशिष्ट के लिए नाक भौं सिकोड़ी गई। जो आमंत्रित है, वह आमंत्रित है, जहाँ जगह पाये, वहाँ वह बैठे। संयोजकों को बीच आयोजन में कार्यक्रम की उपेक्षा करके किसी विशिष्ट व्यक्ति के पीछे भागते हुए मैंने कभी नहीं पाया।

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह लगी कि सारा वातावरण अत्यन्त गम्भीर था। साहित्यकारों से भिन्न कुछ मान्य लोग भी इसमें दिखाई दे रहे थे। किन्तु ऐसा लगा है कि इनके आमंत्रण में भी चुनाव किया गया था, क्योंकि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखता था जो रोज के सांस्कृतिक आयोजनों को देखते-देखते नाच-गाने को ही सांस्कृतिक आयोजन समझने के संस्कार लिये हुए हो।

कार्यक्रम सीमित, संक्षिप्त और व्यवस्थित थे। न कोई अनावश्यक रूप से बोलता था और न बोलने के इच्छुक अपने अपने पड़ोसियों से अपना नाम पर्चियों पर लिख-लिखकर संयोजक के पास भिजवाते हुए दिखाई दे रहे थे। लगता था, जैसे सब कुछ पूर्व निर्धारित हो और जो निर्धारित न हो उससे किसी को कुछ प्रयोजन न हो।

पूरे आयोजन में निकट से सम्मिलित होकर भी मैं यह नहीं समझ सका कि इतने भव्य, गंभीर, स्वस्थ और नयी परम्पराएँ स्थापित करनेवाले ऐतिहासिक आयोजन के मूल में कौन व्यक्ति है? इसका श्रेय किसे है? पास बैठे हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी से पूछा तो वे स्वाभाविक विनोद के साथ बोले—'दिल्ली में केवल इसी बात का पता चलता है; और यहाँ केवल यही बात है जिसका पता नहीं चला?" फिर भी वह जो भी व्यक्ति हो, उसे हम अनजान में ही सैकड़ों बधाइयाँ देते हैं।

सुखद अवसर—अविस्मरणीय दिवस

श्री निरंकुश

सरस्वती के जिस हीरक जयंती समारोह की चर्चा लगभग एक वर्ष से चल रही थी और जिसके संपन्न होने में राष्ट्रपति की अस्वस्थता के कारण विलंब हुआ था, उसकी सूचना अकस्मात प्राप्त होगी इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। ४ जनवरी को भैयासाहब ने कालका मेल में बैठकर पत्र लिखा और फतेहपुर के स्टेशन पर किसको दे गये यह मैं नहीं जानता। मैं जब घर आया तो उनका पत्र मेज पर रक्खा मिला। १२ जनवरी को इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड द्वारा क्या होगा इसका पूर्वाभास उससे हो रहा था। इसी बीच छपा हुआ निमंत्रण भी आ पहुँचा जिसकी पुश्त पर नीचे की ओर दाहिनी तरफ लिखा था 'कृपया यह कार्ड साथ में लाइए'। न्योते की यह प्रणाली आधुनिक है अथवा पौराणिक यह तो मैं नहीं जानता पर इतना अवश्य सोच सकता हूँ कि यह व्यवस्था की दृष्टि से उत्तम है। साथ ही इससे आमंत्रित व्यक्ति को यह भी मुगालता हो जाता है कि वह प्रतिष्ठित समाज के कुछ इने-गिने सदस्यों में समझा जाने लगा है। कुछ भी हो पत्र और कार्ड दोनों ही आगे पीछे प्राप्ति से परम आत्मतुष्टि हुई और छिपाने से क्या फायदा, अहंभाव को भी बल मिला।

यात्रा के लिए जहाँ से बस पकड़ी वहाँ एक सम्भ्रान्त सहयात्री को परमानन्द का अनुभव करते हुए पत्ता चाटते देखा। चाट अप्रिय किसे लगती है और मेरी तो दुर्बलता रही है; यह बात और है कि परिस्थितिवश मुझे सबल हो जाना पड़े। यह बात नहीं कि मैंने चाट और उसके प्रचलन के विषय में औरों से अधिक जान लेने की चेष्टा की हो। तिस पर भी उन सज्जन को देखकर मेरे मन में विचार उठा, 'हो न हो, यह कोई साहित्यिक हैं और अवश्य वहीं जा रहे हैं जहाँ मैं।' कालान्तर में मेरी अटकल ठीक बैठी क्योंकि समारोह में वह सक्रिय सहयोग देते हुए पाये गये।

इसे दुर्भाग्य कहना चाहे रुचिकर न प्रतीत हो, पर कहना पड़ता है कि हीरक जयंती समारोह के लिए राष्ट्रपति का प्रयाग पधारना संभव नहीं हो सका और राज्यपाल महोदय सहसा अस्वस्थ हो गये। ६ बजे से कुछ पूर्व इंडियन प्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचा। कुछ भीड़ थार्नहिल रोड के उस क्रासिंग पर इकट्ठी थी जहाँ स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्य प्रतिमा का अनावरण होनेवाला था और शेष के दर्शन भीतर हॉल में पहुँचकर हुए। द्वार पर ऐसा लगा भीतर जाने की कुछ रोक-टोक है। इसीलिए अपना कार्ड हाथ में ले रक्खा था पर अंदर पहुँचकर और उसके उपरांत तो इसके समझने में बिल्कुल कठिनाई नहीं हुई कि कार्ड-वाला और बिना कार्ड वाला दोनों एक ही चीज थे। उपस्थिति की सुविधा बढ़ाने की दृष्टि से नियमों को शिथिल कर देना उचित रहा। मैंने घूमघामकर पुराने परिचय पत्रों की धूल झाड़नी चाही। दो चार से राम राम श्याम श्याम हुई, दस पाँच से औपचारिक अभिवादन और एकाध से 'हाऊ डू यू डू'। भैयासाहब ने स्वयं देख लिया हो तो बात और है, मैं अपनी सूरत न दिखला सका। तभी जन-समुदाय बाहर की ओर चल पड़ा और द्विवेदीजी की कांस्य प्रतिमा के अनावरण को देखने लगा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी भूमिका को जिस कुशलता से निबाहा उसकी विशेषता थी नाटकीयता का सर्वथा अभाव। भारतीय परंपरा के अनुसार जब यह कार्य संपन्न हो गया तो फिर से इंडियन प्रेस का हॉल भरने लगा। सभा का शुभारंभ वंदना से हुआ। तदुपरांत राष्ट्रपति और राज्यपाल के संदेश सुनाये गये। अध्यक्ष-पद का उत्तरदायित्व श्री मैथिलीशरण गुप्त को सौंपा गया। उन्होंने डा० श्यामसुंदरदास और श्री चिन्तामणि घोष के तैल चित्रों का अनावरण किया। जब यह कार्यक्रम चल रहा था, एक सज्जन कुछ बुकलेट्स बाँटने लगे। उनके वितरण की प्रणाली बड़ी सीधी-सादी थी। वह जिसे चाहते, पुस्तिका थमा देते और जिसकी चेष्टा उन्हें न भाती उसकी ओर अपने तीसरे नेत्र के प्रस्तावित स्थान की अधिकार-रेख व्यक्त कर देते। मैंने पीछे बैठकर अनुभव किया कि संग्रह की भावना विग्रह के इस युग में दुर्बल नहीं हो सकी और लोग अनावश्यक से अनावश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए भी बेहद लालायित रहते हैं। मैंने हॉल के भीतर वितरक महोदय की नजर में न जँचनेवाले बीसियों आदमियों को देखा। पता नहीं उन्होंने स्वयं कैसा महसूस किया होगा। उनकी इस हरकत का एक दूसरा परिणाम यह हुआ कि सभा की शांति भंग तो नहीं हुई पर पंगु अवश्य होने लगी। मैं समझता हूँ, उक्त गंभीर अवसर पर उन महाशय का पदार्पण असंगत था और उससे भी अधिक इश्तहारनुमा बुकलेट्स का भेदभावपूर्ण नीति के आधार पर वितरण।

जब इस ओर से कुछ चिंता कम हुई तो एक उपमंत्रीजी पधारे। जमी हुई महफ़िल में पीछे या बीच से एकदम आगे पहुँचने में प्रयास करना पड़ता है और कुछ हिला-डुली भी होती है। मंत्री महोदय की सरलता और उदारता दोनों ही सराहनीय थीं क्योंकि वे जहाँ स्थान खाली-सा दीखा वहीं बैठ गये पर उन लोगों को यह गवारा कहाँ जिनका बिना औपचारिकता के काम नहीं चलता। बिना सभा की मर्यादा का ध्यान किये वे मंत्रीजी को मंच पर उठाकर ले ही गये।

हिन्दी के अनेक पुराने लेखक सम्मानित किये गये। पं० रामनरेशजी त्रिपाठी तो प्रयाग ही में रह गये, लौटकर घर जा भी न पाये। अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि संस्थाओं की ओर से शुभकामना संदेश पढ़े गये। आरंभ हुआ संस्कृत से। महामहोपाध्याय पं० उमेश मिश्रजी की वाणी ने वार्त्ता का रूप ले लिया और प्रत्यक्ष लग रहा था लोग 'बोर' हो रहे हैं। सबसे पुरज़ोर अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल शायद अंजुमने-तक्कीए-उर्दू की ओर से हुआ और सबसे कमजोर मैथिली के प्रतिनिधि द्वारा। यह समझ में नहीं आया कि हिन्दी की सहयोगी पत्रिकाओं की ओर से प्राप्त शुभकामना-संदेश पढ़कर क्यों नहीं सुनाये गये। प्रकाशकों ने भी तो कुछ लिखकर भेजा होगा। अगर मेरी आँखें धोखा नहीं दे रही थीं तो यह कहूँगा कि बीच में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' उठकर बाहर गये। क्यों गये, यह तो वही जानते होंगे पर उनके इस तरह बिना किसी संकेत के महफ़िल से उठ जाने से वेदना अवश्य हुई। कहीं यह बात तो नहीं कि वह भी बच्चनजी की भाँति, द्विवेदी युगीन शैली जिसका प्रतिनिधित्व सरस्वती करती थी, को इतिवृत्तात्मक, सिलपट, फुसफुसी, भौंडी, सस्ती और सुधारवादी समझते हों और बोरियत से बचने के लिये चले गये हों। अपने ढंग से सोचने-समझने का अधिकार सबको है और आज से नहीं सदा से मतभेद होता आया है। सृजन की क्रिया न कभी रुकी है और न शायद रुके। नई मान्यतायें, नये प्रतिमान और नये प्रयोग विकास के लिए जरूरी हैं; किंतु फिर भी अतीत के स्मारकों के प्रति हमारी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। वास्तुकला के उत्तमोत्तम निदर्शन देखने में आ रहे हैं तो भी ताजमहल महत्त्वहीन और अनाकर्षक नहीं हो सका। यदि पुरातन में हमारी आस्था को कमजोर बनाना है तो किस आधार पर इस युग में उत्पन्न विचारों, मतों और उनके प्रतिपादकों के गौरव को सुरक्षित रखने की चेष्टा की जा रही है।

वातावरण में जब कभी नीरसता ने प्रविष्ट होने की चेष्टा की, मैथिलीशरणजी अथवा भैयासाहब ने कुछ मनोमुग्धकारी ढंग से कह दिया और फिर मज़ा आने लगा। पंतजी समुदाय का आग्रह टाल न सके और उन्होंने अपने कलात्मक तरीके से एक उत्कृष्ट रचना का पाठ किया। श्रोता निश्चय ही मंत्रमुग्ध हो सुनते रहे। ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर जहाँ सब कुछ आवश्यक ही हो रहा था, महादेवीजी का संक्षिप्त भाषण इतना समयानुकूल रहा कि वे भी, जिनकी पूर्वगामी कार्यक्रमों में दिलचस्पी नहीं दिखलाई देती थी, विचारोत्तेजना का अनुभव करने लगे। मैं तो घड़ी भर को सोचने लगा यदि ऐसे अवसर कभी-कभी की बजाय अक्सर आया करें तो कदाचित् भावात्मक एकता, समन्वय जैसे जटिल विषयों की भी व्यावहारिक रूपरेखा निर्धारित हो जाये।

मैं तो पहले दिन के बाद लौट आया। मुझे पता चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद को कुछ मनोरंजक चीजें हुईं। मेरे विचार से नई-पुरानी पीढ़ी के साहित्यसेवियों के मिलाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये था। नवोदित कलाकारों के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ ज्येष्ठ व्यक्तियों को जिम्मेदारी सौंपनी थी। आज अपने देश में इस प्रकार की परंपरा का लोप-सा होता जाता है। प्रतिद्वंद्विता ही को बढ़ावा मिल रहा है; श्रद्धा, निष्ठा और आस्था को नहीं। इसकी पूर्व सूचना सभी आमंत्रित व्यक्तियों को होनी चाहिये थी ताकि वे अवसर का लाभ उठाते।

इतना सब कुछ होते हुए भी समारोह पूर्णरूप से सफल रहा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और भैयासाहब पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी आयोजन के प्राण थे। इंडियन प्रेस के स्वामी श्री घोष का आर्थिक और व्यावहारिक सहयोग वांछनीय रहा। यदि समारोह के दिन वह ताम्बूल, सुपारी आदि की वामनव्यवस्था भी कर देते तो साहित्य-समाज की पुरातन मर्यादा की कुछ और अभिरक्षा हो जाती।

मेरी प्रतिक्रिया

श्री अमृतलाल चतुर्वेदी

जिस समय मैं आगरे जा रहा था उस समय मुझे स्वप्न में भी विचार नहीं था कि यह समारोह ऐसा आकर्षक सर्वांग सुन्दर और सुरुचिपूर्ण होगा।

समारोह की कार्यवाही ठीक समय से सुरुचिपूर्ण सुसज्जित इंडियन प्रेस के विशाल भवन में प्रारम्भ हुई। इसके पूर्व स्व० महावीरप्रसादजी द्विवेदी की प्रतिमा का उद्घाटन पर्याप्त धूमधाम से हुआ। इस कार्य से द्विवेदीजी के प्रति अपूर्व मूर्त्त श्रद्धांजलि दी गयी।

समारोह की कार्यवाही लगभग २ घण्टे में पूर्ण हो गई। इस समारोह में भारतवर्ष के सभी हिन्दी साहित्य-प्रेमी एवं अन्य प्रतिष्ठित और गण्यमान्य सज्जन सम्मिलित हुए थे, जिनमें वयोवृद्ध आदरणीय श्री गिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी, श्री दिवेकरजी, श्री पथिकजी, श्री हरिभाऊ उपाध्यायजी, श्री नरदेवजी शास्त्रीजी, श्री गोविन्ददासजी सेठ आदि सम्मान्य साहित्यिकों के अतिरिक्त अनेक गण्य-मान्य सज्जन जैसे श्री वी० डी० भार्गव, न्यायाधीश हाईकोर्ट; श्री बालकृष्ण राव, नगरप्रमुख इलाहाबाद प्रभृति महानु-भाव भी थे और कई भाषाओं के प्रतिनिधि दूर दूर से पधारे थे और इस समारोह की शोभा बढ़ा रहे थे।

मंच के ऊपर तीन बहुमूल्य विशाल चित्र थे। एक ओर स्व० चिन्तामणि घोष का तैल चित्र था और दूसरी ओर स्व० श्री श्यामसुंदरदासजी का, और बीच में माता वीणापाणि का दिव्य और भव्य चित्र था। यह शोभा देखते ही बनती थी। वातावरण अत्यन्त शान्तिपूर्ण था। भीड़ अपार थी।

सम्मान का कार्यक्रम बड़ा दर्शनीय एवं भावपूर्ण था। सम्मान करनेवाले श्री मैथिलीशरण गुप्तजी तथा सम्मानित सभी महानुभाव गद्गद् थे।

कवयित्री श्रीमती महादेवीजी वर्मा का भाषण बड़ा ओजपूर्ण था और मुझे तो सर्वश्रेष्ठ लगा। इस समारोह का वर्णन गुसाईंजी के शब्दों में "गिरा अनैन, नैन बिनु बानी" से ही हो सकता है।

श्री श्रीनारायणजी और श्री धूनीबाबू, दोनों ही, इस नवीन सूझ एवं इस नूतन परम्परा की स्थापना के लिए, जो कि एक हिन्दी मासिक-पत्र के संबंध में आरंभ की गई है, हिन्दी-जगत् की बधाई के पात्र हैं।

दर्शकगण तो इस सफल समारोह को भुलाने से भी नहीं भूल सकते, परन्तु उनके बाद भी युगों तक यह तीन मनोहर चित्र, आचार्य द्विवेदीजी की प्रतिमा एवं सरस्वती का विशेषांक इस समारोह की कीर्त्ति को अक्षुण्ण रखने में समर्थ रहेंगे।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव और अज्ञान के विरुद्ध लड़ी जाने वाली लड़ाई
पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बना कर ही जीती जा सकती है

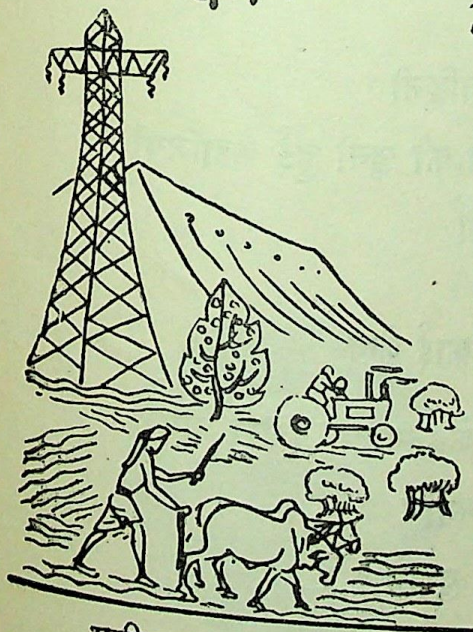

राष्ट्रीय बचत योजना के अन्तर्गत
विभिन्न मदों में लगाया गया धन
राष्ट्र निर्माण की गति को बढ़ायेगा
जनता की उन्नति में मदद देगा
आपके भविष्य को सुखमय बनायेगा।
राष्ट्रीय बचत योजना
चतुर्दिक विकास का साधन है।

राष्ट्रीय बचत विभाग के लिए सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रचारित। ग.ब ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती सीरीज

की

दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपांतर
रूस की क्रांति
धरती माता
इन्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीम चमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेख
हिंदी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे
नवविधान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२५
१९६२

समय बदल गया है

१९२५ में जब प्रोफेसर रघुनाथ धोंडो कर्वे ने परिवार नियोजन के पक्ष में प्रचार किया तो उन्हें बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। वे उन दिनों विल्सन कालेज में गणित के प्रोफेसर थे और कालेज के अधिकारियों को यह पसन्द नहीं था कि वे संतति-निरोध के बारे में प्रचार करें। अत उन्हें अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा।

१९५०-१९६२ के दौरान परिवार-नियोजन के बारे में लोगों का रुख जानने के लिए अब तक भारत में २७ सर्वेक्षण पूरे हो चुके हैं। इनसे पता चलता है कि परिवार-नियोजन का कोई धार्मिक या सामाजिक संगठित विरोध नही है और ३५ वर्ष से ऊपर के आयु-वर्ग की ७० प्रतिशत महिलाएं परिवार-नियोजन के लिए सहमत हैं।

सुख-स्वास्थ्य का साधन

परिवार नियोजन

सरकार द्वारा मान्य पास के

परिवार नियोजन केन्द्र

से सलाह लीजिए।

डीए ६२/२४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये; खंड दो, पृष्ठ ३९४, मूल्य १०) दस रुपये।

आधुनिक छपाई

लेखक श्री कृष्णप्रसाद दर

भूतपूर्व मैनेजर, इलाहाबाद लाजर्नल प्रेस और भूतपूर्व टेक्निकल एडवाइजर
दि हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, और वर्तमान वर्क्स मैनेजर
इंडियन प्रेस, प्राइवेट लि०, इलाहाबाद।

आजकल सभी लोग अच्छी छपाई चाहते हैं, परन्तु आकर्षक छपाई कैसे की जाय, यह सबको ज्ञात नहीं। 'आधुनिक छपाई' इसी दिशा में एक सफल कदम है। अब तक अपने विषय की यही एक पुस्तक हिन्दी में है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। आधुनिक छपाई की सहायता से ऐसा व्यक्ति भी सरलता से अपना काम चला सकता है, जिसने कभी किसी छापेखाने में काम न किया हो। फिर आधुनिक छपाई के विभिन्न आकर्षक रूपों, शैलियों और छापाखाने सम्बन्धी सभी आवश्यक अंगों पर इस पुस्तक में इतनी सरल और बोलचाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है कि प्रत्येक मुद्रक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

आद्योपान्त सचित्र, सजिल्द और बढ़िया कागज पर आकर्षक ढंग से मुद्रित ३८७ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी--श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास--श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद--श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ--श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत--लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष--लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान--संशोधित संस्करण--इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान--लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
स्टिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise
SARASWATI—Reg. No. A-248

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय—१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

"सरस्वती" हीरक जयंती के अवसर पर प्राप्त

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

साहित्य अकादमी के १९६२ ई० के हिन्दी-पुरस्कार विजेता

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है, जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अं के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वत

सितम्बर

१९६२

10 SEP 1962

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

● प्रकाशित हो गया।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10 SEP 1962

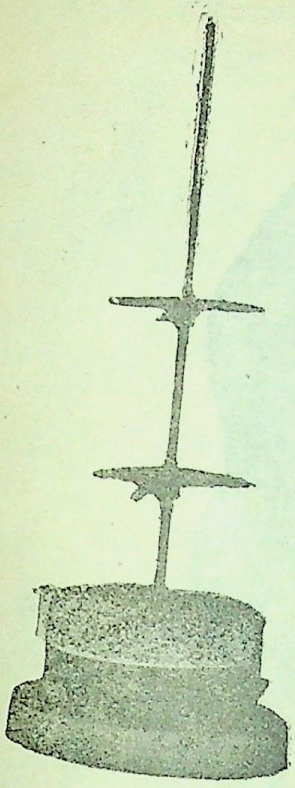

एन्यूलर वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिये कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

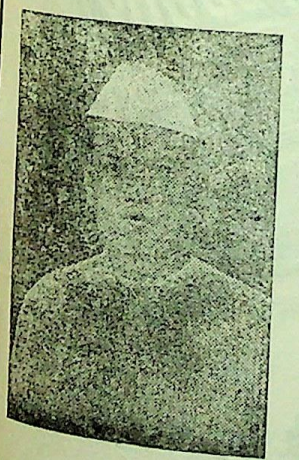

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

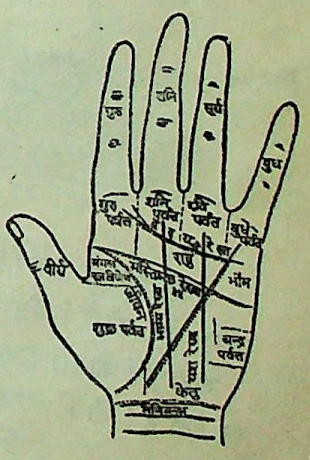

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:—श्री कुँवर शम्भूशरन सिंह प्रतापगढ़ (अवध) क्या कहते हैं:—

मैं गत आठ वर्षों से कष्टदाई खाँसी से त्रस्त था। वह सारा दिन आती और मैं रात्रि में ३-४ घंटे से अधिक न सो पाता। प्रांत के उत्तमोत्तम डाक्टरों की औषधियों से भी कुछ लाभ न हुआ। इसी मध्य में ६ बार मेरा एक्सरे हुआ। अन्त में मेरे एक मित्र ने प्रयाग के प्रसिद्ध तांत्रिक श्री पी० एन० सिंह से मेरा परिचय कराया। उन्होंने महाकल्याण प्राण-रक्षा यंत्र तैयार करके दिया जिससे मेरा रोग दूर हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताज़गी का तराना! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके तनमन में ताज़गी का तराना गूंज उठेगा! और मज़ा यह है कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताज़ा कर देता है! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा!

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ!

L. 33-X52 BG

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगंधित

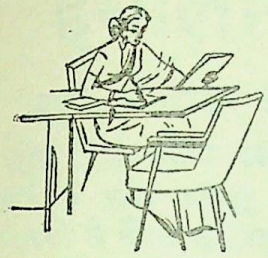

ब्राह्मी
केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वेदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल
केमिकल

कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

१) की पुस्तक बिलकुल मुफ्त

योगासन व पैसे पैसे के नुसखे महाभयंकर रोगों को भी मिटा देते हैं।

लोक कल्याण के लिये पुस्तक मुफ्त लें। यदि चाहें तो, आप ६ पैसे के लिफाफे में डाक व्ययार्थ ≡) के टिकट भेज सकते हैं।

श्री कुशल पुस्तक भवन (२), नाभा (पंजाब)।

नई पुस्तक **रस-विलास** छप गई

रस-विलास रीतिकालीन शृङ्गारिक महाकवि देव की रचना है। इस पुस्तक में देशभेद, जतिभेद, कर्मभेद आदि से समन्वित नायिका भेद है। पुस्तक कवित्त एवं सवैया में है जो कि अत्यन्त ही रसीले हैं। यह पुस्तक प्रायः अभी तक अप्राप्य थी। सफेद कागज पर, नयनाभिराम आवरण के साथ सुमुद्रित मूल्य मात्र २) डाकखर्च १) कुल ३) मनीआर्डर से भेजकर मंगाइये। अन्य पुस्तकों एवं वाद्य यंत्रों का सूचीपत्र अलग से मंगायें।

पता :—पैरामाउन्ट ट्रेडर्स, १२५ महात्मा गांधी रोड, बाक्स ७८८, कलकत्ता।

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेज हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

उपद्रवों सहित अनेक बुखारों की एक दवा
होमियो-मिश्रन

Trade **"हीटा"** Mark

बुखारों के नाम का विचार अनावश्यक

बुखार चाहे जिस उपद्रव के साथ हो 'हीटा' सभी में लाभदायक स्त्रियों के गर्भावस्था तथा दुधमुहें बच्चों के बुखारों में भी प्रयोज्य

गलत प्रयोग में हानिरहित

डाकखर्च वगैरह के लिए एक रु० पचीस नया पैसा भेजने पर नमूना मुफ्त—विशेष जानकारी के लिए पत्र व्यवहार आवश्यक

डा० जे० एम० प्रसाद पो० मोकामा (पटना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम दाम जल्दी काम

आपको जब जरूरी काम होता है, तभी तो आप तार देते हैं। फिर आप पता पूरा क्यों नहीं लिखते ताकि आपका तार जल्दी पहुंचे।

अधूरा पता होने से तार के पहुंचने में देर लगने की संभावना रहती है।

पर एक तरीका ऐसा भी है, जिससे दाम भी कम लगें और काम भी जल्दी हो। यदि आप अपना तार टेलीफोन के पते पर भेजें, तो ऐसा हो सकता है। इसके लिए आपको पता इस प्रकार लिखना होगा; जैसे :—'बनर्जी, टे. फो. ३१६७०, नई दिल्ली'। ज्यों ही यह तार नई दिल्ली के तारघर में पहुंचेगा, त्यों ही वह उस टेलीफोन नम्बर पर पढ़ कर सुना दिया जायेगा।

पते में 'टे. फो. ३१६७०' एक ही शब्द गिना जाता है।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिए

डाक-तार विभाग

डीए ६२/१४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया, जिगर व तिल्ली** के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरों से सम्पन्न

पापुलर इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी

रियायती मूल्य—४ रु० ५० नये पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)	..		५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)			२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग			५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग			४·२५
विवेकानन्दजी के संग में	..		५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	..		१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद	..		१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ	..		१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो !	..		१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)	..		१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	..		१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	..		१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	..		१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में	..		०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	..		०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ	..		०·८७
कर्मयोग	..	१·४० भक्तियोग	.. १·५०
राजयोग	..	३·०० ज्ञानयोग	.. ३·००
प्रेमयोग	..	१·३७ सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म	..	१·५० धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान	..	१·६२ शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य		१·२५ मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग	..	१·१२ चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव	..	०·६२ भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा	..	०·६२ मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली	..	०·६२ हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा	..	०·५० ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत	..	०·५० मन की शक्तियाँ	०·४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज)		..	०·६५
शक्तिदायी विचार (,,)		..	०·६२
मेरी समर नीति (,,)		..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत		..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००

श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, वस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, बाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दाँत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खाँसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बवरीनकी, झुर्रियाँ वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा चमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, मकीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—**रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

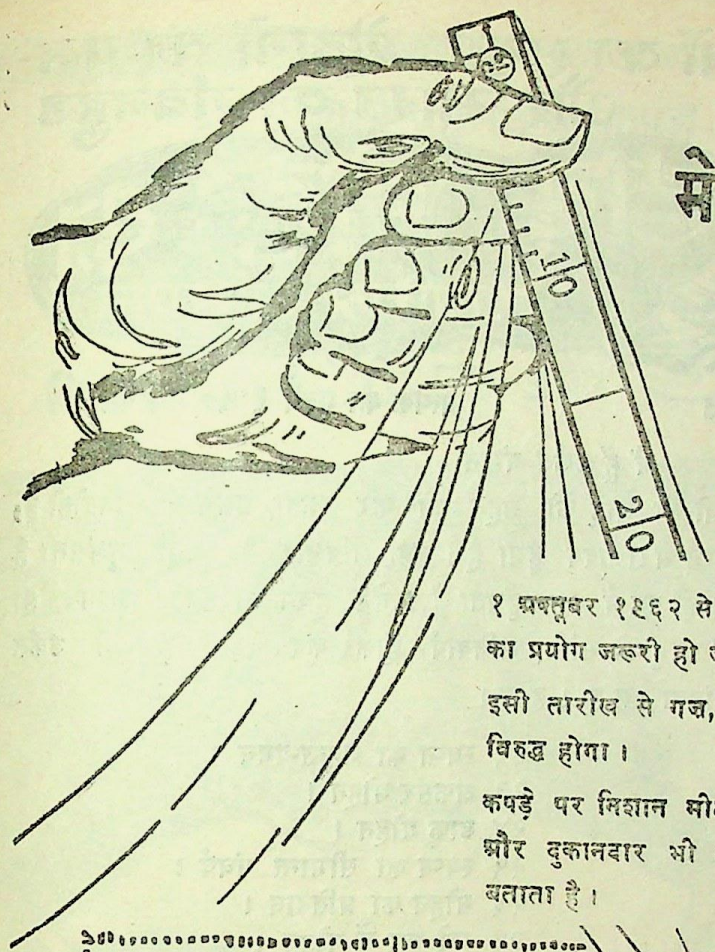

मेट्रिक लम्बाई में खरीदिये

१ अक्तूबर १९६२ से लम्बाई नापने के लिए मीटर का प्रयोग जरूरी हो जाएगा।

इसी तारीख से गज, फुट, इंच का प्रयोग कानून के विरुद्ध होगा।

कपड़े पर निशान मीटर के अनुसार लगाये जाते हैं और दुकानदार भी कीमत मीटर के अनुसार ही बताता है।

मीटर, गज से ३½ इंच अधिक लम्बा होता है। यदि १ गज कपड़े की कीमत १ रु० है तो १ मीटर कपड़े की कीमत १ रु० ९ नये पैसे होगी।

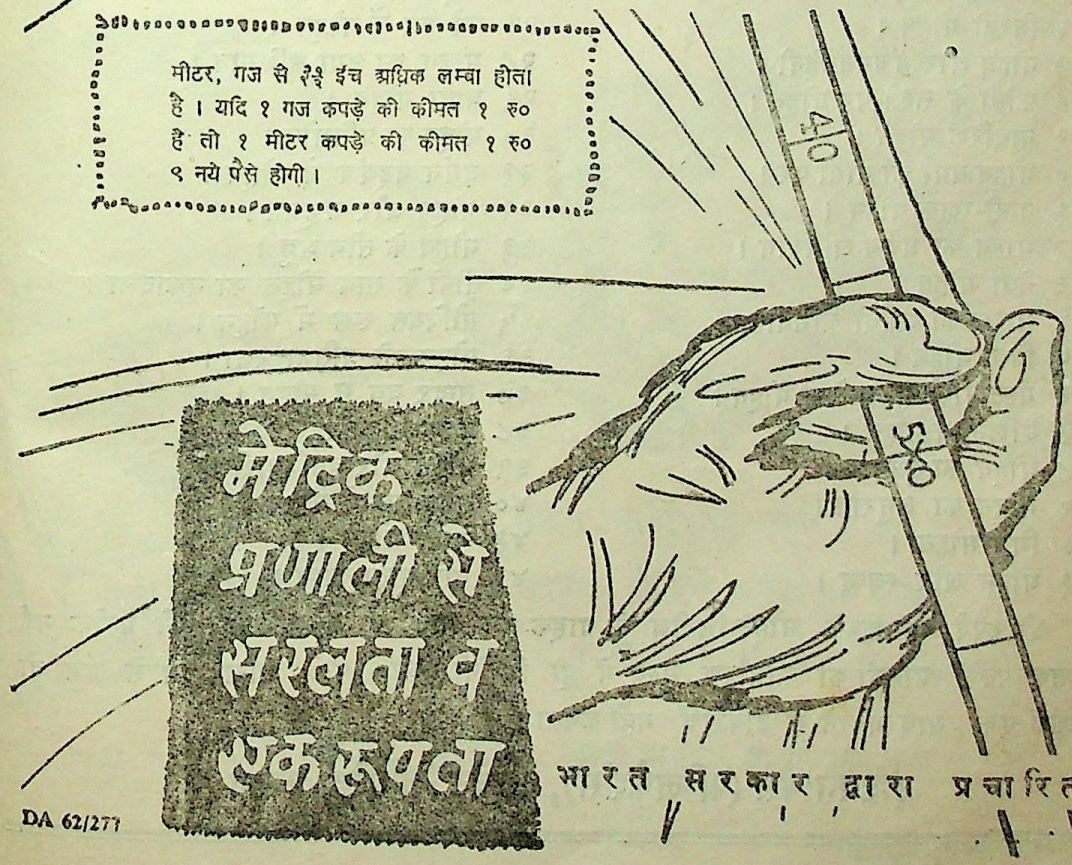

मेट्रिक प्रणाली से सरलता व एकरूपता

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 62/277

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड

डाकू मोहन का
विचित्र अभियान

४२ पुस्तकें अब तक प्रकाशित

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन म मोहनै।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। बी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़ पहनने के कपड़े...

सनलाइट से

कितने सफ़ेद और उजले!

साफ़, सजीले ! सफ़ेद और उजले !
यह है सनलाइट से धुले कपड़ों की शान !
अपने सभी कपड़े घर में सनलाइट से धोइये।

सनलाइट बढ़िया झागवाला शुद्ध साबुन

HLL-X52 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

अनुवाद साहित्य में अभिवृद्धि

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	**बड़े वन में छोटा घर**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज़ अनु० रामअौतार अग्रवाल	**प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	**किट कार्सन और जंगली सीमान्त**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	**अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	**प्रेयरी नगर का बालक**	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	**प्रसिद्ध वैज्ञानिक**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	**दृष्टिदात्री**	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	**परमाणु का रहस्य**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	**अमेरिका का महान् उदारवादी**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल	**आधुनिक औषधि-आविष्कार**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६
अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन	**लिंकन वाणी**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदा से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए लक्स ज़रूरी है!'

तीन शब्दों की ओट में है नंदा का रूप रहस्य।
और वह शब्द हैं...लक्स टॉयलेट साबुन!
लक्स इस्तेमाल कीजिए...इसके मुलायम
झाग से आपका रंग-रूप सुंदरता की नई
सीमा को जा छूता है।
लक्स इस्तेमाल कीजिये...और इसकी
अनमोल सुगंध के सुंदर संसार में खो जाइये!
लक्स इस्तेमाल कीजिए...आपकी पसंद के
लिए इसके रंगों का इन्द्रधनुष भी है
और आपका मनपसंद सफ़ेद भी!
मुलायम लक्स से अपना रंगरूप
निखारिये...लक्स...

चित्रतारिकाओं का शुद्ध, मुलायम सौंदर्य साबुन

नंदा, पंचदीप चित्र की फ़िल्म 'आज और कल' की तारिका

'जैसे सुन्दर रंग... वैसा सुन्दर साबुन!' नंदा कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 121-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न व्यापार ! न प्रचार !!

के-व-ल

परोपकार

"पर हित सरिस धरमु नहिं भाई"

बन्धुवर !

नीचे लिखी तीनों औषधियाँ मुझे श्री 'औघड़ बाबा' नाम से प्रसिद्ध साधु जी से सन् १९५० में प्राप्त हुई थीं। मैं इन्हें तभी से बाबा जी के आदेशानुसार आस-पास की जनता में बिल्कुल मुफ्त बाँटता रहा हूँ। और इन्होंने अपने चमत्कारी प्रभाव से निराश रोगियों को भी स्वास्थ्य-लाभ पहुँचाया है। अतः अब अधिकतम लोगों की सेवार्थ मैंने इन्हें लागत मूल्य पर देने का निश्चय किया है। क्योंकि इतनी अधिक मात्रा में मुफ्त दवा देते रहने की सामर्थ्य मुझमें नहीं। अतः इन औषधियों के विषय में अधिक तूल तमाल न बाँधता हुआ मैं केवल इतना ही निवेदन करता हूँ कि जिनका फकीरी जड़ी-बूटियों में विश्वास हो तथा जो सज्जन सब प्रकार निराश हो चुके हों वे इन फकीरी औषधियों के चमत्कार की परीक्षा एक बार अवश्य कर देखें।

१--एक्ज़ीमा महौषधि :--पुराने से पुराने एक्ज़ीमा, चम्बल को जड़ से मिटा देती है। मूल्य ५) रु०

२--बालौषधि :--बालकों के बढ़े हुए जिगर तथा सूखा मसान की अचूक औषधि। मूल्य ६।) रु०

३--कर्णौषधि :--यह औषधि पुराने से पुराने बहते हुए कान के लिए जादू का काम करती है। बहरेपन आदि के लिए भी लाभदायक है। मूल्य २।।) रु०

पता :--**ए० एस० चौहान एम० ए० एल० टी०, गुरुकुल नारसन, जिला सहारनपुर (उ० प्र०)।**

नोट--दवा मँगाने के लिए अग्रिम मूल्य भेजना आवश्यक है।

भारत में अंगरेजी राज

(दो खण्डों में)

पं० सुंदरलाल द्वारा लिखित इतिहास-प्रसिद्ध इस ग्रन्थ में अंग्रेजी राज के प्रारम्भिक १०० वर्षों के अकाट्य तथ्यों का ब्यौरा दर्ज है। दोनों खण्डों में कुल मिला कर १०१९ पृष्ठ हैं और कई एक बहुत दुर्लभ चित्र भी हैं। इस पुस्तक की कुछ ही प्रतियां शेष हैं। आज ही अपना आर्डर भेज कर प्राप्त कीजिए।

मूल्य :--

कपड़े की जिल्द में : १० रु० प्रत्येक खण्ड

कागज़ की जिल्द में : ८ रु० प्रत्येक खण्ड

मिलने का पता :--

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय,

पुराना सचिवालय, दिल्ली-६

DA 62/366

हिन्दी राष्ट्र-भाषा कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

भूतपूर्व राष्ट्रपति--डा० राजेन्द्रप्रसाद

राष्ट्र-भाषा कोश

पृष्ठ-संख्या--लगभग १६००

मूल्य १४ रु०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

तुरंत आर्डर भेजिए

माल मंगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनमोल प्रकाशन

	रु० न० पै०
सम्पूर्ण गांधी वांगमय, खण्ड १ व २ सजिल्द	५·५०
साधारण	३·००
खण्ड ३, ४, ५ व ६	७·५०
महात्मा गांधी (चित्रावली)	१०·००
राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के भाषण (१९५२-५३)	३·५०
भारत की एकता का निर्माण (सरदार पटेल के भाषण)	५·००
देशबन्धु चित्तरंजन दास (डिमाई अठपेजी १८६ पृष्ठ)	२·००
दादा भाई नौरोजी (डिमाई अठपेजी २३४ पृष्ठ)	२·००
गुरुदेव रवीन्द्रनाथ (सचित्र) लेखक क्षतीशराय	२·५०
रूसी-हिन्दी शब्द कोष (ले० वीर राजेन्द्र ऋषि)	३५·००
भारत तथ्य और आंकड़े (सचित्र)	३·००
भारत में अंगरेजी राज्य, भाग १ और २ सजिल्द	१०·००
साधारण	८·००
अशोक के धर्म लेख (नक्शे सहित)	१·००
श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां	३·००
भारत के जंगली जीव	३·००
भारत के गौरव, जीवनियां, भाग १, २ व ३	१·२५ प्रत्येक
नवीन भारत के निर्माता	१·००
हमारे वृक्ष	२·५०

सूची-पत्र के लिए लिखिए

डाक आदि व्यय के लिए १२½ प्रतिशत और रजिस्ट्री के लिए ५० न० पै० अतिरिक्त। २५ रु० के आर्डर पर डाक खर्च माफ।

मिलने का पता :

प्रकाशन विभाग

सूचना व प्रसारण मन्त्रालय, पुराना सचिवालय,

दिल्ली–६

बम्बई : बोटावाला चैम्बर्स, फिरोज़ शाह महता रोड, फोर्ट

कलकत्ता : आकाशवाणी भवन, ईडन गार्डन

मद्रास : आनन्द सागर, ८ सैन्थोम हाई रोड

DA 62/347

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१--सम्पादकीय २२५
२--भारतीय संस्कृति में अतिथि-सत्कार--श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा २३३
३--कृष्णलीला (कविता)--श्री शिवाधार पाण्डेय २३५
४--'धर्म-निरपेक्षता बनाम राष्ट्रीय संस्कृति'--प्रोफेसर कुवेरनाथ राय एम० ए० .. २३६
५--विलियम केरी--श्री मोहनसिंह सेंगर .. २४२
६--चौमुख दिवला बार धरूँगी चौबारे पर--श्रीमती कमला रत्नम् २४४
७--ज्योतिर्भिक्षा (कविता)--श्री 'स्वर्णकिरण', एम० ए० .. .. २५१
८--पश्चिमी एशिया में सभ्यता का अरुणोदय--श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल २५२
९--अतीत के आलोक में हिन्दी की समृद्धि--मुनि श्री नथमलजी २५७
१०--महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१९)--पंडित व्रजमोहन व्यास २५९
११--परमाणु बम--विनाश का अग्रदूत--श्री सुरेशचन्द्र गौड़ २६५
१२--पाँच मुक्तक (कविता)--प्रो० आनन्द-नारायण शर्मा २६८
१३--पांचाल की मिट्टी की पुरानी मूर्तियाँ--श्री सुरेन्द्रमोहन मिश्र २६९
१४--कश्मीरी कहावतों में सम्बोधन शैली--श्री शिबनकृष्ण रैना २७२
१५--आँगनों के बीच--क्या आपकी पत्नी आपसे नाराज हैं?--श्रीमती शीला शर्मा .. २७३
घर-गृहस्थी--ओहो! बाजार जा रही हैं? २७४
१६--राधा--श्री डी० वी० रामकृष्णराव .. २७५
१७--चिर युगों का संचित ज्ञान--अनु० श्री रमेश गुप्त २७७
१८--मेहमानदारी--अनु० एम० ए० 'फिर-दौसी' २७८
१९--देखा-सुना--श्री मनमोहन गुप्त .. २८२
२०--बे मौसम दुबिधा की बदली (कविता)--श्री शिवसिंह 'सरोज' २८७
२१--१९०६ की सरस्वती--सत्कविता पर बात-चीत--राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल० .. .. २८८
२२--नवीन प्रकाशन २९०
२३--मनोरंजक संस्मरण २९२
२४--'सरस्वती' के हीरक जयंती उत्सव का विवरण (गतांक से आगे) २९३

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य--एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान--श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

श्रीभगवत्तत्त्व

प्रणेता

श्री स्वामी हरिहरानन्दजी सरस्वती (करपात्री)

इस ग्रन्थ में श्री स्वामी करपात्रीजी ने वेदान्तरससार, निर्गुण या सगुण, श्रीकृष्ण जन्म और बालक्रीड़ा, व्रजभूमि, श्रीरासलीला रहस्य, भगवान् का मंगलमय-स्वरूप, श्रीरामभद्र का ध्यान गणपति माहात्म्य, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत धर्म के गूढ़ तत्त्वों की व्याख्या करके जनता का अमूल्य उपकार किया है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने से धर्म का तत्त्व समझ में आ जाता है। अच्छे पुष्ट कागज पर छपी ७०० से अधिक पृष्ठों की इस कल्याणकारी पुस्तक का मूल्य केवल ३) है जो पुस्तक के आकार को देखते हुए कुछ भी नहीं है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10 SEP 1962

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

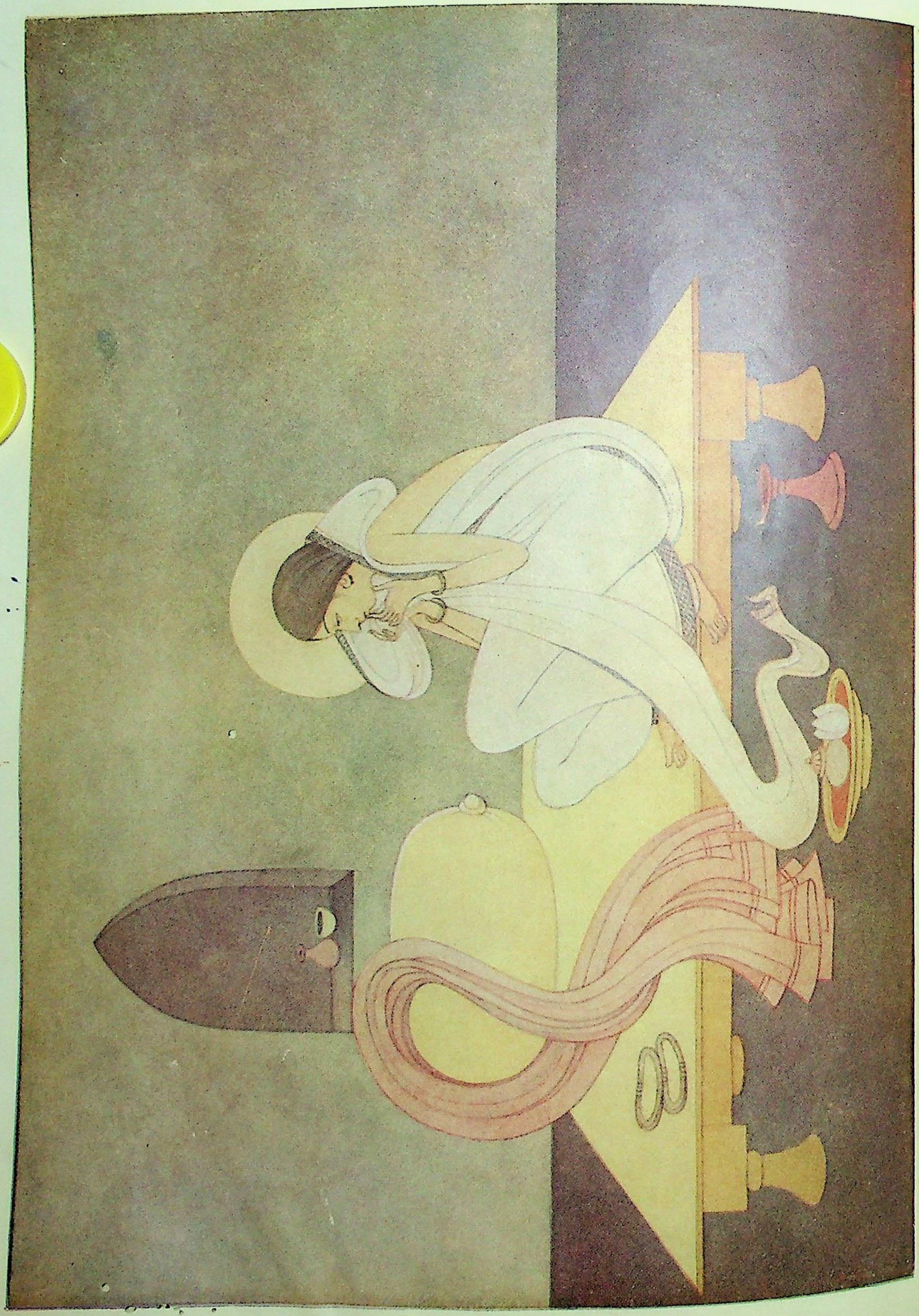

विरहिणी विष्णुप्रिया

चित्रकार—श्री क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकार—श्री धितीन्द्रनाथ मजूमदार

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७५३
इलाहाबाद : सितम्बर १९६२ : भाद्रपद २०१९ वि०
खण्ड ४
संख्या ३

सम्पादकीय

अखिल भारतीय भाषासम्मेलन—गत मास दिल्ली में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में विभिन्न भारतीय भाषाओं के मान्य विद्वानों ने देश की वर्तमान भाषा-सम्बन्धी स्थिति पर विचार किया। इसका उद्घाटन श्री काका कालेलकर ने, और इसकी अध्यक्षता मराठी के प्रसिद्ध नाटककार श्री मामा वरेरकर ने की। भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी ने अपना संदेश भेजकर इसे गौरवान्वित किया। अपने संदेश में उन्होंने कहा कि इस बात को देखकर क्षोभ होता है कि कुछ लोगों में राष्ट्रभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं की बुराई करने की प्रवृत्ति हो गयी है। उन्होंने कहा कि कोई भी देश अपनी राष्ट्रभाषा के बिना उन्नति नहीं कर सकता। यदि अँगरेजी रखनी ही है तो उसे कुछ विषयों के अध्ययन के माध्यम के रूप में ही रखना चाहिए। श्री काका कालेलकर जी ने अपने उद्घाटन भाषण में अँगरेजी को देश की सह-योगी या 'सखी' राजभाषा बनाने का विरोध किया और कहा कि जिन नेताओं ने स्वतंत्रता का सारा युद्ध क्षेत्रीय भाषाओं में किया, वे ही आज अँगरेजी को 'सखी' राजभाषा के रूप में इस देश में बनाये रखना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि यदि यह मान भी लिया जाय कि अँगरेजी का अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व है, और उसके माध्यम से प्राविधिक विषय पढ़ाये जाने चाहिए, तो "इस कारण से सरकारी काम के लिए उसे राजभाषा क्यों बनाया जाय?" श्री मामा वरेरकर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अँगरेजी को सहयोगी राजभाषा बनाने का कड़ा विरोध किया और कहा कि गाँधीजी के चेले ही उनके हिंदी-सम्बन्धी प्रयत्नों को व्यर्थ किये दे रहे हैं। देश में शायद ही दो प्रतिशत लोग अँगरेजी से परिचित हैं, किंतु अँगरेजी में कुछ लोगों के निहित स्वार्थ हो गये हैं क्योंकि उसके राजभाषा रहने के कारण वे ही सत्ता के पदों पर रह सकते हैं। इस कारण अँगरेजी न जानने-वाली बहुसंख्यक जनता सत्ता पाने का कभी स्वप्न भी नहीं देख सकती। इस स्थिति का डटकर सामना करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि अँगरेजी के प्रभुत्व के कारण देशी भाषाएँ पनप नहीं पातीं। दक्षिण के प्रोफेसर महादेवन् ने कहा कि सरकार ऐसी चाल चल रही है कि जिससे देशी भाषाएँ पनप न पावें, और बाद में वह यह कहकर कि वे (देशी भाषाएँ) असमर्थ और अपूर्ण हैं, अँगरेजी को इस देश में सदा-सर्वदा के लिए राजभाषा बना दे। प्रसिद्ध विद्वान् डा० रघुवीर इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने लोगों को गांधीजी के इस वाक्य की याद दिलायी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अँगरेजी कभी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।" उन्होंने कहा कि जिन लोगों ने भारत का संविधान बनाया उन्हें उसका पालन करना चाहिए। संविधान में स्पष्ट लिखा है कि १९६५ के बाद राजकाज में अँगरेजी का उपयोग बंद कर दिया जायगा। वह केवल उन विशेष कामों के लिए निश्चित समय के लिए प्रयुक्त होगी जिनका निर्णय संसद करेगा। इस सम्मेलन में राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त भी उपस्थित थे, तथा सेठ गोविंददासजी, श्री वियोगी हरिजी और श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने भी सक्रिय सहयोग दिया।

स्थिति इस प्रकार है। जिस समय भारत का संविधान बना उस समय सद्यःप्राप्त स्वतन्त्रता के कारण देश में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी। जो अँगरेजी और हिंदुस्तानी के पक्षपाती थे वे उस समय हतप्रभ थे। अतएव संविधान सभा ने हिंदी को केंद्र की राजभाषा स्वीकार कर लिया। उस समय यह प्रश्न उठा कि अँगरेजी से हिंदी में काम करने के लिए संक्रान्ति काल की अवधि कितनी हो। इसके लिए मौलाना आज़ाद पाँच वर्ष पर्याप्त समझते थे, किंतु कुछ लोगों ने १५ वर्षों की अवधि आवश्यक समझी। हिंदी के नेताओं ने सरकारी अफसरों और कर्मचारियों तथा देश के अन्य लोगों की कठिनाइयों को देखते हुए संक्रान्ति काल की इस लम्बी अवधि को स्वीकार कर लिया। अतएव संविधान की ३४३वीं धारा में यह लिखा गया कि अँगरेजी केवल १९६५ तक केंद्र की राजभाषा रहेगी। उसके बाद सारा राजकाज हिंदी में होगा, किंतु यदि संसद चाहे तो किसी विशेष कार्य और निश्चित समय के लिए अँगरेजी के उपयोग की अनुमति दे सकेगा। संविधान बनने के बाद सरकार को इस बात की तैयारी करनी थी कि १९६५ से सारा केन्द्रीय राजकाज हिंदी में होने लगे। किंतु दुर्भाग्य से केंद्र में सत्ता उन लोगों के पास थी जो हिंदी के विरोधी और अँगरेजी के अनन्य भक्त हैं। इसके अतिरिक्त, देश में जो हिंदी-विरोधी तत्त्व थे, वे सत्ताधारी लोगों का रुख देखकर शेर हो गये और उन्होंने अँगरेजी को केंद्र की राजभाषा अनिश्चित काल तक बनाये रखने का आंदोलन छेड़ दिया। इससे भारत-सरकार को अँगरेजी बनाये रखने का और भी बल मिल गया और प्रधान मंत्री ने संसद में हिंदी-विरोधियों को यह आश्वासन दे दिया कि हम केंद्र में अँगरेजी को तब तक 'सहयोगी' राजभाषा के रूप में बनाये रखेंगे जब तक अहिंदी-भाषी हिंदी को केंद्र की एकमात्र राजभाषा बनाने की माँग न करें। भारत-सरकार में अधिकांश अधिकारी वर्ग अहिंदी-भाषी--विशेषकर मदरासी--हैं। मंत्रियों में भी बहुत से अँगरेजी के कट्टर पक्षपाती हैं। कुछ मंत्री हिंदी के प्रति मौखिक सहानुभूति अवश्य दिखलाते हैं किंतु उनकी कथनी और करनी में बड़ा अंतर है। वहाँ मुश्किल से दो-तीन हिंदीनिष्ठ मंत्री हैं। अतएव जब राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए स्वर्गीय पं० गोविंदवल्लभ पंत की अध्यक्षता में समिति बनी, तब उसने यह प्रस्ताव किया कि अँगरेजी को १९६५ के बाद भी सहयोगी राजभाषा के रूप में बनाये रखा जाय। इतना साहस तो भारत-सरकार और संसद की इस समिति में भी नहीं था कि वह स्पष्ट रूप से यह कह दे कि हिंदी को हटाकर अँगरेजी को एकमात्र राजभाषा बना दिया जाय। किंतु यह सब जानकार लोग समझते हैं कि अँगरेजी को 'सहयोगी' नाम देकर रखने का व्यावहारिक अर्थ यही है कि केंद्र का सारा काम उसी प्रकार अँगरेजी में होता रहे जिस प्रकार अब तक होता रहा है। केंद्र में अधिकारियों का जो रुख है उससे स्पष्ट है कि वे हिंदी में काम न करेंगे। इस संशोधन के पारित हो जाने पर कोई यह आपत्ति न कर सकेगा कि वे अँगरेजी में काम करते हैं क्योंकि जब अँगरेजी और हिंदी दोनों समान रूप से संविधान-सम्मत राजभाषाएँ होंगी तब अधिकारियों और कर्मचारियों को पूरी छूट मिल जायगी कि वे इनमें से जिस भाषा में चाहें, काम करें। यह सब जानते हैं कि उनमें ९९ प्रतिशत अँगरेजी ही में काम करेंगे। अतएव जिस प्रकार इँगलैंड में राजपद पर राजा रहता है, किंतु शासन मंत्रिमंडल करता है (The king reigns, but the Ministry rules) उसी प्रकार हिंदी 'प्रमुख राजभाषा' के 'पद' पर रहेगी, किंतु शासन अँगरेजी ही करती रहेगी। इस संशोधन के स्वीकार हो जाने से केंद्र में हिंदी का भविष्य अनिश्चित काल के लिए अंधकारमय हो जायगा। इसीलिए इस अहितकर संशोधन का कड़ा विरोध करना आवश्यक है। अखिल भारतीय भाषा-सम्मेलन ने देश के विभिन्न भाषा-भाषी विद्वानों को एकत्र कर देश की जनता तथा विचारकों के मत को जनता के सामने रखकर देश की बड़ी सेवा की है।

अँगरेजी की सुरक्षा में तत्परता, और हिंदी के लिए बहाने--राजभाषा आयोग पर जो संसद की समिति बनी थी, उसके प्रस्तावों पर राष्ट्रपति ने सन् १९६० में यह आदेश दिया था कि केंद्रीय सेवा आयोग की परीक्षाएँ हिंदी और अँगरेजी दोनों भाषाओं के माध्यम से ली जाया करें। परीक्षार्थी को अधिकार हो कि वह इनमें से चाहे जिस भाषा में उत्तर लिखे। किंतु जो भारत-सरकार पंत समिति की सिफारिश की दुहाईदे कर अँगरेजी को सहयोगी राजभाषा बनाने को तत्पर है, वह अभी विचार ही कर रही है कि उपर्युक्त आदेश का पालन कब से किया जाय। जब संसद में श्री अर्जुन अरोड़ा ने कहा कि केंद्रीय गृह विभाग राष्ट्रपति के आदेश का पालन करने में विलम्ब करके उसे व्यर्थ कर रहा है, तब श्री दातार ने उत्तर दिया कि सरकार को सभी सामयिक बातों का विचार करना पड़ता है। इस पर प्रश्न यह उठता है कि क्या राष्ट्रपति ने सब बातों पर सोच-विचार किये बिना ही अपना आदेश दे दिया था? हम जहाँ तक समझते हैं, गृह-मंत्रालय को केवल यह निश्चय करना है कि परीक्षार्थियों को यह विकल्प किस वर्ष से दिया जाय। इस बात को तय करने में दो वर्ष लगा देना, गृह-मंत्रालय की हिंदीनिष्ठा को विज्ञापित नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाशवाणी की भाषा-नीति की प्रतिक्रिया––हमने पिछले अंक में आकाशवाणी के समाचारों की 'हिंदी' के तथाकथित सरलीकरण पर एक टिप्पणी लिखी थी और उसमें दिखलाया था कि सरलीकरण के नाम पर हिंदी को उर्दू बनाया जा रहा है। सारे देश में आकाशवाणी की इस घातक नीति की तीव्र भर्त्सना की गयी। संसद के कांग्रेस दल की बैठक में भी इसकी चर्चा उठी। श्री दिनकर ने बड़ी योग्यता और दृढ़ता से इस नीति का विरोध किया। इस मामले में उन्होंने जो दृढ़ता दिखलायी उसके लिए हिंदी संसार उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा। हिंदी-भाषी क्षेत्रों के ही नहीं, अहिंदी-भाषी क्षेत्रों के भी कितने ही सदस्यों ने श्री दिनकर का समर्थन किया। इस तीव्र विरोध का फल यह हुआ कि कांग्रेस दल के नेता श्री जवाहरलाल नेहरू ने आकाशवाणी की नयी भाषा पर विचार करने के लिए एक समिति बनाना स्वीकार कर लिया। सूचना-मंत्री श्री गोपाल रेड्डी ने उस समिति के सदस्यों के नाम घोषित कर दिये हैं। उसमें सर्वश्री मामा वरेरकर, सेठ गोविंददास, प्रो० मुकर्जी, दिनकर, महावीर त्यागी, प्रकाशवीर शास्त्री, गोपालसिंह, मोतुरी सत्यनारायण और ललित सेन हैं। हमें यह समिति संतोषजनक मालूम होती है और हमें विश्वास है कि वह आकाशवाणी की हिंदी को 'हिंदी' बने रहने में सहायक सिद्ध होगी। हम उत्सुकता से उसके कार्य के परिणाम की प्रतीक्षा करते रहेंगे।

सरल हिंदी क्या है? श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री गोपाल रेड्डी समझते हैं कि हिंदी में संस्कृतमूलक शब्द आ जाने से वह कठिन हो जाती है, और शायद उनकी सम्मति में वही हिंदी सरल है जिसमें अरबी और फारसी के शब्दों की भरमार हो। इस सम्बन्ध में हम अपनी ओर से कुछ न कह कर एक ऐसे मुसलमान विद्वान् का उदाहरण देना चाहते हैं जिन पर पक्षपात का आरोप नहीं लगाया जा सकता। डा० सैयद महमूद की एक उर्दू पुस्तक का अनुवाद 'पूर्वकालीन भारत' के नाम से श्री कारी मुहम्मद वशीरुद्दीन पंडित कादिरी बदायूनी एम० ए० (अलीगढ़) ने किया है। उसकी भूमिका में अनुवादक ने लिखा है:

> "यह विदित है कि यह पुस्तक किसी साहित्यिक विषय की पुस्तक नहीं है। **अतः इसकी भाषा के लिए क्लिष्ट हिन्दी की अपेक्षा सरल हिन्दुस्तानी की ओर ध्यान दिया गया है जिससे कि साधारण जनता भी सुगमतापूर्वक लाभ उठा सके।**"

अब उस भाषा का नमूना भी देखिए जिसे विद्वान् अनुवादक 'साधारण जनता' के योग्य 'सरल हिन्दुस्तानी' कहते हैं:

> "मुगलों के शासन-काल में चित्र-कला उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी थी। इसपर सहस्रों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यूरोपवाले भी इसका लोहा मानते हैं। मैं इस समय केवल हिन्दू कलाकारों के नाम गिनाऊँगा जिससे तुमको यह मालूम हो जाए कि जीवन-क्षेत्र के किसी भी विभाग में बादशाहों ने हिंदुओं को वंचित नहीं रखा।" (पृष्ठ १०६)

> "अब यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि मुसलमान बादशाहों ने विशेष कर मुगलों ने जिनमें औरंगजेब भी सम्मिलित है, हिन्दुओं को साधारणतया बड़ी बड़ी जागीरें दी हैं। और यह उस समय कोई विशेष बात नहीं मानी जाती थी बल्कि जिस प्रकार मुसलमानों की मस्जिदों और मदरसों को जागीरें दी जाती थीं उसी प्रकार हिंदुओं की पाठशालाओं और मन्दिरों को भी जागीरें दी जाती थीं। प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक बादशाह के आदेश पत्र मिले हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि यह एक साधारण बात थी।"
>
> (पृष्ठ १०७)

१६० पृष्ठों की यह पुस्तक आदि से अन्त तक इसी भाषा में लिखी गयी है जिसे अनुवादक ने **"सरल हिंदुस्तानी"** कहा है और जिससे, उनकी सम्मति में, "साधारण जनता भी सुगमतापूर्वक लाभ उठा" सकती है।

हम एक मुसलमान विद्वान् की लिखी 'सरल' भाषा के नमूने को श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री गोपाल रेड्डी की सेवा में प्रस्तुत करते हैं, और यह निवेदन करने का साहस करते हैं कि यह एक मुसलमान विद्वान् की राय में उस जनता के योग्य 'सरल' हिंदी का नमूना है जिसके हित के लिए वे, भ्रमवश, आकाशवाणी की सरल हिंदी को जनता के लिए दुरूह बना रहे हैं और शायद, अनजान में, हिंदी का रूप बिगाड़ रहे हैं।

भाषा कौन बनाता है? हम अधिकारियों के इस दावे ही को अस्वीकार करते हैं कि सत्ता के पदों पर बैठने के कारण उन्हें हमारी भाषा को 'सुधारने' (या बिगाड़ने) का अधिकार है। विधायक और मंत्रीगण अपनी राजनीतिक योग्यता के बल पर देश का प्रशासन संचालित करने के लिए चुने जाते हैं, न कि भाषा के सुधारने के लिए। विशेषकर जब वे लोग ऐसी भाषा में हस्तक्षेप करने लगते हैं जो न तो उनकी मातृभाषा है और न जिसका उन्होंने ठीक तरह से अध्ययन किया है, तब स्थिति और भी असहनीय हो उठती है। जब वे लोग, जो साधारण जनता से सम्पर्क में आकर उसकी भाषा का केवल कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, अपने को उस भाषा के 'सुधार' करने का अधिकारी समझ लेते हैं तब स्थिति जितनी हास्यास्पद हो जाती है उतनी ही भयंकर भी हो जाती है––यदि वे सत्ताधारी भी हों। भाषाएँ समयानुसार बदलती रहती हैं। जो अँगरेजी आज चलती है, वह दो-चार शती पुरानी अँगरेजी से भिन्न है। किंतु ये परिवर्तन साहित्यकार करते हैं जिन पर नाना प्रकार के सांस्कृतिक प्रभाव पड़ते हैं। भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का एक कोमल और संचेत्य माध्यम है। यदि अनाड़ी व्यक्ति के हाथों में वह पड़ जाय तो उसकी अपार क्षति हो सकती है। हिंदी का वह रूप चलेगा जिसे हिंदी के साहित्यकार और कवि स्वीकार करके चलावेंगे। हम जनतंत्र के रहते राजनीतिज्ञों को यह अधिकार नहीं दे सकते। माननीय प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलालजी नेहरू हमारे सबसे प्रिय और आदरणीय नेता हैं, किंतु हिंदी साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हिंदी भाषा के रूप के सम्बन्ध में न तो वे स्वयं अपने को 'अधिकारी' मानेंगे और न हम यह स्वीकार करेंगे कि उन्हें हिंदी भाषा को अपनी रुचि के अनुसार बदल कर उस परिवर्तित रूप को हम पर लादने का अधिकार है। इस संबंध में राष्ट्रकवि ने अपनी इन दो पंक्तियों में सारे हिंदी संसार के मत और उसकी भावना को बड़े संदर ढंग से व्यक्त कर दिया है--

प्रिय पंडितजी रहें हमारे चिर दिन भाग्य-विधाता,
किन्तु वे न होंगे, हम होंगे हिन्दी के निर्माता!

उत्तर प्रदेश में तीसरी कक्षा से अंग्रेजी--मालूम होता है कि भारत सरकार ने इस देश में अँगरेजी भाषा को फैलाने और उसकी जड़ों को मजबूत करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। उसके रुख का देख कर, और शायद उसके आदेशों के अनुसार, राज्य सरकारों ने प्राथमिक विद्यालयों की तीसरी कक्षा से अँगरेजी का पढ़ाना आरंभ कर दिया है। अँगरेजों के समय में दो प्रकार के स्कूल थे--(१) वर्नाक्यूलर प्राइमरी स्कूल, (२) ऐंग्लो वर्नाक्यूलर प्राइमरी स्कूल। उन दिनों केवल ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों की तीसरी कक्षा से अँगरेजी पढ़ायी जाती थी। बाद में जनमत और शिक्षाशास्त्रियों के मतानुसार उसका अध्ययन छठवीं कक्षा से आरंभ किया जाने लगा। ये ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल प्रायः नगरों में होते थे। गाँवों में अँगरेजी पढ़ाने का दुःसाहस अँगरेजों ने भी नहीं किया। किंतु हमारी स्वदेशी सरकार में अँगरेजी के प्रचार का उत्साह अँगरेजों से भी अधिक है। उसने तय किया है कि गाँवों के प्राइमरी स्कूलों में भी तीसरी कक्षा से अँगरेजी अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाय। अब प्राइमरी स्कूलों में हाईस्कूल उत्तीर्ण अध्यापक रखे जाने लगे हैं। वे अब अँगरेजी भी पढ़ाएँगे। हिंदी पढ़ाने के लिए किसीको कोई अतिरिक्त वेतन नहीं दिया जाता, किंतु जो अध्यापक इन प्राइमरी स्कूलों में अँगरेजी पढ़ावेंगे, उन्हें दस रुपया मासिक अतिरिक्त वेतन दिया जायगा जिससे वे उत्साह और परिश्रमपूर्वक अँगरेजी पढ़ावें। उपेक्षित हिंदी को पढ़ाने के लिए यह उत्साह शायद सरकार को अपेक्षित नहीं है, इसलिए हिंदी पढ़ाने के लिए बेचारे हिंदी अध्यापकों को कोई अतिरिक्त वेतन नहीं दिया जायगा। इन अँगरेजी अध्यापकों को अँगरेजी पढ़ाने का विशेष प्रशिक्षण देने के लिए प्रत्येक जिले में अल्पकालीन प्रशिक्षण केंद्र खोले गये हैं। अँगरेजी पढ़ाने की योजना कई चरणों में पूरी की जायगी। गत जुलाई से उसका प्रथम चरण आरंभ किया गया है। कई हजार प्राइमरी स्कूलों में उसका पढ़ाना आरंभ कर दिया गया है। सुना जाता है कि जुलाई से मार्च तक (आठ महीनों के लिए) उत्तर प्रदेश की सरकार ने दस लाख अस्सी हजार रुपये अँगरेजी पढ़ानेवाले अध्यापकों के अतिरिक्त वेतन के लिए स्वीकार किये हैं। इन आठ महीनों में प्रत्येक अध्यापक को ८० रुपया भत्ता मिलेगा। इस हिसाब से यह मालूम होता है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रथम वर्ष में १३,५०० प्राइमरी स्कूलों की कक्षा तीन में अँगरेजी की पढ़ाई आरंभ कर दी है। तीन वर्ष बाद प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में एक पूर्णकालीन अँगरेजी अध्यापक रखना होगा। क्योंकि तब उसे तीन कक्षाओं (३, ४, ५) को अँगरेजी पढ़ानी होगी। १९५८ के बाद की शिक्षा विभाग की वार्षिक रिपोर्ट हमें उपलब्ध नहीं है। इसलिए हम नहीं कह सकते कि राज्य में प्राइमरी स्कूलों की संख्या आज कितनी है। १९५८ में ३१,८९८ प्राइमरी स्कूल थे। १९५८ के बाद इतने अधिक नये स्कूल खुले हैं कि अब उनकी संख्या ५०,००० के लगभग होगी, या शीघ्र हो जायगी। अतएव अंततोगत्वा हमारी सरकार को प्राइमरी स्कूलों में अँगरेजी पढ़ाने के लिए कितने अध्यापकों को नियुक्त करना पड़ेगा, इसका अनुमान किया जा सकता है। यदि प्रत्येक अध्यापक का महँगाई भत्ता समेत वार्षिक औसत वेतन ९०० रुपया भी मान लिया जाय तो उत्तर प्रदेश की जनता को सरकार को इस अँगरेजी-भक्ति का क्या मूल्य चुकाना होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है। सरकार ने, सुना है, इस वर्ष चार लाख रुपये अँगरेजी कक्षाओं की पुस्तकों, उपस्कर आदि के लिए स्वीकार किया है। बेचारे गरीब देहाती विद्यार्थियों को अँगरेजी पुस्तकों, कापियों आदि के लिए जो खर्च करना पड़ेगा, वह अलग है। और इस सबका परिणाम क्या होगा? सन् १९५८ में प्राइमरी स्कूलों के विद्यार्थियों की संख्या २७,३७,८२७ थी। जूनियर हाई स्कूलों में ४,२७,०२५ छात्र-छात्राएँ थीं। अर्थात् प्राइमरी के २७ विद्यार्थियों में केवल ४ आगे पढ़ाई जारी रखते हैं। शेष २३ किसानी या और धंधों में लग जाते हैं जहाँ थोड़े ही समय में उनका अँगरेजी का अल्प ज्ञान काफूर हो जायगा। अतएव सोचने की बात यह है कि गाँवों के प्राइमरी स्कूलों में अँगरेजी पढ़ाने में जो व्यय किया जायगा उसका क्या उपयोग है? क्या राज्य का करोड़ों रुपया उन लाखों बालक-बालिकाओं पर अँगरेजी पढ़ाने में खर्च करना चाहिए जो स्कूल छोड़ने के कुछ ही दिनों बाद अँगरेजी बिलकुल भूल जायँगे, और जिसका उन्हें अपने देहाती जीवन में कोई उपयोग नहीं है? क्या उनका वह समय और श्रम जो अँगरेजी की निष्फल पढ़ाई में नष्ट किया जा रहा है, हिन्दी आदि के ज्ञान को दृढ़ करने में लगाना अधिक उपयोगी न होगा? यदि जनता की गाढ़ी कमाई के इस भारी अपव्यय का कोई औचित्य हो तो उसे जनता को समझाना चाहिए। हमें अभी तक प्राइमरी की तीसरी कक्षा से सब स्कूलों में अनिवार्य अँगरेजी की शिक्षा की योजना शिक्षा-सिद्धान्त के प्रतिकूल, देश और छात्रों के लिए अनावश्यक और हिंदी की प्रगति के लिए बाधक मालूम पड़ती है। देश के सब समझदार व्यक्ति इसका विरोध करेंगे।

ब्रह्माण्ड-यात्रा में नयी उन्नति--गत मास रूस ने ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष यात्रा में एक नयी और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की। उसने अभी तक इस संबंध में जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य किया है, वह संक्षेप में इस प्रकार है: (१) उसने पहिले 'वास्तक १' नामक अंतरिक्ष यान को आकाश में भेजा जिसमें एक ब्रह्माण्ड यात्री था (श्री गगारिन)। उस अंतरिक्ष यान ने पृथ्वी की एक परिक्रमा की और वह इच्छित स्थान पर उतार लिया गया। (२) दूसरी बार उसने 'वास्तक २' नामक अंतरिक्ष यान आकाश में भेजा जिसमें एक दूसरा ब्रह्माण्ड यात्री (श्री टिटोव) भेजा गया। उसने पृथ्वी की १७ परिक्रमाएँ कीं और वह भी निर्दिष्ट स्थान पर उतार लिया गया। (३) इसके बाद सात अंतरिक्ष यान, जिनमें कोई यात्री नहीं थे, अंतरिक्ष में वायुमंडल के ऊपरी स्तर का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए भेजे गये। इस अध्ययन के बाद (४) मेजर निकोलेव को 'वास्तक ३' में अंतरिक्ष में भेजा गया। ये लगातार तीन दिन तक पृथ्वी की परिक्रमा करते रहे। (५) 'वास्तक ३' को अंतरिक्ष में भेजने के प्रायः चौबीस घंटे बाद रूस ने 'वास्तक ४' को अंतरिक्ष में भेजा। इसमें कर्नल पोपोविच सवार थे। यह इस सफाई से अंतरिक्ष में प्रविष्ट किया गया कि वह ठीक उसी कक्ष (आर्बिट) में घूमने लगा जिस कक्ष में 'वास्तक ३' घूम रहा था। इतना ही नहीं, वह इस अचूक निशाने से साध कर कक्ष में बैठाया गया कि दोनों अंतरिक्ष यान एक दूसरे के आगे-पीछे, इतने निकट, परिक्रमा करने लगे कि एक यान का यात्री दूसरे यान को देख सकता था। इनकी आपस की दूरी जान बूझ कर इतनी कम रखी गयी थी। इसी अवस्था में ये दोनों अंतरिक्ष यान दो दिन तक पृथ्वी की परिक्रमा करते रहे। जिस प्रकार ये दोनों यान परिचालित किये गये उससे यह भी संभव है कि यदि रूसी चाहते तो एक यान दूसरे के पास पहुँच जाता, और दोनों एक दूसरे से सटे हुए उड़ सकते थे, तथा एक यान का ब्रह्माण्ड यात्री दूसरे यान में जा सकता था। दो अंतरिक्ष यानों को एक ही निश्चित कक्ष में, एक ही गति से, एक ही ऊँचाई पर बराबर दो दिन तक उड़ाते रहना, और इस बीच उनकी आपसी दूरी वही बनाये रखना--एक ऐसी उपलब्धि है जिसकी केवल कल्पना ही की जा सकती थी किंतु जिसको कार्यान्वित करना असंभव मालूम होता था। तीन दिनों में 'वास्तक ३' ने पृथ्वी के चारों ओर १५ लाख मील से अधिक की यात्रा की। अर्थात् यदि वह चंद्रमा की यात्रा करना चाहता तो पृथ्वी से तीन बार चंद्रमा तक जाकर लौट आ सकता था! 'वास्तक ४' ने साढ़े बारह लाख मील से अधिक की यात्रा की। दोनों ही ब्रह्माण्ड यात्री और यान निर्धारित स्थान पर, इच्छित समय पर, उतार लिये गये। इन अंतरिक्ष यानों में फोटो लेने, समाचार भेजने, यानों के भीतर के दूर-चित्र (टेलीविजन चित्र) भेजने आदि की इतनी सुंदर और पक्की व्यवस्था थी कि दोनों ब्रह्माण्ड यात्री आपस में बातचीत करते थे, वे रूस से बातचीत करते थे तथा उनके चित्र वहाँ दूर-चित्र रजतपट पर दिखलाये भी गये। इन यानों की चाल प्रायः अठारह हजार मील प्रति घंटे थी। ये यान पृथ्वी की जिस कक्ष में परिक्रमा कर रहे थे वह रूस से दक्षिण-पूर्व की ओर चलकर (भू-मध्य रेखा से ६५ अंश पर) साइबीरिया, उत्तरी चीन, जापान के दक्षिणी भाग, प्रशान्त महासागर होती हुई दक्षिण अमरीका के उत्तरी-पश्चिमी भाग को काटती हुई अतलान्तिक महासागर को पार करके उत्तरी योरोप को पार कर फिर रूस में पहुँचकर वृत्त को पूरा करती थी। यह यान दीर्घवृत्तीय (एलिप्टिकल) कक्ष में घूम रहा था। इस वृत्त की पृथ्वी से निकटतम दूरी १०९ मील थी और अधिकतम दूरी (ऊँचाई) १५० मील थी।

रूस के इस कार्य को 'चमत्कार' की ही संज्ञा दी जा सकती है। इससे स्पष्ट है कि आज रूस ने अंतरिक्ष यात्रा में जो उन्नति कर ली है वह मनुष्य की अब तक की चरम उपलब्धि है। यह विज्ञान और मनुष्य के मस्तिष्क की शक्ति का ऐसा उन्नति-बिन्दु है जिस पर पहुँचना मानव इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इस कीर्तिमान की प्रशंसा के लिए उपयुक्त शब्द खोजना कठिन है।

किंतु मानवता को इस शानदार उपलब्धि से क्या लाभ है? जिस वातावरण में ये अंतरिक्ष यान विकसित किये जा रहे हैं, उसमें ये मानवता में अधिकाधिक त्रास ही उत्पन्न कर सकते हैं। यदि रूस और अमरीका में सामरिक शक्ति बढ़ाने की इतनी भयंकर होड़ न हो रही होती तो यह कहना कठिन नहीं है कि ये देश इन यानों के बनाने में अरबों और खरबों रुपये खर्च न करते, क्योंकि उन रुपयों से वे अपने देशों की जनता का जीवन-स्तर उठा सकते थे जिसकी रूस में विशेष आवश्यकता है। किंतु ये दोनों एक दूसरे के भय से प्रेरित होकर, जनता के सुख का बलिदान कर, इन चमत्कारिक आविष्कारों में लगे हैं जिनसे उनकी संहारक-शक्ति अकल्पनीय ढंग से बढ़ती जाती है। अब रूस के ये यान रूस की किसी यंत्रशाला से इस प्रकार परिचालित किये जा सकते हैं कि वे अमरीका के ऊपर इच्छित स्थानों पर होकर निकलें, वहाँके छोटे से छोटे महत्त्वपूर्ण स्थान के चित्र ले लें, दूसरे छोटे अंतरिक्ष यानों को नष्ट कर सकें और शायद वे प्रलयंकर परमाणु या हाइड्रोजन बम भी इच्छित स्थान पर गिरा सकें। इससे अमरीका में जो खलबली मच गयी है, उसका अनुमान किया जा सकता है। अमरीका निश्चय ही ऐसे यानों को बना लेगा, चाहे उसे उनके बनाने में दो-चार वर्षों की देरी लग जाय। और तब तक रूस और कोई नयी वस्तु बना लेगा, या अमरीका कोई नया आविष्कार कर लेगा। विज्ञान के ये सब आविष्कार मनुष्य के मस्तिष्क के कीर्तिकेतु अवश्य हैं, किंतु इसमें संदेह नहीं कि वे मानवता के विनाश के भयंकर साधन भी हो सकते हैं। आज मानवता का भाग्य इन दो राष्ट्रों के वैज्ञानिकों की हथेलियों में है।

रूस के इस चमत्कारपूर्ण कीर्तिमान के बाद ही अमरीका ने एक अंतरिक्ष यान शुक्रलोक की ओर भेजा है। इसकी गति पचीस हजार मील प्रति घंटे है। वह सात-आठ दिन लगातार चलता हुआ शुक्रलोक के पास (प्रायः दस हजार मील दूर) होकर निकलेगा। उसमें दूरचित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजने की व्यवस्था है। शुक्र के निकट पहुँचकर वह उसके चित्र पृथ्वी पर भेजेगा। शुक्रलोक के सामने से निकल कर वह सूर्य के वृत्त में पहुँच जायगा और वहाँ पर वह सूर्य की परिक्रमा करने लगेगा। इस आश्चर्यजनक अंतरिक्ष यान का वृत्तांत जानने को मनुष्य उत्सुक हैं।

रूस कहता है कि हम शीघ्र ही चंद्रलोक की यात्रा पर मनुष्य को भेजेंगे। अमरीका शुक्रलोक का हाल जानना चाहता है। और दोनों के पैरों के नीचे की पृथ्वी उनकी प्रचंड संहारकारी शक्ति के भय से काँप रही है!

हमारें संग्रहालयों को खतरा——संग्रहालयों में ऐसी अनेक बहुमूल्य और अलभ्य वस्तुओं का संग्रह रहता है जो अपने ऐतिहासिक, कलात्मक या सांस्कृतिक महत्त्व के कारण राष्ट्रीय निधि होती हैं। चोरी तथा अन्य प्रकार की हानि और क्षति से उनकी रक्षा करना राज्य और संग्रहालयों के प्रबंधकों का गंभीर उत्तरदायित्व है। किंतु इधर थोड़े ही दिनों में हमारे प्रसिद्ध संग्रहालयों से चोरियों के चिंताजनक समाचार मिले हैं। कुछ दिन हुए, कलकत्ते के आशुतोष संग्रहालय से बहुमूल्य मूर्तियाँ चोरी चली गयीं। नालंदा संग्रहालय से बुद्ध भगवान् की कई अनुपम और अलभ्य मूर्तियाँ चुरा ली गयीं। और तो और, देश के सबसे बड़े और सबसे महत्त्वपूर्ण संग्रहालय——कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय से——पचास हजार रुपये के मूल्य के ऐतिहासिक आभूषण और पुरानी कारीगरी के जरी और कीनखाब के नमूने चोरी चले गये। और इसी समय मथुरा के प्रसिद्ध संग्रहालय की एक पुरानी चोरी, जिसका किसीको पता नहीं था, बड़े नाटकीय ढंग से प्रकाश में आयी।

मथुरा का संग्रहालय सारे संसार में कुशान युग और मथुरा की मूर्तिकला का सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसमें जो मूर्तियाँ हैं, वे कितनी मूल्यवान् हैं, इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसमें प्रदर्शित बुद्ध भगवान् की एक मूर्ति को देखकर एक अमरीकन करोड़-पति इतना मुग्ध हो गया कि उसने उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री को लिखा कि यदि वे उसे बेच दें तो वह उसके लिए छः करोड़ रुपया देने को तैयार है! अभी हाल में यह रहस्य खुला है कि उसी संग्रहालय का, बुद्ध की मूर्ति का एक सिर योरोप के एक प्रसिद्ध संग्रहालय में देखा गया है। ऐसा संदेह किया जाता है कि मूर्ति का यह सिर (जो १४ इंच लंबा है) किसीने इसे संग्रहालय से उड़ाकर किसी योरोपियन के हाथ बेच दिया था, और इस प्रकार यह विदेश चला गया। समाचार-पत्रों में तो छपा है कि वह आठ हजार रुपयों में बेचा गया। किंतु अभी यह ठीक तरह से नहीं कहा जा सकता कि वह कितने में बेचा गया। यह भी कहा जाता है कि इस संग्रहालय से प्रायः तीन सौ मूर्तियाँ या अन्य प्रस्तर-कला के खंड गायब हैं।

मथुरा का संग्रहालय उत्तर प्रदेश सरकार की सम्पत्ति है और उसीके नियंत्रण में है। इधर कुछ दिनों से उत्तर प्रदेश के दोनों सरकारी संग्रहालयों (लखनऊ और मथुरा) की अवस्था असंतोषजनक है। किसी समय मथुरा संग्रहालय के अध्यक्ष प्रसिद्ध विद्वान् श्री वासुदेवशरण अग्रवाल थे। उनके समय में इस संग्रहालय ने बड़ी उन्नति की। अंतिम अध्यक्ष श्री श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी थे। उनके जाने के बाद से अर्थात् प्रायः चार वर्ष से उत्तर प्रदेश की सरकार को उसके लिए कोई सुयोग्य अध्यक्ष नहीं मिला और वह पद रिक्त है। उसका प्रबंध पुनर्वास विभाग के एक जूनियर अधिकारी को दे दिया गया है जो बी० एस्-सी० है। पुरातत्त्व, इतिहास, कला आदि का ज्ञान विज्ञान के स्नातकों को कितना होता है——इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। उत्तर प्रदेश के पुरातत्त्व विभाग ने ऐसी ख्याति प्राप्त कर ली है कि कोई विद्वान् यहाँ आने को तैयार नहीं होता। सुना है कि मथुरा के लिए एक विद्वान् की नियुक्ति भी कर दी गयी, किंतु उन्हें जब वहाँका हाल मालूम हुआ तो उन्होंने आना अस्वीकार कर दिया। लखनऊ संग्रहालय का भी यही हाल है। बहुत दिनों रिक्त रहने के बाद वहाँके अध्यक्ष पद पर एक अनुभवी विद्वान् आये, किंतु वहाँकी अवस्था देखकर वे कुछ सप्ताह रहने के बाद चले गये। उत्तर प्रदेश सरकार ने कई वर्ष पहिले राज्य के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष पद की सृष्टि की थी, किंतु इस राज्य को——जिसमें काशी हिंदू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, लखनऊ और गोरखपुर के विश्वविद्यालयों में पुरातत्त्व विषय में एम० ए० तक शिक्षा होती है और जहाँ के प्राध्यापक कौशाम्बी, राजघाट आदि के महत्त्वपूर्ण उत्खनन कर चुके हैं——इतने वर्षों में अपने पुरातत्त्व विभाग के लिए एक अध्यक्ष नहीं मिल सका। हम स्वयं एक राज्य के पुरातत्त्व विभाग के प्रभारी रहे हैं, और हम जानते हैं कि उत्तर प्रदेश में ऐसे पुरातत्त्वविदों की कमी नहीं है जो राज्य के पुरातत्त्व विभाग का कार्य सुचारु रूप से संचालित कर सकें। उत्तर प्रदेश के ही एक विद्वान् राजस्थान के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष हैं और उन्होंने जो कार्य वहाँ किया है, उसकी सभी जानकार लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उत्तर प्रदेश के अनुभवी पुरातत्त्ववेत्ता सागर विश्वविद्यालय में इस विभाग के अध्यक्ष हैं। और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, किंतु उत्तर प्रदेश सरकार को न तो पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति मिलते हैं, और न संग्रहालयों के अध्यक्ष पदों के लिए, और यहाँ डेप्युटी कलक्टरों और पुनर्वास विभाग के लोगों को पुरातत्त्व ऐसे विशेषज्ञ विभाग के संस्थानों का भार दे दिया जाता है। इसका परिणाम प्रत्यक्ष है। सुना गया है कि इन लोगों की अनुभवहीनता से कई अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रस्तर-मूर्तियाँ टूट गयीं। मथुरा संग्रहालय की मूर्तियों की गड़बड़ी का हाल तो समाचार-पत्रों में भी आ गया है। समाचार-पत्रों के समाचारों पर सदैव विश्वास नहीं किया जा सकता, किंतु किसी दिलजले ने कहा था कि Do not believe a piece of news until it is officially contradicted. (किसी समाचार पर तब तक विश्वास न करो जब तक उसका सरकारी ढंग से खण्डन न किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय।) सो, मथुरा संग्रहालय की गड़बड़ी के संबंध में एक सरकारी खंडन भी निकला। उस खंडन से इस बात की पुष्टि हो गयी कि बुद्ध की मूर्ति का एक सिर अवश्य गायब हो गया है। किंतु उसके महत्त्व को कम करने के लिए सरकारी वक्ता ने लिखा है——

"A mutilated Buddha Head of the Kushan period belonging to the Mathura Museum has been missing for some time and is suspected to have reached Europe. There is no information that this Head was sold for Rs. 8,000 to a foreigner. It is very unlikely that this head could have fetched such a price in India or even abroad."

(मथुरा संग्रहालय का कुशान काल का बुद्ध की मूर्ति का एक टूटा या क्षत-विक्षत सिर कुछ दिनों से गायब है, और यह संदेह किया जाता है कि वह योरोप पहुँच गया है.... इस बात की कोई सूचना नहीं है कि यह सिर किसी विदेशी को आठ हजार रुपयों में बेचा गया। यह कम ही संभव मालूम होता है कि इस सिर का भारत में ही नहीं, विदेश में भी इतना मूल्य मिल सके।) हम इस वक्तव्य को पढ़कर आश्चर्यचकित रह गये। ऐसा मालूम पड़ता है कि उत्तर प्रदेश सरकार के इस विभाग के अधिकारियों की निगाह में टूटी-फूटी या क्षत-विक्षत मूर्ति का महत्त्व ऐसा नहीं होता कि उसके खोने की विशेष चिंता की जाय! संग्रहालयों में तीन-चौथाई मूर्तियाँ क्षत-विक्षत होती हैं। सारनाथ की बुद्ध की प्रतिमा की नाक क्षत है। मथुरा में कनिष्क की मूर्ति के सिर ही नहीं है। और भी कई जगह वह टूटी हुई है। तो क्या इनके खो जाने से कोई विशेष हानि न होगी? जो लोग किसी मूर्ति के क्षत होने का तर्क देकर उसका महत्त्व घटाना चाहते हैं, वे पुरातत्त्व विभाग का कितना भला कर सकेंगे? यदि किसी विद्वान् ने ऐसी बात कही होती तो विद्वत्समाज में उसका ठहरना कठिन हो जाता, किंतु नौकरशाही के लिए ही मानों तुलसीदासजी कह गये हैं——"समरथ को नहिं दोष गुसाईं!" जिस क्षत-विक्षत सिर का महत्त्व कम करने का प्रयत्न उत्तर प्रदेश सरकार के अधिकारी ने किया है, उसे संसार के एक शीर्ष संग्रहालय ने अपने यहाँ प्रमुख रूप से प्रदर्शित करने के योग्य समझा! नौकरशाही और विशेषज्ञों की समझ में यही अन्तर है।

उत्तर प्रदेश के पुरातत्त्व विभाग और उसके संग्रहालयों की दशा शोचनीय और असंतोषजनक है। जब अन्य राज्यों में ये उन्नति कर रहे हैं, हमारे राज्य में इनकी अवनति हो रही है। माननीय मुख्यमंत्री और पुरातत्त्व विभाग के मंत्री को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, नहीं तो कला, संस्कृति और पुरातत्त्व के क्षेत्र में इस राज्य की बदनामी ही नहीं होगी, उसकी अपार क्षति भी होगी। यदि उत्तर प्रदेश सरकार को ऐसे योग्य विद्वान् नहीं मिलते जो संसार के सर्वश्रेष्ठ कुशान काल के संग्रहालय की उचित देख-रेख कर सकें और उसके लखनऊ के संग्रहालय की समुचित व्यवस्था कर सकें तो राज्य और राष्ट्र के सांस्कृतिक हित में यही अच्छा होगा कि वह अपना पुरातत्त्व विभाग और अपने संग्रहालय केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों को माँग कर उनकी देखरेख में रख दे।

उत्तर प्रदेश के ये संग्रहालय राष्ट्रीय दृष्टि से अमूल्य हैं। इनकी सुरक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। हम स्वयं इसे पसंद न करेंगे कि इन पर केन्द्र का किसी प्रकार का नियंत्रण हो। किंतु जैसी अव्यवस्था कुछ वर्षों से चली आ रही है (और जिसके सुधार के कोई लक्षण नहीं दिखलायी पड़ रहे) उसे देखते हुए इस राष्ट्रीय निधि की सुरक्षा के लिए यदि कुछ समय के लिए यह भी आवश्यक हो तो माननीय मुख्यमंत्रीजी को इसमें भी संकोच न करना चाहिए।

विश्वविद्यालय की नियुक्ति में तथाकथित धाँधली का एक उदाहरण——विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में नियुक्तियों के संबंध में आज यह साधारण धारणा है कि उनमें अधिकतर वे ही सफल होते हैं जिनका कोई 'ज़ोर' होता है। चुनाव का उद्देश्य यह होता है कि उपलब्ध लोगों में से सर्वोत्तम व्यक्ति चुना जाय। लोगों को बहुधा यह शिकायत होती है कि चुनाव के समय योग्यता की कसौटी काम में नहीं लायी जाती। इसका एक मनोरंजक उदाहरण लखनऊ के नेशनल हैरल्ड (अगस्त ९, १९६२) में प्रकाशित हुआ है। वह इस प्रकार है:

"लखनऊ विश्वविद्यालय के एक भूतपूर्व विद्यार्थी ने लखनऊ विश्वविद्यालय के अधिकारियों पर नियुक्तियों के मामले में पक्षपात और गड़बड़ी करने का आरोप लगाकर, कुलपति (चांसलर) से उन तीन स्वर्णपदकों को लौटाने की अनुमति माँगी है जो उसे विश्वविद्यालय ने शैक्षिक उपलब्धियों के लिए दिये गये थे।

"ये भूतपूर्व विद्यार्थी श्री देवेन्द्र कौशिक हैं जो कुछ दिनों पहिले तक मेरठ कालिज, मेरठ में प्राध्यापक थे और अब मध्य एशिया विद्या प्रतिष्ठान, ताशकन्द (सोवियत संघ) में केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा चुने जाकर, कार्य कर रहे हैं।

"श्री कौशिक ने १९५५ की एम० ए० की परीक्षा में योरोपियन इतिहास लेकर सर्वप्रथम स्थान पाया। उन्हें फैकल्टी आफ आर्ट्स में एम० ए० में सर्वोत्तम विद्यार्थी होने के कारण कैनिंग कालिज स्वर्ण-पदक मिला, उन्हें एम० ए० इतिहास में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के लिए गोपालचंद्र मुकर्जी स्वर्ण-पदक मिला, और अपने वर्ष में अमरीकन इतिहास में सर्वाधिक अंक पाने के लिए मेर्ली कर्टी स्वर्ण-पदक मिला।

"सन् १९५५ से श्री कौशिक मेरठ कालिज में काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे थे और वहाँ स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाते थे। उन्होंने अपने पी-एच० डी० के अधिनिबंध की सामग्री एकत्र करने के लिए इँगलैंड, पश्चिमी योरोप के कुछ देशों और सोवियत संघ का भ्रमण किया। उस अधिनिबंध को उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया है।

"पिछली अप्रैल में लखनऊ वि० वि० में श्री कौशिक ने पश्चिमी योरोप के इतिहास के प्राध्यापक (लैक्चरर) पद के लिए आवेदन-पत्र दिया। वे साक्षात्कार के लिए बुलाये गये, किंतु वे चुने नहीं गये। इनके बजाय विश्व-विद्यालय ने एक ऐसे अभ्यर्थी को चुना जिसने १९४८ में एम० ए० में केवल द्वितीय श्रेणी प्राप्त की थी। श्री कौशिक के प्रतिवेदन के अनुसार, जो उन्होंने कुलपति और वि० वि० अनुदान आयोग को दिया है, ये सज्जन तेरह वर्ष तक व्यापार करते रहे और उन्हें मुश्किल से दो वर्षों का अध्या-पन का अनुभव था।

"श्री कौशिक का कहना है कि इन अभ्यर्थी को इस स्थायी रिक्त स्थान में अस्थायी रूप से काम करने को बुलाया गया और (उस समय) इस पद को विज्ञापित नहीं किया गया। इन अभ्यर्थी की नियुक्ति चुनाव समिति के साक्षात्कार के बिना ही कर दी गयी जो, श्री कौशिक के कथनानुसार इसलिए की गयी कि 'वे अनुभव की योग्यता प्रदर्शित कर सकें।'

"जिस चुनाव समिति ने श्री कौशिक को नहीं चुना, उसमें, उनका कहना है, दो विशेषज्ञों के बजाय एक ही विशेषज्ञ आये थे। ये विशेषज्ञ वाराणसी के थे और उनका कहना है कि इन विशेषज्ञ का योरोपियन या एशिया के इतिहास से कोई संबंध नहीं है।

"श्री कौशिक ने कहा है कि पाश्चात्य इतिहास के प्राध्यापक के चुनाव में विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने जो पक्षपात दिखलाया है उससे मुझे बहुत दुःख हुआ और (मानसिक) धक्का लगा। इसलिए उन्होंने कुलपति से उन स्वर्ण पदकों को लौटाने की अनुमति देने की प्रार्थना की है जो विश्वविद्यालय ने उन्हें दिये थे।"

हम कुलपति की प्रतिक्रिया की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे, और जानना चाहेंगे कि विश्वविद्यालय तथा विशेषज्ञ का इस संबंध में क्या वक्तव्य है।

यह असावधानी है या अपराध——इधर हाल में खारे पानी की बोतलों में कीड़े और छिपकली, बरफ की सिल में चूहा, दूध की बोतलों में छिपकली, आटे में कीड़ा-मार दवाओं के विष की कई घटनाएँ देश के कई स्थानों में ही नहीं, स्वयं भारत की राजधानी दिल्ली में पकड़ी गयी हैं। हवाबंद शीशियों में सुई लगानेवाले पानी की शिकायतें भी प्रकाश में आयी हैं और महाराष्ट्र, गुजरात तथा आंध्र में ऐसी हजारों शीशियों को मुहरबंद करके उनकी बिक्री रोक दी गयी है। दवाइयों में मिलावट की घटनाएँ कितने ही वर्षों से सुनी जा रही हैं। सरकार के स्वास्थ्य विभाग की दक्षता पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। यदि इससे भ्रष्टाचार प्रमाणित नहीं होता तो कम से कम ऐसी असावधानी तो प्रत्यक्ष मालूम होती है जिसे 'अपराध' कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि जिस असावधानी से लोगों के स्वास्थ्य और जीवन को भय उत्पन्न हो जाय उसे अपराध ही कहा जाना चाहिए। वास्तव में आज जनता को उसके सामान्य उपयोग की कोई भी वस्तु शुद्ध रूप में मिलना कठिन है। घी और दूध की मिलावट तो इतनी सामान्य है कि अब उसकी शिकायत करना ही व्यर्थ समझा जाता है। आटे की मिलावट भी बढ़ती जा रही है। अनाज में जानबूझ कर मिट्टी, कंकड़ आदि मिला देना भी अब सर्वविदित हथकंडा है। चीनी की मिलावट की घटनाएँ भी हमने सुनी हैं। खानेवाला शुद्ध तेल भी कठिनाई से मिलता है। अब दवाओं और साधारण पेय पदार्थों की मिलावट और अशुद्धता की घटनाएँ भी बढ़ रही हैं। वास्तव में समाचार-पत्रों में बहुत कम घटनाएँ प्रकाशित होती हैं——शायद सौ में एक। अतएव यह आवश्यक हो गया है कि सरकार इधर ध्यान दे। वह स्वास्थ्य विभाग की दक्षता बढ़ावे तथा जिन लोगों की असावधानी से यह सब संभव होता है उन्हें अपने कर्तव्य-पालन के लिए विवश करे। मिलावट करनेवालों को पकड़ने और उन्हें दंड देने के लिए कोई सरल और प्रभावी उपाय करने होंगे। ऐसे लोगों को कड़े दंड देने की व्यवस्था का सारा देश समर्थन करेगा। पिछले मास रूस में भ्रष्टा-चार (घूस लेने) के लिए कई अधिकारियों को गोली से उड़ा देने का दंड दिया गया। हम इस सीमा तक जाना तो उचित नहीं समझते, किंतु इस देश में इस प्रकार का अनाचार इतना बढ़ गया है कि उसे रोकने के लिए किसी बहुत ही उग्र उपचार की आवश्यकता मालूम होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति में अतिथि-सत्कार

श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा

अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति की विशेषता है। 'अतिथिदेवो भवो' श्रुति के इस उपदेश को भारत ने सदा अपने जीवन में स्थान दिया है। विदेशियों ने भी भारतीय आतिथ्य-सत्कार की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। कहा जाता है कि जिस घर से अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उस घर का सम्पूर्ण पुण्य अपने साथ लेकर तथा अपना पाप घर-निवासी को सौंपकर लौटता है। कहा गया है--

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
एतद्वृंक्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन्वसति ब्रह्मणो गृहे॥

(कठोपनिषद् १।७)

जिसके घर में ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये रहता है उस मन्दबुद्धि पुरुष की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छाएँ, उनके संयोग से प्राप्त होनेवाले फल, प्रिय वाणी से प्राप्त होनेवाले फल, यज्ञादि इष्ट एवं उद्यानादि पूर्त कर्मों के फल तथा समस्त पुत्र एवं पशु को नष्ट कर देता है।

पिता के द्वारा यमलोक में नचिकेता के भेजे जाने पर, वह तीन दिनों तक वहाँ टिका रहा क्योंकि यमराज उस समय कहीं बाहर गये थे। लौटने पर उनकी पत्नी तथा मन्त्रियों ने उनसे कहा:--

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥

ब्राह्मण के अतिथि रूप में अग्नि ही घरों में प्रवेश करता है। साधु पुरुष उस अतिथि की शांति किया करते है। अतः हे वैवस्वत! इस ब्राह्मण-अतिथि की शांति के लिए जल ले आइए।

यमराज ने नचिकेता की पूजा करने के बाद कहा--

तिस्रो रात्रिर्यदवात्सीर्गृहे मे, अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु, तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व॥

अर्थात्--हे ब्राह्मण! नमस्कार है। आप नमस्कार योग्य अतिथि होकर भी मेरे घर में तीन रात्रि तक बिना भोजन के रहे। अतः एक-एक रात्रि के लिए एक-एक करके मुझसे तीन वरदान माँग लीजिए।

इस प्रकार से यमराज ने नचिकेता को क्रमशः पितृपरितोष, स्वर्गसाधनभूत अग्निविद्या तथा आत्म-रहस्य के विषय में ज्ञान प्रदान करते हुए तीन वरदान देकर अतिथि-सत्कार किया।

अतिथि के विषय में कहा गया है--

अतिथित्वेऽपि वर्णेभ्यो देयं शक्यानुपूर्वशः।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।१०७)

यहाँ पर अतिथि-सत्कार गृहस्थ का सबसे बड़ा यज्ञ बतलाया गया है--

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः।
मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सितः॥

(याज्ञ० १।१११)

शङ्खलिखित स्मृति में बतलाया गया है--

इष्टो वा यदि वा मूर्खो द्वेष्यः पण्डित एव वा।
प्राप्तस्तु वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः॥

(शङ्ख० ६)

यहाँ यह भी कहा गया है कि आसन, पाद्य, फल, पुष्प तथा मीठे वचनों से अतिथि-पूजा करने से प्रथम देवता तथा पुनः पितरों की भी तृप्ति हो जाती है--

अद्भिश्चाऽऽसनवाक्यैश्च फलैः पुष्पैर्मनोरमैः।
तृणैरञ्जलिभिश्चैव देवांस्तृप्येत्पुनः पितॄन्।

(शङ्ख० ९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और देखिए--

दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम्।
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुष्टयम्॥

द्वार पर आये हुए अतिथि को परमेश्वर ही समझकर चारों रीतियों द्वारा उसका सत्कार करना चाहिए। (लघु-व्याससंहिता २।६१)

वृहत् पराशर-स्मृति में अतिथि-सत्कार का बड़ा ही महत्त्व कहा गया है। वहाँ अतिथि को विष्णु[१] का रूप बतलाते हुए यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों में से यदि किसी भी वर्ण का अतिथि द्वार पर आ जाये तो गृहस्थ को चाहिए कि निःसंकोच उसका आतिथ्य करे (क्योंकि) अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का सबसे बड़ा धर्म है। अगर कहीं वैश्य या शूद्र (अतिथि) ब्राह्मण[२] के यहाँ पधारे, तो ब्राह्मण को चाहिए कि उसे अपने बान्धवों के साथ भोजन में सम्मिलित करते हुए उसका आतिथ्य सम्मानपूर्वक करे। इसी प्रकार क्षत्रियों को भी चाहिए कि वे वैश्य तथा शूद्र का आतिथ्य करें क्योंकि अतिथिसत्कार करना सभी वर्णों का कर्त्तव्य है। अतिथि कैसा भी क्यों न हो, काना[३] हो, बहरा हो या कुष्ठ आदि रोगों से पीड़ित भी हो, तो भी उसे द्वार पर आये हुए वैश्य देवता के रूप में देखते हुए उसका सत्कार करे। जो भक्त, बालक[४] वृद्ध का बिना विचार किये अतिथियों की अनन्य भक्ति से पूजा करता है उसके ऊपर भगवान् विष्णु सदा प्रसन्न रहते हैं।

मनु का कहना है--

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।

(मनु० ३।१०६)

मनुस्मृति में गृहस्थ के लिए सर्वप्रथम ब्राह्मण अतिथि को भोजन करा लेने के पश्चात् स्वयं भोजन करने का उल्लेख है। यथा--भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि। भुंज्यातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पति॥ (मनु० ३।११६) विष्णुपुराण में गृहस्थ को ही सभी प्राणियों का आश्रय देनेवाला कहा गया है। इसलिए गृहस्थ पुरुष को श्रद्धापूर्वक सभी जीवों के उपकार के लिए पृथ्वी पर अन्नदान करने की आज्ञा भी दी गयी है। अन्त में अतिथि की प्रतीक्षा में कुछ देर तक आँगन में ठहरने को कहा है। अगर उक्त समय पर कोई अतिथि आ जाय तो स्वागतादि से उसको[५] आसन देकर और चरण धोकर सत्कार करे। फिर श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर, मधुर वाणी से[६] प्रश्नोत्तर करके तथा उसके जाने के समय कुछ दूर तक पीछे-पीछे जाते हुए उसे प्रसन्न करने का वर्णन मिलता है।

पद्मपुराण में कहा है--

सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः।
एवं गृहस्थो मुक्तात्मा देवतातिथिपूजकः॥

(पद्म पु० स्वर्ग० ५७।७५)

संकृति के पुत्र महाराज रन्तिदेव तो भारतीय आतिथ्य के मूर्तिमान् प्रतीक हो गये हैं। पुराणों में उनकी कथा मिलती है। उनके राजकाल में नित्य ही सहस्रों अतिथि पधारते और इस प्रकार से कुछ ही दिनों में उनका राज्य-भवन अतिथि-शाला हो गया था। फलतः एक दिन ऐसा भी आया जब पूरा राज्य-कोष समाप्त हो गया। जो एक दिन राजा था वह नितान्त अकिंचन हो गया। रन्तिदेव अपनी स्त्री तथा पुत्र के साथ जंगलों में मारे-मारे फिरने लगे। कन्दमूल फल या कोई कुछ बिना माँगे ही दे दे तो वही उनकी आजीविका हो जाती थी। एक बार वे ऐसे जंगल में पहुँचे जहाँ जीवन धारण करने का कोई साधन नहीं था। भूख और प्यास से व्याकुल होकर कोई कहाँ तक चल सकता है! अन्ततः वे एक स्थान पर

१--विष्णुरूपोऽतिथिः सोममुत्तरार्थमुपागतः।
इति मत्त्वा महाभक्त्या वृणुयाद्भनोजनाय तम्॥

२--वैश्यो वा यदि वा शूद्रो विप्रगेहं समाव्रजेत्। तौ भृत्यैः सह भोक्तव्याविति पाराशरोऽब्रवीत्॥ (वृहत्पराशर स्मृ० ४।१९७, २०७)

३--क्लीवो वा यदि वा काणः कुष्ठी वा व्याधितोऽपि वा। आगतो वैश्वदेवान्ते द्रष्टव्यः सर्वदेववृत्॥ (वृहत्पराशर० ४।२०८)

४--योऽतिथिं पूजयेद्भक्तया अन्याभ्यागतमेव च। बालवृद्धादिकं चैव तस्य विष्णुः प्रसीदति॥ (वृहत्परा० ४।२१०)

५--अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च॥

६--श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पायेद् गृही॥
(श्रीविष्णुपु० ३।११।५१।६०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिथिल होकर लेट गये। वहाँ उन्होंने अपनी पत्नी तथा पुत्र को भूख और प्यास से एक-दो दिन नहीं, पूरे अड़तालीस दिनों तक तड़पते हुए देखा। फिर भी पता नहीं कैसे उनके प्राण टिके रहे। अब रन्तिदेव तथा उनके परिवार में उठने तक की शक्ति नहीं रह गयी थी। उनचासवाँ दिन आया, भगवान् भास्कर के निकलने के कुछ ही देर पश्चात् एक व्यक्ति ने आदरपूर्वक खीर और शीतल जल निवेदित किया। उस समय अचानक उनके मन में यह विचार आया कि जीवन में प्रथम बार, आज क्या अतिथि को बिना भोजन कराये ही मुझे भोजन करना पड़ेगा? तभी उनके कानों में एक ब्राह्मण की आवाज पड़ी--राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, मैं भूखा हूँ! उन्होंने बड़ी श्रद्धा से ब्राह्मण को भोजन कराया। ब्राह्मण के सन्तुष्ट होकर चले जाने पर राजा ने बची हुई खीर के तीन हिस्से लगाये। स्त्री और पुत्र को उनका हिस्सा सौंपकर स्वयं खानेवाले ही थे कि एक शूद्र आ गया और खाने को माँगने लगा। उन्होंने उसे भी भोजन कराया पर उसके जाने के बाद ही एक दूसरा अतिथि भी आ गया जिसके कुछ कुत्ते भी थे। वह कहने लगा--राजन्! मैं और मेरे ये कुत्ते बहुत भूखे हैं। राजा ने अपनी बची हुई सम्पूर्ण खीर उसे दे दी जिससे अतिथि तथा उसके कुत्ते पूर्ण सन्तुष्ट हो गये। अब महाराज रन्तिदेव के पास सिर्फ थोड़ा-सा जल शेष रह गया था, और उस जल से वे अपनी तृषा की शान्ति करना चाहते थे। पर विधाता को यह भी स्वीकार नहीं था। उसी समय एक चण्डाल आया और अपने को अधिक प्यासा बताते हुए पानी के लिए याचना की। वस्तुतः भगवान् अपने भक्त की परीक्षा ही कर रहे थे। किन्तु इधर उनका भक्त भी उनसे कम न निकला। अपने निकलते हुए प्राण की परवाह न करते हुए राजा ने जल परमेश्वर-रूपी अतिथि को देते हुए कहा था--

क्षुत्तृड्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः,
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे।

अर्थात् "हे नारायण! इस जीवन की लालसा से व्याकुल प्राणी के रूप में तुम्हीं मेरे सम्मुख उपस्थित हो और मैं यह जल तुम्हींको अर्पण कर रहा हूँ। जीने की इच्छा से व्याकुल प्राणी को जल देने से मेरी क्षुधा, पिपासा, मानसिक तथा शारीरिक श्रम, दीनता, खिन्नता, विषाद, मूर्छा आदि सब दुःख दूर हो गये।" राजा का दिया हुआ पूरा जल पीकर सन्तुष्ट होकर चण्डाल चला गया। रन्तिदेव चण्डाल के जाते ही लड़खड़ा कर गिर गये। पर कोमल हाथों का स्पर्श पाते ही जब उन्हें होश हुआ, तो देखते हैं कि स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा धर्मराज उपस्थित हैं। अब महाराज रन्तिदेव को अपने ब्राह्मण, शूद्र, कुत्ते से घिरे हुए शिकारी तथा चण्डाल रूपी अतिथियों को पहचानने में देर न लगी। अतिथि-धर्म और उसके प्रतीक महाराज रन्तिदेव धन्य हैं।

कृष्णलीला

श्री शिवाधार पाण्डेय

क्षितिज में है अरुण उछला
गगन में हैं स्वर्ण बादल!
यह उषा है या अरुण है
सूर्य ही का या कृपादल?
क्षितिज में है स्वर्ण छाया
गगन में हैं धवल बादल।
यह विवस्वत की प्रसादी
कृष्ण का या सत्य कलकल?
क्षितिज में कन कन कनक
मण्डल धवल से भी धवल!
सूर्य की क्या यह तपस्या
कृष्ण की माया प्रबल बल?
क्षितिज है सब गौर छाया
गगन में आदित्य झलझल।
कृष्ण की लीला निराली
कृष्ण का आनन्द पल पल!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-निरपेक्षता बनाम राष्ट्रीय संस्कृति

प्रोफ़ेसर कुबेरनाथ राय एम० ए०

कभी-कभी अधकचरे प्रगतिशीलों द्वारा और कभी-कभी कट्टरपंथी अ-हिन्दू बन्धुओं द्वारा यह प्रश्न पत्रों में आजकल उठाया जा रहा है कि धर्म-निरपेक्ष राज्य में सरकारी मन्त्री होली-दीवाली क्यों मनाते हैं अथवा सरकारी प्रकाशनों के मुख पृष्ठों पर हिन्दू प्रतीकों के द्वारा सजावट क्यों होती है एवं राजकीय समारोहों पर अभ्यर्थना-पद्धति एवं शृंगार-विन्यास में भी हिन्दू-धर्म द्वारा समाहृत कला-प्रतीकों को क्यों महत्त्व दिया जाता है। दो-तीन वर्ष पूर्व कलकत्ते के एक उर्दू दैनिक में एक समाचार पढ़ा था कि असम राज्य के एक मन्त्री महोदय ने महात्मा गांधी की मूर्त्ति को माल्य-प्रदान करने से इसलिए इंकार कर दिया कि उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस लगने का उन्हें भय हो गया, यद्यपि अरब मिस्र या अफ़गानिस्तान के राजदूतों के मन में यह ठेस का भाव उठा ही नहीं। इस कार्य की कुछ क्षेत्रों में टीका-टिप्पणी होने के कारण 'जमैयत-उल-उलमाए-हिन्द', जो मुस्लिम बुद्धि-जीवियों की "प्रमाणित" राष्ट्रीय संस्था है, की ओर से यह वक्तव्य निकला कि मन्त्री महोदय का उक्त कार्य इस्लाम की शिक्षाओं के अनुकूल हुआ है और कोई भी भारतीय मुसलमान गैर-इस्लामी नायक या नेता के प्रति श्रद्धा अर्पित करने के लिए वाध्य नहीं है । वक्तव्य की प्रामाणिकता का तो पता नहीं, पर उक्त घटना असम के अनेक व्यक्तियों के मुँह से सुनी गयी है । ये सब बातें मन में कुछ प्रश्नों को उठाती हैं। किसी देश के सांस्कृतिक उत्तराधिकार और उसके सम्प्रदायों में क्या सम्बन्ध है? हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति दो वस्तुएँ हैं या एक? भारतीय संस्कृति कितने अंशों तक हिन्दू-संस्कृति है? क्या "भारतीय-हिन्दू=+०" का समीकरण सत्य है? धनात्मक शून्य को सरकारी पैमाने पर कितना मूल्य मिलना चाहिए? क्या धर्म-निरपेक्ष राज्य से हिन्दू कला और हिन्दू-भावधारा एवं हिन्दू-वाङ्मय के प्रतीकों को निष्कासित कर देने पर यह देश 'भारत' जैसा लगेगा अथवा 'अरब' या 'वेटिकन-सिटी' (पोप-राज्य) जैसा? ये सारे प्रश्न हमें राष्ट्रीय संस्कृति और धर्म-निरपेक्षता के सामंजस्य पर विचार करने को बाध्य करते हैं। ये प्रश्न ऐसे हैं जिन्हें भलेमानस लोग शील-मुरौवत के कारण या धूर्त्तता के कारण उठाना ही नहीं चाहते हैं। पर राष्ट्रीय जीवन के पीछे ये प्रश्न प्रेत की तरह लगे हैं और इन्हें खटाई में डालने की अपेक्षा वीरतापूर्वक इनका सामना करना देश के लिए अधिक हितकर होगा।

श्री आर० देवनन्दन ने, जो बँगलोर के कैथोलिक चर्च के मुख्य अधिकारी हैं, अखिल भारतीय-एकता-सेमिनार में अपना मत व्यक्त किया था कि सेमेटिक धर्मों (इस्लाम और ईसाई) की प्रवृत्ति आर्य धर्मों, विशेषतः हिन्दू धर्म से भिन्न है, एवं इन सेमेटिक धर्मों की मूल आत्मा है प्रचार-अभियान (मिशनरी कम्पेन) जिसे राष्ट्रीय एकता की रक्षा के लिए हिन्दू-धर्म को 'बरदाश्त' करना होगा। हम भी मानते हैं कि धर्म-निरपेक्ष ढाँचे में प्रचार-अभियान की स्वतन्त्रता, एक विशेष सीमा तक ही सही, देनी ही होगी। यह तो ठीक ही है। पर साथ ही यह भी ठीक है कि यह "बरदाश्त" एकांगी नहीं होगा। सेमेटिक धर्मों को भी आर्य-वातावरण में बहुत-सी बातों को "बरदाश्त" करने के लिए तैयार होना होगा। सहिष्णुता के बिना राष्ट्रीय जीवन एक डग भी आगे नहीं चल सकता। पर सहिष्णुता द्विपक्षीय होती है, एकांगी नहीं। हमें आज द्विपक्षीय सहिष्णुता का सूत्र खोजना है। इस सांस्कृतिक-धार्मिक सन्तुलन का मूल खोजने के लिए आवश्यक है कि हम धर्म-निरपेक्षता और राष्ट्रीय संस्कृति के बीच के सूक्ष्म सम्बन्धों का विवेचन करें। इस विवेचन में उपर्युक्त सारे प्रश्नों का उत्तर अपने-आप आ जायगा।

(२)

'संस्कृति' शब्द को परिभाषा की मुश्कें चढ़ाकर हम अधिक दूर तक नहीं घसीट सकते हैं। इससे तो अच्छा है कि इसकी कुछ सीमाएँ ही निर्धारित की जायँ। टी० एस० इलियट ने अपनी पुस्तक 'ए नोट टुवार्ड्स द डिफो-नीशन ऑव कल्चर' में यही पद्धति अपनायी है। संक्षेप में, संस्कृति जीवन के किसी अंश-ही नहीं, बल्कि समग्र जीवन के पीछे जो उत्स या संस्कार काम करते हैं उनकी समूहवाचक संज्ञा है। जब हम किसी देश या जाति की संस्कृति की चर्चा करते हैं तो उसकी परिधि में भोजन वस्त्र-शयन-आवास सम्बन्धी अभिरुचि से लेकर उस देश या जाति की कलात्मक चेतना एवं दार्शनिक विचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा—सब कुछ आ जाते हैं। ये सारे संस्कार एक दो पीढ़ी नहीं, बल्कि भूतकाल से आये हुए उस वर्ग-विशेष के 'समूहगत चेतन' या 'समष्टि-मानस' ('कलेक्टिव-कान्शसनेस', या 'कलेक्टिव माइण्ड') से प्रत्येक व्यक्ति को उत्तराधिकार रूप में प्राप्त होते हैं। युंग के मनोविज्ञान का यह स्वीकृत तथ्य है कि मानस की अनेक वृत्तियाँ जाति-गत होती हैं जो आनुवंशिक क्रम से पिता से पुत्र, पुत्र से पौत्र तक उसी रूप में जाती हैं जिस तरह चेहरे की बनावट और नाक-नक्शा। यह समष्टि-मानस उक्त वर्ग के सारे व्यष्टि-मानसों में विकेन्द्रित पड़ा रहता है, पर यह प्रकृति की भयंकर शक्तिशाली अंधी योजना है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अज्ञात रूप में ग्रहण करनी पड़ती है। यह समष्टि-मानस राजनीतिक कानूनों या वातावरण के दबाव से नहीं बदला जा सकता। राजनीतिक कारण या वातावरण का दबाव व्यष्टि मानस में परिवर्त्तन भले ही ला दे। हाँ, यही व्यष्टि मानस का परिवर्त्तन जब बहुत बड़ी संख्या में और दस-बीस या सौ वर्षों तक लगातार होता रहता है, और यदि यह परिवर्त्तन मूल समष्टि मानस में सुपाच्य है, तो स्वतः यह समष्टि मानस की एक नयी शक्ति बन जाता है। समष्टि मानस वह विशाल वट-वृक्ष है जो शाखा-प्रशाखा फोड़ता हुआ आगे बढ़कर छा जाता है। कालान्तर में मूल तना सड़-गलकर नष्ट हो जाने पर भी उसकी शत शत-जटाएँ धरती को विदीर्ण कर एक-एक तना बनकर खड़ी रहती हैं और विविध प्रकार की भूमियों से रस-शोषण करके सम्पूर्ण वृक्ष-जाल के पत्ते-पत्ते, गुम्फ-गुम्फ तक रस पहुँचाती हैं।

इस समष्टि मानस में ही समस्त जातीय प्रतीक एवं उनकी जननी जातीय अभिरुचि के संस्कार बसे रहते हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य बौद्धिक-कलात्मक-दार्शनिक-अभिरुचि से लेकर खान-पान सम्बन्धित-अभिरुचि तक—सबसे है। इन्हीं अभिरुचियों के संस्कारों की समूहगत संज्ञा है 'संस्कृति'।

सभ्यता और संस्कृति में अत्यल्प अन्तर होता है। कई जगहों पर दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है। ऐसा लगता है कि सभ्यता वाह्य व्यंजना है और संस्कृति अन्तर्निहित 'भाव'। जैसे एक कलाकार की कल्पना में जो 'भाव' उठता है वह स्थूल प्रस्तर या चित्र-पट के रूप में 'व्यंजित' होता है, उसी भाँति सभ्यता भी संस्कार-समूह (अर्थात् 'संस्कृति') की स्थूल व्यंजना है। साथ ही सभ्यता में बहुत कुछ स्थूल नवीनता भी निहित रहती है जो जातीय संस्कार से उद्भूत न होकर बाहर से प्रविष्ट है। यदि यह नवीनता सुपाच्य है तो वह जातीय संस्कार में अपना स्थान कालान्तर में बना लेगी। पर जबरदस्ती या कृत्रिम दृष्टि से परिवर्त्तन लाने पर व्यष्टि-मानस तक ही वह सीमित रहेगा और काल-प्रवाह में पड़कर विलीन हो जायगा। उदाहरण के लिए फारसी बोली १९वीं शती में उत्तर प्रदेश के रईसों की खास पहचान थी। उन रईसों के बेटे चाहे लाख सर मारें पर वह हमारी सभ्यता में पच नहीं सकी है और काल के प्रवाह से अंधकार में विलीन हो चुकी है। पर संस्कृत भाषा का महत्त्व मुगल और खिलजी भी नहीं मिटा सके।

अब देखना है कि समष्टि मानस या जातीय मानस किन-किन तत्त्वों से संस्कारों का ग्रहण एवं पोषण करता है। ऐसे मूलतः दो स्रोत हैं : धर्म और सौन्दर्योपासना।

आदिम काल से मनुष्य के मन पर इन दो प्रधान प्रवृत्तियों का आधिपत्य है। भयंकर बिजली की चमक और कड़क, आँधी-तूफान, वन्या, घोर वृष्टि, तप्त मरुभूमि, विविध रोग और मृत्यु आदि घटनाओं ने उसके मन में ईश्वरीय भय उत्पन्न कर दिया। साथ ही वृष्टि, अच्छी फसल एवं सुखकर प्रभात-संध्या, आदि ने ईश्वरीय कृतज्ञता को जन्म दिया। भय और कृतज्ञता इन्हीं दोनों भावों से धर्म की उत्पत्ति हुई। दूसरी ओर सनातन प्रकृति में कुछ ऐसी वस्तुएँ उसे मिलीं जो मनोरम थीं पर उनका कोई उपयोगितापरक मूल्य नहीं था। रंगीन प्रभात, नील-पिंगल संध्या, चाँदनी रात, घनी-घनी हरीतिमा, तरह-तरह के फूल आदि ऐसी घटनाएँ उसे अनुभूत हुईं जिससे उसका मन उल्लसित हो उठा। इनकी उपयोगिता नहीं थी, अतः उपर्युक्त कृतज्ञता-बोध के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं था। पर उल्लास की उसे अनुभूति हुई। यही अर्थ-हीन उल्लास उसकी द्वितीय वृत्ति सौन्दर्योपासना का जनक बना। इन्हीं दो प्रकार की प्रवृत्तियों से जो-जो संस्कार मनुष्य को आनुवंशिक क्रम से—पीढ़ी-दर-पीढ़ी—मिलते गये उनकी समूहगत संज्ञा है 'संस्कृति'। ये ही संस्कार हमारे खान-पान, वेष-भूषा, भाषा-साहित्य, नियम-कानून, शासन-पद्धति-समाज गठन, चित्रकला-मूर्त्तिकला आदि नाना रूपों में 'व्यंजित' हुए। इन्हीं 'व्यंजनाओं' की समूह-गत संज्ञा है सभ्यता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक सौदर्योपासना का प्रश्न है, उसका स्थान तो संस्कृति में स्पष्ट है। संस्कृति की स्पष्टतम व्यंजना कला और साहित्य में ही होती है। क्योंकि, इनका जन्म जातीय सौन्दर्य-दृष्टि से होता है। उदाहरण के लिए नीलवर्ण नयन या कंजी आँखें हमें चित्ताकर्षक नहीं लगतीं—उनमें एक प्रकार की भावशून्यता विराजती है। नील वर्ण-नयन भारतीय मानस को निरंजनता, निर्विकारता, शिशुता का बोध कराते हैं, पर वे विभ्रम या 'भावशबलता' उत्पन्न कराने में असमर्थ लगते हैं। यह हमारी जातीय सौन्दर्य-दृष्टि (जिसकी दूसरी संज्ञा है 'जातीय अभिरुचि') का परिणाम है। मृग-मीन-कमल से परिचय होने के कारण हम मृगनयनी, मीनाक्षी, कमल-नयन आदि तो अनुभूत कर जाते हैं, पर 'नरगिस' जैसी आँखों की कोई अनुभूति नहीं होती क्योंकि 'नरगिस' क्या वस्तु है, हमें नहीं मालूम है। भारतीय संस्कृति की जातीय सौन्दर्य-दृष्टि में यहाँके पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-पहाड़ एवं कवि-परम्पराएँ तथा कवि-प्रसिद्धियाँ (जिन्हें अँगरेजी में 'मोटिफ़' कहते हैं) आदि ही विद्यमान रहेंगे। "उर्वशी के पदाघात से नन्दन-वन का अशोक मुकुलित हो गया"—ऐसा पढ़कर लगता है कि हमने कुछ अनुभूत किया। पर "उर्वशी की आँखें 'सत्तर हीरों से जड़ी हुई' थीं"—ऐसा पढ़कर हमें भद्दापन के सिवाय और कुछ अनुभूत नहीं होता। परन्तु, एक ईरानी बन्धु इसीको पढ़कर झूम उठेगा। इस जातीय सौन्दर्य-साधना में न केवल अपने देश की प्रकृति एवं वातावरण का हाथ रहता है वरन् ऐतिहासिक घटनाएँ, लोककथाओं और महाकाव्यों के चरितनायकों एवं त्यौहारों-उत्सवों का भी महत्त्वपूर्ण योग-दान रहता है। ये चरित-नायक देश के मन में कितना रमे रहते हैं और जातीय जीवन को कितनी गहराई तक प्रभावित किये हुए हैं, इसका परिचय गत महायुद्ध में मिला। सोवियट सरकार के रूसी लेखकों ने जनता का आत्मबल जगाने के लिए साम्राज्यवादी सम्राट् पीटर महान् और वोल्गा नदी का विजय-स्तवन-गान किया था। हमारे देश में राम-कृष्ण-बुद्ध-शिव आदि कला-प्रतीक के रूप में बहुत पहले से सम्मानित हैं। जब ये कला-प्रतीक के रूप में हमारे सामने आते हैं, तो धर्म से उक्त स्थल पर इनका कोई सम्बन्ध नहीं। 'कुमार-सम्भवम्' रीतिकाल की कविताएँ एवं मुगलों तथा लखनवी नवाबों का प्रिय कत्थकनृत्य आदि विशुद्ध कला-प्रतीकों की उपासना प्रस्तुत करते हैं। इनमें यदि 'धर्म' का भाव निहित रहता तो कालिदास अपने "जगतः पितरौ" की संभोग-चेष्टा का वर्णन न करने जाते। यह विशुद्ध सौन्दर्योपासना है।

सौन्दर्योपासना जीवन को सत्य, शिव और सुन्दर प्रदान करने की धर्म-निरपेक्ष (सेक्यूलर) प्रणाली है। यह धर्म-सम्प्रदाय-वर्ग की शर्तों के ऊपर की साधना है जिसमें किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति भाग ले सकता है। दूसरे शब्दों में, संस्कृति का यह 'सेक्यूलर' पहलू है। परन्तु संस्कृति चूँकि जीवन को समग्ररूप में बाँधे है अतः अन्य तथ्यों, अन्य प्रवृत्तियों का भी उस पर प्रभाव है जिनमें मुख्य प्रवृत्ति है धर्म, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

टी० एस० इलियट का तो कथन है कि धर्म और संस्कृति में कोई विशेष अन्तर नहीं। दोनों एक ही तथ्य के दो पहलू हैं। संस्कृति को धर्म का 'पुनर्जन्म' कह सकते हैं। इलियट का यह कथन सत्य पर आधारित होते हुए भी अधिक अलंकार-पूर्ण शैली में व्यंजित है। इलियट स्वतः कट्टर कैथोलिक है अतः उसकी भावुकता ही उसकी उक्त अतिशयोक्ति का कारण है। यदि धर्म और संस्कृति दोनों एक ही रहते तो चीनी संस्कृति में इस्लाम और बौद्ध-धर्म दोनों कैसे चलते? स्वतः ईसाई-धर्म का विकास ग्रीक-रोमन संस्कृति के ढाँचे में हुआ है। यह ढाँचा उक्त धर्म को इतनी दूर तक प्रभावित करता है कि उसका ७५% हिब्रू-स्वभाव (जिससे मूलतः वह पैदा होता है) आज शून्य में विलीन है। अतः धर्म और संस्कृति दोनों एक ही तथ्य नहीं है। हाँ, उनके बीच गहरा सम्बन्ध अवश्य है। इस स्थल पर मैथ्यू आर्नाल्ड का दृष्टिकोण अधिक निष्पक्ष और भावुकता-पूर्वाग्रह-हीन ज्ञात होता है। उसका कथन है कि (१) संस्कृति, धर्म की अपेक्षा, अधिक व्यापक सत्ता है एवं (२) धर्म के द्वारा संस्कृति को नैतिक आधार तथा "थोड़ा-सा" रागात्मक स्पर्श मिलता है।

किसी संस्कृति के नैतिक आधार के लिए 'धर्म' आवश्यक है। पर जहाँ तक रागात्मक-स्पर्श या भाव-साधना का प्रश्न है उसके लिए धर्म ही एकमात्र साधन नहीं। संस्कृति के पास उससे व्यापक साधन विद्यमान है, और वह है सौन्दर्योपासना, जो मानव मन की उतनी ही बलशाली वृत्ति है जितनी कि धर्म। महाप्रभु चैतन्य को जो रागात्मक स्पर्श धर्म के माध्यम से मिला, वही कत्थकनृत्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनवी नर्त्तक को सौन्दर्यदृष्टि द्वारा प्राप्त हुआ। दोनों का आधार है, राधा-कृष्ण-प्रेमलीला। पर रागानुभूति का माध्यम अलग-अलग है। फलतः 'राग' के स्वभाव में भी अन्तर है। प्रथम का आनन्द केवल गौड़ीय वैष्णव ही प्राप्त कर सकता है, पर द्वितीय का आनन्द हिन्दू-मुसलमान-ईसाई सभी प्राप्त कर सकते हैं, यद्यपि कला-प्रतीक दोनों रागों में उभयनिष्ट है।

(३)

संस्कृति के तीन धरातल होते हैं : व्यक्तिगत, समूहगत और क्षेत्रगत। उत्तर प्रदेश का एक ब्राह्मण है 'क' और एक चमार है 'ख', तथा तमिलनाद का एक ब्राह्मण है 'ग'। 'क' के संस्कारों में कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ रहेंगी और कुछ ऐसी भी जो 'ग' के साथ उभयनिष्ट होंगी क्योंकि दोनों ब्राह्मण हैं। साथ ही बहुत-सी बातों में 'क' और 'ख' दोनों समान रूप से भाग लेंगे, क्योंकि दोनों उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। यद्यपि, एक है ब्राह्मण और दूसरा है शूद्र। संस्कृति पर विचार करते समय हमें यह 'त्रैत' सदैव ध्यान रखना चाहिए। संघर्ष वहीं प्रारम्भ होता है जब समूहगत संस्कृति के स्तर पर व्यक्तिगत या क्षेत्रगत संस्कृति-स्तर की बात हम घुसेड़ने लगते हैं। जो व्यक्ति जिस सम्प्रदाय का होता है उसके व्यक्तिगत संस्कार उसी सम्प्रदाय की भावभूमि पर पोषित होते हैं--समूहगत संस्कारों का सम्बन्ध सम्प्रदाय से तभी होता है जब समूह की कसौटी केवल सम्प्रदाय-विभाजन ही हो। क्षेत्रीय संस्कृति-स्तर से तो सम्प्रदाय का कोई सम्बन्ध ही नहीं। एक मुसलमान के लिए स्वाभाविक है कि अरब के लिए उसके व्यक्तिगत संस्कारों में आस्था रहे। पर क्या यह भी स्वाभाविक नहीं है कि समूहगत स्तर पर या क्षेत्रगत स्तर उसके संस्कारों का नियमन राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतीक करें? ऐसा होना चाहिए क्योंकि वह भी भारत के महान् उत्तराधिकार का उतना ही अधिकारी है जितना कि हिन्दू। पर कैसी अस्वाभाविक बात है कि वह अपने उत्तराधिकार का अपमान करने में ही अपनी मर्दानगी मानता है? चीनी मुसलमान चीनी संस्कृति पर, इण्डोनेशियाई मुसलमान इण्डोनेशियन संस्कृति पर, फारसी मुसलमान फारसी संस्कृति पर गर्व कर सकता है, तो हिन्दी मुसलमान हिन्दी-संस्कृति पर गर्व करने में इस्लाम के नाम पर बट्टा लगाना क्यों मानता है?

हम बता चुके हैं कि धर्म और संस्कृति एक ही तथ्य नहीं। धर्म संस्कृति को नैतिक आधार और अत्यल्प रागात्मक स्पर्श देता है। जहाँ तक नैतिक आधार का प्रश्न है, मूलभूत नैतिकता सभी धर्मों में एक ही है। जहाँ तक सम्प्रदायगत नैतिकता का प्रश्न है, वह उक्त सम्प्रदाय तक ही सीमित है। पर समूचे देश के लिए जो नैतिक मानदण्ड चाहिए, वे हैं सत्य, दया, क्षमा, ईमानदारी, मानव-प्रेम आदि। इससे किसी मुल्ला-मौलवी या पादरी-पण्डित का झगड़ा नहीं हो सकता। अब रही उक्त अत्यल्प रागात्मक-स्पर्श की बात। भारतीय संस्कृति के अन्दर रागात्मक स्पर्श या भाव-साधना हिन्दू को तो 'धर्म' एवं 'सौन्दर्योपासना' दोनों माध्यमों से प्राप्त हो सकती है, परन्तु एक मुसलमान और एक ईसाई से हम निश्चय ही इस रागात्मक स्पर्श पाने के लिए 'धर्म' का माध्यम अपनाने का दुराग्रह नहीं कर सकते। ऐसा हमें अधिकार नहीं। पर दूसरा माध्यम सौन्दर्योपासना है। यह धर्मनिरपेक्ष (सेक्यूलर) माध्यम है। इसके द्वारा, यदि वह अपने को ईमानदारी से भारतीय मानता है, तो निश्चय ही भाव-विभोर होगा और अपनी संस्कृति के प्रति उल्लास अनुभूत करेगा। यदि ऐसा नहीं तो निश्चय ही दाल में काला है।

(४)

भारत में इस्लाम अफगानों और तुर्कों द्वारा लाया गया। इस्लाम का तुर्क-संस्करण उसके अरबी-ईरानी संस्करण से भिन्न है। अरबी-ईरानी इस्लाम प्रगतिशील और सहिष्णु धर्म था। जब ईसाई-मत असहिष्णुता एवं वैचारिक दासता में जकड़ा हुआ था उस समय अरब-जगत् में काफी सहिष्णुता थी। इस्लाम की छत्र-छाया में यहूदी-ईसाई चर्चों की विविध शाखाएँ स्वतन्त्रतापूर्वक चल रही थीं। सीरिया बहुत काल तक 'नेस्टरियन चर्चों' का केन्द्र था जब कि मसीहा के व्यक्तित्व पर मतभेद के कारण यूरोपीय ईसाई जगत् में उनका क्रूरतापूर्वक दमन हो रहा था। पर भारत में इस्लाम ने क्रूरता एवं आमूल परिवर्त्तन की नीति लेकर प्रवेश किया। चीन या हिन्देशिया में ऐसा नहीं हुआ। माओत्से तुंग जन्मतः (सम्भवतः) मुसलमान है, यद्यपि आज वह किसी धर्म से सम्बन्ध नहीं रखता। उसके नाम को देखकर हम सिर्फ यही जान सकते हैं कि वह चीनी है। इससे अधिक नहीं। पर भारत में ऐसा नहीं। यहाँ पर तो राजपूतों या भूमिहार ब्राह्मणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वंशज कमसार के मुसलमान 'सिंह' या 'शर्मा' नहीं लिखकर अपने को अमुक 'खाँ' लिखने में गर्व करते हैं, यद्यपि इस "खाँ" का इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं। यह मंगोलों की वंशगत उपाधि है जिन्होंने प्रारम्भ में इस्लाम को क्षति ही पहुँचाई, बाद में जाकर इस्लाम ग्रहण कर लिया। चंगेज खाँ ने, जो शामनी-मत (बौद्ध धर्म की एक शाखा: 'श्रामणिक') का अनुयायी था, बगदाद की मस्जिदों को उसी तरह ध्वस्त किया जैसे औरंगजेब ने हिन्दू मन्दिरों को। यह भी एक विचित्र बात है कि विश्व का सबसे बड़ा हत्याकारी विजेता बौद्ध धर्म से, अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, सम्बन्धित हो।

मूल कुरान में उदारता का उपदेश बिखरा पड़ा है। उदाहरण के लिए,

"ऐसी कोई भी जाति नहीं जहाँ (खुदा ने) कोई न कोई रहनुमा न भेजा हो।" (३५ : २४)

"प्रत्येक कौम के लिए एक न एक पथ-प्रदर्शक अवश्य दिया गया है।" (१३ : १७)

"ओ मुहम्मद! तेरे पहले भी हमने पैगम्बरों को भेजा है। कुछ का नाम तुझे अभी बताया गया है और कुछ का नहीं।" (४० : ७८)

कुरान शरीफ में यहूदी-ईसाई धर्मों के पूर्व पुरुषों का नाम गिनाया गया है। ग्रीक महापुरुषों के भी नाम हैं। सिकन्दर का नाम पैगम्बरों की सूची में आता है (मेण्य-बुक: एकम्पेनियन टु वर्ल्ड लिटरेचर)। राम और कृष्ण-का, बुद्ध और व्यास का नाम इसलिए नहीं आया कि भार-तीयों से उस समय अरबों के साथ अधिक सांस्कृतिक सम्पर्क नहीं था। आगे हजरत ने कई आयतों में (८-१८, ४८-११) मुसलमानों को स्पष्ट आज्ञा दी है कि वे किसी कौम के पैगम्बर का अपमान न करें, क्योंकि सभी परम पिता के सन्देश के वाहक हैं। वे विश्वास सिर्फ हजरत की बातों का ही करें, पर सम्मान सबका करें। यह है इस्लाम की मूल आज्ञा और हजरत मुहम्मद का मूल वचन। पर भारतीय इतिहास का साक्ष्य इसके उल्टा है। यहाँ तो शाहजहाँ जैसे कलाप्रिय मुसलमान ने भी मथुरा के मन्दिरों को धराशायी किया।

यह है इस्लाम का वास्तविक रूप और एक धर्म निरपेक्ष-ढाँचे में, एक विजातीय संस्कृति के वातावरण में, एक गैर-सेमेटिक जाति के अन्तर्गत इस्लाम इसी रूप में विकास कर सकता है। आमूल परिवर्त्तन का नारा आज अव्यावहारिक है। आमूल परिवर्त्तन का चक्र तब चल सकता है जब दिल्ली पर मुस्लिम शासक बैठे। पर इस प्रजातन्त्र युग में यह असम्भव है।

(५)

सौन्दर्य-दृष्टि का ही दूसरा नाम है अभिरुचि। अभि-रुचि को विकृत करने का अर्थ ही है संस्कृति की आत्मा को विकृत करना। कला और साहित्य में यह अभिरुचि प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित होती है। किसी भी देश की जातीय अभिरुचि की जानकारी उक्त देश के कला-कौशल और साहित्य से प्रदर्शित होती है और कला-कौशल एवं साहित्य जिस 'छन्द' में प्रदर्शित होते हैं वे प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए 'कमल' प्रतीक को लें। यह जातीय मानस के अन्दर बड़ी गहराई तक जड़ जमाये हुए है। मूर्त्तिकला, चित्रकला, स्थापत्यकला, काव्य वह सबमें समादृत है। भारतीय चित्रकला एवं मूर्त्तिकला में अंगविन्यास भी कमल-'छन्द' पर आधारित होते हैं। छन्द का अर्थ यहाँ 'मीटर' या 'वृत्त' नहीं बल्कि 'आकृति का पैमाना' है। उदाहरण के लिए शिव, बुद्ध या किसी देवी अथवा अप्सरा के चरणों को चित्रित या उत्टंकित करते समय पाँचों उँग-लियों का आकार-मुड़ाव विकसित पद्मदलों के 'छन्द' या 'पैटर्न' में बनाया जाता है। अधरों एवं पलकों में भी यही छन्द विद्यमान रहता है। स्तम्भों की सजावट तथा भीतरी छत के केन्द्र में केन्द्र-प्रसारी-अल्पना वृत्त सब कमल के खिले आकार का अनुगमन करते हैं। मन्दिरों के शिखरों की तैयारी चाहे गिरिशिखर-परक (पिरामिडनुमा) हो या उन्नतोदर शिखर (जैसे जगन्नाथ पुरी) हो अथवा नतोदर (जैसे रामेश्वरम्), परन्तु शिखर पर कमलदल या कमल मुकुल अवश्य विद्यमान रहता है। यहाँ तक कि ताजमहल के गुम्बज का अन्तिम शिखर भी कमल के उलटे 'छन्द' से सुशोभित है। जहाँ तक काव्य और दर्शन का सम्बन्ध है, कमल प्रतीक पर आधारित भाव-धाराओं का गहन जाल बिछा हुआ है। इसी तरह अन्य भी लोकप्रिय प्रतीक हैं, यथा सिंह, हाथी, बैल, गाय, सर्प, मयूर, हंस, कोकिल, कदली, पीपल, वट, देवदारु (विशेषतः शिखरों की बनावट में), राधाकृष्ण, त्रिभंगी कृष्ण, नटराज बुद्ध आदि। इन सब प्रतीकों को हम धर्म-निरपेक्षता के नाम पर बहिष्कृत कर दें, तो सारा देश कुरूप हो जायगा, अभिरुचि विकृत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगी एवं मानसिक संस्कारों के लिए कोई भूमि नहीं रह जायगी कि वे पनप सकें। भारतीय कला और साहित्य, चिन्तन और दर्शन इनके बिना जी नहीं सकते। इन प्रतीकों के बहिष्कार का अर्थ होगा भारतीय कला-साहित्य एवं चिन्तन की मृत्यु। क्योंकि, भारतीय कला-साहित्य एवं चिन्तन की वर्णमाला उक्त प्रतीक ही हैं और सरकारी नीति यदि इन प्रतीकों का बहिष्कार धर्म-निरपेक्षता के नाम पर करेगी तो साहित्य, कला और चिन्तन को भी प्रकारान्तर से बहिष्कृत करेगी। अब तो राजे-महाराजे-सामन्त नहीं रहे, सेठ-साहूकार भी कुछ दिनों के लिए ही हैं। ऐसी अवस्था में सरकार ही एकमात्र आश्रयदाता ठहरी, और वह धर्म-निरपेक्ष के साथ संस्कृति-निरपेक्ष भी हो जाय, तो वह द्वार भी बन्द! वास्तविकता तो यह है कि हमारी संस्कृति ने इस देश में जो कुछ गुणवान एवं सुन्दर है पहले से ही उसे अपना लिया है। उदाहरण के लिए पक्षीवर्ग में, शुक-सारिका, चकोर, चातक, नीलकण्ठ, गरुड़, मयूर, हंस आदि पहले ही से भारतीय भाव-साधना में विद्यमान हैं। बचा है क्या? कौआ, तीतर, कठ-फोड़वा, भुचेंग, चील, जाँघिल और सारस। धर्म-निर-पेक्षता के नाम पर यदि कुरूपता की साधना करनी हो, विकृति को सर आँखों चढ़ाना हो तो ठीक है, कौआ-चील ही समादृत हों। मध्यप्रदेश की सरकार ने 'गधा बनाम गणेशजी' के झगड़े में 'गधा' का पक्ष समर्थन कर भ्रम-निवारण पहले ही से कर दिया है। उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीतिक प्रतिभाएँ भी निकट भविष्य में जौहर दिखायेंगी ही। हाँ, बंगाल-महाराष्ट्र-मैसूर, मद्रास अवश्य ही इस धर्म-निरपेक्षता की पाठशाला में विकृति उपासना की दीक्षा बहुत बाद में लेंगे। सिंहल के ईसाई चित्रकार जार्ज केट ने, जो चित्रकला की आधुनिक शैली में एशिया भर का प्रतिनिधित्व करते हैं, 'गीतगोविन्दम्' के आधार पर 'क्यूबिस्ट'-शैली में कुछ चित्रों की रचना की है। उनका समादर विश्व के हर भाग के चित्रकला के प्रेमी करेंगे। पर भारत में वे चित्र सिर्फ 'हिन्दू चित्र' ही माने जायँगे। क्या दुर्भाग्य है!

ऊपर के लम्बे विवेचन का तात्पर्य यह है कि धर्म-निरपेक्षता बढ़कर संस्कृति-निरपेक्षता नहीं बननी चाहिए। राष्ट्रीय संस्कृति की आराधना सभी वर्गों को करनी होगी। यही कर्त्तव्य है, जिसका पालन करना राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक है। हिन्दू-बौद्ध-जैन-सिख-आर्यसमाजी आदि राष्ट्रीय संस्कृति में रागात्मक स्पर्श धर्म और सौन्दर्यो-पासना दोनों माध्यमों से पा सकते हैं, एवं मुसलमान-ईसाई-सौन्दर्योपासना मात्र के द्वारा। इस्लाम का मूल रूप बहुत आसानी से उपर्युक्त ढाँचे से मेल खा सकता है, और इस्लाम का यही रूप उदात्त और हजरत-प्रणीत है। फिर यदि भारतीय मुसलमान यह दावा करें कि गैर मुस-लिम प्रतीकों एवं गैर मुसलिम नायकों को वे समादर नहीं देते, तो यह दावा असत्य है। दारा, सिकन्दर, सोहराब, रुस्तम, बहराम, चंगेज, मूसा, सुलेमान, दाऊद, युसुफ (जोजेफ़), इसहाक (आइजक), अफलातून, अरस्तू आदि में कोई भी मुसलमान नहीं। ये सब नायक यूनान, फारस या सीरिया में इस्लाम के जन्म के पूर्व पैदा हुए थे। इस्लाम का जन्म तो ईसा की ६वीं शती में होता है। फिर भी भारतीय मुसलमानों द्वारा लिखित साहित्य में इन नायकों का समादर है। इसी तरह ईसाई-धर्म में भी ग्रीक-रोमन और हिब्रू संस्कृति के प्रतिनिधियों से उदासीनता नहीं। तो फिर राम-कृष्ण, बुद्ध-व्यास, अशोक-विक्रम, कनिष्क-शालिवाहन पर ही क्यों एतराज हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलियम केरी

श्री मोहनसिंह सेंगर

पूरे २०० वर्ष पहले इँग्लैंड के नार्थेम्पटनशायर के पाल-रस्परी गाँव के एक जुलाहे एडमंड केरी के घर एक बच्चा पैदा हुआ, जिसका नाम विलियम केरी रखा गया। जब विलियम काफी छोटा था, तभीसे वह न जाने कैसे-कैसे शब्द बड़बड़ाने लगा। जो काम वह हाथ में लेता, पूरा किये बिना नहीं छोड़ता। इन्हीं गुणों के कारण हँसी-हँसी में घरवालों ने उसका नाम 'छोटा कोलम्बस' रख दिया। अक्सर जब वह अपनी उम्र के बच्चों के साथ खेल-कूद में भाग नहीं लेता, तो बच्चे उसे चिढ़ाने को कहते--'अच्छा विलियम, अगर तुम हमारे साथ खेलते नहीं; तो कुछ उपदेश ही दो!' और सचमुच बालक विलियम उन्हें बड़ों की ही तरह सीख की बातें बताने लगता।

जब विलियम १६ वर्ष का हुआ, तो उसे जीविकोपार्जन के लिए एक मोची के पास जूता बनाना सीखने के लिए रख दिया गया। १२ वर्ष तक कठोर परिश्रम करके विलियम जूते बनाता और फिर मीलों पैदल चलकर उन्हें बेचने ले जाता रहा। इस दैनिक पैदल यात्रा ने सहज ही उसे प्रकृति से निकट सम्पर्क स्थापित करने का सुयोग दिया। इससे उसने पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के बारे में कुछ ही समय में खासा अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

यह समय ब्रिटेन में धार्मिक पुनर्जागरण और हिब्रू, ग्रीक तथा लेटिन आदि के अध्ययन का था। विलियम का भी इस ओर झुकाव हुआ। दिन को वह विद्याध्ययन करता और रात को जूते बनाता। २६ वर्ष का होने पर विलियम पादरी बन गया और ३१ वर्ष की अवस्था में पूर्वी देशों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के इरादे से भारत की ओर चल पड़ा। यूरोप की प्राचीन भाषाओं के साथ ही विलियम ने संस्कृत का भी अच्छा अध्ययन कर लिया था। जहाज-यात्रा के ५ महीनों में उसने बोल-चाल की सामान्य बँगला भी सीख ली और जब १७९३ में वह कलकत्ता पहुँचा, तो उसे भाषा की कहीं भी कोई कठिनाई नहीं हुई। उसे कलकत्ता नगर पसन्द तो बहुत आया, पर अधिकांश लोगों के अज्ञान, अंधविश्वास और पिछड़ेपन को देखकर उसे दुःख भी कम नहीं हुआ।

विलियम भारत में ईसाई धर्म के प्रचार का संकल्प लेकर आया था। पर न तो कलकत्ते में उसे रहने के लिए कोई उपयुक्त स्थान मिला और न उसके पास धन ही था कि वह अपने धर्म-प्रचार के काम को अग्रसर करता। फलतः उसने उत्तर-बंगाल के मालदा जिले के मदनबाटी स्थान में एक निलहे गोरे के यहाँ नौकरी कर ली। यहाँ रहकर काम के सिवा उसे जो खाली समय मिलता, उसमें विलियम संस्कृत, बँगला, हिन्दी आदि का अध्ययन करता। इस देश के साहित्य, संस्कृति, धार्मिक रीति-रिवाजों आदि के बारे में अधिक-से-अधिक जानने की उसकी भूख जैसे कभी शान्त ही नहीं होती थी। रात को घंटों मोमबत्ती की रोशनी में बैठकर विलियम ने बाइबिल का बँगला में अनुवाद किया। पर उसने अनुभव किया कि धन, प्रयत्न और शक्ति की दृष्टि से इतने बड़े देश में ईसाई धर्म का प्रचार करना अकेले आदमी के बस की बात नहीं है।

संयोगवश १८०० में विलियम की भेंट इँग्लैंड से भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने को भेजे गये जोशुआ मार्शमैन और विलियम वार्ड से हुई। तीनों ने मिलकर श्रीरामपुर में एक गिरजे की स्थापना की और धर्म-प्रचार के साथ-साथ शिक्षा-प्रचार का भी कार्य आरम्भ किया। इनके प्रयत्न से १८ वर्षों में १२६ विद्यालय स्थापित हुए, जहाँ १० हजार से अधिक छात्र शिक्षा पाने लगे। इनमें शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही रखा गया।

१८०१ में जब अँगरेज अधिकारियों को भारतीय भाषाओं, संस्कृति और धार्मिक रीति-रिवाजों से अवगत कराने के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई, तो लार्ड वेलेज़ली के अनुरोध पर विलियम केरी को संस्कृत और बँगला पढ़ाने के लिए वहाँ जाना पड़ा। बाद में वे तेलुगू, मराठी आदि भी पढ़ाने लगे। १८१७ में जब यह कॉलेज बन्द हो गया, तो केरी ने अपने संग्रह की सारी संस्कृत, फारसी, अरबी, उर्दू, हिन्दी, बँगला आदि की हस्तलिखित पुस्तकें रायल एशियाटिक सोसाइटी के संग्रहालय को भेंट कर दीं। इसके वे स्वयं भी एक प्रमुख सदस्य थे। प्राचीन भारतीय साहित्य की खोज, संग्रह और प्रकाशन का जो कार्य इस संस्था ने किया है, उसमें केरी का भी प्रमुख हाथ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोर्ट विलियम कॉलेज में आते ही केरी के सामने सबसे पहली कठिनाई उपस्थित हुई पाठ्य-पुस्तकों की। किसी भी भारतीय भाषा में कोई गद्य-पुस्तक प्राप्य न थी। फलतः उन्होंने कुछ साथियों से मिलकर इन्हें तैयार करवाने का बीड़ा उठाया। सर्वप्रथम उन्होंने १८०१ में बोलचाल की बँगला में 'कथनोपकथन' नामक एक प्राथमिक पुस्तक तैयार की। १८१२ में 'इतिहासमाला' नाम से कुछ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह तैयार किया और फिर बँगला-अँगरेजी कोष तथा व्याकरण। बाद में उन्होंने संस्कृत, मराठी, तेलुगू, पंजाबी और भूटानी में भी व्याकरण तैयार किये। इसके बाद उन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' के अँगरेजी में अनुवाद किये। उन्होंने 'सांख्य-दर्शन' का अनुवाद करना भी शुरू किया था, पर वह पूरा नहीं हो सका। १८१७ में जब कलकत्ते में पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के लिए बुक-सोसाइटी कायम हुई, तो केरी उसके भी बड़े उत्साही सक्रिय सदस्य बने। इसी समय पुस्तकें छापने के लिए श्रीरामपुर में पहले प्रेस की स्थापना हुई।

भारत में यह समय सामाजिक और धार्मिक विघटन का था। मुगल-शासन के क्षय के कारण चारों ओर अव्यवस्था फैल रही थी। विद्या का स्थान अज्ञान और धर्मान्धता का अंधविश्वास ने ले लिया था। मकतब और ग्रामीण पाठशालाएँ मुट्ठी-भर लोगों के बच्चों को अक्षर-ज्ञान देते थे। पंडे-पुजारी धर्म के नाम पर गरीबों से पैसा ऐंठते थे। सती-प्रथा के नाम पर युवा विधवाओं को जबरदस्ती पति की चिता में जिंदा जला दिया जाता था और कन्याओं के जन्मते ही उन्हें कुएँ-नदी में फेंक दिया जाता था। केरी ने अपने संस्कृत-ज्ञान का उपयोग कर हिन्दू-शास्त्रों की छानबीन की और यह पता लगाया कि ऐसे कांड किस धर्म के आदेशानुसार होते हैं? आखिर जब उन्हें इसके समर्थन में कोई धार्मिक साक्ष्य-प्रमाण न मिला, तो उन्होंने गवर्नर-जनरल पर जोर डाल कर इन अमानुषिक एवं अधार्मिक कुप्रथाओं को कानूनन बन्द करवाया। इस सम्बन्ध में जो आदेश निकला, उसका अँगरेजी से बँगला में अनुवाद केरी ने ही किया था।

इसी प्रकार कोढ़ियों को जिन्दा जलाने का भी तब प्रचलन था। केरी ने न सिर्फ सरकारी सहायता से इसे बन्द ही करवाया, बल्कि कलकत्ते में सर्वप्रथम कोढ़ी-अस्पताल की स्थापना भी करवाई।

केरी से अज्ञान और अंधविश्वासग्रस्त जनता की फजूलखर्ची और ऋणग्रस्तता भी छिपी न रह सकी। उन्होंने अत्यधिक सूद पर रुपये कर्ज देने और लेनेवालों के विरुद्ध आन्दोलन किया और सर्वसाधारण में मितव्ययिता का प्रचार किया। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए १८२० में उन्होंने श्रीरामपुर में एक सेविंग बैंक भी खोला, जो कई वर्षों तक चला। संपन्न लोगों का काफी धन शराबखोरी में नष्ट होता था। इसके खिलाफ भी उन्होंने प्रबल आंदोलन किया। उन दिनों बंगाल और उड़ीसा में एक और भी जघन्य प्रथा प्रचलित थी। वह यह कि भगवान् जगन्नाथ के विशाल रथ में जो सवारी निकलती थी, बहुत से रोगी और अपने-आपको पापी समझनेवाले व्यक्ति उसके पहियों के नीचे कुचले जा कर प्राण देने में मोक्ष-प्राप्ति का पुण्य लूटते थे। इसे रुकवाने के लिए भी केरी ने प्राणपण चेष्टा की।

केरी ने यह अनुभव किया कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अज्ञान और अंधविश्वास अधिक है। अतः उन्होंने कन्या-शिक्षा के लिए भी १८१८ में श्रीरामपुर में एक विद्यालय स्थापित करवाया। फिर तो शिक्षा की लहर कुछ ऐसी फैली की कलकत्ते से लेकर ढाका, चटगाँव तक अनेक स्कूल-कालेज खुल गये। केरी ने इनमें से अधिकांश के कार्यों में रुचि ली और हर सम्भव तरीके से उन्हें सहायता पहुँचाई।

अपने इन्हीं उद्देश्यों के व्यापक प्रचार के लिए केरी ने १८१८ में बँगला में 'दिग्दर्शन' और फिर 'समाचार-दर्पण' नामक पत्र प्रकाशित किये। अपने कार्य को अँगरेजी भाषियों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने 'दि फ्रेंड आफ इंडिया' नाम से एक अँगरेजी पत्र भी निकाला (जो बाद में 'स्टेट्समैन' के साथ अन्तर्भुक्त हो गया)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विलियम केरी ने भारतीय भाषाओं का अध्ययन तो किया था यहाँ ईसाई-धर्म का प्रचार करने के लिए बाइबिल का यहाँकी भाषाओं में अनुवाद करने के उद्देश्य से, किन्तु उसका परिणाम हुआ भारतीय भाषाओं और साहित्य के नवजागरण का सूत्रपात। इससे जहाँ वे यूरोप को भारतीय साहित्य से परिचित कराने में सफल हुए, वहीं भारत को भी पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराने के पुण्यभागी बने। ऐसे भारत-भक्त को यहाँके लोग सदा श्रद्धापूर्वक याद करते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौमुख दिवला बार धरूँगी चौबारे पर

(साहित्यिकों के साथ एक संध्या)

श्रीमती कमला रतनम्

फरवरी का महीना था और वसन्त-पंचमी का अवसर। राजधानी में निराला-जयन्ती की धूमधाम थी। प्रातःकाल का उत्सव राष्ट्रपति-भवन में हुआ था, और सन्ध्या को सार्वजनिक रूप से विराट् विद्वत्कविसभा हुई। समारोह में भाग लेने बाहर से भी कवि विद्वज्जन आये थे। 'सुमन' को मैं अपने ग्वालियर में अध्यापन के दिनों से जानती थी। पिछले पाँच वर्षों से उनके लगातार नैपाल में रहने के कारण और मेरे विदेश में रहने के कारण बातचीत, गोष्ठी का अवसर न मिल पाया था। इसलिए निराला के ब्याज से राजधानी में उमड़े हुए साहित्योदधि की एक लहर को अपने घर में भी लाने की मैंने कोशिश की। 'सुमन' तो आ ही रहे थे उनके स्नेहसौरभ के आकर्षण से दिनकर, बच्चन और नरेन्द्र शर्मा ने भी मेरा आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। ये चारों ही उस 'चौमुख दिवले' की चार बत्तियाँ थीं, जो उस सन्ध्या मेरे घर में जला। उज्जैन में कालिदास समारोह के संयोजक, दिल्ली प्रशासन के प्रधान सचिव श्री ल० ओ० जोशी तथा 'सुमन' के साहित्यरसिक अभिभावक, मित्र और आतिथेय श्री भगवानसहाय ने भी आना स्वीकार कर लिया था। दिनकरजी अपने साथ दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के स्थानीय सचिव भालचन्द्र आप्टे को ले आये थे और पुरानी दिल्ली से मेरे घर का मार्गदर्शन कराते हुए 'सुमन' के साथ एक और सज्जन थे जो पूरी गोष्ठी में इस प्रकार चुप बैठे रहे मानों कमरे की साज-सज्जा का एक अनिवार्य अंग हों। उन्हींके समकक्ष आधे धड़ की बुद्ध की विशाल कांस्य-मूर्ति स्थापित थी जिसे लंकादेश से लौटते समय वहाँके महाराजा ने मुझे भेंट किया था।

सुमन को आने में देर हो गयी थी, और मैं सोच ही रही थी कि अपने सम्मानित अतिथियों का किस प्रकार मनबहलाव करूँ कि समय की गति का ज्ञान उनको न हो कि इतने ही में सुमन अपने मार्गदर्शक सहित आ गये। गोष्ठी बिना किसी भूमिका के आरम्भ हो गयी। पहले पहल मैंने दिनकर से अपनी कविता का पाठ करने के लिए प्रार्थना की। महाकवि के आसन पर आसीन वे ही राष्ट्र-कवि के पीठ के उत्तराधिकारी हैं और यह मेरा सौभाग्य होता जो काव्यपाठ उन्हींसे आरंभ होता। परन्तु उन्होंने कहा, बच्चन मुझसे उम्र में बड़े हैं इसलिए पहले वे ही कविता पढ़ेंगे। सरल प्रकृति बच्चन इस सुझाव को मान गये और माइक्रोफोन के आगे गद्दी पर जाकर बैठ गये। कवियों की संगति से मुझमें संग्रह का एक दोष आ गया है जो सब कुछ त्याग कर देने पर भी मुझे मुक्ति से वंचित रक्खेगा। मुझे मेगनीटोफोन पर काव्यपाठ, साहित्य-गोष्ठी आदि रेकार्ड करने का चस्का लग गया है। ऐसी दुर्लभ और विलक्षण गोष्ठी की स्मृति मैं कैसे न सँजोकर रखना चाहती? मेरा रिकार्डर और माइक्रोफोन तैयार था। दिनकर को रिकार्डर से सख्त नफरत है। पता नहीं, रेडियो वार्ताओं पर वे उसे कैसे सहन करते हैं। तुरन्त बोल उठे,

"तब के राजा और थे कवित सुने कछु देयँ,
अब की रानी और हैं, कवित सुने लिख लेयँ॥

(रेकार्ड करि लेंय)

बच्चन ने पूछा, कौन सी कविता सुनेंगी? बच्चन की नयी परिपक्व विचारवाली कविताएँ श्रवणीय से अधिक पठनीय हैं, मधुशाला मैं छककर सुन चुकी थी इसलिए मैंने "इस पार-उस पार" सुनाने की प्रार्थना की। और गंभीर स्वर गूँज उठा:

"इस पार प्रिये मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा"।

"कुछ भी न किया था जब उसका,
उसने पथ में काँटे बोये,"

फिर व्यक्ति की वेदना उठकर विश्व की संवेदना पर पहुँचती है, ऐसी "घड़ियाँ आती हैं जब दिनकर की तमहर किरणें तम के अन्दर छिप जाती हैं" और तब रजनी अपने प्रियतम का शव तम की चादर से ढक देगी और रवि-शशि-पोषित यह पृथ्वी कितने दिन और खैर मनायेगी? और फिर मत्यु चुनचुन कर फूलों के आभरण छीन लेगी, ऊषा की सिन्दूरी साड़ी खिच जायेगी, और उस पार खड़ा कोई हम सबको बारी बारी से बुला लेगा। और गीत का अन्त होने लगा--

"मैं आज चला, तुम आओगी
कल, परसों सब संगी साथी।"

हृदय को कचोटने वाली बच्चन की इन पंक्तियों ने न जाने कितने पाठकों को सान्त्वना दी है, मृत्यु के आगमन को एक निश्चित रूप दिया है, कवियों की गोष्ठियों में यह पंक्तियाँ बहुचर्चित, बहुप्रशंसित हैं। यह कविता १९३५ में कलकत्ता में लिखी गयी थी। उन दिनों रवीन्द्रनाथ के निमन्त्रण से जापानी कवि योने नोगूची भारत आये हुए थे और उनको हिन्दी कवियों से परिचित कराने के लिए बनारसीदास चतुर्वेदी ने कलकत्ते में एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया था; दिनकर, बच्चन और वर्मात्रयी (भगवतीचरण, रामकुमार और महादेवी) निमन्त्रित थे। बाद में कवि-सम्मेलन में पठित कविताएँ ब्रोश्योर के रूप में छपीं और नोगूची को भेंट की गयीं। कलकत्ते जाने के समय बच्चन का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, "निराशा की भावना और अज्ञात की जिज्ञासा" उनके मन पर छायी हुई थी। कलकत्ते में जिस मित्र के यहाँ ठहरने की बात थी वे घर पर नहीं थे। जिस सेठ का वह घर था उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

पहरेदार ने उन्हें बाहर बिठा दिया था। एक तो कलकत्ता की पहली बार यात्रा, दूसरे बच्चन का स्वास्थ्य भी अच्छा न था, बाहर बैठे-बैठे तरह-तरह की भावनाएँ उनके मन में आने लगीं। धीरे-धीरे कविता की विचारधारा उनके मन में स्थिर हो गयी। दो-तीन घण्टे बाहर बैठने के बाद जब रात के आठ बज गये और मित्र महोदय डेरे पर नहीं लौटे तो सेठजी को मति सूझी और उन्होंने उनका कमरा खुलवाकर इनके लेटने का प्रबन्ध करवा दिया। इसके बाद "मैं लेट गया, लेटे लेटे कविता बन गयी, उठकर लिखने लगा। मित्र महोदय बारह बजे रात तक नहीं आये, तब तक मैंने कविता लिखकर रख दी और सो गया। अगले दिन ठहरने का प्रबन्ध होटल में हुआ। दिनकर भी वहीं ठहरे थे।" उस दिन कवि-सम्मेलन में बच्चन ने यही कविता पढ़ी। मैंने पूछा "इस कविता को आप जिस ट्यून में गाते हैं यह भी उसी समय निश्चित कर ली थी?" बोले "ट्यून और कविता साथ साथ ही आते हैं, कहने का राग स्वयं आ जाता है, भावना स्वयं राग में उतर आती है, पंक्तियों को बाँधते समय उनको गुनगुनाता भी हूँ।" मुझे याद है, इस शताब्दी के चौथे दशक में जब बच्चन इस कविता को सुनाया करते थे तो उनकी वाणी में जो कसक और वेदना थी कविता के भावों को समझने में वही सबसे बड़ी सहायक थी। बीस वर्ष बाद अब जब उनका जीवन भरा-पुरा है, पत्नी और बच्चों के स्नेह की दीवार ने अस्वास्थ्य, अजीवन और अवांछित के झकझोरों से उन्हें सुरक्षित कर रक्खा है तो वह वेदना और कसक भी उनकी वाणी से चली गयी है—उनकी वाणी संयत-संयमित हो गयी है, मानों ऐसे व्यक्ति की वाणी है जो जीवन में पर्याप्त रो चुका है और अब जिसका हृदय विश्वास और सुरक्षा की गठरी में बँध गया है।

'हलाहल' की भूमिका में लगभग इसी समय का संकेत देते हुए बच्चन ने लिखा है कि "१९३६ मेरे जीवन में एक भीषण भूकम्प का समय था।" कविता लिखने के कुछ ही दिनों बाद पत्नी श्यामा की मृत्यु हो गयी और बच्चन स्वयं क्षय रोग से ग्रसित हो गये। हलाहल मरण की प्रवृत्तियों का प्रतीक बनकर इनके मन में उदित हुआ था और उनको चुनौती देकर ही इन्होंने अपने अंदर बल संचित किया था। इलाहाबाद में श्यामाजी की एक सह-पाठिनी थीं। 'इस पार-उस पार' कविता को सुनकर उन्होंने कहा था "यह कविता तो आपने अपने लिए लिखी परन्तु मृत्यु श्यामा की हुई, और वे आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिए उस पार चली गयीं।"

कवि की इस मनोदशा का पल्लवन संभव है 'हलाहल' की पहली कविताओं में हुआ हो जिन्हें 'वसुधा' में बच्चन जी के गृहिणीकाल में दीमकें चट कर गयीं। दस वर्ष बाद इन कविताओं की जो रूपरेखा हुई उनमें 'हलाहल' का नया प्रतीक था, "नाश की गोद में बैठकर निर्माण का अनवरत प्रयत्न", मरण में भी अमरता का अभियान। जनता के हृदय में इस कविता का स्थान क्या है, इस विषय का विवेचन करते हुए बच्चन ने कहा कि अज्ञात हमेशा आकर्षक होता है। ज्योतिषियों को हाथ दिखाना, जन्मपत्र दिखाना यह सब अज्ञात के प्रति जिज्ञासा के ही स्वरूप हैं। दुनिया में आधी से अधिक कविता 'मृत्यु के बाद क्या होगा' इस विषय पर है। परन्तु अज्ञात की जिज्ञासा द्वारा ज्ञात का भी सही मूल्यांकन नहीं हो सकता, फिर भी कविता अत्यन्त लोकप्रिय हुई है यद्यपि वह कोर्स में नहीं है। कविता में भावों के लय और भाषा के लय में अच्छा सामंजस्य है। अज्ञात की जिज्ञासा को प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। वैसे गीत निराशाजनक है। बाद को यह गीत जब 'मधुबाला' में छपा तब दिनकर ने मुझे चिट्ठी लिखी कि इसे इस संग्रह में नहीं रखना था। श्यामा की लम्बी बीमारी से सब लोगों को निराशा हो गयी थी। परन्तु मृत्यु से मैं जीत गया और वेदना को मैंने सुन्दरता बना दिया। "इस पार-उस पार" बच्चन के जीवन के एक नये मोड़ का अमर गीत है।

बच्चनजी के कविता-पाठ के बाद कविवर नरेन्द्र शर्मा की बारी आयी। काव्यधारा के एक बार बहने लगने पर अब उसे प्रवाहित रखना कठिन काम नहीं था। बच्चन को मैं इलाहाबाद के अपने छात्र-दिनों से जानती थी, यद्यपि उन्होंने मुझे बहुत दिन बाद ही जाना। उन दिनों हम छठी-सातवीं कक्षा में पढ़ते थे और मधुशाला अपने पूरे वेग से तरंगायित हो रही थी। मैंने छोटे आकार वाली उस पुस्तक को खरीदकर अपना नाम लिख लिया था। परन्तु एक बार क्लास में डेस्कों के नीचे फिरती हुई पढ़ी जानेवाली वह पुस्तक जब पकड़ी गयी तब मुझे उसपर से अपना नाम काट देना पड़ा। दिल्ली आने पर एक दिन हस्ताक्षर लेते समय मैंने बच्चन को वह पुस्तक दिखायी भी थी। इसके विपरीत नरेन्द्र शर्मा मेरे लिए अपेक्षाकृत अपरिचित थे, रेडियो की साहित्य-वार्ताओं के अतिरिक्त मेरी उनसे भेंट भी नहीं हुई थी। इसलिए जब उन्होंने पूछा कि मैं क्या सुनाऊँ तो मैं जिज्ञासाभरी दृष्टि से गोष्ठी के अन्य सदस्यों की ओर देखने लगी। दिनकर ने कहा, "चौमुख दिवला बार" सुनाओ। सबने अनुमति दी। नरेन्द्रजी ध्यानावस्थित होकर माइक के आगे बैठ गये, आँखें बन्द कर लीं और बड़े मनोयोग से उन्होंने सस्वर अपनी 'प्रतीक्षा' शीर्षक कविता सुनायी:

"चौमुख दिवला बार—
चौबारे पर आज, धरूँगी चौमुख दिवला बार—
जाने कौन दिशा से आवें मेरे राजकुमार!

नरेन्द्र शर्मा का जन्म बुलन्दशहर में हुआ था और उस अंचल की भाषा और चित्रों का सुन्दर समावेश इस गीत में हुआ है। मेरे राजकुमार के आने का संदेसा पवन लेकर आती है, दीये की लौ सौ-सौ बल खाकर झाला दे-दे पास बुलाती है। मैं उझक कर देखती हूँ। जंगल में पटबिजना (जुगनू) आकाश में तारों की भाँति खिलता है परन्तु मैं जानती हूँ यह सब छलना है, आशा में सारा जीवन बीत जाता है। फिर रहस्य जागता है। मैं तो अनदेखे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणीता हूँ, मेरे राजकुमार निर्मोही बन मुझे मोहे लेते हैं।

"छीज रही तन मन की बाती,
दीये सी ही रात सिराती
जीती तो फिर दीप जलाती,
कह भर देता कोई मेरे आते राजकुमार।"

आत्मा की परमात्मा से मिलने की सारी व्याकुलता गीत से छनकर कवि के मुख पर आ गयी। यह कविता न थी एक अनुभव था। एक घटना थी, आत्मा ने क्षण भर के लिए अपना घूँघट उलट दिया था। और हम सत्य के निभृत कक्ष में एक दूसरे के आमने-सामने हो गये थे। इसके कई दिनों बाद एक दिन बातचीत करते हुए शर्माजी ने बताया कि यह कविता १९३७-३८ में लिखी गयी थी। पहले-पहल 'विशाल भारत' में छपी, नवीनजी को यह बहुत प्रिय थी, पन्तजी को प्रिय है और बहुत दिनों से दिनकर को भी प्रिय है। शर्माजी १९३१ में खुरजा से पढ़ने के लिए इलाहाबाद गये और वहाँसे अँगरेजी में एम० ए० करने के बाद वहीं स्वराजभवन में नियुक्त हो गये। (आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के वर्तमान समर्थ कवियों में बच्चन और नरेन्द्र दोनों ने ही अँगरेजी साहित्य की विशिष्ट शिक्षा पायी परन्तु कविता हिन्दी में लिखी।) इलाहाबाद की भूमि ने इन्हें कवि बना दिया। १९३४ में इनका पहला संग्रह 'शूल-फूल' छपा, '३६ में 'प्रवासी के गीत' और, ३९ में 'पलाश वन'। सन् '४० से '४२ तक आप जेल में रहे और वहीं 'कामिनी' खण्डकाव्य और 'मिट्टी और फूल' लिखे। "चौमुख दिवला बार" कामिनी-काव्य का एक गीत है, परन्तु यह खण्डकाव्य लिखने से पहले लिखा गया था। इनकी कविता 'कब मिलेंगे' का

आज से दो प्रेमयोगी अब वियोगी ही रहेंगे,
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे!

यह पद भी बहुत लोकप्रिय है। 'मैं उस वर्ग का हूँ जो ऐसे शिल्प में विश्वास करते हैं जहाँ शिल्प न दिखे। शैली से ही यदि कवि पहचाना जाय तो वह कवि नहीं। जैसे पानी, हवा और धूप की कोई शैली नहीं वैसे ही कविता भी है। कविता इतनी आत्मीय हो जानी चाहिए कि उसका बाह्यरूप ही आकर्षण का बिन्दु न बन जाय। यह मेरा आदर्श है। मैं कविता को आत्मसात् करने का प्रयत्न करता हूँ। जिस व्यक्तित्व का भार आप पर न पड़े, छाप न पड़े, जिसके साथ बिलकुल सहज रह सकें वह व्यक्तित्व अच्छा है, जैसे बच्चा माँ के सामने रहता है। यही आदर्श कवि और पाठक के बीच में भी होना चाहिए। पाठक हमें अभिनय का पात्र न समझकर आत्मीय समझें।' संभव है, इनके इसी गुण को देखकर एक बार निराला ने इनसे कहा था "आप जटिल सौन्दर्य को बहुत ही सरल कर देते हैं।"

नरेन्द्र शर्मा के कवितापाठ के उपरान्त दिनकर की माँग हुई। सुमन ने विशेष रूप से अनुरोध किया। क्या सुनाया जाय इसका प्रश्न ही नहीं उठा; जब से 'उर्वशी' पृथ्वी पर उतरी है, उसके आलोक ने पिछले सभी प्रकाश-पुंजों को धूमिलता में डाल दिया है। वैसे मेरी सबसे प्रिय कविता 'हिमालय' है, परन्तु 'उर्वशी' के रंगीन कला-वितान में आज धवल हिमालय को कौन पूछे? उर्वशी ही सुनायी गयी। सबकी इच्छा थी कि तीसरे अंक का रस बहे, परन्तु कवि किसीकी इच्छा पर नहीं चलता। गलती प्रारम्भ में ही हो गयी थी जब ब्रह्मा को कवि कह दिया गया था। दिनकर तो कभी माँग पूरी नहीं करते। अतः पुस्तक मंगवायी, स्वयं स्थल चुना और पाँचवें अंक में से वह भाग सुनाया जहाँ उर्वशी के विलुप्त हो जाने पर शोक और वीर रस से उपप्लुत पुरूरवा पृथ्वी और आकाश को अभिभूत करने को तुल जाता है।

"उठो बजाओ पटह युद्ध के, कह दो पौर जनों से,
उनका प्रिय सम्राट् स्वर्ग से वैर ठान निकला है।

अमात्य उसे राजनीति की शिक्षा देता है कि मनुष्य और देवों के युद्ध में दानव ही लाभ उठायेंगे। परन्तु युद्धोन्मत्त पुरूरवा अमात्य की कब सुनता है! दनुजों को मानव कायरता की कल्पना बताकर वह युद्ध का पटह बजवाने की घोषणा करता है। उसी समय नेपथ्य से पुरूरवा का प्रारब्ध, उसका अन्तःकरण बोलता है और कहता है कि देवता शुद्ध, दग्धमल, मानव के श्रेष्ठ रूप हैं। तो मनुष्य क्या अपने ही श्रेष्ठ रूप से युद्ध ठानेगा अथवा अपने उस भाग से जो अभी दुष्ट, मलिन और दानवी है; अपनी प्रत्येक इच्छा, विचार और कर्म पर चिन्ता कर क्योंकि——

"चिन्तन कर यह जान कि तेरे क्षण-क्षण की चिन्ता से
दूर-दूर तक के भविष्य का मनुज जन्म लेता है।
उठा चरण यह सोच कि तेरे पद के निक्षेपों की
आगामी युग के कानों में ध्वनियाँ पहुँच रही हैं।"

और प्रेम? अपने प्रेम को करुणा में डुबा दे और उस विश्व-देवता की आराधना कर "जिसे लिये तू और व्योम में ऊपर उठ सकता था।" प्रेम के विराट् रूप को देख सामान्य नारी और नर के भीतर जो असामान्य और असीम है उसका आदर करता है, जो स्त्री के कामिनी रूप से ऊपर उठकर उस स्तर पर पहुँचता है "जहाँ प्रेम कामना नहीं, प्रार्थना, निदिध्यासन है।" वीर से ओज, ओज से करुणा और विराट् करुणा से निर्विकल्प कैवल्य की विश्व-जनीनता तक अद्भुत संक्रमण है——सरल, सहज, श्रम का नाम नहीं, अबाध, अनवरत गति विश्राम का काम नहीं।

इसी संदर्भ के बीच में निम्न पंक्तियाँ भी आती हैं जिन्हें दिनकर औरतों को चिढ़ाने के लिए आवश्यकता से अधिक जोर से पढ़ते हैं——

"त्रिया हाय, छलना मनोज्ञ वह। पुरुष मग्न हँसता है,
जब चाहिए उसे रो उठना कंठ फाड़, चिल्ला कर।"

कभी-कभी जब उनकी परिहास की भावना अति प्रबल हो जाती है तो वे इसी स्थल पर इस कविता का पाठ बन्द भी कर देते हैं, कम से कम उस गोष्ठी में जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारियाँ भी उपस्थित हों। कविता सुनने के बाद बच्चन ने मुस्कराते हुए कहा कि पिछले साल जब उर्वशी समाप्त हो गयी तो दिनकर ने मुझे और पन्तजी को सुनायी। मैंने उनसे एक वाक्य में उर्वशी की रचना का उद्देश्य पूछा, तो उन्होंने तीन शब्द कहे "नारी की निन्दा"। दिनकर में सरल हास-परिहास की धारा बहुत प्रबल है, और यही उनके गम्भीर चिन्तनपरक व्यक्तित्व को इतना आकर्षक और मधुर बना देती है। उर्वशी के समाप्त हो जाने के बाद बहुत दिनों तक उनके मुख से यही सुनने को मिला कि 'उर्वशी' तो लिखी गयी, 'परन्तु दोस्त मेरी पुरानी ही कवितायें पसन्द करते हैं, दोस्त विशेषकर नारियाँ!' कुछ दिनों बाद बातचीत के सिलसिले में मैंने दिनकर से पूछा क्या वास्तव में आपका उद्देश्य नारी की निन्दा करना था? तो बोले—नहीं, बच्चन उर्वशी का शृंगार देखकर घबरा रहा था, प्रश्न था शृंगार के आधिक्य पर, मैंने उसीका उत्तर दिया।

संध्या का अँधेरा बढ़ रहा था, और अब दिये की चौथी बाती जलाने का समय हो आया था। सुमन के काव्य-पाठ की बारी थी। निराला के काव्य-पाठकों में जीवित व्यक्तियों में वही सबसे अग्रणी हैं। महाप्राण की जन्मभूमि में जन्म पाकर उन्होंने उनका स्नेह और सान्निध्य भी पाया है और चाहे अंशरूप में ही हो, निराला की काव्यात्मा सुमन में उतर आयी है। 'राम की शक्ति-पूजा' पढ़ते समय जो मुद्रा, भावभंगिमा उनकी हो जाती है उसका बहुत असर पड़ता है। मैंने बचपन में एक बार लखनऊ में निराला को देखा था। ऊँचा लम्बा शरीर, ताम्र-वर्ण आकृति, आस्कन्ध कुंचित केशराशि, धनुषाकार भौंहें, उत्तुंग नासिका और लाल डोरे वाले उत्फुल्ल कमलवत् नयन, यही छाप मेरे मन पर पड़ी। स्वयं निराला के मुख से कविता सुनने का सौभाग्य मेरा कभी नहीं रहा। उनकी पठित कविता से मेरा पहला परिचय सुमन द्वारा हुआ जब उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' पढ़कर मुझे सुनायी। पढ़ कर क्या सुनायी, सुमिरनी की भाँति नाममात्र को किताब हाथ में थी, सुमन को कविता कण्ठस्थ है और उसके पाठ को वे देव-पूजन जैसी निष्ठा के साथ करते हैं, बीच में कोई बाधा-विघ्न उन्हें सह्य नहीं। तो 'राम की शक्तिपूजा' तो उनसे सुननी ही थी। इससे पहले उपारंभ के रूप में उन्होंने दो स्फुट कविताएँ सुनायीं "मिट्टी की महिमा" और "आँखें नहीं भरीं"। 'कितनी बार तुम्हें देखा पर आखें नहीं भरीं' इन पंक्तियों को उन्होंने गाकर सुनाया। गीत गाते-गाते उनकी वाणी में जो वेदना उतर आती है वही इस कृति की चिर अतृप्ति का सौन्दर्य है। 'मिट्टी की महिमा' गंभीर चिन्तनपरक कृति है,

"निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी-पिटी
हर बार बिखेरी गयी
किन्तु मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी।"

मिट्टी ही मनुष्य है जो सब रूपों में, सब परिस्थितियों के भीतर संक्रमण करता लगातार आगे बढ़ता जाता है, भावों के घातों-प्रतिघातों से उसके रूप बदलते हैं, घटनाओं के चक्र-कुचक्र में उसकी स्थितियाँ बदलती हैं, परन्तु अन्त में मिट्टी मिट्टी ही रहती है, मनुष्य मनुष्य ही रहता है, **"सौ बार बने सौ बार मिटे लेकिन मिट्टी अविनश्वर है। मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है!"**

कवि मनुष्य का अविनश्वर रूप है, मनुष्य मर जाता है परन्तु कवि का उच्छ्वास अमर हो जाता है।

सन्ध्या के झुटपुटे में सूर्य पश्चिम दिशा की ओर संक्रमण कर चुका था, खिड़कियों पर से तिरछी किरणों की लाली धुल चुकी थी और वातावरण में कोई अद्भुत समरंग फैल गया था, जिसे अँगरेजी में मैं 'न्यूट्रल कलर' कहूँगी, यह मानों पृष्ठ-यवनिका थी जिस पर 'राम की शक्तिपूजा' के गहरे गंभीर रंगों की चित्रकारी हुई। सुमन ने आरंभ किया "रवि हुआ अस्त:" और फिर उनका शब्द-प्रवाह छूटा तो लगा वर्षों बाँध में बँधी निर्झरिणी में बाढ़ आ गयी, शिव के जटाजूट को फोड़कर गंगा की धारा बाहर निकल पड़ी और श्रोताओं के मन के कंकड़-पत्थर घसीटती हुई दुर्निवार, अप्रतिहत-वेग-प्रखर, नील-नभगर्जित स्वर प्रतिपलपरिवर्तितव्यूह अपने ध्येय की ओर भागी। बीच-बीच में धाराएँ धावित कुंचित, वलयित होकर चित्रों की रचना करने लगीं "राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह" 'रावण-वारण', 'उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपिदल-बल-विस्तर', 'अनिमेष-राम', 'बद्ध कोदण्ड-मुष्टि', 'जानकी-भीरु-उर,' 'रावण-सम्वर', चित्रों की वर्षा, निराला के शक्तिमान् शब्दों की वर्षा, सुमन के आँख-ओष्ठ-हस्त-परिचालन की वर्षा, बीच-बीच में टीका-टिप्पणियों की वर्षा और अन्त में प्रभूत भावतन्मयता की घनघोर वृष्टि। कविता की पूर्णाहुति हो गयी और हम सब पूर्ण तृप्त। काव्यपाठ समाप्त हुआ, चाय का दूसरा दौर चलने लगा और सब लोग बातें करने लगे। सबने एक स्वर से सुमन से कहा कि वे हिन्दी कविता की श्रेष्ठ उपलब्धि 'राम की शक्तिपूजा' पर अपनी टिप्पणी लिखें।

बात लौट-फिरकर निराला-जयन्ती समारोह पर ठहरी। बच्चन ने कहा उस दिन मुझे बोलने का अवसर नहीं मिला, नहीं तो मैं यह कहना चाहता था कि उस दिन मंच से जो बहुत कुछ कहा गया उसका कोई मूल्य नहीं था। निराला की महत्ता यह कहने से सिद्ध नहीं होगी कि रेडियो पर उन्होंने हजार दो हजार के लिये भी बोलने से इन्कार कर दिया अथवा किसी बड़े आदमी को फटकार दिया, या किसीको गाली दे दी, बल्कि उनका बड़प्पन इससे सिद्ध होगा कि उन्होंने साहित्य को अपनी कृतियों द्वारा क्या निधि दी है, क्या प्रेरणायें दी हैं और उनका क्या महत्त्व है। मंच पर से उनकी दयालुता की सैकड़ों कहानियाँ कही गयीं। वे गरीबों को देखकर द्रवित होते थे अपना कुरता, जूता तक उतारकर दे देते थे। अब देखना यह है कि उनकी कविता से दया की क्या प्रेरणा मिलती है। कहने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतलब कि व्यक्तित्व से कृतित्व का मूल्यांकन नहीं हो सकता, कृतित्व का मूल्यांकन कृतित्व से ही होता है। गालिब जुआ खेलता था, शराब पीता था, डोमिन रखे था, परन्तु उसकी कविता की प्रेरणा उसके व्यक्तिगत जीवन से अलग है। गालिब ने अपनी कमजोरियों को कलात्मक रूप दे दिया है, उसकी कमजोरियों के भीतर से महान् कला ने जन्म लिया। इसलिए मेरी सम्मति में निराला के मूल्यांकन में उनके व्यक्तित्व की कमजोरियों का निर्देश नहीं करना चाहिए। बच्चन ने आगे बोलते हुए कहा कि जब मैं केम्ब्रिज में आइरिश कवि येट्स पर रिसर्च कर रहा था तो मुझे पता लगा कि येट्स परा-प्रकृति की भूत, प्रेत, पिशाच जैसी चीजों पर विश्वास करता था। इस विषय पर जब मैंने अपने प्रोफेसर से बातचीत की तब उन्होंने कहा कि 'येट्स के चरित्र के इस पक्ष से हमें दिलचस्पी नहीं है, हमें तो केवल उसकी रचनाओं से काम है।" निराला की विशेषताओं और कमजोरियों से हमें उनके व्यक्तित्व का चित्र खींचने में मदद मिल सकती है परन्तु उनसे उनके कृतित्व का सही खाका नहीं खिच सकता। यदि किसी कवि की महत्ता को सिद्ध करना है तो उसे उसके कृतित्व द्वारा करो, यह मैंने कैम्ब्रिज में सीखा।"

११ फरवरी के निराला-अंक में "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में बच्चन का एक लेख "यह मतवाला निराला" के शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उसीको स्मरण करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने कहा कि "भाई बच्चन, तुमने यह नया रिसर्च किया है, और इसके लिए मैं अपनी स्वीकृति देता हूँ, मैं समझता हूँ कि तुम्हारा यह अनुमान ठीक है।" बात कुकुरमुत्ते की थी। बच्चन ने लिखा था कि यह कविता निराला ने अपने और पन्तजी के ऊपर लिखी है। पन्तजी 'फारस के गुलाब' हैं और 'कुकुरमुत्ता' स्वयं निराला हैं। लगभग २०० पंक्तियों की यह सैटायर भरी कविता १९४४ में छपी और प्रगतिशील युग की सबसे बड़ी कविता मानी जाती है। कविता कालाकाँकर के कुँवर सुरेशसिंह को समर्पित है जिनके यहाँ कुछ वर्षों के लिए पन्तजी जाकर रहे थे। बातचीत के दौरान में निम्नलिखित बातें ऊपर आयीं: कविता के क्षेत्र में निराला और पन्त की दौड़ लगभग एक ही समय से आरंभ हो गयी। निराला के गूढ़ अवचेतन में यह भाव था कि मुझसे अच्छा समकालीन कवि कोई नहीं है। अनामिका के नामकरण में इसकी ओर संकेत था:

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे
कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासाः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात्
'अनामिका' सार्थवती बभूव।

१९२२ में पन्तजी का 'उच्छ्वास' छपा, १९२३ में 'अनामिका' छपी; सरस्वती में पन्तजी की कविताएँ छपती थीं, निराला की वापस आती थीं; पन्तजी कालाकाँकर जाकर रहे, निराला कहीं नहीं रहे। 'पल्लव' के प्रकाशन के बाद निराला ने 'पन्त और पल्लव' के नाम से उसकी कड़ी आलोचना लिखी। "मेरे गीत और कला" में अपने काव्य-सिद्धान्तों की सफाई दी। पन्तजी ने इसका जवाब दिया था। कहने का मतलब यह कि दोनों के कविजन्म से ही प्रतिद्वन्द्विता आरंभ हो गयी थी। साहित्यिक दुनिया उस समय छोटी थी और निराला गुस्सा हो गये थे। पल्लव की भूमिका में पन्त ने निराला के मुक्त-छन्द का विरोध किया था। उन्होंने कहा कि 'कवित्त' जो मुक्त-छन्द का आधार है हिन्दी में बाहर से आया। यह हमारा छन्द नहीं है। 'परिमल' की भूमिका में निराला ने कहा कवित्त-छन्द हिन्दी का कण्ठहार है, यह हमारा जातीय छन्द है। अपने समय के इन संघर्षों और स्पर्धाओं की ओर उत्तरशती में पन्त जी ने संकेत किया है। बच्चन ने कहा कि निराला के मानस के डावाँडोल होने का प्रधान कारण उनका बंगाल छोड़ देना था। जब वे बंगाल से निकले तब उनकी आधारभूमि छूट गयी थी।

इतना सुनने के बाद नरेन्द्र शर्मा को एक संस्मरण याद आ गया जब निराला ने उनकी बड़ी आवभगत की थी और प्रतिद्वन्द्वी दल के एक 'एम्बेसडर' के रूप में उनकी खातिर की थी। वे कहने लगे, "जब मैं इलाहाबाद रहता था तो वहाँसे एक बार लखनऊ गया और निराला के यहाँ ठहरा। उस समय वे भूसा-मण्डी-हाथीखाना में रहते थे। मिलने पर जब मैंने कहा, "वाह वाह! बहुत उपयुक्त स्थान चुना है," तो बहुत हँसे और बोले "नाहिन रह्यो मन में ठौर।" पन्त-निराला प्रसंग पर बात करते हुए शर्माजी ने कहा निराला ने एक तो हमेशा 'इनकनवीनियेन्ट' की आराधना की, कठोर की उपासना की और दूसरे उनको आजीवन पन्त का 'ओबसेशन' (अतिभावना) कुण्ठित करती रही। निराला और पन्त दोनों समानरूप से काव्यनिष्ठ हैं, काव्य की लगन दोनों में एक सी है। निराला अपने को कर्ण कहा करते थे, यह भी उनकी पन्त से प्रतिद्वन्द्विता का ही एक रूप था। सौभाग्यशाली अर्जुन से कर्ण, आभिजात्य न होने के कारण, बराबर हारा। निराला को आभिजात्य कुल में पैदा न होने का बराबर खेद बना रहा। वे कहते थे "मैं देवेन्द्रनाथ के यहाँ पैदा न हुआ।" उनका अभिमान पन्तजी से टकराता था, अर्जुन का प्रशंसक कर्ण भी था, निराला भी पन्त की प्रशंसा करते थे। पन्त को अँगरेजी के माध्यम से ऊँची शिक्षा मिली थी। निराला को नहीं मिली थी। इसकी प्रतिक्रिया उनके अवचेतन मन पर हुई और वे पागलपन में अँगरेजी बोलने लगते थे। निराला के यहाँ अपने ठहरने की बात पर लौटते हुए नरेन्द्र शर्मा ने कहा, "मैंने उनको अपने आने की सूचना नहीं दी थी। जीना चढ़कर दूसरी मंजिल पर गया जहाँ वे रहते थे। देखते ही बड़े प्रसन्न हुए और बोले, "कहाँ है सामान?" और फौरन नीचे दौड़े। मैं भी उनके पीछे दन-दन सीढ़ी कूदता हुआ गया। सामान वे खुद उठाकर लाये। ताँगेवाला निरालाजी को बड़े भक्तिभाव से जानता था। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा 'लीजिए आप पंडितजी के मकान पर आ गये।' ताँगेवाले ने कहा सामान मैं पहुँचाये देता हूँ, परन्तु वे माने नहीं। सामान उठाकर जब वे जीना चढ़ने लगे तो ऐसा लगा कि बच्चा खेलने की चीजें लिये हुए जा रहा है। मकान में तीन कमरे थे, एक छोटे कमरे में वे खुद रहते थे बाकी दो बन्द पड़े थे। मेरे लिए खुद झाड़ू लेकर दूसरा कमरा साफ किया। फर्श पर बालिश्त भर धूल जमी थी, उसे दबाने को दो बाल्टी पानी लाकर उँडेला। दूसरे दिन तीसरा कमरा भी खुला और मेरे लिए साहित्यिकों की "बैन्क्वेट" हुई। बीस-तीस आदमी आये, आमिष-भोजन बना, मेरे लिए घास-पात। दुःख यह रहा कि मैं उनके पाक-शास्त्र से अवगत नहीं हो सका। परन्तु उन्होंने मुझसे कहा 'देखिए, आप का भोजन असली हाँडी से दूर रक्खा है।' निराला के जन्म-संस्कार यद्यपि गाँव के थे परन्तु उनके प्राप्त संस्कार राजसी थे जो महिषादल से मिले थे। वे मानते थे कि समाज ने उनके साथ न्याय नहीं किया है, उनकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उनको प्रतिष्ठा नहीं दी है। वे अनुभव करते थे कि भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया और पराजय ही उनके जीवन की परिणति रही। मुझे उन्होंने ऐसा स्वागत इसलिये दिया था कि वे मुझे पन्त-कैम्प का 'एम्बेसेडर' समझते थे। शर्माजी ने कहा कि निराला के असली व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके कलकत्ते के जीवन को जानना जरूरी है और इसकी कुंजी केवल इलाचन्द्र जोशी के पास है जो कलकत्ते में उनके साथ थे।

'राम की शक्तिपूजा' सुनने के बाद भगवानसहाय गद्गद हो गये थे और कहा था, "निरालाजी की क्या प्राञ्जल शैली है, क्या शिल्प है!" दिनकर ने निक्षेप किया, "निराला अपनी शैली के एकमात्र कवि हैं।" "निराला ऐट हिज बेस्ट इज बेटर दैन पन्त ऐट हिज बेस्ट।" (निराला का सर्वश्रेष्ठ पन्त के सर्वश्रेष्ठ से श्रेष्ठतर है।) टीका करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने कहा, "उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी—रिजिस्टेन्स—धारा के प्रतिकूल चलना, इसीलिए जो कठिन और असुविधाजनक होता था वे उसीको साधते थे। इसीको स्पष्ट करते हुए नरेन्द्रजी ने कहा 'व्यक्तित्व के तीन तत्त्व हो सकते हैं ईगो (अहं), ईथोस (अध्यात्म) और ईरोस (शृंगार) और क्रम से निराला, पन्त और प्रसाद इन तीनों तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। निराला में 'ईगो' की स्पष्ट अभिव्यक्ति इसलिए होती है कि वे अपने को कर्ण समझते थे। कर्ण को मैं ईगो का विकास मानता हूँ। यही विचारधारा आगे बढ़कर मेरे 'द्रौपदी'-काव्य में प्रस्फुटित हुई है। द्रौपदी को मैं जीवनी-शक्ति मानता हूँ जो पंचमहाभूतों के पाँच तत्त्वों में आविर्भूत हो गयी थी,

"द्रौपदी, जीवनी शक्ति, सौंप दी गयी पाँच तत्वों को,
था कहा नियति ने, पार्थ! करो अब प्राप्त लुप्त स्वत्त्वों को।"
"पृथ्वी-माता ही पृथा यथा वह देववाहिनी जाया।"

द्रौपदी रूपी जीवनी-शक्ति से विवाहित होकर पंचमहाभूत पाण्डव एकाकार हो गये। (पाँचों पाण्डव क्रम से आकाश, पवन, अग्नि, जल और स्थल तत्त्वों के प्रतीक हैं) द्रौपदी अयोनिजा है, अग्नि के होमकुण्ड से उत्पन्न हुई वह साँवली कृष्णवर्णा है क्योंकि शाश्वतता की छाया सबसे अधिक उसीपर पड़ी है। निराला में कई तत्त्वों का सम्मिश्रण था; शिक्षा-दीक्षा से शमन शैव, स्वभाव से क्रियाशील शक्ति, विश्वास से विमर्शी वेदान्ती। इस सबसे उनका जो अन्तर-संघर्ष था उसने उनको बिखराव की अन्तिम परिणति पर पहुँचा दिया। एक दिन पहले ११ फरवरी को इन शब्दों को बोलनेवाले कवि नरेन्द्र शर्मा ने निराला की स्मृति में यह प्रशस्ति पढ़ी थी;

हे कविर्मनीषी यशःकाय, निःशब्द शब्द-पति नमस्कार।
कोदण्ड काव्य का लिये, अर्थ का वेध किया शर-शब्द मार।
शर-शब्द-शक्ति के आराधन में मोह अर्थ का दिया छोड़!
शर-शब्द-अनी से अन्तर्लोचन अपने हाथों दिया फोड़।
संज्ञा की सीमा लाँघ, शक्ति को तुष्ट कर दिया पुनर्वार।"

निराला-प्रसंग अभी चल ही रहा था कि दिनकर ने बताया कि १९४५-४६ में महादेवी ने इलाहाबाद में साहित्यकार-संसद् इस उद्देश्य से खोला था कि गंगा किनारे लेखकों को एकान्त मिल जाय। संसद् का सार्वजनिक संस्था बनाया गया और यह सोचकर कि निराला यहाँ रहेंगे तो संस्था की इज्जत बढ़ेगी, उन्हें वहाँ रहने के लिए बुलाया गया। महादेवी ने उनकी सुविधा का सब सरञ्जाम वहाँ कर दिया था, सेवा में मोटर, नौकर-चाकर सभी थे। स्वयं गंगाप्रसाद पाण्डेय तत्पर रहते थे। इसी समय उन्होंने अपना ग्रन्थ 'महाप्राण निराला' लिखा। यहीं निराला ने एक दिन संन्यास लिया जब महादेवी ने खुद उनकी धोती रँगी थी। इसके बाद से निराला महादेवी को अपनी बहन मानते थे और कहा करते थे कि महादेवी और निराला की जैसी जोड़ी है वैसी जवाहरलाल और विजयलक्ष्मी की नहीं है। परन्तु संसद् में भी निराला टिक न सके, सामिष-भोजन का अभाव उन्हें खलता था। महादेवी इसके लिए भी तैयार थीं, परन्तु निराला उनकी भावना को दुखाना न चाहते थे इसलिए वे संसद् छोड़कर चले गये और दारागंज के चित्रकार के घुटे घर में रहने लगे।

दूसरी ओर सुमन और जोशीजी में बौद्धिक आदान-प्रदान चल रहा था। विषय था—'राम की शक्ति-पूजा', सुमन बहुत दिनों से खोज रहे थे कि निराला ने शक्ति की पूजा में राम से जो आँख की भेंट चढ़वायी है उसका प्रतीक निराला को कहाँसे मिला। रामकृष्ण मिशन के स्वामी सारदानन्द की 'भारते शक्तिपूजा' पढ़ जाइए, उसमें शक्ति-पूजा की आध्यात्मिक व्याख्या मिलेगी परन्तु उसके कर्म-काण्ड की ओर कोई निर्देश नहीं है। सुमन ने जोशीजी की दूरंगत-विदग्धता की भूरि-भूरि प्रशंसा की जब उन्होंने पुष्पदन्तविरचित 'शिवमहिम्नस्तोत्र' में इसकी जड़ खोज निकाली। स्तोत्र के एक श्लोक में पुष्पदन्त हरि के एक नेत्र-कमल को प्रणाम करता है जो भक्ति के उद्रेक के कारण चक्ररूप में परिवर्तित होकर तीनों लोकों की रक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हेतु निरन्तर जाग रहा है। जैसे पूजा करते-करते राम को एक कमल कम पड़ा था उसी प्रकार एक दिन हरि को भी शक्तिपूजा में सहस्रबलि में एक पुष्प कम पड़ गया था और उन्होंने बलि में अपनी आँख चढ़ा दी थी।

"हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोः
यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन् नेत्रकमलं,
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायं त्रिपुरहर! जागर्ति जगताम्।"

हिन्दी के कवियों पर भी अभी कितना शोधकार्य बाकी है।*

इधर बच्चन, नरेन्द्र और दिनकर किसी और ही धारा में बह रहे थे। कवित्रयी अपने संस्मरणों में लीन थी। बनारस में निराला की पचासवीं वर्षगाँठ की बात चली जब निरालाजी गुलाबी कुरता और छोटी सी गुलाबी पगड़ी लगाये पैदल ही सड़कों पर अपने जुलूस में निकल पड़े थे। वह अविस्मरणीय कवि-सम्मेलन जिसमें दिनकर और बच्चन ने कविता सुना-सुनाकर भोर कर दिया था और अन्त में जब बच्चन ने निराला से कविता सुनाने को कहा तो वे बोले थे 'मेरा ही स्वर बोल रहा है' और उन्होंने इसे उनकी उदारता समझा था क्योंकि आरंभ में वे अपनी कुछ कवितायें सुना चुके थे। न जाने कैसे बात जायसवालजी पर पहुँच गयी। शायद इसलिए कि जायसवालजी असाधारण कविता-प्रेमी थे। उनका जन्म मिर्जापुर में हुआ था परन्तु वे रहते पटना में थे। बैरिस्टरी करते थे परन्तु सारा समय इतिहास के शोध कार्य में लगाते थे। दिनकर के उनके संस्मरण अभी हाल में ही प्रकाशित हुए हैं। इस गोष्ठी में उन्होंने कहा, 'जायसवाल ने जब रिसर्च किया तो संसार के सारे इतिहास फिर से लिखे गये!' जायसवालजी की नास्तिकता को लेकर एक बार दिनकर ने प्रश्न किया, 'आप योग में विश्वास करते हैं, मन्त्र-तन्त्र को मानते हैं, यह भी सोचते हैं कि भूत-प्रेत का अस्तित्व [illegible] है, तो फिर आप नास्तिक कैसे हुए?" इसका उत्तर जायसवालजी ने दिया, "बनारस में मेरे गुरु नास्तिक थे। जब इँगलैंड गया तो जिस बुढ़िया के यहाँ रहा वह भी नास्तिक थी। पटना आया तो रामावतार शर्मा की संगत मिल गयी, और अब जब बुढ़ापे में मेरा समय आया है कि मैं ढल जाऊँ और हरिभजन करने लगूँ तो यह राहुलवा मिल गया!" एक बार दिनकर ने जायसवालजी से कहा कि 'भगवान् के पक्ष में यदि एक ही तर्क हो कि अगर कोई था नहीं तो दुनिया आई कहाँ से, तो यह भी काफी है।' राहुलजी उस समय पास ही बैठे थे। उनसे जायसवालजी ने कहा, "जरा दिनकर को समझा दीजिए," राहुलजी का उत्तर तैयार था, बोले, "कौन कहता है कि भगवान् नहीं था। भगवान् था लेकिन वह दुनिया बनाकर मर गया। देखते नहीं हो, दुनिया का क्या हाल है। अगर भगवान् आज यहाँ होता तो दुनिया का यह हाल होता?" परन्तु यह सब होते हुए भी जायसवालजी वास्तव में नास्तिक थे, इसमें दिनकर को सन्देह था। इसकी पुष्टि तब हुई जब उन्होंने कहा कि एक दिन मैंने जायसवालजी को गले से सोने का एक लाकेट उतारकर मेज पर रखते हुए देख लिया। मैंने लाकेट खोला तो उसके अन्दर कृष्णजी की तस्वीर देखकर चकित रह गया। पूछा तो बोले 'यह लाकेट इँगलैण्ड जाने से पहले मुझे मेरी माँ ने दिया था। लन्दन में जब मैं टाइफायड से पड़ गया तो अकेले पड़े-पड़े एक दिन बहुत खराब लगा। लाकेट खोलकर मैंने कहा, "अरे कृष्ण, तू मुझे मारने के लिए यहाँ लाया? मेरी माँ क्या कहेगी!" और फिर जायसवालजी खूब रोये और ईश्वर से प्रार्थना की। रोते-रोते वे सो गये। अगले दिन बुखार उतर गया। तब से यह लाकेट उनके पास था।

जायसवालजी काम से कविता पर आ जाते थे। दिनकर ने कहा, "इसका कारण हमारी संगति थी, हमारी माने मेरी, मोहनलाल महतो, 'वियोगी', बेनीपुरी और राहुलजी की।" एक बार उन्होंने एक खण्डकाव्य लिखा जिसमें भगवान् के यहाँ एक डेप्यूटेशन भेजा जिसके लीडर राहुलजी थे। सदस्यों में मैं, 'वियोगी', बेनीपुरी, जयचन्द्र विद्यालंकार और कतिपय अन्य कविता-मुखर लोग थे। काव्य में भगवान् का संवाद अकेले राहुलजी से होता है और बहस में भगवान् हार जाते हैं। इसके बाद का वर्णन है—

'झुका दिया शीश जगदीश ईश ने
जगत्पिता ने जगदेव देव ने।'

उस समय उनके यहाँ कई पुराने ढंग के पंडित रिसर्च करने आते थे। इस कविता को सुनकर वे लोग घबरा गये। कहने लगे "यह क्या साहब! किसने किसको सिर झुकाया?"

दीर्घकाल तक विदेश में रहने के कारण इन संस्मरणों के नायकों से मेरा उनके कृतित्व के अतिरिक्त कोई परिचय नहीं था। इसलिए मैंने रामावतार शर्मा के प्रति जिज्ञासा प्रकट की। दिनकर ने बतलाया, ये संस्कृत के प्रचण्ड पंडित थे, पटने में रहते थे और दिग्विजयी नास्तिक थे। 'परमार्थदर्शनम्' नामक इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो सूत्रवार्तिकों सहित इनके मरने के बाद प्रकाशित हुआ और पंचमवेद माना गया। १९२९ में जब इनकी मृत्यु हुई तो पटने के सिनेट-हाल में शोकसभा हुई और निम्नलिखित श्लोक पढ़ा गया।

'भारतं भाहतं जातं, बिहारो हारवर्जितः,
रामावतारे स्वर्याते, मूर्च्छिताभूत् सरस्वती।

एक बार एक संन्यासी पटना आया जो ईश्वर-सिद्धि करता था। पटना की जनता को जोश आ गया और निश्चय हुआ कि संन्यासी को शर्माजी से भिड़ा दिया जाय। शर्माजी ईश्वर और पुनर्जन्म आदि का खण्डन कठोर बुद्धिवादी तर्कों से किया करते थे। वे कहते थे, आम का बीज बोओ तो आम ही होगा तो आदमी मर कर भैंसा कैसे हो

---

*यद्यपि बंगाल में प्रचलित कृत्तिवास-रामायण में राम की शक्तिपूजा का वर्णन है और उसमें आँख चढ़ाने का जिक्र आया है तथापि कृत्तिवास-रामायण का काल सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व का नहीं है। पुष्पदन्त को ग्यारहवीं शताब्दी से बाद का नहीं माना जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है, बन्दर कैसे हो सकता है? यह बातें सुनकर संन्यासी उनके घर चला गया यह सोचकर कि पहले जान-पहचान बढ़ाकर प्रतिद्वन्द्वी को जरा नरम कर लें। भेंट होने पर उसने छूटते ही कहा, "शर्माजी, परमेश्वर को धन्य-वाद है कि वह आप जैसे नररत्नों की सृष्टि करता है।" तुरंत उत्तर मिला, 'और मुझे धन्यवाद नहीं कि मैंने परमेश्वर की सृष्टि की है? 'संन्यासी यह कहता हुआ उलटे पैर भागा कि घोर तार्किक है, श्रद्धा का लवलेश नहीं।

रामावतार शर्मा के सम्बन्ध में नरेन्द्र शर्मा ने भी एक सुना हुआ संस्मरण सुनाया कि पंडितजी जब बनारस में अपने गुरु के पास पढ़ते थे तो एक दिन बहस में उनके गुरु ने कहा कि वेद अपौरुषेय हैं। फिर इन्हें ज्ञात हुआ कि वेदों की कई शाखायें नहीं मिल रही थीं। पटना लौटकर उन्होंने लिखकर वे अपने गुरु के पास भेज दीं। गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए। पूछने पर उन्होंने उन्हें प्रामाणिक भी बताया। इसपर शर्माजी ने कहा, 'यदि आपका यह तुच्छ शिष्य ऐसी रचना कर सकता है, तो वेद अपौरुषेय तो कदापि नहीं हैं।'

फिर दिनकर के ऊपर चोट करते हुए नरेन्द्रजी ने कहा, 'भाई, राहुल और जायसवाल की संगति ने तुमको बौद्ध बनाकर छोड़ दिया।' दिनकर बहुत हँसे, संकेत गहरा था। आर्यदर्शन की सबसे बड़ी देन है वेदान्त, ईशोप-निषद् का सन्देश है कि जो दृश्यमान हैं और जो अदृश्य है, जो अनवगत है और जो अवगत है वह सब एक है। सीम और असीम की गति एक दूसरे की ओर हो तो वे आपस में मिल जाते हैं--सूर्य से आनेवाली शक्ति सावित्री है, उसकी ओर जानेवाली हमारी गति, हमारा निवेदन गायत्री है। दोनों से मिलकर आवर्त पूरा होता है। अद्वैत की यह परम्परा त्याज्य वस्तु नहीं है। नरेन्द्रजी का संकेत 'उर्वशी' की ओर था। वे कहना चाहते थे, प्रेम में तुम पुरूरवा और उर्वशी को एक नहीं बना सके, द्वन्द्व का तत्त्व अस्त नहीं हुआ, आखिर तुमने उसे संन्यास दिला दिया। दर्शन में द्वैत धारा बौद्ध और जैन धर्मों से आई है। इसका उत्तर देते हुए दिनकर ने कहा, "भाई बौद्ध तो मैं पूरा हूँ, परन्तु अहिंसा में विश्वास नहीं करता हूँ। उर्वशी आजकल की इन्टेलेक्चुअल नारी है, पुरूरवा उलझा हुआ पुरुष है। उसके संन्यास को मैं अच्छा नहीं समझता हूँ। और फिर पुराणों में उसके बारे में जो जनमत है उससे भी मैं कैसे भाग सकता हूँ?" दक्षिण-पूर्वी एशिया के उद्भट बौद्ध देशों में आहार में भिक्षु और साधु भी अहिंसा का पालन नहीं करते, इसलिए मैंने कहा, "दिनकरजी! आप अहिंसा को नहीं मानते तो इससे आपके बौद्ध होने में कमी नहीं आती।"

रात के ९॥ बज रहे थे। तेजी जी के दोनों दुलारे लाल घर पर भोजन के लिए माता-पिता की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वे सबको बटोरकर घर ले गयीं तो माता की ममता

ज्योतिर्भिक्षा

श्री 'स्वर्णकिरण', एम० ए०

भेष बदलकर तिमिर-दशानन,
हरे न शान्ति-ज्योति-स्वर-सीता;
चकित व्योम, गिरि, वन-प्रान्तर सब,
अक्षय कोष हृदय का रीता;
तृषामुक्त हो जाय चपल मन,
दो विवेक की स्वर्णिम शिक्षा।
ज्योतिर्भिक्षा!

झर-झर कर विचार की सरिता,
सूख न जाये मरु दलदल में;
उदयाचल की बाल-रश्मियाँ,
खो न जाँय सरसिज-कुड्मल में;
कभी-कभी तो छिप विकास हित,
लिया करो तुम बुद्धि-परीक्षा
ज्योतिर्भिक्षा!

शान्ति-छन्द में तेज भरो तुम,
शब्द-शब्द में आकर्षण हो;
क्रान्ति-क्षेत्र में शान्ति-मेय-स्वर
आभाऽमृत-कञ्चन-वर्षण हो;
हटे स्वार्थ, कटुता, द्वेषाङ्कुर,
शून्य हृदय में भरे तितिक्षा।
ज्योतिर्भिक्षा।

शून्य राह में फूल अनेकों
खिल-खुल काँटों पर मुस्काएँ;
तृषित पपीहों की इच्छा पर,
बादल स्वाति-बूँद टपकाएँ;
तिमिर-भ्रमित कविता-गंगा को
कभी-कभी दो ज्योति-समीक्षा।
ज्योतिर्भिक्षा!

द्वारा इस विलक्षण गोष्ठी का अन्त हुआ। आज के कार्य-रत, बहुधन्धी जीवन में ऐसी गोष्ठियाँ बिजली की एक चमक के समान आकर चली तो जाती हैं, परन्तु वे हृदय की ग्रन्थियों को ढीला करने तथा आत्मा को स्नेह के प्रकाश से प्रवण करने का जीवनदायी काम कर जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी एशिया में सभ्यता का अरुणोदय

श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल

"प्रागैतिहास के बिना, इतिहास न तो बोधगम्य हो सकता है और न अर्थपूर्ण।"—साबातिनो मोस्काती (पुराकालीन प्राच्य का चेहरा) मूल—इतालियन

अधिकांश पुरातत्त्व विशारदों का मत है कि सभ्यता का प्रथम आविर्भाव पश्चिमी एशिया में हुआ। सिन्धु सभ्यता इससे भी पुरानी है या नहीं यह अभी तक विवादास्पद प्रश्न बना हुआ है। सभ्यता का जन्मकाल प्रागैतिहास और इतिहास का सन्धिकाल है। परन्तु पश्चिमी एशिया के क्षेत्र में भी इतिहास और प्रागितिहास का सीमा-विभाजन करना कठिन काम है। यहाँ प्रागितिहास का अर्थ मिस्र और मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक) की सभ्यता के आविर्भाव के पहले का इतिहास है।

पिछले कुछ वर्षों में पश्चिमी एशिया के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में हमें अनेक नई जानकारी मिली है और तत्सम्बन्धित धारणाओं में प्रभूत परिवर्तन हुआ है। परिवर्तन मूलतः पुरातात्विक अन्वेषणों के आधार पर हुआ है परन्तु साहित्य, कला, धर्म आदि सम्पूर्ण सांस्कृतिक क्षेत्र में यह विस्तृत है। इसका प्रारम्भ अप्रैल सन् १९२८ में हुआ जबकि एक सीरिआई किसान का हल, खेतों में हल चलाते हुए, एक प्राचीन समाधि के अवशेषों से जा टकराया और इस प्रकार उगारिट नामक प्राचीन बस्ती का पता लगा। प्रागितिहास के क्षेत्र में अमरीकिओं ने किरकुक क्षेत्र में जो खुदाई की उससे प्राचीन पाषाणयुग और मध्यवर्ती काल के मेसोपोटामिया की नयी वस्तुएँ मिली हैं और नव-पाषाण-युग और ताम्रकाल के अनेक तथ्य प्राप्त हुए हैं।

यह भाग आज, नदी-घाटियों को छोड़कर, रूखा-सूखा अर्द्धरेगिस्तानी क्षेत्र बन गया है और चारों ओर मरुभूमि से घिर गया है लेकिन अनुमान किया जाता है कि हिमयुग में यह बहुत उपजाऊ क्षेत्र रहा होगा। इस काल में अतलान्तिक महासागर के वारिपूर्ण तूफानों को काफी दक्षिण घूमकर पूरब को जाना पड़ता था। इससे अफ्रीका के पश्चिमी तट से ईरान के पहाड़ों तक सारा अंचल हरा-भरा था। घास आदि की अच्छी उपज तो थी ही, बड़े-बड़े पेड़ भी कम्मी थे। प्राचीन पाषाण-युग में अलजीरिया और दक्षिणी त्रिपोलितानिया में शिकारियों ने उन पहाड़ों पर हाथी, भैंसे और जिराफ के चित्र खोदे जो आज सैकड़ों मील तक वीरान रेतीले मैदान से घिरे हुए हैं। आज वहाँ कोई जीवन-धारण नहीं कर सकता। सीरिया, पैलेस्ताइन, कुर्दिस्तान और नील नदी की घाटी के किनारों की ऊँची मरुभूमि पर भी पाषाण-युग के औजार मिले हैं।

पश्चिमी एशिया में सबसे प्राचीन नरकंकाल अभी तक वह है जिसे मिस् गेरोड ने कुछ काल पहले माउन्ट कारमेल पर एक गुफा में खोज निकाला था। लेकिन इससे भी अधिक प्राचीन काल की और अधिकसंख्यक पुराकालीन बस्तियों का सन्धान, मेसोपोतामिया में शानिडार और पालेगावड़ा के बीच मिला है। विशेषकर ब्रेडउड-अभियान ने ऐसे केन्द्र खोज निकाले हैं जहाँ गुफाओं में रहनेवाले शिकार पर गुजर-बसर करते थे। मनुष्य की हड्डियों में से मज्जा निकालने के लिए, जान-बूझकर उनके टुकड़े करना, यह बतलाता है कि इन गुफाओं के निवासी नरभक्षी भी थे।

मध्यवर्ती काल में, मोटे तौर पर, ईसा के जन्म के पहले १० हजार और ६ हजार वर्षों के बीच पश्चिमी एशिया के जलवायु में काफी परिवर्तन हुआ। वर्षा की दिशा बदल गयी और उपजाऊ मैदान तृणभूमि और रेगिस्तान बन गये। लोग अब बड़ी नदियों की घाटियों के किनारे जमा होने लगे, जहाँ अब भी पानी मिल सकता था, इसलिए जीवनधारण करना सम्भव था। मिस गेरोड ने इस सांस्कृतिक काल के चिह्न और अवशेष, वादी नाटुफ नाम की एक छोटी-स्रोतस्विनी की गुफाओं में खोज निकाले हैं। यह नदी यरुशलम के उत्तर पश्चिम में है। इसीके नाम पर, इस क्षेत्र में, उस काल के निवासियों को नाटूफी नाम दिया जाता है। नाटूफी संस्कृति में मुख्य नवीनता यह दिखायी पड़ती है कि गेहूँ और जौ की फसलों की कटाई शुरू हो गयी थी।

इसके बाद ही नव-पाषाण-युग शुरू हो जाता है (ई० पूर्व ६००० से लेकर ई० पूर्व ४००० वर्ष तक) जब गेहूँ और जौ की खेती पहले पहल होती है। मानव विज्ञान-विशेषज्ञों का कहना है कि पश्चिमी एशिया के किसी स्थान में ही, विशेषकर उस भाग में जिसे "उपजाऊ अर्द्धचन्द्र" का नाम दिया जाता है, मनुष्य ने सबसे पहले खेती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नींव डाली। यह विश्वास करने का एक कारण यह है कि गेहूँ और जौ के जंगली पूर्वज, सीरिया और पैलेस्टाइन में अब भी कहीं-कहीं मिलते हैं। आधुनिक गेहूँ की तीन किस्में हैं--नरम गेहूँ, एमेर और आइनकार्न। आरनसन् ने सन् १९०६ में एमेर किस्म के जंगली पौधे उत्तरी पैलेस्टाइन में माउन्टहर्मन पर, उसके आसपास और बाद को जार्डन नदी के पूरब उस ऊँची जमीन पर देखे जिसे एक समय मोआब-भूमि का नाम दिया जाता था।

इसी क्षेत्र में, माउन्ट कारमेल की गुफाओं में नाटूफी मानव के अवशेषों के साथ-साथ हँसुए भी मिले हैं। जाहिर है कि यह लोग हँसुए का इस्तेमाल करते थे। लेकिन इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि यह लोग अनाज की खेती भी करते थे। हो सकता है कि इन हँसुओं से वे केवल जंगली घास काटते हों। फिर भी देखने की बात यह है कि फसल काटने के यही औजार नव पाषाण-युग की प्रथम बस्तियों में प्रचलित थे। हँसुए, हड्डियों की छिदी हथेलियों में, छोटे-छोटे पत्थर के दाँत जड़कर, बनाये गये थे। इस प्रकार के हँसुए मिस्र में, फायूम की सबसे पुरानी बस्तियों में, उत्तरी इराक में, हसूना में और ईरान में काशान के पास सिआल्क में मिले हैं। यह सम्भवतः ईसा के जन्म के लगभग ५००० वर्ष पहले के हैं और नाटूफियों के लगभग एक हजार वर्ष बाद के। नाटूफियों के बाद हँसुए कुछ उन्नत किस्म के बनने लगे थे। हथेलियाँ टेढ़ी और पत्थर की जगह लकड़ी से बनायी जाने लगीं।

प्राचीन पाषाण-युग से नवपाषाण-युग का प्रवर्तन कब और किस प्रकार हुआ और प्राकृतिक खाद्यों के आहरण के बाद मनुष्य ने खेती करना कैसे सीखा इस विषय में अनुमान तो लगाये जा सकते हैं लेकिन निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। नाटूफियों के सम्बन्ध में हम यह जानते हैं कि न केवल वे भोजन के उपयुक्त जंगली घास काटते और इकट्ठा करते थे बल्कि हिरन और मछली का भी शिकार करते थे। स्मरण रखने की बात है कि जलवायु में परिवर्तन के कारण यहाँ अरण्य भाग लुप्त होने पर जंगली जानवर भी लुप्त होने लगे और मनुष्य ने शिकार की जगह फल-मूल इकट्ठाकर जीवन-निर्वाह की आदिम प्रणाली को फिर से अपनाना शुरू किया।

नवपाषाण-यग में खेती शुरू किये जाने के साथ ही मिट्टी के बरतन और बुनाई का भी प्रारम्भ हुआ। पश्चिमी एशिया की सभी प्रारम्भिक बस्तियों में बहुमुखी आर्थिक व्यवस्था के चिह्न मिलते हैं यद्यपि कृषि की ही प्रमुखता है। पशु-पालन भी वहाँ किया जाता था। परन्तु नाटूफियों के पालतू पशु नहीं थे। ये नये अन्वेषण नाटूफियों के काल के बाद, या हो सकता है कि उसी काल में, किये गये और यह नील घाटी और नील नदी के मुहाने से लेकर पैलेस्टाइन, जार्डन, लेबनान, सीरिया होते हुए मेसोपोटेमिया और ईरान तक फैल गये। यही उपजाऊ अर्द्धचन्द्र है जो दक्षिण में जेरिको से लेकर, सीरियाई समुद्रतट पर अवस्थित बिबलोस और रास शमरा होते हुए, फिर आमुक के मैदान होकर युफ्रेटीस नदी के किनारे कारकेमिश से आगे टेल-हलफ, चगर बाजार, निनेवे, हसूना और पूरब में सियाल्क (ईरान) तक विस्तृत है।

इस सारे क्षेत्र में स्वाव लम्बी और स्वयं--सम्पूर्ण बस्तियाँ मिलती हैं। पुरातात्विक अन्वेषणकारियों ने एरिडू, बाड्टिबिरा, लाराक, सिप्पर और सुरुप्पक में अति प्राचीन बस्तियाँ खोज निकालीं। जेग्रोस पहाड़ों से निकली कररवा नदी के किनारे सूसा का गाँव पहले सबसे प्राचीन गाँव माना जाता था। लेकिन नयी खोजों से पता चला है कि सबसे प्राचीन गाँव मेसोपोटेमिया में जारमो था और सबसे प्राचीन नगर था पैलेस्टाइन में जेरिको। देखने की बात है कि नयी खोजों के कारण इतिहास बदलता जा रहा है। ये दोनों ही ईसा के जन्म के प्रायः ७ हजार ~~वर्ष पहले के हैं।~~

तारीखों का निश्चय अति आधुनिक रेडियो-कारबन-परीक्षण द्वारा किया गया है। इस तरीके का, जिसने पुरातत्व विज्ञान में क्रान्ति ला दी है, आधार यह है कि प्रत्येक जैविक पदार्थ में कारबन १४ और कारबन १२ विशेष अनुपात में मौजूद होते हैं। १४, १२ से कारबन के आणविक वजन का बोध कराया गया है। कारबन १४ रेडियो-धर्मी है जो मृत जैविक पदार्थों में साढ़े पाँच हजार वर्षों में ५० प्रतिशत के हिसाब से क्षयप्राप्त होकर कारबन १२ बन जाता है। कारबन १२ में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार कारबन १४ और कारबन १२ के अनुपात द्वारा जैविक पदार्थ की प्राचीनता का समय निर्धारित किया जाता है। इससे २० से ३० हजार वर्ष पहले तक का समय निश्चित करना सम्भव है और इसमें गलती अधिक से अधिक २ सौ वर्ष तक की हो सकती है। शिकागो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के डाक्टर लिब्बी ने इस तरीके का आविष्कार सन् १९५५ में किया।

पुरातत्वविदों के एक दल ने सन् १९५२ और सन् १९५६ के बीच श्रीमती केथलीन कीनियन के नेतृत्व में खुदाई द्वारा जेरिको नगर की खोज की। जारडन नदी जहाँ गेलीली के समुद्र से निकलकर डेड् सी में पड़ती है, उसीके पास जेरिको अवस्थित है। यह स्थान यरुशलम से कुछ पूरब हटकर उत्तर की ओर है। यह एक नगर था इसका अनुमान इसीसे लगाया गया है कि इसके चारों ओर पत्थर की दीवारें मौजूद हैं। यहाँके बाशिन्दे पत्थर के औजारों का ही इस्तेमाल करते थे और पत्थर की चक्कियों से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि यह लोग अनाज पीसते होंगे। सबसे प्राचीन स्तर पर जो संस्कृति मिलती है उसमें अभी मिट्टी के बरतनों का इस्तेमाल शुरू नहीं हुआ था। इसके बाद के स्तर पर ही मिट्टी के बरतन मिलते हैं। लेकिन इनके अलावा सभ्यता के सभी चिह्न इस बस्ती में मौजूद हैं यद्यपि लिखने की कला अभी शुरू नहीं हुई थी। खेती के लिए पानी उन्हें नगर के ठीक नीचे एक सोते से मिलता होगा जो अभी भी मौजूद है। कुछ छोटी नारी-मूर्तियाँ उत्पादन-शक्ति की देवियाँ जान पड़ती हैं जिनकी पूजा की जाती होगी। पलस्तर किये हुए कंकाल शिर भी मिलते हैं जिनसे यह नतीजा निकाला जाता है कि यह बड़े बूढ़ों के सिर होंगे जो स्मारक के रूप में रखे जाते होंगे। इसके बाद के जो मिट्टी के बरतन मिलते हैं वे सुन्दर ढंग के हैं। परन्तु उस काल में तो टाइग्रिस और युफ्रेटिस नदी के किनारे भी गाँवों और नगरों का बसना शुरू हो गया था। यह ईसा के जन्म के कोई पाँच हजार वर्ष पहले की बात है।

मेसोपोटामिया में जारमो, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, जेरिको का सम-सामयिक था। इसमें मकान और कमरे सनी हुई मिट्टी के बनाये गये थे। फर्श के लिए घास भी मिट्टी में सनी होती थी। भट्टी और चूल्हे थे और जमीन में टंकियाँ खोदी जाती थीं। पशुओं की हड्डियों से पता लगता है कि पालतू जानवरों की बहुतायत थी। भूमि की उर्वरा-शक्ति की प्रतीकस्वरूप मातृदेवी की पूजा यहाँभी की जाती थी। अभी मिट्टी के बरतनों का इस्तेमाल शुरू नहीं हुआ था। मेसोपोटेमिया में मिट्टी के बरतन हम सबसे पहले पाते हैं हसूना में, ईसा के जन्म के कोई ५ हजार वर्ष पहले। यह बरतन चिकने पालिश किये हुए थे। साथ ही नुकीले पत्थर के दाँत सहित हँसुए और जमीन के अन्दर अनाज जमा करने की खत्तियाँ मिलीं। भेड़, बकरी, बैल और गधे भी रखे जाते थे। इसके बाद के काल के चित्रकारी सहित बरतन समारा में मिलते हैं। इसके भी बाद मोसल के पूरब टेल हलफ के बरतन इनका स्थान लेते हैं।

गॉर्डन चाइल्ड का कहना है ("अति प्राचीन प्राच्य पर नया प्रकाश") कि जारमो में जो पत्थर के काम मिलते हैं, उनसे न तो जारमो का सम्बन्ध उत्तर-पाषाण काल से जोड़ा जा सकता है, जिसके चिह्न जारमो से १५ मील दूर जरजी की गुफाओं में मिलते हैं, और न उनका पश्चिमी नाटूफियों से कोई सम्बन्ध प्रतीत होता है। यह ग्राम सबसे नीचे के स्तर से खोज निकाला गया है। उसके ऊपर के स्तरों पर, अर्थात् बाद के काल के जो मिट्टी के बरतन मिलते हैं उस किस्म के बरतन भी मेसोपोटामिया में अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। इसलिए यह कहना कठिन है कि इस नदी-घाटी की सभ्यता का विकास जारमो से शुरू होता है। गॉर्डन चाइल्ड ने जारमो का काल ईसा-पूर्व ५ हजार वर्ष के लगभग बताया है।

गॉर्डन चाइल्ड के अनुसार मेसोपोटामिया की जमीन पर किसानी पहले-पहल शुरू होती है हसूना में। यह स्थान टाइग्रिस नदी के पश्चिम दो सोतों के, जिनमें बारहों महीने पानी रहता है, संगम पर है। आस-पास के कुर्द गाँवों में अब भी अतलान्तिक महासागर से पानी बरसता है जिससे थोड़ा-बहुत अनाज उगाया जाता है। यहाँ, अर्थात् हसूना के टीले के सबसे नीचे के स्तर में, मकानों के अवशेष तो नहीं मिलते हैं लेकिन भद्दे किस्म के मिट्टी के घड़ों से अनुमान किया जाता है कि इनमें अनाज जमा किया जाता होगा। अनाज होने का प्रमाण यह बतलाया जाता है कि यहाँ चक्कियाँ मिलती हैं और क्वार्ज तथा बलुई पत्थर के छिलकों के बने भारी औजार, फावड़े के रूप में इस्तेमाल किये जाते होंगे। भेड़, बकरी और मवेशियों की हड्डियों से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि यह लोग पशुपालन भी करते थे।

इस स्तर के ऊपर ६ गाँव, एक के ऊपर एक धँसे पड़े हैं। इसका अर्थ यह है कि यहाँ बस्तियाँ कुछ समय तक कायम रहीं। उत्तरकाल के गाँवों में आँगन के चारों ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन चार मामूली कमरों सहित चौकोन मकान हैं। आँगन में रोटी पोने के मिट्टी के गोल चूल्हे हैं। अब लकड़ी के हँसुओं से फसलों का काटा जाना शुरू हो गया था। इन पर पत्थर के टुकड़े (दाँत) तारकोल से जड़े हुए हैं। मिट्टी के बरतनों में सीधी काली लकीरों के नकशे बनाये गये हैं।

इनके ऊपर के स्तरों पर मिट्टी के बरतन समारा किस्म के हैं। यह बरतन खूब तपाये हुए गुलाबी या हल्के हरे रंग के हैं। इनपर पशुओं की भी मजेदार आकृतियाँ बनाई गयी हैं। इसके बाद के जो बरतन मिलते हैं वे टेल-हलफ (टेल=टीला) के किस्म के हैं। टेलहलफ खाबुर नदी के किनारे है और यहाँ जिन बरतनों की खोज पहले-पहल हुई उन्हीं के आधार पर यह नामकरण किया गया है। इस काल में काफी प्रगति हुई जान पड़ती है। खनिज ताँबे की मालाएँ शुरू होती हैं। शिकार अब भी जारी है। तकुओं से साबित होता है कि कताई शुरू हो गयी थी। बरतन उम्दा किस्म के हैं। उन पर लाल, काले और सफेद रंग के खाने और धारी तथा ज्यामिति के आकार के साथ बैलों के सिर के चित्र भी मिलते हैं।

इसके पश्चात् एक लम्बे अरसे के विकास का ताँता टूट जाता है। अब से अल'उबैद की संस्कृति का आरम्भ होता है। अब न केवल प्रगति रुक जाती है बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि कुछ अवनति शुरू हो गयी है। परन्तु यह केवल ऊपरी दृष्टि का परिणाम है। वास्तव में बरतनों की कारीगरी टेल हलफ के किस्म से भी उन्नत है। बरतन काफी तपाये हुए हैं--शायद १२ सौ डिगरी सेन्टीग्रेड तक। उनमें नल या हथेलियाँ भी लगी हुई हैं। मकान मिट्टी और पुवाल सहित कच्ची ईंटों के बनाये गये हैं। वास्तविकता यह है कि यह सुमेर की सभ्यता के पहले चिह्न हैं। टाइग्रिस और यूफ्रेटीस के मुहाने से सुमेर भूमि के लोग जब उत्तर को पहुँचे तो अपनी संस्कृति वे साथ ले गये और हसूना की संस्कृति बदल गयी। अल' उबैद की संस्कृति धीरे-धीरे सारे मेसोपोटामिया में फैल गयी।

अल' उबैद संस्कृति का पूर्वकालीन रूप एरिडू में मिलता है जो सुमेर सभ्यता का एक अंग था। सुमेर जाति के लोग मेसोपोटामिया के निवासी नहीं थे। ये कहीं बाहर से आये और दक्षिणी मेसोपोटामिया में बस गये। कुछ कहते हैं कि ये ईरान की उपत्यका से पहुँचे और कुछ कहते हैं कि वे फारस की खाड़ी होकर इस देश में घुसे। यह ईसा के जन्म के लगभग ४ हजार वर्ष पहले की बात है। जो कुछ हो, यह निश्चय है कि सुमेरियों के साथ ही मेसोपोटामिया में सभ्यता का प्रथम अरुणोदय हुआ। कृषि-संस्कृति यह लोग अपने साथ ही लाये थे और ईसा-पूर्व लगभग ३ हजार वर्ष में हम सभ्यता का प्रारम्भिक रूप एक विस्तृत क्षेत्र में पाते हैं। इस सभ्यता की विशेषता है नगरों की स्थापना, सार्वजनिक भवनों का निर्माण, देव-देवियों के मन्दिरों की रचना, नहरों की सुचारु व्यवस्था और संसार की प्राचीनतम लिपि का प्रचलन। यहाँ प्रागितिहास समाप्त होता है और इतिहास का प्रारम्भ होता है। परन्तु सुमेर सभ्यता का यह अध्याय इतिहास में कैसे दाखिल हुआ, टीलों के वक्ष में छिपी हुई यह सभ्यता कैसे खोज निकाली गयी, प्राचीनतम क्युनिफार्म लिपि का पाठोद्धार कैसे किया गया, यह स्वयं एक रोमांचकर इतिहास है।

सुमेर जाति के सीधे-सादे किसान जब मेसोपोटामिया में प्रविष्ट हुए तो खेती के लिए पानी ढूँढ़ना इतनी बड़ी समस्या नहीं थी जितनी कि दलदल से पानी का निकालना। यह बात तब समझ में आती है जब कि उस काल की भौगोलिक स्थिति पर हम ध्यान दें। उस समय फारस की खाड़ी काफी उत्तर तक चली गयी थी। टाइग्रिस और यूफ्रेटीस के मुहाने आज की तरह एक नहीं थे। दोनों नदियाँ अलग-अलग खाड़ी में गिरती थीं। खाड़ी की तटवर्ती भूमि दलदली जमीन थी। सुमेरियों ने इनमें से पानी निकालकर इसे खेती योग्य बनाने के लिए जिस कौशल का प्रयोग किया होगा वह वर्तमान काल में भी सराहनीय माना जायगा।

सुमेर जाति और उसके इतिहास की खोज निकालने का श्रेय पुरातत्वविद लिओनार्ड वूली को प्राप्त है। सन् १९२७-२८ में प्राचीन उर नगर के स्थान की खुदाई करते हुए उन्हें उर के शाही कब्रों का सन्धान मिला। इसमें दीवार या छत पर जो खुदे हुए या उभरे हुए चित्र मिले उनसे तत्कालीन जीवन की एक झलक मिलती है। उनकी पोशाक और औजार, उनके हथियार और पाले जानेवाले पशु की जानकारी के अलावा यह बात भी दिखाई पड़ती है कि ईसा पूर्व ४ हजार वर्ष के लगभग सुमेरी लड़ाई में रथों का इस्तेमाल करने लगे थे। रानीशुबाद की समाधि से एक और आश्चर्यजनक जानकारी यह मिलती है कि उस समय शाही परिवारों की मृत्यु पर नरबलि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथा प्रचलित थी। ऐतिहासिक काल में ऐसा पाया नहीं जाता और यह स्वयं एक प्रमाण है कि इस समाधि का काल बहुत प्राचीन है। इस सतह के नीचे एक और अद्भुत तथ्य मिलता है। इसके नीचे ८·२ फीट की गहराई तक शुद्ध मिट्टी के अलावा कोई कूड़ा-करकट, टूटे बरतनों के टुकड़े आदि भी नहीं मिलते। भू-वैज्ञानिकों और पुरातत्व-विदों ने इस तथ्य का आविष्कार किया है कि इसी समय प्रबल बाढ़ आयी थी जिसने एक और भी प्राचीन इतिहास को पाट दिया था। इससे बाइबल के 'ओल्ड टेस्टामेंट' में वर्णित बाढ़ का सादृश्य प्रतीत होता है। यों तो अनेक देशों में प्रलयंकारी बाढ़ सम्बन्धी लोककथा प्रचलित है।

उर में चूड़ा सहित मन्दिर के अवशेष मिले और इसमें सोने की एक माला मिली। इस माला में आ-अन्नि-पद-दा नाम खुदा हुआ मिला। उत्तरकाल में बेबीलोनियन इतिहासकारों की लिखित राजवंशों की सूची में यह नाम मिलता है। अब यह प्रामाण्य माना जाता है कि राजा मेस-अन्नि-पद-दा के पुत्र आ-अन्नि, बाढ़ के बाद, उर के प्रथम राजवंश के प्रतिष्ठाता थे।

सुमेर के इतिहास की कुंजी मिलती है सुमेरी भाषा और क्युनिफार्म लिपि में लिखित ऐतिहासिक सामग्रियों से। इस लिपि का पहले-पहल रहस्योद्घाटन किया, जर्मन अध्यापक ग्रोटेफेन्ट ने। लेकिन इसे पूर्णतः बोधगम्य कराने का श्रेय प्राप्त है रालिनसन्, टालबोट, डाक्टर हिंक्स और ओपेर्ट को। यह लिपि अटकल और अनुमान के परे वैज्ञानिक अन्वेषण से तब शामिल की गयी जबकि रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, ने सन् १८५७ में, रालिनसन्, यलबोट, डाक्टर हिंक्स और ओपेर्ट द्वारा, असीरिया नरेश तिगलथ-पिलेसेर के एक शिलालेख का अनुवाद प्रकाशित किया। कर्नल रालिनसन् ने, ईरान के बेहिस्तून नामक स्थान पर, प्राचीन फारसी, इलामाइट और बेबीलोनियन, इन तीन भाषाओं में परन्तु प्रायः एक ही लिपि में लिखित, शाह डेरियस के स्मारक से किस प्रकार तीनों का मिलान कर उनका पाठोद्धार किया, यह एक रोचक कहानी है। विश्वविख्यात संग्रहागारों में संरक्षित मिट्टी के असंख्य लोदों, ढेलों और टुकड़ों पर खुदे हुए क्युनिफार्म लिपि के अक्षर और शब्द सुमेर के प्राचीन गौरव की घोषणा करते हैं।

मिट्टी के इन चपटे टुकड़ों से लिपियों के विकास का सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। पहले वस्तुओं के चित्र प्रतिरूप बनाये जाते हैं। फिर चिह्न इन चित्रों का स्थान ग्रहण करते हैं। उसके बाद चिह्न ध्वनि के प्रतीक बन जाते हैं——पहले शब्दांश के ध्वनिबोधक फिर अक्षरों की ध्वनि के प्रतीक। अन्तिम स्तर पर प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग अक्षरों का प्रयोग शुरू होता है। लिपि के साथ ही सभ्यता का जन्म होता है। उर नगरों और लिपि का आविर्भाव प्रायः साथ-साथ होता है। प्रागितिहास और इतिहास के संक्रमण काल में सुमेर-सभ्यता का एक विशेष निदर्शन मिलता है। यह है जिग्गुरत अर्थात् नगर-रक्षक देवता का चूड़ा मंदिर। अधिकांश जिग्गुरत चबूतरों पर स्थापित किये गये हैं। जिग्गुरत किसी एक राजा का बनाया हुआ नहीं है। वंश-परम्परा से यह ऊँचे चढ़ते चले गये हैं। राजा नगरपालक देवता का आज्ञा-वाहक मात्र है। राजाओं की परम्परा भी तब चली जब कि नगरों ने परस्पर आक्रमण करना शुरू किया। शायद इसके पहले आदिम लोकतन्त्र की प्रणाली ही प्रचलित रही होगी। अन्त में नृपतियों का शासन ही चल पड़ा। परन्तु देवता और देव-मन्दिर भी बने रहे। सेमिटिक जाति के आक्रमणकारियों ने सुमेर को पराजित किया, हिट्टाइट और हूरियन, आरामियन और बेबीलोनियन तथा असीरियन एक के बाद एक आये, मन्दिरों के देवता बदल गये, परन्तु देव-मन्दिरों की प्रतिष्ठा बनी रही।

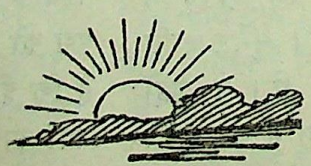

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतीत के आलोक में हिन्दी की समृद्धि

मुनि श्री नथमलजी

जीवन के आदि क्षणों में छः पर्याप्तियाँ उपलब्ध होती हैं। उनमें अन्तिम दो हैं--भाषा-पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। हमारा सारा कर्म-चक्र इन्हींके बल पर चलता है। हम बोलते हैं और चिन्तन करते हैं। इसीलिए अणु युग तक पहुँच पाये हैं। लगता है, भाषा और मन दो हैं पर निश्चय-नय में वे दो नहीं हैं। चिन्तन का बाह्य रूप भाषा है और भाषा का आन्तरिक रूप चिन्तन है। जीवशास्त्र के अनुसार ऐसे प्राणी होते हैं, जिनमें भाषा होती है पर चिन्तन का विकास नहीं होता। ऐसे जीव नहीं होते, जिनमें चिन्तन का विकास हो और भाषा न हो। भाषा के माध्यम के बिना चिन्तन का विकास नहीं होता और चिन्तन के विकास के बिना भाषा का विकास नहीं होता। इस प्रकार दोनों संश्लिष्ट हैं। हिन्दी के विकास के लिए यह अपेक्षित है कि हिन्दी-भाषियों का चिन्तन विकासशील हो, ज्ञान गम्भीर हो, अतीत के अनुसंधान और वर्त्तमान के स्पर्श में क्षम हो। जिनमें भावों की भाषा का परिधान देने की क्षमता हो, उनमें शब्दों की उत्पत्ति का परिज्ञान भी होना चाहिए। आज के अनेक हिन्दी लेखक पर्याय शब्दों के प्रयोग में सफल नहीं हैं। वह साहित्य की चर्चा है पर भाषा से भी भिन्न नहीं है। अच्छे-अच्छे लेखक भी ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। अशुद्ध प्रयोग भी चलाते हैं। परिणत को परिणित लिखना तो आज साधारण हो गया है। राष्ट्रिय शब्द को मैं ह्रस्व इकार के रूप में लिखता पर जब वह प्रकाशित होकर आता तो राष्ट्रीय बनकर आता। सम्भवतः प्रकाशक इसलिए उसे बदल देते हैं कि वह शुद्ध नहीं है। राष्ट्रीय शब्द देश्य नहीं है। संस्कृत में वह ह्रस्व इकार वाला ही होता है। नव-निर्माण में हमने अवश्य ही गति की है पर अतीत से हमारा सम्पर्क कम है। इसलिए कुछ खामियाँ रह जाती हैं। 'सक्षम' शब्द जितना क्षमा सहित के अर्थ में उपयुक्त है उतना समर्थ के अर्थ में नहीं। फिर भी आजकल समर्थ के अर्थ में 'सक्षम' अधिक प्रयुक्त होता है, जब कि उसके अर्थ में 'क्षम' शब्द स्वयं व्युत्पन्न है।

अतीत के सम्पर्क की एक छोटी-सी कहानी है। आचार्य श्री तुलसी के निर्देशानुसार हम लोग जैन आगम शब्द-कोष का कार्य कर रहे थे। उस समय हमारे सामने 'ऊरु' शब्द था। हमने सोचा इसका हिन्दी पर्याय क्या दिया जाए? हिन्दी शब्द-कोष उठाया तो उसमें 'ऊरु' का अर्थ मिला--जाँघ, रान। फिर जंघ शब्द को देखा तो उसका मिला--जाँघ, पिण्डली। पिण्डली का अर्थ मिला--टाँग का पीछे की ओर का मांसल भाग। फिर संस्कृत शब्द कोष देखा तो 'ऊरु' और जंघा का अर्थ भिन्न पाया। शक्थि और ऊरु जानु के ऊपरी भाग के नाम हैं। जंघा और पिण्डिका जानु के निचले भाग के नाम हैं। कवच-स्तोत्रों से यह प्रमाणित भी हो गया। मंत्र-साधना के समय साधक अपनी सुरक्षा के लिए कवच-स्तोत्र पढ़ते थे। उसमें समूचे शरीर की रक्षा का विधान होता था। एक जैन-रक्षा-स्तोत्र है:--

मल्लिः कटी सक्थिनी च रक्षतान् मुनिसुव्रतः।
नेमिर्जानुद्वयं पायान् नेमिर्जङ्घा द्वयं पुनः॥

सर्वांग सुरक्षा का प्रकरण शिर से चलता है और पैरों तक पहुँच जाता है। वहाँ क्रमशः आया है--मल्लि भगवान् मेरे कटि प्रदेशों की रक्षा करें। मुनि सुव्रत मेरे सक्थि-प्रदेशों की रक्षा करें। नेमि भगवान् मेरे जानु-घुटनों की रक्षा करें और नेमि भगवान् मेरी जङ्घाओं की रक्षा करें। इस क्रम में सक्थि (ऊरु) के पश्चात् जानु और जानु के पश्चात् जङ्घा का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि सक्थि या ऊरु जानु के ऊपरी भाग का नाम है और जङ्घा उसके निचले भाग का। फिर उसके लिए हिन्दी-पर्याय ढूँढ़ा तो कोई शब्द नहीं मिला। फिर हमने राजस्थानी शब्दकोष को काम में लिया। उसमें जंघा के लिए 'जाँघ' और ऊरु के लिए 'साथल' शब्द है जो सक्थि का ही अपभ्रंश रूप है। सार्थिक और सक्थिक इन दोनों का प्राकृत रूप सत्थिय बनता है। सत्थियः सत्थल्ल= साथल।

इसी प्रकार दूसरा शब्द हिन्दू है। हिन्दू शब्द फारसी माना जाता है। सिन्धु का उच्चारण हिन्दू हुआ ऐसा अभिमत है। पर यह भारतीय क्यों नहीं हो सकता है? जैन आगम भगवती सूत्र (२०।२) में जीव के तेईस नाम बतलाये हैं। उनमें एक नाम है 'हिंडुअ।' जीव ससार में पर्यटन करता है, इसलिए उसे हिंडुअ कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू अर्थात् पर्यटक। आर्य लोग भारत में आये। उनका पर्यटनपरक नाम ही प्रधान बन गया और धीमे-धीमे वह समूची जाति और देश का वाचक बन गया।

हिन्दी की समृद्धि के लिए अतीत का आलोक बहुत अपेक्षित है। वामन ने अपने काव्यालङ्कार सूत्र (५।१।१३) में लिखा है—जो संस्कृत शब्द बहुत व्याप्त हों उन्हें संस्कृत काव्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है। ऐसा ही उदार दृष्टिकोण आज चाहिए। दर्शन-शास्त्र व अन्यान्य शास्त्रों में एक-एक विषय की समृद्ध शब्द-सूचि मिलती है। दार्शनिक व अन्यान्य शास्त्रवत् उसे जन-सुलभ बनाएँ तो एकात्मकता और विकास दोनों का द्वार खुल जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने देशीनाममाला बनाई। उसका उद्देश्य यही था कि विभिन्न देशों के व्याकरण सिद्ध प्रमुख शब्दों का संग्रह किया जाए। देशी शब्द की व्याख्या भी यही की है :—

देस विसेस पसिद्धीइ, मण्णमाणा अण्ठांतया हुंति
तम्हा अणाह पाइआ, पयइ भासा विसेस ओ देसी

आज हिन्दी को भी सम्भवतः ऐसे शब्द-कोष की अपेक्षा है। अभी-अभी एक सर्वभाषाकोश प्रकाशित हुआ है। परन्तु वह भिन्न उद्देश्य की पूर्ति करता है। उससे शब्दों की तुलनात्मक जानकारी मिल सकती है पर हिन्दी की समृद्धि में विशेष योग नहीं मिल सकता। हिन्दी को ऐसे शब्द-कोष की अपेक्षाएँ हैं, जिसमें प्राचीन साहित्यज प्रान्तीय भाषाओं के उन शब्दों का संग्रह हो, जिनकी तुलना करनेवाले शब्द अभी हिन्दी में प्रयुक्त नहीं हैं और जिनके अभाव में उसकी वाचक शक्ति अभी अपूर्व है।

जीव-विज्ञान, मुद्गल या परमाणु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, मनोविज्ञान, भूगर्भ, रसायन-शास्त्र, वास्तुकला आदि विभिन्न शाखाओं की पर्याप्त शब्द सम्पदा होने पर ही हिन्दी प्रदान का माध्यम बन सकती है। आज तो हिन्दी के शब्द-कोशों में पोतज जैसा साधारण शब्द नहीं मिलता है। जीव-विज्ञान के विद्यार्थी को इससे कितनी निराशा होती है? जीव-शास्त्र के अनुसार जन्म की विविध प्रक्रियाएँ हैं। उनमें एक प्रक्रिया का नाम पोतज है। जो जीव न अण्डे से उत्पन्न होते हैं और न जरायु-वेष्टित भी, वे पोतज कहलाते हैं। ह्वेल आदि मछलियाँ अण्डज नहीं होतीं। वे सीधी बच्चे के रूप में ही उत्पन्न होती हैं। हिन्दी में उन्हें 'पोतज-मत्स्य' कहा जा सकता है।

भारत में पहले 'कुत्रिकापण' नाम की दूकानें होती थीं। उनमें तीन पृथिवियों में प्राप्त सर्व वस्तुओं का संग्रह होता था। सम्राट् श्रेणिक के समय राजगृह में 'कुत्रिकापण' था। उसी समय चण्ड प्रद्योत की राजधानी उज्जयिनी में नौ 'कुत्रिकापण' थे। यह जनरल स्टोर्स का पर्याय शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'कुत्तियावण' है। इसी प्रकार विविध वाणिज्यों के संग्राहक शब्द भी बहुत उपयोगी हैं। उदाहरण रूप में—

अंगार-कर्म—कोयले बनाने, कुंभार, लोहार, सुनार, भड़भूंजे, ईंट पकाने, चूना बनाने आदि का व्यापार।

वन-कर्म—पत्र, पुष्प, फल, काष्ठ, लकड़ी, घास आदि वस्तुओं को बेचकर वृत्ति चलाना।

स्फोट कर्म—जलाशय-निर्माण, कृषिकरण, खनिज कार्य, प्रस्तर-घटन, धान्य-पोषण, दलने आदि के द्वारा जीविका चलाना।

शकट-कर्म—वाहन-निर्माण, वाहन परिचालन, वाहन विक्रय आदि।

भाटक-कर्म—अपने वाहनों से भाड़ा कमाना, मकान भाड़े देना आदि।

ये ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनसे न केवल हिन्दी की शाब्दिक समृद्धि ही होती है, किन्तु प्राचीन भारत के जीवनक्रम का परिचय भी मिलता है। इनके आधार पर नये शब्दों की योजना भी सहज हो जाती है। बिजली के उत्पादन और वितरण को 'विद्युत्कर्म' कहा जा सकता है। बिजली घर में जो अर्थाभिव्यक्ति नहीं है, वह 'विद्युत्कर्मान्त' में है।

हिन्दी के शब्द-कोशों में "एक प्रकार का पौधा", एक प्रकार का जन्तु, एक प्रकार का आसन—यह पद्धति नहीं होनी चाहिए या अत्यल्प हो। इसके लिए अन्वेषण स्वयं प्राप्त होता है। वैदिक और बौद्ध साहित्य के शब्द तो फिर भी कुछ प्रचलित बने हैं। किन्तु जैन-साहित्य लगभग अस्पृष्ट सा रहा है। उसमें जीव-विज्ञान, मुद्गल-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विभिन्न शाखाओं की अकल्पित शब्द-सामग्री भरी पड़ी है। शब्द-कोश या वर्गीय शब्द-कोश बनानेवालों को इस विषय से अपरिचित नहीं रहना चाहिए। हम अतीत के सम्पर्क से बहुत लाभान्वित हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१६)

पंडित व्रजमोहन व्यास

अध्यापकों और कर्मचारियों के प्रति व्यवहार

किसी भी शिक्षण संस्था का सुचारु रूप से संचालन करना कोई हँसी-खेल नहीं है। इसके लिए ऐसे प्रधान की आवश्यकता होती है जिसमें धर्म के प्रति निष्ठा, प्राध्यापकों के प्रति आदर, छात्रों के प्रति प्यार और कर्मचारियों के प्रति सहानुभूति और उनके पेट का ख्याल हो। ऐसा प्रधान किस काम का--

जिसे ऐश में यादे-ख़ुदा न रही,
जिसे तैश में ख़ौफ़-ख़ुदा न रहा।

अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह 'ज़फ़र'

विश्वविद्यालयों में इस देश के विभिन्न प्रान्तों से अध्यापन के हेतु प्राध्यापक आते हैं, विभिन्न प्रान्तों से छात्र और छात्राएँ आती हैं। वे सब विभिन्न वातावरणों में पले हुए रहते हैं। उनके अलग-अलग स्वभाव और मान्यताएँ होती हैं। वे भिंड के डकैतों का गिरोह नहीं है कि उनके प्रति दमन-नीति का व्यवहार किया जाय। वे डकैत नहीं हैं। वे विश्वविद्यालयों में विद्यादान देने और लेने के लिए आते हैं। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में बतला दिया है कि प्रधान अथवा शासक कैसा होना चाहिए--

"श्रीमन्तः पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्म-निष्ठाश्च भूपाः"।

(पूंजीपति तो पृथ्वी की (संस्था की) रक्षा करें और शासक (प्रधान) धर्मनिष्ठ हों और विरोधियों का शमन करें, दमन नहीं)।

शासन चरमरा उठता है जब शासक लोग

"मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः न प्रणमन्ति देवताभ्यो न मान्यन्ति मान्यान् 'आत्मप्रज्ञापरिभव' इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय कुप्यन्ति हितवादिने"

बाणभट्ट-कादम्बरी-शुकनासोपदेश

(झूठे-मूठे बड़प्पन-'फ़ाल्स प्रेस्टीज' के मद में चूर, सत्ताओं को नतमस्तक नहीं होते, आदरणीय जनों का आदर नहीं करते, अपनी बुद्धि की हेठी होती है, यह समझकर अपने सलाहकारों की अवहेलना करते हैं और हित की बात करनेवालों पर क्रोध करते हैं।)

यदि किसी शिक्षण संस्था का प्रधान ऐसा हुआ तो वह किसी काम का नहीं। जिस संस्था का ऐसा प्रधान हो उसका भगवान् ही मालिक है। जब कभी किसी विद्यालय में उथल-पुथल होती है तो बात की तह तक जाने पर आप पावेंगे कि प्रायः-- मैं सर्वदा नहीं कहता-- शासक वर्ग की शासन-प्रणाली में दोष आ जाने से होती है। अकबर इलाहाबादी ने बड़े पते की बात कही--

इस तर्के-मवालात के कीड़े ये पड़े क्यों?
इतना ही बस इसका जवाब--आप सड़े क्यों?

मैं कोई शिक्षा-शास्त्री नहीं हूँ, परन्तु मेरी यह धारणा है कि जब तक शासक में धर्मनिष्ठा, मार्दव और पर्यवेक्षण न होगा, यह मसला हल ही नहीं हो सकता। और फिर प्रधान को भी तो अपनी इज्ज़त का ख्याल होना ही चाहिए--

इन्सान को तहफ़्फ़ुज़ अपना भी है ज़रूरी।
वह सर बुरा कि जिसको परवा न हो चपत की॥

अकबर इलाहाबादी

मालवीयजी का दृष्टिकोण एवं उनकी कार्य-प्रणाली बिलकुल भिन्न थी। वे सबके साथ समान भाव से व्यवहार करते थे, अध्यापक हो या छात्र, दफ्तर का बाबू हो या चतुर्थ श्रेणी का नौकर, इस प्रान्त का रहनेवाला हो या अन्य किसी प्रान्त या देश का, उसके राजनीतिक विचार एवं मान्यताएँ चाहे कुछ भी हों, उन सबको अपने व्यवहार से अपने साँचे में ढाल लेना मालवीयजी का ही हिस्सा था। और शायद वह उन्हींसे खत्म भी हो गया। सभी मालवीयजी को समान भाव से पूजते थे।

प्राध्यापकों के प्रति मालवीयजी का कैसा व्यवहार था इसके कहने के पहिले दफ्तर के कर्मचारियों के प्रति उनका कैसा व्यवहार था, उसका एक विचित्र संस्मरण आपके सामने उपस्थित करता हूँ।

उन दिनों मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय पण्डित व्रजनाथ व्यास विश्वविद्यालय के 'ला कालेज' के प्रिन्सिपल थे। मालवीयजी उनकी योग्यता एवं गुणों से आकृष्ट होकर उन्हें प्रयाग से काशी ले गये थे। उन्हीं दिनों मेरे एक आत्मीय का पुत्र वहाँके एकाउण्ट विभाग में 'प्राविडेंट फंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लार्क' था। वह एक भले परिवार का लड़का था और स्वयं बड़ा भला था। उसकी गृहस्थी बड़ी थी। कम वेतन के कारण उसका किसी तरह पूरा नहीं पड़ता था। स्वभाव से अल्पभाषी था। वह सदा व्यथित रहता था पर ज़बान से उफ नहीं करता था।

जब्र की इन्तेहा तो होती है।
सब्र की इन्तेहा नहीं होती॥

बिस्मिल इलाहाबादी

इसका केवल एक ही अपवाद है। क्षुधा-पीड़ित गृहस्थी। जब बुभुक्षित बच्चों के सामने से एक कुत्ता रोटी का टुकड़ा लेकर भाग गया तो महाराणा प्रताप ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ वीर का आसन हिल गया और उनके सब्र की इन्तेहा हो गयी तो एक गरीब प्राविडेंट फंड क्लार्क की क्या बिसात? उन दिनों मालवीयजी वाइस चांसेलर और ध्रुवजी प्रो-वाइस चांसेलर थे। वह क्लार्क ध्रुवजी के पास गया। यहीं उससे चूक बन पड़ी। यदि वह मालवीयजी के पास चला गया होता तो आगे का घटनाक्रम ही बदल गया होता। वे अवश्य उस गरीब की दिक़्क़त का कुछ न कुछ समाधान करते। खैर, होतव्यता को कौन टाल सकता है! ध्रुवजी से उस क्लार्क ने दो टप्पी बात कही--"मेरी तनखवाह बहुत कम है। मेरे चलाये गृहस्थी नहीं चलती। बच्चे भूखे रह जाते हैं। मेरे वेतन में २०) मासिक की वृद्धि की जाय।" ध्रुवजी ने उसे बुरी तरह से डाँटा और निराश होकर वह लौट आया। उस दिन उसने प्राविडेंट फंड के रुपये से २०) मासिक निकाल लेने का प्रण किया। न एक पैसा कम और न एक पैसा अधिक। यह व्यापार बरसों चलता रहा और किसीको पता न चल पाया। एक दिन सहसा आडिटर आ धमके। क्लार्क घबरा उठा। अपना २०) काट कर उस महीने के 'प्राविडेंट फंड' का रुपया, लगभग १०००), खजाने में जमाकर भाग निकला। इत्तेफाक से उन्हीं दिनों मैं बनारस गया था। वहाँ मुझे पता चला कि वह दो दिन से ग़ायब है। पता लगाकर मैं उसके एक घनिष्ठ मित्र के पास गया। उन्होंने मेरे सामने उसका भेजा हुआ एक पोस्टकार्ड रख दिया, जिसमें लिखा था--

"प्रिय....जब यह पत्र तुम्हें मिलेगा मैं संसार में न रहूँगा। मैंने यह काम ध्रुवजी की डाह से किया है। बच्चों को तुम पर छोड़े जाता हूँ। उनका ख्याल रखना।" उस पर मिर्जापुर से भेजे जाने की मुहर थी। पढ़कर मैं सन्न रह गया। 'ध्रुवजी की डाह'! रहस्य कुछ समझ में न आया। इसके एकाएक दफ्तर से गायब हो जाने इसके हिसाब की जाँच हुई और पता चला कि इसने लगभग ९००) गबन किया है। जब मिर्जापुर में कुछ पता न चला तो मैं प्रयाग वापस चला आया। पूछ-ताछ करते-करते यह पता चला कि उसका एक घनिष्ठ मित्र लखीमपुर खेरी (उत्तर प्रदेश) में रहता है। वहाँ आदमी भेजा। वह हज़रत मिले। मेरा आदमी समझा-बुझाकर उसे मेरे पास लिवा लाया। बहुत पूछने पर उसने सब उपर्युक्त बातें बतलाईं और कहा, "मिर्जापुर में मैंने ५) की संखिया खरीदी और शाम के वक्त गंगा-तट पर जाकर मैंने उसे खा लिया। मुझे तुरन्त उलटी हो गयी और मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। जब होश हुआ तो मैं स्टेशन की ओर भागा और टिकट कटाकर लखीमपुर पहुँच गया।" मैंने कहा "दफ्तर की जाँच से पता चला है कि तुमने लगभग ९००) गायब किया है। क्या यह सही है?" उसने कहा "बिलकुल गलत। अमुक महीने से अमुक महीने तक २०) माहवार के हिसाब से जोड़ लीजिए।" और जोड़कर उसने बताया कि २००) होता है। न कम न ज्यादा। उससे और बात करना फजूल समझा। उसके परिवारवालों ने जोड़-बटोरकर २०००) मुझे दिये और मैं उसे लेकर काशी में मालवीयजी से मिला। उस समय वहाँ विश्वविद्यालय के अवैतनिक कोषाध्यक्ष, पण्डित कन्हैयालाल दवे, अवकाशप्राप्त हाई कोर्ट के जज और ध्रुवजी बैठे थे। मैंने पूरा किस्सा सबके सामने कह दिया और २०००) रुपये मालवीयजी के सामने रख दिये। रुपयों को देखकर मालवीयजी की आँखों में आँसू आ गये--किस कठिनाई से पेट काटकर इस सात्विक परिवार ने इतने रुपये एकत्र किये होंगे, उस लड़के के बाल-बच्चों का भविष्य में क्या होगा; इत्यादि अनेक बातें सम्भवतः उनके हृदय को मथ रही थीं। सबाल उठा उस क्लार्क के विरुद्ध क्या कार्रवाई की जाय। कोषाध्यक्ष महोदय और ध्रुवजी की राय थी कि मामला पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाय। सबकी बात सुनकर मालवीयजी बोले "इस लड़के ने बेईमानी नहीं की, बाल-बच्चों की रक्षा के हेतु पाप किया, वर्नः भागने के दिन वह १०००) क्यों जमा करता? दूसरे, हम लोग तो केवल ९००) उसके खिलाफ निकाल पाये हैं। लड़के ने तो स्वयं २०००)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाया और उसके गरीब परिवार ने उसे भर भी दिया। वह लड़का बेईमान नहीं है। परिस्थितियों के कारण वह पागल और झक्की हो गया। मैं उसके खिलाफ कोई कानूनी कार्रवाई न करूँगा। बहुत सम्भव है कि पुलिस-सुपुर्द करने से उसका जीवन बिगड़ जाय या वह बीच ही में कुछ ऐसा कर बैठे जिससे उसके बाल-बच्चे भूखों मर जायँ" और मेरी ओर मुड़कर उन्होंने कहा "व्यासजी! आप उस लड़के से कहें कि वह इस पाप का प्रायश्चित्त करे और अपने जीवन में धैर्य से काम ले। तभी उसका कल्याण हो सकता है।"

मैं, एक कड़ा शासक, इस बेईमानी और पाप के सूक्ष्म विवेचन और न्याय को सुनकर दंग रह गया। इस प्रकार मालवीयजी विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के प्रति व्यवहार करते थे।

श्री के० सी० त्रिगुणायत, 'कालेज आव टेक्नोलोजी' के एक प्राध्यापक हैं। लहीम-शहीम आदमी, भव्य मूर्त्ति और मेघ के गर्जन के समान वाणी। जब मैं विश्वविद्यालय में था, मुझसे उनसे बड़ी पटती थी। मुझे उद्धृत-टाइप के आदमी पसन्द हैं। मुच-मुचहे आदमी मुझे नहीं सुहाते। त्रिगुणायतजी क्रान्तिकारी तो नहीं थे पर 'जल्लू' पर (border line) अवश्य थे। उनसे झगड़ा मोल लेना आसान न था। उनसे और मालवीयजी से सम्बन्धित दो-तीन संस्मरण उन्हींके शब्दों में प्रस्तुत करूँगा। 'नेटिव की क्या सनद है, साहब कहैं तो मानूँ।'

"मालवीयजी के एक प्रिय अध्यापक के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें की जा रही थीं। एक टाइप किया हुआ गुमनाम पत्र जब आया तो मालवीयजी ने उसकी तहकीकात करने का निश्चय किया और एक कमेटी बना दी जिसके वे स्वयं अध्यक्ष बने। मेरा दुर्भाग्य कि कई अन्य लोगों के साथ लांछन मेरे ऊपर भी लगाया गया। मेरी पेशी हुई और जब मालवीयजी ने कहा कि उपरोक्त पत्र मैंने लिखा है, मेरे पास अपना टाइप राइटर भी है और मैं ही ऐसी कड़ी भाषा का प्रयोग कर सकता हूँ तो मैंने उत्तर दिया कि आवश्यकता पड़ने पर कड़ी भाषा का प्रयोग मैं कर सकता हूँ, मेरे पास टाइप-राइटर भी है परन्तु यदि मुझे कुछ शिकायत करनी होती तो मैं निर्भीक भाव से करता और पत्र पर हस्ताक्षर कर उसकी जिम्मेदारी भी उठा लेता। इतना कहते-कहते आँखों में आँसू भर आये और मैं बिलख उठा। पण्डितजी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, सदैव स्नेह ही पाया था, इतनी मार्मिक चोट हृदय सह न सका। मेरी पेशी फिर न हुई।

"कुछ समय के उपरान्त मुझे पण्डितजी का सन्देश मिला कि मैं उनसे मिल लूँ। चित्त खिन्न हो गया था। मैं न गया। फिर सन्देश मिला। उसमें आग्रह था। मैं डरते-डरते गया। मुझे देखते ही मालवीयजी उठ खड़े हुए और भरे हुए हृदय से उन्होंने मुझे नाम से सम्बोधन किया। आँखें उनकी डबडबा आईं और आगे कुछ न कह सके। मेरे जैसे दुर्बल पुरुष ने भी जो चरण कभी न छुए थे, पकड़ लिये। यह थी उनकी क्षमाशीलता। **वाइस चान्सलर और अध्यापक के बीच यह स्नेह, क्या कभी भुलाया जा सकता है?**

'लगभग १९३९ की बात है। साइन्स कालेज से अलग होकर कालेज आफ टैकनालोजी बना। कैमिस्ट्री डिपार्टमेंट की लाइब्रेरी एक ही थी। इसे कैमिस्ट्री डिपार्टमेंट उठाकर अन्यत्र ले गया और इंडस्ट्रियल डिपार्टमेंट के पास पुस्तकें रह ही नहीं गयीं। कठिनाई बहुत होने लगी तो शैतानी सूझी। एक दिन लाइब्रेरी कार्ड लेकर पहुँचा और लाइब्रेरी क्लर्क से कुछ पुस्तकें माँगीं। वह व्यस्त था। दूसरे कमरे में कुछ टाइप कर रहा था, तो उससे अलमारियाँ खोल देने को कहा। बेचारे ने खोल दीं। कोई खटका तो था नहीं। बस, जल्दी-जल्दी जितनी पुस्तकें इंडस्ट्रियल कैमेस्ट्री सम्बन्धी थीं, मैंने डिपार्टमेंट के चपरासी द्वारा, जिसका पहिले ही प्रबन्ध कर रक्खा था, भिजवा दीं और बाकायदा पास बुक में दर्ज करके पास बुक लाइब्रेरी क्लर्क को पेश कर दी। वह तो हक्का-बक्का रह गया। एक ही आदमी ४००, ५०० पुस्तकें कैसे ले जा सकता था? शिकायत हुई, मालवीयजी तक पहुँची। इसी बीच में सब किताबें ठीक-ठीक नम्बर लगाकर, एक अच्छे से रैक में क्रमानुसार रख दी गयी थीं और ताला-कुंजी अपने पास थी।

"एक दिन सुबह मालवीयजी तथा ध्रुवजी अपने नित्य के नियमानुसार पैदल घूमने निकले तो इंडस्ट्रियल कैमेस्ट्री डिपार्टमेंट में पहुँच गये और मुझे बुलाकर पूछा कि डिपार्टमेंट की लाइब्रेरी कहाँ है। मेरे गले में साँस अटकने लगी परन्तु हिम्मत करके सब कुछ दिखा दिया। देखकर बोले कि यह तो बहुत अच्छी लग रही है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवजी की ओर देखकर किंचित् मुसकराये। मेरी जान में जान आयी। शिकायत जो की गयी थी, काफूर हो गयी।

"यह तब की बात है, और अब ऐसा दुस्साहस करने की कोई चेष्टा भी करे तो वह सजा मिलेगी कि छठी की याद आ जायगी।

"मालवीयजी का स्वभाव था कि छोटी बड़ी सब बातों का निरीक्षण स्वयं किया करते थे और छोटे-बड़े सबकी आवश्यकताओं को पूरा किया करते थे। और यह थी उनकी महत्ता कि छोटी सी बात से ही गहराई पर पहुँच जाते थे। इस घटना में प्रश्न इतना ही नहीं था, वह था एक अध्यापक के सम्मान का, जिनकी प्रतिष्ठा वे सदैव ऊँची बनाये रखना चाहते थे। उस समय की तुलना में आज रोना आता है।"

मेरे एक परम मित्र हैं श्री श्रीकृष्णदास। उन्होंने कालिज की शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पायी है। बड़ी लगन के आदमी हैं। एक लगन के आदमी के लिए मालवीयजी के समय में विश्वविद्यालय क्या कर सकता है, यह आप समझ सकते हैं। उन्होंने जो आप-बीती कही है उसे लिखता हूँ। आप-बीती अपने ही शब्दों में ठीक से अदा होती है।

उन्हीं के अफ़साने लिख रहा हूँ, ज़बान उनकी है बात उनकी।
उन्हीं की महफिल सवाँरता हूँ, चिराग़ मेरा है रात उनकी॥
फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है, उन्हीं की आहें निकल रही हैं।
उन्हीं का मज़मूँ, उन्हीं का काग़ज़, कलम मेरा है दवात उनकी॥

श्रीकृष्णदासजी लिखते हैं—"मैं एम० ए० कैसे पास हुआ ?

आज तक सपने में जब उस घटना को देखता हूँ और चौंक उठता हूँ। अगर मालवीयजी महाराज का विशेष अनुग्रह न होता, यदि उन्हें मेरी सत्यवादिता पर अटूट विश्वास न होता तो मैं अकारण अपमानित होकर अपने उस विश्वविद्यालय से निकाला जाता जिसका जर्रा-जर्रा मेरे लिए शिवालय था।

घटना कुछ विचित्र एवं असाधारण सी है।

उन दिनों आजादी के संघर्ष की लहर तेजी के साथ बह रही थी। मैं उसमें आपाद-मस्तक डूबा हुआ था। किसे कक्षा में जाने और पढ़ने-लिखने की फ़ुर्सत थी ? अपनी समझ में मैं अपने जीवन का हर क्षण उस संघर्ष में जूझने में व्यतीत कर रहा था। नतीजा यह हुआ कि मेरा नाम कट गया, हाजिरी गायब हो गयी। मैं जितने दिनों कक्षा में जाकर बैठा, उसका कोई लेखा-जोखा न रहा। परीक्षा में बैठने के लिए मुझे अनुमति मिलेगी या नहीं, यह संदिग्ध हो गया। तत्कालीन रजिस्ट्रार मेरे सख्त विरोधी थे। मगर मेरे प्रोफेसर श्री मुकुटबिहारीलाल ने मेरी सारी बकाया फीस जमा कर दी। वह मेरी राजनीतिक 'कार-गुजारियों' से बहुत ज्यादा प्रभावित और आश्वस्त थे। समस्या हाजिरी की आयी। आचार्य गुरुमुख निहालसिंह (जो बाद में राजस्थान के राज्यपाल हुए) घनघोर देश-भक्त और विद्यार्थी-वत्सल महानुभाव थे। उन्होंने मेरी हाजिरी की समस्या सिफारिश से हल कर दी। रजिस्ट्रार महोदय अब भी सन्तुष्ट न थे। मालवीयजी महाराज के सामने मेरा मामला पेश हुआ। उन्हें मेरी सारी राज-नीतिक 'हरकतों' का पूरा पता था। उन्होंने कहा "ऐसे देशभक्त नवयुवक को परीक्षा में बैठने का अवकाश न देना सर्वथा अनुचित होगा, मुझे परीक्षा में बैठने की अनुमति मिल गयी।

अब एक कठिन समस्या और आयी।

उन दिनों पाँच विषय अनिवार्य और दो ऐच्छिक होते थे। मैंने फार्म भरा तो उसमें गलती हो गयी। अनिवार्य विषय तो ठीक-ठीक लिख दिये। ऐच्छिक विषयों के चुनाव में असावधानी हो गयी। मैंने तीन वर्गों में से दो विषय चुनने के बजाय, एक ही वर्ग में से दो विषय चुन लिये और फार्म भर दिया। किसीने मेरी यह गलती या भूल न पकड़ी। मेरा फार्म ज्यों का त्यों मंजूर हो गया और मैं परीक्षा में बैठने लगा। आखिरी दिन मैं 'पकड़' गया और मेरी कापी पर सरदार गुरुमुख निहालसिंह ने रिमार्क लिख दिया कि यह परीक्षार्थी आज गलत विषय में परीक्षा दे रहा है। उसे यह विषय चुनने का अधिकार न था।

"मामला रजिस्ट्रार के यहाँ पहुँचा। वह खुशी से फूले न समाये। चार वर्षों के मेरे 'उत्पातों' का बदला निकालने का उन्हें बेहद अच्छा अवसर मिल गया था। मेरे मन को इससे चोट पहुँची। राजनीतिक कारणों से मुझे 'रस्टिकेट' किया जाता तो मुझे गर्व होता। मगर यह तो सर्वथा अनैतिक अपराध था। मैं अपने को सर्वथा निर्दोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझता था। यदि फार्म भरने में मुझसे गलती हुई थी तो रजिस्ट्रार महोदय के कार्यालय को उसकी पूरी जाँच करने के बाद ही उसे स्वीकार करना चाहिए था। जान-बूझकर बेईमानी करने का आरोप मुझे असह्य था। प्रो-वाइस चांसेलर राजा ज्वालाप्रसाद से मैंने सारा किस्सा बताया। उन्होंने मुझे मालवीयजी महाराज के सामने उपस्थित कर दिया। उस समय उनके कमरे में राजा ज्वालाप्रसाद के अतिरिक्त पण्डित बलदेवराम दवे, पण्डित कन्हैयालाल, श्रद्धेय बाबू शिवप्रसाद गुप्त, श्री गंगाप्रसाद मेहता (रजिस्ट्रार) आदि मौजूद थे। मालवीयजी ने छूटते ही कहा "मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी।"

"मेरे तन-बदन में आग लग गयी। मैंने दर्जनों बार मालवीयजी और विश्वविद्यालय के अधिकारियों से टक्करें ली थीं और उन्हें पराजित किया था। मगर मेरी नीयत पर, सच्चाई और ईमानदारी पर कभी शंका नहीं की गयी थी। आज मालवीयजी महाराज स्वयं मेरी ईमानदारी पर संदेह कर रहे थे। लगा सीता की तरह मैं भी चीख पड़ूँ--

'तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हसि'

मालवीयजी मेरे मनोभावों को ताड़ गये। बोले "तुम्हें इसके सम्बन्ध में कुछ कहना है?"

आवेश के कारण काँपते स्वरों में मैंने उत्तर दिया 'बाबू, आप मुझे बेईमान न समझें। मुझे बस इतना ही चाहिए। मुझे एम० ए० की डिगरी न मिले, न सही। आपकी नजरों से उतर जाना मेरे लिये असह्य होगा।'

"उस समय मेरी आँखों से अश्रु की अनवरत धारा प्रवाहित हो रही थी। वे आँसू सात्विक क्रोध के थे, निरपराधी की बेबस प्रतिहिंसा के थे, आत्मश्लाघापूर्ण स्वाभिमान के थे।

"जादू असर कर गया। भोले बाबा का आसन डोल गया। कुलपति की पलकें भींग गयीं। त्रिलोचनजी (मालवीयजी महाराज के निजी सचिव, पण्डित त्रिलोचन पंत) को आदेश मिला 'इस लड़के को मेरी गाड़ी में ले जाओ और रसगुल्ला खिलाकर वापस ले आओ।' उपकुलपति की कार में अपराधी विद्यार्थी रसगुल्ला खाने के लिए चल पड़ा।

"वापस आया तो 'बाबू' अपने कमरे में बिस्तर पर लेटे हुए थे। अपने पास बुलाकर पूछा--"रसगुल्ले अच्छे थे?"

"जी हाँ, बहुत अच्छे थे। मैंने बहुत से रसगुल्ले खा लिये।" मैं चहक बोला।

"दूध भी पिया?"

मैं मौन रह गया। गोविन्द को आदेश मिला, 'इस लड़के के लिए एक गिलास दूध ले आओ।' गोविन्दजी चले गये तो 'बाबू' ने शान्त, गम्भीर, चिन्ता-मग्न स्वर में कहा 'देखो, तुम्हारे सम्बन्ध में निर्णय करने का सम्पूर्ण अधिकार मुझे दे दिया है। मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है। तुम्हारी परीक्षा एक पर्चा में फिर से ली जायगी।"

फ़रिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा॥

"मेरी सिसकियाँ अब बाँध तोड़नेवाली थीं। जिस समय गोविन्दजी कमरे में आये शायद उन्होंने यही दृश्य देखा होगा--'प्रभुकर पंकज कपि के सीसा'। शायद मेरे प्रति गोविन्दजी का भी सारा आक्रोश उनकी आँखों की राह बह गया होगा।

"'बाबू' नहीं हैं। मगर उनकी आत्मा अवश्य विश्वविद्यालय में मँडरा रही होगी, मेरे जैसे अगणित छात्रों के अभिभावन के लिए।

"मैं अपने 'बाबू', अपने उप-कुलपति की पुण्यस्मृति को प्रणाम करता हूँ। बाबू, विश्वास मानो, मैंने अपनी देश-भक्ति को बेचा नहीं है। मैं अब भी ईमानदार हूँ। मेरे ऊपर विश्वास करो 'बाबू'।"

इस सम्बन्ध में मुझे एक बात याद आ गयी। सन् १९२५ में जब संयुक्त प्रान्त की कठपुतली मिनिस्टरी काम कर रही थी, जवाहरलालजी ने एक तीखा लेख लिखा था। उसमें उन्होंने तत्कालीन मिनिस्टरों की पोल खोली थी। उसकी एक प्रतिलिपि हस्ताक्षरित कर उन्होंने मुझे दी। कहा कि इसको यू० पी० के अखबारों ने जब न छापा तो यह मदरास में छपा। उस लेख का आरम्भिक अंश था--"Politics" said George the Third of England, "are a trade for rascal, not a gentle man" (इँगलैंड के जार्ज तृतीय ने कहा है--राजनीति व्यापार है बदमाश का, भले आदमी का नहीं)। जब ऐसी बात है तो यह भूल श्रीकृष्णदास जी की थी कि उन्होंने एम० ए० में 'पालिटिक्स'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली। उसका खामियाज़ा तो उन्हें भुगतना ही था। बहुत दिनों से कुछ अधिकारीगण उन्हें फाँसने में लगे थे। परन्तु मैं तो यही कहूँगा कि श्रीकृष्णदासजी

सस्ते छूटे जो सरे-राह अमामा उतरा।
सर से इन बादा-फ़रोशों का तकाज़ा उतरा॥

फकत अमामा ही उतरा, इज्जत तो मालवीयजी महाराज ने बचा ही ली।

श्रीकृष्णदासजी लिखते हैं--

"परीक्षा समाप्त हुई तो विश्वविद्यालय छोड़ने के पहिले अपने बाबूजी का दर्शन करने गया। वे बाहर ही बरामदे में कुर्सी पर बैठे हुए मिल गये। प्रणाम किया, आशीष मिला। वह हार्दिक आशीर्वाद था--"देखो, अपने विश्व-विद्यालय को याद रखना" फिर जरा रुक कर बोले,--"तुम्हारी शरारतों और बदमाशियों के कारण सभी लोग तुमसे नाराज रहते थे। मगर मैं जानता था कि तुम आगे चलकर अवश्य कुछ करोगे। यह विश्वविद्यालय तो तुम्हारे लिए अभ्यास-क्षेत्र सरीखा था। जीवन के विशाल मैदान में अब तुम्हें खेलने का अवसर मिलेगा। अपनी माँ को, अपनी मातृभूमि के ऋण को मत भूलना। उसे तुम जैसे तरुणों से बहुत आशा है। उस विश्वविद्यालय में प्राप्त शिक्षा का यही औचित्य भी होगा। तुम्हारा मंगल हो।"

"बाबूजी की तेज चमकती आँखें अपने ही आँसुओं में डूब गयी थीं। मैं कुछ न कह सका। मेरा गला रुँधा हुआ था। मन ही मन कहा--'विश्वविद्यालय के ऋण को, बाबूजी के असीम स्नेह के ऋण को, मातृभूमि के ऋण को कभी भूलूँगा नहीं।' चरण स्पर्श किया और कोई 'चिन्हारी' माँगी। भाई त्रिलोचनजी मालवीयजी का एक छोटा सा चित्र ले आये। मेरा जी न भरा। मैंने माँग करके मालवीयजी महाराज की पगड़ी, कन्धावर और अँगरखा लिया। जब तक ये श्वेत निष्कलंक खादी के वस्त्र मेरे घर में रहे, इनके धागे-धागे की पूजा जैसी होती रही।

"१९४० की २६ मई को मैं गिरफ्तार हो गया। फिर गिरफ्तारियों और जेलखाना जाने का अटूट क्रम रहा। एक बार १९४४ में मालवीयजी प्रयाग आये और अपने पुराने घर में ठहरे। बाहरी कमरे में उनका बिस्तर लगा हुआ था। मैं दर्शन करने पहुँचा तो यथावत् श्री गोविन्द मालवीयजी मिल गये। वह बाबूजी के पास मुझे ले गये। गोविन्दजी ने छूटते ही कहा--"बाबू, बदमशवा आ गया। कई बरस की सजा काट आया है।" संकेत से बाबूजी ने मुझे निकट बुलाया और मेरे सर पर हाथ फेरते हुए धीरे से कहा--"गोविन्द, देखो, मैंने कहा था

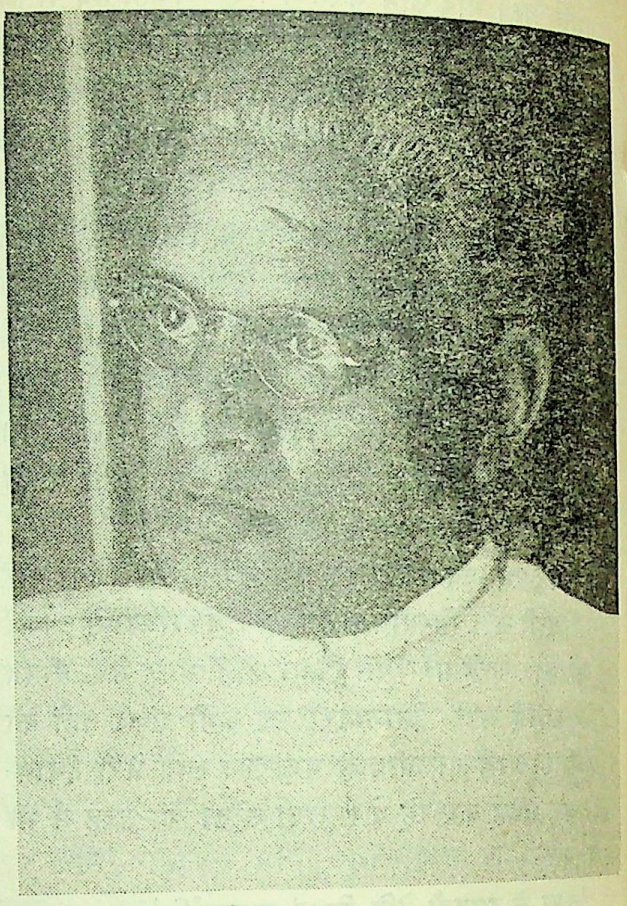

श्री श्रीकृष्णदास--'बदमशवा'

न कि यह लड़का आगे चलकर 'कुछ' करेगा? इसने मेरे मुँह की लाली रख ली।"

"बाबूजी विह्वल हो गये थे। मैंने देखा कि ऊपर से कठोर लगनेवाले गोविन्दजी का दिल भी पसीज गया था। उनकी भी आँखें नम हो गयी थीं।"

गोविन्दजी ने भाई कृष्णदास को 'बदमशवा' कहा, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। आप सत्यवादिता, देशभक्ति एवं आत्मश्लाघा के पुतले ही क्यों न हों, किसी के हृदय को समझ पानेवाले विरले होते हैं। बेचारे गोविन्द ने

रात शैताँ को ख़्वाब में देखा।
सारी सूरत जनाब की सी थी॥

बस, एम० ए० के साथ-साथ 'बदमशवा' की भी उपाधि घिलौने में मिल गयी, एक तत्कालीन वाइस-चान्सलर से, दूसरी भावी वाइस-चान्सलर से। भूत ने वर्तमान और भविष्य दोनों को सुधार दिया।

—क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु बम—विनाश का अग्रदूत

श्री सुरेश चन्द्र गौड़

परमाणु बम का निर्माण वस्तुतः बहुत बाद में--सन् १९४५ ई० के लगभग हुआ किन्तु इसकी कल्पना बहुत पहले--सन् १९०५ ई० में ही की जा चुकी थी जब कि आइंसटाइन ने अपना जगद्विख्यात् 'सापेक्षवाद का सिद्धान्त' प्रतिपादित किया। उस सिद्धान्त द्वारा यह स्पष्ट हो चुका था कि 'पदार्थ' और 'ऊर्जा' (शक्ति) एक दूसरे में रूपान्तरित किये जा सकते हैं। किसी पदार्थ की दी हुई मात्रा को ऊर्जा में पूर्णतया परिणत करने पर प्राप्य ऊर्जा की मात्रा की गणना करने के हेतु आइंसटाइन ने एक सूत्र भी प्राप्त किया कि--

ऊर्जा = (मात्रा) × (प्रकाश का वेग)^{२}

ज्ञातव्य है कि शून्य में प्रकाश का वेग एक लाख, छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड या ३ × १०^{१०} सें० मी० प्रति सेकेण्ड होता है। अत्युक्ति न होगी, यदि कहा जाय कि इसी सूत्र ने बीसवीं शताब्दि में उस महान् वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव कर दिया जिसने कि मानव इतिहास की धारा ही बदल दी।

उपर्युक्त सूत्र की सहायता से हमें यह ज्ञात होता है कि किसी पदार्थ की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा को भी यदि किसी प्रकार ऊर्जा में परिणत कर दिया जाय तो इतने अधिक परिमाण में ऊर्जा प्राप्त होगी कि उसे जानकर विस्मय और कौतूहल से हमारा मन अभिभूत हो जाता है। इसका अनुमान हम कुछ इस प्रकार कर सकते हैं कि यदि पानी की एक बूंद को पूर्णतया ऊर्जा में परिणत कर दिया जाय तो उससे एक जहाज कलकत्ते से न्यूयार्क तक चलाया जा सकता है, अथवा बुरादे के एक कण को पूर्णतया ऊर्जा में परिणत कर देने पर उससे अहमदाबाद सदृश औद्योगिक नगर के लिए कई मास तक विद्युत् पूर्त्ति की व्यवस्था की जा सकती है।

किन्तु 'मात्रा' को 'ऊर्जा' में रूपान्तरित कैसे किया जाय? यह एक गम्भीर समस्या थी जिसका समाधान करने के लिए प्रायः सभी देशों के वैज्ञानिकों का मस्तिष्क क्रियाशील हो उठा। अन्त में, सन् १९४० में इँगलैंड के विख्यात् वैज्ञानिकों, प्रो० पियर्ल्स, डा० फिशर तथा सर चाडविक ने इसकी विधि ढूंढ़ निकाली। उन्होंने यह पता लगाया कि न्यूट्रॉन नामक अत्यन्त सूक्ष्म कण बिना किसी प्रकार की बाधा से प्रभावित हुए सीधे पदार्थों के परमाणुओं के अन्दर जा घुसते हैं और उनके अन्तराल में विद्यमान तत्त्व-पदार्थ जिसे न्यूक्लियस या न्यष्टि कहते हैं, को विखण्डित कर देते हैं। इस विखण्डन के कारण वह न्यष्टि दूसरे पदार्थों की न्यष्टि में बदल जाती है। किसी पदार्थ की अत्यन्त अल्प मात्रा में भी अगणित परमाणु होते हैं और प्रत्येक परमाणु की न्यष्टि के इस प्रकार विखण्डित होने से अनेक न्यूट्रॉन उत्पन्न हो जाते हैं जो अन्य परमाणु की न्यष्टियों को विखण्डित करते हैं। इस प्रकार एक बार विखण्डन की यह प्रक्रिया आरम्भ हो जाने पर क्रमशः बढ़ती ही जाती है और अत्यन्त सूक्ष्म अवधि में ही, जो प्रायः एक सेकेण्ड के लाखवें अंश से भी सूक्ष्म होती है, असंख्य न्यष्टियाँ विखण्डित हो जाती हैं। इस प्रकार न्यष्टियों के विखण्डन के सिलसिले को 'शृंखला प्रतिक्रिया' कहते हैं।

उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा न्यष्टि का विखण्डन होने के साथ ही अपरिमित शक्ति का उद्गार भी होता है क्योंकि न्यष्टि का कुछ भाग ऊर्जा में भी परिणत हो जाता है। सर्वप्रथम यूरेनियम धातु में ऐसी प्रतिक्रिया सम्पन्न करने की विधि प्राप्त हुई। यह देखा गया कि यदि यूरेनियम धातु की एक विशेष उपजाति (यूरेनियम-२३५, अर्थात् २३५ परमाणु भार वाला यूरेनियम) के दो ऐसे टुकड़े लिये जायँ जो परस्पर मिला देने पर एक निश्चित आकार से बड़े हो जायँ तो बड़ी द्रुतगति से शृंखला प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। इस निश्चित आकार को 'चरम आकार' कहते हैं। इस आकार से छोटे होने के कारण दोनों टुकड़ों में अलग-अलग शृंखला प्रतिक्रिया आरम्भ नहीं होती, किन्तु जब दोनों टुकड़ों को अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक परस्पर मिला दिया जाता है तो वे मिलकर 'चरम आकार' से बड़े हो जाते हैं। उनके संयोग में अत्यन्त शीघ्रता करने के कारण शृंखला प्रतिक्रिया इतनी शीघ्रता से होती है कि भयंकर विस्फोट के साथ शक्ति का उद्गार होता है और ऐसा होने के पूर्व ही (जिसमें एक सेकेण्ड के दस लाखवें भाग से भी कम समय लगता है) यूरेनियम की उस मात्रा के अन्दर स्थित परमाणुओं में शृंखला प्रतिक्रिया अधिकांशतः सम्पन्न हो चुकती है। वस्तुतः परमाणु बम एक ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था मात्र है जिससे यूरेनियम के दो ऐसे टुकड़ों को अत्यन्त वेग से परस्पर संयुक्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परमाणु बम के निर्माण में यूरेनियम-२३५ की 'चरम मात्रा' ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यह मात्रा प्रायः एक किलोग्राम के बराबर होती है, अर्थात् यूरेनियस-२३५ के दो ऐसे टुकड़े परमाणु बम के अन्दर रखे जाते हैं जिनकी संयुक्त मात्रा एक किलोग्राम (१००० ग्राम, लगभग १ सेर ६ तोला) हो। इसके विस्फोट से अकल्पनीय मात्रा में शक्ति का उद्गार होता है जिसका अनुमान हम आज तक के सर्वाधिक प्रबल विस्फोटक, टी० एन० टी० या डाइनामाइट से कर सकते हैं। एक सेर टी० एन० टी० (ट्राई नाइट्रोट्रलीन) एक विशाल इमारत को निमिष मात्र में धूलिधूसरित कर देने के लिए पर्याप्त है। द्वितीय महायुद्ध में व्यवहृत होनेवाले बमों में लगभग एक टन टी० एन० टी० का उपयोग किया जाता था। एक अत्यन्त सामान्य कोटि के परमाणु बम के उद्गार से, इतनी शक्ति का विस्फोट होता है जितना कि लगभग २०,००० टन टी० एन० टी० से हो सकता है। एक सामान्य परमाणु बम के विस्फोट से संहार और विनाश का वही रूप प्रस्तुत हो सकता है, जो २०,००० साधारण बमों के विस्फोट से। इसकी कल्पना भी हमारे लिए कठिन प्रतीत होती है।

परमाणु बम के आवरण के अन्दर ही सीमित स्थान में तथा अत्यल्प अवधि के अन्दर ही शक्ति का इतना प्रचण्ड उद्गार होने से जो दृश्य उत्पन्न होता है, वह अकथनीय है। विस्फोट स्थल पर क्षण मात्र के लिए करोड़ों अंश का ताप उत्पन्न हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बम के प्रभंजित खण्ड, बम का खोल (आवरण) तथा विस्फोट स्थल पर विद्यमान द्रव्य पदार्थ, सब कुछ तत्क्षण वाष्प में परिणत हो जाता है। अत्यन्त संकुचित स्थान में वाष्प का विशाल परिमाण इतनी शीघ्रता के साथ उत्पन्न हो जाने के कारण वहाँ अत्यन्त प्रचण्ड दबाव भी उत्पन्न हो जाता है। इससे वहाँकी वायु बड़े भीषण झोंकों के साथ चारों ओर फैलने लगती है। इस भयंकर आँधी की गति प्रायः ७०० मील प्रति घंटे होती है। इसके झोंके से काफी दूर तक के विशाल भवन वृक्षादि धराशायी हो जाते हैं। विध्वंस और विनाश का जो दृश्य वहाँ उपस्थित हो जाता है—वह अकल्पनीय है—उसका अनुभव तो प्रत्यक्षदर्शी ही बता सकता है।

परमाणु बम का विस्फोट तीन प्रकार से किया जा सकता है—भूमि पर अथवा भूमि के नीचे, समुद्र के अन्दर या समुद्र-तल पर अथवा धरातल से कुछ ऊपर वायुमण्डल में। सर्वाधिक भयंकर परिणाम वायु में परमाणु बम के विस्फोट द्वारा प्राप्त होता है और विशेषकर जब कि वह धरातल से एक या दो, अथवा कुछ और अधिक, हजार फुट की ऊँचाई पर किया जाता है। विस्फोट के केन्द्र-स्थल का ताप प्रायः दस लाख अंश सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है और आग का एक विस्तृत गोला प्रगट होकर ऊपर की ओर बढ़ने लगता है और साथ ही, उसका विस्तार भी बढ़ने लगता है। पलक झपकने से भी अल्प अवधि में ताप गिरकर ३ लाख अंश सेन्टीग्रेड हो जाता है। उस समय उस गोले की चमक सूर्य के उस चमक की अपेक्षा, जैसी कि हमें यहाँसे दिखलायी पड़ती है, लगभग सौ गुनी अधिक रहती है। निमिष मात्र के अन्दर ही गोले का व्यास बढ़कर ६०० फुट हो जाता है और उसका ताप लगभग ५००० अंश सेंटीग्रेड (अर्थात् सूर्य के ऊपरी धरातल के ताप के बराबर) हो जाता है।

इतना वृत्तान्त लिखने और पढ़ने में तो काफी समय लग जाता है। किन्तु सारी घटना एक सेकेण्ड से भी बहुत कम समय के अन्दर ही सम्पन्न हो जाती है। एक सेकेण्ड के बाद आग का वह गोला ९०० फुट व्यास का हो जाता है। इसके बाद उसके आकारवर्द्धन की गति तो शिथिल हो जाती है किन्तु वह गोला अब बड़ी तेजी से ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। इसकी यह गति प्रायः प्रति सेकेण्ड १८ फुट होती है। ऊपर चढ़ने का यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि यह वायुमण्डल के उस स्तर तक नहीं पहुँच जाता जहाँ हवा का घनत्व आग के गोले के घनत्व के बराबर होता है। अब यह आग का गोला बादल के रूप में चारों ओर फैलने लगता है और अन्त में हवा के द्वारा धीरे-धीरे चारों ओर बिखरने लगता है। ऊपर उठते समय नीचे पृथ्वी से बहुत-सी धूल भी इसके साथ खिचकर चली आती है। इस धूल के कण रेडियो सक्रिय कणों से परिवेष्ठित होकर तिरते हुए विस्फोट स्थल के आसपास मीलों तक धरती पर गिरते और जमते रहते हैं। इस धूल का अधिकांश भाग सप्ताहों और महीनों तक हवा के पंखों पर तैरता हुआ दूर-दूर तक चला जाता है और वहाँ धरातल पर धीरे-धीरे बैठ जाता है।

विस्फोट स्थल के ठीक नीचे भूमि पर पड़ने वाले भू-भाग से प्रायः आधे मील के अन्दर चारों ओर कुछ भी शेष नहीं रहजाता। पत्थर और लोहे सदृश कठोर से कठोर पदार्थ भी पिघल जाते हैं तथा लकड़ी इत्यादि ज्वलनशील वस्तुएँ राख और वाष्प में परिणत हो जाती हैं। इसके बाद एक मील के अन्दर स्थित विशाल सुदृढ़ भवन बिलकुल ध्वस्त हो जाते हैं। ईंटों और पत्थरों की इमारतें तो धूलिधूसरित हो ही जाती हैं, इस्पात के खम्भों पर खड़े प्रासाद भी, उन खम्भों के टेढ़े हो जाने अथवा ऐंठ जाने के कारण धराशायी हो जाते हैं। ऐसा करने में विस्फोट-जन्य आँधी का हाथ विशेष होता है। इसके आगे लगभग दस-ग्यारह फर्लांग (लगभग २४०० गज की दूरी) तक स्थित ईंधन और प्लास्टर से निर्मित इमारतें नष्टप्राय हो जाती हैं और उनकी खिड़कियाँ और दरवाजे हवा के झोंकों से उखड़कर पता नहीं कहाँ जा गिरते हैं। खिड़कियों-दरवाजों की उखाड़-पछाड़ का दृश्य तो प्रायः ढाई-तीन मील तक दिखलाई पड़ता है।

एक साधारण परमाणु बम के विस्फोट से होनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विध्वंस का अनुमान नीचे दिये गये चित्र द्वारा भली भाँति समझा जा सकता है--

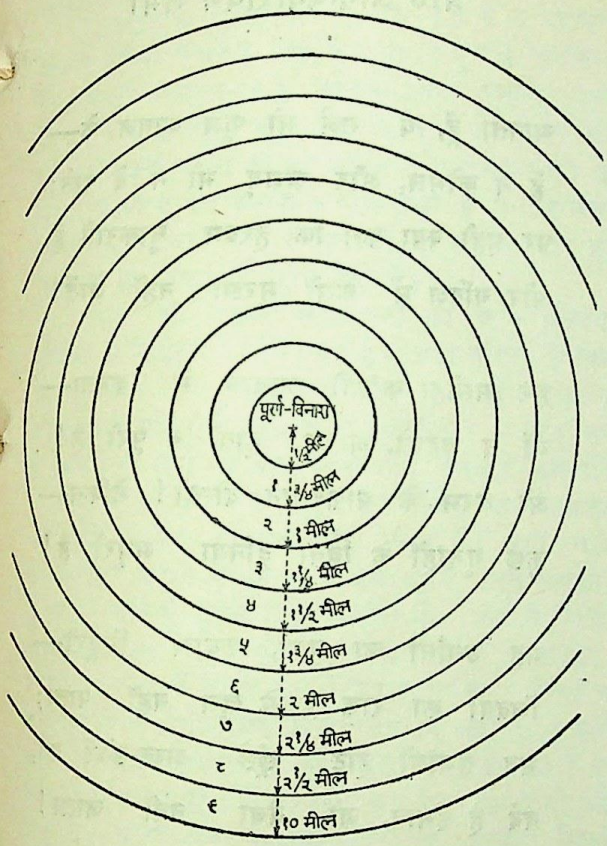

एक मध्यम कोटि के परमाणु-बम द्वारा होनेवाले विध्वंस और विनाश का अनुमानाश्र चित्रण।

१. समस्त भवनों का विध्वंस पेड़, पौधों तथा जीवन का संपूर्ण नाश।

२. कंकरीट के बने भवनों के अतिरिक्त शेष सभी भवनों का पूर्ण विध्वंस। कंकरीट के भवनों की अपूरणीय-क्षति झुलसे हुए तथा क्षत वनस्पतियों एवं जीवों के यत्र-तत्र अवशेष।

३. हलके कंकरीट भवनों तथा इस्पात के ढाँचे पर निर्मित भवनों का नष्ट होना। कई मंजिलवाले ईंट से बने भवनों का पूर्ण विध्वंस। ७०% जीवों का विकलांग हो जाना।

४. गम्भीर विनाश की परिसीमा। इस्पात के ढाँचे पर खड़े भवनों की क्षति, ईंट के मकानों का खण्डहरों के रूप में परिणत होना। पेड़-पौधों तथा प्राणी-समुदाय के गम्भीर विनाश के क्षेत्र की सीमा।

५. कई मंजिलवाले ईंट के मकानों का अतिशय जर्जर अथवा भग्न होना। दुर्घटनाओं से क्षतिग्रस्त प्राणि-समुदाय।

रेडियो-सक्रिय विकिरण तथा प्राणि-जगत पर भयंकर कुप्रभाव

पारमाण्विक विस्फोट से उत्पन्न होनेवाली विनाश और संहार की लीला केवल इतने ही से समाप्त नहीं हो जाती। इतने को तो हम उस लीला का प्रथम अंक कह सकते हैं। दूसरे अंक का प्रारम्भ प्रबल रेडियो-सक्रिय विकिरण के प्रसार के साथ होता है। विस्फोट स्थल से चलनेवाली आँधियाँ उस विस्फोट से उत्पन्न होनेवाले रेडियो-सक्रिय कणों को अपने साथ उड़ा ले जाती हैं और दूर दूर तक पहुँचाती हैं। इन कणों में से कुछ तो ऐसे होते हैं जो बड़ी जल्दी ही क्षीण होकर 'मृत' अथवा प्रभावहीन हो जाते हैं। किन्तु बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जिनके क्षीण होने की गति बहुत कम होती है। परिणाम यह होता है कि ऐसे कण जीवधारियों के शरीर में भोजन, पानी, हवा इत्यादि के माध्यम से पहुँचते हैं और उनके शरीर के अन्दर जीवकोषों एवं तन्तुओं पर क्षयकारी प्रभाव डालते हैं। इस क्रम का अन्त प्रायः जीवधारी के जीवन के साथ ही होता है। यदि किसी प्रकार वह प्राणी बच भी गया तो वह अनेक भयंकर शारीरिक रोगों से ग्रसित हो जाता है; वह विकलांग, शरीर से अक्षय अथवा नपुंसक हो सकता है। इससे अधिक चिन्तनीय बात तो यह है कि रेडियो सक्रिय कुप्रभावों का संक्रमण आनेवाली पीढ़ियों में भी हो सकता है।

सामान्यतया विकिरणों का प्रसार तो विस्फोट-स्थल से संसार के दूरस्थ प्रदेशों तक हो जाता है, किन्तु उनका गम्भीर प्रभाव कुछ मीलों तक विशेष रूप से दिखलाई पड़ता है। इसे आगे दी गयी तालिका द्वारा भली भाँति समझा जा सकता है।

६. औसत विनाश की सीमा। क्षतिग्रस्त क्षेत्र। मकानों, दरवाजों, खिड़कियों, चौखटों तथा दीवार पर लगे सीमेन्ट आदि के प्लास्टर को गम्भीर क्षति।

७. भवन-निर्माण की आंशिक क्षति। काष्ठ आदि से बने मकानों का विध्वंस। अग्निकाण्डों के कारण होने-वाली क्षति से ग्रस्त क्षेत्र।

८. भवनों को हलकी क्षति। बहुत से मकानों का जर्जर होना। आंशिक क्षति।

९. सामान्य रूप से क्षतिग्रस्त क्षेत्र की परिसीमा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

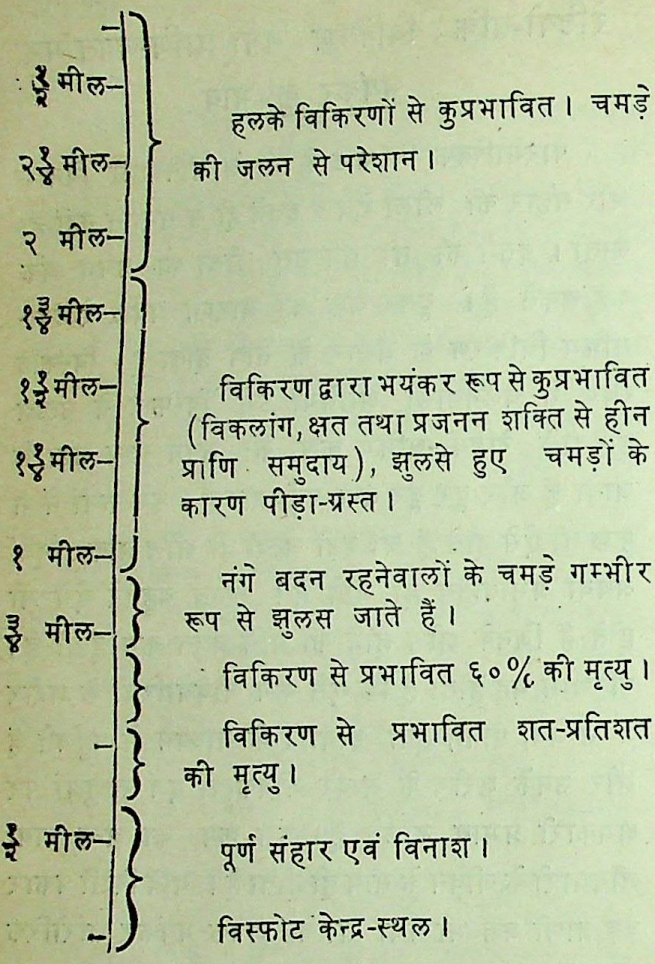

उपर्युक्त विवरण तो अत्यन्त सामान्य परमाणु बम के विस्फोट का प्रभाव बतलाते हैं। अब तो ऐसे परमाणु बम बनाये जा चुके हैं जो इनकी अपेक्षा १० से १५ गुना तक अधिक शक्तिशाली हैं।

हलके विकिरण से बहुत दूर तक के लोग कुप्रभावित हो जाते हैं क्योंकि आँधियों के साथ रेडियो-सक्रिय कण बहुत दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं। यदि ऐसे कण शरीर की त्वचा पर ही रह जाते हैं तो मामूली घाव या जलन पैदा कर देते हैं जो सामान्य उपचार द्वारा ठीक हो जाता है किन्तु यदि ये काफी मात्रा में शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं तो शरीर के जीवकोषों को नष्ट करने लगते हैं। उस समय उनकी चिकित्सा एक समस्या बन जाती है।

पाँच मुक्तक

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

मानता हूँ, ये सजे जो फूल कागज के—
हैं न कोमल, और खुशबू भी न दे पाते;
पर यही क्या कम कि हरदम मुस्कराते हैं,
और गर्दिश में कभी मुरझा नहीं जाते!

हर मसीहा काँपती आवाज से कहता—
यों न बहको, आरजू होती न पूरी है!
ओ धरम के पाकदामन दोस्तो! लेकिन—
कुछ गुनाहों के बिना दुनिया अधूरी है!

यह उसाँसों का धुआँ, कंदील सिंदूरी—
जिंदगी का राज इनसे खुल नहीं पाता;
मत सजाओ हाट छूँछे शब्द-छंदों की,
दर्द है ईमान, जो बेचा नहीं जाता!

उफ़, कसकती वेदनाएँ, पीर अंतर की,
आँसुओं को मोतियों के बीज बोने दो;
मीत या संगीत चाहे जो बना डालो,
दर्द को लेकिन नहीं नीलाम होने दो!

चाँद को चूमो, सितारों से करो बातें,
या समुंदर की गहनता का पता पा लो;
पर बुझाकर रोशनी दिल में मुहब्बत की—
आदमी को फिर न यों पत्थर बना डालो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचाल की मिट्टी की पुरानी मूर्तियाँ

श्री सुरेन्द्रमोहन मिश्र

गंगा, सिन्धु और उनकी सहायक नदियों ने मानव जाति के आदिकाल से अब तक के इतिहास को अपनी आँखों से घटते देखा है। आदि युग से अब तक की कितनी ही सभ्यताओं के उत्थान-पतन इनकी घाटियों में हुए। यदि अपनी कल-कल ध्वनि में ये नदियाँ प्राचीन इतिहास बताती भी हों तो भी अभी इस भाषा को समझ सकने योग्य साधन मनुष्य के पास कहाँ हैं ? तब तक इन नदियों के किनारे की सभ्यताओं के अवशेष ही हमारे सहायक हो सकते हैं और हुए हैं।

संसार की समस्त सभ्यताओं का जन्म महत्त्वपूर्ण नदियों के किनारों पर ही हुआ है। बड़ी नदियों के किनारे राजधानियाँ तथा व्यापारिक नगर बसते थे। छोटे-छोटे ग्राम छोटी नदियों के किनारे बस जाते थे। प्राचीन नगरों के जितने भी छोटे बड़े अवशेष अब तक मिले हैं सब नदियों के किनारे ही बसे थे। मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बड़ी नदियाँ तो बारहों महीने थोड़ा बहुत जल अपने साथ रखती ही हैं छोटी नदियाँ केवल चार महीने ही वर्षा के जल से चलती हैं अतः छोटी नदियों का जल ग्राम के समीप ही किसी तालाब में एकत्र कर लिया जाता था। बिना नदी के सहयोग के खेती आदि भी सुविधापूर्वक नहीं हो सकती। अतः प्राचीन सभ्यताओं की खोज में सभी छोटी बड़ी नदियों के आस-पास के अवशेष हमें परम उपयोगी सिद्ध होते हैं। इन्हीं अवशेषों की खुदाई से प्राचीन सिक्के, मूर्तियाँ और शिलालेख आदि प्राप्त होते हैं जिनसे इतिहास के अन्धकालीन युगों पर प्रकाश पड़ता है।

कोई भी नगर या ग्राम जब किसी भी कारणवश नष्ट हो जाता है तो कालान्तर में वह टीलों-ढूहों के रूप में ही परिवर्तित होता है। जब इन टीलों को किसी भी रूप में खुदवाया जाता है तो धरती में सुरक्षित रह सकने वाली वस्तुएँ जैसे मिट्टी और पत्थर की मूर्तियाँ, धातु के सिक्के आदि निकलते हैं। इन वस्तुओं की सहायता पर ही इतिहास की अधिकांश सामग्री आधारित है।

प्रस्तुत लेख में हम पांचाल प्रदेश के एक अंश-विशेष के कुछ टीलों से प्राप्त मिट्टी की मूर्तियों की चर्चा करेंगे। गंगा और रामगंगा के मध्य का भू-भाग अनेक छोटी-छोटी सहायक नदियों के कारण प्राचीन काल से ही विभिन्न सभ्यताओं का आवास-स्थल रहा है। पांचाल प्रदेश के दो भाग उत्तर और दक्षिण महाभारत काल से पूर्व ही हो चुके थे। हिमालय से लेकर चम्बल (चर्मण्वती) नदी तक पांचाल की सीमा थी। मध्य में गंगा नदी पांचाल के दो भाग करती है। उत्तर पांचाल की राजधानी बरेली जिले में अहिच्छत्रा थी। दक्षिण की राजधानी फर्रुखाबाद के समीप काम्पिल्य थी। आज इन दोनों नगरियों को नष्ट हुए लगभग एक हजार वर्ष हो चुके। विशाल

किसी विदेशी योद्धा का शीर्ष भाग
(कुसुम्भरा से प्राप्त)

टीलों के रूप में ही इनके अवशेष रह गये हैं। इन टीलों की राजकीय खुदाई भी दो बार हो चुकी है जिसके फल-स्वरूप हजारों मूर्तियाँ और सिक्के आदि यहाँसे प्राप्त हुए। अहिच्छत्रा में विभिन्न युगों की नौ तहें प्राप्त हुई थीं। क्योंकि राजधानी के समीप उन नवों युगों के अन्य उपनगर भी थोड़ी-थोड़ी दूर पर बसे रहे होंगे अतः उनके अवशेष भी होने चाहिये। यह विचार करके हमने अपनी खोज का आधार सहायक नदियों को बनाया। स्रोत, अरिल और महिष्मती (भैंसोंड़) इस प्रदेश की महत्त्वपूर्ण छोटी नदियाँ हैं। इनके किनारे-किनारे जब हमने प्राचीन टीलों की खोज में यात्रा की तो यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि तीनों नदियों के किनारों पर, गुप्त, कुषाण और मौर्यकाल की वस्तुओं को अपने उदर में छिपाये, अनेक टीले अवस्थित हैं।

इन समस्त टीलों का पर्यवेक्षण करने से हमें ज्ञात हुआ कि इतिहास की कितनी ही टूटी हुई शृंखलाओं के अर्गल इन अनजान टीलों में दबे पड़े हैं। क्योंकि हमारी खोज पूर्ण रूप से वैयक्तिक है अतः खुदाई की सुविधा के अभाव में हम कतिपय सामग्री ही संग्रह कर पाये हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुँघराले केशों वाली नारी का शीर्ष भाग
(कुसुम्भरा से प्राप्त)

ऊपरी सतह पर ही मिट्टी के हटने से निकल आती है अथवा ग्रामवासियों द्वारा संग्रहीत की हुई सामग्री जो हमारे संग्रहालय को भेंट दी गयी।

इस प्रदेश से प्राप्त होने वाली मूर्तियों को हम चार भागों में बाँट सकते हैं। पहिली केवल चुटकी के सहयोग से बनी मिट्टी की मूर्तियाँ मौर्यकाल अथवा उससे पूर्व की हैं। दूसरी मूर्तियाँ शुंग काल की साँचे की हैं। तीसरी प्रकार कुषाण मूर्तियों की है जिनमें अधिकांश विदेशियों की भद्दी आकृतियाँ हैं। चौथी मूर्तियाँ जो अत्यन्त कलात्मक रूप सज्जा की हैं और जिनका निर्माण काल ईसा की तीसरी शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी तक का है, ये मूर्तियाँ गुप्तकालीन कहलाती हैं।

यहाँ हम केवल गुप्तकाल की कुछ उन मूर्तियों का परिचय देंगे जो हमारे चन्दौसी स्थित संग्रहालय में हैं और जिनको अरिल, स्रोत और महिष्मती (भैंसोड़) नदियों के किनारे के कुछ टीलों से प्राप्त किया गया है।

महिष्मती नदी पांचाल प्रदेश की अत्यन्त प्राचीन नगरी संभल से निकली है। कहा जाता है कि महिषासुर का बध देवी ने यहीं किया। उसके रक्त से जो नदी बनी उसीका नामकरण महिष्मती किया गया। बदायूँ जिले में इस नदी के किनारे एक प्राचीन टीला दीननगर का है। इसको शेखपुर भी कहते हैं। चौथी अथवा पाँचवीं शताब्दी में यह टीला अपने पूर्ण वैभव पर रहा होगा। किस दुर्घटना से यह नष्ट हुआ इसका पता बिना खुदाई कराये नहीं लग सकता। कई मूर्तियों के साथ एक स्त्री का कलात्मक सिर भी यहाँसे प्राप्त हुआ। यह सिर महिष्मती नदी में से हमें मिला है। मिट्टी की इस कलाकृति में माथे पर घिर आने वाली बालों की दो लटें विशेष दर्शनीय हैं और पीछे केशों का जूड़ा इस मूर्त्ति को और भी आकर्षक बना रहा है। माँग में एक जंजीर पड़ी हुई है। सम्भवतः कानों में यह विशाल कुंडल पहिने रही होगी जो अब टूट चुके हैं। मोटे-मोटे विशाल कुंडल गुप्तकाल की मूर्तिकला की विशेष पहिचान है। इस स्त्री मूर्ति की उन्मुक्त हँसी उभरते हुए यौवन की मुस्कान है।

अरिल नदी भी इस क्षेत्र में अपना विशेष महत्त्व रखती है और इसके किनारे-किनारे पचासों टीलों के अवशेष हैं। तिगरा नामक टीला भी अनेक मूर्तियाँ अपने उदर में छिपाये है। यहाँसे प्राप्त मूर्तियों में कार्तिकेय की मूर्ति महत्त्वपूर्ण है। इस मूर्ति के केवल पैर ही खंडित हो गये हैं शेष भाग सुरक्षित रहा है। इसमें कार्तिकेय जी धोती धारण किये हुए हैं। कानों में अस्पष्ट से कुंडल हैं। गले में एक मोटा हार है। जिसमें एक झूमर सा लटक रहा है। यज्ञोपवीत भी इन्होंने धारण कर रखा है। नीचे एक मयूर का सिर है जिससे इनके कार्तिकेय होने की पुष्टि होती है। गुप्त काल में बौद्ध और जैन धर्म की मूर्तियाँ तो बन ही रही थीं ब्राह्मण धर्म के देव-

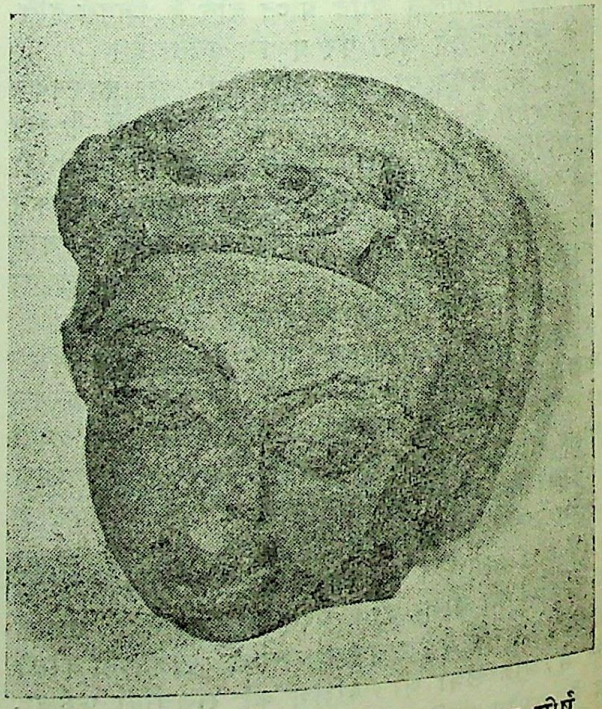

गुमस्थल से प्राप्त एक विदेशी पुरुष का शीर्ष
(चन्दौसी संग्रहालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताओं की मूर्तियाँ भी पुराणों की कथाओं के आधार पर बहुतायत से बनाई जा रही थीं। विष्णु, सूर्य, शिव आदि देवताओं की मूर्तियों का प्रचलन मथुरा जैसे बौद्ध प्रभावित कला केन्द्रों में भी बहुतायत से हुआ।

स्रोत नदी भी अपने किनारों पर अनेक प्राचीन टीलों का अस्तित्व रखती है। प्रायः अपना मार्ग बदलते रहने के कारण कुछ टीले इसकी धारा से दूर भी हो गये हैं। कहीं-कहीं तो यह अन्तर तीन या चार मील का भी हो गया है। गुमथल, मैथरी, कोट और ओरछी आदि के टीलों के समीप बहनेवाली नदी अब उनसे तीन मील दूर हटकर बहती है। गुमथल का टीला कुषाणकालीन और गुप्तकालीन दोनों प्रकार की मूर्तियों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। अनुमान है कि यहाँकी बस्ती दो बार उजड़ी होगी। एक पुरुष का आकर्षक सिर जो यहाँसे प्राप्त हुआ है वह लगभग तीसरी शताब्दी का है और गुप्त काल की आरम्भिक कला का प्रतिनिधित्व करता है। निश्चित रूप से इस मिट्टी की मूर्ति का तात्पर्य किसी देवता से नहीं है वरन इसकी आकृति इसे किसी विदेशी की मूर्ति समझने

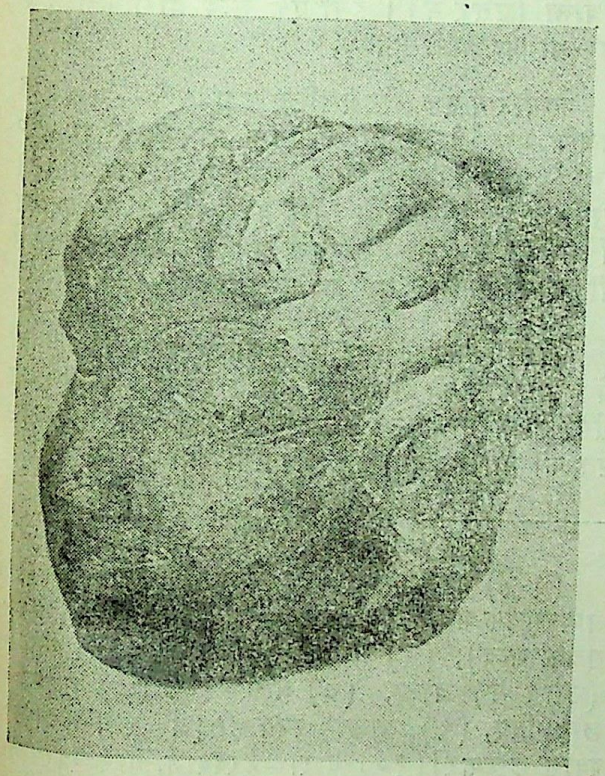

महिष्मती नदी से प्राप्त मिट्टी का नारी शीर्ष
(चन्दौसी संग्रहालय)

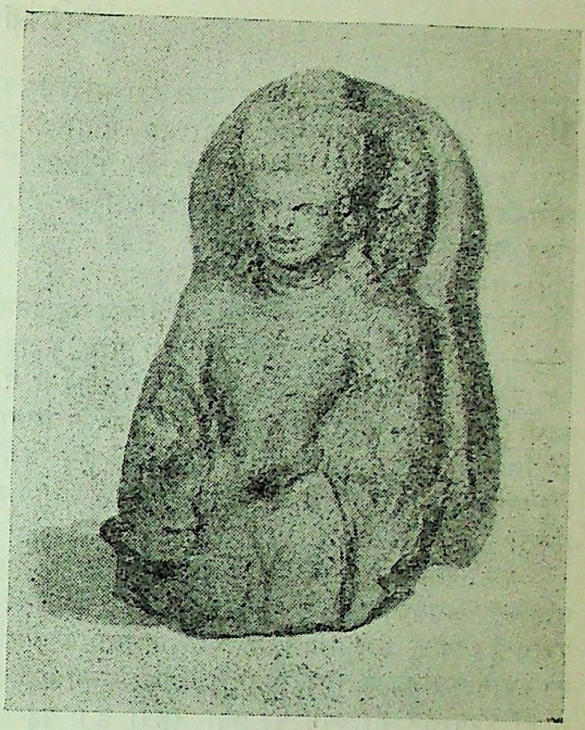

तिगरा के टीले से प्राप्त कार्तिकेय की मृण्मूर्ति
(चन्दौसी संग्रहालय)

को विवश करती है। आगे को उभरे हुए मोटे किन्तु छोटे ओष्ठ भारत की जलवायु के अधिक अनुकूल नहीं हैं। कानों में बहुत मोटे कुण्डल हैं और सिर पर विचित्र प्रकार की फूलों से सजी पट्टियाँ बाँधे है। पुरुषों की केश सज्जा का ऐसा विचित्र उदाहरण किसी अन्य मूर्ति में देखने को नहीं मिलता। मूर्ति के पीछे प्रभा मंडल भी है। प्रभा मंडल होते हुए भी यह मूर्ति किसी देवता की नहीं प्रतीत होती। मिट्टी भी इसकी प्रथम श्रेणी की है जो लाल रंग की चमकदार है। भौंहें इसकी अधिक लम्बी हैं और आँखों को भी आकर्षक बनाने का सफल प्रयास किया गया है।

आज लगभग डेढ़ हजार वर्ष के पश्चात ये मूर्तियाँ पांचाल प्रदेश के वैभवकालीन कलाकारों की कृतियों का परिचय कराने के लिए यदा-कदा धरती के गर्भ को चीरकर निकलती रहती हैं। मिट्टी की यह सजीव किन्तु खंडित प्रतिमाएँ अपनी मूक भाषा में हमें अपने युग की कथा सुनाती हैं। काश, हम इनकी सम्पूर्ण मूक भाषा समझने में समर्थ होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्मीरी कहावतों में सम्बोधन शैली

श्री शिबनकृष्ण रैना

कश्मीरी भाषा में कहावतों का बहुत बड़ा भांडार पड़ा हुआ है। कहावतें, वस्तुतः किसी भी भाषा के सुसंपन्न एवं प्रौढ़ होने का परिचय देती हैं। कहावत का सबसे बड़ा गुण है इसकी 'संक्षिप्त-वृत्ति' छोटे-से-छोटे वाक्य अथवा कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक भावों एवं चित्रों का स्पष्टीकरण करना।

कहावत जिस ढंग एवं शैली के आधार पर बनती है--उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है। प्रायः कहावत तुक, लय अथवा 'अनुप्रास' के बल पर अधिक गढ़ती हैं। कश्मीरी कहावतों की शैली जहाँ इन सिद्धांतों के आधार पर स्थित हैं वहाँ इन कहावतों की शैली में एक विशेष ढंग पाया जाता है। इसे 'संबोधन शैली' कहा जा सकता है।

कभी-कभी कहावत में आये हुए शब्दों द्वारा किसी वार्तालाप अथवा किसीके प्रति संबोधित अंश का उल्लेख रहता है। किन्तु इस संबोधित अंश अथवा वार्तालाप का स्थान कहावत में गौण रहता है। किसी समय कहावत में ही प्रश्नोत्तर की व्यवस्था बनी रहती है। यह सब कहावत के पार्श्व में छिपा रहता है--अप्रत्यक्ष रूप में।

कश्मीरी भाषा में एक कहावत प्रचलित है--'ब्रगो[१] तोंत[२] छय[३] हअज[४]--दोपनस[५] न[६] त[७] क्याह[८] छुम[९] स्योद[१०]।' हे गीध! तुम्हारी चोंच टेढ़ी है, [उत्तर में वह (गीध)] बोला--नहीं तो मेरा कौन-सा (अंग) ही सीधा है। यहाँ पर कहावत में प्रश्नोत्तर का सुन्दर समावेश हुआ है। 'संबोधन-वृत्ति' की यह शैली कहावत को अधिक मार्मिक बना देती है।

इसी प्रकार एक और कहावत कश्मीर में प्रचलित है--'वोथ[१] नोश[२], कुठ[३] खस[४], दोपनस[५] आयस[६] क्याह[७] करनि[८]।' हे वधू! उठो कमरे में (ऊपर) चलो--(उत्तर में वह वधू) बोली--नहीं तो आई ही हूँ क्या करने! यहाँ भी प्रश्नोत्तर का समावेश केवल कुछ शब्दों में किया गया है। यह तो स्वयं समझ लेना पड़ता है कि सास अथवा ननद ने वधू से ऊपर चले जाने के लिए कहा होगा, और फिर यह भी स्पष्ट है कि वधू ने इसका उत्तर दिया होगा। संबोधन-शैली दृष्टव्य है।

---

(१) ब्रगो=हे गीध! ब्रग=एक पक्षी (२) तोंत=चोंच, (३) छय=है (तुम्हारी), (४) हअज=टेढ़ी, होल=टेढ़ा, (५) दोपनस=उत्तर में बोला, (६-७) न-त=नहीं तो, (८) क्याह=क्या, (९) छुम=है (मेरा), (१०) स्योद=सीधा (११) वोथ=उठो, (१२) नोश=वधू, (१३) कुठ=कमरे (में) (१४) खस=चढ़ो, खसुन=चढ़ना, (१५) दोपनस=(उत्तर में), बोली, (१६) आयस=आयी (ही) हूँ, (१७) क्याह=क्या, (१८) करनि=करने,

एक कहावत है--'ख्वजअ[१] सअेब,[२] गाम[३] हज[४] नीख,[५] दोपनस[६] असि[७] त्रअेण्य[८] पानय[९]।' हे ख्वाजा साहब! गाँव छीन लिये गये--(उत्तर में ख्वाजा साहब) बोले हमने तो वे स्वयं छोड़ दिये। यहाँ पर भी संबोधन शैली दृष्टव्य है। स्वयं ध्यान देने पर पता चलता है कि कोई पुरुष या नौकर ख्वाजा साहब के पास यह संदेश लेकर गया होगा कि शत्रु ने गाँव छीन लिये--उस पर ख्वाजा साहब ने उत्तर दिया कि (भाई!) हमने तो वे स्वयं छोड़ दिये। एक प्रकार का वार्तालाप प्रस्तुत कहावत में निहित है।

एक और कहावत है--'दारो[१०] कम्यू[११] फाटवुख,[१२] दोपनस[१३] पनअनिय[१४] पअन[१५]।' हे दरवाजे! तुमको किसने तोड़ा, (उत्तर में) वह बोला--अपनी ही खूंटी ने। यहाँपर भी संबोधन शैली दृष्टव्य है। 'दोपनस' शब्द का इन कहावतों में विशेष स्थान है। 'दोपनस' का अर्थ है बोला (उत्तर में)। इसी एक शब्द द्वारा कहावत में व्यवस्था आ जाती है।

कश्मीर में एक और प्रचलित कहावत है--'मअजि[१६] मअजि माम[१७] है[१८], दोपनस गोभरअ[१९] म्योन[२०] गव[२१] बोय[२२]।' हे माता! मामा है, (उत्तर में वह) बोली, हे पुत्र! मेरा तो भाई है! यहाँपर भी कहावत में आई हुई संबोधन-शैली दृष्टव्य है। प्रस्तुत कहावत में भी 'दोपनस' शब्द का प्रयोग हुआ है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कश्मीरी कहावतों में इस प्रकार की शैली को विशेष स्थान प्राप्त है। इस शैली का अपना महत्त्व है तथा इस प्रकार की शैली कहावत को मार्मिक तथा सरस बनाती है।

(१-२) ख्वजअ-सअेब=हे ख्वाजा साहब! (सअेब=आदरसूचक शब्द), (३) गाम=गाँव, (४) हज=(आदर-सूचक शब्द), (५) नीख=लिए, (६) दोपनस=(उत्तर में) बोला, (७) असि=हमने (८) त्रअेण्य=छोड़ दिए, (९) पानय=स्वयं ही [अे=दीर्घ (ध्वनि) श्वास छोड़कर] (१०) दारो=हेरदवाजे, दार=दरवाजा (सं० द्वार) (११) कम्यू=किसने, (१२) फाटवुख=तोड़ा (तुम्हें), (१३) दोपनस=बोला उत्तर में। (१४) पनअनिय=स्वयं ही (अपने ने ही), (१५) पअन=खूंटी (ने) एक प्रकार की विशेष खूंटी जिसका प्रयोग लकड़हारे करते हैं। (१६) मअजि-मअजि=हे माता!-२। (१७) माम=मामा, (१८) है=है (१९) गोबरअ=हे पुत्र! (२०) म्योन=मेरा, (२१) गव=है (होत है) (२२) बोय=भाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

क्या आपकी पत्नी आपसे नाराज़ हैं ?

श्रीमती शीला शर्मा

क्या आपकी पत्नी आपसे नाराज हैं? ठीक ही है क्यों न हों?

क्या आपने कभी इसका ध्यान रक्खा है कि आप दो क्षण उन्हें केवल उनके लिए दे सकें जिससे उन्हें इसका आभास हो कि वे कोरी महराजिन, घर की कहारिन व बच्चों को खिलाने मात्र की अवैतनिक आया नहीं हैं। वरन् आपकी जीवनसंगिनी हैं? ये दो क्षण जो आप केवल उनको उनके ही लिए देंगे—उनके सहारे वे दिन भर की समस्त थकान क्षणों में भुला सकेंगी।

२. क्या आपने जाने-अनजाने में कभी भी अपने व्यवहार में मधुरता लाने का प्रयत्न किया है? अपने पति होने का सिक्का तो आप सदैव ही जमाने की कोशिश किया करते हैं। जिस तरह शब्दों के हेर फेर कर, वाणी के जिस उतार चढ़ाव से आप अपना सिक्का जमाना चाहते हैं—उसी शब्दों के हेर फेर से, उसी वाणी के उतार-चढ़ाव से आप अपने व्यवहार में मधुरता भी भर सकते हैं, अधिकार दिखाने से कुंठा (frustration) का जन्म होता है—और मधुरता दिखाने से एक प्रोत्साहन मिलता है। कुंठा से निस्सारता की भावना को जन्म मिलता है और उस भावना के उदय होने पर स्त्री को अपना जीवन ही व्यर्थ मालूम पड़ने लगता है।

३. क्या आपने कभी यह ध्यान दिया कि आपकी पत्नी को आपके व्यवहार की कोई बात विशेषकर अप्रिय तो नहीं है? जैसे, बोलते-बोलते स्त्रियों के सम्मुख अप्रिय, अशिष्ट शब्दों के तकियाकलाम का उपयोग, सब के सामने बैठे-बैठे कुर्सी पर से ही थूक देना आदि-आदि। हो सकता है कि आपकी पत्नी को ऐसी घृणा किसी विशेष आदत से भी न हो। पर यदि हो तो क्या आपने कभी भी उसे छोड़ने का प्रयास किया? भूलिएगा मत कि अपनी पत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आप यह आशा करते हैं कि जो आपको अप्रिय है वह वे कभी न करें।

४. क्या आप उनसे अन्य लोगों के सम्मुख साधारण शिष्टाचार बर्तते हैं? शिष्टाचार से उनको सम्मान की भावना मिलती है। जिस स्त्री को पति से सम्मान मिलता है उसे ही बाहर भी सम्मान मिलता है। दिन भर की सारी कमियाँ जब चार लोग इकट्ठे होते हैं तभी तो गिनाना नहीं शुरू कर देते, और फिर लट्ठ लेकर ऐसे पीछे तो नहीं पड़ते हैं कि वे रूआँसी हो उठती हैं? यह स्वीकार कीजिए कि आप यही चाहते हैं कि आपके मित्रों के आगे वे आपका आदर करें।

५. क्या आप उसके परिवारवालों की सत्य व असत्य घटना रस ले-लेकर सुनाया करते हैं? कथा-कहानी का यह रसास्वादन आप अवश्य लें केवल पात्र बदल दें। उसके घरवाले चाहे कैसे भी क्यों न रहे हों, आपकी पत्नी की कुछ मधुर स्मृतियाँ उनके साथ जुड़ी हुई हैं। उन्हें ठेस पहुँचाकर आपको एक क्षणिक आनन्द भले ही मिल जाता हो पर आप साथ-साथ अपनी पत्नी के हृदय में एक प्रतिशोध की भावना भी सुलगा रहे हैं। प्रतिशोध निकालने का हर एक का अपना अलग-अलग तरीका है। यह प्रतिशोध सुलगाकर आप अपने मार्ग में फूल नहीं बो रहे हैं।

६. माना आप बड़े व्यस्त हैं—पर क्या आपने कभी उनके स्वास्थ्य की ओर इधर ध्यान दिया? हो सकता है वह न जाने कब से आपसे कुछ कहना चाहती हों और आपको व्यस्त देखकर सदैव चुप हो जाती हों। आपकी यह अभी की चुप्पी ज्यादा देर काम न देगी। वह तो लेट रहेंगी। भुगतना आप ही को पड़ेगा।

७. क्या आपने कभी उनके शृंगार की ओर ध्यान दिया है? हो सकता है कभी कोई नवीन वस्त्र पहनकर, कोई नवीन केशराशि सँवारकर उन्होंने जीवन में कुछ रसिकता लाना चाही हो और आपने उसका अनुभव करके भी अपने मुँह पर ताला ही लगा रक्खा हो। वे क्या मनुष्य नहीं हैं, उनके हृदय में क्या भावनायें नहीं उठती हैं? हो सकता है उनके हृदय पर ठेस पहुँची हो और वे आपकी ओर से ही उदासीन हो गयी हों। और यह नाराजगी उनकी उदासीनता का ही एक रूप हो।

८. क्या आप उनके साथ वह साधारण शिष्टाचार बर्तते हैं जो कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ बर्तना चाहिए? पशुओं से भी यदि अशिष्ट व्यवहार किया जाय तो एक हद के पश्चात् शरीर से कुछ अकस्मात् ही मांस कम हो जाने का भय रहता है। यदि आपकी पत्नी आपसे केवल नाराजगी ही दिखाती हैं तो मैं कहूँगी कि वे बहुत सभ्य हैं।

घर-गृहस्थी

ओहो! बाजार जा रही हैं?

किस तत्परता के साथ बाजार जा रही हैं? यह टोकरी देखकर तो लगता है कि आज तो बाजार की खैर नहीं। पर है यह बड़ी सस्ती। न जाने कब की हैंडिल टूटी हुई पुरानी पड़ी थी, इन्होंने मुन्नी के पुराने स्कर्ट को नापकर सीकर उस पर कपड़े का काम निकाल लिया। ऊपर की पेटी खोलकर फेंक दी और उसको डोलची के सिरे से सी दिया और ऊपर का तुरपन से मुड़ा हुआ भाग ऊपर कर लिया और उसमें खोलने व बन्द करने के लिए एक डोरी डाल ली। इसको सीते समय डोरा ज्यादा मोटा लें, सुई साधारण हो, मोटी सुई बेंत के छेदों में उलझ जाती है, जहाँ सुराख मिला वहीं सुई निकालकर कपड़े और टोकरी में सम्बन्ध स्थापित कर दिया। यह टोकरियाँ बाजार के काम के लिए बहुत सुन्दर लगती हैं, साथ ही लाभदायक भी सिद्ध होती हैं क्योंकि सामान उनमें ऊपर तक भरा जा सकता है और भद्दा भी नहीं लगता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा

श्री डी० वी० रामकृष्ण राव

उसके शहर में नाटक-कम्पनी आ ठहरी थी। वह उसे देखने के लिए जाना चाहता था।

सबेरे के आठ बज चुके थे। गोपाल कम्पनी के खेमे में गया। वहाँ कोई न था। वह जानना चाहता था कि राधा कैसे रहती है। उसने सुन रखा था कि राधा बड़ी स्नेहालु स्त्री है। उस दिन पूरे दस घंटे तक गोपाल के मामा हरिदासजी ने राधा का गुणगान किया था। "आज मैं राधा को देखूंगा। वह मुझे गोद में लेगी। मुझे प्यार करेगी।"—इन विचारों से गोपाल का शरीर पुलकित हो गया। खेमे के एक कोने में आँखें बन्द किये सुध-बुध खोकर वह खड़ा रहा। अकस्मात् उसे चूड़ियों की खनखनाहट सुनाई पड़ी। उसने आँखें खोलीं तो देखा, एक सुसज्जित वेष में एक स्त्री खड़ी थी।

"तुम कौन हो?"

"मैं—गोपाल—यहाँका रहनेवाला हूँ।"

"यहाँ क्यों आये?"

"राधा को देखने के लिए। तुम कौन हो?"

"मैं ही राधा हूँ। यहाँ आओ तो।"

उस नारी के कोमल शीतल स्पर्श से उसका सारा शरीर पुलकायमान हो उठा। वह नहीं जानता था कि माता क्या वस्तु है। उसे उसकी बहिन ने शायद ही कभी गोद में लिया हो। हाँ, आसपास के लड़के उसे 'शरारती' कहकर कभी-कभी मारते थे। उसको जीवन में इन्हीं मारों का स्पर्श मालूम था। एकाएक राधा ने उसे अपने हृदय से चिपका लिया।

गोपाल आठ वर्ष का बच्चा है। माता के दर्शन से वञ्चित, बहिन के प्यार का स्वप्न-मात्र देखता, दमित आकांक्षाओं के कारण विरक्त, एकान्त में रहने का अभ्यासी—बस, यही उसके जीवन का संक्षिप्त परिचय है।

रोज गोपाल राधा के पास जाता और दोनों एक-आध घण्टे बातचीत करते रहते। तीस वर्ष की उस नारी के जीवन में यह एक नया अनुभव था। उसे स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य होता था। एक गुलाबी स्वप्न उसके स्मृति-पटल पर खिंच गया। खैर, जाने भी दो।

राधा रोज गोपाल को कुछ न कुछ खिलाती। वह उन चीजों के नाम पूछता। एक दिन गोपाल ने जिज्ञासा प्रकट की—

"राधा बाई, तुम यहाँ क्यों आयीं?"

"तुमको देखने के लिए।"

"इतने दिनों तक कहाँ थीं?"

"श्रीकृष्ण के पास।"

"तो तुम अकेली आयीं? श्रीकृष्ण नहीं आये?"

"नहीं, मैं पहले आ गयी। वे भी आयेंगे।"

"तुम अब सदा यहीं रहोगी न?"

"हाँ हाँ, जब तक तुम न जाने दोगे, तब तक यहीं रहूँगी।"

"मैं तुम्हें कभी न जाने दूंगा। मगर चली जाना चाहोगी तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

"अच्छा, अब तुम घर जाओ न? कृष्ण आते होंगे। फिर कल आ जाना।"

"मैं कृष्णजी को देखना चाहता हूँ।"

"बाद में दिखाऊँगी।"

गोपाल चला गया। राधा मन में हँसी। बेचारा बच्चा! क्या-क्या समझता है! किस-किस पर विश्वास करता है! मेरे जीवन में इतने कृष्ण आकर चले गये और अब भी मैं झूठ बोल रही हूँ—उस मासुम बच्चे से! मुझको धिक्कार है!

अकस्मात् उसके कमरे में एक सज्जन प्रविष्ट हुए। राधा ने पूछा—

"अच्छा महाशय, आपने क्यों इतनी देर लगायी?"

"देखो तो, मैं बाई के लिए क्या लाया हूँ! अब भी विलंब के लिए नाराज हो जाओगी?"

राधा के सामने एक बनारसी रेशमी साड़ी थी। वह मुस्कुराकर बोली—

"अजी, मैंने कब यह साड़ी माँगी थी? आप बेकार लाये। इसे लौटा दीजिए।"

"नहीं नहीं, मैंने थोड़े ही खरीदी है!"

"तो चुरा ले आये!"

"ऐसा ही समझ लो। बाई के लिए यह मेरा उपहार है। अच्छा, यह लड़का कौन है जो अँधेरे में मेरे आते समय जा रहा था?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझसे मत पूछिए। मैं नहीं बताऊँगी।"

"अच्छा, तो बाई रूठ गयीं?"

× × ×

गोपाल ने राधा की साड़ी देखकर कहा——

"राधा, इस साड़ी में तुम बड़ी अच्छी लगती हो। मेरी बहिन के पास भी एक ऐसी ही साड़ी है। लेकिन वह इतनी अच्छी नहीं है। अरे! तुमने यह हार कब बनवाया जी! मेरी बहिन के पास भी एक ऐसा ही हार है।"

राधा चकरा गयी। तो वह सज्जन इसका बहनोई है! पत्नी को धोखा देकर लाया है! वह तो कह रहा था कि उसकी शादी तक न हुई! नीच पुरुष-जाति!! स्वल्प-समय के आनन्द के लिए भी बड़े से बड़ा पाप करने से पीछे नहीं हटती।—— वह सँभल कर बोली:

'हाँ हाँ, गोपाल, मैंने यह 'मोडल' पसन्द किया। सोनार कह रहा था कि इस शहर में एक औरत के लिए मैंने बनाया है। तो उसीने तुम्हारी बहिन का हार बनाया होगा!

× × ×

गोपाल घर पहुँचा तो उसको धमकाया गया——

"तुम रोज कहाँ जाते हो? बहिन का हार कहाँ ले गया? रेशमी साड़ी कहाँ बेच डाली?"——धमकानेवाले थे——दीदी के पति!——दो-तीन चपत और आध-घण्टे भर का कोसना!

"देखो शारदा, यह आजकल आवारा हो गया है। मैंने बीड़ी पीते, गुल्ली-डण्डा खेलते उसे देखा है। चोरी भी सीख गया! अब हमें सावधान रहना है।"

परन्तु शारदा को स्वप्न में भी गोपाल पर सन्देह न था। आत्मीयता बरतते हुए उसने रात को पूछा——

"क्या गोपाल, तुमने मेरी साड़ी और हार कहीं देखा? कल तक तो दोनों घर में थे। पर आज एकदम गायब हो गये हैं!"

गोपाल बोला——"राधा के पास ऐसी ही ये चीजें हैं। पर वे हमारी नहीं, उसने खुद बनवायी हैं।"

"कौन राधा?"

गोपाल ने सब कुछ बता दिया।

शारदा सब कुछ समझ गयी। लेकिन वह तो स्त्री है! चुप रह गयी।

दूसरे दिन गोपाल राधा के पास गया। आज वह अपनी आपबीती राधा को सुनाना चाहता था। उसीसे उसको सान्त्वना मिलेगी।

राधा किसी दीर्घ-विचार में डूबी-सी बैठी थी। वही साड़ी पहने थी। गले में वह हार भी था। गोपाल को देखकर वह उठी और गोदी में लेते हुए बोली——

"गोपाल, क्या, तुम मुझे प्यार करते हो?.....बोलो न?.,.,.यह क्या? तुम रोते हो बेटा? बताओ न क्यों रोते हो?"

गोपाल उत्तर में बोला——

"हाँ, मैं तुमसे प्यार करता हूँ। लेकिन क्यों?"

"सचमुच प्यार करते हो, तो मेरी एक बात मानोगे?"

"हाँ"

"बेटा, मैं कल जानेवाली हूँ। तुम यहीं रहना। फिर मैं कुछ दिनों बाद आ जाऊँगी।"

उस आत्मीय व्यक्ति के सामने आपबीती पर वह खूब रोना चाहता था। वह दुःख अब दूसरे कारण से फूट निकला। राधा समझाती रही। अपने वचन को टालने का प्रयत्न करके भी गोपाल चुप ही रह गया।

दूसरे दिन गोपाल स्टेशन पर गया। एक पेड़ की छाया में——सबसे अलग——राधा बैठी थी। उसकी आँखें उसीको खोजती थीं। झट उठकर उसने गोपाल को छाती से लगा लिया।

दोनों खूब आँसू बहाते थे। एक दूसरे को रोने से मना न करता था। एक भी न बोल सकता था। बड़ी देर बाद गोपाल बोला——

"राधा, तुम फिर कब आओगी? मुझे भी ले चलो न?"

उसके इस दीन विनीत अनुनय ने उसके हृदय को चीर डाला। वह फूट-फूटकर रोने लगी। आखिर सम्भल कर बोली——

"नहीं बेटा, तुम यहीं रहो। मैं फिर कभी आकर तुम्हें ले जाऊँगी। अच्छा, मेरे लिए तुम एक काम करोगे?"

"हाँ, जरूर।"

"तो यह 'पैकट' अपनी बहिन को दे देना।"

"क्या, तुम मेरी बहिन को जानती हो?"

इतने में गाड़ी की आवाज सुनाई पड़ी। आँसू बहाते हुए दोनों बिछुड़े। गाड़ी अदृश्य हो गयी। राधा नजर से ओट होने तक गोपाल को देखती रही। गाड़ी के अदृश्य होते ही बच्चा घर को चला।

"यह राधा ने तुम्हारे लिए भेजा है"——गोपाल ने वह 'पैकट' बहिन को दे दिया। खोलने पर हार और साड़ी के साथ यह पत्र था:——

"बहिन,

तुम मुझे नहीं जानतीं। मैं कोल जाति की एक नीच स्त्री हूँ। फिर भी मैं तुम-जैसी कई स्त्रियों को जानती हूँ। ये चीजें लो और मेरी यह प्रार्थना भी स्वीकार कर लो——इस बच्चे के अन्दर मेरा प्रेम भी लो और आज से मेरा स्थान उसे तुम ही दो।

तुम्हारी——
राधा बहिन"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिर युगों का संचित ज्ञान

मू० ले० अनातोले फ्रांस

अनु० श्री रमेश गुप्त

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

युवराज जेमेरी जब फारस की राजगद्दी पर आसीन हुआ तब उसने अपने राज्य के समस्त विद्वानों को अपने सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया। और उनके एकत्र होने पर बोला—

"डा० जेब मेरे शिक्षक और एक विख्यात विद्वान् थे। वे मुझे बताया करते थे कि यदि संसार के शक्तिशाली सम्राटों ने अतीत से कुछ शिक्षा ग्रहण की होती तो उन्होंने इतनी भूलें न की होतीं जितनी कि वे कर गये हैं। इसलिए मैं संसार के सभी महान् व्यक्तियों के कार्य-वृत्तों का अध्ययन करना चाहता हूँ। अतः मेरी इच्छा है कि आप लोग मानवजाति का एक ऐसा इतिहास लिखें जिसमें कोई बात शेष न रह जाय।"

विद्वानों ने राजा को विश्वास दिलाया कि वे उसकी इच्छा पूरी करने का भरसक प्रयत्न करेंगे और घर आकर वे उस कार्य में जुट गये। बीस वर्ष पश्चात् वे लोग बारह ऊँटों के एक काफिले के साथ राजा के सम्मुख उपस्थित हुए। प्रत्येक ऊँट पर पाँच सौ जिल्दें लदी हुई थीं। उनके प्रतिनिधि ने सिंहासन के समक्ष साष्टांग प्रणाम करते हुए राजा से कहा,

"श्रीमन् राज्य के सभी विद्वानों ने श्रीमान् की आज्ञा का पालन किया है। मानवजाति का इतिहास श्रीमान् के चरणों में भेंट है। यह इतिहास छः हजार जिल्दों में लिखा गया है और इसके लिखने में हमने कुछ उठा नहीं रक्खा है। इस बृहत् इतिहास में मानव के आचार-विचारों, संस्कारों, विशाल साम्राज्यों के उलट फेरों, प्राचीन वंशावलियों, जो सौभाग्य से नष्ट होने से बच गयीं, महान् व्यक्तियों के कृत्यों एवं राजनीतिक घटनाओं आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। एक ऊँट पर इसकी भूमिका है तथा दूसरे पर अनुक्रमणिका।"

राजा ने कहा, "महोदय, इस कार्य के लिए आपने जो कष्ट उठाया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। किन्तु इस समय मैं राज्य की चिंताओं और झंझटों में व्यस्त हूँ और साथ ही अब मैं वृद्ध भी हो चला हूँ, बल्कि किसी फारसी कवि के शब्दों में कहना चाहिए कि मैं अपनी जीवन-यात्रा के मध्य में पहुँच गया हूँ। यह मानकर चलते हुए भी कि मुझे दीर्घायु प्राप्त होगी, इतने लंबे विराट् इतिहास को पढ़ने का अवसर मिल सकेगा—ऐसा मुझे विश्वास नहीं है। मेरे राजकीय पुस्तकालय की अलमारियों को यह इतिहास सुशोभित करता रहेगा। मेरी इच्छा है कि मानव-जीवन की अल्पता को ध्यान में रखते हुए आप मेरे लिए इस इतिहास को संक्षेप में लिखें।"

फारस के विद्वान् अन्य बीस वर्षों तक निरंतर परिश्रम करते रहे। अंत में पन्द्रह सौ जिल्दों से लदे हुए तीन ऊँटों को साथ लेकर राजा के पास पहुँचे।

"श्रीमान्", उनके प्रतिनिधि ने स्खलित स्वर में कहा, "हमारे नवीन कार्य को देखें हमें विश्वास है कि हमने किसी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण बात को नहीं छूटने दिया है।"

"हो सकता है", राजा ने कहा, "किन्तु मैं इसे पढ़ने का अवसर नहीं पा सकूँगा। मैं वृद्ध हूँ तथा और भी कार्य मुझे अभी करने हैं। अतः इसको और अधिक संक्षेप में आप लिखें तथा लिखने में अधिक समय न लगाएँ।"

विद्वानों ने लिखने में बहुत कम समय लगाया और दसवें वर्ष के अंत में एक हाथी पर पाँच सौ जिल्दें लाद कर वे राजा के सम्मुख पहुँचे।

"मुझे गर्व है श्रीमान् कि हम इसे बहुत संक्षिप्त करने में समर्थ हुए हैं।" प्रतिनिधि ने कहा।

"आप इसे पर्याप्त संक्षिप्त नहीं कर सके हैं", राजा ने कहा, "मैं मृत्यु के बिल्कुल निकट हूँ। यदि आप चाहते हैं कि मरने के पहले मैं इस इतिहास को पढ़ूँ तो संक्षेप—बहुत संक्षेप—में आप इसे लिखें।

पाँच वर्ष पश्चात् प्रतिनिधि ने राजा के महल में प्रवेश किया। वह वैशाखी के सहारे धीरे-धीरे चल रहा था। साथ में एक टट्टू था जिस पर एक विशालकाय पुस्तक रक्खी हुई थी।

"अरे महाशय", महल के एक कर्मचारी ने उसे देखते ही कहा, "राजा तो जीवन की अंतिम साँस ले रहा है।"

बात सही थी। राजा मरणासन्न था। एक बार उसने प्रतिनिधि की ओर देखा और फिर उस विशालकाय ग्रन्थ की ओर। उसकी आँखों का प्रकाश क्षीण होता जा रहा था। एक दुःख भरी साँस लेकर वह बोला, "मैं मानवजाति के इतिहास को बिना पढ़े ही मर जाऊँगा।"

"श्रीमान्", प्रतिनिधि ने, जो राजा के समान स्वयं मृत्यु के निकट था, कहा, "मैं आपको यह इतिहास दस शब्दों में बतला दूँगा।

"मनुष्य जन्मता है, कष्ट भोगता है और मर जाता है।"

और इस प्रकार फारस के सम्राट् ने अपनी मृत्यु के अंतिम क्षणों में मानवजाति के इतिहास को सीखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू से अनुवाद

मेहमानदारी

मू० ले० श्री मुहतरेमा हिजाब

अनु० एम० ए० 'फिरदौसी'

मुझे एक मुद्दत से समरू के खंडहर देखने का शौक था—

संयोग था कि एक दिन बातों-बातों में मैंने अपने शौक का वर्णन बूढ़े डाक्टर गार से किया। वह सुनते ही बोले। "इतना शौक है तो बेटी वहाँकी सैर को जाती क्यों नहीं? तुम्हारे ठहरने की व्यवस्था मैं किये देता हूँ। मादाम हमरा हार्दिक प्रसन्नता से तुम्हें अपना मेहमान बनायेंगी—कहो तो आज ही उन्हें पत्र लिख दूँ?"

"मादाम हमरा कौन हैं?" मैंने सवाल किया।

बूढ़े गार ने सुँघनी की डिबिया पतलून की जेब से निकाली और उसपर उँगली मारते हुए बोला—"तुम मादाम हमरा को नहीं जानतीं—रूही? दो साल हुए यह औरत समरू से कोई चालीस मील के अन्तर पर कार की दुर्घटना में बुरी तरह जख्मी हो गयी थी। समय की बात, उन दिनों हमारी पार्टी शिकार के लिए निकली हुई थी। खेमे पास ही लगे। रात का समय था, शहर दूर था, एक मैं ही वहाँ डाक्टर था। उस वक्त मैं ही वहाँ पहुँच गया और मैं उस बेचारी औरत को अपने खेमे में उठा लाया। चोट बहुत ज्यादा लगी थी, मगर चार दिन के इलाज ने खतरे से बाहर कर दिया, और मैंने उन्हें अपनी कार में बिठाकर उनके घर पहुँचा दिया। वह दिन, और आज का दिन, हर वक्त उनका आग्रह रहा कि मैं कुछ दिन को उनके घर जाऊँ, और उनका मेहमान बनूं। मगर उस बेचारी के इस अत्यधिक आग्रह के बाद भी मैं उधर अभी तक न जा सका, न खंडहरों को देखने के लिए समय निकाल सका। बीमारों की सेवा से जो वक्त बचता है वह पढ़ने-लिखने में खतम हो जाता है। अब यह मौका अच्छा आ गया है। अपनी बजाय मैं तुम्हें भेज दूंगा। उन्हें खुशी होगी, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी।"

यह सुनकर मैं बोली, "सचमुच, मौका तो अच्छा है। मगर डॉक्टर अकेली मैं नहीं जाती—खुदा जानता है मुझे मजा न आयेगा, तुम भी साथ चलो।"

डॉक्टर गार ने साफ इनकार कर दिया। "ना बेटी मेरा जी नहीं चाहता। कौन सूट केस भरे और सफर का कष्ट उठावे।"

जसवती बरामदे के सिरे पर बैठी मेवा खा रही थी। यह सुनकर वहीं से बोली, "सूट केस मैं भर दूंगी प्यारे गारी, आप अवश्य चलें।" जसवती को बचपन से बूढ़े डाक्टर गार को 'गारी' कहने की आदत है।

डॉक्टर गार ने थोड़ी देर के विचार के बाद अपनी आदत के अनुसार इरादा बदल डाला। बोला—"तुम लोगों की फरमाइश टालते हुए भी मन उदास होता है। तो फिर जसवती! सूट केस तुमको भरने होंगे और मेरी सुँघनी की पुड़ियों की देखभाल रूही तुम करो।"

बूढ़े डॉक्टर की इसी एक गन्दी आदत से मुझे घृणा है। मुझे सुँघनी को छूने से भी घिन आती है। मगर क्या करती, इस समय मतलब अपना था। मजबूर होकर सुँघनी की पुड़ियों को सँभालने का वचन दे दिया।

डॉक्टर गार ने उसी समय मादाम हमरा को पत्र लिख दिया कि दस-पंद्रह दिन में हम सब लोग वहाँ पहुँच रहे हैं। लेकिन डॉक्टर के पास कुछ ऐसे केस आते रहे कि पत्र लिखने के पंद्रह दिन बाद हम लोग रवाना हुए।

उस रोज मैं, मेरी प्रिय सहेली और डॉक्टर गार—हम तीनों डाक्टर की सफर कार में रवाना हुए। दिन की गरमी से बचने के लिए रात का खाना खाकर सफर शुरू किया गया। कार्यक्रम यह बना कि समरू के रास्ते में रात मादाम हमरा के यहाँ बिताकर उनकी खुशी पूरी करेंगे, और दूसरी सुबह समरू के खंडहरों में पहुँच जायेंगे। यह खबर नहीं थी कि यह रात जिन्दगी की बहुत ही डरावनी रातों में से एक होगी—मालिक बचाये!

मई के महीने की तपती हुई चाँदनी रात थी। हमारी नन्ही-सी "बेन्टले" वीरान सड़क पर तेज चलने वाले कीड़े की तरह चली जा रही थी। नौ बज चुके थे। खयाल था कि बारह-साढ़े बारह बजे तक हम मादाम हमरा के यहाँ पहुँच जायेंगे। सड़क पर कोई रास्ता चलनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न था। पीला चाँद गरमी के साफ आसमान पर उगा था। ताड़ के छतरी जैसे पेड़ रात की खामोशी के कारण खोये हुए खड़े थे।

जसवती कार चला रही थी, मैं उसके बगल में बैठी टॉफी खा रही थी। बूढ़ा डॉक्टर गार बुझा हुआ सिगार मुँह में दबाये उनींदी दशा में पिछली शीट पर पड़ा था। जब बीच-बीच में तंद्रा टूटती तो चौंकता और मजे में आकर उमर खय्याम की कोई चंचल रुबाई अपनी मोटी और भद्दी आवाज में गा देता। यह उसकी विशेष आदतों में से एक आदत थी।

दिल को धोखा देनेवाली चाँदनी थी। और स्वप्न में खो जाने वाला दृश्य। एकाएक जसवती ने कार खड़ी करदी।

"क्यों क्या हुआ?" मैंने चाकलेट का एक टुकड़ा निगलते हुए पूछा। वह बोली--"कोई खराबी, रूही!" और फिर सीट से उतरकर इंजिन खोल कर देखने लगी।

मैंने कहा। "असम्भव! अच्छा ठहरो, मैं देखती हूँ।" यह कहकर मैंने अपना बटुआ डाक्टर गार की गोद में फेंक दिया और स्वयं इंजिन को देखने लगी। आधे घंटे के लगातार प्रयत्नों के बाद हमने निराश होकर एक दूसरे को ताका।

"अब क्या होगा रूही?" जसवती ने खिसयाने ढंग से पूछा।

उसी समय ताड़ के ऊँचे पेड़ पर सभ्यता व संस्कृति से अपरिचित जंगली उल्लू ने एक डरावनी चीख मारी। भला जसवती के कान, जिनको सितार के संगीत और प्रेम की मीठी बातें सुनने की आदत थी, उल्लू की इस डरावनी आवाज को कब सह सकते थे? वह डर के मारे मुझसे चिपट गयी। लेकिन मुझे तो कठिन रास्तों, पहाड़ों के रास्तों को तै करने की भी आदत है। मैंने उसे हिम्मत दिलायी।

इतने में बूढ़ा डॉ० गार हाफिज का एक प्रेम काव्य पढ़ता हुआ उठ बैठा और पूछने लगा। "क्या हम पहुँच गये?"

कुछ देर परेशान होकर हम तीनों कार से नीचे उतर आये। और बेचैनी से इधर-उधर देखने लगे।

रात ज्यादा होती चली जा रही थी। चंद्रमा के पीले प्रकाश में रात का कोई पक्षी अपने बड़े-बड़े पर फैलाये किसी ओर उड़ता, तो हम किसी रास्ता चलनेवाले या गाड़ीवाले के धोके में उसी दिशा की ओर देखने लगते।

बहुत देर के बाद दूर से देहाती ढंग की एक गाड़ी आती हुई दिखायी दी।

जसवती ने उसे देखकर बुझी हुई आवाज में कहा। "अगर हम देर में पहुँचे तो वह सो चुकी होंगी। इसलिए इसी गाड़ी में चले चलो।"

गाड़ी सड़क के किनारे निश्चिन्तता से चली जा रही थी।

डॉ० गार ने दूर से आवाज दी। "बड़े मियाँ! 'अय्यूब मुहल्ले' में 'इश्रतखाना' नामी कोठी तक हमें पहुँचा दोगे?"

गाड़ीवाले ने हमारी ओर देखा भी नहीं और अपने देहाती ढंग से उत्तर दे दिया। "नहीं बारह बज गये--देर हो गयी है।"

यह टका सा जवाब सुनकर बहुत गुस्सा आया। किसी तरह मन को धीरज देकर मैं और जसवती उसके पास गयीं। वह हमारे बहुमूल्य सुनहली वेशभूषा और गौरवपूर्ण चेहरों को देखकर गाड़ी से नीचे उतर आया।

"यह लो--" मैंने जाते ही चाँदी का एक चमकदार सिक्का उसके हाथ में रख दिया। और बोली, "अब हमें जल्दी से 'इश्रतखाने' तक पहुँचा दो।"

वह भयभीत हो गया और शिष्ट स्वर में बोला। "सवार हो जाइए हुजूर, दो घंटों में पहुँचा दूँगा।"

गाड़ी के पायदान पर कदम रखा तो ऐसा मालूम हुआ कि गाड़ी सर पर आ रही है इसलिए फौरन मैंने उसकी छत पकड़ ली। जसवती ने उसके पहिये को मजबूती से पकड़कर गाड़ी पर कदम रखा। तात्पर्य हम तीनों चढ़कर बैठ गये।

अब गाड़ी चली जा रही थी। धीरे-धीरे जैसे किसी मरणासन्न रोगी का साँस चल रहा हो। चाँद पीला पड़ गया था। वायु में डरावनी सरसराहट पैदा हो गयी थी।

बूढ़ा डॉ० गार गाड़ी के झकोलों से चिढ़ा हुआ मालूम होता था। हम दोनों गरमी से निढाल हाथों में खस की सुनहली पंखियाँ लिये हुए थे जिनकी डंडियाँ सुगन्धित चन्दन की लकड़ी की थीं और बार-बार बेचैनी से पहलू बदल रही थीं। या खुदा वह गर्म और नीरव चाँदनी रात! साँस आग की लपटों की तरह नाक से निकलती थी। जबान सूखे पत्ते की तरह सूखी थी। जसवती रह-रहकर अपनी परी जैसी छोटी-सी चाँदी की सुराही से पानी उँडेल-उँडेलकर पी रही थी। पूर्वी देशों की यह वही गर्म रात थी जिसके सम्बन्ध में हमारे एशियाई देशों में प्रसिद्ध है कि हरी आँखवाली परियाँ भी अपनी पानी की दुनिया से बाहर निकल आती हैं।

दूर से एक सफेद शानदार इमारत दिखायी देने लगी। फिर एकाएक बूढ़ा डॉ० गार गाड़ीवाले पर, और मैं जसवती पर जा पड़ी। और इस तरह हमारी हास्यास्पद गाड़ी एक झटके के साथ 'इश्रतखाने' के शानदार फाटक में मुड़ गयी।

मैंने रोते स्वर में कहा--"ऐसी भद्दी गाड़ी में अपने मेजबान के सामने जाते हुए मैं तो जमीन में गड़ जाऊँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर बूढ़े डॉ० गार ने कहा--"मगर रूही! इसमें शर्म की क्या बात है? वह क्या समझ न जायेंगी कि मजबूरी से इस गाड़ी पर सवार होना पड़ा होगा।"

जसवती ने कहा--"ना, ना, जितनी जल्दी हो सके इसको वापस कर दो।"

चाँदनी की सफेद धारियाँ सुघड़ और संकीर्ण रविशों पर पड़ी हुई थीं। हमारी गाड़ी सदर दरवाजे पर जाकर लग गयी। हमने तुरन्त उसे वापस कर दिया।

मैंने इधर-उधर देखकर कहा--"यहाँ की दुनिया तो स्वप्न में लिपटी हुई दिखायी देती है, चौकीदार का भी पता नहीं।"

जसवती ने कहा--"कौन जाने मादाम हमरा यहाँ हैं भी या नहीं।"

डॉक्टर कहने लगा--"होंगी क्यों नहीं? उन्होंने मेरे पत्र का उत्तर दिया था कि मैं हार्दिक प्रसन्नता से आप सबके आगमन का इन्तिजार करूँगी।"

हमने दरवाजा खटखटाया। पहले सावधानी से धीरे-धीरे। फिर कुछ देर बाद जोर-जोर से, मकान की प्रदक्षिणा की। नौकरों को पुकारा। चौकीदार को आवाजें दीं। मतलब यह कि जितनी कोशिशें हो सकती थीं, कर लीं। मगर पीली चाँदनी में सफेद मरमरी महराबोंवाला आलीशान महल मौन खड़ा रहा, विस्तृत बरामदे में लम्बे-लम्बे स्तम्भों का प्रतिबिम्ब चाँदनी में तिरछा पड़ रहा था, चंबेली की बेल में झींगुर अपना गीत अकेले में अलाप रहा था।

जब निराश होकर हम लोग जीने से उतरने लगे तो एकाएक अन्दर किसी कमरे से एक ऐसी आवाज आयी जैसे किसी ने डिब्बी जलायी हो।

डॉ० गार ने चौंककर कहा--"ठहरो, मेरा ख्याल है कि कोई जाग उठा।"

हम फिर तीनों, जीने पर चढ़कर दरवाजे के पास इस उम्मीद में जाकर खड़े हुए कि अब खुलता है, तब खुलता है। अन्दर से कभी-कभी कोई हलकी-सी आवाज आ जाती थी। पाँच मिनिट इसी दशा में बीत गये। हम बन्द दरवाजे पर दृष्टि गाड़े खड़े रहे।

आखिर डॉक्टर ने परेशान होकर कहा--"यह क्या बात है?"

मैंने शीशों में से अन्दर झाँकने की कोशिश की, मगर वहाँ अँधेरे के सिवा कुछ न था।

डॉक्टर अधीर होकर चिल्लाया--"अरे भई! यहाँ कोई है भी?"

उसके चिल्लाने का यह असर हुआ कि अन्दर फिर कुछ गड़बड़ सी होने लगी। दो क्षण बाद एकाएक दरवाजा इस जोर से खुला कि हमारी तो आँखें बन्द हो गयीं। उसका खुलना था, कि बहुत जोर से हवा का एक ठंडा झोंका एकाएक हमारे गरम चेहरों से यों आकर लगा जैसे किसी ने थप्पड़ मारा हो। मेरी तो आँखें बन्द हो गयीं और साथ ही हम तीनों खड़े-खड़े काँप से गये। लेकिन दरवाजे के सामने कोई मौजूद न था।

डॉक्टर गार परेशान होकर बोला--"यह दरवाजा खोला किसने?"

अन्दर के नीरव अँधियारे में जाने की हिम्मत न होती थी। डॉक्टर ने एक कदम अन्दर रक्खा ही था कि जसवती ने उसे रोक दिया। अधीर होकर हमने फिर बागीचे की ओर जाने की सोचा। एकाएक फिर अन्दर से किसी दरवाजे के फट से खुलने की आवाज आयी और साथ ही ठंडी हवा का झोंका एक बार फिर हम तक पहुँचा। देखते ही देखते अँधेरे में एक हल्का-सा प्रकाश दिखायी देने लगा, जो क्रमशः मोमबत्ती में बदल गया। हमने दृष्टि मोमबत्ती से जरा ऊपर को उठायी तो अट्ठाईस उन्तीस साल की एक सुन्दर और लुभावनी महिला दिखायी दी जिसने अत्यन्त सादा और सफेद लम्बे-लम्बे हिलते हुए वस्त्र पहन रखे थे। मोमबत्ती उसके हाथ में थी।

डॉक्टर गार को देखकर वह मुस्कुरायी और सिर झुका लिया।

"अच्छी तो हो मादाम हमरा?--यह दोनों लड़कियाँ मेरी हैं, इन्हींका वर्णन मैंने अपने पत्र में किया था।"

मादाम हमरा ने अत्यन्त लुभावने ढंग से मेरी ओर देखकर स्वागत के तरीके पर सिर झुकाया।

फिर एक क्षण के बाद कोई बात किये बिना उन्होंने इशारे से हमें अपने पीछे बुलाया और रोशनी दिखाते हुए स्वयं सामने चलने लगीं। एक बल खाए हुए नाग के फन पर मोमबत्ती जल रही थी। हवा से उनके सफेद लम्बे-लम्बे वस्त्र उनके पीछे दूर-दूर तक लहरा रहे थे। चाल जैसी थी जैसे कोई परी हवा में तैर रही हो। काले बाल, सफेद रेशमी चादर के नीचे हवा की चंचलता से लहरा रहे थे, चेहरे पर हूरों की जैसी मुस्कुराहट थी।

उसी समय जसवती ने काना-फूसी करनी शुरू की। "रूही! यहाँ कैसी ठंडी हवा चल रही है। बाहर तो सड़कों पर लू की तकलीफदेह लपटों से हमारे चेहरे गर्म हो रहे थे।"

जसवती का वाक्य पूरा हुआ ही था कि हम एक भव्य हॉल में पहुँचे जहाँ एक काली लम्बी बेहतरीन पालिश की हुई चमकदार टेबिल पर भाँति-भाँति के फल पत्तों के आकार चाँदी की तश्तरियों में सजे हुए थे। दिल के समान नन्हीं-नन्हीं कटोरियों में शरबत रखा हुआ था। टेबिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऊपर छत में कमल के फूलों की तरह के फानूस लटके हुए थे। दरवाजों पर सुनहले परदे लगे हुए थे। दीवारों पर प्राचीन युद्ध दृश्य लटक रहे थे।

मादाम हमरा ने अपनी साँप की बनावट का शमादान टेबिल पर रख दिया और खुद सिरेवाली कुर्सी पर बैठ गयीं।

'लेकिन!' डॉक्टर गार ने कहा--"मेरी प्यारी मादाम--रात के २ बजे कौन ऐसी चीजों से आनन्दित हो सकता है? इस समय तो एक बिस्तर की आवश्यकता है। अगर मिल जाय तो बड़ी, मेहरबानी हो!"

यह सुनते ही मादाम हमरा बिना किसी प्रकार का कोई शब्द मुँह से निकाले उठकर खड़ी हो गयीं। खाने के लिए बिल्कुल आग्रह न किया। अपना वही नाग को बनावट का शमादान उठा लिया और मुस्कुराकर गर्दन के इशारे से हमें अपने पीछे-पीछे आने को कहा।

एक सुन्दर शयनकक्ष में, जहाँ मध्यम प्रकाश के नीचे सुन्दर और रंगीन रेशमी बिस्तर बिछे हुए थे, ले गयीं। यहाँ पहुँचकर सिर के इशारे से हमसे बिदा ली और चुपचाप धीरे-धीरे कदम उठाती हुई इसी तरह बाहर चली गयीं।

मैं एक बहुत ही कमजोर और शक्की दिल की औरत हूँ। मादाम हमरा की इन हरकतों ने मेरा खून सुखा दिया था। उनके कमरे से बाहर जाते ही मैंने डॉ० गार का हाथ थाम लिया, और बोली--"यह बात क्यों नहीं करतीं?"

गार बोला--"मैं खुद परेशान हूँ, न जाने क्या बात है?"

"यहाँ से भाग चलो डाक्टर" मैंने अधीर स्वर में कहा।

जसवती बोली--"उनकी कैसी मीठी सूरत है, पर यह गूँगी तो नहीं?"

डॉक्टर गार ने कहा--"नहीं बेटी! नहीं! वह बहुत बातूनी हैं।"

मैं सोचते हुए बोली--"उनके सुन्दर होते हुए भी उन्हें देखकर मुझे डर-सा मालूम होता है।"

डॉ० गार अपने कमरे में चला गया। जसवती और मैं इस भेद को सुलझाने का प्रयत्न करती हुई कोई तीन बजे के लगभग अपनी-अपनी चारपाइयों पर लेट गयीं।

सुबह की प्रार्थना के समय स्वभाव के अनुसार मेरी आँख खुल गयी। कार्यक्रम के अनुसार आठ बजे हमें समरू के खण्डहरों की ओर रवाना हो जाना था। इसलिए मैंने जसवती को भी जगा दिया। हम दोनों ने प्रार्थना की। सुबह गरम और सुहावनी थी। दुआ के बाद सामने चंबेली की बेलों में बैठकर बहुत देर तक चाय का इन्तिजार किया।

मगर जब मैं निराश हो गयी तो डॉक्टर गार के कमरे में गयी और बोली।--"डॉक्टर! अभी तक सो रहे हो?"

वह बोले--"चाय के इन्तिजार में पड़ा हूँ रूही! चाय आ जाय तो उठूँ। जरा वह सुँघनी को डिबिया पकड़ा देना। धन्यवाद।"

नौ बज गये और तब भी जब किसी ने खबर न ली, तो मैंने कहा--"चलिए डॉक्टर जरा बाहर निकलकर देखें। चाय या कोई सेविका क्यों नहीं आती?"

डॉक्टर गार ने जल्दी-जल्दी कपड़े पहन लिये। हम तीनों विस्तृत बरामदे से गुजरकर बड़े हाल में आये। सब दरवाजे बन्द थे चारों ओर सन्नाटा और नीरवता छायी हुई थी। बहुमूल्य फरनिचर पर गर्द जमी थी। ऐसा महसूस होता था कि कोठी कई रोज से बन्द पड़ी है। हमने डरते-डरते खँखारकर, आहट करके, एक-एक कमरे को खोला। लेकिन हर कमरा खाली था। हर कमरे की वस्तुओं की यह हालत थी जैसे बरता नहीं जाता। बंद करके रख दिया गया है।

सारी कोठी देख डाली। उसमें कहीं कोई प्राणी न था। हमारे दिलों पर भय एक बोझ को तरह बैठने लगा। परेशान होकर बाहर बगीचे में निकल आये। समझ में न आता था कि यह रातों रात क्या हो गया--? नौकर किधर हैं? मादाम हमरा कहाँ गायब हो गयीं?

दस बजने आ गये। हम परेशानी की दशा में इस नीरव घर के जीने पर खड़े सोच रहे थे कि क्या करें? इतने में देखा कि एक बूढ़ा नौकर बागीचे से होकर अन्दर आया और चुपचाप एक कमरे में चला गया। फिर उसने फर्नीचर निकालकर बाहर रखना शुरू कर दिया। साथ-साथ वह रोता भी जा रहा था।

हम लोग जल्दी से उसकी ओर गये। वह हमें देखकर ठिठक गया और फिर परेशान होकर हमारा मुँह ताकने लगा।

डॉक्टर गार ने पूछा--"मादाम हमरा कहाँ हैं?"

बूढ़ा चकित होकर दीवाने की तरह डॉक्टर का मुँह तकने लगा।

डॉक्टर गार ने फिर कहा--"हम उनके मेहमान हैं, मादाम हमरा कहाँ गयीं?"

बूढ़े ने परेशान होकर कहा--"मादाम हमरा?--आह हुजूर! बेगम साहेबा को तो साँप ने डस लिया। उनका देहान्त हुए आज पूरे दस दिन हो गये। आज घर का सामान नीलाम होनेवाला है।

यह सुनते ही मेरे शरीर में कँपकँपी आ गयी। रात का वह भेद भरा ठंडी हवा का झोंका, फिर एक दफा मुझे निकट ही मालूम होने लगा और मैं थर-थर काँपने लगी। इसके बाद मुझे कुछ याद नहीं, कि आगे क्या हुआ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना

श्री मनमोहन गुप्त

अंधे के हाथ बटेर

ब्राह्मणों का सम्मान हिन्दुओं में सदैव ही रहा है। इसका कोई एक कारण यदि दर्शाने की चेष्टा की जाय तो असम्भव है। कारण कुछ भी रहा हो, आज भी ब्राह्मण वंश में पैदा होना ही आदर पाने के लिए सामान्यतः पर्याप्त समझा जाता है। अब भी जन्मजात यदि कोई ब्राह्मण है तो लोग उसे "पंडित" कह कर सम्बोधित करते हैं, चाहे 'पांडित्य' से, उसका कोई सम्बन्ध न हो। भले ही वह गारा और ईंटा ढोता हो या रसोई पकाकर पेट पालता हो। इसीसे समझा जा सकता है कि किसी युग में ब्राह्मणों की हमारे समाज में कितनी प्रतिष्ठा रही होगी।

फिर ब्राह्मणों में यदि कुलीन हुआ तो क्या पूछना! कुलीन का अर्थ उच्च कुल में जन्मा। कुलीन ब्राह्मण की ब्राह्मणों में भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कुलीन ब्राह्मण को बेटी देकर उससे संबंध स्थापित करके साधारण ब्राह्मण अपने को धन्य समझते थे। और एक कुलीन ब्राह्मण अनेक ब्राह्मणों को उपकृत करने के लिए कई ब्राह्मणों की कन्याओं से विवाह कर लिया करता था, और विवाह के बाद यदि वे धनी न हुईं तो उन्हें पितृगृह में ही रहना पड़ता था। अतएव इस 'कुलीन बहुविवाह' प्रथा का रूप जैसा बीभत्स था वैसा ही कारुण्यमय। अमुक "कुलीन ब्राह्मण से मेरी बेटी का विवाह हुआ है"; बस इतना कहने में ही लोग फूले न समाते थे।

मूल में इस प्रवृत्ति का संबंध सामाजिक सम्मान प्राप्त करने से है। आज भी लोग, उच्च कुल के लड़के को दामाद बनाने में अथवा उस घर की बेटी को बहू बनाने में अपना गौरव समझते हैं। आज भी अनेक व्यक्ति शासनारूढ़ लोगों के घरों में बेटी या बेटे का विवाह करने को लालायित रहते हैं।

ऐसे ही एक कुलीन ब्राह्मण परिवार को मैं जानता था। अपने घर के साथ के मकान में वे रहते थे। उनकी सात कन्याएँ थीं। पंडितजी खूब गोरे थे और पंडिताइन जी उनसे भी गोरी थीं। फलतः लड़कियों का क्या पूछना!

लड़कियाँ मेम की-सी लगती थीं। सुनहले बाल, भूरी-भूरी आँखें, छरहरा बदन, सारा शरीर मानों साँचे में ढला।

सो, सात की सातों बहनें सौंदर्य की खान थीं।

वारांगनाओं के लिए सौन्दर्य का मूल्य हमारे समाज में था, और अब भी है; किन्तु गरीब ब्राह्मण की चरित्रवान् बेटी का क्या मूल्य? अब तो सौंदर्य के साथ-साथ शिक्षा का भी प्रायः कोई मूल्य नहीं रह गया। सुन्दरी हो, साथ में शिक्षिता भी हो तो भी क्या दूल्हा के बाप पालकी लेकर दौड़ेंगे? दौड़ेगा तो मुहल्ले-टोले का कोई चरित्रहीन छोकरा या दफ्तर का बड़ा साहब। यानी जिनके कन्धे पर लड़की जनम भर के लिए सवार न होगी, अथवा लड़की के किये-कराये की जिम्मेदारी जिसके ऊपर न होगी।

हाँ, कोई-कोई मजनू बनकर कुमार अवस्था में किसी कुमारी की ओर हिम्मत करके लपक भी सकता है। किन्तु इस प्रकार से भूतकाल में लपके हुओं की हालत देखकर "क्षणिक आवेश में भविष्य को अन्धकार बनाने" वाले रास्ते पर अब सहज ही कोई लपकता नहीं। न रहेगी सदा जवानी, और न रहेंगे कोरे रुपये। शादी होने पर बच्चे होंगे ही, रुपया है तो रेजगारी बनेगी ही। उन रेजगारियों को तो लोग नकली मानेंगे ही। असली टकसाल की रेजगारी तो वे ही माने जाते हैं जिनपर समाज ने मुहर लगा दी हो। और समाज कभी ऐसे प्रणय पर (चाहे बाद में उस पर सिविल मैरिज की मुहर लग भी गयी हो) अपनी मुहर नहीं लगाता। एक उपाय है अवश्य, किन्तु उसे अभी कितनों ने अपनाया? सरकारें परिवार-नियोजन पर खूब जोर लगाती हैं। शायद उसमें कुछ तथ्य भी है। पर सद्य विवाहितों को उसे अपनाने का होश कहाँ? "यह परिवार नियोजन की बात भी आपने खूब कही साहब! महीनों तक चक्कर काट-काट कर, कई जोड़े जूते और चप्पलों को घिस-घिसाकर; मौका पड़ा तो उनके वारों को भी हँसते-हँसते सहकर, किसी तरह कचहरी की डयोढ़ी नाँघी, और साथ ही परिवार नियोजन के दफ्तर में हत्या देकर पड़ूँ? 'रोमान्स' को इतना घोर गद्य बनाकर आप तो उसके प्राण ही निकाल लेना चाहते हैं! नववधू के लिए किसी सौगात की दूकान में न जाकर जा पहुचूँ किसी क्लिनिक में या दवाओं की दूकान में? और माँगने लगूँ परिवार-नियोजन के उपकरण या दवाइयाँ? बड़े मियाँ! आपकी अक्ल चरने तो नहीं चली गयी!"

फलतः रेजगारी भुनेंगी ही। फिर रेजगारियों के पीछे—भूल गये रागरंग, भुला गयी चौकड़ी—याद रही तीन चीज—नून, तेल, लकड़ी!

आगे चलकर वे रेजगारी आपको बेरोजगारी में डालें या न डालें, जानमारी में तो डाल ही देंगे। अर्थात् उन बच्चों को समाज में जारज कहकर माना जायगा। भले ही नौकर रखनेवालों के दरवाजे उनके लिए बन्द न हों, किन्तु दूल्हा-दुलहिन बनानेवालों के दरवाजे तो बन्द ही मिलेंगे। समाज की तनिक भी परवाह करनेवाले लोग किसी भी मूल्य पर उन्हें स्वीकार करने को तैयार न होंगे। हाँ, यदि कुमारी हुई और साथ-साथ पढ़ी-लिखी भी हुई तो, दफ्तर के बड़े बाबू से लेकर सर्व निम्न बाबू नीरस दफ्तर के जीवन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर बनाने के लिए अवश्य आँखों की पंखुड़ी बिछाये खड़े रहेंगे।

इन सब बातों को देखते-देखते अब मजनू लोग भी चतुर हो गये हैं। सभा-सोसायटी में खूब जातिप्रथा के विषय में विष वमन कर आयेंगे परन्तु इधर के घोड़े की रास ठीक रखेंगे। कारण वे अब तक की घटनाओं से खूब मँज गये हैं। हाँ, और एक स्थान में गुप्तरूप से (Privately) लम्बी-लम्बी हाँकेंगे। एवं वह जगह होगी एकान्त में कुमारी लड़कियों के सामने। यह हाँकना भी एक हथकण्डा है, कुमारी जी को फँसाने का।

कहीं आवेशवश किसी कुमारी ने आत्मसमर्पण कर दिया तो फिर ये आदर्श बघारनेवाले धीरे-धीरे हाथ खींचना आरम्भ कर देंगे।

फिर तो कुमारीजी को एक पाश्चात्य माँ-बेटी की कहानी याद आयेगी जो इस प्रकार है :

किसी बेटी ने अपनी माँ से जाकर कहा--"अम्मा, अम्मा, वह × × मुझसे बराबर वादा करता है कि बस अगले महीने में मैं तुमसे विवाह करूँगा। मगर जब अगला महीना आता है तो फिर कहता है कि इस महीने में नहीं, अगले महीने में। ऐसे ही न मालूम कितने महीने टाल दिये।

सुनकर माँ ने कहा--इसमें घबड़ाने की क्या बात है बेटी। वह या तो निश्चित रूप से तुझसे विवाह करेगा, अथवा कभी भी नहीं करेगा।

माँ को दोनों बातें जोर देकर कहते सुनकर बेटी ने कहा--दोनों में एक ही तो सच होगी?

पीठ पर हाथ फेरती हुई माँ ने कहा--"यदि तेरा उसका सम्बन्ध शादी होने से पहले जैसा अभी भी है, तथा शादी से पूर्व तक रहेगा तो यह शादी होकर ही रहेगी। किन्तु यदि शादी के बाद का सा सम्बन्ध अभी से हो चुका है तो यह शादी कभी भी न होगी। यह तो तू ही जान सकती है..... मैं क्या जानूं कि तू कहाँ तक पहुँची।

× × ×

हाँ, तो कह रहा था कि आज से वर्षों पूर्व कुलीन लोगों को साधारण लोग बहुत ऊँचे समझते थे। कुलीन कन्याओं की "कुमारी पूजन" हुआ करता था एवं विवाहिताओं की "सधवा पूजन" भी हुआ करता था। लोग मन्नत मान कर कहते थे कि अमुक कार्य सिद्ध हुआ तो दस या बीस कुमारियों का पूजन करेंगे या इतनी सुहागिनों का पूजन करेंगे। कार्य सिद्ध होने पर सचमुच किसी देवी जैसा उनका पूजन हुआ करता था। इनमें भी कुलीन वंश की कुमारियों या सुहागिनों को वरिष्ठता दी जाती थी।

पूजा में कुलीन कन्याओं को पूजनेवालों के घर की औरतें खूब अच्छी तरह नहलाती थीं, अपनी स्थिति के अनुसार नये-नये वस्त्र तथा गहनों से उन्हें सजाती थीं, पैरों में मेंहदी या रंग लगाती थीं, फिर पीढ़ों पर बैठाकर उनकी पूजा की जाती, आरती उतारी जाती और भोजन कराया जाता।

कुलीन वंशवाले इतने ऊँचे माने जाते थे। भला इनके घर में कौन-सा व्यक्ति अपनी बेटी देकर अपने को धन्य न मानेगा? फिर उस युग की बात कर रहा हूँ जिस युग के वर्षों बाद भी मेरे जैसे अविश्वासी युवक ने भी महात्मा गांधी के चरणों को स्पर्श करके यही माना था कि भवसागर तर गया। जिसे अन्धभक्ति (blind faith) का युग कहा जा सकता है, ऐसा युग था वह।

उसी युग में वह कुलीन परिवार मेरे घर के बगल में रहता था एवं मेरे साथ उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। बचपन से ही बातूनी और मिलनसार होने के कारण यह सम्बन्ध धीरे-धीरे आत्मीयता में परिणत हो गया था। यानी उनके घर की प्रत्येक बात को मैं जान जाता था तथा वे मुझसे कोई बात छिपाते भी न थे। न छिपाने का एक कारण और भी था। वह यह कि छोटी अवस्था से ही मैं बातों को हजम करना खूब जानता था। कभी गलती से भी किसी एक की बात दूसरे को जानने न देता था। यहाँ तक कि उन सातों बहनों में से भी कोई दूसरी की बात मेरे जरिये नहीं जान सकती थीं।

और भी एक महान् 'गुण' मुझमें बड़े भयंकर रूप से कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह है काली झूठी बात को बिल्कुल सफेद सत्य बनाकर साडम्बर वर्णन करने की क्षमता। फलतः सभी बहनें मुझसे गुप्त से गुप्त कार्य कराने में भी न हिचकती थीं। जानती थीं कि इससे उनका कभी कोई नुकसान नहीं हो सकता है। साथ-साथ मुहल्ले में मेरे सत्य की इतनी धाक थी कि मेरे दिये हुए समाचारों को सब लोग सत्य मानते थे। अवश्य ही उसके कई कारण थे। उनमें यह भी एक था कि मैं कभी बेकार झूठ न बोलता था। जिस झूठ से किसी का कोई खास मतलब सिद्ध होता हुआ देखता, केवल उस झूठ को ही सत्य में परिणत करता था।

उस परिवार से मेरी घनिष्ठता होने से पूर्व ही उन सातों के विवाह भी हो चुके थे, और सबकी सब जवान भी हो चुकी थीं। सबसे छोटी की अवस्था भी कम से कम चौदह की थी जब कि मैं केवल नौ या दस वर्ष का था। फलतः सबके नाम के साथ जीजी जोड़कर ही मैं उन्हें पुकारता था।

सबसे बड़ी जो थी वह सब बहिनों की भी तथा मेरी भी बड़ी जीजी थी। न मालूम किस युग में इनको शादी हुई थी तथा न जाने कौन इनका दूल्हा था। वह स्वयं भी स्मरण नहीं कर पाती थीं कि उनका विवाह कब हुआ था। जब से होश सम्भाला था तब से चूड़ी पहनतीं और सिन्दूर भी लगातीं तथा चौड़ी किनारी की धोती पहनती आयी थीं। केवल इसीसे वह स्वयं तथा मैं भी जानता था कि उनकी शादी हो गयी है।

× × ×

एक दिन मैं कोई चित्र बनाने में अत्यन्त व्यस्त था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र का अर्थ कोई यह न समझे कि राजा रवि वर्म्मा या अवनीन्द्रनाथ की कोटि का कोई चित्र। वह भी विद्वेशवश बना रहा था। किसी प्रकार से दीवार पर, किसी मासिक पत्र के फटे हुए पन्ने से किसी गदहे की तस्वीर देखकर, ठीक-ठीक वैसा ही उतारने में संलग्न था। केवल उसमें परिवर्तन इतना करना था कि उसकी पूँछ न दिखायी पड़े एवं कान भी ढंग के हों। उस समय जिस साथी से अप्रसन्न था उसको गर्दभ अवतार में अंकित करना चाहता था।

चित्र प्रायः बन चुका था। अब अन्तिम रेखाओं को बनाने में व्यस्त था। उलट-पुलट कर तथा घूम-फिर कर राजा रविवर्म्मा अथवा श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर से कम ठाठ से उसे नहीं देख रहा था। हाँ, वे होते तो किसी चित्र-शाला में होते, और मैं बैठा था टट्टी के दरवाजे के सामने-वाली सीढ़ी के नीचे। मेरे हाथ में कूँची के बदले काला लकड़ी का कोयला था। पैखाने में जाते-जाते अचानक एक मासिकपत्र का फटा हुआ पन्ना पड़ा हुआ दिखायी पड़ा, बस, मेरे मन में व्याकुलता आ गयी कि उसे दीवार पर उतार दूं। अपनी ओर से विशेषता इतना ही जोड़ देना चाहता था कि उसकी पूंछ लँगोट की तरह उसके काम आवे, कान छोटे-छोटे ढंग के हो जायँ तथा वह चार पैरों की जगह दो पैर से खड़े होकर दोनों अगले पैरों को हाथ की तरह लटका लेवे।

टट्टी जाते समय मजाल है जो दादी के जमाने में कोई बिना कपड़ा उतारे और बिना गमछा पहने जाय! इसी से मैं भी नंगे बदन और गमछा पहने हुए था। चित्र बनाते-बनाते इतना व्यस्त हो गया था कि बार-बार लुढ़कनेवाले गमछे को कहाँ तक सम्हालता? फिर गलतियों को सुधारने में भी गमछा ही तो काम देता था।

फलतः जब बड़ी जीजी की चिकोटी से मेरी तन्मयता भंग हुई उस समय मैं एकदम बाबा उलंगानन्द के चचा के रूप में कुछ खड़ा-खड़ा कुछ बैठा-बैठा सा था। झट लपककर गमछे को उठा लिया, एवं उसे जैसे-तैसे लपेट लिया।

देखकर बड़ी जीजी ने टिप्पणी की--इस समय तू बिल्कुल वैसा ही लग रहा है जैसा तूने यह चित्र बनाया है।

अन्य कोई चित्रकार होता तो वह अपनी कूँची चूम लेता, अपनी सार्थकता पर, किन्तु मैं गुर्रा उठा--"जाओ, जाओ, ठीक न होगा। मैं इधर....यानी.....मेरा गमछा खुल गया था....देखकर भी तुम बिना आवाज, लगाये क्यों....इधर आयी.....? हें.....ठीक .....न होगा.....असभ्य कहीं की.....! ... अपने समय तो चिढ़चिढ़ा उठती है.....और मैं नंगा हो गया तो आवाज देकर....."

आगे कुछ कहने से पूर्व ही बड़ी जीजी मुस्कुराती हुई बोलीं--"तू और मैं बराबर? कहाँ जा रहा था? टट्टी से निपट आया या जायेगा? मेरे साथ चलना है।"

जैसे किसी ने जलते कोयले पर एक बालटी पानी डाल दिया हो। गुस्सा तो ठंडा पड़ ही गया, टट्टी जाने की इच्छा या प्रयोजन भी जाता रहा। मैंने कहा--अभी आता हूँ।

बड़ी जीजी ने धीरे से कहा--"बहुत जल्दी नहीं है। किसीको पता न चले। तू निपट-निपटा कर और सुस्ता कर कपड़ा पहनकर चुपचाप आ जाना। घर के अन्दर न आना। गली में खड़े रहना। मैं तब तक तैयार हो रही हूँ। हाँ, कोई जान न पावे कि हम लोग कहीं जाने-वाले हैं।"

मेरे लिए इतनी ताकीद काफी थी। छत के रास्ते से जैसे सीढ़ी उतर कर बड़ी जीजी आयी थीं, वैसे ही चली भी गयीं। उधर के कमरों में मेरे घर का कोई भी जान न पाया। फिर जानता भी कौन! आँखों से कम देखने-वाली ऊँची आवाज बिना न सुन पावें, ऐसी दादी ही तो थीं एकमात्र घर में उस समय।

मैं भी बड़ी जीजी की ताकीद के अनुसार यथासमय तैयार होकर यथास्थान पहुँच गया। बड़ी जीजी के कमरे की गली की ओर का जँगला जरा सा खुला और फिर बन्द हो गया। थोड़ी ही देर में बड़ी जीजी निकल आयीं। जिस प्रकार से कोई किसीको भगा ले जावे इस प्रकार से बड़ी जीजी ने मेरा हाथ पकड़कर दौड़ाया। हम दोनों ने गली पार करके दूसरी गली में पैर रक्खा ही था कि सामने से एक बहुत बड़े आदमी का लड़का आता हुआ दिखायी पड़ा। हम दोनों को देखते ही वह पीछे मुड़ गया।

उसे मैं पहिचानता था। मैंने धीरे से कहा--"चन्द्रिकाप्रसादजी....."

आगे कुछ कहने से पहिले ही बड़ी जीजी मेरे कन्धों को दबाती हुई बोलीं.....चुप!

मैंने समझा कि बड़ी जीजी उसे भी मालूम होने नहीं देना चाहती हैं। इसीसे गली का एक मोड़ आते ही मैंने कहा--"इधरवाली गली से निकल चलो। वह उधरवाली से जा रहा है।"

फिर बड़ी जीजी ने मेरे कंधों को दबाया, एवं और आहिस्ते से कहा--चुपचाप चलाचल।

कई मोड़ आये। कई गलियाँ निकल गयीं; किन्तु हम लोग उसी चंद्रिकाप्रसाद के पीछे-पीछे चलते गये।

अंत में एक मकान के सामने आकर चन्द्रिकाप्रसादजी रुक गये। उस घर का दरवाजा भिड़ा हुआ था। इधर, यानी हम लोगों की ओर, एक बार ताक कर वे अन्दर चले गये। खुले दरवाजे के सामने आकर बड़ी जीजी जरा सी रुक गयीं। इधर-उधर एक निगाह फेंककर झट मेरा हाथ पकड़ कर अन्दर घुस गयीं। हम दोनों के प्रवेश करते ही चन्द्रिकाप्रसाद ने आगे बढ़कर दरवाजे को अन्दर से बन्द कर लिया। कुछ सन्देह की निगाह से मेरी ओर देखा। मैंने सिर नीचा कर लिया। प्रश्नसूचक दृष्टि से बड़ी जीजी की ओर देखा। बड़ी जीजी ने मुझसे कहा--"तो तू अकेले यहाँ नीचे के कमरे में बैठा-बैठा क्या करेगा? जरा घाट की ओर से घूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ। तब तक मैं इनकी रसोई बना लूँगी। वापसी में मुझे बुला लेना।"

आगे की बात को काटते हुए चन्द्रिकाप्रसाद बोले--"बुलाने की जरूरत नहीं। दरवाजा केवल भिड़ा हुआ रहेगा। बस धक्का देते ही खुल जायगा तुम अन्दर आ जाना। हम लोग यहीं मिलेंगे।"

मैं जानता था कि चन्द्रिकाप्रसादजी बहुत बड़े रईस के लड़के थे। उन्हें कभी अरबी घोड़े पर, कभी दो घोड़ों की टमटम पर हवाखोरी करने जाते हुए उन्हें बहुधा देखता था। मौके-बे-मौके उनके घर के साथ लगे हुए उनके विशाल बगीचे की दीवार फाँदकर, नौकरों की आँखें बचाकर, कभी-कभी बनारसी लँगड़ा या बड़े-बड़े इलाहाबादी अमरूद चुरा लाता था। उनके ठाठ-बाट के सामने हम लोग अकिंचन थे। यह बात अवश्य थी कि उनका छोटा भाई टमटम पर चढ़कर पढ़ने आता था किन्तु पैदल ही मील भर चलकर पढ़ने जानेवाला मैं उससे आगे की पंक्ति में बैठकर पढ़ता था। कभी-कभी मास्टर साहब के पूछे हुए जिस प्रश्न का वह उत्तर न दे पाता था, मैं चटपट दे देता था। केवल इसी बात पर भले ही उनके से रईसों के लड़के मुझसे इर्षा करें, शेष बातों में तो मैं उनके सामने सड़क की धूल के बराबर था। एक ओर क्षेत्र में मैं उनसे आगे था। दौड़-धूप, खेलकूद, मारपीट में तो मैं बड़ों-बड़ों को मात दे देता था।

एक बार चन्द्रिकाप्रसादजी के बगीचे में चोरी से नीबू तोड़ने के इरादे से फाटक में होकर चुपके से घुस गया। नीबू के पेड़ बिल्कुल कोठी के सामने के हिस्से में लगे थे। मैं नीबू तोड़ रहा था कि बँधे हुए बड़े कुत्ते ने देख लिया होगा या आहट पा गया होगा। उसका भौंकना था कि "पकड़ो पकड़ो!" कहकर कई नौकर एक साथ दौड़ पड़े। मैं बाहर की ओर भगा। नीबू की झाड़ी के बाहर निकलकर फाटक की ओर सर पर पैर रखकर भागा। मगर आठ-नौ वर्ष का लड़का, भला उन दैत्यों की तरह के नौकरों से कहाँ पार पाता? फाटक से बाहर आया ही था कि देखा एक नौकर बहुत पास आ गया है। जेब में नीबू भरे थे। उपस्थित बुद्धि से काम लिया। अर्थात् जेब से एक नीबू निकाल कर नौकर की आँख पर निशाना बैठाया। लक्ष्य बिल्कुल ठीक था। फलतः उसके आँखों पर हाथ रखते ही, मैंने सड़क पर से, सड़क कूटनेवाली गिट्टी उठा ली। घुमाकर एक पत्थर वाली गिट्टी मारने ही वाला था कि पीछे से चन्द्रिकाप्रसाद के छोटे भाई ने मेरा हाथ पकड़ लिया। वह कहीं उधर से आ रहा था। उसने मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं, उल्टे नौकरों से डाँट कर कहा--"का है? ई तो हमरे साथ पढ़त हैं। नीबू लैहलन तो का भयल!"

× × ×

बड़ी जीजी की बातों में अविश्वास करने का कोई कारण न था। ये कुलीन ब्राह्मणों के घर की औरतें कुछ सधवा-पुजाई और कुछ रसोई बनाकर अपना-अपना खर्च स्वयं ही चलाती थीं। पिता या पति के होटलों की सदस्या तो ये नाममात्र की होती थीं। सातों जीजिओं की माँ भी दूसरों के घर रसोई बनाकर गृहस्थी का प्रतिपालन करती थीं।

सच पूछिये तो इन लोगों की आर्थिक व्यवस्था में और कहार तथा मेहतरों की गृहस्थी की आर्थिक व्यवस्था में कोई अन्तर न था। पति जो कुछ कमावे उसे नशापानी तथा अपने कपड़े-लत्तों से बचाकर यदि थोड़ा बहुत घर में देवे तो भी वाह-वाह; और न देवे तो भी वाह-वाह। बच्चों के खर्च से लेकर गृहस्थी का सारा खर्च औरतें ही अपनी कमाई से चलाती थीं।

बड़ी जीजी की माँ भी अब तक दो एक घरों में रसोई बनाती थीं। इसीसे बड़ी जीजी ने जब कहा कि इनके घर में रसोई बनाने आयी हूँ तो मुझे जरा भी अविश्वास या सन्देह न हुआ। फिर उस उम्र में सन्देह करता भी तो किस प्रकार का?

फिर भी एक समस्या मेरे सामने समाधान हेतु उठ खड़ी हुई। वह यह कि यह बाबू चन्द्रिकाप्रसादजी रईस इस मकान में कैसे आये? क्या इनकी कोठी छूट गयी या ये गरीब हो गये जो सड़क पर वाली बड़ी कोठी छोड़कर इस गलीवाले मकान में उठ आये? गलीवाले मकान तो हम जैसे गरीब परिवारों के लिए ही होते हैं, ऐसी ही मेरी धारणा थी। इसका अर्थ यह नहीं था कि अपने शहर के किसी रईस को मैंने गलीवाले मकानों में रहते न देखा हो। देखे अनेक थे; किन्तु वे मकान ऐसे नहीं होते थे। उनके ठाठबाट और शान-शौकत कुछ और ही ढंग की होती थी। घरों के सामने ऊँचे ऊँचे-चबूतरे होते थे, या थोड़ी-सी जगह छूटी हुई होती थी। उन जगहों में अंगूर या मालती की बेलें लगी होतीं। चार-छः मखमली कपड़ों से ढके हुए पिंजड़े होते थे जिनमें चिड़ियों के जोड़े होते थे। मकान के सामने शाम को केवड़ा या गुलाब जलों को पानी में मिलाकर छिड़काव होता था। बनारसी रईस, उस जमाने के ऐसे-वैसे थोड़े ही होते थे! उनमें अपने ढंग की रईसी होती थी। हाँ, एक बात अवश्य थी। वह यह कि और चाहे जो भी हो, चाहे जितने ठाठ-बाट हों, मगर घर में वे प्रायः नंगे बदन और गमछा पहने हुए दिखाई पड़ते थे। जाड़े में कीमती कपड़े की फतुही पहने होते थे। फिर भी पहिनावा गमछे का ही होता था, चाहे वह गमछा मरसराईज या सिल्क का ही हो। इधर गमछा पहने हैं, मगर उधर गले में सोने की जंजीर, उँगलियों में कीमती नग-जड़ी अँगूठी तथा बाँहों पर कीमती नग जड़ी ताबीज, मुँह में मघई पान रहता जिसमें कश्तूरी, मोती भस्म आदि की-सी अनेक प्रकार की चीजें होतीं। साथ-साथ पीक को भी बड़ी देर तक मुँह में रोके रहते थे। किसी से बात करें तो खुशबू के साथ आवाज ऐसी निकालें जैसे कि गुड़गुड़ी भरकर कोई पीता हो। सामनेवाला हमेशा इस बात से चौकन्ना रहता था कि कहीं रईस महोदय के मुँह से हँसी के फव्वारे के साथ-साथ पान की पीक का भी फव्वारा आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न गिरे। शाम को भंग के नशे का भी संमिश्रण लच्छेदार बातों में होना कोई बड़ी बात न थी। पान, भंग, अच्छा गमछा, सोने की जंजीर, नगवाली अँगूठी तथा नग जड़ी ताबीज के साथ-साथ यदि मखमली ढक्कन वाले पिंजड़े दिखाई पड़ते तो हम समझते थे कि बनारसी रईस है।

उसके स्थान पर गलीवाले साधारण मकान में अति साधारण भाव से रईस बाबू चन्द्रिकाप्रसाद को देखकर मेरे मन में सन्देह होना कि ये गरीब हो गये, कोई बड़ी बात न थी। उसी उधेड़-बुन में गंगाजी के किनारे पहुँचा। बड़ी देर तक एक जगह गंगाजी में पैर डुबो कर बैठा रहा। घूम-फिर कर मन में चन्द्रिका बाबू की बगीचे वाली कोठी और गलीवाला मकान के चित्र आते रहे। मन में बड़ी दया आ रही थी। आह! बेचारे कैसे उस गलीवाले मकान में रहेंगे? क्या उन्हें गलीवाले मकानों की उमस तथा सामने की बन्द नालियों की बदबू कष्ट न देगी?

और उनका बेचारा भाई! तो क्या अब वह भी मेरे जैसों की तरह पैदल चलकर स्कूल आवेगा? उसके नौकर जो दोपहर को चाँदी की डिबिया में मिठाई आदि नाश्ते के लिए लाते थे, क्या अब वे नाश्ता न लाया करेंगे? क्या उसकी अम्मा भी, मेरी दादी की तरह, दोपहर का नाश्ता दो मुट्ठी भींगा चना और जरा-सा नमक बाँध कर देगी? क्या उसके पैर के जूते भी अब सुंदरता की जगह मजबूती की ओर ध्यान देकर खरीदे जाएँगे? आह! बेचारा, अगर जूते ने काटा तो एक हाथ में जूता और दूसरे हाथ में किताब आदि लेकर कैसे चलते-चलते स्कूल तक पहुँचेगा? अब क्या उसके बाबू भी सुबह के निकले शाम तक घर लौटेंगे? अच्छा वह बड़ा कुत्ता, जिसने मेरी नीबू की चोरी की बात खोल दी थी, उसे किसने पाल लिया होगा? वे साले, हरामजादे नौकर क्या अब भी उसी कोठी में नौकर हैं, या चले गये होंगे? अच्छा हुआ होगा यदि वे चले गये हों। तब तो यदा-कदा, उन बगीचों के आम, नीबू का, और मौका लगा तो कटहल का भी स्वाद मिलेगा।

बस यहीं आकर हृदय में सन्तोष होता। भले ही चन्द्रिकाप्रसाद गरीब हो गये, मगर उन दैत्य समान नौकरों से तो बगीचे का पिंड छूटा। मन करता था कि जल्दी-जल्दी, अभी-अभी जाकर बगीचे की सुरक्षा के सम्बन्ध में जान आऊँ। फिर बड़ी जीजी की बात याद आयी। अब तक तरकारी और दाल बना चुकी होंगी। अब तो तवे पर रोटी सेंक रही होंगी। बस, थोड़ी देर में चलकर उन्हें पहुँचा दूंगा और फिर बाद में उधर चलूंगा।

इसी प्रकार के नाना प्रश्नोत्तर के बाद जब और कुछ समय काट लिया तो उठा। नाना प्रकार के प्रश्नों को सुलझाते हुए उसी मकान के सामने पहुँचा। जैसा बताया गया था कि दरवाजा ढकेलते ही खुल जायगा उसकी जगह देखा कि दरवाजा खुला ही है और सामने बड़ी जीजी खड़ी हैं। मुझ देखते ही वह निकल आयीं। मेरे मुँह से किसी प्रश्न के निकलने से पहले ही हम लोग उस मकान को छोड़ कर कई मकान आगे पहुँच चुके थे। बड़ी जीजी ने कहा—तूने बड़ी देर कर दी?

प्रश्न के उत्तर के बदले मैंने प्रश्न किया—अच्छा ये चन्द्रिकाप्रसाद बाबू क्या बहुत गरीब हो गये हैं?

बड़ी जीजी ने भी परिप्रश्न किया—क्यों गरीब क्यों होंगे? तूने यह क्यों पूछा?

कुछ सहम कर मैंने कहा—यों ही मैंने पूछा तुमसे। अब गलीवाले मकान में आ गये हैं न?

बड़ी जीजी बातों को अधिक बढ़ाना नहीं चाहती थीं, कारण उन्हें मुझे और कई बातें बतानी थीं। घर कोई दूर तो था नहीं। वे बातें घर के पास तक पहुँचने से पूर्व ही बतानी थीं। झट उन्होंने कहा—देख, मैंने आज तक कहीं रसोई बनाने की नौकरी नहीं की क्योंकि मेरे ससुराल वाले ऐसा नहीं चाहते हैं।

बीच में ही मैं पूछ बैठा—अच्छा, बड़ी जीजी... अब तुम्हारे ससुरालवाले क्या तुम्हारी खबर लेने लगे?

रोकती हुई बड़ी जीजी ने जरा डपट कर कहा—तुझमें बात से बात निकालने की आदत पड़ गयी है। मैं जो कहती हूँ उसे सुन तो ले। बस एक ही बात पहले समझ ले फिर बात चलाना। मैं कह रही थी कि कानोकान किसी को खबर न हो कि मैंने रोटी पकाने की नौकरी कर ली है। समझा न? यहाँ तक कि अपने घर में भी न कहना। दिन भर में एक ही बार खाना पकाना है। सो तेरे सुभीते को देखकर मैंने शाम का ही समय ठीक रक्खा। चुपके से आवेगा और चुपके से ही चला जायगा। किसी के पूछने पर कह देना कि गंगा किनारे बड़ी जीजी को लेकर घुमा लाता हूँ।

कहते-कहते मेरी पीठ को जरा थपथपाती हुई बोलीं—इस बात में तो तू पारंगत है। मगर कभी किसी से भूल कर भी मेरे रसोई बनाने के लिए जानेवाली बात न कहना। किसी को पता चलेगा तो बड़ी बदनामी होगी।

बीच में ही मैं बोल पड़ा—बदनामी की क्या बात है? क्या तुम्हारी अम्मा की बदनामी है? पड़ोस के लोग तो और तारीफ करते हैं। कहते हैं कि वह औरत नहीं मरद है जो सारा घर का खर्च अकेले ही चलाती है।

सिर पर एक हलकी सी चपत लगाती हुई बड़ी जीजी ने कहा—तू तो बस लम्बी-लम्बी बातें ही जानता है। मैंने कह दिया कि किसी से कहना नहीं। न कहेगा? तार्किक की तरह सिर को ऐंठ कर घुमाते हुए मैंने कहा—यह बात तो अलग रही। मगर मैंने तो बदनामी की बात को सुनकर कहा।

अब तक घर आ ही गया था। झटपट बड़ी जीजी ने दोहरा दिया—सबसे कहना "घाट किनारे घूमने गया था"।

बीच में ही आश्वासन तथा निश्चयता के स्वर में मैंने कहा—निश्चिन्त....

आगे की बात मेरे मुँह में ही रह गयी थी कि इतने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बे मौसम दुविधा की बदली

श्री शिवसिंह 'सरोज'

मेरी सुधि का घिरा श्याम घन,
लेकिन बरस न पाया।

(१)

पहला अर्घ्यदान आँखों का, असफल और अधूरा।
बूँद बूँद बन उड़ा, मेघ बन, फिर शशि मुख ने घूरा।
बहे बारि कण, बारिद कण बन, पर रीते के रीते,
प्यास बुझी क्या ? यहाँ तृषातुर पलभर तरस न पाया।

मेरी सुधि का घिरा श्याम घन,
लेकिन बरस न पाया।

(२)

बे मौसम दुविधा की बदली, औ' अधखिला उजाला।
दोनों ने, अब तलक गेंद-सा, मुझको बहुत उछाला।
मन का चोर, चाँदनी में भी, चोरी का आदी है,
पारस है तो, लेकिन, लोहे को ही परस न पाया।

मेरी सुधि का घिरा श्याम घन
लेकिन बरस न पाया।

———

ऊपर के कोठे से उधरवाले मकान के बरामदे से बड़ी जीजी की सहेली सुनन्दा ने कहा--मैं कहूँ कि इस... बड़ी सजधज के साथ कहाँ जाना हुआ था ?

उत्तर मैंने दिया--नहीं तो क्या भंगिन की तरह कोई घूमने जाती है ? और भंगिन की तरह कोई घाट किनारे कीर्तन में शामिल हो तो बगलवाली दूर ढकेल भी तो देगी ।

उत्तर से मैंने प्रश्न का तो समाधान कर दिया किन्तु उधर से व्यंग्यात्मक आवाज आयी--"वाह ! वाह ! अभी से कीर्तन का शौक ! देखना कहीं विरहिनी की तरह नवद्वीप या बृन्दावन न पहुँच जाना। फिर पतिदेव को भी कहीं धूनी रमाने की नौबत न आवे।"

बड़ी जीजी तेज कदम अपने दरवाजे को ओर पैर बढ़ाती हुई बोलीं--उससे तुझे डर है सुनन्दा ? मेरे लिए जैसा बृन्दावन और नवद्वीप वैसा ही बनारस और जहन्नुम।

कहते-कहते वह अन्दर चली गयी। मैं भी पीछे-पीछे अन्दर चला गया। बिलकुल बाहर, यानी सदर दरवाजे के और मकान के अन्दर के दरवाजे की बीच की जगह में बड़ी जीजी ने मुझे छाती से लगाकर मुँह चूमते हुए कहा--तुझसे मुझे यही आशा थी। खूब कहा। अब घर जा नहीं तो मेरी बहिनें भी तुझे नाना प्रकार के प्रश्नों की झड़ी से परेशान कर देंगी।

यों भी मैं अन्दर तक जाकर घर चला जाता किन्तु अब यहीं से वापस हुआ। जब घर पहुँचा तो दादी ने कहा--चुपके से कहाँ चला गया था रे ?

अति साधारण भाव में, हाथ की चुटकी बजाते हुए, दाहिने पैर को जमीन पर थपथपाते हुए, भावावेश मुद्रा में आँखों को बनाकर, तानपूर्ण आवाज से मैंने गाना आरंभ किया--"श्याम रे...ए...ए....ए.....ए.... तुहूँ मम मरण....समान...! अरे...ए...ए...ए...ए.. ....तुहूँ म...अ....अ...म मरण समान.... !"

मुस्कुराती हुई दादी ने कहा--देखो तो जरा छोकरे का ढंग !... पूछी सीधी-सीधी बात और यह लगा कीर्तन का सुर भाँजने !

अपने बनाये हुए चित्र की ओर बढ़ते हुए मैंने पूछा--सीढ़ी के नीचे बनाये हुए चित्र को तुमने मेटा तो नहीं ?

अब तक दादी की निगाह उधर गयी ही नहीं थी। दूर से वह देख भी नहीं पाती थीं। किन्तु अब, मेरे कहने के बाद, आगे बढ़कर उन्होंने सीढ़ी के नीचे निगाह दौड़ायी। सामनेवाले चित्र को देखते ही वह एकदम फूट पड़ीं--कहती हूँ कि कोयले से चित्र घरों में नहीं बनाये जाते हैं। उससे गृहस्थ को कर्ज होता है। और यह छोकरा नहीं ही मानेगा। और बनाया भी तो गदहे का। केवल कर्जे ही नहीं होंगे अब गदहे भी होंगे।

कहते-कहते कुछ स्मरण हो आया। कहने लगी--कभी तो मैंने कहा कि गमछे में इतने कोयले कहाँ से लग गये ? अब मेरी समझ में आ गयी बात कि इसी गुणधर का काम है। अरे राम रे ! क्या होगा ?

डाँटती हुई आगे बढ़ती आयीं और कहा--बोल ! तूने ही गमछे में कोयला लगाया कि नहीं ?

मैंने कहा--कोई जानकर कोयला थोड़े ही लगाया। बनाते बनाते.... बस... आपसे ही लग गया।

और कई कदम आगे बढ़ती हुई बोली--हाँ, आपसे लग गया। आने दे तेरे बाबू को ! आज बताऊँगी कि कैसे लग गया।

यह तो दादी का तकिया कलाम था। इससे भी बड़े-बड़े अपराधों को बाबू से कह देने की धमकी कितनी ही बार दी थी मगर बाबू से कभी कुछ नहीं कहा था। इसलिए उससे मैं जरा भी नहीं डरता था। कभी-कभी ऐसे भी अपराध हुए थे कि जिसे पिताजी ने स्वयं भाँप लिया था किन्तु पूछने पर दादी ने अपने ही ऊपर ओढ़ लिया था। [क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्कविता पर बात-चीत

राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल०

सुकवि—(कुछ सोचकर हँसते हुए)

"केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु,
केचिद्वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु;
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्भीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे।"

(अनुवाद) :—

कोऊ सुधा सुरन के घर में बतावे,
कोऊ ललाम-ललनाधर में बतावे,
सच्छास्त्र छानि हम तासु पता बताहीं,
जम्भीर-नीर-मय-मीनन-खण्ड माहीं।

रसिक—भाई वाह! भला इसके सुनाने का क्या अवसर था?

सु०—अवसर क्या? चित्त ही तो है। इस समय मैं उन लोगों का स्मरण कर रहा था जो अच्छी कविता को बुरी अथवा बुरी को अच्छी कह बैठते हैं। रुचि की विलक्षणता ही पर मैंने यह श्लोक पढ़ दिया।

र०—तब तो उसके पढ़ने का प्रयोजन समझ में आ गया, —(कुछ सोचकर) बड़े गहरे अर्थ हैं।

सु०—अर्थ तो गहरे कुछ नहीं हैं; किसीने दिल्लगी में कह डाला है। परन्तु इस प्रसंग में ये अर्थ सार्थक अवश्य हैं। कहिए आपने अर्थ की गहराई क्या समझी? क्या इसे भी आप सत्काव्य में गिनेंगे?

र०—सुनिये, प्रकृति तीन प्रकार की होती है—सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी। सात्विकी लोग तो अमृत देव-लोक के सिवा और कहीं बतलाते ही नहीं। जिसको अमृत की आकांक्षा हो वह (उनके मत के अनुसार) पुण्य सञ्चय करके देव-लोक पधारे। रजोगुणी लोग समझते हैं कि ललाम-ललनाओं का अधररस ही अमृत है। और उनसे भी गये बीते तामसी लोगों की रीझ बूझ यह है कि अमृत मछलियों के शोरबे में है जिसमें खूब लीमू निचोड़ा गया हो।

सु०—सम्यक्! मैं आपकी बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ। आपने उत्तम टीका की। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि—

"स श्लोकः श्लोकतां याति विज्ञातरि निवेदिते"

र०—निस्सन्देह! और यदि आज्ञा हो तो मैं इस श्लोक के उत्तरार्द्ध का भी उदाहरण दे दूँ।

सु०—अवश्य! रसिक न हों तो सुकवि का आदर है कौन करे? उत्तरार्द्ध यों है—

"अविज्ञातरि विज्ञाते लकारस्तत्र-लुप्यते"*

र०—उदाहरण लीजिए:—

"तात जनक-तनया यह सोई।
धनुष यज्ञ जेहि कारण होई॥"

"तात" का अर्थ न जानने के कारण एक अनाड़ी ने इस सुन्दर चौपाई का अर्थ इस तरह कर दिया—"जनक तात अर्थात् गर्म है और यह उनकी पुत्री भी वही, अर्थात् गर्म है। इसलिए धनुषयज्ञ होता है, जिससे उसके देह की व्यथा दूर हो जाय।" इस पर किसीने कहा कि यह अर्थ ठीक नहीं। तब उसने प्रमाण दे दिया कि आरण्य काण्ड में सीता ने जब अग्नि में प्रवेश किया तब जली नहीं। क्योंकि वह स्वयं गर्म थीं। इसीलिए तो यह सब हो रहा है।"

सु०—वाह! क्या ऐसे भी रसिक दुनिया में होते हैं!

र०—अजी अभी दो ही महीने हुए, इस शहर में एक रामायणी आये थे। वे "परिकर बाँधि उठे अकुलाई" का अर्थ करते थे, "रामचन्द्र दण्डें भरने लगे।"

सु०—(हँसकर) भला कैसे?

र०—परि—पड़कर; कर बाँध—हाथ जमीन पर जमाकर; उठे अकुलाई, अर्थात् डंडें भरन लगे।

(हास्य)

सु०—वाह रे अर्थ!

र०—अजी मैंने तो सुना है कि किसी-किसी मासिक पत्र में रामायण के अच्छे अर्थों के साथ इस प्रकार के कपोलकल्पित, अनर्गल अर्थ भी लिखे जाते हैं।

सु०—अच्छी रही। क्या इस तरह के अर्थों को सुनकर भी किसीको आनन्द आता होगा?

र०—क्यों नहीं? "मत्स्यखण्ड" से आपको घृणा है तो क्या सब संसार "बेजीटेरियन" हो गया?

सु०—भाई, हम लोग तो कवि हैं। सीधे स्वभाव कविता लिखते हैं। रसिक लोग चाहे जिस दृष्टि से उसे देखें।

---

*ज्ञाता के आगे पढ़े, सफल होत है श्लोक;
अज्ञ-अग्र "ला" लोप लै, शेष रहत है शोक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र०—मुझ पर छींटा न जमाइये। मैं कह चुका हूँ कि तीन प्रकार के रसिक भी होते हैं।

सु०—तो उत्तम कविता कौन ?

र०—जिसे उत्तम रसिक पसन्द करें।

सु०—मध्यम कविता ?

र०—जिसे मध्यम रसिक पसन्द करें।

सु०—अधम कविता ?

र०—जिसे अधम प्रकार के रसिक पसन्द करें।

सु०—वाह ! खूब ही विवाद की जड़ काटी। परन्तु मैं छोड़ने का नहीं। कहिये कोई कविता भद्दी भी होती है।

र०—हो सकती है। जो लोग सहृदयता और कवित्व परिज्ञान में कोरे हैं वे कविता को साफ सुथरी, चिकनी चुपड़ी, भद्दी खुरखुरी, नरम सख्त जो चाहें कह सकते हैं; क्योंकि कवि-समय-सिद्ध, कविता के गुण-दोष-सूचक विशेषणों को वे जानते ही नहीं।

सु०—अच्छा उत्तम रसिक की सम्मति में उत्तम कविता की भाषा कौन सी होनी चाहिए।

र०—उड़िया, तैलंगी, गुजराती, मारवाड़ी, पैशाची, नैशाचरी, खड़ी, पड़ी, बैठी, कोई भी हो; परन्तु जो भाषा हो अपनी प्रथा के अनुसार स्वच्छ हो। शब्दों का सौन्दर्य जितना अधिक होगा उतनी ही कविता अधिक रोचक होगी। परन्तु शब्द-सौन्दर्य के लिए अर्थ बिगड़ने न पावे।

सु०—छन्द कौन सा हो ?

र०—कोई भी। परन्तु जो हो उसका निर्वाह अच्छी तरह हो।

सु०—तुक हो कि न हो ?

र०—हो, तो रोचकता के हेतु। न हो, तो दोष नहीं। परन्तु बहुत से छन्दों में तुक का न होना उचित नहीं है। जैसे दोहा, चौपाई, मनहरण इत्यादि। इनमें कानों को तुक का अध्यास हो रहा है। इसी तरह बहुत से छन्द ऐसे हैं जिनमें तुक का न होना कानों को नहीं खटकता जैसे द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलक, शिखरिणी इत्यादि।

सु०—और विषय ?

र०—आकाश, पाताल, जंगल, रेगिस्तान, पहाड़, समुद्र, दिन रात, जाड़ा गर्मी, लड़ाई, सन्धि, लड़का, बुड्ढा, वीर, कापुरुष, आस्तिक, नास्तिक, धूल, काँटा, कीर्ति, कलंक, राजा, प्रजा, फिरिस्ता, शैतान, ईमानदार, बेईमान, सुकवि, कुकवि, रसिक, अरसिक, कहाँ तक गिनावें। किसी को भी कविता द्वारा अमर कर डालिए। क्रोध, भय, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, मोह, उत्कण्ठा, दैन्य, शान्ति, व्यग्रता, इत्यादि चाहे जिस मनोवेग और मानसिक वृत्ति का चित्र खींच डालिये।

सु०—परन्तु कोई कोई तो कहते हैं कि सामयिक विषयों पर ही लेखनी उठानी चाहिए—जैसे बाल-विवाह, विधवा-विवाह, ठहरौनी, वेश्यानृत्य, मद्यपान, एकता आदि।

र०—हाँ हाँ। अभी फेहरिस्त जरा और लम्बी कीजिये। भंग पीना, अदालत में रुपया बरबाद करना, जुवा खेलना, विदेशी वस्त्र पहिनना, हिन्दू-मुसलमानों की फूट, सरकारी सेना की संख्या, सिविल सर्विस-परीक्षा का यहाँ न होना :—

सु०—बस क्षमा कीजिये; मतलब पर आइये।

र०—मतलब यह है कि ऐसा कोई विषय नहीं जो काव्य का विषय न हो सके। वेदान्त ऐसा कठिन विषय भी समर्थ कवि के पाले पड़कर रोचक हो चुका है। श्री शंकराचार्य का विवेक-चूड़ामणि इस बात का उदाहरण है। परन्तु महाशय ! काव्य और वस्तु है और "रिफार्मरी" और वस्तु है। काव्य में सार-वस्तु होती है रस वा आनन्द, जो अनेक विषयों के आधार से हो सकता है। "रिफार्म" के विषय उसके लिये अपरित्याज्य नहीं हैं। मेघदूत में कौन से "रिफार्म" के प्रकरण हैं। परन्तु उसकी गणना श्रेष्ठ काव्यों में है। इतना मैं अवश्य कहूँगा कि यदि काव्य के गुणों के साथ-साथ उसका विषय भी उपयोगी हो तो सोने में सुगन्ध हो।

सु०—आपके कथन का धन्यवाद।

र०—आप स्वयं सब जानते हैं। इस विषय की चर्चा आपको बहुत रुचती है। इससे फिर कभी यही बात-चीत छिड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

मजमउल बहरैन (समुद्र-संगम)—मूल लेखक, दाराशिकोह, अनु० डा० सैयद अतहर अब्बास रिजवी, सचिव इतिहास परामर्श समिति, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ। मूल्य नहीं दिया। लेखक से प्राप्य।

दाराशिकोह बादशाह शाहजहाँ का बड़ा पुत्र था, और सामान्यतया उसे अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठना चाहिए था। किंतु औरंगजेब ने उसे परास्त कर और उसकी हत्या करा कर दिल्ली की सल्तनत प्राप्त कर ली थी। दाराशिकोह उदार धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति था और वह पक्का मुसलमान होते हुए भी दूसरे धर्मों का आदर करता था और उनके सिद्धान्तों को समझना चाहता था। उसने हिंदू दर्शनों का अच्छा अध्ययन किया था और उसकी आज्ञा से उपनिषदों श्री मद्भगवद्गीता तथा योग वाशिष्ठ का फारसी में अनुवाद किया गया था। प्रस्तुत पुस्तक उसने स्वयं लिखी थी और उसमें उसने हिंदू दर्शन और इस्लाम दर्शन की तुलना की है। उसका मत था कि इस्लाम और हिंदू दर्शन में कोई मौलिक भेद नहीं है और दोनों ही एकेश्वरवादी हैं। उसने आरंभ में कहा है—

"वह (ईश्वर) अद्वितीय अत्यधिक प्रशंसा का पात्र है जिसने अपने सुंदर, अनुपम एवं बेजोड़ मुख पर कुफ्र तथा इस्लाम की दो जुल्फें आमने-सामने के बिन्दु के समान प्रकट की है किंतु इनमें से किसी को भी अपने सुंदर मुख का आवरण नहीं बनाया है।

कुफ्र तथा इस्लाम उसके मार्ग में अग्रसर हैं,

वे कह रहे हैं कि "वह एक है और उसका कोई साथी नहीं है।"

इस छोटी सी पुस्तक में अनासिर (तत्त्व), इवास (इंद्रिय), शग्ल (भक्ति), रूह (आत्मा), नूर (प्रकाश), रूयत (ईश्वर दर्शन) इस्माये अल्लाह तआला (सर्वोच्च ईश्वर के नाम) आदि २२ प्रकरण हैं जिनमें दाराशिकोह ने दोनों धर्मों के विचारों का जो साम्य देखा है उसे सरल भाषा में लिख दिया है। वह जानता था कि उसके विचारों से कितने ही हिंदू और मुसलमान सहमत न होंगे। इसलिए उसने स्वयं कहा है कि मैं इसे अपने घरवालों के लिए लिख रहा हूँ। दाराशिकोह की धार्मिक जिज्ञासा, उसके अध्ययन और उदारता का परिचय इस पुस्तक में पग-पग पर मिलता है। इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व है। इसका सुंदर हिंदी में अनुवाद करके डाक्टर रिजवी ने हिंदी ही की सेवा नहीं की, प्रत्युत भावनात्मक एकता की दिशा में भी प्रशंसनीय कार्य किया है।

सुभाषित सप्तशती—संकलनकर्ता, डा० मंगलदेव शास्त्री। प्रका० सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली। मूल्य, अढ़ाई रुपये।

सूक्ति रत्नावली—संग्रहकर्ता, श्री आनन्दकुमार। प्रकाशक उपर्युक्त; मूल्य डेढ़ रुपया।

पहिली पुस्तक में संस्कृत के ७०० चुने हुए सुभाषित हैं। ये वेदों, उपनिषदों, वाल्मीक-रामायण, महाभारत, ज्ञानार्णव, धम्मपद, मनुस्मृति, योग वाशिष्ठ, श्रीमद्भागवत तथा कुछ संस्कृत नाटकों और काव्यों में से लिये गये हैं। महाभारत में से केवल विदुर नीति और गीता ही से सुभाषित चुने गये हैं। महाभारत और भागवत सूक्तियों और सुभाषितों की खान हैं, किंतु इनमें से कम ही उद्धरण लिये गये हैं। पुस्तकों से अलग अलग चुनाव न करके यदि मार्मिक सुभाषितों को संग्रह करने का लक्ष्य होता तो शायद संग्रह अधिक अच्छा होता। फिर भी संस्कृत के ७०० सुभाषितों का एक साथ संकलन बड़े काम का है। विद्यार्थियों और साधारण पाठकों का इससे लाभ और मनोरंजन होगा। दूसरे संग्रह में मुख्य रूप से हिंदी और उर्दू के सुभाषित संग्रह किये गये हैं और इन्हें विषय क्रम से व्यवस्थित किया गया है। अतएव यह अधिक उपयोगी है। दोनों ही संकलन सुरुचि और परिश्रम से तैयार किये गये हैं। दूसरा संग्रह हिंदी पाठकों के लिए विशेष रूप से लाभदायक है।

रजतपट की कहानी—श्री प्रेमकृष्ण टंडन। प्रकाशक, राजीव प्रकाशन, ५६ डी० कमलानगर, दिल्ली—६। मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

भारतीय फिल्मों की कहानी—श्री बच्चन श्रीवास्तव। प्र० राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, सजिल्द और सचित्र। मूल्य, साढ़े चार रुपये।

हिंदी में चलचित्रों के इतिहास पर इन दो पुस्तकों का प्रकाशन सामयिक है। 'रजतपट की कहानी' के प्रथम १०४ पृष्ठों में भारतीय चलचित्र का इतिहास है, और अंत के ८३ पृष्ठों में चलचित्रों से संबंधित प्रमुख प्रायः १५०-२०० व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय है। जो लोग थोड़े में भारतीय चलचित्र (विशेषकर हिंदी चलचित्र) के इतिहास को जानना चाहते हैं, उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। लेखक ने तथ्यों के वर्णन तक अपने को सीमित रखा है और उसका मुख्य उद्देश्य थोड़े में सभी जानकारी दे देने का मालूम होता है। दूसरी पुस्तक में व्यक्तियों के परिचय नहीं दिया गया किंतु चलचित्रों का विवरण अधिक दिया गया है तथा चलचित्र व्यवसाय और शिल्प की प्रगति पर भी थोड़ा-बहुत विचार किया गया है। यह पुस्तक पहिली पुस्तक से आकार में अधिक बड़ी नहीं है, पर इसमें अभिनेताओं, अभिनेत्रियों और चलचित्रों के चुने हुए दृश्यों के कुछ चित्र दिये गये हैं। ये चित्र आकार में छोटे हैं और इनकी छपायी इतनी अच्छी नहीं है जितनी होनी चाहिए, इन दोनों पुस्तकों का उद्देश्य पाठकों को भारतीय (विशेषकर) हिंदी चलचित्रों, निर्माता कंपनियों और प्रमुख निर्माताओं आदि का परिचय देना है। इसमें अपने-अपने ढंग से दोनों ही सफल हैं। किंतु इनमें हिंदी चलचित्रों की सम्यक् आलोचना और उसकी समस्याओं पर विचार का अभाव खटकता है। गीतों और संगीत पर भी काफी प्रकाश नहीं डाला गया। आरंभिक प्रयास के रूप में दोनों ही पुस्तकें अपने अपने ढंग से सफल हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत ज्ञानेश्वर––लेखक श्री जगमोहन लाल चतुर्वेदी। प्रकाशक, श्री बलवंत गिरिराव घाटे, अध्यक्ष भी एकनाथ संशोधन मंदिर, खडकेश्वर, औरंगाबाद। सजिल्द, मूल्य, तीन रुपये।

मराठी भाषा के परम प्राचीन होते हुए भी, ज्ञानेश्वर मराठी के आदि कवि माने जाते रहे हैं और उनकी ज्ञानेश्वरी ने मराठी भाषा की श्रीवृद्धि का श्रीगणेश ही नहीं किया, अपितु मराठी-भाषी जनता को ज्ञान और धर्म की गंगा देकर उन्हें कृतकृत्य कर दिया। उनके अभंग मराठी भाषा के रत्न हैं जो जनता के लिए व्यावहारिक जीवन के मार्ग-दर्शक और प्रेरक का काम करते हैं। ज्ञानेश्वर, तुकाराम और समर्थ रामदास महाराष्ट्र के आध्यात्मिक जीवन के आधार तो हैं ही, साथ ही उन्होंने उनके दैनिक जीवन को भी प्रभावित किया है। उन्हीं संत ज्ञानेश्वर का यह जीवन-चरित्र है। किंतु यह जीवनवृत्त से अधिक भी है। इसमें ज्ञानेश्वर के उपदेशों, उनके दर्शन और सामाजिक क्रांति में उनके योगदान का भी विवेचन है। आरंभ में ज्ञानेश्वरकालीन महाराष्ट्र का संक्षिप्त किंतु सारपूर्ण चित्रण भी दिया गया है। हिंदी में कितने ही जीवन-चरित्र लिखे गये हैं। यह पुस्तक हिंदी के प्रथम एक दर्जन सर्वोत्तम जीवन-चरित्रों में अवश्य सम्मिलित कर ली जायगी। पाठक को पढ़ते-पढ़ते मालूम होगा कि यह पुस्तक कितने अध्ययन, खोज और परिश्रम से लिखी गयी है। उसे पढ़ते समय पाठक को यह भी अनुभव होगा कि लेखक ने इसे बड़ी संयत भाषा और संतुलित दृष्टि से, किंतु सहानुभूतिपूर्वक लिखा है। संत ज्ञानेश्वर के पवित्र जीवन की कथा और उनके अमृत तुल्य उपदेशों का परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसकी शैली और भाषा प्रशंसनीय है। सुसंस्कृत भारतीय होने के लिए हमें जिन महापुरुषों के जीवनवृत्त और उपदेशों का जानना परमावश्यक है, उनमें संत ज्ञानेश्वर भी हैं। इतने अच्छे रूप में उनका प्रामाणिक परिचय हिंदी पाठकों के लिए प्रस्तुत कर लेखक ने हिंदीभाषी संसार का बड़ा उपकार किया है। यह पुस्तक हिंदी के प्रत्येक पुस्तकालय में होनी चाहिए।

मराठी स्वयं शिक्षक––ले० श्री प्रा० ग० न० साठे एम० ए०, बी० टी० साहित्यरत्न। प्रकाशक, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना। बड़ा आकार, पृष्ठ-संख्या २६०, मूल्य, सवा तीन रुपये।

भारतीय भावात्मक एकता के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षित भारतवासी अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त दो-तीन अन्य भारतीय भाषाएँ भी जाने। सरकार ने भी इस आवश्यकता का अनुभव किया है और माध्यमिक स्तर पर एक अन्य भारतीय भाषा का पढ़ना अनिवार्य कर दिया है। स्कूलों के अतिरिक्त भी वयस्क लोगों को भी भारतीय भाषाओं को सीखने की सुविधा मिलनी चाहिए। इसके लिए सबसे पहिली आवश्यकता उपयुक्त पुस्तकों की है। इसलिए हम इस पुस्तक का स्वागत करते हैं। हिंदी भाषियों के लिए मराठी, गुजराती और बंगला का अध्ययन सबसे सरल है। इनमें भी मराठी और भी सरल है क्योंकि वह भी, हिंदी की भाँति, देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक अनुभवी शिक्षक हैं और वे हिंदी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। इसलिए यह पुस्तक बहुत अच्छे ढंग से लिखी गयी है। यह व्यावहारिक पुस्तक है। व्याकरण का उतना ही पुट दिया गया है जितना परमावश्यक है। अभ्यास के लिए वाक्यांश, वाक्य और शब्दों का बार-बार और प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। हिंदी से मराठी में, और मराठी से हिंदी में अनुवाद पर काफी जोर दिया गया है। यह पुस्तक इतने अच्छे ढंग से लिखी गयी है कि हमें विश्वास है कि इसकी सहायता से साधारण विद्यार्थी या वयस्क यदि सप्ताह में दो दिन भी अभ्यास करे तो आठ-दस महीनों में मराठी का इतना ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वह सामान्य मराठी पत्र या पुस्तक पढ़ और समझ ले तथा मराठी में बातचीत कर ले। मराठी भाषा पढ़ने के इच्छुक हिंदीभाषियों के लिए यह बहुत उपयोगी है।

दिमाग की उलझनें––ले० श्री अमरसिंह चतुर्वेदी। प्रकाशक, रवि प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर। पृष्ठ संख्या, १९४ मूल्य, ढाई रुपये।

श्री अमरसिंह चतुर्वेदी पुराने कांग्रेसी कार्यकर्ता और नेता हैं। उनका कार्यक्षेत्र भरतपुर और बाद में राजस्थान रहा। वे ऐडवोकेट हैं और उन्हें राजनीति के साथ ही उन्हें हिंदी साहित्य में भी रुचि है। इस निबंध-संग्रह में विभिन्न विषयों पर उनके ६१ लेख संग्रहीत हैं, प्रायः सभी लेख वर्तमान राजनीतिक या सामाजिक समस्याओं पर हैं। उनके समान राजनीति में पैरे हुए विचारशील व्यक्ति के ये विचार पाठकों को बहुत सी नयी बातें बतलाएँगे, परिचित प्रश्नों पर नयी दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा देंगे और उन्हें एक नया दृष्टिकोण देंगे। लेखक अपने विचारों को निर्भीकता से प्रकट करता है और वे इतने संतुलित हैं कि पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वर्तमान राजनीति में स्पष्ट विचार की बड़ी आवश्यकता है। यह पुस्तक पाठकों को वर्त्तमान समस्याओं पर स्पष्ट और संतुलित रूप से विचार करने में सहायक होगी। जो समस्याएँ ली गयी हैं, वे सार्वजनिक महत्त्व की हैं। लेखक की भाषा सरल और शैली चित्ताकर्षक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिदीप संस्मरण

विन्ध्य में रसाल

डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' सारे जीवन प्रयाग में रहे। इस प्रयाग में जो बुद्धिजीवी वर्ग का एक प्रमुख केंद्र है और जहाँ के नागरिक जीवन की अपनी विशेषता है। संयोग से सागर विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप-कुलपति डा० रामप्रसाद त्रिपाठी के प्रेम और आग्रह के कारण वे सागर चले गये। सागर एक महत्त्वपूर्ण नगर है, किंतु प्रयाग के वातावरण से वहाँका वातावरण बहुत भिन्न है। विश्वविद्यालय भी नगर से बाहर विन्ध्य की छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बना है। यहाँ नागरिक शोभा की अपेक्षा वनश्री का सौन्दर्य अधिक है। जिन्हें प्रकृति से प्रेम है, उन्हें यह स्थान बहुत प्रिय है, किंतु नगरों में रमे हुए लोगों का जी यहाँ एकाएक नहीं लगता। संयोग से कुछ दिनों बाद डा० त्रिपाठी का कार्यकाल समाप्त हो गया और वे वहाँसे चले गये। उनके चले जाने से डा० रसाल का जी और भी अधिक ऊबने लगा। एक बार जब वे हमसे मिले तब हमने उनसे पूछा--"कहिए रसालजी, सागर में आजकल समय कैसे कट रहा है। उस पर उन्होंने हमें यह छन्द सुनाया--

है यह विन्ध्य वनान्त बड़ा,
तरु तेंदुओं का घना जाल यहाँ।
किंशुक कुंज हैं, गुंजा निकुंज हैं,
कीकर, पाकर, ताल यहाँ।
जंबुक, लोखरे बोलते बोल,
उलूक भी दे रहे ताल यहाँ।
ला बनमाली रसाल! तुम्हें
बड़ा खेद है छोड़ गया है कहाँ?

छंद के सुंदर रूपक और अलंकारों के चमत्कार तथा व्यंजना से चित्त प्रसन्न हो गया। मालूम हो गया कि रसाल जी का चित्त वहाँ से उचट गया है।

अस्तबल में कोतल

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी संसद (पार्लामेंट) के कई वर्षों से सदस्य हैं। वहाँ पहुँचकर उनकी साहित्य-सेवा की गति कुछ धीमी हो गयी है। संसद में जाकर ऐसा हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। अभी हाल ही में उनके एक आदरणीय मित्र ने उन्हें लिखा--"आपको कोतल बनाकर वर्षों से संसद के अस्तबल में हरी घास चरने के लिए बाँध दिया गया है।" चतुर्वेदीजी ने यह उद्धरण श्री श्री विनोद शर्मा को अपने एक पत्र में लिख भेजा और उनकी सम्मति जाननी चाही। उन्होंने उत्तर में एक लम्बा पत्र लिखा और उनके आदरणीय मित्र का समर्थन करते हुए यह छंद लिख भेजा--

रहौ अस्तबल में बँधे, चरौ मुलायम घास
देह धरे को फल यही, श्री बनारसीदास!
श्री बनारसीदास! तुम्हहि करि राख्यौ कोतल,
वाहि आलता कियौ, रह्यौ जामें कहुँ बहु बल।
हिनहिनाइबो बंद करि, रहत सदा "ट्विप" सों सधे,
शहसवार के फन्द परि, रहैं अस्तबल में बँधे!
पुनश्च--होते अस्त बल है सदा, पैठत ही जा धाम।
बुधजन ने ताकों दियो, सुभग अस्त-बल नाम॥

(इति श्री श्रीविनोद शर्मा कृत अस्तबल व्युत्पत्तिः)

चतुर्वेदीजी को यह छंद बहुत पसन्द आया और उन्होंने इसकी बड़ी दाद दी।

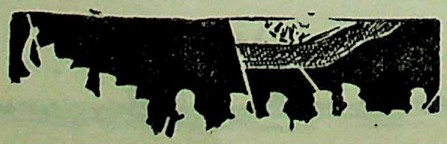

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

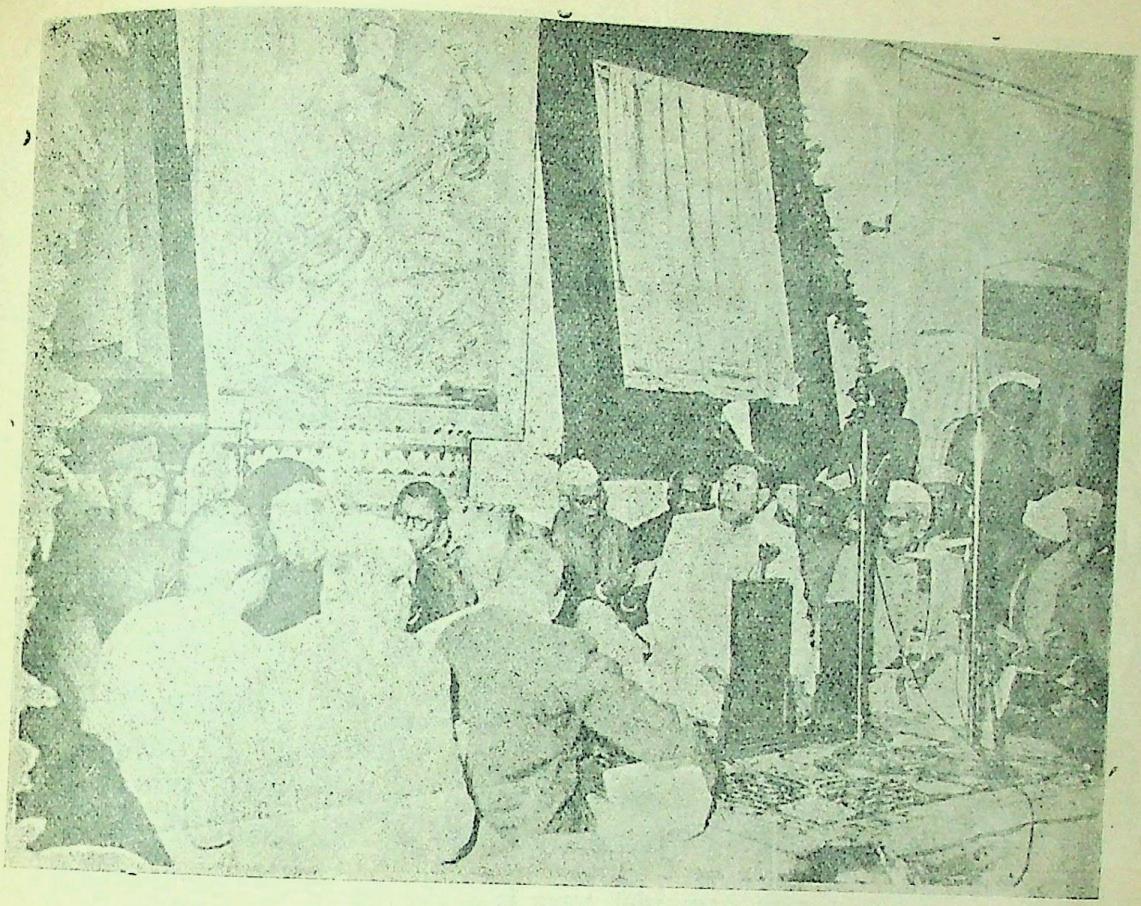

सरस्वती हीरक जयंती समारोह का आरम्भ

सरस्वती हीरक जयंती समारोह आरंभ होने के समय राष्ट्रगीत का गायन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

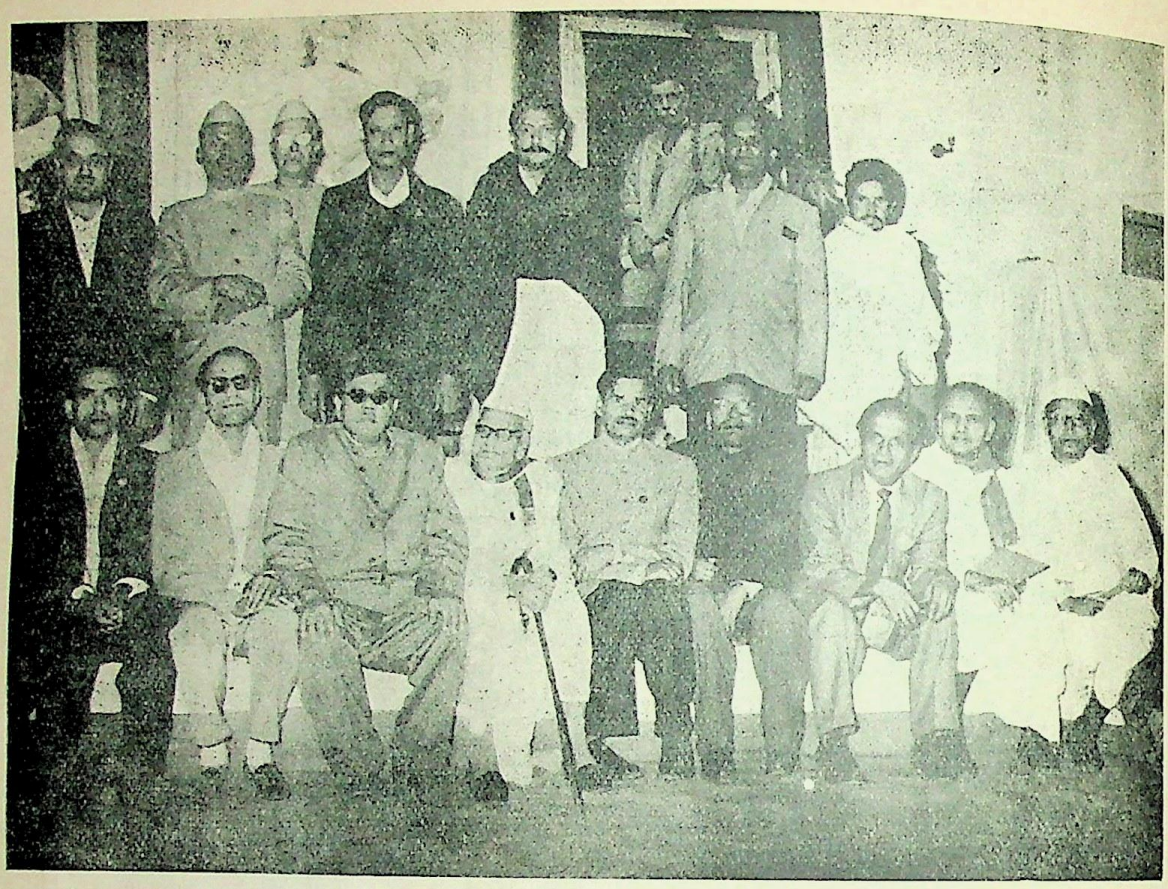

सरस्वती हीरक जयंती उत्सव के कार्यकर्तागण

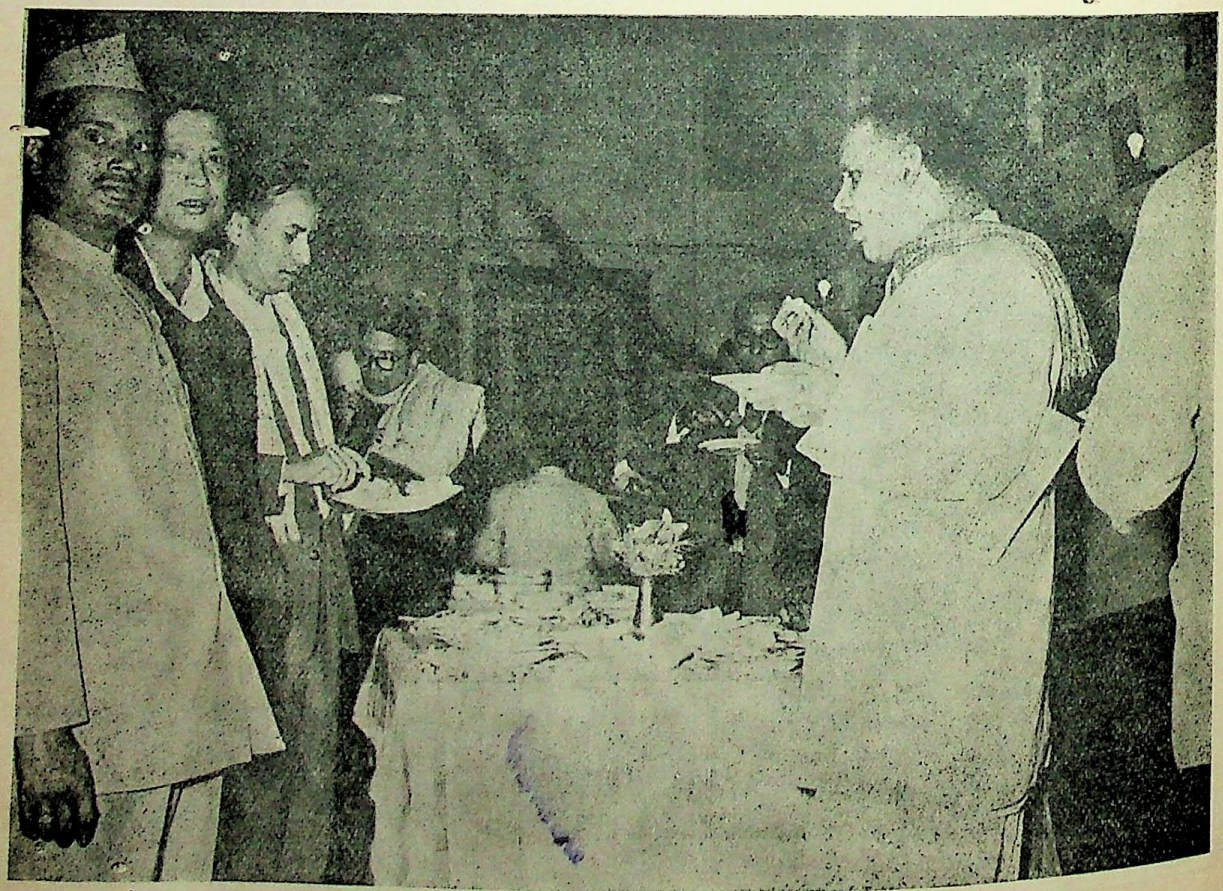

सरस्वती हीरक जयंती समारोह के अवसर पर जलपान का एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव

का

विवरण

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

(गतांक से आगे)

पत्रकार गोष्ठी

"सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह" के अवसर पर देश के विभिन्न अंचलों से आये पत्रकारों की एक गोष्ठी १३ जनवरी १९६२ के पूर्वाह्न में इण्डियन प्रेस के सुसज्जित हाल में हुई। गोष्ठी की अध्यक्षता प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ "बेढब" ने की।

सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं प्रयाग के नगरप्रमुख श्री बालकृष्ण राव ने पत्रकार-गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए आज से पचास-साठ वर्ष पहले की स्थिति का उल्लेख किया--जब हिन्दी अपने ही घर में प्रवासिनी थी। आपने कहा कि उस समय हर सुशिक्षित व्यक्ति की यही आकांक्षा रहती थी कि वह अँगरेजी पढ़े या कम से कम उर्दू की डाल पकड़कर लटक जाय। जो लोग उर्दू नहीं जानते थे, वे विकलांग समझे जाते थे। घरों में हिन्दी पत्रिकाएँ अधिकतर महिलाओं के लिए खरीदी जाती थीं। केवल थोड़े-से लोग निज भाषा में आस्था तथा लगन रखने के कारण यह आशा करते थे कि हिन्दी का चंद्रमा एक दिन अवश्य बादलों की ओट से निकलेगा।

श्री राव ने आगे कहा कि आज भी स्थिति अधिक नहीं बदली है। फलस्वरूप हिन्दी पत्रों का स्तर बहुत ऊँचा नहीं उठ सका है। हिन्दी में प्रथम श्रेणी का कोई पत्र न होने का मुख्य कारण यह है कि अधिकांश सुशिक्षित लोग आज भी ताज़ी खबरों के लिए अँगरेजी अखबार पढ़ते हैं। अर्थकरी न होने के कारण हिन्दी पत्रकारिता पनप नहीं पा रही है। हिन्दी पत्रकारिता का दायित्व जिस अनुपात में बढ़ा है, उस अनुपात में उसके साधन नहीं बढ़े हैं।

आगे श्री राव ने कहा कि हिन्दी पत्रों का स्तर उठाने के लिए यह आवश्यक है कि शक्ति-संपन्न संस्थाएँ, व्यक्ति और सबसे अधिक सरकार क्रियाशील हो। यदि हिन्दी में अच्छे पत्र निकलने लगें, जो सौन्दर्यहीन और साधनहीन न दिखाई पड़ें तो कालांतर में उनकी माँग भी बढ़ेगी। जैसे कॉफी बोर्ड ने कॉफी की माँग पैदा की, उसी प्रकार हिन्दी के अच्छे पत्र निकालकर उनकी माँग पैदा करनी चाहिए। तब जनता की छिपी हुई माँग बाहर आयेगी और हिन्दी पत्रों का प्रकाशन हानिप्रद होने के बजाय लाभप्रद हो जायगा।

श्री राव ने अंत में कहा कि हमारे प्रदेश का जन-समुदाय हिन्दी के माध्यम से ही सोचता-विचारता है। यदि हम अपने समाज का बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठाना चाहते हैं तो हमें हिन्दी पत्रों का स्तर भी ऊँचा उठाना चाहिए।

अन्त में आपने आशा प्रकट की कि गोष्ठी में एकत्र पत्रकार हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की समस्याओं पर विचार-विनिमय करके समुचित निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।

इसके बाद गोष्ठी के संयोजक श्री श्रीकृष्णदास ने आगत सज्जनों का स्वागत किया (उनका मुद्रित भाषण अंत में दिया गया है) और उन्होंने श्री विद्याभास्करजी से गोष्ठी का समारम्भ करने का अनुरोध किया। श्री विद्याभास्करजी ने अपने भाषण में कहा--

अध्यक्ष महोदय तथा मित्रो,

भारतीय पत्रकारिता को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उसने अपने आरम्भिक काल से ही भारतीय जनवर्ग में स्वदेश-प्रेम तथा स्वाधीनता की आकांक्षा उत्पन्न और जागरित करने का प्रयास किया है। मैं नहीं जानता कि किसी अन्य देश की पत्रकारिता को यह गौरव प्राप्त है या नहीं। इसमें भी हिन्दी पत्रकारिता को इसका विशिष्ट गौरव प्राप्त है कि इस पुनीत कर्त्तव्य का पालन करते हुए उसने इसके साथ ही साथ भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी के रूप-निर्माण, विकास, पल्लवन, परिपालन, पोषण तथा संवर्द्धन का काम भी किया है। आज 'सरस्वती' की हीरक जयन्ती के इस शुभ और सुखद अवसर पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पूज्य मालवीयजी महाराज, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा हिन्दी पत्रकारिता की इस परम्परा के बहुसंख्यक महारथियों एवं मनीषियों के प्रति हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। यह देखकर हमारा आनन्दमग्न होना स्वाभाविक है कि हमारे पूजनीय पथ-निर्माताओं ने जो स्वप्न देखा था, वह यथार्थ घटना प्रमाणित हो गयी। आज भारत स्वतन्त्र है और सुरभारती हिन्दी राष्ट्रभाषा और राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी है। किन्तु क्या इतने से हमारे कर्त्तव्य की समाप्ति हो गयी ? जो ज्योति हमारे राष्ट्र-निर्माताओं और हिन्दी-निर्माताओं ने जगायी है उसे प्रज्वलित रखने का उत्तर-दायित्व हमारी वर्त्तमान पीढ़ी पर है और इससे विमुख होना वास्तव में देश के प्रति और अपने आदर्शवादी स्वप्न-द्रष्टाओं के प्रति विश्वासघात करना होगा। आज का यह पुनीत पर्व हमें यह आत्म-चिन्तन का अवसर प्रदान करता है कि क्या पत्रकारिता के माध्यम से भारत-राष्ट्र और भारती-हिन्दी की जैसी सेवा होने की कल्पना तथा आशा की गयी थी, वह पूरी की जा रही है ?

पहले की अपेक्षा आज हिन्दी पर अधिक संकट आया दिखलाई पड़ रहा है। हिन्दी भाषा को अपने सहज नैसर्गिक अधिकार से वंचित रखने के महाप्रयास किये जा रहे हैं और हिन्दी के विरोधियों को बड़ी मात्रा में सफलता भी मिल रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हिन्दी पत्रकारिता भी उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकी है जो हमारे अग्रदूत मनीषियों ने उसके लिए निर्धारित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि पत्रकारिता के माध्यम से देश और उसकी भाषा की सेवा का जो कठोर संकल्प उन्होंने किया था, उसको भी हम विस्मृत कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि हिन्दी पत्रकारिता के संघर्ष के दिन अभी समाप्त नहीं हुए हैं। यह बात सही है कि आज के व्यावसायिक युग में पत्रकारिता को पूँजी और धनोपार्जन का साधन माना जाने लगा है और इस अवस्था में हिन्दी की सेवा का कार्य हिन्दी पत्रकारिता के लिए और अधिक कठिन हो गया है। ठीक इसी कारण हिन्दी के भक्तों के लिए यह समय पहले की अपेक्षा अधिक कठोर परीक्षा का है और पहले की अपेक्षा आज अधिक निष्ठापूर्ण सेवा की अपेक्षा करता है। एक समय था जब हिन्दी के पत्रकार भाषा का रूप निर्धारित करते थे। आज यह काम सरकारी विशेषज्ञों को सुपुर्द कर दिया गया है और स्वयं सरकारी नेता इनके कार्यों से असन्तुष्ट हैं। सरकारी विशेषज्ञों के कार्यों से सरकारी नेताओं के असन्तुष्ट रहने में हमें क्या आपत्ति हो सकती है, किन्तु हम यह देख रहे हैं कि इससे हिन्दी का बड़ा अहित हो रहा है और इन विशेषज्ञों को निमित्त बनाकर राजनीतिक प्रयोजनों के लिए हिन्दी पर कुठाराघात किया जा रहा है। हिन्दी को दरिद्र, दुर्बल और अयोग्य भाषा बतलाया जा रहा है और यह कहा जा रहा है कि राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में उसके प्रतिष्ठित करने में अभी बहुत समय लगेगा। आज हिन्दी को पीछे धकेलकर अँगरेजी को आगे किया जा रहा है। यह अवस्था सर्वथा अपमानजनक है और हिन्दी पत्रकारिता के लिए यह एक बड़ी चुनौती है। कई बार कई हिन्दी पत्रकार संघटनों में यह चर्चा उठी कि पत्रकारों को संघटित होकर हिन्दी के रूप-निर्माण और विस्तार के काम को उठाना चाहिए और उसकी न्यूनताओं को दूर कर उसे समृद्ध बनाना चाहिए। कई बार हिन्दी की लेखन-शैली में और शब्दों के प्रयोग में एकरूपता ले आने और अच्छे कोशों के निर्माण की बात उठाई गयी। किन्तु ऐसा कोई संघटित प्रयास सक्रिय रूप से किया न जा सका। परिणाम यह है कि आज तक यह निश्चित नहीं हो पाया कि प्रत्यय और विभक्ति को शब्द के साथ मिलाकर एक में लिखा जाय अथवा अलग। काशी और प्रयाग के पत्रकारों और लेखकों में इन बातों में मतभेद है। इस प्रकार के और न जाने कितने प्रश्न हैं जिन्हें पत्रकार ही सुलझा सकते हैं, जिन्हें उन्हें ही सुलझाना ही चाहिए। अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में हिन्दी के प्रसार और प्रचार की जो कठिनाइयाँ हैं उन्हें दूर करने का प्रयास भी हिन्दी पत्रकार कर सकते हैं। एक समय था जब हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करना बड़े साहस का काम और आर्थिक दृष्टि से हानिकर बात समझी जाती थी। किन्तु बार-बार प्रयास करके हमारे अग्रणी पत्रकार महारथियों ने उस आरम्भिक संकट और भय को बहुत कुछ दूर कर दिया; यद्यपि हिन्दी के वास्तविक क्षेत्र में आज भी इस साहस का अभाव देखा जा रहा है। आज अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में इस प्रकार के आरम्भिक तथा साहसपूर्ण प्रयत्न करने का समय आया है। कतिपय अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ निकलने भी लगी हैं। हिन्दी का देशव्यापी प्रसार करने और उसे सम्पुष्ट करने का यह एक उपाय है जिसका अवलम्बन प्रारम्भिक युग में किया जा चुका है और आज की परिवर्तित परिस्थिति में भी हम पुनः कर सकते हैं। 'सरस्वती' ने हिन्दी क्षेत्र में सैकड़ों लेखक और कवि उत्पन्न किये। आज अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के लेखक तथा कवि और अन्य प्रकार के साहित्यिक उत्पन्न करना पत्रकारों तथा पत्र-पत्रिकाओं का काम है। आज कई विदेशी दूतावास भारत में अनेक भारतीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर रहे हैं। इनका विशेष ध्यान हिन्दी की ओर है। जो हिन्दी पत्रकार इन पत्र-पत्रिकाओं से सम्बन्धित हैं, उनका कर्त्तव्य है कि अपने देश और अपने देश की भाषा के गौरव का पूरा ध्यान रखते हुए इन पत्रों का सम्पादन आदि कार्य करें। इस क्षेत्र में काम करनेवाले पत्रकारों को भाषा-परिष्कार और शुद्धि, शैली-निर्धारण तथा शब्द-संचय तथा इतर प्रकार की पत्रकारिता सम्बन्धी कार्यों में सहायता पहुँचाना हिन्दी क्षेत्र के पत्रकारों का काम होना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों पर उनकी खपत न होने का जो कलंक लगा हुआ था वह धुलने लगा है। आज हिन्दी की कई उत्कृष्ट पत्र-पत्रिकाएँ बड़ी संख्या में मुद्रित होती हैं और बिकती हैं। देश में साक्षरता और शिक्षा का ज्यों-ज्यों प्रसार होता जायगा इस दिशा में और भी अधिक प्रगति होगी। यह सबके अनुभव की बात है कि पाठकों की रुचि परिष्कृत होती जा रही है और सुरुचि-सम्पन्न उच्च कोटि की सामग्री से पूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की माँग बराबर बढ़ रही है। अच्छी सामग्री, अच्छी छपाई, अच्छा कागज और अन्य प्रकार की उत्कृष्ट रूपसज्जावाली पत्र-पत्रिकाओं की अच्छी खपत हो रही है। यह बात सही है कि कुरुचिवाले गन्दे पत्र भी बड़ी संख्या में बिकते हैं, किन्तु इतना तो निःसन्देह सभी स्वीकार करेंगे कि इस दुष्प्रकृति को दूर करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि अच्छी रुचि उत्पन्न करनेवाले पत्र और पत्रिकाएँ अधिक संख्या में प्रकाशित हों। जिस प्रकार हिन्दी की गद्य-शैली को विकसित तथा उन्नत करने का काम पत्रकारिता के पुराने आचार्यों ने अपने समय में किया था उसी प्रकार सुरुचिपूर्ण साहित्य उत्पन्न करना आज के पत्रकारों का कर्त्तव्य होना चाहिये।

आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते समय हम यह कहते नहीं अघाते कि उन्होंने सहस्रों नये और सुयोग्य लेखक तैयार किये। समाज और साहित्य के प्रति पत्रकार का यह भी एक बड़ा कर्त्तव्य है। आज हममें से कितने पत्रकार या सम्पादक इस कर्त्तव्य की ओर ध्यान देते हैं? हमारे प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालजी ने एक बार कहा था कि सार्वजनिक या राजनीतिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्ति ताश के गिने-गिनाये पत्ते की तरह हैं और हम चाहे ताश को जितनी बार फेंटें, वही पुरानी सूरतें फिर-फिर सामने आती रहती हैं। हिन्दी के अच्छे समाचार-पत्रों तथा साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं का कलेवर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रायः सभी सम्पादक एक ही नाम-सूची से लेखकों और कवियों का चयन करते और उनकी सामग्री प्रकाशित करते हैं। समझा जाता है कि ख्यातनामा लेखकों से पाठक विमोहित और लुब्ध हो जायगा। कम सम्पादक यह समझ पाते हैं कि पाठक बिलकुल ठीक इसी कारण से ऊब जाता है। प्रसिद्धिप्राप्त लेखकों और कवियों की हमेशा पूछ रहेगी और उनका आदर तथा सम्मान सम्पादकों को करना ही चाहिए, किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि नये लेखकों को आगे ले आने का काम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भाषा को समृद्ध करने और साहित्य को सम्पुष्ट करने का यह एक बड़ा उपाय है। पत्रकारों का यह एक धर्म और कर्त्तव्य है। प्रायः यही बात लेखादि के विषयों के चयन के बारे में भी कही जा सकती है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हम प्रायः एक ही प्रकार की सामग्री देने लगे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि सम्पादक ने विविध प्रकार के विषयों पर सामग्री एकत्र करना दुःसाध्य काम मान लिया है। शायद इसका कारण यही है कि इन सम्पादकों ने मौलिकता के महत्त्व को विस्मृत कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पत्र-पत्रिकाएँ एक दूसरे को अपना आदर्श मानती हैं। हमारे उत्साही सम्पादक साहस करके इस लीक को लाँघकर नया मार्ग बनायें तो उन्हें पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए सामग्री का अनन्त भंडार दिखाई देगा। नये-नये विषयों का चयन कर नये-नये लेखकों को खोजकर लिखवाने की जो परम्परा आचार्य द्विवेदीजी ने चलायी थी उसे उपेक्षित कर हिन्दी पत्रकारिता कैसे पनप सकती है? कर्मठ महारथियों की हम सन्तान मानों आलसी हो गये हैं। 'सिण्डिकेटेड' (अभिपद्) लेख सस्ते होने के कारण सरलता से स्वीकृत कर लिये जाते हैं। किन्तु एक तो यह पत्र-पत्रिकाओं और दैनिक पत्रों के व्यक्तित्व को विनष्ट कर देते हैं और दूसरे पत्रकारों और सम्पादकों के बुद्धि-दारिद्र्य का विज्ञापन करते हैं। इस रोग से हिन्दी पत्रकारिता की मुक्ति शीघ्र होनी चाहिए क्योंकि एक तो उसके सामने बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है, और दूसरे उसे भारतीय पत्रकारिता के मैदान में भी साहसपूर्वक नेतृत्व करना है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के संचालकों को हिन्दी के इस महत्त्व को समझकर सम्पादक को लेख-सामग्री के पारिश्रमिक के मद में अधिक धन उपलब्ध कराना चाहिए। इससे उनका भी लाभ ही होगा।

हिन्दी पत्रकारों के सम्मुख अक्सर भारत के अँगरेजी पत्र आदर्श के रूप में उपस्थित रहते हैं। जिस दिन हम समझ लेंगे कि हम बड़ी भूल कर रहे है, उस दिन हम अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे और देश की नयी आवश्यकता के अनुसार अपने पत्रों को मौलिक बना सकेंगे तथा उन्हें स्वतन्त्र रूप और आकृति दे सकेंगे। सम्पादकीय लेख लिखते समय, आलोचना और टीका-टिप्पणी करते समय अनेक पत्र आज भी उसी लय और सुर में गायन करते सुनाई पड़ते हैं जिनमें वह देश की स्वाधीनता के पहले गाया करते थे। यदि कोई परिवर्त्तन और प्रगति हुई है तो नगण्यप्राय। आज देश की और उसके निवासियों की आवश्यकताएँ पहले की अपेक्षा भिन्न हैं। समस्याएँ भी पहले-से भिन्न हैं। उन आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्याओं के निराकरण के वह उपाय अथवा साधन अब काम नहीं आ सकते जो पहले आते थे। भारत की जनता भी अब वह नहीं रही जो पहले थी। उसका मानसिक और बौद्धिक स्तर भी ऊपर उठ रहा है और उसकी विचार-शैली भी परिष्कृत और शुद्ध हो रही है। हमारे समाचार पत्र और पत्र-पत्रिकाएँ राजनीतिक समाचारों और राजनीतिक नेताओं को अधिक महत्त्व देने के अभ्यस्त रहे हैं। आज स्थिति कुछ बदलती दिखलाई देती है किन्तु कतिपय अपरिहार्य कारणों से अभी राजनीति हमारे जीवन में मुख्य स्थान रखती है किन्तु फिर भी पहले की अपेक्षा जन-साधारण से सम्बन्ध रखनेवाले समाचारों-लेखों, कहानियों तथा अन्यान्य प्रकार की सामग्रियों का महत्त्व अधिक समझा जाने लगा है। महिलाओं और बच्चों के लिए अब अवश्य पहले की तुलना में अधिक सामग्री दी जाने लगी है। खेल-कूद, सिनेमा और व्यापार जगत् की भी कुछ खबर ली जाती है। किन्तु जनवर्ग की प्रिय अनेक सामग्री आज भी उपेक्षित है। संगीत और कला, नाटक और लोकनृत्य आदि के लिए आज भी कम स्थान दिया जाता है। शायद ही कोई हिन्दी दैनिक पत्र होगा जिसके संवाददाता इन विषयों के संवाद देते हों। ग्राम भाग प्रायः उपेक्षित है। दैनिक समाचार-पत्र तो थोड़ा इसकी ओर ध्यान देने लगे हैं, क्योंकि राजनीतिक कारणों से ग्राम भाग का महत्त्व बढ़ गया है। किन्तु साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ जो साहित्यिक प्रसाधनों से अपना शृंगार करने में विशेष गर्व का अनुभव करती हैं आज भी ग्राम-निवासियों की उपेक्षा करती हैं। मेरा नम्र निवेदन है कि गाँवों में भी बहुत अधिक साहित्यिक सामग्री भरी पड़ी है और उस ओर ध्यान देकर वह वास्तव में असली भारत की सेवा कर सकेंगी। यदि इस देश में लोकतन्त्र को पनपाना है तो पत्रकारों को ग्रामों की ओर विशेष ध्यान देना होगा। सरकारी सूत्रों से ग्राम जीवन से सम्बन्धित अनेक विषयों पर अँगरेजी भाषा की पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। अँगरेजी में कई टेकनिकल पत्र-पत्रिकाएँ सरकार निकालती है। हिन्दी में गैर सरकारी क्षेत्र में ऐसे प्रयासों की भारी कमी है। सरकार जनता की होते हुए भी जनता से दूर है। इसका यह एक प्रमाण है। उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है, परन्तु हिन्दी सेवाव्रती हम पत्रकारों को जनता की इस प्रकार की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यही समय है जब साहसी हिन्दी पत्र-संचालकों और पत्रकारों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये-नये विषयों की ओर ध्यान देकर जन-सेवा का व्रत लेना चाहिए।

यह बात हमें स्वीकार करनी पड़ेगी कि हिन्दी पत्रकारिता अभी सन्तोषजनक स्थिति में नहीं है। मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं की ओर दैनिक समाचार-पत्रों के मामले में भी हमें अभी अपने देश की कई भाषाओं के पत्रों की बराबरी करने का प्रयास करना है। यह सही है कि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसा कोई एक महानगर हिन्दी-क्षेत्र में नहीं है। पचास या चालीस लाख की आबादी के नगर में कोई दैनिक पत्र बहुत शीघ्र सफल हो सकता है और इन तीनों महानगरों की स्थानीय भाषा के पत्र इस मामले में निःसन्देह भाग्यशाली हैं। दिल्ली हिन्दी क्षेत्र में है अवश्य, किन्तु वहाँ की संस्कृति का भारतीयता से नहीं के बराबर सम्पर्क है। इस कारण उसे हिन्दी क्षेत्र में गिना नहीं जा सकता। हिन्दी क्षेत्र के शेष विस्तृत भूभाग में एक-दो-लाख की आबादी के अनेक तथा १० लाख के आस-पास की आबादी के कम नगर हैं। इस कारण हिन्दी क्षेत्र के दैनिक समाचार-पत्रों को वह सफलता नहीं मिलती जो अन्यान्य भाषा-भाषी क्षेत्र के पत्रों को मिली है। आज से १५-२० वर्ष पूर्व दैनिक हिन्दी पत्रों को सम्मुख यन्त्र सम्बन्धी जो कठिनाइयाँ थीं, वह आज भी बनी हैं। हिन्दी टेलिप्रिन्टर नहीं है। जिन दो-एक हिन्दी पत्रों ने दिल्ली से अपने निजी टेलिप्रिन्टर सम्बन्ध की व्यवस्था कर ली है उन्हें भी संवाद अँगरेजी में लेने पड़ते हैं। टाइपराइटरों और कम्पोजिंग मशीनों के मामले में हिन्दी समाचार-पत्र अपनी सहोदरा भाषाओं के समाचार पत्रों से बहुत पिछड़े हुए हैं। आज भी सरकारी और गैर सरकारी विज्ञापनदाता हिन्दी की अपेक्षा अँगरेजी को प्रधानता देते हैं। यातायात की समुचित व्यवस्था न होने से ग्राम भाग में हिन्दी दैनिक पत्र शीघ्र नहीं पहुँचाये जा सकते। हिन्दी पत्रकारिता की उन्नति और विकास में यह बड़ी बाधाएँ हैं। इसको दूर करने का आन्दोलन हम पत्रकारों को करना है। समाचारों का अँगरेजी से अनुवाद कर हिन्दी में प्रकाशित करने की गुलामी हमें आज भी करनी पड़ती है। दुर्दशा यह है कि राष्ट्रपति या प्रधान मन्त्री के हिन्दी भाषण का विवरण हमें अँगरेजी में प्राप्त होता है और हम जब उसका अनुवाद कर प्रकाशित करते हैं तब न तो मूल हिन्दी भाषा की रक्षा हो पाती है और न आशय स्पष्ट हो पाता है। हिन्दी दैनिक पत्र बड़ी संख्या में अपने निजी हिन्दी संवाददाता नियुक्त नहीं कर पाते। उन्हें अँगरेजी के जूठन से काम चलाना पड़ता है।

पत्रकारिता की समस्याओं की चर्चा करते समय हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि आज जो परिस्थितियाँ हैं उनमें समाचार-पत्रों अथवा पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन तथा प्रकाशन नितान्त व्ययसाध्य-व्यवसाय हो गया है। देश-प्रेम और हिन्दी प्रेम के नाम पर सम्पादक और पत्रकार अपनी शक्ति और सामर्थ्य का भरपूर उपयोग करना चाहेगा; जो कमी होगी उसे भी दूर कर लेगा; किन्तु समुचित साधन के अभाव में उसकी रही-सही बुद्धि और क्षमता भी कुंठित और निरर्थक हो जायगी। इस बात पर विवाद करना अनावश्यक है कि पत्रकारिता मिशन है अथवा व्यवसाय। पत्रकार हिन्दी के नाम पर इसे मिशन मान लेने को तैयार हैं किन्तु पत्र-संचालक को व्यवसाय के नाम पर साधन जुटाने में हाथ पीछे नहीं खींचना चाहिए। सम्पादक की योग्यता बढ़ाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वह भी उसे सुलभ होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सम्पादकाचार्य श्रद्धेय पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के विचार ध्यान देने योग्य हैं। उनका कथन है—"पत्रकार की अवस्था के साथ पत्रों की अवस्था भी सुधरनी चाहिए। पत्रों में जो उन्नति दिखाई देनी चाहिए वह नहीं दीखती। यह खेद की बात है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि पत्रकार को अपने कार्य से जितना अनुराग होना चाहिए वह नहीं है। छः घंटे की कार्य-अवधि में यदि सम्भव न हो तो उसके बाद ग्रन्थावलोकन द्वारा पत्रकार को अपनी योग्यता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक कार्यालय में ऐसा पुस्तकालय होना चाहिए जिसमें देशी और परदेशी सामयिक पत्रों के अतिरिक्त ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ हों। सम्पादक के कहने पर कार्यालय आवश्यक ग्रन्थों का संग्रह किया करे।" सम्पादक और संचालक इस बात में सहमत होंगे कि यह साधनहीनता दूर होनी चाहिए और दोनों को मिलकर पत्रकारिता के स्तर को उन्नत करना चाहिए। "प्रिन्सिपल्स आव न्यूज पेपर मैनेजमेन्ट" नामक ग्रन्थ के प्रणेता तथा "शिकागो डेली न्यूज" के प्रकाशक श्री फैंकनाक्स का कथन है कि "समाचार-पत्र साहित्यिक वस्तु नहीं रह गया है। अब वह व्यापारिक पदार्थ हो गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने सम्पादकीय कर्त्तव्य की बलि दे दी है या उस कर्त्तव्य के लिए स्थान नहीं रह गया है। बल्कि समाचार-पत्र के प्रकाशन के व्ययसाध्य व्यवसाय हो जाने के कारण उसे जो अधिक आत्म-निर्भरता मिली है उससे उसके सम्पादकीय या साहित्यिक शाखा की शक्ति बढ़ी है और उत्तमतर समाचार-पत्रों का प्रकाशन सम्भव हो सका है। इस अवस्था से समाचार-पत्रों का प्रभाव बढ़ा है और उन्हें अपने पाठकों, विज्ञापनदाताओं तथा समाज की अधिकाधिक सेवा करने का अवसर मिला है।" साधन की दरिद्रता में पत्रकारिता कैसे पनप सकती है? हिन्दी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के संचालक इस प्रकाशक से सहमत होकर काम करें तो हिन्दी पत्रकारिता में क्रान्तिकारी काया-पलट हो जाय।

हिन्दी पत्रकारिता की जिन अनेक समस्याओं से जूझते रहने का सौभाग्य मुझे मिला है उनमें से कुछ की मैंने यहाँ चर्चा की है। फिर भी इस वक्तव्य की काया बड़ी हो गयी है। इसके लिए मैं आपका क्षमा-प्रार्थी हूँ।

केवल एक आवश्यक विषय रह गया है, जिसकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर अपना वक्तव्य समाप्त करने की अनुमति चाहूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के लेखकों और पत्रकारों को बार-बार यह उपदेश दिया जाता है कि उनको नये ढंग से हिन्दी लिखनी चाहिए। ऐसा प्रायः वह लोग कहते हैं जो हिन्दी में स्वयं लिखते नहीं। वह चाहते हैं कि जो हिन्दी वह स्वयं बोलते हैं उसीको समाचार-पत्रों और साहित्य की भाषा मान लिया जाय। आपको इस आक्षेप का उचित उत्तर देना होगा। बोलचाल की भाषा से मूर्खों और निरक्षर लोगों का काम भी जरूर चल सकता है लेकिन उसके प्रयोग से बुद्धिमान् और पढ़े-लिखे लोगों का काम नहीं चल सकता। जो लोग भाषाओं के इतिहास से परिचित हैं वह जानते हैं कि भाषा सीखने और समझने में समय लगता है। कोई भी भाषा आते-आते ही आती है। भाषा के बनने में भी समय लगता है। हिन्दी से यह अपेक्षा क्यों की जाती है कि वह एकाएक बन जाय और एकाएक सबके समझने लायक हो जाय? रूस और चीन के हिन्दी प्रेमी जो हिन्दी बोलते हैं वह हमारे प्रधान मन्त्री समझ नहीं सके। इसका हमें खेद है। उनसे हमारा निवेदन यही है कि रूसी या चीनी लोग मिहनत से हिन्दी पढ़ते हैं। हिन्दी क्षेत्र के लोग जिनका हिन्दी से सम्पर्क नहीं है; इस काम में मेहनत करना व्यर्थ समझते हैं। अँगरेजी समाचार-पत्रों की भाषा क्या गँवारू या आमफहम होती है? भारत में ऐसे बहुसंख्यक लोग हैं जो बहुसंख्यक अँगरेजों की अपेक्षा अच्छी अँगरेजी लिखते-बोलते हैं। कारण यही है कि हम अँगरेजी सीखने के लिए मिहनत करते हैं। हिन्दी पढ़ने के लिए मिहनत की जरूरत पड़ती है तो आश्चर्य की क्या बात? आरम्भ में हमने यह निवेदन किया था कि हिन्दी पत्रकारिता ने देश में राष्ट्रीय चेतना जागरित करने और हिन्दी का विकास करने का काम किया था। आज भी हमें इस देश के करोड़ों अशिक्षित तथा कुसंस्कृत लोगों को शिक्षित और संस्कार-सम्पन्न बनाना है। इनमें यहाँ से स्वदेश को वापस लौटे हुए अँगरेजों के बावरची और खानसामा भाई भी हैं जिन्हें आज के दैनिक समाचार-पत्रों की हिन्दी समझ में नहीं आती। हमें उन्हें भी समुन्नत तथा सुसंस्कृत करना है। तभी हिन्दी के प्रति हमारे सेवा-व्रत की पूर्ति होगी।

विचार-विनिमय

श्री विद्याभास्करजी के भाषण के उपरान्त विचार-विनिमय आरंभ हुआ। सबसे पहिले उत्तर प्रदेश के सूचना उप-संचालक तथा 'भारत' के भूतपूर्व सम्पादक श्री बलभद्र-प्रसाद मिश्र ने कहा कि हिन्दी पत्र इसलिए पनप नहीं पाते कि वे अँगरेजी पत्रों के साथ नत्थी हैं। हिन्दी पत्रों को उठाने के लिए यह आवश्यक है कि उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित हो।

इस संबंध में श्री मिश्र ने अपने कुछ रोचक संस्मरण सुनाये। श्री मिश्र ने बताया कि जब वे 'भारत' के संपादक थे तो एक बार तत्कालीन केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्री श्री दिवाकर से मिलने गये। उन्होंने कहा—"So you are the Hindi counterpart of Leader"

मैंने उन्हें उत्तर दिया, "आपकी इसी भावना के कारण मैं आपसे मिलने नहीं आ रहा था। आप यह क्यों नहीं सोच सकते कि 'लीडर' 'भारत' का अँगरेजी 'काउन्टरपार्ट' है?"

श्री मिश्र ने अंत में कहा कि हिन्दी पत्रों का जब अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनेगा तभी वे उन्नति कर सकेंगे।

'भारत' के संपादक श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव ने कहा कि हिन्दी पत्रों की समस्याएँ अलग हैं। इन पर विचार करने के लिए उनका अलग संगठन होना चाहिए। किंतु खेद की बात है कि ऐसा नहीं हो पाया। आवश्यकता इस बात की है कि कोई ऐसा संगठन हो जिससे हम अपनी समस्याओं पर विचार करके उनका समाधान कर सकें। यदि इस अवसर पर इस विचार को मूर्त्त रूप दिया जा सके तो यह गोष्ठी सार्थक होगी।

आपने जोर देकर कहा कि पत्रकारों को अपने सामने एक आदर्श रखना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए। आदर्शशून्य मनुष्य मनुष्य नहीं कहलाता। तब पत्रकार बिना आदर्श के कैसे पत्रकार हो सकता है? जो पत्र पत्रकारिता के आदर्श से गिरते हैं, उनसे सारी पत्रकारिता को कलंक लगता है। वे समाज की हानि करते हैं। हिन्दी पत्रकारों का संगठन बनाकर हमें अपने ऊपर स्वतः अंकुश लगाना चाहिए।

आपने हिन्दी पत्रों में भाषा की एकरूपता के अभाव की चर्चा की और संकेत किया कि एक ही पत्र एक दिन किसी स्थान अथवा व्यक्ति का नाम एक ढंग से लिखता है और दूसरे दिन दूसरे ढंग से। इससे हिन्दी पत्रों में एक-रूपता नहीं आ पाती। हिन्दी पत्रों का एक संगठन बना-कर ही इन सब समस्याओं पर विचार किया जा सकता है।

'नवजीवन' (लखनऊ) के समाचार-संपादक श्री ज्ञानचंद जैन ने कहा कि हिन्दी में आज जो पत्र निकल रहे हैं, उनको दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—एक तो वे जो स्वतंत्र रूप से निकल रहे हैं; दूसरे वे जो अँगरेजी पत्र-संस्थाओं से अँगरेजी पत्रों के साथ 'बाई-प्रोडक्ट' के रूप में निकल रहे हैं। पहली श्रेणी के पत्रों के पास जबकि साधनों का अभाव है, दूसरी श्रेणी के पत्रों के पास साधनों का अभाव न होने पर भी उनका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। वे अँगरेजी पत्रों की 'ट्र कापी' के रूप में निकलते हैं, इसीलिए उनमें कोई चमक नहीं होती। इस दृष्टि से कभी-कभी पहली श्रेणी के पत्रों में अधिक चमक और अधिक प्रतिभा दिखाई पड़ जाती है।

आपने आगे कहा—हमारे अँगरेजों ने साधनहीन होते हुए भी पत्रकारिता के क्षेत्र में जो कार्य किया, उसे देख कर आश्चर्य होता है। खेद है कि हममें आज वह 'मिशनरी' भावना नहीं रही। आज हम श्रमजीवी बन गये हैं। मैं श्रमजीवी होना बुरा नहीं मानता, परंतु मेरा विश्वास है कि हम पत्रकार लोग यदि आज भी उद्योगशील हो जायँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सारे बंधनों के बावजूद हिन्दी पत्रों की दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। यह खेद की बात है कि हिन्दी साहित्यकारों और पत्रकारों के बीच एक दीवार खड़ी हो गई है। हिन्दी पत्रों में मनमानी भाषा लिखी जाती है। कोई उस ओर देखनेवाला या बोलनेवाला नहीं है।

'सम्मेलन पत्रिका' के संपादक श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ने कहा कि पहले प्रकाशक गौण और संपादक मुख्य होता था। आज मामला उलट गया है। आज प्रकाशक ऊपर और सम्पादक नीचे है। इसका कारण यह है कि पहले के सम्पादकों में त्याग था। उन्होंने बताया कि जब वह 'देशदूत' के सम्पादक थे तो उन्हें पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। आज के युग में पत्रकार कमजोर हो गया है--अर्थ की दृष्टि से भी और व्यक्तित्व की दृष्टि से भी। इसीलिए वह अपने विचार स्वतंत्रता के साथ प्रकट नहीं कर पाता।

'अभ्युदय' के भूतपूर्व सम्पादक श्री पद्मकान्त मालवीय ने इस बात पर जोर दिया कि पत्रों का सम्मान तभी होता है जब वे एक ऊँची परंपरा का निर्वाह करते हैं। इस संबंध में आपने अपने पिता पंडित कृष्णकांत मालवीय के रोचक संस्मरण सुनाये। आपने बताया कि पंडित कृष्णकांतजी ने 'अभ्युदय' का संपादन उनके हाथ में सौंपते समय कहा था--" 'अभ्युदय' मेरी सफेद चादर है। इस पर धब्बा न लगे।" इसी प्रकार उन्होंने एक दूसरी सीख दी थी--"अभ्युदय में लिखने से पहले उसकी पुरानी फाइलें पढ़ डालो। व्यक्तियों के विचारों का विरोध किया जा सकता है, किंतु व्यक्ति का सदैव समादर करना चाहिए।"

आपने यह भी बताया कि गांधीजी किस प्रकार 'अभ्युदय' नियमपूर्वक पढ़ा करते थे।

पंडित लक्ष्मण शास्त्री ने कहा--हमारे यहाँ आंध्र में हिन्दी पत्रों में बड़ी रुचि है। हमारे यहाँसे दो हिन्दी मासिक और एक साप्ताहिक निकलता है। दक्षिण भारतीय पत्रिका में हिन्दी में तेलुगु के काव्य आदि का अनुवाद दिया जाता है।

आपने सुझाव दिया कि हिन्दी में जो पारिभाषिक शब्द बनाये जायें, उनमें दक्षिण भारतीयों का सहयोग लिया जाय। तब वे सारे देश में प्रचलित हो सकेंगे और हिन्दी पत्र यदि उनका प्रयोग करेंगे तो वे दक्षिण में भी चल सकेंगे।

श्री बालमुकुन्द गुप्त ने जोर दिया कि हिन्दी पत्रों को अंतर्राष्ट्रीय और अखिल भारतीय बनने का प्रयास त्याग कर स्थानीय प्रश्नों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, पूना की प्रतिनिधि श्रीमती ज्योत्स्ना देवधर ने मराठी पत्रकारिता पर यह निबंध प्रस्तुत किया--

साहित्य कितना ही यथार्थवादी हो, फिर भी उसमें कल्पना और स्वप्नरंजन का भाग पर्याप्त मात्रा में होता है। लेकिन पत्र-पत्रिका साहित्य में वास्तविकता अपने यथार्थ स्वरूप में दिखाई देती है। कल्पना एवं स्वप्नरंजन को वहाँ स्थान नहीं।

आज मनुष्य को आये दिन अपने जीवन का साक्षात्कार पत्र-साहित्य में होता है, शायद इसीलिए पत्र साहित्य का प्रभाव जनमत पर अधिक होता है। उसका सामर्थ्य भी अधिक होता है।

पत्र जनजागृति का और क्रांति का एक सबल साधन है और मराठी पत्रकारिता की आरंभ से यही भावना रही है। इसी भावना से महाराष्ट्र के प्रबुद्ध और कर्तृत्ववान् लोगों ने पत्रकारिता को अपने कार्यक्षेत्र के रूप में चुना। पराधीनता के अँधेरे में पत्ररूपी लौ प्रज्वलित करनी होगी--यह महाराष्ट्र के विचारवान् लोगों ने जाना। अँगरेजों का राज आया और उसके बाद करीब १५ वर्षों में ही याने १८३२ में बालशास्त्री जांभेकरजी का "दर्पण" पत्र पहले-पहल बम्बई में अवतीर्ण हुआ। उसके बाद पूना में "ज्ञानप्रकाश" शुरू हुआ। सरकार की आलोचना करने का अधिकार "ज्ञानप्रकाश" को है--अपना यह उद्देश्य इस पत्रिका ने साफ शब्दों में जनता के सामने रखा। आधुनिक मराठी साहित्य की यशस्वी नींव डालने का श्रेय इन समाचार-पत्रों को ही है। साहित्य की अन्य विधाओं का विकास भी इन पत्रों से हुआ। प्रारंभ के समाचार-पत्रों का स्वर सरकार के खिलाफ प्रखर रूप में न था फिर भी जनजागृति का ध्येय तो था ही। लेकिन जब १८७४ में मराठी भाषा के शिवाजी--विष्णु शास्त्री चिपलूणकर--"निबंधमाला" रूपी तलवार लेकर इस प्रांगण में उतरे तब उनके रूप में मराठी भाषा का पहला क्रांतिकारी पत्रकार उदीयमान हुआ। जनता की लाचारी, स्वाभिमानशून्यता, स्वार्थ, पारतंत्र्य, गरीबी देखकर उनका मन इन शृंखलाओं को तोड़ने के लिए तिलमिला उठता। उनके मन का क्रोध लावा-रस सा बाहर फूट पड़ता। उनका एक एक लेख सिंहगर्जना थी जिसे सुनकर पराधीन आत्मा काँप उठती और सरकार भी विचलित हो उठती। वह कहते थे, 'अपना एक कदम कारावास में रखकर ही मैंने देशोन्नति के लिए अपने हाथों में कलम पकड़ी है।' विष्णु शास्त्रीजी का गुरुमंत्र लेकर ही लोकमान्य तिलक और गोपाल गणेश आगरकर ने 'केसरी' नामक समाचार-पत्र को जन्म दिया। समाचार-पत्र राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों के लिए लड़ने का समाज के पास एक प्रभावशाली शस्त्र है--यह नारा सबसे पहले तिलक-आगरकर ने महाराष्ट्र में लगाया। वे राजकोप से डरे नहीं, देहदंड से घबराये नहीं और उन्हींकी तेजस्विता के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में शूर और निर्भय पत्रकारों की परंपरा शुरू हुई। पत्रकारिता के इतिहास के विकास में 'केसरी' को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। केसरी ने पत्रकारिता को एक सामर्थ्य दी, एक विशिष्ट महत्ता दी। इस समय त्याग, बलिदान और निःस्वार्थ सेवा के अग्निदिव्य से होकर ही मराठी पत्रकारों को गुजरना पड़ा। मराठी समाज की बुद्धि को एक और तेजस्वी पहलू मिला, एक अपूर्व सामर्थ्य और तेज मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराष्ट्र अपनी सीमाओं के प्रति सचेत हुआ और अपने अधिकार, अपने कर्त्तव्य के प्रति वह अधिक सजग हुआ, सचेत हुआ। इस कालखंड में शिवरामपंत परांजपे के श्रीहाथों मराठी पत्रसृष्टि में "काल" पत्र का शिलान्यास हुआ और उनके काकु एवं वक्रोक्तिपूर्ण निबंध मराठी साहित्य में हमेशा के लिए गौरव-केन्द्र बन बैठे। तिलकजी ने जो अग्निकुंड प्रज्वलित किया था उसे सतत् ज्वलंत रखने का महत् कार्य कृष्णाजी प्रभाकर खाडीलकर और न० चि० केलकर जैसे तेजस्वी पत्रकारों ने अपनी तेजस्वी कलम से किया। खाडीलकर की कलम तेज थी तो केलकरजी की कलम प्रासादिक और व्यंग्यभरी सव्यसाची प्रतिभा की सामर्थ्य लिये थी। उन्होंने पत्र-वाङ्मय के विविध अंगों को समृद्ध किया। इसी काल में अच्युतराव कोल्हटकर समाचार-पत्रों के क्षितिज पर उदीयमान हुए। उन्होंने अपनी अद्भुत रम्य शैली द्वारा जनसामान्य को समाचार-पत्रों की ओर आकर्षित किया।

अँगरेजों के आगमन के पश्चात् अँगरेजी सुधारों के कारण कुछ लोगों की आँखें चौंधिया गई थीं। बहुसंख्यक समाज अज्ञान में सोया हुआ था। चौंधियाई आँखों को खोलने के लिए और सोई हुई आँखों को जगाने के लिए लोकनेताओं ने अल्पवयस्कों के लिए पाठशालाओं तथा प्रौढ़ वयस्कों के लिए पत्र-पत्रिकाओं का सृजन किया। लोकजागरण इन पत्रों का मूल मंत्र था, जो "केसरी" के मुखपृष्ठ पर छपे हुए श्लोक में भली भाँति मुखर हुआ है। सामान्यतया समाचार-पत्रों का आदर्श रहता है समाचारों की अधिकता और मतप्रदर्शन की अल्पता। लेकिन मराठी पत्रकारिता में मतप्रतिपादन--मतप्रचार ही प्रमुख उद्देश्य रहा। महाराष्ट्र के पत्रकार कोई पूँजीपति या सेठ-साहूकार नहीं थे। वे लोकसेवक थे, सामाजिक कार्यकर्त्ता थे, वे प्रतिभाशाली लेखक थे। अतः लोककल्याण, जनहित, निःस्वार्थ सेवा उनका ध्येय रहा। और लेखक के नाते उन्होंने मराठी का लालन, पालन, पोषण किया।

सारांश, चिपलूणकर, तिलक, आगरकर, परांजपे, खाडिलकर, केलकर, कोल्हटकर--इन महानुभावों ने, इन सात शिल्पकारों ने अर्धशतक में मराठी समाचार-पत्र की एक भव्य इमारत तैयार की। इन ऋषितुल्य पुरुषों ने लोककल्याण का बाना पहनकर 'तलवार से भी कलम अधिक प्रभावशाली है' यह सत्य दुनिया के सामने स्पष्ट रूप में रखा। भारत के स्वातंत्र्य-आंदोलन को यशस्वी बनाने में काफी यश इन समाचार-पत्रों को है।

तिलकजी की मृत्यु तक का काल 'मराठी' समाचार-पत्रों के विकास का काल माना जाता है। उनकी मृत्यु से लेकर दूसरे महायुद्ध के समाप्त होने तक का २५ वर्ष का समय मराठी समाचार-पत्रों का विस्तार और प्रसार का काल माना जाता है।

महात्मा गांधीजी के आगमन के साथ भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध का दूसरा पर्व शुरू होता है। देश की राजनीति में नये मूल्य, नये साधन और नया सामर्थ्य आया। स्वातंत्र्य-युद्ध का रणनाद देश के कोने कोने में पहुँचाने का महत् कार्य इस समय भारतीय समाचार-पत्रों ने किया। असंख्य भारतीयों के मन और प्राणों में नव उत्साह और नवचैतन्य निर्माण किया। जनसामान्य की आशा-आकांक्षा से ये हमेशा तदाकार रहे और उनकी लोकप्रियता को सीमा नहीं रही। 'ज्ञान-प्रकाश' ने महाराष्ट्र में लोकप्रियता में सर्वोच्च स्थान पाया। यह पत्र महाराष्ट्र के सर्वपक्षों का व्यासपीठ बना। महाराष्ट्र में 'सकाल', 'केसरी', 'तरुण भारत', 'संध्या', 'लोकसत्ता', 'लोकमान्य', 'मराठा' आदि समाचार-पत्रों का बोलबाला इन दिनों काफी है।

१५ अगस्त १९४७ को स्वातंत्र्य का सूर्योदय हुआ और समाचार-पत्रों के संपादक कुछ पशोपेश में पड़े। जनता भी अपनी, सरकार भी अपनी। किसका पक्ष लें। अर्जुन की तरह ही इस द्विधा की मनःस्थिति में ये पत्रकार भी रहे। फिर भी स्वातंत्र्य प्राप्ति से उनकी जिम्मेवारी अनेक मात्राओं में बढ़ी है, इसके प्रति वे सजग हैं। हम आज एक वैचारिक क्रांति की देहली पर खड़े हैं--यह वे क्षणभर भूल नहीं पाये।

अपनी ध्येयवादिता के लिए मर मिटने की आकांक्षा से वृत्तपत्रों की शुरुआत हुई लेकिन आज सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति और व्यवसाय--व्यवसाय और ध्येयवादिता--इस खींचातानी में समाचार-पत्र हैं। आज वृत्तपत्र एक मिशन नहीं रहा, वह एक व्यवसाय बन गया है। कोई भी विशिष्ट सिद्धान्त या तत्त्वज्ञान का ध्येय उनके सामने नहीं रहा। आज समाचार-पत्र जितने 'अपक्ष' रहेंगे याने सैद्धान्तिक श्रद्धा से परे रहेंगे उतने ही वे यशस्वी होने की संभावना है। बड़े दुःख की बात है कि आदर्श तथा ध्येय और विशिष्ट स्तर रखने के प्रयत्न में महाराष्ट्र में कुछ अच्छे पत्र बंद हो गये। आर्थिक कठिनाइयों ने 'लोकशिक्षण', 'मौज', 'विविध ज्ञानविस्तार', 'रत्नाकर' जैसे आदर्श पत्र अस्त हो चुके हैं। इन पत्रों ने अनेक प्रथितयश लेखकों को लेखक बनने में साहाय्य किया था। लेकिन महाराष्ट्र के पाठकों ने इन्हें आश्रय नहीं दिया।

पारतंत्र्य काल में सरकार के दोषों का दिग्दर्शन करना देश का कार्य था, समाज का कार्य था। आज समाचार-पत्रों का कर्तव्य हो जाता है कि वे जनता को अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग रखें तथा लोकसत्ताक समाज निर्मित के लिए सतत् प्रयत्नशील रहें। आज वृत्तपत्र-सृष्टि का असली पुरुषार्थ-शौर्य यही होगा! नागरिक जितने नेक, निर्भय और उत्तरदायी होंगे उतनी ही सरकार अधिक कार्य-क्षम हो सकेगी।

दैनिक समाचार-पत्र हो, साप्ताहिक हो, पाक्षिक हो या मासिक पत्रिका हो--उनके सामने एक प्रमुख प्रश्न है कि पाठकों का रंजन महत्त्व का है या उद्बोधन! पाठकों का समाधान ही उनका ध्येय हो या अर्थार्जन ही प्रमुख ध्येय हो--यह प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। एक और समस्या है--वह है भाषा की.... भाषा शुद्ध हो इसमें दो मत नहीं। लेकिन वह जनसामान्य की भाषा हो या ग्रांथिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा हो! जनसामान्य की या एकदम बोली की भाषा का आग्रह रखने से कहीं भाषा की प्रौढ़ता, उसकी भाव-सघनता, अर्थसघनता पर आघात न हो! अखबारों के सामने एक और प्रश्न है कि लोग रेडियो द्वारा, चित्रपटों द्वारा समाचार पा सकते हैं फिर वे इन दैनिक समाचारों को कहाँ तक ग्रहण करेंगे! आज बहुसंख्य पत्रकार नौकर हैं, किसी के अधिकार के नीचे काम कर रहे हैं। संपादक को स्वातंत्र्य कम है--विचारों का भी और अर्थ का भी! और इसका प्रभाव होता है पत्रों के विशिष्ट स्तर पर तथा विचारों के स्वातंत्र्य पर।

मासिक पत्रिकाओं की अपनी एक समस्या है। दैनिक समाचार-पत्र अल्प मूल्य में मिल सकते हैं। लेकिन मासिक पत्रिकाओं का मूल्य काफी होता है। उसका साहित्य प्रायः विचारवानों के लिए होता है। सुशिक्षितों के लिए होता है। महाराष्ट्र में बहुसंख्यक स्त्री, पुरुष, बालक साक्षर होते हैं। करीब-करीब प्रत्येक घर में सुबह की चाय के साथ केक, ब्रेड, बिस्कुट हो या न हो, चल सकता है, लेकिन दैनिक समाचार पत्र टेबुल पर आये बिना उनकी चाय स्वादिष्ट नहीं बनती। टाँगेवाले, रिक्शावाले, टैक्सीवाले, मोची, सैलूनवाले तक दैनिक समाचार-पत्र पढ़ते दिखाई देते हैं। महाराष्ट्र के गाँवों में भी समाचार-पत्रों की काफी खपत है। अनेक जगह आप निःशुल्क सार्वजनिक वाचनालय देख सकते हैं। अनेक प्रकार के पत्र रखे जाते हैं, लोग आते हैं, पढ़ते हैं और उन पत्रों को सँभालकर रख चले जाते हैं। इन दैनिक समाचार-पत्रों में अनेक आकर्षक स्तंभ रहते हैं। भविष्य, विनोद, व्यंग्य, शब्दरंजन स्पर्धा आदि साप्ताहिकों में खासकर स्त्रियों के लिए, बच्चों के लिए विभाग रहते हैं। और आज सबसे आकर्षक स्तंभ बन गया है पाठकों के पत्रों का। पाठक इन पत्रों द्वारा अपनी शिकायत पेश करते हैं। 'आज पानी कम क्यों छूटा'--यहाँ से लेकर अष्टग्रहों तक--सब विषयों की उसमें चर्चा की जाती है। सरकारी कामों के बारे में शिकायतें भी की जाती हैं। अनेक बार अधिकारी लोग उन पर तत्क्षण कार्यवाही करते हैं। लेकिन कभी-कभी ये पत्र इतने अर्थहीन होते हैं कि यह स्तंभ लेखक की सस्ती प्रसिद्धि का एक साधनमात्र बन गया है। लेकिन इन पत्रों द्वारा स्थानीय शिकायतें खुलेआम रखी जाती हैं। इसी विचार को स्पष्ट करते हुए ३१ दिसम्बर १९६१ को महाराष्ट्र पत्र-कार सम्मेलन में--जो सांगली में आयोजित हुआ था--महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री माननीय यशवंतराव चह्वाणजी ने अपने भाषण में कहा था कि--"आज जिला-पत्रों का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। जिला-पत्रों में स्थानीय खबरों को महत्त्व मिल सकता है जिससे देश के किसी भी कोना के उपेक्षित रहने की संभावना कम होगी।

महाराष्ट्र का पाठकवर्ग अत्यंत जागरूक है। कुछ मासिक पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर स्त्रियों के चित्र हीन अभिरुचि के छपे। इसके प्रति महाराष्ट्र की स्त्रियों ने तथा विचारवंतों ने निषेधात्मक आवाज उठाई। सभा--संवाद-परिसंवाद आयोजित किये गये। परिणामतः महाराष्ट्र की पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ काफी सम्हल गये। महाराष्ट्र में मासिक पत्रिकाओं के प्रति पाठकों की विशिष्ट अपेक्षाएँ हैं.... या यूँ कहें तो गलत न होगा कि अपेक्षाएँ अधिक और पाठक कम हैं! अतः मासिक पत्रिकाओं के संपादकों के सामने एक समस्या है कि पाठकों की अपेक्षाओं को पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाय तो उसके लिए विविध साहित्य देना होगा, पत्रिका का स्वरूप आकर्षक रखना होगा, साहित्य की सब विधाओं के साथ नव रसों से रसमय बना साहित्य देना होगा। इसके लिए विपुल अर्थ की आवश्यकता होगी। पाठक कम--अर्थार्जन कम यह समस्या है! इश्तहारों से समाचार-पत्रों को काफी अर्थार्जन होता है लेकिन दैनिक पत्रों को इश्तहार अधिक मिलते हैं, मासिक पत्रिकाओं को कम।

महाराष्ट्र में खेती, उद्यम, वाणिज्य-व्यापार, संगीत, सिनेमा आदि सब प्रकार की मासिक पत्रिकाएँ निकलती हैं। 'डाइजेस्ट' के रूप में भी कुछ पत्रिकाएँ निकलती हैं जिन्हें आप ट्रेन में, बस में, बस स्टाप पर पढ़ते पा सकते हैं। महाराष्ट्र में स्त्रियों के लिए, बच्चों के लिए स्वतंत्र पत्रिकाएँ निकलती हैं। लेखिकाओं की संख्या काफी मात्रा में है। इन दिनों शृंगार प्रधान पत्रिकाएँ काफी निकलती हैं और जिसके लिए पाठक-वर्ग भी काफी मिलता है। लेकिन समाज के स्वास्थ्य की दृष्टि से यह रुचि कुपथ्य ही बनेगी। मेरे विचार में संपादकीय विभाग में स्त्रियों का प्रवेश अधिक मात्रा में होना चाहिए। सुशिक्षित स्त्रियों के लिए यह क्षेत्र योग्य है तथा यह अश्लीलता और शृंगार प्रधान साहित्य को रोकने का एक सहज स्नेहपूर्ण उपाय भी सिद्ध हो सकता है।

पत्रकार-गोष्ठी के संयोजक
श्री श्रीकृष्णदास का प्रारम्भिक वक्तव्य

मित्रो,

'सरस्वती' हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर प्रयाग में एकत्र आप पत्रकार-बन्धुओं का स्वागत करते समय मुझे अतिशय हर्ष हो रहा है। यह गर्व की बात है कि इस अवसर पर देश के विभिन्न भागों से केवल हिन्दी के ही नहीं वरन् अन्य भाषाओं के पत्रकार भी उपस्थित हैं और स्वनामधन्य आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की स्मृति-छाया में बैठकर विचार-विनिमय करने जा रहे हैं। 'सरस्वती' का प्रकाशन किस परिवेश और संदर्भ में हुआ उसका एक रेखाचित्र प्रस्तुत करना ही मेरा विशेष प्रयोजन है। इस शताब्दी के आरम्भ से आज तक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के सम्बन्ध में जो अनुभव हमें प्राप्त हुए, जिन कठिनाइयों से होकर हमारे पत्रकार बन्धुओं को गुजरना पड़ा, जिन रूपों में इन पत्रों और पत्रकारों ने राष्ट्रीय पुनर्जागरण और संघर्ष में भाग लिया, जिस प्रकार उन्होंने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यों में हिस्सा लिया, इन सब बातों से आप भली भाँति परिचित हैं। अपने विचार-विनिमय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के क्रम में आप लोग इन तमाम बातों पर यथावश्यकता प्रकाश डालेंगे ही। इसलिए मैं हिन्दी के प्रथम पत्र के प्रकाशन से लेकर 'सरस्वती' के प्रकाशन-काल तक के युग का एक संक्षिप्त पर्यवेक्षण ही प्रस्तुत करूँगा।

जैसा कि आप जानते हैं हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र "उदन्त मार्त्तण्ड" ३० मई १८२६ को कलकत्ते से निकला। "उदन्त मार्त्तण्ड" कलकत्ते के कोल्हूटोला की अमड़ातला गली की ३७ नम्बर की हवेली में स्थित मार्त्तण्ड प्रेस में मुद्रित होता था और हर मंगलवार को प्रकाशित होता था। यह पत्र २० अंगुल लम्बा और १३ अंगुल चौड़ा होता था। उसके सम्पादक थे श्री युगुल किशोर सुकुल। सुकुलजी कानपुर या उसके आसपास के रहनेवाले थे और कलकत्ते में अपने कुटुम्बियों के साथ रहते थे। यह पत्र एक साल ७ महीना निकलकर बन्द हो गया। इस पत्र के निकलने की चर्चा "समाचार-चन्द्रिका" नामक बंगला पत्रिका के ११ मार्च, १८२६ के अंक में "नागरीर नूतन समाचार-पत्र" शीर्षक से हुई थी। जब पत्र प्रकाशित हो गया तो "समाचार-दर्पण" के १७ जून, १८२६ के अंक में विज्ञप्ति प्रकाशित हुई जिसके अनुसार अँगरेजी और बंगला के पत्रों के बाद फारसी में और उर्दू में भी पत्र प्रकाशित हुए और अब नागरी भाषा में "उदन्त मार्त्तण्ड" प्रकाशित हुआ है जिससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस साप्ताहिक समाचार-पत्र के प्रत्येक अंक का मूल्य ८ आना था। उस समय सरकार फारसी के "जामे-जहांमा" और बंगला के "समाचार-दर्पण" नामक पत्रों को आर्थिक सहायता देती थी। परन्तु "उदन्त मार्त्तण्ड" को न तो कोई सरकारी सहायता मिली, न किसी लक्ष्मीपति ने ही उसे किसी प्रकार का अनुदान दिया। कलकत्ते के हिन्दी भाषी २ रु० महीना खर्च करके "उदन्त मार्त्तण्ड" खरीदने के लिए तैयार नहीं थे। फलतः ११ दिसम्बर १८२७ को "उदन्त मार्त्तण्ड" का अवसान हो गया। अंतिम अंक में लिखा गया एक दोहा मिलता है--

आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्त्तण्ड उद्दन्त।
अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अन्त॥

पाठकों से निवेदन करते हुए कहा गया है--

"जबते या कलकत्ता नगरी में उदन्त मार्त्तण्ड को प्रकाश भयो तबते लै आज दिवस लौं काहू प्रकारते ढांढस बाँध विद्या के बीज बौवै को हिन्दुस्तानियन के जड़ता के खेत को बहुबिधि जोत्यो। पहिले तो ऐसी कठोर भूमि काहे को जुतै? ताहूपै काया कष्ट कर जैसे तैसे हर चलाय वा क्षेत्र में गाँठ की न्यू बखेर बड़े यतन से सींच फल लुन्यो चाह्यो तो समय लोभ रूपी टाड़ी परि वा खेत के फल फूल सगरी सिगरी चरि गई। अब तो फिरि फिरि या नाशें क्षेत्र को गोडियो तो श्रम ही के फल फलैंगे।"

यह उद्धरण तो ब्रजभाषा में है। मध्यदेशीय भाषा में--

"इस उदंत मार्त्तण्ड के नाव पड़ने के पहिले पछाहियों के चित का कागज न होने से हमारे मनोर्थ सफल होने का बड़ा उतसा था। इसलिये लोग हमारे बिन कहे भी इस कागज की सही की बही पर सही करते गये पै हमैं पूछिये तो इनकी मायावी दया से सरकार अँगरेज कंपनी महा प्रतापी की कृपाकटाक्ष जैसे औरों पर पड़ी, वैसे पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैंने इस विषय में पाय यथोचित किया पै करम की रेख कौन मेटै? तिसपर भी सही की बही देख जी सुखी होता रहा।" सुकुलजी को सरकारी सहायता नहीं मिली। इसका उनको क्षोभ था। साथ ही उन्हें व्यवसायी समुदाय से भी कोई उत्साहवर्धक सहयोग नहीं मिला। उन्हें लगा कि "निरे परमार्थ में" उनकी "अकारथ जान" जा रही है। व्यवसायी समुदाय से बिदा लेते हुए उन्होंने लिखा--"अपने व्यवसाई भाइयों से मन की बात बताय बिदा होते हैं। हमारे कुछ कहे सुने का मन में न लाइयो। जो दैव और भूधर मेरी अंतरव्यथा और इस गुण को विचार सुधि करैंगे तो मेरे ही हैं। शुभमिति।"

पं० युगुल किशोर शुकुल को "उदन्त मार्त्तण्ड" का प्रकाशन इसलिए बन्द करना पड़ा कि उन्हें सरकार, व्यवसायी वर्ग एवं ग्राहक-वृन्द किसी से भी समुचित सहायता न मिली। बिना इन लोगों की सहायता के कोई भी समाचार-पत्र नहीं चल सकता। यह मूलभूत तथ्य "उदन्त मार्त्तण्ड" के अस्ताचलगामी होते ही स्पष्ट हो गया। यह बात "उदन्त मार्त्तण्ड" के बन्द होने के समय जितनी स्पष्ट थी उतनी ही स्पष्ट आज भी है।

इसके बाद राजा राममोहन राय ने चार भाषाओं में पत्र निकालने का उद्योग किया। अँगरेजी में 'हिन्दू हेरल्ड' नाम का पत्र निकला और बंगला, फ़ारसी तथा हिन्दी के पत्र का नाम 'बंगदूत' हुआ। हिन्दी 'बंगदूत' अठपेजी साइज का आठ पृष्ठों का होता था। इसके प्रथम वर्ष के सम्पादक श्री नीलरतन हालदार थे। यह पत्र हर रविवार को बाँसतला गली स्थित 'हिन्दू हेरल्ड' प्रेस से प्रकाशित होता था। इसका पहला अंक १० मई १८२३ को प्रकाशित हुआ था। पत्र का उद्देश्य था--

"भारतखण्ड को ठकुरई और राजनीति और बनज बैपार और विद्या-अभ्यास के प्रकार और सब देश के समाचार और देशान्तरनिकी विद्या और सुघरता के प्रसंगनि के शास्त्रार्थयुक्त यह समाचार-पत्र बंगला और काम पड़े तो पारसी और हिन्दी भाषा में प्रति सतवारे छपेगा जिस करके बहुत भान्ति के प्रयोजन के मूल संजीव होने की सम्भावना है। अधिक करके इस देश की अरधौती, इस देश और पछाहीं बैपारी का उपकार विचार नगर कलकत्ते की बड़ी बाजार के आवते बानों की अरधौती बजार भाव बंगले औ देवनागर अक्षरों में छपेगी, जिस उपलक्ष से बैपारी लोग अपने गौं के बानों का भाव समय पर जान सुचित हो लेने बेंचने का जाँच विचार कर अपने अपने धन्धे की घटी से बच बढ़ी के भागी हुआ करैं।"

'बंगदूत' में जिस प्रकार की हिन्दी प्रकाशित होती थी उसका एक नमूना देखिए--

"जो सब ब्राह्मण साङ्गवेद अध्ययन नहीं करते से सब व्रात्य हैं यह प्रमाण करने की इच्छा करके ब्राह्मण धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परायण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने जो पत्र (प्रश्न २) सांग-वेदाध्ययनहीन अनेक इस देश के ब्राह्मणों के समीप उठाया (पठाया ?) है, उसमें देखा जो उन्होंने लिखा है--'वेदाध्ययनहीन मनुष्यों के स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नहीं।"

हिन्दी प्रदेश से प्रथम हिन्दी अखबार सन् १८४५ में काशी से प्रकाशित हुआ। उस पत्र का नाम था "बनारस अखबार।" इसके सम्पादक थे मराठी भाषा-भाषी श्री गोविन्द रघुनाथ थत्ते। इसके संचालक थे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द'। वह 'हिन्दुस्तानी' के पक्षपाती थे और इसी का प्रयोग "बनारस अखबार" में होता था, यद्यपि इसका आदर्शवाक्य था--

सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार।
बुधि विवेकजन निपुन को चितहित बारम्बार॥
गिरजापति नगरी जहाँ गंग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुर को, लखो विचार विचार॥

इस अखबार की भाषा की बानगी देखिये--

"यहाँ जो पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किटसाहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बन्ने का निशान तय्यार हर चेहार तरफ से हो गया बल्कि इसके नकशे का बयान पहिले मुन्दर्ज है, सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी तन्देही मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है।"

११ जून १८४६ को इन्डियन सन प्रेस कलकत्ता से 'मार्त्तण्ड' नाम का साप्ताहिक पत्र पाँच भाषाओं में प्रकाशित हुआ। यह पत्र पाँच भाषाओं में दस पृष्ठों पर निकलता था। प्रत्येक पृष्ठ पर पाँच कालम होते थे। बायीं ओर हिन्दी और फारसी, दाहिनी ओर बंगला और उर्दू तथा बीच में अंग्रेजी में कालम रहते थे। इस प्रकार यह पत्र चार लिपियों में निकलता था। अंग्रेजी में इसका नाम 'इण्डियन सन' था और हिन्दी में 'मार्त्तण्ड'। कहा जाता है कि इसके सम्पादक मौलाना नासिरुद्दीन थे। परन्तु 'गाईद' तासी के इस कथन के सम्बन्ध में विवाद है। इसी वर्ष "ज्ञानदीप" नाम का एक और पत्र निकला। उसके भी सम्पादक के नाम के सम्बन्ध में काफी विवाद है।

१८४८ में पं० प्रेमनारायण ने इन्दौर से 'मालवा अखबार' नाम का एक पत्र प्रकाशित किया। 'मालवा अखबार' में साप्ताहिक पत्र आठ पृष्ठों का था। इसका आकार 'सरस्वती' से कुछ बड़ा था। इसका वार्षिक मूल्य १२ रुपया था।

१८४९ में कलकत्ते से 'जगद्दीपक भास्कर' नाम का एक पत्र प्रकाशित हुआ। 'जगद्दीपक भास्कर' की भाषा बंगला और हिन्दी दोनों थी।

१८५० से 'उदंत मार्त्तण्ड 'सम्पादक' श्री युगुलकिशोर सुकुल ने २३ वर्ष के विराम के बाद एक पत्र फिर निकाला जिसका नाम "सामदण्ड मार्त्तण्ड" या 'सामदण्ड मार्त्तण्ड'।

१८५० में काशी से 'सुधाकर' नाम का पत्र श्री तारामोहन मित्र नाम के बंगाली सज्जन द्वारा हिन्दी और बंगला दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुआ। १८५३ से यह पत्र केवल हिन्दी में प्रकाशित होने लगा।

१८५२ में आगरे से लाला सदासुखलाल के सम्पादकत्व में 'बुद्धि प्रकाश' नाम का एक पत्र प्रकाशित हुआ। लाला सदासुख लाल एक ही व्यक्ति नहीं थे। इस पत्र की भाषा का एक नमूना देखिये--

"इस पश्चिमी देश में बहुतों को प्रकट है कि बंगाले की रीत अनुसार उस देश के लोग आसन्न मृत्यु रोगी को गंगातट पर ले जाते हैं और यह तो नहीं करते कि उस रोगी के अच्छे होने के लिए उपाय करने में काम करे और उसे यत्न से रक्षा में रक्खें वरन् उसके विपरीत रोगी को जल के तट पर पानी में गोते देते हैं और 'हरी बोल, हरी बोल' कह कर उसका जीव लेते हैं।"

१८५२ में भरतपुर दरबार की ओर से हिन्दी और उर्दू में एक मासिक पत्र निकाला गया जिसका नाम था 'मजहरुल सरूर'। पत्र उर्दू-प्रधान था।

१८५३ में ग्वालियर से 'ग्वालियर गजट' प्रकाशित हुआ। इस पत्र के सम्बन्ध में श्री बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है--

"यह पत्र जन्म-काल से एक कालम हिन्दी और एक कालम उर्दू में बराबर निकलता आया है.... भारतवर्ष में उस समय नई रोशनी फैलने लगी थी। अखबारों की भी चर्चा फैली। हिन्दी भाषा के जो दो एक पत्र निकलते थे उनका बड़ा आदर था... हिन्दी भाषा में अखबार निकालने वालों की उस समय बड़ी कमी थी। पत्र सम्पादन के लिए एक योग सम्पादक की जरूरत पड़ी। एक अँगरेज सज्जन को योग्य सम्पादक भी मिल गया। नाम था मुंशी लछमन दास।

"जब 'ग्वालियर गजट' निकला था उस समय उसका आकार २०-२६ था। भाषा उर्दू ही थी जो फारसी अक्षरों में छपती और वही बराबर के कालम में देवनागरी अक्षरों में भी छापी जाती थी।

"जुलाई १८५६ में 'ग्वालियर गजट' उर्दू में अलग और हिन्दी में अलग छपने लगा। किन्तु हिन्दी वाले की भाषा फिर भी उर्दू ही रही।.... अब जनवरी १९०५ उसमें एक नया फेर-बदल हुआ है। 'ग्वालियर गजट' की जगह उक्त पत्र का नाम 'ग्वालियर स्टेट' होकर वह रियासत का सरकारी अखबार हो गया है। इसी वर्ष के जनवरी मास से ही 'जयाजी प्रताप' नाम का एक पत्र हिन्दी में निकला। इसके सम्पादक बाबू श्री लाल बी० ए० थे। 'जयाजी प्रताप' का वार्षिक मूल्य २ रुपया था।

आगरे से १८५५ में एक साप्ताहिक पत्र 'सर्वहितकारक' प्रकाशित हुआ। इसे श्री शिवनारायण ने प्रकाशित किया था। इसमें हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाएँ रहती थीं।

१८५५ में राजा लक्ष्मण सिंह ने 'प्रजाहितैषी' नाम का एक पत्र निकाला। इस पत्र के सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं है। १८५७ में तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम के नेता अजीमुल्ला खाँ ने "पयामे आजादी" नाम का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र प्रकाशित किया। यह पत्र दिल्ली से निकलता था। वह झाँसी से इस पत्र का मराठी संस्करण भी प्रकाशित करना चाहते थे। परन्तु स्वाधीनता संघर्ष के विफल होने के कारण यह सम्भव नहीं हुआ।

१८५४ में कलकत्ते से हिन्दी का पहला दैनिक पत्र निकला। इसे श्यामसुन्दर सेन नाम के एक बंगाली सज्जन ने प्रकाशित किया था।

१८५९ में अहमदाबाद से श्री मनसुखराम के सम्पादकत्व में एक पत्र निकला जिसका नाम 'धर्मप्रकाश' था। १८६७ में यह पत्र आगरे से हिन्दी और संस्कृत में निकलने लगा। उस समय इसके सम्पादक ज्वालाप्रसाद थे। १८९० में यह पत्र हिन्दी, उर्दू और संस्कृत में रुड़की से निकला। १९१३ में यह पत्र जालौन जिले के कोंच से निकला और १९२१ में यह पत्र कानपुर से प्रकाशित हुआ। १८५७ के संघर्ष के युग में ही आगरे से एक पत्र निकला जिसका नाम 'सूरज प्रकाश' था। इसके सम्पादक का नाम गनेशीलाल था। आगरे से ही उर्दू में शिवनारायण जी के सम्पादकत्व में एक पत्र 'मुफीद-उल-इखलाक' निकलता था। इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित होता था। इसका नाम 'सर्वोपकारक' था।

१८६५ में 'सर्वोपकारक' स्वतंत्र रूप से निकलने लगा। इसी जमाने में अजमेर से "जगलाभचिन्तक" प्रकाशित हुआ। इटावे से हकीम जवाहरलाल ने 'प्रजाहित' नाम का पाक्षिक पत्र प्रकाशित किया। १ जनवरी, १८६३ से आगरा के निकटवर्ती सिकन्दरा से ईसाइयों का पहला पत्र 'लोकमित्र' प्रकाशित हुआ। १८६४ में आगरे से 'भारत-खण्ड' नाम का पत्र निकला। १८६५ में बरेली से 'तत्वबोधिनी' पत्रिका निकली। यह पत्रिका साप्ताहिक थी और इसके सम्पादक थे श्री गुलाबशंकर। मिर्जापुर से डा० आर० सी० माथुर ने हिन्दी-उर्दू में 'खैरखाहे हिन्द' नाम का पत्र उसी जमाने में निकाला। १८६६ से लाहौर से बाबू नवीनचन्द्र राय ने एक मासिक पत्रिका निकाली जिसका नाम 'ज्ञान-प्रदायिनी पत्रिका' थी। दो वर्ष तक यह पत्रिका हिन्दी और उर्दू में निकलती रही। बाद में यह पत्रिका शुद्ध हिन्दी में निकलने लगी। १८६४ में साप्ताहिक 'जोधपुर गवर्नमेंट गजट' निकला। भाषा हिन्दी अंग्रेजी दोनों थी। १८६६ में 'मारवाड़ गजट' प्रकाशित हुआ। १८६६ में बम्बई से 'सत्य-दीपक' नाम का एक पत्र प्रकाशित हुआ। १८६७ में जम्मूनगर से 'वृत्तान्त-विलास' नाम का मासिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष आगरे से 'सर्वजनोपकारक' और रतलाम से साप्ताहिक पत्र 'रतन-प्रकाश' प्रकाशित हुए। इसके सम्पादक थे पं० किशोरीलाल नागर। यह पत्र हिन्दी और उर्दू दोनों में निकलता था। 'सर्वजनोपकारक' के सम्पादक थे पं० कृष्णचन्द्र। इसी वर्ष जम्मू से पं० वेंकटराम शास्त्री ने 'विद्या-विलास' नाम की मासिक पत्रिका हिन्दी और उर्दू दोनों में प्रकाशित की। १८६८ में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'कवि-वचन-सुधा' नाम की मासिक पत्रिका काशी से प्रकाशित की। कुछ समय बाद यह पत्रिका पाक्षिक हो गई। १८७५ में 'कवि-वचन-सुधा' साप्ताहिक हो गई। १८८५ तक साप्ताहिक 'कवि-वचन-सुधा' हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में प्रकाशित होती रही।

१८६८ में प्रयाग से मुंशी सदासुखलाल के सम्पादकत्व में 'वृत्तान्त-दर्पण' नाम का एक पत्र निकला। परन्तु दो ही वर्ष बाद वह कानून का एक पत्र बना दिया गया। १८६९ में प्रायः दस पत्र विभिन्न स्थानों से निकले। १८७० में हिन्दी में चार नये पत्र प्रकाशित हुए। इसी जमाने में शाहजहाँपुर से मुंशी बख्तावर सिंह के सम्पादकत्व में 'आर्य-दर्पण' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। शायद यह पत्र मासिक था। १८७१ में अनेक पत्र प्रकाशित हुए। पहला पत्र 'अल्मोड़ा-समाचार' था। मारवाड़ और ललितपुर से 'मुहब्बे-मारवाड़' और 'बुन्देलखण्ड' अखबार प्रकाशित हुए। मेरठ से 'म्योर गजट' और सहारनपुर से 'सान्डर्स गजट' प्रकाशित होता था। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी थी। १८७२ में 'हिन्दी-दीप्ति-प्रकाश' कलकत्ते से बाबू कार्त्तिकप्रसाद खत्री ने प्रकाशित किया। इसी वर्ष पं० केशवराम भट्ट ने माणिकतल्ला स्ट्रीट से 'बिहार-बंग' प्रकाशित किया। बाद में १८७४ में यह पत्र पटना से प्रकाशित होने लगा। इसी वर्ष 'बोधा-समाचार' और 'होल्कर सरकार गजट' प्रकाशित हुआ। आगरे से एक पत्र 'प्रेम-पत्र' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक थे पं० रुद्रदत्त शर्मा। १८७३ में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकाली। १८७४ में इसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' रखा गया। इसका पहला अंक १५ अक्तूबर १८७३ को निकला था। १८७३ की पहली अक्तूबर को अमृतसर से 'हिन्दी-प्रकाश' नाम का साप्ताहिक पत्र निकला। जबलपुर से १ मार्च, १८७३ से 'जबलपुर समाचार' प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष लखनऊ से 'भारतपत्रिका' और आगरे से 'मर्यादा पत्रिपाटी-समाचार' निकला। १८७४ में 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के साथ ही 'बाला-बोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की गई। १ जून १८७४ को इसका पहला अंक निकला। इसी वर्ष प्रयाग से 'नाटक-प्रकाश', मेरठ से 'नागरी-प्रकाश', अलीगढ़ से 'भारत-बन्धु' और दिल्ली से 'सदादर्श' पत्र निकले।

१८७५ में प्रयाग से 'धर्म-प्रकाश' और 'धर्मपत्रिका', अमृतसर से 'सकल-सम्बोधिनी पत्रिका', लुधियाने से 'नीतिप्रकाश', और बनारस से 'आनन्द-लहरी', प्रयाग से 'सुदर्शन-समाचार', बम्बई से 'सत्यमित्र' अथवा 'सत्यामृत', अलीगढ़ से 'मंगल समाचार', मिर्जापुर से 'आर्य-पत्रिका' आदि पत्र निकले।

१८७६ में भारतेन्दु की प्रेरणा से 'काशी-पत्रिका' निकली। इस वर्ष लाहौर से 'हिन्दू-बान्धव' तथा शाहजहाँपुर से 'आर्य-भूषण' प्रकाशित हुआ। १८७७ में लाहौर से पं० मुकुन्दराम ने 'मित्र-विलास' प्रकाशित किया। १८७८ में प्रयाग से 'कायस्थ समाचार' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसी वर्ष प्रयाग से 'ज्ञानचन्द्र' नाम का एक पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकला। इसी वर्ष काशी से 'आर्य-मित्र' और कलकत्ता से 'भारत-मित्र' प्रकाशित हुआ। १८७८ में ही 'जयपुर गजट' प्रकाशित हुआ। १८७९ में पं० दुर्गाप्रसाद ने 'सार-सुधा-निधि' निकाला। इसी वर्ष कलकत्ते से 'जगत्-मित्र' निकला। इसी समय कानपुर से 'शुभचिन्तक' प्रकाशित हुआ। उदयपुर से 'सज्जन-कीर्ति सुधारक' प्रकाशित हुआ। १८७९ में फर्रुखाबाद से 'भारत-सुदर्दशा प्रवर्तक' नामक पत्र निकला। १८८० में कलकत्ते से 'उचित-वक्ता' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। १८८१ में गोंडे से 'नवीन वाचक', लखनऊ से 'भारत-दीपिका', प्रयाग से 'आरोग्य-दर्पण', मिर्जापुर से 'आनन्द-कादम्बिनी' आदि प्रकाशित हुए। १८८२ में पं० देवकीनन्दन तिवारी के सम्पादकत्व में 'प्रयाग-समाचार' प्रकाशित हुआ। इसका दाम केवल १ पैसा था। स्वयं सम्पादक इस पत्र को अपने कंधे पर रखकर बेचा करते थे। पं० देवकीनन्दन तिवारी स्वतंत्र विचारों के पत्रकार थे। बाद में पं० जगन्नाथ शर्मा राज-वैद्य के हाथ में यह पत्र आ गया। इस पत्र में पं० जगन्नाथ-प्रसाद शुक्ल और गोपालराम गहमरी ने भी बाद में काम किया। इसी जमाने में प्रयाग से एक दूसरा पत्र 'बल-दर्पण', अजमेर से 'देश-हितैषी', मेरठ से 'देवनागरी-प्रचारक' आदि निकले। १८८३ में दो साप्ताहिक और पाँच मासिक पत्र प्रकाशित हुए। दिल्ली से 'इन्द्रप्रस्थ प्रकाश', बरेली से 'सत्यप्रकाश' और लखनऊ से 'दिनकर-प्रकाश' प्रकाशित होते थे। कलकत्ते से 'धर्म-दिवाकर' और कानपुर से 'ब्राह्मण' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुए। 'ब्राह्मण' के सम्पादक पं० प्रतापनारायण मिश्र बड़े तेजस्वी व्यक्ति थे। इसी वर्ष कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह का 'हिन्दुस्थान' पत्र निकला। बाद में 'हिन्दुस्थान' काला-काँकर से निकलने लगा। इस समय जो अन्य पत्र निकले उनकी संख्या एक दर्जन से ऊपर है। १८८५ में काशी से 'धर्म-प्रचारक' नाम का मासिक पत्र निकला। काशी से ही एक पत्र 'भारत-जीवन' भी प्रकाशित हुआ और कानपुर से 'वेद-प्रकाश' नामक पत्र निकला। १८८५ में 'हिन्दुस्थान' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। कानपुर से इसी समय 'भारतोदय' निकला और काशी के गुजरातियों ने एक गुजराती पत्रिका निकाली जिसमें हिन्दी को भी काफी बड़ा स्थान प्राप्त था। इस वर्ष लगभग एक दर्जन पत्र निकले। १८८६ में प्रयाग से 'रसिक-पंच' निकला और लखनऊ से 'सुख-संवाद'। १८८७ में पाँच साप्ताहिक, एक पाक्षिक और चार मासिक पत्र निकले। १८८९ में पाँच साप्ताहिक, दो पाक्षिक और पाँच मासिक पत्र निकले। १८९० में हिन्दी में ९ साप्ताहिक, ३ पाक्षिक और प्रायः बीस-बीस मासिक प्रकाशित हुए।

१८९० में 'हिन्दी बंगवासी' प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक पं० अमृतलाल चक्रवर्ती थे। यह अपने ढंग का एक नया ही अखबार था। इसमें चित्र भी छपते थे। इसी वर्ष बूँदी से 'सर्वहित' नाम का पत्र निकला। १८९१ में अनेक मासिक पत्र निकले। परन्तु सबसे मजेदार था मिर्जापुर का 'खिचड़ी समाचार'। इसी वर्ष ११ मासिक पत्र निकले। १८९२ में १५ पत्र प्रकाशित हुए। उनमें साप्ताहिक दो ही थे। १८९३ में ११ पत्र निकले जिनमें से दो साप्ताहिक पत्र थे। १८९४ में कई मासिक और साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुए। १८९५ में पाँच साप्ताहिक और ११ मासिक पत्र प्रकाशित हुए। १८९६ में काशी नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से 'नागरीप्रचारिणी' पत्रिका प्रकाशित हुई। वार्षिक मूल्य १॥) रु० था। इसके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, म०म० सुधाकर द्विवेदी, श्री कालीदास और श्री राधाकृष्णदास थे। १९०७ में यह पत्रिका मासिक हो गयी। उस समय इसके सम्पादक सर्वश्री श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, रामचन्द्र वर्मा और बेनीप्रसाद बनाये गये। १९२० में यह पत्रिका फिर त्रैमासिक हुई। उस समय इसके सम्पादक थे सर्वश्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्यामसुन्दरदास, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और मुंशी देवीप्रसाद। १८९६ में ही बम्बई से 'वेंकटेश्वर समाचार' नाम का साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। १८९७ में कानपुर से दो पत्र निकले। मुरादाबाद, बलिया, बम्बई, मथुरा, फर्रुखाबाद, मेरठ, अजमेर, लखनऊ, प्रयाग आदि से कई पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। इसी वर्ष खड्गविलास प्रेस बांकीपुर, पटना से एक पत्र निकला जिसका नाम 'शिक्षा' था।

१८९८ और १८९९ में अनेक पत्र निकले। परन्तु इनमें से अधिक का सम्बन्ध किसी जाति अथवा उपजाति से था। १९०० में मिर्जापुर से मासिक 'काव्य-कलानिधि', बम्बई से 'जैनमित्र', नरसिंहपुर से 'आर्यसेवक', काशी से 'सुदर्शन', बिलासपुर से 'छत्तीसगढ़मित्र' और कलकत्ता से 'बड़ाबाजार गजट' प्रकाशित हुए।

परन्तु इस वर्ष सबसे महत्त्वपूर्ण और युगान्तरकारी एवं लोकप्रिय पत्रिका श्री चिन्तामणि घोष के उद्योग से प्रयाग से 'सरस्वती' प्रकाशित हुई। इसको काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का सहयोग प्राप्त था। इसके प्रथम सम्पादक-मण्डल में बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिक-प्रसाद खत्री, श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, श्री किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू श्यामसुन्दरदास थे। १९०३ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के सम्पादक हुए। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और पं० देवीदत्त शुक्ल दीर्घ काल तक 'सरस्वती' से सम्बद्ध रहे। 'सरस्वती' ने आधुनिक हिन्दी साहित्य की गतिविधि को जिस प्रकार प्रभावित किया, जिस प्रकार उसका रूप-शृंगार किया, उसे प्राणवन्त बनाया, महिमा-मण्डित किया, उससे सभी लोग परिचित हैं। सम्पादकाचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने एक पूरे युग का निर्माण किया। इस युग को आज 'द्विवेदी युग' के नाम से अभिहित किया जाता है। हम उसी 'सरस्वती पत्रिका' की षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर यहाँ एकत्र हैं। हमारी कामना है कि यह पत्रिका अजर अमर रहे।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय—१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

साहित्य अकादमी के १९६२ ई० के हिन्दी-पुरस्कार विजेता

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है, जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
SARASWATI—Reg. No. A-248

कारखानेदारों तथा इन्डस्ट्रीज से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए अमूल्य पुस्तक

स्मॉल स्केल इन्डस्ट्रीज़

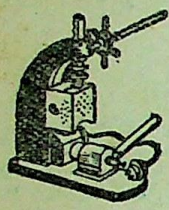

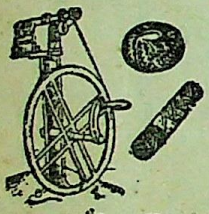

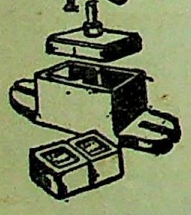

लघु उद्योग लेखक—कालीचरन गुप्ता कंसल्टिंग इंजीनियर

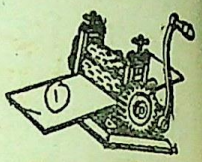
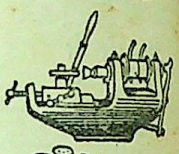
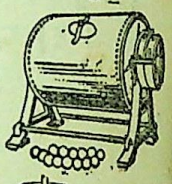
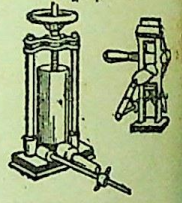

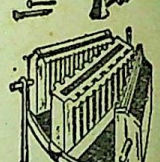
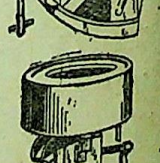

*** १०१ लघु उद्योगों की जानकारी १,००० से अधिक पृष्ठों तथा ३०० से अधिक चित्रों में देने वाली पुस्तक ***

भारत व विदेशों के अनुभवी इन्जीनियरों, कारखानेदारों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के टैक्नीकल सहयोग से लिखी गई पुस्तक, जिसमें बताया गया है कि किस तरह इन्डस्ट्री चालू करने के लिये आप भारत सरकार से बहुत कम ब्याज पर नकद कर्जे, आसान किस्तों पर मशीन और कारखान के लिये रियायती मूल्य पर जमीन, इमारत और पावर ले सकते है। पुस्तक में थोड़ी आमदनी वालों, दरम्याने दर्जे के लोगों और धनवान लागों के लिए थोड़ी दरम्याना व अधिक पूंजी से चलाई जा सकने योग्य इन्डस्ट्रीज दी गई हैं। इसमें प्रत्येक इन्डस्ट्री का स्कोप, बनाने के तरीके व फार्मूले, कच्चे माल का विवरण व मशीनों से काम लेने का तरीका, कच्चा माल व मशीनें मिलने के पते आदि विस्तार-पूर्वक समझाये गये हैं। वे सज्जन जिन की कोई इन्डस्ट्री चल रही है वे पुस्तक में वर्णित कोई इन्डस्ट्री साइड इन्डस्ट्री के रूप में चालू कर सकते हैं। देहातों व कस्बों में रहने वालों व पार्ट टाइम में इन्डस्ट्री चालू करने के इच्छुकों के लिये पावर से चलने वाली व ऐसी इन्डस्ट्रीज जिन में पावर अथवा मशीनों की जरूरत नहीं पड़ती, भी दी गई हैं।

यही नहीं बल्कि पुस्तक में पैकिंग, लेबलिंग, माल की बिक्री बढ़ाने, पाटनर-शिप, लिमिटेड कम्पनियाँ व कोआपरेटिव सोसाइटीज बनाने के नियम, विदेशों से माल इम्पोर्ट करने के तरीके आदि सैकड़ों अति लाभदायक बातों का भी समावेश किया गया है। ऐसे ग्रामवासी जिन के पास फालतू रुपया है यह पुस्तक खरीद कर अपना रुपया उद्योग में लगा कर उससे मुनाफा कमा सकते हैं। वे लोग भी जो एक बार उद्योग चला कर किसी भी कारण से बन्द कर चुके हैं, इस किताब को पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं। जिनके पास रुपया नहीं है और जो उत्साही हैं वे भी थोड़ी-थोड़ी रकम लगा कर कोई उद्योग शुरू कर सकते हैं। सफद कागज क्लाथ बाइंडिंग। पुस्तक हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में छपी है। मूल्य केवल १२) बारह रुपया, डाक-व्यय दो रुपया पृथक। गुजराती, मराठी, बंगाली, तेलगी भाषा में छपवाने की व्यवस्था की जा रही है।

एक साथ ५ किताबें मँगाने पर डाक-खर्च माफ़ ।

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मँगाने का एक मात्र स्थान—

देहाती पुस्तक भंडार

(S A 9/62) चावड़ी बाज़ार, देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

फोन नं. २२०८३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

अक्टूबर

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञान वृद्धि कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा--(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्तीदेवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम्० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि--(मू० ले० जूलेवर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए० मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

द्वीप का रहस्य--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य २·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

दृढ़ प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री राम अवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी० मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ--(मू० ले० जोन आथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्० एल्-बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी--(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

नीली झील--(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस्०। मूल्य २)

स्विस परिवार राबिंसन--(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध--(मू० ले० एच्० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्त प्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन--(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन्० वत्स, एम्० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

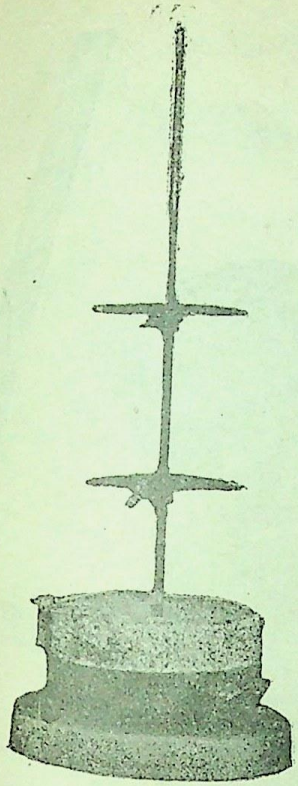

एन्यूलर वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिये कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

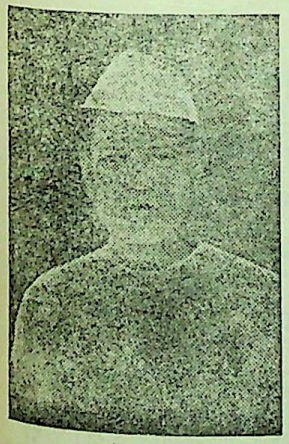

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

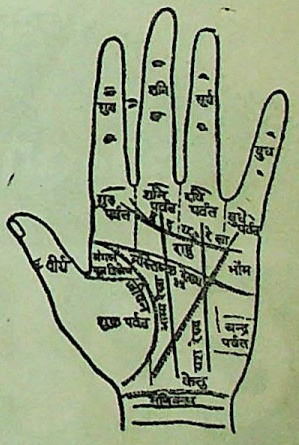

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—डा० एस० सी० जैन, एम० डी० एम० आर० पी० (लन्दन), एम० आर० सी० पी० (एडिनबर्ग) फिजीशियन, मेडिकल कालेज, लखनऊ ता० १२ जून १९५६ क्या कहते हैं :—

मुझे यह लिखते हुए हर्ष हो रहा है कि ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के एक विख्यात ज्योतिषी हस्तरेखा-विशारद और तांत्रिक हैं। लगभग सात वर्ष हुए जब श्री सिंह जी ने मेरे भविष्य जीवन के सम्बन्ध में अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सभी ही आश्चर्य रूप से सत्य सिद्ध हुईं। यहाँ तक कि मास और दिनों तक में उनकी बताई हुई, मेरे विवाह, समुद्र-यात्रा तथा कार्यलाभ की, तिथि आश्चर्य रूप से ठीक निकली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श लिवर टानिक

ओ० आर० सि० एल० का

कुमारेश

लीवर व पेट की पीड़ा की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ० आर० सि० एल० लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

माल मँगाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या **मलेरिया** में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। **पीलिया,** जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

आपकी जरूरतें और हम

अपनी इच्छानुसार जो भी वस्तु आप चाहें हमसे मँगाइये इससे समय एवं पैसों की बचत होगी। पुस्तकें, चित्र, कलेन्डर, डायरी, पंचांग, गाने बजाने के सामान, घड़ियाँ, फैन्सी वस्तुएँ आदि सुविधाजनक दामों में प्राप्त कीजिये एवं नये वर्ष का कलेन्डर प्रत्येक आर्डर के साथ मुफ्त लीजिये। सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

पैरामाउन्ट ट्रेडर्स, पोस्ट बाक्स ७८८, कलकत्ता—१

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५·२५
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में ..	५·२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
विवेकानन्दजी की कथाएँ ..	१·६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप ..	१·३७
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ..	१·१५
हिन्दू धर्म के पक्ष में ..	०·७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में ..	०·९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	०·८७

कर्मयोग	१·४०	भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग	३·००	ज्ञानयोग ..	३·००
प्रेमयोग	१·३७	सरल राजयोग	०·५०
हिन्दू धर्म	१·५०	धर्मरहस्य	१·२५
धर्मविज्ञान	१·६२	शिकागो वक्तृता	०·६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५	मरणोत्तर जीवन	०·५०
विविध प्रसंग	१·१२	चिन्तनीय बातें	१·००
मेरे गुरुदेव	०·६२	भारतीय नारी	०·७५
शिक्षा	०·६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०·५०
कवितावली	०·६२	हमारा भारत	०·६५
पवहारी बाबा	०·५०	ईशदूत ईसा	०·४०
वर्तमान भारत	०·५०	मन की शक्तियाँ	०·४०

विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज) ..	०·६५
शक्तिदायी विचार (,,) ..	०·६२
मेरी समर नीति (,,) ..	०·६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत ..	६·००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत: (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५·००

श्रीरामकृष्णवचनामृत: नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६·५०; द्वितीय भाग ६·००; तृतीय भाग ७·००

माँ सारदा: श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४·५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए:

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केश विन्यास
की पूर्णता
के लिये...

गोल्डेन आमला

केश तैल

बंगाल केमिकल

कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

गैस-वायु पेट दर्द के लिए

गैसहर पिल्स गैस, वायु, गोला, बादी, मंदाग्नि, कब्ज, पेट का दर्द, शूल, पेट का भारीपन, और गैस-वायु विकृति के कारण पैदा होने वाली शिकायतों के लिए उपयोगी, खुराक हजम करके दस्त साफ लाकर भूख बढ़ाती है। ११ वर्षों से गैस-वायु—पेटदर्द के लिये उपयोगी होने वाली आयुर्वेदिक औषधि; वैद्य, डाक्टर तथा अस्पताल में इस्तेमाल की जाती है। ५० गोलियों की छोटी शीशी रु० १·५० व १५० गोलियों की बड़ी शीशी रु० ४) वी. पी. और से० टे० खर्च अलावा।

बल-वर्धक, रक्त-वर्धक, स्फूर्ति-वर्धक

दुग्धानुपान गोलियाँ—पाचनक्रिया सुधार कर दस्त साफ लाती है, रस, रक्त-रुधिर इत्यादि सप्त धातुओं को पोषण देकर, यौवन-शक्ति, दिमागी ताकत, जीवन-शक्ति और वजन बढ़ाने वाली ३४ वर्ष की प्रसिद्ध आयुर्वेदिक औषधि, ३२ गोलियाँ छोटी शीशी रु० १·५० और ९६ गोलियाँ बड़ी शीशी रु० ४) वी. पी. खर्च अलावा। वी० पी० के लिये जामनगर लिखें।

हर जगह दवा वाले बेचते हैं। वी.पी. के लिये जामनगर लिखें।

बनानेवाले—दुग्धानुपान फार्मेसी, गांधी चौक, 'दुग्धानुपान भवन', जामनगर (सौराष्ट्र)

होलसेल स्टाकिस्ट : बम्बई—बीछीं ब्रदर्स, ७९ प्रिसेंस स्ट्रीट। देहली—जमनादास कं० चांदनी चौक। देहली—कांतिलाल आर० परीख, चांदनी चौक। वाराणसी—राधेलाल संस बैटरीवाला, चौक। कलकत्ता—सौराष्ट्र स्टोर्स, १८ मल्लिक स्ट्रीट। कानपुर—प्रवीणचन्द जयन्तीलाल ५८-७७ बिरहाना रोड। नागपुर—अनन्तराय ब्रदर्स कीराना ओली। जबलपुर—खुन्नीलाल छिंगेलाल। लखनऊ—इन्द्रचन्द कं०, चौक। इलाहाबाद—चंपकलाल कं०, ४६ जोनस्टनगंज।

अपने रोग की सम्पूर्ण हकीकत लिख भेजें। वैद्यराज की सूचनानुसार सलाह मुफ्त लिखकर भेजी जायेगी।

लिखें—वैद्यराज पी० बो० ३२ जामनगर (सौराष्ट्र)

स्त्रियों के लिए शक्तिवर्धक
'दोना पिल्स'

खाने-पीने अहार-विहार की अनियमितता की शिकायतें, पाचन की मंदता, हाथ, पैर, कमर में दर्द, शारीरिक कमजोरी, प्रसूति के बाद की निर्बलता, खून की कमी, सगर्भावस्था की शिकायतें इत्यादि के लिए उपयोगी; शरीर में रक्त की वृद्धि, शक्ति, स्फूर्ति, चैतन्य, और तंदुरुस्ती बढ़ानेवाला स्त्रियों का आयुर्वेदिक टानिक। ४० गोली छोटी शीशी रु० १·५० और १२० गोली बड़ी शीशी रु० ४) वी० पी० अलावा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपबिलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूँदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपबिलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे बी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आने, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपये चार आने डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दाँत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आने डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खाँसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आने डाकखर्च अलग।

रूपबिलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियाँ वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ होकर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिय। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपये डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आने डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आने डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज बटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७।) सात रुपये आठ आने और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपये दो आने डाकखर्च अलग।

रूपबिलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आने डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपये आठ आने, बड़ी शीशी ४।) चार रुपये आठ आने डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर कर रंग में मिला देती है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपबिलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

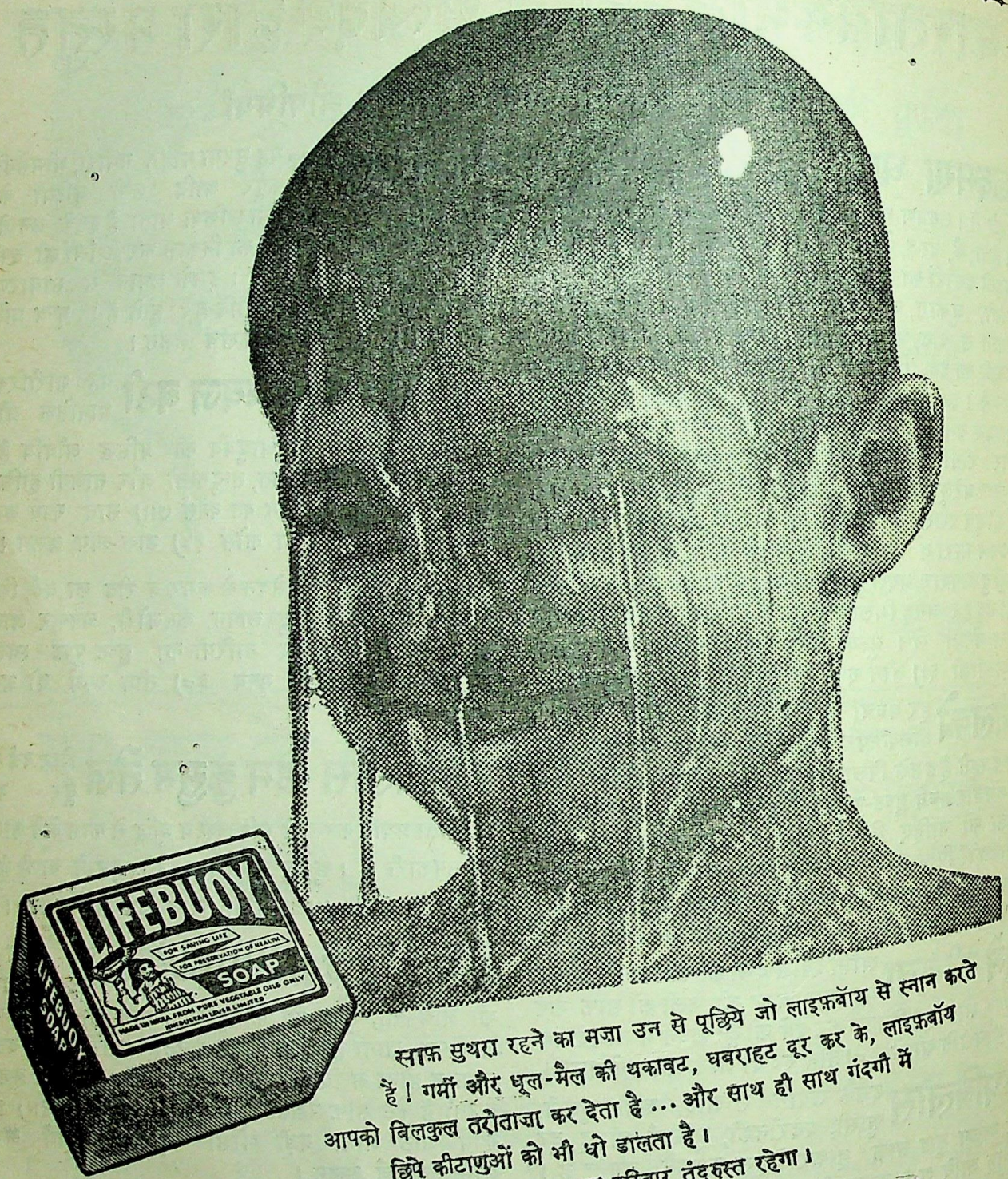

साफ़ सुथरा रहने का मज़ा उन से पूछिये जो लाइफ़बॉय से स्नान करते हैं! गर्मी और धूल-मैल की थकावट, घबराहट दूर कर के, लाइफ़बॉय आपको बिलकुल तरोताज़ा कर देता है ... और साथ ही साथ गंदगी में छिपे कीटाणुओं को भी धो डालता है।

जी हाँ, लाइफ़बॉय से आपका सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा।

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ!

L. 30-X52 BG

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

माल मँगवाते समय सरस्वती का हवाला अवश्य दीजिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय—१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १ रु० अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक में आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्त्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आसान नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी देखने को मिलती है--राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि--हिंदी ही नहीं--समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी--सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह--सुशोभित रहना चाहिये।

श्री सी० बालकृष्ण राव, भूतपूर्व नगरप्रमुख, इलाहाबाद

समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित कविताओं और लेखों-कहानियों आदि का संकलन इस विशेषांक के लगभग ८०० पृष्ठों में किया गया है। उसमें केवल सभी मुख्य रचनाकारों का ही समावेश नहीं है, प्रत्युत इसमें केवल अत्यधिक आधुनिक को छोड़कर विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों, वादों तथा शैलियों के विकास-क्रम तथा प्रारंभ-विन्दुओं का स्पष्टतः दिग्दर्शन किया जा सकता है।

वस्तुतः इन लगभग ८०० पृष्ठों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिकवादियों के पूर्व तक हिन्दी साहित्य के सब युगों का सम्पूर्ण अनुक्रम दिग्दर्शित पाया जा सकता है। हमें किसी भी ऐसी दूसरी अकेली पुस्तक का पता नहीं जो इस प्रकार एक पूर्ण पुस्तकालय का काम कर सकती हो जैसा यह सरस्वती का हीरक जयन्ती विशेषांक है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

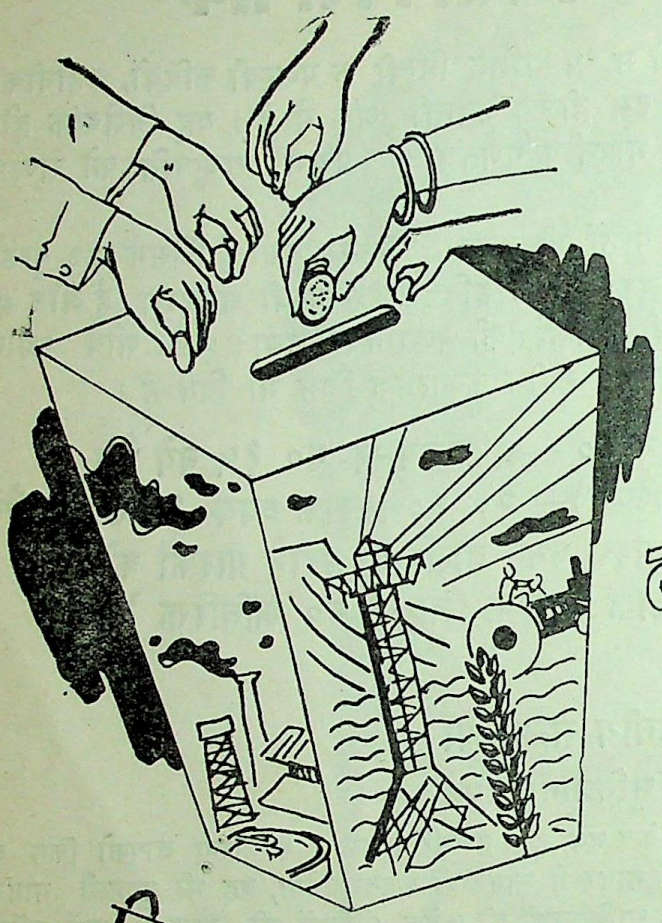

बड़ी से बड़ी पूँजी के निर्माण के मूल में

प्रत्येक व्यक्ति का प्रयास और अंशदान होता है।

राष्ट्रीय बचत योजना

प्रत्येक देशवासी को राष्ट्र की पूँजी में वृद्धि करने का सुअवसर प्रदान करती है।

विकास योजनाओं की सफलता के लिए राष्ट्रीय पूँजी बढ़ाना आवश्यक है।

अपने, अपने परिवार और अपने राष्ट्र के सुखमय भविष्य के लिए

बचत योजना की

विभिन्न मदों में रुपया लगाइये!

रा ब ४

राष्ट्रीय बचत विभाग के लिए सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रचारित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा गांधी साहित्य

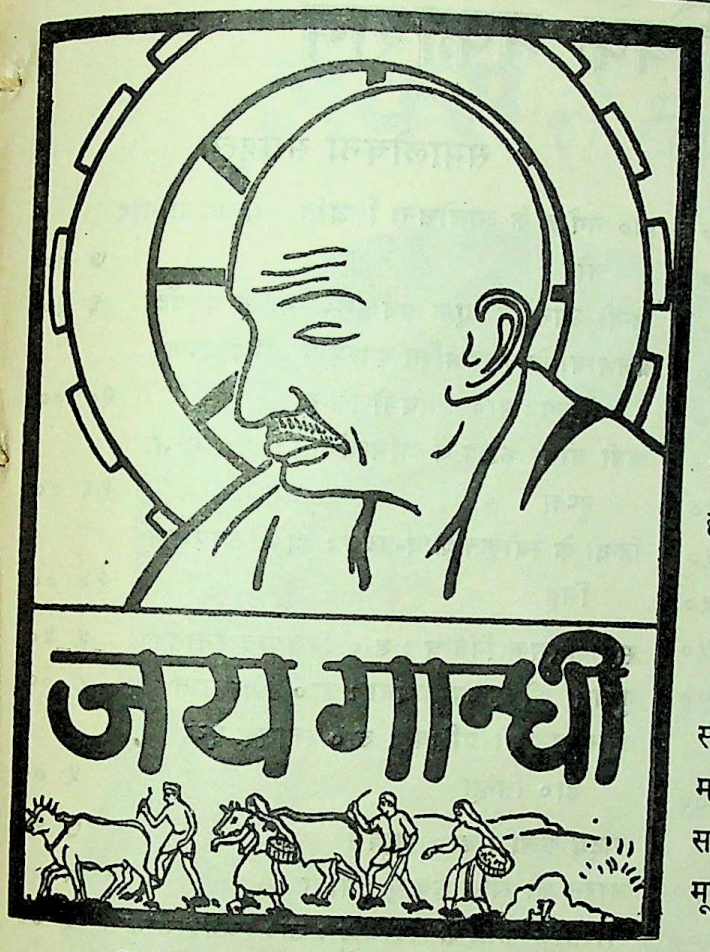

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वाङ्ग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल १५) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५० मू० ४) रुपये।

जगदालोक

लेखक : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य, जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० ३४१; मू० ४) रुपये।

युगाधार

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने में मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी हैं। सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक का मू० ३·५० नये पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० ७·५० नये पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत मात्र दो रुपए।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठनीय ! मननीय !! संग्रहणीय !!!

हमारे साहित्यिक प्रकाशन

डा० नगेन्द्र-साहित्य

भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका	१०·००
भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा	१६·००
अनुसंधान और आलोचना	४·००
कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ	३·००
देव और उनकी कविता	७·००
रीति-काव्य की भूमिका	५·५०
विचार और अनुभूति	४·५०
विचार और विवेचन	४·५०
विचार और विश्लेषण	५·५०
सियारामशरण गुप्त	५·५०
आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ	४·००

प्रमुख नवीन प्रकाशन

मालवीयजी के लेख : सं० पद्मकान्त मालवीय	८·००
मालवीयजी—जीवन झलकियाँ : सं० पद्मकान्त मालवीय	८·००
पुराण कथा-कौमुदी : पं० रघुनाथदत्त बन्धु	१०·००
न मीत न मंज़िल (उप०) रेवतीसरन शर्मा	५·००
हृदय का काँटा : (उप०) तेजरानी पाठक	३·००
अर्थहीन : डा० रघुवंश	४·५०
रेबेका : दाफिनी दु मोरियर	८·००
अंतराल की लहरें : आइज़क ऐसिमोव	५·००
लिच्छवियों के अंचल में : डा० जगदीशचन्द्र जैन	३·५०

समालोचना साहित्य

डा० नगेन्द्र के आलोचना सिद्धांत : नारायणप्रसाद चौबे	७·००
हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी	६·५०
ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प : डा० सावित्री सिन्हा	२०·००
खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना : डा० आशा गुप्ता	१६·००
हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबंध : डा० उदयभानु सिंह	१०·००
समीक्षात्मक निबन्ध : डा० विजयेन्द्र स्नातक	५·५०
गुप्तजी की काव्य-साधना : डा० उमाकान्त	८·००
अनुसंधान की प्रक्रिया : डा० स्नातक एवं डा० सिन्हा	५·००
नाट्य कला : डा० रघुवंश	७·५०
भारत की लोक-कथाएँ : सीता	८·००
भारतीय कला के पदचिह्न : डा० जगदीश गुप्त	५·००
प्रकृति और काव्य (हि०) : डा० रघुवंश	१२·००
" (सं०) : "	३·००
उपमा कालिदासस्य : डा० शशिभूषणदास गुप्त	
प्रेमचन्द के नारी पात्र : ओम अवस्थी	
आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप-विधाएँ : डा० निर्मला जैन	
साहित्य समीक्षा : मुद्राराक्षस	

ये पुस्तकें आपके पुस्तकालय की स्थायी निधि सिद्ध होंगी। हमारे समस्त प्रकाशनों के लिए सूचीपत्र की माँग करें। पुस्तकें अपने निकटस्थ पुस्तक-विक्रेता से अथवा सीधे हमसे प्राप्त करें।

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

'चन्द्रलोक' जवाहरनगर, दिल्ली—६

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीदा रहमान से सुनिये एक रहस्य की बात...

"लक्स से मेरा रंगरूप खिल उठता है!"

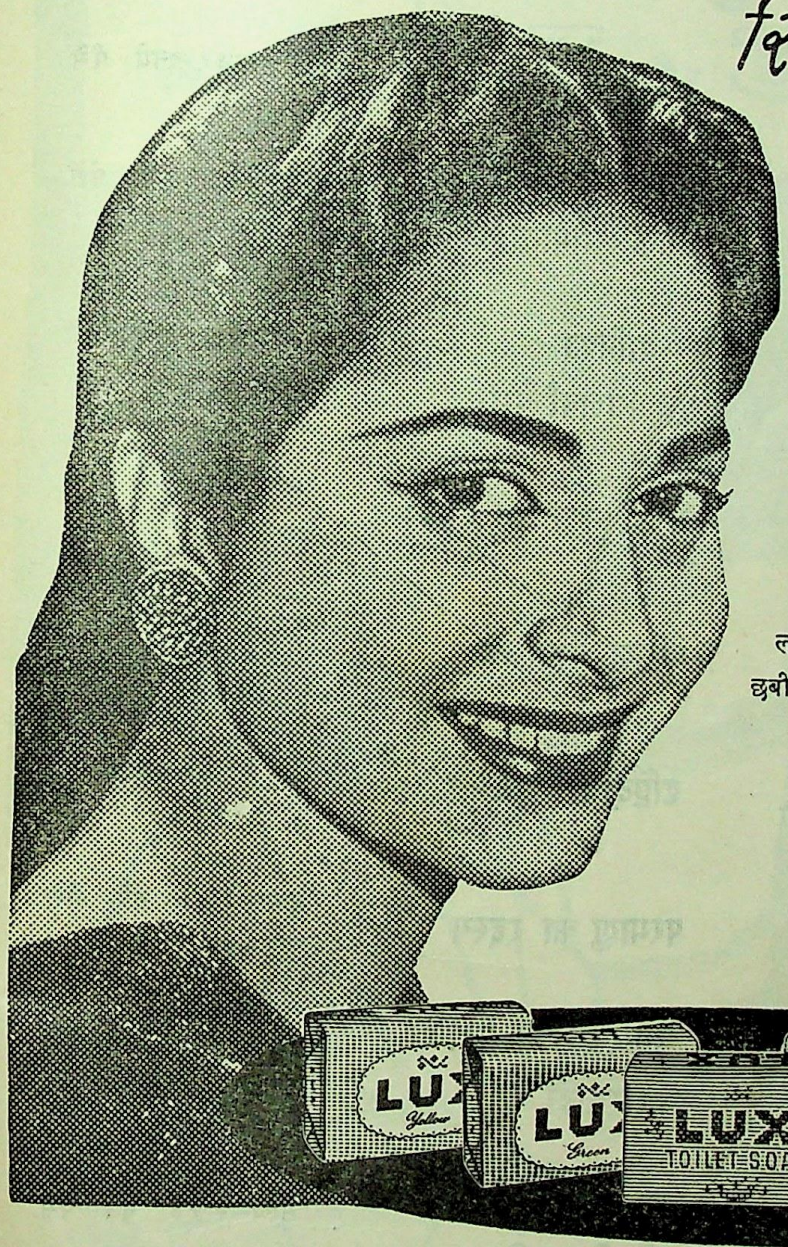

वहीदा रहमान का रूप-रहस्य आपके रंगरूप की भेंट... लक्स इस्तेमाल कीजिये... इसके मुलायम झाग और इसकी अछूती सुगंध पर आपका मन मुग्ध हो जायेगा! लक्स इस्तेमाल कीजिये... यह इंद्रधनुष के छबीले रंगों में भी मिलता है और सफ़ेद भी! आपके रंगरूप को लक्स टॉयलेट सबुन की जरूरत है। यह है...

चित्र-तारिकाओं का शुद्ध, मुलायम सौंदर्य साबुन

लक्स अब मेरे मनपसंद पांच रंगों में' सुंदरी चित्रतारिका वहीदा रहमान कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 123-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद साहित्य में अभिवृद्धि

सज-धज के साथ

ले० लॉरा इंगल्स अनु० हरवंशराय शर्मा	**बड़े वन में छोटा घर**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज अनु० रामअौतार अग्रवाल	**प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०
ले० राल्फ मूडी अनु० तिलकराज चोपड़ा	**किट कार्सन और जंगली सीमान्त**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–२०४
ले० हेलेन केलर अनु० महावीर प्र० लखेड़ा	**अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग अनु० हरवंशराय शर्मा	**प्रेयरी नगर का बालक**	मूल्य–३·२५ नये पैसे पृष्ठ–२४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी	**प्रसिद्ध वैज्ञानिक**	मूल्य–३·५० पैये पैसे पृष्ठ–२३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क अनु० माया प्रसाद त्रिपाठी	**दृष्टिदात्री**	मूल्य–४·२५ नये पैसे पृष्ठ–१७४
ले० सेलिग हेक्ट अनु० हरिश्चन्द्र	**परमाणु का रहस्य**	मूल्य–३·५० नये पैसे पृष्ठ–१९८
ले० रिचर्ड मेसन	**अमेरिका का महान् उदारवादी**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल	**आधुनिक औषधि-आविष्कार**	मूल्य–२·५० नये पैसे पृष्ठ–१५६
अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन	**लिंकन वाणी**	मूल्य–२·७५ नये पैसे पृष्ठ–१७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़ पहनने के कपड़े...

सनलाइट से

कितने सफ़ेद और उजले!

रोज़ पहनने के कपड़े—ताज़ा ताज़ा, साफ़ साफ़। और कितने सफ़ेद और उजले क्योंकि यह सनलाइट से धुले हैं। अपने घर के सभी कपड़े सनलाइट से धोइये।

सनलाइट बढ़िया झागवाला शुद्ध साबुन

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

B/33-X52 HI

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

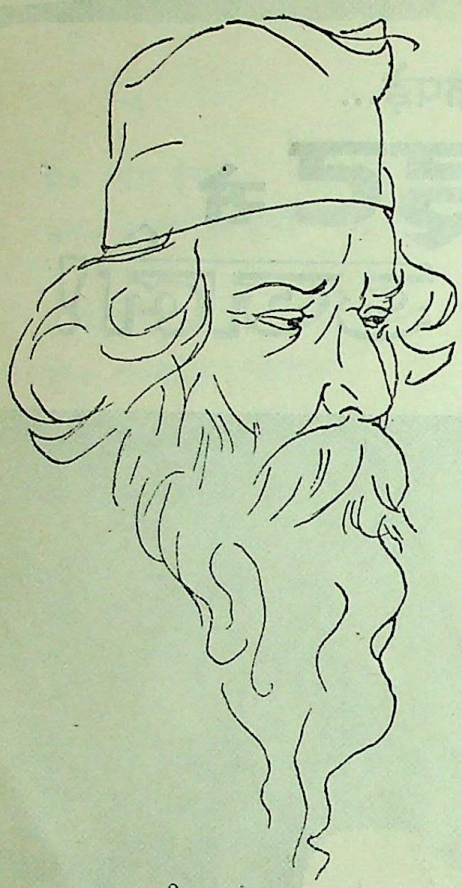

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियां	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूँज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

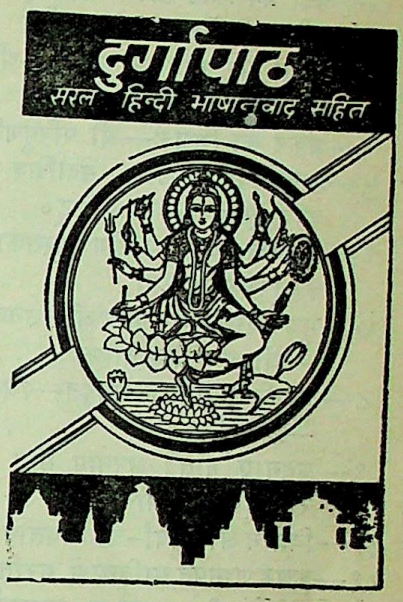

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर-एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। मूल के साथ मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि, देवी-कवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस उपयोगी ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंज), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१--सम्पादकीय ३२१
२--वेदों की काट-छाँट--महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी .. ३२९
३--हिन्दी पर दोतरफा हमले--श्री वेंकटेश नारायण तिवारी ३३२
४--शंकर का त्रिशूल--श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ३३७
५--ज्ञानदीपिका--डॉ० सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे एम० ए०, डी० लिट्० .. ३३९
६--कलकत्ते का राष्ट्रीय पुस्तकालय--श्री कस्तूरमल बाँठिया ३४५
७--भूधर नामक जैन कवि और उनकी रचनायें --श्री अगरचन्द नाहटा ३५०
८--अन्तरिक्ष-यात्रा का अग्रदूत--जिओल्कोव्स्की --श्री कौस्तुभ ३५२
९--अनगाए गीत : अपनाए मीत (गीत)-- रामानुजलाल श्रीवास्तव ३५५
१०--विज्ञान और वर्षा--श्री शिवतोष दास एम०ए० ३५६
११--कन्नड जानपद साहित्य में 'गरति' की गरिमा --श्री पी० सुब्रह्मण्य आचार्य 'रसिक', पुत्तिगे ३५८
१२--कविवर महाराज छत्रसाल--श्री हरिकृष्ण देवसरे ३६२
१३--श्री अय्यर--श्री महावीरप्रसाद मिश्र .. ३६४
१४--गीत--श्री पाण्डेय शशिभूषण प्रसाद 'शीतांशु' ३६७
१५--सरल-हिन्दी-भाषा !--श्री सू० न० व्यास ३६८
१६--महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (२०)--पंडित ब्रजमोहन व्यास ३६९
१७--आँगनों के बीच--(१) साड़ी ने धोखा दिया--प्रकाशचन्द्र यादव .. ३७७
(२) घर-गृहस्थी--कढ़ाई .. ३७८
१८--देखा-सुना--श्री मनमोहन गुप्त .. ३७९
१९--नवीन प्रकाशन ३८७
२०--१९०६ की सरस्वती--एक अशरफी की आत्म-कहानी--श्रीवेंकटेशनारायण त्रिपाठी ३९०
२१--मनोरंजक संस्मरण ३९२
२२--'सरस्वती' के हीरक जयंती अवसर पर सम्मानित व्यक्तियों को दिये गये मानपत्र ३९३

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का
अपूर्व जीवनचरित
श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य--एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान--श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स' २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

श्रीमद्भागवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ।।) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

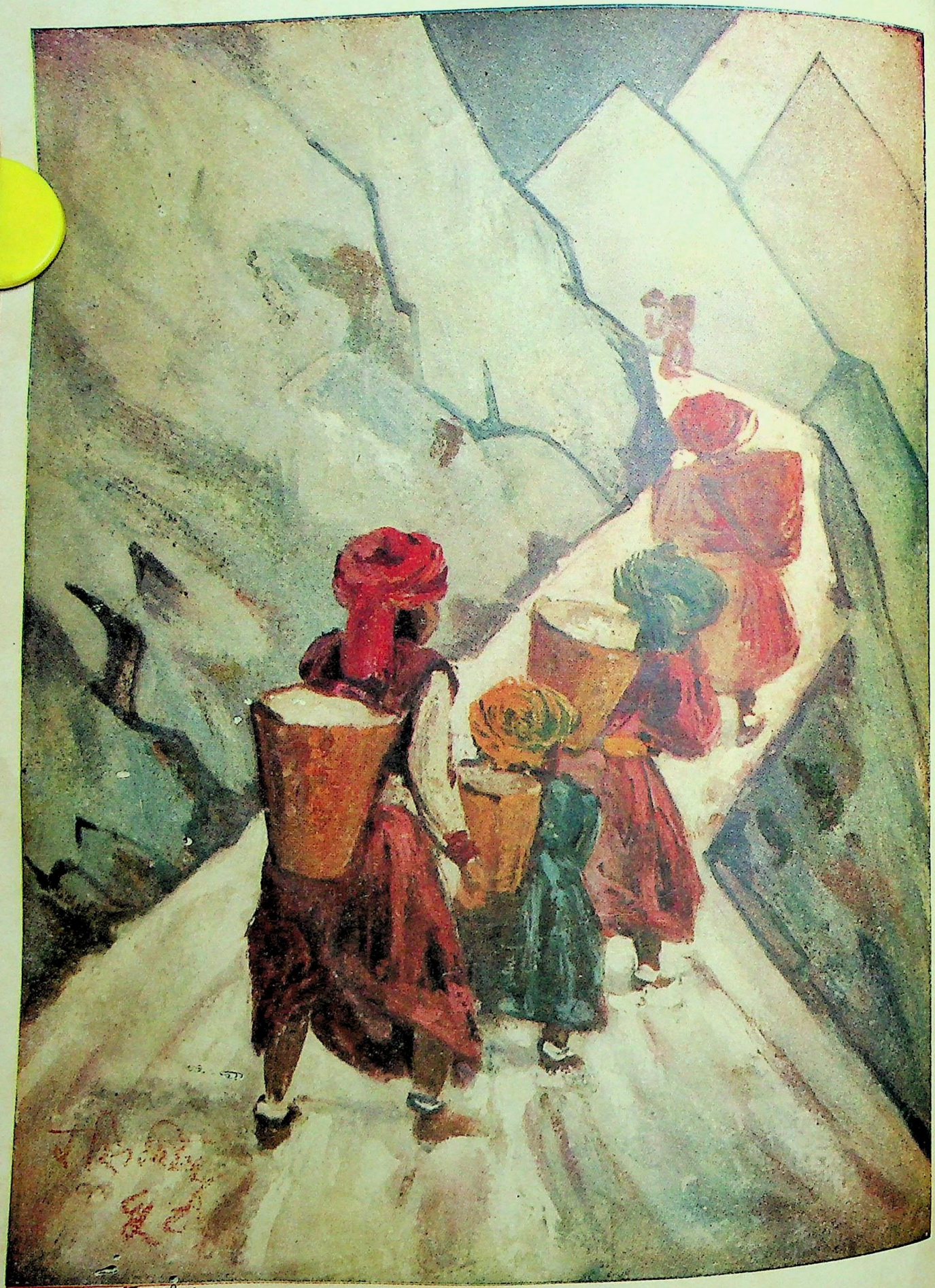

दुर्गम हिम-पथ

[प्रयाग संग्रहालय के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७५४

इलाहाबाद : अक्टूबर १९६२ : आश्विन २०१९ वि०

खण्ड २
संख्या ४

सम्पादकीय

श्री लालबहादुर शास्त्री और हिंदी—यह बात स्वयंसिद्ध और प्रत्यक्ष है कि संविधान में प्रस्तावित संशोधन करके अँगरेजी को भारत की 'सखी' राजभाषा बना देने से वह अनन्त काल के लिए भारत की वास्तविक राजभाषा बनी रहेगी, और जिस प्रकार खोटा सिक्का अच्छे सिक्के के प्रचलन को रोक देता है, उसी प्रकार अँगरेजी कभी हिंदी को भारत की वास्तविक राजभाषा न होने देगी। इसे वे लोग भी समझते हैं जो इस संशोधन का समर्थन करते हैं, या जो इच्छा से या अनिच्छा से इसे संसद में स्वीकृत कराने के लिए प्रयत्नशील हैं। कुछ लोग तो यही समझते हैं कि हिंदी को व्यावहारिक राजभाषा होने से रोकने के लिए ही अँगरेजी को 'सखी' भाषा के रूप में लाया जा रहा है। गृहमंत्री होने के कारण माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री ही को संसद में यह काला संशोधन उपस्थित करना होगा। शास्त्रीजी हिंदी-प्रेमी हैं, किन्तु उनके लिए राजनीति सबसे प्रमुख है, और राजनीति की सुविधा के सामने शायद वे हिंदी के हित को महत्त्व नहीं देते। यद्यपि श्री शास्त्री ने कभी हिंदी-आन्दोलन में सक्रिय भाग नहीं लिया, तथापि लोग उन्हें स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन का विशेष भक्त समझते रहे हैं, और इस कारण वे यह आशा नहीं करते थे कि शास्त्रीजी ही के हाथों से हिंदी के हितों का हनन होगा और उन्हींके द्वारा राजर्षि के जीवन का सबसे प्रिय और महान् कार्य नष्ट किया जायगा। यह इतिहास का कटु व्यंग्य है कि जिस प्रयाग की एक विभूति ने हिंदी को भारत की राजभाषा बनवाने में इतनी सफलता प्राप्त की, उसी प्रयाग के दो महापुरुष (श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री लालबहादुर शास्त्री) उस उपलब्धि को वास्तविक दृष्टि से विफल किये दे रहे हैं। दो छत्रसालों को लक्ष्य करके भूषण ने लिखा था, "ये दिखौ छत्तापता, ये देखो छतसाल। ये दिल्ली की ढाल, ये दिल्ली ढाहन-वाल।" सो इसी प्रयाग ने एक साथ 'हिंदी की ढाल' और 'हिंदी ढाहनवाल' उत्पन्न किये। 'ढाल' जर्जर होकर टूट गयी। ढाहन-वाल प्रबल प्रमाणित हुए। स्वयं प्रयाग के होने के कारण और हिंदी संसार की गतिविधि से परिचित होने के कारण श्री लालबहादुर शास्त्री जानते हैं कि इस काले संशोधन के विरुद्ध हिंदी संसार की भावना कितनी तीव्र है। आज हिंदी संसार नेतृत्वहीन, मंचहीन, छिन्न-भिन्न और दिग्भ्रान्त है। इसलिए वह आज प्रभावी नहीं है। किन्तु असंतोष, विफलता की कुंठा और असफलता का कटु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव भीतर ही भीतर उसके हृदय को जला रहा है। यह सब जानते हुए श्री शास्त्री समझते हैं कि लोग उनके बारे में क्या सोचेंगे। इसीलिए तिरुपति में युवक समारोह में बोलते हुए उन्होंने इस काले संशोधन के सम्बन्ध में कहा :—

"जब तक हिंदी विकसित नहीं हो जाती, और जब तक लोग उसे अच्छी तरह से सीख नहीं लेते तब तक अँगरेजी को बनाये रखना ही पड़ेगा।

"मैं जानता हूँ कि हिंदी-भाषी लोग मेरी आलोचना करेंगे और मुझे बुरा-भला कहेंगे किन्तु विभिन्न क्षेत्रों को आपस में निकट लाने को मेरा यह कर्तव्य है कि मैं (संविधान के इस) संशोधन को (संसद में) प्रस्तुत करूँ।

"इस समय भाषा का प्रश्न विस्तृत पृष्ठभूमि में और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से देखना चाहिए। इस मामले में जल्दबाजी न करनी चाहिए और हमें अपने देशवासियों में विश्वास रखना चाहिए।

"आज अँगरेजी सभी राज्यों की साझी (कॉमन) भाषा है। राज्यों और केन्द्र के बीच पत्र व्यवहार में उसीका प्रयोग होता है। यदि अगले पाँच वर्षों में अँगरेजी का त्याग कर दिया गया तो देश अपने आप अलग-अलग भागों में विभक्त होकर बिखर जायगा और उसकी एकता समाप्त हो जायगी।"

शास्त्रीजी ने स्थिति का जो चित्र खींचा है वह आंशिक रूप में सत्य है। इस काले संशोधन को लाने के लिए कुछ तर्क आवश्यक हैं, और हम यह भी मानने को तैयार हैं कि उनमें कुछ बल भी है। किन्तु प्रश्न यह है कि जब दस वर्ष पहिले संविधान ने यह निश्चय कर दिया था कि १९६५ से हिन्दी केन्द्र की राजभाषा हो जायगी तब भारत-सरकार ने इसके लिए प्रभावी तैयारी क्यों नहीं की? क्यों आज ऐसी स्थिति है कि आज भी अँगरेजी राज्यों की साझी (कॉमन) भाषा है और हिंदी आज भी ऐसी स्थिति में नहीं लायी गयी कि उसमें काम हो सके? क्या इसका कारण सरकार की अक्षमता या अकुशलता है, या सरकार ने हिंदी का पर्याप्त प्रसार और प्रचार इसलिए नहीं किया कि वह संविधान के बावजूद अँगरेजी को वास्तविक राजभाषा बनाये रखने का निर्णय पहिले ही कर चुकी थी?

दूसरी बात, जिससे हमें सरकार के अभिप्राय पर संदेह होता है यह है कि यदि १९६५ तक भारत सरकार का सारा काम हिंदी में करना संभव नहीं है (क्योंकि सरकार उसके लिए काफी तैयारी करने में अक्षम, असफल या असावधान रही है) तो क्या इतने अनुभव के बाद वह आज यह नहीं जान सकती कि आज की परिस्थिति देखते हुए वह किस वर्ष तक हिंदी को अपनी व्यावहारिक राजभाषा बना सकेगी? यदि आवश्यक हो तो १९६५ की तिथि दस-पंद्रह वर्ष और बढ़ायी जा सकती है। किन्तु जो संशोधन लाया जा रहा है उसमें ऐसी कोई अवधि नहीं रखी गयी। अँगरेजी अनन्त काल के लिए भारत की राजभाषा (और व्यवहार में यदि एक-मात्र नहीं तो मुख्य राजभाषा) बनी रहेगी। हिंदी तभी केन्द्र की वास्तविक राजभाषा हो सकेगी जब एक असंभव शर्त पूरी हो जाय—अर्थात् जब अहिंदी-भाषी इसकी माँग करें। यह सर्व-विदित है कि कम से कम दो राज्यों के प्रभावशाली वर्ग हिंदी के घोर विरोधी हैं। हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि अहिंदी-भाषी किसी बड़े आकार में हिंदी के लिए कभी ऐसा कोई आन्दोलन करेंगे। न यह माँग होगी, और न हिंदी को अपना अधिकार मिलेगा। "न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेंगीं!" यदि सरकार वास्तविक कठिनाइयों के कारण हिंदी को उसका अधिकार नहीं दे सकती, तो इसके लिए कुछ और समय ले लेती। किन्तु जिस प्रकार से यह संशोधन लाया जा रहा है वह यही बतलाता है कि भारत सरकार अँगरेजी को इस देश में सदा-सर्वदा के लिए प्रशासन की भाषा बनाये रखना चाहती है।

दूसरी असंभव शर्त शास्त्रीजी यह लगा रहे हैं कि हिंदी तभी वास्तविक राजभाषा हो सकेगी जब अहिंदी-भाषी हिंदी सीख ही न लें, बल्कि उसे खूब अच्छी तरह से सीख लें ('Not only learn Hindi, but learn it well.')। सरकारी कर्मचारियों को हिंदी सिखाने का काम भारत सरकार के गृह विभाग का है। उसने जगह-जगह हिंदी के शिक्षण केन्द्र खोल रखे हैं। किन्तु उनमें उपस्थित होना या उनकी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं है। सीखनेवालों को (जो प्रौढ़ावस्था के हैं) अपने कार्यालय के समय में ही कुछ समय देना पड़ता है। हिंदी सीखने से उन्हें कोई श्रेय नहीं मिलता, और न सीखने से कोई हानि ही होती है। यदि कुछ दिनों कुछ लोग थोड़ी बहुत हिंदी सीखते भी हैं तो कार्य में उसका उपयोग न करने के कारण वे शीघ्र ही उसे भूल जाते हैं। अतएव जिस ढंग से उन्हें हिंदी सिखलायी जा रही है, उससे क्या सब कर्मचारी उसे सीखेंगे? और जो सीखेंगे भी उनसे वर्तमान स्थिति में उसे 'खूब अच्छी तरह' से सीखने की अपेक्षा करना केवल मृगतृष्णा है। जहाँ व्यस्त कर्मचारियों के लिए एक नयी भाषा सीखना ऐच्छिक हो, जिसके सीखने से उन्हें कोई लाभ नहीं, न सीखने से कोई हानि नहीं, जिसका व्यवहार करने का उन्हें शायद ही कभी अवसर मिलता हो, वहाँ यह शर्त लगाना कि हिंदी तभी राजभाषा होगी जब सब लोग उसे अच्छी तरह से सीख लेंगे, ऊपर से चाहे जितनी भली मालूम होती हो, वास्तव में अव्यावहारिक है। आयरलैंड और इसराइल को अपने देशों में अपनी भाषाएँ चलानी थीं। यदि वे इस प्रकार की असंभव शर्तें लगाते तो पुरानी आइरिश भाषा और यिडिश कभी राजभाषा न हो पातीं।

एक उपाय यह था कि सरकार लोगों में देश-प्रेम और आत्म-सम्मान की भावना उत्पन्न करके उनमें हिंदी सीखने की इच्छा उत्पन्न करती। किन्तु हमारे अधिकांश नेता अधिकतर हिंदी और हिंदीवालों की भर्त्सना करके और हिंदी के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न करके, हिंदी सीखने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा को नष्ट करते रहे हैं। इसके साथ ही समय-असमय अँगरेजी की आवश्यकता, महत्त्व और अच्छाइयों पर जोर दे-देकर वे देश में अँगरेजी के अनुकूल वातावरण बनाते रहे हैं। अतएव आज जो स्थिति है उसके लिए वे ही उत्तरदायी हैं।

और अन्त में हम माननीय शास्त्रीजी की इस बात से सहमत नहीं हैं कि हिंदी विकसित भाषा नहीं है। हमें हिंदी में किसी विषय को व्यक्त करने में असुविधा या कठिनाई नहीं होती। हिंदी में सभी विषयों की उच्च स्तर की पुस्तकें हैं, और यदि उनकी संख्या कम है और यदि वे अधिक उच्च स्तर की नहीं लिखी जातीं, तो इसका कारण यह नहीं है कि हिंदी भाषा में वे लिखी नहीं जा सकतीं, बल्कि इसका कारण यह है कि देश में सर्वत्र अँगरेजी के प्राधान्य के कारण उनकी माँग नहीं है। कुछ वर्षों पहिले तक इंटरमीजिएट के स्तर की भी विज्ञान की पुस्तकें हिंदी में नहीं थीं, किन्तु जब हिंदी इंटर की शिक्षा की माध्यम बना दी गयी तो विज्ञान की प्रत्येक शाखा में संतोषजनक पुस्तकें तैयार हो गयीं। आज तो कई वैज्ञानिक विषयों में बी० एस्-सी० स्तर की भी पुस्तकें हिंदी में उपलब्ध हैं और इससे भी ऊँचे स्तर की कितनी ही पुस्तकें हिंदी में तैयार हो गयी हैं। अतएव यह कहना उचित नहीं है कि हिंदी भाषा अक्षम या अविकसित है। सरकार का, अपनी अकर्मण्यता को छिपाकर हिंदी को वास्तविक राजभाषा के पद से वंचित करने का कारण हिंदी की तथाकथित अक्षमता के माथे थोपना, जले पर निमक छिड़कने के समान है।

हमें शास्त्रीजी के संबंध में कोई भ्रम नहीं है। हम जानते हैं कि शास्त्रीजी हृदय से हिंदी के प्रेमी हैं, किन्तु राजनीतिक विवशता के कारण वे शिव के समान इस कड़ुए घूँट को पी रहे हैं। हमें उनके प्रति कोई रोष नहीं है। उनकी स्थिति को हम समझते हैं और इस विषम परिस्थिति में उन्हें देखकर हमारी उनके प्रति सहानुभूति है, किन्तु वे ठीक ही समझते हैं कि हिंदी संसार में उनकी इस विवशता से बहुत भ्रम फैलेगा। जनता में अब उनकी हिंदीनिष्ठा कम से कम संदिग्ध तो समझी ही जायगी। जनता यही समझेगी कि वे गाढ़े समय में हिंदी की रक्षा करने में असमर्थ रहे।

हिंदी के तीन महारथियों का निधन––हमें यह जानकर अत्यंत खेद हुआ कि पिछले कुछ सप्ताहों में हिंदी के तीन लब्धप्रतिष्ठ लेखकों का स्वर्गवास हो गया। संयोग से ये तीनों ही ऐसे अहिंदी-भाषी थे जिन्होंने हिंदी की सेवा का व्रत ले रखा था। इनमें एक महानुभाव केरली, दूसरे तमिल और तीसरे महाराष्ट्रीय थे।

श्री वासुदेवन पिल्ले त्रावनकोर निवासी थे। उन्होंने अपना जीवन केरल में हिंदी का प्रचार करने में उत्सर्ग कर दिया था। उन्होंने तिरुअनन्तपुर (त्रिवेन्द्रम) में तिरुवांकूर (ट्रावंकोर) हिंदी-प्रचार सभा की स्थापना की थी और वे बड़े उत्साह तथा बड़ी योग्यता से उसका संचालन कर रहे थे। उन्होंने हजारों केरलवासियों को हिंदी सीखने में सहायता की। केरल में (विशेष कर उसके पूर्वी भाग में) हिंदी का जो इतना सफल और व्यापक प्रचार हुआ है, उसका बहुत कुछ श्रेय उन्हींको था। वे हिंदी के लेखक भी थे और सरस्वती पर भी वे यदा कदा कृपा किया करते थे। हम १९५८ में केरल गये थे। उस समय हमें उनका निकट से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला था। हम उनकी कर्मठता, उनकी हिंदीनिष्ठा, उनके स्वभाव की मृदुलता और सौजन्य से बहुत प्रभावित हुए थे। वे गांधी युग के उन आरंभिक त्यागशील राष्ट्रभक्तों में थे जिन्होंने देश की एकता और राष्ट्र को वाणी देने के लिए हिंदीसेवा का व्रत लिया था, और वे सारे जीवन उस व्रत का पालन करते रहे। देश की जिस भावनात्मक एकता का आज इतना ढोल पीटा जा रहा है उसका मूक किंतु सक्रिय और सफल प्रचार श्री पिल्ले ने प्रायः चालीस वर्ष एकनिष्ठा से निरंतर किया। हमें उनके स्वर्गवास से बहुत दुःख हुआ। हम उनके शोकसंतप्त परिवार और तिरुवांकुर हिंदी-प्रचार सभा के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि उनका त्यागमय और कर्मठ जीवन तथा उनके आदर्श उन्हें सदैव प्रेरणा देते रहेंगे।

डा० रांगेय राघव––३९ वर्ष की अल्प आयु में रक्तकेंसर से डा० रांगेय राघव की मृत्यु हिंदी संसार के लिए एक अत्यंत दुःखद घटना है। इस अल्प आयु ही में उन्होंने जो कुछ लिखा वह गुण और परिमाण में आश्चर्यजनक है। उपन्यास, कविता, आलोचना, इतिहास आदि विषयों पर उनकी १३६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वे कई विषयों के विद्वान् थे और अच्छे विचारक भी थे। ऐसे विद्वान् सर्जनात्मक साहित्य––उपन्यास, कहानी, कविता––प्रायः नहीं लिखते, किंतु डा० रांगेय राघव में एक साथ विचारपूर्ण और सर्जनात्मक साहित्य के निर्माण की अपूर्व क्षमता थी। वे अपने समय के चोटी के उपन्यास-लेखकों में गिने जाते थे। उनके उपन्यास "घरौंदे", "कब तक पुकारूँ", "मुर्दों का टीला", "अँधेरे के जुगनू" आदि बड़े लोकप्रिय हुए। उनका वास्तविक नाम टी० बी० एन० आचार्य था और वे तमिल ब्राह्मण थे। उनके पिता श्री रंगाचारी उत्तर भारत में आकर बस गये थे। "रांगेय राघव" उनका स्वयं का रखा हुआ उपनाम था। उनकी उच्च शिक्षा आगरे में हुई थी। उन्होंने वहीं से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। वैसे वे भूतपूर्व भरतपुर राज्य के वैर नामक स्थान में बस गये थे और अधिकतर वहीं रहते थे। आरंभ में इन्होंने अधिकतर कविता लिखीं और "रूप छाया" नाम का एक प्रबंध काव्य रचा जिसमें उनकी प्रतिभा का परिचय लोगों को पहिली बार प्राप्त हुआ। वे तमिल होते हुए भी बड़े हिंदीनिष्ठ थे। उन्होंने हिंदी की सेवा ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। वे उत्तर-दक्षिण की वास्तविक और मौलिक एकता के मूर्त प्रमाण थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी लेखनी प्रौढ़ हो गयी थी और हिंदी को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। उनके देहान्त से हिंदी का एक उज्ज्वल नक्षत्र टूट गया। उनके शोकसंतप्त परिवार के प्रति हमारी आंतरिक सहानुभूति है।

पं० नरदेव शास्त्री का ८४ वर्ष की प्रौढ़ावस्था में निधन हो गया। 'सरस्वती' की हीरक जयन्ती के अवसर पर, 'सरस्वती' के पुराने लेखक के रूप में, उनका बहुमान किया गया था। उन्हें हिंदी और 'सरस्वती' से इतना प्रेम था कि ८४ वर्ष की अवस्था में भी, और लंबी बीमारी के कारण शिथिल होते हुए भी, वे ज्वालापुर से लंबी यात्रा करके प्रयाग पधारे थे। उस समय हमें और सैकड़ों हिंदी-लेखकों और हिंदी-प्रेमियों को उनके अंतिम दर्शन हुए थे। द्विवेदी युग में उन्होंने सरस्वती में लिखना आरंभ किया था। वे महाराष्ट्र ब्राह्मण थे और संस्कृत के अध्ययन के लिए, तथा आर्यसमाज की विचारधारा से अनुप्राणित होकर उत्तर भारत में चले आये थे। उनका कार्यक्षेत्र ज्वालापुर का वह गुरुकुल था जिसके साथ स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा का घनिष्ठ सम्बन्ध था। शास्त्रीजी संस्कृत, विशेषकर वेदों और दर्शन के, प्रकांड विद्वान् थे। किंतु वे केवल विद्वान् और अध्यापक ही न थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लिया करते थे और जेल भी गये थे। एक बार तो वे उत्तर प्रदेश की विधान सभा के सदस्य चुन लिये गये थे। हिंदी, राष्ट्रीय आंदोलन, आर्यसमाज और संस्कृत का अध्ययन उनके जीवन के चार मुख्य उद्देश्य थे और सारा जीवन उन्होंने इन चार उद्देश्यों की आराधना में निष्ठापूर्वक व्यतीत किया। अस्सी वर्ष की अवस्था होने पर उनके भक्तों ने उनकी जयन्ती मनायी थी जो अपने ढंग की अनोखी थी। शास्त्रीजी ने उसी अवसर पर अपनी आत्म-जीवनी लिखी। वह एक विशाल ग्रंथ के रूप में है और छप गयी है। हम अपने पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे उसे पढ़ें। वह पिछले युग के एक उत्सर्गित जीवन की सीधी-सादी और मनोरंजक एवं प्रेरक कहानी ही नहीं है, प्रत्युत उसमें पिछले छः-सात दशकों के उत्तर भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास की कितनी ही महत्त्वपूर्ण घटनाएँ और तथ्य भी संकलित हैं। शास्त्रीजी में विद्या-सुलभ शील और नम्रता थी और उनसे मिलकर सदैव नयी स्फूर्ति मिलती थी। वे पिछली शती के अंतिम भाग के उन महान् व्यक्तियों की याद दिलाते थे जिन्होंने अपने त्याग, अपनी तपस्या और कर्मठता से भारत में विचारों की क्रान्ति करके भारतीय स्वतंत्रता की नींव डाली थी। उनके निधन से हिंदी का एक महान् उन्नायक चला गया। हम उनकी स्मृति में आदर और श्रद्धा से नत हैं।

'देशी चिड़िया, विलायती बोली'——गत मास लखनऊ विश्वविद्यालय की अर्थशास्त्र-परिषद् ने एक विचारगोष्ठी आयोजित की थी। विचार का विषय था——"तीसरी पंच-वर्षीय योजना में हिंदी का स्थान।" उत्तर प्रदेश के शिक्षा-मंत्री आचार्य जुगलकिशोरजी उसके अध्यक्ष थे। प्रमुख भाषणकर्ता थे उपकुलपति श्री राव, भूतपूर्व उपकुलपति श्री रणधीरसिंह, अर्थशास्त्र के प्रोफेसर डा० बलजीत सिंह और हिंदी के प्रोफेसर डा० दीनदयाल गुप्त। यद्यपि ये सज्जन हिंदीभाषी क्षेत्र के एक प्रमुख स्थान में हिंदी के संबंध में विचार कर रहे थे, तथापि डा० दीनदयाल गुप्त को छोड़कर सभी अँगरेजी में बोले। श्री राव अहिंदी-भाषी हैं। 'भावनात्मक एकता' के नाम पर अहिंदीभाषी लोग हिंदीभाषी क्षेत्रों में आकर अधिकार के पदों पर आसीन होना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं, किंतु यहाँ बीसों वर्ष रहकर भी हिंदी सीखना अपनी शान के विरुद्ध समझते हैं। अँगरेज 'शासकों' की तरह ही टूटी-फूटी 'खानसामावाली हिंदुस्तानी' बोलना शायद इनकी दृष्टि में हिंदीभाषी क्षेत्र की 'प्रजा' के 'हाकिम' होने का आवश्यक चिह्न है। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' न्याय के अनुसार 'वायस चांसलर' का अनुसरण करना विश्व-विद्यालय के अन्य लोग अपना कर्तव्य समझते हैं। जब 'वायस चांसलर' ही अँगरेजी में बोलें, (और शायद हिंदी न समझ सकता हो,) तो विश्वविद्यालय में दूसरे लोग, विशेषकर उनके अधीनस्थ लोग, हिंदी बोलकर 'उपकुल-पति' के प्रति कैसे 'अशिष्टता' दिखलावें? आचार्य जुगल-किशोरजी अच्छी हिंदी बोल लेते हैं, किंतु अँगरेजीदाँ वायस चांसलर और विश्वविद्यालय के अँगरेजी से ओत-प्रोत वातावरण का प्रभाव उन पर इतना पड़ा कि वे भी अँगरेजी ही में बोले। शायद उन्होंने सोचा हो कि विश्व-विद्यालय के उपकुलपति और 'प्रोफेसरान' उनका हिंदी का भाषण न समझ सकेंगे। बेचारे डा० दीनदयाल गुप्त ठहरे हिंदी के प्रोफेसर——और वह भी 'हिंदीनिष्ठ'। उन्हें हिंदी में बोलना ही था, किंतु वहाँ वे 'स शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा' हो गये। इन अँगरेजीदाँ विद्वानों ने 'हिंदी' का निर्णय अँगरेजी द्वारा करके अपनी अँगरेजी-निष्ठा का प्रमाण दिया, और प्रकारान्तर से यह बतला दिया कि उनके समान 'सुशिक्षित' व्यक्ति हिंदी को इतना तुच्छ समझते हैं कि हिंदी की बात करते समय भी उसमें बोलना वे गवारा नहीं कर सकते। जहाँ इस प्रकार के वक्ता एकत्र हों, वहाँ हिंदी के लिए क्या आशा की जा सकती है? इन लोगों की कार्यशैली बड़ी सरल है: हिंदी के प्रति मौखिक सहानुभूति प्रकट करो, उसकी वास्तविक या काल्पनिक असमर्थता और असम्पन्नता पर जोर दो, (यह न स्वीकार करो कि हमें न तो हिंदी आती है और न हम हिंदी सीखने को तैयार हैं), हिंदी में पारिभाषिक शब्दों की काल्पनिक कमी का बखान करो, स्वयं हिंदी में अपने को व्यक्त करने में असमर्थ होते हुए भी हिंदी की कठिनता की भर्त्सना करते हुए गहन विषयों के लिए भी 'सरल' हिंदी के उपयोग की वकालत करो, लगेहाथ 'हिंदी इम्पीरियलिज्म' को आड़े हाथ ले लो, कल्पित 'हिंदी फैनेटिक्स' को दो-चार खरी-खोटी सुनाकर उन्हें बुजुर्गाना उपदेश दे दो, अँगरेजी की महिमा गाओ, 'अंतर्राष्ट्रीयता' के हित में देहात के किसानों और मजदूरों के लिए भी उसका ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य बतलाओ, इस बात पर जोर दो कि अँगरेजी के कारण ही भारत की एकता हुई और आज भी बनी हुई है, और चिल्लाकर कहो कि अँगरेजी का माध्यम न रहने पर शिक्षा का स्तर रसातल चला जायगा। अंत में जनता की भाषा के प्रति थोड़ी सहानुभूति दिखलाते हुए यह कहकर अपना भाषण समाप्त कर दो कि यदि प्रत्येक भारतवासी ने अँगरेजी न पढ़ी तो हमारे दिमाग की खिड़कियाँ न खुलेंगी और हमें संसार की स्वच्छ वायु न मिलेगी तथा दम घुटकर मर जायेंगे। 'पुनश्च' के रूप में यह कहकर बैठ जाओ कि हम भी चाहते हैं कि देश की भाषा हिंदी हो, किंतु अभी वह दिन दूर है। अँगरेजीभक्तों की तालियों की गड़-गड़ाहट में आपका व्याख्यान समाप्त होगा। आपसे "खुदा भी खुश रहेगा" (अधिकारी प्रसन्न होंगे) और 'शैतान भी बेज़ार न होगा।' (हिंदीवाले भी आपकी मौखिक सहानुभूति से गद्गद हो जायँगे।) अधिकांश वक्ताओं ने कम या अधिक इसी घिसी-पिटी लकीर का अनुसरण किया क्योंकि "लीक लीक गाड़ी चलै, लीकै चलै सपूत।" आचार्य जुगलकिशोरजी ने अवश्य ही अपनी सरकार की हिंदी-संबंधी शुभ कामनाएँ और सद् इच्छाएँ अँगरेजी में व्यक्त कीं। किंतु यह नहीं बतलाया कि वे सद् इच्छाएँ कब पल्लवित और पुष्पित होंगी। श्री रणधीरसिंहजी ने भी हिंदी की हिमायत की। शेष वक्ता प्रायः लकीर-लकीर ही चले।

उस हिंदी-प्रदेश में तृतीय पंचवर्षीय योजना ही नहीं, कभी भी हिंदी का भविष्य क्या हो सकता है जहाँ की राजधानी के विश्वविद्यालय में "हिंदी के स्थान" का विचार अँगरेजी में किया जाय? वहाँ क्या हिंदी कभी पनप सकती है जहाँके शिक्षामंत्री, उपकुलपति, हाई-कोर्ट के जज और प्राध्यापक वर्ग हिंदी की समस्या का विचार अँगरेजी में करें? वहाँ क्या हिंदी कभी अपना सिर ऊँचा कर सकती है जहाँ ये लोग हिंदी में न बोल सकने के लिए, अथवा न बोलने के लिए, लज्जा का भी अनुभव न करें? और अंत में, वहाँ हिंदी के लिए क्या आशा हो सकती है जहाँ की जनता में, और जहाँ के विद्यार्थियों में, अपनी मातृभाषा के प्रति इतनी उदासीनता और इतनी मातृभाषा-निरपेक्षता हो कि वे इस स्थिति को सहर्ष या चुपचाप बर्दाश्त करते रहें? जब सरकार और विश्व-विद्यालय के वरिष्ठ अधिकारियों की गोष्ठी में हिंदी की ऐसी दशा हो, तब यही परिणाम निकाला जा सकता है कि वर्तमान परिस्थिति में, और वर्तमान अधिकारियों की मानसिकता और उनके दृष्टिकोण को देखते हुए, तृतीय पंचवर्षीय योजना में हिंदी का कोई स्थान नहीं है--और शायद जब तक ये लोग बने रहेंगे तब तक उत्तर प्रदेश में हिंदी का कोई भविष्य नहीं हो सकता।

एशियायी देशों की मित्रता का कच्चा धागा--भारत ने स्वतंत्रता पाने के बाद 'अजातशत्रु' होने की कामना की। हम किसी दल में सम्मिलित नहीं हुए। विश्व-कल्याण और शान्ति के लिए हम सबके साथ सहयोग करने को तैयार रहे। हमने पंचशील का और सहअस्तित्व का सिद्धान्त प्रचारित किया। एशियायी और अफ्रीकी, विशेष-कर पड़ोसी देशों से, हमने मैत्री करने का विशेष प्रयत्न किया। किन्तु इस सर्वव्यापी राष्ट्रीय स्वार्थ के युग में इसका क्या परिणाम हुआ? उस चीन ने हमारे साथ क्या बर्ताव किया जिसने पंचशील के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था, जिसकी तिब्बत की हत्या की ओर से हमने आँखें बंद कर ली थीं और जिसे राष्ट्रसंघ में लाने के लिए हमने अमरीका को अप्रसन्न करने का खतरा मोल लिया? हमारा दूसरा पड़ोसी पाकिस्तान है जिसके "बुग्ज लिल्लाही" के बारे में कुछ कहना बेकार है। तीसरा पड़ोसी नेपाल है जो प्रत्येक दृष्टि से--जातीयता, संस्कृति, आर्थिक हित, सुरक्षा की दृष्टि से--हमारे अत्यंत निकट है। किन्तु वह भी वैमनस्य मानने लगा है। चौथा श्रीलंका और पाँचवाँ बर्मा है। इन दोनों की मित्रता निषेधात्मक है। एक तो अपने यहाँके भारतीयों को निकालने पर तुला हुआ है और दूसरे ने हमारे विरोधी चीन से समझौता कर लिया है। यह तो हमारे निकटतम पड़ोसियों की बात हुई। दूर के एशियायी पड़ोसियों में हमने मित्रता का सबसे अधिक प्रयत्न इंडोनेशिया से किया। उसकी मैत्री कच्चे धागे के समान प्रमाणित हुई है। इसका प्रमाण हाल की एक घटना से मिला। एशिया एक भौगोलिक संज्ञा है। किन्तु उसमें जितनी वंशगत, वर्णगत, धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नता है, उतनी किसी महाद्वीप में नहीं है। पश्चिमी योरोप में एक योरोपियन भावना उत्पन्न हो गयी है, उसी नमूने पर कुछ लोग एक "एशिया की भावना" भी उत्पन्न करना चाहते हैं। रूस-जापान युद्ध के समय भारत में यूरो-पियनों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में वह भावना उत्पन्न हुई थी। राधाकृष्ण मिश्र ने 'जापान के प्रति एशिया', 'टोगो की विजय भेरी' आदि कविताओं में इस भावना को व्यक्त किया था। रूसियों को योरोपियनों का प्रतिनिधि मानकर कहा गया था,--"यही हैं जो एशिया में आकर अनर्थ भारी मचाते जावें; यही हैं जिनके लिए हमारी असंख्य विधवा रुदन मचावें।" कई कारणों से वह अखिल एशियायी भावना जड़ नहीं जमा पायी। किंतु जब एक साथ कितने ही एशियायी देश स्वतंत्र हो गये तब कुछ लोगों ने उसे फिर जगाना चाहा। इंडोनेशिया के बांडुंग नगर में एक अखिल एशियायी--या यों कहा जाय कि एक अखिल-अयोरोपीय--सम्मेलन हुआ, और ऐसा समझा जाने लगा कि एशिया के नव जागृत राष्ट्र आपस में बहुत निकट आ गये हैं।

इसी अखिल एशियायी भावना को उत्पन्न और दृढ़ करने के प्रयत्नों में एक कड़ी एशियायी खेलों का भी आयोजन था। भारत में सब प्रकार के खेलों में रुचि लेनेवाले इने-गिने लोगों में श्री गुरुदत्त सोंधी भी हैं जो किसी समय पंजाब के एक प्रमुख शिक्षा अधिकारी थे। भारत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व के खेल संबंधी संगठनों में वे ऊँचे पदों पर हैं। एशियायी खेलों के आयोजन की कल्पना उनकी ही बतलायी जाती है। इस बार चौथे एशियायी खेल इंडोनेशिया में हुए। खेलों में राजनीतिक मतभेद को भुलाकर सभी देशों को बुलाया जाता है। एशिया के सभी देश निमंत्रित थे जिनमें इसराइल और ताईवान (फार्मोसा) भी थे। किंतु ऐन खेल के मौके पर इंडोनेशिया ने इन दोनों देशों के खिलाड़ियों को अपने देश में घुसने की अनुमति नहीं दी, और वे लोग इन एशियायी खेलों में सम्मिलित नहीं हो सके। इसका कारण यह मालूम होता है कि मिस्र, सऊदी अरब, सीरिया आदि अरबी राज्य इसराइल के विरुद्ध हैं। इसराइल यहूदी राज्य है, और अरबी राज्य मुसलमान हैं। इंडोनेशिया भी मुसलमानी राष्ट्र है। वह इसराइल के खिलाड़ियों को बुलाकर अरबी राज्यों को अप्रसन्न करने को तैयार नहीं था। इसी प्रकार चीन ताईवान के विरुद्ध है। आजकल इंडोनेशिया और चीन में बहुत बनती है। इसलिए राजनीतिक कारणों से इंडोनेशिया की सरकार ने इन दो एशियायी देशों को--जिनके निमंत्रित करने की पहिले उसने स्वयं सहमति दे दी थी--अपने देश में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी, और वे इन खेलों में सम्मिलित नहीं हो सके। सांस्कृतिक कार्यों और खेलों में राजनीति का लाना सभी देश अनुचित समझते हैं। जो संस्था इन एशियायी खेलों का नियंत्रण करती है, उसकी ओर से उसके उप-अध्यक्ष श्री सोंधी इंडोनेशिया में उपस्थित थे। उन्होंने इंडोनेशिया के इस कार्य का विरोध किया, और कहा कि यदि इन दो एशियायी देशों के प्रतिनिधियों को खेलों में भाग नहीं लेने दिया जायगा तो ये खेल 'मान्य' एशियायी खेल न माने जायँगे। श्री सोंधी ने यह मत एशियायी खेलों की नियामक संस्था के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त किया था। वे भारतवासी तो हैं, किंतु न तो वे वहाँ भारत-सरकार के प्रतिनिधि होकर गये थे और न किसी भारतीय संस्था ही की ओर से भेजे गये थे। किंतु उनके इस सीधे-सादे तथ्यपूर्ण वक्तव्य पर इंडोनेशिया की सरकार और निवासी इतने अधिक उत्तेजित हो गये कि श्री सोंधी का जीवन ही खतरे में पड़ गया। इतना ही नहीं, इंडोनेशिया में भारत और भारत-सरकार के विरुद्ध उग्र प्रदर्शन होने लगे। भारतीय खिलाड़ियों को अपमानित किया गया। उग्र भीड़ ने भारतीय दूतावास पर आक्रमण करके उसे हानि पहुँचायी और भारतीय झंडे को अपमानित करने का प्रयत्न किया। इतना ही नहीं, उन्होंने भारतीय राष्ट्रगान का भी अपमान किया। सारे इंडोनेशिया में भारत-विरोधी भावना की लहर दौड़ गयी। वहाँके वाणिज्य-मंत्री ने यहाँ तक कह दिया कि भारत के साथ आगे कोई व्यापारिक सौदा न किया जाय। यह सब तब हुआ जब भारत के राजदूत ने स्पष्ट कर दिया था कि श्री सोंधी न तो भारतके प्रतिनिधि हैं, और न उनके वक्तव्य से भारत का कोई संबंध है। इस घटना से स्पष्ट हो गया है कि हमारी और इंडोनेशिया की मित्रता कच्चे धागे से जुड़ी हुई है जो हल्के धक्के से भी झटका लगकर टूट जाती है। उसकी मैत्री अविश्वसनीय है और हृदय से वह भारत का मित्र नहीं है। अपने पड़ोसी एशियायी देशों की मित्रता का जो अनुभव हमें अब तक हुआ है, वह बड़ा कटु और निराशाजनक है। अतएव यह आवश्यक मालूम होता है कि हम अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर फिर से गंभीरतापूर्वक विचार करें।

भारत के समाचार-पत्र--भारत सरकार के समाचार-पत्र निबंधक प्रतिवर्ष भारत में प्रकाशित होनेवाले सामयिक पत्रों का एक विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन तैयार करके सरकार को प्रस्तुत करते हैं। ३१ दिसम्बर, १९६१ को समाप्त होनेवाले वर्ष का प्रतिवेदन उन्होंने प्रकाशित कर दिया है। इतनी शीघ्रता से इतना विवरणपूर्ण और उपयोगी प्रतिवेदन तैयार करके उसे प्रकाशित कर देने के लिए वे बधाई के पात्र हैं।

इस प्रतिवेदन से पता लगता है कि १९६१ में भारत में कुल ८,३०५ पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं। इनमें ५२९ दैनिक पत्र थे और ३३३७ मासिक पत्रिकाएँ थीं। साप्ताहिक पत्रों की संख्या १९९७ थी। शेष पाक्षिक, त्रैमासिक, वार्षिक आदि पत्र थे। सबसे अधिक दैनिक पत्र (१२३) हिंदी में निकलते थे। इसके बाद उर्दू में (६६) और अंग्रेजी में (४५)। सबसे अधिक मासिक पत्र अंग्रेजी में (७२५) उसके बाद हिंदी में (६४४) तथा गुजराती में (२४८)। कुल पत्रों की संख्या भाषावार इस प्रकार थी--

अंग्रेजी	१६९८	हिंदी	१५७५
असमिया	१८	बँगला	५५३
गुजराती	५२५	कन्नड़	२२८
मलयाली	२०९	मराठी	४२९
उड़िया	७२	पंजाबी	१५४
संस्कृत	१४	तमिल	४२०
तैलगू	२७१	उर्दू	६६१
द्विभाषी	८४७	बहुभाषी	४९५

अन्य भाषाओं में----१३६

अंग्रेजी दैनिकों का प्रचार सबसे अधिक था (१२·५५ लाख)। इसके बाद हिंदी (६·१६ लाख), तमिल (६·०५ लाख), मलयाली (५·४१ लाख), मराठी (४·०८ लाख), गुजराती (३·५७ लाख), उर्दू (२·३० लाख), बँगला (२·१० लाख), तैलगू (१·६१ लाख), कन्नड़ (१·४८ लाख), उड़िया (०·७५ लाख), पंजाबी (०·२७ लाख) और असमिया (०·०७ लाख)।

मासिक पत्रों में अंग्रेजी (२७·५९ लाख) और हिंदी (२६·११ लाख) का प्रचार सर्वाधिक था।

सब प्रकार के पत्रों का प्रचार सारे देश में १,८७,६९,००० था। भारतवर्ष की जनसंख्या देखते हुए यह बहुत कम है। इस देश में एक पत्र को अनेक लोग पढ़ते हैं। यदि प्रकाशित पत्रों की प्रतियों की संख्या ठीक भी मान ली जाय तो प्रायः २५ व्यक्ति पर एक प्रति पड़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो पढ़नेवाले हैं, वे प्रायः कई पत्र पढ़ते हैं। इसलिए वास्तव में सामयिक पत्रों के पाठकों की संख्या बहुत कम है। शायद ७०–८० व्यक्तियों में एक व्यक्ति सामयिक पत्र पढ़ता है।

भाषा की दृष्टि से यह जानना उपयोगी है कि विभिन्न भाषा-भाषियों में समाचार और सामयिक पत्रों का प्रचार कैसा है। अब जब भाषावार राज्य बन गये हैं, मोटे तौर से किसी भाषा के बोलनेवालों की संख्या उस भाषा-भाषी राज्य की जनसंख्या मानी जा सकती है। उसके जितने लोग बाहर होंगे, प्रायः उतने ही अन्य भाषाभाषी लोग–मोटे तौर से–उसमें रहते होंगे। नीचे की तालिका से विभिन्न भाषाभाषियों के लिए प्रकाशित होनेवाले पत्रों की संख्या और प्रति पत्र के हिसाब से जनसंख्या इस प्रकार है :—

भाषा भाषी राज्य	जन-संख्या	वहाँ की क्षेत्रीय भाषा के पत्रों की संख्या	प्रति प्रकाशित पत्र पर जन-संख्या
	लाख		लाख
तेलगू	३५९	२७१	१·३
असमिया	११८	१८	६·५
गुजराती	२०६	५२५	०·४९
मलयाली	१६८	२०९	०·८०३
तमिल	३३६	४२०	०·८०
मराठी	३९५	४२९	०·९२
कन्नड़	२३५	२२८	१·०३
उड़िया	१७५	७२	२·४
बँगला	३४९	५५३	०·६३
पँजाबी	१००	१५४	०·६४
हिंदीभाषी राज्य*	१८७६	१५७५	१·२

उर्दू हिंदी की एक शैली है। वह भी मुख्यतः हिंदी क्षेत्र में चलती है। मुख्य भेद लिपि का है। पंजाब के कितने ही उर्दू के समाचार-पत्रों की भाषा हिंदी से अधिक मिलती है। केवल लिपि का अंतर होता है। यदि उर्दू के पत्रों (६६१) को भी हिंदी में मिला लिया जाय तो इस क्षेत्र में ८३ हजार जनसंख्या पर एक पत्र पड़ेगा।

समाचार पत्रों के प्रचार के पूरे आँकड़े न मिलने के कारण, और जो मिलते हैं उनमें भी बहुतों के अविश्वसनीय होने के कारण, इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं लगाया जा सकता कि पत्रों की एक प्रति कितनी जनसंख्या के लिए होती है।

यह जानना भी मनोरंजक है कि हिंदी प्रदेश में अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू में कितने पत्र निकलते हैं। यह तालिका देखिए :

राज्य	अंग्रेजी पत्र	हिंदी	उर्दू
बिहार	३८	१०५	१८
मध्य प्रदेश	१३	२१०	१२
पंजाब	६७	६५	१६८
राजस्थान	७	१८५	२
उत्तर प्रदेश	८४	६२३	१६६
दिल्ली	३४९	१६६	१३१
हिमाचल	—	४	—
योग	५५८	१३५८	४९७

दिल्ली से ३४९ अंग्रेजी पत्रों का प्रकाशन आश्चर्यजनक मालूम होता है। किंतु इसका वास्तविक कारण यह है कि इनमें प्रायः एक-तिहाई पत्र भारत सरकार और उससे पोषित संस्थाएँ निकालती हैं। विदेशी दूतावास भी कितने ही पत्र अंग्रेजी में निकालते हैं। राजधानी में जो अखिल भारतीय संस्थाएँ हैं वे भी बहुत से पत्र अंग्रेजी में प्रकाशित करती हैं। कितने ही व्यापारिक संस्थान भी पूर्व प्रथानुसार अपने पत्र अंग्रेजी में निकालते हैं। यदि इन सब को निकाल दिया जाय तो जनता द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रों की संख्या बहुत कम रह जायगी। अन्य राज्यों में भी कितने ही सरकारी और निजी संस्थाओं के पत्र अंग्रेजी में निकलते हैं। यदि सरकार और सरकार द्वारा पोषित संस्थाएँ ये पत्र न निकालें तो उनकी संख्या बहुत कम रह जायगी। उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाब में अभी भी उर्दू के अपेक्षाकृत अधिक पत्र निकलते हैं। पंजाब के पत्रों में बहुत से तो केवल लिपि में उर्दू हैं। भारत में जो उर्दू की पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनकी खपत पश्चिमी पाकिस्तान में भी है। इसलिए भारत में निकलनेवाले उर्दू के पत्रों की संख्या से भारत के उर्दू पाठकों का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लग सकता। इसी प्रकार कितने ही बँगला पत्रों की खपत पूर्वी पाकिस्तान में है जहाँ की भाषा बँगला है। बंबई, दिल्ली और कलकत्ता के कुछ प्रमुख अंग्रेजी दैनिक पत्रों की भी पाकिस्तान में काफी खपत है।

अंग्रेजी शिक्षित लोग अंग्रेजी दैनिक ही पढ़ते हैं। सरकार भी इन्हें सबसे अधिक महत्त्व देती है। वह इनमें छपी बातों पर विशेष ध्यान देती है। इन्हें सब प्रकार की सुविधाएँ दी जाती हैं और सरकारी विज्ञापन भी इन्हें ही अधिक मिलते हैं। परिणाम यह है कि इनकी आय अन्धाधुन्ध है और ये अद्यतन मशीनें और साधन जुटा सकते हैं, जगह-जगह पर अपने विशेष संवाददाता रख सकते हैं, सम्पादकीय और प्रबंध विभाग के लोगों को इतने ऊँचे वेतन दे सकते हैं जिनकी तुलना उच्चतम सरकारी अधिकारियों के वेतन से की जा सकती है। भारतीय भाषाओं के पत्रों की दशा इनकी तुलना में अत्यन्त दयनीय है। उच्च या मध्य शिक्षित वर्ग (बंगाल, महाराष्ट्र, मदरास

*मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, पंजाब-आधे से कुछ अधिक-दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छोड़कर) देशी भाषाओं के पत्रों को सामान्यतः न तो खरीदते हैं और न पढ़ते हैं। ये लोग केवल भारत में प्रकाशित होनेवाले ही अंग्रेजी पत्र नहीं पढ़ते, वे अमरीका और इंग्लैंड के कितने ही अंग्रेजी पत्र प्रचुर संख्या में पढ़ते हैं। अतएव भारत में देशी और विदेशी अंग्रेजी पत्रों के लिए बड़ा लाभदायक क्षेत्र है। इन अंग्रेजी पत्रों के कारण लोग देशी भाषाओं के पत्र नहीं पढ़ते। वे ठीक ही कहते हैं कि देशी भाषा के पत्रों में उतनी और उतनी विविध प्रकार की तथा अद्यतन पाठ्य सामग्री नहीं होती जितनी अंग्रेजी पत्रों में होती है। किंतु अंग्रेजी और देशी भाषाओं के पत्र भारतीय पत्रकार ही निकालते हैं। यदि वही भारतीय पत्रकार देशी भाषा का उतना अच्छा पत्र नहीं निकाल सकता जितना वह अंग्रेजी का निकालता है, तो इसका स्पष्ट कारण यही है कि देशी भाषा के पत्रों को पढ़नेवाले इतने कम हैं कि उनकी आय इतनी नहीं होती कि वे अंग्रेजी पत्रों की तरह सामग्री एकत्र करने में व्यय कर सकें। सरकार और विज्ञापनदाता पहिले तो देशी भाषा के पत्रों को विज्ञापन देते ही बहुत कम हैं, और जो देते हैं उनकी दर अंग्रेजी पत्रों को दिये जानेवाले विज्ञापनों से बहुत कम होती है। अतएव एक दुष्चक्र बन गया है। देशी भाषा के समाचारपत्र इसलिए अधिक नहीं पढ़े जाते कि उनका स्तर निम्न है। स्तर निम्न है, क्योंकि लोग उन्हें नहीं खरीदते। जो सरकार उद्योग के क्षेत्र में देशी उद्योगों के संरक्षण के लिए उससे होड़ करनेवाले विदेशी माल के आयात पर भारी तटकर लगाती है, और जो कुछ निर्बल देशी उद्योगों को जीवित रखने और पनपाने के लिए उससे होड़ करनेवाले देशी उद्योगों पर भारी कर लगाती है (जैसे खादी के संरक्षण के लिए मिल के बने कपड़े पर कर) वह देशी समाचारपत्रों के संरक्षण की ओर से बिल्कुल उदासीन है। उसके अंग्रेजीप्रेम के कारण, और अंग्रेजी पत्रों के प्रत्यक्ष और परोक्ष संरक्षण के कारण, देशी पत्रकारिता अपने ही देश में अपना दाय नहीं पा रही है। जैसा कि दिनकरजी ने कहा है, "अंग्रेजी की कुल्हाड़ी सब देशी भाषाओं को समान रूप से काटे डाल रही है।"

पंद्रहवीं पंखुड़ी कौन है? राजनीतिक विवादों और तथ्यों तथा आँकड़ों के जाल में उलझे हुए हमारे मंत्रियों की भाषा साधारणतः घोर गद्यात्मक होती है। इसलिए जब कोई मंत्री कभी उपमा-अलंकार का प्रयोग करने लगता है तो हर्ष मिश्रित आश्चर्य होता है। श्री गोपाला रेड्डी को अभी एक भाषण देते समय कविता का दौरा आ गया। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं क्योंकि वे शांतिनिकेतन के काव्यसिक्त वातावरण में 'तालीम' पा चुके हैं। आकाशवाणी के स्टेशन डाइरेक्टरों के एक सम्मेलन का 'उद्घाटन' करते हुए उन्होंने कहा—"आकाशवाणी के कर्मचारियों को हिंदी, अंग्रेजी और अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त दूसरी भारतीय भाषाएँ भी सीखनी चाहिए। हम भारतमाता रूपी सुंदर कमल के १५ दल (पंखुड़ी) हैं, और जब तक सभी पंखुड़ियाँ पूर्ण और विकसित न हो जायँ, कमल फूल न सकेगा।" उनकी बात से हम सोलहो आना सहमत हैं। किंतु भारत के संविधान में भारत की १४ भाषाएँ ही मान्य हैं। ये चौदहों भाषाएँ भारतमाता के वाणी-रूपी पद्म की पंखड़ियाँ हैं। किंतु यह पंद्रहवीं पंखुड़ी (भाषा) कौन है जिसको माननीय मंत्री ने इस भारतीय कमल का अंग बतलाया है? उन्होंने अपने भाषण में अंग्रेजी की चर्चा की है। क्या उनकी सम्मति में अंग्रेजी वह पंद्रहवीं पंखुड़ी है? वह भारतीय भाषा कब से हो गयी? यदि किसी विवशता के कारण हमें उसे पढ़ना भी पड़े, तो क्या उससे वह 'भारतीय' हो जायगी? क्या अंग्रेजी को भारत की सह-राजभाषा बनाने, और जनता में उसको लोकप्रिय बनाने का यह कूट प्रचार नहीं है? यदि सरकार देशवासियों के गले अंग्रेजी को जबर्दस्ती से उतारना चाहती है तो हम उसे कैसे रोक सकते हैं? किंतु कम से कम वह एक विदेशी भाषा को भारतीय बतला कर हमारी 'भारतीयता' की भावना को तो कलुषित न करे!

भूल-सुधार

'सरस्वती' के अगस्त १९६२ के अंक में, पृष्ठ १२९ पर मुद्रित 'युधिष्ठिर-संवत्' शीर्षक लेख में 'कुतूहल-मंजरी' का श्लोक अशुद्ध छप गया है। शुद्ध श्लोक इस प्रकार है—

स्वस्तिश्रीनृपसूर्य्यसूनुजशके शाके द्विवेदाम्बर-
त्रैमानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।

सूर्य-सूनु यमराज का नाम है। अतः इस श्लोक में 'सूर्यसूनुजशक' से युधिष्ठिर-संवत् का निर्भ्रान्त अर्थ ग्रहण होता है।

हमें छापे की इस अशुद्धि के लिए खेद है।

—सम्पादक, सरस्वती।

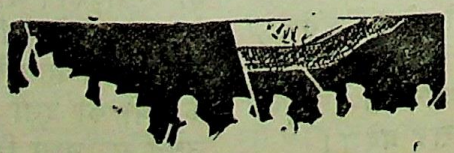

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों की काट-छाँट

महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

पुराने समय में चारों वेद उनकी सब शाखाएँ ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् ये सब वेद माने जाते थे। श्री स्वामी दयानन्दजी ने अन्य सब शाखा और ब्राह्मण, आरण्यक आदि को हटाकर केवल चार शाखाओं को ही वेद माना। ऋग्वेद की आश्वलायनी शाखा, यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा, सामवेद की कौथुमी और अथर्ववेद की शौनकी ये चार ही शाखाएँ उनके मत में वेद नाम से व्यवहृत रहीं। अब उन चार की काट-छाँट का भी समय आ गया है। मई सन् १९६२ ई० की "सरस्वती" में श्री चन्द्रकान्त बाली का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें, उन्होंने अथर्ववेद को बिलकुल छाँटकर तीन ही वेदों की सत्ता स्वीकार की है। इस लेख का शीर्षक है "वेद तीन हैं या चार।" लेखक महोदय ने वेद चार माननेवालों की ईमानदारी पर आक्षेप कर सभ्यता की सीमा का भी अतिक्रमण किया है। किन्तु, हमें उनके उपहास का उत्तर नहीं देना है, केवल सिद्धान्त पक्ष प्रस्तुत करना ही हमारा उद्देश्य है।

लेख में उन्होंने बहुत से प्रमाण उद्धृत किये हैं जिनमें कहीं तीन वेदों का और कहीं चार वेदों का उल्लेख है। तीन वेदवाले प्रमाणों को वे प्राचीन और चार वेद वाले प्रमाणों को अर्वाचीन सिद्ध करते हैं। इससे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि प्राचीन समय में तीन ही वेद थे। अथर्ववेद पीछे से वेदों की गणना में सम्मिलित हुआ। वास्तव में जो प्रमाण उन्होंने तीन या चार वेदों के दिये हैं, वे दोनों ही प्रकार के प्रमाण माननीय हैं। वेदों का दो प्रकार से विभाग किया गया—एक भाषा के अनुसार और दूसरा यज्ञ के ऋत्विजों के अनुसार। भाषा के अनुसार वेद तीन ही हो सकते हैं। क्योंकि भाषा तीन भागों में विभक्त रहती है—पद्य, गद्य और गान। इनमें से पद्य का नाम वैदिक भाषा में ऋक् है, गद्य का यजुः, और गान का नाम साम है। भाषा के विचार से तीन में ही वेद के सब भाग अन्तर्गत हो जाते हैं; चौथा कोई नहीं बचता। किन्तु भगवान् वेदव्यास ने ऋत्विजों के विचार से जो विभाजन किया, उसमें उनको चार विभाग करने पड़े। यह चार ऋत्विजों का वर्णन ऋग्वेदसंहिता में ही स्पष्ट है—

ऋचान्त्वः पोषमास्ते पुपुस्वान् गायत्रन्त्वो गायति शक्करीषु।
ब्रह्मात्वो वदति जातविद्यां यज्ञमात्रां विमिमीत उत्वः।

(ऋ० सं० ८।२।२४,५)

इस मंत्र को निरुक्तकार ने भी उद्धृत किया है और इसकी व्याख्या में लिखा है कि यह ऋचा ऋत्विजों के कर्मों को कहती है। एक, अर्थात् "होता" नाम का ऋत्विक् ऋचाओं का पोषण करता रहता है। निरुक्त के भाष्यकार दुर्गाचार्य लिखते हैं कि ऋचाओं के देवताओं को यथार्थरूप से जानना और यथोचित अर्थ समझकर जहाँ-तहाँ यज्ञ-कर्म में उन्हें पढ़ना इत्यादि ही ऋचाओं का पोषण है। इसका तात्पर्य यही है कि केवल ऋक् संहिता को पढ़नेवाला यज्ञ में होता का काम कर सकता है, इसलिये ऋग्वेद को 'होतृवेद' कहा जाता है। दूसरा ऋचाओं के आधार पर गान किया करता है, यह 'उद्गाता' शब्द से कहा जाता है। केवल साम संहिता पढ़कर कोई पुरुष यज्ञ में उद्गाता हो सकता है। इसीलिये सामवेद को 'उद्गातृवेद' कहा जाता है। मंत्र के चौथे पाद में कहा गया है कि एक यज्ञ की मात्रा को अर्थात् यज्ञ के भिन्न-भिन्न कर्म रूप अवयवों का सम्पादन करता है। यह "अध्वर्यु" कहा जाता है। अग्नि में आहुति डालना, यजमान के प्रतिनिधि रूप से सब काम करना यह अध्वर्यु का ही काम है। यही यज्ञ का मुख्य ऋत्विक् है। इसके पढ़ने का वेद ही यजुर्वेद है। वह अध्वर्युवेद के नाम से भी कहा जाता है। चौथा ऋत्विक् यज्ञ में ब्रह्मा होता है जो मंत्र के तीसरे पाद में कहा गया है। इसका व्याख्यान निरुक्तकार ने किया है—"जाते जाते विद्यां वदति।" इसपर निरुक्त के भाष्यकार श्री दुर्गाचार्य ने स्पष्ट किया है कि जो कार्य यज्ञ में हो चुका, उसके आगे क्या होगा, यह भिन्न-भिन्न ऋत्विजों को वह बताता है और जहाँ कर्म में कोई व्यतिक्रम हो जाय वहाँ यजमान की ओर से प्रायश्चित्त करना और किसी-किसी व्यतिक्रम पर शान्तिक, पौष्टिक आदि करना भी इसका काम होता है। ऋत्विजों को अपने-अपने कार्य बताने के लिये इसे तीनों वेद भी पढ़ने पड़ते हैं, और प्रायश्चित्त, शान्तिक, पौष्टिक, आदि के लिये अथर्ववेद भी पढ़ना आवश्यक होता है। शान्तिक, पौष्टिक आदि कर्म अथर्ववेद में ही आते हैं। इसीलिये जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद को 'होतृवेद' कहते हैं, यजुर्वेद को 'अध्वर्यु-वेद' कहते हैं, इसी प्रकार अथर्ववेद की, ब्रह्मा का पाठ्य होने के कारण "ब्रह्मवेद" नाम से प्रसिद्धि है। एक यह भी कारण है कि मुण्डकोपनिषद् में मंत्र आये हैं--

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥
अथर्वणेयां प्रवदेत् ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचांगिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परा-वराम्॥

इनका तात्पर्य है कि देवताओं में सबसे प्रथम ब्रह्मा हुए जो सब जगत् के बनानेवाले और सब लोकों के रक्षक थे। उन्होंने सब विद्याओं की प्रतिष्ठा रूप ब्रह्मविद्या को अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया। उस ब्रह्मा की दी हुई विद्या को अथर्वा ने अंगिरा के प्रति कहा। उन्होंने सत्य-वाह भारद्वाज को वह विद्या दी, इत्यादि।

यह मुण्डकोपनिषद् यद्यपि अथर्ववेद की ही है तथापि इसका समर्थन ऋग्वेद के मंत्र से भी होता है जो कि मंत्र-लेखक महोदय ने भी अपने लेख में दिया है कि "अथर्वा" ने ही प्रथमतः यज्ञ का प्रथन किया। दूसरे मंत्र में यह भी कहा गया है कि--"हे अग्नि, सबसे पहिले अथर्वा ने ही मन्थन कर तुम्हें निकाला।" इन सबकी शृंखला इस प्रकार बँध जाती है कि सबके अधिपति ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को वेदविद्या पढ़ाई, और अथर्वा ने ही सबसे पहिले यज्ञ का प्रारम्भ किया। ब्रह्मा से अथर्वा ने वेद प्राप्त किये, उन वेदों में अथर्ववेद भी था। इस कारण भी ब्रह्मा का अथर्वा को दिया हुआ वेद होने के कारण उसे ब्रह्मवेद कहने लगे। और अथर्वा से अंगिरा और भृगु को वह प्राप्त हुआ। इसलिये उसका नाम "भृग्वंगिरोवेद" भी प्रसिद्ध हुआ।

ऋग्वेद की जो ऋचा हमने पूर्व उद्धृत की है उसमें यज्ञ के चारों ऋत्विजों के कार्यक्रम का वर्णन है, और सबसे पहिले यज्ञ अथर्वा ने ही प्रारम्भ किया। यह जब "यज्ञैरथर्वा प्रथमः प्रथस्यते" इस मंत्र से सिद्ध हो गया तब इसमें भी कोई सन्देह नहीं रह जाता कि हमारी उद्धृत ऋग्वेद की ऋचा से पूर्व ही अथर्वा हो चुका था और उसने यज्ञ-विधान का उपक्रम कर दिया। तभी ऋचा में ऋत्विजों के भिन्न-भिन्न कर्तव्यों का निरूपण हुआ।

श्री बालीजी ने तीन ही वेद हैं, इसके समर्थन में अथर्ववेद और उसके ब्राह्मण गोपथ के भी प्रमाण अपने लेख में उद्धृत किये हैं। इसे देखकर हँसी आती है। भला सोचिये तो, स्वयं अथर्ववेद ही अपना अभाव कैसे बताता और अपना अभाव न बताता तो तीन वेद कैसे कहता? इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण जिसमें सुवेदरूप से अथर्व की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है वह भी अथर्व को छोड़कर तीन वेद कैसे कहता! इससे तो स्पष्ट सिद्ध है कि तीन वेद और चार वेद ये दोनों प्रकार के विभाग अनादि काल से ही चल रहे हैं, जिसका कारण हम पूर्व बता चुके हैं कि भाषाक्रम से वेद के तीन विभाग हैं, और यज्ञ के ऋत्विजों के अनुसार चार विभाग। इस प्रकार वेदों को 'त्रयी' भी कहा जाता है और 'चतुष्टय' भी। इसीलिये स्वयं वेदों में वा पुराण, स्मृति आदि में भी दोनों प्रकार के विभाग मिलते हैं। इनमें कौन पहिले था और कौन बाद में सम्मिलित हुआ, इस कल्पना का कोई भी स्थान नहीं।

श्री बालीजी ने श्री स्वामी दयानन्दजी के उद्-भावित प्रकार से जो अग्नि, वायु और सूर्य को द्रष्टा ऋषि और अनुक्रमणी लिखित अन्य ऋषियों को व्याख्याता ऋषि अपने लेख में लिखा है, यह भी कल्पनामात्र है। इस कल्पना का मूल कहीं नहीं मिलता। मनुस्मृति में जो लिखा है कि--

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम्॥

(ब्रह्मा ने अग्नि, वायु और रवि से यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग्यजुः और साम का दोहन किया) और इसका मूल जो ऐतरेय ब्राह्मण में "ऋग्वेद एवाग्नेरजायत" इत्यादि मिलता है, उन सबका आशय यह है कि ऋग्वेद में अग्नि को ही प्रधान मानकर उसके सम्बन्ध से सब देवताओं की स्तुति की गयी है। यजुर्वेद में वायु को प्रधान मानकर उसके सम्बन्ध में सब देवताओं की स्तुति है। इसी प्रकार सामवेद में सूर्य को प्रधान माना गया है। इसी अभिप्राय से ऋग्वेद का दोहन अग्नि से, यजु का वायु से और साम का सूर्य से बताया गया। यह तीनों वेदों के स्वाध्याय से भी स्पष्ट होता है। ऋग्वेद के आरम्भ में ही "अग्निमीडे पुरोहितम्" मंत्र आता है। इससे वहाँ अग्नि की प्रधानता स्पष्ट है। यजुर्वेद के आरम्भ के मंत्र में ही "इषेत्वो-र्जेत्वावायवःस्थः" (मैं अन्न और ऊर्क के लिये आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति करता हूँ। आप वायु हैं)। एवं सामवेद के आरम्भ में "अग्न आयाहि वीतये" कहा गया है अर्थात् हे अग्नि! तुम रक्षा के लिये आवो। इससे सिद्ध है कि वहाँ आनेवाले अग्नि की प्रधानता है। पृथिवी पर आनेवाला सूर्यमण्डल का ही अग्नि है। ऋग्वेद में "पुरः हितमग्निम्" अर्थात् हमारे सामने स्थापित अग्नि की स्तुति करता हूँ कहा है, और सामवेद में अग्नि तुम आवो ऐसा कहा है। इससे दोनों की विलक्षणता स्पष्ट है।

निरुक्तकार ने ये ही तीन लोकों के देवता माने हैं। इन तीनों को क्रमशः प्रधान मानकर तीनों वेद प्रवृत्त होते हैं। इस क्रम से भी तीन ही वेद सिद्ध हुए ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि कौषीतकी नाम के ऋग्वेद के ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि "अस्ति वै चतुर्थो लोक आपः" (१८।२)। अर्थात् चौथा लोक भी है जहाँ "आप" नाम का तत्त्व है। हमारे यहाँ वेद, पुराण आदि में ऊपर के लोक सात माने जाते हैं। 'भूः' से आरम्भ कर 'भुवः', 'स्वः' आदि जिन नामों का हम लोग सन्ध्योपासन में स्मरण करते हैं, वे उन लोकों के ही नाम हैं। इनमें सूर्यमण्डल से ऊपर 'महः' लोक है जिसे 'अप' का स्थान माना गया है। आप की उत्पत्ति भृगु और अंगिरा से ही है। इस आशय से "भृग्वंगिरोवेद" नाम का चौथा अथर्ववेद ही इस चौथे लोक का निरूपण करता है। उस चौथे लोक की व्याप्ति में हमारे तीनों लोक प्रविष्ट हो जाते हैं। इसी आशय से गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि—

आपो भृग्वंगिरोरूपमापो भृग्वंगिरोमयम्।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनंगिरसः श्रिताः॥

(गोपथ पू० १।३९)

अर्थात् 'आप' ही भृगु और अंगिरा का रूप है। आप ही भृगु अंगिरा से उत्पन्न है। हमारे तीनों लोकों के प्रतिपादक तीनों वेद भृगु और अंगिरा के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। इस प्रकार जिसे श्रीयुत बालीजी पीछे का जोड़ा हुआ मानते हैं, उसमें तीनों वेदों का अन्तर्भाव प्रामाणिक ग्रन्थों में माना गया है।

पुरुषसूक्त का जो मंत्र—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुः तस्मादजायत॥

बालीजी ने तीनों वेदों को प्रमाणित करने के लिये उपस्थित किया है, वहाँ छन्दः पद से जो अथर्ववेद का ग्रहण श्री स्वामी दयानन्दजी आदि ने किया है, वह तो उपयुक्त नहीं यह मैं मानता हूँ, क्योंकि 'छन्दः' पद अथर्व का वाचक कहीं अन्यत्र नहीं देखा जाता है किन्तु उस मंत्र में ऋक्, यजुः और साम के नाम भी वैज्ञानिक वेदों के अभिप्राय से ही आये हैं, यह भी छन्दःपद ही स्पष्ट कर रहा है। अन्यथा जब ऋक् और साम के नाम आ ही गये थे तो 'छन्दांसि' कहने की क्या आवश्यकता थी? ऋक् और साम ही तो छन्दोमय हैं। इससे यही संकेत मिलता है कि वहाँ ऋक् और साम के नाम वैज्ञानिक हैं। प्रत्येक वस्तु का स्वरूपभूत मण्डल ऋक् कहा जाता है और उसके प्राणों की व्याप्ति जहाँ तक हो वह अन्तिम मण्डल साम कहा जाता है। ये ऋक् और साम परिधि मात्र हैं। इन दोनों के बीच में जो प्राण भरे रहते हैं वे यजुः हैं। यह विषय शतपथ आदि ब्राह्मणों में सूर्यमण्डल के सम्बन्ध से स्पष्ट कहा गया है—

यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकः। अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते, तन्महाव्रतं, तानि सामानि। स साम्नां लोकः। अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि, स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति।

(शतपथ १०।५।२।१-२) इत्यादि।

अन्यत्र भी कहा गया है—

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वागतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूपं ह शश्वत् सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥

(तै० ब्रा० ३।१२।९।१)

दोनों परिधियों के मध्य में स्थित जो 'यजुः प्राण' है उससे ही सब सृष्टि होती है। शतपथ ब्राह्मण में इस शब्द के दो खण्ड माने हैं—'यत्' और 'जूः।' यत् अर्थात् चलनशील और जूः अर्थात् स्थितिशील। आश्चर्य की बात है कि आजकल के पाश्चात्य वैज्ञानिक जो जगत् के मूलभूत दो तत्त्व (१) ऐलैक्ट्रोन और (२) प्रोट्रोन नाम से मानते हैं उनका भी विवरण वे इसी प्रकार करते हैं कि ऐलैक्ट्रोन निरन्तर गतिशील है और प्रोट्रोन बिलकुल ठहरा हुआ।

अब पाठकगण देखेंगे कि केवल नाम मात्र का भाषा-भेद से भेद रहा। प्रक्रिया जो आज के वैज्ञानिकों ने मानी वह कम से कम पाँच हजार वर्ष के पुराने ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण में भी वैसे ही मिल जाती है। 'छन्दः' पद वेद में किसी पदार्थ की मर्यादा का बन्धन बताने के लिये प्रयुक्त होता है। जैसा कि "माच्छन्दः, प्रमाच्छन्दः, प्रतिमाच्छन्दः" इत्यादि यजुर्वेद के मंत्र में स्पष्ट कहा गया है। अस्तु, इस वैज्ञानिक विषय का विशेष विवरण हम किसी दूसरे लेख के लिये सुरक्षित रखकर इस लघु लेख को यहीं समाप्त करते हैं।

ये ही वैज्ञानिक वेद पुरुषसूक्त में कहे गये हैं। ये तीनों 'आग्नेय' हैं और इन सबकी अपेक्षा व्यापक अथर्ववेद 'आप्य' है जिसका निरूपण पूर्व गोपथ ब्राह्मण के प्रमाण से किया जा चुका है। सारांश यही है कि तीन और चार गणना वेद के अनादि काल से ही प्रचलित है। श्री बालीजी का कथन निराधार ही प्रतीत होता है।

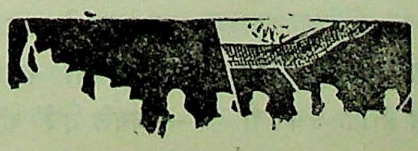

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पर दोतरफ़ा हमले

श्री वेंकटेश नारायण तिवारी

हिंदी के दुर्दिन आये हैं, हिंदी पर दोतरफा हमले किये जा रहे हैं--(१) श्री राजगोपालाचारी जी का और (२) उर्दू के पक्षपाती श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री गोपाल रेड्डी और श्री शामनाथ का कि हिंदी की वही भाषा होनी चाहिए, जिसे दिल्लीवाले आसानी से समझ सकें। एक ओर तो हिंदी के साथ-साथ अँगरेजी को स्थायी बनाने की माँग और दूसरी ओर हिंदी के उर्दूकरण का प्रश्न। इस दूसरे कथन के पक्षपातियों का कहना है कि अरबी और फारसी के शब्दों के मिलाने से हिंदी 'आम फ़हम' हो जाएगी, यानी उसका सरलीकरण हो जाएगा। यह बात कुछ समझ में नहीं आती है।

इस लेख का उद्देश्य है राजाजी के अँगरेजी को स्थायी बनाने के प्रयत्न और डॉ० गोपाल रेड्डी के हिंदी के सरलीकरण के मसले का विवेचन करना। इन सवालों का युक्तिपूर्वक तर्कों द्वारा विवेचन करना चाहिए। हम कहाँ तक इस उद्देश्य में सफल होंगे, यह तो हम पाठकों के ऊपर छोड़ देते हैं, यद्यपि हमारा उद्देश्य इन दोनों प्रकार के तर्कों के विवेचन की चेष्टा-मात्र है।

पहले, आइए, राजाजी के तर्कों का उत्तर दिया जाए, उनका कहना है कि वह हिंदी के पढ़ाए जाने के विरोधी नहीं हैं। वह हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' भी मानने को तैयार हैं। उनका तर्क है कि वह हिंदी को केंद्र की 'राजभाषा' बनाने के विरोधी हैं। जब तक हिंदी का प्रचार पूर्ण रूप से अहिंदी प्रदेशों में न हो जाए तब तक हिंदी को केन्द्र की 'राजभाषा' बनाने के विरोध में वह हैं। संविधान के अनुच्छेद ३४३ में कहा गया है कि सन् १९६५ में हिंदी ही को केन्द्र की 'राजभाषा' माना जाएगा। उनका कहना है कि संविधान में इसके लिए पूर्णरूप से स्वाधीनता है और यदि भारतियों का बहुमत यह चाहे कि अहिंदी-भाषी प्रदेशों में हिंदी पढ़ाने का काम तो जारी रहे लेकिन जब तक उन प्रदेशों का बहुमत यह न स्वीकार करे कि अँगरेजी के स्थान में हिंदी ही केन्द्र की राजभाषा होगी तब तक वैकल्पिक रूप से अँगरेजी केन्द्र की 'राजभाषा' रहनी चाहिए। संविधान के अनुच्छेद ३४३ (३) में यह कहा गया है कि इस अनुच्छेद में जो कुछ कहा गया है, उसके बावजूद भी संसद् यह कानून बना सकता है कि अँगरेजी का प्रयोग १९६५ के बाद भी उन प्रयोजनों के लिए, जिनका उस कानून में निर्देश कर दिया गया हो, अवश्य होगा। उनकी माँग केवल इतनी ही है कि अँगरेजी भी हिंदी के साथ-साथ केन्द्र की 'राजभाषा' मान ली जाए। तब तक केन्द्र की 'आफिशल' भाषा देवनागरी लिपि में लिखी गयी हिंदी अकेली न मानी जाए ऐसा वह गलत समझते हैं।

इस तर्क के पीछे उन लोगों की माँग है, जो केंद्र के सरकारी पदों के लिए अकेले हिंदी को केन्द्र की राजभाषा मानने को तैयार नहीं है। उदाहरण के लिए, श्री राजगोपालाचारी या श्री राधाकृष्णन् को ही लीजिए। इन्होंने वर्षों की मेहनत के बाद अँगरेजी में पूर्ण योग्यता प्राप्त की हैं। उनसे यह कहना कि वे हिंदी में लेख लिखें या भाषण करें असंभव है क्योंकि उनका हिंदी का ज्ञान इतना विस्तृत नहीं है जितना उनका अँगरेजी का ज्ञान विस्तृत है। मूलतः यह प्रश्न मदरासियों के लिए सरकारी नौकरियों का प्रश्न है। यदि उनका उद्देश्य सरकारी नौकरियों को अहिंदी-भाषियों के लिए सुरक्षित रखना है, तो क्या यह संभव नहीं है कि अहिंदी-भाषियों के लिए उच्च सरकारी नौकरियों के लिए स्थान अनुपात के अनुसार तय कर दिया जाए।

राजाजी इस अनुपात के खिलाफ़ हैं। इसके अभाव में अहिंदी भाषियों को जो अधिक स्थान मिलते है, उनमें अडंगा लग जाएगा। अतएव वह इस प्रश्न को नहीं उठाते हैं। उनका तो केवल यही कहना है कि अहिंदी प्रदेशों के लिए अँगरेजी को भी हिंदी के समान स्थान मिलना चाहिए, उसी तरह, जिस तरह केन्द्र की राजभाषा हिंदी को बनाने का सवाल है वह तब तक अहिंदी प्रदेशों के लिए अँगरेजी को कायम रखना चाहते हैं--जहाँ तक अहिंदी प्रदेशों का संबंध है।

उनके इस तर्क की शान्ति के साथ हमें विवेचना करनी चाहिए। हिंदी-भाषी प्रदेशों के लिए केंद्र की 'राजभाषा' तो हिंदी हो, लेकिन अ-हिंदी भाषी प्रदेशों के लिए केंद्र में अँगरेजी का स्थान सुरक्षित रखा जाए। उनके इस तर्क का अर्थ यह है कि अकेली हिंदी उस समय तक केन्द्र की राजभाषा के रूप में न मानी जाए, जब तक अ-हिंदी-भाषी प्रदेशों का बहुमत यह न कह दे कि अगले वर्ष से --'अगले वर्ष' की अवधि की उनके प्रस्ताव में कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी युक्तिसंगत दलील नहीं दी गयी है--केन्द्र का सारा राज-काज हिंदी में चालू होगा ।

इसका साफ अर्थ है कि उनका अँगरेजी रखने का उद्देश्य यह है कि केन्द्र का राज-काज का काम तब तक दोनों भाषाओं में हिंदी और अँगरेजी में होता रहे--(१) अहिंदी भाषी प्रदेशों के लिए अँगरेजी में और (२) हिंदी-भाषी प्रदेशों के लिए हिंदी में। उस समय केन्द्र के राज-काज की भाषाएँ दो होंगी--हिंदी प्रदेशों के लिए हिंदी में राज-काज हो और अ-हिंदी भाषियों के लिए अँगरेजी में हो। दोनों भाषाओं को समान रूप से दोहरी फाइलें रखने का प्रश्न यहाँ पर उठता है। जहाँ तक हमें मालूम है कि किसी समय हमारे प्रधान मंत्री स्वयमेव दोहरी फ़ाइलें रखने का विरोध कर चुके हैं। अब तो, इस दशा में, उनका मन बदल गया है और दोहरी फाइलों के रखने के अनुकूल उनका वर्तमान मत मालूम होता है। इससे हिंदीवालों को यह अंदेशा है कि आगे चलकर भी अँगरेजी को प्रधानता मिलेगी और हिंदी गौण भाषा रह जायेगी। उत्तर प्रदेश ही को लीजिए। वहाँ भी सरकारी दफ्तरों में जो राज-काज होता है, उनमें भी अँगरेजी के स्थान में हिंदी के प्रचलन के अनुकूल केवल ५ प्रतिशत कर्मचारियों ही ने उत्साह दिखाया, बाकी यानी ९५ प्रतिशत या तो उदासीन रहे या हिंदी के विरुद्ध फवतियाँ कसते रहे। उस प्रदेश में भी--जो हिंदी भाषी प्रदेश कहा जाता है--जब यह हालत है, तब अहिंदी भाषी प्रदेशों की क्या हालत होगी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

हमारा विरोध तो केवल इतना ही है कि संविधान के अनुच्छेद ३९३ (१) में जो बात कही गयी है, उसी पर केन्द्र को अड़ा रहना चाहिए और अँगरेजी में फ़ाइलें रखने का विरोध उन्हें डट कर करना चाहिए।

अँगरेजी को प्रधानमंत्री जी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा मानने को तैयार हैं, लेकिन रूस और चीन तो इस अँगरेजी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा मानने को तैयार नहीं हैं। संयुक्त अरब राष्ट्र के राष्ट्रपति श्री नासिर, तो अपने पत्र लिखेंगे अरबी में और केन्द्र उनका जवाब देगा किस भाषा में--अँगरेजी या हिंदी में ? विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना एक बात है, उसके प्रयोग में दक्षता प्राप्त करना दूसरी बात है। जहाँ तक हमें मालूम है, रूस के साथ भारत का जो पत्र-व्यवहार होता है, वह तो हिंदी के माध्यम के द्वारा ही केन्द्र की सरकार करती है। यह प्रथा उस समय से चालू हुई जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित भारत की राजदूत होकर मास्को गयी थीं। चीनी तो अपनी भाषा चीनी ही में भारत को पत्र लिखेंगे, क्या उनका जवाब अंगरेजी में जाएगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में वही भाषा--बकौल भारत के प्रधान मंत्री के--अन्तर्राष्ट्रीय भाषा मानी जाती हैं। अँगरेजी की गुलामी कब तक देश में कायम रहेगी ? श्री राजगोपालाचारी यह भूल जाते हैं कि संविधान सभा ने जो समझौता किया था, उसके अनुकूल वे अहिंदी-भाषी प्रदेशों के प्रतिनिधि भी थे, जिनके नाम पर अब दोहाई दी जाती है कि हिंदी के साथ-साथ अंगरेजी को भी केन्द्र के राजकाज में प्रधानता दी जानी चाहिए। यह तामिल-भाषियों की चाल है कि धीरे धीरे वे अँगरेजी का बोझ लादने के लिए देश को तैयार करें--पहले १५ साल की अवधि, फिर अ-हिंदी भाषी प्रदेशों के लिए स्थायी रूप से अँगरेजी को प्रधानता दिलाना उनका उद्देश्य है। इसका फल यह होगा कि सदा के लिए अंगरेजी में भी केन्द्र का राज-काज होता रहेगा। उसके उच्च अधिकारियों में अधिकांश वे लोग हैं, जो अ-हिंदी-भाषी प्रदेशों से आये हैं।

हमें यह न भूलना चाहिए कि अँगरेजी की ममता में हमारे प्रधान मंत्री उसी तरह फँसे हैं जिस तरह वे हिन्दुस्तानी व्यक्ति जो अँगरेजी भाषा में अपनी दक्षता के द्वारा भारत के उच्च पदों पर समय-समय पर आसीन होते आये हैं। उदाहरण के लिए हमें कहीं दूर नहीं जाना है। श्री राज-गोपालाचारी का उदाहरण इस संबंध में देना अनुचित न होगा। अँगरेजी में अपनी वाक्पटुता के कारण वह भारत के अंतिम गवर्नर जनरल के पद पर रह चुके हैं। उनसे यह आशा करना अकारण है कि जैसी उनकी दक्षता अँगरेजी में हुई, वैसी ही दक्षता वह अब हिंदी में भी प्राप्त करें। हमारे प्रधान मंत्री का संबंध भी हैरो और कैम्ब्रिज से रहा है। इसीलिए उन्हें अँगरेजी का मोह है, पर उनका यह मोह रूस के सामने न चला और रूस के साथ केन्द्र का जो पत्र-व्यवहार होता है, वह खालिस हिंदी में। क्या यह परिपाटी अब आगे से बदल दी जाएगी ? चीन के साथ केन्द्र जो लिखा-पढ़ी करेगा, वह क्या अब अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अँगरेजी में होगा ? चीनी तो अपनी भाषा में हमें पत्र लिखेंगे और उनका उत्तर क्या अँगरेजी भाषा में केन्द्र देगा ? हमें यह न भूलना चाहिए कि इन दोनों देशों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार की एक तिहाई आबादी बसती है। फिर अरब देशों को लीजिए। वे तो अरबी में हमें पत्र लिखेंगे। क्या उनके पत्रों का जवाब केन्द्र अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अँगरेजी में देगा या केन्द्र की भाषा हिंदी में? जहाँ तक हमारा अनुमान है इस समय भी अहिंदी-भाषी प्रदेशों से आये केन्द्र के उच्च अधिकारी अपने जवाबों को अँगरेजी में लिखते और उनका प्रारूप हिंदी में अनुवादित होकर, उदाहरणार्थ, रूस में भेजा जाता है। आइंदा से क्या रूस के साथ केन्द्र का पत्र-व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अँगरेजी में होगा या विशुद्ध हिंदी में? रूस ने क्या अपनी यह आपत्ति उठा ली कि उसके साथ केन्द्र का पत्र-व्यवहार केवल हिंदी ही में हो?

आन्ताराष्ट्रिय भाषा अँगरेजी के सवाल को छोड़ दीजिए। देश ही में यह हम मानते हैं कि कुछ समय के लिए अ-हिंदी-भाषी प्रदेशों के विद्यार्थी अनुपात से कम स्थान केन्द्र में पा सकेंगे यदि १९६५ से हिंदी भाषा के माध्यम के द्वारा प्रतियोगिता में उन्हें अपने प्रश्नों का उत्तर लिखना पड़े। लेकिन कुछ दिनों के बाद यह कठिनाई दूर हो जाएगी। उन्होंने जिस प्रकार अँगरेजी में दक्षता प्राप्त की, उसी प्रकार हिंदी के प्रयोग में वे अवश्य दक्ष हो जायेंगे। यह तो क्षणिक बात हुई, लेकिन अँगरेजी को सदा के लिए स्थायी रूप देने के हम विरुद्ध हैं। इससे तो हिंदी देश में कभी पनपने न पाएगी। जहाँ प्रदेशों के कर्मचारियों में हिंदी के प्रति इतनी गहरी उपेक्षा या उदासीनता है, वहाँ यह बात कदापि नहीं मानी जा सकती कि केन्द्र की राजभाषा हिंदी हो जाएगी। डॉ० राधाकृष्णन् का यह विश्वास गलत मालूम होता है कि किसी समय हिंदी को केन्द्र की राजभाषा होने का गौरव प्राप्त हो सकता है।

जब अ-हिंदी-भाषी प्रदेशों के प्रतिनिधियों ने संविधान बनते समय १५ साल की कैद लगाई थी, उस समय हिंदी प्रदेशों के भोले-भाले प्रतिनिधियों ने उनकी इस बात का विश्वास कर १५ साल की कैद मान ली थी। लेकिन तब की बात अब अ-हिंदी भाषी प्रदेशों को मान्य नहीं है। उनकी यह माँग है कि जब तक अ-हिंदी भाषी प्रदेश बहुमत से हिंदी को केन्द्र की राजभाषा बनाने के अनुकूल न हों तब तक हिंदी के साथ अँगरेजी भाषा को केन्द्र की भाषा होने का गौरव प्राप्त हो।

हिंदी के पक्षपाती क्यों इस बात पर अड़िग हैं कि केन्द्र की राजभाषा हिंदी ही हो? किसी हिंदी-भाषी प्रदेश ने यह माँग नहीं की कि हिंदी ही केन्द्र की राजभाषा हो। यह माँग तो बहुत पुरानी है और इसके उठानेवाले वे लोग थे, जिनका कोई भी संबंध हिंदी-भाषी प्रदेशों से नहीं था। इस संबंध में तीन नामों का उल्लेख करना उचित होगा--स्वामी दयानंद काठियावाड़ में उत्पन्न हुए थे, श्री शारदाचरण मित्र ने बंगाल में जन्म लिया था, महात्मा गांधी सौराष्ट्री थे। इन लोगों की सीखों को भुला देना एक तरह से विश्वासघात होगा। आज दिन भी हिंदी बोलनेवालों की संख्या, देश की अन्य भाषाओं के बोलनेवालों की अपेक्षा, अधिक है। संविधान सभा ने अनुच्छेद ३४३ को स्वीकार कर लिया था। फिर उसके हटाने या उसके स्थान में सहायक भाषा के रूप में अँगरेजी को बैठाने का सवाल ही नहीं उठता। देश उस समय तक आजाद न माना जाएगा, जब तक विदेशी भाषा अँगरेजी का वह गुलाम बना रहेगा। महात्मा गांधी का यही मत था। फिर क्यों प्रकारान्तर से अँगरेजी को स्थायी बनाने का प्रयास किया जा रहा है? क्या हमारे प्रधान मंत्री जी यह समझते हैं कि अँगरेजी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कह कर हिंदी के पक्षपातियों का विरोध वह दूर कर सकते हैं? यह बात असंभव है, जहाँ अन्य बातों में महात्मा गांधी के मत की उपेक्षा की गयी वहाँ क्या हमारे प्रधान मंत्री जी यह समझते हैं कि इस मामले में भी महात्मा गांधी के मत की वह उपेक्षा कर सकते हैं? यदि उनकी यह धारणा है तो अँगरेजी के मोह में फँसकर उस भाषा को लादने का उनका प्रयास अकारथ सिद्ध होगा।

जिस समय संविधान बन रहा था उस समय श्री राजगोपालाचारी भारत के अंतिम गवर्नर जनरल थे। विश्वस्त सूत्रों से हमें यह पता मिला था कि अ-हिंदी-भाषी प्रदेशों के प्रतिनिधि शाम के वक्त उनसे मिलने जाया करते थे। वहाँ पर क्या बातें हुईं, सो तो हमें मालूम नहीं, लेकिन यह बात स्पष्ट है कि अ-हिंदी भाषी प्रदेशों के प्रतिनिधियों ने उस समय उनकी माँग को स्वीकार नहीं किया था और संविधान सभा के खुले अधिवेशन में उन्होंने एक स्वर से १५ साल के उस समझौते को स्वीकार कर लिया था कि सन् १९६५ से हिंदी केन्द्र की राजभाषा हो। लेकिन सरदार वल्लभभाई पटेल के लाख प्रयत्न करने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्र के शिक्षा मंत्री, मौलाना अबुल कलाम आजाद अपने उद्देश में सफल हुए और उनके मंत्रालय में हिंदी की जो दुर्दशा हुई, वह अकथनीय है। एक ही उदाहरण काफी होगा। शिक्षा-गोष्ठी में मौलाना साहब का अँगरेजी भाषण तो पहले से अँगरेजी समाचार-पत्रों के संपादकों के पास पहुँच जाता था लेकिन उनकी यह आदत थी कि वह सदा उर्दू में बोलते थे। उनके भाषण का जो अनुवाद अँगरेजी में होता था, उसमें और उनके उर्दू भाषण में जमीन-आसमान का अंतर होता था। उनका उर्दू-भाषण, जिसे वह खुद देते थे, पत्र-संपादकों को अप्राप्य था। शिक्षा-मंत्रालय द्वारा आमंत्रित देश के शिक्षा-शास्त्री और संसद् के प्रतिनिधि तो उनके उर्दू भाषण को सुन लेते थे लेकिन समाचार-पत्रों के पढ़नेवालों को उसका अँगरेजी अनुवाद ही नसीब होता था। जिस आदमी की हिंदी के संबंध में इतनी उपेक्षा थी, उसी को केन्द्र ने शिक्षा-मंत्रालय द्वारा हिंदी को राज-काज के लिए समर्थ बनाने का काम सौंपा! उन दिनों मौलाना साहब ने जो किया उसकी आलोचना करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। उनकी मृत्यु के बाद श्री श्रीमाली को यह काम सौंपा गया कि शिक्षा-मंत्रालय द्वारा केन्द्र की राजभाषा होने के लिए हिंदी को वह समर्थ बनाएँ। यह सबको मालूम है कि जिस ढर्रे पर वर्षों तक मौलाना ने काम किया, उस ढर्रे को श्रीयुत् श्रीमाली जी को सुधारने में कितना समय लगा होगा। श्रीयुत् श्रीमाली जी की कठिनाइयाँ भी हैं और उस ढर्रे को सुधारने में उन्हें कुछ सफलता भी मिली है। लेकिन वह प्रधान मंत्री जी के अँगरेजी के प्रति मोह को दूर न कर सके। अन्त-र्राष्ट्रीय भाषा के नाम पर अँगरेजी के स्थायी रूप से प्रचलन का सवाल ज्यों का त्यों बना हुआ है।

अँगरेजी का साधारण ज्ञान देश में कुछ ही लोगों को हो सकता है, उसमें दक्षता प्राप्त करना सबके लिए आसान नहीं। ऐसी दशा में हम यह मान लेंगे कि अँगरेजी का ज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में कुछ पढ़े-लिखे लोगों के लिए अनिवार्य है, पर इससे यह सवाल तो हल नहीं होता कि हम सब अँगरेजी बोलें या अँगरेजी में काम-काज करें। केन्द्र के उच्चाधिकारी, जिनकी संख्या में अ-हिंदी भाषियों का बोलबाला है, अँगरेजी में सोचने और लिखने के आदी हैं। उन उच्चाधिकारियों में से कितनों ने हिंदी में दक्षता प्राप्त की कि सन् १९६५ से वे हिंदी में काम करने लगेंगे। बहुत थोड़े ही से ऐसे व्यक्ति मिलेंगे। ऐसी दशा में अँगरेजी को अनिवार्य बनाने का अर्थ है उसे स्थायी बनाना और हिंदी को पनपने न देना। हिंदी से अधिक, हमारे प्रधान मंत्री जी अँगरेजी में दक्ष हैं, अँगरेजी ही में उनकी पुस्तकों की धड़ाधड़ माँग है—कुछ तो इस कारण कि वह प्रधान मंत्री हैं और कुछ इस कारण कि उनकी अँगरेजी वास्तव में उच्च अँगरेज लेखक की सी होती है। कारण जो भी हो उनकी अँगरेजी के प्रति ममता जग-जाहिर है। इस दुर्भाग्य से उन्हें उन लेखकों के लेखों से सहारा मिलती है जो बहुसंख्यक अखबारों में संपादक के पद पर काम करते हैं, यद्यपि वे हैं अ-हिंदी प्रदेशों के। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश ही को ले लीजिए। लखनऊ से दो अँगरेजी के पत्र निकलते हैं, और दोनों के संपादक उन प्रदेशों के निवासी हैं जो अ-हिंदी भाषी प्रदेश कहे जाते हैं। दोनों ही दैनिक समाचार-पत्रों की नीति हिंदी-विरोधी है। वे आये दिन हिंदी के विरोध में अपना मत प्रकट किया करते हैं। हमारे प्रधानमंत्री जी को अँगरेजी की हिमायत करने में इन अ-हिंदी-भाषी लेखकों का प्रश्रय मिलता है।

अब यह देखना है कि कहाँ तक हमारे प्रधान मंत्री अँगरेजी को स्थायी रूप देने में सफल होते हैं। श्री पुरुषोत्तम-दास टंडन अब नहीं रहे और श्री मदनमोहन मालवीय का देहान्त सन् १९४६ के नवम्बर में हो गया। दोनों ही हिंदी के प्रबल पक्षपाती थे लेकिन हमारे सौभाग्य से डॉ० राजेन्द्रप्रसाद अभी जीवित हैं। उनकी कार्यप्रणाली के उलटने का भरसक प्रयत्न राष्ट्रपति भवन में हो रहा है इसीलिए डॉ० राधाकृष्णन् को राष्ट्रपति बनाया गया और उप-राष्ट्रपति के लिए उर्दू के ज्ञाता डॉ० जाकिर हुसेन को चुना गया।

यह तो हिंदी के लिए अमावस्या की रात्रि है। हिंदी का दुर्भाग्य है कि तीनों ही के तीनों अँगरेजी के मोहजाल में फँसे हुए हैं। इस समय तो यही सोचकर हमें अपने मन को दिलासा देना चाहिए कि "जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै बेर"। हिंदी के प्रबल पक्षपाती केन्द्र के गृहमंत्री, श्री लालबहादुर शास्त्री भी, प्रधान मंत्री की हाँ में हाँ मिलाने लगे हैं। उन्हें यह नहीं मालूम है कि इस हाँ के कारण अँगरेजी स्थायी हो जाएगी और हिंदी की बाढ़ रुक जाएगी। सचमुच हिंदी के दुर्दिन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सब श्री राजगोपालाचारी के पहले हमले के संबंध में हमने लिखा। दूसरे आघात के विषय में अब हम लिखगे।

यह प्रश्न है हिंदी के सरलीकरण का। डॉ० गोपाल रेड्डी और उनके साथी हिंदी के सरलीकरण का अर्थ लगाते हैं हिंदी का उर्दू-करण। संविधान के अनुच्छेद ३५१ में यह कहा गया है कि हिंदी को--बिना उसकी प्रतिभा को--जीनियस को--घात पहुँचाए--हिंदुस्तानी और अन्य भाषाओं से, जिनका उल्लेख आठवें शेड्यूल में है, वाक्य-विन्यास, शैली और वाक्य लिए जाएँ। इस अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि जहाँ नये शब्दों के बनाने की आवश्यकता या वांछनीयता हो, वहाँ उसका शब्द-विन्यास प्रथमतः संस्कृत से और द्वितीयतः अन्य भाषाओं से लिया जाए।

अनुच्छेद ३५१ में जो बात कही गयी है, उसका हमने सार ही दिया है। पहली बात जो मार्के की है वह यह कि इसका विकासक्रम बिगाड़ा न जाए। हिंदी का उर्दूकरण करने से हिंदी की प्रतिभा या 'जीनियस' को धक्का पहुँचेगा। यह बात इस अनुच्छेद में साफ कर दी गयी है कि हिंदी के विकासक्रम में किसी तरह का हस्तक्षेप न करना चाहिए। उसमें दूसरी भाषाओं के शब्द लिये जा सकते हैं यदि इसके कारण उसकी प्रतिभा या--'जिनीयस' या विकासक्रम को आघात न पहुँचे। जिस तरह का हिंदी का सरलीकरण डॉ० रेड्डी और उनके साथी कर रहे हैं, वह हिंदी का उर्दूकरण है, सरलीकरण नहीं। हिंदी की प्रतिभा या विकासक्रम के विपरीत वे लोग धारा बहा रहे हैं।

जहाँ तक नये शब्दों के बनाने का सवाल है वहाँ इस अनुच्छेद की भाषा और भी स्पष्ट है। उसमें कहा गया है कि यदि हिंदी में नये शब्दों की आवश्यकता हो तो प्रथमतः वे संस्कृत भाषा से लिए जाएँगे। यदि उनके पर्यायवाची संस्कृत में न मिलें तब अन्य भाषाओं से उसमें शब्द लिये जाएँ।

पं० मदनमोहन मालवीय तद्भव शब्दों का प्रयोग करते थे। 'हिन्दुस्तान' पत्र की भाषा मालवीय जी की हिंदी के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत से ऐसे लोगों को हम जानते हैं जो ठूँस ठूँस कर हिंदी में संस्कृत भाषा के तत्सम् शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहते। एक मित्र ने हमें बताया कि फ़ैलन आदि के अँगरेजी-हिंदी कोषों में बहुत-से ऐसे शब्द हैं जिनका अब हिंदी में प्रचार कम होगया है, क्योंकि आजकल के लेखक हिंदी में संस्कृत भाषा के तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुतायत से करने लगे हैं। उनकी भाषा किताबी या पंडिताऊ भाषा है। तद्भव शब्दों के बजाय वे लोग तत्सम् शब्दों का प्रयोग अब अधिक करते हैं। इस हिंदी का नाम यदि किताबी हिंदी या पंडिताऊ हिंदी रखा जाय तो अनुचित न होगा; लेकिन उसके मूलतः उर्दू-करण के विरोधी हम हैं, क्योंकि मूलतः यह उनकी चेष्टा संविधान के अनुच्छेद ३५१ के विपरीत है। हिंदी के विकासक्रम को वे लोग नहीं समझते जो सरलीकरण के फेर में हिंदी का उर्दूकरण कर रहे हैं।

हिंदी को सरल बनाने की चेष्टा में बहुत से लोग काम कर रहे हैं। डॉ० रेड्डी को चाहिए कि उनसे वह मदद लें और हिंदी को सरल बनाने में उनके सुझावों पर समझदारी के साथ विचार करें। श्री शामनाथ हिंदी के ज्ञाता नहीं, वह उर्दू जानते हैं और उनकी जबान उर्दू है। डॉ० रेड्डी को उनसे सलाह नहीं लेनी चाहिए। क्या हिंदी में भी उर्दू का 'काबीना' 'मंत्रिमंडल' के स्थान में चलेगा? डा० राजेन्द्रप्रसाद की यह आशा थी कि उन्होंने संविधान के पारिभाषिक शब्दों को बनाने के लिए जो कमेटी नियुक्त की थी, उसी कमेटी के सुझावों के अनुसार सारे देश में पारिभाषिक शब्दों की हिंदी पर्यायवाची शब्दों का प्रचलन होगा। लेकिन श्री शामनाथ की कृपा से यह आशा दुराशा मात्र है।

उर्दू के भी सरलीकरण का सवाल उठा है। वह तो विशिष्ट जनों की भाषा है। कबीर की वह भाषा नहीं, जायसी की वह भाषा नहीं, रसखान की वह भाषा नहीं, देहात में रहनेवाले मुसलमानों की वह भाषा नहीं। शहर में रहने वाले कुछ विशिष्ट जनों की वह तो भाषा है। उसके सरलीकरण का जो सुझाव दिया गया है, उसके संबंध में हमारा यह विनम्रता के साथ सुझाव है कि संविधान के पारिभाषिक शब्दों का जो कोष है उसका उर्दू में भी यदि चलन हो जाय तो अच्छा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर का त्रिशूल

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

पश्चिम के एक लेखक टर्नर ने अपनी पुस्तक में शंकर के त्रिशूल को कामवासना का प्रतीक माना है। शिव-लिंग की भी उन्होंने बहुत भद्दी व्याख्या की है। उनके कथनानुसार वाराणसी में लाखों शिवलिंग वहाँ के रहने वालों की कामुकता का परिचय देते हैं।

किन्तु, बहुत से पश्चिमी विद्वानों ने त्रिशूल, स्वस्तिक तथा ईसाई क्रॉस को एक-दूसरे से मिलता जुलता तथा प्रायः समान अर्थ वाला प्रतीक माना है। कटनर ने लिखा है कि प्राचीन मिस्र में स्त्रियों के शव को बक्स में बन्दकर बक्स के ऊपर पुरुष लिंग बना देते थे। हेरोडोटस नामक इतिहासकार ने प्राचीन मिस्र में एक जलूस देखा था जिसमें लोग तीन महान् शिवलिंगों को एक साथ जोड़कर ले जा रहे थे, कटनर कहते हैं कि यही "त्रिशूल" है और ईसाई क्रॉस भी मानवी प्रजनन-शक्ति का प्रतीक है। कटनर कहते हैं कि प्राचीन बाइबिल में जो हिब्रू भाषा में था, लिंग -- प्रतीक का काफी वर्णन है पर हिब्रू से अनुवाद करते समय वह सब निकाल दिया गया है। मूर नामक लेखक ने मिस्र के पिरामिड को भी लिंग का प्रतीक माना है।

प्राचीन मेक्सिको में Ψ प्रतीक उत्पादन शक्ति का द्योतक था। × या + चिह्न का मिस्री प्रतीक भी इसी अर्थ में था। मिश्र में ☥ चिह्न का बड़ा उपयोग होता था, उसे "आइसिस देवी का डंडा" कहते थे। यानी स्त्री या पुरुष मिल गये।

किन्तु, इसी बात को जरा दूसरे रूप में क्यों न समझें। ईसाई लोग मरियम--कुमारी मरियम--की पूजा करते हैं। उनके हाथ में क्रॉस है। मरिमय ही भारतीय "माया" हैं। दुर्गा हैं। उनके हाथ में त्रिशूल महामाया की तीन शक्तियों का द्योतक है--उत्पादक, पालक, संहारक। हरेक पुरानी चीज को या उपासना की वस्तु को केवल कामुक तथा वासनामय प्रतीक मानने की भूल अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने की है। पर हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो उनकी भूल समझ में आ जायगी।

---

1. H. Cutner–A short History of Sex–worship.
2. Payne knight Godfrey higgins ने यही साबित किया है!

प्राचीन मिस्र के तीन मुख्य देवी-देवता थे। (१) ओसेरिस, (२) आइसिस, (३) होरस--ओसेरिस देवता सृष्टि का प्रथम कारण--उत्पादक--महेश थे। आइसिस देवी--ग्रहण करने वाली देवी--पार्वती थी। होरस देवता ऊपर लिखे दोनों देवताओं के संयोग से पैदा हुए गणेश थे। इस प्रकार शंकर-पार्वती-गणेश इन तीन देवताओं का प्रतीक हुआ त्रिशूल। यानी जनक, जननी तथा सन्तान, तीन का प्रतीक हुआ त्रिशूल। यही त्रिमूर्ति हुई।

क्रॉस को ईसाई प्रतीक मानना भी भूल होगी। प्राचीन ईसाइयों ने इस प्रतीक को अपनाया भी नहीं था। प्रथम ईसाई रोमन सम्राट् ने अपने झंडे पर गोलाकार क्रॉस बनाया था। यूनानी लिपि में ईसामसीह के लिए जो अक्षर लिखे जाते थे उनकी संख्या तीन थी। उनमें पहला अक्षर × था। यदि इस पहले अक्षर को क्रॉस का पूर्वज मान लें तो वास्तविकता तक पहुँचना सरल होगा। गैम्बल नामक लेखक भी स्वीकार करते हैं कि साधु पॉल ने पहले पहल क्रॉस का चिह्न अपनाया था। अन्यथा सबसे पहले यानी चौथी सदी में क्रॉस का रूप + न होकर ✳ था। P द्योतक है "पैशन" यानी वासना। जिसकी उपासना से वासना × कट जाय, वही प्रभु ईसा हैं--यह अर्थ भी ध्यान में रखना चाहिए। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि प्राचीन मेक्सिको में क्रॉस का चिह्न बहुत माननीय तथा पूजनीय समझा जाता था। उनका विश्वास था कि चार हवाओं से वर्षा होती है, खेती में उपज होती है। अतएव इस चिह्न को "तोमाकुआहुइतिल" कहते थे यानी "जीवन-दायक वृक्ष"। इसे वे लोग "ताऊ" भी कहते थे यानी "जीवनदायक वृक्ष के द्वारा मुक्ति।"

भारतीय ज्योतिषशास्त्र में ⊤ क्षीणता का प्रतीक है। इस चिह्न का अर्थ क्षीण करना, संहार करना भी हो सकता है। स्वेडन-नार्वे के थार नामक देवता राक्षसों से सदैव युद्ध किया करते थे। उनके हाथ ⊤ अस्त्र रहता था। वह अस्त्र संहार का द्योतक है। यही हमारे त्रिशूल का भी द्योतक है।

शंकर की उपासना संसार में सबसे प्राचीन है। शिवलिंग का बड़ा आध्यात्मिक अर्थ है। लन्दन से लेकर अमेरिका तक, हरेक देश में शिवलिंग वर्त्तमान थे, आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मिलते हैं। वेद में भी शिश्न—देवता का जिक्र आया है। शंकर योगिराज हैं। सृष्टि के सभी रस—रौद्र, शृंगार, वीभत्स इत्यादि सभी उनमें वर्त्तमान हैं। शिवजी के स्वरूप में त्रि का अत्यन्त महत्व है। **त्र्यम्बकं यजामहे**—त्र्यम्बक नाम से भी यह बात स्पष्ट है। उनमें तीन शक्तियाँ सन्निहित हैं—शान्ति, वैराग्य तथा ज्ञान। त्रिशूल इन तीनों तत्त्वों का प्रतीक है। इसी शस्त्र से त्रिपुरासुर का वध किया गया था। जब शंकर साकार हुए, त्रिशूल भी साकार हो गया।

"शान्तिवैराग्यबोधाख्यैः"

प्राचीन पाशुपत सम्प्रदायों में मूर्ति के ध्यान में लगुड़ यानी डंडे का भी समावेश है। यही लगुड़ त्रिशूल है। त्रिशूल के धारण करनेवाले अज्ञान, मोह तथा अन्धकार के तीन शूलों से रक्षा करते हैं। आकाश, पृथ्वी तथा पाताल, तीन लोकों से रक्षा करते हैं। जन्म-जरा-मृत्यु से रक्षा कर मोक्ष प्रदान करते हैं।

जरा इनसे आगे बढ़िये तो और भी रहस्य मालूम पड़ेगा। त्रिशूल कुण्डलिनी तत्त्व का परिचय कराता है। शरीर के भीतर इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना, तीन मुख्य नाड़ियाँ मूलाधार लिंग को लपेटे हुए हैं। त्रिशूल इन्हीं का परिचायक है। मूलाधार लिंग रूपी शिव को ग्रहण करनेवाली ये तीन नाड़ियाँ ही त्रिशूल हैं। तंत्रशास्त्र में त्रिशूल का बड़ा महत्त्व है। काश्मीरी शैवागमों में देवताओं के यन्त्र त्रिशूलात्मक हैं:—

"शूलाब्जमंडलम्"

तन्त्र के अनुसार परा, अपरा, परा हुपरा शक्तियों का प्रतीक त्रिशूल है। देवी के हाथ में त्रिशूल इन तीनों आदि शक्तियों का बोध कराता है। शिव से उत्पन्न तीन प्रधान शक्तियाँ बतलाई जाती हैं—इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया। इन्हीं तीनों शक्तियों को शंकर या काली या दुर्गा अपने हाथ में धारण किये हुए हैं।

काम, क्रोध तथा लोभ ये तीन शूल जीवन को नष्ट कर रहे हैं। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के द्वारा इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों को जागृत कर शरीर के भीतर बैठे स्वयम्भू लिंग में समाविष्ट कर मानव काम, क्रोध तथा लोभ को भस्म कर अपनी आत्मा में लीन हो जाता है। योगिराज शंकर त्रिशूल धारण कर यही उपदेश दे रहे हैं:—

एक वैदिक मन्त्र है:—

तदेतत्त्र्यक्षर सत्यमिति स इत्येकमक्षरं
तीत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरं ॥

स तथा **य** का अर्थ है सत्य। बीच का **त्** का अर्थ है अमृत—झूठ। त्रिशूल में दोनों तरफ सत्य के बीच में असत्य है जिससे सदैव सतर्क रहना चाहिए। मानव जीवन की तीन स्थितियाँ हैं—सुषुप्त (सोया हुआ), तन्द्रा (न सोया न जागा) और जागृत अवस्था। इन तीनों अवस्थाओं में रखवाली करने वाला शंकर त्रिशूल धारण किये हुए हैं।

इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया—इन्हीं तीनों को जीतकर मनुष्य संसार के बन्धनों से छुटकारा पा सकता है। इसीलिए इनको त्रिशूल कहा है और लिखा है:—

त्रिशूलत्वमतः प्राह
शास्ता श्री पूर्वशासने।
निरंजनमिदं चोक्तं
गुरुभिस्तत्त्वदर्शिभिः।

गुरु द्वारा तत्त्व दर्शन से, भगवती की कृपा से इस त्रिशूल को अपने वश में करके ही मनुष्य अलख निरञ्जन बन सकता है।

इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया—इस त्रिशूल का समावेश शंकर में है। इसीलिए शंकर को भैरव कहते हैं। शंकर ही विश्वमय है। परम ब्रह्म है।

इच्छा कामो विषं ज्ञानं
क्रिया देवी निरंजनम्।
एतत्त्रयसमावेशः
शिवो भैरव उच्यते।

शंकर सृष्टि के बीज स्वरूप हैं। उन्हीं से अंकुर, पल्लव तथा पुष्प की प्राप्ति होती है। इन्हीं तीनों का द्योतक त्रिशूल है। उसके मूलाधार शंकर हैं। त्रिशूल हमको सृष्टि के आदि बीज का बोध कराता है।

याज्ञवल्क्य ने लिखा है:—

शिवः शान्तः साम्बरूपः।

साम्ब का अर्थ है माता सहित यानी परा शिव तथा परा शक्ति का सम्मिलित शान्त स्वरूप शिव है—उनके हाथ में धारण किया हुआ त्रिशूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानदीपिका

गोस्वामी तुलसीदासजी की एक मानस-पूर्व रचना*

डॉ० सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे एम० ए०, डी०-लिट्०

ज्ञानदीपिका[1] शीर्षक एक स्वल्पाकार पद्यबद्ध ग्रन्थ गोस्वामी तुलसीदास के नाम पर है। ग्रन्थ की मुद्रित प्रति तो मेरे देखने में नहीं आई; यह मुद्रण पा चुका है या नहीं इसका भी ठीक पता मुझे नहीं लग सका है। किंतु इसकी सब ही ज्ञात हस्तलिखित प्रतियाँ सब अध्याय-प्रशस्तियों में तथा कई अन्तःस्थ पद्यों में इसका गोस्वामीजी के कर्तृत्व का होना स्पष्ट रूप से सूचित करती हैं। तथापि, वर्तमान अनुसंधान-क्षेत्र में गोस्वामीजी के कुछ विशेषज्ञों ने ग्रन्थ के गोस्वामिकर्तृक होने के दावे को वा तो ध्यान देने योग्य भी नहीं माना है अथवा अत्यल्प चर्चा के उपरान्त नितान्त अस्वीकृत कर दिया है!

इस **ज्ञानदीपिका** का प्रथम प्रकट सूचीपत्रांकन, जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित **हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज-रिपोर्ट १९०६-०७-०८** के नोट ३३८ ब में हुआ है। यद्यपि **खोज-रिपोर्ट** के अनन्तर के वर्षों के अन्य[2] भागों में भी **ज्ञानदीपिका** की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ क्वचित निर्दर्शित हुई हैं, तो भी ग्रन्थ की अब तक की जानकारी हमें मुख्यतः उक्त १९०६-०७-०८ की **खोज-रिपोर्ट** के नोट ३३८ब से ही प्राप्त होती है। उक्त नोट में **खोज-रिपोर्ट** के विद्वान् संपादकों ने **ज्ञानदीपिका** की उन्हें प्राप्त हुई हस्तलिखित प्रति से ग्रन्थ-रचना समय निदर्शक दो दोहे तथा कुछ अन्य पद्य उद्धृत किये थे, एवं प्रायः उनका यह मत प्रकट किया था कि **ज्ञानदीपिका** वस्तुतः तुलसीदासकर्तृक नहीं है किंतु किसी का बाद में रचा हुआ बनावटी ग्रन्थ प्रतीत होता है क्योंकि इसमें निर्दिष्ट रचना संवत् की मास-तिथि तथा वार परस्पर विसंगत हैं तथा शैली, विचारधारा इत्यादि की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ **रामचरितमानस** से साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक रखता है।

मूल प्रकट सूचीपत्रांकन में ही विशेषज्ञ संपादकों के हाथों **ज्ञानदीपिका** को यह दुर्गति प्राप्त होने पर स्वभाविक ही था कि इसे संवत् १९८० में नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित **तुलसी-ग्रन्थावली** में स्थान नहीं दिया गया, तथा श्री रामनरेश त्रिपाठी, डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, इ० विद्वानों ने उनके **तुलसीदास और उनकी कविता** (१९३७), **तुलसी-दर्शन** (१९३८), इ० प्रबन्धों में इसके अस्तित्व की ओर ध्यान देना भी आवश्यक नहीं समझा[3], तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने उनके **तुलसीदास**[4] प्रबन्ध में केवल एक छोटे से पैराग्राफ में इसे निम्नानुसार झटपट निपटा दिया :—

"· · · · द्वितीय श्रेणी की रचनाओं में से एक रचना ऐसी भी है जिस पर रचना-काल के कारण विचार करना आवश्यक होगा : यह है 'ज्ञान-दीपिका'। इसमें रचना-काल सं० १६३१, आषाढ़ शुक्ल २, गुरुवार दिया हुआ है। पर, किसी भी प्रकार से गणना करने पर दिन गुरुवार नहीं आता। और रचना-काल के अनुसार शैली तथा विचार-धारा इसकी वही होनी चाहिए थी जो 'मानस' की है, किंतु यहाँ भी साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक है। नीचे कृति से एक अंश उद्धृत किया जा रहा है :

संबत सोरा सै गए इकतिस अधिक बिचार।
सुकल पक्ष आषाढ की दोज पुष्य गुरवार॥
ता दिन उपजी दीपिका पांच जोत परवान।
धर्म ज्ञान अह ब्रह्म पुनि परम सरूप बिकान॥

× × ×

---

*रचना-समय—गुरुवार, आषाढ़ शुक्ल २, संवत् १६२२ —दिनांक २८ जून, ईसवी सन् १५६५।

१—इस शीर्षक के 'ज्ञानदीप', 'ज्ञानदीपक', 'ज्ञान-दीपका', इ० अन्य रूप भी हस्तलिखित प्रतियाँ, उनके सूचीपत्र, इ० में यत्र-तत्र दिखते हैं, तथा अन्यत्र 'ग्यान-दीपिका' इ० रूप होना भी संभव है।

२—उदाहरणार्थ, हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का चतुर्दश त्रैवार्षिक विवरण (१९२९-३१), ग्रन्थसूची पृष्ठ ञ।

३—डॉ० रामकुमार वर्मा के हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (इलाहाबाद, १९५८, पृ० ३६६-३७१) में दी हुई तुलसीदास के नाम पर प्रचलित ग्रन्थों की सूची में क्रमांक ३७ पर निम्न विवरण उक्त खोज-रिपोर्ट १९०६-०७-०८ के आधार से दिया गया है :—

३७. ज्ञानदीपिका पद्यसंख्या ५१०, विषय ज्ञान, वैराग्य।

४—तृतीय संस्करण, प्रयाग, १९५३, पृ० १३४, तथा परिशिष्ट पृ० ५३१-५४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीत बंधु कुल देस, जप तप विद्या बद बिधि।
रहै न इनको लेस, नारि जो मुखहि लगाइए॥
प्रीति हिऐ दृढ जान, विधिना ताकै कर गहै।
जितहि टिकावत आनि तितहि बसै मन कामना॥

इसलिए यह स्पष्ट है कि इस कृति को भी हम तुलसीदास की कृति के रूप में नहीं स्वीकार कर सकते। ....."

गणना-विधि से परखने[1] पर रचना-समय के निर्देश में पाई गई उक्त विसंगति निर्देश की सत्यता तथा यथार्थता पर अवश्य ही संदेह के गम्भीर पटल बिछा देती है, एवं ग्रन्थ को बनावटी मानने की ओर मन का झुकना अपरिहार्य सा हो जाता है। किंतु केवल एक की प्रति के पाठ के आधार से इस विषय में एकदम अन्तिम निर्णय घोषित कर देना तथा पाँच अध्याय-प्रशस्तियों एवं अन्तर्गत असंख्य पद्यों में विद्यमान तुलसीदासकर्तृत्वसूचक अन्तःस्थ प्रमाण-समष्टि को, समुचित कारण-चर्चा न करते हुए ही, सुरंग लगा देना समीचीन नहीं दिखता। क्या ही सुसंगत होता यदि ये विशेषज्ञ, अनुसंधान का शास्त्र-संमत मार्ग अपना कर, **ज्ञानदीपिका** के तुलसीकर्तृक होने में इस विसंगति के कारण केवल संदिग्धता प्रकट करते, समय-निर्देश में अपपाठ होने की संभावना को भी अवसर देते, तथा अन्य कई प्रतियों के पाठ प्राप्त होने तक संबन्धित अन्तिम निर्णय को स्थगित रखते!

शैली तथा विचारधारा में **ज्ञानदीपिका** तथा **रामचरितमानस** का परस्पर साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक होने की बात डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखी है। आश्चर्य है कि इस विषय पर लेश भी दिग्दर्शन करने का कष्ट उन्होंने नहीं किया है, केवल "बाबावाक्यं प्रमाणम्" प्रणाली से उनका निष्कर्ष प्रबन्ध-पाठकों द्वारा शिरोधार्य किये जाने की अपेक्षा रखी है! क्या उनका यह मन्तव्य[2] है कि **ज्ञानदीपिका** से उन्होंने उद्धृत किये हुए पद्यों के छन्द (दोहा, सोरठा), विशिष्ट शब्द-रूप (गुर, पखान, सरूप, मति, हिए, गहै, आनि, इ०), तथा विचार (स्त्रीनिन्दा, पर-स्त्रीसंग निषेध, जीवन में नारी को अधिक महत्त्व देने से मनुष्य का अथवा साधक का सांसारिक तथा आध्यात्मिक ह्रास होना, इ०) **रामचरितमानस** को अपरिचित हैं? अथवा वे यहाँ पर **ज्ञानदीपिका** के अन्य विशेष स्थलों की ओर, उन्हें उद्धृत न करते हुए ही, संकेत कर रहे हैं?

मेरा विषय मुख्यतः संस्कृत, प्राचीन इतिहास-संस्कृति, इ० है। किंतु वाङ्मयेतिहासों की विद्यमान समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखनेवाली सामग्री पुराने हस्तलेखों में मुझे नवीन दृग्गोचर होने पर उसे प्रकाश में लाने हेतु मैं कभी-कभी मराठी के तथा हिन्दी के क्षेत्रों में भी अतिक्रमण करता रहता हूँ! नागपुर युनिव्हर्सिटी लायब्ररी के

१—परिशिष्ट पृ० ५३६-५४० पर डॉ० गुप्त ने गणित की सहायता से दिखाया है कि संवत् १६३१ को विगत मानने पर आषाढ़ शुक्ल २ को सोमवार आता है, एवं उसे वर्तमान मानने पर उक्त तिथि को बुधवार आता है।

२—डॉ० गुप्त ने उनके प्रस्तुत **तुलसीदास** प्रबन्ध में अन्य विवाद्य ग्रन्थों के अथवा उनके किसी अंश के तुलसीकृत होने-न होने का निर्णय करने में कई बार प्रायिक स्वरूप के प्रमाणों का, जो अधिक से अधिक केवल संभावनासूचक हो सकते हैं, निर्णयिक प्रमाणों जैसा उपयोग किया है। उदाहरणार्थ, पृ० १३२, **तुलसी-सतसई** का—

नमो-नमो नारायण परमातम परधाम।
जैहि सुमरित सिधि होत है तुलसी जन मन काम॥

यह दोहा उनकी दृष्टि से इसलिये तुलसीकृत नहीं है कि इसके प्रथम अर्ध में "नमो नमो" प्रयोग हुआ है जो **तुलसी-ग्रन्थावली** में अन्यत्र नहीं मिलता तथा द्वितीय अर्ध में 'सिधि' (सिद्धि) 'सिध' (सिद्ध) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है! क्या यह आवश्यक है कि किसी कवि के सब शब्द, रूप, प्रयोग, इ० उसकी प्रत्येक कृति में मिलें, अथवा इनमें से किसी का उसके द्वारा एक ही बार उपयोग किया जाना नितान्त असंभव माना जाय? **महाभारत** में तथा पुराणों में "नमो नमः" प्रयोग करनेवाले असंख्य स्तोत्र विद्यमान हैं जिनका प्रभाव गोस्वामी जी पर कहीं न कहीं पड़ना अपेक्षित ही है। "नमो नमो" "नमो नमः" का ही हिन्दी रूप है, तथा इस लेख में आगे दिये गये उद्धरणों से ज्ञात होगा कि इसका प्रयोग ज्ञानदीपिका में भी एक बार हुआ है। एवं, 'सिद्ध' के 'सिध' तथा 'सिधि' दोनों के वैकल्पिक अपभ्रंश माने जा सकते हैं, जैसे 'विविध' के 'बिबिध' तथा 'बिबिधि' दोनों रूप **रामचरितमानस** इ० में विभिन्न पद्यों में प्रयक्त हुए हैं। तुलसी-शब्दसागर (प्रयाग, १९५४, पृ० ३४६) की यह सूझ कि 'बिबिध' 'बिबिध' का स्त्रीलिंग है केवल इच्छामय कल्पना है तथा रामचरितमानस के "बिबिध अनुमान" (७ १११क), "बिबिध बाल बिभूषन चीर" (७·७६), "बिबिध प्रकार (७ ६७ख), इ० प्रयोगों को दुर्लक्षित करने से अव्याप्ति-अतिव्याप्ति दोषों से युक्त है! सइस लेख में अनन्तर उद्धृत ज्ञानदीपिका १·१० स्थित 'सुद्धि' (=शुद्ध) रूप भी तुलनार्थ अवलोकनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तलिखित ग्रन्थ-विभाग में वर्षों से अवस्थित संकीर्ण हस्तलिखितों के असंख्य बंडलों की जाँच करते समय मैंने इसी वर्ष उनमें से **ज्ञानदीपिका** का एक १४५ वर्ष पुराना हस्तलेख ढूँढ़ निकाला है, जो अब विभाग के संबन्धित आवक-रजिस्टर में क्रमांक ३५३० पर प्रविष्ट किया गया है। **ज्ञानदीपिका** का यह हस्तलेख विशेष पुराना न होते हुए भी अपूर्व तथा अत्यन्त महत्त्वशाली है, मुख्यतया इस कारण कि इसमें हमें ग्रन्थरचना समय का निर्देश पूर्णतया सुसंगत रूप में प्राप्त होता है तथा ग्रन्थ की तुलसीकर्तृकता संदिग्ध करनेवाली मुख्य बाधा आपाततः निरस्त हो जाती है। एवं उक्त मुख्य बाधा के दूर होने पर अब **ज्ञानदीपिका** तथा **रामचरितमानस** इ० की शैली, विचारधारा, इ० में अपेक्षित सामञ्जस्य भी सुगमता से स्थापित किया जा सकता है। एक साधारण अभ्यासु के नाते मैं नीचे हस्तलेख का परिचय इ० देने के उपरान्त इस दिशा में भी अपना स्वल्प प्रयत्न प्रस्तुत करूँगा। वस्तुतः यह काम तुलसी के उपर्युक्त विशेषज्ञों का ही है, किंतु उन्हें पूर्वग्रह से मुक्त होने में अभी कुछ विलम्ब लगना स्वाभाविक है।

खड़ी शैली (बुक-साइज) के तथा मोटे डोरे से मध्य में सिले हुए इस हस्तलिखित में ७×५½ इंच आकार के देशी पुराने कागज के कुल ७० पत्र हैं। इनमें से प्रथम पत्र १-४१ में **ज्ञानदीपिका** है, तथा अनन्तर के पत्र १-२९ में भिन्न हस्ताक्षर में नित्यनाथ-कृत **वशीकरण-मंत्र** इ० अन्य विषय हैं। **ज्ञानदीपिका** का सामान्यतः गहरी काली स्याही से तथा बीच-बीच में विशेष स्थलों पर लाल स्याही से मझोले सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है। मध्य-मान से पत्रों के प्रत्येक पृष्ठ पर १३ पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्ति में १६ अक्षर हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर चारों ओर लाल स्याही की खड़ी दो लकीरों से मर्यादित प्रायः १ इंच का मार्जिन है। लिपि उत्तरी ढंग की देवनागरी है, एवं विशिष्ट लिपि-लेखन की दृष्टि से यह प्रति उद्बोधक मानी जा सकती है। पत्र कई जगह कटे-फटे अथवा कीटभक्षित हैं, एवं यह प्रति इस समय सामान्य जीर्ण अवस्था में है। प्रति का लेखन साधारणतया शुद्ध है, एवं **खोज-रिपोर्ट १९०६-०७-०८** में उद्धृत अंशों के पाठ इस प्रति में कहीं साधुतर हैं। तो भी कई स्थानों में वास्तविक पाठ ठीक ध्यान में नहीं आते, एवं इसमें यत्र-तत्र अपपाठ होना भी संभावित है। कुछ पद्यों के एकाध चरण प्रति-लेखक की अनवधानता से, अथवा मूल आदर्श-पोथी त्रुटित होने से, लिखने में छूट गये हैं। कहीं-कहीं लेखक ने स्थान रिक्त छोड़कर यह त्रुटि व्यक्त भी की है।

प्रति-लेखक की अन्तिम प्रशस्ति निम्नानुसार है:—

" . . . इति पुस्तक संपूरन समापतः शुभमस्तूः ॥१॥ **पौष सुदि ३ सनऊरोज संवत् १८७३** ॥ मु० **गनेसगढ** ॥ लिषीला: **उजियारसिंघ** जथा प्रत मम दोसो न दीयते ॥ जो बांचै सुनै ताकौ राम राम बाम्हन वा संतन को डंडौत पहुँचै चरन टेकिकै ॥ श्रीरामकृष्णायन्मः १॥"

इस प्रशस्ति से स्पष्ट होगा कि **उजियारसिंघ** नामक लेखक ने **गनेसगढ** नामक, संभवतः मध्यप्रदेशीय, किसी स्थान में यह पोथी पौष शुक्ल तृतीया संवत् १८७३ (= प्रायः जनवरी, ईसवी सन् १८१७) को पूरी की।

ज्ञानदीपिका के पाँच अध्याय हैं। संबन्धित **खोज-रिपोर्ट** में ग्रन्थ की पद्यसंख्या ५१० दी हुई है, वह यदि संस्कृत अनुष्टुप के तौर पर प्रत्येक पद्य को ३२ अक्षरों का मानकर दी गई हो तो इस हस्तलिखित से भी प्रायः सुसंगत बैठती है। अन्यथा इस हस्तलिखित के अनुसार विविधि वृत्तों के पद्यों की गणना निम्नानुसार है:—

अध्याय	पद्य
१	४६
२	५२
३	५९
४	६९
५	५३
समग्र पद्य संख्या	२७९

एवं पद्यों के वृत्त निम्नांकित हैं:—दोहा, चौपाई, सवैया, छप्पय—बहुसंख्य; भुजंगप्रयात (शिथिल)—कुल १८ पद्य; सोरठा, घनाक्षरी, तारका, दण्डक, मोतीदाम; अरिल्ल, बिस्नपद—अल्पसंख्य।

ज्ञानदीपिका के अन्तःस्थ विषय इ० की जानकारी, साधारण पाठकों को तो क्या, विद्वान् वाङ्मयेतिहासलेखकों को भी प्रायः नहीं के समान है। अतः संबन्धित अतिसूक्ष्म विवरण प्रस्तुत हस्तलिखित के आधार से यहाँ प्रस्तुत करना अनुचित नहीं होगा।

ग्रन्थारम्भ—अध्याय १ में प्रथम कवि की नौ पद्यों की प्रस्तावना है, जिसमें प्रारम्भिक तीन पद्य वन्दना के हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गनेसायन्मः अथ ज्ञानदीपिका लिष्यते तुलसीक्रत ।।

दोहा—

सुमिरहुं चरन गनेस के प्रथमहि सीस नवाइ।
बुध्धि सिध्ध जातें लहौं भाषौ गृंथ बनाइ ।।१।।

चौपही—

नहिं उपजै नहिं होइ बिनासा। तिहूं लोक जाकौ परगासा ।।
जाकी लीला जगत भुलाना। नमोनमो[1] ताप्रभु भगवाना ।।२।।

दोहा—

सारद सुक नारद सुमिर ब्यास जनक के पांइ ।
ज्ञानदीपका रचतहौं भाषौ ग्रंथ बनाइ ।।३ ।।

चौपही—

सुनि सुनि बिबिध संसक्रत बानी। भाषा कीन्ह चहौं रुचिमानी।।
हरिहिं मिलन के मारग पांचा। देहुं बताइप्रगटबुधि सांचा ।।४।।

दोहा—

ज्ञानदीपका बरनहौं भाषा जोतिहिं पाँच।
उक्ति जुक्ति सौ ग्रंथ करि कथा पुरातम साच ।।५।।

अथ दीपक जथा दोहा—

बुधि पात्र वती उक्ति तत्व तेल की धार।
बृम्ह अग्नि कर लेसिऐ ज्ञान-दीप उजियार ।।६ ।।
संमत सोरह सै गऐ इकइस अधिक बिचार।
सुकल पक्ष आषाढ की द्वैज पुष्य गुरवार ।।७ ।।
ता दिन उपजी दीपका पांच जोति परवान।
धर्म ज्ञान अह-ब्रम्ह पुनि प्रभु-सरूप बिज्ञान ।।८ ।।
ज्ञानी सातुक बैस्नवह ग्रहबासिन सुष जोग।
हित बैरागिन गृंथ यह दूषहिं दंभी लोग ।।९ ।।

पद्य १० में ज्ञान-गुरु और सुबुद्धि-शिष्य के संवाद का उपक्रम है :—

अथ धर्ममारग जथा दोहा—

ज्ञान-गुरू कौ सिष्य इक ताकौ नाम सुबुध्धि।
धर्म-कथा पूछन लगौ जो मारग सुचि सुधि ।।१०।।

एवं यहाँ से लेकर अध्याय ५ स्थित कवि के अन्तिम उपसंहार के पूर्व तक संपूर्ण ग्रन्थ इन गुरु-शिष्य के संवाद के रूप में है। कहीं कहीं बीच में अन्य पात्रों के उपसंवाद भी हैं।

अध्याय १ धर्ममार्ग—धर्म के चार चरण—विद्या, शान्ति अथवा सत्त्व, तपस्या; दान; इनके वास्तविक लक्षण; ब्रह्मज्ञान की सब विद्याओं में राम-कथा की सर्व-श्रेष्ठता; हितकर विविध बातें; धर्म-धर्मज्ञ तथा अधर्म-अधार्मिक इनके लक्षण, स्थान, आचरण, इ०; हरिहरैक्य-स्तोत्र[1]; हरिहरभक्तों का यमदूतों से अबाधितत्त्व; इस क्रम में यम और यमदूतों का दीर्घ उपसंवाद; भक्त, अभक्त, इ० के लक्षण, इ०; परम धर्म का सूक्ष्म तत्त्व[2]।

अध्याय २ ज्ञानमार्ग—वास्तविक दुःखनाश, सुख प्राप्ति, तथा हरिपुरगमन का साधन-मार्ग; इस मार्ग की विविध बाधाएँ (बटपरा)—काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, दम्भ, इ० तथा हितकारी (हितू)—विचार, क्षमा, संतोष, धैर्य, दया, सद्भाव, इ; पूर्व में इस मार्ग से गये

१—पाटटिप्पणी ६ देखिये।

१—यह स्तोत्र भुजंगप्रयात वृत्त के सात पद्यों में है। इसके कुछ पद्य निम्नांकित हैं :—

पषा मोर के ज्यौं जटा सीस सोहै।
लस फूल की मुंड माला बिमोहै ।।
भलो कुमकुमा भस्म के लेप कीन्हें।
करै संष की नाद श्रंग्रीह लीन्हैं ।।
बनी भाल बेदी लसै आँख तीजी।
चली पाइं तैं जूट गंगाजू भीजी ।।
लसै बस्त्र पीरे तुचा बाघ की है।
मनो दामिनी जोत जंबालसी है ।।
रमानाथ सोहै उमा अर्ध आगै।
सदा देव साथी भूमै भूतसंगै ।।
चढे जानि नागारि नंदी सुनी की।
रच्यौ बास बैकुंठ कयलास नीकौ ।।
दह्यौ काली जमुनै अनंगै जरायौ।
धरे पर्वतादिक गरे ब्याल नायौ ।।
बिध्वंसी भली जज्ञ के देव दोऊ।
तरै पाप ते जो धरै ध्यान कोऊ ।।
कहै बिस्न संभू सबै लोक जाकौ।
दुबौ ऐक ही है नहीं भेद ताकौ ।।
करौ बंदना जो सुनौ शब्द मेरौ।
क्रपा कै लषौ हौं सदा दास तेरौ ।।
दुनी पाल संघार के अंस धारी।
सदा जय सदा जय सदा जय तुम्हारी ।।
(—१.१९-२५)

२—सुबुद्ध ऊवाच ।।दोहा।।
धर्म अधर्म के चिह्न गृह कहे गुरू ! बिस्तार।
अब सूछम सो हैतु लव कहिऐ तत्व निकार ।।
ग्यान ऊवाच ।।
परपीडासम पाप नहिं पर उपकारसु धर्म।
तुलसिदास निहचै कहत समुझि लेव यह मर्म ।।
(—१.४२-४३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए सन्त—शुक्र, नारद, सनकादि, इ०; इनके मार्ग में उपर्युक्त बटपरों (काम, क्रोध, इ०) ने गर्व-घोषणाओं सहित किये हुए विघ्न तथा अन्त में हितू-गण (विवेक, क्षमा, इ०) की विजय; इन बटपरों तथा हितुओं के उप-संवाद तथा घोषणाएँ; देह-देश की वंशावली; निष्कर्ष[१]।

अध्याय ३ ब्रह्ममार्ग—ब्रह्म का तथा माया का स्वरूप-निर्धारण; दोनों का संयोग; दोनों की तीन-तीन शक्तियाँ; दोनों के पाँच-पाँच नाम (रूप), प्रत्येक का स्वरूप; प्रकृति (माया का एक नाम-रूप) से महत्तत्त्व की तथा क्रम से अहंकार इ० अन्य तत्त्वों की उत्पत्ति; पर-ब्रह्म और माया का सदा एकत्र वास; पाँच तन्मात्र तत्त्वों के विभाग, वर्ण, रूप, इ०; पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रिय; विविध शरीर, शुद्ध चैतन्य, इ०; चार अवस्था, प्रत्येक का स्वरूप-वर्णन; जीवब्रह्मैक्य का निरूपण; ज्ञान तथा अज्ञान; जीवन्मुक्ति; मोक्ष (निर्वाण) का स्वरूप, साधन, इ; 'सोऽहम्' अजपाजप का प्रकार; ब्रह्म-माया का निर्णय, इ० इ०।

अध्याय ४ स्वरूपवर्णन—जीवब्रह्मैक्य के ज्ञान का परम महत्त्व होते हुए भी, सशरीर (सगुण) ब्रह्म का दर्शन तथा उसकी आत्यन्तिक भक्ति न्यारा महत्त्व रखते हैं; जिन्हें आत्मज्ञान दुर्लभ है, तो भी जो प्रभु (=सगुण ब्रह्म) का सामीप्य चाहते हैं, वे प्रभु के दस अवतारों की गुणमहत्ता का वर्णन ध्यान से सुनें; दस अवतारों का तथा उनके मुख्य कार्यों का संक्षेप से वर्णन; इन दस अवतारों म राम तथा कृष्ण अवतार प्रधान हैं एवं उनके गुणवर्णन सुनने से अत्यन्त तुष्टि होती है; ३६ पद्यों में 'संक्षेप-रामायण'[२]; १६ पद्यों में कृष्ण-अवतार का वर्णन; दस अवतारों के गुणवर्णन के पठन-श्रवण का फल—सच्ची रामभक्ति की उत्पत्ति।

अध्याय ५ (ज्ञानतत्त्व) शिक्षा—हरिनाममहिमा; हरि (राम) की सर्वश्रेष्ठता—अनेक उदाहरण; हरि (करतार) ही सब कुछ करता है, मन का क्षोभ व्यर्थ है; विधिलिखित जैसा है वैसा ही सब होता है—अनेक उदाहरण; विधिलिखित के विरुद्ध किये जानेवाले सब यत्न व्यर्थ हैं—अनेक उदाहरण; हरि का साहाय्य रहने पर सब विघ्न मिट जाते हैं—अनेक उदाहरण; सत्पात्र परख कर स्थान, ज्ञान, प्रीति तथा धन का दान करना श्रेयस्कर है; अनायास मुक्ति का साधन प्रभु की भक्ति है; नवधा भक्ति के प्रकार; प्रत्येक भक्तिप्रकार के विशिष्ट भक्तों के निर्देश; हरि-प्राप्ति के दो ही मार्ग हैं—ज्ञान तथा भक्ति, एवं इन दो मार्गों से ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है; गृहस्थों के लिए आवश्यक ज्ञान की बातें प्रथम ज्योति (अध्याय) में कही जा चुकी हैं; विरक्तों अथवा वैरागियों के उपयोग की बातें:—सच्चे वैराग्य तथा विरक्त के लक्षण—संसार को मिथ्या मानना, ईश्वर के स्वरूप में तथा भजन में परम आनन्द का अनुभव करना, देह के दुःख-सुख से चलित न होना, सबको निर्विशेष समान मानना, इ० इ०; सच्चे वैष्णव का लक्षण; विवेक-रहित अवस्था में वनवास करना सच्चे वैराग्य का लक्षण नहीं है; इससे कहीं अच्छा सुखदुःखनिर्विशेष, समदर्शी, तथा सच्ची हरिभक्ति में लीन गृहस्थ है; जो माया को कीच उछालनेवाली सूकरी मानकर निजी हृदय-सरोवर में स्थित हंस का ध्यान करता है, जिसकी रसना पर प्रभु का नाम तथा हृदय में उसका ध्यान चालू है, जो अत्यन्त दयाशील है एवं वर्णाश्रमधर्म के मार्ग से चलता है, उसे भगवान मिलते हैं; कवि का उपसंहार:—

ग्रन्थान्त—दोहा—

ज्ञानदीपका कंठ धरि देखहु साधनिहार।
भली बुरी लषि लेहु जग हरि-मारग उजियार ॥४०॥
मुष उसार हिय कोठरी कंठ देहरी-द्वार।
ज्ञानदीप धरि साधु लषि दुहूं वोर उजियार ॥४१॥
मूरष आगै जिन पढौ सुनि हसिहै मुषि बाइ।
अवगुनगाहक चालनी तासम तासु सुभाइ ॥४१॥
पढ़ यह पंथ बिचार चित साध चतुर ढिग आन।
गुनगाहक वै हंससे दूध पियहिं तजि पान ॥४३॥

१—दोहा ॥
अरथ-तत्वसब समुझि कै या बिधि करै जो कोइ।
तुलसिदास निहचे कहै हरिपुर गवनै सोइ ॥
(—२५२)

२—४.१७-५२ कुछ पद्य:—दोहा ॥
राजकरी हयमेद सुभ श्रुति कौ धर्म चलाइ।
तुलसिदास छंछेप ही कहि रामाइन गाइ ॥४०॥
पारबृम्ह श्रीरामजू क्यौं करि बरनौ जाइ।
तुलसिदास प्रभु जगत मैं सब जग है प्रभु माहि ॥५२॥
इस अंश में ब्रह्मा जी ने कहा हुआ ११ भुजंगप्रयात-पद्यों का रामस्तोत्र (४१-५१) भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति बिस्तार सब शास्त्र मति लघु करि भाष्यौ पंथ।
तुलसीदास टीका करत कोटिन बाढत ग्रंथ ॥४४॥
जथाबुद्धि मति हौं कहिव ज्ञानदीप अनुहार।
चूक परी जुत होइ कछू छमियौ कबहु बिचार ॥४५॥

सवैया—

भुम्मि हसै जब भूप भिरैं जुग मीच हसै तन लोह छिपाए।
काम हसै जब ज्वान तजै त्रिय नारि हसै निज नाह नुकाए॥
लक्ष हसै षन दूर धरै धनु कर्म हसै अभिमान बढाए।
राषै रहै न चलै पठाऐ तुलसी जग ऐ नर नाच नचाए ॥४६॥

दोहा—

मन में करि न सोच कछु कैतौं परै अभार।
यह बिचारि जिन राषि सिर देत रहत करतार ॥४७॥
सुमति भूमि अरु कुमति धनु सर करनी सब कोट।
भोगु निसाना ताकि कर करत काम तन चोट ॥४८॥
यह बिचारि नहिं आप सिर राषिय सकल अभार।
करम वोट दुष सुष सुगति सब भुगवै करतार ॥४९॥
बुद्धिहीन जड़ता अधिक कहिउं उपाय की मौट।
राम साध कौ बिरद सम टिक्यौ दुहुन की वोट ॥५०॥
यह बिचार नहिं मानिए अवगुनता मति हीन।
बिरद समुझि अनुसरन लषि छिमा करहु सुप्रवीन ॥५१॥

सोरठा—

मीत-बंधु कुल देस जप तप बिद्या बेद बिधि।
रहइ न इनकी लेस नारि जो मुषहिं लगाइए ॥५२॥
प्रीत हिए दिढ जान बिधना[१] ताके कर गहै।
तितिहि टिकावत आन जितहि बसै मन कामना ॥५३॥

१—इस हस्तलिखित प्रति में अन्यत्र (५.१४, इ०) भी 'विधिना' के अर्थ में 'बिधना' लिखा गया है।

अध्याय-प्रशस्तियां—

१ इति श्रीगुसांईतुलसीदासकृत ज्ञानदीपकायां श्रीरामवशिष्ठसंवादे तथा श्री कृस्नजुधिष्टरसंवादे तथा जमदूतसंवादेन बृतधर्ममारगबरननो नाम प्रथमोअध्याव ॥१॥

२ इति श्रीज्ञानदीपकायां श्री (गो०) स्वामीतुलसी दासकृते प्रबोधचंद्रोदय अनुमते ज्ञानबरननो नाम दुतियो अध्याव ॥२॥

३ इति श्रीज्ञानदीपकायां श्री (गो–) स्वामीतुलसी दासकृते संकाचार्जनुमते ब्रह्ममाया को निरनैय ब्रह्ममारग-बरननो नामु त्रितीयो अध्यायउ ॥३॥श्री॥

४ इति श्रीज्ञानदीपकायां श्री (गो–) स्वामीतुलसी-दासकृते श्रीभागवते रामाइनभानमते सरूपमार्गबरननो नाम चतुर्थमो अध्याव ॥४॥

५ इति श्रीज्ञानदीपकायां श्री (गो–) स्वामीतुलसी-दासकृते श्रुतिपुरानानुमते सिध्यामागनो नाम पंचमो अध्याव ॥५॥

ग्रन्थ में अत्यल्प स्थानों पर शीर्षक जैसे निष्कर्ष-रूप अतिलघु गद्य-वाक्य भी दिखते हैं।

आशा है कि उपर्युक्त विवरण **ज्ञानदीपिका** का, उसके अन्तःस्थ विषय, विचारधारा, शैली, इ० के संदर्भ से, स्थूल किंतु समुचित चित्र प्रस्तुत कर सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते का राष्ट्रीय पुस्तकालय

श्री कस्तूरमल बाँठिया

देश में चार राष्ट्रीय पुस्तकालयों की स्थापना का हमारी राष्ट्रीय सरकार ने निश्चय किया है जैसा कि सन् १९५४ के पुस्तक-प्रदान कानून (डिलीवरी ऑफ बुक्स एक्ट) से जाना जाता है। इस कानून की एक धारा में कहा गया है कि देश का प्रत्येक मुद्रणालय अपने यहाँ से छपी प्रत्येक पुस्तक, पत्र और पत्रिका आदि की एक एक प्रति अपने ही खर्चों से और निःशुल्क दिल्ली, कलकत्ता, बंबई और मद्रास के राष्ट्रीय पुस्तकालयों को भेजेगा। तदनुसार दिल्ली में तो वहाँ के सार्वजनिक पुस्तकालय को ही ऐसा राष्ट्रीय पुस्तकालय घोषित किया जा चुका है, और अँगरेजी राज्यकाल का इम्पीरियल पुस्तकालय, कलकत्ता कि जिसे सन् १९०३ की जनवरी ३१ को तत्कालीन भारत के गवर्नर-जनरल और वाइसराय लार्ड कर्जन ने यथार्थतः राष्ट्रीय पुस्तकालय का रूप दे दिया था, को ही सन् १९४८ के सितम्बर में "भारत का राष्ट्रीय पुस्तकालय' का नया नाम तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री स्व० मौलाना अब्बुल कलाम आजाद द्वारा दिला दिया गया था। बंबई और मद्रास के किस पुस्तकालय ने ऐसे पुस्तकालय का सम्मान पाया, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस विषय में कोई भी सूचना कहीं से प्राप्त नहीं होती है।

सार्वजनिक पुस्तकालय

हमारे देश में पुस्तक भंडारों की परम्परा यद्यपि अत्यन्त ही प्राचीन है और ऐसे अनेक पुस्तकभंडार आज भी देश में विद्यमान हैं, परंतु आज के सार्वजनिक निःशुल्क पुस्तकालय कि जहाँ जाकर मन चाहा ग्रंथ, समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ आदि पढ़ी जा सकें वा पढ़ने को पुस्तकें आदि घर भी ले जाई जा सकें अथवा अन्यत्र देश-विदेश में कहीं भी मँगाई जा सकें, का विकास जब संसार में ही पिछले ढाई सौ वर्षों से हुआ माना जाता है तो यदि हमारे देश में वैसा पुस्तकालय १९वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही सर्वप्रथम स्थापित हुए हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। और यह निःसंदेह आश्चर्य की ही बात है कि ऐसा पुस्तकालय स्थापन करने का सर्वप्रथम तिलक बंबई के ही ललाट पर लगा था न कि कलकत्ते के जैसा कि कलकत्ते के अँगरेजी दैनिक 'दी इंग्लिशमैन' के संपादक के सन् १८७३ के संस्मरणों से स्पष्ट ही प्रकट होता है। वह कहता है कि "बंबई के अपने पत्रों से यह जानकर कि वहाँ सार्वजनिक पुस्तकालय की नींव सुदृढ़ जम चुकी है और वह सफल हो गया है, मैंने उसी तरह की एक संस्था कलकत्ते में स्थापित कराने का निश्चय किया क्योंकि यह नगर भी सार्वजनिक पुस्तकालय-विहीन था। कुछ वर्ष पूर्व ऐसा प्रयास किया गया था पर वह असफल रहा था।"

कलकत्ता सार्वजनिक पुस्तकालय

८ मई १९६१ को हमारे प्रधान मंत्री पं० नेहरूजी ने कलकत्ता राष्ट्रीय पुस्तकालय के उपभवन (एनेक्सी) का शिलान्यास किया था। उस अवसर पर उक्त पुस्तकालय ने 'इंडियन नेशनल लाइब्रेरी' शीर्षक से रॉयल चौपेजी ३०० पृष्ठों का एक सचित्र अँगरेजी ग्रंथ प्रकाशितकर उन्हें भेंट किया था जिससे पता चलता है कि सन् १८३५ का स्थापित कलकत्ता सार्वजनिक पुस्तकालय और सन् १८९३ की भारत सरकार की स्थापित इम्पीरियल लाइब्रेरी दोनों को मिलाकर सन् १९०३ की ३१ जनवरी को जिस इम्पीरियल पुस्तकालय का उद्घाटन लार्ड कर्जन ने किया था, वही स्थापित किये जानेवाले चार में से एक विकसित राष्ट्रीय पुस्तकालय आज की यह 'इंडियाज़ नेशनल लाइब्रेरी' है।

इस उपयोगी सांस्कृतिक राष्ट्रीय संस्था से और उसकी प्रदत्त विविध सेवाओं से समस्त देश अधिकतम लाभ उठा सकें इसके लिए यह भी आवश्यक था कि अँगरेजी जितना विस्तृत नहीं तो उसके महत्त्वपूर्ण अंशों का एक संकलन ही संविधान सम्मत क्षेत्रीय और राष्ट्रभाषा हिन्दी में उस अवसर पर प्रकाशित और सुलभ मूल्य में वितरित किया जाता। पर ऐसा नहीं किया गया इतना ही नहीं अपितु उक्त अँगरेजी ग्रंथ समीक्षा अथवा संक्षिप्त अवलोकन लिए जाने को क्षेत्रीय और हिन्दी भाषा के प्रमुख पत्रों तक को भेजा ही नहीं गया जैसा कि हिन्दी की प्राचीनतम मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक ने इस लेखक को,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पूछने पर कि यदि इस संस्था का विवरण लेख प्रकाशन को भेजा जाए तो उन्हें स्वीकृत होगा या नहीं, उत्तर में लिखा था कि मैंने राष्ट्रीय पुस्तकालय संबंधी पुस्तक नहीं देखी। ये लोग हिन्दी पत्रों की—विशेषकर मासिकपत्रों की बड़ी उपेक्षा करते हैं और उन्हें अपना साहित्य नहीं भेजते। अतएव न हम इनसे परिचित हो पाते और न इनमें हम रुचि ही लेते हैं। यदि आप इस संबंध में कोई लेख भेजें (जो तीन पृष्ठों के लगभग हो) तो उसे अवश्य प्रकाशित कर दिया जाएगा।' हमारे भारतीय अधिकारियों का स्वराज्य-स्थापना के १४ वर्ष पश्चात् भी क्षेत्रीय और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति ऐसा रुख देखकर निःसंदेह खेद होता है। काश ! वे समय की दीवार पर लिखे स्पष्ट लेख को पढ़ पाएँ।

अँगरेजी भक्त भले ही यों उपेक्षा करते रहें, पर हम तो देश की एक उपयोगी संस्था की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं और उससे प्राप्त होती विविध सेवाओं से यह देश अधिकाधिक लाभान्वित हो, इस लक्ष्य से हिन्दी पाठकों को उससे परिचित कराना अपना परम आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। पाठक इस संस्था द्वारा प्रस्तुत विविध सेवाओं का अवश्य ही लाभ उठाएँ और इस विषय में हुए अपने भले और बुरे अनुभवों को समय समय पर प्रकाशित करते रहकर इस संस्था के अधिकारियों को अधिक सेवा-तत्पर होने को सचेत भी करते रहें। जन-साधारण की सजगता ही अधिकारियों को अपने कर्त्तव्य-निर्वाह के प्रति जागरूक रख सकती है। यही क्यों, प्रजातंत्र की ही सफलता जन-साधारण की इसी सजगता पर सर्वथा निर्भर है। हमने देश में प्रजातंत्र स्थापन तो कर दिया, परंतु उसके प्रति सजगता हम में अभी आना है। जब तक वह सजगता नहीं होगी, हमारा यह प्रजातंत्र सदा खतरे में ही रहेगा, यह हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए।

हाँ तो, हमारे आज के प्रमुख राष्ट्रीय पुस्तकालय का कलकत्ते में श्रीगणेश सन् १८३५ में 'दी इंग्लिशमैन' दैनिक के सम्पादक की प्रेरणा से एक वैयक्तिक संस्था के रूप में हुआ था। इसके संस्थापक यद्यपि एक प्रकार से अँगरेज ही कहे जा सकते हैं, परंतु इसको सर्वप्रथम आर्थिक प्रोत्साहन राजा द्वारकानाथ ठाकुर ने देकर मूर्तरूप दिलाया था। इनका वरद हस्त उस पुस्तकालय एवम् जन लोक के कार्यों के सिर पर निरन्तर ही रहा जिसकी कृतज्ञता स्वरूप कलकत्ते के नागरिकों ने उनकी मकराने की अर्द्धमूर्ति (बस्ट) मैट्काफ भवन में जहाँ कि वह पुस्तकालय सन् १९४८ से एस० घैनेड के सरकारी भवन में स्थानान्तर होने तक रहा था, प्रस्थापित की जो आज भी राष्ट्रीय पुस्तकालय के बैल्वैडीअर भवन के प्रवेशद्वार पर देखी जा सकती है। प्रारंभ से ही तीन सौ रुपयों की एक मुश्त अथवा दो किस्तों में सहायता देनेवाले इसके स्वामी (हिस्सेदार) मान लिए गये थे परंतु बाद में अन्य दो प्रकार के सदस्यों को कुछ वर्षों की सदस्यता के पश्चात् २००) देकर समान भागीदार बनने का अधिकार भी दे दिया गया था। जिस समय लार्ड कर्जन ने इस पुस्तकालय के संग्रह से प्रभावित होकर उसे सरकारी इम्पीरियल पुस्तकालय से सम्मिलित कर एक यथानाम आधुनिक पद्धति का सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापन कराया तो सरकार से उन स्वामियों को प्रति अंश ५००) के हिसाब से कुल रु० २८,५००) मावजे रूप से रोक दिलायी थी।

इस कलकत्ता पुस्तकालय के प्रति सरकार प्रारम्भ से ही सहायक रुख अपनाये रही थी। सन् १८३९ में तत्कालीन गवर्नर-जनरल श्री चार्ल्स (बाद में लार्ड) मैट्काफ ने इसको फोर्ट विलियम का ४६७५ ग्रंथों का अपूर्व संग्रह ईस्ट इंडिया कंपनी के संचालक मंडल की अनुमति से भेंट दिलवा दिया था। इस पुस्तकालय के तब के अँगरेज सहायकों में दो का नाम विशेष उल्लेखनीय है। एक तो तत्कालीन सिविल-सर्जन श्री स्ट्रांग जिसने अपने निवास-स्थान का नीचे का तल्ला इसके उपयोग के लिए उस समय तक दिया जब तक कि पुस्तकालय नये बने मैट्काफ भवन में सन् १९४८ में नहीं चला गया। दूसरा अँगरेज सज्जन था श्री ग्रांट जिसने मैट्काफ भवन निर्माण कोश में सहायक होने को पुस्तकालय को अयाचित एवं बिना व्याज ५०००) की राशि उधार दी जिसमें से पुस्तकालय बाद में ४०००) ही लौटा पाया था।

सामान्यतया पुस्तकालय स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं से ही पुस्तकें खरीदता था और इनमें अधिकांश लोकप्रिय व हलकी फुलकी पुस्तकें ही होती थीं। परंतु सन् १९४८ में इसके कुछ भागीदारों ने उसमें विदेशी विद्वत्संस्थाओं के प्रकाशन, पत्रिकाएँ आदि भी संग्रह किये जाने का प्रस्ताव इसके कार्यकारी मंडल में पारित करा दिया। पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिवर्ष अपना कार्यविवरण तो निकालता ही था और अब उसकी पुस्तक-संग्रह-सूची भी छप गई थी। उक्त प्रस्ताव को सफल बनाने को सूची के साथ विवरणिकाएँ विभिन्न विदेशी संस्थाओं को भेजी गईं जिनसे प्रभावित होकर अनेक ने अपने प्रकाशन और पत्रिकादि पुस्तकालय को भेजना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार विदेशी महत्त्वपूर्ण साहित्य संग्रह जब हो रहा था पुस्तकालय ने सन् १९५० तक गुजराती, मराठी, पाली, सिंहली और पंजाबी की पुस्तकें भी अच्छी संग्रह कर ली और आगे भी करती ही रहीं। तमिल और तेलगू साहित्य के लिए मद्रास सरकार से प्रार्थना की गई और वह भी प्राप्त होने लगा। बंगाल का बंगाली और उत्तर प्रदेश (तब का नार्थ वैस्टर्न प्राविंस) का हिन्दी साहित्य तो प्राप्त हो ही रहा था। व्यक्ति-विशेषों से भी समय समय पर ग्रंथों की भेंट आती रहती थी। फिर क्रयनीति भी पुस्तकालय ने निरे लोकप्रिय हलके फुलके ग्रंथों तक ही नहीं रखी हालांकि माँग तो वैसे ग्रंथों की ही अधिकतम थी। याने उसने प्रौढ़ साहित्य भी खरीदकर संग्रह करना शुरू किया। इन सबने उसके संग्रह को लगभग ७० वर्ष के सुदीर्घ जीवनकाल में लार्ड कर्जन जैसे अनन्य पुरातत्त्व प्रेमी को आकर्षण कर सकने-वाला इतना समृद्ध बना दिया था कि वैयक्तिक होते हुए भी उसे २८५००) के सरकारी द्रव्य से खरीद लेना ही उचित उसने माना और खरीदकर उसे इम्पीरियल पुस्त-कालय में सम्मिलित कर यथानामा तथा गुणा सार्वजनिक पुस्तकालय का अपने हाथों ३१ जनवरी १९०३ को उसने उद्घाटन कर ही दिया।

पुस्तकों के महत्त्वपूर्ण दान

लार्ड मैट्काफ द्वारा दिलाए गये फोर्ट विलियम के पुस्तक संग्रह के दान की बात तो हम ऊपर कही आये हैं। परंतु महत्त्वपूर्ण ग्रंथ-संग्रह दानों की परम्परा तो इसके बैल्वैडीयर में सन् १९४८ में जाने के बाद ही प्रारम्भ हुई। ऐसे दानों में सबसे महत्त्व का दान सन् १९०४ का मौलवी सदरुद्दीन अहमद का अरबी, फारसी, उर्दू और तुर्की भाषा की ९५२ हस्तलिखित और १५१५ लिथो व टाइपों की छपी पुस्तकों का है। इनमें दो सोने चाँदी के अक्षरों की चमचमाती स्याही के लिखे ग्रंथ भी हैं: एक है शाहंशाह औरंगजेब का हिजरी १०९९ का सूक्ष्म नक्श लेख में लिखा कुरानशरीफ और दूसरा है सोने की स्याही और नक्श लिपि में लिखा शाहजादा दाराशिकोह का पंज सूराह। ये दोनों ही दाता की अभिलाषानुसार कलकत्ते के विक्टोरिया मैमोरियल हॉल में दर्शनीय वस्तुओं में रखे गये हैं। लेख को सीमा में रखने के लिए इनका संक्षेप में विवरण देना भी यहाँ संभव नहीं है। जिज्ञासु पाठक उपरोक्त 'इंडियाज़ नैशनल लाइब्रेरी' ग्रंथ के पृष्ठ १२६ से १२८ तक देखने का कष्ट उठाएँ। मौलवी साहब का यह संग्रह "बुहारसंग्रह" के नाम से प्रसिद्ध है। दाता ने इसका एक लिखित न्यास बना दिया जिसके अनुसार ही इसका प्रबंध और उपयोग होता है।

अरबी, फारसी और उर्दू ग्रंथों के इस संग्रह ने अन्य मुसलमानों को भी अपना ऐसे ग्रंथों का संग्रह समर्पण करने को प्रेरित किया। फिर पुस्तकालय ने खरीदकर भी इस संग्रह की हर तरह से वृद्धि की। आज इस संग्रह की जो स्थिति है वह नीचे की तालिका से स्पष्ट होती है :—

बुहार पुस्तकालयों की पुस्तकों का विवरण

सं०	नाम संग्रह	छपी पुस्तकें				हस्तलिखित पुस्तकें			
		अरबी	फारसी	उर्दू	योग	अरबी	फारसी	उर्दू	योग
१.	बुहार संग्रह	९४९	४१६	१६०	१५१५	४६७	४८३	२	९५२
२.	सर अब्दुर्रहीम संग्रह	३३३	..	..	३३३	..	..	..	..
३.	हिदायतहुसैन संग्रह	९४	४७	१४७	२८८	९	९	..	१५
४.	ज़करिया संग्रह	५०	५	..	५५	९	२९	५	४३
५.	इमामबाड़ा संग्रह	३६२	३०६	२३८	९०६	७२	६८	..	१४०
६.	सर जदुनाथ सरकार संग्रह	..	२००	..	२००	..	..	..	..
७.	पुस्तकालय का संग्रह	१७१५	१३१२	६००९	९०३६	७८	६८	१४	१६०
	योग	३५०३	२२८६	६५५४	१२३३३	६३५	६४६	२१	१३१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य भेटों में सबसे महत्त्व की भेंट है सर आशुतोष मुखोपाध्याय संग्रह। अन्य संग्रहों के नाम इस प्रकार हैं; रामदास सेन संग्रह; सर जादुनाथ सरकार संग्रह; डॉ० बमरिद बरन मुखर्जी संग्रह; डॉ० एस० एन० सुन संग्रह, प्रो० वैयापुरी पिल्ले संग्रह, डॉ० तेजबहादुर सप्रू संग्रह। ऐसे सब संग्रहों ने कुल मिलाकर १,५०,००० पुस्तकों से पुस्तकालय का भंडार बढ़ाया जिनमें कई अद्वितीय, अप्राप्य और दुष्प्राप्य पुस्तकें भी कही जा सकती हैं।

अँगरेजी पुस्तकों का ही इस पुस्तकालय में सबसे बड़ा संग्रह है। आज कुल संग्रह दस लाख पुस्तकों का बताया जाता है। भाषा की पुस्तकों में सबसे बड़ा संग्रह बंगाली पुस्तकों का है जो इसके कलकत्ते के १३० वर्ष लगभग के जीवन को देखते हुए कुछ भी नहीं है। यह संग्रह ३३००० पुस्तकों का है। बंगाली पुस्तकों और पत्रिकाओं का देश में यह सबसे बड़ा दूसरा संग्रह है ऐसा उपरोक्त विवरण पुस्तक का कहना है। इस संग्रह में सीरामपुर के पादरियों की छापी अठारहवीं सदी की अप्राप्य पुस्तकें भी हैं जो भारत में पुस्तक मुद्रण के इतिहास में नक्षत्र समान हैं। गुजराती की लगभग ४००० पुस्तकें और हिन्दी की १५,००० हैं। सन् १९५३ में हिन्दी की केवल ३२५० पुस्तकें ही थीं। पिछले सात वर्षों में हिन्दी पुस्तकों की यह चौगुनी वृद्धि सन् १९५४ में पारित पुस्तक प्रदान विधान, जिसके अनुसार प्रति वर्ष चार हजार पुस्तकें वहाँ पहुँचती हैं प्रमुखतः हुई कही जा सकती है। अधिकारियों का यह भी कहना है कि तीन वैयक्तिक संग्रहों की खरीदी ने भी इस हिन्दी संग्रह को बढ़ाया है। ये संग्रह किस महत्त्व के हैं, इसका कोई भी संकेत उस पुस्तक में नहीं दिया गया है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के ग्रंथों का विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है जिसमें पुस्तक प्रदान कानून के अन्तर्गत प्राप्त हुई पिछले तीन वर्षों की पुस्तक-संख्या भी तुलना के लिए दे दी गई है। इससे पाठक अनुमान लगा सकेंगे कि भाषा पुस्तकों का संग्रह बढ़ाने का अधिकारियों द्वारा विशेष प्रयत्न ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जो होना आवश्यक है।

भाषा पुस्तक संग्रह और पुस्तक प्रदान कानूनान्तर्गत प्राप्त पुस्तकों की तालिका।

नाम भाषा	संग्रह संख्या १९६०	पुस्तक प्रदान १९५८-९	कानूनान्तर्गत १९५९-६०	प्राप्त पुस्तकें १९६०-६१ (फ०तक)
१ असमी	७०८	८४	११०	१०२
२ उड़िया	३५३९	२४२	२१६	२३०
३ कन्नड़	५४६८	५८७	४६३	४२०
४ गुजराती	४०००	११८६	११२४	८०१
५ पंजाबी	१५६५	३५४	२४१	१९०
६ बंगाली	३३०००	१५६१	१७५०	१२४१
७ मराठी	७०००	१४५७	१४०१	९६०
८ मलयालम	५२३२	८३८	६७८	७५९
९ हिन्दी	१५०००	४८४१	३७५१	२४०२

यह एक आश्चर्य ही है कि बुहार जैसा संस्कृतादि पुस्तकों के संग्रह का दान अब तक भी किसी से नहीं मिला।

बाल-पुस्तकालय सार्वजनिक पुस्तकालय का अंग सभ्य देशों में नहीं माना जाता है। वहाँ इनका विकास बिलकुल ही पृथक् होता है क्योंकि दोनों के लक्ष्य सर्वथा भिन्न हैं। जिस देश में अद्यतन विकसित सार्वजनिक पुस्तकालय ही स्थापित होना हो जैसा कि हमारे देश में होना है, वहाँ बाल-पुस्तकालयों का प्रचार दूर ही कहा जाएगा। अद्यतन बाल-पुस्तकालय कैसे होते हैं और होना चाहिए, इसके आदर्शरूप से कलकत्ते के राष्ट्रीय पुस्तकालय की देख-रेख में एक आदर्श बाल-पुस्तकालय भी पिछली साल ही खोला गया था। चूँकि यह भी बैलवेडीअर के तलघर में स्थित है, अतः इसका उपयोग उधर के ही शिशु कर सकते हैं। यह ५ से १२ वर्ष तक के बच्चों के विकास में पूर्ण सहायक हो, इसी लक्ष्य से खोला गया है। यह केन्द्र बाल-पुस्तकालय रूप से नहीं योजित किया गया है। अहमदाबाद, बड़ोदा, बंबई, दिल्ली, मद्रास और मैसूर में इस प्रकार के बाल-पुस्तकालय वर्षों से चल रहे हैं। यहाँ के बाल-पुस्तकालय में बंगाली, अँगरेजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी, तमिल और उर्दू का बाल-साहित्य अभी संग्रह किया गया है और उसमें तेलगू साहित्य भी बढ़ाने का प्रयत्न है। सब मिलाकर १०००० पुस्तकों का संग्रह है। यहाँ भी भारतीय भाषाओं की अपेक्षा कई गुना अधिक अँगरेजी बाल-साहित्य ही संग्रहित है। इसका कारण यह भी है कि देश में श्रेणी-बद्ध बाल-साहित्य लेखन-प्रकाशन के प्रयत्न अभी ही होने लगे हैं। बाल-मनोविज्ञान के जानकार देश में बहुत ही कम हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पुस्तकालय की सेवाएँ और कार्य

अब हमें इस पुस्तकालय की सेवाएँ और विभिन्न कार्यकलाप का भी संक्षेप में विचार कर लेना चाहिए। वहाँ जाकर मनचाहा साहित्य पढ़ने और जो ऐसा नहीं कर सकते हों, वे घर पर पुस्तकें ले जा सकें, ऐसा दोनों ही प्रकार का प्रबंध है। पर पुस्तकालय में प्रवेश कार्ड द्वारा होता है जो प्रत्येक वयस्क को संसद, राज्य सभा, विधान सभा आदि जनों--जिनकी सूची प्रवेश-पत्र में दी हुई है--की सिफारिश पर तीन वर्ष के लिए दे दिया जाता है। उधार की पुस्तकें लेने का भी कार्ड इसी प्रकार दिया जाता है जो स्थायी होता है। उधार पुस्तक ले जानेवाले को पुस्तक के मूल्यानुसार निधि जमा करनी पड़ती है। दो पुस्तक एक साथ एक महीने के लिए दी जा सकती हैं। अवधि में नहीं लौटाने पर प्रति दिन ६ नया पैसा दंड का लिया जाता है। उधार दी जानेवाली पुस्तकें ही उधार दी जाती हैं, संदर्भ पुस्तकें, दुष्प्राप्य व अप्राप्य आदि पुस्तकें उधार नहीं दी जातीं। प्रत्येक पुस्तक के लिए माँगपत्र (रिक्वीजिशन) भर कर देना होता है और सामान्यतया पुस्तक घंटे भर में मिल भी जाती है। सिवा संदर्भ पुस्तकों के अन्य किसी पुस्तक तक पुस्तक चाहनेवाला नहीं पहुँच सकता है। जैसा कि न्ययार्क, लंदन आदि पश्चिम के नगरों के सार्वजनिक पुस्तकालयों में पुस्तकों तक पाठकों की मुक्त पहुँच है, वैसी यहाँ नहीं है। यद्यपि पत्रों में मुक्त पहुँच अपनाने का आन्दोलन होता रहता है, पर वह दिन अभी तो देश में दूर ही दिखता है क्योंकि हममें वह ईमानदारी क्वचित् ही पाई जाती है जो सामान्यतया पाचात्य देशों के पुस्तक पाठकों का स्वभाव है। यह तो एक सामान्यतर सेवा ही कही जाएगी और ऐसी सेवा सामान्य से सामान्य पुस्तकालय तक करता है।

राष्ट्रीय पुस्तकालय की विशिष्ट सेवाएँ

इस पुस्तकालय पर जिसे अँगरेजी में बिब्लियोग्राफी कहते हैं वैसी पुस्तक सूची तैयार करने का भार डाला गया है। पुस्तकालय ने भारतीयविद्या (इंडोलोजी) के सभी पक्षों के प्रकाशित संसार साहित्य, चाहे वह पुस्तक रूप में हो और चाहे पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुआ हो, सबकी विवरण सहित सूची तैयार करने का काम हाथ में ले लिया है। ऐसी परिचायक सूचियों की आज नितान्त आवश्यकता महसूस होने लगी है। आज भारत के राजदूत संसार में सभी जगह भेजे जा रहे हैं और उनके पास भारत की विविध बातों की पूछताछ भी दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है जिसको संतुष्ट करना दूतावास के लिए आसान नहीं होता। वह ऐसी पूछपाछ जब यहाँ के वैदेशिक विभाग को संतोषजनक उत्तर के लिए भेज देता है तो वैदेशिक विभाग राष्ट्रीय पुस्तकालय के बिब्लियोग्राफी व रेफरेंस विभाग को भेज देता है जिसके जिम्मे यह सूचना देना है।

ऐसी विवरण सहित सूची ५६ भागों में प्रकाशित किये जाने की योजना बन चुकी है और भारतीय नेतत्व विज्ञान विषयक साहित्य सूची का एक भाग प्रकाशित भी हो चुका है। इन भागों में निम्न बातें दी जाना निश्चय हुआ है :--

(१) विषय की संक्षिप्त रूपरेखा और उसके अध्ययन का विकास।

(२) मूलभूत सभी महत्त्व की पुस्तकों की सूची और वे किस देश-विदेश के पुस्तकालय में प्राप्य हैं।

(३) आनुषंगिक उस सब पत्र-पत्रिकादि साहित्य का भी इसमें परिचय जो विषय के अध्ययन के लिए सहायक और उपयोगी है।

(४) प्रत्येक पुस्तक का उपयुक्त टिप्पणी सहित परिपूर्ण पर्याप्त परिचय।

(५) वर्ग-वर्ग में विभाजित सब सामग्री।

(६) और सुलभ संदर्भखोज के लिए अनेक प्रकार की अनुक्रमणिका (इंडेक्सेज़)।

हो सकता है कि यह सेवा अभी सरकारी विभाग तक ही सीमित हो। परन्तु विशिष्ट व्यक्ति उपयोग करना चाहेंगे तो उन्हें भी यह प्राप्त हो सकेगी। पर इसके पूर्व इस सेवा की परिसीमाएँ पूछताछ कर अच्छी तरह समझ लेना होगा। फिर यह पुस्तकालय देश-विदेश से ऐसा विशिष्ट साहित्य भी उन विशिष्ट व्यक्तियों के उपयोग के लिए उधार मँगा सकता है क्योंकि इसने संसार के पुस्तकालयों से ऐसा सहकारी संबंध भी स्थापित किया हुआ है।

इस पुस्तकालय का १९६०-६१ का बजट अनुदान १५,६६,२००) था। पुस्तकों की खरीद का बजट में ७५०००) मंजूर किया था और फिर ५०,०००) और खर्च स्वीकृत किया गया था। हमें चाहिए कि हम देश के सांस्कृतिक जागरण के लिए स्थापित हुई न केवल इस संस्था का अपितु ऐसी प्रत्येक संस्था का परिपूर्ण लाभ उठावें, यही नहीं अपितु अभी तक अँगरेजी विविध साहित्य की पुस्तकों की खरीद में जितना धन व्यय हो रहा है, उतना ही देशी भाषाओं के साहित्य पर भी हो, ऐसा प्रयत्न करें ताकि पुस्तकालय संग्रह वृद्धि के लिए नव प्रकाशित साहित्य जो उसे पुस्तक प्रदान कानून के अंतर्गत मिलता है, उसी पर जैसा अभी निर्भर कर रहा है, न करता रहे। आज भी पूर्व प्रकाशित साहित्य देश में लभ्य है पर पुस्तकालय में नहीं जिसे संग्रह करना ही चाहिए। कमी है तो उसको खोज कर मँगाने की ही। अँगरेजी साहित्य की बिक्री आधुनिकतम पद्धति से होने के कारण वह तो बरबस सामने आ जाता है। फिर देश में उस साहित्य का साम्राज्य भी पहले जैसा ही छाया हुआ है एवम् भाषा साहित्य सभी उपेक्षित-सा है। जब तक हम सब सजग नहीं होंगे, अधिकारी अपना ढर्रा आसानी से बदलनेवाले नहीं हैं क्योंकि अधिकारियों पर अँगरेजी शासन की छाया उनकी शिक्षा-दीक्षा से गहरी से गहरी छाई हुई है। देशी भाषा-साहित्य में संग्रहणीय जैसा उन्हें बहुत कम लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूधर नामक जैन कवि और उनकी रचनायें

श्री अगरचन्द नाहटा

"सरस्वती" जून' ६२ के अंक में श्री कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का एक लेख "भूधर कवि और उनकी ध्यान बतीसी" नामक छपा है। उसमें उन्होंने 'भूधर' नामक कई कवियों की चर्चा की है। उनमें से दो जैन कवि भी हैं। उनकी रचनाओं के रचनाकाल में काफी अन्तर है। इसकी चर्चा करते हुए अन्त में उन्होंने लिखा है कि "इससे यह समस्या सामने आती है कि भूधरदासजी जैन, भूधरदास मिश्र, और भूधर मिश्र ये तीनों एक ही कवि हैं अथवा अलग-अलग। तीनों कवि एक ही हों अथवा अलग-अलग पर रचनाओं से इतना तो निश्चित-सा प्रतीत होता है कि वे जैन थे। इनमें से भूधरदास मिश्र और भूधर मिश्र दोनों एक ही प्रतीत होते हैं कारण भूधरदास मिश्र के लिखे हुए 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' की टीका और 'चर्चा समाधान' नाम के जो दो ग्रन्थ बताये गये हैं, ठीक वे ही भूधर मिश्र की विवरणिका में उनके द्वारा विरचित कहे गये हैं, दोनों का निवासस्थान भी एक ही 'शाहगंज' बताया गया है।" अतः वास्तव में भूधर नामक कवि तीन नहीं ही रह जाते हैं।

इनमें से प्रथम कवि के रचित 'जैन शतक' 'पार्श्व पुराण', और 'पद संग्रह' जैन समाज में बहुत प्रसिद्ध हैं और प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'जैन शतक' के अन्त में कवि ने ग्रन्थ की रचनाकाल, प्रेरक, अपना निवास-स्थान और जाति का उल्लेख इस प्रकार किया है--

कवित मनहर

आगरे में बाल बुद्धि भूधर खंडेलवाल,
बालक के ख्याल सौं-कवित्त कर जानै है।
ऐसे ही करत भयौ जैसिंघ-सवाई सूबा,
हाकिम गुलाबचंद आये तिहि थानै है।
हरिसिंघ साह के सुवंश धर्म रागी नर,
तिनके कहे सौं जोरि कीनी एक ठानै है।
फिरि फिरि प्रेरे मेरे आलस कौ अंत भयौ,
उनकी सहाय यह मेरौ मन मानै है॥१०॥

दोहा

सतरहसै इक्यासिया, पोह पाख तमलीन।
तिथि तेरस रविवार को, सतक समापत कीन॥१०७

इस ग्रन्थ का प्रचार इतना अधिक रहा है कि जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई से सन् १९२८ तक में इसके ५ संस्करण निकल गये और उसके बाद वीर सेवा मंदिर की सस्ती ग्रन्थमाला से भी इसका एक संस्करण संवत् २००७ में प्रकाशित हुआ है। पता नहीं क्यों इस संस्करण में पद्यांक १०० तक के ही पद्य दिये गये हैं, पीछे के ७ पद्य छोड़ दिये गये हैं। उपरोक्त प्रशस्ति से यह स्पष्ट है कि ये भूधर कवि खंडेलवाल जाति के थे और इन्होंने आगरे में संवत् १७८१ में जैन शतक की रचना की।

कवि का दूसरा ग्रन्थ "पार्श्वनाथ पुराण" भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण काव्य है। श्री नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन' में इस काव्य के संबंध में लिखा है कि "यह सफल महाकाव्य है। इसकी कथा बड़ी रोचक और आत्मपोषक है। कथावस्तु से ही इसका महाकाव्यत्व प्रकट है। जीवन का इतना सर्वांगीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्य में ही मिलेगा। वस्तु-वर्णन, चरित्र-चित्रण और भाव-व्यंजना इस महाकाव्य में समन्वित रूप में वर्तमान है। घटना विधान और दृश्य योजनाओं को भी कवि ने पूरा विस्तार दिया है। आदर्शवाद का मेल कविता की सामाजनिष्ठ पद्धति और प्रबन्ध शैली से अच्छा हुआ है।" यह महाकाव्य 'जिनवाणी प्रचारक कार्यालय', कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। इसकी रचना में ५ वर्ष लगे थे। संवत् १७८९ के अषाढ़ सुदि ५ को नव अधिकारों का यह काव्य पूर्ण हुआ। यथा--

दूहा--**संवत सतरह सै समय, और नवासी लीय।**
सुदि असाढ तिथि पंचमी, ग्रन्थ समापत कीय॥

कवि की तीसरी रचना उनके नये पदों का संग्रह है। और वे पद्य भी बहुत ही भावपूर्ण हैं। उनके संबंध में श्री नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि--"कवि भूधरदास कुशल कलाकार हैं उन्होंने गीतिकला की बारीकियाँ अपने पदों में प्रदर्शित की है। यह स्थूल को छोड़ सूक्ष्म सौन्दर्य को व्यक्त करना चाहते हैं। इनके पदों में भावुकता के सहारे करुण रस और आत्म निवेदन की भी अभिव्यंजना हुई है। पदों में शाब्दिक कोमलता, भावनाओं की मादकता और कल्पनाओं का इन्द्रजाल समन्वित रूप में विद्यमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इनके पदों का एक संग्रह "भूधर पद संग्रह" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। भूधरदास के पदों में राग-विराग का गंगा-जमुनी संगम होने पर भी शृंगारिकता नहीं है। भाषा की लाक्षणिकता और काव्योक्तियों की विदग्धता यत्र-तत्र रूपकों में विद्यमान है। "जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से प्रकाशित जैन पद संग्रह भाग ३ में आपके ८० पद कीमती छपे हैं।"

प्रथम रचना जैनशतक के संबंध में श्री नेमिचन्द्रजी ने लिखा है--"भूधर शतक के कवित्त, सवैये, छप्पय बड़े ही सरस, प्रवाह-पूर्ण, लोकोक्ति समाविष्ट एवं जोरदार हुए हैं। वृद्धावस्था, संसार की असारता, काल सामर्थ्य, स्वार्थपरता, दिगम्बर मुनियों की तपस्या, आशा-तृष्णा की नग्नता, आदि विषयों का निरूपण कवि ने बड़े ही अद्भुत ढंग से किया है। विषय प्रतिपादन की शैली बड़ी स्पष्ट है। भावों को विशुद्ध करने में कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। नीरस और गूढ़ विषयों का निरूपण भी सरस और प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। कल्पना, भावना और विचारों का समन्वय संतुलित रूप में हुआ है" इस प्रकार कवि की--तीनों रचनाएँ उसे उच्चकोटि का कवि सिद्ध करती हैं।

जयपुर के दिगम्बर ठोलियान मंदिर के शास्त्र-संग्रह में "भूधर-विलास" की प्रति प्राप्त है जिसमें भूधर कवि की छोटी-छोटी समस्त रचनाएँ संग्रहीत की गई हैं। यद्यपि यह प्रति नई ही लिखी हुई है पर लगता है किसी प्राचीन प्रति की नकल होगी। जैसे 'बनारसी विलास' में कविवर बनारसीदासजी की छोटी-छोटी समस्त रचनाओं का संग्रह है और 'ब्रह्म-विलास' में कविवर भगवतीदास की रचनाओं का संग्रह है। इसी तरह 'भूधर विलास' में कवि भूधर की रचनाएँ हैं। उनमें जैन-शतक और पदों के अतिरिक्त निम्नोक्त रचनाएँ और हैं:--

(१) भूपाल चौबीसी भाषा, पद्य ५०, (२) दर्शन स्तोत्र द्वय--पद्य ३४ और ४, (३) तीन चौबीसी जयमाल द्वय--पद्य १० और १३, (४) पंचमेरू जयमाल पद्य १४, (५) जिन-विनती पद्य १२, (६) परमार्थ जकड़ी पद्य ८, (७) शिक्षा जकड़ी पद्य ६, (८) जकड़ी-पद्य ५, (९) गुरां की विनती पद्य १४, (१०) नवकार महात्म्य की कथा ढाल पद्य १८, (११) हुक्का (धूम्रपान) निषेध चौपाई--पद्य ३१, पानीपत के नंदराम के लिये आगरे में रचित, (१२) आरती-पद्य ७, (१३) अष्ट प्रकारी पूजा विनती पद्य १०, (१४) विनती नेमिनाथ पद्य १८, (१५) गुरां की विनती पद्य ८, (१६) ऋषभ विवाह मंगल पद्य ३१, (१७) चौबीस तीर्थंकर चिह्न जयमाल, पद्य ८, (१८) जिन-गुण-मुक्तावती पद्य ४१ (१९) एकीभाव स्तोत्र भाषा पद्य २८ (२०) प्रस्ताविक शतक पद्य १००, (२१) रात्रि भोजन कथा पद्य ४२, (२२) अष्टप्रकारी पूजाष्टक पद्य ९, (२३) नेश्मिेवर विनती पद्य ५, (२४) दया दृढ़ावन गीत पद्य ८, (२५) परमार्थ शिक्षा पद्य २२, (२६) जिनदर्शन गीत आदि होरी, धमाल, आदि के पद भी हैं। इस प्रति में एक रचना जगरामदास की है और कुछ गीत रामकिसन के हैं। पता नहीं उनका भूधरदास से क्या संबंध था।

भूधरदास के बड़े ग्रन्थों में 'चर्चा समाधान' को कई विद्वानों ने भूधर मिश्र का मान लिया है। उसमें रचनाकाल "ठारह सें षटहोतरे, माघ मास अवसान। सुक्ल पक्ष तिथि पंचमी ग्रन्थ समापत ठान॥' दिया है। इस पद्य के आधार से कई विद्वानों ने संवत् १८७६ मान लिया है और यह समय भूधर मिश्र की पुरुषार्थ सिद्धचूपार्थक अन्य रचना के आस पास का है इसलिए इसे भी भूधर मिश्र की रचना समझ ली गई है। पर वास्तव में 'चर्चा समाधान' की संवत् १८१३ और १८१५ की लिखी हुई प्रतियाँ जयपुर के भण्डार में प्राप्त हैं इसलिये "षटहोतरे" से ७६ न लेकर ६ लेना चाहिए। और तब संवत् १८०६ इसका रचनाकाल सिद्ध होने पर यह भूधर मिश्र की रचना न होकर कवि भूधर की रचना सिद्ध हो जाती है।

दूसरे कवि भूधर मिश्र जाति के ब्राह्मण थे और आगरे के निकट शाहगंज में रहते थे। इनके गुरु का नाम पंडित रंगनाथ था। 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' के अध्ययन से आपको जैन धर्म की रुचि उत्पन्न हुई थी। रंगनाथ से अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया था। 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' पर इनकी एक विशद् टीका है जिसमें अनेक जैन ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। सं० १८७१ के भाद्र कृष्ण १० को यह टीका पूरी हुई।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने जिन जिन भूधर नामक कवियों का उल्लेख अपने लेख में किया है उनके अतिरिक्त इसी नाम वाले और भी कुछ कवि हो गये हैं। जिनमें से एक भूधर मिश्र, शाकद्वीपीय मिश्र भार्गव राम के पुत्र को उन्होंने संवत् १७३९ के माघ बदि ९ को दक्षिणगढ़-नादेरी में 'राग मंजरी' नामक संगीत ग्रन्थ हिन्दी पद्य-बद्ध बनाना आरम्भ किया जो संवत् १७४० में पूरा हुआ। कवि ने आजमशाह के प्रयाण के समय सैन्य के साथ दन्तिन ग्राम देखा और अपना निवास-स्थान सूवा बिहार का गढ़ मुँगेर बतलाया है। 'राग मंजरी' का विवरण मेरे सम्पादित 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' के भाग २ पृष्ठ ६६ में प्रकाशित है।

अन्य भूधर मल ने 'हुक्का निषेध' की रचना की तथा भूधर रचित षट पाहुड टीका प्रति (१८वीं) दिगम्बर शास्त्र भण्डार जयपुर में है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी भूधर कवि हुए हैं। इस प्रकार एक ही भूधर नाम के कई कवि १८वीं-१९वीं शताब्दी में हो गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष-यात्रा का अग्रदूत—ज़िओल्कोव्स्की

श्री कौस्तुभ

"मानव सदा के लिए धरती से बँधा नहीं रहेगा पर पृथ्वी और अन्तरिक्ष से लौ लगाकर पहले वह सभीत वायुमण्डल की सीमाओं का अतिक्रमण करेगा और फिर सूर्य के चतुर्दिक अन्तरिक्ष पर राज करेगा।"

जिस व्यक्ति की यादगार में रूस के कालुगा नगर के एक शिला-स्तम्भ में ये शब्द अंकित हैं वह था कोन्स्तान्तिन एडुआर्डोविच ज़िओल्कोव्स्की—अन्तरिक्ष-यात्रा का स्वप्नदर्शी और अधिष्ठाता। अपनी कल्पना और अदम्य मनःशक्ति के कारण जो कुछ वह पा सका उसीसे वह सदा के लिए अमर हो गया और रूस में ही नहीं सारे विश्व में उसके सिद्धान्तों ने उसे सम्मान दिलाया।

आज से १०० वर्ष से भी पहले ५ सितम्बर १८५७ में रूस में कोन्स्तान्तिन एडुआर्डोविच ज़िओल्कोव्स्की का जन्म हुआ था। उसके माँ-बाप दरिद्र थे। १० वर्ष की अवस्था में वह एक भयानक रोग का शिकार हुआ। कई महीनों तक मौत से लड़ने के बाद जब वह चंगा हुआ, ज़िओल्कोव्स्की की श्रवण-शक्ति जाती रही। पर यह अभिशाप बाद में उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि इस बहरेपन के कारण बाहरी बाधायें उसकी चिन्तन-धारा में व्यवधान नहीं डालती थीं।

किताबें जिनकी उसे चाह थी कठिनाई से मिलती थीं; पुस्तकों के बिना उसका जीवन लक्ष्यहीन था क्योंकि अपनी बधिरता के कारण साधारण स्कूली शिक्षा के द्वार उसके लिए बन्द थे। १५ वर्ष की आयु में गणित और भौतिक-शास्त्र की दुनिया में उसकी पैठ हो गई और उसका मस्तिष्क नये क्षितिजों को पाने लगा। वायुयंत्रों और उड़नखटोलों के निर्माण में वह लग गया और इन पर परीक्षण करने के लिए एक वात-विवर (Wind-Tunnel) भी उसने बनाया।

केन्द्रापसार-गति (Centrifugal Force) ने उसे बहुत आकृष्ट किया। इसी की सहायता से वह अन्तरिक्ष में प्रवेश पाने की सोचता था। वह लिखता है—ऐसे भी क्षण होते थे जब मुझे लगता था कि मैंने इस समस्या को सरल कर लिया है (तब वह १६ साल का था) और मैं इतना उत्तेजित और चमत्कृत हो उठता था कि सारी रात भर सो नहीं पाता था। मास्को की सड़कों में घूमता रहता था और सतत् अपनी खोज के महान् निष्कर्षों पर सोचा करता था। पर सुबह तक मैं अपनी खोज की त्रुटि समझ जाता था और तब उतनी ही कटु निराशा होती जितनी प्रखर आशा।

पढ़ने की अपनी उमंग के कारण अपनी शिक्षा की पूर्ति उसने की। साथ ही चिड़ियों के कंकालों को सजाना, फोटोग्राफी और कविता रचना—इन सबका शौक़ भी वह रखता था। अपनी विकलांगता पर उसने स्वयं विजय प्राप्त की और अपने कार्य-कलापों में अनुशासन से काम लिया।

"मैंने केवल उन्हीं विषयों पर पढ़ा जो मेरे उन प्रश्नों के हल दे सकते थे। जिनमें मैं रुचि रखता था और जो मुझे महत्त्वपूर्ण लगते थे।....बहरेपन और समाज से सहज निवृत्ति ने मेरी आत्मोन्नति में सहायता ही दी।" उसका अन्तिम कथन कटु लगने पर भी उसकी अदम्य इच्छा-शक्ति को दर्शाता है जो उसके वयस्क जीवन की संजीवनी रही। बहरा होते हुए भी अपनी आत्म-शिक्षा और लगन से १८७१ में अध्यापक की परीक्षा पास की और अपने जीवन के अगले ४० वर्षों में गणित तथा भौतिक विज्ञान का अध्यापन किया।

ज़िओल्कोव्स्की ने २३ वर्ष की आयु में सेंट पीटर्सबर्ग की फिजिको-केमिकल सोसाइटी के सम्मुख "गैसों के सिद्धान्त" पर अपना विस्तीर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया। तभी उसने तारे का विकिरण-काल (The Duration of Radiation of a Star) और "जीवधारियों का मेकेनिक्स" (Mechanism of Living Organisms) पर प्रबन्ध लिखे। इन प्रबन्धों ने सोसाइटी के सदस्यों में खलबली मचा दी। इन विषयों पर पहले भी खोज हो चुकी थी पर इस स्वयंशिक्षित पुरुष ने अपने स्वतंत्र प्रयासों द्वारा एकदम वही निष्कर्ष निकाल लिये थे जो उसके पहले उच्च शिक्षाप्राप्त और साधन-सम्पन्न वैज्ञानिकों ने पाये थे। उसने कई तथ्य खोज निकाले पर उनकी खोज और लोग पहले ही कर चुके थे। उसे इनका पता न था, पर पता लगने पर अपनी निराशा को यह कहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने उड़ा दिया कि इनकी खोज उसके लिए अच्छा अभ्यास रही; "मैंने अनेक बातों का पता लगाया जिन्हें लोग मुझसे पहले ही पा चुके थे, पर इससे अपने काम में मेरा आत्म-विश्वास बढ़ गया।"

फिर भी उसका उत्साह मंद नहीं पड़ा और अपनी शक्ति उसने पदार्थों की हवा में उड़ान की समस्याओं की ओर मोड़ दी। १८८३ में जब उसके समय के और अन्वेषक और वैज्ञानिक प्रोपेलर विमानों के आकल्पन (Design) में ही मग्न थे इसने अपनी पुस्तक "खुला अन्तरिक्ष" (Free Space) में विशिष्ट स्पष्टता से समझाया कि जेटचालित विमान भी बन सकते हैं।

विमानों पर हवा के अवरोध को कम करने के लिए उनको सुतल (Stream lined) बनाने का उसका सुझाव अपूर्व था। इस क्षेत्र में वह प्रख्यात बन गया होता यदि कोई और भी आकर्षक क्षेत्र उसे बरबस न खींच लेता।

एक दूसरी भयंकर बीमारी में उसकी सारी शक्ति समाप्तप्राय हो गई थी। कुछ दिनों तक वह बोल भी नहीं पाया। गूँगा और बहरा दोनों रहा। उसके कार्यालयों में आग लग गई और विमानों के कई सुन्दर हस्त-निर्मित नमूने और पुस्तकालय नष्ट हो गये। यह तो उसी का जीवट था कि उसने इन विकराल आघातों को सह लिया और फिर से उठ खड़ा हुआ। एक साल के उपरान्त उसे स्वस्थता मिली।

उसका अगला कदम था उड़न-यंत्रों का विकास। प्रसिद्ध जर्मन जेपलिन से १० वर्ष पूर्व १८९६ में उसने एक धातु का वायुयान बनाया। और राइट-बन्धु से भी पहले उसने रूस में उड़नयंत्रों के परीक्षण के लिए एक वात-विवर (Wind Tunnel) बनाया।

अपने धातु-निर्मित वायुयान की योजना उसने अधिकारियों के सम्मुख रक्खी पर रूसी राज-सेना तब अपने घुड़सवारों में ही मग्न थी। इस नियंत्रित "वायु-यंत्र" के सुझाव से उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

उसके प्रबन्धों को पढ़कर बहुत से वैज्ञानिकसमूह उसे मान्यता देने लगे थे पर यह उसे सन्तुष्ट न कर सकी। कदाचित् अपने बहरेपन के कारण मिले गहरे अकेलेपन ने उसके मन को सुदूर ग्रहों और तारों की दुनिया की ओर प्रेरित किया।

पृथ्वी के इस पतले वातावरण के पार क्या है और मानव कैसे अन्तरिक्ष में प्रवेश पा सकता है इन्हीं बातों पर अब उसका ध्यान जा अटका और इसी अन्तरिक्ष यात्रा पर उसका शेष जीवन केन्द्रित रहा।

जूल्स वर्न की 'अतिकाय तोप' (Giant Cannon) और अन्य उत्साही सामयिक लोगों के गुरुतानिरोधक ढालों (Anti Gravity Shields) की कल्पना उसने छोड़ दी। वह जान गया कि वायुहीन अन्तरिक्ष में अन्तरिक्ष-यात्री को अवातगम्य-धारकों (Airtight Containers) में बन्द रहना पड़ेगा। १८९५ में पहली बार एक जनप्रिय पत्रिका में अपने इस विचार को उसने लेख के रूप में प्रकट किया।

अजन्मे अन्तरिक्ष-यात्री-विज्ञान को ज़िओल्कोव्स्की का महान् देन था उसका यह सुझाव कि अन्तरिक्ष-यान तरल ईंधनवाले राकेटों द्वारा चलाया जाय। उसका कहना था कि ठोस ईंधन बहुत अशक्त और आपदपूर्ण हैं। इस तरह शायद तरल ईंधनों की ओर इंगित करनेवाला वह प्रथम वैज्ञानिक था। उसके रेखा-चित्रों से जिन अन्तरिक्ष-यानों को रूप मिला वे सुतल थे और लम्बे शंक्वाकार दाहकोष्ठ (Combustion Chamber) चालक टंकी (Propellant Tanks), ईंधन पम्प (Fuel Pumps) और यात्रियों के लिए एक विशिष्ट प्रकोष्ठ से युक्त थे। उसके सिद्धान्तों की अवज्ञा ही होती रही पर १९०३ में रूस की प्रकृति और मानव (Nature and Men) नामक पत्रिका ने उसके कार्यों का प्रकाशन किया। उसके चिरस्मरणीय प्रबन्ध "जेटचालित यंत्रों से अन्तरिक्ष की यात्रा" ने इतिहास में पहली बार राकेट की उड़ान का प्रतिपादन किया और अन्तर्ग्रह-यात्रा का आधार प्रस्तुत किया। उसका राकेट इंजिन एक लम्बा धातु-प्रकोष्ठ था जिसके गर्भ में वे पदार्थ थे जो मिश्रित होने पर अविलम्ब अबाध और प्रचण्ड विस्फोट करेंगे। इन पदार्थों की सूची में मिट्टी के तेल की प्रकार के पदार्थ भी आते हैं। फल-स्वरूप बननेवाली गैसें निष्क्रमण-नलियों से बड़ी तीव्र गति से निकलेंगी। इनके मार्ग में सन्तुलन-पक्षों (Control Valves) को रखकर राकेट का नियंत्रण किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त पर जर्मनों द्वारा निर्मित ए-४ (A-4) और विख्यात वी-२ (V-2) नियंत्रित होते थे। इनमें कार्बन पक्षों का उपयोग किया गया था। तरल उद्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन के ईंधन रूप में प्रयोग का सुझाव भी उसने दिया और मिट्टी के तेल की प्रकार के ईंधनों का महत्त्व दर्शाया।

१९१७ की राज्यक्रान्ति के बाद नये रूसी नेताओं ने ज़िओल्कोव्स्की का उत्साहवर्द्धन किया और रूस की जनता ने उसे "अन्तरिक्ष-यात्रा का पिता" कहकर सम्मानित किया। रूमानियन-जर्मन वैज्ञानिक हरमन ओबर्थ की कृति "अन्तर्ग्रहों के बीच राकेट" ने रूसी जनता का ध्यान अपने विस्मृत वैज्ञानिक ज़िओल्कोव्स्की की ओर खींचा। यह कृति १९२३ में प्रकाशित हुई थी। तब रूस में ज़िओल्कोव्स्की की रचना "अन्तरिक्ष में राकेट" शीर्षक से फिर प्रकाशित की गई।

इसके दो वर्ष बाद अपनी आत्म-कथा में ६८ वर्ष की आयु में ज़िओल्कोव्स्की ने लिखा कि अभी तक वह अभीष्टित सफलता नहीं पा सका।

वह सतत् अपने काम में जुटा रहा। १८९५ की उसकी एक रचना "पृथ्वी और अन्तरिक्ष के स्वप्न" (Dream of the Earth and the Sky) में उसने एक ऐसे कृत्रिम उपग्रह के विकास का सुझाव दिया जो सतत् पृथ्वी की परिक्रमा अपनी निश्चित कक्षा में करता रहे और अन्तरिक्ष की यात्रा के लिए स्टेशन के रूप में काम आ सके।

जीवन के अन्तिम वर्षों में ज़िओल्कोव्स्की ने बड़ी उमंग से एक ऐसे अन्तरिक्ष स्टेशन की योजना बनाई जो उन राकेटों का बना होता जो उड़ान में अपना ईंधन शेष कर चुके थे। यह स्टेशन जीवन की सभी आवश्यकताओं से सम्पन्न होता। उसने यह भी बताया कि सूर्य की शक्ति के समुचित प्रभाव से इस स्टेशन के भीतर अन्तरिक्ष-यात्रा के पाथेय का निर्माण भी सम्भव होगा।

अन्तरिक्ष-यात्रा के सर्वाधिक उपयुक्त साधन बहुखण्डी राकेट (Multi-stage Rocket) का सिद्धान्त उसने बहुत पहले निकाल लिया था। कॉस्मिक राकेट ट्रेनों के चिन्तन में उसने अपना अधिकांश समय लगाया। उसके अनुसार कॉस्मिक राकेट ट्रेन का अर्थ है एक रूप कई राकेट यंत्र एक साथ पहले पृथ्वी पर रेलों पर चलें फिर वायु-मण्डल में और अन्त में वायुमण्डल से बाहर अन्तरिक्ष में। बाकी भाग जिनकी यात्रा में आवश्यकता नहीं पड़ेगी अपर्याप्त गति होने के कारण वापस पृथ्वी पर गिर जायेंगे। यह उसने इस शताब्दी के आरम्भ में ही लिख डाला था। उसके इन सिद्धान्तों का उपयोग कृत्रिम उपग्रहों के छोड़ने में रूस और अमेरिका दोनों देश कर चुके हैं। स्पुतनिक, ल्यूनिक, वेन्गार्ड, एक्सप्लोरर और एटलस सभी सिद्धान्त पर छोड़े गये थे।

बहु-खण्डी "स्कवाड्रन रॉकेटों" (Multi-stage Squadron Rockets) की कल्पना भी उसी ने की थी। इसमें, उसकी कल्पना के अनुसार, कई राकेट पृथ्वी से पंक्ति-बद्ध एक साथ छूटेंगे। प्रत्येक राकेट जब ईंधन समाप्त कर लेगा तब अन्त के दो रॉकेट अपना ईंधन औरों को दे देंगे और पृथ्वी पर गिर जायेंगे। कई बार यह विधि दुहराई जायगी और प्रति बार बचे हुए राकेटों की गति-वृद्धि होगी। अन्त में बच गया राकेट "मोचन-गति" (Escape Velocity—वह गति जिसके पा जाने पर राकेट पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से मुक्त होकर अन्तरिक्ष में प्रवेश पा सकेगा) पा जायगा।

पुनर्प्रवेश (Re-entry) की समस्या का भी एक सम्भव हल उसने बताया। इस समस्या को यदि हल कर लिया जाय तो मानव की अन्तरिक्ष-यात्रा का सबसे बड़ा रोड़ा हट जाय। पुनर्प्रवेश का अर्थ है फिर पृथ्वी पर लौटना। लौटते हुए राकेट के भीषण गति से वायुमण्डल में प्रवेश करते समय राकेट और वायु के बीच भारी घर्षण होगा और इतना भयानक ताप लेगा कि राकेट पल भर में ही भाप बन जायगा। राकेट उल्का की तरह जल न जाय इसके लिए राकेट को एक विशिष्ट रक्षा-कवच (Special Gliding Tranjectory) में रक्खा जाय जिससे कि उसकी गति धीरे-धीरे कम हो। राकेट को ठण्डा रखने की विधियों पर भी उसने मनन किया।

अन्तरिक्ष में राकेट के नियंत्रण के लिए उसने जेट-निष्क्रमण के उपयोग का सुझाव दिया और स्थिरता के लिए जाइरोस्कोप (Gyroscope) का प्रयोग बताया।

ज़िओल्कोव्स्की ने अपनी नौ तकनीकी रचनाओं के अतिरिक्त पृथ्वी के पार (Beyond Earth) नाम से एक उपन्यास भी लिखा जो उसकी सर्वप्रिय रचना रही और राज्यक्रान्ति के बाद सबसे पहले पुनर्मुद्रित हुई।

१९३२ में उसकी ७५वीं वर्षगाँठ पर जनता ने उसका जननायक के रूप में अभिनन्दन किया। सोवियत उड़ाका संघ ने उसे एक विशाल जन्म-दिन की पार्टी दी और स्टालिन का बधाई का तार देकर उसे चमत्कृत कर डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३३ के मई दिवस का उसका व्याख्यान रूस की जनता के ही लिए नहीं, सारे संसार के लिए था जिसमें उसने कहा कि मेरे सिद्धान्तों का सत्यरूप, मेरे सपनों का मूर्त्तरूप एक दिन प्रकट होगा। मुझे जेट-यंत्र बनाने में ४० वर्ष लगे और मैं सोचता था कि मंगल तक की यात्रा अभी कई शताब्दियों बाद हो पायेगी पर अब समय सिकुड़ गया है।

बीसवीं सदी के आरम्भ में जब वह कई संकटों से घिरा हुआ था और उसे कोई मान्यता भी न मिली थी; उसने लिखा था—"मेरे जीवन का मूल उद्देश्य है मनुष्य के लिए कुछ लाभदायक कार्य करना।" और यह उद्देश्य सफल रहा। यद्यपि अपने सिद्धान्तों को वह कार्यरूप न दे सका पर इसने संसार भर में कई व्यक्तियों को प्रेरणा दी।

७८ वर्ष की आयु पाकर १९३५ में ज़िओल्कोव्स्की ने देह त्याग दी। १९५७ में उसकी १००वीं जन्मतिथि के महीने में अर्थात् सितम्बर में रूसवालों ने प्रथम कृत्रिम उपग्रह के भेजने के लिए जीतोड़ प्रयास किया। उनका प्रयास सफल रहा पर सितम्बर की समाप्ति के ४ दिन के बाद जन्म-शती मनाने का इससे अच्छा और तरीका भी क्या हो सकता है?

ज़िओल्कोव्स्की के ज्वलन्त शब्दों का सत्य कि "पृथ्वी मन का पालना है पर कोई सदा के लिए पालने में ही नहीं पड़ा रह सकता" एक दिन सिद्ध हो के रहेगा। उसका सपना आज सारे संसार की आँखों पर है और बुद्धि आज पृथ्वी के पालने के बाहर असीम अन्तरिक्ष की ओर पहुँचने के प्रयास में है।

ज़िओल्कोव्स्की का सुनहरा स्वप्न उसीके देशवासी यूरी गगारिन और तितोव सत्य कर रहे हैं। आज उसकी कल्पना का साकार रूप धरनी को आन्तरिक्ष के अधिक निकट ला चुका है।

...म साधनों ...न, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया ...बलपूर्वक पानी बरसाने का प्रयोग चल रहा है। ...रिका तथा आस्ट्रेलिया में ये प्रयोग उन बादलों ...ये गये हैं जो आकाश में ६००° फीट तक पहुँचते हैं। ...यानों द्वारा इन बादलों पर शुष्क कार्बन-डाइआक्साइड ...की धूलि छिड़की गई। ठोस कार्बन-डाइआक्साइड ...अत्यधिक ठण्डी होती है। अतः उनके स्पर्श से बादलों ...छोटी-छोटी बूँदें हिमकणों का रूप धारण कर लेती हैं, ...इनका आकार भी बढ़ जाता है। अपने भार के कारण ...पृथ्वी की ओर वेग के साथ गिरने लगती हैं और घोर ...के रूप में प्रकट होती हैं।

इस विषय में हम ... रखना चाहिये कि ... प्रयोग शीतोष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में ही अभी तक किये गये हैं। इनके लिए एक विशिष्ट जाति के बादलों को चुना गया था।

अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में रैडर की सहायता से पहले यह निश्चिय कर लेते हैं कि बादल किस श्रेणी का है। यदि वे उपयुक्त श्रेणी के हुए, तभी उन पर प्रयोग किये जाते हैं।

भारत में प्रतिवर्ष अनावृष्टि, अल्पवृष्टि तथा अतिवृष्टि के कारण अकाल पड़ते रहते हैं। सदैव अल्पवृष्टि के प्रदेशों में ही अकाल का भय बना रहता है। अतएव अपने देश के लिए मनुष्यकृत वर्षा का बहुत महत्त्व है।

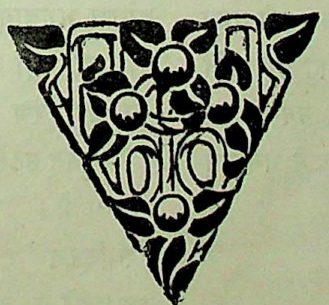

वाचनालय, गुरुकुल ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान और वर्षा

श्री शिवतोष दास एम० ए०

आदिकाल में मनुष्य प्रकृति की हर एक बात को गूढ़ रहस्य से भरी हुई समझता था। उसने बादल को भी रहस्यमय बताया था। ऐसा लगता है सृष्टिकर्त्ता ने सृष्टि के अनेक रहस्यों को रंग-बिरंगे बादलों के भीतर छिपा दिया है।

स्वभाव से ही मनुष्य जिज्ञासु प्राणी है। नवीन प्रयोगों को जानने के लिए वह सदैव उत्सुक रहता है। आदि युग से वह प्राकृतिक वर्षा के प्रति विशेषरूप से आकृष्ट होता आया है। उन दिनों जब विज्ञान इतनी उन्नत अवस्था में न था, मनुष्य ने वर्षा को अदृश्य शक्ति समझकर उसकी उपासना की ताकि उसकी कृपा उसके ऊपर बनी रहे। सूखा से बचने के लिए विशेषरूप से जादू-टोने की सहायता ली। इस युग में भी अफ्रिका तथा अन्य स्थानों की आदिम जातियाँ सूखा पड़ने पर वर्षा के लिए पशुओं की बलि चढ़ाती हैं। इस वैज्ञानिक युग में आज भी [illegible] (Dream of [illegible] and the Sky) म उसने एक ऐसे कृत्रिम उपग्रह के विकास का सुझाव दिया जो सतत् पृथ्वी की परिक्रमा अपनी निश्चित कक्षा में करता रहे और अन्तरिक्ष की यात्रा के लिए स्टेशन के रूप में काम आ सके।

जीवन के अन्तिम वर्षों में ज़िओल्कोव्स्की ने बड़ी उमंग से एक ऐसे अन्तरिक्ष स्टेशन की योजना बनाई जो उन राकेटों का बना होता जो उड़ान में अपना ईंधन शेष कर चुके थे। यह स्टेशन जीवन की सभी आवश्यकताओं से सम्पन्न होता। उसने यह भी बताया कि सूर्य की शक्ति के समुचित प्रभाव से इस स्टेशन के भीतर अन्तरिक्ष-यात्रा के पाथेय का निर्माण भी सम्भव होगा।

अन्तरिक्ष-यात्रा के सर्वाधिक उपयुक्त साधन बहुखण्डी राकेट (Multi-stage Rocket) का सिद्धान्त उसने बहुत पहले निकाल लिया था। कॉस्मिक राकेट ट्रेनों के चिन्तन में उसने अपना अधिकांश समय लगाया। उसके अनुसार कॉस्मिक राकेट ट्रेन का अर्थ है एक रूप कई राकेट यंत्र एक साथ पहले पृथ्वी पर रेलों पर चलें फिर वायुमण्डल में और अन्त में वायुमण्डल से बाहर अन्तरिक्ष में। बाकी भाग जिनकी यात्रा में आवश्यकता नहीं पड़ेगी अपर्याप्त गति होने के कारण वापस पृथ्वी पर गिर जायेंगे। यह उसने इस शताब्दी के आरम्भ में ही लिख डाला था।

की क्रिया को ही 'वर्षा' की संज्ञा दी गयी है। वायु में जल-वाष्प को अदृश्य रूप में ग्रहण करने का गुण विद्यमान है। इसमें पाई जानेवाली वाष्प का परिमाण उष्णता पर अवलंबित है। यह जितनी ही अधिक गरम होगी, उतनी ही अधिक जलवाष्प इसमें अदृश्य रूप में रह सकेगी। संतृप्ति-बिन्दु से भाप की मात्रा अधिक होते ही, वह पानी के रूप में बरसने लगेगा। यदि वायु की उष्णता बढ़ा दी जाय, तो वह और भी अधिक वाष्प को ग्रहण करने की क्षमता रखेगी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समुद्र, नदी तथा तालाबों का जल वाष्प बनकर वायुमण्डल में पहुँचता है और वहाँ अनुकूल वातावरण पाकर ठण्डा हो जाता है। ठण्डक पाकर पानी की छोटी-छोटी बूँदों में परिवर्त्तित हो जाता है। अल्प भार होने तथा वायु के अवरोधक शक्ति के कारण छोटी बूँदों का समूह बादल का रूप ग्रहण कर लेता है और आकाश में तैरता रहता है। जाय त[illegible] पाकर बादल की छोटी बूँदें बड़ी रोड़ा हट जाय। पुनर्प्रवेश का वर्षा के रूप में पृथ्वी पर लौटते हुए राकेट के भीषण गति से वायु[illegible] करते समय राकेट और वायु के बीच भारी [illegible] अनुकूल और इतना भयानक ताप लेगा कि राकेट पल भ[illegible] दिन भाप बन जायगा। राकेट उल्का की तरह जल न हीं इसके लिए राकेट को एक विशिष्ट रक्षा-कवच (Sएँ cial Gliding Tranjectory) में रक्खा जाय जिं कि उसकी गति धीरे-धीरे कम हो। राकेट को ठ[illegible] रखने की विधियों पर भी उसने मनन किया।

अन्तरिक्ष में राकेट के नियंत्रण के लिए उसने जो निष्क्रमण के उपयोग का सुझाव दिया और स्थिरता [illegible] लिए जाइरोस्कोप (Gyroscope) का प्रयोग बताया।

ज़िओल्कोव्स्की ने अपनी नौ तकनीकी रचनाओं के अतिरिक्त पृथ्वी के पार (Beyond Earth) नाम से एक उपन्यास भी लिखा जो उसकी सर्वप्रिय रचना रही और राज्यक्रान्ति के बाद सबसे पहले पुनर्मुद्रित हुई।

१९३२ में उसकी ७५वीं वर्षगाँठ पर जनता ने उसका जननायक के रूप में अभिनन्दन किया। सोवियत उड़ाका संघ ने उसे एक विशाल जन्म-दिन की पार्टी दी और स्टालिन का बधाई का तार देकर उसे चमत्कृत कर डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण इनका वेग इतना कम हो जाता है कि इन्हें धरातल तक पहुँचने में लगभग १५ या २० घंटे लग जाते हैं और इतनी देर में हवा उन्हें पुनः वाष्प में परिवर्तित कर देती है।

अधिक ऊँचाई पर पहुँचनेवाले बादलों में ऊपरी वायु के ठण्डे तापक्रम के कारण पानी की बूँदों के स्थान पर नन्हें-नन्हें हिमकण ही अधिक पाये जाते हैं। एक नियत आकार से बड़े हो जाने पर ये गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वेग के साथ नीचे गिरते हैं और रास्ते में पिघलकर पानी का रूप धारण कर लेते हैं। कभी-कभी ओले के रूप में ही ये पृथ्वी पर पहुँच जाते हैं।

मौसम विज्ञान की अनुसंधानशालाओं में प्रयोग करने पर पता चला है कि हवा में यदि छोटे, पर ठोस कण विद्यमान हों तो उन पर वाष्प सरलता के साथ अपेक्षाकृत बड़े आकार की बूँदों का रूप धारण कर लेती है। कोयले के कण, धूल और सागर की भाप के साथ नमक के लघु कण भी आकाश में पहुँचकर बादल के अन्दर जल की बूँदों का आकार बढ़ाने में सहायता पहुँचाते हैं।

इस नये आविष्कार के आधार पर ही कृत्रिम साधनों का सहारा लेकर सोवियत संघ, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में बादलों से बलपूर्वक पानी बरसाने का प्रयोग चल रहा है।

अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में ये प्रयोग उन बादलों पर किये गये हैं जो आकाश में ६००० फीट तक पहुँचते हैं। वायुयानों द्वारा इन बादलों पर शुष्क कार्बन-डाइआक्साइड बर्फ की धूलि छिड़की गई। ठोस कार्बन-डाइआक्साइड बर्फ अत्यधिक ठण्डी होती है। अतः उनके स्पर्श से बादलों की छोटी-छोटी बूँदें हिमकणों का रूप धारण कर लेती हैं, तथा इनका आकार भी बढ़ जाता है। अपने भार के कारण ये पृथ्वी की ओर वेग के साथ गिरने लगती हैं और घोर वर्षा के रूप में प्रकट होती हैं।

आस्ट्रेलिया में साधारण विधि से ही काफी सफलता मिली है। कार्बन-डाईआक्साइड की शुष्क बर्फ के छोटे टुकड़े करके लगभग १।४ इंच व्यास उन्हें बोरे में भरकर वायुयान पर ले जाते हैं। एक बार के लिए लगभग ३० सेर बर्फ काफी होती है। उसे वायुयान पर से ऊँचे बादलों पर छिड़क देते हैं। प्रायः कार्बन-डाइआक्साइड बर्फ छिड़कने के २० मिनट बाद घोर वर्षा आरम्भ हो जाती है। ये वर्षा काफी तेज एवं देर तक होती है।

सोवियत संघ ने इस काम के लिए कैल्शियम क्लोराइड की धूलि का उपयोग किया है। कैल्शियम क्लोराइड में नमी को अपने भीतर सोख लेने की विशेष क्षमता होती है। इसके कण स्वयं पानी की बूँदों का आकार बढ़ाने का काम करते हैं।

मौसम नियन्त्रण के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने काफी सफलता प्राप्त की है। इन प्रयोगों से प्रेरणा पाकर भारत सरकार भी लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील है।

इस विषय में हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि ये प्रयोग शीतोष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में ही अभी तक किये गये हैं। इनके लिए एक विशिष्ट जाति के बादलों को चुना गया था।

अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में रैडर की सहायता से पहले यह निश्चिय कर लेते हैं कि बादल किस श्रेणी का है। यदि वे उपयुक्त श्रेणी के हुए, तभी उन पर प्रयोग किये जाते हैं।

भारत में प्रतिवर्ष अनावृष्टि, अल्पवृष्टि तथा अतिवृष्टि के कारण अकाल पड़ते रहते हैं। सदैव अल्पवृष्टि के प्रदेशों में ही अकाल का भय बना रहता है। अतएव अपने देश के लिए मनुष्यकृत वर्षा का बहुत महत्त्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड जानपद साहित्य में 'गरति' की गरिमा

श्री पी० सुब्रह्मण्य आचार्य 'रसिक', पुत्तिगे

कर्नाटक का प्राचीन इतिहास भव्य है। उसकी संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, आदि अपने स्थान पर सर्वोत्कृष्ट हैं। प्राचीन कर्नाटक अनेकों महान् वीर राजाओं, कवियों, शिल्पियों, मनीषियों की जननी है; और आज भी वह क्रिया जारी है।

'कन्नड' नारी-जीवन का सुंदरतम चित्र जानपद गीतों में मिलता है। जानपद गीतों को "लोकगीत" कहते हैं। "कर्नाटक" संस्कृति, कितनी ऊँची और उदारता से प्रपूर्ण थी—इसका परिचय साहित्य इतिहास के अध्ययन से मिल सकता है तो ग्रामीण रमणी-नारी का; कोमल, मुग्ध, मधुर जीवन का परिचय इन जानपद गीतों में मिल सकता है।

मानव के जीवन के हरएक अंग में नारी अपना प्रभाव डालती है; और उसका त्याग जीवन के हर पहलू में नींव-सा छिपा रहता है।

कन्नडनाडु में मानिनी गृहणी को "गरति" कहते हैं। यह गरति शब्द शायद गृहस्थी संस्कृत शब्द का तद्भव रूप ही है।

गरति के मधुर, कोमल, कंठ से बहनेवाले भावगीतों में—जानपदगीतों में—साहित्य का संस्कारित सौगंध वही रहेगा। वह व्याकरणबद्ध, छंदोनियम से वही रहेगा। फिर भी दिल के मधुर मुग्ध भावगंध महकते हैं। उसके त्यागपूर्ण जीवन के परिचायक भाव ही जनप्रियता का, प्रशंसा का मुख्य अंग है। यह त्यागपूर्ण जीवन गरति का ही है। प्रातः समीर के मंजुल बहाव के साथ चक्की की गरर्ऽऽर आवाज के साथ सुर मिलाकर जब गरति गाने लगती है तो गंधर्व लोग सन्न रहकर सुनने लगते हैं।

गरति की दिनचर्या ब्राह्मी मुहूर्त से शुरू होती है। वह माँ-बाप की लडली बेटी बनकर; भाई के प्यार की बहन बनकर थी। लेकिन आज ससुराल में सास की बहू, पति की पत्नी, बनकर—नारी बन गई है। उसके मन में हर-एक चीज के प्रति आदर भाव है। उसके दिल में भगवान् के प्रति अचल श्रद्धा है।

वह गाती है:—

शिव-शिव येंदरे सिडिलेल्ल बयलागी
कल्लु बंदेरंगी कडेगागी—
कल्लु बंदेरंगी कडेगागी येलेमनवे
शिवनेंबा शबुदा बिडं ब्याडा"

(रे मन, शिव शिव कहकर शिव का नाम जपते रहो। अगर तुम पर गाज गिर ही पड़े तो वह फूल बन जायगा। पत्थर ही गिर पड़ा तो वह किनारे से सरक जायगा। अतः तुम शिवनाम हमेशा जपते रहो, उसे मत छोड़ो।)

इस पद्य से हम जान सकते हैं कि गरति के मन में भगवान् के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा थी।

स्वार्थपूर्ण संसार में जीवन-यात्रा पर दूसरों से भरोसा रखकर कई बार धोखा खाने से गरति का मन जागृत है। वह भगवान् से माँग सकती है लेकिन आस-पास के—अड़ोस-पड़ोस के लोगों से नहीं। वह कहती है "लोग अगर देंगे तो क्या ही देंगे। उनकी देन कब तक टिक सकती है। अगर भगवान् देगा तो मन भर घर भर देगा।"

हर-नारी सहज ही गहनों से, फूलों से प्यार करती है। कन्नड गरति भी इस बात में पीछे नहीं रहती। लेकिन—

"शरणार्ऽ नेनेदारे सरमाले इट्टंते
अरळु मल्लीगी मुडिदंते।
अरंळु मल्लीगी मुडिदंते कल्याण
शरणार नेनेयो ननमनवे।"

(गरति के लिए शिवशरण—बसवण्णा, अक्क—महादेवी आदि लोगों का नाम लेना फूल पहनने से भी खासकर खिली चमेली के फूल पहनने से बढ़कर आनंददायक है। और आभरण विशेष—"सरमाले" पहनने से जो मजा मिलता है उससे भी ज्यादा आनंद उसे शिवशरणों के नाम जबान पर लेने से—मिलता है। इसलिए वह अपने मन को समझाती है कि रे मन कल्याण के शिवशरणों का नाम लो।

गरति अपनी गरीबी से दुखित नहीं। उसका मन हमेशा भगवान् पर निर्भर रहता है। "तुम्हें करुणा आई तो राखो नहीं तो ले जावो।" यही गरति की स्थितप्रज्ञत्व का उदाहरण है।

सुबह उठते ही गरति का पहला काम चक्की पर आटा पीसना है। उसको खतम करके गाय-बैल बाँधनेवाली "कोट्टिगे" साफ करने; गाय बैलों को चारा-पानी देने; दूध दुहने का काम शुरू करती है। भगवान् का नाम लेते, मन ही मन गुनगुनाते-गाते; गरति कूड़ा-कचरा झाड़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; गोबर पानी निकाल फेंकती है। इन सब कामों में उसका मन लगा रहता है या नहीं लेकिन हाथपैर यंत्रवत् काम करते रहते हैं। बुद्धि काम करा रही है। मन भगवान् का गुणगान कर रहा है। तब गरति को एक प्रकार का आनंद ही मिलता है।

"बैल शिव का वाहन नंदी है। गाय तो गोमाता है। उनकी सेवा भगवान् की सेवा है।"

इस मनोधर्म से गरति की आंतरिक शुद्धि रहती है मन पवित्रता को ही हर जगह देखता है; उसे बदबू-गंदगी का परिचय ही नहीं है।

(२)

गरति का घर बड़ा है। लेकिन गरीबी भी बड़ी है। उसे मालूम है कि हम गरीब हैं। लेकिन कभी एक पल के लिए भी उसका मन गरीबी पर पछताता नहीं। उसका पति फटे-पुराने कपड़े पहनकर काम पर जाता है तो गरति कहती है :—

"कूली मडिद रे'नु को'री होद्दारे'नु ?
नमगे नमराया बडवेना
नमगेनमराया बडवे'ना बंगार
मालु इद्दांगा मनेयागा"

(मेरा पति कुली करता है तो क्या हुआ ? उसके कपड़े चिथड़े बन गये हैं; उन्हींको ओढ़कर वे काम पर जाते हैं तो क्या हुआ। हम गरीब जरूर हैं। लेकिन मेरे लिए अपना पति गरीब है ? नहीं उनका घर में रहना सोने का माल घर में रहना-सा है।)

गरति के लिए उसका पति सोने का माल है। उसका मन कितना बड़ा है; दिल की उदारता कितनी महान् है !

(३)

माँ के लिए अपना बच्चा ही सर्वस्व है, स्वर्ग है।

मातृत्व के सामने स्वर्ग भी तुच्छ है। जब बच्चा हँसता है तो नारी की सारी की सारी प्रसव-वेदना मिट जाती है। दिल आनंद से भर जाता है। अगर कहीं बच्चा रोता तो उसके दिल में निचोड़-सा, टीस लग जाता है। अपनी प्यारी बच्ची को पालने में झुलाते गरति यों गाती है :—

"नन्नकंदा मुद्द, होन्न तावरे मुद्द।
हण्णुल्ल गिडके गिणि मुद्द।
हण्णुळ गिडके गिणिमुद्द—कंदम्मा
नीमुद्द नन्ना बळगाके।"

(मेरी बच्ची तुम प्यारी सुंदरी हो, और एक चीज तुम जैसे ही प्यारी सुंदरी है तो वह सोने का कमल है। फल भरे पेड़ के लिए हरे रंग के लाल चोंच वाले तोते प्यारे लगते हैं। उसी तरह तुम मेरे सारे घराने के लिए प्यारी हो।)

गरति के लिए अपनी बच्ची स्वर्णकमल-सी सुंदर प्यारी है। घराने भर के लिए फल भरे पेड़ के तोते के समान शोभा देनेवाली है।

और भी अपनी बच्ची की सुंदरता की महिमा सुनिये:—

तवरूरी ग्होदाग नविलू बण्णदहक्कि
तले बेने येद्दु अळु तित्तू
तले बेने येद्दु अळुतित्तू कंदान
चलुविकी नोडी नगुतीत्तू॥

(जब मैं परसों मैके में गई तो वहाँ पर एक मोर सिर-दर्द से रोता था। जब उसने मेरी बच्ची की ओर देखा तो तुरंत हँसने-नाचने लगा खुशी से। उसका सिरदर्द दूर हो गया।)

सिर दर्द से रोनेवाला मोर भी बच्ची की सुंदरता पर खुश है तो गरति का बच्चा कितना सुंदर होगा ?

"माँ के लिए माँकडन्नी मन्मथ है" यह एक कन्नड़ कहावत का अनुवाद है।

गरति घर के काम-काज में—लगी बाहर है—तो बच्ची अंदर से रोने लग जाती है। तब ननद भावजों से कहती है, "मेरी बच्ची रोयेगी तो मोती झड़ जायेगा कोई उठा लो, हँसा लो"।

रोते रेंगते घुटनों के बल चलते रहनेवाली गरति की बच्ची उठकर तनक-तनक पगों से चल फिरते खेलते-कूदते हँसते, तोतली बोली बोलने लगती है; तो उसे—"मेरी बेटी बढ़ गई है उसकी शादी करना है"—यह बात याद आती है। उसका मन चार साल की अपनी बच्ची को देखकर कन्यादान की कल्पना से झूम उठता है।

वह कहती है :—

"नितादू मगळीगे निडुजेडे बिट्टेन
नगरादा मौरी तरीसेमा
नगरादा मौरी तरीसेमा मनियान
तम्मागा धारी येरे देना"

(खड़ी खड़ी दौड़-दौड़कर खेलनेवाली मेरी बच्ची की सुंदरता बढ़ाने के लिए इसके बाल सँवार कर लंबा जूड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाऊँगी, उसमें सोने के फूल रखूँगी और नगर की (शहर की) मौरी वाद्य (जो खासकर शादियों में बजाया जाता है।) बुलाऊँगी और मेरी बेटी की शादी मेरे छोटे भाई से जो--घर में है--करूँगी।)

गरति चाहती है कि अपनी बेटी की शादी अपने छोटे भाई से कर दूँ। क्योंकि बेटी का ससुराल मेरा मैका ही बनेगा तो माँ ही सास बनेगी। और मेरी बेटी सुख चैन से रह सकती है। मेरी माँ अपनी पोती को ही जब बहू पायेगी तो ममता ज्यादा रहेगी।

(दक्षिण में यह प्रथा बहुत जगहों पर चालू है। आज-कल इसका प्रभाव कम होता जा रहा है।)

लेकिन गरति की मनोकामना पूरी नहीं होती। उसे अपनी बेटी की शादी दूसरे घराने से करना पड़ता है। शादी के बाद जब बेटी को ससुराल भेजने की नौबत आती है तो माँ बिलख बिलखकर रोती कहती है :--

"हत्तु तिंगळुनिन्ना होत्तु कोडु तिरुगेना
मुत्तु सुरुविदा बरि उडियू
मुत्तु सुरुविदरे बरि उडियोननमगळे
अत्तेरी गोप्पीसी कोडलेंतू

(दस महीने तक अपने पेट में तुम्हें ढोई और दस महीने गोद में लेकर घूमती फिरी। अब मेरी गोदी से मोती गिर गये हैं। गोदी से मोती खो गये हैं। (बेटी तुम मोती समान हो।)

तुम जैसी प्यारी बेटी को किस मन से सास के हाथों सौंपूं ?" यह कहकर रोने धोने के बाद बेटी की सास-अपनी भाभी बननेवाली से--अपनी लड़की की अबोधता, कोमलता का बखान करते हुए गरति कहती है :

मेरी लाड़ली बेटी झाड़ू मारने तक नहीं जानती। उसे अच्छी तरह से बरतन माँजना, रोटी पकाना भी नहीं आता। सब कुछ आप अपनी ही बेटी समझकर सिखावें। आप अपने पुत्र को जिस नजर से देखती हैं उसी नजर से मेरी बेटी को भी देखें। यह लाडली परसों तक "गुड़िया की शादी" रचा करती थी। पलंग पर बैठकर कहानी सुनती थी।"

लेकिन .... लेकिन लाड़ली को ससुराल भेजना ही पड़ता है। भाई, पिता, सगे संबंधी, सहेलियाँ सब रोते हैं। "छोड़ बाबुल का घर पिया के संग ससुराल जाना ही पड़ा। एक न एक दिन हर लड़की को जाना ही पड़ता है--पराये घर। वहाँ जाकर उसका अपना घर बसता है।"

ससुरालवालों को खुशी है कि लक्ष्मी जैसी बहू मिली है। पति को पत्नी के मिलने का आनंद; बारातियों को मनपसंद भोजन का आनंद। सब लोग खुश हैं।

लड़की सुख-दुख के सम्मिश्र भाव से रोती थी, हँसती थी। पतिगृह जाने का, दूसरी औरतों की तरह खुद भी गरति बनने का, आनंद एकतरफा है, तो माँ, मैका, भाई, पिताजी सखी-सहेलियाँ, अपना गाँव इन सबसे बिछुड़ जाने का दुख दूसरी तरफ है।

तो भी ससुराल जाती है। लड़की 'गरति' बन गई है। अब उसे पति के मन का, सास की इच्छा का, ससुर की आज्ञा का, घर के बाल-बच्चों का, खयाल रखना पड़ता था। ससुराल का यह नया वातावरण उसे भाने लगा। उसकी जिम्मेदारियाँ दिन-ब-दिन बढ़ने लगीं। गरति घर की 'भाग्यलक्ष्मी' बन गई। उसका स्वर्ग वहीं उतर आया।

फिर भी कभी कभी माँ की याद मैके की याद सता जाती थी। माँ को देखना काशी विश्वेश्वर का दर्शन है मैका ही गंगा नदी है।

एक दिन खुद उसकी माँ बेटी को देखने आती है। तब उसका प्रिय पति गरति से पूछता है--

क्या तुम कुछ दिन माँ के साथ रहकर आना चाहती हो ?"

तब गरति कहती है :--

"सरदारा निम्मिंद सर्वेल्ल मरेते'ना
सरुव बळगेल्ला मरेते'नौ
सरुव बळगेल्ला मरेतेना नन'राय
सरुव संपदातू नीवेनगे ।।

(हे मेरे मालिक--सरदार--तुम्हारे सामने मैं अपना सब कुछ भूल चुकी हूँ। मेरे नाते-रिश्ते आपके सामने फीके हैं। मेरे प्यारे पति मेरा सब कुछ आप ही हैं।")

गरति की भावना महान् है।

तो भी गरति माँ के प्यार को ठुकरा नहीं सकती। मैके में कुछ दिन आ रहने की माँ की इच्छा प्रकट करती है। तब प्रियपति कहता है :--

"कमळादा हूनिन्ना काणादे इ 'लारे
मल्लीगी मो'हा बिडलारे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मल्लीगी मों'हा बिडलारे के'दीगी
गरि निश्चनगली इरलारे ।।

(हे मेरे कोमल कमल फूल, हे मेरी चमेली के फूल, मेरी केतकी, तुमसे बिछुड़कर एक पल भी नहीं रह सकता। तुम्हारा मोह मुझसे छुड़ाये नहीं छूटता।)

पति की इन बातों से गरति का मुख लाल हो जाता है—शरम से—प्यार से। माँ के पास जाकर कहती है:— "माँ मेरे प्रियपति मुझसे बहुत प्यार करनेवाले हैं। वे हमेशा अपने साफे के आँचल में खिले चमेली के फूल लाकर मुझ पर छिड़का करते थे। उनके अटूट प्रेम को छोड़कर मैं कैसे तुम्हारे साथ आवूँ?"

इधर पति का प्यार, उधर माँ की ममता, दोनों गरति को खींच रहे हैं। माँ की ममता प्रबल हो जाती है। पति का प्रेम सह लेता है। कुछ ही दिन में वापसी का वादा करके 'गरति' मैके में चली जाती है।

'कमठे को अंडे की याद' गरति को ससुराल की याद; गाय बैलों की, पति की, सास ससुर की, सब कुछ की याद।

मैके से वापस जाने में कुछ दिन ज्यादा लग जाते हैं। रूठे पति के मुखाकृति की कल्पना से 'गरति' काँप उठती है। फिर भी उसे पति पर भरोसा है। "पैरों पड़ कर उनको मनावूँगी. . . रो धोकर हँस खेल कर रिझावूँगी . . ." यह सोचकर ससुराल जाती है तो उसका भय सा ार हो जाता है।

पति पत्नी में प्रणय कलह हो जाते हैं। अंत में प्यार का रंग चढ़ता है। प्रेम की जीत हो जाती है।

तब गरति पति पत्नी के झगड़े का वर्णन करती है:—

"गंड' हेंडिर' जगळ' गंधा तेदा हाँग'
लिंगाके नीरा येरे दाँगा
लिंगा के नीरा येरे दाँगा हिरि होळ'
गंगम्भा बंदू हरिदाँगा ।।

(पति पत्नियों का झगड़ा सुखद है। श्रीगंध के टुकड़े को घिसनी* पर घिसने से खुशबू ही निकलती है। शिवलिंग पर पानी की धारा डालने से पुण्य ही मिलता है, और गंगा नदी हमारे गाँव के ऊपर से होकर बहेगी तो पाप ही नाश हो जायगा। उसी तरह पति पत्नियों के झगड़े से प्रेम का रंग चढ़ेगा, प्यार ही बढ़ेगा।)

फिर गरति अपने दैनिक कार्यों में मगन हो जाती है। कई दिनों के वियोग से पति को पत्नी से हँसी खुशी की बातें करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। मौका ही नहीं मिल पाता। मौके की ताक में रहकर एक दिनदुपहर में ही दरवाजे के आड़ में छिपा रहकर पत्नी का हाथ खींच लेता है। शरम से—डर से—उसका मन झुक जाता है। शरीर पुलकित हो जाता है। तब भी संभलकर गरति कहती है, प्यार से:—

"हणचि बट्टिन' कैया वोत्ति हिडियंलुबेडा।
नेत्त' रिळिश्वू बेरळीगी
नेत्त' रिळिश्वू बेरळीमी ननराय
अत्ति बैदाळो कै बीडो।"

(हे मेरे राजा, मेरी सुकोमल कली-सी अंगुलियों को दबाकर मत पकड़ो। ऐसा करने से खून ही अँगुलियों से फूटकर निकलेगी। अगर सास देख लेगी तो धमकायेगी मुझे शरम आती है छोड़ो ना?)"

कितना मधुर शब्द है। वह गरति कितनी कोमल काया है।

गरति अपने जीवन को परम पवित्र पथ में ले जाने वाली है। उससे कोई पूछे कि जीवन का लक्ष्य क्या है? तो बतायेगी जीना ही जीवन का लक्ष्य है। उस गरति के लिए पति ही भगवान् है, घर ही स्वर्ग है। घर के काम-काजों को लगन से करना ही उसका कर्तव्य है।

गरति दुनिया की हजारों मुश्किलों से, विपदाओं से दूर देहात में अपना त्यागपूर्ण, सुंदर, सुखमय जीवन बिता रही है।

उसके मन में महत्त्व की कामनाएं वहीं हैं। उसकी इच्छाएं सीमित हैं। उनकी अपूर्ति का डर नहीं रहता। इसीलिए उसके जीवन में दुख कम है, अतृप्ति कम है।

जीवन में अधिक कामनाओं को सामने रखकर जीना भी खतरनाक है। क्योंकि जब वे कामनाएं पूरी नहीं होतीं तो ध्यायतो विषयान् पुंसः . . . . . वाली गीता वाणी याद आती है।

गरति का छोटा जीवन सुंदर एवं आदर्श है। कन्नड गरति का जीवन धन्य है पवित्र है।

(प्रार्थना: इस लेख में जितने पद्य है वे बहुत कम हैं। कुछ जगहों पर पद्य के भाव को ही मैंने लेख को आगे बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया है। जिन अक्षरों के ऊपर 'ा' चिह्न है उनको जरा दीर्घ उच्चारण कहना है। तभी ये पद्य गेय हो सकते हैं।)

*जिस पर श्रीगंध की लकड़ी घिसते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर महाराज छत्रसाल

श्री हरिकृष्ण देवसरे

बुन्देल केसरी महाबली छत्रसाल की गौरवगाथा, आज भी बुन्देल-भूमि मुक्त कण्ठ से गा रही है। उन्होंने अपने पराक्रम और प्रबल साहस के बल पर, बुन्देलखण्ड के जिस विशाल राज्य की स्थापना की थी, उसके बारे में आज भी प्रसिद्ध है:

इत यमुना, उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस॥

महाराज छत्रसाल योद्धा ही नहीं, एक सफल कवि भी थे। उन्होंने जिस हाथ से तलवार उठाई, उसीसे अनेक कविताओं द्वारा साहित्य का भण्डार भी भरा। ऐसे वीर योद्धा का कवि-हृदय पाना सचमुच आश्चर्य में डालनेवाली बात है। किन्तु महाराज छत्रसाल निस्सन्देह कवि थे। उन्होंने गरीबों और सताये हुए व्यक्तियों का दर्द पहचानने की अनुभूति पायी थी। महाराज होकर भी वह अपना सारा ऐश्वर्य भूलकर दीन-दुखियों की मदद करते। वे हरदम यही कहते रहे कि गरीब और दीन-दुखियों को कभी मत सताओ:

सालिबौ उदंडनि को, दंडनि को दीजौ दंड,
करिकै घमंड घाव दीन पै न घालियो।
जो कोऊ निबल पै, सबल जनावै जोर
ताको मद तोरि आपु करै जन भाइयो॥

× × ×

मानियो रे मनुज ! विचार उर आनियौ रे,
जानियौ रे, गजब गरीब को सताइयो॥

महाराज छत्रसाल का सम्पूर्ण काव्य उनके व्यक्तित्व से प्रतिबिम्बित है। उनकी रचनाओं का मल स्वर भक्ति है। यही कारण है कि उनमें व्यक्त समस्त भाव जीवन की सत्यता से अनुप्राणित हैं। उन्होंने जगत् के प्रति मंगल कामना प्रकट की, सत्पथ पर चलने तथा सद्गुणों को अपनाने का संदेश दिया और ऐश्वर्य तथा धन का मोह छोड़कर दीन-दुखियों के प्रति स्नेह प्रकट किया। किन्तु इन सभी कार्यों के पूर्व उस परम तत्त्व परमेश्वर की आराधना पर बल दिया, जिसे भुलाकर किसी भी कार्य का महत्त्व उसी तरह नहीं होता जिस तरह तोते के लिए सेमर का फल। इसलिए सर्वप्रथम उस परम परमेश्वर का गुणगान ही सार्थक है—

जाके जानत मिलत सब, छता छोनपति आय।
ताकी पद रजु भजु अरे, हरे ! हरे ! कहु गाय॥

इसी तरह—

छत्रसाल राम बिन आन काम कैसे,
जैसे सेमरि की सेइ सुवा भुवा भूरि धुने है।

महाराज छत्रसाल के विषय में लोगों की यही धारणा है कि वे एक वीर योद्धा थे। किन्तु उन्होंने जीवन के सत्य को भी अत्यधिक निकट से देखा था। उन्होंने सांसारिक सत्यों तथा जीवन के अनेक पहलुओं की ओर भी संकेत किया है। विवेक और विचार का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा है—

लोक लगे सब बेदनिसों अरुबेद लगे सुभ धर्मनि पाहीं।
धर्म लगे सब राजनि सों, पुनि राज लगे सतमंत्र कलाहीं॥
मंत्र लगे सुध बुद्धनि सों, पुनि बुद्धि लगी करनी दृढ़ताहीं।
छत्र नरेस यही पहिचान, विचार-विवेक बड़ो जग माहीं॥

सच्चा जीवन व्यतीत करने के लिए कुल की मर्यादा, औदार्य और साहस कभी न छोड़ना चाहिए। इनके खोने से जीवन की 'साख' चली जाती है। जहाँ तक संभव हो इन तत्त्वों की रक्षा अवश्य करनी चाहिए—

लाख घटै कुल साख न छाँड़िये, वस्त्र फटै प्रभु औरहूँ दैहैं।
द्रव्य घटै घटता महिं कीजिये, दैहै न कोऊ पै लोक हँसैहै॥
भूप छता जल रासि को पैरिबो, कौनिहूँ बेर किनारे लगै है।
हिम्मत छोडें तें किम्मति जायगी, जायगो काल कलंक न जैहै॥

संसार में जीवन की सफलता किन मूलभूत तत्त्वों के सम्मिश्रण पर निर्भर करती है, इसका वर्णन महाराज छत्रसाल ने बड़े ही स्पष्ट और सरल ढंग से किया है। उन्होंने अपने काव्य में जहाँ भी उपदेशात्मक, तत्त्वज्ञान या सांसारिकता के सम्बन्ध में कहा है, वहाँ दुरूहता नहीं आने पायी। उनके विचारों में सदियों से चली आ रही बातों का दुहराव भी नहीं है। भावों तथा विचारों में नवीनता, उसके प्रस्तुतीकरण में सरलता तथा जीवन के लिए एक संदेश ही उनकी कविताओं का विशेष गुण है। किस तत्त्व के अभाव में कौन से तत्त्व का अस्तित्व समाप्त हो जायगा, इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है—

लगन बिराग बिन, ज्ञान अनुराग बिन,
पुहुप पराग बिन, पाग बिन सर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज धर्म न्याय बिन, बनिज उपाय बिन,
तुरंग सुतेज बिन, दान बिन कर है॥
नारि निज नाह बिन, देस नरनाह बिन,
सुभट सनाह बिन, सीस बिन धर है।
जाग देव भाग बिन, हाटक सुहाग बिन,
छत्रसाल ताल बिन राग की न दर है॥

अनेक सांसारिक वस्तुओं का गुण तथा उनके महत्त्व के बारे में उनका कथन है--

सुजसु सो न भूषण, विचार सो न मंत्री त्यों,
साहस सो सूर, कहूँ जोतिषी न पौन सो।
संयम सी औषधि न विद्या सों अटूट धन,
नेह सों न बन्धु, औ दया सों पुण्य कौन सो॥
कहैं छत्रसाल कहूँ सील सो न जीतवान,
आलस सो बैरी नाहिं मीठो कछु नोन सो।
सोक कैसी चोट है, न भक्ति कैसी ओट कहूँ,
राम सो न जप है और तप है न मौन सो॥

इस मायावी संसार के आकर्षणों से दूर ही रहना अच्छा है। सुख और ऐश्वर्य में डूबकर अपने अस्तित्व की बात नहीं भूलनी चाहिए। उन्होंने, इन सभी मायावी मोह-पाशों से छूटकर ईश्वर की अनन्तता में तथा दयालुता और दानशीलता में विश्वास रखने का ही संदेश दिया है--

भूलियो न दाया, माया देखि के न फूलियो त्यों,
सूलियो न दीन को, न झूलियो गुमान में।
राखियो प्रतीति प्रीति रामपदपंकज में,
राखियो सदाहिं जीति दान धमसान में॥

यदि जीवन दान, दया और धर्म में बीता तो मनुष्य रूप में जन्म लेना सार्थक हो जायगा। किन्तु यदि दान और दया की नदी में डूबकर स्नान नहीं किया तो ऐसे जीवन को धिक्कार है, वह मनुष्य नहीं मृतक के समान है--

पाया नरजन्म, काया मृतक समान तौ लौं,
जौ लगि न्हाया न दान दाया दरिया में।

पंच परमेश्वर हैं। उनकी बात को झुठलाया नहीं जा सकता। उनका निर्णय अकाट्य है क्योंकि उनके मुख से परमेश्वर बोलता है, जिसका अंश उनमें ठीक उसी तरह समाया है जिस तरह गाय में दूध, फूल में गंध और पृथ्वी में सोना समाया हुआ है--

शब्दनि अर्थ ज्यों, काठ हुतासन,
तार के जंत्र में राग कलोलै।
सुद्ध सुभावनि मैं, छत्रसाल रमैं हरि,
ज्यों संग संतनि डोलैं॥
सैन में जीव ज्यों, धेनु में छीर रहै,
दधि में घृत सार अमोलैं।
फूल में गंध बसै, महि कंचन,
पंचनि तो परमेसुर बोलै॥

आज तो पंचायती राज, हमारे देश का भाग्य बदलने जा रहा है, उसकी चर्चा कितने वर्षों पूर्व कविवर महाराज छत्रसाल ने की थी। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें राजनीति के सभी दाँव-पेंचों तथा उसके विभिन्न पहलुओं का भी ज्ञान था। वे जानते थे कि सुखी एवं समृद्ध राज्य की स्थापना तभी हो सकती है कि जब--

रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल तेहि राज कौ, बार न बाँको जाहि॥

उन्होंने एक स्थान पर राजा के कर्त्तव्यों पर भी प्रकाश डाला है। राजा तो उस माली के समान है जो बोये हुए बीज की रक्षा करे, उसे पाल-पोषकर बड़ा बनाये तथा अपने स्नेह जल से सींचकर उसे सदैव हरा भरा रखे, जिससे वह खूब पुष्पित और पल्लवित हो--

माली के सम नृप, छता, सो संपति सुख लेहि।
सत बीजनि रोपहि थलनि, लघुहि बड़ो करि देहि॥

राजा तो वही है जिसमें साहस हो, तेज हो तथा वीर हो। उसके प्रकाश के सामने सभी की ज्योति क्षीण हो जाय और किसी तरह की विपत्ति न आने पाये--

छत्रसाल नृपतेज तें, दुष्ट प्रभाव न होय।
जिमि रवि उड्गन निसि करहुँ करत छीन छबि सोय॥

इस सारे विवेचन से स्पष्ट है कि महाराज छत्रसाल महाबली ही नहीं बल्कि महाकवि भी थे। उन्होंने तलवार की खनखनाहट और रुधिर की धाराओं के साथ कविता की मधुर ध्वनि भी गुंजरित की तथा उसकी रसधार बहाई। उनकी कविताओं में राजनीति, धर्म तथा सांसारिक के लिए अनेक उपदेश मिलते हैं। उन्होंने युद्ध ही नहीं किया बल्कि जीवन को खुली आँखों से देखा और उसके दृश्यों को अपनी अनुभूतियों के रंग में डुबाकर काव्यमय कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अय्यर

श्री महावीरप्रसाद मिश्र

उस दिन सुना कि श्री अय्यर नहीं रहे। सुनकर एक धक्का-सा लगा हृदय को। आज से १६ वर्ष पहले की घटनाएँ याद हो आईं। सहसा विश्वास नहीं हो पाया कि वे नहीं हैं।

श्री अय्यर बड़े मजे के आदमी थे। मेरा उनका परिचय सन् १९४५ में हुआ और सामीप्य केवल ९-१० मास रहा, परन्तु इतने दिनों में ही वे मेरे हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ गये।

१९४२ के स्वतंत्रता-संग्राम में सहानुभूति प्रदर्शित करने के फलस्वरूप मैं सरकारी नौकरी से बर्खास्त हो चुका था। फिर भी नौकरी तो करनी ही थी। एक छोटी-सी रियासत में मुझे पुलिस अफसर की नौकरी मिली। पर वेतन बहुत कम था, अतः वहाँ के दीवान साहब ने मेरी स्थानीय हाईस्कूल में पार्ट टाइम ड्रिल इंस्ट्रक्टर के रूप में भी नियुक्त कर दिया। वहाँ पहुँचा तो पता चला कि हाईस्कूल में उच्च कक्षाओं को पढ़ाने को गणित शिक्षक का स्थान रिक्त है और कोई शिक्षक मिल नहीं रहा है। इधर अधिकारियों को जब पता लगा कि मैंने बी० एस०-सी० तक गणित की शिक्षा पाई है तो उन्होंने हाईस्कूल में प्रतिदिन दो पीरियड गणित पढ़ाने का भार भी मुझपर डाल दिया। इस प्रकार मैं उस छोटी-सी रियासत में रिजर्व इंस्पेक्टर पुलिस, हाईस्कूल का गणित मास्टर और ड्रिल इंस्ट्रक्टर था। कुछ समय बाद शहर कोतवाल का कार्य-भार भी मेरे कंधों पर डाला गया।

श्री अय्यर यहीं हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक थे। कुछ मास पहले ही यहाँ पर उनकी नियुक्ति हुई थी। वहाँ के बड़े महाराज कुमार उन्हें वहाँ लाये थे और वे उनके कृपापात्र थे। मैं जब विद्यालय गया तो बड़े प्रेम और स्नेह से उन्होंने मेरा स्वागत किया। उनका यह ममत्व दिखावटी नहीं था। उनमें सच्ची आत्मीयता थी।

वे उस समय ४४ वर्ष के थे, और विधुर थे। उनके ३-४ सन्तानें थीं व वे ट्रावंकोर राज्य में उनके मूल निवास-स्थान पर रहती थीं। यहाँ पर वे अकेले हाई स्कूल के छात्रावास में रहते थे। उन्होंने प्रथम दिन ही मुझे अपने निवास पर आमंत्रित किया और छुट्टी होते ही अपने साथ लेते गये।

छात्रावास का एक बड़ा कमरा उनका बैठक व शयन-कक्ष था और पास का छोटा कमरा रसोईघर। बड़ी सादगी थी उनके निवास पर। कमरे के बीच में एक टेबिल पर साईं बाबा का एक चित्र रखा था, व उससे कुछ हट कर उसी टेबिल पर उनकी स्वर्गीया पत्नी का चित्र था। इनकी रोज पूजा होती थी। कमरे में सजावट की यही एकमात्र वस्तुएँ थीं। पास ही एक चारपाई पर उनका स्वच्छ बिस्तर था, कुछ कुर्सिएँ थीं, एक टी टेबिल व एक कोने में दो पेटिएँ।

वहाँ पर पहुँचते ही उन्होंने मुझसे प्रश्न किया--'आप चाय लेंगे या काफ़ी?'

मैं जानता था कि दक्षिण भारतीय काफ़ी-प्रेमी होते हैं। अतः मैंने काफ़ी की इच्छा व्यक्त की।

काफ़ी कुछ देर बाद आई। बिलकुल काली, गाढ़ी-गाढ़ी सी। वैसी काफ़ी मैंने पहले पीना तो दूर, देखी भी नहीं थी। उसे देखकर हलाहल याद आ गया और जब उसे पिया तो भी कुछ वैसा ही लगा। किसी तरह उसका पान कर मैं अपने को भगवान् शंकर समझने लगा। उधर काफ़ी समाप्त हुई कि उन्होंने पूछा--"काफ़ी आपको कैसी लगी?"

सौजन्यतावश मैंने कह दिया--"बहुत अच्छी।"

सुनना था कि उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। बोले--'बस केवल दो व्यक्तियों ने मेरी काफ़ी की कद्र की है यहाँ। एक तो महाराज कुमार, और दूसरे आप। और कोई भी यहाँ काफी पीना नहीं जानता।'

बाद में पता चला कि उन्होंने अपने अनेक सहयोगियों एवं अन्य स्थानीय व्यक्तियों को अपनी काफ़ी का स्वाद दिया था, परन्तु सबने एक घूँट चखकर ही आगे पीने में असमर्थता प्रगट की थी।

परन्तु मेरी यह सौजन्यता मुझे मँहगी पड़ी--कम से कम कुछ समय तक तो मैं यही सोचता रहा। मेरे इस काफ़ी-प्रेम ने ही मुझे उनके अति निकट ला दिया। उस दिन से ही उनका यह नियम हो गया कि वे रोज सायं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल को मुझे अपने घर ले जाते और एक प्याला गरमा-गरम वह हलाहल काफ़ी मुझे पिलाते व उसकी प्रशंसा मुझसे सुनते। जब तक मैं वहाँ रहा, यह नियम हो गया। धीरे-धीरे तो मैं इस काफ़ी का अभ्यस्त हो गया, और बड़े चाव से उसे पीने लगा। आप आश्चर्य करेंगे कि वह मुझे बड़ी प्रिय लगने लगी।

प्रायः नित्य ही मेरी घंटा-दो घंटा वहाँ बैठक होती, कभी-कभी शाम को वे मेरे यहाँ आ जाते। वार्तालाप हम लोगों में प्रायः हिन्दी एवं दक्षिण भारतीय भाषाओं के साहित्य को लेकर होता। श्री अय्यर हिन्दी नहीं जानते थे। केवल आचार ज्ञान उन्हें था। परन्तु मेरे सम्पर्क से उनमें हिन्दी सीखने की इच्छा जागी। पहले हमारी बात-चीत अँगरेजी में होती थी, अब उन्होंने यह नियम बनाया कि प्रतिदिन १०-१५ मिनट मुझसे हिन्दी में बातचीत करते, उनका उच्चारण विचित्र होता था--पर वह धीरे-धीरे सुधरने लगा। इसके पश्चात् उन्होंने विद्यालय में भी हिन्दी में वार्तालाप आरंभ कर दिया। उनकी अट-पटी हिन्दी पर लोग हँसते परन्तु उन्होंने इसकी चिन्ता नहीं की।

एक दिन मुझसे पूछा--"हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-कार कौन है? स्वभावतः मैंने प्रेमचन्द का नाम लिया, तो पूछा उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति कौन है?" तो मैंने बताया--'गोदान।'

दूसरे दिन ही विद्यालय के पुस्तकालय से गोदान उनके घर आ गया। अब श्री अय्यर रोज उसके १०-१५ पृष्ठ पढ़ते। जो शब्द समझ में न आते उनको लिख लेते व जब मैं शाम को मिलता तो उनका अर्थ पूछते। महीनों यह क्रम चला, पहले काफ़ी, फिर गोदान के शब्दों के अर्थ बताना, फिर १०-१५ मिनट हिन्दी में बात व फिर साहित्य चर्चा अँगरेजी में। मैंने इन दिनों उनसे बहुत सीखा। काश! मैं भी उनकी लगन व अध्यवसाय को पा सकता।

प्रायः तीन मास में गोदान उन्होंने पूरा किया। उसके बाद उन्होंने एक दिन मुझे अँगरेजी में लिखी हुई गोदान की समालोचना दी व कहा--'मिश्रजी, जरा इसे पढ़कर बताइयेगा कि मैं गोदान को समझ पाया हूँ या नहीं।'

मैंने उसे पढ़ा और दंग रह गया। ऐसा लगा कि प्रेमचन्द जी के गोदान को वह मुझसे कहीं ज्यादा समझे हैं।

इसके बाद तो वे हिन्दी के नियमित पाठक हो गये। उन्होंने उन्हीं दिनों मेरा प्रकाशित "दानव" पढ़ा व अन्य अनेक हिन्दी उपन्यास पढ़े। वे पुस्तक समाप्त कर उस पर खुलकर चर्चा करते। हिन्दी के वे बड़े प्रशंसक हो गये थे।

परन्तु हमारी दिनचर्या में सहसा एक व्याघात आया। श्री अय्यर की ज्योतिष में अपार श्रद्धा थी एवं उन्हें उसका कुछ ज्ञान भी था। इसी आधार पर उन्होंने कुछ गणना कर यह परिणाम निकाला कि आगामी १३ फरवरी को उनकी मृत्यु हो जायगी।

जनवरी का महीना था जब उन्हें यह इलहाम हुआ। चिन्ता हुई अपने बच्चों के भविष्य की--मेरे पीछे उनका क्या होगा! पास में कुछ सम्पत्ति थी नहीं। तब क्या किया जाय। पर उपाय निकाल ही लिया। जीवन बीमा से बढ़कर और उपाय ही क्या? अतः तुरन्त एक बड़ी रकम की पालिसी ली, जिसकी किश्त उनके तीन-चौथाई वेतन के बराबर थी। पर इसकी क्या फिक्र? एक मास बाद ही तो मरना है। बच्चों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना चाहिये।

बच्चों की सुरक्षा और भविष्य का प्रश्न तो हल हो गया। अब वात्सल्य और आगे बढ़ा। अन्त समय में बच्चों को देखने की इच्छा स्वाभाविक ही थी। उन्हींके पास मरना उचित होगा। अतः एक लम्बी छुट्टी का आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया गया।

पर विद्यालय में यही दिन तो पढ़ाई के होते हैं। मैट्रिक की परीक्षा निकट थी व इस कक्षा को अँगरेजी व कुछ गणित यही पढ़ाते थे। दूसरा कोई शिक्षक था नहीं जो यह भार सँभाल सकता। अतः उनका आवेदन-पत्र अस्वीकृत हो गया।

एक क्षण वे विचलित हुए--पर तुरन्त ही सीधे महाराज कुमार के पास पहुँचे। महाराज कुमार एम० ए० तक शिक्षित अत्यन्त सज्जन युवक थे, उन्होंने उन्हें बहुत समझाया व कहा कि आप मरेंगे नहीं। पर अय्यर साहब को अपने ज्योतिष-ज्ञान पर पूरा विश्वास था--उन्होंने स्पष्ट कह दिया--"मुझे मरना तो है ही। मैं बिना छुट्टी मंजूर हुए ही चला जाऊँगा। कोई शक्ति मुझे अपने बच्चों के पास जाने से नहीं रोक सकती। मैं तो चाहता था कि आखिरी वक्त मुझे अवज्ञा का अपराध न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो और मैं राज्य के प्रति कोई कटुता लिये हुए न मरूँ, पर लगता है भगवान् को यह मंजूर नहीं है।"

वे बड़े अच्छे शिक्षक थे। लड़के उनसे बहुत प्रसन्न थे। थोड़े समय में ही उन्होंने संस्था की कायापलट दी थी व वेतन भी केवल १५०) था। महाराज कुमार उन्हें खोना नहीं चाहते थे। उन्होंने सोचा कि यदि यह व्यक्ति बिना अनुमति के चला गया तो फिर लौटेगा नहीं। अतः उन्होंने न केवल उनकी छट्टी स्वीकार कराई अपितु उन्हें २-३ मास का अग्रिम वेतन भी दे दिया। अय्यर साहब छुट्टी पर चले गये।

उनके पत्र कभी-कभी आते रहे, पर फरवरी में उनका आना बन्द हो गया। बाद में पता चला कि इन दिनों वे ईश्वरोपासना में व्यस्त थे। प्रतीक्षित १३ फरवरी भी आई और चली गई। हम लोग आशंका कर रहे थे कि शायद उनकी मृत्यु का तार या पत्र आवे। पर ऐसा कोई समाचार नहीं आया।

हाँ, कुछ दिन बाद एक अप्रत्याशित तार आ गया। देने वाले स्वयं अय्यर साहब थे—तार में था "Arriving with wife" हम लोग बड़े चकराए—मृत्यु का आलिंगन करने गये अय्यर जी और पा गये बीबी। खैर, वे आए, उनकी नव-विवाहिता पत्नी भी आईं। पता चला कि १३ फरवरी के बाद गणना करने पर श्री अय्यर ने पाया कि यह मृत्यु योग निकल गया। अब बहुत दिन जीना है। शादी का योग भी है। अतः तुरन्त उजड़ा घर फिर बसा लिया।

पत्नी उनकी न हिन्दी जानती थी, न अँगरेजी, केवल तमिल। उसे लेकर वे छात्रावास में आ गये। मैंने सोचा अब मेरी शरम की काफ़ी बन्द हुई। नई-नई पत्नी यह काहे को बरदाश्त करेगी। पर बात यह हुई नहीं। पहले ही दिन मैं आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया गया और उस दिन केवल काफ़ी ही नहीं, उसके साथ मुझे कुछ दक्षिणी व्यंजन भी मिले। परन्तु उनका पहला कौर गले के नीचे न उतरा। मैंने सोचा कि सौजन्यतावश काफ़ी तो मैं सह गया व अब यह अच्छी भी लगती है। परन्तु इसकी अति ठीक नहीं। अतः मैंने स्पष्ट कहा—अय्यर साहब—यह तो न चलेगा।

उन्होंने कहा—'What! This is a very delicious dish of South. It is cooked in pure co-conut oil.'

मैंने कहा—शायद यह कोकोनट आइल की ही करामात है। तुरन्त उन्होंने पत्नी को आज्ञा दी कि तिल के तेल में यही चीजें पकाई जायँ। ये वास्तव में स्वादिष्ट लगीं।

अब मुझे प्रायः मद्रासी व्यंजन भी मिलने लगे। दक्षिण भारत का भोजन भी मैंने वहाँ किया व वह मुझे रुचा भी। आज उनके नाम भूल गया हूँ, पर स्वाद याद हैं।

कुछ समय पश्चात् मैंने देखा कि अय्यर साहब के यहाँ पत्रों का आदान-प्रदान बढ़ गया है और फिर रोज एक दो तार भी आने जाने लगे। साथ ही अय्यर साहब कुछ चिन्तित भी रहने लगे। मैंने एक दिन इस बारे में कुछ जिज्ञासा प्रगट की तो बोले—"क्या बताऊँ मिश्रजी, मेरी एक भानजी बम्बई में टाइपिस्ट है। उसका क्हीं एक सजातीय युवक से प्रेम हो गया है। दोनों विवाह करना चाहते हैं। परन्तु मेरी बहिन, अर्थात् लड़की की माँ उसके विरुद्ध हैं। अब ये दोनों मेरी सहायता चाह रहे हैं। क्या करूँ समझ में नहीं आता। आप ही कुछ राय दें।"

मैंने कहा—"आपकी व्यक्तिगत राय क्या है?"

उन्होंने कहा—"मेरी राय में सम्बन्ध उचित है। पर न जाने क्यों मेरी बहिन को नापसन्द है।"

मैंने कहा—"तो आप उनकी सहायता करें।"

'परन्तु फिर बहिन जीवन भर मेरा मुँह न देखेंगी।' उन्होंने कहा।

समस्या वास्तव में टेढ़ी थी। कोई उपाय नज़र न आता था। अन्त में एकाएक उनकी भानजी वहाँ आ टपकी।

उसी दिन शाम को उन्होंने मुझसे कहा—"मेरी यह भानजी हँसी का फुहारा थी। इसके कारण घर भर चहकता था—पर अब यह इतनी ग़मगीन और दुर्बल हो गई है कि रोना आता है।"

मैं चुप रहा।

इसके तीन-चार दिन बाद शाम को जब मैं उनके यहाँ गया तो एक स्वस्थ सुन्दर युवक से मेरा परिचय कराते हुए उन्होंने कहा—"ये आज ही बम्बई से आए हैं। इनके बारे में मैं आपसे पूर्व में बता चुका हूँ। परसों मेरी भानजी का यहीं इनके साथ विवाह है, और उसकी व्यवस्था आपको करनी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सकते में आ गया। पर प्रसन्नता व्यक्त की व पूर्ण सहयोग का वचन दिया। और तद्नुसार कार्य भी किया।

दूसरे दिन उन्होंने कहा--"मिश्रजी, बड़ी आफत है। नाते, रिश्ते, मित्र-मंडली सब कहीं जब कोई ऐसी या अन्य विचित्र समस्या खड़ी होती है, तो लोग मुझे ही पकड़ते हैं। स्वभाववश उनका काम करना ही पड़ता है, पर बड़ी बुराई मिलती है।"

मैंने कहा--"आपकी बहिन तो बहुत नाराज होंगी?"

वे बोले--"यह तो निश्चित है। परन्तु लड़की की दशा देखकर मुझसे तो नहीं रहा गया। आज शाम बहिन को तार से समाचार देकर उनके आशीर्वाद की प्रार्थना कर रहा हूँ।"

मैंने कहा--"कल प्रातः तो विवाह है। आज शाम को तार देने से लाभ क्या, उत्तर तो समय पर आ नहीं सकेगा। इससे तो कल दे देते, या एक दिन तिथि बढ़ा दें।"

उन्होंने कहा--"उत्तर मैं चाहता ही कब हूँ। यदि कहीं उत्तर में मनाही आ गई तो फिर मैं आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकूँगा।"

खैर, दूसरे दिन विवाह सम्पन्न हो गया। वहाँ पर छात्रावास की दूसरी मंजिल पर यह कार्य सम्पन्न हुआ। मैंने जब वहाँ पर आम्र के डाल के मंडप के बनने की असंभावना की ओर इंगित किया तो श्री अय्यर ने एक सिगरेट के डब्बे में मिट्टी भरकर उसमें आम की एक पतली टहनी खोंसकर वह कमी तुरन्त दूर कर दी। और पाँच पंडितों के वेदोच्चार के बीच कार्य सम्पन्न हुआ।

विवाह के बाद नव-दम्पत्ति से उन्होंने अपनी मातृ-भाषा में कुछ कहा। मैं यह देखकर आश्चर्य में आ गया कि वे दोनों मेरे पास आकर मेरे सम्मुख साष्टांग प्रणाम कर लेट गये। मेरे आश्चर्य को देखकर श्री अय्यर ने बताया कि उनके यहाँ यह प्रथा है कि विवाह-कार्य के पश्चात् वे एक सर्वगुण सम्पन्न योग्य द्विज को प्रणामकर उसका आशीर्वाद ग्रहण करते हैं, और मुझसे बढ़कर ब्राह्मण उन्हें कहाँ मिलता।

खैर, आशीर्वाद के साथ-साथ मैंने उन सबको उसी दिन भोजन की दावत भी दी। दूसरे दिन ही वे दोनों बम्बई वापस हो गये।

गीत

श्री पाण्डेय शशिभूषणप्रसाद 'शीतांशु'

जाने क्यों अब गीत नहीं बनते हैं?
लगता, जीवन के सब पल रीते हैं!
नेह को जग ने माना दुर्बलता,
युग की मिली न मुझको भाव-शबलता!
बरस बीसवाँ तार नहीं तनते हैं!
रही अभिरूया अपनी कालिख काली
पाटल ने सब अपहृत कर ली लाली!
चोट मिली जो ओठ नहीं खुलते हैं!
दृष्टि आज ऐसी कि चित्त स्थिर है,
जीवन के क्रम में ये सब फिर-फिर हैं!
चिन्तन के ही वृन्त फूल फलते हैं!
जाने क्यों अब गीत नहीं बनते हैं!

बाद में पता चला कि अय्यर साहब ने अपनी बहिन को मना लिया।

ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिनसे उनकी सहृदयता, सरलता व विचित्रता झलकती है। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मेरा उनका सान्निध्य अधिक न रहा। उक्त घटना के कुछ दिनों पश्चात् वहाँ के उच्च पुलिस अधिकारी से मेरी लड़ाई हो गई। उधर वहाँ के दीवान की भी वहाँ के राजा से पटी नहीं--इनके कारण ही मैं वहाँ गया था--अब उनकी ही सलाह से त्यागपत्र देकर वहाँ से चल दिया।

बिदा के समय श्री अय्यर ने मुझे पार्टी दी। नगर के अनेक प्रतिष्ठित सम्भ्रान्त व्यक्ति एवं अफसर वहाँ थे। उनके संक्षिप्त बिदाई भाषण का उत्तर देते समय मैं रो पड़ा।

बाद में दो-चार बार उनसे भेंट हुई पर अधिक साथ न रह सका।

आज यह सुनकर कि वे नहीं रहे मन न जाने कैसा हो रहा है। सोचता हूँ--काश! ये ९-१० महीने फिर लौट सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल-हिन्दी-भाषा !

श्री सू० न० व्यास

श्रुता भवद्भिर्भवेदिदानीं सरला हिन्दी-भाषा,
'रेड्डी नाथैः' प्रचालिता या तृप्ता स्यादभिलाषा।
नितरां-सुतरां नो वक्तव्यं 'संस्किरतं' तु गतम्
दिल्ली-पण्ये चलिता भाषा स्वीकार्येति मतम् !

आजादी या मिलिता नूनं---मानो शुक्र खुदा का,
जातं सर्व-समर्घं-वर्ना तुम करते फिर फाँका !
दैनंदिनं तरक्की होती---मुल्क सुधरता जाता,
सुलभाः सर्व-पदार्थाः पश्चिमतो गेहूँ सस्ता आता।

सन्ति जनाः सम्पन्नाः सर्वे कंगाला न मिलन्ति,
हन्त जना हीनाः ये केचित्-संस्कृतमेव वदन्ति !
अँगरेजी भाषा-महदीया---'दुनिया की है खिड़की'
करो न बंद मंद-हिन्दी सुन जाती है यह भड़की !

शासन जन वाणी सिंहासन प्रतिष्ठिता जो भाषा
सेयं शुभा च सरला-मधुरा जम्हूरियत की आशा।
कुरु स्वागतं, त्यज दुराग्रहं, किमस्ति हिन्दीमध्ये ?
पावन भाषा अँगरेजी है स्थापित मरकज मध्ये !

खद्दरपरिधानेन भौतिकी-भूख भगेगी नितराम्
पार्लमेंट में मिले-प्रवेशो मानो वर्द्धति सुतराम् !
संस्कृतितस्ते प्रयोजनं किं---कलचरमाराध्यम्
मिनिस्टराणां चरण-रंजनं सततं ते साध्यम्।

मा कुरु धन-जन-यौवनचिंतां युगो ह्ययं-तकनीकः !
डाल्डां पिब मिश्रण-मंत्रं जप सुतरां सह-पत्नीकः।
दकियानूसो मा भव प्रगतेः पन्था खुली हुई है
पिबत यथेच्छं, खादत सर्वं छुट्टी मिली हुई है।

त्यजतु संस्कृतं भजत-इंडियां सेवत सततं पीरम्
भज गोपालं शम्मानाथं जयतु कबीर वजीरम्।
शृणोतु सततं परया भक्त्या आकाशीया-वाणी।
बल्लीमारां के कूचे से प्रकटी-यह कल्याणी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (२०)

पंडित व्रजमोहन व्यास

उपसंहार

महिमानं यदुत्कीर्य तव संहृयते मनः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥कालिदास

(अर्थात् भगवान् की महिमा का वर्णन करता हुआ कोई भी व्यक्ति यदि अपने संस्मरण का उपसंहार करता है तो वह अपने श्रम के कारण, अथवा अधिक जानने की शक्ति न होने के कारण ही करता है। भगवान् के गुणों की समाप्ति हो गयी हो, ऐसा नहीं।)

और मैं ऐसी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ जब—

त्वत्कीर्त्तिमौक्तिकफलानि गुणैस्त्वदीयैः
संदर्भितुं विबुधवामदृशाः प्रवृत्ताः।
नान्तो गुणेषु न च कीर्त्तिषु रन्ध्रलेशो
हारो न जात इति ताः स्वमिथो हसन्ति॥

(स्त्रियों में बोलने की शक्ति असीम होती है। एक बार उन्होंने आपके गुणरूपी —डोरा और कीर्तिरूपी शुभ्र मोतियों से एक माला गूँथने की ठानी। पर जब उन्होंने देखा कि न तो आपके गुण रूपी डोरे का कोई अन्त है और न कीर्त्ति रूपी मोतियों में तनिक सा भी छिद्र है तो माला कैसे बने, यह देखकर वे अपनी अशक्ति पर आपस में हँसने लगीं।)

अब मैं अपनी दूकान समेटता हूँ। 'एस० एस० पी०' Senior Superintendent of Police की कृपा से या यदि वक्रागति से कहिये—व्यक्ति दो हैं पर बात एक है—तो P.S.S.,. (प्रधान सम्पादक सरस्वती) के.अनुग्रह से निर्धारित अवधि के उपरान्त भी मेरी दूकान खुली रह पायी इसका मैं आभारी हूँ। पर उनकी दफा १४४ का भी तो खयाल है। अतः मैं अब इन संस्मरणों को घटाता हूँ और अपनी दूकान बढ़ाता हूँ। खरीदारों का ताँता तो लगा ही रहेगा। वे मुझे क्षमा करेंगे।

मालवीयजी का गुणानुवाद करने से जी नहीं भरा। अभी निर्धारित अवधि में दस-पाँच मिनट बाकी हैं। तब तक थोड़ा सा और वर्णन कर क्यों न अपने हृदय को पवित्र कर लूं?

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै, नमस्तस्मै नमो नमः॥

(जिसके संस्मरण मात्र से संसार के बन्धनों से प्राणी मुक्त हो जाता है उसे बारम्बार नमस्कार है।)

श्री सी० एफ० ऐंड्रूज मालवीयजी के प्रति लिखते हैं :—

"It remains to try to sum in a few words his character, which all who have known him intimately have found so gentle and winning. No one, not even Mahatma Gandhi himself is dearer to the vast majority of the Hindu public. He has also a great record of public national service, which places him very high indeed, among those Indian leaders who are still living in our own times. There is in him a bravery of spirit which is equal to his tenderness of heart; and his religious faith is as simple as that of a child. Behind all is a personality so attractive that he has won the hearts of millions who have never even seen him but have only known his great sacrifices both on behalf of his mother-land and his Hindu faith.

(मुझे अब थोड़े से शब्दों में, उनके चरित्र के सम्बन्ध में लिखने का प्रयास करना बच रहा है, जिसे सब लोगों ने जो उनके अति निकट सम्पर्क में आये हैं, इतना सौम्य और आकर्षक पाया है। कोई भी व्यक्ति, यहाँ तक कि स्वयं महात्मा गांधी भी असंख्य हिन्दू जनता को इतने प्रिय नहीं हैं जितने मालवीयजी। उनकी देश-सेवा का बहुत बड़ा खाता, उन्हें उन भारतीय नेताओं के बीच में, जो हमारे बीच आज भी मौजूद हैं, बहुत ऊँचे स्थान पर बिठा देता है। उनकी धर्म-निष्ठा, बच्चों के विश्वास के समान सरल है। और इस सबके पीछे उनका व्यक्तित्व इतना आकर्षक है कि उसने उन लाखों आदमियों के हृदयों को मोह लिया है, जिन्होंने उन्हें देखा भी नहीं है परन्तु केवल उनके मातृ-भूमि और हिन्दू-धर्म के प्रति महान् उत्सर्गों के द्वारा जानते हैं।)

ऐसे मालूम नहीं कितने प्रशंसात्मक वाक्य बड़े-बड़े लोगों ने मालवीयजी के सम्बन्ध में लिखे हैं। उन सबों का इस छोटी सी लेख-माला में समावेश असम्भव है। अतः मैं इन लेखों को संस्मरणों ही में सीमित रखूँगा। दो एक पुरानी बातें सहसा याद आ गयी हैं, उन्हें लिखता हूँ।

स्वदेशी वस्तुओं का स्वयं उपयोग करना और उनका प्रचार करना मालवीयजी के जीवन का एक अंग था। १६ मई १९३३ को उन्होंने इलाहाबाद म्युनिसिपल म्युजियम का निरीक्षण किया और उसकी निरीक्षण पंजिका पर यह टिप्पणी अपने हाथों से लिखी—

"मैंने आज प्रयाग म्युनिस्पिल म्युजियम को देखा। इसको देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। थोड़े समय में एक देखने के योग्य नया स्थान बन गया है। बहुत से संगृहीत पदार्थ अनमोल हैं जैसा संस्कृत की हाथ की लिखित पुस्तकें जो मेरे स्वर्गवासी मित्र डाक्टर रघ्यकृष्ण व्यासजी का पुस्तका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवीयजी वाइस चांसलर का भार श्री सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् को देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय इस नाम से म्युजियम को भेंट की गयी हैं, वैसा ही अरबी और फारसी की हस्तलिखित पुस्तकें फरमान आदि। यह म्युजियम मेरे मित्र पंडित ब्रजमोहन व्यास के परिश्रम और उत्साह का फल है। इसकी जो उन्नति इस थोड़े से समय में हुई है उससे मुझे आशा है कि आगे चलकर इसकी और स्थायी उन्नति होगी। मेरी राय में हर एक जिले में एक स्थायी स्वदेशी म्युजियम स्थापित होना चाहिये और अच्छा होगा यदि वह म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से या उसकी सघन सहायता से स्थापित हो। इसमें देश की बनी सब आवश्यक वस्तुओं का संग्रह होना चाहिये और उनके मिलने का पता और उनके मोल की भी सूचना होनी चाहिये। इससे देशी व्यापार की वृद्धि में बहुत सहायता होगी और म्युजियम की उपकारिता बहुत बढ़ जायगी। हर तीसरे महीने म्युजियम में जिले के भीतर बनाई गई चीजों का खास प्रदर्शन होना चाहिये। इससे जिले के निवासियों में नई चीजों के बनाने का उत्साह बढ़ेगा।

ता० १६-५-१९३३ (ह०) मदनमोहन मालवीय"

सन् १९३४ में कालपी में आयोजित 'स्वदेशी प्रदर्शिनी' के अवसर पर मालवीयजी ने जो महत्त्वपूर्ण संदेश भेजा था वह इस प्रकार है--

"स्वदेशी का व्रत एक पुनीत कार्य है, जिससे अपना ही नहीं सबका भला होगा। जिस प्रकार लालटेन अंधकार को हटाकर प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार स्वदेशी का व्रत दुख और दरिद्रता को दूर हटाकर सुख का प्रसार करता है। मैं गत ५६ वर्षों से स्वदेशी का उपयोग कर रहा हूँ। मैं देश-सेवा को ईश्वर की उपासना मानता हूँ। आज देश के लाखों कारीगर अपने गुणों का सहारा लेकर भी अपने परिवार का पालन नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि विलायती वस्तुओं ने उनका बाजार बन्द कर दिया है। स्वदेशी व्रत से देश के सभी लोग सुखी होंगे; देश का धन देश में रहेगा। परमात्मा आप सबको अपनी भक्ति के साथ-साथ देश-भक्ति भी प्रदान करे।"

मालवीयजी का जीवन स्वदेशी निष्ठा से ओत-प्रोत था। अब इस विषय पर कुछ अधिक कहना पुनरुक्ति होगी अतः समयक्रमानुसार वर्णन की अवहेलना कर कुछ थोड़े से संस्मरण प्रस्तुत करता हूँ।

बीस वर्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रहने के बाद मालवीयजी ने अस्वस्थता और वार्धक्य के कारण अवकाश ग्रहण कर उस पदभार को श्री (अब राष्ट्रपति) सर्वपल्ली राधाकृष्णन को सौंप दिया।

वार्धक्ये धर्मतो मूढः स्वदेहवहनेऽपि सः।
विधित्सन्नप्यशक्तितष्ठः तपः कीदृक् विधास्यति॥

--कुमारदास, जानकीहरण।

(एक तो मनुष्य बुढ़ाई में स्वभावतः शक्तिहीन हो जाता है और अपना शरीर ही उठाये नहीं उठता, तब, इच्छा

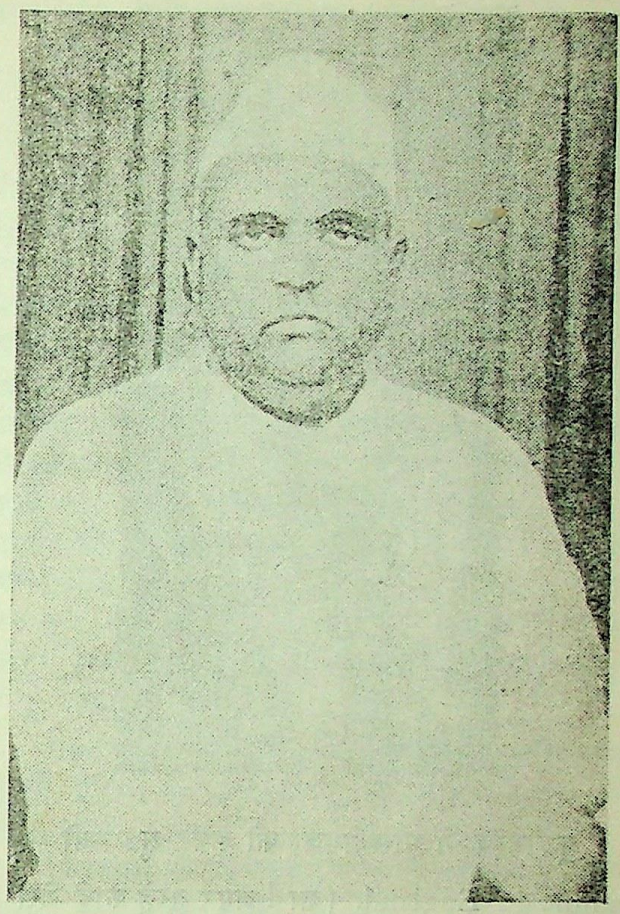

पं० गोविन्द मालवीय

रखते हुए वह तप किस प्रकार कर सकता।) विश्वविद्यालय के कुलपति का पद-भार किसी तप से कम तो था नहीं।

अवकाश ग्रहण कर वे मालवीय-भवन में रहने लगे। बहुत वृद्ध हो गये थे, कमर झुक गयी थी, छड़ी के सहारे चलते थे। इतने पर भी उनसे मिलनेवालों की भीड़ तो लगी ही रहती थी। पहिले जब मालवीयजी स्वस्थ थे और अपना काम-काज करते थे तब भी और जब वे पद त्याग कर मालवीय-भवन में रहने लगे, उस समय उनके दो अँगरक्षक थे। वे मिलनेवालों की रोक-थाम करने का असफल प्रयास करते रहते थे। एक तो उनके पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीय (भावी कुलपति) और दूसरे मालवीयजी के एक दूसरे पुत्र पण्डित राधाकान्त मालवीय, जिनका प्यार का नाम 'लेड़ुवा' है। दोनों की शरीर-सम्पत्ति में बड़ा अन्तर था। गोविन्दजी भूधराकार शरीर और 'लेड़ुवा' कृशकाय। ब्राह्मण के घर में कृशकाय लेड़ुवा!! विधि के विधान की बलिहारी। इस सम्बन्ध में एक मजेदार बात याद आ गयी जिसको बिना लिखे जी नहीं मानता। इँगलैण्ड के प्रधान मंत्री चर्चिल भूधराकार शरीर थे। जगत् विख्यात बर्नार्ड शा कृशकाय थे। एक दिन चर्चिल ने शा से कहा ' Shaw! if any person were to see you, he will think that there is

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

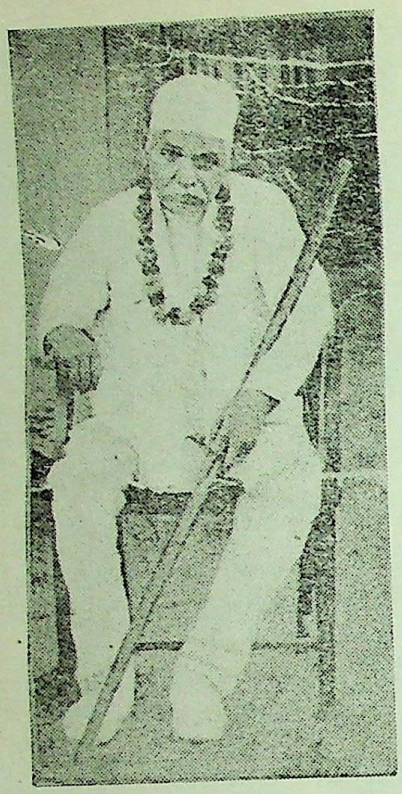

वृद्धावस्था में मालवीयजी की कमर झुक गयी थी

famine in England. (शा ! अगर तुम्हें कोई देखे तो वह यही समझेगा कि इँगलैण्ड में दुर्भिक्ष पड़ा है।)

शा ने तुरन्त उत्तर दिया—"Yes Churchill ! but if any body were to see you he will think that you are the cause of it. (ठीक कहते हो चर्चिल ! परन्तु यदि तुम्हें कोई देखे तो वह समझ जायगा कि तुम्हीं उसके कारण हो।)

घोर गरमी के दिन थे। दोपहर का समय था। सौभाग्य से दोनों पुत्रों में से कोई 'ड्यूटी' पर नहीं था। मालवीयजी अपने कमरे में चारपायी पर लेटे विश्राम कर रहे थे। इतने में एक भिखियारी की आवाज उनके कानों में पड़ी। वह करुण स्वर से देर से कुछ खाने को माँग रहा था। मालवीयजी विह्वल हो उठे। अपने पुत्रों को पुकारा, फिर मोड़ी, बलिहारी (पुराने भृत्य) को आवाज़ दी। जब कोई न बोला तो चारपायी से उठे। लकड़ी टेकते, दीवार के सहारे, कमर झुकाये हुए बाहर निकल आये। इतने में बलिहारी आ गया। उससे बोले, "यह गरीब बड़ी देर से चिल्ला रहा है। कोई नहीं सुनता। बड़ी लज्जा की बात है। अभी हमारे सामने भर-पेट भोजन कराओ।"

उनकी झुकी हुई कमर जैसे कह रही हो—

जो आला-मर्द हैं अहले-गरज़ से झुक के मिलते हैं।
सुराही सर-निगूँ हो करके भर देती है पैमाना॥

कितने ही विद्यार्थियों के पढ़ाने का आर्थिक बोझ अपने ऊपर ओढ़ लिया, कितने गरीब आदमियों की बेटियों के ब्याह में आर्थिक सहायता पहुँचायी, कितनी ही विधवाओं के अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध किया। इन सब आर्थिक सहायताओं का एक मूलस्रोत था—एक पूँजीपति मालवीयजी के जीवन-यापन के लिए २०००) महीना बरसों से देते चले आ रहे थे। अपने ऊपर तो इसमें से बहुत कम खर्च होता। बाकी सब अतिथियों की सेवा और गरीबों की सहायता में जाता था। जब मालवीयजी ने अवकाश ग्रहण किया और मालवीय भवन में पड़ रहे तो वे पूँजीपति महोदय २०००) से घटाते-घटाते ५००) मासिक भेजने लगे। सहायता का मूल-स्रोत लगभग सूख चला। मालवीयजी को इससे कष्ट हुआ। वे अतिथियों और आर्त्तों की उतनी सेवा न कर सकने लगे।

सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति॥

—शूद्रक-मुद्राराक्षस

(पूँजीपति चारुदत्त जब गरीब हो गया तो कहता है, "सचमुच मुझे धन निकल जाने को कोई चिन्ता नहीं है। धन तो भाग्य के चक्र से आता-जाता रहता है। जो बात मुझे घोर पीड़ा दे रही है वह यह है कि अतिथियों ने, यह समझकर कि अब इनके पास धन नहीं रह गया, आना छोड़ दिया)

इसी प्रकार अर्थाभाव मालवीयजी को पीड़ा पहुँचाता रहता था।

विश्व-विद्यालय में विश्वनाथजी का मन्दिर

अपनी ७५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में आयोजित उत्सव में भाषण देते हुए, मालवीयजी ने इस सम्बन्ध में कहा था—

"इस मन्दिर के लिए मैं क्या कहूँ। यह अब तक क्यों नहीं बना, इसके लिए मुझे बड़ा दुख है। पचास मील पैदल चलकर एक तपस्वी महात्मा आये और इसकी नींव रख गये, तबसे यह अभी तक नहीं बन सका। पर इसका सब दोष मुझपर ही है। आप घबराइये नहीं। विदेशों में भी बड़े-बड़े मकानों के बनने में यों ही देर होती है। कुकुरमुत्ता तो यों ही उग आता है, पर बड़े वृक्ष के बढ़ने में समय लगता है। मैंने इसके लिए काफ़ी समय नहीं दिया, मुझे इसकी बड़ी शर्म है। हम सबको जतन करना चाहिये कि सामग्री इकट्ठी हो। सब विद्यार्थी इस मन्दिर के लिए प्रयत्न करें और धन इकट्ठा करें तो समुचित प्रबन्ध हो। मेरा दस वर्ष का कार्यक्रम है। आप विश्वास रक्खो, मैं अभी नहीं मरूँगा। (भविष्यवाणी !!!)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

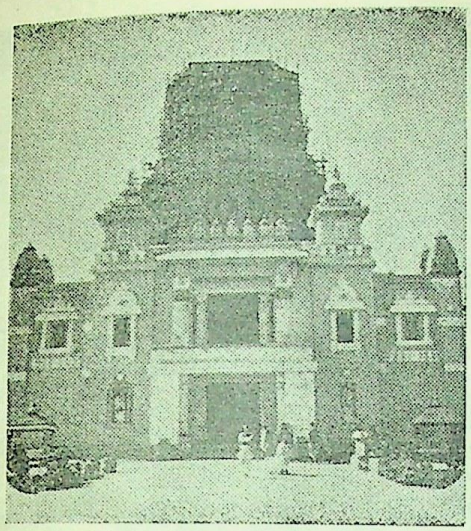

विश्वनाथजी का मन्दिर जिसका निर्माण चालू है

शरीर छूटने पर भी मैं नहीं मरूँगा, बल्कि हिन्दू विश्वविद्यालय में या यहीं कहीं जन्म लेकर हिन्दू जाति और देश की सेवा करूँगा। यदि भगवान् की मर्जी होगी तो वे मुझे और आयु देंगे। यदि उन्हें इस शरीर से और सेवा करानी होगी तो मेरे स्वास्थ्य में और बल में वृद्धि करेंगे और यदि उनकी इच्छा नहीं होगी तो उनकी मर्जी। इस बात को भगवान् समझते हैं।"

इसके आगे दो एक ऐसे संस्मरण कहने जा रहा हूँ जिनको लिखने में तबीयत झिझकती है—

सुनाना चाहता हूँ क़िस्सये-ग़म उनको मैं लेकिन।
मुबादा कहते कहते आँख भर आयी तो क्या होगा॥

बङ्गाली की मृत्यु

मालवीयजी के ज्येष्ठ पुत्र, पण्डित रमाकान्त मालवीय का प्यार का नाम बंगाली था। मालवीयजी को वृद्धावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र का विछोह देखना बदा था। विधि के इस दारुण विधान को कौन टाल सकता था। शरशय्या पर पड़े, भीष्म पितामह से किसी ने पूछा—"महाराज! दीर्घायु अच्छी या बुरी?" बोले, "अच्छी भी और बुरी भी। अच्छी इस अर्थ में कि सत्कार्य करने के लिए अधिक समय मिलता है, परन्तु बुराई यह है कि प्रियजन-विछोह की सम्भावना बढ़ जाती है।" अपनी माता के मरने पर उनका दाह-कर्म बंगाली ने ही किया था। परन्तु उनकी वर्षी करने की नौबत न आयी और वे बीमार पड़ गये। मालवीयजी उस समय विश्वविद्यालय में रहते थे। अपना पुत्र अपनी आँखों के सामने रहे और उसकी अच्छी से अच्छी दवा की जा सके अतः बंगाली, बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी में, जो विश्वविद्यालय के बहुत निकट थी, रहने लगे। वहाँ सब प्रकार की सुविधा थी। परन्तु बीमारी आग की तरह बढ़ती ही गयी। कोई दवा काम नहीं कर रही थी।

मैं यह नहीं कहता कि दवा कुछ नहीं करती।
कहता हूँ, बिला हुक्मे-ख़ुदा कुछ नहीं करती॥

—अकबर-इलाहाबादी

एक दिन उनकी हालत बहुत बिगड़ गयी। अब-तब लग गया। ज्वर बहुत तेज चढ़ आया। आँखें बाहर निकली पड़ती थीं, पर प्राण नहीं निकल रहे थे। लोगों ने जाकर खबर दी और कहा, 'महाराज रमाकान्तजी इस समय घोर कष्ट में हैं। अब कुछ रह नहीं गया, केवल प्राण नहीं निकल रहे हैं। वे आपके आज्ञाकारी पुत्र हैं। बिना आपकी आज्ञा के प्राण नहीं छोड़ेंगे। आप उनका कष्ट से उद्धार जल्दी कीजिए'। मालवीयजी तुरन्त मोटर पर आये और कमर झुकाये, लट्ठी टेकते रमा के सामने जाकर खड़े हो गये। कुछ क्षण उन्हें देखते रहे और फिर आँखों में आँसू भरकर बोले, "बेटा! तुम्हें बड़ा कष्ट है, अब तुम जाव।" रमा की आँखें जो अब तक क्लेश के कारण निकली पड़ती थीं वे फरवरी सन् '४३ में सदा के लिये बन्द हो गयीं।

उस दिन से ११ महीने पूर्व उनकी माता सौभाग्यवती कुन्दन देवी ने भी मालवीयजी की आज्ञा लेकर अपने प्राण छोड़े थे।

रमाकान्त जी को देखने मैं काशी गया था। यह सब व्यापार मैंने अपनी आँखों से देखा। रमा की मृत्यु के बाद कुछ लोग मालवीयजी को मोटर में बिठाकर उनके भवन में ले गये। मैं उनके साथ मोटर में बैठ गया था। रास्ते में वे मुझसे एक शब्द नहीं बोले, और न मैं कुछ बोला। बोलने ही को क्या था! केवल धैर्य रखकर विधि के विधान को नत-मस्तक होना था।

मोटर से उतरकर मालवीय जी जैसे-तैसे अपने कमरे में बिना किसी से कुछ बोले चले गये और कमरे को भीतर से बंद कर लिया। कमरे के भीतर क्या हुआ कौन जान सकता है।

जो आदमी पै गुज़रती है यास में हरदम।
सिवा ख़ुदा के किसी को ख़बर नहीं होती॥

—अमीर

हम लोग बाहर के कमरे में बहुत धीरे-धीरे फुस-फुस बात कर रहे थे। ऐसा लगता था जैसे मालवीयजी के कमरे के दरवाजे पर कोई देव पुरुष, अपने मुँह के सामने अँगुली रखे खड़ा हो और हम लोगों से कह रहा हो—'चुप।'

सभी लोग जीवन की असारता पर क्षुब्ध थे।

मरनेवाला, मरते दम एक बात आखिर कह गया।
हमको देखो, तुमको अपनी जिन्दगी पर नाज़ है।

दिन बीतते देर नहीं लगती। मालवीयजी लुट गये पर संसार अपनी गति से चलता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग एक वर्ष बाद मैं किसी काम से काशी गया। मालवीयजी के दर्शन करने गया। वे अपनी चारपायी पर लेटे थे। मुझे अति निकट बुलाकर मेरे परिवार का कुशल समाचार पूछा। उनकी दहाड़नेवाली आवाज अब बहुत धीमी पड़ गयी थी। सहसा मालवीयजी ने मुझसे बहुत धीरे से कहा—'व्यासजी, कुछ सुनाइये।' मेरे मुँह से निकल पड़ा—

रंज से ख़ूंगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज।
मुशकिलें हम पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गयीं॥

—गालिब

मालवीयजी की आँखों से आँसू बहने लगे। भर्राई हुई आवाज से बोले—'फिर कहिये।' मैंने उनका आदेश पालन तो किया पर मुझे बड़ा पछतावा हुआ कि यह शेर पढ़ा ही क्यों। उनके आँसू मेरे हृदय में तीर के समान चुभे।

इन आँसुओं की हकीकत को कौन समझेगा?
कि इनमें मौत नहीं, ज़िन्दगी का मातम है॥

इस भीषण दुर्घटना के बावजूद वे अपने कर्तव्यों से विरत नहीं हुए और अपना शरीर घसीटकर काम करते रहे। नोआखाली के नृशंस अत्याचारों से उनकी आत्मा हिल उठी और वे विह्वल हो गये। अपना एक लम्बा वक्तव्य तैयार किया जिसमें उन्हें कई दिन कड़ी मेहनत करनी पड़ी।

मालवीयजी का देहावसान

इसके तीन चार दिन बाद वे संध्या समय आठ मील दूर शिवपुर गोशाला के उत्सव में गये।

कौन सा झोका बुझा देगा, किसे मालूम है?
ज़िन्दगी एक शमा रोशन है हवा के सामने॥

—विस्मिल-इलाहाबादी

उत्सव से रात्रि को देर में लौटे और ठण्ड लग गयी। उन्हें क्या मालूम था कि यही हवा का आखिरी झोका है। दो एक दिन कुछ ख्याल न किया। दशा बिगड़ती गयी।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि

माघ—शिशुपाल-वध

(जब विधि प्रतिकूल हो जाता है तो सारे साधन विफल हो जाते हैं। सूर्य ही को देखो, यद्यपि संध्या के समय उसे उसके सहस्र कर (श्लेष—किरण)—हाथ उसे उठाये रहते हैं पर डूबने से उसे नहीं बचा सकते) अन्त में १२ नवम्बर १९४६ को, ८५ वर्ष की आयु में, भारत का सूर्य अस्त हो गया।

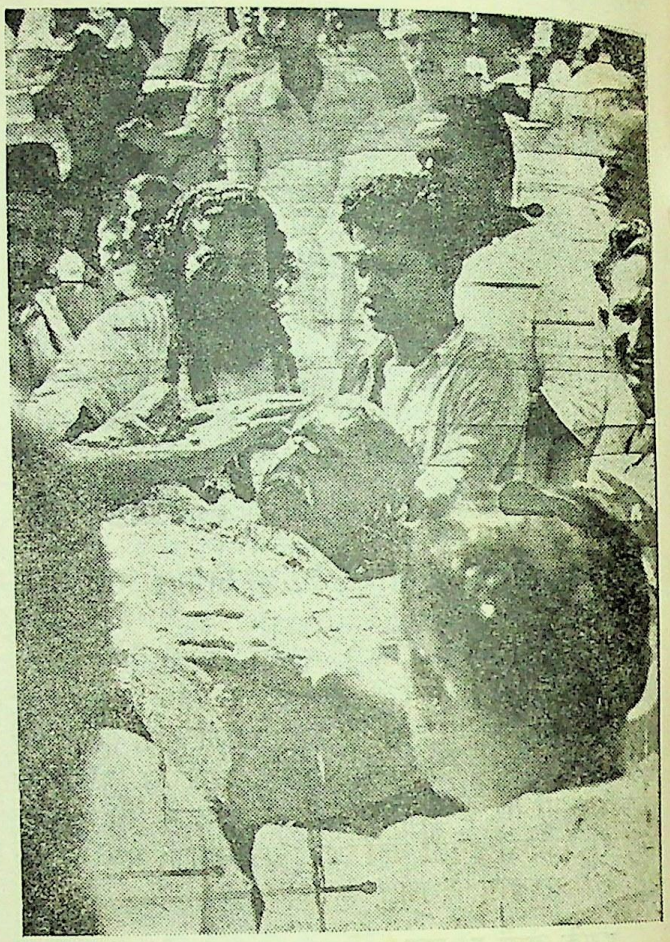

मालवीयजी का शव

मालवीयजी के अन्तिम दर्शन करने के लिए भीड़ टूटी पड़ रही थी। दर्शकों का वारापार न था। बाहर बरामदे में जहाँ शव रखा था वहाँ एक कोने में शव पर मैं आँख गड़ाये निस्तब्ध खड़ा, उनके दर्शन के अमृत को पीते नहीं अघाता था। मेरे अश्रु बिना निकले आँखों में सूख गये थे। लेकिन

शक न कर मेरी खुश्क आँखों पर।
यूँ भी आँसू बहाये जाते हैं॥

मालवीयजी की अरथी का जो जुलूस श्मशानघाट गया था, उसका कोई वर्णन न करूँगा। इतना कहना पर्याप्त होगा कि काशी ने इसके पूर्व इतना बड़ा जुलूस न देखा होगा।

जब शव चिता पर रखा गया तो सहसा मेरे मुँह से निकल पड़ा—

अयि निर्दय दैव! किं कृतं। दिगिदं तेन्तक दुर्विचेष्टितम्।
प्रसभं कुलिशाभिपातनं। हृदयेस्माकमनागसात्मनाम्।
भगवत्पदसेविनां कुलं। सुतरामस्ति कृपार्हमेव ते।
किमुताकरुणत्वमीदृशं। विहितं तर्हि विगर्हितं विधेः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्व वतास्य किलास्य चेतना
क्व च सा वाक्पटुता क्व भा क्व धीः।
क्व नु चाननचारुता गता
भुवि शेतेद्य विनिष्क्रियं वपुः।

(हे निर्दय दैव! तुमने यह क्या किया! हे यम! तेरी इस दुश्चेष्टा को धिक्कार है कि तूने सहसा हमारे हृदय पर वज्रपात किया। यह भगवद्भक्त परिवार तो तुम्हारी कृपा का पात्र है। यह तूने कैसे उसके साथ अकरुण और गर्हित व्यवहार किया। (देखो) इनकी चेतन शक्ति कहाँ चली गयी? वह वाक्पटुता अब कहाँ रही? वह तेजस्विता, वह बुद्धि कहाँ विलीन हो गयी? वह मुख का सौंदर्य कहाँ लुप्त हो गया। आज यह शरीर पृथ्वी पर पड़ा सो रहा है।)

तब और अब

दिन पर दिन बीतते चले गये। मालवीयजी अब स्मृतिमात्रावशेष रह गये।

जानेवाला कभी नहीं आता।
जानेवाले की याद आती है।

जैसे वीणा के तार टूटने पर झंकार आती है।
"Then came a change as all things human change."

(तब परिवर्तन आया जैसे सभी सांसारिक चीजें परिवर्तनशील होती हैं)।

मालवीयजी के देहावसान के पहिले लोगों में फुस-फुस बात होने लगी कि मालवीयजी को काशी की परिधि के भीतर ले जाया जाय; क्योंकि नगवा, जहाँ विश्व-विद्यालय है, शास्त्र के अनुसार, काशी की परिधि के बाहर है, और वहाँ मरनेवालों को मोक्ष नहीं होता। मालवीयजी को इस बातचीत का किसी तरह पता चल गया। उन्होंने बाबू ज्योतिभूषण गुप्त को बुलवाया। गुप्तजी, स्वर्गीय राजा मोतीचन्द्र के उत्तराधिकारी हैं और आजकल विश्वविद्यालय के अवैतनिक कोषाध्यक्ष हैं। मालवीयजी उन्हें अपने पुत्र के समान मानते थे और यज्ञोपवीत में उन्होंने स्वयं उनको मंत्र-दीक्षा दी थी। उनसे मालवीयजी ने कहा—"देखो ज्योति! मुझे ये लोग काशी न ले जाने पावें। मैं अभी मोक्ष नहीं चाहता। मेरे काम अधूरे पड़े हैं। मुझे विश्व-विद्यालय और देश की सेवा करनी है। बोलो, वचन देते हो कि तुम मेरे इस आदेश का पालन करोगे'। ज्योति-भूषणजी हक्का-बक्का हो गये और वचन दे दिया। तब मालवीयजी को शान्ति मिली।

मालवीयजी के अन्तिम समय की एक घटना और स्मरणीय है। सेठ जुगुलकिशोर बिड़ला उन्हें देखने गये थे। उनसे उन्होंने कहा, "मरने का कोई भय नहीं है परन्तु मन्दिर के बनने की चिन्ता मुझे सता रही है।" इस पर बिड़लाजी तुरन्त बोल उठे—"इसका पूरा भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। अब आप इसकी चिन्ता छोड़ दें।" बिड़ला जी के आश्वासन से मालवीय जी को जो शान्ति मिली वह उनकी आकृति ही प्रदर्शित कर रही थी। शब्दों से वह व्यक्त नहीं हो सकती।

इसी प्रकार मालवीयजी के देहावसान के बाद विश्व-विद्यालय का वातावरण और परिवार का सा संगठन क्रमशः शिथिल ही होता गया! याद रहे कि यह मैं मालवीयजी की कसौटी पर कसकर कह रहा हूँ। सन् १९५१ में मैं वहाँ एकजेकेटिव आफिसर के पद पर नियुक्त हुआ और साढ़े छः वर्ष उस पद पर रहा। इस बीच में मैंने देखा कि—

यह हालत हो गई है एक साकी के न होने से।
कि ख़ुम के ख़ुम भरे हैं मय से और मैखाना ख़ाली है।

मैं मालवीयजी की स्मृति को हृदय में जुगोकर अपने काम में पिल गया। यद्यपि कर्तव्यों के पालन करने में मैं पूज्य मालवीयजी के उपदेशों का सदा ध्यान रखता था फिर भी दिमाग में लाट साहबी तो थी ही। इसका एक संस्मरण कहकर इस लेखमाला को समाप्त करूँगा।

विश्व-विद्यालय की इस विस्तृत भूमि पर पहिले किसान लोग रहते थे और उनके खेत थे। वह भूमि जब विद्यालय के लिए ली गयी तो वे सब उजड़ गये। मालवीय-जी को भला यह कैसे सह्य हो सकता था। उन्होंने विश्व-विद्यालय से संलग्न दो बड़ी जमीनें खरीद लीं और उनमें उन सब उजड़े किसानों को बसा दिया और वे पूर्ववत् अपना काम करने लगे। लगान भी उनके ऊपर बहुत कम लगाया। उन दोनों गाँवों के नाम—एक का अपने गुरु देव पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य की स्मृति में आदित्य-नगर और दूसरे का अपने परम मित्र, पण्डित सुन्दरलाल दवे की स्मृति में सुन्दरपुर रख दिया। उनसे लगान वसूल करना मेरे विभाग का काम था। मैंने देखा कि पिछले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६ वर्ष से किसी से लगान वसूल ही नहीं किया गया। यह अवश्य है कि उनमें बहुत से बड़े ग़रीब थे, पर ऐसे भी तो थे जो दे सकते थे। मैंने ताव में आकर यह निश्चय किया कि मैं पन्द्रह दिन के अन्दर वसूल करूँगा। मैंने सबों को एक हफ्ते की रजिस्टरी नोटिस बेदखली की दे दी। वे लोग समझे कि यह बँदरभपकी है। दसवें दिन एक बड़ी मोटर पर दस तगड़े लठबन्दों के साथ सुन्दरपुर पहुँच गया। पहिले से जिलादार को उन लोगों को इकट्ठा करने के लिए भेज दिया। मैंने उन लोगों से कहा—"देखो! आज यह मैं निश्चय करके आया हूँ कि या तो आज मैं सब बकाया वसूल करूँगा या तुम्हारे घर का सामान बाहर निकलवाकर तुम्हें बेदखल कर दूँगा। इसके करने में आज चाहे लाश गिर जाय।" कहीं मालवीय जी वहाँपर होते तो यदि मेरा कान पकड़कर विश्वविद्यालय से न निकाल देते तो सुन्दरपुर से चले जाने के लिए अवश्य कहते।

दो घंटों के अन्दर मैंने वसूलयाबी कर ली। जितने गरीब थे सबको माफ कर दिया और माफी का पुर्जा तत्काल उन्हें दे दिया। इसकी सनसनी आदित्यनगर में फैल गयी। दूसरे दिन वहाँ गया और इसी प्रकार वहाँके बकाये की वसूलयाबी कर ली।

प्रो-वाइस चांसेलर, प्रोफेसर नारलिकर यह सुनकर चकित हो गये और उनपर मेरी कार्य-कुशलता का सिक्का जम गया।

तीन-चार दिन बाद मेरे विभाग का एक चपरासी एक अत्यन्त गरीब पासिन को लेकर आया। उसके साथ उसकी विधवा बहू और तीन-चार फटे-हाल, दुबले-दुबले बच्चे थे। ये विश्वविद्यालय के अन्यत्र स्थान पर आठ आना महीने के किरायेदार थे। इस पासिन के जिम्मे २२) रु० बकाया था। अक्षयवर सिंह ने कहा—"हुजूर, इसकी बहू के गले की हँसुली गिरों रखवाकर १६) रु० तो मैंने खजाने में जमा करा दिया है। अब ६) रु० के लिये क्या हुक्म होता है?" अक्षयवर सिंह पर गुस्सा आया और मन में आया कि कह दूँ कि हँसुली तो उतर गयी, अब गरदन भी उतरवा लो। मेरे हृदय में दबी हुई मालवीयजी की स्मृति ने करवट ली और मेरी आँखों में आँसू आ गये। बोला—"अक्षयवर सिंह! तुम्हें इस गरीब बहू के गले से हँसुली उतरवाते लज्जा नहीं आयी। तुम्हारे बहू बेटी नहीं हैं क्या? अभी जाव और उस आदमी को हँसुली के साथ हाजिर करो।" मैं अपने दफ्तर से उठकर प्रो-वाइस चांसेलर के कमरे में गया। साथ में इन गरीबों को लेता गया। प्रो-वाइस चांसेलर से मैंने कहा—"प्रोफेसर नारलिकर! मैं इस समय बड़ा दुखी हूँ। हमारे इन यमदूतों ने इस गरीब पासिन की हँसुली उतरवा ली और उसे गिरो रखकर १६) बकाया वसूल कर लिया। अब ६) रु० बाकी रह गया है। कृपया गरीबी के कारण इसे माफ कर दीजिये।" उन्होंने तुरन्त माफ कर दिया। मैं कुछ हिचकते हुए फिर बोला—"यदि मैं आपसे यह सिफारिश करूँ कि १६) रु० जो खजाने में जमा हो गया है वह इसे वापस करें तो 'आडिट' इस पर आपत्ति करेगा। थोड़ा ठमककर मैंने कहा अच्छा, इसे मैं दूँगा।"

इस पर प्रो० नारलिकर मुसकिराकर बोले—"Let us share it half and half" (व्यासजी! हम लोग इसे आधा-आधा वहन करें।) मैं तुरन्त बोल उठा—Prof. Narlikar I am prepared to share my sins with you, not my good deeds" (प्रो० नारलिकर! मैं आपके साथ अपने पापों का बटवारा करने के लिए प्रस्तुत हूँ, पुण्यों का नहीं।) प्रो० नारलिकर मुसकिराये। कमरे के बाहर वह आदमी हँसुली लिये खड़ा था। मैंने जेब से १६) रु० निकालकर उस आदमी को दे दिया और हँसुली लेकर नारलिकर साहब के सामने ही उस गरीब पासिन की बहू के गले में पहिनवा दी। वे लोग असीसते चले गये।

ऐसी कितनी ही घटनायें आये दिन हुआ करती थीं। परन्तु जब-जब मैं सहायता करने में अपने को बेबस पाता था तो मुझे प्रो० त्रिगणायत की बात याद आती थी—"उस समय की तुलना में आज रोना आता है।"

परन्तु लाचारी थी। किससे कहें और कौन सुनता है।

काबा-नशीं मिले तो कहें उससे दर्देदिल।
काब में ईंट, चूने से, पत्थर से क्या कहें॥

समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन के बीच—

साड़ी ने धोखा दिया

"महिला-विद्यापीठ में मेरी पत्नी पढ़ती थी। फरवरी १९३८ में स्कूल का वार्षिकोत्सव हो रहा था। मेरे पास भी उसमें शामिल होने के लिए निमन्त्रण आया था। मैं गया। हाल में एक ओर महिलाओं और दूसरी ओर पुरुषों के लिए बैठने का प्रबन्ध था। बीच में आने-जाने का रास्ता था। उत्सव प्रारम्भ हो गया, हम सब कुर्सियों तथा बेंचों पर बैठे थे। सबसे पहले मूक दृश्य दिखाया गया, प्रार्थना तथा नृत्य इत्यादि हुआ। जब उत्सव समाप्त हो रहा था, मैंने सोचा, पत्नी को भी साथ ही घर लेता चलूँ। स्कूल में कई दिनों की छुट्टी रहेगी, उत्सव में प्रतिदिन मेरे साथ चली आया करेगी।

मेरी बगल में स्त्रियों की लाइन में एक लड़की बैठी थी, जो मेरी पत्नी के साथ पढ़ती थी और उसीकी तरह खादी की साड़ी पहने हुए थी। मैं उसीको अपनी पत्नी समझ बैठा। उसकी धोती का किनारा और रंग मेरी पत्नी की धोती से मिलता था और उसका मुँह भी आगे की ओर था। मैं मुँह नहीं देख सका, केवल कपड़े से ही उसे इशारे से कहा—सुनो, गुरुजी से छुट्टी ले लो, और मेरे साथ घर चली चलो। कल फिर जलसे में साथ ही हम दोनों चले आयेंगे। उससे मैंने दो-तीन बार कहा, लेकिन उसने ध्यान न दिया। जब फिर मैंने एक कागज का टुकड़ा मोड़कर उसके ऊपर पीछे से फेंका, और कहा तो उसने मेरी ओर मुड़कर देखा, और कहा, "आप मुझसे मजाक करते हैं? मैं आपको जानती हूँ। आप सुशीला के पति हैं। मैं रजिस्ट्रार साहब से कह दूँगी!" उस लड़की की मीठी फटकार से मेरा सिर झुक गया। मैंने उस लड़की से क्षमा माँगी, और कहा कि बहन, मुझे इस साड़ी ने धोखा दिया, क्योंकि मेरी पत्नी भी इसी तरह की साड़ी पहने थी। लड़की चली गयी। मुझे अपनी भूल पर दुःख तो था ही साथ ही कई दिनों तक शंका भी बनी रही कि कहीं रजिस्ट्रार साहब से कह न दे। बाद में मेरी पत्नी से उस लड़की ने शिकायत की थी। मैंने पत्नी को अपनी भूल की सारी कहानी बतायी, तो वह भी हँसने लगी।"

—प्रकाशचन्द्र यादव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर-गृहस्थी

कढ़ाई

लीजिए नन्हें बच्चों के कपड़ों पर इनको काढ़िए। फ्रॉक के ऊपरी भाग (योक) पर, रौम्पर पर, बुशर्ट की जेब पर, उनके रूमालों पर, पलंगपोश व पर्दों पर, ये नमूने सभी पर अच्छे लगेंगे। इनको ऐसे का ऐसा ही ट्रेस करके केवल धारियाँ मात्र रंगीन डोरे से भर दीजिए—उसमें भी सुन्दर लगेगा। व रंगीन पौपलीन के बचे टुकड़ों पर नमूना उतारकर काज की कढ़ाई (button-hole stitch) द्वारा काढ़कर सुन्दर 'ऐपलिकावर्क' बनाइए।

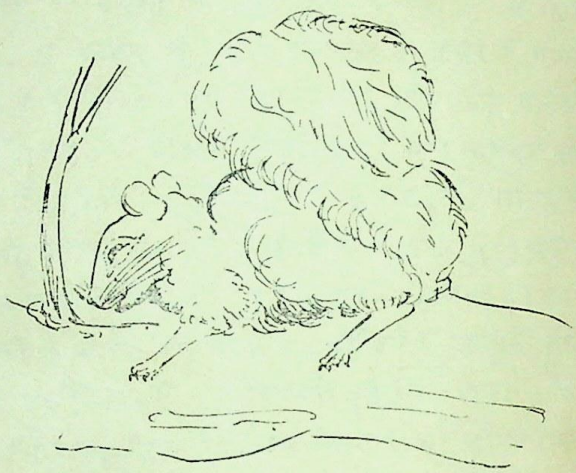

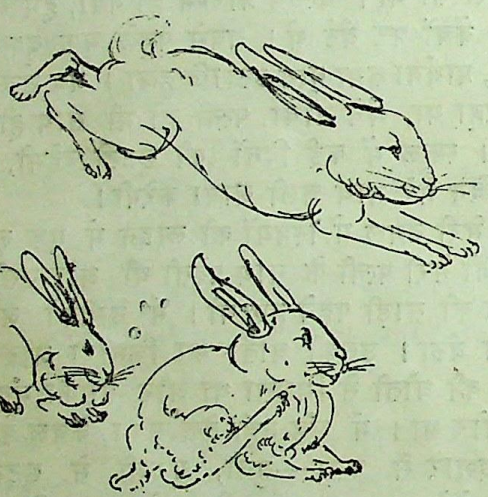

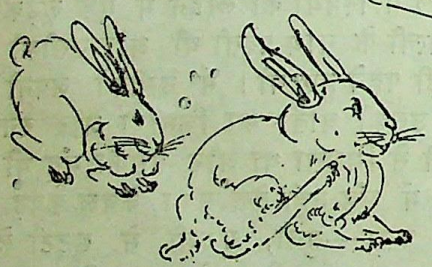

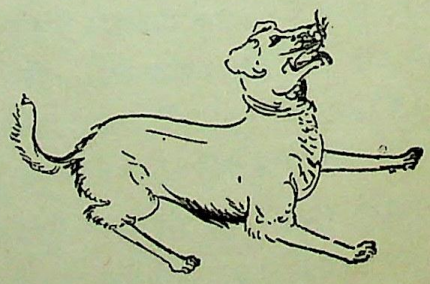

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना

श्री मनमोहन गुप्त

धत् ! तू मेरी दुलहिन कैसी ?

(गतांक से आगे)

अभी दादी, मेरे बनाये हुए चित्र को भली भाँति देख भी नहीं पाई थीं कि उधर से पिताजी के आने की आवाज आयी। पिता की आहट पाते ही दादी मुँह बिगाड़ती हुई बोलीं--जल्दी जल्दी मिटा ....मैं उधर ही तेरे बाबू को रोक लेती हूँ।

कहते-कहते वह पीछे मुड़कर आगे बढ़ गयीं। पिता के हाथ में तेल का पीपा था। दादी ने कहा--कौन सा मार्का तेल लाया है ?

छोटा सा उत्तर था--वही जो हर बार लाता हूँ।

--सो तो मैं जानती थी। कहना भूल गयी कि पंडितजी के घरवाले कहते थे कि उनके यहाँ कोई ऐसा तेल आया है कि उसमें धूआँ बहुत कम होता है। कोई बात नहीं। अब लाया है तो सीधे ले चल उधर भण्डार की ओर। मुझे पूरा पीपा उठाने में दर्द होता है।

दर्द की बात सुनकर पिताजी चौंक उठे। पूछा--काहे का दर्द ?

पिताजी क्या जानें कि इसी समय, अभी-अभी, दादी के शरीर में काहे का दर्द, सामयिक रूप से पैदा हो गया। उन्होंने प्रश्न तो कर दिया। दादी ने उस बात को भी टालते हुए कहा--अरे ! वह कुछ नहीं। अभी उसे भण्डार में अपनी जगह पर रख दे, फिर देखूँगी।

कहते-कहते दादी ने पिताजी को भण्डार की ओर फेर दिया। तब तक मैं भी जल्दी-जल्दी उसी मासिक पत्र के फटे हुए पन्ने से, जिसमें गदहे का चित्र बना था, उस चित्र को पोंछकर पढ़ने के कमरे की ओर पहुँचा।

पढ़नेवाला कमरा भण्डारवाले कमरे के पास ही था। भण्डार से निकलकर ही पिताजी ने मुझे देखा। झट उनके मुँह से निकल गया--लगता है कि अभी तक घर का सब काम खतम नहीं हुआ। तभी तो अब तक इस कमरे में डटे हैं।

बिना किसी हिचकिचाहट के दादी बोलीं--मैं जानती हूँ कि तू लड़कों को दम लेने की फुर्सत न देगा। अभी से कौन जज-कलक्टर हुआ जा रहा है जो घर के काम इतने दे देता है कि बेचारे को फुर्सत नहीं मिलती है।

तब तक पिताजी अपने कमरे की ओर बढ़ गये थे। दादी की इस प्रकार की शिकायत, यानी उनके पोतों से बहुत पढ़ाई का काम लिया जाता है, सुनते-सुनते पिताजी के कान पक गये थे। अब वह इधर, यानी दादी की ऐसी बातों पर ध्यान भी नहीं देते थे। दादी बकती ही रहती थीं।

कपड़े आदि बदल कर, मुँह-हाथ धोकर, नाश्ता वगैरह करके जब पिताजी पढ़ाई के कमरे में आये तो देखा कि मैं तन्मय होकर अँगरेजी लिख रहा हूँ।

वे आकर सामने बैठने ही वाले थे कि उनकी निगाह मेरे चेहरे पर पड़ी। कहा--देखूँ ?

चारो आँखें एक होते ही हाथ बढ़ाकर उन्होंने मेरा एक कान पकड़ लिया। चिल्ला कर बोले--माई ! ओ माई ! देख जा अपने गुणधर पोते को ! तू इसी के पीछे हरदम बड़बड़ाया करती है न ?

बात मेरी समझ में नहीं आई। मेरे चेहरेपर मेरे गुणों की कौन-सी बात लिखी है ? इतने में दादी भी आ गयीं। वह देखते ही चिल्ला पड़ीं--अरे राम राम ! न मालूम बचवा के मुँह में यह सब कहाँ से लग गया।...कब से बैठे-बैठे पढ़ लिख तो रहा था।

पिताजी व्यंगात्मक स्वर में बोल पड़े--अरे इस शैतान को तुम क्या जानो ! तुम सोच रही होगी कि कमरे में बैठे पढ़ लिख रहा है, और उधर ये हजरत किसी करामात में लगे होंगे। हाथो-हाथ इसका प्रमाण ले लो। लाओ तो जरा शीशा ! इन्हें स्वयं ही देख लेने दो कि ये किसकी जली हुई हाँडी फोड़ने गये थे। लाओ शीशा जरा !

स्वयं ही लपककर उधर से शीशा उठा लाये। मेरे सामने धरते ही मैं जान गया कि पिताजी की बातों में तथ्य है। कोई बिल्ली जब किसी की जली हुई हाँडी से कुछ चुराकर खाने जाती है, उस समय उसके चेहरे पर जैसे हाँड़ी का कारिख लग जाता है, वैसा ही मेरे चेहरे पर लगा हुआ था। झट शीशे की ओर से मुँह फेरकर नल की ओर भगा हुआ गया। खूब भली भाँति मुँह धोकर, अच्छी तरह गमछे से पोंछकर जब कमरे में आने लगा तो आगे बढ़कर दादी ने देखा। कहा--तू बड़ा शैतान है। इसी प्रकार से मार खाने का रास्ता तैयार करता है।

पिताजी के सामने जब आया तो देखा कि अँगरेजी वाली कापी उलटकर देख रहे थे। शायद उन्हें सन्देह था कि अभी तक दिये हुए कामों को भी समाप्त नहीं किया। इसी से वे कापी उठाकर देखने लग गये थे। जब यह समझ लिया कि दिये हुए काम तो हो ही गये हैं, उसके बाद अभी जो लिख रहा था, वह आगे की पढ़ाई (Advance) में से है तो वे बिल्कुल शान्त पड़ गये। कमरे में दाखिल होते ही बोले--बहुत अच्छा। ऐसा ही होना चाहिये। हमेशा आगे की पढ़ाई की तैयारी करनी चाहिये।

आगे बातों को न बढ़ाकर उस दिन का सबक पढ़ाने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग गये। पढ़ाई समाप्त होने के बाद मैं कूदते फाँदते दादी के पास पहुँचा। मैंने दादी के बिना दाँत के मुँह को उठा लिया। उनके "ना' 'ना'! करते ही करते मैंने कसकर चूम लिया। कहा--तू ··· बहुत ··· बहुत ··· बहुत ही रानी बेटी है ··· तेरी शादी मैं किसी ऐसे राजपुत्र से करा दूंगा कि कभी फिर तुझे कोई काम नहीं करना पड़ेगा। बस बैठे बैठे हुकुम चलाया करेगी।

--वह राजा बेटा तो तू ही होगा ···

कहते कहते पोपले मुँह से दादी ने भी मुझे चूम लिया। मैंने कान के पास मुँह ले जाकर कहा--देख दादी! मैं एक विशेष काम से जा रहा हूँ ·· कोई जान न पावे ···

कहकर पिता के कमरे की ओर देखा। दादी ने कहा--बाप के इधर आने से पहले ही आ जाना। नहीं तो मैं नहीं जानती। देर करेगा तो तू जाने।

--ठीक है।

× × ×

सीधे बड़ी जीजी के घर पहुँचा। अन्दर के दरवाजे के पास ही बड़ी जीजी के पिताजी बैठते थे। उस समय भी वे वहीं बैठे हुक्का पी रहे थे। मुझे देखकर हमेशा वे अपने चेहरे को गम्भीर बना लिया करते थे किन्तु आज देखते ही बड़े प्रेम से बोले--आओ बेटा! भगवान तुम्हारा भला करे।

अभी आगे और भी कुछ कहते परन्तु बड़ी जीजी न मालूम कहाँ से आकर मेरा हाथ पकड़कर खींचती हुई बाहर की ओर ले चलीं। घोषणा के रूप में कहती हुई चलीं--पढ़ना न लिखना! खाली इधर से उधर! अभी अभी मेरे साथ हो आया। कहा था कि अब जाकर पढ़ लिख। पर फिर भाग आया। पढ़ेगा लिखेगा नहीं तो क्या ऐसे ही जिन्दगी जायगी?

मैं कहने ही वाला था कि पढ़ाई-वढ़ाई सब कर आया, किन्तु बड़ी जीजी ने मेरे मुँह पर हाथ धर दिया। तब तक हम लोग घर के बाहर आ गये थे। फिस-फिसाकर बड़ी जीजी बोली--चुप रह! उधर चल मैं बताती हूँ। उधर का अर्थ मेरे घर के दरवाजे के अन्दर। ऊपर पिताजी भैया को पढ़ाने में लगे थे। दादी आँख बंद किये बगल में टिमटिमाती कुप्पी जलाये रसोई के सामने माला जपने में संलग्न थीं। बड़ी जीजी समझाने लगीं--देख, मैं तुझसे मिलना ही चाहती थी कि तू इतने में मेरे घर पहुँच गया। बात असल में यह है कि मुझे रोज जाना पड़ेगा। कहाँ तक छिपाऊंगी। कम से कम घरवालों से तो बात छिपेगी नहीं; इसी से मैंने कह दिया है कि तेरे साथ पढ़नेवाला चन्द्रिका नाम का कोई लड़का है ···

बीच में ही मैं कह उठा--धत्! वह क्यों होंगे? उनका छोटा भाई ····

--हाँ, हाँ, सब मैं समझ गयी। मगर मैंने जो कहा वह तो सुन ले, और मेरा, बड़ा अच्छा भैया! तू भी सबसे यही कहना। सुन तो ले धीरज धरकर ···

विज्ञ जैसा मैं गम्भीर हो गया, कारण बड़ी जीजी से सबक लेना था। वह कहती गयीं--चन्द्रिका नाम का छोटा सा ही, तेरे ही उम्र का लड़का है। उसके घर पर तेरा बहुत आना जाना है और वह तेरे ही साथ पढ़ता भी है। उसके दो और भाई उससे कुछ बड़े हैं, और उनसे भी बड़ी-बड़ी चार बहनें हैं। उनके माँ है और बाप। बस खाली एक टेम खाना पकाना है। दिन ही दिन जाना और दिन ही दिन आना। उनके घरवाले उनके यहाँ तेरे अलावा किसी का आना-जाना पसन्द नहीं करते हैं। यहाँ तक की औरतों का भी नहीं। तनख्वाह भी अच्छी देने को कहा है। बस, इतना ही कहना है। इससे एक बात भी फालतू कोई पूछे तो तू कहना कि मैं नहीं जानता हूँ। कहेगा न? मेरे हाथ का सोना छूकर कसम खा!

कहते कहते सोने की चूड़ी, जो पतली, बहुत पतली-सी तथा संख्या में एक ही थी, मेरी ओर बढ़ा दी। मैंने चूड़ी को छूकर कहा--क्या कहा था? चार भाई दो बहनें?

--धत् बेवकूफ। दो भाई और चार बहनें। नाम चन्द्रिका। चन्द्रिका को लेकर तीन भाई। भाई छोटे छोटे और बहनें बड़ीं। बाप माँ मिलाकर नौ प्राणी। एक टेम खाना पकाना।

मैंने कहा--बस बस। सब समझ गया। जैसा कहा वैसा ही बताऊँगा।

तब बड़ी जीजी ने कहा--आज और मेरे यहाँ न जाना। कल आना। चल तेरी दादी के यहाँ थोड़ा सा बैठ आऊँ।

दादी की आदत; आदत क्यों कहूँ, नियम ही कहूँ। दादी का नियम ऐसा था कि माला जपते समय चाहे कोई आ जाय अथवा चाहे जो भी जाय; जब तक माला का एक चक्र न फेर लेती थीं तब तक किसी से बोलती न थीं। अनेक समय बोलने के लिए मैंने नाना प्रकार के स्वाँग रचे मगर वह टस से मस न होती थीं। एक बार तो ऐसी शैतानी की कि लत्ते की बत्ती बनाकर पीछे से चुपके-चुपके आकर, आँख मूँदकर, माला जपनेवाली दादी की नाक में सुर-सुराया। बार-बार माला सिर में लगाकर कई बार छींकीं परन्तु मुँह से बोली नहीं। पूरी माला फेरकर ही मुझे दौड़ाया। पूरी माला का अर्थ पूरे दानों का एक चक्कर। शायद १०८ दाने माला में थे।

बड़ी जीजी के साथ भी वैसा ही हुआ। पूरा चक्कर फिराकर पूछा--कैसी हो?

जरा मुँह कान के पास लाकर बड़ी जीजी बोलीं--आज से मैंने भी नौकरी कर ली। यही छोटे के साथ एक लड़का पढ़ता है जिसका नाम चन्द्रिका है। उसी के घर में खाना पकाने की नौकरी कर ली। घर में चार लड़कियाँ हैं, तीन लड़के और पति-पत्नी। यानी चन्द्रिका के तीन भाई और चार बहनें हैं, एवं माता तथा पिता। पिता किसी सरकारी दफ्तर में काम करते हैं और मोटी तनख्वाह भी पाते हैं। मुझे भी एक टेम खाना पकाने का आठ रुपये देंगे।

सुनकर दादी ने कहा--तब तो बहुत अच्छा है। बस आदमी अच्छे हों तो ···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच में ही बड़ी जीजी बोल पड़ीं--आदमी का क्या कहना! घर भर बहुत अच्छा है। लड़कियाँ तो मान लो सोना हैं; और मलकिन का क्या पूछना! वह तो हीरा हैं। बस चूल्हे के पास नाम के लिए मुझे बैठना पड़ता है। बाकी सब काम तो वे लोग हाथों हाथ करा लेती हैं।

समालोचक सा चेहरा बनाती हुई दादी बोलीं--तुम्हारी उम्र को देखते हुए जरा भले आदमी के यहाँ काम मिले तो ही करना चाहिये। नहीं तो कौन जानें, कब कौन उँगली उठावे?

--हाँ, हाँ, सो सब समझ लिया। फिर रहनेवालों में तो चन्द्रिका के पिता ही हैं। सो उनकी शकल तक मुझे दिखाई नहीं पड़ी। और सुनती हूँ कि रोज दफ्तर से ऐसे समय आते हैं कि मुझसे मुलाकात भी न होगी कभी...

यहीं पर दादी के कान खड़े हो गये जरा। वह बोल पड़ीं--तब कैसी खाना पकानेवाली उन लोगों ने रखी? जब घर का मालिक ही ठंडी रोटी खायगा तो...

थंक का घूंट निगलती हुई बड़ी जीजी ने अपनी बातों को सुधारने की गरज से कहा--कोई चूल्हा बझाकर थोड़े ही आती हूँ? उनके लिये चार रोटी तो मालकिन स्वयं सेंक लेंगी।

सम्मति ज्ञापन करती हुई दादी ने कहा--यही तो मैं भी कहती हूँ। तब तो ठीक है। मगर देखो कै दिन नौकरी चले!

कहकर थोड़ी देर रुककर, तब दादी ने आरम्भ किया--असल में बात यह है कि भगवान् ने रूप की डाली उलटने में तुम लोगों के साथ कोई कमी तो की नहीं। जिस प्रकार की नौकरी तुम लोग करती हो उस प्रकार के कामों के लिए घर की मालकिन लोग भद्दी से भद्दी, प्रौढ़ा या बुढ़िया ढूँढ़ती हैं। बात यह है न कि औरत की जात इस बात से हमेशा होशियार रहती है कि कहीं मेरे आदमी की मुलाकात किसी अच्छी, जवान औरत से न हो। वही मलकिन, जो आज तुमसे खूब निभाती है, वही एक दिन शत्रु बन जाय।

आगे कुछ कहने से पूर्व ही बड़ी जीजी बोल पड़ीं--मगर, तुमतो मुझे बचपने से देख रही हो दादी। जब वैसे-वैसे दिन मेरे अच्छे कट गये तो अब कौन मुझे कुछ कहने की हिम्मत कर सकता है।

विज्ञ के समान सिर को घुमाती हुई दादी ने कहा--ऐसा न कहो बेटी! तब में और अब में प्रवृत्ति भेद हो सकता है मगर खतरा तो है ही। तब, यानी पच्चीस वर्ष के अन्दर की अवस्था लड़कियों की भावुक अवस्था होती है। उसमें आगा पीछा कुछ सोचे बिना ही लड़कियाँ सब कुछ कर सकती हैं। मगर उसके बाद भी सब कुछ कर सकती हैं अवश्य। किन्तु करने के पीछे भविष्य निर्माण की भावना होती है। गरीब की लड़की सोचती है कि धन मिले तो मेरा भविष्य बनेगा, अमीर की लड़की सोचती है कि अच्छा जीवन साथी मिले तो गौरवमय जीवनपूर्ण भविष्य बनेगा।

कहते-कहते कुछ उत्तेजित सी होकर दादी ने कहा--अरे! यह काया जब तक जलकर खाक न बन जाय तब तक आशा, आकांक्षा तथा इच्छाओं का ताँता लगा रहता है। हम उसे अच्छा कहती हैं जो इन्हें दबाकर रख पाती हैं।

इसी समय माला को सिर पर लगाती हुई बोलीं--हममें शक्ति की कमी रहती है इसी से तो जप, तप, पूजा, पाठ आदि हम करती रहती हैं। भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि वे शक्ति दें। भगवान् मिलें चाहे न मिलें, उन्हें निमित्त बनाकर हम जो शक्ति की उपासना करती हैं, मनन करती हैं, संकल्प करती हैं, ध्यान करती हैं; इन सबके अन्दर से ही हमारा काम बन जाता है। इन सब पचड़ों से मुक्ति मिलती है। असली मुक्ति क्या है, इसे न कोई जान पाया और न तो जान ही पावेगा। संकल्प द्वारा, कम से कम, हम इस आशारूपी अथाह समुद्र से कुछ हद तक मुक्ति पाती ही हैं।

इस समय दादी ने आँख मूँदकर ऐसा चेहरा बनाया कि उस टिमटिमाती कुप्पी की रोशनी में भी दादी का चेहरा चमक उठा। मैं खड़ा था। आहिस्ते-आहिस्ते बैठ गया। तब तक दादी ने फिर कहना आरम्भ किया--बेटी! तुम्हारा जीवन हम लोगों के जीवन से बहुत अच्छा है, शरीर पवित्र है, खून में ताकत है। यदि अभी से तुम आकांक्षा तथा आशाओं को वशीभूत करने के हेतु प्रयत्न करोगी तो तुम्हारे लिए, संकल्प करके साधना करना आसान है!

बड़ी जीजी सिहर उठीं। उनकी आँखों के कोने में दो बिन्दु अश्रु के दिखाई पड़े। भरी हुई आवाज से न मालूम क्या मिन-मिनाकर कह गयीं।

बड़ी जीजी ने क्या कहा, मैं ही सुन नहीं पाया तो जरा ऊँचा सुननेवाली दादी क्या सुनतीं? दादी कहती ही गयीं--एक माला खरीद लो। खाना पकाकर जब आओगी तो एक मन से एक ध्यान से जाप किया करो। किसी से दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं। सोचती जना कि मुझमें न कोई आशा है एवं न कोई आकांक्षा, मैं सबसे मुक्त हूँ। राम, शिव, कृष्ण या जिस किसी देव देवी का नाम तुम्हें भावे, उन्हीं का नाम उच्चारण करती रहो। बस तुम्हारा काम बन जायगा। संकल्प करके बैठना कि इतनी बार नाम जाप करके ही उठूंगी। जिससे अभ्यास पड़ जायगा। अभ्यास से फिर प्रकृति बन जायेगी। प्रकृति बनाने का गूढ मंत्र है अभ्यास, एवं जप का महत्त्व है--कलि जप, योग न यज्ञ न ज्ञाना; एक अधार नाम गुण गाना।

आगे और भी न जाने दादी क्या क्या कहतीं किन्तु इसी समय असावधानीवश इतनी जोर से आवाज करके मेरा वायु निःसरण हुआ कि दादी तक ने सुन लिया। मैं पैरों के बल उकड़ू बैठा हुआ था।

झट दादी ने कहा--असभ्य कहीं के! कहती हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थी मार कर बैठा कर। उठ यहाँ से ... हो रही थीं अच्छी अच्छी बातें और यहाँ बैठकर लगा शंख बजाने!

मैं तो मैं, बड़ी जीजी तक हँसने लगीं। तब तक रुका हुआ वायु आवाज करता हुआ फिर निकल पड़ा। दादी ने मुझे ढकेल दिया। मैं लगा जमीन पर लोट लोटकर हँसने। डाँटती हुई दादी ने कहा--इसमें कभी अकल नहीं आयेगी और न तमीज। नववाँ वर्षगाँठ मना लिया पर अभी भी दुधमुँहा बच्चा बना है!

तब तक उधर से पिताजी की आवाज आई--काहे की इतनी हँसी है रे!

झट बड़ी जीजी का आँचल मुँह में दबाकर, मैंने हँसी को ब्रेक लगाने की चेष्टा की। किन्तु ब्रेक लगे तब न! उठकर आँचल दबाते-दबाते ही मैं बाहर के दरवाजे की ओर भगा। फलतः बड़ी जीजी भी खिंची हुई मेरे पीछे-पीछे भागीं। हम दोनों जब बाहर पहुँचे तो दोनों मकानों की बीचवाली जगह पर, गली में, खड़े खड़े, हँसने लगे। उधर से दादी का स्वर सुनाई पड़ा--भैंस के आगे बीन बजावे भैंस खड़ी पगुराय!

मेरी हँसी रुके तो बड़ी जीजी की न रुके, उसका चेहरा लाल हो उठा। बाप रे बाप! अब मर जाऊँगी!

कहकर बैठ गईं।

अभी हम दोनों की हँसी ने अन्तिम दौर समाप्त भी नहीं किया था कि यह लगा कोई हम लोगों के पास आ रहा है। नगरपालिका की बड़ी लालटेन का उजाला वहाँ तक ठिकाने से ही पहुँच जाता था। कम से कम इतना तो पहुँच ही जाता था कि जाने हुए आदमी को पहिचान लें।

आने वाला तब तक और पास आ गया था। कुछ कुछ पहिचान में आते ही मैंने सन्देहात्मक ढंग से कहा--बड़ी जीजी...बाबू चन्द्रशेखर...!

नाम सुनते ही बड़ी जीजी सम्हल कर खड़ी हो गईं। उनके चेहरे पर जैसे एक आतंक का भाव छा गया। वह आहिस्ते से बोलीं--आप...!

--हाँ, रानी, मैं ही हूँ। कब से मैं इधर का चक्कर काट रहा हूँ तुमसे मिलने के लिये...

आगे कुछ कहने से पूर्व ही जरा कड़ककर बड़ी जीजी बोलीं--आप जानते हैं कि यहाँ मेरे घरवाले हरदम आते जाते हैं...फिर भी...आप...?

--सो सब जानता हूँ रानी। मगर मेरा दिल अब मेरे वश से बाहर है। जब से तुम्हें देखा, तब से मेरे वश से बाहर हो रहा है मेरा दिल!

चन्द्रशेखर बाबू कहते ही कहते और आगे बढ़ आये एवं एक स्वाँस में बोल गये--यह देखो मैं तैयारी करके आया हूँ। जनम भर हम दोनों किसी एक स्थान में रहेंगे। चलो; हम चले चलें, भाग चलें।

जरा रुखाई से बड़ी जीजी ने कहा--देखूँ? क्या लाये हैं?

बड़ी जीजी की ओर एक पीतल की छोटी सी पेटी बढ़ाते हुए बाबू चन्द्रशेखर ने कहा--दस हजार रुपये नकद हैं और अनेक जड़ाऊ गहने...

बड़ी जीजी ने हाथ में पेटी ली ही थी कि उधर से, यानी घर के अन्दर से बड़ी जीजी की माँ की आवाज आयी --बड़की! किससे बातें कर रही है रे?

झट बड़ी जीजी ने चन्द्रशेखर बाबू को इशारा किया। वे तेज कदम आगे बढ़ गये। इतने में बड़ी जीजी मुझे पेटी थमाकर अपने घर की ओर बढ़ती हुई बोलीं--यह छोटे, ऐसा असभ्य है कि कुछ कहने की बात नहीं! दादी धरम करम की बात सुना रही थीं और यह लगा...ही...ही...

ही...ही...ही...ही करती हुई बड़ी जीजी अपने घर में घुस गईं। मैं बेवकूफ सा कुछ देर पेटी हाथ में लिये खड़ा रहा फिर मन ही मन कहा--धत् तेरे के!

कहते ही कहते अपने घर में चला गया। सबकी आँखों को बचाकर उस पेटी को पैखाने की बीच वाली दीवार की ऊपर की ईंटों के अन्दर छिपा दिया।

× × ×

चन्द्रशेखर बाबू ने और क्या क्या कहा था, उन सब का अर्थ क्या होता था, इसे समझने की चेष्टा भी की होती तो ठीक से समझ पाता चाहे न पाता, किन्तु इतना तो समझ ही लिया था कि वह किसी उद्देश्य से बड़ी जीजी को लेकर भागना चाहते हैं। एवं बक्से में जो कुछ रुपये आदि हैं वे सब उसी के लिए हैं।

मन ही मन कहा--अच्छा बच्चू! वे रुपये हाथ आवें तब न! देखूँगा, तुम कैसे भागते हो? आज तो उन्हें जैसे तैसे रख छोड़ा कल जाकर मन्दिर के धूर ऊपर वाले चूड़े के पास जो गड्ढा बना हुआ है उसमें रखकर ईंटे से ऐसे ढाँक दूँगा कि तुम्हारी दादी भी न खोज पावेगी। जरा और रातभर की बात है! काक पंछी जगने से पहले ही सब कर डालूँगा।

उधर से मन घूमा तो टूट पड़ा बड़ी जीजी पर। वह भी कितनी पाजी है कि हल्ला मचाकर चन्द्रशेखर बाबू को पकड़वा नहीं दिया। आज बड़ी जीजी को पकड़ या भगा ले जाते, कल मुहल्ले के लड़कों को पकड़ पकड़कर ले जाने लगें! अच्छा! बच्चू चन्द्रशेखर के बच्चे! कल जरा इधर दिखाई तो पड़ो! अगर तुम्हारा सर ढेले से न फोड़ दूँ तो कहना!

फिर बड़ी जीजी पर क्रोध होने लगा।

इसी प्रकार से जब तक सो नहीं गया तब तक दोनों को कोसता रहा। रात को कई बार चिल्ला भी पड़ा था--पकड़ो! पकड़ो! भगाये लिए जा रहा है! मारो! मारो!

दादी ने कई बार थपथपा कर जगा दिया और मैं फिर सो गया।

इसी प्रकार से रात कट गई। घर भर से पहले ही जग गया एवं पेटी को जैसा सोचा था वहीं ठीक से रख भी आया। रक्खा भी, और फिर आकर दादी के बगल में ऐसे सोया कि जैसे रात भर वहीं सोता रहा। सचमुच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े पड़े सुबह की ठंडी हवा में नींद भी आ गई थी। दादी उठ गई थीं मगर आज मुझे जगाया न था। शायद उनके मन में यही रहा होगा कि रात में कई बार जग गया है इसे आज सोने ही दो। गर्मी की छुट्टी थी इसीसे पिताजी भी सबेरे उठाने पर इतना जोर नहीं देते थे। हाँ, भैया जरूर जगा लेते थे एवं साथ में कसरत कराते थे। आज शायद दादी ने उन्हें भी मना कर दिया था।

जब आँखें खुलीं तो देखा कि बड़ी जीजी मेरे बगल में बैठे-बैठे मक्खियों को हाँक रही थीं। शायद यह भी एक कारण हो कि जरूरत से ज्यादा देर तक मैं सोता ही रहा।

आँखें खोलकर बड़ी जीजी को देखते ही मैंने आँखें बन्द कर लीं। कारण में शायद रात वाला गुस्सा था। भला जगकर सोनेवाले को कौन जगा सकता है। फलतः बड़ी जीजी तब तक मक्खी हँकाती ही रही जब तक पिताजी गंगा स्नान करके घर वापस नहीं हुए।

वे आकर मुझे पड़े रहते देखकर बड़ी जीजी से कहा--देखो तो कपार पर हाथ रखकर कुछ गरम तो नहीं लग रहा है? इतनी देर तक तो वह कभी नहीं सोता है।

बड़ी जीजी ने वैसा ही किया। मेरा शरीर गरम हो तब न।

शरीर की गर्मी का हाल सुनकर पिताजी ने कहा--तो जगा दो उसे। निपटे उपटे।

कहते ही कहते उन्होंने स्वयं ही पुकारा। मैं ऐसा नाटक रचते हुए उठा जैसे कि गहरी नींद से उठ रहा होऊँ। पिताजी ने प्रश्न किया--क्या हो गया आज? कल बहुत शैतानी की होगी न···?

उधर, रसोई के दरवाजे के पास बैठे मोटे चश्मे के काँच के अन्दर से दाल बीनती हुई दादी ने कहा--अरे बाप रे! रात भर युद्ध करता रहा। धरे रे! मारे रे! पकड़े रे! भगाया रे·····वही जानें किसको कौन पकड़ा और भगाया···और वही जाने कि किसको मारता रहा!

दादी की बातों को सुनकर बड़ी जीजी का चेहरा ऐसा बन गया कि जैसे सब बातें उन्हीं को केन्द्र करके कही गयी हों। वह कुछ झेंपी-सी कुछ डरी-सी आँखों के इशारे से मुझसे पूछना चाहा। चारों आँखें एक होते ही मैं अन्य ओर मुँह फेर लेता था।

कुछ समय तक ऐसा ही चलता रहा। तब तक पूजा के कमरे से पिताजी का शिवलिंग आदि को नहलाते समय के स्तवपाठ की आवाज आने लगी। दादी भी रसोई के अन्दर चली गयी थीं। आहिस्ते से बड़ी जीजी ने पूछा--रातवाली बात किसी से कहा तो नहीं?

तुनुककर मैं उठ खड़ा हुआ एवं दोनों तकियों को दो बगल में दबाकर चला सोने वाले कमरे में। पीछे-पीछे बड़ी जीजी भी गईं। तकिया रखा ही था कि बड़ी जीजी फिसफिसाकर बोली--भइया तेरी कसम खाती हूँ.. भगवान् की कसम खाती हूँ...मन चाहे तो बीस जूते लगा ले..मगर रात वाली बात किसी से कहना नहीं...

उसकी आँखों से टपाटप आँसू पड़ने लगे।

अब भी मेरा गुस्सा नहीं उतरा था। मैं बगल काटकर चला जा रहा था कि सचमुच बड़ी जीजी ने मेरे पाँव पकड़ लिए। मैं घुमाकर दनादन घूँसे, लात, मूका बड़ी जीजी पर बरसाने लगा। वह असहाय-सी मेरा सब सहने लगीं।

इतने में पिताजी की आवाज आयी--फिर उठते न उठते धबाधबी शुरू हो गयी...

मैं सन्न मार गया। बड़ी जीजी ने साधारण स्वर में कहा--कहती हूँ कि मूस जो बिस्तर के नीचे छिप गये उन्हें पकड़ना आसान नहीं.. ..लगा बिस्तर पीटने...ऊपर से बिस्तर पीटने से मूस तो और सुरक्षित स्थान में चले जाएँगे...

कहकर बड़ी जीजी, सर हिलाती हुई, मुस्कराकर, फिसफिसाती हुई कुछ कहने ही जा रही थी कि मैंने भी मुस्कराकर उसकी पीठ ठोक दिया। पिताजी उधर मन ही मन कहने लगे--नः अब देखता हूँ कि एक बिल्ली लानी ही पड़ेगी।

झट मैंने चुटकी बजाई, एवं पाँव ऊँचे तक उठाकर दाँतों से निचला ओंठ पकड़कर जमीन पर बिना आवाज के दे मारा। फिसफिसाकर आगे कहा--खबरदार जो फिर कभी चन्द्रशेखर हरामजादे के साथ देखा तो····

आगे कुछ कहने से पूर्व ही बड़ी जीजी ने कान पकड़ लिया, नाक मला, एवं नकारात्मक भाव से सर हिलाया। मैंने भी आश्वासन देने के उद्देश्य से कहा--तब किसी से कुछ न कहूँगा।

अब बड़ी जीजी ने इशारे से बकस की बात पूछी। मैंने फिसफिसाकर कहा--कुएँ में डाल···

सुनकर पहले बड़ी जीजी का चेहरा फक पड़ गया फिर बोली--उसमें जो रुपये·····गहने थे···

झट मैंने वृद्धांगुष्ठ दिखाते हुए कहा--ठेंगे से! अच्छा हुआ·····न साले के पास रुपये होंगे और न वह तुम्हें भगा पाएगा।

बड़ी जीजी गम्भीर हो गयीं। ऐसा लगा कि लड़खड़ा कर गिर पड़ेगी। सम्हलती हुई बोलीं--जब सब कुछ दफना दिया तो इतना और करना कि मेरे घर में आकर एक बार कह जाना कि जिस चन्द्रशेखर के यहाँ मैं कल खाना पकाने गयी थी उसके यहाँ की पुरानी खाना पकाने वाली आ गयी है····और मेरी जाने की जरूरत नहीं· ऐसा चन्द्रशेखर की माँ ने कहला दिया है।

× × ×

यद्यपि, सब बातों को, गहरे पानी पैठकर, समझने की बुद्धि अभी विकसित नहीं हुई थी, तब भी मेरी शैतानी का प्रभाव कभी-कभी इतना प्रभावात्मक होता था कि आगेवाला यही समझता था कि इसके पीछे बड़ा गम्भीर उद्देश्य है।

दूसरे दिन से ही अब, मैंने बाबू चन्द्रशेखर को इस गली से गुजरने न देने का बीड़ा उठा लेने का निश्चय किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा मेरी तीव्र निगाह इसी पर रहती कि कहीं बाबू चन्द्रशेखर इधर से जा तो नहीं रहे हैं? जुट जाने का स्वभाव तो था ही। तो समझिए कि जुट ही जाना था। यहाँ तक कि सबक भी ऐसी जगह बैठकर पढ़ूंगा सोच लिया था कि जिससे दूर तक गल्ली दिखायी पड़े।

अधिक रास्ता देखना न पड़ा। अभी नौ भी नहीं बजा था कि बाबू चन्द्रशेखर दिखाई पड़े। उधर से जरा तेज कदम सर नीचा किये हुए आये किन्तु बड़ी जीजी के घर के सामने उनकी चाल बिलकुल चींटी की चाल हो गई। जंगले के सामने तो प्रायः रुक ही गये। पल्ले बन्द थे देखकर आगे बढ़ गये।

जब नजर से बाहर हो गये तो मैंने बाबू की घड़ी देखी। ओ हो, अभी प्रायः एक घण्टा है। अच्छा बच्चू बाबू को निकल जाने दो तो फिर तुम्हारी खबर लूँगा।

अब की बारह बजे तक वे दिखाई नहीं पड़े। यानी जिस समय कि गर्मियों के दिनों में लोग खा-पीकर अपने दरवाजे जंगले सब बन्द करके सोने या आराम करने लगते हैं।

उधर से बाबू चन्द्रशेखर को आते हुए देखकर ही म एक नम्बरी ईंटा लेकर ऊपर की छत पर पहुँचा। छत ही छत बड़ी जीजी की छत पर पहुँचा। मन्शा यह थी कि ज्यों ही बड़ी जीजी के जंगले के सामने पहुँचेंगे त्यों ही उनके सर पर गिरा दूंगा। कारण शायद यही था कि मेरी समझ से वहीं उनकी चाल धीमी अवश्य होगी।

जैसा सोचना वैसा ही काम। बस उनका पहुँचना था कि ऊपर से ईंटा आ गिरा। उनका सौभाग्य और मेरा दुर्भाग्य। वार खाली गया।

सर पर पैर धर कर भागते हुए जाकर सोने के कमरे में पड़ गया। उधर गली में बमचक-सी मच गई। बमचक का आरम्भ करनेवाली बड़ी जीजी की बहनें ही थीं।

ईंटा पड़ते ही बन्द जंगले के पीछे आराम की गरज से पड़ी हुई बहनों में से किसी ने काहे की आवाज हुई देखने के लिए जंगला खोला। टूक टूक होकर ईंटा इधर-उधर फैल गया था। गली के जिस पत्थर पर ईंटा पड़ा था वहाँ दाग पड़ गया था। इधर-उधर के घरवाले भी निकल आये। मगर बाबू चन्द्रशेखर का कहीं पता नहीं! मेरे घर से भी दादी के सामने बैठकर बर्तन मलनेवाली महरी राख वगैरह हाथ में लगाये वहाँ पहुँची थी। मैं लेटे-लेटे सुन रहा था कि वह हरामजादा चन्द्रशेखर का बच्चा जरूर मर गया होगा।

मगर कुछ समय बाद महरी आकर जो सन्देश दादी को दे रही थी उसे ज्यों-ज्यों कान खड़ा किये मैं सुनने लगा त्यों-त्यों मेरे पैर के नीचे की धरती सरकने लगी। वह कह रही थी—अरी दैया री दैया! अब तो गली से निकलना खतरे से खाली नहीं। लोग छत के छज्जों पर ईंटा रखते हैं··कुछ सोचते न समझते··और बानर ने गिरा दिया।···ई कहो कि ऊ समय कौनो वहाँ था नहीं···नाहीं तो कचत?

चलो बानर पर से बात टल गयी और कोई मरा भी नहीं। इन दोनों बातों ने गल्ली में जाने का मेरा रास्ता खोल दिया। मैं झट नीचे उतरा। पिसाने के लिए गेहूँ बीनती हुई दादी ने कहा—काहे? नीचे क्यों उतर आया? जा, सो जा।

बाहर के दरवाजे की ओर बढ़ता हुआ मुझे देखकर फिर दादी ने कहा—जा कहाँ रहा है? बन्दर ने गल्ली में ईंटा गिरा दिया है··· उसमें देखने का क्या है?

—वही तो देखने जा रहा हूँ···

कहते ही कहते दो छलाँग में बाहर। तब तक इधर-उधर के घरों की औरतें चर्च्चा चला रही थीं। दो-चार "आँखों देखा" साक्षी भी पैदा हो गयी थीं। कोई कह रही थी कि खा-पीकर सोने जा ही रही थी कि देखा कि वह ईंटा गिरानेवाला बन्दर हम लोगों की छत पर से उस छत पर कूदा, तो कोई कह रही थी कि ईंटे के पास ही बन्दर को बैठे मैंने देखा।

उससे भी जोरदार दिव्यचक्षु वाली कह रही थी कि वह कब से ईंटे को पकड़े बैठा था मगर फेंका तब ही जब सामने वाले दूर के पेड़ पर अन्य बन्दर घुरका।

मतलब यह कि यह तय हो चुका था कि बन्दर ने ही ईंटे को गिराया एवं ऐसे समय पर उत्तेजित होकर गिराया जिस समय कि कोई आदमी गल्ली में नहीं था।

मैं ईंटे के टुकड़ों को आह भरी श्वास से देख रहा था। मन ही मन सोच रहा था कि हाय रे मेरे लक्ष्य·· तू व्यर्थ गया!

व्यर्थ गया तो गया, मगर बाबू चन्द्रशेखर जरा भी ऊह किये बिना रफू कैसे हो गये? इस बात को किसी प्रकार से सुलझा नहीं पा रहा था। यदि उनकी जगह मैं होता तो मुहल्ले भर को एकत्रित करता। जिनकी छत पर से ईंटा गिरा था उन्हें लाल पीली आँखें दिखाता·· और भी न जाने क्या क्या करता। मगर वे न जाने क्यों चुपके से खिसक गये?

अन्य समय होता तो नाना प्रकार की टिप्पणी मैं किये बिना नहीं रहता किन्तु आज की व्यर्थता की वेदना मुझे रह रहकर कष्ट दे रही थी। मन ही मन समालोचना कर रहा था कि आखिर मुझसे कहाँ गलती हो गयी? अकल काम ही नहीं दे रही थी तो कहता क्या!

× × ×

पाँच छः दिन बाद की बात है। मैं गया था बड़े मैदान में। यह बड़ा मैदान बाबू चन्द्रशेखर की कोठी से आगे पड़ता था। इन दिनों वहाँ पर बच्चों का बहुत आवागमन रहता था कारण एक परदेशी जानवरों का व्यापारी ठहरा हुआ था। उसके पास हिरन, भालू, चीता और अन्य देशों के बन्दरों के बच्चे आदि अनेक प्रकार के जानवर तथा चिड़ियाँ थीं। बच्चे तो बच्चे, बच्चों के बाप, माँ, दादा, दीदी, भाई, भौजाई भी कम न आती थीं।

मैं भी उस समय एक चीते के बच्चे की पूँछ पकड़ने की ताक में खड़ा था कि जिस समय किसी ने मेरे कन्धे पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ रक्खा। मैंने समझा कि हो न हो उस व्यापारी का ही हाथ मेरे कन्धे पर पड़ा। मेरे मुँह से निकल गया--मैं कोई पूँछ थोड़े ही पकड़ता · · · यों ही · · · ·

तब तक मेरी निगाह बाबू चन्द्रशेखर पर पड़ी। काटो तो खून नहीं। हलक सूखने लगा। उन्होंने आहिस्ते से कहा--उधर चलो · · · ·

बात में कुछ ऐसा गाम्भीर्य था कि मेरे मुँह से कोई प्रश्न नहीं निकला। वे मेरा कन्धा पकड़े ही हुए थे। भागने वाली अकल भी जाती रही।

मैं वैसे ही उधर गया। तब वे बोले--तुम्हारे पड़ोस वाली वह कहाँ है?

थूक निगलते हुए मैंने पूछा--बड़ी जीजी?

छोटा सा परिप्रश्न था--हाँ, वही।

--क्यों, अपने घर पर हैं · · · · आज भी तो थीं।

तब कुछ क्षण तक वे चुप रहे। फिर कहा--उन्हें बुला ला सकते हो?

--क्यों नहीं। अभी आप कहें तो अभी बुला लाऊँ।

अब उनकी आवाज कुछ साधारण स्तर पर आयी। वे बोले--जाओ बुला लाओ। मैं उधर उस मकान के बरामदे में रुका हूँ। · · · और यदि न आवे तो क्यों नहीं आती है पूछ आना!

सरपट चला। बड़ी जीजी के सामने ही जाकर रुका। वहाँ उनकी अन्य बहनें भी थीं इसीसे आँखें बड़ी-बड़ी करके इशारा किया उधर चलने के लिए।

उधर जाने के बाद मैंने फिसफिसाकर कहा--बड़े मैदान के पास वाले पहाड़ियों के मकान के बरामदे में बाबू चन्द्रशेखर खड़े हैं · · · तुम्हें बुलाया है।

बड़ी जीजी, गोल-गोल आँखें करके; जैसे बहुत नाराज हैं; ऐसे कहा--तू क्यों उनसे मिलने गया था?

--अरे वाह! मैं तो जानवर देखने गया था · · · वह तो स्वयं मिले · · ·

--अच्छा जा। अपने घर जा। अब उधर न जाना कभी...

कहते ही कहते वह स्वयं ही मुझे घर पहुँचाने के उद्देश्य से मेरे साथ हो लीं। मैं चुपचाप उनके साथ घर चला आया।

दिन डूबने तक वह मेरी निगरानी में दादी के पास डटी ही रही। गईं तब जब पिताजी आकर मुझे पढ़ाने बैठ गये।

× × ×

दस-बारह दिन बाद की बात। मैं गया था मुहल्ले के एक अहीर के लड़के के साथ गंगाजी के किनारे। उद्देश्य था कि उन लोगों की नाव पर सैर करूँगा। उद्देश्य सिद्ध करके नाव से उतरा ही होगा कि सामने ही बाबू चन्द्रशेखर दिखाई पड़े। उन्हें देखते ही साथ के लड़के ने कहा--हुजूर पैलगी।

मेरा सर चकरा गया। बाबू चन्द्रशेखर ने आगे बढ़कर मेरा हाथ पकड़ा और उस लड़के से कहा--तू जा. . . .यह अभी आयेगा. . . . .

वह चला गया। मेरा हृदय धुकधुकाने लगा। इतने में ही बाबू चन्द्रशेखर ने पूछा--उस दिन तू उसे लाया नहीं. . . .?

--मैं कहाँ से लाता? वह तो आईं ही नहीं और ऊपर से मुझे भी आने नहीं दिया।

सुनकर बाबू चन्द्रशेखर ने भौंहों को सिकोड़ लिया। फिर पूछा--मतलब?

--मैं क्या जानूं. . . .?

असहाय जैसा मैंने उनकी ओर देखा। बड़ी देर तक वे कुछ सोचते रहे फिर सर डोलाते हुए बोले--हूँ. . . समझ गया. . . .यह बात है।

फिर कुछ सोचने लगे। कुछ देर और सोचने के बाद दृढ़ता के साथ किन्तु खूब आहिस्ते-आहिस्ते कहा--कह देना अपनी उस कुत्ती हरामजादी से कि मुझे धोखा नहीं दे सकती है. . . मैं घर भर को बँधवा दूँगा. . . . बोटी बोटी कुत्ते से नुचवा लूँगा. . . . समझा. . . . ?

--अच्छा। जरूर कह दूँगा. . . .आप निश्चिन्त रहें. . . यह कहकर, किसी प्रकार से पिण्ड छुड़ाकर आगे बढ़ा ही हूँगा कि उन्होंने कहा--सुनो!

मैं पीछे मुड़ा। उन्होंने कहा--सीधे सीधे वह बकस वापस कर दें नहीं तो ठीक न होगा. . . . और कह देना कि यदि तीन दिन के अन्दर वापस. . .

बीच में ही मैं बोल पड़ा--वह बकस बड़ी जीजी थोड़े ही ले गयीं. . . और न उनके पास ही है। वह तो कुएँ में है। मैंने डाल दिया है. . . .

अवाक् होकर वे बोले--कुएँ में! तुमने डाला?

--जी हाँ। मैंने तो उसी रात को डाल दिया। अपनी माँ की आहट पाकर वह अन्दर चली गयीं. . .आप आगे बढ़ गये. . . .। बड़ी जीजी ने चलते समय बक्स मुझे पकड़ा दिया था। बड़ी देर तक खड़ा रहा। न आप आये और न वह आयीं तो मैं उस बकस को छाती पर लादे लादे कहाँ फिरता? कुएँ में डालकर घर चला गया था. . . . .

प्रश्नसूचक चेहरे से उन्होंने पूछा--अभी भी कुएँ में ही है?

--मैं क्या जानूं? होगा शायद. . . .

कौन सा कुआँ? भली भाँति जानकर उस समय उन्होंने पीछा छोड़ा। चलते समय कह दिया कि आज मुझसे तुम्हारी मुलाकात हुई थी इसका तिलमात्र उल्लेख बड़ी जीजी से न करना।

× × ×

मगर मैं आते ही सीधे बड़ी जीजी के घर पहुँचा। सविस्तार, कुछ नमक-मिर्च मिलाकर, बड़ी जीजी से एक एक बात कह दिया। सुनकर वह बोलीं--कुएँ में डाला बुरा किया, मगर कहकर और बुरा हुआ।

मैं तुनुक उठा--नहीं तो क्या तुमको मार खिलाता क्या?

बड़ी जीजी कुछ उत्तेजित हो उठीं। बोलीं--हाँ, रे! मार, घर के दरवाजे में पड़ा है न? यह कोई नवाबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज थोड़े ही है....इस समय अँगरेजी राज है। शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं।

अचानक मेरी जुबान से निकल गया--क्या बताऊँ... उसी दिन ढेर हो जाता...जरा सा निशाना चूक गया... अब तक राम नाम सत्य हो जाता...

--एँ! तू ने उनको मारा था क्या....?

अपनी गलती को सुधारते हुए मैंने कहा--मैं क्यों मारता..अपने करम से मरता...

इस बात में सम्मति ज्ञापन करती हुई बड़ी जीजी ने कहा--सो तो है ही। जो जैसा करम करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है।

इधर-उधर की अन्य बातों में उस दिन की बातें डूब गयीं। दूसरे दिन एक अन्य बात खड़ी हो गयी। खूब सबेरे, पाँच-सात कुआँ साफ करनेवाले अपने घर के पासवाले कुएँ में जुटे। मुहल्लेवालों के पूछने पर, कुआँ साफ करने वालों के साथ के आदमी ने कहा--कल मेरे लड़के की तावीज गिर पड़ी। परसों उसे कुत्ते ने काट लिया था तो वह सत्रह कुओं में झाँकने की गरज से इस कुएँ में भी झाँकने आया था; उसी समय हाथ की तावीज गिर पड़ी।

कोई बात न थी। प्रायः ऐसा किसी न किसी कुएँ के संग लगा ही रहता था। मुहल्ले के और लड़कों की तरह मैं भी एक आध बार वहाँ का चक्कर लगा आया। मुझे जरा भी सन्देह न हुआ था कि यह काम बाबू चन्द्रशेखर की ओर से ही चल रहा है।

बात फैलते फैलते घर के अन्दर की औरतों में भी फैल गयी। बड़ी जीजी के कान में बात पड़ी तो वे परेशान-सी मेरे पास आयीं। मुझे अलग बुलाकर कहा--सुनती हूँ कि उसी कुएँ की...

बेपरवाही से मैंने बीच में ही कह दिया--हो रही होगी...हम लोगों को उससे क्या?

बड़ी जीजी की सुप्त वासना ने जैसे जोर किया। वह गिड़गिड़ाकर बोल पड़ीं--कागज न हो गल गये होते.. मगर जेवर तो किसी न किसी दिन काम आते....

कहती-कहती एक लम्बी साँस ली। मैंने प्रश्न किया--किसके....?

एक और लम्बी साँस लेती हुई वह बोल पड़ीं--किसी न किसी के...

मैं कुछ समझ न पाया कि वह क्या कहना चाहती हैं। मुँह बिचकाते हुए कहा--छिः मारो गोली ताबीज को... आने दो काम में....

बेपरवाह सा आगे बढ़ने ही वाला था कि बड़ी जीजी ने रोका। जरा और एकान्त में ले जाकर कहा--तू एक चिट्ठी अभी-अभी बाबू चन्द्रशेखर के पास ले जा सकता है?

सर से पैर तक जैसे मेरे बदन में आग लग गई। गुस्से में मैंने कहा--अभी तक तू उस हरामजादे के पीछे पड़ी है? भूल गई कि वह तुझे भगाना चाहता था?...

मेरी हालत देखकर आगे कुछ कहने की उनकी हिम्मत न हुई। गिड़गिड़ाती हुई बोलीं--दूसरे का धन अन्य के हाथ लगे...यह कोई न्याय थोड़े ही है। और जड़ाऊ गहने....न मालूम कितने लाख के...

मेरा गुस्सा और बढ़ गया। बढ़ता इस कारण से जाता था कि बाबू चन्द्रशेखर के साथ बड़ी जीजी हमदर्दी दिखा रही थीं। मैं मुँह फुलाकर एकदम बाहर चला गया। पीछे पीछे बड़ी जीजी भी दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गयीं। वहाँ से कुआँ साफ साफ दिखायी पड़ता था।

बिलकुल तलछट तक साफ हो गया फिर भी साफ करने वाले रुके नहीं। मुहल्ले का कोई न कोई आता और खोदनेवालों से कुछ न कुछ पूछता। अन्त तक, बड़ी रात बीते उन लोगों ने काम बन्द किया।

× × ×

क्रमशः

मुखरित न होते

श्री रामसेवक 'दीपक'

बात क्यों ऐसी न जाने हो गयी है
प्राण पतझर हो चले, मुखरित न होते

रूठ मेरी कल्पना मुझसे गई है
गीत का हर बोल मुश्किल हो गया है
सरगमें भी कर रहीं मुझसे किनारा
गुनगुनाना गीत मुश्किल हो गया है

क्यों न जाने दृश्य वे धूमिल हुए हैं
भावना के प्रेम से परिचित न होते!

जिन भरोसों पर तरी मैं छोड़ बैठा
वे सहारे इस समय मुँह मोड़ बैठे
क्या कहूँ क्यों हो गए अपने पराए
दुर्दिनों की बात रिश्ते तोड़ बैठे

पोत क्यों ऐसे न जाने हो गये हैं
डूबता हूँ और वे विचलित न होते!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध—डॉ० कुमारी उमा मिश्र, प्रकाशक, दिल्ली पुस्तक सदन, बँगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली। सजिल्द। मूल्य, साढ़े बारह रुपये।

यह पुस्तक वास्तव में शोध का वह अधिनिबंध है जो कुमारी मिश्र ने दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत किया था। सामान्य शोध विषयों से उसका विषय अनोखा है। इस शोध के लिए काव्य का ही सम्यक् ज्ञान आवश्यक नहीं, प्रत्युत संगीत में अच्छी पैठ भी अनिवार्य है। हमने नहीं सुना कि हमारे विश्वविद्यालयों में कहीं हिंदी का कोई प्राध्यापक संगीतज्ञ भी है। अतएव ऐसे विषयों में शोध करनेवाले विद्यार्थियों को मार्ग-दर्शन प्राप्त करने की जो कठिनाई हो सकती है, उसका अनुमान किया जा सकता है। शायद यही कारण है कि अन्य प्रकाशित अधिनिबंधों में जिस प्रकार किसी न किसी हिंदी विद्वान् के विवेचनात्मक आमुख रहते हैं, वैसा कोई आमुख इस ग्रंथ में नहीं है। वास्तव में यह अध्ययन रीतिकाल तक ही सीमित है। उस युग में राजदरबारों में कवियों और संगीतज्ञों का रहना अनिवार्य था। साथ रहने के कारण एक दूसरे से प्रभावित होते थे, और दोनों को दोनों ही विषयों का ज्ञान हो जाता था। यही कारण है कि उस युग में गेयकाव्य इतनी प्रचुर मात्रा में लिखा गया, और अच्छे कवियों के गीतकलाकारों ने स्वीकार कर प्रचारित किये, इसी कारण अनेक उन कवियों ने भी, जो सूरदास आदि के समान स्वयं गायक नहीं थे, शास्त्रीय रागों के गीत लिखे। इस अध्ययन में रीतिकाल में जो फलात्मक प्रवृत्तियाँ समान रूप से काव्य और संगीत में दिखलायी पड़ती हैं, उनका विवेचन सुंदरता से किया गया है। किंतु इस पुस्तक में काव्य की अपेक्षा संगीत पर विशेष बल है। उत्तर भारत के संगीत का इसमें जो इतिहास दिया गया है वह बहुत परिश्रम से लिखा गया है और उसके विकास का तथा उसकी विभिन्न धाराओं का बहुत उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक और सुंदर विवरण दिया गया है। अनावश्यक विश्लेषण नहीं किया गया। इससे पाठकों का जी नहीं ऊबता। 'रीतिकालीन छंद और अलंकार-योजना का संगीत से सम्बन्ध' नामक खंड में हिंदी छंदों की गेयता पर जो मत प्रकट किया गया है, वह बहुतों को नया मालम पड़ेगा। किंतु कुमारी मिश्र ने अपने संगीत-ज्ञान के बल पर उसकी अच्छी तरह पुष्टि कर दी है। उदाहरण के लिए सवैया किस प्रकार ध्रुवपद में गाया जाता था, या गाया जा सकता है—इसका उन्होंने सटीक उदाहरण दिया है। इस अछूते विषय पर ऐसा मौलिक ग्रंथ लिखने के लिए कुमारी मिश्र बधाई की पात्र हैं। यह पुस्तक साहित्य-प्रेमियों और साहित्य के विद्यार्थियों के ही नहीं, संगीत-प्रेमियों और संगीत के विद्यार्थियों के लिए भी समान रूप से उपयोगी है।

भारतीय कुश्ती कला—सम्पादक श्री रतन पाटोदी। प्रकाशक, भारतीय कुश्ती प्रकाशन, सर हुकुमचंद मार्ग, रंगमहल, इंदौर। अनेक चित्र। मूल्य, पाँच रुपये।

कुश्ती या मल्लविद्या भारत की पुरानी राष्ट्रीय कला है, किंतु पाश्चात्य व्यायाम और खेलों के राजकीय संरक्षण और उनके आधिपत्य के कारण देशी व्यायाम और कुश्ती अब समाप्त-प्राय हैं। जनता की रुचि अब भी कुश्ती में है। उसका प्रमाण दंगलों की लोकप्रियता है। किंतु राजा-महाराजाओं के नष्ट होने से उसके संरक्षक नहीं रहे। सरकार देशी चीजों को बेकार समझती है—वह चाहे आयुर्वेद हो, चाहे कुश्ती हो। उसके युवक-मंगल दलों में पश्चिमी खेलों और व्यायामों का प्रबंध होता है और उनके लिए धन भी व्यय किया जाता है, किंतु देशी व्यायामों और कुश्ती के लिए उनमें स्थान नहीं। अतएव यदि जनता स्वयं इधर ध्यान न देगी तो यह कला कालान्तर में नष्ट हो जायगी। जिन क्षेत्रों में देशी राज्य थे, वहाँ पहलवानी की परम्परा को लोग अभी नहीं भूले। इंदौर के कई महाराजा पहलवानों के बड़े संरक्षक थे और उनके कारण वहाँ पहलवानी की परम्परा बन गयी है जो अभी तक एकदम नष्ट नहीं हुई। उसी इंदौर के एक उत्साही युवक ने यह पुस्तक तैयार की है। पुस्तक-प्रणयन का अनुभव न होने के कारण इस पुस्तक का क्रम जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। किंतु पुस्तक का विषय और उसकी विषयवस्तु उपयोगी है। इसमें कुश्ती के कुछ प्रमुख दाव-पेचों को चित्रों द्वारा समझाया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ नये और पुराने प्रसिद्ध पहलवानों के संक्षिप्त जीवन-परिचय भी दिये गये हैं। इनमें कई चरित्र बड़े रोचक और ज्ञानवर्द्धक हैं। मध्य प्रदेश—विशेषकर इंदौर और उज्जैन में कुश्ती कला और अखाड़ों की वर्त्तमान स्थिति पर अच्छी जानकारी दी गयी है। पुस्तक अपने ढंग की उपयोगी है और प्रथम प्रयास होने के कारण प्रशंसनीय है। हम आशा करते हैं कि यह प्रकाशन-संस्थान एक पुस्तक कुश्ती-कला पर और दूसरी कुश्ती-कला के इतिहास पर भी तैयार करेगा।

मानस की महिलाएँ—श्री रामानन्द शर्मा। प्रकाशक, कन्या कुमारी प्रकाशन ३२ सराय रोड,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुमका (सन्थाल परगना) बिहार। सजिल्द, मूल्य आठ रुपये।

रामायण के चरित्रनायकों पर बँगला में एक अत्यंत सुंदर पुस्तक है जिसका अनुवाद 'रामायणी कथा' के नाम से हिन्दी में हो चुका है। उसमें वाल्मीक की रामायण के मुख्य पात्रों के विश्लेषणात्मक और अत्यन्त सुंदर चरित्र-चित्रण किये गये हैं। हिंदी में भी ऐसे प्रयास हुए हैं, किन्तु रामायण की महिला-पात्राओं का स्वतंत्र अध्ययन अभी तक हमारे देखने में नहीं आया था। पं० रामानन्द शर्मा ने अपने इस ग्रंथ द्वारा उस अभाव की पूर्ति बड़े सुंदर ढंग से कर दी है। इसमें सती, गौरी, सीता, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, अहल्या, तारा, मन्दोदरी और शबरी के चरित्रों पर विद्वत्तापूर्ण और हृदयग्राही निबन्ध हैं। चरित्र-चित्रण तुलसी के मानस के आधार पर किया गया है, किन्तु विद्वान् लेखक ने आवश्यकतानुसार वाल्मीक और कम्बन की रामायणों से बराबर तुलना की है। कुछ आधुनिक लोग तुलसी को नारी-विरोधी मानते हैं। लेखक ने कहा है: "यह इस युग का प्रभाव है कि आज जहाँ-तहाँ से युग-उन्नायकों की वक्र-अनामिका (?तर्जनी) तुलसी की नारी भावना पर उठ रही है। अतएव यह परम आवश्यक है कि तुलसी के 'मानस की मुख्य-मुख्य महिलाओं को सामाजिकता की पार्श्व-भूमि पर रखकर, तुलनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखी-पहचाना जाय, जिससे उनके यथार्थ मूल्यांकन में मदद मिल सके।" किन्तु वास्तव में प्रसंग से अलग करके 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी" आदि दो-चार पंक्तियों को लेकर वे ही लोग तुलसी पर नारी-द्रोह का अभियोग लगाते हैं जिन्होंने रामायण का अध्ययन नहीं किया। ऐसे अनजान लोगों की आलोचना पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। और इस पुस्तक में ऐसा कोई प्रयास भी नहीं किया गया। इसमें उपर्युक्त महिला पात्रों का मानस के अनुसार चित्रण और वाल्मीक और कम्बन के चित्रणों से उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। चरित्र-चित्रण बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से और गहरे अध्ययन के आधार पर किया गया है। इसका प्रमाण पग-पग पर मिलता है। लेखक का दृष्टिकोण उदार है। उसमें भारतीय दृष्टि है। और उसमें सहानुभूति है। इस कारण प्रत्येक चरित्र अत्यंत रोचक ढंग से लिखा गया है। हिंदी में यह अपने ढंग की पहिली पुस्तक है। कहीं-कहीं तो वह रामचरितमानस पर टीका या व्याख्या मालूम होती है। इस पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि यह आधुनिक और प्राचीन रुचि के दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिए समान रूप से रोचक और उपयोगी है। हम इस सुंदर और विचारोत्तेजक अध्ययन का स्वागत करते हैं।

धरती की बेटी—(कहानी संग्रह) सुश्री सोमा वीरा। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६। बड़ा आकार। सजिल्द। मूल्य, साढ़े सात रुपये।

सुश्री सोमा वीरा शौकिया (ऐमेच्योर) कहानी लेखिका हैं। कुछ कहने की प्रेरणा होने पर ही लिखती हैं। इसीलिए इनमें एक नैसर्गिक स्वाभाविकता है। कला की अलंकारिता से ये बोझिल नहीं हैं। कहानी प्रधानतः नारी-जीवन के साधारण अनुभवों, सुख-दुखों, आशा-निराशाओं, उल्लास-विषाद पर आधारित हैं। इसका सबसे बड़ा गुण इनकी रोचकता है। इस संग्रह में ३३ कहानियाँ हैं, जिनमें कई कहानियाँ जैसे, धरती की बेटी, सीमा, बिंदिया, सुभागी आदि बहुत सुंदर हैं। लेखिका का यह पहला प्रकाशन है। हमें आशा है कि अनुभव और अभ्यास के साथ उनकी कला और भी निखरेगी। कहानी-प्रेमियों के लिए यह पुस्तक पठनीय है।

प्रतिनिधि सामूहिक गान—सम्पादक, योगेन्द्रकुमार लल्ला और श्रीकृष्ण। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६। सजिल्द; मूल्य, चार रुपये।

भारत में सामूहिक गान (कोरस) की प्रथा कम है, किंतु अब उसका प्रचलन आरंभ हो रहा है। इस पुस्तक में 'वंदेमातरम्' और 'जन गण मन अधिनायक' के अतिरिक्त ६४ ऐसे हिंदी गान संग्रह किये गये हैं जो सामूहिक रूप से गाये जा सकते हैं। 'सामूहिक गान' का अर्थ, मालूम होता है कि सम्पादकों ने उदारतापूर्वक किया है क्योंकि इसमें कुछ ऐसे गान भी हैं जो वार्त्तालाप के रूप में हैं, जैसे, 'हम सब पुरुष महान् बनेंगे।' हमें संदेह है कि पं० सोहनलाल द्विवेदी के 'किसान' का उपयोग सामूहिक गान के रूप में किया जा सकता है। कई गीत छंदशास्त्र की दृष्टि से दोषपूर्ण हैं। गीतों का स्तर भी एक नहीं है। कुछ बालकों के योग्य हैं, कुछ का रस केवल साहित्यिक प्रौढ़ व्यक्ति ही ले सकते हैं। केवल अति आधुनिक कविताएँ ही ली गयी हैं। नहीं तो श्रीधर पाठक का 'जय जय प्यारा भारत देश' अवश्य सम्मिलित किया जाता।

सप्तसिंधु का एकांकी विशेषांक—प्रकाशक, सप्तसिन्धु, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला। मूल्य, एक रुपया।

'सप्तसिन्धु' पंजाब सरकार का साहित्यिक हिंदी मासिक पत्र है। इसने यह अत्यन्त सुंदर और उपयोगी विशेषांक प्रस्तुत कर प्रशंसनीय कार्य किया है। एकांकी रंगमंच के लिए एक नया विकास है जो इस व्यस्त आधुनिक युग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उपयोगी है। जो संबंध कहानी और उपन्यास में है, वही सम्बंध एकांकी और नाटक में है। इस नयी विद्या के शिल्प, उसके उद्देश्य, उसकी सीमाओं और उसकी समस्याओं का परिचय साहित्य-प्रेमी जनता को देना आवश्यक है। यह अंक बहुत अंशों में सफलतापूर्वक इस उद्देश्य की पूर्ति करता है। इसके ये खंड हैं: ऐतिहासिक पक्ष, सिद्धान्त पक्ष, प्रकार, भारतीय भाषाओं में एकांकी और महान् एकांकीकार। सौभाग्य से 'सप्तसिंधु' को हिंदी के अनेक प्रमुख विद्वानों और नाटककारों का सहयोग मिल गया, जिससे इसमें लेखों का सामान्य स्तर काफी ऊँचा है। केवल भारत ही नहीं, कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य देशों के एकांकी साहित्य का परिचय दिया गया है। एकांकी के सम्बन्ध में इतनी सुंदर, उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक प्रामाणिक सामग्री एकत्र और सुसम्पादितरूप से प्रस्तुत कर देने के लिए 'सप्तसिंधु' हार्दिक बधाई का पात्र है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के लिए बहुत उपयोगी है। इसमें एकत्र सामग्री स्थायी मूल्य और उपयोग की है। यह बहुत सुंदर कागज पर बड़े अच्छे ढंग से छापा गया है। सरस्वती के आकार के प्रायः ३२५ पृष्ठों के इस सुंदर आवरणयुक्त ग्रंथ का मूल्य केवल एक रुपया उसकी न्यौछावर है।

डॉ० राधाकृष्णन् (जीवनी)—रमेशनारायण तिवारी, प्रकाशक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २६ ए, चंद्रलोक, जवाहर नगर, दिल्ली। सचित्र। बड़ा आकार। बड़ा टाइप। मूल्य १ रुपया ७५ नये पैसे।

डॉ० राधाकृष्णन् भारत के दूसरे राष्ट्रपति हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् और संसार के सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं में गिने जाते हैं। राष्ट्रपति होने के बावजूद जनता में वे उतने सुपरिचित नहीं हैं जितने होने चाहिए। इसका कारण यह है कि वे विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक रहे। सार्वजनिक राजनीतिक जीवन में नहीं रहे। इसी-लिए जनता उनके सम्बन्ध में बहुत कम जानती है। हिंदी में अभी तक उनका कोई जीवन-चरित्र नहीं था। अतएव हम इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत करते हैं। संतोष की बात है कि लेखक ने इस पुस्तक का कलेवर बहुत बड़ा नहीं बना दिया। इससे यह साधारण पाठकों के लिए उपयोगी है। इसमें डॉ० राधाकृष्णन् के जीवन की झाँकी मिल जाती है और उनके महान् व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय मिल जाता है। पुस्तक बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से छापी गयी है। भाषा बड़ी सरल और प्रवाहमयी है, और वह रोचक ढंग से लिखी गयी है। हम आशा करते हैं कि हमारे राष्ट्रपति की जीवन-चरित्र का परिचय देनेवाली यह पुस्तक लोकप्रिय होगी।

जमाने की आँख (कहानी संग्रह)—श्री पी० सी० आज़ाद। प्रकाशक, साहित्य कला अकादमी, ३५/२८ सिविल लाइन्स, बरेली। सज़िल्द। मूल्य ३ रुपये।

श्री प्रतापचंद्र आज़ाद सफल वकील हैं। राजनीति के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। उत्तरप्रदेश के विधान परिषद् के सदस्य हैं। साथ ही इनमें ऊँचे दर्जे की साहित्यिक अभि-रुचि और प्रतिभा है। वे मूलतः उर्दू में लिखते हैं और ये कहानियाँ भी पहिले उर्दू में लिखी गयी थीं। आज़ाद साहब ने उनका यह हिंदी संस्करण प्रकाशित किया है। ये कहा-नियाँ दो प्रकार की हैं। एक तो स्वतंत्रता-आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गयी है। दूसरी स्वतंत्रता के बाद की स्थिति का चित्रण करती हैं। आज़ाद साहब का राजनीतिक जीवन में जो मीठे-कड़ुए अनुभव हुए और जो बातें उन्होंने देखीं, उन्हींको कहानियों का कलात्मक रूप देकर प्रस्तुत कर दिया। अतएव इनमें सच्चाई और स्वाभाविकता की एक अंतर्धारा प्रवाहित हो रही है। ये कहानियाँ हमें उस क्रान्तिकारी युग में ले जाकर खड़ा कर देती है जिसमें यह देश महात्माजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अनोखा अहिंसात्मक संग्राम कर रहा था। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उस युग के वातावरण का इतना सजीव चित्रण करती हैं कि पाठक एक बार फिर उस युग की भावना का स्पर्श कर सकता है। स्वतन्त्रता के बाद की कहानियाँ 'यथार्थवादी' हैं और वे उस स्थिति का चित्रण करती हैं जिसमें आदर्शवादी जन-सेवियों को अवसरवादी लोगों ने उचित-अनुचित उपायों से दबाकर या तो सत्ता हथिया ली, और या सत्ताधारियों की कम-जोरियों का लाभ उठाकर उन्हें अपने वश में कर लिया। कितने ही ईमानदार, त्यागी और वास्तविक देशभक्त कार्यकर्त्ताओं की स्वतन्त्रोत्तर भारत में जो उपेक्षा या दुर्दशा हुई, उसका चित्रण होना आवश्यक था। श्री आज़ाद ने उन्हें अभिलिखित करके एक ऐतिहासिक सेवा की है। इन कहानियों में समसामयिक ऐतिहासिक तत्त्व हैं। सभी कहानियाँ रोचक हैं। सीधी-सादी शैली में लिखी गयी हैं। भाषा सरल और सुबोध है। हिंदी में यह कहानी संग्रह अपने ढंग का एक ही है और कहानी-प्रेमियों को इसमें अवश्य रस मिलेगा।

ऊसर में हरियाली—सर गंगाराम : जीवनी व कार्य; मूल लेखक, बी० पी० एल० बेदी; अनुवादक, गजा पाण्डे; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६; सज़िल्द और सचित्र; मूल्य, तीन रुपये।

सर गंगाराम पंजाब के बड़े प्रसिद्ध इंजिनियर थे। वे अँगरेजों के समय में पंजाब के चीफ इंजिनियर पद पर पहुँच गये थे। इससे ही उनकी योग्यता का परिचय मिल सकता है। किंतु वे बड़े इंजिनियर ही न थे, उनमें अगाध देश-प्रेम, जन-सेवा की भावना और देश की आर्थिक एवम् सामाजिक उन्नति करने की अदम्य आकांक्षा थी। उन्होंने पंजाब के उस भाग में जहाँ पानी की कमी है, नये ढंग से पानी का प्रबंध कर उसे हरा-भरा और समृद्ध बना दिया। योजनाओं का जो आज सिलसिला चल रहा है, उसका पूर्वदर्शन सर गंगाराम ने कर लिया था, और अपनी शक्ति भर उन्हें कार्यान्वित करके दिखा दिया। उन्होंने बहुत धन कमाया, किंतु वह धन उन्होंने जनसेवा में खर्च किया। उन्होंने अपाहिज घर, विधवाश्रम, अस्पताल, लड़कियों के स्कूल और कालिज खोले। निजी और गुप्त दान कर उन्होंने कितने ही अभावग्रस्त स्त्री-पुरुषों और विद्यार्थियों की सहायता की। केवल अपनी योग्यता और चरित्रबल से वे किस प्रकार साधारण स्थिति से उठकर अपने विभाग के उच्चतम पद पर पहुँचे और पंजाब के सर्वमान्य सार्व-जनिक नेता हो गये—यह कहानी किसी उपन्यास से कम मनोरंजक नहीं है। इस पुस्तक में उसी कहानी को बड़े मनोरंजक ढंग से, सरल भाषा में, कहा गया है। इसे पढ़ने हमें पिछली पीढ़ी के कर्मठ और आदर्शवादी व्यक्तियों का नमूना मिलेगा और नवयुवकों को उनके चरित्र से प्रेरणा मिलेगी। यह पुस्तक सभी वर्ग के लोगों के पढ़ने के योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अशरफ़ी की आत्म-कहानी

वेंकटेशनारायण त्रिपाठी

एक दफा मैं एक पण्डित जी के साथ कलकत्ते गया। घूमते घामते हम दोनों अजायब-घर की तरफ़ जा निकले। अजायब-घर की बात ही क्या!--वहां की सभी चीज़ें अजीब हैं। कहीं देश-देशान्तर के अद्भुत अद्भुत जीव जन्तु हैं, कहीं रंग विरंगी चिड़ियां हैं, कहीं नाना प्रकार की मछलियां हैं; कहीं शेर कठहरे में बन्द इस बात को बताते हैं कि "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य"; और कहीं अजगरों को देखकर हिन्दुस्तान की अजगर वृत्ति का स्मरण होता है।

इधर उधर घूमते फ़िरते हम दोनों वहां जा पहुंचे जहां सैकड़ों तरह की अशर्फ़ियाँ और सिक्के बड़े सज धज के रक्खे हुए थे। उनके विषय में आपस में बात छिड़ गई। बातों बातों, मेरे मित्र ने कहा कि पृथ्वी के सारे प्रसिद्ध-यात्रियों ने इन सिक्कों का चौथाई भी भ्रमण न किया होगा। और उनका तजरुबा तो इन सिक्कों के तजरुबे के पसंघे में भी नहीं आ सकता।

पण्डितजी की इस बात का प्रभाव मेरे हृदय पर बड़ा बेढब पड़ा। उसी का विचार करते करते मैं उस रात को सो गया। निद्रा-देवी की गोद में शरण लेते ही उन अशर्फ़ियों में से एक अशरफ़ी मुझे देख पड़ी। देखते देखते वह एक रूपवती युवति हो गई। थोड़ी देर तक हम दोनों एक दूसरे को बड़े ग़ौर से देखते रहे। कुतूहल और विस्मय की तरंगें बड़े ज़ोर से मेरे हृदय में उठने लगीं। इन कल्लोल-मालाओं के थपेड़ों ने मेरे चित्त की स्थिरता की नौका को चकना चूर कर दिया। जब मैं बहुत कौतुकाक्रान्त हुआ तब मुझ से न रहा गया। मैंने पूछा--"देवि! कहिये आप का आना कैसे हुआ?" उसने बहुत ही मीठे स्वर से उत्तर दिया। उसने कहा--कल तुम मुझे देखकर नाना प्रकार के तर्क-वितर्क मेरे विषय में करते थे। इससे मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाने आई हूं। सुनिए--

मेरा जन्म नर्मदा नदी में हुआ था। "कैसे और किससे" के विषय में मैं कुछ नहीं बता सकती हूँ। वहाँ से मुझे कुछ लोग आगरे लाये। वहाँ पहुँचने पर मेरे प्रायश्चित्त का समय नियत किया गया, क्योंकि मैं काफ़िरों के संसर्ग से अपवित्र समझी गई। अतः शुद्धि का होना आवश्यक था।

प्रायश्चित के लिए, नियत समय पर, पराधीन, मैं, अग्नि में डाली गई। अग्नि से भयंकर ज्वालायें निकलती थीं। अग्नि में पड़ने से मेरा सारा अल्हड़पन जाता रहा। एकदम मेरा शरीर तेजपुंज महात्माओं की तरह चमकने लगा। एक प्रकार की ज्योति मेरे शरीर से निकलने लगी, जिससे लोगों को चकाचौंध लगती थी। इसके बाद मैंने, ढांचे में पहुँचते ही, चक्राकार रूप धारण किया। मेरे मुखचन्द्र पर कलमा और पीठ पर अरबी अक्षरों में यह लिखा गया--

سلطان العاظم محمد جلال الدین اکبر
بادشاہ غازی خلد اللہ ملکہ

वहाँ से निकलते ही मेरे दिल में सफ़र की सूझी। जी में यही हुआ कि अब मन-मानी यात्रा करें। इस स्वाभाविक लालसा के पूर्ण होने में मुझे लोगों से बहुत मदद मिली; हाथों हाथ मैं फिरने लगी। पाँच ही वर्ष की अवस्था में अकबर का सारा साम्राज्य मेरे पैरों तले हो गया।

बीच में एक घटना हुई। उस समय नूरजहाँ अकबर के राज-महलों में थी। सलीम ने उसे अपने प्राण तथा प्रेम दोनों समर्पण कर दिये थे। वह उस पर दिलो-जान से फिदा था। अकबर के मारे उसकी दाल न गलाई गलती थी। क्योंकि अकबर को यह बात नापसंद थी। अकबर ने उनके सम्मिलन को रोकने का बड़ा भारी प्रयत्न कर रक्खा था। जहाँगीर न तो उसके चन्द्रानन को देख सकता, और न उसके वचनामृत को ही पान कर सकता था। मनसिज के तेज शरों ने उसके एक एक मर्म्मस्थल को छेद डाला था।

जब वह इस मार से बहुत ही व्यथित हुआ तब उस मदान्ध ने, एक बांदी को मुझे और मेरी अन्य बहनों को--हम सब पाँच सौ थीं--देकर, उसके द्वारा एक प्रेम पत्र अपनी प्रियतमा के पास भेजा।

उस बांदी ने मुझे एक बनिये को दे दिया। बनिया पल्ले सिरे का मक्खीचूस था। उसने मुझे एक घड़े में कैद कर दिया। वहाँ जाने पर मुझे ज्ञात हुआ कि उसमें मेरे समान और भी १००० अभागिनी अबलायें कैद हैं। वहाँ केवल इतना ही सुख हमें था कि शाम सबेरे हम सबको स्वच्छ वायु का सेवन हो जाता था। बनिया प्रतिदिन दो बार हमें आँगन में निकाल कर गिनता था। इसी तरह दुस्सह दुःख भोगते भोगते बहुत काल बीत गया। एक दिन किसी अपरिचित मनुष्य ने आकर हमें निकाला। बाहर आने पर मालूम हुआ कि वह बनिये का एक मात्र पुत्र था। उसका बाप, उस समय, मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। मुझे उसने एक हकीम को फीस में दे दिया। हकीमजी ने मुझे अपनी जीवनमूरि नन्हींजान को भेंट किया। मेरे सुदिन फिर लौटे। मैं स्वच्छन्दतापूर्वक घूमने लगी। आप जानते ही हैं कि हमें सैर सपाटे से अधिक और कोई बात प्रियतर नहीं है।

सुख दुःख का जोड़ा है। एक से दिन किसी के नहीं रहते हैं। मैं आनन्द से इधर उधर घूम रही थी, कि इसी बीच में एक बुढ़िया ने मुझे थैली में रखकर ऊपर से डोरी जकड़ दी। मैं फिर कैद हो गई। इस बढ़िया का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास था कि जब तक उसके पास अकबरी अशर्फी रहेगी, तब तक उसे रुपये पैसे के लिए कभी किसी का मुँह न ताकना पड़ेगा। बहुत दिनों तक मैं उसकी कैदी रही। अन्त में उसके पाप की नौका भर गई, क्योंकि वह मेरी सी अनेक अबलाओं को वृथा कैद में रखकर सताती थी। एक दिन वह यमदूतों का शिकार हो गई। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे कल्पान्त तक रौरव नरक भोगना पड़ेगा।

उसका कोई भी वारिस न था, अतः हमें राजकर्म्मचारियों की कृपा से राजकोष में कैद होना पड़ा।

बहुत समय तक हम राज-कोष में कैद रहीं। एक रोज बहुत सी अशरफियाँ निकाली गईं। मैं भी उनमें थी। उस दिन बड़ी धूम-धाम थी। पर सब पर मुर्दनी छाई हुई थी। मानो, सब मुहर्रमी पैदाइश थे। ताजमहल के पास शाहजहाँ एक शव के पास खड़ा अश्रुधारा से पृथ्वी को सींच रहा था। वह शव, जैसा पीछे मालूम हुआ, मुम्ताज-महल का था। खैर मुमताज की लाश ताज में गाड़ी गई। इस अवसर पर बड़ा दान दक्षिणा दिया गया और मैं एक अफीमची मुल्ला के पाले पड़ी।

जैसे रात के बाद दिन आता है, वैसे ही दुःख के बाद सुख। अथवा यदि यह कहा जाय कि सुख का "बीज" दुःख है तो भी असंगत न होगा। मुल्ला साहब ने मुझे अफीम बेचनेवाले को दिया। अहा! बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई मुझे अपनी स्वतंत्रता फिर मिल गई। बीच में और भी कितनी ही घटनाएँ हुईं। पर उन सब का वर्णन मैं न करूँगी, क्योंकि अब रात थोड़ी ही रह गई है। परन्तु एक विशेष घटना का वर्णन करना मैं परमावश्यक समझती हूँ, क्योंकि इसी घटना की बदौलत मैं ईरान जाने से बची।

जिस समय बहादुरशाह ने भारत के शासन की बाग-डोर को हाथ में लिया, उस समय मैं एक बूढ़े धनाढ्य के पास थी। जब वृद्ध ने काल के कराल गाल में समाने का अपना समय पास आया जाना तब उसने अपने सारे धन को कृष्णार्पण कर दिया। उसका पुत्र जुआरी था। इससे उसने एक पत्र के साथ सिर्फ मुझे उसके पास भेज दिया। मुझे देखते ही उसका हृदय-कमल विकसित हो उठा। परन्तु पत्र पढ़ने पर उसे मालूम हुआ कि मेरे सिवा बाप को धन दौलत का और कुछ भी हिस्सा उसे न मिलेगा। अतएव उसका शरीर क्रोध से धधक उठा और उसने मुझे जोर से फेंक दिया। मैं एक सूनसान खंडहर के पास जा गिरी। बहुत समय तक मैं वहीं पड़ी रही।

एक दिन कुछ यात्रियों ने वहीं पर अपना डेरा डाला। एक यात्री उसी खंडहर में जाकर एकान्त में कुछ सोचने लगा। बैठे बैठे वह एक छोटी सी लकड़ी से जमीन पर रेखायें खींचने लगा। ऐसा करने से मैं वहाँ भीतर से निकल आई। अहा। तब तो वह मारे खुशी के गद्‌गद हो गया। यात्रियों से मालूम हुआ कि उस समय नादिरशाह ने दिल्ली में कतलेआम का "नादिरशाही हुक्म" दे दिया था। इसी समय उसने शाही खजाने और बड़े बड़े धनाढ्यों को भी लूटा और कोहनूर हीरे को भी ईरान ले गया।

ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है! यदि मैं उस खंडहर में न पड़ी रहती, तो क्या आश्चर्य कि मैं भी ईरान पहुँच जाती। क्या आश्चर्य कि मुझे भी उस जालिम बादशाह के साथ साथ यात्रा करना पड़ता? तुच्छ से तुच्छ घटनाएँ तक जीवन मार्ग को कैसे पलट देती हैं इस प्रश्न का उत्तर देने में बड़े बड़े तत्वदर्शी भी असमर्थ हैं।

अब मैं अपनी राम-कहानी के अन्तिम भाग का वर्णन करूँगी। मेरे जीवन का यह भाग बहुत ही विलक्षण है। इसी में एक ऐसी घटना हुई, जिसने मेरी जीवन-यात्रा का मार्ग बिलकुल ही उलट दिया--जिसने मेरी काया ही को पलट दिया। इसी घटना के कारण मुझे स्वाधीनता से सदैव के लिए हाथ धोना पड़ा। इसी घटना के कारण मुझे जन्म भर के लिए कारागार भोगना पड़ा। इसी हृदय-विदारणी घटना ने मुझे कल्पान्त तक अगाध शोक-सागर में गोते खाने को फेंक दिया।

वे यात्री वहाँ से रवाने हुए। मैं भी उन्हीं के साथ साथ चली। हाँ, यहाँ पर यह बतला देना जरूरी है कि वे सब दस आदमी थे, और कपड़े लत्तों से धनी जान पड़ते थे। उनके साथ कुछ नौकर चाकर भी थे। उनका असबाब घोड़ों पर लदा था। वे जगन्नाथ जी को जाते थे।

वे सब चलते, ठहरते, और फिर चलते। इसी तरह हम सब नागपुर पहुँचे। शहर में पहुँचने की नौबत भी न आई थी, कि रास्ते ही में कुछ और मुसाफिरों से भेंट हुई। ये सब पच्चीस आदमी थे। इनके पास भी बहुत माल असबाब था। वे अपने को सौदागर कहते थे। नहीं मालूम इन सबसे क्या-क्या बातें हुईं जो यह ठहरा कि यात्री भी इनके साथ ही शहर के बाहर एक बाग में ठहरें।

आधी रात हुई। मैंने देखा कि सारे यात्री मरे पड़े हैं और जो सौदागर थे वे उन यात्रियों की जमा-जथा इकट्ठा करने में लगे हैं। जब सब माल वे इकट्ठा कर चुके, तब यात्रियों की लाशों को उन्होंने कुछ दूर पर वहीं गाड़ दिया। हाय हाय! इन दुष्टों के इस अमानुष कर्म को देखकर मुझे मालूम हो गया कि वे ठग हैं। अब मुझे इन चांडालों के साथ रहना पड़ा। उन्होंने जबलपुर की तरफ फेरा। पर जबलपुर तक वे पहुँचने भी न पाये थे कि कुछ सवारों ने उन्हें बीच ही में आ घेरा और तब इन कपट-रूपधारी सौदागरों को मालूम हुआ कि अँगरेज महाराज ने उन्हें कैद कर लिया।

इतने में मेरी नींद टूट गई और अशरफन बीबी भी मेरी नजरों से गायब हो गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

सुपारी का माहात्म्य

संस्कृत के पंडित हों, चाहे हिंदी के विद्वान् हों (हमारा तात्पर्य 'हिंदी' के 'स्कालर' या 'प्रोफेसर' से नहीं है) पान-सुपारी के बिना उनका काम नहीं चल सकता। और घोर पांडित्य के लिए तो तमाखू भी अनिवार्य है। आत्म-संयम या 'स्कालरों' और 'प्रोफेसरों' के संसर्ग-दोष से वे उसका सेवन कम भले ही कर दें, किन्तु उसका सर्वथा त्याग और तमाखू की विस्मृति उनके लिए संभव नहीं है। और जब संस्कृत और हिंदी दोनों का पाण्डित्य हो, तथा साथ में काव्य-रसिकता भी हो, तब कहना ही क्या है! साहित्याचार्य पं० बाबूलाल शास्त्री संस्कृत के प्राध्यापक और हिंदी के विद्वान् हैं। वे दोनों भाषाओं को समान दृष्टि से देखते हैं। वे यह निश्चय नहीं कर सके कि सुपारी का गुणगान संस्कृत में करें, या हिन्दी में। बहुत तर्क-वितर्क में न पड़कर उन्होंने माहात्म्य वर्णन में दोनों ही भाषाओं का प्रयोग कर डाला क्योंकि "भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोई होय।" यहाँ तो बात 'अनूठी' कहनी थी। अतएव उन्होंने सुपारी और तमाखू के सम्बन्ध में यह व्यावहारिक और अनुभूत बात कही—

यदा पानकार्ये जलं नास्ति काले,
सुपारी तभी काम में लाइ जाती।
भली भाँति वह प्यास को शान्ति देती
यतो भक्ष्यते मानवैर्योग्यकाले।
मुहुर्भक्षणात् रक्तीशोषो भवेद् यत्
सदा के लिए त्यागना भी बुरा है।
भजो पान के साथ ही बार एकं
तमालेनयुक्तं सदा सेवनीयम्।

जिस प्रकार बर्र का दंश उसके अंतिम भाग (डंक) में रहता है, उसी प्रकार इस माहात्म्य का वैसवारी, बुँदेलखंडी और बघेलखंडी सार अंतिम अर्थात् आठवीं पंक्ति में है—तमालेनयुक्तं सदा सेवनीयम्!

कवि का कवि के लिए काव्यमय प्रस्ताव

जब फिरोजाबाद (जिला आगरा) में प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ तब वहाँ के लोगों ने बड़ा आग्रह करके पं० श्रीधर पाठक को सभापति पद के लिए चुना। यह असामान्य बात थी क्योंकि पाठकजी फिरोजाबाद तहसील (जोंधरी ग्राम) के निवासी थे। पाठकजी ने भी अपनी जन्मभूमि द्वारा प्रदत्त इस आदर को स्वीकार कर लिया। जब अधिवेशन आरंभ हुआ तब आगरे के ही सत्यनारायण जी कविरत्न को उनसे सभापति पद ग्रहण करने की प्रार्थना करने का भार सौंपा गया। जब मंगलाचरण और स्वागत-गान आदि औपचारिक कार्य हो चुके तब सत्यनारायणजी ने कवि श्रीधर पाठक से इस छन्द द्वारा सभापति का आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की:—

प्रकृति मधुर प्रिय परम, विदित नय नागरि नागर,
भव्य भारती विमल विभाकृत विशद उजागर।
पुण्य राष्ट्रभाषा सत्कविकुल अग्रगण्यवर,
अखिल आगरा-रत्न समुज्ज्वल नित नव श्रीधर,
श्री श्रीधर पाठक करि कृपा, मंजुल मुद मंगलकरन।
यहि सभापति आसन सुभग, करहिं सुशोभित मनहरन!

सत्यनारायणजी का कण्ठ अत्यन्त मधुर था और उनके पढ़ने का ढंग भी बड़ा ही चित्ताकर्षक था। उस दिन उन्होंने सभापति के प्रस्ताव का यह छंद इतने सुन्दर ढंग से पढ़ा, और वहाँ के वातावरण में उसने ऐसा समा बाँध दिया कि उसकी याद सुननेवालों को बहुत दिनों बनी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सरस्वती' के हीरक जयन्ती उत्सव पर

सम्मानित व्यक्तियों को दिये गये

मानपत्र

श्री कस्तूरमल बाँठिया

श्रीमन् !

आप द्विवेदी युग से साहित्य-साधना और हिंदी की सेवा करते आ रहे हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण लेखों ने एक पीढ़ी से हिंदी के पाठकों का ज्ञानवर्द्धन किया है। आर्थिक, ऐतिहासिक और शास्त्रीय विषयों पर, विशेषकर जैन साहित्य पर, आपके महत्त्वपूर्ण लेखों ने हिंदी पाठकों को प्रबुद्ध किया है। आज भी आपकी प्रौढ़ लेखनी हिंदी की सेवा कर रही है। व्यापार के झंझटों में लगे हुए भी आपकी अदमनीय साहित्य-सेवा की प्रवृत्ति इस वृद्धावस्था में भी हिंदी का संवर्द्धन कर रही है। आप सरस्वती के पुराने लेखक हैं। इस अवसर पर यह समिति आपका सम्मान करने के लिए यह मानपत्र आपको सादर अर्पित करती है।

पद्मभूषण राय कृष्णदास

श्रीमन् !

भारतीय आभिजात्य में जिस गौरव, शिष्टता, कलाप्रेम, सहृदयता और उदारता की कल्पना की जाती है वह आपमें मूर्तिमान् देखी जा सकती है। विद्या की अनादि नगरी काशी के एक प्रतिष्ठित रईस वंश के एक ज्योतिर्मय दीपक की भाँति आपने अज्ञान और उपेक्षा के अंधकार में पड़ी भारतीय कला को प्रकाश में लाकर अपने देशवासियों को उसका ज्ञान कराया तथा उन्हें प्रबुद्ध किया। कवि, कहानीकार और निबंधकार के रूप में आपने हिंदी साहित्य की अनुपम सेवा की। भारतीय कला पर आपके ग्रंथ हमारे साहित्य की मूल्यवान् निधि हैं। भारत कलाभवन आपके कलाप्रेम और कला-संरक्षण का जीवित और चिरस्थायी स्मारक है। सरस्वती के आप पुराने लेखक हैं। आपकी पहिली रचना सरस्वती में सन् १९१७ में छपी थी। इस अवसर पर यह समिति आपकी हिंदी भाषा और हिंदी-साहित्य की दीर्घकालीन सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको यह मानपत्र सादर समर्पित करती है।

श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

श्रीमन् !

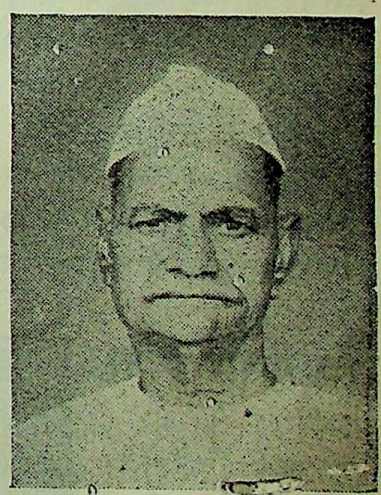

आपने 'सनेही' और 'त्रिशूल' के उपनाम से पिछली अर्द्धशती में हिंदी को राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करनेवाली प्रेरक कविताओं से समृद्ध किया है। ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू पर आपका समान अधिकार है। आपने पुराने हिंदी छंदों का प्रचुर प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया कि वे आधुनिक विषयों के लिए भी उपयुक्त माध्यम हो सकते हैं। आपने अनेक नवयुवकों को कवि बनने की प्रेरणा दी और आपके कितने ही शिष्य हिंदी काव्य-जगत् में प्रसिद्ध हुए। सरस्वती में आपकी पहिली कविता सन् १९१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रकाशित हुई थी। आप द्विवेदी युग से सरस्वती के लेखक हैं। आपकी दीर्घकालीन हिंदी-सेवा के उपलक्ष्य में यह समिति आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

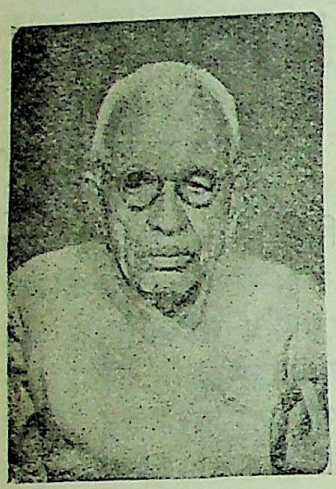

श्रीमन्!

संस्कृत भाषा के गौरवपूर्ण साहित्य की परम्परा आपके कारण इस युग में भी अक्षुण्ण है। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी आपने हिंदी के माध्यम से संस्कृत वाङ्मय के विविध रत्नों का प्रकाश सर्वसाधारण के लिए सुलभ किया। 'सरस्वती' को यह गौरव प्राप्त है कि समय-समय पर आपके पाण्डित्यपूर्ण लेखों का प्रकाशन इसके द्वारा हुआ। आपकी विद्वत्ता एवं प्रतिभा को स्वीकार करते हुए ब्रिटिश शासकों ने आपको संस्कृत की 'महामहोपाध्याय' की सबसे उच्च उपाधि से विभूषित किया तथा संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् के सम्मान से वर्तमान शासन ने भी आपका गौरव स्वीकार किया है। आपकी दीर्घकालीन हिंदी-सेवा के उपलक्ष्य में यह समिति आपका सम्मान कर गौरव का अनुभव करती है।

डाक्टर गुलाबरायजी

श्रीमन्!

आपने द्विवेदी युग में अपनी साहित्य-साधना आरम्भ की। दर्शनशास्त्र के विद्वान् होते हुए भी आपने साहित्य-सेवा को वरण किया। अपनी विवेचनात्मक प्रतिभा का उपयोग करके आलोचना के क्षेत्र में आपने हिंदी के कितने ही ग्रन्थों, कवियों और लेखकों का नीर-क्षीर-विवेचन करके हिंदी में आलोचना साहित्य को पुष्ट किया। आपके वैयक्तिक निबंध हिंदी साहित्य के शृंगार हैं। आपकी दीर्घकालीन हिंदी-सेवाओं के लिए आगरा विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर की सम्मानित उपाधि दी। आपने आचार्य द्विवेदी के सम्पादन-काल में सरस्वती में लिखना आरम्भ किया और आप उसके पुराने मान्य लेखक हैं। यह समिति इस अवसर पर आपकी सेवाओं का सम्मान करने के लिए आपको यह मानपत्र अर्पित करती है।

पद्मभूषण, साहित्यवाचस्पति डाक्टर सेठ गोविन्ददास

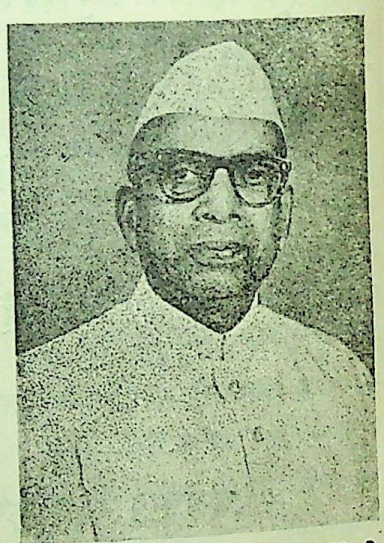

श्रीमन्!

एक धन-कुबेर परिवार में जन्म लेकर भी आपने देश और हिंदी-सेवा का व्रत लिया जिसे आप अनेक कष्ट सहकर आजीवन निबाहते जा रहे हैं। राजनीति, गोसेवा, ग्रामोत्थान तथा साहित्य आपके कार्यक्षेत्र रहे। हिंदी के लिए आपने सारे जीवन सफल संघर्ष किया। अपनी साहित्य-साधना के लिए आपने नाटक का क्षेत्र चुना और उसमें आप अनुकरणीय अध्यवसाय से लग गये तथा आपने हिंदी साहित्य को विविध प्रकार के एक सौ से अधिक नाटक देकर उसे समृद्ध किया। सरस्वती में आपका पहिला लेख सन् १९१७ में प्रकाशित हुआ था। तब से आप अनवरत साहित्य-सेवा में लगे हैं। आपकी बहुमुखी साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में यह समिति आपको यह मानपत्र सादर समर्पित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मर्षि आयुर्वेद-पंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

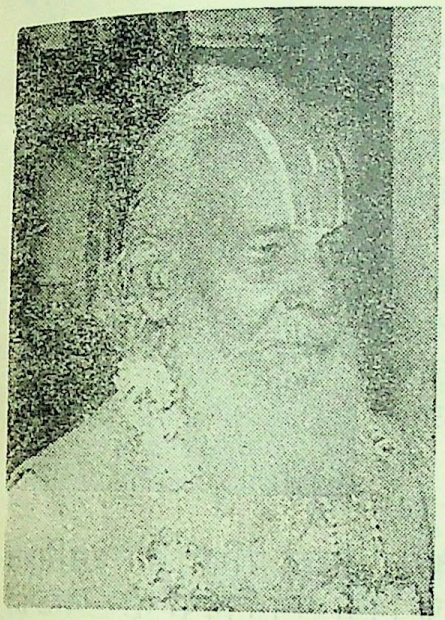

श्रीमन् !

आप माधवराव सप्रे, भानु जी, अमृत लाल चक्रवर्ती के युग के स्मारक हैं। आपने प्रयागसमाचार, श्रीवेंकटेश्वर समाचार और हिन्दी केसरी का सफल सम्पादन कर हिन्दी पत्रकारिता की सेवा की। हिन्दी में आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन करके हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य को समृद्ध किया। आप वर्षों से आयुर्वेद के मासिक पत्र 'सुधानिधि' का सम्पादन कर रहे हैं। सरस्वती की सेवा आपने द्विवेदी युग में की। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ था। आपकी दीर्घकालीन हिन्दी-सेवा के उपलक्ष्य में यह समिति आपका सम्मान करती और आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

श्री ज़हूरबख्श

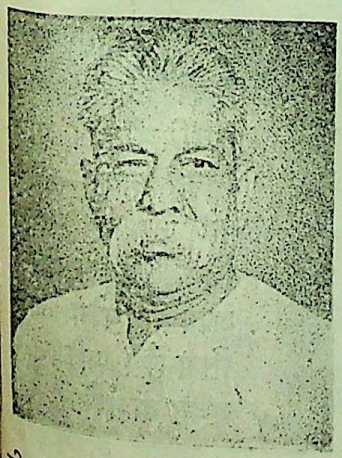

श्रीमन् !

आप द्विवेदी युग के हिन्दी-लेखक हैं। आपने खानखाना, जायसी, रसखान, आलम की हिंदी-सेवा की परंपरा को जीवित रखा है। आपने कहानियों और निबंधों द्वारा हिंदी की दीर्घकालीन सेवा की है। अपने हिंदी-प्रेम और ठोस हिंदी-सेवा के द्वारा आपने अपनी राष्ट्र-भक्ति और विशाल हृदय का परिचय दिया है। आपकी पहिली कृति १९१८ में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। अब भी आपकी लेखनी हिंदी की सेवा कर रही है। इस अवसर पर आपका सम्मान कर हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है और आपके हिंदी-प्रेम और सेवा के लिए हम आपका अभिनंदन करते हैं।

श्री जी० एस० पथिक

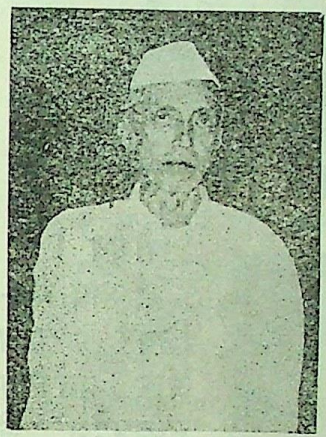

श्रीमन् !

आप सरस्वती के बहुत पुराने लेखक हैं। आपने उच्च शिक्षा प्राप्त करके देश की पुकार पर उज्ज्वल भविष्य को लात मारकर अपना जीवन देश-सेवा में लगाया। कितने कष्ट सहे, और आपकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। आपने सदैव हिंदी में रुचि ली और देश सेवा के साथ साथ साहित्य सेवा में भी सतत लगे रहे। आप अर्थ-शास्त्र के विशेषज्ञ हैं और अपनी पुस्तकों और लेखों से इस विषय में आपने हिंदी को समृद्ध किया। आपकी दीर्घकालीन सेवाओं के सम्मानार्थ यह समिति आपको यह मानपत्र अर्पित करती है।

वेदतीर्थ आचार्य श्री नरदेवजी

श्रीमन् !

हिंदी के साहित्य के और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होने के साथ ही आप राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम में भी क्रियात्मक भाग लेते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। आपका संघर्षमय, त्याग और तपस्या का जीवन अध्ययन और अध्यापन में ही व्यतीत हुआ। महाराष्ट्र होते हुए भी आपने राष्ट्रभाषा हिंदी को अपनाया और उसके साहित्य को अपनी अमूल्य कृतियों से अलंकृत किया। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१४ में प्रकाशित हुआ था। तबसे आप विविध प्रकार से हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा करते आ रहे हैं। आपके अनुकरणीय हिंदी-प्रेम और अनुपम हिंदी-सेवा के उपलक्ष्य में यह समिति आपको यह मानपत्र सादर समर्पित करती है।

लेफ्टिनेंट कर्नल राजा पंचम सिंह जी

श्रीमन्!

आप ग्वालियर राज्य और वर्तमान मध्यप्रदेश के प्रमुख, प्रगतिशील और साहित्य-प्रेमी सामंत हैं तथा सदैव जनता के हित के कार्य करते रहे हैं। शिकार आपका विशेष क्षेत्र है जिसमें आप अद्वितीय हैं। आप भारत के चोटी के शिकारी और निशानेबाज हैं। साथ ही आप हिंदी के अनन्य भक्त और साहित्यप्रेमी भी हैं। आपने हिंदी के शिकार साहित्य को अपने रोमांचकारी और मनोरंजक संस्मरणों से समृद्ध किया है। सरस्वती में आप अपने महत्त्वपूर्ण लेखों द्वारा हिंदी संसार का मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन करते रहे हैं। आपकी हिंदी-सेवा के उपलक्ष्य में समिति इस अवसर पर सम्मान के रूप में यह मानपत्र आपको सादर अर्पण करती है।

श्री भगवतीचरण वर्मा

श्रीमन्!

कथा साहित्य के क्षेत्र में आपने अपनी कलापूर्ण कृतियों से हिंदी को समृद्ध किया। आपकी 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' और 'भूले-बिसरे चित्र' हिंदी उपन्यास-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। आपकी कविताओं ने काव्य-प्रेमियों को रससिक्त किया है। आपके विचारपूर्ण निबंधों और नाटकों ने हिंदी-भाषियों को आंदोलित किया है। आपने सफलतापूर्वक 'विचार' और 'नव जीवन' का सम्पादन कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। सरस्वती में अनेक वर्षों से आपकी कविताएँ, कहानियाँ और निबंध प्रकाशित होते रहे हैं। आप उसके पुराने लेखक हैं। हिंदी की बहुमुखी सेवाओं के लिए यह समिति आपके सम्मानार्थ आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

श्रीमती महादेवी वर्मा

शुभश्री!

आप हिंदी और हिंदी प्रदेश की कवयित्री हैं। आधुनिक हिंदी काव्य को उसका वास्तविक स्वरूप देने में आपका योग अप्रतिम है। जीवन के गहन दार्शनिक स्तर की स्थितियों को गीत-रूप में सहज करनेवाली आपकी काव्यशैली हिंदी काव्य की विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्धि है। भारतीय नारी के वास्तविक गौरव को अन्वेषित और पुनरन्वेषित करने में आपका जीवन प्रारंभ से ही अर्पित रहा है। कवयित्री, संपादिका, सामाजिक कार्यकर्त्री और अध्यापिका के रूप में आपने आधुनिकनारी के सामाजिक और सांस्कृतिक, जीवन को समृद्ध बनाया है, और आपका समूचा काव्य तो हिंदी गीति शैली की श्रेष्ठ परिणति है ही। आपने समय समय पर सरस्वती को अपनी कविताओं से विभूषित किया है। यह समिति आपको यह मानपत्र अर्पित करके अपने को गौरवान्वित समझती है।

श्री मुकुंदीलाल, बैरिस्टर

श्रीमन्!

आप हिन्दी के पुराने और प्रतिष्ठित लेखक हैं। आपने समय-समय पर सरस्वती को अपने विचारपूर्ण, ज्ञानवर्द्धक और साहित्यिक महत्त्व के लेखों से अलंकृत किया है। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ था। आपके पहाड़ी चित्रकला सम्बन्धी लेखों तथा विदेशों के परिचयात्मक लेखों ने हिंदी पाठकों का बहुत ज्ञानवर्द्धन किया। आपकी हिंदीसेवा तथा सरस्वती के पुराने संपर्क के उपलक्ष्य में यह समिति आपको यह मानपत्र अर्पित करती है।

साहित्य-वाचस्पति
पद्मभूषण राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त डी० लिट्०

आपने अपनी प्रायः साठ वर्ष की दीर्घ-कालीन काव्य-साधना से हिन्दी काव्य का भंडार अनुपम रत्नों से भरा है तथा देश को प्रेरणा दी है। खड़ी बोली के काव्य को लोकप्रिय बनाकर आपने स्थायित्व प्रदान किया। हमारी स्वतंत्र सरकार ने आपको पद्मभूषण के सम्मान से, विश्वविद्यालयों ने सम्मानित डाक्टरेट से तथा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने 'साहित्य-वाचस्पति' की सर्वोच्च उपाधि से सम्मानित किया। हिन्दी-भाषी जनता ने अपनी श्रद्धा आपको राष्ट्रकवि की उपाधि देकर व्यक्त की। आप सरस्वती के सबसे पुराने जीवित लेखक हैं और उसकी षष्टिपूर्ति के अवसर पर यह समिति आपको अपने बीच पाकर गौरव और हर्ष का अनुभव करती हुई कृतज्ञता और श्रद्धा के रूप में यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

पद्मभूषण श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

श्रीमन्!

एक ओर काव्य को जीवन के उद्बोधक तत्त्व के रूप में स्वीकार करके, और दूसरी ओर उसके अत्यंत सुकुमार पक्षों को उद्घाटित करके आपने हिंदी काव्य के कई पक्षों को एक साथ पुष्ट किया है। यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण है कि आपका काव्य जीवन की विभिन्न समस्याओं की चिंतना से युक्त होने पर भी एक विस्तृत भावुक-वर्ग को आकर्षित कर सका। हिंदी कृतित्व की मूल राष्ट्रीय चेतना आपकी रचनाओं में बराबर गतिशील रही है। आप कवि के अतिरिक्त विचारक भी हैं। यदि रश्मिरथी, उर्वशी और कुरुक्षेत्र में आपके कवित्व के भव्य दर्शन होते हैं तो आपके 'संस्कृति के चार अध्याय' में आपका सुलझा हुआ विचारक रूप भी प्रकट होता है। सरस्वती के आप प्रतिष्ठित लेखक हैं। यह समिति आपका अभिनंदन कर अपने को गौरवान्वित समझती है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस०
(अवकाश प्राप्त)

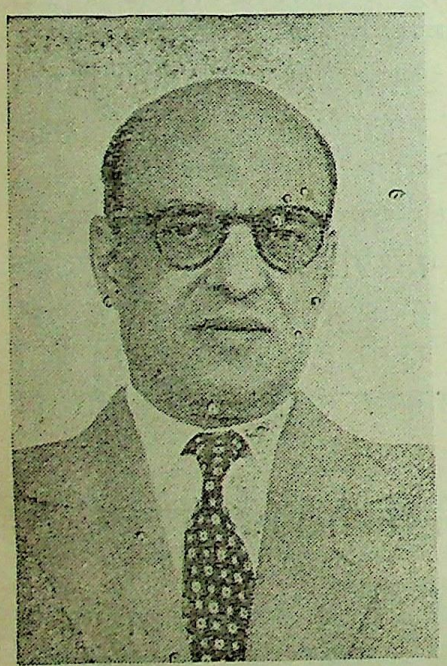

श्रीमन्!

आप सर गिरिजाशंकर वाजपेयी, श्री नानालाल चमनलाल मेहता आदि उन प्रशासकों की गौरवपूर्ण परम्परा में हैं जो गंभीर प्रशासकीय उत्तरदायित्वों के बीच और अपने अत्यंत व्यस्त जीवन में भी साहित्यसेवा करते रहे। आप उच्च कोटि के कवि और अनुवादक हैं। आपके खड़ी बोली के उमर खैयाम के अनुवाद ने बहुत ख्याति प्राप्त की और आपके रवीन्द्र बाबू के गीतों के अनुवाद ने हिन्दी-भाषियों को बड़ी सफलता से कवीन्द्र के काव्यरस के माधुर्य का परिचय कराया। सरस्वती में आपकी पहिली कविता प्रायः चालीस वर्ष पहिले प्रकाशित हुई थी, और आप तब से बराबर समय-समय पर अपनी रससिक्त कविताओं तथा ज्ञानवर्द्धक लेखों से सरस्वती को विभूषित करते रहते हैं। आपकी दीर्घकालीन और मूल्यवान् हिन्दी-साहित्य की सेवा के लिए यह समिति अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी

श्रीमन्!

आपने अवधी के ग्रामगीतों का उद्धार कर हिंदी जनता का ध्यान अपनी साहित्यिक विधि के एक महत्त्वपूर्ण अंग की ओर दिलाया तथा उसमें रुचि उत्पन्न की। आपके पथिक और मिलन काव्य खड़ी बोली की प्रगति के चरणचिह्न हैं जिनके द्वारा हिंदी का प्रचार होने में सहायता मिली। आप सन् १९११ से सरस्वती के सम्माननीय लेखक, कवि और आलोचक हैं। आपने अपने जीवन का अधिकांश हिन्दी की सेवा में व्यतीत किया है। इस अवसर पर यह समिति आपकी सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन

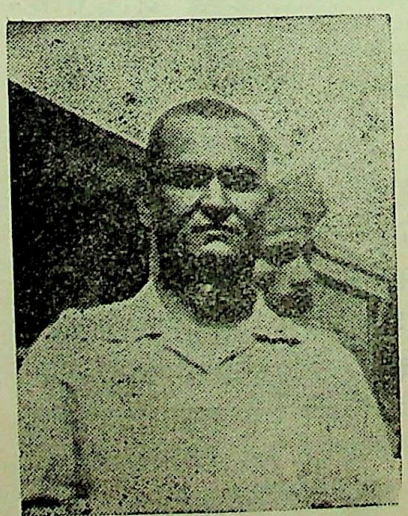

श्रीमन्!

आपने इस शती के तीसरे दशक में जब 'सरस्वती' में लेख लिखना आरंभ किया तब आचार्य द्विवेदी ने साश्चर्य जिज्ञासा की थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हिंदी की यह नवीन और उदीयमान प्रतिभा कौन है। तब से आप बराबर 'सरस्वती' की सेवा करते आ रहे हैं। आप संस्कृत, हिंदी और पाली के विद्वान् हैं। तिब्बती, रूसी और चीनी भाषाओं में निष्णात हैं। राजनीति, इतिहास और दर्शनशास्त्र के पंडित हैं। आपने अपनी तिब्बत की यात्राओं में सैकड़ों अज्ञात संस्कृत ग्रंथों का उद्धार किया। हिंदी में प्रमुख बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद कर हिंदी का भंडार भरा। एशिया का वृहत् इतिहास लिखकर हिंदी के बड़े अभाव को पूरा किया। उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा-साहित्य लिखकर आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। आपकी निष्ठा हम सबके लिए अनुकरणीय है। आप केवल हिंदी-संसार के ही नहीं, सारे देश के गौरव हैं। इस अवसर पर सरस्वती के पुराने लेखक तथा देश के महान् पंडित और साहित्यकार के रूप में आपका सम्मान कर हम अपने को गौरवान्वित समझते हैं।

पं० लल्लीपसाद पाण्डेय

श्रीमन् !

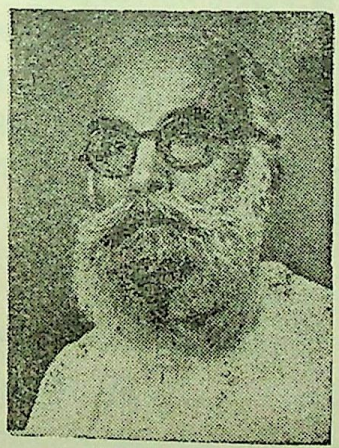

आपने अपना सारा जीवन हिंदी की सेवा में लगा दिया। हिंदी केसरी के सम्पादकीय विभाग में आपने पत्रकारिता का पाठ पढ़ा और आप वर्षों से 'बालसखा' के सम्पादक हैं। आपने कितने ही ग्रंथों का सम्पादन किया तथा मौलिक ग्रन्थों की रचना के अतिरिक्त आपने अनेक बँगला और मराठी ग्रंथों का अनुवाद कर हिंदी-साहित्य का भंडार भरा। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९०९ में छपा था। आपने दीर्घकाल तक विभिन्न रूपों में सरस्वती और हिंदी की सेवा की है जिसके उपलक्ष्य में समिति इस मानपत्र द्वारा आपका सम्मान करती है।

श्री वियोगी हरि जी

श्रीमन् !

त्याग और तपस्या आपके जीवन का आदर्श है। संतों की परम्परा का अनुसरण कर आपने बापू के अछूतोद्धार आंदोलन में अपना जीवन लगा दिया, और हरिजनों को वास्तविक रूप में सच्चे वैष्णव की भाँति हरिजन समझा और उन्हें अपनाया। ब्रजभाषा काव्य को आपने समृद्ध किया। आपकी वीर-सतसई ऐतिहासिक काव्य है। आपके "ब्रजमाधुरीसार' ने लाखों हिंदी और अहिंदी-भाषियों को प्राचीन हिंदीकाव्य का पीयूष पिलाया। सरस्वती के आप पुराने लेखक हैं। इस अवसर पर आपका सम्मान कर यह समिति अपने को कृतकृत्य अनुभव करती है।

पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी
एम० ए०, एल्-एल० बी०

श्रीमन् !

आपने अपना सारा जीवन देश की सेवा में अर्पित कर दिया। आपकी सेवा आपकी प्रतिभा की तरह बहुमुखी रही है। राजनीति, समाज-सेवा, पत्रकारिता, भाषा और साहित्य के क्षेत्रों में आपकी ठोस सेवाएँ सदा कृतज्ञतापूर्वक याद रखी जायँगी। आपने हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार में जो बहुमूल्य कार्य किया है वह स्तुत्य है। आपकी पत्रकारिता का चम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्कार मर्यादा, अभ्युदय और भारत के पुराने अंकों में सदैव चमकता रहेगा। सरस्वती में आपका पहिला लेख सन् १९०७ में प्रकाशित हुआ था। तब से आप बराबर सरस्वती को अपने विद्वत्ता-पूर्ण लेखों से अलंकृत करते रहे हैं। आपकी दीर्घ-कालीन बहुमुखी सेवा के उपलक्ष्य में यह समिति आपको यह मानपत्र सादर समर्पित करती है।

डा० वृन्दावनलाल वर्मा

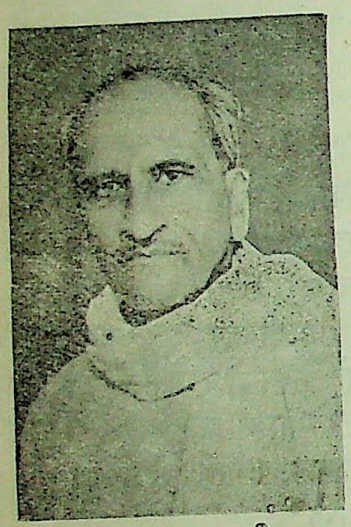

श्रीमन्!

आपने अपने प्रेरणा-प्रद और मनोरंजक ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा हिंदी के एक महत्त्वपूर्ण अंग की पूर्ति की है। अपने उपन्यासों में आपने हमारे अतीत को मूर्त ही नहीं किया, प्रत्युत हमें आज के जीवन-संघर्ष के लिए प्रेरणा भी दी है। उपन्यासकार होने के अतिरिक्त आप उत्कृष्ट कहानीकार भी हैं। सरस्वती में आपकी पहिली कहानी सन् १९०९ में छपी थी। आज आप सरस्वती के सबसे पुराने जीवित कहानी-लेखक हैं। आपकी दीर्घकालीन हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्य की सेवा के उपलक्ष्य में समिति आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

श्री संत निहालसिंह

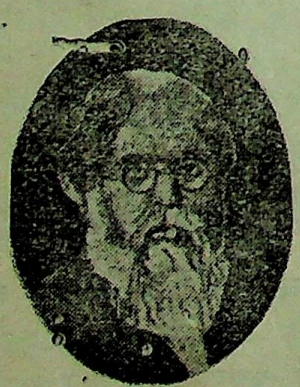

श्रीमन्!

आपने उन दिनों पत्रकारिता का वरण कर अपने साहस का परिचय दिया जिन दिनों इस देश में बहुत कम भारत-वासी उसे जीवन का मुख्य कार्य बनाने का साहस करते थे। अपने अध्यवसाय, सूझ-बूझ तथा कठिनाइयों से संघर्ष करने की अदम्य क्षमता के कारण आपने पत्रकारिता-जगत् में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की, और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर देश का मस्तक ऊँचा किया। पत्रकारिता के उच्च-तम मापदंडों के अनुसार आपने सदैव सत्य का पक्ष लिया और देशवासियों की अनेक जटिल समस्याओं को सरल और मनोरंजक ढंग से समझाया। आपने भारत के महान् नेताओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया तथा देश में जागृति उत्पन्न करने में सहायता दी। आपके लेख सरस्वती में सन् १९११ से प्रकाशित होते रहे हैं। हिंदी पाठकों को उनसे जो लाभ हुआ है उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। इस अवसर पर यह समिति अपने देश के वरिष्ठ पत्रकार तथा सरस्वती के पुराने लेखक के रूप में आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

श्री संतराम बी० ए०

श्रीमन्!

आपने उर्दू की शिक्षा पायी थी, किंतु हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा मानकर आपने बिना किसी शिक्षक की सहायता के स्वयं ही हिंदी सीखी और सारा जीवन हिंदी साहित्य की सेवा और हिंदी के प्रचार में लगा दिया। आपने हिंदी का प्रचार और हिंदी की साधना उस युग में आरंभ की जब आपके प्रान्त में हिंदी की ओर लोगों का बिल्कुल ही ध्यान न था। आपकी लेखनी ने विविध विषयों पर अगनित लेखों द्वारा हिंदी की सेवा की है। आप आचार्य द्विवेदीजी के एकलव्य के समान शिष्य थे, और उन्हींके सम्पादन-काल में आपने सरस्वती में लिखना आरम्भ किया। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१६ में प्रकाशित हुआ था। इस अवसर पर यह समिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके दीर्घकालीन हिंदी भाषा के प्रचार, हिंदी साहित्य की सेवा और सरस्वती के पुराने तथा घनिष्ठ संबंध के उपलक्ष्य में आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

श्री सदाशिव पाण्डुरंग खानखोजे

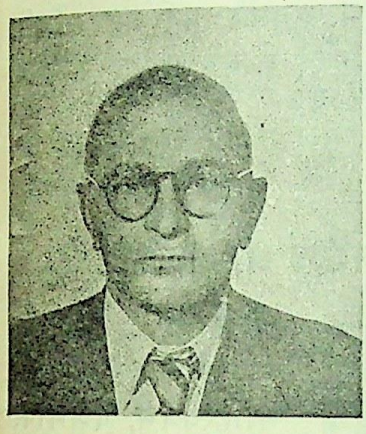

श्रीमन् !

आप कृषि-विज्ञान के अध्ययन के लिए अमरीका गये। वहाँ आप हिन्दुस्तान-क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। आपने विदेश में भारतीय स्वतंत्रता के लिए जो परिश्रम किया और जो जोखिमें उठाईं वे सदैव याद रखी जायँगी। मराठीभाषी होते हुए भी आप अमरीका से सरस्वती के लिए हिंदी में लेख लिखकर भेजा करते थे। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१० में प्रकाशित हुआ था। आपने कितने ही विचारोत्तेजक और ज्ञानवर्द्धक लेखों द्वारा हिंदी-भाषी जनता को अनुप्राणित किया। आपका हिंदी-प्रेम और सरस्वती की सेवा श्लाघनीय है और उनके लिए कृतज्ञतास्वरूप हम आपका सादर सम्मान करते हैं।

श्री सुमित्रानंदन पंत

श्रीमन् !

आप हिंदी कलाकारों में अपनी अद्वितीय सर्जनशक्ति और गतिशीलता के लिए विख्यात, और आधुनिक हिंदी काव्य के निर्माताओं में से हैं। छायावाद से लेकर नयी कविता तक की विभिन्न पद्धतियाँ आपके काव्य-व्यक्तित्व से स्फूर्ति ग्रहण करती रही हैं, और प्रत्येक युग में आपकी उपलब्धि स्पृहणीय है। इस दृष्टि से आधुनिक हिंदी कविता के सर्वांगीण विकास में आपका योग अन्यतम कहा जाएगा। शिल्प और चिंतन के विभिन्न स्तरों का सामंजस्य आपकी कृतियों में हुआ, और आपका कृतिकार बराबर विकसनशील रहा है। इस क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षों को पुष्ट करने के लिए आपने जो नियोजन-प्रतिभा दिखाई उसके शुभ परिणाम हिंदी की विभिन्न संस्थाओं, पत्रकारिता के नये प्रतिमानों और आकाशवाणी के नवीन प्रयोगों में देखे जा सकते हैं। आपकी प्रथम कविता सरस्वती में सन् १९१९ में प्रकाशित हुई थी। यह समिति इस अवसर पर आपका सम्मान करके अपने को गौरवान्वित समझती है।

श्री सियारामशरण गुप्त

श्रीमन् !

आपका जीवन प्रचार से दूर एकान्त हिंदी-सेवा और साधना में व्यतीत हुआ है। महात्मा गांधी के आदर्शों से प्रेरित होकर आपके वैष्णवी संस्कारों ने आपके साहित्य को विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत कर दिया है। आपने काव्य, उपन्यास और निबंधों के क्षेत्रों में हिंदी साहित्य का महत्त्वपूर्ण संवर्द्धन किया है। सरस्वती में आपकी पहली कविता सन् १९१२ में प्रकाशित हुई और आप वर्षों अपनी कविताओं से उसे अलंकृत करते रहे। आपकी दीर्घकालीन सेवाओं के उपलक्ष्य में यह समिति आपको यह मानपत्र सादर समर्पित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मभूषण पंडित सूर्यनारायण व्यास

श्रीमन् !

आप इस युग के ज्योतिष शास्त्र के चोटी के मान्य विद्वान् हैं। संस्कृत और हिंदी साहित्य से आपका अकृत्रिम प्रेम है। 'कालिदास जयंती' का देश-व्यापी उत्सव आपकी ही सूझ है। उज्जैन का कालिदास स्मारक आपकी ही कल्पना है। हिंदी के आप पुराने लेखक और पत्रकार हैं। आपने कितने ही वर्ष विक्रम नामक मासिक पत्र का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। आपने हिंदी में अनेक ग्रन्थ और सैकड़ों लेख लिखकर उसे समृद्ध किया। सरस्वती के आप पुराने लेखक हैं और अब भी आप उसके स्तम्भों को अलंकृत करते रहते हैं। इस अवसर पर आपकी दीर्घकालीन हिंदीभाषा और साहित्य की बहुमुखी सेवाओं के लिए यह समिति आपको यह मानपत्र सादर अर्पित करती है।

पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय जी

श्रीमन् !

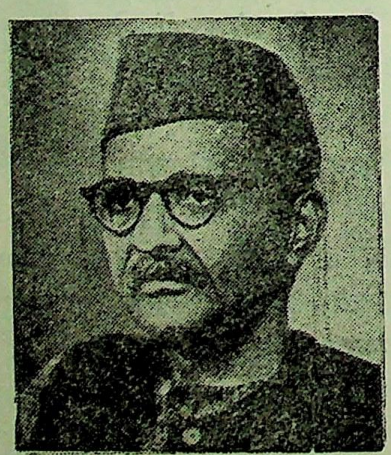

आधुनिक हिंदी के आरंभिक युग की साधना और तपस्या के आप मूर्त और सजीव स्मारक हैं। आपने अपना सारा जीवन हिंदी की सेवा में अर्पित कर दिया। पत्रकारिता, ग्रन्थ-सम्पादन, निबंध-लेखन आदि विविध क्षेत्रों में आपने हिंदी की सेवा की। बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद का सफल संचालन करके तथा उसके प्रकाशन की सुन्दर योजना बनाकर आपने अपनी संगठन-शक्ति और कल्पनाशीलता का परिचय दिया। हिंदी संसार की एक पीढ़ी को आपने अनुप्राणित किया और उसका मार्गप्रदर्शन किया। आप हमारे ज्येष्ठ साहित्यकारों में हैं। आपने द्विवेदी युग में सरस्वती की सेवा की और इस प्रकार आप सरस्वती के पुराने लेखक हैं। इस अवसर पर यह समिति श्रद्धा और आदर के प्रतीक के रूप में यह मानपत्र आपको अर्पित करती है।

पद्मविभूषण माननीय श्री श्रीप्रकाशजी

श्रीमन् !

गंभीर चिंतन, साहित्यप्रेम, देशभक्ति और आभिजात्यशिष्टता आपको पैतृक विरासत में मिली। आपने काशी के एक अत्यंत प्रतिष्ठित और वैभवशाली परिवार में जन्म लेकर देश और विदेश में उच्चतम शिक्षा प्राप्त की। व्यक्तिगत उन्नति का प्रशस्त मार्ग आपके लिए खुला हुआ था। किंतु आपने देशसेवा और साहित्यसाधना के कंटकाकीर्ण किंतु गौरवपूर्ण मार्गों को चुना, और देश की पुकार पर स्वतन्त्रता-संग्राम में अपने को अर्पित कर दिया। हिंदी की सेवा को आपने देशसेवा का ही अंग समझा और हिंदी पत्रकारिता आपके कारण गौरवशालिनी हुई। आपने हिंदी को राजनीतिक साहित्य देकर समृद्ध किया। स्वतन्त्र भारत में उच्चतम पदों पर रहते हुए भी आप सदैव हिंदी का हितचिंतन करते रहे हैं। सरस्वती के आप पुराने लेखक हैं। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ था। आपकी दीर्घकालीन पत्रकारिता की सेवाओं, तथा सरस्वती से आपके पुराने संबंधों के उपलक्ष्य में यह हिंदी समिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको यह मानपत्र देकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है।

डाक्टर हरि रामचंद्र दिवेकर

श्रीमन् !

आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० और डी० लिट्० की उच्च उपाधियाँ प्राप्त कर शिक्षा की सेवा की। आपकी जन-कल्याणकारी प्रवृत्ति ने आपको महर्षि कर्वे का सहयोगी बनाया। मध्य भारत की शिक्षा की प्रगति में आपका अमूल्य योगदान रहा और अब आप संत बिनोबा के भूदान यज्ञ के प्रमुख होताओं में हैं। आपका सारा जीवन त्याग और तपस्या का जीवन रहा है। देशप्रेम और व्यापक जनहित का ध्यान कर आपने मराठीभाषी होते हुए भी अपने विद्वत्तापूर्ण लेखों से हिन्दी की सेवा की। सरस्वती के आप द्विवेदी-युग के लेखक हैं और आपका पहिला लेख १९१५ में प्रकाशित हुआ था। इस अवसर पर आपका सम्मान करके हम गौरवान्वित हो रहे हैं।

माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय

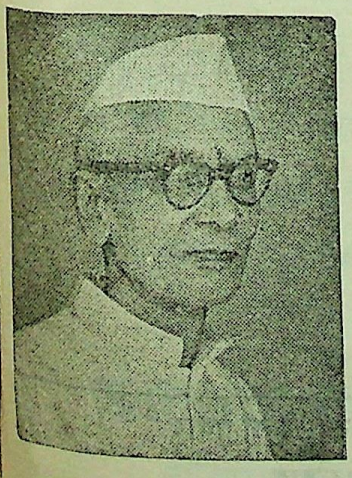

श्रीमन् !

आपका सरस्वती से बहुत पुराना सम्बन्ध है। आपका पहिला लेख सरस्वती में सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ था, और आपको आचार्य द्विवेदी के सहायक सम्पादक होने का गौरव प्राप्त है। आपने 'त्यागभूमि' का सम्पादन किया तथा हिंदी में गाँधीवाद का महत्त्वपूर्ण साहित्य लिखकर हिन्दी को समृद्ध किया। राष्ट्रभाषा की सेवा के साथ आपने देशसेवा का भी व्रत लिया और आपने अपना सारा जीवन राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा की सेवा को समर्पित कर दिया, तथा स्वतन्त्रता-संग्राम में महात्माजी का अनुसरण कर तरह-तरह के कष्ट झेले। शिक्षा को राष्ट्रीय और भारतीय संस्कृति के अनुकूल बनाने में भी आपने सतत प्रयत्न किये। हतूँडी का बालिकाश्रम इसका जीवित उदाहरण है। आपके त्याग और तपस्यामय जीवन तथा दीर्घकालीन हिन्दी-सेवा एवम् सरस्वती से घनिष्ठ सम्बन्ध के उपलक्ष्य में यह समिति आपका अभिनन्दन करके गौरवान्वित है।

डाक्टर हरिवंश राय बच्चन

श्रीमन् !

आप छायावाद-युग में ही उसके व्यापक प्रभाव से अपने को मुक्त करके एक स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण मार्ग का अन्वेषण करनेवाले कवि हैं। आप हिंदी कविता के अत्यंत लोकप्रिय व्यक्तियों में से हैं। हिंदी कविता के प्रचार-प्रसार में आपका योगदान यदि एक ओर है तो दूसरी ओर उसके बड़े सूक्ष्म आयामों को उद्घाटित करने में भी आपकी अंतर्दृष्टि सक्षम रही है। आपको छाया-वादोत्तर गीति-प्रतिभा को अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचा देने का श्रेय है। आपकी आरंभिक कविताएँ सरस्वती में प्रकाशित हुईं और आप उसे अब तक अपनी रचनाओं से विभूषित करते रहते हैं। यह समिति इस अवसर पर आपको यह मानपत्र अर्पित करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी के एक अत्यंत लोकप्रिय कवि का सम्मान कर रही है।

डा० हेमचन्द्र जोशी

श्रीमन् !

उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर आपने प्राचीन काल के ब्राह्मणों की तरह अपना सारा जीवन भाषाशास्त्र के अध्ययन में उत्सर्ग कर दिया। अँगरेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर आपने भाषा-विज्ञान का विशेष अध्ययन किया। आज आप कोशशास्त्र और भाषा-विज्ञान में हिंदी के अन्यतम विद्वानों में हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपने हिंदी की अपूर्व सेवा करके हिंदी-पत्रकारिता का मानदंड ऊँचा किया। आप सरस्वती के विशिष्ट लेखक हैं। आपकी दीर्घकालीन हिंदी और भाषा-विज्ञान की सेवा के उपलक्ष्य में समारोह समिति आपका सम्मान करके प्रसन्नता का अनुभव करती है।

प्रकाशक : बी० एन० माथुर इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके बालकों का भविष्य आपके सामने है

किन्तु, आपने क्या सोचा है इसके लिए ?

उन्हें रुपया पैसा न चाहिए, न दीजिए; उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा दीजिए, और उसका आरम्भ आज ही कीजिए।

'बालसखा' भी इसका एक अच्छा साधन है। इससे उन्हें देश-विदेश की जानकारी ही न होगी, बल्कि अपने चारों ओर होने-वाली हलचल को वे समझेंगे, और भविष्य के लिए उसके अनुसार तैयार होंगे।

बालसखा हिन्दी का सबसे अधिक प्रतिष्ठित मासिक पत्र है। बाल-साहित्य के माने हुए साहित्यकार एवं विशेषज्ञ उसका सम्पादन करते हैं।

बालसखा के विशेषांकों की अपनी परंपरा है। जनवरी १९६२ में रवीन्द्र अंक, होली में होली विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। **१४ नवंबर को नेहरू चाचा का जन्म-दिवस है। उसके उपलक्ष्य में बालसखा का नेहरू चाचा विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। जनवरी १९६३ में बाल विशेषांक बड़ी सजधज से प्रकाशित होगा।**

वार्षिक मूल्य केवल ५॥) ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·००
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६·००
हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३·००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३·५०
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४·००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१·५०
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
दुर्गापाठ—अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२·००
श्री भगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

धर्म निरपेक्ष राज्य का मतलब एक ऐसा राज्य है जो सब तरह के धर्मों और मजहबों का आदर करता है और उन्हें फलने फूलने का एक-सा मौका देता है। भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत से धर्म और मजहब हैं, धर्मनिरपेक्षता की बुनियाद पर ही सच्ची राष्ट्रीयता कायम की जा सकती है। अगर कोई संकीर्ण दृष्टि रक्खी गई तो उस हालत में भारत में हमें हिन्दू राष्ट्रीयता, मुस्लिम राष्ट्रीयता, सिक्ख राष्ट्रीयता या ईसाई राष्ट्रीयता का खयाल रखना पड़ेगा, भारतीय राष्ट्रीयता का नहीं। ये संकीर्ण राष्ट्रीयतायें पुराने जमाने की बातें हैं। ये पिछड़े हुए और पुराने जमाने के नकशे हैं।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता बाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी, व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये; खंड दो, पृष्ठ ३९४, मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

'हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए...।'

—भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसाद, नई दिल्ली

'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' बहुत ही मूल्यवान् कोश है।

—भूतपूर्व राज्यपाल श्री के० एम० मुंशी, उत्तर प्रदेश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

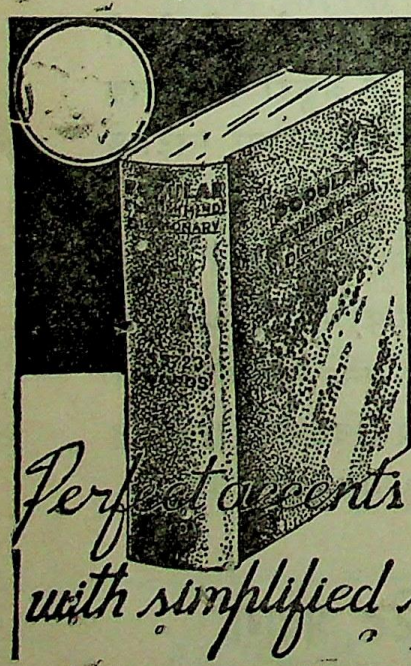

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best Of 20th Century

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-जगत

प्रधान संपादक

आर० डी० विद्यार्थी

● प्रकाशित हो गया।

● सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक

● वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार

● वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे

● बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।

● कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये

प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise
SARASWATI—Reg. No. A-248

कारखानेदारों तथा इन्डस्ट्रीज से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए अमूल्य पुस्तक

स्मॉल स्केल इन्डस्ट्रीज़

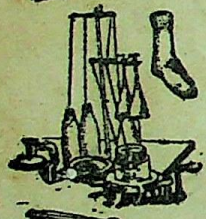

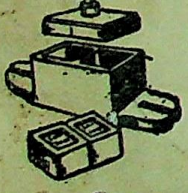
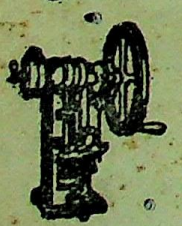

लघु उद्योग लेखक—कालीचरन गुप्ता कंसल्टिंग इंजीनियर

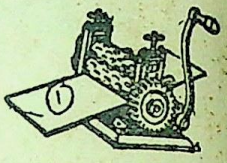
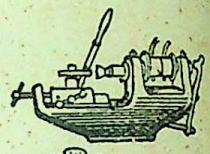
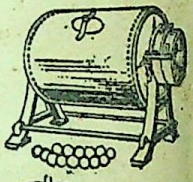
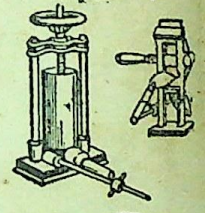
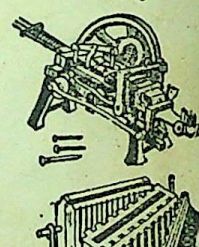
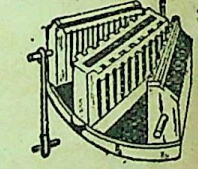
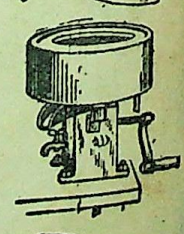

*** १०१ लघु उद्योगों की जानकारी १,००० से अधिक पृष्ठों तथा ३०० से अधिक चित्रों में देने वाली पुस्तक ***

भारत व विदेशों के अनुभवी इन्जीनियरों, कारखानेदारों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के टैक्नीकल सहयोग से लिखी गई पुस्तक, जिसमें बताया गया है कि किस तरह इन्डस्ट्री चालू करने के लिये आप भारत सरकार से बहुत कम ब्याज पर नकद कर्जे, आसान किस्तों पर मशीन और कारखाने के लिये रियायती मूल्य पर जमीन, इमारत और पावर ले सकते हैं। पुस्तक में थोड़ी आमदनी वालों, दरम्याने दर्जे के लोगों और धनवान लोगों के लिए थोड़ी दरम्याना व अधिक पूंजी से चलाई जा सकने योग्य इन्डस्ट्रीज दी गई हैं। इसमें प्रत्येक इन्डस्ट्री का स्कोप, बनाने के तरीके व फार्मूले, कच्चे माल का विवरण व मशीनों से काम लेने का तरीका, कच्चा माल व मशीनें मिलने के पते आदि विस्तार-पूर्वक समझाये गये हैं। वे सज्जन जिन की कोई इन्डस्ट्री चल रही है वे पुस्तक में वर्णित कोई इन्डस्ट्री साइड इन्डस्ट्री के रूप में चालू कर सकते हैं। देहातों व कस्बों में रहने वालों व पार्ट टाइम में इन्डस्ट्री चालू करने के इच्छुकों के लिये पावर से चलने वाली व ऐसी इन्डस्ट्रीज जिन में पावर अथवा मशीनों की जरूरत नहीं पड़ती, भी दी गई हैं।

यही नहीं बल्कि पुस्तक में पैकिंग, लेबलिंग, माल की बिक्री बढ़ाने, पार्टनर-शिप, लिमिटेड कम्पनियाँ व कोआपरेटिव सोसाइटीज बनाने के नियम, विदेशों से माल इम्पोर्ट करने के तरीके आदि सैकड़ों अति लाभदायक बातों का भी समावेश किया गया है। ऐसे ग्रामवासी जिन के पास फालतू रुपया है यह पुस्तक खरीद कर अपना रुपया उद्योग में लगा कर उससे मुनाफा कमा सकते हैं। वे लोग भी जो एक बार उद्योग चला कर किसी भी कारण से बन्द कर चुके हैं, इस किताब को पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं। जिनके पास रुपया नहीं है और जो उत्साही हैं वे भी थोड़ी-थोड़ी रकम लगा कर कोई उद्योग शुरू कर सकते हैं। सफेद कागज क्लाथ बाइंडिंग। पुस्तक हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में छपी है। मूल्य केवल १२) बारह रुपया, डाक-व्यय दो रुपया पृथक। गुजराती, मराठी, बंगाली, तिलेंगी भाषा में छपवाने की व्यवस्था की जा रही है।

एक साथ ५ किताबें मँगाने पर डाक-खर्च माफ़ ।

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मँगाने का एक मात्र स्थान—

देहाती पुस्तक भंडार

(SA 10/62) चावड़ी बाजार, देहाती बिल्डिंग, दिल्ली

फोन नं. २२००३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

दीपावली अंक

नवम्बर १९६२

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० १५ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·३७ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त।]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत—सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक में आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन शब्दों में बधाई दूँ, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गागर में रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास, तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्त्तिमान हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो आसान नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक विस्तृत चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विकास-क्रम की श्रेणी देखने को मिलती है—राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

साहित्य अकादमी के १९६२ ई० के हिन्दी-पुरस्कार विजेता

श्री भगवतीचरण वर्मा—हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है, जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता की नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5 DEC 1962

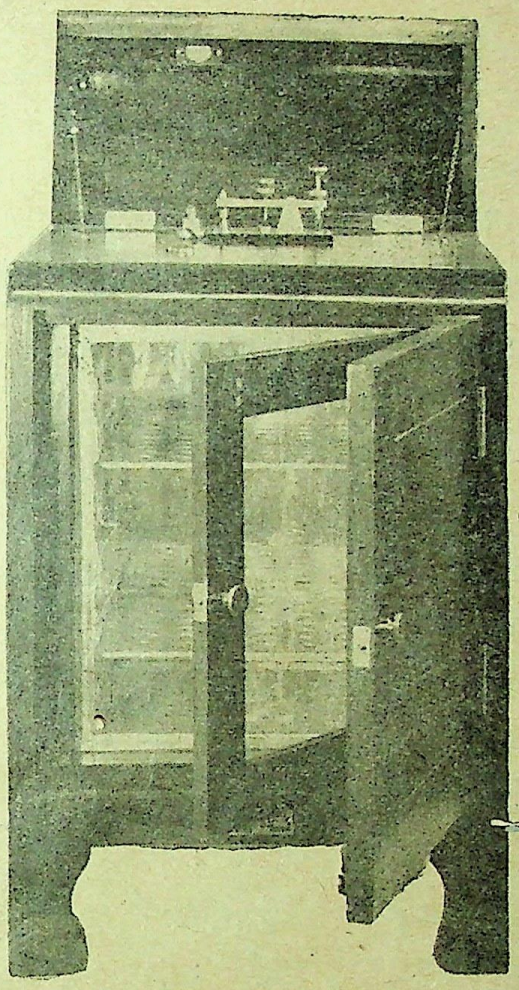

साइको इनक्यूबेटर

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिये कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामअौतार अग्रवाल
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा
मूल्य ३·२५ नये पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी
मूल्य ४·२५ नये पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र
मूल्य ३·५० नये पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेंसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** :
मूल्य २·५० नये पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

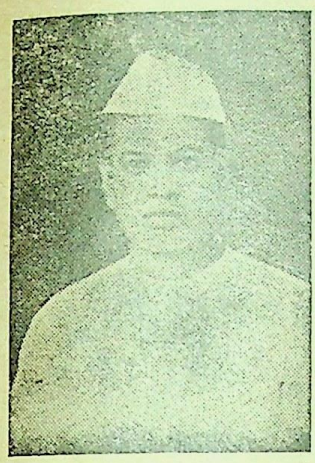

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं:—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश विदेश के विद्वान् तथ प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

केश विन्यास

की पूर्णता

के लिये...

गोल्डेन आमला

केश तैल

बंगाल केमिकल

कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे! मूल्य २·५०।

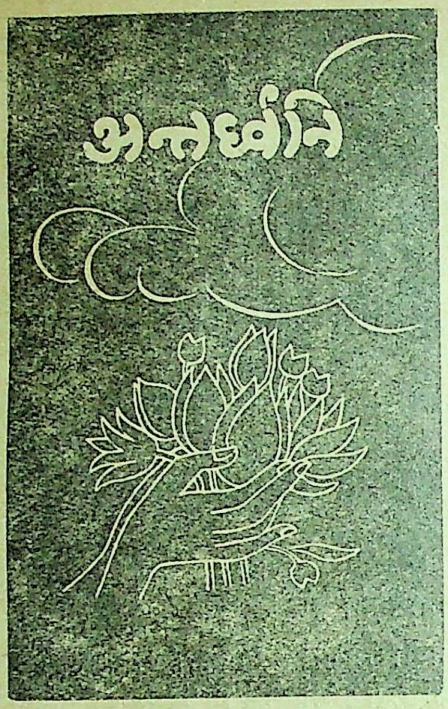

देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों का साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।

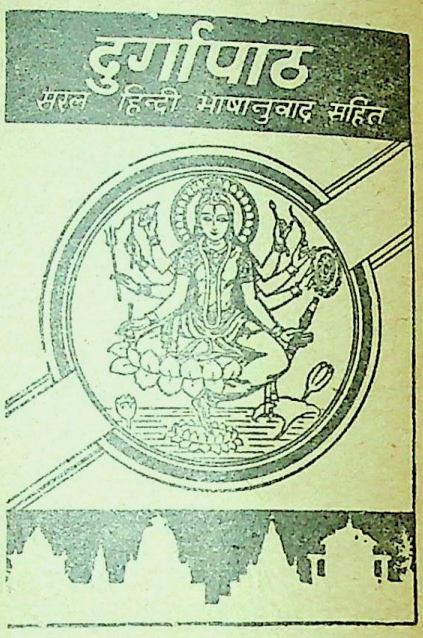

सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित

राय साहब श्री राधामोहनलाल बी० ए० (रिटायर्ड जज चीफ कोर्ट जयपुर) और जस्टिस हरिश्चंद्र बैरिस्टर-एट्-ला (रिटायर्ड जज हाईकोर्ट प्रयाग) द्वारा संशोधित बड़े आकार के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में जगदम्बा के दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध ७०० मन्त्रों का मूल संस्कृत समेत छन्दोबद्ध हिन्दी रूपान्तर है। मूल के साथ मातृका स्तुति और सप्तशती पाठविधि, देवी-कवच, अर्गलास्तोत्र, कीलकस्तोत्र और तीनों चरित्र हैं। अन्त में तीनों रहस्य हैं। जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी सप्तशती का मर्म इस उपयोगी ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। मूल्य केवल दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुस्त, तंदुरुस्त और तरोताज़ा...यह है लाइफ़बॉय से स्नान का आनंद!
और जब आप इस के स्नान के आनंद में मग्न होते हैं लाइफ़बॉय साबुन मैल में
छिपे कीटाणुओं को धो डालता है...ऐसे कीटाणु जिन से हम किसी प्रकार
भी बच नहीं पाते! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा!

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ!

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

S 29-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वेदव्यास के महाभारत का अक्षरशः अनुवाद। अगणित रंगीन और सादे चित्रों सहित नयनाभिराम ग्रंथ है। सभी के लिए उपयोगी है। १० जिल्दों का मूल्य ८०) अस्सी रु०।

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

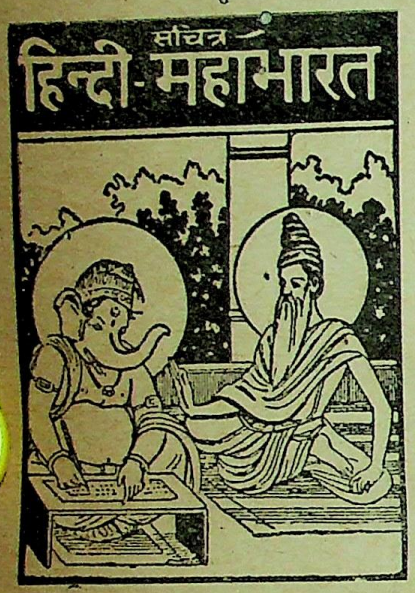

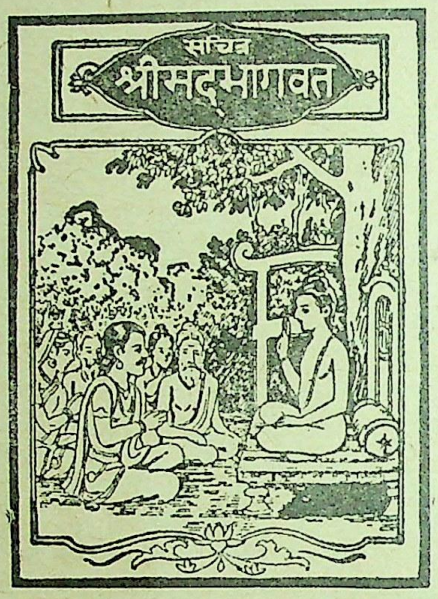

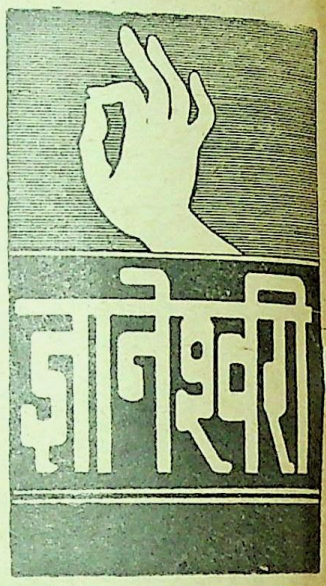

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य

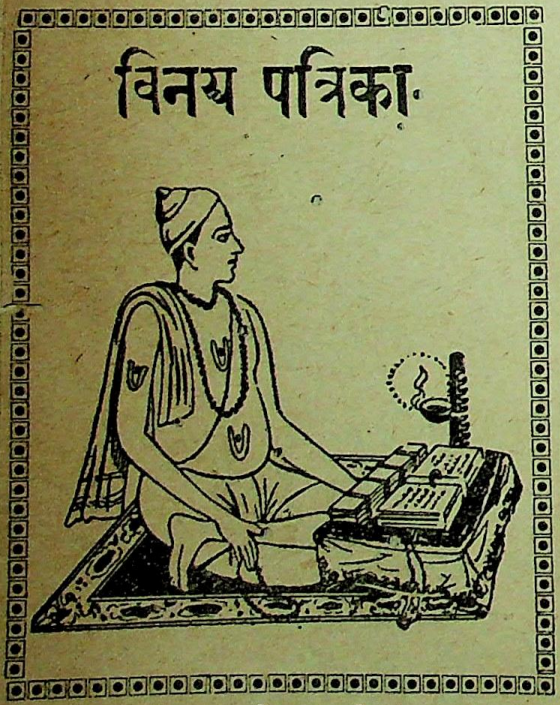

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।

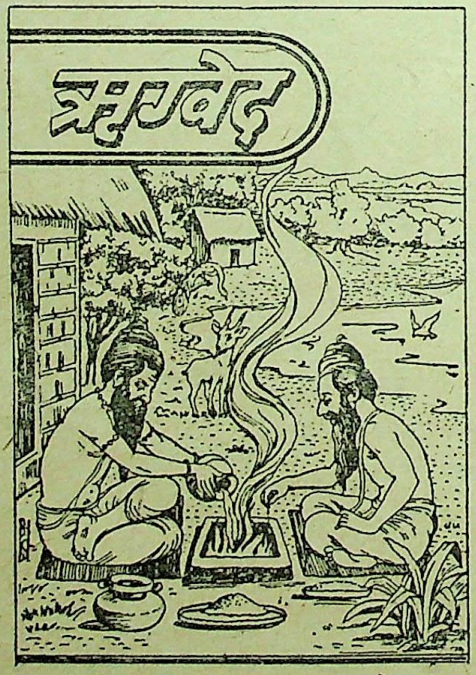

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)

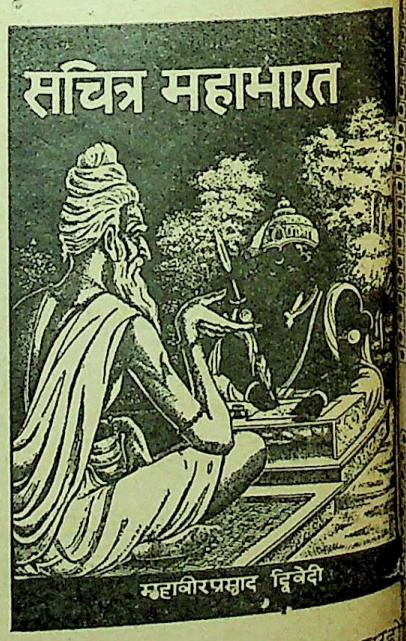

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।

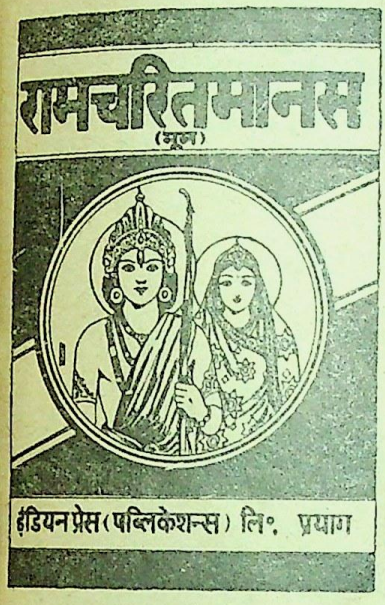

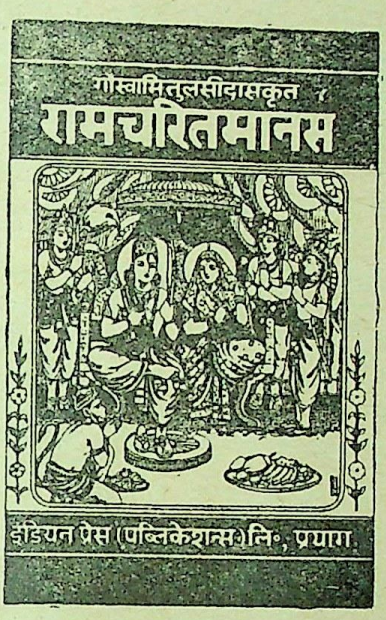

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्याकाण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

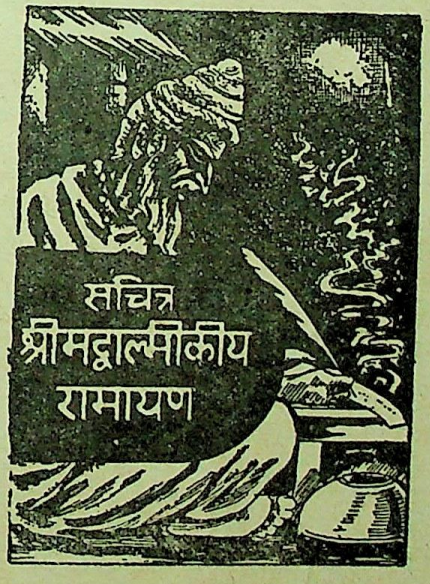

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न० पै० प्रति भाग है।

इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

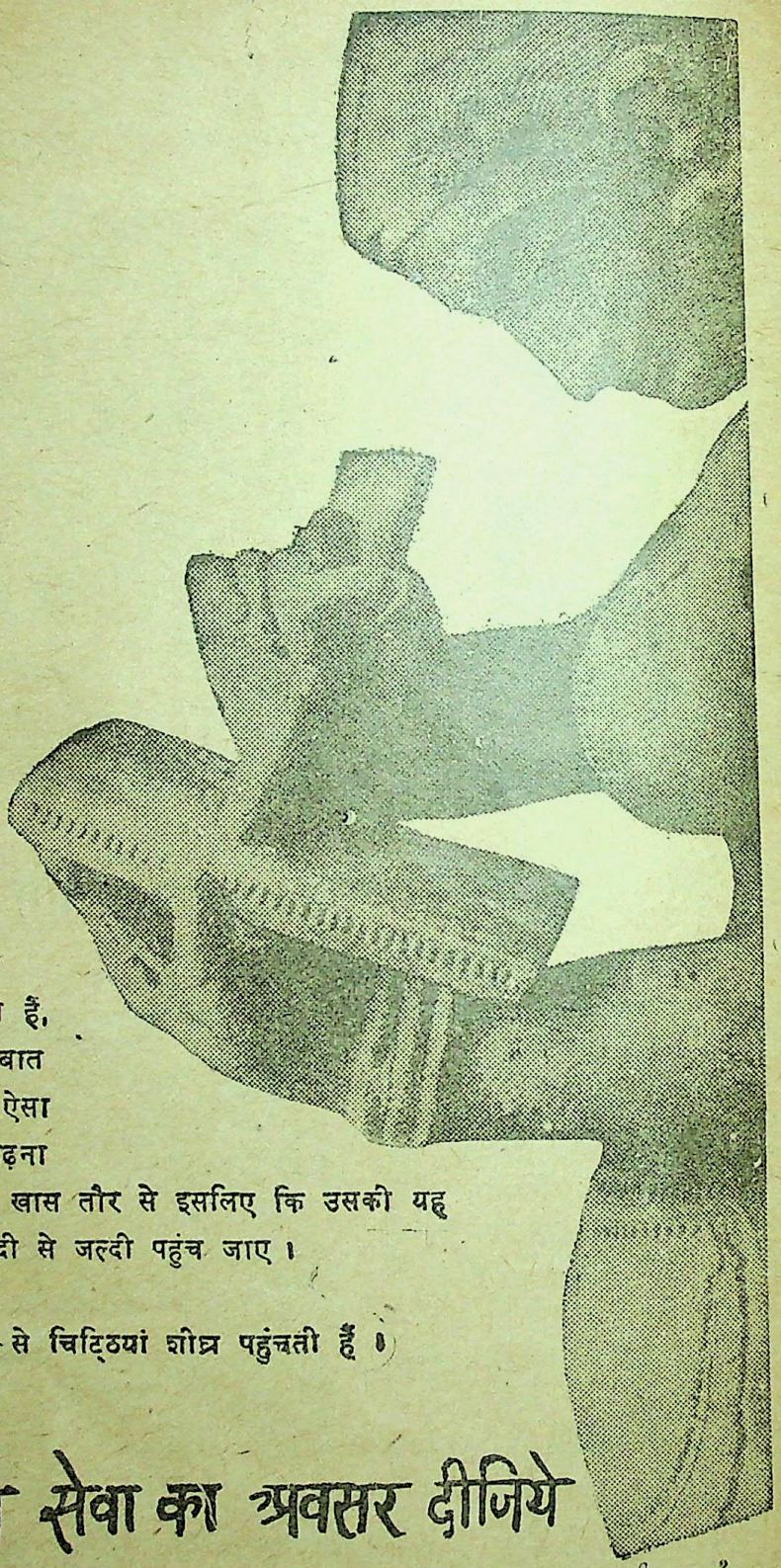

निजी बात...

आप अपने पत्र में क्या लिखते हैं, यह आपकी बिल्कुल निजी बात है, पर पत्र का एक भाग ऐसा भी है जिसे डाकिये को पढ़ना होता है। वह है — पता। खास तौर से इसलिए कि उसकी यह कोशिश रहती है कि पत्र जल्दी से जल्दी पहुंच जाए।

साफ और पूरे पते से चिट्ठियां शीघ्र पहुंचती हैं।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिये

डाक-तार विभाग

DA 62/380

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास

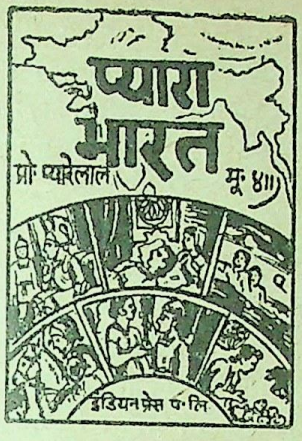

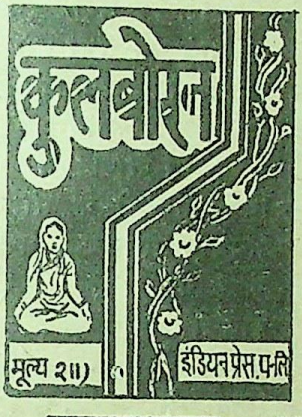

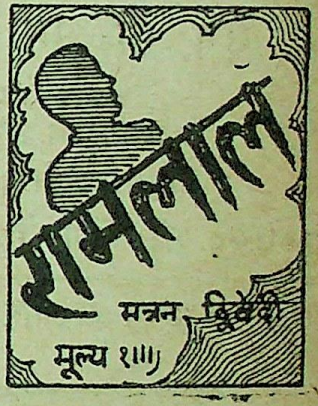

नाटक प्रहसन

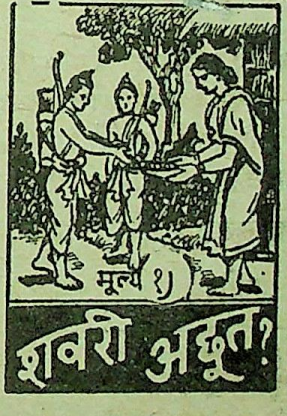

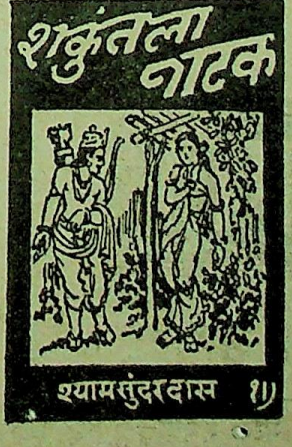

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Sunkuri Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व भारतीय दवाइयों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है। पीलिया, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य

औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

डा०एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

"भारत सरकार से रजिस्टर्ड"

सफेद दाग

सतत परिश्रम एवं खोज के बाद सफेद दाग की औषधि का निर्माण किया गया है। हजारों ने इसका अनुभव करके लाभ उठाया है। दवा का मूल्य ६) रुपया। विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मुफ्त मँगाकर देखें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (सर०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (महाराष्ट्र)

सरस्वती में

देकर लाभ उठाइए

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)	.. ५.००		
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२.७५		
पत्रावली (विवेकानन्दजी के स्फूर्तिदायक पत्र) —प्रथम भाग	५.२५		
पत्रावली (,,) —द्वितीय भाग	४.२५		
विवेकानन्दजी के संग में	.. ५.२५		
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	.. १.५०		
जाति, संस्कृति और समाजवाद	.. १.२५		
विवेकानन्दजी की कथाएँ	.. १.६०		
स्वाधीन भारत ! जय हो !	.. १.५०		
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)	.. १.५०		
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	.. १.२५		
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	.. १.३७		
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	.. १.१५		
हिन्दू धर्म के पक्ष में	.. ०.७५		
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	.. ०.९०		
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ	.. ०.८७		
कर्मयोग	.. १.४०	भक्तियोग	.. १.५०
राजयोग	.. ३.००	ज्ञानयोग	.. ३.००
प्रेमयोग	.. १.३७	सरल राजयोग	०.५०
हिन्दू धर्म	.. १.५०	धर्मरहस्य	१.२५
धर्मविज्ञान	.. १.६२	शिकागो वक्तृता	०.६२
प्राच्य और पाश्चात्य	१.२५	मरणोत्तर जीवन	०.५०
विविध प्रसंग	.. १.१२	चिन्तनीय बातें	१.००
मेरे गुरुदेव	.. ०.६२	भारतीय नारी	०.७५
शिक्षा	.. ०.६२	मेरा जीवन तथा ध्येय	०.५०
कवितावली	.. ०.६२	हमारा भारत	०.६५
पवहारी बाबा	.. ०.५०	ईशदूत ईसा	०.४०
वर्तमान भारत	.. ०.५०	मन की शक्तियाँ	०.४०
विवेकानन्दजी के उद्गार (पॉकेट साइज)	..		०.६५
शक्तिदायी विचार (,,)	..		०.६२
मेरी समर नीति (,,)	..		०.६५
विवेकानन्द चरित—सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत	..		६.००

श्रीरामकृष्ण-साहित्य एवं अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलामृत : (दो भागों में) प्रत्येक भाग ५.००

श्रीरामकृष्णवचनामृत : नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग ६.५०; द्वितीय भाग ६.००; तृतीय भाग ७.००

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी की विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट सहित ४.५०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ चुने हुए उपन्यास

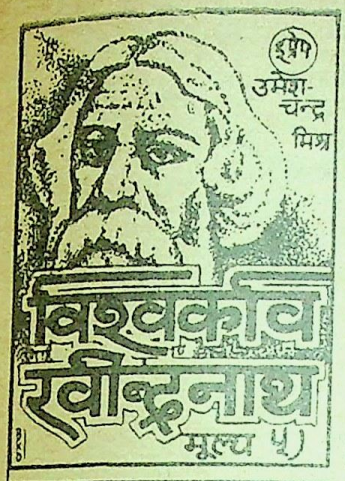

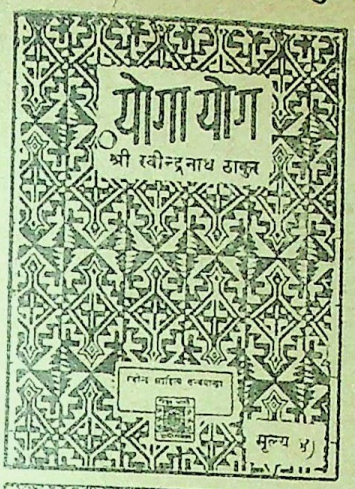

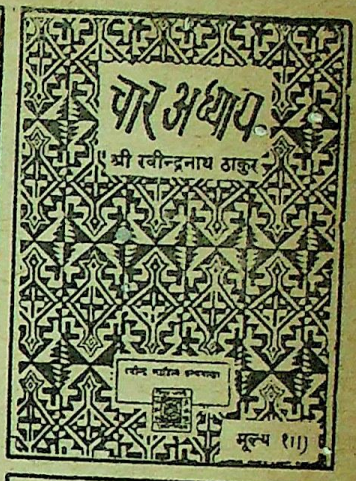

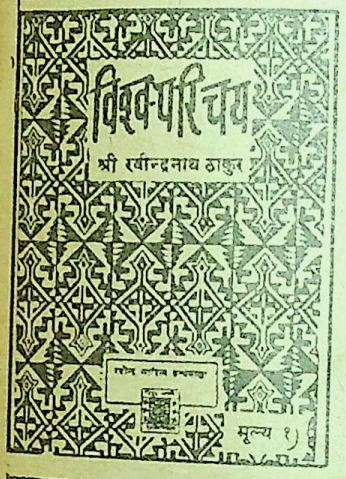

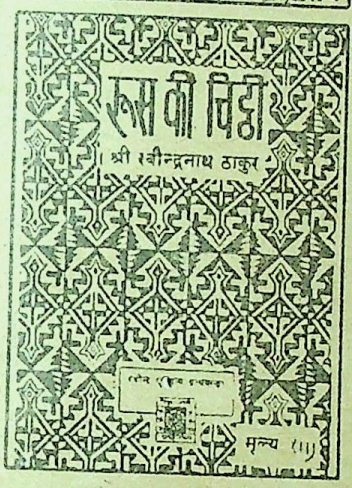

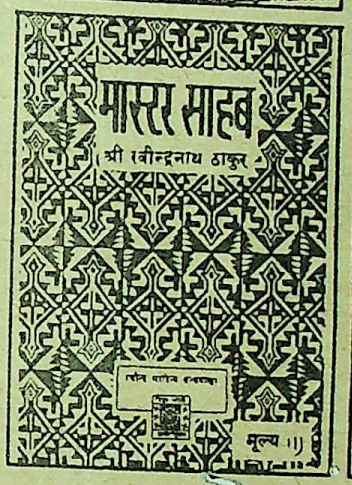

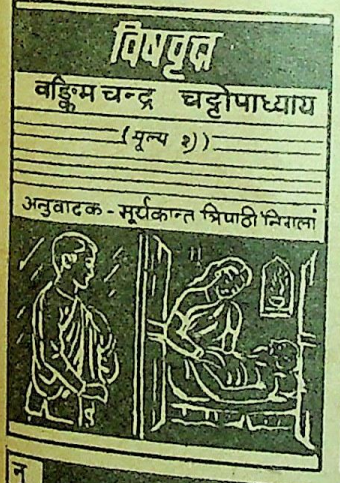

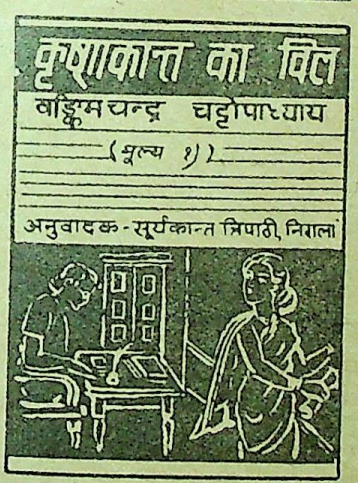

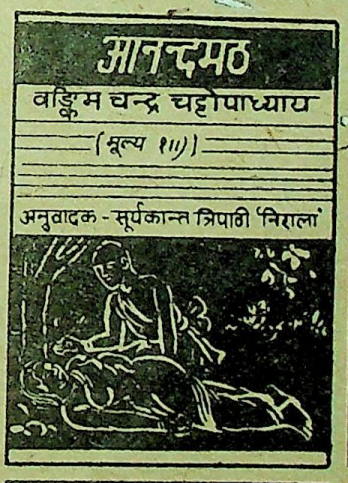

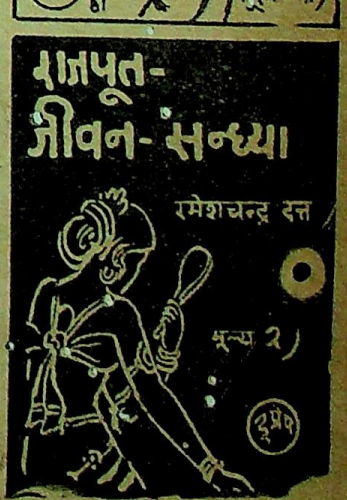

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

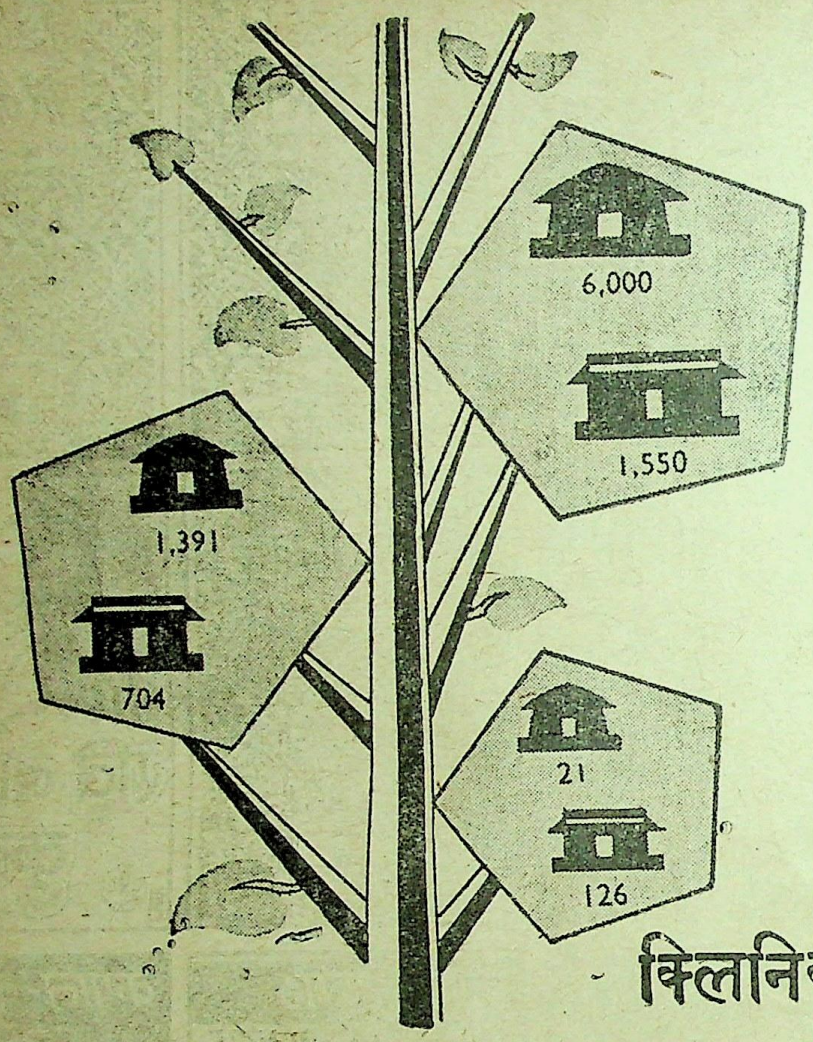

क्लिनिक-सुविधाओं का विस्तार

भारत ने १९३० में एक साहसपूर्ण प्रयोग किया था जबकि तत्कालीन मैसूर सरकार ने संसार का पहला सरकारी संतति-निरोध-केन्द्र खोला था। पर परिवार नियोजन आन्दोलन की तब तक कोई खास प्रगति नहीं हुई जब तक कि पहली पंचवर्षीय योजना काल में यह जनता का कार्यक्रम न बन गया। दूसरी योजना शुरू होने के समय २१ ग्रामीण और १२६ शहरी केन्द्र थे। मार्च, १९६२ में ग्रामीण केन्द्रों की संख्या १३९१ और शहरी केन्द्रों की संख्या ७०४ तक पहुँच गई। तीसरी योजना के अंतर्गत ६,००० ग्रामीण, और १५५० शहरी केन्द्र खोलने का लक्ष्य रखा गया है।

सुख-स्वास्थ्य का साधन

परिवार नियोजन

सरकार द्वारा मान्य पास के

परिवार नियोजन केन्द्र

से सलाह लीजिए।

DA 62/371

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

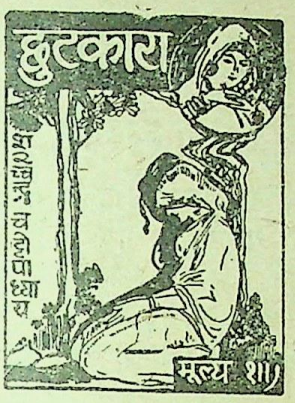

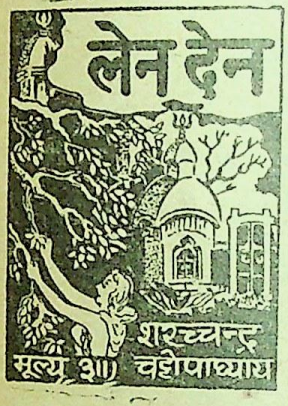

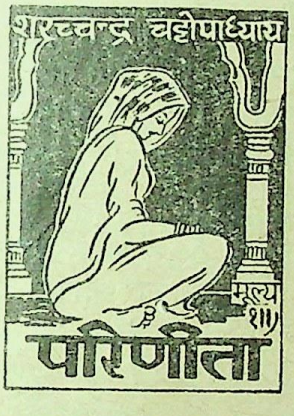

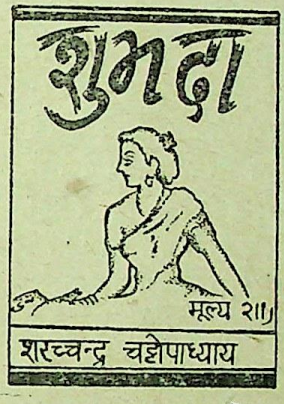

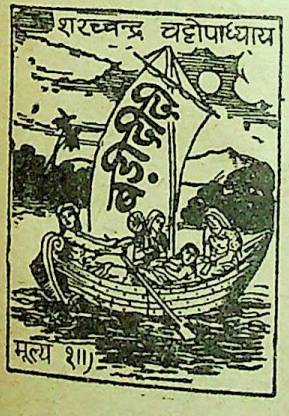

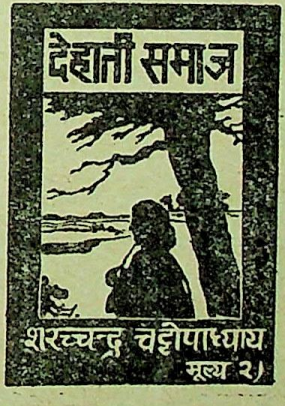

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपबिलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूँदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्र आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मँगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपबिलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे बी० पी० द्वारा मँगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आने, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपये चार आने डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दाँत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आने डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खाँसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आने डाकखर्च अलग।

रूपबिलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियाँ वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ होकर चेहरा दमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर बर/वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपये डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बा ।।।) बारह आने डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आँखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण नजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आने डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७।) सात रुपये आठ आने और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपये दो आने डाकखर्च अलग।

रूपबिलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है। खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आने डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं। खाना हजम करती हैं पेट साफ रखती हैं। मूल्य १ शीशी २।) दो रुपये आठ आने, बड़ी शीशी ४।) चार रुपये आठ आने डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर कर रंग में मिला देती है। मूल्य प्रति शीशी ३।) साढ़े तीन रुपये, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपबिलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन काव्य-कृतियाँ

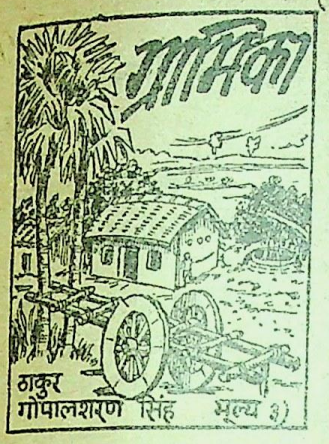

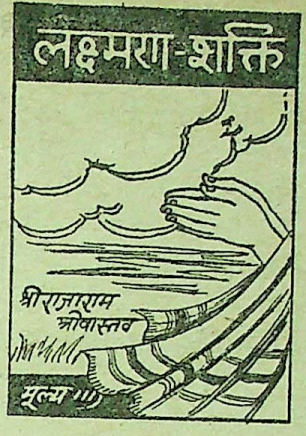

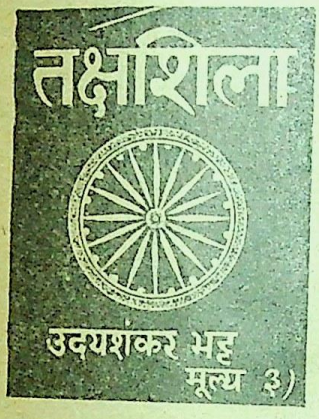

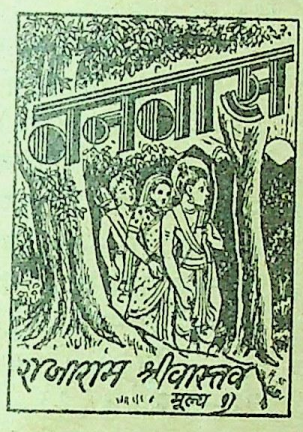

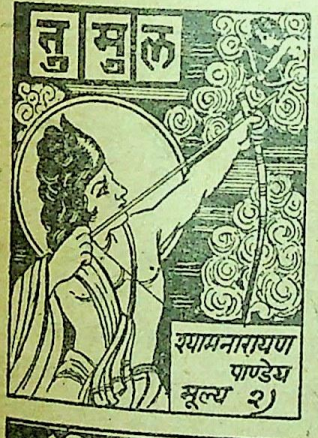

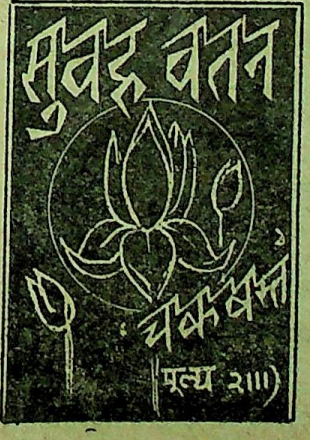

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१—सम्पादकीय ४२५
२—श्रीलक्ष्मी-स्तव ४३३
३—नयी लक्ष्मी (कविता)—श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त) ४३४
४—गीत—श्री श्रीकान्तप्रसादसिंह .. ४३४
५—दीपक : एक सांस्कृतिक प्रतीक—प्रो० गोपालजी 'स्वर्णकिरण' ४३५
६—अष्टाध्यायी में गणतंत्र राज्यों का उल्लेख—श्री गुलाबलाल श्रीवास्तव .. ४३७
७—आस्था का दीप (कविता)—प्रो० आनन्द-नारायण शर्मा ४४०
८—सव्यसाची कवि—प्रो० कुबेरनाथ राय एम. ए. ४४१
९—दिवाली—दार्शनिक की कुटिया में—श्री साँवलराम पोद्दार 'निर्गुण' .. ४४७
१०—हिन्दी के भाषा-विज्ञान की आवश्यकता—डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्० .. ४४८
११—गणितज्ञ कवि भास्कराचार्य—श्री चन्दभानु त्रिपाठी ४५२
१२—पंजाब में रचित जैन संस्कृत साहित्य—श्री अगरचन्द नाहटा ४५४
१३—दीपराग (गीत)—श्री बालकिशन गर्ग ४५७
१४—महालक्ष्मी का आविर्भाव (कविता)—कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ४५८
१५—हाइड्रोजन (उद्जन) बम—श्री सुरेशचन्द्र गौड ४५९
१६—सौरमंडल के बाहर की यात्राएँ व प्लूटो ग्रह—डा० अरविंदमोहन ४६२
१७—अंतिम घन (कविता)—श्री बीरबल महतो ४६४
१८—इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (१)—पं० ब्रजमोहन व्यास .. ४६५
१९—प्यासा रहने दो (क०)—श्री सन्तकुमार टंडन ४७०
२०—ज्ञानदीपिका—डॉ० सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे एम० ए०, डी०-लिट्० .. .. ४७१
२१—पश्चिमी योरप के छः देशों का साझा बाजार और भारत—पं० वेंकटेशनारायण तिवारी ४७७
२२—अप्राकृतिक प्रणय और मुस्लिम सन्त परम्परा—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन ४७९
२३—आँगनों के बीच—(१) क्या आपका बालक रात को—श्रीमती शीला शर्मा .. ४८१
(२) बची ऊन और ट्वीड बिनाई का पुलओवर ४८३
२४—धूप घेरे हुए (क०)—श्रीशिवेन्द्रकुमार 'परिवर्तन' ४८३
२५—राजस्थान में गोवर्द्धनपूजा—श्री महेन्द्र भनावत ४८४
२६—अध्यापक अयोध्याप्रसादजी का वसीयत-नामा—डा० श्यामसुन्दर व्यास .. ४८५
२७—द्रोणाचार्य की अन्तिम रात्रि—श्री सुरेशचन्द्र ४८७
२८—देखा-सुना (३)—श्री मनमोहन गुप्त ४९१
२९—चीन का परिचय ४९५
३०—युद्धक्षेत्र (१) ४९८
३१—नवीन प्रकाशन ५०१ ३२—मनोरंजक संस्मरण ५०४

नित्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ

गौरी माँ

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की संन्यासिनी शिष्या का अपूर्व जीवनचरित

श्रीदुर्गापुरी माताजी रचित।

हिन्दी अनुवादिका अध्यापिका श्री लावण्यप्रभा राय, एम० ए०

गौरी माँ का जीवन बहुमुखी गुणों से सम्बद्ध था। वे एकाधार में परिव्राजिका, तपस्विनी, कर्मी और आचार्या थीं। एक ही चरित्र में भक्ति और कर्म, तेजस्विता और स्नेहवात्सल्य का मिलन सचमुच अपूर्व है। घटनावली चित्त को मुग्ध कर देती है। गौरी माँ का अलोक-सामान्य जीवन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

मूल्य—एक रुपया आठ आना।

प्राप्तिस्थान—श्री श्री सारदेश्वरी आश्रम
२६ महाराणी हेमन्तकुमारी स्ट्रीट, कलकत्ता ४
'बुक्स', २३ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

भारत सरकार से 'रजिस्टर्ड'

सफेद दाग

यह हमारी दवा सन् १९३६ से प्रसिद्ध है। इस दीर्घकाल में हजारों ने इसकी परीक्षा करके हमें प्रशंसा पत्र भेजे हैं। आप भी एक बार अनुभव कर देखिये। दवा का मूल्य ५) रु०, डाक व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगाकर देखिए। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य के० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन (सर०)
मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

श्रीमद्भागवद्गीता

गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ।।) मात्र रक्खा गया है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

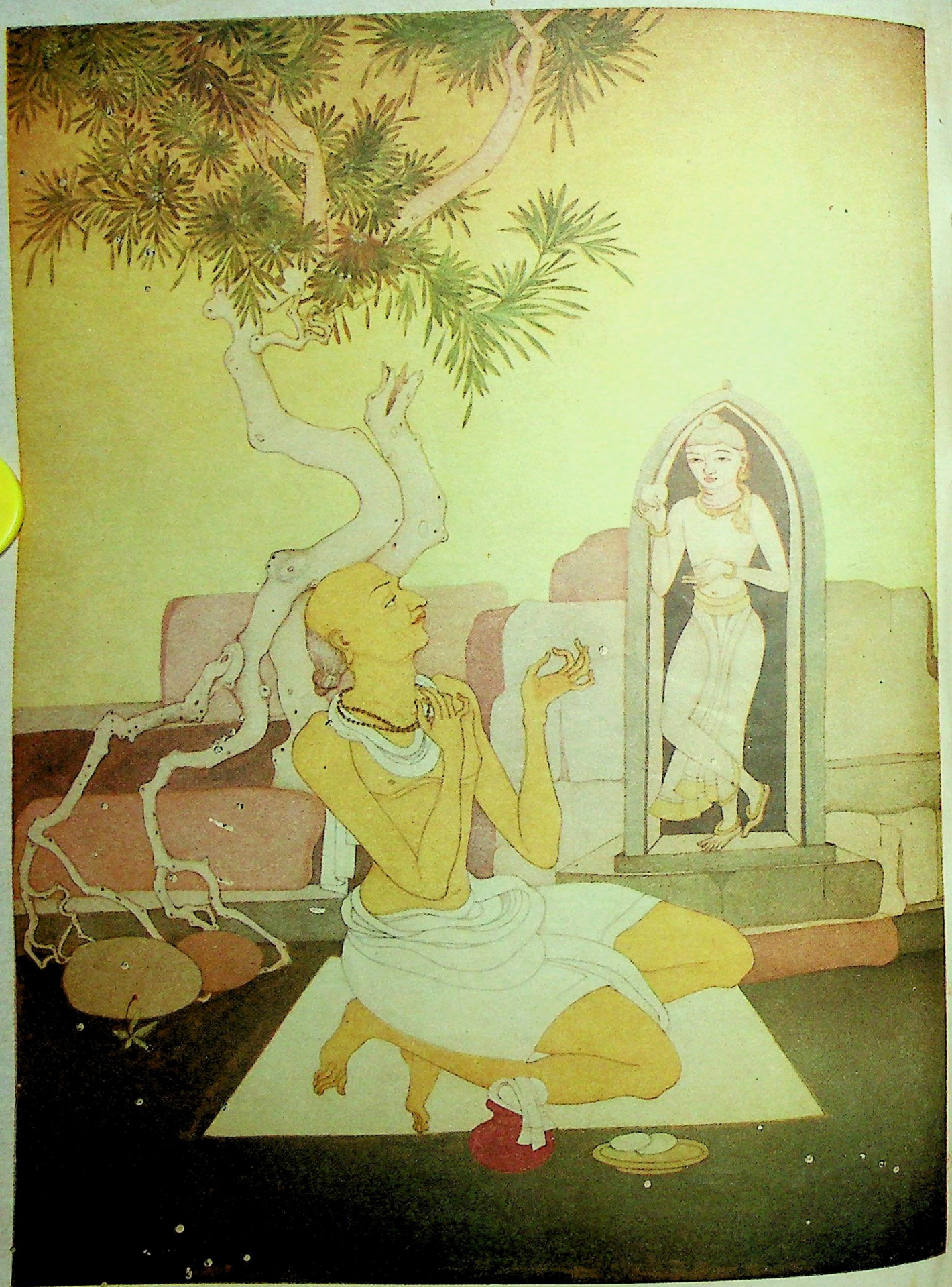

सनातन गोस्वामी और भगवान मदनमोहन

—चित्रकार क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६३
पूर्ण संख्या ७५५

इलाहाबाद : नवम्बर १९६२ : कार्त्तिक २०१९ वि०

खण्ड २
संख्या ५

सम्पादकीय

भारत की अग्नि-परीक्षा—भारत पर वास्तविक रूप में अंतिम विदेशी आक्रमण मुहम्मदशाह रँगीले के राज्यकाल में हुआ था। सन् १७३९ में नादिरशाह ने और १७४६ में अहमदशाह दुर्रानी ने भारत पर आक्रमण किया था। अँगरेजों की लड़ाइयाँ गृहयुद्ध के समान मालूम होती थीं क्योंकि विदेशी होने पर भी उनके सैनिक अधिकतर भारतीय होते थे और उनके पैर यहाँ पहले ही से जमे हुए थे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भारत ने अपनी तलवार अंतिम बार खींची थी, पर वह भी अर्धखिची ही रह गयी। अँगरेजी शासन में "पैक्स ब्रिटैनिका (ब्रिटिश शान्ति) के कारण देश अपनी तलवार को भूल गया। एक शताब्दी से अधिक की लम्बी अवधि में देश में युद्ध नहीं के बराबर हुए। यद्यपि संसार में इस बीच दो महायुद्ध और कितने ही छोटे-मोटे युद्ध हुए और भारतीय सैनिकों ने उनमें से कई में भाग भी लिया, तथापि देश में शान्ति बनी रही और जनता युद्ध की विभीषिका को भूल गयी। हमारा स्वतन्त्रता-आन्दोलन मुख्य रूप से अहिंसक रहा, और हमने अहिंसा को इतना महत्त्व दिया कि हम शान्ति के सबसे बड़े पुरोहित हो गये। हमारे कुछ अहिंसावादी नेता सेना को भी भंग करने की सलाह देने लगे और विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए हमारे कुछ लोकप्रिय नेताओं ने 'शान्ति सेना' तक बना डाली। कहने का तात्पर्य यह कि हमारे देश में शान्ति और अहिंसा का ऐसा वातावरण बन गया जिसने हमारे मस्तिष्क को सम्मोहित कर दिया और हम 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे' के स्वयंसिद्ध सिद्धान्त को ही नहीं, यह बात भी भुला बैठे कि स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सतत जागरूकता की और सैनिक बल की अनिवार्य आवश्यकता है। हम क्षात्र धर्म को भुलाकर वणिक वृत्ति के चेरे हो गये। हमने अपनी इस कल्पना को सत्य समझ लिया कि नये युग में युद्ध असंभव है और सब संसार शान्ति का पुजारी है। हमारा पंचशील का सिद्धान्त पंचशिला हो गया जिससे टकराकर हमारे स्वप्न का पोत चकनाचूर हो गया।

शान्ति, पंचशील, विश्वमैत्री, तटस्थता, भाई-भाई-वाद, सस्ती मौखिक मित्रता आदि के अपने ही बनाये हुए मकड़ी के जालों से घिरकर हम कल्पित सुरक्षा की नींद में पड़े हुए अपने नीड़ को सुखद बनाने का स्वप्न देख रहे थे। चीन की तोपों, मॉर्टरों, स्वयंचालित राइफलों और हथगोलों ने सहसा हमारी मोहनिद्रा भंग कर दी। हम एक ही झटके में वास्तविक जगत् में आ गये। भारत की शतियों-लम्बी शान्ति भंग हो गयी। भवानी ने जो तलवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छत्रपति को दी थी, और जिसे हमने विस्मृति के गर्त में जंग लग जाने के लिए फेंक रखा था, उसकी हमें आज फिर याद आयी है। आज हमें उसकी आवश्यकता का बोध हुआ है। शतियों की इस गहरी जड़ता को मिटाने के लिए ऐसे ही करारे धक्के की आवश्यकता थी। भारत स्वतंत्र अवश्य हो गया, किंतु वह उस अग्नि में होकर नहीं गुजरा जिसमें गुजरे बिना स्वतंत्रता उसी तरह दृढ़ नहीं होती जिस प्रकार बिना अग्नि में तपाये लोहे में दृढ़ता नहीं आती। हम चाहें या न चाहें, वह अग्निदीक्षा अब हमें लेनी ही पड़ेगी। और जब हमें उसे लेना ही है, तब अच्छा यही होगा कि हम विधिपूर्वक और पूरी निष्ठा से उसे लें। इस अग्निदीक्षा में हमें उस पूरी विभीषिका का सामना करना होगा जो आधुनिक संहारी और भयकर अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित एक नृशंस शत्रु उत्पन्न कर सकता है। हमें बलिदान और कष्ट सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

यह युद्ध भारत की अखंडता और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए है, किंतु तात्कालिक ध्येय देवतात्मा, नगाधिराज हिमालय की रक्षा करना है। हिमालय भारत का मस्तक है। क्या हम हिमालय-हीन भारत की कल्पना कर सकते हैं? क्या हम मस्तकहीन भारत माता का चित्र अपने मानस-पटल पर उतार सकते हैं? अतएव हिमालय की रक्षा हमारा पवित्र कर्तव्य है। किंतु हिमालय विशाल है। हिमालय महान् है। हिमालय पृथुल है। उसकी रक्षा के लिए देश को उसके आकार के अनुरूप ही महान् प्रयत्न करना होगा। उसके अनुरूप ही विशाल हृदय का परिचय देना होगा, और उसीकी पृथुलता के समकक्ष त्याग और बलिदान करना होगा। अनादिकाल से हिमालय ने भारत की रक्षा की है। उसने हमें गंगा की दिव्य धार दी। उसने अगणित नदियाँ दीं। आज 'हम' जो कुछ हैं, उसीके कारण हैं। वह हमारी संस्कृति, हमारे दर्शन, हमारी विचार-सरणी का मूलाधार है। यदि वह नहीं है, तो भारत नहीं है। आज प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह अपना सर्वस्व उसकी रक्षा में होम दे। हम नित्यप्रति गीता की बात करते हैं। आज उसके उपदेश को चरितार्थ करने का अवसर आया है। आज देखना है कि हम तोते की तरह भगवान् कृष्ण के ये वाक्य दुहराते ही रहे हैं या उसे चरितार्थ करने का भी साहस रखते हैं कि—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय! युद्धाय कृतनिश्चयः॥

काला संशोधन स्थगित किया जाय—प्रधान मंत्री ने अपने आकाशवाणी के भाषण में चीन के आक्रमण के संकट काल में सब वाद-विवादों को बंद करने की अपील की है। हम उनसे शत-प्रतिशत सहमत हैं। इस समय हमें सब मतभेद भुलाकर और एकनिष्ठ होकर देश की रक्षा में जुट जाना चाहिए। हमें सब मतभेद समाप्त कर देने चाहिए। किंतु सरकार का भी यह कर्तव्य है कि जब तक यह संकट देश के सामने है तब तक वह भी कोई ऐसा विवादग्रस्त विषय न उठावे जिससे जनता का तीव्र विरोध हो। संविधान का प्रस्तावित संशोधन, जिसमें अनिश्चित काल के लिए अंग्रेजी को देश की सहयोगी राजभाषा बनाने का प्रस्ताव है, संसद के अगले अधिवेशन में प्रस्तुत करने की बात है। सरकार जानती है कि हिंदी-भाषी क्षेत्र ही में नहीं, अन्यत्र भी इसका तीव्र विरोध है। क्या सरकार प्रधान मंत्री की उपर्युक्त अपील को ध्यान में रखकर यह उचित नहीं समझती कि इस संकट के समय इस विवाद-ग्रस्त समस्या पर विचार स्थगित कर दिया जाय?

उँगली पकड़ ली—आगे पहुँचे की बारी—हिंदी के लिए रोमनलिपि का सीमित उपयोग। यह देश का दुर्भाग्य है कि हमारे देश में कुछ ऐसे लोग हैं जो अल्पमत में हैं, और देश के बहुमत से अलग रहना जिनका ध्येय है। वे किसी भी तत्कालीन हवा का लाभ उठाकर बहुमतवालों को डरा-धमकाकर अपनी बात मनवाने की चेष्टा करते रहते हैं। इसका एक उदाहरण हमारे सामने अभी हाल ही में आया है। डा० सम्पूर्णानन्द की भावनात्मक एकता समिति की रिपोर्ट सरकार के पास पहुँच गयी है। वह अभी प्रकाशित नहीं हुई किंतु उसकी सिफारिशों का संक्षिप्त विवरण समाचारपत्रों में प्रकाशित हो गया है। उन पर हम अपनी सम्मति तब देंगे जब रिपोर्ट प्रकाशित कर दी जायगी। किंतु प्रकाशित सिफारिशों में एक ऐसी सिफारिश है जिस पर हम तुरन्त अपना मत प्रकट कर देना चाहते हैं क्योंकि हमें भय है कि यदि हमने इसी समय अपना मत व्यक्त न किया तो बाद में यह कहा जा सकता है (जैसा कि एक दूसरे मामले में कहा गया है) कि किसी हिंदीवाले ने उस समय उसका विरोध नहीं किया जब वह बात पहिली बार कही गयी थी। वह आपत्तिजनक सिफारिश यह है कि समिति ने किन्हीं प्रान्तों और परिस्थितियों में हिंदी को देवनागरी लिपि के बजाय रोमन लिपि में लिखने और सीखने की छूट दे दी है। इस समिति में दो-तीन सज्जनों को छोड़ कर शेष सदस्य ऐसे नहीं थे जिन्हें हिंदी का प्रेमी कहा जा सके। अतएव उस समिति से हमें हिंदी के हित की आशा भी नहीं थी। किन्तु हम यह भी नहीं सोचते थे कि वे उसका अहित करने की कोई बात कहेंगे। हमारे यहाँ कहावत है—उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना। सो, सीमित क्षेत्र में हिंदी को रोमन लिपि में लिखने की अनुमति देना रोमन लिपि को हिंदी की उँगली पकड़वाने के समान है। वह थोड़े दिनों बाद हिंदी का पहुँचा पकड़ लेगी। तब यह कहा जायगा कि उनके लिए हिंदी की पाठ्य पुस्तकें रोमनलिपि में तैयार की जायँ। फिर कहा जायगा कि ऐसे हिंदी जाननेवालों के पढ़ने के लिए साधारण हिंदी साहित्य भी रोमन में तैयार किया जाय, और जब वे सरकारी सेवा में आ जायें तब उन्हें सरकारी काम-काज में यदि हिंदी लिखनी पड़े तो उन्हें रोमनलिपि में लिखने की छूट मिले क्योंकि वे देवनागरी लिपि जानते ही नहीं। हम जानते हैं कि एक विशेष वर्ग के कानूनी-भारतवासी अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा मानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और उनमें श्रेष्ठता की भावना इतनी अधिक है कि वे देवनागरी सीखना अपनी शान और संस्कारों के विरुद्ध समझते हैं। वे देश में अंग्रेजी और रोमन का प्रचार चाहते हैं। वे स्वयं तो देशी भाषाएँ न सीखेंगे पर चाहेंगे यह कि सारा देश उनकी अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि को स्वीकार कर ले। उनके अतिरिक्त हमारे देश में कुछ ऐसे विद्वान् भी हैं जो रोमन लिपि के समर्थक हैं। अपने को 'उदार', 'प्रगतिशील' या 'अन्तर्राष्ट्रीय' कहनेवाले भी थोड़े से लोग हैं जिनमें भाषा की चेतना नहीं है और जिनमें अपनी मातृ-भाषा का ज्ञान वाजिब ही वाजिब है। और आजकल 'भावनात्मक एकता', 'सहकारिता' तथा 'अन्तर्राष्ट्रीयता' के "खुल समसम" हैं जिनके उपयोग से बहुमत से मनचाही बात करायी जा सकती है। यह सही है कि भाषा और लिपि दो भिन्न वस्तुएँ हैं। हिंदी फारसी लिपि में भी कभी-कभी लिखी जाती रही है। हमारे पास तुलसीदास की रामायण का एक काण्ड है जो सौ-सवा सौ वर्ष पहिले फारसी लिपि में लिखा गया था। किंतु उसको शुद्ध रूप से पढ़ना टेढ़ी खीर है। उसी प्रकार रोमन लिपि में लिखी हिंदी का शुद्ध रूप से पढ़ना अत्यन्त कठिन है। लिपि का विकास किसी भाषा की अभिव्यक्ति के लिए होता है और देवनागरी लिपि हिंदी, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं की आवश्यकतानुसार विकसित हुई है। अतएव आज हिंदी को देवनागरी से अलग करना राजनीतिक कलाबाजी भले ही हो, बुद्धिमानी नहीं है। यदि यह तर्क मान लिया जाय कि लिपि का भाषा से संबंध नहीं है और छोटे बालकों पर कई लिपियों का बोझ न लादना चाहिए तो क्या वे यह पसन्द करेंगे कि उत्तर प्रदेश के देहाती प्रारंभिक विद्यालयों की कक्षा ३ में जो अंग्रेजी 'अनिवार्य' करके उन पर लादी गयी है, वह उन्हें, उपर्युक्त तर्क के अनुसार, देवनागरी लिपि के माध्यम से पढ़ायी जाय? हमारे लिए जिस बैंगन को वे पथ्य बतलाते हैं वे उसे यह कह कर खाने को तैयार नहीं हैं कि वह उन्हें बादी करता है। हम डा० सम्पूर्णानन्द समिति के इस हिंदी के लिए अहितकर प्रस्ताव का तीव्र विरोध करते हैं। मातृभाषा तो अपनी ही लिपि में पढ़ी जायगी। अंग्रेजी इतनी महत्त्वपूर्ण है कि वह रोमन लिपि में पढ़ी जानी ही चाहिए। रह गयी हिंदी—उसे ये पढ़ने की कृपा करने को तैयार हैं किंतु 'आराम के साथ!' वह इनकी दृष्टि में इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है कि १८ करोड़ देशवासियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए देवनागरी लिपि में पढ़ी जाय—और ये रोमन में पढ़कर उसे विकृत करते रहें और बाद में हिंदी का शुद्ध उच्चारण करनेवालों के लिए कहें कि वे 'संस्कृटाइज्ड' और 'डिफिकल्ट' हिंदी बोलते हैं। यदि आप हिंदी पढ़ने की कृपा करते हैं तो इतना कष्ट और करें कि उसका ज्ञान उसकी सम्पूर्णता के साथ प्राप्त करें। तभी आपके हिंदी सीखने का कोई व्यावहारिक उपयोग हो सकेगा। आप 'सरस्वती' पढ़ सकेंगे और हमारे विचार जान सकेंगे क्योंकि 'सरस्वती' आपकी सुविधा के लिए 'रोमन' लिपि में न छपेगी!

चूड़ीदार पायजामा—प्रोफेसर जे० वी० हालडेन ने अभी हाल में एक प्रसंग में इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया है कि चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी को भारत ने अपना राष्ट्रीय परिधान बनाया है। उन्होंने कहा है कि वह विदेशी परिधान है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात सत्य है। यह भी सत्य है कि कितने ही भारतीय उसे पसन्द नहीं करते। भारत के राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् को भी हमने कभी इस "राष्ट्रीय" परिधान को पहिनते नहीं देखा—यद्यपि वे यदा-कदा विशेषकर विदेश में—पतलून पहिन लेते हैं। हमें भी चूड़ीदार पायजामा से विरक्ति है। उत्तर भारत की ग्रीष्म ऋतु में उस चिपके हुए पायजामा को पहिनना बहुतों के लिए अच्छी खासी यंत्रणा है। हमारे एक आदरणीय मित्र हैं। वे बड़े विद्वान् और वाग्मी हैं। वे प्रायः सदैव टाई समेत अंग्रेजी परिधान में रहते हैं। यदा-कदा धोती तो पहिन लेते हैं, किंतु चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी कभी नहीं। एक बार हमने उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा—"न तो कोट-पतलून हमारा परिधान है, और न चूड़ीदार और शेरवानी ही। यह हमारे गुलामी के स्मारक हैं। भेद केवल इतना ही है कि एक उन मालिकों की देन है जिनकी गुलामी से मुक्त हुए हमें कई शतियाँ बीत गयीं, और दूसरा उनकी देन है जिन्हें गये अभी कुछ समय ही बीता है। धोती-कुर्ता पहिनना 'दहकानियत' समझा जाता है। जब गुलामी के वस्त्र ही पहिनने हैं तो उन मालिकों के क्यों पहिनें जिन्हें समाप्त हुए शतियाँ बीत गयीं? और फिर अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से—जब आज हम हर बात में अंतर्राष्ट्रीयता की दुहाई देते हैं—हम अंग्रेजी पहिनावा ही क्यों न स्वीकार करें क्योंकि वह अंतर्राष्ट्रीय है?" हमें उनके इस तर्क का कोई उत्तर नहीं सूझा। एशिया में चीनी और जापानियों ने सेना तथा अन्य कार्यालय सम्बन्धी कामों के लिए पतलून और बंद गले के कोट को स्वीकार कर लिया है। हमारे देश में किसी कार्यालय में चले जाइये। या तो बंद कोट और पतलून, या पतलून और कमीज (या बुशशर्ट) पहिने हुए अधिकांश लोग मिलेंगे। हमारे जिन नेताओं के हाथ में परिधान आदि के निर्णय करने की शक्ति है वे अंग्रेज-पूर्व की 'तहज़ीब' और 'तमद्दुन' से इतने प्रभावित हैं कि उन्हें ऐसी बातों में—चाहे वह भाषा हो या पहिनावा हो—उसी युग की चीजें 'शायस्ता' मालूम होती हैं। नवाबी या शाही प्रभाव से आक्रान्त कुछ नगरों और कुछ विशिष्ट जातियों को छोड़ कर, चूड़ीदार अन्य स्थानों या वर्गों में लोकप्रिय नहीं है। वह इस देश की गर्म जलवायु के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। जनता के पास इतना पैसा नहीं कि वह घर के लिए धोती या पायजामा-कुर्ता, तथा दफ्तर के लिए कोट और पतलून के अतिरिक्त औपचारिक अवसरों के लिए चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी (वह भी जाड़े के लिए अलग और गर्मियों के लिए अलग) बनवाए, और फिर, अनभ्यास के कारण, पहिनते और उतारते समय चूड़ीदार पायजामा से कुश्ती लड़े। सरकार की बहुत सी योजनाएँ असफल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती हैं क्योंकि वे देश, काल और पात्र का विचार किये बिना ही, जबर्दस्ती, लाद दी जाती हैं। 'चूड़ीदार' की योजना भी उन्हीं असफल योजनाओं में से एक है। हमारी स्वतन्त्रता इतनी 'भारतीय' और 'समाजवादी' है कि अपने ही देश में जनता की 'धोती' प्रतिष्ठित (Respectable) नहीं समझी जाती। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और श्री अनन्तशयनम् आयंगार की कृपा से वह राष्ट्रपति-भवन और संसद में दिखलायी पड़ जाती है किंतु अपने अधिकार से और राजसम्मानित होकर नहीं। अभी हाल में अफ्रीका के नये स्वतंत्र देशों से जो राजकीय वर्ग के लोग आये वे अपने-अपने राष्ट्रीय परिधानों में थे। सऊदी अरब के बादशाह भी अपने राष्ट्रीय परिधान में थे। उन्हें अपने देशी परिधानों का—जो वहाँकी जनता पहिनती है न कि केवल एक विशिष्ट वर्ग—पहिनने में हीनता का बोध नहीं होता। किन्तु अपने देश में जनता का परिधान प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि हम सभ्य हैं और हमें अपनी 'मुश्तर्का तहजीब' बतलाने के लिए आवश्यक है कि हम जनता का परिधान स्वीकार न करके किसी विशिष्ट आभिजात्य वर्ग का परिधान स्वीकार करें। प्रोफेसर हालडेन के समान व्यक्तियों को ये बातें देखकर ठीक ही आश्चर्य होता है।

विश्वविद्यालयों के कर्णधार अँगरेजी का राग क्यों अलापते हैं?—गत मास दिल्ली में शिक्षा-मंत्री की अध्यक्षता में उपकुलपतियों का एक सम्मेलन हुआ था। प्रायः दस वर्ष पहिले डा० राधाकृष्णन् कमेटी ने विश्वविद्यालयों के सुधार पर प्रतिवेदन देते हुए इस बात पर जोर दिया था कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ हों। किन्तु अधिकांश विश्वविद्यालय इसका विरोध करते आ रहे हैं। इस सम्मेलन में शिक्षा-मंत्री ने कहा कि सरकार की नीति यही है कि मातृभाषाएँ या हिन्दी शिक्षा का माध्यम हों। उपकुलपतियों ने शायद केंद्रीय सरकार के रोब में आकर बड़े वाद-विवाद के बाद किसी तरह इसे सिद्धान्ततः मान तो लिया, किन्तु इस शर्त के साथ कि जिस प्रकार केंद्र में अँगरेजी 'एसोसिएट' (सखी) राजभाषा होने जा रही है, उसी प्रकार विश्वविद्यालयों में भी वह (अँगरेजी) शिक्षा के माध्यम की 'एसोसिएट' भाषा रहे—अर्थात् जो लोग अँगरेजी में पढ़ना या पढ़ाना चाहें, उन्हें अँगरेजी के माध्यम के प्रयोग की छूट रहे। दूसरी शर्त यह थी कि देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने में शीघ्रता न की जाय। यह काम धीरे-धीरे हो। उसके लिए कोई तिथि निर्धारित न की जाय। शिक्षा-मंत्री चाहते थे कि १९६५ के बाद से विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ हो जायँ, किन्तु उपकुलपतियों ने कोई समय निश्चित करना उचित नहीं समझा। परिणाम यह है कि यदि उपकुलपतियों का वश चला तो (सखी) अँगरेजी अनन्त काल तक चलती रहेगी। हिंदी माध्यम बनाने के विरोध में जो तर्क दिये जाते हैं, वे हम जानते हैं। कुछ भाषाओं में तो हिंदी से भी कम साहित्य है। अतएव इन तर्कों के रहते उपकुलपतियों के हाथों में अँगरेजी का हित सुरक्षित है। हाँ, यदि राजनीतिक कारणों से जनता के दबाव से राज्य सरकारें ही उन्हें विवश न करें तो वे मजे के साथ अपने जीवन-काल में अँगरेजी ही चलाते रहेंगे।

अँगरेजी माध्यम बनाये रखने के लिए एक बड़ा तर्क यह दिया गया कि यदि अँगरेजी माध्यम न रही तो अंतर्विश्वविद्यालय आदान-प्रदान बंद हो जायगा और एक राज्य के प्रोफेसर दूसरे राज्य में न जा सकेंगे। इस आदान-प्रदान का व्यावहारिक रूप क्या है? हिंदी क्षेत्रों में तो अहिंदी क्षेत्रों के कितने ही प्रोफेसर मिलेंगे। प्रोफेसर ही नहीं, उपकुलपति भी। किन्तु अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी क्षेत्रों के लोग मशाल लेकर ढूँढ़ने से भी न मिलेंगे। और विषयों को तो जाने दीजिए, केरल, तमिल और कन्नड़ प्रदेशों में हिंदी विभागों में भी हिंदी क्षेत्र के अध्यापक नहीं रखे जाते। १९५८ में हमने दक्षिण भारत की यात्रा की थी। उसी सिलसिले में हम केरल भी गये। वहाँ एक सभा में हमें आमंत्रित किया गया। उस समय केंद्रीय गृह विभाग ने केंद्रीय कर्मचारियों को हिंदी पढ़ाने के लिए एक योजना आरंभ की थी। दिल्ली से दो-चार उत्तर भारतीय चुनकर कोचीन, त्रिवेन्द्रम आदि में केवल केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिंदी पढ़ाने के लिए भेजे गये थे। उस सभा में हिंदी के एक प्रोफेसर ने इस बात की घोर निन्दा की और कहा कि "हमारे यहाँ उत्तर भारत से हिंदी पढ़ाने के लिए लोग क्यों भेजे जाते हैं? क्या हमारे यहाँ हिन्दी पढ़ाने के लिए शिक्षक मिल नहीं सकते?" और यह आलोचना हमारे मुँह पर ही की गयी थी! हिंदी क्षेत्रों में कितने ही उपकुलपति अहिंदीभाषी क्षेत्रों के नियुक्त किये गये हैं। आज भी वहाँ कितने ही उपकुलपति, प्रिंसिपल और प्रोफेसर अन्य क्षेत्रों के हैं—भावनात्मक एकता के लिए। किन्तु क्या वह एकता एकमार्गीय-इकतर्फा-रहेगी? क्या अन्य क्षेत्रों में हिंदीभाषी क्षेत्रों के उपकुलपति या प्रोफेसर नियुक्त करने की कल्पना की जा सकती है? या 'भावनात्मक' एकता तभी रहेगी जब हिंदी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में तो अहिंदीभाषी आकर अफसरी करेंगे, और हिंदी क्षेत्र के लोग उनके क्षेत्रों में 'अछूत' समझे जाते रहेंगे? इन अहिंदीभाषी उपकुलपतियों और प्रोफेसरों के कारण हमारी मातृभाषा हिंदी का जो अहित हो रहा है उसपर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया। वे स्वयं न हिंदी सीखते हैं और न अपनी 'विद्वता' का लाभ हिंदी क्षेत्र की जनता को दे सकते हैं। ऐसे भी अहिंदीभाषी उपकुलपति और प्रोफेसर हमारे हिंदी क्षेत्रों में मौजूद हैं जो पीढ़ियों से, या दस-बीस वर्ष भी यहाँ रहकर हिंदी में भाषण नहीं दे सकते। हिंदी लिखना तो बड़ी बात है। उनकी सुविधा के लिए हमारे यहाँ हिन्दी माध्यम नहीं हो पाती। वे अपने विद्यार्थियों में भी हिंदी के प्रति विराग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न करते हैं और उन्हें शोध तथा पुस्तक-प्रणयन आदि अँगरेजी में ही करने की प्रेरणा देते हैं। उनके कारण हमारे विश्वविद्यालयों में हिंदी का वातावरण बनने ही नहीं पाता। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे विश्वविद्यालयों के स्नातकों और प्रोफेसरों द्वारा हिंदी के ज्ञान-विज्ञान-साहित्य की जो वृद्धि होनी चाहिए थी, वह नहीं हो रही। किसी समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रो० शालग्राम भार्गव और प्रो० रामदास गौड़ विज्ञान विभाग में थे। वे हिंदी-प्रेमी थे। उन्होंने अपने विद्यार्थियों को हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य लिखने की प्रेरणा दी, और उसका परिणाम यह हुआ कि आज कितने ही हिंदीभाषी स्नातकों द्वारा विज्ञान पर हिंदी में पुस्तकें लिखने की परम्परा चल गयी है। इसी प्रकार इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, डा० बेनी-प्रसाद और डा० ईश्वरीप्रसाद के कारण इतिहास पर हिंदी पुस्तकें लिखने की परम्परा चल गयी जिससे हिंदी का बड़ा उपकार हुआ और हो रहा है। इसके विपरीत जहाँ अहिंदीभाषी प्रोफेसर थे और हैं, वहाँ स्नातकों को हिंदी में काम करने की प्रेरणा नहीं मिलती। विश्व-विद्यालय ही ऐसे ज्ञान के स्रोत हैं। यदि यहाँसे, हिंदी क्षेत्रों ही में, हिंदी में काम करने की प्रेरणा न मिलेगी तो हिंदी की समृद्धि कैसे होगी? किन्तु खतरा यह है कि यदि हिंदी समृद्ध हो गयी, और हिंदी यहाँ विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम हो गयी तो इन अहिंदीभाषी क्षेत्रों से आये हुए उपकुलपतियों और प्रोफेसरों तथा इनके उत्तराधिकारियों के स्वार्थों को धक्का लगेगा क्योंकि वे हिंदी में न काम कर सकते हैं और न हिंदी सीखने को तैयार हैं। यदि ये उपकुलपति वास्तव में भावनात्मक एकता के लिए तथा अन्तर्विश्वविद्यालय आदान-प्रदान के लिए एक प्रान्त के प्रोफेसर का दूसरे प्रान्त के विश्व-विद्यालयों में जाना आवश्यक और वांछनीय समझते हैं तो आज, जब सभी जगह अँगरेजी का बोलबाला है, उन्हें चाहिए कि अपने अहिंदी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में १०-१५ प्रतिशत प्रोफेसर हिंदी प्रान्तों से भी लेकर अपने इस तर्क को बल दें। एक-दो उपकुलपति भी हिंदी क्षेत्रों से लेने का साहस दिखलावें। तब 'अन्तर्विश्वविद्यालय' आदान-प्रदान होगा। अभी तो वह एकांगी है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो यह तर्क निःसार और केवल विशुद्ध वाक्‌विलास है। वह अपने स्वार्थों को ढकने के लिए बहाना मात्र है। अब हिंदी क्षेत्र के लोग भी स्थिति को समझने लगे हैं। अब तक हिंदी क्षेत्रों में अहिंदी क्षेत्रों के लोगों का स्वागत होता रहा है, किन्तु यदि यहाँ यह एक मार्गीय आयात होता रहा और उनके कारण हमारी भाषा की समृद्धि में बाधा पड़ी तो वह दिन दूर नहीं है जब इसकी बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया होगी, और तब उपकुलपतियों की यह शाब्दिक कलाबाजी 'भावनात्मक एकता' को उत्तर भारत में भी न बचा सकेगी। ये वे अवश्य जानते होंगे कि आज भी दक्षिण भारत में भावनात्मक की व्यावहारिक स्थिति क्या है। "हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन; दिल के बहलाने को 'ग़ालिब' यह ख्याल अच्छा है!"

दो भाषा-सम्मेलन—सितम्बर में इलाहाबाद में, और अक्तूबर में हैदराबाद में भाषा-सम्मेलन हुए। पहिला सम्मेलन मुख्यतः स्थानीय लेखकों ने आमंत्रित किया था, और दूसरा सम्मेलन 'अँगरेजी हटाओ' आंदोलन की एक कड़ी था जिसमें विभिन्न भागों के विद्वान् और नेता आये थे। इलाहाबाद के सम्मेलन के आयोजकों ने अपने निमंत्रण के साथ कुछ लेखकों का एक वक्तव्य भी भेजा था। उसपर हिंदी के कई शीर्ष विद्वानों और कला-कारों के हस्ताक्षर थे। हमारे कई मित्रों ने हमसे उसे समझा देने की प्रार्थना की, किन्तु हम असमर्थ रहे। शायद वह वक्तव्य हम लोगों के लिए था भी नहीं—संभवतः वह केवल समानधर्मा लोगों के लिए लिखा गया था। किन्तु एक बात हमें कुछ विचित्र मालूम हुई। ऐसा मालूम पड़ता था कि निमंत्रणपत्र और 'वक्तव्य' में 'हिन्दी शब्द का प्रयोग जानबूझकर प्रयासपूर्वक बचाया गया है। हमारे देश में सेक्यूलरिज्म (धर्म-निरपेक्षता) का यह परिणाम हुआ है कि यद्यपि मुसलमान और ईसाई उपयुक्त अवसर पर अपने को मुसलमान और ईसाई निर्भीकता से कह देते हैं, तथापि अपने को 'हिंदू' कहना साम्प्रदायिकता का चिह्न समझा जाता है और कितने ही सैक्यूलर लोग अपने को हिंदू कहने में झिझकते हैं। उसी तरह मालूम होता है कि 'भावनात्मक एकता' के आंदोलन का प्रभाव हमारे इन लेखकों पर यह पड़ा है कि वे 'हिंदी' शब्द का प्रयोग करने में संकोच करते से मालूम होते हैं। और मजा यह है कि हस्ताक्षर करनेवाले लेखकों में सिवाय श्री सी० बी० राव के और कोई अँगरेजी या अन्य किसी भाषा में नहीं लिखता। यदि वे बुरा न मानें तो हम उन सब को "हिंदी" लेखक ही कहेंगे। उन सब हस्ताक्षरकर्ताओं की वर्तमान सार्वजनिक, साहित्यिक और शायद आर्थिक स्थिति भी हिंदी के लेखक होने ही के कारण है। इसीलिए उनके परिपत्र में 'हिंदी' शब्द का बहिष्कार देखकर हमें आश्चर्य और दुःख हुआ। हमें आज तक पता नहीं लगा कि इस सम्मेलन ने क्या प्रस्ताव पारित किये। अतएव हम उसपर कोई टीका करने में असमर्थ हैं।

हैदराबाद का सम्मेलन जोरदार हुआ। उसमें विभिन्न प्रदेशों के विद्वान् और नेता आये थे और उसने १९६५ के बाद भी केंद्र में अँगरेजी को बनाये रखने का कड़ा विरोध किया। जनता को यह देखकर प्रसन्नता हुई कि देश में अभी भी ऐसे कितने ही विद्वान् और नेता हैं जो एक विदेशी भाषा को केंद्र की राजभाषा बनाये रखने के कुपरिणामों को समझते ही नहीं, उन्हें निर्भीकता से ललकारी चोट पर कहने में भी नहीं हिचकते। इससे जनता का मनोबल बढ़ता है और वह दिग्भ्रान्त होने से बचती है। सम्मेलन ने यह ठीक ही कहा है कि कितने ही अहिंदी क्षेत्रों के लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समझकर हिंदी का विरोध करते हैं कि केंद्र में हिंदी के राजभाषा हो जाने से वे केन्द्र में नौकरियाँ न पा सकेंगे। इस भय और भ्रम को दूर करने के लिए सम्मेलन ने सुझाव दिया है कि केन्द्र की नौकरियों में प्रत्येक क्षेत्र के लोगों के लिए, जनसंख्या के अनुपात से, नौकरियाँ सुरक्षित कर दी जायें। कुछ क्षेत्रों के निहित स्वार्थ के लोग जो अपनी अँगरेजी की योग्यता के कारण आज अनुपात से अधिक स्थान पा जाते हैं, अवश्य ही इसका विरोध करेंगे। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो 'दक्षता' के नाम पर इसे पसंद न करेंगे। कुछ लोग इससे अखिल भारतीय सेवाओं की अखिल भारतीयता को खतरे में समझेंगे। किन्तु क्या वे यह पसंद करेंगे कि उस विशाल हिंदी क्षेत्र के लोग, जिसने हिंदी को शिक्षा का माध्यम बना लिया है, 'दक्षता' के नाम पर केंद्रीय सरकार की सेवा में बिल्कुल न आने पावें? १९६१ की जनसंख्या के अनुसार हिंदीभाषी क्षेत्रों में देश की ४३ प्रतिशत से अधिक जनता रहती है। यदि इधर दस वर्षों में केंद्रीय वरिष्ठ सेवाओं में लिये जानेवाले लोगों के आँकड़े देखे जायँ तो मालूम होगा कि वे बहुत कम लिये जाते हैं। इससे कालान्तर में हिंदी क्षेत्रों में अवश्य ही असंतोष उत्पन्न होगा। राजमर्मज्ञता (स्टेट्समैनशिप) यही कहती है कि ऐसी विषम स्थिति आने ही न दी जाय। इसे रोकने का यही उपाय है कि केंद्र की सेवाओं में प्रत्येक क्षेत्र के लोग अपनी जनसंख्या के अनुपात में रहें। निहित स्वार्थवाले इसका अवश्य ही कड़ा विरोध करेंगे, किन्तु यदि वर्तमान स्थिति कुछ दिनों और चलने दी गयी तो तीव्र असंतोष उत्पन्न होगा। उससे देश की भावनात्मक एकता को जो खतरा उत्पन्न हो जायगा, उसे वे कैसे रोक सकेंगे? क्या वे ४३ प्रतिशत जनता के विशाल क्षेत्र को बहुत दिनों उसके दाय और अधिकार से वंचित रखने में समर्थ होंगे?

देश की एकता को छिन्न-भिन्न करने के प्रयत्न—मदरास (तमिल) राज्य में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम एक राजनीतिक दल है। उसके मत का सारांश यह है कि दक्षिण के आदिवासी द्रविड़ हैं। उत्तर से आर्यों ने आकर उन्हें जीत लिया और उनपर अपनी संस्कृति थोप दी। उत्तर भारत के लोगों से वे भिन्न हैं और वे स्वतंत्र द्रविड़स्तान चाहते हैं। मदरास के ब्राह्मण उन आर्यों की संतान हैं जिन्होंने उन्हें आधीन किया। वहाँकी जनसंख्या में उनका अनुपात चार प्रतिशत भी नहीं है। किन्तु मेधावी और शिक्षा में उन्नत होने के कारण वे सरकारी नौकरियों और व्यवसायों में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में थे। उनके विरुद्ध भी वहाँ बड़ा विरोधी वातावरण है। उनका व्यावसायिक कालिजों, नौकरियों आदि में घुसना कठिन हो गया है। यह वहाँकी ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्या की जड़ है। ब्राह्मणों में संस्कृत का पठन-पाठन होता है। वह आर्यों की भाषा है। इसलिए वे संस्कृत के विरोधी हैं। उनके हिंदी-विरोध का भी मुख्य कारण यही है कि वह उत्तर भारत की भाषा है। भारतीय संघ से अलग होने के लिए वे आंदोलन कर रहे हैं। इस समय मदरास के सार्वजनिक जीवन में द्रविड़ अब्राह्मणों का प्राधान्य है चाहे वे कांग्रेसी हों, कम्यूनिस्ट हों अथवा कड़गम के अनुयायी हों। उनमें से अधिकांश में कमोवेश यह आर्य-द्रविड़ और उत्तर-दक्षिण की भावना मौजूद है। इस विषाक्त भावना का वे तरह-तरह से प्रचार करते रहते हैं। अभी हाल में इस बात का पता लगा है कि इस भावना का प्रचार किस प्रकार किया जाता है और कोमल-मति बालकों में विलगाव की भावना का विष किस प्रकार बोया जाता है। मदरास में कांग्रेसी सरकार है, और पिछले चुनाव तक उसके शिक्षा-मंत्री एक चोटी के कांग्रेसी नेता थे जिनकी योग्यता पर मुग्ध होकर इस बार उन्हें केन्द्र में एक मंत्री बनाया गया है। उनके समय में उनके विभाग में क्या हुआ? मदरास के शिक्षा विभाग में प्रायः एक दर्जन ऐसी पुस्तकें चलती रहीं जिनमें उत्तर-दक्षिण के भेदभाव का विष उगला गया था। उनमें तमिल के बाहर के भारतवासी विदेशी, और भारत-सरकार बाहरी सरकार बतलायी गयी थी। ये पुस्तकें कितने ही समय से वहाँ चलती रहीं, और हमारे ऐसे शिक्षा-मंत्री को भी इसका पता नहीं जिन्हें "योग्यतम मंत्रियों" में गिना जाता है! इसका पता तब लगा जब 'राष्ट्रीय एकता समिति' मदरास गयी। वहाँ किसी ने उसका ध्यान इन पुस्तकों की ओर आकर्षित किया। यह आश्चर्य की बात है कि ये आपत्तिजनक पुस्तकें इतने दिनों स्कूलों में चलती रहीं और अधिकारियों को उनका पता भी नहीं। बिना शिक्षा विभाग की स्वीकृति के वे कैसे चल सकती थीं, और यदि शिक्षा विभाग ने उन्हें स्वीकृत कर लिया था तो कैसे कर लिया था? मदरास राज्य का प्रशासन बहुत कुशल समझा जाता है। क्या यह उस कुशल शासन की वास्तविक भूल या लापर्वाही से हुआ, अथवा विभाग में ऐसे तत्त्व हैं जिन्होंने उनकी ओर से आँख बन्द कर ली थी? प्रजातंत्रीय प्रथा के अनुसार ऐसी बातों का उत्तरदायित्व सरकार का, और विशेषकर सम्बंधित विभाग के मंत्री का होता है। अब जब इस देश-विरोधी कार्य का भंडा फोड़ हो गया है, क्या सरकार इस कांड की जाँच करके सम्बंधित उत्तरदायी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करेगी, या "शांतम् पापम्" का मंत्र पढ़कर तुष्टीकरण की वंध्या नीति अपनाएगी? मदरास में यह अपने ढंग की एकमात्र घटना नहीं है। अभी हाल ही में पता लगा है कि सरकारी दूकानों में कुछ ऐसी धोतियाँ बिक रही थीं जिनके किनारों पर द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के चिह्न और प्रचारात्मक वाक्य बुने हुए थे।

सरकार में अँगरेजी और भारतीय भाषाओं के कर्मचारियों में भेद-भाव—अँगरेजों को अपनी भाषा का गर्व था। वे किसी भारतीय भाषा को अँगरेजी के समकक्ष नहीं होने देते थे। देशी भाषाएँ 'वर्नाक्यूलर' कहलाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं जो अवमानना का शब्द हो गया था। स्कूलों में यदि अँगरेजी के अध्यापक का वेतन सौ रुपया होता तो बेचारे हिंदी या उर्दू के अध्यापक को तीस-चालीस देना ही पर्याप्त समझा जाता था। इस प्रकार देशी भाषाओं में "हीनता" की भावना उत्पन्न की जाती थी। इधर इन बातों में बहुत कुछ सुधार हुआ है, किन्तु पुरानी अँगरेजी-युग की मानसिकता कहीं-कहीं अब भी जीवित है।

आकाशवाणी ने 'सरल हिंदी' के नाम पर हिंदी का जो रद्दीकरण आरंभ किया उसके विरुद्ध व्यापक प्रतिक्रिया हुई, और सूचना-मंत्री को उसपर विचार करने के लिए एक संसदीय समिति बनानी पड़ी। उसने जो सुझाव दिये उनपर सरकार ने अपने मंतव्य प्रकाशित कर दिये हैं। इस समय हम उनपर कोई टीका नहीं कर रहे। केवल एक बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक समझते हैं।

संसदीय समिति ने यह सुझाव दिया था कि आकाशवाणी के समाचार विभाग में जो कर्मचारी अँगरेजी समाचारों का अनुवाद हिंदी में करते हैं, उनका वेतन-क्रम बढ़ाया जाना चाहिए जिससे अधिक योग्य और अनुभवी व्यक्ति मिल सकें। इन कर्मचारियों को "सब-ऐडिटर" कहते हैं। सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। इस संबंध में सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया है कि—"सब-ऐडिटर का वेतनक्रम सैंट्रल इन्फर्मेशन सर्विस की चौथी श्रेणी में है और वह २७० रुपये से आरंभ होकर ४८५ पर समाप्त होता है। इस वेतन पर आकाशवाणी को आवश्यक योग्यता के लोगों को भर्ती करने में कोई कठिनाई नहीं होती। यह उल्लेखनीय है कि प्रतिष्ठित अँगरेजी समाचार पत्रों में जो लोग समानान्तर पदों पर काम करते हैं, उनके वेतनक्रम से यह वेतनक्रम अच्छा है—भारतीय भाषाओं के वेतनक्रमों से तो बहुत अच्छा है।"

भारत में पढ़े लिखे लोगों में इतनी बेरोजगारी है कि यदि सरकार इसका आधा वेतन दे तो भी उसे शिक्षित और उपयुक्त योग्यता के व्यक्ति मिल जायेंगे। किन्तु इस समय हम यह तर्क भी देना आवश्यक नहीं समझते। इस समय हमारी शंका यह है कि १६ फरवरी १९५९ के G. S. R. 217 (cis) में भारतीय संविधान की धारा ३०९ के अधीन जो सेवा-नियम भारत-सरकार ने प्रसारित किये हैं, उनकी अनुसूची (शैड्यूल) १ में यह लिखा है:

Name of office	Designation of Post
	Grade IV
All India Radio	Sub-Editor (Indian Languages) NSD
	Grade III
All India Radio	Sub-Editor (English)

ग्रेड ४ का संशोधित वेतनक्रम २७० रु० से ४८५ रु० तक है।

ग्रेड ३ का संशोधित वेतनक्रम ३५० रु० से ८०० रुपये तक है।

भारतीय भाषाओं (हिंदी, उर्दू, मराठी, बँगला, गुजराती, तामिल, तैलगू, कन्नड़, मलयाली, असमिया, उड़िया आदि) में जो सब-ऐडिटर नियुक्त होते हैं उन्हें ग्रेड ४ का वेतन दिया जाता है; किन्तु जो अँगरेजी के सब-ऐडिटर होते हैं उन्हें ग्रेड ३ का (अर्थात् देशी भाषाओं के सब-ऐडिटरों से प्रायः दुगना) वेतन दिया जाता है। यही नहीं, वे राजपत्रित अधिकारी (गजटेड आफिसर) कर दिये जाते हैं। भारतीय भाषाओं और अँगरेजी के सब-ऐडिटरों की आवश्यक मौलिक योग्यता एक ही है, वह यह कि उनके पास मान्य विश्वविद्यालय की डिग्री हो। दोनों ही के लिए पत्रकारिता का अनुभव होना चाहिए—भारतीय भाषाओं के लिए कम से कम एक वर्ष का, और अँगरेजी के लिए कम से कम तीन वर्ष का। अतएव वास्तव में दोनों की मौलिक योग्यता एक ही है। तब भारतीय भाषाओं के कर्मचारियों को उसी पद और उसी काम के लिए अँगरेजी भाषा में काम करनेवालों से आधे से कुछ ही कम वेतन क्यों दिया गया? इसके अतिरिक्त अँगरेजी सब-ऐडिटर को तो 'गजेटेड' बनाकर उसकी पद-मर्यादा बढ़ा दी गयी, और बेचारे देशी भाषाओं की सेवा करनेवालों को क्या उनकी हीनता का अनुभव कराने के लिए उन्हें, वही योग्यता रखते हुए भी, राजपत्रित होने से वंचित कर दिया गया? यह हिंदी का प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न सारी भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा का है। हमारी सरकार आज भी भारतीय भाषाओं को इतना हीन क्यों समझती है? हमारा आत्म-सम्मान यह कैसे सहन कर सकता है कि हमारी भारतीय भाषाओं के उसी पद पर काम करने वाले उसी योग्यता के लोग तो अराजपत्रित रहें और कम वेतन पावें, और उतनी ही योग्यता के अँगरेजी के नाम पर काम करनेवाले प्रायः दुगना वेतन ही न पावें, साथ में 'गजेटेड' होने का सम्मान भी पावें? हम इसे आपत्तिजनक भेदभाव समझते हैं। हमें खेद और आश्चर्य है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के पंद्रह वर्ष बाद भी हमारी भारतीय भाषाओं के साथ हमारी ही सरकार इस प्रकार भेदभाव का बर्ताव कर, जान या अनजान में, उन्हें हीन घोषित करके उनका अपमान कर रही है। हमें आशा है कि सरकार और संसद के जागरूक सदस्य इस अवांछनीय स्थिति को यथासंभव शीघ्र बदलेंगे।

एक प्रेरक कविता—इस अवसर पर हम स्वर्गीय पं० चन्द्रधर गुलेरी की एक उद्बोधक कविता देना समयोचित समझते हैं जो उन्होंने इस शती के प्रथम दशक में लिखी थी। कल्पना यह है कि देश पर शत्रु का आक्रमण हुआ है और जनता को युद्ध का निमंत्रण देने के लिए जिस प्रकार पान का बीड़ा भेजा जाता था, उसी प्रकार एक झुकी कमान भेजी गयी है। वह भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों के पास जाती है, और जहाँ जाती है वहाँ देवतागण आकाश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी से उन लोगों का उद्बोधन करते हैं। कविता इस प्रकार है:

(१)

आये प्रचण्ड रिपु, शब्द सुना उन्हींका,
बजी सभी जगह एक झुकी कमान।
ज्यों युद्धचिह्न समझे सब लोग धाये,
त्यों साथ थी कह रही यह व्योमवाणी :—

(किसानों से)

"सुना नहीं क्या रणशंखनाद?
चलो पके खेत किसान! छोड़ो,
पक्षी उन्हें खाँय, तुम्हें पड़ा क्या?
भाले भिड़ाओ अब खड्ग खोलो।
हवा इन्हें साफ किया करेगी,
लो शस्त्र, हो लाल न देश छाती।"
स्वाधीन का सुत किसान सशस्त्र दौड़ा,
आगे गई धनुष के सँग व्योमवाणी॥

(२)

(शिकारियों से)

"छोड़ो, शिकारी! गिरि का शिकार,
उठा पुरानी तलवार लीजे,
स्वतन्त्र छूटें अब व्याघ्र, भालू,
पराक्रमी और शिकार कीजे।
बिना सताये मृग चौकड़ी लें—
लो शस्त्र, हैं शत्रु समीप आये।"
दौड़ा सशस्त्र, तजके मृगया अधूरी,
आगे गई धनुष के सँग व्योमवाणी।

(३)

(व्यापारियों और रईसों से)

"ज्यौंनार छोड़ो सुख की, रईसो!
गीतान्त की बाट न वीर! जोहो,
चाहे घना झाग सुरा दिखावै
प्रकाश में सुन्दरि नाचती हो।
प्रासाद छोड़ो, सब छोड़, दौड़ो—
स्वदेश के शत्रु अवश्य मारो।"
सर्दार ने धनुष ले, तुरही बजाई—
आगे गई धनुष के सँग व्योमवाणी॥

(४)

(राजाओं से)

"राजन्! पिता की तव वीरता को
कुञ्जों, वनों में सब गा रहे हैं,
गोपाल बैठे जहँ गीत गावें,
या भाट वीणा झनका रहे हैं।
अफीम छोड़ो, कुलशत्रु आये—
नया तुम्हारा यश भाट पावैं।"
बन्दूक ले, नृपकुमार बना सु-नेता,
आगे चली धनुष के सँग व्योमवाणी॥

(५)

(ब्राह्मणों से)

"छोड़ो अधूरा अब यज्ञ ब्रह्मन्!
वेदान्तपारायण को बिसारो,
विदेश ही का बलि वैश्वदेव,
औ तर्पणों में रिपु-रक्त डालो।
शस्त्रार्थ शास्त्रार्थ गिनो अभी से
चलो दिखाओ 'हम अग्रजन्मा'।"
धोती सम्हाल, कुश छोड़, सशस्त्र दौड़े,
आगे गई धनुष के सँग व्योमवाणी॥

(६)

(जनता के परिवारों से)

"माता! न रोको निज पुत्र आज,
संग्राम का स्वाद उसे चखाओ,
तलवार भाले भगिनी! उठा ला,
उत्साह भाई निज को दिलाओ।
तू सुन्दरी! ले प्रिय से बिदाई,
स्वदेश माँगे उसकी सहाई।"
आगे गई धनुष-संयुत व्योमवाणी—
है सत्य ही विजय, निश्चय बात जानी।
है जन्मभूमि जिनको जननी समान,
स्वातन्त्र्य है प्रिय जिन्हें शुभ स्वर्ग से भी—
अन्याय की जकड़ती कटु बेड़ियों को
विद्वान् वे कब समीप निवास देंगे?

× × ×

टिप्पणी—स्थानाभाव के कारण दो सम्पादकीय टिप्पणियाँ ('चीन का परिचय' और 'युद्धक्षेत्र') अंत में लेख के रूप में प्रकाशित की जा रही हैं।—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीलक्ष्मी-स्तव

आद्यादिलक्ष्मीर्भव सुप्रसन्ना विशुद्धविज्ञानसुखैकदोग्ध्री ।
अज्ञानहंत्री त्रिगुणातिरिक्ता प्रज्ञाननेत्री भव सुप्रसन्ना ।।१।।
अशेषवाग्जाड्यमलापहारिणी नवं नवं स्पष्टसुखप्रदायनी ।
ममैव जिह्वाग्रसुरंगनर्तकी भव प्रसन्ना वदने च मे श्रीः ।।२।।
समस्तसंपत्सु विराजमाना समस्ततेजःसु विभासमाना ।
विष्णुप्रिये त्वं भव दीप्यमाना वाग्देवता मे वदने प्रसन्ना ।।३।।
सर्वार्थिदा सर्वजगत्प्रसूतिः सर्वेश्वरी सर्वभयापहंत्री ।
सर्वोन्नता त्वं सुमुखी भव श्रीर्हिरण्मयी मे नयने प्रसन्ना ।।४।।
सर्वप्रदर्शे सकलार्थदे त्वं प्रभासु लावण्यदयाप्रदोग्ध्री ।
सुवर्णदे त्वं सुमुखी भव श्रीर्हिरण्मयी मे नयने प्रसन्ना ।।५।।
समस्तविघ्नौघविनाशकारिणी समस्तभक्तोद्धरणे विचक्षणा ।
अनन्तसौभाग्यसुखप्रदायनी हिरण्मयी मे नयने प्रसन्ना ।।६।।
देवि प्रसीद दयनीयतमाय मह्यं देवाधिनाथभवदेवगणाभिवंद्ये ।
मातस्तथैव भव सन्निहिता दृशोर्मे पत्या समं मम सुखे भव सुप्रसन्ना ।।७।।
मा वत्स भैरभयदानकरोऽर्पितस्ते मौलौ ममेति मयि दीनदयानुकंपे ।
मातः समर्पय मुदा करुणाकटाक्षं मांगल्यबीजमहिमा मम जन्म मातः ।।८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी लक्ष्मी

श्री रघुवंशलाल गुप्त
आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

दीपक-माल सजाओ सजनी !

नव लक्ष्मी भारत में लेकर
आयी है यह रजनी।
दीपक-माल सजाओ सजनी !

राजाओं की महल-अटारी
इस लक्ष्मी को और न प्यारी
पूंजीपतियों की तिजोरियाँ
हैं अब इसको तजनी।
दीपक-माल सजाओ सजनी !

जनसेवा ही जिनका अर्चन
श्रम-सीकर से करते चर्चन
उनके द्वार द्वार पर इसकी
है अब नौबत बजनी।
दीपक-माल सजाओ सजनी !

"उद्योगी के पूरण काम;
खरी मजूरी, चोखा दाम"
आज रात को इसी मंत्र की
हमको माला जपनी।
दीपक-माल सजाओ सजनी !

गीत

श्री श्रीकान्तप्रसादसिंह

तिमिरमय मार्ग में युग से
भटकता आ रहा मानव
अरी, ओ ज्योति की रानी !
उसे तुम ज्योति दो अभिनव
जलाओ दीप तुम शत-शत
जगत में ज्योति हो झिलमिल
तमिस्रा दूर हो जग की
प्रकाशित पंथ हो प्रतिपल।

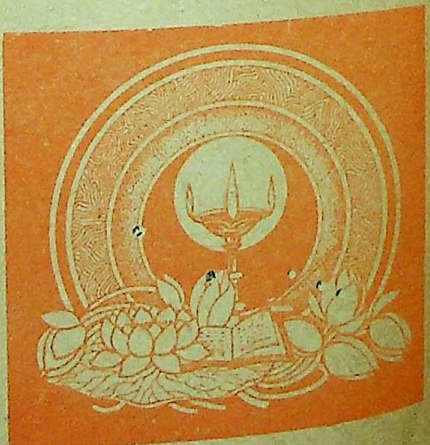

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपक : एक सांस्कृतिक प्रतीक

प्रो० गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

दीपावली के अवसर पर जलनेवाले लक्ष-लक्ष दीपकों से जो हमें सन्देश प्राप्त होता है वह सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दीपक सम्मिलित रूप से, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का मूर्त स्वरूप है। दीपक का शरीर भूतजगत् की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है जब कि दीपक की आत्मा, जलती हुई लौ के माध्यम से, हमें उस चिरन्तन ज्योति की ओर खींचकर ले जाती है जो अपने आप में अनुपम है। लौ उस अग्नि, उस ज्योति, उस प्रकाश की प्रतीक है जो अजर, अमर और अविनाशी है। बाह्यतः अनेक रूपों में दिखायी पड़ने पर भी यह अन्तरतः एक है। वास्तव में, यह वह अग्नि, वह ज्योति, वह प्रकाश है जो अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। सूर्य, चन्द्र, तारक आदि के द्वारा हम इसे समझ नहीं सकते। इनकी ज्योति उस अक्षय ज्योति के सामने फीकी पड़ जाती है। उपनिषद्-कार ने 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकः...' के द्वारा इसी बात की ओर संकेत किया है।

दीपक अत्यन्त प्राचीन काल से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। वैदिक ऋषियों ने दीपक को अपने दैनन्दिन जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया; किन्तु दीपक के शरीर की अपेक्षा दीपक की आत्मा उन्हें अभिभूत किये रही। यही कारण है कि दीपक की लौ, ज्योति अथवा अग्नि को ही सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। अग्नि को ब्रह्म की दिव्य शक्ति के रूप में प्रथम पूज्य होने का सौभाग्य मिला। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अग्निसूक्त से ही ऋग्वेद का प्रायः प्रारम्भ हुआ है। ऋषि कहता है :

स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता हषयन्त मन्म॥

ऋक्० १।७७।४।

अर्थात् (नृणां नृतमः) शक्तियों में सबलतम और (रिशादा) विनाशकों को हड़प जानेवाला (स अग्निः) वह अग्नि (अवसा) अपनी उपस्थिति के द्वारा (गिरः) शब्दों को और (धीतिम्) उनके विचार को (वेतु) अभिव्यक्त कर दे [अर्था० 'या गिरः धीतिं वेतु=शब्दों में तथा विचार में प्रविष्ट हो जाये] (रये च) और वे जो (तना) अपने विस्तार से (मघवानः) ऐश्वर्य के अधिपति तथा (शविष्ठाः) सबसे अधिक बलशाली हैं [वाजः प्रसूताः (स्युः)] अपने ऐश्वर्य को विखेरनेवाले हो जाएँ, और (मन्म हषयन्त) विचार को अपनी अन्तःप्रेरणा देवें। यहाँ ऋषि की दृष्टि में, अग्नि (अर्थात् दीपक की लौ) प्रकाशपूर्ण संकल्प है। अतः शब्द एवं शब्दजन्य विचार की अभिव्यक्ति तथा ऐश्वर्य के विस्तार एवं बल को बढ़ाने के लिए ऋषि का प्रार्थना करना सहज स्वाभाविक है। दीपक की जलती हुई लौ भी प्रकाशपूर्ण संकल्प ही है जो शब्द एवं शब्दजन्य विचार की अभिव्यक्ति को बढ़ाती है तथा ऐश्वर्य को विस्तारित कर बल प्रदान करती है।

दीपक का बाह्य शरीर इस बात का सूचक है कि आत्मा के परिरक्षण के लिए भी कुछ चाहिए। दीपक की लौ चेतना है, दीपक का शरीर इस चेतना का संरक्षक। दूसरे शब्दों में हम दीपक के शरीर तत्त्व को जड़ और आत्मतत्त्व को चेतन के नाम से भी पुकार सकते हैं। जड़ और चेतन के सम्पर्क से ही सृष्टि की क्रिया विस्तारित होती है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना अत्यन्त कठिन है। ये दोनों परस्पर पूरक हैं। न तो हम केवल जड़ की आराधना से चेतन बन सकते हैं, न चेतना के अभाव में जड़ के प्रति आकृष्ट हो सकते हैं। जलता हुआ दीपक युगपत् रूप से, हमें जड़ और चेतन के समन्वय की ओर आकृष्ट करता है। हमारा जीवन, समन्वय के अभाव में आज विषन्न बन गया है। सामाजिक जीवन तो कटु से कटुतर हो गया है। हम अन्तर्द्वन्द्वों से परिचालित हो रहे हैं। हमारा मस्तिष्क सन्देह का अखाड़ा हो रहा है। इसका कारण यही है कि हम जड़ और चेतन के द्वन्द्व को लेकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। ऐसी स्थिति में, जलते हुए दीपक के प्रतीक से प्रेरणा प्राप्त कर, हम समन्वयवादी बनकर, अपेक्षाकृत अधिक शान्ति एवं हर्ष का अनुभव कर सकते हैं।

जलता हुआ दीपक दिव्य अग्नि के सदृश दिव्यज्ञान का प्रतीक है। मिट्टी अथवा किसी अन्य धातु का दीपक जड़ता का प्रतीक है। दीपक की जलती हुई वर्त्तिका चेत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नता को सूचित करती है। जड़ता और चेतनता का साहचर्य अर्थगर्भित है। वास्तव में, जड़ता के बीच में ही चेतनता फूटती है लेकिन इसके लिए सुन्दर संयोग अपेक्षित है। जड़ चेतन नहीं है पर चेतन बन सकता है। जड़ पदार्थ में अनवरत संघात होता रहता है। यह संघात ही चेतन बनने को प्रेरित करता है। स्नेह, वर्त्तिका एवं अग्नि-संस्पर्श के अभाव में दीपक जड़ पदार्थ रहता है। इसका जड़त्व क्रमशः दूर होता है स्नेह, वर्तिका एवं अग्नि-संस्पर्श के संयोग से। हम जलते हुए दीपक के ज्ञानमूलक सांस्कृतिक प्रतीक से प्रेरणा प्राप्त कर, चेतना को विकसित कर सकते हैं, ज्ञानी बन सकते हैं—कुछ क्षण के लिए 'न शुकवत् पाठयते बकः' की उक्ति को भी झुठला सकते हैं। दिव्य ज्ञान वस्तुतः ब्रह्म का प्रतीक है अतएव इसको प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। गोस्वामी तुलसीदास ने दीपक के प्रलम्ब रूपक के माध्यम से बतलाया है :

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अपारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भावबच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई। औंटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥
मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

जोग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यानघृत ममता मल जरि जाइ॥
तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥
सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा॥

रामचरितमानस, उ० कां०, ११७(९–१६), ११८(१)

अर्थात् भगवत्कृपा से सात्विक श्रद्धारूपी गाय जब हृदय में आकर बस जाती है; जप, तप, व्रत, यम, नियम आदि आचार तथा श्रुतिप्रसिद्ध धर्म एवं आचाररूपी तृण चरती है तथा भावरूपी बछड़े को पाकर थन में दूध उतर आता है जब निवृत्ति की रस्सी के सहारे उसकी पिछली टाँगों को बाँधकर, विश्वासरूपी पात्र में निर्मल मनरूपी अहीर उसे दुह लेता है। ऐसे धर्ममय दूध को अकामरूपी अनल (अग्नि) पर औंटा जाता है। तोषरूपी हवा उसे ठंडा करती है। धैर्यरूपी जामन (जोड़न) देकर उसे जमा दिया जाता है। दही जम जाने पर विचार-रूपी मथानी से, दम को आधार बनाकर, सत्यवाणी की रस्सी के सहारे मथकर मल और राग रहित, सुन्दर और पवित्र मक्खन निकाल लेते हैं। मक्खन को शुभाशुभ कर्मों के सहारे, योगरूपी अग्नि में घी बना देते हैं। ज्ञान-रूपी इस घी को बुद्धि ठंडी करती है, ममता के मल को निकाल देती है। इस विशद घी को चित्तरूपी दीपक में विज्ञानरूपिणी बुद्धि उड़ेल देती है, समतारूपी दीवट पर रखती है तथा जाग्रत, सुषुप्त एवं स्वप्नावस्था और रज, तम एवं सत्वगुण के कपास से रुई निकालकर, बाती बनाती और दीपक में छोड़ देती है। अनन्तर विज्ञानमय दीपक जल उठता है, मद आदि शलभ भस्मीभूत हो जाते हैं और परम प्रचंड दीपशिखा प्रज्ज्वलित होने लगती है। अखण्ड वृत्ति से उत्पन्न यही प्रज्ज्वलित दीपशिखा मैं हूँ—यह भगवान् की उक्ति है ऐसा काकभुशुंडिजी ने गरुड़जी से कहा। कहने का तात्पर्य यह कि जलते हुए दीपक की शिखा ज्ञान स्वरूप भगवान् की दिव्य ज्योति है। तुलसी-दास की दृष्टि में यद्यपि भक्ति की तुलना में, ज्ञानज्योति की साधना कठिन है तथापि यह उपेक्षणीय नहीं है।

ज्वलित दीपक, वस्तुतः अनवरत साधना का प्रतीक है। प्रकाश साधना का अनुचर है। साधक, साधना में अपने शरीर को जब सधा देता है उसे दिव्य आलोक की प्राप्ति होती है। दीपक का शरीर-साधिका वर्त्तिका का मुख्याधार है। वर्त्तिका अपने को जलाती है। साधना में लिप्त रखती है। यही कारण है, प्रकाश की किरण वह दे पाती है। ऐसा प्रतीत होता है। दीपक ही अपने प्रकाश से अन्धकार को प्रकाश में परिणत करता है, पर जड़ दीपक में ऐसी सामर्थ्य कहाँ? यह तो वर्त्तिका की साधना का प्रतिफल है। साधना में यह गुण होता ही है। असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश, मृत से अमृत की ओर, हम साधना के परिणामस्वरूप ही बढ़ते हैं। जलते हुए दीपक की साधना सांस्कृतिक उत्क्रान्ति की परिसूचक है। इसके माध्यम से भौतिकतावादी संसार में, हम आध्यात्मिकता-वाद को प्रतिष्ठापित कर सकते हैं। निराशा में आशा का संचार कर सकते हैं। यथार्थवादी शुष्कता में आदर्श-वाद की सरसता भर सकते हैं। दीपक की उठती हुई लौ ऊर्ध्वचेतना की परिद्योतक है। हम इससे प्रेरित होकर अपनी चेतना को ऊर्ध्वोन्मुख बना सकते हैं, निम्न और समदिक् धरातल से अपने को उठाकर, ऊर्ध्व धरातल पर आरूढ़ कर सकते हैं तथा दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं। जलता हुआ दीपक सांस्कृतिक शक्ति को स्फुरित करता है, जीवन के विकास के लिए विचारभूमि प्रस्तुत करना है तथा सामाजिक, राजनैतिक आदि इतर आवश्यकताओं पर विचार करने के लिए बाध्य करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टाध्यायी में गणतंत्र राज्यों का उल्लेख

श्री गुलाबलाल श्रीवास्तव

पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें लगभग चार सहस्र सूत्र हैं। इन सूत्रों का मुख्य उद्देश्य व्याकरण के नियमों का परिचय देना था। लेकिन इन सूत्रों के विवेचन और तत्कालीन भाषा के व्यवहृत शब्दों के सामंजस्य से पाणिनिकालीन राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षिक दशा का विस्तृत परिचय मिलता है। विद्वानों ने पाणिनि मुनि का काल ५०० ई० पू० के लगभग माना है। वे उत्तर-पश्चिमी भारत के निवासी थे, अतः उनके ग्रंथ से इसी प्रदेश के सम्बन्ध में परिचय मिलता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से पाणिनि की सबसे महत्त्वपूर्ण सामग्री वह है जो जनपद संस्था पर प्रकाश डालती है। उनके युग में दो प्रकार की शासन-पद्धति मुख्यतः प्रचलित थी; राज और संघ। एक राज जनपद, राजनैतिक परिभाषा के अनुसार, एकाधीन, और संघशासन वाले जनपद गणाधीन कहलाते थे। उन्होंने गणतंत्र जनपदों के लिए 'संघ' शब्द का प्रयोग किया है। इस संघ शब्द के कई अर्थ हैं। प्रथम संघ शब्द का सामान्य अर्थ समूह था जैसे "ग्राम्य पशु संघ" (१।२।७३)। संघ शब्द का दूसरा अर्थ निकाय था जो संभवतः धार्मिक संघ था। संघ का तीसरा अर्थ गणवाची है (संघोद्घौ गणप्रशंसयोः, ३।३।८६)। यह राजनैतिक संघ था, जो संभवतः गणनाम से प्रसिद्ध था। इस अर्थ में गण और संघ दोनों पर्यायवाची थे।

अष्टाध्यायी के अवलोकन से पता चलता है कि पाणिनि के युग में संघों का बाहुल्य था। उन संघों के नामों की सूची निम्न प्रकार की है--

(१) वाहीक के आयुधजीवी संघ, इसमें २ प्रकार के संघ हैं; एक वे जिनका नाम सूत्रों में है दूसरे वे जिनका नाम दामन्यादि, पर्श्वादि और यौधेयादि गणपाठों में है।

(२) वे संघ जिनके नाम सूत्रों में हैं किन्तु जिनका अष्टाध्यायी द्वारा नहीं अपितु अन्य स्रोतों द्वारा उनका संघ होना ज्ञात होता है।

(३) वे संघ जिनकी पहचान यूनानी इतिहासकारों द्वारा होती है, यद्यपि उनके निर्देश अष्टाध्यायी में हैं।

वाहीक के आयुधजीवी संघ--अष्टाध्यायी के प्रारम्भिक प्रकरण में ही आयुधजीवी संघों का उल्लेख किया गया है। पाणिनि ने इन संघों को वाहीक देश के अंतर्गत बताया है। वाहीक का अर्थ श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल के शब्दों में 'नदियों का प्रदेश है जिसका अर्थ बहना है और बाहिनी का एक अर्थ नदी होता भी है। अतः इस वाहीक देश के अन्तर्गत सिन्ध और पंजाब दोनों आने चाहिए।' वाहीक की भौगोलिक परिभाषा महाभारत के कर्णपर्व के अनुसार सिन्धु और उसकी ५ नदियों के बीच का प्रदेश थी--(पंचानाम् सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः। वाहीका नाम ते देशाः। कर्ण पर्व ४४।७)। अब प्रश्न उठता है कि पाणिनि ने इन संघों को आयुधजीवी क्यों कहा है और उसका क्या अर्थ है? उनके सूत्र [आयुधाच्छ च ४।४।१४ (आयुधेन जीवति)] के अनुसार आयुध से जीविका निर्वाह करनेवाला आयुधीय या आयुधिक कहलाता था। ये आयुधजीवी संघ ही 'अर्थशास्त्र' के शस्त्रोपजीवी और पालि साहित्य के योधाजीव संघ हैं।

सूत्रों में आये हुए संघ

पाणिनि ने, ५।३।११४ से ११७ तक, वाहीक देश के संघों के सम्बन्ध में तद्धित के नियम दिये हैं जिनके नाम निम्न हैं--

(१) राजन्य (आयुधजीवीसंघाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मण-राजन्यात ५।३।११४)।

(२) वृक् (वृकाट्टेण्यण् ५।३।११५)

(३) दामनि और (४) त्रिगर्तषष्ठ (दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ५।३।११६)

(५) पर्शु और (६) यौधेय (पर्श्वादियौधेयादिभ्याम् णञो ५।३।११७)।

अब इनकी भौगोलिक पहचान का प्रयत्न किया जाना चाहिए--

राजन्य--अष्टाध्यायी के टीकाकारों ने इस राजन्य शब्द को वाहीक देश के राजन्य नामक संघ से मिलाया है। सूत्र ४।२।५३--(राजन्यादिभ्यो वुञ्) में जिस राजन्यादि गण का उल्लेख है उसमें गणपाठ के अनुसार कई संघ जनपद थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक——वृक संघ के भौगोलिक स्थान का ठीक निश्चय नहीं है। इस संघ का अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इस संघ का प्रत्येक सदस्य वाकेण्य कहलाता था। काशिकाकार ने इस संघ को वाहीक के बाहर का माना है। क्योंकि इस सूत्र में वाहीक की अनुवृति नहीं आती। फिर भी पंजाब के वर्तमान समय में विर्क नामक जाटों की एक जाति पायी जाती है। दारा के बहिस्तून लेख में भी वर्क नामक एक शक जाति का उल्लेख आता है। ये दोनों अष्टाध्यायी के वृका और वार्केण्य से मिलते हैं।

दामनि——वाहीक के अंतर्गत इस आयुधजीवी संघ का सम्बन्ध न था। बलूचिस्तान के पश्चिमोत्तर में चगाई प्रदेश के अन्तर्गत दामनी नामक एक बलिष्ठ लड़ाकू जाति आज भी निवास करती है।

त्रिगर्तषष्ठ——यह ६ त्रिगर्तों का समूह था जिनके नाम किसी प्राचीन श्लोक के आधार पर काशिका में इस प्रकार दिये गये हैं——कौण्डोपरथ, दाण्डकी, जालमानि, कौष्टकी, ब्राह्मगुप्त और जानकी। श्लोक इस प्रकार है——

'आहुस्त्रिगर्तषष्ठां तु कौण्डोपरथ दाण्डकी।
कौष्टकिर्जालमानिश्च ब्राह्मगुप्तोऽथ जानकिः॥'

त्रिगर्त का पुराना नाम जालंधरायण भी था। ब्राह्मगुप्त की पहचान आधुनिक भ्रमोर से की जा सकती है।

पर्शु——पाणिनि के बतलाये हुए पर्शु वाहीक देश में रहते थे। इनमें ब्राह्मण तथा राजन्य लोग रहते थे। पश्वों का उल्लेख वेदों में भी है——(शतमहं तिरिन्दरे सहस्रं पश्वावाददे ८।६।४६)। लेकिन लुड्विग और वेबर ने इन्हें ईरानी पारसीकों से मिलाया है।

यौधेय——यौधेय संभवतः प्राचीन गणराज्यों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे। ई० पू० २०० से २०० ई० अर्थात् ४०० वर्षों तक उनका अस्तित्व सतलज के पूर्व और यमुना के पश्चिम में था। पहले सुनेत और बाद में रोहितक उनकी राजधानी थी। उनके वंशज आज भी पंजाब में जोधिए या जोहिए राजपूत नाम से प्रख्यात हैं।

गणपाठों के आयुधजीवी संघ

दामन्यादि, पश्वादि और यौधेयादि गणों में भी निम्न ३३ संघों के नाम हैं——

दामन्यादि——दामनि, औलपि, काकदन्ति, अच्युतन्ति, शत्रुन्तपि, सार्वसेनि, वैन्दवि, मौञ्जायन, तुलभ, सावित्रीपुत्र, बैजवापि, औदकि।

इनमें सार्वसेनि, सर्वसेन नामक संघ का ही नाम था जिसका उल्लेख शाण्डिकागण (४।३।९२) में आया है। इसका उल्लेख काशिका और भीष्मपर्व में भी आया है। मौंजायन हिन्दूकुश के उत्तर का एक भाग है जिसे अब मुंजान कहते हैं। सावित्रीपुत्र का उल्लेख महाभारत में आया है। इसकी भौगोलिक स्थिति पंजाब में थी।

पश्वादि——पर्शु, असुर, रक्षस्, वाह्लीक, वयस्, मारुत्, यशार्ह, पिशाच, अशनि, कार्षापण, सात्वत्, वसु।

इनमें रक्षस और पिशाच, उत्तर-पश्चिमी सीमान्त और बलूचिस्तान के आस-पास के थे। सत्वत् और यशार्ह अंधक वृष्णि संघ के अन्तर्गत छोटे आयुधजीवी संघ थे।

यौधेयादि——यौधेय, शौभ्रेय, शौक्रेय, ज्याबाणेय, वार्त्तेय, धार्त्तेय, त्रिगर्त, भरत, उशीनर।

इनमें शौक्रेयों का मूल पुरुष कोई शुभ्र था जिसका उल्लेख 'शुभ्रादिभ्यश्च' (४।१।११३) सूत्र में है। वार्त्तेय, कर्टियस के अनुसार सिकन्दर के पास दूत भेजकर उससे संधि किये थे और उनका निवासस्थान आधुनिक करांची के पश्चिम था।

उपर्युक्त सूची में आये हुए नामों से ज्ञात होता है कि पाणिनि को वाहीक से बाहर के गणों का भी पूरा ज्ञान था।

कुछ अन्य संघों के नाम

अष्टाध्यायी में कुछ अन्य संघों के नाम हैं जिनके विषय में अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि वे संघ राज्य थे। ये संघ आयुधजीवी नहीं थे। इनके नाम निम्न हैं——

अंधकवृष्णि संघ——पुराणों के अनुसार ये वही हैं जो सात्वत् हैं। महाभारत में अंधकों के शासक भोज कहे गये हैं। कृष्ण, वृष्णिसंघ के मुखिया कहे गये हैं। इनका भौगोलिक विस्तार बहुत अधिक था। वे सुराष्ट्र तक फैले थे क्योंकि द्वैप जो इस संघ के अंतर्गत थे सुराष्ट्र के समीपवर्ती समुद्र तटों पर निवास करते थे।

वृजि——(मद्रवृज्योः कन् ४।३।१३१) बौद्ध-साहित्य में वज्जि या वृजिक् संघ का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। इनकी राजधानी वैशाली नगरी थी जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल वसाढ़ कहते हैं, यह बिहार प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले में अवस्थित है। यह ८ जातियों का एक संगठन था जिसमें लिच्छवि और विदेह सबसे प्रतिभाशाली थे।

भर्ग--(न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ४।१।१७८) और (भर्गे त्रैगर्ते ४।१।१११) भर्ग लोग प्राच्य या पूर्वी कहे गये हैं। महाभारत के अनुसार--(सभापर्व ३०।१०।१४) ये लोग वत्सों की सीमा और दक्षिणी मल्लों के बीच में थे और ये दोनों विदेहों से बहुत दूर नहीं थे। यौधेयों की भाँति ये लोग भी उस समय राजनीतिक वर्ग के ही रूप में थे। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार उनका विस्तार कोशल से पूर्व में कौशाम्बी तक था। इनकी राजधानी शिशुमार गिरि थी।

कुछ अन्य नाम

गणपाठ में कुछ और महत्त्वपूर्ण नाम हैं। यूनानी लेखकों से ज्ञात होता है कि वे संघ शासन के अनुयायी थे। ये निम्न हैं--

(१) **क्षुद्रक**--(क्षुद्रकमालवात् सेना संज्ञायाम् ४।२।४५) क्षुद्रक संघ का उल्लेख सिकन्दर के आक्रमण वृत्तांत को लिखते हुए ग्रीक लेखकों ने भी ओक्सिड्रकेइ (Oxydrakai) नाम से किया है। यह संघ झेलम नदी के तट पर अवस्थित था। पतंजलि के महाभाष्य में उपलब्ध एक निर्देश के अनुसार अकेले क्षुद्रक लोग सिकन्दर को परास्त करने में भी समर्थ हुए थे (एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितम्-महाभाष्य)।

(२) **मालव**--ग्रीक लेखकों ने मालव संघ का भी मल्लोई (Malloi) नाम से उल्लेख किया है। क्षुद्रकों और मालवों की सम्मिलित सेना ने सिकन्दर का सामना किया था। ये मालव, रावी और चनाव के संगम पर बसे थे।

(३) **वसाति** (राजन्यादिगण ४।२।५३)--यूनानियों का ओस्सदिओई (Ossadioi) संस्कृत का वसाति है। ये चनाव और सतलज की धारा जहाँ सिन्धु से मिलती है, वहीं के निवासी थे।

इसके अतिरिक्त आप्रति, मधुमन्त आदि भी गणों के नाम अष्टाध्यायी में आये हैं।

अष्टाध्यायी में गणों के शासन का संकेत--पाणिनि की अष्टाध्यायी द्वारा हमें उनके युग के गणों के नामों का ही नहीं परिचय मिलता अपितु उनके शासन के सम्बन्ध में भी अनेक महत्त्वपूर्ण निर्देश प्राप्त होते हैं। ये निर्देश निम्नलिखित हैं:--

गणों के निवासी--गण का प्रत्येक नागरिक जब तक उसमें भक्ति रखता था तभी तक वह गण का नागरिक था। वास्तव में भक्ति का अर्थ बहुत ही व्यापक था। (भक्तिरस्य आंगकः) सूत्र के अनुसार भक्ति का तात्पर्य राजनैतिक निष्ठा से है। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" यह वाक्य तत्कालीन भक्ति का आधार कहा जा सकता है। देवभक्ति, संघभक्ति, नगरभक्ति, गोत्रभक्ति एवं अन्यान्य अभिरुचि को भी भक्ति के अंतर्गत लिया गया था। काशिका में--भज्यते सेव्यते इतिभक्तिः--यह उल्लेख आया है। इस सम्बन्ध में पाणिनि के ३ सूत्र द्रष्टव्य हैं--(क) सोऽस्य निवासः (४।३।८९); (ख) अभिजनश्च (४।३।९०); (ग) भक्तिः (४।३।९५) इसका अर्थ क्रमशः निवास, पूर्व बांधव और राष्ट्रभक्ति था और सचमुच यही नागरिकता का आधार स्तम्भ था।

राजनैतिक दल--संघ के अंतर्गत अलग-अलग दलों या वर्गों के संगठन की भी प्रथा थी--जिसको अष्टाध्यायी में द्वन्द्व कहा गया है। स्वभावतः इनमें विशेष अधिकार और सत्ता के लिए द्वन्द्व होता रहा होगा (द्वन्द्व व्युत्क्रमेण ८।१।१५)। पाणिनि के और ३ शब्द भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। वे हैं वर्ग्य (४।३।५४); गृह्य (३।१।११९); और पक्ष्य (३।१।११९); जैसे--वासुदेव वर्ग्याः, वासुदेव गृह्याः, वासुदेव पक्ष्याः; अर्थात् उस दल के सदस्य जिनके नाम वासुदेव थे। इस प्रकार आज कल की तरह उस समय भी दल का नाम नेता के नाम पर पड़ता था।

परमवर्ग्य, वर्ग और समग्र--परमवर्ग्य शब्द से परिलक्षित होता है कि दल या वर्ग में जो प्रधान होता था उसे परमवर्ग्य कहते थे। प्रत्येक वर्गों के परम या प्रधान ही संघ के प्रधान को चुनते थे जिसे अष्टाध्यायी में श्रेष्ठ नाम से अभिहित किया गया है। इस प्रकार वर्ग का नेता परम, और संघ का नेता श्रेष्ठ कहा जाता था। युद्ध आदि के लिए दो मिले हुए संघों की तुल्य बल की स्थिति में एक को अतिरिक्त या प्रथम स्थान लेने की प्रथा थी, जैसे क्षुद्रक और मालव। इन दोनों की सेना के सेनापतियों के पद समान थे, पर युद्ध में दोनों क्रमशः सेनापतित्व ग्रहण करते थे। जिस प्रकार दल का प्रधान परम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघ का श्रेष्ठ कहलाता था, उसी प्रकार दल के लिए वर्ग और संघ के लिए समग्र पारिभाषिक शब्द थे। बुद्ध ने संघ की सुदृढ़ता के लिए समग्र संघ कम्म पर जोर दिया है।

व्याश्रय--काशिका में 'नानापक्षसमाश्रयो व्याश्रयः' वाक्य आया है, अर्थात् वर्गों के सदस्य जब अपने-अपने दल में विभक्त हो जाते थे तो इस क्रिया को व्याश्रय शब्द से अभिहित किया जाता था।

छन्द--अष्टाध्यायी सूत्र ४।४।९३ (छन्दसो-निर्मिते) का विस्तार काशिकाकार ने इस प्रकार किया है "इच्छापर्यायश्छन्दः शब्द इह गृह्यते।" अर्थात् संघ के वे निश्चय जो मतदान द्वारा किये जाते थे छन्दस्य कहलाते थे। छन्द शब्द का अर्थ है स्वतंत्र। आजकल जो मतदान या वोट का अर्थ है, वही पाणिनि काल में छन्द शब्द का था।

गणपूरण--महावग्ग (३।३।६) में जिसे गणपूरक कहा गया है, वही अष्टाध्यायी का गणपूरण या संघपूरण था। उसका कार्य कोरम को पूरा करना था। आजकल की व्यवस्थापिका सभाओं में जो कार्य सचेतक (Whip) करते हैं, वही कार्य गणपूरण का भी था।

अंक और लक्षण--अष्टाध्यायी के नियम ४।३।१२७ से यह ध्वनि निकलती है कि संघों के अंक और लक्षण भी हुआ करते थे (संघांकलक्षणेष्वञ्यञिञामण्)। अंक का अर्थ है चिह्न। लक्षण का भी वही अर्थ है। श्री काशीप्रसाद जायसवाल के मत से तो परवर्ती संस्कृत में जिसे लांछन कहते थे वह पाणिनि का यही लक्षण है। यह प्रतीक पताकाओं, योधाओं की ध्वजों, पशुओं के कानों तथा मुद्राओं पर अंकित रहते थे। कात्यायन उपर्युक्त सूत्र में घोष को भी लक्षण और अंक के साथ जोड़ देते हैं (घोष ग्रहणमत्र कर्त्तव्यम्)। महाभारत में इन चिह्नों को लक्षण, लक्ष्म और रूप कहा गया है (द्रोणपर्व १०५।२।)। संभवतः पाणिनि ने अंक का अर्थ मुद्राओं पर चिह्नित वाक्यों से लगाया था। अर्थशास्त्र में (२।१२।४८) भी सिक्के ढालने के प्रधान अधिकारी को लक्षणाध्यक्ष कहा गया है।

आस्था का दीप

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

दीप बन ऐसा जलो तुम,
जो अमा पर मुस्कराए!
लीलता दिशि को अँधेरा, सिहरती-सी रात भी हो,
चाँद शरमाया छिपा हो, बादलों का घात भी हो;
तारकों की पुतलियों पर नींद का पहरा पड़ा हो--
क्षुब्ध धरती को कँपाता क्रूर झंझावात भी हो!
मृत्यु की निस्तब्धता पर
तुम सृजन की चेतना सी
प्राण! वह ज्वाला जगाओ
दामिनी जिससे लजाए!
देखकर उजड़ा विपिन कब कोकिला ने मौन ठाना?
खार से बिंधकर भ्रमर का भूलता क्या गुनगुनाना?
वज्र पा प्रिय से पपीहे की लगन मिटती, न घटती,
ज्वार से छूटा न प्रेमिक का उदधि को आजमाना!

एक नन्हीं दूब पतझर को
चुनौती दे रही है,
ज्योति के प्रहरी! तिमिर फिर
क्यों न तुमसे थरथराए?
ताप में तपकर जगत के मृत्तिका का तन बना है,
तूल-सा सुकुमार, अविरल स्नेह से अंतर सना है;
प्रीति के कर से परस कर भर गया विश्वास कोई--
शीश पर यश-सा सुनहला छत्र ज्वाला का तना है!
ओ मनुज की आस्था,
संकल्प के सहचर सलोने!
तुम किरण ऐसी लुटाओ,
प्रात जिससे पास आए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सव्यसाची कवि

प्रोफेसर कुबेरनाथ राय, एम० ए०

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

शरासन पर सजा हुआ शर अपने अन्तर के शक्ति-वेग से छटपटा उठा। प्रत्यञ्चा के खिचाव पर चढ़कर अब वह एक क्षण भी रुकना नहीं चाहता था। ऐसे क्षण पर कौन ऐसा अभागा, कौन ऐसा शापग्रस्त पापी होगा जो रुकना चाहे। वह अमर्ष से भर कर शरासन से बोला—"छोड़ दे मुझे ! अबे, तू कौन होता है मुझे पकड़ कर रखने-वाला ? मेरा मार्ग मुक्त गगन है। मैं निषंग-निवासी तेरी जाति का नहीं।" शरासन ने हँसकर उत्तर दिया—"अभी कच्चे हो। खिचाव की व्यथा जरा और सह लो। व्यथा-भोग से ही तुम्हें अबाध गति मिलेगी। अन्यथा परकटे बाज की तरह चार डग के बाद ही मँह की खा जाओगे।"

शरासन अपनी सारी काया को साधकर ऋजु वक्र करने लगा। प्रत्यञ्चा चुपचाप खिचाव अपने अन्दर भरती रही। अन्त में वह क्षण आया जब शरासन ने शर से कहा—"जाओ वत्स ! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। तुम्हारी मुक्ति में ही मेरी सार्थकता एवं मेरे स्वामी का पुरुषार्थ निहित है।" तीर छूटा। हवा की परत पर परत काटता हुआ गगन-मार्ग पर झपट चला और उसने उत्तर दिशावाली ध्रुव के हृदय को वेध दिया।

"किधों सूर को पद लग्यौ, तनमन धुनत सरीर"*

संगीत और सूर के नील-श्यामल उन्माद में चूर जिस व्यक्ति के मुख से यह प्रशस्ति-वाक्य निकला था उसकी सहृदयता एवं मर्मभेदी दृष्टि को सारा जगत् मान्यता दे चुका है। मौज में आकर कही हुई यह बात भी दूर की कौड़ी है। प्रत्येक रस-सिद्ध कवीश्वर एक महारथी धनु-र्धर है जिसकी व्यंजना के बाण रघुपति के बाणों की तरह अमोघ हैं। 'मानस' पढ़िए, 'हैमलेट' पढ़िए, वैष्णव-पदा-वली या 'वेस्टलैण्ड' पढ़िए, हेमिंग्वे का 'स्नोज़ ऑफ किलि-मंजारो' पढ़िए अथवा गोलाम मोस्तफा अली की 'चाचा काहिनी' पढ़िए—सब इसी धनुष-प्रत्यञ्चा-तीर एवं खिचाव के सामंजस्य का खेल है। जो संयमपूर्वक रूपा-यन (फार्म) के धनुष पर 'विषय' का तीर उचित अन्त-र्मुखी खिचाव के साथ खींच सका, वह तो व्यंजना का शर-संधान कर सका। अन्यथा या तो तीर छूटा ही नहीं, अथवा धनुष ही चड़चड़ा कर टूट गया। अरस्तू, लांगिनस, कोल-रिज से लेकर अभिनवगुप्त, रवीन्द्रनाथ एवं रामचन्द्र शुक्ल इसी तथ्य को शब्दावली के हेर-फेर के साथ कहते हैं।

जिस प्रकार धनुष की ज्या बाहर नहीं, भीतर की ओर खींची जाती है, उसी प्रकार व्यंजना या सर्जना प्रक्रिया (क्रियेटिव प्रासेस) में जो शक्ति काम करती है वह अन्त-र्मुखी होती है। अफलातून ने काव्य पर दोषारोपण किया था कि काव्य जगत् का अनुकरण है और जगत् भी किसी अन्य शाश्वत सत्ता का अनुकरण-मात्र है, स्वतः नहीं। अतः काव्य 'डबल' (दुगना) अनुकरण एवं मिथ्या की उपासना हुआ। अफलातून की दार्शनिकता बुद्धिवाद की निर्मम कठोर तलवार है। उसके सामने जो पड़ा, दो टुकड़े हो गया। काव्य पर इस निर्मम प्रहार का वारण उसके शिष्य अरस्तू के द्वारा सर्जना की अन्तर्मुखी वृत्ति के आधार पर ही हो सका। अरस्तू ने कहा है कि काव्य बाह्य जगत् का अनुकरण नहीं करता है। वह तो अन्तर के जगत् की प्रस्तुति, या बाह्य व्यंजना या प्रत्यक्षीकरण चाहे जो कहें, करता है। यह अन्तर का जगत् भावों या 'आइडिया' (अमूर्त प्रत्यय) का जगत् है और अफलातून के अनुसार यही भाव-जगत् या आइडिया-जगत् एकमात्र सत्य है, शेष मिथ्या है। अतः काव्य मिथ्या की अनुकृति नहीं बल्कि सत्य की प्रस्तुति या प्रत्यक्षीकरण है। सर्जना-प्रक्रिया में कवि की वृत्ति अन्तर की ओर इसी 'आइडिया'-जगत् में होती है। कवि-प्रतिभा में जितनी 'गहरे पानी' की 'पैठ' होती है उतनी ही उसकी पकड़ गहरी होती है और उसी मात्रा में उसके मानस में व्यंजित किये जानेवाले 'आइडिया' का चित्र स्पष्ट होता है। अतः व्यंजना के शक्तिशाली शर-संधान के लिए यह अन्तर्मुखी खिचाव आवश्यक है।

शर और ज्या की संगति

विषयवस्तु शर है और कवि-मानस ज्या। उक्त अन्तर्मुखी खिचाव विषयवस्तु की अन्तर्भूत सप्राणता, पोटोन्शियल शक्ति, को गतिमान सप्राणता—काइनेटिक शक्ति—में बदल देता है। यह एक प्रकार की साधना है।

* लेख के अंत में देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिंचाव की अन्तिम अवस्था को ही सत्वोद्रेक, मधुमती भूमिका, सहजानुभूति या 'इनट्यशन (अमूर्त प्रत्यय) की पकड़' आदि के द्वारा समझाने की चेष्टा की गयी है। सत्वोद्रेक या मधुमती भूमिका आदि संज्ञाएँ आज हमें कुछ अटपटी, दार्शनिक एवं रहस्यमय जैसी लगती हैं क्योंकि इन शब्दों का परम्परागत सम्बन्ध योग-आध्यात्म से रहा है। परन्तु इस सन्दर्भ में ये शब्द सीधे मनोवैज्ञानिक अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं। इनट्यूशन (सहजानुभूति) अधिक वैज्ञानिक शब्द है। इसका प्रथम प्रयोग क्रोचे ने किया था, किसी रचना की बाह्य व्यंजना (शब्दादि द्वारा) होने के पूर्व विषय की जो एक स्वयं प्रकाशित अनुभूति होती है, उस अर्थ में। रचना-प्रक्रिया को संक्षेप में इस प्रकार समझ सकते हैं।

तीर जब तक तरकस में पड़ा रहा बेकार रहा। कौड़ी का तीन। वही धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़ा तो सर्प की तरह फुफकार उठा। अन्तर्मुखी खिंचाव ने गति भर दी, तो काल गरुड़ की तरह झपटकर उड़ चला। कल्पना करिए, गंगा की बहती धारा पर चाँदनी की वर्षा थी। क, ख, ग आदि सभी ने देखा। सभी को नयनाभिराम लगा। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने उक्त दृश्य को बाह्य आँखों से या कल्पना-दृष्टि से देखा। उनके पास कवि-मानस की प्रत्यंचा थी। उसपर उक्त छवि अंकित हुई। अंकन तो प्रथम स्तर है। भावजगत् में यह अंकन, या 'छवि का इन्द्रिय-बोध', तो क, ख, ग के अन्दर भी हुआ था। परन्तु इस इन्द्रिय-बोध की पहचान क, ख, ग नहीं कर सके। यह इन्द्रिय-बोध स्पष्ट कटे-छँटे रूप में उगा ही नहीं उनके अन्दर। उनके अन्दर यह धुँधला अस्पष्ट सीमाओंवाला एवं 'केआटिक' गड्ड-मड्ड रूप में था। उन्होंने स्पष्ट इन्द्रियबोध की क्षमता ही नहीं प्राप्त की थी। एक वेश्यागामी के शृंगार-रस-बोध में और कालिदास के शृंगार रस-बोध में भेद इसी क्षमता के कारण होता है, अन्यथा रति की अनुभूति दोनों को होती है। यह इन्द्रियबोध का स्पष्ट अनुभव या अन्तर्दर्शन रचनात्मक प्रक्रिया का दूसरा स्तर है। ठीक इसी बोध के साथ-साथ कुछ सम्बन्धित बिम्ब हैं जो अपने आप मन में उभरने लगते हैं। अनुभूति के केन्द्र में तो वह छवि है, जो विषय-वस्तु है। परन्तु परिधि अनेक प्रकार के सम्बन्ध-सूत्रों के विविध बिम्बों से जुड़ी है। उदाहरण के लिए, ज्योत्स्ना-छवि और गंगा की प्रशान्त सतह से सम्बन्धित अनेक बिम्ब हैं जिनमें कुछ तो जातीय हैं यथा स्वर्ग का कुसुम-कानन, प्रेयसी, यमुना-तट, श्रीकृष्ण, उर्वशी, तपलीन उमा आदि। एवं कुछ व्यक्तिगत भी हो सकते हैं, यथा, कवि के पूर्व जीवन का कोई राग-संस्कार अथवा अपनी प्रेमिका का मुख। ये सभी बिम्ब एक साथ नहीं आते। प्रतिभा के अन्तर्मुखी खिंचाव से इनमें एक व्यवस्था आती है और अपने अन्तिम व्यवस्थित रूप में उक्त केन्द्रीय छवि के साथ मिलकर ये सब एक काव्यानुभूति की इकाई बनाते हैं। यही खिंचाव का अन्तिम स्तर है। यहाँ अनुभूति का काम समाप्त और व्यंजना का कार्य प्रारम्भ होता है।

बाह्य जगत् की वस्तुएँ ही काव्य का विषय नहीं बनतीं। कभी-कभी भावदशा ('मूड') भी विषय-वस्तु होता है। परन्तु प्रायः दोनों मिश्रित चलते हैं। इस प्रकार कविता वस्तु-प्रधान, भाव-प्रधान और मिश्रित तीन प्रकार की होती है। तीनों के रागबोध या काव्यानुभूति की इकाई की प्राप्ति उक्त प्रक्रिया से ही होती है। इस अनुभूति के बाद उसे शब्द, रंग या मृत्तिका आदि के माध्यम से ठीक-ठीक "हूबहू" रूप में गणितीय समानता (मैथेमेटिकल एक्जैक्टनेस) के साथ मानस से बाहर प्रस्तुति देते हैं। रूपायन (अनुभूति का शब्दादि द्वारा प्रत्यक्षीकृत रूप) एवं उक्त काव्यानुभूति में कोई भेद नहीं होना चाहिए। दोनों के बीच जितने अंशों तक एकात्म होगा उतने अंशों तक ही व्यंजना सफल मानी जायगी। पन्तजी के कवि मानस में ये समस्त स्तर अनजाने रूप में घटित हुए। फल हुआ 'नौका-बिहार' नामक उनकी कविता।

किसी भी कविता के मानसिक इतिहास के पीछे उपर्युक्त तथ्य विद्यमान मिलेगा। रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताएँ जो वस्तु-प्रधान हैं, इस कथन के प्रमाणस्वरूप हैं। उनकी 'मैना' नामक कविता एक लँगड़ी, फुटबैल, अकेली मैना से सम्बन्धित है जो कवि के आवास के सामने अक्सर फुदकती थी। कवि की करुणा ने उक्त अकेली प्रियतम-विहीना मैना के मर्म को स्पर्श किया। 'शेष लेखा' में कुत्ते वाली कविता का स्रोत उनके अपने एक अन्धे कुत्ते में मिलता है। ('अशोक के फूल' : श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी)। निराला की कविता 'भिक्षुक' का मानसिक इतिहास भी कुछ इसी प्रकार का होगा। लखनऊ और कलकत्ते में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें भिक्षुकों को बुलाकर पकौड़ियाँ खिलाने का और तेल-साबुन बाँटने का खब्त सा था। समूची कविता वस्तु-प्रधान काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। अन्तिम दो पंक्तियाँ—"मेरे हृदय में है अमृत....." इत्यादि समूची कविता में विचित्र सप्राणता पैदा करती हैं। केन्द्रीय अनुभूति से सटी हुई सहचारी बिम्बों (यथा 'हृदय में अमृत', अभिमन्यु आदि) की अनुभूति कविता के मर्म को और गहरा एवं बोध को और प्रगाढ़ कर देती है।* समूची कविता पर अलौकिकता की यह 'पालिशिंग' (चमक) इसी अन्तर्मुखी खिचाव के फलस्वरूप ही संभव होती है।

भावप्रधान कविता में आन्तरिक खिचाव और अधिक आवश्यक है। किसी वस्तु को देखकर उससे सम्बन्धित (यह सम्बन्ध कितना भी दूर का क्यों न हो) एक 'भावदशा' को प्राप्त करना, फिर मूल वस्तु को विस्मृत करके 'भावदशा' को ही काव्यानुभूति की इकाई बनाना एकमात्र आन्तरिक व्यापार है। प्रथम इन्द्रियबोध का परित्याग कर सम्बन्धित भावबोध की व्यंजना रवीन्द्रनाथ की कविताओं में अधिक पायी जाती है। कवि के हिमालय (रामगढ़) प्रवास का जिक्र करते हुए रथीन्द्रनाथ ने, जो कवि के पुत्र थे, बताया है कि वे एक दिन अचानक सोकर उठे। प्रथम दृष्टि में प्रभात का दर्शन हुआ। सम्मुख गिरिशिखर पर किरणों की वर्षा हो रही थी। कवि कुछ क्षणों तक खड़े रहे। मूर्त्तिवत्, चुपचाप। फिर तन्मय होकर गाने लगे—

"एइ लभिनू संग तव, सुन्दर हे सुन्दर,
पुण्य ह'ल अंग मम, धन्य ह'ल अन्तर,
आलोके मोर चक्षु दूटि, मुग्ध हये उठलो फुटि
हृद गगने पवन ह'लो सौरभते मन्थर।
सुन्दर हे सुन्दर!"

कहने का तात्पर्य यह कि आन्तरिक खिचाव या अन्तर्मुखी वृत्ति के कारण विषय-वस्तु, जो अपने मूल रूप में सदैव शुष्क, गद्यात्मक, कच्चा-माल रहता है, स्वभाव परिवर्त्तित कर लेता है। उसके अन्दर दिव्य या अतीन्द्रिय तत्व आ जाते हैं। यदि ऐसा न भी हो, वह इन्द्रिय बोधमात्र ही रहे, तो भी उसमें प्रगाढ़ता एवं स्पष्टता आ जाती है। विषयवस्तु की आत्मा बदल जाती है। यह 'आत्मिक—रूहानी परिवर्त्तन' (आध्यात्मिक अर्थ में नहीं, वैज्ञानिक अर्थ में) ही विषयवस्तु को काव्यानुभूति की अवस्था तक पहुँचाता है। मैथ्यू आर्नाल्ड जब कीट्स के इस 'आइडिया' (अमूर्त प्रत्यय) को 'मारल आइडिया' (नैतिक या आध्यात्मिक अमूर्त प्रत्यय) कहता है, तो उसका तात्पर्य इसी आत्मिक परिवर्त्तन या उक्त अतीन्द्रियता से है। चित्रफलक पर क्रीड़ारत प्रेमी अपनी प्रेमिका का चुम्बन करने के लिए झुका हुआ दिखाया गया है। यह अतृप्ति भरा क्षण फलक पर उतरकर जरा-मरण से परे हो गया। यह प्रेमी युग-युगान्तर तक अतृप्त ही रह जायगा। परन्तु—

"Forever wilt thou love, and she be fair"

आर्नाल्ड की दृष्टि में यह एक 'मारल आइडिया' (अमूर्त प्रत्यय) है। यहाँ पर परम्परागत 'मारलिटी' या आध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं। चाहे मूल विषय-वस्तु का आइडिया आध्यात्मिक हो या भौतिक, काव्य-प्रक्रिया में पड़कर उसकी प्रकृति बदल जाती है। इसी अर्थ में यह 'स्पिरिचुअल चेंज'—आत्मिक परिवर्त्तन है।

रूपायन का धनुष

व्यंजना कभी भी रूपहीन, 'फार्मलेस', नहीं होती। यह दूसरी बात है कि परम्परागत रूपायन (फार्म) के स्थान पर कोई नवीन रूपायन प्रतिष्ठित हो। परन्तु किसी न किसी प्रकार का रूप अथवा छन्द-बन्ध अवश्य वर्त्तमान होगा। अन्यथा व्यंजना होगी नहीं। जिस धनुष में कमान नहीं केवल ज्या ही है, उससे शरसंधान की कल्पना करना पागलपन है। प्रत्यंचा पर चढ़ा तीर दो प्रकार के बलों द्वारा प्रेरित होता है। एक तो अन्तर्मुखी खिचाव है और दूसरा उक्त खिचाव का विरोधी कमान का नियन्त्रण। इन दोनों प्रकार के बलों के कशमकश से एक तनाव आता है और तीर के अन्दर गतिमानता एवं स्फूर्त्तिवेग का प्रवेश होता है। यदि सीमा से अधिक खिचाव हुआ तो धनुष ही टूट जायगा। उस समय जो व्यंजना होगी वह 'रूप-हीन' होगी, क्योंकि अन्तर्मुखी

---

*खेद है कि यथार्थवादी सनक में आकर इधर के संस्करणों में ये पंक्तियाँ कभी-कभी छाँट दी जाती हैं। यथार्थवाद का भारत में अर्थ लिया जाता है (या एक दशक पूर्व लिया जाता था), जो कुछ सामने दिखाई देता है, वह है 'यथार्थ'। परन्तु यह यथार्थ की एक श्रेणी-मात्र है, बहुत ही छिछली श्रेणी जिसे अँगरेजी में नेचुरलिज्म (प्राकृतवाद) कहते हैं।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्ति इतनी गहरी हो गयी है कि उसका बिम्ब ग्रहण कराने के रूप में नहीं मिल सकता। अचेतन मानस की अंधकार-मयी तहों का 'केआस' (Chaos दुर्व्यवस्था) व्यंजित करने की चेष्टा में फ्यूजरिज्म या सुर रियलिज्म शैलियों का विकास किया गया है। इन शैलियों का रूपायन 'रूपहीनता' की ओर अधिक उन्मुख है। कई कविताओं में कुछ अंशों तक रूपायन बचा हुआ है, अतः उनकी प्रेषणीयता किसी प्रकार सम्भव हो जाती है। परन्तु जहाँ रूपायन एकदम नहीं हैं (यद्यपि ऐसे एकान्तिक उदाहरण अत्यल्प हैं) वहाँ तो प्रेषणीयता असंभव है क्योंकि वहाँ व्यंजना ही शून्य है। अन्तर्मुखी वृत्ति इतनी गहरी चली गयी कि रूपायन का धनुष ही टूट गया। उदाहरण के लिए लुई अरागों की एक सुररियलिस्ट कविता हम ले सकते हैं जिसमें रूपायन बिलकुल नहीं है:

'आत्मघात'

"A B C D E F
G H I J K L
M N O P Q R
S T U V W
X Y Z."

पाँच पंक्तियों की इस कविता में यदि शीर्षक को अलग कर दिया जाय तो इसका अर्थ कोई बैठकर लगाया करे! वास्तव में यह व्यंजना ही नहीं। जब व्यंजना ही नहीं, तो प्रेषणीयता किसकी होगी? परन्तु ऐसे उदाहरण कम हैं। नयी कविता में सदैव रूप-हीनता ही नहीं होती। रूपायन जाना-पहचाना न हो, यह अन्य बात है। यह तथ्य है कि नवयुग के राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक परिवर्त्तनों ने हमारी संवेदनशीलता की परिधि (रेन्ज) को अति विस्तृत कर दिया है। इसका एक छोर अनन्त में जाता है, दूसरा अवचेतन के अंधकार में। भावभूमि का यह विस्तार परम्परागत रूपायन सँभाल नहीं पायेगा। इसीसे नयी संवेदनाओं की व्यंजना के लिए नवीन रूपायन का प्रयोग न्याय-संगत है, और जिन पाठकों के संस्कार उन संवेदनाओं से परिचित हैं वे उन कविताओं के समझने में कठिनाई का अनुभव नहीं करते। यदि पाठक का मानसिक विकास नहीं हुआ है, तो वह केवल प्रेम गीतों की सादी व्यंजना को छोड़कर शेष प्रकार की कविताओं में रसबोध पा ही नहीं सकता। आधुनिक मानव के संस्कारों में हैमलेट, फास्ट, एडीयस, मेरी मैगडेलीन, विजयदीप्त बुद्ध, स्थित-धी श्रीकृष्ण, देवता और असुर, उर्वशी और हेलेन, डायना का नग्न सौन्दर्य और एक्टियन, सूफी प्रेमिका और वैष्णव-भाव, सभी एक मिश्रित रूप में विद्यमान हैं। आज का मनुष्य संस्कारों और मानसिक-संघातों के हिसाब से भी 'अन्तर्राष्ट्रीय मानव' है, राजनीतिक और आर्थिक रूप से तो है ही। ऐसी अवस्था में संवेदनाओं का विस्तार भी अतुलनीय रूप में होगा ही। संवेदना प्राप्त करने की विधा एवं उसकी प्रकृति में परिवर्त्तन होने से रूपायन की विधा और प्रकृति में परिवर्त्तन आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु इसे हम 'रूपहीनता' नहीं कह सकते। टी० एस० एलियट का 'वेस्ट लैण्ड' ऊपर से रूपहीन लगते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर एक संगठित रूपायन पर आधारित है।

रूपायन का उद्देश्य है पाठक को कवि की अनुभूति का, जिसे हम ऊपर इनट्यूशन (अन्तःप्रज्ञा) कह चुके हैं, इन्द्रिय-बोध कराना। मिल्टन ने कविता का 'ऐन्द्रिक' होना इसीसे आवश्यक बताया है। कवि यदि समुद्र का वर्णन करता है, तो पाठक को उक्त वर्णन का ऐन्द्रिक अनुभव हो कि वह सचमुच गरजते समुद्र के सामने खड़ा है। यदि वह प्रेमगीत पढ़ता है, तो ऐसा अनुभव करने के लिए बाध्य हो कि उक्त गीत का "मैं" वह स्वतः है। रूपायन की इस सफलता के लिए मूर्त्त प्रतीकों की आवश्यकता होती है। कविता चाहे कितनी भी चिन्तन-प्रधान क्यों न हो मूर्त्त विम्ब लाना ही होगा, अन्यथा वह पद्य भले ही रहे कविता नहीं। 'गीता' में काव्य उन्हीं श्लोकों में आया है जहाँ मूर्त्तबिम्बों से कुछ सम्बन्ध है। 'कामायनी' या 'विभूति-योग' अथवा 'विश्वदर्शन-योग' ('गीता') या कबीर एवं रवीन्द्रनाथ के निर्गुण पद अति चिन्तनपरक होते हुए भी व्यंजना के अन्दर मूर्त्तबिम्बों की विद्यमानता के कारण सफल काव्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

रवीन्द्रनाथ की एक कविता है—"सबुजेर अभियान' हरीतिमा का अभियान। पतझार के बाद अपनी पूरी शक्ति के साथ गहगहाकर धरती के पोर-पोर, रन्ध्र-रन्ध्र से फूटती हुई हरीतिमा का वेग कवि के अन्दर 'नवीन' के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। वह परिपक्व का तिर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कार एवं नवीन की वन्दना करने को उन्मुख होता है। हरीतिमा एक प्रारम्भिक बिन्दु-मात्र है। कवि का उद्देश्य है 'नवीन' का जीवन दर्शन ज्ञापित करना। अतः यह चिन्तनप्रधान कविता है। परन्तु कवि ने व्यंजना में विविध मूर्त्त बिम्बों का प्रयोग करके 'ऐन्द्रिक सम्वेदन' (इन्द्रिय-बोध) कराने की चेष्टा की है। ये मूर्त्त विम्ब हरीतिमा के वाहन, लता तृण या पत्र-पुष्प, के जगत् तक ही सीमित नहीं हैं। ये शिशु-जगत् या पक्षी-जगत से भी लिये गये हैं, क्योंकि कवि का विषय 'हरीतिमा' नहीं। हरीतिमा तो विषय की भूमिका मात्र है। कविता के कुछ अंश इस प्रकार हैं--

ओरे सबुज ओरे अबूझ
आधमरादेर घा मेरे तूई बाँचा

रक्त आलोर मदे माताल भोरे
आजके जेइ जा बले बलूक तोरे
सकल तर्क हेलाय तुच्छ करे
पुच्छटि तोर उच्चे तूले नाचा ।
आय दूरन्त, आय रे आमार काँचा।

खांचा खाना दूलछे मृदु हावाय
आर तो किछूई नड़े नारे
ओदेर घरे, ओदेर घरेर दावाय
ओई जे प्रवीण, ओई जे परम पाका
चक्षु कर्ण दुइटि डानाय ढांका
झिमाय जेनो चित्रपट आँका
अन्धकारे बद्ध करा खांचाय
आय जीवन्त आय रे आमार काँचा।

× × ×

चिरयुवा रे तूई जे चिरजीवी
जीर्न जरा झरिए दिये
प्रान अफुरन्त छड़िए देदार दिबी
सबुज नेशाय भोर करेछिस धरा
झड़ेर मेधे तोरोई तड़ित भरा
वसन्तेर परश आकुल करा
आपन गलार वकुल माल्य गाछा
आय रे अमर आय रे आमार काँचा।"

[ओ मेरे नवीन, ओ मेरे अपरिपक्व (कच्चे), ओ नादान हरित, अर्धमृतों को आहत करके तू जीवित रहा। रक्त-प्रकाश के मद में उन्मत्त इस प्रभात वेला में आज तुझे कोई भी चाहे जो कुछ कहे, सारे तर्कों को तुच्छ मान-कर अवहेलनापूर्वक तुम्हारी पूँछ ऊँची उठकर नाच रही है। अरे धृष्ट, अरे मेरे कच्चे, (उधर देख!) पिंजड़े हवा में झूल रहे हैं। और कुछ भी डोलता नहीं उनके घरों की दालानों में। वे जो प्रवीण हैं, परम परिपक्व हैं अपनी आँखों और कानों को अपने डैनों से ढाँककर ऊँघ रहे हैं मानों (प्राणहीन) चित्र-मात्र हों। वे अंध-कारमय पिंजड़ों की कारा में बन्द हैं, रे मेरे जीवन्त, मेरे (सव्यजात) कच्चे। ××× तू तो चिरजीवी चिरयुवा है। जीर्णता और जरा को झाड़कर, अनश्वर प्राण इधर-उधर बिखराते हुए, हरीतिमा की नशा में तू धरती पर भोर लाया है। मेघ की झड़ी में तेरा ही तड़ित छूटता है। अपने गले की वकुल पुष्पों से गूँथी माला इस वसन्त को तुम्हीं पहना देता है।]

—['बलाका' से]

किसी भी भाव-विशेष का एक निजी रूपायन होता है। रूपायन से मतलब छन्द और शब्दावली ही नहीं। शब्दों का मानसिक संस्कार भी इसीके अन्तर्गत आता है। वायु, पवन, समीर, प्रभंजन आदि के अलग-अलग मानसिक संस्कार हैं। यदि एक शब्द के स्थान पर दूसरा पर्यायवाची शब्द रख दें तो भाव की 'स्पिरिट' ही दूसरी हो जायगी। "घन घमण्ड गरजत नभ घोरा" में कठो-रता की जितनी ऐन्द्रिक एवं प्रगाढ़ व्यंजना है उतनी "वारिद गरबित गरजत घोरा" में नहीं। मात्रा और अर्थ दोनों अवस्थाओं में वही रहे, परन्तु इन्द्रिय-बोध की प्रगा-ढ़ता कम हो गयी। ऊपर की कविता में रवीन्द्रनाथ ने जिस भाव-विस्तार का वितान तानने की चेष्टा की है वह अन्य छन्द, अन्य शब्दावली, अन्य ध्वनि-पैटर्न, दूसरे शब्दों में, अन्य रूपायन में सम्भव नहीं। अन्य रूपायन अन्य प्रकार का भाव व्यंजित करेगा। चाहे वह इससे गाढ़ा बन जाय या मद्धिम बने। परन्तु एक 'आत्मिक परिवर्त्तन' आ जायगा। वह वही नहीं रहेगा जो इस समय है।

कवि-व्यक्तित्व—निमित्तमात्रम्

हमने रवि बाबू और निराला की कविताओं के प्रसंग में उनके मानसिक इतिहास की चर्चा की है। उक्त चर्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सम्बन्ध कवि के व्यक्तित्व से है। कवि के जीवन के वे क्षण, जो उस व्यक्तिगत दायरे में विश्व के लिए महत्त्व-हीन है, काव्य में जाकर अपना संस्कार बदल कर महत्त्व-पूर्ण बन जाते हैं। यहाँपर इस गलत धारणा के उत्पन्न होने की आशंका है कि किसी कविता की प्रेषणीयता एवं रसास्वादन के लिए उन तथ्यों या वस्तुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है जो उसे प्रथम-प्रथम कवि मानस में उद्बुद्ध करती हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं। ये प्रारम्भिक बिन्दु सीमित और कवि को छोड़कर अन्य व्यक्तियों के लिए कोई खास महत्त्व नहीं रखते। जब तक कोई सुख, व्यथा, सिहरन-पुलकन या पीड़ा कवि के व्यक्तिगत जीवन से ही सम्बन्धित है, आगे नहीं, तब तक वह हमारे लिए महत्त्वहीन है। परन्तु वही प्रारम्भिक सिहरन-पुलकन, सुख-दुख आन्तरिक खिंचाव के जोर से साधारणीकृत हो जाता है--काव्यानुभूति का रूप धारण कर लेता है, तब वह हमारा अपना सुख-दुःख, हमारी अपनी सिहरन-पुलकन बन जाता है।

ऊपर हमने रामगढ़-प्रवास के समय लिखी गयी रवीन्द्रनाथ की एक कविता के जन्म का वातावरण उल्लिखित किया है। परन्तु यह कहना कि यह कविता 'एई लभिनू पड़ि रहन संग तव, सुन्दर हे सुन्दर!'--गिरशिखरों पर बरसती प्रभाती किरणों पर लिखी गयी है--एक सस्ती और 'फिलिस्तीन' काव्यदृष्टि है। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे घी खानेवाला कहे, "मैं भैंस खा रहा हूँ।" हमारा उक्त तथ्य के उल्लेख करने का तात्पर्य था यह दिखाना कि किस तरह एक व्यक्तिगत अनुभव अन्तर्मुखी काव्य-सर्जना प्रक्रिया में पड़कर अपनी 'आत्मा' ही बदल देता है। कवि का व्यक्तिगत अनुभव कच्चा माल है, वह काव्योत्पादन के बारे में कोई धारणा नहीं दे सकता है। स्वर्ण को देखकर हमें अँगूठी, कुण्डल-कटक आदि की धारणा नहीं हो सकती। काव्य के रसास्वादन की आवश्यक शर्त है--कवि के व्यक्तिगत अनुभव में 'आत्मिक परिवर्त्तन।' यही दिखाने के लिए ऊपर के रामगढ़-प्रभात-दृश्य की, अथवा निराला के भिक्षुकों के प्रति व्यवहार की चर्चा की गयी है। परन्तु उक्त प्रभात एवं उक्त व्यवहार अपने में पाठक के लिए, भोक्ता के लिए, रसिक के लिए, कोई महत्त्व नहीं रखते।

सव्यसाची कवि का व्यक्तित्व निमित्तमात्र है। परिपक्व काव्य रचना में यह व्यक्तित्व कवि द्वारा सदैव पृष्ठभूमि में चाँप कर रखा जाता है। जहाँ वह सामने आया कि परिपक्वता समाप्त हुई और सस्ती भावुकता का प्रवेश हुआ। कवि अपने व्यक्तित्व को साधारणीकृत करके हमारे सामने उपस्थित करता है--यह साधारणीकृत व्यक्तित्व उसका व्यक्तित्व नहीं रह जाता। इसी तथ्य को 'तटस्थता' या 'निर्वैयक्तिककरण' कहा गया है। होमर, शेक्सपियर, गेटे, तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ में यही निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व विद्यमान है--इसीसे वे लोग क्लासिक बन गये हैं। टी० एस० एलियट ने इसी तथ्य को इस प्रकार कहा है--"The process of artist is a continual self-sacrifice, a continual extinction of personality." एलियट ने अपने प्रसिद्ध-निबन्ध 'परम्परागत मूल्य और व्यक्ति प्रतिभा' में कवि या लेखक के व्यक्तित्व की तुलना 'केटलेटिक एजेण्ट' (उत्प्रेरक) से की है। आक्सीजन और सल्फर डाइऑक्साइड दो गैसों के मिलने से सल्फ्यूरिक एसिड बनता है। परन्तु ये दो गैसें कभी भी मिल नहीं सकतीं जब तक प्लेटिनम का तार बीच में न हो। यद्यपि प्लेटिनम का कोई भी अंश इस प्रक्रिया में नहीं व्यय होता है--परन्तु सारी प्रक्रिया के चलने के लिए उसकी उपस्थिति आवश्यक है। कवि का व्यक्तित्व भी कुछ इसी प्रकार से काम करता है। प्लेटिनम की तरह वह भी समस्त सर्जना प्रक्रिया का 'केटेलिटिक एजेण्ट' (उत्प्रेरक) है। एलियट ने जिस सीमा तक कवि के व्यक्तित्व को तटस्थ माना है उक्त सीमा तक तटस्थता कुछ प्रकार की कविताओं में, यथा रोमाण्टिक वेदना की व्यंजना में, नहीं बरती जा सकती। परन्तु इतना तो अवश्य है कि कवि नामक व्यक्ति का अनुभव कच्चा माल मात्र है, और उससे उत्पादित कविता से उसका सम्बन्ध यदि पूरा-पूरा वादरायण-सम्बन्ध नहीं, तो भी अर्ध-वादरायण तो अवश्य है।

परिपक्व कविता में कवि-व्यक्तित्व को निमित्त-मात्र घोषित करने का अर्थ यह नहीं कि वह बिल्कुल अनुपस्थित रहता है। उसकी सतत उपस्थिति अनुभूतियों की सचचाई के लिए आवश्यक शर्त्त है। बिना उसकी उपस्थिति के रचना प्रक्रिया चल ही नहीं सकती। परन्तु वह रचना के पात्रों में स्थान नहीं ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता। उदाहरण के लिए 'मानस' के पीछे तुलसी का व्यक्तित्व सदैव विद्यमान रहता है। प्रत्येक चौपाई के पीछे हम उनके स्पर्श का अनुभव करते हैं। परन्तु किसी भी स्थल पर हम उन्हें अपने दुःख-सुख की बात करते हुए नहीं पाते हैं। केवल एक स्थल पर, वह भी अत्यन्त गोपनीय रूप से वे आते हैं--"तेहि अवसर तापस एक आवा.....।" राम-प्रेम की व्यंजना में जहाँ कहीं 'तुलसी' शब्द आया है वह उनके व्यक्तित्व का हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता है। 'रामभक्त तुलसी' तो 'व्यक्ति तुलसी' के साधारणीकृत रूप हैं। उस समय वे 'व्यक्ति' नहीं।

रोमाण्टिक कविता कौमार्य-काव्य है, परिपक्व काव्य नहीं। वैष्णव-कवियों में तुलसी ही एकमात्र शतशः परिपक्व कवि हैं, वह भी सिर्फ 'मानस' में। कौमार्य-काव्य में व्यक्तित्व का आभास कुछ हद तक आ जाता है। विशेषतः सेक्यूलर रोमांटिक काव्य में, यथा शेली की कविताएँ। परन्तु वर्डस्वर्थ और ग्येटे तथा हमारे वैष्णव कवि अपने व्यक्तित्व को ही व्यक्तिगत धरातल से ऊपर उठा देते हैं। उस अवस्था में उनके व्यक्तित्व में 'व्यक्तिगत' कुछ रह ही नहीं जाता। यदि शैली का भेद और भाषा का भेद हटा दिया जाय तो अमुक कविता 'सूरदास' की है अथवा 'विद्यापति' या चण्डीदास की है, निर्णय करना कठिन होगा। यद्यपि एक दीन-दुखी अंधा था तो दूसरा दरबारी, एवं तीसरा विख्यात प्रेमी। कम से कम उनकी श्रेष्ठ कविताओं पर तो यह बात लागू ही होती है। रही रोमांटिक एवं सेक्यूलर कविता की बात, उसमें भी कवि के व्यक्तिगत सुख-दुःख के आधार पर किसी कविता की व्याख्या नहीं करनी चाहिए। कीट्स का व्यक्तिगत जीवन दुःखी था, अतः उसने वेदनापरक काव्य का सृजन किया। परन्तु वेदना का पैगम्बर बनने के लिए भयंकर आसुरी शक्ति की आवश्यकता है जो 'कीट्स-कवि' में विद्यमान है। और वेदना के गीतों की व्याख्या करते हुए उन्हें 'कीट्स व्यक्ति' से उत्पन्न बताना 'कीट्स-कवि' का अपमान करना है।

इस लेख के तीसरे पैरा में आये हुए दोहा की अर्द्धाली की कथा इस प्रकार है। तानसेन का संगीत सुनकर सूरदासजी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा :--

"विधिना यह जिय जानिकें, दिये न शेषहिं कान,
धरा, मेरु सब डोलते, तानसेन की तान।"

तानसेन ने प्रत्युत्तर में सूरदासजी की प्रशंसा में कहा :—

"किधों सूर को शर लग्यौ, किधों सूर (शूल) की पीर।
किधों सूर कौ पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर॥"

—सम्पादक

दिवाली—दार्शनिक की कुटिया में

श्री साँवलराम पोद्दार 'निर्गुण

यह दिवाली....
आज का शुभ पर्व यह--उस शक्ति का त्यौहार आली
यह दिवाली, शुभ दिवाली
शक्ति वह जो विश्व की पालक कहाती
जन्म से पहले स्तनों में प्राणियों के दूध लाती
सृष्टि के अन्तर्बहिर में व्याप्त होकर, खेल यह सारा रचाती
शक्ति का मृदु हास्य यह जग, शक्ति का उल्लास आली
यह दिवाली.....
शक्ति वह उस खेत में--उस रेत में भी--धान्य पैदा कर दिखाती
एक के कर लाख मानो ब्रह्म से खिलवाड़ करती
ब्रह्म तो उसमें बँधा-सा दीन परवश?
ब्रह्म को वह उँगलियों पर नित नचाती, अति निराली
यह दिवाली.....
आज तेरा मुख कमल क्यों खिल नहीं पाया समय पर
बोलती कुछ भी नहीं क्या वेदना-क्या कष्ट है कुछ?
अश्रु के दो बिन्दु पलकों से गिरे-मोती धरा पर
भावना के पुष्प ये इनको न खोओ व्यर्थ आली
यह दिवाली.....
सोचती घर में नहीं कुछ--रिक्त सब कुछ?
उर भरा सन्तोष से फिर क्या नहीं है?
प्रीति युत आनन्द की धारा यहीं पर
शत अभावों में सदा बहती रही है!
दुःख हो जब कामना हो, कामना ही हो नहीं तब दुःख कैसा?
क्लेश का अणु मात्र भी--तुमको न करता स्पर्श आली
यह दिवाली.....
क्या कहा—सत्कार अभ्यागत जनों का?--
'मिष्ट वाणी' का मधुर उपहार धरना,
नयन में भर कर अमी प्रिय प्रेम रस का--
प्रिय जनों की प्रेम से मनुहार करना!
प्रेम का भूखा सदा भगवान भी--क्यों भूलती हो?
प्रेम की महिमा अजब, यह प्रेम कितना शक्तिशाली
यह दिवाली.....
आज जन-मन में खुशी की लहर सी इक उठ रही है
आज उर की तंत्रियों पर भावना, शुभ कामनायें लुट रही हैं
तुम खुशी की लहर बन--फैलो चहूँ दिशि आज आली
तुम 'रमा' हो इस कुटी की, यह तुम्हारा 'अगत' आली
यह दिवाली.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के भाषा-विज्ञान की आवश्यकता

डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०

"अज्ञानेनावृतं ज्ञानम् तेन मुह्यन्ति जन्तवः।"

---गीता

(जब) ज्ञान अज्ञान के परदे में ढका या छिपा रहता है (तब) उससे जीव-जन्तु मूढ बन जाते हैं।

इस समय विज्ञान ने अपूर्व उन्नति की है। हमारे पूर्वज विमान चलाते थे, किन्तु कहीं यह पढ़ने में नहीं आता कि हमारे वायुयानों ने ५ दिन के भीतर २० लाख मील की दूरी तय कर दी। इन वायुयानों के कल-पुर्जे एक सेकेण्ड में लाखों चक्कर काटते हैं। समय पर उड़ाये और समय पर भूमि पर उतार लिये जाते हैं किन्तु कभी ऐसा अवसर नहीं आता कि लाखों मील चलने पर भी कोई पुर्जा अपनी चाल में कम या ज्यादा वेग से चलने लगता हो। एक दो राकेट सूर्य और चन्द्रलोक भी हो आये हैं। अभी तक हमारे शास्त्रों में यह भी नहीं पाया जाता कि कोई हवाई जहाज सूर्य या चन्द्रमा तक जाकर लौट आया हो। इन बातों से हमारे सामने विज्ञान का माहात्म्य अपने पूरे वैभव के साथ प्रकट होता है। इस समय मनुष्य विज्ञान का पुतला बन गया है और सर्वत्र, सब कामों में, वैज्ञानिक सिद्धान्त ही लागू होने लगे हैं। इस कारण यूरोप अमरीका आदि देशों में केवल विज्ञान का बोलबाला है। १५० साल से भाषा-विज्ञान भी बन गया है। इस विज्ञान की भी नाना शाखाएँ अपना-अपना करिश्मा दिखा रही हैं। खेद है कि हिन्दी भाषा में भाषा विज्ञान का केवल नाम मात्र है, जिसके कारण इस भाषा में ऐसी-ऐसी भूलें दिखाई देती हैं कि हृदय में बहुत व्यथा होती है।

मैंने हिन्दी के अनेक पहलू देखे हैं। एक बार विद्वानों में वादविवाद छिड़ा कि **गया** तथा **गई** लिखा जाना चाहिए अथवा **गया** और **गयी**। वर्षों वाद-विवाद हुआ अन्त में कोई निर्णय नहीं हो पाया और आज गया और गई के तारे चमक रहे हैं। यह किसलिए इस प्रकार लिखा जाता है, इसका स्पष्टीकरण एक भी हिन्दी भाषा विज्ञानी या विद्वान् नहीं कर सका। ऐसे बहुत से प्रश्न हैं जिनका समाधान हम नहीं कर सके। हिन्दी वाले तो किसी तरह अपना मन समझाकर इस प्रकार से लिख लेते हैं; किन्तु अहिन्दीभाषी लोग इन्हें बहुत जटिल पाते हैं और बड़ी कठिनाई का सामना कर हिन्दी सीख रहे हैं। हमारे पुंलिग, स्त्रीलिंग की समस्या भी उनके सामने भीषण रूप में खड़ी हो जाती है, आदि।

कुछ बातें भाषा-विज्ञान के विरुद्ध जाती हैं तो भी हमारे विद्वान् उन्हें भली प्रकार समझने का यत्न और खोज नहीं करते। हिन्दी के एक विद्वान् ने एक व्योकरण लिखा है जिसमें बताया है कि सौसी शब्द **मा-सा** या **मा-सी** से निकला है। इन विद्वान् को यह पता नहीं है कि हिन्दी के जितने भी शब्द हैं वे वैदिक काल से अथवा संस्कृत के समय से सपरम्परा चले आ रहे हैं। भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन अथवा ध्वनि का विकार सदा अपना काम करते आता है; किन्तु, शब्द की परम्परा कभी नहीं टूटती। उदाहरणार्थ---**आज** शब्द हिन्दी का है किन्तु इसकी परम्परा बहुत पुरानी है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका आरम्भ का रूप **अ' द्यवि** था। इस 'अ' द्यवि में **अ** का अर्थ 'यह', 'इस' है जो **'अत्र'**, **'अस्मिन्'** आदि का बीज रूप है और **'द्यवि'** का अर्थ है दिन में इस **अ' द्यवि** का वेदों में **अद्य** रूप हो गया था। ध्वनि परिवर्तन निरन्तर काम करता रहता है क्योंकि मनुष्यों के कान मुँह आदि ध्वनि यंत्र अपूर्ण हैं। यह अद्य प्राकृत में **अज्ज** बन गया जो खड़ीबोली में 'आज' रूप लेकर हमारे सामने खड़ा हो गया है। यह **आज** हिन्दी में बड़ी लम्बी परम्परा से घर करके बैठ गया है। हिन्दी में **अद्य** का प्रयोग उतना शुद्ध नहीं है जितना कि **आज** का। अँगरेजी में am (ऐम) शब्द बिल्कुल शुद्ध है; किन्तु अँगरेजों के पूर्वज इस AM को Ism (**इस्म**) रूप से ध्वनित करते थे। जर्मन लोग Is नहीं कहते उनके यहाँ **इज** के स्थान पर Ist (इस्ट) शब्द का प्रयोग होता है। यह am ग्रीक भाषा में **एस्मि** (Esmi) था, लैटिन में भी इसका यही रूप रहा और हमारा **अस्ति** जो जर्मन में इस समय Ist (**इस्ट**) रूप में ध्वनित होता है वह ग्रीक में **एस्ति** (Esti), लैटिन में एस्त (Est) था। ये ध्वनि के विचित्र कारनामे हैं जिनपर एक लेख में "भाषा पत्रिका" में दे चुका हूँ। ध्वनि-परिवर्तन और शब्दार्थ-परिवर्तन भाषा विज्ञान के साधारण नियम हैं जिन्हें भाषा विज्ञान के अति प्राचीन प्रवर्तक यास्काचार्य ने अपने "**निरुक्त**" में दिया है। उन्होंने बताया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल शब्द की व्युत्पत्ति **भिद्** (तोड़ना) धातु से निकलती है। व्युत्पत्ति ऐसी होनी चाहिए जो शब्द को ठीक समझने में सहायता दे। इसलिए यास्काचार्य ने व्युत्पत्ति के नियमों के अनुसार **बिल** का शुद्ध रूप निरूपण कर दिया है। यास्काचार्य ने यह भी बताया है कि **वराह** शब्द **वराहार** से निकला है। पाठक जानते ही हैं कि **वराहार** का अर्थ "अति भोजन करनेवाला" है। ये दोनों उदाहरण बताते हैं कि ध्वनि परिवर्तन भाषा का नियम है जो निरन्तर अपना काम करता रहता है। **भिद्** की ध्वनि बदली, वह **बिल** हो गया। लोगों की जबान ने इतना आश्चर्य दिखाया कि **वराहार** (वर आहार) में से अन्तिम **आर** ध्वनि उड़ा दी। आज भी हम **वराहार** को **वराह** ही कहते हैं। अब देखिए, बिल में **द** का **ल** हो गया। आज भी हम देखते हैं कि एकादश शब्द हमारे यहाँ **एगारह** हो गया है **द्वादश** बारह हो गया है। मागधी प्राकृत में **द्वादश** को **दुआलस** कहते थे। द का ल हिन्दी में कई स्थान पर हो गया है। **र, ल** एक समान माने गये हैं। ऋग्वेद में, प्रथम नौ मंडलों में, **शुक्र** शब्द का प्रयोग किया गया है। दसवें मंडल में यह **शुक्र** (सफेद) शब्द **शुक्ल** हो गया है। संस्कृत वैयाकरणों ने कहा है—**रलयोरभेदः** अर्थात् "**र** और **ल** एक ही हैं।" अब पाठक समझ गये होंगे कि निरुक्त का **बिल** कैसे **भिद्** से निकला। पाठक यह भी समझ गये होंगे कि किस प्रकार भाषा में परम्परा काम करती है। ऋग्वेद में ही **र** का **ल** हो गया। यह भी परम्परा है और **द** का **र** या **ल** हो जाना यह भी परम्परा ही है। पाठक यह भी जानते ही होंगे कि परम्परा नियम से चलती है। मैं पहले बता चुका हूँ कि परम्परा के कारण **अद्य** का **अज्ज** और **अज्ज** का हिन्दी **आज** बना है। संस्कृत का **द** किसी प्राकृत में **ल** किसी में **त** किसी में **र** हो गया है। यह सब नियमानुसार होता है। **कज्ज** का **काज**, **रज्ज** का **राज**, **कम्म** का **काम** आदि हो जाता है।

अब आप देखिए परम्परा के इस नियम को न जानने के कारण एक विद्वान् ने **मा-सा** से **मौसी** शब्द को निकाला है अर्थात् उन्होंने हिन्दी **मा-सा** (माँ के समान) से प्राकृत **माउसी** मौसी आदि को निकालने का प्रयत्न किया है; क्योंकि **माउसी, मौसी, माउसिया** आदि शब्द प्राकृत में मिलते हैं और प्राकृत के विद्वानों ने इन शब्दों को **मातृ-स्वसा** से निकाला है जो वैदिक और संस्कृत शब्द है। इसे ही उलटी गंगा बहाना कहते हैं। परम्परा का नियम तो यह है कि वर्तमान भाषा प्राचीन भाषाओं से ध्वनि-परिवर्तन और शब्दार्थ-परिवर्तन के नियमों के अनुसार आई है। गंगाजी को हम कितना ही भगीरथ प्रयत्न करें गंगा सागर से वापस करके हिमालय की ओर नहीं बहा सकते। यह प्रकृति के विरुद्ध है। इसी प्रकार वर्तमान भाषा से प्राकृत, पालि, संस्कृत और वैदिक संस्कृत नहीं बना सकते। हमें ध्यान रखना चाहिए कि भाषा-विज्ञान में शब्दों की परम्परा आदि काल से चलती है और वर्तमान तक पहुँचती है; न कि वर्तमान हिन्दी से हम आदि-आर्य शब्दों की ओर चलेंगे। ऐसी ही एक बात **था** के विषय में भी कही गयी कि **था** शब्द हिन्दी का अपना है और कहीं से नहीं आया। भाषा-विज्ञान के नियमों के अनुसार, जो नियम हजारों भाषाओं की छानबीन करके निकाले गये है, किसी भी वर्तमान भाषा के शब्द सदा परम्परा से ही आते हैं और विदेशी भाषाओं से भी उपयोगी नये शब्द लिये जाते हैं जिनका आगम भाषा में दूसरे स्रोत से नहीं होता। किसी भाषा के अपने शब्द होते ही नहीं। तो इस नियम के अनुसार **था** परम्परा से आया या विदेश से, इसपर विचार करना चाहिए। एक मेरे परम मित्र ने, इस विषय पर, यह भी कहा कि **था** व्रज भाषा के **हता** से तो नहीं निकला। मित्र वास्तव में विद्वान् थे। उनको मैंने समझाया कि हिन्दी में है, **होगा**, आदि जितने क्रिया—**ह** से शब्द आरम्भ होते हैं उनका रूप पालि के समय में ही स्थिर हो गया था क्योंकि वहाँ **भवति** का **होति** हो गया था। प्राकृत में भी भवति का रूप **हवइ** हो गया था। मित्र ने "**पाइय-सद्द-महण्णवो**" देखा, और वे समझ गये कि **ह** वाले सभी रूप **भू**, धातु से निकले। हमारा **था स्था** धातु का रूप है और ऋग्वेद में **स्था** का एक रूप **अस्थात्** भी मिलता है। इस **अस्थात्** से प्राकृत में **अत्था** रूप बना जो दखिनी हिन्दी में **अथा** हो गया और जो आजकल की हिन्दी में **था** रह गया। उन्हें जो यह भ्रम हुआ वह हिन्दी के भाषा-विज्ञान के अज्ञान के कारण। एक हिन्दी भाषा विज्ञानी और अध्यापक ने अपनी छोटी-सी पुस्तक में लिखा है—"संस्कृत में एक शब्द **क्रमेल** है जिसका अर्थ ऊँट है। इस **क्रमेल** से अँगरेजी में Camel (**कैमल**) बन गया है।" इस विद्वान् की अपूर्व सूझ देखिए कि **क्रमेल** शब्द ग्रीक शब्द Kamelos (**कैमेलौस**) से बना है। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीक शब्द से **कैमल** भी आया है। 'शब्द कल्पद्रुम' नामक वृहत्काय-शिरो-ग्रीव कोष में लिखा है कि "क्रमेण एलतीति अथवा गच्छतीति क्रमेलः।" **एलति-गच्छति-एल्** धातु धातुपाठ में नहीं मिलती। सो यह किसी संस्कृत पंडित की बुद्धि का चमत्कार है। तब **एल्** संस्कृत कैसे हुआ, इसपर किसीने विचार नहीं किया। ग्रीक से हमारे ज्योतिष के ६१ शब्द आये हैं जैसे होरा, केन्द्र आदि सो क्रमेल भी ग्रीकों के द्वारा आया जो कभी पंजाब में राज्य करते और बसते थे। इस विद्वान् लेखक का उक्त कथन भी सिद्ध करता है कि हिन्दी भाषा-विज्ञान के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है जिससे हम हिन्दी के विषय में शुद्ध और सत्य बातें लिख सकें। एक बार मेरे मित्र डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हिन्दीशब्दसागर के सम्पादक-मण्डल के समक्ष कहा कि **डोल** शब्द जो अब हिन्दी में विशेष अपना हो गया है वह 'अरबी' का है। सम्पादक-मंडल में डॉ० मंगलदेव शास्त्री, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान् थे। उन्होंने बड़ी हिम्मत बाँधकर कहा कि यह शब्द तो कुछ अपना-सा सुनाई देता है। सो डॉ० साहब ने तुरंत उत्तर दिया "इस विषय पर मेरे पास प्रमाण रूप में अमुक खाँ साहब का पटना से प्रमाणसहित पत्र आया है, कल आपको दिखा दूंगा। आपको प्रमाण मिल जाएगा।" मंडल ने चुप्पी साध ली और उक्त सदस्य मान गये कि **डोल** अरबी का शब्द है। मैं सम्पादक होने के नाते वहाँ बैठा था। मैंने सोचा कि मुझे बोलने का हक नहीं है, क्या बोलूँ? दूसरे दिन मैंने डॉ० साहब को पत्र लिखा कि अरबी वर्णमाला में ڈ (डाल) अक्षर नहीं है और न फारसी में यह अक्षर है। इसलिए **डोल** अरबी कैसे होगा? डाल को उर्दू वाले हिन्दी **डाल** कहते हैं। यह अक्षर, हमारे ड के स्थान पर, भारतवर्ष में बनाया गया है। हाँ, फारसी में इस भाँडे को **दोल** या **दुल** कहते हैं। फारसी का मूल आर्य-भाषा से है, इसलिए यह **दोल** या **दुल** दोनों भाषाओं में **दुल्** (हिलना-डुलना) से बना है। वासुदेवजी विद्वान् हैं। उन्होंने मेरे उक्त कथन के प्रमाण को कोषों, व्याकरणों आदि में देखकर अपना भ्रम दूर कर लिया होगा और मेरे पत्र का कोई उत्तर न दिया। इस पत्र की प्रतिलिपि मैंने डॉ० मंगलदेव शास्त्री आदि को भी भेजी। वे उसे पढ़कर बहुत आनन्दित हुए। डॉ० वासुदेव-शरणजी ने अपनी संजीवनी व्याख्या में भी ऐसी अनेक बातें लिखी हैं। उनका भी मैंने थोड़ा दिग्दर्शन कराया और पटना के "आर्यावर्त" में इस विषय पर मैंने उनके लेखों का उत्तर दिया। वास्तव में हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति पर लिखना और शुद्ध लिखना, कठिन काम है। एक-एक शब्द के विषय में बड़ी जटिल समस्याएँ उपस्थित होती हैं। उनपर जब तक आप भली प्रकार शोध नहीं कर लेते तब तक शुद्ध नहीं लिख सकते। जब तक अनेक आर्य भाषाओं का समुचित ज्ञान नहीं होता, कुछ लिखना बड़े साहस का काम है।

किसी पाठ्य पुस्तक में, मैंने "भोजन" शीर्षक एक लेख देखा, जो डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा के किसी ग्रंथ से लिया गया था। उसके आरम्भ में विद्वान् लेखक ने लिखा था "भोजन को दाँतों से भली भाँति कुचल डालना चाहिए"। आदि आदि। विद्वान् पाठक देखेंगे कि **कुचलना का अर्थ स्पष्ट है: कु** अर्थात् बुरी तरह **चलना** अर्थात् गति करना। इसका स्पष्ट अर्थ है बुरी तरह चलना याने इस तरह चलना कि पाँव किसी पर पड़ जाय। **कुचलना** का यही अर्थ लिया जाता है जैसे—माघ मेले में इस वर्ष हजारों आदमी कुचल गये—जिसका अर्थ यह हुआ कि उक्त मेले में भीड़ इतनी अधिक हो गई कि लोग ठीक तरह नहीं चल सके और बुरी तरह चलने के कारण कई मनुष्यों को उन्होंने रौंद डाला। दाँतों से हमेशा चबाते हैं, न कि बुरी तरह चलते हैं। हिन्दी भाषा का सोलह आने ज्ञान न होने के कारण **दाँतों से चबाने** को **कुचलना** भी कहते हैं। यह अशुद्ध है। यदि हम **दाँतों** की परम्परा को देखेंगे तो मालूम होगा कि शाकटायन के सिद्धान्त के अनुसार **दन्त** शब्द कभी **अदन्त** रहा होगा। **अदन्त** का अर्थ हुआ "खाने वाले" चूँकि दाँतों से चबाकर ही हम खाते हैं इसलिए दाँतों का नाम **अद्-अन्त** पड़ा। ग्रीक भाषा में दाँतों को Dont या Dent नहीं कहते। उसमें **दन्त** का नाम Edontes (**एदोन्तेस**) है जिसमें शाकटायन के सूत्र, **सर्वाणि नामानि आख्यातजानि** अर्थात् सब संज्ञाएँ धातुओं से पैदा होती हैं, के अनुसार ed (एद्) संस्कृत का **अद्** धातु है। **औन्तेस** प्रत्यय है जो संस्कृत में **अन्त** के रूप में प्रकट होता है। इसलिए भी यह मानना पड़ेगा कि दाँतों से कुचलते नहीं किन्तु चबाते और खाते हैं। हिन्दी का भाषा-विज्ञान न होने के कारण उक्त कथन स्वाभाविक है। इसलिए अपनी मातृभाषा ही शुद्ध लिखने के लिए हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के जिस शास्त्र या विज्ञान की आवश्यकता है उसके न होने से नाना भ्रम पैदा हो जाते हैं।

स्कीट साहब ने अंग्रेजी व्युत्पत्ति कोष का जो दूसरा संस्करण निकाला उसकी भूमिका में स्पष्ट ही लिखा है कि इस समय विद्वानों ने, विशेष कर जर्मन विद्वानों ने व्युत्पत्ति के रूप का काया पलट कर दिया है। ब्रुगमन, ग्रासमान, बेन् फे, कुर्टिउस आदि-आदि विद्वानों ने महान् प्रयत्न करके व्युत्पत्ति ठीक की है। इसलिए स्कीट साहब ने अपने "अंग्रेजी व्युत्पत्ति कोष" के दूसरे संस्करण को, जो १८वीं शती के अन्त में छपा था, एकदम संशोधित और परिवर्तित कर दिया जिससे अंग्रेजी भाषा में शुद्धता आ गई और अंग्रेजी भाषा के वैज्ञानिकों ने ठीक-ठीक प्रयोग या उपयोग करना सीखा। साधारण लेखकों ने भी इससे लाभ उठाया। यदि भाषा के भीतर हिन्दी के विद्वानों को शब्दों की परम्परा न दिखाई दी तो उससे शब्दों के अर्थ का अनर्थ हो जाता है। एक साधारण बात लीजिए कि हम हिन्दी भाषा-भाषी जनता को समझाने लगें कि हिन्दी में कुछ शब्द ऐसे हैं जो उसीके हैं तथा जिनकी परम्परा है ही नहीं तो यह ज्ञान, भाषा-विज्ञान के उस नियम को सोलह आने खंडित कर देगा, जिसमें संसार की भाषाओं का मंथन करके पक्का निदान निकाला गया है कि प्रत्येक भाषा के शब्द परम्परा से आए हुए होते हैं अन्यथा वे विदेशी होते हैं। जब हम भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों का ही उन्मूलन करने को तैयार हो गये तो हम अपने को भाषा-विज्ञानी कैसे कहेंगे? अब भाषाएँ सत्य से परम सत्य की ओर चल रही हैं। संसार की सभी सभ्य भाषाओं में महान् प्रयत्न हो रहा है कि शब्दों के मूलों की छानबीन करके उनमें वह शक्ति भर दी जाय कि वे पूर्ण सत्य को प्रकट कर सकें। गणित की भाषा सैकड़ों-हजारों वर्षों से पूर्ण सत्य प्रकट करती है। रसायन, भौतिक शास्त्र, परमाणु-वाद (Nuclear) आदि की भाषाओं के सोलह आने सत्य प्रकट करने के कारण विज्ञान की यह उन्नति हुई है। यही कारण है कि करोड़ों मील दूर सितारों को हमारे राकेट छूने जा रहे हैं और विज्ञान के हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति हो रही है। इसका एक मुख्य कारण भाषा में सर्वांगीणता प्रायः—पूर्णता का आना है। इसलिए, एक हिन्दी का भाषा-विज्ञान बनना चाहिए जिससे हम जानें कि हिन्दी में किन-किन परदेशी भाषाओं का समावेश है और उन्हें पहचानने की कुंजी क्या है? कौन-कौन शब्द वैदिक या संस्कृत से आये हैं? आदि आर्य-भाषा में उनका रूप क्या था? तथा संसार की वर्तमान् आर्य-भाषाओं में उनके रूप क्या हैं? ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन, गौथिक, ट्यु-टौनिक, केल्टिक आदि भाषाओं में इनके रूप क्या थे? आदि-आदि। तब हम भाषा का रहस्य समझने लगेंगे। उदाहरणार्थ, यदि कोई पंडित संस्कृत शब्द **नख** को **खन्** धातु से निकालने का प्रयत्न करे तो हमें अन्य आर्य-भाषाओं के पर्यायों की तुलना करके पता चल जायेगा कि **नख** (नाखून) शब्द **खन्** से नहीं निकला है। देखिए फारसी में **नख** शब्द का **नाख़ुन** हो गया है। अंग्रेजी में यह शब्द **नेल** (Nail), जर्मनी में **नागल** (Nagel), ग्रीक में इसे **ओनुख़** (Onux) कहते हैं, और किसी भी आर्य-भाषा में यह **ख** से आरम्भ नहीं होता। इस स्थिति में कोई कारण नहीं है कि **नख** शब्द क्यों **खन्** धातु से निकाला जाय? बोपदेव ने एक धातु **नख् गत्यां** दिया है जो यह बताता है कि हमेशा बढ़ते रहने के कारण **नाखून** को **नख** कहते हैं। यदि हिन्दी का भाषा-विज्ञान हमारे सामने इन सब रहस्यों का उद्घाटन कर देगा तो हिन्दी भाषा पर लिखने वाले **बालाः पण्डित मानिनः** न रहेंगे। वे भाषा विज्ञान की सत्य बातें प्रकट करके हिन्दी का महान् उपकार कर जायेंगे और अपना नाम अमर कर लेंगे। सच है—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते

—गीता

"सत्य ज्ञान से परम पवित्र वस्तु और कोई नहीं है।" अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच, इटालियन आदि भाषाओं में सैकड़ों-हजारों पुस्तकें अपनी भाषाओं को सीखने के लिए प्रकाशित की गई हैं। वहाँके रेडियो भी बार-बार अपने श्रोताओं को बताते हैं कि अपनी मातृभाषाओं के प्रयोग में वहाँ की जनताएँ क्या-क्या भूलें करती हैं और वे किस कारण से भाषाओं में भर जाती हैं। लंदन का रेडियो जब भारत और पाकिस्तान के लिए अपना कार्यक्रम रखता है तो उसमें भाषा की भूलों पर भी कुछ न कुछ प्रकाश डालता रहता है। बात यह है कि इस समय भाषा की अशुद्धियों को दूर करना सभी भाषाशास्त्रियों की दृष्टि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेजी में **English Usage, King's English, A. B. C. of English Usages** आदि पुस्तकें लिखी गई हैं जो अंग्रेजों को अंग्रेजी लिखना-पढ़ना सिखाती हैं। ऐसी पुस्तकें यूरोप की सभी भाषाओं में हैं। इस ओर हिन्दी के विद्वान् ध्यान देंगे तो हिन्दी का महान् उपकार होगा। भारत ने ही भाषा-विज्ञान का प्रकाश संसार को दिया। शाकल्य ने ऋग्वेद का पद-पाठ करके भाषा-विज्ञान का आरम्भ किया। महीदास, शाकटायन, पाणिनि, कात्यायन, पातञ्जलि आदि ने यह काम पूरा किया जिसने संस्कृत का महान् उपकार किया। हिन्दी के विद्वानों से अब निवेदन है कि वे मेरा यह नम्र निवेदन पढ़कर हिन्दी के भाषा-विज्ञान की ओर प्रवृत्त हों।

तेजस्विनाऽवधीतमस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणितज्ञ कवि भास्कराचार्य

श्री चन्द्रभानु त्रिपाठी

भारतीय ज्यौतिष को दो भागों में विभक्त किया गया है—

१—गणित, २ फलित ।

ज्योतिष वेदाङ्गों में अन्यतम है। इसके तीन स्कंध हैं—

१. गणित २. संहिता ३. जातक। गणित को सिद्धान्त तथा जातक को होरा भी कहते हैं। इनमें गणित सर्वप्रथम तथा शेष दोनों का मूल है।

गणित स्कंध में भी सिद्धान्त, तन्त्र तथा करण तीन भेद हैं। वेदों तथा उपनिषदों में ज्योतिष की चर्चा समष्टि रूप में की गई है। विषुव, दिनमान, मुहूर्त्त, कला, नक्षत्र आदि का ज्ञान तभी से प्रारंभ होता है। कवि ज्योतिषी भास्कराचार्य अपने समय के महान् उपपत्ति आचार्य थे।

ज्योतिर्विद् कवि होने के कारण परम्परानुसार इन्होंने अपना जन्म-समय, स्थान स्वयं लिखा है।

आसीत्सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः।६२।
तज्जस्तच्चरणा ... आदि।

इससे निम्नलिखित निश्चित बातें ज्ञात होती हैं—जन्म शक १०३६ (सन् १११४) गोत्र शांडिल्य, निवास-स्थान सह्य पर्वत के पास विज्जड़ विड़ग्राम था। खानदेश में चालिस गाँव से १० मील नैऋत्य कोण में पाटण शिला-लेख से भी उक्त बातों की पुष्टि होती है। उससे तथा सरजा देवी मन्दिर के शिलालेख से यह भी मालूम होता है कि विद्या इनके कुल में परम्परागत थी। यादववंशीय राजा जैत्रपाल (देवगिरि), उनके पुत्र चंगदेव सिंघण चक्रवर्ती स्वयं दैवज्ञ थे तथा उन्होंने भास्कराचार्य के ग्रन्थों के अध्यापनार्थ एक मठ का निर्माण कराया था।

ग्रन्थ—सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल, समय-सिद्धान्तशिरोमणि। गोलाध्याय में अपना जन्म तथा रचनाकाल उन्होंने स्वयं लिखा है—रसगुणपूर्ण मही (१०३६) समशक नृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः। रसगुण-(३६)वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः। करण-कुतूहल ११०५ शक में बना है।

सिद्धान्तशिरोमणि के मुख्य ४ खण्ड हैं। इनका अनेक अध्यायों में विभाजन किया गया है। प्रथम खण्ड का नाम पाटीगणित या लीलावती है। यह अंकगणित एवं क्षेत्रफल तथा घनफल का स्वतंत्र ग्रंथ है। इसके विषय में गणित-विशारदों की उक्ति है कि लीलावती के अध्ययन से पेड़ों की पत्तियों को भी गिना जा सकता है। इससे इस ग्रन्थ के प्रति पूज्य बुद्धि व्यक्त होती है। द्वितीय खण्ड में बीज-गणित, धन, ऋण संख्याओं का योग, समीकरण आदि का वर्णन है।

तृतीय खण्ड ग्रहगणितविषयक है। चतुर्थ खण्ड गोलाध्याय है, जिसमें विषयों की उत्पत्ति तथा त्रैलोक्य-संस्थान आदि का विशद वर्णन है।

सिद्धान्तशिरोमणि के निष्कर्ष विचार-साध्य हैं। गहनतम विषयों की सुलभ रीति एवं उपपत्ति से यह ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान के लिए पर्याप्त उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। यही कारण है कि इसके गौरव से अनेक पूर्ववर्ती ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गये हैं।

भास्कराचार्य का समय ज्योतिष शास्त्र का उन्नत युग है। उस समय अनेक ग्रन्थकार हुए होंगे जिनका नाममात्र शेष है।

भास्कराचार्य ने उपपत्ति पर तो पर्याप्त ध्यान दिया परन्तु उनका वेध-विषयक प्रयत्न नहीं के बराबर ही था। अतएव इतने बड़े कल्पनाशील गणितज्ञ द्वारा नवीनतम आविष्कार मुख्यतया नहीं हुए। प्राचीन मान्यताओं के स्थान पर इन्होंने कुछ नई मान्यताएँ स्थापित कीं। यथा (१) त्रिप्रश्नाधिकार की नवीन रीतियाँ, (२) ध्रुवाभि-मुख ग्रहशर का क्रान्तिवृत्त पर लम्बरूप स्वीकार, (३) विषुववृत्त में अहोरात्र का ६० घड़ी से न्यूनाधिक्य, (४) उदयान्तर (अधिक संस्कार) की कल्पना। इनके विषय में स्वतंत्र अध्ययन की अपेक्षा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण-कुतूहल ग्रह-साधनविषयक ग्रन्थ है। इसमें दस अध्याय तथा १३९ श्लोक हैं। दकन कालेज संग्रह में इनका रचित 'भास्कर विवाहपटल' नामक एक लघु ग्रन्थ भी उपलब्ध होता है। सम्पूर्ण सिद्धान्तशिरोमणि तथा उसके खण्डों की अन्य ज्योतिषग्रन्थों की अपेक्षा अधिक टीकाएँ, इसकी उपादेयता एवं विद्वत्प्रियता के पर्याप्त प्रमाण हैं।

सिद्धान्तशिरोमणि का पाटीगणित या लीलावती खण्ड व्यापक प्रसिद्धिप्राप्त ग्रन्थ है। इसमें नियमों का कथन तो साधारण कारिका रूप श्लोकों में है, परन्तु उदाहरणों में स्थान-स्थान पर कवित्व का प्रदर्शन किया गया है। 'बाले! बाल कुरंग लोल नयने! लीलावति!' एवं 'सखे! तथा गणितज्ञ!' जैसे सम्बोधनों से पता लगता है कि इन्होंने अपने शिष्यों में समवयस्क जन एवं धर्मपत्नी को भी स्थान दिया था। यह समय कवित्व-प्रधान था। ज्योतिष और आयुर्वेद को मनोहर तथा ग्राह्य बनाने के लिए उन उन विषयों के विद्वान् कवित्व का आश्रय लेते थे, और न हुआ तो सुन्दर विशेषणों से विभूषित कान्ता के सम्बोधन पदों का प्रयोग कर अपने नीरस विषय को सरस बना देते थे। लीलावती में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं। 'सखे!' या 'गणितज्ञ' विशेषण भी मिलते हैं। भास्कराचार्य के कवित्व-प्रदर्शनार्थ कुछ उदाहरण देना समीचीन होगा। एक घनफल-विषयक प्रश्न अनुप्रास की सहायता से कितना मधुर बना दिया गया है—

नवघनं त्रिघनस्य घनं तथा कथय पंच घनस्य घनं च मे।
घनपदं च ततोऽपि घनात् सखे यदि घनेस्ति घना भवतो मतिः

(यदि घनफल निकालने की क्रिया में तुम्हारी बुद्धि दृढ़ है तो ९, ३ के घन, ५ के घन का घन बताओ और उनका घनमूल भी।) श्लोक-पूर्ति के लिए प्रश्न रचा गया है।

संख्या निकालने के लिए मधुप विषयक प्रश्न साहित्य का उत्तम आदर्श है।

पंचांशोलिकुलात् कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयो-
र्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि! कुटजं दोलायमानो परः।
कान्ते! केतक मालती परिमलप्राप्तैककालप्रिया
दूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृंगोलि संख्यां वद।

(हे प्रिये! अलिसमूह का पंचमांश कदम्ब, तृतीयांश शिलीन्ध्र, उनके अन्तर का तिगुना कुटज में गया। शेष एक भ्रमर केतकी व मालती प्रियाओं के प्रेषित परिमल दूतों से आमंत्रित होकर दोनों के प्रति इधर-उधर घूमता रहा, तो भँवरों की संख्या बताओ।)

इसी प्रकार मूलोन (मूल से कम ज्ञात होने पर संख्या निकालना) या भागोन (मूल के अंश से युक्त ज्ञात होने पर संख्या निकालना) विषयक प्रश्नों के उदाहरणों में हंस का उल्लेख साहित्यिक सौष्ठव व्यक्त करता है।

व्यस्त त्रैराशिक के उदाहरणों में कतिपय जीवों की अवस्था बढ़ने पर मूल्य घटने के सिद्धान्त की स्थापना अनोखी है। जैसे—

षोडशवर्षीया स्त्री का मूल्य ज्ञात होने पर बीस वर्षीया का ज्ञात करना। इसके नियम आदि ग्रंथ से ही जाने जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रश्न उस समाज के अनुरूप हैं।

मिश्रक व्यवहार में इन्होंने सामान्यतः व्यवहार-विषयक (दूकानदारी आदि के) प्रश्न लिखे हैं। इसी प्रकार स्तम्भ व कर्णभुज योग के ज्ञान पर भुजमान निकालने का उदाहरण बड़ा ही स्वाभाविक है।

अस्ति स्तम्भतले बिलं तदुपरि क्रीडाशिखण्डी स्थितः
स्तम्भे हस्तनवोच्छ्रिते त्रिगुणितस्तम्भप्रमाणान्तरे
दृष्ट्वाहिम् बिलमाव्रजन्तमपतत् तिर्यक् स तस्योपरि
क्षिप्रं ब्रूहि तयोर्बिलात् कति करैः साम्येन गत्योर्युतिः

(एक बिल के ऊपर ९ हाथ ऊँचे स्तम्भ पर एक मयूर बैठा था। उसने २७ हाथ की दूरी पर एक सर्प को स्तम्भमूल में स्थित बिल की ओर आते हुए देखा और तिरछी चाल से उसी ओर झपटा तो बताओ मयूर ने बिल से कितनी दूरी पर सर्प को पकड़ा।)

उत्तर—

स्तम्भवर्ग ÷ कर्ण भुजयोग ($९ \times ९ = ८१ \div २७ = ३$)

कर्णभुजयोग—लब्धि का अर्द्ध ($२७ - ३ = २४$ का $\frac{१}{२} = १२$)

अतः अभीष्ट उत्तर = १२ हाथ। इसी प्रकार घनफल, क्षेत्रफल, कुट्टक गणित के अनेक बड़े प्रश्नों का समाधान बड़ी ललित भाषा में किया गया है। गणित के छात्रों को यह पुस्तक गणित विषय के साथ काव्य-माधुरी का भी आनन्द देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में रचित जैन संस्कृत साहित्य

श्री अगरचन्द नाहटा

'सरस्वती' के जून १९६२ के अंक में श्री सत्यव्रत 'तृषित' का 'पंजाब और संस्कृत साहित्य' लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें बाण और मयूर के बाद लेखक को कोई पंजाब का संस्कृत कवि प्राप्त नहीं हुआ, अतः उसके बाद सीधा ओरियन्टल कॉलेज, लाहोर के पंडित ऋषिकेश भट्टाचार्य का उल्लेख कर दिया गया है। अर्थात् बीच के करीब १२०० वर्षों में पंजाब में रचित किसी भी संस्कृत ग्रन्थ का उन्होंने उल्लेख नहीं किया। इसका कारण बतलाते हुए वे लिखते हैं कि "हर्ष की मृत्यु के साथ ही उत्तर भारत का शासन छिन्न-भिन्न हो गया। प्रान्तीय भाषाओं के उदय के कारण विद्वानों का ध्यान जन-भाषाओं की ओर अधिक आकृष्ट हुआ और संस्कृत प्रायः उपेक्षित ही रही। संस्कृत साहित्य के उपबृंहण में ओरियन्टल कॉलेज, लाहोर ने विशेष योगदान दिया है।" इससे पूर्व उन्होंने बाण की कादम्बरी और मयूर कवि के सूर्यशतक का उल्लेख किया है जिनका समय संस्कृत साहित्य के इतिहास के अनुसार ई० ६४० के लगभग का है। और ओरियन्टल कॉलेज के ऋषिकेश भट्टाचार्य का समय उन्होंने सन् १८५० से १९१३ तक का सूचित किया है। वास्तव में १२०० वर्ष की लम्बी अवधि में पंजाब में संस्कृत साहित्य का निर्माण अवश्य ही होता रहा है जिसके अनुसंधान का प्रयत्न श्री सत्यव्रत ने नहीं किया। जैन विद्वानों ने भी इसी अवधि में बहुत से संस्कृत ग्रन्थ पंजाब में रहते हुए बनाये हैं। यहाँ उनमें से थोड़े से ग्रन्थों का उल्लेख किया जा रहा है। खेद है कि पंजाब के संस्कृतज्ञ विद्वानों को भी उनकी पूरी जानकारी नहीं है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि पंजाब प्रान्त की सीमा में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। कई जैन-विद्वानों ने जिन स्थानों को सिन्ध का बतलाया है वे अभी पंजाब में सम्मिलित हैं और सरस्वती पट्टन—सरसा आदि कुछ स्थान पहले पंजाब में सम्मिलित नहीं थे, इधर ये हो गये हैं। कुछ ऐसे स्थानों का भी उल्लेख जैन ग्रन्थों की प्रशस्तियों आदि में मिलता है जो आजकल किस नाम से और कहाँ हैं, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। पंजाब के विद्वान् ही वह जानकारी दे सकते हैं।

सिन्ध और पंजाब से जैन-धर्म का संबंध काफी पुराना है। जैनागमों के अनुसार वीतभयपत्तन में भगवान् महावीर वहाँके राजा उदयन को प्रतिबोध देने के लिए पधारे थे। वीतभय पत्तन आगे चलकर दटन-पटन हो गया अर्थात् भूमिगर्भ में समा गया इसलिए वर्तमान् में वह स्थान कहाँ है यह ठीक से नहीं बतलाया जा सकता। पर वह सिन्ध में था, यह निश्चित है। भगवान् महावीर के बाद अन्य कौन-कौन से जैनाचार्य सिन्ध और पंजाब में पधारे, इसकी भी सिलसिलेवार जानकारी नहीं मिलती। वैसे भगवान् महावीर से भी पहले जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र बाहुबलि 'तक्षशिला' के शासक थे और तभी से तक्षशिला जैन धर्म का केन्द्र-स्थान रहा है। वहाँ धर्म-चक्र की स्थापना बाहुबलि ने की थी और वह स्थान तीर्थ रूप में प्राचीन जैन साहित्य में उल्लिखित है।

विक्रम की प्रथम शताब्दी में कालिकाचार्य सिन्ध और पंजाब में पधारे थे और उनकी परम्परा आगे चलकर भावडार गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई। जैनाचार्यों की एक शाखा 'उच्चानागरी' नाम से प्रसिद्ध है। यदि वह पंजाब के उच्च नगर से ही संबंधित है तो यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि इस शाखा के वाचक उमास्वाति ने 'तत्वार्थ सूत्र' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है।

विक्रम संवत् २६१ में मानदेव सूरि ने नाडोल से 'लघु-शान्तिस्तोत्र' बनाकर तक्षशिला को भेजा था। इसके द्वारा वहाँ फैली हुई महामारी रोग उपशान्त हो गया था। ७वीं ८वीं शताब्दी में हरि गुप्त सूरि ने पव्वइया नगरी में हूण तोरमाण को जैन धर्म का प्रतिबोध दिया था। इसके बाद नगरकोट—काँगड़ा जैन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

१२वीं शताब्दी से खरतर गच्छ, बड़ गच्छ, उपकेश गच्छ आदि का सिन्ध और पंजाब में प्रभाव बढ़ता गया और बहुत से जैनाचार्य और जैन विद्वान् इस प्रदेश में धर्म-प्रचार करते रहे हैं। उन्होंने यहाँ रहकर प्राकृत-संस्कृत के ग्रन्थ भी अवश्य बनाये होंगे, पर उन ग्रन्थों के अन्त में उनकी रचना किस स्थान में हुई, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। और जैन विद्वान् चूंकि किसी एक ही स्थान पर नहीं रहकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश और अनेक ग्राम-नगरों में विचरते रहते हैं, अतः जिस ग्रन्थ के अन्त में रचना स्थान का निश्चित रूप से उल्लेख न हो वे ग्रन्थ कहाँ रचे गये, इसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः यहाँ ऐसे संस्कृत ग्रन्थों का ही उल्लेख किया जायगा जिनकी प्रशस्तियों में उनके रचना-स्थान का स्पष्ट उल्लेख है।

१४वीं १५वीं शताब्दी में यहाँ खरतर गच्छ की रुद्र-पल्लीय शाखा और जिनभद्र सूरि शाखा के कई विद्वान् धर्म-प्रचार करते रहे हैं। उनमें से रुद्रपल्लीय शाखा के आचार्य संघतिलक सूरि के शिष्य सोमतिलक सूरि अच्छे विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने संवत् १३९२ में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्र सूरि के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'षट्दर्शन समुच्चय' की टीका आदित्यवर्धनपुर में बनाई और 'लघु स्तव' की टीका संवत् १३९७ घृतघटीपुर में बनाई। ये दोनों टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। आदित्यवर्धनपुर और घृतघटीपुर ये दोनों स्थान कहाँ पर हैं? यह अन्वेषणीय है। इन्हीं सोमतिलक सूरि की 'शीलोपदेश माला' नामक प्राकृत औपदेशिक ग्रन्थ की संस्कृति 'शील तरंगिणी' नामक टीका ६॥ हजार श्लोकों की हमारे संग्रह में है। यह संवत् १३९४ में लाला साधो के पुत्र साधु सेढ़ा और छाजू के लिये बनाई गई है इसमें 'लाला' विशेषण उनके पंजाब निवासी होने का सूचक है। यद्यपि ये श्रावक कहाँके निवासी थे, इसका स्पष्ट उल्लेख इस टीका की प्रशस्ति में नहीं है। इन्हीं सोमतिलक सूरि के रचित 'कुमारकाव्य प्रबन्ध' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ मुनि जिनविजयजी सम्पादित 'कुमारपाल प्रबन्ध-संग्रह' में छप चुका है।

इनके गुरु संघतिलक सूरि ने संवत् १४२२ दीवाली के दिन सरस्वती पत्तन में 'सम्यकत्व सप्तति वृत्ति' नामक टीका की रचना की। यह टीका प्रकाशित हो चुकी है और यह टीका भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। शीलतरंगिणी और इस टीका में प्रसंगानुकूल बहुत सी कथायें टीकाकार ने दी हैं। संघतिलक सूरि ने 'धूर्ताख्यान', 'वर्धमान विद्याकल्प' और 'ऋषि मण्डल स्तव' की भी रचना की है। इनके शिष्य देवेन्द्र सूरि, जिनके कहने से 'सम्यकत्व सप्तति वृत्ति' की रचना हुई थी, रचित "प्रश्नोत्तर रत्नमाला वृत्ति" सं० १४२९, दानोपदेशमाला वृत्ति सं० १४१८ की, और नवपद प्रकरण अभिनव वृत्ति सं० १४५२ की रचना है। इन टीकाओं में भी रचनास्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। पर इस गच्छ के आचार्यों का इस समय में पंजाब में ही अधिक विहार हुआ है, इसलिए इन टीकाओं की रचना भी वहींके किसी ग्राम-नगर में ही हुई होगी। इसी गच्छ के देवभद्र सूरि के शिष्य श्री तिलक सूरि ने 'गोतम पृच्छा-वृत्ति' की रचना की। यह वृत्ति भी काफी महत्त्वपूर्ण है। इसका परिमाण भी करीब ५॥ हजार श्लोकों का है। देवेन्द्र सूरि के शिष्य लक्ष्मीचन्द्र ने 'सन्देशरासक' नामक अपभ्रंश काव्य पर टीका बनाई। यह सिन्धी ग्रन्थमाला से प्रकाशित भी हो चुकी है। वास्तव में 'सन्देशरासक' को सुरक्षित रखने का श्रेय भी आप (लक्ष्मीचंद्र) को ही है। उन्होंने क्षत्रिय गाहड़ के मुख से सुनकर इस ग्रन्थ को संग्रहीत न किया होता तो मुसलमान कवि रचित यह एकमात्र अपभ्रंश काव्य सदा के लिये लुप्त हो जाता।

रुद्रपल्लीय गच्छ के गुणाकर सूरि ने 'भक्तामर स्तोत्र' की विस्तृत टीका सं० १४२६ सरस्वतीपत्तन में बनाई। यह महत्त्वपूर्ण टीका भी प्रकाशित हो चुकी है।

इसी गच्छ के वर्द्धमान सूरि ने संवत् १४६८ में जालन्धर प्रदेश के नन्दनवनपुर में कार्तिक पूर्णिमा के दिन 'आचार दिनकर' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की। उस समय वहाँका राजा अनन्तपाल था। इस ग्रन्थ में १६ संस्कारों का बहुत ही विशद विवरण है। जैन विधि-विधान के ग्रन्थों में इसका स्थान बहुत ही ऊँचा है। 'स्वप्न प्रदीप' नामक इनकी और भी रचना मिलती है। ये दोनों ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं।

पंजाब में रचित यात्रावर्णन का एक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ है—'विज्ञप्ति त्रिवेणी'। खरतरगच्छ के आचार्य जिनभद्रसूरिजी, जिनके नाम से जैसलमेर का बड़ा ज्ञान-भण्डार प्रसिद्ध है, की आज्ञा लेकर जयसागर उपाध्याय अपने शिष्यों के साथ सिन्ध में पधारे थे। आस-पास के गाँवों में विचरते हुए संवत् १४८३ का चातुर्मास उन्होंने मम्मणवाहण नामक नगर में किया। चौमासे के बाद संघ के साथ उमरकोट एवं मरुकोट महातीर्थ की यात्रा की। वहाँसे मम्मणवाहण लौटकर द्रोहदोट्टादि गाँवों में होते हुए फरीदपुर गाँव में पहुँचे। वहाँसे नगरकोट की यात्रा के लिए संघ निकला जो जालन्धर की ओर चला। अनेक स्थानों में होकर वह संघ 'नगरकोट' पहुँचा और तीर्थ-यात्रा करके किस तरह वापस लौटा इसका महत्त्वपूर्ण वर्णन इस विज्ञप्ति पत्र में है। मुनि जिनविजयजी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे सम्पादित करके सन् १९१६ में जैन आत्मानंद सभा, भावनगर से प्रकाशित करवाया था। उन्होंने लिखा है कि "यह पत्र वि० सं० १४८४ के माघ सुदि १० को मलिक वाहण से जयसागर उपाध्याय ने लिखकर आचार्य जिनभद्र सूरि को गुजरात के अणहिलपुर पाटण में भेजा था। पत्र बड़ी अच्छी अलंकारिक भाषा में सुन्दर रूप से लिखा गया है। पढ़ते समय वृत्तान्त के साथ काव्य का भी कुछ-कुछ आनन्द आता है। लेखक ने इसमें गद्य और पद्य दोनों का उपयोग किया है जिससे इसकी पठनीयता और भी बढ़ गयी है। बीच-बीच में कोई कोई पद्य तो बहुत ही अच्छे लालित्य वाले हैं साथ में छत्र और पद्यबंधादि-चित्र-पद्यों को भी स्थान दिया है।"

जिनभद्र सूरिजी के आज्ञानुवर्ती सोमध्वज के शिष्य क्षेमराज ने 'उपदेश सप्तति' नामक ग्रन्थ स्वोपज्ञ वृति के साथ सं० १५४७ हिसार में बनाया। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। संवत् १५६२ में रुद्रपल्लीय गच्छ के आज्ञा-सुन्दर नामक विद्वान् ने ३८७ श्लोकों की 'शीलवती कथा' सं० १५६२ कांडिडपुर में बनायी। यह स्थान भी सम्भवतः पंजाब में होगा। १७ वीं शताब्दी में इसी गच्छ के मुनि सुन्दर नामक विद्वान् ने करणराज गणित नामक ग्रन्थ की रचना, श्रीपति विप्र की विज्ञप्ति से की। संवत् १६५५ की दीवाली को स्थानवीश्वापुर में यह ग्रन्थ रचा गया। सम्भवतः यह थानेश्वर स्थान है।

१७वीं शताब्दी में जब सम्राट् अकबर लाहौर में ठहरे थे तब खरतरगच्छ के आचार्य जिनचन्द्र सूरि उन्हें जैन धर्म का प्रतिबोध देने के लिए लाहोर पधारे थे। उस समय उनके साथ कई विद्वान् मुनि थे जिनमें से जयसोम उपाध्याय ने मंत्री कर्मचन्द वंशोत्कीर्तनं काव्यं नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना संवत् १६५० में की।

श्री 'जैनचन्द्र' सुगुरो राज्ये विजयिनि विपक्षबलजयिनि।
क्रमतो नृपविक्रमतः खभूतरसशशि (१६५०) मिते वर्षे ॥५२६
सार्हि श्री 'मदकब्बर' राज्यदिनादखिललोकसुखहेतोः।
अष्टत्रिंशे संवति लाभकृते 'लाभपुर' नगरे ॥५२७॥

इस काव्य की टीका कवि के शिष्य वाचक गुणविनय ने संवत् १६५६ रोसामपुर में बनायी। मूल ग्रन्थ म० म० गौरीशंकरजी ओझा ने हिन्दी अनुवाद सहित छपवा दिया था। वृत्तिसहित मुनि जिनविजयजी छपवा रहे हैं।

संवत् १६४९ में सम्राट् अकबर ने कश्मीर विजय के लिए लाहोर से प्रयाण किया तब एक बड़ी सभा बुलायी गयी थी। जिसमें खरतरगच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी अपने शिष्य प्रशिष्यों के साथ आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित हुए थे। उसी समय सूरिजी के प्रशिष्य महाकवि समय-सुन्दर ने विश्व साहित्य का एक अजोड़ संस्कृत ग्रन्थ उस विद्वत् सभा के सम्मुख उपस्थित किया जिसका नाम 'अष्ट-लक्षी' है। इस ग्रन्थ में 'राजा नो ददते सौख्यम्' इस आठ अक्षर वाले वाक्य के १० लाख से भी अधिक अर्थ किये गये हैं। उनमें से २२२४०६ अर्थों को मूल-भ्रान्ति या असंगति के लिए बाद देकर ग्रन्थ का नाम 'अष्टलक्षी' रखा गया है। इस ग्रन्थ को सुनकर सम्राट् ने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी और अपने हाथ में लेकर ग्रन्थकार को वापस देते हुए उसे प्रमाणभूत माना था। इसका उल्लेख ग्रन्थ के अन्त में समय सुन्दर जी ने इस प्रकार किया है :—

"संवति १६४९ प्रमिते श्रावणसुदि १३ दिन सन्ध्यायां **'कश्मीर'** देशविजयमुद्दिश्य श्रीराजश्रीरामदासवाटिकायां कृत **प्रथम**प्रयाणेन श्री **अकब्बर**पातिसाहिना जलाल-(लुद्दी)दीनेन अभिजातसाहिजात श्री सिलेमसुरत्राण-सामन्तमण्डलिकराजराजिविराजितराजसभायां अनेक-विधवैयाकरणतार्किकविद्वत्तमभट्टसमक्षं अस्मद्गुरु-वरान् युगप्रधानखरतरभट्टारक **श्री जिनचन्द्रसूरीश्वरान्** आचार्य श्री श्री **जिनसिंहसूरि**प्रमुखकृतमुखसुमुखशिष्य-व्रातसपरिकरान् असमानसन्मानबहुमानदानपूर्वं समाहूय अयमष्टलक्षार्थी ग्रन्थो मत्पार्श्वाद् सजातचित्तचमत्कारेण बहुप्रकारेण **श्रीसाहिना बहुप्रशंसापूर्वं 'पठतां** पाठयतां सर्वत्र विस्तार्यतां सिद्धिरस्तु' इत्युक्त्वा च स्वहस्तेन गृहीत्वा एतत् पुस्तकं मम हस्ते दत्वा **प्रमाणीकृतोऽयं ग्रन्थः।**"

"सर्वसम्मीलने जाता अर्थाः १०२२४०७॥

अत्र अष्टलक्षेभ्योऽर्थेभ्यो यत् साधिकं लक्षद्वयमधिकं जातमस्ति तत् ये अर्था अष्टलक्षार्थी-मध्ये केचन न सम्भवन्ति अर्थयोजनया वा न मिलन्ति तत्र स्थाने स्थाप्यम्। ततो-ऽष्टलक्षार्थी सम्पूर्णा अविघटा अविसंवादिनी च ज्ञेया। जाताः सर्वे अर्थाः अष्टौ लक्षाः ॥८००००॥"

इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'अर्थ रत्नावली वृत्ति' भी है। सेठ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत से प्रकाशित 'अनेकार्थ रत्नमंजूषा' नामक ग्रन्थ में उपर्युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अष्टलक्षी' ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है। लाहोर का संस्कृत नाम लाभपुर पाया जाता है। अष्टलक्षी की प्रशस्ति में भी इसका उल्लेख इस प्रकार है—

श्रीविक्रमनृपवर्षात्, समय रसजलधिरागसोम (१६४९) मिते।
श्रीमल्'लाभ'पुरेऽस्मिन्; वृत्तिरियं पूर्णतां नीता ॥३२॥

लाहोर में सम्राट् अकबर के पास तपागच्छ के विद्वान् शांतिचंद्र भानुचंद्रजी भी आते जाते रहे हैं और उन्होंने भी कई संस्कृत ग्रन्थ बनाये हैं। पर उन ग्रन्थों में रचना स्थान का स्पष्ट उल्लेख न होने से उनका निर्देश यहाँ नहीं किया गया।

खरतरगच्छ के कवि 'समरथ', जिनका दीक्षानाम समय माणिक्य था, ने सिन्धुवर्ती 'जालिपुर' में सुप्रसिद्ध केशवदास की रसिकप्रिया पर संस्कृत टीका संवत् १७५५ में बनायी। इन्होंने पंजाबी भाषा में बावनी और हिन्दी में रसमंजरी चौपाई तथा राजस्थानी में मल्लिनाथ-पंच कल्याणक स्तवन की रचना पंजाब और सिन्ध प्रदेश में रहते हुए की थी।

खरतरगच्छ के एक अन्य विद्वान् गुणविलास ने वैद्यक संबंधी एक संस्कृत पद्यबद्ध ग्रन्थ 'गुणरत्नप्रकाशिका' के नाम से बनाया। इसकी रचना संवत् १७७२ लाहोर में हुई थी। पंजाब में वैद्यक संबंधी अनेक हिन्दी ग्रन्थ जैन कवियों ने बनाये हैं जिनके संबंध में मेरा एक स्वतन्त्र लेख 'सप्तसिन्धु' में प्रकाशित हो चुका है। सिन्ध और पंजाब में रचे हुए राजस्थानी भाषा के अनेक जैनग्रन्थ प्राप्त होते हैं। साथ ही कुछ रचनाएँ सिन्धी और पंजाबी भाषा की भी प्राप्त हुई हैं। इस तरह पंजाब में रहते हुए जैन विद्वानों ने संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी और स्थानीय बोली इन चार भाषाओं में रचनाएँ की हैं। यहाँ उनमें से उनकी संस्कृत रचनाओं का ही विवरण दिया गया है।

१४वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक की पंजाब रचित संस्कृत जैन रचनाओं का संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया गया है। इसके बाद भी अब तक पंजाब में स्थित जैन विद्वान् कुछ-कुछ संस्कृत रचनाएँ करते रहे हैं। अभी-अभी स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य आत्मारामजी का स्वर्गवास हुआ है। उन्होंने कई प्राकृत भाषा के आगम ग्रन्थों की संस्कृत छाया और टीकायें बनाई हैं। पंजाब में बड़गच्छ और उत्तराधगच्छ का भी काफी प्रभाव रहा है। इनमें से बड़गच्छ के शीलदेव सूरि रचित विनयन्धर चरित्र की प्रति पंजाब के भंडारों में प्राप्त हुई है। संवत् १६६४ में घग्घर नदी के तट पर बसे हुए सरस्वतीपत्तन में सम्राट् जहाँगीर के समय इसकी रचना हुई।

पूजानिशं यत्र जिनेन्द्रमंदिरे सुश्रावकाः पौषधधारिणः परे।
श्रवत्परं व्रीहिमरश्च 'घग्घरे सरस्वती'पत्तनसंज्ञके पुरे॥४६॥
संवत्सरे चाब्धिरसर्तुचन्द्रमस्संख्येयके माधवमासि पंचमी।
तस्यां सतीन्दौ मघवाख्यमे शुभे योगे सुसिद्धे चरितं समर्थितम्

डॉ० बनारसीदासजी जैन ने इस ग्रन्थ का परिचय पंजाब के जैन भण्डारों की सूची और जैन सत्यप्रकाश क्रमांक ९४ में प्रकाशित किया है। पंजाब के जैन भण्डारों में खोज करने पर जैन कवियों की और भी संस्कृत रचनाएँ मिलने की सम्भावना है।

दीपराग

श्री बालकिशन गर्ग

दीप-राग, स-ग-म-प-ध-नि;
क्वणित-रणित..... दीप-राग।

दैन्य-दाह का प्रलाप,
दीप-राग का अलाप-
'कलिमल - कौणप-कलाप!
शलभवत् स्वप्राण त्याग'
....दीपराग।

दीपजन्य सुस्फुलिंग-
राग-तनय प्रिय कलिंग;
ज्वलित-वलित उग्र-अंग;
फफक-फफक वर्ति-नाग।
....दीपराग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महालक्ष्मी का आविर्भाव

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

मंथन करने लगे सुरासुर मिलकर सागर,
वासुकि की थी नेति, मथानी उन्नत मंदर!
गगन-सदृश विस्तीर्ण पृष्ठ पर उसे उठाये,
शोभित थे हरि स्वयं कूर्म का रूप बनाये।
वासुकि का फूत्कार स्फीत हो बना प्रभंजन,
घिर आये सब ओर प्रलय के ज्यों गर्जित घन।
मंथन-रव से बधिर हो गईं सकल दिशायें,
टूट रही थीं कोटि कोटि मानों उल्कायें।
घर्षित हो, अति क्षुब्ध हो उठा तल तक सागर,
मीन, मकर, अहि, ग्राह तिमिंगल-कुल अकुलाकर,
आये ऊपर त्रस्त-साथ आया हालाहल,
दुःसह दाह से धरा-गगन चर-अचर उठे जल।
शिव ने पीकर उसे शान्त कर दी सब ज्वाला,
नीलकंठ बन गये, विश्व का संकट टाला।
कामधेनु फिर प्रकट हुई, प्रकटा उच्चैःश्रव,
शशि-सा पांडुर-वर्ण, वेग में मरुत मनोजव।
फिर महाद्रि कैलाश-सदृश निकला ऐरावत,
कौस्तुभ-मणि कल कल्पवृक्ष रंभादिक निःसृत।
दमक उठी सब ओर दामिनी सी छवि सहसा,
नभ प्रसन्न हो उठा, जगत शतदल-सा विकसा।
घिर-घिर बरसे घहर घहर सच्चिदानन्द घन,
पड़ा दिखाई सिंधु बीच ज्योतित कमलासन।
शोभित उस पर मूर्तिमती छवि-सी चितिकाया,
प्रकटीं कमला, मंद हास दिशि-दिशि में छाया।
संभ्रम से भर चकित थकित रह गये सुरासुर,
विनत शीश थे और भक्ति-विह्वल था प्रति उर।
उपवेशन हित ईंद्र स्वयं आसन ले आये,
वेदों ने धर देह प्रणव-स्तव नव नव गाये।
धरा त्वरित अभिषेक-उपकरण लेकर आयी,
फल-फूलों से भरी चतुर्दिक मधुऋतु छायी।
दिगिभों ने ले स्वर्ण-कलश उनको नहलाया,
सागर ने कौशेय प्रीत उपहार सजाया।

(कवित्त)—

गुंजित मिलिंद-वृंद से जो अभिनंदित थी,
ऐसी वैजयन्ती माल भेंट की वरुण ने।
भूषण विचित्र विश्वकर्मा गढ़ लाये, और
लीलापद्म भेंट किया विकच अरुण ने।
मुक्ताहार वीणपाणि लाईं, और अंगराग,
मोहक सजाया शशि-किरण तरुण ने।
रूप, वय, वर्ण, महिमा से चित्त पूत हुए,
जग को सनाथ किया ईक्षण करुण ने॥

चंदन-कुंकुम-कलित सुतनु चल हेमलता सी,
ले कर में वरमाल चलीं वे ज्योति-विलासी।
मुखरित नूपुर-रणन शिंजिनी का मधु निःस्वन,
फैल रहा था दिव्य अनाहत ध्वनि सा क्षण-क्षण।
खोज रही थीं पूर्ण पुरुष अनवद्य अनवश्वर,
निखिल सदाश्रय, नित्य शीलमंगल, चिर भास्वर।
देखे सब सुर, असुर, यक्ष, चारण, किन्नर, नर,
पर न मिल सका उन्हें कहीं अपना अभीष्ट वर।
क्रोध न पाये जीत मिले वे उन्हें तपोधन,
ज्ञानवान भी मिले किंतु निःसंग न था मन।
महापुरुष वे मिले काम जो जीत न पाये,
धर्मध्वज बहु मिले भूत-सौहृद बिसराये।
शूरवीर शत मिले काल-कवलित गति वाले,
अनासक्त भी मिले कर्म-कीलित मति वाले।
पर श्री को संतुलन-हीन वे व्यक्ति न भाये,
तब श्रीहरि के लिए भाव उनके लहराये।
केवल हरि हैं निखिल नित्य सद्गुण के स्वामी,
पूर्णकाम अभिराम न हैं पर वे श्री कामी।
ऋद्धि-सिद्धि-निधि सकल चाहतीं आश्रय जिनका,
पर रहता अभिलाष-शून्य संतत मन उनका।
किंतु रमा ने उन अकाम को ही वर माना,
उनको ही अवलंब परम अपना पहचाना।
सेवित मत्त मधुव्रतों से, कमला कर की अमला वरमाला।
श्रीहरि के उर अंस-प्रदेश में शोभित थी सहदृष्टि अराला।
गौमुख, शंख, मृदंग बजे शत गा उठीं मोदभरी सुरबाला।
अंगिरा-ब्रह्मा प्रजापति-मुख्य के जीवन में जगी सिद्ध विशाला

व्रीड़ायुक्त हास भरे लोचनारविंद श्री के,
खिल उठे प्राप्त कर प्रभु की समीपता।
आश्रय पा बाहुओं का कंटकित रोम रोम,
पुलकित तन में प्रकट हुई नीपता।
दूर हुए अनृत, अनय, दुःख, दैन्य सब,
अशिव, अमंगल का मिलता न था पता।
आनुकूल्य धर्म और सत्य को रमा का मिला,
धर्महीनता को मिली परम प्रतीपता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाइड्रोजन (उद्जन) बम

श्री सुरेशचन्द्र गौड़

सरस्वती के एक अंक में परमाणु बम की विभीषिका का वर्णन किया गया था। एक सामान्य परमाणु बम के विस्फोट से संहार और विनाश का वही रूप प्रस्तुत हो सकता है जो लगभग २०,००० टन डाइनामाइट अथवा उतनी ही संख्या में साधारण बमों के एक साथ विस्फोट कराने से हो सकता है। किन्तु हाइड्रोजन बम या उद्जन बम परमाणु बम की अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर होते हैं। इनके विस्फोट से जो दृश्य उपस्थित होता है उसकी कल्पना करना अथवा वर्णन कर सकना सम्भव नहीं। साधारण-तौर पर, एक सामान्य हाइड्रोजन बम का विस्फोट एक सौ से लेकर एक हजार बल्कि इससे भी अधिक संख्या में परमाणु बमों के विस्फोट के समान प्रबल विध्वंसक एवं विनाशकारी होता है।

नवम्बर सन् १९५२ में मार्शल द्वीप के एनवीटोक नामक स्थान पर अमरीका की ओर से प्रथम हाइड्रोजन बम का सफल परीक्षण किया गया था। इसका विस्फोट तीस लाख टन डाइनामाइट अथवा टी० एन० टी० (ट्राई-नाइट्रोटूलीन) के विस्फोट के समान भयंकर एवं दुर्दान्तकारी था। इस बम का भार लगभग पैंसठ टन था। इस कारण इसे सुगमतापूर्वक कहीं ले जा सकना सम्भव नहीं था। इस बम का नाम 'माइक' था।

इसके लगभग नौ मास बाद ही, अगस्त सन् १९५३ में रूसी वैज्ञानिकों ने भी एक उद्जन बम का परीक्षणात्मक विस्फोट किया। यद्यपि विस्फोट की तीव्रता में यह 'माइक' का एक-तिहाई मात्र (अर्थात् दस लाख टन टी० एन० टी० के बराबर) ही था, किन्तु उसकी अपेक्षा बहुत हलका था और एक स्थान से दूसरे स्थान तक उसे बड़ी सुगमता से ले जाया जा सकता था। अतः उससे अधिक उपयोगी था।

अब तो बहुत विशाल एवं इनसे भी कई गुना शक्तिशाली एवं प्रचण्ड हाइड्रोजन बमों का निर्माण एवं परीक्षण किया जा चुका है। रूस ने एक ५० मेगाटन बम, जिसकी विस्फोटन शक्ति लगभग पाँच करोड़ टन टी० एन० के बराबर है, बनाने में सफलता प्राप्त की है। इससे भी अधिक प्रचण्ड बम बनाने की तैयारी में रूस और अमरीका दोनों संलग्न हैं।

उष्म-न्यैष्टिक प्रतिक्रियाएँ

हाइड्रोजन बम परमाणु बम के सिद्धान्तों पर कार्य नहीं करता। इसके अन्दर, विस्फोट के समय वही क्रियाएँ होती हैं जिनके चलते रहने के कारण सूर्य तथा अन्य तारों (नक्षत्रों) की चमक और गर्मी बराबर बनी रहती है। इनका आभास हमें पृथ्वी पर बैठे-बैठे हो जाता है, यद्यपि वे हमसे इतनी दूरी पर हैं जिसकी कल्पना कर सकना भी हमारे लिए कठिन है। प्रकाश और उष्मा के रूप में शक्ति का करोड़ों वर्षों से (अर्थात् सूर्य और तारों के जन्म से लेकर आजतक) उत्सर्जन अनवरत रूप से होता चला आ रहा है और आगे भी पता नहीं कब तक होता रहेगा। इस शक्ति का स्रोत क्या है? सितारे और सूर्य इतना तेज चमकते क्योंकर हैं? इसीके उत्तर में हाइड्रोजन बम का रहस्य छिपा हुआ है।

परमाणु बम के विवेचन में हमने देखा कि भारी न्यष्टि जब हलकी न्यष्टियों में विखण्डित होती हैं तो अपरिमित शक्ति का उद्गार होता है। इस शक्ति की गणना आइंसटाइन के सापेक्षवाद सिद्धान्त के सूत्र, [शक्ति या ऊर्जा = मात्रा × (प्रकाश का वेग २)] द्वारा की जा सकती है। किन्तु यदि हम न्यष्टियों के विखण्डन प्रक्रिया के विलोम एक अन्य प्रक्रिया पर विचार करें जिसमें हलकी न्यष्टियों के संघटन से एक भारी न्यष्टि का निर्माण होता हो, तो देखेंगे कि इस प्रक्रिया में भी अपरिमित शक्ति उद्गत होती है।

यह एक सुज्ञात तथ्य है कि किसी न्यष्टि की ऊर्जा उन सभी कणों की कुल सम्मिलित ऊर्जा से कम होती है जिनके संयोग से उस न्यष्टि का निर्माण हुआ रहता है। अतः जब कभी दो न्यष्टियाँ परस्पर संयोग करके एक नई न्यष्टि बनाती हैं तो अतिरिक्त ऊर्जा उसमें से मुक्त होती है। यह ऊर्जा दोनों न्यष्टियों की सम्मिलित ऊर्जा तथा नई न्यष्टि की ऊर्जा के अन्तर के बराबर होती है।

एक उदाहरण से इसे इस प्रकार समझा जा सकता है। मान लीजिए आक्सीजन गैस के दो परमाणु संघटित होते हैं। इनके संघटन से गंधक का परमाणु बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्सीजन के प्रत्येक परमाणु का भार १६ होता है और उसकी न्यष्टि का विद्युत् आवेश ८ इकाई होता है। गन्धक का परमाणु भार ३२ तथा विद्युत् आवेश १६ इकाई होता है। इस प्रतिक्रिया को हम निम्नलिखित समीकरण के रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

$$\underset{८}{\overset{१६}{(\text{आक्सीजन})}} + \underset{८}{\overset{१६}{(\text{आक्सीजन})}} = \underset{१६}{\overset{३२}{(\text{गन्धक})}}$$

बाईं ओर नीचेवाले अंक विद्युत् इकाई तथा दाहिनी ओर ऊपरवाले अंक परमाणु भार व्यक्त करते हैं।

गन्धक का वास्तविक परमाणु भार ३१·९९२ इकाई होता है और आक्सीजन के दोनों परमाणुओं का सम्मिलित भार ३२ इकाई होता है। इस प्रकार आक्सीजन के दो परमाणुओं के संघटन से (३२—३१·९९२) अर्थात् ·०१८ इकाई मात्रा में कमी हो जाती है। यह मात्रा कहाँ गयी?

यह ऊर्जा में परिणत हो गयी। आइंसटाइन के सूत्र द्वारा गणना करने पर, इस मात्रा के ऊर्जा में परिणत होने से अठारह करोड़ इलेक्ट्रान-वोल्ट ऊर्जा उत्पन्न होती है। यद्यपि यह ऊर्जा यूरेनियम की न्यष्टि के प्रभंजन से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा की अपेक्षा कम है किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि आक्सिजन की न्यष्टि यूरेनियम की न्यष्टि की तुलना में बहुत हल्की होती है। अतः न्यैष्टिक भारों की तुलना में आक्सीजन की न्यष्टियों की संधि के द्वारा विमुक्त ऊर्जा का परिमाण यूरेनियम के न्यैष्टिक प्रभंजन द्वारा विमुक्त ऊर्जा की अपेक्षा कहीं अधिक होता है।

इसी प्रकार हाइड्रोजन की दो न्यष्टियों की संधि या संघटन से जब हीलियम गैस की न्यष्टि बनती है तो अपरिमित शक्ति का उद्गार होता है।

किन्तु एक समस्या उत्पन्न होती है कि जब सभी न्यष्टियाँ धन विद्युत् युक्त होती हैं तो इनमें परस्पर प्रबल प्रतिकर्षण (हटाव) होता होगा, ऐसी दशा में ये परस्पर कैसे मिल सकती हैं? इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि इन दोनों परमाणुओं को इतनी अधिक ऊर्जा प्रदान की जाय कि ये अत्यन्त प्रचण्ड वेग से एक दूसरे की ओर गतिमान हों। इससे इनकी गतिज ऊर्जा उपर्युक्त प्रतिकर्षण बल के अवरोध को पार करने में सहायक होगी और ये परमाणु संघटित हो सकेंगे।

सूर्य और सितारों के चमक एवं ताप का रहस्य यहीं स्पष्ट हो जाता है। इनका ताप अत्यन्त प्रचण्ड—करोड़ों, अरबों अंश सेन्टीग्रेड की कोटि का—होता है। इनके अन्दर हाइड्रोजन गैस की भी प्रचुरता है। इस भीषण ताप के कारण हाइड्रोजन के परमाणुओं में तीव्र वेग पैदा हो जाता है जिससे वे इधर-उधर दौड़ा करते हैं। वेग के कारण इनमें उत्पन्न होने वाली ऊर्जा हाइड्रोजन परमाणुओं के बीच कार्य करनेवाले वैद्युतिक प्रतिकर्षण बलों का अवरोध पार कराने में उन्हें सफल बना देती है। परिणाम-स्वरूप हाइड्रोजन के परमाणु परस्पर संघटित होते रहते हैं, हीलियम के परमाणुओं का निर्माण होता रहता है और अतिरिक्त ऊर्जा मुक्त होती रहती है। प्रतिक्षण असंख्य हाइड्रोजन परमाणुओं के साथ यही क्रिया होती रहने से जो ऊर्जा मुक्त होती रहती है उसीके कारण ये आकाशीय पिण्ड इतने तप्त रहते हैं और हमें प्रकाश और ताप प्रदान करते हैं।

तापजन्य न्यष्टि-संघटन की इस प्रतिक्रिया को 'उष्म-न्यैष्टिक प्रतिक्रिया' कहते हैं।

हाइड्रोजन बम

वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील थे कि यदि किसी प्रकार पृथ्वी पर इतना ऊँचा ताप उत्पन्न किया जाय जितना सूर्य तथा अन्य सितारों के अन्दर पाया जाता है तो पृथ्वी पर भी उष्म-न्यैष्टिक प्रतिक्रिया करायी जा सकेगी और इससे अपरिमित शक्ति का उद्गार कराया जा सकेगा। परमाणु बम के आविष्कार ने यह कठिनाई हल कर दी। उसके विस्फोट से निमिष मात्र के लिए उष्मा और दबाव की लगभग वही दशाएँ प्राप्त होती हैं जो सूर्य और सितारों के अन्दर पायी जाती हैं। इस दिशा में यदि हाइड्रोजन के परमाणुओं को प्रविष्ट कराया जाय तो उनकी संधि से हीलियम परमाणुओं का निर्माण हो सकता है और इससे अभीष्ट महाशक्ति का उद्गार हो सकता है। यही हाइड्रोजन बम के निर्माण की आधारभूत कल्पना थी। हाइड्रोजन का एक आइसोटोप (हाइड्रोजन–३) सामान्य हाइड्रोजन (हाइड्रोजन–२) के साथ मिलाकर रख दिया जाता है और इनके बीच में एक परमाणु बम का विस्फोट कराया जाता है। इससे हाइड्रोजन के प्रत्येक परमाणु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग्म के संघटन से प्रायः दो करोड़ चालीस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा विमुक्त होती है। फिर असंख्य हाइड्रोजन परमाणु-युग्मों के तत्काल संघटन से कितनी ऊर्जा मुक्त होगी—इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते।

विनाश और संहार का ताण्डव

हाइड्रोजन बम का जब विस्फोट किया जाता है, तब उसका दृश्य वर्णनातीत होता है। इस विस्फोट से भी प्रचण्ड धक्के उत्पन्न करनेवाली तरंगें (शॉक वेव), तापीय विकिरण तथा अत्यन्त शक्तिशाली रेडियो-सक्रिय प्रेषण आदि प्रभाव उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जैसे कि परमाणु बम के विस्फोट द्वारा, किन्तु भीषणता में ये उसकी अपेक्षा सहस्रों गुना अधिक होते हैं। इसका प्रभाव नीचे दी गयी तुलनात्मक सारिणी से समझा जा सकता है—

बम का प्रकार	टी० एन० टी० के टनों में विस्फोटक शक्ति
द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रयुक्त टी०एन०टी०बम	२ या ३
नागासाकी पर गिराया गया परमाणु बम	२०,०००
द्वितीय विश्वयुद्ध में गिराये गये कुल बमों का भार ..	१३,००,०००
द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रयुक्त कुल विस्फोटकों का भार ..	५०,००,०००
अमरीका द्वारा बिकनी द्वीप में १९५४ में किया गया हाइड्रोजन बम का परीक्षणात्मक विस्फोट ..	१,५०,००,००० (१५ मेगाटन)
सोवियत रूस द्वारा तैयार किया गया सर्वाधिक शक्तिशाली ५० मेगाटन बम ..	५,००,००,००० (५० मेगाटन)

इस प्रकार सोवियत रूस द्वारा बनाये गये नये बम से मनुष्य जाति के इतिहास में आज तक किये गये कुल विस्फोटों से भी कई गुना अधिक शक्ति का उद्गार हुआ। क्या हमारे लिए इसकी कल्पना सम्भव है?

दिये गये चित्र से एक २० मेगाटन बम द्वारा हो सकने वाले विनाश का कुछ अनुमान किया जा सकता है। मान लीजिए अ कोई स्थान है जहाँ एक २० मेगाटन शक्ति के हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया गया है। इसके चारों ओर दो सौ वर्ग किलोमीटर विस्तृत क्षेत्र में विध्वंस का जो नग्न-ताण्डव होगा जिसकी कल्पना हम नहीं कर सकते। वहाँ कुछ भी वस्तु बची न रह जायगी जिससे मालूम हो सके कि कभी यहाँ किसी प्रकार के जीव रहते थे या कोई निर्माण आदि कभी यहाँ पर था। वहाँकी भूमि इस कदर जलकर नष्ट हो जायगी कि फिर किसी प्रकार का जीवन वहाँ पनप नहीं सकेगा। इसके बाद ५०० वर्ग किलोमीटर लम्बे-चौड़े क्षेत्र में जीव, वनस्पति, घर, मकान आदि का चिह्न तक लुप्त हो जायगा। बड़े से बड़े और मजबूत से मजबूत मकान निमिष-मात्र में धूलि-धूसरित हो जायँगे। खण्डहरों के रूप में ही उन्हें

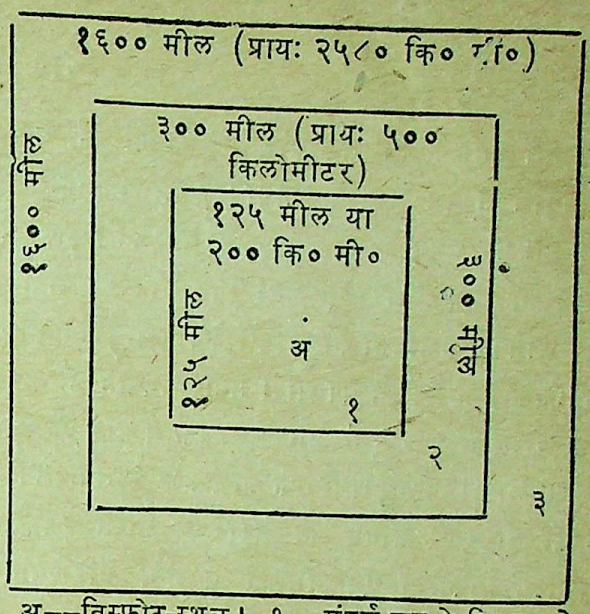

अ—विस्फोट-स्थल। १—संपूर्ण रूप से विनष्ट क्षेत्र। २—जीवों, वनस्पतियों, इमारतों का पूर्ण विनाश। ३—आंशिक विनाश का क्षेत्र। रेडियो सक्रियता भयंकर रूप से।

फिर देखा जा सकेगा। इसके बाद २५८० वर्ग कि० मी० का विस्तृत प्रदेश आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त होगा। अनेक मकान धराशायी हो जायँगे। क्षण भर के लिए प्रचण्ड भूकम्प का सा अनुभव होगा। इनके अतिरिक्त प्रबल रेडियो सक्रिय विकिरण से असंख्य व्यक्ति कुप्रभावित होंगे। धीरे-धीरे यह विकिरण दूर-दूर के देशों तक फैल जायगा।

वायु में लगभग डेढ़ मील की उँचाई पर किया जाने वाला उद्जन बम-विस्फोट सम्भवतः सर्वाधिक दुर्दान्त-कारी होता है। उदाहरण के लिए, यदि लखनऊ पर ५० मेगाटन बम का विस्फोट किया जाय तो पूर्व में बनारस, पश्चिम में मुरादाबाद, दक्षिण में झाँसी और उत्तर में नैपाल की उत्तरी सीमा तक एक भी प्राणी जीवित नहीं बचेगा, एक भी मकान का अवशेष नहीं रह जायगा। वनस्पति भी पूर्णतः विनष्ट हो जायगी। कोई देखकर कह नहीं सकेगा कि इस क्षेत्र में कभी विकसित एवं सभ्य मानव-समुदाय रहता था। इस परिधि के बाहर दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई आदि नगर भी इस विस्फोट के कारण उत्पन्न होनेवाले भीषण धक्कों के कुप्रभाव से बच नहीं सकेंगे।

हाइड्रोजन बम के विस्फोट से जो रेडियो सक्रिय विकिरण चारों ओर फैलता है, वह भी बड़ा भयानक होता है। ये रेडियो सक्रिय कण साधारण वस्तुओं को भी रेडियो सक्रिय बना देते हैं। दूर-दूर तक ये मनुष्यों की खाल पर पड़ कर उसे झुलसा देते हैं और इनका यह आक्रमण विस्फोट के कई वर्ष बाद तक होता रहता है। भावी सन्तान भी इनके कुप्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। इस आधार पर यह कहा जा सकता है आठ-दस ५० मेगाटन के बम संसार से मानव सभ्यता का विलोप कर सकने के लिए पर्याप्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौरमंडल के बाहर की यात्राएँ व प्लूटो ग्रह

डा० अरविंदमोहन

बीसवीं शती के अंत तक सौरमंडल के ग्रहों की यात्राएँ विधिवत् रूप से होने लगेंगी। वैज्ञानिक प्रयास की सफलता की चरम सीमा अनेक ग्रहों तक की उड़ानों तक सीमित न रहकर तारों या अन्य दूसरे सौर परिवारों की ओर जाने की संभावना की ओर झुकेगी और तब मालूम होगा कि वहाँ पहुँचने का सारा प्रयास विफल था अथवा उन लोकों में कुछ ऐसी प्राप्ति हो कि ये यात्राएँ सफल समझी जावें। परन्तु अभी तक की सफलता इतना तो सिद्ध करती ही है कि मानव का शरीर व मस्तिष्क कितना विशाल, विकसित एवं भौतिक व अन्य परिस्थितियों पर काबू पाने में कितना ऊपर उठ सकता है।

सूर्य के सब ग्रहों तक सफल यात्रा करने के पश्चात् मानव प्रयासों को ठहरना पड़ेगा। तारों की यात्रा सरल नहीं होगी। वहाँ पहुँचने के लिए हमारी ५ या ७ मील प्रति सेकंड की गति अत्यन्त हास्यास्पद व सुस्त प्रतीत होगी। प्रकाश का वेग (१,८६,००० मील प्रति सेकंड) भी इन दूरियों को तय करने के लिए अत्यधिक समय लगाता है; और फिर हमारा क्षणभंगुर जीवन भी इन यात्राओं के लिए अत्यन्त अल्प है।

परन्तु यदि मानव जाति का विनाश न हो गया तो कभी न कभी और-कोई न कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति जन्मेगा जो इन गतियों की सीमा पार करने का रहस्य ढूँढ़ सकेगा और हमारा जीवन इन यात्राओं के लिए पर्याप्त बनाया जा सकेगा। और जैसे आज अंतरिक्ष यात्राओं को सफल किया गया वैसे ही आनेवाले युग में अन्य सूर्यों के ग्रहों की यात्रा भी चरितार्थ की जा सके तो क्या आश्चर्य ?

प्लूटो ग्रह

हमारे सौर परिवार का सबसे आखिरी (अर्थात् सूर्य से दूरस्थ) ग्रह है प्लूटो। इसको देखना या इसकी और जानकारी पाना अत्यन्त कठिन रहा है। फिर भी ज्योतिष विज्ञान ने इसके बारे में अनेक रोचक तथ्यों की प्राप्ति की है। और कदाचित् इन रोचक तथ्यों का सबसे विचित्र निचोड़ यह है कि प्लूटो नामक ग्रह का वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं है।

१८२० के आसपास यूरेनस ग्रह का पथ (सूर्य के चारों ओर) कुछ भ्रष्ट होता प्रतीत हुआ। कारण ढूंढ़ने पर विदित हुआ कि एक अनजाने अन्य ग्रह के आकर्षण के फलस्वरूप यूरेनस पथ-भ्रष्ट हो रहा था। यह नवीन ग्रह सूर्य से अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा अधिक दूरी पर था—गणित के सहारे इसके पथ को निर्धारित किया गया ताकि यूरेनस ग्रह के ऊपर इस नवीन ग्रह का प्रभाव और उसकी पथ-भ्रष्टता को पूर्णतः समझने में सहायता मिल सके।

जो ग्रह हो ही नहीं सकता

गणित की सहायता से इस नवीन ग्रह क पथ, गति तथा भार की गणना के उपरान्त उसको ढूंढ़ना सरल हो जाना चाहिए था। नेपच्यून का पता लगाने में यही उपाय किया गया था। अतः प्रो० लॉवेल ने इस नवीन ग्रह प्लूटो को खोजने का बीड़ा उठाया जो सूर्य से ४०० करोड़ मील की दूरी पर था, जिसको सूर्य की एक परिक्रमा के लिए २८० वर्षों का समय लगता था तथा जिसका भार हमारी पृथ्वी से छः गुना अधिक था। प्रो० पिकरिंग नामक एक अन्य वैज्ञानिक ने भी यही गणना की तथा लॉवेल की धारणाओं की पुष्टि की।

पृथ्वी से छः गुने भारी ग्रह को तलाश कर लेना विज्ञान के लिए कोई समस्या ही न होती। अतः १९०५ में ही प्रो० लॉवेल इस ग्रह प्लूटो को खोजने में लग गये परन्तु उनकी चेष्टा असफल रही। आकाश में ग्रह था अवश्य, परन्तु उसके प्रकाश को इतना क्षीण होने का कोई अधिकार न था कि वैज्ञानिक उसको अपने पैने यंत्रों के सहारे भी न देख पाते !

निरन्तर खोज के पश्चात् सर्वप्रथम प्लूटो १९३० में देखा जा सका, और लॉवेल की गणना के अनुसार वह ठीक स्थान पर मिला। उसका भार और दूरी आदि भी बिलकुल सच प्रमाणित हो गयी। परन्तु इतना भारी होने के बावजूद भी प्लूटो बहुत छोटा प्रमाणित हुआ। पृथ्वी के व्यास का केवल आधा इसका व्यास था और पृथ्वी से छः गुना भारी था प्लूटो ! अतः इस प्लूटो का घनत्व पृथ्वी से पचास गुना अधिक होगा। यह एक विस्मयकारी जानकारी थी जिसका कारण ढूंढ़ने पर भी न मिल सका।

पानी की अपेक्षा हमारी पृथ्वी साढ़े पाँच गुनी भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सबसे सघन धातु का घनत्व पानी का २२ गुना है (सोना, चाँदी इससे कहीं अधिक हलके हैं।) परन्तु प्लूटो ग्रह पानी की अपेक्षा कई सौ गुना भारी है। वैज्ञानिक धारणा के अनुसार इस प्रकार का ग्रह हो ही नहीं सकता। परन्तु प्लूटो ग्रह वास्तविक है।

शिशु : २०० करोड़ वर्ष का

प्लूटो ग्रह की दूसरी विचित्रता इसका भ्रमण कक्ष है। इसका कक्षा वृत्ताकार न होकर अंडाकार है और इतना चिपटा हो जाता है कि नेप्च्यून के कक्ष के भीतर होकर भी जाता है। फलस्वरूप कभी-कभी प्लूटो, सूर्य से नेप्च्यून की अपेक्षा पास रहता है---लगभग २००० ई० में यह स्थिति पुनः आवेगी। सौर परिवार में, गणित व जाने गये ज्ञान के आधार पर, यह विदित है कि प्रत्येक ग्रह का मार्ग दूसरों से पृथक् है अतः उनका मार्ग एक दूसरे को काटता नहीं। इस धारणा में प्लूटो एक आपत्ति प्रस्तुत करता है जिसका कोई उत्तर नहीं मिलता।

प्लूटो की आयु २०० करोड़ वर्ष आँकी गई है जो कि सौर-परिवार में एक नवजात शिशु के समान है। अतः धारणा है कि प्लूटो किसी दूसरी दुनिया से आकर सौर-परिवार का एक सदस्य बन गया है।

प्लूटो-संबंधी ज्ञान हमारा अभी तक बहुत सीमित है परन्तु जब सुदूर अंतरिक्ष की ओर मानव परीक्षण शालाएँ भेजी जाने लगी हैं, जब चंद्र-यात्रा का स्वप्न यथार्थ हो चुका है, जब अंतरिक्ष में भ्रमण एक मामूली बात बन चुकी है तब प्लूटो का, जो सौर-परिवार का दूरस्थ प्रहरी है, हमारा ज्ञान अवश्य ही बढ़ेगा।

पृथ्वी से प्लूटो ५ प्रकाश-घंटों की दूरी पर है। (इतनी दूरी जो प्रकाश ५ घंटों में तय कर सके) और प्लूटो की सफल यात्रा के लिए हमको लगभग २०० मील प्रति सेकंड की गति आवश्यक होगी यदि यात्रा की अवधि हमारे जीवन के कुछ अंशों में ही रखनी हो। अन्य तारों की यात्रा के लिए भी ऐसी ही गति चाहिए। हमारा आज का विज्ञान इसमें बिलकुल ही असमर्थ है।

नये ईंधनों की खोज

इन गतियों की प्राप्ति के हेतु हमको पदार्थ से ऊर्जा बनाने की उन न्यूक्लियर विधियों की खोजबीन करनी होगी जिनकी दक्षता परमाणु खंडन की विधियों से कहीं बढ़कर हों। हाइड्रोजन संगलन विधि ही हमारी जानकारी में न्यूनतम पदार्थ से अधिकतम ऊर्जा उत्पन्न करती है। अतः इन यात्राओं को सत्य करने के लिए एक "ऐण्टी-पदार्थ" राकेट का आविष्कार आवश्यक हो जाता है।

सैद्धान्तिक रूप में एक प्रोटान तथा ऐन्टी प्रोटान के मेल में पदार्थ पूर्णतः ऊर्जा में परिणत हो जाता है। गामा किरणों का विकिरण इस ऊर्जा का स्वरूप है। वास्तविक या प्रायोगिक रूप में ऐसा करना दुष्कर है क्योंकि अत्यन्त अधिक त्वरण के कणों का उत्पादन पृथ्वी पर किसी मशीन द्वारा कर सकना कठिन होगा। प्रति सेकण्ड कई ग्राम ऐंटी प्रोटन बनाने के लिए मशीन तैयार करना कठिन या अभी तो असंभव प्रतीत होता है।

प्रायोगिक दृष्टिकोण से इस ऐण्टी पदार्थ को एकत्रित करके रखना भी बड़ी समस्या है क्योंकि जैसे ही यह किसी पदार्थ को छुएगा वैसे ही वह एक विस्फोट के साथ लुप्त हो जावेगा। अतः इस विचित्र ऐण्टी पदार्थ को चुम्बकीय बल के क्षेत्रों में बाँधकर रखा जावेगा। कदाचित् विद्युत्-क्षेत्र में रखना भी अच्छा पड़े।

संभावना के दायरे में

यह तो भविष्य की बातें हैं---संभावना के दायरे में। परन्तु तकनीकी दृष्टिकोण से पता नहीं कहाँ तक सफलता पा सकें। यदि ऐसा राकेट इंजिन बनाया भी जा सके जिसमें पदार्थ व ऐन्टी पदार्थ के संगलन से गामा किरण-स्वरूप ऊर्जा मिलती हो तो अन्य कठिनाइयाँ भी सामने आती हैं। उदाहरणतः गामा किरणों को सीसे की दीवाल में रोक कर उत्पन्न प्रतिक्रिया के फलस्वरूप राकेट की गति प्रदान करने की चेष्टा में थोड़े समय के बाद ही सीसा गरम होकर पिघल जावेगा। अतः गामा किरणों के शोषण के स्थान पर उनका परावर्त्तन करने की चेष्टा सफल करनी पड़ेगी। और गामा किरणों के परावर्त्तन के लिए कोई पदार्थ अभी तक हमारे विज्ञान के पास है नहीं। और, फिर, सैद्धान्तिक रूप से ऐसा पदार्थ मिलना असंभव भी है। क्योंकि गामा किरणों की लम्बान के समान सूक्ष्म परमाणु की बनावट नहीं है।

इस विचित्र पदार्थ "राकेटीय ईंधन" के क्षेत्रों में कदाचित् आज की धारणा के प्रतिक्रिया-सिद्धान्त के राकेटों को बना सकना असम्भव है। अतः प्रकाश की गति को पाने तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर, उसका वंश भी पाना क्योंकर हो सकेगा ? इस प्रश्न का हल तारों की यात्रा की बुनियादी समस्या है। यदि अंतरिक्ष में ऐसा यान भेजना है जिसमें ऊर्जा के लिए विशाल मशीन चाहिए हों तब परमाणु संगलन ऊर्जा इंजिन होने पर भी यान का भार अत्यधिक हो जावेगा।

वैसे, विज्ञान ने परमाणुओं को लगभग प्रकाश की गति प्रदान की है। परन्तु यह कण विराट् साइक्लोट्रोन आदि ऊर्जा मशीनों द्वारा चलाये गये हैं—जहाँ केवल एक कण की गति प्रदान करने के हेतु असीमित ऊर्जा स्रोत लगाये गये हैं। अतः इसी धारणा पर तारों की यात्रा के लिए बनाये गये यानों को चालू करने की ऊर्जा बाहर से प्रदान करनी आवश्यक होगी।

"लेसर" के द्वारा ?

आज हमको यह धारणा विचित्र लगती है कि इंजिन यान से पृथक् हो। परन्तु इसमें वास्तविक रूप से उदाहरण दिया गया है—सूर्य शक्ति द्वारा परावर्त्तित फोटान कण ! सूर्य शक्ति के द्वारा सुदूर अंतरिक्ष में भी यानों को चलाने की समस्या का हल निकाला जा रहा है।

लेसर का आविष्कार इस दिशा में सहायक हो सकेगा, पाठकों को विदित है कि लेसर सूर्य से भी अधिक चमकीला, पैना, एकवर्णीय प्रकाश उत्पन्न करता है जो बहुत पतले पथ पर (बिना फैले हुए) अग्रसर होता है। इसके उपयोग से करोड़ों मील दूरी पर भी सूर्य की ऊर्जा को प्रकाश के दबाव में परिवर्त्तित किया जा सकेगा।

परन्तु ऐसा लेसर लगभग ६ मील व्यास के डील-डौल का बनाना होगा। अतः लेसर का यह विराट् रूप भी प्रयोगात्मक ढंग पर व्यवहार्य नहीं मालूम होता क्योंकि अभी तक तो केवल अँगूठी के नग के आकार के ही लेसरों की सृष्टि की जा सकी है।

ऊर्जा की इतनी अधिक मात्रा इन यात्राओं के लिए चाहिए कि उस अपेक्षित परिमाण को नापने के लिए अर्ग, जूल, लाख, वाट, घंटा इत्यादि सभी पैमाने अत्यन्त छोटे हैं। इतनी गतिज ऊर्जा आवश्यक होगी जितनी आज के दिनों में समस्त संसार में पूरे वर्ष में भी नहीं लगती। संसार भर में प्रतिवर्ष कुछ सहस्र ग्राम ऊर्जा की खपत होती है जबकि तारों तक की यात्रा के लिए हमें करोड़ों ग्राम ऊर्जा चाहिए।

भविष्य की ओर निराश होना मानव स्वभाव में कम पाया जाता है। असंभव, विषम तथा अनहोनी परिस्थितियों में भी मानव प्रयास कोई मार्ग ढूंढ़ ही निकालता है। तारों की यात्रा के लिए हमको वही ऊर्जा चाहिए जो स्वयं तारों को प्रकाश व ऊष्मा प्रदान करती है। और इसके लिए परमाणु खंडन से बढ़कर परमाणु संगलन विधियों पर काबू पाना होगा।

अंतिम घन

श्री बीरबल महतो

बरस रहे घन अंतिम बार।
गँदला पानी बह निकल गया
झरते झरते घन साफ़ हुआ
उड़ते-उड़ते झुकते जाते भू को देने अंतिम प्यार।
बरस रहे घन अंतिम बार।
भू-उर सर है दर्पण निर्मल
मुग्ध हंसिनी करती काजल
स्निग्ध फुहारों के स्वर-थिरकन पुलकन देते बारम्बार।
बरस रहे घन अंतिम बार।
आकाश धुला औ भूमि धुली
प्राणों की साँस उसाँस धुली
ज्वार नहीं अब शान्त सरोवर, बहती संयम से जल-धार।
बरस रहे घन अंतिम बार।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेरे अनुभव (१)

पण्डित ब्रजमोहन व्यास

अफसरी खेल नहीं है जिसे लड़का खेले।
मैंने इस अम्र के बाइस बरस पापड़ बेले।

मैंने इस लेखमाला के शीर्षक में 'अनुभव' शब्द का प्रयोग किया है, 'संस्मरण' का नहीं। इधर मैंने इतने संस्मरण लिख डाले हैं कि मेरा ही जी नहीं, पाठकों का भी जी ऊब उठा होगा। नया जामा पहिना देने से आदमी तो वही रहता है, चीज नहीं रहती है, फक़त शक्ल बदल जाती है और कभी-कभी लज्ज़त भी बढ़ जाती है। हालाँ कि

जुबाँ का फर्क, हक़ीक़त बदल नहीं सकता।
ये कोई बात नहीं बुत कहा, खुदा न कहा॥

इन अनुभवों के लिखने का उद्देश्य--विषय गम्भीर है। प्रश्न सुख-दुःख का है, जीवन-मरण का है। किसका ? इलाहाबाद के पाँच लाख प्राणियों का और नगर की महत्ता से आकृष्ट होकर लाखों की संख्या में आने-जानेवालों का, जो हमारे अतिथिस्वरूप हैं। यह प्रश्न है नगर के लाखों गरीब प्राणियों का, निस्सहाय विधवाओं का, मासूम बच्चों का, म्युनिसिपल बोर्ड के मेम्बरों एवं उसके कर्मचारियों के ईमान और गैरत का। और सबसे ऊपर इलाहाबाद की इज्ज़त का। मैंने बाईस बरस इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी की एकजेकेटिव अफ़सरी की है। जब मेरी नियुक्ति हुई मेरी उम्र ३२ वर्ष से कम ही थी। इस 'कच्ची उम्र' में इलाहाबाद की जनता का भाग्य मुझ ऐसे अपरिपक्व बुद्धिवाले व्यक्ति को सपुर्द कर दिया गया था। क़ानून ही ऐसा था। लाचारी थी। ३२ वर्ष की आयु से अधिक का व्यक्ति, एकजेकेटिव आफ़िसर नियुक्त नहीं हो सकता था। मालूम नहीं किस मसलहत से क़ानून बनानेवालों ने इस आयु के बाद बेंड़ा लगा दिया था। शायद जनता को खुर्राट, खेले-खाये बुढ्ढों की फ़ितरत से बचाने के लिए। परन्तु उन्हें यह न भूलना चाहिए कि--

"निसर्गत एव .....अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्"

(स्वभाव ही से युवावस्था से उत्पन्न, अन्धकार अति गहन होता है) और

"यौवनारम्भे प्रायः शास्त्रजलप्रक्षाननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः"

शुकनासोपदेश-कादम्बरी

(जवानी के आरम्भ में प्रायः पढ़े-लिखे आदमी की भी बुद्धि बौराय जाती है)

सम्भव है इन अनुभवों से म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों को अपने उत्तरदायित्व का और जनता को अपने कर्त्तव्यपालन का बोध हो जाय। यही इन अनुभवों को लिपिबद्ध करने का उद्देश्य है। परन्तु मुझे डर है कि लोग इसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' न समझें और मेरी बात उनके गले के नीचे न उतरे। क्योंकि

गुरुरपि लघूपनीतो न निमज्जति नियतमाशये महतः।
वानरकरोपनीतः शैलो मकरालयस्येव॥

(गोवर्धनाचार्य)

(बात कितनी भी वज़नी हो, अगर उसे छोटे लोग कहते हैं, तो वह बड़ों के हृदय में नहीं धँसती। यही कारण है कि जब बन्दरों ने भारी-भारी शिलाएँ समुद्र में फेंकीं तो वे जल में नहीं डूबीं और सेतु बँध गया)

इसी हेतु

क़हक़हों की मश्क़ से मैंने निकाला अपना काम्।
जब किसी ने क़द्र आहो-नाल-ओ जारी न की॥

मैंने इन अनुभवों को हास्य और व्यंग का पुट देकर लिखा है।

इसी प्रसंग में मैं यह भी चाहता हूँ कि मैं पुराने इलाहाबाद की महत्ता, उसकी पूर्व संस्कृति एवं उसके रहन-सहन की एक झाँकी प्रस्तुत करूँ ताकि उसके आज के भाग्य-विधाताओं को पता चले कि बपौती में उन्हें कैसा नगर मिला है और वे सोचें कि उसके अभ्युदय के लिए उन्हें क्या करना चाहिए।

आज ३ सितम्बर १९६२ है। आज ही मैंने इन अनुभवों का लिखना आरम्भ किया है। आज के ७७ वर्ष पूर्व आज ही के दिन मेरा एक धर्मनिष्ठ एवं सम्भ्रान्त परिवार में जन्म हुआ था। मैंने अपने जन्म-दिवस एवं परिवार की धर्मनिष्ठा का उल्लेख इसलिए किया क्योंकि उनका सामूहिक प्रभाव आगे चलकर मेरे जीवन के कार्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की माता

क्षेत्र में पड़ा। उस दिन हरितालिका (तीज) व्रत का भियान था। तीज प्रायः सोहागिन स्त्रियों का त्योहार है। तीज के दिन स्त्रियाँ निर्जल उपवास करती हैं। यों तो विधवायें भी उपवास करती हैं, सम्भवतः इस आशा से कि अगले जन्म में उन्हें वैधव्य की यातना न भुगतनी पड़े। नगर के निकटस्थ गाँवों के कुम्हार तीज के दिन प्रातःकाल ही से कच्ची मिट्टी की भवानी-शङ्कर की प्रतिमा गलियों में पुकार-पुकारकर बेचते फिरते हैं। तीज के दूसरे दिन बड़े तड़के ये सब निराहार और निर्जल स्त्रियाँ 'वागर्थाविव सम्पृक्त', पार्वती-परमेश्वर का पूजन कर उपवास तोड़ती हैं। भगवान् आशुतोष शङ्कर ठीक ही तो करते हैं जो पार्वती की इतनी नाज़-बर्दारी करते हैं। क्योंकि

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ षडाननगजाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥

(एक तो स्वयं भगवान् के पाँच मुख हैं। दूसरे एक पुत्र उनके कार्तिकेय हैं जिनके छः मुख हैं और दूसरे गणेश जिनका हाथी का मुख है। और शंकर के पास भूँजी भाँग के अतिरिक्त तन पर लँगोटी तक नहीं है। ऐसी परिस्थिति में वे कैसे जीवित रह सकते थे यदि उनके घर में जगदम्बा अन्नपूर्णा न होतीं?) गृहस्थ इतना समझ रखें कि वे चाहे जितना अकड़ लें और 'अपने मुह मियाँ मिट्ठू' बन लें, और 'मेहरी के आगे धनुष उठावें देख मोर मनसैया' कहें उनकी गृहस्थी का सुचारु रूप से कदापि सञ्चालन नहीं हो सकता यदि उनके घर में पतिव्रता पत्नी नहीं है। अस्तु दूसरे दिन तड़के स्नानादि से निवृत्त होकर ये म्लान-मुखी स्त्रियाँ महादेव-पार्वती के पूजन में प्रवृत्त हो जाती हैं और सोहागिन स्त्रियाँ भवानी के मस्तक का सिन्दूर अपनी माँग में भरने से नहीं अघातीं। तदनन्तर वे सब उपवास तोड़ती हैं। एतदर्थ मोहल्ले-मोहल्ले हलवाइयों के यहाँ दो बजे रात से ही कढ़ाई चढ़ जाती है और गरम-गरम जलेबियाँ उतरने लग जाती हैं। तड़का होते ही उनकी दूकानों के सामने, घर की बहू-बेटियों के उपवास तोड़ने के हेतु जलेबी के खरीदारों की भीड़ लग जाती है। तीज के इस त्योहार पर पुरंध्रियों की इस धर्मनिष्ठा को देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है। यद्यपि मेरी माता आसन्न-प्रसवा थीं फिर भी अन्य स्त्रियों की भाँति उन्होंने तीज के दिन निर्जल उपवास किया था। रात तो ज्यों-त्यों कर बीत गयी परन्तु चतुर्थी के दिन वे ज्योंही देवी की पूजा कर उठीं, उन्हें प्रसव-वेदना हुई और मेरा जन्म हुआ। साल भर बाद मेरी वर्षग्रंथि हुई। मेरे परिवार में यह प्रथा है और सम्भव है कि अन्य परिवारों में भी कुछ इसीसे मिलती-जुलती प्रथा हो कि वर्ष-ग्रन्थि के दिन माता 'देवी की कढ़ैया' चढ़ाती है, उसमें हलवा बनता है, फिर देवी की और हलवा भरी कढ़ाई की पूजा होती है और वही हलवा परिवार के सभी प्राणियों को प्रसाद में मिलता है। चूँकि मेरी वर्ष-ग्रन्थि तीज के दूसरे दिन पड़ती है, मेरी माता खूब तड़के उठकर यह सब कृत्य समाप्त कर देती हैं, इसी प्रसाद से निराहार स्त्रियाँ उपवास तोड़ती हैं और उनके म्लान भाव पर सहसा इस प्रकार कान्ति आ जाती है जैसे—

शाणोत्कीर्णो मणिरिव घनाम्भोदमुक्तो विवस्वान्
निःकोषोसिः झटिति विगलत् कञ्चुकः पन्नगेन्द्रः॥

भवभूति—महावीरचरित

(जैसे खराद से उतरा हुआ मणि, बादल से निकला हुआ चाँद, मियान से खींची हुई लपलपाती तलवार अथवा तुरन्त केंचुल छोड़े हुआ सर्पराज)

मैंने तीज-त्योहार का वर्णन कुछ विस्तार से इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक

किया कि एक तो प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर मेरा पक्षपात और दूसरे मेरी यह दृढ़ धारणा है कि उसमें स्त्री जाति की आत्मा निहित है जो पुरुषों के योगक्षेम की शक्ति रखती है। अस्तु।

मुझे ऐसा लगता है कि मेरे जन्म-दिवस पर ही इन भूखी स्त्रियों को सुख पहुँचाने के कारण विधाता ने मेरे ललाट पर लिख दिया था कि इस व्यक्ति को अपने जीवन में गरीबों की सेवा करने का अवसर मिलेगा और उसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करने का उत्तरदायित्व उसी पर होगा। यद्यपि मैंने एल्-एल० बी० पास किया था और छ-सात वर्ष हाईकोर्ट में प्रैक्टिस भी की थी परन्तु भवितव्यता, मैं १९२१ में इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी का एक्ज़ेकेटिव आफिसर नियुक्त हो गया। ललाट-लेख के अनुसार मुझे गरीबों की सेवा करने का अवसर मिल गया।

सत्तर वर्ष की उम्र के बाद वर्ष-ग्रंथियों पर कोई विशेष प्रसन्नता नहीं होती। जी में खुटका लगा रहता है। मैं जब एक्ज़ेकेटिव आफिसर था, मैंने एक बार मिस्टर बोलम से पूछा था कि आपकी क्या उम्र है। बोलम महोदय उस समय मार्टिन कम्पनी के सबसे बड़े इंजीनियर थे और शायद फर्म की आमदनी में साझीदार भी थे। उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया "Mr. Vyas! I have reached that age when birthdays do'nt enthuse me. I am seventy five" (व्यासजी! मैं अब उस उम्र पर पहुँच गया हूँ जब वर्ष-ग्रंथियों पर कोई उत्साह नहीं होता। मैं ७५ वर्ष का हूँ।) मैं उस समय पूर्ण युवा था। उत्तर पर थोड़ी हँसी आई। मुझे क्या मालूम था कि एक दिन मेरा भी वही हाल होगा।

आज जब मैं अपनी सतहत्तरवें वर्ष के आरम्भ में इन अनुभवों को लिखने बैठा उस समय पौ फटने ही वाली थी। सहसा मेरी निगाह सामने दीवार पर लटकती हुई घड़ी पर पड़ी। मुझे ऐसा लगा जैसे वह यमराज सहोदरा 'टिक्-टिक्' कर मेरे जीवन को प्रतिक्षण कवलित करती जा रही है। इच्छा हुई कि यदि इस घड़ी का चलना दस-पाँच वर्ष के लिए बन्द हो जाय और मेरा पंचांग उतने ही समय के लिए पीछे खिसक जाय तो हाथ में लिये हुए कामों को समेट लूँ। इस बहाने से अपनी उम्र बढ़ा लेने की इच्छा पर मुझे हँसी आई। मैंने सोचा

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥
शंकराचार्य

(अंग शिथिल हो गये, सर के बाल पक गये, मुँह वेदान्ती हो गया और यह वृद्ध पुरुष लठ्ठी लेकर चलने लगा फिर भी सिर से और अधिक जीने की आशा नहीं जाती।) जानते हुए कि इसमें अपना कोई वश नहीं है, लोग कहने से न बाज आयेंगे कि

व्यास जी को फिक्र थी एक एक के दस दस कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हजरत जान वापस कीजिये॥

सोचा कि इस लेखमाला का पहिला अंक नवम्बर के महीने में प्रकाशित होगा। इस वर्ष दीपावली नवम्बर ही में पड़ रही है। सहसा महावीर महाप्रभु तीर्थंकर की याद आ गयी। दीपावली ही के दिन उनका देहावसान हुआ था। उस दिन अपने सबसे योग्य शिष्य, गौतम को बुलाकर उन्होंने यह उपदेश दिया था—

दुमपत्तये पंडुयए जहा निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम मा पमायए॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जैसे झंझड़ में ऋतु की रातों के बीत जाने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर झड़ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है। न जाने कब झड़ जाय। अतः हे गौतम! क्षणभर भी प्रमाद न कर।)

दुल्लहे खलु माणुसे भवे चिरकालेण विसव्व पाणिणं।
गाढ़ा य विवाग कम्मुणो समयं गोयम मा पमायए॥

(चिरकाल के बाद भी इस मनुष्य-जन्म का पाना अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि पूर्व कर्मों के विपाक बहुत गाढ़े होते हैं। हे गौतम! क्षणभर भी प्रमाद न कर।)

वोच्छिन्द सिणेह मप्पणो कुसुमं सारइयंव पाणियं।
से सव्व सिणेह वज्जिये समयं गोयम मा पमायए॥

(जैसे कमल, शरद काल के निर्मल पानी को नहीं छूता, उससे अलिप्त रहता है, उसी तरह तू भी संसार से आसक्ति दूर कर, सब प्रकार के संकुचित बन्धनों को छेद डाल। हे गौतम! क्षणभर भी प्रमाद न कर।)

तिण्णोसि अण्णवं महं किं पुण चिठ्ठसि तीर मागओ।
अभितुर पारं गमित्तए समयं गोयम मा पमायए॥

(तू महान् संसार-समुद्र को तैर चुका है। अब किनारे आकर मनुष्य-जन्म पाकर क्यों अटक रहा है। उस पार जाने की जितनी भी हो सके शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणभर भी प्रमाद न कर।)

अर्धमागधी में महाप्रभु के ये उपदेश अमृतोपम हैं। उनके याद आते ही मैं प्रमाद को छोड़ इन अनुभवों के लिखने में जुट गया।

मैं इलाहाबाद का इतिहास लिखने नहीं बैठा हूँ। केवल उसका रेखाचित्र खींचने, जिसमें प्राचीन समय से आज तक की सरसरी तौर पर एक झाँकी मिल जाय।

इलाहाबाद एक अजीबो-ग़रीब शहर है। अजीब भी है और ग़रीब भी। अजीब इस मानी में इतना लावारिस और उपेक्षित शहर होने पर भी वह स्वाभिमान से अपना मस्तक झुकने नहीं देता। उस स्वाभिमान का कारण एक तो उसकी प्राचीन संस्कृति और उसके कुछ महान् व्यक्तित्व जो अपना जोड़ नहीं रखते और दूसरे गंगा माई। इस लोक और परलोक, दोनों के इतने तगड़े साधन जिसके पास हों उसे स्वाभिमान होना स्वाभाविक है। पर वे भूल जाते हैं कि—

"What is to the dumb whose forefathers were eloquent and what is to blind whose forefathers could see."

(गूँगे को इससे क्या लाभ कि उसके पूर्वज व्याख्यान-वाचस्पति थे और अंधे को इससे क्या हासिल कि उसके बाप-दादे बड़े दूरदर्शी थे।)

उन्हें इतना तो समझ लेना चाहिये कि

'आफ़िशल आमाल-नामे की न होगी कुछ सनद।
मुल्क में अब नामये-आमाल देखा जायगा॥
तह करो साहब नसबनामा को वक्त आया है अब
बे-असर होगी शराफ़त साल देखा जायगा॥

—अकबर इलाहाबादी

ख़ैर! अब रही ग़रीबी की बात उसे तो विधाता ने अपने हाथों से उसके ललाट पर लिख दिया है। और यदि आप विधि को दोषी ठहराने का साहस न कर सकें तो कह दें कि वह इलाहाबाद की परिणीता है। बात एक ही है। और जब उस परिणीता से दुखी होते हैं तो भगवान् को पुकारते हैं और जब वे भी नहीं सुनते तो शिकायत करते हैं कि

जब मैं कहता हूँ कि या अल्लाह! मेरा हाल देख।
हुक्म होता है कि अपना नामये-आमाल देख॥

—अकबर इलाहाबादी

हाँ, अगर आपको इसकी अमीरी देखना हो तो यहाँके खपरैलों को गरमी के मौसम में देखिये। गरमी यहाँ इतनी फर्माइशी पड़ती है कि उससे घबराकर अकबर इलाहाबादी ने लिख ही तो डाला कि—

पड़ जायँ लाख आबले सारे बदन में अकबर।
पढ़ कर जो कोई फूँक दे अपरैल, मई, जून॥
इब्तेदा गरमी की है अपरैल से।
अब मैं घबराने लगा खपरैल से॥

बन्दरों ने खपरैल की नाकों में दम कर रखा है और खपरैल ने उसकी छत्र-छाया के नीचे रहनेवालों का। "धोबी से न जीते गदहे का कान उमेठे"। खपड़े बन्दरों से तो जीत पाते नहीं। नीचे रहनेवालों पर अपने दिल का गुबार निकालते रहते हैं। इलाहाबाद के खपड़ों को इस बात पर नाज है कि एक तो वे Majority में हैं, बहुसंख्यक हैं, और दूसरे यह कि उन्हीं की छाया में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुगल-साम्राज्य के अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह 'ज़फ़र' रंगून में अपना दम तोड़ चुके हैं।

बावजूद इस सबके प्रयाग की धार्मिक महत्ता के कारण प्रतिवर्ष सम्पूर्ण भारतवर्ष से लाखों की संख्या में यात्री बराबर आते-जाते रहते हैं। उन सबों का मुख्य ध्येय, रहता है गंगा माता और यमुना विमाता के संगम में स्नान करना, भरद्वाज आश्रम के मन्दिरों में मत्था टेकना और लगे हाथ निकटस्थ 'आनन्दभवन' की इमारत का दर्शन करना। इमारत के दर्शन करने के अतिरिक्त वे बेचारे कर ही क्या सकते हैं?

काबा-नशीं मिलें तो कहें उससे दर्दे-दिल।
काबे में ईंट चूने से, पत्थर से क्या कहें?

पर काबा-नशीं तो दिल्ली में रहता है और पुराने वक्त की बहुओं की तरह छठे-छमासे दो-एक दिन के लिए मायके आ जाता है। और यदि ससुराल ही में ज़म कर रहे तो ग़नीमत है। पर वह तो 'स्पुत्निक' की तरह या यूँ कहिये कि नयी रोशनी की लड़कियों की तरह हमेशा गर्दिश में रहता है और न मालूम कितने प्रकार के आदमियों से मिलता रहता है। तब आप ही समझिये कि--

तुम्हें गैरों से कब फ़ुरसत, हम अपने ग़म से कब ख़ाली।
चलो बस हो चुका मिलना, न तुम ख़ाली न हम ख़ाली॥

अब मैं प्रयाग के प्राचीन इतिहास, उस समय के रहन-सहन एवं उसकी संस्कृति का बहुत संक्षेप में विवेचन करूँगा। मेरे पूर्वज 'रसगगनतिथिप्रमाणवर्षे' अर्थात् वैक्रम सम्वत् १५०६ में मालवा से भाग कर इस ओर आये। उस समय से आज तक प्रातःस्मरणीय महामना मालवीयजी का और मेरा परिवार प्रयाग में रहता चला आ रहा है। मालवा से आने के बाद दो-तीन पीढ़ी तक, सिवाय पूर्वजों के नाम के मुझे और कुछ नहीं मालूम हो सका जिससे मैं उस समय के रहन-सहन पर प्रकाश डाल सकूँ। तीन पीढ़ी बाद पं० जुडावन व्यास हुए। उनके जीवन की एक घटना से उस समय के वातावरण पर थोड़ा सा प्रकाश पड़ता है। पं० जुडावन व्यास मुगल-सम्राट् इब्राहीम शाह के राज्यकाल में थे। इसका प्रमाण उनके हाथ की लिखी पोथी से मिलता है जो प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित है। उसके शीर्ष पर 'जुडावन व्यासस्येदं-पुस्तकं' और पुष्पिका में 'इब्राहीम शाह राज्ये..... लिखितमिदम्' लिखा है। इब्राहीम शाह का राज्यकाल सन् १७२० है। एक ही वर्ष वे राज्य कर पाये थे।

पण्डित जुडावन व्यास एक निस्पृह, अल्प-सन्तोषी, सदाचारी ब्राह्मण थे। वे ज्योतिषी थे और छात्रों को घर पर पढ़ाते थे। उनका नियम था कि प्रतिवर्ष होली के दूसरे दिन अपना घर लुटवा देते थे। इसमें केवल पुस्तकों का लूटना वर्जित था। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो वे, केवल एक पगड़ी, धोती और पैर में खड़ाऊँ और उनकी स्त्री एक धोती, नाक में नथुनी और पैर में बिछिया, सौभाग के चिह्न, पहिनकर घर के बाहर खड़े हो जाते थे। एक घंटे के भीतर मकान लुट जाता था। सरसरी तौर पर देखने से यह बात बहुत मामूली मालूम होती है पर यदि इसे गहराई में पैठ कर देखा जाय तो पता चलेगा कि इसमें गार्हस्थ्य सुख का शाश्वत सत्य निहित है। पाठक स्वयं अपने घर में एकत्रित वस्तुओं को गौर से देखकर अनुभव कर लें।

यह घटना २४२ वर्ष पुरानी है। इससे उस समय के इलाहाबाद के रहन-सहन एवं संस्कृति पर थोड़ा-सा प्रकाश पड़ता है।

अब मैं आपसे आज से १५० वर्ष पूर्व की एक विचित्र घटना कहूँगा जिससे उस समय के इलाहाबाद की एक अच्छी-खासी झाँकी मिलती है।

उस समय हमारे परिवार के पूर्वज थे पण्डित हरि-प्रसाद व्यास। उनका व्यवसाय था वैद्यक और अध्यापन। उस समय वे निःसन्तान थे। एक दिन प्रातःकाल किसी पड़ोसी की नौकरानी उनके यहाँ अग्नि लेने के लिए आई। हरिप्रसादजी की पत्नी ने बड़े आदर से उसे अग्नि दी। वह नौकरानी अग्नि लेकर बरोठे में यह भुनभुनाती हुई कि 'आज सबेरे-सबेरे बाँझ का मुँह देखा है। देखें, दिन कैसा बीतता है,' चली गई। यद्यपि उस नौकरानी ने बहुत धीरे से कहा था तथापि पण्डित हरिप्रसादजी की पत्नी ने सुन लिया और वे उन्मना हो गयीं। उन्होंने अपने पति से कहा। वे भी बड़े दुःखी हुए। मोहल्ले में बाबा तारा-राम की एक संगत थी। आज भी है। व्यासजी नित्य वहाँ जाया करते थे। बाबा ताराराम एक सिद्ध फकीर थे। इस घटना ही के दिन जब व्यासजी उनके पास जाकर बैठे तो बाबाजी ने पूछा, "व्यासजी! आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुसी उदास क्यों है?" व्यासजी ने उनसे उस दिन का वृत्तान्त कहा। बाबाजी बोले "बस इतनी सी बात के लिए! अच्छा, आले पर से कलम-दावात उठाओ।" बाबाजी ने एक कागज के टुकड़े पर 'ह्रीं' लिखकर दे दिया और कहा कि इसे चारपायी में कहीं पर बाँध देना। तुम्हारी पत्नी का बाँझपन दूर हो जायगा। व्यासजी ने वैसा ही किया। समय से एक पुत्री का जन्म हुआ। घर में सभी प्रसन्न हो गये। कुछ दिन के उपरान्त बाबाजी ने व्यासजी से उस कागज के टुकड़े को माँगा। व्यासजी ने उसे चारपायी से खोलकर बाबाजी को दे दिया। बाबाजी ने उसे जलती हुई अँगीठी में फेंक दिया और वह कागज का टुकड़ा क्षण भर में जलकर खाक हो गया। उसके दूसरे ही दिन लड़की भी मर गयी। घर में उदासी छा गयी। दूसरे दिन जब व्यासजी बाबाजी के पास गये तो उन्होंने पूछा "व्यासजी, अब तुसी क्यों उदास है?" व्यासजी ने कहा 'महाराज, सन्तान हुई भी तो वह लड़की! खैर, वही जीवित रहती तो कुछ सन्तोष होता। पर वह भी मर गयी।' बाबाजी ने कहा, 'तुझे तो पत्नी के बाँझ होने का दुःख था। वह बाँझपना दूर हो गया। जैसे लड़का वैसे लड़की। अच्छा, तुम पुत्र चाहते हो, उठाओ आले पर से कलम-दावात।' और फिर एक कागज के टुकड़े पर 'ह्रीं' लिखकर दे दिया। व्यासजी ने उसे चारपायी में बाँध दिया और समय से पुत्र उत्पन्न हुआ। मुरझाये धान के खेत में जैसे पानी पड़ गया। थोड़े दिन बाद बाबाजी ने फिर उनसे उस कागज के टुकड़े को माँगा। दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है। व्यासजी आनाकानी करने लगे और जब कई बार बाबाजी ने तक़ाज़ा किया तो उनके यहाँ आना-जाना छोड़ दिया। बाबाजी ने फिर अपने शिष्यों को बुलाने के लिए भेजा। व्यासजी बड़े असमंजस में पड़े।

इरादे बाँधता हूँ, सोचता हूँ, तोड़ देता हूँ।
कहीं ऐसा न हो जाये, कहीं वैसा न हो जाये॥

'हफ़ीज़' जालंधरी

आख़िरकार डरते-डरते कागज का टुकड़ा लेकर उनके पास गये। बहुत अनुनय-विनय करने पर भी बाबा ताराराम् ने उनसे कागज लेकर उसे अँगीठी में फेंक दिया और वह पूर्ववत् जलकर भस्म हो गया। दूसरे दिन लड़का भी मर गया। बाबाजी बोले "व्यासजी! यह सब हम लोगों के करिश्मे हैं। इससे अधिक हम लोग कुछ नहीं कर सकते। जीनेवाली सन्तान भगवान् ही की कृपा से होगी। उन्हींकी शरण में जाओगे तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। चिन्ता न करो।" इसके बाद उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक पढ़ा—

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमोभव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥

(यदि तुमसे अभ्यास नहीं हो सकता तो तुम जो भी कार्य करो, मेरे हेतु करो। ऐसा करने से तुम्हें कार्य-सिद्धि होगी)

अब व्यासजी की कार्य-सिद्धि किस प्रकार हुई, उसका अनोखा एवं अतीव रोचक वृत्तान्त आगे कहूँगा। उससे प्रयाग की पूर्वसंस्कृति पर बहुत प्रकाश पड़ेगा।

—क्रमशः

प्यासा रहने दो!

श्री संतकुमार टंडन

नहीं तृप्ति की चाह मुझे प्यासा रहने दो!

एक झलक बस, प्रिय! अवगुण्ठन अधिक न खोलो।
कुछ कह कर तुम चुप रह जाओ अधिक न बोलो।
निज मन की कुछ मधुर और कटु प्रिय कहने दो—
नहीं तृप्ति की चाह मुझे प्यासा रहने दो!

तृप्ति मौत है, जीवन उसका है जो प्यासा
आशा से है शून्य कौन जीवन-परिभाषा?
अधिक समय तक यहाँ न रोको प्रिय बहने दो—
नहीं तृप्ति की चाह मुझे प्यासा रहने दो!

सदा पूर्णता निष्क्रियता की जननी माना
जिसे सुलभ सर्वस्व उसे फिर क्या कुछ पाना?
चिर अभाव वरदान तुल्य है प्रिय सहने दो—
नहीं तृप्ति की चाह मुझे प्यासा रहने दो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानदीपिका

गोस्वामी तुलसीदासजी की एक मानस-पूर्व रचना

डॉ० सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे एम० ए०, डी०-लिट्०

(गतांक से आगे)

अब लेख के मुख्य लक्ष्य पर केन्द्रित होना उचित है। **खोज-रिपोर्ट** वाली प्रति में जिस समयसूचक पद्य में संवत् सोलह सो इकतीस (१६३१) का निर्देश है उसी (१.७) पद्य में प्रस्तुत नागपुर-प्रति में संवत् सोलह सो इक्कीस (१६२१) निर्देशित है, यद्यपि मास (आषाढ), पक्ष (शुक्ल), तिथि (द्वितीया), चन्द्रनक्षत्र (पुष्य), तथा वार (गुरुवार) वही हैं। अर्थात् नागपुर-प्रति के १.७-८ के पाठ के अनुसार **ज्ञानदीपिका** संवत् १६२१ व्यतीत होने पर, फलस्वरूप संवत् १६२२ में, आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रची गई। **खोज-रिपोर्ट** के संपादक तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त गणना करते-करते थक गये, किन्तु संवत् १६३१ को वर्तमान अथवा विगत किसी प्रकार लेकर भी उस वर्ष में उक्त तिथि को गुरुवार नहीं पा सके; परिणामस्वरूप **ज्ञानदीपिका** की वास्तविक तुलसीकर्तृकता अस्वीकृत की जाकर उसको अनन्तर का बनावटी ग्रन्थ निर्णीत किया गया। नागपुर-प्रति में उल्लिखित वर्ष में यह बाधा उपस्थित नहीं होती। पद्य-पाठ के सरल अर्थ के अनुसार संवत् १६२१ विगत (गये) हैं, अर्थात् अभिप्रेत वर्तमान वर्ष संवत् १६२२ (चैत्रादि) है। एल० डी० स्वामिकन्नू पिल्ले की सुप्रसिद्ध **भारतीय जंत्री**[२] के अनुसार संवत् १६२२ (चैत्रादि) में प्रथम अधिक-मास आषाढ़ है, अधिक-मास के समाप्त होने पर शुद्ध-मास आषाढ़ की शुक्ल द्वितीया को वार गुरुवार ही है, तथा चन्द्र-नक्षत्र पुष्य ही है, एवं अँगरेजी दिनांक २८ जून ईसवी सन् १५६५ है।

सांगोपांग विचार करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि नागपुर-प्रति में स्थित प्रस्तुत पाठ ही कवि का मूल पाठ है, अर्थात् **ज्ञानदीपिका** वस्तुतः **रामचरितमानस** से प्रायः नौ वर्ष पूर्व रची गयी है[१]। कवि की प्रति के अनन्तर की किसी प्रति के लेखक ने प्रथम अनवधानता से, अथवा **रामचरितमानस** १.३४.२—

"संबत सोरह सै इकतीसा....."

की धुन में, **ज्ञानदीपिका** के मूल 'इकइस' का भी 'इकतिस' कर डाला तथा यह अपपाठ अनन्तर की प्रतियों में, जिनमें **खोज-रिपोर्ट** वाली प्रति मुख्यतः सम्मिलित है, चालू हो गया; किन्तु उन प्रतियों की परंपरा से प्रभावित नहीं हुई नागपुर-प्रति जैसी कुछ प्रतियों में कवि का मूल पाठ चालू रह सका है, एवं ऐसी ही प्रति के आधार से आज **ज्ञानदीपिका** को न्याय मिलना संभव हो रहा है। नागपुर-प्रति के प्रस्तुत पाठ को कोई भी बनावटी नहीं कह सकता, क्योंकि पिल्ले की अथवा तत्सदृश अन्य कोई जंत्री आज से १४५ वर्ष पूर्व प्रकाशित नहीं हुई थी एवं प्रति के लेखन-स्थान गनेसगढ़ जैसे मध्यप्रदेशीय ग्राम में नवीन बनावटी पाठ सुझाने हेतु तब उपलब्ध होना असंभव है!

ज्ञानदीपिका की तुलसीकर्तृकता का अन्तरंग तथा बहिरंग प्रमाणों के प्रकाश में भी प्रचुर समर्थन होता है। **रामचरितमानस** की रचना से दस वर्ष पूर्व गोस्वामीजी जो वाङ्मयीन प्राथमिक साधना-तपस्या कर रहे होंगे उसका यथावत् प्रतिबिम्ब **ज्ञानदीपिका** में हम देख सकते हैं।

१—इंडियन एफिमिरिस, भाग ५ (मद्रास, १९२२), पृ० २३२।

१—डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने उनके **तुलसीदास** प्रबन्ध में (पृ० २३५) गोस्वामीजी के **रामाज्ञा-प्रश्न** के ७.७.३—

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय वान।
होइ सुफल सुभ जासु जसु प्रीति प्रतीति प्रमान॥

इस दोहे के कुछ शब्दों से स्वेच्छानुसार अंक निकाल कर उस ग्रन्थ की रचना संवत् १६२१ में होना निश्चित किया है। किन्तु उन शब्दों से कवि को उक्त संवत् अभिप्रेत होना अधिक से अधिक केवल संभावना है, **ज्ञानदीपिका** १.७-८ के सुस्पष्ट निर्देश की संदेहातीत निश्चितता उनमें नहीं स्वीकार की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे महत्त्वशाली संस्कृत ग्रन्थ (**रामायण, महाभारत,** पुराण, दर्शन, इ०) पढ़ते थे, सुनते थे, तथा इस क्रम में प्राप्त किये हुए ज्ञान का प्रचार संस्कृत न जाननेवाले जिज्ञासु नागरिकों, ग्रामीणों एवं वैरागियों के हित की दृष्टि से अवधी पद्य में नवीन ग्रन्थ रचकर संवत् १६२१ से, वा इससे भी पूर्व से, करने लगे थे। रचना-समय में इतना अन्तर तथा मुख्य प्रतिपाद्य विषय भिन्न होते हुए भी, **ज्ञानदीपिका** शैली, विचारधारा, इ० में **रामचरितमानस** इ० तुलसीदास के प्रमाणित ग्रन्थों से प्रचुर साम्य रखती है। एवं एककर्तृकत्व समर्थक समान वा समान्तर विचार, शब्द प्रयोग, इ० के असंख्य तुलनीय स्थल इन ग्रन्थों से एकत्र किये जा सकते हैं।

(१) ऐसे तुलनीय स्थलों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं:—

नमोराम तुभ्या सदानंदकारी . . . .
—ज्ञानदीपिका ४.४१

ब्रह्म अग्नि कर लेसिऐ
ज्ञान-दीप उजियार॥
—ज्ञानदीपिका १.४

ऊंच हतौ भरि गात
मुषरा तौ फरकत अधर।
सुनत छिमा की बात
क्रोध नयन नीचे करे॥
—ज्ञानदीपिका २.२०

. . . . लिख राखी ललाट सो कौन मिटैया।
—ज्ञानदीपिका २.२४

होई वहै जो करै करतार . . . . . .
—ज्ञानदीपिका २.३०, ५.१२

जो बिधना भावी लिखी
सोई होइ सुभाइ।
घर बसबौ कै बन बसै
कै परदेसहु जाइ॥
—ज्ञानदीपिका ५.१४

पढ़ यह पंथ बिचार चित
साध चतुर ढिग आन।
गुन-गाहक वै हंस से
दूध पियहिं तजि पान॥
—ज्ञानदीपिका ५.४३

. . . . . सरजूतट राम नहाइ खड़े
मुनिमंडली में जनु चंद बिराजै॥
—ज्ञानदीपिका ४.२६

नतोऽहं सदा सर्वदा शंभुतुभ्यं॥
—रामचरितमानस ७.१०८.८

एहि बिधि लेसै दीप
तेज रासि बिग्यानमय॥ . . . . . .
—रामचरितमानस ७.११७ घ

फरकत अधर कोप मन माहीं। . . . . . .
—रामचरितमानस १.१३६.१

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। . . . . . .
—रामचरितमानस १.५२.४

तुलसी जस भवतब्यता
तैसी मिलइ सहाइ। . . . . . .
—रामचरितमानस १.१५९ ख

. . . संत हंस गुन गहहिं पय
परिहरि बारि बिकार॥
—रामचरितमानस १.६

. . . . . जन गुन गाहक राम . . . . . .
—रामचरितमानस १.३३६

प्रातकाल सरजू करि मज्जन।
बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन॥
—रामचरितमानस ७.२६.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परपीडासम पाप नहिं
परउपकारसु धर्म।
तुलसिदास निहचै कहत
समुझि लेव यह मर्म॥
—ज्ञानदीपिका १.४३

जिहिं घर लहै न मंगन भीख।.....
....तहं पिसाच लै बसियौ जाइ॥
—ज्ञानदीपिका १.३३

...तजि और उपाइ सबै हितसौं
कर ध्यान हिऐ हरनाम कहै।
तुलसी सठ राखु बिचारु यही
चितु ज्यौं भवसागर पार चहै॥
—ज्ञानदीपिका ५.३

...है हरता करता सब के हर
हेरि हिऐ तुलसी सठ गाई॥
—ज्ञानदीपिका ५.५

...सुनि हसिहै मुखि बाइ।
—ज्ञानदीपिका ५.४२

उकठे तरु पल्लव फूल फरे
बिथके पस पाहन पैदरवा।
तुलसी उर चैन भयो सुन कै
हर के गर के फरके हरवा॥
—ज्ञानदीपिका ४.६४

ऐ सरीर दोऊ जबै
बिनसै कौनौ भाइ।
तब पावै निरवान पद
आवागमन नसाइ॥
—ज्ञानदीपिका ३.४२

नाम ध्यान रसना हिऐ
दया करै वितमान।
बरनआसरमपथ चलै
मिलै ताहि भगवान॥
—ज्ञानदीपिका ५.३९

परहित-सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीडासम नहिं अधमाई॥
—रामचरितमानस ७.४१.१

....मंगन लहहि न जिन्ह कै नाहीं।
ते नरबर थोरे जग माहीं॥
—रामचरितमानस १.२३१.४

....तुलसिदास सठ तेहि भजु
छाडि कपट जंजाल॥
—रामचरितमानस १.२११

...कलिकाल तुलसी से सठन्हि
हठि राम सनमुख करत को॥
—रामचरितमानस २.३२६ छं०१

....तुलसी सठ की को सुनै
कलि कुचालि पर प्रीति॥
—दोहावली ५४५

.....मुख बाइ धावहिं खान।.....
—रामचरितमानस ६.१०१ छं० ३

....उकठेउ हरित भए जलथलरुह.....
—गीतावली २.४६

मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की
उकठे तरु फूले फले।.....
—गीतावली ५.४१

...सोइ व्रत कर फल पावै
आवागमन नसाइ।
—विनयपत्रिका २०३

जयति वर्णाश्रमाचारपर नारि नर....
—विनयपत्रिका ४४

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥
—रामचरितमानस ७.२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा अविद्या रहै भुलाना।.....
—ज्ञानदीपिका ३.१०

डगमग धर तसु डगमगे
गहे मातु के हाथ।
तुलसिदास हिय में बसे
चलत अजिर रघुनाथ॥
—ज्ञानदीपिका ३.१०

कत बादि करौ तप संजम गूढ
बिकामहि तीरथ बहै।.....
—ज्ञानदीपिका ५.३

लखि चौरासी जीव ज
अधर उर्ध छित माहिं।.....
—ज्ञानदीपिका ५.५

जीत जरजोधन[1] अनीत हू की रीत कीन्ही
द्रोपती[2] नगवाइबे की बात अनुसारी है।
पतिन अक्षितपति जात ही अनाथ बंद
बिरद ××[3]× जान कीन्ही रखवारी है॥
दौर कै दुसासन गुसा सन बसन गह्यौ
ऐंचि ऐंचि हारचो देह होत न उघारी है।
सभा के सयाने ते अग्यानि से न जानैं कछू
नारी मध्य चीर कैधौं चीर मध्य नारी है॥
—ज्ञानदीपिका ५.१०

धोती रंगी उपरना लाल।
जलै हसि झुंई कान मृनाल॥
चुनि पहिरै पुनि कुसह बिछाह।
बैठे मौन साधि टक लाइ॥
—ज्ञानदीपिका २.३५

पारब्रह्म माया सहित सदा रहै इक ठौर।
कबहूं न्यारौ होत नहिं कहत बुद्ध-सिरमौर॥
—ज्ञानदीपिका ३.१८

.....तब माया बस फिरउं भुलाना।.....
—रामचरितमानस ४.२.५

.....ब्रह्मंड दिग्गज कमठ अहि महि
सिंधु भूधर डगमगे॥
—रामचरितमानस ६.८६.छ०१

....नाथ करिअ कत बादि बिषादू॥
—रामचरितमानस २.२०१.४

....अध उर्ध बानर बिदिसि दिसि बानर है।....
—कवितावली ५.१७

...सुखमा को ढेरु कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है॥...
—कवितावली ७.१३९

कहिअ काह कहि जाइ न बाता।
जम कर धार किधौं बरिआता॥.....
—रामचरितमानस १.९५.४

कारन कवन नाथ नहिं आयऊ।
जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायऊ॥
—रामचरितमानस ७.१.१

पिअर उपरना काखासोती।
दुहुं आंचरन्हि लगे मनि मोती॥
—रामचरितमानस १.३२७.४

यों सुधारि सनमानि जन किए साधु-सिरमोर।...
—रामचरितमानस २.२९९

....सहज सलोने राम लषन ललित नाम
जैसे सुने तैसेई कुंवर-सिरमौर हैं॥....
—गीतावली १.७१.२

१—दुर्योधन।
२—द्रौपदी।
३—यहाँ पर हस्तलेख में तीन अक्षर छूट गये हैं। यहाँ मूल में कवि का नाम (तुलसी) होना संभवनीय एवं आवश्यक भी है।

"कैधौं" अव्यय **ज्ञानदीपिका** के कई अन्य पद्यों में भी दिखता है। मुख्यतः गोस्वामीजी की सुन्दर कवि-कल्पना की एक अज्ञातपूर्व घनाक्षरी (दण्डक?) के तौर पर यह पद्य उद्धृत किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख उसार हिय कोठरी कंठ देहरी-द्वार।
ज्ञानदीप धरि साधु लखि दुहूं ओर उजियार॥

--ज्ञानदीपिका ५.४१

झूठो या संसार है अगुन कहत मति भूप।
हिय के नैनन देख निज जरी जेवरी रूप॥

--ज्ञानदीपिका ५.३०

इत्यादि

रामनाम-मनि-दीप धरु जीह देहरी-द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार॥

--दोहावली ६

...सोवत सपने सहै संसृति-संताप रे।
बूडो मृगबारि खायो जेंवरी को साँप रे॥

--विनयपत्रिका ७३

इत्यादि

इस प्रकार समान विचार, कल्पना, शब्दप्रयोग[1], इ० के असंख्य तुलनीय स्थल होते हुए भी यदि किसी विशेषज्ञ को **रामचरितमानस** की तुलना में **ज्ञानदीपिका** की शैली क्वचित् स्थलों में शिथिल प्रतीत हो, तो उसकी उपपत्ति **ज्ञानदीपिका** की रचना ९–१० वर्ष पूर्व होने में तथा इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय भिन्न होने में मिल जाती है। एवं पूर्व-साधित तथा समर्थित एककर्तृकत्व अबाधित रहता है।

(२) **रामचरितमानस** इ० में विद्यमान गोस्वामीजी की मुख्य विचारधारा ही हमें **ज्ञानदीपिका** में सर्वत्र मिलती है। उदाहरणार्थ, राम सर्वोपरि पर-ब्रह्म हैं, ब्रह्मज्ञान की विद्याओं में राम-कथा सर्वश्रेष्ठ है, राम-भक्ति ही अनायास मुक्ति का साधन है, हरि और हर वस्तुतः अभिन्न हैं, इ० इ०। धर्म की व्यावहारिक तत्त्वशिक्षा, वर्णाश्रम-धर्म का अभिमान, इ० भी दोनों ग्रन्थों में एक से ही हैं। ३६ पद्यों का एक 'संक्षेप-रामायण' भी **ज्ञानदीपिका** में है, जो राम-चरित पर रचना करने का गोस्वामीजी का एक मानस-पूर्व प्राथमिक प्रयत्न कहा जा सकता है।

(३) **ज्ञानदीपिका** स्थित तत्त्वज्ञान पूर्णतया शंकराचार्य के अद्वैतब्रह्मवाद तथा मायावाद के अनुसार है, एवं उसके लिए शंकराचार्य के आधारभूत होने का स्पष्ट निर्देश भी अध्याय ३ की अन्तिम प्रशस्ति में है। रामचरितमानस में भी सर्वत्र इसी तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया गया है।

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने उनके "गोस्वामीजी के दार्शनिक विचार" शीर्षक अनुसंधानपूर्ण लेख[1] में प्रदीर्घ सप्रमाण विवेचन से सिद्ध किया है कि **रामचरितमानस** में प्रसंगवश सब काण्डों में[2], एवं मुख्यतः उत्तरकाण्ड के लोमश-काकभुशुण्डि[3] तथा काकभुशुण्डि-गरुड़[4] संवादों में, जो दार्शनिक विचार स्पष्ट शब्दों में प्रकट किये गये हैं वे सब केवल शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा मायावाद का ही अनुसरण करते हैं, एवं गोस्वामीजी वैष्णव तथा परम रामभक्त होते हुए भी दार्शनिक विचारों में शंकराचार्य के ही अनुयायी थे। चतुर्वेदीजी ने यह भी दिखाया है कि ब्रह्मरूप माने गये राम की भक्ति तज्ज्ञता से करना तथा उपासना हेतु शैव, वैष्णव, इत्यादि होना अद्वैत-वाद से वस्तुतः विसंगत नहीं है।

इस प्रकार **ज्ञानदीपिका** तथा **रामचरितमानस** के दार्शनिक विचारों के ऐक्य से भी इनकी एककर्तृकता भली भाँति समर्थित होती है। कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने **रामचरितमानस** के उत्तरकाण्ड में उपर्युक्त दो संवादों में तथा अन्यत्र भी **ज्ञानदीपिका** स्थित तत्त्वज्ञान का दस वर्ष उपरान्त संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण प्रस्तुत किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि **ज्ञानदीपिका** १.६ में प्रतिपादित ज्ञान-दीप से समान्तर एक विज्ञान-दीप

१--सामान्य किंतु **रामचरितमानस** इ० में बार-बार आनेवाले अन्य असंख्य शब्द, रूप, इ० **ज्ञानदीपिका** में भी स्थान-स्थान पर मिलते हैं, जैसे--अनैसी, अंतरु, अयाने, आतम, उजियार, उतपति, कुतवाल, कोटिन्ह, गुनगाथा, गुर, चितू, जगदीस, जहान, ढिग, परवान, परवाना, प्रभु, मीचु, मीत, मृगनैनी, रातौ, लीक, सत-राइ, हितू, इ० इ०।

१--**तुलसी-ग्रंथावली**, खंड ३, काशी, संवत् १९८०, पृ० ६३-१३०।

२--उदाहरणार्थ, १.२३.१-४, ११२.१, ११७.१-४, २०५; २.१२६-१२७; ३.१४-१६; ७.१३. छंद ५-६, ४१, ७१-७२, ७८.२-४, १०४, १०८.१-२, १११.१-३, १११ ख, ११७-१२०, इ० इ०।

३--७.११०-११२.

४--७.६३-१२५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरकाण्ड के काकभुशुण्डि-गरुड संवाद में निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है :—

.....जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत ममता मल जरि जाइ॥
तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ समता दिअटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढि।
तूल तुरीय संवारि पुनि बाती करै सुगाढि॥
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

—रामचरितमानस ७.११७ क–घ

(४) **ज्ञानदीपिका** के प्रायः सब छन्द **रामचरितमानस** में तथा गोस्वामीजी के अन्य प्रमाणित ग्रन्थों में मिलते हैं। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भुजंगप्रयात-वृत्त का **रामचरितमानस** (७.१०८.१–९) में भी स्तोत्र हेतु ही उपयोग किया गया है।

ज्ञानदीपिका का अनेक बार तुलनात्मक परिशीलन करने पर भी उसकी तुलसीकर्तृकता को असिद्ध कर सकने वाली कोई बात उसमें मुझे दृग्गोचर नहीं हुई। मुख्यतः पूर्व-प्राप्त अपपाठ के कारण उसकी तुलसीकर्तृकता अब तक गर्त-पतित हो गयी थी, उसी में शैली तथा विचारधारा में वैषम्य होने की वार्त्ता भी, संभवतः ग्रन्थ को ठीक तौर से न देखते हुए ही, झोंक दी जाने से उसे अति विपन्न दशा प्राप्त हो गयी थी। अब उसके १.७–८ का वास्तविक मूल पाठ नागपुर-प्रति ने प्रस्तुत कर दिया है, जिसके आधार से ग्रन्थ की तुलसीकर्तृकता सुसंगत रूप से स्थापित होती है एवं वह अन्तरंग-बहिरंग प्रमाणों द्वारा सुसमर्थित भी होती है। बेनीमाधवदास रचित **मूल गोसाईंचरित**, तुलसीसाहिब का **घट-रामायण** स्थित आत्मचरित, इ० में **ज्ञानदीपिका** गोस्वामीजी की कृति होने का उल्लेख न होना, उन ग्रन्थों की ऐतिहासिक योग्यता प्रायः शून्य होने से, कोई महत्त्व नहीं रखता, एवं उस अनुल्लेख में पुराने हस्तलेख से तथा अन्तरंग-बहिरंग प्रमाणों से सिद्ध तथा समर्थित होनेवाली तुलसीदास की **ज्ञानदीपिका** कर्तृता को असिद्ध करने का सामर्थ्य कदापि नहीं माना जा सकता है।

पूर्ण आशा है कि हिन्दी के साहित्येतिहासकार तथा अन्य विद्वान् अब प्रकरण का इस नवीन अनुसंधान के प्रकाश में अविलम्ब पुनर्विचार करेंगे तथा **ज्ञानदीपिका** को उचित न्याय देने में अग्रसर होंगे।

ज्ञानदीपिका से गोस्वामीजी के पूर्व अध्ययन पर भी कुछ नवीन प्रकाश प्राप्त होता है। इसकी अध्याय-प्रशस्तियों में निर्दिष्ट वा सूचित **महाभारत**, **भागवत** तथा अन्य पुराण, विविध **रामायण**, **योगवासिष्ठ**, इ० का गोस्वामीजी का अध्ययन हमें पूर्व से ही ज्ञात है, एवं **रामचरितमानस** में उनके द्वारा हनुमन्नाटक, **प्रसन्नराघव-नाटक**, इ० का यत्र तत्र उपयोग किये जाने का पता लग चुका है। किंतु संवत् १६२१ से पूर्व ही गोस्वामीजी शंकराचार्य के भाष्य तथा प्रकरण-ग्रन्थ आत्मसात् कर चुके थे तथा उन्होंने कृष्णमिश्र के सुप्रसिद्ध दार्शनिक नाटक **प्रबोध चन्द्रोदय** का भी अध्ययन किया था यह जानकारी नवीन है।[१]

१—इस लेख में **रामचरितमानस** का गीताप्रेस-संस्करण (गुटका सं० २००९), एवं गोस्वामीजी के अन्य ग्रंथों के **तुलसी-ग्रंथावली**, खंड २ (सं० १९८०) स्थित संस्करण निर्देशित हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी योरप के छः देशों का साझा बाज़ार और भारत

पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन कुछ दिन पहले हुआ था। सबके सामने यह प्रश्न था कि ग्रेट ब्रिटेन उस साझा बाजार में शामिल हो या न हो। इस संबंध में भारत की नीति को स्पष्ट करते हुए हवाई अड्डे पर भारतीय समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों से भारत के प्रधान मंत्री ने यह कहा—'साझा बाजार में इंग्लैंड शामिल हो या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर इंग्लैण्ड के निवासी ही दे सकते हैं। यह उन्हीं का अधिकार है। इस अधिकार को बरतने में भारत किसी प्रकार का भी अड़ंगा नहीं लगाना चाहता। भारत सिर्फ अपने देश से निर्यात के विषय में दिलचस्पी लेता है और भारत यह देखेगा कि इंग्लैण्ड के साझा बाजार में शामिल होने से भारत के निर्यात पर उसका क्या प्रभाव होता है।'

ओटावा-संधि के अनुसार अभी तक जो माल इंग्लैण्ड जाता था, उस पर कोई कर या शुल्क नहीं लगता था। सन् १९६४ के बाद, यदि इंग्लैण्ड साझा बाजार में शामिल हो गया तो उसे भी भारत के निर्यात पर उसी दर पर कर या शुल्क लगाना पड़ेगा, जिससे भारत का निर्यात बहुत घट जायेगा। निर्यात पर जहाज के भाड़े के अतिरिक्त कर या शुल्क भी लगेगा। यदि हमारा निर्यात इन देशों में घट गया तो यह निश्चित है कि इन देशों से भारत में आयात भी घट जायेगा। उदाहरण के लिए अभी भी पश्चिमी जर्मनी और भारत के बीच आयात और निर्यात दोनों ही कम हैं। यह स्थिति आगे नहीं चल सकती। पश्चिमी योरप के छः देशों के व्यापारियों के माल की भारत में जो खपत है, वह सब बंद या बहुत कम हो जायेगी, यद्यपि भारत की जन-संख्या बहुत अधिक है। साधारण रूप से यह स्थिति न बिगड़ी तो योरप के पश्चिमी देशों की चीजों की खपत अफ्रीका या एशिया के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक होने की संभावना है। यदि पश्चिमी योरप के छः देशों ने भारत की बात न मानी और वे संकीर्णता की नीति पर अड़े रहे तो उनका नुकसान अधिक होगा। उनके हित में यही है कि भारत की बढ़ती हुई आर्थिक व्यवस्था को वे मजबूत बनायें। लेकिन यदि उदारता के बदले संकीर्णता की नीति ही को वे अपनाये रहेंगे तो हमारे औद्योगीकरण के प्रयत्नों में जहाँ ठेस लगेगी, वहाँ इन छः देशों के व्यापार को भी धक्का लगेगा।

यह हम मानते हैं कि भारत से निर्यात बढ़ाने की हमें जो आवश्यकता हुई, वह इसलिए हुई कि अधिक दिनों तक हम सहायता करनेवाले देशों का मुँह नहीं ताकना चाहते। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि औद्योगीकरण के विकास में भारत उन देशों से पिछड़ा है, जिनमें अपेक्षाकृत पूर्ण-रूप से औद्योगीकरण हो चुका है, लेकिन पिछड़े हुए देशों की तुलना में भारत औद्योगीकरण के मामले में बहुत आगे है। इसीलिए कच्चे माल के अतिरिक्त वह अपना पक्का माल भी विदेशों को भेजना चाहता है। यदि योरप के छः पश्चिमी देशों ने भारत के साथ इस मामले में न्याय न किया तो यह एक दुःखद घटना होगी। इससे अधिक इस समय हम कुछ नहीं लिखना चाहते। हमें तो आशा है कि साझा बाजार भारत से निर्यात के मामले में अभी भी भारत के साथ न्याय करेगा। लेकिन यह भविष्य की बात है, और बात है बड़ों-बड़ों की। इसलिए हमारे-से अल्पज्ञों को चुप ही रहना चाहिए।

पश्चिमी योरप के वे छः देश कौन हैं, जिनके प्रतिनिधि साझा बाजार में, जज की भाँति, फैसला देते हैं? उनके नाम हैं—(१) इटली, (२) फ्रांस, (३) जर्मनी, (४) लक्सम्बर्ग, (५) बेलजियम और (६) हालैण्ड। इनका सदर दफ्तर है ब्रसेल्स में। वहीं पर इस साझा बाजार का और अन्य देशों से निर्यात का फैसला होता है। ये ही छः देश साझा बाजार के इस समय सदस्य हैं। इंग्लैण्ड उत्सुक है कि किसी तरह वह भी इस साझा बाजार का सदस्य बन जाय और योरप के मामले में उसका राजनीतिक अनुभव और नीति-कुशलता से फायदा इन छः देशों के निवासियों को भी प्राप्त हो।

यह जरूरी है कि पाठकों को पश्चिमी योरप की तीन संधियों का और 'नाटो' नाम की संस्था का परिचय दे दिया जाय।

पहले 'नाटो' को लीजिए। इसका पूरा नाम है 'नार्थ एटलांटिक ट्रीटी आरगैनिजेशन।' इसके पूरे नाम में चार शब्द हैं। चारों शब्दों के आदि अक्षरों को लेकर संक्षेप में इस संधि का नाम 'नाटो' पड़ा। अप्रैल ४, १९४८, के दिन कैनाडा के परराष्ट्र-मंत्री ने इस बात की चर्चा की कि स्वतंत्र देशों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न 'स्वतंत्र' देशों की प्रतिरक्षा का प्रबंध किया जाये। संयुक्तराज्य अमरीका की सेनेट (राज्यसभा) ने यह सिफारिश की कि इस तरह का प्रबंध होना आवश्यक है, क्योंकि इससे संयुक्तराज्य अमरीका के हितों की रक्षा होगी। ४ अप्रैल, सन् १९४९ को बेलजियम, कैनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, आइसलैण्ड, इटैली, लक्सम्बर्ग, हालैण्ड, नार्वे, पुर्तगाल, यूनाइटेड किंगडम या ग्रेट ब्रिटेन (जिसे हमने इंग्लैण्ड कहा है और इसी नाम से उसे आगे भी पुकारेंगे) और संयुक्तराज्य अमरीका ने इस संधि पर हस्ताक्षर किये। इसकी भूमिका में यह कहा गया है कि इस संधि में सम्मिलित देश शांतिप्रिय राष्ट्र हैं, उनका किसीसे वैर नहीं है। वे केवल अपनी जनवादी स्वतंत्रता की, सामान्य विरासत की और सभ्यता और संस्कृति की अपने देशों में रक्षा करना चाहते हैं। वार्तालाप से, न कि लड़ाई से, राष्ट्रों के परस्पर विरोधों और संघर्षों को मिटाने की भरसक चेष्टा वे करेंगे। इसी उद्देश से नार्थ एटलांटिक-संधि की गयी है।

इस संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद, २७ मई, १९५२ को फ्रांस, जर्मनी, इटैली, लक्सम्बर्ग और हालैण्ड के विदेश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्री पेरिस में मिले और एक दूसरी संधि पर उन्होंने हस्ताक्षर किये। यह हुई 'योरपीय डिफेन्स कमेटी' या 'ई० डी० सी०'। इसीके अन्तर्गत इन छः देशों का साझा बाज़ार और रोम की संधि का प्रादुर्भाव हुआ। यही, वास्तव में, इन दोनों का जनक है। ई० डी० सी० का मुख्य काम था कि वह 'नाटो' के देशों से संपर्क स्थापित करे; और उनके सामने जो मसले आयें, उन पर ई० डी० सी० (योरपीय प्रतिरक्षा कमेटी) वाले देश विचार करें और यथासंभव 'नाटो' में बँधे राष्ट्र ई० डी० सी० के राष्ट्रों से समझौता करें ताकि दोनों संधियों के राष्ट्रों में मतभेद न हो। लेकिन इस संधि पर कोई कार्यवाही न हुई।

हमने इस संधि को जनक क्यों कहा? इसीके कारण पश्चिमी योरप के छः देशों को साझा बाजार बनाने की सूझी और रोम की संधि के अनुसार वे इस बात पर भी सहमत हो गये कि आगे चलकर सन् १९५७ में इन सब देशों की सुपर नेशनल (स्वतंत्र राष्ट्रों से अधिक अधिकार-वाली सरकार) गवर्नमेन्ट बनायी जाय जो सब देशों पर समान रूप से शासन करे। यह रोम की संधि कहलाती है। पहले संयुक्तराज्य अमरीका, इस बात पर तत्पर था कि किसी तरह फ्रांस और जर्मनी में मेल हो जाय। जब इस बात में उसे सफलता मिली तब उसके सामने एक नयी समस्या उठ खड़ी हुई। उसने चाहा कि येन केन प्रकारेण यह अच्छा होगा यदि इंग्लैण्ड भी रोम-संधि के अंतर्गत इस बात के लिए राजी हो जाए कि वह अपनी राष्ट्रीयता को खत्म कर दे। इधर बेलजियम और हालैंड की यह माँग सुनायी दी कि बिना इंग्लैण्ड के साझा बाजार में शामिल हुए वे अपने को फ्रांस और जर्मनी के मुकाबले में असमर्थ पायेंगे। इसलिए इंग्लैण्ड के बिना रोम की संधि के अनुसार 'सुपर नेशनल गवर्नमेन्ट' तब तक न बनायी जाये जब तक इंग्लैण्ड का साझा बाजार में शामिल होना न तय हो। पहले तो इंग्लैण्ड की मौजूदा टोरी सरकार ने इस बात का विरोध किया लेकिन अंत में वह साझा बाजार में शामिल होने के लिए सहमत हो गया।

संयुक्तराज्य, अमरीका, क्यों यह चाहता था कि इंग्लैण्ड (या ग्रेट ब्रिटेन) की सरकार भी रोम संधि के अंतर्गत 'सुपर नेशनल गवर्नमेन्ट' के बनाने में पश्चिमी योरप के छः देशों का हाथ बटाये? उसकी मंशा यह जान पड़ती है कि सोवियत रूस और उसके साथियों का मुकाबला करने के लिए योरपीय देशों का ऐसा सुदृढ़ संगठन हो ताकि नाटो देशों से उसका संपर्क कायम रहे और पश्चिमी योरप के सारे देश रूस और उसके साथियों का जमकर मुकाबला कर सकें। डी गाल के हाल ही में किये हुए भाषण से संयुक्तराज्य अमरीका में बड़ी खलबली मच गयी है। फ्रांस और जर्मनी के मेल को बढ़ते हुए देखकर संयुक्त-राज्य अमरीका इस बात पर और भी अधिक जोर डाल रहा है कि जब तक इंग्लैण्ड साझा बाजार में शामिल न हो जाय तब तक रोम-संधि के अंतर्गत 'सुपर नेशनल गवर्नमेन्ट' पश्चिमी योरप में न बनने पाये। संयुक्तराज्य अमरीका, जो कुछ भी करता है, उसमें उसको अपने हितों को देखना पड़ता है। इसके लिए हम संयुक्तराज्य अमरीका, को दोषी नहीं ठहरा सकते। सभी राष्ट्र ऐसा ही करते हैं। रूस से उसे खतरा है। इसलिए अपनी सुरक्षा के लिए यदि वह ऐसा करता है तो कोई भी समझदार आदमी इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराएगा। कुछ लोगों का मत है कि उसकी यह आशंका भ्रांतिमूलक है। वह कितनी ही भ्रांति-मूलक क्यों न हो, लेकिन जब तक उसे यह आशंका सताती है, तब तक उसे अपनी सुरक्षा का प्रबंध तो करना ही पड़ेगा। इसीलिए संयुक्तराज्य अमरीका, यह चाहता है कि इंग्लैण्ड साझा बाजार में शामिल हो जाये और तब 'सुपर नेशनल गवर्नमेन्ट' बने। इंग्लैण्ड के सम्मिलित हुए बिना उसके बनने से एक तो वह सरकार अधिक शक्ति-शाली न होगी, दूसरे, अमरीका स्वयं फ्रांस और जर्मनी पर उतना प्रभाव नहीं डाल सकता जितना वह इंग्लैण्ड के द्वारा डाल सकता है।

ग्रेट ब्रिटेन इस दुविधा में है कि वह साझा बाजार में जाकर अपनी स्वाधीनता को खो देगा या नहीं। अनुदार दल (टोरी पार्टी) का यह निश्चय है कि इस साझा बाजार में ग्रेट ब्रिटेन को शामिल होना चाहिए और उसे इस सुअवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए। वह पश्चिमी योरप के इन छः देशों से राजनीतिक बंधन भी करने को तैयार है। इसके विपरीत, वहाँ का मजदूर दल (लेबर पार्टी) इस बात पर अड़ा हुआ है कि राष्ट्रमंडल के देशों का जब तक समु-चित प्रबंध न हो जाए और योरप के मित्रदेशों को भी उसमें शामिल न कर लिया जाए तब तक उसमें सम्मिलित न हुआ जाय क्योंकि अपने मित्र-राष्ट्रों का साथ छोड़ना ग्रेट ब्रिटेन के लिए हानिकारक होगा। उस दल का कहना है कि इंग्लैण्ड अपनी स्वाधीनता को सदा के लिए खो बैठेगा।

भारत का हित इसमें है कि जब तक पश्चिमी योरप के छः देशों के साथ भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका का समझौता नहीं हो जाता तब तक इन तीनों देशों का माल बिना तट-कर लगाए हुए ग्रेट ब्रिटेन में जाना चाहिए। साझा बाजार का रुख यह मालूम होता है कि इन देशों के माल पर इंग्लैण्ड को भी तट-कर लगाना चाहिए। वे शायद इसके लिए तैयार हैं कि पूरा कर धीरे-धीरे लगाया जाय—अर्थात् आरंभ में कम, और फिर धीरे-धीरे बढ़ाकर ५-६ वर्षों में पूरा कर लगा दिया जाय। अभी कुछ नहीं कहा जा सकता कि ऊँट किस करवट बैठेगा। इन छः देशों के साझा बाजार के प्रतिनिधियों ने अपने-अपने राष्ट्र-मंत्रियों के पास इस प्रस्ताव को भेज दिया है कि ग्रेट ब्रिटेन में इन तीन देशों के माल पर कोई तट-कर न लिया जाये।

भारत को चिंता है अपने विदेशी माल के निर्यात की। यदि इंग्लैण्ड साझा बाजार में सम्मिलित होता है और यदि साझा बाजार के छः देश हठ करते हैं कि इनके माल पर कर लगाया जाय तो इन तीन देशों के माल पर तट-कर लगाया जायेगा। इससे भारत के निर्यात को बहुत क्षति पहुँचेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्राकृतिक प्रणय और मुस्लिम सन्त परम्परा

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

एक बार इब्न अबी लैल ने हजरत इमाम जाफर सादिक अलेअस्सलाम से पूछा, "ईश्वर की इस सृष्टि में सबसे मधुर पदार्थ कौन-सा है?" हजरत इमाम ने फरमाया, "अलवल्दुलशबाब" अर्थात् वह लड़का जिसके यौवन का प्रारम्भिक काल हो।

[1]हजरत शेख शरफुद्दीन बू अली कलन्दर पानीपती अपने समय के माने हुए सिद्ध थे। सुल्तान बल्बन इन्हें बहुत मानता था। अपने किसी वचन के अनुसार सुल्तान ने अपना एक लड़का शाह मुबारक खाँ हजरत शेख के हवाले कर दिया था। शेख का इस लड़के से प्रगाढ़ प्रेम था और वे हर समय उसे अपनी आँखों के सामने रखते थे और उसके बिना भोजन-शयन कुछ भी नहीं करते थे। एक दिन एक फौजी शहजादे को उठाकर ले गया। जब रात हुई और शहजादा न आया तो वियोगी शेख पता लगाते-लगाते उस सैनिक द्वार पर जा पहुँचे और तमाम रात एक वियोगात्मक गजल पढ़ते रहे। सैनिक ने शहजादे को फिर भी न छोड़ा। इसपर शेख ने सूर्य की चाल रोक दी और वह रात इतनी लम्बी हो गयी कि लोग सोते-सोते बेचैन हो गये। वह सैनिक भी व्याकुल हो उठा और विवश होकर उसने शहजादे को छोड़ दिया। शहजादे के छूटते ही सूर्यदेव स्वतंत्र हो गये और संसार ने उजियाले के दर्शन किये। इस शहजादे की मृत्यु पानीपत में हुई थी और वहीं वह दफनाया गया। शेख का देहान्त ९ वर्ष बाद करनाल में हुआ परन्तु उनकी इच्छानुसार उन्हें शहजादे के बायीं ओर पानीपत में ही दफनाया गया।

शम्स तबरेज एक प्रसिद्ध मुस्लिम सन्त हो गये हैं इन्होंने अपने प्रधान शिष्य मौलाना रूम से उनके एक लड़के को माँग लिया था। लड़के से इश्क करना ये शायद अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए आवश्यक समझते थे। सूफी सन्तों के अतिरिक्त और कतिपय अन्य संस्कृतियों में भी कामविहीन प्रेम आध्यात्मिक उन्नति का साधन माना गया है जो एक प्रकार से बाम मार्ग का परिष्कृत रूप है। यह भी हो सकता है स्वयं बाम मार्ग इस प्रकार की साधनाओं का भ्रष्ट रूप हो। जो कुछ भी हो, इन महात्माओं का सम्पर्क मिल जाने से इस प्रकार के प्रणय का रूप निखरा। काम और प्रेम दो अलग-अलग तत्त्व माने जाने लगे, और समलिंगी प्रणय निष्काम प्रेम व सात्विक सौन्दर्योपासना के रूप में लोगों के सामने रक्खा जाने लगा। इस प्रकार के कई कथानक काफी ऊँचे उठे हुए रूप में हमारे सामने आते हैं।

शेख सादी लिखते हैं कि एक भिखारी का लड़का एक बादशाह के लड़के पर आशिक हो गया। जब शहजादा घोड़े पर सवार होकर सैर के लिए निकलता तो वह भिक्षुक शहजादे को देखने के लिए सड़क के किनारे आकर खड़ा हो जाता। एक दिन भिक्षुक अपने को न रोक सका और उसने लपककर शहजादे के घोड़े की लगाम पकड़ ली। शहजादे ने कड़ककर कहा, "गुस्ताख! क्या तू नहीं जानता कि मैं इस मुल्क के बादशाह का लड़का हूँ।" भिखारी के लड़के ने उत्तर दिया, "शहजादे, तेरी मस्त आँखों ने मुझे पागल बना रक्खा है। तेरे प्रेम में मैं तू हो गया हूँ और तू मुझे मैं ही नजर आता है। इसलिए मैं तुझसे नहीं डरता। क्या तूने किसीको अपने से भी डरते सुना है?"

इतना कहकर भिखारी पुत्र बेहोश होकर गिर पड़ा और मर गया। स्वयं शेख सादी के बारे में शम्सुलउलेमा मौ० शिबली नूमानी को खेद के साथ लिखना पड़ता है, "वक्त की तहजीब देखो, शेख जैसा मुकद्दस (पवित्र) और सूफी मनिष (स्वभाव) एक अमरद (छोकरे) को गले लगाता है, प्यार करता है, मुँह चूमता है और दीदा दिलेरी से कहता है--।" शेख ने अपनी इन घटनाओं को स्वयं ही लिखा है जिनके पढ़ने से पता चलता है कि शेख का प्रेम शायद न तो कामुक ही था न आध्यात्मिक, केवल मन बहलाव के लिए वे कभी-कभी ऐसा आचरण कर बैठते थे।

इस प्रकार के प्रणय के तीन रूप सामने आते हैं--कामुक, मनोरंजनार्थ और आध्यात्मिक। जब तक किसी का पूरा जीवन वृत्त सामने न हो तब तक यह समझना बड़ा कठिन है कि किसका प्रेम किस कोटि का है। इतिहासकार स्मिथ जब तानसेन पर इस प्रकार का दोषारोपण करते हैं तो हमारा अनुमान कहत्प है कि वे केवल मनोविनोद के लिए ही इस कूचे में आये होंगे, परन्तु जब वह अकबर के आध्यात्मिक गुरु हजरत शेख सलीम चिश्ती को भी इधर घसीटते हैं, और यदि वह सच है, तो यह मानना पड़ेगा कि उनका प्रेम उनकी आध्यात्मिक साधना का ही एक अंग रहा होगा।

अकबर के जब बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई तो उसने इन्हीं शेख सलीम चिश्ती की आराधना प्रारम्भ की थी, और इन्हींके आशीर्वाद से उसने ज्येष्ठ पुत्र का मुँह देखा था जिसका नाम अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए उसने सलीम रक्खा था। अकबर प्यार में सलीम को 'शेखूजी' कहा करता था। यह भी एक प्रकार से हजरत शेख के प्रति आभार प्रदर्शन था।

हजरत[2] अमीर खुसरो जिन दिनों सुल्तान बल्बन के

१--आधार-मशाहीरे इस्लाम ले० नवाब अलीखाँ साहब बरनालवी।

२--आधार:--मशाहीरे इस्लाम शेखुलअजम ले० शम्सुलउलेमा मौ० शिबली नूमानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्येष्ठ पुत्र शहजादे मलिक मुहम्मद के दरबार में नौकर थे उन्हीं दिनों हसन नाम के एक दिल्ली के नानबाई के लड़के से उन्हें इश्क हो गया। अमीर ने अपने हृदय की यह दशा अपने गुरु हजरत निजामुद्दीन औलिया के सामने रक्खी। गुरु को अपने शिष्य की जितेन्द्रियता पर पूरा-पूरा विश्वास था। इसलिए उन्होंने इस प्रेम को आशीर्वाद दिया। हजरत अमीर के संसर्ग से हसन एक उच्च कोटि का कवि हो गया और उनके साथ-साथ वह भी शहजादे मलिक मुहम्मद के दरबार में नौकर हो गया, परन्तु लोगों की कानाफूसी चलती रही। वह बात शहजादे के कान में भी पहुँची। वह भड़का, और एक दिन उसने हसन को अमीर के पास जाने से मना किया, परन्तु हसन ने इसकी कोई परवाह नहीं की। शहजादे के बार-बार मना करने पर भी हसन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। शहजादे का क्रोध भड़क उठा और एक दिन उसने हसन पर कोड़े बरसाने प्रारम्भ किये। जब हसन की पिटायी हो चुकी तो अमीर को घर से बुलवाया गया। उनके आते ही शहजादे ने कहा, "हजरत को मालूम है मैंने आज हसन के साथ क्या सलूक किया।" हजरत अमीर ने उत्तर दिया, "मालूम है।" और इतना कहकर कपड़े उतारकर अपनी बाँह दिखायी और कहा, "गवाह आशिके सादिक दर आस्तीन बाशद"—हसन के प्रति मेरा प्रेम सात्विक और निष्काम है, इसकी साक्षी मेरी यह बाँह देगी।

लोगों ने देखा जहाँ-जहाँ हसन की बाँह पर कोड़ों के निशान थे, वहीं-वहीं अमीर की बाँह पर भी चोटें उभर आयी थी। शहजादा और चुगलखोर इसपर लज्जित हुए और हजरत अमीर व हसन का प्रेम जीवन-पर्यन्त निभा।

इस प्रकार अन्धविश्वास और आध्यात्मिकता की पुट मिल जाने से इस प्रकार के प्रणय को बहुत प्रोत्साहन मिला। रसखान और सरमद जैसे उदाहरणों से इस प्रकार का प्रेम ईश्वरीय प्रेम की एक सीढ़ी समझा जाने लगा। रसखान जाति के पठान थे और कृष्ण प्रेम में पागल होने से पहिले वे दिल्ली के एक हिन्दू छोकरे के पीछे पागल थे। २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनकी यह प्रेम कहानी आयी है। सरमद[३] आर्मीनिया का एक व्यापारी था। यह जन्मतः यहूदी था। बाद में मुसलमान हो गया था। वह अपने व्यापार के सिलसिले में भारतवर्ष आया करता था। एक बार ठट्ठा नगर में जो अभयचन्द नाम के एक हिन्दू लड़के को देखा, सुधबुध खो बैठा। आरमीनिया छोड़कर दिन-रात अभयचन्द के साथ रहने लगा। अब सरमद व्यापारी से कवि और कवि से संन्यासी हो गया। सरमद गजल लिखता था और अभयचन्द गा-गाकर सुनाता था। सरमद के चरित्र को लेकर भी लोगों में कानाफूसी हुई। सरमद उसे सहन नहीं कर सका। एक दिन उसने आवेश में वस्त्र त्याग दिया और नग्न दिगम्बर विचरना आरम्भ किया और पूछता था कि मुझे कामुक क्यों कहते हो :—

पोशानद लिबास हर ऐबे दहद।
बेऐबाँरा लिबासे उरयानी दारद॥

—सरमद

—कामुकता के चिह्न छिपाने के लिए कामुक व्यक्ति वस्त्र पहिनता है। जिसने काम को जीत लिया है उसकी शोभा नग्नता में ही है।

सरमद बहुत ऊँची श्रेणी का सूफी सन्त हो गया है। शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र दारा इसका प्रधान शिष्य था। इसी कारण यह औरंगजेब का कोपभाजन बना, और कुफ्र के अपराध में प्राणदण्ड से दण्डित हुआ जिसे इसने हँसते-हँसते स्वीकार किया।

इस प्रकार के अप्राकृतिक प्रणय के ऊँचे उठ जाने से समाज को हानि भी कुछ कम नहीं हुई। पाप धर्म की ओट में भी चलता है। अब दुराचारियों को अपने दुराचार के लिए निष्काम प्रेम व सौन्दर्योपासना की आड़ मिल गयी जिसका रोना 'गालिब' ने भी रोया है

हर बुलहविस ने हुस्न परस्ती शआर की।
अब आबरूये शेवये अहले नजर गई॥

—हर कामुक अपने आप को निष्काम सौन्दर्योपासक कहता है। अब निष्काम प्रेमियों की प्रतिष्ठा गयी क्योंकि उनमें और दुराचारियों में पहिचान करना कठिन हो गया।

निष्काम प्रेम के भुलावे में ही अनेक धार्मिक प्रवृत्ति के युवक भी इन प्रणय लीलाओं के चक्कर में फँस जाते हैं और जब एक बार मनुष्य किसी दुष्प्रवृत्ति के चक्कर में फँसा तो वासनाओं के जाग्रत होने पर और उसका अनौचित्य समझ में आ जाने पर भी उसका छूटना बहुत कठिन हो जाता है। सौन्दर्य जनित प्रेम का निष्काम होना बहुत कठिन है। स्वयं सरमद के कथनानुसार :—

ईं दौलते सरमद हसा कसरा न दहन्द

—निष्काम प्रेम रूपी यह लक्ष्मी जो सरमद को मिली है हर किसीको प्राप्त नहीं है।

सुखनदाने फारस ले० शम्सुलउलेमा मौ० मुहम्मद हुसेन आजाद।

३—सुखनदाने फारस
औरंगजेब ले० डा० सर जदुनाथ सरकार
मशाहीरे इस्लाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

आंगन के बीच—

क्या आपका बालक रात को—

श्रीमती शीला शर्मा

क्या आपका बालक रात में उठकर सोता-सोता चलने लगता है? चिन्ता न कीजिए, कोई ऐसी बात नहीं कि आप भयभीत हों। आपके बालक को केवल अधिक विश्राम की आवश्यकता है। दिन में भी अवश्य विश्राम कराइए व संध्या से उसे अधिक उत्तेजित न होने दीजिए, शांत रीति से उसे खेलने दीजिए, केवल यह ध्यान रखिए कि वह अधिक थके न। बालक से इसकी चर्चा न कीजिए।

क्या आपका बालक रात्रि में भोजन माँगता है? यह उसके शरीर की आवश्यकता का द्योतक है—केवल एक बुरी आदत नहीं है। दिन में उसका भोजन कुछ और अधिक पौष्टिक कर दीजिए और रात्रि के लिए हल्के बिस्कुट पास रखिए। बालक की यह आदत शरीर में अधिक बल आने पर अपने आप हट जायेगी—आदत शीघ्र दूर करने के लिए रात्रि में ही पौष्टिक वस्तुएँ न देने लग जाइए।

क्या आपका बालक रात को पलंग गीला कर देता है? क्या वह उस आयु परिधि से निकल चुका है जिसमें यह अपराध क्षम्य है? क्या आपको उसके इस स्वभाव से, असुविधा के साथ-साथ, अब चिन्ता भी होने लगी है? बाह्य रूप से क्या आपको उसके स्वास्थ्य में कोई ऐसी दुर्बलता प्रतीत नहीं होती जो कि इसका कारण कही जा सकती हो? तो आप उसके स्वास्थ्य से अपना मन हटा कर उसके मानसिक स्वास्थ्य पर लगायें। भयभीत व सहमे बच्चों के शारीरिक अवयव जाग्रत अवस्था में अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम पूर्णतः नहीं कर पाते हैं—निद्रावस्था में वे शिथिल हो जाते हैं, तनाव के कारण जो काम वे जाग्रत अवस्था में न कर सके थे, शिथिलता की अवस्था में वे अवयव वह काम कर डालते हैं।

अपने भय के क्षेत्र से आप बालकों के भय की तुलना न करें। जिस वस्तु से आपको भय लगता है, बालकों को प्रायः उस वस्तु से भय नहीं लगा करता—इसी कारण वे तिमंजले की पतली मेंड़ पर यों तेजी से भागने लग जाते हैं मानों वह तिमंजले की छत की कगार नहीं, सड़क की साफ-सुथरी पटरी हो।

उनके भय के बीच में सबसे अधिक व्यापक भावना है 'अविश्वास की'। बालक का अपने माता-पिता व निकट सम्बन्धियों आदि पर अपनी सुरक्षा का विश्वास होता है। इसी कारण कोई भी विचित्र वस्तु देखते ही वह भाग कर माँ की अँगुली पकड़ लेता है—जितनी अधिक परिचय की मात्रा होगी, उतना ही अधिक विश्वास उसके हृदय में उस प्राणी के प्रति होगा। जैसे-जैसे इस विश्वास पर आघात होने लगता है वैसे-वैसे ही बालक के हृदय में एक भय स्थान ग्रहण करता जाता है—यह होता है, विश्वास पर भिन्न मानसिक प्रतिक्रियाएँ होने के कारण। बालक बाह्य रूप से तो ठीक दीखता है परन्तु उसके मानसिक स्तर में बहुत परिवर्तन हो जाता है—विश्वास हट जाने के कारण वह अपने आपको 'अकेला' महसूस करने लगता है। जितनी मात्रा तक विश्वास हटता जाता है उतनी ही मात्रा तक यह 'अकेलापन' उसके अन्दर स्थान बनाता जाता है। अपने इसी सुरक्षा के विश्वास को बार-बार अपने मन पर स्थापित करने के लिए ही बालक अपने माँ-बाप व सम्बन्धियों से इतना अधिक चिपटता है। माता-पिता के झूठ बोलने पर, उसको फुसलाकर कुछ कहकर चुपके से बाद में बाहर चले जाने पर, माता-पिता के परस्पर कलह से (उसको दोनों के रहने से सुरक्षा की भावना होती है, इसी कारण वह माँ के रहने पर पूछता है पिताजी कब आयेंगे और पिताजी से पूछता है कि माताजी कब आयेंगी) उसका यह विश्वास खंडित होता है और उसके मन में अरक्षित होने का मानसिक भय भर जाता है। उस भय के कारण बालक के अन्दर एक मानसिक तनाव आ जाता है। उस मानसिक तनाव की प्रतिक्रिया शारीरिक रूप में इस अस्वस्थ आदत में हमें दिखाई पड़ती है। स्कूल की कोई चिन्ता, किसी अध्यापक का भय, भयावनी कहानियाँ, कोई भयभीत दृश्य, कोई बलिष्ठ साथी (जो अपने से निर्बल पर अपने बल का प्रदर्शन करने में विश्वास रखता हो) इनमें से कोई भी उसकी बाल-भावना को विकृत कर सकते हैं। कारण आपको स्वयम् ढूँढ़ना होगा—और बड़ी सहानुभूति, प्रेम व धैर्य्य के साथ उस उखड़े हुए विश्वास को फिर से जमाना होगा। परिणाम के लिए जल्दी न कीजिए—जितना समय उस विश्वास को उखड़ने में लगा, उतना समय उसके जमने में तो लगने दीजिए।

इस आदत के लिए बालक को कभी न डाँटिए। इस घटना को यों ही टाल दीजिए जैसे कि यह कोई अत्यन्त स्वाभाविक-सी बात हो। आखिर वह आपको तंग करने को तो प्रतिदिन रात्रि में यह नाटच करता नहीं! यदि उसको अपने ऊपर कुछ भी अधिकार होता तो वह यह करता ही क्यों? उसको ताड़ना की नहीं, सहानुभूति की आवश्यकता है।

यह उपाय भी लाभदायक होते हैं। ६ बजे रात्रि के पश्चात् पेय न दें (परन्तु यह कहकर नहीं कि तुम रात में पलंग गीला करते हो, इसलिए नहीं देंगे) २—रात्रि में उठाकर उसको गसलखाने ले जाइए—हो सकता है कि वह बहुत अधिक थक जाता हो, और स्वयम् उठ न पाता हो। ३—जाड़ों में थोड़ा तिल व गुड़ इसके लिए लाभकारी है—परन्तु थोड़ा, कहीं शीघ्र उपचार की मात्रा में आप औषधि इतनी न बढ़ा दें कि वह स्वयम् एक रोग बन जाय।

यदि इन सबसे लाभ न हो तो उसको डाक्टरी राय की आवश्यकता है। डाक्टर की राय लेने में संकोच न करिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर-गृहस्थी

बची ऊन और ट्वीड बिनाई का पुलओवर

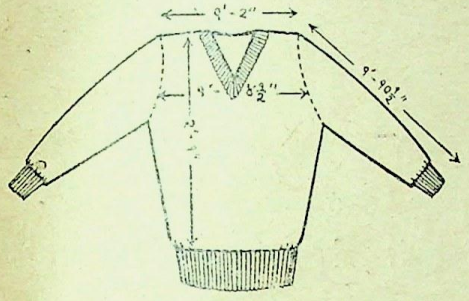

आठ-आठ आउन्स तीन रंगों की बची 'छ प्लाई' ऊन।

तैयार पूरी आस्तीन का पुलओवर

लम्बाई—दो फुट एक इंच
छाती—एक फुट, साढ़े चार इंच
आस्तीन—एक फुट १०½ इंच
कंधे—एक फुट दो इंच

फन्दे ६४ डालिए। दो सीधा दो उल्टा बिनिए एक रंग से। उस ऊन को छोड़ दीजिए, दूसरी ऊन लगाइए। जहाँ सीधा है वहाँ उल्टा बिनिए, जहाँ उल्टा है वहाँ सीधा। उस ऊन को भी छोड़ दीजिए, अब तीसरा रंग लीजिए। जहाँ दूसरी ऊन से सीधा बिना था वहाँ उल्टा बिनिए और जहाँ उल्टा बिना गया था वहाँ सीधा। तीसरी ऊन भी छोड़ दीजिए—पहली ऊन नीचे लटक रही है उससे फिर जहाँ सीधा बिना है वहाँ उल्टा बिनिए और जहाँ उल्टा बिना है वहाँ सीधा। बगल तक बिनते-बिनते प्रायः ६ फन्दे (एक ओर, ६ दूसरी ओर) धीरे-धीरे बढ़ा लीजिए। मोढ़ा व गला घटाइए—आस्तीन भी इसी नमूने से बिनिए।

नीचे की पट्टी व गले व आस्तीन की पट्टी जो ऊन अधिक हो उससे बनाइए (बाद में फन्दे उठाकर पट्टी बनाई जायेगी।)

इसका ध्यान रक्खें कि ये तीनों रंग ऐसे हों जो परस्पर अच्छे लगें। अगर ऊन पतली हो तो उसका पुलओवर भी सुन्दर बनेगा।

धूप घेरे हुए

श्री शिवेन्द्रकुमार 'परिवर्तन'

छाँह में जिन्दगी बैठ सुस्ता रही—
धूप घेरे हुए गाँव की हर डगर!

(१)

भूमि-नभ औ' दिशा, तप रही ताप-मय,
प्राण पिघले न यह, भय लगा शाप-मय;
चार डग ही भरें, स्वेद-कण छा गये—
पंथ लम्बा पड़ा औ' बहुत दूर घर!
छाँह में जिन्दगी बैठ सुस्ता रही।

(२)

ताप में ही अभी और जलना इसे;
क्योंकि संध्या अभी है निकट ही, कहाँ?
हँस रहा है प्रगति पर खड़ा दोपहर!
छाँह में जिन्दगी बैठ सुस्ता रही—
धूप घेरे हुए गाँव की हर डगर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान में गोवर्द्धनपूजा

श्री महेन्द्र भनावत

दीपावली के दूसरे रोज प्रातः गोवर्द्धनजी की पूजा की जाती है। इस दिन महिलाएँ अपने-अपने घरों के सम्मुख गोबर के गोवर्द्धनजी बनाकर उनकी पूजा करती हैं। गोवर्द्धनजी के पास एक छोटे गोवर्द्धनजी तथा एक तलाई बनाई जाती है। उस तलाई में पानी डालकर छोटी ६।६ फेरने जैसी खाई फिराई जाती है। गोवर्द्धनजी के हाथों-पाँवों तथा गले में आभूषणों के रूप में मकई के दाने सजाये जाते हैं और उनपर रूई के पोये रखे जाते हैं। एक थाली में सुपारी, कंकू, लच्छे, कच्चे चावल, मूँग, लापसी, चावल तथा गमले एवं दही आदि सजाकर पास ही दीपक जलाकर गोवर्द्धनजी की पूजा की जाती है। उनके पेट पर गन्ने (सांठे) का ऊपरी हिस्सा (बाण) रोप दिया जाता है। इस दिन गोबर का लड्डू भी बनाया जाता है जिसमें एक राखी रख दी जाती है जिसे होली के साथ जला दिया जाता है। एक साथ एक से अधिक महिलाएँ भी गोवर्द्धनजी को पूजती हैं। किसी जानवर (गाय, भैंस आदि) के बच्चा होने पर यदि जड़ नहीं गिरती है तो उस गोवर्द्धनजी वाले बाण को खिला देने से जड़ गिर जाती है। अतः औरतें उस बाण को बड़ी सावधानी से सँभाल कर रखती हैं। एकादशी के दिन प्रातः गोवर्द्धनजी वहाँसे उठा दिये जाते हैं। उस स्थान पर कुछ अनाज रखकर शाम को गोइली दे दी जाती है।

गोवर्द्धनजी बनाते समय जो गीत गाया जाता है उसका नमूना देखिए—

ऊँचो जो खेड़े कान्हा कांगणी जो बाई
कांगणी जो बाई
नींदण वाली ओ चंदरावदी जी।
खोदतां जो नींदतां कान्हा दोई जणा आया
दोई जणा आया
एक तो गोरां ने ओ दूजा सांवरा जी।
गोरां तो कीजे रे कान्हा बाई सा रा वीरा
बाई सा रा वीरा
सांवरा तो कीजे रे बाई सारा घर धणी।
गोरां ने सोवे कान्हा कसुमल पागां
कसुमल पागां
सांवरा ने सोवे ओ डोरो रेसमी जी।

× × ×

एक अन्य गीत में गोवर्द्धनजी की मांडने की कितनी सुन्दर भावना व्यंजित हुई है—

गोरी गायरो गोबर मँगाओ,
रामदुआरे गोरधन मांडस्यां।
रोली तो भोली फूल पतास्यां,
गोरधन पूजण चालस्यां।
सात सहेली रल पूजा करस्यां,
हँस हँस मंगल गायस्यां।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापक अयोध्याप्रसादजी का वसीयतनामा

डा० श्यामसुन्दर व्यास

कल रात अध्यापक अयोध्याप्रसादजी परमात्मा के पास चले गये!

परलोक-यात्रा करने से पाँच घंटे पूर्व जब उन्होंने मुझे याद किया तो, पड़ोसी धर्म के नाते, हाथ का काम छोड़कर-मुझे जाना ही पड़ा।

जाकर देखा तो अध्यापकजी को माला के मनकों के साथ, मन के मनके फेरते हुए, कुछ बुदबुदाते पाया। प्रणाम किया, आशीर्वाद मिले। मेज के पास रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए अध्यापकजी बोले—"वकील साहब, चला-चली की बेला है। जीवन भर कष्ट देता रहा हूँ। चलते-चलते अंतिम बार थोड़ा-सा कष्ट और देना चाहता हूँ।"

विनीत भाव से बोला—"आज्ञा कीजिए।"

पल भर को कुछ सोचकर अध्यापकजी ने कहा—"एक वसीयतनामा लिखवाना चाहता हूँ।"

सुनकर आश्चर्य हुआ। अध्यापकजी की पारखी आँखों को मेरे मन का भाव ताड़ने में देर न लगी। फीकी-सी हँसी हँसते हुए बोले—"वकील साहब, यह एक अध्यापक का, और वह भी एरम दरिद्री समझी जाने-वाली हिन्दी के एक अध्यापक का, वसीयतनामा है। धन के नाम पर तो अपने पास केवल सूर-तुलसी का नाम है। हिन्दी की मास्टरी करते हुए अनुभव की कुछ पूँजी अवश्य जोड़ी है, उसे ही वसीयत के रूप में, उत्तराधिकारियों के नाम छोड़ जाना चाहता हूँ। आपको कष्ट तो जरूर होगा, पर.....।"

"जी नहीं, मुझ कोई कष्ट नहीं होगा।"—बात काटकर मैं बीच ही में बोल पड़ा।

अध्यापकजी ने मेज पर पहिले ही से कुछ सादे कागज तैयार रख छोड़े थे। अपना कलम निकालकर मैंने लिखने की तत्परता बताते हुए कहा—"आज्ञा कीजिए।"

अध्यापकजी कुछ क्षणों के लिए विचारमग्न से दिखायी पड़े। आँखें मूँदकर उन्होंने किसीका स्मरण किया, दोनों हाथों से कान पकड़े, गालों पर दोनों ओर हलकी-हलकी-सी चपतें लगायीं, हाथ जोड़े और फिर बोले—"माफ करना वकील साहब, जरा तौबा करने की रस्म-अदाई में उलझ गया था। जिन्दगी भर जिसके नाम की रोटियाँ खाता रहा, मरते दम उसे कोसने बैठा हूँ तो जरा संस्कार जोर मार गये। खैर, अब आप लिखिये।"

गला साफ करने के लिए वे खँखारे और फिर धारा-प्रवाह बोलने लगे। वे बोलते रहे, मैं लिखता रहा। लिखा चुके तो हारे-थके से स्वर में बोले—"क्या एक बार आप इसे पढ़कर सुनाने का कष्ट करेंगे?"

हृदय से उठती निःश्वास को दबाकर मैंने कहा—"जी हाँ!" और इस बार भावावेश को दूर करने के लिए खँखारने का अभिनय करते हुए मैंने अपना रुँधा गला साफ किया। फिर बोला—"सुनिए!"

"मैं अध्यापक अयोध्याप्रसाद, अपनी संचित पूँजी का बँटवारा करने के लिए, यह वसीयतनामा, अपने पूरे होश-हवाश में लिखवा रहा हूँ। आशा है मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे सुयोग्य उत्तराधिकारी उसका अक्षरशः पालन कर मेरी मृत आत्मा को शांति प्रदान करेंगे।

"मेरे जीवन की सबसे गाढ़ी कमाई, मेरे अनुभवों की पूँजी है। यह निषेधात्मक है। मैं अपने उत्तरा-धिकारियों को उसे इस रूप में वितरित करता हूँ कि—

(१) इस परिवार का कोई भी प्राणी पागल कुत्ते द्वारा काटे जाने पर भी, भूल से भी, हिन्दी की हिमायत न करे।

(२) देश में बहती हुई हवा को देखकर इस परि-वार का कोई भी प्राणी हिन्दी सीखने-सिखाने का दुरा-ग्रह न करे।

(३) इस परिवार के किसी भी बच्चे को शुद्ध, संस्कृतनिष्ठ उच्चारण का अभ्यास न कराया जावे और उन्हें 'परसाद', 'चन्दर', 'किरपा' जैसे लहजे में बात करने से रोका न जावे।

(४) घर में भूल से भी देशी संस्कारों और दकिया-नूसी प्रथाओं को पनपने न दिया जावे।

(५) चरण-स्पर्श, प्रणाम जैसी वाहियात बातों को, और पिताजी, माताजी जैसे गँवारू शब्दों को इस परिवार में प्रश्रय न दिया जावे।

(६) घर में भूल से भी बच्चे-बच्ची कभी सूर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी, मीरा, कबीर के भजन न तो सुनने और न गुन-गुनाने पावें, और उन्हें 'लाल-लाल गाल' तथा 'चश्मे बद्दूर' जैसे फिल्मी गीत गाते से कभी भी रोका न जावे।

(७) इस परिवार का कोई भी प्राणी चाहे जूता गाँठ कर या सड़क पर झाड़ू लगाने की नौकरी करके पेट पाल ले, परन्तु हिन्दी का अध्यापन न करे।

"मेरे जीवन की दूसरी संचित पूँजी मेरी पुस्तकें हैं। मेरे उत्तराधिकारियों से मैं यह आशा करता हूँ कि वे इनकी व्यवस्था मेरी इच्छानुसार इस प्रकार करेंगे--

शांकरभाष्य और समस्त उपनिषदों को जल-समाधि दे दें।

'सूरसागर' के दोनों भाग किसी गवैये को दे दें या किसी वैष्णव-मंदिर को।

'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' रामद्वारे में भिजवा दें।

हिन्दी-साहित्य के विभिन्न इतिहासों को दीमकों का भोजन बनने दें और देवकीनंदन खत्री के सब उपन्यासों को कब्रिस्तान में दफना दें ताकि भूल से भी कोई इनको पढ़ने के लिए हिन्दी न सीखने लगे।

प्रेमचंदजी के सारे साहित्य को किसी अनाथाश्रम की लायब्रेरी को दे डालें ताकि भले आदमियों के बच्चे 'नमक के दरोगा' जैसी कहानियाँ पढ़कर 'सज्जनता का दंड' न भुगतें।

हिन्दी के समस्त काव्य, उपन्यास, नाटक, आलोचनात्मक ग्रंथ किसी अजायबघर में भिजवा दें, और अगर अजायबघर वाले भी इन्हें अछूत समझें तो इन्हें किसी जेलखाने या अस्पताल की लाइब्रेरी में रखवाने की व्यवस्था करें। और यदि वे भी उन्हें लेना पाप समझें तो घर के सामने उनका अग्नि-संस्कार कर दें।

'आक्सफोर्ड डिक्शनरी' को रामचरितमानस वाले रेशमी कपड़े में लपेट कर आदर से रखा जावे और उसे नित्य धूप दिखा कर सपरिवार सिर झुकाया जावे!

नैस्फील्ड की 'ग्रामर' की दो प्रतियों में से एक की बुकनी बनाकर रख ली जावे और वह वर्तमान और भविष्य में होनेवाले बच्चों को शहद के साथ चटा दी जाया करे, और दूसरी प्रति को 'द्रव्य-यश-दात्री' के रूप में राष्ट्रीय पर्वों के अवसर पर पूजा जाया करे।

शेर ओ' शायरी की किताबें, आनेवाली औलाद को नफासत और तहज़ीब-तमीज़ सिखाने के लिए रखी जा सकती हैं। इश्किया ग़ज़लें भी कंठस्थ करवाने के लिए काम में आ सकती हैं।

"अनुभव-धन और पुस्तक-धन के बँटवारे के बाद कुछ चाकरी-धन प्रॉविडेण्ट फण्ड और बीमे के रूप में बचता है। इसके पाँच भाग किये जावें। चार भाग भाई-बहनों में समान रूप में बाँट दिया जाय और पाँचवें भाग की राशि से 'अँगरेजी-शिक्षक' की प्रतियाँ खरीदी जावें। श्राद्ध के समय आनेवाले पंडितों को इन्हें दक्षिणा के रूप में दिया जावे ताकि वे अपनी 'पोंगा-पंथी' से पिंड छुड़ाकर अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में साँस ले सकें।

आशा है मेरे सपूत बेटे मेरे इस वसीयतनामे का पालन कर, मेरी आत्मा को शांति प्रदान करेंगे। इति।"

वसीयतनामा समाप्त हुआ तो अध्यापकजी बोले--"लाइए वकील साहब, अब हस्ताक्षर भी कर दूँ!"

मैंने अनमने भाव से वसीयतनामा बढ़ा दिया। उन्होंने सही की और कागजों को तह कर अपने तकिये के नीचे रख लिया। एक हलकी सी साँस ली, कुछ मुस्कुराये और फिर बोले--"धन्यवाद वकील साहब! आपने मेरे मन का भारी बोझ हलका करवा दिया। वर्षों से सुलगती हुई हृदय की तपन, राष्ट्र के गौरव के नाम पर, इससे अच्छी और कौन-सी प्रेरणा दे सकती है?"

अध्यापकजी का प्रश्न, मेरी खामोशी के कारण निरुत्तर रह गया!

मैं किस मुँह से, किस बल पर, इसका उत्तर दे सकता हूँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रोणाचार्य की अन्तिम रात्रि

श्री सुरेशचन्द्र

घावों को धुलवाकर आचार्य द्रोण शिविर के बाहर लेटे थे। पहरेदार को दूर हटवा दिया। सारे दिन के युद्ध से वातावरण जैसे भर गया था--सन्नाटा भी सो गया था। तारों में बेजान टिमटिमाहट थी। कौरवों के ऊँचे शिविरों में भी दीपक जैसे मजबूरी से जल रहे थे। सड़ते हुए मांस और खून की तेजाबी और लोहे जैसी गन्ध हवा में थी जिससे मुँह में भी लोहे जैसा स्वाद आता था। कानों में कोई जान नहीं थी। 'मारो, दौड़ो', शंखध्वनि, हिनहिनाहट, चिंघाड़, तीरों की सन्-सन्, तलवारों की झनझन---रह-रहकर कानों में गूँज जाती। इसके बाद और भी गहरा सन्नाटा हो जाता।

युद्ध के प्रारंभ में स्यार खूब शोर मचाते हुए आते किन्तु उनमें अब पहिला उल्लास समाप्त हो गया था, और मांस की यह विशाल दावत अब उनको बिल्कुल साधारण लगने लगी थी। फिर भी आज जैसे कोई नया स्यार आ गया था जो खुशी से उस महामरण की लीला देखकर बोल उठा था। उसकी आवाज सुनकर लाखों प्रेतात्माएँ खिलखिलाकर हँस उठीं और घायलों के शरीरों से बहती हुई जिन्दगी जैसे कुछ चौंककर आँखें खोलकर इन्हें देखने लगी।

'प्रतिहारी!'--आचार्य ने करवट लेते हुए पुकारा। प्रतिहारी आया। उसके भाले की नोक उस अँधेरे में भी झिलमिला रही थी।---'कौरव श्रेष्ठ को सूचित कर दो कि आज मन्त्रणा गोष्ठी की आवश्यकता नहीं, केवल कल के युद्ध के लिए कर्ण के धनुर्धरों की एक वाहिनी विशेष रूप से सन्नद्ध रहे।' वह प्रणाम करके चला गया।

आचार्य की शंख के समान गंभीर वाणी से मुर्दा जैसे शिविर मानों काँप-काँप कर जगने लगे थे। उनके चुप होते ही जैसे सारा वातावरण सो गया। अचानक कुछ चूड़ियाँ खनकीं। एक नारी मूर्ति प्रकट हुई। उसके हाथों में एक लोटा और एक थाली थी। उसकी चाल में गौरव था। पास आकर उसने एक आसन को पोंछा और लोटा-थाली उस पर रख दिया। आचार्य ने सर घुमाकर उसकी ओर देखा। दाहिने हाथ की उँगलियों को जटाओं और दाढ़ी में फिराया और उठ बैठे--

'अश्वत्थामा कहाँ है?'--सागर में जैसे गर्जन हुआ।

'अन्दर है, बुलवा लूँ?'--मुरली में किसीने उत्तर दिया।

'मैं स्वयं आ गया'--कुछ हँसता हुआ एक युवक तपस्वी खड़ा था। लम्बा बलिष्ठ शरीर हाथ में लम्बी तलवार और बाँह पर घाव पर बँधी हुई एक पट्टी। वह एक आसन पर बैठ गया।

'तुम भी बैठो न'--आचार्य ने उस नारी मूर्ति की ओर देखा। उनके स्वर का समस्त आवेग एक माधुर्य से भर उठा जिसमें डूबी हुई वह अश्वत्थामा के पास बैठ गयी, और उसके कन्धों पर हाथ फेरने लगी।

'पिताजी, एक बात बतलाइये'--अश्वत्थामा निस्संकोच एक फल उठाकर खाते हुए बोला और उत्तर की प्रतीक्षा बिना किये हुए कहने लगा--'आप कहते हैं कि युद्धक्षेत्र में सैनिक शिविरों में नारियों का प्रवेश वर्जित है, तो फिर माताजी यहाँ क्यों हैं?

'तू बड़ा दुष्ट है'--उस नारी ने उसकी पीठ पर हल्के से मार कर हँसते हुए कहा।

आचार्य भी कुछ हँसे। सफेद मूँछ दाढ़ी की छाया में दाँत चमक उठे। 'तुम ठीक कहते हो, मैं यही शिक्षा देता हूँ।' फिर उनका स्वर कुछ अपने में ही डूबने लगा। बोले--'अश्वत्थामा, सुनो अब तुम वयस्क हो। क्या तुम बता सकते हो कि विवाह कितने प्रकार का होता है?'

कुछ चकित सा होता हुआ अश्वत्थामा बोला--"स्मृतिकार ने आठ प्रकार का बतलाया है!"--"हाँ, किन्तु वह विवाह नहीं, विवाह की समाज व्यवस्था है। वास्तव में विवाह दो प्रकार के होते हैं--शरीर के और मन के। शरीर का विवाह एक मुहूर्त में निष्पन्न होता है किन्तु मन का विवाह कालक्रम से विकसित होकर पूर्ण होता है और अपनी पूर्ण अवस्था में वह आत्माओं को एक सूत्र में बाँध देता है। शरीर का विवाह और उसका आनन्द शरीर के साथ क्षीण होता जाता है किन्तु मन का विवाह उसके विपरीत विकसित होता है--" आचार्य कुछ ठहर गये। फिर कुछ रुकते हुए बोले--"मन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह दुःखों के मार्ग से चलकर पूर्ण होता है। सुख के मार्ग में मन शरीर का अनुगामी हो जाता है। और अश्वत्थामा! जब तुम्हारी माता के और मेरे मन के विवाह की पूर्ण अवस्था आयी थी उसी पुण्यक्षण में तुमको गोद में लेकर हम दोनों ने सौगन्ध खाई थी कि महाकाल के अतिरिक्त और कोई हमें अलग नहीं कर सकता। और आज, इस क्षण तक वह प्रण निभ रहा है।"

"युद्ध के ये नियम संयम! ये दुर्बल व्यक्तियों के लिए हैं। तुम्हारी माँ, जो यहाँ बैठी हुई है, इन्होंने हमेशा हमें प्रेरणा दी है और मैं बराबर आगे बढ़ता गया हूँ। किन्तु अब रात आ रही है। मुझे विश्राम करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है।"

अश्वत्थामा मौन सुन रहा था। उसने अनुभव किया कि उसके कन्धों पर दो आँसू टपक पड़े हैं।

कहीं से दो घोड़ों के चलने की आवाज आयी और नजदीक होती गयी, यहाँ तक कि लगा शिविर से बाहर ही वे रुक गये हैं। अश्वत्थामा उठकर बाहर चला गया। आचार्य फल खाकर दूध पी रहे थे कि उसने आकर कहा—"वासुदेव कृष्ण और धनञ्जय आपके दर्शनार्थ आये हैं।"

अश्वत्थामा और उसकी माँ अन्दर चले गये। एक योगी की भाँति आचार्य द्रोण युग की दो विभूतियों की प्रतीक्षा करने लगे।

कृष्ण आये, पीछे अर्जुन। चाँद निकल आया था और उसके प्रकाश में स्पष्ट दीख रहा था कि उस साँवले किन्तु प्रदीप्त नेत्रोंवाले सारथी ने मोरपंख के प्रति अपने मोह को छोड़ा नहीं था। सोने के मुकुट में वह टेढ़ा लगा हुआ था और उसका सुनहला चाँद चमक रहा था। अर्जुन ने गाण्डीव एक आसन से लगाकर खड़ा कर दिया और दोनों ने एक साथ गुरुवर द्रोण के चरणों में प्रणाम किया। आचार्य ने दोनों बाँहें फैलाकर मुक्त हृदय से आशीर्वाद दिया। दोनों के आसन ग्रहण कर लेने पर आचार्य कुछ क्षण तक मौन रहे। आगन्तुक भी मौन रहे। फिर आचार्य ने ही एक एक करके युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा माता कुन्ती आदि की क्षेम-कुशल पूछी। "इस भीषण संहार को तुम रोक नहीं सके जनार्दन!" वे कृष्ण की ओर मुड़े!

"मैं इसको अपनी सबसे बड़ी असफलता मानता हूँ गुरुवर!"—कृष्ण के सुन्दर नेत्रों में दुख छलक आया, सिर झुक गया।

'और मैं अपनी सबसे बड़ी सफलता'—कहकर आचार्य हँस उठे। उनके सारे व्यक्तित्व से हँसी धीमी-धीमी लहराती हुई उठने लगी। कृष्ण और अर्जुन को लगा जैसे आचार्य उनकी हँसी उड़ा रहे हों। वे अपने आप में संकुचित हो गये। इतने में अश्वत्थामा एक थाली में कुछ फलमूल लेकर आया। उसने उसे उनके सामने रख दिया और एक ओर बैठ गया। आचार्य कुछ स्थिर होकर पूछने लगे—

"वासुदेव! तुम दोनों किस प्रयोजन से आये हो यह मैं समझता हूँ। आज मेरे बाणों की वर्षा से घबराकर जब तुम्हारे पक्ष के योद्धा भाग चले तो मुझे ज्ञात हो गया था कि अब तुम ही इनकी रक्षा कर सकोगे। भीष्म जिस दिन तुम्हारे पक्ष के असंख्य योद्धाओं को मौत के मुँह में झोंक रहे थे उस दिन उनसे हथियार रुकवाने के लिए ही तुम टूटा रथचक्र लेकर दौड़ पड़े थे, और रात्रि के सन्नाटे में उनकी मृत्यु का उपाय उन्हींसे पूछने तुम ही तो गये थे! आज भी तुम कुछ ऐसा ही उद्देश्य लेकर आये हो।"

चाँद ऊपर उठ आया था। थके हुए शिविरों की लम्बी पंक्तियाँ सो रही थीं। कटे मरे हुए शवों पर जानवर घूम रहे थे और चाँद उन्हें अपनी किरणों का कफन उढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था। दूसरी ओर युधिष्ठिर के शिविर का कलश दिखायी पड़ रहा था। वातावरण में आचार्य का गंभीर स्वर अब भी गूँज रहा था।

"मैं जानता हूँ कृष्ण"—आचार्य कहते गये—"आज तुम मेरे किसी ऐसे भेद का पता लगाने आये हो जिसका उपयोग कल तुम युद्ध में कर सको। किन्तु मुझको इसकी चिन्ता नहीं है। युद्ध-कौशल में मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरे पास कुछ अमृत विद्या थी वह मैंने अश्वत्थामा को दे दी है। उसके लिए—"कहते-कहते आचार्य कुछ रुक गये फिर एक गहरी साँस लेकर धीरे-धीरे कहने लगे—"हाँ, उसके लिए ही वासुदेव, मैंने तुम्हारी सारी युद्धविरोधी नीतियों को सफल नहीं होने दिया। उसीके कारण मैंने युद्ध विद्या का इतना महान् यज्ञ रचा जिसमें तुम्हारे शान्ति के प्रयत्न पतंगों के समान जल गये।"

"मेरे लिए पिताजी!"—अश्वत्थामा आवेग से कहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा--"मेरे लिए आपने इस महाभारत युद्ध को सम्भव किया?"

'हाँ वत्स,'--आचार्य द्रोण का सुदृढ़ स्वर कुछ रस से भींग उठा--"इसी में तुम्हारे उस क्षण का वर्णन भी है जिसमें मैं और तुम्हारी माता--दोनों--की आत्मा जन्म-जन्मान्तर के लिए बँध गयी थी। आज नीतिज्ञ कृष्ण पधारे हैं। मैं जानता हूँ कल का दिन मेरा अन्तिम दिन होगा, फिर भी मुझे चिन्ता नहीं है। इनके प्रयत्नों के विपरीत मैंने जो प्रचण्ड दावानल धधका दी है, मैं न उससे बचना चाहता हूँ और न बचूँगा। किन्तु अश्वत्थामा, वत्स मेरे--तुम जीवित रहना। तुम तभी जीवन विराम की सोचना, जब तुम्हें भी कोई योग्य पात्र मिल जाये।"

भावावेग से आचार्य का चेहरा चमक उठा। उनकी आँखें प्रदीप्त हो उठीं और उनका स्वर ऐसा गूँज रहा था मानों सभी ओर सागर उमँड़ रहा हो।

कृष्ण ने कुछ साहस किया। गले की मणिमाला को बाएँ हाथ से टटोलते हुए बोले--"आचार्य प्रवर! हमारे आने के उद्देश्य के विषय में आपकी धारणा भ्रान्त सी है।"

"मेरी धारणाएँ भ्रान्त नहीं हुआ करतीं जनार्दन"--दाहिने हाथ की तर्जनी उठाकर द्रोणाचार्य बोले--"तुम भी तो राजपुत्र हो! मैं किसी राजपुत्र का विश्वास नहीं करता! वे इस योग्य नहीं होते। तुम जब ब्रज और वृन्दावन में थे तब तक तो विश्वास किया जा सकता था किन्तु राजवंश के रक्त के कारण तुमने वहाँ भी भोली बालिकाओं को धोखा दिया। कल तुम मुझे कौन सा धोखा दोगे, मैं नहीं जानता। किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि मेरे विषय में तुम कूटनीति की टट्टी की ओट में शिकार अवश्य खेलोगे।"

आचार्य द्रोण दो क्षण ठहरे। उनकी तनी हुई शिराएँ कुछ ढीली पड़ीं और वे मन्द स्वरों में कहने लगे--"कृष्ण, यदि मेरे अन्दर समस्त राजवंश के प्रति घृणा न भर जाती तो आज यह महाभारत न होता। जानते हो क्यों? क्या मैं कौरवों और पाण्डवों को प्रेम और सौहार्द्र का पाठ पढ़ाकर एक नहीं कर सकता था? क्या मैं शस्त्रास्त्र की शिक्षा में एक पक्ष को निर्बल बनाकर युद्ध की अनिवार्यता नहीं हटा सकता था? मैं सब कर सकता था, किन्तु मैंने किया नहीं। इसका कारण है वह समाज जिसके नेता हो तुम, धार्तराष्ट्र सुयोधन और पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिर। तुम लोग किसी का आदर गुणों के लिए नहीं, स्वार्थ के लिए करते हो। जिस दिन तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध हो जाता है उसी दिन तुम व्यक्ति को चूसे हुए गन्ने की भाँति फेंक देते हो। किसी की दुख-दीनता आदि तुम्हें तब तक नहीं ज्ञात होती जब तक वह आकर तुम्हारे द्वार पर भीख न माँगे और इस पर भी यदि तुम्हारा कोई स्वार्थ सिद्ध न हुआ तो उसे दुत्कार भी मिल जाती है।

"मोहन, मैंने और अर्जुन के ससुर द्रुपद ने महर्षि अग्निमित्र के पवित्र आश्रम में साथ-साथ शिक्षा पायी। उसकी मित्रता के कारण मैंने वंशपरम्परा के विरुद्ध धनुर्वेद की शिक्षा ली। उसने मुझसे बड़े-बड़े प्रण किये थे कि पाञ्चाल नरेश होने पर वह मुझे उच्च से उच्च स्थान देगा, किन्तु उसका भी राजवंश ठहरा न! उसीकी आशा और विश्वास पर अश्वत्थामा को गोद में लिये लिये मैं इधर-उधर भटकता रहा। वह सिंहासनासीन हो गया, पर मुझे न बुलाया। एक दिन अश्वत्थामा ने किसी बालक को दूध पीते देख लिया। वह आकर अपनी माँ से मचल गया कि मैं भी वह सफेद वस्तु पिऊँगा। मैं विद्वान् और शिक्षक होने के गर्व के कारण किसीसे कुछ माँग कैसे सकता था! अन्त में मेरी पत्नी कहीं से आटा माँग कर लाई और उसे घोलकर पिला दिया। तब यह बालक माना। वासुदेव, इस भारत में तुम्हारे राजवंश ने शिक्षक की यह दशा कर दी है। किन्तु दुर्दशा का यहीं अन्त नहीं हुआ। मैंने द्रुपद के पास जाकर सब कुछ कहा, किन्तु उसने मुझे पहचाना तक नहीं। तब मुझमें क्रोध जगा और मैंने बदला लेने का प्रण किया।"

चाँद अब काफी ऊपर आ गया था। चारों व्यक्तियों के शरीरों पर युद्ध के घावों पर लगी हुई दवाएँ आदि स्पष्ट हो चुकी थीं। जैसे सभी का व्यक्तित्व कुछ न कुछ घायल हो गया हो। इन सबके बीच ओज के मूर्तिमान् स्वरूप सफेद केश और सफेद वस्त्रधारी द्रोणाचार्य आज कृष्ण से जीवन के गूढ़तम रहस्य की बात कर रहे थे।

"अश्वत्थामा, वत्स उन अल्पाहार और निराहार के दिनों में मेरा और तुम्हारी माँ के मन के विवाह का विकास हुआ था। और जिस दिन मैं द्रुपद की सभा से दुत्कारा गया था, उसी दिन तुम्हारी ओजस्वी माता और मैंने प्रण किया था कि वन हो अथवा सिंहासन, हम कभी एक दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अलग नहीं होंगे। और वह आज तक निभ रहा है। कृष्ण! मुझे हस्तिनापुर में कौरवों पाण्डवों के शिक्षक होने का पद इन लोगों ने इसलिए नहीं दिया कि मुझमें बहुत ज्ञान था। राजवंशों में गुण ग्राहकता? असम्भव! अश्वत्थामा के मामा कृपाचार्य इन लोगों को सिखलाते थे और उन्हींके द्वारा मेरी नियुक्ति हुई। मैं एकलव्य को भूला नहीं हूँ। सुदूर दण्डकारण्य से वह भील कुमार केवल मेरा यश सुनकर आया था और उसको सिखलाने से मैं अपने को रोक नहीं सका। किन्तु उसीके अँगूठे के दान के द्वारा मैंने यह दिखला भी दिया कि एक दीन व्यक्ति अपने शिक्षक के प्रति कितना बलिदान कर सकता है।"

"हाँ, पाण्डवों को मैंने विद्या अधिक दी। एक तो कौरव पक्ष के लोग धन-जन से अधिक थे ही, साथ ही पाण्डवों के द्वारा मैंने द्रुपद को हरवाकर अपने पैरों पर डलवाया और उसकी पुत्री को अपने शिष्यों को ब्याह में दिलवा दिया। मैंने कौरवों के मन से युद्ध में श्रेष्ठ होने का अभिमान कभी कम नहीं होने दिया। यहाँ तक कि जब सेनाएँ आ गयीं तब भी सुयोधन के हारते मन को मैंने ढाढ़स बँधाया।"

"आचार्य प्रवर की जय हो!"—सबने चौंककर देखा, प्रतिहार नतमस्तक खड़ा था।

"क्या है?"

"सेना-श्रेष्ठ जयद्रथ ने 'सर्वम् कुशलम्' भेजा है।"

"सर्वम् कुशलम्"—अश्वत्थामा बोल दिया।

द्रोणाचार्य उठकर खड़े हो गये। उनके साथ-साथ कृष्ण अर्जुन अश्वत्थामा भी खड़े हो गये। अश्वत्थामा कृष्ण और अर्जुन से कुछ लम्बा किन्तु दुबला था। आचार्य सबसे लम्बे और चौड़े थे। उन्होंने रुद्राक्ष भूषित दाहिनी भुजा बढ़ाकर अर्जुन के कन्धे पर रख दी और कहने लगे—

"धनञ्जय, तुम्हारा पक्ष न्याय का होते हुए भी मैं तुम्हारी ओर नहीं गया क्योंकि इससे शक्ति का सन्तुलन बिगड़ जाता और युद्ध न होता। एकाध बार कर्ण के हृदय में भी तुम लोगों के लिए भ्रातृप्रेम उमड़ा, किन्तु मैंने उसे रोक दिया। मैं दिखाना चाहता था कि यद्यपि समाज शिक्षक को अपनी चक्की में पीस रहा है फिर भी यदि शिक्षक चाहे तो समाज को वर्गों में विभक्त करके चकमक पत्थर के टुकड़ों की तरह उसे इस तरह लड़ाये कि उससे प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो उठे। मेरी लगायी हुई आग में समाज के ये हजारों बलिष्ठ युवक, भाई, बाप, बेटे, पति नष्ट हो रहे हैं। भीष्म उधर शरशैय्या पर पड़े हैं और मैं स्वयं उस अग्नि को तेज कर रहा हूँ। उसकी लपटें मेरे चारों ओर बढ़ती आ रही हैं। मैंने अश्वत्थामा को इससे दूर रहने की आज्ञा दे दी है क्योंकि शिक्षक द्वारा उत्पन्न यह महाभारत का विनाश-सर्प उसका ही वंश न खा जाये। अब यह सब कुछ समझ चुका है। कृष्ण, विदुर आदि के प्रयत्न सुयोधन हँसकर उड़ा ही चुका है। भीष्म गिर गये हैं। अब मेरी बारी है।"

आचार्य ने फिर पूछा—"कोई दूसरा प्रयोजन हो तो कहो?"

'कुछ नहीं गुरुवर!' अर्जुन और कृष्ण एक साथ बोले। रात्रि के तीसरे प्रहर के शंख बजने लगे। दोनों ने चरण स्पर्श किया। घोड़ों की टापों की ध्वनि दूर जाकर खो गयी।

× × ×

दूसरे दिन—'अश्वत्थामा हत' शब्दों को चिल्लाता हुआ धृष्टद्युम्न आचार्य का शिर लिये युद्धक्षेत्र में उन्मत्त होकर घूम रहा था। सभी के मन में कृष्ण और युधिष्ठिर के नाम बार-बार आ रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा-सुना (३)

श्री मनमोहन गुप्त

धत् ! तू मेरी दुलहिन कैसी ?

(गतांक से आगे)

दूसरे दिन सबको अवाक् करता हुआ बाबू चन्द्रशेखर का भाई, जो मेरे साथ पढ़ता था, मेरे घर में अपने बगीचे का ढेर सा आम लेकर पहुँचा। नौकर के सिर पर टोकरी थी।

मेरे घरवालों के लिए, तथा पास-पड़ोसवालों के लिए यह एक अनहोनी-सी बात थी। सब लोगों के लिए यह एक चर्चा की बात बन गयी। कारण, वह मेरा घर ठीक-ठीक जानता नहीं था। उसके नौकर ने कई लोगों से पूछकर मेरे घर का पता लगाया था।

आम लेकर आया अवश्य, किन्तु कुछ कह नहीं पाया। दादी ने बड़े प्रेम से उसे पास बैठाया, किन्तु वह ऐसा करने लगा जैसे कि भाग पावे तो उसकी जान बचे। हाँ, उसके नौकर ने आते ही इतना कहा--"रानीजी ने भेजा है। कह रही थीं कि छोटे पढ़ाई-लिखाई में अपने क्लास में सबसे ऊँचा है ..... उसको बगीचे का आम जरूर भेजा जाय। ....उसीसे छोटे कुँवर साहब को साथ भी भेजा है।"

सुनकर दादी के रोम-रोम भले ही पुलकित हो उठे हों, किन्तु फिर भी वह बोल पड़ीं--"पढ़ता ही नहीं... उसका बाप उसके पीछे इतनी मेहनत करता है ..... दूसरा कोई लड़का होता तो अब तक मास्टर बन गया होता ....पढ़ता ही तो नहीं ....।"

नौकर बेचारा इन बातों को क्या समझता ? वह अपनी ही हाँकने लगा--"यही तो लड़कों में खराबी है... दिन भर खेलकूद ही में लगे रहते हैं।"

दादी को यह भी असह्य था। स्वयं चाहे जो भी कहें मगर दूसरों के मुँह से मेरे विरुद्ध कुछ भी सुनने को तैयार न थीं। बीच में बोल पड़ीं--"खेलकूद भी जरूरी है !"

कहते ही कहते मुझसे कहा--"तेरा दोस्त आया है। इसे साथ ले जा जरा अपनी पढ़ाई-लिखाई की जगह दिखा। बातचीत कर। गपशप लड़ा।"

बीच में ही बाबू चन्द्रशेखर के भाई ने कहा--"नहीं, नहीं, मैं अब जाऊँगा।"

--"अभी आने में देर नहीं और चले भी जाओगे ?"

दादी के प्रश्न का उत्तर दिया नौकर ने--"रानी माँ ने छोटे को आज दोपहर को अपने यहाँ खाने के लिए कहा है... सो उसका न्यौता भी भेजा है।"

--"जरूर जायगा। क्यों नहीं जायगा ? आने-जाने से ही तो परिचय बढ़ता है।"

दादी के आग्रह तथा चेष्टा ने दोपहर को खाने के समय में मुझे बाबू चन्द्रशेखर की माँ के सामने पहुँचा दिया। चाहे जो भी हो, भद्र महिला के स्नेह भाव ने मुझे मोह लिया। मुझसे इतना अपना सा व्यवहार किया कि मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं यहाँ कितने ही दिनों से आता-जाता रहा हूँ। साथ-साथ मैंने भी अपने स्वाभाविक गुणों का असर उनपर डाला। शायद मेरी जीवट की प्रतिभा ने ही मेरी ओर उन्हें इतना आकर्षित किया था। बस किसी बात के पूछने की देरी कि मैं सक्रिय रूप से उसे करके दिखाता। एक बार वे यों ही पूछ बैठीं, "तुमने रामायण भी पढ़ी है ?"

तुरन्त दस-बीस दोहे, दस-बीस चुनी हुई चौपाइयाँ और भी न जाने क्या-क्या सुना दिया। महाभारत की बात कहते ही संक्षेप में एक प्रकार से सारा महाभारत ही सुना दिया। इसके अतिरिक्त लाठी के पटे, तलवार के बाने, बन्दूक में कैसे गोली भरी जाती है, कैसे चलायी जाती है, कैसे पकड़ने पर उसका झोंका नहीं लगता है, आदि-आदि जितनी भी बातें सुनी थीं तथा याद थीं, सब कुछ सुना दीं। कोई नेता जब चुनाव लड़ता है, उस समय वह अपने प्रचार में जिस प्रकार से अपने सारे गुणों को बखान देता है, उसी प्रकार मैंने भी अपने समस्त गुणों का डंका पीट दिया। नाम मात्र के लिए भी अपने दोषों का उल्लेख न किया।

डटकर भोजन करके, दो घंटे तक बड़बड़ करके, उन्हें आश्वासन देकर कि अब प्रायः आकर इसी प्रकार से रामायण, महाभारत तथा शंकराचार्य आदि के स्तोत्रों को सुनाऊँगा, कहकर ज्यों ही मैंने मर्दाने हिस्से में पैर रक्खा था कि देखा सामने ही बाबू चन्द्रशेखर खड़े हैं।

अब तक भूला हुआ था कि यह बाबू चन्द्रशेखर का ही मकान है। सामने उन्हें देखते ही मेरी चाल धीमी पड़ गयी। वे बोले--"क्यों छोटे ! भली भाँति भोजन आदि कर लिया न ?"

उनसे मैं और कुछ आशा करता था, यकनी बड़ी जीजी की बात पूछेंगे, मगर मेरी ही बात पूछ रहे हैं देखकर मैंने कहा--"जी हाँ। खूब डटकर भोजन किया।"

सुनते ही उन्होंने कहा--"डट कर ? देखूँ कैसे डट कर ?"

कहते ही कहते मुस्कराते हुए आगे बढ़ आये एवं सामने से मेरी कमीज को उठाकर, यों ही आहिस्ते-आहिस्ते मेरे पेट को अपनी उँगलियों से दबा-दबाकर देखने लगे। एक जगह दबाते-दबाते उनका हाथ रुक गया। सन्देहात्मक भाव से सिर को हिलाते हुए बोले "नः ! डटकर भोजन नहीं किया ... यहाँ जरा खाली खाली सा लग रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी बात काटी जा रही है देखकर मैंने स्वाँस को जोर से खींचकर पेट को फुलाया। मेरा पेट का फुलाना था कि बाबू चन्द्रशेखर ने उँगली से गुदगुदाया। गुदगुदी लगते ही मैं हँस पड़ा, एवं पेट की सारी हवा निकल गयी। वैसे ही वे बोले--"यह देखो सारा खाली हो गया"

विज्ञ जैसा गम्भीर होकर मैंने कहा--"हो गया होगा। खाये दो घंटे से ऊपर भी तो हो गये। मगर इसका मतलब यह थोड़े ही है कि मैंने डट कर नहीं खाया था।"

--"हाँ। हाँ। जरूर खाया होगा, मगर अब तो पेट खाली हो गया है। चलो हम लोग बाग में चलें, अच्छे-अच्छे आम चुन-चुनकर खाये जायँ।"

कहने की देर। भला पेड़ों से जब चुराकर, तोड़-तोड़कर, कच्चे आम खाने में इतना आनन्द आता है तो पक्कों का क्या कहना!

दोनों बगीचे की ओर बढ़े। सबसे अधिक जिस पेड़ के नीचे आम पके थे, वहीं जाकर रुके। वहाँ दो-तीन नौकर पहले से ही मौजूद थे। हम लोगों के पहुँचते ही उनमें से एक ने दो आम तोड़कर पास ही रखी, पानी भरी बाल्टी में डाल दिये। बाबू चन्द्रशेखर ने कहा--"तब तक ठंडा होने दो। चलो उधर के पेड़ों में देखें कि कौन-सा आम अच्छा है।"

नौकर वहीं खड़े रहे। हम लोग और उधर आगे बढ़ गये। जब काफी आगे बढ़ गये, यानी आपस में क्या बातें हो रही हैं, इसे नौकर न सुन पावें; इतनी दूर चले गये तब बाबू चन्द्रशेखर ने कहा--"तुम्हारी बात तो गलत निकली। उस कुएँ में से पेटी तो न मिली।"

बीच में ही मैं बोल पड़ा--"मैं क्या जानूँ?"

--"नहीं तो कौन जानेगा? जब तुमने उसे डाला है तो तुम्हीं को जानना चाहिए न?"

कहते-कहते वे तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी आँखों की ओर देखने लगे। वहाँ सिवाय इंकारी के क्या पढ़ पाते! आगे उन्होंने कहा--"तुम्हारी बड़ी जीजी ने जो कुछ तुम्हें सिखाया वही तुम कहते हो।"

--"बिल्कुल नहीं, मैं अपनी दादी की कसम खाकर कह सकता हूँ कि इस विषय में बड़ी जीजी ने मुझे कुछ नहीं सिखाया। आप गंगा उठवा सकते हैं।"

--"तब तुम्हीं ने कहीं और छिपा दिया और मुझसे झूठ कहा।"

--"जी नहीं। मैं सच कहता हूँ,.....सच कहता हूँ....."

इस बार बाबू चन्द्रशेखर की आँखें हिंस्र पशु जैसी हो गयीं। उन्होंने घुमाकर एक तमाचा मुझे जड़ दिया। और लपके मुझे पकड़ने। मैं झट बैठकर, बगल से बगली काटकर, बेतहाशा भागा। वे भी दौड़े। मगर मुझे पकड़ने के हेतु उन्हें फिर से जन्म लेना पड़ता। ललकारते हुए नौकरों से कहा--"पकड़ लो साले को...आज इसकी यहीं कब्र बनाऊँगी।"

सब नौकर एक साथ दौड़े। मगर मैं हाथ आऊँ तब न! एकदम फाटक के पास पहुँचा। फाटक में पहले ही से ताला लगा था। मुड़ा। इस बार मर्दाने खाने में घुस गया। उसे नाँघते हुए जनानखाने में एकदम बाबू चन्द्रशेखर की माँ के पास जा पहुँचा। बँधे हुए बड़े कुत्ते ने तब तक खूब भौंकना शुरू कर दिया था।

मुझे भागकर आते, हाँफते तथा घबड़ाया हुआ देखकर उन्होंने कहा--"क्या कुत्ता...."

--"नहीं, नहीं; मुझे बचाइये...मुझे बाबू चन्द्रशेखर बगीचे में मारकर गाड़ रहे थे।"

सुनकर वह भी घबड़ा गयीं। उन्होंने कहा--"छिप जाओ उस बर्तन की सन्दूक के पीछे..."

इतना कहकर मुझे कमरे की ओर ढकेल दिया। उन्होंने कहा था बर्तन वाले सन्दूक के पीछे, मगर मैं घुस गया सन्दूक के अन्दर। आहिस्ते से पल्ला बन्द कर लिया। तब तक भरी बन्दूक लिये बाबू चन्द्रशेखर वहाँ आ पहुँचे। हाथ में बन्दूक देखकर उनकी माता और घबड़ा गयीं। तब तक बाबू चन्द्रशेखर के मुँह से निकला--"वह लौंडा इधर आया है?"

--"कौन लौंडा? किसके लिए कह रहे हो?"

--"वही, वही, छोटे का बच्चा? वह इधर आया है?"

साफ इंकार करती हुई वह बोली--"नहीं इधर तो नहीं आया।"

जब मालकिन ने ऐसा कहा तो निमक-मिर्च मिलाकर उपस्थित सब नौकरानियों ने भी यही कहा। फलतः वे आगे बढ़ गये। बढ़ते हुए वे कह गये--"देखना वह निकल न जाय। उसने जड़ाऊ जेवर का बकस छिपाया है।"

जड़ाऊ जेवर के बकस का नाम सुनते ही रानी माँ जेवरों वाले तहखाने की ओर बढ़ीं। साथ में सब नौकरानी भी गयीं। सन्दूक के अन्दर मेरा दम घुट रहा था। पल्ले को जरा-सा उठाकर देखा। आस-पास किसी की आहट न मिली। धीरे से निकलकर इधर-उधर देखा। सामने का रास्ता साफ था। चार छलाँग में जनाने दरवाजे से बगीचे में दाखिल हुआ। वहाँ भी मैदान साफ था क्योंकि सब लोग मकान के अन्दर व्यस्त थे।

फिर क्या था? जिधर से प्रायः आम चुराने के लिए बगीचे में दाखिल होता था उधर से ही दीवार फाँदकर सड़क पर जा पहुँचा। कुछ ही देर में हाँफते हुए अपने घर के दरवाजे के सामने था।

× × ×

शाम को पिताजी जब पढ़ा रहे थे उसी समय बाबू चन्द्रशेखर के यहाँके बड़े मुनीम आये। उन्होंने एक बन्द पत्र पिताजी को दिया। रायबहादुर ब्रजकिशोर का वह पत्र था। पिताजी बोले--"अच्छा, तुम लोग पढ़ो। मैं जरा रायबहादुर साहब के यहाँ जाता हूँ।"

वे चले गये। कोई दूसरा दिन होता तो ऐसे मौके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का लाभ उठाकर मैं, कम से कम, दादी से कुछ छेड़-छाड़ या और कुछ शैतानी करता मगर आज खूब चिल्ला-चिल्ला-कर पढ़ने लगा जिससे कि अड़ोस-पड़ोस के लोग भी उसकी, जरूरत पड़ने पर, गवाही दे सकें।

पिताजी को गये बहुत समय हो गया। दादी ने नीचे से खाने के लिए बुलाया। भैया उठ गये, मगर मैं उठने का नाम भी नहीं लेता, तथा पढ़ाई की रफ्तार और बढ़ा दी देखकर; अन्त में दादी को मुझे बुलाने के लिए भैया को भेजना पड़ा।

वे बात कम करते थे और कार्यवाही अधिक करते थे। उन्होंने आकर कहा—"सुनायी नहीं पड़ता है? क्या कान पकड़कर ले जाना पड़ेगा?"

—"जाओ जाओ। मुझे भूख नहीं है। दोपहर में बहुत खा लिया था।"

साथ-साथ पढ़ाई की गति और तीव्र वेग से चलने लगी। भैया चले गये। दादी ने उन्हें खिला दिया। जब भैया खा कर सोने के लिए छत पर जाने लगे तो कहा—"चल तकिया-वकिया लेकर चल। अब कल पढ़ाई होगी। अब चलकर सो जा।"

—"बहुत सोया। अब सोना नहीं है, तुम जाओ?"

—"अच्छा सोना नहीं है तो बिस्तर तो ले चल।"

—"नहीं बिस्तर भी नहीं ले चलना है।"

साथ-साथ कड़कते हुए भैया बोले—"क्या कहा?"

इस बार गुस्से में आकर किताब को जोर से बन्द किया। जल्दी से बिस्तर में से मेरे हिस्से की ले जानेवाली जो चीजें थीं उनको उठाकर छत पर रख आया।

सचमुच दूसरे दिनों से देर हो गयी थी। फिर भी पिताजी नहीं आये? अब मुझे कुछ सन्देह होने लगा। कहीं मेरे पिताजी को भी तो बाबू चन्द्रशेखर ने धोखा देकर नहीं बुलाया? कुछ देर और रुका रहा। भैया के साथ बिस्तर भी बिछवा लिया। चुपचाप बैठा भी रहा। सन्देह बढ़ता ही गया।

अन्त में भैया से कहा—"भैया!"

स्नेहपगी आवाज से भैया ने कहा—"क्या है रे छोटे?"

जब प्रथम-प्रथम माता की मृत्यु हुई थी तो इसी प्रकार से कुछ देर बैठा रहता था। फिर माता को स्मरण करके रो पड़ता था। भैया ने वही समझा। पास सरक आये मुझसे कहा—"चढ़ेगा मेरे कन्धों पर? आ चढ़! मैं सीढ़ी बनूँ और तू उसपर चढ़कर आसमान के तारों को छू ले।"

—"धत् पागल कहीं के! अब कोई मैं इतना बेवकूफ थोड़े ही हूँ। मैं तो और कुछ सोच...."

—"सोचने की जरूरत नहीं। आ सो जा मेरे पास। मैं दादी के पास छोड़ आऊँगा।"

एक लम्बी साँस लेते हुए मैंने कहा—"अच्छा बाबू को किसीने मार डाला तो?"

—"तो हम दोनों मिलकर उसके चौदहों पुश्तों को मार डालेंगे।"

—"उनके पास बड़ी-बड़ी बन्दूकें और बड़े-बड़े कुत्ते रहे तो?"

मुझसे कुछ ही वर्ष के बड़े भैया भी इसे कैसे सुलझाते? हारकर बोले—"ऐसा होगा ही नहीं।"

कान के पास मुँह ले जाकर मैंने कहा—"यह जो चन्द्रशेखर है न?"

आगे कुछ कहने से पहिले ही नीचे से पिताजी ने पूछा—"छोटे क्या सो गया?"

भैया ने तुरन्त उत्तर दिया—"नहीं, उसने तो खाया भी नहीं। बैठा है।"

पिताजी ने अब सीधे मुझे पुकारा। मैंने उत्तर तो नहीं दिया किन्तु एक-एक कदम करके नीचे के लिए रवाना हुआ। तब तक पिताजी बोले—"जल्दी नीचे आ।"

बाध्य होकर गति बढ़ा देनी पड़ी। जब नीचे पहुँचा तो वे कुछ भी नहीं बोले। बगल में ही रायबहादुर के मुनीम थे। मुनीम ने कहा—"जरा आओ तो इधर?"

कहते ही कहते पिताजी से आगे-आगे वे मेरा हाथ पकड़े ले चले। दादी ने पूछा—"क्या है?"

पिताजी ने कहा—"अभी आते हैं हम लोग।"

गल्ली पार करके सड़क पर पहुँचे। वहाँ वही दो घोड़े वाला टमटम खड़ा था। मुझे साथ लेकर मुनीमजी बैठे एवं पिताजी सामनेवाली गद्दी पर।

गाड़ी आकर एकदम बँगले के अन्दर रुकी। मुझे मुनीमजी सीधे रायबहादुर साहब के सामने ले गये। साथ ही आये हुए पिताजी ने कहा—"पूछ लीजिए जो कुछ पूछना है। मेरा लड़का कभी ऐसा नहीं कर सकता है। मैंने तो कुछ सिखाया नहीं। आपके मुनीमजी ही इसे लाये हैं।"

रायबहादुर गड़गड़े का नेचा मुँह से हटाते हुए बोले—"आओ बेटा! पास आओ। डरने की कोई बात नहीं। मैं वचन देता हूँ कि तुम अगर बता दोगे कि उन जड़ाऊ गहनों का क्या किया तो मैं तुम्हें कुछ न कहूँगा। जरा भी न घबड़ाना....।"

थूक निगलते हुए मैंने कहा—"बताऊँ?"

—"हाँ! हाँ! जरूर बताओ। वे कोई खेलने की चीजें थोड़े ही हैं!"

इधर-उधर देख लिया। कहीं बाबू चन्द्रशेखर दिखाई न पड़े। मैंने कहा—"कुएँ में डाल दिया, बकस समेत। उसमें खाली गहने थोड़े ही थे। दस हजार रुपये के नोट भी थे।"

सुनते ही रायबहादुर के नीचे से जैसे जमीन सरकने लगी। वे बोल पड़े—"दस हजार था?"

—"हाँ! हाँ! बड़ी जीजी से बाबू चन्द्रशेखर ने यही तो कहा था। मैंने कुछ गिना थोड़े ही।"

बीच में बड़ी जीजी का नाम सुनकर पिताजी तक पूछ बैठे—"कैसी बड़ी जीजी।"

तब मैंने पिताजी की ओर देखते हुए कहा—"वही... वही...उस दिन जब मैं और बड़ी जीजी दादी के पास बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँस रहे थे, ... हम लोगों को आपने डाँटा तो हम दोनों गली में भाग आये थे। वहीं खड़े-खड़े हँस रहे थे कि इतने में बाबू चन्द्रशेखर आये। उन्होंने बड़ी जीजी से कहा कि रानी, तुम्हारे बिना अब जी नहीं सकता। चलो भाग चलें कहीं। लो देखो तैयार होकर आया हूँ। दस हजार रुपये और जड़ाऊ गहने साथ लाया हूँ। बड़ी जीजी को भगाने गये थे।"

एक दम में मैं इतना कह गया। मुझे रुकते देखकर रायबहादुर बोले—"फिर क्या हुआ?"

—"होगा क्या? चन्द्रशेखर बाबू ने बड़ी जीजी के हाथ में पेटी पकड़ा दी। पीतल की बन्द पेटी थी। इतने में बड़ी जीजी की माँ ने अन्दर से पूछा कि किससे बात कर रही है रे? .... उनकी माँ की आवाज सुनते ही चन्द्रशेखर बाबू भाग गये। बड़ी जीजी भी पेटी मेरे हाथ में थमाकर अन्दर भग गयीं। मैं पेटी हाथ में लिये गली में ही कुछ देर खड़ा रहा। दोनों में से किसीको आते न देखकर पास वाले कुएँ में डाल दिया था। यह जो बाबू चन्द्रशेखर हैं, ये बड़े हरामजादे हैं। बड़ी जीजी के पीछे पड़े हैं। एक दिन और मुझे बड़े मैदान में पाकर कहा कि अपनी बड़ी जीजी को बुला ला। आज दोपहर को बाग में आम खिलाने के नाम पर ले जाकर मारकर गाड़ रहे थे। यहाँके नौकर और भी हरामजादे हैं। सबने मिलकर मुझे दौड़ाया था। यह तो कहिए कि मुझे रानीजी ने बर्तन के बकस के अन्दर छिपा दिया था नहीं तो मैं रामनाम सत्य करके बगीचे में गड़ा होता।"

रायबहादुर पसीना-पसीना हो उठे। गुस्से में चिल्ला पड़े—"रामदास! हरचरण! सुखई! चनुआ! ददईया!"

सब नौकर पास ही कहीं खड़े थे। एकदम आकर हाजिर हो गये। रायबहादुर ने हंटर उठा लिया। कसके एक हन्टर ददईया की पीठ पर जमा दिया। वह उम्र में सबसे छोटा था। कहा—"हरामजादा! नमकहराम! सच-सच बोल कि दोपहर को क्या हुआ था?"

रोते-रोते उसने कहा—"हम लोग कुछ नहीं जानते हैं सरकार! जब यह लड़का खाना खा रहा था तब राजा भैया ने फाटक में ताला लगवा दिया था और कहा था कि बगीचे में पानी लेकर चल। वह जब खाना खाकर आया तो उसे बाग में आम खिलाने के बहाने ले गये, फिर पता नहीं कि क्या हुआ। दूर से हम लोगों ने देखा कि इसे एक थप्पड़ मारा। यह भगा तो राजा भैया ने कहा पकड़ ले। हम लोग पकड़ने गये तो यह अन्दर महल में घुस गया। फिर पता नहीं कि किधर से निकल....."

आगे कुछ कहने से पहले ही रायबहादुर ने और एक हन्टर जमाया—"तब साले मुझसे क्यों शाम को कहा था कि पीतल की पेटी लेकर भागा? बोल!"

कहते ही कहते सड़ासड़ दो-चार हटर और जमा दिये। हाथ जोड़ते हुए वह बोला—"अब कभी झूठ न कहूँगा हुजूर.... राजा भैया के सिखाने पर कहा था।"

इस बार दूसरे नौकरों पर टूटने ही वाले थे कि दरवाजे के पर्दे के पीछे से रानीजी बोल पड़ीं—"इन्हें मारकर लाभ क्या? आखिर मालिक की न कहेंगे तो किसकी कहेंगे?"

उधर मुड़कर रायबहादुर ने कहा—"तुमने सुना है कि क्या हुआ है?"

व्यंग्यात्मक आवाज आयी—"आपही सुनें? मैंने तो बहुत सुना है। आज रुपये और जेवर गये। कल आपका प्राण भी जाएगा। जो मैं किसीसे कहूँ तो लोग कहेंगे कि सौतेली माँ है। सह नहीं सकती है अपनी सौत के बेटे को। आज सचमुच खून हो जाता तो क्या होता? उसीने तो आग्रह करके मुझसे आम भिजवाया था और छोटे को दावत दिलवाई थी।"

कहती हुई जोरों से पर्दे को हिलाकर बोली—"बेटा छोटे! इधर तो आ!"

मैंने पिताजी के चेहरे की ओर देखा। पिताजी ने इशारा किया। मैं उठकर उधर बढ़ गया। मुझे पर्दे के पीछे पाते ही मेरे सिर पर हाथ रखकर घोषणा के स्वर में कहा—"जीते रहो बेटा। कम से कम उनकी आँखें तो खोल दीं। मैं बराबर कहती हूँ कि बैठे-बैठे खानेवाले अमीरों के लड़के शैतानों के बराबर होते हैं, तो ये मानते नहीं। सोचते हैं कि मैं कुछ समझती नहीं तथा ईर्ष्यावश ऐसा कहती हूँ।"

दोपहर को जिन्हें देवी समझा था इस समय तो वह भगवान् ही लगने लगीं, कारण मैं भी अब तक, मन-ही-मन, बाबू चन्द्रशेखर के प्राण का ग्राहक बन गया था।

× × ×

अन्त में सब लोगों ने यही तय किया कि मैंने अवश्य ही उस पेटी को कुएँ में डाल दिया था, मगर वह बन्द थी। इस कारण से उसके अन्दर पानी नहीं पहुँच सका था, वह तैरती ही रही होगी। सबेरे किसीकी निगाह पड़ गयी होगी और उसने उसे चुपके से निकाल लिया होगा। पिताजी मुझे साथ लेकर घर वापिस आये।

पिताजी ने केवल घर में ही नहीं, बल्कि दुनिया में किसीसे भी इसकी चर्चा करने को मना कर दिया। कहा था कि यदि कोई पूछे तो कह देना कि रायबहादुर से परिचय कराने के हेतु पिताजी ले गये थे।

दादी से जब ऐसा कहा तो वह बार-बार भगवान् को धन्यवाद देने लगीं और गर्वभरी आवाज से बोलीं—"एक दिन इस लड़के के पाँव पूजने बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम आयेंगे। रायबहादुर ने परिचय किया तो कौन सी बड़ी बात हो गयी?"

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन का परिचय

वैसे तो चीन से लड़ाई कई वर्षों से चल रही है, किंतु पिछले महीने में पहिली बार चीन ने बड़े आकार में, और लम्बे मोर्चे पर एक साथ आक्रमण कर दिया है। यह आक्रमण कितना भयंकर था और कितना अचानक हुआ, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि सरकारी वक्तव्य के अनुसार पहिले पाँच-सात दिनों ही में हमारे दो-ढाई हजार सैनिक या तो मारे गये या लापता हो गये। चीनियों के आठ-नौ हजार सैनिक खेत रहे। हमें जगह-जगह अपने मोर्चे छोड़कर पीछे हटना पड़ा। यद्यपि न तो चीन ने और न भारत ही ने अभी तक युद्ध की घोषणा की है, तथापि यह अघोषित युद्ध वास्तविक युद्ध है जिसके निर्णय पर भारत की अखंडता और स्वतंत्रता निर्भर है। इस अचानक भयंकर आक्रमण के कारण हम जगह-जगह पीछे हटे, किंतु आरंभिक पराजयों का विशेष महत्त्व नहीं है। युद्ध की अंतिम विजय ही निर्णायक होती है। किंतु इस समय हमें अपने शत्रु की शक्ति का सही अनुमान कर लेना चाहिए और युद्धक्षेत्र के भूगोल को भी जान लेना चाहिए। इन दो बातों के जाने बिना हम न तो युद्ध के चढ़ाव-उतार ही को समझ सकते हैं, न उसकी ठीक-ठीक तैयारी कर सकते हैं और न घटनाओं के महत्त्व को ही जान सकते हैं।

चीन संसार का सबसे जनसंकुल देश है। उसकी जनसंख्या ६० करोड़ से अधिक है। उसका आकार भी विशाल है। मंचूरिया, तिब्बत आदि मिलाकर उसका क्षेत्रफल ३७ लाख वर्गमील से कुछ अधिक है जब कि भारत का क्षेत्रफल १२ लाख वर्गमील ही है। उसमें २७ प्रान्त हैं। इनमें से कई—जैसे तिब्बत, मंचूरिया, भीतरी मंगोलिया आदि—वास्तव में 'देश' हैं जिन्हें चीन ने हड़प कर अपने अंतर्गत कर लिया है। असली चीन में केवल १८ प्रान्त हैं जिनकी जनसंख्या सारी जनसंख्या की प्रायः ७० प्रतिशत है। इस असली चीन का क्षेत्रफल भारत से कुछ ही अधिक (प्रायः पौने चौदह लाख) वर्गमील है। भारत की तरह ही चीन का भूगोल भी नाना प्रकार का है। उसमें भी कहीं ऊँचे पहाड़ और कहीं विस्तृत मैदान हैं। मुख्य नदियाँ ह्वांग-हो और यांगट्सी हैं। ये विशाल नद हैं, और इनमें विशेषकर ह्वांग-हो में—बहुधा बाढ़ आया करती है। इस देश के निवासी नाना जातियों के हैं, किंतु प्रायः सभी मंगोलवंशीय हैं। चीनी लोग चीन में आकर अब से प्रायः ४००० वर्ष पहिले बस गये थे। उन्होंने वहाँके आदिम निवासियों को खदेड़ दिया था जो पहाड़ों में जा छिपे, जहाँ उनकी संतान आज भी रहती है। पता नहीं कि वे कहाँ से आये थे। संसार के अन्य भागों की भाँति यहाँ भी नदियों की घाटियों में बहुत प्राचीन काल में सभ्यता का उदय हुआ, और चीन ने उस युग में भौतिक सभ्यता में बड़ी उन्नति की। सारा देश मांडलिक राजाओं में विभक्त था। ईसा पूर्व तीसरी शती में शी-ह्वांग-ती नामक राजा ने सारे मांडलिक राजाओं को करद बनाकर चीन साम्राज्य स्थापित किया। उस समय चीन ने कितनी भौतिक उन्नति कर ली थी, इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि उत्तर की ओर से आनेवाले बर्बर आक्रमणकारियों को रोकने के लिए उसने चीन की प्रसिद्ध बड़ी दीवार बनायी जो मैदानों, पहाड़ों, घाटियों को पार करती हुई कई हजार मील चली गयी है। उसने कृषि और यातायात के विकास के लिए नहरें और सड़कें बनायीं। कला में चीन ने उस समय इतनी उन्नति कर ली थी कि वहाँका रेशमी कपड़ा (चीनांशुक) अपने सौंदर्य के लिए जगत् प्रसिद्ध हो गया था। मूर्तिकला, चित्रकला, लेखन, साहित्य और दर्शन में भी उसने बड़ी प्रगति कर ली थी। कन्फ्यूशियस आदि दार्शनिकों ने चीनी दर्शन को स्पष्ट रूपरेखा दे दी थी। चीन की प्रतिभा ने काग़ज का निर्माण किया, ध्रुव-दर्शक यंत्र (मैरीनर्स कम्पास) बनाया, बारूद का आविष्कार किया। किंतु कृषि देश का मुख्य उद्योग था। वह प्रतिष्ठित कार्य समझा जाता था, और वर्ष में एक दिन स्वयं सम्राट् हल चलाते थे। सैनिक कार्य निकृष्ट समझा जाता था। विद्वानों का आदर होता था। किंतु तेरहवीं सदी में दुर्दान्त चंगेज खाँ ने (जो मंगोल था) चीन साम्राज्य पर भीषण आक्रमण कर दिया जिससे साम्राज्य की नींव हिल गयी। चंगेज खाँ के पौत्र कुबलाई खाँ ने चीनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजवंश को ध्वस्त कर दिया और स्वयं सम्राट् बन बैठा, और चीन में मंगोलों का राज्य आरंभ हुआ। किंतु चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध में पुराने राजवंश की मिंग नामक शाखा ने उन्हें निकालकर फिर से साम्राज्य स्थापित किया। मिंग-काल में चीन ने बड़ी सांस्कृतिक उन्नति की। चीनी कला का यह स्वर्णयुग था। किंतु १६४४ में उत्तर के तातारों ने भीषण आक्रमण करके मिंग-वंश को समाप्त कर दिया और उनके एक कबीले का एक प्रमुख व्यक्ति चीन का सम्राट् हो गया। उस कबीले का नाम 'मंचू' था। इस वंश ने १९११ तक राज्य किया। इसके समय में चीन की उन्नति रुक गयी। वह अपनी सभ्यता को सर्वोत्तम समझता था। पुरानी बातों से उसे मोह हो गया। अफीम के नशे की आदत सारे राष्ट्र में बुरी तरह फैल गयी। वह चीन के बाहर के लोगों को 'बर्बर' समझने लगा। देश में बाहरी लोगों का प्रवेश निषिद्ध था। इसलिए वह संसार की गतिविधि से अनजान रहा। इस बीच योरप ने बड़ी उन्नति कर ली थी और विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ उन्होंने अपनी सैनिक-शक्ति भी बढ़ा ली थी। व्यापार, धर्मप्रचार और साम्राज्य विस्तार की त्रिसूत्री उत्कट लालसा उन्हें सारे संसार के ज्ञात और अज्ञात क्षेत्रों में ढकेल रही थी। वे चीन भी पहुँचे। किंतु वहाँ उनका प्रवेश वर्जित था। आरंभ में खुशामद, और बाद में सैनिक बल से उन्होंने चीन में प्रवेश पाया। योरोपियन देशों और जापान से चीन के कितने युद्ध हुए। लकड़ी की सभ्यता में स्थिर चीन, योरप की फौलाद की सभ्यता के आगे नहीं ठहर सका। उसे बड़े बेमन से पाश्चात्य वस्तुओं को अपनाना पड़ा। ईसाई मिशनरियों ने भी उसके प्राचीन मनोबल को निर्बल करने में बड़ा काम किया। अंत में चीनी नवयुवकों को अपनी दशा का भान हुआ। अधिकांश चीनी नवयुवकों की शिक्षा अमरीका में हुई थी, और उनमें से कितने ही ईसाई भी हो गये थे। वे चीन से विदेशी मंचुओं के गलित साम्राज्य को समाप्त कर वहाँ प्रजातंत्र स्थापित करना चाहते थे। कितने ही साहसिक प्रयासों के बाद १९११ में मंचू-वंश को निकालकर सनयातसेन के नेतृत्व में इन क्रान्तिकारियों ने वहाँ प्रजातंत्र की स्थापना की। यू आन शिकाई प्रथम राष्ट्रपति हुए, किंतु शीघ्र ही क्रान्तिकारी उनसे असंतुष्ट हो गये। यह क्रान्तिकारीदल 'कुओमिन्टाँग' कहलाता था। इसने विद्रोह कर दिया किंतु उसे दबा दिया गया। जापान के दाँत चीन पर बहुत दिनों से लगे हुए थे। इस गड़बड़ी में (१९१५ में) उसने चीन से विशेष अधिकारों की माँग की। अमरीका और इंग्लैण्ड ने इनका विरोध किया किंतु अंत में चीन ने इनमें से कुछ माँगें मान लीं। इससे जापान का चीन में प्रवेश हो गया। इस बीच कुओमिन्टाँग ने दक्षिणी चीन में अपना प्रभाव बढ़ाकर वहाँ दूसरा राज्य स्थापित कर लिया। इसकी राजधानी कैंटन में थी। पीकिंग की सरकार दिनों-दिन निर्बल होती गयी और देश में अराजकता फैल गयी। जिस प्रकार मुगल-साम्राज्य के निर्बल होने पर सूबेदार स्वतंत्र हो गये थे, उसी प्रकार उत्तरी सरकार के कितने ही सूबेदार स्वतंत्र होकर लूटमार करने और आपस में लड़ने लगे। सनयातसेन के बाद चियांग काई शेक कुओमिन्टाँग के नेता हुए। उन्होंने पीकिंग पर अधिकार करके (१९२८ में) फिर एक बार सारे चीन में एकछत्र राज्य स्थापित कर दिया, किंतु इस बीच दक्षिणी चीन में कम्यूनिस्ट प्रबल हो गये और चियाँगकाई शेक को उनसे वर्षों लड़ाई करनी पड़ी, फिर भी वे दबाये नहीं जा सके। इसी बीच, सन् १९३२ में जापानियों ने चीन के एक समृद्धिशाली प्रान्त—मंचूरिया—पर अधिकार कर लिया। उन्होंने वहाँके पुराने राजवंश के एक व्यक्ति को गद्दी पर बैठाकर कठपुतली सरकार स्थापित कर दी। चीन ने जब इस राज्य को तंग करना आरंभ किया तब जापानियों ने चीन पर आक्रमण कर दिया और उसका बहुत सा भाग जीत लिया। चियाँगकाई शेक अपनी सरकार पश्चिम के एक दुर्गम पहाड़ी नगर—चुंकिंग—में ले आये। यह बात १९३७ की है। इसके कुछ ही समय बाद तृतीय महायुद्ध आरंभ हुआ। उसमें जापान की पराजय हुई और उसे सारे चीन से हटना पड़ा। कुओमिन्टाँग का शासन सारे देश पर एक बार फिर हो गया, किंतु इसी बीच कम्यूनिस्टों ने युद्ध छेड़ दिया और वे इतने प्रबल निकले कि उन्होंने कुओमिन्टाँग को हराकर सारे देश पर अधिकार कर लिया। उन्हें रूस का भी समर्थन प्राप्त था। अपनी बची हुई सेना लेकर चियाँगकाई शेक फारमोसा (ताईवान) चले गये जहाँ वे अब भी अपने को चीन का वैधानिक राष्ट्रीय अध्यक्ष बतलाते हैं।

हमने बहुत संक्षेप में चीन का चार हजार वर्षों का इतिहास पाठकों की जानकारी के लिए लिख दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्युनिस्टों ने अधिकार पाते ही देश को एक विशाल सैनिक शिविर बना डाला। सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गयी। निजी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। असंख्य क्रान्ति विरोधियों को मार डाला गया। संयुक्त खेती जारी की गयी। शिक्षा पर जोर दिया गया और उसमें—सभी स्तर पर—मार्क्सवाद की शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी। सैनिक सेवा अनिवार्य है और सेवा समाप्त करने के बाद भी वे अनिश्चित काल तक सैनिक सेवा के लिए बुलाये जा सकते हैं। चीन के पास इस समय संसार की सबसे बड़ी सेना है। उसकी ठीक-ठीक संख्या गुप्त रखी गयी है, किंतु लोगों ने उसके आकार का अनुमान बीस लाख से चालीस लाख तक किया है। इसके अतिरिक्त 'मिलिशिया' (एक तरह की नागरिक सेना) भी है जिसमें २ करोड़ लोग बतलाये जाते हैं, किंतु अधिकतर इनसे सड़कें बनाने आदि का ऐसा काम लिया जाता है जो सैनिक कामों में सहायक हो। उनमें प्रायः ४ लाख प्रशिक्षित सैनिक भी हैं। चीन की जलसेना बहुत छोटी है। वायुसेना अवश्य बहुत बड़ी है। कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि उसकी वायुसेना में ३००० सैनिक वायुयान और एक लाख सैनिक हैं। कुछ अन्य विशेषज्ञ उनकी संख्या का अनुमान २५०० करते हैं। इनमें रूसी 'मिग' जैट वायुयानों की संख्या १८०० बतलायी जाती है। चीन की वर्तमान् कम्यूनिस्ट सरकार को रूस की सोवियत सरकार से प्रचुर मात्रा में सैनिक सहायता मिली है। उसके अधिकांश वायुयान रूसी 'मिग' हैं जिन्हें भारत लेना चाहता था। जब वह कोरिया में लड़ रहा था तब रूस ने उसे लड़ाई का प्रचर सामान दिया था। उसकी सेना रूसी ढंग के अस्त्रों से सज्जित है। आरंभ में ये हथियार रूस से मिले थे किंतु अब वे उन्हें अपने ही देश में बनाने लगे हैं। चीन एक लड़ाकू देश है और उसने अपने पड़ोसियों पर अवसर पाते ही आक्रमण करने में कभी संकोच नहीं किया। उसका वार्षिक सैनिक बजट १३५० करोड़ रुपया है, जब भारत का केवल ३५० करोड़ है। सन् १९११ से तो उस देश में बराबर मारकाट होती रही या गृह-युद्ध होता रहा, और या फिर विदेशियों से लड़ाई होती रही। कोरिया में उसकी सेना अमरीकनों से डट कर लड़ी थी। इसलिए चीनी सेना को लड़ाई का लम्बा अनुभव है। वह एक अनुशासित और दक्ष सेना है। अतएव उससे जो लड़ाई होगी वह कड़ी होगी। हमें अपने शत्रु की शक्ति और मनोबल को कूतते समय सावधान रहना चाहिए, नहीं तो हम उसका सामना करने की ठीक तैयारी न कर सकेंगे। हिमालय की लड़ाई में उन्हें एक सुविधा है। जो चीनी सेना हमारे हिमालय-प्रदेश पर आक्रमण कर रही है वह कई वर्ष से तिब्बत में रह रही है। तिब्बत की औसत ऊँचाई १२००० से १५००० फुट है। वह पहाड़ी देश है। इतनी ऊँचाई के कारण वहाँ बहुत अधिक सर्दी होती है और बहुधा बर्फ गिरती है। कई वर्षों से उस प्रदेश में रहने के कारण वे उस ऊँचाई और ऊँचे पहाड़ों पर रहने, वहाँ की जलवायु सहन करने और वहाँकी परिस्थितियों में लड़ने और कठिन काम करने के अभ्यस्त हो गये हैं। उन्होंने हिमालय के उस पार, हमारी सीमा के किनारे किनारे, कश्मीर से बर्मा की सीमा तक, पक्की सैनिक सड़क बना ली है, और कई जगहों से उससे लासा को सड़कें बना दी गयी हैं। इस कारण हमारी सीमा के पास तक उन्हें अपनी सेना और सैनिक सामान लाने में सुविधा है। इसके अतिरिक्त हमारी सीमा से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर, उन्होंने तिब्बत में कई हवाई अड्डे बना लिये हैं। इनमें दो-एक तो इतने बड़े हैं कि कहा जाता है कि उन पर जैट विमान भी उतर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जब चीन पंचशील, सहअस्तित्व, और हिंदी-चीनी भाई-भाई के नारे लगाकर हमें भुलावे में रखे हुए था, तब चुपके-चुपके वह हमारी सीमा पर आक्रमण की यह तैयारी भी करता जा रहा था। इतने दिनों हम उसके बहकाये में आते रहे। हमारे कुछ लोगों ने चीन की इन चालों को समझा, और उन्होंने देश को चेतावनी भी दी, किंतु उस समय हमें चीन ने इतना सम्मोहित कर लिया था कि उनकी चेतावनियों पर हमने ध्यान नहीं दिया। किंतु अंत में चीन का असली रूप प्रकट हो गया है। उसने जिस तैयारी से आक्रमण किया है उससे उसे कुछ आरंभिक सफलता मिली भी, किंतु अब भारत चेत गया है। हमारी सेना वीरता और युद्धकला में अद्वितीय है। यह निश्चय है कि यदि उसे पूरा-पूरा सैनिक सामान मिल जाय, और उसे उतने ही मारक अस्त्र दे दिये जायँ जितने चीनियों के पास हैं तो वह चीनियों को देश की सीमा से अवश्य ही निकाल बाहर कर देने में सफल होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धक्षेत्र (१)

उत्तर-पूर्वी सीमान्त (नेफा)

भारत के दो भाग ऐसे हैं जिनकी जानकारी देश-वासियों को प्रायः नहीं के बराबर है, और इसीलिए लोग उनकी ओर से बेखबर रहे हैं। वे दो भाग हैं—(१) उत्तरी कश्मीर (जिसमें लद्दाख, हुंजा, बाल्टिस्तान, अकसई चीन आदि क्षेत्र हैं) और (२) असम के दक्षिण का पहाड़ी भाग जो हमारा उत्तर-पूर्वी सीमान्त है जिसमें सुवनश्री और लोहित नदियाँ बहती हैं। यह उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश अँगरेजी-प्रेमियों की कृपा से 'नेफा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। हमारी सरकार ने "जम्मू और कश्मीर" की तरह उसे 'कामेंग-लोहित' या 'पूर्वी हिमाचल प्रदेश' का नाम न देकर अँगरेजी में एक लम्बा वर्णनात्मक नाम दे दिया। वह नाम है North East Frontier Agency. अँगरेजी प्रेमी इतना लम्बा नाम लेने में अधीर हो जाते हैं, इसलिए इन चार शब्दों के आद्याक्षर (N.E.F.A.) ले लिए। किंतु एन० ई० एफ० ए० कहने में भी साहबों को कष्ट होता है। इसलिए उन्होंने इन आद्याक्षरों से 'नेफा' शब्द बना लिया। 'नेफा' शब्द अपने में अर्थहीन है। यही अर्थहीन नाम इस सुंदर और महत्त्वपूर्ण प्रदेश पर चिपका दिया गया है।

संयोग से चीनियों की साम्राज्यविस्तारी आँखें इन दोनों प्रदेशों पर पड़ीं जिनकी ओर से हम बेखबर थे। साधारण भारतवासी इनसे प्रायः अपरिचित थे। स्वतंत्र-तोत्तर समस्याओं में हम इतने उलझ गये कि हमें इनकी ओर (विशेषकर उत्तरी कश्मीर की ओर) विशेष ध्यान देने का अवसर नहीं मिला, यद्यपि उत्तर-पूर्वी सीमान्त की ओर सरकार ने काफी ध्यान दिया। ये स्थान इतने पिछड़े हुए हैं, और यहाँ जीवन इतना कष्टसाध्य है कि दिल्ली-बंबई-कलकत्ता आदि विलासपूर्ण नगरियों से मोहित लोग इन प्रदेशों में जाने को तैयार नहीं होते। वहाँ वे ही लोग जाना पसंद कर सकते हैं जिनमें पौरुष, साहस और कष्ट-सहिष्णुता हो।

इस बार हम उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश का परिचय दे रहे हैं क्योंकि चीनियों ने उसपर बड़ी तैयारी से जोरदार आक्रमण किया है।

आसाम के उत्तर में जो दुर्गम और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी प्रदेश है, उसे ही आसाम राज्य से अलग करके यह प्रदेश बनाया गया है। इसकी लम्बाई प्रायः ४०० मील और चौड़ाई भिन्न-भिन्न स्थानों में ७० और ८० मील के बीच है। हिमालय की तीन पर्वतमालाएँ हैं, जो इस प्रदेश में पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हुई हैं। इसके उत्तर में तिब्बत, पश्चिम में भूटान और पूर्व में बर्मा है। सन् १९१४ में जब तिब्बत और भारत में सीमा संबंधी वार्तालाप हुआ (जिसमें चीन भी सम्मिलित हुआ था) तब यह सिद्धान्त निश्चय हुआ था कि पहाड़ों पर सीमा उस स्थान पर मानी जाय जहाँ पर पहाड़ की ऊँचाई पन-विभाजक (वाटर शैड) का काम करती हो। इसी सिद्धान्त के अनुसार सीमांकन का काम उस समय के भारत-सरकार के एक उच्च सैनिक अधिकारी मेजर जनरल मैकमोहन ने किया। उन्हें पहाड़ी सीमा का अंकन करने का अनुभव था क्योंकि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में डयूरैण्ड लाइन को निश्चित करनेवाले डयू-रैण्ड साहब के वे सहायक थे। उन्हीं मैकमोहन साहब के द्वारा सीमांकन किये जाने के कारण इस प्रदेश की उत्तरी सीमा 'मैकमोहन रेखा' कहलाती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, पनविभाजन की सीमा होने के कारण इस प्रदेश के उत्तर में ऊँची चोटियोंवाली पर्वतमालाएँ हैं जिनका उत्तरी ढाल तिब्बत में है और जिस पर अब इस समय चीन का अधिकार है। अतएव वे पर्वतों की ऊँचाई पर से दक्षिणी ढाल पर अचानक उतर सकते हैं। इन ऊँचे पर्वतों में कहीं-कहीं दर्रे भी हैं, जैसे भूटान-भारत-तिब्बत सीमा पर थाग-ला का दर्रा। हिमालय की पर्वत-माला पूर्व में जाकर इस प्रदेश के भीतर ही समाप्त हो जाती है। जहाँ यह समाप्त होती है वहाँ अपेक्षाकृत नीची घाटी है जो बहुत ऊबड़-खाबड़ नहीं है किंतु जिसमें घना जंगल है। यह घाटी बहुत चौड़ी नहीं है, और इसके दक्षिण-पूर्व में पटकोई, खासी, जयन्तिया की पहाड़ियाँ आरंभ हो जाती हैं। हिमालय और पटकोई के बीच की घाटी ही एक ऐसा मार्ग है जिसमें होकर उत्तर से या बर्मा से लोग किसी प्रकार आ सकते हैं। प्राचीन काल में अहोम लोगों ने इसी में होकर आसाम में प्रवेश किया था। बाद में बर्मी लोगों ने इसी मार्ग से आसाम पर आक्रमण किया था। इस घाटी का घना जंगल अवश्य ही अवरोध करता है किंतु आधुनिक वैज्ञानिक युग में यह अलंघ्य नहीं रह गया। यह घाटी लोहित जिले में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी हिमालय की पहिली पर्वतमाला की ऊँचाई का औसत २० हजार फुट से अधिक है। इसके दक्षिण में पर्वत अपेक्षाकृत नीचे हैं जिनके बीच-बीच में १० हजार से १२ या १३ हजार तक के ऊँचे ऐसे स्थान हैं जहाँ लोग बस गये हैं। तवांग एक ऐसा ही स्थान है जो १० हजार फुट की ऊँचाई पर है---अर्थात् जितना ऊँचा बद्रीनाथ है। इनके दक्षिण में हिमालय की बीच की श्रेणी है जो फिर ऊँची हो गयी है। हिमालय की इस दूसरी पर्वतमाला के दक्षिण में पहाड़ क्रमशः नीचे होते जाते हैं और आसाम की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते वे शिवालक पहाड़ों के बराबर हो गये हैं। जिस प्रकार हिमालय की उत्तरी पर्वतमाला में तिब्बत की सीमा पर जगह जगह दर्रे हैं, उसी प्रकार बीच की हिमालय की पर्वतमाला में भी कई दर्रे हैं। उदाहरण के लिए बॉमडीला और तवांग के बीच सैला नामक एक दर्रा पड़ता है। इस तीसरी---निचली पर्वतमाला के दक्षिण में ब्रह्मपुत्र का मैदान आ जाता है। इन पहाड़ों में नदियों ने असंख्य घाटियाँ बना दी हैं जिनमें भिन्न वंशों के आदिवासी रहते हैं।

उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश में छोटी-बड़ी प्रायः पचास नदियाँ हैं। ब्रह्मपुत्र नदी मानसरोवर से निकलकर, हिमालय के समानान्तर, तिब्बत में पूर्व की ओर बहती है। तिब्बत में इसका नाम साँपू है। इस सीमान्त प्रदेश में लोहित जिले के उत्तर में पहुँचकर यह एकाएक दक्षिण को मुड़ जाती है और पर्वतों को बेधकर इस प्रदेश में प्रवेश करती है। इस प्रदेश में इसे (डिहांग) कहते हैं। यहाँसे यह आसाम में जाकर पश्चिमवाहिनी हो जाती है और 'ब्रह्मपुत्र' कहलाती है। इसके अतिरिक्त लोहित, सुवनश्री, और भरोली अन्य महत्त्वपूर्ण नदियाँ हैं। ये सब अन्त में ब्रह्मपुत्र में मिल जाती हैं। इनके अतिरिक्त इस प्रदेश में कई विशाल झीलें भी हैं जैसी नैनीताल आदि में हैं।

इन आड़ी, बेड़ी और तिरछी पर्वतमालाओं के ढालों और नदियों की घाटियों में लोग बसे हुए हैं। ये सब आदिवासी हैं और अनेक वंशों के हैं। इनमें तिब्बती, बर्मी, मंगोल तथा आर्य रक्त का अजीब मिश्रण है। पता नहीं कि वे कहाँसे और कब आकर वहाँ बस गये। उनकी बोलियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। इनकी ४८ बोलियों की तो सूची बनायी जा चुकी है। इनकी जातियों की भी संख्या बहुत है। २७ कबीलों के नाम बहुचर्चित हैं। ये एक दूसरे की बोली नहीं समझ सकते और प्रत्येक जाति के रीति-रिवाज दूसरों से भिन्न हैं। ये सभ्यता के विभिन्न स्तरों पर हैं। इनमें से कई जातियों में हाथ की कारीगरी---विशेषकर बुनाई---उन्नत दशा में है। उनका सौंदर्यबोध उनके बनाये कपड़ों के रंगों से मालूम हो सकता है।

सारे सीमान्त प्रदेश का क्षेत्रफल ३१,९६९ वर्गमील है। इसकी जनसंख्या का ठीक-ठीक पता नहीं लग पाया क्योंकि १९५१ में जनसंख्या लेनेवाले इसके सभी दुर्गम स्थानों में नहीं पहुँच सके थे। १९६१ की जनसंख्या के आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं। १९५१ में इसकी जनसंख्या का मोटा अनुमान ६,५०,००० प्राणी किया गया था।

अँगरेजों ने आसाम के पहाड़ी प्रदेशों में गैर सरकारी लोगों का प्रवेश वर्जित कर रखा था। वे केवल ईसाई मिशनरियों को वहाँ जाने देते थे। इस कारण यह प्रदेश आसाम से भी बहुत कुछ अलग ही रहा। इसके निवासी या तो प्रकृति-पूजक हैं या बौद्ध। तवांग में एक प्रसिद्ध बौद्ध मठ है। इसका पश्चिमी भाग अधिक आबाद और उन्नत है।

यह सीमान्त पाँच जिलों में विभक्त है। पश्चिम में भूटान से लगा हुआ जिला कामेंग है। इसका मुख्य नगर बॉमडीला है। इसके पूर्व में सुबनश्री जिला है जिसका मुख्य नगर ज़ीरो है। इसके बाद सियांग जिला है जिसका मुख्य नगर अलांग है। इसके पूर्व में लोहित जिला है। इसका मुख्य नगर तेजू है। इसके दक्षिण में तिरप जिला है जिसका मुख्य नगर खेला है।

यह जंगली और पहाड़ी क्षेत्र इतना ऊबड़-खाबड़ है, और इसमें एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचने के लिए इतने गहरे उतार-चढ़ाव पड़ते हैं कि यातायात अत्यंत कठिन है। इसीलिए इस प्रदेश की जातियाँ अपनी-अपनी घाटी में बंद रहीं और दूसरों से हिलमिल नहीं पायीं। अँगरेजों के समय में इस प्रदेश के यातायात को सुधारने की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत-सरकार ने इस प्रदेश की ओर ध्यान दिया। इसके परिणामस्वरूप आसाम में तेजपुर से बॉमडीला तक एक सड़क बनायी गयी जिसपर जीप चल सकते हैं। बॉमडीला से तवांग तक एक पैदल चलने योग्य पगडंडी-नुमा सड़क बन गयी है। इसके अतिरिक्त सरकार ने कई सौ मील लंबी सड़कें बनायीं और कई हजार मील लम्बे रास्ते बनवाये जिन पर टट्टू या पैदल यात्री चल सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। सरकार ने इस प्रदेश में सड़कों को प्राथमिकता दे रखी है क्योंकि उनके बिना इस अगम्य प्रदेश में कोई सुधार नहीं किया जा सकता। किंतु फिर भी यह प्रदेश इतना विशाल है, और ऊँचे पहाड़ों के कारण यहाँ सड़क बनाना इतना कठिन और महँगा है कि सरकार जिस तेजी से यहाँ जितनी सड़कें बनाना चाहती है उतनी नहीं बन पातीं। इसलिए सरकार इस क्षेत्र में अपने कर्मचारियों को दैनिक आवश्यकता का सामान वायुयानों द्वारा पहुँचाती है। इसके लिए उसे प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च करना पड़ता है। ये वायुयान सामान को निश्चित स्थानों पर एक निर्धारित ऊँचाई से गिरा देते हैं। जितनी अधिक मोटर की सड़कें बन जायँगी यह व्यवस्था उतनी ही कम हो जायगी, किंतु प्रदेश का विशाल आकार देखते हुए अभी इस व्यवस्था की आवश्यकता बहुत दिनों रहेगी।

नेफा का कामेंग जिला सबसे उन्नत है। यहाँके निवासी बौद्ध हैं। तावेंग में कई सौ वर्ष पुराना एक बौद्ध मठ है जिसमें बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय है। इसमें बड़ी अलभ्य हस्तलिखित पुस्तकें संग्रहीत हैं। बौद्धों के लिए यह एक तीर्थ हो गया है। बॉमडीला में जिले के मुख्य कार्यालय हैं। वहाँ कितनी ही नये ढंग की इमारतें बन गयी हैं। सरकार ने इस प्रदेश में शिक्षा के ऊपर विशेष ध्यान दिया है और पिछले कई वर्षों में यहाँ सैकड़ों प्रारंभिक विद्यालय खोल दिये गये हैं। प्रारंभिक स्तर के बाद हाईस्कूल तक हिंदी का पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया है। बोलियों की विविधता तो है ही, साथ ही उनकी कोई लिपि नहीं है। इन बोलियों का अभी तक शास्त्रीय अध्ययन भी नहीं हुआ। ये सब समस्याएँ हल होने को हैं।

सारांश यह कि यह प्रदेश जंगली और पहाड़ी है। यह बहुत पिछड़ा हुआ है। उत्तरी भाग की ऊँचाई बहुत है जिसके कारण यहाँ अत्यधिक शीत तो पड़ती ही है, कई महीने (नवंबर से फरवरी तक) बर्फ भी गिरती है। बरसात यहाँकी सबसे खराब ऋतु है। दक्षिणी भाग में ८० इंच से अधिक वर्षा होती है और उन दिनों (जून से सितंबर तक) कहीं आना-जाना यदि एकदम असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन तो हो ही जाता है। जंगलों में सभी तरह के हिंस्र जंतु हैं। यहाँ जोंकें भी बहुत हैं जो लोगों को लग जाती हैं। प्रदेश दरिद्र है। यहाँ न बड़े नगर हैं, न बड़ी दूकानें हैं, न मंडियाँ हैं। हर एक वस्तु बाहर से लानी पड़ती है। आदिवासी, जंगल साफ कर, या पहाड़ों के ढालों या नदियों के किनारे पर कहीं-कहीं खेती कर लेते हैं। इनकी उपज यहींके निवासियों के लिए मुश्किल से पर्याप्त होती है। अतएव इस क्षेत्र में सेना को स्थानीय स्रोत से कुछ नहीं मिल सकता। कठिन भौगोलिक परिस्थिति, ऊँचाई, कष्टकर ऋतुओं, यातायात के साधनों के अभाव तथा सामान के अप्राप्य होने के कारण इस क्षेत्र में बड़े आकार की सेनाओं को ले जाना और वहाँ उनका युद्ध-काल में रखना आगे आपमें एक कठिन समस्या है। अभी चीनी सेना अपनी सड़कों और रसद भंडारों के निकट है, किंतु यदि वह दक्षिण में आगे बढ़ी तो उसे इन सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हमारी सेना को दक्षिण में अधिक सुविधा होगी क्योंकि वह सामान आदि अपेक्षाकृत अधिक आसानी से प्राप्त कर सकेगी।

हिमालय की इन ऊँचाइयों पर, जहाँ अब तक ऋषि-मुनि तपस्या करने या ईश्वर का भजन करने जाया करते थे, आज एशिया के दो महान् राष्ट्र जीवन-मरण की लड़ाई लड़ रहे हैं। यहाँ उनकी युद्ध-कला, वीरता, दक्षता और चरम कष्ट सहन की परीक्षा है। भारत को विश्वास है कि वह अपनी भूमि की रक्षा करने में अंततः सफल होगा क्योंकि सत्य और न्याय हमारे पक्ष में है। सत्यमेव जयते!

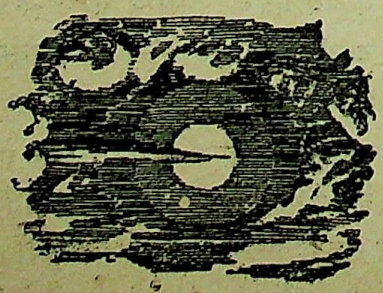

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

सद्बोधशतकम्––मूल संपादक, काका कालेलकर। अनुवादक, श्री अमृतलाल नाणावटी। प्रकाशक, गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य-सभा, राजघाट, नयी दिल्ली। मूल्य, दो रुपये।

इस पुस्तक में भर्तृहरि के तीन शतकों में से चुनकर एक सौ सत्तावन श्लोक संग्रहीत किये गये हैं। इनके अतिरिक्त २९ अत्यन्त उत्कृष्ट श्लोकों का संग्रह अलग है। साथ में 'सूक्तिसुधा' के नाम से भर्तृहरि की चुटीली सूक्तियाँ भी दी गयी हैं। 'मौक्तिकाञ्जलि' के नाम से कुछ मार्मिक श्लोकार्द्ध भी संग्रहीत हैं। प्रत्येक श्लोक, सूक्ति आदि के शब्दार्थ और अनुवाद भी दिये गये हैं। आरंभ में काका साहब ने एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण और मनोरंजक प्रस्तावना लिखी है जिसका अपना महत्त्व है और जो वास्तव में पठनीय है। भर्तृहरि के श्लोकों की गणना हमारी सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक विरासत में की जाती है। काका साहब के समान सुधी पंडित ने जो संकलन किया है वह प्रत्येक दृष्टि से सराहनीय है, और वास्तव में इस योग्य है कि वह अनिवार्य रूप से हमारे विद्यार्थियों को पढ़ाया जाय। हमारी संस्कृति के उच्च आदर्शों का ऐसा संकलन प्रायः अप्राप्य है। किंतु अनुवादक महोदय ने 'हिंदुस्तानी' लिखने की धुन में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो बड़ी अटपटी और असाधु है। अहिंदी भाषियों को हिंदी लिखते देखकर हमें हार्दिक प्रसन्नता होती है, और हम यह भी जानते हैं कि उनके हिंदी में लिखने के कारण उनकी मातृभाषा के कितने ही शब्द और मुहाविरे हिंदी में आ जायँगे। हम उससे प्रसन्न होंगे क्योंकि एक तो हिंदी उनसे समृद्ध होगी, दूसरे वह उनके कारण अन्य भारतीय भाषाओं के निकट आवेगी। हमारा यही लक्ष्य है। किंतु प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है, उसका व्याकरण होता है और उसके प्रचलित शब्दों का कुछ स्पष्ट अर्थ होता है। उनका अतिक्रमण करना भाषा को असाधु बना देता है। श्री नाणावटी की भाषा में कहीं-कहीं ऐसे स्थल मिलते हैं: (१) जो श्लोक छोड़ दिये थे उनमें से कुछ के एक या दो चरण लेने का दिल हुआ। (२) ऐसा लगने पर भी कुछ श्लोकों के बारे में पक्षपात जबरदस्त साबित होने के कारण और यह आवृत्ति बने वहाँ तक सम्पूर्ण करने के लोभ से कुछ प्रकीर्ण श्लोक सद्बोधशतक के बाद 'खिलकाण्ड' के तौर पर रखे हैं। (३) ऐसी आशा बँधी है कि यह संग्रह पाठ्यपुस्तक के तौर पर अथवा संस्कार-शिक्षा की खुराक के तौर पर काम में लाया जायगा। (४) यह सारी टीका बाद पर रख देनी पड़ी। (५) कि यह संग्रहशतकों में से शिक्षण को उपयोगी श्लोक चुनकर किया गया है। (६) नसीबवाद पर जोर देनेवाले श्लोक टालने का प्रथम मन हुआ। (७) भर्तृहरि की सारी सिखावन उसमें मिल जायगी, यह खयाल भी इस पसन्द में था ही। (८) अनेक श्लोक हम जबानी करते थे। (९) ऐसी अल्पाक्षर और मधुर तथा गम्भीर अर्थशैली चाहिए तो संस्कृत का रसिया भर्तृहरि के पास दौड़ेगा ही। (१०) भर्तृहरि जंगल में कंद-मूल फल खाकर जीने की सूचना करते हैं। दैव या नसीब की मीमांसा उसे चिपकी ही है। इत्यादि। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह देखकर दुःख होता है कि काका साहब की इतनी सुंदर और उपयोगी पुस्तक के इस संस्करण को अनुवाद की भाषा की असाधुता के कारण उपयोग में लाने में हमें संकोच होगा। यदि इसकी हिंदी को किसी साधारण हिंदी लेखक से एक बार दिखलवा लिया जाता तो शायद इसकी त्रुटियाँ दूर हो जातीं, और हमारे लिए इसकी उपयोगिता बढ़ जाती। हमारी आपत्ति उन थोड़े से अरबी-फारसी के शब्दों पर नहीं है जो काका साहब की भाषा की शैली में अनावश्यक और बेमेल मालूम होते हैं, और जिनसे भाषा के सौष्ठव में कमी मालूम होती है, क्योंकि उनसे वाक्य-विन्यास और भाषा के प्रसाद गुण में अंतर नहीं पड़ता। यदि प्रकाशक चाहते हों कि इस उपयोगी संग्रह का अधिकाधिक उपयोग हो तो उन्हें चाहिए कि इसकी भाषा को किसी हिंदी ज्ञाता से ठीक करा लें। हमें विश्वास है कि यदि काका साहब स्वयं उसे हिंदी में लिख देंगे तो उनकी भाषा इस पुस्तक के योग्य और अनुरूप होगी।

आश्रम संहिता––काका साहब कालेलकर। प्रकाशक, गांधी हिंदुस्तानी साहित्य-सभा, राजघाट, नयी दिल्ली–१, सचित्र। मूल्य, २ रुपये ५० नये पैसे।

यह मनोरंजक और तथ्यपूर्ण पुस्तक श्री काका साहब कालेलकर की कलम से लिखी गयी है। इसमें महात्माजी द्वारा स्थापित साबरमती आश्रम की स्थापना और उसके जीवन का मनोरंजक वर्णन है। यह केवल वर्णन ही नहीं है। आश्रम में जो नियम बनाये गये थे, उनके पीछे जो सिद्धान्त थे, उनका क्या प्रयोजन था और उनको बरतने में क्या क्या कठिनाइयाँ हुईं––इन सबका अधिकारपूर्ण वर्णन बड़ी सुंदर शैली में किया गया है। महात्माजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने के लिए यह आश्रम प्रयोगशाला का काम देता था। इस पुस्तक को पढ़ने से गांधीजी के बहुत से सिद्धान्तों और प्रयोगों का प्रयोजन समझने में बड़ी सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है क्योंकि साबरमती आश्रम का स्वतंत्रता-संग्राम में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। बीच-बीच में मनोरंजक घटनाओं के वर्णन से पुस्तक की मनोरंजकता बढ़ गयी है। अंत में काका साहब ने इस युग में ऐसे आश्रमों की उपयोगिता और उनके भविष्य पर अपने सुलझे हुए विचार प्रकट किये हैं। वे लिखते हैं––"लेकिन मुख्य सवाल यह था कि आश्रम के व्रत और नियम और आश्रमी जीवन आत्मा शुद्धि द्वारा मोक्ष-साधना को प्रधानता देता है या समाज-सेवा द्वारा सामाजिक उन्नति को? इसकी स्पष्टता कभी नहीं हुई।.... नतीजा यह हुआ कि इन आश्रमों में लोगों की अभिरुचि मन्द पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ लोक-सेवा प्रधान हुई वहाँ आश्रमवासियों की आश्रमिता ही गायब हुई। तत्त्वनिष्ठा, व्रत-पालन, संयम, त्याग और चारित्र्य में जो ऊँचे थे उनमें समाज-सेवा की, लोक-संग्रह की, सफलता की और नये-नये साधकों को आकर्षित करने की शक्ति बहुत कम पायी गयी। जो व्यवहारकुशल थे, अन्यान्य रचनात्मक कार्य में लग गये, और जिनको रजोगुणी राजनीति में दिलचस्पी थी वे उस क्षेत्र में जाकर प्रभावशाली बन गये।" इसके बाद वे एक प्रश्न करते हैं—"भावनात्मक आदर्शवाद राष्ट्रीय जीवन में से हट रहा है। संकुचितता, अदूरदृष्टि, स्वार्थ, अभिमान, सत्ता-लोभ, पक्षाभिमान, अहमहमिका, अहम्श्रेयसी, आदि असामाजिक और अराष्ट्रीय दोष बढ़ने लगे हैं। यह सब देखकर चंद लोगों के मन में विचार आ रहे हैं कि गांधीजी ने देश में जो चारित्र्य-शुद्धि का, जीवन-शुद्धि का प्रभाव दिखाया, वह शायद उनके आश्रमी प्रयोग के कारण होगा।" इसलिए अब फिर से आश्रमों की स्थापना क्यों न की जाय? काका साहब इसे व्यावहारिक नहीं समझते। इसके उत्तर में वे कहते हैं—"सच बात तो ऐसी दीख पड़ती है कि अब भविष्य के लिए पुराने ढंग के आश्रम चलायें तो भी काम नहीं दे सकेंगे।.... आयन्दा जो संस्कार-केन्द्र और सहजीवन के प्रयोग किये जायँगे उनकी बुनियाद में भूतकाल के गौरव का नहीं, किंतु भविष्यकाल की उज्ज्वलता का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए।..... हमें नये किस्म की आत्म-शुद्धि करके अपनी दृष्टि में यौवन की आस्तिकता लानी पड़ेगी।" यह विचारोत्तेजक और महत्त्वपूर्ण पुस्तक सबके पढ़ने योग्य है।

आदिम मानव-समाज—श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल; प्रकाशक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली—६। सजिल्द और सचित्र; मूल्य, ४ रुपये।

मनुष्य अपने आविर्भाव से लेकर सुसभ्य होने तक किस प्रकार विकास करता गया—यह प्राक् इतिहास का विषय है। हिंदी में इस महत्त्वपूर्ण विषय पर बहुत कम साहित्य लिखा गया है। यह पुस्तक उसी विषय पर है। संसार के कितने ही नृतत्त्ववेत्ता और इतिहासज्ञ कितने ही दिनों से संसार के भिन्न-भिन्न भागों में मानव के आरंभिक जीवन का अध्ययन कर रहे हैं, और उसके फलस्वरूप उन्होंने आदिम मानव के जीवन की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर ली है। इस पुस्तक में उसी ज्ञान का निचोड़ सरल और सुबोध भाषा में विद्वान् लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से रख दिया है। इतिहास में रुचि रखनेवाले पाठकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

राधा—(उपन्यास) मूल लेखक—ताराशंकर वन्द्योपाध्याय; अनु० हंसकुमार तिवारी; प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। सजिल्द; मूल्य, ४ रुपये।

ताराशंकर बाबू का यह प्रसिद्ध उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर चित्रित है। इसमें उस समय का वर्णन है जब बंगाल के मुसलमानी राज्य पर मराठों के आक्रमण आरंभ हो गये थे। उपन्यास के पात्र ऐतिहासिक नहीं हैं, किंतु तत्कालीन जीवन और वातावरण का चित्रण ऐतिहासिक है। ताराशंकरजी इस समय के सबसे प्रमुख भारतीय उपन्यासकार हैं। उनका यह उपन्यास पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका है। अनुवाद की भाषा सरल और प्रवाहमयी है। उपन्यास-प्रेमियों को ताराशंकर बाबू के इस प्रसिद्ध उपन्यास का यह सुंदर हिंदी अनुवाद अवश्य पढ़ना चाहिए।

रूस की साहित्यिक यात्रा—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। सजिल्द और सचित्र; मूल्य, चार रुपये।

दो वर्ष पूर्व पं० बनारसीदास चतुर्वेदी सोवियत लेखक संघ के निमंत्रण पर रूस गये थे। उनकी यात्रा विशुद्ध साहित्यिक यात्रा थी। जैसा वे लिखते हैं—"मेरी यह यात्रा मुख्यतया एक श्रद्धालु साहित्यिक की तीर्थयात्रा ही थी।" अतएव उन्होंने वहाँ अपना समय मुख्यतया साहित्यिकों से मिलने तथा प्रसिद्ध रूसी साहित्यिकों के स्मारकों के देखने में बिताया। क्रोपाटकिन; चेखव, गोर्की, ताल्स्ताय आदि संसारप्रसिद्ध साहित्यिकों के वे पुराने भक्त हैं। अतएव उन्होंने इन महान् व्यक्तियों से संबद्ध स्थानों की विशेष रूप से 'तीर्थयात्रा' की। इस पुस्तक का महत्त्व यह है कि रूस पर होते हुए भी इसमें केवल साहित्यिक महत्त्व के स्थानों का वर्णन है। इसमें प्रत्यक्ष राजनीति नहीं है। रूसी साहित्यिकों और साहित्यिक महत्त्व के स्थानों का वर्णन एक श्रद्धालु हिंदी साहित्यिक ने बड़ी सहानुभूति के साथ लिखा है। साहित्यिकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इससे उन्हें रूस के साहित्यिकों की कर्मठता, ज्ञानपिपासा आदि का पता लगेगा तथा यह मालूम होगा कि जनता के वे कितने निकट थे। उपसंहार में श्री चतुर्वेदी ने बड़े निःसंकोच भाव से अपनी कमियों को स्वीकार किया है। अपने देश के संबंध में अज्ञान, कला-संस्कृति आदि की ओर से उदासीनता, पठन-पाठन, अध्ययन और मनन का अभाव आदि ऐसी बातें हैं जो अनेक हिंदी साहित्यकारों में हैं। चतुर्वेदीजी ने ईमानदारी से उन्हें स्वीकार कर लिया है। दूसरे शायद उतना भी न करेंगे। यदि उनके उदाहरण से युवक साहित्यकार कुछ लाभ उठा सकें तो बड़ी बात हो। हमें यह पुस्तक बड़ी मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक मालूम हुई। पं० बनारसीदास की शैली सीधी-सादी और हृदय पर चोट करनेवाली होती है। उसमें ईमानदारी और हार्दिकता स्पष्ट झलकती है। इसीलिए वह इतनी प्रभावशाली होती है। सभी साहित्यकारों और युवकों को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

महाकवि देव कृत रस-विलास—सम्पादक, तिलेश्वर शास्त्री। प्रकाशक, साहित्य संसार, १२५ महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता—७। सजिल्द; मूल्य, दो रुपये।

देव का रस-विलास नायिका-भेद का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इधर यह अप्राप्य-सा हो रहा था। इसलिए प्रकाशक ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे छापकर काव्य-प्रेमियों की सेवा की है। पुस्तक अच्छे ढंग से छपी है, और प्रूफ की अशुद्धियाँ बचाने का ध्यान रखा गया है।

भोजन बनाना सीखो—शैल सरल, कमलेशपुरी और कमला; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। सजिल्द और रेखाचित्रों सहित। मूल्य, ३ रुपये।

आधुनिक ढंग से भोजनों के आवश्यक तत्त्वों को समझाते हुए, इसमें अनेक व्यावहारिक बातें बतलायी गयी हैं। साधारण भोजन की वस्तुओं के अतिरिक्त पकवान, सलाद और तरह तरह के अचार, चटनी और मुरब्बों के बनाने की विधियाँ भी बतायी गयी हैं। जिन शिक्षित महिलाओं ने अपने घरों में भोजन बनाना नहीं सीखा, उनके लिए उपयोगी है।

भारत का संविधान—श्री दुर्गादास बसु। प्रकाशक, एस० सी० सरकार एण्ड सन्स (प्रा०) लि०, १ सी, कालेज स्क्वायर, कलकत्ता—१२। मूल्य, ५ रुपये।

प्रश्नोत्तर के रूप में इसमें भारतीय संविधान को विद्यार्थियों के लिए सुगम बना दिया गया है। प्रश्नों को हिंदी और अँगरेजी दोनों में दिया गया है। उत्तर केवल हिंदी में हैं। इस कारण जहाँ प्रश्न-पत्र अँगरेजी में आते हैं, किंतु परीक्षार्थियों को हिंदी में उत्तर देने की छूट रहती है, वहाँ के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। प्रश्नों को परीक्षा की दृष्टि से तैयार किया गया है, किंतु प्रकारान्तर से विधान से संबंधित सभी बातें स्पष्ट कर दी गयी हैं, तथा स्थान-स्थान पर, उत्तरों में, व्याख्याएँ भी दे दी गयी हैं। कालेजों के विद्यार्थियों के लिए भारतीय संविधान का प्रश्न-पत्र तैयार करने में यह पुस्तक सहायक होगी।

ज्ञान भारती का बलिदान अंक—ज्ञान भारती मासिक पत्रिका लखनऊ से निकलती है। उसका अभी हाल में पुनर्गठन हुआ है और इस अवसर पर उसने एक महत्त्वपूर्ण विशेषांक निकाला है। इस विशेषांक का नाम 'बलिदान अंक' है। इस सुन्दर और महत्त्वपूर्ण विशेषांक को देखकर 'चाँद' के 'फाँसी अंक' की याद हो आयी जिसे तत्कालीन अँगरेज सरकार ने जब्त कर लिया था। इस अंक में कुछ बलिदान की कहानियाँ उन वीरों की हैं जिन्होंने सुदूर अतीत में देश, धर्म या किसी सिद्धान्त के लिए अपना बलिदान किया था, किन्तु मुख्य रूप से इसमें सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता युद्ध और उसके बाद के आत्म-बलिदान करनेवालों के ऊपर प्रेरणास्पद लेख हैं। सम्पादक की दृष्टि उदार है, और उन्होंने किसी दल या वर्ग विशेष के बलिदानियों तक इस अंक को सीमित नहीं रखा। इस कारण उन्हें सभी वर्गों के नेताओं, उत्कृष्ट लेखकों और पुराने क्रांतिकारियों का सहयोग प्राप्त हुआ। प्रायः सभी लेख पठन और मनन करने योग्य हैं और स्थान-स्थान पर रेखाचित्रों या हाफटोन चित्रों से इन लेखों का मूल्य और बढ़ गया है। यह विशेषांक वास्तव में एक स्वतंत्र पुस्तक है और उसका एक स्थायी महत्त्व है। उससे नवयुवकों को बराबर प्रेरणा मिलती रहेगी। इस समय देश पर चीनी आक्रमण के कारण जो संकट आ गया है, उस समय ऐसा प्रेरक साहित्य जनता के मनोबल को बढ़ाने के लिए बड़ा उपयोगी है। इसका मूल्य केवल एक रुपया है जो पुस्तक का आकार और उसकी सज्जा देखते हुए काफी कम है। इसे मैनेजर, ज्ञान भारती, लखनऊ से प्राप्त किया जा सकता है।

आर्थिक साधना (अँगरेजी मासिक पत्र)—सम्पादक, श्री जी० एस० पथिक। प्रकाशक, साधना प्रकाशन, ८ मार्क्विस स्ट्रीट, कलकत्ता—१६, वार्षिक मूल्य २४ रुपये।

श्री जी० एस० पथिक से 'सरस्वती' के पाठक भली भाँति परिचित हैं। पथिकजी हिंदी के ही लेखक नहीं, वे अँगरेजी के भी जानेमाने लेखक हैं। वे आर्थिक विषयों के विशेषज्ञ हैं, और नेताओं, उद्योगपतियों और आर्थिक विशेषज्ञों में उनका काफी सम्मान है। वे 'ईस्टर्न इकनामिक' नाम के प्रसिद्ध अर्थशास्त्रीय पत्र के सम्पादक भी रह चुके हैं। उन्होंने यह नया पत्र अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विषयों में रुचि रखनेवालों के लिए निकाला है। अतः इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। स्वभावतः इसमें भारतीय आर्थिक समस्याओं को प्रधानता दी जाती है, किन्तु उनका अध्ययन संकुचित दृष्टि से करके संसार की पृष्ठभूमि में किया जाता है। आरंभिक अंक में ऐसे महत्त्वशाली लेखकों, जैसे पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० लोकनाथन्, प्रो० सी० एन० वकील, श्री सी० टी० मुथिया, प्रोफेसर गैलब्रेथ (अमरीकन राजदूत) श्री जी० एल० मेहता, श्री स्ट्रोवेल, श्री टाइलरउड, श्री जगजीवनराम, श्री ईश्वरदास जालान, श्री रूँगटा, श्री पी० सी० सेन आदि के लेख हैं। इस स्तर का पत्र उन सब लोगों के लिए अत्यंत उपयोगी है जिन्हें देश और संसार की आर्थिक गतिविधि में दिलचस्पी है। आज देश की उन्नति और उसकी आर्थिक उन्नति पर्यायवाची हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक शिक्षित और जागरूक व्यक्ति को आर्थिक गतिविधि जानने की उत्कण्ठा रहती है। किन्तु अधकचरे, पक्षपातपूर्ण, प्रचारात्मक और अप्रामाणिक स्रोतों से जो जानकारी मिलती है वह अविश्वसनीय होती है। इस पत्र में वस्तुनिष्ठ दृष्टि से अधिकारी लेखक अपने-अपने विषयों पर लिखते हैं। इसीलिए हम इस पत्र का स्वागत करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

गत मास संयोग से हम भारतेन्दु की "श्रीहरिश्चन्द्र चन्द्रिका" की फाइल उलट रहे थे। उसमें देखा कि भारतेन्दु 'चोज की बातें' शीर्षक से एक स्तम्भ दिया करते थे जिसमें हास्य और विनोद के साधारण चुटकुले होते थे। उनमें हमें कुछ ऐसे चुटकुले भी मिले जिनमें कविता का पुट है और इस कारण वे साहित्यिक हो गये हैं। हम अपने पाठकों के मनोरंजनार्थ उनमें से तीन छोटे-छोटे चुटकुले यहाँ ज्यों के त्यों उद्धृत कर रहे हैं।

(१)

बनारस में एक चौबे ने किसी स्थान पर कितने एक विद्यार्थियों को हिल-हिलकर पढ़ते देख किसू पण्डित से प्रश्न किया, झुकत झुकत विद्यारथी कहा बूढ़े कहा वार, मैं तोहि पूछू हे सखे याकौ कौन विचार॥ उत्तर दिया। आगे समुद अगम्य है अपने बैठ करार, रतन लैन कौं झुकत हैं झिझकत देख अपार॥

(२)

एक नवयौवना सुंदरी चतुर चरफरी बसन्त ऋतु में अपनी बहनेली के यहां गई और कुछ इधर-उधर की मन लगन बातें कर रही थी कि प्यासी हुई और पानी मांगा इसकी उस मुंहबोली बहन ने कोरे कुल्हड़े में भर कर ला दिया जो इसने मुंह लगाकर पिया तो कुल्ड़ा होंठों से लग रहा यह खिलखिला कर हँसी और इस दोहे को पढ़ने लगी॥ रे माटी के कूल्हड़ा तोहि डारों पटकाय, होठ रखे हैं पीउ कौं तू क्यों चूसे जाय॥ यह दोहा सुन उसकी बहनेली ने कुल्हड़े की ओर से उत्तर दिया। लात सही मूंकी सही उलटे सहे कुदार, इन होठन के कारने सिर पर धरे अँगार॥

(श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंण्ड ६, संख्या ६ दिसम्बर सन् १८७८ ई०)

(३)

कोई पुरुष किसी पर मोहित था पर मारे लाज के अपना प्रेम उसके आगे प्रगट न करता, और जिस पै मोहित था वह भी जान-बूझकर लाज से कुछ न कहती० एक दिन वे दोनों किसी ठौर पर रात को बैठे थे कि एक पतंग दिये पर आ जला० उसको जलता देख नायक ने व्यंग से यह दोहा पढ़ा।

आहि दई कैसी भई अनचाहत कौ सङ्ग।
दीपक को भावे नहीं जल जल मरे पतङ्ग॥

इसके उत्तर में नायका ने कह सुनाया

आव पतङ्ग निसङ्क जल (?) जलत न मोड़ौ अङ्ग।
पहले तो दीपक जले पाछे जले पतङ्ग॥

(संख्या ९, मार्च सन् १८७९ ई०)

हमने इन उद्धरणों की भाषा, अखरौटी, विराम चिह्न आदि को ज्यों का त्यों रखा है। इन चुटकुलों में साहित्य-प्रेमियों को भारतेन्दु के उस समय की भाषा का नमूना मिलेगा जिस समय वे खड़ी बोली को आधुनिक हिन्दी साहित्य की भाषा बना रहे थे। उस समय के व्यंग्य-विनोद के नमूने भी इन उदाहरणों में मिलेंगे।

प्रकाशक : बी० एन० माथुर इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके बालकों का भविष्य आपके सामने है

किन्तु, आपने क्या सोचा है इसके लिए ?

उन्हें रुपया पैसा न चाहिए, न दीजिए; उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा दीजिए, और उसका आरम्भ आज ही से कीजिए।

'बालसखा' भी इसका एक अच्छा साधन है। इससे उन्हें देश-विदेश की जानकारी ही न होगी, बल्कि अपने चारों ओर होनेवाली हलचल को वे समझेंगे, और भविष्य के लिए उसके अनुसार तैयार होंगे।

बालसखा हिन्दी का सबसे अधिक प्रतिष्ठित मासिक पत्र है। बाल-साहित्य के माने हुए साहित्यकार एवं विशेषज्ञ उसका सम्पादन करते हैं।

बालसखा के विशेषांकों की अपनी परंपरा है। जनवरी १९६२ में रवीन्द्र अंक, होली में होली विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। **१४ नवंबर को चाचा नेहरू के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में बालसखा का चाचा नेहरू विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। जनवरी १९६३ में बाल विशेषांक** बड़ी सजधज से प्रकाशित होगा।

वार्षिक मूल्य केवल ५·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कील लगाने जैसा आसान है...

यह एक बच्चे के लिये भी सहल है यदि प्रारम्भ उचितरुप से हो।

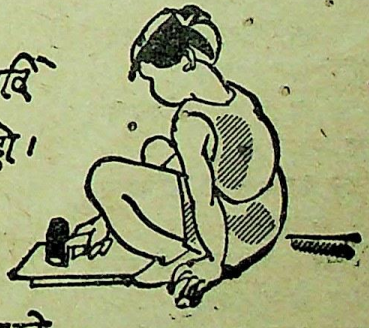

बचत कीजिये ताकि आपके बच्चे का प्रारम्भिक जीवन आपसे अच्छे रुप में हो सके।

UNITED BANK OF INDIA LTD.

युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया लि.

हेड आफिस :— ४, क्लाइव घाट स्ट्रीट, कलकत्ता-१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रॉबिनहुड

डाकू मोहन का
विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। बी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीदा रहमान से सुनिये एक रहस्य की बात...

'लक्स से मेरा रंगरूप खिल उठता है!'

वहीदा रहमान का रूप-रहस्य आपके रंगरूप की भेंट... लक्स इस्तेमाल कीजिये... इसके मुलायम झाग और इसकी अछूती सुगंध पर आपका मन मुग्ध हो जायेगा! लक्स इस्तेमाल कीजिये... यह इंद्रधनुष के छबीले रंगों में भी मिलता है और सफ़ेद भी! आपके रंगरूप को लक्स टॉयलेट साबुन की ज़रूरत है। यह है...

चित्र-तारिकाओं का शुद्ध, मुलायम सौंदर्य साबुन

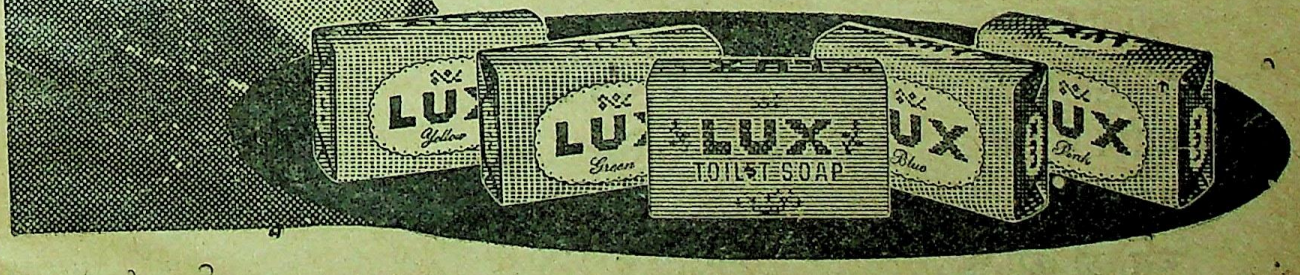

'लक्स अब मेरे मनपसंद पांच रंगों में' सुंदरी चित्रतारिका वहीदा रहमान कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 123-252 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती सीरीज़ नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तकका मूल्य केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

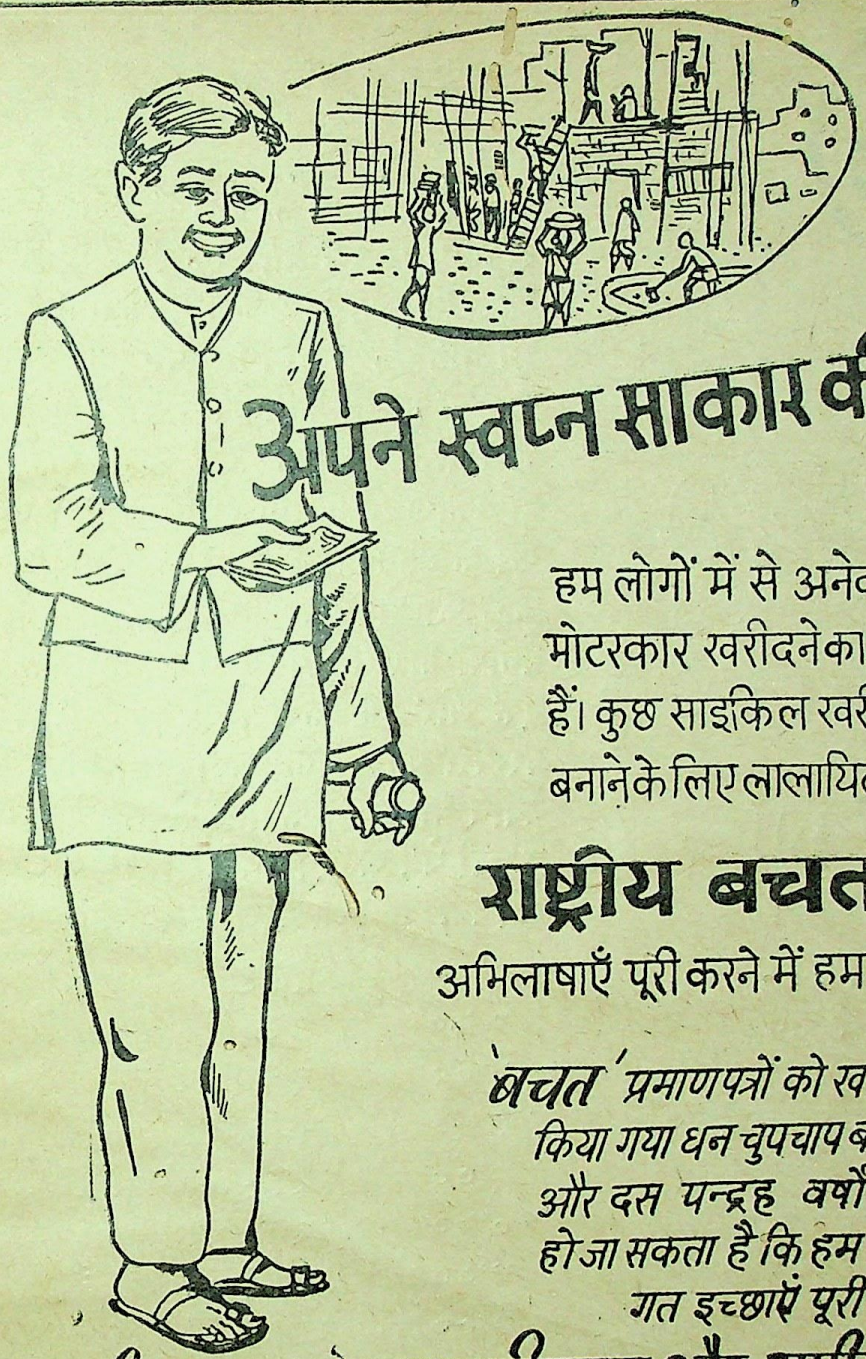

अपने स्वप्न साकार कीजिए !

हम लोगों में से अनेक रेडियो या मोटरकार खरीदने का स्वप्न देखते हैं। कुछ साइकिल खरीदने या मकान बनाने के लिए लालायित होते हैं।

राष्ट्रीय बचत योजना

अभिलाषाएँ पूरी करने में हमारी सहायता करती है

'बचत' प्रमाणपत्रों को खरीदने में खर्च किया गया धन चुपचाप बढ़ता रहता है और दस पन्द्रह वर्षों में इतना हो जा सकता है कि हम अपनी व्यक्तिगत इच्छाएं पूरी कर लें।

राष्ट्रीय बचत योजना व्यक्तिगत और राष्ट्रीय समृद्धि की योजना को पूरा करने का साधन है।

उत्पादन बढ़ाइये और बचाइये

बचत का धन निर्माण में लगाइये

बचत योजना के लिए एजेन्ट चाहिए कृपया जिला संघटनकर्त्ता से सम्पर्क स्थापित करें।

राष्ट्रीय बचत विभाग के लिए सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११२१३

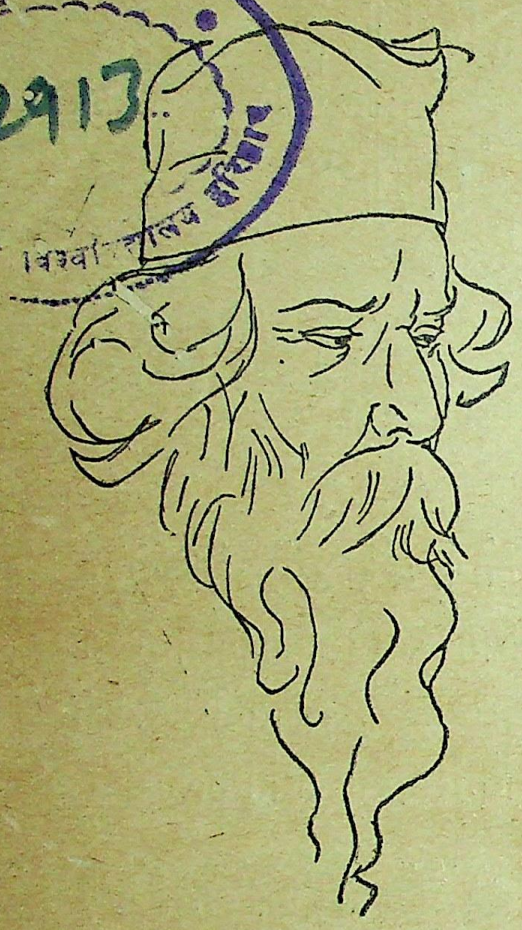

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलते दृश्य

दादरी की सड़क

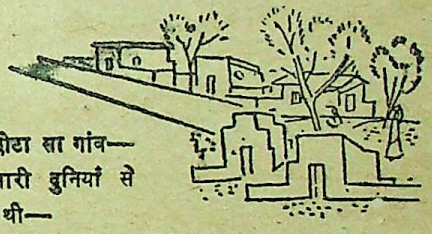

दादरी—उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले का एक छोटा सा गांव—जो वर्षों से नवयुग की हवा से अछूता रहा, सारी दुनियां से अलग-थलग क्योंकि वहां एक कच्ची सड़क तक न थी—

पर फिर एक बदलाव आया—सारे देश में नव-निर्माण की जो लहर चली उससे दादरी भला अलग कैसे रहता? खेती के उन्नत तरीके अपनाने का यह फल निकला कि गन्ने की उपज काफी बढ़ गई पर सवाल यह था कि गन्ना मण्डी में पहुंचे कैसे क्योंकि वहां कोई सड़क ही नहीं थी।

इसका भी गांव वालों ने हल निकाला। सबने मिलकर योजना बनाई कि गांव से पक्की सड़क तक एक मिलाने वाली सड़क बनाई जाए। उस रास्ते में जिन-जिन किसानों की जमीन पड़ती थी वह उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक गांव की भलाई के लिए दान कर दी। सबकी मेहनत और कोशिश का नतीजा यह निकला कि सड़क बन कर तैयार हो गई। दादरी की यह सड़क विकास आंदोलन तथा सबके उज्ज्वलतर भविष्य में लोगों की आस्था का प्रतीक है।

नई नई सड़कों के जाल से देहातों का रूप ही बदलता जा रहा है। योजनाओं के पहले दस सालों में हमारी कच्ची सड़कों की लम्बाई १,५१,००० मील से बढ़ कर २,५०,००० मील तथा पक्की सड़कों की लम्बाई ६७,५०० मील से बढ़ कर १,४४,००० मील हो गई है। तीसरी योजना काल में कच्ची सड़कों में पर्याप्त वृद्धि के साथ ही २५,००० मील लम्बी पक्की सड़कें और बनाये जाने का अनुमान है।

तीसरी पंचवर्षीय योजना

सबका सुख
सबकी सुविधा

DA 62/428

Kul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11.2913

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष विश्वविद्यालय प्रयाग—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १४) चौदह रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

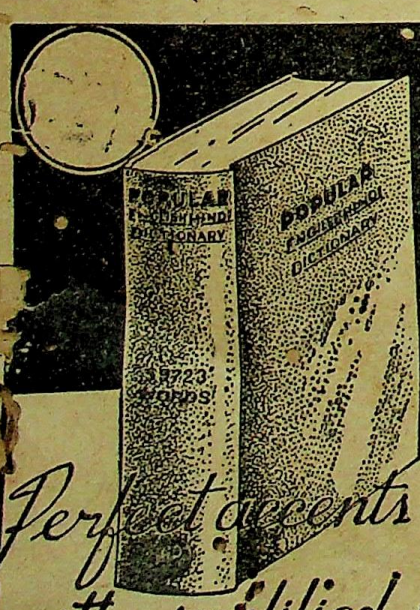

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best Of 20th Century.

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

द्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्तीदेवी। मूल्य १·७५

भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए० मूल्य २)

समय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

तिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

ारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी० मूल्य २)

लोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोन आथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्-एल० बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस्०। मूल्य २)

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच्० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन्० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri